हिन्दी
विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित ।

उनविंश भाग

[र—रैवत्य]

THE
ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XIX.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava,

Siddhānta-vāridhi, Sabda-ratnākara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Bangiya Sāhitya Parishad and Kāyastha Patrikā ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ; Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society, Associate Member of the Asiatic Society of Bengal &c. &c. &c.

Printed by A. Sen. at the Visvakosha Press.
Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, Visvakosha Lane, Bagbazar Calcutta,

1929.

हिन्दी विश्वकोष

ऊनविंश भाग

र

र—हिन्दी वर्णमालाका सत्ताईसवां व्यञ्जनवर्ण। इसका उच्चारण जीभके अगले भागको मूर्द्धाके साथ कुछ स्पर्श करनेसे होता है। यह स्पर्श वर्ण और उष्म वर्णके मध्यका वर्ण है। इसका उच्चारणस्थान स्वर और व्यञ्जनका मध्यवर्ती है, इसीसे इसको अन्तस्थ वर्ण कहते हैं। इसके उच्चारणमें संवार, नाद और घोष नामक प्रयत्न होते हैं।

एक सीधी रेखा खींच कर पीछे दूसरी रेखा दाहिनी ओरसे कुण्डली भावमें खींच लानेसे यह अक्षर बनता है। इन रेखाओंमें भवानी, शङ्करी और वह्नि सर्वदा रहती हैं। इस वर्णको ब्रह्मरूपिणी अधोमात्रा महाशक्ति कहा है। यह वर्ण बनानेका दूसरा प्रकार—

ऊर्द्ध्वाधः क्रमसे एक एक रेखा खींच कर उसे त्रिकोण बनाना होगा। पीछे ऊपरकी एक मात्रा और मध्यमें एक रेखा खींचनेसे यह वर्ण बनेगा। त्रिकोणको तीन रेखाओंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर रहते हैं। ऊपर वाली मात्राको शक्ति तथा मध्यकी रेखाको अग्निरूपिणी जानना होगा। इस वर्णका ध्यान—

"ललजिह्वां महारौद्रीं रक्तास्यां रक्तलोचना।
रक्तवर्णामष्टभुजां रक्तपुष्पोपशोभितां॥
रक्तमाल्याम्बरधरां रक्तालङ्कारभूषितां।
महामोक्षप्रदां नित्यामष्टसिद्धिप्रदायिकां॥
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपं तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥"

इस प्रकार इस वर्णका ध्यान करके दश बार इसे जप प्रणाम करना होता है। प्रणाममन्त्र—

"त्रिशक्ति सहितं देवि! आत्मादि-तत्त्वसंयुतं।
सर्वतेजोमयं वर्णं सततं प्रणमाम्यहं॥"

(वर्णोद्धारतन्त्र)

इस वर्णका स्वरूप रकार दो कुण्डलीसे युक्त, विद्युल्लताकार, पञ्चदेवात्मक, पञ्चप्राणमय और त्रिबिन्दुके साथ है।

इसके वाचक शब्द वा पर्याय—रक्त, क्रोधिनी, रेफ,

पावक, ओजस, प्रकाश, अदर्शन, ग्रोप, रत, क्रूर, अपर, वली, भुजङ्गेश, मति, सूर्य, धातुरक्त, प्रकाशक, व्यापक, रैवती, दास, कृष्णांश, वह्निमण्डल, उग्ररेखा, स्थूलदण्ड, वेदकण्ठपला, प्रकृति, सुगल, ब्रह्मशब्द, गायक, धन, श्रीकण्ठ, उष्मा, हृदय, मुण्डी, त्रिपुरसुन्दरी, सविन्दु, योनिज, ज्वाला, श्रीशैल और विश्वतोमुखी।

(वर्णाभिधानतन्त्र)

मातृकान्यासमें इस वर्णका दक्षिण स्कन्धमें न्यास करना होता है। काव्यके आदिमें इस शब्दका प्रयोग न करे। 'रस्तु दाह', यदि कोई करे तो दाह होता है।

(वृत्तरत्नाकर)

२ छन्दःशास्त्रोक्त गणविशेष। "रलमध्यः" छन्दःशास्त्रमें 'र' कहनेसे मध्यवर्णको लघु, प्रथम और शेष वर्णको गुरु तथा मध्यवर्णको लघु समझना होगा। ३ धात्वनुवन्धविशेष। (कविकल्पलता)

रंगई (हिं० पु०) धोबियोंके अन्तर्गत एक जाति जो केवल छपे हुए कपड़ेका काम करती है।

रंगत (हिं० स्त्री०) १ रंगका भाव। २ मजा, आनन्द। ३ हालत, दशा।

रंगतरा (हिं० पु०) एक प्रकारको बड़ी और मीठी नारंगी, संगतरा।

रंगन (हिं० पु०) एक प्रकारका मझोला वृक्ष। इसके हीरकी लकड़ी कड़ी, चिकनी और मजबूत होती है और इमारतके काममें आती है। बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रासमें यह पेड़ बहुतायतसे होता है। इसे 'कांटागन्धक' भी कहते हैं।

रंगना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तुपर रंग चढ़ाना, रंगमें डुबा कर अथवा रंग चढ़ा कर किसी चीजको रंगीन करना। २ अपने कार्यसाधनके अनुकूल करनेके लिये बातचीतका प्रभाव डालना, अपना-सा बनाना। ३ किसीको अपने प्रेममें फसाना। ४ किसीके प्रेममें लिप्त होना।

रंगबदल (हिं० पु०) हल्दी।

रंगबिरंग (हिं० वि०) १ कई रंगोंका। २ तरह तरहके, अनेक प्रकारके।

रंगबिरंगा (हिं० वि०) १ अनेक रंगोंका, कई रंगोंका। २ तरह तरहका, अनेक प्रकारका।

रंगभरिया (हिं० वि०) छत, किवाड़, दीवार इत्यादि पर रंगोंसे चित्रकारी करनेवाला, रंगसाज।

रंगमार (हिं० पु०) ताशका एक खेल। यह दो, तीन अथवा चार आदमियोंसे खेला जाता है। इसमें एक एक करके सब खेलनेवालोंको बराबर बराबर पत्ते बांट दिये जाते हैं और तब खेल होता है। इसमें जिस रंगका जो पत्ता चला जाता है उसी रंगके उससे बड़े पत्तेसे वह जीता जाता है। यह ताशका सबसे सीधा खेल है।

(हिं० स्त्री०) आमोद-प्रमोद, आनन्द, मौज।

(हिं० पु०) आमोद-प्रमोद, आनन्द-मंगल।

(हिं० पु०) भोग-विलास करनेवाला व्यक्ति, पुरुष।

रंगरूट (हिं० पु०) १ सेना या पुलिस आदिमें नया भर्ती होनेवाला सिपाही। २ किसी काममें पहले पहल हाथ डालनेवाला आदमी, वह आदमी जो कोई काम सीखने लगा हो।

रंगरेज (फा० पु०) रङ्गरेज देखो।

रंगवाई (हिं० स्त्री०) रंगाई देखो।

रंगवाना (हिं० क्रि०) रंगनेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको रंगनेमें प्रवृत्त करना।

रंगसाज (फा० पु०) १ मेज, कुर्सी, किवाड़, दीवार इत्यादि पर रंग चढ़ानेवाला, वह जो चीजों पर रंग चढ़ाता हो। २ उपकरणोंसे रंग तैयार करनेवाला, रंग बनानेवाला।

रंगसाजी (फा० स्त्री०) रंगसाजका काम, रंगनेका काम।

रंगाई (हिं० स्त्री०) १ रंगनेका काम, रंगनेकी क्रिया। २ रंगनेकी मजदूरी। ३ रंगनेका भाव।

रंगाना (हिं० क्रि०) रंगनेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको रंगनेमें प्रवृत्त करना।

रंगावट (हिं० स्त्री०) रंगनेका भाव, रंगाई।

रंगिया (हिं० पु०) १ कपड़े रंगनेवाला, रंगरेज। २ रंगसाज।

रंगी (हिं० वि०) आनंदी, मौजी।

रंगीन (फा० वि०) १ जिस पर कोई रंग चढ़ा हो, रंगा हुआ। २ जिसमें कुछ अनोखापन हो, मजेदार। ३ विलास-प्रिय, आमोदप्रिय।

रंगीनी (फा० स्त्री०) १ रंगीन होनेका भाव। २ सजावट, बनाव सिंगार। ३ बाँकापन। ४ रसिकता, रंगीलापन।

रंगीरेटा (हिं० पु०) एक जंगली वृक्ष। यह दार्जिलिङ्गमें अधिकतासे होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत बनानेके काममें आती है। इससे मेज, कुर्सी आदि भी बनाई जाती है।

रंगीला (हिं० वि०) १ आनन्दी, मौजी। २ सुन्दर, खूबसूरत। ३ प्रेमी, अनुरागी।

रंगीली टोड़ी (हिं० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिकी एक रागिणी। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह टोड़ी रागिणीका एक भेद है।

रंगैया (हिं० पु०) रंगनेवाला।

रंच (हिं० वि०) थोड़ा, अल्प।

रंज (फा० पु०) १ दुःख, खेद। २ शोक।

रंजक (हिं० स्त्री०) १ वह थोड़ी-सी बारूद जो बत्ती लगानेके वास्ते बंदूककी प्याली पर रखी जाती है। २ गांजे, तमाखू या सुलफेका दम। ३ वह बात जो किसी को भड़काने या उत्तेजित करनेके लिये कही जाय। ४ कोई तीखा या चटपटा चूर्ण।

रंजना (हिं० क्रि०) १ प्रसन्न करना, आनन्दित करना। २ भजना, स्मरण करना। ३ रंगना।

रंजा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली। इसे उलबी भी कहते हैं।

रंजिश (फा० स्त्री०) १ रंज होनेका भाव। २ वैमनस्य, शत्रुता। ३ मनमुटाव, अनबन।

रंजीदगी (फा० स्त्री०) १ रंजीदा होनेका भाव। २ रंजिश।

रंजीदा (फा० वि०) १ जिसे रंज हो, दुःखित। २ नाराज, अप्रसन्न।

रंडापा (हिं० पु०) विधवाकी दशा, वैधव्य।

रंडी (हिं० स्त्री०) नाचने-गाने और धन ले कर सम्भोग करनेवाली स्त्री, वेश्या।

रंडीबाज (फा० पु०) वह जो रंडियोंसे सम्भोग करता हो, वेश्यागामी।

रंडीबाजी (फा० स्त्री०) रंडीके साथ गमन करना, वेश्यागमन।

रंडुआ (हिं० पु०) वह पुरुष जिसकी स्त्री मर गई हो।

रंडुवा (हिं० पु०) रंडुआ देखो।

रंद (हिं० पु०) १ बड़ी इमारतोंकी दीवारोंके वे छेद जो रोशनी और हवा आनेके लिये रखे जाते हैं, रोशनदान। २ किलेकी दीवारोंका वह मोखा जिसमेंसे बाहरकी ओर बंदूक या तोप चलाई जाती है, मार।

रंदना (हिं० क्रि०) रंदेसे छील कर लकड़ीकी सतह चिकनी करना, रंदा फेरना या चलाना।

रंदा (हिं० पु०) बढ़ईका एक औजार जिससे वह लकड़ीकी सतह छील कर बराबर और चिकनी करता है। इसमें एक चौपहल लम्बी और चिकनी सतहवाली लकड़ीके बीचमें एक छोटा लम्बा छेद होता है, जिसमें एक तेज धारवाला फल जड़ा रहता है। इसे हाथमें ले कर किसी लकड़ी पर बार बार रगड़ने या चलानेसे उसके ऊपरसे उभरी हुई सतह उतरने लगती है और थोड़ी देरमें लकड़ीकी सतह चिकनी हो जाती है।

रंबा (हिं० पु०) १ रम्भा देखो। २ जुलाहोंका लोहेका एक औजार जो लगभग एक गज लम्बा होता है। यह जमीनमें गाड़ दिया जाता है और इसमें तानीकी रस्सी बांधी जाती है।

रंभाना (हिं० क्रि०) १ गायका बोलना, गायका शब्द करना। २ गौसे रंभण कराना, गौको शब्द करनेमें प्रवृत्त करना।

रंहचटा (हिं० पु०) मनोरथ-सिद्धिकी लालसा, लालच।

रंहस् (सं० क्ली०) रम्यते येन इति रम (रमेश्च। उण् ४।२१३) इति असुन् हुगागमश्च। १ वेग, गति। (पु०) २ महादेव। ३ विष्णु।

र (सं० पु०) राति ऊद्ध्र्वं गच्छतीति रा-ड:। १ पावक, अग्नि। २ कामाग्नि। ३ जलना, झुलसना। ४ आंच, ताप। ५ सितारका एक बोल। (त्रि०) ६ तीक्ष्ण, प्रखर।

रअय्यत (अ० स्त्री०) १ प्रजा, रिआया। २ काश्तकार।

रइअत (अ० स्त्री०) रअय्यत देखो।

रई (हिं० स्त्री०) १ दही मथनेकी लकड़ी, मथानी। २ गेहूंका मोटा आटा, दरदरा आटा। ३ सूजी। ४ चूर्णमात्र। (वि० स्त्री०) ५ डूबी हुई, पगी हुई। ६ युक्त। ७ अनुरक्त। ८ मिली हुई।

रईस (अ० पु०) १ वह जिसके पास रियासत या इलाका हो, भूस्वामी । २ प्रतिष्ठित और धनवान् पुरुष, अमीर।

रयेयत् (अ० स्त्री०) प्रजा, रिआया।

रकछ (हिं० पु०) पत्तोंकी पकौड़ी, पतौड़।

रकत (हिं० पु०) १ लहू, खून। (वि०) लाल, सुर्ख।

रकतकन्द (सं० पु०) रक्तकन्द देखो।

रकतांक (हिं० पु०) रक्ताङ्क देखो।

रकतांक (हिं० पु०) १ कुंकुम, केसर। २ रक्तचन्दन, लालचंदन।

रक़बा (अ० पु०) वह गुणनफल जो किसी क्षेत्रकी लंबाई और चौड़ाईको गुणा करनेसे प्राप्त हो, क्षेत्रफल।

रकबाहा (हिं० पु०) घोड़ोंका एक भेद।

रकमंजनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा।

रक़म (अ० स्त्री०) १ लिखनेकी क्रिया या भाव। २ छाप, मोहर। ३ नियत संख्याका धन, सम्पत्ति। ४ चलता-पुरजा, चालाक। ५ प्रकार, तरह। ६ लगानकी दर। ७ धनवान्, मालदार। ८ नवयौवना और सुन्दरी स्त्री। ९ गहना, जेवर। १० रुपया या बीघा-बिसवा आदि लिखनेके फारसीके विशिष्ट अंक जो साधारण संख्यासूचक अंकोंसे भिन्न होते हैं।

रक़मी (अ० पु०) वह किसान जिसके साथ कोई खास रिआयत की जाय।

रकाब (फा० स्त्री०) १ घोड़ोंकी काठीका पावदान जिस पर पैर रख कर सवार होते हैं और बैठनेमें जिससे सहारा लेते हैं, घोड़ेको जीनका पावदान। यह लोहे-का एक घेरा होता है जो जीनमें दोनों ओर रस्सी या तस्मेसे लटका रहता है। २ रकाबी, तश्तरी।

रकाबदार (फा० पु०) १ मुरब्बा, मिठाई आदि बनाने-वाला, हलवाई। २ बादशाहोंके साथ खाना ले कर चलनेवाला सेवक, खासाबरदार। ३ रकाब पकड़ कर घोड़े पर सवार करानेवाला नौकर, साईस। ४ रका-बियोंमें खाना चुनने और लगानेवाला, खानसामां।

रकाबा (फा० पु०) बड़ी थाली, परात।

रकाबी (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी छिछली छोटी थाली जिसकी दीवार बहुत कम ऊंची अथवा बाहरकी ओर मुड़ी हुई होती है, तश्तरी।

रकार (सं० पु०) र वर्णका बोधक अक्षर, र।

रक़ीक़ (अ० वि०) १ पानीकी तरह पतला, तरल। २ कोमल, मुलायम।

रक़ीब (अ० पु०) वह प्रतियोगी जो किसी प्रेमिकाके प्रेमके सम्बन्धमें प्रतियोग करता हो, प्रेमिकाका दूसरा प्रेमी।

रकसना (हिं० क्रि०) रखना देखो।

रक्त (सं० क्ली०) रज्यते अङ्गमनेनेति रन्ज-क्त। १ कुकुंम, केसर। २ ताम्र, तांबा। ३ प्राचीनामलक, प्राचीन और पका हुआ आंवला। ४ पद्मक, लाल कमल। ५ सिन्दूर। ६ हिंगुल, शिंगरफ। ७ शरीरस्थ सप्त धातुके अन्तर्गत धातुविशेष, शरीरके मध्य सात धातुओंमेंसे एक धातु, लहू, खून। पर्याय—रुधिर, असृज्, लोहित, अस्र, क्षतज, शोणित, पलङ्कार, रोहित, रञ्जक, कीलाल, अङ्गज, रोधिर, स्वज, त्वगज, शोण, लोह, चर्मज।

हम लोग जो सब वस्तु खाते हैं, वह पहले रस रूपमें परिणत होती है। पीछे वह रस यकृत्‌में आ कर रञ्जक पित्त द्वारा पाक हो रक्तवर्णका हो जाता है। इसीसे उसको रक्त कहते हैं। यह रक्त सभीके शरीरमें रहता है तथा यह जीवनका श्रेष्ठ आधार स्वरूप है। यह स्निग्ध, गुरु, चलनशील और मधुर होता है। किन्तु दूषित होने पर यह विदग्ध पित्तकी तरह अर्थात् खट्टा हो जाता है। समस्त शरीर ही जीवका वासस्थान है, किन्तु वीर्य, रक्त और मल ये तीनों विशेष आधार कहे गये हैं। क्योंकि, इन तीनोंका क्षय होनेसे थोड़े ही समयके अन्दर जीवका क्षय हो जाता है। (भावप्र०)

रक्तका प्रधान आश्रयस्थान यकृत् और प्लीहा है। यह इन्हीं दो स्थानोंमें रह कर दूसरे स्थानके रक्तको पोषण करता है।

खाया हुआ रस पहले हृदयमें जाता है। पीछे वह समान वायु द्वारा परिचालित हो कर पित्तसे पाचित और रञ्जित हो लाल हो जाता है। यह सारे शरीर-में रहता है और जीवका उत्तम आधार है।

(शार्ङ्गधरप० ६ अ०)

सुश्रुतमें लिखा है, कि रसधातुसे रक्त होता है।

रस धातुका अर्थ है गमन करना, चूंकि रात दिन जाता रहता है, इसीसे उसको रस कहते हैं। यह रस खाये हुए पदार्थसे एक ही दिनमें उत्पन्न हो ३०१५ कल अर्थात् पांच दिनसे कुछ अधिक समयमें एक एक धातुमें अव-स्थान कर अन्य धातुमें परिणत हो जाता है, अतएव इस समय वह रस रक्तके रूपमें पलट आता है।

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र यह सात धातु शरीरको धारण किये हुए हैं, इसीसे इन्हें धातु कहते हैं। इन सब धातुओंका क्षय और वृद्धि रक्तके ऊपर निर्भर करती है। रक्तक्षय होनेसे सभी धातु क्षीण और वृद्धि होनेसे सभी धातु बलवान् हो जाते है।

विशुद्ध रक्तका लक्षण—जिस रक्तका वर्ण इन्द्रगोप कीटकी तरह उज्ज्वल, असंहत अर्थात् न अधिक गाढ़ा और न तरल तथा अलतेके रंगके जैसा घोर लाल होता है, वही विशुद्ध रक्त है। वायुसे दूषित रक्त फेनिल, कुछ लाल, काला, रूखा, पतला, शीघ्र फैलने-वाला और अस्कन्दी अर्थात् गाढ़त्वविहीन होता है।

पित्तदूषित-लक्षण—रक्त पित्त द्वारा दूषित होने पर नीला, पीला, हरा और तरल होता है। ऐसा रक्त चिउंटी और मक्खीको बहुत प्रिय है।

श्लेष्मदूषित रक्तका लक्षण—कफ द्वारा रक्त दूषित होने पर उसका वर्ण गेरुमिट्टीके जलकी तरह पाण्डु, लोहित, स्निग्ध, शीतल, घना, पिच्छिल, चिरस्रावी और मांसपेशीकी तरह हो जाता है।

त्रिदोषदूषित रक्तलक्षण—त्रिदोष अर्थात् सन्निपात द्वारा रक्त दूषित होने पर वह पूर्वोक्त वातादिके लक्षण-युक्त, कांजीके समान वर्णविशिष्ट और दुर्गन्धयुक्त होता है।

वातपैत्तिकादि मिलित द्विदोष द्वारा रक्त दूषित होने पर उसमें पूर्वोक्त मिलित द्विदोषके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। दूषित रक्त द्वारा रक्त दुष्ट होने पर रक्त बहुत काला हो जाता है।

रक्तका स्थान—पहले ही कहा जा चुका है, कि यकृत् और प्लीहा ही रक्तका प्रधान स्थान है। रक्त इन दोनों हो स्थानसे देहकी सभी शोणितक्रियाका आनु-कूल्य करता है। रक्त उष्ण नहीं, शीतल भी नहीं, स्निग्ध, रक्तवर्ण, गुरु, मांसगन्धयुक्त और पित्तकी तरह विदाहगुणविशिष्ट होता है।

रक्तप्रकोपका कारण—पित्तका प्रकोप होनेसे ही रक्त बिगड़ जाता है। फिर द्रव, स्निग्ध और गुरुपाक वस्तु खाने, दिनको सोने, अत्यन्त क्रोध करने, आग और धूप सेवन, श्रम, अभिघात, अजीर्णजनक या विरुद्ध वस्तु खानेसे भी रक्त कुपित हो जाता है। वायु, पित्त और कफ इन तीन दोषोंमेंसे किसी एक दोषके कुपित हुए बिना रक्त कुपित नहीं होता। अतएव यह अनु-पङ्गी दोष जिस जिस समय कुपित होता है रक्तका भी उसी उसी समय प्रकोप हुआ करता है। किसी दोषके कुपित होनेसे कोष्ठदेशमें वेदना और देहमें दूषित रक्तका सञ्चार, अम्लरसयुक्त पानीय द्रव्य सेवनकी इच्छा और अन्नमें अरुचि होती तथा हृदयमें श्लेष्मा आश्रय लेती है। रक्त क्षीण होनेसे दाख, अनार, मक्खन और स्नेहयुक्त लवण, रक्तसिद्ध मांस खानेकी इच्छा होती है। (भावप्रकाश)

रक्त-सञ्चालन—सभी जीवोंकी छातीमें दो यन्त्र हैं, एकका नाम फुसफुस और दूसरेका नाम हृत्पिण्ड है। रक्त ही जीवका मूलाधार है। जीवगण जो कुछ खाते हैं वह परिपाक हो कर रक्तमें परिणत हो जाता है। रक्त शरीरकी नस नसमें फैला हुआ है। रक्त-सञ्चालनके लिये शरीरके सभी अंशोंमें पथ या नली हैं। ये नलियां धमनी शिरा आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। वृक्षादि स्थावरगण जिस प्रकार पृथिवीसे रस चूस कर जीवित रहते हैं, जङ्गम जीवगण भी उसी प्रकार पाक-स्थलीके अन्नसे रक्त संग्रह करके जीवन धारण करते हैं। खेतके नाले जिस प्रकार खेतमें जल पहुंचा कर अनाजको बचाये रखते हैं, शरीरकी धमनियां और शिराएं भी उसी प्रकार देहके सभी स्थानोंमें रक्त ले जा कर शरीरको सजीव रखती है। इन सब नलियोंका रक्त शरीरके सभी अंशोंमें जलवत् फैला हुआ है।

साधारण तौरसे यदि माना जाय, तो जीवका हृत्-पिण्ड ही रक्तका आधार है। हृत्पिण्डसे यह धमनीमें और धमनीसे शिरामण्डलमें प्रवाहित होता है। शिरा-

मण्डलसे शोणित फुसफुस् हो कर हृदुपिण्डमें लौट आता है तथा हृदुपिण्डसे वह पुनः धमनी और शिरामें आता है। इस प्रकार शरीरयन्त्रके भीतर शोणित हमेशा चलता रहता है। शोणित नालीमें कहीं भी किसी द्रव्यके रहनेसे वह रक्तप्रवाहसे बाहर हो आता है। रक्त जब दूषित होता है, तब वह सारे शरीरको क्षण भरमें दूषित कर डालता है।

रक्त सञ्चालनका पथ—हृदुपिण्डके दक्षिण पार्श्वसे फुसफुस्को धमनी हो कर रक्त फुसफुसमें जाता है। उसके बाद फुसफुसकी कैशिक नाली और शिरा द्वारा वह हृदुपिण्डकी बाईं ओर लौट आता है। अतएव इससे जाना जाता है, कि रक्त दो पथ हो कर बहता है। उनमेंसे एक पथ बड़ा और दूसरा छोटा है। हृदुपिण्डके दक्षिण पार्श्वसे फुसफुसमें और वहांसे हृदुपिण्डके बायें पार्श्वमें एक छोटा पथ है। फिर हृदुपिण्डके वाम भागसे प्रवाहित हो सभी एक शरीरमें सञ्चालित होता है। उसके बाद हृदयके दाहिनी ओर लौट आता है, यह बड़ा पथ है। किन्तु अच्छी तरह विचार करनेसे मालूम पड़ेगा, कि रक्तसञ्चालन प्रणाली केवल एक ही है। क्योंकि समस्त शोणित प्रवाहमें ही एक ही समय फुसफुसके भीतर हो कर प्रवाहित होता है।

विशुद्ध शोणित मानवका जीवन है। इसके शोधनके लिये विशुद्ध वायुकी विशेष आवश्यकता है। रक्तशोधनार्थ वायु प्रति मिनिटमें कमसे कम २० बार फुसफुसके मध्य प्रवेश करती है तथा वहांसे दूषित हो कर बाहर निकलती है। वायु जब तक विशुद्ध नहीं होती, तब तक उससे रक्त शोधित नहीं हो सकता। देहके दूषित पदार्थोंके बाहर नहीं निकलनेसे देहका विशेष अनिष्ट तथा नाना प्रकारकी पीड़ा उत्पन्न होती है।

रक्तसञ्चालनप्रणाली—जीवदेह सर्वदा क्रियाशील है। जीव कभी कभी क्रियाशून्य हो कर चुपचाप बैठ भी रहता है, पर शरीरयन्त्रके भीतर कार्य हमेशा चालू रहता है, कभी बंद नहीं होता। हृदुपिण्ड, फुसफुस, धमनी, शिरा, पाकस्थली आदि अपना अपना कार्य सर्वदा किया करती हैं, जिस शक्तिका एक बार अपचय वा क्षय हो जाता है शरीर-यन्त्रके मध्यसे फिर उसका दूसरी बार पूरण नहीं होता। वह बाहरके द्रव्य द्वारा पूरण करना होता है। वह बाहरका द्रव्य खाद्य है। जीव जो कुछ खाता है, वह पाकस्थलीमें जा कर रक्त और मलमूत्रादि पदार्थमें परिणत होता है। इस रक्त द्वारा खोई गई शक्तिका पुनर्वार पूरण होता है तथा मलमूत्रादि शरीरका दूषित पदार्थ ले कर शरीरसे बाहर निकल आता है। अतएव शोणित ही जीवकी शक्ति है। इसका वर्ण लाल होनेके कारण इसको रक्त कहते हैं।

रक्त एक क्षारबहुल तरल पदार्थ है, इसमें जलीय, कठिन और वायव पदार्थ हैं, स्त्री और पुरुष तथा वयस और अवस्था भेदसे उन सब पदार्थोंके परिमाणका प्रभेद हुआ करता है। संक्षेपमें यह, कि रक्तके १०० भागमें ७९ भाग जल और २१ भाग शुष्क कठिन द्रव्य देखा जाता है। वायुमें हाइड्रोजन और अक्सिजनका परिमाण जैसा है, रक्तमें भी कठिन द्रव्यका परिमाण ठीक वैसा ही है। कहनेका तात्पर्य यह कि रक्तमें प्रायः एक चतुर्थांश शुष्क कठिन पदार्थ है और बाकी सभी जल है। २१ भाग कठिन द्रव्यमेंसे १२ भाग इसकी श्वेत और लाल कणिका तथा बाकी ९ भागमें ६ भाग एलब्युमन नामक पदार्थ तथा ३ भाग लवण, चरबी और शर्करा है। इसके अलावा शरीरके अभ्यन्तर शक्तिक्षयके लिये जो सब पदार्थ शरीरसे निकलते हैं उनका कुछ अंश तथा फाइब्रिन नामक एक प्रकार तन्तु सदृश पदार्थका कुछ अंश भी रक्तमें देखा जाता है।

रक्तके परिमाणका प्रायः अर्द्धांश वायव पदार्थ है अर्थात् १०० घनइञ्च रक्तमें २० घनइञ्चसे कुछ कम वायव पदार्थ कार्बन, अक्सिजन और हाइड्रोजन हैं। ये सब वायव पदार्थ बाहरकी वायुमें भी विद्यमान हैं। बाहरकी वायुमें प्रायः बारह आना हाइड्रोजन, चार आना अक्सिजन, तथा कार्बनका सामान्य लेशमात्र देखा जाता है। किन्तु रक्तमें वायव पदार्थका परिमाण ऐसा नहीं है। रक्तमें प्रायः दश आना कार्बन और छः आनेसे कुछ कम अक्सिजन तथा अति सामान्यमात्र हाइड्रोजन है।

स्त्रीजातिकी अपेक्षा पुरुषके रक्तमें लालकणाका

परिमाण अधिक है, इससे इनका आपेक्षिक गुरुत्व भी अधिक है। गर्भिणियोंके शोणितमें लाल कणाका परिमाण थोड़ा रहता इस कारण असत्वाकी अपेक्षा उनके रक्तका आपेक्षिक गुरुत्व भी थोड़ा है। क्रोधी मनुष्यके रक्तमें कठिन द्रव्यका विशेषतः लाल कणिकाका परिमाण अपेक्षाकृत अधिक है। आमिषभोजोको अपेक्षा शाकभोजोके रक्तमें कठिन द्रव्य कम है। रक्तमोक्षणसे रक्तकी लाल कणिकाका परिमाण ह्रास होता है।

रक्तके वर्णकी विभिन्नता—शरीरके सभी स्थानोंमें रक्तका वर्ण एक प्रकारका नहीं है। धमनियोंमें जो रक्त है, वह शिराओंके रक्त-सा नहीं है। फिर शिराओंमें भी सभी जगह एक तरहका रक्त दिखाई नहीं देता। धमनीके रक्तका वर्ण उज्ज्वल लाल होता है, क्योंकि इसमें अपेक्षाकृत अधिक अक्सिजन रहता है। शिराका रक्त बैंगनी वर्णका है, क्योंकि इसमें अक्सिजनका परिमाण थोड़ा है। इसके सिवा धमनीका रक्त जितनी जल्दीमें जमता है, शिराका रक्त उतनी जल्दीमें नहीं जमता। फिर फुसफुस, यकृत् और प्लीहाकी शिराओंका रक्त अन्यान्य शिराओंके रक्तसे भिन्न प्रकारका है।

रक्तका परिमाण—जीवके शरीरमें कितना रक्त है उसका ठीक ठीक तौरसे पता लगाना कठिन है। पर हां, परीक्षा द्वारा पाश्चात्य पण्डितोंने स्थिर किया है, कि शरीरके समग्र भागका प्रायः $\frac{१}{१२}$ से $\frac{१}{१४}$ भाग रक्त जीवशरीरमें रहता है, परन्तु अवस्थाभेदसे इसमें कुछ तारतम्य देखा जाता है। खानेके कुछ समय बाद शरीरमें रक्तका जो परिमाण रहता है, भूखेमें उससे कुछ कम हो जाता है।

रक्तका उपादान—रक्तके चार प्रधान उपादान हैं, रस, कस, कणिका और तन्तु। रक्तके जिस तरल अंशमें कणिका बहती है उसे इसका रस कहते हैं। रक्तसे रक्तको तलछट अन्तरित होनेसे मैला तरल पदार्थ अवशिष्ट रह जाता है, वही इसका कस है। कणिका दो प्रकारकी है, श्वेत वा वर्णहीन और लाल। सुस्थ शरीरके रक्तमें श्वेत कणिकाकी अपेक्षा लाल-कणिकाका परिमाण बहुत अधिक है। क्योंकि, ये सब कणिका ही रक्तकी सार वस्तु हैं तथा इनकी सत्ताके कारण ही शोणितका वर्ण लाल हो जाता है।

रक्तका उद्भव—लाल कणिका रक्तकी प्रधान सार वस्तु हैं। कोई कोई कहते हैं, कि जीवकी पशुंका अर्थात् पञ्जरास्थियोंके भीतर जो रक्तवर्णकी मज्जा रहती है उससे रक्तकी लाल कणा उत्पन्न और परिपुष्ट होती है। फिर किसी किसीके मतसे प्लीहाके उपादानके मध्य लाल और वर्णहीन दोनों प्रकारकी कणिका उत्पन्न होती हैं।

रक्तकी क्रिया—रक्त प्राणीके जीवनका प्रधान साधन है। यह जीव-शरीरके बाह्य और आभ्यन्तर सभी यन्त्रोंका जीवनस्वरूप है। क्योंकि, इससे सबोंकी क्रिया-कुशलता साधित होती है। जो स्नेहपदार्थ मस्तिष्कका प्रधान उपादान है, वह शोणितसे उत्पन्न होता है। एकमात्र शोणित द्वारा ही शारीरिक सभी अङ्गप्रत्यङ्ग परिपुष्ट होता है।

रक्तशोधन—रक्त पहले हृत्पिण्डसे निकल कर धमनीपथसे शरीरके सभी स्थानोंमें भ्रमण करता है तथा शिरापथसे पुनः हृत्पिण्डमें लौटता है। इसका नाम रक्तसञ्चालन है। रक्त सारे शरीरमें भ्रमण कर दूषित हो जाता है तथा उस दूषित अवस्थामें ही वह बड़ी शिरा द्वारा हृत्पिण्डके दक्षिण कोष्ठमें आ पहुंचता है। वहांसे वह दक्षिण हृदुदरमें तथा हृदुदरसे फुसफुसकी धमनी द्वारा फुसफुसमें प्रवेश करता है। जहां अक्सिजनवाष्प ग्रहण कर शोधित होता है। फुसफुससे यह विशुद्ध रक्त फुसफुसकी शिरा द्वारा हृत्पिण्डके वाम कोष्ठमें आता है। वहांसे वाम उदरमें और पीछे आदि कण्डरा (aorta) द्वारा सारे शरीरमें फिरसे सञ्चालित होता है। अनन्तर वह रक्त बड़ी धमनीसे छोटी धमनीमें, पीछे धमनियोंसे छोटी छोटी कैशिक नालियोंमें, कैशिक नालियोंसे शिराओंमें तथा शिराओंसे दूषित अवस्थामें वह रक्त पुनः हृत्पिण्डमें लौटता है। जन्मसे मृत्यु पर्यन्त हृत्पिण्डके सङ्कोचन और विस्फोरणसे रक्त इसी प्रकार बहता रहता है।

हृत्कोष्ठमें रक्तका परिमाण पाश्चात्य पण्डितोंने परीक्षा द्वारा स्थिर किया है, कि प्रत्येक हृदयमें प्रायः

४से ६ औंस रक्त रह सकता है। हृत्पिण्डके प्रत्येक सङ्कोचनसे उतना रक्त शरीरमें सञ्चालित हुआ करता है तथा हृत्पिण्डके विस्फोरणमें फिर उतना ही रक्त इसके कक्षमें घुस जाता है। इस प्रकार हृत्पिण्ड हमेशा सङ्कुचित और विस्फारित होता रहता है। इस अविरत विस्फारण और सङ्कोचनके लिये शरीरकी कण्डरो, धमनी और शिरा आदि शोणित नालियां सर्वदा रक्तसे परिपूर्ण रहती हैं।

शरीरका रक्त दूषित होनेसे उसे मोक्षण कर फेंक देना चाहिये। किन्तु क्षीण व्यक्तिके अल्पभोजनके कारण शोथ होनेकी अवस्थामें तथा पाण्डुरोगी, अर्शरोगी, उदररोगी, शोषरोगी और गर्भिणी स्त्री, इनकी शोथावस्थामें रक्तमोक्षण नहीं करना चाहिये। अस्त्र द्वारा रक्तस्राव क्रिया दो प्रकारसे सम्पादन होती है, उनमेंसे एकको प्रच्छान और दूसरेको शिराव्यधन कहते हैं।

असमयमें अस्त्रप्रयोग करने, चिकित्सकके दोषसे अस्त्र अच्छी तरह प्रयुक्त नहीं होने, अत्यन्त शीताधिक्य और वाताधिक्यके समय भोजनके पहले वा खाते ही अस्त्र प्रयोग करनेसे अथवा शोणितके अत्यन्त गाढ़ा रहनेसे रक्तस्रुत नहीं होता, यदि होता भी है, तो बहुत थोड़ा। जो मद्य वा विषपानमें मत्त, मूर्च्छागत, परिश्रान्त, निद्राभिभूत और भीत हैं तथा जिनके वात, मल और मूत्ररुद्ध है, प्राय उन्हींका रक्त स्रावित नहीं होता।

रक्तस्राव नहीं होनेसे दोष—उल्लिखित कारणोंसे यदि दूषित रक्त न निकले, तो वह शरीरमें रह कर कण्डु, शोथ, रक्तवर्णता, दाह, पाक और वेदना उत्पन्न करती है।

अतिरिक्त रक्तस्रावका कारण—अनभिज्ञ चिकित्सक द्वारा अत्यन्त उष्ण कालमें घर्माक्त व्यक्ति वा जिसे अत्यन्त स्वेद दिया गया है, रक्तमोक्षणके लिये उसके प्रति अस्त्रप्रयुक्त होनेसे अथवा रोगीका शरीर रक्तस्रावार्थ अतिरिक्त विद्ध होनेसे अपरिमितरूपमें रक्त निकलता है। अतिरिक्त मात्रामें रक्तस्राव होनेसे शिरःशूल, अन्धता, चक्षूरोग, धातुक्षय आदि नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। यहां तक कि अन्तमें मृत्यु तक भी हो जाया करती है।

रक्तस्रावके नियम और लक्षण—अनतिशीतोष्ण कालमें जिस व्यक्तिको अधिक स्वेद नहीं दिया गया है तथा जो व्यक्ति सूर्यतापादि द्वारा सन्तापित नहीं है, वैसे व्यक्तिको पहले तिलका यवागू पिला कर पीछे उसका रक्तमोक्षण करना होता है। रक्तस्राव होनेके समय जब रक्तवर्ण विशुद्ध शोणित निकलने लगे अथवा आपे आप रक्तस्राव बंद हो जाय, वा देहको लघुता, वेदनाका उपशम, रोगके बलका ह्रास और चित्तकी प्रफुल्लता ये सब चिह्न जब दिखाई दे, तब समझना चाहिये रक्तस्राव अच्छी तरह हुआ है।

अच्छी तरह रक्तस्राव नहीं होनेसे इलायची, कपूर, कुट, तगरपादुका, अकवन, देवदारु, विडङ्ग, चीता, सोंठ, पीपल, मिर्च, धूल, हरिद्रा, अकवनकी कली और डहरकरञ्जका फल इन सब द्रव्योंमेंसे जो सब मिल सके, उन्हे एक साथ अच्छी तरह चूर्ण कर तिलतैल और सैन्धव लवणके साथ मिला क्षतस्थान पर घिसनेसे अच्छी तरह रक्तस्राव होता है।

अतिरिक्त रक्तस्रावकी चिकित्सा—अधिक मात्रामें रक्त स्राव होनेसे लोध, मुलेठी, प्रियंगु, रक्तचन्दन, गेरुमिट्टी, धूना, रसाञ्जन, शाल्मलीपुष्प, शङ्ख, सीप, उड़द, जौ और गेहूं इन सब द्रव्योंको चूर्ण कर उंगलीसे क्षत स्थान पर धीरे धीरे लगाना होता है। शाल वा अर्जुनवृक्ष, अरिमेद, कर्कटशृङ्गी और धमनो इन सब वृक्षोंकी छालको चूर्ण वा पट्टवस्त्रको दग्ध कर उसको भस्म, समुद्रफेन वा लाक्षाचूर्ण क्षत स्थानमें लगा देनेसे रक्तस्राव दूर होता है। रोगीको काकोल्यादिके काढ़े में ईख, चीनी और मधु डाल उसे पान कराना उचित है।

अपरिमित मात्रामें शोणितस्राव होनेसे धातुक्षयके कारण अग्नि मन्द तथा वायु अत्यन्त प्रकुपित हो जाती है। अतएव उस अवस्थामें रोगीको अल्प शीतल, लघुपाक, स्निग्ध, रक्तवर्द्धक और कुछ अम्ल वा अम्लरसविहीन द्रव्य खानेको देना चाहिये।

रक्तस्रावनिवारक उपाय—रक्तस्राव चार उपायसे निवारण किया जा सकता है, जैसे, सन्धान, स्कन्दन, दाहन और पाचन। कषाय द्रव्य द्वारा व्रणका संधान अर्थात् सङ्कोचन, शीतक्रिया द्वारा रक्तका गाढ़ापन

होगा, तीक्ष्ण क्रिया द्वारा पाचन और दाह द्वारा शिरासङ्कोचन करे। शैत्यक्रिया द्वारा रक्त गाढ़ा नहीं होनेसे तब संधानक्रिया, सन्धानकार्यमें फल नहीं पानेसे पाचन क्रिया करे। इन तीन प्रकारमें किसी प्रकारका फल दिखाई नहीं देनेसे दाहनक्रिया करना उचित है। इस पर रक्तका दोष दूर हो कर जब रक्तस्राव बंद होता है, तब व्याधि फिरसे उत्पन्न या वर्द्धित होने नहीं पाती। दोष रहते रक्तस्राव बंद हो जानेसे फिर रक्तमोक्षण न करके संशमनादि औषध द्वारा दोषका संशोधन कर ले। क्योंकि, रक्त ही शरीरका मूल और देहधारणका प्रधान उपादान है, अस्तु, देहरक्षक शोणितकी अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिये।

जिस व्यक्तिका रक्तस्राव किया गया है उसकी वायु वृद्धि होनेसे शीतल प्रसेकादि द्वारा उक्त प्रकुपित वायुकी शमता करे। फिर वेदनाके साथ यदि शोथ उत्पन्न हो, तो कुछ गरम घी द्वारा परिषेक करनेसे बहुत उपकार होता है।

साधारण जीवरक्तके सम्बन्धमें वैज्ञानिक मत।

आहारके तारतम्यानुसार जीवदेहमें बलवर्द्धक एक प्रकारके रसका सञ्चार होता है। वह शिराप्रशिरादिमें प्रवाहित रह कर देहको सजीव और सतेज रखता है। प्राकृतिक विपर्ययसे किसी जीवदेहमें वह रस रक्ताकारमें परिणत हो जाता है। उस समय तरल रक्त (Liquor Sanguinis)-में कणिकाएं (Corpuscles) बहती हुई दिखाई देती हैं। रक्तके तरल अंशमें प्रधानतः जलका भाग ही अधिक है। उस जलमें फाइब्रिन, अलबुमेन, क्लोराइडस् आव सोडियम और पोटासियम् तथा फोस्फेटस आव सोडा, लाइम और मैगनेशिया मिश्रित भावमें विद्यमान रहते हैं। अलावा इसके उसमें कुछ चरबी भी है जिसे रासायनिक लोग "एक्सट्रैक्टिभ मैटर" कहते हैं।

रक्त-कणिकाएं साधारणतः श्वेत और लाल वर्णकी होती हैं। श्वेत कणिका अपेक्षाकृत विरस और बड़ी तथा लाल कणिका छोटी होने पर भी संख्यामें अधिक होती है। उक्त दोनों प्रकारकी कणिका अणुविशिष्ट (Molecules) है। श्वेत वा वर्णहीन कणिकासे लाल कणिओंकी उत्पत्ति होने पर भी कशेरुकास्थियुक्त जीवसङ्घकी (Vertibrate Animals) देहमें उसका वर्णवैशिष्ट्य सम्पादित होता है। पक्षी, सरीसृप और मत्स्यादिके शरीरकी रक्तकणिकाएं प्रायः डिम्बाकृतिकी और थैलीके समान चिपटी तथा मनुष्य और स्तन्यपायी जन्तुसाधारणकी देहमें वह गोलाकार दिखाई देती है। वे सब कुब्जपृष्ठकी होनेके कारण उसके बीचसे चारों बगल अपेक्षाकृत स्थूल होती है। यही कारण है, कि अणुवीक्षणयन्त्रकी सहायतासे दर्शनकारीकी दृष्टिमें मध्यभाग उसका बीजस्वरूप (Nucleus) मालूम होता है।

मनुष्यके शरीरमें जो सब रक्तकणिका देखी जाती हैं वह प्रधानतः $\frac{१}{४०००}$ से $\frac{१}{२८००}$ इञ्च मोटी हैं। किन्तु सरीसृपादिके शरीरमें वह अपेक्षाकृत बड़ी होती हैं। उक्त श्रेणी (Proteus)-के जीवशरीरकी कणिकाएं $\frac{१}{६३७}$ इञ्च व्यासकी होती हैं तथा अणुवीक्षणादि काचयन्त्रकी सहायताके बिना देखनेसे उसकी लम्बाई सहजमें मालूम हो जाती हैं। रासायनिक परीक्षा द्वारा देखा गया है, कि उन सब रक्तकणिकाओंमें १०००० अंशमेंसे ३१२ भाग कठिन द्रव्य (Solid matters) चरबी और एक्सट्राक्टिभ तथा कुछ धातव पदार्थ (Mineral matters) मिश्रित हैं। ग्लोब्युलिन (Globuline) और हिमाटिन (Hoematine) नामक पदार्थविशेषके संमिश्रणसे उसके वर्णमें भी पृथकता हो गई है।

ग्लोब्युलिन जब देहसे विच्छिन्न होता तब विभिन्न आकारके दाने पड़ जाते हैं। मनुष्य तथा मांस खानेवाले पशुमात्रके शरीरका रक्त पलाकार (Prismatic form) में दाना बांधता है। मूसे और छछून्दरका रक्त तिकोना (tetrahedral) और कठबिलावका छकोना (hexagonal) होता है। हिमाटिन नामक पदार्थमें ४४ भाग अङ्गार, २२ भाग उदजन, ३ भाग यवक्षारजन, ६ भाग अक्सिजन और १ भाग लोहा मिला रहता है।

देहको विद्ध कर रक्त बाहर निकालनेसे अथवा रक्तस्रोत (Blood-vessels)-से रक्त भिन्न पथमें आ कर किसी स्थानमें सञ्चित होनेसे रक्तका रंग बदल जाता

है। इस समय फेब्रिण नामक तन्तु स्त्यानीभूत हो कर कठिन हो जाते हैं तथा रक्तकणिकायें परस्पर सम्बद्ध हो जम जाती हैं। इसको 'क्लोट' (Clot = crassamentum) कहते हैं।

रक्तके इस प्रकार जम जाने पर भी उसके जलीय अंशमें शुक्रांश और लावणिक पदार्थ (Saline matters) विद्यमान रहते हैं। उस समय रक्तका जो 'कलतानी' या जलीय अंश बाहर निकलता है, इसे मस्तु (Serum) कहते हैं। रक्तमें विभिन्न पदार्थके रहनेसे रसरक्त (Serum) और स्त्यानीभूत रक्त (Clot)-का पार्थक्य परिमाण मालूम किया जा सकता है। इसके सिवा उसीसे जमावट रक्तकी दृढ़ता तथा उसके परिवर्त्तनके लिये समयकी न्यूनाधिकता मालूम होती है। यदि फाइब्रिन तन्तुकी अधिकता रहे, तो जमनेमें देर लगती है। परिमित ताप तथा वायु लगनेसे रक्त सहजमें जम जाता है। किन्तु ठंढ लगने अथवा वायुरहित स्थानमें रख देनेसे वह विलम्बसे जमता है। एतद्भिन्न वज्राघात आदि किसी प्रकारके आकस्मिक कारणसे मृत्यु होने पर उसके शरीरका रक्त देरीसे जमता है। साधारणतः मृत्युके बाद भी देहका रक्त शिराओंमें तरल रहता है; किन्तु जीवितावस्थामें यदि शिरासे विच्युत हो रक्त किसी स्थानमें आ कर जम जाय, तो वह देहसे वहिर्गत रक्तकी तरह थोड़े ही समयमें शरीरके भीतर जम जाता है।

अनेक समय सांघातिक वा दोषस्थ ज्वरमें अथवा नासादूषिका (Glanders) और दोषस्थ सपूयव्रण (*Malignant pustule*) आदि रोगोंके रक्तमें विषमिश्रित होनेसे अथवा शीताद (Scurvy) आदि रोगोंकी तरह रक्तकी अल्पता (Poorness of blood) तथा श्वासरोधके कारण मृत्यु होनेसे रक्त सहजमें नहीं जमता।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि रक्तमें फाइब्रिन-तन्तुकी अधिकताके अनुसार ही स्त्यानीभूत रक्तकी आकृति और दार्ढ्य संघटित होता है। साधारणतः सुस्थ और बलिष्ठ जीवदेहमें १००० अंशमेंसे केवल २ अंश तन्तु विद्यमान रहता है। शरीरमें किसी कारण वशतः प्रदाह उपस्थित होनेसे इसकी संख्या बढ़ती है तथा उसके साथ साथ रक्त धीरे धीरे कोमल रक्तपिण्ड (tough clot)-में परिणत होता है। उस समय इस जमे हुए खण्डके ऊपर रक्तवर्णकी कणिका बिलकुल देखी नहीं जाती। जो कुछ देखी भी जाती है, वह उस रक्तपिण्डके आवरणके नीचेकी ओर चली जाती है। ऊपरवाला यह वर्णहीन आवरकत्वक "Buffy coat" कहलाता है। प्राचीन कालके चिकित्सक रक्तपिण्डके आवरकत्वकके ऐसे वर्ण वैपरीत्यको प्रदाहका विशेष लक्षण समझते थे तथा वे लोग उसके अपनोदनके लिये रक्तमोक्षण कराते थे। किन्तु वर्त्तमान वैज्ञानिकोंका कहना है, कि मृत्पाण्डु (Chlorosis or green sickness) अथवा अन्य किसी अवस्थामें रक्तमें लाल रक्तकणिकाकी अपेक्षा फाइब्रिन-तन्तुकी अधिकता रहनेसे इसी प्रकार अवस्थान्तर हुआ करता है। रक्ताल्पदेहीके स्त्यानीभूत रक्तपिण्ड (Clots of the impoverished blood) स्वभावतः छोटे और शिथिल (small and loose) हुआ करते हैं तथा वह प्रचुर परिमाणमें रक्तरस (serum)-के मध्य बहते देखे जाते हैं।

हृत्पिण्डसे रक्त जिस प्रकार विभिन्न शिरापथ हो कर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार उसके वर्णमें भी विभिन्नता देखी जाती है। फ्लरिड स्कार्लेट नामक धामनिक रक्तस्रोत कौशिका नाड़ीके मध्य प्रवाहित होनेके बाद अक्सिजन परित्याग कर कार्बनिक एसिडसे भर जाता है। इस समय उसका वर्ण गाढ़ा लाल दिखाई देता है। अनन्तर वह दोनों फुसफुसके मध्य प्रेरित होनेसे पुनः कमला नीबूके जैसे लाल रंगमें पलट आता है। क्योंकि फुसफुसमें आनेके बाद कार्बनिक एसिडका परित्याग कर रक्त फिरसे नया अक्सिजन ग्रहण करता है। इस प्रकार प्रत्येक शिरा और प्रशिरामें जब रक्तसञ्चालित होता है उस समय विभिन्न धातव पदार्थके संयोजन और वियोजनके कारण रक्त पुनः पुनः दूषित और परिष्कृत हो दूसरे वर्णका हो जाता है। ऊपर कह आये हैं, कि भोजनसे जीवशरीरमें रक्तकी उत्पत्ति होती है। वह रस शिराके मध्य प्रवाहित हो यकृत्‌में आनेसे पित्तके मिश्रणके कारण लाल हो जाता है। पीछे

रक्ताशय वा हृत्पिण्डमें परिचालित हो वहांसे शिरा-प्रशिरा हो कर सारे शरीरमें फैल जाता है। इसी कारण शारीरतत्त्वविद्गण हृत्पिण्ड तथा शिराओंको ही रक्त-प्रवहणका प्रकृष्ट उपाय ज्ञान कर उन सब शास्त्रोंमें रक्त-प्रवहणक्रिया (Circulation of blood)का ठीक ठीक विवरण लिपिबद्ध कर गये हैं। हृदय और शिरा देखो।

वैज्ञानिकोंका कहना है, कि रक्तकणिकामें अक्सि-जन मिश्रित होनेसे शायद उसी कारण रक्तके वर्णमें विभिन्नता देखी जाती है। अक्सिजनकी सहायतासे कणिका एक साथ मिल जाती हैं तथा उसीसे रक्तके बहिरावरक (Refleting surface) का ऐसा परिवर्त्तन हुआ करता है। फिर कार्वनिक एसिडके मिलनेसे शोणित पतला और अपेक्षाकृत शिथिल (More flaccid) होता है।

रक्तवर्णके इस रूपान्तरकी परीक्षा यदि करनी हो, तो बाहर निकले हुए जीवरक्तके ऊपर उपरोक्त वाष्प (Gases) संयोग करनेसे सहजमें इसका पता लगा सकते हैं।

अन्यान्य जीवदेहका शोणित छोड़ कर मनुष्य शरीर-के रक्तका पर्यवेक्षण करनेसे जाना जाता है, कि एक-मात्र लोहित रक्तकणिका ही मनुष्यदेहपरिवर्द्धनमें उप-योगी है। इसमें स्वभावतः ही अक्सिजन-हरण (absorbing oxygen) की शक्ति है। हृदयके वाम भागसे निकल कर वह बड़ी तेजीसे शरीरके विभिन्न स्थानोंकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म शिराओंमें प्रविष्ट होता है तथा जीवदेहको एक जीवनी शक्ति (Lifegiving stimulus) प्रदान करता है। वह रक्त जब कार्वनिक एसिड ग्रहण करता है तब रक्त एकदम विषाक्त हो जाता है और यदि वह अधिक देर शरीरमें अवस्थान करे, तो जीवदेहका नाश हो सकता है। इस कारण जगदीश्वरकी अपार महिमासे वह दूषित रक्त फुसफुसमें जमा होनेके बाद सम्पूर्णरूप-से दोषमुक्त हो पुनः अक्सिजन वाष्प ग्रहण कर शुद्ध होता और शरीरको पुष्ट बनाये रखता है। इसके बाद वह फिरसे अपनी कार्यकारिता शक्तिको फैला कर जीवन पर्यन्त उसी एक ऐसी नियमसे शरीरमें सर्वत्र तथा सभी शिरा-प्रशिरादिमें परिभ्रमण करता है। आखिर वह तेजहीन हो जीवके मरण कालमें अपकृष्टता को प्राप्त होता है तथा आप भी विलुप्त हो जाता है। जीवितावस्थामें भी रक्तका क्षय हुआ करता है। अधिक चिन्ता, कठिन परिश्रम और सांघातिक पीड़ाओं-में भी अनेक समय शरीरसे रक्तका नाश होते देखा जाता है।

सुस्थ और वलिष्ठ व्यक्तिके शरीरमें नवोद्भूत रक्त हमेशा परिचालित हो क्रमशः मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और पीछे शुक्रमें रूपान्तरित हुआ करता है। इस रक्तज शुक्रका क्षय है। ऊर्द्ध्वरेता संन्या-सियोंकी भी समाधिका लीन ऐकान्तिक चिन्ताके कारण इस ओजःशक्तिका क्षय होता है। ऐशीनियमसे यह क्षयविधान नहीं रहनेसे निःसन्देह यह जीवदेह फट कर नष्ट हो जाती। वैज्ञानिकोंका कहना है, कि "It goes on its useful circuit through the body till following the laws which governs the cells and bodies composed of them, it wears out, degenerates and dies."

रक्तप्रवाह ही श्वासप्रश्वासका (Respiration) एक मूल कारण और प्रधान उपादान है। जगदीश्वरने रक्त वहनेके लिये जिस प्रकार शिरा और स्नायु आदि-को उस कार्यके उपयोगी और सहायकरूपमें संगठन किया है, उसी प्रकार सभी शिराएं भी रक्त धारण कर श्वासप्रश्वासादिके द्वारा परिशुद्ध हो शरीरमें ताकत देती हैं। रक्तकी उपयोगिता और उपकारिताकी ओर लक्ष्य करके उन्होंने श्वासप्रश्वासका तारतम्य किया है। मनुष्य-शरीरकी रक्तरक्षाके लिये जितनी वायुकी आव-श्यकता है, वे ठीक उसी परिमाणमें श्वास लेनेकी व्यवस्था कर देते हैं। अतएव कहना पड़ेगा, कि जिस प्रकार रक्तदोषनाशके लिये श्वासकी व्यवस्था है, उसी प्रकार रक्तकी विभिन्नताके अनुसार उन्होंने श्वासका भी तारतम्य निर्देश कर दिया है। मनुष्यशोणितकी विभिन्नताके अनुसार हम लोग जिस प्रकार श्वासप्रश्वासकार्यका तारतम्य मालूम करते हैं, उसी प्रकार विभिन्न श्रेणीके पक्षी और पश्वादिमें विभिन्न प्रकारका धातुज रक्त रहनेसे श्वासकार्यमें विशेष वैपरीत्य

होता है। सिंह, बाघ, बकरे, मूसे आदि पशु तथा अष्टीच-से ले कर छोटेसे छोटे चटक पक्षी तकके शरीरमें जिस परिमाणमें जैसा रक्त बहता है, उनके श्वास-प्रश्वासादिकी प्रणाली भी तदनुसार निर्वाहित होती है। इसका प्रमाण प्रत्यक्ष है अर्थात् उन सब जीवादिको एक बार देखनेसे ही मालूम कर सकते हैं। इसका और भी एक प्रमाण है, वह यह कि दुर्गन्धसे मनुष्यादिके श्वासकार्यमें व्याघात पहुंचता है और उस दुर्गन्धमें अन्य जीव खुशोस वास करता है। मूषिकको दग्धगन्धकवत् गन्ध जैसी असह-नीय है, दूसरे किसी भी जीवकी वैसी देखी नहीं जाती। विशेष विवरण श्वास-प्रश्वास शब्दमें देखो।

रक्तपान करनेसे शारीरिक स्वास्थ्यमें कोई धक्का नहीं पहुंचता, वरन् उनके स्वास्थ्यमें उन्नति देखी जाती है। रक्तसेवनसे रक्ताल्पता-व्याधिग्रस्त रोगी मुक्ति-लाभ करता है। किन्तु यदि रुग्न अथवा दूषित रोगी-का रक्तपान किया जाय, तो शरीरमें अनेक प्रकारके क्लेश हो सकते हैं। इसी कारण सुविज्ञ चिकित्सक रक्ताल्पता (anaemia) आदिमें रोगीको बलिष्ठ करने-के लिये meat-juice नामक रक्तमिश्रित पथ्यका प्रयोग करते हैं।

प्राचीनकालमें जिघांसा वशवर्त्ती हो कर मनुष्य शत्रुका रक्त पान करते थे। महाभारत पढ़नेसे मालूम होता है, कि शत्रुका दर्प चूर्ण करनेके लिये भीमने दुःशा-सनका रक्तपान किया था। बाइबिल ग्रन्थसे भी जाना जाता है, कि पूर्वकालमें हत्याकारीको दण्ड देनेके लिये सामाजिक कोई नियम विधिवद्ध नहीं था। अथवा राज-दण्डसे भी वे दण्डित नहीं होते थे। हतव्यक्तिका कोई निकट आत्मीय बदला लेनेके लिये उसके पीछे पड़ता था तथा जहां उसे पाता, वहीं मार कर बदला चुकाता था। हिब्रु जातिके मध्य ऐसा जिघांसापरायण व्यक्ति रक्त-हिंसक (Goel वा Avenger of Blood) कहलाता है। मूसाने इस प्रकार जीव-हिंसा नहीं करनेकी व्यवस्था दी थी (Numb xxxv)। उन्होंने हत्याकारीको निरापद रखनेके लिये बाइबिल निर्दिष्ट छः आश्रयनगरीमें (Cities of Refuse) भेजनेका हुकुम दिया। किन्तु उस समय हत्याकारीकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती देख उन्होंने रुपये देकर जीवनरक्षा करनेकी व्यवस्था उठा दी। कुरानमें भी रक्तहिंसक (Avenger of blood)-को आश्रय दिया गया है, किन्तु वहां भी हत्याकारीसे उपयुक्त द्रव्य ले कर उसकी प्राणरक्षाकी व्यवस्था है। आज भी अरब-वासियोंमें यह प्राचीन प्रथा बलवती देखी जाती है। एतद्भिन्न वर्बर और अर्द्धसभ्य विभिन्न देशवासी जाति-के मध्य वंशगत, पारिवारिक अथवा जातिगत विवाद-मूलमें ऐसी रक्तहिंसाका प्रचार है। बोर्नियो, सिलेबिस, जावा आदि द्वीपोंमें असभ्य जातिके मध्य आज भी रणमें बन्दीकृत शत्रुके रक्तमांस भोजनकी बात सुनी जाती है। प्राचीन बौद्ध और जैन धर्मशास्त्रमें तथा बाइबिलके प्राचीन विभागमें (Old Testament) यज्ञमें निहत रक्ताक्त पशु (animals in sacrifice)-मांस भक्षण (Eating of blood) अथवा बलपूर्वक पशुहिंसाको निषिद्ध बताया है।

(पु०) ८ लोहितवर्ण, लाल रंग। ९ कुसुम्भ। १० हिज्जल नदीतट पर होनेवाला एक प्रकारका बेंत। (भावप्र०) ११ बन्धूक, गुलदुपहरिया।

कविकल्पलतामें रक्तवर्ण वस्तुका उल्लेख इस प्रकार है—शोण, भौम, तीक्ष्णांशु, ताम्र, कुंकुम, तक्षक, गुञ्जा, इन्द्रगोप, खद्योत, विद्युत्, कुञ्जरबिन्दु, द्रुगन्तर, अधर, जिह्वा, असृज, मांस, सिन्दूर, धातु, हिंगुल, कुक्कुट-शिखा, तेज, सारसमस्तक, माणिक्य, हंसका चञ्चु, अंघ्रि, शुक और मर्कटका मुख, चकोर, कोकिल और पारावतका नख, अग्नि, कुसुम्भ, किंशुक, अशोक, जवा, बन्धूक, पाटल, कमल, दाड़िमीपुष्प, बिम्ब और किम्पाक-पल्लव, ताम्बूलराग, मञ्जिष्ठा, अलक्तक, रक्तचन्दन, नख-क्षतस्थान, धर्म और रौद्ररसादि ये सब रक्तवर्णके कहे गये हैं। (कविकल्पलता २।२ कुसुम)

१२ रक्तशिग्रु, लाल सहिंजन। १३ रक्तरोहितक, लाल रोहितकका पेड़। १४ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी लाल मछली। १५ सविष मण्डूकभेद, एक प्रकारका जहरीला मेढ़क। १६ महाविष वृश्चिकभेद, एक प्रकारका जहरीला बिच्छू। १७ मन्दविष वृश्चिकभेद, एक प्रकारका कम जहरीला बिच्छू। १८ पतङ्गकी लकड़ी।

(त्रि०) १९ अनुरक्त, चाह या प्रेममें अनुरक्त।

२० रञ्जित, रंगा हुआ। २१ लाल, सुर्ख। २२ विहार-मग्न, ऐयाश। २३ शोधित, साफ किया हुआ।

रक्तआमातिसार (सं० पु०) एक प्रकारका रोग जिसमें लहूके दस्त आते हैं।

रक्तक (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्णं कायति प्राप्नोतीति कै-क। १ अम्लान वृक्ष। २ बन्धूक वृक्ष, गुलदुपहरिया-का पौधा। ३ रक्तवस्त्र, लाल कपड़ा। ४ रक्तशिग्रु, लाल सहिंजनका वृक्ष। ५ रक्तैरण्ड, लाल अंडीका वृक्ष। (राजनि०) ६ अश्वविशेष, लाल रंगका घोड़ा। ७ केसर, कुंकुम। रक्त एव स्वार्थे कन्। (त्रि०) ८ लोहित वर्ण, लाल रंगका। ९ रक्त देखो। १० अनुरागी, प्रेम करनेवाला। ११ विनोदी, मसखरा।

रक्तक (सं० क्ली०) स्वनामप्रसिद्ध पुष्पवृक्षविशेष, गुल-दुपहरियाका फूल वा पौधा। पर्याय—बन्धूक, बन्धु-जीव, अर्कवल्लभ, पुष्परक्त। भारतके उष्णप्रधान स्थानों-में पञ्जाबसे ब्रह्मदेश तकमें तथा बम्बई विभागमें यह गुल्म अधिक उत्पन्न होते देखा जाता है। धानके खेत और गीली भूमिमें यह बहुत उपजता है। स्थानविशेषमें यह भिन्न भिन्न नामसे परिचित है, यथा—हिन्दी दुपहरिया; बङ्गला—काठलाल, बांधुली; संथाली—बड़ेवहा; पञ्जाबी—गुलदुपहरिया; मराठी—ताम्रीदुपारी; तामिल—नाग-पुर।

इसका फूल बड़ा और गाढ़े लाल रंगका होता है। दोपहरको यह फूल अच्छी तरह खिलता है और दूसरे दिन सबेरे झड़ जाता है। फूलके दल और पुष्पकोषसे जो दूधके जैसा निर्यास निकलता है वह शैत्यगुण-विशिष्ट और धारकताशक्तिसम्पन्न होता है।

इस श्रेणीमें Ixora coccinea और Gomphrena Globosa नामक और भी दो प्रकारके छोटे पेड़ देखे जाते हैं। पहली श्रेणीके पेड़को संस्कृतमें बन्धूक, रक्तक और बन्धुजीवन कहते हैं। डा० रक्सबर्गके मतमें चीन और मलक्कासे यह वृक्ष ब्रह्मदेश और भारतवर्षमें लाया गया है। भारतके उष्णप्रधान देशके उद्यानोंमें यह वृक्ष रोपनेकी व्यवस्था देखी जाती है।

इसके फूलको दो तोला घीमें अच्छी तरह भुन कर उसमें ४ गुञ्जापरिमित जीरा और नागकेशरको अच्छी तरह पीस कर डाल दे। पीछे उसमें मक्खन और मिसरी मिला कर गोली बनावे। आमरक्त रोगमें दिनमें दो बार करके सेवन करानेसे बहुत लाभ पहुंचता है। थोड़े जलके साथ शिलाखण्ड पर इसकी जड़ (सूखी अथवा कच्ची १५से २० रत्ती)-को पीस कर ३-४ घंटेके बाद सेवन करानेसे रक्तातिसार जाता रहता है। १ पाइण्ट प्रफ्स्पिरिटमें ४ औंस सूखी जड़ डाल कर उसका टिंचर बनावे; इस टिंचरका आमरक्तरोगमें प्रयोग करनेसे बहुत उपकार होता है।

यह फूल शिव और विष्णुको चढ़ाया जाता है। द्वितीय श्रेणीके वृक्षमें लाल सफेद फूल लगते हैं। उद्यान-की शोभा बढ़ानेके लिये बहुतेरे इस पेड़को लगाते हैं। पश्चिम-भारतमें यह गुलमखमल और लालगुल नामसे परिचित है। अङ्गरेजीमें इसे Everlasting flower कहते हैं।

रक्तकङ्गु (सं० पु०) सालका वृक्ष जिससे राल निकलती है।

रक्तकण्टा (सं० स्त्री०) विकंकत वृक्ष।

रक्तकण्ठ (सं० त्रि०) १ मिष्टस्वरविशिष्ट, मीठी स्वर-वाला। २ जिसका कण्ठ लाल हो। (पु०) ३ कोकिल, कोयल। ४ भंटा, भांटा।

रक्तकण्ठिन् (सं० त्रि०) रक्तकण्ठ देखो।

रक्तकदम्ब (सं० पु०) एक प्रकारका कदम्ब वृक्ष जिसके फूल बहुत लाल रंगके होते हैं।

रक्तकदली (सं० स्त्री०) कदलीभेद, चम्पा केला। (वैद्यनि०)

रक्तकन्द (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्णः कन्दोऽस्य। १ विद्रुम, मूंगा। २ पलाण्डु, प्याज। ३ रक्तालु, रताल्टू। (राजनि०)

रक्तकन्दल (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्णं कन्दलं नवाङ्कुरो यस्य। विद्रुम, मूंगा।

रक्तकमल (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं कमलं। रक्तोत्पल, लाल रंगका कमल। पर्याय—कोकनद, रक्ताम्भोज, अरुणकमल, शोणपद्म, अरविन्द, रविप्रिय, रक्तवारिज। वैद्यकमें यह कटु, तिक्त, मधुर, शीतल, रक्तदोषनाशक, बलकारक और पित्त, कफ तथा वातको शमन करनेवाला माना गया है।

रक्तकम्बल (सं० क्ली०) कम्बलं जलमाश्रयत्वेनास्त्यस्येति अर्शं आद्यच्, रक्तं रक्तवर्णं कम्बलमुत्पलमिति। रक्तोत्पल, लाल कमल, कूंई।

यह स्वनाम प्रसिद्ध जलज पुष्प (Nymphœa lotus) रक्तनाल नामसे प्रचलित है। गड़हे, पुष्करिणी आदि पुराने जलाशयोंमें पद्मकी तरह यह लता उगती है। स्थानविशेषमें यह भिन्न भिन्न नामसे परिचित है, जैसे—पश्चिम भारतमें कम्बल, छोटा कम्बल; बङ्गालमें शालूक, नाल, रक्तकम्बल, छोटी सूंदी; उड़ीसामें धबलकै; सिन्धु—कुनि, पुनि; दाक्षिणात्यमें— अल्लिफूल; गुजराती—कम्बल, नीलोपल; तामिल—अल्ली तमरै, अम्बल; तेलगू—अल्लितमर, तेल्लकलब, कोतेक, परकलुव, कलहारम्; कनाड़ी—नदलेहवु, मलयालम्—अम्पल, ब्रह्मदेशमें—क्यह-फुल्यकिया; सिंहल—ओलु; संस्कृत पर्याय—कमल, कुमुद, कह्लार, हल्लक, सन्ध्यक; अरब और पारस्य—नीलुफर।

भारतवासी इसके मूल, कन्द, नाल और बीज खाते हैं। कभी कभी इसके कन्दको सिद्ध कर तरकारीके रूपमें खाते हैं। पुष्पकोटकके मध्य जो बीज रहता है उसे बालूमें भून कर लावा बनाते हैं जिसे लोग भेंटका लावा कहते हैं।

उदरामय, विसूचिका, ज्वर और यकृत्‌की पीड़ामें इसका फूल शुष्क और सङ्कोचक औषधरूपमें व्यवहृत होता है। कभी कभी हृत्पिण्डको बलकारक औषध (Cardiac tonic) रूपमें इसका व्यवहार किया जाता है। अतिसार, आमरक्त और अर्शरोगमें इसकी जड़के चूर्णको स्निग्धकारक औषधरूपमें सेवन कराया जाता है कुष्ठ तथा अन्यान्य चर्मरोगमें बीज बहुत उपकारी है। पाकाशय और आंतसे रक्त वमन होने पर फूल और डंठलका चूर्ण सेवन करनेसे बहुत लाभ पहुंचाता है। यह विषको दूर करता है।

रक्तकम्बल—स्वनामप्रसिद्ध वृक्षविशेष। यह प्रायः ३० फुट तक ऊंचा होता है। फल लाल होते हैं। पेड़में बकपुष्पकी तरह बड़े बड़े फल होनेसे उनमें लाल गोल गोल बीज लगते हैं। वह बीज दोनों ओर उठा होता है। गुञ्जा फलकी तरह यह भी तौलनेमें व्यवहृत होता है। स्त्रियां जपकी संख्या ठीक करनेके लिये एक एक रक्त कम्बलको ग्रहण करती हैं। यह पवित्र और विषाक्त समझा जाता है।

रक्तकरवीर (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्णं करवीरः। लोहित वर्ण करवीर पुष्पवृक्ष, लाल रंगका कनेर। संस्कृत पर्याय—रक्तप्रसव, गणेशकुसुम, चण्डीकुसुम, क्रूर, भूतद्रावी, रविप्रिय। गुण—कटु, तीक्ष्ण, विशोधन, त्वक्‌दोष, व्रण, कण्डू, कुष्ठ और विषनाशक। (राजनि०)

रक्तका (सं० स्त्री०) पानीयामलक, पानी आंवला। (वैद्यकनि०)

रक्तकाञ्चन (सं० पु०) रक्तः रक्तवर्णः काञ्चनः। स्वनामख्यात पुष्पवृक्षविशेष, कचनारका पेड़। (Bauhinia variegata) संस्कृत पर्याय—विदल, चमरिक, काञ्चनाल ताम्रपुष्प, कुद्दार। (जटाधर)

स्थानीय नाम, हिन्दी—कचनार, कोनियार, कुराल, पदरिया, खैराल, गुरियाल, गवियार, वरियाल, कलियार, कान्दन, खैरवाल; बङ्गला—रक्तकाञ्चन; मेची—कुर्माङ्ग; कोल—सिङ्गिया; भूमिज—कुलोल; संथाल—जिङ्गिया; नेपाल—तकि; लेपचा—रा; मध्यप्रदेशमें—कचनार; मराठी—काञ्चन, रक्तकाञ्चन; कोङ्कणी—काञ्चन; बम्बई—कोविदार; तामिल—सेगपुमुन्थरी; कनाड़ी—काञ्चीवलदो; उड़िया—बोरध; ब्रह्म—वेचिन।

हिमालयके पहाड़ी वनविभागमें ४००० फुट ऊंचे स्थान पर यह वृक्ष उत्पन्न होता है। भारतीय जंगलमें और गण्डशैलमाला पर यह बहुतायतसे उत्पन्न होते देखे जाते हैं। इसके गाढ़े, लाल और सफेद फूलसे उद्यानकी शोभा बढ़ती है, इसीसे समतल क्षेत्रवासी बहुतेरे लोग इसका आदर करते हैं।

वृक्षनिर्यास 'सिमलागोंद' कहलाता है। जलमें डालनेसे वह बहुत कुछ गल जाता है और उससे एक प्रकारकी गंध निकलती है। पेड़की छालसे चमड़ा रंगाया और परिष्कार किया जाता है। बीजसे एक प्रकारका तेल बनता है।

इसके मूलका काढ़ा अजीर्ण, उदरामय और उदराध्मान-रोगमें बहुत उपकारी है। पुष्पमें चीनी मिला कर

सेवन करानेसे रेचनकार्यकी पोषकता होती है। छाल, पुष्प या मूलको चावलके धोए जलमें पीस कर स्फोटकके ऊपर पुलटिसकी तरह प्रलेप देनेसे फोड़ा पक जाता है तथा पीप पतली निकलती है। छालका गुण—धातुपरिष्कारक, बलवर्द्धक और मलरोधक है। गलगण्ड, चर्मरोग और क्षतादिमें यह विशेष फलप्रद है। शरीरके रक्त और रसको अविकृत रखनेके कारण कुष्ठादि रोगमें भी इसका प्रयोग किया जाता है। सूखी कली शैत्यगुणविशिष्ट और धारक तथा उदरामय रोगमें विशेष उपकारी है। इससे पेटके फोड़े दूर होते हैं।

ग्रीष्मके प्रारम्भमें अर्थात् फाल्गुनके महीनेसे ही यह पेड़ पुष्प और फलके बोझसे झुक जाता है। दो महीनेके भीतर बीज पकते हैं। कोई कोई पशुमांसके साथ इसकी कली रींध कर खाता है।

इसकी लकड़ीका रंग धूसर और मध्यभाग काला होता है। यह मजबूत तो होती है, पर छोटे छोटे खंडोंमें विभक्त हो जानेसे किसी काममें नहीं आती। खेतिहरके औजारोंकी मूठ साधारणतः इसीसे बनती है। बौद्धयुगके भास्करकार्योंमें जो वृक्ष देखा जाता है, उससे इसकी पवित्रताका अनुमान किया जाता है।

इस श्रेणीके वृक्ष B. purpura श्रेणीसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। बहुत थोड़ा अन्तर रहने पर भी उसे लोग रक्तकाञ्चन कहते हैं। स्थानीय नाम,—पञ्जाबी—कैराल, कराड़, करली; हिन्दी—कोलियर, कोनियर, कन्दन, खैरवाल, सोणा; नेपाल—खैरालो; लेपचा—कचिक; बङ्गला—देवकाञ्चन, रक्तकाञ्चन, कैराल; कोल—बुरुजू; लोहरडंगा—कैनार; सन्थाल—सिङ्गिबाड़; मलयालम्—कुन्दरव; गोंड़—केदवरी; मराठी—रक्तचन्दन, अभमन्ति, रक्तकाञ्चन, देवकाञ्चन; तामिल—पेया आरेमन्दरे; तेलगू—काञ्चन, पेड्ड आरे, बोदन्त चेट्टू; कनाड़ी—सुराल, काञ्चीवाल; ब्रह्म—महलयकाणि, महक्लेगणि।

उपरोक्त वृक्षकी तरह इसके गोंद और छिलकेका गुण और प्रयोग प्रायः एक-सा है। छिलका धारक, जड़ वायुनाशक और बलवर्द्धक तथा फूल विरेचक होता है। छिलकेके काढ़ेसे घाव धोआ जाता है। इसके फूलको बहुतेरे रींध कर खाते हैं।

B. tomentosa नामक उस जातिके वृक्षको लोग काञ्चन वा काञ्चनी कहते हैं। इसके छिलकेके रेशेसे रस्सी बनाई जाती है। यह उदरामय और कृमिनाशक है। यकृत्के प्रदाहमें इसके मूलके छिलकेका काढ़ा विशेष फलप्रद है।

रक्तकान्ता (सं० स्त्री०) रक्तः रक्तवर्णाः कान्तः दन्तोऽस्याः रक्तपुनर्नवा, लाल गदहपूरना।

रक्तकाश—रोगविशेष। एलोपैथिकके मतसे इसे Haemoptysis कहते हैं। कण्ठनाली (Larynx), श्वासनाली और फुस्फुससे यदि सफेद रक्त निकले, तो रक्तोत्काश रोग हुआ जानना चाहिये।

पर्वतके ऊपर चढ़नेके समय बहुत कोंथनेसे या खांसी रहनेसे तथा अति उच्च स्वरमें गान करनेसे अथवा वंशी बजानेसे रक्तवमन हो सकता है। शीताद धूम्ररोग (purpura) और शोणितको तरल करनेवाली पीड़ामें अथवा रजोरोध होने पर मुखसे खून निकलनेकी सम्भावना है। कण्ठनाली, श्वासनाली वा वायुनलीमें रक्ताधिक्य, प्रदाह वा कर्कटरोगमें तथा फुसफुसमें गुठली (tubercle) सञ्चित हो कर उससे प्रदाह, क्षत, स्फोटक, आघातबोध और विगलन होनेसे अथवा हाइडेटिड (hydatid) कृमि और कर्कटरोग रहनेसे रक्तोत्काश हो सकता है।

दोनों वक्षावरकके मध्यस्थित स्थान (mediastinum)के अर्बुदके श्वासनालीमें संयुक्त होनेसे हृत्पिण्डके रोगोंमें विशेषतः दक्षिण कोटरका विवर्द्धन अथवा वामकोटरका प्रसारण रहनेसे फुस्फुसीय धमनी और शिराकी पीड़ाओंमें किसी वायुनलीके मध्य थेरासिक एनिउरिजम दिखाई देनेसे कभी कभी मुखसे रक्त निकल कर वायुनली वा श्वासनलीमें जाता है। पीछे वह पुनरुद्गीर्ण हो कर हिमप्टिसिस उत्पन्न करता है। खांसी और अधिक परिश्रम द्वारा रोगकी वृद्धि होती है।

इस व्याधिमें अकसर फुसफुसकी कैशिकासे तथा किसी किसी जगह फुसफुसीय धमनीकी छोटी छोटी शाखाओंके फटनेसे रक्त निकलता है। यक्ष्मारोगमें उक्त धमनीकी शाखा प्रशाखामें छोटे छोटे एनिउरिजम उत्पन्न होता है। उनके फट जानेसे अनेक समय अधिक परिमाणमें रक्त निकलता है।

यह रोग अकस्मात् आरम्भ होता है। श्वासकृच्छ्र, वक्षके मध्य भार बोध और ज्वाला तथा गलेके भीतर लावणिक आस्वाद आदि ही रक्त निकलनेका पूर्व लक्षण है। खांसीसे अथवा हठात् रक्त ऊपरकी ओर उठता है, कभी कभी इतना रक्त निकलता है, कि मुंह और नाक भर जाता है। सभी समय जी मचलता रहता है। श्लेष्माके साथ विन्दु विन्दु रक्त निकलता है अथवा एक ही समयमें अधिक रक्त निकल कर रोगीका प्राण ले लेता है। वहिर्गत रक्त फेनिल और उज्ज्वल लालवर्ण होता है। फुसफुसीय धमनीसे अथवा सहसा प्रचुर परिमाणमें रक्तोद्गम होनेसे वह काला दिखाई देता है। अधिक रक्तस्रावके बाद शोणित श्लेष्माके साथ अथवा संयतभावमें बाहर निकलता है। थोरासिक एनिउरिजमका रक्त देखनेमें लाल मालूम होता है। यक्ष्मारोगमें रक्तोद्गम होनेसे आणुवीक्षणिक परीक्षा द्वारा उस रक्तमें ट्युवार्कल वैसिलस पाया जाता है। यह रोग कठिन होनेसे रोगीका मुंह फीका और म्लान, हाथ पैरका स्पन्दन, श्वासकृच्छ्र और रक्तस्रावके अन्यान्य लक्षण दिखाई देते हैं। कभी कभी थोड़ा ज्वर भी चढ़ आता है। नाड़ी पूर्ण और द्रुत, किन्तु कोमल रहती है।

यह रोग कब तक रहता है, इसका कोई ठीक नहीं है। पीड़ा बार बार होती देखी जाती है। कभी कभी सामयिक रूपमें उपस्थित होती है। किन्तु गुरुतर लक्षणोंकी शान्तिके बाद कुछ दिन तक श्लेष्माके साथ थोड़ा थोड़ा रक्त निकलता रहता है।

इस समय रोगीकी छाती पर चोट देनेसे शब्दमें कोई परिवर्त्तन दिखाई नहीं देता। किन्तु ष्टेथसकोप यन्त्र लगा कर सुननेसे बुजबुड़ोंकी तरह श्वासशब्द मालूम होता है। मुंह, नाक अथवा पाकाशयसे रक्तस्राव होनेसे रोगके जैसा इसका भ्रम हो सकता है। नाक, मुंहकी अच्छी तरह परीक्षा करनेसे उसका निवारण किया जा सकता है। फुस्फुसीय धमनीसे कभी कभी काला रक्त निकलता है। उस समय रक्तपित्त रोगके साथ इसका भ्रम होता है। अतएव ऐसी हालतमें सुविज्ञ चिकित्सकको चाहिये, कि वे अच्छी तरह देखभाल कर रोगका निर्णय और औषधादिकी व्यवस्था करें। रक्तपित्त देखो।

इस रोगमें शीघ्र मृत्यु होनेका डर नहीं रहता। पर हां, फुसफुससे यदि रक्त अधिक निकले तो श्वासरोध अथवा रक्तस्रावके सभी लक्षण उपस्थित हो कर मृत्यु हो सकती है। कभी कभी निःसृत रक्तके द्वारा फुसफुसमें जलन देती है और उसीसे आखिर यक्ष्मा आ पहुंचती है।

चिकित्सा—रोगीको ठंढे घरमें सुला कर बार बार बरफ चूसने दे। शिरको तकिये पर ऊंचा करके रखना उचित है। छाती पर मष्टर्ड प्लष्टर और शुष्क कोपिं रखे तथा दोनों पैरमें गरम जलका सेक वा जोनडस बूट पहना दे। अत्यन्त रक्तोद्गम होनेसे हाथ पैरमें एसमार्कस (Esmarchs) बैण्डेज अथवा साधारण बैण्डेज बांधना उचित है। कभी कभी छाती पर बरफ रखनेसे भी लाभ पहुंचता है।

गैलिक एसिड, प्लम्बाई एसिटेट, सलफ्युरिक एसिड डिल, आर्गट, तारपिनका तेल, टिं हामोमेलिक आदि सङ्कोचक और हृत्पिण्डको अवसादक औषधोंका आभ्यन्तरिक प्रयोग करे। एसिड गैलिक और प्लम्बाई एसिटेटका अफीमके साथ सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है। हृत्पिण्डकी क्रिया प्रबल रहनेसे डिजिटेलिसका व्यवहार करना उचित है। भिकेरियस हिमप्टिसिस (Vicarious *Haemoptysis*) होनेसे ऊरुदेशमें जोंक लगाना होता है। आर्गटिन अथवा स्कलेरोटिक (Sclerotic acid) एसिडको चमड़ेके नीचे इञ्जेक्ट करनेसे भी बहुत फायदा देखा जाता है। रोगी यदि बलिष्ठ हो, तो लावणिक विरेचक औषधोंका प्रयोग करे। लक्षण खराब दिखाई देनेसे दूसरे जीवके शरीरका रक्त रोगीके शरीरमें प्रवेश (Transfusion of blood) कराना उचित है।

रक्तकाष्ठ (सं० क्ली०) रक्तं काष्ठं यस्य। १ पतङ्ग, पतंगकी लकड़ी। २ लोहितवर्ण दारु, लाल रंगकी लकड़ी।

रक्तकुमुद (सं० क्ली०) रक्तं लोहितवर्णं कुमुदं। रक्तकैरव, लाल कुमुद।

रक्तकुरुण्डक (सं० पु०) रक्तवर्णः कुरुण्डकः। रक्तझिंटी, लालकटसरैया। वैद्यकमें यह तिक्त, उष्ण, कटु, वर्ण-

वर्द्धक शोथ और ज्वरनाशक; वातरोग, कफ, रक्तरोग, पित्त, आध्मान्, शूल, श्वास, और कासनाशक माना गया है।

रक्तकुष्ठ (सं० पु०) विसर्प नामक रोग। इसमें सारे शरीरमें बहुत जलन होती है, कभी कभी सारा शरीर लाल रंगका हो जाता और कुष्ठकी भांति गलने भी लगता है।

रक्तकुसुम (सं० पु०). रक्तानि रक्तवर्णानि कुसुमानि यस्य। १ पारिभद्र वृक्ष, फरहदका पेड़। २ भन्वन वृक्ष, धामिनका पेड़। ३ कचनार। ४ मदार, आक।

रक्तकुसुमा (सं० स्त्री०) अनारका पेड़।

रक्तकृमिजा (सं० स्त्री०) लाक्षा, लाह।

रक्तकेशर (सं० पु०) रक्ताः केशराः किञ्जल्काः अस्य। पारिभद्रक वृक्ष, फरहदका पेड़।

रक्तकेशिन् (सं० त्रि०) जिसके बाल लाल रंगके हों, तामड़े रंगके बालोंवाला।

रक्तकैरव (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं कैरवं। रक्त-कुमुद, लाल कुमुद।

रक्तकोकनद (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं कोकनदं। रक्तोत्पल, लाल कमल।

रक्तकोप (सं० पु०) शोणितप्रकोप, रक्तविकार।

रक्तक्षय (सं० पु०) रक्तस्राव, लहू बहना।

रक्तक्षयशोशि (सं० स्त्री०) वह यक्ष्मा रोग जो किसी कारणवश शरीरका रक्त कम हो जानेसे उत्पन्न हो।

रक्तखदिर (सं० पु०) रक्तः रक्तवर्णः खदिरः। रक्तवर्ण-पुष्पविशिष्ट खदिरवृक्ष, एक प्रकारका खैरका पेड़ जिसके फूल लाल रंगके होते हैं। पर्याय—रक्तसार, सुसार, ताम्रसारक, बहुशल्य, याज्ञिक, कुष्ठनोदन, यूपद्रुम, अम्लखदिर, अरुस्। इसका गुण—कटु, उष्ण, कषाय, गुरु, तिक्त, आमवात, अस्रवात, व्रण और भूतज्वरनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे पर्याय—गायत्री, दन्तधावन, कण्टकी, वालपत्र, बहुशल्य, यज्ञिय। गुण—शीतल दन्तरोगमें उपकारी, कण्डु, कास, अरुचिनाशक, तिक्त, कषाय, मेदोघ्न, कृमि, मेह, ज्वर, व्रण, श्वित्र, शोथ, आम-पित्त, अस्रपाण्डु और कफनाशक। (भावप्र०)

रक्तखाड़व (सं० पु०) खर्जूर वृक्षभेद, एक प्रकारका खजूरका वृक्ष।

रक्तखाण्डव (सं० पु०) रक्तखाड़व देखो।

रक्तगतज्वर (सं० पु०) वह ज्वर जो रोगीके रक्तमें समा गया हो। इसमें रोगी खून थूकता है, अंड बंड बकता है, छटपटाता है और उसे बहुत अधिक दाह तथा तृष्णा होती है। (माधवनि०) ज्वर शब्द देखो।

रक्तगन्धक (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं गन्धकं। बोल गन्धद्रव्य।

रक्तगन्धा (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, असगंध। (वैद्यकनि०)

रक्तगर्भा (सं० स्त्री०) नखरञ्जनीवृक्ष, मेंहदीका पेड़।

रक्तगुल्म (सं० पु०) रक्तजो गुल्मः मध्यपदलोपि कर्मधा०। स्त्रियोंका एक रोग जिसमें उनके गर्भाशयमें रक्तकी एक गांठ बन जाती है।

इसके लक्षण—अपक्व गर्भाशय होनेसे अथवा यथा-समय प्रसव होनेके बाद अथवा ऋतुकालमें अहितकर आहार विहारादिका आचरण करनेसे वायु कुपित हो कर रजरक्तको दूषित कर डालती है। इसमें अत्यन्त दाह और वेदना होती तथा पैत्तिक गुल्मके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। इसमें ऋतुवद्ध, मुख पीतवर्ण, स्तनका अग्र भाग काला, स्तनसे दुग्ध निर्गम, विविध द्रव्य खानेकी इच्छा, मुखसे जलस्राव और आलस्य आदि सभी गर्भके लक्षण दिखाई देने लगते हैं। परन्तु गर्भ-लक्षणके साथ इसका प्रभेद इतना ही है, कि गर्भस्पन्दन-कालमें किसी प्रकारकी वेदना नहीं रहती तथा गर्भस्थ भ्रूणका सभी अङ्ग एक समय स्पन्दित न हो कर हस्त-पदादि एक एक अङ्ग करके स्पन्दित होता है। किन्तु रक्तगुल्ममें समस्त पिण्ड वेदना उत्पन्न कर बहुत समय-के बाद स्पन्दित होता है। (सुश्रुत गुल्मरोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीमें लिखा है, कि रक्तगुल्ममें प्रसव-काल अर्थात् दशवां महीना बीतने पर रोगिणीको स्नेह और स्वेद प्रदान करके स्निग्ध और विरेचक है।

सोयाँ, नाटाकरञ्जकी छाल, देवदारु, वरंगी और पीपलको एक साथ पीस कर तिल क्वाथके साथ सेवन करनेसे रक्तगुल्म जाता रहता है। पुराने गुड़, त्रिकटु, हींग, वरंगी इनके साथ तिलका काढ़ा, यवक्षार और त्रिकटुके साथ मद्य अथवा पलासके छिलकेकी भस्म कर जलमें सिद्ध घृत पान करनेसे रक्तगुल्म आरोग्य होता है।

एतद्भिन्न दन्तीगुड़ादिको उष्ण विरेचकसे भेद करा कर रक्त-प्रदर-विहित व्यवस्था करना कर्त्तव्य है। यदि उससे विरेचन न हो, तो क्षार वा थूहरके दूधके साथ तिल-पिष्टकको व्यवस्था करे। अधिक रक्तस्राव होनेसे रक्त-पित्तनाशक क्रिया करना आवश्यक है। भिलावेके चूर्ण और कषाय द्वारा यथाविधि घृतपाक करके चीनीके साथ सेवन करनेसे रक्तगुल्ममें तथा मधुके साथ पान करनेसे कफगुल्ममें बहुत लाभ पहुंचता है।

पारा, तूतिया, गंधक, जयपाल, पीपल, अमलतास फलकी मज्जा, इन्हें थूहरके दूधमें भावना दे कर गोली बनावे। इसका अनुपान आँवले वा इमलीके पत्तेका रस तथा पथ्य दधि और अन्न है। सूखा मांस, मूली, मछली, सूखा साग, दाल, आलू और मीठा फल गुल्मरोगमें अपथ्य है। (भैषज्यर० गुल्माधिकार)

विशेष विवरण गुल्मरोगमें देखो।

रक्तगैरिक (स० क्लो०) स्वर्ण गैरिक, गेरू।

रक्तग्रन्थि (सं० पु०) १ रक्तलज्जावती, लाल लज्जावंती। २ वह रोग जिससे शरीरमें लहूकी गांठें बँध जाय। (सुश्रुतनि० ११ अ०)

रक्तग्रीव (सं० पु०) १ कपोत, कबूतर। २ राक्षस।

रक्तघ्न (सं० पु०) रक्त हन्तीति हन् (अमनुष्य कर्त्तृके च। पा ३।२।५३) इति ठक्। १ रोहितक वृक्ष। (त्रि०) २ रक्तनाशक, जिससे रक्तका नाश हो।

रक्तघ्नी (स० स्त्री०) गण्डदूर्वा, एक प्रकारकी दूब।

रक्तचञ्चु (स० पु०) शुक, तोता।

रक्तचन्दन—स्वनामप्रसिद्ध गन्धकाष्ठ और वृक्षविशेष (*Pterocarpus Santalinus*)। दक्षिण भारतमें विशेषतः कड़ापा उत्तर अरकट और कर्नूल जिलेमें यह वृक्ष बहुतायतसे उत्पन्न होता है। मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विभिन्न जिलोंमें तथा बम्बई और बङ्गालके स्थान स्थानमें इस वृक्षकी खेती होती है। कुछ गरम और शुष्क जलवायुमें तथा पहाड़ी भूमिमें यह काफी तौरसे पैदा होता है। यह पेड़ बहुत नहीं बढ़ता। गंधयुक्त और लाल वर्णके इस काष्ठका लोग बहुत आदर करते हैं।

संस्कृत पर्याय—तिलपर्णी, पत्राङ्ग, रञ्जन, कुचन्दन, ताम्रसार, ताम्रवृक्ष, चन्दन, लोहित, शोणितचन्दन, रक्तसार, ताम्रसारक, क्षुद्रचन्दन, अर्कचन्दन, रक्ताङ्ग, प्रवाल फल, पत्तङ्ग, रक्तबीज। इसका गुण—अति शीतल, तिक्त, चक्षुगत रक्तदोष, भूतदोष, पित्त, कफ, कास, ज्वर, भ्रान्ति, वमथू, और तृष्णानाशक। (राजनि०)

विभिन्न देशमें यह विभिन्न नामसे परिचित है। हिन्दी—रक्तचन्दन, उन्दम, लालचन्दन, रक्तचन्दन; बङ्गला—कुचन्दन, तिलपर्णी, रञ्जन, रक्तचन्दन, लालचन्दन; उड़िया—रक्तचन्दन; पञ्जाब—चन्दनलाल; बम्बई—रताञ्जली, रक्तचन्दन, लालचन्दन; मराठी—रक्तचन्दन, ताम्बादचन्दन, ताम्बाद गंध, हात्ताछेका; गुर्जर—रताञ्जलि; दाक्षिणात्य—लालचन्दन, उन्दम; तेलगू—कुचन्दनम्, एर-गन्धपुचेक्क, रक्तचन्दन, लालचन्दन, सेयपू-चन्दनम्, चन्दम्, एड़्चन्दनम्, रक्तगन्धम्, गेड़चन्दन; कणाड़ी—केमपुगन्धचेके, होम्ने, रक्तचन्दन, अगुरु, मलयालम्—ऊरुत्तचन्दनम्, रक्तचन्दनम्; ब्रह्म—सन्दकू, नस-नि; सिङ्गापुर—रक्तहन्दन, रतहन्दन; संस्कृत—रक्तचन्दन, अगुरु-गन्धकाष्ठ, रजन, कुचन्दन, तिलपरि; अरब—सन्दलियामर, उन्दम; पारस्य—बकम्, सन्दले-सुर्ख, सुन, उन्दम्, दलसुर्ख; अङ्गरेजी—Sanders Red वा Red sandal wood; फारसी—Santale Rouge; जर्मन—Rothes Sandelholz; इटली—Sandalo-rose दिनेमार—Sandel-Hout.

पहले लिखा जा चुका है, कि दाक्षिणात्यवासी व्यवसायके लिये इस वृक्षकी खेती करते हैं। वे लोग मई और जून मासमें बीज संग्रह कर एक टुकड़ा जमीन तैयार करते हैं। साधारणतः ८ फुट चौकोन नरम मिट्टीवाली जमीनमें प्रायः ७ वा ८सौ बीज १ इञ्च गहरी जमीन खोद कर बोते हैं। पीछे उसमें एक रातके बाद प्रति तीसरे दिन शामको जल देते हैं। बोनेके पहले यदि बीजको अच्छी तरह भिगो लिया जावे, तो अंकुर निकलनेमें सिर्फ २० दिन, नहीं तो ३०से ३५ दिन तक लग जाता है।

अंकुर उत्पन्न होनेके बाद छः मास तक बड़ी सावधानीसे थोड़ा थोड़ा जल सींचना होता है। छः महीनेमें जब पौधा थोड़ा बढ़ जाय, तब उसे जड़से उखाड़ कर अलग अलग टोकरीमें रखे और छायामें छोड़ दे। प्रति

दूसरे या तीसरे दिन उसमें जल देना होगा। जब वह मूल टोकरीमें अच्छी तरह जड़ पकड़ ले, तब उपयुक्त खेतमें गड्ढ़ा बना कर एक एक टोकरी स्वतन्त्र स्थानमें गाड़ दे। धीरे धीरे उसके सारवान् होनेसे गृहस्थ उसे काट डालते और बाजारमें बेचते हैं। बम्बई प्रदेशके बसीं जिलेमें इसी तरह रक्तचन्दनकी खेती होती है। यह वृक्ष कमसे कम तीन वर्ष रहता है। पीछे उसे काट कर धूपमें सुखा लेते हैं। पतली पतली जड़ सुखा कर रंगके लिये बाजारमें भेजी जाती है।

वैज्ञानिककी भाषामें रक्तचन्दनके लालवर्ण पदार्थको "santalin" कहते हैं। किसी एक पत्थर पर चन्दन-काष्ठ घिसनेसे लालवर्णका जो गाढ़ा पदार्थ निकलता है उसका लोग देवमूर्त्तिपूजा और तिलकादि धारणके लिये व्यवहार करते हैं। इसके काढ़ेमें सूती कपड़ा रंगाया जाता है। देशी तरल औषधादिको रंगानेके लिये यूरोपीय औषधागारमें इसकी काफी रफ्तनी होती है। एतद्भिन्न उस देशमें चमड़े और काष्ठादिको रंगानेके लिये रक्तचन्दनका बहुल प्रचार देखा जाता है। किसी व्यञ्जनादिका वर्ण और गंध बढ़ानेके लिये इसका व्यवहार किया जाता है।

प्राचीन आयुर्वेदशास्त्रमें श्रीखण्ड वा श्वेतचन्दन, पीतचन्दन और रक्तचन्दनके गुणका हाल लिखा है। प्रथमोक्त दो चन्दनवृक्षका वैज्ञानिक नाम Santalum album है। चन्दन देखो।

रक्तचन्दन शैत्यगुणविशिष्ट होनेके कारण लोग श्वेतचन्दनकी तरह स्नानके बाद घिसा रक्तचन्दन भी शरीरमें लेपते हैं। सिर दर्द करनेसे रक्तचन्दन जलमें घिस कर कपाल पर लगावे, दर्द फौरन दूर हो जायगा। यह धारक और बलवर्द्धक है। आयुर्वेदीय चिकित्सकगण औषधादिमें इसका प्रयोग करते हैं। मुसलमान हकीमके मतसे पित्तस्रावमें श्वेतचन्दन और रक्तस्रावमें रक्तचन्दन व्यवहार्य है। मलमें पित्त और रक्त रहनेसे दोनों प्रकारके काष्ठके काढ़ेका सेवन कराया जा सकता है। तिलतैल (Gingelly-oil)के साथ रक्तचन्दन मिला कर बहुतेरे स्नानके बाद शरीरमें लगाते हैं। उससे चर्मरोग नष्ट होता है। ज्वर और स्फोटक प्रदाहमें यह ज्वालाको नाश करता है। यह आंखकी ज्योतिको बढ़ाता और पसीना लाता है। लिङ्गका कटा हुआ चमड़ा धोनेमें चन्दनका घिसा जल बहुत उपकारी और ठंढा है। पुराने रक्तामाशयमें इसके बीजकोषका काढ़ा धारक और बलकारक औषधरूपमें व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक परीक्षासे देखा गया है, कि इसमें सन्तलिक एसिड (Santalic acid) है। इथर, एलकोहल और क्षारमिश्रित जलमें अथवा घने एसेटिक एसिडमें उक्त गंधनिर्यास (Resinoid Substance—santalin) निक्षेप करनेसे वह गल जाता है। अधःक्षिप्त पदार्थ दानेदार तथा गंध और स्वादहीन होता है। विडेल (Weidel) साहबने चन्दनके इस वर्णहीन दानेका $C_4H_6O_3$ इस प्रकार रासायनिक विश्लेषण किया है। रक्तचन्दन काष्ठमें इसका संयोग करनेसे हरिताभ एक प्रकारका चूर पाया जाता है। इसे पटाशके साथ गलानेसे Resorcin नामक पदार्थ उत्पन्न होता है।

रक्तचन्दनकी तरह एक और श्रेणीका वृक्ष (Adenanthera pavonina) देखा जाता है। यह बङ्गालमें रक्ताञ्जन, रक्तकम्बल, रञ्जन और कभी कभी रक्तचन्दन नामसे बाजारमें बिकता है। आसाममें यह चन्दन नामसे ही परिचित है। बाजारमें दुकानदार लोगोंको ठगनेके लिये असली रक्तचन्दनके बदले इसी काष्ठको बेचते हैं। प्रभेद इतना ही है, कि इसके काष्ठमें उतनी खुशबू नहीं है। बहुतेरे व्यापारी चन्दनकाष्ठके साथ इसे एक साथ मिला कर इसीलिये रख छोड़ते हैं जिससे इसमें चन्दन-सी गंध आ जाय।

स्थानविशेषमें यह भी स्वतन्त्र नामसे परिचित है, जैसे—संथाली—वीर मुङ्गरा; तामिल—अनैगुण्डुमणि, तेलगू—बन्दि गुरुवेन्दा, पेड्ड-गुरिजिन्दा; मलयालम्—मञ्जाति; मराठी—वाल, थोरेंगञ्ज; दाक्षिणात्य—बड़ी गुमची, हट्टीगुमटी; कनाड़ी—मञ्जाड़ी; सिंहली—मदतेय; मग—गुङ्ग; अन्दामन—रेछेड़ा; ब्रह्म—यवेगी।

बङ्गाल, दक्षिणभारत और ब्रह्मदेशमें प्रायः सभी जगह यह बड़ा पेड़ उत्पन्न होता है। इसका निर्यास 'मदतिया' कहलाता है। यह काष्ठ साधारणतः रक्तचन्दन काष्ठके बदले व्यवहृत होता है। कभी कभी इसे रंगके काममें लाते हैं।

इसके बीजसे तेल निकलता है। बीजचूर्णको विस्फोटकके ऊपर लगानेसे जलन रहने नहीं पाती तथा फोड़े पक जाते हैं। एक टुकड़े पत्थर पर जलसे बीजको घिस कर कपालमें लगानेसे सिरका दर्द जाता रहता तथा शरीरमें जलन देनेके आरम्भमें लगानेसे जलन रुक जाती और शरीर ठंढा हो जाता है। वातरोगमें बीजका क्वाथ बहुत उपकारी है। इस बीजचूर्णको जलमें घोल कर शरीर पर लगानेसे फुंसी, फोड़े आदि गात्रस्फोट दूर हो जाते हैं। हकीम लोग गनोरिया रोगमें इसका चूर व्यवहार करते हैं।

पत्तेका काढ़ा गांठ-वात और चौरङ्गीवातमें बहुत उपकारी है। अधिक काल सेवन करनेसे पुरुषत्वकी हानि होती है। रक्तमूत्र (Haematuria) और रक्तस्रावमें (Haemorrhage from the bowels) यह काढ़ा बहुत फलप्रद है। उदरामय और आमरक्तमें रोगीके दुर्बल होनेसे यह काढ़ा धारक और बलकारक औषधरूपमें व्यवहृत होता है। कोषप्रदाह (Orchitis)में इसके काष्ठ अथवा चूर्णको जलमें घिस कर प्रलेप देनेसे बहुत लाभ पहुंचता है। यह चूर्ण ३० रत्ती मात्रामें कुछ गरम जलके साथ सेवन करनेसे तुरत उलटी आ जाती है। इसका बीज उज्ज्वल, लालवर्णका तथा यह तौलमें २ रत्ती भारी होता है। कुछ लोग तौलनेमें इसका व्यवहार करते हैं। कोई कोई बीजके वर्ण और औज्ज्वल्य पर मुग्ध हो इसका माला बना कर पहनते हैं। इसके चूरको सोहागेके साथ पीसनेसे अच्छी रोटी बनती है। चन्दनके भ्रमसे बहुतेरे इस काष्ठको घिस कर तिलक लगाते हैं।

इसका काष्ठ लाल, मजबूत और लचीला होता है। इसी कारण दक्षिण भारतवासी इससे घरके असबाब और दरवाजा झरोखे आदि बनाते हैं।

शक्तिपूजामें रक्तचन्दन बड़े कामका है। रक्तचंदनसे काली और तारा आदिका यन्त्र अङ्कित कर पूजा करनेका विधान है। शक्तिदेवतामात्रकी ही चन्दन द्वारा पूजा करनी होती है।

रक्तचित्रक (सं० पु०) रक्तो रक्तवर्णश्चित्रकः। लाल रंगका चित्रक या चीता वृक्ष। महाराष्ट्र—रक्तचित्रक, कलिङ्ग—कंपिनचित्रकमूल, तैलङ्ग—एवरचित्र, तामिल—शिवप्पुचित्तिर। संस्कृत पर्याय—काल, अत्याल, कालमूल, अतिदीप्य, मार्जार, अग्नि, दाहक, पावक, चित्राङ्ग, महाङ्ग। इसका गुण—स्थौल्यकर, रुचिकारक, कुष्ठघ्न, रस-नियामक, लौहवेधक और रसायन माना गया है। (राजनि०)

रक्तचिल्लिका (सं० स्त्री०) मधुर वास्तुक, मीठी गदहपूरना।

रक्तचूर्ण (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं चूर्णं। १ सिन्दुर, सेंदुर। २ रक्तवर्ण चूर्णमात्र, लाल रंगका चूर्ण। (पु०) ३ कम्पिल्लक, कमीला।

रक्तच्छर्दि (सं० स्त्री०) रक्तवमन, खूनकी कै होना।

रक्तज (सं० त्रि०) रक्ताज्जायते जन-ड। १ जो रक्तसे उत्पन्न हो, लहूसे उत्पन्न होनेवाला। २ रक्तके विकारके कारण उत्पन्न होनेवाला।

रक्तजकृमि (सं० पु०) वह कृमिरोग जो रक्त-विकारके कारण उत्पन्न होता है।

रक्तजन्तुक (सं० पु०) रक्तः रक्तवर्णो जन्तुः स्वार्थे कन् वा रक्ता आसक्ता जन्तवोऽस्मिन्। १ भूनाग, सीसा। २ रक्तवर्ण जन्तुमात्र, लाल रंगके प्राणी।

रक्तजवा (सं० पु०) स्वनामख्यात पुष्पवृक्षविशेष, अड़हुल (Hibiscus rosasinensis)। एकमात्र चीनदेशमें ही इस वृक्षके फूलमें बीज उत्पन्न होते हैं। भारतवर्षके नाना स्थानोंमें जवाका पेड़ हैं सही, पर उसमें फूल होने पर भी बीज नहीं होते। भारतवर्षके समतल क्षेत्रस्थ उद्यानोंमें विभिन्न श्रेणीके जवाके पेड़ फूलके बोझसे सुशोभित देखे जाते हैं। साधारणतः पञ्चदल, पञ्चमुखी आदि आकृतिका जवा देखनेमें आता है। श्वेत, पीत, रक्त, बैंगनी और नील रंगके जवा भी इस देशमें होते हैं। चीनदेश जवाका उत्पत्तिस्थान होनेके कारण इस देशके लोग इसके प्रकार-विशेषको आज भी चीनका जवा कहते हैं।

भिन्न भिन्न स्थानमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। बङ्गाल—जवा, जपा, जिवा, अरु; दाक्षिणात्य—गुदेल, कुधल, जासुत्, जासुम; बम्बई—जासवन्द; मराठी—जासबंद, दसिन्दव-फूल; गुजराती—जसुद;

तामिल—सप्पत्-तप्पु ; तेलगू—जबपुष्पमु, जपापुष्पमु, दासान ; कनाड़ी—दासबल ; मलयालम्—चेम्परट्टिपुर, अयम्परट्टि ; ब्रह्म—कौङ्कयान् ; संस्कृत—जव, जप, पुष्पम्, जपा ; अरब और पारस्य—अङ्गारे ; हिन्दी, अङ्गरेजी—shoe flower, china rose ; फरासी—Ketmi-de cochin chine ।

यह फूल जलमें भिगो रखनेसे एक प्रकारका गाढ़ा लाल रंग पाया जाता है। छोटे छोटे लड़के कागजको लाल करनेके लिये जवा फूल घिसते हैं। उसमें थोड़ा एसिड वा अम्लरस मिलानेसे थोड़े ही समयमें यह ललाई लिये सफेद हो जाता है। पुष्पके दलसे जूताका वर्ण काला होता है, इस कारण अङ्गरेजोंने इसका शु-फ्लावर नाम रखा है। चीनदेशमें भी इस फूलसे बाल काले किये जाते हैं। इसकी छालके रेशेसे रस्सी बनाई जा सकती है।

पुष्प स्निग्धकर और प्रदाहनाशक होता है। मूत्र-कृच्छ्, पेशाबमें जलन आदि रोगोंमें पुष्पदलका सिरप वा इनफियुजन दिया जाता है। यह स्निग्धकारक और ज्वरमें शैत्यकारक है। जवापुष्पका रस और ओलीभ तेल समान भाग ले कर सिद्ध करे, जब जलका अंश बिलकुल जल जाय, तब उतार ले। यह तेल केश-वर्द्धनमें बहुत उपयोगी है। इसके पत्तोंका रस शैत्य-गुणविशिष्ट, वेदनानिवारक, स्निग्धकर और मृदुविरेचक है। असृग्दर रोग (menorrhagia)-में जवा-पुष्पको घीमें भुन कर सेवन करानेसे विशेष फल पाया जाता है। इसके बीजका चूर्ण जलके साथ यदि प्रमेह (gonorrhoea) रोगग्रस्त व्यक्तिको सेवन कराया जाय, तो बहुत उपकार होता है। जवा देखो।

रक्तजिह्व (सं० पु०) रक्ता रक्तवर्णा शोणितपानादौ आसक्ता वा जिह्वा यस्य। १ सिंह, शेर। (त्रि०) २ रक्तवर्ण जिह्वायुक्त, जिसकी जीभ लाल रंगकी हो।

रक्तजूर्ण (सं० पु०) ज्वार, जुन्हरी।

रक्तझाबुक—स्वनामख्यात लाल झाउका गाछ (Tamarix dioica) अजमीर और पञ्जाबकी २५००० फुट ऊंची भूमिमें यह वृक्ष उत्पन्न होता है।

रक्तझिण्टी (सं० स्त्री०) रक्ता रक्तवर्णा झिण्टी, रक्तवर्ण झिण्टी पुष्पवृक्ष। पर्याय—कुरुवक।

रक्ततर (सं० क्ली०) स्वर्णगैरिक, गेरू।

रक्तता (सं० स्त्री०) रक्तस्य भावः तल् टाप्। रक्तका भाव या धर्म, लालिमा, ललाई।

"रञ्जितं पाचितस्तत्र पित्तेनायाति रक्तताम्।"

(शार्ङ्गधरस०)

रक्ततुण्ड (सं० पु०) रक्तौ तुण्डौ यस्य। १ शुकपक्षी, तोता। (त्रि०) २ लोहितमुखयुक्त, जिसका मुंह लाल रंगका हो।

रक्ततुण्डक (सं० पु०) रक्ततुण्ड-कन्। १ भूनाग, सीसा। २ रक्ततुण्ड देखो।

रक्ततृण (सं० क्ली०) एक प्रकारका लाल रंगका तृण।

रक्ततेजस् (सं० क्ली०) मांस।

रक्तत्रिवृत् (सं० स्त्री०) रक्ता त्रिवृत्। रक्तवर्ण त्रिवृत्, लाल निवड़ी। पर्याय—कालिन्दी, त्रिपुरा, ताम्रपुष्पिका, कुलवर्णा, मसूरी, अमृता, काकनासिका। इसका गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, रेचन, ग्रहणी, मल और विष्टम्भ-हारक तथा हितकारी। (राजनि०)

रक्तदन्तिका (सं० स्त्री०) रक्ता दन्ताः अस्याः, रक्तदन्ता स्वार्थ कन्, टापि अत इत्वं। चण्डिका। शुम्भ और निशुम्भसे युद्ध करनेके समय देवी चण्डिकाके सभी दांत असुरोंके खानेसे लाल हो गये थे, इसीसे वे रक्तदन्तिका नामसे प्रसिद्ध हुईं।

(मार्कण्डेयपु० देवीमा० ६१।४१)

रक्तदन्ती (सं० स्त्री०) रक्तदन्तिका देखो।

रक्तदला (सं० स्त्री०) रक्तानि दलान्यस्याः। १ नलिका नामका गन्धद्रव्य। २ चिचिल्लिका।

रक्तदुष्ट (सं० त्रि०) दूषित रक्त, विपाक रसयुक्त।

रक्तदूषण (सं० त्रि०) रक्तदोषकारी, खून खराब करनेवाला।

रक्तदृश् (सं० पु० स्त्री०) रक्ता दृक् दृष्टिर्यस्य। १ कपोत, कबूतर। (त्रि०) २ रक्तवर्ण चक्षुविशिष्ट, लाल आंखवाला।

रक्तद्रुम (सं० पु०) रक्तबीजासन वृक्ष, लाल बीजासन-का पेड़।

रक्तधरा (सं० स्त्री०) वैद्यकके अनुसार मांसके भीतरकी दूसरी कला या झिल्ली जो रक्तको धारण किये रहती है।

रक्तधातु (सं० पु०) रक्तो रक्तवर्णो धातुः। १ गैरिक, गेरू।

२ ताम्र, तांबा । ३ रक्तवर्णधातुमात्र, लाल रंगका धातु । ४ शरीरमेंका लाल धातु ।

रक्तनदी—रक्तमय नदी । इस देशमें प्रचलित है, कि जो स्वप्नमें रक्तनदी देखता है वह बड़ा भाग्यवान् है ।

रक्तनयन (सं० त्रि०) १ आरक्तनेत्र, लाल आखोंवाला । (पु०) २ कबूतर । ३ चकोर ।

रक्तनाड़ी (सं० स्त्री०) दन्तमूलगत रक्तज नाड़ीरोगविशेष, दांतोंकी जड़में होनेवाला एक प्रकारका रोग ।

रक्तनाल (सं० पु०) रक्तो नालोऽस्य । जीवशाक, मुसना ।

रक्तनासिक (सं० पु०) रक्ता नासिकास्य । १ पेचक, उल्लू । (त्रि०) २ रक्तनासिकायुक्त, लाल नाकवाला ।

रक्तनिर्यास (सं० पु०) रक्तबीजासनवृक्ष, लाल रंगका बीजासन पेड़ ।

रक्तनील (सं० पु०) महाविष वृश्चिकविशेष, एक प्रकारका बहुत जहरीला बिच्छू । (सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०)

रक्तनेत्र (सं० पु०) रक्तं नेत्रं यस्य । १ सारस पक्षी । २ कपोत, कबूतर । ३ चकोर । (क्ली०) ४ रक्तवर्ण चक्षु, लाल रंगकी आंखें । (त्रि०) ५ रक्तवर्णनेत्रयुक्त, जिसकी आंखें लाल हों ।

रक्तप (सं० पु०) रक्तं पिवतीति पा क । १ राक्षस । (त्रि०) २ रक्तपानकर्त्ता, लहू पीनेवाला ।

रक्तपक्ष (सं० पु०) रक्तौ पक्षावस्य । गरुड़ ।

रक्तपट (सं० त्रि०) १ रक्तवस्त्रधारी, लाल रंगके कपड़े पहननेवाला । २ श्रमण ।

रक्तपत्र (सं० पु०) १ पिण्डालु । २ रक्तवर्ण पत्रविशिष्ट ।

रक्तपत्रा (सं० स्त्री०) १ जिसके पत्ते लाल हों, गदहपूरना । २ नाकुली ।

रक्तपत्रिका (सं० स्त्री०) रक्तानि पत्राणि अस्याः स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वं । १ नाकुली । २ रक्त पुनर्नवा, लाल गदहपूरना । ३ लोहित पत्र, लालपत्ता ।

रक्तपदी (सं० स्त्री०) लज्जालू, लज्जावती ।

रक्तपद्म (सं० पु० क्ली०) रक्तो रक्तवर्णो पद्मः । रक्तवर्ण पद्म, लाल कमल । पद्म देखो ।

रक्तपर्ण (सं० पु०) १ रक्तपुनर्नवा, लाल गदहपूरना । (त्रि०) २ रक्तवर्ण पर्णविशिष्ट, जिसके पत्ते लाल हो ।

रक्तपल्लव (सं० पु०) १ अशोकका वृक्ष । २ लोहितपर्ण, लाल पत्ता ।

रक्तपा (सं० स्त्री०) रक्तं पिवतीति पा-क. स्त्रियां टाप् । १ जलौका, जोंक । २ डाकिनी । (त्रि०) ३ शोणितपायी, लहू पीनेवाला ।

रक्तपाकी (सं० स्त्री०) पच्यते इति पच-घञ्, रक्त रक्तवर्णे पाके यस्याः । वृहती नामकी लता ।

रक्तपात (सं० पु०) १ लहूका गिरना या बहना, रक्तश्राव । २ ऐसा प्रहार जिससे किसीका रक्त बहे । ३ ऐसी लड़ाई-झगड़ा जिसमें लोग जख्मी हों, खून-खराबी ।

रक्तपाता (सं० स्त्री०) रक्तं पातयतीति पत-णिच्-अच्, स्त्रियां टाप् । जलौका, जोंक ।

रक्तपाद (सं० पु०) रक्तौ पादावस्य । १ शुकपक्षी, तोता । २ बरगद । (त्रि०) ३ लोहितचरणयुक्त, जिसके पैर लाल हों ।

रक्तपायिन् (सं० त्रि०) रक्तं पातुं शीलमस्य, पा णिनि । १ रक्तपानशील, खून पीनेवाला । (पु०) २ मत्कुन, खटमल ।

रक्तपायिनी (सं० स्त्री०) जलौका, जोंक ।

रक्तपारद (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्ण पारदं । हिंगुल, सिंगरफ ।

रक्तपाषाण (सं० पु० क्ली०) १ गिरिमृत्तिका, गेरू । २ लाल पत्थर ।

रक्तपिटिका (सं० स्त्री०) रक्तवर्ण विस्फोटक, लाल फोड़ा ।

रक्तपिण्ड (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं पिण्डमिव । जवापुष्प, अड़हुलका फूल ।

रक्तपिण्डक (सं० पु०) रक्तं पिण्डमिवेति रक्तपिण्ड इवार्थे कन् । १ रक्तालू, रतालू । २ जपावृक्ष, अड़हुलका पेड़ ।

रक्तपिण्डालु (सं० पु०) रक्तवर्ण पिण्डालु, रतालु । महाराष्ट्रमें वातालु और कलिङ्गमें केंपि नहेड़ल कहते हैं । वृक्षका रस गुण—शीतल, मधुर, अम्ल, श्रमघ्न, दाह और पित्तनाशक, बलकर, गुरु और पुष्टिकर । (राजनि०)

रक्तपित्त (सं० क्ली०) रक्तदूषणं पित्तमिति मध्यपदलोपि कर्मधारय०, रक्तञ्च पित्तञ्च रक्तपित्तमिति द्वन्द्व इति सुश्रुतः रक्तञ्च तत्पित्तञ्चेति रक्तपित्तं रागप्राप्तपित्तमिति कर्मधारयः इति चरकः । रोगविशेष, रक्तपित्त-रोग ।

इस रोगका निदान—अग्नि और रौद्रादिका आतप सेवन, व्यायाम, शोक, पथपर्यटन, मैथुन तथा मरिचादि तीक्ष्ण द्रव्य भक्षण, वीर्य द्रव्य, क्षार, लवण और कटुरसयुक्त द्रव्य अतिरिक्तरूपमें भोजन करनेसे पित्त बिगड़ कर इस रोगको उत्पन्न करता है। स्त्रियोंके रजोरोध होने पर भी यह रोग हो सकता है। इस रोगमें मुख, नासिका, चक्षु और कर्ण इन सब ऊर्द्ध्व मार्ग तथा गुह्य, योनि और लिङ्ग अधोमार्ग द्वारा रक्तस्राव होता है। यह पीड़ा यदि बहुत बढ़ जाय, तो समस्त रोमकूप द्वारा भी रक्त स्राव हो सकता है।

इस रोगका पूर्वलक्षण—रक्तपित्तरोग उत्पन्न होनेके पहले अवसन्नता, शीतल द्रव्य खानेकी इच्छा, कण्ठसे धूआं निकल रहा है ऐसा अनुभव, वमन और निःश्वासमें रक्त वा लोहेकी गंध-सी गंधका अनुभव होता है।

दोषभेदमें लक्षण—रोग उत्पन्न होनेके बाद वातआदि दोषकी अधिकताके अनुसार पृथक् पृथक् लक्षण दिखाई देते हैं। रक्तपित्तमें वायुकी अधिकता रहनेसे श्याम वा अरुणवर्णका फेनयुक्त, पतला और रूखा रक्त बाहर हो आता है। इसमें गुह्य, योनि वा लिङ्ग इन सब अधोमार्ग द्वारा रक्त निकलता है। पित्तकी अधिकता रहनेसे वटादि छालके काढ़े जैसा काला गोमूत्रके जैसा चिकना और सौवीराञ्जनके जैसा रक्त निकलता है। श्लेष्माकी अधिकता रहनेसे घना, कुछ पाण्डुयुक्त, अल्प स्निग्ध और पिच्छिल रक्त निकलता है। इसमें मुंह, नाक, आंख और कान हो कर रक्तस्राव होता है। दो वा तीन दोषकी अधिकता रहनेसे उन दो वा तीन दोषोंके मिश्रित लक्षण दिखाई देते हैं। द्विदोषजके मध्य वातश्लेष्मजनित रक्तपित्तमें ऊपर और दोनों मार्ग द्वारा रक्त निकलता है।

इस रोगमें साध्यासाध्य—जो रक्तपित्त ऊर्द्ध्वमार्गगत है अर्थात् मुखनासिकादि द्वारा रक्त निकलता है, जो अल्पवेगयुक्त और उपद्रवशून्य है तथा हेमन्त वा शीतकालमें दिखाई देता है वह सुखसाध्य होता है। जो रक्तपित्त अधोमार्गगत है अर्थात् गुह्य, योनि और लिङ्ग हो कर रक्त निकलता है तथा जो द्विदोषजात है वह याप्य है। जिस रक्तपित्तरोगमें ऊर्द्ध्व और अधः इन दोनों मार्ग द्वारा रक्तस्राव होता है तथा जो त्रिदोषज है उसे असाध्य जानना चाहिये। रोगीके वृद्ध, मन्दाग्नियुक्त, आहारशक्तिहीन वा अन्यान्य व्याधियुक्त होने पर भी रक्तपित्त रोग असाध्य है।

इस रोगको उपसर्ग—दुर्बलता, श्वास, कास, ज्वर, वमि, मत्तता, पाण्डुता, दाह, मूर्च्छा, भुक्तद्रव्यका अम्लपाक, सर्वदा अधैर्य, हृदयमें वेदना, तृष्णा, मलभेद, मस्तक पर संताप, सारे शरीरमें सड़ी-सी गंध, आहारमें विद्वेष और अजीर्ण आदि लक्षण दिखाई देते हैं। रक्तमें सड़ी गंध निकलती और उसका वर्ण मांसके धोए हुए जलके समान कर्दम, मेद, पीप, यकृत्खण्ड अथवा जामुनके जैसा तथा इन्द्रधनुषकी तरह विभिन्न रंगका होता है।

मृत्युलक्षण—जिस रक्तपित्तमें रोगीके नेत्र लाल हो जाते, डकारमें लाल रंग दिखाई देता अथवा सभी पदार्थ लालसे मालूम होते अथवा अधिक परिमाणमें रक्तवमन होता उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिये।

अवस्थाभेदमें चिकित्सा—इस रोगमें रोगी बलवान् रहनेसे रक्तस्रावको हठात् बंद कर देना उचित नहीं। क्योंकि, उस दूषित रक्तके देहमें रुद्ध हो कर रहनेसे पाण्डुरोग, हृद्रोग, ग्रहणी, प्लीहा, गुल्म और ज्वर आदि नाना प्रकारकी पीड़ा होनेकी सम्भावना है। किन्तु जो दुर्बल रोगी है वा अतिरिक्त रक्तस्रावके कारण जिसका शरीर अवसन्न हो गया है उन्हींका रक्त रुद्ध करना उचित है। दूबका रस, अनारका रस, गोबर या घोड़ेकी विष्ठाका रस, इन्हें चीनीके साथ सेवन करनेसे रक्तस्राव अति शीघ्र दूर हो जाता है। अड़ूसके पत्तोंका रस, यज्ञडूमरके फलका रस, लाह भिगोया हुआ जल और आयापानके पत्तोंका रस सेवन करनेसे रक्तस्राव बंद होता है। अन्नी भर फिटकरीके चूर्णको दूधके साथ सेवन करनेसे भी रक्तस्राव निवारित होता है। रक्तातिसार और रक्तार्शरोगके रक्तरोधक अन्यान्य रोगोंका भी इस रोगमें सोच विचार कर प्रयोग करनेसे उपकार होता है। नाकसे रक्तस्राव होने पर आँवलेको घीमें भून कांजीके साथ पीस कर मस्तक पर प्रलेप देने, चीनी मिश्रित दूध वा जलकी तथा दूबका रस, अनारके

फूलका रस, अलतेका रस, प्याजका रस, गोबर वा घोड़ेकी विष्ठाका रस, केवाँचका रस वा हर्रेका जल इन सब द्रव्योंकी नास लेनेसे लाभ पहुंचता है। कानसे रक्तस्राव होने पर भी उसी प्रकार सुंघनी लेनी चाहिये। मूलद्वार हो कर रक्तस्राव होनेसे काश, शर, काली ईख और उलुखड़का मूल कुल मिला कर २ तोला, बकरीका दूध १६ तोला इन्हें एक सेर जलमें पाक कर दुग्धभागके रहते उतार ले। ठंढा होने पर इसका सेवन करनेसे रक्तस्राव बंद हो जाता हैं। शतमूली और गोखरूके मूलके साथ दूधको पका कर पान करनेसे बहुत उपकार होता है। रक्तचन्दन, बेलसोंठ, अतीस, कूटजकी छाल और बाबलाका आटा, कुल २ तोला, बकरीका दूध १६ तोला, जल १ सेर इन्हें सिद्ध कर दूधका भाग रहते उतार ले। इसका पान करनेसे गुह्य, योनि और लिङ्गद्वार हो कर रक्तका निकलना बंद हो जाता है। किसमिस, रक्तचन्दन, लोध्र, प्रियंगु इन सब द्रव्योंके चूर्णका अड़ूसके पत्तोंके रस और मधुके साथ सेवन करनेसे मुंह और नाकसे रक्तका निकलना रुक जाता है। प्रथित अर्थात् गठीला रक्तस्राव होनेसे कबूतरकी विष्ठाका अति अल्प मात्रामें मधुके साथ मिला कर सेवन करनेसे भी लाभ पहुँचता है। इसके सिवा हिम, धान्यकादि, ह्रीबेरादि और अटरूषकादि क्वाथ, एलादिगुड़िका, कुष्माण्डखण्ड, वासाकुष्माण्डखण्ड, खण्डकाद्यलौह, रक्तपित्तान्तकलौह, वासाघृत और ह्रीबेराद्यतैल आदि औषधोंका अच्छी तरह प्रयोग करनेसे यह रोग प्रशमित होता है। रक्तपित्तके साथ ज्वर रहनेसे लाल निसोथ, श्यामवर्णका निसोथ, आमलकी, हरीतकी, बहेड़ा, पीपलचूर्ण प्रत्येकका सम भाग, कुल मिला कर जितना हो उससे दूनी चीनी और मधुके साथ मोदक बनाना होगा। इस मोदकका सेवन करनेसे रक्तपित्त और ज्वर इन दोनों रोगोंकी शान्ति होती है। इसके सिवाय रक्तपित्तनाशक और ज्वरनाशक दोनोंके औषधको मिला कर इस अवस्थामें प्रयोग करना होता है। श्वास, कास, स्वरभङ्ग आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे राजयक्ष्मरोगकी तरह चिकित्सा करनी चाहिये। अड़ूसके पत्तोंके रसके साथ तालीशपत्र-चूर्ण और मधु मिला कर पान करनेसे श्वास, कास और स्वरभङ्गमें उपकारक होता है।

(सुश्रुत रक्तपित्तरोगाधि०)

भावप्रकाशके मतसे रक्तपित्त रोगीको पहले रक्तरोधक औषध नहीं देना चाहिये। क्योंकि, उससे वह दूषित रक्त रुक कर हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी, प्लीहा, गुल्म और ज्वरादि रोगोंको उत्पन्न करता है।

धान, साठी, कोदों, श्यामा और कंगनी धान रक्तपित्तरोगीको खानेके लिये देना उचित है। मसूर, मूंग, चना, बनमूंग और अरहर दालका जूस दिया जा सकता है। अनार, आंवला, परवलका पत्ता, नीम, वेताग्र, प्लक्ष, वेतका पत्ता और मारसा साग, सफेद वा पाण्डुवर्णका कबूतर, शशक, कपिञ्जल और हरिण इनके मांसका जूस रक्तपित्तरोगमें हितकर है। धनिया, आमलकी, अड़ूस, किसमिस, पित्तपापड़ इनका शीतल कषाय प्रस्तुत करके सेवन करनेसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह, पिपासा और शोषरोग नाश होता है। अतिबला, नीलोत्पल, धनिया, रक्तचन्दन, मुलेठी, गुलञ्च, खसखसकी जड़ और निसोथ इनका काढ़ा मधु और चीनीके साथ पीनेसे रक्तपित्तरोग आरोग्य होता है।

रक्तपित्त, क्षय और कासरोगीमें किसी प्रकारका अरिष्टलक्षण नहीं होनेसे यदि अड़ूसका प्रयोग किया जाय, तो कोई भय नहीं रहता। अड़ूस, किसमिस और हरितकी इनका क्वाथ चीनी और मधुके साथ पान करनेसे सभी प्रकारके कास, श्वास और रक्तपित्त नष्ट होते हैं।

इस रोगमें अतिशय रक्तस्राव जारी रहनेसे मधुसंयुक्त रक्तपान करे। नाकसे रक्त निकलने पर आंवलेको घीमें भुन कर कांजी द्वारा अच्छी तरह पीस करके मस्तक पर प्रलेप देनेसे रक्तवेग निवारित होता है। दूर्वाद्यघृत, खण्डकुष्माण्डवलेह, वृहत्कुष्माण्डवलेह, खण्डकुष्माण्डक, खण्डखाद्यलौह, शतावरीपाक प्रभृति औषधोंका अवस्थानुसार प्रयोग करे।

(भावप्र० रक्तपित्त०)

भैषज्यरत्नावलीमें रक्तपित्त-रोगाधिकारमें निम्नोक्त औषध बतलाये गये हैं, जैसे—उशीरादिचूर्ण, एलादि-

गुड़िका, कुष्माण्डखण्ड, वासाकुष्माण्डखण्ड, वासाघृत, दूर्वाद्यघृत, समशर्करलौह, शतमूल्यादि लौह, खण्डकाद्य-लौह, रक्तपित्तान्तकलौह, सुधानिधिरस, ह्रीवेराद्यतैल और उशीरासव ।

रसेन्द्रसारसंग्रहमें अर्केश्वर, सुधानिधिरस, आमलक्यादि लौह, शतमूल्यादि लौह, पर्पटीरस, रक्तपित्तान्तकरस, रसामृतरस, कुष्माण्डखण्ड, शर्करादि लौह, समशर्करलौह और कपर्दकरसका प्रयोग देखा जाता है ।

विज्ञ चिकित्सकको चाहिये, कि वे रोगके बल और अवस्थाको अच्छी तरह देखभाल कर औषधका प्रयोग करें ।

इस रोगकी प्रवल अवस्थामें पथ्यापथ्य—ऊद्र्ध्वग रक्तपित्तमें रोगीका बल, मांस और अग्निबल क्षीण नहीं होनेसे पहले उपवास करने देना उचित है; किन्तु बलादि क्षीण होनेसे तृप्तिकर आहार खानेको दे । घी, मधु और लावाके चूर्णका तैयार किया हुआ भोजन उपकारक है । पिण्डखजूर, किसमिस, मुलेठी और फालसा इनके काढ़ेको ठंढा करके चीनीके साथ पान करनेसे विशेष लाभ पहुंचता है । अधोग रक्तपित्त रोगीको तृप्तिकर पेयादि पीनेको दे । शालपर्णी, चकवंड, वृहती, कण्टकारी और गोखरू इस पञ्चमूलके काढ़ेका पेया तैयार करके सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है ।

इस रोगमें साधारण पथ्यापथ्य—अतिरिक्त रक्तस्रावके बाद वह बंद हो जानेसे तथा अन्नादि परिपाकके लायक अग्निबल रहनेसे दिनमें पुराने चावलका भात ; मूंग, मसूर और चनेकी दालका जूस ; बड़ी झींगा वा बाइन मछलीका शिखा, परवल, डूमर, पक्वकुष्माण्ड, मानकच्चू, करेले आदिकी तरकारी ; ब्राह्मीशाक, बकरे, हरिण, खरहे और कबूतर आदिका मांसरस, बकरीका दूध, खजूर, अनार, पानफल, किसमिस, आमलकी, मिसरी, नारियल, तिलतैल और घृतपक्व व्यञ्जनादि इन रोगमें खानेको दिया जा सकता है । रातको गेहूं वा जौकी रोटी जहां तक पचा सके, देनी चाहिये । गरम जल ठंढा करके पीने देना उचित है ।

इस रोगमें निषिद्ध कर्म—गुरुपाक, तीक्ष्णवीर्य और उष्णद्रव्य, दधि, मछली, अधिक सारक द्रव्य, सरसोंका तेल, लाल मिर्च, अधिक लवण, सेम, आलू, साग, खट्टी वस्तु, उड़दकी दाल और पान आदि द्रव्यभोजन, मलमूत्रादिका वेगधारण, दन्तकाष्ठ द्वारा दन्तमार्जन, व्यायाम, पथपर्यटन, धूम्रपान, धूली और आतप सेवन, ठंढ लगना, रात्रिजागरण, स्नान, सङ्गीत वा उच्चशब्द उच्चारण, मैथुन और घोड़ेकी सवारी पर भ्रमण आदि इस रोगमें विशेष अनिष्टकर है । स्नान नहीं करनेसे यदि रोगी बहुत तकलीफ मालूम करे, तो गरम जलको ठंढा करके किसी किसी दिन स्नान कर सकता है ।

यह रोग अत्यन्त दुःसाध्य है । रोगी सुपथ्याचारी हो कर यदि विज्ञ-चिकित्सकसे दवाई करे, तो आरोग्य भी हो सकता है ।

डाक्टरी मत ।

रक्तपित्तरोगमें पाकाशयसे रक्त निकलता है । एलोपैथिकके मतसे इस रोगका वैज्ञानिक नाम Haematemesis है । वयस्कपुरुष और अल्पवयस्का स्त्रियोंके अकसर यह रोग हुआ करता है ।

उदरके ऊपर किसी प्रकारके आघात, पीतज्वर (Yellow fever) आदि पीड़ामें रक्तका परिवर्त्तन ; पाकाशयमें रक्ताधिक्य ; प्रदाह, क्षत, कर्कटरोग अथवा पराथेमा ; उग्र एसिड अथवा उत्तेजक द्रव्यभक्षण ; यकृत, प्लीहा और अन्यान्य निकटवर्त्ती यन्त्रकी पीड़ा, विशेषतः सिरोसिस आव लीभर या पोर्टल शिरामें थ्रम्बोसिस अथवा एम्बलिजम होनेसे पाकाशयमें अप्रबल रक्ताधिक्य हो कर रक्तस्राव होता है । यदि औदरिक एनिउरिजम पाकाशयमें फट जाय अथवा मुखसे रक्तस्राव हो कर वही पेटमें चला जाय, तो वह फिरसे ऊपर उठता है । स्त्रियोंके ऋतु-परिवर्त्तन अर्थात् भिकेरियस मेनष्ट्रुयेशनमें भी इस प्रकारका रक्तस्राव होते देखा जाता है ।

लक्षण—अनेक समय रक्त उठनेके पहले रोगीको पेटके ऊपर दर्द मालूम होता है तथा वह बेचैन हो जाता है । कभी कभी कोई लक्षण दिखाई देनेके पहले ही अकस्मात् रक्तवमन होता है । रक्तोद्गमनकालमें सामान्य अथवा अत्यन्त वमनका उद्रेक रहता है तथा रक्त अल्प वा अधिक परिमाणमें निकलता है । कभी कभी इतना अधिक रक्तवमन होता है, कि उससे थोड़े ही समय

मृत्यु हो जाती है। उद्भ्रान्त रक्त काला दिखाई देता है। पाकाशयमें अम्लरसके साथ शोणितमिश्रित होनेसे ही उक्त वर्णमें परिणत हुआ करता है। किन्तु निःसृत होनेके कुछ समय बाद ही यदि रक्तोद्गम हो, तो उसका वर्ण लाल हो जाता है। कभी कभी बहिर्गत रक्तके साथ खाद्य द्रव्य मिला रहता है। निःसृत रक्तका कुछ अंश कभी कभी आंतमें जा कर मलके साथ बाहर निकलता है। वह देखनेमें ठीक अलकतरेके जैसा होता है। अधिक रक्तस्राव होनेसे रोगीका शिर घूमता, हाथ पैर कंपने लगता, आंखकी ज्योति कम हो जाती तथा वह बहुत कमजोरी मालूम करता है। कभी कभी उसे मूर्च्छा आ जाती है, नाड़ी क्षीण और धीमी चलने लगती है। अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा करनेसे लोहित सभी रक्तकणिका परिवर्त्तित तथा भिन्न भिन्न वर्णकी कणा मिली हुई दिखाई देती हैं।

रक्तकाशके साथ इस रोगका कभी कभी भ्रम हो आया करता है। रोगनिर्णयकालमें चिकित्सक निम्नलिखित लक्षण देख कर रोगको पहचान लें तथा उसीके अनुसार रोगविशेषकी चिकित्सा भी करें।

रक्तपित्त	रक्तकाश
१ अधिक वयस्क व्यक्ति और कभी कभी युवती स्त्रीको	१ युवकगण।
२ रक्तवमनके पहले पेटके ऊपर वेदना और विवमिषा।	२ रक्तोत्काशके पहले छाती भारी, अस्वच्छन्दता और गलेके भीतर सुरसुरी मालूम होना।
३ वान्त रक्त काला और उसकी प्रतिक्रिया अम्ल।	३ रक्त उज्ज्वल लालवर्ण और फेनिल तथा प्रतिक्रिया क्षार।
४ श्वासकृच्छ्र नहीं रहता।	४ श्वासकृच्छ्र रहता है और छातीके भीतर बुदबुद शब्द सुनाई देता है।
५ अधिक परिमाणमें रक्तवमन होनेके बाद कुछ समय रक्तोद्गम नहीं होता।	५ रक्तकाशके बाद बहुत थोड़ा कफ और रक्त निकलता है।
६ मलके साथ रक्त दिखाई देता है।	६ मलमें रक्त नहीं रहता।

कभी कभी मुंह और नाकसे निकला हुआ रक्त पेटमें जा कर रक्तपित्तरोग उत्पन्न करता है। यह रोग प्रायः आरोग्य हो जाता है।

रोगीको स्थिरभावमें रख कर हमेशा बरफ चूसने देना उचित है। पेटके ऊपर मष्टर्ड प्लष्टर अथवा बरफकी थैली रखनेसे बहुत लाभ पहुंचता है। आभ्यन्तरिक प्रयोगमें अफीमके साथ गैलिक एसिड वा प्लम्बाई एसिटेटीस, आयल आव टार्पेण्टाइन, टिंष्टिल, आर्गट, हैमोलिस और बाहरमें आर्गटिन वा स्कलेरोटिक एसिडका इञ्जेक्सन दे। यदि अत्यन्त वमन होता हो, तो हाइड्रोसियेनिक एसिड डिल तथा पीड़ित स्थानमें माफया इञ्जेक् कर सकते हैं। पाकाशयको स्थिरभावमें रखनेके लिये ३ वा ४ घंटेके अंतर पर तरल खाद्यद्रव्य तथा बरफ जलके साथ थोड़ा दूध या शूप है। रोगीके दुर्बल होनेसे एनिमा द्वारा उत्तेजक औषधका प्रयोग करे।

रक्तपित्तहा (सं० स्त्री०) रक्तपित्तं हन्तीति हन्-ड, स्त्रियां टाप्। रक्तघ्नो, रतघ्नी नामकी दूब।

रक्तपित्तान्तकलौह (सं० क्ली०) रक्तनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—आंवला, पीपल, चीनी और लोहा, प्रत्येक एक एक तोला, इन्हें एकत्र करके कूट कर यह औषध प्रस्तुत करे। पीछे दोषके बलाबल अनुसार अनुपान और मात्रा स्थिर करनी होती है। इसके सेवनसे रक्तपित्त और अम्लपित्तरोग नष्ट होता है।

रक्तपित्तान्तकरस (सं० पु०) रक्तपित्तरोगका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—अबरक, लोहा, सोनामक्खी, पारा, हरिताल और गंधक बराबर बराबर भाग ले कर ब्रह्मयष्टि, दाख और गुरूचके काढ़े में एक दिन खल करके माशा भरकी गोली बनावे। इसका अनुपान मधु और चीनी है। इसका सेवन करनेसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह, क्षत, क्षीण, तृष्णा, शोष आदि रोग आरोग्य होते हैं। (रसेन्द्रसारसं० रक्तपित्तरोगाधि०)

रक्तपित्तिन् (सं० त्रि०) रक्तपित्तं अस्यास्तीति इनि। रक्तपित्तरोगी, जिसे रक्तपित्त रोग हुआ हो।

रक्तपीडिकादर्शन (सं० क्ली०) रक्तज विकार। (निदान)

रक्तपीतफला (सं० स्त्री०) मधुरबिम्बिका। (वैद्यकनि०)

रक्तपुच्छक (सं० त्रि०) १ रक्त-वर्ण पुच्छविशिष्ट, लाल पूंछवाला। (स्त्री०) २ सरीसृपभेद, एक प्रकारका रेंगनेवाला कीड़ा।

रक्तपुनर्नवा (सं० स्त्री०) रक्ता रक्तवर्णा पुनर्नवा। रक्तवर्ण पुनर्नवा शाक, लाल रंगकी गेदहपूर्ना। महाराष्ट्रमें—रक्तघेण्ड लि; कलिङ्गमें—कॅपिन वेलड़ा कलु। संस्कृत पर्याय—क्रूरा, मण्डलपत्रिका, रक्तकान्ता, लोहिता, रक्तपत्रिका, वैशाखी, रक्तवर्षाभू, सोफघ्नी, पुष्पिका, विकस्वरा, विषघ्नी, प्रवृषेण्या, सारिणी, वर्षाभव, शोणपत्र, भौम, पुनभव, नव, नव्य। यह तिक्त, सारक, शोफ, रक्त-प्रदर, पाण्डु और पित्तनाशक मानी गई है।

रक्तपुष्प (सं० पु०) रक्तं पुष्पमस्य। १ करवीर, कनेर। २ रोहितक नामका पेड़। ३ रक्तकाञ्चनवृक्ष। ४ दाड़िम वृक्ष, अनारका पेड़। ५ वकवृक्ष। ६ वन्धूका पेड़, गुलदुपहरिया। ७ पुन्नागका पेड़। (राजनि०) (त्रि०) ८ रक्तवर्ण पुष्पविशिष्ट, जिसमें लाल फूल हों। (क्ली०) ९ रक्तवर्ण पुष्प, लाल फूल। लाल फूल शक्तिकी पूजामें बड़ा प्रशस्त माना जाता है।

रक्तपुष्पक (सं० पु०) रक्तं पुष्पमस्य कन्। पलाश वृक्ष। २ रोहितक नामका पेड़। ३ शाल्मलिवृक्ष, सेमरका पेड़। (राजनि०)

रक्तपुष्पा (सं० स्त्री०) रक्तं पुष्पं अस्याः। १ शाल्मलि-वृक्ष, सेमरका पेड़। २ पुनर्णवा। ३ सिन्दूर। (भावप्र०) ४ कनककदली, चंपाकेला। ५ नागदमनी, नागदौना। (राजनि०)

रक्तपुष्पिका (सं० स्त्री०) रक्तपुष्प-कन् टापि अत इत्वं। १ लज्जालु, लजवंती। २ लाल पुनर्णवा।

रक्तपुष्पी (सं० स्त्री०) रक्तं पुष्पमस्याः ङीष्। १ पाटली-वृक्ष, पांडरका पेड़। २ जवा, अड़हुल। ३ आवर्त्तकी नामकी लता। ४ नागदमनी, नागदौना। ५ करुणीवृक्ष, करनाका पेड़। ६ उष्ट्रकान्ता। (राजनि०) ७ धातकी, धौ। (वैद्यकरत्ना०)

रक्तपूतिका (सं० स्त्री०) लाल रंगकी पूतिका, लाल पोई। वैद्यकमें यह स्निग्ध और मूत्रवर्द्धक मानी गई है। बच्चोंके कई रोगोंमें और सूजाकमें इसका साग गुणकारी माना गया है। शास्त्रमें इसका साग खानेका निषेध है। पूतिका देखो।

रक्तपूय (सं० क्ली०) १ पुराणानुसार एक नरकका नाम। २ खून और पीप।

रक्तपूरक (सं० क्ली०) रक्तं पूरयतीति पूर-ण्वुल्। वृक्षाम्ल, इमली।

रक्तपैत्त (सं० क्ली०) रक्त-पित्त सम्बन्धी।

रक्तपैत्तिक (सं० त्रि०) रक्तपित्तरोग सम्बन्धी।

रक्तपोस्त (सं० पु०) रक्तखस् वृक्ष, लाल पोस्ता (*Papaver Rhoeas, Red poppy*)।

काश्मीर, पञ्जाब, पटना और बिहारके कई स्थानोंमें तथा भारतवर्षके समतल क्षेत्रादिमें यह बीज उत्पन्न होते देखा जाता है। स्थान-विशेषमें इसका बीज भिन्न भिन्न नामसे परिचित है, जैसे, हिन्दी—लाल पोस्त, लाल पोस्ता, लाला; बङ्गाल—लाल पोस्त, लाल पोस्तका गाछ; बम्बई—जङ्गली मुद्रिका; मराठी—ताम्बाद खसखसा या झाड़; गुजरात—लाला, लाल खसखस नु-झाड़; दाक्षिणात्य—लाल खसखसका झाड़; तामिल—शिवप्पु गमगसा चेड़ी, शिगप्पू पोस्तकी चेड़ी; तेलगू—एरस गस गसला चाठे, एरर पोस्त काय चाठे; कनाड़ी—केम्पू खसखसी गोड़ा; मलयालम्—कोरक्रकस कसचचेटी; ब्रह्म—भिन्‌विन् अभो; संस्कृत—रक्तपोस्त-वृक्ष; अरब—नवतूल खसखसुसअह्मर; पारस्य—कोकनगर सुर्ख; अङ्गरेजी—Cornrose वा Red-poppy।

अफगानिस्तान और पारस्यराज्यमें इस श्रेणीका एक और प्रकारका पेड़ (*P. dubiun*) बहुतायतसे उत्पन्न होते देखा जाता है। पश्चिम हिमालय प्रदेश, गढ़वाल, कुमाउन, हजारा, बेलुचिस्तान और यूरोपमें भी इस पेड़का अभाव नहीं है। पत्तोंकी विभिन्नता देखनेसे दोनों श्रेणीकी पृथक्ता समझमें जानी जाती है। उद्यान और गेहूंके खेतमें यह पौधा काफी तौरसे उपजता है। औषधोंको लाल रंग करनेके लिये इसके पत्ते काममें लाये जाते हैं। बीजकोषका दूध मादक गुणविशिष्ट (Narcotic) और कुछ अवसादक है।

रासायनिक परीक्षा द्वारा स्थिर हुआ है, कि बीजकोषका दूधके जैसा निर्यास सामान्यरूपमें ही अफीमका काम करता है, क्योंकि उसमें *Morphine* नामक पदार्थ रहता

है। Dr. O. Hesse ने इसमें Rhoeadine नामक उपक्षार (Alkaloids) देखा है। यह आस्वादविहीन और पलाकृति श्वेत दानायुक्त होता है तथा २३२° २' उत्तापमें जल जाता है। जल, एलकोहल, इथर, क्लोरोफार्म, बेनजोल, एमोनिया, कार्बनेट आव सोडा, द्रावक, चूनका जल अथवा अम्लजलमें (dilute acids) बड़ी आसानी-से गल जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम है— $C_{21}H_{21}NO_6$ हाइड्रोक्लोरिक एसिड अथवा सलफ्युरिक एसिडमें मिलानेसे भी इसका रंग नहीं बदलता है।

रक्तप्रतिश्याय (सं० पु०) प्रतिश्याय या जुकामका एक भेद, बिगड़ा हुआ जुकाम। इसमें नाकसे खून जाता है, आंखें लाल हो जाती है, छातोमें पीड़ा होती है और मुंह तथा सांससे बहुत दुर्गन्ध आती है।

प्रतिश्याय शब्द देखो।

रक्तप्रदर (सं० पु०) प्रदररोगका वह भेद जिसमें स्त्रियोंकी योनिसे रक्त बहता है। प्रदर देखो।

रक्तप्रमेह (सं० पु०) पुरुषोंका एक रोग। जिसमें दुर्गन्धि-युक्त गरम, खारा और खूनके रंगका पेशाब होता है।

रक्तप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) पित्तज रोग, वह रोग जो पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न हो।

रक्तप्रसव (सं० पु०) रक्तः रक्तवर्णः प्रसवः पुष्पमस्य। १ रक्त करवीर, लाल कनेर। २ रक्तम्लान, लाल आंटी। ३ मुचकुन्दवृक्ष।

रक्तफल (सं० पु०) रक्तं लोहितवर्णं फलमस्य। १ वट-वृक्ष, बड़का पेड़। २ शाल्मलिवृक्ष, सेमलका पेड़।

रक्तफला (सं० स्त्री०) १ कुन्दरू, तुण्डी। २ स्वर्णवल्ली।

रक्तफूल (हिं० पु०) १ जवापुष्प, अड़हुलका फूल। २ पलाशका वृक्ष।

रक्तफेनज (सं० पु०) रक्तफेनाज्जायते इति जन-ड। फुल्फुस, फेफड़ा।

रक्तबिन्दु (सं० पु०) रक्तानां बिन्दुः। १ रक्तकी कणा। २ रक्त अपामार्ग। ३ हीरा आदि मणिके भीतरका लाल दाग।

रक्तबीज (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्णं बीजमस्य। १ दाड़िम, अनार। २ अरिष्टक फल। रक्तं शोणितं बीजं कारण-मस्य। ३ शुम्भ और निशुम्भका सेनापति एक असुर। इस असुरके शरीरसे रक्तकी जितनी बूंदें गिरती थीं उतने ही असुर पैदा होते थे। भगवती चण्डिकाने इस असुरसे युद्ध किया और इसका सब लहू पी कर प्राण हर लिया था। देवीभागवतमें लिखा है, कि महिषासुरके पिता दानव रम्भने दूसरे जन्ममें रक्तबीजरूपमें जन्मग्रहण किया था।

रक्तबीजका (सं० स्त्री०) रक्तो रक्तवर्णो बीजोऽस्याः कन्-टाप्। तरही नामका एक कटीला पेड़।

रक्तबीजा (सं० पु०) सिन्दुरपुष्पी, सिन्दूरिया।

रक्तभव (सं० क्ली०) मांस, गोश्त।

रक्तभस्म (सं० क्ली०) रससिन्दुरादिकरण।

रक्तभाव (सं० त्रि०) प्रणयासक्त।

रक्तमञ्जर (सं० पु०) रक्ता रक्तवर्णा मञ्जरी-सा विद्यतेऽस्येति (अर्श आदिभ्योऽच्। पा ५।२।१२७) इत्यच्। १ निचुल वृक्ष, बेंतकी लता। २ निम्ब वृक्ष, नीमका पेड़।

रक्तमञ्जरी (सं० क्ली०) रक्तकरवीर, लाल कनेर।

रक्तमण्डल (सं० पु०) १ मण्डलिसर्पविशेष, एक प्रकार-का सांप। (सुश्रुत कल्पस्था० ४ अ०) २ रक्त पद्म, लाल कमल। ३ विषाक्त पशुविशेष, एक प्रकारका जहरीला पशु। (त्रि०) ४ रक्तवर्ण मण्डलविशिष्ट। कहते हैं, कि चन्द्रमाके ऐसा लाल मण्डल है। ५ अनुगतप्रजा या भृत्यसमन्वित।

रक्तमण्डलता (सं० स्त्री०) रक्तदुष्टिके लिये शरीरमें मण्डलाकार लाल चिह्न।

रक्तमण्डलिका (सं० स्त्री०) रक्तलज्जालुका, लाल लज्जावंती लता।

रक्तमत्त (सं० त्रि०) रक्तपान द्वारा परितृप्त, वह जो रक्त पी कर तृप्त हो। जैसे जोंक आदि।

रक्तमत्स्य (सं० पु०) रक्तो रक्तवर्णो मत्स्यः। रक्त-वर्णमत्स्यविशेष, एक प्रकारकी लाल रंगकी मछली। यह बहुत बड़ी नहीं होती है। वैद्यकमें इसका मांस शीतल, रुचिकारक, पुष्टिकारक, अग्निदीपक और त्रिदोषनाशक माना गया है।

रक्तमरिच (सं० क्ली०) मरिचभेद, लाल मिर्च।

रक्तमस्तक (सं० पु०) लाल रंगके सिरवाला सारस पक्षी।

रक्तमातृका (सं० स्त्री०) १ वैद्यकके अनुसार वह रस नामक धातु जिसकी उत्पत्ति पेटमें पचे हुए भोजनसे होती है और जिससे रक्त बनता है। २ वाधक-रोगभेद। (कुब्जिकातन्त्र २ अ०)

रक्तमाद्री (सं० स्त्री०) स्त्रीरोगविशेष, बाधक।

रक्तमिलातक (सं० पु०) रक्ताम्लान पुष्प वृक्ष।

रक्तमुख (सं० पु०) रक्तं मुखं यस्य। १ रोहितमत्स्य, रोहू मछली। २ यष्टिक धान्य, साठी धान। (त्रि०) ३ रक्तमुखविशिष्ट, लाल मुंहवाला।

रक्तमूत्रता (सं० स्त्री०) रक्तप्रसावरोग, एक तरहका रोग जिसमें पेशाबके साथ लहू निकलता है।

रक्तमूर्द्धन् (सं० पु०) सारस पक्षी।

रक्तमूलक (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्णं मूलं यस्य कन्। देवसर्षप नामको सरसोंका पेड़।

रक्तमूला (सं० स्त्री०) रक्तं मूलमस्याः टाप्। लज्जालू, लज्जावंती।

रक्तमेह (सं० पु०) मेहनं मेहः, रक्तस्य मेहः। प्रमेहरोग-विशेष, पुरुषोंका एक रोग जिसमें दुर्गन्धियुक्त गरम, खारा और खूनके रंगका पेशाब होता है।

प्रमेह शब्द देखो।

रक्तमोक्षण (सं० क्ली०) रक्तस्य मोक्षणं। शोणितस्राव। वैद्यकशास्त्रमें लिखा है, कि शरीरका खून खराब हो जाने पर उसे बाहर निकाल देना होता है, इसीको रक्तमोक्षण कहते हैं। शिरादिरेचन, अलाबूप्रयोग, शलक्ष्नशृङ्ग और जोंक इन चार उपाय द्वारा रक्तमोक्षण किया जाता है। (हारीत शारीरस्था० ५ अ०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि रोगके अवस्थानुसार विवेचना करके रोगीके शरीरसे एक प्रस्थ, आध प्रस्थ वा चौथाई प्रस्थ रक्तमोक्षण करे। शरत्कालमें स्वाभाविक शरीरमें भी रक्तमोक्षण किया जा सकता है, क्योंकि उस समय रक्तमोक्षण करनेसे त्वक्दोष वा ग्रन्थिशोथादि उत्पन्न नही होता। वर्षा, शीत, ग्रीष्म और शरत् कालमें जब आकाश साफ रहता है तथा शीतकालमें दोपहरको रक्तमोक्षण करना उचित है।

शोथ, दाह, अङ्गपाक, अङ्गको रक्तवर्णता, रक्तस्राव, वातरक्त, कुष्ठ, अत्यन्त पीड़ादायक वायुका प्रकोप, पाण्डुरोग, श्लीपद, विषदुष्ट रक्त, ग्रन्थि-अर्बुद, अपची, क्षुद्ररोग, अभिमन्थ, विदारी, स्तन्यरोग, शरीरको अवसन्नता और गुरुत्व, रक्ताभिष्यन्दी, तन्द्रा, पूतिनाशा, मुखदाह, यकृत्, प्लीहा, विसर्प, विद्रधि, पीड़का, कर्णपाक, नासापाक, मुखपाक, दाह, शिरोरोग, उपदंश और रक्तपित्त इन सब रोगोंमें रक्तमोक्षण प्रशस्त है। अतएव इसमें शृङ्ग, जलौका, अलाबू वा शिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण करना चाहिये।

कृश, अत्यन्त व्यवायी, क्लीव, भयशील, गर्भिणी, सद्यःप्रसूता नारी, पाण्डुरोगी, वमनविरेचनादि पञ्चकर्म द्वारा शोणित, स्नेहपीत, अर्शरोगग्रस्त, सार्वाङ्गिक शोथयुक्त तथा उदर, श्वास, कास, वमि, अतीसार और कुष्ठरोगाक्रान्त व्यक्तियोंका तथा अत्यन्त स्विन्न, १६ वर्षसे कम उमरवाले बालक और ७० वर्षके बूढ़ेका एवं अभुक्त, मूर्च्छारोगग्रस्त, निद्रित, भीत, प्रमत्त, श्रान्ति तथा मलमूत्रका वेगाभिभूत व्यक्तियोंका रक्तमोक्षण नहीं करना चाहिये। अत्यन्त शीत वा अत्यन्त उष्ण कालमें अथवा अत्यन्त स्विन्न और सन्तर्पित व्यक्तिका भी रक्तमोक्षण करना उचित नहीं। यदि रक्तमोक्षण क्रिया द्वारा रक्तपरिवर्त्तित न हो, तो कुट, त्रिकटु और सैन्धवको मिला कर क्षत स्थानमें लगानेसे रक्त निकलता है। सुविज्ञ चिकित्सकको चाहिये कि वे यवागूपान करा कर उसका रक्तमोक्षण करे।

विषदुष्ट शरीरमें यदि रक्तमोक्षण करना हो, तो पहले शिरावेध करना होगा। वायु, पित्त और कफ द्वारा रक्त दूषित होने पर यथाक्रम गोशृङ्ग, जलौका और अलाबू द्वारा रक्तमोक्षण करना होता है। द्विदोष वा त्रिदोष कर्त्तृक रक्त दूषित होने पर शिरावेध वा पद द्वारा रक्तमोक्षण करे।

शृङ्ग द्वारा दश उंगली स्थानका जलौका द्वारा एक हाथका, अलाबू द्वारा बारह उंगली और शिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण करनेसे सारे शरीरका रक्त शोधित होता है।

अतिस्विन्न व्यक्तिका या उष्णकालमें शिरावेध करनेसे यदि अत्यन्त रक्त प्रवर्त्तित हो, तो उसका प्रतिविधान

करना उचित है। अत्यन्त रक्तस्राव होनेके लोध, धूना, रसाञ्जन, यवचूर्ण, गोधूमचूर्ण, धववृक्ष, धुस्तूर, गैरिक, सांपकी केंचुलका चूर्ण वा पट्टवस्त्रकी भस्मसे क्षतमुखको बंद करके शीतक्रिया करनी होगी।

दूषित रक्त कुल नहीं निकले, थोड़ा रह जाय, तो भी व्याधि प्रकुपित नहीं होती। अतएव दूषित रक्तके कुछ रहते हुए भी रक्तमोक्षण कर सकते हैं। किन्तु अतिरिक्त रक्त निकालना उचित नहीं। ऐसा होनेसे अन्धता, आक्षेप, पिपासा, तिमिररोग, शिरोरोग पक्षाघात, श्वास, कास, हिक्का, दाह और पाण्डुरोग उपस्थित होता है तथा इसमें मृत्यु भी हो सकती है। इस कारण रक्तमोक्षणमें बड़ी सावधानीकी जरूरत है।

रक्त देहरक्षाका मूल कारण है। अतएव चिकित्सकको चाहिये कि वे बड़ी सावधानीसे रक्तकी रक्षा करें। रक्तमोक्षणके बाद शीतल-क्रियादिके कारण यदि वायु कुपित हो कर वेदनायुक्त शोथ पैदा करे, तो उष्ण घृत द्वारा परिषेक करना उचित है। एण, शशक, मेष, हरिण वा बकरेका मांसरस या चावलके साथ दूधको पका कर पान करनेसे बहुत उपकार होता है। रक्त यदि अच्छी तरह निकल जाय, तो दर्द घट जाता, शरीर हलका मालूम देता है, व्याधिका ह्रास होता और मन प्रसन्न रहता है। रक्तमोक्षण करने पर जब तक रोगी बलवान् न हो लेवे, तब तक उसे व्यायाम, स्त्रीप्रसङ्ग, क्रोध, शीतक्रिया, स्नान, एकाहार, दिवानिद्रा, क्षार, अम्ल, कटुरस तथा अजीर्णकारक द्रव्यभोजन, शोक और उच्च शब्दका प्रयोग नहीं करना चाहिये। (भावप्र०)

रक्तमोचन (सं० पु०) शरीरका खून निकलना, शीर।

रक्तयष्टि (सं० स्त्री०) रक्ता यष्टिरिव, यद्वा रक्तवर्णा यष्टिः शाखास्याः। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

रक्तयष्टिका (सं० स्त्री०) रक्तयष्टि-कन्-टाप्। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

रक्तयावनाल (सं० पु०) रक्तवर्णाः यावनालः। तुवर यावनाल, लाल ज्वार।

रक्तरङ्गा (सं० स्त्री०) मेहदी।

रक्तरजस् (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं रजः। सिन्दूर।

रक्तरस (सं० पु०) विजैसार, रक्तासन।

रक्तरसा (सं० स्त्री०) रास्ना।

रक्तरसोन (सं० पु०) लोहित रसोन, लाल लहसुन। महाराष्ट्रमें लोहितावोलु रसनु; कलिङ्गमें कॅपिनबुल्लेलि। इसका गुण—मधुर, कटु, बलकर माना गया है। इसका पत्ता तीता और डंठल नमकीन होता है। (राजनि०)

रक्तराजालुक (सं० क्ली०) रक्तवर्ण आलुकभेद, लाल आलू। गुण—थोड़ा उष्ण, अग्निवर्द्धक और वातकफनाशक।

रक्तराजि (सं० स्त्री०) सर्षपिका नामक एक प्रकारका कोड़ा। (सुश्रुत कल्पस्थान ६)

रक्तरेणु (सं० पु०) रक्ताः रेणवः परागा अस्मिन्निति। १ सिन्दूर। २ पलाशकलिका। ३ पुन्नाग।

रक्तरेणुका (सं० स्त्री०) रक्तरेणु-कन्-टाप्। पलाशकलिका। इसे अङ्गारिका भी कहते हैं।

रक्तरैवतक (सं० क्ली०) रक्तवर्ण रैवतक। महापारैवत, एक प्रकारका खजूरका पेड़।

रक्तरोग (सं० पु०) वह रोग जो रक्तके दूषित होनेसे होता है। जैसे कुष्ठ आदि।

रक्तरोहितक (सं० पु०) रक्तरोढ़ा, रक्तरोहिड़ा।

रक्तलशुन (सं० पु०) रक्तवर्णो लशुनः। रक्तवर्ण मूलविशेष, लाल लहसुन। पर्याय—महाकन्द, गृञ्जन, दीर्घपत्रक, पृथुपत्र, स्थूलकन्द, यवनेष्ट। गुण—मधुर, कटु, कषाय और तिक्त। (राजनि०)

रक्तला (सं० स्त्री०) रक्तं लाति गृह्णातीति ला-क-टाप्। १ काकतुण्डी, कौवाठोंठी। २ गुंजा, करजनी।

रक्तलोचन (सं० पु०) रक्ते लोहिते लोचने यस्य। १ कपोत, कबूतर। (त्रि०) २ लोहित, लोचनयुक्त, लाल आंखोंवाला। (क्ली०) ३ रक्तवर्णचक्षु, लाल आंख।

रक्तवटी (सं० स्त्री०) रक्ता वटी वटिकेव। मसूरिका, शीतला।

रक्तबन्ध—रक्तरोधक, दवाई दे कर क्षतका रक्तस्राव बंद करना।

रक्तवमन (सं० पु०) रक्तपित्त राजयक्ष्मा आदि रोगोंमें मुखसे रक्त निकलना। अलताका नल २ तोला और

मधु ४ माशा एक साथ पीनेसे रक्तवमन शान्त होता है। (भैषज्यर० यक्ष्माधिकार)

रक्तवरटी (सं० स्त्री०) रक्ता वरवटीव। मसूरिका, शीतला।

रक्तवर्ग (सं० पु०) रक्तानां लोहितवर्णानां वर्गः समूहोऽत्र। अनार, ढाक, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, कुसुमके फूल, मजीठ और दुपहरियाके फूल इन सबका समूह। ये सब रंगनेके काममें आते हैं।

रक्तवर्ण (सं० पु०) रक्तः लोहितः वर्णोऽस्य। १ इन्द्रगोपकीट, बीरबहूटी नामक कीड़ा। २ गोमेदमणि, लहसुनिया नग। ३ प्रवाल, मूंगा। ४ कम्पिल्लक, कमीला। (त्रि०) ५ रक्तवर्णविशिष्ट, लाल रंगका।

रक्तवर्त्तक (सं० पु०) विष्किर पक्षिविशेष, लाल बटेर। (चरकसूत्रस्था० २७ अ०)

रक्तवर्त्मन् (सं० पु०) कुक्कुट, मुरगा।

रक्तवर्द्धन (सं० पु०) रक्तं शोणितं वर्द्धयतीति वृध्-णिच्-ल्यु। १ वार्ताकु, बैंगन। (त्रि०) २ रक्तवर्द्धक, रक्त बढ़ानेवाला।

रक्तवर्षाभू (सं० स्त्री०) रक्तवर्षाभूः। रक्त पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा।

रक्तवल्ली (सं० स्त्री०) १ पीतपुष्प, दण्डोत्पल नामका पौधा। २ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ३ नकुला, पयारी। ४ एक प्रकारका लता जिसे पत्ती कहते हैं।

रक्तवसन (सं० पु०) रक्तं वसनं यस्य। १ संन्यासी। (क्ली०) २ रक्तवस्त्र, लाल कपड़ा।

रक्तवात (सं० पु०) रक्तप्रधानो वातः। रोगविशेष, वातरक्त नामक रोग। कर्मविपाकमें लिखा है, कि रउज्वल वस्त्र और मूंगा चुरानेसे यह रोग होता है। रक्तवातरोगी पद्मराग मणिके साथ सवस्त्र महिषी दान करे, तो इस रोगसे छुटकारा पा सकता है। (कर्मविपाक) और भी नारियलका मूल बकरीके दूधके साथ बांट कर पीनेसे यह रोग आराम होता है। (गरुड़पु० १६३ अ०) वातरक्त देखो।

रक्तवारिज (सं० क्ली०) कोकनद, लाल कमल।

रक्तवालुक (सं० क्ली०) रक्ता वालुका चूर्णमस्य। सिन्दूर।

रक्तवालुका (सं० स्त्री०) सिन्दूर।

रक्तविकार (सं० पु०) रक्तस्य विकारः। रक्तजरोग, वह रोग जो रक्तके बिगड़नेसे होता है।

रक्तवासस (सं० त्रि०) रक्तवस्त्रधारी, लाल वस्त्र पहननेवाला।

रक्तवासिन् (सं० त्रि०) रक्तवासस देखो।

रक्तविद्रधि (सं० पु०) रक्तके प्रकोपसे होनेवाला एक प्रकारकी विद्रधि या फोड़ा। इसमें किसी अंगमें सूजन होती है और उसके चारो ओर काले रंगकी फुंसिया पड़ जाती है। विद्रधिरोग देखो।

रक्तविस्फोटक (सं० पु०) एक प्रकारका रोग जिसमें शरीरमें गुंजाके समान लाल लाल फफोले पड़ जाते हैं।

रक्तवृक्ष (सं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष।

रक्तवृन्ता (सं० स्त्री०) रक्तवर्णं वृन्तं प्रसवबन्धनं यस्याः। शेफालिका, निर्गुंडी। शेफालिका देखो।

रक्तवृष्टि (सं० स्त्री०) रक्तानां वृष्टिः। रुधिरवर्षण, आकाशसे रक्त या लाल रंगके पानी वृष्टि होना। कहते हैं, कि ऐसी वृष्टि होनेसे देशमें युद्ध, महामारी आदि अनेक अनिष्ट होते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

रक्तव्रण (सं० पु०) वह फोड़ा जिसमेंसे मवाद न निकल कर केवल रक्त ही बहता है।

रक्तशमन (सं० क्ली०) कम्पिल्लक, कमीला।

रक्तशाली (सं० पु०) रक्तवर्णः शालिः। रक्तवर्णधान्यविशेष, एक प्रकारका लाल रंगका चावल जिसे दाऊदखानी भी कहते हैं। पर्याय—ताम्रशालि, शोणशालि, लोहित। यह मधुर, लघु, स्निग्ध, बल और अग्निवर्द्धक, रुचिकारक, पथ्य, पित्त, दाह, वायु और अस्रदोषनाशक माना गया है। (राजनि०)

रक्तशालुक (सं० पु०) रक्तकमल कन्द, लाल कमलकी जड़।

रक्तशाल्मलि (सं० पु०) रक्तपुष्प शाल्मलिवृक्ष, लाल फूलवाला सेमल।

रक्तशासन (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं शास्ति वशीकरोतीति शास्-ल्यु। सिन्दूर।

रक्तशिग्रु (सं० पु०) रक्तवर्णं शिग्रुः। रक्त-शोभाञ्जन-वृक्ष, लाल सहिजनका पेड़। पर्याय—रक्तक, मधुर,

बहुलच्छद, सुगन्ध, केशरी, सिंह, मृगारि । इसका गुण—महावीर्य, मधुर, रसायन, शोफ, आध्मान, वायु और पित्तश्लेष्मनाशक । (राजनि०)

रक्तशिम्बी (सं० स्त्री०) शिम्बीभेद, लाल सेम ।

रक्तशीर्षक (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्णं शीर्षं अग्रमस्य कन् । १ गंधाविरोजा । २ सारस ।

रक्तशुक्रता (सं० स्त्री०) शुक्रका रक्ताक्त भाव ।

रक्तशृङ्ग (सं० पु०) हिमालयकी एक चोटीका नाम ।

रक्तशृङ्गिक (सं० क्ली०) विष, जहर ।

रक्तशेखर (सं० पु०) पुन्नाग ।

रक्तश्याम (सं० त्रि०) कृष्णाभ, गाढ़ा लाल ।

रक्तश्वेत (सं० पु०) १ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका बहुत जहरीला बिच्छू । २ रक्त और श्वेतवर्ण ।

रक्तष्ठीवनता (सं० स्त्री०) रक्तमय थुत्कारक्षेपणता, खूनके साथ थूकना ।

रक्तष्ठीवि (सं० पु०) एक प्रकारका बहुत ही घातक सन्निपात जिसमें मुंहसे लहू बहता है, सांस और पेट फूलता है, जीभमें चकत्ते पड़ जाते हैं और उनमेंसे लहू निकलता है । यह रोग असाध्य माना जाता है ।

सन्निपात शब्द देखो ।

रक्तष्ठीवी (सं० स्त्री०) रक्तपित्त और यक्ष्मारोगके कारण रक्तका गिरना ।

रक्तसङ्कोच (सं० क्ली०) कुसुमका फूल ।

रक्तसङ्कोचक (सं० क्ली०) रक्तपद्म, लाल कमल ।

रक्तसंज्ञक (सं० क्ली०) रक्तमिति संज्ञाऽस्य । कुंकुम, केसर ।

रक्तसन्दंसिका (सं० स्त्री०) रक्ताय रक्तपानाय सम्यक् दशतीति दन्श-ण्वुल् टापि-अत इत्वं । जलौका, जोंक ।

रक्तसम्बरण (सं० स्त्री०) कृष्णाञ्जन, सुरमा ।

रक्तसन्ध्यक (सं० क्ली०) रक्तं सन्ध्येवेति रक्तान् सन्धीन् अकति गच्छति प्राप्नोतीति-क । रक्त कह्लार, लाल कमल ।

रक्तसरोरुह (सं० क्ली०) रक्तं सरोरुहं । रक्तपद्म, लाल कमल ।

रक्तसर्षप (सं० पु०) रक्तवर्णः सर्षपः । रक्तवर्ण सर्षप, लाल सरसों । (Brassica nigra)

सरसों प्रधानतः श्वेती और राईके भेदसे दो प्रकारकी है । फिर राई-सरसोंके भी अनेक भेद हैं । भिन्न भिन्न स्थानमें यह भिन्न भिन्न नामसे परिचित है । हिन्दी राई-सरसों, सरसों-लाहि, गोहा सरसों, बड़ी-राई, बड़ी लाई, बादशाही राई, शाहजादा राई, खासराई ; बङ्गला—राई-सरसों ; काश्मीर—असुर गुजरात ; कच्छ—राई ; बम्बई—राई, ससें, राजिका ; मराठी—मोहरी, रायन ; संस्कृत—राजिका ; सिङ्गापुरमें—अब्ब । इससे कुछ बड़ी राई (B. nigra)-के भी स्वतन्त्र नाम हैं । हिन्दी—राई, काली राई, तीरा, तारामीरा, बोनारसी राई, जगराई, असल राई, घोड़ा राई, मकड़ा राई इत्यादि ; बङ्गला—राईसरिसा ; गुजरात—राई, काली राई ; बम्बई—राई ; तामिल—कदघो ; तेलगू—अबलो अबली ; कनाड़ी—बिले-सशिवे, कड़ो-सशिवे ; संस्कृत—सर्षप, पारस्य—सर्षफ ; अरब—खोर्दल या खर्दाल ; सिङ्गापुर—गनोरा ; चीन—किदित्साई ; अंगरेजी—Black वा True Mustard ; फरासी—Montarde Noire ; जर्मनी—Mustert Seufsamen ; इटली—Senapa ; महाराष्ट्र—कालमहुरी, सारसा ; कलिङ्ग—सासो-बाई ।

सारे भारतवर्ष, पश्चिम मिस्र और मध्य अफ्रिका तथा पूर्वमें चीनसाम्राज्यके प्रायः सभी स्थानोंमें यह पौधा उत्पन्न होता है । रूसियाके दक्षिण और कास्पीय ह्रदतीरवर्त्ती खारी जमीनमें यह बहुतायतसे उगता है । यूरोपमें सभी जगह यह जंगली तौर पर उपजता है । उत्तरमें यह पौधा बिलकुल नहीं देखा जाता । थियफ्रष्टस, दियकोराइडिस और प्लिनी आदिने सरसों बीजका उल्लेख किया है । १३वीं सदीमें यूरोपमें खाद्यद्रव्यरूपमें इसकी खेती होती थी । यहां १६६० ई०में इसके बीजतैलमें क्या गुण है, सो लोगोंको मालूम हो गया था । सफेद सरसोंकी अपेक्षा बङ्गालमें राईसरसोंकी खेती ही अधिक होती है । आसिन कातिकके महीने सूखी जमीनके ऊपर बीज बोया जाता तथा माघ फागुनमें काटा जाता है । कभी कभी मटर, मसूर, गेहूं, जौ आदिके साथ ही इसे बोते हैं । कटक जिलेकी खारी जमीनमें इसकी खेती होती है । चैत्र और वैशाखमें पकने पर इसे काट

कर बीज झाड़ लेते हैं। पके बीजसे जो तेल तैयार होता है उससे तरकारी आदि रांधी जाती है। कच्चे पत्तेको लोग सागकी तरह रांध कर खाते हैं। कच्चा डंठल पोआल आदिके बदलेमें मवेशीको खिलाया जाता है।

प्रत्येक बीजकोषमें १५से २० छोटे छोटे काले दाने रहते हैं। इस दानेको पीस कर या यों ही तेल या घीमें डाल तरकारी आदि बघारते हैं। सरसोंके तेलमें साग और मछली आदि भून कर खानेसे स्वादिष्ट लगती है। मांस भक्षणकालमें राई बहुत सुखप्रद है।

शरीरके भीतर रक्त संहत होनेसे अथवा आक्षेपिक (Spasmodic), स्नायवीय (Neuralgic) और वातज (Rheumatic) पीड़ा वा वेदनामें इसका प्रलेप देनेसे विशेष लाभ पहुंचता है। मस्तिष्क सम्बन्धीय (Cerebro spinal) पीड़ामें शरीरका विशेष अवसाद (depressing influence) नहीं होनेसे इसका सामान्य वमनकारक औषधरूपमें प्रयोग किया जा सकता है। सोहिंजनकी छाल अथवा लहसुनके साथ एकत्र पीस कर चमड़े पर लगानेसे सरसोंकी कार्यकारिता शक्ति बढ़ती है।

सामान्य परिमाणमें राई अथवा राईका चूर खानेसे अग्निकी शक्ति बढ़ती है। अजीर्ण रोगमें दुष्ट मलके रुक जाने पर जब पेट खराब हो जाता है, तब विरेचकरूपमें कभी कभी राईके चूर्ण अथवा अखण्ड सरसोंका सेवन कराया जाता है।

इस बीजसे सैकड़े पीछे २३ भाग शुद्ध तेल निकलता है। उसमें ग्लिसिराइडस ष्टेरिक, ओलिइक, इरसिक और ब्रासिक एसिड मिश्रित है। ब्रासिक और ओलिइक प्रायः एक ही साथ रहता है। यह गन्धहीन है, सूखती नहीं तथा 0° फा°-की गरमीसे जम जाती है। जलमें तेलको सिद्ध करनेसे परिष्कृत व्यवहारोपयोगी तैल बनता हैं। विस्तृत विवरण सर्षप शब्दमें देखो।

परिष्कृत तेल वेदनाके स्थानमें लगानेसे वेदनाका ह्रास होता है तथा इससे कभी कभी ब्लिष्टरसे उत्पन्न गात्रदाह जाता रहता है। चर्मरोगनाशक होनेके कारण लोग स्नानके पहले इसे शरीरमें लगाते हैं। आयुर्वेदशास्त्रमें लिखा है, कि घी खानेकी अपेक्षा तेल लगानेसे शरीरमें आठ गुना बल होता है। कपूरके साथ सरसों तेल लगानेसे चौरङ्गी वात, अम्लशूलादि वेदनाका उपशम होता है। बालकोंको छातीमें शर्दी बैठ जानेसे कपूरके साथ तेलकी मालिश करनी चाहिये, इससे विशेष लाभ पहुंचता है। ऊर्दुध्वग श्लेष्मामें लवणके साथ उत्तप्त सरसोंका तेल तलवेमें, कण्ठमें, छातीमें, दोनों आंखमें और नाककी रीढ़ पर लगानेसे एक ही रातके भीतर ऊर्दुध्वंग श्लेष्मा वा शर्दी जाती रहती है। श्लेष्माधिक्यके कारण बालकोंकी वायुनलीके प्रदाहमें उत्तप्त तेल लगानेसे बहुत फायदा पहुंचाता है। इनफ्लुयेञ्जा ज्वरमें गरम जलसे पैर धुला कर तलवेमें गरम तेल लगानेसे फल तुरत दिखाई देता है। नाकमें तेल डालनेसे शर्दी दूर होती है। सरसोंका ब्लिष्टर दे कर यदि वहांका चमड़ा लाल हो जाय, तो उसे फौरन फेंक देना चाहिये, नहीं तो फुंसियां निकल कर फोड़े हो सकते हैं। आंखमें तेल लगानेसे श्लेष्माका नाश होता तथा आंखकी ज्योति बढ़ती है। खानेके बाद प्रति दिन कुछ सरसों खानेसे भूख बढ़ती है। यह पित्तनिःसारक और मूत्रकारक है।

वैद्यक मतमें इसका गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, वातघ्न, प्लीहा और शूलनाशक, दाह और पित्तवर्द्धक, कफ, गुल्म, कृमि और व्रणनाशक है। (राजनि०)

रक्तसहा (सं० स्त्री०) रक्तं सहते इति सह-अच्-टाप्। रक्ताम्लान पुष्पवृक्ष।

रक्तसार (सं० क्ली०) रक्तवर्णः सारोऽस्य। १ रक्तचन्दन, लाल चन्दन। २ पतङ्ग। ३ अम्लवेतस, अमलवेतस। ४ रक्तखदिर, लाल खैर। ५ रक्तबीजासनवृक्ष। ६ रक्तशिशपा। ७ वाराहीकन्द। (त्रि०) रक्ते सारो यस्येति। ८ शोणितसारयुक्त।

रक्तसू (सं० स्त्री०) रक्तं सूते सू-क्विप्। शरीरस्थित रसधातु।

रक्तसौगन्धिक (सं० क्ली०) रक्तवर्णं सौगन्धिकं। रक्तकह्लार, लाल कमल।

रक्तस्तम्भन (सं० पु०) बहते हुए रक्तको रोकनेकी क्रिया।

रक्तस्थज्वर (सं० पु०) रक्तगत ज्वरविशेष। इस रोगमें रक्तनिष्ठीवन, दाह, मोह, छर्द्दन तथा विभ्रम, प्रलाप, पिड़का और तृष्णा ये सब लक्षण होते हैं।

रक्तस्राव (सं० पु०) रक्तं स्रावतीति स्रु-णिच्-अच्। १ वेतसाम्ल। रक्तस्य स्रावः। २ घोड़ोंका एक रोग जिसमें उनकी आंखोंसे रक्त या पानी बहता है। ३ रक्त पतन, शरीरसे खून बहना या निकलना।

नाना व्याधि और आघातादि कारणोंसे मनुष्यके शरीरकी धमनी, शिरा अथवा कैशिकासे भी रक्त निकलता है। इस रक्तस्रावको पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानमें Haemorrhage कहते हैं। शारीरिकविधान वा यंत्रविशेषमें रक्तस्राव होनेसे उस स्थानके नामानुसार ही चिकित्सकगण उस रक्तस्रावका नाम अलग अलग बतलाते हैं। जैसे—मस्तिष्क अथवा फुसफुसमें रक्तस्राव होनेसे Cerebral apoplexy, और Pulmonary apoplexy; उदर वा वस्तिकोटरके मध्य होनेसे Extravasation, चमड़ेके नीचे होनेसे कालशिरा (Ecchymosis), सूक्ष्म रक्तचिह्न (Petechia), ष्टिगमा वा भिभिसिस।

किसी नलाकृति स्थानमें रक्तस्राव हो कर विधान छिन्न नहीं होने पर उसे इनफार्कट (infarct), नाकसे रक्तस्राव होने पर एपिष्टाक्सिस (Epistaxis), फुसफुससे होने पर Haemoptysis, पाकाशयसे होने पर Haematemesis, अन्त्रसे होने पर कृष्णरेचन (melaena), जरायुसे अधिक रज निकलने पर Menorrhagia और मूत्रयन्त्रसे होने पर उसे Haematuria कहते हैं। कारण भेदसे भी उनके भिन्न भिन्न नाम दिये जाते हैं। आघातसे रक्तस्राव होने पर उसे Traumatic तथा अकस्मात् होने पर Spontenous; धमनी, शिरा वा कैशिकासे रक्तस्राव होने पर उसे Arterial, Venous और Capillary Haemorrhage कहते हैं।

एक स्थानका नियमित रक्तस्राव अन्य स्थान हो कर निकलनेसे उस स्रावको Vicarious कहते हैं। स्त्रियोंके आर्त्तव रक्त पाकाशय या फुसफुससे निकलने पर वह 'भाइकेरियस मेनष्ट्रुयेशन' कहलाता है। किसी एक सांघातिक पीड़ाके मध्य रक्तस्राव होनेका नाम Critical Haemorrhage तथा समय समय पर रक्तस्राव होनेका नाम सामयिक वा Periodical Haemorrhage है।

रक्तस्राव होनेका कारण—अस्त्र या आघात द्वारा किसी भी रक्तनालीके कटने तथा मूत्राधारमें मूत्रपत्थर अथवा आंतमें कठिन मल रहनेसे भी घिसनेसे रक्तस्राव हो सकता है। क्षत, विगलन वा कर्कटरोग द्वारा रक्तनाली विदीर्ण होनेसे तथा रक्ताधिक्यके कारण कभी कभी कैशिकासे रक्त निकलते देखा जाता है। अतिशय रक्ताधिक्यके कारण यकृत्‌की सिरोसिस पीड़ामें पाकाशयकी कैशिकासे रक्तस्राव होता है। भाइकेरिस और क्रिटिकल रक्तस्राव ये दोनों प्रकारके हुआ करते हैं। धमनीके विधानमें वसा या कङ्करवत् अपकृष्टता, हृत्‌पिण्ड प्राचीरमें एनिउरिजम, शिराकी वक्रता वा स्फीतता (Varicosity) तथा कैशिककी अपकृष्टता रहनेसे प्रायः रक्तस्राव होता है। मस्तिष्ककी कोमलतासे रक्तनालियोंके अच्छी तरह रक्षित नहीं होनेसे रक्तस्राव हुआ करता है। क्षतस्थानमें नवजात रक्तनालीसे सर्वदा रक्त निकलते देखा जाता है। रक्तनालीकी शिथिलताके कारण पलिपस (Polypus) नामक अर्बुदसे रक्तस्राव होता है। रक्तकी तरलताके कारण एनिमिया, विकारयुक्त ज्वर, धूम्ररोग अथवा शोताद पीड़ाओंमें रक्तस्राव होता है। कभी कभी अवस्थानुसार भी रक्तपात होते देखा जाता है; जैसे—यौवनावस्थामें नासिकासे, मध्यमावस्थामें फुसफुससे तथा अत्यन्त वृद्धावस्थामें रक्तनालीकी अपकृष्टताके कारण मस्तिष्कसे रक्त निकलता है। अवस्थानुसार अत्यन्त सामान्य कारणसे भी रक्तपात होते देखा जाता है। इस रोगको Haemophilia वा Haemorrhagic diathesis कहते हैं।

स्रावित रक्तके परिमाणानुसार शरीरमें अनेक परिवर्त्तन हुआ करता है। शरीरमें जहां स्रावके लिये रक्त संहत (Coagulated) होता है उसका वर्ण काला अथवा तांबड़े रंगका दिखाई देता है। कुछ दिन बाद वह रक्तपाटलवर्ण और पीछे पीतवर्ण धारण करता है। अन्तमें वही शुभ्रवर्णमें पलट जाता है। निःसृत रक्त शोषित होनेके बाद चमड़े पर काला दाग पड़ता

है। कभी कभी उससे चतुष्पार्श्वस्थ विधानमें जलन देती है अथवा उत्तेजनाके कारण निकटवर्त्ती चारों ओर थैली (Cyst) उत्पन्न होती है

रक्तस्रावके पहले नाड़ीकी गति पूर्ण और द्रुत रहती है। किसी स्थानमें रक्तस्राव होनेसे वह स्थान उष्ण और भारयुक्त मालूम होता है। उस समय हाथ पैर ठंढे हो जाते हैं। हृत्पिण्ड और वायुनालीमें रक्तस्राव होनेसे हठात् मृत्यु हो सकती है। यन्त्रविशेषमें रक्तस्राव होनेसे उसके निस्रावमें व्यतिक्रम देखा जाता है। किसी विधानके छिन्न हो कर रक्तस्राव होनेसे वमन तथा फुसफुसमें होनेसे खांसी उपस्थित होती है। त्वक् वा श्लैष्मिक झिल्लीके नीचे होनेसे रक्तचिह्न स्पष्ट दिखाई देता है। साधारण लक्षणके मध्य मुखमण्डल फीका, नाड़ी दुर्बल और हाथ पांव शिथिल मालूम होते हैं। अतिरिक्त स्राव होनेसे हाथ पांव कंपने लगते, आँख कुछ और प्रकारकी हो जाती, कानमें नाना शब्द सुनाई देते, अस्थिरता मालूम होती और बीच बीचमें मूर्च्छा भी आ जाती हैं। ऐसी अवस्थामें कभी कभी रोगीकी मृत्यु भी देखी गई है।

त्वक्के नीचे रक्तस्राव होनेसे वह सहजमें मालूम हो जाता है। मस्तिष्क वा फुसफुसके मध्य होनेसे विशेष लक्षण द्वारा निर्णय करना आवश्यक है। कोटरके मध्य रक्तस्राव होनेसे उसके ऊपर आघात देने पर ढक ढक शब्द सुनाई देता है।

फुसफुस्से रक्त निकलने पर उसका वर्ण उज्ज्वल लाल दिखाई देता है। पाकाशय अथवा आंतसे रक्तस्राव होने पर अम्लरससंश्लिष्ट होनेके कारण वह काला हो जाता है। नाक, मुंह, गुह्यद्वार और मूत्रद्वारसे रक्तस्रावित होने पर श्लेष्मा वा मूत्र-मिश्रित रहता है। बड़ी सावधानीसे रोगका निर्णय करके चिकित्सक उसे दूर करनेकी चेष्टा करे। त्वक्से रक्तस्राव होने पर उससे डर नहीं, पर मस्तिष्क वा फुसफुससे यदि रक्तस्राव हो, तो उसे खतरनाक जानना चाहिये। अधिक परिमाणमें अथवा किसी विशेष यन्त्र द्वारा रक्तस्राव होनेसे भी डर है। प्लीहारोगाक्रान्त रोगीका रक्तस्राव दूर करना कठिन है।

ऐसी अवस्थामें रोगीको स्थिर भाव रख कर चिकित्सा करना उचित है। जिससे शिराके रक्तसञ्चालनकी वृद्धि हो उस ओर चिकित्सकका ध्यान रहना एकान्त कर्त्तव्य है। हृत्पिण्डकी क्रिया शिथिल करनेके लिये एकोनाइट, डिजीटेलीस आदि दिया जा सकता है। कभी कभी रक्तमोक्षण भी कर सकते हैं। सङ्कोचक औषधके मध्य एसिटेट आव लेड, गैलिक एसिड, टैनिक एसिड, सलफ्युरिक एसिड डिल, आयल आव टार्पेण्टाइन, आर्गट, टिं मैटिको, टिं ष्टिल, टिं हेमोमेलिस, हेजिलीन इत्यादि व्यवहार्य है। उन औषधोंमेंसे किसी किसीका अफीमके साथ व्यवहार करनेसे भी लाभ पहुंचता है। जिस अङ्गसे रक्तस्राव होता है, उसे उच्च भावमें रखे तथा शीतल जल वा बरफका प्रयोग करे। अन्यान्य उपायके मध्य स्केलीरोटिनिक एसिड और आर्गटिन इञ्जेक्ट किया जा सकता है। पीड़ित स्थानसे रक्त हटानेके लिये मष्टर्ड प्लष्टर; शुष्क वा आर्द्र कोपिं, जोंक अथवा जोनाडस बूटका व्यवहार करना उचित है। गुरुतर होनेसे ष्टिमुलेण्ट औषध दे अथवा रक्त-प्रवेश (Transfusion of blood) करे। फुसफुस अथवा पाकाशयसे रक्तस्राव होने पर रोगीको बरफ चूसनेके लिये दे। फुसफुससे रक्त निकलते समय यदि खांसी होती हो, तो उसकी उत्तेजना दूर करनेके लिये आक्षेपनिवारक औषधका सेवन करावे। पाकाशयसे होने तथा वमनका उद्रेक रहने पर वमन-निवारक औषध दे सकते हैं।

कभी कभी नाक अथवा अर्शसे रक्तस्राव होने पर बहुत उपकार होता है। अधिक निकलने पर उसे रोकनेका चेष्टा करनी चाहिये। निःसृत रक्तशोधनके लिये आभ्यन्तरिक पोटास आइयोडाइड सेव्य है। पीड़ित स्थानमें टिं आइयोडाइनका लेप दिया जा सकता है। स्रावित रक्तसे प्रदाह होने पर प्रदाह-निवारक औषध काममें लावे। दुर्बलता-जनित रक्तपातमें बलकारक आहार और टिंष्टिल देना चाहिये।

कोई कोई मनुष्य इतना कमजोर रहता है, कि उसे सामान्य कारणसे ही अधिक रक्तस्राव होता है। शरीरकी ऐसी अवस्थाको हिमोफिलिया वा हेमोरैजिक डायेथेसिस कहते हैं।

Epistaxis वा नाकसे रक्तस्राव रोग किसी किसीको वंशपरम्परासे चला आता है। इस कारण इसे कौलिक भी कहते हैं। डा० हाथिनसनका कहना है, कि पितामाताके गेठिया वात रहनेसे उसके सन्तानको सामान्य कारणसे ही रक्तपात होता है। रक्तमें फाइब्रिन वा लोहितवर्ण रक्तकणिका कम रहनेसे उक्त प्रकारका रक्तस्राव होते देखा जाता है। परीक्षा द्वारा शोणितके मध्य कोई परिवर्त्तन दिखाई नहीं देता।

ऐसे रोगोके शरीरमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन लक्षित नहीं होता, किन्तु बचपनसे नाक हो कर अथवा सामान्य चोट लगने पर अङ्गप्रत्यङ्गसे रक्तपात होता है। कभी कभी जोंकके काटने अथवा दांत उखाड़नेसे रक्त इतना निकलता है, कि उससे प्राणनाश भी हो सकता है। यदि प्राण नाश न हुआ, तो बहुत दिन तक एनिमिया-रोगसे आक्रान्त रहता है। कभी कभी उसकी बड़ी बड़ी गांठोंमें जलन देती है। कभी कभी सामान्य चोट लगनेसे गांठमेंसे रक्त निकलता है तथा उसको उत्तेजनासे जलन देती और ज्वरके सभी लक्षण दिखाई देते हैं।

दूध, मांस आदि पुष्टिकर आहार तथा औषधके मध्य काडलीभर आयल और टिंचर ष्टिल विशेष उपकारी है। अतिशय रक्तस्राव होनेसे Transfusion of blood कर्त्तव्य है। किसी किसी गांठमें यदि जलन देती हो, तो उसे स्थिर भावमें रखे तथा बैण्डेज बांध दे। रक्तप्रदर और रक्तमूत्रका विशेष विवरण प्रदर और मूत्रविज्ञान शब्दमें लिखा जा चुका है।

रक्तकाश, रक्तपित्त आदि शब्द देखो।

रक्तस्रुति (सं० स्त्री०) रक्तस्य स्रुतिः। रक्तस्राव, खून जाना या गिरना।

रक्तहंसा (सं० स्त्री०) रक्ता वशीभूताः हंसा अत्र। रागिणीविशेष, एक प्रकारकी रागिणी।

रक्तहर (सं० पु०) हरतीति हरः, रक्तस्य हरः। १ भल्लातक, भिलावां। (त्रि०) २ रक्तघ्न द्रव्यमात्र।

रक्ता (सं० स्त्री०) रक्त-टाप्। १ गुञ्जा, घुंघची। २ लाक्षा, लाख। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ४ उष्ट्रकाण्डी, ऊंट-कटारा। ५ शिम्बीभेद, एक प्रकारकी सेम। ६ लक्ष्मणाकन्द। ७ वचा, बच। ८ रक्तवर्ण शतपदी, एक प्रकारकी मकड़ी। ९ कृच्छ्र साध्य लूताविशेष। १० कर्णशिरा भेद, कानके पासकी एक शिरा या नसका नाम। ११ जैनोंके अनुसार ऐरावतखंडकी एक नदीका नाम।

रक्ताकार (सं० पु०) रक्तवर्ण आकारोऽस्य। प्रवाल, मूंगा।

रक्ताक्त (सं० क्ली०) रक्तेन रक्तवर्णेनाक्तं म्रक्षितं। १ रक्तचन्दन, लाल चंदन। (त्रि०) २ शोणितमिश्रित, रक्त लगा हुआ। ३ लाल रंगा हुआ।

रक्ताक्ष (सं० पु०) रक्ते लोहिते अक्षिणी यस्य, (अक्ष्णोऽदर्शनात्। पा ५।४।७६) इति अच्। १ महिष, भैंस। २ पारावत, कबूतर। ३ चकोर। ४ क्रूर। ५ सारस। ६ साठ संवत्सरोंमेंसे अट्ठावनवें संवत्सरका नाम। (त्रि०) ७ रक्तवर्ण चक्षुविशिष्ट, लाल रंगकी आंखोंवाला। ज्योतिःशास्त्रमें लिखा है, कि यदि मानवके नेत्र स्वाभाविक रक्तवर्ण हों, तो लक्ष्मी उसे कभी नहीं त्याग करेगी। (ज्योतिःसागर)

रक्ताक्षि (सं० पु०) रक्ते अक्षिणी यस्य, समासान्तविधेरनित्यत्वात् अच् समासान्ताभावः। रक्ताक्ष।

रक्ताङ्क (सं० पु०) प्रवाल, मूंगा।

रक्ताङ्ग (सं० पु०) रक्तवर्णमङ्गमस्य। १ मंगलग्रह। २ कम्पिल्ल, कमीला। ३ प्रवाल, मूंगा। ४ मत्कुन, खटमल। ५ मण्डल। ६ नामविशेष। (भारत १।५७।१७) ७ विद्रुम। ८ कुंकुम, केसर। ९ रक्तचन्दन, लाल चन्दन।

रक्ताङ्गी (सं० स्त्री०) रक्ताङ्ग ङीष्। १ जीवन्ती २ कटुका, कुटकी। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ४ नकुला।

रक्ताञ्जना (सं० स्त्री०) रक्ताञ्जनिका, रक्त आञ्जनिया। (चक्रदत्त)

रक्ताढ़की (सं० स्त्री०) लाल पुष्पाढ़की, लाल अरहर। गुण—रुचि और बलकर, पित्त और तापादि नाशक। (राजनि०)

रक्ताण्ड (सं० पु०) घोड़ोंके अण्डकोषमें होनेवाला एक प्रकारका रोग।

रक्तातिसार (सं० पु०) रक्तं अत्यन्तं सरत्यस्मात् सृ-घञ्। रोगविशेष।

पित्तातिसारमें यदि अत्यन्त पित्तवर्द्धक द्रव्य खाया

जाय, तो वह पित्त विशेष दूषित हो कर यह कष्टदायक रोग उत्पन्न करता है। इसमें पित्तातीसारके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। इस रोगमें पीत, रक्त वा हरे रंगका दुर्गन्ध मल हठात् निकल पड़ता है। रोगी प्यास, मूर्च्छा, दाह और गुह्यदेश पकेके जैसा मालूम करता है।

(माधवनि०)

चिकित्सा—इस रोगमें कूटजका छिलका और अनारके कच्चे फलका छिलका, दोनों मिला कर १ पल, इसे ८ पल जलमें सिद्ध कर अष्टमांश रहते उतार ले। पीछे उसमें मधु डाल कर पान करनेसे रक्तका निकलना बहुत जल्द बंद हो जाता है। कूटजादि क्वाथ, गुड़बिल्व, कूटज क्षीर, शतावरीकल्क, चन्दनकल्क और नवनीतका अवलेह आदि औषध सेवनसे रक्तातीसार रोग दूर होता है।

(भावप्र०) अतीसार देखो।

रक्तातीसार (सं० पु०) रक्तातिसाररोग।

रक्ताधरा (सं० स्त्री०) किन्नरी।

रक्ताधार (सं० पु०) रक्तस्याधारः। चर्म, चमड़ा।

रक्ताधिमन्थ (सं० पु०) एक प्रकारका अधिमन्थरोग जो रक्तके विकारसे होता है।

रक्तापराजिता (सं० स्त्री०) रक्तपुष्प-अपराजिता, लाल अपराजिता।

रक्तापह (सं० क्ली०) रक्तमपहन्तीति हन-ड। बोल नामक गन्धद्रव्य।

रक्तापामार्ग (सं० पु०) रक्तवर्णः अपामार्गः। रक्तवर्ण अपामार्ग वृक्ष। महाराष्ट्रमें रक्त लटजीरा, कलिङ्गमें बड़ा अघाड़ा, तैलङ्गमें केम्पिमुसरण। संस्कृत पर्याय—क्षुद्रापामार्ग, आघट्टक, दुग्धिनिका, रक्तबिंट, कल्यपत्रिका। इसका गुण शीतल, कटु, कफ, वात, व्रण, कण्डु और विषनाशक, संग्राहक और वमनकारक माना गया है।

(राजनि०)

रक्ताब्ज (सं० क्ली०) स्वार्थे कन्। रक्तकमल, लाल पद्म।

रक्ताभ (सं० त्रि०) रक्तस्य आभा इव आभा यस्य। १ रक्तकी तरह आभाविशिष्ट। (पु०) २ इन्द्रगोपकीट, बीरबहूटी।

रक्ताभा (सं० स्त्री०) लाल जवा।

रक्ताभिष्यन्द (सं० पु०) नेत्ररोगविशेष। इस रोगमें आंखें बहुत अधिक लाल हो जाती हैं और उनमेंसे लाल रंगका पानी निकलता है और आंखोंके आगे लाल रेखाएं दिखाई देती हैं। इसमें पैत्तिक अभिष्यन्दके सभी लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

विशेष विवरण नेत्ररोग शब्दमें देखो।

रक्ताभ्र (सं० क्ली०) रक्तं अभ्रं। रक्तवर्ण अभ्रक, लाल अभ्र।

रक्ताम्बर (सं० क्ली०) रक्तं रञ्जितमम्बरं। १ कषायवस्त्र, लाल रंगका कपड़ा। (त्रि०) २ रक्तवर्ण वस्त्रविशिष्ट। (पु०) ३ संन्यासी, जो गेरुआ वस्त्र पहनता है।

रक्ताम्बुपुर—१ रक्त नदी। २ रक्तस्रोतः-प्लावित।

रक्ताम्बुरुह (सं० क्ली०) रक्तपद्म, लाल कमल।

रक्ताम्र (सं० पु०) रक्तवर्ण आम्रः। कोषाम्र, कोसम नामक वृक्ष।

रक्ताम्लातक (सं० पु०) रक्तझिण्टी पुष्प।

रक्ताम्लान (सं० पु०) रक्तेन रक्त-वर्णेन आ सम्यक् म्लायते इति म्ला-क, समधिकरक्तवर्णत्वात् तथात्वं। एक प्रकारका पौधा जिसमें लाल रंगके फूल लगते हैं। पर्याय—रक्तसहा, अपरिम्लान, रक्तम्लानक, रागप्रसव, रक्तप्रसव, कुरुवक, रामालिङ्गनकाम, बधूत्सवप्रसव, सुभग, भ्रमरानन्द। वैद्यकमें इसे कटु, उष्ण, वात, शोफ, ज्वर, आध्मान, शूल, काश और श्वासनाशक माना है।

रक्तारि (सं० पु०) महाराष्ट्री नामक क्षुप।

रक्तारुण (सं० पु०) रक्तकी तरह लाल रंग।

रक्तार्क (सं० पु०) अरुणार्कवृक्ष, लाल आकन्द।

रक्तार्ति (सं० स्त्री०) शोणितामय, रक्तपीड़ा।

रक्तार्बुद (सं० पु० क्ली०) रक्तानामर्बुदमत्र। रोगविशेष, रक्तजन्य अर्बुद रोग। कर्मविपाकमें लिखा है, कि यह रोग उपपातकज है। (मलमासतत्त्वधृत कर्मवि०)

इसका लक्षण—शरीरके किसी स्थानमें कुपित वर्द्धित दोष मांसको दूषित कर डालता है जिससे मांसकी वृद्धि हो कर वृत्त, दृढ़ और वेदनायुक्त शोथ उत्पन्न होता है। इसी शोथको अर्बुद कहते हैं। यह वात, पित्त और रक्तके भेदसे नाना प्रकारका है।

सभी दोष रक्तको दूषित तथा शिराओंको पीड़ित और संकुचित कर पाक उत्पन्न करते हैं। इससे छोटा मांस-

पिण्ड बहुत जल्द बढ़ जाता है और छोटे मांसांकुरकी तरह वह दिखाई देता है तथा उससे बहुत दूषित रक्तस्राव होता है। इसी कारण इसको रक्तार्बुद कहते हैं। यह रोग असाध्य है। इसमें अत्यन्त रक्तक्षयके कारण रोगीका रंग पीला पड़ जाता है।

(सुश्रुत निदानस्था० ११ अ०) अर्बुद शब्द देखो।

२ शूकरोगभेद, शिश्नदेशमें काला स्फोटक वा लाल पीड़का और अत्यन्त वेदना उत्पन्न होनेसे उसे रक्तार्बुद कहते हैं।

रक्ताम्मंन् (सं० क्ली०) रक्तं अर्च्छतीति अर्मन्। नेत्ररोगविशेष। इस रोगमें आंखकी कौड़ी पर मांस इकट्ठा हो कर लाल कमलके रंगका कोमल मंडल बन जाता है।

रक्तार्शस् (सं० क्ली०) रक्तजनितं अर्शः। अर्शरोगविशेष। यह रोग अतिपातकसे होता है।

इस रोगका प्रायश्चित्त ३० कार्षापण है। यह रोग होने पर पहले उसका यथाविधान प्रायश्चित्त कर पीछे चिकित्सा करे। रक्तजन्य अर्शरोगमें पित्तार्शके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। इसमें बलि वटवृक्षके अंकुर, गुञ्जाफल वा प्रवाल सदृश हो जाती हैं। मल कठिन होने पर उन सब बलियोंसे दूषित अथच उष्ण रक्त अधिक परिमाणमें हठात् निकलता रहता है और रोगीका शरीर बैंगके सदृश पीला हो जाता है। रक्तक्षयके कारण अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इसमें बल, वर्ण, उत्साह और शक्तिका क्षय होता, इन्द्रियां आकुलित हो जातीं, मल श्यामवर्ण कठिन और रूखा निकलता तथा अधोवायु (वातकर्म) प्रवर्त्तन नहीं होता है।

रक्तज अर्शरोग यदि रूखी वस्तु खानेसे उत्पन्न हो तथा पतला, लाल और फेन सहित रक्त निकले, कमर, जांघ और गुह्यद्वारमें दर्द मालूम दे तथा रोगी अत्यन्त दुबला हो जाय, तो उस अर्शको वातोल्वण जानना चाहिये।

कफोल्वणजनित रक्तज अर्श गुरु और स्निग्ध वस्तु खानेसे होता है तथा मल शिथिल, श्वेत वा पीला, स्निग्ध और शीतल, रक्त गाढ़ा पाण्डुवर्णका, पिच्छिल और सूतेके समान तथा मलद्वार स्तिमित (आर्द्रचर्मावृतकी तरह) और पिच्छिल हुआ करता है।

पित्तोल्वणजनित रक्तज अर्श होनेसे वलि खीलकी तरह, उसका अग्रभाग नीला, संख्यामें थोड़ी, आमगंधि और पतला रक्तस्रावी, कोमल और लंबी होती है। उसकी आकृति सुग्गेकी जीभ, यकृत्खण्ड वा जोंकके मुखकी तरह अथवा जौके सदृश बीचमें स्थूल होती है। रोगीको शरीरमें जलन देती, ज्वर आता, पसीना छूटता और मूर्च्छा आती है। उसका चमड़ा, आंख, मुंह और मलमूत्रादि साधारणतः पीला दिखाई देता है। (भावप्र० अर्शरोगाधि) अर्शस् शब्द देखो।

भैषज्यरत्नावलीमें लिखा है, कि चिकित्सक रक्तादिकी चिकित्सा करते समय पहले रक्तस्राव रोकनेकी चेष्टा करे। क्योंकि दूषित रक्तका निकलना बंद हो जानेसे मलद्वारमें वेदना, कोष्ठबद्ध और दुष्ट रक्तजनित वातरक्तादि पीड़ा उपस्थित हो सकती है।

इस रोगमें २ तोला इन्द्रजौको आध सेर जलमें सिद्ध कर आध पाव रहते उतार ले। पीछे उसमें २ माशा भर सोंठका चूर्ण मिला कर अथवा बेलसोंठके काढ़ेमें इसी प्रकार सोंठ डाल कर सेवन करे। रक्तार्शमें घोषलताका मूल पीस कर प्रलेप देना चाहिये।

भूसीरहित ४ तोला तिल मक्खनके साथ, ४ माशा नागकेशरका चूर्ण मक्खन और शक्करके साथ तथा प्रतिदिन मट्ठा सेवन करनेसे यह रोग दूर होता है। अवस्थाविशेषमें वराहाक्रान्ता, रक्तोत्पलका मूल, मोचरस, लोध, कृष्णतिल और रक्तचन्दन समान भाग मिला कर २ तोला, बकरीका दूध १६ तोला और जल ६४ तोला इसे आंच पर चढ़ा कर १६ तोला रहते नीचे उतार ले। इसका सेवन करनेसे रक्तार्श दूर होता है।

हरे पद्मपत्रको या कृष्णतिलको पीस कर कुछ चीनी और बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे रक्तस्राव अतिशीघ्र बंद हो जाता है। कूटजकी छालको मट्ठेके साथ पीस कर सेवन करनेसे भी बहुत उपकार होता है। अरवा चावलके जलके साथ १ माशा अपामार्ग मूलको छाल वा बकरीके दूधके साथ शतमूली पीस कर अथवा अनारका रस चीनीके साथ पान करनेसे रक्तस्राव तुरत बंद हो जाता है।

कुटजकी छाल १०० पलको ६४ सेर जलमें सिद्ध कर ८ सेर रहते उतार ले। उसे छान लेनेके बाद ३० पल पुराने गुड़ और ८ पल घीके साथ पाक करे। जब वह जल गाढ़ा हो जाय, तब उसमें विडङ्ग, त्रिकटु, त्रिफला, रसाञ्जन, चीतामूल, इन्द्रजौ, वच, अतीस और बेलसोंठ डाल कर उतार ले। लेह ठंढा होने पर उसमें ८ पल मधु मिलावे। मात्रा आध तोलासे २ तोला और अनुपान बकरीका दूध (अभावमें ठंढा जल) बताया गया है। इसका सेवन करनेसे रक्तार्श, रक्तपित्त, कास और हलीमकरोग आरोग्य होता है।

रक्तालता (सं० स्त्री०) मञ्जिष्ठा, मजीठ।

रक्तालु (सं० पु०) रक्तः रक्तवर्णः आलुः। रक्तवर्ण आलुविशेष, रतालू नामक कन्द। संस्कृत पर्याय—रक्त-पिण्डालु, रक्तपिण्ड, लोहित, रक्तकन्द, लोहितालु। इसका गुण—शीतल, मधुराम्ल, भ्रम, पित्त और दाह-नाशक, वृष्य, बलपुष्टिकारक और गुरु। (राजनि०)

रक्तावरोधक (सं० त्रि०) बहते हुए खूनको रोकने-वाला।

रक्तावसेचन (सं० क्ली०) रक्तस्य अवसेचनं। रक्त-मोक्षण, शरीरका खून निकलना। (चरक चिकि० ३ अ०)

रक्ताशय (सं० क्ली०) रक्तस्य आशयः। शरीरके सात आशयोंमेंसे चौथा जिसमें रक्तका रहना माना जाता है, वे कोठे जिनमें रक्त रहता है। जैसे—फेफड़ा, हृदय, यकृत् आदि। (सुश्रुत शारीरस्था० १ अ०)

रक्ताशोक (सं० पु०) लाल अशोकका वृक्ष।

रक्ताश्वमारपुष्प (सं० क्ली०) रक्तकरवीरपुष्प, लाल कनेरका फूल।

रक्ताश्वारि (सं० पु०) रक्तकरवीर पुष्प, लाल कनेरका फूल। (रावणकृत शतक०)

रक्तास्राव (सं० पु०) रक्तस्य आस्रावः। १ नासासे कुछ गाढ़ा और कुछ उष्ण खूनका निकलना। (सुश्रुत उत्तरत० २ अ०) २ रक्तमोक्षण, शरीरका खून निकल-वाना।

रक्ति (सं० स्त्री०) रक्त-क्तिन्। १ अनुराग, प्रेम। २ एक परिमाण जो आठ सरसोंके बराबर होता है, रत्ती।

रक्तिका (सं० स्त्री०) रक्तो रक्तवर्णोऽस्त्यस्या रक्त (अत इनिठनौ। पा ५।२।११५) इति ठन्। १ गुञ्जा, घुंघची। २ राजिका सर्षप, राई। रक्तिका परिमाण, एक परिमाण जो आठ सरसोंके बराबर होता है।

रक्तिम (सं० त्रि०) ललाई लिये, सुर्खी मायल।

रक्तिमन् (सं० पु०) रक्त-इमनिच्। अतिशय रक्तवर्ण, गाढ़ा लाल।

रक्तिमा (सं० स्त्री०) ललाई, सुर्खी।

रक्तेक्षु (सं० पु०) रक्तो रक्तवर्णो इक्षुः। रक्तवर्ण इक्षु, लालरंगका ऊख। पर्याय—सूक्ष्मपत्र, शोण, लोहित, उत्कट, मधुर, ह्रस्वमूल, लोहितेक्षु। इसका गुण—मधुर, पाकमें शीतल, मृदु, पित्त और दाहनाशक, बलकर, तेज और बलवर्द्धक। (राजनि०)

रक्तैरण्ड (सं० पु०) रक्तवर्ण एरण्डः। वृक्षविशेष, लाल अंडी। पर्याय—व्याघ्र, हस्तिकर्ण, रुबु, उरूबूक, नागवर्ण, चञ्चु, उत्तानपत्रक, करपर्ण, पाचन, स्निग्ध, व्याघ्र-तल, रुचक, चित्रवीर्य, ह्रस्वैरण्ड। इसका गुण—श्वयथु, वायु, श्रम, रक्तपीड़ा, पाण्डु, भ्रम, श्वास, ज्वर और अरोचकनाशक। (राजनि०)

रक्तैर्वारु (सं० पु०) रक्तः रक्तवर्ण एर्वारु। इन्द्र-वारुणी लता।

रक्तोघटा (सं० स्त्री०) श्वेत गुञ्जा, सफेद घुंघची।

रक्तोत्पल (सं० क्ली०) १ लाल कमल। (पु०) शाल्मलि, सेमल।

रक्तोत्पलाभ (सं० पु०) रक्तोत्पलस्य आभेव आभास्य १ शोणवर्ण, लालरंग। (त्रि०) लालवर्णयुक्त।

रक्तोदर (सं० पु०) १ रोहित मत्स्य, रोहू मछली। २ महाविष वृश्चिक विशेष। सुश्रुतके अनुसार एक प्रकार-का बहुत जहरीला बिच्छू।

रक्तोपदंश (सं० पु०) लहूके विकारसे उत्पन्न गरमी वा आतशकका रोग।

रक्तोपल (सं० क्ली०) १ गिरिमृत्तिका, गेरू नामक लाल मिट्टी।

रक्तौदन (सं० क्ली०) १ रक्तशालि आदि भक्त, लाल धानका भात। २ अलक्तक रञ्जित भक्त, अलतेसे रंगा हुआ भात।

रक्ष (सं० त्रि०) रक्षतीति रक्ष-अच्। १ रक्षक, रख-वाला। (पु०) २ रक्षा, हिफाजत। ३ लाक्ष, लाह।

४ छप्पयके साठवें भेदका नाम जिसमें ११ गुरु और १३० लघु मात्राएं अथवा ११ गुरु और १२६ लघु मात्राएं होती हैं।

रक्षईश (सं० पु०) रक्षसां ईशः। रावण।

रक्षक (सं० त्रि०) रक्षतीति रक्ष-ण्वुल्। १ रक्षाकर्त्ता, बचानेवाला। २ पहलेदार, पहरा देनेवाला। ३ पालन करनेवाला।

रक्षकाम्बा (सं० स्त्री०) वेदान्तभाष्यकार रामानुजको स्त्री।

रक्षण (सं० क्ली०) रक्ष भावे ल्युट्। १ रक्षा करना, हिफाजत करना। २ पालन-पोषण, पालनेकी क्रिया। (त्रि०) ३ रक्षक, रखवाला।

रक्षणकर्त्ता (सं० पु०) रक्षक, रक्षा करनेवाला।

रक्षणारक (सं० पु०) मूत्रकृच्छ्र रोग।

रक्षणि (सं० स्त्री०) त्रायमाणा लता।

रक्षणीय (सं० त्रि०) रक्ष-अनीयर्। रक्षणार्ह, रक्षा करनेके योग्य।

रक्षपाल (सं० पु०) रक्षाकर्त्ता, वह जो रक्षा करता हो।

रक्षभगवती (सं० स्त्री०) प्रज्ञा-पारमिता।

रक्षमाण (सं० त्रि०) रक्ष्यमान देखो।

रक्षस् (सं० क्ली०) रक्षत्यस्मादिति रक्ष (सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८८) इति असुन्। राक्षस।

"दृष्ट्वा तु विकलान् व्यङ्गाननाथान् रोगिणस्तथा।
दया न जायते यस्य स रक्ष इति मे मतिः॥"

(अग्निपुराण)

रक्षस्त्व (सं० क्ली०) राक्षसका भाव या धर्म।

रक्षस्य (सं० त्रि०) रक्षसम्बन्धीय, राक्षसके उपयोगी।

रक्षस्विन् (सं० त्रि०) १ राक्षस-सम्पृक्त। २ मन्दभावापन्न। ३ दोषयुक्त। ४ बलवान्, बलिष्ठ।

रक्षःसभ (सं० क्ली०) रक्षसां राक्षसानां सभा, क्लीवत्वमभिधानात्। रक्षःसमूह।

रक्षा (सं० स्त्री०) रक्षणमिति रक्ष (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) इति अ, स्त्रियां टाप्। १ रक्षण, आपत्ति या कष्ट या नाश आदिसे बचाना। २ जतु, गोंद। ३ भस्म, राख। जिससे कोई अनिष्ट न हो, ऐसी क्रियाविशेषको रक्षा कहते हैं। यशोदाने श्रीकृष्णको गोमूत्रसे स्नान करा कर गोपुच्छभ्रमणादि द्वारा उनकी रक्षा की थी।

(भाग० १०।६ अ०)

पौर्णमासीको रक्षाबन्धन करना होता है। इसे बोलचालमें राखीबंधन कहते हैं।

"पौर्णमास्यां हरे रक्षाबन्धनं विधिपूर्वकं।
व्रजराजकुमारस्यात् केचिदिच्छन्ति साधवः॥"

(हरिभक्तिवि० ५१ वि०)

पूर्णिमातिथिमें विधिपूर्वक विष्णुका रक्षाबन्धन करना होता है। श्रीकृष्णके यह रक्षाबन्धन हुआ था, इस कारण पण्डित लोग इसका अनुष्ठान करते हैं। यह श्रावणी और फाल्गुनी पूर्णिमामें नहीं करना चाहिये।

सामवेदीगण भाद्रमासके हस्ता नक्षत्रमें, ऋग्वेदीगण श्रावणमासके श्रावण नक्षत्रमें और यजुर्वेदीयगण श्रावणी पूर्णिमामें यह रक्षाबन्धन करें। इस समय यदि न किया जाय, तो भाद्रमासमें अवश्य करे। श्रावण मासकी शुक्लापञ्चमी इसके अनुकल्पका काल है। यह कार्य चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमामें नहीं करना होता है।

(हरिभक्तिवि० ५१ अ०)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंको यथाविधान राखीबन्धन करना चाहिये। जो विधिपूर्वक इसका अनुष्ठान करते हैं, वे सर्वपापरहित हो सुखसे वास करते हैं। (हरिभक्तिवि० ५१ वि०)

सुश्रुतमें लिखा है, कि वैद्य रोगीको शस्त्र प्रयोग कर पीछे उसकी रक्षाके लिये रक्षामन्त्रका पाठ करते हुए चारों ओर जलको छींटा दे। कृत्या देवता और राक्षसोंके भयसे बचानेके लिये यह रक्षाकर्म करना होता है। इस प्रकार मन्त्रपाठ कर रक्षाविधान करनेसे राक्षस, भूत, प्रेत आदिका डर बिलकुल नहीं रहता।

आज भी युक्तप्रदेशमें खास कर राजपूतानेमें राखीबंधनका बहुत आदर देखा जाता है। वहांके लोगोंका विश्वास है, कि श्रावणी पौर्णमासी या संक्रान्ति तिथिमें राखीबंधन करनेसे कुग्रहका प्रभाव क्षीण हो जाता है। महर्षि दुर्वासाने श्रावणकी अधिष्ठात्री देवीको ग्रहदुष्टि निवारणार्थ राखीबंधनकी व्यवस्था दी। तभीसे इस प्रथाको हिन्दू-समाजने बड़े आदरसे अपनाया है।

राजपूतकुलललना, कुलपुरोहित और केवल ब्राह्मण

लोग ही राजपूतानेमें राखीबंधनके अधिकारी हैं। राज-महिषियाँ इस दिन अपनी अपनी सहचरी अथवा कुल-पुरोहितके हाथ अपने अपने भाई अथवा दूसरोंके निकट जिन्हें वे भाई कह कर पुकारती हैं, राखी भेज देती हैं; इसी राखीके भेजनेसे महाराणा राजसिंह रूपनगरकी राजकुमारीका उद्धार करनेके लिये सम्राट् औरङ्गजेबके विरुद्ध रणक्षेत्रमें कूद पड़े थे। यहां तक कि यदि कोई राजपूत-कामिनी जिस किसी राजपूतके निकट जिन्हें वह भाई कहा करती हैं, राखी भेजे, तो वह राजपूत उस बहिनके धन, प्राण और मानरक्षाके लिये आत्मर्जीवन तक भी विसर्जन कर देते हैं। यह प्रथा हिन्दूकी एकता-रक्षाके सम्बन्धमें अत्यन्त शुभकर थी, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

राजपूत-ललनायें इस दिन अपने अपने भाईके निकट नया वस्त्र और राखी भेजती हैं और भाई उसके बदलेमें स्वर्णमुद्रा देते हैं। कर्नल टाडने राज-स्थानमें रहते समय राजपूतराज-कुलरमणियोंके साथ भाई-बहनका नाता जोड़ कर राजपूत-प्रथाके अनुसार उन बहनों द्वारा भेजी गई राखी प्रसन्न चित्तसे स्वीकार की और उसके बदले प्रत्येक बहनको तीनसे पांच मुहर करके उपहारमें दी थी।

देवालयके पुरोहित और राजभवनके ब्राह्मण इस दिन राखी दे कर प्रचुर धन उपार्जन करते हैं। राजपूतानेमें आज भी यह पर्व बड़ी धूमधामसे सम्पादित होते देखा जाता है।

रक्षागृह (सं० क्ली०) सूतिकागृह, वह स्थान जहां प्रसूती प्रसव करे।

रक्षातिक्रम (सं० पु०) नियम-भंग, कायदा-कानून तोड़ना।

रक्षाधिकृत (सं० पु०) प्राचीनकालको किसी नगरका वह अधिकारी जिसका काम उस नगरकी रक्षा तथा शासन करना होता था।

रक्षापति (सं० पु०) रक्षाकर्त्ता, प्राचीनकालका वह कर्मचारी जिसका काम नगर-निवासियोंकी रक्षा करना होता था।

रक्षापत्र (सं० पु०) रक्षार्थं पत्रमस्य। १ भूर्जपत्र, भोजपत्र। भोजपत्र पर मन्त्र आदि लिख रक्षाका विधान किया जाता है इसलिये उसे रक्षापत्र कहते हैं। २ श्वेत सर्षप, सफेद सरसों।

रक्षापुरुष (सं० पु०) १ प्रहरी, पहरेदार। २ रक्षाकर्त्ता, वह जो रखवाली करता हो।

रक्षापेक्षक (सं० पु०) १ प्रहरी, पहरेदार। २ अन्तःपुरमें पहरा देनेवाला संतरी। ३ अभिनेता, नट।

रक्षाप्रदीप (सं० पु०) तन्त्रके अनुसार वह दीपक जो भूत-प्रेत आदिको बाधासे रक्षा करनेके लिये जलाया जाता है।

रक्षाबन्धन (सं० पु०) हिन्दुओंका एक त्योहार। यह श्रावण शुक्ला पूर्णिमाको होता है। इस दिन बहनें अपने भाइयोंके और ब्राह्मण अपने यजमानोंके दाहिने हाथको कलाई पर अनेक प्रकारके गंडे यानी राखी बांधते हैं।

रक्षाभूषण (सं० क्ली०) कवचादियुक्त अलङ्कार या धारणी, वह भूषण या जंतर जिसमें किसी प्रकारका कवच आदि हो और जो भूत प्रेत या रोग आदिसे रक्षित रहनेके लिये पहना जाय।

रक्षाभ्यधिकृत (सं० त्रि०) रक्षाधिकृत देखो।

रक्षामङ्गल (सं० क्ली०) अपदेवताको प्रकोपनिवारक माङ्गलिक क्रियाविशेष, वह अनुष्ठान या धार्मिक क्रिया आदि जो भूत-प्रेत आदिको बाधासे रक्षित रहनेके लिये की जाय।

रक्षामणि (सं० पु०) वह मणि या रत्न आदि जो किसी ग्रहके प्रकोपसे रक्षित रहनेके लिये पहना जाय।

रक्षामल्ल (सं० पु०) राजभेद, एक राजाका नाम।

रक्षामहौषधि (सं० स्त्री०) औषधविशेष।

रक्षारत्न (सं० क्ली०) रक्षामणि देखो।

रक्षारत्नप्रदीप (सं० पु०) रत्नखचित रक्षा-प्रदीप। रक्षाप्रदीप देखो।

रक्षावत् (सं० त्रि०) रक्षा विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य-व। रक्षाविशिष्ट, रक्षायुक्त।

रक्षासर्षप (सं० पु०) सरसों पढ़ना।

रक्षि (सं० त्रि०) रक्षाकारी, बचानेवाला।

रक्षिक (सं० पु०) १ प्रहरी, पहरेदार। २ रक्षक, वह जो रक्षा करता हो। ३ परिदर्शक।

रक्षिका (सं० स्त्री०) रक्षैव रक्षा स्वार्थे कन्, टाप् अत इत्वं। रक्षा, हिफाजत।

रक्षित (सं० त्रि०) रक्ष-क्त। १ जिसकी रक्षा की गई हो,

रक्षा किया हुआ। पर्याय—त्रात, त्राण, अवित, गोपायित, गुप्त। (अमर) २ प्रतिपालित, पाला पोसा। ३ रखा हुआ। (क्ली०) भावे-क्त। ४ रक्षा, हिफाजत, स्त्रियां टाप्। ५ महाभारतके अनुसार एक अप्सराका नाम। (भारत १।६५।५०) ६ वैयाकरणभेद। ७ भेषजतत्त्वाभिज्ञ एक आचार्य।

रक्षितक (सं० त्रि०) रक्षाकारी, बचानेवाला।

रक्षितव्य (सं० त्रि०) रक्ष-तव्य। रक्षणीय, रक्षा करनेके योग्य।

रक्षितृ (सं० पु० रक्षतीति रक्ष-तृच्। १ रक्षाकर्त्ता, रक्षा करनेवाला। (पु०) २ रक्षा, हिफाजत। ३ एक अप्सराका नाम।

रक्षिन् (सं० त्रि०) १ अभिभावक, रक्षा करनेवाला। (पु०) २ पहरेदार, चौकीदार।

रक्षिवर्ग (सं० पु०) रक्षिणां वर्गः समूहः। पहरेदारोंका समूह।

रक्षोगण (सं० पु०) रक्षसां राक्षसानां गणः समूहः। राक्षसोंका समूह। (भागवत ५।२६।२७)

रक्षोघ्न (सं० क्ली०) रक्षो रक्षसं हन्तीति हन टक्। १ काञ्जिक, रख कर खट्टा किया हुआ चावलका पानी या मांड। २ हिङ्गु, हींग। ३ भल्लातकवृक्ष, भिलावेंका पेड़। ४ श्वेतसर्षप, सफेद सरसों। (त्रि०) ५ रक्षोविनाश, राक्षस-नाशक-मात्र।

रक्षोघ्नी (सं० स्त्री०) रक्षोघ्न ङीप्, वचा, बच।

रक्षोजननी (सं० स्त्री०) रक्षसां जननीव। १ रात्रि, रात। २ राक्षसकी माता।

रक्षोऽधिदेवता (सं० स्त्री०) रक्षःकुलदेवता।

रक्षोमुख (सं० पु०) १ गोत्रभेद। २ राक्षसोंके मुख।

रक्षोयुज् (सं० त्रि०) राक्षसका सहचर।

रक्षोवाह (सं० पु०) जातिविशेष।

रक्षोविक्षोभिनी (सं० स्त्री०) राक्षसोंकी एक देवी मूर्त्तिका नाम।

रक्षोहन् (सं० पु०) रक्षो हन्तीति हन्-क्विप्। १ गुग्गुलु, गुग्गुल। २ ऋषिविशेष। ये ऋग्वेदके दशवें मण्डलके १६२ सूक्तके ऋषि थे। (त्रि०) ३ राक्षसहन्ता, राक्षसको मारनेवाला।

रक्ष्ण (सं० पु०) रक्ष (यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्। पा ३।३।९०) इति नङ्। त्राण, रक्षा।

रक्ष्य (सं० त्रि०) रक्ष-यत्। रक्षणीय, रक्षा करनेके योग्य।

"सदा स्वेभ्यः परेभ्यश्च रक्ष्यो राजाभिरक्षिभिः।"

(कामन्दकी नीति० ७।२६)

रक्ष्यमाण (सं० त्रि०) १ जिसकी रक्षा की जा सके। २ जिसकी रक्षा की जा रही हो।

रक्सेताऊस (फा० पु०) १ एक प्रकारका नाच जिसमें घुटनोंके बल हो कर इतनी तेजीसे घूमते हैं, कि काछनी या पेशवाजका घेरा फैल कर चक्कर खाने लगता है। २ एक प्रकारका नाच। इसमें पेशवाजके दो कोने दोनों हाथोंसे पकड़ कर कमर तक उठा लिये जाते है जिससे नाचनेवालोंकी आकृति मोरकी-सी बन जाती है।

रख (हिं० स्त्री०) पशुओंके चरनेके लिये बचाई हुई भूमि, चरी।

रखटी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी ईख जिसके रससे गुड़ बनाया जाता है, लखड़ा।

रखड़ा (हिं० पु०) रखटी देखो।

रखना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तु पर या किसी वस्तुके अन्दर दूसरी वस्तु स्थित करना, ठहराना। २ निर्वाह या पालन करना, बिगड़ने न देना। ३ रक्षा करना, हिफाजत करना। ४ सपुर्द करना, सौंपना। ५ रेहन करना, बंधकमें देना। ६ एकत्र करना, संग्रह करना। ७ अपने अधिकारमें लेना, अपने हाथमें करना। ८ नियुक्त करना, तैनात करना। ९ सकुशल जाने न देना; पकड़ या रोक लेना। १० पालन-पोषण, मनोविनोद या व्यवहार आदिके लिये अपने अधिकारमें करना, अपनी अधीनतामें लेना। ११ आघात करना, चोट पहुंचाना। १२ किसी पर आरोप करना, जिम्मे लगाना। १३ व्यवहार करना, धारण करना। १४ स्थगित करना, मुलतवी करना। १५ उपस्थित न करना, सामने न लाना। १६ ऋणी होना, कर्जदार होना। १७ मनमें अनुभव या धारण करना। १८ स्त्री या पुरुषसे सम्बन्ध करना, उपपत्नी या उपपति बनाना। १९ सम्भोग करना, प्रसंग करना। २० निवास कराना, डेरा कराना

२१ गर्भ धारण करना। २२ अपने पास पड़ा रहने देना, बचाना। २३ पक्षियों आदिका अंडे देना।

रखनी (हिं० स्त्री०) वह स्त्री जिससे विवाह-सम्बन्ध न हुआ हो और जो यों ही घरमें रख ली गई हो, रखेली।

रखया (हिं० वि० स्त्री०) रक्षा करनेवाली।

रखला (हिं० पु०) रहकला देखो।

रखवाई (हिं० स्त्री०) १ खेतोंकी रखवाली, चौकीदारी। २ रखवाली करनेकी क्रिया या भाव। ३ रखनेकी क्रिया या ढंग। ४ रखवालीकी मजदूरी, चौकीदारीकी मजदूरी। ५ चौकीदारका टिकस। ६ रखनेकी मजदूरी।

रखवाना (हिं० क्रि०) १ रखनेकी क्रिया दूसरेसे कराना, दूसरेको रखनेमें प्रवृत्त करना। २ रखाना देखो।

रखवार (हिं० पु०) १ रक्षा करनेवाला, रखवाला। २ चौकीदार, पहरेदार।

रखवारी (हिं० स्त्री०) रखवाली देखो।

रखवाला (हिं० पु०) १ रक्षा करनेवाला, रक्षक। २ चौकीदार, पहरेदार।

रखवाली (हिं० स्त्री०) १ रक्षा करनेकी क्रिया, हिफाजत। २ रक्षा करनेका भाव।

रखा (हिं० स्त्री०) रख देखो।

रखाई (हिं० स्त्री०) १ रक्षा करनेकी क्रिया, हिफाजत। २ वह धन जो रक्षा करनेके बदलेमें दिया जाय। ३ रक्षा करनेका भाव।

रखान (हिं० स्त्री०) चराईकी भूमि, चरी।

रखाना (हिं० क्रि०) १ रखनेकी क्रिया दूसरेसे कराना, दूसरेको रखनेमें प्रवृत्त करना। २ रखवाली करना, नष्ट होनेसे बचाना।

रखार (हिं० पु०) एक प्रकारका पाटा जिसका व्यवहार बम्बईप्रान्तमें जुता हुआ खेत बराबर करनेके लिये होता है।

रखिया (हिं० पु०) १ रक्षक। २ रखनेवाला। ३ गांवके समीपका वह पेड़ जो पूजनार्थ रक्षित रहता है।

रखियाना (हिं० क्रि०) १ राखसे बरतनों आदिको मांजना। २ पकाये हुए खैरको कपड़ेमें लपेट कर राखके अन्दर इस अभिप्रायसे रखना कि उसका पानी सूख जाय और कसाव निकल जाय।

रखी (हिं० पु०) ऋषि, मुनि।

रखीराज (हिं० पु०) नारद ऋषि।

रखेली (हिं० स्त्री०) बिना विवाह किये ही घरमें रखी हुई स्त्री, रखनी।

रखौंत (हिं० पु०) पशुओंके चरनेके लिये छोड़ी हुई जमीन, चरी।

रगंड (हिं० पु०) हाथीका कपोल।

रग (फा० स्त्री०) १ शरीरमेंकी नस या नाड़ी। २ पत्तोंमें दिखाई पड़नेवाली नसें।

रगड़ (हिं० स्त्री०) १ रगड़नेकी क्रिया या भाव, घर्षण। २ वह हलका चिह्न जो साधारण घर्षणसे उत्पन्न हो जाय। ३ हुज्जत, झगड़ा। ४ कहारोंकी परिभाषामें धक्का। ५ भारी श्रम, गहरी मेहनत।

रगड़ना (हिं० क्रि०) १ किसी पदार्थको दूसरे पदार्थ पर रख कर दबाते हुए बार बार इधर उधर चलाना, घर्षण करना। २ पीसना। ३ किसी काममें जल्दी जल्दी और बहुत परिश्रमपूर्वक करना। ४ अभ्यास आदिके लिये बार बार कोई काम करना। ५ तंग करना, दिक् करना। ६ स्त्रीके साथ सम्भोग करना, प्रसंग करना।

रगड़वाना (हिं० क्रि०) रगड़नेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको रगड़नेमें प्रवृत्त करना।

रगड़ा (हिं० पु०) १ रगड़नेकी क्रिया या भाव, घर्षण। २ वह झगड़ा जो बराबर होता रहे और जिसका जल्दी अन्त न हो। ३ निरन्तर अथवा अत्यन्त परिश्रम।

रगड़ान (हिं० स्त्री०) रगड़नेकी क्रिया या भाव, रगड़ा।

रगण (सं० पु०) छन्दःशास्त्रमें एक गण या तीन वर्णोंका समूह इसका पहला वर्ण गुरु, दूसरा लघु और तीसरा फिर गुरु होता है। यह साधारणतः 'र' से सूचित किया जाता है। इसके देवता अग्नि माने गये हैं।

रगदना (हिं० क्रि०) रगेदना देखो।

रगपट्ठा (हिं० पु०) १ शरीरके भीतरी भिन्न भिन्न अंग। २ किसी विषयकी भीतरी और सूक्ष्म बातें।

रगबत (अ० स्त्री०) १ चाह, इच्छा। २ प्रवृत्ति, रुचि।

रगर (हिं० स्त्री०) रगड़ देखो।

रगरा (हिं० पु०) रगड़ा देखो।

रगरेशा (फा० पु०) १ पत्तियोंकी नसें। २ शरीरके अन्दरका प्रत्येक अंग। ३ किसी विषयकी भीतरी और सूक्ष्म बातें।

रगा (हिं० पु०) मोर।

रगी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका मोटा अन्न जो महिसूरमें होता है। २ रग्गी देखो। ३ रगीला देखो।

रगीला (हिं० पु०) १ हठी, जिद्दी। २ पाजी, दुष्ट।

रगेद (हिं० स्त्री०) १ दौड़ाने या भगानेकी क्रिया। २ पक्षियों आदिकी सम्भोगकी प्रवृत्ति या अवसर, जोड़ा खानेका मौका।

रगेदना (हिं० क्रि०) भगाना, खदेड़ना।

रगौली—युक्तप्रदेशके बान्दा जिलान्तर्गत एक गण्डशैल और उसके नीचे एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २५° १′ उ० तथा देशा० ८०° २२′ पू०के मध्य अजयगढ़से पांच कोस उत्तरमें अवस्थित है। १८०६ ई०में अजयगढ़के राजा लक्ष्मणसिंहसे अंगरेजी सेनाकी लड़ाई हुई जिसमें यहांका दुर्ग अंगरेजोंके हाथ चला गया। राजाके चचा प्रसादसिंहने चहारदीवार और प्राचीर आदिसे यह गिरिदुर्ग मजबूत बना रखा था। अंगरेजी सेनाने बहुत कष्टसे इस दुर्गको चहारदीवार तोड़ फोड़ कर इस पर चढ़ाई कर दी और हिन्दू सेना खुशीसे दुर्ग छोड़ भाग गई। पीछे अंगरेजी सेनाने यह दुर्ग दखल किया। तबसे वह टूटे फूटे खंडहरोंमें पड़ा है। यह समुद्रपीठसे १३०० फुट ऊंचा है।

रग्गा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका मोटा अन्न जो दक्षिणके पहाड़ोंमें होता है, रगी। (स्त्री०) २ अधिक वर्षाके उपरान्त होनेवाली धूप जो खेतीके लिये लाभदायक होती है।

रघु (सं० पु०) लङ्घति ज्ञानसीमां प्राप्नोतीति लङ्घि (लङ्घिबंह्योनलोपश्च। उण् १।३०) इति कु नलोपश्च। (बालमूललघ्वसुरालमङ्गुलीनां वा लो रत्वमापद्यते इति वक्तव्यं। पा ८।२।१८) इति काशिकोक्त्या लस्य रत्वं। सूर्यवंशीय दिलीपराजपुत्र, श्रीरामचन्द्रके प्रपितामह। रघुवंशमें 'रघु' इस नामनिरुक्तिका विषय इस प्रकार लिखा है। रघुके जन्म लेनेके बाद दिलीपने कहा, कि यह बालक समस्त शास्त्रोंमें पारदर्शी होगा और युद्धकालमें शत्रुओंको फाड़ता हुआ जायगा। इसी कारण उन्होंने गमनार्थक 'रघ' धातु द्वारा निष्पन्न 'रघु' यह नाम रखा था।

रघुवंशमें लिखा है, कि रघुके पिताका नाम महाराज दिलीप और पुत्रका नाम अज था। अजके पुत्र दशरथ और दशरथके पुत्र रामचन्द्र थे। अयोध्यामें इनकी राजधानी थी। इन्हींके नामानुसार इनका वंश रघुवंश नामसे प्रसिद्ध है। महाराज दिलीपने अपने कुलगुरु वशिष्ठकी आज्ञासे कामधेनुकी पुत्री नन्दिनीको प्रसन्न करके यह पुत्र पाया था। महाराज दिलीपने एक यज्ञ किया था, उस यज्ञकी अश्वरक्षाका भार रघुको दिया गया था। देवराज इन्द्र उस अश्वको चुरा कर ले गये। रघु और इन्द्रसे युद्ध होने लगा। रघुने इन्द्रको परास्त करके यज्ञीय अश्व छुड़ा लिया। राज्य मिलने पर महाराज रघु अपने राज्यमें सर्वत्र शान्ति स्थापित करके दिग्विजयके लिये बाहर निकले। चारों दिशाओंको जीत कर रघु जो प्रचुर धन ले आये थे उससे विश्वजित् नामक एक यज्ञ किया और सब धन ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे डाला। पीछे वरतन्तुशिष्य कौत्स्य उनके निकट आये और गुरुदक्षिणामें स्वर्णमुद्रा मांगने लगे। खजानेमें स्वर्णकी बात तो दूर रहे, एक कौड़ी भी न थी, सो रघुने कुबेरको जीत कर उनकी मांग पूरी की थी।

२ रघुवंशीय मात्र। (त्रि०) ३ शीघ्रगामी, तेज चलनेवाला। (ऋक् ५।३०।१४)

रघुकार (सं० पु०) रघुं तदाख्यं काव्यं करोतीति कृ (कर्म्मण्यण्। पा ३।२।१) इति अण्। रघुवंशके प्रणेता कालिदास।

रघुकुल (सं० पु०) राजा रघुका वंश।

रघुगढ़ (राघवगढ़)—ग्वालियरके अधीनस्थ एक सामन्त राज्य। यह मध्यभारतकी गुणा सब-एजेन्सीकी देखरेखमें परिचालित होता है। यहांके सरदारवंशीय चौहान राजपूतोंकी कोच शाखामें श्रेष्ठ और पूज्य हैं। एक समय इन सामन्तोंने गुणाके चारों ओर प्रायः १सौ मील स्थान पर अधिकार कर राज्यशासन किया था। उस समय रघुगढ़के सरदार ग्वालियरपतिके मित्रराज समझे जाते थे।

१७८० ई०में महाराष्ट्र-सरदार माधोजी सिन्धेने राजा

बलवन्तसिंह और उनके लड़के जयसिंहको युद्धमें पराश्त कर कैद कर लिया था। इस समयसे ले कर १८१८-१६ ई० तक दोनों पक्षमें घोर युद्ध चलता रहा। आखिर अंगरेज गवर्मेण्टने बीचमें पड़ कर झगड़ा मिटा दिया। सिन्देराजने यहांके सामन्तराजको राघवगढ़ नगर, दुर्ग और तत्पार्श्ववर्त्ती लाख रुपये आमदनीकी भूसम्पत्ति छोड़ दी। १८४३ ई०को उक्त राजसरकारमें गृहविवाद खड़ा हो गया, जिससे अङ्गरेजराजने एक नया बंदोवस्त किया। तदनुसार उक्त जागीर उस वंशके विजयसिंह, छत्रशाल और अजितसिंह नामक तीन पट्टीदारोंके बीच बँट गई। अजितसिंहके उत्तराधिकारी राजा जयमङ्गलसिंहके हिस्सेमें १२० ग्राम पडे, जिसकी वार्षिक आय २४०००) रु० की है। रघुगढ़के सामन्त राजके हिस्सेमें ८८ ग्राम है।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर। यह पार्वती नदी की एक शाखाके ऊपर अक्षा० २४° २६´ उ० तथा देशा० ७७° १५´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहांका दुर्ग यद्यपि भग्नावस्थामें पड़ा है, तो भी १६वीं सदीके आरम्भमें इसने दौलतराव सिन्दे द्वारा परिचालित मराठा-सेना से नगरकी अच्छी तरह रक्षा की थी। मुगल बादशाह शाहजहांके जमानेमें केचिशाखाके चौहान राजपूतवंशीय लालसिंह नामक एक व्यक्तिने इसे बसाया था। तभीसे यहांके सरदार-वंश केचिशाखाके दलपति वा गोष्ठीपति-रूपमें गिने आ रहे हैं।

रघुज (सं० त्रि०) रघु-जन-ड। १ तेज जानेवाली घोड़ीका बछड़ा। (ऋक् ६।८६।१) २ रघुवंशका जातमात्र, जिसका जन्म रघुके वंशमें हुआ हो।

रघुजी भौंसले (१म)—एक महाराष्ट्र सेनापति। १७३४ ई०में इनकी महाराष्ट्र-दलके सेना साहब सूबा-पद पर तरक्की हुई। इनकी कार्य-दक्षता, साहस और वीरता पर प्रसन्न हो कर पेशवाने इन्हें बेरार और नागपुर प्रदेश प्रदान किया। उसी सेनाके बल १७४० ई०में ये बेरार और नागपुरके प्रथम राजा हुए थे।

पेशवा बाजीराव और बक्सी रघुजी भौंसलेके अभ्युदयकालमें महाराष्ट्र-राज्यमें शासनविश्रृङ्खला और राष्ट्र-विप्लव उपस्थित हुआ। कमजोर दिलके और राज्य शासन करनेमें असमर्थ सताराधिपति रामराज इस समय महाराष्ट्र-सिंहासन पर बैठे थे सही, पर यथार्थमें पेशवा और रघुजी यही दोनों राज्यके परिचालक और नेता थे। सचिवप्रधान बाजीराव और सेनापति-प्रधान रघुजीने उन्हें सिंहासन परसे उतार सब कुछ हड़प कर लेनेका षड़यन्त्र किया। अपना मतलब निकालनेके लिये दोनोंने अपने मालिकको ठग कर उनका राज्य आपसमें बांट लिया। तदनुसार पेशवा प्राचीन राजधानी पूनामें रह कर मराठोंके अधिकृत समस्त पश्चिम-प्रदेशका तथा रघुजी नागपुरमें रह कर पूर्वांशका शासन करने लगे। दुर्भाग्यवशतः रामराज सताराके दुर्गमें कैद किये गये।

पेशवा बाजीरावको अपने नामसे महाराष्ट्रीय शासन-दण्ड परिचालित करते देख प्रतिद्वन्द्वी रघुनाथ जलने लगे। उन्होंने पेशवाकी अधीनता स्वीकार नहीं की। इस कारण दोनोंमें मुठभेड़ हो गई।

रघुजीके पितामह पार्श्वजी सतारा-प्रान्तवर्त्ती एक सामान्य अश्वारोही सेना-नायक थे। महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीके पौत्र शाहजी उनके रणपाण्डित्य पर मोहित हो उन्हें बक्सीके पद पर नियुक्त किया। उनके पिता बिम्बजी महाराष्ट्र-कर उगाहनेके लिये अयोध्या गये और वहीं मारे गये। अतएव पितामहके बाद शाहजीकी कृपासे वे ही पैतृक सम्पत्तिके अधिकारी हुए थे। ऐतिहासिक लोग उनके उत्तराधिकारित्वके सम्बन्धमें अपना भिन्न भिन्न मत देते हैं। कोई कोई कहते हैं, कि पार्श्वजीके पुत्रके जीवित रहते ही शाहजीकी कृपासे पार्श्वजीके भाई रघुजीने बरारकी सम्पत्ति पाई। रघुजी राजा शाहजीके भाई थे।

बुर्हानपुर, नागपुर, बरार आदि शब्दोंमें रघुजीकी वीरत्व-कहानी लिखी जा चुकी है, इस कारण यहां पर और कुछ विशेष नहीं लिखा गया। १७४६ या १७५३ ई०में उनकी मृत्युके समय वे पुत्र जानोजीको अपना उत्तराधिकारी बना गये। १७७२ ई०में जानोजीने अपने कनिष्ठ मधुजीके पुत्र रघुजी भौंसले २यको जब अपना उत्तराधिकारी बनाया, तब सारी सम्पत्तिका शासन भार मधुजी पर सौंपा गया। इस समय मधुजीके

बड़े भाई सामोजीने सिंहासन पर दावा किया। यह ले कर दोनों भाइयोंमें विरोध खड़ा हो गया। युद्धमें मधुजीके हाथ १७७५ ई०को सामोजी मारे गये। तभीसे ले कर ३य रघुजी तक नागपुर और बरारका अधिकार मधुजीके वंशधरोंके हाथ रहा।

रघुजी भोंसले (२य)—अभिभावक और पिता मधुजीके राज्यशासनके बाद १७८८ ई०में ये अपने बड़े भाईके दिये हुए नागपुर-सिंहासन पर बैठे। १८१६ ई०की २२वीं मार्चको इनकी मृत्यु हुई।

रघुजी भोंसले (३य) बरार-राज्यके अन्तिम महाराष्ट्र-राज। १८५३ ई०में अपुत्रक अवस्थामें इनकी मृत्यु होने तथा राजसिंहासनके कोई प्रकृत उत्तराधिकारी न रहनेसे उस समयके गवर्नर-जनरलने वह विस्तीर्ण राज्य कंपनीके राज्यमें मिला लिया।

रघुदेव—१ दिनसंग्रह नामक एक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। २ मिथिलावासी एक पण्डित विश्वेश्वर मिश्रके पुत्र तथा अच्युत ठाकुरके दौहित्र। इन्होंने विरुदावली नामक एक ग्रन्थकी रचना की।

रघुदेव न्यायालङ्कार भट्टाचार्य—नवद्वीपवासी एक विख्यात पण्डित। ये सम्भवतः नवद्वीपके सुप्रसिद्ध पण्डित भवानन्द सिद्धान्तवागीशकी तीन या चार पीढ़ीके बादके थे। शिरोमणिकृत नञ्वादकी "नञ्वादविवेचन" नामक टीकाकी रचना करते समय रघुदेवने ग्रन्थ-प्रारम्भमें अपना परिचय दिया है। शायद रघुदेव पहले हरिरामसे और पीछे जगदीशसे न्यायशास्त्र पढ़ते थे। ये जगदीशके छात्रोंके समसामयिक थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। इन्होंने 'पदार्थखण्डनविवरण' नामक रघुनाथ-शिरोमणिकृत पदार्थतत्त्वकी व्याख्या १६४१ शकमें अर्थात् १७१६ ई०में लिखी थी।

इसके अलावा रघुदेव गङ्गेशोपाध्यायकृत तत्त्वचिन्तामणिकी गूढ़ार्थतत्त्वदीपिका नाम्नी एक व्याख्यापुस्तिका, महर्षि कणादके वैशेषिकसूत्रका कणादसूत्रव्याख्यान नामक टीका और द्रव्यसारसंग्रह नामक कई ग्रन्थ रचना कर गये हैं। तत्त्वचिन्तामणिव्याख्या ग्रन्थके अंशरूपमें उन्होंने अनुमिति, परामर्शविचार, अवयवग्रन्थ, आकांक्षावाद, आख्यातवादटिप्पनी, (रघुनाथकृत आख्यातवादकी टीका), ईश्वरवाद, उपसर्गद्योतकत्वविचार, कारणवादार्थ, कार्यकारणभावविचार, चित्ररूपवाद, ज्ञानद्वयवाद, ज्ञानलक्षणविचार, तर्कविचार, दण्डकारणताविचार, धर्मितावच्छेदकप्रत्यासत्तिनिरूपण, नञर्थवादटिप्पनी या नञ्वादटिप्पनी नवीन निर्माण, नानार्थवाद, निरुक्तिप्रकाश, निश्चयत्वनिरुक्ति, निश्चयवाद, पक्षता, प्रतियोगिज्ञानकारणताविचार, प्रतियोगिज्ञानस्य हेतुत्वखण्डनम्, मनोवाद, लक्षणावाद, लौकिकविषयतावाद, विशिष्टवैशिष्ट्यबोधविचार, विशिष्टवैशिष्ट्यवाद, विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवादार्थ, विषयतावाद सामग्रीवाद, स्मृतिसंस्कारविचार आदि बहुत-सी टीका प्रणयन कर विशेष प्रसिद्धिलाभ किया है। ये टीकाएं नैयायिकजगत्‌में 'रघुदेवी' नामसे परिचित हैं।

रघुदैवज्ञ—चिन्तामणि पीयूषधारा नाम्नी मुहूर्त्तचिंतामणिकी टीकाके प्रणेता।

रघुद्रु (सं० त्रि०) शीघ्रगमनकारी, तेजीसे जानेवाला।

रघुनन्द (सं० पु०) श्रीरामचन्द्र।

रघुनन्दन—श्रीचैतन्यके एक अनुचर भक्त। ये हुसेनशाह बादशाहके प्रधान चिकित्सक श्रीखण्डवासी वैद्यवंशीय मुकुन्दके एकमात्र पुत्र थे। वैष्णवसमाजमें रघुनन्दनका स्थान ऊँचा था। क्योंकि, श्रीगौराङ्गने एक दिन इन्हें अपनी गोदमें बिठा कर पुत्र कह कर सम्बोधन किया था और बड़े आदरसे इनके गलेमें पुष्पमाला पहनाई थी। यथा—श्रीरूपकृत पद्यमें लिखा है—

"लीलाद्रोहिमहाप्रभुर्यमपि भो क्रोड़े निधायात्मनो,
भक्तायूथमिमं ममेति निगदन् जानिष्वमेवात्मजम्।
कण्ठेप्राग्रघुनन्दनं स्रजमदात् स्वीयां स्वयं कीर्त्तने,
भाले यस्य च चन्दनं प्रतिनभक्तं रूपं नमाम्यहं॥"

इसी कारण रघुनन्दनका प्रणाम-श्लोक निम्नलिखित रूपमें लिखा गया है, यथा—

"मुकुन्दजनये नित्यं व्रजकन्दर्परूपिणे।
गौरप्रेमप्रदायैव गौरपुत्राय ते नमः॥"

रघुनन्दनके प्रति महाप्रभुकी इतनी कृपा क्यों? इसका कारण यह है, कि रघुनन्दन जैसे भक्त बहुत थोड़े थे। रघुनन्दनकी कृष्ण-भक्ति पर महाप्रभु उनके प्रति

बहुत प्रसन्न रहते थे। कहते हैं, कि पांच वर्षकी उमरसे ही रघुनन्दनके चित्तमें कृष्ण प्रेमका उदय हो गया था। तभीसे वे भक्त कहलाने लगे। गुणचरितमहिमलेश-ग्रन्थमें लिखा है।

"कृष्णावेशरसानुमोदमधुरो यः पञ्चसंवत्सरात्।
कृत्वा तस्य सुविग्रहं परिचरेत् श्रीगोपीनाथाभिधं॥
यद्दत्तं शिशुलीलया सुमधुरं क्षीरं स आशीर्मुदा।
सोऽयं श्रीरघुनन्दनो विजयते श्रीखण्डभूखण्डके॥"

भक्तिसे रघुनन्दनने अपने गृहदेवता गोपीनाथको बचपनमें लड्डू खिलाया था। यह प्रसङ्ग पदकल्पतरुके उद्धवदासके पदमें सविस्तार लिखा है।

रघुनन्दन बड़े ही सज्जन थे। उनके शरीरका रंग सांवला था। वे अकसर पीतवस्त्र ही पहना करते थे; लम्बे लम्बे बालोंका जूड़ा बांधते थे तथा देवताकी प्रसादी पुष्पमाला गलेमें पहनना बहुत पसन्द करते थे। ऐसे वेशमें सुसज्जित रघुनन्दनको देख सभी विमुग्ध होते थे।

रघुनन्दनका रचित "गौरनामामृतस्तोत्र" बहुत सुन्दर और सरल संस्कृतमें लिखा है, पढ़ते ही हृदय पिघल जाता है। रघुनन्दनने विवाह भी किया था। ठाकुर कन्हाई पुत्रका नाम था।

श्रीनिवासाचार्य और ठाकुर नरोत्तमके समय रघुनन्दन प्रौढ़ वयस्क थे। सभी उनका आदर करते थे। प्रतिप्रधान महोत्सवादिमें इनका बड़ा सम्मान होता था।

रघुनन्दन (सं० पु०) रघुन् रघुवंश-सम्भूतान् नन्दयतीति नन्दि-ल्यु। श्रीरामचन्द्र।

रघुनन्दन—वर्द्धमान प्रदेशके अन्तर्गत माड़ग्रामके निवासी एक पण्डित। ये नित्यानन्दवंशीय थे। इनके पिताका नाम था किशोरीमोहन गोस्वामी। इन्होंने भागवत-सिद्धान्त, व्रजरमापरिणय, छन्दोमञ्जरीटीका आदि बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ लिखे।

रघुनन्दन—१ कृष्णपूजापद्धतिके प्रणेता। २ छान्दोग्योपनिषत्संग्रहके रचयिता। ३ द्वादशयात्रा प्रमाणतत्त्व और रसयात्रापद्धति नामक दो ग्रन्थके प्रणेता। इन दो ग्रन्थोंको भाषा और भाव पर्यवेक्षण करनेसे पता चलता है, कि ये दोनों ग्रन्थ स्मृतितत्त्वकार रघुनन्दनने लिखे हैं। ४ बृहत्पर्वमाला नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ५ विशुद्धिदर्पणके प्रणेता। ६ संकल्पचंद्रिकाके रचयिता। इनकी उपाधि भट्टाचार्य थी।

रघुनन्दन आचार्यशिरोमणि—कलापतत्त्वार्णव नामक व्याकरणके प्रणेता।

रघुनन्दनगिरि—१ आसामप्रदेशके श्रीहट्ट जिलान्तर्गत एक शैलमाला। त्रिपुराके पार्वत्यप्रदेशसे क्रमशः उत्तरकी ओर फैल गई है। २ चट्टलके अन्तर्गत एक गिरिश्रेणी।

रघुनन्दन गोस्वामी—रामरसायन और श्रीराधामाधवोदय नामक दो बंगला काव्यके रचयिता। सौ वर्षसे कुछ अधिक पहले उन्होंने वर्द्धमान जिलेके माड़ग्राममें जन्मग्रहण किया था। उनके पिता किशोरीमोहन एक प्रसिद्ध भागवत थे। उनकी माताका नाम ऊषा और विमाताका नाम मधुमती था। नित्यानन्द प्रभुके वंशमें रघुनन्दनका जन्म हुआ था। उनकी वंशतालिका इस प्रकार है,—१ नित्यानन्द, २ वीरभद्र, ३ वल्लभ, ४ रामगोविन्द, ५ विश्वम्भर, ६ बलदेव, ७ किशोरीमोहन। रघुनन्दन पिताके सबसे छोटे लड़के थे। उनसे बड़े तीन भाइयोंके भी नाम मिलते हैं।

रामरसायनमें उन्होंने महाकवि वाल्मीकि और तुलसीदासका अनुसरण किया है। कविने उत्तरकांडमें करुणरसाश्रित सीतावर्ज्जन, लक्ष्मणवर्ज्जन सीताका पातालप्रवेश आदि शामिल नहीं किया है। यह ग्रन्थ उन्होंने अपने गृहप्रतिष्ठित श्रीराधामाधवविग्रहके नाम पर उत्सर्ग किया। इन राधामाधवको स्मरण कर उन्होंने कृष्ण और राधा-लीलाविषयक बड़ा ग्रन्थ बनाया था। रघुनन्दनका दूसरा नाम भागवत था।

रघुनन्दन भट्टाचार्य—नवद्वीपवासी एक विख्यात स्मृतिशास्त्रवित्। स्मार्त्त भट्टाचार्य वा स्मार्त्त रघुनन्दन नामसे बङ्गाल भरमें इनकी प्रसिद्धि थी। इनके पिता हरिहर-वन्द्यो भट्टाचार्य नवद्वीपवासी एक स्मार्त्त पण्डित थे। उनका बनाया हुआ समय-प्रदीप नामक स्मृतिग्रन्थ प्रसिद्ध है। हरिहर नवद्वीपमें स्मृतिका टोल खोल कर लड़कोंको पढ़ाते थे। उनके बड़े लड़के रघुनन्दन और

छोटे यदुनन्दनने अपने पितासे ही लिखना पढ़ना सीखा था। यदुनन्दन कच्ची उमरमें ही पञ्चत्वको प्राप्त हुए।

रघुनन्दनका जन्म कब हुआ था, ठीक ठीक मालूम नहीं। कहा जाता है, कि १६वीं सदीके प्रथम भागमें नवद्वीपमें इनका जन्म हुआ। तत्संगृहीत ज्योतिस्तत्त्व ग्रन्थमें रविसंक्रान्तिगणनामें लिखा है—

"नवाष्टशक्रहोनेन शकाब्दाङ्केन पूरिता" इससे १४८६ शकमें ज्योतिस्तत्त्वसङ्कलनका काल समझा जाता है। जनसाधारणके अनुमानके ऊपर निर्भर करके ज्योतिस्तत्त्वको यदि उनकी अन्तिम अवस्थाका ग्रन्थ माना जाय, तो उनका जन्म १४२५से १४३० शकके किसो समय साबित होता है। अतएव श्रीचैतन्य महाप्रभुके आविर्भावके प्रायः २०।२५ वर्ष बाद ही वे नवद्वीपमें अवतीर्ण हुए थे।

इनके बनाये हुए एकादशीतत्त्वमें, विष्णुपूजापद्धतिमें और आह्निकतत्त्वमें हरिभक्तिविलासग्रन्थका उल्लेख है। अस्तु रघुनन्दनका संग्रह-ग्रन्थ हरिभक्तिविलासके बाद सङ्कलित हुआ था, इसमें संदेह नहीं।

सनातन गोस्वामिकृत वृहद्वैष्णवतोषिणो नामक भागवतके दशम स्कन्धकी टीकामें ग्रन्थसमाप्तिके समय इस प्रकार संख्या दी गई है,—"शाके षट्सप्ततिमनौ पूर्णेयं टिप्पनो शुभा।" फिर उसी ग्रन्थके प्रथम अध्यायके ४थे श्लोकको टोकामें उन्होंने लिखा है,—"अस्यद्भगवद्भक्तिविलासटीकायां कथामाहात्म्ये विस्तारितमेवास्ति।" अतः हरिभक्तिविलासटीका वृहद्वैष्णवतोषिणीके पहले अर्थात् १४७४ शकके पहले रची गई थी, ऐसा अनुमान किया जाता है। इससे मालूम होता है, कि उन सब ग्रन्थोंका अंश उक्त समयके आगे पीछे सङ्कलित हुआ था। इसके सिवा उसके ग्रन्थमें रायमुकुट (१४३१ ई०)-का उल्लेख और निर्णयसिन्धु (१६१२ ई०)-में उनके स्मृतितत्त्वका उल्लेख देख कर उन्हें दोनोंके मध्यवर्ती समयका आदमी कह सकते हैं।

रघुनन्दन बहुत शान्त स्वभाव और धीर प्रकृतिके आदमी थे। कहते हैं, कि हरिहरको अपने पुत्र (रघुनन्दन)-की शिकायत नहीं सुननी पड़ी थी। रघुनन्दन जैसे शान्त थे, बचपनसे ही लिखने पढ़नेमें उनका वैसा ही ध्यान था। पाठशालाका पढ़ना समाप्त कर इन्होंने थोड़े ही समयके अन्दर व्याकरण, अभिधान और काव्यादि सीख लिये। इतने ही समयमें संस्कृतभाषामें इनका अच्छा अधिकार हो गया। वे इसी कच्ची उमरमें नई नई भावपूर्ण कविताएं लिख कर सहपाठी और अध्यापकके प्रेमभाजन हो गये। इसी समयसे लोगोंने इन्हें होनहार युवक समझ लिया था।

हरिहर भङ्गकुलीन सन्तान थे। भङ्गकुलीनोंमें उस समय बाल्यविवाह और बहुविवाह चलता था। इस कुप्रथाके विरोधो हरिहरने जब काव्यादिका पाठ शेष नहीं हुआ, तब तक अपने पुत्रका विवाह नहीं किया। विवाहके बादसे ही रघुनन्दन पितासे स्मृति सीखने लगे। स्मृतिशास्त्रमें व्युत्पत्ति लाभ कर उन्होंने नवद्वीपके तात्कालिक सुविख्यात स्मृतिवित् और मीमांसक श्रीनाथ आचार्यचूणामणिके निकट पढ़ना आरम्भ कर दिया। कहते हैं, कि इन्होंने वासुदेवसे भी शास्त्र पढ़ा था।

रघुनन्दनका समकाल ही यथार्थमें बङ्गालकी अभिनव-समृद्धिका समय है। इस समय महात्मा श्रीचैतन्यदेव सनातन वैष्णवधर्मका मर्मोद्भेद कर सभी वर्णोंके लोगोंको धर्मपथके पथिक बना रहे थे। इस समय तर्क-केशरी रघुनाथ शिरोमणिने अपने अलोकसामान्य प्रतिभाबलसे तथा असाधारण तर्कशक्तिके प्रभावसे मिथिलाका गर्व चूर कर नवद्वीपमें न्यायकी प्रधानता स्थापनके साथ बङ्गालको विद्यागौरवमें श्रेष्ठस्थान दिया था। इस समय रघुनन्दन धर्मशास्त्रके लुप्तप्राय तत्त्वोंकी मीमांसा द्वारा उद्धार कर बङ्गीय हिन्दू-समाजमें अवश्य पालनीय बतलाते हुए उन्हें प्रचलित करनेके लिये तैयार हो गये। इससे बङ्गालमें एकादिक्रमसे विद्याधर्मका गौरव खूब बढ़ गया था।

इस समय बङ्गालके सिंहासन पर सुलतान सैयद हुसेन शाह बैठे थे। हुसेन शाहके दोर्दण्ड प्रतापसे और प्रायः ४ सौ वर्ष मुसलमानी संसर्गमें पड़ कर उस समय बङ्गवासियोंका आचार-व्यवहार, रीति नीति बहुत

कुछ बढ़ गई थी तथा हिन्दूधर्मकी विमल ज्योति दिन पर दिन घटती आ रही थी। मुसलमानी संसर्गसे समाज-बन्धन ढीला पड़ गया था। ब्राह्मण और शूद्रमें कोई भेद न था, खान पानमें भी बहुत कुछ हेरफेर हो गया था। कितने हिन्दू प्रकाश्यभावमें इसलाम-धर्म ग्रहण कर रहे थे। इस प्रकार सामाजिक विप्लव देख कर सूक्ष्मदर्शी रघुनन्दनको समाज-संस्कारकी आवश्यकता सूझ पड़ी।

धर्मशास्त्रोंकी आलोचना करते समय रघुनन्दनको अच्छी तरह मालूम हो गया था, कि प्राचीन शास्त्रकारोंका "नाना मुनिका नाना मत" है तथा नव्य स्मृति-संग्राहकगण भी उन मतोंका ठीक ठीक सामञ्जस्य न कर सके हैं। उस प्राचीन और नव्य स्मृतिकारोंका समयोचित मत-सामञ्जस्य न कर सकनेसे धर्मानुष्ठान करना कठिन काम है तथा इसीलिये धर्माचरणके सम्बन्धमें समाजमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई है। हिन्दू समाज जब तक धर्मशासनसे शासित नहीं होगा, तब तक धर्मरक्षाका उपाय नहीं, समझ कर स्मार्त्तवीर रघुनन्दनने समाजबन्धनको दृढ़ करनेके लिये धर्मशास्त्रकी नई टीका बनानेका सङ्कल्प किया।

स्मृतिसंग्रह करनेमें प्रवृत्त होते ही वे पहले मलमासतत्त्व संग्रह करने लग गये। इस ग्रन्थके प्रारम्भमें इन्होंने स्वरचित तत्त्वग्रन्थोंकी जो एक तालिका दी है, वह इस प्रकार है,—

"मलिम्लुचे दायभागे संस्कारे शुद्धिनिर्णये।
प्रायश्चित्ते विवाहे च तिथौ जन्माष्टमीव्रते॥
दुर्गोत्सवे व्यवहृतावेकादश्यादिनिर्णये।
तड़ागभवनोत्सर्गे वृषोत्सर्गव्रये व्रते॥
प्रतिष्ठायां परीक्षायां ज्योतिषे वास्तुयागके।
दीक्षायामाह्निके कृत्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे॥
सामश्राद्धे यजुःश्राद्धे शूद्रकृत्यविचारणे।
इत्यष्टाविंशतिस्थाने तत्त्वं वक्ष्यामि यत्नतः॥"*

रघुनन्दनने स्वकृत स्मृतितत्त्वको इस प्रकार २८ अंशोंमें विभक्त कर २८ वर्ष घोर परिश्रमके बाद इसे समाप्त किया। इस दीर्घकालमें उन्होंने केवल शास्त्र-ग्रन्थ पढ़ कर ही अपने मतको स्थापन किया था, सो नहीं। मिथिला, काशी आदि नाना स्थानोंमें घूम कर तथा उन देशोंके लोगोंका आचार-व्यवहार देख सुन कर वे अपना मत संस्थापन कर गये हैं। किन्तु बङ्गालको छोड़ कर भारतमें और कहीं भी रघुनन्दनका मत प्रचलित नहीं देखा जाता है।

इन अट्ठाईस स्मृतितत्त्वोंमें हिन्दूके जन्मसे मृत्यु पर्यन्त सभी कर्त्तव्य लिपिबद्ध हैं। उक्त ग्रन्थके सङ्कलनके समय परस्पर विरुद्ध मतोंकी एकवाक्यता निरूपण करनेके लिये उन्होंने श्रुति, स्मृति, पुराण, तन्त्रादि अध्ययन कर उन विषयोंका प्रमाण उद्धृत किया है। उन्होंने अपनी असामान्य बुद्धिमत्ता, मीमांसकता, सारग्राहिता और दूरदर्शिताके बलसे किसी किसी प्राचीन ग्रन्थका मत खण्डन करके अपने मतकी प्रतिष्ठा की है तथा ग्रन्थविशेषकी सहायतासे श्रुति और स्मृतिकी और प्रकारसे व्याख्या करके विरोधभञ्जन-पूर्वक प्राचीन धर्मशास्त्रकी विधियोंको अखण्डनीय और बलवत् रखनेको प्रयत्न किया है। पर हां, उन्होंने समयोपयोगी बनानेके लिये अपने ग्रन्थमें स्वकपोलकल्पित युक्तियोंको स्थान नहीं दिया है, ऐसा भी नहीं कह सकते।

पारिभद्रीय जीमूतवाहनने दायभागके सम्बन्धमें जैसा भूयोदर्शन और व्युत्पत्तिका परिचय दिया है, रघुनन्दनने भी आचार-सम्बन्धमें उससे बढ़ कर क्षमता दिखलाई है। वर्त्तमान समयमें बङ्गालके लोग रघुनन्दनके ग्रन्थके अधिकारी न होनेसे कोई भी स्मार्त्त नामसे प्रसिद्धलाभ न कर सके हैं। किस प्रकार साक्षीकी परीक्षा करनी होती है, किस प्रकार उसका विचार

* १ मलमास, २ दायभाग, ३ संस्कार, ४ शुद्धि, ५ प्रायश्चित्त, ६ विवाह, ७ तिथि, ८ जन्माष्टमी, ९ दुर्गोत्सव, १० व्यवहार, ११ एकादशी, १२ जलाशयादुत्सर्ग, १३ ऋग्वेदीय वृषोत्सर्ग, १४ यजुर्वेदीय वृषोत्सर्ग, १५ सामवेदीय वृषोत्सर्ग, १६ व्रत, १७ देवप्रतिष्ठा, १८ दिव्य, १९ ज्योतिष, २० वास्तुयाग, २१ दीक्षा, २२ आह्निक, २३ कृत्य, २४ मठप्रतिष्ठा, २५ पुरुषोत्तमक्षेत्र, २६ छन्दोग श्राद्ध, २७ यजुर्वेदीय श्राद्ध, २८ शूद्रकृत्यविचार।

करना होता है तथा अन्यान्य कर्मचारीके प्रति कैसा व्यवहार करना उचित है, व्यवहारतत्त्वमें वे इसकी अच्छी तरह आलोचना कर गये हैं।

रघुनन्दनके ग्रन्थमें उस समयके प्रचलित आचार-व्यवहारमें बहुत परिवर्त्तन देख नवद्वीप और अन्यान्य स्थानोंके अध्यापक उनके मतका प्रतिवाद करने लगे। किन्तु इन्होंने ऐसी दृढ़ता और सुयुक्तिके साथ आत्म-पक्षका समर्थन किया था, कि उसके विरोधियोंको आखिर अपनी हार कबूल कर रघुनन्दनका मत स्वीकार करना पड़ा था।

इस शास्त्रीय विचारमें जयलाभ करनेके बाद रघुनन्दनका यश चारों ओर फैल गया तथा दिनों दिन नाना स्थानोंसे छात्रगण उनके टोलमें पढ़नेके लिये आने लगे। रघुनन्दनकी सुशिक्षासे छात्रवृन्दकी भी गुरु-भक्ति अचल हो गई थी। वे छात्र भी जब आगे चल कर स्वयं अध्यापक होते, तब अध्यापकके प्रति अचला भक्तिवशतः गुरुके ग्रन्थसे अपनी अपनी छात्रमण्डलीको शिक्षा देते थे। इस प्रकार थोड़े ही समयमें उनका स्मृतिग्रन्थ बङ्गालमें चारों ओर फैल गया। जिन सब प्राचीन स्मृतिकारोंके ग्रन्थसे उन्होंने ग्रन्थसङ्कलन किया था, उनके ग्रन्थका अध्ययन वा अध्यापना बिलकुल विलुप्त हो गई।

पहले ही लिख आये हैं, कि रघुनन्दनका स्मृतिग्रन्थ प्रचलित होनेके बाद प्राचीन रीति-नीतिमें बहुत परिवर्त्तन हो गया। हिन्दूशास्त्रके मतसे ब्राह्मणोंके लिये सिद्ध चावल, मछली और मसूरकी दाल खाना निषिद्ध था। मुसलमानी अमलमें कितने ही ब्राह्मण सिद्ध चावल, मसूरकी दाल आदि छिपके खाने लगे थे। रघुनन्दनने सामयिक व्यवहार देख कर निषिद्ध द्रव्य भक्षणकी व्यवस्था कर दी थी। तिथितत्त्वमें इन्होंने आर्य ऋषियोंकी प्रणोदित तिथिविशेषमें निषिद्ध आहार्य वस्तुकी सम्यक् आलोचना की। फलतः इन्हींका नियम समाजमें विशेष रूपसे प्रचलित होने लगा। प्राचीन मतानुसार एकादशी-तिथि-परिमित काल उपवासी रहनेसे एकादशीका फल होता था। किन्तु इन्होंने एकादशीके सम्बन्धमें एक दिन उपवासका नियम निकाला। असुस्थ, रुग्न अथवा शैशवावस्थाके कारण विधवा यदि एकादशीमें उपवास न कर सकती, तो वे अन्यान्य शास्त्रानुसार अनुकल्प कर सकती थीं, किन्तु रघुनन्दनने शास्त्रीय प्रमाण दिखलाते हुए, इसे निषेध कर दिया है।

ब्राह्मण कुलीनोंके मध्य मेल प्रचलित होनेके सौ वर्षके भीतर वंशज-चूड़ामणि स्मार्त्त रघुनन्दन आविर्भूत हुए थे। वे राढ़ीय समाजकी अवस्था देख कर बड़े दुःखित हुए तथा उच्च-सम्मानप्राप्त कुलीन ब्राह्मण समाजमें शास्त्रबहिर्भूत आचार-व्यवहार, विधर्मीका अनुकरण, सनातन धर्ममें अविश्वास, परश्रीकातरता, परस्पर विद्वेषिता, मूर्खकी प्रधानता, पण्डितके प्रति असम्मान आदि व्यभिचार देख उन्होंने इसके प्रतिविधानके लिये ही प्रधानतः 'स्मृतितत्त्व' प्रचार करनेका संकल्प किया।

मेलबन्धनके कारण पात्राभावप्रयुक्त कुलीन कन्याओंका विवाह कहीं बंद न हो जाय इस भयसे जब श्रीनाथाचार्य आदि कुलीन व्यक्तियोंने शास्त्रीय वचनको उद्धृत कर वयस्था कन्याका विवाह और बहु-विवाहका समर्थन किया, तब अनाचार-विरोधित वंशज-समाजके मुखपात्र रघनन्दनने अपने 'उद्वाहतत्त्व'में उनलोगोंके मतको अशास्त्रीय बतलाते हुए खण्डन किया था।

प्रवाद है, कि रघुनन्दन स्मृतितत्त्व निकालनेके बाद ही पितृपुरुषोंका श्राद्ध करनेके लिये गया-धाम गये। पिण्डदानको इच्छासे जब वे मन्दिर घुसने लगे तब पंडा लोगोंने उनसे असम्भव मूल्य मांगा। इस पर वे गुस्सा कर चले आये और एक कोस तक गयाक्षेत्र का परिमाण निर्देश करके एक मैदानमें पिण्डदान करने तैयार हो गये। पीछे पंडा लोगों को जब मालूम हुआ, कि ये नवद्वीपके स्मार्त्त भट्टाचार्य हैं, तब वे उन्हें बड़ी बिनतीसे श्रीमन्दिर ले गये और श्राद्धादि कराये। गयालियोंको रघुनन्दनकी क्षमताका हाल मालूम था। बाहरमें पिण्डदान करनेसे सभी बङ्गवासी उनका पदानुसरण करेंगे, जिससे उनके स्वार्थमें धक्का पहुंचेगा, यह जान कर वे लोग उन्हें प्रसन्न करने लगे।

उनके स्मृतिसंग्रहकी सभी व्यवस्था प्रायः बङ्गदेशमें प्रचलित हुई है, केवल संस्कारतत्त्वकी उपनयन-विधि प्रचलित नहीं है। आज भी बङ्गवासी ब्राह्मणोंके प्राचीन मतानुसार ही उपनयन हुआ करता है।

अट्ठाईस स्मृतितत्त्वके अलावा ये रासयात्रापद्धति, सङ्कल्पचन्द्रिका, त्रिपुष्करशान्ति, प्रमाणतत्त्व, जीमूतवाहन कृत दायभागकी टीका और द्वादशयात्रा नामक और भी कितने ग्रंथ लिख गये हैं। उन सब ग्रन्थोंमें इन्होंने असाधारण पाण्डित्य, विचारशक्ति, प्रगाढ़युक्ति और सूक्ष्मदर्शिताका अच्छा परिचय दिया है। इस प्रकार विद्याबुद्धिसम्पन्न होते हुए भी अहङ्कार उनमें लेशमात्र भी न था। उनके लिखे मलमासतत्त्वके अन्तिम श्लोकसे उनका यथेष्ट आभास पाया जाता है—

"विरुद्धं गुरुवाक्यस्य यदत्र भाषितं मया।
तत्क्षन्तव्यं बुधैरेव स्मृतितत्त्वं बुभुत्सया॥"

इस प्रकार रघुनन्दन आजीवन शास्त्रालोचनामें व्यापृत रह कर प्रायः सत्तर वर्षकी उमरमें पञ्चत्वको प्राप्त हुए।* कुछ दिन हुआ, उनका वंश लोप हो गया है। राढ़ीय कुलपञ्जिकामें रघुनन्दनके पुत्र रमापति सिद्धान्त, रमापतिके पुत्र रामनाथ भट्टाचार्य और रामनाथके पुत्र गोपीनाथ चक्रवर्त्तीके नाम पाये जाते हैं। रघुनन्दनके अट्ठाईस तत्त्वोंकी दो टीका हैं, उनमें एक काशीराम वाचस्पतिकी और दूसरी शान्तिपुरनिवासी अद्वैतवंशीय राधामोहन गोस्वामीकी बनाई हुई है।

रघुनाथ (सं० पु०) रघूनां नाथः क्षुभ्नादित्वात् णत्वाभावः। श्रीरामचन्द्र।

रघुनाथ—बंगालका एक मशहूर डकैतोंका सरदार। इसकी भीमवीर्यकी कथा बंगालियोंके हृदयमें जाग्रत है। बालक दुर्द्धर्ष होनेसे जनता इसे राघो डकैत कहा करती थी। कलकत्ताके उत्तर काशीपुरमें जो बारह शिवमन्दिर है उसे राघोने बनाया था, ऐसा प्रवाद है।

रघुनाथ—१ आग्रयणेष्टिप्रयोगके रचयिता। २ आधानपद्धति, दशश्राद्धपद्धति और श्राद्धपद्धतिके प्रणेता। ३ अशौचनिर्णयके रचयिता। ४ केशवार्ककृत जातकपद्धतिकी टीकाके प्रणेता। ५ खण्डनभूषामणि नामक वेदान्तग्रंथके रचयिता। ६ खण्डप्रशस्तिटीकाके प्रणेता। यह नारायणके भतीजा थे। ७ खेटतरङ्गिणी नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ८ गयाकृत्य वा गयानुष्ठानपद्धति नामक ग्रन्थके प्रणेता। ९ जातिविवेकके प्रणेता। १० ज्योतिर्निर्णयके रचयिता। ११ त्र्यम्बकीके टीकाकार। १२ द्रव्यशुद्धिके प्रणेता। १३ धर्मसेतुके प्रणेता। १४ पुरुषोत्तमसहस्रनाम नामक ग्रंथको नामचन्द्रिकाके टीकाकार। १५ पूर्णमालाके रचयिता। १६ प्रायश्चित्तकुतूहलके प्रणेता। १७ ब्रह्मबोध और ब्रह्मावबोध नामक दो ग्रंथके रचयिता। १८ भक्तिमीमांसासूत्र और भक्तिसंन्यासनिर्णयविवरणके प्रणेता। १९ भरतशास्त्र नामक अलङ्कारग्रंथके रचयिता। २० भावरत्नसमुच्चय नामक ज्योतिर्ग्रन्थके सङ्कलयिता। २१ यतिधर्मसमुच्चय और यत्यन्तकर्मपद्धति नामक दो ग्रन्थके प्रणेता। २२ वैद्यविलासके रचयिता। २३ शाङ्खायनगृह्यसूत्रार्थदर्पणके रचयिता। २४ श्रीपतिटीका नामक ज्योतिर्विषयक ग्रन्थके प्रणेता। २५ सरस्वतीसूत्रलघुभाष्य नामक व्याकरणके प्रणेता। २६ सुखबोध और सुबोधमञ्जरी नाम्नी ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। २७ हिल्लाजटीकाके प्रणेता। २८ धर्मामृतमहोदधि नामक ग्रन्थके रचयिता तथा अनन्तदेवके पुत्र। २९ एक कवि तथा जयरामके पुत्र। इन्होंने १५६४ ई०में रसिकरमणकाव्य बनाया। ३० प्रयोगतत्त्वके प्रणेता। इनके पिताका नाम था भानुजी। ३१ जातककल्लोल या कल्लोलजातक नामक ग्रन्थके प्रणेता और लक्ष्मणके पुत्र। राजपूतानामें ये रघुनन्दन नामसे भी परिचित थे। ३२ शाङ्खायनीय मैत्रावरुणप्रयोगके रचयिता। ये १५९९ ई०में जीवित थे। इनके पिताका नाम लक्ष्मीधर तथा पितामहका नाम गोवर्द्धन था। ३३ विट्ठल दीक्षितके पुत्र। ये पद्य नामक एक ग्रन्थ बना गये हैं। ३४ मुहूर्त्तमालाके रचयिता। इनके पिताका नाम था सरस। चित्तपावन ब्राह्मणवंशमें इनका जन्म हुआ था। ३५ पद्यावलीधृत एक कवि।

रघुनाथ आचार्य—१ सत्यनिधितीर्थ (मृत्यु १६६१ ई०में) तथा सत्यनाथ तीर्थ (मृत्यु १६७४ ई०में)-के सन्न्यासाश्रमग्रहणका पूर्व नाम। २ श्रीराघवीय काव्य और सुभद्रापरिमाण नाटकके प्रणेता। ३ मुहूर्त्तसर्वस्वके रचयिता। ४ यादवराघवीयके प्रणेता।

रघुनाथ उपाध्याय—कवीन्द्र-चन्द्रोदयधृत एक कवि।

* बङ्गेर जातीय इतिहास ब्राह्मणकाण्ड १म भागके २६५ पृष्ठमें वंशावली देखो।

रघुनाथ कवि—१ भागवतचम्पूके प्रणेता। २ संस्कृत-मञ्जरी नामक व्याकरणके रचयिता।

रघुनाथ कवि—काशीके रहनेवाले एक बन्दीजन और भाषाके कवि। इनका जन्म १८०२ सम्वत्‌में हुआ था। ये बरिबंडा-नरेशके दरबारी कवि थे। इनकी गणना भाषा साहित्यके आचार्यों में होती है। इनके बनाये ग्रन्थ बड़े मनोहर हैं, वे ये हैं—रसिकमोहन, जगमोहन, काव्य कलाधर, इश्कमहोत्सव।

रघुनाथ कवि—रघुनाथ इनका छाप नाम था। इनका नाम पंडित शिवदीन था। ये रसूलाबादके रहनेवाले ब्राह्मण थे। इनके बनाये भाषामहिम्न आदि कई छोटे छोटे ग्रन्थ हैं।

रघुनाथ कवि—कवीश्वर राजा अमरसिंह जोधपुरके दरबारी। इनका जन्म सम्वत् १६२५ में हुआ था। इनका पूरा नाम था रघुनाथ राय।

रघुनाथ कवि—अयोध्यामें रहनेवाले एक भक्त कवि। इनका पूरा नाम था महन्त रघुनाथ दास। ये ब्राह्मण थे और पैंतेपुर जिला सीतापुरके निवासी थे। तदनन्तर संसारसे चित्त उपराम होनेके कारण अयोध्याओमें रहने लगे। इन्होंने रामचंद्रकी स्तुतिमें अनेक कवित्त दोहे बनाये हैं।

रघुनाथगञ्ज—मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत एक नगर और प्रधान वाणिज्य-स्थान।

रघुनाथ चक्रवर्त्ती—बङ्गालके एक अद्वितीय शाब्दिक और अमरकोषके टीकाकार। बङ्गालके पाश्चात्यवैदिककुलमें आकोड़ाके शाण्डिल्यवंशमें इनका जन्म हुआ था। महादेवशाण्डिल्यके सम्बन्धतत्त्वार्णव और लक्ष्मीकान्त वाचस्पतिकी सद्वैदिक-कुलपञ्जिकासे मालूम होता है, कि रघुनाथके वृद्ध पितामह रामानन्द हाजीके भयसे आकोड़ा-समाजका परित्याग कर सामन्तसारमें आ कर बस गये। उनके पुत्र गङ्गानन्द और गङ्गानन्दके पुत्र रतिनाथ थे। रतिनाथने सामन्तसारके शौनक-समाजदारवंशमें विवाह किया था। रतिनाथके पुत्र गौरीकान्त थे। गौरालीय वशिष्ठ प्रसिद्ध पण्डित श्रीकृष्ण-वेदभूषणकी कन्याके साथ गौरीकान्तका विवाह हुआ। उन्हींके गर्भसे रामनाथ और प्रसिद्ध शाब्दिक रघुनाथ उत्पन्न हुए। सामन्तसारमें ही रघुनाथका जन्म हुआ था, इस कारण उन्होंने अपनी टीकामें "सामन्तसारनिलयः" कह कर अपना परिचय दिया है। पिताकी आज्ञासे इन्होंने अप्साके कृष्णात्रेय गोत्रीय गोपालकी कन्यासे ब्याह किया था। उस स्त्रीके गर्भसे इनके रामकृष्ण और रामचन्द्र नामक दो पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई। रघुनाथका दूसरा विवाह कोटालीपाड़के सुविख्यात शुनकवंशमें हुआ था।

इदिलपुरके कायस्थ जमींदार श्रीवल्लभराय चौधरीके उत्साहसे रघुनाथने 'त्रिकाण्डचिन्तामणि' नामक अमरकोषकी टीका लिखी। इसके सिवा उनका प्रतिष्ठित गोपालविग्रह है। उनके वंशधर आज भी उनकी सेवा करते आ रहे हैं। रघुनाथके सामन्तसारकी वासभूमि जलमग्न हो जानेसे उनके पुत्र रामचन्द्र इदिलपुरमें चले आये। इदिलपुरके अन्तर्गत आमतली और तुलासारमें आज भी उनके वंशधर रहते हैं। रघुनाथने धानुकाके कृष्णात्रेय बलराम वाचस्पतिसे दीक्षा ली थी। धानुकाग्रामस्थ देव-मन्दिरमें उत्कीर्ण शिलालिपिसे जाना जाता है, कि १६७५ शकाब्दमें बलराम वाचस्पतिने पिताकी मुक्तिकामनासे पार्वती सहित काशीश्वरमूर्त्ति स्थापित की। अतएव बलरामके मन्त्रशिष्य रघुनाथका उस समय जीवित रहना सम्भव है।

रघुनाथ चक्रवर्त्ती—श्रीधरकृत वेदस्तुति टीकाके टिप्पनीकार।

रघुनाथ तर्कवागीश—एक असाधारण तान्त्रिक, आगमतत्त्वविलास नामक तन्त्रग्रन्थके रचयिता।

रघुनाथ तर्कवागीश भट्टाचार्य—सांख्यतत्त्वविलासके रचयिता। ये शिवराम चक्रवर्त्तीके पुत्र और चन्द्रचन्द्रके पौत्र।

रघुनाथ तिरुमल सेतुपति—दाक्षिणात्यके एक हिन्दू नरपति।

रघुनाथतीर्थ—एक विख्यात पण्डित और संन्यासी। इनका पूर्व नाम कृष्णशास्त्री था। विद्यानिधितीर्थकी मृत्युके बाद इन्हें राजगद्दी मिली थी। १४४३ ई०में इनकी जीवनलीला शेष हुई।

रघुनाथदत्त—एक शीतलामङ्गलपालाके रचयिता।

रघुनाथदास—काशीमाहात्म्यकौमुदीके प्रणेता। रूप-गोस्वामीकृत दानकेलिकौमुदीकी एक टीका और सारा-स्सारतत्त्वसंग्रह नामक दूसरे एक ग्रन्थके प्रणेता।

रघुनाथदास गोस्वामी देखो।

रघुनाथदास—ये महाशय रामानुज सम्प्रदायके महन्त थे। इस सम्प्रदायके महन्त गोविन्दराम अग्रदासके द्वारमें हुए। इन्होंने संवत् १६११ अब्दमें विश्राम-सागर नामक एक वृहत् ग्रंथ बनाया। इनके शिष्य सन्तराम, कृपाराम, रामचरण, रामजन्म, कान्हर और हरिराम थे। रघुनाथदासके गुरु देवदासजी इन्हीं महात्मा हरिरामजीके शिष्य थे। इन्होंने फकीर होनेके अतिरिक्त अपने कुल-गोत्र आदिका कुछ ब्योरा नहीं लिखा है। ये सब महात्मा अयोध्यामें बड़े महन्त थे। अयोध्यामें रामघाटके रास्ते पर रामनिवास नामक एक स्थान है। उसी पर ये लोग रहते थे और उसी स्थान पर इस महात्माने यह ग्रंथ बनाना आरम्भ किया। रघुनाथदासने बन्दनामें गोस्वामी तुलसीदासका अनुकरण किया है। यहां तक, कि कई जगह गोस्वामीजीके भाव भी विश्रामसागरमें आ गये हैं। इस ग्रंथके पढ़नेसे ज्ञात पड़ता है, कि रघुनाथदासजी पूरे भक्त थे और उन्होंने भक्तोंके विनोदार्थ यह ग्रन्थ बनाया था। इसकी रचना व्रजविलास और रामाश्वमेधके समान है। इस महात्माने संस्कृतके ग्रन्थोंकी बहुत-सी कथाएं लिखी हैं और कुछ श्लोक भी बनाये हैं। इससे विदित होता है, कि ये संस्कृतके जाननेवाले थे। इनकी भाषा गो-स्वामी तुलसीदासकी भाषासे मिलती जुलती है और उत्तमतामें व्रजविलासके समान है। इनके वर्णन साधारण उत्तमताके हैं।

रघुनाथदास गोस्वामी—एक प्रसिद्ध भक्त वैष्णव। हुगली जिलेके अन्तर्गत सप्तग्रामके निकट हरिपुर नामक एक स्थान है। प्रायः चार सौ वर्ष पहले यह हरिपुर एक समृद्धिशाली ग्राममें गिना जाता था। हिरण्य और गोवर्द्धन नामक दो भाई वहां रहते थे। बीस लाख रुपयेके अधिकारी हिरण्य और गोवर्द्धनका प्रसिद्ध सप्तग्राममें अच्छा सम्मान था। जातिके वे कायस्थ थे। मजुमदार उनकी उपाधि थी।

इन दोनों भाइयोंमें छोटे गोवर्द्धनके ही पुत्रका नाम रघुनाथदास था। रघुनाथकी प्रकृति बहुत विचित्र थी। बचपनसे ही वे संसारविरागीकी तरह रहा करते थे। जब हरिदास ठाकुर कुछ दिनके लिये हरिपुरके समीप चांदपुर जाते थे, तब रघुनाथ उनकी सेवा-टहल किया करते थे। इस समय रघुनाथने पुरोहित बलराम आचार्यके घर रह कर लिखना पढ़ना आरम्भ कर दिया। इसी समय महाप्रभु चैतन्यका नाम उनके कर्णगोचर हुआ। रघुने गौराङ्गका नाम सुनते ही उनके चरणोंमें आत्म-समर्पण कर दिया। उस समय उनका धैर्य अन्तर्हित हो गया; वे शास्त्रालोचना, सांसारिक सुख, यहां तक, कि आहारनिद्राका परित्याग कर गौराङ्गप्रभुके दर्शनलाभका उपाय ढूंढ़ने लगे। उन्होंने अकेले भाग कर गौराङ्गके समीप जानेकी चेष्टा की। रघुनाथके पिताको पुत्रके ऐसे आचरण पर बहुत डर हो गया और कहीं वे भाग न जांय, इस अभिप्रायसे उन्होंने पांच पहरूदार और समझाने बुझानेके लिये दो ब्राह्मण नियुक्त कर दिया। केवल यही नहीं, संसारमें आबद्ध करनेके लिये उसी थोड़ी उमर (१७ वर्ष) में एक उन्मुख-यौवना सुन्दरी बालिकाके साथ इनका विवाह कर दिया। किन्तु इससे कुछ भी फल न निकला। जिस प्रेमके प्रबल आकर्षणसे व्रज-गोपियां पति-पुत्रका परित्याग कर पागलकी तरह कृष्णके पीछे रेतीली भूमिमें छूटती थीं, रघुनाथ उस प्रेमके आकर्षणको छिन्न न कर सके। एक दिन रातको उनके गुरु यदुनन्दनाचार्यने जब उन्हें किसी काममें बाहर भेजा, तब वे गुरुकी आज्ञा पालन कर ऊर्द्ध्वश्वास लेते हुए नीलाचलकी ओर चल दिये। आहारनिद्राका परित्याग कर बारह दिनमें वे नीलाचल पर प्रभुके साथ मिले।

रघुनाथके साथ महाप्रभुने सदय व्यवहार किया। उन्होंने रघुनाथको अपने "द्वितीय स्वरूप" स्वरूप दामोदरके हाथ समर्पण किया। चैतन्यचरितामृतमें लिखा है, कि रघुनाथका वैराग्य अतुलनीय था।

रघुनाथ सोलह वर्ष तक नीलाचल पर महाप्रभुकी सेवा करते रहे। महाप्रभुके अन्तर्द्धानके बाद वे वृन्दावन गये। चरितामृतमें लिखा है, कि वृन्दावनमें रहते समय वे कभी

भी अन्न नहीं खाते, दिनमें केवल दो तीन पल मट्ठा पी कर रहते थे। रात-दिन वे राधाकृष्णकी चिन्तामें विभोर रहते थे।

महाप्रभुने प्रसन्न हो कर रघुनाथको एक गुञ्जा-माला और एक गोवर्द्धन-शिला दी थी। रघुनाथ उसीकी सेवा किया करते थे।

रघुनाथ पहले गोवर्द्धनके समीप और पीछे राधा कुण्डके निकट रहते थे। इस राधाकुण्ड और श्याम-कुण्डका उद्धार हो रघुनाथकी एक कीर्त्ति है। उक्त विलुप्त दोनों तीर्थोंका यदि उद्धार न होता तो वैष्णवोंके विषादकी सीमा न रहती।

यहां रहते समय रघुनाथने अपने अपूर्व संस्कृत-स्तवमाला ग्रन्थ (स्तवावलीग्रंथ), संस्कृत दानचरित और मुक्ताचरित ग्रन्थोंकी रचना की। यहीं पर रहते हुए वे बङ्गभाषामें कुछ पद लिख कर बङ्गभाषाका गौरव बढ़ा गये हैं।

वृन्दावनमें श्रीरूपादिके अन्तर्द्धान पर रघुनाथ बड़े व्यथित हुए। उस समय उन्हें चारों ओर सूना दिखाई देता था। उन्होंने लिखा भी है—

"शून्यायते महागोष्ठं गिरीन्द्रोऽजगरायते।
व्याघ्रतुण्डायते कुण्डं जीवातुरहितस्य मे॥" इत्यादि

रघुनाथ शैशवावस्थामें नीलाचल पर आये थे। उनका नीलाचल-जीवन तैलहीन प्रदीपके जैसा था—मनमें जरा भी प्रसन्नता न थी। वहां आश्विनी शुक्लाद्वादशी-तिथिको इनका प्राणान्त हुआ।

रघुनाथदास गोस्वामी—गुणलेशसुखद, मनःशिक्षा और सुरावली नामक ग्रन्थके प्रणेता।

रघुनाथ दीक्षित—१ आश्वलायनगृह्यकारिकाके रचयिता। २ कवीन्द्रचन्द्रोदयोद्धृत एक कवि।

रघुनाथ पण्डित—कृष्णप्रेमतरंगिणी नामक भागवतके अनुवादक। इनकी उपाधि भागवताचार्य थी। ये गदाधर पण्डितके शिष्य थे। १६वीं सदीके पहले इन्होंने भागवतका बङ्गानुवाद प्रचार किया। १५७६ ई०में विरचित कविकर्णपूरकी गौरगणोद्देशदीपिकामें इस पुस्तकका उल्लेख है। अनुवाद प्रायः २० हजार श्लोकोंसे पूर्ण है।

रघुनाथ पण्डित—राजकोषनिघण्टु या राजव्यवहारकोष नामक अभिधानके प्रणेता। इनके पिताका नाम था नारायण। ये महाराष्ट्र-केशरी शिवाजीके (१६६४-८० ई०) एक प्रधान मन्त्री थे।

रघुनाथपुर—मानभूम जिलान्तर्गत एक महकमा। गौराङ्ग-डोहीसे ८ मील पश्चिम रघुनाथपुरके जंगलोंसे समावृत गण्डशैलमाला दिखाई पड़ती है। वह समुद्रपृष्ठसे एक हजार फुट ऊंची है। उसकी तीन चोटी ऐसी सीधी खड़ी है, कि इस पर सहजमें चढ़ना कठिन है।

रघुनाथपुर—बंगालके चौबीस परगनेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव।

रघुनाथपुरम्—मद्रासप्रदेशके गंजाम जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १९° ४३′ ४०″ उ० तथा देशा० ८४° ५१′ पू० तक विस्तृत है।

रघुनाथ प्रसाद—ये चरखारीके रहनेवाले थे। इनका जन्म संवत् ११०४में हुआ था। इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थ बनाये,—शृङ्गारचन्द्रिका, षट्ऋतुदर्पण, काव्यसुधाकर, रसिकवशीकर, संगीतसुधानिधि, मोदमहोदधि, दुर्गाभक्तिप्रकाश, मनमौजप्रकाश, शांतिपचासा, राधिकानखशिख, रसिकमनोहर, राधाकृष्णपचासा। इनकी मृत्यु संवत् १९४८में हुई।

रघुनाथ प्रसाद—साधारण श्रेणीके एक ग्रन्थ-रचयिता। ये जौनपुरके रहनेवाले थे। इनका जन्म १९०१ संवत्में हुआ था। इन्होंने निर्णयमंजरी नामक ग्रन्थ लिखा।

रघुनाथ भट्ट—१ स्मृतिरत्न नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ याज्ञवल्क्यस्मृतिटीकाके रचयिता। ३ मणिप्रदीप नामक ज्योतिर्ग्रन्थके सङ्कलयिता। ४ गोविन्दलीलामृत नामक ग्रंथका बनानेवाला। ५ गोत्रप्रवरनिर्णयके रचयिता।

रघुनाथभट्ट गुर्जर—एक कवि। कवीन्द्रचन्द्रोदयसे इनका पता चलता है।

रघुनाथभट्ट गोस्वामी—श्रीगौराङ्ग प्रवर्त्तित छः गोस्वामीमेंसे एक। वैष्णवसमाजमें ये सभी 'साधारण गुरु' कहलाते थे। इन्होंने वैष्णवधर्मका प्रचार करनेके लिये बहुतसे वैष्णव-ग्रंथ प्रकाशित किये। इन छः गोस्वामीके यत्नसे ही वृन्दावन धामका नाम तमाम फैला तथा चौरासी वनोंका निर्णय हुआ था।

पद्मानदीके तीरवर्त्ती रामपुर ग्राममें तपनमिश्र नामक एक साधु रहते थे। श्रीगौराङ्ग महाप्रभु अपनी पूर्ववङ्गकी यात्रामें तपनमिश्रके साथ मिले। उन्होंने तपनमिश्रको साध्यसाधनतत्त्वकी शिक्षा दी थी। तपनके प्रभुके साथ नवद्वीप आनेकी इच्छा प्रकट करने पर प्रभुने उन्हें वाराणसी जानेका हुकुम दिया और कहा, कि वहीं पर मेरे साथ मुलाकात होगी। तदनुसार तपन स्त्रीके साथ वाराणसी गये। लगभग १४२७ शकमें तपनमिश्रके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, उन्हींका नाम रघुनाथ था। पीछे उन्होंने भट्ट गोस्वामी उपाधिसे वैष्णवसमाजमें प्रतिष्ठा लाभ की थी।

श्रीमहाप्रभुने संन्यास-ग्रहणके बाद जब वृन्दावनकी यात्रा की, तब वे वाराणसीधाममें तपनमिश्रके घर ठहरे और भोजनादि किये थे। तपनके पुत्र रघुनाथ उस समय यथासाध्य महाप्रभुकी सेवा-सुश्रूषा करते थे।

श्रीमहाप्रभुके नीलाचल लौटने पर रघुनाथ भट्ट वहीं आ कर उनसे मिले। नीलाचल पर आठ मास रह कर इन्होंने प्रभुकी सब लीला देखी अर्थात् वैष्णवधर्ममें विशेष अभिज्ञता प्राप्त की।

रघुनाथ पाक कार्यमें सुदक्ष थे; नीलाचलमें वे स्वयं पाक कर श्रीमहाप्रभुको खिलाते थे। रघुनाथके पाक करनेका तरीका वैष्णवग्रन्थादिमें भी लिखा है।

नीलाचलसे रघुनाथने जब काशी जानेकी आज्ञा मांगी, तब प्रभुने उनके प्रति दया दरसाते हुए उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया था, "विवाह न करना, पिता माताकी आज्ञा पालन करना, सदा भागवतका पाठ करना और पुनः एक बार नीलाचलमें मिलना।" इतना कह कर उन्हें माला पहनाई, चौदह हाथ जगन्नाथकी माला दी और पीछे आलिङ्गन कर बिदा किया।

रघुनाथने काशी लौट कर प्रभुके आदेशानुसार विवाह नहीं किया। कौमार्य-व्रतका अवलम्बन कर वे काशीक्षेत्रमें विविध शास्त्रका अध्ययन करने लगे। धीरे धीरे वे एक सुपण्डित हो गये थे। पिता-माताके स्वर्गवासी होने पर रघुनाथ वृन्दावन आये। श्रीरूप और सनातनके [illegible]का परिचय हो गया।

रूपगोस्वामी और सनातन देखो।

वे श्रीरूपकी सभामें भागवत पाठ करते थे। उस समय इनके जैसा पाठक और कोई भी न था। भक्तिरत्नाकरमें इसका पूरा विवरण दिया है।

भट्ट रघुनाथका बनाया हुआ कोई भी ग्रन्थ देखनेमें नहीं आता। किसी किसीने पूर्ववङ्गमें महाप्रभुकी लीलाके संबंधमें उनके बनाये हुए एक ग्रन्थका उल्लेख किया है। भट्टगोस्वामी वृन्दावनधाममें १५०१ शककी आश्विनी शुक्लद्वादशीको स्वर्गधाम सिधारे।

रघुनाथ भूपाल—अश्वमेधपर्व-संग्रह नामक ग्रन्थके सङ्कलयिता।

रघुनाथ मस्करी—दुर्गामाहात्म्यकी टीकाके प्रणेता।

रघुनाथ मिश्र—सारसंग्रह नामक वैद्यकग्रन्थके रचयिता।

रघुनाथ मिश्र—टोडरप्रकाशके प्रणेता।

रघुनाथ यति—१ भगवन्नामकौमुदीके प्रणेता तथा लक्ष्मीधराचार्यके गुरु। २ पूजाविधिके प्रणेता।

रघुनाथ यतीन्द्र—तत्त्वसार नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणयनकर्त्ता।

रघुनाथ याज्ञिक—अच्छावाकप्रयोग और द्वादशाहमैत्रावरुणप्रयोगके प्रणेता। इनके पिताका नाम था अयाचित रुद्रभट्ट।

रघुनाथ राय (दीवान)—एक सङ्गीतविशारद, वर्द्धमानके च्यूपोग्राम निवासी ब्रजकिशोर राय दीवानके पुत्र। ये अच्छी अच्छी कविता बनाते थे। वर्द्धमानाधिपति राजा तेजश्चन्द्र बहादुरके आदेशसे इन्होंने दिल्लीके प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञोंसे खेयाल और ध्रुपद सीखा था। इनके रचित श्यामाविषयक गीत कमलाकान्त भट्टाचार्य और रामदुलार राय-प्रणीत गानोंके जैसे हैं।

रघुनाथ राय (राजा)—आरड़ा ब्राह्मणभूमिके एक राज्योपधारी जमींदार। इनके पिताका नाम बांकुड़ा राय था। चण्डीकाव्यके प्रणेता विख्यात मुकुन्दराम चक्रवर्त्तीने इनका आश्रय लाभ किया था। पहले वे राजपरिवारके छोटे छोटे लड़कोंके शिक्षकरूपमें नियुक्त हुए। यहींके अन्नजलसे पुष्ट कर इन्होंने चण्डीकाव्य प्रणयन किया था। कविकङ्कण देखो।

रघुनाथ राव—एक मराठा-सरदार। लोग इन्हें राघोबा या राघव कहा करते थे। इनके पिताका नाम पेशवा

१म बाजीराव और पुत्रका नाम अन्तिम पेशवा २य बाजीराव था। पेशवा २य मधुराव इनके भतीजे थे।

पेशवा बालाजी रावकी मृत्युके बाद माधवराव और नारायण राव नामक इनके दो पुत्रोंमें सिंहासन ले कर झगड़ा हो गया। दोनों ही नाबालिग थे, इस कारण उनके भाई रघुनाथ राव दोनों पेशवा पुत्रोंके अभिभावक हुए।

१७७२ ई० तक राज्यशासनकी बागडोर माधवरावके हाथ रही। पीछे उनके मरने पर नारायण राव पेशवा-पद पर अभिषिक्त हुए। चचा रघुनाथने बालक नारायण-को सिंहासन परसे उतार कर स्वयं पेशवा बनना चाहा। उनके षड़यन्त्रसे गुप्तघातकके हाथ नारायण राव मारे गये। पेशवा देखो।

नारायण रावकी मृत्युके बाद रघुनाथ पेशवा हुए सही, पर वे अधिक दिन स्थायी न हो सके। उसी समय मालूम हुआ कि नारायण रावकी विधवा पत्नी गर्भवती हैं। मन्त्रियोंने इस बातका ढिंढोरा पिटवा दिया। कोई उपाय न देख रघुनाथ मन्त्रियोंके विरुद्ध बलसंग्रह करने लगे। दोनों पक्षमें लड़ाई छिड़ गई। युद्धमें हार खा कर रघुनाथ सूरत भाग गये। इस घटनासे उनके जीवनकी उन्नतिकी आशा सदाके लिये विलुप्त हो गई। पापिष्ठ रघुनाथ राव अंग्रेजोंके साथ षड़यन्त्रमें मिल कर मराठोंके, विशेषतः हिन्दू-साम्राज्यके स्वाधीनता-मार्गमें कांटा रोप गया है।

रघुनाथवर्मन् विन्दुरायकुलोत्तंस—लौकिक-न्यायरत्नाकर और लौकिक-न्यायसंग्रह नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये गुलाबराय वर्माके पुत्र तथा रामदयालुके छात्र थे।

रघुनाथ शर्मा—प्राकृतानन्दके प्रणेता।

रघुनाथ शास्त्री पार्वतीकर—राघवाचार्यके छात्र। इनका बनाया न्यायरत्न और शङ्करपादभूषण बड़ा आदृत है। अलावा इसके कूटघटितलक्षण, चक्रवर्त्तिलक्षण, द्वितीय-स्वलक्षण, पञ्चवादटीका, प्रगल्भलक्षण, प्रथमस्वलक्षण, मिश्रलक्षण, व्याप्तिपञ्चक, सामान्यनिरुक्ति-द्वितीयलक्षण और सामान्यनिरुक्तिप्रथम लक्षण आदि बहुत-से उनके बनाये बहुत न्यायग्रंथ भी देखनेमे आते हैं। ये कुछ समयके लिये पूनाके विश्वविद्यालयमें अध्यापक थे।

रघुनाथ शाह—मण्डला जिलेके गोण्डवंशीय एक सामन्त राजा। १८५७ ई०के गदरमें मदद करने पर अंग्रेज-सरकारने उन्हें मार डाला और उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली। उक्त घटनाके पन्द्रह वर्ष बाद अंग्रेज सरकार उनकी विधवा-स्त्रीको वार्षिक १२०) रुपये खुराक-के लिये देने लगी।

रघुनाथ शिरोमणि—नवद्वीपवासी एक प्रसिद्ध नैयायिक। १५वीं सदीके शेष भागमें ये नवद्वीपमें प्रादुर्भूत हुए। एक आंखके काने थे, इस कारण लोग इन्हें 'काणभट्ट शिरोमणि' कहा करते थे। अपनी असाधारण प्रतिभाके कारण विद्वत्समाजमें 'तार्किकचूड़ामणिभट्टाचार्य' या शिरोमणि नामसे इनकी प्रसिद्धि थी। दुःखका विषय है, कि मिथिला और नवद्वीपमें प्रचलित कुछ किंवदन्तियों-को छोड़ कर इन असामान्य धीशक्तिसम्पन्न पण्डितोंकी जीवनीसंग्रह करनेका कोई उपाय नहीं।

रघुनाथके जन्मके सम्बन्धमें नवद्वीपवासियोंकी धारणा है, कि नवद्वीपमें ही उनका जन्म हुआ था। किन्तु वैदिक-संवादिनी नामक कुलग्रंथमें इनका जन्म-स्थान श्रीहट्ट बताया है। उक्त ग्रंथमें लिखा है, कि कात्यायन गोत्रीय गोविन्द चक्रवर्त्तीके पुत्र रघुपति-के साथ राजा सुबिदनारायणकी कन्या रत्नावतीका विवाह हुआ। रघुपतिके छोटे भाई ही सुप्रसिद्ध रघु-नाथ शिरोमणि थे। सीतादेवी उनकी माताका नाम था। प्रायः ४५० वर्ष पहले श्रीहट्टके अन्तर्गत पञ्चखण्ड-में उन्होंने जन्मग्रहण किया। इस पञ्चखण्डमें उनके पूर्वपुरुष श्रीधराचार्य मिथिलासे ५३ त्रिपुराब्द (६४२ ई०) में आ कर बस गये थे। इस वंशमें अनेक पण्डितोंने जन्म लिया था। रघुनाथके पिता भी एक सुपण्डित थे। उन्होंने शुद्धिदीपिकाकी 'दीपिका-प्रभा' नाम्नी टीका लिखी है।

रघुनाथके पिताकी सांसारिक अवस्था उतनी अच्छी न थी। उनके मृत्युकालमें रघुनाथ केवल तीन चार वर्षके थे, इस कारण तभीसे पुत्रके भरणपोषणका भार दुःखिनी माताके ही ऊपर रहा। दीनताके कारण उन्हें पेट भर भोजन भी नहीं मिलता था। अतः सहाय और सम्पत्तिहीन सीतादेवी भिक्षावृत्ति द्वारा अपनी जीविका-निर्वाह करने लगी।

कहते हैं, कि प्रायः १३९९ शकाब्दमें जब इनकी उमर सिर्फ पांच वर्षकी थी तभी माताके आदेशसे वे निज ग्रामस्थ शिवराम तर्कासिद्धान्तके टोलमें पढ़नेके लिये जाने लगे। अक्षर पहचानते समय इन्होंने अपने अध्यापकसे दो 'ज', दो 'न', दो 'ब' और तीन 'श' का कारण पूछा था। यहां थोड़े ही समयमें वे व्याकरणादि-शास्त्रमें अच्छे पण्डित हो गये। ग्यारह वर्षकी उमरमें राजा सुविदनारायणके कौशलसे ज्येष्ठ रघुपतिके साथ राजकन्या रत्नावतीका विवाह हुआ। इस विवाहसे उनके ज्ञातिवर्ग बड़े नाराज हुए और सभी उनकी निन्दा करने लगे। ज्ञातिके अपमानजनक वाक्यसे उत्तेजित हो बालक रघुनाथ देशका परित्याग कर नवद्वीप चले आये।

इस समय नवद्वीपका नाम चारों ओर फैला हुआ था। श्रीहट्टके कितने पण्डित नवद्वीप आ कर वास करते थे। सीतादेवीकी इच्छा थी, कि पुत्र नवद्वीप जा कर विद्याध्ययन करे। वे पहले पुत्रके साथ गङ्गास्नानकी कामनासे महमूदाबाद गई। यहां कठिन रोगने उन पर आक्रमण कर दिया। साथमें जो सब गये थे, सभी उसी अवस्थामें उन्हें छोड़ चले आये। आरोग्यलाभके बाद रघुनाथ अपनेको असहाय देख कर एक उदार वणिक्के साथ नवद्वीप आये। यहां आ कर उन्होंने प्रसिद्ध नैयायिक वासुदेव सार्वभौमका आश्रय लिया।

नवद्वीपमें प्रवाद है, कि रघुनाथके पुत्रवियोगके बाद दरिद्रमाता भिक्षावृत्ति द्वारा पुत्रका लालन पालन करती थीं। इस समय वासुदेव सार्वभौमके टोलमें बहुत दूर देशसे छात्रवृन्द न्यायशास्त्र पढ़ने आया करते थे। रघुनाथकी माता कुछ छात्रोंकी सेवा टहल करके बड़े कष्टसे अपनी और पुत्रकी जीवनरक्षा करने बाध्य करती थी।

रघुनाथकी प्रतिभा पांच ही वर्षको उमरसे दिखाई देने लगी थी। जिस कारण वे भविष्यमें एक महापुरुष हो गये थे, उसका पूर्वाभास उनके बाल्यजीवनकी कई जनश्रुतियोंमें दिखाई देता है।

एक दिन रघुनाथ माताके आदेशसे वासुदेव सार्वभौमके टोलमें आग लाने गये। आग ला देनेके लिये टोलमेंके एक छात्रको बार बार तंग करने पर उसने आग ला कर रघुनाथके सामने रख दी। बालक रघुनाथ आग लानेका कोई बरतन नहीं ले गये थे। अब कोई उपाय न देख उन्होंने हथेली पर बालू रख लिया और उसी पर आगको रखना चाहा। इस समय वासुदेव सार्वभौम चतुष्पाठोमें उपस्थित थे। वे पांच वर्षके लड़केकी ऐसी प्रत्युत्पन्नमति देख कर चमत्कृत हो गये। उसी दिन उन्होंने रघुनाथकी माताको बुला कर कहा, "तुम्हारा लड़का बड़ा ही बुद्धिमान है, आगे चल कर यह एक रत्न होगा। आजसे मैंने इसके पढ़ाने लिखानेका भार लिया।" वासुदेवसे इस प्रकार सुन कर माता अपनेको सराहने लगी और उनके हाथ पुत्रका शिक्षाभार सौंप आप निश्चिन्त हो गई।'

अनन्तर वासुदेवने शुभ दिनमें शुभक्षणमें उसी साल बालकके हाथ खड़ी दी। क ख पढ़ते पढ़ते उन्हें ऐसा ख्याल हो आया, कि पहले 'क' न पढ़ कर यदि 'ख' पढ़ा जाय, तो क्या दोष होगा? इस प्रश्नको जब वे स्वयं हल न कर सके, तब उन्होंने वासुदेवसे पूछा। इस जटिल प्रश्न पर वासुदेव भारी मुश्किलमें पड़ गये। उन्होंने रघुनाथसे कहा, कि संस्कृत वर्णमाला स्वरसम्भूत है अर्थात् कण्ठ, तालु, मूर्द्धा, दन्त और दन्तकी सहायतासे उच्चारित होती है तथा यह वैज्ञानिक प्रणालीमें संबद्ध है। इस बार तो किसी प्रकार अध्यापक महाशयने छुटकारा पाया, पर रघुनाथ कब छोड़नेवाले थे। उन्होंने फिर पूछा, कि व्यञ्जनवर्णमें दो 'ज', दो 'न', दो 'ब' और तीन 'स' रहनेका कारण क्या? अब वासुदेवको कुछ सूझ न पड़ी। उन्होंने समझा, कि यह सामान्य बालक नहीं है। प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने बालकको उच्चारणविधि, णत्व और सत्वविधि आदि व्याकरण पढ़ा कर 'ज' आदि वर्णोंकी प्रयोजनीयता अच्छी तरह समझा दी। अतएव एक वर्णमाला पढ़ानेमें वासुदेवको व्याकरणका बहुत कुछ अंश सिखाना पड़ा था। इस प्रकार थोड़े ही समयमें रघुनाथने व्याकरण, काव्य और अभिधान पढ़ लिया। पीछे वे स्मृतिशास्त्र पढ़ कर वासुदेवसे न्यायशास्त्र पढ़ने लगे।

वासुदेव जैसे यत्नपूर्वक रघुनाथको पढ़ाते थे, रघु-

नाथ भी वैसे ही अध्यवसायके साथ पढ़ने लगे। वासुदेव दिनमें जो पढ़ा देते, रघुनाथ उसे लिख कर रात्रिमें पढ़ते थे। जब कभी उनके मतसे अध्यापकका मत नहीं मिलता, तब वे जरा भी सकुचाते नहीं, तुरत अध्यापकसे पूछ कर अपना संदेह दूर कर लेते थे। धीरे धीरे वे अपनी प्रतिभाके बल तर्कशास्त्रमें अच्छे पारदर्शी हो गये। तर्ककी उत्कर्षतामें उन्होंने अपने अध्यापकको जीत लिया था।

वासुदेव 'सार्वभौमनिरुक्ति' नामक जो टीका लिखी थी, तीक्ष्ण बुद्धि रघुनाथ तर्कयुक्ति द्वारा उसमें अनेक दोष निकालने लगे। यहां तक कि, नैयायिकराज गंगेशोपाध्याय भी उसके हाथसे बच न सके थे। उनके बनाये चिन्तामणि ग्रंथमें भी कितनी भूल निकाल कर रघुनाथने छात्रावस्थामें ही अपने मतका समर्थन किया और उस विषयमें अनेक प्रबंध लिख कर वे अपने मतका प्रचार करने लगे। रघुनाथके ये सब अलौकिक काण्ड देख कर नवद्वीपके पण्डित-समाजमें खलबली मच गई।

इसी समय नवद्वीपमें श्रीचैतन्य महाप्रभुका आविर्भाव हुआ। रघुनाथ और श्रीचैतन्यदेव सहपाठी थे, इस कारण दोनोंमें बड़ी दोस्ती थी। रघुनाथ बालक निमाईको पहले उतना ग्राह्य नहीं करते थे, पर पीछे उनकी प्रतिभाका परिचय पानेसे उनका वह भ्रम जाता रहा। रघुनाथको जब कभी किसी विषयमें संदेह होता था, तब चैतन्यप्रभुसे ही उसे दूर कर लेते थे। एक दिन सार्वभौमने रघुनाथसे किसी प्रश्नका उत्तर देने कहा, प्रश्न कठिन था, उन्हें कुछ भी समझमें न आया। इसलिये उसे हल करनेके लिये वे नवद्वीपके निकटवर्त्ती एक मैदानमें डूमरवृक्षके नीचे चुपचाप बैठ गये। चिन्ताशीलता ही रघुनाथमें विशेष गुण थी। दिन रात उसी जगह बैठ कर वे ऐसी प्रगाढ़ चिन्तामें मग्न हो रहे थे, कि पक्षियोंके उनके शरीर पर मलत्याग करने पर भी उन्हें जरा भी होश न था।

दूसरे दिन सबेरे प्रातः कृत्यादि करके चैतन्य रघुनाथकी तलाशमें उसी राह हो कर जा रहे थे। संयोगवश रघुनाथ पर उनकी दृष्टि पड़ी और उस अवस्थामें उन्हें बैठे देख वे विस्मित हो गये। हंसीके बहाने उन्होंने थोड़ा जल उनके शरीर पर छिड़का और कहा, "वनमें रह कर क्या झूठ मूठ सोच रहे हो?।" ठंढे जलका छींटा लगनेसे रघुनाथ चमक उठे और चैतन्यको देख मुसकुराने लगे। चैतन्यके उत्तरमें उन्होंने कहा, 'मैं जो सोचता हूं, उसे तुम क्या समझोगे।' चैतन्यदेव इस प्रकार चिन्तामग्न होनेका कारण जाननेके लिये जिद्द करने लगे। रघुनाथके मुखसे सार्वभौमका प्रश्न सुन कर उन्होंने उसी समय उसका उत्तर दे कर कहा, 'इसी छोटी बातके लिये तुम्हें ऐसी चिन्ता।' रघुनाथ चैतन्यकी मीमांसा और सदुत्तरसे आह्लादित हो बोले, "भाई! तुम साधारण मनुष्य नहीं, महापुरुष हो।" तभीसे रघुनाथ अपने मतके साथ चैतन्यके मतका मिलान देख कर स्वतःसिद्ध ज्ञानसे उसे लिपिबद्ध कर रखते थे। निम्नोक्त एक दूसरी घटनासे रघुनाथको चैतन्यदेवका प्रभाव मालूम हुआ था।

रघुनाथने छात्रावस्थामें एक न्यायकी टिप्पनी लिखना शुरू किया। उन्हें विश्वास था, कि उन्होंका ग्रंथ अद्वितीय होगा और वे इसीसे ख्याति लाभ करेंगे। इस समय उन्हें किसी तरह मालूम हुआ, कि चैतन्य भी न्यायकी टीका लिख रहे हैं। अतः उन्होंने वह ग्रन्थ देखनेके लिये चैतन्यसे विशेष अनुरोध किया। चैतन्य दिखानेको राजी हो गये। एक दिन जाह्नवीके किनारे उन्होंने अपना ग्रन्थ ला कर रघुनाथको पढ़ सुनाया। चैतन्यके ग्रन्थमें अद्भुत विचारपद्धति और सिद्धान्त सुन कर उनकी चिरपोषित उच्चाकाङ्क्षा दूर हो गई। यहां तक, कि अभिमानसे उनकी दोनों आंखें डबडबा उठीं। यह देख कर चैतन्य बड़े दुःखित हुए और उनसे पूछा, "भाई! तुम रोते क्यों हो?" रघुनाथने उत्तर दिया, 'मैंने सोचा था, कि इस ग्रन्थसे मेरी ख्याति होगी। किन्तु अभी देखता हूं, कि मैं जिसे दो पृष्ठोंमें समझा न सका हूं, उसे तुमने एक सतरमें समझा दिया है। अतएव तुम्हारा ग्रन्थ रहते मेरे ग्रन्थको कोई भी नहीं पूछेगा।' चैतन्यने रघुनाथकी उक्ति पर हंसीको रोक कर कहा,

'इसके लिये चिन्ता क्यों? यह अफलशास्त्र फिर अच्छा बुरा क्या?" इतना कह कर चैतन्यने स्वरचित टीकाको जाह्नवीमें विसर्जन किया। तभीसे चैतन्यने न्यायशास्त्र पढ़ना छोड़ दिया। रघुनाथका वही ग्रन्थ दीधिति है।

रघुनाथ और चैतन्य न्यायशास्त्र अध्ययनकालमें एक पथके पथिक थे। न्यायचर्चामें दोनों एक मतका अवलम्बन करते हुए भी चैतन्यदेवकी तरह रघुनाथको धर्मरसपिपासा बलवती न थी। इस कारण आखिर दोनों ही भिन्न पथके पथिक हो गये।

रघुनाथकी प्रतिभा पर विस्मित होते हुए भी वासुदेव कभी भी सरलचित्तसे उनका मत ग्रहण नहीं करते थे। दोनोंके मतमें मेल नहीं खाता था, इस कारण रघुनाथ हमेशा उदास रहा करते थे। वासुदेवके उनके मनस्तापका कारण पूछने पर उन्होंने कहा, 'गुरुदेव! मैं आपकी युक्ति और मतको ग्रहण नहीं करता, इसीसे मुझे भारी दुःख है। मन करता है, कि मिथिला जा कर एक बार पक्षधर मिश्रके निकट अपना मत प्रकट कर आऊं।"

वासुदेवने उन्हें मिथिला जानेका हुकुम दे दिया। किन्तु उनके मिथिला जानेका दूसरा भी कारण था। उस समय नवद्वीपमें उपाधि देनेका किसीको अधिकार न था। उपाधि मिलने पर भी पण्डित लोग उसे स्वीकार नहीं करते थे। रघुनाथकी इच्छा थी, कि वे पक्षधरको न्यायशास्त्रमें पराजित कर नवद्वीपमें अपनी प्रधानता स्थापित करें और चतुष्पाठी खोलें। इसी उद्देशसे वे मिथिला गये थे।

मिथिलाकी चतुष्पाठीमें पहुंच कर रघुनाथने देखा, कि नैयायिक-कुलपति पक्षधरमिश्र न्यायशास्त्र पढ़ा रहे हैं। पक्षधरका नियम था, कि कोई आगन्तुक छात्र यदि पहले उनकी चतुष्पाठीके छात्रोंको तर्कमें परास्त कर सके, तभी वह उनसे बातचीत कर सकता है, अन्यथा नहीं। रघुनाथ छात्रोंको न्यायशास्त्रके जटिल प्रश्नोंमें पराजित करके मिश्रजीके समीप गये। पक्षधर आगन्तुक छात्रकी विद्या बुद्धि जाने बिना कभी भी उसकी ओर मुंह घुमा कर बातचीत न करते थे। रघुनाथके तर्क पर विमोहित हो कर उन्होंने भी रघुनाथसे तीन दिन तीन प्रश्न किये। उत्तर न दे सकनेके कारण रघुनाथ अपने डेरे पर लौट आये। चौथे दिन जब वे फिर मिश्रजीके यहां गये, तब उन्होंने देखा, कि मिश्रजी घरमें नहीं हैं और उनके आसनके सामने एक ग्रन्थ खुला पड़ा है। बड़े ध्यानसे वे उस ग्रन्थको देखने लगे। उस ग्रन्थके खुले पृष्ठमें एक जगह एक शब्दप्रयोगका व्यतिक्रम देख कर उन्हें मिश्रका संदेहस्थल मालूम हुआ, सो उन्होने उस पर एक टीका लिख कर पुस्तकके ऊपर रख दी। उसी समय मिश्रजी घर आये और पुस्तकके ऊपर वह अभिनव टीकाखण्ड देख कर बड़े सन्तुष्ट हुए। उन्होंने प्रतिपादित सूत्रार्थको ग्राह्य कर रघुनाथसे पूछा, 'यह टीका क्या तुमने लिखी है?" 'हां' उत्तर पा कर वे रघुनाथकी बुद्धिको सराहने लगे और उसी दिनसे उन्हें शिष्य बना कर न्यायशास्त्र सिखाने लगे।

पक्षधरमिश्र एक ही जगह बैठ कर छात्रोंको पढ़ाते थे और जरूरत पड़ने पर उन्हें आवश्यकीय विषयकी शिक्षा देते थे। उनकी छात्रमण्डली उनके पीछे बैठ कर अपना अपना पाठ पढ़ते थे। रघुनाथने नवद्वीपमें ही चिंतामणिका अध्ययन किया था। उस विषयमें तर्क और प्रतिवाद द्वारा उन्होंने पक्षधरके तर्कशक्तिसम्पन्न छात्रोंको भी परास्त कर अध्यापक मिश्रके पास ही अपना आसन जमाया। एक दिन वे गुरुसे तर्कमें बहस करने लगे। उनका उद्देश्य था, कि ऐसा करनेसे गुरु संतुष्ट होंगे और उनके सभी भ्रम दूर हो जायगे। तर्कसे संतुष्ट हो पक्षधर मिश्रने उनके प्रति कटाक्ष करके परिचय पूछनेके बहाने कहा—

"आखण्डलः सहस्राक्षो विरूपाक्षस्त्रिलोचनः।
अन्ये द्विलोचनाः सर्वे को भवानेकलोचनः॥"

रघुनाथने अध्यापककी इस व्यङ्गोक्तिसे चिढ़ कर बड़े अभिमानसे उत्तर दिया था,—

"नवद्वीपकुशद्वीपनवद्वीपनिवासिनः।
तर्कसिद्धान्तसिद्धान्तशिरोमणिमनीषिणः॥"

इस उत्तरसे मालूम होता है, कि नवद्वीपवासी तर्कसिद्धान्त और कुशद्वीपवासी सिद्धान्त उपाधिधारी ये दोनों भी उनसे न्यायशास्त्र पढ़नेके लिये मिथिला गये थे। वे दोनों कौन थे, कह नहीं सकते। फिर दूसरी

जगह लिखा है, कि ये दोनों जब मिश्रजीके घर पर गये, तब रघुनाथको एक चक्षुहीन देख कर छात्रोंने उनकी हँसी उड़ाई और उक्त श्लोक पढ़ कर उनका परिचय पूछा। मिश्रकी चतुष्पाठीमें नाना देशके छात्रगण काने पण्डितकी अद्भुत प्रतिभा देख कर मुग्ध हो गये थे।

इस समय पक्षधरमिश्र 'सामान्यलक्षण' नामक एक न्यायग्रंथ लिख रहे थे। रघुनाथके साथ मिश्रजीका पुस्तकके सम्बन्धमें वादानुवाद हुआ। उन्होंने सामान्यलक्षण अस्वीकार कर गुरुके ग्रंथमें अनेक दोष निकाले। इस पर पक्षधरने क्रोधान्ध हो बालक रघुनाथको श्लेष्मात्मक रूखे वचनोंमें कहा था :—

"वक्षोजयानकृत् काणा संशये जाग्रति स्फुटम्।
सामान्यलक्षणा कस्मादकस्मादवलुप्यते ॥"

रघुनाथके एक नेत्र न रहनेसे जो उन्हें काना कहा गया, इस पर उन्हें बहुत दुःख हुआ। इसलिये उन्होंने आक्षेप कर कहा था।

"योऽन्धं करोत्यक्षिमन्तं यश्च बालं प्रबोधयेत्।
तमेवाध्यापकं मन्येतदन्ये नामधारिणः ॥"

बातचीत करते करते दोनोंमें घोर तर्क आरम्भ हो गया। रघुनाथने चिन्तामणि ग्रंथमेंसे कई जटिल प्रश्न किये। पक्षधर बालककी असाधारण तर्कशक्ति और स्थिरबुद्धि देख कर दांतों उंगली काटने लगे। सभी प्रश्नोंका जब वे ठीक ठीक प्रत्युत्तर न दे सके, तब रघुनाथ संतुष्ट न हो कर उन्हें बार बार तंग करने लगे। इस पर पक्षधरने नैयायिकका चिरभ्यस्त वाक्यजाल फैला कर रघुनाथको परास्त करनेकी चेष्टा की, किन्तु रघुनाथ कब छोड़नेवाले थे। युक्तितर्कमें अध्यापकको परास्त कर उन्हें अपना मत समीचीन स्वीकार कराया। इस प्रकार थोड़े ही दिनोंमें रघुनाथका नाम मिथिला भरमें फैल गया।

पक्षधर यद्यपि उनके साथ कभी कभी परास्त, अप्रतिभ और क्रोधान्ध हो जाते, तो भी उपयुक्त छात्रके प्रति उनका अनुराग सराहनीय था। रघुनाथको निर्जन गृहमें पा कर उन्होंने बड़े प्रेमसे उनका आलिङ्गन किया। दूसरे दिन उन्होंने रघुनाथका मत समर्थन करनेके लिये एक सभा बुलाई और सबके सामने अपनी हार स्वीकार की। इस दिनसे नवद्वीपके शिरोमणि यथार्थमें भारतवर्षके शिरोमणि हुए।

इसके बाद एक दिन चतुष्पाठीमें कुछ अध्यापक और अनेक छात्र उपस्थित थे। इसी समय पक्षधरने व्याकरण और काव्यसम्बन्धीय शिक्षाका परिचय जाननेके लिये उनसे पूछा, न्यायशास्त्रको छोड़ कर दूसरे किस शास्त्रमें तुम्हारा अधिकार है?' उत्तरमें रघुनाथने कहा—

"काव्येऽपि कोमलधियो वयमेव नान्ये
तर्केऽपि कर्कशधियो वयमेव नान्ये।
तन्त्रेऽपि यन्त्रितधियो वयमेव नान्ये
कृष्णेऽपि संयतधियो वयमेव नान्ये ॥"

यह श्लोक सुन कर पक्षधरने कहा, 'तुम तो नैयायिक हो, कविता बनाना किस प्रकार सीखा?' रघुनाथने उत्तर दिया :—

"कवित्वं कियदौन्नत्यं चिन्तामणिमनीषिणः।
निपीतकालकूटस्य हरस्येवाऽहि खेलनम् ॥"

इस प्रकार उपस्थित अनेक कविता-रचनामें उन्होंने पक्षधरको मुग्ध किया था।

पक्षधरको विश्वास था, कि जो परम नैयायिक वा वैयाकरण होते, वे कभी भी सुकवि नहीं हो सकते हैं। आज उनका वह विश्वास रघुनाथकी कवितासे दूर हो गया। दुर्गम न्यायशास्त्रमें, जटिल व्याकरणशास्त्रमें, कोमल काव्यशास्त्रमें रघुनाथका समान अधिकार देख कर वे विस्मित हो गये। रघुनाथ जब चाहते, तभी महाकाव्यकी रचना कर सकते थे।

मिथिलामें रह कर रघुनाथ न्यायशास्त्रमें अद्वितीय हो गये। आर्यावर्त्त और दाक्षिणात्य-निवासी छात्रगण उनके प्रति विद्वेषाचरण करने लगे। मिथिलासे लौट कर उन्हें नवद्वीपमें चतुष्पाठी खोलने और छात्रोंको न्यायशास्त्रमें उपाधि देनेकी इच्छा हुई। इसके लिये वे मिथिलासे न्यायशास्त्रके ग्रंथ संग्रह करने लगे। पक्षधर एक भी ग्रंथ अथवा उसकी नकल किसीको अपने देश ले जाने नहीं देते थे। अध्ययन शेष होने पर रघुनाथने नवद्वीप लौटनेके लिये पक्षधरसे आज्ञा मांगी और साथ साथ कुछ न्यायशास्त्रके

ग्रंथ भी साथ लानेको इच्छा प्रकट की। वे चतुष्पाठी खोलेंगे, सुन कर पक्षधरके शिर पर मानो वज्राघात हो गया। ग्रन्थ वा उसकी नकल ले जानेसे वे बिलकुल इनकार चले गये। इस पर रघुनाथने क्रोधान्ध हो संकल्प किया, कि आज ही रातको गुरुका काम तमाम कर डालूंगा। दोपहर रातको जब छात्र-वृन्द गहरी निद्रामें सो रहे थे तथा पक्षधर अपनी पत्नी-के साथ शयन मन्दिरमें गप-शप कर रहे थे उसो समय रघुनाथ गुरुकी हत्या करनेकी कामनासे नंगी तलवार हाथमें लिये दरवाजे पर खड़े हो गये। उन्होंने अपने कानोंसे सुना, पक्षधरकी स्त्री कह रही है, "स्वामि! इस संसारमें कौन वस्तु आपको निर्मल जंचती है? मैं या मेरी सन्तान या इस शारदीय आकाशका पूर्ण-चन्द्र?" पक्षधरने कहा, 'तुम, तुम्हारी सन्तान वा आकाशका पूर्णचन्द्र, इनमेंसे कोई भी मेरे लिये निर्मल नहीं। नवद्वीपके रघुनाथ नामक जिस एक नवीन युवकने आ कर मुझसे समस्त न्यायशास्त्र सीख लिया है, उसकी बुद्धि जैसी निर्मल वस्तु मैं इस संसारमें और किसीको नहीं देखता।" रघुनाथ गुरुदेवकी बात सुन कर रोने लगे, उनके मनमें गुरुभक्ति जग उठी और वे अपनी बुद्धिको धिक्कारने लगे। उन्हें उस समय ऐसा मालूम हुआ कि, "मेरी जिस बुद्धिने उन्हें बध करनेके लिये मुझे उभाड़ा है, उनकी निगाहमें मेरी वह बुद्धि जगत्में सबसे निर्मल वस्तु जंची।" इस प्रकार चिन्ता करते करते उनका हृदय अनुताप-अनलसे दग्ध होने लगा। उनके रोने और दम भरनेका शब्द सुन कर पक्षधर दरवाजा खोल कर बाहर आये। उन्होंने देखा, कि रघुनाथ जमीन पर नंगी तेज तलवार रख कर फूट फूट कर रो रहा है। पक्षधरके इसका कारण पूछने पर रघुनाथने कहा, 'आपने मुझे ग्रन्थ नहीं दिया और न इसकी नकल ही लेने कहा। इस कारण मैं क्रोधान्ध हो कर आपका बध करनेके लिये यहां आया था। पीछे मेरे प्रति आपके अकृत्रिम अनुरागकी बात सुन कर मैं मर्माहत हो रो रहा हूं। अभी मुझे तुषानल वा और किसी प्रकारका प्रायश्चित्त दीजिये।" पक्षधर और उनकी पत्नी यह सुन कर अवाक् हो रहीं तथा उनकी अकपट आत्मग्लानि ही उचित प्रायश्चित्त हुई, यह उन्हें समझा दिया। सबेरा होने पर रघुनाथने कहा, "गुरुदेव! अभी नवद्वीप जाना मैंने स्थगित रखा। मेरा न्याय-शास्त्राध्ययन अब तक भी शेष नहीं हुआ है। कुछ दिन और आपके यहां ठहरूंगा।" पक्षधर बोले, "जब तक तुम्हारी इच्छा हो, मेरे यहां रह कर न्याय-शास्त्र सीख सकते हो।"

रघुनाथका ध्यान एकमात्र ग्रन्थ-संग्रहकी ही ओर लगा था। वे अनन्यमना और अनन्यकर्मा हो कर दिन-रात पक्षधरके एक एक कर सभी ग्रन्थ कण्ठस्थ करने लगे। सभी ग्रन्थोंको कण्ठस्थ कर दो एक वर्षके बाद ही रघुनाथ दिग्विजयी नैयायिक हो १६वीं सदीके आरम्भ-में ही नवद्वीप लौटे।

नवद्वीपमें चतुष्पाठी खोलनेके लिये रघुनाथने सङ्क-ल्प किया, किन्तु पासमें पैसा नहीं, खोलते किससे। प्रवाद है, कि इस समय नवद्वीपमें हरिघोष नामक एक धनी ग्वाला रहता था। उसने गाय रखनेके लिये बड़ी गोशाला बनवाई। यह गोशाला आज भी 'हरिघोषका गुहाल' नामसे प्रसिद्ध है। हरिघोष होने अपने खर्चसे उस गोशालामें रघुनाथकी चतुष्पाठी खोल दी। रघु-नाथके विद्योपार्जनके बल और शिक्षादानके फलसे थोड़े ही दिनोंमें नवद्वीप एक प्रकृत सारस्वत-मन्दिर हो उठा।

रघुनाथ अनेक ग्रन्थ लिख गये हैं, जैसे—तत्त्व-चिन्तामणि-दीधिति, पदार्थखण्डन, पदार्थतत्त्व-निरूपण, पदार्थरत्नमाला, आत्मतत्त्वविवेक टीका, प्रामाण्यवाद, नञर्थ वाद, क्षणभंगुर-वाद, आख्यातवाद, व्युत्पत्तिवाद, लीलावती-टीका, खण्डन खण्डखाद्य-टीका, गुणकिरणा-वलीप्रकाश-दीधिति, न्यायकुसुमाञ्जलि-टीका, न्याय-लीलावतीप्रकाशदीधिति, न्यायलीलावती-विभूति, ब्रह्म-सूत्रवृत्ति और मलिम्लुच-विवेक।

एतद्भिन्न उनके रचित अद्वैतेश्वरवाद, अपूर्ववाद-रहस्य, अवयवग्रन्थ, आकांक्षावाद, केवलव्यतिरेकि, गुणनिरूपण, धर्मितावच्छेदक-प्रत्यासत्ति, नियोज्यान्व-यार्थ-निरूपण, निरोधलक्षण, पक्षता, पञ्चलक्षणीक्रोड़, योग्यतारहस्य, वाक्यवाद, व्याप्तिवाद, शब्दवादार्थ,

सामान्यनिरुक्ति, सामान्यलक्षण और रघुनाथीय नामक कई न्यायचम्पू-ग्रंथ मिलते हैं।

मथुरानाथ और रामभद्र हो रघुनाथके सर्वप्रधान छात्र थे। कोई कोई कहते हैं, कि रघुनाथ आजीवन विवाह नहीं किया था। जब कभी कोई उनसे विवाह करने कहते तब वे कहते थे, 'पुत्र-कन्याके लिये आदमी विवाह करता है। 'व्युत्पत्तिवाद' मेरा पुत्र और 'लीलावती' मेरी कन्या है।' रघुनाथ आजीवन शास्त्रचर्चामें निरत रह कर १६वीं सदीके मध्य भागमें परलोकको सिधारे।

रघुनाथ सम्राट्स्थपति—आह्निकप्रयोग, कालतत्त्वविवेचन, पर्वनिर्णय, रविसंक्रान्तिनिर्णय, गयाकल्पपद्धति, त्रिंशच्छ्लोकीभाष्य और दशश्लोकटीका आदि ग्रन्थके प्रणेता। इनके पिताका नाम था माधव और माताका ललिता। रामेश्वरभट्टके पौत्र थे। इनके बड़े भाई विश्वनाथ और प्रभाकर थे। १५८३ ई०में प्रभाकरने रासप्रदीपकी रचना की। उनका बनाया कालतत्त्वविवेचन १६२० ई०में समाप्त हुआ।

रघुनाथसरस्वती—एक अद्वितीय पण्डित। ये बालबोधिनी भावप्रकाशिकाके प्रणेता, रामचन्द्र सरस्वतीके गुरु और गोविन्दानन्द सरस्वतीके शिष्य थे।

रघुनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य—एक विख्यात स्मृति और ज्योतिःशास्त्रविद्। इन्होंने १६६२ ई०में राजा राघवकी आज्ञासे स्मार्त्तव्यवस्थार्णव और राजा कामदेवकी अनुमतिसे षट्कृत्यमुक्तावली नामक ज्योतिर्ग्रन्थ प्रणयन किये। अलावा इसके उनका बनाया दायभाग सम्बन्धीय स्वत्वव्यवस्थार्णवसेतुबन्ध और सिद्धान्तार्णव नामक वेदान्त ग्रन्थ भी मिलता है।

रघुनाथसिंह—विष्णुपुरके सर्वप्रथम हिंदू राजा। इन्होंने स्थानीय आदिम अधिवासी दुर्द्धर्ष बागदियोंको युद्धविद्या सिखा कर ऐसा रणकुशल बना दिया था, कि एक दिन सारा विष्णुपुर राज्य मल्लभूमि कहलाने लगा। अभी वह विस्तृत राज्य वर्द्धमान, वीरभूम और बांकुड़ाके अन्तर्भुक्त हो गया है।

रघुनाथकी दया, दाक्षिण्य और रणनैपुण्य देख कर बागदी लोग उन्हें प्रकृत रघुनाथ (अयोध्यापति रामचन्द्र) समझते थे। उनके राज्याधिकारके समय प्रजा उन्हें 'आदिमल्ल' कहने लगी थी। १२२ बङ्गाब्द (७१५ ई०)-में उनका जन्म हुआ। उनके सिंहासनारोहण-कालसे विष्णुपुराब्द गिना जाता है। ३४ वर्ष तक इन्होंने राज्यशासन किया। पश्चिम भारतवासी सूर्यवंशीय राजा इन्द्रसिंहकी कन्या चन्द्रकुमारीसे इनका विवाह हुआ। लाऊग्राममें इनकी राजधानी थी। पुण्टेश्वरी देवीमूर्त्तिकी स्थापना कर इन्होंने एक मन्दिर बनवा दिया था।

यह राजवंश कुशुम ऋषिके गोत्रसम्भूत हैं। एकलिङ्ग और पुराको ये लोग अपना कुलदेवता मानते हैं। इनको मंत्र-दीक्षा ब्राह्मण-वैष्णवसे होती है। रघुनाथसिंहसे ही विष्णुपुर-राजवंशकी ख्याति और सौभाग्य वृद्धि हुई है। विष्णुपुर देखो

रघुनाथ सूरि—भोजनकुतूहल नामक पाकशास्त्रके रचयिता।

रघुनाथेन्द्र यति—काममाहात्म्य और भगवन्नाम-माहात्म्य ग्रन्थसंग्रहके रचयिता।

रघुनायक (सं० पु०) रघुकुलस्वामी, श्रीरामचन्द्र।

रघुपति (सं० पु०) रघूनां पतिः। रघुवंशके स्वामी, श्रीरामचन्द्र।

"यदुपतेः क्वगता मथुरापुरी रघुपतेः क्वगतोत्तरकोशला।
इति विचिन्त्य कुरुष्व मनः स्थिरं न सदिदं जगदित्यवधारय॥" (रूपगोस्वामी)

रघुपति—१ कुमारसम्भव-व्याख्यासुधाके रचयिता। २ शब्दलोकरहस्य और तत्त्वचिन्तामण्यालोकसार नामक पक्षधर मिश्रकृत तत्त्वचिन्तामण्यालोककी टीकाके प्रणेता।

रघुपति उपाध्याय—पद्यावलीधृत एक कवि।

रघुपति महोपाध्याय—पुरुषार्थकौमुदी और लोकसंग्रह नामक दो ग्रंथके रचयिता।

रघुपति सहाय—एक भाषा कवि। इनका जन्म-संवत् १६३०में हुआ था। ये गाजीपुर जिलेके गौसपुर गांवमें रहते थे। इन्होंने तुलसीदासका जीवनचरित्र लिखा।

रघुपतमंहस् (सं० त्रि०) लघुपतनसमर्थपाद।

रघुपत्वन (सं० त्रि०) शीघ्रगामी, तेज जानेवाला।

(ऋक् १।८५।६)

रघुमणि—आगमसार नामक तन्त्रके प्रणेता। इनके पिताका नाम रामचंद्र था।

रघुमन्यु (सं० त्रि०) लघुक्रोधी, अक्रोधी।

रघुया (सं० अव्य०) शीघ्रगामी, तेजीसे जानेवाला।

रघुयामन् (सं० त्रि०) लघु गमन, थोड़ा जानेवाला।

रघुराई (हिं० पु०) श्रीरामचंद्र।

रघुराज (सं० पु०) रघुकुलके राजा, श्रीरामचंद्र।

रघुराजसिंह—जगदीश-शतक नामक संस्कृत-ग्रंथके रचयिता।

रघुराजसिंह महाराज—रीवाँ-नरेश। रीवाँ-नरेशोंमें महाराजा जयसिंह, उनके पुत्र महाराज विश्वनाथसिंह और विश्वनाथके पुत्र महाराज रघुराजसिंह तीनों बहुत अच्छे कवि थे। ये महाराजगण बघेल ठाकुर थे।

महाराज वीरध्वज सोलङ्कीके पुत्र महाराज व्याघ्रदेवने गुजरातसे आ कर भीरों, गोड़ों, लोधियों आदिसे बघेलखण्ड जीत कर वहां शासन जमाया। कहते हैं, कि इस कुटुम्बके पूर्वपुरुष ब्रह्मचोलक अंजलीके पानी एवं सूर्यांशसे उत्पन्न हुए थे और इसीलिये सूर्यवंशी कहलाये। ब्रह्मचोलकसे ले कर करणशाह तक ५०७ पुश्तें चोलकवंशी कहलाती रहीं। करणशाहका पुत्र सुलंकदेव हुआ। तबसे वीरध्वज पर्यन्त ५८२ पीढ़ियां सोलङ्की कहलाईं। वीरध्वजके पुत्र व्याघ्रदेवसे वर्त्तमान महाराधिराज श्रीव्यंकटभरण रामानुजप्रसाद सिंह जू देव बहादुर तक ३२ पुश्तें हुई हैं। ये लोग बघेल कहलाते हैं।

महाराज रघुराजसिंहका जन्म संवत् १८८०में हुआ था। अपने पिताके स्वर्गवास पर ये सं० १९११में गद्दी पर बैठे। आप पूर्ण पण्डित, हिन्दी और संस्कृतके अच्छे कवि और मृगया-व्यसनी थे। आपने बहुतसे छोटे बड़े ग्रंथ बनाये हैं और ६१ शेर, १ हाथी, १६ चीते और हजारों अन्य मृग भी अपने हाथसे मारे। आप बड़े दानी और भारी भक्त भी थे, २००० विष्णुनाम प्रतिदिन जपते थे। उपर्युक्त कामोंमें समय अधिक लगानेके कारण आप राज्यप्रबंध कम कर सकते थे। मरण कालके ५ वर्ष पूर्व आपने राज्यप्रबंध बिलकुल छोड़ दिया और अंगरेजी सरकारकी ओरसे प्रबंध होने लगा। सिपाही-विद्रोहमें आपने सरकारका साथ दिया था।

आप बड़े ही कविता-रसिक और कवियोंके कल्पवृक्ष हो गये हैं। इन्होंने कविता प्रकृष्ट बनाई है। इनके रचे हुए ग्रंथोंके नाम ये हैं—सुन्दरशतक, विनयपत्रिका, रुक्मिणीपरिणय, आनन्दाम्बुनिधि, भक्तिविलास, रहस्य पंचाध्यायी, भक्तमाल, रामस्वयम्बर, यदुराजविलास, विनयमाला, रामरसिकावली, गद्यशतक, चित्रकूट-माहात्म्य, मृगया-शतक, पदावली, रघुराजविलास, विनय-प्रकाश, श्रीमद्भागवत माहात्म्य, रामअष्टयाम, भागवत भाषा, रघुपतिशतक, गङ्गाशतक, धर्मविलास, शम्भुशतक, राजरञ्जन, हनुमत्चारित्र, भ्रमरगीत, परमप्रबोध और जगन्नाथशतक। इनमेंसे सब ग्रंथ इन्हीं महाराजने नहीं बनाये हैं, किंतु दो एकके कुछ भाग इन्होंने स्वयं रचे और कुछ उनके आश्रित कवीश्वरोंने बनाये।

इनकी कविता बहुत विशद और मनमोहिनी होती थी। इन्होंने विविध छन्दोंमें कविता की है।

रघुराम—ये अहमदाबादमें रहते थे। इन्होंने सभासार और माधवविलास ग्रन्थ रचे।

रघुरामभट्ट—कालनिर्णयसिद्धान्त और उसकी टीका तथा सिद्धान्तनिर्णय नामक ग्रंथके प्रणेता। गिरिनरराज महादेवविदके प्रार्थनानुसार इन्होंने भुजनगरमें रह कर १६५३-५४ ई०में उक्त ग्रंथकी रचना की। इनके पिताका नाम जयराम और पितामहका वैकुण्ठ था।

रघुलालदास—रामसिद्धान्त-संग्रह नामक ग्रंथके टीकाकार।

रघुवंश (सं० पु० क्ली०) रघोर्वंशः सन्ततिर्वर्णनीयो यस्मिन् यद्वा रघूनां वंशमतिक्रम्य कृतमिति अण् लुकच। १ महाकवि कालिदासका रचा हुआ एक प्रसिद्ध महाकाव्य।

"रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः॥" (रघु० १।९)

कालिदासकृत महाकाव्योंमेंसे रघुवंश सबसे प्रधान है। यह रघुवंश १९ सर्गोंमें समाप्त है। इसमें दिलीपसे ले कर अग्निवंश तकका विवरण आया है।

कालिदास देखो।

(पु०) २ महाराज रघुका वंश या खानदान जिसमें रामचंद्रजी उत्पन्न हुए थे।

रघुवंशकुमार (सं० पु०) श्रीरामचन्द्र ।

रघुवंशतिलक (सं० पु०) रघुवंशे तिलक इव शोभाजनक त्वात् । श्रीरामचंद्र ।

रघुवंशी (सं० पु०) १ वह जो रघुके वंशमें उत्पन्न हुआ हो। २ उत्तर-भारतवासी क्षत्रियोंके अन्तर्गत एक जाति । सूर्य-वंशीय अयोध्यापति राजा रामचंद्र जिस कुलमें उत्पन्न हुए थे उस कुलके अयोध्यावासी क्षत्रिय आज इस नामसे परिचित हैं। जयपुर, अलवार आदि स्थानोंमें उन लोगोंका दूसरा सम्प्रदाय या शाखा निकुम्भ नामसे प्रसिद्ध है। ३ विहार प्रदेशमें रहनेवाली राजपूतोंकी एक शाखा। ४ छोटा नागपुरमें रहनेवाली एक नीच संकर-जाति। रौतिओंकी भांति यह भी नौकरी कर अपनी जीविका चलाती हैं। महाराज रघुनाथशाहीके राज्य-कालसे यह जाति समाजमें परिचित हुई हैं।

रघुवर (सं० त्रि०) रघुषु वरः श्रेष्ठः। रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ, श्रीरामचंद्र ।

रघुवर—रामसिद्धान्तसंग्रहके प्रणेता ।

रघुवर दयाल—एक हिन्दू राजा। ये राजा दर्शनसिंहके पुत्र थे। दीनदयाल राजपेयीने इनकी जीवनीको ले कर रघुवरसंहिता नामक एक इतिहास लिखा।

रघुवर दयाल—साधारण श्रेणीके एक ग्रंथकार । ये मध्यप्रदेशान्तर्गत दुर्ग जिला रायपुरके वासी थे। इन्होंने संवत् १६१२में छन्दताला नामक एक ग्रंथ बनाया जिसमें प्रत्येक शब्दके लक्षण तथा उदाहरण उसी छन्दमें कह दिये। इनकी भाषा संस्कृत मिश्रित है और कहीं कहीं इन्होंने श्लोक भी कहे हैं। इस ग्रंथमें कुल मिला कर १६२ श्लोक हैं। ये महाशय अच्छे पण्डित थे।

रघुवर शरण—राममंत्रार्थ और वैष्णवमताब्जभास्कर ग्रंथके प्रणेता।

रघुवर्य तीर्थ—न्यायविवरणटीकाके प्रणेता। संन्यास-धर्म ग्रहण करनेके पहले ये रामचंद्र शास्त्री नामसे परिचित थे। रघुनाथ तीर्थ इनके गुरु तथा रघूत्तम तीर्थ इनके मंत्रशिष्य थे। १४६८ ई०में इनकी मृत्यु हुई। स्मृत्यर्थ-सागर ग्रंथमें इनका उल्लेख है।

रघुवीर (सं० पु०) रघुकुलमें वीर, श्रीरामचंद्रजी।

रघुवीर—१ मीमांसाकुतूहलके रचयिता। २ एक कवि। इन्होंने चंद्रशेखर काव्य रचा।

रघुवीर दीक्षित—एक ग्रंथकार। इन्होंने शंकरकृत कुण्डार्ककी मरीचिमाला नामको टीका और १६३६ ई०में मुहूर्त्तसर्वस्व नामक ग्रंथ लिखे।

रघुष्यद् (सं० त्रि०) शीघ्रगमनयुक्त, तेज जानेवाला।

रघूत्तम (सं० पु०) रघुकुलमें श्रेष्ठ वा उत्तम, श्रीरामचंद्र ।

रघूत्तम तीर्थ—अद्वैतानन्दसागर और दुर्गाभक्तिलहरी नामक ग्रंथके प्रणेता। ये पुरुषोत्तमतीर्थ और स्वयम्प्रकाशतीर्थके शिष्य थे।

रघूत्तम यति—संन्यासाश्रमाचारी एक पण्डित तथा रघुवर्यतीर्थके शिष्य। ये रघूत्तमतीर्थ नामसे भी परिचित थे। इन्होंने आनन्दतीर्थकृत ब्रह्मसूत्रभाष्यकी टीका तत्त्वप्रकाशिकाभावबोध नामकी टीका, न्यायविवरणकी टिप्पनी और आनन्दतीर्थकृत वृहदारण्यकभाष्यकी परब्रह्मप्रकाशिका नामकी टीका लिखी। १५३६ ई०में ये अन्तर्धान हो गये।

रघूद्वह (सं० पु०) उद्वहतीति उद्-वह-अच्, रघूणां उद्वहः रक्षाभारधारकः। रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ, श्रीरामचन्द्र।

रघ्नती (हिं० पु०) सन्तोष, सब्र।

रङ्क (सं० पु०) रमते तुष्यतीति रम् (बाहुलकात् रमेरपिकः। उणा् ३।४) इति क। १ कृपण, कंजूस। २ मन्द, सुस्त, काहिल। ३ धनहीन, गरीब।

रङ्कु (सं० पु०) रमते इति रम् बाहुलकात् कु। १ मृगविशेष, एक प्रकारका हिरन जिसकी पीठ पर सफेद चित्तियां होती हैं। २ मत्स्यरङ्क, एक प्रकारकी चिड़िया जो मछली पकड़ती है।

रंकुमालिन् (सं० पु०) विद्याधरभेद।

रङ्ग (सं० पु० क्ली०) रङ्गतीति रङ्ग-अच् रज्यतेऽस्मिन् रनज अधिकरणे घञ् वा। धातुविशेष, रांगा। इसका गुण—कटु, तिक्त, शीतल, कषाय, लवणरस, मेहनाशक कृमि, पाण्डु और दाहनाशक तथा कान्तिकारक और रसायन। (राजनि०)

पर्याय—रङ्ग, वङ्ग, त्रपु, नाग, त्रपुष, मधुर, हिम, आपूष, पूतिगंध, कुरूप्य, स्वर्णज, मृदङ्ग, गुरुपत्री,

तमर, नागजीवन, नागज, पिच्चट, खर्ज, कस्तीर, सिंहर, आनीलंक और स्वेत। भावप्रकाशके मतसे रङ्ग दो प्रकारका होता है, गिरिज और मिश्रक। गिरिज श्रेष्ठ और मिश्रक अहित-जनक होता है।

उत्तम रङ्गका लक्षण—जो रांगा बहुत सफेद, मुलायम, हलका, निर्मल, चिकना, अत्यन्त ठंढ होता है, जिससे तार और पत्तर बनाये जा सकते हैं और जिसके खानेसे तुरत वमि होती है वही रांगा अच्छा है।

शोधित रङ्गका गुण—शोधित रांगा कुछ मीठा, रूखा, शरीरको गरम रखनेवाला, कुष्ठ, मेह, कफ, पाण्डु और श्वासको नाश करनेवाला, चक्षुका अहितकर, कुछ पित्त-वर्द्धक, लघु और सारक होता है। सिंह जिस प्रकार सहजमें हाथियोंको मार डालता है, रांगा भी उसी प्रकार सब प्रकारके प्रमेहको नाश कर मनुष्यको मजबूत बनाता है। यह प्रबल इन्द्रियका उत्तेजक और सुख-दायक है।

बिना शोधा हुआ रांगा विषके समान है। इसका सेवन करनेसे शरीरमें आक्षेप, कम्प, गुल्म, कुष्ठ, शूल, वात, शोथ, पाण्डु, प्रमेह, भगन्दर, रक्तविकारज रोग, क्षय, कफज्वर, मूर्च्छा, मुष्करोग और पथरी आदि रोग उत्पन्न होते है।

शोधनविधि—रांगेको गला कर तेल, मट्ठा, कांजी, गोमूत्र, कुलथी, उड़दका काढ़ा और अकवनका दूध हर एक वस्तुमें तीन तीन बार करके डालने अथवा चूनेके जलमें आध पहर तक डुबोये रखनेसे रांगा शोधित होता है।

मारणविधि—एक मिट्टीके बरतनमें रांगा गला कर उसमें रांगेका चतुर्थांश इमली और पीपलकी छालका चूर डाले। पीछे दोपहर तक एक लोहेके हत्थेसे घोंटने पर रांगा भस्म हो जायगा। अनन्तर उस भस्मके बराबर हरिताल चूर्ण मिला कर अम्लरसमें मर्दन करे। फिर उसका दशमांश हरिताल मिला कर एक पहर तक पुट-पाकमें पकावे। इस प्रकार दश बार पुटपाकसे रांगा मारित होगा। अथवा, रांगेको हरितालचूर्णके साथ मिला कर और अकवनके दूधमें मल कर सूखे पीपलके छिलकेकी आगमें सात बार पुटपाकमें पकानेसे रांगा मारित होगा। अथवा, एक मिट्टीके बरतनमें विशुद्ध रांगेको गला कर उसमें उतना ही अपाङ्गचूर्ण मिलावे। पीछे एक लोहेके हत्थेसे [illegible] आग मोटा हो, जब तक रांगा भस्माकारमें परिणत न हो जाय, तब तक धीरे धीरे घोंटते रहे। अनन्तर उस मिश्रित चूर्णको आग परसे उतार कर एक ढकनेमें रखे और ऊपरसे एक दूसरा ढकना ढंक दे। दोनोंका मुंह बंद करके तेज आंचमें पकानेसे रांगा मारित होगा। अथवा रांगेको एक घड़ेमें गला कर उसमें पहले हल्दीका चूर, पीछे अजवायनका चूर, उसके बाद जीरेका चूर और तब इमलीकी छालका चूर तथा सबसे पीछे पीपलकी छालका चूर मिलानेसे रङ्ग मारित होता है। अथवा, पहले रांगेका पतला पत्तर बना कर उसमें रांगेका चतुर्थांश पारेका लेप दे। पीछे इमलीकी छाल और चावलको एकत्र पीस कर एक पिण्डा-कार बनावे और उसीमें रांगेका बरतन रख कर गजपुटमें पाक करे। अनन्तर उस रांगेमें फिरसे पहलेके जैसा पारा लीप कर शिरीषकी छाल और हल्दीका चूर्ण घृत-कुमारीके रसमें पीस पिण्ड बनावे। उसी पिण्डमें रांगा भर कर गजपुटमें पाक करनेसे रांगा मारित होगा। अथवा, बहेड़ा और भिलावेके छिलकेको जलमें पीस कर उससे रांगेका बरतन लीप दे। पीछे उसे तिलकी खलीमें भर कर चालीस बार गजपुटमें पाक करनेसे रांगा मारित होगा।

मुक्तादिमहाञ्जन, मदनमञ्जरीवटी, रतिवल्लभ, रस-राजेन्द्र, बृहत्कस्तूरीभैरव, महाराजवटी, विषमज्वरा-न्तकलौह, बृहच्चिन्तामणिरस, महाज्वरांकुश, चूड़ामणि-रस, भानुचूड़ामणि, महाराजनृपतिवल्लभ, बृहच्छ्नकपाक-वटी, कृमिधूलिजलप्लवरस, कृमिकाष्ठनलरस, अर्केश्वर-रस, बृहत्कासश्वासरस, क्षयकेशरी, लक्ष्मीविलासरस, महोदधिरस, कुमुदेश्वररस, उन्मादभञ्जनी, महाश्लेष्म-कालानलरस, महालक्ष्मीविलासरस, आमवातगजसिंह-मोदक, सर्वाङ्गसुन्दररस, त्रिनेत्राख्यरस, इन्द्रवटी, वङ्गा-वलेह, बृहद्वरिशङ्कररस, आनन्दभैरवरस, चन्द्रप्रभा-वटी, वङ्गेश्वररस, बृहद्वङ्गेश्वररस, मेहकेशरी, योगेश्वर-रस, तारकेश्वररस, गगनादिलौह, बृहत्सोमनाथरस, वारिशोषणरस, नित्यानन्दरस, प्रदरान्तकलौह, प्रदरा-

न्तकरस, गर्भचिन्तामणिरस, बृहद्रसशार्दूल, श्रीमन्मथरस, पूर्णचन्द्ररस, मकरध्वज, वसन्ततिलकरस, वसन्तकुसुमाकररस, नित्यारोगोश्वररस, मेहकुलान्तकरस, महाकामेश्वरमोदक, बृहत्कामेश्वरमोदक, बृहत्पूर्णचन्द्ररस और हेमाद्रिरस प्रभृति औषधोंमें रांगाका व्यवहार होता है।

इस रङ्गधातुको अङ्गरेजोमें Tin कहते हैं। रासायनिक मिश्रणसे इसमें स्वभावतः दो प्रकारके गुण आ जाते हैं। इसका Protoxide, sesquioxide और Peroxide तथा उनका Chlorides अवस्थानुसार मिलनेसे यह विशेष गुणयुक्त हो जाता है। उक्त Protosalts रेशममें, Persalts रुईमें और Sesqui-salts कभी कभी दोनोंके रंगानेमें व्यवहृत होता है। इस प्रकार मिश्रणसे Stannites और Stannates नामक जो अम्लरस उत्पन्न होता है, उससे सूती कपड़े रंगाये जाते हैं। यूरोपीय वैज्ञानिक लोग इसके व्यवहारसे अच्छी तरह अवगत हैं। विशेष विवरण त्रपु शब्दमें देखो।

(पु०) १ रन्ज-घञ्। २ राग, रंगानेवाली वस्तु (भारत ५।२६।१०) ३ नृत्य, नाच। (विष्णुपु० २।७।२०) रजति आसज्जति मल्लोऽत्र रन्ज-अधिकरणे घञ्। ४ रणभूमि, युद्धक्षेत्र। (मेदिनी) ५ नाट्यस्थान, नाटक खेलनेका घर। ६ टङ्कण, सुहागा। ७ खदिरसार। ८ किसी दृश्य पदार्थका वह गुण जो उसके आकारसे भिन्न होता है और जिसका अनुभव केवल आंखोंसे ही होता है, वर्ण।

जब पहले पहल किसी वस्तु पर हमारी निगाह पड़ती है, तब हमें अकसर दो ही बातोंका ज्ञान हुआ करता है। एक तो उसके आकारका और दूसरा उसके रंगका। वैज्ञानिकोंने सिद्ध किया है, कि रङ्ग यथार्थमें प्रकाशकी किरणोंमें ही होता है और वस्तुओंके भिन्न भिन्न रासायनिक गुणोंके कारण ही हमारी आंखोंको उनका अनुभव वस्तुओंमें होता है।

विशेष विवरण वर्ण शब्दमें देखो।

९ किसी विशिष्ट रासायनिक क्रियाओंसे बनाया हुआ पदार्थका व्यवहार किसी चीजको रंगने या रंगीन बनानेके लिये होता है। १० दूसरेके हृदय पर पड़नेवाला असर, गुण या महत्वका प्रभाव, धाक, रोब। ११ शरीरका ऊपरी वर्ण, बदन और चेहरेकी रंगत। १२ युवावस्था, जवानी। १३ सौन्दर्य, शोभा। १४ प्रभाव, असर। १५ क्रीड़ा, कौतुक। १६ युद्ध, लड़ाई। १७ दशा, हालत। १८ आनन्द, मजा। १९ मनकी उमंग या तरंग। २० अद्भुत व्यापार, काण्ड। २१ प्रेम, अनुराग। २२ ढंग, चाल। २३ भांति, प्रकार। २४ चौपड़की गोटियोंके खेलके कामके लिये किये हुए दो कृत्रिम विभागोंमेंसे एक। चौपड़की कुल गोटियां १६ होती हैं जो चार रंगोंमें विभक्त होती हैं। इनमेंसे विशिष्ट दो रंगकी आठ गोटियां 'रंग' और शेष दो रंगोंकी आठ गोटियां 'बदरंग' कहलाती हैं।

रङ्गकार (सं० पु०) चित्रकार, रंग बनानेवाला।

रङ्गकारक (सं० पु०) रङ्गकार देखो।

रङ्गकाष्ठ (सं० क्ली०) रङ्गं रञ्जितं काष्ठमस्य। पतङ्ग नामकी लकड़ी, बक्कम।

रङ्गक्षेत्र (सं० क्ली०) १ रङ्गस्थल, अभिनय करनेका स्थान। २ किसी उत्सव आदिके लिये सजाया हुआ स्थान।

रङ्गगृह (सं० क्ली०) १ रङ्गालय, रङ्गभूमि। २ जयन्तीके अन्तर्गत एक स्थान।

रङ्गचर (सं० पु०) १ अभिनेता, नाटकमें अभिनय करनेवाला। २ मल्लयुद्धकारी, पहलवान या नट।

रङ्गचा—पश्चिमबङ्गवासी एक पहाड़ी जाति।

रङ्गचालू—इनका पूरा नाम चेटिपनियम वीरवल्लि रङ्गचालू सी० आइ० ई० था। इनका जन्म मद्रास प्रदेशके चिङ्गलेपट जिलेमें सन् १८३१ ई०को हुआ था। इनके पिताका नाम चेटिपनियम राघव चेटियार था। ये चिंगलेपटकी कलक्टरीमें एक क्लर्क थे। बाल्यकालमें इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी, परन्तु लिखने पढ़नेमें इनका मन बहुत कम लगता था। इसी कारण मद्रासमें हाई स्कूलकी पढ़ाई समाप्त करके ये नौकरी करने लगे। वहां बहुत दिनों तक काम करके ये रेलवे विभागमें गये। तदनन्तर सन् १८६४ ई०में कालिकटके डिपुटी कलक्टरीका पद इन्हें मिला। इसी समय महिसुर राज्यकी दशा अत्यन्त शोचनीय थी। पदच्युत राजा कृष्णराय

उदियाटने एक पोष्य पुत्र ग्रहण किया था। भारत गवर्नमेंटने इसी पोष्यपुत्रको राजगद्दी पर बैठाया और उसी समय यह निश्चित हुआ, कि १८ वर्षकी अवस्थामें इन्हें राज्यका भार दिया जायगा। गवर्नमेंटकी ओरसे रङ्गचार्लु वहांके कन्ट्रोलर (प्रबन्धकर्त्ता) बनाये गये। इस पद पर रह कर इन्होंने अनेक राजकीय बातोंमें सुधार किया। राज्यके नाशकर्त्ता स्वार्थियोंको इन्होंने निकाल बाहर कर दिया। सन् १८७४ ई०में इन्होंने महिसुरमें 'अङ्गरेज-शासन' नामक एक छोटी पुस्तक अङ्गरेजीमें लिखी और उसे इङ्गलैण्डमें प्रकाशित कराया। इसमें रङ्गचार्लुकी बड़ी प्रसिद्धि हुई। राज्यके प्रबन्धमें अनेक सुधार करनेके कारण सरकारसे इन्हें सी० आई० ई० की उपाधि मिली। सन् १८८१ ई०में ये महिसुरके दीवान नियुक्त हुए। १८८२ ई०में कठिन रोगके कारण इनकी मृत्यु हुई।

रङ्गज (सं० क्ली०) रङ्गाज्जायते इति जन ड। सिन्दूर।

रङ्गजननी (सं० स्त्री०) लाक्षा, लाख।

रङ्गजीवक (सं० पु०) रङ्गेण रञ्जन-कार्येण जीवतीति जीव-ण्वुल्। १ चित्रकार, चितेरा। २ नाट्यकारक, वह जो अभिनय करता हो।

रङ्गज्योतिर्व्विद्—विचारसुधाकर नामक वैद्यकग्रन्थके प्रणेता।

रङ्गण (सं० क्ली०) नृत्य, नाच।

रङ्गद (सं० पु०) रङ्गं दति छिनतीति दा-क। १ रङ्गण, सोहागा। २ खदिरसार।

रङ्गदलिका (सं० स्त्री०) नागवल्लीलता, नागबेल।

रङ्गदलिया—एक पहाड़ी जाति।

रङ्गदा (सं० स्त्री०) रङ्ग-दाप्। स्फटी, फिटकरी।

रङ्गदायक (सं० क्ली०) रङ्गस्य दायकं। ककुष्ठ नामकी पहाड़ी मिट्टी।

रङ्गदृढ़ा (सं० स्त्री०) रङ्गवत् दृढ़ा। स्फटी, फिटकिरी।

रङ्गदेवता (सं० स्त्री०) रङ्गाभिष्ठात्री देवी, वह कल्पित देवता जो रंगभूमिके अधिष्ठाता माने जाते हैं।

रङ्गद्वार (सं० क्ली०) रङ्गालयका प्रवेशद्वार।

रङ्गनगरी—एक नगरका नाम। रङ्गपुर देखो।

रङ्गनाथ—१ अद्वैतचिन्तामणिके प्रणेता। २ आयुर्ज्ञान नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ३ कर्पूरस्तवदीपिका नामक ग्रन्थकर्त्ता। ४ गुणमन्दारमञ्जरीके प्रणेता। ५ जीवन्मुक्तिविवेकके रचयिता। ६ विद्वज्जनमनोरमा नाम्नी ब्रह्मसूत्रवृत्तिकार तथा आनन्दाश्रमके शिष्य। ७ रामानुजसिद्धान्तपद्यीके प्रणेता। ८ वृत्तरत्नाकरटीकाके रचयिता। ९ मितभाषिणी नाम्नी लीलावतीकी टीकाके प्रणयनकर्त्ता। इनके पिताका नाम था नृसिंह। इन्होंने पलभाखण्डन, भङ्गीविभङ्गीकरण और लोहगोलखण्डन नामक दूसरे तीन खण्ड ज्योतिःशास्त्रविषयक ग्रन्थ संकलन किये।

रङ्गनाथ—सूर्यसिद्धान्तगूढ़ार्थप्रकाशक नामक सूर्यसिद्धांतकी टीकाके प्रणेता। १६०४ ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ समाप्त किया था। इनके पिताका नाम बल्लालगणक और पुत्रका विश्वरूप था। जनसाधारणकी धारणा है, कि नारायणीयबीज, दिवाकरकृत जातकपद्धतिकी टीका, निसृष्टार्थदूती नामकी लीलावतीटीका, केशवार्ककृत जातकपद्धतिकी प्रौढ़मनोरमा नामकी टीका तथा सिद्धान्तचूड़ामणि आदि ग्रन्थ इनके रचे हैं।

रङ्गनाथ—विक्रमोर्व्वशी-प्रकाशिका नामकी टीकाके प्रणेता। १६५६ ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थकी रचना की। इनके पिताका नाम बालकृष्ण, पितामहका रङ्गनाथ तथा प्रपितामहका नानभट्ट था।

रङ्गनाथ आचार्य—विष्णुसहस्रनाम-भाष्यके प्रणेता।

रङ्गनाथ दीक्षित—सोमप्रयोगके रचयिता।

रङ्गनाथपुर—दाक्षिणात्यके मलयप्रदेशके अन्तर्गत एक नगर।

रङ्गनाथ भट्ट—१ दिनकरटीकाके प्रणेता। २ एक विख्यात पण्डित। ये उत्तररामचरितटीकाके प्रणेता नारायणके पिता थे।

रङ्गनाथ यज्वन्—हरिदत्तकृत पदमञ्जरीके पदमञ्जरीमकरन्द नामक टीकाकार। ये नारायणके पुत्र तथा मल्लादीक्षितके पौत्र थे। चोलदेश इनका जन्मस्थान था।

रङ्गनाथ सूरि—एक जैन सूरि। ये शक्तिवादविवरणके प्रणेता कृष्णभट्टके पिता थे।

रङ्गपताका (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद।

(दशकुमारच० ११८।५)

रङ्गपत्नी (सं० स्त्री०) रङ्ग रक्तार्थ पत्नमस्याः, ङीष्। नीलीवृक्ष।

रङ्गपीठ (सं० क्ली०) रंगगृह, रंगालय।

रङ्गपुर—बंगालके राजशाही विभागान्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २५° ३´ से २६° १६´ उ० तथा देशा० ८८° ४४´ से ८९° ५३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३४९३ वर्गमील है। इसके उत्तरमें जलपाईगुड़ी जिला और कोचविहार, पूर्वमें ब्रह्मपुत्र नद, दक्षिणमें बगुड़ा जिला और पश्चिममें दिनाजपुर और जलपाईगुड़ी है। रंगपुर नगर इसका विचार-सदर है।

समस्त रंगपुर जिला एक शस्यश्यामल विस्तीर्ण समतल भूमि है। यहां बड़े बड़े पहाड़के न रहनेसे जमीन तमाम चौरस है। केवल नदीतीरवर्त्ती स्थान ऊँचा नीचा दिखाई देता है। यहांकी जमीन उपजाऊ है। उपजमें धान, पटसन, तेलहन, तमाखू, आलू, ईख और अदरक प्रधान है। इसके सिवा जंगलोंमें छोटे छोटे बेंत और सरकंडे भी उत्पन्न होते हैं।

ब्रह्मपुत्र और उसकी शाखा-प्रशाखा ले कर यहांकी नदीमाला बनी है। शाखा नदियोंमें तिस्ता, धर्ला, सङ्कोश, करतोया, गङ्गाधर और दुधकुमार प्रधान है। इनके अतिरिक्त आत्राई, गोघाट, मनास और गुजरिया नामक और भी कितनी नदियां बहती हैं।

इस जिलेका प्राचीन इतिहास जाननेका कोई उपाय नहीं। एक समय यह रङ्गपुर प्रदेश हिन्दूशासित कामरूप राज्यकी पश्चिमी सीमामें गिना जाता था। यद्यपि उस समयके कामरूप राज्यकी राजधानी आसाम उपत्यकामें था, तो भी वे सब प्राचीन राजगण यहां आ कर रहते थे। भारतयुद्धमें व्यापृत महाराज भगदत्तने रङ्गपुर नगरमें अपना 'सुखावास' स्थापन किया था।

महाभारतीय भगदत्तका उपाख्यान छोड़ देने पर भी स्थानीय अन्यान्य प्रवादसे जाना जाता है, कि १५वीं सदीके पहले यहां तीन स्वतन्त्र राजवंश राज्य कर गये हैं। उन तीनोंमें पृथु राजाका वंश ही सबसे प्राचीन है। वर्त्तमान जलपाईगुड़ी जिलेमें उनकी राजधानीकी विस्तृत ध्वस्तकीर्त्ति दिखाई देती है। पीछे पालराज-वंशका अभ्युदय हुआ। इस वंशके प्रतिष्ठाता धर्मपालके दुर्गादिसे सुरक्षित नगरका खंडहर आज भी जलपाईगुड़ीमें पाया जाता है। पालवंशके तृतीय राजा भवचन्द्र और उनके मंत्रीकी अलौकिक विचारशक्ति तथा तीक्ष्ण बुद्धिका परिचय नीचे दिया जाता है,—

"भारी तूफानसे एक बनियेकी नाव डूब गई जिससे उसे बहुत नुकसान हुआ। राजाके पास उसने अपना दुखड़ा जा कर रोया। राजाने मंत्रीसे सलाह करके कहा, 'कुम्हारकी भट्टीसे धुआं निकल कर शायद मेघकी उत्पत्ति हुई है और वही तूफानका कारण है। अतएव कुम्हारको ही बनियेका कुल हरजाना देना पड़ेगा। एक दूसरे दिन स्थानीय कुछ अधिवासी एक जंगली सूअर-का बच्चा ले कर राजाके समीप आये। राजा और राजमंत्रीने सोच विचार कर कहा, 'चाहे एक चूहा मोटा ताजा हो कर, चाहे हाथीका बच्चा क्षयरोगसे दुर्बल हो कर ऐसा हो गया है। तीसरा उपाख्यान 'पोखरकी चोरी' की घटना है,—एक दिन दो पथिक कहीं जा रहे थे। राहमें उन्हें शाम हो गई। इसलिये दोनों एक पोखरके किनारे रसोई बनानेके लिये चूल्हे बनाने लगे। यह देख कर राजाने समझा, कि अंधेरी रातमें ये दोनों पोखर चुरानेके लिये ही जमीन खोदता है। राजाके आदेशसे वे दोनों पकड़े गये और उन्हें शूलीकी सजा हुई। दोनोंके लिये दो शूली बनाई गई। शूली समान न थी, छोटी बड़ी हो गई थी। आसन्न मृत्यु देख कर दोनों पथिक छल पूर्वक बड़ी शूली पर ही चढ़नेके लिये आपसमें झगड़ने लगे। राजाके झगड़नेका कारण पूछने पर उन्होंने कहा, हम लोग ऐन्द्रजाल विद्या अच्छी तरह जानते हैं। जो व्यक्ति इस बड़ी शूली परसे मारा जायगा वह ससागर पृथ्वीका अधीश्वर और जो छोटी शूली परसे मरेगा वह राजाका मंत्री होगा। राजा भवचन्द्रने ऐसी निम्नश्रेणीके लोगोंका परजन्ममें राजपद पाना अच्छा न समझा। इसलिये स्वयं उन्होंने ही बड़ी शूली पर चढ़ कर प्राणत्याग किया। मन्त्री भी छोटी पर चढ़ कर यमपुरको सिधारा।" भवचन्द्र राजाके अयचन्द्र मन्त्री-का प्रवाद हम लोगोंके देशमें फैला हुआ है। शायद ये सब विचार हिंदूविद्वेषी बौद्धराजाओंके पक्षपात विचार-को रूपान्तर कल्पना भी हो सकते हैं।

इस पालराजवंशमें राजा गोपीचन्द्रका नाम पाया जाता है। इनका गीत आज भी रङ्गपुर जिलेमें प्रचलित है। रङ्गपुरके योगी लोग हो यह गीत गाया करते हैं। राजा माणिकचाँदका गीत भी किसीसे छिपा नहीं है।

तृतीय राजवंशमें नीलध्वज, चक्रध्वज और नीलाम्बर नामका तीन राजोंके नाम पाये जाते हैं। इनमेंसे सर्वप्रधान राजाने कामतापुर नगर बसाया। कोचविहार सीमा पर उस नगरका खंडहर आज भी देखनेमें आता है। उसकी परिधि प्रायः १६ मील है। इस राजवंशकी विभिन्न राजधानी, राजप्रासाद और गढ़ सभी एक ही नियमसे बने हुए थे। राजा नीलाम्बरके साथ गौड़के अफगान राजाका युद्ध हुआ था। उस युद्धमें नीलाम्बर बन्दी हो लौहपिञ्जरमें गौड़ नगर लाये गये थे। प्रत्नतत्त्वविद्गण इस अफगान-राजको सुलतान हुसेन शाह मानते हैं। हुसेन शाह १४६६से १५२० ई० तक बङ्गालकी मसनद पर बैठे थे।

मुसलमानोंके अधिकारमें यह स्थान आने पर भी वे लोग यहां अपना शासन प्रभाव फैला न सके थे। पीछे यहां अराजकताका स्रोत बहने लगा। आसामकी पहाड़ी जातिने बार बार आ कर रंगपुरको लूटा तथा कोच लोगोंने सीमान्त पर कोहविहार राज्य स्थापन किया। इस राजवंशके प्रथम राजा विशुने अपने भुज-बलसे पूर्वमें आसाम उपत्यका तक अपना अधिकार फैला लिया था। उनकी मृत्युके बाद राज्य कई भागोंमें बंट गया। मुगलोंको बङ्गालमें धाक जमनेके बाद मुगल प्रतिनिधियोंने ब्रह्मपुत्र पार कर बङ्गालके उत्तर-पूर्व सीमान्त देशकी रक्षाके लिये ग्वालपाड़ाके अन्तर्गत रांगामाटी पर आक्रमण कर दिया। क्योंकि, इस समय आहम लोग बङ्गालमें आ कर लूट-पाट द्वारा प्रजाको बहुत सताते थे। प्रकृत रङ्गपुर विभाग १६८७ ई०में औरङ्गजेबके सेनापतिने मुगल-साम्राज्यमें मिला लिया। उस समय भी कोचविहार-राज्य स्वाधीनताकी रक्षा करनेमें समर्थ हुआ था। कोचविहार देखो।

१७११ ई०में कोचविहार-राजके साथ मुगलराजका एक बन्दोबस्त हुआ। उस शर्तके अनुसार बोदा, पाटग्राम और पूरब भाग परगनाके जमींदारके रूपमें वे खजाना दाखिल करने बाध्य हुए तथा अवशिष्ट कोच-विहार राज्यका स्वाधीन-भावमें शासन करने लगे। १७६५ ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीके बङ्गालकी दोवानी पाने तक इसी प्रकार यहांका शासन और राजस्व कार्य चलता रहा था। अङ्गरेजोंने भी उस समय मुसलमानोंकी प्रथाके अनुसार कर उगाहनेका भार एक ही व्यक्तिके ऊपर सौंप दिया। किन्तु १७८३ ई०में राजस्व उगाहनेमें नियुक्त राजा देवीसिंह नामक एक राजपुरुषके अत्या-चारसे लोग तंग तंग आ गये और सबके सब बागी हो उठे। इस विद्रोहमें डकैतोंके लूटपाट और अत्याचार-से रङ्गपुर तथा उसके आस पासके स्थान उत्सन्नप्राय हो गये थे।

अनन्तर अंगरेज गवर्मेण्टको बाध्य हो कर दूसरा बन्दोबस्त करना पड़ा। अब उन्होंने खास एक व्यक्ति-के ऊपर कर उगाहनेका भार न दिया, जमींदारोंको बुलाया और उन्हींके साथ कर उगाहनेका बन्दोबस्त किया। १७७२ ई०में देशी सेनाविभागके कर्मच्युत सिपाही-दलसे परिपुष्ट डकैत दल तथा १७७० ई०के दुर्भिक्षका मारा उद्धत प्रजावृन्द कुल ५० हजार आदमी मिल कर इस जिलेके नाना स्थानोंमें लूटपाट मचाने लगे। उस समय रङ्गपुर जिला नेपाल, भूटान, कोच-विहार और आसामके सीमान्तरूपमें गिना जाता था। ऐसे बड़े और विस्तृत प्रदेशका शासनकार्य सिर्फ एक कलक्टर द्वारा परिचालित होना बिलकुल कठिन हो गया था। यही कारण था, कि डकैत लोग रङ्गपुरसे दूर देशोंमें बे-रोकटोकके लूटपाट किया करते थे। उन डकैतोंका दमन करनेके लिये वृटिश-सरकार बीच बीचमें हथियारबंद सिपाही भी भेजा करती थी। इस प्रकार कभी कभी डकैत दल और छद्मवेशी संन्यासि-दलके साथ अङ्गरेजी-सेनादलकी मुठभेड़ हो जाया करती थी। पहले एक अङ्गरेज सेनादल इन लोगोंसे हार खा कर लौटा। १७७३ ई०में कप्तान टामस द्वारा परिचालित अङ्गरेजी सेना डकैतोंके विरुद्ध भेजी गई। डकैतोंके हाथ कप्तान टामस दलबलके साथ मारे गये। यहां तक कि बार दल सेना भेज कर भी वृटिश गवर्मेण्ट उनका कुछ भी अनिष्ट न कर सकी। १७८६ ई०में देशके

शान्तिहारक डकैतोंका दमन करनेके लिये स्वयं कलक्टर बहादुर उनके विरुद्ध चले। अंगरेजी सेनादलको सामने देख डकैतोंने पहले बैकुण्ठपुरके घने जंगलमें आश्रय लिया। कलक्टर बहादुर दो सौ बरकन्दाज ले कर उस वनमें गोला बरसाने लगे। आखिर वे लोग आत्मसमर्पण करने बाध्य हुए। इसके बाद एक वर्षके भीतर प्रायः ५४६ डकैत पकड़े गये थे। इन डकैतोंमेंसे भवानी पाठक ही हमलोगोंका परिचित हैं।

भवानी पाठक देखो।

शासन-विभागकी सुविधाके लिये रंगपुर जिलेमें बहुत थोड़े परिवर्त्तनके सिवा कोई ऐतिहासिक घटना घटी। ब्रह्मपुत्र नदीका पूर्वी भाग ग्वालपाड़ा नामक स्वतन्त्र जिलेमें संगठित हो कर आसाम प्रदेशके अन्तर्भुक्त हो गया। उत्तरके तीन परगने ले कर जलपाईगुड़ी जिला और दक्षिणका कुछ अंश ले कर बगुड़ा जिला बना है। जलपाईगुड़ी और बगुड़ा देखो।

इस जिलेमें ६ शहर और ५२१२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या २० लाखसे ऊपर है। शहरोंमें रङ्गपुर और सैयदपुर हैं। अधिवासियोंमें मुसलमानकी संख्या ही ज्यादा है। ये लोग पहले स्थानीय आदिमवासी थे। मुसलमानी अमलके समय हिन्दू-समाजमें स्थान न पा कर मुसलमान हो गये। अलावा इसके यहां भ्रमणशील कितने तेलेङ्गोंका भी वास है। कोच, पलिया और राजवंशी नामक अर्द्धसभ्य जातिकी भी संख्या थोड़ी नहीं है।

महीगञ्ज, धाप और नवाबगञ्ज नामक उपकण्ठ ले कर रङ्गपुर सदर म्युनिसपलिटीका अधिकार है। इसके अतिरिक्त यहां बरखाता, भोगदाबाड़ी, डिमला, घोड़ग्राम, छातनाई, वामोनी, कपासी, शालमारी, खानवारितपा, बागडोगरा, नौतवितपा, बरागड़ी, मागुरा, झूमागाछ, छपारी, भागधाछागड़ी आदि नगर हैं। महीगञ्ज, लालबाग, घोड़ामारा, काकिना, कानिया, निसबेटगञ्ज, कालीगञ्ज लालमणीका हाट, कालीदह, यात्रापुर आदि स्थानोंमें यहांका वाणिज्य-केन्द्र हैं। १८७६ ई०में नदर्न बेङ्गल ष्टेट रेलवे और उसकी शाखा रङ्गपुरजिलेके मध्य विस्तृत होनेसे स्थानीय वाणिज्यमें बड़ी सुविधा हो गई है।

उक्त जिलेके चार उपविभाग हैं, महीगञ्ज, निसबेटगञ्ज, कुमारगञ्ज, मीठापुकुर और पीरगञ्ज तथा सदर उपविभागके अन्तर्गत हैं। नीलफामारी उपविभागमें डिमला, जलधाका और बरखानी नामक थाना; कुड़िग्राम उपविभागमें नागेश्वरी, बड़बाड़ और उलिपुर तथा गाइबांधा उपविभागमें गोविन्दगञ्ज, भवानीगञ्ज, सादुल्लापुर और सुन्दरगञ्ज थाना हैं। सैयदपुरमें रैलकम्पनीका कारखाना स्थापित होनेसे यह स्थान विशेष समृद्धिशाली हो गया है। विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत पिछड़ा हुआ है। अभी लोगोंका ध्यान इस ओर कुछ कुछ आकृष्ट हुआ है। फिलहाल कुल मिला कर १२२७ स्कूल हैं जिनमेंसे ६४ सिकेण्डरी और ११३१ प्राइमरी स्कूल है। विद्याशिक्षामें कुल २ लाख रुपया खर्च होता है। स्कूलके अलावा यहां २५ दातव्य चिकित्सालय हैं।

२ रङ्गपुर जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २५°१८´ से २६° १६´ उ० तथा देशा ८८°५६´ से ८९° ३१´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११४१ वर्गमील है और जनसंख्या ७ लाखके करीब है। इसमें रङ्गपुर नामक एक शहर और १८६७ ग्राम लगते हैं। यह उपविभाग बहुत अस्वास्थ्यकर हैं।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २५° ४५´ उ० तथा देशा० ४९° १५´ पू०के मध्य विस्तृत है। महाभारतोक्त राजा भगदत्त यहांके शासक थे। अफगान राज अलाउद्दीनने इस पर १४९३ ई०में अधिकार जमाया और १५१९ ई० तक राज्य किया। शहरकी आबहवा अच्छी नहीं है। डिष्ट्रिक्ट-जेल इसी शहरमें है। यहां एक हाई स्कूल और १८८६ ई०में स्थापित टेक्निकल स्कूल है।

रङ्गपुर—आसामप्रदेशके शिवसागर नगरके दक्षिण एक ध्वस्त नगर। १७वीं सदीके आहम-राजाओंके प्रासादादिका खण्डहर आज भी गत कीर्त्तिकी घोषणा करता है। प्रवाद है, कि यह प्रासाद और जयसागर देवमन्दिर प्रायः १६९८ ई०में राजा रुद्रसिंहने बनवाया था। प्रासादके आस पासका स्थान जंगलसे ढँका होने पर भी प्राचीन दीवार आज भी अभग्न अवस्थामें विद्यमान है। प्रासादगृहकी छत जहां तहां टूटफूट गई है। देवमन्दिरके सामने

जो जयसागर तालाब है वह लम्बाई और चौड़ाईमें शिव सागर हृदके बराबर है। मन्दिरका शिल्पनैपुण्य देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। मन्दिर ज्योंका त्यों खड़ा है, किन्तु देवमूर्त्ति न रहनेसे कोई उसमें पूजा करने नहीं जाता। नगरके समीप गड़गाँव नामक स्थानमें भी आहम-राजाओंकी राजधानी थी। १७८४ ई०में राजा गौरीनाथ रङ्गपुरसे जोड़हाटमें राजधानी उठा लाये।

रङ्गपुरी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी नाव जिसके दोनों ओरकी गलही एक-सी होती है।

रङ्गपुष्पी (सं० पु०) रङ्गं रञ्जितं पुष्पमस्याः। नीलीवृक्ष।

रङ्गप्रवेश (सं० पु०) अभिनय करनेके लिये किसी पात्रका रंगभूमिमें आना।

रङ्गभट्ट—भारद्वाजगृह्यप्रयोगवृत्तिके प्रणेता।

रङ्गभवन (सं० पु०) आमोद-प्रमोद वा भोगविलास करनेका स्थान, रङ्गमहल।

रङ्गभूति (सं० स्त्री०) रङ्गस्य रागस्य भूतिः शोभाऽत्र। कोजागर पूर्णिमा, आश्विनकी पूर्णिमा। कहते हैं, कि जो लोग इस रातको जागते रहते हैं उन्हें लक्ष्मी आ कर धन देती हैं।

रङ्गभूमि (सं० स्त्री०) रंगस्य भूमिः। १ मल्लभूमि, वह स्थान जहां कुश्ती होती हो, अखाड़ा।

"सार्द्रां सुकठिनाञ्चैव पाषाणोदकसंयुतां।
तृणकाष्ठसमायुक्तां रङ्गभूमिन्तु वर्ज्जयेत्॥
समाञ्च विपुलाञ्चैव किञ्चित्पांशु समन्विताम्।
एकान्ते विजने रम्ये रङ्गभूमिन्तु कारयेत्॥"

(अश्ववै० ७।११-१२)

मल्लभूमिका स्थान समतल विस्तृत और कुछ पांशुयुक्त तथा विजन और रमणीय होना चाहिये। मल्लभूमिके लिये वह स्थान बिलकुल अनुपयुक्त है जहांकी मिट्टी कड़ी, पथरीली और घाससे ढकी हो। २ रणस्थल, युद्धक्षेत्र। ३ नाट्यभूमि, नाटक खेलनेका स्थान। रङ्गालय देखो। ४ वह स्थान जहां कोई जलसा हो, उत्सव मनानेका स्थान। ५ खेल, कूद वा तमाशे आदिका स्थान, क्रीड़ास्थल।

रङ्गमागिरि—आसाम-प्रदेशके गारो पार्वतीय जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह सिमसंगाम पर्वतका-दक्षिण ढालू देशमें अवस्थित है। यहां १८७१ ई०में जब गारो लोगोंने पैमाइशमें नियुक्त हो गवर्मेण्टके कुलियोंको निहत किया, तब अंगरेज राजने उनके विरुद्ध सेना भेजी। १८७२ ई०में गारो लोग पराजित हो कर अंगरेजोंकी वश्यता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। तुरासे ले कर रायक थाने तक जो रास्ता है वह इस गांवके बीचोबीच हो कर चला गया है।

रङ्गमङ्गल (सं० क्ली०) रंगमञ्च पर मिल कर उत्सव करना।

रङ्गमण्डप (सं० क्ली०) रंगभूमि, रंगस्थल।

रङ्गमती—चटगांवका एक वन।

रङ्गमध्य (सं० पु०) रंगमंच, रंगस्थल।

रङ्गमल्ली (सं० स्त्री०) रङ्गाय रागाय मल्ली। वीणा, बीन।

रङ्गमहल—दिल्लीका एक विस्तृत प्रासाद। मुगल बादशाह यहां आमोद प्रमोद करते थे।

रङ्गमहल (अ० पु०) भोग-विलास करनेका स्थान, आमोद-प्रमोद करनेका भवन।

रङ्गमाणिक्य (सं० क्ली०) माणिक्यरत्न।

रङ्गमातृ (सं० स्त्री०) रङ्गस्य माता जनिका। १ कुटनी। २ लाक्षा, लाख।

रङ्गमातृका (सं० स्त्री०) रङ्गमातृ स्वार्थे कन्-टाप्। लाक्षा, लाख।

रङ्गराज (सं० पु०) संगीत-दामोदरके अनुसार तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक भेद।

रङ्गराज—एक हिन्दू राजा (१५७२-८५ ई०में)। ये प्रायश्चित्तपद्धतिके प्रणेता सायणके प्रतिपालक थे।

रङ्गराज—१ शिशुपाल-वधके एक टीकाकार। मल्लिनाथने इनका नामोल्लेख किया है। २ अद्वैत-मुकुरके रचयिता। ३ रूपक-परिभाषा नामक अलङ्कारग्रन्थके प्रणेता। ४ मीमांसानयदीपिकाके प्रणेता वरदराजके पिता और देवराजके पुत्र, ये भी एक सुपण्डित थे।

रङ्गराता (सं० त्रि०) १ भोग-विलासमें लगा हुआ, ऐश आराममें मस्त। २ प्रेम-युक्त, अनुरागपूर्ण।

रङ्गरामानुज—उपनिषद्भाष्यविवरण (तैत्तिरीयोपनिषद् और बृहदारण्यकोपनिषद् सम्बन्धीय) उपनिषद् प्रका-

शिका, उपनिषद्भाष्य और द्राविड़ोपनिषत्साररत्नावली-व्याख्या नामक ग्रन्थके प्रणेता। अलावा इसके शङ्कराचार्यकृत ईशावास्योपनिषद्भाष्यकी टीका, कठवल्ल्युपनिषत्प्रकाशिका, कौषितक्युपनिषत् प्रकाशिका, छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य, प्रश्नोपनिषत्प्रकाशिका, वृहदारण्यकभाष्य, माण्डुक्योपनिद्भाष्य, मुण्डकोपनिषद्भाष्य, श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य तथा गुरुभाव-प्रकाशिका, भावप्रकाशिका, मूलभावप्रकाशिका रंगरामानुजभाष्य (वेदान्त), विषयवाक्यदीपिका, श्रुतभावप्रकाशिका और रंगरामानुजीय नामक वेदान्त ग्रन्थ इनके बनाये हैं।

रङ्गरेज (फा० पु०) १ वह जो वस्त्रादि रंगाता हो। २ उक्त व्यवसावलम्बी निम्न श्रेणोकी मुसलमान जातिविशेष। ३ योगी जातिको एक शाखा। उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें हिन्दू और मुसलमान रंगरेज देखनेमें आते हैं। मुसलमान शाखाके मध्य फिर ८१ स्वतन्त्र थोक हैं। उनका कहना है, कि खाजाअली नामक एक साधुसे उन लोगोंके मध्य एक प्रवाद इस प्रकार प्रचलित है,—'खाजा अली रंगरेज, रंगे खुदाकी सेज' अर्थात् खाजा अली परम पिता परमेश्वरको शय्या रंगाते हैं।

दूसरी जातिके लोग यदि इनमें मिलना चाहे, तो ये लोग उन्हें अपने समाजमें ले लेते हैं सही, पर उनके साथ विवाहादि नहीं करते। इससे बारह वर्षके भीतर ही बालकबालिकाका विवाह होते देखा जाता है। यह विवाह बरहौवा, दोला और सगाईके भेदसे तीन प्रकारका है। बरहौवा प्रथामें वर बारात ले कर कन्याके घर जाता और विवाह करता है। जो गरीब हैं उनमें दोला-प्रथाका विवाह ही अधिक होता है। इसमें कन्या छिपके वरके घर लाई और ब्याही जाती है। विधवा-विवाहको सगाई कहते हैं। सुरा-पाठके सिवा विवाह-बंधनका और कोई विशेष मन्त्र नहीं है। विधवा अपने देवर अथवा जिस किसीसे इच्छा हो, विवाह कर सकती है। स्त्री वा पुरुषमें जब कोई दोष दिखाई देता और वह दोष दो-मेंसे कोई पंचायतमें पेश करता है, तब विवाह-बन्धन टूट जाता है।

मुसलमान रंगरेजोंमें अधिकांश सुन्नीमतावलम्बी हैं। सुन्नी सिया लोगोंके साथ आदान-प्रदान नहीं करते। गाजीमीयां और पांचपीर इनके प्रधान उपास्य-देवता हैं। ज्येष्ठ मासके प्रथम रविवारको ये लोग उक्त देवताकी पूजा करते हैं। विवाहके बाद गाजीमीयांको कन्दूरी चढ़ानेकी प्रथा है। ईद, सब-इ-बरात और बकर-ईद उत्सवोंमें ये लोग पितृपुरुषोंके उद्देशसे उन्हें खाद्यादि चढ़ाते हैं।

रङ्गलता (सं० स्त्री०) आवर्त्तकी लता, मरोड़फली।

रङ्गलाल बन्द्योपाध्याय—बंगलाके एक प्रसिद्ध कवि। १८२६ ई०में वर्द्धमान जिलेके कालनाके निकटवर्त्ती बाकुलिया ग्राममें इनका जन्म हुआ। इनके पिताका नाम रामनारायण था।

हुगली कालेजमें रंगलालकी शिक्षा शेष हुई। शारीरिक अस्वस्थताके कारण वे अधिक दिन कालेजमें न पढ़ सके। वाध्य होकर उन्हें विद्यालय तो छोड़ना पड़ा, पर उनकी पाठस्पृहा दूर न हुई थी। अंग्रेजी काव्यशास्त्रमें इनका अच्छा अधिकार हो गया था। वे बचपन से ही कविता-रचनाके अनुरागी थे।

१८५५ ई०में एडुकेशन गजटके प्रकाशित होने पर मि० बायन स्मिथ साहब सम्पादक रंगलाल और उनके सहकारी नियुक्त हुए। बहुत दिन तक इन्होंने यह कार्य किया था। उस समयके एडुकेशन गजटमें इनकी गद्य पद्य दोनों ही रचना प्रकाशित होती थीं। कुछ वर्ष बाद ये इनकमटैक्सके एसेसर हुए थे। इसमें योग्यता देख कर गवर्मेण्टने इन्हें डिपटी मजिष्ट्रेटका पद दिया।

उनके हृदयमें जातीय स्वाधीनताकी उद्दाम-आकांक्षा घुस गई थी। इनके बनाये पद्मिनी-उपाख्यान, कर्मदेवी और शूर सुन्दरी काव्यमें उसका उच्छ्वास देखा जाता है। उन्होंने संस्कृत कुमारसम्भवका पद्यानुवाद भी किया था। इसके सिवाय आप बंगला कविता-विषयक प्रबंध और शरीरसाधनीविद्याके गुणकीर्त्तनके संबंधमें और भी दो ग्रंथ लिख गये हैं। १८८७ ई०की १३वीं मईको रंगलालका देहांत हुआ।

रङ्गलासिनी (सं० स्त्री०) रंगेण रागेण लसितुं शीलमस्याः इति लस-णिनि। शेफालिका।

रङ्गवती (सं० स्त्री०) वासवदत्ता-वर्णित एक नायिका। इन्होंने अपने स्वामी रतिलेखको मार डाला था।

रङ्गवल्लिका (सं० स्त्री०) रंगवल्ली, नागवल्ली ।

रङ्गवस्तु (सं० क्ली०) रंग ।

रङ्गवाट (सं० क्ली०) वह स्थान जो रंग दिखानेके लिये घिरा हो ।

रङ्गवाराङ्गना (सं० स्त्री०) नर्त्तकी वेश्या, वह वेश्या जो नाच गान करती हो ।

रङ्गविद्याधर (सं० पु०) १ तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक भेद । इसमें दो खाली और दो प्लुत मात्राएं होती हैं। २ वह जो अभिनय करता हो, नट । ३ वह जो नाचनेमें कुशल हो ।

रङ्गवीज (सं० क्ली०) रङ्गं बीजं उत्पत्तिकारणमस्य । रूप्य, चांदी ।

रङ्गशाला (सं० स्त्री०) रङ्गस्य शाला । नाट्यगृह, नाटकके खेलनेका स्थान ।

रङ्गस्वामी—मद्रासप्रदेश नीलगिरि पर्वतमालाका एक शृङ्ग । यह अक्षा० ११° २७´ २०´´ उ० तथा देशा० ७७° २०´ पू०के मध्य गज्जलहाथी संकरके समीप अवस्थित है । समुद्र-पृष्ठसे इसकी चोटी ५६३७ फुट ऊंची है ।

रङ्गहट्ट—मालवके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम ।

रङ्गाङ्गण (सं० पु०) रंगस्थल, नाट्यशाला ।

रङ्गाङ्गा (सं० स्त्री०) रंगं रंगाहं अंगमस्याः । स्फटी, फिटकरी ।

रङ्गाचार्य—एक प्रसिद्ध पण्डित । ये सन्न्यासाश्रमग्रहण करनेके बाद वागीशतीर्थ नामसे परिचित हुए तथा कवीन्द्रतीर्थके तिरोधानके बाद वह आसन पाया । १३४४ ई०में ये करालकालके मुखमें पतित हुए ।

रङ्गाचार्य—अष्टाक्षरव्याख्या, तुलसी नलिनाक्ष, रघुवीर-विंशति और रंगभृंगवल्ली नाम कई संस्कृत ग्रन्थके रच-यिता । २ आदेशकौमुदी नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता । ३ उत्तर पक्ष और गोवर्द्धनपक्ष नामक न्याय ग्रन्थके रच-यिता । ४ शुकसन्देशकाव्यके रचयिता ।

रङ्गाजीव (सं० पु०) रङ्गो हरितालादिस्तेनाजीवतीति जीव अण्, यद्वा रंग आजीव यादस्य । चित्रकर, वह जिसकी जीविका रंगाईसे चलती हो ।

रङ्गाभरण (सं० पु०) तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक भेद ।

रङ्गार—१ राजपूतोंकी एक जाति । इस जातिके लोग मेवाड़ और मालवामें रहते हैं । २ वैश्योंकी एक जातिका नाम । ३ महाराष्ट्र और मध्यभारतवासी ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी । शेखावती, रोहिलखण्ड, उत्तर अन्तर्वेदी और भट्टिप्रदेशमें इस श्रेणीके बहुत ब्राह्मण वास करते हैं। पश्चिमके भूमिहार ब्राह्मणोंकी तरह ये भी खेतीबारी करते हैं। अभी बहुतेरे सिपाहीमें भर्त्ती हो गये हैं । ये उद्धत और दुर्द्धर्ष हैं । आज कल इन्होंने इस्लाम-धर्म अवलम्बन किया है ।

रङ्गारि (सं० पु०) रङ्गस्य तदाख्यधातोररिरिव । करवीर, कनेर ।

रङ्गालय (सं० पु०) मल्लक्रीड़ा और नृत्यगीतादिका अभि-नय प्रदर्शनार्थ गृह । इसे अंगरेजीमें Theatre कहते हैं । जहां मल्लक्रीड़ा, व्यायाम, अस्त्रचालन आदि दिखाया जाता है उसका साधारण नाम Amphitheatre है तथा जिस मञ्चके ऊपर केवल नाट्यरङ्गमें लिप्त अभिनेता और अभिनेत्रीगण चरित्रका हावभाव दिखलातीं और उद्दीपना के साथ प्रकृतवत् अभिनय करतीं हैं वही नाट्याभिनय कहलाता है । आज कल प्रचलित पाश्चात्य थियेटरमें विशेष घटनामिश्रित किसी चरित्रके उल्लेखके साथ तदानुषङ्गी लोकचरित अभिनीत होता है ।

प्राचीन भारतवर्षमें नाट्याभिनयका विशेष आदर था । दर्शकोंके चित्तविनोदनार्थ उस समय अनेक प्रकारके नाटक, प्रहसन आदि रचे गये । भारतीय नाट्यशास्त्रकी आलोचना करनेसे इन सब विषयोंके विभिन्न विभागीय ग्रन्थोंका यथेष्ट परिचय पाया जाता है।

नाटकादि शब्द देखो ।

भारतीय हिन्दू-राजाओंके निर्बन्धातिशयमें अथवा किसी उत्सवमें उनके चित्तरञ्जनार्थ राजकवियों द्वारा अनेक प्रकारके गीतिनाट्य प्रवर्त्तित हुए । उन सब नाटकों-का अभिनय दिखानेके समय भारतीय नाट्याचार्यगण कैसा रंगमञ्च और रंगालय बनाते थे, उसका विवरण जानेका कोई उपाय नहीं । क्योंकि, भारतीय रङ्गभूमिका एक भी ध्वस्त निदर्शन आज तक आविष्कृत नहीं हुआ है । सम्भवतः राजप्रासादके ही किसी स्थानमें यह रंगगृह प्रतिष्ठित था अथवा देवमन्दिरादिके सम्मुखस्थ प्राङ्गणमें वा नाट्यमन्दिरमें आवश्यकीय परदोंको

यथास्थानमें लटका कर यह सब खेल खेला जाता था। यही कारण है, कि राजकीय वा देवपूजा-सम्पर्कीय किसी उत्सवके समय राजगृहमें ही नाटकाभिनयकी बात सुनी जाती है। राजाश्रयमें प्रतिपालित नाटककार कालिदास, भवभूति आदि कविगण भी इस बातको स्वीकार कर गये हैं।

प्राचीन नाट्यशास्त्रादिमें रङ्गमञ्चकी निर्माण-प्रणालीका उल्लेख रहने पर भी उसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई कितनी होनी चाहिये, उसका कोई निर्दिष्ट परिमाण लिपिबद्ध नहीं है। जब जैसा नाटक खेला जाता था, तब उसीके अनुसार रङ्गभूमि बनाई जाती थी। किसी किसी नाट्यवित् पण्डितने उसकी लम्बाई और चौड़ाई प्रत्येक २० हाथ तथा ऊंचाई उसीके अनुसार बतलाई है। ऊपरी भाग काष्ठादि मजबूत पदार्थोंसे बना कर कलस, पताका, पुष्पमाल्य और तोरणादिके द्वारा उसे परिशोभित करे तथा उसमें झरोखे, पुतली आदि भी रखे। उसका निचला भाग चिकना और सफेद होना उचित है, परन्तु फर्श उतनी चिकनी न रहे। क्योंकि, इससे अभिनेताओंके फिसल जानेका डर है। रङ्गभूमिके पश्चिम प्रान्तमें नेपथ्य बनाना आवश्यक है। कारण, इससे पात्रप्रवेशकी विशेष सुविधा होती है।

अभिनयके आरम्भसे पहले या प्रति अङ्कके अन्तमें जो विचित्र पट द्वारा रङ्गभूमिका सम्मुख भाग आच्छादित किया जाता है, उसका नाम यवनिका या परदा है। बिना छेदके, किन्तु बारीक वस्त्र द्वारा ही यवनिका या परदा तय्यार किया जाता है। प्रति अङ्क या प्रति गर्भाङ्कमें जैसे रङ्गभूमिके बीचके पटोंका परिवर्त्तन हुआ करता है, उसी तरह रसविशेषमें यवनिकाका परिवर्त्तन करना उचित है। आदिके रसमें शुभ्र या सादा, वीररसमें पीला, करुणरसमें धुंधला या धुंआदार, अद्भुतरसमें हरा, हास्यरसमें विचित्र, भयानकरसमें नील तथा वीभत्सरसमें धूसर और रौद्ररसमें लाल रंगकी यवनिका या परदा डालना चाहिये। किसी किसी प्राचीन नाट्याचार्योंके मतसे शुद्ध लाल रंगकी ही यवनिका सब रसोंमें व्यवहृत हो सकती है। आधुनिक नाटककार प्रायः इसी मतके अनुसरण करनेवाले देखे जाते हैं।

प्राचीनकालमें यवनिका दो भागोंमें विभक्त थी। पात्रोंके प्रवेशके समय दो सुन्दर स्त्रियों द्वारा दोनों ओरसे यवनिका खींच ली जाती थी। इस समयकी तरह घिरनियों और डोरियोंके साहाय्यसे ऊपर उठाई नहीं जाती थी।

उस समय दर्शकमण्डलीके बैठनेके लिये आसन विभिन्न स्थानोंमें रखे जाते थे। नाट्यशालाके पूर्वी भागमें राजा या सङ्गीतविशारद, न्यूनाधिक विवेचक, मार्गदर्शी, विभागवित्, सानन्दचित्त, रसालङ्काराभिज्ञ, कलानाट्यनिपुण, अभिनयवेत्ता सब तरहके गुणों और दोषोंके निरूपणज्ञ, दूसरेके अभिप्रायके समझनेवाले और क्षमाशील सभापतिका आसन रहता था। दक्षिणमें ब्राह्मणोंके लिये, उत्तरमें अमात्य और बालकोंके लिये, भित्तिपार्श्वमें स्त्रियोंके लिये, सभाप्रान्तमें बन्दी, स्तावक, राजा या सभापतिके शरीर-रक्षक शस्त्रधारियोंके लिये और अन्यान्य दर्शनेच्छु व्यक्तियोंके लिये स्थान निर्दिष्ट होता था। अपरिचित, शस्त्रपाणि, अनाचारी, पीड़ित, अनभिज्ञ और पाषण्डियोंको सभामें आने नहीं दिया जाता था। मध्यस्थता, सावधानता, अचञ्चलता, न्यायवादिता, निरहङ्कारिता, रसभावाभिज्ञता, सानन्दचित्तता आदि गुणों द्वारा भूषित व्यक्तिमात्र ही नाट्यसभाके सभ्य पद पाने योग्य होते थे। सिवा इसके अन्यान्य दर्शक या श्रोता रसभंगके कारण होते थे।

(भरतकृत नाट्यशास्त्र)

प्राचीन-भारतकी तरह पाश्चात्य जगत्में अर्थात् प्राचीन यूरोपके सुसभ्य रोमन और यूनानियोंमें और एशियामाइनरवासी यूनानी प्रभावापन्न यवनोंमें बहुत प्राचीनकालसे अभिनय करनेके लिये रंगालय तैयार हुए थे। इतिहासके पढ़नेसे मालूम होता है, कि एथेन्सवालोंने नाटक अभिनय करनेके लिये (dramatic representation) सबसे पहले रंगालय स्थापित किया। डिओनिसस् देवके प्रति उत्सव (Dionysiac festivals)-के समय वे अस्थायी लकड़ीके पटरोंसे रंगमञ्च निर्माण कर अभिनय-कार्य सम्पन्न करते थे। ईसाके ५०० वर्ष पहले किसी दुर्घटनामें अस्थायी मञ्चके नष्ट हो जानेसे एथेन्सवाले एक स्थायी रंगमञ्च तय्यार करने-

में तत्पर हुए। ईसासे ३४० वर्ष पहले एक सर्वप्रथम स्थायी रंगमञ्च तय्यार हुआ। इसी समय यूनान और एशिया माइनरके नाना स्थानोंमें प्राचीन रंगालयोंके अनुरूप अनेक नाट्यशालायें तैयार हुईं। स्पार्टमें केवल व्यक्तिवर्गकी सभा और नृत्यामोदके लिये कई रंगमञ्च प्रतिष्ठित हुए थे सही, किन्तु उनमें आज तक नाट्य-अभिनय नहीं हो सका।

दिओनिसस् पवित्र लेनियाम् (Lenaeum) नामक स्थानकी चहारदीवारीके भीतर एथेन्सके सुप्रसिद्ध दिओनिसियक रंगालय प्रतिष्ठित था। एक्रोपलिस पर्वतके दक्षिण-पूर्व कोनेकी जड़को खोद कर इस रंगालयमें दर्शकवृन्दके बैठनेकी जगह (auditorium) बनी थी। यूनानियोंने जिस जिस जगह रंगभूमिकी रचना की थी, उनमें इस तरहसे पर्वतके पादमूलमें खोद कर दर्शकोंके बैठनेके लिये सिढ़ियां या गैलेरियां बनी थीं। ईसाके १ शताब्दी पहले रोमनोंमें समतल भूमि पर रंगमञ्च बनानेका कोई चिह्न पाया नहीं जाता।

इस समयके ढंगके बने रंगालयों पर छत न थी। एशिया-माइनर केलिसियाके दक्षिण-पूर्वमें मैरा (Myra) नगरमें रंगालयके जो नमूने मिले हैं, वे अत्यन्त प्राचीन न होने पर भी प्राचीनतम यूनानी रंगालयोंके ढंग पर बने हुए थे। इनमें दर्शकोंके बैठनेके लिये जो आसन बने थे, वे एक केन्द्रीभूत थे और अर्द्ध-वृत्ताकारमें गैलेरियां बनी थीं। श्रेणीबद्ध सोपानावली या गैलेरियां परस्पर सटी हुई थीं। ये गैलेरियां पर्वतके ढालवें देशमें काट कर समसूत्राकारमें (gallery) बनाई गई थीं। इस दर्शनमण्डपका नाम Covea था। पांच या छः पंक्तियोंके बाद दर्शकोंके आने जानेकी सुविधाके लिये एक पथ बनाया जाता था। उसके बाद ऐसी ही गैलेरियां बनाई जाती थीं। सबसे पीछे केवल स्त्रियोंकी अलग गैलेरियां रहती थीं। यहां स्तम्भों पर छत रहती थी। इसके नीचे एक रास्ता या बरामदा रहता था। इस छत पर भी बैठनेका स्थान रहता था। रोमनोंकी तरह यूनानियोंके थियेटरमें भी स्त्रियोंके बैठनेके लिये अलग ही पीछे स्थान रहता था। वह आसन बहुत ऊंचे होते थे। (Atheneus xii, 534)। नव्य युगमें प्राचीन यूनानियोंमें प्रधान प्रधान पुरोहितोंकी स्त्रियों (Chief priestesses) के लिये गैलेरियोंके सामने मर्मर पत्थरके बने सिंहासन बनानेकी रीति प्रवर्त्तित हुई थी। थियेटर या रंगालय पर छत न रहनेसे दर्शकोंको बड़ी असुविधा होती थी। तूफान और वृष्टिके समय लोगोंको गैलेरियोंके नीचे या रास्तेमें या बरामदेमें छिपना पड़ता था।

वृष्टि पालाके सिवा छतविहीन रंगमञ्च पर दर्शकमण्डलीके कष्टका एक और कारण था। वह यह, कि पात्र और पात्रियोंके मुखसे निकले हुए शब्द सुनाई नहीं देते थे। क्योंकि, छत न रहनेसे आकाशमार्गसे शब्द उड़ जाते थे। उनकी प्रतिध्वनिका कोई उपाय न था। इसलिये रंगालयके सञ्चालक सबसे पीछेवाली दीवार और बगलकी सीमावाली चहारदीवारीमें कितनी ही कुलुङ्गियां बना लेते थे। इन कुलुङ्गियोंमें ब्राञ्ज धातुके बने बड़े बड़े कलसे लगा दिये जाते थे। ष्टेज या रंगमञ्चसे निकले बारंबार शब्द इन कलसोंमें समा जाते थे और क्रमशः घनीभूत हो कर सूर जमानेके लिये ही नाट्याचार्योंने इस तरहके कलसास्थापनका विधान किया था।

विट्रेवियसने लिखा है, कि यह कुलुङ्गी भीतरके कलसेके मुताबिक ही बनाई जाती थी और कलसा भी सुरसमन्वय (tuned in a chromatic scale) अनुसार ही संस्थापित किया जाता था। उनका कहना है, कि यूनानी स्वभावतः इसी उद्देश्यसे घड़े रखते थे। रोमनोंके रंगालयोंमें इस तरहके कलसे स्थापित किये जाते थे, कि नहीं यह बात वे जानते न थे। सिसली-द्वीपके टारोमिनियन रंगालयकी कुलुङ्गियां आज भी रक्षित हैं। यह निःसन्देह कहना कठिन है, कि यथार्थमें क्यों उन लोगोंने इस तरहकी कुलुङ्गी तथा कलसोंके स्थापित करनेकी व्यवस्था की थी।

ग्रीक-रंगमञ्चकी गैलेरियोंके सामने और ष्टेजके व्यवधानमें जो ऊंचा मण्डप स्थापित होता था, वह अर्चेष्ट्रा (Orchestra) कहलाता था। यहां गायक, वादक और नर्त्तकियां बैठती थीं। इसके बीचमें गैलेरियोंके समान ऊंचा दिओनिससकी पवित्र वेदी रहती थी। वेदीके पीछे ही ष्टेज या पतला चबूतरा

(Proscenium) रहता था। अर्चेष्ट्राकी अपेक्षा उसे ५ फुट तक ऊंचा होता था। इस पर चढ़नेके लिये कई सीढ़ियां बनाई जाती थीं। अर्चेष्ट्रामें बैठे हुए पात्र-पात्रियां आवश्यकतानुसार ऊपर ष्टेज पर चढ़ कर अपना पार्ट करती हैं। ष्टेजके बीचमें जहां प्रधान-प्रधान अभिनेतृवर्ग आ कर खड़े होते हैं वह Pulpitum ष्टेजके नीचे एक कोठरी रहती थी।

ष्टेजके सबसे पीछे ऊंची एक दीवार रहती थी। यह दर्शकोंके निर्द्दिष्ट अन्तिम सोपानके पीछेकी ओर स्तम्भश्रेणीके समान समोच्च बनती थी; इसका नाम Scena है। इसके नीचे भीतर जानेके लिये तीन दरवाजे बनाये जाते थे। बगलके दोनों दरवाजोंसे साधारण अभिनेता या पात्र और बीचके दरवाजेसे केवल साजसे सज्जित हो कर बाहर होते थे। इसके पीछे पात्रपात्रियोंके लिये 'साज-घर' होता था। ये ऊंची दीवार तीन स्तम्भों द्वारा इस ढंगसे बनाई जाती थी, जिसे दूरके देखनेवाले समझते थे, कि किसी राजमहलका अगला भाग है। लोगोंको यह मालूम होता था, कि किसी उत्सवके उपलक्षमें किसी राजमहलके सामने अभिनय हो रहा है।

सिवा इसके इस रंगालयकी शोभा बढ़ानेके लिये चिरस्थायी प्रासाद या दीवारके बदले और भी कितने ही काष्ठनिर्मित चित्रपटोंकी अवतारणा की जाती थी। ये दृश्यपट इच्छानुसार हटाये जा सकते थे। कभी कभी शलमासितारेके बने चित्रोंसे सुसज्जित परदा पात्रोंके पीछे लगा दिया जाता था। इस तरहके परदे या दृश्यपटका नाम aulaca या Siparium है। पिछले समयमें नाना तरहके चित्र खींच कर रंगालयमें परदा व्यवहार किया जाने लगा। अरिष्टटलके मतसे नाना रंगोंसे रञ्जित इस तरहके अङ्कित दृश्यपटने सोफोक्लिसके बाद रंगालयोंकी शोभा बढ़ाई थी।

दृश्यपटके सिवा आवश्यकतानुसार अनेक कल कारखानोंकी उन्नति हुई हैं। स्वर्गीय देवताओंके अवतरणकी लीला या अभिनय करनेके लिये अभिनेताको झुला देना होता था। इसके लिये एक यन्त्र निकाला गया था। वज्रपातका शब्द करनेके लिये एक बड़े धातुमय पात्रमें पत्थर भर कर रखा जाता था। ऐसा पात्र सम्भवतः ष्टेजके नीचेवाले कमरे (Ghost chamber)-में रख यथासमय उससे काम लिया जाता था।

एथेन्स महानगरीके दिओनिसियाक् रंगमञ्चका (जिसके अनुरूप इस समयके रंगालय बनाये जा रहे हैं) ध्वंसावशेष सन् १८६२ ई०में प्रत्नतत्त्वविभागके यत्नसे प्रोथितावस्थासे ही साधारणको दिखलाया गया था। उस समय भी उसका प्रोसिनिउम्, अर्चेष्ट्रा और नीचेके बैठनेके 'सीट' सुरक्षित थे। इनका आकार-प्रकार देख कर अनुमान किया जाता है, कि इस रंगभूमिमें एक बार तीस हजार मनुष्य बैठ सकते होंगे। इस रंगालयमें साधारण लोगोंके बैठनेकी जगहके समान एथेन्सके प्रधान-प्रधान धर्मयाजकोंके बैठनेके उपयुक्त मर्मरपत्थरके बने ६७ आसन थे। सिंहासनों पर उस समयके धर्मयाजकोंका नाम खुदा हुआ है। खुदे हुए सनसे मालूम होता है, कि ये सभी आसन एक समयके बने नहीं हैं। अगष्टस्के राजत्वकालके पहलेसे हेड्रियानके राजत्वकालके बीच समय-समय पर ये सिंहासन बने थे। रंगालयका दर्शनमण्डप दर्शकोंकी मर्य्यादाके अनुसार नियत होता था। इस रंगालयमें इस तरहके १३ भाग होते थे। प्रत्येक भागके आसन एक छोटी चहारदीवारीसे घिरे होते थे। अर्चेष्ट्रासे समूचा अडिटोरियम भी इसी तरह चहारदीवारी द्वारा सम्पूर्णरूपसे पृथक् था।

एथेन्सके सिवा यूनानके अन्यान्य नगरोंमें भी रंगालय थे; उनमें मेगालोपोलिस, निडस, साइराकिउस, आर्गोस् और एपिदौरसका रंगमञ्च उल्लेखनीय है। यह निश्चय है, कि ईसाके ४ शताब्द पहले यूनानके प्रधान प्रधान प्रायः सभी नगरोंमें ऐसा ही एक अभिनयागार प्रतिष्ठित हुआ था। रोमनोंके राजत्वकालमें प्रायः सभी नाट्य-मन्दिरोंकी मरम्मत हुई थी और स्थानविशेषमें नये रंगभवन बना कर देशी नागरिकोंके भोग सुख और विलासपरताकी पूर्ण पराकाष्ठा प्रकट की गई थी। इन सबोंके निदर्शनस्वरूप पम्फिलियाके अन्तर्गत आस्पेन्डस नगरका रंगालय उस अतीत कीर्त्तिका परिचय दे रहा है। ये भवन २री शताब्दीमें बना था, फिर भी, यह अभी नष्ट-भ्रष्ट नहीं हुआ है। यह रंगभवन प्राचीन

रंगमञ्चके अनुरूप ही बना था। इस आस्पेण्डस-रंगालयके स्टेजके पीछेकी दीवार Scena-में तीन दर्जा स्तम्भ लगाये गये हैं।

रोमनगरीके सुप्रसिद्ध कोलोसियम्-रङ्गवाटिकाकी तरह इस रङ्गालयमें भी लकड़ोंका मचान बांध कर दर्शन-मण्डप पर त्रिपाल चढ़ा कर आच्छादन करनेकी व्यवस्था हुई थी। Scena-प्राचीरके बराबर और श्रेणीबद्ध काष्ठस्तम्भ खड़े कर उस पर मचान बांधी गई थी। इस मचानके स्तम्भों पर गुल (Corbels) बैठाया जाता था। स्टेजका ऊपरी भाग तोप देनेके लिये ढालवों छत (Pent-roof) तय्यार की जाती थी। इस छतका निम्न-भाग घरकी समतल छतकी तरह दिखलानेके लिये वे लकड़ोंके पटरेसे आवृत कर लेते थे। यही स्टेज-गृहका ऊर्द्ध्वावरक (Ceiling) था। इस सिलिङ्ग छतमें लकड़ोंके गुल लगा कर स्टेजकी शोभावृद्धि की जाती थी।

आसपेन्डस रङ्गालयके पहलेके जितने रंगमंचोंका उल्लेख पाया जाता है उन सभीमें छत नहीं रहती थी। अतः उन सब रंगगृहोंमें बैठे दर्शकोंको विशेष कष्ट भोगना पड़ता था। वे सम्पूर्ण रूपसे सूर्य्यके उत्तापसे तंग होते थे। इसके बाद सिसलीद्वीपके टौरोमिनियम् थियेटर और लाइसियके अन्तर्गत मैरेका रंगमञ्च विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इन दोनों रंगालयोंके कुछ अंश ध्वंस होने पर भी यह आज भी भग्नावशेषमें परिणत नहीं हुए हैं। ये आज भी सुरक्षित रह कर प्राचीन जगत्की अतीत-कीर्त्तिका परिचय दे रहे हैं।

रोमी प्रधानतः यूनानी रंगमञ्चकी तरह अपने रंगालय बनाते थे, उनमें विशेषता यही थी, कि यूनानी अर्केष्ट्रा अर्द्धगोलाकृतिसे कुछ अधिक रहती थी। किंतु रोमनोंकी अर्केष्ट्रा अर्द्धगोलाकृति ही होती थी। रोमन जहां तहां इच्छानुसार पत्थरके स्थायी रंगालय बनाते थे। प्रजातन्त्रके अभ्युदयकालमें रोमन विलासिताके प्रवर्त्तकने स्थायी रंगालयोंको तोड़ कर फेंक देना उचित समझा। और तो क्या, ईसासे १५४ वर्ष पहले सीपियो नासिकाने (Scipio-nasica) रोमन सभामें पत्थरके बने रंगालयोंको ध्वंस करनेका अनुरोध किया था। काष्ठसलंग्री मासमे उसकी पूर्ति की थी। और तो क्या, ईसासे ५५ वर्ष पूर्व पम्पीने (Pompey) जब पत्थरोंका रंगमंच बनाया, तब उसकी रक्षाके लिये बाध्य हो कर रंगमञ्चके ऊपर वीनास देवता (Venus victrix)-का मन्दिर बनाना पड़ा था। मालूम होता था, कि ये रंगालय मन्दिरका चबूतरा ही है। विट्रुवियसके लिखनेसे मालूम होता है, कि इस चबूतरे पर चालीस हजार आदमी बैठ सकते थे। फिर यही रंगालय रोमन-वीरोंकी रुधिर-क्रीड़ाके स्थानका काम देता था; इस रंगमञ्चकी प्रतिष्ठाके बाद ही खेलवाड़ियों (Gladiator)-के हाथसे पांच सौ सिंह और २० हाथी मारे गये थे। इस बड़े रंगमञ्चकी बगलमें ही और भी दो थियेटर बने हुए थे। उनमें एक जुलियस सीजरने आरम्भ किया था और ईसासे १३ वर्ष पहले अगस्टसने अपने भतीजेके नाम पर उसकी समाप्ति की थी। यह थियेटर आज भी प्राचीन रोमन-कारीगरीका साक्ष्य प्रदान कर रहा है।

प्लिनीके यथार्थ इतिहासमें एक अस्थायी रंगमञ्चका उल्लेख है। ईसासे ५८ वर्ष पहले M. A. Emilius Scaurus नामक पूर्वविभागीय राजकर्मचारीके खर्चसे बने इस रंगालयमें कुछ दिनों तक महासमारोहसे अभिनय कार्य्य सम्पादित हुआ था। इसी घरमें प्राय ८० हजार आदमियोंके बैठनेका स्थान था। इसके आठ वर्ष बाद अर्थात् ईसासे ५० वर्ष पहले C. Curio द्वारा दो काष्ठ-निर्मित रंगमञ्च एक पिभो-दण्डपर (Pivot) इस तरह स्थापित हुआ था, कि प्रातःकालमें उक्त दोनों रङ्गालयोंमें स्वतन्त्र भावसे अभिनय किया जाता था और सन्ध्या समय उनको इस तरह घुमा कर एक कर दिया जाता था, जिससे वे एक रंगभूमि (Amphitheatre) बन जाते थे। बहुतेरे ऐतिहासिक इस अद्भुत रंगालयके अस्तित्वको स्वीकार नहीं करना चाहते। पूर्वोक्त रंगालयकी दर्शकसंख्याकी गणना करनेसे और व्ययबाहुल्यकी आलोचना करनेसे एक राजकर्मचारीके लिये यह काम असम्भव प्रतीत होता है।

प्राचीन रोमन कभी कभी समीप ही दो रंगालय बनाते थे। एकमें केवल यूनानी और दूसरेमें लेटिन भाषामें लिखे नाटकोंका अभिनय होता था। सम्राट्

हाड्रियानके टिभोली उद्यानके और पम्पिया नगरीका रंगालय इसका दृष्टान्तस्थल है।

एक बार रोम राज्यमें नाट्याभिनयका ऐसा समादर बढ़ा था, कि प्रायः प्रत्येक समृद्धिशाली नगरीमें एक न एक रंगालय प्रतिष्ठित होता ही था। ये सब रोमन-प्रथाके अनुसार अर्द्धचन्द्राकृति अर्केष्ट्रायुक्त बनता था। रोमके शासनाधीन यूनान नगर आदिमें जो रङ्गमञ्च स्थापित हुए थे वे सभी प्रायः यूनानी सांचेसे बने थे। क्योंकि, ये सभी रङ्गालयोंके बनानेमें यूनानी कारीगर ही लगाये गये थे। टौरोमिनियम् आस्पेण्डस् और मैरैका रङ्गालय ही इसके निदर्शनस्थल हैं। एथेन्स नगरीके समीपवर्त्ती एक्रोपोलिस् शैलके दक्षिण-पश्चिममें हिरोदेस एटिकासका, जो रङ्गालय दिखाई देता है उसमें अर्द्ध गोलाकृति अर्केष्ट्रा रहने पर भी वह उपरोक्त किसी तरहके रंगालयका निर्माण पद्धतिके अनुकरणसे नहीं बना है। सम्राट् हाड्रियानके राजत्वकालमें हेरोदेस एटिकास नामक किसी धनवान् यूनानी द्वारा बहु अर्थ खर्च कर यह रङ्गालय बना था। उनकी अपनी पत्नी Regilla-के नाम पर ही इस रङ्गालयका नाम Regillum रखा गया। रंगालय निर्म्माणके सिवा उन्होंने एथेन्स महानगरीकी शोभा बढ़ानेके लिये बहुत खर्च किया था।

रिगिलम् रंगमञ्चका दर्शनमण्डप पर्वतका सानुदेश काट कर बनाया गया था। इस पर प्रायः ६ हजार आसनयुक्त सोपान श्रेणियां रखी गई थीं। सुपरिचित डिओनिसस् देवके नाम पर उत्सर्ग किये हुए रंगालयमें आने जानेके लिये एक बड़ा छतवाला रास्ता था। पार्गामासवासी द्वितीय युमिनस्ने इस भग्नप्राय पथकी मरम्मत कराई थी।

प्राचीन यूनानियोंकी तरह रोमन रंगालयका अर्केष्ट्रा भाग केवल बजाने और गानेवालोंके बैठनेका स्थान ही नहीं था। सभ्य (सिनेटर) और अन्यान्य बड़े बड़े आदमी यहां बैठते थे। रोमनोंने प्राचीन यूनान जातिका अनुकरण करके भी रंगालयके ष्टेज और दृश्यपटके सम्बन्धमें अनेक सुधार किये थे। विट्रे वियस तीन प्रकारके ठेला दृश्यपट (Moveable Scenery)-का उल्लेख कर गये हैं—१ वियोगान्त नाटकका उपयोगी दृश्य और स्तम्भादि परिशोभित राजकीय प्रासादादि; २ हास्यरसपूर्ण प्रहसनादिके उपयोगी दृश्य खिड़कियोंसे सुशोभित छोटे मकान; ३ व्यंगकाव्य (Satyric drama) उपयुक्त दृश्यादि—कृषकजीवन-सुलभ पथ, घाट, मैदान, खेत, पर्वत, गुहा और वृक्षादि।

रंगालयके मध्ययुगके इतिहासकी वर्णना करनेसे सबसे पहले इंगलैण्डके सुप्रसिद्ध नाटककार और महाकवि सेक्सपियर और समसामयिक घटनावलीको लिपिबद्ध करना आवश्यक है। पहले पवित्र दृश्यपटादिसे ही अलौकिक क्रियाओंको दिखानेवाले नाटक अभिनीत होते थे। इसके लिये कोई खास घरकी जरूरत नहीं होती थी। किसी जगह एक मांच बांध कर तथा गिरजाघरोंमें ही यह अभिनय होता था। सन् १८वीं सदीमें ऐसे पवित्र नाटकोंके आस्वादसे तृप्त हो कर इंगलैण्डवालोंने दूसरी तरहके मनचले नाटकोंकी अवतारणा की। इंगलैण्डकी महारानी एलिज़ाबेथके राजत्वकालमें वह इस ढंगसे प्रचारित हो गया, कि उसने इंगलैण्डके साहित्य-इतिहासमें एक नई रोशनी पैदा कर दी। नाटकके समादरके साथ साथ नाटकीय भाषा नाना स्थानोंमें विकीर्ण हो कर ऐसी व्यक्तिगत आदरकी वस्तु हो उठी, कि जो चाहे सो अपने अपने घरोंमें तम्बू शामियाने या पथ या घाटमें सराय आदि बड़े बड़े मकानोंमें या बड़े बड़े आंगनोंमें उक्त भाषामें लिखे नाटक अभिनीत करने लगे। इस तरह कुछ समय बीतने पर उक्त शताब्दीके अन्तिम भागमें इंगलैण्डमें स्थायी रंगालय स्थापित होनेका उद्योग हुआ। इस समय नाटकाभिनय दिखलानेके लिये राजाकी आज्ञा ले कर सुप्रसिद्ध नाट्याचार्य सेक्सपियरने तथा वर्बेजने एक स्थायी रंगमञ्चकी प्रतिष्ठा की।

सन् १५७६-७७ ई०में लण्डन नगरमें नाट्याभिनय सम्पादनार्थ कारीगर जेम्स वर्बेज नामके एक अभिनेता द्वारा पहला रंगालय बना। यह रंगालय लकड़ीका बना था। सन् १६९८ ई० तक शोरेडिचर हेलियेल लेनमें विद्यमान था, पीछे यह तोड़ दिया गया। यह रंगालय अपने गुणसे "The Theatre" नामसे परिचित था। इसके बाद यहां 'कार्टेन' नामक थियेटर स्थापित हुआ। सन्

१६४२ ई०में पार्लियामेण्ट महासभाकी आज्ञासे नाट्याभिनय स्थगित होने तक भी यह थियेटर चलता रहा था।

वर्वेजने सन् १५६८ ई०में The Theatre का माल मसला ले कर ग्लोब थियेटरकी रचना की। बैंकसाइड नामक स्थानके वेयार गार्डेनके निकट यह रङ्गालय स्थापित हुआ। कविवर सेक्सपेयरके अभ्युदयके प्रतापसे इस थियेटरका यशःसौरभ दिग्दिगन्तमें फैल गया। यह अठकोना लकड़ीका बना था। सन् १६१३ ई०में इसमें आग लगी और इसका कुछ अंश जल कर भस्म हो गया। इसके बाद इसकी मरम्मत कर दी गई। फिर सन् १६४४ ई०में इसको तोड़ कर नया बन वाया गया। इसीके समीप हेन्सलू द्वारा सन् १५६२ ई०में The Rose और सन् १५६८ ई०में The Swan नामक नाट्यागार स्थापित हुए थे। यह सब तरहसे ग्लोब थियेटरके अनुरूप ही बने थे।

सन् १५६६ ई०में प्राचीन डोमिनिकन फ्रायारीके समीप वर्वेज The Blackfraars Theatre नामक और एक रङ्गालय स्थापित कर लाभवान् हुए। इसी समय प्रतियोगी एडवर्ड एलिनने कोई २० हजार रुपया खर्च कर सन् १५६६-१६०० ई०में The Fortune Theatre की स्थापना की। ह्वाइटक्रस ष्ट्रीट और गोल्डिङ्ग लेनके बीच यह नाट्यमन्दिर सन् १८११ ई० तक विद्यमान था। रानी एलिजवेथके राजत्वकालमें The Red bull Theatre स्थापित हुआ था। इसके समकालीन 'Hope' 'Paris Garden', 'Whitefriars', 'Salisbury Court' और 'Newington' थियेटरोंका उद्भव हुआ था। सन् १६१६ ई०में विस्कर कृत लण्डन-चित्रमें ग्लोब, होप और स्वान थियेटरोंके चित्र दिखलाये गये।

इंगलैण्डके रंगालय प्राचीन यूनानी या रोमियोंके दिखलाये पथका अनुसरण कर नहीं तैयार हुए। ये प्राचीन इंगलैण्डके प्रथानुसार ही बने हुए थे। पहले किसी सराय या बड़ी अट्टालिकाके आंगनके बीचमें स्थायी काष्ठमण्डप या ष्टेज तैयार कर अभिनय दिखाया जाता था। प्रधान-प्रधान दर्शकोंके लिये बरामदेमें सीढ़ियां बनी थीं और अपेक्षाकृत हीनावस्थापन्न दरिद्र दर्शक आंगनके किनारे किनारे खड़े हो कर तमाशा देखा करते थे। इसी प्रथाके अनुसार पुराने ग्लोब, फर्चुन, स्वान आदि वीर रसाश्रित नाटकाभिनयोपयोगी रंगालय बने थे। इन सबों और पहलेके अन्यान्य रंगालयोंके बीचमें जो मञ्च बनता था, वही ष्टेज कहलाता था। इस ष्टेजकी चारों तरफ आसन लगा दिये जाते थे। केवल जिधर साजघर या Green-room रहता था, उधर खाली रहता था। ऊपर चारों तरफ गैलेरी और बक्स रहते थे। इसलिये उस समयके नाट्याचार्य्य अठकोने रंगमंचकी उपयोगिता उपलब्ध की थी। फर्चुन थियेटर चौकोन था। प्राचीनतम इंगलैण्डके थियेटर और हमारे देशकी रासलीला या यात्रा प्रणाली आलोचना करनेसे दोनोंकी एक प्रणाली ही दिखाई देती है। केवल प्रभेद इतना ही है, कि यात्रामें ष्टेज नहीं रहता।

इंगलैण्डके सुप्रसिद्ध नाटककार सेक्सपियरकी जीवनीके लेखक हल्लीवेल फिलिप्सने लिखा है, कि फर्चुन रंगालय सब तरहसे ग्लोब थियेटरकी प्रणालीके अनुरूप ही बना था। केवल प्रभेद इतना था, कि इसका ष्टेज चौकोन और लकड़ीके पटरे जरा मोटे थे। चारों ओरकी दीवार आधी पक्की, आधी लकड़ीकी बनी थी, छतमें टाली लगी थी, दोनों ओर किनारों पर दस्तेकी मोरियां बनी थीं, ओक लकड़ीका ष्टेज था, किन्तु ऊपरसे एक स्वतन्त्र आच्छादन रहता था, जिसे अंग्रेजोंमें Shadow कहते हैं। सासोंदार जंगलोंसे परिशोभित साजघर (tireynge-house) और बैठनेके लिये दो तरहके बक्स आसन (Gendemensroomes and 'two pennie roomes') सज्जित थे। सन् १६७२ ई०में कार्कमान द्वारा सम्पादित नाट्याभिनय-संग्रहमें और विलकिन्सन-कृत Londiana mustrata (1819); कोलिया-कृत History of Dramatic Poetry (1879); हल्लीवेल फिलिप्सकृत Life of Shakespeare (1886); मोलान-कृत History of the Stage (1790); और The Antiquary नामक पत्रिकामें ओर्डिस कृत लण्डन नगरीके प्राचीन रंगालियोंके ऐतिहासिक लेखोंमें इन सबों तथा उस समयके अन्यान्य रंगालयोंके यथायथ विवरण दिये गये हैं।

१६वीं और १७वीं शताब्दीमें लोग जिस ढंगके अभिनयका आदर करते थे उसका नाम 'masque' है। इसकी अभिनय-पद्धति विशृङ्खल थी। इसमें नाटकके रसोंका विशेष रूपसे अवलम्बन कर उन रसोंके आश्रित नियम प्रतिपालित नहीं होते थे। केवल कुछ अभिनेता और अभिनेत्रीको हंसानेवाला नकाब तथा रंग बिरंगे वस्त्रोंसे सुसज्जित कर रंगमञ्च पर लाया जाता था। इस समय दृश्यपटके विशेष आडम्बर और यन्त्रके साहाय्यसे अलौकिक कौशल दिखानेका विशेष आग्रह किया जाता था। इंगलैण्डके राजा १म जेम्स और १म चार्ल्सके राजत्वकालमें बेन जोन्सन और प्रसिद्ध कारीगर इनिगोजोन्स दोनो 'मास्क' अभिनयकी पराकाष्ठा दिखा गये हैं।

जोन्सन 'मास्क'-के लिये गीतनाट्यके गाने भरते तथा पात्रोंके पार्ट तय्यार करते थे। इधर इनिगो जोन्स उसके मुताबिक दृश्यपटादिकी कल्पना कर अङ्कित किया करते थे। देवार्विभावके उपलक्ष्यमें जोन्स द्वारा रंग-बिरंगोंसे सुचित्रित पर्वतमाला, मेघमण्डल, प्राकृतिक शोभा और बड़ी बड़ी अट्टालिकायें ऐसी परिपाटी तथा निपुणताके साथ सम्पादित हुई थीं, कि जोन्सनकी अपेक्षा नाट्यजगत्‌में उनका नाम विशेषरूपसे प्रसिद्ध हो गया था। अपने प्रतियोगी जोन्सकी शुहरत और श्रीवृद्धिसे ईर्षान्वित और हिंसापरायण हो कर जोन्सन ने उनके विरुद्ध कई विद्रूपात्मक प्रहसनों (Satire)-की रचना की थी।

१६वीं शताब्दीमें इटलीमें नाटकाभिनयका पूर्ण प्रभाव दिखाई दिया। इस समय वहां विट्रुवियसके प्राचीन रंगालयका अनुकरण कर बहुतेरे नाट्यमन्दिरों-की प्रतिष्ठा हुई थी। इन सबोंमें भिकेनजा नगरका ओलिम्पिक थियेटर आज तक विद्यमान है। पल्लडियों-ने भी इसका गठन-नैपुण्य चित्रित किया था, उनकी मृत्युके बाद सन् १५८४ ई०में इसमें अभिनय-कार्य्य आरम्भ हुआ। इसका शिल्पनैपुण्य Scena, प्राचीन रंगालयके अनुकरणसे तीनों प्रवेशद्वार, नाना स्तम्भश्रेणियों और कुलुंगियोंकी पुतलियोंको देख कर आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। सिवा इनके इसमें वर्णवैचित्रका भी अभाव न रहता था। पलाडियोंके शिष्य स्कामोझीने ओलिम्पि थियेटरकी स्थापना कर सन् १५८८ ई०में साबिओनेटा नगरमें ड्युक भेस्पेसियानो गोञ्जागाके लिये एक नये ढंगका (Pseudo-classical theatre) रंगालय बनाया। दुःखका विषय है, कि यह अब नष्ट हो गया है।

फ्रान्स देशमें अलौकिक घटनाभिनय (Miracle Paly)-से धर्ममूलक नाटकका (Secular drama) प्रचलने इंगलैण्डके बहुत पहलेसे ही प्रचलित था। राजा ११वीं लुईके राजत्वकालमें 'Brothers of the Passion' नामक एक दलने अनुमानसे सन् १४६७ ई०में एक नाट्य-मन्दिर तय्यार किया था। इस दलके कितने ही धर्म-मूलक नाटक अभिनीत हुए थे। १६वीं शताब्दीमें काथेरिन डी मेडिसी रंगालयमें परिच्छेद और दृश्य-पट आदिके परिवर्त्तनके लिये बहुत दान खर्च किया गया था। वहां १७वीं शताब्दीके मध्य भागमें यथार्थ अपेराका अभिनय होने लगा।

१८वीं शताब्दीके अन्तमें नेपलसके 'San Carlo' मिलान नगरमें La Scala और भिनिसके La Fenice नामक रंगालियोंने सारे यूरोप महादेशमे कलाविद्याका शीर्षस्थान अधिकार कर लिया था। इस तरहका सर्वाङ्गसुन्दर अभिनय उस समय यूरोपके अन्य स्थानोंमें कहीं दिखाई नहीं देता। इन रंगालियोंकी ११वीं सदीमें मरम्मत हुई थी सही, किन्तु पेरे, सेण्टपिटर्सबर्ग और अन्यान्य समृद्धिशाली राज-धानियोंमें स्थापित रंगालियोंके शिल्पनैपुण्य तथा आकृतिकी बराबरीमें ये कई अंशोंमें हीन समझे जाते हैं।

इस समयके रंगालियोंके दर्शनमण्डप कई अंशों-में परिवर्त्तित हो गये हैं। बक्स, स्टल, बालकनि, और गैलरी आदि ऊंच तथा कम दामके आसन जिस तरह सजाये जाते हैं, उसका उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं। पिट नामक आसन स्टलके अन्तर्भुक्त हो गया है।

स्टेजके जिस अंशमें अभिनेता और अभिनेत्री अङ्ग

हो कर अभिनय करते हैं, उसे ष्टेजकी मेज (Stage floor) कहा जाता है। यह स्वभावतः दर्शकोंके स्थानसे सामान्य उच्च, फिर भी ढालवां बनाया जाता है। इस ढेढ़ेपनके कारण सामनेके चित्रपट या दृश्यावली दूर पर अवस्थित जान पड़ती है। दर्शकमण्डलीके नेत्रोंके सामने समुदित चित्रपटसम्वलित इस रङ्गस्थानके सिवा प्रोसिनियूमके पश्चाद्भागमें अभिनयोपयोगी दृश्यपटादि परिचालनार्थ कई कल कब्जोंके स्थापन करने योग्य और भी कई स्थान हैं। ये सामनेके दर्शनमंडपसे किसी अंशमें हीन नहीं। जिन तीन प्रधान और विस्तृत स्थानमें नाट्यरङ्गके उपादान प्रतिष्ठित रहते हैं, उनका ही विवरण संक्षेपमें यहां दिया जाता है—

(१) दोनों बगलमें युक्तपट रखनेका स्थान। इसे Wings या Coulisses कहते हैं। इसके दोनों ओर अर्द्धरूपसे गृह, वन, मेजगृहकी छत आदि चित्र लकड़ीके चौखट (Frame) पर कपड़ा सी कर अङ्कित किया जाता है। ये चित्र प्रोसिनिभूमके दो गुने ऊंचे तक (stories high) रखे रहते हैं।

(२) ष्टेजका मेजका निचला स्थान Dock या dessous नामसे प्रसिद्ध है। यह भी तीन चार मञ्जिलोंमें विभक्त हैं और प्रोसिनियूमकी तरह गहरा है। इसके भीतरमें दृश्यपटोंको उठाने और गिरानेके लिये पाककल (Windlasses या Gril)-से दर्शकमण्डलीके सामनेसे खींच लेना या दर्शकमण्डलीके सामने एकाएक ला देना बहुतेरे उठानेके लिफटकी व्यवस्था है। इनमें इंगलैण्डके रंगालयका ष्टार-ट्राप (tar trap) रन्ध्रपथविशेष कौशल और बुद्धिके साथ सम्पादित हुआ है। इसमें एकाएक अन्तर्धान होनेके लिये किसी अभिनेताको मेजसे खुदे हुए गड्ढेमें कूदना नहीं होता। अभिनेताके वहां आ कर खड़े होते ही उसके शारीरिक तारोंसे छिद्रपथका आवरण फट जाता है और अभिनेता लुप्त हो जाता है। इस पतले बोर्डका गुप्तद्वार (trap-door of thin board) लचीले लोहेके बन्धनसे ऐसा बंधा रहता है, कि अन्तर्धानके बाद ही उसकी पहली अवस्था प्राप्त हो जाती है। दर्शकमण्डली इस कौशलको जरा भी नहीं समझ सकते। 'सीताका पातालप्रवेश'-का अभिनय इस तरहसे सम्पादित होने पर ऐसा सुन्दर दिखाई देता है, कि मानो यह काम किसी भौतिकलीलाके साहाय्यसे किया जाता हो।

इस तरह 'भाम्पायर ट्राप' नामक पथमें अभिनेता (मानो किसी देवशक्तिके प्रभावसे सुदृढ़ दुर्गभित्तिमें) सहज ही घुस गया है, ऐसा ही अनुमान होता है। इंगलैण्डके प्रधान-प्रधान रंगालयोंमें नाट्यरंगोंके आवश्यकीय उपादान ऐसे ही वैज्ञानिक भित्ति तथा सुकौशलसे प्रतिष्ठित हुए हैं, कि उन्होंने वर्त्तमान यूरोपके प्रत्येक नाट्यमन्दिरमें सादर स्थान पाया है।

(३) प्रोसिनियूमके ऊपरसे समूचे ष्टेजके उपरिभागमें जो विस्तृत स्थान है, उसका नाम Flies या Cintre है। ये कभी कभी प्रोसिनियूमका दुगना ऊंचा रहता है। यह स्थान भी कई मञ्जिलोंमें विभक्त हुआ है। यहां दृश्यपटोंको लटका रखनेके लिये स्वतन्त्र पाक कल रखी गई है। इससे पटोंको न मोड़ कर या न तोड़ कर एकदम दृष्टिसे बाहर उठा लिया जाता है। इन सब कामोंके लिये इन तीनों स्थानोंमें इस तरहसे रस्सी, तार और अन्यान्य आवश्यकीय कल रखी गई हैं जिसे देख आश्चर्यान्वित होना पड़ता है।

पहलेकी प्रथाके अनुसार दोनों बगलसे दो खण्डपट खींच कर बीचमें ला कर मिलानेसे दर्शकोंके सामने एक पूर्ण चित्र दिखाया जाता था। इन (Wings) विङ्गोंको ठेल कर ले जानेके लिये ऊपर लकड़ीका चौखट (Frame) और नीची ष्टेजके मेज पर एक छिद्र किया रहता था। इस समय किसी रंगालयमें भी यह प्रथा प्रवर्त्तित नहीं है। ऊपरसे पट या परदा गिरा अथवा दुर्ग (किला) गिरजा और तो क्या—सुविस्तृत राजवर्त्म चित्रसाहाय्यसे प्रस्तुत कर दर्शकोंके सामने लाना ही वर्त्तमान नाट्याचार्य्योंका अभिप्राय होता है। कितने ही खण्डचित्र अङ्कित कर उनके दो दो खण्डोंकी परस्पर संयोजना कर ष्टेजके सामने ये सब दृश्य सम्पादन करना विशेष चित्तोपहारक नहीं होता। किन्तु ऊपर कहे हुए ढंगसे प्रोथित दृश्यसे सहज ही दर्शककी एक यथार्थ Perspective चित्रकी छाया अङ्कित की जा सकती है।

इस समय विलायतके सभी रंगालयोंमें यन्त्र-कौशल स्थापनका प्रयास दिखाई देता है। ष्टेजके मेजमें मोटे काठ या लकड़ीके बदले इस समय अपेक्षाकृत पतले लोहेके पत्तसे तैयार होनेसे और पाक कलादि लौह निर्मित होनेसे स्थानकी कमीके लिये विशेष सुविधा हुई है। फिर थोड़े ही समयमें कार्यकी पूर्त्ति भी हो जाती है। जगत्‌में सर्व-प्रधान और बहुव्ययसे बने पेरिस नगरीका सुप्रसिद्ध "ग्राण्ड अपेरा हाउस" कला-कौशलमें शीर्षस्थान अधिकार करने पर भी कलकब्जे (Mechanical appliances)के अभावके कारण अन्यान्य रंगालयोंकी सहयोगितामें पीछे पड़ गया है।

गर्भाङ्कके एक दृश्यके बाद दूसरे दृश्यका लाना समयसापेक्ष देख कर म्यूनाके नगर मेड्डिसन स्कवायर थियेटरमें हालमें एक अभिनय उन्नति संसाधित हुई है। वहांके नाट्याचार्य्य एक अभिनयके बाद फिरसे ष्टेज सजाते थे। इससे विलम्ब होता था। इस असुविधाको दूर करनेके लिये उन लोगोंने एक दूसरा ष्टेज बना लिया है। जब ऊपरकी मञ्जिलके ष्टेज पर अभिनेत्री आ कर अपने अपने पार्ट करती हैं, तब उसीके ठीक नीचे मञ्जिलेमें ष्टेजके दृश्यपटादिकी संयोजना कर यथायथ रूपसे सजा सजाया रखा जाता है। प्रथम अङ्कके अभिनय हो जाने पर दृश्यपटके गिरते न गिरते वह ऊपरको उठ जाता है और दूसरा निचली मञ्जिलका ष्टेज वहां आ जाता है। इन दोनों ष्टेजोंकी मेज ऐसी तुल्यमानसे रखी गई (accurately balanced by heavy counterpoise of weights) हैं, जिससे सहज ही सम्मान्य-शक्ति द्वारा ऐसे बड़े खण्डकी परिचालना की जा सके।

लण्डनके 'पाण्टोमाइम' अभिनयमें जैसी यान्त्रिक कुशलता दिखाई देती है, जगत्‌के और किसी सुसभ्य देशमें दिखाई नहीं देती। दृश्यपटके परिवर्त्तनकी परिपाटी और सुचतुर कारीगरकी शिल्पकारीगरी देख कर यथार्थतः मनमें विस्मय उपस्थित होता है। दर्शकोंके चित्त आकृष्ट करनेके लिये वे कभी कभी जिन कौशलोंका आश्रय लेते हैं, उनमें परीका अंश अभिनयकारी अभिनेत्रियोंके और सांप कीड़े आदि सजानेके लिये दुधमुंहे बालकोंको कभी कभी बहुत दुःख भोगना पड़ता है। क्योंकि रमणियोंको 'परी' सजानेके लिये अदृश्यभावसे ऊपरसे नीचे लटकाते समय कभी कभी दुर्भाग्य वश रस्सी या तार टूट जानेसे गिर पड़ना देखा गया है। सर्प आदि निकालनेके लिये सुकुमार बालकोंको मोटे कागजके खोलमें भर कर रखते हैं, क्योंकि भीतरसे बालकके हिलनेसे सर्प बाहर निकल आता है। ऐसी दशामें श्वास बंद होनेके कारण बालकोंकी जान जानेकी सम्भावना होती है। लण्डनकी ड्रूरी लेनका रंगालय इसके सम्बन्धमें एक आदर्श स्थल कहा जाता है।

उपरोक्त कलकब्जाके उपयोगी स्थान होनेके सिवा रंगालयके अभिनेता-अभिनेत्रीकी सुविधाके लिये पोशाकघर (dressing room) और पंक्तिबद्ध साजघर (Green room) रहता है। इसके सिवा साज सामान रखनेके लिये स्वतन्त्र भाण्डार और दृश्यपट अङ्कित करने और रखनेके लिये चित्रस्थान (atelier) है। रंगालयके भीतरके सिवा अन्यत्र रखनेकी भी व्यवस्था देखी जाती है।

यूरोपमें प्रधान और प्रसिद्ध चित्रकारोंसे ही चित्रपट अङ्कित कराया जाता है। रोमनगरमें राफेल, फ्रांसमें वातु, बुका और साकोन्दोनी और इङ्गलैण्डमें ष्टानफिल्ड द्वारा ही दृश्यपटादि अङ्कित हुए हैं। फ्रान्स और इङ्गलैण्डकी तरह जर्मनीमें भी नैपुण्यपूर्ण चित्रपटका अभाव नहीं है। प्राकृतिक सौन्दर्य्यव्यञ्जक उत्तमोत्तम चित्र भी रंगालयमें देखे जाते हैं। कभी कभी झील और उसके जलमें प्रतिफलित तीरवर्त्ती वृक्ष पर्वतादि स्पष्टरूपसे दिखानेके लिये नाट्याचार्य्य रंगालयमें एक ऐनापटके नीचे जरा झुका कर रख देते हैं। इससे पीछेके अङ्कितचित्र यथार्थतः प्रतिफलित हो शोभाको दुगना बढ़ा देता है। वेगनरने Magical scene दिखानेके लिये एक कौशल निकाला था। उसने ष्टेजकी पीठ छेद कर एक छिद्रयुक्त वाष्पनलिका (Steam-pipe) स्थापित की थी। इस जलसे उठती हुई धूमराशि दूरसे अर्द्ध स्वच्छ धुएंके परदाकी तरह दिखलाई देती है।

रङ्गालयोंमें Light रोशनी देनेकी व्यवस्था विशेष उल्लेखनीय है। इससे कभी कभी अत्याश्चर्य्य फल भी

दिखाया जा सकता है। प्राचीन अर्थात् पहलेकी फुटलाइटकी प्रथा अब नहीं है। सन् १७२० ई० तक चिराग जलाया जाता था, तदनन्तर मोमबत्ती जलाई जाने लगी, इसके बाद M. Argand द्वारा किरासन तेलके लम्प जलाये जाने लगे। पुनः सन् १८२२ ई०में पारी नगरके रङ्गालयोंमें गैशकी रोशनी हुई। इसके बाद Oxyhydrogen lime-light और वर्त्तमान समयमें इलेक्टरी लाइटका व्यवहार होनेसे सब तरहके अभाव दूर हो गये हैं।

पहले विद्युत्-प्रकाश दिखलानेके लिये लाइकोपोडियाम (Lycopodium) अथवा करायल (धूना) की धूलि अग्निमें झोंकी जाती थी। आज भी प्रकृत अग्नि प्रज्वलित दिखानेके लिये इसी प्रथाका अवलम्ब लेना पड़ता है। किन्तु आज कल मेघमाला समाच्छादित दृश्यपट अङ्कित कर उसमें टेढ़े-मेढ़े छेद कर कांचका नल बैठा प्रकृत वैद्युतिक प्रकाश किया जाता है। कभी-कभी वैद्युतिक तारका भी व्यवहार देखा जाता है। लोहेकी चद्दर मोड़ कर दर्शनमण्डपके ऊद्र्ध्वावरकमें तोपका गोला रख अथवा रस्सीके दो टुकड़ोंकी सहायतासे कई लकड़ीके पटरे सजा कर इस तरह कौशलसे लटका कर अंटका रखते हैं, कि उसमें जरा भी टक्कर लगनेसे मेघमाला जैसा शब्द होता है। वायवीय शब्दका अनुकरण करनेके लिये एक मोटे वस्त्र खींच-खींच कर बांध देते हैं और उस पर दांत युक्त एक गोल नल घुमानेसे आपसमें थोड़ी-थोड़ी वृष्टिकी तरह सांय सांय शब्द होता है और धातव नलमें मटरका दाना डाल कर हिला देनेसे वृष्टि होनेकी तरह शब्द होता है।

इस समय पहलेकी तरह अर्चेष्ट्रा प्रथित नहीं होतो। वादकोंको दर्शकके नयनपथसे बाहर रखनेके लिये यह स्थान प्रोसिनियूमके नीचे या ऊपर निर्दिष्ट हुआ है। अभिनेताका पार्ट निर्देश करनेके लिये उस समय रङ्गालयमें प्रम्पटर नियोजित करना पड़ता है। ष्टेजके सामने एक छोटे कमरेमें बैठ कर वह प्रत्येक अभिनेता और अभिनेत्रीको उनके पाठ बतला दिया जाता था। यह प्रथा अभिनेताओंके लिये तथा दर्शकोंके लिये विशेष असुविधाजनक थी और अरुचि देख wings के निकट रह कर प्रम्पटिङ्ग Prompting करनेकी रीति इस समय प्रवर्त्तित हुई है।

१९वीं शताब्दीके मध्य भाग तक रङ्गालयके आवश्यकीय उपादान और पोशाक आदि संग्रह करनेके लिये सामान्य द्रव्य खर्च होता था। मूल बात है, कि उस समय वेशभूषाकी उतनी सजावट होती न थी और कोई उस विषयमें आग्रह प्रकाश भी नहीं करता था। पतले कपड़ेका बना हुआ पहननेका वस्त्र रहता था। यही अभिनयके समय एक एक करके पहनते थे। मोटे कागज पर पालिशदार चिकना कागज साट कर तलवार आदि बनाते थे। इस समय उन सब बातोंका बहुत परिवर्त्तन हो गया है। किसी प्राचीन घटनाके आधार पर नाटककी सृष्टि होती थी। इस समय तत्समयोपयोगी अट्टालिकादि स्थापत्यका निदर्शन चित्रमें दिखलाया जाता है। इसलिये वे अर्थ व्यय तथा परिश्रम करनेमें जरा भी नहीं हिचकते। वेशभूषाके लिये भी यथेष्ट धन खर्च किया जाता है। सुना जाता है, कि किसी-किसी समय एक एक नाटकको तैयार करनेमें तीन तीन लाख रुपया व्यय किया जाता था।

इस तरहकी बनावटके साथ यथार्थ घटनाको प्रतिफलित करने नाटक नाट्याचार्य यथार्थ अभिनय चित्रको दिखलानेमें भूल जाते हैं। उत्तम और प्रकृत विषयोंका अभिनय आज भी दर्शकोंके अभिप्रेत नहीं। यह देख वे कई बार केवल दृश्यपटकी सुन्दरताकी वृद्धिमें ही मन लगाने पर बाध्य होते हैं। लाइसियाममें 'रोमियो जुलियट' नामक सेक्सपियरकृत नाटकके अभिनय करते समय प्रथम अङ्कके Ball चित्र दिखनाके समय दृश्यकी परिपाटी और साधारण चहल-पहलके गोलमालसे प्रधान प्रधान अभिनेताका पार्ट (acting) एक दम ही नष्ट हो गया था। कभी कभी पिछले गर्भाङ्कके दृश्यपटोंको सजा कर यथायथ रखनेकी विडम्बनामें ड्रापसीनके सामने खड़े अभिनेताओंके मुखसे निकले शब्द दब कर भी अभिनयको विकृत कर देता था।

वर्त्तमान समयमें किसी चरित्रके अभिनयके समय अभिनेताकी वक्तृताका acting गाम्भीर्य ह्रास होनेका

और भी एक गूढ़ कारण देखा जाता है। एक नाटकको लगातार सैकड़ों बार करते रहनेसे पात्रपात्रियोंके सभी पार्ट कण्ठस्थ हो जाते हैं और उसे वे कलकी पुतलीकी तरह बक जाते हैं। उनका उस समय चरित्रके भाव-पर ज़रा भी ध्यान नहीं रहता, इसलिये उनके पार्ट खराब होते जाते हैं। इस समय रंगालयके बहुमूल्य वेशभूषा और सजावटकी अधिकता साधारणके मन-मुग्धकर होनेके कारण अभिनयके विषय-परिवर्त्तनकी ओर लोगोंका ध्यान नहीं जाता। फ्रान्सके Theatre Francais नामकी सभाके उपरोक्त नियमोंके समर्थन करने पर भी वहां उच्च अङ्गसे ही वक्तृताभिनय सम्पादित होता है।

लण्डनके रंगालयोंके आकार बड़ा होनेके कारण नाना श्रेणीके दर्शकोंका समावेश होता है। नित्य अभ्यस्त दर्शकोंके आगमनसे रंगालयकी मङ्गलकी संभावना है। क्योंकि बारंबार अभिनयका देख कर एकृरोंके पार्टकी अच्छाई और बुराई पर विचार करनेमें समर्थ हो सकेंगे। अभिनेता भी प्रशंसा अर्जन करनेके लिये अच्छा पार्ट करेंगे। यदि वे अपने पार्ट स्थानविशेषमें व्यर्थ चीत्कार या अयथारूपसे अभिनय (Clap trap या Ranting) करें तो दर्शक उनकी निन्दा कर सकेंगे। किन्तु इस समय दिनोंदिन नये नये और अभिनय-अनभिज्ञ दर्शकोंके उपस्थित होनेसे रंगालयके संस्कार-विषयमें विशेषरूपसे व्याघात उपस्थित हो रहा है। इस श्रेणीके दर्शकोंके लिये ऊपर कहे हुए व्यतिक्रान्त अभिनयकी प्रशंसा करते देखा गया है। वे यथार्थ और सुरुचिसम्पन्न वक्तृताभिनय उपलब्ध करनेमें समर्थ न हो कर उस विषयमें विशेष आग्रह नहीं करते। इन सब कारणोंसे व्यवसायी-नाट्य सम्प्रदायके उनके उपयुक्त नाटक आदिकी रचना कर अभिनयकार्य-सम्पादनमें बाधा उपस्थित होनेसे नाटकोंकी (Dramatic Standard) अवस्थामें अन्तर पड़ गया है और अभिनेताओंके भी चरित्र परिस्फुरण-शक्तिकी कमी होनेके कारण धीरे धीरे वे नीतिमार्गसे भ्रष्ट हो रहे हैं।

अभिनयका इतिहास।

जातीय जीवनको सामाजिक रीति-नीति और सांसारिक चित्रको प्रकट करना ही अभिनयका प्रधान उद्देश्य है। जातिगत न्यूनाधिकके अनुसार इस अभिनय-कार्य्यमें वैपरीत्य दिखाई देता है। सभ्यता ही इसका अन्यतम कारण है। सुसभ्य रोमन और असभ्य बर्बर प्राचीन आर्य्य हिन्दू और असभ्य भीलोंमें भी यह विभिन्नता थी। इस समय सुसभ्य जातिमात्रमें अभिनयके लिये रंगालय प्रतिष्ठित हो रहे हैं। किन्तु कोल, भील आदि भारतीय आदिम अधिवासियोंमें आमोद-प्रमोदके लिये इस तरहका सभ्यरुचि-प्रणोदित रंगमञ्च नहीं बना है। उनके वर्णरोचित नृत्यगीताभिनय स्वतन्त्ररूपसे किसी गांवमें निर्दिष्ट रंगभूमिमें हुआ करता है।

यह वर्बरोचित जंगली स्वभाव और उसके उपयोगी जंगली गीतको ले कर मानवसमाज जितने ही सभ्यताकी सीढ़ियों पर चढ़ने लगा, उतने ही वे ग्रामादि प्रतिष्ठित कर कृषिकार्य्यमें मन लगाने लगे। झोपड़ेमें रहनेवाले किसान प्राणान्त परिश्रम करनेके बाद जब अपने झोपड़ेमें आते और अपनी थकावट मिटानेके लिये अपने बालबच्चोंसे घिरे हुए बैठते, तब वहां एक एक दल आ कर अपने नृत्यगीतसे तथा अपने हावभावको दिखा कर थके हुए उन कृषकोंको शान्ति देनेकी चेष्टा करता था। इसके बदलेमें वह दल कुछ धान पाता था इसी धानसे वह दल अपना गुज़र करता था। यह सम्प्रदाय Ministrel नामसे पुकारा जाता था। यूनानी कवि होरेशने (ईसासे ६५ वर्ष पूर्व) लिखा है, कि उस समय प्राचीनकालमें किसी प्रकारका रंगालय नहीं था। गीतनृत्य करनेवालोंके सरदार बैलगाड़ियों पर अपने दलके लोगोंको चढ़ा कर जहां ज़रूरत होती थी वहां ले आते थे या गांव भरमें घुमा फिरा कर लाते थे। थ्येपस नामक एक यूनानीसे इसी तरह गाड़ी पर चढ़ बाजा बजा कर युद्धके गानेकी प्रचलित किया उस समय कई तरहके हाव भाव भी दिखाये जाते थे।

मानव जब अपेक्षाकृत सभ्य हुए ; नगर तथा उपनगरोंकी शोभा बढ़ाने लगी ; रहने लायक सुन्दर सुन्दर अट्टालिकाओंका निर्म्माण हुआ, तब आमोदके लिये स्थायी नाट्यशाला या रंगालयकी स्थापना हुई। पाश्चात्य-जगत्के प्राचीनतम सभ्य यूनानी तथा उसके

पीछेकी रोमन जातिमें सीढ़ीदार रंगालय प्रतिष्ठित हुए। उस समय अभिनेता और अभिनेत्री शरीरमें कपड़ा लगा कर देहकी पुष्टता दिखाती थी। मुखमें नकाब और पैरमें लम्बी एड़ीवाला जूता पहन कर एक्ट (act) या अपने पार्ट किया करती थी। अभिनयके आरम्भसे पूर्व गानेवालोंका एक दल आ कर एक दो गाना गाता था और अभिनयका मोटामोटी विषय दर्शकोंको समझा देता था। नाट्यशास्त्रविद् पण्डितोंकी रायमें गान गानेकी प्रथासे ही पहले गीतनाट्यकी उत्पत्ति हुई थी। नाटककारगण उस समय स्वतन्त्रभावसे ग्रन्थकी रचना नहीं कर सकते थे। उनको कई नियमोंका पालन करना होता था। किसी घटनामें बारह वर्षके इधरकी कोई घटना जोड़ नहीं सकते थे। ऐसी शक्ति उन लोगोंकी नहीं थी, कि वे इच्छा होनेसे ही अपने स्थान कौशल द्वारा दर्शकोंको ४०० कोस दूर पर नहीं ले जा सकते। करुण-रसात्मक या वियोगान्त नाटकमें भी वे स्थानविशेषमें हास्यरसका समावेश कर नहीं सकते थे। मालूम होता है, कि ऐसे ही किसी कारणसे यूनानी रंगालयमें वियोगान्त (Tragedy) नाटकके सिवा, मिलनान्त नाटकके अभिनय कालमें यूनानी रमणियोंको रंगालयोंमें प्रवेश करनेका अधिकार न था।

यूनानका गौरव सूर्य्य अस्त होने पर रोमका अभ्युदय हुआ। किन्तु दुःखका विषय है, कि रोमके प्रभुत्वकालमें नाट्यशालाओंकी विशेष उन्नति न हो सकी। युद्धप्रिय निष्ठुर प्रकृति रोमन नाटकाभिनयमें विशेष परितृप्ति लाभ नहीं कर सके। वे पशुओंकी लड़ाई तथा पहलवानोंका प्राणघातक युद्ध देख कर ही आमोद-प्रमोद करते थे। सम्भ्रान्त व्यक्तियोंकी दृष्टि जिधर होती है, साधारण प्रजाका भी उत्साह उसी ओर होता है। इसीलिये स्वाधीन भावसे नाटककी रचना और उसका अभिनय-विषयमें किसीका आग्रह न था। जिन दो एक पुस्तकोंका अभिनय हुआ था, वे भी यूनानी रचना-पद्धतिकी छाया ले कर ही गठित हुए थे।

नाटकोंका अभिनय सर्वसाधारणके मन मुताबिक नहीं हो रहा है, यह देख कर नाटकके अध्यक्ष क्रमशः रंगमञ्च पर मल्लयुद्ध, सिंह, बाघ आदि हिंस्र जन्तुओंसे मनुष्योंकी लड़ाई आदि सुरुचिविरुद्ध और वीभत्स रसकी अवतारणा कर रोमन-रंगालयको कलंकित किया करते थे। प्रायः ही ऐसे घृणित आनन्द उपभोगके लिये एक न एक आदमीको कालके गालमें जाना पड़ता था। यह वीभत्स आमोद छोड़ कर रोमन पवित्र काव्यरसका आस्वादन नहीं लेना चाहते थे। इस तरह पशु-सदृश और लोमहर्षण दृश्य देख देख रोमनोंकी मानसिक सुकोमल वृत्तियां क्रमशः ही कलुषित होने लगी थीं। फलतः रोमनोंकी नैतिक अवस्था शोचनीय हो रही थी।

जब रोमन रंगमञ्चों पर इन सब कुत्सित कार्योंका अनिवार्य-स्रोत प्रवाहित हो रहा था, तब ईसामसीहने दूसरे ईसाई-धर्मका प्रचार किया। नाट्यशालायें इस नव-प्रचारित ईसाई धर्मके विषमय नजरों पर चढ़ गईं। इस नये धर्मके अधिक प्रचारके साथ साथ नाट्यागारोंकी कमी होने लगी। ईसाई-धर्मयाजकोंने नाट्यमञ्चको 'पापका केन्द्र' तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तिमात्रको मूर्त्तिमान् कदाचार कह कर घोषणा की। उनके अध्यवसाय और व्याख्यानोंसे लोग नाटकके प्रति वीतराग हो गये। अभिनेता और अभिनेत्रियोंको तथा नाट्यालयोंके अध्यक्षको लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। और तो क्या—विगत शताब्दीके अन्त तक रोमन कैथलिक पुरोहितमण्डली विद्वेषवश मृत अभिनेता और अभिनेत्रियोंकी शवदेहको साधारण कब्रगाहमें गाड़ने नहीं देती थी। आज भी इस बीसवीं शताब्दीके भी कितने ही धर्मप्राण हिन्दू तथा कितने ही ईसाई धर्मनाशके भयसे वेश्या-संश्लिष्ट रंगालयोंमें आते कुण्ठित होते हैं।

कालचक्रके परिवर्त्तनसे रोम-साम्राज्य विध्वस्त और विपर्यस्त हो गया। घोर अराजकता तथा सदा युद्धमें फंसे रहनेके कारण रोमके अधिवासी नाटकाभिनय देखने

* संस्कृत नाटकोंके आरम्भमें नट-नटी श्रोताओंको अपने अभिनयका विषय जना देती थी। कालिदास आदि बहुत पुराने नाटककारोंने भी बहुत पहलेसे उसी प्रथाका अनुसरण किया था।

नहीं जा सकते थे। इस विशृङ्खलताके समय नाटक-की उन्नतिकी बात तो दूर रहे, रङ्गालय तक लय प्राप्त होनेकी सम्भावना हो उठी थी। जो हो, बलवान् समय-के उलट फेरसे जो धर्मयाजक रंगालयको नरकका प्रति-रूप समझ कर उससे घृणा करते थे, वे ही आज रंगा-लयकी आवश्यकता उपलब्ध करते हैं। वे अब समझ गये हैं, कि दृश्यपट आदिके साहाय्यसे किसी घटनाका अभिनय करनेसे क्षीण या हीनबुद्धि मनुष्यके मर्मस्थल-को स्पर्श किया जा सकता है और सुचारुरूपसे रंगा-लयका कार्य्य सञ्चालन करनेसे सम्भवतः इससे सामा-जिक-पारलौकिक और धर्मसम्बन्धीय उन्नति हो सकेगी। इसी आशासे प्रणोदित हो कर निरक्षर अज्ञ या मूर्ख मनुष्योंको उपासना कार्य्यमें व्रती करानेके यन्त्रस्वरूप समझ धूर्त्त धर्मयाजकोंने थियेटरको अपना एक अस्त्र बनाया। उन्होंने समयको व्यर्थ न खो कर बाइबिल धर्मग्रन्थकी किसी घटना पर नाटक रच कर उपासनाके समय अभिनय करनेकी प्रथा चलाई। इस तरहके समुदाय अभिनयको Mysteries, Miracle या Moral plays कहते थे।

उस समय ईसाई-संन्यासी जरुसलेम नगरीका परि-भ्रमण कर स्वदेश लौट राजपथ पर दल बांध कर अपने भ्रमणके अनुभवोंको कवितामें गाते फिरते थे। उनके हाथमें दण्ड, आपादमस्तक चोला, पुष्पमालोसे परि-शोभित शिर और कई रंगोंसे रंगे पायजामेको देख स्वभा-वतः ही लोगोंके मनमें उनके प्रति भक्ति हो जाती थी। इनकी अभ्यर्थनाके लिये कभी कभी वहांके लोग खेतों-में मांच गाड़ देते थे। इसी पर संन्यासी बड़े हाव भावसे अपनी कविताओंको सुना कर दर्शकमण्डलीकी तृप्ति किया करते थे। क्रमशः अभिनयकी उन्नतिके साथ साथ रंगालयोंकी भी उन्नति होने लगी। धर्म-याजक अभिनेतृ-समाजमें परिणत हुए। उन्होंने एकत्र हो कर "Contreres de la passion" नामके एक सम्प्र-दायकी सृष्टि की। उनके अभिनीत नाटक अङ्कानुसार विभक्त न थे।

नाटकोंका ऐसा ही विभाग किया गया था, कि कौन नाटक किस दिन खेला जायगा। उस समय रोमी-पोप भी ऐसे अभिनयोंको प्रश्रय देते थे। वे दलभुक्त अभिनेताओंको "सहस्रदिवसावधि" क्षमा प्रदान करते थे। नगरके विभिन्न व्यवसायके लोग विभिन्न अंशका अभिनय करते थे। धर्मपुस्तकसे 'सृष्टि' (Creation) "जलप्लावन" (Deluge) पवित्रीकरण या शुद्धि (Pu-rification) आदि अंश हमेशा अभिनीत होते थे। रंगवाले प्लावनका अंश, बढ़ई, लुहार, शुद्धिअंश और वस्त्रविक्रेता सृष्टिके अंशका अभिनय करते थे। इन सबोंके अभिनय करते समय वे ईश्वर अंशका अभिनय करनेमें अधर्म नहीं समझते थे। उसीके साथ शैतान (Satan) और पिशाचों (devil)-की अवतारणा भी होती थी।

फ्रान्सीसी रङ्गालियोंके इतिहासमें कहा गया है:—सन् १४३७ ई०में मेज नगरके धर्माचार्य्य कनएड रेयरने 'रिपुगण' (The passions) नामक रूपक नाटक (Mys-try) कराया था। नगरके निकट भेक्सिमेल प्रान्तर-में इसके लिये रंगमञ्च बना था। इस नगरके वृद्ध-धर्मयाजक वौरेनवासी निकोलस नुसाटेलने (Curute of Saint Victory of Metz) जगदीश्वर (God)-का अंश अभिनय किया। इस अभिनयके समय वह यथार्थमें क्रुश पर चढ़ाया गया। यह कार्य्य ऐसे सुचारु-रूपसे सम्पादित हुआ था, कि यदि वह यथासमय साहाय्य नहीं पाता, तो वास्तवमें हो ईसामसीहकी ही दशा यानी मर गया होता। वह इनका निर्जीव हो गया था, कि दूसरे दिन एक दूसरे आदमीको क्रुश पर चढ़ा कर उसने इस अभिनयको सम्पन्न किया था। इसके बाद निकोलसने 'पुनरुत्थान' (Resurrection) अंशका अभिनय किया। इस अभिनयमें उसकी सुख्याति हुई थी।*

इंगलैण्डमें भी "सेण्ट कथारिन" नामक जेफ्री (Geo-ffrey) रचित इसी तरहका अभिनय हुआ था। अंग्रेजी साहित्यके इतिहास-लेखक टमास बी० सानेे लिखा है, कि यूरोपके प्रायः सभी केथलिक प्रधान देशोंमें उस

* History of the French Theatre, Vol. II p, 285

पुराने समयमें इसी तरहके 'मिष्ट्रि' 'मोरलटी' और 'मिराकेल' अभिनय होते थे। इस तरहके वर्णरोचित नाटकाभिनयका प्राधान्य स्पेन, जर्मनी, फ्रान्स और इटलीमें अत्यधिक था।

साक्भिल नामक एक मनुष्यने इंगलैण्डके राजा तथा राजपुरुषोंके चित्तविनोदार्थ विद्यालयके छात्रोंसे एक मिलनान्त नाटकका अभिनय कराया था। सन् १५५१ ई०में निकोलस उदान द्वारा रचित Ralph Royster Doyster नामक मिलनान्त नाटकका अभिनय हुआ था। इसी समयसे सारे यूरोपमें प्रकृत नाटकोंके अभिनयका सूत्रपात हुआ। इसके बाद इंगलैण्डमें सेक्सपियर, इटलीमें टासो, फ्रान्समें कर्नेली, स्पेनमें सार्वेण्टिस आदि नाटककार आविर्भूत हो कर रंगालयके नाटकीय युगकी अभिनवभित्ति स्थापित कर गये।

भारतका अभिनय।

भारतवासी हिन्दुओंकी सामाजिक और मानसिक वृत्तियोंकी सम्यक् उन्नति निरपेक्षभावसे साधित हुई थी। वैदेशिक सम्बन्ध तथा वैदेशिक प्रभावके फैलानेसे बहुत पहले ही भारतमें नाट्य अभिनयकी अत्यधिक पुष्टि हो चुकी थी। प्रायः दो सहस्र वर्ष पहले कालिदासने शकुन्तला नाटककी रचना की। इसी ग्रन्थके नाट्य-साहित्यकी परिपुष्टिको देख कर पश्चिमीय पण्डित अनुमान करते हैं, कि यह ग्रन्थ भारतवासियोंके स्वदेशीभावसे पूर्ण होने पर भी इसमें विजातीयका काल्पनिक नाटकका (Romantic Drama) चित्र प्रतिफलित हुआ है। और तो क्या, सादृश्य देख कर उन लोगोंको सन्देह होता है, कि प्रसिद्ध कवि सेक्सपियरने इस नाटकका आभास लिया था।

नाटक और उसका अभिनय यहांके राजाओंके लिये बड़ी प्रिय वस्तु तथा बड़े आदरकी चीज थी। इसी कारणसे नाटकोंमें विशुद्ध समाजका आदर्शचित्र अङ्कित हुआ है। भारतीय हिन्दूराजाओंका जब प्राधान्य था, तब 'उज्जयिनी' और कान्यकुब्जका वर्त्तमान 'कन्नौज' नगर ही नाटकाभिनयके प्रधान स्थान थे। पुराने नाटकोंमें इनका उल्लेख पाया जाता है। *

अध्यापक लासेन, बेवर, श्लेगल, गोल्डष्टुकर आदि जर्मन पण्डित और कनिंगहम, हिवार, जोन्स, विलसन आदि भारत-प्रवासी यूरोपीय पण्डितोंने एक वाक्यसे संस्कृत नाट्य-साहित्यका उत्कर्ष स्वीकार किया है। बहुत गवेषणाके बाद अध्यापक विलसनने स्थिर किया, कि हिन्दू नाटकोंमें जितने ही गुण या दोष क्यों न हो, इसमें सन्देह नहीं, कि यह भारतवासियोंके निजस्व हैं। हिन्दू अपने नाट्य-साहित्यके लिये किसी वैदेशिकके ऋणी नहीं हैं। १४वीं या १५वीं शताब्दीसे पहले यूरोपकी किसी जातिमें कोई भी यथार्थ नाटक न था। किन्तु इतना जरूर है, कि उस समय हिन्दू नाटकोंकी सम्पूर्ण अवनति थी।† ऐतिहासिक हण्टरका कहना है, कि यूनान और रोमकी तरह प्राचीन-भारतमें सम्भवतः वैदिकयुगमें भी पट आदिके साहाय्यसे वर्बरानुकृत कौतुकाभिनयकी व्यवस्था थी। किन्तु समुन्नत साहित्ययुगमें (Classical age) परिस्फुट चरित्र चित्रसम्बलित जो संस्कृत नाटक रचे गये और जिनमें कई हम इस समय देख रहे हैं, वे सम्भवतः पहली शताब्दीसे ८वीं शताब्दी तक सङ्कलित किये गये हैं।¶

मुसलमानोंके अभ्युदयके समय विजातीय भाषाके संसर्गसे प्राचीन समृद्ध संस्कृत-भाषाका अधःपतन हुआ। इसीके साथ साथ रंगालयकी अवनति हुई। मुसलमानोंमें फारसी भाषामें रचित कुछ शैरों या काव्योंके सिवा नाट्य काव्योंका वे निदर्शन नहीं मिलता। संगीत आमोद उपभोग मुसलमानधर्मशास्त्रमें निषिद्ध होनेसे रंगमञ्चीय अभिनय मुसलमान राजाओंकी उन्नतिके समय प्रश्रय लाभ नहीं कर सका। मोगल-सम्राट् अकबर शाह भारतवासियोंके मनोहर संगीतसे मुग्ध हो कर संगीत-विद्याके बड़े पक्षपाती हो गये थे। किन्तु आलस्यपूर्ण रंगाभिनयमें उनकी कुछ भी श्रद्धा दिखाई नहीं देती थी। सम्राट् औरंगजेब संगीत और बाजेकी प्रथाके सम्यक् विरोधी थे। सुदूर चीन राज्यमें

* Achegels' Dramatic Literature Lecture II. p. 33–34.

† Wilson's Hindu Theatre, Preface p. *XI.*

¶ Indian Empire by W. W, Hunter. chap. IV. p. 321.

भी सम्यक् नई प्रथाके आधार पर प्रतिष्ठित रंगालय था। किसी किसी विषयमें सुसभ्य और शिक्षित यूरोपीय नाट्यरंगके विषयमें उनके पीछे थे।

पुराणादि हिन्दू-शास्त्रोंकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि स्वर्गकी देवसभामें देवताके मनोरञ्जन करनेके लिये भरतमुनिने नाट्यशास्त्रोंका प्रणयन किया। उन सब नाटकोंका अभिनय पहले देव-सभामें किया गया था। उर्वशी आदि विद्याधरी या अप्सरायें नृत्य-गीतादि द्वारा उस समय देवताओंका चित्तविनोद किया करती थीं। उस समयका अभिनय तीन भागोंमें विभक्त था। (१) नाट्य अर्थात् हाव भाव दिखा कर वाक्यका प्रयोग करना। (२) नृत्य या भावहीन अंगोंका परिचालन करना और ३ नृत्त अर्थात् केवल नाच। उत्तरकालमें इन तीनोंके साथ ताण्डव-नृत्य अर्थात् शिव नृत्य तथा लास्य आ कर मिल गये। भगवती पार्वतीने स्वयं जिस नृत्यका प्रवर्त्तन किया, वह लास्यके नामसे पुकारा गया। इस नृत्यको देवीने वाणकी पुत्री ऊषादेवीको तथा उनकी सखियोंको सिखाया था। ऊषासे गोप-गोपियोंने सीखा। पीछे उन सबोंसे सभी जगह फैल गया।

भरतमुनि ही नाटकोंके आदि सृष्टिकर्त्ता हैं। सभी एक वाक्यसे स्वीकार करते हैं, कि उनके समयसे ही संस्कृत नाटकका प्रथम विकाश हुआ। उस समय गन्धर्व और अप्सरायें इसे अभिनीत करती थीं। जहां दर्शक देवता हैं, अभिनेता और अभिनेत्री गन्धर्व और अप्सरायें हैं तथा रंगमञ्च सदा सर्वदा ऋतुराज वसन्त-विराजित स्वर्गधाम है, वहांका अभिनय कैसा सर्वाङ्ग सुन्दर होता होगा, पौराणिक उपाख्यानोंके सिवा उसका विशेष विवरण जाननेका कोई उपाय नहीं।

महाभारतके विराट् पर्वमें (२२।१६) लिखा है, कि मत्स्यराज या विराटराजने अपनी कन्या उत्तराको गान बाजा सिखानेके लिये बृहन्नला (अर्जुन)को नौकर रखा था। इसके लिये उन्होंने स्वतन्त्र एक नृत्यागार तय्यार करवाया था। दिनमें वहां जा कर बालिकायें नृत्यगान सीखा करती थीं। इसका विवरण जाननेका कोई उपाय नहीं, कि यह नृत्यागार किस प्रथाके अनुसार तय्यार हुआ था। पाणिनिने शिलालि-रचित नटसूत्रका उल्लेख किया है।

भारतीय रङ्गमञ्चकी लुप्त वैभव-स्वरूप संस्कृत भाषामें रचित प्राचीन नाटक आदि आज भी स्पर्द्धाके साथ हिन्दू जातिका अतीत गौरव बतला रहे हैं। उज्जयिनी-पति विक्रमादित्यके राजत्वकालमें जिस नाट्य साहित्यने शीर्षस्थान अधिकार किया था, दुःख है, कि भारतमें भाग्याकाशमें और कभी वैसा कला-विज्ञानका पूर्ण विकाश नहीं हुआ। तुलना करने पर विक्रमादित्यके राजत्वकालको Augustion Period कह सकते हैं। रोम-सम्राट् अगस्टसकी तरह महाराज विक्रमादित्य भी प्रबल पराक्रान्त सम्राट् थे। रोम-सम्राटकी सभामें जैसे Horace, Vergil, Livy आदि रसज्ञ कवि मौजूद थे वैसे ही उज्जयिनी-राजसभा भी कालिदास आदि रसज्ञ पण्डितमण्डलीके विमलज्ञानालोकसे आलोकित हो रही थी।

कालिदास आदि कवियोंके आविर्भावके समय हिन्दू उन्नतिकी चरमसीमा पर पहुंच चुके थे। उन्हीं कवियोंमें कालिदास, भवभूति आदिने अपने अपने नाटकोंमें हिन्दुओंके जातीय जीवनका जैसा अनुपम और स्वाभाविक चित्र खींचा है, वैसी जातीय चरित्र-गठनकी शक्ति अति विरल दिखाई देती है। एक शकुन्तला नाटकके सौन्दर्यने समूचे सभ्य जगत्को मोहित किया है। शकुन्तलाकी अपूर्व माधुरीसे मुग्ध हो कर जर्मन कवि गेटे (Goethe)ने गाया था—"I name thee, o Śakuntala, all at once is said".

दशरूपक, सरस्वती-कण्ठाभरण, साहित्य-दर्पण, संगीतरत्नाकार, काव्यादर्श, अलङ्कारसर्वस्व, रसगंगाधर, अलङ्कारकौस्तुभ, शृङ्गारतिलक, रसतरंगिणी, रसमञ्जरी, भोजप्रबन्ध, शार्ङ्गधरपद्धति, काव्यप्रकाश, काव्यालङ्कारवृत्ति, चन्द्रालोक, कुवलयानन्द आदि अलङ्कारशास्त्र पढ़नेसे हिन्दू-जातिके नाटक और अभिनयके सम्बन्धमें कुछ आभास मिल सकता है। इन सब ग्रन्थोंमें जिन नाटकोंका उल्लेख है, वे सब उस समय विशेष प्रसिद्ध और दृष्टान्तोपयोगी थे, ऐसा अनुमान होता है। अतः संस्कृत साहित्यके उस सर्वाङ्गके समय

नाटकोंकी संख्या निःसन्देह इससे भी अधिक थी। नीचे कई प्रसिद्ध संस्कृत नाटकोंके नाम दिये जाते हैं—

मृच्छकटिक, शकुन्तला, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र, उत्तर-रामचरित, मालतीमाधव, महावीरचरित, वेणीसंहार, मुद्राराक्षस, उदात्तराघव, अनर्घराघव, प्रचण्डराघव, रत्नावली, हनुमान्नाटक, कर्पूरमञ्जरी, कपूरमञ्जरी, समुद्रमन्थन, त्रिपुरदाह, धनञ्जयविजय, सारदातिलक, ययातिचरित्र, ययातिविजय, मृगाङ्कलेखा, द्युतांगद, बालरामायण, विदग्धमाधव, विद्धशालभञ्जिका, अभिराममणि, प्रद्युम्नविजय, श्रीदामचरित, मथुरानिरुद्ध, धूर्त्तनर्त्तक, धूर्त्तसमागम, कंसवध, कौतुकसर्व्वस्व, चित्रयज्ञ, नागानन्द, चण्डकौशिक, जगन्नाथवल्लभ, दानकेलि-कौमुदी, हास्यार्णव, कृष्ण-भक्तिसंकल्प सूर्योदय, प्रबोधचन्द्रोदय, प्रसन्नराघव, पाण्डव-चरित, चैतन्यचन्द्रोदय, वसन्ततिलक, प्रियदर्शिका, ललितमाधव, श्रीराम-जन्म, रामाभ्युदय, सौगन्धिकाहरण, कुसुमशेखर-विजय, गर्भवती, यादवोदय, श्रृङ्गारतिलक, वासन्तिका परिणय, रैवत-मदनिका, सुदर्शनविजय, ययातिशर्मिष्ठा, कुन्दमाला, क्रोड़ारसातल, मायाकापालिक, विलासवती, देवीमहादेव, बालीवध, कर्णकावती-माधव, विन्दुमती, केलीरैवतक, कामदत्त आदि।

हिन्दूनाटकोंमें मिलनान्त या वियोगान्तका कोई प्रभेद नहीं था। आर्य्य लोग शोक, ताप और दुःखसे भरा नाटक कभी पसन्द नहीं करते थे। इसीसे उस समय वियोगान्तनाटक बिलकुल ही न था। संस्कृत नाटक साधारणतः लम्बा होता था और उनके अभिनय करनेमें अधिक समय भी लगता था। इसीलिये किसी निर्दिष्ट समयमें एक या दो नाटक शीघ्र अभिनय करनेके लिये श्रेणी विभाग कर छोटे छोटे नाटक रचे गये थे। किस समयमें और किसके बाद कौन अभिनयके लिये रंगमञ्च पर उपस्थित किया जाता था, उसका निर्णय करना कठिन है।

अभिनयोपयोगी नाट्यसाहित्य नाटक, रूपक और उपरूपक भेदसे तीन प्रकारका है। शकुन्तला, मुद्राराक्षस आदि नाटक उच्चकोटिके नाट्यसाहित्य हैं। प्रकरण, शुद्ध और सङ्कीर्ण भेदसे तीन हैं। मृच्छकटिक, मालती-माधव आदि इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं। उपरूपक १८ प्रकारके होते हैं। सिवा इनके नाटिका श्रेणोमें रत्नावली और त्रोटक विषयमें विक्रमोर्वशी ही उल्लेखनीय है। परिचयके लिये कितनी ही श्रेणियोंका विभाग नीचे दिया गया :—

प्रकरण, समवकार, ईहामृग, डिम, व्यायोग, अङ्क, प्रहसन, भाण, वीथी, अवस्यन्दित, असत्प्रलाप, प्रपञ्च-नालिका, वाक्केलि, अधिबल, छल, व्याहार, मृदव, त्रिगत, गण्ड, नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खन, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्म्मलिका, प्रकरणी, हल्लीश और भणिका। इन सब नाटक-ग्रन्थोंकी रचना-पद्धति और अभिनेता तथा अभिनेत्रियोंके प्रदर्शनीय अंग-परिचालना आदि वैशिष्ट्य यथास्थान दिया गया है। इससे यहां देनेकी आवश्यकता नहीं।

नाटक, रूपक, उपरूपक और अन्यान्य शब्द देखो।

यूनानियोंकी तरह प्राचीन हिन्दुओंका अभिनय सदा नहीं होता था। पूर्णिमाकी रातको, राजाके अभिषेकके दिन, मेलेमें, धर्मसम्बन्धीय उत्सवमें, लोगोंके समागम होने पर, विवाहमें, मित्रके आने पर, किसी नगर या देशकी विजय पर और सन्तानोत्पत्ति पर हिन्दुओंमें अभिनय करानेकी रीति थी। इन सब उत्सवके दिनोंके सिवा देशी किसी सम्भ्रान्त व्यक्ति अथवा राजाओंकी आज्ञासे ही अभिनय हुआ करता था। यह कहा जा नहीं सकता, कि नाटकाभिनयके समय साधारण प्रजा प्रवेश करने पाती थी या नहीं। क्योंकि अभिनय देखनेके बाद लोगोंके मन पर उसका जो स्थायी प्रभाव (Dramatic effect) पड़ता है, मालूम होता है, वह लोगों पर नहीं पड़ा। ऐसा होनेसे सम्भवतः इतना जल्द नाट्यसाहित्यका विलोप नहीं होता। विशुद्ध संस्कृत-भाषाके साथ शौर-सेनी, मागधी, अर्द्धमागधी, प्राची, अवन्तिका, द्राविड़ी, भालिक, दाक्षिणात्य और पैशाची भाषाओंकी मिलावट होनेकी वजह ये सब ग्रन्थ साधारणके लिये दुर्बोध हो गये थे। अनुमान होता है, कि इस कारणसे भी नाटका-भिनय साधारणकी सहानुभूति अर्ज्जन नहीं कर सका।

संस्कृत नाटकावलीकी गठनप्रणालीका पर्य्यवेक्षण करने पर सहज ही समझमें आता है, कि पुराकालके अभिनय नाटकादि वर्त्तमान समयोचित शृङ्खलामें आवद्ध नहीं थे। नाटकारम्भसे पहले ही मंगलाचरणमें जगदीश्वरका नाम स्मरणके साथ-साथ दर्शक-मण्डलीको आशीर्वाद देनेकी प्रथा थी। सूत्रधार Stage-manager and director अवतरणिकाका पाठ करता थो। दर्शकोंको नाटकके विषयको समझा देना ही इस अवतरणिकाका उद्देश्य था। इसीलिये नाट्यानुशीलन पारदर्शी विद्वान् सुदक्ष व्यक्तिको ही सूत्रधार बनाया जाता था।

अवतरणिका-पाठ करनेके बाद नाटक आरम्भ होता था। संस्कृत नाटक कई अङ्कोंमें विभक्त है। यूरोपमें पहले रोमकोंने ही नाटकाभिनयमें अङ्कोंका विभाग किया। किन्तु हिन्दुओंने उस प्रथाका अनुकरण नहीं किया, इस बातको अध्यापक विलसन एक वाक्यमें स्वीकार कर गये हैं।* एक एक नाटकमें १से १० तक अङ्क रहते थे।

अभिनयके समय रंगमञ्चके सामने वृहत् एक यवनिका (Drop-scene) रहती थी। कुछ लोग रंगालयोंके सामनेके वस्त्रावरणको यवनिका कहते हैं। उस समय खण्डपट (Moveable scenes) था या नहीं, इसका पता नहीं लगता। किन्तु नाटकोंमें अङ्कान्तर्गत दृश्योंका उल्लेख रहनेसे अनुमान होता है, कि ये सब अवश्य ही अभिनयके समय दिखाये जाते थे। क्योंकि देवमंदिरके सामने, श्मशानघाटमें अभिनेता अभिनेत्रियोंका समागम न दिखा सकनेसे किस तरह अभिनयकी सार्थकता लाभ की जा सकती है? उस समय कपड़ों पर अङ्कित चित्रपट था या नहीं, उसकी मीमांसा न कर केवल इतना ही कहा जा सकता है, कि शिल्पनैपुण्यसमृद्ध भारतमें अवश्य ही राजकीय खर्चसे लकड़ीका स्वतन्त्र मन्दिर तय्यार कर रंगालय बैठाया गया था। श्मशान चित्रमें विशृङ्खलित भावसे गिरी जली लकड़ियां और निर्मित अस्थि आदि भी इधर उधर फैला दी जाती थीं। ऐसा न होनेसे कभी भी अङ्क और दृश्य—ये दोनों स्वतन्त्ररूपसे विभक्त नहीं होते थे। उस समयके अभिनय कार्य्यमें कितनी ही त्रुटियोंका स्वीकार कर लेने पर भी कहा जा सकता है, कि भारतीय प्राचीन नाट्यमञ्च उस समय पूर्णरूपसे उन्नति प्राप्त कर चुका था। और तो क्या—स्त्रियोंके पार्ट स्त्रियां ही करती थीं। जहां नारी-चरित्रकी गाम्भीर्य्य-रक्षा सरल-हृदया रमणियोंसे नहीं हो सकती थी, वहां सम्भवतः युवक या बालकोंसे अभिनय करा लिया जाता था। मालतीमाधवमें कहे हुए बौद्ध-रमणीके चरित्र-स्फुरणका अभिनय सामान्य रमणी द्वारा सम्पादित होता था या नहीं, सन्देह है।

नाट्यशास्त्रमें अभिनेत्रियोंके परिधेय वस्त्र सादा, विचित्र और मलिन—ये तीन तरहके ही लिखे गये हैं। उसमें लिखा है, कि धर्मकर्ममें नियुक्त व्यक्ति, सामान्य स्त्री, अमात्य, कञ्चुकी और पुरोहित सादी पोशाक या वस्त्र धारण करें। देवता, दानव, गन्धर्व, असुर, यक्ष, राक्षस, राजा और राजपोषित या राजपुर-नारियोंका परिच्छद विचित्र वर्णका हो और मद्यप, उन्मत्त, पहाड़ी, चोर और राजदण्डसे दण्डित व्यक्ति आदिकी पोशाक मलिन हो। किन्तु इस तरह वस्त्रविनियोगमें भी देश, काल, उम्र, पद और जातिके प्रति विशेष लक्ष्य रखना कर्त्तव्य है। नाट्याचार्य्योंको इसका खूब ध्यान रखना चाहिये, कि सब जातियोंकी एक ही पोशाक न हो। मध्यप्रदेशके रामगरशैलकी गुहामें १ली सदी पहलेका रङ्गालयका चिह्न देखा गया है।

उस प्राचीन युगमें रंगालय जिस भावसे ही बने हो न क्यों—वर्त्तमान समयमें बंगाल और भारतवर्षके नाना स्थानोंमें जो रंगालय बने हैं, वे आज कलके यूरोपीय रंगालयोंके अनुकरणसे ही बने हैं। फ्रान्स और इंगलैण्ड-राज्यके प्रसिद्ध रंगालयोंके प्रवेशद्वारके बाद एक दालान (Entrance Hall) रहता है। इसके बाद ऊपरी मञ्जिलमें जानेके लिये जो अलग अलग सीढ़ियां हैं, ठीक उसके बीचमें Saloon अर्थात् सुसज्जित बैठकखाना रहता है। ऊपर दोनों बगलमें बक्स यानी कई आसनोंका घेरा बीचमें गोल दोनों ओर कुर्सियां रहती हैं। उसके ठीक बीचमें राजाका आसन (Royal seat) रहता है। पारी-नगरीके ग्राण्ड Grand opera

* Hindu Theatre, Dramatic System of the Hindus xxi,

अपेरा हाउसमें राजाके ऊपर चढ़नेके लिये स्वतन्त्र सीढ़ी बनी है।

बंगालमें, विशेषतः कलकत्तेमें जितने रंगालय हैं, उनमें यूरोपियोंके परिचालित रायल थियेटर, कोरिन्थियन थियेटर, अपेरा हाउस और देशी पारसियोंके थियेटरोंको छोड़ कर बंगालियोंके परिचालित रंगमञ्चोंकी आलोचना करने पर केवल चार थियेटर ही ऐसा दिखाई देता है, जो यूरोपीय ढंगका बना हुआ है। अन्यान्य सभी केवल अनुरूप छाया ले कर गठित हुए हैं।

बंगालमें किस तरह और किस घटना स्रोतमें रंगालयका अभिनय और प्रथम प्रतिष्ठा हुई और किस तरह इस कलाविधाने अपनी परिपुष्टि की थी, उसका संक्षिप्त इतिहास नीचे लिखा जाता है।

बङ्गालके रङ्गालय।

बंगालियोंके रंगालयोंकी प्रतिष्ठाका मूल अंगरेज हैं। किन्तु अंग्रेजोंने कलम हाथमें पकड़ा कर उन्हें नहीं सिखाया है। अंग्रेज जातिने अपने आमोद-प्रमोदके लिये वारेन हेष्टिङ्गसके जमानेमें इस देशमें थियेटरका सूत्रपात किया। उस समयके राजपुरुष ही इसके अनुष्ठाता तथा अभिनेता थे। यह ठीक ठीक कहना कठिन है, कि कब इसकी प्रतिष्ठा हुई। फिर, हिकीके बंगाल गजेटमें दिखाई देता है, कि सन् १७८० ई०में 'कलकत्ता थियेटर' नामक थियेटरमें इनके सात आठ बार नाटक प्रहसन हो चुके थे। उसी समयके "कलकत्ता अडवरटाइजर" में इन अभिनयोंके विज्ञापन छपे हैं।*

Vol, II No, I, 1782 Hickie's gazette से जाना जाता है, ५वीं जनवरी सन् १७८२ तक यह थियेटर वहां मौजूद था।

इसके बाद पेशेदारोंके थियेटर आरम्भ हुए और कलकत्तेमें ही ये थियेटर स्थापित हुए और हुए भी तो अंगरेजोंकी सहायतासे।

इसके बाद बंगालियोंने ठीक कब थियेटर कायम किया, यह कहना जरा कठिन है। कलकत्तेके (Calcutta Review Vol XIII 850) "कलकत्ता रिभ्यु" नामक पत्रके तेरहवें खण्डके १६०वें पृष्ठसे जाना जाता है, कि सन् १८२१ ई०में "कलिराजार यात्रा" नामक एक नाटक हुआ था। इसी सालकी बंगाली संवाद पत्रिका "संवादकौमुदी"-की ८वीं संख्यामें इस अभिनयका विवरण प्रकाशित हुआ था। उस समय होनेवाली बङ्गाली यात्रा या रासलीलासे निश्चय ही इस अभिनयमें कुछ विशेषत्व था, नहीं तो इसका विज्ञापन समाचार-पत्रोंमें कैसे छापा जाता। इस समय कई नाटक लिखे गये। उक्त "कलकत्ता रिभ्यु" में संवादकौमुदीकी जो आलोचना हुई है, उसमें लिखा गया है, कि इसकी पांचवी संख्यामें "नवप्रकाशित नाटकोंके प्रति कुरुचि" " (The evil tendency of the dramas lately invented) शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था या नहीं। "कलिराजार यात्रा" नाटकका अभिनय हुआ था इस विवरणके सिवा बंगालियोंके किसी और नाटकाभिनयका परिचय अब तक नहीं मिला है। यह भी १२२७ साल फसलीकी घटना है।

इसके बाद सन् १२३७ फसलीके सम्भवतः लक्ष्मीपूर्णिमाके दिन बंगालियोंके एक नाटकाभिनयका विशेष विवरण मिलता है। हिन्दू 'पाइनियर' नामक एक प्राचीन पत्रमें (सन् १८३५ ई०के अक्तूबर महीनेकी एक संख्यामें) इसका विवरण प्रकाशित हुआ था। इस विवरणके प्रारम्भमें ही लिखा है—"This private theatre got up about two years ago, is still supporte by Babu Nobinchandar Bose" "अर्थात् यह शौकीन थियेटर कोई दो वर्ष पहलेसे तय्यार हुआ है, जिसे बाबू नवीन चन्द्रबोस अब तक प्रतिपालित करते आते हैं।"

---

* ३१वीं जनवरी सोमवार Comedy of the Beaux Stratagem और एक फार्स ; ३१ मार्च Comedy of Foundling और Like master like man नामक फार्स और ४था और ११वीं अपरेल School for Acandal अभिनीत हुआ। विस्तृत विवरण Calcutta Cenral Advertiser N 1, 29th January, and No 10, 3rd April, 1780. पत्रिकामें दिया गया है। सिवा इसके उक्त वर्ष के १२वीं, १६वीं और २१वीं अगस्त Tragedy of Mahomet और Citizen नामक एक और फार्स अभिनय हुआ था।

इससे प्रमाणित होता है, कि इस नाट्यसम्प्रदायने सन् १८३५ ई०से दो वर्ष पहले अर्थात् सन् १८३३ ई० या सन् १२३६ फसलीमें अपना पहला खेल दिखाया था। किन्तु यह भी नहीं "कलकत्ता मौन्थली जर्नल" नामक प्राचीन मासिक पत्रमें देखा जाता है, कि सन् १८३२ ई०के जनवरी महीनेमें श्रीप्रसन्नकुमार ठाकुरकी चेष्टासे अंगरेजीमें उत्तर-रामचरितका अभिनय हुआ। इससे मालूम होता है, कि यह सन १२३८ साल फसलीके पौष महीनेकी घटना है।

जो हो, यह निश्चय है, कि सन् १८३१ ई०के अक्तूबर महीनेमें बंगालमें पहला अभिनय हुआ और हुआ भी तो 'विद्यासुन्दर' नामक नाटक। सुना जाता है, कि उस समय इस नाटकका यात्रामें बड़ा नाम था। कलकत्तेके प्राचीन इतिहासकी खोज करने पर मालूम होता है, कि इसी समय डोमटोलेमें अंगरेजोंकी जो नाट्यशाला स्थापित हुई थी, उसमें अंगरेजीमें विद्यासुन्दरके ही गाने हुए थे। इसका प्रमाण मिलता है—

'By permission the Honourable the Governor General, Mr. Lebede'ffs New Theatre in the Doomtulla (डोमटोली-चोनाबाजार) decorated in the Bengali style, will be opened very shortly with a play called 'The Disguise." * * * The words of the much admired poet Shree Bharat Chandra Ray are set to music."—

अर्थात् गवर्नर जेनरलके हुक्मसे मिष्टर लेबेडफ्केर डोमटोलेकी नयी नाट्यशालामें छद्मवेश नामक अंग्रेजी नाटक शीघ्र ही खेला जायगा। ** बहु आदृत कवि भारतचन्द्रके कविता सुरमें इसके गाने तय्यार हुए हैं। यह प्रमाण भिन्न भी मालूम होता है, कि यह 'विद्यासुन्दर' ही है—अन्नदामंगल नहीं। यह सम्भवतः Ballad-के हिसाबसे गीत हुआ था। यह सन् १७९५ ई०का घटना है।

नवीन बाबूने उस लोकप्रिय विषयको ही नाटकरूपसे अभिनीत किया था। सुना जाता है, कि तनु मग नामक एक व्यक्तिके घर 'विद्यासुन्दर' यात्राका प्रथम गाना हुआ। यह 'तनु' जातिके मग न थे। तनु बाबू भद्रपुरुष धनी बंगाली थे। किसी मग सौदागरके अधीन वे काम करते थे। इसीसे वे भी 'मग' नामसे परिचित हो गये। 'तनु' सम्भवतः रामतनुका संक्षिप्त अंश है। इसी 'तनु' मगके पुत्र ही पृष्ठ-पोषक थे। यह विद्यासुन्दरकी यात्राका दल सुप्रसिद्ध गोपाल उड़ियाके दलसे पहलेक है या नहीं मालूम नहीं होता। कुछ लोगोंका कहना है, कि पथरियाघाटके श्रीवीरनृसिंह मल्लिक महाशय ही गोपाल उड़ियाके दलके प्रतिष्ठाता हैं। जो हो, उक्त विद्यासुन्दरकी यात्रासे ही नवीन बाबूकी नाट्याभिनय प्रकृति जागरित हुई थी। श्यामबाजारमें जहां इस समय ट्रामकी डिपो है, (अर्थात् कृष्णराम बसुकी गलीकी मोड़ पर) वहां श्रीनवीन बाबूकी एक बहुत बड़ी अट्टालिका थी। इसी अट्टालिकामें वह अभिनय हुआ था। इस अभिनयमें पहले चित्रित रंगालयकी व्यवस्था न थी। नाटकके दृश्य उस मकानमें ही बनाये गये थे। प्राकृतिक शोभा आदि साजोंसे सुसज्जित की गई थी। एक घरसे दूसरे घर आनेके लिये सुरंग खोदी गई थी। नाटकमें विकृत 'वकुलतलाके पोखरे'का दृश्य मकानकी बगलमें ही एक बागके पोखरेके किनारे सज्जित किया गया था। 'वीरसिंहका दरबार' बड़े भारी बैठकखानेमें सजाया गया था। बगलके मगरमें ही 'मालिनका घर' बना था। एक जगह एक दृश्यका अभिनय देख कर दूसरी जगह दूसरे दृश्यको देखनेके लिये दर्शकोंको जाना पड़ता था। प्रथम अभिनय इस तरह घूम फिर कर देखनेकी व्यवस्था हुई थी। इस अभिनयमें स्त्री-चरित्रका पार्ट स्त्रियोंने ही किया था। इस समयकी तरह वेश्याओं द्वारा ही स्त्रीका पार्ट किया गया था। कुछ लोगोंका कहना है, कि प्रथम अभिनयमें ऐसा नहीं हुआ था, वरं दूसरे अभिनयसे ही ऐसा हुआ। नवीन बाबूके नाती कहते हैं, कि पहलेसे ही स्त्रियां स्त्रियोंके पार्ट करती थीं। 'हिन्दू पाइनियर'में (सन् १८३५ ई० अक्तूबर महीनेमें) इस थियेटरका विवरण प्रकाशित हुआ था। उसमें स्त्रियोंके पार्ट करनेका स्पष्ट उल्लेख है। सन् १८३५ ई०का यह अभिनय आधी रातको आरम्भ हो कर सबेरे साढ़े छः बजे खतम हुआ था। दर्शकोंमें हिन्दू, मुसलमान, साहब, फिरंगी सभी मौजूद थे। सम्भ्रान्त और गण्यमान्य दर्शकोंकी

ही अधिकता थी। सुना जाता है, कि पहला अभिनय दो दिनमें समाप्त हुआ था। सन् १८३५ ई० अभिनयके विवरणसे देशीय यन्त्रके एकतान वाद्यका परिचय मिलता है। सितार, सारंगी, पखावज, बेहला आदि बाजे बजाये गये थे। बजानेवालोंमें अधिकांश ब्राह्मण थे। ब्रजनाथ गोस्वामीने बेहलामें खूब नाम कमाया था। एक परमेशस्तुतिसे ही मंगलाचरण हुआ था और हुआ था चित्रित रंगमंच पर ही। इस अभिनयमें भाग लेनेवाले पात्र और पात्रियोंमें निम्नलिखित नामोंका पता लगता है:—

सुन्दर—श्यामाचरण वन्द्योपाध्याय (वराहनगर-निवासी), विद्या—राधामणि (मणि नामसे परिचिता), रानी—जयदुर्गा, मालिनी—जयदुर्गा, सहचरी—राजकुमारी (राजूनामसे परिचिता)

'हिन्दू पाइनियर'*का कहना है, कि स्त्रियोंका अभिनय राजा वीरसिंहके अभिनयसे भी अधिक मनोहर हुआ था। सुन्दरका पार्ट इस सम्पादकको अच्छा नहीं लगा था। मनोभाव परिवर्त्तनका कौशल, वाक्भङ्गी और हावभाव अकृत्रिम नहीं हुआ।

सुना जाता है, कि इस अभिनयमें नवीनबाबूका दो लाख रुपया खर्च हुआ था। इसलिये इनको अंग्रेजी टोलेका एक मकान बिक्री कर देना पड़ा। इस समय जिस बिल्डिङ्गमें Military Accounts है, वही इनका मकान खाताबाड़ी नामसे मशहूर था। जो हो, पहले रंगमञ्चके अभावमें जगह जगह दृश्यपट सजा कर नवीन बाबूने जो अभिनय किया था, उसमें उनके कृतित्वका विशेष परिचय मिलता है। इसके बाद अभिनयके साथ रंगमञ्चका संयोग मालूम होता है, कि श्रीप्रसन्नकुमार ठाकुरके उत्तर रामचरितके रंगमञ्चको देख कर ही किया गया था।

एक आश्चर्यकी बात यह है, कि नाट्याभिनयकी इस पहली चेष्टामें ही विद्यासुन्दरकी अश्लीलता, अश्लील विषयका अभिनयके लिये निर्वाचन—बंगलामें लिखे नाटकके अभिनयमें विरक्ति और वेश्याका पार्ट करना

* सन् १८३५ ई०के सितम्बर माससे यह पत्र प्रकाशित होने लगा।

इत्यादि विषयों पर घोर आन्दोलन समाचार-पत्रोंमें उठ खड़ा हुआ।

जो हो, यह नाट्य-सम्प्रदाय बीच बीचमें अभिनय करते हुए चार वर्षों तक जीता रहा। इसका प्रमाण मिलता है।

इसके बाद यद्यपि बंग-भाषामें अभिनय नहीं हुआ था, तथापि बंगालियों द्वारा हुआ था, इसीसे यहां श्रीप्रसन्नकुमार ठाकुरके अनुष्ठित उत्तर-रामचरितके अभिनयकी बात विवृत हुई है। Hindu Reformer नामक समाचार-पत्रके सन्के १८३२ ई०के जनवरी महीनेकी एक संख्यामें इस नाट्य-सम्प्रदायके पहले पहल अभिनयका विवरण प्रकाशित हुआ था। शुडोके उद्यानमें यह अभिनय हुआ था। संस्कृत कालेजके उस समयके अध्यक्ष डाक्टर होरेश हेमेन विलसन साहबने उत्तररामचरितका अंगरेजीमें अनुवाद किया, इसी अनुवादका अभिनय हुआ था। किसी अंग्रेजने इसके लिये दल संगठन करने और इसे सुशिक्षित बनानेके लिये बड़ा परिश्रम किया था।

किसी बुधवारको यह अभिनय हुआ। अभिनयसे पहले नाट्य-सम्प्रदायकी ओरसे नाटकोंके अभिनयका उद्देश्य बतलाते हुए किसी एक मनुष्यने व्याख्यान दिया था। यह नहीं होता, कि इस अभिनयमें किसने किस विषयका पार्ट किया। उत्तर-रामचरितका अभिनय खतम हो जाने पर इस सम्प्रदायने जुलियस-सीजरके पांचवें अङ्कका अभिनय किया। फिर इसी दलने मार्च महीनेमें गीतनाटकके दृश्यकाव्यका अभिनय किया। इस पर प्रसन्न हो कर एक अंग्रेजने 'इण्डिया गजट'-में एक पत्र प्रकाशित किया था। इस पत्रमें उसने उस अभिनयकी भूरि भूरि प्रशंसा की थी। जाफर गुलनेहारका विषय इस काव्यमें वर्णन किया गया था। उस नाटकके नामका पता नहीं लगता। यह भी स्थिर नहीं किया जा सकता, कि श्रीप्रसन्नकुमार ठाकुरका यह नाट्य सम्प्रदाय कितने दिनों तक जीवित था।

इसके बाद सन् १८३७ ई०के मार्च महीनेमें हिन्दू कालेजके छात्रों द्वारा सरकारी-'ह्वाइट हाउस' में नाना पुस्तकोंकी वक्तृतायें अभिनीत हुई थीं। गवर्नर जेनरल लार्ड आकलैण्ड, लार्ड विशप, माननीय इडेन आदि

सज्जन इसके उत्साहदाता थे। ये सब नाटक ठीक तौरसे अभिनीत नहीं हुए थे। इस दलके कई अभिनयों- का विवरण नीचे दिया जाता है :—

पुस्तक	पात्र	अभिनेता।
1. The King and the Miller	King	गोविन्दचंद्र दत्त
	Miller	नरोत्तम दास
2. Soldier's dream	Roldier	शशिचंद्र दत्त (इनको पीछे रायबहादुरका खिताब मिला था)
3. Topsy Tosspot		गोपालनाथ मुखोपाध्याय
4. Shakespear's Seven ages		अवतारचंद्र गंगोपाध्याय
5. Lodgings for Single Agent		प्रतापचंद्र वसु
6. Merchant of Venice	Salarino	गोपालचन्द्र मुखोपाध्याय
	Duke	राजेन्द्रनाथ सेन
	Shylock	उमाचरण मित्र
	Portia	अभयचन्द्र वसु
	Bassanio	राजेन्द्रनारायण वसु
	Nerissa	राजेन्द्रनारायण मित्र
	Cratiaus	राजेन्द्रनारायण दत्त
	Nellygray	गोविन्दचन्द्र दत्त
7. The Dramatic Aspirant	Antonio	कालीकृष्ण दत्त
	Patent	गोपालकृष्ण दत्त
	Dowles	गिरिशचन्द्र घोष

हिन्दूकालेजके छात्रोंकी यह अङ्गरेजी अभिनय चेष्टा दूसरी जगह कालक्रमसे संक्रामित हो उठी थी। सन् १८४० ई०में लार्ड आकलैण्डने "ओरियण्टल सेमिनेरी" का अभिनय करानेकी तय्यारी की। इस समय इस अभिनयके दारमन जेफ्रे नामक एक फ्रान्सीसी प्रधान शिक्षक थे। रिशी नामक एक और फ्रान्सीसी भी इस समय कलकत्तेमें मौजूद थे, यह इनके मित्र थे। जेफ्रे और रिशीने मिल कर ओरियण्टलके छात्रों द्वारा "जुलियस सीजर"-का अभिनय करनेका संकल्प किया। रिशीने स्थिर किया, कि इस कार्य्यमें डेढ़ हजार रु० खर्च होगा। अर्थाभावसे यह कार्यमें परिणत नहीं हुआ। केवल कई दिन शिक्षा या रिहर्सलका काम हुआ था। यह सन् १२४७ फसलीकी बात है।

इसके बाद १२ वर्षों तक अंग्रेजी या बंगला कुछ भी नाटक नहीं हुआ। सन् १२५९ फसलीमें अर्थात् सन् १८५२ ई०में बड़तलेमें "सेण्ट्रल पलिटन एकेडमी" नामक स्कूलभवनमें "जुलियस सीजर" नाटकका अभिनय हुआ। आज भी बांधा बड़तलेकी बगलमें जो बड़ा मकान है, उसी मकानमें इस अभिनयका आयोजन हुआ था। पहले इसी मकानमें "ओरियण्टल सेमिनरी" थी। इसके बाद हाटखोलेके दत्तवंशीय गुरुचरण दत्त महाशयने इस भवनमें मेट्रोपलिटन एकेडमी नामसे और एक स्कूल- की प्रतिष्ठा की। इस बड़े मकानमें इस अभिनयके स्थान पानेसे मालूम होता है, कि स्कूलके प्रतिष्ठाता गुरुचरण बाबू भी इस नाट्याभिनयके एक पृष्ठपोषक थे। सुना जाता है, कि ओरियण्टल सेमिनरीके भूतपूर्व छात्र इस अभिनयके अभिनेता थे। अनुमान होता है, कि पहले रिशी और जेफ्रेने जुलियस सीजरके अभिनय करनेकी चेष्टा थी और उन्हें उसमें सफलता नहीं मिली, उसीको सफल करनेके लिये बहुतोंने इस अभिनय- में साथ दिया था। इसका कुछ भी पता नहीं लगता, कि इस अभिनयका कौन अधिष्ठाता थे, किसके खर्चसे यह कार्य सम्पन्न हुआ था, किस किसने अभिनय किया था। किन्तु सांसूची नामक थियेटर (अंग्रेजी)-के एक अभिनेता क्लिङ्गने बड़े यत्नसे इस नाट्य-सम्प्रदायको पार्ट याद कराया था। इस अभिनयमें एक विशेष घटना हुई थी। दर्शकोंके लिये टिकट लगा था। यह मालूम नहीं होता, टिकटका मूल्य कितना था और कितने रुपयेका बिका था। टिकट लगा कर सबसे पहले यही अभिनय बंगालमें हुआ।

बड़तलेके "जुलियस सीजर" अभिनयके बाद दूसरे वर्षमें बाराणसीघोष स्ट्रीटके प्यारीमोहन वसुके मकानमें "जुलियस-सीजर"-का अभिनय हुआ। यह प्यारीमोहन बाबू उयुक्त नवीन बाबूके भतीजे थे। इन्होंने शान्तिराम सिंहके वंशकी किसी कन्याओंसे विवाह किया था। प्यारीमोहनके पुत्रोंकी चेष्टासे इस

अभिनयका सूत्रपात हुआ। बड़तलेके अभिनेताओंमें बहुतोंने इस अभिनयमें भाग लिया था। इस अभिनयमें भी टिकट लगाया गया। एक दो रात इस सम्प्रदायका अभिनय हुआ। यहांका खर्च भी प्यारी बाबूके पुत्रोंने दिया था। अभिनेताओंमें केवल ब्रजनाथ बाबूका नाम हमें मालूम है। इनके सुविख्यात अभिनेता महेन्द्रलाल बसु महाशय थे।

माइकेल मधुसूदन दत्तके जीवन-चरितके पढ़नेसे मालूम होता है, कि जब प्यारीबसुके घर जुलियससीजर के अभिनयका उद्योग हो रहा था, तब ओरियण्टल सेमिनरीमें भी उस समयके शिक्षकोंके उद्योगसे ओथेलो के अभिनयका उद्योग चल रहा था। ओरियण्टलके भूत-पूर्व छात्रोंने ही यह उद्योग किया था। दीननाथ घोष, प्रियनाथ दत्त, राधाप्रसादबसाक, सीताराम दे, ब्रज-नाथ बसु और केशवचन्द्र गंगोपाध्याय आदि व्यक्ति इसके अधिष्ठाता और अभिनेता थे। बड़तलेके जुलि-यस सीजरके शिक्षक मिष्टर क्लिंगार, मिष्टर राबर्टस और मिष्टर पारकरने इस सम्प्रदायको सिखाया था। मिष्टर क्लिङ्गारकी तरह मिष्टर राबर्टस् सां-सूची थियेटरमें और मिष्टर पारकर चौरङ्गी थियेटरमें थे। ओथेलो, मर्चेण्ट आफ वेनिस, हेनरी दी फोर्थ और एमेटि ओर्स नामक चार पुस्तकोंका अभिनय हुआ था। यह सम्प्रदाय ओरियण्टल थियेटर नामसे पुकारा जाता था। नीचे इसका विवरण दिया जाता है।

पुस्तक	तारीख	अभिनेता
ओथेलो	(१ला) १२६०।११ आश्विन	ओथेलो—दीनानाथ घोष
	१८५३।२२ सितम्बर	आयागो—प्रियनाथदत्त
	(२रा) १२६०।२० क्वार	ब्रावानशियो—खगेन्द्रनाथ मल्लिक
	१८५३।५ अक्तूबर	डेसडिमोना—राजराजेन्द्र मिश्र।
		एमेलिया—राधाप्रसाद बसाक
मार्चेण्ट आफ भिनिस	(१ला) १२६१।२० फागुन	शाइलक—प्रियनाथदत्त
	१८५४।२ रा मार्च	पोर्शिया—राधाप्रसाद बसाक
	(२रा) १२६०।५ चैत्र	
	१८५४।१७ मार्च	
हेनरी दी फोर्थ	१२६१।४था फाल्गुन	हेनरी—केशवचन्द्र गङ्गोपाध्याय।
	१५५५।१५ फरवरी	फलष्टाफ—प्रियनाथ दत्त
		हट स्पार—नित्यलाल दे
एमेटिओर्स	१२११।४था फाल्गुन १८५५।१५ फरवरी	मेजर ब्रस—केशवचन्द्र गङ्गोपाध्याय

ओथेलोके दूसरे अभिनयमें लार्ड डलहौसीने इस थियेटरकी पृष्ठपोषकता की थी।

इस सम्प्रदायके बहुतेरे अभिनेता पिछले समय बङ्गालमें नाट्याभिनयके प्रधान उद्योगी तथा अभिनेता हुए थे। जेफ्रे और रिशि नाट्यामोदका बीज जिनके हृदयक्षेत्रमें वपन कर चुके थे, समय आने पर वह अंकुरित हो कर खूब ही फला फूला है।

इसके बाद ही बङ्गालमें अभिनयका सूत्रपात हुआ। 'कलिराजाकी यात्रा' नाटक तथा विद्यासुन्दरकी बात छोड़ देने पर यथार्थमें सन् १२६३ फसली साल ही बङ्गाली अभिनयका आरम्भ कहा जा सकता है। क्योंकि इसके बाद ही बङ्गालके कई जगहोंमें नाटकोंके अभिनय-की प्रकृति जाग उठी। पथरियाघाटाके निकट चरकडङ्गा-के जयराम बसाकके मकानमें (सन् १८५७ ई०में) बंगला अभिनयका आरम्भ हुआ। इस समय पण्डित रामनारायण तर्करत्नके लिखे 'कुलीनकुलसर्वस्व' (सन् १८५४ ई०) नामक नाटकका पहले पहल प्रचार हुआ। इस अभिनयमें ओरियण्टल थियेटरके अभिनेता राधाप्रसाद बसाकने साथ दिया था। यहां भी यह मालूम नहीं होता, कि किसने कौन पार्ट किया था। किन्तु अभिनेताओंमें कई आदमियोंके नामका पता लगा है—राधाप्रसाद बसाक, जयराम बसाक, जगदुर्लभ बसाक, नारायणचन्द्र बसाक, राजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय, महेन्द्र-नाथ मुखोपाध्याय और बिहारिलालचट्टोपाध्याय (इन्होंने

स्त्रियोंका पार्ट किया था)। निम्नोक्त व्यक्ति ही पीछेके सुविख्यात पेकूर (अध्यक्ष) विहारी बाबू हैं। इन लोगोंमें पीछे बहुतेरे अच्छे अभिनेता हो गये हैं। उक्त कुलीनकुलसर्वस्वके दो बार अभिनय हुए।

इसी समयसे कलकत्ते तथा वहांके देहातोंमें नाटकोंके अभिनयका उद्योग होने लगा। उपर्युक्त राधाप्रसाद बाबू और जयराम बाबूने बड़ा उद्योग किया। दूसरे अभिनेता प्रियनाथदत्त अपने ननिहालमें भी (गङ्गाधर सेठके मकानमें) इस 'कुलीनकुलसर्वस्व' का अभिनय किया था। सन् १८५७ ई०में इस दलका पहला अभिनय हुआ। गदाधर सेठके पुत्र गोपालचन्द्र सेठ (प्रियनाथके मामा) इसके पृष्ठपोषक थे। इस दलमें प्रियनाथदत्त, गोपालचन्द्र सेन, नकुलचन्द्र सेठ, नारायणचन्द्र बसाक आदि अभिनेता सम्मिलित थे। नारायण बाबूने इस दलमें जाह्नवी और रसिका हजामिनकी भूमिका अभिनय किया।

इस समय अर्थात् जयराम बसाकके मकानमें होनेवाले अभिनयके समयमें ही सिमलेमें छातू बाबूके मकानमें बंगलेमें शकुन्तला नाटकके अभिनयका अनुष्ठान हुआ। इस अभिनयमें प्रियमाधव वसुमल्लिक, शरच्चन्द्र घोष, मणिमोहन सरकार आदि व्यक्ति अभिनेता थे। शकुन्तलाका यही प्रथम वंगानुवाद हुआ। जिस दिन जयराम बाबूके मकानमें अभिनय हुआ, उसके दूसरे दिन हो छातू बाबूके मकानमें शकुन्तलाका अभिनय हुआ था। इस अभिनयमें सभी अभिनेता यथोपयुक्त मूल्यवान् पोशाक पहने हुए थे।

इसी समय चुंचड़में भी कुलीनकुलसर्वस्वका अभिनय हुआ।

बंगला नाटकाभिनयका यह एक युग था। उस समय जहां जितनी चेष्टायें हुई सब जगह ही कुलीनसर्वस्व और शकुन्तलाके सिवा दूसरे नाटकका अभिनय नहीं हुआ।

इस समय केशवचन्द्र सेनके घरमें (गौरिफा ग्राममें) अंगरेजीमें हेमलेटका अभिनय हुआ। इस अभिनयमें केशवचन्द्रने हेमलेटका, प्रतापचन्द्र मजुमदारने होरेशियोंका, महेन्द्रनाथ सेन राजाका, भोलानाथ चक्रवर्तीने पलोनियसका, योगेन्द्रनाथसेन बार्नार्डोका, नन्दलाल दासने रानीका, श्रीनरेन्द्रनाथसेनने (मिररके सम्पादक) अफिलियाका पार्ट लिया था। इसके बाद बंगालियोंका अंगरेजी नाटकके प्रति उत्साह धीमा पड़ गया।

इसी समय (सन् १८५७ ई०के मार्च महीनेमें) कालीप्रसन्न सिंहके यत्नसे उन्हींके मकानमें वेणीसंहार नाटकका बङ्गानुवाद अभिनय हुआ। कालीप्रसन्न सिंह, उमेशचन्द्र बन्द्योपाध्याय (मिष्टर डब्लिउ, सी० बनरजी) विहारीलाल चट्टोपाध्याय, आदि इस दलके अभिनेता थे। विहारी बाबूने स्त्रीका पार्ट किया था। इसके आठ महीने बाद सन् १८५७ ई०के नवम्बरमें 'विक्रमोर्वशी' बङ्गानुवादका अभिनय हुआ। इसका अनुवाद कालीप्रसन्न बाबूने एक पण्डितका साहाय्य ले कर स्वयं किया था। इस अभिनयकी बात सन् १८७३ ई०के कलकत्ता-रिव्युमें प्रकाशित हुई थी। इस समय नड़ाइल-हाटवाड़ियाके बाबू गुरुदासराय महाशयके मकानमें भी उनके बड़े दालानमें रङ्गमञ्च तैयार कर अभिनय करनेका आयोजन चला रहा था। गुरुदास बाबूके पुत्र श्री गोविन्दचन्द्र राय महाशय उसके प्रधान उद्योगी थे।

छातूबाबूके घर जब शकुन्तलाका अभिनय हुआ था, उसके बाद ही कप्तान पामार ओरियण्टल सेमिनरीके प्रधान शिक्षक मिष्टर डी० एल० रिचार्डसन, रसिकलाल सरकार आदि कई गण्यमान्य व्यक्तियोंने ओरियण्टल सेमिनरीमें फिर सेक्सपियरके नाटकोंका अभिनय आरम्भ किया।

ओरियण्टल थियेटरके पहले अभिनयको देख कर ही कालीप्रसन्न सिंह और राजा प्रतापचन्द्र आदिके मनमें थियेटर करनेका भाव जागरित हो उठा। कादम्बरीके अभिनयके समय छातू बाबूका देहान्त हो गया था। महाश्वेता नामसे कादम्बरीका अभिनय हुआ।

राजा उमेशचन्द्रके लिखे एक पत्रसे मालूम होता है, कि ओरियण्टल थियेटरके अध्यक्षोंके साथ केशवचन्द्र मङ्गोपाध्याय, प्रियनाथदत्त आदिके मनोमालिन्य

उपस्थित होने पर राजा ईश्वरचन्द्र और राजा प्रतापचन्द्रने बंगला नाटकोंके अभिनयका प्रस्ताव किया। उन्होंने हो आग्रह कर केशवचन्द्र गङ्गोपाध्यायको स्थान-निर्वाचनके लिये कहा। किसी बड़े आदमीके मकान मांग लेने या किराये पर ले कर कार्य्य आरम्भ करनेकी भी बात चल रही थी। इसके दो या ढाई वर्ष तक इसकी कोई चर्चा न चली। अन्तमें जब कई युवकोंके किसी नाटकके कहीं रिहर्सल करते सुना तो (सम्भवतः जयराम बसाकके मकानका 'कुलीनकुलसर्वस्व' इन लोगोंको भी कोई नाटक खेलनेकी इच्छा बलवती हो उठी। इन्होंने आपसमें सलाह कर चट पट संस्कृत रत्नावलीके अनुवादकी व्यवस्था कर दी। स्थिर हुआ, कि इसका अनुवाद रामनारायण तर्करत्नजी ही करें। इन्होंने अनुवाद करना स्वीकार भी कर लिया। इस तरह इन्होने अनुवाद कार्यमें चार महीने बिताये, फिर उसका संशोधन हुआ। संशोधनमें भी कम समय नहीं लगा। पूरा एक महीना ऐसा क्यों हुआ? इसका उत्तर यह है, कि इसके अयथा शब्दोंको निकाल यथायथ शब्दोंको रखनेसे ही इतनी देर हो गई। फिर इसके छपानेमें तीन मास बीने। स्त्री पार्टके लिये स्त्रियोंके निर्वाचन तथा रिहर्सलमें भी कुछ समय बीता। जो हो, सन् १८५८ ई०के जुलाई महीनेमें बेलगछियाके द्वारकानाथ ठाकुरके बागमें पहले पहल रत्नावलीका अभिनय हुआ। इसमें ओरियण्टलके कई अभिनेताओंने हाथ बटाया था। शिक्षा देनेका काम तो केशवचन्द्र गङ्गोपाध्यायके ऊपर ही सौंपा गया था।

रत्नावलीके छः बार अभिनय हुए। अन्तिम अभिनय १६वीं अक्तूबरको हो हुआ। इस अभिनयमें एकतान बाजेका प्रवर्त्तन हुआ था। महाराज यतीन्द्रमोहनठाकुरके यत्नसे सङ्गीताध्यापक क्षेत्रमोहन गोस्वामी द्वारा यन्त्रादि ले कर यह बाद्यदल संगठित हुआ था। राजाओंके व्ययसे सजावट और रङ्गमञ्च उत्तम रूपसे तय्यार हुआ था। धनोका साहाय्य पा कर तथा अनवरत अनुशीलन द्वारा रुचि परिमार्जित होनेसे इस नाट्य-सम्प्रदायने साधारणको विशेष तृप्त किया था। बेलगछियाका यह नाट्य दल और रङ्गमञ्च बहुत दिन तक जीवित था। रत्नावलीका अभिनय देखनेके लिये सस्त्रीक छोटे लाट हालिडे, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, हरिश्चन्द्र मुखोपाध्याय, रमाप्रसाद राय आदि बहुतेरे गण्यमान्य सज्जन उपस्थित थे। माइकेल मधुसूदन दत्त भी इस अभिनयको देखने जाते थे। साहबोंके लिये रत्नावलीके अंगरेजी अनुवादकी आवश्यकता हुई। इसीलिये माइकेल मधुसूदनने इसे अङ्गरेजीमें अनुवाद किया। अन्तमें माइकेल मधुसूदनने अंगरेजी प्रथाके अनुसार शर्मिष्ठाकी रचना की और केशव बाबूको दिखलाया तथा रत्नावलीकी गुण-हीनताका परिचय कराया। पीछे राजा ईश्वरचन्द्र इसके अभिनय करने पर उद्यत हुआ।

ऊपर कह चुके हैं, कि शर्मिष्ठाका अंग्रेजीमें अनुवाद माइकेल मधुसूदन दत्तने ही किया था। इसका रिहर्सल सन् १२६५ सालके अगहन महिनेमें आरम्भ हुआ और १२६६ सालके भादोंकी ३री तारीखको इसका पहला अभिनय हुआ। इसके सात आठ बार अभिनय हुए थे। शर्मिष्ठामें बीणा बजा कर गान गानेकी व्यवस्था बड़े कौशलसे सम्पन्न हुआ था। शर्मिष्ठाका अभिनेता सितार हाथमें ले कर परदे पर केवल हाथ फेरते, मुखसे गाते जाते थे और नेपथ्यसे एक गुणवान् वादक सितार बजाते रहते थे। केवल राजमहलकी स्त्रियोंको दिखानेके लिये एक दिन शर्मिष्ठाका अभिनय हुआ। जब पाइकपाड़ेके राजाके उद्योगसे बेलगछियामें रत्नावलीका अभिनय हुआ, उस समय आहोरीटोलेमें शकुन्तलाका रिहर्सल चल रहा था। सन् १२६६ फसलीमें पहले (१८५६ ई०के मध्य समयमें) पहल जनाईके मुखोपाध्यायोंके उद्योगसे उन्हींके आहीरीटोलेवाले मकानमें इसका अभिनय हुआ। जयराम बसाक इसके अध्यक्ष थे और अभयचरण गुप्त रिहर्सल करा रहे थे। इस अभिनयके लिये आहीरीटोलेमें चन्द्रमुखोपाध्यायके वर्त्तमान बाजारके समीप ही हाल तय्यार हुआ।

इस अभिनयको देखनेके लिये कालीप्रसन्न सिंह, शरच्चन्द्रघोष, ईश्वरचन्द्र गुप्त, द्वारकानाथ विद्याभूषण, गौरीशङ्कर भट्टाचार्य और हुगली तथा श्रीरामपुरके मजिष्ट्रेट आदि साहब भी उपस्थित थे। "प्रभाकर"

और 'भास्कर' नामक समाचार-पत्रोंमें इसका विवरण प्रकाशित हुआ था।

इसके बाद १२६६ फसलीमें या सन् १८५६ ई०के अन्तमें बेलगछियामें होनेवाले प्रथम रत्नावलीके अभिनयके बाद और शर्मिष्ठाके अभिनयसे पहले मालविकाग्निमित्र-का अभिनय हुआ था। इस अभिनयमें राजा सर शौरीन्द्र-मोहन ठाकुरने कंचुकीका पार्ट किया था। बेलगछियाके इस नाट्यमञ्चने उस समय एक युगान्तर उपस्थित कर दिया था।

जिस समय शर्मिष्ठाका अभिनय चल रहा था, उस समय केशवचन्द्र सेनके यत्न और चेष्टासे सिन्दुरिया-पट्टीमें विधवा-विवाह नाटकके अभिनय करनेका अनुष्ठान हुआ था और रिहर्सल भी चल रहा था सिन्दुरिया पट्टीके गोपाल मल्लिकके मकानमें ही इसका स्थान नियत हुआ। केशव बाबू ही यहांके शिक्षक थे। सन् १२६७ फसलीके बैशाख महीनेमें इसका प्रथम अभिनय हुआ।

इस अभिनयमें तीन प्रसिद्ध गवैयोंने गीत गाया था। उमेशचन्द्र भद्र, राधिकाप्रसाद दत्त, क्षेत्रमोहन वसु, पञ्चानन मित्र, गदाधर मित्र, रसिकचन्द्र मुखोपाध्याय और बेणीमाधव सोम प्रभृति प्रसिद्ध व्यक्ति अन्यान्य बाजोंके बजानेवाले थे। बेलगछियाके अभिनवकी तरह यह अभिनय भी अति उत्तम हुआ था। पाइकपाड़ेकी उत्तेजनासे यह अभिनय किया गया। पहले "एडेलफी थियेटर" किराये पर ले कर यह अभिनय होनेवाला था। किन्तु थियेटरवालोंने १००) रु० महीना किरायेका मांगा। इससे यह सङ्कल्प त्याग कर हलविन साहबके रङ्गमञ्चको और दृश्यपटादिसे सजानेकी तय्यारी होने लगी। इसमें चार हजार रुपया खर्च हुआ। मुरलीधर सेनने ही अधिक रुपया दिया, बाकी रुपया जनसाधारणके चन्देसे आया। उस समयके 'हरकारा' पत्रमें इस अभिनयके विषयमें वाद विवाद हुआ था।

इसके बाद शोभाबाजार राजबाड़ीमें नाट्याभिनयकी चेष्टा हुई। कुमार उपेन्द्रकृष्ण देव, कुमार अमरेन्द्रकृष्ण देव, कुमार ब्रजेन्द्रकृष्ण देव, कुमार उदयकृष्ण देव, गोपालचन्द्र रक्षित, चन्द्रकाली घोष और कालीकृष्ण वसु आदि इसके उद्योगकर्त्ता थे। सन् १२७१ फसलीमें चमत्कारकृष्ण घोषके दालानमें इसका रिहर्सल हुआ। इस समय प्रियमाधव वसु मल्लिक, प्यारीमोहन दास, मणिमोहन सरकार आदि व्यक्तियोंने साथ दिया था। माइकेलके रचे "एकेइ कि बले सभ्यता" नाटकका अभिनय हुआ।

शोभाबाजारकी "थियेट्रिकल सोसाइटी" साधारण-की सम्पत्ति नहीं थी; किन्तु कार्य्य इसका खूब शृङ्खला-के साथ चल रहा था। इसके लिये सभापति, सम्पादक प्रभृति कर्मचारी भी नियुक्त हुए थे। चन्द्रकाली घोष इसके सभापति तथा डाक्टर उमेशचन्द्र मित्र इसके सम्पादक थे। राजा देवीकृष्णके मकानमें इसका अभिनय होता था। इसके तीन प्रकाश्य अभिनय हुए थे। कविवर महेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय इसका अभिनय देखनेके लिये उपस्थित हुए थे। उस समयके प्रधान संवाद-पत्र हिन्दू-पेट्रियटमें इन अभिनयोंका विवरण प्रकाशित हुआ था।

शोभाबाजार-राजबाड़ीके इस दलसे 'कृष्णकुमारी' का अभिनय होना निश्चय हुआ। इसके लिये रिहर्सल आरम्भ हुआ। इस समय बागबाजार मदनमोहनतला-निवासी नीलमणि चक्रवर्त्ती महाशयके पुत्र गोपाल चन्द्र चक्रवर्त्ती महाशय मित्रतावश आते जाते थे। सन् १२६४ फसलीके अन्तमें जब 'कृष्णकुमारी'-के खेलनेका उद्योग हुआ, तब कालिदास सान्यालके साथ राजाओं-के मनोमालिन्य उपस्थित होने पर वह तथा गोपाल बाबू वहांसे चले आये। इन दोनोंके उद्योगसे गोपाल बाबूके मकानमें एक नाट्य-सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा हुई। कालिदास बाबूने स्वयं 'नलदमयन्ती' नाटककी रचना की और उस-ही रिहर्सल आरम्भ हुआ। गोपाल बाबूकी नाटकीय चेष्टा यहीं पहले स्फुरित नहीं हुई, वरं इससे एक वर्ष पहले सिमलानिवासी जयगोपाल मित्र और नवगोपाल मित्र महाशयोंने जो श्रीवत्सचिन्ता-यात्राका दल संगठन किया था, उस यात्राका गाना भी एक बार गोपाल बाबूके मकानमें हुआ था। इसी गानेको सुन कर गोपाल बाबूके मनमें अभिनयकी स्पृहा बढ़ी। इसके बाद ही शोभा-बाजारकी राजबाड़ीमें आ कर कृष्णाकुमारीके अभिनयमें

सम्मिलित हुए। इसके बाद वे अपने मकानमें थियेटर कायम कर महा उत्साहसे नाटककी शिक्षा देने लगे। कृतकर्मा कालिदास सान्याल महाशय ही यहां शिक्षा देते थे। गोपाल बाबू स्वयं भी कुछ शिक्षा देते थे। सन् १२७१ फसलीके मध्य समयमें नलदमयन्तीका अभिनय हुआ।

यह दल चार वर्ष तक नियमितरूपसे काम करता रहा। दो वर्ष तक नलदमयन्तीका अभिनय हुआ था। चौदह या पन्द्रह बार केवल इसके अभिनय हुए। इसके बीच बर्द्धमान-राजबाड़ीमें, भाटपाड़ेके भट्टाचार्यों के मकानमें, और शिवपुरके चौधरियोंके मकानमें जो सब अभिनय हुए, वे अत्यन्त उत्तम थे। भाटपाड़ेका अभिनय सर्वापेक्षा उत्कृष्ट हुआ। इसके सिवा पथरियाघाटके वीरनृसिंह मल्लिकके मकानमें, लक्ष्मीनारायण मुखोपाध्यायके मकानमें और बसुपाड़ेके गिरिशचन्द्र बन्धोपाध्यायके मकानमें इसका अभिनय हुआ। सिवा इनके गोकुल मित्रके मकानमें और गोपाल बाबूके मकानमें कई बार अभिनय हुए थे। पथरियाघाटके जयराम बसाकके मकानमें इसका जो अभिनय हुआ, वह इसका ड्रेसरिहर्सल था। इस अभिनयकी इतनी प्रशंसा हुई, कि लोग शकुन्तला-अभिनयकी तरह इसका भी आदर करने लगे थे। महाराज महताबचन्द्र बहादुर इसका अभिनय देख कर इतना मुग्ध हुए कि उस समयसे उसके रचयिता और अभिनेता कालिदास बाबू पर उनकी कृपादृष्टि रहने लगी। कालिदास बाबू बर्द्धमानराजके यहां नौकरी करते थे। दो वर्षके बाद इस दलसे "इन्द्रप्रभा" नामक एक नाटकका अभिनय हुआ बटामदेशतला-निवासी गिरिशचन्द्र बन्धोपाध्याय इसके रचयिता थे। "इन्द्रप्रभा" भी पांच सात बार अभिनीत हो चुकी थी। किन्तु यह गोकुल मित्र तथा गोपाल बाबूके मकानके सिवा कहीं दूसरी जगह अभिनीत नहीं हुई।

वहां तक किसी राजा या बाबूके घर ही नाटक हुआ करता था, उस समय अन्यत्र नाटक खेलनेकी प्रथा नहीं थी। बागबाजारके नलदमयन्तीके दलने पहले पहल विदेशमें जा कर इस प्रथाको परिवर्त्तन किया। इन्दुप्रभा ग्रंथके विचित्रबाबूका पार्ट गोपाल बाबूने लिया था।

इस दलकी विवरणीके साथ साथ और एक दलकी बात लिखनी पड़ती है। पिछले समयमें इस निम्नोक्त दलसे बङ्गालके रंगालयसे विशेष सम्बन्ध हो गया था। इस दलके अन्यतम अभिनेता गिरिशचन्द्र मित्र तथा आनन्दलालमित्र श्रीगोकुलमित्रके वंशधर हैं। यह गिरिश बाबू एक उत्तम संगीतज्ञ व्यक्ति थे। नलदमयन्तीके साथ जो एकतान बाजा बजा था, उसका बजानेवाला उसके अभिनेताओंमें ही था; कोई दूसरा नहीं। अन्तमें गिरिश बाबूने एक स्वतन्त्ररूपसे वादक दल संगठित किया था। इस दलमें बागबाजार और श्यामबाजार-निवासी कितने ही युवकोंने साथ दिया था। इनमें बसुपाड़ेके रहनेवाले गिरिशचन्द्र बन्धोपाध्यायके द्वितीयपुत्र नगेन्द्रनाथ बन्धोपाध्याय, डाक्टर दुर्गादास करके द्वितीय पुत्र राधामाधवकरका नामोल्लेख करना पड़ता है। यही दो व्यक्ति ही भविष्यके बंगलाका साधारण रंगालयोंके प्रतिष्ठाताओंमें प्रधान व्यक्ति हैं। इस वादकदलमें एक मुसलमान युवकने भी साथ दिया था। इसका नाम था हिंगुल खां उरफ हेम बाबू। ये अच्छे सङ्गीतज्ञ तथा हास्यरसमें पटु अभिनेता था। पिछले समयमें नेशनल थियेटरमें यह अभिनय भी करता था और सङ्गीतका शिक्षा भी देता था।

जिस समय गिरिश बाबूने यह वादक-दल गठित किया था, उस समय भवानीपुरमें अवैतनिक 'नाट्य-मन्दिर' नामक एक थियेटर-दलका संगठन हुआ। यहां हेमचन्द्रमित्रके रचे "सीतार वनवास" नाटकका अभिनय हुआ। सन १८६६ ई०के मार्च महीनेमें नीलमणि मित्रके मकानमें (सर रमेशचन्द्रमित्रके पुराने मकानमें) इसका पहला खेला हुआ। इसी अभिनयमें भवानीपुरके उस समयके प्रसिद्ध वादक सर रमेशचन्द्रमित्रके भाई केशवचन्द्र मित्रने एकतानवादक-सम्प्रदायने ही बाजा बजाया था।

इस समय बागबाजारके गिरिशचन्द्र मित्रके बाजावालोंका खूब सुनाम हो गया था। भवानीपुरमें जगदानन्द मुखोपाध्यायके मकानमें बागबाजारका दल एक दिन बजाने गया। उसमें वह वहां केशव बाबूका

अपेक्षा अधिक यश अर्जन कर आया। इस सुख्यातिके बाद नगेंद्र बाबूने गिरिश बाबूका दल छोड़ कर बहुपाड़ेके अपने मकानमें एक बाजा दलकी प्रतिष्ठा की। राधामाधव बाबू और हिंगुल खाँ नगेन्द्र बाबूके दलमें मिल गये। क्रमशः गिरिश बाबूका दल टूट कर नगेन्द्र बाबूका दल मजबूत हुआ।

इस बागबाजारके एकतान वादनदलके दो एक वर्ष पहले श्यामपोखर-निवासी व्रजनाथदेवने "श्याम पोखर एकतानवादन-सम्प्रदाय" नामक एक बाजा-दल कायम किया। इन्हींके दलमें पहले 'क्लेरिओनेट' वंशी बजाना आरम्भ हुआ। उस समय तक कर्नेट नहीं बजाया जाता था। तांत और तारके सारे यन्त्र, पिकलो-क्ल्यानेट, वंशी, जलतरङ्ग भी इसी दलमें एकत्र बजाया जाता था। सिवा इसके शङ्ख बजा कर सुर देना होता था। डिसुरमें कनसार्ट बजाया जाता था। छानबीन कर डिसुरके शांख लाया गया था। जब तक बाजा बजता था, शहनाईके पोंधराके हिसाबसे इस शांखमें उस तरहका सुर दिया जाता था। इस दलसे राधा-माधव बाबूने क्लेरिओनेट वंशी खरीदो थी बागबाजारके दलमें यह वंशी बजती थी। व्रजबाबूके बाजादलने पहले चैत्रके मेलेमें अपने बाजे बजाये थे। नाटककार कवि गिरिशचन्द्र घोष इन व्रजबाबूके बहनोई कहे जाते हैं।

इस समय नाटकीय चेष्टा जाग उठती थी। पहले जैसे कुलीनकुलसर्वस्व तथा शकुन्तलाका एक युग आया था, वैसे ही इस समय "पद्मावती"-का आदर बढ़ा था। सन् १२७० फसलीमें पथरियाघाटके यतीन्द्रमोहन ठाकुर (उस समय राजा नहीं हुए थे) के मकानमें एक नाट्य-सम्प्रदाय स्थापित हुआ। यतीन्द्र-मोहनके पैतृक मकानमें (नं० ६५ पथरियाघाटा) इसका रङ्गमञ्च नहीं बना था। पथरियाघाटाके ठाकुरगोष्ठी आदि मकानोंमें (गोपीमोहन ठाकुरके मकान नं० ६६ पथ-रियाघाटा) अर्थात् उस समयके ईशानचन्द्र मुखो-पाध्यायके मकानके भव्य कमरेमें रङ्गमञ्च स्थापित हुआ। इस स्थानोंमें सन् १२७१ फसलीमें या सन् १८६५ ई०में मालविकाग्निमित्र अभिनीत हुआ। पाईकपाड़ेके राजाओंके यत्नसे सन् १२६६ फसलीमें इसके अभिनयमें जिन अभिनेताओंने अभिनय किया था, उनमें कुछने इस अभि-नयमें साथ दिया था। पाईकपाड़ेके अभिनय-शिक्षक केशवचंद्र गंगोपाध्याय यहां शिक्षक नियुक्त हुए। यह मालूम नहीं होता, कि ठीक किस तारीखको" मालविकाग्निमित्र पहले पहल अभिनीत हुआ और किस किसने कौन कौन-सा पार्ट लिया था इसके बाद यतीन्द्रमोहनने रामनारायण तर्करत्नके नये नाटक "कंसवध" अभिनय करानेका उद्योग किया था। किन्तु नाना असुविधाओंके कारण यह उद्योग परित्याग कर देना पड़ा। इस समय पुस्तकाभावसे यतीन्द्रमोहनने स्वयं विद्यासुन्दरकी रचना कर रिहर्सल कराया। नौ दश बार इसके अभिनय हुए, उनको कई तारीखें दी गईं

१ला सन् १२७२।२३वीं पौष, शनिवार (सन १८६६ ६जनवरी)
२रा „ „ २७वीं पौष, बुधवार (१८६६।१०वीं जनवरी)
३रा „ „ २६वीं माघ, शनिवार („ १०वीं फरवरी)
४था „ „ ७वीं फागुन, „ („ १७वीं „)
५वां „ „ १२वीं „ „ („ २४वीं „)

इस अभिनयके समय रीवांके महाराज कलकत्ते आ कर महाराज यतीन्द्रमोहनके मरकतकुञ्ज नामक उद्यानमें मेहमान हुए। विद्यासुन्दरका रिहर्सल प्रायः समाप्त हो चुका था और इसके खेलनेका उद्योग हो रहा था। सन् १८६५ ई०की ३०वीं दिसम्बरको यतीन्द्रमोहनने उनको अपने राजमहलमें आमन्त्रित किया। इनको आप्यायित करनेके लिये इस दिन ही 'विद्यासुन्दर'-के ड्रेसिङ्ग रिह-र्सलकी व्यवस्था की गई। इस रिहर्सलमें राजपरिवार तथा रीवां-राज दलके लोगोंके सिवा और कोई जाने न पाया। इसके तीसरे अभिनयमें विजयनगरके महाराज दर्शक थे। इस समय यूरोपसे नये आये हुए थेरेश पुशार्ड नामक एक आदमी टाउनहालमें अपने वाद्यकौशल-से लोगोंको मुग्ध कर रहे थे। सङ्गीतज्ञ यतीन्द्र और शौरीन्द्रमोहनके साथ उनका परिचय हुआ। विद्या-सुन्दरके तीसरे अभिनयमें पुशार्डने निमंत्रित हो कर बेहला बजाया था। उस समयके वाद्ययन्त्र विक्रेता या बाजा बेचनेवाला "वार्किंष् इयं" कम्पनीके अध्यक्ष रिजूलेने इस चतुर्थ अभिनयमें पुशार्डके बाजेके साथ पियानो बजाया था।

इन अभिनयोंमें प्रहसन भी होते थे। पहले अभिनयमें 'येमन कर्म तेमनि फल' नामक प्रहसन हुआ। १३वीं जनवरीके बङ्गालीमें उस समयके सम्पादक गिरिशचन्द्र घोषने इस अभिनयकी बड़ी प्रशंसा की थी।

इस 'विद्यासुन्दर'-के अभिनयके साथ बङ्गालके साधारण नाट्यशालाके अन्यतम प्रतिष्ठाता अर्द्धेन्दुशेखर मुस्तफी महाशयका कुछ सम्बन्ध था। इस अभिनयके समय अर्द्धेन्दु बाबू आत्मीयता-सूत्रसे यतीन्द्र बाबूके घर रहा करते थे। यही उनका प्रथम अभिनय देखना था। उन्होंने यहां रह कर ही अभिनयके सम्बन्धकी सारी बातोंकी जानकारी प्राप्त की। वे उस समय स्कूलमें पढ़ते थे। उस समय तक उनका नाटकसे कोई सम्बन्ध नहीं था।

यतीन्द्रमोहनके इस नाट्य सम्प्रदायके क्रमसे १ "मालविकाग्नि मित्र', २ "विद्यासुन्दर", ३ "येमन कर्म तेमनि फल", ४ "बुझले कि ना" ५ मालती-माधव", ६ "उभय-संकट", ७ चक्षुदान", ८ रुक्मिण हरणी", ९ "रसाविष्कार वृन्दक" अभिनीत हुए थे और यह दल बहुत दिनों तक जीवित था। "रुक्मिणी-हरण" के अभिनय तक यतीन्द्रमोहनका नाट्य-सम्प्रदाय लगातार चला आया। इसके बाद एकाएक बंद हो गया। फिर सन् १८८१ ई०में रसाविष्कार वृन्दक नामक क्षुद्र दृश्यवाक्य-रचित और अभिनीत हुआ। इन सब अभिनयोंके साथ क्षेत्रमोहन गोस्वामीके प्रतिष्ठित एकतान वादन-सम्प्रदायने बाजा बजाया था। इस सम्प्रदायसे केवल देशी बाजे बजाते थे। बेहलाके सिवा अन्य कोई विदेशी बाजा न था। फूंकनेवाला कोई बाजा न था। यह "शौरीन्द्रमोहनका कनसार्ट" नामसे विख्यात था। "विद्यासुन्दर" नाटकके साथ प्रहसन खेलनेकी प्रथा प्रवर्त्तित हुई।

पथरघाटेके यतीन्द्रमोहन ठाकुरके मकानमें चतुर्थ पुस्तक मालतीमाधव-नाटक सन १८७७ ई०की ३०वीं सितम्बर बृहस्पतिवारको अभिनीत हुआ। यह आठ दश बार अभिनीत हुआ था। एक रातको केवल साहबोंको निमन्त्रण दे कर अभिनय दिखाया गया। इस दिन लार्ड लारेन्स उपस्थित थे। मालतीमाधव के गाने बनवारीलाल राय नामक एक व्यक्तिने भर दिया था।

इस समय शोभाबाजारकी थियेट्रिकल सोसाइटीने "कृष्णकुमारी" नाटकका रिहर्सल चला रहा था। सन् १८६८ ई०की २४वीं जुलाई सोमवारको इसका प्रथम अभिनय हुआ। यह अभिनय केवल अपने बन्धु-बान्धवोंको दिखानेके लिये ही किया गया था। सन् १८६७ ई०की १२वीं फरवरी शनिवारको इसका प्रकाश्यरूपसे अभिनय हुआ।* उस अभिनयके समय इस नाट्य-समितिकी व्यवस्था अति सुन्दर थी। नीचे उसका पूरा विवरण दिया गया है। इसकी एक कार्यनिर्वाहिका समिति थी—

कालीप्रसन्न सिंह	(सभापति)
राजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय	उपसभापति।
कुमार सुरेन्द्रकृष्ण देव बहादुर	सदस्य।
कुमार उपेन्द्रकृष्ण देव बहादुर	„
चन्द्रकाली घोष	„
रूपलाल मित्र	„
वरदाकान्त मित्र	„
मणिमोहन सरकार	„
कुमार व्रजेन्द्र कृष्ण देव बहादुर	कोषाध्यक्ष
„ आनन्द „ „ „	सम्पादक
प्यारीमोहन दास (वैष्णव)	सहकारी सम्पादक।

सिवा इसके कितने ही कर्मचारी थे :—

कुमार उपेन्द्रकृष्ण देव बहादुर	रङ्गमञ्चके अध्यक्ष।
राजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय	„
कुमार उपेन्द्रकृष्ण देव बहादुर राजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय प्यारीमोहन दास	शिक्षक।
रूपलाल मित्र कुमार अमरेन्द्रकृष्ण देव बहादुर वरदाकान्त मित्र प्यारीमोहन दास	छापखानेके संबंधके कर्मचारी।

* इस प्रकाश्य नाटकके अभिनयमें छोटे लाटके वादक दलने बाजा बजाया।

राजेन्द्रनाथ बन्धोपाध्याय कुमार सुरेन्द्रकृष्ण देव बहादुर वरदाकान्त मित्र	एकतान बाजेके दलके नेता।
कुमार सुरेन्द्रकृष्ण देव बहादुर „ उपेन्द्रकृष्ण „ „ „ व्रजेन्द्रकृष्ण „ „	कमरेके तत्त्वावधायक।
वरदाकान्त मित्र राजेन्द्रनाथ बन्धोपाध्याय अतुलकृष्ण देव	साजघरके तत्त्वावधायक।
चन्द्रकाली घोष रूपलाल मित्र	अभ्यर्थना-कारक
वरदाकान्त मित्र कालीकमल लश्कर जीवनकृष्ण देव	कर्मचारी-प्रधान।
अतुलकृष्ण देव मणिमोहन सरकार }	

प्रति मङ्गल, शुक्र और शनिवारको इनका रिहर्सल चलता था। सन् १८६७ ई०की ११ फरवरीको हिन्दू-पेट्रियटमें इस अभिनयका विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ। इस अभिनयमें प्रसिद्ध नाटककार गिरिश चन्द्र घोष उपस्थित थे, किन्तु नाट्य-सम्प्रदायभुक्त न थे।

पथरियाघाटेकी राजवाड़ीमें होनेवाले 'विद्यासुन्दर' अभिनयके बाद पटलडङ्गेके अरपुलिमें "अरपुली-नाट्य-समाज" स्थापित हुआ। यहां पहले "महाश्वेता" पीछे "शकुन्तला" और "बुड़ो शालिकेर घाड़ रों" अभिनीत हुए। कुछ लोगोंका कहना है, कि ये दोनों नाटक छातूबाबूके मकानमें अभिनीत नाटकद्वयसे विभिन्न हैं और इस सम्प्रदायके किसी व्यक्ति द्वारा रचित है। सन् १२७३ ई०के वैशाख महीनेमें (सन् १८६६ ई०के अप्रिल महीनेमें) इस सम्प्रदायका पहला अभिनय हुआ। इसके बाद इस दलने निमाईचरण शीलकी "चन्द्रावली" नाटक और 'एराई आवार बड़ लोक' नामक प्रहसन खेले। प्राणीवृत्तान्तके रचयिता सातकौड़ी दत्त इस दलके सम्पादक थे।

जिस समय बागबाजारमें नगेन्द्र बाबूका बाजा-दल खूब जोरोंसे चल रहा था, उस समय सिमला-शुंड़ी पाड़ेके शुंडियोंके मकानमें 'पद्मावतीका'-का अभिनय हुआ। बागबाजारके बाजा-दलके नगेन्द्र बाबू आ कर यहां शिक्षा देते तथा स्वयं कञ्चुकीका साज सज कर अभिनय करते थे। पिछले समय नेशनल थियेटरके अन्यतम प्रतिष्ठाता नगेन्द्रनाथ बाबूका प्रथम यही अभिनय है। सन् १८६६ ई०में इस दलका प्रथमाभिनय हुआ।

इस समय कलकत्तेमें नाट्यामोदका एक प्रबल प्रवाह बह रहा था। प्रायः हरेक ग्राममें ही नाट्याभिनयकी चेष्टा हो रही थी। उनमें सब सम्प्रदायोंका विवरण संग्रह नहीं कर सके। इसी समय कलकत्तेके भवानीपुर और हवड़ेके शिवपुरमें भी नाट्याभिनयकी चेष्टा हो रही थी।

पथरियाघाटेके अभिनय होनेके समय जोड़ासांकूके द्वारकानाथ ठाकुरके मध्यम पुत्र गिरीन्द्रनाथ ठाकुरके मकानमें एक नाट्यसमाज स्थापित हुआ था। इसका नाम था —"जोड़ासांको नाट्य-समाज"। गिरीन्द्रनाथके दोनों पुत्र गणेन्द्रनाथ और गुणेन्द्रनाथ ठाकुर इसके पृष्ठपोषक थे। केशवचन्द्रके छोटे भाई कृष्णविहारी सेन और प्यारीचन्द मित्रके पुत्र हीरालाल मित्र और गुणेन्द्र बाबूके प्रस्ताव करने पर माइकेलके लिखे "कृष्णकुमारी" नाटकके अभिनयका प्रस्ताव हुआ। रङ्गमञ्च और रिहर्सल जारी हुआ। पीछे गणेन्द्र बाबूके प्रस्ताव पर किसी समाज-हितकर नाटकाभिनयकी कल्पना हुई। कुलीनकुलसर्वस्व, विधवा-विवाह आदि नाटककी तरह नये किसी नाटकके लिये इन्होंने चेष्टा की। अन्तमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशयके परामर्शसे २००) रुपया पुरस्कार देनेकी घोषणा कर बहु-विवाहके सम्बन्धमें नाटक लिखना स्थिर हुआ। उस समयके प्रधान नाटककार रामनारायण तर्करत्न महाशयने "नव-नाटक" लिख कर इन लोगोंके सामने उपस्थित किया। सन् १२७३ फसलीके २३वीं वैशाखको एक प्रकाश्य सभामें उनको उक्त पुरस्कार दिया गया। प्यारीचन्द मित्र सभापति थे। इसके

बाद भ्रातृद्वय गणेन्द्र और गुणेन्द्रने इसके अभिनय करनेका प्रस्ताव कमिटीमें उपस्थित किया। कमिटीमें गणेन्द्रनाथ ठाकुर, गुणेन्द्रनाथ ठाकुर, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरके ज्येष्ठ पुत्र प्रसिद्ध साहित्यरथी द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, श्रीनाथ ठाकुर, (द्वारकानाथ ठाकुरके ज्येष्ठ भ्राता राधानाथ ठाकुरके पौत्र), यज्ञेश प्रकाश गङ्गोपाध्याय और नीलकमल मुखोपाध्याय सभासद थे। सन् १८६७ ई०की ५वीं जनवरीको इसका प्रथम अभिनय हुआ और १८६७ ई०की २३ वीं फरवरीको इसका नवां अभिनय या अन्तिम अभिनय हुआ। अब तक होनेवाले सब अभिनयोंकी अपेक्षा यह अभिनय बहुत अच्छा हुआ। अर्द्धेन्दुशेखर मुस्तफीका कहना है, कि इसी अभिनयको देख कर उनके अभिनय-सम्बन्धी सभी अभावोंकी पूर्त्ति हो गई। इस अभिनयकी सुख्याति कलकत्ते में सभी जगह प्रतिध्वनित हो उठी।

इसके बाद बड़तलेमें जयनारायण मित्रके पुत्र पांचकौड़ी मित्रके उद्योगसे ३१६ चितपुररोडके मकानमें "पद्मावती" अभिनयका अनुष्ठान हुआ। सन् १८६७ ई०की १४वीं सितम्बर शनिवारको इस मकानमें इसका प्रथम अभिनय हुआ।

विहारी बाबू अभिनयकी शिक्षा देते थे। गवैया ज्वालाप्रसाद और वादक निताई चक्रवर्त्ती (रामात् वैष्णव) सङ्गीत-शिक्षक थे। इसके दो एक अभिनयोंमें माइकेल उपस्थित थे। बागबाजार निवासी शिवचन्द्र चट्टोपाध्याय (जो नेशनल थियेटरमें "नीलदर्पण" नाट्याभिनयमें दीवान बनते थे) इस दलमें थे। किन्तु इन्होंने कोई पार्ट नहीं लिया था। पद्मावतीके अभिनेता शिव बाबू स्वतन्त्र व्यक्ति थे।

इसी समय जोरबागानमें "जोरबागान अवैतनिक थियेटर" स्थापित हुआ था। कन्हाईलाल बन्धोपाध्याय नामक एक व्यक्ति इस थियेटरके प्रधान उद्योगी थे। ऊषा-अनिरुद्ध नाटक अभिनीत हुआ। इस अभिनयमें पथरिया घाटेके ठाकुरवंशकी एक शाखा (श्यामलाल ठाकुरके दौहित्र) हेमेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय (महर्षि देवेन्द्रनाथके द्वितीय जामाता) और "आपनार मुख आपनि देख"-के प्रणेता भोलानाथ मुखोपाध्याय उपस्थित थे। जोरबागानके कृष्णमोहन बन्धोपाध्यायके मकानमें (कन्हाई बाबुओंके मकानमें) इस समितिका अभिनय होता था। यह अभिनय देख कर भोलानाथ बाबूने हेमेन्द्र बाबूसे प्रस्ताव किया, कि यदि अभिनय करना ही है, तब इन सब 'यात्रा'-के उपयोगी विषयोंका अभिनय करनेसे फल ही क्या? जिसमें देशाचारका सुधार हो, ऐसे सामाजिक विषयोंका इस पर परामर्श हुआ, कि हेमेन्द्र बाबू अभिनयका उद्योग करेंगे; भोला बाबू एक उपयुक्त नाटक लिखेंगे। इसी सम्बन्धमें भोलानाथ बाबूने 'बुझले कि ना" एक प्रहसन लिखा। इसी समय पथरियाघाटेके ठाकुरवंशकी एक शाखा उपेन्द्रमोहन ठाकुरके पुत्र अतीन्द्र ठाकुरने अपने मकानमें (१० पथरियाघाटा ष्ट्रीट) एक एकतान बाजाका दल संगठन किया। एक दिन अतीन्द्र बाबूके बैठकमें भोलानाथ बाबू "किछु किछु बुझि" नामक एक प्रहसन लिख कर ले आये। इसका अभिनय करना स्थिर हुआ। कोयलाहटा या इस समयके रतनसरकार-गार्डेन ष्ट्रीटके वैद्यनाथ मल्लिकके किरायेदार मकानमें अभिनय करनेकी बात ठहरी। हेमेन्द्र बाबू तथा अर्द्धेन्दु मुस्तफी पर दल-गठनका भार सौंपा गया। जोरबागानके कान्हाई बाबू सेक्रेटरी हुए। इनके मित्र वेंटरानिवासी मधुसूदन मुखोपाध्याय नामक "आयल पेण्टर" ने नाट्यशाला चित्रणका भार ग्रहण किया। अतीन्द्र बाबू हेमेन्द्र बाबूके सिवा रमानाथ ठाकुरके पौत्र शशीन्द्रनाथ ठाकुर इसके पृष्ठपोषक थे। क्रमशः इस दलका आयोजन होने लगा। मुस्तफी महाशयके स्वरभङ्गी और अनुकरण-पटुता ही उनकी शिक्षकताकी अनुकूल हुई। सन् १८६० ई०की २री नवम्बर शनिवारको इसका प्रथमाभिनय हुआ। मुस्तफी महाशयके साथ उनका लंगोटिया यार सुप्रसिद्ध रंगमञ्चाध्यक्ष धर्मदास सुर इस दलमें सम्मिलित हुए। उन्होंने रंगमञ्च-निर्म्माणका भार ग्रहण किया। उन्होंने इसमें स्त्री-चरित्रका पार्ट किया था।

इतने दिनों तक अर्थात् तब तक जितने प्रहसन हुए थे। उन सबोंकी अपेक्षा यह अभिनय बहुत मनोरम

हुआ था। इस अभिनयमें अर्द्धेन्दु बाबूने तीन अन्दाज्य विषयोंका पार्ट कर अच्छी कुशलता दिखलाई। विभिन्न स्वरोंमें विभिन्न हाव-भावसे अच्छी तरह अभिनय करनेमें उनकी निपुणता इसी समय पूर्ण विकशित तथा प्रदर्शित हुई थी। माइकेल मधुसूदन दत्त इसके एक अभिनयमें उपस्थित थे। मुस्तफी महाशय और धर्मदाससुरका यह प्रथम अभिनय था; किन्तु इसी अभिनयसे उनके जीवनकी गति फिर गई।

यहां बंगालके साधारण नाट्य-समाजके प्रधान अभिनेता और प्रतिष्ठाताओंकी सूची इस जगह दी जाती है। इससे स्पष्ट विदित हो जायेगा, कि किसने कब पहले कौन-सा अभिनय किया---

नाम	समय	पुस्तक	भूमिका	स्थान
बिहारीलाल	१२६३	कुलीनकुल	स्त्रीचरित्र	चड़कडांगेकी जयराम
चट्टोपाध्याय	फाल्गुन	सर्वस्व	„	वसाकको गली
शरचन्द्र घोष	„	शकुन्तला	„	छातू बाबूका मकान
गिरिशचन्द्र	१२७१	नलदमयन्ती	ऋषि	बागबाजारके मदन-
घोष (मोटे)				मोहनका मकान
नगेन्द्रनाथ	१२७३	पद्मावती	कञ्चुकी	शुंडीपाड़ा
बन्दोपाध्याय				
जीवनकृष्णसेन	१७७४ भादो	„	कलि	बड़तल्ला
अर्द्धेन्दुशेखर	१७ कार्तिक	किछु	दन्तवक्र	कयलाहट्टा
मुस्तफी	१२७४	किछु बुझि	मुरादआली	„
„		„	चन्दनविलास	„
धर्मदास सूर	„	„	चन्दनविलासी	„

गिरिशचन्द्रघोष (प्रसिद्ध नाटककार), अमृतलाल बसु, राधामाधवकर, मोतीलालसुर, महेन्द्रलाल बसु आदि ख्यातनामा अभिनेताओंमें कोई इससे पहले किसी अभिनयमें सम्मिलित नहीं हुए हैं।

इस समय जयराम बसाकके मकानमें "भेलारे मोर बाप" नामक प्रहसन अभिनीत हुआ।

इस समय बहुबाजारमें भी एक नाट्यसमाज स्थापित हुआ था। इस दलने प्रसिद्ध नाटककार मनोमोहन बसुका "सतीनाटक" और "रामाभिषेक" नाटकका अभिनय किया।

बंगला नाटकका यह तीसरा एक युग है। इसके प्रथम युगमें "कुलीनसर्वस्व" और "शकुन्तला", दूसरे युगमें "पद्मावती" और तीसरे युगमें "रामाभिषेक" नाटकके अभिनयका प्रादुर्भाव हुआ था। उस समय रामाभिषेक नाटकके अभिनय कलकत्तेके दक्षिण विभागमें कई जगहोंमें हुए थे। और तो क्या, दक्षिणांशमें यही नाट्यामोदका एकमात्र अवलम्बन हो गया था। किसी रसज्ञ व्यक्ति इसीलिये इसका नाम वर्णपरिचय नाटक रख दिया था।

जो हो, बागबाजारकी 'रत्नावली'का दल टूट जाने पर नगेन्द्रनाथ बन्धोपाध्यायने अपने एक थियेटरका दल कायम करनेका संकल्प किया। अन्तमें गिरिश बाबूके परामर्शसे दीनबन्धु मित्रके नवप्रकाशित "सधवार एकादशी"का अभिनय करना स्थिर हुआ। नगेन्द्र बाबू भी बड़े विचित्र आदमी थे। उन्होंने पहले तो शिक्षाका भार अपने ऊपर लिया। किन्तु कार्य्यके समय यह भार गिरिश बाबूके ही कन्धे पर गया। दीनबन्धु बाबूके लिखे नाटकमें नट नटियोंका प्रवेश तथा उसकी प्रस्तावना भी नहीं थी। उस समयकी प्रथाके अवलम्बन पर ही गिरिश बाबूने इस अभावकी पूर्ति कर दी। फिर शिक्षा दी जाने लगी। इसके बाद शिक्षा प्रदानके कार्य्यमें अर्द्धेन्दु बाबू भी सम्मिलित हो गये। फिर इन दोनों महारथियोंने शिक्षा देनी आरम्भ की। सन् १२७५ फसलीके क्वार महीने या सन् १८६८ ई०के अक्तूबर महीनेमें पूजाके समय सप्तमी पूजाके दिन रातको मुखर्यीपाड़ेकी गोपालनियोगी गलीमें प्राणकृष्ण हालदारके मकानमें इस दलके पहले अभिनयका निमन्त्रण दिया गया। उस समय इस दलका नाम The Bagh-bazar Amateur Theatre रखा गया था। इसके बाद एक पूर्णिमाकी रातको गिरिश बाबूकी ससुरालमें इस अभिनयका आयोजन हुआ। इस अभिनयमें अर्द्धेन्दु बाबू, गिरिश बाबू, नगेन्द्र बाबू और माधवबाबूने विशेष सुख्याति लाभ की थी। अभिनयके बाद जगन्नाथदत्तके मकानमें इसका तीसरा अभिनय हुआ। गिरिश बाबू आ कर 'निमचांद'के अभिनयके लिये तैयार हुए। यथासमय अभिनय हो गया। सन् १८६९ ई०के फरवरी महीनेमें इस सम्प्रदायका चौथा अभिनय

तोपखानेके दीवान राय रामप्रसाद मिश्र बहादुरके मकानमें हुआ। यह अभिनय विशेषरूपसे उल्लेखनीय हुआ था। इस दिन इनके रंगमञ्चका मुखपटके ऊपर लिखा गया था—"He holds the mirror up to nature" इस दिन दर्शकोंमें ग्रन्थकार दीनबन्धु बाबू उपस्थित थे। वे अभिनय देख कर बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने कहा था—गिरिश! "निमचांद" नाटक मानो तुम्हारे लिये ही लिखा गया था।

गिरिशबाबूने एक कवितामें ही इसकी प्रस्तावना लिख दी थी। यह कविता रङ्गमञ्च पर पढ़ी गई थी। इसके बाद इस दलके और भी पांच अभिनय हुए। छठा अन्तिम अभिनय हुआ—खिदिरपुरके नन्दलाल घोषके मकानमें दुर्गापूजाके समय। यह सन १८६१ ई०के अक्तूबर महीनेकी बात है।

जब इस शकुन्तलाका दल बागबाजारमें कार्य कर रहा था, तब चड़कडंगेमें जयराम बसाकके मकानमें फिर एक थियेटर दल प्रतिष्ठित हुआ। वहां भोलानाथके "भेलारे मोर बाप"का रिहर्सल चल रहा था। फिर यह दल उठ कर आहोरीटोलेमें चला आया। अतुलचन्द्र मुखोपाध्याय और पूर्णचन्द्र मुखोपाध्याय इस दलके पृष्ठपोषक थे। सन् १८७० ई०के फरवरी महीनेमें मुखोपाध्यायोंके मकानमें इसका अभिनय हुआ। नगेन्द्र बाबू और राधामाधव बाबू इस अभिनयको देखने गये थे। यह देख कर उन्होंने इसका उत्तर देनेके लिये एक छोटा नाट्य-समाजका संगठन किया। रत्नावलीका रिहर्सल चलने लगा। प्रियमाधव वसु मल्लिकने "भेलारे मोर बाप" का उत्तर-स्वरूप एक छोटा-सा प्रहसन लिख दिया। इस रत्नावलीका अभिनय बागबाजारके राजबल्लभपाड़ेमें हुआ। राजा शौरीन्द्रमोहन ठाकुर (उस समय तक वे राजा नहीं हुए थे) दर्शकोंमें उपस्थित थे। प्रिय बाबूके प्रहसनमें भोलानाथ बाबूके प्रति श्लोकात्मक गाना था। भोलानाथ बाबू इसके उत्तरमें 'प्रभाकर' में ही उसका उत्तर देते। प्रिय बाबूकी कविता बड़ी सरस होती थी।

सन् १२७७ फसलीमें व्यास पूर्णिमाके दिन शोभाबाजारके बेनियाटोलेमें कान्तिचन्द्र अड्डाआर्डीके मकानमें हवड़ा-बेंटराके एक नाट्य-समाजमें प्रभावतीका अभिनय किया था। "प्रभावती" सेक्सपियरके "मर्चेण्ट आफ वेनिस"-के आधार पर लिखी गई थी। इस अभिनयके साथ साथ अर्द्धेन्दुबाबूके इस सम्प्रदायने बाजा बजाया था। इस समय हाटखोलेके प्रसिद्ध महाजन ब्रजेन्द्र कुमार साहा उर्फ बिगुसाहाकी गद्दीके कर्मचारी गोविन्दनाथ गंगोपाध्याय नामक एक व्यक्तिके साथ नाट्य-सम्प्रदायका परिचय हुआ। उन्होंने रिहर्सलका खर्चा चलाना स्वीकार कर लिया। इससे अर्द्धेन्दुबाबू फिर एक थियेटरदलके संगठन करनेमें प्रवृत्त हुए।

पहले हरलाल मित्र ष्ट्रीटमें अरुणचन्द्र हालदारके मकानमें बागबजारके "अवैतनिक नाट्य-सम्प्रदाय"-की ओरसे 'सधवार एकादशी'का रिहर्सल चल रहा था। इस दलके प्रतिष्ठाता नगेन्द्र बाबू, अर्द्धेन्दु बाबू और धर्मदास बाबू थे। इस बार जो दल बैठा, वह सुपरिचित नेशनेल थियेटरका मूल था। सन् १२७७ फसलीके पौष महीनेमें या सन् १८७१ ई०के आरम्भमें यह दल बैठा। अर्द्धेन्दु बाबू शिक्षक हुए। लीलावतीका रिहर्सल चल रहा था।

गोविन्द बाबूकी सहायतासे केवल रिहर्सलका खर्च चलता था। उस रङ्गमञ्च या पोषाक परिच्छद आदि होनेकी आशा न थी। अतएव अर्द्धेन्दु बाबूने प्रस्ताव किया, कि ष्टेज किराये पर ले कर टिकट लगा कर इस बार यह नाटक खेला जाये। टिकटसे जो रकम हाथ आयेगी उससे एक स्थायी रङ्गमञ्चकी प्रतिष्ठाका आयोजन किया जायेगा। यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। अन्तमें सन् १८७१ ई०के अप्रिल महीनेमें नगेन्द्र बाबूके मकानमें एक दिन परीक्षाके लिये Dress rehearsal हुआ। इस अभिनयमें धर्मदास बाबूने "ललित"का पार्ट लिया था। अभिनयकी सुख्याति होने पर गिरिश बाबू आ कर सम्मिलित हुए। किन्तु टिकट बेच कर नाटक खेलनेके प्रस्ताव पर वह किसी तरह राजी नहीं हुए। अन्तमें उन्होंने कहा, कि माइकेलके प्रस्तावके अनुसार वरं पांच हजार रुपये एकत्र करनेका उद्योग करो। "किछु किछु बुझि"-के अभिनयके समय माइकेलने अर्द्धेन्दु बाबूसे कहा था, इस तरह व्यक्तिविशेषके अर्थानुकूल्य पर निर्भर कर कोई थियेटर चल नहीं सकता।

जो हो, इसके बाद चन्दाका रजिष्टर तय्यार हुआ। इस समय धर्मदास बाबू और कार्त्तिकचंद्र पाल अनवरत परिश्रम करने लगे। राजेन्द्र बाबूके मकानमें आश्रय लेना और टिकट बेचनेकी आशा इन्हें त्याग करनी पड़ी। नगेन्द्र बाबूके मकानमें रिहर्सल होने लगा। यह सुन कर कि टिकट बेंचा नहीं जायेगा, गिरिश बाबू फिर आ कर मिल गये। सन् १२७८ फसलीके वर्षाकालमें राजेन्द्रनाथ पालके मकानमें नये मञ्च पर "लीलावती"का प्रथम अभिनय हुआ। इसी समय हिन्दूमेलेके नवगोपाल मित्र इनके साथ मिल गये। इन्हींके प्रस्तावसे इस दलका नाम The Calcutta National Theatre हुआ। अंतमें मोती बाबूके प्रस्तावसे Calcutta बाद दे कर केवल The National Theatre नाम रखा गया। प्रथम दिनसे ही इस नाम पर थियेटर होने लगा।

राजेंद्र बाबूके मकानमें प्रति शनिवारको ४५ अभिनय हुए। इसके बाद बंदूक-विक्रेता मथुरामोहन विश्वासके (इस समयकी प्रसिद्ध D. Biswas & Co.) घर पूजाके समय अभिनय हुआ। राजेंद्र बाबूके मकानमें होनेवाला अभिनयमें दीनबंधु बाबू और डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार आदि दर्शक उपस्थित होते थे।

उक्त विश्वास महाशयके मकानमें होनेवाला अभिनय ही अंतिम अवैतनिक अभिनय हुआ। इस समय भी फिर अर्थसंकट उपस्थित हुआ। राजेंद्र बाबूके आंगनमें वर्षासे स्टेज भींग कर खराब होने लगा। अर्द्धेन्दु बाबूने फिर टिकट बेंचनेका प्रस्ताव उठाया। गिरिश बाबूने इस प्रस्ताव पर फिर मुंह फेर लिया। उन्होंने इस बार कहा, यदि छातूबाबूके मैदानमें प्याभिलियन (नाट्यशाला) कायम किया जाये, तो मैं राजी हूं। उस समयके लिये असम्भव प्रस्ताव सुन कर सभी दंग हो गये।

चन्दा वसूलीके समय रसिकमोहन नियोगीके मध्यम पौत्र भुवनमोहन नियोगीने इस दलको कुछ चन्दा दिया। फिर, इस दलकी दुर्दशा देख वे इसका साहाय्य करने पर स्वतः प्रवृत्त हुए। भुवन बाबू उस समय किशोर अवस्थाके थे। फिर भी, उनके ही भरोसे पर अर्द्धेन्दु बाबू फिर दल तय्यार करने लगे। इसके स्थानके लिये भुवन बाबूने अन्नपूर्णाघाटके अपने बारहदरीवाले बैठकको दे दिया। सन् १८७२ ई०के आरम्भमें इस मकानमें यह संगठित हुआ।

इस तरह आमोद-प्रमोदके उत्साहमें नेशनल थियेटर अन्नपूर्णाघाट पर भुवन बाबूके मकानमें बड़े परिश्रम और अध्यवसायसे "नीलदर्पण"-का रिहर्सल देने लगा। सन् १८७२ ई०के नवम्बर महीनेमें जगद्धात्रीपूजाके दिन नगेन्द्र बाबूके मकानमें इसका ड्रेस रिहर्सल हुआ। इस रिहर्सलके कुछ पहले सुप्रसिद्ध नाटककार अमृतलाल वसु इस दलमें सम्मिलित हुए। वे उससे पहले श्रीकाशीधाममें होमियोपैथिक डाक्टरी करते थे। इस बार कलकत्ते आने पर अर्द्धेन्दु बाबूके आग्रहसे वह इस दलमें आ मिले। अमृत बाबूके पहले यदुनाथ भट्टाचार्यने सैरिन्ध्रीका पार्ट लिया था। अमृत बाबूने भी वही पार्ट लिया। नवीनमाधवकी मृत्युशय्याके दृश्यमें सैरन्ध्रीको जो रोना-धोना पड़ता था, अमृत बाबू उसे सहज ही आयत्त कर न सके। अन्तमें अमृत बाबू अपने मकानके निकटके एक खण्डहर मकानमें प्रत्येक दिन दोपहरको 'रोना' सीखनेके लिये अभ्यास करने जाया करते थे, अर्द्धेन्दु बाबू वहां जा कर 'रोना' सिखाते थे। दोनों अपने गले मिला मिला कर रोनेका अभ्यास करते थे। आठ दश दिन इसी तरह कठोर साधनासे अमृत बाबूने 'रोना-धोना' आयत्त करा लिया था। उनके इस अभ्यासकी बात टोल-पड़ोसकी स्त्रियां जानती न थीं। इससे यह अफवाह फैल गई, कि इस खण्डहरमें रोज दोपहरको भूत रोता है। इससे सहज ही समझमें आता है, कि उन्होंने इस अभिनयको सफल करनेके लिये कितना परिश्रम किया था। सन् १३०७ फसलीकी २२वीं अगहनको अर्द्धेन्दु बाबूने बंगला थियेटरके इतिहासके सम्बंधमें जो भाषण दिया था, उसमें उन्होंने इस तरहकी कई घटनाओंका उल्लेख किया था। फलतः जब तक अभिनेताके प्रत्येक शब्दका उच्चारण और भावभङ्गी ठीक नहीं हो जाये, तब तक वे नहीं छोड़ते थे।

नगेंद्र बाबूके घर ड्रेसरिहर्सल हो जानेके बाद अभिनयकी बड़ी प्रशंसा हुई। इसी उत्साहसे शीघ्रता-पूर्वक टिकट बेच कर अभिनय करनेका उद्योग होने लगा। अंतमें पथरियाघाटेकी मोड़ पर मधुसूदन सान्यालका मकान ठीक हुआ। यह मकान जोड़ासांकू-के एक घड़ीवालेका मकान कहा जाता था। सान्यालों-को गिरी अवस्था थी। इन लोगोंने तोस रुपये मासिक किराये पर उसे दे दिया था। इस मकानमें स्टेज बनने लगा। सन् १८७१ ई०की ७वीं दिसम्बर शनिवारको टिकट बेच कर यहां थियेटर होना स्थिर हुआ। नीलदर्पणका यह पहला अभिनय नहीं था। इसका पहला अभिनय सन् १८६१ ई०में ग्रंथकारके उत्साहसे ढाकेमें ही हुआ था। जो हो, पहली रातको ७००) रुपयेका टिकट बिक्री होने-से नेशनल थियेटरका उत्साह बढ़ गया। इसके बाद इङ्गलिशमैनके छापखाने (जोन्स कम्पनीके छापखानेसे) रीत्यनुसार अंगरेजी प्लेकार्ड छपाया गया था। ३०वीं अगहन शनिवारको नीलदर्पणका अभिनय हुआ। बिक्री बढ़ गई। दूसरे सप्ताह अर्थात् ७वों पौष शनि-वारको इस दलने "जमाई बारीक" का अभिनय किया। दो रातके उत्साहसे इन लोगोंको नया अभिनय करनेका साहस हो गया। अर्द्धेन्दु बाबूके प्रस्तावानुसार "जामाई बारीक" ही लिया गया। नीलदर्पणके अभिनय में दर्शक-मण्डली रो उठती थी। 'जमाई बारीक'-के तमाशेमें दर्शक आनन्दमें विभोर हो कर हंसने लगते थे, फिर करुणा-रससे आर्द्र भी हो जाते थे। बुधवारके रातसे शनिवारके प्रातःकाल तक हर रोज तीन बार रिहर्सल कर 'जामाई बारीक' खेला गया था। किंतु "नीलदर्पण"-का रिहर्सल एक वर्ष तक हुआ था। ५वीं रातको "नवीन तपस्विनी" नाटक खेला गया। यह भी ढाई दिनके रिहर्सलके बाद खेला गया था। बुधवारको इस पुस्तककी १२ प्रतियां मंगाई गईं और अभिनेताओं-में बांट दी गईं। फल यह हुआ, कि अभिनेताओंने अपने अपने पार्ट याद कर लिये और शनिवारको यह नाटक खेला गया। इस तरह नेशनल थियेटरके इस मञ्च पर एक एक करके दीनबंधु बाबूका "नीलदर्पण", "जामाई-बारीक", नवीन-तपस्विनी", "बिये-पागला बुड़ो" आदि नाटक अभिनीत हुए थे। इसके बाद माइ-केलका 'कृष्णकुमारी' नाटक अभिनीत हुआ। इसी समय गिरिश बाबूने फिर साथ दिया था। उन्होंने भीमसिंहका पार्ट किया था। नाटौरके राजा चंद्रनाथ इस समय कलकत्तेमें हो थे। वे प्रति दिन नाटक देखने आया करते थे। वे कई पोशाक और कई तलवारें तथा एक मशनद दिया था। अर्द्धेन्दु बाबू, गिरिश बाबू, महेंद्र बाबू, अमृत बाबू आदि प्रधान प्रधान अभिनेताओंमें किसी-किसी विषय पर अपना-अपना वक्तव्य स्थिर कर लेते थे। इसी तरह "चैरिटेबुल डिस्पेन्सरी", 'माडेल स्कूल", केम्बल साहबके "सबडिपुटी एकजामिनेशन" "पबलिक सबस्क्रप्सन लिए", "ग्रीन रूम आफ ए प्राइवेट थियेटर", "विलायती बाबू", "मुस्तफी साहबका पक्का तमाशा", "भारते यवन", "परोस्थान" इत्यादि विषयोंका अभिनय हुआ था। इन सबोंमें अर्द्धेन्दु बाबू और अमृत बाबूके सर्वापेक्षा अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इस समय राजा चंद्रनाथकी तरह और W. W. Hunter नामक साहब इसके हितैषी बन गये थे। ये प्रति रातको अंग्रेज दर्शक बटोर लाते थे। एक मंगलवारको उस समयके बड़े लाट भी तमाशा देखनेके लिये आये थे। उन्होंने पहले कोई सूचना न दे कर थियेटरके दरवाजे पर एकाएक आ कर उपस्थित हो गये। जब फाटक पर उनकी गाड़ी आ कर लगी, तब लोगोंको मालूम हुआ। इस समय तत्कालीन सम्पादक मण्डलीने भी विशेष रूपसे हितैषिता दिखाई थी। वे आत्मीयता दिखाते थे सही, किन्तु त्रुटियोंके दिखलाने-में जरा भी कोई कसर नहीं रखते थे। वे निरपेक्ष हो कर अभिनयकी समालोचना करते थे। इस समय अमृत बाबूको सबके अनुरोधसे मैनेजर या अध्यक्षका काम करना पड़ा था। सन् १८७३ ई०में वर्षाके कारण नेश-नल थियेटरने काम बन्द कर दिया। बन्द होनेके कुछ दिन पहले गिरिश बाबू आ कर सम्मिलित हुए थे। जिस दिन थियेटरका अन्तिम अभिनय हुआ था, उस दिन गिरिश बाबूके रचित गानोंको गा कर इस थियेटरने अव-सर ग्रहण किया।

सान्यालोंके घरमें नेशनल थियेटरका अभिनय देख

कर आशुतोष देवके (छातू बाबूके) दौहित्र शरत्चन्द्र घोष महाशय साधारण थियेटर करने पर प्रलुब्ध हुए। छातू बाबूके मकानमें ही इसका रिहर्सल होने लगा। अनेक मान्य और सम्भ्रान्त व्यक्ति इसके हितैषी और परामर्शदाता थे—"माइकेल मधुसूदन दत्त, उमेशचन्द्र दत्त (O. C Dutta Esqr.) पण्डित सत्यव्रत सामाश्रमी आदि।" अभिनेताओंमें शरत्चन्द्र घोष, बिहारीलाल चट्टोपाध्याय, गिरिशचन्द्र घोष (मोटे), देवेन्द्रनाथ मित्र, बटकृष्ण वन्द्योपाध्याय, क्षेत्रमोहन घोष, अक्षयचन्द्र मजुमदार, महेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, अखिलचंद्र मुखोपाध्याय आदि थे। बिहारीलाल चट्टोपाध्याय और शरच्चन्द्र घोष ही इसके प्रधान उद्योगकर्त्ता थे। हाटखोलेके महाजनोंमें कई इसके पृष्ठपोषक बन गये थे। छातू बाबूके मकानके सामने मैदानमें ४०) किराये पर ज़मीन ले कर खपड़ैलके मकानमें इसके लिये नाट्यशाला स्थापित की गई। इसका नाम हुआ "बङ्गाल-थियेटर"। सन १८७३ ई०के अगस्त महीनेमें बङ्गाल थियेटरका पहला अभिनय हुआ। शर्मिष्ठा ही इस अभिनयका नाटक था। प्यारीमोहन राय इसके धनाध्यक्ष थे। शर्मिष्ठाके अभिनयमें इस दलको सफलता न मिली। अन्तमें माइकेलके "मायाकानन" और "विष कि धनुर्गुण" नामक दो पुस्तकोंका स्वत्व-खरीद लिया गया। शर्मिष्ठाके अभिनयके समय माइकेल जीवित न थे। नये नाटकोंके स्वत्व इसके पहले ही खरीदा गया था। नया थियेटर होने पर भी बङ्गाल थियेटरमें माइकेलकी मृत्युके बाद एक दिन उनके नामसे "साहाय्य-रजनीको" व्यवस्था की गई थी। उमेश बाबू, पण्डित सत्यव्रत और माइकेलके परामर्शसे बङ्गाल थियेटरमें स्त्रियोंके चरित्रका वेश्या ही पार्ट किया करती थीं। छातू बाबूके मकानमें दीवान रामचन्द्र मुखोपाध्यायके यात्रादलमें स्त्री अभिनेत्री देख कर शरत् बाबू इस विषयमें बड़े साहसी हुए थे। पहले केवल चार स्त्रियां ही लाई गई थीं। इन चारोंके सिवा यदि आवश्यकता होती थी, तब पुरुष भी स्त्री-चरित्रका पार्ट कर लिया करते थे। शर्मिष्ठाकी तरह "मायाकाननमें" भी बङ्गाल थियेटर सफलता प्राप्त नहीं कर सका। अखिल बाबू मायाकाननके प्रकाशक हुए थे। इस समय एलोकेशी-महन्त विभ्राटके कारण देशमें बड़ी क्रान्ति मची थी। बङ्गाल थियेटरने इस क्रान्तिमें ही "मोहान्तेर एई कि काज" नामक एक नाटकका अभिनय किया। इस अभिनयसे ही इसकी यथेष्ट प्रतिपत्ति हुई। इसके बाद बिहारीलाल चट्टोपाध्यायने बङ्किमचन्द्रकी दुर्गेशनन्दिनीको स्टेज पर खेलने योग्य बना दिया। दुर्गेशनन्दिनीके अभिनयसे बङ्गाल थियेटरका यश-सौरभ विस्तृत हो गया।

इसके बाद सन १८७८ ई०के फरवरी महीनेमें बङ्गाल थियेटरमें "रत्नावली" और "ए राई आबार बङ्गाली साहब" प्रहसन अभिनीत हुआ। इस दिन बहुबाजारके एकतान वादन-सम्प्रदायने बाजा बजाया था। इसके बाद १४वीं मार्चको "विद्यासुन्दर" और "येमन कर्म तेमनि फल" अभिनीत हुए थे। महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर, पन्नालाल शील, छक्कनलाल राय, आदि इस दिन उपस्थित थे। इस दिन उक्त महाराजके मकानके अभिनेत्री सम्प्रदायके दो एक अभिनेता अवैतनिकरूपसे इस अभिनयमें सम्मिलित हुए थे।

नेशनल थियेटर टूट जानेके बाद इसके दो दल हो गये। एक दलमें धर्मदास बाबू आदि और दूसरे दलमें अर्द्धेन्दु बाबू आदि थे।

धर्मदास बाबूने २१वीं मार्चको टाउनहालमें स्टेज कायम कर नेशनल थियेटरके नामसे "देशी अस्पताल साहाय्य रजनी" कह "नीलदर्पण' नाटकके अभिनय करनेका विज्ञापन प्रकाशित कराया। इसी समयसे गिरिश बाबूने भी रीत्यनुसार साधारण नाट्यशालामें आ मिले। धर्मदास बाबूके दलमें गिरिश बाबूने उड साहबका पार्ट लिया था। विज्ञापनमें लिखा गया था—"The National Theatre will re-open for the benefit of the native Hospital at the Town Hall" ४, २, १, तीन तरहके मूल्यके टिकट बिके थे। इस अभिनयके उपलक्षमें इन्होंने ५००) रुपया उक्त अस्पतालको दान किया। ५वीं अप्रिलको इन्होंने दूसरा अभिनय किया। इस दिनके विज्ञापनमें लिखा था—For the benefit of the charitable section of the In-

dian Reform Association, इस दिन सबवार एकादशी और "भारतमाता" का अभिनय हुआ था।

टाउनहालमें धर्मदास बाबूके दलको थियेटर करते देख अर्द्धेन्दु बाबूके दलने भी लिण्डसेस्ट्रीके अपेरा हाउस किराये पर ले कर "हिन्दू नेशनल थियेटर" के नामसे अभिनय किया था। ५वीं एप्रिलको इसका अभिनय आरम्भ हुआ। माइकेलके "शर्मिष्ठा" नाटकका अभिनय हुआ। साथ-साथ "माडल स्कूल" "विलायती बाबू" "उपाधि विवरण" और मुस्तफी साहबका पक्का तमाशा अभिनीत तथा व्यायामवीर अखिल बाबूकी क्रीड़ा भी दिखलाई गई थी।

अर्द्धेन्दुबाबूके दलने अपेरा हाउसमें दो बार अभिनय कर ढाकेके लिये प्रस्थान किया। धर्मदास बाबूका दल भी ६वीं मईको शोभाबाजार नाट्यमन्दिरमें कपालकुण्डलाका अभिनय कर ढाका चला गया। ढाकेमें भी इस समय पूर्णवङ्ग-रङ्गभूमि नामसे एक नाट्यशाला स्थापित थी। अर्द्धेन्दु बाबूके दलने इसी नाट्यशालामें अभिनय करना आरम्भ किया।

कुछ दिनोंके बाद दोनों दल कलकत्ते लौट आये, किन्तु इन दोनोंका मिलन नहीं हुआ। इसके बाद दीघा, पतियाके कुमार (बादमें राजा) प्रमदानाथ रायके अन्नप्राशनके उपलक्ष्यमें दीघापति या जानेके अवसर पर दोनों दल एकत्र हुए। दोनों दलने वहां चार रात तक अभिनय किया, पीछे वे वहरामपुर चले गये।

इस समय बङ्गाल थियेटरमें "महन्तेर एई कि काज" अभिनीत हो रहा था। एक दिन धर्मदास बाबू और भुवनबाबू दोनों यह तमाशा देखने गये। राहमें इन दोनोंको नगेन्द्र बाबू भी मिले। उस दिन इस रङ्गालयमें इतनी भीड़ हो गई थी, कि तिल धरनेको जगह न थी। ४) टिकटके आठ रुपये देने पर भी इन लोगोंको टिकट नहीं मिला। इस बिक्रीको देख कर भुवन बाबू उत्तेजित हो उठे। बङ्गाल थियेटरके सामने हो खड़े हो कर तीनोंने परामर्श किया, कि एक नाट्यशाला हम लोगोंको भी खोलनी होगी। भुवन बाबूने नावालिग होने पर भी रुपया देना स्वीकार कर लिया। इसके बाद धर्मदासने एक छोटे दलसे चुंचुड़े में-की छावनीमें नेशल थियेटरके नामसे "महन्तेर एई कि काज" नाटक अभिनय किया।

सन् १८७३ ई०की २१वीं सितम्बर सोमवारको ग्रेट नेशनल थियेटरकी भित्ति स्थापित हुई। धर्मदास बाबूने उस समयके लुइस थियेटरके (इस समय रायल थियेटरके अ.दर्श पर एक नाट्यशाला तय्यार कराई। नींव देनेके दिन वहां एक सभाका आयोजन हुआ था। कई गण्यमान्य सज्जन वहां उपस्थित थे।

इसके बाद सन् १८७३ ई०की ३१वीं दिसम्बर शनिवारको ग्रेट नेशनल थियेटर खोला गया। इसके कुछ दिन पहले ७वीं दिसम्बरको नेशनल थियेटरका प्रथम वार्षिक अधिवेशन हुआ। राजा कालीकृष्ण देव बहादुर इसके सभापति हुए थे। नवगोपाल मित्र, मनोमोहन वसु और अर्द्धेन्दु बाबूने व्याख्यान दिया था। उस समय भी दोनों दल जुदा जुदा थे। वार्षिकोत्सव एकत्र हुआ सही, किंतु कार्यावलीमें स्वतंत्ररूपसे दोनोंका नामोल्लेख किया गया था। ग्रेट नेशनल थियेटरकी ओरसे संस्कृत श्लोकमें आशीर्वचन पाठ तथा नेशनल थियेटरकी ओरसे सङ्गीत द्वारा कार्यारम्भ हुआ था।

इसके बाद सन् १८७४ ई०में बङ्गाल थियेटरका अनुकरण कर स्त्री अभिनेत्री लेनेका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इससे अप्रसन्न हो कर अर्द्धेन्दु बाबू स्वतन्त्र दल कायम कर ढाका, बगुला, कृष्णनगर आदि स्थानोंमें चले गये। किन्तु पीछे भुवन बाबूके अनुरोध करने पर दोनों दल मिल गये। उस समय वेश्या थियेटरमें अभिनेत्रीके रूपमें आने लगी थीं। सन् १८७४ ई०को २१वों सितम्बरको "सती कि कलङ्किनी"का खेल हुआ। उस समय मैनेजर धर्मदास बाबू, सेक्रटरी नगेंद्र बाबू तथा शिक्षक अर्द्धेन्दु बाबू थे।

कुछ दिनोंके बाद भुवन बाबूकी हीनावस्थाके कारण ग्रेट नेशनल थियेटर टूट गया। नाट्यशाला किराये पर दे दिया। पहले गिरिश बाबूने; पीछे उनके साले द्वारकानाथ देवने, इसके बाद केदारनाथ चौधुरीने, इसके बाद महेन्द्रलाल वसुने, उसके बाद कृष्णधन बन्द्योपाध्यायने किराया वसूल किया था। इसके बाद यह बिक्री हो गया। प्रताप चांद जहुरीने इसे

खरीद लिया। अब गिरिश बाबू मनेजर हुए। प्रताप-चांदके जमानेमें गिरिश बाबूने नाटक लिखना आरम्भ किया। उनका पहला नाटक "रावणवध" है। इसके बाद नगेन्द्र बाबूके भाई किरणचन्द्र वन्द्योपाध्यायके द्वारा प्रलोभित हो कर गुरुमुख राय नामक एक व्यक्ति थियेटर करने पर प्रस्तुत हुआ। इसके बाद गिरिश बाबू, अमृत बाबू आदि कई व्यक्तियोंने सन् १८८३ ई०में 'ष्टार थियेटर' (६८ नं०, बिडन् ष्ट्रीटमें) स्थापित किया। सन् १८८३ ई०की २३वीं जुलाईको ष्टार थियेटरका उद्घाटन-कार्य्य सम्पन्न हुआ। गिरिश बाबूके लिखे "दक्ष-यज्ञ" नाटकका पहला अभिनय यहां हुआ। गुरुमुख रायकी मृत्युके बाद ष्टार थियेटरके प्रधान अभिनेता अमृतलाल वसु और अमृतलाल मित्र कर्म्माध्यक्ष, हरिप्रसाद वसु और धर्मदास बाबूके भगिनेय दासू-चरण नियोगी इन चार आदमियोंने ष्टार थियेटरकी नाट्यशाला खरीद ली। इसके बाद जब बाबू गोपाल-लाल शीलने एमारल्ड थियेटरकी प्रतिष्ठा की, तब उन लोगोंने ष्टार थियेटरके बिडन् ष्ट्रीटकी नाट्यशाला बेच कर कर्नवालिस ष्ट्रीटमें वर्त्तमान नाट्यशालाकी प्रतिष्ठा की। ष्टारके वर्त्तमान नाट्यशालाकी जमीन और मकान दोनों थियेटरकी सम्पत्ति हैं। इस नये मकानसे ही अमृत बाबू इसकी अध्यक्षता कर रहे थे। 'नसी राम'-का यहां पहला अभिनय हुआ। ष्टारके कर्त्तृत्वसं कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। किन्तु गिरिश बाबूके पिछले समयमें नाना जगहोंमें आने-जानेके कारण ष्टार थियेटरके सुश्रृङ्खल कार्य्यमें बाधा पहुंची। ष्टार सदासे समान आदर पाता हुआ प्रतिपक्षके लगातार कार्य्य करता हुआ अब तक विद्यमान है।

ष्टार थियेटर जब बिडन् ष्ट्रीटमें था, तब नेशनल थियेटरकी नाट्यशालामें भुवन बाबूने और एक बार ग्रेट नेशनल थियेटरके नामसे अभिनय करनेकी व्यवस्था की थी। कुमारसम्भव और आनन्दमठका अभिनय कर यह चेष्टा फिर सदाके लिये स्थगित कर देनी पड़ी। ष्टार थियेटर-दलने पीछे खरीद कर इसे तोड़ डाला। नेशनल थियेटरका चिह्न इस तरह शून्य हो गया।

ग्रेट नशनल थियेटरके स्थापन करनेके समयसे बङ्गाल थियेटरमें कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ। किंतु ग्रेट नेशनलके नाना परिवर्त्तनोंके घात-प्रतिघातके फल-से बंगाल थियेटरको भी कुछ न कुछ परिवर्त्तन हुआ ही था। अन्तमें प्रताप जहुरीके हाथ नेशनल थियेटर कुछ दिनोंके लिये स्थिर होनेसे बंगाल थियेटरका भी काम सुचारुरूपसे चलता रहा। इस थियेटरोंके युगपरिवर्त्तन-का समय था। अच्छे अच्छे नाटकोंके अभाव होनेके कारण नाटकोंके अध्यक्षोंने नया नया नाटक लिखवाना आरम्भ किया। नेशनलमें गिरिश बाबको और बंगालमें विहारी बाबको कलम पकड़नी पड़ी थी। दोनोंका ही पहला नाटक 'रावणबध' है। इस समयसे अभिनेताओं-में साहित्यने प्रवेश किया। बंगाल थियेटरमें चाहे जितने परिवर्त्तन हुए हों, किन्तु विहारी बाबूके कर्त्तृत्व-के कारण बंगालमें विशेष कोई विश्रृङ्खला न होने पाई। अंतमें सन् १३०८ फसलीमें विहारी बाबूकी मृत्यु हो गई। साथ ही बंगाल थियेटर भी लुप्त हो गया। बीचमें युव-राज अलवर्ट जब कलकत्ते आये थे, तब उनकी अभ्य-र्थनाके लिये होनेवाले उत्सवमें बंगाल थियेटरने अभि-नय किया था। उस समयसे बंगाल थियेटर "रायल" यह विशेषणविशिष्ट होनेका अधिकार पाया। अंत तक बंगाल थियेटरका यही नाम था।

जुबिलीके वर्षमें बाबू गोपाललाल शीलके नाट्यशाला स्थापित करनेकी इच्छा प्रकट करने पर अतुलचन्द्र मित्र और अर्द्धेन्दुशेखर मुस्तफीके यत्नसे एक दल गठित हुआ। अतुल बाबूके लिखे "भीष्मकी शरशय्या" नाटकका रिहर्सल जारी हुआ। अन्तमें बिडनष्ट्रीटके ष्टार थियेटरका मकान और जमीन खरीद लेने पर केदारनाथ चौधुरी इसके अध्यक्ष हुए और उनका रचा "पाण्डव-निर्वासन" अभिनीत हुआ। थियेटरका यह भी एक युग था। केवल गिरिश बाबू और अमृत बाबूको छोड़ कर अन्यान्य सभी पुराने अभिनेताओंको अर्द्धेन्दु बाबूने अपने दलमें मिला लिया था। इस थियेटरका खर्च जैसा हुआ था, वैसा ही अभिनय भी हुआ। किन्तु गोपाल बाबूकी बुद्धिके दोषसे सारा नष्ट हो गया। समयके चक्रमें पड़ कर गोपाल बाबू छः सप्ताहके बाद ही केदार बाबूको

त्याग कर गिरिश बाबूके हाथ अध्यक्षता समर्पण कर दी। गिरिश बाबूने आते ही केदार बाबूकी पुस्तकको बन्द करा कर अपनी लिखी "पूर्णचंद्र" पुस्तकका अभिनय कराया था। पीछे धीरे धीरे कई विश्रृङ्खलाओंके होते रहनेसे एमरेल्ड थियेटर ध्वंस हो गया। अंतमें ग्रेट नेशनलकी तरह यह भी किराये पर दे दिया गया। पहले हरिभूषण भट्टाचार्य, मोतीलाल सुर, व्रजनाथ दास और महेंद्रलाल बसुने किराया वसूल किया। इसके बाद महेंद्रलाल बसु और अतुलकृष्ण मित्रने, इसके बाद महेन्द्रलाल बसुने अकेले ही, इसके बाद अर्द्धेन्दु बाबू, अतुलकृष्ण मित्र, मोतीलाल सुर और निमाईचरण बसुने, फिर बनारसी दासने किराया वसूल किया था। पीछे अमरेन्द्रनाथ दत्तने इस नाट्यशालाको किराये पर ले कर क्लासिक थियेटर नामसे एक सम्प्रदाय गठन कर योग्यताके साथ अभिनय किया।

एमारल्ड थियेटरके टूट जाने पर गिरिश बाबूके प्रयत्नसे प्रसन्नकुमार ठाकुरके दौहित्र नागेन्द्रभूषण मुखोपाध्यायने नेशनल थियेटरकी जमीनमें सन् १८६० ई०में मिनार्भा थियेटर नामसे नयी नाट्यशाला स्थापित की। गिरिश बाबूकी "मेकवेथ" तथा "मुकुलमुञ्जरा" नाम्नी पुस्तकका यहां प्रथम अभिनय हुआ। अर्द्धेन्दु बाबू यहांके नाट्य-शिक्षक और देवकण्ठ बागची संगीताध्यापक थे। मिनार्भा थियेटर तीन वर्षमें गायब हो गया। इस तीन वर्षकी अवधिको गिरिश बाबूने कभी मिनार्भा, कभी ष्टारमें रह कर दिन बिताया। मनोमोहन पाण्डेने मिनार्भाको चलाया था। पीछे मित्रोंके हाथ में मिनार्भा आ गया। इसके बाद अग्निकाण्डसे मिनार्भा भस्मसात हो गया। फिर अब नया मिनार्भा बना है।

जब एमरल्ड ध्वंस हो गया, तब राजकृष्ण रायने मछुआबाजार ष्ट्रीटमें 'वीणारङ्गभूमि" नामसे नाट्यशाला स्थापन कर बालक-अभिनेता द्वारा स्त्रियोंका पार्ट करा व्यवसाय करना आरम्भ किया। किन्तु वे सफल-मनोरथ नहीं हुए। अन्तमें चार पैसेका टिकट बेच कर भी वे सफलीभूत नहीं हो सके। किसी तरह भी वीणा टिक न सकी। राजकृष्ण बाबू कर्जदार हो गये। अब उनको बाध्य हो कर अपनी प्यारी वीणाको बेच देना पड़ा। यहां नीलमाधव चक्रवर्त्तीने (नेशनल थियेटरके अभिनेता) "सिटि थियेटर" स्थापन किया। यह भी अधिक दिनों तक चल न सका। अन्तमें यहां एक पारसीने पहले उर्दू नाटक खेले, पीछे हिन्दी-उर्दू दोनों नाटक बड़ी सफलतासे खेल रहे हैं।

कलकत्तेमें हिंदी और उर्दू नाटकोंकी उत्पत्ति यहींसे शुरू होती है। कलकत्तेके नं० ५ धर्म्मतलेमें जे० एफ० मदन महाशयने कोरन्थियन थियेटरको खोल कर बहुतेरे सुन्दर नाटकोंको प्रकाश कर कलकत्तेकी हिंदी और उर्दू भाषा-भाषी जनताका मनोरञ्जन किया। कलकत्तेमें नाटकोंका इतना आदर देख बम्बईकी पारसी एलफिष्टन कम्पनीने हरिसनरोडमें "अलफ्रेड" रङ्गमञ्च खोला। 'खटाऊ' साहब इसके मालिक थे। पञ्जाबी पण्डित नारायणप्रसाद बेताब महाशयने "रामायण", "महाभारत" तथा "बिल्वमङ्गल" आदि कई नाटकोंकी रचना की। समयके अनुसार इनके लिखे नाटकोंमें भी उर्दूके विशेष शब्द रहते थे। कुछ ही दिनोंमें इस कम्पनीने बड़ा नाम कमा लिया। धन भी प्राप्त हुआ। किंतु नाटकाध्यक्ष 'खटाऊ'-के परलोक-गमन करने पर इस कम्पनीमें गृह-विवाद आरम्भ हुआ। फल यह हुआ, कि इस कम्पनीकी अवस्था शोचनीय हो उठी। अन्तमें इस कम्पनीने मदन साहबके हाथ इसे बेच दिया। उधर कोरन्थियनमें आगा हस्र साहबकी ओजस्विनी लेखनी द्वारा निकले नाटकोंके अभिनय हो रहे थे। सुशिक्षित पात्र-पात्रियोंसे रङ्गमञ्च खिल उठता था। दर्शकोंकी भी भरमार रहती थी। किन्तु इन नाटकोंमें उर्दू मिश्रित शब्द रहनेसे मुसलमान दर्शक ही अधिक उपस्थित होते थे। इसके बाद पण्डित तुलसीराम सैदा कोरन्थियनमें पधारे। इन्होंने भी कई नाटक लिखे। किंतु आगा हस्रकी तरह उनके नाटकोंमें भी उर्दूके शब्दोंकी कमी न थी। इस समय हिंदी भाषा-भाषी जनता विशुद्ध हिन्दीके नाटक रङ्गमञ्च पर देखना चाहती थी। नाट्यशालाके अध्यक्ष प्रवीण जे० एफ० मदन साहबने इस अभावका अनुभव किया। इसकी खोजमें वे थे, कि कोई विशुद्ध हिन्दी नाटककार मिले तो रख लूं। उन्होंने "साहित्यालङ्कार" श्रीयुक्त बाबू

हरेकृष्णजी जौहर हिन्दी बङ्गवासीके सम्पादकको अपने यहां रख लिया। यद्यपि जौहरजीने पहले कोई नाटक लिखा न था, किन्तु उनका झुकाव नाटककी ओर था, उन्होंने पहले परीक्षाके तौर पर सावित्री-सत्यवान् नाटक लिखा। हिन्दीजगत्‌ने इसे अपनाया और जौहरजीका इससे साहस बढ़ा। उनके लिखे इस पहले नाटकने ही रात दिन उर्दू नाटकोंके खेलनेवाली इस कम्पनीके रङ्गमञ्चको हिन्दी शब्दोंके प्रवाहसे प्रवाहित कर दिया। अच्छे-अच्छे हिंदी भाषा-भाषी सज्जन उपस्थित होने लगे। इनका दूसरा नाटक "पतिभक्ति" है। इस नाटकमें जौहरजीने बड़ी मिहनत की थी। फल भी वैसा ही हुआ। इस नाटकको रच कर उन्होंने हिन्दी नाट्य-जगत्‌में युगान्तर उपस्थित कर दिया। इस नाटकके अभिनयमें पात्रपात्रियोंके निकले छोटे-छोटे और मधुर सरस वाक्यों पर जनताकी हर्षध्वनि होने लगती थी। क्रुेन्स पर क्रुेन्स होते थे। दुहरानेवाली तालियोंसे भी रङ्गमञ्च गूंज उठता था। इस तरह इस नाटकने जनताको मन्त्र मुग्ध कर दिया। इसको सफलीभूत बनानेमें कम्पनीने भी नये सीन सिनरियोंके तैयार करनेमें कोर कसर उठा नहीं रखी थी। जनताने इस नाटकको बहुत पसन्द किया, किंतु अधिकारियोंकी इस पर दृष्टि पड़ी और इसके कुछ अंशोंका परिवर्त्तन करा दिया गया। इसके हर तमाशेमें रङ्गालय भर जाता था, तिल धरनेकी जगह नहीं रहती थी। कम्पनीके घर इस तमाशेसे एक लाखसे अधिक रुपये आये। उक्त कम्पनी-मालिक जे० एफ० मदन साहबने उक्त जौहरजीको धन तथा बहुमूल्य पुस्तकें पुरस्कारमें दी थीं। इसके बाद उनके लिखे कई नाटक निकले। थोड़े बहुत सभी नाटकोंमें सफलता मिली। इसी समयसे पारसी कम्पनियोंके रङ्गमञ्च पर विशुद्ध हिन्दीको स्थान मिला। इधर कलकत्तेके बड़े बाजारको हिन्दी भाषा-भाषी जनतामें भी नाटकका शौक बढ़ा है। हिंदी नाट्य-परिषद्, बजरङ्ग-परिषद् आदि संस्थाओंने भी कई नाटक खेले। इनके पास कोई बंधा स्टेज नहीं, किराये पर ले कर यह अभिनय किया करती हैं। उक्त कम्पनियों द्वारा जितने भी नाटक खेले गये, उनमें स्त्रीके पार्टको वेश्यायें तथा पुरुषके पार्टको वेतनभोगी पुरुष किया करते थे। आधुनिक अभिनेताओंमें मास्टर मोहन जनताको मन्त्रमुग्ध बना देनेमें बड़े पटु हैं। इन्हें जनता बहुत चाहती है। इस समय बङ्गला नाटकोंके साथ-साथ हिंदी नाटकोंकी भरमार है। इस तरह बङ्गाल भरमें नाट्यका आदर बढ़ गया है।

बङ्गालके रङ्गालयोंका संक्षिप्त इतिहास यहां तक ही है। इन सब बङ्गाली नाट्यशालाओंसे बंगाला नाट्य-साहित्य परिपुष्ट हुआ है सही, किंतु आज भी नाट्यकलाकी उन्नति नहीं हुई है। समय और विषयोचित वेश भूषा परिपाट्य नहीं हुआ है। अंग्रेजी जिसको Make up कहते हैं, उसका कुछ नहीं हुआ। दृश्यपट आदि वस्तुओंकी उन्नति हुई है सही; किंतु अभी भी उनमें खूबी नहीं आई है। प्राकृतिक परिवर्त्तन दिखानेमें, दृश्ययोजनामें, कुशलता सम्पादन करनेमें, दृष्टिविभ्रम और विस्मय उत्पादन करनेके लिये नाना तरहके यन्त्रोंके साहाय्य और वैज्ञानिक घटनाओंका अनुष्ठान हो रहा है सही, किंतु इंङ्गलैण्डकी नाट्यशालाओंके मुकाबिले एतद्देशीय नाट्यशालायें बहुत ही पीछे हैं। सबसे अधिक त्रुटि तो अभिनयकलामें ही दिखाई देती है। यहांके नाट्यशालाओंमें दो रीतियोंसे अभिनय होते हैं। एक गिरिश बाबूका स्कूल अर्थात् रीति और दूसरी मुस्तफीके (अर्द्धेन्दु बाबूका) स्कूल या रीति कहते हैं। गिरिश बाबूकी रीतिसे पद्य अभिनय या गद्य-अभिनयमें अभिनेता मानो एक कविताका सुर पकड़ कर श्रोत सुखकर उपायसे अभिनय करते रहते हैं। इससे स्वरके उन्नमन और अवनमन शीघ्रतासे होता है। मुस्तफी रीतिसे गद्य या पद्य कथनोपकथन सुरसे अभिनीत होता है। कोई किसी तरहके नकली सुरका अवलम्बन कर इसकी आवृत्ति नहीं कर सकता। इससे आवृत्ति गुणसे श्रोतसुखकर बनानेकी ओर दृष्टि रखनेकी अपेक्षा वक्तव्य विषयके भावके प्रति अधिक लक्ष्य रखा जा सकता है। गिरिश बाबूकी रीति आज कल बहुत फैली हुई है। गिरिश बाबू बहुतेरे नाटकोंकी रचना कर प्रधान नाटककार और बङ्गीय गेरिक कहे जाते हैं। इधर अमृत बाबूने अभिनयोपयोगी रङ्गमञ्चोंकी सृष्टि कर प्रसिद्ध बोन-

बन्धुका स्थान ले लिया है। गिरिश बाबूकी रीति सहज ही अभ्यस्त हो जाती हैं; इससे बहुत थोड़े लिखे पढ़े अभिनेताओंकी संख्या इस समय अधिक दिखाई देती है। पुरुष अभिनेताकी अपेक्षा अभिनय करनेवाली स्त्रियां अधिक उन्नति-प्रयासिनी दिखाई देती हैं।

मुसलमानोंके अशान्तिमय शासनमें नाट्य-रंगका कुछ पता नहीं चलता। पता लगे कहांसे; लोग सदा सतर्क हो आत्मरक्षाकी ही धुनमें लगे रहते थे। मुसलमानोंके अवसानकालमें भारतीय जनताको जब कुछ फुरसत मिली तब लोगोंका ध्यान कुछ कुछ इधर आकृष्ट हुआ। फल यह हुआ, कि कितने ही नाटककार दिखाई देने लगे। मथुराके प्रसिद्ध सेठ लक्ष्मीचान्द दासके मुनीम श्रीनिवासदासजीने "सप्ता-संवरण", "परीक्षागुरु", "रणधीरप्रेममोहिनी" आदि कई नाटक लिखे। किन्तु यह मालूम नहीं होता, कि इन नाटकोंमें ष्टेज पर कोई आया था या नहीं। यह भी पता नहीं लगता, कि कब कहां अभिनीत हुआ था। आगरेके राजा पृथ्वीसिंहने भी शकुन्तला नाटक लिखा था। किन्तु ष्टेज पर खेलनेका पता नहीं। प्रयागके पं० बालकृष्णजी भट्ट महाशय (सम्पादक हिन्दीप्रदीप)-ने भी "ग्रामदुर्दशा" नाटक लिखा था।

हां, जब काशीमें आते हैं, तब वहां एक ष्टेज दिखाई देता है। बांस-फटका पर रखा बैजनाथ दास महाशयने एक रंगमञ्च बनवाया था जो आज भी मौजूद है। इसका नाम "विश्वेश्वर थियेटरहाल" है। इसमें कौनसा पहले नाटक खेला गया, इसका पता नहीं लगता। यहां भारतेन्दु बाबू हरिचन्द्रने भी कई नाटक लिखे हैं। सिवा इस विश्वेश्वर थियेटरके कोई स्थायी रंगालय यहां नहीं है। बाहरकी कम्पनियां आ आ कर अपने खेल तमाशे दिखला जाया करता हैं।

रङ्गावतरण (सं० क्लो०) रङ्गस्य अवतरणं। १ रंगका अवतरण, रंग चढ़ाना। २ अभिनय करनेवाला, नट।

रङ्गावतारक (सं० पु०) रङ्गे सङ्गीतभवने अवतरतीति तृ-ण्वुल्, यद्वा रंगं नृत्यादिकमवतारयतीति तॄ-णिच्-ण्वुल्। १ अभिनय करनेवाला, नट। पर्याय—शैलूष, भरत, सर्ववेशी, भरतपुत्रक, धात्रीपुत्र, रंगजीव, जायाजीव, नट, कृशाश्वी, शैलाली। (हेम)

२ रंगावतरणजीवी, रंगरेज। मनुमें लिखा है, कि इसका अन्न नहीं खाना चाहिये। अज्ञानवशतः खा लेनेसे कृच्छ्र-चान्द्रायणव्रत करना होता है।

"कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च।
सुवर्णकर्त्तु र्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा॥
भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहम्।
मत्या भुक्त्वा चरेत् कृच्छ्रं रेतोविन्मूत्रमेव च॥"
(मनु ४ अ०)

रङ्गावतारिन् (सं० पु०) रङ्गमवतरतीति तॄ-णिनि। अभिनय करनेवाला, नट।

"स्त्रीवृद्धबालकितवमत्तोन्मत्ताभिसप्तकः।
रङ्गावतारिपाषण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः॥"
(याज्ञवल्क्यसं० २२)

रङ्गिन् (सं० त्रि०) रङ्गोऽस्त्यस्या इति रंग-इनि। १ रंगविशिष्ट, रंगा हुआ। (स्त्री०) २ रंगिणी। ३ शतमूली। ४ कैवर्त्तिका नामकी लता।

रङ्गून—निम्नब्रह्मके पेगू विभागान्तर्गत एक जिला जो अंग्रेजोंके अधिकारमें है। विशेष विवरण रेङ्गून शब्दमें देखो।

रङ्गेश—गुणरत्नकोषके प्रणेता पराशरभट्टके प्रतिपालक एक हिन्दू राजा।

रङ्गेश्वरी (सं० स्त्री०) राजा रङ्गेशकी महिषी।

रङ्गाालुक (सं० क्ली०) स्वनामख्यात आलूविशेष।

रङ्गोजी भट्ट—अद्वैतचिन्तामणि और अद्वैतशास्त्रसारोद्धार नामक दो ग्रन्थके प्रणेता।

रङ्गोपजीविन् (सं० त्रि०) रङ्गेन उपजीवति इति णिनि। वह जो रंगशालामें अभिनय करके अपनी जीविका निर्वाह करता हो, नट।

रङ्गोपजीव्य (सं० पु०) रङ्गोपजीवी, नट।

"हन्यात् प्रव्रजिताग्निहोत्रिकभिषग्रङ्गोपजीव्यान्हयान्।
वैश्यान् गाः सहवाहैर्नरपतीन् पीतानि पश्चाद्दिशम्॥"
(बृहत्संहिता ६।४३)

रङ्गर—इस्लाम-धर्मदीक्षित राजपूत जातिविशेष। रणघर अर्थात् योद्धाका वंश, इसी अर्थसे यह नामकरण हुआ है। उत्तर-पश्चिम भारतमें जब कोई चौहान राजपूत मुसलमान होता है, तब उसके चौहानवंशकी ख्याति नष्ट नहीं होती, केवल वह स्वजातिसे घृणासूचक रङ्गर नामसे पुकारा जाता है।

बुलन्दशहरवासी जैसवार वा भट्टिराजपूत अपनेको बिठुरवासी यशोवन्त रावके पुत्र राजा दलीपके वंशधर बतलाते हैं। प्रवाद है, कि उस दलीपके भट्टि और रणधर नामक दो पुत्र थे। रणधरके वंशधर सुलतान कुतब उद्दीन और अलाउद्दीन्के शासनकालमें इस्लाम धर्ममें दीक्षित हुए। तभीसे यह मुसलमान शाखा पूर्व-पुरुषके नामसे परिचित होती आ रही है। वर्त्तमान कालमें इन लोगोंके मध्य कानकौड़िया और नैगानिया अहीर, जाट, सतोला और रघु आदि हिन्दू जातिकी शाखा तथा पार्वती पुण्डोरादि जातिका संस्रव हो गया है।

ये लोग चोरी और डकैती करके जीविका निर्वाह करते हैं। नाना जातिके समाजसे निकाले हुए दुर्वृत्त मनुष्य इस श्रेणीमें मिल गये हैं जिससे रङ्घरगण विशेष अत्याचारी हो गये हैं। इस सम्बन्धमें युक्त-प्रदेशमें एक किंवदन्ती इस प्रकार प्रचलित है—

"गूजर रङ्घर दो, कुत्ता बिल्ली दो।
ये चार न हो, तो खुले किवाड़ी सो।"

रङ्कुस् (सं० क्ली०) रङ्ख्यते प्राप्यते इति रंघि (अधिरधि-भ्यानसुन्। उण् ४।२१३) इति असुन्। रंह, बेग।

रचक (सं० पु०) रचना करनेवाला, रचयिता।

रचन (सं० क्ली०) रचि-भावे ल्युट्। निर्माण, रचना।

रचना (सं० स्त्री०) रच्यते इति रच-णिच् (ण्यासश्रन्थो युच्। पा ३।३।१०७) इति युच्, टाप्। १ कुसुमप्रकारादि और पत्रावल्यादिका रचन, फूलोंसे माला या गुच्छे आदि बनाना।

"भूषायामर्द्ध रचना वृथा विश्वगवेक्षणम्।
रहस्याख्यानमीयच्च विक्षेपो दयितान्तिके॥"

(साहित्यद० ३।१४६)

२ यथाक्रमसे स्थापन करना, बनानेका ढंग या कौशल। ३ निर्म्मिति, रचने या बनानेकी क्रिया या भाव, बनावट। ४ स्थान, स्थापित करना। ५ भूषण। ६ केश-विन्यास, बाल गूंथना। ७ गद्य या पद्यमय-वाक्य-विन्यास वह गद्य या पद्य जिसमें कोई विशेष चमत्कार हो।

"असाधारणचमत्कारकारिणी रचना हि निर्मितिः।"

(अलङ्कारकौ० १ किरण)

पर्याय—सन्दर्भ, गुम्फ, श्रन्थन, ग्रन्थन। (हेम) ८ उद्यम, कार्य। ६ विश्वकर्माकी स्त्रीका नाम।

रचना (हिं० क्रि०) १ हाथोंसे बना कर तैयार करना, बनाना। २ ग्रन्थ आदि लिखना। ३ विधान करना, निश्चित करना। ४ अनुष्ठान करना, ठानना। ५ आडम्बर खड़ा करना, युक्ति या तदबीर लगाना। ६ तरकीब या क्रमसे रखना। ७ उत्पन्न करना, पैदा करना। ८ काल्पनिक सृष्टि करना, कल्पना करना। ६ शृंगारकरना, सजाना। १० अनुरक्त होना। ११ रंग चढ़ना, रंगा जाना।

रचनीय (सं० त्रि०) रचि-अनीयर्। रचना करनेके योग्य।

रचयितृ (सं० त्रि०) रचि-तृच्। निर्माता, रचनेवाला।

रचवाना (हिं० क्रि०) १ रचनाके काममें दूसरेको प्रवृत्त करना, रचना करना। २ मेहँदी या महावर लगवाना।

रचाना (हिं० क्रि०) १ मेहँदी, महावर आदिसे पैर रंगाना।

रचित (सं० त्रि०) रचि-क्त। १ कृत, रचा हुआ। २ ग्रथित, गूंथा हुआ। ३ विन्यस्त, अर्पण किया हुआ। ३ शोभित, परिष्कार किया हुआ।

"शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः।
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहरविस्फूर्जितमिदम्॥"

(पुष्पदन्तस्तुति)

रचितत्व (सं० क्ली०) रचितस्य भावः त्व। रचनेका भाव या धर्म, रचना।

रचितव्य (सं० त्रि०) रचि-तव्य। रचनीय, रचना करनेके योग्य।

रज (सं० क्ली०) रञ्जयतीति रन्ज-अच् निपातनान्नलोपः। १ स्त्रीकुसुम, आर्त्तव। (पु०) २ पराग। ३ गुणभेद, रजोगुण। ४ पुराणानुसार एक ऋषिका नाम जो वशिष्ठके पुत्र माने जाते हैं। ५ स्कन्दको एक सेनाका नाम। (भारत ६।४५।७३) ६ विरजपुत्र। (विष्णुपु० २।१।४०) ७ पर्पटक, खेतपापड़ा।

रज (हिं० पु०) चांदी। रजस् देखो।

रजउद्वास (सं० त्रि०) मलोद्वास।

रजःपाल—एक हिन्दू राजा।

रजःपुत्र (सं० त्रि०) राजपूत देखो।

रजःप्रवर्त्तिनी वर्त्ति (सं० स्त्री०) स्त्रीरोगाधिकारोक्त औषध-विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—तितलौकीका वीज, दन्तीमूल, पीपल, गुड़, मदनफल, मूलीका वीज और मुलेठी, इन्हें एकत्र पीस कर थूहरके दूधमें मिलावे। इसको यथाविधि वत्ती बना कर योनिमें रखनेसे स्त्रीयोंकी रजःप्रवृत्ति होती है।

रजःशय (सं० पु०) रजसि शेते शी (अधिकरणे शेतेः पा ३।२।१५) इति अच्। १ कुक्कुर, कुत्ता। (त्रि०) २ धूलिशायी। ३ रजतमयी।

रजःसार (सं० क्ली०) कर्पूर, कपूर।

रजःसारथि (सं० पु०) रजसां सारथिरिव। वायु, हवा।

रजक (सं० पु०) रजति निर्णेजनेन श्वेतिमानमापादयति वस्त्रादीनामिति रन्ज (नृतिखनिरञ्जिभ्यः परिगणनं कर्त्तव्यं। पा ३।१।१४५) इति ष्वुन्। वर्णसङ्कर जातिविशेष, धोबी। स्कन्दपुराणीय वचनानुसार धीवर और तीवर-कन्याके संभोगसे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें भी ऐसा ही लिखा है—

"तीवर्य्यां धीवरात् पुत्रो वभूव रजकः स्मृत।" (ब्रह्मवैवर्त्त०)

पर्याय—निर्णेजक, शौचेय, कर्मकीलक, धावक। (हेम)

अत्रि प्रभृति स्मृतिके मतसे रजक जाति अन्त्यज है।

"रजकश्चर्म्मकारश्च नटो वरुड़ एव च।
कैवर्त्त भेदभिल्लाश्च सप्तैते चान्त्यजा स्मृताः॥"
(अत्रि०)

यात्राकालमें यदि सामने रजक दिखाई दे, तो उस यात्रामें विघ्न होता है। यदि ब्राह्मण भूल कर भी रजकका अन्न भोजन करे, तो उसे प्रायश्चित्त करना होता है।

"रजके चैव शैलूषे वेणुचर्मोपजीविनि।
एतेषां यस्तु भुञ्जीत द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत्॥"
(प्रायश्चित्तवि०)

रजकोंमें किंवदन्तीमूलक जो सब आख्यायिका प्रचलित हैं उनसे मालूम होता है, कि ब्रह्माके वस्त्र धोनेवाली नेतमणि वा नेतु धोबिनके वंशधरोंने आगे चल कर उसी वृत्तिका अवलम्बन किया और वे सबके सब धोबी कहलाये। फिर दूसरे उपाख्यानसे मालूम होता है, कि धोबा मुनिका पुत्र नेना प्रति दिन अपना कौपीन नदीमें धोया करता था। एक दिन कौपीन धोनेके बाद उसे ऐसा आलस हुआ, कि दैनिक पूजाके लिये वह फूल तक भी न तोड़ सका। उसके साथी संन्यासियोंने देवकार्यमें इस प्रकार अवहेला देख उसे शाप दिया कि, 'तुम्हारा वंशधर एकमात्र मैला कपड़ा धो कर ही जीवन व्यतीत करेगा।' तभीसे उसके वंशधर पहननेका मैला कुचेला कपड़ा धोते आ रहे हैं।

बङ्गालके धोबियोंमें प्रायः १८ स्वतन्त्र विभाग हैं। पूर्व-बङ्गमें रामका धोबी और सीताका धोबी नामक दो दल देखे जाते हैं। वे लोग अपनेको राम और सीताके वस्त्र धोनेवालोंके वंशधर बतलाते हैं। वे लोग आपसमें खान-पान तो करते हैं, पर विवाह शादी नहीं करते। प्रवाद है, कि रामका धोबी केवल पुरुषका और सीताका धोबी केवल स्त्रीका वस्त्र फींचता था। सीताका धोबी सीताका 'रजोवास' धोता था, इस कारण उसे सोनेकी नौ कौड़ी इनाममें मिलती थी। इस लोभमें पड़ कर रामका धोबी भी चुरा कर सीताका रजोवास धोने लगा। तभीसे दोनों ही थाक स्त्री और पुरुषका कपड़ा फींचने लगा है। उड़ीसाके धोबियोंमें श्रेणी-विभाग नहीं है। बंगालके धोबियोंमें अलमैन, काश्यप और शाण्डिल्य गोत्र तथा उड़ीसाके धोबियोंमें नागस गोत्र प्रचलित है। सगोत्रमें विवाह नहीं चलता। इन लोगोंके मध्य अकसर वाल्य-विवाह हो होता है। बहु-विवाह प्रचलित है। स्त्रीके चरित्रमें दोष दिखाई देनेसे स्वामी पंचायतको सूचित कर उसे छोड़ सकता है। किन्तु पञ्चायतके नियमानुसार स्वामीको प्रायश्चित्त करना होता है। उस परित्यक्ता स्त्रीके साथ फिर कोई भी विवाह नहीं करता। बङ्गालके धोबियोंमें विधवा-विवाह निषिद्ध है, पर उड़ीसाकी विधवा सगाइ प्रथासे विवाह कर सकती है।

बङ्गाल और उड़ीसाके रजकसे विहारके रजक बिलकुल स्वतन्त्र हैं। ये लोग अपनेको गाड़ी-भुइंयाके वंशधर बतलाते हैं। इन लोगोंमें कनौजिया, मघैया, बेलवार, अवधिया, बाथम्, गोरसार, गघैया और बांगला नामक श्रेणी-विभाग देखा जाता है। यहांका मुसलमान धोबी तुर्किया कहलाता है।

बिहारने धोबियोंमें बाल विवाह ही अकसर हुआ करता है। बहु-विवाह और सगाई प्रथासे विधवा विवाह भी प्रचलित है। कन्याके विवाहमें अगुआ (घटक) बरके पिताके पास जाता और तिलक दे कर विवाह सम्बन्ध ठीक कर आता है। विधवा-विवाहमें स्वामी स्त्रीको लाहकी चूड़ी पहनाता है और मांगमें सिन्दूर देता है। मृत स्वामीके भाई रहते विधवा पहले उसीसे ब्याह करती हैं। पञ्चायतके आदेशानुसार कुलटा स्त्रीको छोड़ देनेका नियम है। वह परित्यक्ता स्त्री सगाईकी तरह फिरसे विवाह कर सकती है। किन्तु जो उसे ग्रहण करेगा, समाजमें उसे एक भोज देना होगा।

ये लोग अपने समाजसे निकाले हुए हिन्दूमात्रको अपने समाजमें लेते हैं। किन्तु डोम, भंगी आदि निकृष्ट जातिको नहीं लेते। दूसरे हिंदूको समाजमें लेते समय उसका मस्तक मुड़ा देते हैं और पीछे आस पासकी किसी पुण्यसलिला नदीमें नहलवा आते हैं। वह व्यक्ति बादमें सत्यनारायणकी पूजा करके समाजके ब्राह्मणोंको भोजन और दक्षिणा देता है।

ये लोग शिव, विष्णु, कार्त्तिकेय और सभी प्रकारकी शक्ति मूर्त्तिकी उपासना करते हैं। मैथिल और शाकद्वीपी जो सब ब्राह्मण रुपयेके लोभसे इनकी पुरोहिताई करते हैं वे धोबिया-ब्राह्मण कहलाते और समाजमें हेय समझे जाते हैं। जो सब धोबी वैष्णव-धर्म ग्रहण कर वैरागी होते हैं उनके स्वतन्त्र मन्त्रगुरु हैं।

हिन्दूके उपास्य देवताको छोड़ कर ये लोग गाड़ीभुईयां आदि उपदेवताकी भी पूजा करते हैं। श्रावणपञ्चमीमें भी बड़ी धूमधामसे उक्त दोनों देवताकी पूजा होती है। इसके सिवा जानकी, गोसांई, रामठाकुर और आषाढ़संक्रान्तिमें घोसी पचांईकी पूजा करते हैं। ये लोग कपड़े ढोनेके लिये गदहा रखते हैं। इस कारण 'धोबीका गदहा' कह कर एक प्रवाद भी प्रचलित है।

वस्त्रादि धोनेमें ढाकाका धोबी सबसे बढ़ा चढ़ा है। आज भी दूर दूर देशसे धोबीके लड़के वहां धोबीका काम सीखने आते हैं। ये लोग पहले बकरेकी विष्ठा और चूने मिले हुए जलमें मैला कपड़ा भिगो लेते हैं। पीछे सज्जी वा साबनके जलमें सिद्ध कर पाट पर फींचते हैं। अनन्तर भट्टी चढ़ा कर फिरसे ठंडे जलमें उन्हें धो डालते हैं। कभी कभी सूती कपड़ेका पीलापन दूर करनेके लिये नील देते हैं। इससे कपड़ा बहुत साफ होता है। ये लोग जलको परिष्कार करनेके लिये उसमें निर्मली (Strychnos potatorum), पुई (Basella) नागफणि (Cactus Indicus) और फिटकरी डालते हैं। ये लोग सूतिका, रजः और अशौचकालीन वस्त्रादि धोते, इस कारण लोग इन्हें अपवित्र समझते हैं। फिर भातके मांड़ वा अरारोटसे कपड़ा फींचनेके कारण ब्राह्मणादि उच्च श्रेणीके हिन्दू धोये हुए कपड़ेको फिरसे साफ जलमें खींच कर पहनते हैं।

२ अंशुक। ३ रजकपत्नी, धोबिन। (त्रि०) ४ रंगकारक, रंगनेवाला।

रजक सरस्वती—एक प्राचीन स्त्री-कवि।

रजगीर (हिं० पु०) फकरा, कूट्टू। कूट्टू देखो।

रजतंत (हिं स्त्री०) शूरता, वीरता।

रजत (सं० क्ली०) रजति प्रियं भवति रज्यत इति वा रन्ज (पृषिरञ्जिभ्यां कित्। उण् ३।१११) इति अतच्, कित्कार्यञ्च। १ रूप्य, चांदी। २ हस्तिदन्त, हाथीदांत। ३ धवल। ४ शोणित, लहू। ५ हार। ६ ह्रद, तालाब। ७ पुराणानुसार शाकद्वीपके अस्ताचल पर्वतका नाम। ८ स्वर्ण, सोना। (त्रि०) ९ लाल, सुर्ख। १० शुक्लवर्णविशिष्ट, सफेद रंगका।

पितृकार्यमें चांदीका बरतन बड़ा प्रशस्त है। सोने, चांदी, तांबेका बरतन भी दिया जा सकता है। सर्वापेक्षा चांदीका बरतन ही पितरोंको अक्षय स्वर्ग देनेवाला है। पितृकार्यकी दक्षिणामें भी रजत (चांदी) देनेकी व्यवस्था है।

"सौवर्णं राजतं पात्रं पितृणां पात्रमुच्यते।
रजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव च॥
राजतैर्भाजनैरेषामथवा रजतान्वितैः।
वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते॥"

(मत्स्यपु० १७ अ०) रौप्य देखो।

रजतकुम्भ (सं० पु०) सोने या चांदीकी कलसी।

रजतकूट (सं० पु०) १ रजतगिरि। २ मलय पर्वतकी एक चोटीका नाम।

रजतगिरि (सं० पु०) रजताचल, कैलास-पर्वत ।

रजतदंष्ट्र (सं० पु०) विद्याधरोंके राजा वज्रदंष्ट्रका पुत्र ।

रजतद्युति (सं० पु०) रजतस्येव द्युतिरस्य । हनुमान् ।

रजतनाभ (सं० पु०) यक्षभेद, पुराणानुसार एक यक्षका नाम ।

रजतनाभि (सं० त्रि०) १ श्वेतनाभियुक्त, जिसकी नाभि सफेद हो । (पु०) २ कुवेरके एक वंशधरका नाम ।

रजतपर्वत (सं० पु०) रजतगिरि, कैलास-पर्वत ।

रजतपात्र (सं० क्ली०) रजतनिर्मितं पात्रं मध्यपदलोपि-कर्मधा० । चांदीका बरतन ।

रजतप्रतिमा (सं० स्त्री०) स्वर्णरौप्यादि धातु द्वारा निर्मित देवमूर्त्ति, वह मूर्त्ति जो सोने और चांदीकी बनी हो । वराहपुराणमें ऐसी ही प्रतिमा बनानेको कहा है ।

रजतप्रस्थ (सं० पु०) रजतस्तन्मयः तद्वत् शुभ्रो या प्रस्थः सानुरस्य । कैलासपर्वत ।

रजतभाजन (सं० क्ली०) रजतनिर्मितं भाजनं । रजतपात्र, चांदीका बरतन ।

रजतमय (सं० त्रि०) रजतात् स्वरूपे मयट् । रजतस्वरूप, चांदी जैसा ।

रजतवाह (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

रजताई (हिं० स्त्री०) सफेदी ।

रजताकर (सं० क्ली०) रजतस्य आकरं । १ चांदीकी खान । २ एक नगरका नाम ।

रजताचल (सं० पु०) रजत प्रधानोऽचल इव, शाकपार्थिवादिवत् समासः । १ रौप्य-पर्वत, चांदीका पहाड़ । २ महादानके अन्तर्गत दानविशेष । कृत्रिम चांदीका पर्वत बना कर यथाविधान दान करना होता है । हेमाद्रिके दानखण्डमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है । यह रजताचलदान नवम महादान है । जो विधिपूर्वक यह दान करते हैं उन्हें चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है ।

यह रजताचल दान उत्तम, मध्यम और अधमके भेदसे तीन प्रकारका है । वित्तानुसार जो जैसा दान करनेमें समर्थ हैं उन्हें वैसा ही दान करना चाहिये । दश हजार पल रजतका बनाया हुआ पर्वत उत्तम, पांच हजारका मध्यम और ढाई हजार पलका बनाया हुआ पर्वत रौप्य-पर्वत होता है । यदि कोई व्यक्ति इसमें अशक्त हो, तो वे विभवानुसार बीस पलसे अधिक रजतका पर्वत बना कर दान कर सकता है ।

"रजतो नवमस्तद्वद्दशमः शर्कराचलः ।
वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः ॥
अतःपरं प्रवक्ष्यामि रौप्याचलमनुत्तमम् ।
यत्प्रसादान्नरो याति सोमलोकं द्विजोत्तम ॥
दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः ।
पञ्चभिर्मध्यमः प्राक्तस्तदर्द्धेनावरः स्मृतः ॥
अशक्तौ विंशतेरूर्द्ध्वं कारयेत् शक्तितः सदा ।
विष्कम्भ पर्वतांस्तद्वत् तुरीयांशेन कल्पयेत् ।
पूर्ववद्राजतान् कुर्य्यान्मन्दरादीन् विधानतः ॥"

(मत्स्यपु० ७ अ०)

रजताचल बना कर उसके चतुर्थांशसे विष्कम्भ पर्वत बनाना होगा । यह दान पर्व या पुण्यके दिन करना होता है । दान-कालका मंत्र इस प्रकार है—

"पितृणां वल्लभं यस्मात् विष्णोर्वा शङ्करस्य च ।
रजतं पाहि तस्मान्नः शोकसंसारसागरात् ॥"

(मत्स्यपु० ७ अ०)

इस दानके फलसे दाता गन्धर्व, किन्नर और अप्सराओंसे परिशोभित हो कर प्रलयकाल तक चन्द्रलोकमें वास करते हैं । ३ कैलास पर्वत ।

रजताद्रि (सं० पु०) रजतमयस्तद्वत् शुभ्रो वा अद्रिः शाकपार्थिवादित् समासः । कैलास पर्वत ।

रजतोपम (सं० क्ली०) १ रौप्यमाक्षिक, रूपामाखी । (त्रि०) २ रजतसदृश, चांदीके समान ।

रजन् (सं० क्ली०) रज्यत इति रजन् (रञ्जे क्युन् । उण् २।७६) इति क्युन् (रजकरजनरजः सूपसंख्यानं । पा ६।४।२४) इति वार्त्तिकोक्तेर्नलोपश्च । १ राग । (पु०) २ ऋषिविशेष । (तैत्तिरीयसं० २।३।८।१)

रजन् (अ० स्त्री०) एक प्रकारका गोंद, राल ।

विशेष विवरण राल शब्दमें देखो ।

रजनक (सं० पु०) १ काम्पिल्लक, कमीला । २ रजन देखो ।

रजनि (सं० स्त्री०) रजन्ति लोका, अत्र रञ्ज बाहुलकादनि (उण् । २।१०२) १ रात्रि, रात । २ वास्तुक, बथुआ नामका साग । ३ हरिद्रा, हल्दी ।

रजनी (सं० स्त्री०) रजनि कृदिकारादिति ङीष् । १ रात्रि, रात । २ हरिद्रा, हल्दी । ३ जतुका लता, पहाड़ी । ४ नीलिनी, नीली । ५ शाल्मली द्वीपकी एक नदीका नाम । (भागवत ५।२०।१०) ६ दारुहरिद्रा, दारु हल्दी । ७ वास्तुक, बथुआ नामका साग । (वैद्यकनि०)

रजनी—रैवतकी पुत्री और वैवस्वतकी स्त्री ।

रजनीकर (सं० पु०) रजनीं करोतीति कृ-ट । चंद्रमा ।

रजनीगन्धा (सं० स्त्री०) रजन्यां गन्धोऽस्याः रात्रौ विकाशात् तथात्वं । स्वनामख्यात श्वेतवर्ण पुष्पविशेष । (Polianthes tuberosa) इसे हिन्दीमें गुलशब्बु, गुलचेरी, गुलसब्बा ; बङ्गालमें रजनी, रजनीगंधा ; तेलगूमें नेल सम्पेङ्गा, वेरुसम्पेङ्गा और ब्रह्ममें हनेथंन कहते हैं। यह पुष्प रातको खिलता है और खुशबू महकता है। दक्षिण-अमेरिका, मेक्सिको, भारत, सिंहल, जावा आदि द्वीपोंमें यह पुष्पवृक्ष उत्पन्न होता है। इसके निर्याससे बढ़िया इतर, गन्धद्रव्य (Essence) और पोमेटम तेल बनता है। यह उष्णवीर्य्य, शुष्क, मूत्रकारक और वमनकारक है। सूखी कलीका चूर्ण गनोरिया रोगमें बहुत लाभदायक है। छोटे छोटे लड़कोंके मुंहमें और शरीर पर यह चूर्ण मक्खन और हल्दीके साथ लगानेसे चर्मरोगमें बहुत लाभ पहुंचता है।

रजनीचर (सं० पु०) रजन्यां चरतीति चर (चरेष्टः । पा ३।२।१६) इति ट । १ राक्षस । २ चौर, चोर । ३ चंद्रमा । (त्रि०) ४ रात्रिविहारक, जो रातके समय चलता या घूमता-फिरता हो।

रजनीजल (सं० क्ली०) रजन्यां जलं । नीहार, कुहरा ।

रजनीद्वय (सं० क्ली०) हल्दी और दारु हल्दी ।

रजनीपति (सं० पु०) रजन्याः पतिः । चंद्रमा ।

रजनीपुष्प (सं० क्ली०) रजन्या हरिद्रायाः पुष्पमिव पुष्पमस्य । १ पूतिकरञ्ज, दुर्गन्धि करंज । २ रजनीगंधाफूल ।

रजनीमुख (सं० क्ली०) रजन्या मुखं । संध्या, शामका वक्त ।

रजनीय (सं० त्रि०) १ मोहकर, मोहनेवाला । २ भोग्य । ३ सुखदायक, सुख देनेवाला ।

रजनीरमण (सं० पु०) रजन्या रमणः । चंद्रमा ।

रजनीश (सं० पु०) चंद्रमा ।

रजनीहासा (सं० स्त्री०) रजन्यां हासो विकाशो यस्याः । शेफालिका पुष्प ।

रजपूत (हिं० पु०) राजपूत देखो ।

रजपूती (हिं० स्त्री०) १ क्षत्रिय होनेका भाव, क्षत्रियत्व । २ वीरता, शूरता ।

रजबली (सं० पु०) राजा ।

रजबाही (हिं० पु०) किसी बड़ी नदी या नहरसे निकला हुआ बड़ा नल जिससे और भी अनेक छोटे छोटे नल निकलते हैं।

रजयित्री (सं० स्त्री०) चित्रकारिणी ।

रजलबाह (हिं० पु०) मेघ, बादल ।

रजवंती (हिं० वि०) वह स्त्री जिसका रजस्राव हो रहा हो, रजस्वला ।

रजवती (हिं० वि०) रजवंती देखो ।

रजवट (हिं० स्त्री०) १ क्षत्रियत्व । २ वीरता, शूरता ।

रजवाड़ा (हिं० पु०) १ राज्य, देशी रियासत । २ राजा ।

रजवार (हिं० पु०) राजाका दरबार, राजद्वार ।

रजवार—बङ्गालकी आदिम-जातिविशेष । छोटानागपुर, बिहार और पश्चिम बङ्गमें इनका वास अधिक है। महिसुरवासी रचेवार वा राजवारोंके साथ इनकी सदृशता देख कर डा० बुकाननने इन्हें द्राविड़ीय अनुमान किया है। ये लोग प्रधानतः कृषिजीवी हैं।

सरगुजा और उसके आस पासके सामन्त राज्यवासी रजवार अपनेको पतित क्षत्रिय बतलाते हैं। स्वजाति भ्रष्ट होनेके बाद कृषिवृत्तिका अवलम्बन कर ये लोग असभ्य जंगली जातिके नृत्य-गीतादि जातीय आमोद-प्रमोदमें शामिल हो गये हैं। विहारवासी रजवार अपनेको भुइंयाकी एक शाखा कहते हैं। उनके मुखसे सुना जाता है, कि रजवार और मुसहर एक ऋषिके दो सन्तान थे। रजवार लोग सैनिक वृत्तिका अवलम्बन करनेके कारण इस सम्मानजनक उपाधिसे भूषित हुए और मुसहर लोग चूहे खानेके कारण समाजमें निन्दनीय हो गये हैं। बङ्गालके रजवार, कोल और कुर्मी जातिके संस्रवसे अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं। मानभूमवासी रजवारोंका कहना है, कि नागपुरमें एक राजा-

के दो पुत्र और दो कन्या थीं। बड़े पुत्रके साथ बड़ी कन्याका यथाशास्त्र विवाह हुआ, किन्तु छोटा भाई और बहन दोनों दूसरी जगह भाग गये। राजाके मरने पर दोनों भाई सिंहासनको ले कर झगड़ने लगे। आखिर यह स्थिर हुआ, कि किसी निर्दिष्ट दिनमें दोनोंमेंसे जो सबसे पहले राजसभामें पहुंचेगा, वही सिंहासन पावेगा। तदनुसार उस दिन छोटा भाई घोड़े पर चढ़ कर अपने घरसे चला। नागपुरके रास्तेमें सोनेके रंगका एक केंकड़ा दिखाई दिया। उसे पकड़नेके लिये उसने घोड़ेको एक पेड़में बांध दिया और आप उसकी ओर दौड़ा। कुछ दूर जानेके बाद चीलका चित्कार उसे अपने भागते हुए घोड़ेके शब्दके जैसा मालूम हुआ, सो वह वहांसे लौटा। इस प्रकार विलम्ब हो जानेसे वह ठीक समय पर राजसभामें न पहुंच सका। निराश हो कर वह घर लौट आया। पीछे उसके वंशधर रजवार कहलाने लगे।

इनके मध्य अङ्कुकार, छापवार, शिकारिया, सुकुलकाड़ा, बड़गड़ी, मभाल तुरिया और बेड़ा रजवार नामक कई थाक तथा भोगता, छापा, छिरा, डुरीहर-योगी, करहार, काश्यप, कटवार, खरकवार, लथौर, लोहरथेंगी, मभिया, मारिक, मतवारा, नाग, ऋषि, शङ्कुक और सिंह नामक स्वतन्त्र वंश या गोत्र हैं।

इनमें बाल्य और यौवन-विवाह प्रचलित है। बहुविवाह भी चलता है। विधवा सगाई प्रथासे देवरके साथ विवाह कर सकती हैं। गया और शाहाबाद जिलावासी रजवारोंमें केवल पुत्रहीन विधवाओंका ही विवाह होता है। कहीं कहीं इस नियमका व्यतिक्रम भी देखा जाता है। चरित्र-दोषसे छोड़ी गई स्त्रियां फिरसे विवाह कर सकती हैं। कन्यागणकी विवाह-प्रथा कुर्मियों-सी है। सिन्दूर-दान ही विवाहका प्रकृष्ट बन्धन है।

मैथिल और ज्योतिष वर्णब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। बिहारके रजवार गोराइया, दिहवार, जगदम्बा और नाना उपदेवताकी पूजा करते हैं। ये लोग शवदेहको जलाते और ग्यारहवें दिन श्राद्ध करते हैं।

ये लोग हिंदू-समाजमें हेय समझे जाते हैं। ब्राह्मण इनके हाथका जलग्रहण नहीं करते, केवल पुरोहित ही इनके हाथका मिष्टान्नादि खाते हैं। वैष्णव ब्रह्मचारी इनके मन्त्र-गुरु होते हैं।

रजस् (सं० क्ली०) रज्यते रज तीति रन्ज (भूरञ्जिभ्यां कित्। उण् ४।२१६) इत्यसुन्। १ वह रक्त जो स्त्रियों और स्तन्यपायी जातिके मादा प्राणियोंके योनिमार्गसे प्रति मास निकलता है। पर्याय—पुष्प, आर्त्तव, ऋतु, कुसुम, रज। (शब्दरत्ना०)

प्राणियोंका देहस्थित अव्यापन्न रस (जिस रसकी कुछ भी विकृति नहीं हुई है) सुप्रसन्न तेज द्वारा रञ्जित हो कर रक्त कहलाने लगता है। इस रससे स्त्रियोंके शरीरमें रज नामक रक्त उत्पन्न होता है। वह रज बारह वर्षसे निकलने लगता है और पचास वर्षमें क्षयको प्राप्त होता है। स्त्रियोंके शरीरमें रजका सञ्चार होनेसे स्तन, गर्भाशय और योनि धीरे धीरे बढ़ने लगती है।

स्त्रियोंके बाल्यापगमसे जब दोनों स्तन पीनोन्नत और योनि बढ़ जाती है, तब जरायु-कोषसे जो पतला और सफेद रक्त निकलता है उसे रज कहते हैं। बोलचालमें इसका नाम स्त्री धर्म या ऋतुका आना है। प्रतिमासमें एक बार करके यह रक्त-स्राव होता है। वह यदि खरहेके रक्त वा लाहके जलके जैसा हो तथा कपड़ेमें उसका दाग लगनेसे धोनेके बाद यदि कुछ भी चिह्न न रहता हो, तो उस रजको निर्दोष समझना चाहिये। रोगशोकवर्जित परिपुष्टाङ्गी स्त्रियोंके प्रायः बारह वर्षसे ही रजकी प्रवृत्ति होती है और पचास वर्षके बाद वह निवृत्त होता है। शरीर तन्दुरुस्त नहीं रहनेसे पचास वर्षके भीतर ही रजोनिवृत्ति हो सकती है। रजःप्रवृत्तिके प्रथम दिनसे ले कर १६ दिन तक ऋतुकाल है। यही समय गर्भग्रहणका उपयुक्त समय है। १६ दिनके बाद उसे गर्भग्रहणकी शक्ति नहीं रहती। स्त्रियोंके प्रकृति भेदसे ऋतुकालमें भी परिवर्त्तन होता है।

स्त्री-धर्मकालमें जरायुसे तीन दिन तक रजो-रक्त निकलता रहता है। किसी किसी स्त्रीके ५-७ दिन तक बराबर जारी रहता है। इन तीन दिनोंमें कमसे कम आध पाव, किसीके मतसे पाव या डेढ़ पाव रक्त निकलता है। जो सब स्त्री स्वभावतः अत्यन्त तेजस्विनी और कामातुरा हैं तथा आमोद-प्रमोदमें दिन बिताती हैं, उनका ऋतुकाल अपेक्षाकृत दीर्घ होता और

रक्त भी अधिक निकलता है। जरायुसे रक्त न निकल कर किसी किसी स्त्रीके नाक, फेफड़े, मलद्वार अथवा स्तनसे निकलता है, किन्तु ऐसी घटना बहुत कम देखनेमें आती है। इस रजके दूषित होनेसे गर्भ नहीं रहता तथा नाना प्रकारकी पोड़ा होती है।

रजोरक्त कुणपगन्धि, ग्रन्थिसदृश, पूतिपूयसदृश, क्षीण तथा मूत्र वा पोवके सदृश होनेसे असाध्य, तद्भिन्न अन्य लक्षण होनेसे साध्य होता है। यह रक्त ग्रन्थिभूत होनेसे पाढ़ा, त्रिकटु और कूटज, इनका क्वाथ सेवन तथा दुर्गन्ध, पीप वा मज्जा सदृश होनेसे कपूर वा चन्दनका क्वाथसेवन हितकर है। (सुश्रुत शरीरस्था० १ अ०) स्त्री दृष्टरजस्का होनेसे ही शुद्ध होती है अर्थात् रजोधर्मके बाद वे धर्मकर्मकी अधिकारिणी होती हैं।

"रजसा शुध्यते नारी काष्ठन्तु ततूक्षयात् तथा।
ताम्रन्तु अम्लयोगेन पन्था वातेन शुध्यते॥" (स्मृति)

स्त्रियोंके रज होनेसे तीन दिन अशौच होता है, चौथे दिन वे शुद्ध होती हैं। स्वामी और पुत्रके रहते यदि रजोधर्मविशिष्ट स्त्रीकी मृत्यु हो जाय, तो उसका वृषोत्सर्ग न हो कर चन्दनधेनु होती है। वैसी स्त्रीको शास्त्रमें बहुत भाग्यवती बताया है।

आर्त्तव और ऋतु शब्द देखो।

२ प्रकृतिका गुण-विशेष। रजोगुण दुःखजनक गुण है। इसका धर्म, काम, क्रोध, लोभ, मान और दर्प है।

"काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥"

(गीता ३।३७ अ०)

काम और क्रोध रजोगुणसे उत्पन्न होता है। इसे महारिपु जानना चाहिये।

रजोगुण चलधर्मविशिष्ट और उपष्टम्भक है। एकमात्र रजोगुण ही तम है। यह सत्त्वगुणको परिचालित करता है, उसीसे सत्त्व और तम अपना अपना कार्य करता है। रज, गुरु और लघुका समावेशसाधक, उपष्टम्भक, बाधा और बलका समावेशकारक, चलनशील और दुःखात्मक है तथा इसके भी शोकादि नाना प्रकारके भेद हैं। (सांख्यका० १३)

जिस शक्तिसे उत्तेजना, प्रेरणा वा कार्योन्मुखता उत्पन्न होती है वही शक्ति उपष्टम्भक है। चलनशील वस्तुमात्र ही उपष्टम्भक होती है। अग्निका प्रसर्पण, वायुका प्रवाहण, मनका चाञ्चल्य और कार्य करनेके लिये व्यस्तता तथा इंद्रियोंका अपने अपने विषयमें प्रधावन, इन सब कार्योंके प्रति रजोगुणकी उपष्टम्भकता ही एकमात्र कारण है।

रजः ही निश्चलसत्त्व और तमोगुणको परिचालित करता है, इस कारण यह चलनस्वभाव है। रजः जिसमें अच्छी तरह वा अनियमसे अपनी कार्यकारिता दिखा नहीं सकता, तम उसका उपाय कर देता है। रजः परिचालक है सही, पर तम और सत्त्वको यथेच्छभावमें परिचालन करनेकी उसमें शक्ति नहीं है। तम अपने गुरु भार द्वार रजकी परिचालना शक्ति परिमित कर रखता है, अपरिमित होने नहीं देता। (सांख्यदर्शन)

प्रकृति शब्द देखो।

३ पराग। ४ रेणु, धूल। यह निषिद्ध और अनिषिद्धके भेदसे दो प्रकारका है। गरुड़पुराणमें लिखा है, कि अज, खर, ऊंट और मेष इनका रज तथा सम्मार्जनी रज (झाड़ूकी धूल) अशुभ और पापजनक है। यह धूल शरीरमें लगनेसे अशुभ होता है। घोड़े, रथ, धान, गो और पुत्रके शरीरकी धूल शुभ है, शरीरमें लगनेसे कोई दोष नहीं होता। ५ रात्रि, रात। ६ उदक, जल। ७ भुवन, लोक। ८ ज्योति, प्रकाश।

रजस (सं० त्रि०) १ अपवित्र। २ जो मैलासे भरा हो, गन्दा।

रजसानु (सं० पु०) रज्यतेऽस्मिन्निति रन्ज 'असानुः सहिमन्दिभ्यां वृधिरञ्जिभ्यां तु किदर्शेरशंश्च' इत्युणादिकोष टीकाकृत्सूत्रोक्तेः असानुप्रत्ययः। १ मेघ, बादल। २ चित्त। (उज्ज्वल १।७४)

रजस्क (सं० त्रि०) रजोगुणयुक्त, रजोयुक्त।

रजस्तमस्क (सं० त्रि०) रजः और तमोगुणयुक्त।

(भागवत ७।१।११)

रजस्तमोमय (सं० त्रि०) रजस्तमः स्वरूपे मयट्। रजः

और तमोगुण स्वरूप, मूर्त्तिमान रजः और तमोगुण।

रजस्तर (सं० त्रि०) पार्थिवधूलिका प्रेरक, मिट्टी भेजनेवाला।

रजस्तोक (सं० पु० क्ली०) १ गृध्नुता। २ लोभ।

रजस्थ (सं० त्रि०) रजोगुणमय वा परागमय धूलियुक्त।

रजस्वल (सं० पु०) रजोऽस्त्यस्तीति रजस् (रजः कृष्यासुति परिषदो वलच्। पा ५।२।११२) इति वलच्। १ महिष, भैंस। (त्रि०) २ रजोयुक्त। ३ रजोगुणयुक्त। ४ स्पृहयालु।

रजस्वला (सं० स्त्री०) रजस्वल-टाप्। रजोयुक्ता, वह स्त्री जिसके मासिक-धर्म होता हो। पर्याय—स्त्रीधर्मिणी, अवी, आत्तेयी, मलिनी, पुष्पवती, ऋतुमती, उदक्या, तुरी, पुष्पहासा, पुष्पिता, अवीरा, विफली, निष्कली, म्लाना, पांशुला।

रजस्वला अवस्थामें स्त्रीको स्पर्श नहीं करना चाहिये, उस समय वह अस्पृश्या है। यदि कोई मोहवशतः करे तो उसे प्रायश्चित्त करना होगा। प्रायश्चित्तका विधान इस प्रकार है,—ब्राह्मणी यदि रजःस्वला ब्राह्मणीको स्पर्श करे, तो एक दिन उपवास और पञ्चगव्य भोजन द्वारा उसकी शुद्धि होती है। क्षत्रियाणी यदि ब्राह्मणीको स्पर्श करे, तो तीन रात उपवास और पञ्चगव्य भोजन; वैश्या पञ्चरात उपवास और पञ्चगव्य भोजन और शूद्रा छः रात और पञ्चगव्य-भोजन द्वारा विशुद्ध होती है। ये कामतः अर्थात् इच्छा करके यदि स्पर्श करे तो ऊपर लिखे अनुसार प्रायश्चित्त करना होगा। यदि उसमें असमर्थ हो, तो उसका आधा अवश्य करे। ब्राह्मणीके असवर्णा रजस्वलाका स्पर्श करने पर वह यथाक्रम तीन दिन, पांच दिन और छः दिन उपवास और पञ्चगव्य-भोजन करे। यह भी कामतः जानना होगा, अकामतः इसका आधा बताया है। रजस्वला स्त्री चौथे दिनमें विशुद्ध होती है। अतएव प्रथम तीन दिनके भीतर स्पर्श करनेसे ही उक्त नियमसे प्रायश्चित्त करना होता है। (शुद्धितत्त्व)

रजस्वला स्त्री चौथे दिन केवल स्वामीके पास ही विशुद्ध होती है। किन्तु अन्य किसी दैव वा पैत्र कार्यमें उसका अधिकार नहीं रहता, पांचवें दिन वह उन सब कामोंकी अधिकारिणी होती है।

"शुद्धा भर्त्तुश्चतुर्थेऽह्नि अशुद्धा दैवपैत्रयोः।
दैवे कर्मणि पैत्रे च पञ्चमेऽहनि शुद्ध्यति॥" (शुद्धितत्त्व)

रजस्वला होने पर उनके कर्त्तव्यका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—रजस्वला स्त्री रजः प्रवृत्तिके प्रथम दिनसे ब्रह्मचर्यका अवलम्बन करे। इस अवस्थामें दिवानिद्रा, अञ्जन, अश्रुपात, स्नान, अनुलेपन, तैलादि मर्दन, नखच्छेदन, धावन, जोरसे हँसना वा बोलना, उच्च शब्द सुनना, अवलेखन, वायुसेवन और परिश्रम ये सभी वर्जनीय हैं। क्योंकि, इससे गर्भका अनिष्ट हो सकता है; अर्थात् गर्भधारण करनेसे दिवानिद्रासे सन्तान निद्राशील, अञ्जन लगानेसे अंधा, अश्रुपातसे विकृत दृष्टि, स्नानानुलेपनसे दुःखशील, तैलादि मर्दनसे कुष्ठी, नखच्छेदनसे कुनखी, दौड़नेसे चञ्चल, बहुत बोलनेसे प्रलापी, बहुत सुननेसे बधिर, अवलेखनसे चञ्चल, वायुसेवन और परिश्रमसे उन्मत्त तथा बहुत हँसनेसे दांत, जीभ, तालु और ओष्ठ काले होते हैं। अतएव रजस्वला अवस्थामें इन सबका परित्याग करना अवश्य कर्त्तव्य है। उस समय कुशासन पर सोना, करतल, शराव वा पत्रादिमें भोजन करना नितान्त आवश्यक है। रजस्वला अवस्थामें स्वामि-समागम बिलकुल निषिद्ध है।

(सुश्रुत शारीरस्था० १ अ०)

धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि रजस्वला तीन दिन अशुचि रहती है। वह अञ्जन न लगावे, जलमें अवगाहन न करे, जमीनमें न सोवे। दिनमें सोना, आग छूना, रस्सी बांटना, दांत धोना, मांस खाना, ग्रहनक्षत्र देखना, हँसना, परिश्रम करना, ये सब कार्य भी उनके लिये वर्जनीय हैं। अञ्जलि अथवा कांसे, तांबे वा लोहेके बरतनमें जलपान करना भी उचित नहीं है।

स्त्रियोंके रजः होनेके बाद यदि फिरसे १६ दिनके भीतर रजोदर्शन हो, तो वे सिर्फ एक दिन अशुचि रहती हैं। बीस दिनके बाद होनेसे पूर्वोक्त तीन दिन अशौच होगा।

"एकोनविंशतेरर्वाक् एकाहं स्यात्ततो द्व्यहं।
विंशप्रभृत्युत्तरेषु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्॥" (आह्निकतत्त्व)

पहले कह आये हैं, कि रजस्वला अवस्थामें पुरुषसहवास बिलकुल निषिद्ध है। इसका विषय वैद्यकशास्त्रमें

इस प्रकार लिखा है,—स्त्रियोंकी रजःप्रवृत्तिके प्रथम दिन गमन करनेसे पुरुषका आयुक्षय होता है और उस समय यदि गर्भ रह जाय, तो वह गर्भ प्रसवकालमें स्राव हो जाता है। दूसरे दिन गमन करनेसे भी उसी प्रकार स्राव होता या सूतिकागृहमें सन्तान नष्ट हो जाती है। तीसरे दिन गमन करनेसे उक्त फल वा सन्तान असम्पूर्णाङ्ग अथवा अल्पायु होती है। चौथे दिन करनेसे सन्तान सम्पूर्णाङ्ग और दीर्घायु होती है। जिस प्रकार नदी-स्रोतके प्रतिकूल कोई वस्तु फेंकनेसे वह उस ओर न जा कर लौट आती है, वीज भी उसी प्रकार प्रवेश न करके लौट आता है। अतएव ऋतुकालमें तीन दिन गमन न करे। (सुश्रुत शारीरस्था० १ अ०)

धर्मशास्त्र और पुराणमें भी रजस्वला स्त्री-गमनको अत्यन्त पापजनक कहा है। रजस्वला अवस्थाके प्रथम दिन गमन करनेसे ब्रह्महत्याका चौथाई भाग पाप होता है तथा वे निन्दनीय, देव और पैत्रकार्यमें अनधिकारी होते हैं। द्वितीय और तृतीय दिन कामतः गमन करनेसे ब्रह्महत्याका पाप होता तथा यावज्जीवन दैव और पैत्र कार्यसे अधिकार जाता रहता है।

(ब्रह्मवैवर्त्त पु० श्रीकृष्णजन्मखं० ५६ अ०)

रजस्वला स्त्री-गमन करनेसे बल, कान्ति और सौभाग्यका नाश होता है। महाभारत मौसलपर्वके ८वें अध्यायमें लिखा है,—अर्जुन द्वारकासे लौटते समय जब वेदव्यासके आश्रममें पहुंचे तब व्यासदेवने उनसे पूछा था, 'हे अर्जुन! तुम ऐसा कान्तिहीन क्यों दिखाई देते हो, क्या रजस्वला स्त्रीके साथ तो गमन नहीं किया है? रजस्वला स्त्रीके साथ गमन करनेसे प्रायश्चित्त करना होता है।'

प्रायश्चित्त शब्द देखो।

ज्योतिषमें लिखा है, कि रविवारको प्रथम रजस्वला होनेसे विधवा, सोमवारको पतिव्रता, मङ्गलवारको वेश्या, बुधको सौभाग्य, बृहस्पतिको पतिकी श्रीवृद्धि, शुक्रको बहु अपत्य और शनिवारको वन्ध्या होती है।

"आदित्ये विधवा नारी सोमे चैव पतिव्रता।
मङ्गले च भवेद् वेश्या बुधे सौभाग्यमेव च॥
बृहस्पतौ पतिः श्रीमान् शुक्रे चापत्यमेव च।
शनौ वन्ध्या विजानीयात् प्रथमा स्त्रीरजस्वला॥"

(ज्योतिस्तत्त्व)

रजस्विन् (सं० त्रि०) रजोपूर्ण, धूलिमय।

रज़ा (अ० स्त्री०) १ मरजी, इच्छा। २ स्वीकृति। ३ रुखसत, छुट्टी। ४ अनुमति, आज्ञा।

रजाई (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका जाड़ेका ओढ़ना जिसका कपड़ा दोहरा होता है और जिसमें रुई भरी होती है, लिहाफ। २ राजा होनेका भाव, राजापन।

रजाना (हिं० क्रि०) १ राज्यसुखका भोग कराना। २ बहुत अधिक सुख देना, बहुत अच्छी तरहसे रखना।

रजामंद (फा० वि०) जो किसी बात पर राजी हो गया हो, सहमत।

रजामंदी (फा० स्त्री०) राजी या सहमत होनेका भाव, सहमति।

रजि (सं० पु०) १ एक प्राचीन राजा। विष्णुपुराणमें लिखा है, कि एक समय देवासुर-संग्राम उपस्थित हुआ। देवोंने ब्रह्माके पास जा कर पूछा, कि इस देवासुर-संग्राममें कौन पक्ष विजयी होगा। ब्रह्माने उत्तरमें कहा, जिस पक्षका नेता राजा रजि होगा। दैत्यगण राजा रजिके पास सहायताके लिये उपस्थित हुए। रजिने कहा,—मैं सहायता देनेको प्रस्तुत हूं; परन्तु देवताओंके परास्त होने पर यदि हमको इन्द्रका पद देना तुम लोग स्वीकार करो। दैत्योंने कहा, कि हम लोग सदा सत्य बोलते हैं। हमारे इन्द्र प्रह्लाद हैं, उन्हींके लिये हम लोग उद्योग करते हैं। अतएव आपकी बातोंको हम स्वीकार नहीं कर सकते। यह कह कर दैत्य चले गये। देवताओंने आ कर उनसे सहायता मांगी। रजिने उन लोगोंसे भी यही कहा। युद्धमें जा कर रजिने दैत्योंका विनाश किया। तदनन्तर इन्द्र आये और उनके पैरों पड़ कर उन्हें प्रसन्न किया। रजि उनकी बातोंसे प्रसन्न हो गये और इन्द्र हीको इन्द्रपद पर रहने दिया। रजिके अतिशय बलशाली पांच सौ पुत्र हुए। (विष्णुपुराण ४।८ अ०) २ राज्य। (स्त्री०) ३ कन्याविशेष। "त्वं रजि पिठीनसे दशस्यन" (ऋक् ६।२६।६) 'रजि एतदाख्यां कन्यां राज्यं वा' (सायण) ४ रज्जु, डोरी।

रजिया (हिं० स्त्री०) १ अनाज नापनेका एक मान जो प्रायः डेढ़ सेरका होता है। २ काठका वह बरतन जो इस मानका होता है।

रजिया बेगम—दिल्लीकी पठान साम्राज्ञी।

रिजिया सुलताना देखो।

रजिष्ट्रार (अ० पु०) १ वह अफसर जिसका काम लोगोंके लिखित प्रतिज्ञापत्रों या दस्तावेजोंको कानूनके मुताबिक रजिष्ट्री करना अर्थात् उन्हें सरकारी रजिस्टरमें दर्ज करना हो। २ वह उच्च कर्मचारी या अफसर जो किसी विश्व-विद्यालयमें मंत्रीका काम करता हो।

रजिस्टर (अ० पु०) अङ्गरेजी ढंगकी बही या किताब आदि जिसमें किसी मदका आय व्यय अथवा किसी विषयका विस्तृत विवरण, सिलसिलेवार या खानेवार लिखा जाता हो।

रजिस्टरी (अ० स्त्री०) १ किसी लिखित प्रतिज्ञापत्रको कानूनके अनुसार सरकारी रजिष्टरोंमें दर्ज करानेका काम। प्रायः सभी देशोंमें यह नियम है, कि बैनामे, दस्तावेज तथा इसी प्रकारके और सब कागज-पत्र लिखे जानेके उपरान्त सरकारी रजिस्टरोंमें दर्ज करा लिये जाते हैं। इससे लाभ यह होता है, कि उस कागजमें लिखी हुई सब बातें बिलकुल पक्की हो जाती हैं और यदि कोई पक्ष उन बातोंके विपरीत कोई काम करता है, तो वह न्यायालयसे दंडका भागी होता है। यदि मूल कागज किसी प्रकार खो जाय, तो उसके बदलेमें आवश्यकता पड़ने पर रजिष्टरीवाली नकलसे भी काम चल जाता है। २ चिट्ठी, पारसल आदि डाकसे भेजनेके समय डाकखानेके रजिस्टरमें उसे दर्ज करानेका काम जिसके लिये कुछ अलग फीस या दाम देना पड़ता है। इस प्रकारकी रजिष्टरीसे यह लाभ होता है, कि रजिष्टरी कराई हुई चीज खोने नहीं पाती और यदि खो जाय, तो डाकखाना उसके लिये जिम्मेवार होता है। यदि पानेवाला किसी समय उस चिट्ठी या पारसल आदिके पानेसे इनकार करे, तो उसके विरुद्ध डाकखानेसे रजिष्टरीका प्रमाण भी दिया जा सकता है।

रजीडेंट (अ० पु०) रेजिडेंट देखो।

रज़ील (अ० वि०) छोटी जातिका, नीच।

रजु (सं० स्त्री०) रज्जु देखो।

रजेषित (सं० त्रि०) उष्ट्र वा गर्दभ द्वारा आनीत, ऊंट या गदहेसे लाया हुआ।

रजोगुण (सं० क्ली०) रज एव गुणः। प्रकृतिका वह स्वभाव जिससे जीवधारियोंमें भोग-विलास तथा दिखावेकी रुचि उत्पन्न होती है, राजस। यह सांख्यके अनुसार प्रकृतिके तीन गुणोंमेंसे एक है, जो चंचल और भोगविलास आदिमें प्रवृत्त करनेवाला कहा गया है।

प्रकृति और रजस् शब्द देखो।

रजोगोत्र (सं० पु०) पुराणानुसार वशिष्ठके एक पुत्र।

रजोग्रहि (सं० त्रि०) रजोग्रहणकारी।

रजोदर्शन (सं० क्ली०) रजसो दर्शनं। स्त्रियोंका मासिक धर्म, रजस्वला होना।

रजोधर्म (सं० पु०) स्त्रियोंका मासिक धर्म।

रजोबल (सं० क्ली०) रज एव बलति संवृणोतीति, बलच्। अन्धकार।

रजोभक (सं० पु०) बुरी बातसे रोकनेवाला, निषिद्ध कर्म करने पर सावधान करनेवाला।

रजोमेध (सं० पु०) धूलिका मेघ।

रजोरस (सं० क्ली०) अन्धकार, अंधेरा।

रजोरोध (सं० क्ली०) रजोनिर्गम-निवारण। कांजीके साथ जवा-फूल पीस कर और लताफटकीके पत्तेको भून कर अथवा तण्डुलके साथ दूबका पीठा बनानेसे रज रुक जाता है। इसे रजोनिवर्त्तक योग कहते हैं। रसांजन, हरीतकी और आंवलेको चूर्ण कर ठंढे पानीके साथ खानेसे रजोलोप होता है तथा गर्भोत्पत्तिकी आशंका नहीं रह जाती।

रजोहर (सं० पु०) रजो हरतीति हृ (हरतेऽनुद्यमनेऽच। पा ३।२।९) रजक, धोबी।

रज्जव्य (सं० क्ली०) वह वस्तु जिससे रस्सी तैयारकी जाय।

रज्जिल—एक प्रतिहार-सामन्तराज।

रज्जु (सं० स्त्री०) सृज्यते रच्यते इति सृज (सृजेरसुम्च। उण् १।१६) इति उ, असुमागमश्च, धातुसकालोपश्च आगम सकारस्य यशात्वं दकार, तस्यापि जुत्वं जकारं अप्राणि जातेश्चार-रज्ज्वादीनामिति [illegible]पनात् न ऊङ्।

१ बन्धनसाधन वस्तु, रस्सी, जेवरी। पर्याय—शुल्ब, वराटक, वटी। गुण—शुल्ला, शुल्व, श्रुत्व, श्रुल्वा, शुल्वी, सुम्ब, वराट, पटाकर, वटीगुण। (अमर और भरत)

रज्जु चुरानेवाला तीन दिन थोड़ा दूध पीवे, तो उसके उस पापका प्रायश्चित्त होता है। (मनु ११।१६९) २ केशवेणी, स्त्रियोंके सिरको चोटी। ३ घोड़ेकी लगाम की डोरी, बागडोर।

रज्जुकण्ठ (सं० पु०) १ पाणिनिका शौनकादि गणोक्त एक शब्द। २ एक प्राचीन आचार्यका नाम।

रज्जुदाल (सं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष।

(शतपथब्रा० १३।४।४।६)

रज्जुदालक (सं० पु०) एक प्रकारका जलचर पक्षी। इस पक्षीका मांस खाना शास्त्रमें निषिद्ध कहा है। यदि कोई कामतः खा ले तो उसे तीन दिन तक उपवास कर पापका प्रायश्चित्त करना होता है।

"कलविङ्कं सकाकोलं कुरवं रज्जुदालकं।
मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं वसेत्॥"

(याज्ञवल्क्यस० १।१७४)

रज्जुवाल (सं० पु०) मनुके अनुसार एक प्रकारका पक्षी।

रज्जुभार (सं० पु०) १ पाणिनिका शौनकादि गणोक्त शब्दविशेष। २ जेवरीका बोझ।

रज्जुशारद (सं० त्रि०) उदक, जल।

रज्जुसर्ज (सं० पु०) रज्जुस्रष्टा, वह जो रस्सी बांटता हो।

रञ्जक (सं० क्ली०) रञ्जयतीति रन्ज-णिच्-ण्वुल्। १ हिंगुल, ईंगुर। (पु०) २ कम्पिल्लक, कमीला। ३ प्रीतिजनक। ४ वस्त्रादि रागकर्त्ता, रंगरेज। ५ सुश्रुतके अनुसार पेटकी एक अग्नि जो पित्तके अन्तर्गत मानी जाती है। कहते हैं, कि यह यकृत् और प्लीहाके बीचमें रहती है और भोजनसे जो रस उत्पन्न होता है उसे रंजित करती है। ६ भल्लातक वृक्ष, भिलावां। ७ नकरञ्जनी, मेंहदी।

रञ्जन (सं० क्ली०) रज्यतेऽनेनेति रन्ज करणे ल्युट्। १ रक्तचन्दन, लाल चंदन। २ हिंगुल, ईंगुर। रञ्ज-णिच् भावे ल्युट्। ३ प्रीतिजनन चित्तको प्रसन्न करनेकी क्रिया। (पु०) ४ मुञ्जतृण, मूंज। ५ स्वर्ण, सोना। ६ जातीफल, जायफल। ७ पारदरञ्जन द्रव्य, वे पदार्थ जिनसे रंग बनते हैं।

"कनकं निर्म्मलं ताम्रं वापितं रञ्जनेन तु।
कुरुते त्रिगुणं जीर्णं लाक्षारसनिभं रसम्॥"

(रस० चि० ३ अ०)

८ कम्पिल्लकवृक्ष, कमीलेका पेड़। ९ रंगनेकी क्रिया। १० पित्त, सफरा। ११ छप्पय छन्दके पचासवें भेदका नाम।

रञ्जनक (सं० पु०) रञ्जन-कन्। कटफल, कटहल।

रञ्जनकेशी (सं० स्त्री०) नीली वृक्ष।

रञ्जनगण (सं० पु०) रञ्जनद्रव्यगण, वे पदार्थ जिनसे रंग बनते है। जैसे,—हल्दी, नील, लाल चन्दन, पतंग, कुसुम, मजीठ, लाह, मेहंदी इत्यादि।

रञ्जनद्रु (सं० पु०) रञ्जयतीति रन्ज-णिच्-ल्यु, रञ्जनश्चासौ द्रुश्चेति। १ अम्लुकवृक्ष। २ धूनक वृक्ष।

रञ्जनी (सं० स्त्री०) रञ्जन-ङीष्। १ ऋषभ-स्वरको तीन श्रुतियोंमेंसे दूसरी श्रुति। २ नीलीवृक्ष। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ४ शेफालिका, निर्गुंडी। ५ हरिद्रा, हल्दी। ६ पर्पटी। ७ नागवल्ली लता। ८ जन्तुका या पहाड़ी नामकी लता।

रञ्जनीपुष्प (सं० पु०) एक प्रकारका करञ्ज या कंजा, पूतिकरञ्ज।

रञ्जनीय (सं० त्रि०) १ जो रंगनेके योग्य हो। २ आनन्ददायक, जो चित्त प्रसन्न करे।

रञ्जित (सं० त्रि०) रञ्ज-क्त। १ जिस पर रंग चढ़ा या लगा हो, रंगा हुआ। २ आनन्दित, प्रसन्न। ३ प्रेममें पड़ा हुआ, अनुरक्त।

रञ्जित (बड़ी)—बङ्गालमें प्रवाहित एक नदी। यह सिकिम राज्यसे निकल कर दार्जिलिङ्ग जिलेके उत्तर और पश्चिम प्रान्त होती हुई (अक्षा० २७° ६´ उ० तथा देशा० ८८° २६´ पू०) तिस्ता नदीमें गिरी है। रङ्गनू और छोटी रञ्जित नामक शाखानदी इसके कलेवरको बढ़ाती है। इसका दोनों किनारा जंगलसे ढका है, कहीं कहीं धानका खेत भी दिखाई देता है।

रञ्जित (छोटी)—बङ्गालमें प्रवाहित एक नदी। यह नेपाल और सिकिम राज्यके मध्यवर्ती सिङ्गालीला गिरि-

श्रेणीसे निकल कर बड़ी रञ्जितमें मिली है। काहेल, असपताल, भोरा, रिल्लिं और शेरजङ्ग नामक कुछ पहाड़ी सोते इसमें आ कर मिल गये हैं। शीत और ग्रोष्म ऋतुमें इस नदीमें भी अधिक जल नहीं रहता। सभी जगह पैदल पार करना होता है।

रञ्जितराय—एक बंगाली कायस्थ कवि। ये प्रसिद्ध वारेन्द्र कायस्थ देवीदास खाँके प्रपौत्र थे। नवाब मुर्शिदकुलीके राज्यकालमें तथा अलीवर्दीके समय तक ये जीवित थे। बचपनसे ही लिखने पढ़नेमें इनका विशेष प्रेम था। धीरे धीरे अरबी फारसी आदि राजकीय भाषा तथा संस्कृत, हिन्दी और बङ्गला भाषामें इन्होंने विशेष पाण्डित्य लाभ किया। पुर्त्तगीज, फरासो और अंगरेज आदि वैदेशिक वणिक्-जातिकी भाषा भी इन्होंने बहुत कुछ सीख ली थी।

नवाब मुर्शिदकुली खाँ राजस्व उगाहनेके लिये प्रत्येक जमींदारके घर अपना कर्मचारी और सेना भेजते थे। इसी कार्यमें रञ्जितराय नियुक्त हुए। इस पद पर काम करनेवालेका नाम अमीन था। नवाबके कार्यानुरोधसे इन्हें कभी कभी दिनाजपुर, रङ्गपुर, राजशाही आदि जिलोंके जमींदारके यहां भी जाना पड़ता था।

कविता-रचनामें ये बड़े सुदक्ष थे। जब जहां जाते थे, वहीं अधिवासियोंके सम्बन्धमें एक एक कविता रच कर रखते थे। इस प्रकार नाना भाषामें कविता लिख कर इन्होंने एक काव्यग्रन्थ प्रणयन किया। उस ग्रन्थका नाम 'बिसतान-केताब' रखा गया। उनकी कविता केवल स्थान और व्यक्तिविशेषमें आवद्ध थी सो नहीं। परमार्थ विषयमें भी उनके बनाये अनेक दोहे पाये जाते हैं।

रञ्जिनी (सं० स्त्री०) रञ्जनी देखो।

रञ्जुवुल—शकवंशीय एक महाक्षत्रप तथा राजा सुदासके पिता। ये ईस्वी सन् १०० वर्ष पहले विद्यमान थे।

शकराजवंश देखो।

रट (सं० स्त्री०) किसी शब्दको बार बार उच्चारण करनेकी क्रिया।

रटन (सं० क्ली०) रट-ल्युट्। कथन, कहना।

रटन (हिं० स्त्री०) रटनेकी क्रिया या भाव, रट।

रटना (हिं० क्रि०) १ किसी शब्दको बार बार कहना। २ जबानी याद करनेके लिये बार बार उच्चारण करना। ३ बार बार शब्द करना, बजना।

रटन्त (हिं० स्त्री०) रटनेकी क्रिया या भाव, रटाई।

रटन्ती (सं० स्त्री०) रट्यते पुण्य-जानकत्वेन कथ्यतेइति रट बाहुलकात् भच् ङीप्। गौणचान्द्र माघीय कृष्ण चतुर्दशी। माघ मासकी कृष्ण चतुर्दशीका नाम रटन्ती-तिथि है। पुराणके मतसे यह दिन बहुत पवित्र है। इस तिथिमें सूर्योदयके समय स्नान करके यम-तर्पण करनेसे सभी पाप दूर होते हैं, तथा कभी यमपुरका दर्शन नहीं होता अर्थात् उसे स्वर्गवास होता है। इस तिथिमें अरुणोदयकालमें स्नान करनेसे शतजन्मकृत पाप उसी समय नष्ट होते हैं। यह तिथिकृत्य अवश्य कर्त्तव्य है (तिथितत्त्व)

इस रटन्ती तिथिमें रातको श्यामापूजा करनी होती है। इससे सभी विघ्न जाते रहते हैं। इस रटन्ती तिथिमें काली पूजा होती है, इस कारण इसको रटन्ती काली भी कहते हैं।

"माघे मास्यसिते पक्षे रटन्त्याख्या चतुर्दशी।
तद्रात्रौ कालिका-पूजा सर्वविघ्नोपशान्तये॥"

(कालिकापु०)

इस वचनानुसार यही स्थिर हुआ, कि केवल रातमें कालीपूजा करनी होगी। किन्तु रातमें किस समय पूजा होगी, वह ठीक ठीक मालूम नहीं हुआ। कोई कोई निम्नोक्त वचनानुसार कहते हैं, कि यह प्रदोष समयमें होगी। काली-पूजाका काल मध्यरात्रिमें निश्चित होने पर भी रटन्ती कालीपूजा प्रदोष समयमें होगी।

"माघे मास्यसिते पक्षे रटन्त्याख्या चतुर्दशी।
तस्यां प्रदोषसमये पूजयेन्मुण्डमालिनीम्॥"

(आचार्य चूड़ामणि-कृत कृत्यतत्त्वार्णव-धृत वचन)

बहुतेरे इस समयको स्वीकार नहीं करते वे। कहते हैं, कि मध्यरात्रि-कालमें ही यह काली पूजा होगी। प्रायः सभी विद्वान् इसी मतके अनुयायी हैं। तन्त्रके निम्नोक्त वचन द्वारा उन्होंने स्थिर किया है, कि मध्यरात्रि ही रटन्ती पूजाका विहित काल है।

"माघे मास्यसिते पक्षे रटन्त्याख्या चतुर्दशी।
तस्यां निशार्द्धसमये पूजयेन्मुण्डमालिनीम्॥"

(भावातन्त्र २७ प०)

"मकरस्थे रवौ कृष्णाचतुर्दश्यां निशार्द्धके ।
पूजयेत् दक्षिणां कालीं धर्मकामार्थसिद्धये ॥"
(उत्तरकामाख्यातन्त्र)

रटित (सं० त्रि०) रट-क्त । १ कथित, कहा हुआ । (क्ली०) २ कथनमात्र, कहना ।

रण (सं० पु० क्ली०) रणन्ति शब्दायन्तेऽत्रेति रण् (ग्रहेति । पा ३।३।५८) इत्यत्र 'वशिरण्योरुपसंख्यानं' इति काशिकोक्त्या अप् । १ युद्ध, लड़ाई । "न कूटैरायुधैर्हन्याद् युध्यमानेरणे रिपून् ।" (मनु ७।९०) २ रमण । "पूजनार्थं रणाय ते सुतः" (ऋक् ८।१७।१२) 'रणाय रमणाय' (सायण) (त्रि०) ३ रमणीय । "रणाय वशमश्विनासनये सहस्रा" (ऋक् १।११६।२१) 'रणाय रमणीयाय ।' (सायण) (पु०) ४ शब्द । ५ गति । ६ दुम्बा नामक भेड़ा जिसकी दुम मोटी और भारी होती है ।

रणक (सं० पु०) १ युद्ध, लड़ाई । २ शब्द ।

रणकुशल (सं० त्रि०) रणमें पण्डित, भारी योद्धा ।

रणकारिन् (सं० त्रि०) रणं करोति कृ-णिनि । १ युद्धकारी, योद्धा । २ शब्दकारी, शब्द करनेवाला ।

रणकृत् (सं० त्रि०) रणं करोति कृ-क्विप् तुक् च । रणकर्त्ता, लड़ाई करनेवाला ।

रणक्षिति (सं० स्त्री०) रणस्य क्षितिः । युद्धभूमि, रणक्षेत्र ।

रणक्षेत्र (सं० क्ली०) रणस्य क्षेत्रं । रणस्थल, लड़ाईका मैदान ।

रणक्षौणि (सं० स्त्री०) युद्धभूमि, रणस्थल ।

रणघण्टासमाकृति (सं० स्त्री०) महाशन ।

रणछोड़ (हिं० पु०) श्रीकृष्णका एक नाम । जरासंधकी चढ़ाईके समय श्रीकृष्ण रणभूमि त्याग कर द्वारकाकी ओर चले गये थे इसीसे उनका यह नाम पड़ा है ।

रणजय (सं० पु०) रणे जय । युद्धमें जय, लड़ाईमें जीत ।

रणजित् सिंह (महाराज)—पञ्जाबके 'सुकरचकिया' मिशल (रियासत)-के प्रभावशाली एक अधिपति । वीरवर महासिंहके पुत्र । इनकी माताका नाम माई मलबाई था । सन् १७८० ई०की २री नवम्बरको पञ्जाब-केशरी रणजित् सिंहने जन्म लिया था । इस समय इनके पिताने रणजित्के जन्मोत्सवके उपलक्षमें सभी सरदारोंको आमन्त्रित किया था और इन सबको बड़ी खातिरदारी की । लाखों भूखोंको अन्न धनसे सन्तुष्ट किया गया । शैशवकालमें रणजित् माताकी निकसारी (Smallpox)-से बहुत पीड़ित हुए थे । इस बीमारीमें इनके जीनेकी कोई आशा न थी । पिताने पुत्रकी आरोग्यके लिये देवी-देवताओंकी कितनी ही मनौती की थी । कई आदमी देवी देवताकी पूजाके लिये ज्वालामुखी आदि दूर देशोंमें भेजे गये, सैकड़ों ब्राह्मणों तथा दीन-दुखियोंको भोजन कराया गया तथा दिल खोल कर धन दौलत लुटाई गई । बहुतोंका विश्वास है, कि देव, ब्राह्मण और दरिद्रोंके आशीर्वादसे ही सिक्ख-सूर्य असमयमें अस्त नहीं हो सके । फिर भी, इस कठिन रोगमें उनकी एक आंख नष्ट हो गई । उनका मुंह भी चेचकके दागसे छा गया । पिताने अपनी जीवितावस्थामें ही सन् १७८५ ई०में कन्हियाकुल-राजलक्ष्मी गुरुबक्स सिंहकी पत्नी सदाकुमारीकी प्रार्थना करने पर पञ्चवर्षीय रणजित्का विवाह राजकुमारी "महताबकुमारी"-के साथ कर दिया । इसी सूत्रमें दो रियासतें परस्पर मित्रतासूत्रमें आबद्ध हुईं । फलतः सुकरचकियाके सरदार रणजित् सिंहकी भावी उन्नतिका पथ उन्मुक्त हुआ । सन् १७९२ ई०में महासिंह गुजरातवाले दुर्गमें परलोक सिधारे । महासिंह देखो ।

उस समय रणजित् सिंहकी उम्र बारह वर्षकी थी । उन्होंने नाममात्रको राजगद्दी हासिल की । उनकी माता, राजमन्त्री और दीवान लखपत रायकी अभिभावकतामें नावालिगका राजकार्य चलने लगा । रणजित्की माता मलबाईके साथ लखपत रायकी प्रेमासक्तिकी बात जान इन दोनोंके संग साथसे अपने दामादका अनिष्ट सोच कर (रणजित्की सास) गुरुबक्सकी पत्नी स्वयं राजकार्यमें हस्तक्षेप करने पर बाध्य हुईं । यथार्थमें इन्हींकी कूटनीति, बुद्धिकौशल और उद्यमसे रणजित् सिक्खशक्तिके शीर्षस्थान पर चढ़नेमें समर्थ हुए थे ।

पिताकी मृत्यु तथा माताकी प्रेमासक्तिके कारण बालक रणजित्की विद्याशिक्षाका कोई यथोचित प्रबन्ध न हो सका । उन्होंने भी शिकार खेलने और इन्द्रियासक्तिमें रत रह कर यौवन-चरितार्थ करनी आरम्भ की । केवल पुस्तक पढ़ना और पत्र लिखना वे जानते थे ।

इस नाबालगीमें ही नकाईके सरदार रामसिंहकी कन्या राजकुमारीके साथ रणजित्ने दूसरा विवाह किया।

लखपत राय, माता मलवाई और सास सदाकुमारी-के शासनमें रह कर रणजित्ने सत्रहवें वर्षमें पदार्पण किया। अब उन्होंने अपने राज्यकी शासन बागडोर अपने हाथमें ले कर अपने पिताके मामा दलसिंहको अपना प्रधान मन्त्री बनाया। महासिंहने मृत्युके समय रण-जित्के शिर पर सरदारी सिरोपा धर कर इन वृद्ध दल-सिंहके हाथ ही रणजित्को समर्पित किया था।

दलसिंहके परामर्शानुसार उन्होंने राजकुलके कलङ्क लखपतरायको केतास-युद्धमें मार डाला। इसके बाद एक दिन माताको लालक मिश्र नामक एक व्यक्तिके साथ अतःपुरमें प्रेमालाप करते देख रणजित् दोनोंको मार डालनेकी कामनासे नङ्गी तलवार ले कर चले। पद-शब्द सुन कर लालक महलसे भाग निकला। किन्तु नङ्गी तलवार हाथमें ले कर रणजित् जब माताके कमरेमें गया, तब माताको आलुलायित-कुन्तला, स्वस्थानभ्रष्टा देख बड़ा ही क्रोधित हुआ। उन्होंने क्रोधोन्मत्त हो लालकके आनेका कारण तथा वह कहां छिपा है, माता-से पूछा। पुत्रमुखसे चरित्रहीनता-व्यञ्जक वाक्यवाणों-से रणजित्की माता जर्जरित हो कर पहले पुत्रको यथो-चित भर्त्सना करती हुई अपने सतीत्व-रक्षार्थ नाना कौशल तथा वाक्यजाल फैलाने लगी। माता पुत्रके बीच कुछ देर तक वाद-विवाद होनेके बाद माताके दुर्वचनोंसे क्रोधित हो रणजित्ने अपनी चमकती हुई तलवारसे माताका सर धड़से उड़ा दिया। इतने दिनोंके बाद दुश्चरित्राके पापका दण्डविधान हुआ। पापका साथी लालक मिश्र अमृतसरमें भाग गया और वहां वह अपने बचनेका उपाय सोचने लगा। अन्तमें जब कोई उपाय न सूझा, तो वह रणजित्की सास सदाकुमारीके शरणापन्न हुआ। सदाकुमारीने पापीको दण्ड दिलाने-में "शरण" शब्दका कुछ भी ख्याल न कर शरणापन्न 'मिश्र'-को रणजित्के हाथ सौंप दिया। रणजित्ने उसे भी माताके पथका पथिक बनाया।

इस समय अहमद शाह अबुल अलीके पौत्र दुर्रानी-सरदार जमान शाह भारतमें साम्राज्य स्थापित करनेके लिये बारम्बार पञ्जाब पर आक्रमण करनेका उद्योग कर रहा था। जमान शाहके उपर्युपरि आक्रमण और अहमद शाहके अत्याचारको स्मरण कर सिख जातिका वीर हृदय भी कम्पित हो उठता था। पहले जब अफगान पंजाब पर आक्रमण करते थे, तब सिक्ख जङ्गल और पहाड़ों पर छिप जाते थे। फिर उनके चले जाने पर फिर वहांसे वे लौटते और लुप्त-जरा करनेमें प्रवृत्त होते थे।

जब शाहजमान सिन्धु नदको पार कर लाहोरके राज-कार्यका परिदर्शन करनेके लिये आगे बढ़ा, तो अन्यान्य सिख सरदारोंके साथ रणजित् भी पहाड़में भागे। वहां जाने पर उनको सब रियासतोंके सरदारोंसे परिचय हुआ। उन्होंने सलाह मशवरा कर मौका देख कर अपने साथियोंको ले सिन्धु नदको पार किया। शाहको लाहोरमें फंसा देख और उसका आना असम्भव समझ रणजित् उसके अधिकृत देशोंके अधिवासियोंसे बल पूर्वक कर वसूल करने लगे। शाहके अपने देश लौट जाने पर पञ्जाब पर रणजित्का प्रभुत्व और प्रभाव फैल गया।

रणजित्की सौभाग्यलक्ष्मीको दिन-दिन उदीयमान देख ईर्षापरायण सहयोगी सरदार उसके बल खर्व करने-में प्रवृत्त हुए। छट्ठा जातिके सरदार हस्मत खाँ रण-जित्का वध करनेके लिये आगे बढ़ा। एक दिन रण-जित् शिकार खेल कर घर लौट रहे थे, उनके साथी कुछ पीछे पड़ गये थे, ऐसे समय हस्मतने अकेला देख वनसे निकल उन पर आक्रमण किया। सौभाग्यक्रमसे हस्मत-की तलवारका वार रणजित्को न लग उनके घोड़ेकी लौहवख्तरसे कसी गर्दन पर लगा। तलवारकी झन-कारसे रणजित् चमक उठे। उन्होंने शत्रुको सामने देख अपनी तलवार खींच कर उस पर आक्रमण किया। मुहूर्त्त भरमें रणजित्की चोटसे हस्मतका मुण्ड धड़से अलग हो गया। सरदारके मरने पर उसके साथी रणजित्के वशमें आ गये। रणजित्ने उसके अधिकृत चन्द्रभागा नदीके किनारेकी भूमि पर अधिकार कर लिया।

इधर रामगढ़िया सरदार यशसिंहने सदाकुमारीके

राज्य पर आक्रमण किया। सदाकुमारीने अपने दामाद्‌को खबर भेज कर सहायताकी प्रार्थना की। कुछ घुड़सवारोंको साथ ले रणजित् सहायताके लिये बताला की ओर चले। यशसिंहकी राजधानी भियानी नगरको घेर कर छः महीने तक काण्डयुद्ध करते रहे। अन्तमें जब वर्षासे किलेकी चारों ओर पानी जमा हो गया, तब वे अपने घर लौट आये।

इससे पहले जब दुर्रानी सरदार शाहजमान पञ्जाबसे भागने लगा, तब उसकी कई तोपें झेलम नदी में गिर पड़ीं। रणजित्‌ने स्वयं अपना दल-बल ले कर उन सब तोपोंको नदीगर्भसे निकलवाया और उन सबको अपने आदमीको मारफत काबूल भेजवा दिया। शाहने प्रसन्न हो कर इनाममें लाहोर नगर रणजित्‌को प्रदान किया। लाहोरका अधिकार पाने पर रणजित्‌का चित्त विचलित हो उठा; किन्तु वे प्राचीन शत्रुके भयसे पहले कुछ करनेमें साहसी न हुए। उस समय प्राचीन शत्रु और प्रबल प्रतिद्वन्द्वी रामगढ़ाधिपति यशसिंहको वृद्ध और दीन देखा तथा घोड़े पर न चढ़ सकनेवाले भङ्गी सरदार गुलाबसिंहके युद्ध-विग्रहमें असमर्थ जान वे प्रसन्न हो उठे। अन्यान्य शक्तिहीन सरदारोंके विषयमें रणजित् जानते थे, कि वे उनके विरुद्ध अस्त्र न उठायेंगे।

आशामें उन्मत्त हो कर रणजित् लाहोर पर अधिकार करनेकी कल्पना कर रहे थे। ऐसे समय हकीम हाकम राय, भाई गुरुबख्शसिंह, मियां आशिक अहमद, मोर सादी मियां, मोहकमदिन, महम्मद बकर, महम्मद ताहिर आदि प्रधान प्रधान और सम्भ्रान्त लाहोर नगर-निवासियोंका एक आवेदनपत्र पहुंचा। इस पत्रको पढ़ कर रणजित् आनन्दित हो उठे। यह गृहविच्छेद ही उनकी अभीष्ट-सिद्धिका मूल था। इस समय लहना सिंह, गुजरसिंह और शोभासिंह नामक तीन सरदारोंके द्वारा लाहोर नगर शासित हो रहा था। लहनाके बाद चेतसिंहके अधिकारके समय नगरवासी प्रधान मुसलमान धनी मियाँ, आशिक महम्मदके दामाद मियां बदुरुद्दीनके साथ नगरवासी क्षत्रियोंका विरोध उपस्थित हुआ। क्षत्रियोंने प्रतिहिंसापरायण हो कर चेतसिंहको लिखा भेजा, कि "बदुरुद्दीन काबूलके अमीर शाहजमानके साथ लुक छिप कर पत्र व्यवहार किया करता है; अतएव यह राजद्रोही है।" चेतसिंहने कुछ भी विचार न कर बदरुद्दीनको कैद कर दिया। मुसलमानोंने बदरकी निर्दोषिताका प्रमाण पेश किया था, किन्तु निष्फल हो गया। इसीसे एक ही मर्मके दो आवेदन-पत्र लिख कर एक रणजित् सिंहके पास तथा दूसरा सदाकुमारीके पास उन लोगोंने भेज दिया।

सास सदाकुमारीकी प्ररोचनासे रणजित्‌ने आशास्रोतमें डुबकी लगाई। युद्धकी तय्यारी होने लगी। चेतसिंहके प्रधान कर्मचारी मियां आशिक महम्मद और मियां मोहकमदीनने रणजित्‌के पास लिख भेजा था, कि आपके आने पर दरवाजा खोल दिया जायगा। आपको नगरमें प्रवेश करने पर बाधा देनेवाला कोई न रहेगा।

ऐसा पत्र पा कर रणजित् अपनी सास सदाकुमारीके घर जा कर युद्धके विषयमें उससे परामर्श करने लगे। सदाकुमारी अपनी अकाली और माजवी नामकी बहादुर फौजोंको ले कर अपने दामाद्‌के साथ लाहोर विजयके लिये चली; उन्होंने अमृतसर दर्शनका बहाना कर लाहोरके लिये प्रस्थान किया। लाहोर आ कर वे अनारकलीमें पड़ाव डाल कर नवाब वजीर खांके बारहद्वारीमें रहने लगे।

रणजित्‌के आनेकी बात सुन लाहोरके सरदार नगरकी रक्षा करनेके लिये तत्पर हुए। वे दिल्ली-दरवाजे, लाहोरी-दरवाजे तथा रोशनाई-दरवाजेको छोड़ कर अन्य दरवाजोंको बहारदीवारसे घेर दिया। साजिशकारी सरदारोंके परामर्शसे रणजित्‌ने सन् १७६६ ई०में लाहोरी-दरवाजेसे अपनी फौजोंके साथ प्रवेश किया। इधर उन्हींके परामर्शानुसार चेतसिंह दिल्लीदरवाजे पर अपनी पूर्ण-शक्तिसे डटा रहा। रणजित् सिंहके नगरमें घुस आनेकी बात तथा फौजोंका कोलाहल सुन कर चेतसिंह उधर ही-की ओर लौटा। किन्तु फौजोंके घुस आने पर चेतसिंह सामने न आ कर किलेमें जा छिपा। दुर्गसे ही चेतसिंह रणजित् पर गोलावृष्टि करने लगा। किन्तु २४ घण्टे युद्ध करनेके बाद चेतसिंहको साजिशका पता लगा। तब दूसरा कोई उपाय न देख उसने रणजित्‌के हाथ आत्मसमर्पण किया। रणजित्‌ने उसको और उसके

परिवारको भरण-पोषणोपयोगी सामान तथा वृत्ति और जागीर दे कर उसे विदा किया। लाहोर नगर अधिकार कर लेनेके बाद रणजित्ने नगरवासियोंके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया था।

रणजित् सिंह लाहोर पर अधिकार जमा कर अपनी राज्यभित्ति दृढ़ करनेमें प्रवृत्त हुए और साथ ही उन्होंने अपनी शक्ति अक्षुण्ण रखनेके लिये उचित प्रबन्ध कर दिया। उन्होंने अपने भुजबलसे नाना स्थानोंको जीत कर एक बड़े भूभाग पर राज्य विस्तार किया था।

इसके बाद जब वे पञ्जाबकी राजधानी लाहोर पर अधिकार कर राज्येश्वर हो गये, तब भी उनके सहयोगी सरदार ईर्षालु हो कर उनसे विद्रोहाचरण करनेमें पराङ्मुख न हुए। रामगढ़िया सरदार यशसिंह अमृतसरके भङ्गी-सरदार गुलाब सिंह, गुजरातके भङ्गी-सरदार साहब सिंह, वजीरावृन्दके योधसिंह और कसुरके निजाम उद्दीन-खां ये कई आदमी मिल कर कई सहस्र सेना ले कर लाहोर पर अधिकार करने पर उद्यत हुए। इधर रणजित् भी अपनी साससे आवश्यकतानुसार सैन्यसाहाय्य ले कर शत्रुपक्षकी गति रोकनेके लिये अग्रसर हुए। यह सन १८०० ई०की घटना है। सास सदाकुमारीकी फौजें लाहोरसे १० कोस दूर पर अवस्थित भसिन गांवमें खेमा खड़ा कर दो मास तक रहीं। सामान्य खण्डयुद्धोंके सिवा विशेष कुछ नहीं हुआ। सरदारोंके तम्बुओंमें 'पानासक्ति' कुछ बढ़ गई। और तो क्या, भङ्गीसरदार गुलाबसिंह पानदोषसे मृत्युमुखमें पतित हुए। उससे भङ्गियोंमें विजातीय घृणा और अश्रद्धाका उदय हुआ। सरदार विरक्त हो कर रणक्षेत्र परित्याग कर चले गये।

बतला ग्रामके निकट रामगढ़िया-सरदार यश सिंहके पुत्र योधसिंहके साथ रणधीरा सदाकुमारीका युद्ध हुआ। इस युद्धमें रणजित्ने सासकी ओरसे रामगढ़िया सरदारका ध्वंस किया था। विजय प्राप्त कर रणजित्-सिंहने महोत्सवसे लाहोर नगरमें प्रवेश किया। लाहोरके सम्भ्रान्त अधिवासियोंने विजेताका समुचित नजर भेंट कर आदर सत्कार किया। बदलेमें सभी सरदारोंको यथोपयुक्त खिलअत दे कर रणजित्ने उन्हें सन्तुष्ट किया।

इसी वर्ष अर्थात् सन् १८०० ई०में रणजित्ने जम्बू जीतनेके लिये यात्रा की। मीरोवाल, नरोवाल और यशरवाल उनके हाथ लगे। जब रणजित् जम्बूशहरके निकट दो कोस पर पहुंचे, तब वहांके राजाने बीस हजार रुपया नकद और हाथी उपहार ले कर उनसे भेंट की। रणजित्ने जम्बूराजको खिलअत दे कर सन्तुष्ट किया और आप वहांसे लौट आये। इसके बाद स्यालकोट और दिलावरगढ़ पर उन्होंने कब्जा कर लिया। दिलावरगढ़के सरदार बाबा केशरोसिंह सोधीको उनके भरण-पोषणके लिये शाहदरा जागीर मिली। इसी तरह रणजित् नाना स्थानोंको जीत लाहोर आये। इसी समय वृटिश-सरकारके नायब यूसुफ अली खाँ हजारों रुपये उपढौकन और मित्रतासूचक पत्र ले कर रणजित् सिंहके दरबारमें आये। उन्होंने अत्यन्त आदरके साथ वृटिश-दूतको स्वीकार किया और बदलेमें स्वदेशोत्पन्न बहुमूल्य वस्तुओंकी भेंट वृटिश सरकारके पास भेजी।

सन् १८०१ ई०में रणजित सिंहने बड़े समारोहके साथ एक दरबार कर 'महाराज'की उपाधि धारण की। इस दरबारमें सभी सामन्तराजे, सरदार, चौधरी, लम्बरदार और गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। इस अभिषेकोत्सवमें रणजित सिंहके कुलपुरोहितने धर्मशास्त्रके अनुसार सब अनुष्ठानोंको सम्पन्न कर कपालमें तिलक लगाया और उलमा लोगोंने उनके सम्मान तथा मङ्गलके लिये स्तुति-पाठ किया था। इसी दिन लाहोरमें टकसाल स्थापित हुआ। इसी दिनसे उनके नामसे (महाराज लिखा हुआ) सिक्का निकलने लगा। इस सिक्केकी दूसरी पीठ पर नानक द्वारा गुरुगोविन्दका आतिथ्य करना, तलवार, स्वस्ति और जयसूचक चिह्न खुदा हुआ था। अभिषेकके दिन जितने सिक्के तय्यार हुए, वे सब दीनदुःखियोंको बांट दिये गये। मुसलमान राजाओंकी तरह महाराज रणजित् सिंहने भी शासन करनेके लिये काज़ी और मुफ्ती निर्वाचित किया। सिवा इसके नगरकी रक्षाके लिये शहर-कोतवाल और दवा इलाज करनेके लिये प्रधान हकीम नियुक्त हुआ। इस समय लाहोरमें महल्लदारी भी प्रचलित हुई। इस प्रथाके अनुसार हरेक महल्लेमें एक प्रधान व्यक्ति मुकर्रर किया

गया। महल्लेभरका भार उसी व्यक्ति पर रहता था। इसी समय लाहोर नगरकी रक्षाके लिये चारों ओरसे चहारदीवारीसे घेर कर उसके नीचे बाहरी ओर खाई खुदवानेका भार मोतीराम पर रखा गया। प्रायः इसी समय गुजरातका भङ्गी-सरदार साहब सिंहने गुजरात-वाले पर आक्रमण कर दिया। सदाकुमारीके साथ रणजित् सिंहने भी उसके विरुद्ध यात्रा कर दी। किंतु गुरु नानकवंशीय साहबसिंह बेदीने बीचमें पड़ कर मिटमिटाव करा दिया। फलतः रणजित् लाहोर चले आये। इसी समय बुगदादी हकीम "सफनकुर" नामक एक तरहका मञ्जन तैयार कर बीस हजार आयकी जागीर प्राप्त कर ली।

इधर भङ्गी-सरदार साहब सिंह और कसुरके पठान सरदार निजामुद्दीन्ने मिल कर बलवा कर दिया। रणजित् सिंह गुजरातमें ससैन्य उपस्थित हुए। कुछ समय युद्ध करनेके बाद भङ्गी-सरदारने बहुत नजराना दे कर रणजित्की वश्यता स्वीकार कर ली। कुछ ही दिनके बाद पठान-सरदारने भी अपने साथीका पदानुसरण किया। पठान सरदारने अपने भाईको रणजित्के पास भेज वश्यता कबूल की थी।

कुछ ही दिन बाद लाहोरमें खबर पहुंची, कि उनके पिताके मित्र सरदार दलसिंह भङ्गी-सरदार साहब सिंहके साथ मिल कर लाहोर पर आक्रमण करनेके लिये जोर-शोरसे सैन्य-संग्रह कर रहे हैं। बुद्धिमान् रणजित् सिंहने यहां बुद्धि-कौशलसे काम लिया। उन्होंने अपने पिताके मित्रको पत्र लिखा :—

"मित्र हो कर शत्रुका काम करनेसे लोग हंसेंगे। आप जैसे मेरे पिताको सहायता दिया करते थे, वैसे ही मुझे भी सहायता कीजिये। मित्र बने रहनेसे हम दोनोंका मंगल है।" वृद्ध दलसिंह रणजित् सिंहके वाक्य-जालमें फंस गये। और तो क्या—साहब सिंहको त्याग कर रणजित् सिंहके निमन्त्रण देने पर वे लाहोर चले आये। रणजित् सिंहने अपने पिताके मित्रके प्रति बड़ा सम्मान तथा आदर दिखाया। उनके ठहरनेके लिये किलेमें महाराजने एक महल ही छोड़ दिया। भीतर नौकर चाकरका सब इन्तजाम कर बाहरसे सशस्त्र पहरा बैठा दिया। इस तरह यह वृद्ध महापुरुष रणजित्के किलेमें आप ही आप कैद हो गये। इसके बाद ही रणजित् सिंहने अपने वीर सैनिकोंको ले कर सरदार दलसिंहके राज्यको हस्तगत करनेके लिये अकालगढ़ पर धावा बोल दिया। रणजित्ने सोचा था, कि वृद्ध सरदार दलसिंहको कैद कर लेनेके बाद अकालगढ़ शीघ्र ही दखल हो जायेगा। किन्तु उनका वह विचार विचारके रूपमें ही रह गया, कार्यतः ऐसा नहीं हुआ। वृद्ध दलसिंहकी वीरपत्नी रानी तेजोबाई (तेजू) रणरङ्गिनी मूर्त्ति धारण कर रणप्राङ्गणमें कूद पड़ी। उसके वीर सैनिकोंके दर्पसे रणस्थल कम्पित हुआ। इधर इस चतुरा महिलाने साहाय्यके लिये वजीराबादके योधसिंह तथा साहबसिंहको संवाद भेजा।

इस रमणीके वीरत्व और साहसको देख कर रणजित् सिंहको विचलित होना पड़ा। कई खण्डयुद्ध हो गये; किन्तु रानीके व्यूहको वे भेद कर न सके। इधर उनको मालूम हुआ, कि सरदार योधसिंह तथा साहबसिंह सहायताके लिये आनेवाले हैं। ऐसी हालतमें रणजित् वहां अपना ठहरना असंगत समझ वहांसे ससैन्य गुजरातके लिये रवाने हुए। इस तरह उन्होंने अकालगढ़को छोड़ कर गुजरात पर आक्रमण किया। उनको भय था, कि योधसिंह साहबसिंहको मदद दे सकता है। इसलिये वजीराबादके सरदार योधसिंहको उन्होंने अपने पिताकी मित्रताका स्मरण करा तथा उनको यथेष्ट सहायता देनेकी आशा दे कर अपनी तरफ मिला लिया।

साहबसिंहने गुजरातसे एक कोस आगे आ कर शत्रु-सैन्यके साथ मोरचा लिया। रातको भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। दूसरे दिन संध्या तक युद्ध चलता रहा। इस तरह तीन दिनों तक अनवरत युद्ध होने पर दोनों ओर बहुतसे सिपाही मारे गये तथा आहत हुए। चौथे दिन साहबसिंहने आत्मरक्षाके लिये अपने दुर्गकी शरण ली। किन्तु वह रणजित्की गोला-वृष्टिके सामने दुर्गकी रक्षा कर न सका। फिर गुरु साहबसिंह बन्दीने बीचमें पड़ कर मिट-माट करा दिया। भङ्गी-सरदारने बहुत नजराना

दे युद्धकी क्षति-पूर्ति करनेका वचन दे कर रणजित् सिंह-से सन्धि कर ली। इस सन्धिपत्रमें वृद्ध सरदार दल-सिंहके छोड़ देनेकी बात भी थी। रणजित् सिंहने लाहोर आते ही वृद्ध दलसिंहको छोड़ दिया। किन्तु दलसिंह रास्तेमें ही परलोक पधार गये; घर पहुंचनेकी नौबत ही न आई। राज्यलोलुप रणजित् सिंहने उनकी मृत्युका समाचार पा कर उनके राज्यको हस्तगत कर लेनेके उद्देश्यसे अकालगढ़ पर धावा बोल दिया। किन्तु रण-जित् सिंह यह बात अच्छी तरह जानते थे, कि उस वीर रमणीके सम्मुख-समरमें पार पाना कठिन है। इससे उन्होंने फिर एक बार बुद्धिसे काम लिया। अकालगढ़के निकट पहुंच उन्होंने रानीके पास यह समाचार भेजा, कि "अपने पिताके मित्र वृद्ध सरदारकी मृत्युका समाचार पा कर पतिके वियोगसे दुःखी आपके दुःखमें समवेदना प्रकट करनेके लिये मैं यहां आया हूं।" उन्होंने ऐसा वाक्यजाल फैला कर पतिकी तरह रानीको भी फंसा लिया। रानीका हृदय सहज ही कोमल था। पहले तो रणजित्के आनेसे रानी विचलित हो उठी थी। किन्तु उनके समवेदनायुक्त पत्र पा कर रानीका हृदय विगलित हो उठा। उन्होंने खबर भेजी, कि जब गुरुजी बेदी ठाकुर हम लोगोंके बीचमें उपस्थित हैं, तब सुकरचकियाके सरदारके साथ कोई झगड़ा नहीं है। रणजित् यह समाचार पा कर निशङ्कभावसे राजमहलमें चले आये। आते ही उन्होंने रानी तथा उनके पुत्रोंको कैद कर लिया। इस विश्वासघातकता पर सभी सैनिक-सरदार मुंह ताकते ही रह गये। रणजित्ने अकालगढ़के धन-धान्यसे परिपूर्ण खजानेको लूट लिया, फिर शेलखाने पर कब्जा कर लिया। अन्तमें रानीके भरण-पोषणके लिये दो गांव दे कर रणजित् लाहोर चले आये।

इधर जब वे लाहोर पहुंचे, तब उनको मालूम हुआ, कि काङ्गड़ाके राजा संसारचन्द्रने रानी सदाकुमारीके राज्य पर आक्रमण कर दिया है, यह सुन कर वे ससैन्य सदाकुमारीकी सहायताके लिये चले। रणजित्के आनेकी बात सुन संसारचन्द्र वहांसे भाग गया। इधर रणजित्ने संसारचन्द्रसे बदला चुकानेके लिये उसके अधिकृत नौशेरा पर कब्जा कर उसे सदाकुमारीको दे दिया। इसके बाद संसारचन्द्रको पकड़नेके लिये वे नूरपुर गये। राजा संसारचन्द्रने दुर्गम पर्वतोंमें छिप कर अपनी जान बचाई। लौटते समय रणजित्ने पठानकोटके निकट सुजानपुरके दुर्भेद्य-दुर्गको धूलमें मिला दिया। इसके बाद उन्होंने धरमकोट, सुकालगढ़ और बहरमपुर आदि कई पठानोंके अधिकृत दुर्गों पर हमला किया।

इसके उपरान्त उन्होंने पिण्डी, भाटियान, पोथोवार और धनी पर दखल जमा लिया। धनी दुर्ग पर अधिकार करनेमें रणजित् सिंहको दो महीनेका समय लग गया।

वहांसे वे लाहोर पहुंचे। फिर उन्होंने सुना, कि सितपुर दुर्गके राजा उत्तम सिंह मजिथिया विद्रोही हो गये हैं। किन्तु कुछ ही दिनोंमें विद्रोही राजा या सरदारको बहुत धन दे कर वश्यता स्वीकार करनी पड़ी।

सन् १८०२ ई०में नकाई सरदार खजान सिंहकी कन्या राजकुमारीके गर्भसे महाराजको एक लड़का पैदा हुआ। इसके उपलक्षमें कई दिनों तक बड़ी धूमधामसे समय बीता। दरबारमें सरदारोंको खिलअत दी गई। प्रत्येक सिपाहीको एक एक सोनेका हार दिया गया। दीन-दुःखियोंको भी खूब धन लुटाया गया। नवकुमारका नाम हुआ खड़्गसिंह या खरकसिंह।

पुत्र-जन्मोत्सव खतम होनेके बाद रणजित् सिंहने दस्का, चिनिओत और तीसरी बार कसूरको जीता। चारों ओर उनकी जयध्वनि हो रही थी। इसी वर्ष उन्होंने जालन्धर दोआब पर अधिकार करनेके लिये यात्रा की। इस यात्रामें जाते समय जितने नगर मिले, उन सबों पर रणजित् अधिकार करते गये। इसी यात्रामें उन्होंने क्षत्रियराज चूहड़मलकी विधवा रानीके राज्य पर आक्रमण कर उसकी प्रभूत धनसम्पत्ति और कगवार राज्य पर अधिकार किया और उसे अपने प्रियबन्धु सरदार फतेसिंह आहलुवलियाको उपहारमें दे दिया।

राजा संसारचन्द्रने हिमशैलसे नीचे उतर कर फिर जालन्धर पर आक्रमण किया। किन्तु रणजित्के आनेकी बात सुन उन्होंने फिर पीठ दिखा दी। इस बार रण-जित जिस राहसे गये, उस राहमें आये सभी दुर्गोंके

सरदारोंसे उन्होंने कर तथा नजर वसूल की। इस समयसे जिन सरदारोंकी मृत्यु होने लगी, उनकी रियासतोंको रणजित् दखल करने लगे या दखल कर सदाकुमारीको देने लगे। इससे प्रायः सभी सिक्ख सरदार रणजित् सिंहसे नाराज हो उठे। रणजित् सिंहके विरुद्ध तलवार उठानेकी हिम्मत किसीमें न हुई।

जब रणजित् लाहोर वापस आये, तब पूर्ववत् यथेष्ट आमोद-प्रमोदसे उत्सव हुआ। इस समय रणजित् मोरान नाम्नी एक मुसलमानकन्या पर मोहित हो गये। उसकी रूपपिपासामें अधीर रणजित् अपने राज्यकार्यको भुला कर बहुत दिनों तक उस रमणीके प्रेममें उन्मत्त बने रहे। अन्तमें मुसलमानपद्धतिसे दोनों आपसमें परिणयसूत्रमें आबद्ध हुए।

उस मुसलमान युवतीने सिक्ख शेर पर अपना बहुत प्रभुत्व जमा लिया। इसका प्रभुत्व यहां तक बढ़ा, कि सिक्के पर रणजित् नामके साथ मोरानका नाम खुदा जाने लगा।

जो हो, रणजित्के हृदयसे वह भीषण अनुराग शीघ्र अन्तर्ध्यान हुआ। फिर उन्होंने राजकार्यमें दिल लगाया। मोरनको ले कर हरिद्वार तीर्थयात्राके लिये रणजित् आये। यहां उन्होंने दीन दरिद्रोंको लक्षाधिक रुपया दान किया।

वहांसे लौट रणजित्ने सुना, कि गृहविवादमें ही कसूरका सरदार निजामुद्दीन खाँ मारा गया है और उसका भाई कुतुबुद्दीनने राज्य पर अधिकार कर लिया। रणजित् शीघ्र ही अपने प्रिय मित्र आहलुवालिया सरदारको साथ ले आगे बढ़े। कुतुब पहलेसे ही तय्यार था। कुतुबके वीर पठान सिपाहियोंने भीमपराक्रमसे रणजित्की गतिको रोक दिया। कई मास बीत गये, रणजित् किसी तरहसे पठानोंको हटा नहीं सके। उन्होंने छलबल कलसे उठा नहीं रखा, किन्तु इस बार उनकी कुशलता और चतुरता काम न आई। अन्तमें रणजित्ने पठानोंकी रसद बन्द कर दी। किलेमें कहत दिखाई पड़ा। पठान सरदार सिपाहियोंकी प्राणरक्षाके लिये लड़ाईके व्ययस्वरूप कुछ रुपया दे कर सन्धि करने पर बाध्य हुआ।

रणजित्के सिपाहियोंकी अभी थकावट भी नहीं मिटी, तभी उन्होंने मुलतानको विजय करनेके लिये यात्रा की। उस समय मुलतान बड़ा समृद्धशाली था। रणजित्के मनकी बात जान कर मुलतानके नवाब मुजःफर खाँने नगरसे १५ कोस आगे बढ़ बहुत रुपया नजरानेका ले कर रणजित्से भेंट की। रणजित् वश्यता स्वीकार करा कर-स्वरूप उनसे बहुत धन ले वहांसे लाहोर लौटे। उस समय तक भी अमृतसरमें भङ्गी-सरदार प्रबल थे। उनके प्रभावको नष्ट करनेके लिये सिक्ख शेर रणजित्ने बड़ा उद्योग किया। आहलुवालिया सरदार और रणजित्की सास सदाकुमारीने अपने सैन्य सामन्तोंको ले कर रणजित् सिंहके साथ अमृतसर पर चढ़ाई कर दी।

उस समय अमृतसरके सरदार गुलाबसिंह मर चुके थे। उनकी विधवा रानी नगरका द्वार बन्द कर दुर्गकी चहारदीवारीसे शत्रुसैन्य पर गोला वृष्टि करने लगी। किन्तु चारों ओरसे शत्रुओंके प्रबल आक्रमणसे तंग आ कर सिपाही निरुत्साह हो गये। अन्तमें रानीने अपने पुत्रको ले कर रामगढ़िया सरदार योधसिंहके शरणापन्न हुई। रणजित् सिंहने अमृतसर पर अधिकार कर लिया। एक साथ ही सभी भङ्गी सरदार पराभूत हुए। अब किसीकी हिम्मत न रही, कि वह रणजित्के विरुद्ध बगावत करे। रणजित्ने अमृतसरके मन्दिरमें प्रवेश कर ग्रन्थ साहबकी पूजा की। यहां रणजित् सिंहने गरीब दुःखियोंको बहुत धन प्रदान किया।

इस समय अफगानके तैमूर शाहके चार पुत्रोंमें परस्पर-विवाद चल रहा था। इस अवसर पर सन् १८०३ ई०में रणजित्ने वहां पहुंच भङ्ग, उच, सहीवालगढ़ पर अधिकार कर लिया। लाहोरमें शाहजहान्के "शालामार" नामसे जो प्रमोदोद्यान था, सिक्ख जातिने उसका नाम बदल कर "शालाबाग" रखा था। इसके बाद महाराज रणजित्सिंह अमृतसर पधारे। वहां हरमन्दिरका दर्शन कर उन्होंने सैन्य सामन्तोंको यथोचित मनसब दे कर सम्मानित किया। सिवा इसके उन्होंने वहांके सम्भ्रान्त सरदारोंको अवैतनिक सेना-नायकका पद प्रदान कर सम्मानित किया।

सन् १८०५ ई०में रणजित् सिंहने विपाशा और चन्द्रभागाके मुसलमान सरदारोंके साथ सन्धि कर ली। इतने दिनों तक पञ्जाबके मुसलमानकी दृष्टिमें काबुलकी सभा ही सर्वप्रधान धर्माधिकरण गिनी जाती थी; किन्तु इस समयसे महाराज रणजित् सिंहको पञ्जाबके सरदारोंने अपना सम्राट् मान लिया। इसी समयसे रणजित् सिंह पञ्जाबकेशरी कहलाने लगे। इस वर्ष उन्होंने होलीके पर्व पर विलास-विभ्राट्की चरम-सीमा पार कर दी किन्तु इसके बाद ही हिन्दुओंकी तरह पापक्षय करनेके लिये हरिद्वारमें आ स्नान-दान कर उन्होंने पाप प्रक्षालन किया।

वहांसे लौट कर उन्होंने राजस्वविभागका उन्नति-प्रबन्ध करनेमें चित्त लगाया। उन्होंने राजस्वको नीलाम किया। जिन्होंने अधिक कर वसूल करनेका वादा किया उन्हींके नामसे राजस्वका ठेका लिख दिया गया। इसके बाद झङ्गके राजस्वको बढ़ा कर एक लाख बीस हज़ार कर दिया गया। यह कह कर बढ़ा कर उन्होंने मुलतान पर चढ़ाई कर दी। इस बार भी मुलतान पर नवाबने ७२०००) रुपया नकद दे कर महाराजको विरत किया।

इस समय अङ्गरेज-सेनापति लार्ड लेकसे पराजित हो कर यशवन्तराव होलकर अपने प्रधान सहकारी अमीर खाँके साथ १५ हजार सैन्योंको ले कर महाराज रणजित् सिंहसे साहाय्य प्राप्त करनेके लिये अमृतसरमें पहुंचे। इधर लार्ड लेकने भी बहुतेरी फौजोंको ले कर झेलम नदीके किनारे आ कर पड़ाव डाल दिया। सुचतुर महाराज रणजित् सिंहने अङ्गरेजोंसे लड़ना उचित न जान अपना एक दूत अङ्गरेजोंके पास होलकरके बारेमें मध्यस्थता करनेके लिये भेजा। होलकरने विशेष सुविधा न देख अंग्रेजोंको उत्तर-भारतका सारा अधिकार दे दिया। रणजित्के साथ अङ्गरेजोंकी मित्रता स्थापित हुई। विदेशी फौजें अपने अपने पड़ाव पर गईं।

सन १८०६ ई०में बैशाखके महीनेमें महाराज रणजित् सिंह सिन्धुके किनारे कतास तीर्थमें स्नान करने गये। लौटते समय वे बहुत कठिन रोगसे आक्रान्त हुए। इस समय वे झेलमके किनारे मियानी नामक स्थानमें रहने लगे। किन्तु शीघ्र ही आरोग्य प्राप्त कर वे लाहोर पधारे। यहां आ कर उन्होंने शलामारका उद्यान तथा अलीमर्दन नहरकी मरम्मत कराई। इस समय क्षत्रिय जातिके माखमचन्द सारे सिक्ख-सैन्यके अधिनायक पद पर प्रतिष्ठित हुए। इस पर सिक्ख-सरदार रणजित् सिंह पर असन्तुष्ट हुए थे। किन्तु उपयुक्त पात्र निर्वाचन ही रणजित्‌की सफलताका कारण था। इसी वर्ष उन्होंने शतद्रु पार कर जिरा, मुक्तेश्वर, कोटकपुरा, धरमकोट, मरी और फरीदकोटको जीता। इस समय पटियालाके राजा और उनकी पत्नी रानी आउसकुमारीमें कुछ विरोध उपस्थित हुआ था। रानीका कहना था, कि महाराज हमें तथा हमारे लड़केके लिये एक स्वतन्त्र राज्य प्रदान करें, किन्तु पटियाला-नरेश साहब सिंह इस पर राजी नहीं होते थे। रानी साजिश करनेमें हुशियार थी। उसने मराठा-सरदार यशवन्त रावसे साहाय्य पानेका वचन भी पाया था; किन्तु लार्ड लेकके आ जानेसे यशवन्त राव उधर ही फंस गये। इससे राजा-रानीके झगड़ेका फैसला न हो सका था। किन्तु इस गृह-कलहके समय मौका देख नाभाके महाराजने पटियाला पर आक्रमण कर दिया। ऐसे समय कई सरदार दोनों ओरसे सहायता देने लगे। क्रमशः यह झगड़ा बढ़ता ही गया। अन्तमें दोनों पक्षसे महाराज रणजित् सिंह झगड़ा फैसला करनेके लिये बुलाये गये। रणजित् सिंह ऐसे स्वर्णसुयोगको कब छोड़नेवाले थे। २६वीं जुलाईको वे २० हजार घुड़सवारोंके साथ पटियाले पहुंचे। नाभा और झिन्दके राजा महाराज रणजित्के साथ आ मिले। किन्तु इस समय पटियालाके पास जरूरतसे काफी सैनिक थे। इससे महाराज रणजित् सिंह उसका कुछ कर न सके। पटियालेके प्रधान सेनापतिकी अद्भुत गोला-वृष्टि देख रणजित् सिंह बहुत प्रसन्न हुए थे। जो हो, पटियाला-नरेशने सन्धिका पैगाम ले कर अपना एक दूत रणजित्‌के पास भेजा। महाराज रणजित् सिंहने सन्धि कर ली और अपनी जीती हुई दोलाधि नामक भूमि पटियालाको लौटा दी और इधर नाभा-नरेशसे ५०००० हजार रुपये नजरानेमें दिये। इसी वर्ष रणजित्‌ने लुधियाने पर चढ़ाई कर दी और उसके अधिपति मुसलमान राजपूत-

वंशीय इलियस खाँकी बेवा बेगम नूरुन्निसा तथा लक्ष्मी-बाईको वहांसे भगा कर लुधियाने पर कब्जा कर लिया। पीछे उन्होंने लुधियाना झिन्दके राजाको दे दिया। इसी तरह इन्होंने मियां गाउसकी बेवा बेगमसे आरा परगना निकाल कर अपने प्रिय सेनापति मखचन्दको जागीर दे डाली। इसी तरह राय इलियसके अधिकृत मन्दाला, रायकोट, यगराउन, वद्दोवल, तलबन्दी, ढाका, बासिया आदि नगरों पर भी रणजित्‌ने कब्जा कर लिया। पटियालाके साथ सन्धि हुई सही, किन्तु उनकी पत्नीके मनोमालिन्यका कारण दूर नहीं हुआ।

इसी वर्ष गोर्खा सेनापति अमरसिंह ठापाने काङ्गड़ा पर आक्रमण किया। इसी समय रणजित् सिंह ज्वाला-मुखीका दर्शन करने गये। राजा संसारचन्द्रके छोटे भाई फतेचन्दने आ कर महाराजसे सहायता मांगी और नज-रानेके तौर पर बहुत-सा रुपया देना स्वीकार किया।

इधर रणजित् जब काङ्गड़ेकी सीमा पर पहुंचे, तब अमरसिंहके विश्वासी नौकर गोरावर सिंहने उससे अधिक रुपया नजराना दे कर उन्हें अपनी ओर मिला लेना चाहा। किन्तु रणजित्‌ने पहले आये हुए सहायतार्थीको विमुख करना असङ्गत समझ इस जोरावर सिंहके प्रस्तावको अस्वीकृत कर दिया। कुछ ही समयके बाद यानी सन् १८०६ ई०में गोर्खोंने अपनी छावनी वहांसे हटा ली। इसके बाद रणजित्‌ने स्वीकृत नजराना ले कर कांगड़ा परित्याग किया। आते समय नदाउनमें अपने एक हजार सैन्य रख उन्होंने सरदार फतेसिंहको खिजावरमें हाजिर रहनेका आदेश दिया था। यह आदेश इसलिये दिया था, कि उनके चले जानेके बाद मौका पा कर कहीं गोर्खे सीमान्त पर आक्रमण कर न बैठें। उनकी गतिविधिके परिवीक्षण करनेके लिये ही सीमान्त पर अपनी सेना रख उन्होंने सरदार फतेसिंहको खिजावरमें रहनेकी आज्ञा दी थी।

सन् १८०७ ई०के प्रारम्भमें ही सिक्ख-सरदारके अधिकृत पशरूर तथा चामार-राज्य पर उन्होंने अपना अधिकार जमा लिया। इसके बाद कसुरके पठान सर-दार कुतुबुद्दीनके अत्याचारी होनेकी बात सुन उन्होंने उसे दण्ड देनेके लिये इसी वर्षके फरवरी महीनेमें यात्रा की। यशसिंह रामगढ़ियाके पुत्र योधसिंहने भी उनका साथ दिया। इन लोगोंने जा कर नगरको घेर लिया और एक महिने तक वे वहीं पड़े रहे। नगरके लोग भूखों मरने लगे। इन लोगोंने अधिक विलम्ब न कर आत्मसमर्पण कर दिया। सिक्खोंने नगरमें प्रवेश कर वहांके लोगों पर अत्याचारकी पराकाष्ठा दिखाई थी। कसुर-राज्य लाहोरमें मिला लिया गया और वहांका शासक सरदार नेहालसिंह अतारीवाला मुकर्रर हुए। कुतुबुद्दीनको शतद्रु के उस पार मानलात नगर मिला। वह वहां जा कर रहने लगा।

लाहोर लौट कर रणजित्‌सिंहने जयघोषणा करनेके लिए एक दरबार किया और कुतुबुद्दीनसे मिला हुआ धनका कुछ हिस्सा अमृतसरके सिक्ख हर-मन्दिरको उपढौकन भेजा। इसके बाद ही उन्होंने दिपालपुर दुर्ग पर अधिकार कर मुलतान नगरको घेर लिया। किन्तु अधिक दिनों तक वहां कष्ट न सह मुलतानसे ७०००० रुपये नजरानेका ले कर सम्मानपूर्वक वे लौट आये। इसी समय वे बहावलपुर पर अधिकार कर लेने पर तुल गये। नवाबने उपाय न देख सन्धि कर ली। इसके बाद उन्होंने अदीन नगर तथा काङ्गड़ा शैल प्रान्तके रहनेवाले सरदारोंसे बलपूर्वक नजर वसूल की।

रणजित् सिंहके पटियालासे लौटनेके बाद वहां फिर अशान्ति मची। इस बार फिर वे बुलाये गये। उन्होंने हरिकापत्तन नामक स्थानके पास शतद्रुको पार किया। उनके साथ मोखमचन्द, फतेसिंह आदि प्रधान प्रधान सेनापति गये थे। कोटकपूरा, भावोर और नाभा पार कर वे पटियाला पहुंचे। वहां उनको रानीने एक हीरेका हार और "कड़ा खाँ" नामक एक तोप नजर की। पटियालेकी अशान्ति दूर कर वे अम्बालाकी ओर पधारे। यहां सरदार गुरुबक्ससिंहकी विधवा पत्नी रानी दयाकुमारीसे नजराना ले कर उन्होंने कैथलके भाई लालसिंह, शाहाबादके गुरुदत्तसिंह, बुढियाके भगवान् सिंह, कलसियाके योधसिंह आदि नरपुङ्गवोंसे कर वसूल कर उन्हें खिलअत प्रदान की थी।

इसके बाद उन्होंने कुमारकिशन सिंहके अधिकृत

अधिकृत नारायणगढ़ किले पर आक्रमण कर घेरा डाल दिया। इसी युद्धमें महाराज रणजित्के प्रधान सेनापति फतेसिंह कलियानवाला, मोहनसिंह और देवसिंह मारे गये। युद्ध जीत लेने पर ४० हजार रुपया नजरानेका ले कर सिक्ख-केशरी रणजित् सिंहने सरदार फतेसिंह अहलुवालियाको नारायणगढ़का राजा बनाया था। इसी समय उनके सहयोगी रोहन-दुर्गाधीश्वर दलीवाला सरदार तारासिंहकी मृत्यु हो जाने पर उनकी पत्नियां सती होनेके लिये चलीं। यह समाचार पाते ही महाराज रणजित् सिंहने उस मृत-पुरुषकी धन-सम्पत्ति तथा राज्य पर आक्रमण करनेके लिये उस दुर्गकी ओर अपनी फौजोंको भेजा। सिक्ख सेनाओंके इस नृशंस आचरणसे क्रुद्ध हो कर एक वर्षीयसी दलीवाला विधवा पत्नी हाथमें तलवार ले कर रणक्षेत्रमें अवतीर्ण हुई थीं। दुःखका विषय है, कि शीघ्र ही प्राचीन दुर्गकी चहारदीवारी शत्रुओं द्वारा टूट गई। इससे यह किला शत्रुके हाथ लगा। इसके बाद उन्होंने नौशेरा, गोविन्द, बहलोलपुर, भरतगढ़ और बदली आदि स्थानों पर अधिकार जमा लिया। इसी समय रामपुर, वनग्राम, सरहिन्द, जीरा, कोटकपुरा, धरमपुर आदि स्थानों पर अधिकार करते समय सरदार फतेहसिंह, राजा भागसिंह, यशवन्तसिंह, गर्भसिंह, कर्मसिंह और दीवान मोहमसिंह आदिको जिन्होंने उनके साथ युद्धमें यश अर्जन किया था, जागीरें दी गईं। इस शतद्रुयुद्धके अन्तमें महाराज रणजित्सिंहने मनौलोके जमीन्दारसे २० हजार, मणिमजराके गोपालसिंहसे ३० हजार, रोपारके सरदार हरिसिंहसे १५ हजार और दोआबके भूम्यधिकारियोंसे १८० हजार रुपये नकद कर वसूल किया था।

इसी वर्षके दिसम्बर महीनेमें रणजित् सिंह लाहोर लौट आये। रानी महताबकुमारीने उनको शेरसिंह और तारासिंह नामके दो पुत्ररत्न (यमज उत्पन्न) दिखाये। ये दोनों पुत्र महताबकुमारीसे उत्पन्न नहीं हुए थे; वरं उन्होंने कौशलपूर्वक भूमिष्ठ होते ही दोनों बालकोंको खरीद कर अपने प्रसव करनेकी घोषणा की थी। केवल रणजित्को प्रसन्न कर अपने हाथमें कर लेनेके उद्देश्यसे ही रानीने ऐसा किया था।

सन् १८०८ ई०के आरम्भमें ही रणजित्सिंहने पर्वत पद-प्रान्तके पठानकोट दुर्ग पर अधिकार किया। इसके बाद यशरोता, चम्बा, बसोली आदि राज्योंको भी उन्होंने करद राज्य बनाया। महाराज जब उत्तर-पहाड़ी राज्योंको वशीभूत करनेमें लगे थे, तब दीवान मोखमचन्द शतद्रुके पूर्वके सरदारोंको वशमें लानेकी चेष्टा कर रहे थे। उन सबोंने ही महाराज रणजित्को अपना राजा तथा उनको युद्धके समय घुड़सवार सैनिकोंका साहाय्य देना स्वीकार किया।

पर्वतसे उतर कर रणजित्सिंहने समतलक्षेत्रमें आ कर अपना पड़ाव डाला और पराजित या करद-राजाओंको बुला कर एक सभाका आयोजन किया। पञ्जाबके सभी सरदार उस सभामें सम्मिलित हुए थे। उन सबोंने महाराज रणजित् सिंहको अपना राजा कबूल किया। किन्तु स्यालकोटके सरदार जीवनसिंह और गुजरातके साहब सिंहने उनकी वश्यता स्वीकार न की। उनकी उद्धताका यथोचित उत्तर देनेके लिये रणजित्ने ससैन्य यात्रा की। सात दिन तक स्यालकोट पर घेरा डालनेके बाद किला रणजित्के हाथ आ गया। जीवन सिंह कैद कर लिये गये। जीवनकी दुर्दशाकी बात सुन कर सरदार गर्जारसिंहने अपने दूत भेज कर सन्धि कर ली। रणजित्को वहां जाना भी न पड़ा और उन्होंने वश्यता स्वीकार कर ली। यहांसे रणजित्ने अथनूरकी ओर यात्रा की। वहांके सरदार आलम खाँने उनको उपयुक्त नजराना दे कर वश्यता स्वीकार की।

इसी समय हारन-मिनार (शेखपुरा)-के सरदार अरवलसिंह तथा अमीरसिंह निकटके राज्योंमें लूटपाट मचा कर अधिवासियोंको पीड़ित कर रहे थे। इन दोनों दुर्दान्त सरदारोंको दण्ड देनेके लिये रणजित्ने अपने ४ हजार घुड़सवार सिपाहियोंके साथ घुड़सवार-सेनापति घौस खाँको भेजा। महाराजकुमार खड़्गसिंह नाममात्रके इनके नायक बने। लाहोरके फौजीने शेखपुराके दुर्ग पर अधिकार कर लिया। दोनों सरदार कैद कर लिये गये। युद्ध खतम हो जानेके बाद युवराज खड़्ग सिंहको शेखपुराका किला और राज्य जागीर-स्वरूप मिला। युवराजकी माता रानी

नकाई मृत्युकाल तक यहीं रहीं, उनको लाहौर जानेका फिर सौभाग्य प्राप्त न हुआ।

इसके कुछ ही समयके बाद अंग्रेजोंका एक वकील महाराजके लिये उपहार ले कर दरबारमें उपस्थित हुआ। पञ्जाबपतिके साथ सद्भाव-स्थापन हो उसके आनेका कारण था। लौटते समय वकीलको मार्फत महाराजने पांच हजार रुपयेकी एक खिलअत और कितने ही देशोत्पन्न मूल्यवान् वस्तुओंको उपहारस्वरूप अंग्रेजोंको भेजवाया।

इसी वर्षमें महाराजने अमृतसरी गुजरसिंह भङ्गीके टूटे हुए किलेको मरम्मत करा कर उसका नाम गोविन्दगढ़ रखा। इसी दुर्गमें उनको मूल्यवान् वस्तु तथा धन-सम्पत्ति रखी गई। धनरत्न और किलेकी रखवाली करनेके लिये यहां दो हजार सेना रखी गई। किलेकी चहारदीवारी पर चारों ओर २० तोपें लगाई गईं। इस समय मुलतानके नवाबके पहलेका स्वीकृत कर न देने पर महाराजने ५ हजार घुड़सवार सैनिकोंके साथ बाबू राजसिंह, यशसिंह भङ्गी और कुतुबुद्दीन खाँ कसुरवाला आदि सरदारोंको भेजा। इन्होंने बलपूर्वक जा कर उनसे कर वसूल किया। इस काममें उन्हें तीन मास लग गया था और दीवान मोखमसिंह आनन्दपुर-मखोवलके दक्षिणके समूचे भूभाग पर अधिकार कर अन्तर्वेदीसे ६ लाख रुपया नजराना ले लौट आये।

इस समय अहमदशाह जमानके प्रिय मन्त्री ठाकुरदासके पुत्र और शाह सुजाके राजस्व-सचिव भवानीदास राजदरबारके प्रति विरक्त हो कर लाहोरमें आ उपस्थित हुए। महाराजने सादर उनको बुला कर राजस्व-विभागके कर्तृपद पर नियोजित किया और कर्मचन्दको राजमोहरका (Lord of the Privy seal) पद दिया।

महाराज रणजित् सिंहकी साम्राज्य-लोलुपता तथा पर-राज्यापहरण-प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती हुई देख कर मालवा और सरहिन्दके सिक्ख भयभीत हुए। उन्होंने रणजित्की सर्वग्रासिनी शक्तिके अङ्गभूत होनेको आशङ्कासे बचनेके लिये उपाय खोजनेके लिये एक सभाका आयोजन किया। पटियाला, झिन्द और नाभाके सिक्ख-सरदारोंने समाना नामक स्थानमें एकट्ठा हो कर परामर्श किया, कि रणजित्की वश्यता स्वीकार करनेकी अपेक्षा दूसरेका साहाय्य ग्रहण कर अपनी रक्षा करना उत्तम है। इसके अनुसार इसी वर्षके मार्च महीनेमें झिन्दकी ओरसे राजा भागसिंहने, कैथलके सरदार भाई लालसिंहने पटियालाके दीवान सरदार चैनसिंह और नाभाराजके प्रतिनिधि मीर गुलाम हुसेनने दिल्लीमें आ कर अंगरेजोंके प्रतिनिधिसे भेंट की। अङ्गरेज-प्रतिनिधिने कहा, कि मैं प्रकाश्यरूपसे महाराज रणजित्सिंहका शत्रु नहीं बन सकता ; किन्तु मौका पाने पर छिप छिप कर आप लोगोंकी सहायता करूंगा। लाहोरमें बैठे रणजित् सिंहको इसकी खबर लगी। उन्होंने बुद्धिमानीके साथ उन सिक्ख प्रतिनिधियोंको अपने पास बुलाया जो अंगरेजोंसे साहाय्य प्रार्थना करने गये थे। उन्होंने सोचा, कि अंगरेजोंके साहाय्य पाने पर इन सबोंको देशमें विद्रोह खड़ा करनेका एक अच्छा मौका मिल जायेगा और यह मजबूत सिक्ख-शक्ति नष्ट हो जायेगी। यह सोच कर उन्होंने उनके मलोमालिन्यको दूर करनेके लिये अमृतसरमें एक सभा की। इस सभामें उन्होंने उनके मनोमालिन्यको दूर करनेकी चेष्टा की थी।

इस समय यूरोपमें फ्रान्सीसी सम्राट् नेपोलियन बोनापार्टकी सारे यूरोपमें विजय-दुन्दुभि बज रही थी। फ्रान्सीसी फौजोंके बल-विक्रमको देख कर पश्चिमीय राजे दङ्ग हो गये थे। रूस-सम्राट्के साथ नेपोलियनकी होनेवाली सन्धिको देख कर अंगरेजोंके मनमें एक काल्पनिक आशङ्का जाग्रत हुई थी। उनको यह भय हुआ, कि तुर्कों और फारसवालोंके साहाय्य ले नेपोलियन कहीं भारत पर चढ़ाई न कर दे। भारत-प्रतिनिधि लार्ड मिण्टोने नेपोलियनको इस सङ्कल्प-संसिद्धिमें बाधा देनेके लिये भारतके सीमान्तमें रहनेवाले राजाओंसे सद्भाव कर बृटिश-बलवृद्धिका उपाय किया। इसके अनुसार उन्होंने मिष्टर एलफिष्टनको काबुल राजदरबारमें, सर जान मालकमको तिहरानमें और सन् १८०८ ई०के अगस्त महीनेमें चार्लस मेटकाफ (पीछे लार्ड हुए) को लाहोरके दरबारमें भेजा।

महाराज रणजित्का इस समय पञ्जाब भरमें प्रभाव

फैल गया था। सभी सरदार उनके भयसे कांपते थे। सभीने उनको अपना राजा मान लिया। स्वजातिके साहाय्यसे अपनेको बलवान् समझ कर उन्होंने एक दिन शतद्रु के किनारेसे यमुनातीर तक साम्राज्य स्थापित करनेका दृढ़ सङ्कल्प किया था। मेटकाफ साहबने कसुरमें उनसे भेंट कर उनके वैभव और शक्तिको देखा। महाराजने वृटिश दूतके सन्धि-प्रस्ताव पर कुछ सम्मति प्रकट नहीं की। क्योंकि उनके मनमें उस समय शतद्रु की विजय-वासना जागरित हो उठी थी। उन्होंने आजिजुद्दीनको अंग्रेज दूतके साथ लौट जानेका आदेश दे कर फिरोजपुरकी यात्रा की। वहां उन्होंने नजराना ले कर फरीदकोट और मलेरकोटलाको जीता। अन्तिम इन दो स्थानोंसे बहुत धन रत्न तथा कर वसूल हुआ था। यहांसे वे अम्बालाकी ओर पधारे। आनेके समय दोनों ओरके देशोंको लूटते पाटते आये। अम्बालेमें गेण्डासिंहके हाथ सैनापत्य प्रदान कर उन्होंने शनिवाल, चांदपुर, झन्दर, धारी और बहरमपुर पर अधिकार कर उन्हें दीवान माखमचन्दके हाथ सौंप दिया। रहिमाबाद, मच्छिवाड़ा, कम्रा, तुकोट, बलुवाली और कयलावाड़ आदि स्थान करम सिंह, फतेह सिंह आदि सरदारोंके हिस्सेमें आये। इसके बाद शाहाबादके सरदार करमसिंहके पुत्रोंके और थानेश्वराधिपतिसे उन्होंने बलपूर्वक कर वसूल किया था।

शाहाबादमें रह कर रणजित्ने पटियाला-नरेशके साथ भेंट करनेकी इच्छा प्रकट की। लखनऊ नगरमें बाबा नानकके वंशधर गुरु साहबसिंह वेदीके खेमेमें दोनोंकी भेंट हुई। सन्धिसे ये दोनों मित्रतासूत्रमें आबद्ध हुए। यहांसे रणजित् अमृतसरमें जा कर अंग्रेज दूतके साथ मिले। रणजित्के पीछे पीछे घूमना कष्टसाध्य समझ कर मेटकाफ शतद्रु नदीके किनारे फतेहाबादमें टिके थे। गवर्नर-जनरलने उनको लिखा भेजा था, कि लार्ड लेककी सन्धिके अनुसार शतद्रु नदी ही आपके राज्यकी सीमा है। शतद्रु और यमुनाके बीचकी भूमिमें रहनेवाले सिक्ख-सरदार अंग्रेज सरकारके आश्रयाधीन हैं। इससे आपको उचित है, कि आप उन लोगोंसे सम्बन्ध न रखें। कृपा कर आप उन लोगोंसे भविष्यमें बलपूर्वक कर न वसूल न करें। यह पत्र पा कर भी जो स्थान उन्होंने जीत लिये थे, उनको छोड़ने पर वे राजी नहीं हुए। रणजित्ने समझ लिया, कि अब हमें अंग्रेजोंके साथ लड़ना पड़ेगा। इससे वे युद्धकी तैयारीमें लगे। इधर लार्ड मिण्टोने मौका देख कर सर डेविड अक्टरलोनीको अंग्रेजी फौजोंके साथ शतद्रु के किनारे भेज दिया। उन्होंने मालव और सरहिन्दके सरदारोंको उनके स्थानों पर प्रतिष्ठित कर साधारणको अंग्रेजोंके आश्रयका प्रभाव दिखला दिया था। रानी दयाकुमारी अम्बालामें और पूर्वकथित पठान-सरदार मालेरकोटलामें पुनः प्रतिष्ठित होनेसे अंग्रेजी फौजोंके प्रति जनसाधारणकी श्रद्धा बढ़ गई थी। वे लुधियानेमें पड़ाव डाल कर अंगरेज-शक्तिको सुदृढ़ करनेकी चेष्टा कर रहे थे।

इसी समय अमृतसरमें ताजिये पर अकाली सिक्खों तथा मुसलमानोंमें झगड़ा हो गया। अङ्गरेज-दूतके सहगामी सेनाने पर्वमें साथ दिया था यानी कुछ सिपाही ताजियेमें शामिल हुए थे। दोनों दलोंमें अकाली हारे। यह देख कर रणजित्ने अकालियोंके वृथा अत्याचार करनेके लिये अंग्रेज दूतसे क्षमा मांगी। फलतः रणजित्को अंग्रेजोंके प्रार्थनानुसार शतद्रु के किनारेसे उन्हें अपनी फौजोंको हटा लेना पड़ा। सन् १८०६ ई०की २५ अप्रिलकी सन्धिके अनुसार यह स्थिर हुआ, कि रणजित् सिंह दक्षिण शतद्रु के भूभाग पर कभी भी अपना प्रभुत्व स्थापन न कर सकेंगे। इसके बाद आश्रित सरदारोंकी रक्षाके लिये अङ्गरेजोंने लुधियानेमें एक छावनी मुकर्रर की। बख्शी नन्दलाल सिंह भाण्डारी रणजित्की ओरसे अंग्रेजी छावनीमें दूतके रूपमें रहने लगे। अंगरेजोंने खुशवक्त राय नामक एक कायस्थको लाहोर दरबारमें भेजा।

सन् १८०६ ई०में महाराज रणजित् सिंहकी सन्धि हुई सही, किन्तु दोनों पक्षमें किसीने किसीका विश्वास नहीं किया। सर चार्लस् मेटकाफके यहांसे सरकते ही उन्होंने लुधियानेके दूसरे पारमें अर्थात् शतद्रु के उत्तर ओर फिल्लौर-दुर्गको मजबूत कर दीवान माखमचंदको वहांका किलेदार नियुक्त किया। इसी मौके पर

अमृतसरके गोविन्दगढ़का किला मजबूत कर दिया गया। किलोंसे राज्यके दक्षिण भागकी रक्षा बंदोबस्त कर रणजित् स्वयं उत्तरको ओरके पहाड़ी राज्योंको जीतनेके लिये निकले।

इस ओर गोर्खा-सरदार अमरसिंह ठापाके फिर काङ्गड़ा किले पर घेरा डालने पर राजा संसारचन्दके आग्रह करनेसे रणजित्को सबसे पहले काङ्गड़ाका उद्धार करने जाना पड़ा। वे पठानकोट, ज्वालामुखी, यशरोता, नूरपुर आदि स्थानोंको पार कर काङ्गड़ा-दुर्गके समीप पहुंचे। लेकिन राजा संसारचन्द अमरसिंहके साथ मित्रताकी सन्धि होना सुन कर उन्होंने उन दोनोंको हाथमें रखनेकी चेष्टा की। उनके अधीनस्थ पहाड़ी सिक्ख-सरदारोंने सम्पूर्णरूपसे गोर्खोंकी रसद बन्द कर दी थी। यह देख कर रणजित् वहां उपस्थित हो काङ्गड़ा किलेमें प्रवेश करनेका अधिकार चाहा; किन्तु संसारचन्दने उन्हें ऐसा करने न दिया। युद्ध शुरू हुआ। अमरसिंह ठापाने संसारचन्दकी ओरसे युद्ध किया; किन्तु रणजित्से वे पराजित हुए। अन्तमें काङ्गड़ा-दुर्ग रणजित्के हाथ आया। देशसिंह मजिठिया काङ्गड़ा-दुर्गके किलेदार और काङ्गड़ा, चम्बा, नूरपुर, कोटला, शाहपुर, यशरोता, बसोली, मालकोट, मशवान, शिवा, गोलेर, कोलहर, मण्डी, सुकेत, कुलु और दातारपुर आदि पहाड़ी राज्योंके शासक नियुक्त हुए। पहाड़सिंह उनके सेनापति हुए।

यहां रणजित् ज्वालामुखीमें आये। सिक्खपति रणजित्ने पूजा करनेके बाद जालन्धर दोआबमें आ कर बघेलसिंहकी विधवा पत्नीसे हरियाना-राज्य और भूपसिंह फैजुलपुरियाके अधिकृत प्रदेशोंको निकाल लिया।

इसी वर्षके अन्तमें वजीराबादके सरदार योधसिंह-के परलोक-गमन करने पर रणजित्ने तुरत ही मृत राजाकी सम्पत्तिको ले लेनेके लिये वहां पहुंचे। किन्तु उनका पुत्र गेण्डासिंह १ लाख रुपया नजरानेका दे कर रणजित्को सन्तुष्ट किया। इसके बाद गुजरातके साहब सिंह भङ्गी और उनके पुत्रमें झगड़ा होना सुन कर वे चन्द्रभागा पार कर उसी ओरको दौड़े और धीरे धीरे उन्होंने उनके अधिकृत इसलामपुर, महवार, जलालपुर आदि नगरों पर अधिकार कर लिया। उनके प्रधान मन्त्री फकीर अजिजुद्दीनने गुजरात पर अधिकार कर लिया। महाराजने उसके वीरत्व पर प्रसन्न हो कर उन्हें खिलअत प्रदान की और उनके छोटे भाई नुरुद्दीनको वहांका शासक नियुक्त किया। इसी समय दीवान भवानीदासने उनकी ओरसे जम्बू पर दखल कर लिया और वहांके दोगरा सरदारको वहांसे भगा दिया। इसके बाद वे झेलम नदीके पश्चिम पारके सरदारोंको हरा उन्हें कैद कर अपने देशमें ले आये।

सन् १८१० ई०के फरवरी महीनेमें रणजित्ने सुना, कि काबुलके राजा शाह शुजा उलमुलक युवराज शाह महमूद द्वारा पराजित हो कर अटक नदी पार कर चले आये हैं। यह सुन कर रणजित्ने खुशाब नगरमें जा कर शाह शुजाका आगत स्वागत किया। किन्तु रणजित्के ऐसा करनेका कोई फल नहीं हुआ। शाह शुजाने पेशा-वरवालोंके लिये युद्ध किया सही, किन्तु महमूद द्वारा पराजित हुए। फिर शाह शुजा शतद्रु पार कर इधर चले आये।

इसके बाद रणजित्ने खुशाब और शाहवाल पर कब्जा किया। शाहवाल-सरदार फतेह खाँ सकुटुम्ब कैद कर लाहोर लाये गये। यहांसे रणजित् ४थी बार मुलतान विजय करनेके लिये पधारे। दो मास तक घेरा डाल कर भीषण गोला-वृष्टि करनेके बाद भी जब सिक्ख किसी तरह मुलतान पर कब्जा कर न सके, तब पहली स्वीकृति ले कर ही रणजित् लाहोर लौट आये।

वे इसके बाद घुड़सवार सैनिकोंके सुधारमें लगे। फिर उन्होंने वजीराबादको सिकस्त करनेके लिये सेना भेजी। अमरिक और गेण्डासिंहको जागीर दान कर उन्होंने प्रवञ्चनापूर्वक यह स्थान और बघेलसिंहकी पत्नी रानी राजकुमारीको जागीर बहादुरगढ़ पर अधि-कार कर लिया।

दशहराका उत्सव सम्पन्न कर महाराज रणजित् सिंहने अक्तूबर महीनेमें मरफा-सरदार निधनसिंह पर आक्रमण किया। जातीय प्रथाके अनुसार बाबा

मुलकराज और अमीयातसिंह वेदी नामक सिक्ख-पुरोहितोंके लिये और महाराजसे जागीर प्राप्त करनेके उद्देशसे वृद्ध निधनसिंहने अपने दस्का दुर्गसे निकल रणजित‍्के खेमेमें आ कर आत्मसमर्पण किया। हल्लोवालिया-सरदार यागसिंह इस समय महाराजके अप्रियभाजन होनेकी वजह पुत्रके साथ कैद कर लिये गये और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। दीवान मोखमचन्दने इस अवसरमें भीमवार, राजायुरी और गांगगिरि किलों पर अधिकार कर लिया। इधर महाराजने पिण्डदादन खाँके निकट तीन किलों पर अधिकार जमाया।

सन् १८११ ई०में महमूदशाहने १४ हजार अफगानी-सैन्य ले कर सिन्धु नदको पार किया। रणजित्ने युद्धकी आशङ्का कर रावलपिण्डीके लिये यात्रा की। शाहके साथ भेंट होने पर दोनोंकी मित्रता हो गई थी। इसके बाद उन्होंने अपनी फौजोंकी सहायतासे मुलतान और माफेकी बीचकी भूमि, कोटला-दुर्ग, फैजुलपुरियावालोंके अधिकृत प्रदेश, जालन्धर, फिल्लौर, पट्टी, हेटपुर आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया।

सन् १८१२ ई०के प्रारम्भमें कुमार खड्गसिंहका चांद्कुमारीके साथ विवाह हुआ। इसके उपलक्ष्में लाहोरमें विशेष धूमधाम हुई थी। अंग्रेजसेनापति अक्टरलोनी निमन्त्रित किये गये थे। महाराजने उनकी अच्छी खातिरदारी की। इस समय दोनों दलमें खूब सद्भाव उपस्थित हुआ था। महाराजने होली-पर्व पर भी इन्हें आमन्त्रित किया और इसी तरहसे इनकी खातिरदारी की गई।

कुमारके विवाहके बाद उन्होंने फिर भीमवार पर आक्रमण कर दिया। भीमवारके राजा सुलतान खाँने आत्मसमर्पण किया। किन्तु महाराजने उसके प्रति सद्भाव न कर उसे छः वर्ष तक कैद कर रखा। भीमवार पर अधिकार हो जाने पर उन्होंने फिर राजायुरी, जम्बू, अथनूर, सुजानपुर, कोटकमालिया आदि स्थानोंको जीत कर और मुलतान, मिठाताना आदि स्थानोंके सरदारोंसे कर वसूल किया।

इस समय काबुलके राजा शाह महमूदके वजीर फतेह खाँने काश्मीर पर आक्रमण किया। काबुलके राजमन्त्रीने महाराज रणजित्सिंहको मदद देनेका अनुरोध किया। इसके अनुसार दीवान मोखमसिंहके साथ १२ हजार सैनिकोंको भेजा गया। वहांका शासनकर्त्ता आता महम्मदके भाग जाने पर फतेह खाँने महमूदकी ओरसे काबुल उपत्यका पर दखल जमा लिया। सिक्ख सैनिकोंके युद्धमें पूरी सहायता न करनेका बहाना कर युद्धसे प्राप्त तथा लूटी हुई वस्तुओंमें सिक्खोंको हिस्सा न दिया गया। इस पर रणजित् क्रोधसे अधीर हो उठे और अफगानियोंका नाश करनेके लिये युद्धकी तैयारी करने लगे। सन् १८१३ ई०में अटक-दुर्ग पर कब्जा कर वे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। हैदर नामक स्थानमें दीवान मोखमचन्दके साथ अफगान-सेनापति महम्मद खाँका घोर युद्ध हुआ। इस युद्धमें सिक्खोंकी विजय हुई और सिक्खोंने अफगानियोंको खैराबादसे भगा दिया। इसके बाद रणजित् काश्मीर पर फिर चढ़ाई करनेको उद्यत हुए, किन्तु पथ तुषाराच्छन्न था, इससे उनको रुक जाना पड़ा।

इस समय महाराज रणजित् सिंहने मखद-प्रदेशके अफगान अधिपतिकी अत्याचार-कहानी सुनी। उनको दण्ड देनेके लिये सिक्ख फौजें भेजी गईं। मखदके सरदार वालीखाँके अटकके किलेसे भाग जाने पर यह स्थान सिक्खोंके हाथ आया। इसी समय दीवान भवानी दासने हरिपुरके पहाड़ी राज्यों पर अधिकार कर लिया।

सन् १८१३ ई०के मार्च महीनेमें दिल्लीसे प्रसिद्ध राजनीतिविद् गङ्गारामको अपने राज्योंमें ले कर रणजित्ने सेनाविभागके अध्यक्ष "बख्शी" पद पर नियुक्त किया। इस समय वे काश्मीर-युद्धके कैदी शाहशुजासे कौशलसे 'कोहिनूर' हीराको लेनेकी चेष्टा करने लगे। किंतु जागीर आदि देनेका प्रलोभन देने पर भी उसने उस हीरेको देना न चाहा। अब उन्होंने उसके साथ अमानुषिक अत्याचार करना आरम्भ किया। फलतः अत्याचार-प्रपीड़ित शाहशुजाने रणजित्को वह हीरा 'कोहिनूर' प्रदान किया। इससे भी रणजित् प्रसन्न या सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने गुप्त मणि माणिक्यादिके संग्रह करनेके लिये फिर अत्याचार करने लगे। भाई रामसिंहके

अधीन कई स्त्रियोंको जनानखानेमें भेज कर उन्होंने तलाशी ली। इस तलाशीसे जितने मणि-माणिक्य मिले, उन सबोंको रणजित्ने हाथमें किया। इस तरहके अत्याचारसे प्रपीड़ित हो कर जनानखानेकी स्त्रियां एक दिन साधारण स्त्रियोंके वेशमें एक्का या टांगों पर सवार हो कर नगरके बाहर जा अङ्गरेजोंकी शरणमें लुधियाना चली गईं। इस समाचारसे क्रुद्ध हो कर रणजित् और भी शाहशुजाको कष्ट देने लगे। जहां जो शाहका मणि-माणिक्य मिला वह भी रणजित्ने ले लिया। अन्तमें सन् १८१५ ई०के अप्रिल महीनेमें आधी रातको एक गुप्तरूपसे नगरद्वारसे बाहर जा इरावती नदी तैर कर शाह गुजरानवाला होते हुए गो पर चढ़ कर जम्बू चला गया। यहां आ कर उसने फिर काश्मीर लौटानेकी कोशिश की, किन्तु व्यर्थमनोरथ हुआ।

सन् १८१४ ई०के अप्रिल महीनेमें होली-उत्सवको समाप्त कर महाराजने कांगड़ाके समीपके पहाड़ी सामन्तोंसे कर संग्रह करनेके लिये ससैन्य यात्रा की। इसके बाद जुलाई महीनेमें काश्मीर जीतनेके लिये वे स्वयं चले। राजायूरी और राजा आगर खाँके कूट परामर्शसे उन्होंने अपनी फौजोंको दो पथोंसे भेजा। वैरामगला, पीरपञ्जाल, हीरापुर, सुपीन और तोषू मैदान-में सिक्खोंके साथ पञ्चाधिपति वजीर रुहेल खांकी अफ-गानी सेनाओंसे युद्ध हुआ। युद्धमें सिक्ख सेना हार खा कर लाहोरको लौट गईं। लौटते समय रणजित्ने खड्डी और पञ्चनगरमें आग लगा दी। नगर छार-खार हो गये।

दुःखी मनसे महाराज रणजित् जब लाहोर पहुंचे तब उन्होंने माखनचन्दके रोगग्रस्त होनेका समाचार सुन कर वे और भी दुःखित हुए। इसके कुछ समय बाद ही फिल्लौर दुर्गके विश्वस्त राजनीति और समर कुशल सेनापति दीवान माखनचन्दकी मृत्युको खबर पा कर वे नितान्त दुःखी हुए। सिक्खसम्प्रदायने इस उन्नत-मना राजभक्त वीरकी मृत्यु पर अत्यन्त शोक प्रकट किया था। महाराजने दीवानके पुत्र मोतीरामको फिल्लौर किले और जालन्धर दोआबका शासनकर्त्ता और दीवान तथा काश्मीर-युद्धमें वीरत्व देख दीवानके पौत्र रामदयालको सिक्ख-सैन्यका प्रधान सेनापति बनाया।

सन् १८१५ से १८१६ ई०में उन्होंने राजायूरी, भीमधार, रामगढ़, नूरपुर, यशवाल, बहावलपुर, भक्कर, मानकेरा, उच्छ, पाकपत्तन और मुलतान आदि नाना स्थानोंके सरदारोंको हरा कर धनसम्पत्ति लूटी तथा नजराना वसूल किया था। इसी वर्ष कुमार खड्गसिंह युवराज पद पर अभिषिक्त हुए।

सन् १८१७ ई०में उन्होंने मानकेरा, हाजरा और मुल-तानकी ओर यात्रा की। दो बार मुलतान दखल करनेमें असफल होने पर भी वे निरुत्साह नहीं हुए। अन्तमें सन् १८१८ ई०के जून महीनेमें मुलतानका किला उनके हाथ आया। दुर्गके मालिक नवाब मुजाफर खाँ पुत्रके साथ मारे गये थे। जीतनेके बाद सिक्खोंने नगर और किलेको लूट लिया। इसके बाद इस सिक्ख विजय-वाहिनियोंने सुजाबाद पर भी अधिकार कर लिया था।

युद्धमें विजय पाने पर जीते हुए देशोंमें रणजित्ने शासन व्यवस्था ठीक कर दी। वालसिंह, योधसिंह, धन्यसिंह आदि सरदारों पर नगर और दुर्गोंकी मरम्मत करानेका भार सौंपा गया। इस समय जमादार खुशाल-सिंह महाराजके अप्रिय हो गये। इससे (Cham-berlain) दरबार-सचिवका पद उनसे छीन कर मियां ध्यानसिंहको दिया गया।

मुलतान-अधिकारके बाद राज्यमें शान्ति होने पर महाराज रणजित् सिंहने कुछ दिनों तक शान्तिमय जीवन बिताया। इसके बाद ही उन्होंने सुना, कि काबुलमें बलवा हो गया है। उन्होंने यह उपयुक्त अवसर सोच कर वहांकी यात्रा कर दी और पहुंचते ही खैराबाद, जहांगीरा, पेशावर आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया। किन्तु उनके लौटते न लौटते ही दोस्त महम्मद-खाँने फिर पेशावर पर कब्जा कर वहांसे सिक्ख शासक जहान खाँको निकाल बाहर किया। सन् १८१९ ई०में उन्होंने कलहार-राजधानी विलासपुर पर आक्रमण किया। किन्तु वहांके सरदारको अंग्रेजोंके सहायता देने पर अपना घेरा उठा लेने पर वे बाध्य हुए। इसके बाद उन्हीं सेनाओंको ले कर वे तीसरी बार काश्मीर-विजयके लिये

चले। दीवानचन्द, श्याम सिंह और स्वयं महाराजने इस युद्धमें सेनाका परिचालन किया था। सुपीन युद्धमें अफगानी सेना पराजित हुई। काश्मीर सिक्खोंके हाथ आया दीवान मोतीराम वहांके प्रथम शासक नियुक्त हुए।

इसके बाद लाहोरमें आ कर दशहरा-पर्वको सम्पन्न कर वे फिर मुलतान, बहवलपुर और शक्कर तक सिन्धुदेशोंको लूटनेमें प्रवृत्त हुए।

काश्मीर और मुलतानके युद्धके समय रानी महताब-कुमारीकी तरह रानी दयाकुमारीने भी दो बच्चोंको संग्रह कर अपने गर्भसे उत्पन्न होनेको घोषणा की। महाराजने इन दोनों पुत्रोंका नाम काश्मीरासिंह और पेशौरा-सिंह रखा। रानी रतनकुमारीके गर्भसे उत्पन्न लड़केका नाम मुलतानसिंह रखा गया। सन् १८२० ई०में मुलतानके हिसाबनवीश-पद पर सावन मलकी नियुक्ति, जमादार खुशालसिंह द्वारा डेरागाजी खाँ पर अधिकार, मानकेरा-सरदार हाफिज अहमद खाँसे "सफेद परी" नामक घोड़ेकी प्राप्ति, हाजाराको यात्रा और उसके प्रसङ्गमें शाह दीवान रामदयालकी मृत्यु, सरदार हरिसिंहकी काश्मीर-शासक पद पर नियोग, मोतीरामके काशी जाना और फिर बुलाये जाने पर उनको अपने ही पद पर नियुक्त होना, विद्रोही दोगरा सरदार वेदूको युद्धमें पराजित करनेके लिये गुलाबसिंहको जागीरप्राप्ति, भ्रमणकारी विलियम-मूर-क्रफटका लाहोर-परिदर्शन, अंग्रेज कैदी महाराष्ट्र-सरदार आप्पा साहबका संन्यासीके वेशमें अमृतसरमें आना और रणजित्‌से साहाय्यकी प्रार्थना करना, सास सदाकुमारीसे रणजितका विरोध और उनका राज्याधिकार, रावलपिण्डी-विजय तथा पौत्र नवानिहालसिंहका जन्म लेना। कृष्णवार, मानकोट, दक्षिण-मुलतान, भक्कर, डेराइस्माइल खाँ, खानगढ़, लेइया, मनगढ़ और मानकेरा आदि स्थान और दुर्गका अधिकार आदि उल्लेख-योग्य घटना है।

सन् १८२१ ई०में मानकेराके नवाबके आत्मसमर्पण करने पर सरदार अमीरसिंह सिन्धियाव वालियाको वहांका शासक नियुक्त कर रणजितने राजकुमार खड़्गको भक्कर और लेइयाका शासक नियुक्त किया। इसके बाद सन् १८२२ ई०में लाहोर लौट आ कर उन्होंने फिर नारा और सराय जिले पर आक्रमण और अधिकार किया था।

विख्यात फ्रान्सीसी वीर नेपोलियन बोनापार्टकी विश्वविजयिनी शक्तिके वाटरलूके रणक्षेत्रमें क्षीण होने पर फ्रान्सीसी-सेनापतिकी सामरिक विषयमें उन्नतिलाभ द्वारा लब्धप्रतिष्ठ होनेकी आशा निर्मूल हो गई। उस समय कई उच्चाकाङ्क्षी युवक युद्धविभागमें नौकरी पानेकी आशासे पारस्यके शाहके यहां आये। यहां भी उन्होंने उपयुक्त पद नहीं पाया। फिर रणजित्‌सिंहके रणोत्साहको सुन कर उनके यहां नौकरी पानेकी गरजसे वे उनके दरबारमें आने पर उद्यत हुए। किन्तु कहीं राहमें कोई विपद् न उपस्थित हो जाय, इसलिये उन्होंने मुसलमानी वेशमें काबुल कन्दहार होते हुए भारतमें प्रवेश किया। सन् १८२२ ई०के मार्च महीनेमें वे लाहोर दरबारमें पहुंचे और उन्होंने उनके यहां नौकरीके लिये प्रार्थना की। रणजित्‌ने पहले तो वैदेशिक होनेकी वजह उन पर विश्वास नहीं किया; किन्तु पीछे उनको उन्होंने यूरोपीय ढंग पर सिक्ख-सैनिकोंके शिक्षा दिलानेके लिये उन सबोंको अपने यहां नौकर रख लिया। आपने नौकर रखनेसे पहले उनको कह दिया था, कि तुम लोग गोमांस-भक्षण तथा श्मश्रुमुण्डन (मूछ मुड़वाना) नहीं कर सकोगे। पहले काबुलकी राहसे जो दो युवक आये, उनका नाम—भेञ्चुरा और आलार्ड था। ये लाहोर नगरमें बाहर एक मकान बना कर रहने लगे। अपने यूरोपीय ढंगकी शिक्षासे सिक्ख-सैनिकोंको इन्होंने इतना सुशिक्षित किया, कि महाराज देख कर उन पर बहुत प्रसन्न हुए थे। इसके तीन चार वर्ष बाद स्पेन-विजयी फ्रान्सीसी-सेनापति मार्शल वेसेरिसके पड़ोकड्ड फौजी-कोर्ट और आविताविलमें पहुंच कर उनसे आ मिले।

सन् १८२३ ई०में पेशावरके शासक यार महम्मद खाँसे बलपूर्वक नजराना वसूल करने पर महम्मद अजीम खां रणजितके प्रति क्रुद्ध हुए। अजीम खाँ भाईके आक्रमणसे रंज हो कर स्वयं पेशावर पहुंचे। रणजित्‌ने भी युद्ध होना अनिवार्य समझ कर फौजें भेजीं। एक खण्ड-युद्ध होनेके बाद सिक्ख-फौजोंने जहांगीरा-किले पर अधिकार कर लिया। इससे अफगानी और आगबबूला

हो उठे। दोनों ओरसे फिर युद्ध आरम्भ हुआ। नौशेर रणक्षेत्र बना। शिक्षित सिक्ख-फौजोंने अफगानियोंको बुरी तरहसे हराया। दोस्त महम्मद और यार महम्मद खाँ पर पेशावरका शासन-भार सौंप कर महाराज रणजित् लाहोर लौट आये।

सन् १८२५ ई०में लुधियाना-निवासी एक यूरोपीय महिलासे महाराजके प्रिय सेनापति जनरल भेञ्चुराका विवाह हुआ। इस विवाहमें महाराजने बहुत साहाय्य किया था।

सन् १८२७ ई०में सैयद अहमद नामक युसुफजै पहाड़ी एक मुसलमानने अपनेको धर्मसंस्कारक होनेकी घोषणा की। पेशावर तथा अटकके बीचके रहनेवाले अपने चेलोंको महाराजके विरुद्ध उभाड़ कर वह युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ा। अकोरेमें सैयदके चेले हार गये और पहाड़की गुफामें जा कर उन्होंने अपनी जान बचाई।

इसी वर्षमें महाराजने अपने प्रधान कर्मचारी दीवान मोतीराम और फकीर अजीजुद्दीनको भारत-प्रतिनिधि लार्ड अमहर्ष्टके साथ भेंट करनेके लिये शिमला भेजा। इसके बाद रणजित्के प्रति सौजन्य प्रकाशित करनेके लिये अङ्गरेजोंकी ओरसे लार्डने महाराजके लिये उपढौकनके साथ अमृतसरमें एक मिशन भेजा। सन् १८२३ ई०में महाराजने अमृतसरको चहारदीवारीसे घेर दिया था।

इस समय रणजित्देवके वंशधर मियां ध्यानसिंह, गुलाब सिंह और सुचेतसिंहकी प्रतिपत्ति लाहोर दरबारमें बढ़ गई थी। महाराजकी कृपा प्राप्त कर ध्यान सिंहने शीघ्र वजीर-पद और "राजा-ये-राजगान राजा हिन्दपत् राजा बहादुर"-की पदवी प्राप्त की। ध्यानसिंहका पुत्र हीरासिंह रणजित्का अतिप्रिय था। महाराज उसको एक दण्ड भी आंखसे दूर नहीं करते थे। यह बारह वर्षका बालक महाराजके समीप एक आसन पर बैठकर हमेशा महाराजसे बातचीत किया करता था। अन्यान्य सभी बड़े बड़े कर्मचारियोंको उसके नीचे आसन पर बैठना पड़ता था।

राजा संसारचन्द्रकी कन्याके साथ हीरासिंहके विवाह करनेका प्रस्ताव ध्यानसिंहने महाराजसे किया। किन्तु संसारचन्द्रकी रानीने ऐसे नीच कुलके बालकके साथ विवाह करना नामञ्जूर कर दिया और डरके मारे शतद्रुके किनारे अंगरेजोंके राज्यमें आ कर रहने लगी। यहां संसारचंदकी पत्नी और पुत्र अनिरुद्धचंदको मृत्यु होने पर महाराजने जा कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया और संसारचन्द्रकी दूसरी रानीसे उत्पन्न दो कन्याओंसे विवाह कर उसका बदला चुकाया था। इसके बाद उन्होंने बड़े समारोहसे हीरासिंहका किसी उच्च वंशमें विवाह कर दिया। यह सन् १८२६ ई०की बात है।

इस समय सैन्य संग्रह कर पूर्वोक्त सैयद अहमदने सिन्धुनद पार कर पेशावर पर अधिकार कर लिया। जनरल भेञ्चुरा, आलार्ड, हरिसिंह आदिके प्रतिबन्धकता करने पर भी इस धर्म्मोन्मत्त मुसलमान-दलके हाथसे पेशावरके वरकजै शासक सुलतान महम्मद खाँकी रक्षा न की जा सकी। शीघ्र ही उसका सुखस्वप्न टूट गया। सन् १८३० ई०में सिक्खोंके हाथसे वे पराजित हुए। इसी समय उसके प्रचारित अभिनव-विवाहपद्धतिसे युसुफजै चेलोंने रंज हो कर उसका साथ छोड़ दिया। सहायसम्पत्तिहीन सैयद काश्मीर भागा। यहां सन् १८३१ ई०में बालाकोट नामक स्थानमें युवराज शेरसिंहने इस राजद्रोहीका मस्तक काट कर महाराजको उपहार भेजा था।

इस समय रणजित्की राज्यसीमा बहुत दूर तक फैल गई थी और उनकी ख्याति और वीरताका प्रभाव चारों ओर फैल गया। इतने दिनोंमें वह यथार्थमें स्वाधीन राजेश्वर हुए। स्वयं अंग्रेजराजने उनसे मित्रता स्वीकार की थी। सन् १८२८ ई०में महाराजके भेजे शाल उपढौकनको लार्ड अमहर्ष्ट इङ्गलैण्डके राजा विलियमको देनेके लिये ले गये। बदलेमें इङ्गलैण्डके राजाने भी लार्ड एलेनके हाथ महाराजको उपहार भेज दिया था। सन् १८३० ई०की २०वीं जूनको अलेकजेण्डर बर्निस नामक एक अंग्रेज-सेनापति यह सब उपढौकन ले सिन्धुनद पार कर सिक्ख-राजदरबारमें आ पहुंचा। महाराजकी आज्ञासे उसकी बड़ी खातिरदारी की गई।

सन् १८३१ ई०के अप्रिल महीनेमें महाराजने गवरनर जनरल लार्ड विलियम वेण्टिङ्कके यहां शिमलेमें अपना एक दूत भेजा। लार्ड वेण्टिङ्कने आपसमें राज्य भक्ति सुदृढ़ रखनेके लिये महाराजसे भेंट करनेकी इच्छा प्रकट की। इसके अनुसार रोपर नगरमें १६वीं अक्तूबरको दोनोंकी भेंटके लिये एक "दशहरा-दरबार" किया गया था। २६वीं तारीखको वे सदलबल लार्डके खेमेमें गये और दूसरे दिन सौजन्य प्रकाश करनेके लिये बड़े लार्ड रणजित् सिंहके खेमेमें आये। इस अवसर पर महाराजने अपने अस्त्रशिक्षाका कौशल समागत यूरोपीय अतिथियोंको दिखाया था। ३१वीं तारीखको परस्पर विदा सम्मिलन हुआ। इस अवसर पर आगेकी मित्रताको दृढ़ करनेके लिये एक सन्धिपत्र पर दोनोंके हस्ताक्षर हुए। इस सन्धिके अनुसार अंग्रेजोंको सिन्धुनदसे वाणिज्य करनेका अधिकार मिला।

दरबार टूट जाने पर १६वीं नवम्बरको महाराज लाहोर राजधानीमें लौट आये। इसी समय वहावलपुरके शासक नवाब सादिक महम्मद खाँके यहां डेरा गाजी खाँके दो वर्षका कर बाकी पड़ जाने पर जनरल भेञ्चुराको उसकी सम्पत्ति लूट लेनेके लिये भेजा गया। भेञ्चुराने बलपूर्वक नवाबकी छः लाखकी सम्पत्ति लूट ली।

इस समय महाराजके हृदयमें सिन्धुप्रदेशके अधिकारकी वासना जागरित हो उठी। उन्होंने अंग्रेजोंसे सहायता मांगी। बड़े लार्डने अंग्रेजोंके व्यवसाय-वाणिज्य लुप्त होनेके भयसे इस विषयमें ध्यान न दिया। दोनों ओरके वाग्वितण्डाके बाद सिन्धुनदके वाणिज्य-कार्यके परिदर्शकरूपसे मिथुनकोटमें एक अंग्रेज कर्मचारी नियुक्त किया गया। इसके चार मास बाद सन् १८३२ ई०के अप्रिल महीनेमें वाणिज्य व्यवसाय चलानेके लिये सिन्धुके अमीरोंके साथ अंग्रेज-सरकारकी सन्धि हुई थी।

इसी वर्षमें वार्निस साहब फिर लाहोर दरबारमें आये। सरदार देशसिंहकी मृत्यु और उसके पुत्र लहनासिंहको इरावती और शतद्रुके मध्यवर्ती पहाड़ी राज्यके शासन-भार प्राप्ति, युसुफजै और चक हाजाराकी विजय, सक्करपति नवाब आसद खाँके पुत्र जुलफिकार खाँका अवरोध, सदाकुमारीकी मृत्यु और उसकी सम्पत्ति पर अधिकार तथा उस समयके काबुलके विप्लव पर योगदान, अमृतसरमें विख्यात धनी शिवदयाल क्षत्रियका धनाधिकार, गुलवहार नामकी वेश्यासे विवाह, मुसलमान शैलराज्य-विजय, काश्मीर-शासन-संस्कार, जनरल भेञ्चुराको डेरागाजी खाँका शासनभार प्रदान और संसारचन्दके पौत्रोंको जागीर दान आदि इस वर्षकी अन्यान्य घटनायें हैं।

सन् १८३३ ई०में महाराजके स्वास्थ्य खराब हो जानेसे वे पीड़ित हुए। पण्डित मधुसूदन आदिने ग्रह-शान्तिके लिये शास्त्रीय प्रायश्चित्तकी व्यवस्था की और पाप-निवृत्तिके लिये कैदियोंको छोड़ दिया गया। इसी समय लुधियानेसे डाक्टर मूर महाराजको चिकित्सा करनेके लिये लाहोर आये। महाराज शीघ्र ही रोगमुक्त हुए।

सन् १८३४ ई०में प्रधान राजस्व सचिव दीवान भवानी दासकी मृत्यु हो गई और पण्डित दीननाथको यह पद दिया गया। इस समय बन्नू सीमान्त पर अफगान विद्रोही हो उठे। महाराजने सम्बाद पा कर राजा सुचेतसिंहको विद्रोह दमन करनेके लिये भेजा। सीमान्तकी विद्रोह-शान्ति हो जानेके बाद महाराज रणजित्ने पेशावरको अपने राज्यमें मिला लेनेकी चेष्टा की। उनके पौत्र नवनिहाल सिंह सिक्ख-सैनिकोंका सेनापति बन कर वहां चले। इस वर्षकी छठीं मईको पेशावर पर सिक्खोंका अधिकार हो गया। स्वयं सिक्खपतिने पेशावरमें आ कर छावनी कायम कर ली। यह देख काबुलके अमीर दोस्त महम्मद भी विचलित हुए। अपने राज्यके अपहरण करनेवाले रणजित्के विरुद्ध साहाय्य प्राप्तिकी आशासे उन्होंने अंग्रेज प्रतिनिधिसे प्रार्थना की। इसका कोई फल नहीं हुआ। यह देख कर उन्होंने पारस्यके राजाके पास प्रार्थनापत्र भेजा। अन्तमें वे सिक्खोंके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हुए। रणक्षेत्रमें आने पर उनकी गाजी फौजोंने आपस होमें गड़बड़ी मचा दी। अपनी सेना पर शासन न कर सकनेके कारण वे जलालाबाद लौट आये। सिक्खोंने उनका पीछा कर गोला-

वृष्टि की। इसके बाद सेनाओंके तितर बितर हो जानेके कारण सन् १८३५ ई०में वे काबुल लौट आये। दोस्त महम्मद स्वराज्यमें जब पहुंच गये, तब पेशावरमें महाराजने एक मजबूत किला बनवाया। इसके बाद उन्होंने उत्तर-पश्चिम सीमान्तको सुरक्षित किया।

इधर सन् १८३४ ई०में इङ्गलैण्डेश्वरके लिये पत्र और उपढौकनके साथ सरदार गुजानसिंह और भाई गोविन्ददासको कलकत्तेके बड़े लाटके पास भेजा। बड़े समारोहके साथ लाहोरमें दशहरा-दरबार कर महाराज बताला, स्यालकोट और झेलम प्रदेश देखनेके लिये गये। रोहतासमें आ कर उन्होंने स्वयं मित्र झिन्दके राजा सङ्गतसिंहके मृत्यु-समाचारसे दुःखित हो कर लाहोर लौट आये। इस समय सरदार श्यामसिंह अतारीकी कन्याके साथ राजकुमार नवनिहालसिंहका विवाह होना निश्चित हुआ। उक्त वर्षमें जम्बुराज गुलाबसिंहके सेनापतिने लादक पर अधिकार कर लिया।

सिन्धुप्रदेशके अमीरोंको निर्बल देख सन् १८३६ ई०में रणजित्के मनमें उनके प्रदेशों पर अधिकार करनेकी इच्छा हुई। सिन्धु-सीमाके रोजहनवासी उनके आश्रित गुलाम शाह कल्हारके प्रति सिंधुवासी मजारियोंके अत्याचार करनेसे उन्होंने उनके विरुद्ध युद्ध कर उनको दण्ड दिया। इसके बाद उन्होंने पेशावरमें आ कर सुलतान महम्मद खांको कोहाट नगर और दोआबकी जागीर दी थी। इसके थोड़े दिन बाद ही महाराज लकवाकी बीमारीसे आक्रान्त हुए। इसी समय डाक्टर मेकग्रेगर, हर्लेन, हनिगबर्जर, वेण्टून आदि अमेरिका और यूरोपवासी मनीषियोंने लाहोर देखनेके लिये आगमन किया।

सन् १८३६ ई०में पञ्जतरवासी युसुफजै और खैरवासी अफरीदी जाति पर सिक्खोंने विजय पायी और सिन्धुसीमान्तस्थित रोजहन और कान दुर्ग सिक्खोंके हाथ लगे। इसी सम्बन्धमें उनका अंग्रेजोंसे विरोध उपस्थित हुआ। अङ्गरेज कप्तान वार्डके कहने सुननेसे वे शान्त हुए। किन्तु सिन्धु-प्रदेशका एकाधिपत्य उनके मनमें जागरित रहा।

सन् १८३६ ई०में नवनिहाल सिंहके विवाहके व्ययके लिये महाराजने स्वतन्त्र 'पेशकास' वसूल किया। सन् १८३७ ई०में यह विवाह सम्पन्न हुआ। इस विवाहमें अङ्गरेजराजके प्रधान सेनापति सर हेनरी फेन उपस्थित थे। उन्होंने वरको ११ हजार और राजा ध्यानसिंहको १ लाख २५ हजार रुपया उपहार दिया था। विवाहके बाद कई दिनों तक आमोद-प्रमोदके साथ बिता कर महाराजने यथोपयुक्त उपढौकन आदि दे कर अंग्रेजराजके सेनापतिको बिदा किया।

सन् १८३७ ई०के शीतकालमें सिख-सेनापति हरिसिंह खैबर पथसे आ कर जमरूद-दुर्ग पर अधिकार कर लिया। अमीर दोस्त महम्मदने इस समाचारसे सिक्खोंके विरुद्ध सैन्य भेजी। हरिसिंहकी अनुपस्थितिका अनुभव कर मिर्जा शामीखाँ और अमीरके पुत्रोंने ३० एप्रिलको जमरूद पर आक्रमण किया। वे दुर्गमें घुस रहे थे, ऐसे समय हरिसिंहने आ कर पीछेसे गोलावर्षण किया। इस पर अफगान सैनिक तितर बितर हो कर भाग गये। इस अवसर पर अमीरपुत्र महम्मद अफजल खां और अफगान सेनापति शमशुद्दीन खांके अधीनमें साहाय्यकारी सेनादल आ कर सम्मिलित होनेसे फिर दोनों दलोंमें युद्ध आरम्भ हुआ। युद्धमें हरिसिंह मारे गये। सिक्खोंने जमरूद दुर्गमें आश्रय लिया। महाराज अपने लंगोटिया यार प्रवीण सेनापतिकी मृत्यु और सिक्ख-सैन्यकी हारसे विचलित हो कर स्वयं रोहतसकी ओर चले और ध्यानसिंहको जमरूद-विजयके लिये भेज दिया। ध्यानसिंहके आ जाने पर अफगानी सफेदकोट नामक पहाड़ोंमें छिप गये। इधर हस्तनगर पर आक्रमण करनेवाले अफगान सरदार हाजी खाँ आदि सिक्ख सैन्योंके सामने न डट सकने पर पीछे हटे।

इसी वर्षके अक्तूबर महीनेमें सरदार फतेह सिंह अहलुवालियाकी मृत्यु हुई। महाराजके आज्ञानुसार सरदारका ज्येष्ठ बेटा निहालसिंह पिताकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी बना। इसी समय मण्डीराजके मन्त्री धानीने आ कर खबर दी, कि वृद्ध राजा राजकार्य संभालनेमें अक्षम हैं। इस पर महाराजने राजाके भतीजे बालावीर सिंहको ही गद्दीनशीन किया और उसे वहांका

राज्य चलानेकी आज्ञा दी। राजपौत्र नवनिहाल सिंहके अधीनस्थ सेनानायक शार्दूलसिंह मान और चेतसिंहने टक्करके बलवेको शान्त किया।

इस समय हिरातपति कामरानके साथ पारस्यके राजासे मनोमालिन्य हो गया। रूस-दूत काउण्ट साईमोनीके उपदेशानुसार शाहने हिरात पर घेरा डाला और नादिर शाहके राज्यान्तर्गत गजनी और कन्दहार पर दावा किया। मध्य एशियामें रूसका प्रादुर्भाव देख बड़े लाट आकलेण्डने उत्तर पश्चिम सीमान्तको मजबूत बनानेके लिये कम्पनीने अलेक्जण्डर वर्निसको काबुलके साथ मित्रता स्थापनके उद्देश्यसे भेजा। काबुल पहुंच उन्होंने मित्रता स्थापित करनेकी चेष्टा की, किन्तु अमीरने कहा, कि लाहोरके महाराज रणजित्को पराजित करनेमें हमारी मदद करो, तो हमारी तुम्हारी मित्रताको सन्धि हो सकेगी। किंतु उन्होंने महाराजके विरुद्धाचारी बनना स्वीकार न किया, किंतु इन दोनों दलोंमें सद्भाव स्थापित करा देनेकी चेष्टामें वे रहने लगे।

वर्निस अभी काबुलमें ही थे, कि अमीर काबुलसे भेंट करनेके लिये रूस-दूत विक्कोविक आये। काबुलके अमीर पारस्यके चक्रमें पड़ गये थे। वर्निसको बड़े लाटने लौट आनेकी आज्ञा दी। सन् १८३८ ई०की यह घटना है। वर्निस जब लौट कर लाहोर आये, तो महाराजने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। वर्निस जब शिमला पहुंचे, तब उन्होंने बड़े लाटसे काबुलकी समस्या कही। बड़े लाटने दोस्त महम्मद और महाराजका मिलना असम्भव समझ शाहशुजाको काबुलकी गद्दी पर बैठाना स्थिर किया। इसके लिये बड़े लाटने राजनीतिक समस्याकी समालोचना करनेके लिये दोनों पक्षके हितकी कामनासे मिष्टर मेकनेटनको लाहोर-दरबारमें भेज दिया। महाराज इस समय अदीन नगरमें रहते थे। शेर सिंहके पुत्र महाराजके पौत्र प्रताप सिंहने अङ्गरेज-दूतका आगत-स्वागत किया। २६वीं और ३१वीं मईको महाराजके साथ अङ्गरेज-दूतसे भेंट हुई। महाराज अङ्गरेजोंके प्रस्ताव पर अपनी सम्मति दी और कहा, कि विजय होने पर मैं जलालाबाद ले लूंगा।

सन् १८३८ ई०के नवम्बर महीनेमें अङ्गरेजी फौजें फिरोजपुरमें सिक्खोंके साथ आ मिली। बड़े लाट आकलैण्डमे ३०वीं नवम्बरको प्रकाश्य दरबारमें महाराजसे भेंट की। अङ्गरेज और सिक्ख फौजोंने शाह शुजाके अधीन रह कर दूसरे वर्ष २६वीं अप्रिलको कन्दहार पर विजय पाई। ८वीं मईको शाहशुजा कन्दहारकी गद्दी पर विराजमान हुआ।

इस युद्धमें सिक्ख-सैन्यकी वीरता देख कर बड़े लाटने महाराज रणजित्के यथार्थ महत्त्वको हृदयङ्गम किया। लार्ड अकलैण्ड आदि अतिथियोंकी अभ्यर्थनाके समय महाराज रणजित्सिंहने कुछ अधिक मद्यपान कर लिया था। फलतः वे लकवाकी बीमारीसे पीड़ित हुए। इस बीमारीसे उनकी बोल-चाल बन्द हो गई। उस समयसे वे इशारेसे आज्ञा देने लगे। इस समय डाकृर मूर ष्टील, मेकग्रेगर और हनिगवार्जारके यत्नसे वे रोगमुक्त हुए। इसके बाद ही वे फिर रोगाक्रान्त हुए। इस तरह हकीम, राजवैद्योंने आ कर औषध-परिवर्त्तनकी व्यवस्था की। गुरु शान्तिस्वस्त्ययनादि द्वारा रोगशान्तिका उपाय करने लगे। अन्तमें राजाको मानसिक दुर्बलताको दूर करनेके लिये हकीम फकीर अजोजुद्दोनने अपने हाथसे एक महजूम या मोदक प्रस्तुत कर महाराजको खिलाया। किन्तु वे क्रमशः दुर्बल ही होते गये। अन्तमें लाहोरदुर्गमें उन्होंने २८वीं जून सन् १८३९ ई०में अपना नश्वर कलेवर त्याग इस धराधामसे कूंच किया।

उन्होंने मृत्युके पहले ही प्रधान प्रधान सरदारोंके सामने अपने ज्येष्ठ पुत्र खड्गसिंहको अपना उत्तराधिकारी बनाया। राजा ध्यानसिंहको सम्मान-जनक उपाधि प्रदान की गई और इन्हें मिन्त्रपद पर नियुक्त किया गया। राजकार्यके कर्त्तव्यके अनुसार यह समाचार तुरत ही मुलतान, पेशावर, काश्मीर आदि अधीनस्थ राज्योंके शासनकर्त्ताओंके पास भेज दिया गया।

महाराजकी अन्त्येष्टिक्रियाके दिन हजारों रुपया नङ्गे भूखोंको लुटाया गया। मृत्युके पूर्व ध्यानसिंहने १० लाख रुपये खर्च कर एक उच्च वेदी तय्यार कर उस पर शाल बिछवा महाराजको सुला दिया था। यह शाल दश हजार रुपयेका था। महाराजकी अन्त्येष्टिके दिन श्री जगन्नाथदेवको प्रसिद्ध कोहिनूर हीरा दान कर देनेकी

बात हुई। किन्तु तोषखानेके अध्यक्ष मिश्र वेणीराम ने उसको राजसम्पत्ति कह कर इस कामके लिये नहीं दिया।

जब रणजित्की देह चिता पर जलानेके लिये आने लगी थी, तब उनकी निःसन्तान चार रानियां और सात बांदियां स्वर्गारोहणकी कामनासे सती होनेके लिये खुले पैरसे शवदेहके पीछे पीछे चलीं। रानियोंमें संसारचन्दकी कन्या राजदेवी भी थी। डाक्टर हनिगबार्जार यह वीभत्स घटनाको देख कर चमक उठे। उन्होंने लिखा है, कि स्वर्गमें स्वामीके साथ सुखसे दिन बितानेकी आशासे ही उन रानियों और बांदियोंने महाराजके चितामें अपने शरीरको जला कर सतीका नाम पाया था। ध्यानसिंहको भी महाराजकी मृत्युका बड़ा शोक हुआ था। उन्होंने भी अपने परिवारके सभी व्यक्तियोंके साथ महाराजकी शवदेहके साथ जल जाना स्थिर कर लिया था। किन्तु वे रोके गये। दो दिन तक चिता जलती रही। इस चिताके साथ कोई चौदह प्राणियोंका संहार हुआ। पीछे चिताभस्म ले कर उनके परिवारका आदमी हरिद्वारकी गङ्गाजीमें डालनेके लिये ले आया। इस समय भी बहुत धन वस्त्र लुटाया गया। कहनेका प्रयोजन नहीं, कि तेरह दिनके बाद प्रेतकार्य करनेके दिन ब्राह्मण पण्डित तथा फकीरोंको यथेष्ट धन दान किया गया था।

महाराज रणजित् सिंह कुछ पढ़े लिखे व्यक्ति न थे, किन्तु सदा वे विद्वान् पण्डितोंका आदर सत्कार किया करते थे। उनके राजकार्य चलानेके लिये उच्च पदस्थ कर्मचारी उनके साथ साथ घूमते थे और जो काम या कानून उनकी आज्ञा पर निर्भर करता था, वे उन सबोंके सम्बन्धमें कर्मचारियोंसे फारसी, हिन्दी अथवा गुरुमुखी भाषामें पढ़वा कर अपनी राय दिया करते थे। उनके आज्ञानुसार कार्य हुआ या नहीं इसकी जांच करनेके लिये फिर वे उन्हें पढ़वाते थे। यूरोपीय दर्शकोंसे वे हिन्दी तथा स्वदेशी आदमियोंके साथ गुरुमुखी भाषामें बातचीत करते थे। वे छोटे कदके थे। बचपनमें ही शीतला रोगसे उनका बायां नेत्र नष्ट हो गया था। मुख पर भी शीतलाका दाग था। मुखका सौन्दर्य तो उनको छू तक न गया था, किंतु उनके गाम्भीर्यकी ओर दृष्टिपात करने पर उनकी सरलता, वाक्यालापमें मनोहारिता, ज्वलन्त और दृढ़ प्रतिज्ञा और निर्भीकता स्वतः ही मनमें दौड़ आती थी। उनकी जो एक आंख बच गई थी, वह आयत, चञ्चल, सूक्ष्मदर्शी और उनके मानसक्षेत्रकी गूढ़ भावव्यञ्जक थी। उनका दीर्घश्वेतश्मश्रु (मूंछ), उनकी स्थिर प्रकृतिका परिचायक था। जब वे सिंहासन पर बैठ कर विचार करने बैठते थे, तब उनका एक हाथ अङ्क पर और एक हाथ मुंह पर ही रहता था। इससे ही उनके वैषयिक गवेषणाका पता चलता था।

उनका हृदय स्नेह और दाक्षिण्यसे परिपूर्ण था। अतिथिके आदर सत्कारकी चरमसीमा वे दिखा गये हैं। यूरोपीय और वैदेशिकोंके प्रति उन्होंने जो सरल और सदयहृदयता दिखाई थी, वह ज्वलन्त अक्षरोंमें इतिहासमें लिखा हुआ है। लार्ड-विलियम बेण्टिक और लार्ड अकलैण्ड उनकी सदाशयता और अमायिकतासे बहुत ही परितृप्त हुए थे। फारसी परिदर्शक मूसों भिक्टर जैकमोण्टने लाहोरमें आ कर महाराजसे वार्त्तालाप कर लिखा है, कि उनके जैसा अनुसन्धित्सापरायण व्यक्ति अति विरल हैं। वे सब विषयोंमें पूर्ण रूपसे समाचार संग्रह करनेमें विशेष आग्रह प्रकाश करते थे। एक बातमें उनको "छोटा बोनापार्ट और एक असामान्य मनुष्य कहा जा सकता है।" लेफ्टनेण्ट बर्निस कुछ शब्दोंमें महाराजकी उदारता और महत्त्वका जो परिचय दिया है, उस पर विचार करनेसे मनमें स्फूर्त्ति दौड़ती है। उन्होंने अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें लिखा है :—

"I never quitted the presence of a native of Asia with such impression as I left this man; Without education and without a guide he conducts all the affairs of his kingdom with surpassing en rgy and vigour and yet he wields his power with a moderation quite unprecedented in an eastern Prince."

यौवनके समय वे कर्मठ, वीर्य्यशाली और उद्यमशील थे। शिकार खेलनेमें उनकी विशेष प्रवृत्ति थी,

घोड़े की सवारीमें पटु थे। इसी कारण उन्होंने प्रसिद्ध लैली सफेदपरी आदि घोड़ोंके संग्रह करनेमें आग्रह प्रकाश किया था। उनको चहल-पहल पसन्द थी। उन्होंने राजकर्मचारियोंको बहुत वेतन और वृत्तियां दिया करते थे, जिससे वे बहुमूल्य वस्त्रोंको पहन कर दरबारकी शोभा बढ़ाया करें। वे दुष्टोंके दमन करनेवाले थे, बगलके दुर्वृत्त राजाओंको दण्ड दे कर उन्होंने उनके राज्यको लूटा था। पिछले समयमें इस लूटनेकी प्रवृत्तिमें भी कमी आ गई थी। हां, नजराना और करसंग्रह करनेमें वे जरा भी हिचकते न थे। वे कट्टर धार्मिक न थे। फिर भी, वे ग्रन्थ साहबका पाठ तथा प्रयोजनीय नित्य कर्म करते ही थे। तीर्थमें पूजा आदि कर्मोंमें उनकी विशेष भक्ति न थी; गुरु, भाई, बाबा, साधु और भिक्षुकोंको अर्थ दान कर उन्होंने दानशीलताका विशेष परिचय दिया था।

रणञ्जय (सं० पु०) रणं जयति जि-ख-मुम्-च। १ रणजेता, युद्धमें जय करनेवाला। (भाग० ९।१२।१३) २ राजभेद, एक राजाका नाम।

रणतूर्य (सं० क्ली) रणस्य तूर्यं। युद्धवाद्य, लड़ाईका डंका। पर्याय—संग्रामपटह, अभयडिण्डिम।

रणत्कार (सं० पु०) झन झन शब्द करना।

रणथम्भर—राजपूतानेके जयपुर सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २६° २' उ० तथा देशा० ७६° ३०' पू०के मध्य अवस्थित है। जनमानवशून्य एक ऊंचे पर्वतके ऊपर प्राचीर, खाई और बुर्जों द्वारा परिशोभित यह ऊंचा दुर्ग प्राचीन गौरवस्मृतिकी घोषणा करता है। दुर्गके भीतर यहांके राजपूत शासनकर्त्ताका प्राचीन प्रासाद, मसजिद और सेनावास स्वतन्त्र भावमें निर्मित है। दुर्गके पूरब नगर बसा हुआ है। दुर्गवासी पर्वत पर खोदी हुई सीढ़ी हो कर नगर आते हैं।

यह दुर्ग बहुत दिनों तक चौहानवंशके अधिकारमें रहा। १२९१ ई०में दिल्लीके खिलजीवंशीय मुसलमान राजा जलालउद्दीनने इस दुर्गमें घेरा डाला था। किन्तु कृतकार्य न हो सका। १२९९ ई०में इलाहाबादके वजीरने इस दुर्ग पर आक्रमण किया। अन्तमें अलाउद्दीनने रणथम्भरको जीत कर वहांके राजाको सपरिवार मार डाला था। इसके बाद राजपूतोंने दिल्लीश्वरसे यह दुर्ग पुनः छीन लिया। १५१६ ई०में मालवराज इस दुर्गके अधीश्वर थे। १५१३ ई०में मुगलसम्राट् हुमायूंने जब महम्मदशाहको दिल्लीसे मार भगाया, उसके बाद ही यह बूंदीराजके हाथ आया। उन्होंने पीछे इसे अकबरशाहको लौटा दिया। १७वीं सदीके मध्यभागमें मुगलसाम्राज्यके अधःपतन होने पर जयपुरराजने इसे दखल किया। दुर्गके भीतर प्राचीन कीर्त्तिके अनेक निदर्शन पड़े हैं।

रणदुन्दुभि (सं० पु०) रणस्य दुन्दुभिः। रणभेरी, युद्धका नगाड़ा।

रणदुर्गाधारणयन्त्र (सं० क्ली०) रणदुर्गाया धारणयन्त्रं। रणदुर्गादेवीका धारणयन्त्र। दुर्गादेवीका यह यन्त्र भोजपत्रपर लिख कर पहनना होता है।

रणधवल—मेवाड़के राजा।

रणधीर सिंह—कपूरथलाके एक हिन्दू राजा, महाराज रणजित्के सेनापति सरदार फतेसिंहके पौत्र। ये १८५२ ई०के सितम्बर महीनेमें पिता नेहालसिंहके मरने पर २२ वर्ष की अवस्थामें पितृसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उच्च शिक्षागुणसे इनका ख्याल बहुत ऊंचा था। अंगरेजी भाषामें भी इनकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। १८५७ ई०के गदरमें इन्होंने अपना सेनादल ले कर अंगरेजोंकी ओरसे जालन्धर और हुसियारपुर दुर्गकी रक्षा की थी। इसके सिवा इनके तथा इनके भाई कुमार विक्रमसिंह द्वारा जालन्धर दोआब और दक्षिण शतद्रु प्रदेशका विद्रोह शान्त किये जाने पर अंगरेज-राजने प्रसन्न हो १ लाख २३ हजार रुपया जो राजाके यहां बाकी था छोड़ दिया और वार्षिक राजकरमेंसे भी २५ हजार रुपया घटा दिया। इसके अलावा इनको १५ हजार और इनके भाईको ५ हजार रुपयेकी खिलअत दी तथा 'फारजन्द दिलबन्ध रसिखाल इतिकाद" उपाधिके साथ साथ राजाके सम्मानार्थ तोपकी संख्या भी बढ़ा दी थी। १८५८ ई०में अयोध्याप्रदेशका विद्रोह जब दमन किया जा रहा था, तब इन्होंने बड़ी वीरता दिखा कर शत्रुओंसे ६ कमान छीन ली थी। दश महीने तक इन्होंने रणक्षेत्रमें जो अविश्रान्त परिश्रम किया उससे भारत-सरकारने खुश हो इन्हें अयोध्याके अन्तर्गत लाख रुपये आयका बूंदी और

बिजौली राज्य-प्रदान किया। केवल यही नहीं, इनके पिताके मृत्युकालमें पैतृक बड़ि-दोआब सम्पत्ति जो सरकारने छीने ली थी उसे भी वापस कर दिया। कुमार बिक्रमसिंह बहादुरको बहराइच जिलान्तर्गत वार्षिक ४५ हजार आयकी एक सम्पत्ति पारितोषिकमें मिली। इसके बाद लार्ड कैनिङ्गने दत्तक ग्रहणका अधिकार देते हुए एक सनद और 'राजा-इ-राजगन्'-की उपाधि प्रदान की।

१८६४ ई०के अक्तूबर मासमें रणधीरने लाहोर-दरबारमें काश्मीर और पतियालाके महाराज, भिन्द और फरिद्कोटके राजा तथा अन्यान्य स्वाधीन सिख-सरदारोंके सामनेमें 'स्टार आव इण्डिया'की पदवी पाई।

१८७० ई०में इन्होंने इङ्गलैण्डकी यात्रा कर दी। आदेननगरमें पीड़ित हो २री अप्रिलको इनकी मृत्यु हुई। अनन्तर इनके लड़के खड्गसिंहने पिताकी मृत देह नासिक नगरमें ला कर अन्त्येष्टि क्रिया की।

रणधीरसिंह—जाटराज रणजित् सिंहके पुत्र। पिताके मरने पर ये भरतपुर-मसनद पर बैठे थे।

रणन (सं० क्ली०) शब्द करना, बजना।

रणपण्डित (सं० पु०) योद्धा।

रणपुर—बम्बईके अहमदाबाद जिलेके धनुका विभागका एक नगर। यह अक्षा० २२° २१´ उ० तथा देशा० ७१° ४३´ पू०के मध्य भद्रनदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या साढ़े छः हजारसे ऊपर है। वर्त्तमान भाऊनगर-राजवंशके पूर्वपुरुष रणाजी गोहेल नामक एक राजपूत-सरदारने १४वीं सदीके प्रारम्भमें इस नगरको बसाया। रणजीके पिता शेकाजी पहले पहल यहां आये थे। उनके नामानुसार पहले इस स्थानका सेजाकपुर नाम पड़ा। पीछे उनके लड़के रणाजीने नगरको दुर्गसे सुरक्षित करके अपने नाम पर इसका रणपुर नाम रखा। १५वीं सदीमें इस वंशका कोई सरदार इसलाम-धर्ममें दीक्षित हुआ। तभीसे यह वंश रणपुर-मोलेसलम कहलाता है। १६४० ई०में सरदार आजम खाँने शाहापुरका दुर्गप्रासाद बनाया। १८वीं सदीमें यह नगर गायकवाड़ द्वारा अधिकृत हुआ। पीछे १८०२ ई०में यह अंगरेजोंके हाथ लगा। यहां भाऊनगर-गोण्डाल रेल-पथका एक स्टेशन और डाकबंगला है। १८८६ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक मिडिल स्कूल, दो वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल हैं।

रणपुर—उड़िसा-विभागके अन्तर्गत एक देशी सामन्त-राज्य। यह अक्षा० १९°५४´ से २०° १२´ उ० तथा देशा० ८५° ८´ से ८५° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २०३ वर्गमील है। इसके उत्तर, पूर्व और दक्षिणमें पुरी जिला तथा पश्चिममें नयागढ़ राज्य है। इस राज्यका दक्षिण-पश्चिमांश पहाड़ और जंगलसे आच्छादित है। इस अंशमें मनुष्योंका वास नहीं है, केवल नयागढ़ राज्यमें जानेका गिरिपथके समीप एक छोटा गाँव है। यहां राजाका प्रासाद है। प्रति सप्ताहमें दो बार करके हाट लगती है। खण्डपाड़ा, नितकाहद आदि दूर देशोंसे भी इस हाटमें द्रव्यादि बिकनेको आते हैं।

वृटिश-सरकारको राजा वार्षिक १४०० रु० कर देते हैं। राजमालामें लिखा है, कि ३६०० वर्ष पहले बासर बासुक नामक एक व्याधने इस राज्यको बसाया। रणशूरके नामानुसार इस स्थानका नाम रणपुर हुआ। यहांकी जनसंख्या ४५ हजारसे ऊपर है जिसमेंसे तृतीयांश हिन्दू हैं। राज्यमें १ मिडिल स्कूल, ३ अपर प्राइमरी और ३८ लोअर प्राइमरी स्कूल तथा १ अस्पताल है।

रणपुरस्वामिन् (सं० पु०) सूर्यमूर्त्तिभेद।

(राजतर० ३।४६२)

रणप्रिय (सं० क्ली०) रणे प्रियं। १ उशीर, खस। (पु०) रणः प्रियोऽस्य। २ श्येनपक्षी, बाज पक्षी। ३ विष्णु। (भारत १३।१४९।८३) ४ युद्धप्रियमात्र।

रणबहादुर शाह—नेपालके एक राजा। इनकी महिषी ललितत्रिपुरासुन्दरी देवीका १८७५ सम्बत्में उत्कीर्ण शिलाफलक मिलता है। नेपाल देखो।

रणभञ्ज देव—१ उड़ीसाके भञ्जवंशीय एक राजा, दिग्भञ्जके पुत्र तथा कोट्टभञ्जके पौत्र। २ उक्त वंशीय एक दूसरे राजा। इनके पिताका नाम था शत्रुभञ्ज देव।

रणभीत—कलिंगके एक सामन्त राजा।

रणभू (सं० स्त्री०) रणस्य भूः। रणभूमि, लड़ाईका मैदान।

रणभूमि (सं० स्त्री०) वह स्थान जहां युद्ध हो, लड़ाईका मैदान।

रणभूषण—सह्याद्रि वर्णित एक राजा। (सह्या० ३१।५१)

रणमण्डल—सह्याद्रिवर्णित एक राजा। (सह्या० ६०।१६)

रणमण्डा (हिं० स्त्री०) पृथ्वी।

रणमत्त (सं० पु०) रणे रणे प्राप्य वा मत्तः। १ हस्ती, हाथी। २ युद्धमें मत्त।

रणमाली—सह्याद्रिवर्णित एक राजा। (सह्या० ३१।३०)

रणमल्ल—मरुस्थली (मारवाड़) प्रदेशका एक राजपूत राजा।

रणमुख (सं० क्ली०) युद्धार्थी सेनादलके परस्परका सम्मुखभाग।

रणमुष्टि (सं० पु०) विषमुष्टि क्षुप, कुचिला।

रणमूर्च्छ ज्ञा (सं० स्त्री०) कर्कटशृंगी।

रणमूर्द्धन् (सं० पु०) युद्धका सम्मुख देश।

रणरङ्क (सं० पु०) हाथीके बाहरी दोनों दांतोंके बीचका भाग।

रणरङ्ग (सं० पु०) १ युद्धक्रीड़ा, लड़ाईका उत्साह। २ युद्ध, लड़ाई। ३ रणस्थल, युद्धक्षेत्र।

रणरङ्गमल्ल—धारा (मालव) देशाधिपति। इन्होंने राजवार्त्तिक नामक योगसूत्रका एक वार्त्तिक प्रणयन किया। भोजराज देखो।

रणरण (सं० क्ली०) १ उद्वाहन, व्यग्रता, घबराहट। (पु०) रणरण इति शब्दोऽस्त्यस्येति अर्श आदित्वाच्। २ मसक, मच्छड़। ३ पछतावा, रंज। (त्रि०) रणे रणः शब्दो यस्य। ४ रणगज्ज नशील।

रणरणक (सं० पु० क्ली०) १ कामदेव। २ उत्कण्ठा, प्रबल कामना। ३ व्यग्रता, घबराहट।

रणलक्ष्मी (सं० स्त्री०) विजयलक्ष्मी, युद्धकी देवी जो विजय करनेवाली मानी जाती है।

रणवश्य (सं० पु०) राजभेद।

रणविक्रम—एक हिन्दू-राजा।

रणविग्रह—एक हिन्दू-नरपति।

रणवीर सिंह—काश्मीरके एक महाराज. महाराज गुलाब सिंहके पुत्र। ये १८५७ ई०में राजसिंहासन पर बैठे। १८८५ ई०की १२वीं सितम्बरको इनकी मृत्यु हुई। अंगरेज-सरकारने इन पर सदय हो कर थोड़े मूल्यमें इन्हें काश्मीर उपत्यका छोड़ दी। इनके पुत्र प्रतापसिंह पिताके मरने पर राजा हुए।

रणवृत्ति (सं० पु०) सैनिक, योद्धा।

रणशिक्षा (सं० स्त्री०) रणस्य शिक्षा। युद्धाभ्यास।

रणशूर (सं० पु०) रणे शूरः। युद्धस्थलमें वीर, जो युद्धमें वीरता दिखाते हैं। २ दक्षिणराढ़के आदिशूरवंशीय एक स्वाधीन राजा। ११वीं सदीमें राजेन्द्र चोलके हाथसे ये पराजित हुए थे।

रणसङ्कुल (सं० क्ली०) रणस्य संकुलं। तुमुल, युद्ध।

रणसज्जा (सं० स्त्री०) सैन्य समावेशरूप व्यापार भेद।

रणसत्र (सं० क्ली०) रणयज्ञ।

रणसिंघा (हिं० पु०) तुरही, नरसिंघा।

रणसिंह—एक मेहरराज।

रणसिंह—मेवाड़के एक राणा। ये बाप्पावंशीय विक्रम सिंहके बाद राजगद्दी पर बैठे।

रणसिंहा (हिं० पु०) रणसिंघा देखो।

रणस्तम्भ—राजपुतानेके अन्तर्गत एक नगर। सम्भवतः यह स्थान वर्त्तमान रणस्तम्भ या रणस्तम्भगढ़ है। (देशावली ३४।१)

रणस्तम्भ (सं० पु०) वह स्तम्भ जो किसी रणमें विजयप्राप्त करनेके स्मारकमें बनवाया जाता है, विजयका स्मारक।

रणस्थल (सं० पु०) लड़ाईका मैदान, रणभूमि।

रणस्थान (सं० क्ली०) रणस्य स्थानं। युद्धस्थान, लड़ाईका मैदान।

रणस्वामिन् (सं० पु०) १ शिव, महादेव। रणस्य-स्वामी। २ युद्धका प्रधान सञ्चालक या सेनापति।

रणहंस (सं० पु०) एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें सगण, जगण, सगण और रगण होते हैं। इसको 'मनहंस' 'मानहंस' और 'मानसहंस' भी कहते हैं।

रणहस्तिन्—राजविजय नामक ज्योतिर्ग्रंथके रचयिता।

रणाग्नि (सं० पु०) रणमेवाग्निः। रणरूप अग्नि।

रणाग्र (सं० क्ली०) १ युद्धका प्रारम्भ। २ युद्धका सम्मुख देश।

रणाङ्ग (सं० क्ली०) युद्धास्त्र आदि।

रणाङ्गण (सं० क्ली०) युद्ध-स्थल, लड़ाईका मैदान।

रणाजि (सं० पु०) साध्यभेद।

रणाजिर (सं० क्ली०) रणस्थल, युद्धक्षेत्र।

रणातोद्य (सं० क्ली०) वह ढाक जो युद्धक्षेत्रमें बजाया जाता है।

रणादित्य—१ काश्मीरके एक राजा। ये राजा युधिष्ठिरके पुत्र और नरेन्द्रादित्यके अनुज थे। राजा नरेन्द्रादित्यके परलोकवास होने पर रणादित्यका काश्मीरके सिंहासन पर अभिषेक हुआ। राजा रणादित्य तुञ्जीन नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनकी स्त्री रणारम्भा स्वयं वैष्णवी शक्ति ले कर भूतलमें अवतीर्ण हुई थी। राजा रणादित्यके पूर्व-जन्मकी कथा राजतरङ्गिणीमें लिखी हुई है।

राजा रणादित्य पूर्वजन्मके जुआड़ी थे। वे किसी समय जुएमें अपना सर्वस्व हार कर विशेष दुःखी हुए। अनन्तर वह धनप्राप्तिकी आशासे शरीर त्याग करने पर उद्यत हुए। धूर्त मृत्युके समय भी स्वार्थ साधन करनेसे नहीं हिचकते। विन्ध्याचलकी देवी भ्रमरवासिनीके दर्शन करनेसे इष्टसिद्धि होती है। इस कारण वे उनका दर्शन करनेके लिये तैयार हुए। परन्तु भ्रमरवासिनी देवीका दर्शन करना बड़ा कठिन है; क्योंकि वहांका मार्ग बड़ा कठिन है। भवरें और मधुमक्खियोंके कारण पांच योजन मार्ग काटना बड़ा ही कठिन है। अतएव उसने लोहेका कवच, उस पर भैंसेका चमड़ा और उस पर गोबर मिट्टीका लेप लगा कर अभेद्य कवच बनाया। वे उसी कवचको पहन कर बड़े वेगसे चले। इस कवचसे यद्यपि उनकी पूर्णतः रक्षा नहीं हुई तथापि इससे उन्हें सहायता अधिक मिली, इसमें सन्देह नहीं। वह भगवतीके पास पहुंचे। उनके साहससे प्रसन्न हो कर भगवतीने उन्हें दर्शन दिये। वह भगवतीके रूप पर मोहित हुए और उन्होंने भगवतीके साथ सङ्गमकी प्रार्थना की। भगवतीने उसे बहुत समझाया। परन्तु समझे कौन? कामियोंमें समझनेकी बुद्धि नहीं होती। अन्तमें उसका दृढ़ निश्चय देख कर भगवतीने कहा, कि दूसरे जन्ममें तुम्हारी यह अभिलाष पूर्ण होगी। वह द्यूतकार वहांसे चला आया। और प्रयागके अक्षयवटकी शाखासे वही भावना करते हुए गिर कर मर गया। वैष्णवीदेवी रणारम्भारूपसे उत्पन्न और द्यूतकार रणादित्यके रूपमें उत्पन्न हुआ। २ एक प्राचीन कवि।

रणान्तकृत् (सं० त्रि०) १ रणान्तकारी, लड़ाई शेष करनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

रणायेत (सं० त्रि०) युद्धस्थलसे भाग आनेवाला।

रणाभियोग (सं० पु०) १ युद्ध करना, लड़ाई करना। २ वीरकी तरह चढ़ाई करना।

रणारम्भा—काश्मीर-पति रणादित्यकी महिषी। रणारम्भास्वामी नामक एक देवमूर्त्ति इनकी स्थापित है।

(राजतर० ३।४६०)

रणालङ्करण (सं० पु०) रणस्य अलङ्करणः। कङ्क पक्षी।

रणावनि (सं० स्त्री०) रणस्य अवनिः। रणभूमि, युद्धस्थल।

रणाश्व (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

रणितृ (सं० त्रि०) रमणशील, विचरनेवाला।

रणेचर (सं० त्रि०) रणे चरतीति 'चरेष्ट' इति ट, अलुक्-समासः। १ रणविचारी। (पु०) २ विष्णु।

रणेश (सं० पु०) १ विष्णु। २ शिव, महादेव।

रणेश्वर (सं० पु०) १ शिवलिङ्गभेद। २ विष्णु।

रणेस्वच्छ (सं० पु०) कुक्कट, मुर्गा।

रणेषिन् (सं० त्रि०) रणेच्छु।

रणोत्कट (सं० त्रि०) १ रणोन्मत्त, जो रणमें सम्मिलित होने या रण ठाननेके लिये उन्मत्त हो रहा हो।

रणोजी सिन्दे—ग्वालियरके सिन्दे-राजवंशके प्रतिष्ठाता। पूनाके निकटवर्त्ती पतोली ग्राममें इनका जन्म हुआ था। पहले ये १म पेशवा बाजीरावके शरीर-रक्षि-सेनादलके-नायकके अधीन काम करते थे। सामान्य सैनिक वृत्तिसे निज अध्यवसायके बल धीरे धीरे इनकी तरक्की होती गई। राजा शाहजीके राज्यकालके अंतिम समयमें ये पेशवाके साथ मालव जीतनेको गये थे। युद्धमें मालवराज्य महाराष्ट्रीय सेनापतिके हाथ लगा। युद्धजयके बाद बाजीराव, सताराराज और होलकर पतिने उस राज्यको आपसमें बांट लिया। रणोजीकी वीरता पर प्रसन्न हो बाजीरावने अपना तथा सतारा-राजका कुछ अंश उन्हें पुरस्कारमें दिया (१७२४ ई०)। वही अंश पीछे उनके वंशधरको जागीरस्वरूप दे दिया

गया था। १७५० ई०में पांच पुत्रको छोड़ ये परलोक सिधारे। पीछे उनके बड़े लड़के जयाप्पा राज-सिंहासन पर बैठे।

रणोद—मध्य-भारतके ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह नरोद नामसे भी प्रसिद्ध है। यह नगर ऐरावती या अहिरपाल-नालाके पश्चिमी किनारे बसा हुआ है। यहां प्राचीन हिन्दू और मुसलमान महलोंके बहुतसे खंडहर नजर आते हैं। यहां जो सब शिलालिपि पाई गई हैं, उनमें राजा सोमेश्वर आदिके नाम अङ्कित देखे जाते हैं। सम्भवतः पार्श्ववर्त्ती नरवार-राज्यके कच्छप-घात-वंशीय राजगण यहां राज्य करते थे। यहांकी मुसलमानी कीर्त्तिमें जञ्जिरी मसजिद उल्लेखनीय है।

रणोद्दीपसिंह—१ नेपालके प्रधान मन्त्री। ये १८८५ ई०में नेपालके राजविद्रोहमें वीरशामशेर द्वारा मारे गये थे। २ मोक्षसिद्धिके प्रणेता कृष्णगिरिका प्रतिपालक।

रण्ड (सं० त्रि०) रम् (अमन्तात् डः। उण् १।११३) इति ड। १ अर्द्धचर्मावच्छिन्नावयव। २ धूर्त्त, चालाक। ३ विकल, बेचैन।

रण्डक (सं० पु०) रण्ड इवेति रण्ड-कन्। १ अफल-वृक्ष, वह पेड़ जिसमें फल न आते हों। २ रण्ड देखो।

रण्डा (सं० स्त्री०) रमन्तेऽनेति रम्-ड-टाप्। १ मूषिकपर्णी। २ विधवा, राँड़।

रण्डानन्द—एक प्राचीन कवि।

रण्डाश्रमिन् (सं० पु०) रण्डो विकल आश्रमः सोऽस्त्यस्य रण्डाश्रम-इनि। वह जो ४८ वर्षकी अवस्थाके उपरान्त रंडुआ हुआ हो, ४८ वर्षकी उम्रके बाद जिसकी स्त्री मरे।

रण्य (सं० त्रि०) रमणीय।

रण्यजित् (सं० त्रि०) रण्यं जयति जि-क्विप्। रमणीय धनजयकारी।

रण्यवाच् (सं० त्रि०) रण्या वाक् यस्य। रमणीय वाक्य-युक्त।

रण्व (सं० त्रि०) रमणीय।

रण्वन् (सं० त्रि०) रमणीय।

रण्वित (सं० त्रि०) १ शब्दित, शब्द किया हुआ। २ स्तुत, स्तुति किया हुआ। (ऋक् २।३।६)

रत (सं० क्ली०) रमणमिति रम्-भावे क्त। १ मैथुन, प्रसङ्ग।

कामशास्त्रमें वाह्य और आभ्यन्तरभेदसे रत दो प्रकार-का कहा है, चुम्बनादि वाह्य तथा मैथुन आभ्यन्तर रत। २ योनि। ३ लिङ्ग। ४ प्रेम, प्रीति। (त्रि०) ५ अनुरक्त, प्रेममें पड़ा हुआ। ६ नियुक्त, कार्य्य आदिमें लगा हुआ, लिप्त।

रतकील (सं० पु०) रते मैथुने कीलति परस्परं संवध्नातीति कील-क। १ कुक्कुर, कुत्ता। (हेम) रतस्य कीलः। २ सुरत-कण्टक।

रतकूजित (सं० क्ली०) रतस्य कूजितं। मैथुनकालीन वाक्, मणित।

रतगुरु (सं० पु०) रतस्य रते वा गुरुः। पति, खसम।

रतजगा (हिं० पु०) १ किसी उत्सव या विहार आदिके लिये सारी रात जाग कर बिता देना। २ एक त्योहार जो पूर्वी संयुक्त-प्रान्त तथा विहार आदिमें भाद्रपद कृष्ण २की रातको होता है। इसमें प्रायः स्त्रियां रात भर कजली आदि गाया करती हैं। ३ वह आनन्दोत्सव जो रात भर होता रहे।

रतज्वर (सं० पु०) रतेन ज्वरोऽस्य। काक, कौआ।

रततालिन् (सं० पु०) रते तलति प्रतिष्ठां लभते इति तल-णिनि। पिड्ग, अवारा, लंपट।

रतताली (सं० स्त्री०) रते तालः प्रतिष्ठास्याः ङीष्। कुट्टनी, कुटनी।

रतन (सं० पु०) रत्न देखो।

रतन कवि—श्रीनगर बुन्देलखण्डके निवासी एक भाषा-कवि। सन् १७१८ ई०में इनका जन्म हुआ था। ये कवि राजा फतेशाह बुन्देला श्रीनगरके दरबारमें थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता राजाके नाम पर फतेशाह-भूषण और फतेप्रकाश नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं।

रतनगढ़—राजपूतानेके बीकानेर राज्यान्तर्गत एक नगर। यहां १६ देवमन्दिर मौजूद हैं।

रतनजोत (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी मणि। २ एक प्रकारका बहुत छोटा क्षुप। यह काश्मीर और कुमाऊं-में अधिकतासे होता है। इसमें डंठल प्रायः डेढ़ बालिश्त तक लम्बे होते हैं जिनमें काहूके पत्तोंकेसे प्रायः चार

अंगुल तक लम्बे और कुछ अनीदार पत्ते और छोटे छोटे फूलों तथा फलोंके गुच्छे लगते हैं। इसकी जड़ लाल रंगकी होती है जिससे लाल रंग निकाला जाता है और तेल आदि रंगे जाते हैं। वैद्यकमें यह गरम, रुक्ष, पित्तज, त्रिदोषनाशक तथा जीर्णज्वर, प्लीहा, शोथ आदिको दूर करनेवाली और मस्तिष्कको हानि पहुंचानेवाली कही गई है। इसके कई भेद होते हैं जिनमेंसे एकके डंठल और पत्ते अपेक्षा-कृत बड़े होते हैं और एक छत्तेके आकारकी होती है जिसकी पत्तियां बहुत छोटी होती हैं। वैद्यकके अनुसार इन सबके गुण भी भिन्न-भिन्न होते हैं और इनका व्यवहार औषधरूपमें होता है। २ बृहद्दन्ती, बड़ी दंती।

रतननाथ—एक प्रसिद्ध योगी।

रतनपुर—बम्बईप्रदेशके रेवाकान्ता एजेन्सीके अन्तर्गत राजपिप्पली सामन्तराज्यका एक नगर। यह अक्षा० २१° २४′ उ० तथा देशा० ७३° २६′ पू०के मध्य अवस्थित है। भरौंच नगरसे यह ७ कोस उत्तर-पूर्व पड़ता है। १७०५ ई०में मरहठोंने यहां सफदर खाँ बाबी और नगर अली खाँ द्वारा परिचालित मुगल सेनादलको परास्त किया था। पर्वतकी चोटी पर बाबा घोरका मकबरा मौजूद है। उस साधुके उद्देशसे यहां प्रति वर्ष मेला लगता है।

रतनपुर—मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २२° १७′ उ० तथा देशा० ८२° ११′ पू०के मध्य विलासपुर शहरसे १६ मील उत्तर पड़ता है। जनसंख्या प्रायः ५४७६ है। इस नगरमें पहले छत्तीसगढ़के हैहयवंशीय राजाओंकी राजधानी थी। १७८७ ई०में राजा बिम्बाजी भोंसलेकी मृत्युके बादसे यह नगर तहस नहस हो गया। आज भी प्राचीन दुर्गके गुम्बज, प्राचीन प्रासादका टूटी फूटी दीवार और सूखी मालायें अतीत स्मृतिकी घोषणा करती है। एतद्भिन्न यहां हिन्दू गौरववर्द्धक असंख्य सती-स्तम्भ विद्यमान हैं। इनमेंसे राजा लक्ष्मण-शाहोको २० रानियोंके सती-स्तम्भ उल्लेखनीय हैं। प्रायः २६० वर्ष पहले ये सब बनाये गये थे। नगरांश प्रायः १५ वर्गमील विस्तृत है। शहरमें एक वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल है।

रतनपुर धमंका—बम्बईप्रदेशके काठियावाड़ विभागके गोहेलवाड़ प्रान्तान्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। राजा बड़ोदाके गायकवाड़ और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं।

रतनमाला—मध्यभारतके भोपावर एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यहांके सरदार धीरपसिंह अंगरेज-राजको किसी तरहका कर नहीं देते। उनका छोटा राज्य जंगलोंसे भरा है, इसलिये अंगरेज-सरकारने राजस्व छोड़ दिया।

रतन राव—बूंदीके राव राजा। ये राव राजा भोजके प्रथम पुत्र थे। राव रतनके राज्यकालमें अकबरकी मृत्यु हो गई थी। उस समय जहांगीरके सिर पर मुगल-राजछत्र शोभित हो रहा था। जहांगीरने अपने पुत्र परवेजको दक्षिणके शासनकर्त्ताका पद दिया इससे उनके दूसरे पुत्र खुर्रमने द्वेषके वशवर्त्ती हो कर अपने सौतेले भाई परवेजको मार डाला। तदनन्तर उसने अपने पिताको भी मारनेके लिये आयोजन किया। खुर्रम राजपूत-नन्दिनीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। अतएव उसे राजपूत राजाओंसे सहायता मिली थी। इस अवस्थामें बादशाह जहांगीरको गद्दीसे उतारनेके लिये यह कुचक्रियोंका दल उद्योग कर रहा था। परन्तु इस दुःखके समय भी राव रतनने बादशाह जहांगीरका पक्ष ग्रहण किया था।

राव रतनसिंहने अपने दोनों पुत्रोंके साथ जहांगीरके उस महादुःखके समय बुरहानपुरमें जा कर पितृद्रोही खुर्रम और उसके साथी राजाओंको युद्धमें एक बार ही परास्त किया। यह युद्ध सन् १५७६ ई०में हुआ था। इसी विजयके उपलक्षमें जहांगीरने राव रतनको बुरहानपुरका शासन-भार दे दिया। राव रतनने बुरहानपुरके शासन करनेके समय वहां 'रतनपुर' नामक एक गांव भी स्थापित किया था। बुरहानपुरके दूसरे युद्धमें ये मारे गये थे।

रतनाकर (हिं० पु०) १ रत्नाकर देखो। २ रतनजोत देखो।

रतनागर (हिं० पु०) समुद्र।

रतनागरभ (हिं० स्त्री०) पृथ्वी, भूमि।

रतनार (हिं० वि०) रतनारा देखो।

रतनारा (हिं० वि०) कुछ लाल, सुर्खी लिये हुए। इस शब्दका प्रयोग अधिकतर आंखोंके लिये ही होता है।

रतनाराव (सं० पु०) इन्द्रियसेवक। रतनारीच देखो।

रतनारी (हिं० पु०) १ एक प्रकारका धान। (स्त्री०) २ लाली, लालिमा। (वि०) ३ रतनारा देखो।

रतनारीच (सं० पु०) रते नार्यां चिनोतीति चि-ड। १ कामदेव। २ कुक्कुर, कुत्ता। ३ अवारा, लंपट। ४ बद-चलन।

रतनावली (हिं० स्त्री०) रत्नावली देखो।

रतनिधि (सं० पु०) रतमेव निधिवत् गोप्यं यस्य। खञ्जन पक्षी, ममोला।

रतबन्ध (सं० पु०) रतस्य बन्धः। रतिबन्ध।

रतिबन्ध देखो।

रतशिक (सं० क्ली०) रतस्य प्रशस्तिरत, शेषाद्विभाषेति कप्। १ दिवस, दिन। २ सुअवस्नान। ३ अष्टमंगल।

रतलाम—१ मध्यभारतके पश्चिम मालव एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० २३° ६' से २३° ३३' उ० तथा देशा० ७४° ३१' से ७५° १७' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७२१ वर्गमील है। राजपूताना मालवा-टे रैलपथ इस राज्यकी राजधानी हो कर चला गया है। इसके उत्तरमें जौरा और प्रतापगढ़ राज्य, पूर्वमें ग्वालियर, दक्षिणमें धार और कुशलगढ़ तथा पूरबमें कुशलगढ़ और बांसवारा है। कहते हैं, कि इसके प्रतिष्ठाता रतनसिंहसे राज्यका नामकरण हुआ है, पर यह ठीक नहीं जंचता। क्योंकि, आईन-इ-अकबरीमें अबुलफजलने लिखा है, कि रतनसिंहके पहले यह राज्य विद्यमान था और मालवा-सूबाकी उज्जैन-सरकारके एक महालमें गिना जाता था।

यहांका राजवंश जोधपुर-राजवंशकी छोटी शाखा है। पश्चिम-मालवके राजपूत सरदारोंमें इन्हींकी इज्जत सबसे बेशी है। रतनसिंह नामक इस वंशके किसी आदिपुरुषने युद्धमें बड़ी वीरता दिखा कर शाहजहांसे मालवके अन्तर्गत एक जागीर पाई थी। आगे चल कर ये लोग सिन्दे राजके करद हो कर ग्वालियर राजसरकारमें वार्षिक ८४ हजार सलीमशाही मुद्रा (६६००० पौण्ड) भेजने लगे थे। १८११ ई०के बन्दोबस्तके अनुसार उस रुपयेके अलावा उनके राज्यशासन सम्पर्कमें ग्वालियर-पतिका कोई अधिकार न रहा। वे सेना भेज कर रतलामके सरदार पर हुकूमत नहीं कर सकते थे। १८४४ ई०में अंग्रेजोंके साथ सिन्देराजकी जो सन्धि हुई उसके अनुसार ग्वालियर-सेनादलका कुछ खर्च-वर्च देनेके लिये वह राजस्व अंग्रेजोंके हाथ लगा दिया गया था। तभीसे वह वृटिश-सरकारके हाथसे ही दिया जाता है। १८५७ ई०के गदरमें बलवन्त सिंह राजसिंहासन पर आरूढ़ थे। उन्होंने गदरमें सरकारकी काफी मदद पहुंचाई थी, इस कारण सरकारने उन्हें तथा उनके वंशधरको खिलअत दी थी। पीछे १८६४ ई०में रणजितसिंह सिंहासन पर बैठे। उनकी नाबालगी अर्थात् १८८० ई०तक राजकार्य वृटीके अधीन रहा। राज्यको १० लाख रुपयेका देन था, सो वृटीके सुशासनसे कुल चुका दिया गया। रणजितसिंहने नमक आदि पर जो महसूल लगता था, उसे १८८१ ई०में उठा दिया, केवल अफीम पर रहने दिया। १८८१ ई०में रणजितसिंहको K. C. I. E. की उपाधि मिली। १८९३ ई०में उनका देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के राजा सज्जनसिंह सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। इन्हें हिज हाइनेस और राजाकी उपाधि है तथा ११ सलामी तोपें मिलती हैं।

राज्यमें रतलाम नामक शहर और २०६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ८३७७३ है जिसमेंसे हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ६२, भीलकी १६, मुसलमानकी १२ तथा शेषमें अन्यान्य जातियां हैं। यहांकी प्रधान उपज गेहूं, जुआर, जुन्हरी और चना है। राज्यकी आय ५ लाख रुपयेसे ऊपर है। यहां १८६४ ई०में राज्यकी ओरसे बालकका स्कूल, १८७० ई०में बालिकाका स्कूल और १८७२ ई०में रतलाम-सेण्ट्रल कालेज स्थापित हुआ। स्कूलके अलावा एक अस्पताल और चिकित्सालय भी है।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २३° २१' उ० तथा देशा० ७५° ३' पू० बम्बईसे ४११ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। समुद्रकी तहसे इसकी ऊंचाई १५७७ फुट है। जनसंख्या ३५ हजारसे ऊपर है। यहां अफीम तथा दूसरे दूसरे अनाजोंका जोरों कारबार चलता है। नगर हो कर रेल-पथके खुलनेसे स्थानीय वाणिज्यकी

बड़ी सुविधा हो गई है। सेण्ट्रल कालेजके सिवा शहरमें और भी सरकारी तथा राज्यके ५० स्कूल हैं। यहां सरकारी डाकघर, तारघर, डाकबंगला तथा राजपान्थनिवास है।

रतवत् (सं० त्रि०) रमणयुक्त।

रतव्रण (सं० पु०) रतेण व्रणोऽस्य, रतं व्रण इव कष्टदायकं अस्येति वा। कुक्कुर, कुत्ता।

रतशायिन् (सं० पु०) रते नश्यति तनूकरोत्यात्मानमिति शो-णिनि। कुक्कुर, कुत्ता।

रतहिण्डक (सं० पु०) रते रतार्थं वा हिण्डते हिण्ड-ण्वुल्। १ स्त्रीचोर, वह जो स्त्रीको चुराता हो। २ लम्पट, अवारा। पर्याय—विड्ग, व्यलीक, पल्लव, द्रावक, भुजङ्ग, चुम्बक, लङ्ग, भृङ्ग, नारीतरङ्गक, खतिक, रतनारीय, बन्धक, रतताली, कटार, कामी, खेटी, नागर, दासीप्रिय, कुण्डकीट।

रताञ्जली (सं० पु०) रक्तचन्दन, लाल चंदन।

रताम्बुक (सं० पु०) रतार्थमम्बुक इव। कुक्कुर, कुत्ता।

रताग्ध्री (सं० स्त्री०) रते रन्ध्रीव। कुक्कुटिका।

रतामर्द (सं० पु०) रते रतकाले आमर्दोऽस्य। कुक्कुर, कुत्ता।

रताम्बुक (सं० क्ली०) ऊरुसन्धिके ऊपरका गड्ढा।

रतायनी (सं० स्त्री०), रतमेवायनं जीवनमार्गोयस्याः। वेश्या, रंडी।

रतार्थिन् (सं० त्रि०), रतमर्थयते अर्थ-णिनि। सुरतक्रीड़ाभिलाषी।

रतार्थिनी (सं० स्त्री०), मैथुनाभिलाषिणी, वह स्त्री जिसे मैथुन बहुत प्रिय हो।

रतालू (हिं० पु०) १ पिण्डालू नामक कन्द जिसका व्यवहार तरकारी बनानेमें होता है। २ वाराहीकन्द, गेंठी।

रति (सं० स्त्री०) रम्यतेऽनया इति रम्-क्तिन्। १ कामदेवकी पत्नी। यह दक्ष-प्रजापतिकी कन्या मानी जाती है। कहते हैं, कि दक्षने अपने शरीरके पसीनेसे इसे उत्पन्न करके कामदेवको अर्पित किया था। यह संसारकी सबसे अधिक रूपवती और सौन्दर्यकी साक्षात् मूर्त्ति मानी जाती है। इसे देख कर सभी देवताओंके मनमें अनुराग उत्पन्न हुआ था, इसलिये इसका नाम रति पड़ा। जिस समय शिवजीने कामदेवको अपने तीसरे नेत्रसे भस्म कर दिया, उस समय इसने बहुत अधिक विलाप करके शिवजीसे यह वरदान प्राप्त किया था कि अबसे कामदेव बिना शरीरके या अनंग हो कर सदा बना रहेगा। यह भी माना जाता है, कि यह सदा कामदेवके साथ रहती है। (कालिकापु० ३ अ०) २ अनुराग, प्रेम। ३ कामक्रीड़ा, सम्भोग। ४ शोभा, छवि। ५ सौभाग्य, खुशकिस्मती। ६ साहित्यमें शृंगार रसका स्थायी भाव, नायक-नायिकाके मनमें एक दूसरेके प्रति आकर्षण। ७ वह कर्म जिसका उदय होनेसे किसी रमणीय वस्तुसे मन प्रसन्न होता है। (जैन) ८ गुप्तभेद, रहस्य। ९ एक अप्सरा। (भारत १३।१९।४५) १० रत्ती देखो।

रति (हिं० स्त्री०) रात्रि, रात, रैन।

रतिकर (सं० त्रि०) १ आनन्ददायक, जिससे आनन्दकी वृद्धि हो। २ प्रणयवर्द्धक, जिससे प्रेमकी वृद्धि हो। ३ कामी। (पु०) ४ एक प्रकारकी समाधि।

रतिकर्मन् (सं० क्ली०) स्त्री-सहवासरूप काम।

रतिकलह (सं० पु०) मैथुन, सम्भोग।

रतिका (सं० स्त्री०) ऋषभ स्वरकी तीन श्रुतियोंमेंसे अन्तिम श्रुति।

रतिकान्त (सं० पु०) कामदेव।

रतिकान्त तर्कवागीश—मुग्धबोध व्याकरणके एक टीकाकार।

रतिकुहर (सं० क्ली०) रत्याः कुहरः। योनि, भग।

रतिकेलि (सं० स्त्री०) भोगविलास, सम्भोग।

रतिक्रिया (सं० स्त्री०) रत्याः क्रियाः। मैथुन, सम्भोग। पर्याय—संवेशन।

रतिगुण (सं० पु०) देव-गन्धर्वभेद।

रतिगृह (सं० क्ली०) रत्याः गृहं। १ योनि, भग। २ रमणमन्दिर।

रतिघोष—एक प्राचीन नगर।

रतिचरणसमन्तस्वर (सं० पु०) गन्धर्वराजभेद।

रतिजनक (सं० त्रि०) रत्याः जनकः। १ अनुरागजनक, प्रीति उत्पन्न करनेवाला। २ राजभेद।

रतिशर (सं० पु०) समाधिभेद।

रतिज्ञ (सं० त्रि०) १ रतिकुशल, जो रतिक्रियामें चतुर हो। २ चतुर प्रेमिक, जो किसी स्त्रीके मनमें अपने प्रति प्रेम उत्पन्न करनेमें निपुण हो।

रतितस्कर (सं० पु०) सतीत्वनाशकारी, वह जो स्त्रियोंको अपने साथ व्यभिचार करनेमें प्रवृत्त करता हो।

रतिताल (सं० पु०) तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक भेद।

रतिदान (सं० पु०) मैथुन, सम्भोग।

रतिदेव (सं० पु०) १ विष्णु। २ एक चन्द्रवंशीय राजाका नाम जो साङ्कृतिके पुत्र थे। २ कुक्कुर, कुत्ता।

रतिधन (सं० पु०) वह अस्त्र जिससे दूसरे अस्त्रोंका नाश होता हो।

रतिनाग (सं० पु०) सोलह प्रकारके रतिबन्धोंमेंसे एक प्रकारका रतिबंध। इसके लक्षण—

"पीड़येदुरुयुग्मेन कामुकं कामिनी यदि।
रतिनागः समाख्यातः कामिनीनां मनोरमः॥"
(रतिमञ्जरी)

यदि कामिनी कामुकको दोनों जंघेसे पीड़ा दे, तो यह बंध होता है।

रतिनाथ (सं० पु०) कामदेव।

रतिनायक (सं० पु०) कामदेव।

रतिपति (सं० पु०) रत्याः पतिः। कामदेव। साहित्यदर्पणमें रतिपतिका आविर्भाव-स्थान इस प्रकार वर्णित है,—

"वाचि श्रीमाथुरीणां जनकजनपदस्थायिनीनां कटाक्षे
दन्ते गौड़ाङ्गनानां पुलकितजघने चोत्कलानां वधूनाम्।
तैलङ्गीनां नितम्बे सजलघनकचौ केरली केशपाशे
कार्णाटीनां कटौ च स्फुरति रतिपतिर्गुर्जरीणां स्तनेषु॥"
(साहित्यदर्पण)

माथुरी रमणियोंके वाक्यमें, मिथिला-जनपद-वासिनियोंके कटाक्षमें, गौड़नारीके दन्तमें, उत्कल-रमणियोंके जघनमें, तैलङ्गियोंके नितम्बमें, केरलियोंके केशपाशमें, कार्णाटियोंकी कटिमें तथा गुर्जरी रमणीके स्तनमें रतिपति आविर्भूत होते हैं अर्थात् यह सब स्थान उनके बड़े रमणीय हैं।

रतिपद (सं० पु०) एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें दो नगण और एक सगण होता है।

रतिपाश (सं० पु०) रतेः पाश इव। रतिबन्धविशेष। इसके लक्षण—

"पीड़येदुरुयुग्मेन कामुको यदि सुन्दरीं।
रतिपाशस्तथा ख्यातः कामिनीनां सुखावहः॥"
(स्मरदीपिका)

रतिमञ्जरीमें इस बंधका उल्लेख नहीं है; किंतु 'रतिनागबंध" उल्लिखित हुआ है, उसके भी लक्षण इसी प्रकार है। सुतरां रतिनागबंध और रतिपाशबंध एक है।

रतिप्रपूर्ण (सं० पु०) कल्पभेद।

रतिप्रिय (सं० पु०) रतेः प्रियः। १ कामदेव। २ सुरतप्रिय, वह जिसे मैथुन बहुत प्रिय हो। (देवीभाग० ७।३०।६८)

रतिप्रिया (सं० वि० स्त्री०) १ वह स्त्री जिसे मैथुन बहुत प्रिय हो। (स्त्री०) २ शक्तिमूर्त्तिविशेष, तान्त्रिकोंके अनुसार शक्तिकी एक मूर्त्तिका नाम। २ दाक्षायिणीका एक नाम।

रतिप्रीता (सं० स्त्री०) वह नायिका जिसका रतिमें प्रेम हो, मैथुनसे प्रसन्न होनेवाली स्त्री।

रतिबन्ध (सं० पु०) रतौ बन्धः ७-तत्। मैथुन या सम्भोग करनेका प्रकार। इसे आसन भी कहते हैं। यह सोलह प्रकारका होता है। यथा,—पद्मासन, नागपाश, लतावेष्ट, अर्द्धसंपुट, कुलिश, सुन्दर, केशर, हिल्लोल, नरसिंह, विपरीत, क्षुब्ध, धेनुक, उत्कण्ठ, सिंहासन, रतिनाग, विद्याधर। इन सब बन्धोंके लक्षण उन्हीं शब्दोंमें देखो।

रतिभवन (सं० क्ली०) रत्याः भवनं। १ रतिगृह, योनि, भग। २ रमणमन्दिर, वह स्थान जहां प्रेमी और प्रेमिका मिल कर रतिक्रीड़ा करते हों।

रतिभाव (सं० पु०) १ नायक-नायिकाका परस्पर आकर्षण, दाम्पत्य भाव। २ प्रीति, मुहब्बत।

रतिमत् (सं० त्रि०) रतिः विद्यतेऽस्य मतुप्। अनुरागविशिष्ट, रतियुक्त।

रतिमती—विष्णुसेवामें लीन एक ब्राह्मण-रमणी। इन्होंने अपनी भक्तिके प्रभावसे भगवान् वैकुण्ठपतिको प्राप्त किया था।

रतिप्रदा (सं० स्त्री०) रतेर्मदोऽस्याः। अप्सरा।

रतिमन्दिर (सं० क्ली०) रतेर्मन्दिर-मिव। १ योनि, भग। २ मैथुनगृह, रतिभवन।

रतिमित्र (सं० पु०) रतौ मित्रः सूर्य इव। कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका रतिबंध या आसन।

"पातयेदूरुयुग्मे च कामुकं यदि कामुकी।
रतिमित्रस्तदाख्यातः कामिनीनां सुखावहः॥"
(रतिमञ्जरी)

यदि कामुकी स्त्री कामुकको जंघेसे गिरा कर रमण करे, तो यह बंध होता है। यह बंध कामिनियोंको अति सुखजनक है।

रतिया—पञ्जाबप्रदेशके हिसार जिलान्तर्गत एक नगर। पहले यह स्थान तुवरें राजपूतोंके अधिकारमें था। पीछे पठानोंने इसे दखल किया। १७८३-८४ ई०के महामारी दुर्भिक्षसे यह स्थान जनशून्य हो गया। अनन्तर अंग्रेजी अधिकारमें आनेके बाद जाट लोग यहां आ कर बस गये हैं। नगर म्युनिसपलिटीकी देखरेखमें रहनेके कारण साफ सुथरा है।

रतिरमण (सं० पु०) रत्या रमणः। १ कामदेव। २ मैथुन, सम्भोग।

रतिरस (सं० क्लि०) सहवास-सुख।

रतिराज (सं० पु०) कामदेव।

रतिलक्ष (सं० क्ली०) रतिं लक्षयतीति लक्षि-अच्। निधुवन, मैथुन।

रतिलम्पट (सं० त्रि०) रमणेच्छु, सम्भोग-प्रिय।

रतिलील (सं० पु०) तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक।

रतिलोल (सं० पु०) एक राक्षसका नाम।

रतिवन्त (हिं० वि०) सुन्दर, खबसूरत।

रतिवर (सं० पु०) १ कामदेव। २ वह भेंट जो किसी स्त्रीको उससे रति करनेके अभिप्रायसे दी जाय।

रतिवर्द्धन (सं० त्रि०) १ कामवर्द्धक, जिससे कामशक्ति बढ़ती हो। २ प्रणयोन्मेषक।

रतिवर्द्धनमोदक (सं० पु०) मोदक औषधविशेष। बनानेका तरीका—गोक्षुरबीज, कोकिलाक्षबीज, अश्वगन्धा, शतमूली, तालमूली, शूकशिम्बीबीज, मुलेठी, गोपवल्ली और विजयंद, इनके चूर्णको गायके घीमें भून कर दूधमें सिद्ध करे। पीछे चीनीके साथ मोदक बनावे। इसमें चूर्णसे आठ गुना दूध, चूर्णके बराबर घी और कुल द्रव्यके बराबर चीनी डालनी होती है। अग्निके बलानुसार इस मोदकका सेवन करनेसे श्रेष्ठ वाजीकरण होता है।
(भावप्र० वाजीकरणाधि०)

रतिवल्लभमोदक (सं० पु०) वाजीकरणाधिकारका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—सिद्धिबीजचूर्ण ५ पल, घी ४ पल, चीनी ऽ२ सेर, शतमूलीका रस ऽ४ सेर, सिद्धिका रस ४ सेर, गायका दूध ४ सेर, बकरीका दूध ऽ४ सेर, प्रक्षेपके लिये आंवला, जीरा, मंगरेला, मोथा, दारचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागेश्वर, केवांचका बीज, गोपवल्ली, ताड़की आंठीका अंकुर, केसर, सिंघाड़ा, त्रिकटु, धनिया, अबरक, रांगा, हर्रे, द्राक्षा, कंकोली, क्षीरकंकोली, पिण्डखजूर, कुटज, मुलेठी, कुट, लवङ्ग, सैन्धव, अजवायन, जंगली अजवायन, जीवंती और गजपीपल प्रत्येक दो दो तोला, पीछे यथाविधान इस मोदकको पाक करके नीचे उतार ले। अनन्तर ठंढा होने पर २ पल मधु डाल कर मृगनाभि और कपूर द्वारा उसे सुवासित करना होगा। यह औषध अत्यन्त बलवर्द्धक, वातव्याधिनाशक, वातपित्तहर, दृष्टिसन्दीपन और रक्तपित्तादि रोगनाशक हैं। यह अति उत्कृष्ट वाजीकरण है। (भैषज्यरत्ना० वाजीकरणाधि०)

रतिवल्लभाख्यपूगपाक (सं० पु०) वाजीकरणाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—दक्षिणी सुपारीको टुकड़े टुकड़े कर जलमें सिद्ध करे। जब वह नरम हो जाय, तब धूपमें सुखाने दे। अनन्तर उसे चूर्ण कर कपड़ेमें अच्छी तरह छान ऽ२। सेर निकाल ले। पीछे ८ गुने दूध और आध सेर घीमें पका कर उसमें ऽ६। सेर चीनी मिलावे। अच्छी तरह पाक हो जाय तब उसमें निम्नलिखित चूर्ण डालना होगा। चूर्ण यथा—इलायची, गोपवल्ली, विजयंद, पिप्पली, जातीफल, कपित्थ, जातीपत्र, अर्कपत्र, तेजपत्र, दारचीनी, सोंठ, बीरणमूल, अतिबला, मोथा, त्रिफला, वंशलोचन, शतमूली, शूकशिम्बी, द्राक्ष, कोकिलाक्षबीज, गोक्षुरबीज, बृहती, पिण्डखजूर, क्षीरी, धनिया, केशर, मुलेठी, सिंहाड़ा, जीरा, मंगरेला, अजवायन, बीजकोष, जटामांसी, सौंफ, मेथी, भूमिकुष्माण्ड, तालमूली, असगंध, कपूर, नागकेसर, मिर्च, पियालकबीज, गजपीपल,

पद्मबीज, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन और लवङ्ग प्रत्येकका चूर्ण आध पाव। फिर पारेकी भस्म, रांगा, सीसा, लोहा, अबरक, कस्तूरी और कपूर-चूर्ण ये सब वस्तु जहां तक हो सके, वही काफी है। अग्निके बलानुसार इस औषध-का सेवन करना उचित है। इसके सेवनकालमें किसी प्रकारका अम्लद्रव्य व्यवहार न करे। इसका सेवन करने-से जठराग्नि, बलवीर्य और कामकी वृद्धि होती, वार्द्धक्य नष्ट होता तथा शरीर पुष्ट हो कर घोड़े के समान मैथुन-कारी हो जाता है। यह रतिवल्लभपूगपाक ले कर कामे-श्वरमोदक बनाया जाता है। इसमें और दूसरी दूसरी वस्तु मिलानेसे कामेश्वरमोदक बनता है।

(भावप्र० वाजीकरणाधि०)

रतिवल्ली (सं० स्त्री०) प्रेम, प्रीति।

रतिवाही (सं० पु०) एक प्रकारका राग। इसके गानेका समय रातको १६ दण्डसे २० दण्ड तक है। यह सम्पूर्ण जातिका राग है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

रतिशक्ति (सं० स्त्री०) रमण करनेकी क्षमता।

रतिशास्त्र (सं० पु०) कोकशास्त्र, वह शास्त्र जिसमें रतिकी क्रियाओंका विवेचन हो।

रतिशूर (सं० पु०) पुत्रोत्पादनक्षम व्यक्ति, वह मनुष्य जो पुत्र उत्पन्न कर सके।

रतिसंयोग (सं० पु०) मैथुनलिप्ति, सङ्गम।

रतिसंहति (सं० स्त्री०) रमण करनेकी क्षमता।

रतिसंत्वरा (सं० स्त्री०) रतौ सत्वरा। स्पृक्का, असबरग।

रतिसमर (सं० पु०) सम्भोग, मैथुन।

रतिसाधन (सं० क्ली०) रत्याः साधनं। शिश्न, पुरुषकी मूत्रेन्द्रिय।

रतिसुन्दर (सं० पु०) कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकार-का रतिबन्ध।

"नारीपदद्वयं कामी धारयेद्धृदये यदि।
धृतकण्ठो रमेत् कामी बन्धः स्याद्रतिसुन्दरः॥"

(रतिमञ्जरी)

कामुक यदि नारीके दोनों पैरोंको कंधे पर रखे और उसका गला पकड़ कर रमण करे, तो यह रतिसुन्दर बन्ध होता है।

रतिसेव (सं० पु०) चोलराजाका एक नाम।

रती (सं० स्त्री०) रक्तगुञ्जा, लाल घुंघची।

रती (हिं० स्त्री०) १ ढाई जौ या आठ चावलका मान। रत्ती देखो। (वि०) २ थोड़ा, कम। (वि० क्रि०) ३ जरा-सा, रत्ती भर।

रतुआ (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास जो बरसातके दिनों या ठण्ढी जगहोंमें अधिकतासे होती है।

रतू (सं० स्त्री०) ऋतीयते इति (कृतेरम च। उण् ११६४) इति कू अमृष। १ देवनदी। २ सत्यवादी, सत्यवाक्।

रतून (हिं० पु०) पेड़ोंकी ईख या गन्ना। यह एक बार काट लेने पर फिर उसी जड़से निकलता है।

रतेश—पञ्जाब-प्रदेशके केउन्थलके शासनभुक्त एक छोटा सामन्त-राज्य। यहांके सरदारोंकी उपाधि ठाकुर है।

रतोद्वह (सं० पु०) रतं उद्वहति प्रापयतीति उत्-वह-अच्। कोकिल, कोयल।

रतोपल (हिं० पु०) १ लाल सुरमा। २ लाल खड़िया। ३ गेरु।

रतौंधी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका रोग। इसमें रोगी-को सन्ध्या होनेके उपरान्त अर्थात् रातके समय बिलकुल दिखाई नहीं देता।

रत्तक (हिं० पु०) ग्वालियरमें होनेवाला एक प्रकारका पत्थर जो कुछ लाल रंगका होता है।

रत्ती (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका बहुत छोटा मान। इसका व्यवहार सोने या ओषधियों आदिके तौलनेमें होता है। यह आठ चावल या ढाई जौके बराबर होता है और प्रायः घुंघचीके दानेसे तौला जाता है। यह एक माशेका आठवां भाग होता है। २ वह बाट जो तौलमें इतने मानका हो। ३ घुंघचीका दाना, गुंजा। (वि०) बहुत थोड़ा, किंचित्।

रत्थी (हिं० स्त्री०) लकड़ी या बांसका वह ढांचा या संदूक आदि जिसमें शवको रख कर अन्तिम संस्कार-के लिये ले जाते हैं, टिकठी, विमान।

रत्न (सं० क्ली०) रमयति हर्षयतीति रम्-णिच् (रमेस्त च। उण् ३।१४) इति न, तकारश्चान्तादेशः। १ कुछ विशिष्ट छोटे चमकीले बहुमूल्य पदार्थ, विशेषतः खनिज पदार्थ-का पत्थर जिनका व्यवहार आभूषणों आदिमें जड़नेके

लिये होता है, मणि, जवाहिर, नगीना। २ स्वजातिश्रेष्ठ, जो अपने वर्ग या जातिमें सबसे श्रेष्ठ हो।

"जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमिति काथ्यते।

जातिमें जो उत्तम है, वही रत्न कहलाता है। जैसे—स्त्री-रत्न, मनुष्य रत्न इत्यादि। ३ माणिक्य, लाल।

रत्नोत्पत्तिका कारण गरुड़पुराणमें इस प्रकार लिखा है। बल नामक एक बहुत बलिष्ठ असुर था। इसने देवताओंको परास्त किया था। देवताओंने यज्ञ करके इस असुरसे प्रार्थना की थी कि, 'तुम हम लोगोंके इस यज्ञमें पशु बनो।' पुण्यात्मा बलने देवताओंको प्रार्थना स्वीकार कर ली और उस यज्ञमें पशु बन कर अपना शरीर त्याग कर दिया। उसके इस विशुद्ध कर्म द्वारा देहके सभी अवयव रत्नबीजरूपमें परिणत हुए। उसके अङ्ग, समुद्र, पर्वत, नदी आदि जिस जिस स्थान पर गिरे वहां रत्नकी खान बन गई थी। (गरुड़पु० ८ अ०)

रत्न नौ प्रकारका है,—१ रत्न (हीरा), २ गारुत्मत (पन्ना), ३ पुष्पराग, ४ माणिक्य, ५ इन्द्रनील, ६ गोमेद, ७ वैदूर्य, ८ मौक्तिक, ९ विद्रुम।

रत्नकी नामनिरुक्ति—

"धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्तेऽस्मिन्नतीव यत्।
ततो रत्नमिति प्रोक्तं शब्दशास्त्रविशारदैः॥" (भावप्र०)

धनाभिलाषी मनुष्य रत्न पा कर बहुत आनन्दित होते और उसमें अत्यन्त रत रहते हैं, इसीसे पण्डितोंने इसका 'रत्न' नाम रखा है।

रत्नका दूसरा नाम मणि है। यह रत्न पत्थरके भेदसे मुक्ता आदि नामोंसे पुकारा जाता है। रत्न ९ है, इस नवरत्नको महारत्न भी कहते हैं।

"मुक्ताफलं हीरकञ्च वैदूर्यं पद्मरागकम्।
पुष्परागञ्च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा।
प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव॥"

(विष्णुधर्मोत्तर धृत भावप्र०)

मुक्ता, हीरा, वैदूर्य, पद्मराग, पुष्पराग, गोमेद, नीलकान्त, पन्ना और प्रवाल ये ९ महारत्न हैं। अग्निपुराणके रत्नपरीक्षा-प्रकरणमें अनेक प्रकारके रत्नोंका उल्लेख देखनेमें आता है। रत्न ये सब है—वज्र, मरकत, पद्मराग, मुक्ता, महानील, इन्द्रनील, वैदूर्य, गन्धशस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक, पुलक, कर्कतन, पुष्पराग, ज्योतीरस, राजपट्ट, राजमय, सौगन्धिक, गञ्ज, शङ्ख, गोमेद, रुधिराक्ष, भल्लातक, धूली, तुत्थक, सीस, पीलु, प्रवाल, गिरिवज्र, भुजङ्ग, मणि, वज्रमणि, टिट्टिभ, पिण्ड, भ्रामर, उत्पल। (अग्निपु० २४५ अ०)

इन सबकी रत्नोंमें गिनती होने पर केवल ९ हो रत्न प्रधान हैं। तन्त्रसारमें नवरत्नका इस प्रकार उल्लेख है।

"मुक्ता माणिक्यवैदूर्यं गोमेदान् वज्रविद्रुमौ।
पुष्परागं मरकतं नीलञ्चेति यथाक्रमात्॥" (तन्त्रसार)

मुक्ता, माणिक्य, वैदूर्य, गोमेद, हीरा, विद्रुम, पुष्पराग, मरकत और नोल ये ९ नवरत्न या महारत्न हैं।

शास्त्रमें रत्नधारणको महापुण्यजनक बताया है। ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है, कि ग्रहवैगुण्य होनेसे रत्नधारण और रत्नदान अरिष्टनाशक है। इसका यह मतलब नहीं, कि सभी रत्नधारण कर सकते हैं। मूल, धातु और रत्न इन तीन प्रकारके वस्तुदान और धारणकी व्यवस्था है। इनसे जो सम्पन्न हैं, वही रत्नधारण कर सकते हैं। इसीसे उपकार होगा। जो रत्नधारणके अनुपयोगी हैं, वे यदि रत्नधारण करें, तो उनका अनिष्ट होता है।

जैनोंके मतसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र यही तीन रत्न हैं। त्रिरत्न देखो।

रत्नकन्दल (सं० पु०) रत्नानां कन्दल इव। प्रवाल, मूंगा।

रत्नकर (सं० पु०) कुबेर।

रत्नकण्ठ—१ पञ्चाङ्गकौतुक नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। २ सारसमुच्चय नामक काव्यप्रकाशकी एक टीकाके रचयिता। ३ एक विख्यात पण्डित तथा धौम्यवंशीय शङ्करकण्ठके पुत्र। इन्होंने १६७२ ई०में शिष्यहिता नामकी युधिष्ठिरविजयटीका और १६८१ ई०में स्तुतिकुसुमाञ्जलिटीका प्रणयन किये।

रत्नकर्णिका (सं० स्त्री०) प्राचीनकालका कानमें पहननेका एक प्रकारका जड़ाऊ गहना।

रत्नकलस (सं० क्ली०) रत्नकी बनी कलसी।

रत्नकला (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद।

रत्नकीर्त्ति (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रत्नकुमारी—प्रसिद्ध सितारे-हिन्द राजा शिवप्रसादको दादी। ये बड़ी विदुषी थीं। संस्कृत तथा फारसी साहित्यमें इनका ज्ञान बहुत चढ़ा बढ़ा था। संगीत-शास्त्र तथा चिकित्साशास्त्रमें भी इनका पूर्ण ज्ञान था। राजा शिवप्रसाद कहा करते थे—"हमारे पास जो कुछ ज्ञान है वह सब मेरी पूज्य दादीका दिया हुआ है।" इनकी कविता बहुत सुन्दर और भक्तिपूर्ण हुआ करती थी। इन्होंने 'प्रेमरतन' नामकी एक पुस्तक बनाई। इनके बनाये कुछ दोहे यहाँ उद्धृत किये जाते हैं,—

"परम रम्य वे बन सघन, कुञ्ज पुञ्ज छविधाम।
वेई तृण तरु हरित भरु, लता सुललित ललाम॥
वेई बरही नटत वर, कूकत कोकिल कीर।
वे मराल कलरव करत, वे यमुनाके तीर॥
वे खग मृग बोलत विविध, बहत त्रिविध सुसमीर।
प्रफुलित वे कैरव कमल, वे तरङ्ग वे तीर॥
वेई विपिन वसन्त नित, वेई गोपीचन्द।
वे रजनी रव रास वर, करत नवल ब्रजचन्द॥"

रत्नकूट (सं० पु०) रत्नमयः कूटो शृङ्गमस्य। १ एक पर्वतका नाम। २ एक बोधिसत्त्वका नाम। ३ एक द्वीप। (कथासरित्सा० २६।३)

रत्नकूटेश्वर—हिमालयस्थ शिवलिङ्गभेद। (हिमवत् ८।१०८)

रत्नकेतु (सं० पु०) १ बुद्धका नाम। २ एक बोधिसत्त्वका नाम। बौद्धमतसे परवर्त्ती दो सहस्र बुद्ध ही इस नामसे परिचित होंगे।

रत्नकोटि (सं० पु०) १ समाधिभेद। २ असंख्य रत्न।

रत्नकोटिगिरि—एक पर्वतका नाम।

रत्नक्षेमकूटसन्दर्शन (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

रत्नखचित (सं० त्रि०) रत्नमण्डित।

रत्नखनि (सं० स्त्री०) १ रत्नकी खान। २ समुद्र।

रत्नखेट दीक्षित—मैथिलीपरिणय नाटकके प्रणेता। सुभाषित रत्नभाण्डागार ग्रंथमें इनका उल्लेख है।

रत्नगर्भ (सं० पु०) रत्नानि गर्भे लक्षण या अधिकारेऽस्य। १ कुबेर। २ समुद्र। ३ एक बुद्धका नाम। (त्रि०) ४ रत्नगर्भविशिष्ट।

रत्नगर्भ—महाभारतटीकाके रचयिता तथा हिरण्यगर्भके पुत्र और माधवके पौत्र। उन्होंने वैष्णवाकूतचन्द्रिका नामक विष्णुपुराणकी एक टीका लिखी है जिसमें उन्होंने सूर्यकरमिश्रकी टीकाका उल्लेख किया है।

रत्नगर्भपोट्टलीरस (सं० पु०) यक्ष्मारोगाधिकारमें रसौषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—रससिन्दूर, हीरा, सोना, चांदी, सीसा, लोहा, तांबा, मिर्च, भस्म, मुक्ता, सोनामक्खी, मूंगा और शङ्खकी भस्म बराबर बराबर भाग ले कर तीन दिन अदरकके रसमें भिगो कर चूर्ण करे। पीछे उसे कौड़ीमें भर कर सुहागा और अकवनके दूधसे कौड़ीका मुंह बंद कर दे। अनन्तर उस कौड़ीको मट्टीके बरतनमें अच्छी तरह ढक कर गजपुटमें पाक करना होगा। बादमें औषध जब ठंढा हो जाय, तब उसे अच्छी तरह चूर्ण कर सम्हालूके रसमें ७ बार, अदरकके रसमें ७ बार और चिताके रसमें २१ बार भावना दे कर सुखा ले। इस औषधकी मात्रा ४ रत्ती तथा अनुपान मधु और पीपलका चूर्ण या घी और मरिच है। यथाविधान इस औषधका सेवन करनेसे कृच्छ्रसाध्य यक्ष्मा, वात व्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, मेह, उदररोग, भगन्दर, अर्श और ग्रहणीरोग दूर होते हैं। यक्ष्मारोगकी यह उत्तम दवा है।

रत्नगर्भ सार्वभौम—क्रमचन्द्रिकातन्त्र और श्यामार्च्चनचन्द्रिका नामक दो ग्रन्थके रचयिता।

रत्नगर्भा (सं० स्त्री०) पृथ्वी, भूमि।

रत्नगिरि—बम्बई-प्रदेशके कोङ्कण विभागान्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १५° ४४′ से १८° ४′ उ० तथा देशा० ७२° २′ से ७३° ५७′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३९९८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें कुलावा जिला और जंजिरा सामन्तराज्य, पूर्वमें सतारा और कोल्हापुर, दक्षिणमें सामन्तवाड़ी और पोर्तुगोजाधिकृत गोआराज्य तथा पश्चिममें अरब-उपसागर है।

इस जिलेका प्रायः सभी स्थान पर्वतमय है। उपकूल-प्रदेश भी उच्च अधित्यकासे परिपूर्ण है। इस अधित्यकामें जगह जगह समुद्रकी खाड़ी और पर्वतमालवाही नदीमाला विद्यमान है। इन सब नदियोंके दोनों किनारेकी जमीन उर्वरा है तथा उनके किनारे बड़े बड़े नगर

और बन्दर अवस्थित है। समुद्रोपकूलसे करीब १० मील पूरब सह्याद्रि-पर्वतमाला देखी जाती है।

बाणकोट वा भिक्टोरिया दुर्गसे ले कर रेड्डी-दुर्गसे दो मील दक्षिण तक समुद्रतट १६० मील विस्तृत है। सुवर्णदुर्ग और मलवार नामक स्थान समुद्रगर्भमें प्रसारित हो दो एक स्थान द्वीपके आकारमें परिणत हो गया है। वे सब भी उपकूलवर्त्ती पहाड़ी अंशसे उत्पन्न हुए हैं। इन दोनों स्थानोंमें महाराष्ट्र-दुर्गका भग्नावशेष आज भी विद्यमान है।

इस जिलेमें बहुतसे गरम सोते हैं। दापोली उपविभागमें दो और राजापुर उपविभागमें एक है। ये तीनों सोतें अनल नामक नगरके समीप अवस्थित हैं। इसके सिवाय खेड़ और सोमेश्वर नगर, अरवली और तुराल नामक ग्राममें और भी चार गरम सोते देखे जाते हैं।

यहांके प्राचीन इतिहासादिमें कोई धारावाहिक घटना लिपिबद्ध न रहने पर भी टिपलून और कोलगिरिगुहाका पर्यवेक्षण करनेसे स्पष्ट अनुमान होता है, कि ईसाजन्मसे २०० वर्ष पहलेसे ले कर ५० ई० तक उत्तर-रत्नगिरिका एक विशेष समृद्ध बौद्ध-उपनिवेश स्थापित हुआ था। इसके बाद कई प्रबल-पराक्रान्त हिन्दू-राजवंशने यहां अधिकार जमाया। इन सब राजवंशधरोंमेंसे चालुक्योंने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

१३१२ ई०में मुसलमानोंने रत्नगिरि लूटा और दाभोलको जीत कर वहां राजपाट बसाया। किन्तु सच पूछिये, तो १४७० ई० तक वे लोग रत्नगिरिमें अच्छी तरह गोटी न जमा सके थे। इस समय बाह्मनी राजोंने विशालगढ़ और गोआराज्य जीत कर उस प्रदेशमें मुसलमान-राजवंशका पूर्ण प्रभाव फैलाया। १५०० ई०के लगभग सावित्री नदीतट तक सारा दक्षिण कोङ्कण-राज्य विजापुर राज्यके अन्तर्भुक्त हुआ। इस समय पुर्त्तगीजों-के साथ जो युद्ध हुआ था उसमें दाभोल तथा अन्यान्य समुद्रतीरवर्त्ती नगरोंको धक्का पहुंचा था।

महाराष्ट्र-शक्तिके अभ्युदयसे पुर्त्तगीजका गौरव-रवि बिलकुल डूब गया। महाराष्ट्र-केशरी शिवाजीके प्रभावसे महाराष्ट्रगण मुगल, सिद्दी और पुर्त्तगीज सेनाओंको बार बार परास्त कर यहां हिन्दू-राज्य फिरसे स्थापित करनेमें समर्थ हुए थे। इसके कुछ समय बाद सिद्दियोंने इस जिलेका अधिकांश दखल कर लिया था।

जलदस्यु कान्होजी अंग्रियाका समुद्रके किनारे एकाधिपत्य देख कर मराठोंने उसे मराठा-नौसेनादलका अध्यक्ष बनाया। इसी सूत्रसे कुछ समय बाद कान्होजी-को रत्नगिरिका कुछ अंश सामन्तराज्यरूपमें मिला। १७४५ ई०में कान्होजीके अवैध पुत्र तुलाजी अंग्रियाने बाणकोटसे ले कर सावन्तवाड़ीके मध्यवर्त्ती सभी स्थानों पर अधिकार जमाया। उन्होंने पेशवाका आधिपत्य अग्राह्य कर समुद्रोपकूलस्थित बहुतसे जहाज लूटे थे। १७५५ ई०में अंग्रेजोंने पेशवाके साथ मिल कर सुवर्ण-दुर्गका दस्यु-दुर्ग तहस नहस कर डाला। दूसरे वर्ष उन्होंने अंग्रियाके अधिकृत नौवाहिनीको समूल नष्ट कर विजयदुर्ग पर कब्जा किया था। इन सब कार्योंके लिये अंगरेजोंके प्रति प्रसन्न हो पेशवाने बाणकोटके साथ नौ ग्राम बृटिश-सरकारको पुरस्कारमें दिये। १७६५ ई०में मालवान और रेड्डी दुर्ग जीता गया। अनन्तर मालवान, कोल्हापुर और रेड्डी सामन्तवाड़ीके सरदारके अधीन रखा गया था। इसके बाद कोल्हापुर सामन्तवाड़ीके सरदारोंके मध्य २३ वर्ष तक युद्ध चलता रहा जिससे शासनमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई। आखिर अंगरेजराजने बीचमें पड़ कर मेल करा दिया। इसमें अंगरेजोंको मालवान और वेनगुरला मिला तथा रत्नगिरि पेशवाके हाथसे निकल गया। परन्तु १८१७ ई०में गृह-विवादसे पुनः मराठा-सरदारोंके मध्य आग धधक उठी। अंगरेजी सेनाने अच्छा मौका देख कर उस पर दखल किया और साथ साथ दुर्गादि भी छीन लिये। अंगरेजी अधिकारमें आनेके बाद यहींसे उन्होंने देशी सिपाही संग्रह करनेकी व्यवस्था की है। सिपाहियोंमें मराठोंकी संख्या ही अधिक रहती है।

इस जिलेमें ७ शहर और १३०१ ग्राम लगते हैं। जन-संख्या ११ लाखसे ऊपर है। हरिक, रागी और वरी यहां-की प्रधान उपज है। जिलेमें नारियलके पेड़ बहुत पाये जाते हैं।

बम्बईप्रदेशके चौबीस जिलोंके मध्य यह जिला विद्याशिक्षामें दशवां पड़ता है। अभी कुल मिला कर

२१६ स्कूल है जिनमेंसे २ हाई-स्कूल, १३ मिडिल स्कूल, २७८ प्राइमरी स्कूल, ३ स्पेशल स्कूल, २ टेक्निकल स्कूल और १ शिल्प स्कूल है। स्कूलके अतिरिक्त एक अस्पताल और चार चिकित्सालय हैं। जिलेमें एक पागलखाना भी है।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १५° ४४´ से १७° १७´ उ० तथा देशा० ७३° १२´ से ७३° ३३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४१५ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १६° ५६´ उ० तथा देशा० ७३° १८´ पू० बम्बई शहरसे १३६ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १६०६४ है। समुद्रोपकूल पर अवस्थित होनेके कारण यहांका वाणिज्य जोरों चलता है। यहां मछलीका कारबार ही अधिक होता है। दो खाड़ीके मध्यवर्त्ती एक पर्वतके ऊपर यहांका दुर्ग अवस्थित है। शहरमें एक हाई-स्कूल, एक मिडिल स्कूल, चार प्राइमरी स्कूल और १८७६ ई०में स्थापित एक शिल्प-स्कूल है। स्कूलके अतिरिक्त यहां सब-जजकी अदालत, पागलखाना, सिभिल अस्पताल और एक कुष्ठाश्रम भी है।

रत्नगिरि—१ राजगृहके अन्तर्गत पांच पर्वतोंमेंसे एक। २ बङ्गालके कटक जिलान्तर्गत याजपुर उपविभागका एक पर्वत। यह अक्षा० २०° ३६´ उ० तथा देशा० ८६° २०´ पू०के मध्य केलियो नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। इसके शिखर पर महाकालका एक मन्दिर है। फाटकके पास १से ३॥० फुट ऊंची पत्थरकी बहुत-सी मूर्त्तियां पड़ी हैं। उसके पूरब भी कारुकार्य्ययुक्त अनेक मूर्त्तियां खुदी हुई देखी जाती हैं। इसके सिवा बुद्धदेवके दो बड़े बड़े मस्तक पत्थर पर खोदित हैं। कहते हैं, कि राजा विष्णुकल्पकेशरी ये सब कीर्त्ति छोड़ गये हैं।

रत्नगिरिरस (सं० पु०) ज्वराधिकारमें रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रस, अबरक, सोना, तांबा, गंधक, प्रत्येक बराबर बराबर भाग, लोहेका आधा रांगा और कान्त इन्हें भोमराजके रसमें भिगो कर पर्पटीकी तरह पाक करे। पीछे उसे चूर्ण कर सोंहिजनके रसमें भावना दे लघुपुटमें पाक करना होगा।

भैषज्यरत्नावलीके मतसे भृङ्गराजके रसमें मर्दन कर उसे पर्पटीकी तरह पाक करे। पीछे उसे चूर्ण कर यथाक्रम सोहिंजन, अड़ूस, सम्हालू, वच, भृङ्गराज, भूकदम्ब, कण्टकारी, गुलञ्च, जयन्ती, वकपुष्प, ब्राह्मी, तितराज और घृतकुमारी प्रत्येकके रसमें ३ बार भावना दे कर मूषामें बंद कर रखे और बालुकायन्त्रमें लघुपुटसे पकावे। मात्रा २ रत्ती और अनुपान पीपल तथा धनियेका काढ़ा है। इस औषधका सेवन करनेसे सभी प्रकारके ज्वर जाते रहते हैं। (रसचिन्ता)

रत्नग्रीवतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

रत्नचन्द्र (सं० पु०) १ एक देवता जो रत्नोंके अधिष्ठाता माने जाते हैं। २ एक बोधिसत्त्वका नाम। ३ बिम्बिसार राजाके एक पुत्रका नाम।

रत्नचूड़ (सं० पु०) १ एक बोधिसत्त्वका नाम। २ पुराणानुसार एक राजाका नाम।

रत्नच्छत्र (सं० क्ली०) रत्न आदिसे खचित छत्र।

रत्नच्छत्रकूटसन्दर्शन (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

रत्नच्छत्राभ्युद्गतावभास (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रत्नजी—चित्तोरके महाराणा। महाराणा संग्राम सिंहके ये तीसरे पुत्र थे। महाराणा संग्राम सिंहके मरने पर १५८६ संवत्‌में ये मेवाड़के सिंहासन पर बैठे। ये पिताकी तरह योद्धा तथा वीरत्व, साहस, धैर्य, तेजस्विता आदि राजपूतोचित सद्गुणोंसे भूषित थे। यदि ये थोड़े दिन भी युवावस्थाके वेगको रोक सकते तो इसमें संदेह नहीं, कि इनसे राजपूतानेका बड़ा उपकार होता। परन्तु युवावस्थाके वेगको न रोक सकनेके कारण इनकी अकालमृत्यु हुई और राजपूताने इनसे जो आशा की थी वह सदाके लिये विलीन हो गई।

इन्होंने आमेरके राजा पृथ्वीराजकी कन्यासे गुप्त-विवाह कर लिया था, इस बातकी कानों-कान भी किसीको खबर न थी। अतएव कन्याके विवाह-योग्य अवस्था-प्राप्त करने पर महाराज पृथ्वीराजने उसका विवाह बूंदी-नरेश सूरजमलसे पक्का किया। वह कन्या भी मारे लाजके पहली बात नहीं कह सकी। विवाह होने पर इसकी खबर महाराणा रत्नसिंहको लगी। इस संवादको पाते

ही वे बदला लेनेके लिये अधीर हो गये। अहेरियाका समय उपस्थित हुआ। महाराणाने अपने वैरका बदला लेनेका उचित अवसर पाया। सूरजमल और रत्नजी दोनों अहेर खेलनेके लिये आगे निकल गये। वहां इन दोनोंके अतिरिक्त तीसरा कोई नहीं था। मौका देख कर महाराणा रत्नजीने सूरजमल पर वार किया, सूरजमल घोड़े से गिर गया। परन्तु थोड़ी ही देरमें सम्हल कर उठने पर सूरजमलने देखा, कि रत्नजी भागा जा रहा है। सूरजमलने कहा—"भाग जा, भाग जा, रे कायर! तेरी इस कापुरुषताने मेवाड़के श्वेत यशमें सदाके लिये कलङ्क लगा दिया।" रत्नजी जानता था, कि सूरजमल मर गया इसलिये वह भागा जाता था। परन्तु जब उसे मालूम हुआ कि वह जीता है, तब वह लौटा। आ कर वह सूरजमल पर वार करना चाहता ही था, कि इतनेमें सूरजमलने रत्नजीकी छाती पर चढ़ कर उसका काम तमाम कर डाला। राणा रत्नसिंहने पांच वर्ष तक राज्य किया था। उनके शासनकालमें बाबर शाह भारतमें मुगल साम्राज्य स्थापन करने पर भी मेवाड़ तक न बढ़ सके थे। शत्रुञ्जयके पुण्डरीक-मन्दिरमें उत्कीर्ण १५८७ संवत्के शिलाफलकसे पता चलता है, कि राणा रत्नजीने उसका सातवां जीर्णसंस्कार किया है।

रत्नदत्त (सं० पु०) वणिक्भेद।

रत्नतेजोऽभ्युद्गतराज (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रत्नत्रय (सं० क्ली०) जैनोंके अनुसार सम्यग्दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चरित्र इन तीनोंका समूह जो मनुष्यको उत्कृष्ट बनानेका साधन समझा जाता है।

रत्नदर्पण (सं० पु०) रत्नादिमण्डित दर्पणभेद।

रत्नदाम (सं० स्त्री०) १ रत्नोंकी माला। २ गर्गसंहिताके अनुसार सीताकी माता और राजा जनककी स्त्रीका नाम।

रत्नदीप (सं० पु०) १ एक कल्पित रत्नका नाम। कहते हैं. कि पातालमें इसीके प्रकाशसे उजाला रहता है। २ रत्नका दीपक।

रत्नदेव—कलिङ्गके हैहयवंशीय तोम राजे। रत्नपुरमें उन लोगोंकी राजधानी थी।

रत्नद्रुम (सं० पु०) प्रवाल, मूंगा।

रत्नद्रुममय (सं० त्रि०) प्रवालमण्डित मूंगोंसे भरा हुआ।

रत्नद्वीप (सं० क्ली०) रत्ननिर्मितं द्वीपं, शाकपार्थिववत् समासः। १ रत्ननिर्मित स्थान। २ पुराणानुसार एक द्वीपका नाम।

रत्नधर—१ काशीमाहात्म्यके प्रणेता। २ स्मृतिमञ्जरीके रचयिता। इनकी उपाधि मिश्र थी।

रत्नधर (सं० पु०) १ धनवान्, अमीर। २ एक प्रसिद्ध पण्डित।

रत्नधा (सं० त्रि०) धनशाली, अमीर।

रत्नधार (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। (लिङ्गपु० ५।६३)

रत्नधारा (सं० स्त्री०) पुराणानुसार एक नदीका नाम। (हिमवत् ४४।७६)

रत्नधेनु (सं० स्त्री०) रत्ननिर्मिता धेनुः। महादानविशेष। रत्नकी धेनु बना कर उसे दान करना होता है। मत्स्यपुराण (२८२ अ०)-में इस दानका विधान लिखा है। तुला पुरुषकी तरह यह दान करना होता है। जो यह दान करते हैं उन्हें गोलोककी प्राप्ति होती है।

निम्न प्रकारसे रत्नधेनुको कल्पित करना होता है। इक्यासी पद्मरागसे मुख, सौ पुष्परागसे नासिका, ललाट पर सुवर्णतिलक, सौ मुक्ताफल द्वारा चक्षु, सौ विद्रुमसे दोनों भ्रू, दो मुक्तासे दोनों कान, सुवर्णसे शृङ्ग, सौ वज्रसे शिर, सौ इन्द्रनीलसे पीठ, स्फटिकसे उदर, सुवर्णसे खुर, मुक्तावलिसे पुच्छ, सूर्यकान्त और चन्द्रकान्तसे घ्राण, कपूर, चन्दन और कुंकुमसे रोम, चांदीसे नाभि, सौ गारुत्मत मणिसे अस्थि तथा विविध रत्नसे सन्धिस्थल और शर्करासे जिह्वाकी रचना करनी होगी। गुड़से गोमय, घृतसे गोमूत्र तथा इसमें दधि और दुग्ध देना होगा। पुच्छाग्रसे चामर, ताम्र दोहनपात्र तथा सुवर्ण कुण्डल और शक्तिके अनुसार भूषण देना होता है। इसके चतुर्थांशसे बछड़ेकी कल्पना करनेका विधान है।

कृष्णाजिनके ऊपर इस प्रकार धेनुकी कल्पना कर विशुद्ध दिनमें यथाविधिवाक्य द्वारा दान करना होता है। दानकालमें यह मन्त्र पढ़ना उचित है,—

"तं सर्वदेवगणधाम यतः पठन्ति
रुद्रेन्दुविष्णुकमलासनवामदेवाः।
तस्मात् समस्तभुवनत्रयहेतुयुक्ता
मां पाहि देहि भवसागरपीड्यमानम्॥"

जो इस प्रकार धेनुदान करते हैं वे सभी पापोंसे विमुक्त हो कर बन्धुवान्धव और पुत्र पौत्रादिके साथ मदनकी तरह रूपविशिष्ट हो शिवलोक जाते हैं।

(मत्स्यपुराण रत्नधेनुदान नामक २६२ अ०)

हेमाद्रिके दानखण्डमें भी इस दानका विधान लिखा है।

रत्नधेय (सं० क्लो०) धनदान।

रत्नध्वज (सं० पु०) एक बोधिसत्वका नाम।

रत्ननदी (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

रत्ननिचय (सं० पु०) मणिका समूह।

रत्ननाथ—न्यायबोधिनी नामक तर्कसंग्रहटीकाकर्त्ता।

रत्ननाभ (सं० पु०) विष्णु।

रत्ननिधि (सं० पु०) १ खञ्जन पक्षी, ममोला। २ समुद्र। ३ मेरु पर्वत। ४ विष्णु।

रत्नन्यास (सं० क्ली०) रत्नसंस्थापन।

(हयशीर्ष ७८।११)

रत्नपरीक्षक (सं० पु०) वह जो रत्नोंको परखना जानता हो, जौहरी।

रत्नपरीक्षा (सं० स्त्री०) प्रकृत रत्ननिर्वाचन।

रत्नपीठ (सं० पु०) एक तीर्थका नाम।

(योगिनीतन्त्र ३४।१)

रत्नपर्वत (सं० पु०) सुमेरु पर्वतका एक नाम।

(हरिवंश)

रत्नपाणि (सं० पु०) एक बोधिसत्वका नाम।

रत्नपाणि—षट्कारकप्रतिच्छन्दक नामक व्याकरणके प्रणेता।

रत्नपाणिशर्म्मन्—एक विख्यात पण्डित तथा गंगोली संजीवेश्वरके पुत्र। ये मिथिलाधिपति छत्रसिंहके सभासद थे। इनके बनाये आचारसंग्रह, एकोद्दिष्टसारिणी, कृष्णाष्टमीचन्द्रिका, क्षयमासादिविवेक, नाड़ीपरीक्षादि चिकित्साकथन, पार्व्वणचन्द्रिका, प्रायश्चित्तपारिजात, महादानवाक्यावली, मिथिलेशचरित, मिथिलेशाह्निक आदि ग्रन्थ मिलते हैं। बाद इसके इन्होंने छत्रसिंहके पौत्र और रुद्रसिंहके पुत्र तीरभुक्तिराज महेश्वरसिंहके व्रताचारकी रचना की थी। राजा रुद्रसिंहके आज्ञानुसार इन्होंने सुबोधिनी नामक एक दीधिति लिखी।

रत्नपारखी (हिं० पु०) रत्नोंको पहचाननेवाला, जौहरी।

रत्नपारायण (सं० क्ली०) पारायणमेव अण्, रत्नस्य पारायणं। सर्वरत्नस्थान।

रत्नपाल (सं० पु०) १ राजभेद। २ चन्देलराज वीरवर्म्मके सभा-कवि।

रत्नपालवर्म्मदेव—प्राग्ज्योतिषपुराधिपति।

रत्नपीठ (सं० पु०) तान्त्रिकोंके अनुसार एक तीर्थका नाम।

रत्नपुर (सं० क्ली०) एक प्राचीन नगरका नाम। यहां कलचूरी और हैहयवंशीय राजे राज्य करते थे।

रत्नपुरीभट्टारक—न्यायसारटीकाके प्रणेता।

रत्नप्रदीप (सं० पु०) ऐसा रत्न जो दीपकके समान प्रकाशमान हो।

रत्नप्रभ (सं० पु०) १ एक देवताका नाम। २ एक राजाका नाम।

रत्नप्रभा (सं० स्त्री०) रत्नानां प्रभा यत्र। १ पृथ्वी। २ जैनोंके अनुसार एक नरकका नाम। ३ नागीभेद। ४ एक जैनसूरिका नाम। इनका बनाया एक ग्रन्थ मिलता है।

रत्नबाहु (सं० पु०) विष्णु।

रत्नभोज (सं० क्ली०) धनसञ्चयी।

रत्नभूति—एक प्राचीन कवि।

रत्नमञ्जरी (सं० स्त्री०) विद्याधरीभेद।

रत्नमति—एक वैयाकरण। रायमुकुटने इनका मत उल्लेख किया है।

रत्नमद—दाक्षिणात्यका एक राजा।

रत्नमल्ल—नेपालका एक राजा।

रत्नमय (सं० त्रि०) रत्नस्वरूपे मयट्। रत्नस्वरूप, रत्नमण्डित।

रत्नमाला (सं० स्त्री०) १ रत्ननिर्मिता माला, मणियोंकी माला या हार। २ राजा बलिकी कन्या। वामन

भगवान्‌को देख कर इसके मनमें यह कामना हुई थी, कि ऐसे बालकको मैं दूध पिलाऊं। इसीलिये यह कृष्णावतारमें पूतना हुई थी।

रत्नमालावत् (सं० त्रि०) रत्नमालासदृश।

रत्नमालिका (सं० स्त्री०) रत्नोंकी छोटी माला या हार।

रत्नमालिन् (सं० त्रि०) १ रत्न-मालाधारी, रत्नोंकी माला पहननेवाला। (रामा० उप० २६४) (स्त्री०) २ एक प्रकारका देवता। (सह्याद्रि० २।१६।४)

रत्नमाली (सं० पु०) राजभेद। (सह्याद्रि० ३१।५)

रत्नमित्र—एक प्राचीन कवि।

रत्नमुकुट (सं० पु०) एक बोधिसत्वका नाम।

रत्नमुख्य (सं० क्ली०) रत्नेषु मुख्यं। हीरक, हीरा।

रत्नमुद्रा (सं० स्त्री०) समाधिभेद।

रत्नमुद्राहस्त (सं० पु०) एक बोधिसत्वका नाम।

रत्नयष्टि (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रत्नयुग्मतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

रत्नरक्षित (सं० पु०) एक बौद्धपति। इन्होंने तिब्बतीय भाषामें कारण्डव्यूह अनुवाद किया था।

रत्नराज् (सं० पु०) रत्नेषु राजते राज-क्विप्। १ माणिक्य, मुक्ता। २ रत्नश्रेष्ठ।

रत्नराजि (सं० स्त्री०) रत्नानां राजिः। रत्नसमूह, रत्नोंका ढेर।

रत्नराशि (सं० पु०) १ रत्नस्तूप, रत्नसङ्घ। २ समुद्र।

रत्नरेखा (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद।

रत्नलिंगेश्वर (सं० पु०) १ शिवलिङ्गभेद। २ बौद्धमतसे स्वयम्भूकी प्रतिमूर्त्ति।

रत्नवत् (सं० त्रि०) रत्नं विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। १ रत्नयुक्त, रत्नविशिष्ट। २ फलप्रद, फलदायक।

रत्नवती (सं० स्त्री०) १ पृथ्वी, भूमि। २ राजा वीरकेतुकी कन्याका नाम। (कथासरित्स० ८८।६) (पु०) ३ पुराणानुसार एक पहाड़का नाम। (मार्क०पु० ५५।७)

रत्नवर्द्धन (सं० पु०) काश्मीरवासी एक व्यक्ति। इन्होंने अपने नाम पर रत्नवर्द्धनेश नामक शिवलिङ्गकी स्थापना की। (राजतर० ५।४०)

रत्नवर्म्मन् (सं० पु०) एक प्रसिद्ध वणिक्। (कथासरित्सा० ५७।५५)

रत्नवर्ण (सं० पु०) यक्षराजभेद।

रत्नवर्षुक (सं० क्ली०) रत्नानि वर्षितुं शीलमस्य (लषपतपदस्थेति। पा ३।२।१५४) इति उकञ्। १ पुष्पकरथ। (त्रि०) २ रत्नवर्षणशील।

रत्नवृक्ष (सं० पु०) प्रवाल, मूंगा।

रत्नविशुद्ध (सं० पु०) अगन्नेद।

रत्नशलाका (सं० स्त्री०) हीरे आदि मुल्यवान् पत्थरोंसे बनी हुई एक प्रकारकी शलाका।

रत्नशाला (सं० स्त्री०) १ रत्नोंके रखनेका स्थान। २ जड़ाऊ महल, जिसकी दीवारोंमें रत्न जड़े हों।

रत्नशिखर (सं० क्ली०) एक बोधिसत्वका नाम।

रत्नशिखिन् (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रत्नशिला (सं० स्त्री०) वह शिला या पत्थर जिस पर अनेक प्रकारके रत्न जड़े हों।

रत्नशेखर—गुणस्थानप्रकरणके रचयिता।

रत्नशेखर—प्रवन्धकोष और प्राकृतछन्दःकोष नामक अभिधान ग्रन्थके प्रणेता। १४२६ ई०में इन्होंने यह ग्रन्थ समाप्त किया। ये जैन-धर्मावलम्बी थे। इनकी उपाधि सूरि थी।

रत्नषष्ठी (सं० स्त्री०) षष्ठीतिथिभेद।

रत्नसंग्रह (सं० पु०) रत्नसञ्चय, रत्न इकट्ठा करना।

रत्नसंघात (सं० पु०) हीरकादि मणिका स्तूप।

रत्नसमुद्गल (सं० पु०) समाधिभेद।

रत्नसम्भव (सं० पु०) १ एक ध्यानी बुद्धका नाम। २ एक बोधिसत्वका नाम। ३ वह स्थान जहां बुद्ध शशि-केतु आविर्भूत होंगे।

रत्नसागर (सं० पु०) समुद्रका वह भाग जहांसे प्रायः रत्न निकलते हों।

रत्नसानु (सं० पु०) रत्नानि सानौ प्रस्थे यस्य। सुमेरु पर्वतका नाम।

रत्नसिंह—चित्रकूटके गुहिलवंशीय एक राजा तथा संग्रामसिंहके पुत्र।

रत्नसिंह—एक राजा। इनके पुत्र उदयसिंहको क्षेमेन्द्रने औचित्यविचारचर्चा नामक ग्रन्थ उत्सर्ग किया था।

रत्नसिंह वास्तव्यकायस्थ-वंशीय एक राज-कवि। ये रत्नपुरराज २य जाजल्लदेवकी सभामें विद्यमान थे।

रत्नसिंह—बीकानेरके एक महाराज। ये महाराज सूरतसिंहके पुत्र थे और उनका परलोकवास होने पर ये बीकानेरके सिंहासन पर आरूढ़ हुए। महाराज रत्नसिंहके अधिकारारूढ़ होते ही सामन्त और प्रजाओंके मनका भाव सहसा बदल गया। उनके हृदयमें नयी नयी आकांक्षाएं उत्पन्न होने लगीं। उस समय बीकानेरका राजनैतिक आकाश अनेक प्रकारके बादलोंसे घिर गया। सिंहासन पर बैठनेके थोड़े ही दिनोंके बाद इन्हें एक बड़े भारी युद्धमें फंसना पड़ा। जयसलमेरकी प्रजा और कर्मचारियोंने अराजक बीकानेरकी सीमामें लूट-खसोट करना प्रारम्भ कर दिया। इससे रत्नसिंहने अत्यन्त कुपित हो कर जयसलमेरके राजाको युद्धके लिये निमन्त्रण-पत्र भेजा और जयपुर तथा मेवाड़के महाराजोंसे सहायता मांगी। जयसलमेरके राजा युद्धके लिये दुगुने उत्साहसे तैयार हो गये। जयसलमेरकी सीमा पर इनकी सेना एकत्र हुई। इसी समय अंग्रेजी गवर्नमेंटने रत्नसिंहके पास एक पत्र भेजा तथा इस युद्धको अपनी सन्धिका भङ्ग करना बताया। इस पत्रसे महाराज रत्नसिंह युद्धसे निवृत्त हो गये। गवर्नमेंटकी सम्मतिके अनुसार मेवाड़के महाराणाने इन दोनों राज्योंके बीच पड़ कर झगड़ा तय करा दिया।

इस विवादके शान्त होने पर महाराज रत्नसिंह १८३० ई०में राज्यके भीतरी झगड़ोंमें फंसे। राज्यके सामन्त विद्रोही हो गये। महाराज रत्नसिंह इससे बड़े भीत हुए और उन्होंने गवर्नमेंटसे सेनाकी सहायता मांगी। रेजिडेण्ट सहायता देनेके लिये प्रस्तुत भी हो गये थे, परन्तु बड़े लाटके रोकनेसे वे रुक गये।

गवर्नमेण्टकी सहायतासे निराश हो कर रत्नसिंहने अपने ही बलसे उस विद्रोहको दमन करना ठाना। परन्तु उसी समय जयसलमेरवाला झगड़ा पुनः खड़ा हो गया। इस झगड़ेको शान्त करनेके लिये गवर्नमेण्टने एक अंग्रेज भेजा और दोनोंका झगड़ा तय हो गया।

इसी बीच महाराज रत्नसिंहने अपने राज्यकी सीमा बढ़ानेका प्रयत्न किया था, परन्तु वृटिशसिंहके निषेध करनेसे रुक गये। महाराज रत्नसिंहने २५ वर्ष तक राज्य किया था। सन् १८५२ ई०में इनका देहान्त हुआ।

रत्नसिंहसूरि—जैन सूरिभेद

रत्नसुन्दरसूरि—जैन सूरिभेद।

रत्नसू (सं० स्त्री०) रत्नानि सूते इति सू प्रसवे क्विप्। १ पृथ्वी। (रघु० ११६५) (त्रि०) २ रत्नप्रसवकारी, रत्न उत्पन्न करनेवाला।

रत्नसूति (सं० स्त्री०) पृथ्वी।

रत्नसेन (सं० पु०) एक गढ़ादेशाधिपति।

रत्नस्वामिन् (सं० क्ली०) रत्नप्रतिष्ठित शिवलिङ्ग और मन्दिर।

रत्नहविस् (सं० क्ली०) वह आहुति जो राजसूय-यज्ञमें राजाके श्रेष्ठ धनका उल्लेख कर दी जाती है।

(कात्या० श्रौ० १५।१।३)

रत्ना (सं० स्त्री०) पुराणानुसार एक नदीका नाम। यह ताप्तीमें आ मिली है।

रत्नाकर (सं० पु०) रत्नानामाकरः उत्पत्तिस्थानं। १ समुद्र। २ रत्नोत्पत्तिस्थान, मणियोंके निकलनेका स्थान। ३ रत्नोंका समूह। ४ वाल्मीकि मुनिका पहलेका नाम। ५ स्वनामख्यात कविविशेष। ६ बुद्धदेव। ७ एक बोधिसत्त्वका नाम। ८ उच्चैःश्रवा वंशज अश्वभेद। ९ एक नगरका नाम।

रत्नाकर—द्रव्यगुणविचारके रचयिता।

रत्नाकर ठक्कुर—दानपञ्जिकाके प्रणेता।

रत्नाकर पौण्डरीक याजिन्—जयपुरवासी एक पण्डित। ये जयपुराधिपति महाराज जयसिंहके गुरु थे। उनके आदेशसे इन्होंने १७१४ ई०में जयसिंहकल्पद्रुम या व्रतकल्पद्रुम और उसकी टीका लिखी।

रत्नाकर मिश्र—प्रायश्चित्तसारसंग्रहके रचयिता।

रत्नाकर विद्याधिपति—काश्मीर-पति अवन्तिवर्मा द्वारा प्रतिपालित एक प्रसिद्ध पण्डित। ये पण्डित-प्रवर दुर्गदत्तके वंशधर और अमृतभानुके पुत्र थे। इन्होंने ध्वनिगाथापञ्जिका, वक्रोक्तिपञ्चाशिका और हरविजय-काव्य प्रणयन किये। क्षेमेन्द्रकृत सुवृत्ततिलकमें इनका नामोल्लेख है।

रत्नाङ्क (सं० पु०) रत्नानामङ्कश्चिह्नं यस्मिन्। १ विष्णुका रथ। (शब्दरत्नाकर) रत्नानामङ्कः। २ रत्नचिह्न।

रत्नागिरि (सं० पु०) रत्नगिरि देखो।

रत्नाङ्गुरीय (सं० क्ली०) रत्ननिर्मितं अंगुरीयकं। रत्ननिर्मित अंगुरीयक।

रत्नाचल (सं० पु०) रत्ननिर्मितः अचलः शाकपार्थिववत् समासः। पुराणानुसार रत्नोंका वह ढेर जो पहाड़के रूपमें लगा कर दान किया जाता है। यह भी एक महादान है। हेमाद्रिके दानखण्ड और मत्स्यपुराणमें इस दानका विधान इस प्रकार है,—इस पर्वतको इस तरह कल्पना की जाती है। यह पर्वत उत्तम, मध्यम और अधम भेदसे तीन प्रकारका है। सहस्र मुक्ता द्वारा जिस पर्वतकी कल्पना की जाती है वह उत्तम, पांच सौसे मध्यम और तीन सौसे अधम होता है। इसके चतुर्थांशसे विष्कम्भ पर्वत दान करना होता है। पूर्वकी ओर वज्र और गोमेद तथा दक्षिणकी ओर इन्द्रनील और पुष्पराग रत्न-विन्यास करना पड़ेगा। यह पर्वत इस तरह प्रस्तुत कर धान्याचलकी भांति और सब काम करने होंगे। जो विधिपूर्वक यह दान करते हैं वे पापसे छुटकारा पा विष्णुलोक जाते हैं। (मत्स्यपु० ९० अ०)

रत्नाढ्य (सं० त्रि०) रत्नमय, रत्नसे भरा हुआ।

रत्नादेवी (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद।
(राजतर० ८।२४।३३)

रत्नादित्य (सं० पु०) एक राजाका नाम।

रत्नाद्रि (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

रत्नाधिपति (सं० पु०) १ राजभेद। २ कुबेर।

रत्नानुनद—वर्द्धमान सेलिमाबाद परगनेमें प्रवाहित एक छोटी नदी। बंगालके प्रसिद्ध कवि मुकुन्दराम चक्रवर्त्ती इस नदीतीरवर्त्ती दामुन्या गाँवमें रहते थे।

रत्नापुर (सं० क्ली०) मध्य-प्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगरका नाम।

रत्नाभरण (सं० क्ली०) रत्नालङ्कार, रत्नका गहना।

रत्नाभूषण (सं० क्ली०) वह आभूषण या गहना जिसमें रत्न जड़े हों, जड़ाऊ गहना।

रत्नार्चिस् (सं० पु०) १ एक बुद्धका नाम। २ रत्नमयूख।

रत्नालोक (सं० पु०) रत्नकी ज्योति।

रत्नालङ्कार (सं० क्ली०) रत्ननिर्मितमाभरणं अलङ्कारम्। मणिमय अलंकार, रत्नका गहना।

रत्नावती (सं० स्त्री०) एक नगरका नाम।

रत्नावभास (सं० पु०) एक कल्पका नाम।

रत्नावली (सं० स्त्री०) १ मुक्तामाला, मणियोंकी श्रेणीका माला। २ एक अर्थालङ्कार जिसमें प्रस्तुत अर्थ निकलनेके अतिरिक्त ठीक क्रमसे कुछ और वस्तु-समूहके नाम भी निकलते हैं। ३ एक रागिणी जो शास्त्रोंमें दीपक रागकी पुत्रवधू कही गई है।

रत्नासन (सं० क्ली०) रत्ननिर्मितम् आसनं। रत्नका आसन।

रत्नि (सं० पु०) ऋच्छति प्राप्नोत्यनेनेति ऋ- (ऋतन्यञ्जीति। उण् ४।२) इति कत्निच्। बद्धमुष्टिहस्त, मुट्ठी भर।

रत्निन् (सं० त्रि०) १ रमणीय धनवत्, रमणीय फलवत्। २ जिसके घरमें राजप्रदत्त रत्नहविः समाहित होती है।

रत्निपृष्ठक (सं० क्ली०) कनुई, केहुनी।

रत्नेन्द्र (सं० पु०) श्रेष्ठ रत्न। जैसे हीरा, मणि मुक्ता आदि।

रत्नेशक—लक्ष्मणसंग्रह नामक न्यायशास्त्रके प्रणेता।

रत्नेश्वर—१ रत्नदर्पण नामक सरस्वतीकंठाभरणके टीकाकार। ये रामसिंहदेव नामसे भी परिचित थे। २ प्रश्नप्रकाश नामक ज्योतिग्र'न्थके रचयिता।

रत्नेश्वर मिश्र—आचारचन्द्रिकाके प्रणेता।

रत्नेश्वर (सं० पु०) १ काशीके एक शिवका नाम। २ मथुराके एक शिवका नाम।

रत्नोत्तमा (सं० स्त्री०) तान्त्रिकोंकी एक देवीका नाम।

रत्नोद्भव (सं० पु०) एक बौद्ध-यति।

रत्नोल्का (सं० स्त्री०) तान्त्रिकोंके अनुसार एक देवीका नाम।

रत्यङ्ग (सं० क्ली०) रतेरङ्ग। योनि, भग।

रथ (सं० पु०) रम्यतेऽनेनात्र वा रम्-(हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्। उण् २।२) १ काय, शरीर।

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च।" (गीता)

आत्मा देहरूपमें अवस्थान करती है इसलिये आत्माको रथी कहते हैं। २ चरण, पैर। ३ वेतसवृक्ष, बेंत। ४ तिनिसका पेड़। ५ प्राचीनकालकी एक प्रकारकी सवारी जिसमें चार या दो पहिये हुआ करते थे और

जिसका व्यवहार युद्ध, यात्रा, विहार आदिके लिये हुआ करता था। पर्याय—शताङ्ग, स्यन्दन, स्यन्दनमात्र। रथ-भ्रमण गुण—वायुप्रकोपक, अङ्गका स्थिरीकरण, बलकर और अग्निवर्द्धक। रथयात्रा देखो। ६ क्रीड़ास्थल, विहार करनेका स्थान। ७ शतरंजका वह मोहरा जिसे आज कल ऊंट कहते हैं। जब चतुरङ्गका पुराना खेल भारतसे फारस और अरब गया तब वहां रथके स्थान पर ऊंट हो गया।

रथक (सं० पु०) रथ इव प्रतिकृतिः रथ-कन्। मन्दिरावयवविशेष।

रथकट्या (सं० स्त्री०) रथानां समूहः (इनित्रकट्यचश्च। पा ४।२।५१) इति कट्यच्, टाप्। रथसमूह, रथव्रज।

रथकर (सं० पु०) रथं करोतीति कृ-अच्, रथानां करः। रथकार, रथ बनानेवाला, बढ़ई।

रथकल्पक (सं० पु०) १ प्राचीनकालका वह अधिकारी जिसकी अधीनतामें राजाओंके रथ आदि रहते थे। २ प्राचीनकालके धनवानोंका वह प्रधान अधिकारी जो उनके घर आदि सजाता और उनके पहननेके वस्त्र आदि रखता था।

रथकाय (सं० पु०) रथारोही सेनादल।

रथकार (सं० पु०) रथं करोतीति रथ-कृ-अण्। १ रथ-निर्माणकर्त्ता, रथ बनानेवाला, बढ़ई। पर्याय—तक्षन, वर्द्धकि, त्वष्टृ, काष्ठतट्, सूत्रधार, रथकर, काष्ठतक्षक, वर्द्धका। (शब्दरत्नाकर) यज्ञोपवीत देखो। २ एक जाति जिसकी उत्पत्ति माहिष्य (क्षत्रियसे वैश्यामें उत्पन्न) पिता और करिणी (वैश्यसे शूद्रामें उत्पन्न) मातासे मानी गई है। इसमें जनेऊ आदि संस्कार होते हैं। "मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम्" (शुक्लयजु० ३०।६) 'रथकारं माहिष्येण करण्यां जातं'। (महीधर)

रथकारक (सं० पु०) रथस्य कारकः। सूत्रधार, बढ़ई।

रथकारत्व (सं० क्ली०) रथकारस्य भावः रथकार त्व। रथकारका भाव या धर्म, बढ़ईका काम।

रथकुटुम्बिक (सं० पु०) वह जो रथ चलाता है, सारथी।

रथकुटुम्बिन् (सं० पु०) रथं कुटुम्बयितुं धारयितुं शीलमस्य, णिनि, यद्वा रथ एव कुटुम्बं तदस्यास्तीति इनि। सारथी।

रथकूबर (सं० पु०) रथका चक्रमेरु।

रथकृत (सं० पु०) रथं करोति-कृ क्विप् तुक् च। १ रथकार, बढ़ई। २ यक्षभेद।

रथकेतु (सं० पु०) रथका निशान, रथध्वज।

रथक्रान्त (सं० पु०) रथवत् क्रान्तं क्रमणमस्य। संगीतमें एक प्रकारका ताल।

"अश्वक्रान्तो रथक्रान्तो विष्णुक्रान्तस्ततः परं।
सूर्यक्रान्तो विधुक्रान्तो वल्लभिन्नागपक्षकः॥"
(संगीतरत्नाकर)

रथक्रान्ता (सं० पु०) एक प्राचीन जनपदका नाम। (वारा० ६०)

रथक्रीत (सं० त्रि०) जो रथके दाममें खरीदा गया हो।

रथक्षय (सं० त्रि०) रथनिवास।

रथक्षोभ (सं० पु०) रथका हिलना।

रथगणक (सं० पु०) रथसंख्याकारी राजकर्मचारिभेद।

रथगर्भक (सं० पु०) रथो गर्भेऽस्य। स्कन्धवाह्ययान, रथके आकारकी वह सवारी जिसे मनुष्य कंधे पर उठा ले चलते हों। जैसे, पालकी, नालकी आदि।

रथगुप्ति (सं० स्त्री०) परप्रहरणाभिघातरक्षार्थं रथस्य सन्नाहवदावरणकादि द्रव्यं। रथके किनारे लगा हुआ लकड़ी या लोहेका वह ढांचा जो शस्त्र आदिसे रक्षाके लिये होता था। पर्याय—वरुथ।

रथगृत्स (सं० पु०) रथकर्ममें कुशल, सुनिपुण रथचालक

रथगोपन (सं० क्ली०) रथस्य गोपनं शस्त्रादिभ्यो रक्षार्थमावरणं। रथगुप्ति।

रथग्रन्थि (सं० पु०) रथसम्बन्धी।

रथघोष (सं० पु०) रथके पहियेका घरघर शब्द।

रथचक्र (सं० क्ली०) रथस्य चक्रं। रथका पहिया।

रथचक्रचत् (सं० क्ली०) रथके पहियेकी तरह सजा हुआ।

रथचरण (सं० पु०) रथचरणं चक्रं तदेव नामास्य। १ चक्रवाक पक्षी, चकवा। (पु० क्ली०) २ रथचक्र, रथका पहिया।

रथचर्या (सं० स्त्री०) रथचालना।

रथचर्य्यासञ्चार (सं० पु०) रथोंके चलनेकी पक्की सड़क। यह खजूरकी लकड़ी या पत्थरकी बनाई जाती थी। चन्द्रगुप्तके समयमें इसका विशेष रूपसे प्रचार था।

रथचर्ण (सं० पु०) रथका द्रष्टव्य मध्यदेश।

रथचित्रा (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम।

रथजङ्घा (सं० स्त्री०) रथका पिछला भाग।

रथजित् (सं० त्रि०) रथं जयति जि-क्विप् तुक् च। रथजेता, रथ जीतनेवाला।

रथजूति (सं० त्रि०) रथ पर चढ़ कर चढ़ाई करना।

रथज्ञान (सं० क्ली०) रथचलानेमें निपुण।

रथज्ञानिन् (सं० त्रि०) सारथी, रथ चलानेवाला।

रथतुर (सं० त्रि०) रथप्रेरयिता, रथ भेजनेवाला।

रथदारु (सं० क्ली०) वह लकड़ी जो रथ बनानेको योग्य हो।

रथद्रु (सं० पु०) रथनामा द्रुः। यद्वा रथस्य रथस्य द्रुः द्रुमः, तत्रोपयोगित्वात्। १ तिनिशका पेड़। २ बेंत।

रथद्रुम (सं० पु०) वृक्षभेद।

रथधूर (सं० स्त्री०) रथस्य नाभिः। रथचक्र, रथका पहिया। "यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः" (शुक्लयजु० ३४।५) 'रथनाभौ आरा इव, आराः रथचक्रनाभौ मध्ये प्रतिष्ठितताः' (वेददीप)

रथन्तर (सं० त्रि०) रथेन तरति यः। १ कल्पविशेष। (मत्स्यपु० ५३।३३) (क्ली०) रथेन तरतीति तृ (संज्ञायां भृ-तृ-वृजधारिसहितपिदमः। पा ३।२।४६) इति खच्, मुम च। २ एक प्रकारकी अग्नि। ३ सामभेद।

रथन्तरी (सं० स्त्री०) १ पुरुवंशीय ईलिन राजाकी पत्नी। (भारत० १।९४।१७) २ तंसुरकी एक स्त्रीका नाम।

रथपति (सं० पु०) रथका नायक, रथी।

रथपथ (सं० पु०) वह पथ या रास्ता जिस पर गाड़ी चल सके।

रथपर्याय (सं० पु०) रथः पर्यायो यस्य। १ तिनिशवृक्ष। २ बेंत।

रथपाद (सं० पु०) रथस्य पादः। चक्र, पहिया।

रथप्रा (सं० स्त्री०) आत्मियों या स्तोतृयोंका रथ धन द्वारा पूरा करनेवाली।

रथप्रेति (सं० त्रि०) रथस्थितप्रेतिवत् स्थिर सेनानी।

रथासा (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम।

रथबन्ध (सं० पु०) रथ बांधनेकी रस्सी।

रथमण्डल (सं० पु० क्ली०) रथका समूह।

रथमहोत्सव (सं० पु०) रथजनितः महोत्सव वा रथस्य महोत्सवः। रथयात्रा नामक उत्सव।

विशेष विवरण रथयात्रा शब्दमें देखो।

रथमुख (सं० क्ली०) रथका बिचला भाग।

रथया (सं० स्त्री०) रथ आदिके लिये इच्छा।

रथयात्रा (सं० स्त्री०) रथेन यात्रा। देवदेवीको रथ पर बिठा कर रथ खींचनेका उत्सव।

यह आर्यजातिका अनुष्ठित एक प्राचीन धर्मोत्सव है। अभी रथयात्रा कहनेसे साधारणतः जगन्नाथदेवकी रथयात्रा ही समझी जाती है। किन्तु एक समय इस भारतवर्षमें क्या सौर, क्या शाक्त, क्या शैव, क्या वैष्णव, क्या जैन, क्या बौद्ध, विभिन्न धर्मसम्प्रदायके मध्य अपने अपने उपास्यदेवके उत्सवविशेषमें रथयात्रा होती थी। राजासे ले कर दीन भिखारी तक सभी इस उत्सवमें शामिल होते थे। कबसे यह रथयात्रा प्रचलित है, इसका आज तक पता नहीं चला है। किसी किसी पाश्चात्य पुरावित् तथा प्रत्नतत्त्वविद् डा० राजेन्द्रलाल मित्रके मतसे बुद्धदेवके जन्मोत्सव-उपलक्षमें बौद्ध लोग जो रथयात्रा उत्सव मनाते थे, उसीसे भारतीय रथयात्राकी उत्पत्ति हुई है।

५वीं सदीमें चीन-परिव्राजक फाहियानने लि-थुल वा खोतनराज्यमें रहते समय बुद्धकी रथयात्राका वर्णन इस प्रकार किया है —

चतुर्थ मासके १म दिनमें नगरके सभी रास्ते साफ सुथरे किये गये। राजपथ ध्वजा पताकासे सजाया गया नगरके फाटकके ऊपर चन्द्रातप फहराया गया। फाटकके ऊपर राजा, रानी और राजपुरमहिलाओंके बैठनेका काफी स्थान था। राजा महायानका ही अधिक सम्मान करते थे, इस कारण महायानमतावलम्बी गोमती बौद्धाचार्योंकी प्रतिमायें सबसे पहले निकलीं। नगरसे प्रायः ३।४ कोस दूर उनके विग्रहके लिये रथ तैयार होता था। रथमें चार चक्के थे, सबोंकी ऊँचाई ३० फुट थी, वह सम-

महारत्नसे सुशोभित था। देखनेमें एक सचल राज-प्रासाद-सा मालूम होता था। उसके ऊपर चारों ओर रेशमका चन्द्रातप और रेशमका परदा लटका हुआ था। मध्यस्थलमें मूलविग्रह थे। उनके दोनों पार्श्वमें सहचरके रूपमें दो बोधिसत्त्व तथा उनके भी अनुचररूपमें नाना देवमूर्त्ति थीं। सोने और चांदीके नये और चमकीले अलङ्कार हवामें हिलते थे। रथ जब फाटकके समीप पहुंचा, तब राजाने अपना राजमुकुट फेंक कर नया कपड़ा पहना और हाथमें फूलकी माला तथा धूना लिये वे अनुचरोंसे परिवृत्त हो नंगे पैर रथके सामने उपस्थित हुए। अवनत मस्तकसे देवके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि दी और धूप धूना जला कर उनकी पूजा की। नगर घुसते समय फाटक परसे रानी और राज-महिलागण पुष्प बरसाने लगीं।

'इस प्रकार प्रत्येक सङ्घारामसे विभिन्न प्रकारके रथ निकले। चतुर्थमासकी प्रतिपद्से सबोंकी यात्रा आरम्भ और चतुर्दशीके बाद शेष हुई। उत्सव शेष होने पर राजा और रानी सभी अपने महलमें लौट आये।' Fo Kwo-ki Ch. II.

फाहियानने पाटलिपुत्र-दर्शनकालमें भी इसी प्रकार वर्णन किया है,—

'प्रति वर्ष दूसरे महीनेके ८वें दिनमें यात्रोत्सव होता है। इस समय वहांके अधिवासी रथ पर बुद्धप्रतिमा बिठा कर बाहर निकालते हैं। रथमें चार पहिये होते हैं। बीचमें त्रिशूलाकार २२ फुट ऊँचा ध्वजदण्ड खड़ा रहता है। रथ ठीक मन्दिरके जैसा दिखाई देता है। उसमें सफेद चिकने तथा रंग विरंगके कपड़े शोभा देते हैं। फिर सोने, चांदी और स्फटिककी अलङ्कारयुक्त नाना देव मूर्त्ति हैं, रथके चारों ओर चैत्य हैं। उनमेंसे चार ध्यानी बुद्धमूर्त्ति हैं। प्रत्येकके सामने बोधिसत्त्वमूर्त्ति भी खड़ी है। इस प्रकार २० बड़े बड़े रथ सुसज्जित हो बाहर निकलते हैं। इस रथोत्सवमें क्या यति, क्या श्रमण, क्या ब्राह्मण, क्या जनसाधारण सभी शामिल होते हैं। नाना प्रकारका बाजा भी बजता है। रात भर जग कर सभी दीपालोकसे प्रतिमाका आवाहन, उनके उद्देश्यसे गीतवाद्य और आमोद-प्रमोद करते हैं। दूर-दूर देशसे अनेक लोग आ कर इस उत्सवमें शामिल होते हैं।'

फाहियानने पाटलिपुत्रमें जिस दिन रथोत्सव देखा था, वही दिन बुद्धका जन्म दिन है, ऐसा बहुतोंका विश्वास है। फाहियानका उक्त वर्णन पढ़ कर बहुतेरे जगन्नाथदेवकी रथयात्राको बुद्धदेवकी रथयात्राका ही निदर्शन समझते हैं। अतएव बौद्ध लोगोंसे ही भारतवर्षमें रथयात्राका प्रचार हुआ है, यही बहुतोंकी धारणा है। किन्तु इस सम्बन्धमें सन्देह करनेका यथेष्ट कारण भी दिखाई देता है। पहले बुद्धके जन्मोत्सव-उपलक्षमें ही रथयात्राकी सृष्टि हुई, इसे भी हम विश्वास नहीं कर सकते। क्योंकि, प्राचीन बौद्धोंके मध्य एक ही समय इस उत्सवका प्रचार नहीं था। फाहियानके विवरणसे ही मालूम होता है, कि कहीं तो २य मासके १म दिनमें, और कहीं ४र्थ मासके ८म दिनमें बुद्धदेवको रथयात्रा होती थी। वर्त्तमान कालमें जगन्नाथ देवकी रथयात्रा भारतवर्षमें सभी जगह आषाढ़ मासकी शुक्लाद्वितीयाको होती है। अतः यहांके जगन्नाथदेवकी रथयात्रा और पूर्वकालकी रथयात्राको किस प्रकार बुद्धका जन्मोत्सव कह सकते? केवल जगन्नाथदेवकी रथयात्रा ही नहीं, कूर्म और भविष्यपुराणसे भाद्र-मासमें सूर्यकी रथयात्रा देवीपुराणसे कार्त्तिक मासमें देवीकी रथयात्रा; पद्म, वराह और भविष्योत्तर पुराणसे (रासयात्राके पहले) कार्त्तिक मासमें श्रीकृष्णको रथयात्रा; मत्स्य और एकाम्र पुराणसे चैत्र मासमें शिवको रथयात्रा; स्वयम्भूपुराणसे उसी समय स्वयम्भूनाथ बुद्धकी रथयात्रा तथा जैनपुराण अथवा जैनधर्मग्रन्थसे मार्गशीर्ष चातुर्मास्यके बाद पार्श्वनाथ और महावीरकी रथयात्राका विस्तृत विवरण पाया जाता है। यहां तक कि, एक समय यूरोपमें भी जो रथयात्रा प्रचलित थी, उसके भी प्रमाण मिलते हैं। क्या इन सभीको बौद्धप्रभावका निदर्शन कह सकते हैं? कदापि नहीं।

विशेषतः जैन-सम्प्रदाय कभी भी धर्मनीतिको बौद्धोंसे ग्रहण वा सीखनेके लिये तय्यार नहीं। वे सब जो उत्सवादि और पूजा करते आ रहे हैं वह अधिकांश उनका निजस्व है। उन लोगोंमें भी पार्श्वनाथ और महावीरस्वामीकी रथयात्रा प्रचलित है।

हम लोगोंका विश्वास है, कि भारतवर्षमें प्रतिमा-पूजाके प्रचलनके साथ रथयात्राका उत्सव आरम्भ हुआ है। पुराविदोंने स्थिर किया है, कि बुद्धनिर्वाणके बहुत पीछे यहां तक कि सम्राट् अशोकके समय तक बौद्धोंके मध्य बोधिसत्त्व और देवदेवीकी मूर्त्तिपूजाका प्रचार नहीं हुआ। महायानोंके अभ्युदयसे बौद्धसमाजमें प्रतिमा-पूजा प्रचलित हुई थी। सम्राट् कनिष्कके समय महायान मतका सूत्रपात हुआ। नागार्जुनके प्रभावसे यह मत फैला। उक्त कनिष्क राजा शक जातिके थे। शक वा शाक लोग सभी मित्र वा सूर्य्योपासक थे। और तो क्या, कनिष्कको कितनी मुद्राओंमें भी मित्रपूजाका प्रकृष्ट निदर्शन देखा जाता है। जब माकिदनवीर अलेकसन्दर भारतवर्ष आये, उस समय उन्होंने यहां बुद्धप्रतिमा अथवा उनकी पूजाका कोई निदर्शन नहीं पाया। उस समय उन्होंने पञ्चनद प्रदेशमें मित्र और शिव-पूजाका प्रभाव देखा था*। यहां तक कि माकिदनवीरके परवर्त्ती और शकराजाओंके पूर्ववर्त्ती भारतीय मुसलमान राजाओंकी मुद्रा पर मित्रपूजाका चिह्न दिखाई देता है। परन्तु मुसलमानराजे जो मित्र वा सूर्य्योपासक थे उसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। उन लोगोंके आनेके बहुत पहलेसे यहांके लोगोंके बीच मित्रपूजाका बहुल प्रचार था, प्रजावृन्दके मनोरञ्जनके लिये मुसलमानराजोंने अपनी अपनी मुद्रा पर मित्रमूर्त्ति अङ्कित की होगी यही युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है। बौद्धसम्राट् अशोकके समय बोधगयामें बज्रासन बनाया गया। वहां सात घोड़ोंके रथ पर हम लोग सूर्यकी मूर्त्ति देखते हैं। कूर्मपुराण और भविष्यपुराणके प्राचीन अंशमें सूर्यदेवकी रथयात्राका विस्तृत विवरण लिखा है। मित्र-पूजा प्रवर्त्तन, शाक जातिका धर्ममत और विश्वास ले कर भविष्यपुराणका प्राचीनांश रचा गया है। देवताकी मूर्त्ति गढ़ कर उसकी पूजा सुप्राचीन भारतीय आर्य्य-जातिके मध्य प्रचलित नहीं थी। भारतमें शाकद्वीपीय ब्राह्मणसंस्रवके साथ साथ प्रतिमा गढ़नेका आरम्भ हुआ। उन्हींके यत्नसे केवल भारतवर्ष ही नहीं, मध्य-एशियासे ले कर सुदूर यूरोपखण्ड तक सूर्य्यकी मूर्त्ति पूजा प्रचलित हुई थी। भविष्यपुराणमें भाद्र मासमें सूर्य्यदेवकी रथ-यात्राका प्रसङ्ग है, यह पहले ही लिख आये हैं। आज भी भाद्रमासके आरम्भमें यूरोपके अन्तर्गत सिसली द्वीपमें रथयात्राका अनुष्ठान होता है। सूर्य्यदेवके रथ पर जिस प्रकार ज्योतिश्चक्र और नवग्रहकी मूर्त्ति अङ्कित होती थी, सिसलीद्वीपके उसी प्रकार बड़े रथ पर भी सूर्य्यचन्द्रकी नवग्रह और ज्योतिश्चक्र अङ्कित होता है। इस सिसलीके रथ-सम्बन्धमें श्रीमती करासीओला Madame Henrietta Caraciolo ने इस प्रकार वर्णन किया है।

"A colossal car is dragged by a long team of buffaloes through the irregular and ill-paved streets. Upon this are erected a great variety of objects, snch as sun, moon and principal planets, set in rotatary motion, and diminishing proportionately in size as they approach the summit of the structure. This erection is in itself really imposing; sumptuously decorated, and put in movement in honour of her who gave birth to the God of Charity. But its functions recall to mind the famed car of Jaggernauth, or the nefarious hecatombs of the druids." †

उक्त विलायती रथयात्रा मेरीके उद्देशसे अनुष्ठित तो होती है, पर वह देश, काल और अवस्थानुयायी सुप्राचीन सूर्य्य रथयात्राका रुपान्तरमात्र है, इसमें सन्देह नहीं। सूर्य्यरथ ही जो सभी रथोंमें प्रथम है वह भी पुराणमें लिखा है।

"पूर्व्वमेव सहस्रांशोर्यानहेतोर्महात्मनः।
संवत्सरस्यावयवैः कल्पितोऽस्य रथो मया॥
सर्वेषान्तु रथानां वै स रथः प्रथमः स्मृतः॥"

(भविष्यपु० ५५।५३)

अभी जिस प्रकार जगन्नाथदेवकी रथयात्रा होती है,

* बङ्गेर जातीय इतिहास, ब्राह्मणकाण्ड २य भाग ४र्थ अंश ५१ पृष्ठ देखो।

† Memoirs of Henrietta Caraeiolo, p 21

पहले उसी प्रकार भारतीय वैष्णव-सम्प्रदायके मध्य कार्त्तिक मासमें श्रीकृष्णकी रथयात्राका अनुष्ठान होता था। बौद्ध-प्रभावकालमें यह उत्सव एकदम विलुप्त हो जाने पर था। महायान सम्प्रदायकी प्रधानताके समय उत्कलमें बड़ी धूमधामसे जो बुद्धकी रथयात्रा होती थी, हिन्दूधर्मके पुनरभ्युदयकालमें उत्कलवासीके मनोरञ्जनके लिये उसी समय जगन्नाथदेवकी रथयात्रा जब धीरे धीरे तमाम फैल गई, तब श्रीकृष्णकी रथयात्राका विषय प्रायः सभी भूल गये। जहां कहीं वह प्राचीन विष्णुरथयात्रा होती भी है वहाँ जगन्नाथकी रथयात्राका नियम ही पालन करते देखा जाता है। उत्कलमें चैत्रमासमें आज भी बड़ी धूमधामसे शिवकी रथयात्रा होती है। परन्तु देवीकी रथयात्रा एक तरह लुप्त-सी हो गई। हिमालयके दो एक स्थानमें देवीकी रथयात्राकी बात सुनी जाती है।

नीचे विभिन्न रथयात्राका संक्षिप्त विवरण दिया जाता हैः—

सूर्यकी रथयात्रा।

भगवान् सूर्यदेवकी रथयात्राका विधान भविष्यपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

माघमासकी शुक्ला सप्तमी तिथिको भगवान् सूर्यदेवकी रथयात्रा करनी होती है। पहले चतुर्थी तिथिमें अयाचितरूपसे भक्षण करके शुक्ला पञ्चमीके दिन संयत हो कर रहे। पीछे षष्ठीको रातको भोजन करे तथा सप्तमी तिथिमें उपवासी रह कर भगवान् सूर्यदेवको रथ पर आरोहण करावे।

भगवान् सूर्यदेवको रथारोहण करानेके पहले रथके सामने आतशबाजी करनी होती है। रात्रिकालमें सूर्यदेवको रथ पर चढ़ा कर रात भर आमोद-प्रमोदमें जाग कर बितावें। पीछे अष्टमी तिथिमें सवेरे नाना प्रकारके वाद्यादि उत्सव करके रथभ्रमण करना उचित है। सूर्यदेवके रथकी संवत्सरके अवयव द्वारा कल्पना करनी होती है। रथचक्रकी तीन नाभि होगी। वे तीनों नाभि त्रिकालस्थानीय रहेंगी। इसके पांच और पर्वप्रदेश और छः ऋतुनेमी, रथवेदी उत्तरायण और दक्षिणायण, दण्ड मुहूर्त्त, शमीकाल, काष्ठ कोणस्थानीय, दण्ड क्षण स्वरूप, कर्णप्रदेश निमेष, ईशादण्ड लव, वरूथ प्रदेश रात्रि, ऊर्द्ध्व प्रतिष्ठित ध्वज धर्मस्वरूप, युग और अक्षकोटि दो ऋतु इत्यादि रूपसे संवत्सरकी कल्पना कर रथ प्रस्तुत करना होता है। इसमें ज्योतिश्चक्रोक्त सभी नक्षत्रादिका समावेश करना उचित है।

(भविष्यपु० ५५ अ०)

यह रथ सोने, चांदी या दृढ़ दारुकाष्ठका होना चाहिये। इसका अक्ष युग और चक्र अत्यन्त दृढ़ होवे।

(भविष्यपु० ५५ अ०)

इस रथ पर ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि देवताको यथाविधान स्थापन करके रथ चलाना होता है। प्रजाओंकी भलाईके लिये प्रतिवर्ष यह रथयात्रा करना उचित है। रथ पर सूर्य और देवताओंकी प्रतिमा रख कर हरिद्वर्ण सुलक्षण-सम्पन्न घोड़े नियोजित करने होते हैं।

(भविष्यपु० ५५।६३)

रथमें घोड़े वा उसके अभावमें बलीवर्द भी नियोजित किया जा सकता है। रथके दोनों बगलमें सूर्यकी दो पत्नीको स्थापित करना होगा, दाहिनी बगलमें निक्षुभा पत्नी और बाईं बगल रानी रहेंगी। शेष दो बगलमें रुद्रदेवको भी स्थान देना होगा। अग्रकल्प भौम, ऊपरमें कुवर और पीठ पर गरुड़ रहेंगा। श्वेत आतपत्र और सुवर्णदण्ड भी रखना होगा। (भविष्यपु० ५५ अ०) सूर्यके पार्षद पिङ्गल नामक लेखक और द्वारपाल भी रहेंगे।

इस रथकी ध्वजाको सुवर्णविन्दु और मणिमुक्तादि द्वारा चित्रित करना होगा। इसमें इन्द्रधनुषके समान नाना वर्ण दिखाये जायेंगे। ध्वजाके ऊपर अरुण देवको अधिष्ठित करना होता है। सूर्यका यह रथ ब्राह्मणके सिवा दूसरा कोई भी वर्ण वहन नहीं कर सकता।

(भविष्यपु० ५५ अ०)

जो अन्य देवभक्त तथा कुक्रियासक्त हैं, उन्हें रथ खींचनेका बिलकुल अधिकार नहीं है। यह रथ खींचनेमें उपवास करना होता है। पहले पूर्वद्वार हो कर यह रथ ले जावे। निर्दिष्ट स्थानमें रथके पहुंचने पर वहां एक दिन ठहरना होता है। उस दिन नाना प्रकारका सत्कार्य्य, वेदपाठ, ब्राह्मण-भोजन और देव-

पूजादि द्वारा बिताना चाहिये। सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि देवताओंकी पूजा भी अवश्य कर्त्तव्य है। सूर्यदेवका रथ धीरे धीरे भ्रमण कराना होता है। भविष्यपुराणमें ५५ अध्यायसे ले कर ६२ अध्याय तक सूर्यरथयात्राका सविस्तार विवरण आया है। स्थानाभावसे यहां पर संक्षेपमें दिया गया।

विष्णुकी रथयात्रा।

पद्म, स्कन्द और भविष्योत्तरपुराणके मतसे चातुर्मास्यके अन्तमें भगवान्‌के उत्थानके बाद कार्त्तिककी शुक्ला द्वादशीकी रात विष्णुको रथ पर स्थापन कर यह उत्सव मनाया जाता है। भविष्योत्तरके मतसे प्राचीनकालमें प्रह्लादने पहले पहल महाविष्णुका रथ खींचा था। पीछे देवसिद्ध गन्धर्वोंने इस रथयात्राका अनुष्ठान किया था। भगवान्‌को रथ पर चढ़ा कर नाच, गान, बाजे-गाजेके साथ उस रथको नगरमें घुमाना होता है। रथयात्राके पथमें सुन्दर सुन्दर ध्वजा फहरायगी, बड़े बड़े सुसज्जित फाटक रहेंगे तथा केलेके थम्भ भी जहां तहां गाड़े जायेंगे। समूचे नगरका प्रदक्षिण करा कर विष्णुको फिर उनके मन्दिरमें लाना होता है। भविष्योत्तरमें लिखा है, कि उस रथका एक एक पद खींचनेसे एक यज्ञका फल होता है। रथस्थ केशव-मूर्त्तिके दर्शन करनेसे चण्डालादि भी देवताके पार्षद हो सकते हैं, स्त्रियां भी पिता, माता और स्वामी-कुलके साथ वैकुण्ठ जाती हैं। फिर जो प्रसन्न चित्तसे उस रथकी शोभा बढ़ाते हैं, भगवान् उनके मनोरथ पूर्ण करते हैं। पीछे वैष्णवोंको सारी रात उस विष्णुमन्दिरमें जग कर प्रबोधवासर करना चाहिये। इस प्रकार रात्रि जागरणमें भी अशेष पुण्य बतलाया है। हरिभक्तिविलासमें विस्तृत विवरण दिया गया है।

शिवकी रथयात्रा।

एकाम्रपुराण (६७ अ०)-में महादेवकी रथयात्राका विषय इस प्रकार लिखा है।

'शिवकी रथयात्राका नाम अशोकाख्या महायात्रा है। यह रथयात्रा शिवके अत्यन्त संतोष देनेवाली है। शिवकी रथयात्रा करनेमें पहले रथ बनाना होगा। रथ निर्माणके लिये अग्निकाष्ठ उत्तम है। काष्ठ बाजे गाजेके साथ लाना होता है। इस काष्ठसे सफेद रथ बनाना होगा। रथमें चार सुन्दर चक्र रहेंगे। रथकी लम्बाई २१ हाथ होगी और घेरा १६ हाथ। इसमें चार द्वार और हर एक द्वारके ऊपर एक एक सोनेका कलस रहेगा। रथ पर त्रिशूलके ऊपर सौरभेय ध्वजा तथा इसके चार चार होंगे। ब्रह्मा इस रथके सारथि होंगे। इसमें दिव्य सिंहासन रहेगा। इस प्रकार हर हालतसे सुन्दर उत्तम रथ बना कर उस पर महादेवको बिठा इस रथयात्राका अनुष्ठान करना होता है।

रथके उत्तर प्रतिष्ठामण्डप बनाना होता है। इस प्रतिष्ठामण्डपमें वेदीके ऊपर शुभ कुम्भ स्थापन कर यथाविधान भूतशुद्धि और शैवन्यासादि करना आवश्यक है। शिवादि पञ्चदेवताओंकी पूजा और होम भी करना होता है। कुम्भके दक्षिण भागमें वरुणपूजा तथा रुद्राध्यायका जप करना उचित है। रथके दक्षिण नन्दी, उत्तर महाकाल, रथके पृष्ठभाग पर विनायक, आगे वाहनसहित कार्त्तिक और अनन्तदेवकी पूजा करके महादेवीकी पूजा करनी होती है। इस प्रकार यथाविधान पूजादि करके रथ प्रदक्षिण करना होगा। पीछे महादेवको रथ पर बिठा कर धीरे धीरे रथयात्रा करे।

'यह रथयात्रा चैत्रमासकी शुक्लाष्टमीके शुभ लग्नमें करनी होती है। जो रथस्थ शिव-दर्शन करते हैं, उन्हें फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। जो इस रथयात्राका अनुष्ठान करते हैं, वे सभी पापोंसे मुक्त हो शिवलोक जाते हैं।' (एकाम्रपु० ६६।६७)

त्रिपुरदहनकालमें देवताओंने महादेवको जिस प्रकार रथ पर स्थापन कर खींचा था, उसका विवरण मत्स्यपुराणमें दिया गया है।

जगन्नाथदेवकी रथयात्रा।

भगवान् जगन्नाथदेवकी रथयात्रा इस प्रकार कही गई है,—आषाढ़ मासकी पुष्यानक्षत्रयुक्ता शुक्ला द्वितीया तिथिको जगन्नाथदेवकी रथयात्रा करनी होगी। सुभद्रा और बलरामके साथ जगन्नाथदेवको रथ पर आरोहण करा कर यह उत्सव करना होता है। यदि इस तिथिमें पुष्यानक्षत्रका योग न हो, तो भी केवल तिथिमें इसका अनुष्ठान करना होगा। यहां पर केवल तिथिका

ही प्रधानता है, केवल नक्षत्रका योग होनेसे विशिष्ट गुण होगा। इस दिन नाना प्रकारका उत्सव और ब्राह्मण-भोजन कराना होता है। सुभद्रा सहित बलरामके साथ जगन्नाथदेवको रथ पर चढ़ा कर यह यात्रा करनी होगी। पीछे सात दिन उस रथको नदीके किनारे रख दे। आठवें दिन नाना प्रकारके भूषणादि द्वारा रथको सजा कर नवें दिन पुनर्यात्रा करे। विष्णुकी दक्षिणाभिमुखी यात्रा अति दुर्लभा और मुक्तिप्रदायिका है।

द्वितीयाकी यात्रा करके नवें दिन पूर्णयात्रा करनेसे एकादशीके दिन पुनर्यात्रा होगी।

अर्थात् आषाढ़की शुक्ला द्वितीयाको रथयात्रा करके शुक्ला एकादशीके दिन पुनर्यात्रा करनी होगी। इस दिन जपहोमादि महोत्सव करना उचित है। जो रथ पर या जाते समय विष्णुके दर्शन करते हैं, उनकी विष्णुलोककी गति होती है।

जगन्नाथ, बलराम और सुभद्राका रथ कैसा होना चाहिये उसका विषय पुरुषोत्तममाहात्म्यमें इस प्रकार लिखा है,—

'रथनिर्माणकार्यका आरम्भ करनेमें पहले विघ्नराजके उद्देशसे महोत्सव करना उचित है। लोहेसे रथके १६ आर और १६ चक्र बनाने होते हैं। सुन्दर सुन्दर काठकी पुतली लटका देनी होगी। रथके मध्यदेशमें समान वेदी तथा उस पर सुन्दर मण्डप बना रहेगा। इसमें चार तोरण और चार द्वार नाना प्रकारके चित्राङ्कित तथा हेमपट्टसे भूषित होंगे। बाईस हाथकी पताका उस पर फहरायगी। रक्तचन्दन द्वारा गरुड़ध्वज बनाना होता है। यह गरुड़ बड़ी नाकवाला, हृष्टपुष्ट, कुण्डलविभूषित तथा आकाशमें दोनों डैने फैला कर मानो उड़ रहा है; इसी भावमें अङ्कित करना होगा। दैत्यदानवोंका बलदर्पनाशक उसका यह अङ्क सुवर्ण-मण्डित कर देना होगा।'

इस प्रकार विष्णुका रथ बना कर उस पर सुपरिष्कृत आसन बनावे। चौदह रथसे बलदेवका रथ और बारह चक्रसे सुभद्राका रथ बनाना होगा। बलभद्रका रथ तालध्वजमय और लाङ्गल ध्वज तथा देवी सुभद्राका रथ पद्मकाष्ठ विनिर्मित और पद्मध्वज करना होता है। इस प्रकार रथ बना कर यथाविधान उसकी प्रतिष्ठा करनी होती है। नीलाद्रिमहोदयके ५वें अध्यायमें रथनिर्माण-प्रणाली सविस्तार लिखी है।

रथयात्रापद्धति।

निम्नोक्त प्रकारसे भगवान् जगन्नाथदेवकी रथयात्रा करनी होती है। पहले स्वस्तिवाचनपूर्वक 'ओं सूर्यः सोमो' इत्यादि मन्त्र पढ़ कर सङ्कल्प करे। सङ्कल्प मन्त्र इस प्रकार है,—"विष्णुरोम् तत्सदद्य आषाढ़े मासि शुक्ले पक्षे द्वितीयायां तिथौ अमुक गोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा-विष्णुलोकगमनकामः गणपत्यादि नाना देवतापूजापूर्वकं श्रीकृष्णरथोत्सवयात्रामहं करिष्ये।" पीछे सङ्कल्पसूक्तका पाठ कर आसनशुद्धि तथा भूतशुद्धि करके गणेशादि देवताओंकी यथाविधान पूजा करनी होगी। अनन्तर भगवान् जगन्नाथदेवका ध्यान करके मानसोपचारसे पूजा करनेके बाद फिरसे ध्यान करे।

अनन्तर जगन्नाथ, बलराम और सुभद्राका स्तव करके उन्हें प्रणाम करे। पीछे रथोत्सर्ग और रथको सात बार प्रदक्षिण कर जयध्वनि और कीर्त्तनादि उत्सव करना उचित है। इसके बाद ७ या ३ बार रथ चला कर जगन्नाथदेवको अपने घर ले जाय तथा पूर्ववत् अभिषेक और पूजादि करे। पुनर्यात्रामें भी इसी प्रकार करना होता है। पुनर्यात्रा दशमीमें किसी किसीके मतसे नवमीमें करनी होती है।

विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है, कि एक ही रथ पर जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा इन तीनों मूर्त्तिको स्थापन करे। फिर भी पुरुषोत्तममाहात्म्य और नीलाद्रि-महोदयकी पद्धतिके अनुसार पुरीधाममें आज भी तीनोंके लिये तीन बड़े रथ बनाये जाते हैं। ये तीनों रथ किस प्रकार बनाने चाहिये, यह पहले ही लिखा जा चुका है।

जगन्नाथकी रथयात्राके उपलक्षमें आज भी पुरीमें लाखोंकी भीड़ रहती है। "रथे च वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते" इस विश्वास पर भक्त हिन्दू नर-नारी सभी जगन्नाथके रथदर्शनको जाते हैं। इस समयकी बड़ी भीड़में दो एक आदमी मर भी जाते हैं, इस कारण किसी किसी वैदेशिक मिसनरीने रथयात्राको एक पैशाचिक वा असभ्य उत्सव बतलाया है। किन्तु अनुसन्धान करनेसे

मालूम हुआ है, कि इस प्रकार लाखोंकी भीड़ होने पर भी भक्त हिन्दू रथचक्रमें प्राणविसर्जन कर देनेके लिये व्यग्रता नहीं दिखलाते। असाध्य व्याधिसे आक्रान्त जिनके जीवनकी कोई आशा नहीं, वैसे ही दो एक मनुष्य स्वर्ग-कामना करके रथचक्रमें प्राण देते हैं। पर यह भी असम्भव नहीं, कि इस बड़ी भीड़में लोगोंके कुचले जाने तथा घूमते हुए रथमें पड़ कर दो एक आदमी न मरता हो। किंतु सुसभ्य यूरोपके अन्तर्गत सिसली द्वीपमें रथयात्राके समय जैसा वीभत्स और निष्ठुर काम होता है, कि उसे सुननेसे भी शरीर सिहर उठता है। श्रीमती कारासिओलाने इस रथयात्राके विषयमें इस प्रकार लिखा है,—

"The heart sickens at sight of it, and it is difficult to refrain from crying shame upon the horrible barbarity ; for, bound to the rays of sun and moon, to the circle sforming the spheres of the various planets, are infants yet unweaned, whose mothers, for the gain of a few ducat, thus expose their offspring, to represent the cherub escort which is supposed to occompany the Virgin to heaven.

When this huge machine has made its jolting sound, these helpless creatures, guiltless of every reproach, but that of being the offspring of brutal mothers, having been wheeled round and round for a period of seven hours, are taken down from this fatal machin, already dead or dying. There ensues a scene impossible to describe—the mothers struggling with each other, screaming and trampling each other down. It not being possible, on account of the number, for each mother to recognise her own child among the survivors, one disputes with the other the identity of her infant, amid a storm of imprecations and the lamentations of the more afflicted, joined to the deafening derision of the spectators and the hooting of the mob. Numbers are thus changed in the confusion. The less fortunate mothers, as they receive the dead bodies of their infants, often already cold, the air with their fictitious lamentation, but consoled with the certainty that Maria, enamoured of her child, has taken it with her paradise."*

अर्थात् वह रथयात्रा देखनेसे कलेजा फट जाता है। उस विभीषिकामयी असभ्यताको धिक्कार दिये बिना नहीं रह सकती। थोड़े रुपयेके लोभमें पड़ कर देवदूत-स्वरूप (रथरूप) कुमारीके साथ स्वर्गलोक जानेके ख्यालसे माता अपने दुधमुंहे लड़केको सूर्य और चन्द्रमाकी किरणमें विभिन्न ग्रहके मण्डल-निर्देशक चक्रके साथ बांध देती है। जब वह बड़ा यन्त्र चलने लगता है, तब वह निःसहाय दोषरहित नृशंस माताका दुधमुंहा बच्चा सात घंटे तक उस घूमते हुए चक्रमें पीसे जा कर मृत वा मृतकल्प अवस्थामें लाया जाता है। उसके बाद जो निदारुण दृश्य होता है उसका वर्णन मैं नहीं कर सकती। उस समय वे सब मातायें एक दूसरेको पददलित करके क्या ही भीषण आर्त्तनाद करती हैं। उनकी संख्या इतनी अधिक होती है, कि अपना अपना जीवित सन्तान चुन लेना उनके लिये कठिन-सा हो जाता है। अपने अपने बच्चेको चुन लेनेके लिये एक दूसरीको गाली देती, शाप देती और शोक प्रकट करती हैं। इस समय उनके आर्त्तनादसे तथा जनताके [illegible] पापों:कोलाहलसे आकाश गूंज उठता है। उस [illegible] तो बेहोश हो जमीन पर गिर पड़ते हैं [illegible] भाग्यवती माता अपने बच्चेकी मृतदेहको जो [illegible] ही हिमाङ्ग हो गई है, पानेके लिये कृत्रिम रोदनध्वनिसे आकाशको फाड़ देती है। किन्तु मेरी उनके बच्चोंको स्वर्ग ले गई है, इस स्थिर विश्वाससे वे शान्त होती हैं। यही विलायती रथयात्रा है। आजकल यह नृशंस व्यापार बहुत कुछ उठ गया है।

देवीकी रथयात्रा।

देवीपुराणमें महादेवीका रथोत्सव वर्णित है।

* Memoirs, pp. 22.

(कार्त्तिकमासमें) तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, एकादशी वा पूर्णिमाके दिन सार्वभौम रथ पर देवीको स्थापन करना होता है। रथघंटा, किङ्किणी, शङ्ख, चामर, पताका, ध्वज, दर्पण और विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे सजाना होता है। सब तरहके अन्नपानादिका नैवेद्य और बलि भी देनी होती है। रथस्थ बैतालोंके उद्देशसे भी बलि देनी चाहिये। वेदमङ्गल शब्द, शङ्ख, वेणु, वीणा और मृदङ्गादिका शब्द करते करते देवीका रथ खींचना होता है। जिस पथसे रथ जायगा उसे तमाम गोबरसे लीप दे। पथ और पथपार्श्वस्थ सभी घरको सजा रखना होगा। तमाम राजपथसे घुमा कर देवीको फिर स्वगृहमें लावे। यह रथोत्सव करनेसे स्वर्गलाभ होता है। (३९ अ०)

नेपालमें विविध रथयात्रा।

भारतवर्षमें अभी सर्वजनप्रसिद्ध जगन्नाथदेवकी रथयात्रा और चातुर्मास्यके अन्तमें अनुष्ठेय जैनोंके पार्श्वनाथ और महावीर स्वामीकी रथयात्राको छोड़ कर और सभी देवदेवीकी रथयात्रा एक प्रकार उठ सी गई है। फिर भी नेपालमें क्या बौद्ध, क्या शैव सभी सम्प्रदायके मध्य भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न प्रकारकी रथयात्रा प्रचलित है। ऐसा रथोत्सव और कहीं भी नहीं होता। वर्ष भरके भीतर ये सब यात्रा होती हैं,—

१ली—भैरवयात्रा और लिङ्गयात्रा। १ली वा २री वैशाखको दो रथ पर भैरव और भैरवीको स्थापन कर उन्हें तमाम घुमाते हैं। इसीका नाम भैरवयात्रा है। जब दोनों रथ दरबारके निकट पहुंचते हैं, उस समय स्वतन्त्र रथ पर लिङ्गमूर्त्तिको स्थापन कर तीन रथ एक साथ खींचे जाते हैं। इसका नाम लिङ्गयात्रा है।

२री—नेतादेवीकी यात्रा वा देवीयात्रा। भैरवयात्राके बाद शुक्लाचतुर्दशीको देवीकी यात्रा बड़ी धूमधामसे होती है।

३री—कुमारी-रथयात्रा। केवल 'रथयात्रा' नामसे ही नेपालमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। देवदेवीकी प्रतिमा ले कर यह रथोत्सव नहीं मनाया जाता। इसमें अष्टमातृका एक कुमारी तथा गणेश और कुमारस्वरूप एक बालिका और दो बालकको रथ पर पूजा होती है। नेपालमें प्रवाद है, कि राजा जयप्रकाश मल्लने कुमारीका अपमान करके उनकी सम्पत्ति छीन ली थी। उसी रातको उनकी रानी मूर्च्छित हो गिर पड़ीं तथा कुमारी उनके शरीरमें घुसी हुई हैं, ऐसा उन्हें मालूम हुआ। राजा डर गये और बड़े समारोहसे उन्होंने कुमारीको पूजा की। आज भी नेपालके बांड़ाओंमेंसे एक सात वर्षकी कुमारी और दो बालकको चुन लिया जाता है। वैसी तैसी कुमारीसे काम नहीं चलेगा। जिसे कुमारी बनाया जायगा, उस कन्या और बालकको लेहूसे लीपे पोते बड़े बड़े भैंसेके सींगोंसे सज्जित कर एक डरावने घरमें ला छोड़ दिया जाता है। यदि वह उस भीषण दृश्यको देख कर जरा भी विचलित न हो, तो कन्याको स्वयं देवीकी अवतार कुमारी और दो पुत्रको कार्त्तिक गणेश समझ कर सभी उनकी भक्ति करते हैं। स्वयं नेपालपति आ कर कन्याको पूजा देते हैं तथा उसके खर्च-वर्चके लिये तीन हजार रुपयेकी तथा दो बालकको डेढ़ हजार रुपयेकी जागीर देते हैं। ये तीनों जिस घरमें रहते हैं, वह 'देवताका मकान' समझा जाता है। उस कुमारीको देवी समझ कर कोई भी उसके साथ विवाह नहीं कर सकता। किन्तु दोनों बालकके गलेमें माला पहनानेके लिये सभी नेवार-कुमारियां उत्सुक रहती हैं। तीन चार वर्ष तक उन तीनोंकी पूजा होती है। पीछे फिरसे नये नये बालक और बालिका चुनी जाती हैं। इन तीनोंको सुसज्जित मन्दिराकार रथ पर बिठा कर जब रथयात्रा होती है, तब नेपालाधिपति सरदारोंसे परिवृत्त हो स्वयं बाहर आ कर उनकी पूजा और सम्मान करते हैं। यह रथोत्सव देख कर एक अंगरेज-लेखकने लिखा है—

"The Buddhist festival is evidently adopted from the Hindu festival of Jagannath, in honour of Jagannath and his brother Balaram, and the *kumari* represents their sister Subhadra."*

अर्थात् जगन्नाथकी रथयात्राके अनुकरण पर नेपालके

* Oldfield's Sketches from Nipal, vol. p. 316

बौद्धोंकी एक प्रधान उत्सव कुमारी-रथयात्रा प्रचलित हुई है।

४थी—मत्स्येन्द्रयात्रा। मत्स्येन्द्रनाथकी रथयात्रा प्रधानतः बौद्धोत्सव कह कर गिनी जाने पर भी नेपाल-वासी हिन्दू बौद्ध सभी उत्सवमें शामिल होते हैं। नेपालका यही सर्वप्रधान रथोत्सव है। चैत्रमासमें यह उत्सव मनाया जाता है। रामनवमी तिथिमें भगवदु-वतार रामचन्द्रका जन्म हुआ था। बुद्धदेव भी विष्णु-के अवतार माने जाते हैं। इसलिये रामनवमी तिथिमें बुद्धका जन्म ले कर मत्स्येन्द्रयात्रा होती है। यथार्थमें चैत्रकी शुक्लाष्टमी, नवमी, दशमी और एकादशी ये चार दिन मत्स्येन्द्रके उत्सवके दिन हैं।

उपरोक्त भैरवयात्राको छोड़ कर और सभी यात्राओं-में नेपालके महाराजसे ले कर हिन्दू बौद्ध सबके सब शामिल होते हैं।

रथयाण (सं० क्ली०) रथरूपं यानं। रथ।

रथयावन् (सं० त्रि०) रथ द्वारा गमनकारी, रथ पर चढ़ कर जानेवाला।

रथयु (सं० त्रि०) रथेच्छुक, रथाभिलाषी।

रथयुग् (सं० त्रि०) रथं युनक्ति युज्-क्विप्। १ रथयोज-यिता, रथ हाँकनेवाला। २ सारथी।

रथयुद्ध (सं० क्ली०) रथेन युद्धं। रथसे युद्ध करना।

रथयूथ (सं० पु०) रथसमूह, रथका ढेर।

रथयोजक (सं० पु०) रथ हांकनेवाला, सारथी।

रथराज (सं० पु०) शाक्यमुनिका पूर्वपुरुष।

रथर्वी (सं० स्त्री०) सर्पभेद, एक प्रकारका सांप।

रथवंश (सं० पु०) रथसमूह।

रथवत् (सं० त्रि०) १ यजमान। २ रथविशिष्ट, रथयुक्त।

रथवर (सं० पु०) उत्कृष्ट रथ।

रथवर्त्मन् (सं० क्ली०) रथस्य वर्त्म। रथमार्ग, रथ चलाने-का रास्ता।

रथवान् (सं० पु०) रथ हांकनेवाला, सारथी।

रथवाह् (सं० त्रि०) रथं वहति वह-णिणि। १ रथ-वहन-कारी, सारथी। (पु०) २ घोड़ा।

रथवाहक (सं० पु०) वह जो रथ हांकता हो, सारथी।

रथवाहन (सं० क्ली०) चक्रयुक्त काष्ठमण्डप, रथमेंका वह चौकोर ऊपरी ढांचा जो पहियोंके ऊपर जड़ा होता है।

रथविद्या (सं० स्त्री०) रथविज्ञान, रथ चलानेकी बुद्धि।

रथविमोचन (सं० क्ली०) रथकी रज्जु उन्मोचन।

रथवीथी (सं० स्त्री०) वह रास्ता जो रथ चलानेके लायक हो।

रथवीति (सं० स्त्री०) १ राजा। (त्रि०) २ तपस्याकारी, तपस्या करनेवाला।

रथवेग (सं० पु०) रथकी गमनशक्ति।

रथव्रज (सं० पु०) रथसमूह।

रथव्रात (सं० पु०) रथवंश, रथका बांस।

रथशक्ति (सं० स्त्री०) युद्धोपयोगी रथका पताकादण्ड, या झंडा।

रथशाला (सं० स्त्री०) रथरक्षागृह, अस्तबल।

रथशिक्षा (सं० स्त्री०) रथ चलानेका कौशल।

रथशिरस् (सं० क्ली०) रथकी चूड़ा, रथका मुख।

रथशीर्ष (सं० क्ली०) रथमुख।

रथश्रेणि (सं० स्त्री०) बहुत रथ।

रथसङ्ग (सं० पु०) रथका हितकर।

रथसप्तमी (सं० स्त्री०) माघमासकी शुक्ला सप्तमी। कहते हैं, कि सूर्य इसी दिन रथ पर सवार होते हैं, इसी-लिये इसका यह नाम पड़ा है। इस तिथिमें अरुणोदय-के समय गङ्गास्नान महापातकनाशक है।

रथसूत्र (सं० क्ली०) रथ बनानेके नियम या प्रणाली।

रथस्थ (सं० त्रि०) रथे तिष्ठति स्था-क। रथस्थित, रथ पर बैठा हुआ।

रथस्पति (सं० पु०) सबोंका पालक।

रथस्पृश् (सं० त्रि०) रथमें नियुक्त।

रथस्वन (सं० पु०) १ रथका एक प्रकारका शब्द। २ यक्षभेद।

रथाक्ष (सं० पु०) १ रथका पहिया या धुरा। २ प्राचीन कालका एक परिमाण जो एक सौ चार अंगुलका होता था। ३ कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

रथाग्र (सं० पु०) श्रेष्ठ योद्धा।

रथाङ्का (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

(बृहत्सं० १६।१६)

रथाङ्ग (सं० क्ली०) रथस्याङ्गं। १ चक्र, रकवा पहिया। २ सुदर्शनचक्र। (माघ० २।२१) (पु०) ३ चक्रवाक पक्षी, चकवा।

रथाङ्गतुल्याह्वयन (सं० पु०) चक्रवाक पक्षी, चकवा।

रथाङ्गधर (सं० पु०) १ श्रीकृष्ण। २ विष्णु।

रथाङ्गनामक (सं० पु०) चक्रवाक, चकवा।

रथाङ्गनामन् (सं० पु०) रथाङ्गो नाम यस्य। चक्रवाक, चकवा। (कुमार ३।३७)

रथाङ्गनेमि (सं० स्त्री०) रथचक्रकी नेमि, रथके पहियेका घेरा वा चक्कर।

रथाङ्गपाणि (सं० पु०) विष्णु।

रथाङ्गवर्त्ती (सं० पु०) चक्रवर्त्ती, सम्राट्।

रथाङ्गश्रोणिबितम्बा (सं० स्त्री०) अर्द्धगोलाकृति नितम्बविशिष्टा।

रथाङ्गसंज्ञ (सं० पु०) चक्रवाकपक्षी, चकवा।

रथाङ्गसाह्व (सं० पु०) चक्रवाक पक्षी, चकवा।

रथाङ्गाह्वय (सं० पु०) चक्रवाक पक्षी, चकवा।

रथाङ्गी (सं० स्त्री०) रथस्याङ्गमिवाकृतिर्यस्याः, रथाङ्ग-ङीष्। ऋद्धि नामक ओषधि। (राजनि०)

रथानीक (सं० क्ली०) श्रेणीबद्ध रथिसैन्य।

रथान्तर (सं० पु०) १ पुराणानुसार एक कल्पका नाम। इसको रथन्तर भी कहते हैं। (अग्निपु०) २ एक आचार्यका नाम।

रथाभ्र (सं० पु०) वेतस, बेंत।

रथाभ्रपुष्प (सं० पु०) रथाभ्रस्य पुष्पमिव पुष्पमस्य। वेतस, बेंत।

रथारथि (सं० अव्य०) रथैश्च रथैश्च प्रहृत्य युद्धमिदं प्रवृत्तं। परस्पर रथ द्वारा युद्ध करना।

रथारूढ़ (सं० लि०) रथ पर बैठा हुआ।

रथारोह (सं० लि०) १ रथ पर बैठ कर युद्ध करनेवाला। (पु०) २ रथ पर चढ़ना, रथमें प्रवेश करना।

रथारोहिन् (सं० लि०) रथे रोहतीति रुह-णिनि। रथ पर बैठ कर युद्ध करनेवाला।

रथावरोहिन् (सं० पु०) रथे अवरोहतीति अव-रुह-णिनि रथस्थ युद्धकर्त्ता, वह जो रथ पर बैठ कर लड़ाई करता हो।

रथार्भक (सं० पु०) छोटा रथ।

रथावयव (सं० पु०) रथका पहिया आदि अंग।

रथावर्त्त (सं० पु०) एक तीर्थका नाम।

रथाश्व (सं० पु०) १ रथमें जोतने योग्य घोड़ा। २ रथ और घोड़ा।

रथासह (सं० लि०) वह घोड़ा जो रथको वहन कर सके।

रथाहर (सं० लि०) रथ पर चढ़ कर जानेका दिन या समय, रथाह्न।

रथाह्वा (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम। इसका दूसरा नाम रथाङ्का और रथाङ्गा भी है। (बृहत्सं० १६।१६)

रथिक (सं० पु०) रथोऽस्त्यस्येति रथ-ठन्। १ रथी, वह जो रथ पर सवार हो। २ तिनिशका पेड़। (राजनि०) रथेन चरतीति रथ (पर्यादिभ्यः ष्ठन्। पा ७।४।१०) इति ष्ठन्। (लि०) ३ रथचारी, रथस्वामी, रथारूढ़ योद्धा।

रथिन् (सं० पु०) रथास्य इनः प्रभुः शकन्ध्वादित्वादकारलोपः। रथी।

रथिर (सं० पु०) रथोऽस्त्यस्येति रथ (मेधारथाभ्यामिरन्निरचौवक्तव्यौ। पा ५।३।१०६) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या इरच्। रथी।

रथी (सं० लि०) १ रथ पर चढ़ कर चलनेवाला। २ रथ पर चढ़ कर लड़नेवाला, रथवाला योद्धा। ३ एक हजार योद्धाओंसे अकेला युद्ध करनेवाला। ४ रथ पर सवार, रथ पर चढ़ा हुआ।

रथी (हिं० स्त्री०) वह ढांचा जिस पर मुरदोंको रख कर अन्त्येष्टिक्रियाके लिये ले जाते हैं, रत्थी।

रथीतर (सं० पु०) १ अतिशय रथयुक्त, बहुरथस्वामी। २ एक आचार्यका नाम। ३ उनके वंशधर।

रथीमर—अंगिरावंशके एक ऋषिका नाम।

रथेचित्र (सं० लि०) रथावस्थित, रथ पर चढ़ा हुआ।

रथेण (सं० पु०) १ रथका अधिकारी। २ रथ पर चढ़ा हुआ योद्धा। ३ रथी।

रथेषा (सं० स्त्री०) रथका पहिया या धुरा।

रथेषु (सं० पु०) बाणभेद।

रथेष्ठा (सं० लि०) रथमें वर्त्तमान, रथ पर बैठा हुआ।

रथोढ़ (सं० लि०) रथ द्वारा अभ्युह्यमान चालित।

रथोत्तम (सं० पु०) उत्कृष्ट रथ।

रथोत्सव (सं० पु०) रथस्य उत्सवः रथयात्रा नामक उत्सव।

रथोद्धत (सं० लि०) रथ पर चढ़नेमें उद्धत, जिसे रथ पर चढ़नेका गर्व हो।

रथोद्धता (सं० स्त्री०) ग्यारह अक्षरोंका एक वर्णवृत्त। इसका पहला, तीसरा, सातवां, नवां और ग्यारहवां वर्ण गुरु और बाकी वर्ण लघु होते हैं। अर्थात् इसके प्रत्येक चरणमें र, न, र, ल, ग होता है।

रथोद्वह (सं० पु०) १ रथ चलानेवालेके बैठनेका आसन। २ योद्धाके बैठनेका स्थान।

रथोपस्थ (सं० पु०) १ रथका ऊर्द्ध्वभाग। (ऐतरेयब्रा० ८।१०) २ रथके बीचका स्थान।

रथोरग (सं० पु०) एक प्राचीन जातिका नाम जिसका उल्लेख महाभारतमें है। (भारत-भीष्म)

रथोष्मा (सं० स्त्री०) पुराणानुसार एक नदीका नाम। (हरिवंश)

रथौघ (सं० पु०) रथस्य ओघः वेग। रथका वेग।

रथौजस् (सं० लि०) जो रथयुद्धमें कुशल हो।

रथ्य (सं० पु०) रथ वहतीति रथ (तद्वहति रथयुगप्रासङ्गं। पा ४।४।७६) इति यत्। १ रथवाही घोटक, वह घोड़ा जो रथमें जोता जाता हो। २ वह जो रथ चलाता हो। ३ रथांश। (क्ली०) ४ चक्र, पहिया। ५ युग। (लि०) ६ रथसम्बन्धी, रथका।

रथ्या (सं० स्त्री०) रथानां समूहः रथ (खलगोरथात। पा ४।२।५०) इति यत्। १ रथोंका समूह। पर्याय—रथकट्या, रथकड्या, रथव्रज। २ रथका मार्ग या लकीर। पर्याय—प्रतोली, विशिखा। ३ नाली, नाबदान। ४ रास्ता, सड़क। ५ चौक, आंगन।

रद (सं० पु०) रदतीति रद विलेखने पचाद्यच्। अच्। दन्त, दांत। दांत विवर्ण होनेसे धनहीन तथा स्निग्ध और घना होनेसे शुभ होता है। (गरुड़पु० ६६ अ०)

रद (अ० वि०) १ भ्रष्ट, खराब। २ तुच्छ या निरर्थक।

रदच्छद (सं० पु०) रदानां छद आच्छादकः। ओष्ठ, ओठ।

रदच्छद (हिं० पु०) रति आदिके समय दांतोंके लगनेका चिह्न।

रदखंडन (सं० पु०) रतिके समय दांतोंसे ऐसा दबाना, कि चिह्न पड़ जाय। यह सात प्रकारकी बाह्य रतियोंमेंसे एक है।

रदन (सं० पु०) रद्यतेऽनेनेति रद-करणे ल्युट्। १ दन्त, दांत। (क्ली०) रद भावे ल्युट्। २ उत्खलन।

रदनच्छद (सं० पु०) रदनानां छद आच्छादकः। ओष्ठ, ओठ। ओंठ बिम्ब सदृश होनेसे शुभ तथा रूक्ष, खण्डित और विवर्ण होनेसे अशुभ होता है।

(गरुड़पु० ६६ अ०)

रदनिका (सं० स्त्री०) नायिकाभेद। (मृच्छकटिक ६।१५)

रदनिन् (सं० पु०) रदनो प्रशस्त दन्तावस्त्यस्येति रदन-इनि। १ हस्ती, हाथी। (लि०) २ दांतवाला।

रदपट (सं० पु०) ओष्ठ, ओठ।

रदबदल (फा० क्रि० वि०) परिवर्त्तन, उलट-पलट, हेर-फेर।

रदावसु (सं० लि०) धनदाता, धन देनेवाला।

(ऋक् ७।३२।१८)

रदिन् (सं० पु०) रदो प्रशस्तदन्तावस्य स्त इति रद-इनि। हस्ती, हाथी।

रदीफ (अ० स्त्री०) १ वह व्यक्ति जो घोड़े पर सवारके पीछे बैठता है। २ वह शब्द जो गजलों आदिमें प्रत्येक काफिए या अन्त्यानुप्रासके बाद बार बार आता है। ३ पीछेकी ओर होनेवाली सेना।

रदीफवार (फा० क्रि० वि०) वर्णमालाके क्रमसे, अक्षर क्रमसे।

रद्द (अ० स्त्री०) १ जो काट या छांट दिया गया हो। २ जो तोड़ या बदल दिया गया हो। ३ जो खराब या निकम्मा हो गया हो। (स्त्री०) ४ वमन, कै।

रद्दा (हिं० पु०) १ दीवारकी पूरी लम्बाईमें एक बार रखी हुई एक ईंटकी जोड़ाई, ईंटोंकी बेड़े बलकी एक पंक्ति जो दीवार पर चुनी जाती है। २ मिट्टीकी दीवार उठानेमें उतना अंश जितना चारों ओर एक बारमें उठाया जाता है और कुछ समय तक सूखनेके लिये छोड़ दिया जाता है। इसकी ऊंचाई प्रायः एक हाथ हुआ करती है। ३ चमड़े की वह सोहरी जो आलुओंके मुंह पर बांधी जाती है। ४ थालीमें मिठाइयोंका चुनाव जो स्तरोंके रूपमें

नीचे ऊपर होता है। ५ नीचे ऊपर रखी हुई वस्तुओंकी एक तह या खंड। ६ कुश्तीमें अपने प्रतिपक्षको नीचे ला कर उसकी गरदन पर कुहनी और कलाईके बीचकी हड्डीसे रगड़ते हुए आघात करना।

रद्दी (हिं० वि०) १ काममें न आने योग्य, जो बिलकुल खराब हो गया हो। (स्त्री०) २ वे कागज आदि जो कामके न होनेके कारण फेंक दिये गये हों।

रद्दीखाना (फा० पु०) वह स्थान जहां खराब और निकम्मी चीजें रखी या फेंकी जांय।

रधार (हिं० स्त्री०) ओढ़नेका दोहरा वस्त्र, दोहर।

रधेरा जाल (हिं० पु०) मछली फंसानेके लिये छोटे छेदोंका जाल।

रन (हिं० पु०) १ जंगल, वन। २ झील, ताल। ३ समुद्रका छोटा खंड।

रनकना (हिं० क्रि०) घुंघुरू आदिका मंद मंद शब्द होना।

रनछोर (हिं० पु०) रणछोड़ देखो।

रनना (हिं० क्रि०) बजना, झनकार होना।

रनबरिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी भेड़ जो नेपालके जंगलोंमें पाई जाती है।

रनबांकुरा (हिं० पु०) शूरवीर, योद्धा।

रनलंपिका (हिं० स्त्री०) गौ, गाय।

रनवादी (हिं० पु०) शूर, लड़ाका।

रनवास (हिं० पु०) १ रानियोंके रहनेका महल, अन्तःपुर। २ जनानखाना।

रनवासन (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी फली।

रनित (हिं० वि०) बजता हुआ, झनकार करता हुआ।

रनिवास (हिं० पु०) रनवास देखो।

रनैत (हिं० पु०) भाला।

रन्तव्य (सं० त्रि०) रम-तव्य। रमणार्ह, रमण करनेके योग्य।

रन्ति (सं० स्त्री०) १ केलि, क्रीड़ा। २ विराम।

रन्तिदेव (सं० पु०) रमते इति रम-संज्ञायां 'तिक् रन्तिरस्यासी देवश्चेति'। १ विष्णु। २ चन्द्रवंशीय एक राजाका नाम।

महाभारतमें लिखा है, कि पहले राजा रन्तिदेवकी पाकशालामें प्रतिदिन दो हजार गो तथा दूसरे दूसरे पशु मारे जाते थे। समांस अन्नदान करके राजाने अतुलनीय कीर्त्ति लाभ किया था।

महाभारतके शान्ति-पर्व (२९ अ०) में लिखा है, कि संकृतिनन्दन रन्तिदेवने कठोर तपस्या करके इन्द्रको सन्तुष्ट किया। जब इन्द्रने वर मांगने कहा तब रन्तिदेवने प्रार्थना की, 'देवराज! आप यही वर दीजिये जिससे मेरे घर प्रचुर अन्न और अतिथिका समागम हो तथा मुझे कभी किसीसे कोई चीज मांगनी न पड़े। इन्द्रने प्रसन्न हो कर वही वर दिया। महात्मा रन्तिदेव जब कोई कर्मानुष्ठान करते थे, तब ग्राम्य और आरण्यक सभी पशु वहां आते और "मुझे दैव और पितृकार्यमें नियोग कीजिये" इस प्रकार राजासे प्रार्थना करते थे। यज्ञमें मारे गये पशुओंके चमड़े से क्लेद निकल कर एक नदी बन गई है। वह नदी चर्मण्वती नामसे प्रसिद्ध है। राजा प्रतिदिन ब्राह्मणोंको प्रचुर सुवर्णदान करते थे। इनके घरमें पात्र, घड़े, कड़ाह, नाली आदि सभी वस्तु सोनेकी थी। अतिथिके आने पर बीस हजार सौ गो मारी जाती थीं, तिस पर भी अतिथियोंको तृप्ति भर मांस नहीं मिलता था। राजा रन्तिदेव पुण्यकर्माओंमें अग्रणी थे।

२ कुक्कुर, कुत्ता।

रन्तिनदी (सं० स्त्री०) चम्बल नदी।

रन्तिनार (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (भागवत ९।२०।६)

रन्तु (सं० स्त्री०) रमतेऽति रम-तुन्। १ वर्त्म, सड़क। २ नदी।

रन्त्र (सं० त्रि०) रमयिता।

रन्दला (सं० स्त्री०) सूर्यकी पत्नी संज्ञाका एक नाम।

रन्धक (सं० पु०) १ पाचक, रसोई बनानेवाला। २ नाशक, नष्ट करनेवाला।

रन्धन (सं० क्ली०) रध-ल्युट्। १ पाक करना, रसोई बनानेकी क्रिया। २ नष्ट करना।

रन्धि (सं० स्त्री०) १ वशीकरण। (ऋक् ७।१८।१८) २ रन्धन, पाक। (भागवत ५।१०।२२)

रन्धित (सं० क्ली०) रध्-क्त। १ कृतरन्धन द्रव्य, रांधा हुआ। रन्धन कर द्रव्य दूसरे बरतनमें रखना होता है।

पाकराजेश्वरमें लिखा है, कि भात स्वपालमें; घी काठ और लोहेके बरतनमें; मांस और मांसका जूस सोने, चांदी, लोहे और काठके बरतनमें; साग काठ, पत्थर और लोहेके बरतनमें; पक्वान्न और मीठा आदि कांसे या काठके बरतनमें; शृतक्षीर मृन्मय या काठके बरतनमें और पानीय, पायस या तक्र मृन्मय बरतनमें रखे। इस प्रकार रखनेसे ये सब द्रव्य रोगनाशक होते हैं।

(पाकराजेश्वर)

२ नष्ट, बरबाद।

रन्ध्र (सं० क्ली०) रन्ध्रयति हिनस्त्यनेनेति रध् बाहुलकात् रक्। १ दूषण, छिद्र। पुरुषके शरीरमें दश तथा स्त्रीके शरीरमें तेरह रन्ध्र हैं। आंख, कान और नाक इन तीन जगहोंमें छः; गुदा, मूत्रद्वार, वक्त्र और मस्तक ये दश पुरुषके तथा स्त्रियोंके इनके अतिरिक्त दो स्तन और गर्भाशय इन तीनोंको ले कर तेरह रन्ध्र हैं।

"नासानयनकर्णानां द्वे द्वे रन्ध्रे प्रकीर्त्तिते।
मेहनापानवक्त्राणामेकैकं रन्ध्रमुच्यते॥
दशमं मस्तके प्रोक्तं रन्ध्राणीति नृणां विदुः।
स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्गर्भवर्त्मनः॥"

(शार्ङ्गधर पूर्व० ५)

२ छेद, सूराख। ३ योनि, भग।

(भारत १२।२८)

रन्ध्रकण्ट (सं० पु०) रन्ध्रे कण्टः कण्टको यस्य। आलवर्क्क्रक, बबूलकी जातिका एक प्रकारका पेड़ जिसमें छोटी छोटी डालियां होती हैं।

रन्ध्रपल (सं० पु०) नल, नरकट।

रन्ध्रबभ्रु (सं० पु०) रन्ध्रे गर्त्ते बभ्रुर्नकुल इव। उन्दुरु, एक प्रकारकी बबूल जातिकी कांटेदार झाड़ी।

रन्ध्रवंश (सं० पु०) रन्ध्रविशिष्टो वंशः। छिद्रयुक्त-वंश, वह बांस जिसमें छेद हो। पर्याय—त्वक्सार, कीचकाह्वय, मस्कर, वादनीय, शुषिराख्य। (राजनि०)

रन्ध्रागत (सं० क्ली०) घोड़ोंके गलेमें होनेवाला एक प्रकारका रोग।

रपट (हिं० स्त्री०) १ अभ्यास, आदत। २ रपटनेका क्रिया या भाव, फिसलाहट। ३ उतार, जिस परसे उतरते समय पैर न जम सकता हो। ४ दौड़। ५ सूचना, इत्तला।

रपटना (हिं० क्रि०) १ नीचे या आगेकी ओर फिसलना, जम न सकनेके कारण किसी ओर सरकना। २ शीघ्रतासे और बिना ठहरे हुए चलना, झपटना। ३ मैथुन करना, प्रसंग करना। ४ किसी कामको शीघ्रतासे करना, कोई काम चटपट पूरा करना।

रपटाना (हिं० क्रि०) १ फिसलाना, सरकाना। २ रपटनेका काम दूसरेसे कराना। ३ चटपट पूरा करना।

रपट्टा (हिं० पु०) १ फिसलनेकी क्रिया, फिसलाव। २ झपट्टा, चपेट। ३ दौड़-धूप, झपट्टा।

रपाती (हिं० स्त्री०) तलवार।

रपुर (हिं० पु०) स्वर्ग।

रफ (अं० वि०) १ जो साफ और ठीक न हुआ हो बल्कि किया जानेको हो, नमूनेके तौर पर बना हुआ। २ जो चिकना न हो, खुरदुरा।

रफते रफते (फा० क्रि०) रफ्ता रफ्ता देखो।

रफल (हिं० स्त्री०) १ विलायती ढंगकी एक प्रकारकी बंदूक। यह दो तरहकी होती है। एक तो टोपीदार जिसमें बारूद उसके मुंहकी ओरसे भरी जाती है और टोपी चढ़ा कर घोड़ेसे दागी जाती है। दूसरी बिजलोडन कहलाती है और इसके बीचमेंसे कारतूस भरा जाता है। (पु०) २ जाड़ेमें ओढ़नेकी मोटी चादर जो प्रायः ऊनी होती है, गरम चादर।

रफा (अ० वि०) १ दूर किया हुआ, मिटाया हुआ। २ निवृत्त, शान्त।

रफादफा (अ० वि०) १ मिटाया हुआ, निबटाया। २ शान्त, निवृत्त।

रफित (सं० त्रि०) १ आघात-प्राप्त। २ हिंसित।

रफीदा (अ० पु०) १ वह गद्दी जिसके ऊपर जीन कसा जाता है। २ वह गद्दी जिसे लगा कर नानबाई तंदूरमें रोटी चिपकाते हैं, काबुक। ३ गोल पगड़ी। इस अर्थ में इस शब्दका प्रयोग विशेषतः अवज्ञा या अनादर प्रकट करनेके लिये ही होता है।

रफू (अ० पु०) फटे हुए कपड़ेके छेदमें तागे भर कर उसे बराबर करना।

रफूगर (फा० पु०) रफू करनेका व्यवसाय करनेवाला, रफू बनानेवाला।

रफूगरी (फा० पु०) रफू करनेका काम, रफूगरोंका काम।

रफूचक्कर (हिं० वि०) चंपत, गायब।

रफ़—मुसलमान साधु ख्वाजा खिजिरके उद्देश्यसे अनुष्ठित एक प्रकारका उत्सव। भाद्रमासके किसी वृहस्पति वारको सन्ध्या समय मुर्शिदाबादकी मुसलमान-रमणियां केलेका थंभ या बांसकी छोटी छोटी तरी तैय्यार करती हैं और उस पर दीया जला कर भागीरथीमें भंसा देती हैं। स्वयं नवाब और उनकी अन्तःपुरमहिलायें गंगाके किनारे आ कर उत्सवमें शामिल होती हैं।

रफतनी (फा० स्त्री०) १ जानेकी क्रिया या भाव। २ माल बाहर भेजा जाना, मालकी निकासी।

रफ्तार (फा० स्त्री०) चलनेका ढंग या भाव, गति।

रफ्ता रफ्ता (फा० क्रि० वि०) धीरे धीरे, क्रम क्रमसे।

रब (अ० पु०) ईश्वर, परमेश्वर।

रबड़ (अ० पु०) १ एक प्रसिद्ध लचीला पदार्थ। इसका व्यवहार गेंद, फीता, पट्टी, बेलन आदि बहुतसे पदार्थ बनानेमें होता है। यह अनेक वृक्षोंके ऐसे दूधसे बनता है जो पेड़से निकलने पर जम जाता है। यह भारतीय वृक्षके दूधसे बनता तथा कागजके ऊपर इसे घिसनेसे कालीका दाग बिलकुल उठ जाता है, इसीलिये इसका Indian Rubber (अंगरेजी rub-का अर्थ है घिसना) नाम रखा गया है। यह चिमड़ा और लचीला होता है। आज कल इसकी गिनती एक मूल्यवान् पण्यद्रव्यमें होती है। इसमें रासायनिक अंश कार्बन और हाइड्रोजनके होते हैं। यह २४८° की आंच पा कर पिघल जाता है तथा ६००° की आंचमें वाष्पके रूपमें उड़ने लगता है। आग पानेसे यह भकसे जलने लगता है। इसकी लौ चमकीली होती है और इसमेंसे धूआं अधिक निकलता है। जब इसमें गंधकका फूल या उड़ाई हुई गंधक मिला कर इसे धीमी आंचमें पिघला कर २५०° से ले कर ३००° की भापमें सिद्ध करते हैं, तब इससे अनेक प्रकारकी चीजें जैसे खिलौने, बटन, कंघी आदि बनाई जाती हैं। ये सब देखनेमें सींग या हड्डीकी जान पड़ती हैं। इस पर सब प्रकारके रंग भी चढ़ाए जाते हैं।

वैज्ञानिकोंका कहना है, कि Awcynaceae, urticaceae (Arta carpeac) और Uphorbiacca नामक उद्भिद् श्रेणीकी विभिन्न शाखासे यह निर्यास पाया जाता है। आसामके अन्तर्गत ओहट्ट, तेजपुर, लखिमपुर, सदिया आदि स्थानोंमें तथा हिमालयप्रदेश, ब्रह्म और अमेरिकाके आमेजन-प्रदेश तथा एशिया महादेशमें भिन्न-भिन्न पेड़ोंके दूधसे रबड़ बनाया जाता है।

इस वृक्षका कच्चा निर्यास दूधके जैसा सफेद तथा धूप लगनेसे सुख कर लाल हो जाता है। वृक्षके छिलकेको छेदनेसे जब दूध निकलने लगता है, तब रबड़ तैयार करनेवाले उसमें एमोनिया, फिटकरी या खारे जलका छींटा देते हैं। खारे जलसे स्थिति-स्थापक गुणको बहुत हानि होती है। रबड़का दूध यहांसे लण्डन और न्युयोक शहरमें भेजा जाता है। वहां इससे नाना प्रकारके खिलौने तथा सभ्य जगत्‌की आवश्यकीय चीजें बनाई जाती हैं।

२ एक वृक्षका नाम। यह वटवर्गके अन्तर्गत है। यह भारतवर्षमें आसाम, लखीमपुर आदि हिमालयके आसपासके प्रदेशों तथा बरमा आदिमें होता है। इसकी पत्तियां चौड़ी और बड़ी बड़ी होती हैं। पेड़ ऊंचा और दीर्घाकार तथा लकड़ी मजबूत और भूरे रंगकी होती है।

(हिं० स्त्री०) ३ व्यर्थका श्रम, फजूल हैरानी। ४ गहरा श्रम, रगड़। ५ चक्कर, फेर।

रबड़ना (हिं० क्रि०) १ घुमाना, चलाना। २ किसी तरल पदार्थमें कोई वस्तु डाल कर चारों ओर फेरना, फेंटना। ३ घुमना, फिरना।

रबड़ी (हिं० स्त्री०) औटा कर गाढ़ा और लच्छेदार किया हुआ दूध जिसमें चीनी भी मिलाई जाती है, बसौंधी।

रबड़ा (हिं० पु०) १ वह श्रम जो कहीं बार बार गमनागमन या पदसंचालनसे होता है। २ कीचड़।

रबर (अं० पु०) रब देखो।

रबरी (हिं० स्त्री०) रबड़ी देखो।

रबाना (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा डफ जिसमें मंजीरे लगे होते हैं और जिसे प्रायः कहार आदि बजाते हैं।

रबाब (अ० पु०) सारंगीकी तरहका एक प्रकारका बाजा जिसमें बजानेके लिये तार लगे होते हैं।

रबाबिया (हिं० पु०) वह जो रबाब बजाता हो, रबाब बजानेवाला।

रबी (हिं० स्त्री०) १ वसन्त ऋतु। २ वह फसल जो वसंत ऋतुमें काटी जाती है।

रबोल (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पक्षी जो पन्द्रह सोलह अंगुल लम्बा होता है। इसके डैने भूरे, सिर और छाती सफेद, चोंच काली और पैर खाकी रंगके होते हैं। यह हिमालयके किनारे गढ़वालसे आसाम तक पाया जाता है। यह झाड़ियोंमें घोंसला बनाता और अप्रैलसे जून तक दोसे पांच तक अंडे देता है।

रब्त (अ० पु०) १ अभ्यास, मश्क। २ सम्बन्ध, मेल।

रब्ध (सं० त्रि०) १ ग्रहण किया हुआ। २ आरम्भ किया हुआ, शुरू किया हुआ।

रब्ब (अ० पु०) रब देखो।

रब्बा (अ० पु०) १ वह गाड़ी जिस पर तोप लादी जाती है, तोपखानेकी गाड़ी। २ वह गाड़ी या रथ जिसे बैल खींचते हैं।

रब्बाब (अ० पु०) रबाब देखो।

रभस् (सं० क्लो०) १ यज्ञादिका आरम्भ। (ऋक् १।१४५।३) २ आहुति। ३ वेग। ४ आशक्ति। ५ बलकर भोज्य।

रभस (सं० पु०) रभणमिति रभ (अत्यविचमितमिनमिर भिलभीति। उण् ३।११७) इति असच्। १ वेग। २ हर्ष। ३ प्रेमोत्साह। ४ रंज, पछतावा। ५ पूर्वापर या कारण-कार्यका विचार। ६ औत्सुक्य, उत्सुकता। ७ महान्, बड़ा। ८ वाल्मीकि रामायणके अनुसार अस्त्रोंका एक संहार अर्थात् शत्रुके चलाये हुए अस्त्रको निष्फल करनेकी विधि जो विश्वामित्रने रामचन्द्रजीको सिखलाई थी। ९ रामायणके अनुसार एक राक्षसका नाम।

रभसनन्दिन्—सम्बन्धोद्योत नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता। ये बौद्धधर्मावलम्बी थे।

रभसपाल (सं० पु०) एक आभिधानिक। अमरकोषटीकामें क्षीरस्वामीने इसका उल्लेख किया है।

रभसान (सं० त्रि०) वेगकारी।

रभस्वत् (सं० त्रि०) रभ-असुन् ततः मतुप्। उद्योगयुक्त।

रभि (सं० स्त्री०) आमरणीया।

रभिणेय (सं० पु०) उस नामके ऋषि गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रभिष्ठ (सं० त्रि०) प्रकृष्टवेगविशिष्ट, अतिशय वेगयुक्त। "उपमासो रभिष्ठाः" (ऋक् ५।५८।५) 'रभिष्ठाः प्रकृष्टवेगाः' (सायण)।

रभीयस् (सं० त्रि०) अत्यन्त वेगविशिष्ट, अतिशय वेगवाला।

रभेणक (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक राक्षसका नाम। कहते हैं, कि यह सांपके रूपमें रहता था।
(भारत आदिप०)

रभ्यस् (सं०त्रि०) अतिशय वेगयुक्त, अत्यन्त वेगवाला। "युवं च रभ्यसो नः" (ऋक् १।१२०।४) 'रभ्यसः अतिशयेन रभस्विनः प्रौढोद्यमान्'। (सायण)

रभोदा (सं० त्रि०) बलदाता, शक्ति देनेवाला।

रम (सं० पु०) रमते इरम् पचाद्यच्। १ कान्त, प्रेमी। २ कामदेव। ३ रक्ताशोक, लाल अशोक। ४ रमण। ५ पति। (त्रि०) ६ प्रिय। ७ सुन्दर। ८ आनन्ददायक, हर्षोत्पादक। ९ जिससे मन प्रसन्न हो।

रम (अ० पु०) एक प्रकारकी शराब जो जौसे बनाई जाती है।

रमक (सं० पु०) रमते इति रम् (रमेरश्चलो वा। उण् ३।३३) इति कुन्। १ कान्त, प्रेमी। २ उपपति, जार।

रमक (हिं० स्त्री०) १ झूलेकी पेंग। २ तरंग, झकोरा।

रमक (अ० स्त्री०) १ थोड़ा-सा सांस जो मरते समय निकलनेको शेष रह गया हो, अन्तिम श्वास। २ नशेका थोड़ा असर। ३ स्वल्प भाग, बहुत थोड़ा अंश। हलका प्रभाव। (वि०) ५ जरा-सा, बहुत थोड़ा।

रम-कजरा (हिं० पु०) एक प्रकारका धान जो भादोंमें पकता है। यह पकने पर काले रंगका होता है और मोटा धान माना जाता है। नेपालकी तराईमें यह अधिकतासे होता है। बगरी या बकीसे इसके चावल कुछ लम्बे होते हैं और कूटने पर सफेद रंगके निकलते हैं।

रमकना (हिं० क्रि०) १ हिंडोले पर झूलना, हिंडोले पर पेंग मारना। २ झूमते हुए चलना, इतराते हुए चलना।

रमचकरा (हिं० पु०) बेसनकी मोटी रोटी।

रमजान (अ० पु०) एक अरबी महीनेका नाम। इस महीनेमें मुसलमान रोजा रखते हैं।

रमझोल (हिं० पु०) रमझोला देखो।

रमझोला (हिं० पु०) पैरमें पहननेके घुंघरू, नूपुर।

रमठ (सं० क्ली०) रम-अठन्। १ हिङ्गु, हींग। (पु०) २ एक प्राचीन देशका नाम। ३ इस देशका निवासी।

रमठध्वनि (सं० पु०) रमठ इति शब्देन ध्वन्यते कथ्यते इति-ध्वन्-इन्। हिंगु, हींग।

रमण (सं० क्ली०) रमयतीति रम् णिच्-ल्यु। १ परवलकी जड़। २ जघन। रम्-भावे ल्युट्। ३ जम्मण। पर्याय—अब्रह्मचर्यक, ग्राम्यधर्म, सुरत, रत, संप्रयोग, निधुवन, मैथुन, रति, उपसृष्य, धर्षित, क्रीड़ारत्न, महासुख, त्रिभद्र, योगमिथुन, अभिमानित। ४ क्रीड़ा, आनन्दोत्पादक क्रिया, विलास। ५ रत्युत्पादन। ६ एक वनका नाम। (पु०) रम्यते रमयतीति वा रम् णिच् वा ल्यु। ७ पति।

"वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण ! त्वामनुयामि यद्यपि।"

(कुमारस० ४।२१)

रमयति स्त्रीपुरुषाणामन्तःकरणमिति। ८ कामदेव। ९ गर्दभ, गधा। १० वृषण, अण्डकोष। ११ सूर्यका अरुण नामक सारथी। १२ एकवर्णिक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें तीन अक्षर होते हैं जिनमें दो लघु और एक गुरु होता है। (त्रि०) १३ मनोहर, सुन्दर। १४ रमनेवाला। १५ जिसके मिलनेसे आनन्द उत्पन्न हो, प्रिय।

रमणक (सं० क्ली०) रमन्ते लोका अत्र रम-ल्युट्, संज्ञायां कन्। १ जम्बूद्वीपके अन्तर्गत एक वर्ष या खंडका नाम। इसे रम्यक भी कहते हैं। (पद्मपु० भूखण्ड १२८ अ०) २ वीतिहोत्रके एक पुत्रका नाम। (भागवत ५।२०।३१)

रमणगमना (सं० स्त्री०) साहित्यमें एक प्रकारकी नायिका जो यह समझ कर दुःखी होती है, कि संकेत स्थान पर नायक आया होगा और मैं वहां उपस्थित न थी।

रमणपति—देव्यार्याशतक और सरस्वती-विलास नामक काव्यके प्रणेता।

रमणा (सं० स्त्री०) १ रमणी। २ एक शक्तिका नाम जो रामतीर्थमें है।

रमणी (सं० स्त्री०) रमतेऽस्यामिति रम्-ल्युट्-ङीष्। १ नारी, स्त्री। २ सुन्दर स्त्री। ३ बाला या सुगन्धबाला नामक गन्धद्रव्य।

रमणीक (सं० त्रि०) सुन्दर, मनोहर।

रमणीय (सं० त्रि०) रम-अनीयर्। सुन्दर, मनोहर।

रमणीयता (सं० स्त्री०) रमणीयस्य भावः तल्-टाप्। १ रमणीयत्व, सुन्दरता। २ साहित्यदर्पणके अनुसार वह माधुर्य जो सब अवस्थाओंमें बना रहे या क्षण क्षणमें नवीन रूप धारण किया करे।

रमण्य (सं० त्रि०) रम् (रुचम्योश्च। उण् ३।१०१) इति अन्य-प्रत्ययः। रमणीय।

रमता (हिं० वि०) एक जगह जम कर न रहनेवाला, घूमता फिरता।

रमति (सं० पु०) रमतेऽस्मिन् इति रम् (रमेर्नित्। उण् ४।६३) इति अतिप्रत्ययः णिच्च। १ नायक। २ स्वर्ग। ३ काक, कौआ। ४ काल। ५ कामदेव।

रमती (हिं० पु०) एक प्रकारका जड़हन जो अगहनके महीनेमें पकता है। इसका चावल सालों तक रह सकता है।

रमनक (सं० पु०) रमणक देखो।

रमनसोरा (हिं० पु०) एक प्रकारकी मछली जिसे कंबल-सोरा भी कहते हैं।

रमना (हिं० पु०) १ भोगविलास या सुखप्राप्तिके लिये कहीं रहना या ठहरना। २ आनन्द करना, चैन करना। ३ अनुरक्त होना, लग जाना। ४ भोग-विलास या रति-क्रीड़ा करना। ५ चारों ओर भरपूर हो कर रहना, व्याप्त होना। ६ चलता होना, गायब हो जाना। ७ किसीके आस-पास फिरना, घूमना। ८ आनन्दपूर्वक इधर उधर फिरना, विहार करना। ९ वह हरा भरा स्थान जहां पशु चरनेके लिये छोड़ दिये जाते हैं, चरागाह। १० कोई सुन्दर और रमणीय स्थान। ११ घेरा, हाता। १२ वह सुरक्षित स्थान या घेरा जहां पशु शिकारके लिये या पालनेके लिये छोड़ दिये जाते हैं और जहां वे स्वच्छंदता-पूर्वक रहते हैं।

रमल—मुसलमानी फलित ज्योतिषभेद। बहुत पहलेसे यह अरब फारस आदि देशोंमें प्रचलित था। [illegible]

मुसलमानी प्रभावसे भारतवर्ष तथा सुदूर यूरोपखण्डमें लाया गया। भारतवर्षमें बहुत दिनोंसे यह ज्योतिष 'रमलपाशिण' नामसे प्रसिद्ध चला आ रहा है। रमलामृतमें लिखा है—

"पुरा यवनपुङ्गवैः कलियितुं त्रिकालज्ञतां ।
यदादमहवाभिवादनवशात् समासादितं ।
अलब्धममरैरपि स्वगुरुसत् कृपासागरा-
त्तदद्य रमलामृतं स्वमतिबुद्धमुद्धार्यते ॥"

पुराकालमें यवनपुङ्गवोंने भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानका हाल जाननेके लिये बड़े यत्नसे जिस शास्त्रका संग्रह किया है, देवगण भी जिस शास्त्रको न पा सके हैं आज अपने गुरुकी कृपासे अपनी बुद्धिके अनुसार उस रमलामृतका उद्धार करता हूं।

श्रीपतिभट्टने अपने रमलसारमें भी ऐसा ही भाव दिखाया है। अतएव मुसलमानोंसे ही भारतवासीने यह शास्त्र पाया है, इसमें सन्देह नहीं।

विलायतमें भी बहुत दिन हुए, इस रमलशास्त्रका प्रचार हुआ है। १६५२ ई०में रिचार्ड सैण्डर्सने जो सामुद्रिक ग्रन्थ प्रकाश किया है, उसमें इस रमलशास्त्रका उल्लेख और फलाफल-गणनाकी प्रणाली देखी जाती है। इस शास्त्र द्वारा क्या किया जा सकता है, रमलामृतमें इस प्रकार लिखा है—

"गणयितुमुदकबिन्दुं नीरदेऽप्युत्सहेद्यो
वियति रचयितुं वा चित्रमुद् युक्तचेताः ।
ग्रहगणमखिलं यो मुष्टिनाकष्टुमिष्टे
रमलममलरत्नं स प्रयं स्वीकरोतु ॥"

जो यह शास्त्र जानते हैं, वे मेघराशिस्थित जलबिन्दुको गिन सकते, आकाशमण्डलमें चित्र बना सकते और आकाशमेंके ग्रहोंको अपनी मुट्ठीके अन्दर खींच कर ला सकते हैं।

यह रमलशास्त्र दो प्रकारका है। केवल शून्यपात द्वारा चेहरेको तैयार कर जो फलाफल गिना जाता है उसका नाम सहज रमल है। फिर आठ धातुओंके बने पाशेको फेंक उससे चेहरा बना कर और उन सबके ग्रह, राशि, नक्षत्र और उनके दृष्टि बलाबलादि विचारसे जो फलाफल कहा जाता है, उसे यौगिक रमल कहते हैं।

इस शास्त्रमें पाशक और प्रस्तारज्ञान, तत्त्वज्ञान, अब्दहवदन्यक्रमान, मीजाजक्रम, हर्फानुक्रम, अबजदक्रम, शाकुनक्रम, दशक्रम, साक्षिज्ञान, वर्णज्ञान, षोड़शभवफल, शून्यचालन, काबिले सलासज्ञान, असली उम्महातज्ञान, हलक प्रकार, दिनज्ञान, प्रश्नज्ञान, भूमिज्ञान, धनमानपरीक्षा और नाना प्रकारका आकृतिज्ञान वर्णित है।

रमलामृत, रमलसार आदि ग्रन्थ संस्कृत भाषामें लिखे होने पर भी उनमें पारसी पारिभाषिक शब्द भरे हुए हैं। पारसी भाषामें पूरा ज्ञान नहीं होनेसे यह शास्त्र अच्छी तरह समझमें नहीं आ सकता।

रमा (सं० स्त्री०) रमयतीति रम्-णिच् अच् टाप् च। १ लक्ष्मी।

"रमा यत्र न वाक् तत्र यत्र वाक् तत्र नो रमा।
ते यत्र विनयो नास्ति सा च सा च स च त्वयि ॥" (उद्भट)

२ शशिध्वजराजकन्या, कल्किदेवके साथ इसका विवाह होगा। (कल्किपु० २५ अ०)

रमाकान्त (सं० पु०) रमायाः कान्तः। रमापति, विष्णु।

रमाधव (सं० पु०) रमायाः लक्ष्म्याः धवः पतिरिति। विष्णु।

रमाधिप (सं० पु०) रमायाः अधिपः। रमापति, विष्णु।

रमानरेश (सं० पु०) विष्णु।

रमाना (हिं० क्रि०) १ अनुरंजित करना, मोहित करना। २ संयुक्त करना, जोड़ना। ३ अपने अनुकूल बनाना। ४ ठहराना, रोक रखना।

रमानाथ (सं० पु०) रमायः नाथः। विष्णु।

रमानाथ—१ अभिरामकाव्यके प्रणेता। २ आगदीशीटिप्पणके रचयिता। इसके अलावा आकांक्षावादटिप्पण, आकाशवादटिप्पण, आख्यातवादटिप्पण और नञ्वादटिप्पण नामक उनकी रची कई न्यायशास्त्रीय टीकाएं मिलती हैं। ३ नारदस्मृतिटीकाके रचयिता। ४ प्रयोगदर्पणके प्रणेता।

रमानाथ राय—एक प्रसिद्ध वैयाकरण तथा वैद्यगणके पुत्र। इन्होंने मनोरमा नाम्नी कातन्त्रकी गणधातुवृत्ति और शब्दसाध्यप्रबोध नामक दो व्याकरण १५३७ ई०में लिखे।

रमानाथ वैद्य—एक आयुर्वेदविद्। इन्होंने अजीर्णमञ्जरी टीका, अर्कप्रकाशटीका, अष्टाङ्गहृदयटीका, माधवनिदान-टीका, रसमञ्जरीटीका और रसेन्द्रचिन्तामणिकी टीका लिखी।

रमानिवास (सं० पु०) लक्ष्मीपति, विष्णु।

रमापति (सं० पु०) रमायाः पतिः। १ विष्णु। २ रामचन्द्र। ३ श्रीकृष्ण। (भागवत ८।१७।७)

रमापति—१ देवालयप्रतिष्ठाविधिके प्रणेता। २ प्रायश्चित्तचन्द्रिकाके रचयिता।

रमापतिमिश्र—आचारचन्द्रिका, आचारवारिधि और विवादवारिधि नामक तीन ग्रन्थके रचयिता।

रमाप्रिय (सं० पु०) रमायाः प्रियं। १ पद्म, कमल। रमाप्रिया यस्या वा रमायाः प्रियाः। २ विष्णु।

रमारमण (सं० पु०) रमापति, लक्ष्मीपति।

रमाली (हिं० पु०) एक प्रकारका बारीक और स्वादिष्ट चावल जो करनालमें होता है।

रमावीज (सं० पु०) एक तान्त्रिक मन्त्र जिसे लक्ष्मीवीज भी कहते हैं।

रमावेष्ट (सं० पु०) रमया वेष्टतेऽसौ वेष्ट-घञ्। श्रीवासचन्दन। इससे ताड़पीन नामक तेल निकलता है। (राजनि०)

रमाशङ्कर—योगतरङ्गके रचयिता।

रमाश्रय (सं० पु०) रमायाः आश्रयः। विष्णु, श्रीकृष्ण। (भाग० १।१२।२३)

रमास (हिं० पु०) रवांस देखो।

रमित (हिं० वि०) मुग्ध, लुभाया हुआ।

रमिता (सं० स्त्री०) रम-णिच्-क्त, टाप्। रतिप्रापिता।

रमितक्रम (सं० पु०) पाणिनिके अनुसार एक व्यक्ति। (पा ३।२।४७)

रमो (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास जो सुमात्रा आदि द्वीपोंमें होती है। यह रोहाके समान कागज और रस्सी आदि बनानेके काममें आती है। सुमात्रावाले इसे कलुई कहते हैं। पहले इसे कुछ लोग भ्रमवश रोहा ही समझते थे।

रमूज (अ० स्त्री०) १ कटाक्ष। २ सैन, इशारा। ३ गुप्त बात, भेद। ४ पहेली, गूढ़ार्थ वाक्य। ५ श्लेष।

रमेश (सं० पु०) रमाया ईशः। विष्णु।

रमेशचन्द्र मित्र (Sir Kt)—महामान्य कलकत्ता हाई-कोर्टके एक विचारपति। आप सिर्फ दो महीनेके लिये प्रधान विचारपति (Chief Justice)-के पद पर रह कर अपने असाधारण बुद्धिबलसे धर्माधिकरणको अलंकृत तथा समग्र बङ्गाली जातिके मुखको उज्ज्वल कर गये हैं।

२४ परगनेके अन्तर्गत राजार-हाट विष्णुपुर ग्राम (दमादमाके समीप)-के सुप्रसिद्ध मित्रवंशीय कायस्थकुलमें १८४० ई०को इनका जन्म हुआ था। उनके प्रपितामह कालीप्रसाद मित्र नदियाके कलकृरके अधीन काम करके बहुत रुपये कमा गये हैं। कालीप्रसाद बड़े दानी थे। उनके लड़के रामधनने पिताके यत्नसे उच्च-शिक्षा पा कर बांकुड़ा जिलेके विष्णुपुरमें मुनसफका पद पाया था। उनका पक्षपातशून्य न्यायविचार देख कर बृटिश सरकार तथा प्रजामण्डली उन पर बहुत प्रसन्न रहती थी। उनके लड़के रामचन्द्र मित्र उपयुक्त शिक्षा पा कर सदर दीवानी अदालतके सिरेश्तेदार हुए थे। रामचन्द्रके छः पुत्र थे। प्रसन्नचन्द्र, उमेशचन्द्र, केशवचन्द्र, काशीचन्द्र, प्रबोधचन्द्र और कनिष्ठ माननीय रमेशचन्द्र। अंगरेजी भाषामें सबोंकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। बचपनमें ग्राम्य-विद्यालयमें पढ़ते समय रमेशचन्द्रकी तीक्ष्ण बुद्धिका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। इसी समयसे लिखने पढ़नेमें इनकी उग्र प्रवृत्ति देख कर लोग इन्हें होनहार बालक समझने लगे थे। पन्द्रह वर्षकी उमरमें ये कठिनसे कठिन अंगरेज-लेखकोंके ग्रन्थ बिना शिक्षककी सहायताके पढ़ लेते थे। केवल पढ़ ही नहीं लेते उनका भाव भी समझ जाते थे।

कलकत्ता प्रेसिडेन्सी कालेजमें प्रविष्ट हो कर इन्होंने अपने अध्यवसायसे B. A. परीक्षा पास की। उसके तीन वर्ष बाद आइन B L. परीक्षा पास कर कलकत्ताकी सदर-दीवानी अदालतमें वकालत करने लगे। १८५६ ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीकी नई सनदके अनुसार प्राचीन सुप्रीमकोर्ट और प्रेसिडेन्सी विभागकी अदालत बदल कर हाईकोर्ट कहलाने लगी। रमेशचन्द्र पहले डेढ़ वर्ष सदर दीवानीमें और पीछे महामान्य हाईकोर्ट (Appellate side)में बारह वर्ष बड़ी दक्षतासे

वकालत करके एक सुयोग्य प्रधान वकील गिने जाने लगे। १८७१ ई०में माननीय विचारपति अनुकूलचन्द्र मुखोपाध्यायकी मृत्युके बाद बृटिश सरकार इन्हींको उक्त पद प्रदान किया।

२० वर्ष तक इस पद पर रह कर ये अपनी योग्यता और विचारदक्षताका अच्छा परिचय दे गये हैं। १८८२ ई०में प्रधान विचारपति सर रिचार्ड गार्थने जब स्वदेश जानेके लिये छुट्टी ली, तब लार्ड रीपन बहादुरने रमेश चन्द्रको ही प्रधान विचारपति बनाया। बंगालीको उच्च पद पर नियुक्त होते देख कर अङ्गरेज-राजकर्मचारी जल उठे। गार्थके बंधुवर्गने उन्हें छुट्टी नहीं लेनेके लिये अनुरोध किया। तदनुसार उन्होंने भारत-राजप्रतिनिधिके पास आवेदनपत्र भेजा। पत्र पहुंचनेके पहले वे रमेश बाबूको नियुक्त कर चुके थे, इस कारण गार्थका आवेदनपत्र स्वीकार न किया गया। अतः गार्थ साहबको स्वदेश जाना ही पड़ा। रमेशचन्द्र उनके पद पर बैठ कर राजकार्यकी परिचालना करने लगे। १८६० ई०में स्वास्थ्य खराब हो जानेके कारण वे हाईकोर्टके विचारपतिका पद छोड़ देनेको बाध्य हुए। सद्गुणसम्पन्न देशवासियोंको राजकार्यके उच्च पद पर नियुक्त करनेके लिये राजप्रतिनिधि लार्ड डफरिन बहादुरने १८८७ ई०में रमेश बाबूको Public Service Commission का सदस्य बनाया। इस पद पर रह कर इन्होंने देशका बहुत उपकार किया था।

इस समय वे कलकत्ता युनिवर्सीटीके फेलो और कलकत्ता तथा २४ परगनेके अन्तर्गत नाना शिक्षा-समितिके सभ्य हुए। उन सब सभाओंका कार्य सुचारुरूपसे करके इन्होंने स्वदेशका मुख उज्ज्वल कर दिया था। १८६० ई०में पदत्याग करनेके बाद भारतराजप्रतिनिधि लार्ड लैन्सडाउनने इन्हें अपनी व्यवस्थापक सभाका सभ्य बनाया तथा 'नाइट' उपाधि दी। बड़े लाट लैन्सडाउन जब 'सम्मतिसङ्कट' आईन (Consent Bill Act) पास करने तैयार हुए, तब रमेशबाबूने ओजस्वनी वक्तृता दे कर उन्हें इस कामसे रोका था। आईनका मर्म समझाते हुए इन्होंने स्पष्ट कहा था, कि "यह कानून पास होनेसे बङ्गालियोंके धर्म पर भारी ..।त पहुंचेगा, अतः प्रजाका यदि कल्याण चाहते हों तो ऐसा कानून पास होने न दिया जाय।' रमेशबाबूकी निर्भीक और गवेषणापूर्ण वक्तृता सुन कर व्यवस्थापक सभाके सदस्य चमत्कृत हो गये थे। दो दिन घोर वादानुवादके बाद जब रमेशचन्द्रने देखा, कि बड़े लाट इस कानूनको उठा देनेके लिये तैयार नहीं तथा उनकी बात पर बिलकुल कान नहीं दिया जाता, तब बड़े अभिमानसे इन्होंने उस माननीय सभ्य पद पर लात मार कर सभासे अपना हाथ एकदम खींच लिया, जरा भी सरोकार न रखा।

इन्होंने संस्कृत शास्त्रकी अध्यापनाके लिये कलकत्तेके भवानीपुरमें एक चतुष्पाठी खोली थी। इसके सिवा स्वदेश और स्वसमाजकी उन्नतिके लिये कितनी सभा समितियां खोल गये हैं। इस प्रकारपरदुःखकातरता और सहृदयताका अच्छा परिचय दे कर ये १८६६ ई०में इस लोकसे चल बसे।

रमेश्वर (सं० पु०) रमाया ईश्वरः। विष्णु।

रमैती (हिं० स्त्री०) १ किसानोंकी एक रीति जिसमें एक कृषक आवश्यकता पड़ने पर दूसरेके खेतमें काम करता है और उसके बदलेमें वह भी उसके खेतमें काम कर देता है। इसमें मजदूरी बच जाती है और कामके बदलेमें दूसरोंके खेतोंमें काम कर देना होता है। इसे पूर्वमें पैंठ और अवधके उत्तरीय भागोंमें हूंड़ कहते हैं। २ वह नफरी या कामका दिन जो इस प्रकार कार्य्य करनेमें लगे।

रमैनी (हिं० स्त्री०) कबीरदासके बीजकका एक भाग जिसमें दोहे और चौपाइयां हैं।

रम्भ (सं० पु०) रम्भते राग-मूर्च्छनादिकमनेनेति रभि कर्मणि घञ्। १ वेणु, बांस। रम्भते उद्यमशीलो भवति निरन्तरमुदरभरणायेति भावः रभि-अच्। २ एक प्रकारका वाण। ३ भारी शब्द, कलकल। ४ पुराणानुसार महिषासुरके पिताका नाम। (कालिकापु० ५६ अ०) इसने महादेवसे वर पा कर महिषासुरको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। महिषासुर देखो।

इसी रम्भने दूसरे जन्ममें रक्तबीज रूपमें जन्म ग्रहण किया। देवीपुराणमें लिखा है, कि प्राचीनकालमें दनु-

पुत्र रम्भ और करम्भ नामक दो प्रधान दानव थे। उसके कोई पुत्र न था। पुत्रकी कामनासे उन्होंने पञ्चनदमें पैठ कर घोर तपस्या की। इन्द्र इनके तपसे डर गये और कुम्भीरका रूप धारण कर करम्भको मार डाला। रम्भ भाईकी मृत्यु पर बहुत दुःखित हो कर अपना मस्तक काट डालनेके लिये तैयार हो गया। इसी समय अग्नि उसके समीप आई और बोली, 'मूर्ख दानव! आत्महत्या महापाप है। ऐसा न करो और अभिलषित वर मांगो।' रम्भ अग्निकी इस बात पर प्रसन्न हो कर बोला—"आप यदि प्रसन्न हैं, तो यही वर दीजिये कि जिससे त्रैलोक्यविजयी शत्रुबलविनाशक मेरे शिवके अंशसे एक पुत्र उत्पन्न हो जो सब तरहसे देव, दानव और मानवका अजेय, महावीर्यवान् तथा कामरूपी हो।" 'तथास्तु' कह कर अग्नि अन्तर्धान हो गई। इस वरसे रम्भके महिषासुर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। (देवीपु० ५।३० अ०)

रम्भा (सं० स्त्री०) रति-अच्-टाप्। १ कदली, केला। २ पुराणानुसार एक प्रसिद्ध अप्सरा। पुराण आदि शास्त्रोंमें इसके सौन्दर्य और सङ्गीतपारदर्शिताका विस्तृत विवरण आया है। रामायण पढ़नेसे मालूम होता है, कि एक समय रम्भावती रातमें नलकुवेरके पास जा रही थी। लङ्काधिपति रावणने उसे बलपूर्वक हरण कर शृंगार किया। नलकुवेरके शापसे बल घट जानेके कारण रामके हाथसे रावण मारा गया। (उत्तरकाण्ड ३१ सर्ग)

३ गौरी। (शब्दरत्ना०) ४ गोध्वनि, गौका रंभाना या चिल्लाना। ५ वेश्या। ६ द्विदलभेद। ७ उत्तरदिक्, उत्तर दिशा।

रम्भा (हिं० पु०) लोहेका वह मोटा भारी डंडा जिसकी सहायतासे पेशराज आदि दीवारोंमें छेद करते या इसी प्रकारके और काम करते हैं।

रम्भातृतीया (सं० स्त्री०) रम्भाख्या तृतीया। व्रतविशेष, रम्भा तृतीया व्रत। यह व्रत चतुर्थीयुक्त तृतीयाको करना होता है। भविष्यपुराणमें लिखा है, कि ज्येष्ठ मासकी शुक्ला तृतीयाको यह व्रत करना चाहिये। रम्भा नामकी अप्सराने पहले पहल यह व्रत किया था। इसीसे इस व्रतका रम्भाव्रत नाम हुआ है। (तिथितत्त्व)

व्रतविधान—पहले आचमन और स्वस्तिवाचन करके उत्तरमुख बैठे और सङ्कल्प करे।

सङ्कल्प—"विष्णुर्नमोऽद्य ज्यैष्ठे मासि शुक्ले पक्षे तृतीयायान्तिथावारभ्य अमुकगोत्रो श्रीअमुक देवी सौभाग्यसन्ततिप्राप्तिकामा संवत्सरं यावत् प्रतिमासीयशुक्लतृतीयायां गणपत्यादिनाना-देवतापूजा पूर्वकं तत्तदुपहारेण तत्तद्देवता पूजारूपरम्भाव्रतोपवासकर्म्माहं करिष्ये।' इस प्रकार संकल्प करके सूक्तपाठ, पीछे सामान्यार्घस्थापन और विधानपूर्वक आसन तथा भूतशुध्यादि करके गणेश आदि देवताकी पूजा करनी होगी। इस पूजाके बाद यथाशक्ति उपचार द्वारा गौरीपूजा करनेका विधान है। गौरीध्यान—"ओं कात्यायनीं दशभुजां महिषासुरमर्दिनीं।"

इस व्रतके प्रथम मासमें बिल्वपत्रसे गौरीपूजाकी, द्वितीय मासमें कुरुवक द्वारा गिरिसुताकी, तृतीय मासमें कह्लार द्वारा सुभद्राकी, चतुर्थ मासमें कुन्दपुष्पसे गोमतीकी, पञ्चम मासमें दमनक पुष्पसे विशालाक्षीको, षष्ठ मासमें कर्णिकाके पुष्पसे श्रीमुखीकी, सप्तम मासमें पद्मपुष्पसे नारायणीकी, अष्टम मासमें बिल्वपत्रसे माधवीकी, ९म मासमें तगरपुष्पसे श्रीको, १०म मासमें पद्मपुष्पसे उत्तमाको, ११श मासमें जवापुष्पसे राजपुत्रीकी और द्वादश मासमें जातिपुष्पसे पद्मजाकी पूजा करनी होती है। एक वर्ष यह व्रत करके यथाविधान इसकी प्रतिष्ठा करनी होगी। यह व्रत करनेसे सौभाग्यसन्तति और धनधान्यादिकी प्राप्ति होती है। (व्रतार्क०)

रम्भाना (हिं० क्रि०) गायका बोलना, गायका शब्द करना।

रम्भापति (सं० पु०) इन्द्र।

रम्भाफल (सं० पु०) कदलीफल, केला।

रम्भाव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष, रम्भातृतीयाव्रत। रम्भातृतीया देखो।

रम्भाभिसार (सं० पु०) रम्भाघर्षण।

रम्भित (सं० त्रि०) १ शब्द किया हुआ, बुलाया हुआ। २ बजाया हुआ।

रम्भिन् (सं० पु०) १ वेत्रधारी या दण्डधारी जो हाथमें

बेंत या दंड लिये हो। (ऋक् २।१५।६) २ वृद्ध मनुष्य, बूढ़ा आदमी। ३ द्वारपाल, दरवान। ४ अलङ्कार या आयुधविशेष।

रम्भिनी (सं० स्त्री०) एक रागिणी जो भैरव रागकी पुत्र-वधू मानी जाती है।

रम्भोरू (सं० स्त्री०) रम्भे इव ऊरू यस्याः। १ वह स्त्री जिसकी जांघ केलेके थम-सी हो। २ सुन्दर, खूबसूरत।

रम्माल (अ० पु०) रमल फेंकनेवाला, पासा फेंक कर फलित कहनेवाला।

रम्य (सं० क्ली०) रम-(गोरदुपधात् यत्। पा ३।१।९८) इति यत्। १ परवलकी जड़। २ प्रधान धातु, वीर्य। (पु०) रम्यतेऽनेनेति रम-यत्। ३ चम्पकवृक्ष, चंपेका पेड़। ४ बकका पेड़, अगस्त। ५ अग्निध्रके एक पुत्रका नाम। ६ वायुके सात भेदोंमेंसे एक जो घंटेमें चारसे सात कोस तक चलती है। (त्रि०) ७ मनोहर, सुन्दर। ८ मनोरम, रमणीय। २ बलकर, ताकतवर।

रम्यक (सं० क्ली०) रम्यते जानोऽत्रेति ततः क्यप्, संज्ञायां कन् वा। १ वर्षविशेष, जम्बूद्वीपके नौ खंडों या वर्षोंमेंसे एक। यह मेरुके दक्षिण और श्वेत पर्वतके उत्तर वायव्य कोणमें माना गया है। इस वर्षके मनुष्य अतिशय बुद्धिमान् तथा जरा और दुःखरहित होते हैं। इस वर्षमें न्यग्रोध अर्थात् वटकी जातिका एक वृक्ष है जिसका फल खा कर यहांके लोग कई दिन तक रह सकते हैं।

"दक्षिणेन तु मेरोस्तु श्वेतस्य चोत्तरेण च।
वायव्यं रम्यकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः॥
मतिप्रधाना विमला जरादुःखविवर्जिताः।
तत्रापि सुमहान् वृक्षो न्यग्रोधो रोहितः स्मृतः॥
तत्फलप्राशनादेव जीवन्ति बहुवासरम्॥"
(वराहपु० रुद्रगीता)

देवीभागवतमें लिखा है, कि रम्यकवर्षमें भगवान् विष्णुकी मत्स्यमूर्त्ति विराजित हैं। भगवान् मनुने इस मूर्त्तिका स्तव किया है।

"रम्यके नाम वर्षे च मूर्त्तिं भगवतः पराम्।
मत्स्यां देवासुरैर्वन्द्यां मनुः स्तौति निरन्तरम्॥"
(देवीभागवत ८।८।१८)

पुराण २।२।१३ तथा ब्रह्माण्डपुराणमें भी इस वर्षका विवरण आया है। २ महानिम्ब, बकायन। (वैद्यकनि०)

रम्यकक्षीर (सं० पु०) महानिम्ब, बकायन।

रम्यग्राम (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक गांवका नाम। (भारत सभापर्व)

रम्यता (सं० स्त्री०) रम्यस्य भावः तल्-टाप्। रम्यत्व, सौन्दर्य।

रम्यपुष्प (सं० पु०) रम्यं रमणीयं दर्शनीयं पुष्पमस्य। १ शाल्मलिवृक्ष, सेमलका पेड़। (क्ली०) २ सुन्दर फूल।

रम्यफल (सं० पु०) रम्यं फलमस्य। कारस्करवृक्ष, कुचिलाका पेड़।

रम्यश्री (सं० पु०) विष्णु।

रम्यसानु (सं० क्ली०) पर्वतके शिखरकी रमणीय समतल भूमि।

रम्या (सं० स्त्री०) रम यत्-टाप्। १ रात्रि, रात। २ स्थल पद्मिनी। ३ गंगा नदी। ४ महेन्द्रवारुणी लता, इन्द्रायण। ५ लक्ष्मणाकन्द। ७ मेरुकी कन्याका नाम जो रम्यसे ब्याही गई थी। ८ एक रागिणीका नाम। ८ धैवत स्वरकी तीन श्रुतियोंमेंसे अन्तिम श्रुतिका नाम।

रम्याक्षि (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

रम्यामली (सं० स्त्री०) भू-धात्री, भुईं आँवला।

रम्हाना (हिं० क्रि०) गायका बोलना, रंभाना।

रय (सं० पु०) रयतेऽनेनेति रय (पुंसिसंज्ञायां घः प्रायेण। पा ३।३।११८) इति घ, रीणात्यनेनेति वा री घ। १ वेग, तेजी। २ प्रवाह। ३ पुरुवसुके छः पुत्रोंमेंसे चौथेका नाम। (भाग० ९।७।१)

रयणपत (हिं० पु०) चन्द्रमा।

रयना (हिं० क्रि०) उच्चारित करना, बोलना।

रयासत (अ० स्त्री०) रियासत देखो।

रयि (सं० पु०) १ धन, गोरूपधन। "यश्चियासते संसृजन्तुनः" (ऋक १०।१९।७) 'रय्या गोलक्षणेन धनेन'। (सायण) २ पूर्वालङ्कार।

रयिद (सं० त्रि०) रयिं धनं ददातीति दा-क। धनद, धन देनेवाला।

रयिन्तम (सं० पु०) अतिशय धनवान्, बड़ा धनशाली।

रयिपति (सं० पु०) धनाधिपति, धनपति, कुवेर।

रयिमत् (सं० त्रि०) रयि-मतुप्। धनवान्, धनी।

रयियन् (सं० त्रि०) धनेच्छु, धनकी इच्छाकरनेवाला।

रयिविद् (सं० त्रि०) विशिष्ट धनप्रापयिता, बड़ा धनवान्।

रयिवृध् (सं० त्रि०) धनवृद्ध, बड़ा धनी।

रयिषाच् (सं० त्रि०) धनसमवायी।

रयिषाह् (सं० त्रि०) शत्रुके धनका अभिभवकारी, शत्रुके धनको जीतनेवाला।

रयिष्ठ (सं० क्ली०) १ अतिशय वेग। २ सामभेद। ३ अग्नि। ४ कुवेर।

रयिष्ठा (सं० त्रि०) धनस्थान।

रयिस्थान (सं० त्रि०) रयिष्ठा देखो।

रयीषिन् (सं० त्रि०) धनेच्छु, धनकी इच्छा करनेवाला।

ररंकार (हिं० पु०) रकारकी ध्वनि।

रर (हिं० स्त्री०) वह दीवार जो एक पर एक यों ही बड़े बड़े पत्थर रख कर उठाई गई हो और जिसके पत्थर चूने, गारे आदिसे न जोड़े गये हों।

रराट (सं० क्ली०) ललाट।

रराटी (सं० स्त्री०) ललाटवलयोरैक्यात् लस्य रत्वं ततो ङीप्। ललाटदेश, कपाल।

रराट्य (सं० त्रि०) ललाट सम्बन्धीय, ललाटका।

रराट्य (सं० स्त्री०) सूखी घास।

ररावन् (सं० त्रि०) हविर्दाता, हवि देनेवाला।

ररी (हिं० वि०) १ रार करनेवाला, झगड़ालू। २ बहुत गिड़गिड़ा कर मांगनेवाला। ३ अधम, नीच।

रलक (सं० पु०) एक प्राचीन देशका नाम।

रला (सं० स्त्री०) पक्षिभेद।

रली (हिं० स्त्री०) १ विहार, क्रीड़ा। २ आनन्द, प्रसन्नता। ३ चेना नामक अन्न।

रल्लक (सं० पु०) रमणं रत् क्विप्यनुनासिकलोपे रत् इच्छा तां लाति कः रल्लस्ततः स्वार्थे कन्। १ कम्बल। २ पक्ष्म, आंखकी बिरनी। ३ एक प्रकारका मृग। ४ प्लक्षवृक्ष, पाकरका पेड़।

रव (सं० पु०) रूयते इति-रु-ध्वनौ-भावे अप्। १ गुंजार, ध्वनि। २ शोर, गुल। ३ शब्द, आवाज।

रव (हिं० पु०) १ सूर्य। २ जहाजकी चाल या गति, रूम।

रवक (सं० पु०) १ वे मोती जो एक धरण या परिमाणमें ३० चढ़ते हों। २ तीस मोतियोंका लच्छा जो तौलमें बत्तीस रत्ती हो।

रवक (हिं० पु०) रेंड़ नामक वृक्ष।

रवकना (हिं० क्रि०) १ जल्दीसे आगे बढ़ना, लपकना। २ उमगना, उछलना।

रवण (सं० क्ली०) रौतीति रु-युच्। १ कांस्य, कांसा नामक धातु। रु-भावे ल्युट्। २ रव, शब्द। (पु०) रौतीति रु-(सुयुरुवृञ्भ्यो-युच्। उण् २।७४) इति युच्। ३ कोकिल, कोयल। ४ उष्ट्र, ऊंट। ५ विदूषक या भांड़। (त्रि०) ६ शब्द करता हुआ। ७ अस्थिर, चंचल। ८ तप्त, गरम।

रवणक (सं० पु०) बांस या बेंतकी बनी चलनी।

रवणरेती (हिं० स्त्री०) गोकुलके समीप यमुना किनारेकी रेतीली भूमि जहां श्रीकृष्ण ग्वालोंके साथ खेला करते थे।

रवथ (सं० पु०) रु (शीङ् शापिगमिवञ्चिजीविप्राणिभ्योऽथ। उण् ३।११३) इति अथ प्रत्यय। कोकिल, कोयल।

रवन्ना (हिं० पु०) १ वह नौकर जो स्त्रियोंके काम काज करने वा सौदा सुलफ लानेको ड्योढ़ी पर रहता है। २ चुंगो आदिकी वह रसीद या इसी प्रकारका और कोई प्रमाणपत्र जो किसी जानेवाली चीजके साथ रहता है, राहदारीका परवाना। ३ वह कागज जिस पर रवाना किये हुए मालका ब्योरा होता है। ४ रवाना देखो।

रवाँ (फा० वि०) १ प्रवाहित, बहता हुआ। २ मश्क किया हुआ, घोटा हुआ। ३ जारी, चलता हुआ। ४ पैना, चोखा। ५ रवाना देखो।

रवाँस (हिं० पु०) एक प्रकारका बोड़ा या लोबिया जिसकी तरकारी बनती है।

रवा (हिं० पु०) १ किसी चीजका बहुत छोटा टुकड़ा, कण। २ सूजी। ३ घुंघरुओंमें शब्द करनेके लिये छर्रे। ४ बारूदका दाना।

रवा (फा० वि०) १ उचित, ठीक, वाजिब। २ प्रचलित, चलनसार।

रवाज (फा० स्त्री०) वह बात या कार्य जो किसी वंश, समाज या नगर आदिमें बहुत दिनोंसे बराबर होता चला आया हो, परिपाटी, प्रथा ।

रवादक (सं० पु०) वह मनुष्य जिसने गिरवी रखे हुए धनको हजम कर लिया हो ।

रवादार (फा० वि०) १ सम्बन्ध रखनेवाला, लगाव रखनेवाला । २ शुभचिन्तक, हितैषी । ३ जिसमें कण या दाने हों, दानेदार ।

रवानगी (फा० स्त्री०) रवाना होनेकी क्रिया या भाव, प्रस्थान ।

रवाना (फा० वि०) १ जिसने कहींसे प्रस्थान किया हो, जो कहींसे चल पड़ा हो । २ भेजा हुआ ।

रवानी (फा० स्त्री०) १ रवाँ होनेका भाव, बहाव । २ बिदाई, रुखसती ।

रवाब (अ० पु०) रबाब देखो ।

रवाबिया (हिं० पु०) लाल बलुआ पत्थर ।·

रबाबिया देखो ।

रवायत (अ० स्त्री०) १ कहानी, किस्सा । २ कहावत ।

रवा रवी (फा० स्त्री०) १ जल्दी, शीघ्रता । २ भागाभाग, दौड़ादौड़ ।

रवासन (हिं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष जिसके बीज और पत्ते औषधके रूपमें काम आते हैं ।

रवि (सं० पु०) रूयते स्तूयते इति रु-(अचइः । उण् ४।१३८) इति इ । १ सूर्य । २ अर्कवृक्ष, मदारका पेड़ । ३ नायक, सरदार । ४ रक्ताशोकवृक्ष, लाल अशोकका वृक्ष । ५ पुराणानुसार एक आदित्यका नाम । ६ महाभारतके अनुसार धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । ७ सौवीरकभेद । ८ सूर्यका भोग दिन, रविवार । रविवारको उड़द, मछली, मांस, मसूर, निम्बपत्र, अदरक, मधु, बेल और कांजी ये सब द्रव्य नहीं खाने चाहिये । जो खाते हैं, वे दरिद्र, पुत्रहीन और कुष्ठरोगादि द्वारा आक्रान्त होते हैं । (कर्मलोचन)

रविका स्वरूप इस प्रकार है—रक्तश्याममिश्रित वर्ण, पूर्वदिगधिपति, पुंग्रह, क्षत्रिय-जाति, सत्त्वगुणान्वित, कटुरस, सिंहराशि, हस्ता नक्षत्र, सप्तमी-तिथि, ताम्रधातु, कलिङ्गदेशका अधिपति, काश्यपगोत्र, द्वादशांगुल परिमित शरीर, पद्महस्तद्वय, पूर्वानन, सप्ताश्ववाहन, शिवाधिदैवत और वह्निप्रत्यधिदैवत । (ग्रहयागतत्त्व)

मनुष्योंकी रक्षा करते हैं, इस कारण इनका रवि नाम हुआ है ।

"अवतीमांस्त्रयान् लोकांस्तस्मात् सूर्यः परिभ्रमात् ।
अचिरात् प्रकाशेत अवनात् स रविः स्मृतः ॥"

(मत्स्यपु० १०१ अ०)

रवि सभी ग्रहोंमें श्रेष्ठ ग्रह है । यह ग्रह एक महीनेमें बारह राशिका भोग करता है । रविके एक राशिसे दूसरी राशिमें संक्रमणकालको संक्रान्ति कहते हैं । रविका संक्रमन होता है, इससे इसका एक नाम रविसंक्रान्ति भी है । एक एक राशि ३० अंशोंमें विभक्त है । रवि एक दिनमें करीब करीब एक अंशका भोग करता है, इसी कारण ३० दिनका मास हुआ है । रविके दीप्तांशके जो सब ग्रह रहते हैं, वे सब डूब जाते हैं । इन डूबे हुए ग्रहोंमें फिर कोई शक्ति नहीं रहती । ग्रहोंको बाल्य, वृद्ध, अस्त तथा अतिचार, महातिचार और वक्र आदि गति रविके कारण हुआ करती है । गुरु और शुक्रके बाल्य, वृद्ध और अस्तसे जो अकाल होता है उसका कारण भी यही रवि है । वृहस्पति वा शुक्र जब रविके पास रहता है, तब उसमें बल रहने नहीं पाता । इसी कारण बाल्य, वृद्ध और अस्तकाल हुआ करता है ।

ग्रहोंका स्फुट, भाव, बल और सन्धि आदि स्थिर कर जात बालकका शुभाशुभ निर्णय करना होता है ।

रविग्रहके शयनादि बारह भावोंका फल ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—

शयनभावमें रविके रहनेसे मन्दाग्नियुक्त, पित्तशूल रोगाक्रान्त, श्लीपदी (फीलपाव) तथा गुह्यदेशमें रोग होता है । उपवेशनकालमें रहनेसे शिल्पकर्मकारी, श्याम वर्णदेह, उत्तम विचाररहित, दुःखयुक्त और परसेवामें तत्पर रहता है । नेत्रपाणि भावमें रह कर यदि लग्नके पञ्चम, नवम, दशम और सप्तम स्थानगत हो, तो सभी प्रकारका सुखलाभ होता है । केवल इसी भावमें रहनेसे क्रूर प्रकृतिका तथा जलदोष रोगयुक्त होता है । प्रकाशभावमें रहनेसे चक्षुरोगी, अतिशय क्रोधी, परद्वेषी, धर्मात्मा और धनवान होता है । गमनेच्छा भावमें रहनेसे निद्रालु, क्रोधी, नराधम, क्रूर प्रकृतिका, मूर्ख, दाम्भिक कृपण

और परदाररत; गमनभावमें रहनेसे प्रथम स्त्री और प्रथम पुत्रका नाश; प्रवासी और पापरोगाक्रान्त; स्वभावगति भावमें रहनेसे भार्याप्रिय, मानी, अनेक गुणयुक्त, विद्या और विनययुक्त; आगमनभावमें रहनेसे मूर्ख, सर्वदा कुकर्मरत, मिथ्यावादी, कुत्सित, विद्यायुक्त, निर्दय और परनिन्दक; भोजनभावमें रहनेसे दाम्भिक, मांसलोभी, मत्स्याहारी, शास्त्रवेत्ता और सदाचारी; नृत्यलिप्सा-भावमें रहनेसे कर्णरोगी, नाना विद्यारत, राजपूज्य और पण्डित; कौतुक भावमें रहनेसे उत्साही, धनी, मानी, कौतुकी, दाता, भोक्ता और शिल्पकुशली तथा निद्राभाव-में रहनेसे निद्रालु, व्याधिमुक्त, प्रवासी, रक्तःचक्षुयुक्त, क्रोधी और परनिन्दक होता है। इसी प्रकार रविके शयनादि द्वादशभावका फल जाना जाता है।

रविका स्फुटसाधन।

रविका स्फुटसाधन निम्नोक्त प्रकारसे करना होता है। पहले रविका शुद्ध और मध्य स्थिर करना होगा। पीछे शुद्ध और मध्यको दो जगह रख कर एकमेंसे तात्कालिक रविमन्दोच्च राश्यादि घटावे। यदि मध्य-राश्यादिसे मन्दोच्च राश्यादि न घटे, तो मध्यराशिमें बारह जोड़ कर घटावे। यदि इस प्रकार घटा कर राशि बच रहे, तो उसको ३० से गुना करके अंशके साथ जोड़ दे। योगफल जो होगा उसे मन्द केन्द्र जानना चाहिये। उस मन्द केन्द्रांशमें जितनी संख्या रहेगी उतने ही अङ्कमें रविकी मान्यखण्डामें जो अङ्क रहता है उसे जोड़ कर स्थापित करनेसे उसे खण्डा कहते हैं। पीछे उसके परवर्त्ती ग्रहण करनेका नाम अनुखण्डा है। उस अनु खण्डाको खण्डके नीचे रख कर घटानेसे जो अङ्क बनेगा, वह भोग्य कहलाता है। उसे भोग्याङ्क द्वारा केन्द्र शेष फलादि गुणित करके जो गुणनफल निकलेगा उसे ६० से भाग दे। भागफल यदि ऋणधनखण्डा अर्थात् खण्डासे अनुखण्डा थोड़ी हो, तो उसे ऋणखण्डा और यदि खण्डासे अनुखण्डाका परिमाण ज्यादा रहे, तो उसे धनखण्डा कहते हैं। ऋण खण्डास्थलमें उक्त लब्धाङ्क को खण्डाङ्कमें जोड़ दे। योगफल मन्दकेन्द्रांश फल कहलाता है। उक्त मन्द्र-केन्द्रांश फलको शुद्ध रविके मध्य राश्यादिकी कलादिमें योग कर उसमेंसे १३५ कला घटावे। यदि घटावफल ६० से ज्यादा रहे, तो उसे ६० से भाग दे और शेषाङ्कमें कला जोड़ कर उसे भाग फलमें मिलावे। इस प्रकार जो अङ्क होगा, वही रविका स्फुटसाधन है। (सूर्यसि०)

इसी प्रकार रविका स्फुट-साधन करना होता है। रविके स्फुटसे उस समय रवि किस राशिके कितने अंशमें कितनी कालमें अवस्थित हैं वह जाना जाता है।

रविका गोचरफल।

रविके किस राशिमें जानेसे कैसा फल होता है उसका विषय इस प्रकार लिखा है—

"स्थानं जन्मनि नाशयेद्दिनकरः कुर्याद्द्वितीये भयम्।
दुश्चिक्ये श्रियमातनोति हिबुके मानक्षयं यच्छति॥
दैन्यं पञ्चमगः करोति रिपुहा षष्ठेऽर्थहा सप्तमः।
पीड़ामष्टमगः करोति नितरां कान्तिक्षयं धर्मगः॥
कर्मवृद्धिजनकस्तु कर्मगो वित्तवृद्धिकृदथायसंस्थितः।
द्रव्यनाशजनितां महापदं यच्छति व्ययगतो दिवाकरः॥"
(ज्योतिःसारस०)

यह गोचरफल जन्मराशि द्वारा स्थिर करना होता है। रविके जन्मराशिमें जानेसे स्थाननाश, दूसरेमें भय, तीसरेमें सम्पत्ति, चौथेमें मानहानि, पांचवेंमें दीनता, छठेमें शत्रुनाश, सातवेंमें अर्थनाश, आठवेंमें अत्यन्त पीड़ा, नवेंमें सौन्दर्यक्षय, दशवेंमें कर्मवृद्धि, ग्यारहवेंमें धर्मवृद्धि और बारहवेंमें द्रव्यनाशके कारण महाविपद् होती है। रविग्रहके प्रवेशकालमें ही उक्त फल होते हैं।

वेधरहित रविशुद्धिकथन।

"लाभविक्रमखशत्रुषु स्थितः शोभनो निगदितो दिवाकरः।
खेचरैः सुततपोजलाप्त्यगैर्व्यार्किभिर्यदि न विध्यते तदा॥"
(दीपिका)

जन्मराशिसे ५, ९, ४ और बारहवें स्थानमें शनिको छोड़ कर अन्य ग्रह द्वारा यदि विद्ध न हों अर्थात् शनि-को छोड़ कर अन्य ग्रह यदि न रहे, तो जन्मराशिसे यथा-क्रम ११वें, ३रे, १०वें और ६ठे स्थानमें स्थित रवि शुभ होते हैं। विद्ध होनेसे शुभ स्थानस्थित हो कर भी शुभ फल नहीं देते। क्योंकि ग्रह द्वारा विद्ध होनेसे ग्रहों-की शुभकारिता-शक्ति जाती रहती है।

रविभुक्तिनिर्णय।

"लग्नदण्डपलं द्विघ्नं तत् संख्यं क्रमतः पलं।
विपलञ्च रवेर्भोग्यमेवं कल्पनमस्तभे॥" (सि०शि०)

रवि जिस मासमें जिस राशिमें रहते हैं, वे उसी उसी लग्नोदयके साथ साथ उदय होते हैं। उस उदित लग्नराशिके लग्नमानकी दण्डसंख्याको दूना करनेसे जो फल होगा उसे पल माने तथा पलकी संख्याको दूना करनेसे जो निकलेगा वही उस राशिके एक दिनकी रवि भुक्ति है। लग्नमानके दण्डपलको ३०से भाग देने पर एक दिनकी रविभुक्ति कितनी होती है उपरोक्त नियमसे स्थिर किया जाता है।

उपरोक्त नियमानुसार उदय और अस्त लग्नकी दैनिक भुक्तिका निरूपण केवल ३० दिनका महीना होनेसे ही होगा। किन्तु जहां २६, ३१ वा ३२ दिनका महीना होता है वहां महीनेकी दिन-संख्यासे भाग करके दिनभुक्ति स्थिर करनी होगी। रविके राशि-संक्रमदिनसे ही भुक्तिका आरम्भकाल गिना जाता है।

रविकी विशेषशुद्धि।

जन्मराशिसे तीसरे, छठे, दशवें, ग्यारहवें स्थानके तथा महीनेका १३ दिन बीतने पर दूसरे, पांचवें और नौवें स्थानके रवि शुभफल देते हैं। जहां रविशुद्धि देखनी होती है वहां इसी नियमके अनुसार देखना उचित है। सूर्य शब्द देखो।

रवि—१ होराप्रकाशके रचयिता। २ मधुमती नाम्नी काव्यप्रकाशटीकाके प्रणेता। ये मिथिलापति शिवसिंहके मन्त्री अच्युतके पौत्र और रत्नपाणिके पुत्र थे।

रविकर (सं० पु०) रवेः सूर्यस्य करः किरणः। सूर्यकी किरण।

रविकर—पिङ्गलसारविकाशिनी और वृत्तरत्नावलीके प्रणेता। ये भीमेश्वरके पौत्र और हरिहरके पुत्र थे।

रविकान्त (सं० पु०) रविणा रविकरसंयोगेन कान्तः कमनीयः। सूर्यकान्त नामक मणि। (राजनि०)

रविकीर्ण (सं० पु०) अर्कवृक्ष, आकका पेड़।

रविकीर्त्ति—एक प्राचीन कवि। ये ६३४-३५ ई०में विद्यमान थे।

रविकुल (सं० पु०) सूर्यवंश। इस शब्दके अन्तमें रवि, मणि आदि शब्द लगनेसे उसका अर्थ 'रामचन्द्र' होता है। जैसे—रविकुलरवि, रविकुल-मणि।

रविगुप्त—चन्द्रप्रभा-विजयकाव्य और लोकसंव्यवहार नामकाङ्क नामक अलङ्कारग्रन्थके रचयिता।

रविचञ्चल (सं० पु०) लोलार्क नामक तीर्थस्थल जो काशीमें है।

रविचक्र (सं० क्ली०) रवेश्चक्रं। नराकार सूर्यचक्रविशेष। मनुष्यकी आकृति बना उसमें जगह जगह सभी नक्षत्रोंको बैठा कर यह चक्र बनाना होता है। इससे जातबालकका शुभाशुभ स्थिर किया जाता है। निम्नोक्त प्रकारसे यह चक्र अङ्कित करना होता है। पहले एक मनुष्यकी आकृति बना कर पीछे सूर्य जिस नक्षत्रमें रहते हों उस नक्षत्रसे तीन नक्षत्र नरदेहके मस्तक पर रखना होगा। पीछे तीन नक्षत्र मुख पर, एक एक नक्षत्र स्तन पर, एक एक नक्षत्र दोनों बाहु और हाथ पर, पांच छाती पर, एक नाभि पर, एक एक गुह्य और जानु पर, बाकी जो नक्षत्र रह जाते हैं उन्हें पाददेशमें लिखना होगा।

इन सब नक्षत्रोंमेंसे चरणस्थित नक्षत्र यदि जन्मनक्षत्र हो, तो जातबालक अल्पायु, जानुसे विदेशवासी, गुह्यसे परदाररत, नाभिसे थोड़ेमें संतुष्ट, हृदयसे धार्मिक, पाणिसे चौर, भुजासे स्थानभ्रष्ट, स्कन्धसे धनपति, मुखसे मिष्टान्नभोजी और मस्तक पर अवस्थित नक्षत्रसे बन्धनमुक्त होता है। (गरुड़पु० ६० अ०)

रविचन्द्र—अमरुशतकटीकाके रचयिता।

रविज (सं० पु०) रवेर्जातः इति जन ड। शनैश्चर, जिसकी उत्पत्ति रवि या सूर्यसे मानी जाती है।

रविजकेतु (सं० पु०) एक प्रकारके केतु या पुच्छल तारे जिनकी उत्पत्ति सूर्यसे मानी गई है। कहते हैं, कि इनका आकार प्रायः हारके समान और वर्ण सोनेके समान होता है और ये पूर्व या पश्चिम दिखाई देते हैं।

रविजप्रिय (सं० पु०) नीलकान्त नामक मणि।

रविजल (सं० क्ली०) आककी जड़का रस।

रविजा (सं० स्त्री०) यमुना, कालिन्दी।

रविजात (सं० पु०) सूर्यकी किरण।

रविजेन्द्र (सं० पु०) जैनोंके एक आचार्यका नाम।

रवितनय (सं० पु०) रवेस्तनयः। १ सावर्णि मनु। २ वैवस्वत मनु। ३ यमराज। ४ शनैश्चर। (बृहत्संहिता ३४।१२) ५ सुग्रीव। ६ कर्ण। ७ अश्विनीकुमार।

रवितनया (सं० स्त्री०) सूर्यकी कन्या, यमुना।

रवितनुजा (सं० स्त्री०) यमुना।

रवितीर्थ (सं० क्ली०) पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम। (शिवपुराण)

रवितृ (सं० त्रि०) रवकारी, चिल्लानेवाला।

रवितेजस् (सं० क्ली०) सूर्यकी किरण।

रविदत्त (सं० पु०) १ राजपुरोहितभेद। २ एक कवि।

रविदास कवि—मिथ्याज्ञानखण्डन नामक प्रहसनके प्रणेता।

रविदिन (सं० क्ली०) रविवार, एतवार।

रविदीप्त (सं० त्रि०) सूर्यकिरणोद्भासित।

रविदुग्ध (सं० क्ली०) अर्कक्षीर, आकका आंटा।

रविदेव (सं० पु०) काव्यराक्षसके प्रणेता एक कवि। ये मलयवासी नारायणके पुत्र थे। बहुतेरे इन्हें नलोदयके रचयिता अनुमान करते हैं। जटावबोधिनी नामक इनकी लिखी एक नलोदयटीका मिलती है।

रविद्रुम (सं० पु०) सदापुष्पवृक्ष, आकका पेड़।

रविनन्द (सं० पु०) रविनन्दन देखो।

रविनन्दन (सं० पु०) रवेर्नन्दनः, यद्वा रविं नन्दयतीति नन्दि-ल्यु। १ सुग्रीव। २ सावर्णि मनु। ३ वैवस्वत मनु। ४ शनि। ५ यम। ६ कर्ण। ७ अश्विनीकुमार।

रविनन्दिनी (सं० स्त्री०) यमुना।

रविनाथ (सं० क्ली०) रविरेव नाथोऽस्य। १ पद्म, कमल। २ बन्धूकवृक्ष, दुपहरिया फूलका पौधा।

रविनामक (सं० क्ली०) ताम्र, तांबा।

रविन्द (सं० क्ली०) अरविन्द, पद्म।

रविपत्र (सं० पु०) रविवत् दीप्तिमत् पत्रं यस्य। आदित्यपत्रक्षुप, मदारका पौधा।

रविपुत्र (सं० पु०) रवेः पुत्रः। रविनन्दन देखो।

रविपुत्री (सं० स्त्री०) छन्दोभेद।

रविप्रिय (सं० क्ली०) रविरेव प्रियमस्य। १ रक्त कमल, लाल कमल। २ ताम्र, तांबा। (पु०) ३ आदित्यपत्र, मदार। ४ रक्त करवीर, लाल कनेर। ५ लकुच या लकुट नामक फल या उसका वृक्ष। ६ नीलभृङ्गराज।

रविप्रिया (सं० स्त्री०) १ पुराणानुसार देवीकी एक मूर्त्ति। २ सूर्यावर्त्तक्षुप।

रविबिम्ब (सं० क्ली०) रवे रत्नं ततः कन्। १ माणिक्य, मानिक। २ सूर्यका मंडल।

रविभक्ता (सं० स्त्री०) सूर्यावर्त्तक्षुप।

रविमण्डल (सं० क्ली०) वह लाल मंडल या गोला जो सूर्यके चारों ओर दिखाई देता है, रविबिम्ब।

रविमणि (सं० पु०) सूर्यकान्त नामक मणि।

रविमूल (सं० क्ली०) अर्कमूल, आककी जड़।

रविरत्न (सं० क्ली०) सूर्यकान्त नामक मणि।

रविरत्नक (सं० क्ली०) रवे रत्नं, ततः कन्। माणिक्य, मानिक।

रविलोचन (सं० पु०) रविर्लोचनमस्य। विष्णु।

रविलोह (सं० क्ली०) रविप्रियं लोहं। ताम्र, तांबा।

रविवंश (सं० पु०) सूर्यकुल।

रविवंशी (सं० पु०) सूर्यकुलमें उत्पन्न, सूर्यवंशी।

रविवर्म्मन्—हलायुधकृत कविरहस्यके एक टीकाकार।

रविवल्लभ (सं० पु०) भृङ्गराजवृक्ष।

रविवल्ली (सं० स्त्री०) रविभक्ताक्षुप।

रविवाण (सं० पु०) वह वाण जिसके चलानेसे सूर्यका-सा प्रकाश उत्पन्न हो।

रविवार (सं० पु०) रवेः सूर्यग्रहस्य वारः। सप्ताहके सात दिनों या वारोंमेंसे एक जो सूर्यका वार माना जाता है और जो शनिवारके बाद तथा सोमवारके पहले पड़ता है, आदित्यवार।

रविवासर (सं० पु०) रविवार, एतवार।

रविश (फा० स्त्री०) १ गति, चाल। २ क्यारियोंके बीचमें चलनेके लिये बना हुआ छोटा मार्ग। ३ तौर, ढंग, तरीका।

रविषेन—उत्तर-पश्चिम भारतवासी एक राजा। इनकी उपाधि महासामन्त-महाराज थी। इनके पिताका नाम राजा सञ्जयसेन और माताका नाम शिखरस्वामिनी था।

रविसंक्रान्ति (सं० स्त्री०) रवेः संक्रान्तिः। सूर्यका एक राशिमेंसे दूसरी राशिमें आना, सूर्य-संक्रमण।

रविसंज्ञक (सं० क्ली०) रविः संज्ञा यस्य इति कन्। ताम्र, तांबा।

रविसारथि (सं० पु०) अरुण।

रविसाम्ब—दाक्षिणात्यके वकाटक वंशीय राजाओंके अधीनस्थ एक सामन्त राजा। अजण्टाके शिलाफलकमें इनका नामोल्लेख है।

रविसुअन (हिं० पु०) १ सूर्यके पुत्र, अश्विनीकुमार। २ रविनन्दन देखो।

रविसुत (सं० पु०) रविनन्दन देखो।

रविसुन्दररस (सं० पु०) वैद्यकमें एक प्रकारका रस जो भगंदरके लिये बहुत उपकारी माना जाता है।

रविसूनु (सं० पु०) रवेः सूनुः। १ सूर्यके पुत्र। २ रविनन्दन देखो।

रविस्पर्शा (सं० स्त्री०) ह्रस्वमेषशृङ्गी, क्षुद्र मेढ़ाशृंगी।

रवीन्द (सं० क्ली०) रविणा सूर्यकरस्पर्शेन इन्दति प्रकाशते इति इन्द-अच्। पद्म, कमल।

रवीन्द्र—दुर्गामाहात्म्यटीकाके प्रणेता तथा पुरन्दरके पुत्र।

रवीषु (सं० पु०) कामदेव।

रशनसम्मित (सं० पु०) यूपकाष्ठस्थित रज्जुसदृश या तद्वत् विलम्बित। (तैत्तिरीयसं ६।६।४।१)

रशना (सं० स्त्री०) अश्नुते व्याप्नोतीति अशू व्याप्तौ (अशे रश च। उण् २।७५) इति युच्, धातोरशादेश्च। १ काञ्चि, करधनी। २ जिह्वा, जीभ। ३ रज्जु, रस्सी। ४ अंगुली।

रशनाकलाप (सं० पु०) धागे आदिकी बनी हुई एक प्रकारकी करधनी जो प्राचीन कालमें स्त्रियां कमरमें पहनती थीं।

रशनाकृत (सं० त्रि०) रज्जु द्वारा चालित।

(कौशितकी० १२७)

रशनागुण (सं० पु०) रशनाकलाप देखो।

रशनोपमा (सं० स्त्री०) रसनोपमा नामक अलंकार।

विशेष विवरण रसनोपमा शब्दमें देखो।

रश्क (फा० पु०) १ किसी दूसरेको अच्छी दशामें देख कर होनेवाली जलन या कुढ़न, डाह। २ लज्जा, शरम।

रश्मन् (सं० पु०) रश्मि, किरण।

रश्मि (सं० पु०) अश्नुते व्याप्नोतीति अशू-व्याप्तौ (अश्नोतेरश्च। उण् ४।४६) इति मि, धातो रशादेश्च। १ किरण। इसका वैदिक पर्याय—खेदय किरण, गो, अभीशु, दीधिति, गभस्ति, वन, उस्र, वसु, मरीचि, मयूख, सप्तऋषि, साध्य और सुपर्ण। २ पक्ष्म, पलकके रोएं। ३ अश्वरज्जु, घोड़ेकी लगाम।

रश्मिकलाप (सं० पु०) मौक्तिक कण्ठहारभेद, मोतियोंका वह हार जिसमें ६४ या ५४ लड़ियां हों।

रश्मिकेतु (सं० पु०) १ एक राक्षसका नाम। (रामा० ५।८०।२) २ धूमकेतुग्रहभेद, वह केतु या पुच्छल तारा जो कृत्तिका नक्षत्रमें स्थित हो कर उदित हो। कहते हैं, कि इसकी चोटीमें धूआं रहता है और इसका फल सातवें केतुके समान होता है। (बृहत्सं० ११।४०)

रश्मिक्रीड़ (सं० पु०) रामायणके अनुसार एक राक्षसका नाम। (रामायण ५।१।२।११)

रश्मिन् (सं० पु०) रश्मि, किरण।

(भागवत १।९।३८)

रश्मिपति (सं० पु०) रश्मिः पतिः पोषको यस्य। १ आदित्यपत्र क्षुप, मदारका पौधा। २ रविपत्र।

रश्मिपवित्र (सं० त्रि०) सूर्यकिरण द्वारा पूत या पवित्र किया हुआ।

रश्मिप्रभास (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रश्मिमण्डल (सं० पु०) किरणमाला। (अथर्वप्राति०)

रश्मिमत् (सं० पु०) १ सूर्य। (त्रि०) २ किरणयुक्त।

रश्मिमय (सं० त्रि०) १ दीप्तिमय। २ किरणोद्भासित।

रश्मिमालिन् (सं० त्रि०) रश्मिमालाधारी।

रश्मिमुच् (सं० पु०) सूर्य।

रश्मिराज (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रश्मिवत् (सं० त्रि०) किरणके समान।

रश्मिशतसहस्रपरिपूर्णध्वज (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रश्मिस (सं० पु०) एक दानवका नाम।

रस (सं० पु०) रसतीति रस-पचाद्यच् यद्वा रस्यते इति रस आस्वादने (पुंसि संज्ञायां घः प्रायेन। पा ३।३।११८) इति घ। १ वह अनुभव जो मुंहसे डाले हुए पदार्थोंका जीभके द्वारा होता है, खानेकी चीजका स्वाद। वैद्यकमें मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय ये छः रस माने गये हैं। इसकी उत्पत्ति भूमि, आकाश, वायु और अग्नि आदिके संयोगसे जलमें होती है। पृथ्वी और

जलके गुणकी अधिकतासे मधुर रस, पृथ्वी और अग्निके गुणकी अधिकतासे अम्ल रस, जल और अग्निके गुणकी अधिकतासे कटुरस, वायु और आकाशके गुणकी अधिकतासे तिक्त रस और पृथ्वी तथा वायुकी अधिकतासे कषाय रस उत्पन्न होता है। इन छः रसोंके मिश्रणसे और भी छत्तीस प्रकारके रस उत्पन्न होते हैं। इस रसका विषय वैद्यकमें इस प्रकार लिखा है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि ये पांच महाभूत हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच यथाक्रम इनके गुण हैं। आकाश और वायु आदि भूतोंसे शब्द और स्पर्श आदि गुण धीरे धीरे एक एक कर बढ़ता जाता है। जैसे—आकाशका गुण शब्द, वायुका गुण शब्द, स्पर्श और रूप ; जलका गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वीका गुण स्पर्श, रूप, रस और गन्ध है। अतएव रस जलीय गुणसे उत्पन्न होता है। संसर्ग, आनुकुल्य और मिश्रणके कारण सभी भूतोंका अंश सभीमें मिला है। किन्तु उत्कृष्टता और अपकृष्टताके अनुसार वह विभिन्न रूपमें निर्दिष्ट होता है।

जलीय गुणसे उत्पन्न यह रस जब सभी भूतोंके साथ मिल कर विदग्ध होता तब छः प्रकारमें बंट जाता है। ये छः रस हैं, मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय। पार्थिव और जलीय गुणको अधिकतासे मधुर रस; पार्थिव और आग्नेय गुणकी अधिकतासे अम्लरस ; जलीय और आग्नेय गुणकी अधिकतासे लवणरस ; वायव्य और आग्नेय गुणकी अधिकतासे कटुरस, वायव्य और आकाश गुणकी अधिकतासे तिक्तरस तथा पार्थिव और वायव्य गुणकी अधिकतासे कषाय रस उत्पन्न होता है।

मधुर, अम्ल और लवणरस वातको, मधुर, तिक्त और कषाय रस पित्तको तथा कटु, तिक्त और कषाय रस कफको नाश करता है। किसी किसी पण्डितका मत है, कि जगत्‌में अग्नि और सोमगुण रहनेके कारण रस दो प्रकारका है,—आग्नेय और सौम्य। मधुर, तिक्त और कषाय सौम्य रस, तथा कटु, अम्ल और लवण रस आग्नेय रस है। मधुर, अम्ल और लवण रस स्निग्ध और गुरु, कटु, तिक्त और कषाय रस रूक्ष और लघु होता है। सौम्यसे शीतल और आग्नेयसे उष्ण समझना चाहिये।

शीतलता, रूक्षता, लघुता, वैशद्य और विष्टम्भता वायुगुणका लक्षण है। कषाय रस इसकी समानयोनि है। इसी कारण कषाय रसको शीतलतासे वायुकी शीतलता, रूक्षतासे रूक्षता, लघुता, वैशद्य और स्तब्धतासे वायुकी विशदता तथा स्तब्धता बढ़ती है। उष्णता, तीक्ष्णता, रूक्षता, लघुता और विशदता पित्तगुणके लक्षण हैं। कटुरस इसकी समानयोनि है। इसी कारण कटुरसके ये सब गुण बढ़ते हैं। माधुर्य, स्नेह, गौरव, शैत्य और पिच्छिलता श्लेष्मगुणके लक्षण हैं। मधुर-रस इसकी समानयोनि है, इसीसे मधुररसके इन सब गुणोंकी वृद्धि होती है।

श्लेष्माकी अपर अर्थात् असमानयोनि कटुरस है। कटुरसके कटुत्व द्वारा श्लेष्माकी मधुरता, रूक्षतासे स्निग्धता, लघुतासे गुरुता, उष्णतासे शीतलता और विशदतासे पिच्छिलता नष्ट होती है।

जिस रससे परितोष, आह्लाद और तृप्ति उत्पन्न होती है और जिस रससे जीवनकी रक्षा, मुखका अवलेप (मुंहका चटचट करना) तथा श्लेष्माको वृद्धि होती है उसको मधुर रस कहते हैं। जिस रस द्वारा दन्तहर्ष, मुखस्राव और रुचि उत्पन्न होती है उसे अम्लरस जिस रससे जिह्वाके अग्र भागमें जलन होती है, उद्वेग पैदा होता है, सिर दर्द करता है और नाकसे पानी गिरता है उसे कटुरस, जिससे मुखका वैशद्य, अन्नमें रुचि तथा हर्ष उत्पन्न होता है, उसे तिक्तरस, जिस रससे वक्तदेश परिशुष्क, जिह्वा स्तम्भित, कण्ठ बद्ध तथा हृदयदेश तक आकृष्ट और एक तरह पीड़ित सा मालूम होता है उसे कषाय रस कहते हैं।

मधुररस—इस रसका सेवन करनेसे रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, ओजः, शुक्र और स्तन्यकी वृद्धि होती है। यह दृष्टि और केशवर्द्धक, वर्ण और बलवर्द्धक, व्रणसन्धायक (फटे घावको जुड़ा देता है) तथा रस और रक्तको साफ रखता है। यह रस बालक, वृद्ध, युवा, क्षयरोगग्रस्त और दुर्बलके लिये हितकर है। रोगी मधुमक्षिका और पिपीलिकाको बड़ा ही पसन्द करता

है। इससे तृष्णा, मूर्च्छा और दाह प्रशमित होता तथा छः इन्द्रियोंको प्रसन्नता रखता है। किन्तु यह कृमि और कफवर्द्धक है। मधुररसमें इस प्रकार अधिक गुण रहने पर भी यदि कोई अधिक मात्रामें इसका सेवन करे, तो वह श्वास, कास, आलस्य और वमनेच्छामें कष्ट पाता है, तथा उसके स्वरभङ्ग, कृमि, गलगण्ड, अर्बुद, श्लीपद, वस्तिदेश और मलद्वारका उपलेप तथा चक्षुमें वेदना होती है।

अम्लरस—जारक और पाचक है। इससे वायु शान्त होती, अनुलोम होता तथा कोष्ठमें जलन देती है। यह क्लेदजनक, मुखप्रिय और वहिःशैत्यसाधक है, किन्तु अधिक मात्रामें सेवन करनेसे दन्तहर्ष, लोमहर्ष तथा नयनसम्मीलन होता है। इसके द्वारा गाढ़ा कफ तरल होता तथा शरीरमें शिथिलता आ जाती है। शरीरका कोई स्थान दग्ध, दष्ट, भग्न, पिष्ट, छिन्न, विद्ध, अथवा शोकग्रस्त वा विसर्परोगसे आक्रान्त होने पर यदि अधिक अम्लका सेवन किया जाय, तो वह स्थान पक जाता है। इसमें आग्नेय गुण रहनेके कारण कण्ठ, वक्ष और हृदयमें जलन देती है।

लवणरस—पाचक और संशोधक है। इससे रसोंका विश्लेषण होता तथा शरीरमें शिथिलता आती है। यह रस मार्ग-विशोधक सभी शरीरांशका कोमलतासाधक तथा सभी रसके विरोधी उष्ण गुणयुक्त है। अधिक मात्रामें इसका सेवन करनेसे गात्रकण्डु, मण्डलाकार व्रण, शोफ, विवर्णता, मुख और नेत्रमें व्रण, रक्तपित्त, वातरक्त और पुरुषत्वहानि होती तथा खट्टी डकार आती है।

कटुरस—पाचक, रोचक, अग्निका दीप्तिकर और संशोधक है। यह शरीरका स्थूलकारक तथा सामान्य कफ, कृमि, विष, कुष्ठ और कण्डुनाशक माना गया है। इससे सन्धिविश्लेषण और शरीरका अवसाद होता है। यह स्तन्य, शुक्र और मेहनाशक है। यह रस अधिक मात्रामें पान करनेसे भ्रम और मत्तता उत्पन्न होती; गला, तालु और ओंठ सूखते हैं; बलकी हानि होती तथा कम्प, वेदना और भेद आदि रोग उत्पन्न होते हैं। हाथ, पांव, बगल और पीठमें वेदना होती है।

तिक्तरस—रुचिकर और दीप्तिवर्द्धक है। इससे कण्डु, कुष्ठ, मूर्च्छा और ज्वरको शान्ति होती, स्तन्यका संशोधन होता तथा विष्ठा, मूत्र, क्लेद, मेद, वसा और पीप सूख जाती है। यह रस अधिक मात्रामें सेवन करनेसे शरीर स्पन्दहीन हो जाता तथा मन्यास्तम्भ, हस्तपदादिका आक्षेप; शिरःशूल, भ्रम, तोद, भेद और विदारणवत् यातना तथा मुखवैरस्य आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

कषायरस—संग्राहक अर्थात् मल, मूत्र और श्लेष्मा आदिको रोकता है। यह फोड़ेको भरता तथा क्लेदको सोखता है। यह रस अधिक मात्रामें सेवन करनेसे हृद्रोग, मुखशोष, उदराध्मान, वाक्यरोध, मन्यास्तम्भ, अङ्गस्फुरण, कानमें चुन चुन शब्द तथा आकुञ्चन और आक्षेप आदि होता है।

ये सब रस आपसमें मिल कर छत्तीस प्रकारमें विभक्त हैं। जैसे; दो रसके परस्पर योगसे पन्द्रह प्रकार, तीन रसके योगसे बीस प्रकार, चार रसके योगसे पन्द्रह प्रकार, पांच रसके योगसे छः प्रकार तथा प्रत्येक छः छः प्रकारका है।

दोषोंके विदग्ध और अविदग्धकी विवेचना कर यही छत्तीस प्रकारके रस होंगे।

द्विकभावमें मिलनेसे मधुररस पाँच प्रकारका, अम्ल चार प्रकारका, लवणरस तीन प्रकारका, कटुरस दो प्रकारका, तिक्तकषाय मिल कर एक प्रकारका होता है। मधुराम्ल, मधुरलवण, मधुरतिक्त, मधुरकटु, मधुरकषाय—मधुररसके पांच भेद; अम्ललवण, अम्लकटु, अम्लतिक्त और अम्लकषाय—अम्लरसके चार भेद; लवणकटु, लवणतिक्त, लवणकषाय—लवणरसके तीन भेद; कटुतिक्त तथा कटुरसके दो भेद तथा तिक्तकषाय—तिक्तरसका यही एक भेद है।

मधुराम्ललवण, मधुराम्लकटु, मधुराम्लतिक्त, मधुराम्लकषाय, मधुरलवणकटु, मधुरलवणतिक्त, मधुरलवणकषाय, मधुरकटुतिक्त, मधुरकटुकषाय, मधुरतिक्तकषाय, मधुररसमूलक त्रिक्संयोगसे यही दश प्रकारके रस होते हैं। अम्ललवणकटु, अम्ललवणतिक्त, अम्ललवणकषाय, अम्लकटुतिक्त, अम्लतिक्तकषाय ये छः रस अम्लरसमूलक

हैं। लवणकटुतिक्त, लवणकटुकषाय, लवणतिक्तकषाय तथा कटुतिक्तकषाय ये तीन तीन रस मिलनेसे यही बीस प्रकारके भेद होते हैं।

चार चार मिल कर मधुररस दश प्रकारका, अम्लरस चार प्रकारका तथा लवणरस एक प्रकारका होता है। जैसे—मधुराम्लकटुतिक्त, मधुराम्लकटुकषाय, मधुरलवणतिक्तकटु, मधुराम्लतिक्तकषाय, मधुरलवणकटुतिक्त, मधुरलवणकटुकषाय, मधुरलवणतिक्तकषाय, यही दश प्रकारके भेद मधुररसमूलक हैं। अम्ललवणकटुतिक्त, अम्ललवणकटुकषाय, अम्ललवणतिक्तकषाय, अम्लकटुतिक्तकषाय, लवणकटुतिक्तकषाय, चार चार करके यही पन्द्रह प्रकारके रसभेद हुआ करते हैं।

मधुराम्ललवणकटुतिक्त, मधुराम्ललवणकटुकषाय, मधुराम्ललवणतिक्तकषाय, मधुराम्लकटुतिक्तकषाय, अम्ललवण कटुतिक्तकषाय, पांच पांच मिल कर यही छः प्रकारके रसभेद हुए।

छः रस मिल कर एक प्रकारका होता है, जैसे,—मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषाय। ये छः रस पृथक् भावमें छः होते हैं। अतः कुल मिला कर छत्तीस प्रकारके रसभेद हुए।

कोई कोई पण्डित द्रव्य, रस, गुण वा वीर्यको प्रधान बतलाते हैं। उनके मतकी यहां पर संक्षिप्त आलोचना करना उचित है। उनके मतसे द्रव्य प्रधान कारण है। पहला द्रव्य व्यवस्थित तथा रस आदि अव्यवस्थित है, जैसे—अपक्व फलमें जिस प्रकार रसगुण मालूम होता है, उस प्रकार पक्व फलमें नहीं होता। दूसरा—द्रव्यनित्य और रसगुण आदि अनित्य है। क्योंकि, कल्कादिकी जगह द्रव्यरस और गंधविशिष्ट अथवा रस और गन्धहीन होता है। तीसरा—द्रव्यजातीयगुण नित्य अवलम्बन करता है। जैसे, पार्थिव द्रव्य कभी भी अन्य भावको प्राप्त नहीं होता। चौथा—पञ्चेन्द्रिय द्वारा द्रव्य ही लिया जाता है, रसादि नहीं। पांचवां—द्रव्य आश्रय तथा रस उसका आश्रित है। छठा—औषधके गुणवर्णनकी जगह द्रव्यका ही नाम उल्लेख किया जाता है, रसका नहीं। सातवां—औषधके योगवर्णनकी जगह शास्त्रमें द्रव्यको ही प्रधान बताया है। आठवां—रस आदिका गुण अवस्थासापेक्ष है। जैसे, तरुणद्रव्यका तरुणरस, पक्वद्रव्यका पक्वरस आदि। नवां—द्रव्यके एकांशसे भी व्याधिकी शान्ति होती है। इन सब कारणोंसे द्रव्य ही प्रधान है, न कि रस।

कोई कोई आचार्य इसे स्वीकार नहीं करते। वे रसको ही प्रधान मानते हैं। उनका कहना है, कि पहले शास्त्र प्रमाण ही ग्रहणीय है। शास्त्रमें रसका विषय इस प्रकार लिखा है। १ला—प्राणियोंका जो आहार है वह रससे परिपूर्ण है और उसीसे वे जीवनधारण करते हैं। २रा—गुरूपदेशकी जगह रस ही उपदेशका विषय होता है। ३रा—अनुमानकी जगह रसद्रव्य अनुमित होता है। ४था—ऋषिवचनमें भी कहा है, कि यज्ञके लिये कुछ मधुरद्रव्य संग्रह करना चाहिये। अतएव रस ही प्रधान है। रस द्वारा ही द्रव्यकी गुणसंज्ञा है।

कोई कोई इसे भी नहीं मानते। वे वीर्यको प्रधान बतलाते हैं। क्योंकि वीर्यके गुणसे औषधका काम चलता है। वीर्य अपने बल और गुणसे रसको अतिक्रम कर कार्य कर सकता है। जिन सब रसोंसे वायुकी शान्ति होती है, उन सब रसोंमें यदि रुक्षता, लघुता और शीतलता गुण रहे, तो वे वायुको शान्त नहीं कर सकते। जिन सब रसोंसे पित्तनाश होता है, यदि उन सब रसोंमें तीक्ष्णता, उष्णता और लघुता गुण रहे तो उनसे पित्तका नाश नहीं हो सकता। फिर जिन सब रसों द्वारा श्लेष्मा दमन होती है, वे यदि स्नेह, गौरव और शैत्यगुणयुक्त हों, तो उन सब रसोंसे श्लेष्मावृद्धि होती है। अतएव वीर्य ही प्रधान है।

कोई कोई इसे भी स्वीकार नहीं करते। वे परिपाकको ही प्रधान मानते हैं। क्योंकि खाया हुआ पदार्थ जब अच्छी तरह पच जाता, तब तो गुण या नहीं तो अवगुण होता है। कोई कोई कहते हैं, कि प्रत्येक रससे परिपाक होता है। फिर कोई मधुर, अम्ल और कटु इन्हीं तीन रसोंसे परिपाक होता है, ऐसा कहते हैं, किंतु यह युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि, द्रव्य, गुण और शास्त्रकी पर्यालोचना कर देखनेसे यही प्रतीत होता है, कि अम्लके विपाक नहीं है। अग्निमान्द्य होनेसे पित्त ही विदग्ध हो कर अम्लरसमें परिणत होता है। यदि अम्लका

विपाक स्वीकार किया जाय, तो लवणरसका तथा अन्य प्रकारका पाक होना सम्भव है। किन्तु ऐसा होता नहीं, श्लेष्मा विदग्ध हो कर ही लवणताको प्राप्त होती है। कोई कोई कहते है, मधुररस परिपाक होनेसे मधुर तथा अम्लरस अम्ल ही रहता है। इस प्रकार सभी रस अविकृत रहते हैं। किसी किसीका कहना है, कि मृदुरस बलवान् रसका अनुगामी होता है।

किन्तु पण्डित लोग कार्यविशेषमें इन सबोंकी प्रधानता स्वीकार करते हैं। परन्तु पहले द्रव्यको प्रधान कहना होगा। क्योंकि वीर्यके बिना पाक, रसके बिना वीर्य तथा द्रव्यके बिना रस नहीं हो सकता। देह और देहीकी स्थिति जिस प्रकार परस्पर सापेक्ष है, उसी प्रकार द्रव्यके बिना रस तथा रसके बिना भी द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। वीर्य कहनेसे शीत, उष्ण आदि आठ प्रकारके गुण समझे जाते हैं। ये आठ प्रकारके द्रव्यको ही आश्रय किये हुए हैं। ये सब गुण निर्गुण रसमें कभी भी नहीं रह सकते। द्रव्यसे ही द्रव्य परिपाक होता है, छः रसोंमें इस प्रकार नहीं होता। अतएव द्रव्य ही प्रधान है। रस, वीर्य और विपाक उसको आश्रय किये हुए हैं। जिस द्रव्यका जैसा रस है उसका गुण भी वैसा ही होता है।

(सुश्रुत सूत्रस्था० ४० अ० उत्तरत० ६० अ०)

चरक, चक्रदत्त, वाभट आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें इस रसको अच्छी तरह आलोचना की गई है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुछ नहीं लिखा गया।

न्यायके मतसे रसनाग्राह्य वस्तु ही रस है। यह मधुरादि भेदसे अनेक प्रकारका है। इस रसके दो भेद हैं नित्य और अनित्य। (भाषापरि०)

भोजनकालमें कौन रस पहले खाया जाता है उसका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है। भोजनके समय तमससे पहले मधुररस, पीछे अम्ल और लवणरस और उसके बाद कटु, तिक्त और कषायरस खाना उचित है।

२ शरीरस्थ धातुविशेष। रसधातु। पर्याय—रसिका, स्वेदमाता, वपुःस्रव, चर्माम्भः चर्मसार, रक्तसार, अस्रमातृका, आहार-सम्भव, तेजसम्भव, अग्निसम्भव, बहुरसासव, आत्रेय, असृक्कर, धातुघन, मूलमहापर। (हेम)

जीव जो मधुरादि रस खाता है वह परिपाक हो कर रसमें परिणत होता है। भावप्रकाशमें इसका विषय इस प्रकार लिखा। रसकी निरुक्ति और स्वरूप—

"गत्यर्थ रसधात्वर्थस्ततोऽभवदयं रसः।
सदैव सकलं देहं रसतीति रसः स्मृतिः॥
सम्यक् पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितो रसः।
स तु द्रव्यः सितः शीतः स्वादुः स्निग्धश्चलोभवेत॥"

(भावप्र०)

गत्यर्थबोधक रस धातुसे रस शब्द बना है। यह रस शरीरमें हमेशा विचरण करता है, इसीसे इसको रस कहते हैं। खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह परिपक्व हो कर जो सार भाग उत्पन्न होता है उसका नाम रस है। यह रस द्रवपदार्थ, श्वेतवर्ण, शीतल, मधुररस, स्निग्ध और गमनशील होता है।

रसका अवस्थितिस्थान—रसके सारे शरीरमें सञ्चालन करने पर भी हृदय ही इसका विशेष स्थान है। क्योंकि यह रस समान वायु द्वारा पहले हृदयमें ही लाया जाता है।

रसका कार्य—यह रस हृदयगत होनेसे वहांकी रसवाहिनी धमनीमें आ कर सभी धातुको पोषण करता है। पीछे वह अपने गुण द्वारा सारे शरीरमें फैल जाता है। जठराग्निके मन्द होनेसे यदि खाया हुआ पदार्थ न पचे और उससे कटु वा अम्लरस उत्पन्न हो, तो वह रस विषके समान काम करता है जिससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

परिपक्व आहारके सार अंशका रस और अवशिष्ट ग्रहणी नाड़ीस्थ द्रवरूपी मलभागका जलीय अंश जब मूत्रवाहिनी शिरा द्वारा वस्त्याशयमें लाया जाता तब उसे मूत्र तथा अवशिष्ट जो मलभाग रह जाता है उसे विष्ठा कहते हैं। यह विष्ठा समान वायु द्वारा चालित हो कर मलाशयमें आ कर ठहरती है।

खाया हुआ रस समान वायु द्वारा चालित हो कर रसवाहिनी धमनीसे स्थायिरसके अवस्थितिस्थान हृदयमें जाता है और वहां स्थायिरसके साथ मिल जाता है।

रस तीन प्रकारमें विभक्त है, स्थूलभाग, सूक्ष्मभाग और मलभाग। इनमेंसे स्थूलभाग अपने भावको अवलम्बन करता है, सूक्ष्मभाग परधातुका पोषण करता है और मलभाग उसका मलत्व धारण करता है। अर्थात् रसके परिपक्क होनेसे उसका स्थूलभाग रस ही रहता है, सूक्ष्म भाग परधातुके रक्तका पोषण करता है और मलभाग कफरूपमें परिणत होता है।

यह रस तीन हजार पन्द्रह कला करके एक एक धातु-में रहता है। बीस कलाका एक मुहूर्त्त अर्थात् दो दण्ड होता है। इस पर भोजका मत है, कि खाया हुआ रस पांच रात और डेढ़ दण्डमें रसादि मज्जा पर्य्यन्त धातुमेंसे एक एकमें परिणत होता है।

यह रस फिर स्थूल और सूक्ष्म इन दो भागोंमें विभक्त है। इनमेंसे स्थूलभाग शरीरात्मक स्थायिरसके साथ मिल कर वैसा ही हो जाता है। पीछे वह सर्व-शरीर-व्यापी व्यान वायु द्वारा चालित हो कर धमनीपथसे जाता और पोषण स्नेहन तथा जठराग्निकी उष्माजनित संतापनिवारण आदि गुण द्वारा सारे शरीरका पोषण करता है। सूक्ष्मभाग प्राणवायु द्वारा प्रेरित हो कर धमनीपथसे शरीरात्मक रक्तके स्थान यकृत् प्लीहामें जाता और वहां स्थायी रक्तमें मिलता है। इसके बाद उस स्थायीरक्तके तेज द्वारा फिरसे परिपाक हो कर पांच दिन, पांच रात और डेढ़ दण्डमें रक्त धातुमें परिणत होता है।

आहार-जातरस एक मास नौ दण्डके बाद शुक्र और आर्त्तवरूपमें परिणत होता है। पहले 'रसाद्वै शोणितं जातं' रससे रक्तकी उत्पत्तिके बाद रससे ही मांसकी, मांस उत्पत्तिके बाद रससे मेदकी, मेदउत्पत्तिके बाद रससे ही अस्थिकी, अस्थिके बाद रससे मज्जा तथा मज्जाके बाद उस रससे शुक्रकी उत्पत्ति होती है।

रस शरीरमें शब्दसन्तानवत्, अर्चिसन्तानवत् (अग्निशिखा-प्रवाहकी तरह) और जलसन्तानवत् इन तीन प्रकारसे शरीरमें सञ्चरण करता है।

इसका अभिप्राय यह है, कि प्राणी तीक्ष्णाग्नि, मध्याग्नि और मन्दाग्निविशिष्ट होते हैं। अतएव वह तीक्ष्णाग्निविशिष्ट व्यक्तियोंके शरीरमें शब्द-सन्तान-वत् तीव्र गतिसे मध्यमाग्निविशिष्ट व्यक्तियोंके शरीर-में अग्निशिखा-प्रवाहकी तरह मध्यं वेगसे था। मन्दाग्नि-विशिष्ट व्यक्तिके शरीरमें जलप्रवाहकी तरह मृदुवेगसे सञ्चरण करता है। अतएव रससे एक महीनेमें जो शुक्र बनता है उसे मध्यवेगके स्थानमें जानना होगा। अभी यही स्थिर हुआ, कि तीक्ष्णाग्निविशिष्ट व्यक्तिके एक महीनेसे कुछ कममें तथा मन्दाग्निविशिष्ट व्यक्तिके एक महीनेसे कुछ अधिक समयमें शुक्र उत्पन्न होता है।

(भावप्रकाश)

सुश्रुतमें इसका विषय यों लिखा है—शीतोष्ण भेदसे दो प्रकारका वा शीतोष्ण स्निग्धादि भेदसे आठ प्रकारका वीर्य्ययुक्त, मधुरादि छः प्रकारके रससमन्वित तथा पेयादि भेदसे चार प्रकारका पाञ्चभौतिक आहारद्रव्य जब अच्छी तरह परिपाक होता तब उससे तेजोभूत बहुत सूक्ष्म जो सार पदार्थ उत्पन्न होता है, उसीका नाम रस है।

रसका आधार और क्रिया—उक्त आहारजात रसका अवस्थितिस्थान हृदय है। यह ऊर्द्धगामी १०, अधोगामी १० और तिर्य्यक्गामी ४ इन २४ धमनियोंमें प्रवेश कर अदृश्य भावमें अनिर्वचनीय कर्म द्वारा रात दिन सारे शरीरकी तर्पण, वर्द्धन, धारण, यापन और जीवन क्रिया सम्पादन करता है। वह रस जो सभी स्थानोंमें गमनागमन करता है, क्षयवृद्धिरूप विकृति द्वारा ही उस-का अनुभव किया जाता है। द्रव्यानुयायी रस जब शरीर-की स्नेहन, जीवन, तर्पण और धारणादि क्रिया सम्पादन करता है, तब वह स्निग्धकारिता गुणविशिष्ट है, इस-लिये वह सौम्य है।

उक्त जलाधिक्ययुक्त आहारीय रस यकृत्प्लीहामें जा कर लाल हो जाता है अर्थात् रसधातु शरीरस्थ विशुद्ध तेज (रञ्जक नामक पित्त) द्वारा रञ्जित हो कर रक्त कहलाने लगता है। रक्त शब्द देखो।

रस धातुका अर्थ जाना है। यह रात दिन चलता रहता है इसीसे इसको रस कहते हैं। यह रस खाये हुए पदार्थसे एक ही दिनमें उत्पन्न हो कर ३०१५ कला अर्थात् पांच दिनसे कुछ अधिक समयमें एक एक धातुमें

रहता है और २५ दिन ७५ कलाके बाद एक पुरुषके शुक्र और स्त्रीके आर्त्तवरूपमें परिणत होता है।

उक्त रस शब्द, अर्चि और जलकी गतिकी तरह अत्यन्त सूक्ष्मरूपमें सारे शरीरमें सञ्चरण करता है अर्थात् शब्दकी तरह तिर्यक् भावमें, अर्चिकी तरह ऊपर और जलकी तरह नीचेकी ओर जाता है।

रसधातु जब एक महीनेमें शुक्ररूपमें परिणत होता है, तब वाजीकरणादि औषधका सेवन करनेसे वह जल्दी क्यों नहीं गिरता ? इसका उत्तर यही है, कि जिन सब औषधोंसे वाजीकरणादि कार्य्य होता है, उन सब औषधोंका यदि उपर्युक्त नियमसे प्रयोग किया जाय, तो वे अपने बल और गुणकी उत्कर्षताके कारण विरेचक औषधकी तरह काम करके शुक्रको बहुत जल्द गिरा देते हैं।

रसधातु जब एक महीनेमें शुक्र बनता है, तब बाल्यावस्थामें जो उसका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता, सो क्यों ? इसका उत्तर यह है, कि जिस प्रकार पुष्पकी कलीमें गंध रहती है वा नहीं इसका अनुभव नहीं होता, पर जब वही कली खिल कर पुष्पके आकारमें परिणत होती है, तब वह गंध चारों ओर फैलने लगती है, उसी प्रकार बाल्यावस्थामें शुक्र प्रच्छन्नभावमें रहता है। सूक्ष्मताके कारण उसका कोई चिह्न दिखाई नहीं देता। पीछे वयोवृद्धिके साथ साथ उसका लक्षण दिखाई देने लगता है।

रसधातु सभी प्रकारके धातुओंका पोषक होने पर भी वह वृद्ध मनुष्यके शरीरमें उतना हितसाधक नहीं होता अर्थात् वह रसधातु उनके रक्तादि अन्यान्य धातुओंका पोषण कार्य्य न करके केवल जीवनधारणमें सहायता करता है।

देहमें रसधातुकी अधिकता होनेसे हृदयोत्क्लेद, वमनेच्छा और प्रसेक (लालस्राव) होता है। शरीरका रसधातु क्षय होनेसे हृदयवेदना, हृत्कम्प, हृदयकी शून्यता और तृष्णा उत्पन्न होती है।

रसधातुके दूषित होनेसे भोजनमें अनिच्छा, अरुचि, अपाक, अङ्गमर्द, ज्वर, हृल्लास (वमनेच्छा), परितृप्त, भोजनकी तरह तृप्तिबोध, अङ्गकी गुरुता, हृद्रोग, पाण्डुरोगके सभी स्रोतोंका अवरोध, कृशता, मुखवैरस्य, अवसन्नता और अकालमें वलिपलित तथा दृष्टिहीनता आदि लक्षण दिखाई देते हैं। (सुश्रुत)

३ परब्रह्म। वह परब्रह्मकी एकमात्र रसशब्दवाच्य है। ४ विष, जहर। ५ वीर्य्य। ६ गुण। ७ राग। ८ कोई तरल पदार्थ। ९ गन्धरस। १० जल, पानी। ११ पारद, पारा। पारेको श्रेष्ठ रस कहा है। पारद देखो। १२ शिलारस। १३ हिंगुल, शिंगरफ। १४ शृङ्गारादि दश प्रकारका स्थायिभाव। शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत ये आठ रस हैं। शान्तको कोई कोई रस नहीं कहते। इन आठ रसोंमें यथाक्रम रति, उत्साह, शोक, भय, विस्मय, हास्य, जुगुप्सा और क्रोध ये सब स्थायिभाव उपस्थित होते हैं।

साहित्यदर्पणमें शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ प्रकारके रस कहे गये हैं। (साहित्यद० ३।२०८)

रत्नकोषमें उक्त नौ प्रकारके रसोंको ही नाट्यरस कहा है। (रत्नकोष)

अमरटीकामें दश प्रकारके रसोंका उल्लेख देखनेमें आता है, जैसे—शृङ्गार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स, रौद्र, वात्सल्य और शान्त।

शृङ्गारादि आठ प्रकारका रस सर्ववादिसम्मत है। किन्तु शान्त और वात्सल्यरसमें सबोंकी एक राय नहीं है। एक एक रसमें एक एक स्थायिभाव उपस्थित होता है। इसके सिवा उन सब रसोंके आलम्बन, विभाव और उद्दीपन विभाव आदि हुआ करते हैं।

(साहित्यद० ३।३१)

विभाव, अनुभाव और सञ्चारिभाव द्वारा प्रकाशित रत्यादि जो स्थायी भाव है उसे रस कहते हैं। इन सब भावों द्वारा रस उत्पन्न होता है। जिस प्रकार दूधमें दूसरी वस्तु मिलानेसे वह वही हो जाता है उसी प्रकार विभावादि द्वारा रत्यादि स्थायिभाव रसरूपमें परिणत होता है।

सत्त्वगुणके उद्रेकके कारण अखण्ड स्वरूपानन्द द्वारा चिन्मयस्वरूप तथा रसास्वादनकालमें

ज्ञानके असङ्गत्वके कारण ब्रह्मास्वाद सहोदर अर्थात् ब्रह्मज्ञानकालमें जिस प्रकार अन्यज्ञान रहित हो ब्रह्मानन्दमें विभोर होता है उसी प्रकार रसज्ञानमें भी अन्य विषयक ज्ञानशून्य हो केवल रसज्ञानमें निमग्न होता है।

चमत्कारित्वको ही रसका सार कहा है। करुणादि रसमें जो अत्यन्त सुख मालूम होता है, मनस्वियोंका अनुभव ही उसका प्रमाण है।

रसोंमें शृङ्गाररस प्रथम है। शृङ्गाररसके लक्षण साहित्यदर्पणमें इस प्रकार कहे हैं,—मन्मथोद्भेद अर्थात् कामोद्रेकसे इस रसकी उत्पत्ति होती है। इस रसका नायक उत्तम प्रकृतिवाला तथा वेश्या, परोढ़ा और अनुरागिणी स्त्री भिन्न नायिका होगी। इसमें आलम्बन अर्थात् तदाश्रय विभाग होगा। दक्षिणादि नायक (दक्षिण, अनुकूल, धृष्ट और शठ) चन्द्र, चन्दन, भ्रमररव और कोकिल कूजनादि उद्दीपन भाव तथा भ्रू विक्षेप और कटाक्षादि अनुभव होगा। इस रसमें उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्साको छोड़ कर अन्य-भाव व्यभिचारीभाव होंगे। इस रसका स्थायिभाव रति है। इसका रंग सांवला है तथा अधिष्ठात्रीदेवता विष्णु हैं।

यह दो प्रकारका है—विप्रलम्भाख्य और सम्भोगाख्य। जहां नायक और नायिकाका अनुराग आपसमें खूब बढ़ जाता, फिर भी अभिलाष पूरा नहीं देखा है अर्थात् नायक वा नायिकाकी इच्छा पूरी नहीं होती वहां विप-लम्भाख्य शृङ्गार होगा। (साहित्यद० ३।२११-१२)

इस विप्रलम्भाख्य शृङ्गारमें पहले नायकका पूर्वराग हुआ करता है। छिपके नायक वा नायिकाके परस्पर दर्शन वा गुणमिश्रणसे उन्हें पहले अनुराग उत्पन्न होता है। पीछे उनकी अप्राप्तिसे अर्थात् नायक वा नायिका-का सम्मिलन नहीं होनेसे जो अवस्था होती है उसे पूर्वराग कहते हैं। दूत, बन्दी वा सखीके मुखसे श्रवण तथा इन्द्रजाल, चित्र, स्वप्न वा साक्षात् रूपमें दर्शन होता है।

यह पूर्वराग फिर मान, प्रवास, करुण और करुणा-त्मकके भेदसे चार प्रकारका है। (साहित्यदर्पण ३।२१३-१४)

नायक और नायिकाके पूर्वरागके बाद अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, सम्प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण ये दश प्रकारकी अनङ्गदशा उपस्थित है।

परस्पर सम्मिलनकी इच्छाका नाम अभिलाष, पर-स्पर समागमके उपाय-ढूढ़नेका नाम चिन्ता, एक दूसरेके गुणादि स्मरण और कथन, सजीव वा निर्जीवके प्रति-ज्ञान नहीं रहनेका नाम उन्माद, चित्तके भ्रमवशतः अलक्ष्य-में वाक्यप्रयोगका नाम प्रलाप, सर्वदा दीर्घनिश्वास, पाण्डुता और कृशताका नाम व्याधि, अङ्ग और मनकी हीन चेष्टताका नाम जड़ता है। ये ही नौ प्रकारकी कामदशा वर्णनीय हैं। शेष दशामें रसका विच्छेद होता है अर्थात् मृत्यु होती है, इस कारण उसका वर्णन करना उचित नहीं। नायक और नायिकाका अभिलाष यदि शीघ्र हो पूर्ण होने पर हो, तो मृतप्राय कह कर वर्णन किया जा सकता है, किन्तु मृत्यु-वर्णन कभी भी न करे, नहीं तो रसभङ्ग होगा। (साहित्यदर्पण ३ परि०)

यह पूर्वराग फिर नीली, कुसुम्भ और मञ्जिष्ठाके भेदसे तीन प्रकारका है। जहां मनोगत प्रेम अत्यन्त बढ़ कर भी नाशको प्राप्त नहीं होता उसे नीली राग, जहां प्रेम अपगत हो कर शोभा पाता है उसे कुसुम्भ राग और जहां प्रेम अपगत न हो कर बहुत शोभा पाता है वहां उसे मञ्जिष्ठा राग कहते हैं।

(साहित्यद० ३।२१७)

जहां नायक और नायिका, दोमेंसे एकका देहान्त हो जाय तथा फिरसे इनके आपसमें मिलने पर यदि नायक वा नायिकामेंसे कोई विमनायमान हो, तो करुणविप्र-लम्भाख्य शृङ्गाररस होता है। (साहित्यद० ३।२२४)

नायक और नायिकामें अत्यन्त प्रेम हो कर दर्शन और स्पर्शनादि अर्थात् चुम्बन-परिरम्भणादि प्राप्त होनेसे उसको सम्भोग शृङ्गार कहते हैं।

विप्रलम्भाख्य शृङ्गारके बिना सम्भोगकी पुष्टि नहीं होती। जिस प्रकार वस्त्रादि रंगनेके बाद उसे यदि पुनः रंगमें डुबो दिया जाय, तो उसका रंग जिस प्रकार बढ़ता ही जाता है उसी प्रकार विप्रलम्भाख्य शृङ्गारके बाद सम्भोगशृङ्गार बढ़ता है। (साहित्यद० ३ परि०)

विकृत आकार, विकृत वाक्य, विकृतवेश और विकृत चेष्टादि द्वारा हास्यरसकी उत्पत्ति होती है। इस रसका स्थायिभाव हास्य, देवता प्रमथ और वर्ण श्वेत है। लोगोंके इसका विकृत आकार, विकृत चेष्टा और विकृत वाक्यादि देख कर हंसी उड़ानेसे वह इसका आलम्बन विभाग तथा उसमें चेष्टा अर्थात् विकृत आकार, विकृतरूप और विकृत वेशादि जो चेष्टा होगी वह उद्दीपन विभाग तथा अक्षिसङ्कोच और वदनस्मेरतादि अनुभाव, निद्रा, आलस्य और अवहित्थादि इसका व्यभिचारिभाव होगा। इसी प्रकार रौद्रमें क्रोध, वीरमें उत्साह, भयानकमें भय, वीभत्समें जुगुप्सा, अद्भुतमें विस्मय, शान्तरसमें निर्वेद और शम स्थायिभाव हुआ करता है।

१५ किसी पदार्थका सार, तत्त्व। १६ नौकी संख्या। १७ सुखका अनुभव, आनन्द। १८ प्रेम, मुहब्बत। १९ विहार, काम-क्रीड़ा। २० उमङ्ग, जोश। २१ गुण, सिफत। २२ किसी विषयका आनन्द। २३ वनस्पतियों या फलों आदिमें-का वह जलीय अंश जो उन्हें कूटने, दबाने या निचोड़ने आदिसे निकलता है। २४ शोरबा, जूस। २५ वह पानी जिसमें मीठा या चीनी घुली हुई हो, शरबत। २६ वृक्षका निर्यास। २७ लासा, लुआब। २८ घोड़ों और हाथियोंका एक रोग। इसमें उनके पैरोंमेंसे जहरीला पानी बहता है। २९ वैद्यकमें धातुओंको फूंक कर तैयार किया हुआ भस्म। इसका व्यवहार औषधके रूपमें होता है। ३० केशवके अनुसार रगण और सगण। ३१ बोल नामक गन्धद्रव्य। ३२ एक प्रकारकी भेड़। यह गिलगितसे उत्तर और पामीरमें मिलती है। ३३ भांति, तरह। ३४ मनकी तरंग, मौज।

रसक (सं० पु०) रस-संज्ञायां कन्। १ निष्क्वाथमांस, मांसका रसा। (क्ली०) २ स्फटिकारी, फिटकरी। ३ खर्परीतुत्थक, खपरिया।

रसककारवेल्लक (सं० पु०) पतला खपरिया, संगबसरी।

रसकदर्दुर (सं० पु०) दलदार मोटा खपरिया या संगबसरी।

रसकर्पूर (सं० क्ली०) सफेद रंगकी एक प्रकारकी प्रसिद्ध उपधातु जिसका व्यवहार औषधमें होता है, रसकर्पूर। यह प्रायः हिंगुलके समान होता है, इसीलिये इसको कुछ लोग शिंगरफ भी कहते हैं। एक और प्रकारका रसकपूर होता है जो वास्तवमें पारेकी सफेद भस्म होती है और इसका व्यवहार प्रायः युनानी चिकित्सामें होता है। वैद्यकमें इसका विषय जो वर्णित है वह इस प्रकार है,—

पांशुलवण और सैन्धवलवणके साथ निर्मल पारेको थूहरके दूधमें घोंट कर लोहेके बरतनमें रखे और खड़िसे मुंह बंद कर दे। पीछे उसे लवण पूर्णभाण्डमें रख कर एक दिन तेज आंच देनेसे कुन्द वा इन्दुके सदृश भस्म सफेद हो जाती है। रसमञ्जरीकारने इसे रसकपूर तथा चन्द्रिकाकारने श्वेतभस्म कहा है। यह रसकपूर लवङ्गके साथ ४ रत्ती भर सेवन करनेसे ऊर्द्ध्वाविरेचन होता है। इसका सेवन कर बार बार जलपान करना उचित है। (रसेन्द्रसारसं०)

भावप्रकाशके मतसे इसकी शोधन-प्रणाली—पारेको संक्षिप्त शोधन कर गेरूमट्टी, ईंट, खड़ि, फिटकरी, सैन्धवलवण, क्षारलवण और बरतन रंगानेकी मिट्टी प्रत्येक वस्तु पारेके बराबर ले कर अच्छी तरह चूर्ण करे। पीछे उसे कपड़ेमें छान कर पारेके साथ एक पहर तक घोंटे। अनन्तर एक थालीमें रख कर दूसरी थाली ऊपरसे ढंक दे। फिर कपड़े और मिट्टीसे दोनों थालोका मुंह बंद कर सुखा ले और फिर उसी प्रकार लेप चढ़ावे। इसके बाद उसमें लगातार चार दिन तक आंच देते रहे। पीछे ठंढा होने पर थालीका मुंह धीरे धीरे खोल कर देखे, कि कपूरकी तरह निर्मल रस हुआ है वा नहीं। अगर हो गया हो, तो उसीको शुद्धरस कपूर जानना चाहिये। यह कपूर बहुत गुणदायक है। देवकुसुम, चन्दन, कस्तूरी और कुंकुमके साथ जो व्यक्ति इस रसका सेवन करता है, उसका फिरंगरोग बहुत जल्द दूर हो जाता है। इससे अग्निदीप्ति, शरीरकी पुष्टि और बलवीर्यकी वृद्धि होती तथा वह सौ स्त्रीगमनमें समर्थ होता है। (भावप्र०)

रसकर्म्मन् (सं० क्ली०) पारेकी सहायतासे रस आदि तैयार करनेकी क्रिया।

रसकल्पना (सं० स्त्री०) दवाई बनानेके समय पारेको रीतिसे रूपमें लाना।

रसकल्पलता (सं० स्त्री०) वैद्यक रसग्रन्थभेद।

रसकल्याणीव्रत (सं० क्ली०) व्रतकर्मविशेष। भविष्योत्तर-पुराणके २२वें अध्यायमें तथा मत्स्यपुराणके ६२वें अध्यायमें इसका विवरण लिखा है।

रसका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका क्षुद्र कुष्ठरोग।

रसकुल्या (सं० स्त्री०) पुराणानुसार कुशद्वीपकी एक नदी-का नाम।

रसकेतु (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

रसकेलि (सं० स्त्री०) १ विहार, क्रीड़ा। २ हँसी ठट्ठा, दिल्लगी।

रसकेशर (सं० क्ली०) कर्पूर, कपूर।

रसकेशरी (सं० पु०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली— पारा १ तोला, गंधक १ तोला, लौंग ५ तोला और विष २ मासा एकत्र कर दंतीके चूर्णमें मर्द्दन करे और उड़द भरकी गोली बनावे। सोंठ या गुड़के साथ इस औषध-का सेवन करनेसे सब प्रकारकी अरुचि, आमवात, विसू-चिका, अग्निमान्द्य और भक्तद्वेषरोग जाता रहता है।

रसकोमल (सं० क्ली०) खनिज पदार्थविशेष।

रसक्रिया (सं० स्त्री०) द्रव्यका घनीभूत सारकरण, शरीर पर रसौषध मर्द्दन या स्वेददान।

रसकोरा (हिं० पु०) रसगुल्ला नामकी मिठाई।

रसखर्पर (सं० पु०) खपरिया, संगबसरी।

रसखान—पिहानीके रहनेवाले एक कवि। इनका नाम सैयद इब्राहीम था। १६३० ई०में इनका जन्म हुआ था। ये थे तो मुसलमान पर भगवान्‌में इनकी अनुपम भक्ति थी। ये वृन्दावनमें रह कर भगवद्गुणगान किया करते थे। भक्तमालमें इनकी कथा लिखी हुई है।

रसखीर (हिं० स्त्री०) चीनीके शर्बत अथवा ऊखके रसमें पकाये हुए चावल, मीठा भात।

रसगतज्वर (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार शरीरकी रस धातु-में समाया हुआ ज्वर। कहते हैं, कि ज्वर अधिक दिनोंका हो जानेसे शरीरके रस तक पहुंच जाता है और उससे ग्लानि, वमन और अरुचि आदि होती है।

रसगन्ध (सं० क्लो०) १ बोल नामक गन्धद्रव्य। (पु०) २ गन्धरस, रसांजन।

रसगन्धक (सं० पु०) रसगन्ध स्वार्थे-कन्। १ गन्धरस, रसौत। २ गंधक। ३ हिंगुल, शिंगरफ।

रसगन्धकसम्भूत (सं० क्ली०) हिंगुल, शिंगरफ।

रसगर्भ (सं० क्ली०) १ रसाञ्जन, रसौत। २ हिंगुल, शिंगरफ।

रसगुग्गुल (सं० क्ली०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली— शोधित पारा १०० रत्ती, चीनी ३० रत्ती, शोधित महि-षाक्ष गुग्गुल ४०० रत्ती, घी १०० रत्ती, इन्हें पातनयन्त्रसे अच्छी तरह मर्द्दन कर २० गोली बनावे। इसके सेवनका नियम पूर्वोक्त भैरवरसकी तरह है, अर्थात् प्रथम तीन दिन तीन तीन करके और चौथे दिनसे एक एक करके सेवन करे। १४ दिनमें कुल औषध शेष हो जायगा। खानेका नियम इस प्रकार है—पहले दिन पादांश, दूसरे दिन आधा और उसके बाद तिहाई परिमाणसे खाना उचित है। गुड़ मिला हुआ व्यञ्जन और मसूरकी दालका जूस बहुत लाभदायक है। तरकारीमें पुनर्नवा, परवलका पत्ता, तिक्तपत्री, गोखरू और पुटपत्रीको घीमें भून कर खाने कहा है। लवण खाना निषिद्ध है। उसके बदले चीनी काममें लावे। अन्यान्य मसालेके बदले लवङ्ग, मंगरेले, हींग और जीरेका व्यवहार करना होगा। इसमें भैरव-रसोक्त सभी नियम प्रतिपाद्य हैं। रसगुग्गुलका सेवन करनेसे कुष्ठ और उपदंश आदि नाना प्रकारके रोग दूर हो कर देहका लावण्य और आयुकी वृद्धि होती है।

इसका धूम—शुद्ध रस, रांगेका भस्म, हर्रेका भस्म, कोमल केले, फूलका भस्म, सुपारीका भस्म प्रत्येक १ तोला, हिंगुल, हरिताल, गन्धक, तूतिया, पद्मकाष्ठ, सरल काष्ठ, श्वेत चन्दन, रक्तचन्दन, देवदारु, नागेश्वर-काष्ठ प्रत्येक १ माशा संग्रह करे। इन्हें एकत्र चूर्ण कर लोहेके बरतनमें लोहेके हत्थेसे अमरूदके रस, तुलसी-पत्रके रस, पुराने गुड़ और घीके साथ घोटे और बादमें छः गोली बनावे। इसका धूआं लेना होता है। उसका नियम यह है, कि रोगीके मुंह, नाक और कानको छोड़ कर और सब अङ्ग सफेद कपड़ेसे ढंक दे। किसी बर तनमें निर्धूम आग रख उसमें एक गोली दे। आगका

बरतन ऐसे स्थानमें रखे जिससे धूआं सारे शरीरमें लग सके। अधिक पीड़ा दिखाई देनेसे २ अथवा ४ गोली तकका धूआं लेना उचित है। इससे पसीना निकल कर रोगकी शान्ति होती है। धूआं ले चुकनेके बाद पसीनेको सफेद कपड़ेसे पोंछ डाले। तीन दिन इस प्रकार करते रहनेसे रोग आरोग्य होता है। किन्तु एक मास सुपथ्य सेवन करके बड़ी सावधानीसे रहना होगा। इसमें साग, खट्टा, दही, गुड़, अन्न और खीर आदि खाना मना है। तीन दिनके बाद गरम जलमें स्नान करना कर्त्तव्य है। इस क्रियासे कुष्ठ और उपदंश आदि रोग शान्त होते हैं। (भैषज्यर० उपदंशाधि०)

इसका प्रलेप—मोरचा लगे हुए लोहेके बरतनमें लौहदण्ड द्वारा विषतिन्दुकको अच्छी तरह घोंटे। पीछे यथाक्रम थूहरका मूल, स्वर्णमाक्षिक, तूतिया और पारा इन्हें एकत्र घिस कर लिङ्गमें प्रलेप दे। वह प्रलेप सूखने पर फिर उसके ऊपर प्रलेप दे। प्रलेपको कभी भी उखाड़ कर न फेंके। इस प्रकार बराबर औषधका सेवन करनेसे रोग बहुत जल्द आरोग्य होता है।

रसगुड़िका (सं० स्त्री०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रसकपूर एक भाग, विड़ङ्ग, मिर्च और अवरक प्रत्येक तीन तीन होगा। वनपालङ्कके रसमें घोंट कर प्रतिदिन रत्ती भर सेवन करनेसे गुह्याशं आरोग्य होता तथा अग्निकी वृद्धि होती है। (भैषज्यरत्ना० अर्श०)

रसगुल्ला (हिं० पु०) एक प्रकारकी छेनेकी मिठाई। यह गुलाब जामुनके समान गोल होती और शीरेमें पड़ी हुई होती है।

रसग्रह (सं० त्रि०) १ मर्मग्रह। (स्त्री०) २ जिह्वा, जीभ।

रसग्राम—बंगालके अन्तर्गत एक प्राचीन गांव। (ब्र० ख० ७।३६)

रसग्राहक (सं० त्रि०) रसोस्वादग्रहण शक्तिसम्पन्न।

रसघन (सं० त्रि०) १ पर्याप्त रसविशिष्ट, जो बहुत अधिक स्वादिष्ट हो। (पु०) २ आनन्दघन, श्रीकृष्णचन्द्र।

रसघ्न (सं० पु०) रसं रसस्य दोषावहशक्तिं हन्तीति हन-टक्। टङ्कण, सुहागा।

रसचन्द्रिकावटी (सं० स्त्री०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—भांगका बीया, धतूरेका बीया, कंटकारी, हिजल और वृद्धदारुका बीया, पारा और गंधक एकत्र कर अदरकके रसमें मर्द्दन करना होगा। पीछे उसकी उड़द भरकी गोली बनानी होगी। इसका अनुपान जल है। सबेरे इस औषधका सेवन करना होता है। इसका सेवन करनेसे शिरोरोग, आमवात, मन्यास्तम्भ और गलग्रहरोग अति शीघ्र प्रशमित होता है।

रसछन्ना (हिं० पु०) ऊखका रस छाननेकी चलनी।

रसज (सं० पु०) रसाज्जातः जन-ड। १ गुड़। २ सुरा-बीज, शराबकी तलछट। ३ रक्त। (सुश्रुत सूत्रस्था० १४ अ०)। (त्रि०) ४ रसजात, रससे उत्पन्न।

रसजात (सं० क्ली०) रसांजन, रसौत।

रसज्ञ (सं० त्रि०) रसं जानाति ज्ञा-क। १ रसवेत्ता, रस जाननेवाला। २ रसायनी। ३ काव्य-मर्मज्ञ। ४ निपुण, कुशल।

रसज्ञता (सं० स्त्री०) रसज्ञस्य भावः तल-टाप्। रसज्ञका भाव या धर्म।

रसज्ञा (सं० स्त्री०) १ गंगा। २ जिह्वा, जीभ।

रसज्ञान (सं० क्ली०) रसस्य ज्ञानं। रसबोध।

रसज्येष्ठ (सं० पु०) रसेषु ज्येष्ठः। १ मधुर या मीठा रस। २ शृङ्गाररस।

रसडली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गन्ना जिसका रंग नीलापन लिये हरा होता है और जो प्रायः बीजापुर और इसके आस-पास बहुत होता है। इसे रसवली भी कहते हैं।

रसड़ा—१ युक्तप्रदेशके बलिया जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५° ४६´ से २६° ११´ उ० तथा देशा० ८३°-३८´ से ८४° ३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४३३ वर्गमील और जनसंख्या तीन लाखके करीब है। इसमें दो शहर और ६६७ ग्राम लगते हैं। यह तहसील उत्तर गोगरासे ले कर दक्षिण छोटी सरयू तक फैली हुई है। यहां ईख और धान जिले भरसे अच्छा उपजता है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २५° ५१´ उ० तथा देशा० ८३°५२´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या दश हजारके लगभग है। यहां वाणिज्य जोरों चलता है। शहरमें भाड़ियोंसे घिरा नाथ बाबा नामक एक तालाब है। तालाबके किनारे बहुतसे मट्ठोंके ढोले हैं जिन्हें

लोग सतीका कीर्त्तिस्तम्भ बतलाते हैं। शहरमें १८५६-ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। यहांसे ईख, चमड़े और कार्बनेट आव सोडेकी रफ़्तनी तथा रुई, कपड़े, लोहे और मसालेकी आमदनी होती है। शहरमें एक अस्पताल और एक स्कूल है।

रसतन्मात्रा (सं० स्त्री०) पाँच तन्मात्राओं या महत्त्वोंमेंसे चौथे तत्त्व जलकी तन्मात्रा।

रसतम (सं० पु०) उत्कृष्ट रस, सार रस।

रसता (सं० स्त्री०) रसस्य भावः तल-टाप्। रसका भाव या धर्म।

रसतालेश्वर (सं० पु०) वैद्यकमें एक प्रकारका रस जिसका व्यवहार कुष्ठ रोगमें होता है। इसके बनानेका तरीका—शंख, करंज, हलदी, भिलावे, घीकुआर, गदहपूरना, गंधक, पारे, मरिच और विड़ंग इन सब द्रव्योंको एकत्र कर गोमूत्रमें पाक करे। दोषके बलाबलके अनुसार इसकी मात्रा स्थिर करनी होती है। यह औषध मधुके साथ सेवन करनेसे कण्डु, विचर्चिका और कुष्ठ अति शीघ्र विदूरित होता है। (रसेन्द्रसारस० कुष्ठरोगाधि०)

रसतेजस् (सं० क्ली०) रसात् रसजन्यं वा तेजो यस्य। रक्त, लहू।

रसत्याग (सं० पु०) दूध, दही, घी, तेल, मीठा पकवान आदि स्वादिष्ट पदार्थोंका त्याग करना जो एक प्रकारका नियम या आचार माना जाता है।

रसत्व (सं० क्ली०) रसका भाव या धर्म, रसता।

रसद (सं० त्रि०) १ आनन्ददायक, सुखद। २ स्वादिष्ट, मजेदार। (पु०) ३ चिकित्सा करनेवाला, इलाज करनेवाला व्यक्ति।

रसद (फा० स्त्री०) १ वह जो बंटने पर हिस्सेके अनुसार मिले, बांट। २ कच्चा अनाज जो पकाया न गया हो, भोजन बनानेके लिये अन्न आदि। ३ सेनाका वह खाद्य-पदार्थ जो उसके साथ रहता है।

रसदा (सं० स्त्री०) श्वेतनिर्गुण्डी, संभालू।

रसदा[illegible] (हिं० वि०) १ जिसमें किसी प्रकारका रस हो, र[illegible]। २ स्वादिष्ट, मजेदार।

रसद[illegible]का (सं० स्त्री०) रसं दालयति इति दल-णिच्-ण्वुल् टाप् अत इत्वं। पुण्ड्रकेक्षु, पौंड़ा गन्ना। (राजनि०)

रसद्राविन् (सं० पु०) रसं द्रावयतीति द्रु-णिच्-णिनि। मधुर जम्बीर, मीठा जंबीरी नीबू।

रसधातु (सं० पु०) रसात्मको धातुः। १ पारद, पारा। २ शरीरकी सात धातुओंमेंसे रस नामक धातु।

विशेष विवरण 'रस' शब्दमें देखो।

रसधेनु (सं० स्त्री०) रसकल्पिता धेनुः। पुराणानुसार गुड़ आदिकी बनाई हुई वह गौ जो दान की जाती है। इस गौकी कल्पना कर दान करना होता है।

"रसधेनु महाराज! कथयामि समासतः।
अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशान्तरे॥"
(वराहपु० श्वेतोपाख्यानमें रसधेनुभा०)

वराहपुराण और हेमाद्रिके दानखण्डमें इस दानका विषय और विधान वर्णित है। जो विधिपूर्वक यह दान करते हैं। उनको विष्णुलोकमें गति होती है।

रसन (सं० क्ली०) रस-भावे ल्युट्। १ स्वाद लेना, चखना। २ ध्वनि। रस्यते रसयत्यनेन वा रस-करणे ल्युट्। ३ जिह्वा, जीभ। ४ कफका एक नाम। (त्रि०) ५ पसीना लानेवाला।

रसन (हिं० पु०) रस्सा।

रसना (सं० स्त्री०) रस-युच्-टाप् च। १ जिह्वा, जीभ। २ न्यायके अनुसार रस या स्वाद जिसका अनुभव रसना या जीभसे किया जाता है।

"रसस्तु रसनाग्राह्यो मधुरादिरनेकधा।
सहकारी रसज्ञाया नित्यतादि च पूर्ववत्॥
घ्राणस्य गोचरो गन्धो गन्धत्वादिरपि स्मृतः।
तथा रसो रसज्ञायास्तथा शब्दोऽपि च श्रुतेः॥"
(भाषापरि०)

३ रास्ना या नागदौनी नामकी ओषधि। ४ गन्धभद्रा नामकी लता। ५ काञ्ची, चन्द्रहार। ६ रज्जु, रस्सी। ७ करधनी, मेखला। ८ लगाम।

रसना (हिं० क्रि०) १ धीरे धीरे बहना या टपकना। २ गोला हो कर या पानीसे भर कर धीरे धीरे जल या और कोई द्रव पदार्थ छोड़ना या टपकाना। ३ रसमें मग्न होना, रससे पूर्ण होना। ४ रसपान करना, स्वाद लेना। ५ प्रेममें अनुरक्त होना, मुहब्बतमें पड़ना। ६ तन्मय होना, परिपूर्ण होना।

रसनाथ (सं० पु०) रसानां नाथः। पारद, पारा।

रसनापद (सं० क्ली०) रसनायाः पदं स्थान। नितम्ब-देश, चूतड़।

रसनाभ (सं० क्ली०) रसाञ्जन, रसौत।

रसनायक (सं० पु०) रसानां नायकः नेता रसायन विद्याविष्कारकत्वादस्य तथात्वं। १ शिव, महादेव। २ पारद, पारा।

रसनारव (सं० पु०) वह पक्षी जिन्हें बोलनेके लिये केवल जीभ ही होती है दांत नहीं होते।

रसनालिह (सं० पु०) रसनया लेढ़ीति लिह्-क्विप्। १ कुक्कुर, कुत्ता। (त्रि०) २ रसना द्वारा लेहनकारी, जीभसे चाटनेवाला।

रसनिगड़ (सं० पु०) रसनियामक श‍ृङ्खलरूप औषध। आकंद, सीजके दूध, पलासबीज, गुग्गुल तथा दुगने सेंधा नमकके साथ पारा मर्दन करनेसे यह औषध बनता है। (रसेन्द्रसारसं०)

रसनिधान—एक कवि। इनका बनाया एक भैरव उदाहरणार्थ नीचे देते हैं,—

> "देवमणि दिनमणि भान दिन कहांसे तिमिर हरत
> रैनि तपनि त्रिगुण द्वादश आत्म नेत्र मार्त्तण्ड।
> हल्नरामपुषा जगतारण जनचक्षु
> जगवन्दन प्राणहरण प्रचण्ड॥
> सूरज सुर सहस्र गृह तू वेजानपति
> अगति तू अगति सप्तद्वीप नवखण्ड।
> रसनिधान सेवकको दीजे सन्तुष्ट कीजे
> दीजिये सुर ताल अखण्ड॥"

रसनिर्यास (सं० पु०) शालवृक्ष, शालका पेड़।

रसनिवृत्ति (सं० स्त्री०) आस्वादनशक्तिकी हीनता।

रसनीय (सं० त्रि०) १ आस्वादनके योग्य, चखने लायक। २ स्वादिष्ट, मजेदार।

रसनेत्रिका (सं० स्त्री०) रसो नेत्रमिव तद्वस्त्यस्या इति रसनेत्र-ठन्। मनःशिला, मैनसिल।

रसनेन्द्रिय (सं० स्त्री०) रसना जिससे स्वाद या रस लिया जाता है, जीभ।

रसनेष्ट (सं० पु०) रसनायाः इष्टः। इक्षु, ऊख।

रसनोपमा (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी उपमा जिसमें उपमाओंकी एक श‍ृंखला बंधी होती है और पहले कहा हुआ उपमेय आगे चल कर उपमान होता जाता है। यह "उपमा" और "एकावली" को मिला कर बनाया गया है। इसे गमनोपमा भी कहते हैं।

रसपति (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ पारद, पारा। ३ पृथ्वीपति, राजा। ४ रसराज, श‍ृंगाररस।

रसपरित्याग (सं० पु०) जैनोंके अनुसार दूध, दही, चीनी, नमक या इसी प्रकारका और कोई पदार्थ बिलकुल छोड़ देना और कभी ग्रहण न करना।

रसपर्पटी (सं० स्त्री०) ग्रहणी अधिकारोक्त औषध-विशेष। इस औषधका सेवन कर जिसका रोग दूर नहीं होता उसकी व्याधिको असाध्य जानना चाहिये। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—

इस पर्पटी क्रियाके पहले पारेका मलदोष दूर करना उचित है। निम्नोक्त-आश्रयसे यह दोष दूर करना होता है। पहले ८ तोला पारा ले कर घृतकुमारीके रसमें घोंटना होगा। इससे पारेका मलदोष, त्रिफलाचूर्णके साथ घोंटनेसे वह्निदोष तथा चितापत्तेके रसमें घोंटनेसे विष-दोष नष्ट होता है। पीछे यथाक्रम जयन्ती, रेंड़ी, अदरक और काममखलीके पत्तोंके रसमें डाल कर घोंटे। जब तक रस बिलकुल सूख न जाय, तब तक घोंटना बंद न करे। इसी प्रकार पारा ले कर गंधकके साथ मिला लेना होगा। जो गंधक सुग्गेकी पूंछकी तरह कान्तिविशिष्ट, मक्खनकी तरह दीप्तिशाली, चिकनी, कठिन और स्निग्ध होती है वही श्रेष्ठ है। इस प्रकार ८ तोला गंधक छोटे छोटे तंडुलाकारमें बना कर भृङ्गराजके रसमें ७ बार भावना दे और धूपमें सुखा कर धूलके समान चूर्ण कर ले। पीछे उस गंधकको लोहेके बरतनमें रख कर निर्धूम बेरकी लकड़ीकी आंचमें गलावे और तब उस भृङ्गराजके रसमें डाल दे। डालते ही गन्धक कठिन हो जायगी। अनन्तर गंधकको धूपमें सुखा कर तथा अच्छी तरह चूर्ण कर केतकीपुष्पकी धूलके समान बनाना होगा।

इस प्रकार शोधित पारा और शोधित गंधक समान भाग ले कर अच्छी तरह मर्दन करना होगा। जब तक निश्चन्द्र अर्थात् पारा अदृश्य न हो जाय तब तक मर्दन करते रहे। चूर्ण कज्जलके समान होने पर उसे लोहेके

बरतनमें रख निधूंम बेरकी लकड़ीकी आंचमें गला कर तैलवत् करना होगा। पीछे गोबरके ऊपर एक कच्चाके केलेका पत्ता बिछा कर उस पर द्रवीभूत कज्जली ढाल दे और ऊपरसे गोबर भरा हुआ एक दूसरा पत्ता बिछा दे। द्रवीभूत कज्जलीका जो अंश कठिन हो कर लोहेके बरतनमें लग जायगा उसे न उठावे। यह पर्पटी यदि मयूरपुच्छकी चन्द्रिकाके सदृश हो जाय, तो जानना चाहिये कि यह बिलकुल तैय्यार हो गई। उत्तम दिन देख कर इसका सेवन करना होता है।

वातोदररोगमें १ रत्ती जीरा और १ रत्ती हींगके साथ इसका सेवन करना चाहिये। पर्पटी खानेके बाद तुरत जल पीना उचित नहीं है। प्रथम दिन दो रत्ती और बाद एक एक रत्ती रोज बढ़ा कर १० रत्ती तक सेवन करे, १० रत्तीसे अधिक मात्रा न बढ़ानी चाहिये। २१ दिन यह औषध सेवन करनेका नियम है।

इस औषधके व्यवहारकालमें वायु और रौद्रसेवन, क्रोध, अधिक चिन्ता, खानेके समय व्यतिक्रम, व्यायाम, परिश्रम, स्नान और बहुत बोलना वर्जनीय है। घी, सैन्धव, जीरा और धनियासे तैयार किया हुआ व्यञ्जनादि, शालितण्डुलका अन्न, वास्तूकशाक, कोठादि द्वारा अभक्षित मूंग, परवल, सुपारी, अदरक, काकमकचीका साग; लावादि पक्षीका मांस, मौंगरी, रोहू और काली मछली, जलके साथ सिद्ध दूध, ये सब सुपथ्य बतलाये गये हैं। रम्भाफल निम्बादि तिक्त द्रव्य, उष्णान्न, वराहादि और जलचर आदि पक्षीका मांस, अम्लद्रव्य, दधि, शाक आदि निषिद्ध है। स्त्रियोंके साथ सम्भाषण तक भी न करे। गुड़, चीनी और ईख आदि द्रव्य भक्षणीय है। भूख लगने पर कुछ जरूर खा लेना चाहिये। आधी रातको यदि भूख लगे, तो भी कुछ जरूर खा ले। यदि कुपथ्यके कारण वमन हो जाय, तो नारियलका पानी और दूध पीना उचित है। जब तक अच्छी तरह भूख न लगे, तब तक कुछ भी भोजन न करे। स्वल्पदोष होने पर दुग्धपान हितकर है। जो उक्त नियमका पालन किये बिना औषधका सेवन करता है, वह आरोग्य तो क्या होगा, विविध रोग उसे सताता है। नियमपूर्वक इसका सेवन करनेसे ग्रहणी, अर्श, ज्वर, पाण्डु, कामला, गुल्म, जलोदर और अग्निमान्द्यादि नाना प्रकारके रोग शान्त होते हैं। (भैषज्यरत्ना० ग्रहणीरोगाधि०)

रसपाकज (सं० पु०) रसपाकात् जायते इति जन-ड। १ गुड़। २ शर्करा, चीनी।

रसपाचक (सं० पु०) भोजन बनानेवाला, रसोइया।

रसपुष्प (सं० क्ली०) वैद्यकमें एक प्रकारकी दवा जो गंधक, पारे और नमकसे बनाई जाती है।

रसपूर्तिका (सं० स्त्री०) १ मालकंगनी। २ शतावर।

रसप्रयोग (सं० क्ली०) रसौषध सेवन करनेकी व्यवस्था।

रसप्रबन्ध (सं० पु०) १ नाटक। २ वह कविता जिसमें एक ही विषय बहुतसे परस्पर सम्बद्ध पद्योंमें कहा गया हो।

रसफल (सं० पु०) रसो जलं फले यस्य, रसयुक्तं फलमस्येति वा शाकपार्थिववत् मध्यपदलोपिसमासः। १ नारियलका पेड़। २ आमलकीवृक्ष, आंवलेका पेड़।

रसबन्धकर (सं० पु०) सोमलता।

रसबन्धन (सं० क्ली०) शरीरके अन्तर्गत नाड़ीके एक अंशका नाम।

रसबत्ती (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पलीता जिसका व्यवहार पुराने ढंगकी तोपें और बन्दूकें चलानेमें होता था।

रसबरी (हिं० स्त्री०) रसभरी देखो।

रसभरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका स्वादिष्ट फल। पकने पर इसका रंग पीलापन लिये लाल हो जाता है। यह जाड़े के अन्तमें प्रायः बाजारोंमें मिलता है।

रसभव (सं० क्ली०) रसात् रसे वा भवतीति भू-अच्। रक्त, लहू।

रसभस्म (सं० क्ली०) रसस्य भस्म। पारेका भस्म, भस्म किया हुआ पारा।

रसभाव (सं० पु०) रसस्य भावः। रसधर्म, स्निग्धता आदि।

रसभीना (हिं० वि०) १ आनन्दमें मग्न। २ आर्द्र, तर गीला।

रसभेद (सं० पु०) १ वैद्यकमें एक प्रकारका औषध जो पारेसे तैयार किया जाता है। २ संगीत और नाटक आदिमें वर्जित रससमूहोंका प्रकृत मर्म मालूम करना। ३ रसास्वाद, रसका चखना।

रसभेदिन् (सं० त्रि०) वह पका हुआ फल जो रस आदिकी अधिकतासे फट जाय और जिसमेंसे रस बहने लगे।

रसभोजन (सं० पु०) १ तरल द्रव्य पीना। २ एक उत्सव जिसमें ब्राह्मणोंको सिर्फ आम ही खिलाया जाता है।

रसमण्डूर (सं० क्ली०) वैद्यकमें एक प्रकारका रसौषध। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—हरीतकीका चूर्ण ४ पल, शुद्ध गंधकका चूर्ण २ पल, विशुद्ध मण्डूरका चूर्ण २ पल, भंगरोयेका रस ४ सेर, केशुरियाका रस ४ सेर, इन सब द्रव्योंको एकत्र कर लोहेके खलमें मर्द्दन करना होगा। पीछे उसे धूपमें सुखा लेनेसे चूर्ण तैयार करना होगा। इसकी मात्रा ४ रत्तीसे ले कर ३ मासे तक बढ़ानी होगी। यह औषध घी और मधुके साथ मिला कर सेवन करना होता है। इसका व्यवहार शूल और अम्लपित्तादि रोगमें होता है। (भैषज्यरत्ना० शूलरोगाधि०)

रसमय (सं० त्रि०) रस स्वरूपे मयट्। रसस्वरूप, रसके समान।

रसमय दास—एक वैष्णव पद-कर्त्ता। नीलाचलके गोपीवल्लभपुरमें गोपवंशमें रसमयने जन्म ग्रहण किया था। रसमय श्यामानन्दसे वैष्णव-मन्त्रमें दीक्षित हुए। रसमय बङ्गभाषामें कई एक पद बना कर स्मरणीय हो गये हैं। इनके पांच पुत्रोंमेंसे सबसे बड़े पुत्र गोपीजनवल्लभ एक कवि थे। रसिकमङ्गल ग्रन्थ (दो वर्ष परिश्रमके बाद) उनका ही बनाया हुआ है। यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाण्य है क्योंकि समसामयिक अनुसङ्गी शिष्यने लिखा है।

रसमय दास—गीतगोविन्दके बंगला पद्योंके अनुवादक। ये पुजारी गोस्वामीके शिष्य थे।

रसमयी दासी—एक प्रवीणा स्त्री-कवि। पदकल्पतरुमें इसका एक पद है। दूसरे दूसरे ग्रन्थों भी इसके पद मिलते हैं।

रसमर्द्दन (सं० क्ली०) रसस्य पारदधातोमर्द्दनं। पारदपेषण, वैद्यकमें पारेको भस्म करने या मारनेकी क्रिया।

रसमल (सं० क्ली०) शरीरसे निकलनेवाला किसी प्रकारका मल।

रसमसा (हिं० वि०) १ रंगमें मस्त, आनन्दमग्न। २ पसीनेसे भरा, श्रान्त। ३ तर, गीला।

रसमाणिक्य (सं० क्ली०) कुष्ठरोगका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—वंशपत्र और हरतालको कोंहड़े के जल तथा खट्टे दहीमें यथाक्रम तीन बार या सात बार भावना दे कर सुखा ले। पीछे तण्डुलाकृतिका बना कर शरावक यन्त्रमें रखे और बेरकी पत्तियोंके काढ़ेसे लेप दे। नीचे एक बरतन रखना होगा। यह बरतन जब तक लाल न हो जाय, तब तक कड़ी आंच देनी होगी। ठंढा होने पर उसमेंसे औषधको बाहर निकाल लेना होगा। इससे हरिताल माणिक्यके समान चमकने लगता है। घी और मधु मिला कर प्रति दिन दो रत्ती भर सेवन करनेसे कुष्ठादि नाना प्रकारके रोग नष्ट होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० कुष्ठरोगाधिकार)

रसमातृका (सं० स्त्री०) जिह्वा, जीभ।

रसमारकद्रव्य (सं० क्ली०) पारदमारक द्रव्य, वह वस्तु जिससे पारा मारा जाता है। रसमारकद्रव्य ये सब हैं,—मोथा, वच, चिता, गोखरू, तितलौकी, दन्ती, जातीपुष्प, रास्ना, शरपुङ्ख, घृतकुमारी, चण्डालिनी, ओल, हारमुच, लज्जालु; घोषा, लाक्षा, दन्तोत्पल, अतिबला, पोपल, सम्हालु, बड़ी इलायची, विषलांगुली, शाल, आकन्द, सोमराज, रविभक्ता, काकमाची, श्वेत आकन्द, अपराजिता, वायसतुण्डी, थूहर, बिजबंद, सोंठ, वराहक्रान्ता, बलाम्भिका, कदली, कच्ची इमली, हल्दी, दारुहल्दी, पुनर्णवा, श्वेतपुनर्णवा, धतूरा, काकजंघा, शतमूली, क्षिरिशा, परगाछा, तिल, भेकपर्णी, दूर्वा, मूर्वा, हरीतकी, तुलसी, मूसाकानी। (रसेन्द्रसारसं)

रसमारण (सं० क्ली०) रसस्य पारदस्य मारणं। वैद्यकमें वह क्रिया जिससे पारा मारा या शुद्ध किया जाता है।

पारद देखो।

रसमात्र (सं० क्ली०) १ रसतन्मात्र। २ रसस्वरूप, रसके समान।

रसमाला (सं० स्त्री०) शिलारस नामक सुगन्धित द्रव्य।

रसमुंडी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बंगला मिठाई।

रसमुयाड़ी—बेलुचिस्तान और सिन्धुप्रदेशके मध्यवर्त्ती हाव नदीके मुहाने पर अवस्थित एक अन्तरीप। यह केपमंज नामसे मशहूर है और अक्षा० २४° ५०´ उ० तथा देशा० ६६° ४५´ पू०के बीच पड़ता है। यह स्थान जेबेल-

पाव पर्वतका एक अंश और समुद्रपृष्ठसे प्रायः तेरह सौ फीट ऊँचा है। समुद्रकी गहराई कम होनेके कारण यह बन्दरके उपयोगी नहीं है।

रसमूर्च्छन (सं० क्ली०) रसस्य पारदस्य मूर्च्छनं। पारेका मूर्च्छीकरण। पारद देखो।

रसमूला (सं० पु०) प्राकृत छन्दोभेद।

रसमैत्री (सं० स्त्री०) दो ऐसे रसोंका मिलना जिनके मिलनेसे स्वादमें वृद्धि हो, दो रसोंका उपयुक्त मेल। जैसे—कड़ुआ और तीता ; तीता और नमकीन, नमकीन और खट्टा आदि।

रसयति (सं० स्त्री०) आस्वादन, चखना।

रसयितव्य (सं० त्रि०) आस्वादन योग्य, सुमिष्ट।

रसयितृ (सं० त्रि०) आस्वादग्रहणकारी, चखनेवाला।

रसयोग (सं० पु०) आयुर्वेदोक्त वैज्ञानिक उपायसे मिश्रित एक प्रकारकी औषध।

रसरङ्ग—लखनऊके रहनेवाले एक कवि। ये सम्वत्में विद्यमान थे। इनकी कविता सरस और मनोहर होती थी। इनकी रचनाश्रेणी साधारण कवियोंमें है। इन्होंने व्रजभाषामें कविता की है और वह सराहनीय है—

"सुखमाके सिन्धुको सिंगारके समुन्दर ते
मथि के सरूप सुधा सुखसों निकारे हैं।
करि उपचारे तासों स्वच्छता उतारि तामैं
सौरभ सोहाग श्री सो हास रस ढारे हैं।
कवि रसरंग ताको सत जो निसारे
तासों राधिका बदन बेस विधिने संवारे हैं।
बदन संवारि विधि धोयो हाथ जम्यो रंग
तासों भयो चन्द, कर झारे भये तारे हैं॥"

रसरञ्जन (सं० क्ली०) रसस्य रञ्जनं। पारेका रक्ततासम्पादन।

रसरहस्य (सं० क्ली०) पारद-मारण जारणादिका कौशल।

रसराज—एक कवि। इनकी कविता अच्छी होती था। इनका बनाया काफी गान यों है—

"ये दोउ खेलत हो हो होरी।
नन्दनन्दन वृषभानुनन्दिनी अबीर गुलाब लिये
कर झोरी॥
वृन्दावनकी कुंजगलिनमें बोलत हो हो होरी।
परस्पर रंगमें बोरी॥
कर कंकन कंचन पिचकारी केशर रंग ले दोरी।
छिरकत रंग हुलस हिये हरषे निरख हंसत मुखमोरी
करे चितवन चित चोरी॥
धन वृन्दावन धन गोकुल यह जहां यह रास रच्योरी।
श्रीरसराज व्रज ऊपर छायो वारूं वैकुण्ठ करोरी
मुकत तिन कासी तोरी॥"

रसराज (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—गंधक द्वारा जारित ताम्र १ तोला, गंधक १ तोला और पारा ४ माशा इन्हें ओलके रसमें एक साथ मर्दन कर गजपुटमें पाक करे। ठंढा होने पर उसे नीचे उतार कर २ रत्तीकी गोली बनावे। मधुके साथ इसका सेवन करनेसे प्लीहा, यकृत् और गुल्मरोग प्रशमित होता है।

रसराज (सं० पु०) रसानां धातूनां राजा (राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) इति टच्। १ पारद, पारा। २ रसाञ्जन, रसौत। ३ रसोंका राजा, शृंगाररस।

रसराजरस (सं० पु०) वातव्याधिरोगका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रससिन्दूर ८ तोला, अबरक २ तोला, सोना १ तोला, इन्हें घृतकुमारीके रसमें भिगो रखे। पीछे रांगा, असगंध, लवङ्ग, जैत्री, क्षीरकंकोली प्रत्येक आध तोला उसमें मिला कर ५ रत्तीकी एक एक गोली बनावे। इसका अनुपान दूध और चीनीका जल है। इसका सेवन करनेसे पक्षाघात, अर्दित, हनूस्तम्भ, अपतन्त्र और धनुष्टङ्कार आदि रोग अच्छे हो जाते हैं।

रसराजेन्द्र (सं० पु०) सन्निपात ज्वराधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रस १ पल, तांबा १ पल, अबरक १ पल, सीसा १ पल, रांगा १ पल, गंधक १ पल, इन्हें काकमाचीके रसमें एक साथ मर्दन करे। पीछे रोहितमत्स्य, शूकर, मयूर, और बकरेके पित्तके साथ एक एक कर मर्दन करके त्रिकटुके काढ़ेमें अच्छी तरह घोंटे। इसके बाद उसमें आठ गुना जल डाल कर त्रिकटुके काढ़ेमें सिद्ध करना होगा। सिद्ध करते करते जब आठवां भाग जल रह जाय, तब उसे नीचे उतार ले। पीछे फिरसे त्रिकटुके काढ़ेमें मर्दन करे और एक सौ बार अदरकके रसमें भिगो कर रत्ती भरकी गोली बनावे।

इसका अनुपान तुलसीपत्रका रस है। यह औषध सेवन करनेके बाद शिर पर लगातार जल छोड़ना होगा और यदि दाह उपस्थित हो, तो जल, दधि और अन्न खिलाना होगा। इस औषधके सेवनसे सभी प्रकारके सन्निपातिक ज्वर निवृत्त होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० ज्वररोगाधि०)

रसल (सं० त्रि०) जिसमें रस हो, रसवाला।

रसलीन—एक मुसलमान कवि। इन्होंने १८वीं सदीमें कविता की थी। हरदोई जिलान्तर्गत बिलगराम नामक एक कसबा है जो मल्लावेंसे पांच कोसकी दूरी पर स्थित है। बिलगराममें बहुत दिनोंसे बड़े बड़े विद्वान् मुसलमान होते रहे हैं और अब भी वर्त्तमान हैं। यह स्थान विद्या और गुणोंके लिये इतना विख्यात है, कि लोग बिलगरामी होना एक महत्त्व-सूचक उपाधि समझते हैं। यह उपाधि रसलीनके समयमें भी श्रद्धाभाजन समझी जाती थी, कारण उन्होंने अपनेको बिलगरामी करके लिखा है। आपने अपनेको बाकरपुत्र कहा है।

शिवसिंहसरोजमें इनका उल्लेख इस तरह है,—ये अरबी, फारसीके आलिम फाजिल और भाषाके बड़े निपुण कवि थे। रसप्रबोध नामक ग्रन्थसे इनकी कविताका पूरा परिचय मिलता है। इनके कुतुबखानेमें पांच सौ जिल्द भाषा काव्यकी थीं।

सम्भवतः इनका जन्म संवत् १७४६ ई०में हुआ था। इन्होंने अपना पूरा नाम 'श्री हुसैनो वासती बिलगरामी सैयद, बाकर सुत सैयद, गुलाम नबी रसलीन' लिखा है। इनका बनाया दो ग्रन्थ 'अंगदर्पण' और 'रसप्रबोध' मिलता है। प्रथम ग्रन्थ 'अंगदर्पण' १७६४ ई०में रचा गया था। इसमें १७७ दोहे हैं जिनमें नायिकाके नखशिखका वर्णन है। यह वर्णन बड़ा ही भड़कीला है। इसमें उपमायें, रूपक और उत्प्रेक्षायें चमत्कारकरूपसे हैं। द्वितीय ग्रन्थ 'रसप्रबोध' एक बड़ा ग्रन्थ है। इसमें ११५५ दोहों द्वारा रसोंका विषय विशद्रूपसे और प्रशंसनीय रीतिसे सांगोपांग वर्णित है। इसमें अलंकारोंका विषय बिलकुल नहीं कहा गया है। रसोंका वर्णन भावोंके बिना अच्छा नहीं कहा जा सकता इस कारण रसलीन महाशयने भावभेद भी बहुत विस्तारपूर्वक कहा है। रसलीनने कहा है, कि यदि कोई यह ग्रन्थ ध्यानपूर्वक पढ़े, तो उसे रसोंका विषय जाननेके लिये किसी दूसरे ग्रन्थके पढ़नेकी आवश्यकता न रहेगी। उक्त ग्रन्थ १७९९ संवत्में समाप्त हुआ।

रसलीनने मुसलमान होने पर भी ब्रजभाषा बहुत शुद्ध लिखी है। उसमें फारसीके भी शब्द आये हैं। इनकी तथा किसी ब्राह्मण कविकी भाषाओंमें कुछ भी अन्तर नहीं है। यह इन्हींका काम था, कि फारसीके पारगामी हो कर भी ये ऐसी ठेठ ब्रजभाषामें कविता करनेमें समर्थ हुए। इनकी कविता सराहनीय होती थी। इनकी गणना तोष कविमें है। इनकी एक ब्रजभाषाकी कविता उदाहरणार्थ नीचे देते हैं,—

"मुकुत भये घर खोय कै कानन बैठे जाय।
घर खोवत हैं औरको कीजे कौन उपाय॥
कत देखाय कामिनि दई दामिनिको यह बांह।
थरथराति सी तन फिरै फरकराति घन मांह॥
कहुं लावति विकसित कुसुम कहूं डोलावति बाय।
कहूं बिछावति चांदनी मधु मृतु दासी आय॥
कुमति चन्द प्रति द्यौस बढ़ि मास मास कढ़ि आय।
तुव मुख मधुराई लखे फीको परि घटि जाय॥
बृद्ध कामिनी काम ते सुन धाम मैं ·पाय।
नेवर झमकावति फिरै देवरके ढिग जाय॥
तिय सैसव जोबन मिले भेद न जान्यो जात।
प्रात समै निसि द्यौसके दुवौ भाव दरसात॥"

रसलेह (सं० पु०) रसान् अपरान् धातून् लेढ़ीति, लिह-पचाद्यच्। पारद, पारा।

रसवंत (हिं० पु०) रसिक, प्रेमी।

रसवंती (हिं० स्त्री०) रसांजन, रसौत।

रसवट (हिं० पु०) वह मसाला जो नावके छेदोंमें इसलिये भरा जाता है, कि उनमेंसे पानी अंदर न आवे।

रसवत् (सं० त्रि०) रसो विद्यतेऽस्य (रसादिभ्यश्च। पा ५।२।९५) इति मतुप् मस्य व। १ रसविशिष्ट, जिसमें रस हो। (पु०) २ वह काव्यालङ्कार जिसमें एक रस किसी दूसरे रस अथवा भावका अंग हो कर आवे।

रसवती (सं० स्त्री०) १ रसौत देखो। २ दारुहरिद्रा देखो।

रसवती (सं० स्त्री०) १ सम्पूर्ण जातिकी एक रागिणी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। २ रसोई-घर। (त्रि०) ३ रसीली, रसपूर्ण।

रसवत्ता (सं० स्त्री०) रसवतो भावः तल-टाप्। १ रसयुक्त होनेका भाव या धर्म, रसीलापन। २ रस। ३ सौन्दर्य्य, सुन्दरता। ४ माधुर्य्य, मिठास।

रसवन्त (सं० त्रि०) जिसमें रस हो, रस भरा।

रसवर्ज्जा (सं० पु०) आस्वादनेच्छात्याग, स्वाद लेनेकी इच्छा नहीं।

रसवर्णक (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार अनारका फूल, ढाकका फूल, कुसुमका फूल, लाख, हलदी, मजीठ आदि कुछ विशिष्ट द्रव्य जिनसे रंग निकलता है।

रसवल्ली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गन्ना जिसे रसडली भी कहते हैं।

रसवह (सं० त्रि०) रसवाहिस्रोत।

रसवहस्रोतस् (सं० क्ली०) जो सब धमनी रस वहन कर ले जाती है। (चरक वि० ५ अ०)

रसवाई (हिं० स्त्री०) पहले पहल ऊख पेरनेके समय होनेवाली कुछ विशिष्ट रीतियां या व्यवहार।

रसवाद (सं० पु०) १ रसकी बात, प्रेम या आनन्दकी बातचीत। २ मनोरंजनके लिये कहा सुनी, छेड़छाड़। ३ बकवाद।

रसवान् (सं० पु०) वह पदार्थ जिसमें ऐसा गुण या शक्ति हो, कि जब उस पदार्थके कण रसनासे संयुक्त हों उस समय किसी प्रतिबंधक हेतुके न रहनेसे विशेष प्रकारका अनुभव हो।

रसवास (सं० पु०) ढगणके पहले भेदकी संज्ञा।

रसवास—भूपाल राज्यका एक नगर।

रसवाहिनी (सं० स्त्री०) वैद्यकके अनुसार खाये हुए भोजनसे बने सार पदार्थको फैलानेवाली नाड़ी।

रसविक्रय (सं० पु०) मद्यविक्रय, शराब बेचना।

रसविक्रयिन् (सं० पु०) मद्यविक्रयकारी, शराब बेचनेवाला।

रसविद् (सं० त्रि०) रसज्ञ।

रसविशेष (सं० पु०) उत्कृष्ट रस।

रसविरोध (सं० पु०) रसस्य विरोधः। १ सुश्रुतके अनुसार कुछ रसोंका ठीक मेल न होना। जैसे, तीते और मीठेमें, नमकीन और मीठेमें, कड़ुए और मीठेमें रसविरोध है। २ साहित्यमें एक ही पद्यमें दो प्रतिकूल रसोंकी स्थिति।

रसवीर्यकृत् (सं० पु०) सोमलता।

रसबोधक (सं० क्ली०) स्वर्ण, सोना।

रसवेश्म—चउलके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध स्थान।

रसशार्दूल (सं० पु०) सूतिकारोगका औषधविशेष। यह रसशार्दूल, महारसशार्दूल और वृहत्‌रसशार्दूलके भेदसे तीन प्रकारका है। प्रस्तुत प्रणाली—अबरक, तांबा, लोहा, मैनसिल, पारा, गंधक, सोहागा, यवक्षार, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा प्रत्येक एक तोला; मरिच चूर्ण ४ तोला; गीमा, अड़ूस और पान प्रत्येकके रसमें सात बार भावना दे कर छः रत्तीकी गोली बनावे। इस औषधका सेवन करनेसे सूतिका, ज्वर, कास, शोथ आदि स्त्रीरोग दूर होते हैं। महारसशार्दूल बनानेकी प्रस्तुत विधि—अबरक, तांबा, सोना, गन्धक, पारा, मैनसिल, सोहागा, यवक्षार, हरीतकी, आमलकी और बहेड़ा ८ तोला; दारचीनी, इलायची, तेजपत्र, जैती, लवङ्ग, जटामांसी, तालिशपत्र, स्वर्णमाक्षिक और रसाञ्जन प्रत्येक ४ तोला. पान और गीमाके रसमें सात बार भावना दे कर इसमें मरिचचूर्ण मिलावे। परिमाण और अनुपान रोगके बलाबलके अनुसार स्थिर करना होगा। इस औषधका सेवन करनेसे विविध सूतिकारोग, ज्वर, दाह, वमि, भ्रम, अतिसार, अग्निमान्द्य, अरुचि आदि गर्भिणीरोग दूर होते हैं।

वृहत् रसशार्दूल—पारा एक भाग और गंधक दो भाग ले कर काजल बनावे। पीछे उसमें अष्टधातु एक एक भाग ले कर मिलावे। ब्राह्मीशाक, जयन्ती, सम्हालू, मुलेठी, पुनर्णवा, मालुकी, अपराजिता, आकन्द, कृष्णधतूरा, कुशलभा, अड़ूस, काकमाची प्रत्येक द्रव्यके रसमें सात सात बार भावना दे कर तीन चार रत्तीकी गोली बनावे। इसका अनुपान गरम जल है। इस औषधका सेवन करनेसे सूतिका सम्बन्धीय सभी रोग विनष्ट होते हैं। (रसेन्द्रसारस० सूतिकारोगाधि०)

रसशाला (सं० क्ली०) रसायनशाला।

रसशेखर (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली— पारा २ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, इन दोनोंको लोहेके बरतनमें नीमके हत्थेसे तुलसीके रसमें घोंट कर २ रत्ती हिंगुल मिलावे। पीछे फिरसे तुलसीके रसमें घोंटे। बादमें जैत्री, जायफल, खोरासानी अजवायन और आकरकरा प्रत्येक ३२ रत्ती, कुल मिला कर जितना हो उससे दूना खैर मिलावे। इसके बाद तुलसीके रसमें फिरसे घोंट कर चनेके बराबर गोली बनावे। प्रतिदिन शामको दो गोली करके सेवन करनेसे उपदंश आदि रोग शान्त होते हैं।

रसशेष (सं० पु०) खाया हुआ वह द्रव्य जो जीर्ण होनेसे रस-रूपमें परिणत होता है।

रसशेषाजीर्ण (सं० क्लो०) रसशेषके लिये अजीर्णरोगभेद।

रसशोणितसम्भव (सं० क्लो०) मांस धातु। (वैद्यकनि०)

रसशोधन (सं० क्लो०) रसः शोध्यतेऽनेनेति शुध-णिच् ल्युट् वा रसं पारदं शोधयत्यनेनेति वा। १ टङ्कण, सोहागा। २ पारदशुद्धि, पारेको शुद्ध करनेकी क्रिया। पारद शब्द देखो।

रससंरक्षण (सं० क्लो०) रसस्य संरक्षणं। पारेको शुद्ध करना, मूर्च्छित करना, बांधना और भस्म करना ये चारों क्रियाएं।

रससंस्कार (सं० पु०) पारेके मूर्च्छन, बंधन, मारण आदि अठारह प्रकारके संस्कार। (वैद्यक)

रससम्भव (सं० क्लो०) सम्भवत्यस्मात्, रसस्य सम्भवः। रक्त, लहू।

रससागर (सं० पु०) पुराणानुसार सात समुद्रोंमेंसे एक। कहते हैं, कि यह प्लक्ष द्वीपमें है और ऊखके रससे भरा है।

रससाम्य (सं० स्त्री०) शारीरिक रसका न्यूनाधिक्यनिर्णय। चिकित्सकको चाहिये, कि वे रोगनाशक औषध और पथ्यादि देनेके पहले रोगीको अवस्था और रोगका बलाबल तथा शरीरमें रससञ्चारका तारतम्य देख कर औषधका प्रयोग करे। कुछ परीक्षा द्वारा चिकित्सक आसानीसे प्रकृतरोगका निर्णय कर सकते हैं।

मुखसे राल निकलना, हल्लास, वक्षदेशकी अशुद्धि, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, खाये हुए पदार्थका अपरिपाक, मुखवैरस्य, गात्रभार, क्षुधानाश, अधिक परिमाणमें मूत्रनिःसरण, स्तब्धता और प्रबल ज्वर दिखाई देनेसे उसे आमज्वर समझ कर औषधादिका प्रयोग न करे। क्योंकि आमावस्थामें औषधका सेवन करानेसे ज्वर और भी बढ़ जाता है।

ज्वर घटने पर शरीर कुछ हल्का होता जाता है तथा वायु आदिके अपने अपने पथसे सञ्चालित होने और मलमूत्रादि प्रकृतरूप निकलनेसे रसका परिपाक हुआ जान कर औषधादिकी व्यवस्था करनी उचित है।

सात दिनके बाद यदि रसका परिपाक न हो तथा मलमूत्रादि ठोक तौरसे होता हो, तो रसके साम्यजन्य पाचनकी व्यवस्था करे। फिर यदि मलमूत्रादिके प्रवर्त्तक रसका परिपाक होता हो, तो दोषोपशमनक औषधका व्यवहार करना होगा। मलमूत्रादि निःसरण और रसका परिपाक नहीं होनेसे कभी भी ज्वरघ्न औषधकी व्यवस्था न करे।

जल पीनेके बाद, उपवासके दूसरे दिन, क्षीणावस्थामें अजीर्ण होने, भोजन करके तथा प्यासके समय संशोधक अथवा अन्यप्रकारका औषध सेवन कराना उचित नहीं। अन्नहीन औषधसे वीर्य बढ़ता है। इससे रोगके शीघ्र ही दूर होनेकी सम्भावना है; किन्तु बालक, वृद्ध, युवती और मृदु प्रकृतिके मनुष्यके लिये यह व्यवस्था उत्तम नहीं है। क्योंकि इससे उन्हें ग्लानि होती है और उसीसे बलक्षय होता है।

औषधजीर्ण होनेसे वायु अनुलोम होती है तथा स्वास्थ्य, क्षुधा, तृष्णा, प्रसन्न चित्तता, देहकी लघुता, इन्द्रियोंकी निर्मलता और उद्गारकी शुद्धि होती है। औषधके अच्छी तरह जीर्ण होनेसे ही भोजन करने अथवा खाये हुए पदार्थके अच्छी तरह पचनेके पहले औषध सेवन करनेसे पीड़ाकी शान्ति नहीं होती, वरन् अन्यान्य रोग उत्पन्न होते हैं। यदि औषधका अच्छी तरह परिपाक न हुआ हो, तो क्लान्ति, दाह, शरीरकी अवसन्नता, वमनेच्छा, शिरमें दर्द, बेचैनी और बलक्षय आदिके लक्षण दिखाई देते हैं। खानेके कुछ पहले

औषध सेवन करनेसे वह शरीरमें बहुत फायदा पहुंचाता है। क्योंकि वह पेटमें खाये हुए अनाजसे ढक जाता जिससे मुंह हो कर नहीं निकलने पाता है। वृद्ध, शिशु, भोरु और सुकुमारी रमणियोंके लिये यही व्यवस्था लाभजनक है। दोष, अग्नि, बल, अवस्था, व्याधि, द्रव्य और कोष्ठशुद्धिकी विवेचना कर औषध देनेके बहुत लाभ पहुंचता है।

सभी प्रकारके ज्वरोंमें कफपित्त वायु और आमदोषके नाशके लिये धनिये और परवलके पत्तोंका काढ़ा दिया जाता है। वातिक ज्वरमें, पित्तज्वरमें, कफज्वरमें, वातपैत्तिक ज्वरमें, पित्तश्लेष्मज्वरमें और वातश्लेष्मज्वरमें रसका प्रकोप दूर करनेके लिये कषायादि पानकी व्यवस्था है। (भैषज्यर० ज्वरा०)

रससार (सं० पु०) १ मधु, शहद। २ जहर।

रससिन्दूर (सं० क्ली०) रसजातं सिन्दूरं। एक प्रकारका रस। इसकी प्रस्तुत प्रणाली--पारा ८ तोला, गंधक ८ तोला, इसको नियमपूर्वक कज्जली बना कर वटांकुरके काढ़ेमें तीन दिन भावना दे। पीछे उसे बोतलमें भर कपड़े और मट्टीका लेप चढ़ावे और बालूसे पूर्ण हाँड़ीमें रख कर चार पहर तक आंच देते रहे। इससे तरुणारुणसन्निभ रससिन्दूर उत्पन्न होता है। अनुपानके साथ इसका सेवन करनेसे विविध रोगोंको शान्ति होती है।

दूसरा तरीका—पारा, गंधक, निसादल, फूल और स्फटिक बराबर बराबर भाग ले कर कागजी नीबूके रसमें एक पहर तक मर्दन करे। पीछे उसे बोतलमें भर कर मुंह बंद कर दे। अनन्तर कपड़ेमें मिली हुई मिट्टीका लेप चढ़ा कर उसे एक ऐसे छेददार मिट्टीके बरतनमें रख छोड़े, जो गला तक बालूसे भरा हुआ हो। इसके बाद धीमो आंचमें उसे पाक करे। ठंढा होने पर बोतलके नीचे जमा हुआ रससिन्दूरका प्रयोग करना होगा। यह त्रिदोषनाशक माना गया है। (रसेन्द्रसारसं०)

रसस्थ (सं० पु०) रसधातु, रस।

रसस्थज्वर (सं० पु०) रसधातुगत ज्वर। ज्वर देखो।

रसस्थान (सं० क्ली०) रसः स्थानमाधार उत्पत्तिस्थानं यस्य, रसस्य पारदस्य स्थानमित्येके। १ हिंगुल, शिंगरफ। २ शरीरका रसस्थल। ३ रसका आधार।

रसस्राव (सं० क्ली०) अम्लवेत, अमलवेद।

रसा (सं० स्त्री०) माधुर्यादिरूपो विविधो रसोऽस्त्यस्यामिति (अर्श आदिभ्योऽच्। पा ५।२।१२७) इति अच्, रसति शब्दायते इति वा रस-अच् टाप्। १ पृथ्वी, जमीन। २ रसना, जीभ। ३ पाठा, पाढ़। ४ शल्कली, मछली। ५ द्राक्षा, दाख। ६ काकोली। ७ रसातल। ८ नदी। ९ रास्ना। १० कंगनी नामका मोटा अन्न। ११ मेदा। १२ शिलारस, लोहबान। १३ आम।

रसा (हिं० पु०) तरकारी आदिका झोल, शोरबा।

रसाइन (हिं० पु०) रसायन देखो।

रसाइनी (हिं० पु०) १ रसायनविद्या जाननेवाला। २ रसायन बनानेवाला, कीमियागर।

रसाई (फा० स्त्री०) पहुंचनेकी क्रिया या भाव, पहुंच।

रसाखन (सं० पु० खनतीति खन विदरे अच्, रसाया भूमेः खनः। कुक्कुट, मुर्गा।

रसाग्रज (सं० क्ली०) रसानामग्रजं रसस्य अग्रे जायते इति वा जन-ड। रसाञ्जन, रसौत।

रसाग्र्य (सं० क्ली०) १ रसाञ्जन, रसौत। २ पारद, पारा।

रसाढ्य (सं० पु०) श्रीवेष्ट नामक सुगन्ध काष्ठ, धूपसालका वृक्ष।

रसाज्ञान (सं० क्ली०) आस्वादभेद, भोजन करने पर भी उसके रसका अनुभव न करना।

रसाञ्जन (सं० क्ली०) रसजातमञ्जनं इति मध्यपदलोपिकर्मधारयः। रसजात अञ्जनविशेष, रसौत। यह चार प्रकारके अञ्जनोंमेंसे एक है। कोई कोई इसके केवल दो ही भेद बतलाते हैं, स्रोतोऽञ्जन और रसाञ्जन। पर्याय—रसगर्भ, तार्क्ष्यशैल, रसोद्भूत, रसाग्रज, कृतक, बाल भैषज्य, दार्वीकाथोद्भव, रसराज, वर्याञ्जन, रसनाभ और अग्निसार। यह हिम, तिक्त, चक्षुका हितकर, मधुर और कटु, रक्तपित्त, विष, छर्दि, हिक्का और अपस्मार रोगनाशक माना गया है। (राजनि०)

रसाञ्जनका शोधन कर व्यवहार करना होता है। इसका

शोधन किये बिना व्यवहार करनेसे वह विषके समान अपकारी है।

शोधनप्रणाली—रसाञ्जनचूर्णको जंबीरी नीबूके रसमें भिगो कर एक दिन धूपमें सुखा लेनेसे यह विशुद्ध होता है। (रसेन्द्रसारसं०)

रसाञ्जनादिचूर्ण (सं० क्ली०) ज्वरातिसारमें औषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली शुद्ध रसाञ्जन, अतीस, इन्द्रजौ, कुटजमूलकी छाल, धवका फूल, सोंठ, सबोंका बराबर बराबर भाग चूर्ण ले। अनुपानदोषके बलाबलके अनुसार स्थिर करना होगा। इस औषधका सेवन करनेसे ज्वरातिसार रोग दूर होता है। (रसर०) रक्तातिसारमें चावलका पानी और मधुका अनुपान ही उत्तम है।

(भैषज्यर० अतिसा०)

रसाढ्य (सं० पु०) रसनाढ्यः शुक्तः। आम्रातक, अमड़ा।

रसाढ्या (सं० स्त्री०) रास्ना।

रसातल (सं० क्ली०) रसायाः तलं। निम्नभागस्थ लोकविशेष। पुराणानुसार पृथ्वीके नीचेके सात लोकोंमें से छठा लोक।

"अतलं वितलञ्चैव नितलञ्च तलातलम्।
महातलञ्च सुतलं सप्तमञ्च रसातलम्॥
पातालभेदाः सप्तैव नामतः कीर्त्तिता अमी।
तत्र पातालमेकैकं दशसाहस्रयोजनम्॥" (शब्दमाला)

भगवान् हरि अखिल वेदशास्त्र ग्रहण कर रसातलमें गये थे। (महाभारत १२।३४७।५६) देवीभागवतमें लिखा है, कि इसकी भूमि पथरीली है और इसमें दैत्य, दानव तथा पणि नामके असुर इन्द्रके डरसे निवास करते थे।

(देवीभाग० ८।२० अ०)

रसात्मक (सं० त्रि०) रस आत्मा स्वरूपो यस्य कप्। रसस्वरूप।

रसादान (सं० क्ली०) रसानामदानं ग्रहणं। १ रसशोषण। रसाया दानं। २ भूमिदान।

रसादार (हिं० वि०) जिसमें झोल या शोरबा हो, शोरबेदार।

रसाधार (सं० पु०) रसानां जलानां आधारः रसां पृथिवीं धरति आकर्षणेनेति वा धृ-अण्। १ सूर्य। २ रसका आधार।

रसाधिक (सं० पु०) रसाय स्वर्णादीनां द्रवीकरणाय अधिकः प्रबलः। १ टङ्कण, सोहागा। २ अधिक रस।

रसाधिका (सं० स्त्री०) रसेन अधिका। किशमिश।

रसाधिपत्य (सं० क्ली०) रसातलका शासन।

रसाध्यक्ष (सं० पु०) प्राचीनकालका एक राजकर्मचारी जो मादक द्रव्योंकी जांच, पड़ताल और उनकी बिक्री आदिकी व्यवस्था करता था।

रसानुग (सं० त्रि०) १ रसदूषक, रसको खराब करनेवाला। २ रसानुसारी।

रसानुप्रदान (सं० क्ली०) जलीय कणाविकीरण। यास्कने इन्द्रको ही इस कार्यका नेता कहा है।

रसान्तर (सं० क्ली०) १ भिन्न रस। २ संगीतादिमें एक रससे दूसरे रसको अवतारणा।

रसापति (सं० पु०) पृथ्वीपति, राजा।

रसापायिन् (सं० पु०) १ जिह्वा द्वारा पानकारी, वह जो जीभसे पीता हो। २ कुक्कुर, कुत्ता।

रसाभास (सं० पु०) रस इव आभासते इति भास-अच्। अनौचित्यरसविशिष्ट रस। साहित्यमें किसी रसकी ऐसे स्थानमें अवतारणा करना जो उचित या उपयुक्त न हो।

"अनौचित्यप्रवृत्तत्वे आभासो रसभावयोः।" (साहित्यद०)

रस शब्द देखो।

रसाभन्न (सं० क्ली०) बोल नामक गन्धद्रव्य।

रसाभ्रगुग्गुल (सं० क्ली०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा ४ तोला, लोहा ४ तोला, गंधक ८ तोला, अबरक ८ तोला, गुग्गुल १ सेर, गुलञ्च २ सेर और पाकार्थ जल १६ सेर, शेष ४ सेर। इन दोनों काढ़ेको एक साथ मिला कर उसमें पारदादि द्रव्य पाक करे। पीछे गाढ़ा होने पर उसमें त्रिकटु, त्रिफला, दन्तिमूल, गुलञ्च, गोपालककँटीका मूल, विडङ्ग, नागेश्वर, त्रिसोथका मूल प्रत्येक दो तोला मिलावे। मात्रा एक तोला और अनुपान गुलञ्चका काढ़ा बताया गया है। इसका सेवन करनेसे गलित, स्फुटित, कठिन वातरक्त, कुष्ठ और अन्यान्य नाना रोग आरोग्य होते हैं।

रसाभ्रगुड़िका (सं० स्त्री०) ग्रहणीरोगाधिकारमें औषध विशेष। प्रस्तुतप्रणाली—पारा ८ तोला और अबरक

८ तोला, इसकी कज्जली बना कर उतना ही अबरक मिलावे। पीछे केशर, भृङ्गराज, सम्हालू, चिता, जोमा, जयन्ती, भंग, श्वेत अपराजिता और पान कुल रस मिला कर ८ तोला तथा मरिचका चूर्ण ४ तोला और सुहागा अन्दाजसे दे कर उड़दके बराबर गोली बनावे। इसका सेवन करनेसे कास, श्वास, क्षय, वात, अतिसार और ग्रहणी आदि रोग अति शीघ्र दूर होते हैं।

(रसेन्द्रसारसं० ग्रहणीरोगाधि०)

रसाभ्रमण्डूर (सं० क्लो०) रसौषधविशेष। बनानेका तरीका—पारा, गंधक, अबरक प्रत्येक ४ तोला, शोधित मण्डूरचूर्ण २ पल, हरीतकीचूर्ण २ पल, शिलाजित २ तोला, कान्तलौह १ तोला एकत्र पीस कर भीमराजका रस २ सेर, केशुरियाका रस २ सेर तथा आर्द्रीकरणोपयोगी सम्हालू, माणमूल और अदरक, इन सबोंको रसमें भावना दे पीछे धूपमें सुखा कर कुछ गीला रहते त्रिकटु, त्रिफला, चई और मोथा प्रत्येकका चूर्ण २ तोला मिलावे। बादमें अच्छी तरह पीस कर आध तोला की गोली बनावे। अनुपान घी और मधु है। सेवन करनेके बाद फिरसे काढ़ेमें यवक्षार डाल कर पान करे। इससे शोथादि नाना प्रकारके रोग नष्ट हो कर अग्नि और बलकी वृद्धि होती है।

रसाभ्रवटी (सं० स्त्री०) रसायनाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा और गंधक ८ तोला ले कर कज्जली बनावे। पीछे उसमें केसर, भृङ्गराज, सम्हालू, चिता, गीमा, जयन्ती, भंग, श्वेत अपराजिता और पानका रस ८ तोला, मिर्चका चूर्ण ४ तोला और थोड़ा सोहागा, इन्हें एक साथ मिला कर उड़दके बराबर गोली बनावे। यह सब प्रकारके काश, ज्वर और ग्रहणीको नाश करता है। (रसेन्द्रसारसंग्रह)

रसामृतचूर्ण (सं० क्लो०) रसौषधविशेष।

(चिकित्सासार १४३)

रसामृतरस (सं० पु०) रक्तपित्ताधिकारमें रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा एक भाग, गंधक, माक्षिक, शिलाजित, चन्दन, गुरुच, दाख, मौलफूल, धनिया, इन्द्रजौ, कुटजकी छाल, नीमका पत्ता, धवका फूल, मुलेठी और कोढ़ी प्रत्येक दो भागको एक साथ पीस कर २ तोलेको गोली बनावे। कुछ गरम दूधके साथ इस औषधका सेवन करना होता है।

रसाम्ल (सं० क्लो०) रसाऽम्लोऽस्मिन्निति यत्र। १ वृक्षाम्ल, विषांबिल। (राजनि०) २ चुक्र। (भावप्र०) (पु०) ३ अम्लवेतस, अमलबेत।

रसाम्लक (सं० पु०) तृणविशेष, एक प्रकारकी घास।

रसाम्ला (सं० स्त्री०) पलाशी नामकी लता।

रसायक (सं० पु०) रसं रसत्वमयति प्राप्नोति इति अय-ण्वुल्। तृणविशेष, एक प्रकारकी घास।

रसायन (सं० क्लो०) रसो दुग्धं अयनं मूलं यस्येति। १ तक्र, मट्ठा। २ कटि, कमर। रसा रसादयः ईयन्ते प्राप्यन्तेऽनेनेति इ-ल्युट्। ३ जराव्याधिनाशक औषध। इसका लक्षण—

"यज्जराव्याधिविध्वंसि वयस्तम्भकरं तथा।
चाक्षुस्यं बृंहणं वृष्यम्भेषजं तद्रसायनम्॥

रसायनका तेल—

दीर्घमायुःस्मृतिर्मेधामारोग्यं तरुणं वचः।
देहेन्द्रियबलं कान्तिं नरो विन्देद्रसायनात्॥
नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रसायनो विधिः।
न भाति वाससि क्लिष्टे रङ्गयोग इवाहितः॥" (भावप्र०)

जिसका सेवन करनेसे बुढ़ापा और रोग नष्ट हो कर जवान और मजबूत होता, शुक्रकी वृद्धि होती और आंखकी ज्योतिः बढ़ती है उसे रसायन कहते हैं। रसायनका सेवन करनेसे परमायु, स्मरणशक्ति, मेधा, आरोग्य, देह और इन्द्रियकी पटुता तथा शरीरकी कान्ति बढ़ती है और जवानीकी-सी उमङ्ग आती है। वमन विरेचनादि द्वारा शरीर शोधन किये बिना रसायनका सेवन नहीं करना चाहिये। मैले कपड़ेमें रंग चढ़ानेसे जिस प्रकार वह सुन्दर दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार अशोधित शरीरमें रसायनका प्रयोग करनेसे कोई फल नहीं होता। (भावप्र०)

भैषज्यरत्नावलीमें लिखा है, कि जिस औषध द्वारा जरा और व्याधि नष्ट होती है उसे रसायन कहते हैं। यह जवानीके शुरूमें या आखिरमें सेवन किया जाता है। रसायन सेवनके पहले विरेचनादि द्वारा कोष्ठको साफ कर लेना उचित है। क्योंकि कोष्ठका मल निकाले बिना

रसायनका सेवन करनेसे उपकारके बदले अपकार होता है।

सुश्रुतमें लिखा है, कि देवगण जिस प्रकार संताप-शून्य हो स्वर्गमें विचरण करते हैं, रसायन सेवन करने-वाले भी पृथिवी पर देवताओंकी तरह नीरोग और बल-वान् हो कर विचरण कर सकते हैं। इसका सेवन करने-से आयु, स्मृतिशक्ति, मेधा, कान्ति, बल, स्वर आदिकी वृद्धि होती है तथा उस पर कोई रोग आक्रमण नहीं कर सकता।

निम्नोक्त व्यक्ति रसायनका सेवन नहीं कर सकते, यदि करें, तो कोई लाभ नहीं होगा:—अनात्मवान्, दरिद्र, प्रमादी, क्रीडासक्त, पापकारी और भेषजापमानी। इनके रसायन नहीं सेवन करनेका कारण है अज्ञानता, अनारम्भ, अस्थिरचित्तता, दरिद्रता, अनायत्तता, अधार्मिकता और औषधकी अप्राप्ति।

रसायनका प्रकारभेद—सबेरे जलकी नास लेनेसे रसायन होता है। इससे पीनस, स्वरविकृति और कास-रोगका उपशम होता तथा दृष्टिशक्ति बढ़ती है। सूर्य उगनेके पहले भरपेट जल पी लेनेसे वातज और पित्तज रोग नष्ट हो कर मनुष्य दीर्घायु होता है। नाक द्वारा जल पान करनेसे तो और भी उपकार होता है। इसे ऊषा-पान-रसायन कहते हैं। अजीर्णरोगमें ऊषापान बहुत उपकारी है।

असगंधका चूर्ण चवन्नी भर ले कर पित्तप्रधान धातुमें दूधके साथ, वायुप्रकृतिमें तेलके साथ, वातपैत्तिक प्रकृतिमें घीके साथ तथा वातश्लेष्मिक प्रकृतिमें उष्ण जलके साथ १५ दिन सेवन करनेसे रसायन होता है तथा शारीरिक कृशता नष्ट होती है। विड़ङ्गकी जड़को चूर्ण कर शतमूलीके रसमें ७ दिन भावित करके आध तोला मात्रामें घीके साथ एक महीना सेवन करनेसे बुद्धि, मेधा और स्मरणशक्ति बढ़ती है तथा वलिपलितादि निवा-रित होते हैं। वर्षाकालमें सैन्धवके साथ, शरत्कालमें चीनीके साथ, हेमन्तमें सोंठके साथ, शीतमें पीपलके साथ, वसन्तमें मधुके साथ और ग्रीष्ममें ईखके गुड़के साथ हरीतकी (हर्रे) सेवन करनेसे विविध रोगोंकी शान्ति हो कर उत्तम रसायन बनता है। इसका नाम हरीतकी-रसायन वा ऋतुहरीतकी है। पहले हरीतकी चूर्ण चवन्नी भर सेवन करे, यदि सह्य हो तो २ तोला तक क्रमशः बढ़ा सकते हैं। सैंधव, सोंठ और पीपल अल्प परिमाणमें हरीतकीके साथ सेवन करना उचित है। अन्यान्य अनुपान हरीतकीके बराबर लेना होगा।

क्रमागत एक वर्ष तक घीके साथ ५, ६ वा १० पीपल सेवन करनेसे रसायन होता है। कुछ पीपलमें पलाशकी राखको जलमें भावना दे कर पीछे उसे घीमें भून ले। प्रतिदिन खानेके पहले घी और मधुके साथ तीन तीन करके सेवन करनेसे श्वास, कास, क्षय, शोष, हिक्का, अर्श, ग्रहणी, पाण्डु, शोथ, विषमज्वर, स्वरभङ्ग, पीनस और गुल्म आदि पीड़ा दूर हो कर आयु बढ़ती है। पहले दिनका खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह पच जाने पर सबेरे एक हरीतकी, भोजनके पहले दो बहेड़ा और भोजनके बाद ४ आमलकी मधु और घीके साथ एक वर्ष तक प्रतिदिन सेवन करनेसे शरीर नीरोग होता है और आयु बढ़ती है। नये लोहेके बरतनमें त्रिफलाका चूर्ण लेप कर एक दिन और एक रात छोड़ दे। पीछे वह चूर्ण मधु और जलके साथ सेवन करे, तो उत्तम रसायन बनता है। आमलकी, कृष्णतिल और भृङ्गराज समान भाग ले कर एक साथ पीसे और नियमितरूपसे बहुत दिन तक सेवन करे, तो बाल काले होते, इन्द्रियां सबल होतीं, शरीर नीरोग होता और आयु बढ़ती है। प्रतिदिन सबेरे घी और मधुके साथ हस्तिकर्ण और पलाशकी छालका चूर्ण सेवन करनेसे बल, इन्द्रियशक्ति और आयु-की वृद्धि होती है।

सर्वोपघातशमनीय रसायन—स्निग्ध और विशुद्ध देहवाले व्यक्तिके लिये युवा वा मध्यमावस्थामें रसायन-का व्यवहार करना उचित है। अविशुद्ध देह अर्थात् रुग्न व्यक्तिके लिये उचित नहीं है। दोषज वा मानसिक कोई भी उपघात उपस्थित हो, तो उसका प्रतिकार तुरत करना चाहिये। पीछे रसायनका प्रयोग हितकर है। शीतल जल, दूध और घी इनमेंसे एक, दो, तीन वा सभी पूर्व-वयसमें (५० वर्षके पहले) पान करके वयःस्थापन करना होता है।

विड़ङ्गरसायन—विड़ङ्ग-तण्डुलका चूर्ण और मुलेठी

ठंढे जलके साथ यथासाध्य सेवन करके ठंढे जलका अनुपान करना होता है। इस प्रकार एक मास तक प्रति दिन सेवन करे; अथवा उक्त चूर्णको मधुमें मिला कर मिलावेके काढ़े वा मधु और दाखके काढ़े अथवा आमलकीके रस वा गुरुचके काढ़ेके साथ सेवन करे। विड़ङ्गतण्डुलचूर्णका इन्हीं पांच प्रकारसे प्रयोग किया जाता है। औषध जीर्ण होने पर मूंग और आंवलेका जूस बिना नमकके तैयार करके उसके साथ घृतयुक्त भोजन करे। इससे सभी प्रकारके अर्शके कीड़े विनष्ट हो कर धारणाशक्ति बढ़ती है। इस प्रकार प्रति मास सेवन करना उचित है।

विड़ङ्गकल्प—एक द्रोण परिमित विड़ङ्गके तण्डुलको पिष्टक पाककी तरह सिद्ध करे। पाक सिद्ध होने पर क्वाथको अलग कर दे, केवल सिद्ध तण्डुलको पीसे। पीछे लोहेके एक मजबूत बरतनमें उसे मधु और जलके साथ मिला कर वर्षाके चार मास तक भस्मराशिके मध्य रखना होगा। वर्षा बीतने पर उस बरतनको बाहर निकाल ले। पहले शरीरको शोधित कर प्रतिदिन सबेरे उपयुक्त मात्रामें सेवन करना होगा। इस प्रकार एक मास तक सेवन करनेसे शरीरके सभी जहरीले कीड़े बाहर निकल आयंगे। दूसरे मासमें पिपीलिका, तीसरेमें खटमल निकलते, चौथेमें दन्त, नख और रोम शीर्ण हो जाते, पांचवेंमें ये सब फिरसे प्रशस्त गुण और लक्षणविशिष्ट हो कर जन्म लेते हैं। उस समय शरीर अमानुषिक लक्षणयुक्त तथा सूर्यके समान चमकने लगता है, दूरश्रवण और दूरदर्शनकी शक्ति उत्पन्न होती है। मनका रजस्तमोगुण तिरोहित हो कर सत्त्वगुण प्रबल होता है। श्रुतिधर, अपूर्वोत्पादी, हाथीके समान बलवान्, घोड़ेके समान वेगवान्, प्रत्यावर्त्तित यौवन और सौ वर्षसे अधिक परमायु होती है। इस अवस्थामें अभ्यङ्गके लिये अणुतैल, विलेपनके लिये अजकर्णकषाय, स्नानके लिये सौवीर वा कूपोदक और अनुलेपनके लिये चन्दन काममें लाना चाहिये। भल्लातकके विधानानुसार आहारका परित्याग करना उचित है। निष्कुलीकृत काश्मर्य फलका कल्प भी इसी तरह है, परन्तु इसमें शयन और भोजनका नियम पूर्ववत् नहीं है। एक दुधके साथ भोजन करना होता है, इसका फल भी पहलेके जैसा जानना होगा।

बलाकल्प—आश्रमगृहके मध्य रह कर आध पल वा एक पल अतिबलाका मूल दूधमें आलोड़ित करके पान करे। जीर्ण होने पर दूधके साथ घृतान्न भोजन करना होता है। इस प्रकार बारह दिन सेवन करनेसे बारह वर्ष और सौ दिन सेवन करनेसे सौ वर्षकी परमायु होती है।

इसी प्रकार अतिबला, नागबला और शतावरीका चूर्ण भी सेवन करे। विशेषतः अतिबलाके काढ़ेके साथ शतमूलीका चूर्ण पूर्वोक्त नियमानुसार सेवन करनेसे भी पहलेके जैसा फल होता है। ये सब रसायन बलकामी, शोणितवमनकारी वा शोणितविरेचनशील व्यक्तिके लिये लाभजनक है।

वराहकल्प—वराक्रान्ता मूलका एक तोला चूर्ण संग्रह करे। उस चूर्णको प्रतिदिन यथासाध्य परिमाणमें मधुके साथ दूधमें मिला कर पान करे। जीर्ण होने पर दूध और घीके साथ भोजन करना उचित है। इसमें भी पहलेकी तरह आहार और आचारका नियम पालन करना होता है। इसमें परमायु सौ वर्णकी होती है। इस चूर्णको दूधके साथ पाक कर ठंढा होने पर अच्छी तरह घोंटे और घृत-मधुके साथ भोजन करे। जीर्ण होने पर दूध और घीके साथ भोजन करना उचित है। इस प्रकार एक मास सेवन करनेसे सौ वर्णकी परमायु होती है।

दृष्टिकामी और जीविताभिलाषी व्यक्ति मातुलुङ्गसार और अग्निमन्थके मूलका एकत्र काढ़ा बना कर इसमें एक प्रस्थ उड़द पाक करे। पाक सिद्ध होने पर चित्रक मूलका एक अक्ष परिमित कल्क उसमें डाल दे। पीछे चतुर्थ भाग आंवलेके रसमें पाक करके नीचे उतार ले। परिपाक होने पर लवणका परित्याग कर मूंग और आंवलेके जूसके साथ घृतयुक्त अन्न अथवा दूधके साथ अन्न भोजन करे। तीन मास इस नियमका अवलम्बन करनेसे सुवर्णकी तरह दृष्टि होती है। स्त्रीसङ्गसे भी शरीर कमजोर नहीं होता तथा सौ वर्णकी परमायु होती है। बनफलको दूधमें सिद्ध कर दूधके साथ खानेसे शरीर शीर्ण नहीं होता है।

मेधा और आयुष्कामीय रसायन।

सफेद सोमराजके फलको धूपमें सुखा कर अच्छी तरह चूर्ण करे। पीछे वह चूर्ण गुड़के साथ आलोड़ित कर स्नेहकुम्भमें भर दे और सात रात तक धानकी ढेरमें रख छोड़े। बादमें उससे निकाल कर प्रतिदिन सूर्योदय-कालमें गोलाकार पिण्ड बना उष्णोदक अनुपानके साथ सेवन करना उचित है। औषधके परिपाक होने पर भल्लातकके विधानानुसार अपराह्नकालमें शीतल जलसे शरीर सिक्त कर शालि वा साठी धानके भात, दूध, शक्कर और मधुके साथ खाना होता है। छः मास तक इस नियमका अवलम्बन करनेसे उसके सभी पाप दूर हो जाते तथा वह बलिष्ठ, श्रुतिधर, नीरोग और सौ वर्षकी आयुवाला होता है। कुष्ठरोगी, पाण्डुरोगी वा उदररोगीको चाहिये, कि वह सवेरे सूर्यकी लालिमा दूर होने पर इसके आध पलका पिण्ड बना काली गायके दूधके साथ पान करे। जीर्ण होने पर अपराह्नकालमें लवणवर्जित आमलक जूसके साथ घृतयुक्त अन्न खाना होगा। एक मास तक इस नियमका अवलम्बन करनेसे मेधावी और नीरोग होता है तथा परमायु सौ वर्षकी होती है। चित्रक-मूलका सेवन करनेमें भी यही नियम है; फर्क सिर्फ इतना ही है, कि इसमें हल्दी और चित्रकमूलका दो पल पिण्ड सेवन करना होता है। दूसरे दूसरे नियम पहलेके जैसे हैं।

पहले अन्नका परित्याग कर मण्डूकपर्णी रस जहां तक परिपाक कर सके उतना ही ले कर दूधके साथ पान करे। जीर्ण होने पर दूध वा तिलके साथ जौ भक्षण करे। इस समय भी दूध ही अनुपान होगा। जीर्ण होनेके बाद घृतयुक्त अन्न खाना होता है। तीन मास इस नियमका पालन करनेसे ब्रह्मतेजोविशिष्ट और श्रुतिनिगादी तथा सौ वर्षकी आयु होती है।

पहले अन्नका परित्याग कर ब्राह्मी रस जहां तक पी सके, पीवे। जीर्ण होने पर लवणवर्जित जौका मांड़ पीना होता है। जिसे दूध पीनेकी आदत हो वह दूधके साथ उक्त यवागू पीवे। इस नियमका सात रात पालन करनेसे ब्रह्मतेजोविशिष्ट और मेधावी होता है। फिर दूसरे सात रात इस नियमका पालन करनेसे अभि-लषित ग्रन्थमें व्युत्पत्ति होती है और खोई हुई स्मृति फिर आ जाती है। तीसरी सात रात इस नियमका पालन करनेसे दो बारके कहनेसे एक सौ बात तक स्मरण रखनेकी शक्ति आ जाती है। इस प्रकार इक्कीस रात नियमका पालन करनेसे अलक्ष्मी दूर होती है, वाग्देवी मूर्त्तिमती हो कर उसके शरीरमें प्रवेश करती है तथा उसे सभी पूर्वस्मृति उपस्थित होती हैं। वे श्रुतिधर होते तथा पांच सौ वर्ष तक उसकी परमायु होती है। ब्राह्मीरस दो प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ, विड़ङ्ग तण्डुल एक कुड़व, वच २ पल, त्रिवृत् दो पल, हरीतकी, आंवला और विभीतकी प्रत्येक १२ पल; इन सब चूर्णको तथा उक्त रस और घीको एकत्र पाक कर कलसेमें भर कर मुंह बंद कर दे। पीछे पूर्वोक्त विधानानुसार यथासाध्य परिमाणमें सेवन करे। जीर्ण होने पर दूधके साथ घृतयुक्त अन्न भोजन करे। इसके द्वारा शरीरके ऊर्द्ध्व, अधः और तिर्यक् भागसे कीड़े निकलते हैं तथा इससे अलक्ष्मी नाश, स्थिरयौवन, श्रुतिधर और तीन सौ वर्ष परमायु होती है। कुष्ठरोग, विषमज्वर, अपस्मार, उन्माद, विष, भूतग्रह और महाव्याधि आदि रोगोंमें यह रसायन प्रयोज्य है।

हैमवती वचका आंवलेके बराबर पिण्ड बना कर दूधके साथ पान करे, जीर्ण होने पर दूधके साथ घृतयुक्त अन्न खाना होगा। बारह रात सेवन करनेसे स्मृति-शक्ति बढ़ती है, कोई विषय दो बार अभ्यास करनेसे ही हृदयङ्गम हो जाता है। ४८ दिन सेवन करनेसे वह सभी पापोंसे मुक्त होता, गरुड़-सी उसकी दृष्टि और सौ वर्ष परमायु होती है। हैमवती वचको छोड़ अन्य प्रकारका वच होनेसे उसका दो पल ले कर काढ़ा बनाना होगा। यह काढ़ा दूधके साथ पीना चाहिये। भोजनादिका नियम और फल पहलेके जैसा जानना होगा।

द्रोणपरिमित घृतको वचके साथ एक सौ बार पाक करके सेवन करनेसे परमायु पांच सौ वर्षकी होती है। यह रसायन गलगण्ड, अपची, श्लीपद और स्वरभङ्ग आदि रोगोंमें बहुत उपकारी है।

बिल्वपुष्पसे हजार बार हवन करके स्वर्णसहित घी मधुके साथ प्रतिदिन मन्त्रपूत करके खावे। यौवनकाल-

में एक वर्ष तक रसायनका नियम पालन करना होता है। प्रातःकाल स्नान करके बेलकी जड़का छिलका और काढ़ा दूधके साथ सेवन करे। चित्तसंयम करके इस नियमका अवलम्बन करनेसे हजार वर्षकी आयु होती है। सुवर्ण, पद्मबीज, मधु, लाज और प्रियंगु एकत्र करके गायके दूधके साथ पान करनेसे अलक्ष्मी दूर होती है। नीलोत्पलदलका क्वाथ, सुवर्ण और तिलपक्व गायके दूधके साथ पान करनेसे अलक्ष्मी दूर होती है। गायका दूध, सुवर्ण, मधूच्छिष्ट और माक्षिक सौ हजार बार हवन करके इन्हें एक साथ पान करे। वच, घृत और बिल्वचूर्णको एकत्र कर सेवन करनेसे मेधा, आयु, आरोग्य, पुष्टि और सौभाग्यकी वृद्धि होती है। तुला परिमित अड़ूसके मूलका काढ़ा बना कर तेलमें पाक करना होगा। हजार बार हवन करके यह तेल सेवन करनेसे मेधा और आयुकी वृद्धि होती है। पद्म और नीलोत्पलके काढ़ेमें मुलेठीके चूर्णके साथ घृत पाक करके सुवर्ण सहित सेवन तथा इन सब द्रव्योंके साथ दुग्ध पाक करके पान करे। इन सब रसायनसे श्री और सौभाग्य बढ़ता है। हाथीके समान बल और मनुष्य देवतुल्य होता है। सर्वदा अध्ययन, उस विषयका वाद्यानुवाद और अन्यान्य शास्त्रोंकी आलोचना, आचार्यसेवा इससे भी बुद्धि और मेधा बढ़ती है। जीर्ण होने पर भोजन, मलमूत्रका वेगधारण नहीं करना, ब्रह्मचर्य, अहिंसा और दुःसाहसिक कार्यका परित्याग इन सबसे भी आयुकी वृद्धि होती है।

स्वाभाविक व्याधिप्रतिषेधनीय रसायन।

पूर्वकालमें ब्रह्मादि देवताओंने जरामृत्युनाशके लिये सोम नामक रसायनकी सृष्टि की थी। इसके सेवनका विषय शास्त्रमें इस प्रकार लिखा है,—

यह सोम स्थान, नाम, आकृति और वीर्यके भेदसे २४ प्रकारका है, जैसे—अंशुमान, मुञ्जमान, चन्द्रमा, रजतप्रभ, दूर्वा, सोम, कनीयान्, श्वेताक्ष, कनकप्रभ, प्रतानवान्, तालवृन्त, करवीर, अंशवान्, स्वयम्प्रभ, महासोम, गरुड़ाहृत, गायत्री, त्रैष्टुभ, पाङ्क्त, जागत, शाक्कर, अग्निष्टोम, रैवत, गायत्री और उडुपति। ये सब सोम वेदोक्त सोम कहलाते हैं।

उनमेंसे किसी एक प्रकारका सोम सेवन करनेमें एक आश्रयगृह बनाना होता है। पहले शरीरको संशोधन कर शुभदिनमें शुभक्षणमें अंशुमान् ले कर आश्रमगृहमें प्रवेश करे। पीछे यज्ञकलशमें अभिषेचन और हवन करना होता है। अनन्तर कृतमङ्गल हो उस सोमकन्दको सोनेकी सूईसे विद्ध कर सोनेके बरतनमें अञ्जलि परिमित उसका दूध ग्रहण करे। यह दूध आस्वादन न करके एक ही साथ पी जाना होगा। आचमनके बाद बचा खुचा दूध जलमें फेंक देना होता है। अनन्तर यम नियम द्वारा मन और वाक्को संयत कर आश्रमके भीतर अपने दोस्त मित्रोंके साथ विहार करे। रसायन पीनेके बाद वायुशून्यस्थानमें पवित्र हृदयसे विचरण करे, पर भूलसे भी न सोवे।

यह सोम-रसायन यदि सायंकालमें सेवन किया जाय, तो कुशशय्याके ऊपर कृष्णाजिन बिछा कर उसी पर सो रहे, उस समय उसके मित्रोंका भी वहां रहना आवश्यक है। प्यास लगने पर थोड़ा पानी पी सकते हैं। पीछे प्रातःकाल बिछावन परसे उठ शान्तिवाक्यश्रवण करके गोस्पर्श करना होगा।

सोमरसायन जीर्ण होने पर वमन होने लगता है। शोणिताक्त कृमिमिश्रित वमन होनेसे शामको पाक किया हुआ ठंढा दूध पीना होता है। तीसरे दिन कृमिमिश्रित विरेचन होता है। इससे शरीर सभी दोषोंसे मुक्त हो विशोधित होता है। पीछे शामको स्नान करके पहलेकी तरह दुग्ध पान तथा शय्या पर रेशमी वस्त्र बिछा कर शयन करना होता है। अनन्तर चौथे दिन शरीर सूज आता है, उस समय सर्वाङ्गसे कीड़े निकलते हैं। इस दिन पांशु विकीर्ण शय्या पर सोना उचित है। फिर शामको पहलेकी तरह दुग्धपान करना होता है। पाँचवें छठे दिन भी इसी नियमका पालन करना चाहिये। परन्तु प्रभेद इतना ही है, कि इसमें पहलेकी तरह दोनों शाम दूध पीना होता है। सातवें दिन देह मांसहीन, त्वक् और अस्थिसार होती है। इस दिन कुछ गरम दूधसे देह परिषेचन, तिल, मुलेठी और चन्दनका अनुलेपन तथा दुग्धपान करना होता है। आठवें दिन सबेरे देहमें दुग्धपरिषेचन, चन्दनलेपन और दुग्ध पान

करके पांशुशय्याका परित्याग करे और विस्तृत शय्या पर सोवे। इसके बाद मांसवृद्धि होने लगती है; दन्त, नख और रोम गिर पड़ते हैं। नवें दिनसे अभ्यङ्गमें अणुतैल और परिषेचनमें सोमवल्क (सफेद खैर) का व्यवहार करे। बारह दिन तक इस नियमका पालन करना होता है। इससे त्वक्‌की स्थिरता होती है। तेरहवें दिनसे ले कर सोलहवें दिन तक इस नियमका पालन करना होता है। इससे त्वक्‌की स्थिरता होती है। तेरहवें दिनसे ले कर सोलहवें दिन तक केवल सोमवल्कका कषाय परिषेचनके काममें लाना होगा। अनन्तर सत्तरहवें दिन वा अट्ठारहवें दिन मणिमुक्ताके सदृश मजबूत दाँत निकल आते हैं। पच्चीसवें दिन तक चावल सहित दूधमें यवागू पाक करके सेवन करे। पच्चीसवें दिनके बाद दूधके साथ भात खाना होगा। इससे लाल नाखून और चिकने तथा काले बाल निकलते हैं। चमड़ा कमलके जैसा चमकने लगता है। एक मासके बाद केशको मुड़ा कर खसखसकी जड़, चन्दन और कृष्णतिल शरीरमें लगाना तथा दूधसे स्नान करना होता है। पीछे सात रातके बाद भौंरेके समान चिकने, काले, घुंघराले बाल निकलते हैं। उसके तीन रातके बाद आश्रमके प्रथम आवरणसे निकल कर क्षण भर वहां ठहर फिरसे प्रवेश करना होगा। इसके बाद बला तैल अभ्यङ्गमें, पिष्ट यव उद्वर्त्तनमें, कुछ गरम दूध परिषेचनमें, शालवृक्षका कषाय उत्पादनमें, सौवीर वा कूपोदक स्नानमें, चन्दन अनुलेपनमें, आमलक रसमिश्रित यूप या सूप तथा यष्टिमधुके साथ कृष्णतिल सिद्ध आवसारणमें प्रयोज्य है। इस नियमसे एक मास तक चलना होता है। इस समय दर्पणमें मुंह देखना मना है। पीछे और भी दश दिन क्रोधादिका परित्याग कर सभी प्रकारके भोजन कर सकते हैं।

वल्लीप्रतान और क्षुप या लता, इन सब आकारका सोमभक्षण उत्तम है। इस सोमरसायन सेवनका परिमाण साढ़े तीन मुष्टि बताया गया है। अंशुमान् सोम स्वर्णपात्रमें तथा चन्द्रमा रजतपात्रमें अभिषेचनपूर्वक सेवन करना होता है। इससे अष्टैश्वर्य और ईशानत्वलाभ होता है। बाकी सभी प्रकारका सोमरसायन ताम्र वा मृण्मय पात्रमें भक्षण करना उचित है। शूद्रको छोड़ कर बाकी तीनों वर्ण सोमपान कर सकते हैं। यह रसायन पान कर चौथे महीनेमें पौर्णमासी तिथिको पवित्रस्थानमें ब्राह्मणोंकी अर्चना कर आश्रमगृहसे निकलना होगा।

औषधोंके राजा सोमरसायनका सेवन करनेसे दश हजार वर्षकी परमायु होती है। अग्नि, जल, विष, शस्त्र वा और किसीसे भी उनका आयुक्षय नहीं होता। हजारों हाथीका बल उनमें आ जाता है। वह अप्रतिहत, कन्दर्पके समान और चन्द्रमाके समान रूप कान्तिविशिष्ट होता है। उसका दर्शन करनेसे मनुष्योंका मन प्रसन्न रहता है। साङ्गोपाङ्गविशिष्ट निखिल वेद उसके आयत्त होते हैं तथा वह व्यक्ति देवताके समान अमोघसंकल्प हो कर अखिल जगत्‌में विचरण करता है।

सभी प्रकारके सोममें पन्द्रह पत्ते होते हैं। वे सब पत्ते शुक्लपक्षमें उत्पन्न होते और कृष्णपक्षमें झड़ जाते हैं। शुक्लपक्षमें प्रति दिन एक एक पत्ता करके उत्पन्न हो कर पौर्णमासीके दिन पन्द्रह पत्ते पूरे होते हैं तथा कृष्णपक्षको प्रतिपद्‌से प्रति दिन एक एक पत्ता करके झड़ कर कृष्णपक्षके शेषमें केवल लता रह जाती है।

अंशुमान् सोम घृतगंधविशिष्ट और रजतप्रभ कन्दविशिष्ट है। इस कन्दका आकार कदलीके जैसा होता है। यह मुञ्जमान् लहसुनके जैसा पत्रविशिष्ट, चन्द्रमा कनकके समान आभायुक्त और सर्वदा जलमें उत्पन्न होता है। गरुड़ाहृत और श्वेताक्ष देखनेमें दोनों ही सांपके केंचुल जैसे मालूम होते हैं तथा वृक्षके आगे लम्बे हो जाते हैं। अन्य सभी प्रकारके सोम विचित्र वर्णके मण्डलसे चित्रित होते हैं। सभी प्रकारके सोमोंमें पन्द्रह पत्ते रहते हैं।

हिमालय, सह्य, महेन्द्र, मलय, श्रीपर्वत, देवगिरि, देवसह, पारिपात्र और विन्ध्य इन सब पर्वतों पर तथा देवसुन्द नामक ह्रदमें, वितस्ता नदीके उत्तर जो पर्वत है उस पर ये सब सोम पाये जाते हैं। चन्द्रमा नामक सोम सिन्धु नामक महानदमें बहता है। यहां मुञ्जवान् और अंशुमान् भी पाये जा सकते हैं। काश्मीरमें क्षुद्र मानस नामक जो दिव्य सरोवर है उसमें गायत्री,

कौष्टुब, पांक, आग्रत और शाक्कर तथा अन्यान्य सोम भी पाये जाते हैं। अधार्मिक, कृतघ्न, वैद्यद्वेषी वा देव-ब्राह्मणद्वेषी ये सब मनुष्य सोम नहीं देख पाते।

निवृत्तसन्तापीय रसायन।

देवगण जिस प्रकार सन्तापशून्य हो स्वर्गमें विचरण करते हैं निम्नोक्त औषध रसायन मिलनेसे मनुष्य भी उसी प्रकार पृथिवी पर विचरण कर सकते हैं।

रासायनिक औषध ये सब हैं—श्वेतकापोती, कृष्ण कापोती, गोनसी, वाराही, कन्या, छत्रा, अतिछत्रा, करेणु, अजा, चक्रका, आदित्यपर्णिनी, ब्रह्मसुवर्च्चला, श्रावणी, महाश्रावणी, गोलोमी, अजलोमा, महावेगवती, ये अठारह सोमतुल्य वीर्य-विशिष्ट महौषध कहलाते हैं। आश्रममें प्रविष्ट हो कर क्षीरयुक्त औषध एक साथ पान करना होगा। जो सब औषध क्षीरहीन मूलविशिष्ट हैं उनके प्रदेशिनी प्रमाणके तीन काण्ड खाने होंगे। श्वेतकापोतीका मूल और पत्ता समेत खाना होता है। गोनसी, अजगरी और कृष्णकापोती इन्हें भी खण्ड खण्ड करके सनख मुष्टिप्रमाणमें ग्रहण कर दूधमें सिद्ध करना होगा। पीछे दूधको स्रावित कर एकही समय पान करना उचित है। चक्रकार दुग्ध सिर्फ एक बार पीना होता है। ब्रह्मसुवर्च्चला सात रात सेवन किया जाता है।

ये सब रसायन सेवन करनेसे शरीर युवाके सदृश, सिंहविक्रान्त तथा मनोहर होता तथा परमायु दो सौ वर्षकी होती है।

ये सब रसायन औषध निम्नोक्त लक्षण द्वारा स्थिर किये जाते हैं। कपिलवर्णके विचित्र मण्डलविशिष्ट पञ्चपत्र, सर्पाकार तथा पञ्च अरत्निप्रमाण तक लंबे होते हैं। इसका नाम अजगरी है। जो निष्पत्र, कनककी तरह आभाविशिष्ट, दो अंगुल परिमित मूल, सर्पके जैसा आकार और अन्तभाग लोहितवर्ण होता उसे श्वेतकापोती कहते हैं। द्विपत्री, मूलजाता, अरुणवर्ण, कृष्णवर्ण मण्डलविशिष्ट, दो अरत्नि प्रमाण दीर्घ और गोनस-सी आकृति होनेसे उसे गोनसी, सक्षीरा, रोमयुक्ता, मृद्वी और इक्षुरसकी तरह रसविशिष्ट होनेसे उसे कृष्णकापोती, एकपत्रा, महावीर्या, अञ्जनप्रभा, कन्द-जाता और श्वेतकापोतीमें संस्थिता होनेसे उसे छत्रा और अतिच्छत्रा कहते हैं। इन दोनोंके लक्षण एक-से होते हैं। इनके द्वारा जरा और मृत्यु आने नहीं पाती। मयूरकी पूंछकी तरह सुन्दर बारह पत्र विशिष्ट, कन्द-जात और स्वर्णवर्ण क्षीरविशिष्ट होनेसे उसे कन्या, द्विपत्री, हस्तिकर्णा, पलाशके जैसे पत्रयुक्त, प्रचुर क्षीर विशिष्ट और गजाकृति कन्द होनेसे उसे करेणु, अजाके स्तनके सदृश कन्द, सक्षीरा, चन्द्र वा शङ्खके जैसा सफेद और छोटे वृक्षकी आकृतिविशिष्ट होनेसे उसे अजा, श्वेतवर्ण, विचित्र पुष्पविशिष्ट तथा काकादनीकी तरह छोटा वृक्ष होनेसे उसे चक्रका कहते हैं। आदित्य-पर्णिनी—मूलविशिष्ट, कोमल, रक्तवर्ण पञ्चपत्रविशिष्ट और सर्वदा सूर्यकी अनुवर्त्तिनी अर्थात् जिस ओर सूर्य रहते हैं उसी ओर झुकना, कनक-सी आभाविशिष्ट, सक्षीर और देखनेमें पद्मिनीकी तरह तथा जो वर्षाके बाद उत्पन्न होती और चारों ओर फैल जाती हैं उसे ब्रह्मसुवर्च्चला कहते हैं। अरत्निप्रमाण वृक्ष, दो अंगुल परिमित पत्र, नीलोत्पल सदृश पुष्प और अञ्जनसन्निभ फल जिसको रहता है उसे श्रावणी; ये सब लक्षणयुक्त, कनकवर्ण-विशिष्ट और पाण्डुवर्ण होनेसे उसे महाश्रावणी कहते हैं। गोलोमी और अजलोमी रोमविशिष्ट और कन्द-सम्भूता होती है। ये जल्दी बढ़ती, हंसपदी लताकी तरह इसमें पत्ते होते, देखनेमें यह सांपके केंचुलसी होती और वर्षाके अन्तमें उगती है।

ये सब रसायन औषध पवित्र हो कर निम्नलिखित मन्त्रसे उड़ाने होते हैं। मन्त्र इस प्रकार है—

"महेन्द्ररामकृष्णानां ब्राह्मणानां गवामपि।
तपसा तेजसा वापि प्रशाम्यध्वं शिवाय वै॥"

(सुश्रुत कल्पस्था० ३१ अ०)

श्रद्धाहीन, अलस, कृतघ्न और पापी व्यक्ति ये सब औषध देखने नहीं पाते।

देवसुन्द नामक ह्रदमें, सिन्धु नामक महाह्रदमें और वर्षाके अन्तमें यह औषध पाया जाता है। उसके बीचमें ब्रह्मसुवर्चला रहती है। उक्त दोनों प्रदेशमें हेमन्तके शेषमें आदित्यपर्णिनी और वर्षाके प्रारम्भमें गोनसी मिलती है। काश्मीरप्रदेशमें क्षुद्रमानस नामक दिव्य सरोवरमें करेणु,

छत्रा, अतिछत्रा, गोलोमी, अजलोमी और महाश्रावणी पाई जाती है। वहां वसन्तकालमें कृष्णवर्ण नामक गोनसी भी देखनेमें आती है। कौशिकी नदीके दूसरे किनारे पूरबकी ओर तीन योजन भूमि तक वल्मीक फैला हुआ है। वल्मीकके ऊपर श्वेतकापोती उत्पन्न होती है। मलय और नलसेतु नामक पर्वत पर वेगवती नामक औषध देखनेमें आता है। कार्त्तिक पौर्णमासी तिथिमें उपवास करके इस रसायनका सेवन करना उचित है।

(सुश्रुत कल्पस्था० २९-३१ अ०)

भावप्रकाशमें इसका विषय यों लिखा है—मधुके साथ वंशलोचन वा सैन्धवके साथ पीपल अथवा चीनी-के साथ त्रिफला सेवन करनेसे रसायन होता है। आध पाव एक पुनर्णवा पीस कर दूधके साथ १५ दिन पान करनेसे बूढ़ा भी जवान होता है। भृङ्गराजका रस मोथेके साथ एक मास पान कर पीछे दुग्धपान करनेसे बल-वीर्यसम्पन्न हो एक सौ वर्ष जीवित रहता है। शतमूली, मुण्डीरी, गुलञ्च, हस्तिकर्णपलाश और तालमूली इन्हें पीस कर घी और मधुके साथ चाटनेसे मरणापन्न मनुष्य भी बलवीर्यसम्पन्न होता है। पित्ताधिक्य व्यक्ति असगंध-का चूर्ण दूधके साथ, वातपित्ताधिक्य व्यक्ति घृतके साथ, वाताधिक्य तेलके साथ और वातकफाधिक्य उष्ण जलके साथ पन्द्रह दिन सेवन करे, तो उसके बल और वीर्यकी वृद्धि होती है। जलसिञ्चन द्वारा जिस प्रकार शस्यवृद्धि होती है उसी प्रकार उसका शरीर परिपुष्ट होता है। लोहा आध पाव, गुग्गुल डेढ़ पाव, त्रिफला १ सेर इन सब चूर्णको एक साथ मिला कर प्रतिदिन २ तोला करके चाटनेसे दीर्घायुलाभ होता है। (भावप्र०)

जो विविध रसायनका सेवन करते, वे केवल दीर्घायु ही लाभ नहीं करते बरन् देवर्षिनिषेवित अक्षर ब्रह्मपदको भी पाते हैं।

भैषज्यरत्नावलीमें रसायनका विषय इस प्रकार लिखा है, अन्नादि परिपाकके बाद एक हरीतकी, भोजनके पहले २ बहेड़ा और भोजनके अन्तमें ४ आमलकी घी और मधुके साथ खानेसे रसायनक्रिया साधित होती है जो यह त्रिफला रसायन एक वर्ष तक सेवन करता, वह जरा और व्याधिसे मुक्त हो कर सौ वर्ष तक बचता है। एक मास यथायोग्य मात्रामें भृङ्गराज रस और दूध पान करनेसे बल, वर्ण और आयुकी वृद्धि होती है। दूधके साथ मुलेठीका चूर्ण, मूल और पुष्पके साथ गुलञ्चका रस तथा चोरकंकोलीका कल्क, यह रसायन आयुप्रद है। यह रोगनाशक तथा बल, अग्नि, वर्ण और स्मरणशक्तिवर्द्धक है। पन्द्रह दिन तक दूध, घी, तेल वा गरम जलके साथ असगंधका काढ़ा पीनेसे देहकी पुष्टि होती है। आमलकी और तिलको भृङ्गराजके रसमें पीस कर सेवन करनेसे बाल काले हो जाते, इन्द्रियां निर्मल होतीं, सभी प्रकारके रोग नष्ट होते तथा आयु बढ़ती है। विड़ङ्गके मूलचूर्णको शतमूलीके रसमें ७ बार भावना दे कर २ तोला मात्रामें घीके साथ सेवन करनेसे बुद्धि और मेधाकी वृद्धि होती तथा वलिपलितादि नष्ट होते है। हस्तिकर्ण पलाशकी छालका चूर्ण घी और मधुके साथ प्रति-दिन सबेरे खानेसे बल, वीर्य, इन्द्रियशक्ति और आयुकी वृद्धि होती है। आमलकीचूर्ण ८ सेर, घी ८ सेर, मधु ८ सेर, पीपल १ सेर, चीनी २ सेर इन्हें एकत्र मिला कर राखमें रखना होता है। पीछे उसमेंसे निकाल कर शरत्कालमें सेवन किया जाता है। उपर्युक्त मात्रामें सेवन करनेसे वलिपलितादि नष्ट होता तथा बलवीर्यादि-की वृद्धि होती है। गुलञ्च, अपाङ्गमूल, विड़ङ्ग, चोरकं-कोली, वच, हरीतकी, सोंठ और शतमूली प्रत्येकका समान चूर्ण ले कर घीके साथ सेवन करनेसे स्मरण शक्ति बढ़ती है। इसके सिवा ऋतुहरीतकी, निगुण्डी-कल्क, भृङ्गराजादि चूर्ण, श्रीमृत्युञ्जयतम्लोक अमृत-वर्त्तिका, श्रीसिद्धमोदक, वसन्तकुसुमाकर, अष्टावक्ररस, त्रैलोक्यचिन्तामणि, पूर्णचन्द्ररस, श्रीमहालक्ष्मीरस, आदि औषध रसायनमें बहुत उत्तम है।

(भैषज्यरत्ना० रसायनाधि०)

रसेन्द्रसारसंग्रहमें लिखा है,—

"सुस्थस्योजस्करं किञ्चित् किञ्चिदार्त्तस्य रोगनुत्।
यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनं॥"

(रसेन्द्रसार०)

नीरोग व्यक्तिके ओजस्कर और रोगीके रोग मिटा-एक तथा जराव्याधिनाशक औषधोंको रसायन कहते

हैं। उन औषधोंके नाम ये हैं—श्रीमन्मथरस, महेश्वररस, पूर्णचन्द्ररस, कार्श्यहरलौह, लक्ष्मीविलासरस, श्रीकामदेवरस, अनङ्गसुन्दररस, हेमसुन्दररस, अमृतार्णवरस, चन्द्रोदयरस, मकरध्वज, वसन्ततिलक, वसन्तकुसुमाकररस, नीलकण्ठरस। ये सब औषध रसायनमें बहुत प्रशस्त और आशुफलप्रद हैं।

(रसेन्द्रसारस० रसायनाधि०)

चरकसंहितामें रसायनका विषय विस्तृत भावमें आलोचित हुआ है, पर यहां संक्षेपमें दिया जाता है। नीरोगीके ओजस्कर और रोगीके रोगनिवारक भेदसे औषध दो प्रकारका है। इन दोनों प्रकारके औषधोंमें जो औषध सुस्थ व्यक्तिके ओजस्कर है उसके भी दो भेद हैं, वृष्य और रसायन। दोनों ही ओजस्कर औषध रोगनिवारक है। किन्तु रसायन औषध जैसा सभी रोगोंको नाश करते हैं, वैसा यह नहीं करता। वृष्यमें रोगनाशककी बहुत थोड़ी शक्ति है।

मनुष्य रसायन सेवन द्वारा दीर्घायु, स्मृति, मेधा, आरोग्य, तरुणावस्था, प्रभा, वर्णस्वरकी पुष्टि, देह और इन्द्रियका बल, वाक्सिद्धि, नम्रता और कान्ति ये सब लाभ करते हैं। प्रशस्त रसादि धातुओंका अयन अर्थात् लाभोपाय है, इसीसे इसका रसायन नाम हुआ है। अमरोंका जिस प्रकार अमृत था, भोगवान्की जिस प्रकार सुधा थी, महर्षियोंका उसी प्रकार रसायन था। रसायन सेवन करनेवाले ऋषि लोग हजार वर्ष जीते थे। इतने समय उन्हें किसी प्रकारका रोग नहीं सताता था। रसायन सेवन करनेसे केवल दीर्घायु ही लाभ होता है, सो नहीं, विधिपूर्वक जो रसायनका सेवन करते, वे देवर्षि निषेवित शुभगतिको प्राप्त होते हैं तथा निर्वाण मुक्ति लाभ करते हैं।

रसायन सेवनके साधारणतः दो भेद कहे गये हैं,—कुटीप्रावेशिक प्रयोग और वातातपिक प्रयोग। वातातपरहित गृहको कुटीगृह कहते हैं।

कुटीप्रावेशिक विधि जहां किसी प्रकार भयकी आशङ्का न रहे, वहां वैद्यादि रहनेके लिये एक सुन्दर घर बनाना होगा। जहां रसायनोपयोगी सभी उपकरण मिल सकते हों, वहां पूर्व और उत्तर दिशामें अच्छी जमीन देख कर एक कुटी बनानी होगी। वह कुटीगृह लम्बा और ऊंचा तथा त्रिगर्भ रहे। (घरके भीतरका घर, उसके भी भीतरका घर फिर उसके भी भीतरका घर त्रिगर्भ कहलाता है) घरके ऊपरी भागमें छोटे छोटे झरोखे रहने चाहिये। नीवें मजबूत रहे तथा घर वैसे स्थानमें बना रहे जहां मानो सभी ऋतुओंमें सुखजनक, परिष्कार परिच्छन्न और मनोहर हों। अशुभकर शब्दादि मानो उसमें घुसने न पावे। वहां स्त्रियोंका आना वर्जित कर दे। अभिलषित उपकरण सामग्री तथा वैद्य, औषध और ब्राह्मण सर्वदा विद्यमान रहें।

इस प्रकार सर्वाङ्ग सुन्दर घर बना कर उत्तरायणमें, शुभपक्षमें, प्रशस्त तिथि, नक्षत्र और करणयोगमें, क्षौर कर्म करके, मनका विकार दूर कर और सभी प्राणियोंमें एक-सा भाव रखते हुए पहले गणेशादि देवपूजा और पीछे ब्राह्मणोंकी पूजा करे। अनन्तर प्रदक्षिण करके इस कुटीगृहमें प्रवेश करना होगा। कुटीगृहमें प्रवेश करनेके पहले वमनविरेचनादि द्वारा विशुद्ध हो फिरसे ताकत लानेके लिये रसायनका सेवन करना उचित है।

जो समर्थ, नीरोग, धीमान्, संयतात्मा, क्षमावान् और धन-जनादिसे सम्पन्न है उन्हींके लिये कुटीप्रावेशिक रसायनविधि हितकर है। दूसरेके लिये वातातपिक रसायनविधि उपकारक है।

रसायनविधिका पालन न कर सकनेसे यदि कोई रोग उत्पन्न हो, तो रसा-यनका त्याग कर उसी रोगकी चिकित्सा करना उचित है।

सत्यवादी, अक्रोध, मद्यमैथुनविरत, अहिंसक, श्रमरहित, प्रशान्त, प्रियवादी, जप और शौचपरायण, धीर, दानशील, तपस्वी, देवता, गोब्राह्मण आचार्यादिकी सेवामें निरत, सर्वदा आनृशंस्यपरायण, कारुण्यवेत्ता, नातिजागरण और नातिनिद्राशील, दुग्धघृतभोजी, देशकालप्रमाणज्ञ, युक्तिज्ञ, अनहंकृत इत्यादि गुणोंसे युक्त व्यक्ति ही रसायनसेवनके अधिकारी हैं। उक्त सभी गुणोंसे युक्त हो जो रसायनका सेवन करते हैं वे रसायनोक्त सभी फल पाते हैं। शारीरिक और मानसिक

दोष दूर किये बिना जो रसायन सेवन करते हैं, वे कभी भी रसायनके यथोक्त गुण पा सकते।

स्नेह और स्वेद द्वारा स्निग्ध और खिन्न हो हरीतकी, सैन्धव, आमलकी, गुड़, वच, विडङ्ग, हरिद्रा, पीपल और सोंठ इनका चूर्ण गरम जलके साथ पीना होगा। इसके द्वारा शरीर संशुद्ध होनेसे पेयादि क्रमसे पथ्य देना होता है, पीछे भूख लगने पर तीन दिन; पाँच दिन वा सप्ताह तक अर्थात् जब तक कोष्ठ साफ न हो तब तक पुराना यवागू घीके साथ पान करना होगा। इसके बाद कोष्ठ साफ हो गया है, ऐसा मालूम हो जाय, तो अवस्था, प्रकृति और सात्म्य (बल)-के अनुसार जिसके लिये जो रसायन उपयोगी हो उसे वही रसायन देना होगा।

ब्राह्मरसायन-शालपर्णी, वृहती, पिठवन, कंटकारी और गोखरू, बेलकी छाल, गनियारीकी छाल, गंभारीकी छाल, पड़हारकी छाल, पुनर्नवा, मूंग, उड़द, विजबंद और रेंड़ीका मूल, जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतमूली, शरमूल, ईखका मूल, कुशमूल, काशमूल और शालिमूल, प्रत्येक मूल १० पल करके कुल ५० पल लेना होगा। हरीतकी १ हजार, नया आंवला ३ हजार इन्हें दश गुने जलमें सिद्ध कर दशमांश रहते उतार ले। हर्रे और आंवलेकी गुठलीको फेंक कर उसे अच्छी तरह पीसे और काढ़े में घोल दे। पीछे उसमें ३२ सेर तिलतैल और ४८ सेर गायका घी मिला कर तांबेके बरतनमें धीमी आंचमें पकावे। आसन्न पाकमें दन्तिमूल, पीपल, शंखपुष्पी, कैवर्त्तमोथा, विडङ्ग, रक्तचन्दन, अगुरु, मुलेठी, हल्दी, वच, नागेश्वर और छोटी इलायची प्रत्येकका चूर्ण चार पल और मिसरीका चूर्ण ११ सौ पल डालना होगा। गाढ़ा होने पर उतारना होता है। पीछे ठंढा होने पर उसमें ४० सेर मधु मिला कर घीके घड़े में रखना होगा।

यह रसायन अच्छी तरह तैयार कर ऐसी मात्रामें सेवन करना होगा जिससे इसका सेवन करनेसे आहारमें किसी प्रकारका व्याघात न पहुंचे। पीछे औषध परिपाक होने पर दूधके साथ साठी धानका भात खाना होगा। वैखानस, बालखिल्य और अन्यान्य तपस्वियोंने इस रसायनका सेवन करके अपरिमित आयु उत्तम तरुणावस्था प्राप्त की थी। आयुष्काम व्यक्ति इस ब्राह्मरसायनका सेवन कर दीर्घायु, शीतातपसहिष्णु, यौवन और अभिलषित कामना लाभ करते हैं।

पूर्वोक्त गुणान्वित एक हजार आंवलेको दूधकी भापमें सुसिद्ध करना होगा अर्थात् एक बड़ी हांड़ीमें दूध रख कर उस हांड़ीका मुंह कपड़ेसे बंद कर दे और कपड़े के ऊपर आंवला रख कर हांड़ीके नीचे आंच दे। आंच देते देते दूधकी भापसे आंवला सिद्ध हो जायगा। पीछे उस आंवलेकी गुठली फेंक कर छायामें सुखा कर चूर्ण कर ले। अनन्तर दूसरे आंवलेके रसमें उस चूर्णको ७ बार भावना दे। बादमें शालपर्णी, पुनर्नवा, जीवन्ती, गोखरू, आलकुशी, मण्डूकपर्णी, शतमूली, शंखपुष्पी, पीपल, वच, विडङ्ग, गुलञ्च, रक्तचन्दन, अगुरु, मुलेठी, मौलसरीका फूल, नीलोत्पल, पद्म, मालती, प्रियंगु और जूही, इन सबका चूर्ण आंवलेके चूर्णका आठवां भाग ले कर उसमें मिला दे। कुल चूर्णको गोखरूके रसमें भावना दे कर छायामें सुखा लेना होगा। इसके बाद उसमें दूना घी और मधु मिला कर बेरकी गुठलीके बराबर गोली बनानी होगी। ये सब गोली घीके घड़े में रख कर जमीनके अंदर गाड़ दे और ऊपरसे राख ढक दे। एक पक्षके बाद उस बरतनको निकालना होगा। अनन्तर उस औषधमें अष्टमांश विशुद्ध स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, प्रवाल और लौहचूर्ण मिला कर अग्निके बलानुसार पहले दिनके औषधका परिमाण स्थिर कर प्रतिदिन एक तोला वा उससे कम बढ़ावे। प्रातःकालमें यथाविधान सेवन करना होगा। औषध परिपाक होने पर दूध और घीके साथ साठी-धानका भात खाना होगा। इस रसायनका सेवन करनेसे पूर्वोक्त सभी गुण पाये जाते हैं।

हरीतकी-रसायन—हरीतकी, आमलकी, विभीतकी, पांच प्रकारके मूलका क्वाथ, पीपल, मुलेठी, मौलफल, कंकोली, क्षीरकंकोली, अलकुशीका बीज, जीवक, ऋषभक, क्षीरविदारी इन सब द्रव्योंका कल्क, आठ गुने दूध, ६४ सेर भूमिकुष्माण्डका रस। यथाविधान इस घीका पाक करना होगा। अग्निके बलानुसार इस घीका सेवन करे। पीछे घी परिपाक होने पर घी और दूधके साथ

साठी धानका भात खाना होगा। अनुपान गरम जल बताया गया है। यह रसायन सेवन करनेसे जरा, व्याधि, पाप अभिचार और भय दूर होते, शरीर बलिष्ठ होता और बुद्धि तथा इन्द्रियकी शक्ति बढ़ती है।

घी ४ सेर, हरीतकी, आमलकी, विभीतकी, हरिद्रा, शालपर्णी, विड़ङ्ग, गुलञ्च, सोंठ, मुलेठी, पीपल और सफेद खैर, इन सब द्रव्योंका क्वाथ १६ सेर और चूर्ण १ सेर, इनका यथाविधान पाक करना होगा। घृतपक्व होने पर उसमें मधु और चीनी एक सेर मिलावे। आमलकीचूर्ण सौ पल, उसीके रसमें भावित कर उसका चूर्ण और उसका चतुर्थांश जारित लौहचूर्ण भी उसमें मिलावे। यह रसायन प्रतिदिन सबेरे दो तोला करके सेवन करे। शामको मूंगके जूस वा दूधके साथ घृतसंयुक्त साठी धानका भात खावे। यह रसायन तीन वर्ष सेवन करनेसे सौ वर्ष तक बुढ़ापा नहीं आयेगा और जो एक बार सुना जायगा वह हमेशा याद रहेगा तथा रोग दूर होंगे और शरीर पत्थरके समान मजबूत होगा।

एक हजार आंवला और एक हजार पीपलको जलमें भिगो कर छायामें सुखा ले। गुठली उसमेंसे फेंक देनी होगी। पीछे उस आंवले और पीपलको चूर्ण कर उसमें चौथाई भाग चीनी मिलावे। अनन्तर घृतभावित पात्रमें उसे रख कर ६ मास तक जमीनके अन्दर गाड़ रखे। बादमें उस रसायनको निकाल कर सबेरे अग्निके बलानुसार सेवन करे। औषध जीर्ण होने पर मध्याह्नकालमें सात्म्य भोजन करना होगा। अपराह्नकालमें भोजन निषेध है। इस रसायन सेवनका फल पहलेके जैसा है अर्थात् सौ वर्ष तक बुढ़ापा आने नहीं पाता।

नागबला-रसायन—शुचि और संयत हो कर स्वस्तिवाचन और देवार्चनापूर्वक माघ और फाल्गुन मासके शुभ मुहूर्तमें अच्छी भूमिसे उत्पन्न गुणयुक्त नागबलाका मूल उखाड़े। पीछे उस मूलको जलमें धो कर एक पल या दो तोला उसका छिलका ले कर अच्छी तरह पीसे। अनन्तर गायके दूधके साथ प्रतिदिन सबेरे यथाविधान सेवन करे। औषध जीर्ण होने पर दूध और घीके साथ भात खाना होता है। एक वर्ष तक सेवन करनेसे सदा जवान-सी ताकत बनी रहती है।

नागबला निम्नोक्त गुण सम्पन्न भूमिसे उखाड़ना होता है। जो स्थान आकुल और कुशव्याप्त हो, जहांकी मिट्टी चिकनी, मधुररसवाली, काली अथवा सुनहली हो, जो विषदोष, वायुदोष, जलदोष, अग्निदोष और श्वापदके उपद्रवसे वर्जित हो तथा जो स्थान कर्षण, वल्मीक, श्मशान, चैत्य और क्षाररसरक्षित हो, जहां वायु और धूप अच्छी तरह आता जाता हो, वहींसे नागबला उखाड़ना होता है।

करप्रचितीय रसायन—माघ फाल्गुन मासमें अपने हाथसे कुछ परिपुष्ट आमलकी तोड़ कर उसकी गुठली फेंक दे। पीछे उसे सुखा और चूर्ण कर आंवलेके रसमें २१ बार भावना दे। बाद उसे फिरसे सुखा कर चूर्ण कर ले। ऐसा चूर्ण ८ सेर, जीवनीय, बृंहणीय, स्तन्यजनन, शुक्रवर्द्धन और वयःस्थापनगणोक्त द्रव्यसमूह संग्रह करना होगा। इसके अलावा रक्तचन्दन, अंगुरु, धव, खैर, शीशम और असन, इनका सार; हरीतकी, बहेड़ा, पीपल, चई, चिता और विड़ङ्ग इन्हें अलग अलग कूटना होगा। पीछे वह जीवनादि द्रव्यसमूह, रक्तचन्दनादि द्रव्यसमूह और हरीतक्यादि द्रव्यसमूह, कुल मिला कर ८ सेर ले कर १६० सेर जलमें पाक करना होगा। १६ सेर जल रहते उसे उतार कर छान लेना होगा। उस काढ़ेमें पूर्वोक्त आमलकीका चूर्ण ८ सेर मिला कर गोइंठेकी आंचसे पकाना होगा। पाकके समय इस बात पर विशेष ध्यान रहे, कि चूर्णजल न जाय अर्थात् कुछ काढ़ा रहते ही उसे उतार लेना होगा। बादमें उस चूर्णको लोहेके बरतनमें फैला कर सुखा ले। अच्छी तरह सूख जाने पर कृष्णसार मृगचर्मके ऊपर एक शिला रख कर उसी पर अच्छी तरह चूर्ण करे। इसके बाद लोहेके बरतनमें उसे ढक कर रखना होगा। अग्निका बलाबल सोच विचार कर उपयुक्त मात्रामें वह चूर्ण तथा उसका आठवां भाग लौहचूर्ण मिला कर घी और मधुके साथ चाटे। प्राचीनकालमें वशिष्ठ, कश्यप, अङ्गिरा, जमदग्नि, भरद्वाज, भृगु आदि ऋषियोंने इस रसायनका सेवन किया था। इसके प्रभावसे वे लोग बलिष्ठ हो कठिन तपस्या करनेमें समर्थ

हुए थे। इस रसायनका सेवन करनेसे जराव्याधिरहित हो दीर्घजीवन लाभ करता है।

लौहरसायन, हेमरसायन और रजतरसायन—चार अंगुल लंबा और तिलके समान बारीक कान्तलौहका एक पत्तर बना कर अग्निमें तपावे। जब वह एकदम लाल हो जाये, तब त्रिफलाके काढ़े, गोमूत्र, यवक्षारके जल, लवणके जल, इंगुदीक्षारके जल और किंशुकक्षारके जलसे बुझावे। अञ्जनवर्णका हो जानेसे उस पत्तरको चूर्ण करे। मधु और आमलकीके रसमें मिला कर उसे लेहवत् करे। पीछे घृतभावित कुम्भमें उस चूर्णको रख कर जौके ढेरमें एक वर्ष रख छोड़े। वह लेहवत् लौहचूर्ण महीने महीने एक एक बार आलोड़न करके उसमें थोड़ा मधु और आमलकीका रस मिलाना होगा। इस प्रकार एक वर्ष बीत जाने पर उसे अग्निके बलाबलानुसार उपयुक्त मात्रामें प्रतिदिन मधु और घीके साथ सेवन करे। औषध जीर्ण होने पर सात्म्य भोजन करना होता है। इसी प्रणालीसे सोने और चांदीका रसायन बनाना होता है। यह रसायन आयुका प्रकर्षकारक और सर्वरोगनाशक है। इसका सेवन करनेसे अभिघात, रोग, जरा वा मृत्यु द्वारा अभिभूत नहीं होना पड़ता। एक वर्ष तक इस रसायनका सेवन करनेसे हाथीके समान बलिष्ठ, अतिबलेन्द्रिय, धीमान्, यशस्वी, वाक्सिद्ध और श्रुतिधर होता है।

आमलकरसायन—एक वर्ष तक ब्रह्मचारी (मैथुन रहित) जितेन्द्रिय और केवल दूध पी कर दिनरात वेदोक्त ब्रह्मगायत्री जप कर गोगणके मध्य वास करे। वर्षके अन्तमें तीन दिन उपवासी रह कर पौष, माघी वा फाल्गुनी पूर्णिमा तिथिमें आंवलेके वनमें प्रवेश करे और फलसे परिपूर्ण एक बड़े आंवलेके पेड़ पर चढ़ कर कुछ आंवला तोड़े। जब तक उसे तोड़े हुए फलमें अमृत न आ जाय, तब तक ब्रह्मप्रणव जप करना होगा। ब्रह्मनिष्ठ पुरुषके ब्रह्मप्रणव जप द्वारा थोड़े ही समयमें उसमें अमृत आ जायगा। जब देखे, कि वे सब फल मृदु, स्नेह और शर्करा मधुतुल्य स्वादिष्ट हो गया है, तब जानना चाहिये, कि उनमें अमृत आ गया। भर पेट वह आंवला फल खानेसे मनुष्य अमरके समान कान्ति लाभ करता है तथा स्थिरयौवन हो कर हजार वर्ष जीवित रहता है। लक्ष्मी स्वयं आ कर उसका आश्रय लेती हैं, वेद उनके कंठस्थ हो जाते हैं और सरस्वती मूर्त्तिमती हो कर उनके समीप उपस्थित होती हैं।

इसके सिवा च्यवन-प्राशरसायन, हरीतकी रसायन, आमलकघृतरसायन, आमलकावलेहरसायन, आमलकीचूर्णरसायन, विड़ङ्गावलेहरसायन, आमलकावलेह, भल्लातकक्षीर, भल्लातकक्षौद्र, भल्लातक तैल, ऐन्द्ररसायन, मेधाकररसायन, पिप्पलीरसायन, वर्द्धमान पिप्पलीरसायन, त्रिफलारसायन, शिलाजतुरसायन, इन्द्रोक्त रसायन, द्रोणीप्रावेशिकरसायन और आचाररसायन ये सब रसायन सेवन करनेसे पूर्वोक्त फल होते हैं। इन सब रसायनका विषय और प्रणाली चरकमें वर्णित है।

समस्त शरीर दोष ग्राम्य आहारसे उत्पन्न होते हैं। अम्ल लवण, कटु, क्षार, शुष्कशाक, उड़द, तिलकल्क, पिष्टान्न, अंकुरित और नूतन शूकशमी धान्यकृत अन्न, विशुद्ध, असात्म्य, रुक्ष, क्षार, अभिष्यन्दी द्रव्य, क्लिन्न, गुरु, तथा पूति, पर्युषित, अन्न, विषमाशन, अध्यशन, नित्य दिवानिद्रा, स्त्रीसङ्गम और मद्यपान, विषम वा अत्यन्त व्यायाम द्वारा शरीरमें तरह तरहके दोष उत्पन्न होते हैं। इन सब ग्राम्य विषयका सेवन करनसे वात, पित्त और कफ बिगड़ता, शरीरका मांस शिथिल हो जाता, सन्धियां विश्लिष्ट होतीं, रक्त विदग्ध होता, मज्जा अस्थिमें संहित होती और शुक्र प्रवृत्त नहीं होता तथा ओजक्षयको प्राप्त होता है। इन सब कारणोंसे ग्राम्य व्यक्ति ग्लानियुक्त, अवसन्न, निद्रा, तन्द्रा और आलस्ययुक्त और निरुत्साह होता तथा थोड़े ही परिश्रममें वे हांफने लगते हैं। वह शारीरिक और मानसिक कोई भी कार्य नहीं कर सकते, उनकी स्मरणशक्ति बढ़ती और कान्ति विनष्ट होती है। वे लोग रोगोंके आश्रय-स्थान हैं तथा परिमितायु भोग करनेमें समर्थ नहीं होते। इन सब दोषोंसे बचनेके लिये अहितकर आहार-विहार छोड़ दे तथा जितेन्द्रिय शुद्धाचारी हो कर पूर्वोक्त रसायनका सेवन करे। इससे सभी प्रकारका सुखसौभाग्य प्राप्त होता है। रसायन सेवनके सिवा शारीरिक दोष नष्ट करनेका और कोई

उपाय नहीं है। अतः जो व्यक्ति बुद्धिमान् और दीर्घायु होना चाहें उन्हें रसायनका अवश्य सेवन करना चाहिये। (चरक, चिकित्सास्था०-रसायनाधि०)

चरक, वाग्भट आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें रसायनाधिकार में रसायनयोग वर्णित हैं, विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुछ नहीं लिखा गया।

रसः पारदः लक्षणया तज्जातीया हरितालादिकश्च अयनं आश्रय उपायो यस्य तत्। ३ स्वर्णादि करण। पारेको जो स्वर्णादि धातुमें परिणत किया जाता है उसे रसायन कहते हैं। दत्तात्रेयतन्त्रके १३वें पटलमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है,—

एक काला सांप पकड़ कर उसके मुंहमें शिववीर्य (पारा) भर दे। पीछे उसका मुंह बंद करके मट्टीके एक नये बरतनमें रख मट्टीसे लेपन करना होगा। अनन्तर उसे निर्जन स्थानमें सवेरेसे शाम तक उसमें आंच देनी होगी। इसके बरतनका मुंह खोल कर उसमेंसे केवल पारा निकाल ले। सर्पका भस्म न निकाले। पीछे एक तोला तांबा गला कर उसमें रत्ती भर पारा छोड़ देनेसे ही वह सोनेमें परिणत हो जायगा। यह तैयार करनेमें पहले शिवकी पूजा करनी होती है। (दत्तात्रेयतन्त्ररसायन नाम १३ अ०)

इस प्रकार सोने और चांदी आदि धातु बनानेकी अनेक प्रकारकी विधि बताई गई हैं। रसायनगुणके प्रभावसे एक धातु दूसरी धातुमें परिणत होती है।

(पु०) ४ गरुड़। ५ वायविड़ङ्ग, विड़ङ्ग। ६ विष, जहर। ७ वंशपत्र हरिताल। ८ पदार्थोंके तत्त्वोंका ज्ञान। ९ धातुविद्या जिसमें धातुओंको भस्म करने या एक धातुको दूसरी धातुमें बदल देने आदिकी क्रियाका वर्णन रहता है।

रसायनज्ञ (सं० त्रि०) रसायन क्रियाका जाननेवाला, जो रसायनविद्या जानता हो।

रसायनतन्त्र (सं० क्ली०) रसायनाधिकार।

रसायनफला (सं० स्त्री०) रसायनेन फलति या फल अच्, टाप्। हरीतकी, हर्रे।

रसायनवर (सं० पु०) लशुन, लहसुन।

रसायनवरा (सं० स्त्री०) १ कंकु, कंगनी। २ काकजंघा।

रसायनविज्ञान (सं० पु०) वैज्ञानिक उपायसे तत्त्वोंका ज्ञान। इसका अंगरेजी नाम Chemistry है। प्राचीन आर्य हिन्दुओंके 'रसायन' शब्दके व्युत्पत्तिगण अर्थके साथ पाश्चात्य सभ्यजगत्‌के Chemistry शास्त्रका वस्तुगत अनेक सादृश्य रहने पर भी दोनोंमें प्रभेद देख कर वैज्ञानिकोंने वर्त्तमान अंगरेजी रसायनशास्त्रको उसी शब्दके अनुकरण पर किमिया-विद्यारूपमें प्रकाशित किया है।

पाश्चात्य किमियाविद्या सचेतन (Organic) और जड़ पदार्थ (Inorganic bodies)-के मेलसे बनी है। सोने आदि जड़ धातुमें वृक्षादि चेतन पदार्थका थोड़ा भी संयोग होनेसे वह स्वभावतः ही रूपान्तरको प्राप्त होती है तथा उसके साथ साथ गुणमें भी परिवर्त्तन देखा जाता है। इस वैज्ञानिक समावेशका नाम रसायन है। जिस शास्त्र द्वारा मिश्रित द्रव्यका गुणागुण और बलाबल जाना जाता है, वही रसायनशास्त्र है।

प्राचीन आर्यगण औषध और धातुकी वस्तुशक्तिकी परीक्षा करके उसकी उपकारिता मालूम करते थे। फिर दो वा दोसे अधिक विभिन्न धातु वा भेषजादि मिला कर उसके गुणका भी पता लगा लेते थे। कुछ निर्दिष्ट नियमके अनुवर्त्ती हो वे सब मिश्रित औषध यन्त्रादिकी सहायतासे बनाये जाते थे। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रक्रियासे प्रस्तुत औषध रसरक्तादिका पुष्टिसाधक और व्याधिनाशक होता है इस कारण आयुर्वेदमें उसका रसायन नाम रखा है।

आर्यऋषियोंने रसायनशास्त्रकी उन्नति करनेके लिये जिन सब यन्त्रादिका आविष्कार किया था, उसका विशेष विवरण जाननेका कोई उपाय नहीं है। आर्य-सभ्यताके विस्तारके साथ साथ प्राचीन ऋषिगण जो मनुष्यके उपयोगी रसायनादि बनाने लग गये थे उसका आभास हम लोग ऋग्वेदमें कई जगह देखते हैं। दोनों अश्विनीकुमारके देववैद्यरूपमें आविर्भाव होनेका प्रसङ्ग ऋग्वेदके आरम्भमें ही देखनेमें आता है। सोमरस उस समय पुष्टिकर रसायन समझा जाता था। ऋक् १।३।२।३ मन्त्रमें लिखा है, 'हे रुद्रवर्त्मन् अश्विद्वय! मिश्रित सोमरस अभिषुत हुआ है, तुम दोनों आवो।' यह मिश्रित

सोमरस Chemical Combination वा liquid mixture-के सिवा और क्या हो सकता? सोमरस रुग्न व्यक्तिका औषधस्वरूप है, इसीसे वेदमें उसको रोगारोग्यकारी देवता कहा है। एतद्भिन्न उक्त महाग्रन्थके १०।६७।६-७ मन्त्रमें लिखा है, कि जिस देशमें ओषधियोंका संगमन होता है उस देशके ब्राह्मण भिषक् कहलाते हैं। वे यदि अश्वावती, ऊर्ज्जयन्ती, सोमावती और उद्दोजस् आदि प्रधान ओषधियोंका संग्रह कर सकें, तो वे रोगीका रोग दूर कर उसे आरोग्य कर सकते हैं। उक्त सूक्तके १८वें मन्त्रमें सोमको ओषधिका राजा बताया है। फिर २०वें मन्त्रमें रोगियोंके लिये ओषधि खनन और उससे द्विपत् अर्थात् पुत्र भृत्यादि, चतुष्पद अर्थात् गो-महिषादि जीवसङ्घके आरोग्य होनेकी बात लिखी है।

इसके सिवा ऋक् संहिताके ५म मण्डलके १६, २७, ३०, ३३, ५२, ५३, ५४, ५५, ५७वें सूक्त तथा ६ष्ठ मंडलके २, २७, ४६, ४७, ४८वें सूक्तकी आलोचना करनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि उस समय आर्यऋषियोंने धातु गला कर, मुद्रा चला कर, लोहेका कलस बना कर, सुरा तैयार कर तथा अञ्जि, स्रक्, रुक्म, खादि और हिरण्मय शिप्र आदि स्वर्णालङ्कार गढ़ कर तथा ऋष्टि, वंशी, धनुष, इषु, निषङ्ग, हिरण्मय कवच, वर्म और लोहेके अस्त्रादि बना कर यथेष्ट उत्कर्षता प्राप्त की थी। उसी सुप्राचीन समयसे भारतवर्षमें रसायन-विज्ञान (alchemy)-का सूत्रपात हुआ था। वे लोग रासायनिक सङ्कर्षण और विकर्षण जाने बिना कभी भी इसकी उन्नतिमें हाथ नहीं लगाते थे।

आथर्व्वणीय युगमें ऋषिगण भेषजादिके गुण और रोगनाशक शक्तिके विषयसे अच्छी तरह जानकार थे। उन सब ओषध्यादिके उत्तोलनकालमें अथवा उसकी शक्ति बढ़ानेके उद्देशसे उन्होंने मन्त्र-पाठादि द्वारा भौतिक क्रियाका आरम्भ कर दिया था। इन्हीं सब कारणोंसे हम लोग अथर्ववेदमें रोग और उसकी रसायन-समष्टिकी परिस्फुट तालिका देख पाते हैं। अथर्ववेदके ४।१७।१ मन्त्रमें अपामार्गको (Achyranthes aspera) रोगशान्तिकी मुख्यकर्त्री तथा अन्यान्य ओषधिकी ईश्वरी बता कर आवाहन किया गया है। एक दूसरे स्तोत्रमें सोमरसको अमृत (Ambrosia) और बलकर बताया है। वे लोग सौ वर्ष आयु बढ़ानेवाला रसायन (औषध) बनाना जानते थे, उसका आभास उस मन्त्रमें पाया जाता है। उक्त ग्रन्थके १।२३।१ मन्त्रमें कुष्ठरोग और बुढ़ापेके कारण बालोंका पकना दूर करनेके लिये एक प्रकारकी काले ओषधका परिचय है। ६।१३६।१-२ मन्त्र पढ़नेसे मालूम होता है, कि बालोंकी जड़ मजबूत करने तथा उसे पकनेसे रोकनेके लिये काकमाची आदि औषधियोंकी प्रशंसा की गई है। वे लोग पलितकेशकी रक्षाके लिये रासायनिक औषध बनाते थे। उसके प्रमाणस्वरूप निम्नोक्त मन्त्र उद्धृत किया गया है—

"यस्ते केशोवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते ।
इदं तं विश्वभेषज्याभिषिञ्चामि हि वीरुधी ॥"

(६।१३६।३)

अथर्ववेदमें भूत वा प्रेतयोनिके समावेशसे उत्पन्न रोग और साधारण पीड़ाको अच्छा करनेके लिये जिन सब मन्त्रों और औषधोंकी व्यवस्था है वह अंश 'भैषज्यानि' कहलाता है। फिर जहां ऋषियोंका दीर्घजीवन स्वास्थ्यकी कामनासे बलकर रसायन बनानेकी ओर ध्यान गया है वह 'आयुष्यानि' नामसे परिचित है। वैदिक आयुष्यानि और संस्कृत रसायन तथा अङ्गरेजी किमियाविद्या (Alchemy) तीनों एक हैं। उक्त ग्रन्थमें एक जगह मुक्ता, सीप और सोनेके आवाहनका प्रसङ्ग देखनेमें आता है। इन तीनों द्रव्यका नाम रसायन है *।

वैदिकयुगके बाद आयुर्व्वेदीययुगमें चिकित्साशास्त्रकी उन्नतिके साथ साथ विभिन्न प्रक्रिया द्वारा औषधादि बनानेकी व्यवस्था हुई। महर्षि सुश्रुत और चरकने रसायन प्रस्तुत करनेकी विशद प्रथा दिखलाई है। अग्निवेश, भेल, जातुकर्ण, पराशर, हारित, क्षीरपाणि आदि आयुर्वेदशास्त्रकी विशेष उन्नति कर गये हैं। पीछे दृढ़बल, वाग्भट, चक्रपाणि आदिने उसकी पुष्टि की।

* Bloomfield's Hymns of the *Atharvaveda*, Intro. p. *XLVI*

चरकसंहिताका सूत्र स्थान २६वां अध्याय पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि एक समय हिमालयस्थ चित्ररथवनमें अग्निपुत्र पुनर्वसु, भद्र काप्य, शाकुन्तेय ब्राह्मण, मौद्गल्य, पूर्णाक्ष, कौशिक हिरण्याक्ष, कुमारशिरा भरद्वाज, राजर्षि वार्योविद्, विदेहराज निमि, धामार्गव वडिश और वाह्लिक देशीय भिषग्वर काङ्कायन आदि ऋषियोंने एकत्र हो कर पञ्चभूतात्मक रस और आहार्य पदार्थकी प्रकृत अवस्था और प्रयोजनीयताका निरूपण किया।

रसायनशास्त्रके आदिमें पार्थिव पदार्थका गठन और गुण तथा उसका आणविक विश्लेषण आलोचित हुआ है। महर्षि कणादने वैशेषिक सूत्रसे, कपिलने सांख्यसूत्रसे, गौतमने न्यायसूत्रसे तथा डिमक्रिटस आदि ग्रीक दार्शनिकोंने एक स्वरसे पञ्चतन्मात्रसे उत्पन्न पाञ्चभौतिक पदार्थका आणविक विश्लेषण स्वीकार कर लिया है। यह आणविक संयोग वा वियोग स्वीकार नहीं करनेसे रासायनिक-प्रक्रियासाध्य किसी भी वस्तुका गुण परिवर्त्तन वा रूपान्तर नहीं किया जा सकता।

आयुर्वेदीय पौराणिक युग और अपेक्षाकृत आधुनिक वैद्यकयुगको छोड़ यदि बौद्धयुगके इतिहासकी आलोचना की जाय, तो भी ओषधि और रसायनका उल्लेख देखनेमें आता है। कृष्णाञ्जन, स्रोतोऽञ्जन, रसाञ्जन आदि द्रव्योंकी उपकारिता और रोगादिकी चिकित्सा तथा औषधका विषय महावग्ग, विनयपिटक, जीवक-कोमारभच्च आदि बौद्धग्रन्थोंमें विशदभावमें लिखा है। बौद्धशास्त्रविद् रिस-डे-विड्स और ओल्डनवर्गके मतसे विनयपिटक ३५०-७० ई०सन्के पहले सङ्कलित हुआ था। अतएव पाश्चात्य जगत्में हिपोक्रेटिसके जन्म लेनेसे बहुत पहले हिन्दू लोग शरीरसविज्ञान (Humoral Pathology) नामक आयुर्व्वेदशास्त्रसे अच्छी तरह अवगत थे।

बौद्धयुगके परवर्त्ती आधुनिक वैद्यकयुगमें अर्थात् ७वीं सदीमें हम लोग देखते है, कि चीनपरिव्राजक इत्सिं भारतमें आ कर वैद्यकशास्त्र पढ़ते थे। इत्सिंके वृत्तान्त अथवा हर्षचरित-वर्णित राजवैद्य रसायनके प्रसङ्गमें हम लोग केवल आयुर्व्वेद और भेषजादिका उल्लेख देखते हैं; किन्तु उस समय रसायन (Metallic salts)-का विशेष प्रचार था वा नहीं, कह नहीं सकते।

वाग्भटके समयसे रासायनिक धातव औषधोंका प्रचार हुआ। इसके बाद वृन्द और चक्रपाणिने उसकी परिपुष्टि की। इस समय भारतवर्षमें तान्त्रिक प्रभाव फैला हुआ था; इससे उन्होंने अपने अपने ग्रन्थके रसायनाधिकारमें औषधादिको अभिमन्त्रण करनेके लिये मंत्रप्रयोगकी व्यवस्था की थी। चक्रपाणिने वृन्दका पदानुसरण किया। वृन्दने माधवकरके निदानको मूलभित्ति बना कर अपने ग्रन्थकी रचना की। उसी निदानग्रन्थका तुरुष्काधिप खलीफाके आदेशसे अरबी भाषामें अनुवाद हुआ था।

अरबदेशी विख्यात पण्डित अलबीरुणी जब भारतवर्ष आये, तब उन्होंने हिन्दुओंके गूढ़ रसायनशास्त्रका पूर्ण प्रभाव देखा था। उन्होंने लिखा है, कि वे लोग इसे गोपनीय भावमें रखते थे, किसीको भी इस गुप्त रहस्यका मर्म मालूम नहीं होने देते थे। इस कारण भारतीय आयुर्व्वेदविदोंसे वे भी यह विद्या सीख न सके। उन्होंने हिंदुओंके अग्नियोगसे पुटपाक (ublimation) जारण, मारण वा भस्म (Calcination) पृथक्करण वा सारग्रहण (Analysis) तथा तालक (Waxing of talc) प्रस्तुतविधिका अनुधावन करके स्पष्ट अनुमान किया था, कि वे लोग प्रधानतः धातुसम्पर्कीय रसायनकी आलोचनामें लगे रहते थे।

पहले ही कहा जा चुका है कि तान्त्रिकयुगमें उपासना पद्धतिके साथ साथ शरीरकी रक्षाके लिये आयुर्वेदोक्त रसायनका आदर बढ़ा था। ११००-१३०० ई०में तान्त्रिक प्रभाव जब भारतवर्षमें तमाम फैला हुआ था उस समय बौद्ध और शैवब्राह्मण बुद्ध तथा शिवको एक दृष्टिसे देखते थे। यही कारण है, कि हम लोग बौद्धके मध्य महाकालतन्त्र और रसरत्नाकर तथा शैवोंके मध्य रसार्णव, रसहृदय, रससिद्धान्त आदि तन्त्रशास्त्रका प्रचार देखते हैं। उन सब ग्रन्थोंमें देह और स्वास्थ्यरक्षाके लिये जो सब रासायनिक प्रयोग लिपिबद्ध हुआ है, वह बहुत मूल्यवान् सामग्री है। रसहृदयमें पारेका महादेवका वीज और अबरकको पार्वतीका वीज बताया है। गोविन्द भगवत्, सर्वज्ञरामेश्वर आदिने विशदरूपसे पारेका गुणागुण वर्णन किया है। पारद-विज्ञान जो केवल

रसायनशास्त्रका आलोच्य विषय और धातुवादार्थ नियोजित है, सो नहीं; देहवेध द्वारा इससे परम प्रयोजनीय मुक्तिकीभी साधना की जा सकती है। रसार्णवमें लिखा है—

'लोहवेधस्त्वया देव यद्दत्तं परमेशितः।
तं देहवेधमाचक्ष्व येन स्यात् खेचरी गतिः॥
यथा लोहे तथा देहे कर्त्तव्यः सूतकः सता।
समानं कुरुते देवि प्रत्ययं देहलोहयोः।
पूर्वं लोहे परीक्षेत पश्चाद्देहे प्रयोजयेत्॥" इति

इस पारदविज्ञानकी परिपुष्टिके साथ साथ भारतीय आयुर्वेद जगत्में एक युगान्तर उपस्थित हुआ। भिषकोंने भैषज्यतत्त्वकी आलोचनाके साथ साथ तन्त्रोक्त पारद, लौह, ताम्र आदि धातुजात रसायनका यथार्थ तत्त्व जाननेके लिये कोई कसर उठा न रखी। इस समयको आयुर्वेदीय-रसयुग (Iatro-chemical period) कहा जा सकता है। तन्त्रकार वा योगीगण अबरक, पारे, लोहे, हरिताल आदि रासायनिक प्रक्रिया द्वारा प्रस्तुत औषधादिसे यद्यपि मृत व्यक्तिको जिला न सकते थे, तो भी यह आयुर्वेदोक्त रोगारोग्यका उपयोगी औषध समझा जाता था। इस युगके चिकित्सकोंने चरक और सुश्रुतोक्त औषधादिके साथ साथ पहले रसप्रयोगकी व्यवस्था की।

रसार्णव और रसरत्नसमुच्चयकार तान्त्रिकगण अनन्त जीवन और मोक्षकी कामनासे जब रसधातुसे उत्कर्षसाधक रसायनके आविष्कारमें लगे हुए थे, प्रायः उसी समय रोजर बेकन (१२६४ ई०) एलबार्ट्स मेगनस, रेमण्ड लाली, अर्णाल्डल भिलानोभेनस आदि विद्योत्साहियोंका ध्यान किमियाविद्याकी उन्नतिकी ओर दौड़ा। रोजर बेकनने निःसङ्कोच चित्तसे कहा था, कि पारसपत्थर (Philosophers Stone) अपरापर धातुओंको सोना बना सकता है तथा पूर्वोक्त रससिद्धों (Alchemists)-ने इसे सर्वरोगहर भैषज बतलाते हुए एक स्वरसे कहा है, जिसके पास यह सर्वरोगनाशक (Panacea) पदार्थ रहेगा वह ४ सौ वर्ष तक वा उससे भी अधिक जीवित रह सकता है।

१२वीं वा १३ वीं सदीके पहले भारतमें फलित-रसायन (Practical Chemistry) का पूर्ण प्रचार था। उस समय यूरोपवासी रसायनविद्यासे बिलकुल अनभिज्ञ थे। वे लोग तूतिया (Blue vitriol) माक्षिक (Pyrites) आदिसे ताम्रकी संयोग प्रणाली जानते थे सही, पर धातुशोधनका तरीका उन्हें अच्छी तरह मालूम न था। पारासेलसस (१४९३-१५४१ ई०) ने पारेका भेषज गुण जानकर उसके आभ्यान्तरिक प्रयोगकी व्यवस्था की थी। लिवाभियस (१६१६ ई०में) पारासेलससके दोषगुण पर विचार कर रसायनशास्त्रके उत्कर्षसाधनमें अग्रसर हुआ। प्रसिद्ध वसिल वलेण्टाइनके समय (१६०० ई०में) यूरोपमें अरिष्टटल और अरबदेशीय रसविद् (Alchemists) गणके मतानुसरणके सिवा और किसी नवीन मतका आविष्कार नहीं हुआ। १६ वीं सदीके यूरोपीय, रसायनकी उन्नतिके सम्बन्धमें अध्यापक स्कोर्लेमर (Prof. Schorlemmer) ने लिखा है, कि १६ वीं सदी तक यूरोपीय रसायनविदोंकी सारी चेष्टा "फिलजाफर्स ष्टोन" की खोजमें रही। किन्तु अभी रसायनशास्त्र दो नये और सम्पूर्ण विभिन्न पथके अवलम्बन पर उन्नति कर रहा है। एग्रिकोलाने धातुविज्ञान (Matellurgy) और पारासेलसस आयुर्वेदीय रसयोग (Iatro-Chemical) के सम्बन्धमें गहरी आलोचना कर धातव रसायनविज्ञानकी उन्नतिका पथ परिस्कार कर दिया है। यूरोपीय समाजमें ये लोग रसायनके प्रतिष्ठाता समझे जाते हैं। गालेन और अभिसेन्नाके मतविरुद्ध पारासेलसस और उनके छात्रवर्ग बड़े अध्यवसायसे रासायनिक-प्रक्रिया द्वारा धातव औषधादि बनानेमें लगे हुए थे। इसके बहुत पहले भारतवासी नागार्जुन और पतञ्जलिको पारदादि धातुका व्यवहार मालूम था। हम लोग कमसे कम १० सदीके पूर्ववर्त्ती समयमें 'पर्पटिताम्रम्' और 'रसामृतचूर्णम्' (Black Sulphide of mercury) नामक रसौषधमें पारेके आभ्यन्तरिक प्रयोगकी व्यवस्था देखते हैं।

१५६६ ई०को पेरिस नगरकी आयुर्वेदीय महासभा (The Parliament and the Faculty of Medicine) की विवरणमें पारासेलसस द्वारा आविष्कृत विषजनक औषधोंका व्यवहार निषिद्ध हुआ था। यूरोपमें उस

समय रासायनिक प्रक्रिया द्वारा बनाये गये ऐसे पारदादि धातव औषधोंका यदि प्रचार रहता तो कभी भी वह जनसाधारणके निकट उपेक्षित नहीं होता। इन सब आनुषङ्गिक प्रमाण द्वारा यह स्पष्ट मालूम होता है, कि पारासेलससने पूर्वदेशसे अपनी रासायनिक प्रथासे प्रस्तुत औषधादिका यह नया मत संग्रह कर यूरोपमें उसे प्रचार करनेकी चेष्टा की थी।

तालिफ-शरिक नामक हकोमीग्रन्थमें लिखा है कि भारतीय वैद्य संकौ वा सिमुलक्षार (white oxide of arsenic), पारद-लौह, आदि औषधोंमें व्यवहार कर विशेष उपकारिता लाभ करते हैं, किन्तु यूनानी हकोम कभी भी उन सब औषधोंका आभ्यन्तरिक प्रयोग नहीं करते। ग्रन्थकारने स्वयं एक जगह उसके वाह्य प्रयोगकी व्यवस्था भी दी थी, पर उससे कोई विशेष फल न निकला।

उपरोक्त प्रमाण द्वारा यह स्थिर हुआ है, कि भारतवासी आर्यहिन्दुओंने ही सबसे पहले पारेकी सर्वरोगहरत्व शक्तिका पता लगाया था। चीनका प्राचीन इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि अरबवासी द्वारा रासायनविद्या यूरोपमें लाई जानेके पहले चीनवासी 'तान-सा' (हिंगुल वा रससिन्दूर = Red bisulphuret of mercury) नामक रसौषधके व्यवहारसे अवगत थे।* चरक, सुश्रुत और पतञ्जलिके योगसूत्रमें रसविभागकी विस्तृत आलोचना देख कर हिन्दूको रसायनशास्त्रके उद्भावक कह सकते हैं। स्वयं अलविरुनीने बोधिसत्त्व नागार्जुनको एक प्रसिद्ध रससिद्ध कहा है।†

मध्ययुगमें जब सारा यूरोपखण्ड अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छन्न था तथा ग्रीकजातिका प्राचीन विद्यागौरव धीरे धीरे लोप होता जा रहा था, जब कुछ ग्रीक साधु पर्वतकी गुहामें बैठ कर ज्ञानकी खोज कर रहे थे उस दुर्दशाके दिन अर्थात् उस ग्रीकसमृद्धिके अवनतिकालमें अरबोंने पूर्व दिशासे गणितादि विज्ञानशास्त्रका ज्ञानभाण्डार ले कर पाश्चात्य जगत्‌में स्थापित किया था वही विमल ज्ञानज्योति परिव्याप्त हो कर आज सारे यूरोपको उजाला कर रही है।

अरबवासी पण्डित विज्ञानविषयकी उन्नतिमें भारतवासी हिन्दुओंके जो ऋणी थे, उसके कितने प्रमाण उनके ग्रन्थमें ही मिलते हैं। १०वीं सदीके मध्यभागमें अबुल फरोज महम्मद बिन इसाक द्वारा विरचित किताब उल फिहिरिस्त ग्रन्थमें तथा हाजो खलीफा और इबन् आबू उसैबिया (१३वीं सदीके प्रारम्भमें) के विवरणसे जाना जाता है, कि खलीफा हारुण अल रसीद और मनसुरके आदेशसे हिन्दूके आयुर्वेदीय भैषज्यतत्त्व निदान आदि ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ था।* फुगेलने लिखा है, कि मङ्क नामक एक भारतीय वैद्यने हारण अल रसीदको कठिन रोगसे बचाया था, इस कारण राजाने उन्हें राजकीय आतुरालयका प्रधान चिकित्सक बनाया। उक्त चिकित्सकने खलीफाके आदेशसे सुश्रुत और चरकादि शास्त्रका अरबी भाषामें अनुवाद किया था। हाजी खलीफाने लिखा है, कि उक्त बादशाहने हिन्दूके ज्योतिषशास्त्र, वीजगणित और आयुर्वेदका प्रचार करनेके लिये हिन्दू पण्डितोंको राजदरबारमें शिक्षकरूपमें नियुक्त किया था। जर्मन प्रत्नतत्त्वविद् हायश इस सम्बन्धमें हिन्दूकी प्रधानता और प्राचीनताको अस्वीकार करते हुए मुसलमान द्वारा अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थोंके अनुवादकी बात लिख गये हैं। अध्यापक मूलरने उनके मतको खण्डन करते हुए दिखला दिया है, कि चरक और सुश्रुत भिन्न उन्होंने निदानका और भारतवासी सानाक (सनक) कृत असाङ्कार (अष्टाङ्ग) नामक विष-विज्ञानविषयक ग्रन्थका भी अरबी भाषामें अनुवाद किया था। डिटज (Dietz) ने अपने 'एनालेक्टा मेडिका' ग्रन्थमें लिखा है, कि ग्रीक लोग हिन्दूका आयुर्वेदीशास्त्र जानते थे इससे स्पष्ट मालूम होता है कि एक समय हिन्दूका आयुर्वेद और रसायनशास्त्र

* Beal's Buddhist Records, II. 56

† Buddhist Records, II, 212, 216. & India.

* Jour. Roy. As. Soc. (old series) V1, p. 105-115,

मुसलमानों द्वारा यूरोपमें भी लाया गया था।

सनकके (Sanaf the Indian) ग्रन्थमें खाद्यद्रव्य-मिश्रित विषयकी जो परीक्षा है उसके साथ चरक (चिकित्सा० २३ अ० २६-३० श्लोक) और सुश्रुतका बहुत कुछ मेल देखा जाता है। रासेज (Rases)-ने सनसदके मतका उद्धार कर जोंकका जो वर्णन किया है उसके साथ सुश्रुतके विवरणका बहुत सामञ्जस्य है। यह 'सनसद' सुश्रुतके अपभ्रंश जैसे प्रतीत होते हैं। क्योंकि अरबी अनुवादकके हाथ यदि चरक अपभ्रंशसे सरक, सुश्रुतसे सुस्रुद, निदानसे वद्न और अष्टाङ्गसे असाङ्कर हो सकता है तो रासेज कथित सनसदको सुश्रुत माननेमें कोई अत्युक्ति न होगी।

इस्लाम-धर्मके अभ्युत्थानके पहले भी पश्चिम जनपदवासी आयुर्वेदीय विज्ञानचर्चाके लिये भारतवर्ष आया करते थे। साशनीयराज नशिरवानके समय (५३१-५७२ ई०में) बर्जोयेह नामक एक व्यक्तिने भारतवर्ष आ कर विज्ञानशास्त्रका अध्ययन किया था। M. Berthelot आदि पाश्चात्य पण्डितोंने गेवार, रासेज, आभिसेम्न, बुवाकर आदिके गवेषणापूर्ण विवरणकी आलोचना कर ग्रीकोंको यूरोपीय रसायन और आयुर्वेदशास्त्रके उद्भावयिता तथा अरबोंको मध्य यूरोपखण्डमें उसका प्रवर्त्तक और परिपोषक बताया है। किन्तु पूर्वोक्त प्रमाणपरम्पराकी आलोचना करनेसे यह स्पष्ट जाना जाता है, कि वे लोग भारतवासियोंके ही ऋणी थे। क्योंकि, ७५० से ८५० ई०के मध्य ही अरबी साहित्यने नाना विषयोंसे परिपुष्ट और अलंकृत हो अच्छी उन्नति की थी। अलबिरुनीके अनुवादक साचुने लिखा है, कि उस समय भारतवासी विज्ञानभाण्डारमें जो कुछ दान करते थे वही संस्कृतसे पाली वा प्राकृतमें और पीछे इराणमें पारसी-भाषामें अनुवादित हो कर खलीफाके अधिकारमें आता और अरबी भाषामें प्रचारित होता था। इस प्रकार नाना स्थानोंमें नाना भाषामें उलट फेर होनेके कारण उसका नाम भी बदलता गया था। इसी कारण खलीफा मनसूरके शासनकालमें जब एक राजदूत सिन्धुदेशसे बगदाद आया, तब वह अपने साथ कुछ पण्डित भी लाया था। उन पण्डितोंके साथ ब्रह्मगुप्तकृत ब्रह्मसिद्धान्त और खण्डखाद्यक नामक दो ग्रन्थ थे। वे दोनों ग्रन्थ यथाक्रम सिन्दहिन्द और अरखन्द नामसे अरबी-भाषामें प्रचारित हुए।

जिस अरबके निकट यूरोपवासी ऋणी थे और जो अरब भारतका ऋणी था, उस भारतके निकट यूरोपीयगण सर्वतोभावमें ऋणी थे, इसमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं रह जाता। अध्यापक मैकडोनलने इसे मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हुए लिखा है,—"in science too, the debt of Europe to India has been e onsiderable ** During the 8th & 9th centuries the Indians became the teachers in arithmetic and algebra of the Arabs and through them of the nations of the west. Thus, though we call the latter science by an Arabic name, it is a gift we owe to India."*

भारतीय आर्योंने रसायनशास्त्रको किस प्रकार पृथक् भागमें संगठित किया था, उसका असल विवरण लिपिबद्ध करना कठिन है। आधुनिक यूरोपीय रासायनिकोंने जिस प्रकार उन्नत रसायनशास्त्रका संगठन कर लिया है ठीक उसी प्रकार आर्यरसशास्त्र आलोचित होता था वा नहीं इसका पता नहीं चलता। परन्तु पौर्वापर्य अवलम्बन कर यदि आलोचना की जाय, तो यही मालूम होगा, कि भारतीय आर्यजगत्में वैज्ञानिक उन्नतिके साथ साथ रसायनशास्त्रका भी एक स्तर उद्घाटित हुआ था।

महर्षि कणादके पञ्चतन्मात्रसे पञ्चमहाभूत, सूक्ष्म और स्थूलदेह, क्षितिकी आणविक समष्टि तथा अणु, द्व्यणुक, त्रसरेणु और स्थूलाणु (Single binary; tertiary and quarternary atoms) आदिके संयोग; द्रव्यके रूप, रस और गंध; आपेक्षिक गुरुत्व, लघुत्व, तारल्य, घनत्व और शब्दादि गुणका विषय विचारनेसे रसायनशास्त्रकी प्राथमिक भित्तिको कल्पना की जाती है। अतएव ईसाजन्मसे ६ सदी पहले दर्शनशास्त्रको उत्पत्तिके साथ साथ भारतवर्षमें रसायनशास्त्रके आणविक विश्लेषणका आभास प्रस्फुट हुआ था।

* History of Sanskrit Literature, p. 424.

चरकादि वैद्यकके मतसे पार्थिव पदार्थ प्रधानतः ३ प्रकारका है—जीवज, उद्भिज्ज और क्षितिज। फिर ये भी मधुर; अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय रस-युक्त हैं। मधु, गोवसन्तरस, मलमूत्र, पोप, शरीर रस, पित्त, वसा, अस्थिमज्जा, रक्त, मांस, चर्म, वीर्य, अस्थि, श्रृङ्ग, नख, क्षुर, गोरोचना, मृगनाभि आदि पदार्थ जीवज; स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, सीसा, रांगा और लोहा (अथवा उनका रासायनिक भस्म) बालुकाचूर्ण, मैनसिल, गेरुमट्टी, सौवीराञ्जन, मणिरत्न लवण आदि औषध क्षितिज हैं।

उक्त ग्रन्थमें सौवर्चल, सैन्धव, विट्, औद्भिद और सामुद्र नामक पांच प्रकारके लवणका उल्लेख देखनेमें आता है। ये पांच लवण पांच विभिन्न गुणोंसे युक्त हैं। क्योंकि उनका रासायनिक संयोग भी विभिन्न है। बकरे, भेड़े, गाय, भैंस, हाथी, ऊंट, घोड़े और गदहे आदिका मूत्रक्षार स्वतन्त्र है।

क्षार प्रस्तुत करनेमें पहले छोटे पलाशवृक्षको टुकड़े टुकड़े करके सुखा लेना होता है। पीछे उसे जला कर राखको छः गुने जलमें डुबा कर सूती कपड़ेमें २१ बार छान लेनेसे क्षारजल (lixivium) पाया जाता है। फिर उस ग्रन्थमें लौहवटी, अञ्जन, मुक्ताचूर्ण, लौह, स्वर्ण और रौप्य द्वारा प्रस्तुत बलकर औषधादि बनानेकी प्रथा भी लिखी है।

सुश्रुतके सूत्रस्थान ११वें अध्यायमें क्षारपाक और उसके प्रयोगकी विधि लिखी है। छेदने, भेदने और लिखनेके काम करनेवाले सभी शस्त्रोंकी अपेक्षा क्षार बहुत कुछ काम करनेवाला है। क्योंकि इससे रक्तपीप निकल आती, फोड़े फुट जाते और वातादि त्रिदोष शान्त होते हैं। सफेद होनेके कारण यह सौम्य नामसे प्रसिद्ध है। पाश्चात्य रसायनमें भी Silver nitrate को Lunar caustic कहते हैं। सौम्य होने पर भी इसमें दहन, पचन और विदारण शक्ति है। उष्णवीर्यकी ओषधियां इसमें अधिक परिमाणमें संयुक्त रहनेके कारण यह कटु, उष्ण और तीक्ष्णगुणविशिष्ट हो गया है। इसके द्वारा पाचन, विलयन, शोधन, रोपण, शोषण, स्तम्भन और लेखनक्रिया सम्पन्न होती है तथा इसका सेवन करनेसे कृमि, कुष्ठ, कफ, विष और मेदका क्षय होता है। अधिक परिमाणमें सेवन करनेसे पुरुषत्व नष्ट होता है।

प्रतिसारणीय (लेपनयोग्य) और पानीय भेदसे क्षार दो प्रकारका है। कुष्ठ, किटिभ, दद्रु, किलास, मण्डल, भगन्दर अर्ब्बुद, दुष्टव्रण, नाड़ीव्रण, चर्मकील, तिलकालक, न्यच्छ, व्यङ्ग, मशक, बाह्यव्रण, कृमि, विष और अर्श तथा उपजिह्वा, अधिजिह्व, उपकुश, दन्तवैदर्भ और तीन प्रकारके रोहिणीरोगमें प्रतिसारणीय क्षार विधेय है। इन सब मुखरोगमें क्षार शस्त्रके समान काम करता है। गरल, गुल्म, उदररोग, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, अरुचि, आनाह, शर्कराश्मरी, अन्तर्व्रण, कृमि, विषदोष और अर्शरोगमें पानीय क्षारका प्रयोग करना उचित है। बालक वृद्ध, दुर्बल और पित्तप्रकृतिविशिष्ट तथा रक्तपित्त, ज्वर, भ्रम, मत्तता, मूर्च्छा और तिमिर रोगमें क्षारका आभ्यन्तरिक प्रयोग हितकर नहीं है।

इस क्षारको अन्यान्य क्षारकी तरह स्रावित कर लेना होगा। मृदु, मध्यम और तीक्ष्णके भेदसे क्षार तीन प्रकारका है। इसके बनानेके नियम—शरत्कालके उत्तम दिनमें यथारीति उपवास करके पवित्र चित्तसे पर्वतके नीचे अच्छी जमीनमें उत्पन्न मंझोले आकार और अखण्ड मोखा नामक पेड़का पहले अधिवास करे। दूसरे दिन मन्त्र पढ़ कर उसे उखाड़े। अनन्तर रक्तपुष्प और श्वेतपुष्प द्वारा होम करके उस वृक्षको खण्ड खण्ड कर वायुशून्य स्थानमें सजा रखे। पीछे उसके ऊपर सुधीशर्करा रख कर तिलवृक्षके काष्ठ द्वारा दग्ध करे। आग बुझ जाने पर वृक्ष और शर्करा-भस्मको अलग अलग रखे। इसी प्रकार कूटज, पलाश, अश्वकर्ण पलाश, पालितामदार, बहेड़ा, अमलतास, लोध, आकन्द, थूहरका बीज, अपाङ्ग, पढ़ार, डहरकरञ्ज, बाकस, कदली, चिता, नाटाकरञ्ज, अर्जुनवृक्ष, काष्ठमल्लिका, करवीर, गणिकारी, कूंच और चार प्रकारकी घोषा, इनमेंसे किसी एक वृक्षका क्षार प्रस्तुत करनेमें उसके फल, मूल, पत्र और शाखा इन्हें एकत्र कर पूर्वोक्त विधानसे दग्ध करे।

द्रोण परिमाण (३२ सेर) भस्मको छः गुने जल अथवा गोमूत्रमें आलोड़न कर कपड़ेसे २१ बार छान ले। पीछे बड़े कड़ाहमें डाल कर आंच दे। वह जल

जब निर्मल, लाल, तीक्ष्ण और पिच्छिल हो जाय, तब असार भागको छान कर फेंक दे और परिष्कृत जल फिरसे आग पर चढ़ावे। पीछे नाटावीज, पूर्वोक्त शर्करा-भस्म, सीप और शङ्खनाभि प्रत्येक ८ पल ले कर लोहेके बरतनमें रखे और तपा कर आगके समान लाल बना ले। इसके बाद उसमें थोड़ा क्षारजल मिला कर अच्छी तरह पीसे और ६४ सेर क्षारजलमें उसे डाल दे। अनन्तर स्थिर-चित्तसे उस क्षारजलको हाथसे सञ्चालन करके पाक करना होगा। जब वह गाढ़ा हो जाय तब उतार कर लोहेके बरतनमें मुंह बंद कर रखे। यही क्षार कहाता है। सीप आदि डाले बिना जो पाक अच्छी तरह सञ्चालित कर लिया जाता है उसे मृदुक्षार कहते हैं।

मृदुक्षारजलमें दन्तीवृक्ष, चित्रक, लाङ्गलिका, नाटा-करञ्ज, प्रवाल, मुरामांसी, विट्लवण, सज्जी मट्टी, स्वर्ण-क्षीरी लता, हिंगु, वच और शृङ्गिविष प्रत्येकका २ तोला चूर्ण डाल कर पाक करनेसे वह फोड़े आदिको जल्दी पका देता है। यही तीक्ष्णक्षार है। कमजोर व्यक्तिको मृदुक्षारोदक सेवन करानेसे बलकी वृद्धि होती है।

क्षारका गुण विचार बहुत तीक्ष्ण वा बहुत मृदु न होना, श्वेतवर्ण, निर्मल, पिच्छिल, द्रवकारी, बलकर और शरीरके मध्य शीघ्र घुस जाना ये आठ प्रकारके गुण हैं, तथा अत्यन्त मृदु, अत्यन्त शीतल, अति प्रवेशकारी, बहुत घना, अपक्क और द्रव्यहीनता क्षारके दोष हैं।

पीड़ित स्थानमें क्षार लगानेसे काला दाग पड़ जाता है। घृतमधु संयुक्त अम्लवर्गका प्रलेप देनेसे दग्धजनित ज्वाला निवृत्त होती है। यदि निवृत्त न हो, तो अम्ल-वर्ग, काञ्जिक, जीवन्तीवीज, तिल और मुलेठीको एकत्र पीस कर प्रलेप दे। मुलेठी और घृतसंयुक्त पीसे हुए तिलको उष्णवीर्य और तीक्ष्ण अम्ल रसके साथ मिला कर प्रलेप देनेसे क्षत स्थान भर आता है।

अम्लको छोड़ कर सभी रसोंमें क्षार है। कटुरसमें यह सबसे अधिक और लवण रसमें उससे कम है। यह लवणरस अम्लरसके साथ मिलनेसे मधुर होता है।

चरक और सुश्रुतादि आयुर्वेदशास्त्रोंमें रांगे, तांबे, लोहे और सोनेकी मारण विधि; क्षार प्रयोगविधि, सैन्धव, सामुद्र, विट, सौवर्चल, रोमक और उद्भिद लवणादिका प्रयोग; पथरीरोगमें यवक्षार, सर्जिका और सुहागेका आभ्यन्तरिक प्रयोग तथा उपदंशादि बहिःक्षत-रोगमें तूतिया, हीराकसीस, मैनसिल, हरताल, फिट-करी, गेरूमिट्टी, रसाञ्जन, रोध्र, गोपीचन्दन आदि धातव औषधोंका व्यवहार; मिट्टीके तेल और क्षारतेलका प्रयोग, कासरोगमें हरिणके सींगका धूमसेवन; सफेद बाल काला करनेके लिये तूतिये, लोहे और हरीतकी तैलका संयोग तथा पारदादि योगमें रसायनाधिकारोक्त रसायन और रसौषधकी प्रस्तुत-प्रणालीकी आलोचना करनेसे भारतीय रसायनशास्त्रका एक बड़ा इतिहास बन सकता है। उन सबका संक्षिप्त विवरण रसायन शब्दमें लिखा जा चुका है, इस कारण यहां पर नहीं लिखा गया है। रसायन शब्द देखो।

चक्रपाणिने पारदशोधनकी व्यवस्था करके उससे कज्जली (Black sulphide of mercury) वा रसपर्पटी आदि रसौषध बनानेके नियम निकाले हैं। अपनी ताम्रयोग (*P*owder of copper compound) नामक औषध बनानेकी प्रणालीमें उन्होंने एक आवश्यकीय रासायनिक यन्त्रका भी आभास दिया है। पहले थाली जैसे चिपटे मिट्टीके बरतनमें नेपालजात ताम्रपत्रको गन्धकके चूर्णमें रखे। पीछे उसी आकारके एक दूसरे बरतनसे उसका मुंह ढक दे इसके बाद उसे बालुका-यन्त्रमें रख कर ३ घंटे तक अग्निमें दग्ध करे। पीछे उस ताम्रको चूर्ण कर औषधादिके साथ रोगविशेषमें इसका प्रयोग किया जाता है।

लौहपारदादि धातुकी मारण, जारण और शोधन-प्रणालीका विवरण ऊपरमें दिया जा चुका है।

आयुर्वेदिक युगमें रासायनिक प्रक्रियाके परिपोषक नाना यन्त्रादिका निदर्शन नहीं रहने पर भी हम लोग तत्परवर्त्ती तान्त्रिक युगमें (११८० १३०० ई०) धातव औषधादि बनानेके कितने रसायन-साध्य यन्त्रोंका उल्लेख देखते हैं। रसार्णव और रसरत्नसमुच्चय नामक तन्त्रोंमें धात्वादिके रासायनिक संयोगार्थ जिन सब उस समय प्रचलित यन्त्रोंका उल्लेख है यहां पर उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

रसार्णवमें श्रीभैरव कहते हैं, कि निम्नोक्त द्रव्य संग्रह करके रसायन कार्य्य आरम्भ करना चाहिये।

"रसोपरसलोहानि वसनं काञ्जिकं विड़म्।
धमनीलौहयन्त्राणि खल्वापाषाणमर्द्दकम्॥
कोष्ठिका वक्रनालञ्च गोमयं सारमिन्धनम्।
मृन्मयानि च यन्त्राणि मूसलोलूखलानि च॥
संड़सीयादशंदंशं मृत्पात्रायःकरोटकम्।
प्रतिमानानि च तुल्या छेदनानि कपोत्पलम्॥
वंशनाली लौहनाली मूषामार्गास्तथौषधी।
स्नेहाम्ललवणक्षारविषाण्युपविषाणि च।
एवं संगृह्य सम्भारं कर्मयोगं समाचरेत्॥"

(रसार्णव ४र्थ परि०)

उपरोक्त श्लोककी भाषा प्राञ्जल जान कर यहां पर उसका अनुवाद नहीं दिया गया। श्लोकवर्णित शब्दों-के अंगरेजी प्रतिवाक्यकी आलोचना करनेसे प्राच्य और प्रतीच्य रसायन सम्बन्धीय वस्तुगत व्यवहारका बहुत कुछ सामञ्जस्य सहजमें साधित हो सकता है।

कसोस (green vitriol), सैन्धव (rock-salt) माक्षीक (pyrites), सौवीर (stibnite), व्योष (गोलमिर्च, पीपल और सोंठ), गन्धक (sulphur), सौवर्च्चल (saltpetre) इन्हें शिग्रुमूलके रसमें सिक्त करनेसे विड़ होता है। दूसरेके मतानुसार गंधक, हरिताल (orpiment), सिन्धूत्थ (sea-salt, salt), चूलिका (sal ammoniac) और टङ्कण (borax)को क्षार और मूत्रमें सड़ानेसे ज्वालामुख नामक विड़ तैयार होता है। धमनी (a pair of bellows), लौहयन्त्राणि (iron implements), खल्वापाषाणमर्द्दक (stone pestle and morter), कोष्ठिक १६ उंगली चौड़ा और २ हाथ लम्बा यन्त्र है। इसके द्वारा धातुका मूल पदार्थ जैसे अविशुद्ध दस्ता (calamine)से विशुद्ध दस्ता (Zinc) निकाल लिया जाता है। वक्रनाल (mouth blow pipe), गोमय (गोंइठा), सारइन्धन, मृण्मय यन्त्र (earthen apparatus—प्याला, ढकनी आदि) मूसल और ओखली, संड़सी, (a pair of tongs), मृत्पात्र और आयः-करोटक (earthen and iron vessels), प्रतिमानानि (weights), तराजू (balance), वंशनाली और लौहनाली (Bamboo and iron pipes) तथा स्नेह (fats), अम्ल (acid) लवण (salts), क्षार (alkalies) और विष (poisons) तथा अभ्रक, वैक्रान्त, माक्षीक, विमल, अद्रिज वा शिलाजीत, सस्यक वा मयूर-तुत्थ, चपल, रसक, ये आठ प्रकारके रस; गंधक, गैरिक, कसीस, तालक, मैनसिल, कंकुष्ठ और अञ्जनादि आठ उपरस; कम्पिल, गौरीपाषाण, नवसार, कपर्द, अग्निजार, गिरिसिन्दूर, हिंगुल और मृद्दारश्रृङ्गक नामक साधारण रस हैं। लौहादि धातु, वस्त्र और रत्न आदि द्रव्य एकत्र कर रससिद्ध व्यक्ति कार्य्यमें प्रवृत्त होवें। इन सब संगृहीत द्रव्योंको एक साथ ले लेनेसे एक छोटी कर्मशाला वा रसशाला (laboratory) बनती है। (रसरत्नसमुचय)

इसके बाद उस रसशालामें कौन कौन यन्त्र किस किस कार्य्यमें प्रधानतः व्यवहृत होता था उसका विवरण नीचे दिया जाता है।

१ दोलायन्त्र—एक बरतनमें आधा तरल पदार्थ भर कर एक काष्ठखण्ड सीधा खड़ा करे और उसमें रस-पोटली (कपड़ेमें बंधे औषधादि) लटका दे। पीछे उस पर एक दूसरा मट्टीका बरतन उलटा कर ढक दे। थोड़ी देर बाद देखेंगे, कि वह पोटली भापसे तराबोर है।

(रसरत्नसमुचय ९।३-४)

भावप्रकाशमें दोलायन्त्रका विवरण इस प्रकार है,—पारदसंयुक्त औषधको एक त्रिदल भोजपत्रसे लपेट कर पुटली बनावे। पीछे सूतेसे उस पोटलीको एक लकड़ीमें मजबूतीसे बांध दें। बादमें काञ्जिकादिसे पूर्ण एक दूसरे बरतनके ऊपर वह लकड़ी इस प्रकार रखे कि उसमें बंधी हुई पोटली बरतनमें लटकती रहे। इसके बाद उसे आंच पर चढ़ा कर यथाविधि पाक करे। कोई कोई इसे स्वेदनाख्ययन्त्र भी कहते हैं।

"निबद्धमौषधं सूतं भूर्ज्जे तत् त्रिगुणाम्बरे।
रसपोट्टलिकां काष्ठे दृढं बद्ध्वा गुणेन हि॥
सन्धानपूर्ण कुम्भान्तः लावलम्बनसंस्थितम्।
अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं तत्तद्युक्तक्रमेण हि।
दोलायन्त्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनाख्यं तदेव हि॥"

(भावप्र० पूर्वख०)

२ स्वेदनीयन्त्र—एक जलपूर्ण मृत्पात्रका मुंह कपड़ेसे बांध कर उसके ऊपर पाक्य द्रव्य रखे। पीछे उसी आकारका दूसरा पात्र उस पर उल्टा रख कर लेपसे मुंह बंद कर दे। इसके बाद आँच पर चढ़ानेसे नीचेके बरतनसे जो भाप उठेगी उससे कपड़े पर रखी हुई वस्तु भींग जायगी।

"साम्बुस्थालीमुखाबद्धे वस्त्रे पाक्यं निवेशयेत्।
पिधाय पच्यते यत्र स्वेदनीयन्त्र मुच्यते॥"

(रसरत्नस० ९ अ०)

जारणयन्त्र—बारह उंगली लंबे लोहेके दो चोंगे बनावे। एकके पेंदेमें कुछ छेद रहेगा। छेदवाले चोंगेमें गंधक और दूसरेमें रस भर कर मूषामें डाल दे। पारेके नीचे एक दूसरे बरतनमें जल रखे। पहले वह रस और गंधक वस्त्रगालित रसोनक रसमें बड़ी सावधानीसे मिला कर उससे बरतन भर दे। इसके बाद उस यन्त्रको एक मृत्पात्रके मध्य रख कर ऊपरसे दूसरा पात्र ढक दे। दोनों पात्रके संयोग स्थलको कपड़े और मिट्टीसे इस प्रकार बंद कर दे, कि कहींभी छेद रहने न पावे। अनन्तर उसे गोंइठेकी आगमें तीन दिन जलानेके बाद गरम जलमें मर्द्दन करे।

"लोहमूषाद्वयं कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः।
ईषच्छिद्रां छिद्रमितामेकां गन्धकसंयुताम्॥
मूषायां रसयुक्तायामन्यस्यां तां प्रवेशयेत्।
तार्थं स्यात् सूतकस्याध ऊर्द्ध्वाधो वह्निदीपनम्॥
रसोनकरसं भद्रे यत्नतो वस्त्रगालितम्।
दापयेत् प्रचुरं यत्नादाप्लाव्य रसगंधकौ॥
स्थालिकायां निधायोर्द्ध्वं स्थालीमन्यां दृढ़ां कुरु।
सन्धिं विलेपयेद्यत्नान्मृदा वस्त्रेण चैव हि॥
स्थाल्यन्तरे कपोताख्यं पुटं कर्षाग्निना सदा।
यन्त्रस्याधः करीषाग्निं दद्यात् तीव्राग्निमेव च॥
एवं तु त्रिदिनं कुर्य्यात् तप्ततोये विमर्द्दयेत्।
न तत्क्षीयते सूतो न च गच्छति कुत्रचित्॥
ऊर्द्ध्वं वह्निरधश्चापो मध्ये तु रस-संग्रहः।
मूषायन्त्रमिदं देवि जारयेद्गंधकादिकम्॥" (रसार्णव)

गर्भयन्त्र—४ उंगली लंबा, ३ उंगली चौड़ा और १ उंगली गहरा एक मूषा बनावे। पीछे लवण २० भाग और गुग्गुल १ भागको अच्छी तरह चूर्ण कर उसे जलसे मले। इसके बाद उसमें तिलपिष्ट डालना होगा; बादमें भूसीकी आगमें दग्ध करनेसे तीन रातमें पारा (पिष्टिक) भस्म हो जायगा। इस यन्त्रसे बिना भेषजादिके पारद, जारण और रञ्जन किया जा सकता है।

"गर्भयन्त्रं प्रवक्ष्यामि पिष्टिका भस्मकारकम्।
चतुरंगुलदीर्घाञ्च मूषिकां मृण्मयीं दृढ़ाम्॥
त्र्यंगुलमध्यविस्तारां वर्त्तुलं कारयेन्मुखम्।
लोणस्य विंशतिर्भागा एकभागस्तु गुग्गुलोः॥
सुश्लक्ष्णं पेषयित्वा तु तोयं दद्यात् पुनः पुनः।
मूषालेपं ततः कुर्य्यात् तिलपिष्टं च निक्षिपेत्॥
कुर्यात् तुषाग्निं भूमौ च मृदुस्वेदं तु कारयेत्।
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा रसेन्द्रो भस्मतां व्रजेत्॥
जारणे सारणे चैव रसराजस्य रञ्जने।
यन्त्रमेव परं कर्म यन्त्रविद्यामहाबला॥
औषधिरहितश्चायं हठात् यन्त्रेण बध्यते।
तस्माद् यन्त्रबलं चैकं न विलङ्घ्य विजानता॥"

(रसार्णव)

हंसपाकयन्त्र—सिकताकार एक खपरैल बना कर उसे बालूसे भर दे। पीछे उसके ऊपर एक दूसरी खपरैल रख कर पञ्चक्षार, मूत्र, लवण और विड्के साथ औषधादि पाक करे।

"खर्परं सिकताकारं कृत्वा तस्योपरि न्यसेत्।
अपरं खर्परं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥
पञ्चक्षारैस्तथा मूत्रैर्लवणैश्च विड़ैस्ततः।
हंसपाकः समाख्यातो यन्त्रतत्त्वार्थकोविदैः॥" (रसार्णव)

मूषा—मूषा, भाण्ड, स्थाली आदि रासायनिकके आवश्यकीय मृद्यन्त्र बनानेके लिये काली, लाल, पीली और सफेद मिट्टी कही गई है। इनमेंसे काली मिट्टी ही उत्तम है। चुलाईके वक्र नल आदि बनानेमें कुछ कड़ी मिट्टीकी जरूरत होती है। इसीलिये तुषदग्ध, वल्मीकी मिट्टी, अज और घोड़ेका मलदग्ध, लोहमण्डूर और वृक्षविशेष दग्ध अङ्गार उसमें मिलाया जाता है।

अन्धमूषायन्त्र—भूसीकी राख २ भाग, मण्डूर १ भाग, सफेद पत्थरका चूर्ण १ भाग, बकरीका दूध २

भाग तथा मनुष्यके बाल इन्हें एक साथ पीस कर गोस्तनके आकारका एक पात्र बनाना होता है। इसीका नाम मूषा है। मूषा सूखने पर उसमें पारदादि पदार्थ रख ऊपरसे दूसरा बरतन ढक दे। दोनोंके मुंह पर मूषा बनानेवाले उपादानसे लेप चढ़ावे। इसको अन्धमूषायन्त्र कहते हैं। किसी किसीके मतसे यह वज्रमूषा भी कहलाता है।

"कृष्णा रक्ता च पीता च शुक्लवर्णा च मृत्तिका।
आद्या श्रेष्ठा कनिष्ठा च मध्यमा मध्यमा मता॥
दग्धधान्यतुषोपेता मृत्तिका कोष्ठकारिका।
वक्रनालकृते वापि शस्यते सुरसुन्दरि॥
गौरा दग्धा तुषा दग्धा दग्धा वल्मीकमृत्तिका।
अजाश्वानां मलं दग्धं दग्धमृत् कृष्णतां गता॥
वासकस्य च पत्राणि वल्मीकस्य मृदा सह।
पेषयेदग्नितोयेन अनेन वज्रतां गतम्॥
मर्दयेत् तेन बध्नीयाद्वक्रनालं च कोष्ठकम्।
गौरा दग्धा तुषा दग्धा दग्धा वल्मीकमृत्तिका॥
चिरमङ्गारकः किट्टं वज्रेणापि न भिद्यते।
दग्धाङ्गारस्य षड्भागा भागैका कृष्णमृत्तिका॥
चिरमङ्गारकः किट्टं वज्रमूषा प्रकीर्तिता॥
तुषदग्धसमा दग्धमृत्तिका चतुरंशिका।
कज्जम्मं पाषाणसंयुक्ता वज्रमूषा प्रकीर्तिता॥
प्रकाशाचान्धमूषा च प्रकृतिद्विविधा स्मृता।
प्रकाशमूषा देवेशि शरावाकारसंयुता॥
द्रव्यनिर्वाहणे सा च वैदिकैः सुप्रशस्यते॥
अन्धमूषा तु कर्त्तव्या गोस्तनाकारसन्निभा।
पिधानकसमायुक्ता किञ्चिदुत्तानमस्तका॥
पत्रलेपे तथा रङ्गे द्वंद्वमेलापके तथा।
सैव छिद्रान्विता मन्दा गम्भीरा सारणाचिता॥
मोचचारस्य भागौ द्वौ इष्टकांशसमन्विती।
मृद्भागास्तारशुद्ध्यर्थमुत्तमा वरवर्णिनि॥" (रसार्णव)

विद्याधरयन्त्र—एक बरतनमें पारा रख कर उसके ऊपर तक दूसरा जलपूर्ण बरतन बैठावे तथा दोनोंके संयोग स्थलको मिट्टीसे लेप दे। बादमें चूल्हे पर रख कर पांच पहर तक आंच दे। ऊपरके बरतनका जल जब गरम हो जाय, तब उसे फेंक कर फिर उसमें शीतल जल डाले। ऐसा करनेसे नीचेकी हांड़ीका पारा धीरे धीरे ऊपरवाली हांड़ीके पेंदेमें जम जायगा। पाक शेष होने पर उसमेंसे पारा निकाल ले। पारदके ऊर्द्ध्वपातन क्रियामें इस यन्त्रका व्यवहार होता है।

"अथ स्थाल्यां रसं क्षिप्त्वा निदध्यात्तन्मुखोपरि।
स्थालीमूर्द्ध्वमुखीं सम्यक् निरुध्य मृदुमृत्स्नया॥
ऊर्द्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा चूल्यामारोप्य यत्नतः।
अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं यावत् प्रहरपञ्चकम्॥
स्वाङ्गशीतं ततो यन्त्रादुद्गृह्णीयाद्रसमुत्तमम्।
विद्याधराभिधं यन्त्रमेतत्तज्ज्ञैरुदाहृतम्॥"

(भावप्र० पूर्वख०)

रसरत्नसमुच्चयमें इसीको हिंगुलाकृष्टिविद्याधरयन्त्र कहा है।

भूधरयन्त्र—एक जलपूर्ण कलसको जमीनके नीचे गाड़ कर एक दूसरा कलस जिसके भीतर औषध लिप्त रहे उसके ऊपर रख दे। संयोगस्थलको मिट्टीके लेपसे अच्छी तरह बंद कर दे। पीछे ऊपरके कलसमें ऊपरसे ही आंच देनेसे उसका औषध नीचेके जलपूर्ण कलसमें गिर पड़ेगा। यह पारेकी अधःपतनक्रिया करनेमें विशेष आवश्यक है।

भावप्रकाशमें दूसरे प्रकारके भूधरयन्त्रका उल्लेख है—मूषाके मध्य पारा रख कर वह मूषा बालूसे ढक दे। पीछे उसके चारों ओर गोइठा सजा कर आग जलावे।

'बालुकाभिः समस्ताङ्गं गर्त्ते मूषां रसान्विताम्।
दीप्तोपलैः संवृणुयाद्यन्त्रं भूधरनामकम्॥" (भावप्र०)

बालुकायन्त्र—एक हांडीमें कचकीयन्त्र अर्थात् औषधपूर्ण और मृत्तिकालिप्त एक बोतल बैठा कर उसके गले तक बालू भर दे। पीछे उस हांड़ीमें आंच दे कर औषधको पकावे। यह यन्त्र रससिन्दूर, मकरध्वज आदि औषध बनानेमें व्यवहृत होता है।

रसरत्नसमुच्चयमें लिखा है—एक कांचके बोतलमें जिसका गला लम्बा हो मट्टी और कपड़े ढका ऊपरसे लेप चढ़ा कर उसमें पारदादि औषध रखे। पीछे बिलस्त भर गहरे एक भाण्डमें वह बोतल रख कर उसका तिहाई भाग बालूसे भर दे। अनन्तर उसके ऊपर एक दूसरा भाण्ड उलटा कर मुखसन्धिको मट्टीसे लेप

दे। बादमें चूल्हे पर चढ़ा कर घासकी आंच देवे। जब तक भाण्डके ऊपर रखा हुआ सङ्केत तृण जल न जाय, तब तक पाक करते रहे।

"सरसां गूढ़वक्त्रां मृद्वस्त्रांगुलघनावृतां।
शोषितां काचकलसीं पूरयेत त्रिषु भागयोः॥
भाण्डे वितस्तिगम्भीरे बालुका सुप्रतिष्ठिता।
तद्भाण्डं पूरयेत् त्रिभिरन्याभिरवगुण्ठयेत्॥
भाण्डवक्त्रं भाण्डिकया सन्धि लिपेत् मृदा पचेत्।
चुल्ल्यां तृणस्य चादाहान्मणिकापृष्ठवर्त्तिनः॥
एतद्धि बालुकायन्त्रं तद्यन्त्रं लवणाश्रयम्॥"

(रसरत्नस०)

लवणयन्त्रम्—सभी क्रिया बालुकायन्त्रकी तरह होगी केवल बालूके बदले लवण देना होगा।

"एवं लवणनिक्षेपात् प्रोक्तं लवणयन्त्रकं।"

(रसरत्नस०)

पातालयन्त्र—हाथ भर गहरा एक गड्ढा बना कर उसमें एक हाँड़ी बैठावे। ऊपरसे औषधपूर्ण एक दूसरा हाँड़ी उलटा कर रखे। इस हाँड़ीके मुँह पर एक छेददार ढकन रहेगा। पीछे उसमें मट्टीका अच्छी तरह लेप चढ़ा कर मट्टीसे ढक दे। ऊपरवाली हाँड़ीके पेंदेमें आंच देनेसे औषध ढकनके छेद हो कर टपक टपक कर निचले बरतनमें गिरेगा। अनन्तर आग बूझने पर जब हाँड़ी ठंढी हो जाय, तब निचले बरतनमेंसे औषध निकाल ले।

तिर्यक् पातनयन्त्र—दो बड़ी हाँड़ी ले कर एकमें पारा और दूसरीमें जल भर दे। दोनों हाँड़ीका मुँह वक्रभावमें मिला रहेगा। सन्धिस्थानको मट्टीसे अच्छी तरह लीप पोत कर उस हाँड़ीके नीचे आंच दे जिसमें पारा है। कुछ समय बाद अग्नितापसे वह पारा ऊपर उठ कर जलपूर्ण हाँड़ीमें चला आयेगा। दोनों हाँड़ीके गलेमें नल लगानेसे एक और प्रकारका तिर्यक्पातनयन्त्र बनता है।

"क्षिपेद् रसं घटे दीर्घनताधोनालसंयुते।
तन्नालं निक्षिपेदन्यघटकुक्ष्यन्तरे खलु॥
तत्र रुद्ध्वा मृदासम्यग्वदनो घटयोरधः।
अधस्तादूरसकुम्भस्य ज्वालयेत् तीव्रपोषकम्॥
इतरस्मिन् घटे तोयं प्रक्षिपेत् स्वादुशीतलम्।
तिर्य्यक्पातनमेतद्धि वार्त्तिकैरभिधीयते॥"

(रसरत्नसमु०)

डमरूयन्त्र—दो हाँड़ीको इस प्रकार रखा कि दोनों का मुँह एक जगह रहे। पीछे सन्धिस्थलमें मट्टीका अच्छी तरह लेप चढ़ावे, कहीं भी खुला रहने न पावे। नीचेकी हाँड़ीमें पारा और ऊपरवाली हाँड़ी खाली रहेगी। पाकके समय नीचेकी हाँड़ीमें आंच देनी होती है। इस समय ऊपरवाली हाँड़ीके ऊपर ठंढा जल छोड़ना होगा। ऐसा करनेसे नीचेकी हांड़ीका पारा उठ कर ऊपरकी हाँड़ीमें सट जायगा। इसीको डमरूयन्त्र कहते हैं। यह यन्त्र और विद्याधरयन्त्र प्रायः एक ही कार्यमें व्यवहृत होते हैं।

"यन्त्रं डमरुसंज्ञं स्यात्तत्स्थाल्यो मुद्रिते मुखे।"

(भावप्र०)

कवचीयन्त्र—न बहुत बड़ी और न छोटी, ऐसी दो बड़ी बोतल संग्रह करे। पीछे उसे मिट्टी और कपड़ेसे अच्छी तरह लेप सुखाले। इस प्रकार प्रलिप्त बोतलका नाम कवचीयन्त्र है। रससिन्दूरादि पाक करनेमें इस यन्त्रको जरूरत होती है। इसमें औषध भर कर बालूयन्त्रमें पाक करना होता है।

नालिकायन्त्र—पहले लोहेके एक नल बना कर उसमें पारा भर दे। पीछे लवणसे परिपूर्ण एक बरतनमें उन्हें रख कर पूर्वोक्त बालुकायन्त्रकी तरह पाक करे। ठंढा होने पर नलमेंसे पारा निकाल ले। यह बहुत कुछ पूर्व-वर्णित लवणयन्त्रके जैसा है।

"लोहनालं गतं सूतं भाण्डे लवणपूरिते।
निरुद्धं विपचेत् प्राग्वन्नालिकायन्त्रमीरितम्॥"

(रसरत्न०)

वकयन्त्र— पाच्य पदार्थोंसे हाँड़ीका अर्द्धांश भर दे तथा उसके ऊपर दो नल लगे हुए एक दूसरे बरतनको बैठा कर संयोगस्थल मिट्टीसे बंद कर दे। ऊपरके नल वाले बरतनके निचले किनारेमें एक उँगली विस्तृत एक 'चिट या कार्निश' रहेगा। उस कार्निशके ऊपर एक नल बैठा कर उसके प्रान्त भागमें एक बोतल रखे। पीछे उस पात्रके ऊपर चारों ओर करीब दो उंगलीका

एक घेरा दे कर एक और नल मिला देना होगा। उसके प्रान्तभागमें एक बरतन रहेगा। हाँडीके नीचे धीमी आंच देनी होगी तथा ऊपरवाले बरतनमें अनवरत जल ढालना होगा। कुछ समय बाद देखेंगे कि नल हो कर कुल जल बरतनमें गिर पड़ा है। इसीको वक्रयन्त्र कहते हैं।

नाड़िकायन्त्र—एक कलसके ऊपर एक छोटा कलस औंधे मुंह बैठा कर संयोगस्थलमें मिट्टी लेप दे। दोनों कलसमें एक एक छेद करके उसमें एक नल लगावे। इस नलको एक बरतनके भीतर गोल बना कर तथा प्रान्तभाग बाहर रखना होगा। इसका नाम नाड़िका-यन्त्र है।

वारुणीयन्त्र—यह प्रायः नाड़िकायन्त्रके जैसा है। प्रभेद इतना ही है, कि इसमें कुण्डलीकृत नलके बदलेमें केवल बोतलको ही एक शीतल जलपूर्ण पात्रमें रखना होता है। पीछे आंच देनेसे भाप नल हो कर बोतलमें आ जाती है। बोतल जलमें डुबी रहनेके कारण ठंढ लगनेसे बोतलकी भाप जलमें परिणत होती है। नाड़िकायन्त्र और वारुणीयन्त्र दोनोंका एक ही काममें व्यवहार होता है।

पातनायन्त्र—इस यन्त्रसे द्रव्यादि चुआया जाता है। इसमें भी दोनों बरतनके मुंह एक जगह रहते हैं।

"अष्टांगुलपरिणाहमानाहेन दशांगुलम्।
चतुरंगुलकोत्सेधं तोयाधारं गलादधः॥
अधोभाण्डे मुखं तस्य भाण्डस्यो परिवर्त्तिनः।
षोड़शांगुलविस्तीर्णपृष्ठस्यास्ये प्रवेशयेत्॥
पार्श्वयोर्महिषीक्षीरचूर्णमण्डूरफाणितैः।
लिप्त्वा विशोषयेत् सन्धिं जलाधारेजलं क्षिपेत्।
चूल्ल्यामारोपयेदेतत् पातनायन्त्रमीरितम्॥"

(रसरत्न० ६)

अधःपातनायन्त्र—उपरोक्त यन्त्रका रूपान्तरमात्र है। इसमें ऊपरवाले बरतनके पेंदेमें औषधादि लेपन करना होता है। बरतनके ऊपर गोइंठेकी आग लगानेसे पेंदीमें लगे हुए औषधकी भाप वा सार पदार्थ निम्नस्थ जलपूर्ण बरतनमें आ जायेगा।

"अथोर्द्ध्वं भाजने लिप्तं स्थापितस्य जले सुधीः।
दीप्तैर्वनोपलैः कुर्य्यादधःपातं प्रयत्नतः॥" (रसरत्न०)

दीपिकायन्त्र—कच्छप-यन्त्रोक्त मृण्मयपात्रके पेंदे पर दीप रख उससे पारेको दूसरे पात्रमें पातन करके कार्य साधन करना होता है।

"कच्छपयन्त्रान्तर्गतमृन्मयपीठस्थदीपिकासंस्थः।
यस्मिन्निपतति सूतः प्रोक्तं तद्दीपकायंत्रम्॥"

ढेकीयन्त्र—एक बरतनकी गरदनमें छेद करके उसमें बांसकी नलीका एक मुंह घुसेड़ दे तथा दूसरे मुख पर एक जलपूर्ण पीतलका पात्र रखे। आंच लगनेसे पारा चूने लगता है।

"भाण्डकण्ठोदधश्छिद्रे वेणुनालं विनिक्षिपेत्।
कांस्यपात्रद्वयं कृत्वा संपुटं जलगर्भितम्॥
नालिकास्यं तत्र योज्यं दृढं तत्रापि कारयेत्।
युक्तद्रव्यैर्विनिक्षिप्तः पूर्वं तत्र घटे रसः।
अग्निना तापितो नालात् तोये तस्मिन् पतत्यधः॥
यावदुष्णं भवेत् सर्वं भाजनं तावदेव हि।
जायते रससन्धानं ठेकीयन्त्रमितीरितम्॥"

(रसरत्न० ६।११-१४)

धूपयन्त्र—स्वर्णादि और उपरसादि जारणके लिये इस यन्त्रका धूम लगाना होता है। एक हांडीके मुंहसे कुछ नीचे यानी गरदन पर कुछ लौहशलाका तिरछी कर रखे और उसके ऊपर सोने वा चांदीका पत्तर बिछा दे। अनन्तर उस हांड़ीकी पेंदीमें गन्धक, मैनसिल, हरिताल आदि रख कर एक द्रावण करके ऊपरमें एक भाण्ड रखे और मिट्टीसे लेप दे। पीछे नीचेके बरतनमें आँच देनेसे जो धूआं निकलेगा उसे स्वर्णादिका पत्थर धूपित होगा।

"विधायाष्टांगुलं पात्रं लौहमष्टांगुलोच्छ्रयम्।
कण्ठाधोद्व्यंगुले देशे गलाधारे हि तत्र च॥
तिर्य्यग् लौहशलाकाश्च तन्वीस्तिर्य्यग्विनिक्षिपेत्।
तनूनि स्वर्णपत्राणि तासामुपरि विन्यसेत्।
पात्राधो निक्षिपेद् धूमं वक्ष्यमाणमिहैव हि।
तत्पात्रं न्युब्जपात्रेण छादयेदपरेण हि॥
मृदा विलिप्य सन्धिं च बह्निं प्रज्वालयेदधः।

तेन पत्राणि कृत्स्नानि हतान्युक्तविधानतः ॥

* * * *

गन्धालकशिलानां हि कज्जल्या वा मृताहिना ॥
धूपनं स्वर्णपत्राणां प्रथमं परिकीर्त्तितम् ।
तारार्थं तारपत्राणि मृतवन्धेन धूपयेत् ॥"

(रसरत्न ९।७०-७६)

इन सब यन्त्रोंकी सहायतासे द्रावक (acids) तथा आसव और मद्यादि (medicated wines) चुआया जाता है। जारण, मारण और पुटपाक द्वारा धातु और रसादि विशुद्ध तथा अधिक गुणयुक्त होता है। *

विशेष विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

यूरोपीय रसायन।

क्षिति आदिका पाञ्चभौतिक पदार्थका संयोजन (synthesis) और विश्लेषण (analysis) धर्मका कारण निर्णय करनेके लिये सम्प्रदाय विशेषकी चेष्टासे किमियाविद्याकी उत्पत्ति हुई है। ११वीं सदीमें स्वीडस (Svidas)के अभिधानमें प्रथमतः Chemistry शब्दका प्रयोग देखा जाता है। उन्होंने स्वर्ण और रौप्यकी प्रस्तुत प्रणाली' के अर्थमें इस शब्दका व्यवहार किया है। उसी ग्रन्थमें दूसरी जगह लिखा है, कि इजिप्तवासी इस विद्याके प्रभावसे आगे कहीं शत्रुता न ठान दे, इस भयसे डायक्लि सियनने स्वजातीय रसायन-विषयक सभी ग्रन्थोंको आगमें जला दिया। वह विद्या प्राचीन आर्गोनटिकके अभियानकालसे प्रचलित थी। ५वींसे ले कर १५वीं सदी तक ग्रीक लोग सोने और चांदी बनानेकी विद्याके पक्षपाती थे। इटली, फ्रान्स, जर्मनी और इङ्गलैण्डवासी दार्शनिक ११वींसे १५वीं सदी तक गहरी खोजसे रसायनशास्त्रका अनुशीलन करते रहे थे।

Isaacus Hollandus, Roger Bacon, Raymond-Lully, Basil Valentin, John Price, George Rippel, Geber आदि मनीषियोंने गन्धक, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, पारद, वङ्ग, रङ्ग, पित्तल आदि धातुओं तथा उपधातुओंका भेषजगुण और मनुष्यके शरीरमें उसकी उपयोगिता उपलब्ध की थी।

* Dr. P. C. Raya's Hindu Chemistry देखो।

१६वीं सदीमें एक दल नवीन रसायनविद् (Spagyrist)-का उद्भव हुआ। उन लोगोंने पूर्वकथित रससिद्ध लोगोंकी तरह पारस पत्थरकी तलाश न करके रासायनिक प्रक्रिया द्वारा प्रस्तुत औषधादिके उद्भावनमें अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। Paracelsus (१४९३-१५४१ ई०)-ने लिखा है,—"The true use of chemistry is not to make gold, but to prepare medicines." वे Galden-के मतकी उपेक्षा कर अपना मत स्थापन करनेमें बद्धपरिकर हुए। इस समय Thurneysser (१५३१-१५९६).Bodenstein Taxites, Dorn, Sennert, Duchesne आदि उनके पृष्ठपोषक हो उस कार्यमें लग गये। इसके बाद १७वीं सदीमें विख्यात अंगरेज-चिकित्सक Dr. Willis (१६२१-१६५७ ई०) तथा Lefebvre और Lemery नामक दो पारसी पण्डित उक्त मतकी अच्छी तरह पुष्टि कर गये हैं।

पारासेलससके समय जर्मनदेशमें एग्रिकोला (१४९४-१५५५ ई०) नामक एक धातुविद् बिलकुल स्वतन्त्रभावमें धातुविज्ञानकी आलोचना करते थे। उनके बनाये हुए 'De Re Metallica' नामक ग्रन्थमें फलित रसायनसम्बन्धीय अनेक आवश्यकीय विषयोंका सिद्धान्त है। लिवाभियस (१६१६ ई०से कुछ पहले) पारासेलसस और अरिष्टटलके मतका अनुसरण कर रसायनशास्त्रकी बहुत उन्नति कर गये हैं।

इस समयके कुछ बाद J. B. Van Helmont (१५७७-१६४४ ई०); Francis de la Boe Sylvius (१६१४-१६७२ ई०) तथा Glauber (१६०४-१६६८ ई०) आदि विद्वान् रसायनविज्ञानकी उन्नतिमें लग गये। ग्लौबर sulphate of sodium नामक यौगिक पदार्थके आविष्कर्त्ता थे, इस कारण वह पदार्थ आज भी Glauber's salt नामसे रसायनशास्त्रमें प्रसिद्ध है। इस प्रकार जब एक पक्षने रसायनकी उपकारिता दिखलाते हुए उस विज्ञानकी उन्नतिके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था, तब Robert Boyle (१६२७-९१ ई०) corning (१६०६-१६८१ ई०), Sydenham (१६२४ ८९), Pitcairne (१६५२ १७१३ ई०) और उनके शिष्य Boerhaave (१६६८-१७३८) आदि मनीषिलोग आयुर्वेदीय

रसयोग (Iatro-chemistry)-की असार्थकता साबित करनेमें लग गये। किन्तु De Blegny, Borrichius, Viridet, Vieussens और F. Hoffmann आदि रासायनिकोंने जब बड़े जोरसे आत्मपक्षका समर्थन किया, तब रसायन-विद्वेषिदल उनके उन्नतिपथमें जरा भी बाधा न पहुंचा सके।

Kunckel (१६३०-१७०३) अपने अध्यवसायसे रसायनभाण्डारमें प्रचुर रत्नसञ्चय कर गये हैं। यौगिक पदार्थके रासायनिक प्रभाव और संयुक्त दोनों वस्तुओंकी क्रियादिका विषय Becher (१६३५-१६८२ ई०)ने सबसे पहले रसायनशास्त्रमें लिपिबद्ध किया। तापके संयोगसे कुछ वस्तु तो थोड़े ही समयमें जल जाती और कुछ अधिक ताप लगने पर भी नहीं जलती देख कर रसायनविद् Stahl (१६६०-१७३४) ने इसका कारण दिखलाते हुए एक दीपक पदार्थ (Phlogiston)-की कल्पना की। इस दीपकीय तत्त्वका अनुसरण कर पूर्वकथित Hoffmann, Homberg (१६५२-१७१५ ई०), E. F. Geoffroy (१६७२-१७३१ ई०), Neumann (१६८३-१७३७ ई०), J. H. Pott (१६९२-१७७७ ई०) Marggraf (१७०९-८२ ई०), Macquer (१७१८-८४ ई०), Reaumur (१६८३-१७५७ ई०), Hellot (१६८५-१७६५ ई०) Duhamelau Monce au (१७००-८२ ई०) आदि रसायनविदोंने बहुत खोज करके रसायनशास्त्रका विशेषत्व आविष्कार किया। (Macquer) आर्सेनिक एसिडके उद्भावक कह कर जनसाधारणमें परिचित थे। कहना फजूल है, है, कि इस Phlogistic युगमें Robert Hooke (१६६५ ई०), Mayow (१६४५-१६७९), Dr. Stephen Hales (१६७७-१७६१ ई०) Dr. Black, Dr. J. Priestley (१७३३-१८१०), Henry Cavendish) १७३१-१८१० ई०) आदि Phlogiston तत्त्वानुसन्धित्सु रसायनविदोंने इस विज्ञानशास्त्रकी सम्यक् श्रीवृद्धि की थी।

जो यूरोपीय वैज्ञानिक एक समय जल, स्थल, अग्नि और वायुको भूत पदार्थ मानते थे तथा एक सदी पहले कुछ द्रावक acids) और क्षार (Alkalies) भिन्न यौगिक पदार्थके सम्बन्धमें जिनका अधिक ज्ञान न था, उन लोगोंने दीपकतत्त्वके अन्वेषणमें व्यापृत हो जलवायुकी तरह दीपककी भी (Phlogiston) एक मौलिक पदार्थ माना था। वे कहते थे, कि वह शक्ति वा पदार्थ चक्षुके अगोचर होने पर भी कार्य द्वारा हम लोग उसका अस्तित्व अनुभव कर सकते हैं। पदार्थमात्रको अस्थिमज्जामें यह कुछ न कुछ रहता ही है। किसी उपाय द्वारा मूल पदार्थसे उसको अलग कर सकनेसे हो तापके आलोककी उत्पत्ति हो सकती है।

१७७६ ई०में कावेण्डिसने उद्जनवाष्पका आविष्कार किया। इस वायवीय पदार्थको तापके संयोगसे जलते देख वैज्ञानिकोंने दीपकका कार्यकारित्व ही उसका प्रधान कारण स्थिर किया था। उनके मतसे दूसरे दूसरे पदार्थमें दीपक जिस प्रकार निविड़भावमें मिश्रित रहता है, उद्जनस्थ दीपक उस प्रकार दृढ़ संश्लिष्ट न हो कर बहुत कुछ मुक्तावस्थामें रहता है। वही मुक्तदीपक उद्जनके जलानेमें समर्थ है।

१९वीं सदीके आरम्भमें फरासी-राष्ट्रविप्लवकी प्रबल बाढ़से जब सारा यूरोपखण्ड श्रीभ्रष्ट हो नये भावमें संगठित हो रहा था, उस समय वैज्ञानिक-विप्लवकी प्रचण्ड तरङ्गसे जड़-विज्ञानकी कितनी शाखा प्रशाखाओंकी नींव भी बैठ गई थी। पीछे नई प्रणालीसे उसे फिर खड़ा करनेका आयोजन हुआ। जल, स्थल, अग्नि, वायु और दीपकको मौलिक पदार्थ मान कर प्राचीन वैज्ञानिकोंने रसायनशास्त्रकी प्रतिष्ठा की थी। नवीन वैज्ञानिकदलके आविष्कार-फलसे प्राचीन रसायनशास्त्रकी वह पाञ्चभौतिक भित्ति उखड़ गई। नव्य लोगोंने परीक्षा द्वारा स्थिर किया कि मट्टी, जल और वायु मौलिक पदार्थ नहीं हैं उन्हें सहजमें विश्लिष्ट किया जा सकता है। रासायनिक विश्लेषणसे यह सब प्रत्यक्ष देख कर लोगोंको दीपके सम्बन्धमें सन्देह होने लगा। इसी समय बहुत शास्त्रके जाननेवाले प्रिष्टलेने आक्सिजन वाष्पका आविष्कार किया। इससे संदेहकी मात्रा और भी दूनी बढ़ गई। प्रिष्टलेने दीपकको ही अक्सिजनकी दाहिकाशक्तिका कारण बताया था। किन्तु उस नूतन वायवीय पदार्थ द्वारा दीपकका अस्तित्व साबित करनेमें विशेष सुविधा होगी, पहले प्रिष्टलेका ध्यान इस ओर न दौड़ा।

जब नव आविष्कृत अक्सिजनकी दाहिकाशक्तिका

कारण निर्णय ले कर वैज्ञानिकोंमें तुमुल आन्दोलन चल रहा था, उस समय फरासी पण्डित A. L. Lavoisier (१७४३-१७९४) अपनी रसशालामें बैठ अक्सिजन सम्बन्धीय गवेषणामें रत थे। वे पूर्ववैज्ञानिकोंको तरह दीपक पदार्थको सभी रासायनिक कार्यका साधक नहीं मानते थे। परीक्षा द्वारा जब उन्होंने देखा, कि अग्निशिखाके स्पर्शसे अक्सिजन जल जाता वा रूपान्तरित होता है, तब उन्होंने यह साबित किया, कि एकमात्र इस अक्सिजन द्वारा ही वे सब रासायनिक कार्य हो सकते हैं। इस मीमांसाको प्रत्यक्ष करके निरपेक्ष व्यक्तिगण काल्पनिक दीपक पदार्थकी उपयोगिता अग्राह्य करने लगे। इस प्रकार नव्य वैज्ञानिक सम्प्रदायके प्रधान लाभोसियरने अक्सिजनको सहायतासे अपने छोटे परीक्षा-घरमें यूरोपीय रसायनशास्त्रको प्रकृत भित्ति स्थापन की थी।

धीरे धीरे लाभोसियरके शिष्योंसे यह नवीन तत्त्व फरासी राज्यके चारों ओर फैल गया। जगद्विख्यात तापतत्त्वविद् मि० बलाक, जलके गठनोपादाननिर्णायक अध्यापक रदरफोर्ड आदिने भी उनके मतको समर्थन किया था, केवल अक्सिजनके आविष्कर्त्ता प्रिष्टले स्वयं नूतन सिद्धान्तके जन्मदाता होते हुए भी पुराने दीपक सिद्धान्तसे विच्युत न हो सके थे। उनकी मृत्युके साथ साथ प्राचीन रसायनशास्त्रका दीपक-सिद्धान्त भी विलुप्त हो गया।

वैज्ञानिक लाभोसियर अक्सिजनके गुण-धर्म-प्रकाश द्वारा रसायनकी पुरानी नींव उखाड़ दी सही; पर नई प्रथाके रसायन-शास्त्रका संगठन भार १९वीं सदीके नवीन वैज्ञानिकोंके ही ऊपर रहा। Fourcroy (१७५५-१८०९ ई०), Monge (१७४६-१८१८ ई०), Guyton de Morveau (१७३७-१८१६ ई०) और Bertholet (१७१८-४८२२ ई०) आदिने उनके मतकी पोषकता कर एक नया मार्ग निकाला। इस समय जान डालटन (१७६६-१८४४ ई०) नामक एक प्रसिद्ध वैज्ञानिकने मेघ, वृष्टि और जलीय वाष्पके सम्बन्धमें आलोचना करते समय १८०३ ई०को यह प्रचार किया कि सूक्ष्म जलकणाको विश्लेषण करनेसे उसमें अक्सिजन और उद्जनके अनेक सूक्ष्म कण देखे जाते हैं तथा दो कण उद्जन और एक कण अक्सिजनको तापके साथ मिलनेसे एक जलकणको उत्पत्ति होती है। किन्तु उक्त दो पदार्थ विभिन्न परिमाणमें मिलनेसे जलकणकी उत्पत्ति न हो कर दूसरे पदार्थकी सृष्टि होती है। इस आलोचनाके फलसे उन्होंने यह निर्णय किया, कि जल, स्थल, वायु और अग्नि मूल पदार्थ नहीं हैं। उद्जन और अक्सिजन ही प्रकृत मौलिक पदार्थ है। इनके परमाणु विभिन्न परिमाणमें संयत हो कर विचित्र पदार्थ उत्पन्न करते हैं सही, पर उस अवस्थामें उनका निजत्व लोप नहीं होता। वैज्ञानिक प्रथासे यदि वह यौगिक पदार्थ विश्लिष्ट किया जाय तो उसके गठन-उपादानका वह मूल पदार्थ आपसमें विच्छिन्न हो निजत्व प्रकाश करेगा। इसके अतिरिक्त परीक्षाकालमें उन्होंने उद्जन और अक्सिजनके वजनके अनुपात द्वारा तथा परिमाणु संख्याके अनुपातकी सहायतासे गणना करके प्रत्येक अक्सिजन परमाणुका गुरुत्व स्थिर किया। उनके मतसे हाइड्रोजन परमाणुके गुरुत्वकी अपेक्षा अक्सिजन परमाणुका वजन ५॥० गुण अधिक है। फिर उन्होंने और भी २५ पदार्थोंका पारमाणविक गुरुत्व स्थिर कर १८०४ ई०में उसके आविष्कारकर्त्ता Mr. Thomson को सूचित किया और एक वैज्ञानिक सभामें वह प्रबंध पढ़ा। एकत्रित पण्डितमण्डली उनकी परीक्षाका परिचय और पारमाणविक सिद्धान्त (Atomic composition of bodies) पा कर विस्मित हो गई। सच पूछिये तो उसी दिनसे नूतन रसायन-शास्त्रकी प्रतिष्ठा हुई थी।

इस आविष्कारके बाद Dr. Wollaston, Gay Lussac Avogadro, Berzelius A, Von Humboldt, Williamson, Nicholson and Carlisle, Faraday, Bunsen और प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंने वर्त्तमान रसायन-शास्त्रकी नाना शाखा प्रशाखाओंकी उन्नति की है।

पदार्थविज्ञान।

इन्द्रियग्राह्य सभी वस्तु पदार्थ हैं। यौगिक पदार्थ-को आणविक संयोजन और विश्लेषण द्वारा मूल पदार्थ-की अवस्थाका निर्णय करना ही रसायनका उद्देश्य और

प्रतिपाद्य है। साधारणतः यह पदार्थ दो भागोंमें विभक्त है—रूढ़ वा मौलिक (Element) और यौगिक (Compound)। जिस पदार्थको किसी दूसरे पदार्थमें परिणत नहीं किया जा सकता, उसे मौलिक कहते हैं, जैसे—सोना चांदी आदि। जब ये सब रूढ़पदार्थ एकसे अधिक संख्यामें रासायनिक संयोग द्वारा नूतन धर्मविशिष्ट पदार्थ उत्पादन करते हैं, तब उन्हें यौगिक पदार्थ कहा जाता है, जैसे गन्धक और लोहेके संयोगसे उत्पन्न 'फेरस सलफेट' नामक पदार्थ।

वैज्ञानिक गवेषणा द्वारा कमसे कम ७२ रूढ़ पदार्थ स्थिर हुए हैं। वे सब पदार्थ तीन प्रकारकी अवस्थामें रहते हैं, जैसे—लोहादि कठिन, जल और पारा तरल तथा भूवायु वाष्प। यह रूढ़ पदार्थ फिर धातु (Metals) और अधातु (Non-metals वा Metalloids)के भेदसे दो प्रकारका है। जो सब पदार्थ चमकीले तथा उत्ताप और विद्युदादि शक्ति वहन करनेमें समर्थ होते उन्हें धातु तथा इसके विपरीत धर्मविशिष्ट पदार्थोंको अधातु कहते हैं। कभी कभी इन रूढ़ पदार्थोंको Electro-positive और Electro-negative कहा जाता है।

इन सब पदार्थोंमें कुछ साधारण धर्म हैं, जैसे—गुरुत्व, स्थानव्यापकत्व, अविनश्वरत्व, विस्तारशीलत्व, विभाज्यत्व इत्यादि। पारा, जल, तेल और कार्बनेट आव पोटाशको मिला कर कांचकी एक चुंगी (test-tube) में रखनेसे कुछ समय बाद सबसे नीचे पारा, उसके ऊपर यथाक्रम कार्बनेट आव पटाश, जल और तेल देखनेमें आयगा। उसमें द्रव्यविशेषका गुरुत्व स्पष्ट मालूम होता है। कांचको बोतलमें थोड़ी लकड़ी जलानेके बाद मागनेसियमका पतला तार जला कर जलमिश्रित सलक्युरिक एसिड डालनेसे कोयलेकी कणा ऊपरमें भँसने लगेगी। इससे अच्छी तरह मालूम होता है, कि पदार्थ परिवर्त्तनशील होने पर भी द्रव्यविशेषके संयोगसे कभी भी नाशको प्राप्त नहीं होता। गर्मी लगनेसे प्रत्येक पदार्थका आकार बढ़ जाता है। इसी कारण Retort-से वाष्पका उद्गीरण होता है। Perimanganate of Potash को हजार ग्रेन जलमें गलानेसे उसके एक ग्रेनमें ·००१ ग्रेन वह लवण दिखाई देता है। उसके १ ग्रेनको फिरसे यदि १० हजार ग्रेन जलमें मिलाया जाय, तो पर्माङ्गनेट आव पोटाश भी १० हजार भागमें विभक्त होगा।

इस प्रकार किसी द्रव्यका परमाणु कहनेसे अविभाज्य शेषांश समझा जायगा। किन्तु एक अणुरूप कहनेसे कमसे कम दो परमाणुरूप समझना उचित है। यौगिक पदार्थके सम्बन्धमें परमाणु शब्दका प्रयोग नहीं किया जाता। क्योंकि उनका अविभाज्य शेषांश भी विविध परमाणुके मेलसे बना है। इस कारण यौगिक पदार्थके अविभाज्य शेषांशको अणु तथा रूढ़ पदार्थका दो परमाणु जानना चाहिये।

पदार्थोंके समूह गुरुत्व है। हिसाब करके वह गुरुत्व निर्दिष्ट अणुके गुरुत्वके जैसा मालूम होता है। क्योंकि, उसीके योगसे पदार्थका आकार है। प्रत्येक पदार्थके परमाणुका गुरुत्व एक-सा नहीं है। यद्यपि वह दिखाई नहीं देता और न मन ही मन हम लोग उसका अवयव ही स्थिर कर सकते, तथापि वैज्ञानिक शिक्षाको सुविधाके लिये उद्जन वाष्पको निर्दिष्ट आयतनमें तौल कर एक परमाणु माने तथा उस अवस्थामें और उस आयतनके अन्यान्य रूढ़पदार्थोंका गुरुत्वनिरूपण करके जो फल पाया जाता है उसीको रसायनशास्त्रमें रूढ़पदार्थका पारमाणविक गुरुत्व कहा है। निम्नलिखित तालिकामें पदार्थोंका विभाग, सांकेतिक चिह्न और अमाणविक गुरुत्व दिया गया है—

धातुके नाम	चिह्न	गुरुत्व
आलुमिनियम (Aluminium)	Al.	२७·३
एण्टिमनि (Antimony)	Sb.	१२२
आर्सेनिक (Arsenic)	As.	७४·६
बेरियम (Barium)	Ba.	१३६·८
बिसमथ (Bismuth)	Bi.	२०७·५
काडमियम (Cadmium)	cd.	१११·६
कालसियम (Calcium)	ca.	३९·९
क्रोमियम (Chromium)	cr.	५२·४
कोबाल्ट (Cobalt)	co.	५८ ६
कपार (Copper)	cu.	६३·३
डाइडिमियम (Didymium)	Di	१४·७

धातुके नाम	चिह्न	गुरुत्व
गोल्ड (Gold)	Au·	१९६-७
आयरन (Iron)	Fe.	५५-९
लेड (Lead)	Pb.	२०६ ४
लिथियम (Lithium)	Li	७ ०१
मागनेसियम (Magnesium)	Mg.	२३ ९४
मङ्गानिज (Manganese)	Mn,	५४ ८
मर्करी (Mercury)	Hg,	१९९-८
मोलिब्डिनम् (Molybdenum)	Mo.	९५ ८
निकेल (Nickel)	Ni.	५८ ६
पालाडियम (Palladium)	Pd.	१०६-२
प्लाटिनम् (Platinum)	Pt.	१९६ ७
पोटासियम (Potassium)	K.	३९ ०४
सिलभर (Silver)	Ag.	१०७-६६
सोडियम (Sodium)	Na.	२३
ष्ट्रन्सियम (Strontium)	Sr.	८७-२
टिन (Tin)	Sn.	११७-८
टिटानियम (Titanium)	Ti.	४८
टाङ्गस्टेन (Tangsten)	W.	१८४
ऊरेनियम (Uranium)	U.	१८०
जिङ्क (Zinc)	Zn.	६४·८
अधातु—		
बोरण (Boron)	B	११
ब्रोमिन (Bromine)	Br.	७९-७५
कार्बन (Carbon)	C.	११·९७
टेलिउरियम (Tellurium)	Te.	१२८
क्लोरिण (Chlorine)	Cl.	३५-३६
फ्लुरिन (Fluorine)	F.	१९·१
उदजन (Hydrogen)	H.	१
आइयोडन (Iodine)	I.	१२६-५३
नाइट्रोजन (Nitrogen)	N.	१४-०१
अक्सिजन (Oxygen)	O.	१५-९६
फस्फरस (Phosphorus)	P.	३०-९६
सिलेनियम (Selenium)	Se.	७९
सिलिकन (Silicon)	Si.	२८
सलफर (Sulphur)	S.	३१·९८

उपरोक्त पदार्थों को छोड़ कर गत १९वीं सदीमें और भी कितने पदार्थ आविष्कृत हुए हैं। रसायनकार्यमें उनका विशेषरूपसे प्रचार न रहनेमें तथा उसका गुण अच्छी तरह मालूम न होनेके कारण वे सब वर्तमान रसायनविज्ञान आलोचित नहीं हुए। नीचे उनके नाम और गुरुत्वादि लिखे गये हैं।

केसियम (Cæsium)	Cs	१३२ ४
सिरियम (Cerium)	Ce.	१४१
एरबियम (Erbium)	Er,	१७०·५
ग्लुसिनम (Glucinum)	G,	९ ३
डेभियम (Davyum)	Da.	१-५४
बेरिलिउम (Beryllium)	Be,	९-२
गैलियम (Gaelium)	Ce,	६९·८
स्कैण्डियम (Scandium)	Sc.	४४
इण्डियम (Indium)	In.	११३·४
जर्मेनियम (Germanium)	Ge,	७२-७५
इरिडियम् (Iridium)	Ir,	१९६ ७
लन्थानम् (Lanthanum)	La,	१३·९
न्युबियम (Niobium)	Nb	९४
ओसमियम (Osmium)	Os,	१९८-६
रोडियम (Rhodium)	Rs,	१०४·१
रुबिडियम (Rubidium)	Ra,	८५-२
रुथेनियम (Ruthenium)	Ru,	१०३ ५
टण्टालम (Tantalum)	Ta,	१८२
थालियम (Thallium)	Th,	२०३-६४
थोरियम (Thorium)	Th.	१७८-५
भानाडियम (Vanadium)	V.	५१ २
इटरियम (Yttrium)	Y.	८९ ५
जिर्कोनियम (Zirconium)	Z.	९०

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक-सम्प्रदायने सामेरियम (Samarium), इट्टरबियम (Ytterbium), गडोलिनियम (Gadolinium), प्रसिओडिमियम (Prascodymium), न्युडिमियम (Neodymium), भिक्टोरियम (Victorium), आर्गोन (Argon), हेलियम (Helium), नियों (Neon), क्रुपटन (Krypton), जेनन (xenon) आदिने और भी कई पदार्थोंका अस्तित्व

स्वीकार किया है। रसायनमें उनका विशेष व्यवहार न रहनेसे यहां अनावश्यकीय जान कर उनका उल्लेख नहीं किया गया।

पहले लिखा जा चुका है, कि पदार्थमात्र ही परमाणुके मेलसे बना है। परमाणुओंकी इस संयोग वा वियोगशक्ति (Atomicity)-के कारण पदार्थविशेषमें स्वतन्त्रता दिखाई देती है, इस कारण ही अणु, द्व्यणुक, त्रसरेणु आदिका जिस प्रकार नामकरण हुआ है। पाश्चात्य रसायनशास्त्रोंमें भी उसी प्रकार Monad, Diad, Triad Tetrad आदि परमाणु-संयोगनिर्णायक पद हैं। परमाणुकी यह संयोगशक्ति देख कर वैज्ञानिकोंने उसी अनुसार रूढ़ पदार्थोंका एक विभाग इस प्रकार निर्देश किया है—

१ मनाडस्—उदजन, फ्लुरिन, क्लोरिन, ब्रोमिन, आइओडिन, कोसियम, रुबिडियम, पोटासियम, सोडियम, लिथियम और सिलभर। २ डायाडस्—अक्सिजन, बेरियम, ष्ट्रनसियम, कालसियम, मगनेसियम, जिङ्क, बेरिलियम, काडमियम, मर्करी और कूपार्द। ३ ट्रायडस—बोरन, गोल्ड, थालियम, इण्डियम, लन्थनम, यट्रियम, सरवियम, डिसिपियम, सामारियम और स्काण्डयम। ४ टेट्रडस्—कार्बन, सिलिकन, टिटानियम, जिरकोनियम, टिनथोरियम, गालियम, एलुमिनियम, सिरियम, प्लाटिनम, इरिडियस, पालेडियम, रोडियम और लेड। ५ पेण्टाडस्—नाइट्रोजन, फस्फोरस, वनडियम वा भानाडियम, आर्सेनिक, नावबियम, एण्टिवोनियम, टाण्टेलम, विशमथ और डिडिमियम। ६ हेक्साडस्—सलफर, सिसिनियम, हेलिउरियम, उरेनियम, टाङ्गष्टेन, मलिवडिनम्, क्रोमियम, मङ्गानिज, आयरण, कोवाल्ट और निकेल।

उपरोक्त धातु अक्सिजनके साथ अथवा गंधक या और किसी प्रकारकी लावणिक अवस्थामें रहती है। धातुका जो प्रकार यौगिक अवस्थामें होगा उसे विचार कर काम करनेसे अक्सिजनादि संयुक्त पदार्थका वियोग हो धातुमुक्त होगा। जैसे सीसेका अक्साइड (Pbo), इसको अलग करने या अक्सिजन निकालनेमें कभी कभी केवल उत्तापकी ही जरूरत होती है। कभी तो उत्ताप कोई कार्य ही नहीं करता। इस समय कोयलेकी जरूरत होती है। मार्कुरियस अक्साइडमें उत्ताप लगानेसे पारा धातुमुक्त होता है। फिर यदि सीसेका अक्सिजनघटित यौगिक कोयलेके ऊपर रख कर नलोसे स्पिरिट लैम्प वा गैस शिखाके उत्तापसे गलाया जाय, तो कोयलेके साथ सिन्दूरका अक्सिजन कार्बनिक अनहाइड्राइडरूपमें परिवर्त्तित हो सीसेकी धातुमें परिणत होता है। रासायनिक प्रक्रिया द्वारा धातुके यौगिक पदार्थोंको जिस प्रकार विश्लिष्ट करके मूल पदार्थ ग्रहण किया जाता है उसी प्रकार फिर मूल वा विशुद्ध धातुमें अक्साइड, क्लोराइड, ब्रोमाइड, आइयोडाइड, सलफाइड, नाइट्रेट, कार्बनेट, सैनाइड, फेरिसैनाइड, टानिक एसिड, एसिड सलफेट, एसेटिक एसिड, फस्फेट आदि द्रव्यमिश्रित करके नाना प्रकारके औषधादि बनाये जाते हैं। द्रव्यविशेषके मिलनेसे वह विभिन्न गुण मुक्त हो जाता है।

अधिक जल मिश्रित नाइट्रिक एसिडमें पारेको भिगो रखनेसे मार्किउरस् नाइट्रेट बनता है। किन्तु पारेका अधिक परिमाणमें व्यवहार करनेसे Basic Nitrate उत्पन्न होता है। बेसिक नाइट्रेट और स्वाभाविक नाइट्रेटको पहचाननेके लिये उसमें नमक मिलाना होगा। स्वाभाविक नाइट्रेटमें कालोमेल तथा बेसिकमें कालोमेल और काला मर्किउरस अक्साइड पाया जायगा। विस्तार हो जानेके भयसे धातुओंका यौगिक प्रकरण विस्तृत भावमें आलोचित नहीं किया गया, दूसरी जगह उसका संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

अङ्गार, धातु, स्वर्ण, रौप्य आदि शब्द देखो।

यौगिक पदार्थ जब किसी द्रावकके साथ मिलाया जाता है, तब वह उस द्रावकका गुण वा धर्म बिलकुल नष्ट कर डालता है और एक नये पदार्थकी सृष्टि करता है। इसको बेस (Base) कहते हैं धातुका अक्साइड अकसर बेस कहलाता है। क्षार इसी श्रेणीके अन्तर्भुक्त है।

पाश्चात्य विज्ञानमें भी नाना प्रकारके क्षारका उल्लेख देखते हैं। पोटासियम, सोडियम, एमोनियम, कालसियम तथा बेरियम अक्सिजनके साथ मिल कर

क्षतकारी क्षार (Caustic alkalies) उत्पादन करता है। वह क्षार शरीरके किसी स्थानमें अधिक देर तक रखनेसे वहां फोड़े निकल आते हैं। यह क्षार जलमें विघल जाता है। पोटासियम, एमोनियम और सोडियम नामक तीनों धातु क्षारधातु (alkali metal) कहलाती हैं। बेरियम, ष्ट्रनसियम, कालसियम और मागनेसियम नामक चार धातुको मृदुक्षार (metals of alkaline earths) कहते हैं। जिङ्क, म गनेसियम, एलुमिनियम और लोहेसे उत्पन्न क्षार पूर्वोक्त क्षारोंको तरह क्षतकारी नहों हैं। ये जलमें नहीं विघलते। इन्हें अंगरेजी रसायनशास्त्रमें वेस कहा है।

द्रावकसे जो उत्पन्न होता वह क्षारमें और जो क्षारसे उत्पन्न होता वह द्रावकमें नष्ट हो जाता है। अतएव द्रावक और क्षार दोनों ठोक विपरीत गुणावलम्बी हैं। किसी द्रावकके साथ किसी क्षारका द्रावण (Solution) मिलानेसे एक नया गुण-विशिष्ट पदार्थ उत्पन्न होता है। उसमें क्षार वा द्रावक किसीकी भी प्रतिक्रिया नहों देखी जाती अर्थात् नीला लिटमस कागज डुबानेसे वह लाल अथवा लाल लिटमस नील वर्णमें परिणत नहीं होती।

खनिज (mineral) और जैव (organic) के भेदसे द्रावक दो प्रकारका है। लवणद्रावक (Hydrochloric acid) यवक्षारद्रावक (Nitric acid) और गंधकद्रावक (Sulphuric acid) आदि खनिज तथा टार्टीरिक एसिड (Tartaric acid) और साइट्रिक एसिड (Citric acid) आदि जैव पदार्थसे उत्पन्न हुए हैं। इस द्रावककी सहायतासे प्रायः सभी पदार्थ गलाये जाते हैं और सभी द्रावक भी जलमें गलने लगते हैं। परीक्षाके समय द्रावकके साथ जल मिलाना उचित है।

द्रावकका गुण---स्वादमें खट्टा मालूम होता, Blue litmus paper नामक कागज डुबोनेसे वह लाल हो जाता, कार्बनेट मिलानेसे फोड़े निकलते ; फिनल थालिन (phenol pthalin) द्रावणमें क्षार मिलानेसे जो बैंगनी रंग होता है द्रावक मिलनेसे वह विलुप्त हो जाता तथा मिथिल आरेंज (Methyl orange) द्रावणके संयोगसे गुलाबी रंग धारण करता है।

जो क्षार भी नहीं, द्रावक भी नहीं, ऐसे नये गुण-विशिष्ट पदार्थको रसायन-विज्ञानमें लवण वा लावणिक द्रव्य (Salt) कहा है। यह लवण हम लोगोंके खाद्योपयोगी लवण नहों है। क्षार और द्रावकके आपसमें मिलनेसे जो यौगिक पदार्थ उत्पन्न होता है उसीको रसायनमें लवण कहा है। चून और कार्बलिक एसिड मिलनेसे चा-खड़िकी उत्पत्ति होती है। अतएव चा-खड़ि लावणिक पदार्थ है। इसके सिवा सुहागा, फिटकरी, तूतिया, हीरा कसीस, यवक्षार आदि भी एक एक लवण हैं। स्वाद ले कर लवण नाम रखा गया है, सो नहीं, उनकी उत्पादनक्रिया देख कर ही ऐसा नामकरण हुआ है। ये लवण तीन प्रकारके होते हैं, जैसे—१ प्रकृत लवण (normal salt), २ उद्‌जनयुक्त लवण (Acid salt), अक्‌साइड मिश्रित लवण (Basic salt)।

उद्‌जन प्रायः सभी पदार्थोंका एक उपादान है। द्रावकके हाइड्रोजनका स्थान सम्पूर्णरूपसे धातु द्वारा अधिकृत हो कर जो लवण उत्पन्न होता है उसीका नाम असल लवण है। किसी धातुका लवण प्रस्तुत होनेके समय द्रावकस्थ उद्‌जनका स्थान उक्त धातु द्वारा अधिकृत हो जाता है, जैसे $Zn_2 + H_2 SO_4 = ZnSO_4 + H_2$; यहां सलफ्युरिक एसिड स्थित हाइड्रोजनका स्थान जिङ्क धातु द्वारा अधिकृत होनेसे जिङ्क सलफेट नामक एक प्रकृत लवण बनता है।

द्रावकमें उद्‌जनका स्थान आंशिकरूपमें अधिकृत हो जो लवण उत्पन्न होता है उसको हाइड्रोजनयुक्त लवण वा acid salt कहते हैं। Bicarbonatl of soda इसी श्रेणीका एक लवण है। इसका साङ्केतिक चिह्न है $Na HCO_3$; यहां पर सोडियम धातु (Na)-ने कार्बनिक एसिड ($H_2 CO_3$)-से हाइड्रोजनको आंशिकरूपमें अलग कर दिया है। हाइड्रोजनको बिलकुल हटा देनेसे कार्बनेट आव सोडा ($Na_2 CO_3$) नामक प्रकृत लवण बनता है।

किसी धातुके लवणके साथ उक्त धातुका अक्‌साइड मिश्रित रहनेसे उस लवणको Basic salt कहते हैं। सब नाइट्रेट आव लेड उसका एक उदाहरण है। इसमें नाइट्रेट आव लेड नामक सीसक धातुके लवणके साथ

उस धातुका अक्साइड मिला रहता है। इन सब लवणोंको विश्लिष्ट करके Base और Acids निर्णय करना ही फलित रसायनका कार्य है।

चिकित्साविज्ञानमें औषधादिके प्रस्तुतकरणमें धातु आदिका शोधन, मारण अथवा उसका परिमाण जाननेके लिये तथा मूत्र, पीप आदिकी परीक्षा द्वारा रोगका निर्णय करनेके लिये हम लोग जिस रसायनविज्ञानकी सहायता लेते हैं उसे वैश्लेषिक रसायन (Analytical chemistry) कहते हैं। वैश्लेषिक रसायनने पृथिवीके सभी पदार्थोंको अपने अधिकारमें कर लिया है। इसी कारण हम लोगोंके खाद्य, वसन, विलाससामग्री, शिल्प, औषध आदि प्रत्येक द्रव्यमें इस रसायनको सहायतासे प्रतिदिन कितनी उन्नति होती है उसे कह नहीं सकते। इस शास्त्रमें तुरंत पारदर्शी होना बहुत कठिन है। इसके एक एक अंश वा शाखामात्रकी (जैसे Food Analysis, Pharmaceutical Chemistry) आलोचनामें सारा जीवन लगा देनेसे भी शिक्षा पूरी नहीं होती।

यह प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है। १ला गुणनिर्णायक (qualitative) अर्थात् जिसके द्वारा पदार्थका गुण जाना जाता है और २रा परिमाणनिरूपक (quantitative) अर्थात् जिससे उपादानोंका परिमाण निर्दिष्ट हो सकता है। फलित रसायन कहनेसे वैश्लेषिक रसायनका प्रथम अंश ही समझा जाता है। रासायनिक विश्लेषण कार्यमें जितने यन्त्र प्रधानतः व्यवहृत होते हैं उनकी संक्षिप्त तालिका नीचे दी गई है,—

१ Test-tube—एक मुंह बंद कांचका नल। इसमें तरल पदार्थ डाल कर परीक्षा करनी होती है।

२ Test-tube-stand—उक्त कांचके नल बैठानेके लिये सछिद्र काष्ठनिर्मित आधार।

३ Test-tube-holder—काष्ठका हत्था लगा हुआ पीतलका चिमटा। किसी पदार्थको नलमें डाल कर आंच देते समय इससे कांचका नल पकड़ा जाता है।

४ Test-glass—कांचका बना हुआ एक बरतन। परीक्षाधीन तरल वा ठोंस पदार्थ इसमें रखा जाता है।

५ Funnel—ब्लार्टिं कागज वा फिल्टर पेपरकी छननी इसके ऊपर रख कर द्रावणादि रासायनिक द्रव पदार्थ छाना जाता है।

६ Pipette—दोनों मुंह खुला हुआ कांचका पतला नल। किसी बरतनसे थोड़ा थोड़ा करके तरल पदार्थ उठानेमें यह काम आता है।

७ Grass-rod—पेन्सिलकी तरह गोलाकार पतला कांचका दण्ड।

८ Glass-plate—कांचका छोटा टुकड़ा।

९ Porcelain dish—सफेद चीनका प्याला।

१० Spirit lamp—स्पिरिट द्वारा जलती हुई बत्ती।

११ प्लाटिनम धातुका पत्तर। जब कोई वस्तु आगमें जलानी होती है, तब इसी पर रख कर जलाई जाती है। एक खण्ड Mica-plate अर्थात् अबरकके टुकड़े से यह कार्य सम्पादित हो सकता है।

१२ Flask—कांचका एक बरतन जिसका आकार बोतल-सा होता है।

१३ Platinum loop—एक कांच दण्डके अग्रभागको तपा कर यह तार जड़ दिया जाता है। सुहागेका वर्त्तुल बनानेमें इस तारकी जरूरत होती है।

१४ Charcoal—एक खण्ड काठका कोयला।

१५ Mouth Blow pipe—भांथी।

१६ Brass tongs—पीतलका चिमटा।

१७ Wash bottle—एक आयत मुंहवाली कांचकी बोतलमें दो छेद करके दो टेढे कांचके नल घुसा दे। बोतलमें जल भर कर छोटे नलसे हवा देनेसे उसके भीतरका जल दूसरे नलके मुंहसे निकल पड़ता है।

इसके सिवाय युडिओमिटर, बैटरी, रिटर्ट, वायुपानयन्त्र, तापमानयन्त्र आदि यन्त्र भी वाष्पादिके विश्लेषणके समय व्यवहृत होते हैं।

विश्लेषण-प्रक्रिया।

पदार्थमात्रकी ही दो तरहसे परीक्षा की जाती है, एक द्रवपरीक्षा (Wet reaction) और दूसरा अग्निपरीक्षा (Dry reaction)। द्रव्यविशेषकी परीक्षा सुचारुरूपसे करनेके लिये तथा उसका फल सुसिद्ध

हुआ है वा नहीं इसे जाननेके लिये रसायनशास्त्रमें कुछ परिचायक (Re-agent) और निर्देशक (Indicator) पदार्थों का उल्लेख है। जो सब मूल वा यौगिक पदार्थ परोक्षाधीन पदार्थके साथ मिल कर उसका उपादान निरूपण करते हैं उन्हें रि-एजेण्ट कहते हैं। हाइड्रोक्लोरिक एसीड परीक्षाधीन पदार्थमें मिलानेसे यदि सफेद चांदी, सीसा वा चूर्ण पेंदोमें जम जाय, तो वह पदार्थ पारेका अंश है, ऐसा जानना होगा। जो परिचायक एक प्रक्रिया द्वारा सभी पदार्थों को भिन्न भिन्न श्रेणीमें विभक्त करते हैं उन्हें साधारण परिचायक तथा जो परिचायक किसी एक द्रव्यका विशेष विशेष गुण उद्घाटन करते हैं उन्हें विशेष परिचायक कहते हैं।

इस परिचायकके साथ पदार्थके रासायनिक परिवर्त्तन वा परस्पर संयोगके समय वह परिवर्त्तन वा संयोजन कब हुआ। जो सब पदार्थ वर्ण उत्पादन द्वारा कार्य्य फल निर्देश करते उन्हें निर्देशक (Indicator) कहते हैं। कार्य्यके समय निर्देशक पदार्थोंका प्रकृतिगत कोई परिवर्त्तन नहीं होता। अथवा उनकी अवस्थितिके कारण रासायनिक प्रतिक्रियामें भी किसी प्रकारकी विलक्षणता वा प्रतिबन्धकता नहीं देखी जाती। प्रधानतः द्रावक और क्षारपदार्थके मध्य विभिन्नता दिखानेके लिये ही निर्देशकका व्यवहार होता है।

लिटमस, फिनलथालिन, मिथिल आरेञ्ज, टार्टरिक आदि निर्देशक पदार्थ है। इनमेंसे २रा वा ३रा सुरासार वा जलके साथ द्रावणरूपमें तथा १ला और ४था सुरासारमें पिघल कर उसमें ब्लार्टि कागज निषिक्त और पीछे सुखा कर निर्देशकरूपमें व्यवहृत होता है। इसके सिवाय Lead paper, strach paper वा श्वेतसार मण्ड आदि कुछ धातव यौगिक भी निर्देशकरूपमें व्यवहृत होते हैं।

जल वा द्रावकमें परीक्षाधीन पदार्थको तरल कर उस द्रावणमें भिन्न भिन्न पदार्थ मिलानेसे जो रासायनिक प्रतिक्रिया संघटित होती हैं उससे उक्त पदार्थका उपादान समझा जाता हैं, इसे द्रवपरीक्षा कहते हैं। फिर उत्ताप लगनेसे परीक्षाधीन पदार्थका परिवर्त्तन देख कर उससे उसके गठनोपादान निर्णय करनेका नाम अग्निपरीक्षा है।

पदार्थ विश्लेषणकार्य्यमें यह अग्निपरीक्षा ही उत्तम। प्लाटिनम वा अबरकके पारेके ऊपर परीक्षाधीन पदार्थ रख कर गैस वा स्पिरिट लैम्पकी गरमी देनेसे यदि वह पदार्थ काला हो कर जल जाय, तो उसे अङ्गार द्रव्य कहना चाहिये।

एक टुकड़े काठके कोयलेके ऊपर थोड़ा गड्ढा बना कर उसमें परीक्षाधीन पदार्थों का चूर्ण रख नलसे फूंक कर जलानेसे सीसा, चांदी, एण्टिमनि, बिसमथ आदि धातु लवणवियुक्त हो मूलधातुमें परिणत होती है। चार भाग कार्बोनेट आव सोडा और एक भाग सायनाइड आव पोटाशियम, इन्हें एक साथ मिला कर उसका चौथाई भाग परीक्षाधीन पदार्थमें मिश्रित कर पूर्वोक्त प्रणालीसे यदि ताप दिया जाय, तो मूल धातु अति शीघ्र पृथक् हो जाती है। बसन्तकालमें जब किसी धातुमें इस प्रकारका उत्ताप लगता, तब वह लवणसे पृथक् नहीं होती, केवल कोयलेके ऊपर भिन्न भिन्न वर्णका चाप (incrustation) उत्पादन करती है। उक्त अवस्थामें सीसेसे हल्दी रंगका, एण्टिमनिसे नीलापन लिये सफेद रंगका, विसमथसे पाटल वर्णका, काडमियमसे लाल वर्णका और दस्तेसे कुछ हरिद्रावर्णका प्रकाश निकलते देखा जाता है। प्लाटिनम् तारके अग्रभागमें सुहागा रख कर स्पिरिट लैम्पकी शिखासे उत्ताप करने पर लावा बनता है। पीछे नलसे फूंक कर जलानेसे वह कांचके जैसा सफेद गोलाकारमें परिणत हो जाता है तथा उसी भावमें संलग्न रहता है। इसके बाद परीक्षाधीन लवणके द्रावणमें वह गोल सुहागा डुबो कर फिर नलसे गरमी देने पर विभिन्न वर्ण हो जाता है। जैसे कोबाल्ट गाढ़ा नीला, निकेल कुछ लाल, तांबा कुछ नीला, क्रोमियम पोला लोहा पीलापन लिये हरा और मैङ्गानिज बैंगनी रंग लिये लाल होता है, इत्यादि।

रसायनशास्त्रोक्त धातव पदार्थको वैज्ञानिक प्रक्रियासे यथासम्भव इतिहास लिपिबद्ध कर अभी अधातव पदार्थोंका पौर्वापर्य निर्णय करके हम लोग वर्तमान रसायनशास्त्रकी ऐतिहासिक भित्तिको मजबूत कर सकते

हैं। किस प्रकार, कब और किसके द्वारा ये सब अधातव मौलिक पदार्थ विश्लेषणप्रक्रिया द्वारा आविष्कृत हो रसायन-जगत्में प्रसिद्ध हो गये हैं, नीचे उसकी एक संक्षिप्त तालिका दी गई ;—

१७८१ ई०में कामेण्डिस् साहबने उद्‌जन (Hydrogen) नामक रूढ़ पदार्थका आविष्कार किया। १७७४-ई०की १ली अगस्तको महामति प्रिष्ठले द्वारा अक्सिजन नामक रूढ़ पदार्थ आविष्कृत हुआ। यद्यपि प्रिष्ठले साहबने सबसे पहले रूढ़ावस्थामें अक्सिजन पाया था, तथापि उसके दूसरे वर्ष सील साहबने इसीको आविष्कार किया। प्रिष्ठले और सील द्वारा अक्सिजन आविष्कृत होने पर भी १७७८ ई०में लाभोसियर अक्सिजनको तृतीय बार आविष्कार करके जनसमाजमें उसे निर्विवाद प्रचार कर गये।

१८१८ ई०में थेनार्ड साहबने हाइड्रोकसिलका आविष्कार किया। पीछे १८५० ई०में ब्रोडो और सेनवेन विशदरूपसे उसके धर्मादि समझा गये।

१७७२ ई०में रादरफोर्ड साहब द्वारा नाइट्रोजन आविष्कृत हुआ। इसके पांच वर्ष बाद अर्थात् १७७७ ई०में सील और लाभोसियरने उसे साबित कर दिखा दिया। १७७७ ई०में लाभोसियरने निर्दिष्ट परिमाणकी वायुमें निर्दिष्ट तौलका पारा उत्तप्त कर लाल रंगका यौगिकविशेष प्राप्त किया तथा जो भाप बच गई उसे पांच भागका चार भाग ठहराया। इसके बाद पारेके यौगिकको फिरसे उत्तप्त करनेसे जो भाप पाई गई उसका परिमाण एकपञ्चमांश हुआ था। प्रथमोक्त वाष्प नाइट्रोजन और शेषोक्त अक्सिजनका है। भूवायुस्थ नाइट्रोजन और अक्सिजनका परिमाण स्थिर करनेमें युडियोमीटर नामक कलका व्यवहार करना उचित है।

१७६० ई०में पृष्ठलेने अमोनिया वाष्प आविष्कार किया। अमोनिया (Sal-ammoniac) नाम अरबोंका रखा हुआ है। उन्होंने ही सबसे पहले जुपिटर आमन देवमन्दिरके आसपासके स्थानोंसे पक्षी और ऊंट आदि जन्तुओंकी विष्ठादि जला कर इस पदार्थको तैयार किया था।

१७७७ ई०में पृष्ठले साहबने समझा था, कि वायुके भीतर हो कर तड़ित्‌के आने जानेसे नाइट्रिक एसिड उत्पन्न होता है। अनन्तर १७८५ ई०में कामेण्डिस्‌ने अनुमान किया, कि वायुमें उद्‌जन जलानेसे जो अम्लधर्मविशिष्ट यौगिक पदार्थ पाया जाता है वही नाइट्रिक एसिड है, किन्तु प्रोष्टि, टमसन, गे लुसाक आदि रासायनिक नाइट्रिक-एसिडके प्रकृत तत्त्वको खोज करके उसका याथार्थ्य निर्णय कर गये हैं।

१७७६ ई०में पृष्ठलेने नाइट्रस् अक्साइडका आविष्कार किया तथा १८०६ ई०में डेभी साहब गहरी आलोचना द्वारा इस तत्त्वकी निष्पत्ति कर गये। वाष्पावस्थामें इसे सूंघनेसे भंगके नशेकी तरह हंसी आती है, इसीसे इसका नाम Laughing gas रखा गया।

१७७२ ई०में हेलस साहबने नाइट्रिक अक्साइडका आविष्कार किया था। यह आजोटिल नाइट्रासिल वा नाइट्रोजन डाइ-अक्साइड नामसे प्रसिद्ध था। डेभी साहब पहले नाइट्रिक-परक्साइड और १८४८ ई०में डेभिलि साहब शुष्क नाइट्रेट आव सिलभर और क्लोरिन द्वारा नाइट्रिक-आन्हाइड्राइड प्रस्तुत कर गये।

१७७४ ई०में सील साहबको सबसे पहले क्लोरिनका अस्तित्व मालूम हुआ था सही, पर १८१० ई०में डेभी द्वारा वस्तुतः इसका रूढ़त्व निरूपित हुआ। हाइड्रोजनके साथ क्लोरिनका एक यौगिक सम्बन्ध है जिसका नाम हाइड्रोक्लोरिक एसिड है। अति प्राचीन कालसे इसका प्रचार रहने पर भी १७७२ ई०में पृष्ठलेने इसका आविष्कार किया था। हाइपोक्लोरस अनहाइड्राइड नामक यौगिक पदार्थका नाम बालार्ड साहब द्वारा रखा गया है। हाइपोक्लोरस अनहाइड्राइडको जलके साथ मिलानेसे हाइपोक्लोरस् एसिड बनता है। इस एसिडसे जो सब लवण तैयार होते हैं, उन्हें हाइपोक्लोराइटस् कहते हैं। कालसियम हाइपोक्लोराइट कपड़ेको सफेद करनेके लिये बहुत उपयोगी है। यह बाजारमें Bleaching powder नामसे बिकता है।

१८४२ ई०में मिलन साहबने क्लोरस अनहाइड्राइड, १८१५ ई०में डेभीने क्लोरिक परअक्साइड और १८०२ ई०में सेनेभीने क्लोरिक एसिडका आविष्कार किया।

१८१४ ई०में गे-लूसक क्लोरिक एसिडका धर्मादि बता गये हैं।

१८२६ ई०के अगस्त मासमें वालर्ड साहबने ब्रोमिन नामक रूढ़-पदार्थ आविष्कार किया। यह कभी भी मुक्तावस्थामें नहीं रहता। समुद्रजलस्थित सोडियम क्लोराइड वा सलफेट तथा मैगनेसियमके सलफेटादि लावणिक पदार्थके साथ यह मिला हुआ पाया जाता है। हाइड्रोब्रोमिक एसिडमें हाइड्रोक्लोरिक एसिडके जैसा गुण है, किन्तु यह हाइड्रोजनके साथ सम्मिलित नहीं होता। एक W आकृतिके कांचके नलकी दाहिनी ओर वक्रस्थानमें ४० ग्रेन फोस्फरसके साथ कांचका चूर्ण और जल मिला कर बाईं ओर वक्रस्थानमें २४० ग्रेन ब्रोमिन रखे और एक छिप्पीसे बाईं ओरका मुंह बंद कर दे। पीछे ब्रोमिनसंयुक्त कोणमें गरमी देनेसे वह वाष्पाकारमें ऊपर उठ कर फोस्फरसके साथ मिलता जिससे आवश्यकीय रासायनिकका परिवर्त्तन होता है। इससे मेटा हाइड्रोब्रोमिक एसिड भी बनता है। औषधादिमें इसका बहुत व्यवहार होता है।

१८१२ ई०में फ्रान्सकी राजधानी पेरिसके रहनेवाले कुर्त्वो नामक एक साबुन बेचनेवालेने समुद्रसे उत्पन्न उद्भिज्जभस्म (Kelp)-के परित्यक्त अंशमें एक प्रकारका विशेष गुण देखा था। वह उसका मर्म न समझ सका और क्लिमेण्ट नामक रासायनिकके पास ले गया। क्लिमेण्टने परीक्षा द्वारा उसमेंसे एक नया पदार्थ बाहर किया; किन्तु सच पूछिये, तो डेभी और गेरुसाकने ही इसका आइयोडिन् नाम रखा था।

सीसा-निर्मित रिटर्ट कालसियम फ्लुराइड चूर्ण तीव्र सलफ्युरिक एसिडके साथ उत्तप्त करनेसे हाइड्रोफ्लुरिक एसिड पाया जाता है। सील साहब इस यौगिक पदार्थके उद्भावक हैं। १८१२ ई०में डेभीने उसे तड़ित् द्वारा विकृत करके फ्लुरिन पाया था। किन्तु एक स्वतन्त्र पात्रमें रख कर वे उसके धर्मादिकी परीक्षा न कर सके थे। उनके बाद नक्स, भे, फिपसन आदि कितने रासायनिकोंने इसकी परीक्षा की है। यह कालसियममें मिलानेसे कालसियम फ्लुराइड तथा सोडियम और अलुमिनियम मिलानेसे क्रायोलाइट कहलाता है।

अङ्गार (Carbon) नामक रूढ़पदार्थका व्यवहार बहुत प्राचीनकालसे लोगोंको मालूम है। इस अङ्गारमें अक्सिजन-घटित कुछ यौगिक पदार्थ हैं। पृष्ठले साहबने बन्दूककी नलीमें चा-खड़िको उत्तप्त कर कार्बनिक अक्साइड नामक यौगिक पदार्थ पाया था। किन्तु दुर्भाग्यवशतः उसकी दाहनशीलता देख कर उसे हाइड्रोजन समझ लिया था। १८०३ ई०में क्रूकसैङ्क और क्लेमेण्ट आदि रासायनिकोंने इसका प्रकृत तत्त्वनिरूपण किया। १७७५ ई०में लाभोसियेने हीरेको जला कर कार्बनिक अनहाइड्राइडका पता लगाया। इसे लोग कार्बनिक एसिड भी कहते हैं। Mithane, Light Carburetted Hydrogen और Fire-damp आदि नामोंसे प्रचलित अङ्गार-मिश्रित उदजन-वाष्प (Marsh gas) १७७८ ई०में भल्टा साहब द्वारा सबसे पहले परीक्षित हुआ था। विस्तृत विवरण अङ्गार शब्दमें देखो।

१७९५ ई०में ओलन्दाजने देशीय रासायनिक सुरा और सलफ्युरिक एसिड द्वारा प्रस्तुत ओलिफायेण्ट गैसका आविष्कार किया। अङ्गार और उदजन तड़ित् द्वारा उत्तप्त होनेसे दोनों मिल कर आसिटिलिन नामक यौगिक पदार्थ उत्पादन करते हैं। पथरिया कोयलेको लौह रिटर्टमें उत्तप्त करनेसे कोलगैस निकलता है। इस वाष्पकी उत्पत्ति कई पदार्थों के मिलनेसे होती है।

मेयर साहबने सबसे पहले सलफ्युरेटेड हाइड्रोजन निकाला। किन्तु १७७७ ई०में सील साहबने उसके धर्मादिका अनुशीलन किया। हाइड्रिक पारसलफाइड, सलफोउरस-अनहाइड्राइड, सलफर-ड्राइ, अक्साइड, सलफ्युरिक एसिड (बेसिल भालेण्टाइनने हीराकसीसको परिस्रुत करके इसे बनाया), हाइपोसलफ्युरस वा थाइयो-सलफ्युरिक एसिड, बाइसलफाइड आव कार्बन आदि यौगिकपदार्थ गंधकके योगसे उत्पन्न होते हैं।

गंधक देखो।

सिलिनियम और टेलिउरियम नामक रूढ़ पदार्थोंका कोई व्यवहार नहीं होता तथा ये बहुत दुर्लभ पदार्थ हैं। ये गंधकके समान धर्मविशिष्ट तथा उसीकी तरह यौगादिकी भी सृष्टि करते हैं।

१६६१ ई०में ब्राण्ड नामक एक रासायनिकने मूत्रसे

फोस्फरसको आविष्कार किया। १७६८ ई०में अस्थिसे यह रूढ़ पदार्थ तैयार हुआ तथा १७६६ ई०में सील साहबने अस्थिसे फोस्फरस प्रस्तुत-प्रणालीकी उन्नति की। मुक्तावस्थामें फोस्फरस बिलकुल नहीं मिलता। यह यौगिकरूपमें पार्थिव, जान्तव और उद्भिज्ज विभागमें रहता है।

१७८३ ई०में गानजेम्बर साहबने हाइड्रोजन फोस्फाइड वा फोस्फाइन नामक यौगिक पदार्थका उद्भावन किया। वाष्प, तरल और कठिन भेदसे फोस्फयुरेटेड हाइड्रोजन तीन प्रकारका है। प्रस्फुरक देखो।

१८०८ ई०में गे-लूसक द्वारा बोरन नामक रूढ़पदार्थ आविष्कृत हुआ। सोहागा कहनेसे जो समझा जाता है वह बोरासिक एसिडका लवण है। बोरासिक एसिड बोरन नामक रूढ़पदार्थके अक्सिजन-घटित यौगिक है। अक्सिजन मिलानेसे बोरन बोरिक अनहाइड्राइड नामक एक यौगिक पदार्थ उत्पन्न होता है। एक अणु बोरिक अनहाइड्राइड तीन अणु जलमें मिलनेसे बोरासिक एसिड कहलाता है। बोरासिक एसिडके लवणको बोरेट कहते हैं। सोहागा देखो।

१८०७ ई०में डेभी साहबने सिलिकनका आविष्कार किया। यह मुक्तावस्थामें कभी भी नहीं पाया जाता। अक्सिजन मिलानेसे सिलिकारूपमें यह पार्थिव राज्यमें तरह तरहको अवस्थामें विद्यमान रहता है। सिलिकनका अक्सिजन-घटित यौगिक सिलिका कहलाता है।

सिलिका देखो।

इन सबकी आलोचना करनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि रसायनविदोंकी चेष्टासे १८वीं सदीके शेष भागसे १६वीं सदीके मध्य भाग तक रसायनविज्ञानकी यथेष्ट उन्नति हुई थी तथा तभीसे रसायनशास्त्रकी जड़ मजबूत हो गई।

आङ्गारिक रसायन।

अङ्गार, उदजन आदि कुछ रूढ़ पदार्थोंके संयोगसे असंख्य प्रकारके यौगिक बनते हैं। इसीसे रसायनविदोंने इस यौगिक-विभागकी स्वतन्त्ररूपसे आलोचना करनेकी व्यवस्था की है। अङ्गरेजीमें इसे Organic Chemistry कहते हैं। पहले रासायनिकोंका विश्वास था, कि पार्थिव वा अनाङ्गारिक (inorganic) पदार्थ जड़-शक्ति तथा आङ्गारिक अर्थात् उद्भिज्ज और जान्तव पदार्थ चैतन्यशक्ति (Vital force) द्वारा उत्पन्न, वर्द्धित और चालित होते हैं। इसी कारण उन्होंने उद्भिज्ज वा जान्तव श्रेणीको चैतन्यशक्तिसे उत्पन्न रसायन-यौगिकको आङ्गारिक रसायनमें शामिल किया है। उस मतके अवलम्बियोंका कहना है, कि आङ्गारिक पदार्थ प्रत्यक्ष (Direct) और परोक्ष (Indirect) नामक दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं। उद्भिज्ज और जान्तव देहजात शर्करा नामक द्रव्य प्रत्यक्ष आङ्गारिक तथा वह शर्कराजात सुरा वा वह सुराजात एसेटिक एसिड परोक्ष-आङ्गारिक पदार्थ है। १८२८ ई०में भूलर साहबने उक्त मतका खण्डन कर परीक्षा द्वारा यह साबित किया है, कि बिना चैतन्यशक्तिके विशुद्ध अनाङ्गारिक पदार्थोंसे रासायनिक सम्मिलन और उनके परमाणुओंका अवस्थान्तर संघटन करा कर आङ्गारिक यौगिक प्रस्तुत किया जा सकता है। युरिया (Urea) नामक आङ्गारिक पदार्थ मूत्रका प्रधान उपादान है। यह जीवदेहसृष्ट और चैतन्यशक्तिसे उत्पादित होनेके कारण आङ्गारिक पदार्थ श्रेणीमें गिना गया है। युरियामें ($CH_4 N_2 O$) अङ्गार, उदजन, नाइट्रोजन और अक्सिजन है। ये सभी अनाङ्गारिक पदार्थ हैं तथा इन सब पदार्थोंसे रासायनिक परिवर्त्तन द्वारा कृत्रिम युरिया प्रस्तुत हो सकता है। कार्बनेट आव पोटास और अंगारको जला कर लाल बना करके नाइट्रोजनमें मिलानेसे सायनाइड आव पोटासियम और कार्बनिक अक्साइड उत्पन्न होता है। इस सायनाइड आव पोटासियमके साथ लेड अक्साइड गलानेसे वह सायनाइड सायनेट होता है तथा सीसेका आकार धारण करता है। अनाङ्गारिक पदार्थसे भी जब आङ्गारिक वस्तु उत्पन्न होती है, तब चैतन्यशक्ति प्रसूत होनेके कारण आङ्गारिक और अनाङ्गारिक पदार्थके मध्य पृथक् वा पृथकता दिखलाना उचित नहीं है।

लोरें (Laurent) साहबके निर्दिष्ट सूत्रानुसार आङ्गारिक रसायनमें अङ्गार और उसका यौगिकवृन्द-सम्बन्धीय समझा जाता है। क्योंकि आङ्गारिक पदार्थकी गठनादिकी आलोचना करनेसे सभी जगह अङ्गारकी

प्रधानता ही दिखाई देती है। लीबेग साहबका कहना है, कि वह आङ्गारिक राडिकेलोंके रसायनको ही निर्देश करता है। Radicals शब्दसे एकसे अधिक रूढ़ पदार्थका आणविक संयोग समझा जाता है। यह अनेक परमाणुके सम्मिलनसे उत्पन्न होने पर भी एक पदार्थकी तरह धर्मविशिष्ट होता है तथा उसी अवस्थामें यौगिकविशेषमें ठहरता है। यौगिकके विकृत होने पर भी राडिकेल विकृत नहीं होता। आङ्गारिक यौगिक राडिकेल द्वारा संगठित होने पर भी अनाङ्गारिक यौगिकमें भी राडिकेलका सम्बन्ध है। जैसे हाइड्रोक्सिल राडिकल और नाइट्रकसिल राडिकेलके सम्मिलनसे नाइट्रिक एसिड उत्पन्न होता है इसी कारण बहुतेरे राडिकेलको आङ्गारिक रसायनका कारणस्वरूप नहीं मानते।

फ्रान्कलैण्ड साहबने इसकी मीमांसामें कहा है, कि एकसे अधिक आणविक मिलानेसे एक वा अधिक परमाणु अङ्गार तथा उनके एक वा अधिक वायु मुक्त रहते हैं। अङ्गार टेट्राड पदार्थ है। उसके एक परमाणुमें चार परमाणु उद्जन मिलनेसे सम्पूर्ण यौगिक संगठित होता है। जैसे Marsh gas = CH_4। यदि CH_4 की जगह CH_3 वा CH_2 अथवा CH हो, तो अङ्गारके एक दो वा तीन बाहु मुक्त हैं, ऐसा जानना होगा। ये मुक्त बाहुके संख्यानुसार नये नये यौगिक उत्पन्न करनेमें समर्थ हैं। क्योंकि CH_3 एक Radical तथा Monovalent अर्थात् उद्जनकी तरह एकसंख्यक पदार्थ है। यह मनाड श्रेणीका एक दूसरा रूढ़ पदार्थ है। कारण, एक परमाणु उद्जन वा क्लोरिनके साथ मिलनेसे वह सम्पूर्ण हो जाता है। CH_2 = Bivalent तथा CH = Trivalent अर्थात् इनके दो वा तीन मुक्तबाहु हैं तथा उनमें उतने ही परमाणु क्लोरिन मिलानेसे एक दूसरे पदार्थका संगठन किया जा सकता है।

सभी राडिकेल राडिकेलके साथ संयुक्त होते हैं। CH_3 राडिकेल Methyle नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रकार एक मिथिलके साथ एक दूसरा मिथिल संयुक्त होनेसे जो यौगिक उत्पन्न होता है उसे इथेन (Ethane) वा डाइमिथिल (Di-methyle) कहते हैं। इथेनका एक परमाणु उद्जन विच्युत करनेसे C_2H_5 अवशिष्ट रहता है। यह इथिल (Ethyl) राडिकेल है। इथिल मनोभालेण्ट है।

रासायनिक प्रक्रियासे मिथिलके साथ इथिलका संयोग हो सकता है। यह इथिल-मिथिल वा प्रोपन कहलाता है। इसी प्रकार राडिकेलके साथ राडिकेल संयुक्त हो नाना प्रकारके नये नये पदार्थोंकी सृष्टि करके आङ्गारिक रसायनकी पुष्टि करता है। यद्यपि राडिकेल द्वारा आङ्गारिक विभाग अनाङ्गारिकसे पृथक् किया जाता है, तथापि इनका यौगिकवृन्द ले कर विचार करनेसे देखा जाय, कि इन दोनों श्रेणीके यौगिकादि एक ही नियमके अधीन हैं। सभी धातु जिस प्रकार उद्जनके साथ हाइड्राइड, अक्सिजनके साथ अक्साइड और एसिड राडिकलके साथ लवणादि प्रस्तुत होता है, आङ्गारिक-राडिकेल भी उसी प्रकार सम्मिलित हो इथिल हाइड्राइड, इथर नाइट्रिक, इथर-हाइड्रोसलफ्युरिक, इथिल हाइड्रेट वा अलकोहल आदि उत्पादन करते हैं।

रासायनिक लोग आङ्गारिक पदार्थोंका एक श्रेणीविभाग इस प्रकार करते हैं।

१म—अङ्गार और उद्जनके विविध प्रकारके यौगिक। इन्हें Hydrocarbon कहते हैं।

२य—अलकोहल (Alcohol), इस यौगिकमें अक्सिजन हाइड्रक्सील-रूपमें रहता है। अलकोहलमें राडिकेल विशेषके साथ हाइड्रकसिल मिला हुआ है।

३य—एक परमाणु आक्सिजनसे अलकोहलके दो परमाणु उद्जन बाहर हो जानेसे जो यौगिक पदार्थ रह जाता है, उसे अलडिहाइड (Aldehyde) कहते हैं।

४र्थ—अलडिहाइड अक्सिजनग्रस्त होनेसे जिस रूपमें परिणत होता है, उसे एसिड कहते हैं।

५म—जब आङ्गारिक एसिडसे हाइड्रकसिल हाइड्राङ्गारिक राडिकेल द्वारा स्थानच्युत होता है, तब उसे किटोन (Ketone) कहते हैं।

६ष्ठ—अलकोहलका हाइडकसिल-स्थित उद्जन आङ्गारिक राडिकेल द्वारा स्थानच्युत होनेसे इथर (Ether) उत्पन्न होता है।

७म—हालोजेन घटित यौगिकमें हाइड्रकसीलके स्थानमें हालोजेन (Halogens) प्रविष्ट होता है।

८म—एसिडका उद्जन आङ्गारिक राडिकेल द्वारा स्थानच्युत होनेसे जो लवण बनता है, उसे इथिरियल साल्ट वा इथर (Ester) कहते हैं।

९म—एमोनियाके तीनों उद्जन आङ्गारिक राडिकेल द्वारा स्थानच्युत होनेसे जो यौगिक उत्पन्न होता है उसका नाम एमोनिया डेरिभेटिभ (Ammonia derivatives) वा अमाइन (Amines) है। जैसे इथिल अलकोहलका राडिकेल एमोनियाका एक उद्जन स्थानच्युत करनेसे इथिलामाइन (Ethylamine); दो परमाणु उद्जनकी जगह दो इथिल प्रविष्ट होनेसे Di-ethylamine तथा तीन परमाणु उद्जनकी जगह इथिल अधिकार-का अधिकार होनेसे Tri-ethylamine उत्पन्न होता है।

१०म—सायानोजन अर्थात् अङ्गार और नाइट्रोजनका यौगिकसमूह । जैसे—हाइड्रोसियानिक एसिड (HCN)।

११श—फिनल (Phenol); अलकोहलमें जैसे OH का रहना विशेष लक्षण है, फिनलमें भी वैसे ही OH रहता है।

१२श—आङ्गारिक पदार्थका दो परमाणु स्थान दो परमाणु अक्सिजन द्वारा अधिकृत होने पर Quinon श्रेणीके यौगिककी उत्पत्ति होती है । जैसे,—बेञ्जिनके (Benzene) C_6H_6 दो परमाणुके बदले O_2 प्रयोग करनेसे उस $C_6H_4O_2$ = Quinon कहते हैं।

१३श—आङ्गारिक पार्थिव-(Organo-mineral) यौगिक। अनाङ्गारिक यौगिकमें एसिडका भाग आङ्गारिक राडिकेल द्वारा स्थानभ्रष्ट होनेसे इस श्रेणीका यौगिक उत्पन्न होता है। जैसे—जिङ्क क्लोराइडका क्लोरिनकी जगह इथिल प्रविष्ट होनेसे जिङ्कइथाइड ($Zn(C_2H_5)_2$) कहते हैं।

१४श—छः परमाणु वा उसके गुणक्रमिक अङ्गारके साथ जलका गुणक्रमिक सम्बन्ध रहनेसे carbo-hydrate कहलाता है।

१५श—जो सब पदार्थ विकृत होनेसे द्राक्षाशर्करा (Grape Sugar) उत्पादन करते हैं, उनका नाम Glucoside है। जैसे सालिसिन (Salicin).

१६श—अलबुमिनाइड (Albuminoid) और जिलेटिनाइड (Gelatinoid) अर्थात् जिन सब आङ्गारिक यौगिकमें अङ्गार, उद्जन, नाइट्रोजन, अक्सिजन, स्वल्प परिमाणमें गंधक और फोस्फरस रहता है।

पूर्व कथित Hydrocarbon श्रेणी पन्द्रह उपश्रेणियों में विभक्त है । प्रत्येक उपश्रेणीमें फिर अनेक प्रकार-के स्वतन्त्र यौगिक कहे गये हैं। जैसे—Paraffin, Olefines Acetylene Turpenes, Benzenes, Cinnamene आदि।

पिट्रोलियम कूपसे मिथेन, इथेन आदि वाष्प निकलते हैं। उस तेलमें कुछ इथेन मिला रहता है। उत्तापको कमी-बेशीके अनुसार उसे तेलसे यथाक्रम इथेन, प्रोपेन और ब्युटेन वाष्प परिस्रुत होता है। उसको गाढ़ा करने-से Cymogene नामक तरल पदार्थ पाया जाता है। ७६° सेण्टि: उत्तापके नीचे पेण्टेन और हेक्सेन परिस्रुत होता है । यही Petroleum Spirit वा Ether कहलाता है। इण्डिया-रबड़को गलानेमें इसका व्यवहार होता है। ७६° से०के उत्तापसे हेप्टेन परिस्रुत होता है, उसीको Kerosene कहते हैं। १५०° से २७०° से० तकके उत्तापसे नोनेन और डोडिकेन परिस्रुत होता है, यही सुप्रसिद्ध Lubricating oil है। इसके ऊर्द्ध्व उत्तापसे हेक-सोडिकेन तथा अन्यान्य अङ्गाराधिक्ययुक्त हाइड्राङ्गारिक पदार्थ पाये जाते हैं। वे सब कोमल पदार्थ हैं। Vaselin वा मोमकी तरह कठिन पदार्थको पाराफिन कहते हैं। पाराफिनसे बत्ती बनती है । पाराफिनकी तालिका दी गई—

Methane—CH_4, मिथेनको मिथिल राडिकेलका हाइड्राइड कहते हैं। दो अणु मिथिलके योगसे इथेन उत्पन्न होता है।

उपरोक्त तालिकामें मिथेनके १ परमाणु अङ्गार और ४ परमाणु उद्जनसे निम्नलिखित प्रत्येक पदार्थमें क्रमशः एक परमाणु अङ्गारके साथ दो परमाणु उद्जनकी वृद्धि हुई है । इस प्रकार एक श्रेणीजात पदार्थोंको Homologous कहते हैं। उक्त तालिकानिबद्ध श्रेणीजात पदार्थको रसायनशास्त्रमें Primary paraffin कहा है। उसके प्रथम तीनको छोड़ कर ब्युटेनसे उसके निम्नस्थ पदार्थोंकी आणविक

गठनको दूसरी अवस्थामें ला कर स्वतन्त्र धर्मयुक्त नाना पदार्थों की सृष्टि हुई है। ऐसे पदार्थको Isomers कहते हैं। Isomerism शब्दसे पदार्थविशेषके परमाणुओंमें कोई परिवर्त्तन नहीं समझा जाता, वे परिमाण और संयोग सम्बन्धमें समान भावमें ही रहते हैं। किन्तु धर्म एक सा नहीं रहता। आइसोमेरिजम Polymers और Metamers-के भेदसे दो प्रकारका है।

पदार्थकी सभी संख्या समान रहती हैं, किन्तु आणविक गठन असमान होनेसे उसे 'पलिमार' कहते हैं। cyanogen और Paracyanogen नामक दो पदार्थ उसके दृष्टान्त हैं। सायनोजनमें १ परमाणु अङ्गार और १ परमाणु उदजन है, किन्तु पारासायनोजनमें उनकी संख्या अधिक है। इसमें सैकड़े पीछे अङ्गार ४५·१५ और नाइट्रोजन ५३·८२ है। क्लोराइड आव सायनोजनमें सैकड़े पीछे अङ्गार १९·५१, नाइट्रोजन २२·७७ और क्लोरिन ५७·७२ भाग है।

सभी संख्यासमान और आणविक गठन समान है ऐसे पदार्थको मेटामर कहते हैं। जैसे युरिया (2 (N I₂)CO) और एमोनियम सायनेट (CN (NH4 O)—इन दो यौगिकमें असमान परमाणु नहीं है। इनमें सैकड़े पीछे अङ्गार २०·००, उदजन ६·७६, नाइट्रोजन ४६·६१ और अक्सिजन २६·६७ है।

पहले कहा जा चुका है, कि मिथेन CH_4 एक सम्पूर्ण यौगिक है। यह मिथिल राडिकेलका हाइड्राइड CH_3H है। दो अणुमिथिलके संयोगसे इथेनकी उत्पत्ति होती है। इथनसे एक परमाणु उदजन निकाल लेनेसे (C_2H_5) इथिल पाया जाता है। इस राडिकेलके साथ और एक अणुमिथिल मिलानेसे Propane बनता है। प्रोपेनका एक परमाणु उदजन छोड़ देनेसे C_3H_7 बचता है। इसे Propye कहते हैं। प्रोपिलके साथ एक और अणुमिथिल मिलानेसे Butane उत्पन्न होता है। ब्युटेनमें अङ्गारका परमाणु ऊर्द्धसंख्यांके दो अङ्गार परमाणुके साथ संयुक्त रह सकता है। किन्तु आइसोमेरिकके मतसे एक अङ्गार परमाण दो तीन अङ्गारका ऐसा परिवर्त्तन दो स्थानमें होना सम्भव है। अन्तिम वा मध्यके अङ्गारके साथ मिथिल संयुक्त होनेको आइसोमर कहते हैं।

अङ्गारको संख्या जितनी बढ़ेगी, आइसोमेरिक पदार्थकी संख्या भी उतनी ही बढ़ती जायगी। आइसोमेरिक परिवर्त्तनसम्भूत यौगिक बाण चार श्रेणियोंमें विभक्त है, जैसे—

१, प्रत्येक अङ्गार परमाणुका दूसरे दो अङ्गार परमाणुके साथ सम्बन्ध रहनेसे उसको प्राइमरी या नरमैल पाराफिन कहते हैं। २, एक अङ्गार परमाणु तीन अङ्गार परमाणुके साथ यदि सम्बद्ध रहे, तो वह आइसो कहलाता है। ३, एक अङ्गार परमाणुके तीन अङ्गार एक पदार्थमें दुनी मात्रामें रहनेसे उससे Meso-paraffin कहते हैं। ४, एक अङ्गार परमाणु चार अङ्गार साथ संयुक्त हो परमाणुके परमाणुके साथ सम्बद्ध होनेसे वह पदार्थ Meso-paraffin कहलाता है।

हालोजेन द्वारा मिथेन वा इथेनका उदजन स्थानच्युत होनेसे एक श्रेणीका यौगिक उत्पन्न होता है। मिथेनका चार परमाणु उदजन चार परमाणु क्लोरिन, ब्रोमिन, अथवा आइयोडिन द्वारा स्थानच्युत हो हालयेड यौगिक वृन्दकी सृष्टि करता है। जैसे $CHCl_3$ = ट्राइ-क्लोरमिथेन वा क्लोरोफार्म (Ghloroform) इत्यादि। १८३१ ई०में लोबेग और सोबेरन साहब द्वारा क्लोराफार्म आविष्कृत हुआ तथा १८३५ ई०में डूमर द्वारा इसकी बनावट स्थिर की गई।

क्लोरिन द्वारा मिथेनका तीन परमाणु उदजन स्थानच्युत होनेसे जैसे क्लोरोफार्म उत्पन्न होता है वैसे ही आइयोडिन द्वारा तीन परमाणु उदजन स्थानच्युत होनेसे आइयोडोफार्म (Iodoform) बनता है। आइयोडोफार्ममें (C HI_3) एक भाग आइयोडिन, एक भाग अलकोहल, दो भाग कार्बनेट आव सोडा और दश भाग जल रहता है। ये सब कुल मिला कर ७० हैं। ८०° से० उत्तापसे पीले दाने पर आइयोडोफार्म पृथक् हो जाता है। कार्बनेट आव सोडाके बदलेमें कस्टिक सोडाका व्यवहार भी किया जाता है।

ओलिफिन (Olefines) श्रेणीके भी इथिलिन वा इथिन, प्रोपिलिन आदि यौगिक हैं। पाराफिन श्रेणीके अलकोहलका जल सलफ्युरिक एसिड द्वारा निकाल लेनेसे इथिन पाया जाता है। इसे ओलिफायेण्ट गैस भी कहते हैं। जस्तेके साथ गिलसिरिन उत्तप्त करनेसे प्रोपिलिन तैयार होता है। ओलिफिन श्रेणीके यौगिकमें पाराफिन श्रेणीके यौगिककी अपेक्षा दो परमाणु उद्जन कम देखे जाते हैं। इथिन डाइब्रोमाइड अलकोहलिक कष्टिक पोटासके साथ उत्तप्त करनेसे इथाइन (Ethine) बनता है। आनिलिन, क्रोटोनिलिन आदि इसीके अन्तर्भुक्त हैं। यह पाराफिन, ओलिफिन और आसिटिलिन श्रेणिक यौगिक GH_2 द्वारा बढ़ता है। इसी कारण इसको हमोलोगस् कहते हैं। प्रत्येक श्रेणीमें बराबर अङ्गारके रहने तथा दो परमाणु उद्जन द्वारा परस्पर प्रभेद होनेसे वे Isologous भी कहलाते हैं।

टार्पिन (Turpenes) श्रेणीमें नाना प्रकारके तेल, कपूर, धूना, धूनायुक्त गोंद (Gun-resins), तैलाक्त-धूना (Oleo-resins) बलसम, इण्डिया-रबड़, गाटापर्चा आदि पदार्थ अन्तर्भुक्त हैं। देवदारु (Pine) जातिके वृक्षके निर्यासको टार्पिन कहते हैं। इसे चुआनेसे सैकड़े ७५ से ९० भाग तक धूना तथा २५ से १० भाग तक तेल पाया जाता है। चुआये हुए टार्पिनको Spirit of Terpentine कहते हैं।

रबड़ १२०°६° से० उत्तापसे पिघल जाता है। अधिक उत्ताप लगनेसे यह विकृत हो Isoprene और Gaoutchine उत्पन्न करता है। इन दोनों पदार्थोंसे इण्डिया-रबड़ पिघलता है। इसमें सैकड़े पीछे दो तीन भाग गंधक मिलानेसे Volcanised India Rubber बनता है। आइसोन्याण्ड्रा पार्कके दुग्धवत् निर्यासको सुखानेसे गाटापर्चा (Guttapercha) पाया जाता है।

आरोमाटिक श्रेणीमें उत्तापविशेषसे अलकतरा चुआ कर Benzenes वा Benzol = C_6H_6 Napthalene = $C_{10}H_8$, Anthracene = $C_{14}H_{10}$ आदि प्रस्तुत किये जाते हैं।

हाइड्राङ्गारिक पदार्थोंका एक वा एकसे अधिक उद्जन परमाणु अर्द्धाणु हाइडकसिल द्वारा स्थानच्युत होनेसे उसको अलकोहल कहते हैं। यदि अर्द्धाणु हाइड्रकसिल द्वारा एक परमाणु उद्जन स्थानच्युत हो, तो वह मनोहाइड्रिक कहलाता है। दो परमाणुकी जगह डाइहाइड्रिक और तीन परमाणुको जगह ट्राइ-हाइड्रिक अलकोहल उत्पन्न होता है।

मनो हाइड्रिक अलकोहलके मध्य Ethylic श्रेणी ही विशेष उल्लेखनीय हैं। इथिलिक श्रेणीके अलकोहलका नाम मिथिल हैं। मिथिल अलकोहलका दूसरा नाम carbinal भी है। कार्बिनलका १, २ वा ३ संख्यक उद्जन परमाणु C_nH_{2n+1} संख्यक उपादान संयुक्त हाइड्राङ्गारिक राडिकेल द्वारा स्थानच्युत होनेसे प्राइमरी, सेकण्डरी वा टार्सियारी अलकोहल उत्पन्न होता है।

दाखकी चीनी, श्वेतसार, चावल और आलू आदिके पदार्थविशेष (Starch)-से ही साधारणतः मद्य बनता है; साधारण चीनी वा चावलको केवल मिला देने ही उससे मद्य नहीं बनता। खमीर (Yeast) के साथ उत्सेचन (Fermentation)-क्रिया द्वारा पहले दाखकी चीनी बनती है और पीछे वही विकृत हो कर सुरा उत्पादन करती है। अलकोहलके साथ जल मिला रहनेसे उसका आयतन-संकोच होता है अर्थात् १०० आयतन जलमिश्रित अलकोहल बनानेमें ५३'९ आयतन अलकोहल और ४९'८ आयतन जलकी जरूरत होती है। इस लिये ३'७ आयतन सङ्कीर्ण हो जाता है। ऐसे जलमिश्रित अलकोहलको Proof spirit कहते हैं।

चीनी, गुड़ वा चावलादिके उत्सेचन द्वारा परिवर्द्धित होनेके बाद उसे चुआनेसे मद्य होता है। उस समय वह जलके साथ मिला रहता है। चूना वा कार्बनेट आव पोटाश आदि जलशोषक पदार्थ उसमें मिला कर चुआनेसे Rectified spririt पाया जाता है। इसमें सैकड़े पीछे ८४ भाग अलकोहल रहता है। इसका जलीय भाग चूने आदि द्वारा बार बार परिप्लुत करनेसे जल बिलकुल उड़ जाता है। यह जलविहीन सुरा ही असल अलकोहल है। रेकटिफायेड

स्पिरिटमें प्रायः १६० प्रूफ-स्पिरिट रहता है। अतएव १६० प्रूफ कहनेसे १०० रेक्टि-स्पि+६० जल समझा जाता है। Syke's कृत हाइड्रोमीटर नामक यन्त्रकी सहायतासे सुरादिका परिमाण निरूपित होता है। सैकड़े पीछे ४९ भाग अलकोहल रहनेसे उसको प्रूफ कहते हैं। उससे अधिक रहनेसे over proof और कम रहनेसे under proof कहलाता है। ८०° Under proof कहनेसे सैकड़े पीछे २०° Proof Spirit समझा जायगा।

Amidobenzene वा Aniline तथा Nitrous acid-के योगसे Phenylic Alcohal वा carbolic acid बनता है। बेञ्जिन और सलफ्युरिक एसिडको उत्तप्त करनेसे Benzene Sulphaonic acid उत्पन्न होता है। उसको caustis potash मिला कर विकृत करनेसे phenol वा phenylic alcohal पाया जाता है। तेल और चर्बीमें अनेक प्रकारका एसिड है। नारियलके तेलमें Caproic, Gaprylic, Rutic, Lauric, Myristic, Palmitic और oleic; ओलिभ तेलमें stearic palmitic और oleic; रेंड़ीके तेलमें Recinoleic तथा भेंड़ी और गायकी चर्बीमें Stearim और Margarin आदि एसिड रहते हैं।

मनुष्य-जीवनकी उन्नतिके लिये अर्थात् आयुर्वृद्धि और रोगनाशके लिये इस रसायनशास्त्रकी उत्पत्ति हुई है। पाश्चात्य वैज्ञानिक-सम्प्रदायने इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अनाङ्गारिक और आङ्गारिक रसायनकी जो उन्नति की है उसके लिये आधुनिक शिक्षितसमाज ऋणी हैं। भारतीय आर्य-ऋषियोंकी रसायनपद्धतिमें औषध बनानेकी जो सब प्रक्रियायें लिखी गई हैं, वे पाश्चात्य रासायनिकोंकी रसायनप्रणालीसे नहीं मिलने पर भी किसी अंशमें उससे कम नहीं है। पाश्चात्य शिक्षापटु वर्त्तमान बङ्गाली वैज्ञानिक डा० प्रफुल्लचन्द्र राय Dr. Sc. ने आयुर्वेदोक्तआर्य-रसायन-शास्त्रकी आलोचना करके पारदघटित कुछ रसौषध (Mercurial compounds) को फल और बलका पता लगाया। सम्यक् पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रथासे उसका विश्लेषण करके वे उस शास्त्रको स्वतःसिद्ध सिद्धान्त पर पहुंच गये थे। भारतीय प्राचीन-भित्तिका द्वारोद्घाटन करके उन्होंने सम्प्रति उस पारद-सम्बन्धीय कुछ अभिनवतत्त्वका मौलिक परिचय पाश्चात्य वैज्ञानिक-समाजमें प्रदान किया है।

पारेके ऊपर यवक्षारसे उत्पन्न द्रावकके क्रियासम्बन्धमें Lefort, Gerhardt और Marignac आदि यशस्वी रसायनवित् पण्डितोंने गवेषणा की थी। इन दो पदार्थोंके सम्मिलनसे उन्होंने कितने यौगिक-पदार्थका आविष्कार किया था सही, पर उनमेंसे कोई भी इसका प्रकृत तथ्य निकाल न सके। १८९५ ई०में प्रफुल्लचन्द्र राय नामक एक प्रसिद्ध बंगाली अध्यापकने पीतवर्ण दानायुक्त 'मार्किउरस नाइट्रोइट' नामक पदार्थका आविष्कार और स्वरूपनिर्णय कर इस विषयमें जो कुछ ज्ञातव्य था उसे साफ साफ बतला दिया। जिस विषयमें इतने मनस्वी यूरोपीय रसायनवित् कृतकार्य न हो सके, उसी विषयमें अध्यापक राय महोदय जो पारग हो गये हैं, वह हम लोगोंके लिये कम गौरवकी बात नहीं है।

पारदसे उत्पन्न इस नूतन यौगिक पदार्थको मूल-स्वरूपमें अवलम्बन करके अध्यापक रायने अनन्यमनाः हो कर जो सभी मिश्र (Complex) पदार्थोंका आविष्कार किया है वह बड़ा ही आश्चर्य्यका विषय है।

आजसे करीब १२५ वर्ष हुए वे उत्तापके संयोगसे नाइट्राइटोंके विश्लेषणविषयमें गवेषणा करते थे। इसी बीच क्षार पदार्थके, क्षार-मृत्तिकाके और पारेके नाइट्राइटोंके विश्लेषणविषयमें कुछ प्रबंध इङ्गलैण्डको रसायन-सभाकी पत्रिकामें प्रकाशित हुए। १८९५ ई०से अध्यापक रायने इङ्गलैण्ड और जर्मनदेशीय रासायनिक पत्रिकामें प्रायः १५।१६ मौलिक गवेषणा सम्बलित प्रबंध प्रकाशित किये।

रसायनशास्त्रकी आलोचनामें अध्यापक राय जैसे धन्य हो गये हैं, वैसे ही पदार्थविद्यावित् बङ्गसन्तान अध्यापक जगदीशचन्द्र बसुने तड़ित (Electricity)के नाना तत्त्वोंका उद्भावन करके सारे वैज्ञानिक जगत्में अद्भुत कीर्त्ति स्थापन कर भारतकी गौरवरक्षा की है।

रसायनश्रेष्ठ (सं० पु०) रसायनेषु श्रेष्ठः । पारद, पारा।

रसायनामृतलौह (सं० क्ली०) गुल्माधिकारोक्त औषध-विशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—चीनी १६ पल, पाकार्थ मिला हुआ त्रिफला २ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, बिजौरा नीबूका रस १६ पल, इनका यथाविधान पाक करना होगा। पीछे गाढ़ा होने पर त्रिकटु, मोथा, विडङ्ग, जीरा, मंगरैला, अजवायन, वन अजवायन, चिरायता, निसोथ, दन्तिमूल, नीमकी छाल, सैन्धव और अबरक प्रत्येक २ तोला ; लोहा २ पल, घी ४ पल, इनका प्रक्षेप अच्छी तरह आलोड़न कर लेना होगा। इस औषधका सेवन करनेसे पांच प्रकारके गुल्म रोग, यकृत्, प्लीहा, पाण्डु और कमला आदि रोग नाश होते हैं।

(भैषज्यरत्ना०)

रसायनिक (सं० त्रि०) रासायनिक देखो।

रसायनी (सं० स्त्री०) रसान् तैलादीन् अयते प्राप्नोतीति अय-ल्यु-ङीष्। १ वह औषध जो बुढ़ापेको रोकती या दूर करती हो। २ गुडूची, गुड़ुच। ३ काकमाची, मकोय। ४ महाकरंज। ५ गोरक्षदुग्ध, अमृतसंजीवनी, गोरखदुद्धी। ६ मांसरोहिणी। ७ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ८ कर्णस्फोटा, कनफोड़ा नामकी लता। ९ शुकशिम्बी, कौंछ। १० शुक्ल त्रिवृता, सफेद निसोथ। ११ शंखपुष्पी, शंखाहुली। १२ नाड़ो। १३ कन्द गुड़ूची, कंद गिलोय।

रसाढ्य (सं० त्रि०) १ रसयुक्त, रससे भरा हुआ। २ सुमिष्ट, सुस्वादु।

रसार्णव (सं० त्रि०) रसस्य अर्णव इव। रसका समुद्र, रसका सागर।

रसाल (सं० क्ली०) रसम् आलाति आददातीति आ ला-क। १ सिह्लक, शिलारस। २ बोल नामक गन्धद्रव्य। (पु०) ३ इक्षु, ऊख। ४ आम्र, आम। ५ पनस, कटहल। ६ कुन्दर तृण। ७ गोधूम, गेहूं। ८ अम्लवेतस, अमल बेत। (वैद्यकनि०) (त्रि०) ९ मधुर, मीठा। १० रसीला। ११ सुन्दर, मनोहर। १२ स्वादिष्ट। १३ मार्जित, शुद्ध।

रसाल (अ० पु०) राजस्व, खिराज।

रसालगढ़—बम्बई-प्रदेशके रत्नगिरि जिलेके खेड़ उप-विभागान्तर्गत एक गिरिदुर्ग। उत्तरकी पर्वतचूड़ाके सिवाय यहां प्रवेशका दूसरा कोई सहज उपाय नहीं है। दुर्गके प्रथम प्राकारके द्वारपथके सामने बुरुज तथा प्राचीर गात्रमें गोला आदि फेंकनेका रन्ध्र है। इसके प्रायः ८० गज पीछे द्वितीय प्राकार और दुर्गद्वार है। यहां बारुदखाना, देवमन्दिर, पुष्करिणी आदि स्थापित हैं। सेनावास, प्रासाद आदि अन्यान्य अट्टालिकाएं दुर्गके भीतर बनाई हुई हैं।

रसालगिरि—एक कवि। ये मैनपुरीके रहनेवाले मोदि गिरिके शिष्य थे। इन्होंने वैद्यप्रकाश और स्वरोदय ग्रन्थ लिखा। ये संन्यासी हो कर मथुरा चले गये।

रसालय (सं० पु०) १ रसका निर्दिष्ट स्थान, वह स्थान जहां अनेक प्रकारके रस आदि बनते हों। २ वह स्थान जहां आमोद-प्रमोद किया जाय। ३ आमका पेड़। ४ जातिविशेष।

रसालशर्करा (सं० स्त्री०) गन्ने या ऊखके रससे बनाई हुई चीनी।

रसालस (सं० पु०) कौतुक।

रसालसा (सं० स्त्री०) रसेन अलसा। १ नाड़ी। २ पौंढ़ा, गन्ना। ३ गोधूम, गेहूं। ४ कुंदुर नामकी घास।

रसाला (सं० स्त्री०) रसान् आलाति आददातीति आ-ला-क, टाप्। १ रसना, जीभ। २ दूर्वा, दूब। ३ विदारी। ४ द्राक्षा, दाख। ५ शिखरिणी। पर्याय—मार्जिता। ६ कामोद्दीपक पानीय विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कुछ खट्टा मीठा दही ८ सेर, चीनी २ सेर, मधु १ पल, घी ५ पल, सोंठ ४ माशा, इलायची ४ माशा, मिर्च २ तोला, लवङ्ग २ तोला, इन्हें एकत्र मिला कर सफेद कपड़ेमें छान ले। पीछे मृगनाभि, चन्दनरस और अगुरु द्वारा मृद्भाण्डमें उसे रख कर कुछ कपूर द्वारा सुगंधित कर ले। यह रसाला पान करनेसे ध्वजभङ्ग-रोगीकी उत्तेजना बढ़ती है।

दूसरा तरीका—खट्टा दही ८ सेर, चीनी २ सेर, घी ५ पल, मधु १ पल, मिर्चचूर्ण ४ तोला, सोंठका चूर्ण १ तोला, दारचीनी, तेजपत्र, इलायची और नागेश्वर प्रत्येक १ तोला। किसी सुन्दरी रमणीके कोमल हाथमें इसे

प्रमर्द्दित और कर्पूरादि द्वारा सुवासित करके एक मट्टी के बरतनमें रखे। यह रसाला बलकर, पुष्टिकर, स्निग्ध और रुचिकर होती है। (भैषज्यर० अरोचकाधि०)

भावप्रकाशके मतसे इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पहले जलविहीन और अम्लरसयुक्त भैंसका दही १६ सेर, परिष्कृत चीनी ८ सेर, एक साथ मिला कर साफ सुथरे कपड़ेमें धीरे धीरे डाल दे। पीछे उसमें ३२ सेर दूध मिला कर नीचे रखे हुए बरतनमें उसका रस चुआवे। अनन्तर उस रसके परिमाणानुसार इलायची, लवङ्ग, कर्पूर और मिर्च डाल दे। भोजनप्रिय भीमसेनने यह तरकीब निकाली थी। यह रसाला श्रीकृष्णको बहुत रोचक थी। वसन्त ऋतु छोड़ कर अन्यान्य ऋतुओंमें जो प्रतिदिन इसका सेवन करते उनकी वीर्यवृद्धि और इन्द्रियां सबल होती हैं। जो ग्रीष्म और शरत्कालके आतपसे उत्तप्त वा प्रमत्ता स्त्रीसम्भोगसे खिन्न अथवा पथश्रमसे थक गया हो, वे यदि इस रसालाका सेवन करें, तो उनका शरीर शीघ्र पुष्ट होता है। रसाला शुक्रवर्द्धक, बलकारक, रुचिजनक, वायु और पित्तनाशक, अग्निदीपक, शरीरका उपचयकारक, स्निग्ध, मधुर रस, शीतल, सारक तथा रक्तपित्त, पिपासा, दाह और प्रतिश्यायविनाशक है। (भावप्र०)

रसालाम्र (सं० पु०) महाराजाम्र, बढ़िया कलमी आम।

रसालिका (सं० स्त्री०) १ सप्तला, सातला। २ अंबिया, छोटा आम। (त्रि० स्त्री०) ३ मधुर, मृदु, सरस।

रसालिन् (सं० पु०) १ कृष्णचणकक्षुप, चनेका पौधा। २ पौंढा, गन्ना।

रसालिहा (सं० स्त्री०) पृश्निपर्णी, पिठवन।

रसाली (सं० स्त्री०) रसान् आलाति या आ-ला-क, ङीप्। पौंढ़ा, गन्ना।

रसालु—सियालकोटके एक राजा, शालिवाहन शकारि-विक्रमादित्यके पुत्र। इन्होंने अपने भुजबलसे सियालकोट राजधानी पुनरुद्धार कर राज्यशासन किया। इसके शासनकालका ऐतिहासिक विवरण मालूम न होने पर भी वहांके लोगोंसे जैसा सुना जाता है उससे मालूम होता है, कि ये बड़े वीर योद्धा थे। परन्तु अपने अंतिम जीवनमें इन्होंने गक्कर-राज हुड़ीसे परास्त हो कर अपनी कन्या उन्हें ब्याह दी। इसके एक भी सन्तान थी, इस कारण मरनेके बाद उनके दौहित्र राजसिंहासन पर बैठे। फिर किसीका कहना है, कि रसालुके मरने पर उनके संन्यासी-भाई पूरणने इस राज्यके प्रति अभिसम्पात प्रदान किया। तभीसे दुर्भिक्ष और डकैतोंके उपद्रवसे वह समृद्ध सियालकोट राज्य छार खार हो गया।

रसालेक्षु (सं० पु०) पौंढा, गन्ना।

रसाव (हिं० पु०) १ खेतको जोत कर और पाटेसे बराबर करके कई दिनों तक यों ही छोड़ देना। २ रसनेकी क्रिया या भाव।

रसावर (हिं० पु०) रसौर देखो।

रसावल हिं० पु०) रसौर देखो।

रसावा (हिं० पु०) ऊखका कच्चा रस रखनेका मिट्टीका बरतन।

रसावेष्ट (सं० पु०) श्रीवेष्ट नामक सुगन्धिद्रव्य, गंधाबिरोजा।

रसाश (सं० पु०) मद्यपान, शराब पीना।

रसाशिन् (सं० त्रि०) मद्यपायी, शराब पीनेवाला।

रसाशिर् (सं० त्रि०) दुग्धमिश्रित, दूध मिला हुआ।

रसाश्वासा (सं० स्त्री०) पलाशी नामकी लता।

रसाष्टक (सं० क्ली०) पारा, ईंगुर, कांतिसार लोहा, सोनामक्खी, रूपामक्खी, वैक्रान्त मणि और शंख इन आठ महारसोंका समूह। (वैद्यकनि०)

रसास्वाद (सं० पु०) रसस्य आस्वादः। रसका आस्वाद, रस चखना। अखण्ड वस्तुका अनवलम्बन द्वारा चित्तवृत्तिको सविकल्प समाधिमें आनन्द आस्वादनका नाम रसास्वाद है। (वेदान्तसार)

रसास्वादिन् (सं० पु०) रसम् आस्वादयितुं शीलमस्य आ-स्वाद-णिनि। १ भ्रमर, भौंरा। (त्रि०) २ स्वाद लेनेवाला, रस चखनेवाला। ३ आनन्द या मजा करनेवाला।

रसाह्व (सं० पु०) रस आह्वा आख्या यस्य। गन्धाबिरोजा।

रसाह्वा (सं० स्त्री०) १ शतावर। २ रास्ना।

रसिआउर (हिं० पु०) १ ऊखके रस या गुड़के शर्बतमें पका हुआ चावल। २ एक प्रकारका गीत जो विवाहकी

एक रीतिमें गाया जाता है। जब नई बहू ब्याह कर आती है, तब वह ऊखके रस या गुड़के शर्बतमें चावल पका कर अपने पति तथा ससुरालके लोगोंको परोस कर खिलाती है। उस समय स्त्रियां जो गीत गाती हैं, उसे भी 'रसिआउर' कहते हैं।

रसिआवर (हिं० पु०) रसिआउर देखो।

रसिआवल (हिं० पु०) रसिआउर देखो।

रसिक (सं० पु०) रसोऽस्त्यस्यास्तीति वा रस-ठन्। १ सारस पक्षी। २ तुरङ्ग, घोड़ा। ३ हस्ती, हाथी। ४ एक प्रकारका छन्द। (त्रि०) ५ जो रस या स्वाद लेता हो, रस लेनेवाला। ६ जिसे रस सम्बन्धी बातोंमें विशेष आनन्द आता हो, काव्यमर्मज्ञ, सहृदय। ७ क्रीड़ा आदिका प्रेमी, आनन्दी, रसिया। ८ जो किसी विषयका अच्छा ज्ञाता हो, मर्मज्ञ। ९ प्रेमी, भक्त, भावुक।

रसिक—एक कवि। इनका बनाया दो भैरव नीचे उद्धृत करता हूं—

(१)

"शोभा सदन बदन दोउ देखे
नयन मोहनी सैन टगोरी गुणप्रवीण राग नट भेखे।
आलस अङ्ग अङ्ग निशि जागे भरे विनोद अपार विशेषे॥
भूषण बसन भूमियान हारावली ललित नयन काजर छबिरेखे।
रसिक खुशाल बिलोकत यह सुख
राधावर सुख सार विशेषे।"

(२)

"आवत कुञ्जनतें पिय प्यारी।
अति रस भरे उनींदे नाना रूपराशि सुकुमारी॥
भूषण बसन अंग अंग राजत छवि बनमाल अपारी।
रसिक खुशाल करत रस बरषत राधे कुञ्जबिहारी॥

रसिक अली—एक साधारण श्रेणीके कवि। इनकी कविता प्रशंसनीय है। ये मिथिलाविहार, अष्ट-याम, होरी आदि बना गये हैं। मिथिला-विहारमें रामचन्द्रजीका जनकपुरमें आगमन और उनकी शोभाका वर्णन विविध छन्दोंमें है। इनकी कविताका परिचय निम्नलिखित छन्दोंसे मिलता है।

"भाई घन गरजन लगत सुहाई।
बन प्रमोद मोरनकी सोरा चहुँ दिसि बन हरिआई।
रिमि झिमि बरसत दमकत दामिनी घन अँधियारी छाई॥
झिल्ली रव चातक रट कोकिल छिनछिन कुहक मचाई।
तरद्रम बकुल रसाल कदंबन शोभा रहि अधिकाई।
सोहै शीस प्यारी जूके चन्द्रिका जड़ित नग
जगमग जोति भानु कोटि उजियारी है।
रतन किरीट राजैं राघव सुजान सीस
उदित विदित कोटि तरुन तमारी है॥
दामिनी सघन घन विरन बिराजैं दोऊ
नील पीत बसननि जड़ित किनारी है।
रसिक अली जू प्यारे राजत सिंगार कुञ्ज
सुखमा अमित पुञ्ज छवि मोदकारी है।

रसिककृष्ण—एक कवि। इनकी कविता उत्तम श्रेणीकी होती थी। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"काहे री तोहे लाज न आवे री बारबार तू आवे।
एड़ी डोले मदकी माती नयन न सैन नचावे
बिना ही कहे तुम नाचत गावत नाना रंग उपजावे।
रसिककृष्णको रस बश कर लीहो तोहीको नित्य चावे॥"

रसिक गोविन्द—एक भाषा कवि। इनका बनाया जुगुल-रसमाधुरी नामक ग्रन्थ मिलता है जो बड़ा विशद है। इसमें २०१ छन्दों द्वारा वृन्दावन तथा राधा कृष्णका वर्णन है। इनकी कविता परम मनोहर और गम्भीर होती थी। इन्होंने नैसर्गिक सुघराइयोंका भी अच्छा वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अष्टदेश भाषा, गोविन्दानन्दघन, कलियुगरासो, पिंगलग्रन्थ, समय-प्रबन्ध, श्रीरामायणसूचनिकाकी रचना की। इनकी कविताका नमूना—

"तैसिय निरमल नीर निकट जमुना बहि आई।
मनहु नील मनि माल बिपिन पहिरे सुखदाई॥
अरुन नील सित पीत कमल कुल फूले फूलनि।
जनु बन पहिरे रंग रंगके सुरंग दुकुलनि।
इन्दीवर कल्हार कोकनद पदुमनि ओभा।
मनु जमुना दृग करि अनेक निरखत बन सोभा।
तिन मधि झरत पराग प्रभा लखि दीठि न हारति॥
निज धरकी निधि रीझि रमा मनु बन पर वारति॥
सरस सुगन्ध पराग सने मधु मधुप गुंजारत।
मनु सुखमा लखि रीझि परसपर सुजस उचारत॥
पुलिन पवित्र विचित्र चित्र चित्रित जह अवनी।

रचित कनक मनि खचित लसति अति कोमल कमनी ॥"

रसिकता (सं० स्त्री०) रसिकस्य भावः तल् टाप् । १ रसिक होनेका भाव या धर्म । २ परिहास, हंसी ठट्ठा ।

रसिकदास—एक भाषा-कवि । ये निम्न लिखितग्रन्थ बना गये हैं,—बानी, प्रसादलता, भक्तिसिद्धान्त, पूजाविलास, एकादशी माहात्म्य, रसकन्द, रसमणि ।

रसिकरङ्ग—एक कवि । इनकी कविता नीचे उद्धृत होती हैं,—

"कैसेके समझाऊं अपने सांवल कु' ज्यों ज्यों
बोलावू त्यों रूसो रूसो जाय ।
रसिकरङ्ग पिया मनके भवन वाबुल
बिन जिय तरसाय ॥"

रसिकविहारी (सं० पु०) श्रीकृष्णका एक नाम ।

रसिकविहारी (बनी ठनीजो)—एक स्त्री-कवि । ये महाशया महाराज नागरीदासजीको उपपत्नी थीं और उनके साथ श्रीवृन्दावनमें वास करती थीं । इनकी कविता सरस और भक्तिभावसे पूर्ण है । वह ब्रजभाषा और राजपूतानी मिश्रित भाषामें है । इनकी गणना साधारण श्रेणीमें की जाती है । इनके पद नागर समुच्चयके अन्तमें संग्रहीत हैं । किसी किसीने रसिक विहारी नाम होनेसे इन्हें भ्रमवश पुरुष माना है । इनका कविता-काल संवत् १७८७ समझना चाहिए, क्योंकि ये नागरीदासजीके साथ थीं । उदाहरणके लिये इनकी एक कविता नीचे देते हैं,—

"फागुघियारो घुमड़ि रह्यो छैय्याल ।
कुंज भूमि लौं लाल हुई हुआ लाल तमाल ॥
उड़ि गुलालकी लाल धुंधरि मैं झलके बैया भाल ।
सखी लाल अरु लाल विहारिनि रसिकविहारी लाल ॥
फूलनके सिर सेहरा फाग रगम गे वेस ।
भाँव रही मैं चलत दोउ लेगति सुलस सुदेस ॥
भीजे केसरि रंग सौं रंगे अरुन पर पीत ।
डोलैं चांचर चौक मैं गहि बहिंया दोउ मीत ॥"

रसिक सनेही—एक कवि । इनका बनाया धनाश्री धमार नीचे देते हैं,—

"भाई री कैसे वसिये याहु नगरमें होरी खेलत नगरमें ।
चोर मुसे कोतवाल हंसे डर नाहीं नगरमें ॥
एक ही रंगमें रङ्ग है पुरजन नेक न शंका सगरमें ।
रसिक सनेही मानत नाहीं बड़ी ढिठाई लंगरमें ॥"

रसिकसुमति—एक साधारण श्रेणीके कवि । ये ईश्वरदासके पुत्र संवत् १७८५ में हो गये हैं । इन्होंने दोहोंमें अलंकारचन्द्रोदय नामक ग्रन्थ कुवलयानन्दके आधार पर बनाया । इनकी कविता साधारण है । इनके बनाये कुछ दोहे नीचे देते हैं ।

"सोहत जुगुल किसोरके मधुर सुधासे बैन ।
बदन चन्द सम करत है निरखत सीतल नैन ॥
प्रत्यनीक अरि सों न बस अरि हितुहि दुख देय ।
रवि सों चले न कंजकी दीपति ससि हरिलेय ॥"

रसिका (सं० स्त्री०) रसिक-टाप् । १ सिखरन, दहीका शरबत । २ इक्षुरस, ईखका रस । ३ रसना, जीभ । ४ मैना पक्षी । ५ शरीरमेंकी धातु, रस ।

रसिकाई (हिं० स्त्री०) रसिकता देखो ।

रसिकेन्द्र—नीलाचलके सामन्त अच्युतानन्दके पुत्र और वैष्णवश्रेष्ठ श्यामानन्दके शिष्य । उड़ीसा मल्लभूमके अन्तर्गत सुवर्णरेखा तटवर्त्ती रुहिणी ग्राममें इनका जन्म हुआ था । कवि गोपीवल्लभदास कृत 'रसिकमङ्गल' ग्रन्थ इन्हीं की जीवनीके अवलम्बन पर रचा गया है ।

अच्युतकी छोटी पत्नीका नाम भवानी था । इसी भवानीसे रसिकानन्द उत्पन्न हुए ; रसिकका जन्माब्द १५१२ शक (१५९० ई०) कार्त्तिक रविवार प्रतिपद् तिथि है ।

जैसे इनका नाम रसिक था, वैसे ही ये रसिक भी थे । ग्रामके छोटे बड़े सभी इनके स्नेहपात्र थे । पांच वर्षकी उम्रमें इन्होंने पढ़ना लिखना आरम्भ कर दिया । इनकी प्रतिभा और स्मरणशक्ति अलौकिक थी । एक बार पढ़ लेनेसे ही वह मुखस्थ हो जाता था । कहते हैं, कि गुरु महाशय एक दिन किसीको मीमांसा शास्त्र पढ़ा रहे थे, रसिकका कान उसी ओर था । घर आने पर पाठशालामें जो कुछ सुना था सभी सूत्र वे अपने पितासे धड़ाधड़ सुनाने लगे । पुत्रकी विलक्षण बुद्धि देख कर पिताने कहा था, कि यह कुमार मनुष्य नहीं किसी देवअंशमें उत्पन्न हुआ है ।

इसके बाद वे बलभद्र सेनके निकट व्याकरण पढ़ने

लगे। पीछे इन्होंने कुछ दिन अनुकूल चक्रवर्ती और कविचन्द्रसे और कुछ दिन यदुनन्दनसे व्याकरण पढ़ा था।

हिजलीके अधिकारी बलभद्रके इच्छादेवी नामक एक परम सुन्दरी कन्या थी। रसिकका विवाह उसीसे हुआ। विवाहके कुछ दिन बाद ही विविध प्रकारसे वे भक्तिका अनुष्ठान करने लगे; कभी वैष्णवोंको खिलाते, कभी संकीर्त्तन करते और कभी भागवत पाठ किया करते थे। इसी समय श्यामानन्द प्रभु नीलाचल पधारे। आग जिस प्रकार हवाकी सहायतासे धधक उठती है, श्यामानन्दके साथ रसिकने भी उसी प्रकार भक्तिप्रवाहमें दक्षिणदेश डुबा दिया।

श्यामानन्द रसिकानन्दको दीक्षा दे कर वृन्दावन आये। अब रसिकेन्द्र कब बैठनेवाले थे उन्होंने गुरुका पीछा किया। कुछ दिन बाद वहांसे लौट कर उन्होंने नीलाचलके राजा प्रजा सभीको कृष्णप्रेम प्रदान किया। उनके शिष्योंमेंसे मयूरभञ्जके प्राचीन राजा वैद्यनाथ एक थे। रसिककी भक्तिमें ऐसी आकर्षणी शक्ति थी, कि करण कुलोद्भव होने पर भी सैकड़ों उच्च कुलोद्भव ब्राह्मणोंने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था। रसिकके मुसलमान शिष्य भी अनेक थे। उनमेंसे अहम्मद बेग एक था। अहम्मद बेग बहुत अत्याचारी था। यहां तक, कि उड़ीसामें जितने राजे थे, सबोंका मकान इसने तोड़फोड़ डाला था तथा सभी भुंइया राजे इसके डरसे थरथर कांपते थे।

एक समय अहमदके वासस्थान बाणपुरमें एक जंगली हाथी बहुत ऊधम मचाता था। जब रसिक किसी एक मुसलमानके साथ बातचीत कर रहे थे उसी समय संयोगवश वह हाथी वहां आ पहुंचा। अहमदने रसिकसे कहा, "यदि आप इस मतवाले हाथीका दमन कर सकें, तो मैं आपके काममें जरा भी छेड़छाड़ न करूंगा, आप बे-रोकटोक सब काम कर सकते हैं।" रसिक आगे बढ़े। इधर हाथीने उन्हें देख कर जोरसे चिंघाड़ मारा और सूंड़ समेट कर उनकी ओर दौड़ा। किन्तु भक्तकी शक्ति अजेय है, हरिनामकी कथा ही अद्भुत महिमा है। वह बनैला हाथी रसिकके समीप आ कर मंत्रमुग्धकी तरह खड़ा हो गया और उनके मुखसे निकले हुए हरिनामको सुनने लगा।

यह अद्भुत घटना देख कर वहां हजारोंकी भीड़ लग गई और सभी रसिककी महिमा गाने लगे। इस समय ब्राह्मण, शूद्र, नीच, मुसलमान सभीने उनकी शरण ली। धीरे धीरे रसिकके सैकड़ों मुसलमान शिष्य हो गये।

इतिहासप्रसिद्ध शाहसुजा यह वृत्तान्त सुन कर रसिकका प्रभाव देखनेके लिये उत्साहान्वित हुए थे। इस प्रकार रसिक नीलाचलमें धीरे धीरे सबोंके पूजनीय हो गये। कहते हैं, कि रसिकचन्द्रमें ऐसी कृष्णभक्ति थी, कि उसके प्रभावसे जङ्गली बाघ भी उनके निकट हिंसा भूल जाता था, अग्नि बुझ जाती थी और डुबी हुई नाव बाहर निकल आती थी।

केवल मयूरभञ्जके राजा ही नहीं रसिकके प्रभावसे आकृष्ट हो शेखरदेशाधिपति भी उनके शरणापन्न हुए थे।

रसिकके तीन पुत्र थे, राधानन्द, कृष्णगति और राधाकृष्ण। रसिकने १२ वर्षकी उमरमें श्यामानन्दसे दीक्षा ली और २० वर्ष तक उनकी सेवा की थी। २८ वर्ष तक वे उत्कलमें घर घर वैष्णव धर्मका प्रचार करते रहे।

रसिकका जन्म १५१२ शकमें शुक्ला प्रतिपद्को और देहान्त ६२ वर्षकी उमरमें १५७४ शककी फाल्गुन शुक्ला प्रतिपद्को हुआ। मृत्युके पहले उन्होंने रेमुनाके गोपालमन्दिरके समीप अपनी लाश गाड़ने कहा था। वहां रसिककी समाधि आज भी मौजूद है।

रसिकेन्द्रदेव—भागवताष्टकके प्रणेता। इनका दूसरा नाम रसिकानन्द गोस्वामी।

रसिकेश—इनका जन्म संवत् १६०१ में हुआ था। आप कुछ समय वैरागी हो कर अयोध्यामें कनकभवनके महन्त हो गये और अपना नाम जानकीप्रसाद रखा। वैरागी होनेके पहले आप पन्नामें दीवान थे। आपने रामरसायन काव्य, सुधाकर, इश्क अजायब, ऋतुतरंग, विरहदिवाकर, रसकौमुदी, सुमतिपच्चीसी, सुयशकदम, कानून मजमुआ, रागचक्रावली, संग्रहविलावली, मनमंजन, संगृहीत संग्रही, गुसपच्चीसी आदि २६ ग्रन्थ रचे हैं। रामरसायनमें रामायणकी कथा है और काव्यसुधाकरमें

छन्द, रस, भाव, अलंकार आदि काव्यांगोंका अच्छा वर्णन है। थोड़े ही दिन हुए हैं, ये सुरधाम पधारे हैं। आपका काव्य चामत्कारिक है। इन्होंने उर्दू मिश्रित भाषामें भी रचना की है। इनकी रामायण भी अच्छी है। उदाहरणः—

"झूमैं हैं चहूंधा गजराजसे रसाल झूमें।
धूमैं हैं समीर तेज तरल तुरंग ज्यों।
किंसुक गुलाब कचनार और अनारनके
प्यारे भांति भांति लसैं सहित उमंग त्यों।
छाई नव वल्ली छटा छहरि रही है घनी
तेई रथ राजैं मोर भ्रमत अभंग क्यों।
रसिक विहारी साज साजि ऋतुराजआयो
छायो वन बाग सेना लीन्हे चतुरंग यों ॥"

रसिकेश्वर (सं० पु०) रसिकानां रसज्ञानामीश्वरः। श्रीकृष्ण।

रसिकोत्तंश—प्रेमपत्तनिकाके रचयिता।

रसित (सं० त्रि०) १ ध्वनि करता हुआ, बोलता हुआ। २ रसयुक्त। ३ बहता हुआ, थोड़ा थोड़ा टपकता हुआ। ४ जिसके ऊपर मुलम्मा चढ़ा हो। (पु०) ५ ध्वनि, शब्द। ६ द्राक्षासव, अंगूरकी शराब।

रसितृ (सं० त्रि०) रसयिता, स्वाद लेनेवाला।

रसिया (हिं० पु०) १ रस लेनेवाला, रसिक। २ एक प्रकारका गाना जो फागुनके मौसिममें ब्रज और बुन्देलखण्ड आदिमें गाया जाता है।

रसियाव (हिं० पु०) गन्नेके रसमें पका हुआ चावल।

रसी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी सब्जी जो विहार और संयुक्त प्रान्तमें बनती है। (पु०) २ रसिक देखो।

रसीद (फा० स्त्री०) १ किसी चीजके पहुंचने या प्राप्त होनेकी क्रिया, प्राप्ति। २ वह पत्र जिस पर ब्योरेवार यह लिखा हो, कि अमुक वस्तु या द्रव्य अमुक व्यक्तिसे अमुक कार्यके लिये अमुक समय पर पाया, किसी चीजके पहुंचने या मिलनेके प्रमाणरूपमें लिखा हुआ पत्र। प्रायः जब किसीको कोई चीज या धन ऋणके रूपमें ऋण चुकानेके लिये अथवा और किसी मामलेके सम्बन्धमें दिया जाता है, तब पानेवाला एक प्रमाणपत्र लिख कर देनेवालेको देता है, जिसमें यदि पानेवाल कभी उस चीज या धनकी प्राप्तिसे इन्कार करे, तो उसके विरुद्ध प्रमाणके रूपमें यही रसीद उपस्थित की जाय। ३ पता, खबर।

रसील (हिं० वि०) रसीला देखो।

रसीला (हिं० वि०) १ रसमें भरा हुआ, रसयुक्त। २ स्वादिष्ट, मजेदार। ३ भोग-विलासका प्रेमी, व्यसनी। ४ रस लेनेवाला, आनन्द लेनेवाला। ५ बांका, छबीला।

रसीलापन (हिं० पु०) रसीला होनेका भाव या धर्म।

रसुन (सं० पु०) रस-उनन्। लशुन, लहसुन।

रसूम (अ० पु०) १ रस्मका बहुवचन। २ वह धन जो राज्यको कोई काम करनेके बदलेमें राजकीय नियमोंके अनुसार दिया जाता है। ३ वह धन जो किसीको किसी प्रचलित प्रथाके अनुसार दिया जाता है, नेग, लाग। ४ नियम, कानून। ५ वह धन जो जमींदारको किसानोंकी ओरसे नजराने या भेंट आदिके रूपमें दिया जाता है।

रसूम अदालत (अ० पु०) वह धन जो अदालतमें कोई मुकदमा आदि दायर करनेके समय कानूनके अनुसार सरकारी व्ययके रूपमें दिया जाता है। इसे अंगरेजीमें court fees कहते हैं। भिन्न भिन्न कामों या मुकदमोंको मालियतके लिये धनकी संख्या कानूनके द्वारा निर्धारित होती है और मुकदमा दायर करनेवालेको उतने धनका सरकारी कागज या स्टांप खरीदना पड़ता है तथा उसी कागज पर अपना दावा दायर करना होता है। बैनामा या दानपत्र आदि लिखनेके लिये भी इसी प्रकार रसूम अदालत लगता है।

रसूल (अ० पु०) वह जो अपने आपको ईश्वरका दूत कहता हो और सर्वसाधारणमें माना जाता हो, पैगम्बर।

रसूलपुर—मेदिनीपुर जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह हलदीसे मिल कर गेंओखालीके निकट भागीरथीमें आ गिरी है।

रसूलपुर—अयोध्याप्रदेशके फैजाबाद जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह घाघरा नदीके तट पर अवस्थित है।

रसूलाबाद—युक्तप्रदेशके कानपुर जिलान्तर्गत एक तहसील। भू-परिमाण २२६ मील है। यहांकी भूमि बहुत उर्वरा है। रिन्द, छोया, सियारी और पाण्डु नामकी

शाखाओं तथा खाल और जलाभूमि आदिके जलसे ही यहांके लोगोंका जलाभाव दूर होता है।

२ उक्त जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव और तहलीसका विचार-सदर। यहांके महाराष्ट्रीय शासनकर्त्ता गोविन्दराय पण्डित १७५६ से १७६२ के बीच रसूलाबाद नगरमें दुर्ग बना गये हैं। इस दुर्गमें अभी तहसीली कचहरी है।

रसूलाबाद—अयोध्या-प्रदेशके उन्नाव जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ५०´ उ० तथा देशा० ८०° ३०´ पू०के बीच पड़ता। स्वर्ण और जहरतके कामके लिये यह स्थान बहुत कुछ प्रसिद्ध है।

रसूलाबाद—मध्यप्रदेशके वर्धा जिलेकी आर्वी तहसीलके अन्तर्गत एक बड़ा गांव।

रसूली (अ० स्त्री०) १ एक प्रकारका गेहूं। २ एक काली मिट्टी। ३ एक प्रकारका जौ। (वि०) ४ रसूल-सम्बन्धी, रसूलका।

रसेन्द्र (सं० पु०) रसानां धातुरसानां इन्द्रः श्रेष्ठः। १ पारद, पारा। २ राजमाष, लोबिया। ३ एक प्रकारकी रसौषध जो जीरा, धनियां, पीपल, शहद, त्रिकटु और रससिन्दूरके योगसे बनती है।

(भैषज्यरत्ना० छर्द्यधि०)

रसेन्द्रगुड़िका (सं० स्त्री०) यक्ष्मारोगाधिकारोक्त औषधविशेष। यह दो प्रकारकी है—रसेन्द्रगुड़िका और वृहद्रसेन्द्रगुड़िका। रसेन्द्रगुड़िकाकी प्रस्तुत प्रणाली—ईंटके चूर्ण आदिसे मर्द्दित २ तोला रसको जयन्ती और अदरकके रसमें मर्द्दन कर पिण्डवत् बनावे। पीछे उसे जलकर्णा और काकमाचीके रसमें अलग अलग भावना दे। पश्चात् भृङ्गराजरसमें भावित नवनीताख्य गंधकचूर्ण १ पलको उस पारेके साथ मिला कर कज्जली बनावे। अनन्तर २४ पल बकरीके दूधको उस कज्जलीके साथ मर्द्दन कर सिद्ध उड़दके समानगोली बनावे। अनुपान बकरीका दूध या मधु और अडूसके पत्तोंका रस है। खाया हुआ अन्न जब अच्छी तरह पच जाय, तब यह औषध खाना चाहिये। पथ्य दूध और मांसका शोरवा बताया है। औषध सेवन करनेसे क्षय, कास, रक्त, पित्त, अरुचि और अम्लपित्त रोग नष्ट होते हैं।

वृहद्रसेन्द्रगुड़िकाकी प्रस्तुत प्रणाली—४ तोला पारा ले कर घृतकुमारीका रस, सरसोंका चूर्ण, हरिद्रा, ईंटका चूर्ण और अदरकका रस, इन सब द्रव्योंसे पृथक् पृथक् मर्द्दन कर मोटे कपड़ेमें छान ले। पीछे जयन्ती, और काकमाची प्रत्येकके रसमें भावना दे कर धूपमें सुखावे। अनन्तर भृङ्गराज रसमें शोषित गंधक १ पल, मिर्च, सोहागा, सोनामक्खी, तूतिया, हरिताल, अबरक प्रत्येक ४ तोला इन्हें अदरकके रसमें पीस कर २ रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान अदरकका रस है। यह औषध सेवन करनेके बाद दूध और मांसका शोरवा पीना उचित है। इसके क्षय, कास, खांस और पाण्डु आदि रोग अति शीघ्र नष्ट होते हैं।

रसेन्द्रवेधक (सं० क्ली०) स्वर्ण, सोना।

रसेश्वर (सं० क्ली०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रस ८ तोला, गंधक १८ तोला, तांबा २ तोला, हरिताल २ तोला, सोना २ तोला, इन सब द्रव्योंको चिताके रसमें तीन दिन भावना दे कर और मर्द्दन कर उसमें सोलहवां भाग विष मिलावे। पीछे फिरसे बकरे आदिके पित्तमें भावना दे कर २ रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान अदरकका रस, चिताका रस और त्रिकटुका चूर्ण है। इसमें भी पहलेके जैसा दधि और अम्ल आदि पथ्य दे यथा रोगीको ठंढे जलसे स्नान करावे।

रसेक्षु (सं० पु०) पौंढ़ा, गन्ना।

रसेस (हिं० पु०) १ रसिकशिरोमणि, श्रीकृष्ण। २ पारा।

रसेश्वरदर्शन—दर्शनशास्त्रभेद। यह दर्शनशास्त्र छः प्रकारदर्शनके अन्तर्गत नहीं है। माधवाचार्यने सर्वदर्शनसंग्रहमें इस दर्शनका स्थूल मर्मार्थ लिखा है। तदनुसार अति संक्षिप्त भावमें उसका विषय यहां पर लिखा जाता है। इस दर्शनका प्रत्यभिज्ञानदर्शनके साथ एक मत देखनेमें आता है। प्रत्यभिज्ञानदर्शन देखो।

प्रत्यभिज्ञादर्शनमें पारेका कोई उल्लेख नहीं है, किंतु इस दर्शनमें वह विषय अच्छी तरह लिखा है। दोनोंमें पृथक्ता है, तो बस इतनी ही और किसी विषयमें नहीं। प्रत्यभिज्ञानदर्शनमें महेश्वर परमेश्वर तथा जीवात्मा और परमात्माको एक बताया है। इस दर्शनमें भी वही मत समर्थित हुआ है अर्थात् महेश्वर ही परमेश्वर तथा

जीवात्मा परमात्मा है, यह स्वीकार किया है। किन्तु इस दर्शनके अवलंबी प्रत्यभिज्ञादर्शनोक्त एकमात्र प्रत्यभिज्ञा ही परमपद मुक्तिकी साधना है, इसे विश्वास न करके परममुक्तिके प्रापक किसी दूसरे पथका अवलम्बन करते हैं। इस दर्शनमें दिखाया है, कि पहले मुमुक्षु व्यक्तिको अपना शरीर स्थिर रखना चाहिये। पीछे योगाभ्यास करते करते जब ज्ञानोदय हो जाय, तब उसी समय मुक्ति होती है। अन्यान्य दर्शनशास्त्रोंमें जिस प्रकार जीवकी मुक्ति ही एकमात्र प्रधान लक्ष्य है, इस दर्शनका मत भी वही है। अन्यान्य दर्शनमें यद्यपि मुक्ति-साधनाका एक एक पथ दिखलाया गया है तथा उन सब पथोंके अवलम्बनसे भी मुक्ति पानेकी सम्भावना है, तो भी उन सब पथके अवलम्बनसे विशिष्ट मनुष्योंकी प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं हो सकती। क्योंकि अन्यान्य दर्शनोक्त पथका अवलंबन करनेसे भी देहनाशके बाद मुक्ति होती है। अतएव वे दर्शनोक्त मुक्ति पिशाचकी तरह अदृष्टचर हैं। अदृष्ट-विषयमें कभी भी किसी व्यक्तिको विश्वास नहीं होता। जिसका जिस विषयमें विश्वास नहीं होता, वह कभी भी उसके लिये कोशिश नहीं करता।

यदि सर्वकल्याणकर सहजसुहृद-स्वरूप देहत्याग नहीं करनेसे मुक्ति न हो, तो ऐसी मुक्तिके लिये कष्टदायक योगादि करनेकी जरूरत ही क्या? किन्तु यदि पारदरस द्वारा देहका स्थैर्य सम्पादन करके क्रमशः योगाभ्यासमें आसक्त हो सके, तो परम कारुणिक परमेश्वर परितुष्ट हो कर पारितोषिकस्वरूप सर्वप्रधान मुक्तिपद देते हैं। इसीलिये मुमुक्षु व्यक्तिको जो पहले देहस्थैर्य सम्पादन करना होता है, इसे और कहनेकी आवश्यकता ही क्या।

देहको स्थिर रखनेमें पारेके सिवा और कोई भी पदार्थ नहीं है। इस पारेके रससे किस प्रकार देहका स्थैर्य सम्पादन करना होता है। अन्यान्य दर्शनमें उसका उल्लेखमात्र भी नहीं है। किन्तु जब इस दर्शनमें उसका सविस्तार उल्लेख है, तब इसे मुमुक्षुके लिये विशेष आवश्यकीय और श्रेयस्कर कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी।

पारदरस द्वारा देहका स्थैर्य सम्पादन करनेसे मुक्ति होती है इस कारण यह जीवन्मुक्तिपदवाच्य है। इस पर कोई कोई आपत्ति करते हैं, कि यदि पारदरस द्वारा देहस्थैर्य तथा जीवदवस्थामें ही जीवको जीवन्मुक्ति होती, तो अवश्य ही किसी न किसी समय कमसे कम एक भी आदमी स्थिरदेह सम्पादन करके जीवन्मुक्त हो सकता था। किन्तु जब ऐसा होते देखते तथा किसी शास्त्रमें भी उसका उल्लेख नहीं पाते, तब पारदरस द्वारा स्थिरदेह तथा जीवदवस्थामें मुक्ति होती है, इसे किस प्रकार विश्वास कर सकते? इस आपत्तिके उत्तरमें यह शास्त्र कहता है, कि जो इस प्रकारकी आपत्ति करते, मालूम होता है, उन्होंने रसेश्वरसिद्धान्त आदि प्राचीन ग्रन्थ नहीं देखे हैं। यदि देखे होते, तो कभी भी ऐसी आपत्ति न कर सकते थे, क्योंकि उन सब ग्रन्थोंमें लिखा है, कि महेश्वर आदि देवगण, काव्य आदि दैत्यगण, बालखिल्य आदि ऋषिगण सोमेश्वर आदि राजगण और गोविन्द भगवत् पादाचार्य, गोविन्द नायक चर्पटि, कपिल, व्यालि, कापालि, कन्दलायन आदि सिद्धगण, पारदरस द्वारा दिव्यदेह धारण कर जीवन्मुक्त हो यथेच्छ विचरण करते थे। इस प्रकार प्रकार जब देखते हैं, कि देहका स्थैर्य सम्पादन करनेसे जीवन्मुक्ति होती तब यह मुमुक्षुके लिये बहुत श्रेयस्कर है, इसमें संदेह नहीं।

इस दर्शनमें किस प्रकार देहका स्थैर्य सम्पादन करना होता है उसीका विषय विशेष रूपसे आलोचित हुआ है। जीवन्मुक्ति ही इस दर्शनका प्रधान उद्देश्य है, यही स्पष्टरूपसे दिखाया गया है। इस पर कोई कोई आपत्ति करते हैं, कि सच्चिदानन्दस्वरूप परमतत्त्वकी स्फूर्त्ति होनेसे ही तो मुक्ति हो सकती है। इसलिये मुक्तिके लिये इस शास्त्रके अवलम्बन करनेकी आवश्यकता ही क्या? किन्तु उनकी यह आपत्ति युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि परमतत्त्वकी स्फूर्त्ति होनेसे ही मुक्ति तो होती है, पर वह परमतत्त्वकी स्फूर्त्ति बिना समाधिके सम्पन्न नहीं होती, समाधि भी बहुकाल साध्य है। वह इस देहसे निष्पन्न होना कठिन है, पहला कारण यह कि देह श्वासकासादि नाना रोगोंका आश्रय, विनश्वर तथा समाधिका क्लेश सहनेमें असक्त है। दूसरा बाल्यावस्थामें धीशक्ति उत्पन्न

नहीं होती, यौवनावस्थामें विषय रसास्वादमें व्यग्र हो पर-कालके लिये क्षणकाल भी चिन्ता नहीं करते तथा वृद्धावस्थामें विवेकशक्ति नहीं रहती। उसके बाद देहपात होता है। अतएव इस देहसे समाधि निष्पन्न नहीं हो सकती। इसीलिये पहले पारदरस द्वारा दिव्यदेहको सम्पादन करना होता है। इससे धीरे धीरे योगाभ्यासादि द्वारा परमतत्त्वकी स्फूर्त्ति हो सकती है। नहीं तो इस अस्थिर देहमें कभी भी परमतत्त्वकी स्फूर्त्ति होनेकी सम्भावना नहीं। इस लिये ही इस दर्शनमें देहस्थैर्यका साधनपथ दिखाया गया है।

इस पारदरसको सामान्य धातुकी तरह समझना उचित नहीं। क्योंकि स्वयं भगवान् महादेवने भगवतीसे कहा था कि, 'पारदरस मेरा स्वरूप है। यह मेरे प्रत्येक अङ्गसे उत्पन्न हुआ है और यह मेरे ही शरीरका रस है इसीसे इसको रस कहते हैं। यह पारद संसाररूप समुद्रकी यन्त्रणासे पार कर देता है इसीसे इसका पारद नाम पड़ा है। पारद मेरा और अबरक तुम्हारा (भगवतीका) बीज है। इन दोनों बीजोंका मिलन करा सकनेसे मृत्यु और दारिद्र्ययन्त्रणा एक ही समय दूर होती है।"

यह पारा फिर कई प्रकारका है। प्रत्येक पारेमें एक एक असाधारण गुण है। मूर्च्छित पारेसे व्याधि नष्ट होती हैं, मृत पारा जीवित रहनेकी तथा बद्धपारा शून्य मार्गमें गतिशक्ति प्रदान करता है। जो पारा भिन्न भिन्न रंगका दिखाई देता तथा जिसमें घनता और तरलतादि धर्म नहीं रहता, उसको मूर्च्छित; जिस पारेमें आर्द्रत्व, घनत्व, तेजस्विता, गुरुता और चपलतादि गुण हैं उसे मृत तथा जो पारा अक्षत, निर्मल, तेजस्वी और गुरु होता तथा बहुत जल्द पिघल जाता है उसे बद्धपारा कहते हैं। अधिक क्या, एकमात्र पारा ही अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष को देनेवाला है तथा सभी विद्या और सुखस्वच्छन्दताके आधारस्वरूप इस शरीरको अजर अमरके जैसा बनाये रखता है। इसे छोड़ कर देहको नित्यता सम्पादन करनेवाला और कोई पदार्थ हो नहीं है। इसके दर्शन, स्पर्शन, भक्षण, स्मरण, पूजन और दानसे अभीष्टकी सिद्धि होती है।

पृथ्वी पर केदारादि जो सब शिवलिङ्ग हैं उनके दर्शन करनेसे जो पुण्य होता है, वह एकमात्र पारददर्शनसे ही मिलता है। काशी आदि तीर्थोंमें जो सब लिङ्ग हैं उन सबकी पूजा करनेकी अपेक्षा एक पारदनिर्मित शिवलिङ्गपूजा श्रेयस्कर है। क्योंकि उससे सभी विषयोंका भोगसाधन आरोग्य तथा अमृतपद प्राप्त होता है। जिस किसी प्रकारसे पारदकी निन्दा सुननेसे भी पाप होता है। इस कारण जो पारदरसकी निन्दा करते हैं उनका संसर्ग नहीं करना चाहिये।

पारेमें ये सब गुण विद्यमान हैं, इस कारण पारदरस अन्यान्य रसोंसे उत्तम है। इसीसे इसको रसेन्द्र वा रसेश्वर तथा रसेश्वरका गुण निर्दिष्ट होनेके कारण दर्शनको रसेश्वरदर्शन कहते हैं। (माधवाचार्य)

रसोइया (हिं० पु०) रसोई बनानेवाला, भोजन बनानेवाला।

रसोई (हिं० पु०) रसोई देखो।

रसोई (हिं० पु०) १ पका हुआ खाद्यपदार्थ, बना हुआ भोजन। २ वह स्थान जहां भोजन बनता हो, पाकशाला।

रसोईखाना (हिं० पु०) रसोईघर देखो।

रसोईघर (हिं० पु०) वह स्थान जहां भोजन पकाया जाता हो, खाना बनानेकी जगह।

रसोईदार (हिं० पु०) वह जो रसोई बनानेके काम पर नियुक्त हो, रसोइया।

रसोईदारी (हिं० स्त्री०) १ रसोई करनेका काम, भोजन बनानेका काम। २ रसोईदारका पद।

रसोईबरदार (फा० पु०) भोजन ले जानेवाला, भोजनवाहक।

रसोत (हिं० स्त्री०) रसौत देखो।

रसोत्तम (सं० पु०) रसेषु उत्तमः यद्वा रस उत्तमोऽस्य। १ मुद्ग, मूंग। २ श्रेष्ठ रस। ३ पारद, पारा। (क्ली०) ४ रसाञ्जन, रसौत। ५ घृत, घी।

रसोत्पत्ति (सं० पु०) १ शारीरिक रसकी परिवृद्धि। २ कामोद्रेक, कामकी अधिकता। ३ द्रव्यविशेषके योगमें मीठे रसका उद्भव।

रसोदर (सं० क्ली०) हिंगुल, शिंगरफ।

रसोद्भव (सं० क्ली०) रसात् पारदधातोरुद्भवतीति उद्-

भू अच् । १ हिङ्गुल, शिंगरफ । २ रसाञ्जन, रसौत । ३ मुक्ता । (त्रि०) ४ रसजात, रससे उत्पन्न ।

रसोद्भूत (सं० क्ली०) रसाञ्जन, रसौत ।

रसोन (सं० पु०) रसेनैकेनोनः । (Allium sativum) स्वनामख्यात कन्दशाक, लहसुन । इसे महाराष्ट्रमें पाण्ड-राणसुनु, कलिङ्गमें विलियवेल्लुलि, तैलंगमें तेलवुल्लि और तामिलमें वल्लइ पाण्डु कहते हैं । इसकी उत्पत्ति-का विषय इस प्रकार लिखा है—जब पक्षीन्द्र गरुड़ देव-राज इन्द्रसे अमृत चुराये आता था, तब उसमेंसे एक बुंद जमीन पर गिर पड़ी थी, उसीसे लहसुनकी उत्पत्ति मानी जाती है । विशेष विवरण लहसुन शब्दमें देखो ।

रसोनक (सं० पु०) रसोन-स्वार्थे कन् । लसुन, लहसुन ।

रसोनपिण्ड (सं० पु०) आमवाताधिकारमें औषधविशेष । यह रसोनपिण्ड और महारसोनपिण्डके भेदसे दो प्रकारका है । रसोनपिण्डकी प्रस्तुत प्रणाली—लहसुन १२॥० सेर, निस्तुषतिल ॥० सेर, हींग, त्रिकटु, यवक्षार, साचिक्षार, पञ्चलवण, सोयां, कुट, पीपलमूल, चितामूल, वनयमानी, यमानी और धनियां प्रत्येकका चूर्ण १ पल, इनके चूर्णको किसी घीके बरतनमें रखे । पीछे उसमें तिलतैल १ सेर और कांजी १ सेर डाल कर १६ दिन धानकी ढेरमें रख छोड़े । इसकी मात्रा आध तोला और अनुपान जल वा मद्य है । इस औषधका सेवन करनेसे आमवात, अप-स्मार, कांसी और वातव्याधि आदि रोग दूर होते हैं ।

महारसोनपिण्डकी प्रस्तुत-प्रणाली—लहसुन १०० पल, तुषरहित तिल ५० पल, मट्ठा १६ सेर, त्रिकटु, धनिया, चई, चितामूल, गजपीपल, वनयमानी, दार चीनी, इलायची, पीपलमूल, प्रत्येक एक एक पल, चीनी ८ पल, मिर्चा १ पल, कुट ४ पल, मंगरैला ४ पल, मधु ४ पल, अदरक ४ पल, घी ८ पल, तिलतैल ८ पल, कांजी २० पल, सफेद सरसों ४ पल, लाल सरसों ४ पल, हींग २ तोला, पञ्चलवण प्रत्येक २ तोला, इन्हें एकत्र कर कड़ी धूपमें सुखा ले । पीछे घीके बरतनमें रख कर धान-की ढेरमें १२ दिन रख छोड़े । सबेरे यथायोग्य मात्रामें सेवन करना होता है । अनुपान सुरा, सौवीरक और दूध है । इस औषधके सेवनकालमें दधि और पिष्टक छोड़ कर और सभी वस्तु खा सकते हैं । एक मास तक इस औषधका सेवन करनेसे नाना प्रकारके वायुज, पित्तज और कफज रोग नाश होते हैं । यह आमवात रोगकी एक अक्सीर दवा है । आमवात, अर्श, वात-व्याधि आदि रोगोंमें यह बहुत लाभ पहुंचाता है ।
(भैषज्यरत्ना० आमवात०)

रसोनादिकषाय (सं० पु०) कषाय औषधविशेष । प्रस्तुत-प्रणाली—लहसुन, सोंठ और सम्हालू तीनोंका समान ले कर काढ़ा पान करनेसे आमवात नष्ट होता है । आम-वातनाशक इस प्रकारका औषध अति दुर्लभ है ।
(भावप्र० आमवात०)

रसोनाष्टक (सं० क्ली०) वातव्याधि-रोगाधिकारमें औषध-विशेष । प्रस्तुत-प्रणाली—कुछ लहसुनका छिलका और भीतरका अंकुर फेंक दे । पीछे उसकी कड़ी गंध दूर करनेके लिये दहीमें रात भर छोड़ दे । पीछे उसे अच्छी तरह धो डाले और सुखा कर चूर्ण करे, सौवर्चल, यमानी, भूनी हींग, सैन्धव, त्रिकटु और जीरा इनका लह-सुनके चूर्णका पांचवा भाग तथा तिलतैल उसका चौथाई भाग, सभीको एक साथ मिला कर पीसना होगा । यह औषध २ तोला अथवा रोगके दोष वा बलाबलानुसार स्थिर करके सबेरे सेवन करना होता है । यह औषध सेवन करनेसे सर्वाङ्गगत और एकाङ्गगत वात, अर्दित, अपतन्त्रक, अपस्मार, उन्माद, ऊरुस्तम्भ आदि रोग अति शीघ्र आरोग्य होते हैं । यह औषध सेवन करके प्रति दिन शराब, मांस, अम्ल, (अनार और आंवला) खाना उचित है । औषध सेवनकालमें परिश्रम, रौद्रसेवन, क्रोध, अत्यन्त जलपान, गुड़ाहार और स्त्रीसंसर्ग विशेष निषिद्ध है । औषध-सेवनके बाद भेरेण्डके मूलका क्वाथ अनुपान करना होता है ।

अतीसार, प्रमेह, पाण्डु, अरुचि, मूर्च्छा, अर्श, रक्तपित्त, शोष, यक्ष्मा, वमि इन सब रोगग्रस्त तथा गर्भिणी स्त्री-को इसका सेवन नहीं कराना चाहिये । पैत्तिकरोगमें पथ्य भोजनके साथ सेवन कर पीछे विरेचक द्रव्य खावे, नहीं तो उसे कुष्ठ और पाण्डुरोग हो सकता है । बालकको यदि अरुचि देखें, तो उसे स्तनदुग्धके साथ पान कराना चाहिये । (भावप्रकाश वातव्याधिरोगाधि०)

रसोपल (सं० क्ली०) रसवत् पारद इव उपलं। मौक्तिक, मोती।

रसोल्लास (सं० पु०) १ शारीरिक रसका उत्क्षेपण। २ आठ सिद्धियोंमेंसे एक सिद्धि। ३ रासनाका विकाश। ४ कामोद्दीपन, काम उपजना। ५ आकांक्षाकी वृद्धि।

रसौंत (हिं० स्त्री०) रसौत देखो।

रसौकस् (सं० क्ली०) रसधाम, व्रजमण्डल।

रसौत (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी प्रसिद्ध ओषधि। यह दारुहल्दीकी जड़ और लकड़ीको पानीमें औटा कर और उसमेंसे निकले हुए रसको गाढ़ा करके तैयार की जाती है। इसके लिये पहले दारुहलदीका काढ़ा तैयार करते हैं और तब उसमें उसके बराबर ही गौ या बकरीका दूध डाल कर दोनोंको पका कर बहुत गाढ़ा अवलेह तैयार करते हैं। यही अवलेह जम कर बाजारोंमें रसौतके नामसे बिकता है। रसौत कालापन लिये भूरे रंगकी होती हैं और पानीमें सहजमें घुल जाता है। इसका स्वाद कड़ुवा होता है और इसमें एक विलक्षण गंध निकलती है, जो अफीमकी गन्धसे कुछ मिलती जुलती होती है। इसका व्यवहार प्रायः आखों पर लगाने और घावोंका विकार दूर करनेमें होता है। वैद्यकमें यह चरपरी, गरम, रसायन, कड़वी, शीतल, तीक्ष्ण, शुक्रजनक, नेत्रोंके लिये अत्यन्त हितकारी तथा कफ, विष, रक्त-पित्त, वमन, हिचकी, श्वास और मुख-रोगको दूर करनेवाली मानी गई है। इसका संस्कृत-पर्याय—रसगर्भ, तार्क्ष्यशैल, रसोद्भूत, रसाग्रज, कृतक, बालभैषज्य, रसराज, अग्निसार, रसनाभि।

रसौता (हिं० पु०) रसौती देखो।

रसौती (हिं० स्त्री०) धानकी वह बोआई जिसमें खेत जोत कर वर्षा होनेसे पहले ही बीज डाल दिया जाता है।

रसौदन (सं० पु०) मांसके रसमें पके हुए चावल। यह श्रमादिज्वरमें हितकर माना गया है।

रसौर (हिं० पु०) ऊखके रसमें पके हुए चावल।

रसौल (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बड़ी कंटीली लता। यह खीरी और बहराइचके जंगलोंमें बहुत अधिकतासे होती हैं और दक्षिण भारत, बंगाल तथा बरमामें भी पाई जाती है। यह गरमीके दिनोंमें फूलती और जाड़े में फलती है। इसकी पत्तियां और कलियाँ ओषधि-रूपमें भी काम आती हैं और उनसे चमड़ा भी सिझाया जाता है। इसकी पत्तियां खट्टी होती हैं इसलिये उनकी चटनी भी बनाई जाती है। इसे पेला भी कहते हैं।

रसौली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका रोग जिसमें आँखके ऊपर भंवोंके पास बड़ी गिलटी निकल आती है।

रसौली—अयोध्याप्रदेशके बाराबंकी जिलान्तर्गत एक नगर। यह नवाबगंजसे चार मील पूर्वमें अवस्थित है। यहां प्राचीन मुसलमान-कीर्त्तिके बहुतसे निद-र्शन हैं।

रस्ता (हिं० पु०) रास्ता देखो।

रस्तावगी—उत्तर पश्चिम-प्रदेशमें रहनेवाली बनिया जाति-की एक शाखा। इनमें अमेठी, इन्द्रपति और मौहारिया नामक तीन थोक हैं। इनका कहना है, कि अमेठीमें इनका आदिवास था। कार्यवशतः वहांसे चल कर इन्होंने नाना स्थानोंमें वास किया है। सिपाही-विद्रोहके बाद दिल्लीसे एक थोक मिर्जापुर आया। इस श्रेणीकी स्त्रियां स्वामीकी बनाई हुई रसोई नहीं खातीं। हरदेव लाल, महाबीर या पांच पीरके उपासक लोग परस्परमें आदान-प्रदान नहीं करते हैं। बहुतेरे रामानन्दी सम्प्र-दायभुक्त हैं। गौड़ीय ब्राह्मण लोग इनकी याजकता करते हैं। इनमें बहुविवाह प्रचलित है; किन्तु विधवा-विवाह निषिद्ध है। ये न तो मांस खाते और न शराब ही पीते हैं।

रस्तोगी (हिं० पु०) वैश्योंकी एक जाति।

रस्न (सं० क्ली०) रस (तृषिशुषिरसिभ्यः कित्। उण् ३।१२) इति न प्रत्ययः। द्रव्य, चीज।

रस्म (अ० स्त्री०) १ मेलजोल, बरताव। २ रिवाज, परि-पाटी।

रस्य (सं० क्ली०) रसात् भुक्ताभादिपरिपाकात् आगतमिति रस-यत्। १ रक्त, लहू। २ शरीरमेंका मांस। (त्रि०) ३ रसयुक्त।

रस्या (सं० स्त्री०) रसाय हिता रस-यत् टाप्। १ रास्ना। २ पाठा, पाढ़ी।

रस्सा (हिं० पु०) १ बहुत मोटी रस्सी जो कई मोटे तागों-

को एकमें बट कर बनाई जाती है। आजकल प्रायः जहाजों आदिके लिये तथा और बड़े कामोंके लिये लोहेके तारोंके भी रस्से बनने लगे हैं। २ जमीनकी एक नाप जो ७५ हाथ लम्बी और ७५ हाथ चौड़ी होती है। इसीको बीघा कहते हैं। ३ घोड़ोंके पैरकी एक बीमारी।

रस्सी (हिं० स्त्री०) १ रूई, सन या इसी प्रकारके और रेशोंके सूतों या डोरोंको एकमें बट कर बनाया हुआ लंबा खंड जिसका व्यवहार चीजोंको बांधने, कूएंसे पानी खींचने आदिमें होता है, डोरी, गुण। २ एक प्रकारकी सज्जी।

रस्सीबाट (हिं० पु०) रस्सी बटनेवाला, डोरी बनानेवाला।

रहँकला (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी हलकी गाड़ी। २ तोप लादनेकी गाड़ी। ३ रहँकले पर लदी हुई छोटी तोप।

रहँचटा (हिं० पु०) प्रीतिकी चाह, मनोरथ सिद्धिकी अभिलाषा।

रहँट (हिं० पु०) कूएंसे पानी निकालनेका एक प्रकारका यन्त्र। इसमें कूएंसे ऊपर एक ढाँचा रहता है जिसमें बीचोबीच पहिएके आकारका एक गोल चरखा लगा होता है जो कूएंके ठीक बीचमें रहता है। इस चरखे पर घड़ों आदिकी एक बहुत लम्बी माला, जिसे 'माल' कहते हैं, टंगी रहती है। यह माला नीचे कूएंके पानी तक लटकती है और इसमें बहुत-सी हाँड़ियां या बाल्टियां बंधी रहती हैं। जब बैलोंके चक्कर देनेसे चरखा घूमता है तब जलसे भरी हुई हाँड़ियां या बाल्टियां ऊपर आ कर उलटती हैं जिससे उनका पानी एक नालीके द्वारा खेतोंमें चला जाता है और खाली हाँड़ियां या बाल्टियां नीचे कूएंके पानीमें चली जाती और फिर भर कर ऊपर आती हैं। इस प्रकार थोड़े परिश्रमसे अधिक पानी निकलता है। पश्चिममें इसकी बहुत चाल है।

रहँटा (हिं० स्त्री०) सूत कातनेका चर्खा।

रहँटो (हिं० स्त्री०) १ कपास ओटनेकी चरखी। २ रुपया उधार देनेका एक ढंग जिसमें प्रतिमास कुछ रुपया वसूल किया जाता है। इसे संयुक्त-प्रान्तमें हुंडी कहते हैं।

रहचटा (हिं० पु०) रहँचटा देखो।

रहचह (हिं० स्त्री०) चिड़ियोंका बोलना, चहचहाहट।

रहठा (हिं० पु०) अरहरके पौधेके सूखे डंठल, कड़िया।

रहण (सं० क्ली०) १ निर्जनमें फेंकना। २ सङ्गत्याग, साथ छोड़ना। ३ सम्यक् नियोजन, मिली हुई वस्तुओंको अलग करना।

रहन (हिं० स्त्री०) १ रहनेकी क्रिया या भाव। २ रहनेका ढंग, व्यवहार।

रहनसहन (हिं० स्त्री०) जीवन-निर्वाहका एक ढंग, गुजर-बसरका तरीका।

रहना (हिं० क्रि०) १ स्थित होना, अवस्थान करना, ठहरना। २ स्थान न छोड़ना, प्रस्थान न करना, रुकना। ३ बिना किसी परिवर्त्तन या गतिके एक ही स्थितिमें अवस्थान करना। ४ निवास करना, बसना। ५ किसी काममें ठहरना, कोई काम करना बंद करना। ६ विद्यमान होना, उपस्थित होना। ७ कुछ दिनोंके लिये ठहरना या टिकना, अस्थायीरूपसे निवास करना। ८ चलना बंद करना, रुकना। ९ चुपचाप समय बिताना, कुछ न करना। १० नौकरी करना, काम काज करना। ११ समागम करना, मैथुन करना। १२ बचना, छूट जाना। १३ स्थित होना, स्थापित होना। १४ जीवित रहना, जीना।

अवस्थान-सूचक इस क्रियाका प्रयोग बहुत व्यापक है। प्रधान क्रियाके अतिरिक्त यह और क्रियाओंके साथ संयुक्त हो कर भी आती है। जैसे,—आ रहा है; जा रहते हैं।

(पु०) १५ शेर, बाघ आदिके रहनेका स्थान; वनका वह विभाग जहां शेर, चीते आदिके रहनेकी मांदें हों। इसे 'रमना' भी कहते हैं।

रहनि (हिं० स्त्री०) १ आचरण, चाल ढाल। २ प्रेम, प्रीति।

रहनी (हिं० स्त्री०) रहनि देखो।

रहम (अ० पु०) १ करुणा, दया। २ अनुकम्पा, अनुग्रह। ३ गर्भाशय।

रहमतुल्ला—मुसलमान साधु मालिक ओमरकी जीवनीके

लेखक। बहराइच नगरमें उक्त साधुका समाधिमन्दिर मौजूद है।

रहमतगढ़—दाक्षिणात्यके महिसुरराज्यके कोला जिलान्तर्गत एक बड़ा शैल। यह अक्षा० १३° २१′ तथा देशा० ७८° ४′ पू०के बीच पड़ता है। समुद्रपीठसे यह ४२२७ फुट ऊंचा है। स्थानीय किंवदन्ती है, कि पंचपाण्डवमेंसे एक इस पर्वतके नीचे स्थापित हैं। अंगरेजराजके नन्दिदुर्ग दखल करनेके बाद टीपू सुलतानने इस शैलमें दुर्ग बनानेका संकल्प किया था, किंतु उनकी आशा कार्यमें परिणत न हुई।

रहमत (अ० स्त्री०) कृपा, मेहरबानी।

रहमान (अ० वि०) १ बड़ा दयालु। (पु०) २ परमात्माका एक नाम।

रहरू (हिं० स्त्री०) छोटी देहाती गाड़ी जिसमें किसान लोग घांस या खाद ढोते हैं।

रहरूढ़भाव (सं० पु०) १ संसारके झगड़ोंको छोड़ कर एकान्त स्थानमें निवास करना। २ वह जो इस प्रकार संसारको छोड़ कर एकान्तमें निवास करता हो।

रहरैठा (हिं० पु०) अरहरके सूखे डंठल, कड़िया।

रहल (अ० स्त्री०) एक विशेष प्रकारकी छोटी चौकी जिस पर पढ़नेके समय पुस्तक रखी जाती है। इसमें दो छोटी छोटी पटरियां बीचमें एक दूसरीको काटती हुई लगी रहती हैं और इच्छानुसार खोली या बंद की जा सकती हैं। इनका आकार × हो जाता है।

रहवाल (फा० स्त्री०) घोड़ेकी एक चाल।

रहस् (सं० क्लो०) रमन्तेऽस्मिन् रह (देशे इच्। उण् ४।२१४) इति असुन् हकारश्चान्तादेशः। १ निर्जन, एकान्त स्थान। पर्याय—विविक्त, विजन, छन्न, निःशलाक, उपांशु। २ गुप्त भेद, छिपी बात। ३ आनन्द, सुख। ४ योग, तन्त्र या और किसी सम्प्रदायकी गुप्त बात; गूढ़ तत्त्व।

रहस (सं० पु०) १ समुद्र। २ स्वर्ग।

रहसनन्दिन् (सं० पु०) एक प्रसिद्ध वैयाकरण।

रहसना (हिं० क्रि०) आनन्दित होना, प्रसन्न होना।

रहसबधावा (हिं० पु०) विवाहकी एक रीति जिसमें नवविवाहिता वधूको वर अपने साथ जनवासेमें लाता है। वहां सब गुरुजन उस समय वधूका मुख देखते हैं और उसे वस्त्र, भूषणादि उपहार देते हैं।

रहसू (सं० स्त्री०) व्यभिचारिणी स्त्री, बदचलन औरत। "आरे मत्कर्त्तरहसूरिवागः" (ऋक् २।२९।१) 'रहसूरिव रहस्यन्यैरज्ञाते प्रदेशे सूयत इति रहसूर्व्यभिचारिणी, सा यथा गर्भं पायित्वा दूरदेशे, परित्यजति' (सायण)

रहस्कर (सं० त्रि०) रहस्य कार्यकारी, हँसी ठट्ठा करनेवाला।

रहस्य (सं० त्रि०) रहसि भवं रहस् दिगादित्वात् यत्। १ गोपनीय, सबको न बतानेयोग्य। २ निर्जनभव, जो एकान्तमें हुआ हो। (क्लो०) ३ गूढ़तत्त्व, वह जिसका तत्त्व सहजमें या सबकी समझमें न आ सके। रहस्य तीन प्रकारका है। यथा,—धर्मरहस्य, अर्थरहस्य और कामरहस्य। ४ गुप्तभेद, वह बात जो सबको बतलाई न जा सकती हो। ५ मर्म या भेदकी बात, भीतरकी छिपी हुई बात। ६ परिहासकौतुक, हंसी ठट्ठा, मजाक।

रहस्या (सं० स्त्री०) रहस्य-टाप्। १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन नदीका नाम। २ रास्ना। ३ पाठा, पाढ़ी।

रहस्यु (सं० पु०) पञ्चविंशब्राह्मणोक्त एक व्यक्ति। (पञ्चवि० १४।४।७)

रहःस्थ (सं० त्रि०) १ निर्जनमें अवस्थित। २ एकक, बिना साथीके।

रहाई (हिं० स्त्री०) १ रहनेकी क्रिया या भाव। २ कल, चैन।

रहाऊ (हिं० स्त्री०) गीतमेंका पहला पद, टेक। यह शब्द अधिकतर पंजाबमें बोला जाता है।

रहाट (सं० पु०) १ वह जो किसी प्रकारकी सलाह देता हो। २ परामर्शदाता या मन्त्री। ३ प्रेतात्मा। ४ प्रस्रवण, झरना।

रहा सहा (हिं० वि०) बचा खुचा, बचा बचाया।

रहित (सं० त्रि०) रह-क्त। वर्जित, बिना, बगैर।

रहिला (हिं० पु०) चना।

रहीभूत (सं० त्रि०) १ निर्जनमें अपसृत। २ कार्यादिसे बचा हुआ समय।

रहीम (अ० वि०) १ रहम करनेवाला, कृपालु । (पु०) २ ईश्वरका एक नाम ।

रहीम—इस नामके भाषाके दो कवि। ये दोनों बड़े निपुण कवि थे। २ रहीमके दोहे प्रसिद्ध हैं। परन्तु इसका पता लगाना अत्यन्त कठिन है, कि कौन कविता किस रहीमकी बनाई हुई है।

रहीम उद्दीन वख्त (मीर्जा)—दिल्लीश्वर शाह आलमके पौत्र। ये भारतेश्वरी विक्टोरियाके मध्यम पुत्र ड्यूक आव आल्बिनवराकी सम्बर्द्धना करनेके लिये १८७० ई०में बनारससे आगरा गये थे।

रहीमत्पुर—बम्बईप्रदेशके सतारा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १७° ३५′ ३५″ उ० तथा देशा० ७४° १४′ ४४″ पू० तक विस्तृत है। यहां म्युनिसिपलिटी है। इसलिये नगरकी पूर्वसमृद्धिका ह्रास नहीं हुआ है, प्राचीन कीर्त्तियोंमेंसे बीजापुर सेनापति रनदुल्ला खांकी मसजिद आदि ही देखनेके योग्य है। रनदुल्ला खाँ बीजापुरके सप्तम राजा महमूदके राज्यकालमें (१६२६ १६५६ ई०में) बड़े प्रसिद्ध हो उठे थे। मसजिदके दक्षिण-पूर्वमें हाथीकी मूर्त्तिका फुहारा, ५० फुट ऊँचा एक गुम्बज तथा फुहारेके जलको दबा देनेके लिये पश्चिममें कुछ ढालू मैदानका निर्माण-कौशल आदि पर लक्ष्य करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। यहां आज भी वाणिज्यका पूरा प्रभाव है।

रहीमनगर—अयोध्याप्रदेशके लखनऊ जिलान्तर्गत एक नगर। यह नदीके दाहिने किनारे पर अवस्थित है। यहाँ पांड़े ब्राह्मण ही अधिक वास करते हैं। बलूचगढ़ नामक गांवके रहनेवाले पठान लोग कहते हैं, कि यह स्थान दिल्लीश्वरने उनके पूर्वपुरुषोंको जागीरस्वरूपमें दिया था। पीछे नवाब सैयद अलीने उनसे बलपूर्वक यह सम्पत्ति छीन ली और ब्राह्मणोंको दान कर दी।

रहीम बेग—बखजां सुधारा नामक काव्यके प्रणेता।

रहीया—इस्लामधर्मके पृष्ठपोषक एक मुसलमान अध्यापक। बदर युद्धमें स्वयं उपस्थित न रहने पर भी ये एक धर्मप्रतिष्ठा कह कर गण्य थे। स्वयं महम्मद इन्हें स्वर्गीय दूत जब्रिल नामसे सम्बोधन करते थे।

रहूगण (सं० पु०) १ ऋग्वेदके अनुसार आङ्गिरस गोत्रीय एक वंश या गण। रहूगण ऋषि ऋग्वेदके १मे मण्डलके ३७ और ३८ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे; गौतम ऋषिने इसी वंशमें जन्मग्रहण किया था। २ इस वंशका मनुष्य। भागवतमें लिखा है, कि सिन्धुसौवीरके देशाधिपति राजा रहूगण तत्त्वजिज्ञासु हो कर इक्षुमती नदीके किनारे कपिलाश्रममें गये थे। (भाग० ५।१०।१)

रहूड़ी—बम्बईप्रदेशके अह्मदाबाद जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भू-परिमाण ४६७ वर्गमील है। मूला और प्रवरा नामक गोदावरीको दो शाखा तथा ओझाकी खाल और लाख खाल यहां बहती है इससे यहांकी खेतीबारीमें बड़ी सुविधा हुई है। इसकी दक्षिणी सीमा पर बड़ी शैलमाला है जिसका सबसे ऊंचा शृंग गोरक्षनाथ समुद्रपीठसे २६८२ फुट ऊंचा है। धोन्द और मानगढ़ रेलपथ इस उपविभागके बीच हो कर चला गया है जिससे यहांके वाणिज्यकी बड़ी सुविधा हुई है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और उपविभागका विचार-सदर। यह अक्षा० १९° ३०′ उ० तथा देशा० ७४° ४२′ पू०के मध्य मूला नदीके उत्तरी किनारे पर अवस्थित है। यह नगर बड़ा ही समृद्धिशाली है।

रहोगत (सं० त्रि०) निर्जनमें स्थित, रहःस्थित।

रांकड़ (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी भूमि जिसमें बहुत कम अन्न पैदा होता है। ऐसी भूमि बहुधा कंकरीली और ऊंची नीची हुआ करती है।

रांग (हिं० पु०) रांगा देखो।

रांगड़ी (हिं० पु०) एक प्रकारका चावल जो पंजाबमें पैदा होता है

रांगा हिं० पु०) एक प्रसिद्ध धातु जो बहुत नरम और रंगमें सफेद होती है। विशेष विवरण रङ्ग शब्दमें देखो।

रांची—बिहार और उड़ीसाके छोटानागपुर विभागके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २२° २०′ से २३° ४३′ तथा देशा० ८४° ०′ से ८५° ५४′ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें पलामू और हजारीबाग, पूर्वमें मानभूम, दक्षिणमें सिंहभूम और गाङ्गपुर राज्य तथा पश्चिममें यशपुर और सुरगुजा राज्य है। भूपरिमाण ७१२८ वर्गमील है। इसके उत्तर-पश्चिममें बहुत-से छोटे छोटे पहाड़ हैं। इनमेंसे बड़े पहाड़का नाम सार

है। यह समुद्रपृष्ठसे ३६१५ फुट ऊंचा है । जिलेकी प्रधान नदी सुवर्णरेखा है जो रांची शहरसे १२ मील पश्चिम हो कर बह गई है । यहां मार्च मासमें ७६°, अप्रिलमें ८५° और मईमें ८८° डिगरी गरमी पड़ती है।

छोटानागपुरका इतिहास चार प्रसिद्ध युगोंमें विभक्त है। पहला युग मुण्डा लोगोंका है। उस समय इसका नाम 'भारखण्ड' था। दूसरा युग नागवंशी युग कहलाता है। इस वंशके प्रथम राजाका नाम था फणिमुकुट राय। इनकी उत्पत्ति ब्राह्मणकन्या पारती और सर्पराज पुण्डरीकसे हुई थी। इस वंशने १५८५ ई० तक राज्य किया था। तीसरा युग मुसलमानी युग है। सम्राट् अकबरने एक दल सेना भेज कर कोकराके राजाको परास्त किया। जाते समय वे लोग शङ्खनदीसे प्रचुर मणिमुक्ता उठा ले गये थे। पीछे जहांगीरने विहारके शासक इब्राहिम खाँके अधीन सेना भेजी। इन्होंने नागवंशके ४५वें राजा दुर्जनशालको कैद कर दिल्ली और दिल्लीसे ग्वालियर भेज दिया। वहां वे १२ वर्ष तक कैदमें रखे गये थे। इसके बाद मराठोंने यहां लूटपाट मचाया और राजाओंसे कर वसूल किया था। अनन्तर इष्ट इण्डिया कम्पनीको जब बंगालकी दीवानी मिली, तब यह स्थान १७६५ ई०में उन्हींके अधिकारभुक्त हुआ। वृटिश गवर्मेण्टके शासनकालमें यह जिला दिन-पर दिन उन्नति कर रहा है।

इस जिलेमें रांची, लोहरडंगा, बुन्दू और पालकोट नामक ४ शहर और ३१७३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ११ लाखसे ऊपर है। हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ४०, जंगलीकी ४६, मुसलमानकी ३॥ और ईसाईकी संख्या सैकड़े पीछे १०॥ है। धान यहांकी प्रधान उपज है। धानके अलावा मड़ुआ, उड़द, और जुआर भी उपजता है। लाहका यहां जोरों कारबार होता है। इसके लिये जिलेमें १२ कारखाने हैं। प्रधान कारखाना रांची शहरमें है। लाहके कीड़े पलाश वृक्ष और कुसुम पर पाले जाते हैं। लोहरडंगामें तांबे और पीतलका कारखाना है। सूती कपड़ा जिले भरमें तैयार होता है। यहांसे दूसरे दूसरे देशोंमें धान, तेलहन, चमड़े, लाह और चायकी रफ्तनी तथा दूसरे देशोंसे गेहूं, तमाकू, गुड़, चीनी, कम्बल और मिट्टी तेलकी आमदनी होती है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये १९०२ ई०में यह जिला दो उपविभागोंमें बांटा गया, रांची और गुमला। १९०५ ई०में खुन्ती नामक तीसरा उपविभाग संगठित हुआ। रांचीमें डिपटी कमिश्नर, उनके अधीन एक ज्वाइण्ट और पांच डिपटीमजिष्ट्रेट कलकृर रहते हैं। गुमला उपविभाग एक ज्वाइण्टके और खुन्ती एक डिपटीमजिष्ट्रेट-कलकृरकी देखरेखमें है। यहां फौजदारी और दीवानी दोनों अदालत हैं। डिपटी कमिश्नरको कुल मुकदमा फैसला करनेका अधिकार है। वे केवल मृत्यु दण्ड नहीं दे सकते।

विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत पीछे पड़ा हुआ है। १९०१ ई०में तो सिर्फ २७ मनुष्य पढ़े लिखे मिलते थे, पर अभी कुछ उन्नति देखी जाती है। फिलहाल प्राइमरी, सेकेण्डरी और स्पेशल स्कूल लगा कर हजारसे ऊपर होंगे, कम नहीं। इनमेंसे जिला स्कूल, जर्मन इवन्गेलिष्टिक लुथेरन मिशन (German Evangelistic Lutheran Mission) हाई स्कूल, उच्च श्रेणीका ट्रेनिङ्ग स्कूल और गवर्मेण्ट शिल्प स्कूल हैं। रांची शहरमें अंधोंके लिये भी एक खास स्कूल है। स्कूलके अलावा १० अस्पताल भी हैं।

रांची शहरसे ४० मील दक्षिण पश्चिम दोइसा नामक एक नगर है। वहां १८वीं सदीमें महाराज राय महोदेव और उनके भाई और गोकुलनाथ सहीदेवने बहुतसे सुन्दर महल बनवाये थे जिनका खण्डहर आज भी देखनेमें आता है। इसके सिवा यहां महादेव और गणेशके छः मंदिर भी हैं। रांची शहरसे पूरब चूटिया नामका मंदिर देखने लायक है।

२ उक्त जिलेका एक बड़ा उपविभाग। यह अक्षा० २२° २१´ से २३° ४३´ ३० तथा देशा० ८४° ०´ से ८५° ८४ पू०के मध्य अवस्थित है। पहले भूपरिमाण ३५०६ वर्गमील और जनसंख्या ८ लाखके करीब थी। १९०५ ई०में खुन्ती उपविभागके हो जानेसे इसका रकवा २३६६ वर्गमील कर दिया गया जिससे जनसंख्या भी घट कर ५ लाखके करीब हो गई। इस उपविभागमें रांची

और लोहरडंगा नामक दो शहर और १४१७ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर तथा विहार और उड़ीसाकी राजधानी। यह अक्षा० २३° २३´ उ० तथा देशा० ८५° २०´ पू०के मध्य अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊँचाई २१०० फीट है। जनसंख्या २६ हजारके लगभग है। यहां फौज भी रहती है। शहरमें डिष्ट्रिक्ट जेल है जिसमें २१७ कैदी रखे जाते हैं। इसके अलावा जिला स्कूल, मिशन स्कूल, हिन्दी शिक्षकका ट्रेनिङ्ग स्कूल, शिल्प स्कूल और एक अन्ध-स्कूल भी है।

रांटा (हिं० स्त्री०) चोरोंकी सांकेतिक भाषा।

रांड़ (हिं० वि० स्त्री०) १ जिसका पति मर गया हो और पुनर्विवाह न हुआ हो, विधवा। २ रंडी, वेश्या।

रांढ़ (हिं० पु०) एक प्रकारका चावल जो बंगालमें अधिकतासे होता है।

रांता—रांगेका बना हुआ पत्र (leaf-tin)। त्रपु और रङ्ग शब्दमें मूलधातुका संक्षिप्त विवरण दिया गया है। टीन कहनेसे अकसर रांगेसे आवृत लोहेकी चादरका ही बोध होता है। वस्तुतः तांबेके बरतनमें कलाई करनेके लिये इसका अधिक व्यवहार होता है। देवप्रतिमाके अलङ्कारादि बनानेमें रांतेका ही विशेष प्रचार है।

Tin-Stone और Stream tin नामक दो प्रकारका यौगिक रांग जमीनके अन्दर पाया जाता है। पहले खनिज टीनके यौगिकको चूर्ण कर जलके द्वारा सिलेफेट बाहर करते हैं। इस अवशिष्ट टीनको वायुमें दग्ध करनेसे वह आर्सेनिक और गंधकविहीन हो जाता है। इस अवस्थामें लोहा अक्साइड और सलफाइड सलफेटरूपमें परिणत होता है। यदि सभी सलफाइड सालफेट आव कपारमें परिवर्त्तित न हो, तो उक्त दग्धावशिष्ट पदार्थके साथ जल मिला कर कुछ दिन वायुमें रखना होगा। सालफेट आव कपारको जलमें गला कर फेरिक अक्साइड जलके द्वारा धो डाले। इस प्रकार अन्यान्य वाह्य पदार्थ पृथक् होनेसे अक्साइड आव टीन अवशिष्ट रहेगा। इसके साथ कुछ कोयलेका चूर्ण मिला कर आंच देनेसे टीन धातु मुक्तावस्थामें पाई जाती है।

रांग देखनेमें सफेद होता है। पीट कर उसे इच्छानुसार घटा बढ़ा सकते हैं। १००° से० उत्तापसे इसका तार प्रस्तुत हो सकता है। २००° से० उत्ताप लगनेसे मड़ मड़ शब्द करता है।

वायु लगनेसे इसमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता। जलमिश्रित नाइट्रिक एसिड द्वारा मेटाष्टनिक एसिड और एमोनिया उत्पन्न होती है। नाइट्रिक एसिडके साथ अधिक जल मिला कर रांगा डालनेसे Stannous और Stannic nitrate उत्पन्न होता है। हाइड्रोक्लोरिक एसिडके साथ Stannous chloride बनता है तथा उद्जनवाष्प निकलती है।

रासायनिक प्रयोगसे रांगेसे Stannous hydrate, S. oxide, S. Iodide, S. Sulphide और S. Sulphate तथा Stannic hydrate, Stannic oxide, metastannic acid, Stannic acid, Stannic Chloride, Stannic Iodide, Stannic sulphide वा Mosaic gold और Stannic sulphate आदि गुणप्रधान औषध बनते हैं।

औषधादिके सिवा रांगेसे तांबेके बरतनमें कलाई होती तथा बनावटी जेवर, दुर्गादि देवप्रतिमाके साज तथा चांदीकी तरह सफेद खिलौने बनाये जाते हैं। इसे पीट कर पतला पत्तर बनाया जाता है। रांगेका पत्तर चांदीका काम करता है। Sal ammoniac के साथ रांगेका चूर्ण उत्तप्त पात्रके ऊपर रख कर सूती कपड़े वा रुईसे घिसने पर दाग पड़ जाता है। पीछे बालू अथवा राखसे घिस कर पालिश की जाती है। इसीको कलाई करना कहते हैं।

सुनहली और रूपहली दो प्रकारके रांगेका पत्तर बाजारमें बिकता है। पत्तर कई कामोंमें आता है।

रांध (हिं० पु० १ निकट, पास। २ पड़ोस, पार्श्व।

रांधना (हिं० क्रि०) भोजन आदि पकाना, पाक करना।

रांपी (हिं० स्त्री०) पतली खुरपीके आकारका मोचियोंका एक औजार जिससे वे चमड़ा तराशते, काटते और साफ करते हैं।

रांभना (हिं० क्रि०) गायका बोलना या चिल्लाना।

रा (सं० स्त्री०) रा सम्प्रदादित्वात् क्विप्। १ विभव।

२ दान । ३ काञ्चन । ४ श्री । (पु०) रा दाने (रातेर्डैः । उण् २।६३) इति डै । ५ धन । ६ शब्द ।

राइ (हिं० पु०) छोटा राजा, राय ।

राइता (हिं० पु०) रायता देखो ।

राइफल (अं० स्त्री०) घोड़ेदार बंदूक, बड़ी बन्दूक ।

राई (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बहुत छोटी सरसों । २ बहुत थोड़ी मात्रा या परिमाण ।

राउंड टेबुल कान्फरेंस (अं० स्त्री०) वह सभा या सम्मेलन जिसमें एक गोल मेजके चारो ओर राजपक्ष तथा देशके भिन्न भिन्न मतों और दलोंके लोग बिना किसी भेदभावके बैठ कर किसी महत्त्वके विषय पर विचार करें ।

राकस (हिं० पु०) राक्षस ।

राकसगद्दी (हिं० पु०) करंब नामकी बेल और उसकी जड़ । यह पंजाब, सिन्ध, गुजरात और सिंहलमें पाई जाती है । इसको जड़ ओषधिके काममें आती है। इसके खानेसे दस्त और कै होती है । गर्मीके रोगीको इसका रस पिलाया जाता है और गठियाके रोगीकी गांठ पर इसका लेप चढ़ाया जाता है ।

राकसताल (हिं० पु०) तिब्बतमें कैलासके उत्तर ओरकी एक झीलका नाम । इसे रावणका ह्रद और मान तलाई भी कहते हैं ।

राकसपत्ता (हिं० पु०) जंगली कुंवार जिसे कांटल और बबूर भी कहते हैं ।

राकसिनी (हिं० स्त्री०) राक्षसी, निशाचरी ।

राका (सं० स्त्री०) रा-दाने (कृदाधाराचिकलिभ्यः कः । उण् ३।४०) इति क, बहुलवचनादेव न ह्रस्वः । १ नदीविशेष । यह शाल्मलीद्वीपके अन्तर्गत है । (भागवत ५।२०।१०) २ खुजलीका रोग । ३ नवजातरजः स्त्री, वह स्त्री जिसको पहले पहल रजोदर्शन हुआ हो । रायते दीयते देवेभ्यो हविर्यस्यां । ४ सम्पूर्णेन्दु तिथि, पूर्णिमा । ५ पूर्णिमाकी रात । ६ चन्द्रमा । ७ महाभारतके अनुसार एक राक्षसीका नाम । यह खर और शूर्पणखाकी माता थी । (भार० ३।२७४।१८ अ०) ८ अङ्गिरा और स्मृतिकी कन्या । ९ अङ्गिरा और श्रद्धाकी कन्या । १० धातृकी पत्नी और प्रातरकी माता । ११ सुमालीकी एक कन्याका नाम ।

राकाचन्द्र (सं० पु०) राकायाश्चन्द्रः । पूर्णिमाका चन्द्रमा ।

राकानिशा (सं० स्त्री०) पूर्णिमाकी रात ।

राकापति (सं० पु०) चन्द्रमा ।

राकारमण (सं० पु०) पूर्ण चन्द्रमा ।

राकाविभावरी (सं० स्त्री०) राकारजनी, पूर्णिमाकी रात ।

राकाशशाङ्क (सं० पु०) पूर्णिमाका चन्द्रमा, राकाशशी ।

राकिणी (सं० स्त्री०) देवीकी शक्तिविशेष, योगिनीभेद । राकिणी, हाकिनी, लाकिनी आदि देवी भगवतीकी शक्तियां हैं । ये चौंसठ योगिनीके अन्तर्गत हैं । दुर्गापूजाके समय 'रां राकिणीभ्यो नमः' इस मन्त्रसे राकिनियोंकी पूजा करनी होती है ।

राकेन्दीवर बन्धु (सं० पु०) पूर्ण चन्द्रमा ।

राकेश (सं० पु०) राकायाः ईशः । १ पूर्ण चन्द्रमा । (भाग० १०।२९।२१) २ शिवमूर्त्तिभेद ।

राक्य (सं० त्रि०) राका अभिमताऽस्य (शान्तिकादिभ्यो ञ्यः । पा ४।३।९२) इति ञ्य । राका प्रिय पूर्णिमा जिसकी इच्छा हो ।

राक्षस (सं० पु०) रक्षन्त्यस्मात् रक्षः रक्ष एव राक्षसः । निशचर, दैत्य, असुर । पर्याय—कौणप, क्रव्याद, क्रव्यात्, अस्रप, आशर, रात्रिञ्चर, रात्रिचर, कर्बूर, निकषात्मज, यातुधान, पुण्यजन, नैर्ऋत, यातु, राक्षस, सन्ध्याबल, क्षपाट, रजनीचर, कीलापस्, नृचक्षस, नक्तञ्चर, पलाशिन्, पलाश, भूत, नीलाम्बर, कलमाष, कटप्रू, अगिर, कीलालपस्, नराधिष्मण । (जटाधर)

राक्षसोंकी उत्पत्तिके विषयमें रामायणमें इस प्रकार लिखा है,—प्राचीनकालमें पद्मयोनिने स्वसृष्ट प्राणियोंकी रक्षाके लिये कुछ जीवोंकी सृष्टि की । वे सब भूख प्यास से व्याकुल हो प्रजापतिके पास गये और उनसे बोले, 'प्रभो ! हम लोगोंका कर्त्तव्य क्या होगा, स्थिर कर दीजिये ।' तदनुसार प्रजापतिने उन्हें मनुष्योंकी रक्षा करनेका हुकुम दिया । उनमेंसे कुछने बुभुक्षितसत्त्व 'रक्षाम' तथा कुछने अबुभुक्षितसत्त्व 'यक्षाम' ऐसा कहा था, इस

लिये प्रजापतिने उससे कहा, कि 'रक्षाम' कहनेवाले राक्षस और 'यक्षाम' कहनेवाले यक्ष होंगे।

इस राक्षसकुलमें हेति और प्रहेति नामक दो भाई उत्पन्न हुए। हेतिने कालके पास जा कर उसकी बहनसे विवाह किया। उस स्त्रीसे हेतिके विद्युत्केश नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पीछे हेतिने संध्यानाम्नी राक्षसीके सालकटङ्कटा नामक कन्याके साथ अपने पुत्रका विवाह किया। यथासमय सालकटङ्कटाके गर्भ रहा, पर वह गर्भ गिरा कर स्वामीके साथ फिरसे विहार करने लगी।

इधर हरपार्वतीने आकाशमें परिभ्रमण करते समय पृथ्वी पर जातबालकके रोनेकी आवाज सुनी। रुद्रने पार्वतीके अनुरोधसे उस राक्षस संतानको अमरत्व प्रदान किया तथा उसकी उमर माताके बराबर बना दी। उसपुत्रका नाम सुकेश रखा गया। पार्वतीने भी शङ्कर-के वरदानकालमें कहा था, कि 'मेरे वरसे निशाचरीगण सद्योगर्भ त्याग करेंगी, सद्य ही पुत्र प्रसव करेंगी और सद्य ही उस संतानकी उमर माताके समान होगी।'

ग्रामणी नामक एक गन्धर्वने सुकेशको वर पाया देख कर उसके साथ अपनी कन्या देववतीको ब्याह दिया। उनसे माल्यवान्, सुमाली और माली नामक तीन परा-क्रमी पुत्र उत्पन्न हुए। ये तीनों भाई कठोर तपस्या द्वारा ब्रह्माके वरसे अजेय हो गये थे। उनकी प्रार्थनासे विश्वकर्माने दक्षिण समुद्रके किनारे त्रिकूट और सुवेल गिरिके मध्य रमणीय लङ्कापुरी बना दी थी। तीनों भाई एक साथ उस स्वर्ण लङ्कापुरीमें रहने लगे।

उसी समय नर्मदा नामकी एक गन्धर्वीने अपनी सुन्दरी, केतुमती और वसुदाका विवाह ज्येष्ठादिक्रमसे माल्यवान्, सुमाली और मालीके साथ कर दिया। सुन्दरीके गर्भसे वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञ-कोप, मत्त और उन्मत्त नामक अग्निसुक् सात पुत्र तथा अनला नामक एक कन्या; सुमालीकी पत्नी केतुमतीके गर्भसे प्रहस्त, कालिकामुख, दण्ड, अकम्पन, धूम्राक्ष, विकट, सुपार्श्व, प्रघस, भासकर्ण और संहाद नामक दश राक्षस तथा राका, कुम्भीनसी, पुष्पोत्कटा और कैकसी नामक चार कन्या एवं मालीके अनल, अनिल, हर और सम्पत्ति नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। मालीके चारों पुत्र विभीषणके अमात्य थे।

इस प्रकार बड़े परिवारसे परिवृत हो माल्यवानादि सुकेशवंशधरगण सुरपुर जा कर अजेय सुरगणको विध्वस्त और स्वर्गच्युत करने लगे। इस पर देवताओं और तपस्वियोंने महादेवकी शरण ली। महादेवने विष्णु-के ऊपर सुकेशका वंशध्वंस करनेका भार सौंपा। राक्षसोंको यह संवाद मालूम होने पर वे बड़े उत्तेजित हो समरक्षेत्रमें कूद पड़े। विष्णुके युद्धमें माली मारा गया, माल्यवान् और सुमालीने दलबलके साथ भाग कर लंकामें आश्रय लिया पीछे वे सब डरके मारे लंकाका परित्याग कर पत्नीपुत्रके साथ सालकटङ्कटावंशीय सुमालीके यहां रहने लगे।

जब विष्णुके भयसे प्रपीड़ित राक्षसश्रेष्ठ सुमाली पुत्रपौत्रके साथ रसातलमें रहता था उस समय धनेश्वर-को लंकामें राज्य करनेका हुकुम मिला। भगवान् राम-चन्द्रने पुलस्त्य-वंशीय जिन सब राक्षसोंको मारा था उनमेंसे माल्यवानादि सबसे बलवान् थे। ये पुलस्त्य-वंशीय किस प्रकार राक्षस हुए थे उसका विवरण नीचे दिया जाता है :—

प्रजापतिके पुत्र ब्रह्मर्षि पुलस्त्य मेरुगिरिके समीप राजर्षि तृणविन्दुके आश्रममें तपस्या करते थे। उसी समय राजर्षिकन्या, ऋषिकन्या, नागकन्या और अप्स-रायें उस रमणीय काननमें आ कर नाच गान करने लगीं। महातेजस्वी पुलस्त्यने तपमें बाधा डालनेवाली रमणियोंको शाप दिया, कि "जो मेरी दृष्टि पर पड़ेगी उसे उसी समय गर्भ रह जायगा।" राजर्षि तृणविन्दुके कन्याको इसकी कुछ भी खबर न थी, सो वह एक दिन वेदपाठ सुननेकी इच्छासे पुलस्त्यके आश्रममें गई। वेद-पाठके बाद मुनिवरकी दृष्टि उस ओर पड़ते ही राज-नन्दिनी गर्भवती हो गई। राजर्षिको ध्यानयोगसे कन्याके गर्भ रहनेका कारण मालूम हुआ। उन्होंने उसे ऋषिको समर्पण किया। राजनन्दिनीकी परिचर्यासे संतुष्ट हो पुलस्त्यने उसे वर दिया, "देवि! आज तुम्हें आत्मसम्भव पुत्र प्रदान करूंगा। वह पुत्र पौलस्त्य नामसे विख्यात हो पिता और माताका वंश फैलायेगा।

तुमसे वेदविश्रुत होनेके कारण उसका एक नाम विश्रवा भी होगा। इस विश्रवाके गुण पर मुग्ध हो भरद्वाज मुनि अपनी देववर्णिनी नामको कन्या उसे ब्याहेंगे। उनसे उत्पन्न पुत्रका नाम वैश्रवण रखा जायगा।"

वैश्रवणने तपस्या द्वारा लोकपितामह ब्रह्माको प्रसन्न कर निधीशत्व प्राप्त किया। ब्रह्माके वरसे वे चतुर्थ लोकपाल हुए तथा व्यवहारके कारण उन्हें पुष्पकविमान मिला। वर पानेके बाद धनेशने पितासे जा कहा, कि मेरे रहनेके लिये एक स्वतन्त्र मकान चाहिये। तदनुसार उन्हें राक्षस परिशून्य लङ्कापुरीमें ही रहनेको कहा गया। धनाधीश पुष्पकविमान पर चढ़ कर लङ्कापुरी गये।

जिस समय वैश्रवण लङ्कामें रहते थे, उस समय एक दिन सुमाली राक्षस रसातलसे अपनी कन्या कैकसीको साथ ले मर्त्यलोक आया। वह धनेश्वरको पुष्पकरथ पर आरूढ़ देख जलने लगा तथा किस प्रकार राक्षसगण फिर समृद्धसम्पन्न हो सके उसके लिये कोई उपाय ढूंढने लगा। उसने कैकसीसे कहा, 'पुत्रि! तुम पुलस्त्यनन्दन मुनिवर विश्रवाके निकट जा कर उनकी स्त्री होनेकी कोशिश करो, क्योंकि उससे धनेश्वरके समान तुम्हारे एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा।' पिताकी बात मान कर कैकसी संध्याकालमें विश्रवाके यहां गई। अग्निहोत्र समाप्त करनेके बाद मुनिवरने राक्षसकन्याको अपने सामने उपस्थित देखा और ध्यानयोगसे उसका मनोभिप्राय जान कर उससे कहा, 'भद्रे। तुम दारुण समयमें आई हो इस कारण तुमसे क्रूरकर्मा राक्षसपुत्र उत्पन्न होगा।' अनन्तर वह राक्षसकन्या मुनिवरके चरणों पर लोट गई और उत्तम पुत्रके लिये प्रार्थना करने लगी। मुनिने कहा, 'तुम्हारा छोटा लड़का मेरे वंशानुरूप धर्मात्मा होगा।" इसके कुछ समय बाद कैकसीने यथाक्रम दशकन्ध, कुम्भकर्ण, शूर्पनखा और विभीषणको प्रसव किया।

इस समय एक दिन धनेश्वर वैश्रवणको पुष्पकरथसे पिताके समीप जाते देख राक्षसी कैकसीने दशग्रीवको बुला कर कहा, "अपने भाई वैश्रवणको देखो। वह किस अभिमानसे रथ पर आ रहा है। तुम उससे कहीं दरिद्र हो। इसलिये कोशिश करो जिससे तुम भी उसीके समान ऐश्वर्यशाली हो सको।" यह सुन कर रावणको बहुत दुःख हुआ और उसने घोर तपस्या ठान दी। उसी तपस्याके फलसे उसने लङ्कापुरी प्राप्त की, सीताको हर लाया तथा और भी कितने कुकर्म किये। रामायणके उत्तरखण्डमें इसका विवरण विशदरूपसे दिया गया है।

रावण, विभीषण, कुम्भकर्ण आदि शब्द देखो।

ये राक्षसगण मायावी, बहुरूपधारी, कामगामी और योद्धा थे। रामायणीय युगमें राक्षस जातिके विशेष प्रभुत्वका परिचय पाया जाता है। महाभारतीय युगमें हम लोग भीमकर्त्तृक वक, किर्मीर और हिडिम्ब राक्षसका निधन तथा हिडिम्बाका पाणिग्रहण देख पाते हैं। महाबलिष्ठ भीमसेनके औरससे हिडिम्बाके एक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम घटोत्कच था। (वनपर्व)

ऐतरेय-ब्राह्मणके २।७ खण्ड पढ़नेसे मालूम होता है, कि उस समय राक्षसोंको यज्ञभाग (वध्यपशुका रक्त इत्यादि) देनेकी विधि थी। इनका वाक्य कर्कश और उच्चध्वनियुक्त होनेके कारण भीतिजनक था। उक्त खण्डका 'रक्षांसि न कीर्त्तयेत्' पद देख कर भाष्यकारने लिखा है,—"जातिविशेषानपेक्ष्य बहुवचननिर्देशः। राक्षसावान्तरजातीयानां मध्ये राक्षसम्, असुरं पिशाचं वा न किञ्चिदपि कीर्त्तयेत्। जातिविशेषाः श्रुत्यन्तरे सैन्धव्युपाख्याने श्रूयन्ते—"देवा मनुष्याः पितरस्तेभ्यत आसन्नसुरारक्षांसि पिशाचास्तेऽन्यतः।"

वह्निपुराणमें इस राक्षस जातिको रजोमात्रात्मक, विरूप और श्मश्रुल कहा है;—

"रजोमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम्।
ततः क्षुद्ब्रह्मणो जाता जज्ञे कोपाश्रयात्ततः॥
क्षुत्क्षामानन्धकारांश्च सोऽसृजद्भगवांस्ततः।
विरूपाः श्मश्रुला जातास्तेऽभ्यधावन्त तं प्रभुम्॥
नैवं भो रक्ष्यतामेष तैरुक्तं राक्षसास्तु ते॥" (कल्किपु०)

मत्स्यपुराण आदिसर्गके कश्यपान्वय नामक ६ठे अध्यायमें इनकी उत्पत्तिका विवरण और प्रकारसे दिया गया है।

"रक्षोगणं क्रोधवशात् स्वनामानमजीजनत्॥
दंष्ट्रिणां नियुतं तेषां भीमसेनादृगतं क्षयम्॥"

पद्मपुराण-सृष्टिखण्डके १५वें अध्यायमें सूर्यलोकसे नीचेकी ओर इनके विचरणका स्थान बताया है,—

"अत ऊर्द्ध्वं हि विप्रेन्द्र राक्षसा ये कृतैनसः।
तेतु सूर्यादधः सर्वे विहरन्त्युद्ध्र्वर्वजिताः॥"

वामनपुराणके ३१वें अध्यायमें क्षुतकीटादि उत्पन्न, उच्छिष्टाभित, केशावपन्न, अधूत, मारुतस्वासवत् इत्यादि घृणित अन्न राक्षसका खाद्य पदार्थ है। इसलिये विद्वानोंको वे सब पदार्थ नहीं खाने चाहिये। केवल यज्ञाङ्गभूत मांसभक्षण विधिसिद्ध है, दूसरे दूसरे मांसको राक्षसीय भोजन कहते हैं। मनुके मतसे राक्षसीय भोजन नहीं करना चाहिये। (मनु ५।३१) मन्वादिमें रात्रिकालके श्राद्धादिको राक्षसी श्राद्ध कहा है। (मनु ३।२८०)

२ आठ प्रकारके विवाहके अन्तर्गत विवाहविशेष। युद्धमें कन्याको हरण कर जो विवाह किया जाता है उसे राक्षस-विवाह कहते हैं।

"आसुरो द्रविणादानाद्गान्धर्व्वः समयान्मिथः।
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात्॥"

(उद्वाहतत्त्व)

मनुमें इसका लक्षण यों लिखा है,—

"हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते॥"

(मनु ३।३३)

कन्यापक्षीय लोगोंका हनन, छेदन और उनका घर भेद कर 'हा मुझे मारा' इस प्रकार रोती हुई कन्याको बलपूर्वक हरण कर जो विवाह किया जाता है, उसे राक्षसो विवाह कहते हैं। यह विवाह क्षत्रियके लिये उत्तम है। गान्धर्व और राक्षस-विवाह पृथगभावमें अथवा मिश्रण-भावमें जिस किसी तरहसे क्यों न हो क्षत्रियके लिये दोनों ही धर्मजनक है।

यह विवाह क्षत्रियके लिये धर्मजनक होने पर भी इससे जो सन्तान उत्पन्न होते वे क्रूरकर्मा, मिथ्यावादी और वेदविद्वेषी होते हैं। इसी कारण इस विवाहको निन्दनीय बताया है।

"इतरेषु च शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा।
निन्दिते निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान् विवर्जयेत्॥"

(मनु ३।४१:४२) विवाह शब्द देखो।

(पु० क्ली०) ३ साठ संवत्सरोंमेंसे उनचासवां संवत्। ४ कुवेरके धनकोशके रक्षक। ५ कोई दुष्ट प्राणी। ६ वैद्यकमें एक रस जो पारे और गंधकके योगसे बनता है। यह रस पेटकी बादी दूर करता और भूख बढ़ाता है। ७ जैनमतानुसार आठ प्रकारके व्यन्तरोंमेंसे एक। ८ एक कवि। लोग इन्हें राक्षस पण्डित कहा करते थे। ९ तीस मुहूर्त्त।

राक्षसग्रह (सं० पु०) उन्माद रोगभेद।

राक्षसता (सं० स्त्री०) राक्षसस्य भाव तल्-टाप्। राक्षसत्व, राक्षसका भाव या धर्म।

राक्षसी (सं० स्त्री०) राक्षस ङीप्। १ कौणपी। २ दंष्ट्रा। ३ चण्डा, चोर नामक गन्धद्रव्य। ४ सायाह्न बेला, सन्ध्याकाल। इस राक्षसी समयमें सभी काम निन्दनीय है।

"प्रातःकालो मुहूर्त्तांस्त्रीन सङ्गमस्तावदेव तु।
मध्याह्न स्त्रिमुहूर्त्तः स्यादपराह्णस्ततः परम्॥
सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यात् श्राद्धं तत्र न कारयेत्।
राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु॥" (तिथितत्त्व)

राक्षसेन्द्र (सं० पु०) राक्षसानामिन्द्रः। १ रावण। २ राक्षसपति मात्र।

राक्षा (सं० स्त्री०) लाक्षा बलयो रैक्यात् रत्वं। लाक्षा, लाख।

राक्षोघ्न (सं० त्रि०) १ रक्षोहन सम्बन्धीय। अगस्त्य और अग्निने राक्षसकी हत्या की थी इसलिये उनके सम्पर्कीय मन्त्रादि 'अगस्त्यस्य राक्षोघ्नम्' 'अग्ने राक्षोघ्नम्' नामसे प्रसिद्ध है। २ दो साम।

राक्षोऽसुर (सं० पु०) राक्षस और असुर।

राख (हिं० स्त्री०) किसी बिलकुल जले हुए पदार्थका अवशेष, भस्म, खाक।

राखना (हिं० क्रि०) १ रक्षा करना, बचाना। २ पेड़ या फसलको जानवरों या चिड़ियोंके खाने या लोगोंके लेनेसे बचाना, रखवाली करना। ३ आरोप करना,

बताना। ४ छिपाना, कपट करना। ५ रोक रखना, जाने न देना। ६ रखना देखो।

राखी (हि० स्त्री०) १ वह मंगल सूत जो कुछ विशिष्ट अवसरों पर विशेषतः श्रावणी पूर्णिमाके दिन ब्राह्मण या और लोग अपने यजमानों अथवा आत्मीयोंके दाहिने हाथकी कलाई पर बांधते हैं, रक्षाबंधनका डोरा। २ राख देखो।

राखीपूर्णिमा—प्रसिद्ध श्रावणी पूर्णिमा। इस दिन उत्तर पश्चिमाञ्चलके मनुष्य आपसमें सौहार्द्य वृद्धिके लिये राखी बांधते हैं। रक्षा देखे।

राग (सं० पु०) रञ्जनमिति रज्यतेऽनेनेति वा रञ्जभावे करणे वा घञ्। (घञि च भावकरणयोः। पा ६।४।२७) इति न लोपः। १ मात्सर्य। २ लोहितादि। ३ क्लेशादि। ४ अनुराग। ५ मोह। ६ गान्धारादि। ७ नृत्य। (मेदिनी) ८ चन्द्र। ९ सूर्य। (शब्दरत्ना०) १० लाक्षादि। ११ रक्तिमत्विष्। १२ रञ्जन। १३ प्रीति, प्रेम।

१४ अभिमत विषयाभिलाष। यह पातञ्जलोक्त पांच प्रकारके क्लेशोंके अन्तर्गत एक क्लेश है। इसका लक्षण है—"सुखानुशयी रागः" (पात० २।७) 'सुखमनुशते इति सुखानुशयी सुखज्ञस्य सुखानुस्मृतिपूर्वकसुखसाधनेषु तृष्णारूपो गर्द्धः रागसंज्ञकः क्लेशः'। (भोज)

सुखानुशय तृष्णाको कहते हैं। सुखभोगी व्यक्तिके सुखका अनुसरण होने पर सुखसाधन कार्यमें चित्तकी आसक्ति होती है। यह आसक्ति ही 'राग' के नामसे कही जाती है। अविद्याके आक्रमणसे आक्रान्त हो कर मनुष्य कृत्रिम सुखलालसाके क्लेशमें पड़ते हैं। सुख और दुःख इन दोनों प्रकारके साधन-विषयमें अभिलाष होना राग है।

१५ सङ्गीतशास्त्रका राग। १६ अलक्तक। १७ सिन्दूर।

राग (संगीतशास्त्रीय)—प्रकृत और विकृतके भेदसे षड्ज आदि उन्नीस स्वर और वर्णोंसे अलंकृत जो ध्वनिविशेष मानवोंके चित्त रञ्जित करती है, उसे राग कहते हैं।

भरतादि मुनियोंका कहना है, कि त्रिजगत्-वासी जनोंका चित्त जिसके द्वारा रञ्जित होता है, उसीको राग कहा जा सकता है। अथवा जिसे सुनते ही जनसाधारणके चित्तमें अनुरागका सञ्चार होता है, वही राग है; क्योंकि सब लोगोंका रञ्जन करता है, इसीसे उसका नाम राग पड़ा है।*

"गोपीभिर्गीतिमारब्धमेकैकं कृष्णसन्निधौ।
तेन जातानि रागाणां सहस्राणि तु षोड़श॥
रागेषु येषु षट्त्रिंशत् रागा जगति विश्रुताः।
कालक्रमेण तत्रापि ह्रास एव त दृश्यते॥
मेरोरुत्तरतः पूर्वे पश्चिमे दक्षिणे तथा।
सामुद्रकाश्च ये देशास्तत्रामीषां प्रचारणा॥"

(सङ्गीतदामोदर)

श्रीकृष्णके समक्ष गोपियोंने एक एक करके गीत गाना आरम्भ किया, तो षोड़श सहस्र रागोंकी उत्पत्ति हो गई। इन सब रागोंमें इस जगत्में छत्तीस राग प्रसिद्ध हैं बादमें कालक्रमसे फिर उसमें भी संख्या घट गई है। सुमेरुके उत्तर, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण तथा समुद्रके उपकण्ठमें जितने भी देश हैं, वहां ये सब राग विद्यमान हैं।

वर्ण।

स्वर-समूहको यथाविधि गानेका नाम वर्ण है। वर्ण चार हैं—स्थायी, आरोही अवरोही और सञ्चारी।

स्थायी—षड्जादि स्वरोंमें जो कोई स्वर रह रह कर अर्थात् देर देरसे रागादिमें उच्चारित होता है, उसे अथवा जिस स्वरमें राग कुछ देर तक ठहरता है, उसे स्थायी कहते हैं।

आरोही—स्वरोंकी क्रमोर्द्ध गतिको अर्थात् षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद इस प्रकारसे स्वरोंके क्रमोच्चारणको आरोही कहा जाता है।

अवरोही—स्वरोंके क्रमशः अधोगतिको अर्थात्

---

* "योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः।
रञ्जको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः॥
येस्तु चेतांसि रज्यन्ते जगत्त्रितयवर्त्तिनाम्।
ते रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भरतादिभिः॥
अपरञ्च। यस्य श्रवणमात्रेण रज्यन्ते सकलाः प्रजा।
सर्वानुरञ्जनाद्धेतोस्तेन राग इति स्मृतिः॥"

(सङ्गीतदर्पण ८५)

निषाद, धैवत, पञ्चम, मध्यम, गान्धार, ऋषभ और षड़ज इस नियमसे क्रमशः ऊंचेसे नीचे लानेको अवरोही कहते हैं।

सञ्चारी—स्थायी, आरोही और अवरोही इन तीनों-के संमिश्रणसे स्वर-सञ्चार करनेको सञ्चारी कहते हैं।

रागादिमें प्रयुक्त स्वरोंके प्रकारभेदसे स्थायी आदिकी तरह ग्रह, न्यास और अंश ये तीन नामान्तर निर्दिष्ट किये गये हैं।

ग्रह—जो स्वर गीतादिके प्रारम्भमें ही स्थापित होता है, उसे ग्रहस्वर कहते है।

न्यास—जिस स्वरमें गीतादिकी समाप्ति होती है, उसे न्यास कहते हैं।

अंश—जो स्वर रागादिमें बहुतायतसे प्रयुक्त होता है अर्थात् जिस स्वरके बिना रागकी मूर्त्ति स्पष्टरूपसे प्रकट नहीं होती, उसका नाम अंश है। इसे 'जाम' भी कहते हैं। (संगीतदर्पण १६०-१६३)

अंग।

रागोंके चार अङ्ग हैं—रागाङ्ग, भाषाङ्ग, क्रियाङ्ग और उपाङ्ग।

रागाङ्ग—रागका छायामात्रके अनुकरण करनेको रागाङ्ग कहते हैं।

भाषाङ्ग—भाषाकी छायामात्रका आश्रय लेना ही भाषाङ्ग है।

क्रियाङ्ग—रागादि गानेमें उत्साहको क्रियाङ्ग कहा जा सकता है।

उपाङ्ग—रागाङ्ग, भाषाङ्ग और क्रियाङ्ग इन तीनोंका अति सामान्यमात्र अनुकरण करना उपाङ्ग कहलाता है। (संगीतदर्पण, रागाध्याय २६१)

रागके भेद।

रागादि गाते समय काण्डारलाकी विशेष आवश्यकता है। अति उच्च स्वरोच्चारणसे ;शीघ्रता और कौशल पूर्वक विविध गमक अर्थात् स्वरकम्पन द्वारा रागादिका विभूषित करनेका नाम काण्डारला है।

मतङ्गके मतसे राग—शुद्ध, छायालग और सङ्कीर्ण इस तरह तीन प्रकारके होते है।

शुद्ध—रागोंका शास्त्रोक्त नियमानुसार विशुद्धभावसे अर्थात् अन्य किसी रागके आश्रयके बिना एक एकको पृथक् पृथक् गाना चाहिए। इस प्रकार गाये हुए राग शुद्ध राग कहलाते हैं।

छायालग—जिन रागोंमें अन्य किसी रागकी छाया पाई जाय, वे छायालग कहलाती हैं।

सङ्कीर्ण—जिन रागोंमें बहुतसे रागोंका संमिश्रण रहता है, उन्हें सङ्कीर्ण कहते हैं।

ये तीन प्रकारके राग औड़व, षाड़व और सम्पूर्ण इन तीन भागोंमें विभक्त हैं।

औड़व—जिन रागोंमें षड़ आदि सप्तस्वरोंमेंसे केवल पांच स्वर व्यवहृत होते हैं, उनका नाम औड़व है।

षाड़व—छहों स्वरोंमें गाये जानेवाले राग षाड़व कहलाते हैं।

सम्पूर्ण—जो राग षड़जादि सातों स्वरोंमें प्रयुक्त होते हैं, उनकी गिनती सम्पूर्ण रागोंमें हैं।

रागोत्पत्ति।

सभी सङ्गीतशास्त्रोंके मतसे महादेव और पार्वती इन दोनों देवदेवीके संयोगसे रागकी उत्पत्ति हुई है। महादेवके पांच मुखोंसे पांच और भगवतीके मुखसे एक, इस तरह छह राग ही पहले उत्पन्न हुए थे। देवदेव महादेवके सद्योजात मुखसे श्री, वामदेव मुखसे वसन्त, अघोर मुखसे भैरव, तत्पुरुष मुखसे पञ्चम और ईशान-मुखसे मेघ तथा गिरिजाके मुखसे नट्टनारायण इस प्रकार छह रागोंकी उत्पत्ति हुई।

किसी समय जगदम्बाने महादेवसे कहा,—"हे देव! यदि मुझ पर आप प्रसन्न हुए हैं, तो अनुग्रहपूर्वक बतलाइये कि कौनसे तो राग हैं और कौन सी रागिणी? और उन रागरागिणियोंमेंसे कौन-कौन सी किन किन ऋतुओं और किन-किन दिनोंमें गाना विधेय है तथा स्वरविन्यास और मूर्त्ति किस प्रकार है?" महादेवने भगवतीके प्रश्नके उत्तरमें कहा था—"श्री, वसन्त, भैरव, पञ्चम, मेघ और नट्टनारायण ये छह राग हैं और ये पुरुष कहलाते हैं। इन छहोंकी प्रत्येककी छह छह स्त्रियां कल्पित हुई हैं और वे रागिणी कहलाती हैं। मालश्री, त्रिवणी, गौरी, केदारी, मधुमाधुरी और पहाड़िका ये छह श्रीकी स्त्रियां हैं। इसी तरह देशी, देवकिरी, वराटी,

तोड़िका, ललिता और हिन्दोली ये छः वसन्तकी; भैरवी, गुर्ज्जरी, रामकिरी, गुणकिरी, बङ्गाली और सैन्धवी ये छः भैरवकी ; विभाषा, भूपाली, कर्णाटी, बड़हंसिका, मालवी और पटमञ्जरी ये छः पञ्चमकी ; मन्दारी, सौठी, सावेरी, कौशिकी, गान्धारी और हरश्रृङ्गारा ये छः मेघकी तथा कामोदी, कल्याणी, आभीरी, सारङ्गी और नट्टहाम्बीरा ये छः नट्टनारायण रागकी स्त्रियां हैं।

(सङ्गीतदर्पण)

श्रीराग।

श्रीराग ग्रहांशन्यास षड्जसे विभूषित है, सम्पूर्ण जातीय, नाना गुणयुक्त और प्रथमा (उत्तरमन्द्री) मूर्च्छनाविशिष्ट होता है। कोई कोई ग्रहांशन्यास षड्जके बदले ऋषभका नाम उल्लेख कर गये हैं।

स रि ग म प ध नि स रि ग म प ध नि स रि।

मूर्त्ति—दिव्य मूर्त्तिधारी, विलासवेशी श्रीराग स्त्रियोंके साथ प्रमोद-काननमें विहारके लिए प्रसूनचय चयन कर रहा है।

मालश्री—श्रीरागकी पत्नी मालश्री श्रीरागकी तरह षड्ज ग्रहांशन्यासा, रागाङ्गसे परिपूर्ण, उत्तरमन्द्रा, मूर्च्छनायुक्त और श्रृङ्गाररसमण्डिता अर्थात् श्रृङ्गाररसमें गाने योग्य कही गई है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—क्षीणांगी, मालश्री, आम्रवृक्षके नीचे बैठ कर एक रक्तकमल हाथमें लिये उसे घुमाती हुई मन्द मन्द हंस रही हैं।

त्रिवणी—त्रिवणी ऋषभ और पञ्चमहीन औड़वजातीया है, इसका ग्रहांशन्यास स्वर धैवत है।

ध नि स ग म ध।

मूर्त्ति—अति पीतवर्णा, कृशाङ्गी और हारसे सुशोभित त्रिवणी अपने कान्तके साथ रम्भातरुके नीचे बैठी हुई हैं।

गौरी—ऋषभ और पञ्चम हीन औड़वजातीय गौरीका ग्रहअंश और न्यास षड्ज है; इसमें उत्तर मन्द्र[ा]नाका प्रयोग होता है।

स ग म ध नि स।

मूर्त्ति—पूर्णेन्दुवक्त्रा और अति सौभाग्यवती गौरी गजमुक्ताके हार और प्रफुल्ल कुसुममालासे सुशोभित और मयूरपुच्छसे बने हुए अलंकारोंसे अलंकृत तथा नाना प्रकारके अनुलेपन द्रव्य द्वारा विलिप्त हो कर अति मनोहर वेश धारण किये हुए हैं।

केदारी—केदारीको शास्त्रोंमें ऋषभ और धैवतरहित औड़वजातीय निषाद ग्रहांशन्यासयुक्त काकली स्वर-विभूषित और मार्गीमूर्च्छनाविशिष्ट कहा गया है।

स ग म प नि स।

मूर्त्ति—केदारीके मस्तक पर जटाभार, माथेके नीचे चन्द्रखण्ड और गलेमें सर्पकी उत्तरीय शोभा पा रही है। ये योगीपीठ पर बैठ कर सर्वदा देवदेव महादेवके ध्यानमें मग्न रहती हैं।

मधुमाधवी मधुमाधवीके ग्रह, अंश और न्यास षड्ज हैं; इसमें उत्तर मुद्रा मूर्च्छनाका प्रयोग हुआ करता है; मधुमाधवी, गान्धार और धैवत हीन औड़वजातीया है।

स रि म प नि स।

मूर्त्ति—मधुमाधवीके नेत्रयुगल प्रफुल्ल नीलोत्पलके समान हैं, अंग कृश और नीलवस्त्र पहने हुए हैं। ये अत्यन्त पतिव्रता हैं, सर्वदा तमालवृक्षके नीचे वेदी पर अवस्थान करती है।

पहाड़ी—यह ऋषभ और पञ्चमहीन औड़वजातीय है। पहाड़ीका ग्रहांश न्यास स्वर षड्ज है, यह रागिणी सुननेमें कुछ कुछ तैलङ्गदेशीय रागके सदृश है।

रि ग म ध नि स रि।

मूर्त्ति—अति गौराङ्गी। देखनेमें अति मनोहर, शुकपक्षीकी पूंछसे बने हुए वस्त्र पहने हुए हैं। सर्वदा रसपूर्ण-चित्ता रहती हैं तथा वेशी सुरतोत्सुका हो कर निद्रित कान्तको नाना छलोंसे प्रबोधित कर रही हैं।

देवगिरी—देवगिरीमें वक्ष्यमान सारङ्गीके समान स्वरविन्यासादि विद्यमान हैं।

स रि म प नि स।

मूर्त्ति—मदमत्त देवगिरी कादम्बिनीके समान श्यामाङ्गी, अवयव उत्तम गोलाकार, स्तन पीनोन्नत, नयनयुगल मत्त चकोर तुल्य अत्यन्त मनोहर और ओष्ठद्वय पके बिम्ब-

कमलके समान लोहित, गलदेश अत्यन्त सुन्दर हार-लतासे सुशोभित है, देखनेमें अत्यन्त मनोज्ञ मालूम होती हैं।

बराटी—बराटी सम्पूर्णजातीया है, इसका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षड्ज है, इसमें उत्तर मन्द्र मूर्च्छना का प्रयोग देखनेमें आता है। यह रागिणी गायककी कीर्त्ति बढ़ाती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—बराटी सुकेशी, अति वराङ्गना, हाथमें कङ्कण और कानोंमें पारिजातकुसुम लिए चामर ढाल कर पतिको प्रमोदित कर रही है।

तोड़ी वा तोड़िका—यह सम्पूर्णजातीया, इसका ग्रह, अंश और न्यास स्वर मध्यम है। इसमें सौवीरी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। कोई कोई षड्ज स्वरको तोड़ीका ग्रह, अंश और न्यास कहते हैं।

म प ध नि स रि ग म अथवा स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—तुषार वा कुन्दकुसुमके समान उज्ज्वल श्वेतवर्णा हैं, काश्मीर देशके कर्पूरसे विलिप्त हो कर वनमें वीणा बजाती हुई हरिणोंको विनोदित कर रही है।

ललिता—ऋषभ पञ्चमहीना औड़वजातीय है। इस ग्रह, अंश और न्यास षड्ज स्वर है इसमें शुद्ध मध्य मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। कोई कोई इसे सम्पूर्णजातीया भी कहते हैं।

स ग म ध नि स अथवा स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—स्तन भारसे नताङ्गी ललिता प्रफुल्ल सुवर्णवर्ण पङ्कज और सप्तपर्ण पुष्पकी मालासे सुशोभित हो कर आलस्यसे आँखें मींच कर प्रातःकाल घरसे निकल रही है।

हिन्दोली—ऋषभ और धैवत हीन औड़वजातीय हिन्दोलीका ग्रह, अंश और न्यास स्वरकाकली षड्ज है, इसमें शुद्ध मध्या मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स ग म प नि स।

मूर्त्ति—हिन्दोली अत्यन्त कृशाङ्गी, देखनेमें अति रमणीया, विशुद्ध भावोंसे परिपूर्णा और मत्तस्वभावा हैं। इनका वर्ण कपोतके समान और कण्ठ स्वर अति मधुर है। ये स्वामीके मुखके ओर दृष्टि किये हुए बैठी हैं।

भैरव—यह ऋषभ पञ्चमहीन औड़वजातीय है और इसका ग्रह, अंश और न्यास स्वर धैवत है। इस रागमें विकृत धैवतादि मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स ग म ध ;

मूर्त्ति—जिनके मस्तक पर गङ्गादेवी सर्वदा कुलुकुलध्वनि कर रही हैं, ललाट पर चन्द्रखण्ड तिलकके समान शोभा पा रहा है, तीन आँखें हैं, सर्पके भूषणसे विभूषित हैं, शुक्लवर्ण गजचर्म पहने हुए हैं तथा एक हाथमें जाज्वल्यमान त्रिशूल और दूसरे हाथमें नरमुण्ड है, वे ही रागराज भैरव हैं।

भैरवी—वे सम्पूर्णजातीया हैं और इनका ग्रह, अंश और न्यास स्वर मध्यम है। भैरवीमें सौवीर, मूर्च्छना और मध्यम ग्रामका स्वर ही व्यवहृत होता है। किन्हीं किन्हीं पण्डितोंके मतसे भैरव रागके स्वर ही भैरवीके अंग हैं।

स रि ग म प ध नि स। अथवा ध नि स ग म ध।

मूर्त्ति—पीतवर्णा विशाललोचना भैरवपत्नी भैरवी अत्यन्त रमणीया हैं और कैलासपर्वत पर स्फटिकमणिके पीठ पर बैठी हुई बीच बीचमें घंटा बजाती हुई प्रफुल्ल कुसुमों द्वारा महादेवकी पूजा कर रही हैं।

बङ्गाली—ऋषभ धैवतहीन औड़वजातीय बंगालीका ग्रह, अंश और न्यास षड्ज है। किन्तु कल्लिनाथके मतसे ये मध्यमयुक्त और सम्पूर्णजातीया हैं। इस रागमें उत्तर मन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स ग म प नि स। अथवा म प ध नि स रि ग म।

मूर्त्ति—ये काञ्चीदाम-विभूषिता पुष्पपात्रहस्ता और दीर्घनयना हैं, इनके बांये हाथमें उज्ज्वल त्रिशूल है। ये तरुणा-वरुणवर्णा, जटामण्डित तथा सर्वाङ्गमें भस्म लेपन करके भी अपने रूपसे दशों दिशाओंको उज्ज्वल कर रही है।

सैन्धवी—सैन्धवी सम्पूर्णजातीय हैं। किन्हींके मतसे ऋषभहीन षाड़वा हैं और इसमें उत्तर मन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। सैन्धवीका ग्रह अंश और न्यास स्वर षड्ज है, यह रागिणी अकसर वीररसमें प्रयुक्त होती है।

स रि ग म प ध नि स। अथवा स ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—शिवभक्तिमती सैन्धवी रक्तवस्त्र पहने हुए, एक हाथमें त्रिशूल और दूसरे हाथमें एक बन्धुलि पुष्प लिए शोभित हैं। यह रागिणी अत्यन्त कोपनस्वभावा हैं और अधिकतर वीर रसमें प्रयुक्त होती है।

रामकिरी—उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनासे शोभित सम्पूर्ण-जातिया रामकेरीका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षड्ज हैं। यह करुणरसोद्दीपिका है। किसीके मतसे यह रागिणी ऋषभधैवतहीन औड़वजातीय है। किसीके मतसे पञ्चमहीना षाड़व जातीया है। इस प्रकार रामकिरी रागिणी औड़व, षाड़व और सम्पूर्ण तीनों ही प्रकारकी होती है।

स रि ग म प ध नि स अथवा स ग म प नि स।

मूर्त्ति—यह स्वर्णकी प्रभायुक्ता भूषणोंसे विभूषिता नीलाम्बरधारिणी, मधुरभाषिणी और माननीय हैं। समीपवर्त्ती पतिकी ओर दृष्टि किये हुए हैं।

गुर्जरी—गुर्जरी सम्पूर्णजातिया है और इसका ग्रह, अंश और न्यास स्वर ऋषभ है। इसकी मूर्च्छना पौरवी है और इसमें कुछ कुछ बंगालीका आभास पाया जाता है।

रि ग म प ध नि स रि।

मूर्त्ति—श्यामवर्णा, मन्मथभावयुक्ता, प्रेमाभिलाषिणी गुर्जरी विविध विचित्र पुष्पाञ्चित मृदु पल्लवों पर बैठी हुई है।

गुणकिरी—रजनी मूर्च्छनायुक्त ऋषभधैवतहीन औड़वजातीय भैरवपत्नी गुणकिरीका ग्रह, अंश और न्यास स्वर निषाद है। कोई कोई इसे षड्ज ग्रहांशक-न्यास भी कहा करते हैं।

नि स ग म प नि अथवा स ग म प नि स।

मूर्त्ति—गुणकिरी पतिके विरहसे अत्यन्त शोकाभिभूता हो कर अनवरत रोनेके कारण आंखें लाल हो गई हैं, भूमि पर लोटनेसे शरीर पर धूल छा गई है और कबरीबन्धनको खोल कर करुणापूर्ण नत दृष्टिसे देख रही हैं।

पञ्चम राग।

पञ्चमराग—पञ्चमहीन, षाड़वजातीय और शृंगाररसपूर्ण है। इसका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षड्ज है। इस रागमें उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। किसी किसीने इसे सम्पूर्ण जातीय माना है।

स रि ग म ध नि स अथवा स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—ये अति मनस्वी, कोकिलके समान मधुर-भाषी, स्त्री-विलासी, शृङ्गारप्रिय और विशाल अरुण नेत्रयुक्त हैं तथा सर्वदा रक्तवस्त्र पहने रहना पसन्द करते हैं।

विभाषा—विभाषाके ग्रह, अंश, न्यास और मूर्च्छना आदि ललिताके समान होते हैं।

स ग म ध नि स।

मूर्त्ति—ये विलासवेशसे विभूषित, रसभावयुक्त, स्त्री-पुं-नृत्यमें अनुरक्त हैं, और समस्त रात्रि सुरतसुखसे बिता कर निद्राके आलस्यसे कातर हो कर प्रातःकाल शय्या त्याग रही हैं।

भूपाली—सम्पूर्ण जातीया भूपालीका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षड्ज है और उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। कोई कोई कहते हैं, कि यह पञ्चमहीना औड़वजातीयमें गिनी गई है। इस रागिणीका अधिकतर शान्तिरसमें भी प्रयोग होता है।

स रि ग म प ध नि स अथवा स ग म ध नि स।

मूर्त्ति—गौराङ्गी, पीनोन्नतपयोधरा, चन्द्रमुखी, कुंकुम लेपे हुए मनोहारिणी शान्तिरसयुक्ता भूपाली पतिके विरहसे कातर होकर उनकी चिन्तामें मग्न हैं।

कर्णाटी—कर्णाटीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर विकृत निषाद है, इसमें मार्गी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। कर्णाटी श्रोताको अत्यन्त सुख पहुंचाती है।

नि स रि ग म प ध नि।

मूर्त्ति—ये मयूरके कण्ठके समान अति चिक्कणाङ्गी, ललाट पर इन्दुखण्ड धारण किये हुए, अति परिष्कृत शुभ्र वस्त्र पहने, हस्तिदन्त निर्मित कर्णभूषणसे भूषित हो कर मधुरस्वरसे सुरगणोंका मन हरण कर रही हैं।

बड़हंसिका—इसके स्वरग्राम आदि कर्णाटीके सदृश हैं।

नि स रि ग म प ध नि।

मूर्ति—मृदु मन्द हास्यमुखी, मनोहर चञ्चलदृष्टि, पतिके सङ्गोत्सवमें हृष्टचित्ता, विलासमें रोमाञ्चिताङ्गी वढ़हंसिका सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

मालवी—ऋषभ पञ्चमहीना औड़वजातीया मालवी-का ग्रह, अंश और न्यासस्वर निषाद है। मालवीमें रजनी, मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

नि स ग म ध नि

मूर्त्ति—निर्मल-गौराङ्गी, अति कामातुरा मालवीने विरह वेदनासे कातर और पाण्डुवर्ण हो कर पतिके ध्यानमें चित्त समर्पण करके निद्रा त्याग दी है।

पटमञ्जरी—पञ्चमांशग्रह-न्यास-युक्ता पटमञ्जरी सम्पूर्ण जातीया हैं और रसिकोंकी अत्यन्त प्रिय है। इसमें हृष्यका मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

प ध नि स रि ग म।

मूर्त्ति—पटमञ्जरी विरह-यन्त्रणासे म्लानमुख और नयनजलसे सर्वाङ्ग प्लावित करके अति दीन भावसे बहुत देरसे पतिकी चिन्तामें निमग्न रह कर बारबार दीर्घ निश्वास ले रही है।

मेघराग।

शृङ्गाररसोद्दीपक सम्पूर्ण जातीय मेघरागका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। इसमें उत्तरायता मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—विहारशील, प्रगाढ़-नीलदेह, गम्भीरनिनादी, पिङ्गलनेत्र और कामातुर मेघराग कामनियोंका अत्यन्त प्रिय है।

मन्दारी—ये षड़्ज पञ्चम-हीना औड़वजातीया हैं। इसका ग्रह, अंश और न्यास-स्वर धैवत है। इसमें पौरवी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। यह रागिणी वर्षा ऋतुमें अत्यन्त सुखप्रदा होती है।

ध नि रि ग म ध।

मूर्त्ति—गौराङ्गी, अतिकृशा, कोकिलके समान मनोहर कण्ठस्वरयुक्ता, यौवनकृत मदनके सन्तापसे सन्तप्तचित्ता, अति मलिन-वेशिनी मन्दारी गीतके छलसे अपने पतिका स्मरण करके वीणा बजाती हुई रो रही है।

सौरटी—ऋषभहीना षाड़वजातीया सोरटीका ग्रह अंश और न्यासस्वर पञ्चम है। किसी किसीने पञ्चमके स्थानमें षड़्जको ही ग्रहांश न्यास-स्वर माना है।

प ध नि स ग म प अथवा स ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—कन्दर्पके समान सुचारु गौरवर्णा, सोरटी पीनोन्नतपयोधरोंसे शोभिता, हारवल्लोसे विभूषिता और कर्णोत्पलसे लगे हुए भ्रमरकी ध्वनिसे विलम्बचित्ता हो कर स्वामीके पास जा रही हैं और उसके आवेशमें बाहुलताएं अत्यन्त शिथिल हो गई है।

सावेरी—पञ्चमहीना, षाड़वजातीया, धैवतबहुला और करुणारसप्रधाना सावेरीका ग्रह, नक्षत्र और न्यास-स्वर षड़्ज है। इसमें मन्द्रमध्यमका प्रयोग होता है।

स रि ग म ध नि स।

मूर्त्ति—विचित्रवसना, अतिकोमलाङ्गी, गौरवर्णा, नाना अलङ्कारोंसे विभूषिता, मेधाङ्गना सावेरी गलेमें गजमुक्ताका हार पहने और हाथमें एक मयूरपुच्छ धारण किये हुए अत्यन्त प्रसन्नतासे हास्य कर रही हैं।

कौशिकी-बंगालीसे ही कौशिकीका जन्म है; षड़्ज इसका ग्रह, अंश और न्यासस्वर है। इसमें गमकके साथ मन्द्रगान्धारका प्रयोग होता है। इस रागिणीका हास्य और करुणरसमें ही अधिक प्रयोग होता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—श्यामाङ्गी, सुवेशधारिणी, कोमलाङ्गी, रक्तनयना, स्वेदबिन्दुसे शोभित मुखचन्द्रमायुक्त, स्वामीके विच्छेदसे भीता कौशिकी सर्वदा पतिके साथ घूमती रहती है।

गान्धारी—पौरवीमूर्च्छनायुक्ता गान्धारीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड़्ज है। यह रागिणी रात्रि-दिवसमें यामार्द्धके समय गाई जाती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—जटा-विभूषिता, पवित्रभावसे मुद्रितलोचना नीलाम्बरधारिणी, मेघपङ्क्ती गांधारी गलेमें योगपट्ट धारण किये हुए शान्त और सन्नतभावसे आसन पर बैठी हुई हैं।

हरशृङ्गारा—सम्पूर्णजातीया हरशृङ्गाराका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। इसमें उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—गौराङ्गी, आमोदप्रिया, अति प्रियवादिनी, मेघपक्षी हरश्रृङ्गारा नाना जातीय गीत और नृत्यादि चौंसठ कलाओंमें निपुण हैं।

नट्टनारायण वा नट।

सम्पूर्णजातीय नट्टनारायणका ग्रह, अंश और न्यास-स्वर षड्ज है। इसमें बहुविध गमकान्वित प्रथमा अर्थात् उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—स्वर्णके समान गौरवर्ण, योद्धृवेशधारी, अति प्रतापी, नटराग शत्रुके शोणितसे रक्तवर्ण धारण किये हुए अश्व पर चढ़ कर रणभूमिमें विचरण कर रहा है।

कामोदी—षड्ज ग्रहांशन्यासा कामोदीका न्यासस्वर मन्द्र षड्ज है। यह रागिणी प्रायः करुण और हास्य-रसमें प्रयुक्त होती है तथा यामार्द्धकालमें गाई जाती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—हेमवर्ण, कामोदी पतिके साथ जलक्रीड़ा करते समय पङ्कजकी सुगन्धसे प्रमोदित हो कर प्रफुल्ल पद्मोंको तोड़ रही है।

कल्याणी—सम्पूर्ण जातीय कल्याणीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर पञ्चम है। इसमें सौवीरी मूर्च्छना और तीव्र मध्यमाका प्रयोग होता है।

प ध नि स रि ग म प।

मूर्त्ति—गौरवर्णा, कोमलांगी, विलासप्रिया, कान्ता-नुरक्ता, अतिमृदुभावयुक्ता, नटाङ्गना कल्याणी अनवरत चारों ओर पिपासित नयनोंसे देख रही हैं।

आभीरीके ग्रहांश आदि समस्त विषय कल्याणीके समान कहे गये हैं।

प ध नि स रि ग म प।

मूर्त्ति—प्रस्फुटित चम्पक कुसुमके समान मनोहर गौरवर्णा, हस्तसञ्चालनसे शब्दायमान कङ्कणोंसे विभूषिता, आभीरी चन्द्रमाके समान शुभ्रवर्ण गजमुक्ताकी माला पहने श्रीकण्ठ पर्वतके शिखर पर बैठी है।

नाटिका—बहुविध गमकान्वित सम्पूर्णजातीया नाटिकाका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। इसमें उत्तर मन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—विचित्र रत्नाभरणोंसे भूषित, अति उत्कृष्ट मनोहर वस्त्र पहने हुए, कृशाङ्गी नाटिका गीत और तालकी ओर मन दिये रङ्गालयमें नृत्य कर रही है।

सारङ्गी—गान्धार और धैवतहीना औडवजातीया सारङ्गीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। इसमें सौवीरी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स रि म प नि स।

मूर्त्ति—रङ्गप्रिया, सारङ्गी दृढ़तासे कवरीबन्धन और हाथमें वीणा लिये एक सखीके साथ कल्पतरुके नीचे बैठी है।

हाम्बीरी—सम्पूर्णजातीय हाम्बीरीका ग्रह, अंश और न्यास स्वर धैवत है। इसमें पौरवी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—श्यामाङ्गी नटभामिनी हाम्बीरी पुष्प तोड़ने-को तैयार हो कर एक सखीका हाथ पकड़ कर इस प्रकारसे विचरण कर रही है कि सहसा देखनेसे मालूम होता है मानो नृत्य कर रही है। (सङ्गीतरत्नाकर)

नारदसंहिताके मतसे राग रागिणी।

मालव, मल्लार, श्री, वसन्त, हिन्दोल और कर्णाट ये छः राग हैं।

धानसी, मालसी, रामकिरि, सिन्धुड़ा, आशावरी और भैरवी ये छह मालवरागकी स्त्रियां हैं; बेला-वली, पुरवी, कनाड़ा, माधवी, कोड़ा और केदारिका ये छह मल्लारकी पत्नियां हैं; गान्धारी, सुभगा, गौरी, कौमारी, वल्लारी और वैरागी ये छह श्रीरागकी भार्या हैं; तुड़ी, पंचमी, ललिता, पटमञ्जरी, गुर्जरी और विभावा ये छह वसन्तकी गृहिणियां हैं, मालवी, दीपिका, देशकारी, पाहिड़ा, बराड़ी और मरहट्टा, ये छह हिंदोलकी सहधर्मिणी हैं तथा नाटिका, भूपाली, रामकेली, गड़ा, कामोदी और कल्याणी ये छह कर्णाटकी जाया कही गई हैं।

मालव-मूर्त्ति—सुन्दरी रमणियों द्वारा चुम्बितवक्त्र, शुकपक्षीके समान श्यामलवर्ण, कुण्डलधारी, पुष्पहारोंसे

शोभित और अति प्रमत्त मालवराग प्रदोषकालमें सङ्गीत शालामें प्रवेश कर रहा है।

धानसी—श्यामाङ्गी, सुकेशी, क्षीणकटी, अम्बुजवत् रमणीयवक्त्रा और नीलोत्पलके समान नयन-विशिष्टा धानसी ईषत् हास्यके साथ कानोंमें नीलोत्पल धारण कर रही है।

मालसी—विचित्राङ्गी मालसी गलेमें सुन्दर मुक्ताहार पहने दोनों हाथोंमें दो पद्म लिये हुए मनोहर दृष्टिसे देख रही है।

रामकिरी—चन्द्रानना, तपे सोनेके समान वर्णयुक्ता, कमलकर्णावतंसा रामकिरी एक हाथमें पुष्पधनु और दूसरे हाथमें अनेक पुष्पशर धारण किये हुए हैं।

सिन्धुड़ा—इन्द्रनीलमणिके समान सुन्दरवर्णा, अम्बुजाक्षी, विचित्र रत्नाभूषणोंसे भूषिता, सुकेशी सिन्धुड़ा प्रियतमके समीप बैठी हुई कपिलाश नामक यन्त्र बजा रही है।

आशावरी—जवाकुसुम सदृश रक्तवस्त्र पहन कर नाट्यशालामें आई हुई अतिरसिका आशावरी दोनों हाथोंमें नीलोत्पल धारण किये हुए शोभित हैं।

भैरवी—पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर प्रभा विशिष्ट मृगीके समान सुचारुनयना कोकिलके समान मधुर स्वरसे लोगोंका मन हरण कर रही है।

मन्दार—विहारशील, सुन्दर, योषितप्रिय, अति धार्मिक, सुस्थभावयुक्त, अत्यन्त कामातुर, पिंगल नेत्र, सुवेशप्रिय मन्दारराग सबके लिये प्रिय।

वेलावली—विचित्र आभूषणोंसे विभूषित, बाला वेलावली कबरीमें चम्पक-प्रसून माला धारण किये हुए प्रियतमके समागमकी आशासे सङ्केतित प्रफुल्ल-कुसुम सौरभसे आमोदित लता-कुञ्जमें अवस्थान कर रही है।

पुरवी—दूर्वादलके समान श्यामवर्णा, सकामा पुरवी एकान्तमें बैठी हुई कुचकुम्भ युगल पर अति कमनीय पत्रावली रच रही है।

कानड़ा—तन्वी, विभूषितांगी कानड़ापतिके विरहसे कातर हो कर मस्तक पर जटायुक्त वेणी धारण किये बाष्पाकुल नेत्रोंसे अशोक-वृक्षके नीचे मानो हेमलता-सी पड़ी हुई है।

माधवी—बिजलीके समान प्रभायुक्त, चञ्चल नयना, अति सुन्दरी पति-सुहागिनी माधवी माधवीलताकुञ्जमें मत्तमातंगोकी तरह कान्तका मुख चूम रही है।

कोड़ा—अति सुन्दरी, स्त्रीनृत्यकलामें निपुण, अति पवित्रदेहा, कुटिलनेत्रा, विहारमें अति दक्षा कोड़ा पतिके बाईं ओर बैठी हुई है।

केदारिका—नीलवर्णा, सुवृत्तपयोधरा केदारिका स्नान करके आर्द्र वस्त्र धारण किये हुए है और केशोंसे मनोहर जलबिन्दु पड़ रहे हैं।

श्रीराग—मूर्त्ति पूर्ववत्।

गान्धारिका—अति विचित्रांगी, सुगन्धप्रिया, नृत्य गीतमें अनुरक्ता गान्धारिका प्रदोषके समय एक हाथसे गलेसे लिपट कर दूसरे हाथसे वीणा धारण किये हुए है।

सुभगा—कविताके रसको समझनेवाली सुभगा अनेक प्रकारके रसमय पदार्थों द्वारा कौतुक कर रही है।

गौरी—श्यामा, दिव्यरूपा रसवती, प्रसन्नचित्ता, शिवको सीमन्तिनी गौरी कोकिलकी भांति काकली-स्वरसे विविध प्रकारके गान गा रही हैं।

कौमारिका—विचित्रांगी राज-विलास-वेशधारिणी कौमारिका निर्मल कौमुदीके आलोकसे अत्यन्त हृष्ट-चित्ता हो कर भगवतीकी पादसेवा कर रही है।

बलारी—वेणी बांधे हुए उत्तम अंगवाली, पीले रंगके वस्त्र और चोली पहने हुए, तपे सोनेकी कांची और हार पहने हुए वल्लारी स्निग्ध लावण्यसे लोगोंका चित्त-विनोद कर रही है।

वैरागी—मनस्विनी वैरागी मनस्तापसे सन्तप्त हो कर एक दृष्टिसे देखती हुई बारबार दीर्घनिश्वास लेती हुई वैराग्यके लक्षण प्रकट कर रही है। सूक्ष्मबुद्धि पण्डितोंने वैरागीको मूर्त्ति इसी प्रकार बतलाई है।

वसन्तराग।

इसकी मूर्त्ति—रत्नाकर-वर्णित मूर्त्तिके समान है।

तुड़ी—जवाकुसुमके समान रक्तवर्णा, अति सुशीला तुड़ी गलेमें मुक्ताहार और दोनों हाथोंमें दो कुशांकुर धारण करके मनोहर नृत्य कर रही है।

पञ्चमी—स्वर्णकाया, पञ्चम वेदमें अर्थात् गान्धर्व वेदमें अभिज्ञ पञ्चमी पैरोंमें नुपुर पहने नृत्य करनेकी इच्छासे संगीत-सभामें गायकोंके साथ गम्भीरतापूर्वक बैठी है।

ललिता—चन्द्रानना, लोहितपद्मनेत्रा, वरांगना; क्रोड़ा और रतिके समय अति धीरभावा ललिता प्रातःकाल उठ कर केश सम्हाल रही है।

पटमञ्जरी—श्यामा सुकेशी पीनस्तनी सुरूपा पटमञ्जरी पतिके विरहसे अत्यन्त दुःखित हो कर भूमि पर शयन करनेके कारण सखियोंके समक्ष परिहासास्पद हो रही है।

गुर्जरी—नृत्यकलामें अभिज्ञ गुर्जरी प्रदोषके समय स्वामिके पास जानेको उत्सुक हो कर कर्णोत्पलसे लगे हुए मधुव्रतका मनोहर मधुर गुञ्जन श्रवण कर रही है।

विभाषा—अति मनोहारिणी स्वर्णहारोंसे भूषिता और समस्त भाषाओंमें कुशलविभाषा अत्यन्त विवेचनाके साथ अपने शिष्योंको सङ्गीतशास्त्रकी शिक्षा दे रही है।

हिन्दोल—लीला-विलाससे भूमि पर पड़ा हुआ और उसी समय सखियों द्वारा उठाया हुआ हिन्दोल राग गीत-रससे विदग्ध रसिकोंका मन मोहित कर रहा है।

मयूरी—मयूरी रागिणी मयूरका कोकारव सुननेके लिए उत्सुक और मयूर देख कर अति आनन्दिता हो कर मयूरोंके साथ सर्वदा नृत्य करना पसन्द करती है।

दीपिका—रक्तपुष्पकी मालासे सुशोभिता और अरुण वस्त्र पहने हुए दीपिका सीमन्तमें सिन्दूर लगा कर सन्ध्याके समय प्रदीप हाथमें लिए घरमें प्रवेश कर रही हैं।

देशकारी—देशकारी सखियोंके साथ एकान्तमें बैठी हुई दर्पणमें अपने स्तनों पर लगे हुए नाखूनका दाग देख रही है।

पहिड़ा—पाहिड़ा पतिके विदेश-गमनकी बात सुन कर प्रेमानुरागसे अत्यन्त कातर हो कर पतिके चरणयुगल पकड़ कर उनसे विदेश जानेकी मनाई कर रही है।

बराड़ी—पतिके विरहसे अति कृशांगो, अश्रुपूर्ण लोचना, दुःखित बराड़ी नील वस्त्र पहन कर जमीन पर लोट गई है और पतिके अनुराग-भरे वचनोंका स्मरण कर रही है।

मारहटो—मारहटो क्रीड़ाके समय पतिके सहसा किये हुए प्रथम अपराध पर मानिनी बननेकी इच्छा होने पर भी अत्यन्त सरलतासे अभिमान न कर के केवल रोदन कर रही है।

कर्णाट राग।

श्वेतमुकुट-धारी, मयूरकण्ठके समान सुन्दर शरीर कान्तिविशिष्ट कर्णाट राग घोड़े पर सवार हो कर तेज तलवार हाथमें लिये शिकारके लिये जा रहा है।

रामकेलीकी मूर्त्ति—अति लावण्यवती, करुणार्दचित्ता, अनेक सुगन्धित पुष्पों द्वारा इष्टदेवकी पूजामें निरत रामकेली सर्वदा 'श्री राम राम' इस महामन्त्रका जप कर रही है।

गड़ाकी मूर्त्ति—क्षीणकटी, वृहन्नितम्बा, पीनस्तनी, नृत्यगीतादि कलाओंमें विपुला गड़ा नृत्यगीतादि द्वारा सबके मनको विमोहित कर रही है।

कामोदीकी मूर्त्ति—इसका वर्णन पहले किया जा चुका है, इसलिए यहां फिरसे लिखना व्यर्थ है।

कल्याणीकी मूर्त्ति—शरीरके लावण्य और लीलासे अत्यन्त सुशोभना कल्याणी अपने घरमें नृत्य कर रही है और उससे अङ्गमें पहने हुए केयूर, नूपुर और घुंघरूओंकी अत्यन्त मनोहर ध्वनि निकल रही है।

हनूमन्मतानुसार राग रागिणियोंका वर्णन किया जाता । अन्यान्य सङ्गीतज्ञ विद्वानोंने छह राग और उनकी छह-छह रागिणियां इस तरह कुल राग-रागिणियोंकी संख्या ४२ बताई है। परन्तु हनूमन्मतानुसार छह राग और प्रत्येककी पांच पांच रागिणियां कल्पित हुई हैं। इस लिए उनके मतसे राग-रागिणियोंको संख्या ३६ होती है। उनके नाम इस प्रकार हैं—भैरव, मालव, कौशिक, हिन्दोल, दीपक, श्री और मेघ ये छह पुरुष राग; तथा मध्यमादी, भैरवी, बंगाली, बराटिका और सैन्धवी ये पांच भैरवकी, तोड़, खम्बावती, गौरी, गुणकरी और ककुभा ये पांच कौशिककी, वेलावली, रामकिरी, देशाख्या, पटमञ्जरी और ललिता ये पाँच हिन्दोलकी; केदारी, कानड़ा, देशी,

कामोदी और नाटिका ये पांच दीपककी; वासन्ती, मालवी, मालती, धनासिका और आशावरी ये पाँच श्रीकी तथा मन्दारी, देशकारी, भूपाली, गुर्जरी और टक्का ये पाँच मेघ रागकी स्त्रियां हैं।

भैरव।

भैरव—भैरवके स्वरग्राम आदि पूर्ववत् हैं।

मध्यमादी—सम्पूर्णजातीया मध्यमादीका ग्रह, अंश और न्यास स्वर मध्यम है। इसमें मध्यमादी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। ऋषभ-धैवतहीन औड़व जातिमें इसकी गिनती हो सकती है।

म प ध नि स रि ग म अथवा म प नि स ग म।

मूर्त्ति—स्वर्णवर्णा, कमलायताक्षी, कुंकुमलिप्तदेहा मध्यमादीका स्वामी उसे प्रसन्नताके साथ गाढ़रूपसे आलिङ्गन करके चुम्बन कर रहा है।

भैरवी, बंगाली, वराटी और सैन्धवीके स्वरग्रामादि पूर्ववत् हैं।

मालव-कौशिक।

सम्पूर्णजातीय मालव-कौशिकका ग्रह, अंश, न्यास-स्वर षड्ज है। इसमें उत्तर मन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—अतिवीर, वीरसमाजमें वीर्यप्रकाशक, वीर-पुरुषोंसे परिवेष्टित, लोहितवर्ण मालव-कौशिक रागके हाथमें एक लाल रंगकी यष्टि और गलेमें शत्रुओंके मुण्डोंकी माला शोभित है।

तोड़ी—तोड़ीके स्वरग्राम आदि और मूर्त्ति पूर्णवत् है।

खम्बावती—पञ्चमहीन षाड़वजातीय खम्बावतीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। इस रागिणीमें पौरवी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स रि ग म ध

मूर्त्ति—सौन्दर्य और लावण्यसे परिपूर्णा, कोकिल-के समान मिष्टभाषिनी, प्रियवादिनी, गानप्रिया अति रसवती मालव-कौशिकको पत्नी खम्बावती श्रोताओंको अत्यन्त आनन्द पहुंचाती है।

गौरी—स्वरग्रामादि पूर्णवत्।

मूर्त्ति—श्यामा, अति मधुर-मृदुभाषिणी गौरी अति रमणीय आम्र-मुकुल द्वारा कर्णभूषण बना रही है।

गुणकिरी—स्वरग्रामादि और कौतुहलपूर्णा श्रेष्ठ मूर्त्ति पूर्ववत्।

ककुभा—ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। यह रागिणी शृङ्गाररसमें ही गाई जाती है और इसमें उत्तरायता मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—पञ्चकदाम पहने हुए, देखनेमें अत्यन्त सुन्दरी मनोहारिणी, चन्द्रानना, अतिदानशीला, रतिचिह्न-मण्डिता और अति परिष्कृतदेहा ककुभा इतस्ततः चञ्चल कटाक्ष पात कर रही है।

हिन्दोल।

हिन्दोलके स्वरग्रामादि पूर्वोक्त हिन्दोलिकाके समान हैं।

मूर्त्ति—खर्वाकार, कपोतद्युति, कामुक हिन्दोल सुन्दरी रमणियों द्वारा आन्दोलित झूलनेमें बैठ कर क्रीड़ा सुखका अनुभव कर रहा है।

वेलावली—वीररस-प्रधान सम्पूर्णजातीया वेला-वलीका ग्रह अंश और न्यासस्वर धैवत है। इसमें सौवीरी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—नीलसरोजके समान वर्णयुक्ता, विशाल-नितम्बा वेलावली सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित हो कर पतिको सङ्केत करके विलास-गृहमें बिठा कर इष्टदेवताके समान कन्दर्पका बारम्बार स्मरण कर रही है।

रामकिरी—इसके स्वरग्राम आदि तथा मूर्त्ति पूर्ववत् है।

देशाख्या—ऋषभ-वर्जिता षाड़वजातीया देशाख्याका ग्रह, अंश और न्यासस्वर गान्धार है। इसमें हारिणाश्वा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। कोई-कोई इसे सम्पूर्ण-जातिमें शामिल करते हैं।

ग म प ध नि स ग अथवा ग म प ध नि स रि ग।

मूर्त्ति—अतिदीर्घाकारा अत्यन्त कोपनस्वभावा वीररससे रोमाञ्चित चन्द्रानना देशाख्या मस्तक पर हाथ रक्खे हुए खड़ी है।

पटमञ्जरी—पटमञ्जरीके स्वरग्रामादि पूर्णवत् हैं।

मूर्त्ति—पतिके विरहसे विधुरा, अतिकृशा, माल्य धारिणी, धूलिधूसराङ्गी पटमञ्जरीको प्रियसङ्गिनीगण नाना प्रकारसे आश्वासन दे रही हैं।

ललिता—ऋषभ-पञ्चमहीन औड़वजातीया ललिताका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। इसमें शुद्ध-मध्य मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। कोई-कोई इसे सम्पूर्णजातिमें शामिल करते हैं। सम्पूर्णजातिवादियों-के मतसे इसके ग्रहादि षड्ज हो कर धैवत है।

स ग म ध नि स अथवा ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—प्रफुल्ल सप्तच्छद-माल्यशोभिता, अत्यन्त गौर वर्णा, सुलोचना, विलासवेशधारिणी, युवती ललिता प्रभातके समय सहसा शय्या त्याग कर दीर्घनिश्वास छोड़ रही है।

दीपक।

सम्पूर्णजातीय दीपकका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। गायकगण इसे शुद्धमध्या मूर्च्छनासे न्यास करते हैं।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—बालिका रमणीसे रमणेच्छुक दीपकके लज्जा-वश दिया बुझा देने पर भी रमण करते समय बालाका वस्त्र खोल देनेसे उसके शिरोभूषणको मणिके आलोकसे अन्धकार दूर हो जानेसे वह अत्यन्त लज्जित हो रहा है।

केदारिकाके स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्ववत् है।

कानड़ा—सम्पूर्णजातीया कानड़ाका ग्रह, अंश और न्यासस्वर विकृत निषाद है। इसमें मार्गी मूर्च्छना-का प्रयोग होता है। कानड़ा रागिणो सुननेमें अति मधुर होती है।

नि स रि ग म प ध नि।

मूर्त्ति—अतिसुन्दरी कानड़ा एक हाथमें कृपाण और दूसरेमें गजदन्त लिये हुए रङ्गमें अवस्थित सुर-चारणों द्वारा स्तूयमान हो रही है।

देशी—देशोके स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्वोक्त-वत् है।

कामोदी—पौरवी मूर्च्छनायुक्त सम्पूर्णजातीया कामोदीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। यह रागिणो प्रायः मल्लारके पास ही पास गाई जाती है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—अतिसुन्दरी, कान्तानुसारिणी पीतवस्त्र पहने हुए कामोदी वनमें जा कर पतिको न देख और कोकिल-की ध्वनि सुन अत्यन्त दुःखित और भयभीत मनसे दशों दिशाओंका निरीक्षण कर रही है।

नाटिका—नाटिकाके स्वरग्रामादि पूर्वोक्तवत् हैं।

मूर्त्ति—सुवेशा नाटिका पतिके विरहसे अति विह्वल हो कर समीपस्थ एक काकसे बड़े स्नेहके साथ विदे-शस्थ प्रियतमकी कुशलवार्त्ता पूछ रही है।

श्रीराग।

श्रीरागके स्वरग्रामादि पूर्वोक्तवत् हैं।

मूर्त्ति—अठारह वर्षकी अवस्था, कन्दर्पके समान मनोहर मूर्त्ति, अति धीरप्रकृति, रक्तवस्त्र पहने हुए, राजा-के समान अङ्ग-सौष्ठवयुक्त श्रीराग कानोंमें नव-पल्लवोंके बने हुए भूषण धारण कर रहे हैं।

वासन्ती—उत्तरमन्द्रा मूर्च्छना-विशिष्ट सम्पूर्ण-जातीया वासन्तीका ग्रह अंश और न्यास स्वर षड्ज है।

स रि प म ध नि स।

मूर्त्ति—इन्दीवरश्यामवर्णा, अति सुन्दरी वासन्ती आम्रमुकुलोंसे कानोंको सुशोभित किये बैठी हैं और इसलिए कानों पर भ्रमर गूंज रहे हैं।

मालवी—शुकके समान द्युतियुक्त, कुण्डल और कुसुममालाओंसे सुशोभित, प्रमत्तभावा मालवी प्रदोष-के समय पति द्वारा चुम्बित हो कर सङ्केतशालामें प्रवेश कर रही है।

मालव श्री—मालवश्रीके स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् हैं।

धानश्री—ऋषभहीना, षाड़वजातीया धानश्रीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। इसमें उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। यह रागिणो प्रायः वीर रसमें प्रयुक्त होती है।

स ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—नवदूर्वादलके समान मनोहर श्यामतनु धानश्री पतिके विरहसे कातर हो कर अश्रुशायित अव-

स्थामें बैठी हुए नेत्रजलसे वक्षःस्थलको प्लावित करके पतिका चित्रपट अंकित कर रही है।

आशावरी—करुणरस निर्भरा, ऋषभ-गान्धार-हीना औड़वजातीया आशावरीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। किसीके मतसे पञ्चम-हीन षाड़वजातीया आशावरीका ग्रह अंश और स्वर मध्यम है, किंतु न्यास धैवत है।

ध नि स म प ध अथवा
म ध नि स रि ग म।

मूर्त्ति—शिखिपुच्छ निर्मित अति सुशोभन-वस्त्र पहने हुए, गजमुक्ताके हारसे शोभित, आशावरी श्रीखण्डशैल-के शिखर पर बैठ कर चन्दनवृक्षसे सर्प खींच कर हाथमें वलयके समान धारण किये हुए हैं।

मेघ।

मेघके स्वरग्रामादि पूर्वोक्तवत् हैं।

मूर्त्ति—नीलोत्पल-श्यामल कान्ति, चन्द्रसदृश मुख-श्री, पीताम्बर पहने, पीयूषवत् मन्द मन्द हास्यवक्त्र, वीररसप्रधान, युवा मेघराग तृषित चातक द्वारा जलकी याचना होने पर घनघटाके मध्य विराज रहा है।

मल्लारी—मल्लारीके स्वरग्रामादि पूर्वोक्तवत् हैं।

देशकारी सम्पूर्णजातीया देशकारीका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षड़ज है। इसमें उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। यह रागिणी प्रायः वैराटीके साथ मिश्रित रहती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—यौवनके प्रभावसे सर्वाङ्गपरिपूर्णा, पीनस्तनी, चन्द्रमुखी, कमलायताक्षी, सुकेशी और सुवर्णवर्णा देश-कारी पतिके साथ नाना केलिकलारसमें मग्न है।

भूपाली—भूपालीके स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्वो-वत् है।

गुर्जरी—स्वरग्रामादि पूर्वोक्तवत्।

मूर्त्ति—श्यामा सुकेशी गुर्जरी चंदनपल्लव-रचित अति कोमल शय्या पर बैठ कर वीणा द्वारा श्रुति और स्वरका विभाग कर रही है।

टक्का—सम्पूर्णजातीया टक्काका ग्रह, अंश और न्यास-स्वर षड़ज है। इसमें उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—तपे काञ्चनके समान पीतवर्णा, वियोगिनी टक्का नलिनी दल निर्मित शय्या पर लेटी हुई अत्यन्त विषण्णभावसे पतिकी आराधना कर रही है।

रागार्णवके मतसे रागके राग और रागिणी इस प्रकार पुं-स्त्री भेद नहीं है, सब राग ही कहलाते हैं। उसके मतानुसार रागोंके नाम दिये जाते हैं। यथा :—भैरव, पञ्चम, नाट, मल्लार, गौड़मालव और देशाख्य ये छह प्रधान राग हैं। बङ्गाली, गुणकिरी, मध्यमादी, वसन्त, और धानश्री ये पांच राग भैरवके आश्रित हैं; ललिता, गुर्जरी, देशी, वराड़ी और रामकिरी ये पाँच पञ्चमके आश्रित हैं; नट्टनारायण, गान्धार, सालग, केदार और कर्णाट ये पाँच नाटाश्रित हैं; मेघ, मल्लारिका, माल-कौशिक, पटमञ्जरी और आशावरी, ये पाँच मल्लारके आश्रित हैं; हिन्दोल, त्रिवण, गान्धारी, गौरी और पट-हंसिका ये पांच गौड़मालवके आश्रित हैं; भूपाली, कुड़ारी, नाटिका और वेलावली ये पांच देशाख्यके आश्रित हैं।

अब सङ्गीतनारायण धृत सङ्गीतसारके मतानुसार रागकी व्याख्या की जाती है। यथा—श्री, नट्ट, कर्णाट, वेदगुप्त, वसन्त, शुद्ध भैरव, बङ्गाल, सोम, आम्रपञ्चम, कामोद, मेघ, द्राविड़गौड़, वराटी, गुजंरी, तोड़ी, मालवश्री, सैन्धवी, देवकी, रामकी, प्रथम-मञ्जरी, नट्टा, वेलावली और गौड़ी, इत्यादि राग संपूर्ण जातीय हैं। आदि पदमें नाटादि और भी कुछ राग शामिल किये जाते हैं।

श्री—श्रीरागका ग्रह, अंश, न्यासस्वर षड्जग्रामका षड़ज है। यह वीर और श्रृङ्गाररसमें गाया जाता है और इसमें मध्यमका भाग थोड़ा व्यवहृत होता है।

स रि ग म प ध नि स।

श्रीरागकी मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् है।

नट—नटके ग्रहांशादि श्रीरागके समान है, किन्तु इसमें श्रीरागके समान अल्पमध्यम नहीं लगता तथा

मन्द्र निषाद, तार स रि और उत्कट गमकका प्रयोग होता है।

नटकी मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् नटनारायणके समान है।

कर्णाट—कर्णाटका ग्रह, अंश, न्यासस्वर निषाद है, किन्तु अन्यान्य विषयोंमें कुछ कुछ श्रीरागके समान है।

कर्णाटकी मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् है।

वेधगुप्त—वेधगुप्तमें षड्ज, ऋषभ और मध्यम ये तीन स्वर अन्यान्य स्वरोंकी अपेक्षा अधिकतासे प्रयुक्त होते हैं, जिसमें ऋषभ ग्रह और अंश तथा मध्यम न्यास हुआ करता है। यह वीररस-प्रधान रागोंमें गिना जाता है।

रि ग म म प ध नि स म।

मूर्त्ति—अति गौरकान्ति, वेधगुप्त रतिक्षिण्णा और रतिश्रमसे दीर्घनिश्वास छोड़ती हुई अपनी सीमन्तिनीको अपनी गोदमें सुला कर वस्त्राञ्चल द्वारा बयार कर रहा है।

वसन्त—वसन्तके स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् है।

शुद्धभैरव—शुद्धभैरवका ग्रह, अंश, न्यास स्वर धैवत है। इसमें गमकके साथ मन्द्र गान्धारका प्रयोग होता है। इस रागको मध्याह्नके पहले गाना विधेय है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—नीलकण्ठ, राशिशेखर, त्रिलोचन, अति प्रचण्डमूर्त्ति, शुद्धभैरव अनेक पदातियोंसे वेष्टित हो कर हाथमें ढाल और तलवार धारण किये हुए हैं।

बङ्गाल—कौशिकसे उत्पन्न बंगालका ग्रह, अंश, न्यासस्वर षड्ज है। इसे गमक सहित मन्द्र गान्धारके साथ करुण और हास्यरसमें गाना चाहिए।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति अति प्रचण्डस्वभाव, अल्पवयस्क, देखनेमें अत्यन्त सुन्दर, हास्यमुख बंगाल कटीमें मनोहर चंद्रहार और गलेमें पुष्पमाला पहने हुए शोभित है।

सोम—सोमरागका ग्रह, अंश, न्यासस्वर षड्ज है। इस रागमें तार, निषाद और ऋषभ है, पञ्चम बहुतायतसे प्रयुक्त होता है। सोमराग वर्षाके प्रारम्भमें वीररसमें गाया जाता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—अमृतके समान पाण्डुवर्ण, अति कामुक सोमराग सुरतके श्रमसे कम्पितहस्त, आलस्यपूर्णलोचन हो कर, माला पहन कर अपनी कान्ताको अपनी छातीसे पर सुला कर सुरतके काममें रत हैं।

आम्रपञ्चम—मध्यम ग्रामगोचर आम्रपञ्चमका ग्रह, अंश, न्यासस्वर गान्धार है।

ग म प ध नि स रि ग।

मूर्त्ति—कार्त्तिकेयके समान सुन्दर, सर्वांगमें चंदन लेपन किये हुए आम्रपञ्चम वीणाके साथ गान करके देवराज इन्द्रको परितुष्ट कर रहा है।

कामोद—बहु गमकान्वित कामोदका ग्रह, अंश, न्यासस्वर षड्ज है। यह राग यामार्द्धके समय करुण और हास्यरसमें पाया जाता है।

स रि ग म प ध नि।

मूर्त्ति—मृगचर्म पहने हुए कामोद गंगाके किनारे बैठ कर हाथमें रुद्राक्षमाला लिये हुए इष्टमंत्र जप रहा है।

मेघ—धैवत ग्रहांशन्यासयुक्त मेघराग वर्षके आगमनमें गाया जाता है। इसमें मन्द्रस्वरका प्रयोग होता है।

ध न स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—पीताम्बर पहने हुए, घने मेघके समान नीलवर्ण, नाना आभूषणोंसे विभूषित मेघराग अपनी प्रणयिनीके साथ पर्यङ्क पर बैठा हुआ प्रेमालाप कर रहा है।

द्राविड़गौड़—द्रविड़गौड़का ग्रह, अंश, न्यासस्वर निषाद है। परंतु इसमें षड्ज और पञ्चमका बहुतायतसे प्रयोग होता है। यह राग अधिकतर रात्रिको वीर शृंगाररसमें ही गाया जाता है।

नि स रि ग म प ध नि।

मूर्त्ति—विप्रकुलोद्भव युवक द्रविड़गौड़का वर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर है, कुञ्चितकेश गले तक लम्बित है, गलेमें पुष्पहार है, हाथमें एक समृणाल अरविन्द शोभा पा रहा है।

वराटी—वराटीका ग्रह, अंश न्यासस्वर षड्ज है।

एक प्रहरके मध्य इसकी गानविधि है। मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् है।

गुर्जरी—गुर्जरीके स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् है। विशेषतः यह रातको श्रृङ्गाररसमें गाई जाती है।

तोड़िका—तोड़िकाका ग्रह, अंश, न्यासस्वर मध्यम है। यह मध्याह्नके समय श्रृङ्गार और वीररसमें गाई जाती है।

म प ध नि स रि ग म।

मूर्त्ति—प्रफुल्ल पङ्करुहके सदृश लोचनयुक्ता तोड़िका गलेमें नीलकमलकी माला पहन कर मृगनाभि हाथमें लिये हुए वनके निकटवर्ती प्रदेशमें भ्रमण कर रही है।

मालवश्री—मालवकौशिकसे उत्पन्न मालवश्रीका अंश, ग्रह, न्यासस्वर षड्ज है। यह भगवतीकी प्रीतिवर्द्धन किया करती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—श्यामा, कृशाङ्गी, मृदुस्वभावा, मालवश्री बिल्ववृक्षके नीचे बैठकर कुछ नीलपद्मोंके दल हाथमें लिये क्रीड़ा कर रही है।

सैन्धवी वा सिन्धुड़ासैन्धवी पञ्चमसे उत्पन्न हुई है। इसका ग्रह, अंश और न्यासस्वर पञ्चम है। यह रागिणी मध्याह्नकालके बाद करुण और श्रृंगाररसमें गाई जाती है।

प ध नि स रि ग म प।

मूर्त्ति—इन्दीवरश्यामा, आकर्णनयना, सुकेशी और नाना अलंकारोंसे विभूषिता सैन्धवी प्रियतमके पास बैठी हुई कलास नामक एक यन्त्र बजा रही है।

देवकी वा देवकृति—देवकृतिका ग्रह, अंश, न्यासस्वर षड्ज है। यह सर्व ऋतुओंमें सब समय गाया जाता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—श्यामा देवकृति उद्यानमें एक सखीका हाथ थामे हुए पुष्प चयन कर रही है।

रामकी—रामकीके स्वरग्राम आदि तथा मूर्त्ति पूर्वोक्त रामकिरीके समान है।

प्रथममञ्जरी—इसके स्वरग्रामादि तथा मूर्त्ति पूर्वोक्त पटमञ्जरीके समान है।

नट्टा—इसके स्वरग्रामादि तथा मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् है।

वेलावली—स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्वोक्तवत्।

गौड़ी—गौड़ीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। इसके समस्त स्वर प्रायः गमकयुक्त होते हैं और यह वीर एवं श्रृङ्गाररसमें प्रयुक्त होता है।

स रि ग म प ध नि स।

गौरवर्णा गौड़ी रतिके साथ कामदेवकी हरिचन्दनादि विविध उपचारोंसे पूजा कर रही है।

नाट—नाटके स्वरग्रामादि तथा मूर्त्ति पूर्वोक्त नटके सदृश है।

घण्टारव—इसका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। यह राग सब समय गाया जा सकता है।

ध नि स रि ग म प ध।

तप्त काञ्चनके समान वर्णयुक्त घण्टारव तुरङ्गमस्कन्ध पर सवार हो कर सुवर्ण निर्मित शरासनको उलांघ कर अति भीषण घण्टारवसे शत्रुकी सेनाको दलित करके रङ्गभूमि पर विचरण कर रहा है।

नट्टनारायण—इसका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। यह राग दिनके समय गाया जाता है।

ध नि स रि ग म प ध।

नवीन युवापुरुष नट्टनारायण स्त्रीके वेशमें सङ्गीतशास्त्रमें भ्रान्तमतका निरास करके विशुद्ध ताल और लयसे मनोहर गान कर रहा है।

भूपति—भूपतिका ग्रह, अंश और न्यासस्वर मध्यम है। यह राग दिनमें करुणरसमें गाया जाता है।

म प ध नि स रि ग म।

श्यामाङ्ग भूपति मन्त्रियोंसे परिवेष्टित हो कर सिंहासन पर बैठा हुआ है, दोनों ओर दो किङ्कर खड़े खड़े श्वेतचामर डुला रहे हैं, पीछे एक किङ्कर छत्र धारण किये हुए हैं।

शङ्कराभरण—शङ्कराभरणका ग्रह, अंश और न्यासस्वर निषाद है। यह राग रात्रिके समय वीररसमें गाया जाता है।

नि स रि ग म प ध नि।

शङ्कराभरण व्याघ्रचर्म पहने हुए, शरीर पर सर्पके आभूषण धारण किये हुए और सर्वांगमें भस्म लगाये शोभित हो रहा है।

षाड़वजाति—गौड़, कर्णाटगौड़, देशी, घल्लासिका, कोलाहल, वल्लारी, देशाख्या, शोवरी, सुस्थावती, हर्षपुरी, माधवादि, हिञ्जिका इत्यादि राग षाड़वजातिमें शामिल हैं। इत्यादिमें श्रीकण्ठ, भौली, तारा, मालव गौड़, शुद्धाभीरी मधुकरी छाया और नीलोत्पल इन रागोंको ग्रहण करना चाहिए। षाड़वराग गानेसे संग्राममें विजय, लावण्यकी वृद्धि और सर्वत्र गुणकीर्तन होता है।

गौड़—पञ्चमहीन षाड़वजातीय गौड़का ग्रह, अंश और न्यासस्वर निषाद है। इसमें ऋषभ अत्यन्त अल्पमात्रामें प्रयुक्त होता है। यह राग दिनके अन्तिम भागमें वीर और शृङ्गाररसमें गाया जाता है।

नि स रि ग म प ध नि।

द्विजकुलोद्भव गौड़ शुभ्र वस्त्र पहने हुए विशुद्ध आसन पर बैठ कर गङ्गाजल और नीलोत्पल द्वारा देव-देव महादेवको पूजा कर रहा है।

कर्णाटगौड़—पञ्चमहीन कर्णाटगौड़का ग्रह, अंश और न्यास स्वर निषाद हैं तथा अन्यान्य विषयोंमें यह कर्णाटके समान है।

नि स रि ग म ध नि।

स्वर्णप्रभ, विशालनयन, कलाकौशलमें अभिज्ञ, विद्वान् अति धर्मात्मा कर्णाटगौड़ रुद्राक्षमालासे इष्टमन्त्रका जप कर रहा है।

देशी—वेधगुप्तोद्भव धैवतवर्जित देशीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर ऋषभ है। यह रागिणी एक प्रहरके मध्य शान्ति और करुणरसमें गाई जाती है।

रि ग म प नि स रि।

गजेन्द्रगमना, हरिणनयना, नीलोत्पलवर्णा, अतिपृथुलनितम्बा, भुजङ्गवद्वेणीवद्धा, अतिकृशांगी और धौतकुसुमराग देशी अत्यन्त मधुरभावसे हास्य कर रही है।

घल्लासिका—शुद्ध कौशिकजाता, ऋषभवर्जिता घल्लासिकाका ग्रह और अंशस्वर षड्ज है तथा न्यासस्वर मध्यम। यह रागिणी सब समय वीर और शृङ्गाररसमें गाई जा सकती है।

स ग म प ध नि स।

मनोहर श्यामतनु, बालिका, अतिनिपुणा घल्लासिका एक चित्रफलक पर अपने प्रियतमकी मूर्त्ति अंकित कर रही है, किन्तु अश्रुजलसे वक्षःस्थलको प्लावित कर रही है।

कोलाहल—पञ्चमहीन कोलाहलका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। इसमें मन्द्र मध्यम और धैवतका प्रयोग होता है, जिसमें गमकान्वित मध्यमका प्रयोग अधिक पाया जाता है, यह रागिणी कलहके समय ही गाई जाती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—उन्मुक्त पुंस्कोकिलके समान सुकण्ठयुक्त, कृष्णाङ्ग, वंशीध्वनि सुननेके लिए उत्सुक, तरुण कोलाहल नादस्वरसे कृष्णगुण गा रहा है।

वल्लारी—वराटीकी उपाङ्गस्वरूपा, ऋषभहीना, मन्द्र धैवत-भूषिता वल्लारीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। यह रागिणी शृंगाररसमें अधिकतासे प्रयुक्त होती है।

स ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—श्यामा, युवक पतिसे क्रुद्धा वल्लारी सखियों द्वारा प्रबोधित हो कर भी कान्तकी तरफ पीठ किये हुए बैठी है।

देशाख्य—ऋषभ वर्जित, तार गान्धार-भूषित देशाख्यका ग्रह अंश और न्यासस्वर षड्ज है।

स ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—बाहुयुद्धप्रिय, विशालबाहु, अत्युन्नतदेह स्वर्णवर्ण अतितेजस्वी देशाख्य राग वाहवाही पानेके कारण रोमाञ्चित हो उठा है।

शावेरी—पञ्चमहीन शावेरीका ग्रह और अंशस्वर मध्यम है, न्यासस्वर धैवत है। यह रागिणी मन्द्रमध्यमा और स्वल्पषड्ज है। यह करुणरसमें गाई जाती है।

म ध नि स रि ग ध।

मूर्त्ति—उज्ज्वलवर्णा, गजमुक्ताका हार पहने हुए शावेरी श्रीखण्ड पर्वतके शिखर पर बैठ कर चन्दनवृक्षसे भुजंग खींच कर हाथोंमें वलयकी तरह पहन रही है।

सुस्थावती—गमकयुक्त गान्धार मध्यमान्वित पञ्चमहीना सुस्थावतीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवती है। यह रागिणी रात्रिके समय शृङ्गाररसमें गाई जाती है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—कुन्दकुसुम-सदृशा, सुन्दरदशना सुस्थावती शरत्कालीन मेघके समान शुभ्र वस्त्र पहने हुए ब्राह्मणीकी सेवामें निमग्न है।

हर्षपुरी—मालव-कौशिकसे उत्पन्न पञ्चमवर्जित हर्षपुरीका ग्रह और अंश षड्ज है तथा न्यास धैवत। यह रागिणी विजयके समय गाई जाती है।

स रि ग म ध नि ध।

मूर्त्ति—विलेपनद्रव्यसे दृढ़ अनुराग रखनेवाली, मुग्धस्वभावा, मनोहरमूर्त्ति, प्रौढ़ा हर्षपुरी रात्रिके अन्तमें रमण करनेके बाद पतिके मुंहकी तरफ टकटकी लगाये देख रही है।

माधवादि—धैवतहीन माधवादिका ग्रह, अंश और न्यासस्वर पञ्चम है। इसमें मन्द्रमध्यमका प्रयोग होता है और यह मेघाच्छन्न दिवसमें गाया जाता है। कोई कोई इसे मल्लारी कहते हैं।

प नि स रि ग म प।

मूर्त्ति—कमनीय मूर्त्ति-विशिष्ट गौरवर्ण। वृद्ध माधवादि राग कृष्णाजिन आसन पर बैठ कर नारद और तुम्बुरु गन्धर्वोंके साथ सङ्गीतालाप कर रहा है।

हुञ्जिका—पञ्चमवर्जित हुञ्जिकाका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। इसमें गमकयुक्त षड्ज और मध्यमको प्रयोग देखा जाता है। यह रागिणी तृतीय प्रहरके बाद शृङ्गाररसमें गाई जाती है।

ध नि स रि ग म ध।

मूर्त्ति—नवदूर्वादल-श्यामल हुञ्जिकाका पति बल दिखा कर हुञ्जिकाको विवस्त्रा करके अपनी अङ्क पर बैठा कर दाहिना हाथ गलेमें डाल बायें हाथसे कुच मर्दन कर रहा है।

श्रीकण्ठिका—गान्धारहीन श्रीकण्ठिकाका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। यह रागिणी वीररसमें गाई जाती है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—श्यामाङ्गी श्रीकण्ठिका पतिके भाजे हुए केश अपने हाथसे हिला कर सुखा रही है और उससे हाथके सुवर्णवलय सुमधुर ध्वनि कर रहे हैं।

भौली—पञ्चमहीन भौलीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर गान्धार है। यह रागिणी प्रातःकालके समय देवस्तुतिमें गाई जाती है।

ग म ध नि स रि ग।

मूर्त्ति—मनोहारिणी भौली रात्रिके समय अपने पुत्रको पतिका गोदमें बार बार देती हुई नाना प्रकारके मधुरालापसे आमोद कर रही है।

तारा—मध्यमवर्जित ताराका ग्रह अंश और न्यासस्वर निषाद है। यह रागिणी युद्धके समय दिन रात गाई जा सकती है।

नि स रि ग प ध नि।

मूर्त्ति—तड़ित्सम अरुणवर्ण वस्त्र पहने हुए तारा नाट्यमंदिरमें संतानोंको नृत्यके विषयमें नाना प्रकारके हाव-भावादिकी शिक्षा दे रही है।

मालवगौड़—पञ्चमहीन मालवगौड़का ग्रह, अंश और न्यासस्वर मध्यम है। यह राग वीररसमें प्रयुक्त होता है।

म ध नि स रि ग म।

मूर्त्ति—विप्रकुलोद्भव, श्यामवर्ण, युवा मालव गौड़ वीणा हाथमें लिये हुए नारदसंहिताकी नाना कथाओंकी आलोचना कर रहा है।

आभीरी—ऋषभहीन आभीरीका ग्रह, अंश, न्यास और स्वर धैवत है। यह रागिणी शोकके समय गाई जाती है।

ध नि स ग म प ध।

मूर्त्ति—गोपवल्लभा आभीरी दधिमन्थन कर रही है, जिससे उसकी मेखला और कङ्कण अस्फुटध्वनि कर रहे हैं तथा उसके मुखारविन्दसे स्वेदाम्बु भर रहा है।

मधुकिरी—गांधारहीन मधुकिरीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—मधुकिरीका सर्वांग पुष्पोंसे आच्छादित, चक्षु अर्द्धमुद्रित, वर्ण चम्पक सदृश, करतल अति रमणीय और मुखकमल पर मधुके लोभसे भ्रमरनिचय मत्त हो कर मधुरध्वनि कर रहे हैं।

छाया—मध्यमरहित छायाका ग्रह, अंश और न्यास-स्वर षड्ज है। यह रागिणी श्रृंगार और वीररसमें गाई जाती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—नीलोत्पल-दलश्यामा, मुक्तकेशी, दिगम्बरी, सूर्यप्रिया छाया गलेमें सूर्यकान्तमणि धारण किये हुए अति भीषण आकार धारण किये हुए हैं।

मध्यमादि, मल्लार, देशपाली, मालव, हिन्दोल, भैरव, नागध्वनि, गौण्डकिरी, ललिता, छाया, वेलावली, प्रताप-सैन्धवी इत्यादि राग रागिणियां औड़व-जातिमें शामिल हैं। आदि पदसे तुरुष्कगौड़, गान्धार, पुलिन्दी और मेघरंगिका ग्रहण की गई है। व्याधिनाश, शत्रुनाश, भय-नाश, ग्रहशान्ति और अर्थ उपार्जनके लिये औड़व राग गाना चाहिए। इनमेंसे प्रायः सभीके स्वरग्रामादि पहले लिखे जा चुके हैं; हां, जो नहीं लिखे गये उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

नागध्वनि—टक्कावेशसे उत्पन्न ऋषभ-पञ्चमहीन नागध्वनिका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज हैं। यह दिनको गाया जाता है।

स ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—हिंगुलके समान लोहितवर्ण, शुक्ल वस्त्र पहने हुए, शत्रुविजेता, युवा, गजकुलोद्भव, मतमातंगके समान गम्भीरनादी नागध्वनि सुननेमें अति सुखदायक होती है।

गौण्डकिरी—ऋषभ-धैवतहीन गौण्डकिरीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। यह प्रातःकालमें श्रृंगार-रसमें गाया जाता है।

स ग म प नि स।

मूर्त्ति—श्यामाङ्गी गौण्डकिरी रमणोत्सुका हो कर अति कोमल पुष्पशय्या पर बैठी हुई कान्तके आगमनकी प्रतीक्षामें इतस्ततः दृष्टि दौड़ा रही है।

तुरुष्कगौड़—ऋषभ पञ्चमहीन तुरुष्कगौड़का ग्रह, अंश और न्यासस्वर निषाद है। यह राग वीर और श्रृंगाररसमें गाया जाता है।

नि स ग म ध नि।

मूर्त्ति—अरुणवर्ण तुरुष्कगौड़ सर्वाङ्ग वर्मसे ढके हुए तथा मस्तक पर उष्णीष धारण किये हुए घोड़े पर सवार हो कर शङ्खध्वनि कर रहा है।

गान्धार—षड्ज-पञ्चमहीन गान्धारका ग्रह, अंश और न्यासस्वर मध्यम है। यह राग करुणरसमें ही प्रयुक्त होता है।

म ध नि रि ग म।

मूर्त्ति—अति क्षीणशरीर गान्धार मस्तक पर जटा धारण किये हुए, गैरिकवसन पहने हुए, गलेमें योगपट्ट डाल कर तपस्वीके वेशमें आँखें मूंद कर ध्यानमें मग्न हैं।

पुलिन्दिका—गान्धारपञ्चमहीना पुलिन्दिका ग्रह अंश और न्यासस्वर षड्ज हैं। यह रागिणी समस्त रसोंमें गाई जाती है।

स रि म ध नि ध।

मूर्त्ति—इन्दीवरद्युति पुलिन्दिका मुक्ताओंसे विभूषित और वृक्षपल्लवोंसे आच्छादित हो कर कण्डोल-वीणा बजा रही है।

मेघरङ्गी—पञ्चमधैवतवर्जिता मेघरङ्गीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। यह रागिणी दिनको वीररसमें गाई जाती है।

स रि ग म नि स।

मूर्त्ति—मेघरङ्गी उपवनमें जा कर नूतन कर्णिकार पुष्पोंके कर्णभूषण और वकुलपुष्पोंकी माला धारण करके काञ्ची पहनका एक शारिकाको अपने हाथमें लिये हुए उसे राम नाम सिखा रही है।

इस सब राग रागिणीयोंके संयोगसे अनन्त मिश्र राग-रागिणियां उत्पन्न हुई हैं, जिनमें कुछ मिश्र राग-रागिणियोंका यहां उल्लेख किया जाता है।

मिश्रराग और रागिणी।

देशाख्या और मल्लारीके संयोगसे सौरठी, नट और मल्लारके सहयोगसे नट्ट-मल्लिका, गुर्जरी और देशकी मिश्रणसे रामकेली, तोड़ी और धन्नासिकाके संयोगसे मारठी, देशाख्या और आशावरीके योगसे वल्लारी, श्री और नटके सहयोगसे गौरी, नट और कर्णाटके मिलनेसे कल्याणी, कर्णाट और भैरवके योगसे कर्णाटिका, मल्लारी, सैन्धवी और तोड़ीके सहयोगसे आशावरी तथा सैन्धव

और तोड़ीके संयोगसे सुखावती इत्यादि मिश्रराग और रागिणियोंकी उत्पत्ति हुई है।

रागोंके गानेका समय।

सङ्गीतदर्पणके मतसे दिनमें जिस समय जो राग गानेका विधान है, उसका वर्णन किया जाता है। मधुमाधवी, देशाख्या, भूपाली, भैरवी, वेलावली, मल्लारी, वल्लारी, सोमगुर्जरी, धानश्री, मालश्री, मेघ, पञ्चम, देशकारी, भैरव, ललिता, वसन्त ये राग-रागिणियां प्रातःकालसे ले कर दिनके एक प्रहर तक गाई जाती हैं। गुर्जरी, कौशिक, शावेरी, पटमञ्जरी, रेवा, गुणकिरी, भैरवी, रामकिरी, सौरटी ये रागिणियां दिनके एक प्रहरके बाद दूसरे प्रहरके मध्य गानी चाहिए। वैराटी, तोड़ी, कामोदी, कुड़ारिका, गान्धारी, देशी, शङ्कराभरण ये राग रागिणियां दिनके दूसरे प्रहरके बाद तीसरे प्रहरके मध्य गाई जाती है। श्री, मालव, गौरी, त्रिवणा, नटकल्याण, सारङ्गनट, नाट, केदारी, कर्णाटी, आभीरी, बड़हंसी, पहाड़ी ये राग रागिणियां दिनके तीसरे प्रहरके बाद आधी रात तक गाई जा सकती है। परन्तु राजाकी अनुमतिसे सभी रागरागिणियां सब समय गानेमें कोई दोष नहीं।

पञ्चमसारसंहिताके मतसे विभाषा, ललिता, कामोदी, पटमञ्जरी, रामकेलि, रामकिरी, बराड़ी, गुर्जरी, देशकारी, शुभगा, आभीरी, पञ्चमी, गड़ा, भैरवी, कौमारी ये पन्द्रह रागिणियां पूर्वाह्नमें; वराटी, मालवी, केन्द्रा, रैवती, धानश्री, वेलावली, मरहट्टा ये सात रागिणियां मध्याह्नके समय; गान्धारी, दीपिका, कल्याणी, प्रवारी, वरी, आशावरी, काम्बुला, गौरी, केदारी, पाहिड़ा ये रागिणियां सायाह्नमें गाई जाती हैं। परन्तु रात्रि दश दण्डके बाद सभी राग गाये जा सकते हैं। उसमें कोई दोष नहीं।

दाक्षिणात्योंके मतसे देशाख्या, भैरवी, देवरत्नहंशी, माहुसा, नकरञ्जिका इन रागिणियोंकी प्रातःकालमें जो व्यक्ति गाता है, वह अत्यन्त सुखी होता है। सायंकालमें इनका गाना अति निषिद्ध है और शुद्धनट्टा, सारङ्गी नट्ट, वराटिका, छाया, गौड़ी, ललिता, मल्लारिका, गौरी, तोड़िका, गाड़, मालवगौड़, रामकिरी, कर्णाट, बंगाली ये रागिणियां चन्द्रसे उत्पन्न हैं, प्रातःकालमें इनका गान करना अति निन्दित है, सायंकालमें गान करनेसे महती लक्ष्मी प्राप्त होती है।

कौमुदीके मतसे श्रीपञ्चमीसे ले कर दुर्गापूजा तक वसन्तराग दिनमें किसी भी समय गाया जा सकता है, कोई दोष नहीं। प्रभातमें भैरवादि, मध्याह्नमें वराटि आदि और सायंकालमें कर्णाट आदि गाना उचित है।

इस प्रकार सङ्गीतशास्त्रके आचार्योंने गानकालका बहुविध समय निर्णीत किया है। जिस देशमें जिस प्रकार विधि बतलाई गई है, विज्ञ व्यक्तियोंको चाहिए कि उसी प्रकार कार्य करे।

अकालगानका दोष।

जिस रागरागिणीका जो समय निर्दिष्ट किया गया है, उसका उल्लंघन करना सर्वनाशका मूल है। हां, श्रेणीबद्ध हो कर राजाकी आज्ञा वा रङ्गभूमिमें समयोल्लंघन करनेमें दोष नहीं।

दोषका परिहार।

यदि कोई लोभ वा मोहवश समयका उल्लंघन करे, तो अन्तमें गुर्जरी रागिणी गानेसे समस्त दोषोंका खण्डन हो जाता है। किसीका मत है, कि अकालमें कोई राग गाने वा सुननेसे जो दोष लगता है, वह महादेवकी पूजा करनेसे दूर हो जाता है।

ऋतु-विभाग।

सभार्य श्रीराग शिशिर ऋतुमें, सस्त्रीक वसन्त वसन्त ऋतुमें, सपत्नीक भैरव ग्रीष्म ऋतुमें, सदार पञ्चम शरत्ऋतुमें, ससहधर्मिणी मेघ वर्षा ऋतुमें तथा सपत्नीक नट्टनारायण हेमन्त ऋतुमें गानेका विधान है। सर्वदा इसी नियमके वशीभूत हो कर चलना होगा, ऐसा कोई बन्धन नहीं है। सभी राग सब ऋतुओंमें इच्छानुसार गाये जा सकते हैं। हां, इतनी बात जरूर है, कि उक्त नियमानुसार गानेसे श्रोताओंको अधिकतर आनन्द मिलता है। (सङ्गीतशा०)

रागखाड़व (सं० पु०) खाद्यद्रव्यविशेष, खानेकी चीज। रागषाड़व देखो।

रागखाण्डविक (सं० पु०) रागषाड़वादि प्रस्तुतकारी मोदक।

रागचूर्ण (सं० पु०) १ कामदेव। २ खदिरवृक्ष, खैरका

पेड़। ३ फल्गुचूर्ण, काकडुम्बरका चूर्ण। ४ लाक्षारस, लाखका रस।

रागच्छन्न (सं० पु०) रागेन छन्नः। १ कामदेव। २ रामचन्द्र। (त्रि०) रागेन छन्नः। ३ राग द्वारा आच्छन्न।

रागद (सं० पु०) रागं ददाति दा-क। १ तैरणीक्षुप। २ रागदाता, राग देनेवाला। ३ क्रोधोद्दीपक, गुस्सा उपजानेवाला।

रागदालि (सं० पु०) रागदा रागप्रदा आलिः पंक्तिर्यत्र। मसूर।

रागधृक् (सं० पु०) माणिक्य।

रागद्रव्य (सं० क्ली०) रञ्जनद्रव्य, रंग।

रागपट्ट (सं० क्ली०) मूल्यवान् प्रस्तरभेद, एक प्रकारका बहुमूल्य पत्थर।

रागपुष्प (सं० पु०) रागविशिष्टं रक्तवर्णपुष्पं यस्य। १ बन्धूक, गुलदुपहरिया। २ रक्ताम्लान।

रागपुष्पी (सं० स्त्री०) रागयुक्तं पुष्पं यस्याः ङीप्। जवा।

रागप्रसव (सं० पु०) रागयुक्तः रक्तवर्णः प्रसवः पुष्पं यस्य। १ बन्धूक, गुलदुपहरिया। २ रक्ताम्लान।

रागबन्ध (सं० पु०) १ अनुरागका चिह्न। २ संगीतके अनुसार योगका समन्वय।

रागभञ्जन (सं० पु०) १ एक विद्याधरका नाम। २ क्रोधका अपनोदन, क्रोधको हटाना या दूर करना।

रागमञ्जरी (सं० स्त्री०) एक नायिकाका नाम।

रागमय (सं० त्रि०) १ लोहितवर्णयुक्त, लाल रंगका। २ प्रिय, प्यारा।

रागमाला (सं० स्त्री०) रागोंका समूह।

रागयुज् (सं० पु०) रागेन युज्यते इति युज्-क्विप्। माणिक्य।

रागरज्जु (सं० पु०) रागो रज्जुरिव यस्य, नायकयोः परस्परानुरागबद्धत्वात्तथात्वं। कामदेव।

रागलता (सं० स्त्री०) रागस्य जनिका लतेव। कामदेवकी स्त्री, रति।

रागलेखा (सं० स्त्री०) चन्दन आदिका चिह्न या रेखा।

रागवत् (सं० त्रि०) रागो विद्यतेऽस्य राग-मतुप् मस्य व। रागयुक्त, रागविशिष्ट।

रागविरोध (सं० पु०) रोगका ज्ञान।

रागविवाद (सं० पु०) गाली गलौज।

रागवृन्त (सं० पु०) रागस्य वृन्त इव। कामदेव।

रागषाड़्व (सं० पु०) खाद्य द्रव्यविशेष, एक प्रकारका खाद्य पदार्थ। यह अनार और दाखसे बनता है। इसका गुण रुचिकारक, लघुपाक, वात, पित्त और कफनाशक माना गया है। (राजव०)

सुश्रुतके मतसे—लघु, बृंहण, वृष्य, हृद्य, रोचन और दीपन तथा तृष्णा, मूर्च्छा, भ्रम, छर्दि और श्रमनाशक। (सुश्रुत ४६ अ०)

२ एक प्रकारका खाद्यद्रव्य, आमका मुरब्बा। इसके बनानेका तरीका—कच्चे आमको घीमें थोड़ा भुन कर गुड़में उसे पाक करे। पाक सिद्ध होने पर उतार ले और उसमें मिर्च और इलायची डाल दे। इसका गुण पुष्टिकारक, बलप्रद, पित्त, वात, अस्र और अरुचिनाशक, स्निग्ध, गुरु और तर्पण। इसको रागखाड़व या रागखाण्डव भी कहते हैं।

रागसारा (सं० स्त्री०) मनःशिला, मैनसिला।

रागसूत्र (सं० क्ली०) रागयुक्तं रक्तवर्णं सूत्रं। १ तुलासूत्र, रुईका सूता। २ पट्टसूत्र, रेशमका सूता।

रागाङ्गी (सं० स्त्री०) रागविशिष्टं अङ्गं यस्याः ङीप्। मञ्जिष्ठा, मजीठा।

रागाढ्या (सं० स्त्री०) रागेण आढ्या, मञ्जिष्ठा, मजीठा।

रागानुग (सं० त्रि०) रागका अनुगामी।

रागान्ध (सं० त्रि०) क्रोधान्ध, भारी क्रोधी।

रागान्वित (सं० त्रि०) १ क्रुद्ध, जिसे क्रोध हो। २ जिसे राग या प्रेम हो।

रागारु (सं० त्रि०) जो किसीको कुछ देनेकी आशा बंधा कर भी न दे उसे रागारु कहते हैं।

"आशां बलवतीं दत्त्वा यो हन्ति पिशुनो जनः।
स जीवासोऽपि रागारुर्यो दोलस्तु दातरि॥"
(शब्दमाला)

रागालाप (सं० पु०) संगीतशास्त्रके अनुसार राग समूहोंका आलाप।

रागाशनि (सं० पु०) रागेषु विषयवासनासु अशनिरिव। बुद्धदेव।

रागिन् (सं० स्त्री०) रञ्ज् (संपृचानुरुधेति। पा ३।२।१४२) इति तच्छीलादिषु घिणुन्, यद्वा रागोऽस्यास्तीति राग-इनि। १ अनुरक्त, विषयवासनामें फंसा हुआ।

इस संसारमें जीव दो श्रेणियोंमें विभक्त है, रागी और विरागी। फिर इन दो मानवोंके चित्त भी दो प्रकारके हैं। उक्त रागी मूर्ख और चतुर इन दो भागोंमें तथा विरागीज्ञात, अज्ञात और मध्यम इन तीन भागोंमें विभक्त हैं।

संसारमें जिनका अनुराग है वही रागी कहलाते हैं। उक्त रागियोंके बार बार विविध सुख और दुःख हुआ करते हैं। स्त्री, पुत्र, धन, पान और अभ्युदय आदि जो कुछ पानेसे ही रागियोंके सुख और उन्हें न पानेसे ही क्षण क्षणमें भारी दुःख होता रहता है। जिस उपायसे ऐहिक सुख प्राप्त हो, उसी सुखसाधन उपायसे रागियोंको काम करना उचित है। सुतरां जो व्यक्ति सुखविघ्नकारी है, उसीको शत्रु और जो सुख देनेवाला हो उसीको मित्र समझना चाहिये। उनमेंसे चतुर रागी किसी हालतसे भी मुग्ध नहीं होते। मूर्ख रागी ही सर्वत्र विमुग्ध होते हैं। (देवीभाग० १।३३ अ०) २ रक्तवर्णविशिष्ट, लाल रंगका। ३ लाल, सुर्ख। ४ रञ्जनकारी, रंगनेवाला। (पु०) ५ तृणधान्यविशेष मड़ुवा या मकरा नामक कदन्न। पर्याय—लाङ्गल, बहुतरकणिश, गुच्छकणिश। इसका गुण तिक्त, मधुर, कषाय, शीतल, पित्तास्रनाशक और बलकर माना गया है। (राजनि०) ६ छः मात्रावाले छन्दोंका नाम। ७ अशोकवृक्ष।

रागिणी (सं० स्त्री०) रागोऽस्त्यस्या इति राग-इनि ङीप्। १ विदग्धा स्त्री। २ पुराणानुसार मेनाकी बड़ी कन्याका नाम। ३ जयश्री नामकी लक्ष्मी। ४ संगीतमें किसी रागकी पत्नी या स्त्री। विशेष विवरण राग शब्दमें देखो।

रागी (सं० पु०) रागिन् देखो।

राघव (सं० पु०) रघोरपत्यमिति रघु-अण्। १ रघुके वंशमें उत्पन्न व्यक्ति। २ श्रीरामचन्द्र। ३ अज। ४ दशरथ। ५ समुद्रजात महामत्स्यविशेष, समुद्रमें रहनेवाली एक प्रकारकी बहुत बड़ी मछली।

"अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तृतः।
तिमिङ्गिलगिलोऽप्यस्ति तद्गिलोऽप्यस्ति राघवः॥

(कलापव्याकरण कृद्वृत्ति १ पा० दुर्गसिंह)

राघव—१ गणेशस्तुतिके रचयिता। २ विरहिणीमनोविनोदटीकाके प्रणेता। ३ वैद्यविलासके रचयिता।

राघव आचार्य—१ इन्दिराभ्युदयकाव्य और उत्तरचम्पूरामायणके प्रणेता। २ तर्करत्नार्पणके रचयिता। ३ शुद्धिदीपिका-प्रकाश नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ४ एक विख्यात नैयायिक तथा न्यायरत्नके प्रणेता रघुनाथ पर्व्वतीकरके गुरु।

राघव चक्रवर्त्ती—कार्त्तिकीपटल, जातकसारसंग्रह और सूर्यसिद्धान्तरहस्यके प्रणेता। सम्भवतः १५९२ ई०में उन्होंने शेषोक्त ग्रंथ समाप्त किया।

राघवचैतन्य—कविकल्पलता और महागणपति-स्तोत्रके प्रणेता।

राघवचैतन्य (सं० पु०) एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि।

राघवदेव—पद्धतिकार शार्ङ्गधरके पितामह और गोपालके पिता। ये राजा हम्मीरकी सभामें विद्यमान थे। इनके बनाये कुछ श्लोक मिलते हैं।

राघवदेव—गणेशशिष्य लघुचिंतन नामक मीमांसाग्रंथके प्रणेता।

राघवनन्दन—पञ्चपक्षी-टीका नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।

राघवपञ्चानन भट्टाचार्य—आत्मतत्त्वप्रबोध नामक न्यायग्रंथके प्रणेता।

राघवभट्ट—१ कालीतत्त्वरहस्य, दुर्गातत्त्व और पदार्थादर्श नामक शारदातिलकटीकाके रचयिता। तन्त्रसारमें इनका उल्लेख है।

२ शार्ङ्गके पुत्र और महादेव सर्वज्ञ वादीन्द्रके शिष्य। इन्होंने १२५२ ई०में न्यायसारविचार प्रणयन किया।

३ अर्थद्योतनिका नाम्नी अभिज्ञान शकुन्तलकी टीका, उत्तररामचरितटीका और मालतीमाधवटीका नामक तीन ग्रंथके रचयिता। ४ विख्यात वैष्णव पण्डित। श्रीनिवासाचार्यकी सहायतासे इन्होंने व्रजधामका उद्धार किया।

राघवराय—हस्तरत्नावलीके रचयिता।

राघवराय—नवद्वीपके एक राजा तथा स्मार्त्तव्यवस्थार्णव-के प्रणेता रघुनाथके प्रतिपालक। नवद्वीप देखो।

राघवानन्द—१ एक राजमन्त्री। उनके बनाये नाटकका दो श्लोक साहित्यदर्पण (७।४६)में उद्धृत हुआ है। २ सिद्धान्तकौमुदी नाम्नी सिद्धान्तसंग्रहटीकाके रचयिता।

राघवानन्दमुनि—परमार्थसारटीका और विद्यार्च्चनमञ्जरी-के प्रणेता।

राघवानन्दयति—पातञ्जलरहस्यके रचयिता।

राघवानन्द शर्म्मन्—विदग्धतोषिणी नामकी जातकपद्धति-के टीकाकार।

राघवानन्द सरस्वती—लघुवाक्यवृत्तिप्रकाशिकाके प्रणेता रामानन्द सरस्वतीके गुरु। ये रामभद्रके भी गुरु थे।

राघवानन्द सरस्वती—अद्वयानन्दके शिष्य। इन्होंने तर्का-र्णव या तत्त्वामृतप्रकाशिनी नामकी सांख्यतत्त्वकौमुदी-की टीका, मन्वर्थचन्द्रिका, मीमांसास्तवक, विद्यामृत-वर्षिणी तथा मीमांसासूत्रदीधिति या न्यायावलीदीधिति नामके कई ग्रन्थोंकी रचना की।

राघवेन्द्र—जयतीर्थकृत कर्मनिर्णयटीकाटिप्पण, जयतीर्थ-कृत तत्त्वोद्योतविवरणकी टीका, जयतीर्थकृत तत्त्व-प्रकाशिका नामकी आनन्दतीर्थके ब्रह्मसूत्रभाष्यकी तन्त्र दीपिका नामकी टिप्पणी, व्यासतीर्थकृत तात्पर्यचन्द्रिका-की टिप्पणी, जयतीर्थकृत न्यायसुधाकी परिमल नामकी टीका, आनन्दतीर्थकृत विष्णुतत्त्वनिर्णयकी भावदीप नामकी टीका, तर्कताण्डवटीकाका न्यायदीप नामक टिप्पण तथा आनन्दतीर्थकृत ब्रह्मसूत्रभाष्यकी जयतीर्थ-कृत टीकाके भावरूप नामक टिप्पण आदिके रचयिता।

राघवेन्द्र—१ अमरकोषभाष्यके प्रणेता। इनके पिताका नाम था कृष्णभट्ट। २ मन्त्रार्थदीप और रामप्रकाश नामक दो ग्रन्थके रचयिता तथा काशीनाथके पुत्र और भवानन्द सिद्धान्त वागीशके छात्र। ये शतावधान नामसे सर्वत्र ख्यात थे।

राघवेन्द्र आचार्य—त्रिपथगा नामकी परिभाषेन्दुशेखरकी टीका, प्रभा नामकी शब्दकौस्तुभकी टीका, विषमी नामकी शब्देन्दुशेखरकी टीका और राघवेन्द्रीय नामक एक व्याकरणके प्रणेता। १८५५ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

राघवेन्द्रमुनि—वैष्णवसिद्धान्तवैजयन्ती और उसकी टीका-के रचयिता।

राघवेन्द्रयति—१ सुधीन्द्रयतिके शिष्य एक प्रसिद्ध संस्कृत दार्शनिक। ये तन्त्रदीपिका नामक ब्रह्मसूत्रभाष्य, भगवद्गीतार्थ विवरण तथा ईश, केन, काठक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, वृहदारण्यक, माण्डूक्य आदि उपनिषद्को भाष्यकी रचना कर गये हैं। इसके अलावा जयतीर्थ-कृत कर्मनिर्णयकी टीका, जयतीर्थका तत्त्वोद्योतविव-रण, आनन्दतीर्थरचित ब्रह्मसूत्रभाष्यके ऊपर जयतीर्थने जिस तत्त्वप्रकाशिका नामकी टीका लिखी उस टीकाकी टीका, न्यायदीप नामक तर्कताण्डवकी टीका, व्यासतीर्थ-कृत तात्पर्यचन्द्रिकाकी टीका, परिमल नामक जय-तीर्थकी न्यायसुधाकी टीका आदि ग्रंथ भी राघवेन्द्रके बनाये हैं। फिर किसीके मतसे शेषोक्त ग्रंथके रच-यिता राघवेन्द्र राघवेन्द्रयतिसे भिन्न हैं।

राघवेन्द्र शतावधान—बंगालके एक अद्वितीय श्रुतिधर पण्डित। इनके पिताका नाम काशीनाथ और भाईका नाम राजेन्द्र और महेश था। विद्वन्मोदतरङ्गिणीके रचयिता रामदेवचिरञ्जीव इनके पुत्र थे। इनके गुरुका नाम था भवानन्द सिद्धान्तवागीश। इन्होंने मन्त्रार्थ-दीप और रामप्रकाशकी रचना की।

राघवेन्द्र सरस्वती—सिद्धान्तशिरोमणि नामक वैदान्तिक ग्रंथके रचयिता।

राघवाभ्युदय (सं० पु०) एक प्रसिद्ध संस्कृत नाटक।

राघवायन (सं० क्ली०) राघवस्य रामस्य चरिताश्रितं अयनं शास्त्रं। रामायण।

"सेतिहासपुराणानि राघवायनभारतं।
समाप्तिरहितान्येव सन्ति तानि श्रुतानि ते॥" (अग्निपु०)

राघवीय (सं० क्ली०) राघवका रचा हुआ ग्रन्थ।

राघवेश्वर (सं० क्ली०) शिवलिङ्गभेद।

राङ्कल (सं० पु०) वृक्षकण्टक, गाछका कांटा।

राङ्कव (सं० क्ली०) रङ्कौ भवं रंकु (रङ्कोरमनुष्येऽण् च। पा ४।२।१००) अनि अण्। १ मृगलोमजात वस्त्रादि, मृगोंके रोएंसे बना हुआ कपड़ा आदि। २ पशम, नरम

ऊन। (पु०) ३ गाभि, गाय। (त्रि०) ४ राङ्कवाकृति, गायके जैसा मुखवाला।

राङ्कवक (सं० पु०) मनुष्य।

राङ्कवायण (सं० त्रि०) रंकुसे जात या आगत।

राङ्कण (सं० क्ली०) पुष्पविशेष, एक प्रकारका फूल।

राचना (हिं० क्रि०) १ रचना, बनाना। २ रचा जाना, बनना। ३ रंगा जाना, रंग पकड़ना। ४ लीन होना, मग्न होना। ५ शोभा देना, भला जान पड़ना। ६ प्रसन्न होना। ७ प्रभावान्वित होना, सोचमें या चिन्तामें पड़ना। ८ अनुरक्त होना, प्रेम करना।

राछ (हिं० पु०) १ कारीगरोंका औजार। २ जुलाहोंके करघेमें एक औजार जिससे तानेका तागा नीचे उठता और गिरता है। यह दो नरसलोंका होता है जिसके बीचमें ऊपर नीचे तागे बंधे होते हैं और जिनके बीचसे तानेके तागे एक एक करके निकाले जाते हैं। ३ बरात, जलूस। ४ लकड़ीके अंदरका पक्का अंश, हीर। ५ लोहारका बड़ा हथौड़ा। ६ चक्कीके बोचका खूंटा जिसके चारों ओर ऊपरका पाट फिरता है।

राछबंधिया (हिं० पु०) वह जुलाहा या आदमी जो राछ बांधनेका काम करता हो।

राज (हिं० पु०) १ देशका अधिकार या प्रबंध, प्रजा-पालनकी व्यवस्था, हुकूमत, शासन। २ पूरा अधिकार, खूब चलती। ३ उतना भूमिमान जितना एक राजा द्वारा शासित होता है, एक राजा द्वारा शासित देश। ४ देश, जनपद। ५ अधिकारकाल, समय। ६ राजा। ७ वह कारीगर जो ईंटोंसे दीवार आदि चुनता और मकान बनाता है, राजगीर, थवई।

राज़ (फा० पु०) रहस्य, भेद।

राजक (सं० क्ली०) राज्ञां समूहः राजन् (गोत्रोक्षोष्ट्र रभ-राजेति। पा ४।२।३९) इति वुञ्। १ राजाओंका समूह। २ कृष्णागुरु, काला अगर। राजन्-स्वार्थे कन्। (पु०) ३ राजा। (त्रि०) ४ दीप्तिकारक, चमकनेवाला।

राजकथा (सं० स्त्री०) राजाख्यायिका, इतिहास।

राजकदम्ब (सं० पु०) कदम्बानां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। कदम्बविशेष, एक प्रकारका कदंब जिसके फूल बड़े और स्वादिष्ट होते हैं।

राजकन्यका (सं० स्त्री०) राज्ञः कन्यका। राजकन्या, राजाकी पुत्री।

राजकन्या (सं० स्त्री०) राज्ञः कन्येव। १ केविकापुष्प, केवड़ेका फूल। २ नृपसुता, राजाकी पुत्री।

राजकर (सं० पु०) राजग्राह्यकरः। वह कर जो प्रजासे राजा लेता है, राजाको मिलनेवाला महसूल।

राजकरण (सं० पु०) १ न्यायालय, अदालत। २ राजनीति।

राजकर्कटी (सं० स्त्री०) चीनाककड़ी, एक प्रकारकी ककड़ी।

राजकर्ण (सं० पु०) हस्तीका शुण्ड, हाथीका सूंड़।

राजकर्त्ता (सं० पु०) राजकर्तृ देखो।

राजकर्तृ (सं० पु०) १ वह व्यक्ति जो राजगद्दी पर बैठते समय राजाकी सहायता करता है। २ जो पुरुष दूसरेको राजसिंहासन पर बैठाता है, किसीको राजगद्दी पर यथेच्छ बैठाने और उतारनेकी शक्ति रखनेवाला पुरुष।

राजकर्मन् (सं० क्ली०) राज्ञः कर्म। राजाका कार्य, वह काम जो राजाके कर्त्तव्य हो।

राजकलश (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

काश्मीर देखो।

राजकला (सं० स्त्री०) चंद्रमाकी सोलह कलाओंमेंसे एक कलाका नाम।

राजकशेरु (सं० पु०) कशेरूणां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। भद्रमुस्ता, नागरमोथा।

राजकार्य (सं० क्ली०) राज्ञः कार्यं। राजाका काम।

राजकार्श (सं० क्ली०) शालवृक्ष, सखुआका पेड़।

राजकाष्ठ (सं० क्ली०) पतङ्गचंदन, बक्कम नामक लकड़ी।

राजकिनेय (सं० पु०) रजकीका पुं अपत्य।

राजकीय (सं० त्रि०) राज्ञ इदं राजन् (राज्ञःकच। पा ४।२) इति छः, ककारश्चान्ता देशः। राज-सम्बन्धीय, राजा या राज्यसे सम्बन्ध रखनेवाला।

राजकुंअर (हिं० पु०) राजकुमार।

राजकुमार (सं० पु०) राज्ञः कुमारः। राजपुत्र, राजाका लड़का। कविकल्पलतामें लिखा है, कि राजपुत्रमें निम्नोक्त गुण रहते चाहिये। यथा—शस्त्र, शास्त्र, औ-

समूह, बल, गुणसमूह, वाघाली, खुरली, राजभक्ति और शुभगति आदि।

"कुमारे शस्त्रशास्त्रश्रीकलाबल गुणोच्छ्रयाः।
वाघाली खुरली राजभक्तिः शुभगतादयः॥"

(कविकल्पलता)

राजकुमारिका (सं० स्त्री०) राजकन्या, राजाकी पुत्री।

राजकुल (सं० स्त्री०) राज्ञः कुलं। राजवंश, राजाओंका खानदान।

राजकुलक (सं० पु०) पटोललता, परवलकी लता।

राजकुलभट्ट (सं० पु०) १ राजसभापण्डित। २ राजभाट, वह जो राजाकी कुलप्रशस्ति वर्णना करता है।

राजकुष्माण्ड (सं० पु०) वार्त्ताकी, बैंगन।

राजकृत् (सं० पु०) राजकर्त्तृ देखो।

राजकृत (सं० त्रि०) राज्ञो कृतः। राजा द्वारा अनुष्ठित, जो राजा द्वारा किया गया हो।

राजकृत्य (सं० क्ली०) राज्ञः कृत्यः। राजका काम।

राजकृत्वन् (सं० पु०) राजकर्त्ता।

राजकोट—बम्बईप्रदेशके काठियावाड़के हल्लास विभागके अन्तर्गत एक देशी सामन्तराज्य। यह अक्षा० २१° ३´ से २२° २७´ उ० तथा देशा० ७०° ४६´ से ७१° १६´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २८३ वर्गमील और जनसंख्या ५० हजारसे ऊपर है। यहांकी जमीन ऊँची नीची है। यों तो इस राज्यमें कितनी नदी बहती है, पर जल केवल अजी और अजयनदमें ही बारहों महीना रहता है। धान, गेहूं, ईख और कपास यहांकी प्रधान उपज है। जलवायु स्वास्थ्यकर है। इसमें राजकोट नामक एक शहर और ६० गांव लगते हैं।

काठियावाड़का राजकोट २य श्रेणीका सामन्तराज्य समझा जाता है। यहांके अधिपति नवानगर राजवंशकी शाखा और भाड़ेजा राजपूतवंशीय हैं। राम रावलके परपोते अजोजीके छोटे लड़के कुवँर विभोगी राज्यके स्थापयिता माने जाते हैं। वर्त्तमान राजाका नाम है एच, एच, ठाकुर साहब सर लखजी राज साहब के, सी, आई, ई। इन्हें गोद लेनेका अधिकार है तथा ९ सलामी तोपें मिलती हैं। राज्यकी आय करीब तीन लाखकी है जिसमेंसे बृटिश गवर्मेण्ट और जुनागढ़के नवाब दोनोंको मिला कर २१३२१) रु० करमें देने होते हैं। सैन्यसंख्या ३३६ है। राज्यमें ३ म्युनिसपलिटी, २५ स्कूल और ३ अस्पताल है।

२ राजकोट सामन्तराज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २२° १८´ उ० तथा देशा० ७०° ५०´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या करीब चालीस हजार है। हिन्दूकी संख्या सबसे ज्यादा है।

यहां दुर्ग और काठियावाड़ पोलिटिकल एजेण्टकी प्रधान कचहरी है। देशीय सामन्त-राजकुमारोंकी शिक्षाके लिये यहां एक विश्वविद्यालय है। इसके सिवा शिल्पविद्यालय, उच्च अंगरेजी विद्यालय, डाकघर, तारघर, गिरजा, जेल, डाकबंगला, धर्मशाला और भाऊनगर गण्डाल रेलवेका स्टेशन है। शहरमें म्युनिसिपलिटी भी है।

राजकोल (सं० पु०) राजबदर, बड़ा बेर।

राजकोलाहल (सं० पु०) संगीतमें तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक।

राजकोषातक (सं० क्ली०) झिंगा फल, एक प्रकारका नेनुआ जो बहुत बड़ा होता, घीया-तरोई।

राजकोषातकी (सं० स्त्री०) राजप्रिया कोषातकी। पीतघोषा, घीया तरोई। संस्कृत पर्याय—हस्तिपर्णिका, धामार्ग, केशफला, महाजाली, सपीतक। इसका गुण—शीतल, ज्वरनाशक, कफवातवर्द्धक। (मदनविनोद)

राजक्रय (सं० पु०) सोमक्रय सोम खरीदना।

राजक्रयणी (सं० स्त्री०) सोमक्रय-कारनी, सोम खरीदनेवाली स्त्री।

राजक्रिया (सं० स्त्री०) राजकार्य, राजाका काम।

राजक्षवक (सं० पु०) राजसर्षप, बड़ी राई।

राजखर्ज्जूरी (सं० स्त्री०) राजप्रिया खर्ज्जूरी। श्रेष्ठ खर्ज्जूरी, पिंडखजूर।

राजगढ़—मध्यप्रदेशके अन्तगत भूपाल-पोलिटिकल एजेन्सीके अधीन मालवका एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० २३° २७´ से २४° ११´ उ० तथा देशा० ७६° ३६´ से ७७° १४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६६२ वर्गमील है। इसके उत्तरमें ग्वालियर और कोटा राज्य, दक्षिणमें ग्वालियर और देवासराज्य, पूरबमें भूपालराज्य और

पश्चिममें किलचीपुर राज्य है। मुगलप्रभावके अधःपतन पर ओमत राजपूतोंने इसका कुछ स्थान दखल कर लिया। तभीसे उस अधिकृत जिलेका ओमतवार नाम हुआ है। १४४८ ई०में ओमतवारके सरदारने 'रावत' की उपाधि पाई। राजगढ़के सामन्त आज भी उसी उपाधिका व्यवहार करते हैं। इस वंशके लोग भोजराज और विक्रमादित्यसे अपना कुलपरिचय देते हैं। १६८१ ई०में उस समयके राजपुत्र पिताके दीवान या मन्त्री थे। उन्हींकी चेष्टासे राजगढ़पति अपना राज्य बांट देनेको बाध्य हुए। दीवानके अंशमें जो भूभाग पड़ा, उसका नाम 'नरसिंहगढ़' और रावत्के दखलमें जो भूभाग रहा, उसका नाम 'राजगढ़' रखा गया। महाराष्ट्र अभ्युदयकालमें नरसिंहगढ़ होलकरका और राजगढ़ सिन्धियाका करद हुआ।

१८११ ई०में राजगढ़पति रावत् मतिसिंहने मुसलमानीधर्ममें दीक्षित हो अपना नाम 'महम्मद अबदुल रसीद खाँ' रखा। १८७२ ई०में वृटिश गवर्मेण्टसे उन्हें 'नवाब'-की उपाधि तथा ११ सलामी तोपें मिलीं। १८८० ई०में उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के भक्तावरसिंह गद्दी पर बैठे। १८०८ ई०में भक्तावरके मरने पर उनके लड़के बलबहादुरसिंह 'रावत्' हुए। उस समय ये बहुत बच्चे थे। पितामहकी तरह इस्लाम धर्ममें दीक्षित नहीं हुए। सिंहासन पर बैठते ही उनके आत्मीय सरदारोंने फिरसे उन्हें ओमत्‌राजपूत कह कर ग्रहण किया। पीछे बन्नेसिंह १६०२ ई०में राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इनकी वंशपरम्परा उपाधि थी 'हिज हाइनेस' और 'राजा'। १६०८ ई०में उन्हें के, सी, आई, ई, की उपाधि मिली। वर्त्तमान सामन्तका पूरा नाम है एच, एच, राजा रावत् सर वीरेन्द्रसिंह साहब बहादुर के. सी. आई. ई। इन्हें भी ११ तोपोंकी सलामी मिलती है।

इस राज्यमें राजगढ़ और ब्योरा नामक दो शहर और ६१२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। हिन्दूकी संख्या ज्यादा है। वार्षिक राजस्व करीब ५ लाख रुपया है जिसमेंसे तलियान जिलेके लिये सिन्धियाको ८५१७२ रु० और काळीपीत परगनेके लिये अलवारपतिको १०००) रु० करमें देने होते हैं। अफीम और धान यहांकी प्रधान उपज है। ज्वार, सुन्दरी, चना और गेहूं भी कम नहीं उपजता। राजगढ़ शहरमें सेन्ट्रलजेल, तीन छोटे स्कूल और आठ प्राइमेट स्कूलके सिवा दो अस्पताल भी हैं।

२ उक्त राजगढ़ राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २४° ७´ उ० तथा देशा० ६६° ४४´ पू० नेवाज नदीके बांए किनारे अवस्थित है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। १६४० ई०में रावत् मोहनसिंहने इसे बसाया था। शहरमें सामन्त राजभवनके अतिरिक्त एक सराय, एक स्कूल और अस्पताल तथा पोष्ट और टेलिग्राफ आफिस है।

राजगढ़—मध्यप्रदेशके डिपटी भील एजेन्सीके अधीन एक छोटा सामन्तराज्य। डकैती और बदमाशीके लिये पहले यह स्थान बहुत मशहूर था। यहांके भील आदि जंगली जाति निकटवर्त्ती राज्यमें जा कर बहुत ऊधम मचाती थी। इसलिये अपने अपने सीमान्तप्रदेशकी रक्षा करनेके लिये होलकर और धारराजने यहांके सरदार वा भूमिया (भुंइया)-को यह स्थान छोड़ दिया तथा शान्तिरक्षाके लिये कुछ रुपये भी दिये। १८७१ ई०की १८वीं मार्चको वृटिश गवर्मेण्टने यहांके भूमियाको राजगढ़ और धाल इन दो ग्रामोंकी सनद दी।

राजगढ़—पञ्जाबके सर्मूरराज्यके अन्तर्गत एक दुर्ग। यह अक्षा० ३०° ५२´ उ० तथा देशा० ७७° २३´ पू०के मध्य अवस्थित है। दुर्ग चौकोन है। चारों कोनमें चार बुर्ज हैं। बुर्जकी ऊंचाई ४० फुट और घेरा २० वर्गफीट। १८१४ ई०में गुरखा लोगोंने दुर्गमें आग लगा कर उसे नष्ट कर डाला था। अभी उसका पुनः संस्कार हुआ है। समुद्रतहसे यह ७११५ फुट ऊंचा है।

राजगढ़—मध्यप्रदेशमें चान्दा जिलेके अन्तर्गत मूल तहसीलका एक परगना। भूपरिमाण ४४७ वर्गमील है। इसमें सौली और मूल नामक दो शहर और १४० ग्राम लगते हैं। पहले यह स्थान वैरागढ़के गोंड़राजवंशके अधिकारमें था।

राजगढ़—राजपूतानेके अलवार राज्यके अन्तर्गत राजगढ़ तहसीलका एक सहर। यह अक्षा० २७° १४´ उ० तथा

देशा० ७६´ ३८´ पू०के मध्य अलवार शहरसे २२ मील दक्षिण अवस्थित है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। अलवार-राज्यके स्थापयिता प्रतापसिंहने १७६७ ई०में इसे बसाया। शहरकी दीवार और खाई महाराव राजा बन्नी सिंहने बनवा दी है। शहरमें एक डाकघर, एक ऐङ्गलो-वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल भी है।

राजगढ़ - राजपूतानेके बीकानेर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २८´ ३१´ उ० तथा देशा० ७५´ २४´ पू०के मध्य बीकानेर शहरसे १३५ मील पूरब और उत्तर-पूरबमें अवस्थित है। जनसंख्या ४१३६ है। महाराज गजसिंहने १७६६ ई०में इसे बसाया था। उन्हींके नाम पर इसका नामकरण हुआ है। यहां एक ऐङ्गलो-वर्नाक्युलर स्कूल, एक डाकघर और एक अस्पताल है।

राजगद्दी (हिं० स्त्री०) १ राजसिंहासन, राजाके बैठनेका आसन। २ राज्याधिकार। ३ राज्याभिषेक, राज्यारोहण।

राजगवी (सं० स्त्री०) गायकी जातिका एक पशु।

राजगामिन् (सं० त्रि०) राजानं गच्छतीति गम्-णिनि। राजसम्बन्धी, राजाका।

"अनृतञ्च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया॥"

(मनु ११ अ०)

जिसका कोई उत्तराधिकारी न रहे, उसका धन राजगामी अर्थात् राजाके अधिकारमें चला जाता है।

राजगिरि (सं० पु०) १ मगधदेशके एक पर्वतका नाम। २ शाकभेद, बथुआ साग। यह साग स्थूल और सूक्ष्म-भेदसे दो प्रकारका है। पर्याय—राजाद्रि, राजशाकिनी, राजशाकनिका, इसका गुण रुचिकर, पित्तनाशक और शीतला तथा स्थूलका गुण अति शीतल और अतिशय रुचिप्रद माना गया है। (राजनि०) ३ राजगृह देखो।

राजगीर (हिं० पु०) मकान बनानेवाला कारीगर, राज।

राजगीरी (हिं० स्त्री०) राजगीरका कार्य्य या पद।

राजगुरु (सं० पु०) राजाका गुरु, राजाका उपदेष्टा।

राजगृह (सं० पु०) राजप्रासाद, राजभवन।

राजगृह—पूर्वभारतकी सुप्राचीन राजधानी। इस स्थानको हिन्दू, जैन, बौद्ध सभी पवित्र समझते हैं। महाभारतमें इस स्थानको गिरिव्रज कहा है। कुशात्मज वसुने गङ्गा और शोननदीके सङ्गमस्थान पर पहले पहल इस नगरको बसाया। वसुके पौत्र जरासन्धके समय यहां मगधकी राजधानी थी। वासुदेव जब स्नातक ब्राह्मण-वेशमें जरासन्धका वध करनेके लिये भीम अर्जुनके साथ गिरिव्रजमें जा रहे थे, तब उन्होंने इस स्थानका यों वर्णन किया है—

'हे पार्थ ! देखो, मगधराज्यका महानगर कैसा शोभता है। उत्तम उत्तम अट्टालिकाओंसे सुशोभित यह महानगरी सुजला, निरुपद्रवा और गवादिसे पूर्ण है। वैहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि तथा चैत्यक ये पांचों शैल मानो सम्मिलित हो कर गिरिव्रज नगरकी रक्षा कर रहे हैं। पुष्पित शाखाग्र सुगन्धपूर्ण मनोहर लोध्रवनराजिने उन शैलोंको मानो छुपा रखा है।' (सभाप० २१ अ०)

महाभारतमें जिस प्रकार पञ्चशैलवेष्टित गिरिव्रजका उल्लेख है, वायुपुराणोप राजगृहमाहात्म्यमें भी उसी प्रकार वैभार, विपुल, रत्नकूट, गिरिव्रज और रत्नाचल इन पांच शैलोंसे वेष्टित राजगृहका उल्लेख देखनेमें आता है। (राजगृहमा० १।१२-१४) महाभारतमें गिरिव्रजको राजधानी, परंतु राजगृहमाहात्म्यमें उसे एक शैल बताया है। इसके सिवा उक्त पञ्चशैलका भी नामान्तर देखनेमें आता है। उनमेंसे महाभारतमें जो गिरि वैहार नामसे उल्लिखित है, राजगृह-माहात्म्यमें वह वैभार तथा वर्त्तमानकालके पालिग्रन्थमें वही 'वेभारो' नामसे वर्णित हुआ है। इस वैभार शैलकी सप्तपर्णी गुहामें ५४० ई०सन्के पहले बौद्धसङ्घ हुआ था। रत्नाचलको ही चीनपरिव्राजक फाहियान 'औडुम्बर-गुहा' (Fig tree cave) बतला कर वर्णन कर गये हैं। इसी गुहामें बुद्ध भोजन करनेके बाद ध्यानस्थ हुए थे। पालिग्रन्थमें इसीको पाण्डवशैल और महाभारतमें ऋषिगिरि कहा है। वर्त्तमान विपुल पालिग्रन्थमें यह 'वेपुल्ल' और महाभारतमें चैत्यक नामसे प्रसिद्ध है। राजगृहमाहात्म्यमें जो गिरिव्रज है, महाभारतमें वही वराह तथा वर्त्तमानकालमें उसीका कुछ अंश गिरिएक कहलाता है। आज भी कितने हिन्दू, जैन और बौद्ध तीर्थयात्री तीर्थोपलक्षमें उक्त पञ्चशैल देखने जाते हैं।

अभी हिन्दूके निकट यह राजगृह तीर्थस्थान समझा जाता है, परंतु प्राचीनकालमें भारतीय आर्योंके निकट इस प्रकार समझा जाता था वा नहीं संदेह है। पुराण और महाभारतमें इस स्थानको पूर्वभारतकी सुदृढ़ और सुरम्य राजधानी बतलाया है सही, पर ब्रह्मावर्त्तवासी आर्यगण बुरी दृष्टिसे हो यह स्थान देखते थे। पञ्चशैलके मध्य गिरियक वा गिरिव्रजमें ही संभवतः जरासंधका प्रमोदभवन अवस्थित था। आज भी वह स्थान 'जरासन्धकी बैठक' कहलाता है। गिरियक शैलके पार्श्ववर्त्ती गिरियक ग्रामके निकटस्थ शैल पर भी सुप्राचीन राजभवनादिका ध्वंसावशेष देखा जाता है। इसके सिवा रत्नगिरिके दक्षिण और उदयगिरिके पार्श्वमें तीर्थयात्री जरासन्धका राजभवन देखने जाते हैं। वर्त्तमान वैभारगिरि, विपुलगिरि, रत्नगिरि, उदयगिरि और सोनागिरि इस पञ्चशैलके मध्यवर्त्ती सभी स्थानोंमें उक्त प्राचीन राजधानी विस्तृत थी। इसीके मध्य उत्तर हंसपुरद्वारसे ले कर पश्चिम रङ्गभूमि तक, दक्षिण रङ्गभूमिसे पूरब नेकपाइबांध तक दीवार खड़ी थी। दीवारके मध्यवर्त्ती यही भूखण्ड प्राचीन राजगृह कहलाता है।* वार्हद्रथवंशीय राजे यहां रहते थे। इस भूखंडके उत्तर मनियारकूप और उसके पास हो बहुत लंबा चौड़ा ईंटोंका टीला पड़ा है। महाभारतमें इसी स्थानको मणिनागका आलय कहा है।† महाभारतमें लिखा है, कि चैत्यकगिरिशृङ्गको भेद कर श्रीकृष्ण भीमार्जुनके साथ राजगृह गये थे।¶ जिस स्थानसे श्रीकृष्णने जरासन्धपुरमें प्रवेश किया था, बहुपरवर्त्तीकालमें वहां विष्णुपद अङ्कित था। हिन्दू लोग उसीको पवित्र पुण्यक्षेत्र समझते थे।

प्राकारविशिष्ट राजगृहके पश्चिम रणभूमि और पञ्चपाण्डु नामक स्थान है। कहते हैं, कि उक्त रणभूमिमें ही भीमके साथ जरासन्धका द्वन्द्वयुद्ध हुआ था। यहांका शैल लाल पत्थरोंसे आच्छादित है। लोगोंका विश्वास है, कि जरासंधके रक्तसे इस स्थानका पत्थर लाल हो गया है। इसके पास हो चित्रलिपिकी तरह पहाड़ पर खोदित बड़ी बड़ी शिलालिपि देखी जाती हैं। भारतमें जितने प्रकारकी लिपियोंका आविष्कार हुआ है उनमें यही लिपि सर्व प्राचीन समझी जाती है। उस लिपि परसे जो मवेशी आ जाते हैं उससे कितने अक्षर मिट गये हैं। दुःखका विषय है, कि आज तक कोई भी उस लिपिका पाठोद्धार न कर सके हैं।

वसुसे ले कर श्रेणिक बिम्बिसार तक सभी पराक्रान्त क्षत्रिय राजे उक्त प्राचीन राजगृहमें रह कर ही पूर्वभारतका शासन करते थे। पीछे राजा बिम्बिसार, वैभार और विपुलगिरिके उत्तर सरस्वतीनदीके पूरब तथा उष्ण प्रस्रवणसे कुछ दूर नये राजगृहसीमों आ कर बस गये।

प्रत्नतत्त्ववित् कनिंहमने चीनपरिव्राजक फाहियन और युएनचुवंगके विवरणानुसार प्राचीन राजगृहका पर्यवेक्षण कर लिखा है, कि इस प्राचीन राजधानीका परिमाण ८ मीलसे कुछ कम है। इसके चारों ओर जो दीवार खड़ी थी आज भी उसका कुछ अंश देखनेमें आता है। वह दीवार १३ फुट मोटी थी। युएनचुवंगके हिसाबसे गिरियक तक राजगृहकी सीमा पड़ती है, किन्तु कनिंहम इसे स्वीकार नहीं करते। हम लोग जब गिरियकमें राजा 'जरासन्धकी बैठक' तथा प्राचीन राजगृहके पृष्ठसे गिरियक तक पहलेकी तरह दीवारका भग्नावशेष देखते हैं, तब गिरियक (गिरिव्रज) तक एक समय राजगृहको सीमा रही होगी, इसमें संदेह नहीं। महाभारतमें भी इसीलिये गिरिव्रजको राजगृहके सीमान्त पञ्चशैलका अन्यतम बताया है।

फाहियनके मतानुसार बिम्बिसारके पुत्र अजातशत्रुने नया राजगृह बसाया। किन्तु हिन्दू और जैनके प्राचीन ग्रन्थानुसार श्रेणिक बिम्बिसारके समय यह नया राजगृह स्थापित हुआ। ७वीं सदीके मध्यभागमें चीनपरि-

* महाभारतमें भी इस राजगृहका उल्लेख है—

"यज्ञागारे स्थापयित्वा राजा राजगृहं गतः।" (सभाप०)

† "अर्बुदः शक्रवापी च पन्नगौ शत्रुतापनौ।
स्वस्तिकस्यालयश्चात्र मणिनागस्य चोत्तमः॥
अपरिहार्यं मेघानां मागधा मनुना कृताः।
कौशिको मणिमांश्चैव चक्राते चाप्यनुग्रहम्॥"
(महाभारत० सभाप० २१।६-१)

¶ "चैत्यकस्य गिरेः शृङ्गं भित्वा किमिह छद्मना।
मद्वारेण प्रविष्टाःस्थ निर्भया राजकिल्विषात्॥" (२४।४५)

प्राजक युएनचुवंग जब राजगृह देखने आये, उसी समय बाहरवाली दीवार टूटी फूटी हालतमें पड़ी थी, किन्तु भीतरकी दीवार कुछ अच्छी थी, उस समय इसका घेरा प्रायः ३॥ मील था । अभी जो चिह्न रह गया है वह भी ३ मीलसे कम नहीं होगा । दक्षिणांशमें पहाड़की तरफ गढ़ था। उसका प्राचीर आज भी ज्योंका त्यों खड़ा है। श्रेणिक-अधिष्ठित नवराजगृह अभी 'राजगिरि' नामसे ही प्रसिद्ध है। राजगृहके उत्तर 'राजगिर' नामक एक नया ग्राम है ।

जैनप्रभाव

श्रेणिक विम्बिसारके समयसे ही राजगृहमें जैनप्रभाव विस्तृत हुआ। अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामीने यहांके विपुलाचल पर कुछ समय रह कर मगधपति श्रेणिकको जिनतत्त्वका उपदेश दिया था। प्राचीन जैनपुराण और अङ्गसे जाना जाता है, कि श्रेणिकराज महावीर स्वामीके एक कट्टर भक्त थे । उन्होंके समय सैकड़ों व्यक्तिने यहां निर्ग्रन्थ वा जिनधर्म ग्रहण किया । महावीर स्वामीके रहनेके कारण राजगृह जैनोंके निकट एक महापुण्यक्षेत्र समझा जाने लगा। उनके समय बुद्धदेवका अभ्युदय तथा परवर्त्तीकालमें राजगृह और पञ्चशैलमें तमाम बौद्धप्रभाव विस्तृत होने पर भी यहांके शैलशिखरसे जैनसाधुसंस्रव दूर नहीं हुआ। महावीरकी अधिष्ठान-भूमि विपुलगिरिके अलावा स्वर्णाचल (सोनागिरि), रत्नाचल, वैभार और उदयगिरिमें भी सुप्राचीन जैन-कीर्त्तियोंके अनेक निदर्शन पड़े हुए हैं । विपुलगिरि-शिखर पर पार्श्वनाथ मूर्त्तिके बाद देशमें जो खोदित शिलालिपि है उससे मालूम होता है, कि ८वीं वा ६वीं सदी तक यहां जैनसमागम था । पीछे यहां ब्राह्मणोंके अभ्युदय और अन्तमें मुसलमानोंके अत्याचारसे यहांसे जैनसंस्रव बिलकुल जाता रहा । यहां तक कि १०वीं सदीके बादसे ले कर १७वीं सदी-के शेष तक हम लोग जैनसंस्रवका एक भी प्रमाण नहीं पाते । १८वीं सदीमें मुसलमानप्रभाव जब विलुप्त हुआ, तब राजगृहके पञ्चशैलके ऊपर फिर जैन-तीर्थयात्रियोंका समागम होने लगा। जैनधनकुबेरोंके यत्नसे पुनः पञ्चशैलके तुङ्गशिखर पर नाना जिनालय प्रतिष्ठित तथा प्राचीन जैन कीर्त्तियोंका जीर्णोद्धार होने लगा। इस प्रकार चौबीसवीं तीर्थङ्करमूर्त्ति और तीर्थङ्करोंकी पादुका प्रतिष्ठित हुई । १८वीं और १६वीं सदीकी जैन-कीर्त्ति ही अभी दर्शकोंकी दृष्टि पर पड़ी हुई है।

बौद्धप्रभाव ।

जैनप्रभावके साथ साथ बौद्धप्रभाव भी देखा जाता था। महावीरके कुछ समय बाद ही बुद्ध शाक्यसिंह बैभारशैल पर आये। उनका धर्मोपदेश सुननेके लिये मगधपति विम्बिसारसे ले कर राजगृहवासी सभी मनुष्य वहां उपस्थित हुए थे । बुद्ध शैलशिखर पर रहते थे । उनके दर्शनकी जिनकी इच्छा होती थी, वे बड़े कष्टसे दुरारोहपथ पार कर उनके निकट पहुंचते थे। पीछे विम्बिसारने जिससे दर्शनाभिलाषीको किसी प्रकारका कष्ट न हो, पहाड़ काट कर पत्थरकी सीढ़ी बनवा दी थी। चीनपरिव्राजक युएनचुवंग जब राजगृह देखने आये तब उन्होंने लिखा है, कि जहां विम्बिसार बुद्धके दर्शनार्थ पर्वतप्रान्त पर अवतरण करते थे वह स्थान 'रथावतरण' नामसे प्रसिद्ध था । मगधपतिने बुद्धदेवके स्मरणार्थ कुछ स्तूप भी बनवा दिये थे ।

राजगृहके पञ्चशैलके ऊपर किस प्रकार बौद्धप्रभाव फैला था, चीनपरिव्राजक फाहियन और युएनचुवंगके भ्रमणवृत्तान्तसे हम लोग उसका बहुत कुछ परिचय पाते हैं। फाहियनने ५वीं सदीमें आ कर नवराजगृहमें ये सब देखे थे,—दो सङ्घाराम, नगरके पश्चिम दरवाजेसे कुछ दूर राजा अजातशत्रु निर्मित एक ऊंचा बुर्ज (यहां बुद्धका देहावशेष रखा हुआ है), नगरके पश्चिम फाटकसे प्रायः आध कोस दूर पञ्चशैलवेष्टित उपत्यकाके मध्य जनमानवशून्य विध्वस्त प्राचीन राजगृह, [बुद्धदेवका विनाश करनेके लिये निर्ग्रन्थने जो अग्निकुण्ड बनाया था, वह अग्निकुण्ड नगरसे उत्तर पूर्व आम्रपालीके उद्यानके मध्य जीवक वैद्यनिर्मित विहारका भग्नावशेष (यहां बुद्धदेव १२५० शिष्योंके साथ निमन्त्रित हुए थे) उपत्यकासे गिरिमाला लांघ कर प्रायः २॥ कोस दूर गृध्रकूटशैल, उससे भी आध कोसकी दूरी पर दक्षिण-मुखी गुहा (यहां बुद्धदेव ध्यानस्थ रहते थे), उसके पास

ही एक शैलकुटी। (यहां आनन्द ध्यान करते थे*), उसी जगह अर्हत्‌की ध्यानगुफा, इस प्रकारकी और भी सैकड़ों गुफा, शैलके उत्तर भग्नावशिष्ट दरदालान (यहां बुद्धदेव धर्मोपदेश देते थे), प्राचीन नगरके उत्तर बौद्धाचार्य सेवित करण्डवेणुवनविहार, वहांसे थोड़ी ही दूर उत्तर महाश्मशान, दक्षिणशैल लांघ कर कुछ पश्चिम आनेसे बुद्धका मध्याह्न आहारके बाद ध्यानस्थान 'पिप्पल-गुहा', वहांसे करीब डेढ़ पाव दूर पहाड़के उत्तर चेति नामक गुहा (बुद्ध-निर्वाणके बाद यहां ५०० अर्हत् धर्मपुस्तक संग्रहार्थ सम्मिलित हुए थे), तथा पुराने नगरसे उत्तरपूर्वमें देवदत्तकी शिलामयी कुटी।

फाहियानके दो सौ वर्ष बाद यूएनचुवङ्गने आ कर यहां बौद्धकीर्त्तिका इस प्रकार दर्शन किया था;—

तुङ्गशृङ्गशोभित शैलशिखरके ऊपर बुद्धवनमें शिलागृह†, बुद्धवनसे प्रायः दो कोस पूरब यष्टिलतासे आकीर्ण यष्टिवन, तथा उसके मध्य अशोकराज-निर्मित स्तूप, यष्टिवनसे प्रायः तीन पाव दक्षिण महाशैलको बगलमें सर्वरोगहर दो उष्ण प्रस्रवण और उसके समीप बुद्धाधिष्ठानस्मारक स्तूप, यष्टिवनसे दक्षिण-पूर्व प्रायः आध कोस दूर महाशैलके पथमें एक स्तूप; (वर्षाकालमें बुद्धदेव देवमानवको यहां धर्मतत्त्वकी शिक्षा देते थे), उक्त महाशैलसे कुछ उत्तर व्यासाश्रमका टूटा फूटा पत्थरका घर, उसके उत्तर पूर्व डेढ़ पावका रास्ता तय करने पर एक छोटा पहाड़, उस पर हजार लोगोंके बैठनेके लिये लिये एक पत्थरका बड़ा घर (यहां बुद्धदेवने तीन मास तक धर्मप्रचार किया था), इस बड़े घरके ऊपर प्रसिद्ध सुगन्धमय पत्थर (यहां देवराज शक्र और ब्रह्माने गोशीर्ष-चन्दनसे बुद्धदेवको चर्च्चित किया था), बड़े पत्थरके घरके दक्षिण-पश्चिम कोणमें एक उच्च गुहा यहां पहले असुरका राजभवन था), उस बड़े घरकी बगलमें बिम्बिसार राजनिर्मित १० पाव चौड़ा और प्रायः डेढ़ पाव लम्बा काठका पुल और नदीके किनारे पत्थरका बांध। वहांसे पूरबको ओर प्रायः साढ़े चार कोस आने पर मगधराज्यका केन्द्र और पूर्वतन राजधानी कुशागारपुर*, (इसका घेरा प्रायः १० कोस और मध्यवर्त्तीपुरकी अवशिष्ट प्राचीरभित्तिका घेरा प्रायः २ कोस) राजगृहके उत्तर द्वारके बाहरमें एक स्तूप, उसके बाहरमें उत्तरपूर्वमें और भी एक स्तूप (यहां शारिपुत्रने अर्हत्त्व लाभ किया था), उस स्थानसे उत्तर कुछ दूर जानेसे एक गहरी दुर्ग-खाई, उसीकी बगलमें श्रीगुप्तका स्तूप, दुर्ग-खाईसे उत्तर पूर्व नगरके बाहर जीवकवैद्य निर्मित बुद्धदेवका वक्तृतागृह और जीवकगृहका ध्वंसावशेष, उसके पास ही एक पुराना स्तूप, राजगृहसे एक कोस ऊपर उत्तरपूर्व जानेसे गृध्रकूटशैल (इस पर्वत पर बुद्धदेव अधिक काल ठहरे थे), उस पर चढ़नेके लिये बिम्बिसार-निर्मित पत्थरको सीढ़ी, बीच रास्तेमें 'रथावतरण' और 'जनविमुख' नामक स्तूप, शैलके ऊपर पश्चिममें पूर्वद्वारी बुद्धका प्रमाणमूर्त्तिशोभित एक विहार, विहारके पूरब बुद्धके पदरजसे पवित्र एक बड़ा पत्थरका खण्ड, उसके समीप ही बुद्धका वध करनेके उद्देशसे देवदत्तका प्रस्तरनिक्षेपस्थान, उसके दक्षिण एक स्तूप। यहां बुद्धने 'सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र' प्रकाश किया; विहारके दक्षिण बुद्धका समाधिस्थान एक बड़ा पत्थर-घर, उसके उत्तरपश्चिम और सम्मुखभागमें गृध्ररूप चिह्नित एक अपूर्व प्रस्तरखण्ड, विहारकी बगलमें शारिपुत्र और बहुतसे अर्हतोंके समाधिस्थान कुछ पत्थरके घर, शारिपुत्रके घरके सामने एक सूखा कूप, विहारके उत्तर-पूर्व पहाड़ी सोतोंके मध्य बुद्धका वस्त्र सुखनेका समतल

* मारने गृध्ररूप धारण कर यहां आनन्दको भय दिखाया था। बुद्धके प्रभावसे उसकी माया व्यर्थ गई। तभीसे इस गिरिका नाम 'गृध्रकूट' पड़ा। यहां पर फाहियानके गृध्रपक्षीका चिह्न देखा था।

† प्रवाद है, कि यहां इन्द्र और ब्रह्माने गोशीर्ष चन्दनसे बुद्धदेवको चर्च्चित किया था। यहां की शिला पर आज भी वह गंध पाई जाती है। (यूएनचुवङ्ग)

* प्राचीन राजगृहका नामान्तर। चीनपरिव्राजकके वर्णनानुसार यहां सुगन्धित कुशतृण पाया जाता था। इसीसे इसका 'कुशागारपुर नाम हुआ है। जैनग्रन्थमे कुशागारपुर और कोषागारपुर ये दोनों ही नाम देखे जाते हैं।

प्रस्तरखण्ड, उसीके समीप शैलके ऊपर बुद्धका पदचिह्न, गिरिव्रजपुरके उत्तरी फाटकके पश्चिम विपुलगिरि, गिरिके उत्तरपार्श्वके दक्षिणपश्चिम पाददेशमें १० उष्ण और शीतल प्रस्रवण, कोई कोई उष्ण प्रस्रवण सिंहमुख, कोई श्वेत हस्तिमुख आदि आकारके पत्थरसे बंधा हुआ, नीचे सरोवरके जैसा पत्थरका बंधा हुआ जलाधार, गरम सोतोंके दाहिने और बाएं किनारे बहुत स्तूप और विहार तथा चार गतबुद्धके स्मृतिचिह्न, गरम सोतोंके पश्चिम पिप्पल नामक पत्थरका घर, उस घरको दीवारके पास गुहाकार असुरका प्रासाद (यहांसे नाग, सर्प, सिंह आदि बीच बीचमें निकलते थे), विपुलगिरिके शिखर पर स्तूप (यहां बुद्धने धर्मप्रचार किया था), यहां बहुतसे निर्ग्रन्थोंका नियत समागम स्थान, इस पत्थरके घरके पूरब चिपटे पत्थरखण्ड पर रक्तचिह्न, गिरिव्रजपुरके उत्तर कोणसे प्रायः आध पाव रास्ता तै करने पर करण्डवेणुवन, यहां पूर्वद्वारी विहारका भग्नावशेष, करण्डवेणुवनके पूरब अजातशत्रु राजनिर्मित स्तूप (यहां राजा अजातशत्रुने बुद्धका देहावशेष रखा था, इस घरसे अपूर्व आलोक निकलता है), उस स्तूपके पास आनन्दका देहावशेषयुक्त अजातशत्रु-निर्मित और भी एक स्तूप, इसके समीप ही शारिपुत्र और मुद्गलपुत्रका अधिष्ठानस्मृतिज्ञापक स्तूप, दक्षिण शैलके उत्तर एक बड़ा वेणुवन, उनमेंसे अजातशत्रुकृत एक पत्थरका घर (बुद्धनिर्वाणके बाद स्थविर काश्यपने ९९९ अर्हतोंके पिटकत्रयका उद्धार करनेके लिये इस घरमें एक सभा की थी); इसके उत्तर आनन्दका समाधिस्थानज्ञापक एक स्तूप यहांसे पश्चिम डेढ़ कोस जाने पर अशोकराज-निर्मित स्तूप (यहां त्रिपिटक, खुद्दकनिकाय और धारणी पिटकका उद्धार करनेके लिये काश्यप-परित्यक्त लाख भिक्षुकोंका महासङ्घ हुआ था); (करण्ड) वेणुवन-विहारके उत्तर करण्डह्रदका चिह्न, वहांसे पाव भरकी दूरी पर ६० फुट ऊंचा अशोकराज-निर्मित स्तूप, उसके पास ही स्तूपनिर्माणकी विवरणीमूलक खोदित लिपि और हस्तिमुखयुक्त ५० ऊंचा पत्थरका स्तम्भ, स्तम्भसे उत्तर-पूर्व थोड़ी ही दूर पर विध्वस्त राजगृह नगरी*, राजभवनके दक्षिण-पश्चिम कोणमें दो छोटे सङ्घाराम, उसके उत्तर-पश्चिममें एक स्तूप और नगरके दक्षिण फाटकके बाहरमें राहुलका दीक्षास्मृतिसूचक एक स्तूप था।

गौड़में बौद्ध पालराजाओंके शासनकालमें भी पूर्वोक्त बौद्धकीर्त्तियोंके दर्शन करनेके लिये देशविदेशसे तीर्थयात्री आते थे। बौद्धपालराजगण तान्त्रिक थे। उनके समय भी राजगृहमें तान्त्रिक बौद्ध-देवदेवी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई थी। उनमेंसे विपुलगिरिमें 'ये धर्महेतुप्रभवा' इत्यादि प्रसिद्ध धर्मसूत्रनिबद्धा अष्टभुजा वज्रवाराही मूर्त्ति और वज्रभैरव (अभी वटुक भैरव नामसे प्रसिद्ध)-की मूर्त्ति देखनेमें आती है। उस समयकी निर्मित तथा उक्त धर्मसूत्रयुक्त मृगसहचर (मुण्डहीन) बुद्धमूर्त्ति प्राची सरस्वतीके उत्तरी किनारे देखी जाती है। जिस प्रसिद्ध सप्तपर्णीगुहामें बुद्धनिर्वाणके कुछ बाद ५४० ई०सन्‌के पहले १म धर्मसंगीति हुआ था, अभी जो 'सोनभाण्डार' कहलाती है उस गुहामें १००७ सम्वत्‌की बौद्ध-खोदित लिपि पाई गई है। मणियार-मठमें आज भी वह सुप्राचीन अशोकस्तम्भ विद्यमान है, नवराजगृहके दक्षिण उपत्यकामें पालराजाओंके बौद्ध सङ्घारामका निदर्शन आज भी देखनेमें आता है। ब्राह्मण्य धर्मके अभ्युदय पर लोगोंकी बुद्धि यद्यपि पलट गई थी, तो भी पूर्ववर्णित बौद्धकीर्त्ति बिलकुल परित्यक्त हुई। परन्तु मुसलमानी अमलमें नालन्दा विश्वविद्यालय डाह

* यूएनचुवङ्गने लिखा है, कि राजा विम्बिसारने पहले कुशागर वा प्राचीन गिरिव्रजपुरमें ही अपनी राजधानी बसाई थी। किन्तु घर पर घर रहनेके कारण शहरमें आग अक्सर लगा करती थी जिससे लोगोंका भारी नुकसान होता था। इसलिये मगधपतिने यह नियम निकाला, जिसके घरमें आग लगेगी, उसीको बुझानी पड़ेगी। संयोगवश मगधपतिके ही घरमें आग लगी। उन्होंने अपने सत्यकी रक्षाके लिये सीतावनमें आश्रय लिया। वैशालीराजको जब मालूम हुआ, कि राजा वनवासी हैं, तब वे मगध जीतने आये। रक्षाके लिये सीमान्त सामन्तोंने दुर्गपरिखायुक्त एक नया नगर बसा दिया। राजा विम्बिसार पहले पहल यहीं रहते थे, इसीलिये इसका राजगृह नाम हुआ।

दिया गया तथा श्रवणोंके सहित बौद्धगण राजगृहतीर्थसे भगा दिये गये।

ब्राह्मण्य-प्रभाव।

यूएनचुवंगके वर्णनसे मालूम होता है, कि मगधपति अशोक पहले ब्राह्मणभक्त थे। इस समय उन्होंने समूचा प्राचीन राजगृह ब्राह्मणको दान किया। सच पूछिये, तो इसी समयसे राजगृहमें ब्राह्मण प्रभावका सूत्रपात हुआ। उस समय राजगृहमें जिस जिस स्थानको मोक्षप्रद समझ कर बौद्ध लोग दर्शन करने आते थे, ब्राह्मण लोग उस उस स्थानमें हिन्दू-तीर्थयात्रियोंकी भक्ति आकर्षण करनेके लिये पौराणिक देवदेवीके अधिष्ठानकी कल्पना करने लगे। इधर कुछ दिन बाद ही सम्राट् अशोकके धर्ममतपरिवर्त्तन और उनसे बौद्धधर्मप्रचारके साथ यहांके ब्राह्मण भी अपने अपने उद्देश्य साधनमें समर्थ न हुए। सैकड़ों वर्ष बाद जब शुङ्गमित्रवंशका अभ्युदय हुआ, तब पाटलिपुत्रमें ब्राह्मण्य-अभ्युदयके साथ यहांके ब्राह्मण भी पौराणिक धर्म-स्थापनमें अग्रसर हुए थे। इसी समयसे पुरातन बौद्धकीर्त्तिलोपका आयोजन और उसके साथ हिन्दूतीर्थ-स्थापनका सूत्रपात हुआ था। मगधके सिंहासन पर ब्राह्मणभक्त गुप्तसम्राटोंके बैठनेसे यहां हिन्दू-तीर्थ स्थापनकी भी विशेष सुविधा हुई थी। किन्तु ६ठी सदीमें उनके अधःपतन और फिरसे बौद्धधर्माभ्युदय होनेसे ब्राह्मणधर्ममें धक्का पहुंचा। इस कारण ७वीं सदीके मध्यभागमें जब चीनपरिव्राजक यहां आये थे, तब उन्होंने ब्राह्मणोंको अधिक संख्या रहने पर भी कोई हिन्दू-देवालय नहीं देखा था। ८वीं सदीमें कन्नौजमें यशोवर्मा और गौड़में आदिशूरके अभ्युदयके साथ फिरसे ब्राह्मण-प्रधानता स्थापित हुई। इसके बाद बौद्ध पालराजाओंका अभ्युदय हुआ। वे लोग तान्त्रिक और ब्राह्मण विरोधी न थे, इस समय देवमूर्त्तिप्रतिष्ठाका प्रसार होनेके कारण राजगृहके ब्राह्मण नाना तीर्थ और देवालय स्थापन करनेमें अग्रसर हुए। कालवशतः बौद्धगौरव-रवि जब मगधसे सदाके लिये अस्त हो गये, तब यहांके ब्राह्मणोंने हिन्दू तीर्थयात्रीके लिये वायुपुराणीय राजगृहमाहात्म्य प्रकाश किया। जो जो स्थान बौद्ध और जैन लोगोंके निकट पुण्यस्थान समझा जाता था, अभी वहां हिन्दू देवदेवी प्रतिष्ठित तथा हिन्दूतीर्थ कल्पित होने लगा। इस प्रकार कितनी बौद्धकीर्त्तिको ब्राह्मणने हिन्दूकी बता कर अपना लिया। अभी—

"कीकटेषु गया पुण्या नदी पुण्या पुनःपुना।
च्यवनस्याश्रमं पुण्यं पुण्यं राजगृहं वनम्॥" (१।२४)

मगधमें गया, पुनपुन नदी, च्यवनका आश्रम और राजगृहवन यही सब पुण्यप्रद है, ऐसा स्थिर हुआ। इस समय समूचा राजगृह जंगलसे ढका था। राजगृहमाहात्म्यमें बहुतसे तीर्थयात्रियोंको पंडा लोग आज भी वे सब तीर्थ दिखाते हैं। नीचे स्थानमाहात्म्य वर्णित तीर्थोंका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

१ सरस्वती—यह पहाड़ी छोटी नदी पुण्यारण्यसे निकल कर वैभार और विपुलगिरि होती हुई बहती है। सरस्वतीमें स्नान करनेसे सभी पाप दूर होते हैं। यह सरस्वती ब्रह्ममूर्त्ति* है तथा इसका उत्तरांश प्राची सरस्वती समझी जाती है।

२ गोमती—ज्वालादेवीके निकट प्रवाहित एक छोटी नदी।

३ मार्कण्डेयक्षेत्र—प्राची-सरस्वतीके पश्चिम वैभार पर्वतके नीचे। यहां गङ्गा यमुना नामक दो गरम सोते हैं।†

४ माधवालय—प्राचीके उत्तरी किनारे माधवका आलय। यहां स्नान करनेसे भी सभी पाप होते हैं। (राज०मा०) अभी यह स्थान वेणीमाधव कहलाता है। यह मूर्त्ति देखनेसे ही पद्मपाणि बुद्धमूर्त्ति-सी मालूम होगी।

५ शालग्रामतीर्थ—प्राची सरस्वतीका उत्तरांश,

---

* "आजन्म सञ्चितं पापं ज्ञानाज्ञानकृतञ्च यत्।
तत्सर्वं विलयं याति सकृत् स्नात्वा सरस्वतीम्॥१।१५
गङ्गा विष्णुमयी मूर्त्तिः ब्रह्ममूर्त्तिः सरस्वती॥" १।२१
(राजगृ० मा०)

† "प्राच्यास्तु पश्चिमे भागे मार्कण्डेयक्षेत्रमुत्तमम्॥१।२९
तत्र स्नात्वा महादानात् प्राप्यते नरकालये।
कालिन्दी पश्चिमा यत्र गङ्गा चोत्तरवाहिनी॥" १।३०
(राज०मा०)

भरतकूपके निकट। यहां पञ्चशिवलिङ्ग है। इनमेंसे शालग्रामके पूर्वमें विभाण्डक, उत्तरमें जृंभमर्दन, पश्चिममें कपर्द्दक, दक्षिणमें व्रतमोक्षण और मध्यस्थलमें धर्मेश्वर अवस्थित था*। अभी प्राकारके निकट केवल धर्मेश्वर विद्यमान है और सभी विलुप्त हो गये हैं।

६ वानरीतरण—प्राची-सरस्वतीके दक्षिण वैभारके पाददेशमें श्मशानके निकट। यहां स्नान करनेसे ब्रह्म-सायुज्य लाभ होता है†। वज्रताराकी मूर्त्ति जैसी यहां एक टूटी फूटी बौद्धदेवीमूर्त्ति पड़ी है।

७ ब्रह्मकुण्ड—वैभारशैलके नीचे सप्तर्षिकुण्डकी बगलमें प्रसिद्ध उष्ण धारा। यह देखनेमें चहबच्चे जैसा है और पत्थरसे बंधा हुआ है। ऊपरमें चमकीले पत्थर जड़े हुए हैं। राजगृहके सभी कुण्डोंकी अपेक्षा इसका जल गरम है। राजगृहमाहात्म्यमें लिखा है, कि ब्रह्माके यज्ञके बाद उनके यज्ञकुण्डसे पातालगङ्गा आविर्भूत हुई। पीछे वही ब्रह्मकुण्ड नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस ब्रह्मकुण्डमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्याका पाप भी नष्ट होता है। गयामें श्राद्ध करनेसे जो फल होता है यहां श्राद्ध करनेसे भी वही फल लाभ होता है। इस यज्ञकुण्डके मध्य नैऋत-कोणमें हंसतीर्थ है। यहां स्नान और दान करनेसे सभी पाप दूर होते हैं¶। ब्रह्मकुण्डके उत्तर यक्षिणी नामक चैत्य है। यहां यक्षिणीकी पूजा करनेसे ब्रह्महत्याका पाप भी जाता रहता है। (राज०मा०) यथार्थमें उक्त चैत्य पूर्वतन बौद्धचैत्यके जैसा ही मालूम होता है। ब्रह्म-कुण्डके पश्चिम वाराहक्षेत्र है। यहां वराहदेवकी पूजा करनेसे निर्वाणकी प्राप्ति होती है। (रा०मा० २ अ०)

८ सप्तर्षिकुण्ड—वैभारगिरिके मध्यसे सात गरम सोते निकल कर एक जलाधारमें पतित होते हैं। उसी विस्तृत जलाधारका नाम सप्तर्षिकुण्ड है। राजगृह-माहात्म्यमें लिखा है, कि महर्षि व्यास यज्ञ करनेके लिये इसी राजगृहवनमें आये। यज्ञके बाद ब्राह्मणभोजन कराने-के लिये उन्होंने मुनियोंको बुलाया। भोजन कर चुकने पर मुनियोंने गङ्गा, यमुना और नर्मदाका जल पीना चाहा। तब व्यासने तपोबलसे गङ्गा, यमुना और नर्मदाको वहां हाजिर कर दिया। पीछे उन तीनों नदियोंका तीर्थजल मार्कण्डेय, व्यास, जमदग्नि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, दुर्वासा, वशिष्ठ और अनन्त नामसे विख्यात हुआ। इन नौके मध्य वैभारशैलके नीचे सप्तर्षिकुण्डके दक्षिण-पश्चिममें मार्कण्डेय और व्यासकुण्ड हैं। सात कुण्ड एक घेरेमें है। बाबू सीतारामने सप्तर्षिकुण्डके चारों ओर दीवार खड़ी करा दी है। राजगृहमाहात्म्यमें लिखा है, कि मार्कण्डेयकुण्डके दक्षिण कामाक्षादेवी है। किन्तु अभी वह देवी दिखाई नहीं देतीं।

९ पञ्चनद—ब्रह्मकुण्डके पूरब एक प्रदक्षिणाके मध्य यह धारा बहती है। यह पञ्चनद काशीके पञ्चनदके समान पुण्यप्रद है। उपरोक्त प्रधान तीर्थोंके अलावा राजगृह-माहात्म्यमें और भी अनेक तीर्थोंका उल्लेख है। जैसे—

प्राची सरस्वतीके पूरबमें गणेश, सोम, सूर्य्य और सीतातीर्थ तथा रत्नाचल, उनके मध्य हाटकेश, ऋष्य-शृङ्गतीर्थ, यहां चन्द्रेश्वर शिव, ऋष्यशृङ्गके पूरब गृध्रसी तीर्थ और सिद्धेश्वर, ऋष्यशृङ्गके पूर्वदक्षिण पर्वत पर गणेश और ब्रह्मकुण्ड ; गिरिव्रजशैल पर वैकुण्ठपद, उसके उत्तर कण्ठेश्वर ; ब्रह्मकुण्डके दक्षिण केदारकुण्ड और धेनुनाग, केदारकुण्डके दक्षिण कुछ दूर जानेसे विष्णु-पद, केदारकुंडके समीप वैभारशैल पर संध्यादेवी, संध्या देवीसे १ कोस पश्चिम सोमेश्वर, ब्रह्मकुंडके दक्षिण और

* "शालग्रामाच्चतुर्दिक्षु पञ्चलिङ्गव्यवस्थितम्।
पूर्वे विभाण्डकं नाम चोत्तरे जृंभमर्दनम्॥ १४०
कपर्द्दकञ्च वारुण्यां दक्षिणे व्रत मोक्षणम्।
मध्ये धर्मेश्वरं विद्धि दृष्ट्वा धर्मप्रदं नृणाम्॥" १४१
(राज०मा०)

† "प्राच्यास्तु दक्षिणे भागे वानरीतरणं स्मृतम्।
तत्र स्नानं नरः कुर्यात् ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्॥"

¶ "यज्ञकुण्डं समुत्पन्नं यज्ञान्ते प्रभवं किल।
पातालजाह्नवीतोयं कवोष्णं विमलोदकम्॥ ५
ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातं त्रिषु लोकेषु पार्वति। ७
श्रद्धावान मानवो देवि स्नात्वा पातालजाह्नवीम्॥ १४
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो विमुक्तः सोऽपि तत्क्षणात्।"
(इत्यादि २ अ०)

बाणगङ्गाके पश्चिम मणिनाग, मणिनागके समीप गौतमवन, अहल्याहृद और गङ्गोद्भेद; मणिनागसे आध कोस पूर्व दक्षिणमें व्यासाश्रम, व्यासाश्रमके दक्षिण धौतपाप और तपोवन, धौतपापवनमें त्रिकोटीश्वर, उसके दक्षिण अग्नितीर्थ, अग्नितीर्थके पश्चिम बाणगङ्गा, मणिनागके पश्चिम कौशिकाश्रम और तपोवन, मणिनागके उत्तर कण्वतीर्थ, शिवनदीसे कौशिकाश्रम तक २४ अग्नितीर्थ; उससे कुछ दूर सीताकुटी, यहां सीता-काननमें शक्रतीर्थ, हरनदी, बहुला और गोमतीतीर्थ, आम्रवतीनदी और सीताहृद। विस्तार हो जानेके भयसे सविस्तार माहात्म्य नहीं लिखा गया। राजगृ के पंडा राजगृह माहात्म्य हाथमें ले कर तीर्थयात्रीको आज भी वे सब तीर्थ देखाते हैं।

राजगृह-माहात्म्य-वर्णित उक्त तीर्थोंको छोड़ कर गणेशकुण्डके उत्तर रामसीताकुण्ड (राजा विजयेशसिंह-ने यह कुण्ड बंधवा दिया है, यहांकी उत्कीर्ण लिपिसे इसका पता चलता हैं।), तथा सूर्यकुण्डके नवग्रहकी मूर्त्ति है। सीताकुण्डके उत्तर एक नये शिवमन्दिरके सामने ध्यानीबुद्ध है। उसके उत्तर पंडा लोग एक प्राचीन शिवलिङ्ग दिखलाते हैं जो किसी बुद्धमूर्त्तिके उत्तमाङ्गके जैसा प्रतीत होता है। उसीके सामने वट-वृक्षके नीचे एक चबूतरे पर अर्द्धाङ्ग बुद्धमूर्त्ति है। केदार-कुण्डके समीप जो विष्णुपद है, वह ठीक बुद्धपदके जैसा मालूम होता है। गणेशकुण्डके समीप भी विष्णुपद हैं। किंतु इस विष्णुपदमें 'सं० ८६४। आषाढ़ वदि १२ सोम-वार श्रीबुद्धचरण युगल' इत्यादि खोदित रहनेसे बुद्धपद माननेमें कोई उज्र नहीं।

पहले लिख आये हैं, कि ७वीं सदीमें लिखित चीन-परिव्राजकके वर्णनसे जाना जाता है, कि अशोकराजने हजार ब्राह्मणोंको राजगृह दान किया था। राजगृह-माहात्म्यमें भी देखा जाता है, कि पुराकालमें वसु नामक एक राजाने राजगृहवनमें अश्वमेध यज्ञ किया। उस उपलक्षमें उन्होंने ७,१०० दाक्षिणात्य ब्राह्मणोंको निमन्त्रण किया था। उसके बाद उन्होंने उन सब ब्राह्मणोंमेंसे वत्स, उपमन्यु, कौण्डिन्य, गर्ग, हारित, गौतम, शाण्डिल्य, भर-द्वाज, कौशिक, काश्यप, वशिष्ठ, वात्स्य, सावर्णि और पराशर इन चौदह गोत्रज ऋग्वेदी आश्वलायन-शाखा-ध्यायी ब्राह्मणोंको राजगृहपुर तथा अतिगौत्रीयों गिरिव्रज-में वैकुण्ठपदके निकट ब्राह्मण शासन दक्षिणास्वरूप दान किया था। (राजगृहमा० २ अ०) बड़े आश्चर्यका विषय है, कि आज भी राजगृहमें केवल ब्राह्मणोंका वास कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी, अन्य जातिकी संख्या बहुत थोड़ी है।

मुसलमान-प्रभाव।

महम्मद-इ-बख्तियारके विहार विजयके बादसे हो यहां मुसलमान प्रभावका आरम्भ हुआ। सुखस्वास्थ्य-मय राजगृहका अवस्थान देख कर बहुतसे मुसलमान साधु यहां आ कर रहने लगे। उनमेंसे पीर मकदुम-शाहका नाम विहारप्रान्तमें मशहूर है। मकदुमशाह ऋष्यशृङ्गकुण्डमें आ कर रहते थे। यहां उन्होंने बड़ी बुजुर्गी दिखा कर जनसाधारणको मोहित कर लिया था। विपुलाचलके पाददेशमें अवस्थित ऋष्यशृङ्गतीर्थ तभीसे मकदुमकुण्ड कहलाता है। आज भी दूर दूर देशके भक्त मुसलमान मकदुमकुण्ड देखने आते हैं। यहांका प्रस्तरमय कुण्डावास बहुत मनोरम और चित्ताकर्षक है। यहां एक गुप्तघर और दो प्रकट उष्ण प्रस्रवण हैं।

राजगृहका जलवायु बहुत अच्छा है। स्वास्थ्या-न्वेषी और रोगग्रस्त व्यक्ति यहांके उष्ण प्रस्रवणोंमें स्नान करने आते हैं। ऐसा सुना जाता है, कि यहांके प्रस्रवण के गरम जलमें स्नान करके बहुतेरे असाध्य रोगसे मुक्त हो गये हैं।

राजगृह—पटना जिलेकी एक गिरिमाला। यह अक्षा० २४° ५८′ ३०″ से २५° १′ ३०″ उ० तथा देशा० ८५° २५′ से ८५° ३३′ ३०″ पू०के मध्य विस्तृत है। इसका पत्थर आग्नेय स्वभावविशिष्ट है।

राजगृहक (सं० त्रि०) राजगृहसम्बन्धी।

राजगेह (सं० क्ली०) राजभवन, राजप्रासाद।

राजग्रीव (सं० पु०) राजते इति राज-अच्-राजा श्रीसि-शालिनी ग्रीवा यस्य। मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

राजघ (सं० त्रि०) राजानं हन्तीति हन् (राजघ उप-संख्यानं। पा ३।२।५५) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या क प्रत्ययेन

साधु। १ राजहन्ता, राजाको मारनेवाला। २ तीक्ष्ण, तेज।

राजचन्द्र—देश्यनिघंटु नामक अभिधानके प्रणेता।

राजचम्पक (सं० पु०) पुन्नाग पुष्प, सुलताना चम्पा।

राजचिह्नक (सं० क्ली०) चिह्नानां स्त्रीपुंविभाजकानां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। उपस्थ, शिश्न।

राजचूड़ामणि (सं० पु०) संगीतके अनुसार तालके सात भेदोंमेंसे एक।

राजचूड़ामणि दीक्षित—कर्पूरवार्त्तिक नामकी शास्त्र-दीपिकाकी टीका, काव्यदर्पण तथा मीमांसासूत्रकी तत्त्व-शिखामणि नामक टीका आदिके रचयिता। इनके पिता-का नाम था सत्यमङ्गल रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित।

राजजम्बू (सं० पु०) जम्बूनां राजा, राजदन्तादित्वात जम्बूशब्द परनिपातः। १ पिण्डखर्जूर, पिण्डखजूर। २ महाजम्बू, बड़ा जामुन, फरेंदा।

राजजक्ष्मन् (सं० पु०) यक्ष्म्यते पूज्यते रोगराजत्वात् यक्ष्मा यक्ष क ङ महि अन्तः स्यादि क्षासुसिसिति मन् चवर्गतृतीयादिरित्येके तदा जक्षभक्षहसनयोरित्यस्य रूपम्। क्षयरोग। यक्ष्मन्, राजयक्ष्मन् और क्षयरोग देखो।

राज-जामुन (हिं० पु०) जामुनकी जातिका एक प्रकार-का मझोले आकारका वृक्ष। यह देहरादून, अवध और गोरखपुरके जङ्गलोंमें पाया जाता है। इसकी छाल पीलापन लिये भूरे रंगकी और खुरदुरी होती है। यह गरमीमें फूलता और बरसातमें फलता है। इसकी पत्तियोंका व्यवहार औषधमें होता है और फल खाये जाते हैं। इसकी लकड़ी इमारतके सामान और खेतीके औजार बनानेके काममें आती है।

राजजीरक (सं० क्ली) जीरकभेद, एक प्रकारका जीरा।

राजत (सं० त्रि०) रजतस्य विकारः (प्राणिरजतादिभ्यो-ऽञ्। पा ४।३।१५४) इति अण्। १ रजतनिर्मित, चांदीका। (क्ली०) २ रजत, चांदी।

राजतनय (सं० पु०) राज्ञः तनयः। राजपुत्र।

राजतरङ्गिणी (सं० स्त्री०) कह्लणकृत काश्मीरका एक प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ। यह संस्कृतमें है और इसमें पीछे कई पंडितोंने वृत्तान्त बढ़ाए। यह इतिहास ११४८ ई०का लिखा है। इसकी रचना अब तक होती जाती है।

कह्लण और काश्मीर देखो

राजतरणी (सं० स्त्री०) पुष्पविशेष, एक प्रकारका फूल। इसको राजतरुणी भी कहते हैं।

राजतरु (सं० पु०) तरूणां राजा राजदन्तादित्वात् परनि-पातः। १ कर्णिकारका वृक्ष, कनियारी। २ आरग्वध, अमलतास।

राजतरुणी (सं० स्त्री०) राज्ञः तरुणीव सौन्दर्यातिशय्य-वत्त्वात्। पुष्पविशेष, एक प्रकारका कुब्जक या सफेद गुलाब, इसका फूल सेवतीसे बड़ा होता है और इसकी लता टट्टियों पर चढ़ाई जाती है। फूलोंको गंध मंद और मीठी होती है। इसका पर्याय—महासहा, वर्ण-पुष्प, अम्लान, अम्लातक, सुपुष्पा, सुवर्णपुष्प। वैद्यकमें इसका गुण कषाय, कफकारक, चक्षुष्य, हर्षप्रद, हृद्य, सुरभि और मुखवल्लभ माना गया है।

राजता (सं० स्त्री०) राज्ञः भावः तल् टाप्। १ राजा होनेका भाव, राजत्व। २ राजाका पद।

राजताल (सं० पु०) राज इवालइव। गुवाकवृक्ष, सुपारीका पेड़।

राजतिमिश (सं० पु०) सुखाश, तरबूज।

राजतिलक (हिं० पु०) १ राजसिंहासन पर किसी नये राजाके बैठनेकी रीति, राज्याभिषेक। २ नये राजाके गद्दी पर बैठनेका उत्सव।

राजतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

राजतुङ्ग (सं० पु०) राष्ट्रकूटराजभेद।

राष्ट्रकूटराजवंश देखो।

राजतैमिष (सं० पु०) राजतिमिश, तरबूज।

राजत्व (सं० क्ली०) राज्ञः भावः त्व। १ राजता, राजाका भाव या कर्म। २ राजाका पद।

राजदण्ड (सं० पु०) राज्ञो दण्डः। १ राजशासन। २ वह दंड जिसका विधान राजाके शासनके अनुसार हो, वह दंड जो राजाकी आज्ञाके अनुसार दिया जाय।

राजदन्त (सं० पु०) दन्तानां राजा (राजदन्तादिषु परं। पा २।२।३१) इति परनिपातः। दांतोंकी पंक्तिके बीचका वह दांत जो और दांतोंसे बड़ा और चौड़ा होता है। ऐसे दांत ऊपर और नीचेकी पंक्तियोंके बीचमें होते हैं। कोई कोई ऊपरकी पंक्तिमें सामनेके दो बड़े दांतोंको भी राजदन्त मानते हैं, पर अन्य लोग दोनों पंक्तियोंमें बीचके दो दो दांतोंको राजदन्त कहते हैं, चौका।

राजदन्ति (सं० पु०) राजदन्त ।

राजदर्शन (सं० क्ली०) राज्ञः दर्शनं । राजाका दर्शन, राजाको देखना ।

राजदार (सं० पु०) राज्ञः दाराः । राजपत्नी, राजाको स्त्री ।

राजदुहिता (सं० स्त्री०) राज्ञः दुहिता । राजाकी कन्या ।

राजदूत (सं० पु०) वह पुरुष जो एक राज्यकी ओरसे किसी अन्य राज्यमें सन्धि या विग्रह-सम्बन्धी अथवा अन्य नैतिक कार्य संपादन करनेके लिये या किसी प्रकारका संदेसा दे कर भेजा जाता है। चाणक्यका मत है, कि मेधावी, वाक्पटु, धीर पर चित्तोपलक्षक तथा यथोक्तवादी पुरुषको राजदूत नियत करना चाहिए । प्राचीनकालमें आवश्यकता पड़ने पर ही राजदूत एक राज्यसे दूसरे राज्यमें भेजे जाते थे ; पर पश्चिमी देशोंमें यह प्रथा है, कि मित्र राज्योंमें राजाओंके राजदूत परस्पर एक दूसरेके यहां रहा करते हैं और उन्हींके द्वारा सारा कार्य सम्पादित होता है । दो राज्योंके बीच युद्ध छिड़ने पर दोनों एक दूसरेके यहांसे अपने अपने राजदूत बुला लेते हैं ।

राजदूर्वा (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी दूब जिसकी पत्तियां, कांड आदि स्थूल और बड़े होते हैं ।

राजदृषद् (सं० स्त्री०) जांता, चक्की ।

राजदेव—एक आभिधानिक ।

राजदेशीय (सं० पु०) राजासे कुछ कम, राजाके तुल्य, राजकल्प ।

राजद्रुम (सं० पु०) द्रुमाणां राजा राजदन्तादित्वात् परनिपातः । आरग्वधवृक्ष, अमलतास ।

राजद्रोह (सं० क्ली०) राजा या राज्यके प्रति किया हुआ द्रोह, वह कृत्य जिससे राजा या राज्यके नाश या अनिष्टकी संभावना हो ।

राजद्रोहिन् (सं० त्रि०) राजद्रोह करनेवाला, बागी ।

राजद्वार (सं० क्ली०) १ राजाका द्वार, राजाकी ड्योढ़ी । २ विचारालय, न्यायालय ।

राजधत्तूरक (सं० पु०) धत्तूरकाणां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः । १ वृहद्धुस्तूरक वृक्ष, एक प्रकारका धतूरा जिसके फूल कई आवरणके होते हैं । २ कनक धतूरा ।

राजधर्म्म (सं० पु०) राज्ञो धर्म्मः । १ राजाका कर्त्तव्य कर्म । राजनीतिके अनुसार प्रजापालन करनेसे राजधर्म बचता है । मनु आदि शास्त्रोंमें राजधर्मका विशेष विवरण वर्णित है । २ महाभारतके शान्तिपर्वके एक अंशका नाम जिसमें राजाके कर्त्तव्योंका वर्णन है ।

राजधर्म्मन् (सं० पु०) महाभारतके अनुसार कश्यपके एक पुत्रका नाम जो सारसोंका राजा था ।

राजधानक (सं० क्ली०) धीयतेऽत्रेति धा-ल्युट्, ततः कन्, राज्ञां धानकं नगरं । राजपुर ।

राजधानी (सं० स्त्री०) धीयतेऽस्यामिति धा अधिकरणे, ल्युट् ङीप् राज्ञां धानी नगरी । वह प्रधान नगर जहां किसी देशका राजा या शासक रहता हो, किसी प्रदेशका वह नगर जहां उस देशके शासनका केन्द्र हो । पर्याय—कोट्ट, राजधानक, स्कन्धावार ।

"तौ दम्पती स्वां प्रतिराजधानीं प्रस्थापयामास वशी वशिष्ठः ।"

(रघु २।७०)

राजधान्य (सं० क्ली०) राजप्रियं धान्यं । राजभोग्य हैमन्तिक धान्यविशेष । २ श्यामा धान्य, श्यामा धान ।

राजधामन् (सं० क्ली०) राजप्रासाद ।

राजधुर (सं० पु०) राज्यभार, शासनका भार ।

राजधुस्तूरक (सं० पु०) धुस्तूरकाणां राजा राजदन्तादित्वात् परनिपातः । १ वृहद्धुस्तूरक, एक प्रकारका धतूरा जिसके फूल बड़े और कई आवरणके होते हैं । पर्याय—राजधूर्त्त, महामठ, निःश्रेणिपुष्पक, भ्रान्त, राजस्वर्ण । २ कनक धतूरा ।

राजन् (सं० पु०) राजते शोभते इति राज-कनिन् (युवृषितक्षिराजीति । उण् १।१५६) इति कनिन् । १ प्रभु, स्वामी, मालिक । २ नृपति, किसी देश, जाति या जत्थेका प्रधान शासक । पर्याय—राज, पार्थिव, क्ष्माभृत्, नृप, भूप, महीक्षित्, नरपति, पार्थ, भूपाल, भूभृत्, महीपति, नाभि, नाराज, भूमीन्द्र, नरेन्द्र, नायकाधिप, प्रजेश्वर, भूमिप, इन, दण्डधर, अवनीपति, स्कन्द, स्कन्ध, भूभुज, अर्थपति ।

(जटाधर)

प्रजाओंको रञ्जन करते, इस कारण नरपतिको राजा कहते हैं । भूपति अनुरक्त हो कर स्वर्गजनक राजसिक

कर्मानुष्ठान करके सभी प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, इसी कारण राजा नाम पड़ा है।

सबसे पहले पृथुने 'राजा'-की उपाधि पाई थी।

(पद्मपु० भूखण्ड २९ अ०)

अष्ट लोकपालके अंशमें राजा जन्म लेते हैं। मनुने लिखा है, कि जगत्‌के अराजक होनेसे सभी प्राणी भयसे व्याकुल हो जायेंगे, इस कारण उनकी रक्षाके लिये इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर इन अष्ट दिकपालोंके अंशमें ईश्वरने राजाकी सृष्टि की है।

राजप्रभाव अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, यम, कुबेर, वरुण और महेन्द्रके समान है। राजा यदि बालक हो तो भी उन्हें सामान्य मनुष्य नहीं समझना चाहिये। वे देवता हो कर मनुष्यरूपमें अवस्थान करते हैं, ऐसा समझना चाहिये। प्रयोजनीय कार्य कलाप, स्वकीय शक्ति एवं देशकालकी सम्यक् पर्यालोचना करके राजा धर्मानुरोधसे सभी प्रकारके रूप धारण करते हैं। (मनु० ७ अ०)

वराहपुराणमें लिखा है, कि विशुद्ध भगवद्‌भक्तिपरायण व्यक्तिको राजाका अन्न नहीं खाना चाहिये, यदि भय वा लोभप्रयुक्त हो खायें तो वे नरक जाते हैं। इस पापविमुक्तिके लिये उन्हें प्रायश्चित्त करना होता है।

(वराहपुराण राजान्नभक्षण नामक प्रायश्चित्ताध्याय)

प्रायश्चित्ततत्त्वमें लिखा है, कि राजान्न खानेसे तेजकी हानि और शूद्रान्न खानेसे ब्रह्मण्य हानि होती है। यह विधान ब्राह्मणके लिये जानना चाहिये।

महाभारतसे पता चलता है, कि पहले मनुष्योंमें न तो कोई शासक और न कोई दण्डकर्त्ता। सभी मनुष्य हिल मिल कर रहते थे और आपसमें एक दूसरेकी रक्षा करते थे। इस प्रकार उन्हें न तो किसी शासनकी जरूरत होती थी और न शासक की। किन्तु यह सुनियम बहुत दिनों तक न रह सका। समयने पलटा खाया। लोगोंके चित्तमें विकार उत्पन्न हो गया जिससे वे कर्त्तव्य पालनमें शिथिल हो गये। उनमें सहानुभूति न रही और लोभ, मोह आदि कुवासनाओंने उन्हें घेर लिया। सभी मनुष्य विषय-वासनामें रत हो गये और वैदिक कर्मकाण्डका लोप हो गया। फल यह हुआ, कि स्वर्गस्थ देव व्याकुल हो कर ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने उन्हें आश्वासन दिया और मनुष्योंके शासनकी व्यवस्थाके लिये एक लाख अध्यायोंका एक वृहत् ग्रन्थ बनाया। देवगण उस ग्रन्थको ले कर विष्णुके पास पहुंचे और उनसे प्रार्थना की, कि आप किसी ऐसे पुरुषको आज्ञा दीजिये जो मनुष्योंको इस शास्त्रानुसार चलावे। विष्णु भगवान्‌ने उस शास्त्रके अनुसार शासन करनेके लिये राजाकी सृष्टि की। किसी किसी पुराणका मत है, कि वैवस्वत मनु और किसीके मतसे कर्द्दमजीके पुत्र अङ्ग मनुष्योंके पहले राजा हुए। पूर्वकालमें मनुष्योंकी इतनी अधिकता न थी और न उनकी इतनी घनी वस्तियाँ थीं। एक वंशमें उत्पन्न लोगोंकी संख्या ज्यों ज्यों बढ़ती गई त्यों त्यों बहुतसे जत्थे बनते गये। वह शासक प्रजापति कहलाता था और शेष लोग प्रजा अर्थात् पुत्र। वेदोंमें भरत, जमदग्नि, कुशिक आदि जातियोंके नाम आये हैं जिनमें पृथक् पृथक् प्रजापति थे। इनमेंसे अनेक जातियाँ पंजाब आदि प्रान्तोंमें बस गईं और खेतीबारी करने लगीं। पहले तो उनमें अलग अलग प्रजापति थे, परन्तु धीरे धीरे जनसंख्या बढ़ती गई और अनेक देश जनपूर्ण हो गये। ऐसे आर्योंको शालीन कहा है। फिर उनमें प्रजापतियोंसे काम न चला और भिन्न भिन्न देशोंमें शान्ति स्थापित करने और दूसरे देशोंके आक्रमणसे अपनी रक्षा करनेके लिये प्रजापतिसे अधिक शक्तिशाली एक शासककी नियुक्तिकी आवश्यकता हुई। पहले पहल यह प्रथा भरतजातिमें चली थी; इसीलिये राजसूय-यज्ञमें "भोः भारताः अयं वः सर्वेषां राजा" कह कर राजाको राजसिंहासन पर बैठाया जाता था। पहले यह राजा प्रजाओंके द्वारा प्रतिष्ठित होता था; यदि वह प्रजाका अनिष्ट करता, तो लोग उसे तख्त परसे उतार देते थे। वेणु आदि राजे इसी प्रकार पदच्युत हुए थे। जब उन शालीनोंमें वर्णव्यवस्था स्थापित हो गई, तब राजाका पद पैतृक हो गया और उसकी शक्ति जबरदस्त मानी गई। मनुने राजाको अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, यम, कुबेर, वरुण और महेन्द्र या इन्द्रकी मात्रा या अंशसे उत्पन्न लिखा है और उसे चारों वर्णोंका शासक कहा है। ज्यों ज्यों प्रजाओंकी शक्ति धीमी पड़ने लगी, त्यों त्यों राजाका अधिकार सर्वोपरि होता गया और अन्तमें वह

देश या राज्यका एकाधिपति स्वामी हो गया। दूसरे वर्गके आर्योंमें जो इधर उधर दल बांध कर चलते फिरते थे और जिन्हें व्रात्य कहते थे, प्रजापतिकी प्रथा बनी रही और यही प्रजापति गणनाथ बन गया। ऐसे आर्योंमें न तो वर्णकी ही व्यवस्था थी और न उनमें राजाका एकाधिपत्य ही हुआ। उनमें प्रजापति राजा तो कहलाने लगा, पर वह सभी काम गणकी सम्मतिसे करता था। ऐसे व्रात्य आर्य कोशल, मिथिला और बिहार आदि प्रान्तोंसे आ कर बसे थे और उपनिषद् या ब्रह्मविद्याके अभ्यासी थे। मिथिलाके राजा जनक इन्हीं व्रात्य आर्योंमें थे। इनसे लिच्छवि लोगोंमें गणकी प्रथा महात्मा बुद्धदेवके काल तक प्रचलित रही, इसका पता त्रिपिटकसे चलता है।

राजनय (सं० पु०) राज्ञः नयः। राजनीति।

राजना (हिं० क्रि०) १ विराजना, उपस्थित होना। २ शोभित होना, सोहना।

राजनाथ—अच्युतरामाभ्युदयकाव्यके रचयिता।

राजनापित (सं० पु०) नापितानां राजा राजनापितः राजदन्तादित्वात् परनिपातः। नापितश्रेष्ठ, हज्जामोंमें श्रेष्ठ।

राजनामन् (सं० पु०) राज्ञोनाम नाम यस्य। पटोल, परवल।

राजनारायण मुखोपाध्याय—तुलसी-चन्द्रिकाके रचयिता।

राजनारायण बसु—कायस्थकुलोद्भव बंगालकी सुकृती सन्तान। आपने कलकत्तेके हिन्दू-कालेजमें शिक्षाप्राप्त किया था। आप डेरोजिओकी छात्रमण्डलीमें विशेष सुशिक्षित थे। राजा राममोहनराय द्वारा प्रतिष्ठित आदि ब्राह्मसमाजका पृष्ठपोषक हो कर उसकी उन्नतिमें आप बहुत दिनों तक रहे। अन्तमें बुढ़ापा होने पर आपने वैद्यनाथमें रहनेकी इच्छा की और वहां चले गये। १६वीं सदीके शेषभागमें आपकी जीवनलीला शेष हुई।

राजनि (सं० पु०) रजनका अपत्य।

(तैत्ति० भार० ५।४।१२)

राजनिवेशन (सं० क्ली०) राजप्रासाद।

राजनीति (सं० स्त्री०) राज्ञां नीतिः। वह नीति जिसका अवलम्बन कर राजा अपने राज्यकी रक्षा और शासन दृढ़ करता है। इसके प्रधान दो भेद हैं—एक तन्त्र और दूसरा आवाय। वह नीति जिसके द्वारा अपने राज्यमें सुप्रबन्ध और शान्ति स्थापित की जाय, तन्त्रनीति कहलाती है और जिसके द्वारा परराष्ट्रोंसे सम्बन्ध दृढ़ किया जाय, वह आवाय कहलाती है। स्वराज्यमें प्रजाओंका समाचार और उनकी जातिका पता देनेके लिये राजाको चरसे काम लेना पड़ता है और पर-राष्ट्रोंमें स्वराष्ट्रके स्वत्व, वाणिज्य, व्यापारादिकी रक्षा तथा उनकी गतियोंका पता देनेके लिये दूत रहते हैं। इन दूतों और चरोंसे राजा स्वराष्ट्र और परराष्ट्रको गति, चेष्टा आदिका पता लगा कर अपनी शक्ति और स्वत्वकी समुचित रक्षा करता है। प्राचीन ग्रन्थोंमें आवायके छः मुख्य भेद किये गये हैं जिनको षट्गुण भी कहते हैं। उनके नाम ये हैं—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीकरण और संश्रय। ये षट्नीतिके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। राजनीतिके चार और अंग कहे गये हैं—साम, दान, दण्ड और भेद।

राजनीतिक (सं० त्रि०) राजनीति सम्बन्धी।

राजनील (सं० क्ली०) मरकत मणि, पन्ना।

राजन्य (सं० पु०) राज्ञोऽपत्यमिति राजन् (राजश्वशुरात्-यत्। पा ४।१।१३७) इति यत। १ क्षत्रिय। "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।" (ऋक् १०।९०।१२) २ राजपुत्र। राजति दीप्यते इति राज (राजेरन्यः। उण् ३।१००) इति अन्य। ३ अग्नि। ४ क्षीरिकावृक्ष, खिरनीका पेड़।

राजन्यक (सं० क्ली०) राजन्यानां क्षत्रियाणां समूह राजन्य (गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्येति। पा ४।२।३९) इति वुञ्। १ क्षत्रियोंका समूह। २ क्षत्रियोंके वंश और देश।

राजन्यत्व (सं० क्ली) राजन्यस्य क्षत्रियस्य भावः त्व। क्षत्रियका भाव या धर्म, क्षत्रियका कार्य।

राजन्यबन्धु (सं० पु०) राजन्यस्य बन्धुः। १ राजकुटुम्ब। २ राजबन्धु अवज्ञासूचक प्रयोग। ३ क्षत्रिय।

राजन्यवत् (सं० त्रि०) राजपुत्रादिके साथ सम्बन्ध रखनेवाला।

राजन्वत (सं० त्रि०) राजा अस्ति अस्य अभिमन्निति वा राजन् प्रशंसायां मतुप् (राजन्वान् सौराज्ये। पा ८।२।१४)

इति निपातनात् नलोपः । सुराजयुक्तदेश, प्रजापालन आदि स्वधर्मपरायण राजयुक्त देश ।

राजपंखी (हिं० पु०) राजहंस ।

राजपटोल (सं० पु०) पटोलानां राजा पटनिपातः । मधुर पटोल, एक प्रकारका परवल जिसके फल बड़े होते हैं । फागुन चैतके महीनोंमें इसको डालियां काट कर खेतोंमें दो दो हाथको दूरी पर पंक्तियोंमें नाली खोद कर गलाई जाती है और उनमें पानी दिया जाता है । यह वैशाख जेठसे फूलने लगता है और इसकी फसल वर्षा ऋतुके मध्य तक रहती है । फल देखनेमें लम्बे, बड़े और खानेमें कुछ कम स्वादिष्ट होते हैं । इसे प्रति वर्ष खेतोंमें लगानेकी आवश्यकता होती है । बिहारप्रान्तमें इसकी खेती अधिक होती है । इसे पूरबी या पटनेका परवल भी कहते हैं ।

राजपटोली (सं० स्त्री०) राजप्रिया पटोली । मधुर पटोली या परवल ।

राजपट्ट (सं० पु०) राजप्रियः पट्ट इव । मणिविशेष, चुम्बक पत्थर । पर्याय—विराटज ।

राजपट्टिका (सं० स्त्री०) चातक पक्षी ।

राजपति (सं० पु०) राज्ञां पतिः । सम्राट्, राजाओंका राजा ।

राजपत्नी (सं० स्त्री०) राज्ञः पत्नी । १ राजमहिषी, राजाकी स्त्री, रानी । २ पित्तल, पीतल ।

राजपथ (सं० पु०) राज्ञां पन्थाः (ऋक्पूरब्धूः पथमानक्षे । पा ५।४।७४) इति अ । राजमार्ग, वह चौड़ा मार्ग जिस पर हाथी, घोड़े, रथ आदि सुगमतासे चल सकते हों ।

राजपद्धति (सं० स्त्री०) राज्ञः पद्धतिः । १ प्रधान पथ, राजपथ । २ राजनीति ।

राजपर्णी (सं० स्त्री०) प्रसारिणी नामकी लता ।

राजपलाण्डु (सं० पु०) पलाण्डूनां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः । रक्तवर्ण पलाण्डु, लाल प्याज । पर्याय—जवनेष्ट, नृपाह्वय, राजप्रिय, महामूल, दीर्घपत्र, रोक, नृपेष्ट, नृपकन्द, महाकन्द, नृपप्रिय, रक्तकन्द, राजेष्ट । गुण—शीतल, पित्तकफनाशक, दीपन तथा अतिशय निद्राजनक ।

राजपाड़ा—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ विभागके गोहेलवाड़ प्रान्तका एक सामन्तराज्य ।

राजपाल (सं० पु०) राजानं पालयति रक्षति । १ वह जिससे राजा या राज्यकी रक्षा हो, सेना आदि । २ राजविशेष ।

राजपितृ (सं० पु०) राजाका पिता ।

राजपिप्पला—बम्बई-प्रदेशके रेवाकान्ता पोलिटिकल एजेन्सीके अन्तर्भुक्त एक देशी सामन्त राज्य । यह अक्षा० २१° २३' से २१° ५९' उ० तथा देशा० ७३° ५' से ७४° पू०के मध्य विस्तृत है । भूपरिमाण १५१७ वर्गमील है । इसके उत्तरमें नर्मदा नदी और रेवाकान्ताका मेहवासी राज्य, पूरबमें खान्देश जिलेका मेहवासी राज्य, दक्षिणमें बरोदा राज्य और सूरत जिला तथा पश्चिममें ब्रोच जिला है । यह राज्य उत्तरसे दक्षिण ४२ मील लम्बा तथा ६० मील चौड़ा है ।

सतपुरा पर्वतमालाकी एक शाखा इस राज्यमें तमाम फैली हुई है । उस शाखाका नाम है राजपिप्ला-शैलमाला । पहाड़ी जंगलमें तरह तरहके वृक्ष लगते हैं । रुई, तमाकू, ईख आदिकी खेती होती है । रतनपुरके निकट लोहे और मूल्यवान् पत्थरको खान है । करजन नामक नदी नानचल शैलसे निकल कर राज्यके मध्य होती हुई नर्मदामें गिरी है ।

यहांके सरदार उज्जयिनीराज सदाव्रतके पुत्र चोकाराणाके वंशधर बतलाते हैं । उनका कहना है, कि चोकाराणा पिताके साथ लड़ाई झगड़ा करके पिप्लामें आ कर बस गये । चोकाराणा पर्मारवंशीय राजपूत थे । प्रेमगढ़ (वर्त्तमान परिम) निवासी गोहेलवंशीय राजपूत मखेराजके साथ उनकी एकमात्र कन्याका विवाह हुआ । मखेराजके दो पुत्र थे, डुङ्गारजी गेमारसिंहजी । डुङ्गारजीने भाऊनगर स्थापन कर राज्यकी परिचालना की तथा गेमारसिंहजी पितृसम्पत्तिके अधिकारी हुए । प्रायः १४७० ई०से यहां गोहेलवंशीय राजाओंका शासन विस्तृत हुआ ।

अहमदाबादके मुसलमानराजसे परास्त होनेके बाद यहांके सरदारोंने कबूल किया, कि वे जरूरत पड़ने पर राजसरकारको १००० पदाति और ३ सौ अश्वारोही सेनासे मदद पहुंचायेंगे । १५७३ ई०में अकबर शाह द्वारा गुजरात विजय तक यही व्यवस्था रही । अकबर

शाहने सैन्य-साहाय्यके बदले वार्षिक ३५५५०) रु० कर स्थिर कर दिया। मुगल बादशाह औरङ्गजेबके शासन-काल तक (१७०७ ई०) उन्होंने राजकर दिया था। बाद-में मुगलशासनकी विश्रृङ्खला होने पर सरदारोंने राजकर भेजना बंद कर दिया। १८वीं सदीके आखिरमें दामा-जी गायकवाड़ने इसका बहुत कुछ अंश जीत लिया। उन्होंने पहले वार्षिक ४८०८०) रु० ले कर यह स्थान राजाको छोड़ दिया। पीछे वह कर ६२०००) रु० तक बढ़ा दिया गया है।

इस छोटे सामन्तराज्य पर गायकवाड़का बार बार अत्याचार और गृहविवाद देख कर अंगरेजराजने बीचमें पड़ कर मेल करा दिया। तदनुसार १८२१ ई०में वैरि-सालजी राजसिंहासन पर बैठे। १८६० ई०में अंगरेज-की सलाहसे वैरिसालजीके पुत्र गम्भीरसिंहजी राजा हुए। १८८७ से १८९७ ई० तक राज्यशासनकी बागडोर अंगरेजोंके हाथ रही। वर्त्तमान सामन्तका नाम है एच० एच० महाराजा श्री विजयसिंहजी छत्रसिंहजी। इन्हें गोद लेनेका अधिकार है तथा ११ सलामी तोपें मिलती हैं।

इस राज्यमें नानदोद नामक एक शहर और ६५१ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या लाखसे ऊपर है। गुजराती यहांकी मुख्य भाषा है। जुआर, बाजरा, धान, रुई और चना ही राज्यकी प्रधान उपज है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये राज्य कई परगनोंमें विभक्त है। एक एक परगना एक एक थानेदारके अधीन है। सामन्तको मृत्युदण्ड भी देनेका अधिकार है। इसमें पोलिटिकल एजेण्टकी भी सलाह नहीं लेनी पड़ती है। राज्यकी आय ८ लाख रुपयेसे अधिक है। राज्यमें एक हाई स्कूल और ८१ प्राइमरी स्कूल हैं। स्कूलके अलावा एक अस्पताल और पांच चिकित्सालय है। नानदोदमें एक मवेशी-अस्पताल भी है।

२ उक्त राज्यकी प्राचीन राजधानी। यह प्राचीन नगरभाग देवसता नामक पर्वतकी चोटी पर बसा हुआ है। यहां एक दुर्ग भी है। उस गिरिदुर्गमें यहांके सरदार १७३० ई० तक रह गये है। इसके बाद उन्होंने करजन नदीके समीप पर्वतशिखर पर राजपिप्पलाकी एक नई राजधानी बसाई जिसका नाम नानदोद रखा गया।

राजपीलु (सं० पु०) राजप्रियः पीलुः। महापीलु नामका वृक्ष।

राजपुत्र (सं० पु०) राज्ञश्चन्द्रस्य पुत्रः। १ राजनन्दन, राजाका पुत्र। पर्याय—युवराज, कुमार, भर्तृदारक। (अमर) २ वर्णसंकर जातिविशेष। अम्बष्ठके औरस तथा वैश्यकन्याके गर्भसे इस जातिको उत्पत्ति हुई है।

"वैश्यादम्बष्ठकन्यायां राजपुत्रस्य सम्भवः।"

(पराशरपद्धति)

पुराणके मतसे यह जाति क्षत्रिय पिता और कर्ण मातासे उत्पन्न हुई है। ३ राज्यकी ओरसे मिला हुआ एक पद या उपाधि, सरदार। गुप्तोंके समयमें यह पद घुड़सवारोंके नायकको दिया जाता था। ४ बुधग्रह। ५ महाराजचूत, बड़े आमका एक भेद। ६ क्षीरिकावृक्ष, खिरनीका पेड़।

राजपुत्र—एक कामशास्त्रके प्रणेता। दामोदरकृत कुट्टनी-मतमें इसका उल्लेख है।

राजपुत्रक (सं० पु०) १ राजकुमार। २ राजपुत्र देखो।

राजपुत्रा (सं० स्त्री०) राजा पुत्रो यस्याः। राजाकी माता, वह स्त्री जिसका पुत्र राजा हो।

राजपुत्रिका (सं० स्त्री०) राजपुत्री संज्ञायां कन्। १ शरारि नामक पक्षी। २ राजकन्या। ३ शुक्ल यूथिका, सफेद जूही। ४ पित्तल, पीतल।

राजपुत्री (सं० स्त्री०) राज्ञः पुत्रीव। १ कटु तुम्बी, कड़ु-आ कद्दू। २ रेणुका। ३ जाती, जाही फूल। ४ राज-रीति। ५ छुछुन्दरी। ६ मालती। ७ राजकन्या।

राजपुत्रीय (सं० त्रि०) राजपुत्रसम्बन्धीय।

राजपुर (सं० क्ली०) राज्ञः पुरं। राजाका पुर, राजपुरी।

राजपुर—बम्बईप्रदेशके रेवाकान्ताके अन्तर्गत एक सामंत-राज्य। यहांके सरदार बड़ौदाके गायकवाड़को कर देते हैं।

राजपुर—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़के झालावार विभागके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह बम्बई-बड़ौदा रेलवेसे वड़वान् स्टेशनसे १॥ कोस दूर पड़ता है।

राजपुर—बङ्गालके २४ परगना जिलेके अन्तर्गत एक शहर। यह अक्षा० २०° २४´ उ० तथा देशा० ७८° ६´ पू०

के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ३ हजारके करीब है। यहां तीन भोजनालय, एक पुलिस स्टेशन, डाकघर और एक अस्पताल है। १९०२ ई०में यहां एक कांचका कारखाना खोला गया है।

राजपुर—पञ्जाबके पतियाला राज्यके अन्तर्गत पिञ्जौर निजामतकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०° २२´ से ३०° ३६´ उ० तथा देशा० ७६° ३३´ से ७६° ४६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १४१ वर्गमील और जनसंख्या ५५ हजारसे ऊपर है। इस तहसीलमें १४६ ग्राम लगते हैं।

राजपुर—युक्तप्रदेशके देहरादून जिलेका एक नगर। मुसौरीके स्वास्थ्यनिवास इसी स्थान हो कर जाना पड़ता है।

राजपुर अली—मध्य-भारतके भोपावर एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह नर्मदा और विन्ध्यशैलके मध्यस्थलमें अवस्थित है। भूपरिमाण ८३७ वर्गमील है। यहांके सरदार उदयपुर-राजवंशधर और शिशोदिया कुलसम्भूत है। महाराज यगण मालव-आक्रमणके समय इसी पहाड़ी राज्य हो कर गये थे, पर वे कुछ भी अनिष्ट न कर सके थे। वृटिश सरकारके मालवमें कर्त्तृत्व स्थापन करनेके कुछ पहले राणा प्रतापसिंह यहांकी मसनद पर बैठे थे। उनके लड़के यशोवन्तसिंहके १८६० ई०में मरने पर बड़े लड़के गङ्गदेव राज्याधिकारी हुए। गङ्गदेवको राज्य चलानेमें अक्षम देख अंगरेजराजाने कुछ समयके लिये शासनभार अपने हाथ लिया। १८७१ ई०में गङ्गदेवकी मृत्यु हुई। पीछे उनके छोटे भाई रूपदेव राजसिंहासन पर बैठे। १८८१ ई०में रूपदेवके स्वर्गवास होने पर उनके पुत्र सारी सम्पत्तिके अधिकारी हुए। किन्तु उनकी नाबालिगी तक वृटिश-सरकारने उसकी देखरेख की।

राजपुरुष (सं० पु०) राज्ञः पुरुषः। राज्यका कोई अफसर या राज्यकर्त्ता, राजकर्मचारी।

राजपुरुषवाद—नैयायिक मतसे विचार करनेकी एक प्रणाली। गोपालताताचार्य इस सम्बन्धमें एक ग्रन्थ बना गये हैं।

राजपुष्प (सं० पु०) पुष्पाणां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। १ नागकेशरका पेड़। २ कनकचम्पा।

राजपुष्पी (सं० स्त्री०) राजप्रियं पुष्पमस्याः ङीप्। १ करुणीका फूल। यह कोंकणमें होता है। २ वनमल्लिका। ३ जाती पुष्प।

राजपूजित (सं० पु०) वे श्रेष्ठ ब्राह्मण जिनका सत्कार राज्यकी ओरसे होता हो और जो जीविका आदिके लिये प्रजावर्गके आश्रित न हों।

राजपूज्य (सं० क्ली०) १ स्वर्ण, सोना। (त्रि०) राज्ञः पूज्यः। २ राजाका पूजनीय।

राजपूत—राजपूतानावासी क्षत्रिय वर्णात्मक जातिविशेष। इस जातिके राजे अपनी वीरता और उदारता-गुणसे भारतमें जो अक्षयकीर्त्ति स्थापन कर गये हैं वह इतिहासमें स्वर्णाक्षरमें लिखा है। राणा प्रतापकी अदम्य शक्ति, चित्तोर-राजकुलमहिषी पद्मिनी आदिकी सतीत्वकहानी राजपूत-जीवनका उज्ज्वल दृष्टान्त है।

ये राजपूतगण भारतीयसंस्रवमें आ कर अपनेको सूर्यवंश, चन्द्रवंश और अग्निकुल-समुद्भूत बतलाते हैं सही, पर यथार्थमें प्राचीन आर्यक्षत्रियवंशमें उत्पन्न नहीं हुए हैं। ऐतिहासिक अनुसन्धानसे जाना जाता है, कि एक समय शाकद्वीपवासी (Scythia) शक राजोंने भारत सीमान्तको जीत कर शक प्रधानता स्थापित की। ये शक लोग क्षत्रिय थे। मनुसंहिताके १०।४३-४४ श्लोकमें लिखा है, कि ब्राह्मणके अभावमें वे वृषलत्वको प्राप्त हुए थे। हरिवंश और पुराणादिके मतानुसार सगरने जब हैहयोंका विनाश कर पितृहत्याका बदला लिया, तब शक लोग वशिष्ठके शरणमें पहुंचे। वशिष्ठके कहनेसे सगरने शकोंके शिर मुड़वा कर छोड़ दिया। किन्तु सुदूर शाकद्वीपवासी चातुर्वर्ण्य समाजभुक्त शकक्षत्रियगण इस प्रकार सताये न गये। वे बहुत समय बाद भारतमें प्रवेश कर भारतीय क्षत्रियोंके साथ विवाहादि संबंध स्थापन करनेमें समर्थ हुए थे।

लोगोंका विश्वास है, कि मन्वादि-वर्णित चतुर्वर्णके अन्तर्गत दूसरा क्षत्रियवर्ण भारतमें और नहीं है। किन्तु ब्राह्मणोंका सहायक हो कर जो सब शक वा वाह्लिक भारतवर्षमें घुसे थे उनकी युद्धनीति-कुशलता देख कर ब्राह्मण लोग बड़े प्रसन्न हुए और उनके प्रति क्षत्रियत्व

आरोप कर क्षत्रियका आसन प्रदान किया। इसी कारण उन्होंने सूर्य और चन्द्रवंशकी तरह शकोंका वैदेशिक उत्पत्तिवृत्तांत लिपिबद्ध न करके अग्निसे ही इस क्षत्रिय-कुलकी उत्पत्ति स्वीकार कर ली है।

राजपूत-इतिहास-लेखक सुप्रसिद्ध टाड साहबने लिखा है, कि जिट (जाट), तक्षक और असि आदि शाकगण ईसा-जन्मके ६०० वर्ष पहले भारतवर्ष आये थे। भारतीय हिन्दुओंके संस्रवमें पड़ कर वे लोग धीरे धीरे हिन्दूभावापन्न हो गये। यहां तक, कि वे अपने पूर्वतन संस्कारको परित्याग कर हिन्दूके पर्वादिका अनुकरण करने लगे। उन्होंने महाक्षत्रप आदि उपाधियोंसे अपनेको हिन्दूक्षत्रिय बतलानेकी बड़ी कोशिश की थी।

कनिष्क, हुविष्क, वासुदेव आदि शककुषणवंशीय कोई कोई राजा 'देवपुत्र' उपाधिका व्यवहार करते थे। वह 'देवपुत्र' आगे चल कर 'राजपुत्र' हो गया। शायद उसीसे शाकद्वीपीय-क्षत्रिय-राजोंके राजपूत नामकी उत्पत्ति हुई है। शकराजाओंके खरोष्ट्री अक्षरमें उत्कीर्ण मुद्रा पर 'ा' परित्यक्त तथा संस्कृत 'राजपुत्र' की जगह 'रजपूत' शब्द प्रयुक्त हुआ है। आज भी राजपूतानेके लोग अपनेको रजपूत कहते हैं।

ऐतिहासिक टाडका कहना है, कि राजपूतानेमें आनेसे पहले राजपूत लोग जाबुलिस्तान और गान्धारमें राज्य करते थे। वे लोग शकवंशसम्भूत होने पर भी हिन्दूक्षत्रिय कहलाते थे। ९५६ ई०में भौगोलिक मसूदी कन्दहार (गान्धार) को राजपूतका राज्य बतला गये हैं। भारतीय इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि किदार-कुषणवंशीय शाहिराजने हूणोंको परास्त कर गान्धार अधिकार किया। १०वीं सदी तक गान्धारराज्य कुषण-वंशके अधिकारमें था। अलबिरुनीने किदारवंशीय राजोंको कनिष्कराजका वंशधर बताया है। फिर उन्होंने राजतरङ्गिणीकार कह्लणके मतसे इस केदारवंशको तुरुष्क-वंशोद्भव तथा काबुलका हिन्दूराजा कहा है। ५वीं सदीकी एक शिलालिपिसे टाड साहबने दिखाया है, कि शकराजपूतगण यादव-कन्याका पाणिग्रहण कर क्षत्रिय कहलाने लगे हैं।

गान्धारके अन्तिम किदारराजके मन्त्री कलुट ब्राह्मण थे। उन्होंने रुपयेके बलसे किदारराजाके हाथसे गान्धार-राज्य छीन लिया था। पीछे किदारवंशने फिरसे प्रबल हो कर गान्धारराज्यका उद्धार किया। १०२६ ई०में इस राजवंशका अधःपतन होने पर मुसलमानोंका अभ्युदय हुआ। इस राजवंशके साथ साथ काश्मीरके क्षत्रिय-राजोंकी रिश्तेदारी थी। काश्मीरकी अनेक राजमहिषी इसी गान्धार-राजवंशकी हैं। यह गान्धार-राजवंश जञ्जुह-राजपूत भी कहलाता था। टाडने कहा है— गान्धारकी शकवंशीय राजपूत-शाखाके राजपूतानेमें अपना आधिपत्य फैलाया।

ये शकगण पहले सूर्योपासक थे। मगाचार्य जरथुस्त्र द्वारा जब अग्निपूजा प्रचार हुआ और पारस्याधिपति उसके पृष्ठपोषक हुए, तब सौर शकगण अग्निपूजक हो गये। भारतवर्षमें जो सब शकमुद्रा पाई गई हैं उनमें सूर्योपासना और अग्निवेदीका चिह्न देखा जाता है। भारतमें भी वे लोग पहले सौर और अग्निपूजक समझे जाते थे। यही कारण है, कि उनके वंशधर राजपूतगण पूर्वपुरुषोंकी क्षीणस्मृतिके परिचायकस्वरूप अपनेको भी सूर्यवंशीय और अग्निकुलोद्भव कहते हैं।

भारतवर्षमें जब शकका आधिपत्य फैला, उस समय बौद्ध और जैनधर्म बहुत बढ़ा चढ़ा था। ब्राह्मणोंके मध्य शिवोपासना तब भी विलुप्त नहीं हुई थी। ब्राह्मणों-के प्रभावसे शकोंमेंसे बहुतेरे हिन्दूधर्म ग्रहण कर शैव हो गये थे। पीछे कनिष्कके समयसे ही इस वंशमें बौद्ध और जैनधर्मके प्रति लोगोंका अनुराग और विश्वास बढ़ गया।

भारतीय क्षत्रियप्रभावसे बौद्ध और जैन धर्मका अभ्युदय हुआ। उस क्षत्रिय प्रभावको विलुप्त करनेकी इच्छासे नीतिकुशल ब्राह्मणोंने अभ्यागत शकराजाओंका आश्रय लिया। शकराजगण धीरे धीरे नितान्त गोब्राह्मण भक्त हो गये। उधर ब्राह्मण लोग भी उन्हें विशुद्ध क्षत्रिय कहनेसे बाज नहीं आये। इन सब राजाओंको सहायतासे ब्राह्मणधर्मका पुनः अभ्युदय हुआ।

ब्राह्मणोंके साहाय्यसे जब शकराजवंशीयगण क्षत्रिय कहलाने लगे, तब उनकी भारतीय उत्पत्ति और विशुद्ध क्षत्रियत्व प्रतिपादन करनेके लिये ब्राह्मण और

भट्टकवियोंने वशिष्ठ कर्त्तृक अग्निकुलोत्पत्ति कहानीका प्रचार किया। पीछे वही कहानी राजपूत-समाजमें प्रकृत विवरण समझी जाने लगी। भविष्य-पुराणमें भी देखा जाता है,—"अग्निजात्या मगाः प्रोक्ताः सोमजात्याः द्विजातयः" अर्थात् शाकद्वीपीय मगगण अग्निसे उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंकी तरह क्षत्रिय भी अपनेको अग्निकुलके बतलाते हैं। अब राजपूतगण अपनेको शकवंशीय नहीं कहते। महात्मा टाडने अनेक प्रकारके प्रमाणसे दिखाया है, कि आज भी राजपूतोंके आचार व्यवहार, रीतिनीति और उत्सवादिमें शकप्रभाव विद्यमान है।

शक देखो।

उक्त शौर्यवीर्यशाली राजपूतजातिने आगे चल कर अपने भुजबलसे उत्तर-भारतका अधिकांश स्थान जीता था और वहांके सरदाररूपमें प्रचुर सम्पत्ति अर्जन की थी। उन सब प्राचीन सरदारवंशसे राजपूतजातिकी एक शाखा कल्पित हुई है। ये लोग ही अभी भारतीय प्राचीन क्षत्रियजातिके वर्त्तमान प्रतिनिधि समझे जाते हैं। युक्तप्रदेशमें इनका युद्धविद्याविशारद कह कर तमाम आदर है तथा वे राणा, ठाकुर, क्षत्रि आदि उपाधियोंसे भूषित हैं। इन सब राजे वा राजवंशके उत्पत्ति-सम्बन्धमें भिन्न भिन्न आख्यायिका भाटके मुंहसे सुनी जाती है। वीरचेता राजपूतोंने यमुना और नर्मदा तीरवर्त्ती जिस विस्तीर्ण भूभागमें राज्य किया था, वह राजवाड़, राजस्थान वा राजपूताना नामसे प्रसिद्ध है।

प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहमने प्राचीन राजपूतानेके तीन विभाग किये हैं। इसके पश्चिम विभागमें राठोरगण द्वारा शासित बीकानेर और मारवाड़प्रदेश, यदुवंशी भट्टि-परिचालित जयसलमीर राज्य, कच्छवाहोंका जयपुर और शेखावाटी-प्रदेश तथा चौहान-सम्प्रदायका अजमेर-राज्य, पूर्व विभागमें नरुक-कच्छवाहोंका अलवार-राज्य, जाटराजाओंका भरतपुर और धोलपुर, यादवोंका करौली-राज्य, इसके सिवा अङ्गरेजाधिकृत गुड़गांव, मथुरा और आगरा जिला तथा ग्वालियरराज्यका उत्तरांश एक समय राजपूतोंके अधिकारमें था। यादोनवंशोंका तोमरगढ़, कच्छवाहगढ़, भादौरगढ़, खिचिवाड़ आदि नाम आज भी उसकी गवाही देता है। दक्षिणविभागमें चौहानोंका अधिकृत बूंदी, कोटा, मेवार और मालवराज्य है।

राजस्थानके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि अलवारकी आरावल्ली शैलमाला और यमुनाके मध्यवर्त्ती भूभागके पश्चिममें मत्स्य, पूर्वमें शूरसेन और दक्षिणमें दशार्णराज्य था। वर्त्तमान अलवार, जयपुर, भरतपुर, वैराट और माचारी प्रदेशके अन्तर्भुक्त तथा कर्णाल, मथुरा और बयानाप्रदेश शूरसेनके अन्तर्गत था। इसके पूरबमें अन्तर्वेदी और रोहिलखण्ड ले कर पञ्चालराज्य संगठित था। ये शूरसेनगण यादव या यदुवंशी कहलाते थे। शूरसेनोंके अधिकृत विस्तीर्ण राज्यका कुछ अंश आज भी करौलीके यादवराजाके शासनाधीन है। यादवगण पहले मगधके मौर्यराजवंशके पदानत हुए। इसके बाद भारतीय शकक्षत्रप राजुबुल और उनके लड़के सौदासने यादवोंको परास्त कर अपना आधिपत्य फैलाया। गुप्तराजवंशके अभ्युदयसे यादववंशीय राजपूतगण बहुत कमजोर हो गये। ६३५ ई०में चीनपरिव्राजक यूएनचुवंगने मथुराधिपतिको शूद्रवंशोद्भव बताया है। कुछ सदी बाद यादवराजपूतोंने बयाना और मथुराको पुनः जीत कर धीरे धीरे राजपूतानेके पूर्वविभागमें राज्य फैलाया।

कनोजराज हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद (६०७-६५० ई०में) दिल्लीमें तोमरोंने, खजुराहुमें बुन्देलोंने, चित्तोरमें शिशोदियाने, नरवार और ग्वालियरमें कच्छवाहोंने शिर उठा कर राजपूतशक्तिका जीवन्त प्रभाव चारों ओर फैला दिया। इसके बाद मुसलमानोंके साथ युद्धमें पराजित हो राजपूत लोग भिन्न स्थानमें जानेको बाध्य हुए। राजपूतजातिके इस उपनिवेशसे शायद विभिन्न कुल वा जत्थेकी सृष्टि हुई है।

सूर्यवंशी राजपूतोंके मध्य गहलोत, राठोर और कच्छवाह नामक तीन जत्थे हैं। गहलोतवंशकी २४ शाखाएं हैं जिनमें शिशोदियाकुल विख्यात है। बप्पावंशधर उदयपुरके राणा इसी वंशके हैं। राठोरगण अपनेको कुशके वंशधर बतलाते हैं। इसमें भी २४ शाखा देखी जाती है। योधपुरके राजपूतराजे इसी

वंशके हैं। कच्छवाहगण कुशको अपना आदिपुरुष कहते हैं। जयपुरके राजा इसी वंशके हैं। इनके मध्य १२ घर हैं। चन्द्रवंशी यदुको ही अपना आदिपुरुष मानते हैं। इनके मध्य भी ८ शाखा देखी जाती हैं। कच्छप्रदेश और जयशलमीरके झारेजा और भट्टिगण बड़े प्रतापशाली हैं।

अग्निकुलके मध्य परमार, परिहार, चालुक्य और चौहान नामक चार जत्थे हैं। प्रत्येक जत्थेमें यथाक्रम ३५, २,१६ और २४ शाखा है। छत्तीस क्षत्रिय कुलोंके मध्य उपरोक्त जत्थोंको छोड़ कर और भी कितने जत्थोंका उल्लेख देखनेमें आता है। नीचे उनके नाम दिये जाते हैं—

चौरा वा चावड़, तक्षक, जाट, हूण, काठी, बल्ल, झालामकवहन, गोहिल, सर्वैय वा सरि, अत्स, जटवा, कमरी, दवि, गोर, दोद, गढ़वाल, चन्देला, बुन्देला, बड़गूजर, सेनगार, शिकारवाल, बाई, दहिया, जोहिया, मोहिल, निकुम्भ, राजपति, दहिरिया, दहिमा आदि।

ऊपरमें अग्निकुलका उत्पत्ति-विवरण लिखा गया है। चाहमान वा चौहानकुलमें हर, शनि-गुरु, खिची और देवरा श्रेणी प्रसिद्ध हैं। दिल्लीश्वर पृथ्वीराजने चौहानकुलका मुख उज्ज्वल किया था। प्रतीहार वा परिहारोंकी मन्दावरमें राजधानी थी। एक समय यही मारवाड़के प्रधान नगररूपमें गिना जाता था। पीछे राठोरोंने मारवाड़में आधिपत्य फैलाया। चौलुक्य वा शोलङ्किगण तथा परमार राजगण एक समय भारतके इतिहासपट पर जो वीरत्वचित्र अङ्कित कर गये हैं वह राजस्थानके इतिहासपाठकसे छिपा नहीं है।

चालुक्य, चौहान, परिहार और परमार देखो।

विक्रम-संवत्‌के प्रारम्भसे ले कर १२वीं सदी तक राजपूतोंने अप्रतिहत प्रभावसे उत्तर-पश्चिम भारतका शासन किया। अजमेर और दिल्लीके अधीश्वर पृथ्वीराज जब शाहबुद्दीन घोरी द्वारा ११९३ ई०में परास्त हुए, तभीसे यथार्थमें राजपूतका प्राधान्य जाता रहा तथा मुसलमानोंका अभ्युदय हुआ।

ग्रीक इतिहासकारके वर्णनसे मालूम होता है, कि माकिदनवीर अलेकसन्दरकी भारत-चढ़ाईके समय पञ्जाबके पहाड़ी प्रदेशके कतोअजातीय राजपूतोंका वास था। फिरिस्तानका कहना है, कि वे लोग कोटकाङ्गड़ामें राज्य करते थे। ७११ ई०में खलीफा वालिदके राज्यकालमें अरबोंने सिन्धुप्रदेश पर चढ़ाई कर वहांके अधिवासी सुम्र और सुमरावंशीय राजपूत राजाओंको परास्त किया था। परवर्त्तिकालमें इस राजपूतवंशके कितने इसलामधर्ममें दीक्षित हुए। आज भी बलुचिस्तानके मध्यवर्त्ती झालवन प्रदेशमें राजपूतजातिका वास है।

महम्मद घोरी द्वारा परास्त होनेके पहले राठोरगण कन्नौजमें, शोलङ्की अनहलवाड़में चौहान अजमेरमें, कच्छवाह जयपुरमें, शिशोदिया उदयपुरमें, गहलोतवंश मेवारमें पूर्ण प्रतापसे राजशासन करते थे। कांगड़ाराज तथा जम्बूराजके अधीन दूसरे दो दल राजपूतोंका इरावती और शतद्रुके मध्यवर्त्ती पहाड़ी प्रदेशमें वास था। शेषोक्त राजपूतगण जम्मुवाल नामसे प्रसिद्ध थे।

राजपूतानेमें राणा सङ्ग, प्रतापसिंह आदि शिशोदिय वीरोंने मुगल-बादशाह बाबर, अकबरशाह आदिके विरुद्ध अस्त्र धारण कर जैसी वीरता दिखाई है, वह इतिहास पढ़नेवालोंको अच्छी तरह मालूम है। मुगलराजसरकारमें भी मानसिंह, जयसिंह आदि राजपूतगण वीरताकी पराकाष्ठा दिखा गये हैं।

महाराष्ट्रकेशरी शिवाजी अपनेको राजपूतवंशधर बतलाते थे। तञ्जोर और कोल्हापुरमें इस वंशकी शाखा आज भी विद्यमान है। १७५६ ई०में किसी राठोर-सरदार द्वारा आमन्त्रित हो महाराष्ट्रीयदल अजमेरमें घुसा। इस समयसे राजपूतानेको शासनभित्ति शिथिल होने लगी। १८०३ ई०में राजपूतानेका अधिकांश मराठोंके हाथ आया। सेनापति वेलस्लिी और लेकके साथ उत्तर भारतमें सिन्देराजका युद्ध हुआ। इस युद्धसे महाराष्ट्रशक्ति जब कमजोर हो गई तब उन्होंने अंगरेजोंके कहनेसे राजपूत राजाओंके प्रति अत्याचार करना छोड़ दिया। इसके बाद १८१४ ई०में पिंडारी डकैत-सरदार अमीर खाँके उपद्रवसे राजपूतानेका कुछ अंश तहस नहस हो गया। इस समय उदयपुर राजकन्याके साथ विवाह ले कर जयपुर और योधपुरराजके मध्य

शत्रुता हो गई। मराठों और पठानोंने दोनों दलको सहायता पहुँचा कर राज्यको विध्वस्त कर डाला। आखिर राजकन्याको विष खिला कर मार डाला जिससे दोनों पक्षमें फिर मेल हो गया। १८१७ ई०में मार्किस आव हेष्टिंस द्वारा अमीर खाँ वशीभूत होने पर राजपूत-राजगण अंगरेजोंकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। राजपूतगण धर्मनीति, राजनीति और समाजनीतिकी रक्षा करनेमें बड़े यत्नवान् थे। उन्होंने ब्राह्मणोंको भूमि दान दी, देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा की तथा पर्वोत्सव वे आपसमें मिल कर मनाते थे, इस कारण दोनों दलमें गाढ़ी मित्रता हो गई। आज भी प्रधान प्रधान देवालयोंमें राणाप्रदत्त भूवृत्तिको छोड़ कर ब्राह्मण लोग वणिक् और कृषकोंसे कुछ कुछ दान भी पाते हैं। इस दानका नाम है 'मापा' अर्थात् पण्यद्रव्यका निर्दिष्ट अंश। एकलिङ्गेश्वर और नाथजी वा नाथद्वारमन्दिरमें प्रधान हैं। वैष्णवश्रेष्ठ वल्लभाचार्य द्वारा सबसे पहले नाथद्वारमें नाथजीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई। उस समय उन्होंने और भी छः विग्रह ला कर नाथद्वारमें स्थापन किये। किन्तु परवर्त्तिकालमें उनके पौत्र गिरिधारीने उन सात विग्रहोंको अपने सात लड़कोंको दे दिया। उनके उत्तराधिकारिगण ही अभी उन सब मूर्त्ति पूजाके अधिकारी हैं। नाथद्वारमें नाथजीका छोड़ कर दूसरी दूसरी मूर्त्तियां विभिन्न स्थानमें पड़ी हुई हैं। जैसे, मथुरानाथ—कोटामें, द्वारकानाथ—कङ्करौलीमें, गोकुलनाथ या चन्द्र—जयपुरमें, यदुनाथ—सूरतमें, विट्ठलनाथ—कोटामें और मदनमोहन—जयपुरमें। इस सप्तविग्रहकी प्रतिष्ठाके साथ साथ राजपूतोंमें कृष्णपूजाका प्रचार हुआ। वैष्णवधर्मका आश्रय ले कर राजपूतोंने धीरे धीरे वल्लभाचार्य प्रवर्त्तित अन्नकूट महोत्सव प्रचलित किया।

राजपूतजातिका प्रधान पर्व वसन्तपञ्चमी है। इस पञ्चमी तिथिसे ले कर ४० दिन तक राजपूत लोग एक दम उन्माद मूर्त्ति धारण करते हैं। वसन्तपञ्चमीके दो दिन बाद ही भानुसप्तमी होती है। इस दिन वे लोग सूर्यदेवकी उपासना करते हैं। इसके बाद कलिसिङ्गेश्वरका शिवरात्रि उत्सव है। स्वयं राणाको देवताके उद्देशसे निरम्बु उपवास करना होता है। फाल्गुनमासमें अहेरिया नामक वीर पर्वोत्सव होता है। राणा सामन्तवर्गोंसे परिवृत तथा वासन्ती वस्त्र पहन कर बड़े प्रसन्नसे शिकारको निकलते हैं। इसके बाद फल्गूत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है। इस समय वे पिता, माता, भाई, बहन, स्त्री सभी लज्जा परिहार कर स्वेच्छानुसार अबीर खेलते हैं तथा सङ्गीत और अश्लील वाक्योंका प्रयोग कर राजपूत चरित्रका विचित्र चित्र उपस्थित करते हैं।

चैत्रमासकी प्रतिपद् तिथिमें पितृलोककी पूजा, शुक्ला तृतीयाको राजनैतिक उत्सव, अष्टमीतिथिको शीतलादेवीका पर्वोत्सव, राणाका जन्मतिथि-उत्सव, नववर्षारम्भ, फुलदोल वा पुष्पोत्सव, अन्नपूर्णापूजा वा गंघार, अशोकाष्टमी, रामनवमी, मदनमहोत्सव, सावित्रीव्रत, रम्भाका जन्माह, आरण्यषष्ठी, गौरीपूजा, नागपञ्चमी, राखीपूर्णिमा, जन्माष्टमी, नवरात्रि, खड्गस्थापन, दशहरा वा समरोत्सव, जयतोरण, गणदेवतापूजा, खण्डापूजा, गङ्गाजन्म, कार्त्तिकेयजन्म, चन्द्रोत्सव, लक्ष्मीपूजा, दीपान्विता, भ्रातृद्वितीया और कार्त्तिकमासकी शुक्लाद्वादशी तिथिमें उदयपुरका जलयात्रा-पर्व उल्लेखनीय है।

राजपूत लोग स्वजातीय रमणियोंको बड़ी भक्तिकी दृष्टिसे देखते हैं। इस नारीजातिके आत्मगौरवरक्षणाभिलाष, असीम पतिभक्ति, उच्चहृदयता, साहस, प्रत्युत्पन्नमतित्व आदिकी आलोचना करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। सतीत्वरक्षाके लिये आत्मोत्सर्ग करनेमें हिन्दूरमणियोंमें ये अतुलनीया हैं। चित्तोरराजमहिषी पद्मिनी देवीका चितारोहण इसका ज्वलन्त दृष्टान्त है।

मुसलमानी अमलसे ही यह राजपूतजाति नाना देशोंमें जा कर बस गई है। भारतमें सभी जगह, अफगानिस्तान और भारत-महासागरस्थ हिन्दूप्रधान बालिद्वीपमें राजपूतजातिका उपनिवेश स्थापित हुआ है। वर्त्तमान समयमें नाना हिन्दू-सम्प्रदाय अपनी सामाजिक अवस्था उन्नत दिखानेके लिये अपनेको राजवंशधर बतलाते हैं। दाक्षिणात्यके उत्तर सरकारकी रायचूड़जाति अपनेको राजपूत जातिकी एक शाखा कहते हैं। छोटानागपुर विभागके अन्तर्गत कुछ सामन्तराज और खवाल आदि जो अभी सभ्यता सोपान पर चढ़े हुए

हैं। लोगोंके सामने राजपूत कह कर अपना परिचय देते हैं। छोटानागपुरके राजा नागवंशी हैं तथा पच्चेटराज वंशधर अपनेको गोवंशीराजपूत बतलाते हैं।

जो नागवंशी आज अपनेको राजपूतजातिमें गिनना चाहते हैं, उनकी स्त्रियां उस पालकी पर कदापि नहीं चढ़तीं जिसे मुण्डा लोग ढोते हैं। वे लोग मुण्डाको भासुरका वंश कहते हैं। इसके सिवा आजकलके ग्वाला, बाभन, गोड़, बसाई, सूंड़ी, कुर्मी आदि अपनेको राजपूत बतलाते हैं।

बघेल, बाई, भट्टि, बड़गूजर, बुन्देला, चाहिरा, चन्देल, कच्छवाह, दहिया, दहिरिया, दोगरा, भड़ेजा, जोहिया, मचेरो, गोहिल, निकुम्भ, राजपाली, शिकारवाल और शिर्वी आदि राजपूतजातिका विवरण यथास्थान पर लिखा जा चुका है, इसी कारण यहां पर कुछ नहीं लिखा गया।

राजपूताना—भारत-साम्राज्यके अन्तर्गत राजपूत-जातिकी वासभूमि। युक्तप्रदेश, पञ्जाब, सिन्धु और बम्बई प्रदेशके मध्यस्थलमें अवस्थित है। अंगरेजाधिकृत अजमार-मैरवाड़ा और २० विभिन्न सामन्तराज्य ले कर यह संगठित है। भूपरिमाण १३०४६२ वर्गमील है। यह अक्षा० २३° ३′ से ३०° १२′ उ० तथा देशा० ६९° ३०′ से ७८° १७′ पू० के मध्य विस्तृत है।

इस विस्तृत भूखण्डमें अवस्थित सामन्तराज्योंका भौगोलिक अवस्थान और भूपरिमाण नीचे दिया जाता है—

पश्चिमोत्तरमें अवस्थित—	वर्गमील।
जयशलमीर राज्य	१६४४७
मारवाड़ वा योधपुर	३७०००
बीकानेर	२२३४०
उत्तरपूर्वमें अवस्थित—	
अलवार	३०२४
शेखावाटी	जयपुरके अधीन
पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित—	
जयपुर	१४४६५
भरतपुर	११७४
धोलपुर	१२००

पश्चिमोत्तरमें अवस्थित—	वर्गमील।
करौली	१२०८
बूंदी	२३००
कोटा	३७९७
झलावर	२६९४
दक्षिणमें—	
प्रतापगढ़	१४६०
बांसवाड़ा	१५००
डूंगरपुर	१०००
मेवार या उदयपुर	१२६७०
दक्षिण-पश्चिममें—	
सिरोही	३०२०
मध्यभागमें—	
अजमीर	२७११
किशनगढ़	७२४
शाहपुरा	४००
टोङ्क	२५०९
लावा	१८

आरावल्ली पर्वतमालाके मनोहर दृश्यके सिवा यहां और कोई भी सुन्दर दृश्य नहीं है। पश्चिम और उत्तरका कुछ अंश मरुमय होनेके कारण इस स्थानको पुराणादिमें मरुस्थली वा मरुदेश कहा है। यह अरावल्ली पर्वतके उत्तर-पश्चिम कोणसे ले कर दक्षिणपश्चिम कोण तक विस्तृत है। इसके दक्षिणमें आबू शिखर है। प्रवाद है, कि यहां वशिष्ठ ऋषिने अग्नियज्ञ किया था।

इस मरुभूमिमें थोड़ी ही वृष्टि खेतीबारीके लिये काफी है। लोनीनदीके सिवा यहां और कोई भी नदी नहीं जिससे जलका प्रबन्ध हो सके। कूपका जल थोड़े ही समयमें खारा हो जाता है। सारे देशकी अवस्था मरुमय और वनमालाविभूषित होने पर भी राजधानी नगरादिकी अवस्था उतनी खराब नहीं है। राजपूत या मालव-रेलपथ आरावलीके उत्तरसे चला गया है जिससे स्थानीय वाणिज्यमें बड़ी सुविधा है।

इसके दक्षिण-पूरबसे बहुत-सी शाखानदियां विन्ध्य-पर्वतसे निकल कर बनाश और चम्बल नदीमें मिली हैं। पूर्वकी ओर भालरा-पाटनके उत्तर ऊंचा पत्थरीला

स्थान है। उसीके ऊपर कोटाराज्य बसा हुआ है।

लोनी, बाणगङ्गा, बनाश, चम्बल, पार्वती, शाबरमती, माही, सोम आदि नदियां ही प्रधान हैं। लवणजलपूर्ण सम्बरहृदके सिवा (मेवारराज्यमें) और भी कितने कृत्रिम हृद देखे जाते हैं। १६८१ ई०में राजा जयसिंह द्वारा निर्मित देवार और कंकरौली नामक नगरमें दो हृद हैं। प्रथमोक्त जलाशय 'जयसमुन्दर' नामसे प्रसिद्ध है। उसका घेरा ३० मीलसे कम नहीं होगी।

मुसलमानी जमानेके पहले राजपूत-जातिका इतिहास अच्छी तरह लिपिबद्ध न था। भट्ट कवि लोग राजपूताना-वासी राजवंशधरोंकी जो कीर्त्तिकहानी इतने दिनोंसे गाते आते हैं उसीका अवलम्बन करके कर्नल टाड राजस्थानका धारावाहिक इतिहास लिखनेको अग्रसर हुए हैं। वर्त्तमान समयमें राजपूतजातिके कीर्त्तिमण्डपसे प्राप्त शिलालिपिसे राजपूत राजोंके काल और वंशधारा की जो तालिका पाई गई है उसकी आलोचना करनेसे राजपूत आख्यायिकाका एक नया संस्करण पानेकी आशा की जाती है।

मुसलमानी अमलके पहले कनोजसिंहासन पर एक मात्र राठोरराजगण ही बैठे थे तथा गुजरातके अनहलवाड़में राजधानी स्थापन कर चालुक्यराजपूत सारे दक्षिण राजपूतानेका शासन करते थे। इस समय और भी कितने राजपूत राजवंशने शिर उठाया। ११वीं सदीमें जब गज़नीपति महमूद भारत-विजयमें आये, तब अनहलवाड़में शोलाङ्की वंशीय, अजमेरमें चौहान और कनोजमें राठोरगण भारतवर्षके राजोंमें बढ़े चढ़े थे। इस समय गहलोतवंशने मेवार (उदयपुर)-सिंहासन पर और कच्छवाहोंने जयपुर राजधानीमें रह कर राजपूत-गौरवकी नींव मजबूत करनेमें कोई कसर न रखी थी।

महमूदने भारतवर्ष आ कर शोलङ्कियोंको परास्त तो कर दिया, पर उनकी शक्ति वह बिलकुल ह्रास न कर सका। इसके बाद ही राजपूतोंके मध्य गृहविवाद शुरू हो गया। शोलङ्की और चौहान राजोंने आपसमें लड़ कर अपने पैरमें कुल्हाड़ी मारी। फिर कनोजके राठोर-सरदार जयचंदकी कन्याके स्वयम्बरमें जयचंदके साथ चौहानपति पृथ्वीराजका घोर विरोध उपस्थित हुआ। यही विवाद भारतके सर्वनाशका मूल कारण था।

राजा जयचंदने जातिशत्रुके अपमानसे उत्तेजित हो शाहबुद्दीन गोरीको बुलाया। इधर पृथ्वीराजने चन्देलराज परमर्द्दिदेवको परास्त कर महोबा पर दखल किया। महम्मद स्वराज्य-सीमान्तवासी विधर्मी शत्रु दिल्लीश्वरकी बढ़ती देख कर दलबलके साथ भारतकी ओर चला। ११९३ ई०में तिरोरीकी लड़ाईमें मुसलमानोंके हाथसे भारतकी अदृष्टलिपि बदल गई। दूसरे वर्ष कनोज अधिकृत हुआ। मुसलमान-प्रतिनिधि कुतुबउद्दीनने आ अजमेर और अनहलवाड़में छावनी डाली। भारतकी राजधानी दिल्ली नगरमें मुसलमानोंका राजपाट प्रतिष्ठित हुआ।

१३वीं सदीमें मालवराज्य दिल्लीके अधिकारभुक्त हुआ। १४वीं सदीके आरम्भमें अलाउद्दीन खिलजीने गुजरातके राजपूतोंके विरुद्ध युद्ध करके उन्हें समूल विध्वस्त कर डाला। तुगलकवंशके अवसान पर मालवमें स्वाधीन मुसलमानराज्यकी प्रतिष्ठा हुई। इन मुसलमान राजोंने दिल्लीश्वरसे बढ़ कर कठोर शासन द्वारा राजपूतोंको सताया। १५वीं सदीमें मुसलमान और राजपूतमें घमसान युद्ध चला था।

१६वीं सदीके शुरूमें कुछ समयके लिये राजपूतशक्ति फिर उठ खड़ी हुई थी। दिल्लीके अन्तिम अफगान राजवंशकी शासन-विशृङ्खला तथा गुजरात और मालवके मुसलमान सुलतानोंका परस्पर विरोध देख कर मेवारके शिशोदियावंशधर राणा सङ्ग हिन्दूकी विजय-वैजयन्ती फहरानेकी चेष्टा की थी। उन्होंने चन्देरीराज मेदिनी रावकी सहायतासे मालव और गुजरातके विरुद्ध घोर संग्राम करके उन्हें परास्त किया था। १५१९ ई०में मालवराज उनके हाथ बन्दी हुए तथा १५२६ ई०में गुजरातपतिके साथ मित्रता स्थापन करके उन्होंने मालव-राज्य अधिकार किया। इस समय राणा सङ्ग (संग्राम) ही यथार्थमें सारे राजस्थानके अधिपति हो गये थे।

मालवजयके कुछ बाद ही मुगल-सम्राट् बाबरशाहने दिल्ली पर कब्जा किया। १५२७ ई०में फतेपुरसिकरीमें राजपूतके साथ मुगलका विपुल संग्राम छिड़ गया। युद्धमें राणाकी विपुल वाहिनीके पराजित होनेसे राजपूतशक्ति निराशास्रोतमें बह गई। दूसरे वर्ष मेदिनी रावने

अपने अम्बेरो राज्यको रक्षाके लिये बहुतसे राजपूत वीरोंको ले कर मुगलपतिका मुकाबला किया। बाबरशाहने उन्हें परास्त कर नगरको लूटा। राठोरपति मालदेव रावने मुगलोंकी अधीनता स्वीकार की थी। गुजरातके मुगलराजोंके साथ तथा दिल्लीश्वर शेरशाहके विरुद्ध बार बार युद्ध करके दुर्द्धर्ष राठोर कमजोर हो गये थे। अकबरशाहने साम, दान, भेद और दंड द्वारा राजपूत जातिको पदानत करनेकी चेष्टा की थी। योधपुरराजने उनके हाथसे पराजित हो मुगलका दासत्व स्वीकार किया, किंतु शिशोदियावंशके प्रतापसिंहने उनकी अधीनता बिलकुल स्वीकार न की। उन्होंने अकबरशाहकी विपुल-वाहिनीके विरुद्ध हल्दीघाटमें जो युद्ध किया था, वह इतिहासमें उज्वल्त अक्षरोंमें लिखा गया है।

अकबर शाह और उनके लड़के जहांगीरने राजपूत-रमणीका पाणिग्रहण किया था। शाहजहान् बचपनसे ही राज्यके बाहर रहते थे। जब तक वे राजतख्त पर नहीं बैठे, तब तक उदयपुरके राणाके आश्रयमें ही रहे थे। अकबरके समय जो राजपूत अपनी स्वाधीनताको अक्षुण्ण रखनेमें बद्धपरिकर हुए थे ही १६वीं सदीके अन्तिम समयमें मुगलबादशाहके साथ मित्रतापाशमें आबद्ध हो मित्रराजरूपमें गिने जाने लगे।

औरङ्गजेबके राज्यारोहणकालमें मुगलोंके बीच गृह-विवाद उपस्थित हुआ। उस समय सभी राजपूत-सेनापतियों और राजपूत राजकर्मचारिने दाराका पक्ष लिया, तथापि औरङ्गजेब राजपूत सेनादलका अदम्य साहस और वीरता देख कर उनके पक्षपाती हो गये। उन्होंने काबुल पर शासन करनेके लिये राजपूत-प्रतिनिधिको भेजा तथा दाक्षिणात्यमें राजपूत-सेनानायक द्वारा युद्ध-विग्रह ठान दिया। दुःखका विषय है, कि जो राजपूत-सेनापति उनके दाहिने हाथ थे उन्हें वे एक एक कर यम पुर भेजने लगे।

औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद शिशोदिया, राठोर और कच्छवाह राजपूत स्वाधीनता-प्रयासी हो मुगल साम्राज्यके विरुद्ध उठ खड़े हुए। नादिरशाहके उत्तरभारतमें लूट पाट करनेके बाद उन्होंने फिर एक बार मस्तक उठाया। किन्तु उनमें जो सन्धि हुई थी उस शर्तमें लिखा था, कि कच्छवाह राजाओंको शिशोदिया स्त्रीसे जो पुत्र जन्म लेगा वही सिंहासनका अधिकारी होगा, यह ले कर दोनोंमें मनमुटाव हो गया। इसी मनमुटावसे उनकी एक भी चेष्टा फलीभूत न हुई।

१७५६ ई०में मराठोंने अजमीर जीता। तभीसे राजपूतानेमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई। इस समय पठान और मराठा दलके उपद्रवसे राजपूतजातिको अधःपतित मुगलसाम्राज्यके साथ ही साथ अवनति हो गई। यहां तक, कि छोटे छोटे सरदार दस्युवृत्ति द्वारा स्वजातीयके प्रति अत्याचार करनेसे भी बाज न आये।

१८०३ ई०में सच पूछिये तो सारा राजपूताना मराठोंके हाथ आया। होलकर और सिन्देराजने राजपूतानाको जीत कर तहस नहस कर दिया था। अंगरेज-सेनापति वेलसिली और लेकके शुभागमनसे राजपूतजातिने कठोर करभारसे छुटकारा पाया। सिंदेराजने परास्त हो १८०५ ई०में राजपूतानेके अधिकृत प्रदेश छोड़ दिया।

लार्ड वेल्सिली जब विलायत गये, तब राजपूतानेका शासनभार सामन्तराजाओं पर ही सौंपा गया। डकैत-सरदारोंने सुयोग पा कर फिरसे अत्याचार करना शुरू कर दिया। यहां तक, कि अंगरेज-शक्तिकी भी परवाह न कर उन्होंने दश वर्ष तक अविश्रान्त अत्याचार और आक्रमणसे राजपूतराज्यको मथ डाला था। १८१४ ई०में पिण्डारी डकैतदल अमीर खाँके अधीन हो गया।

पिण्डारी देखो।

उदयपुरकी राजनन्दिनीके विवाहके उपलक्षमें जयपुर और योधपुरराजका अन्तर्विवाद तथा दोनोंको उसे जीत करनेके लिये मराठा और पठानदलका परस्पर साहाय्यदान राजपूतजातिके जातीय गौरवनाशका कारण था।

१८११ ई०में नाबालिग राजपूतराजोंने डकैतोंका उत्पीड़न सहन न करके दिल्लीश्वर और अङ्गरेज प्रतिनिधि सर चार्ल्स मेटकाफसे सहायता मांगी। तदनुसार १८१७ ई०में मार्किस आव हेष्टिंसके आदेशसे अंगरेजीसेनादलने पिण्डारियोंको परास्त किया। सरदार अमीर खाँको अंगरेजराजने टोङ्कका शासनकर्त्ता बनाया। १८१८ ई०के

अन्तिम समयमें भरतपुरको छोड़ कर और सभी राजपूत राजोंने अंगरेजोंकी अधीनता स्वीकार की। सिन्देराजने अंगरेजोंके हाथ अजमीरका शासनभार सौंपा। तभीसे ले कर १८५७ ई०के गदर तक यहां और किसी प्रकारकी विश्रृङ्खला न हुई। इस समय कोटामें विद्रोहिदलने अंगरेजोंके विरुद्ध हथियार उठाया। १८५८ ई०में कोटा अंगरेजोंके हाथ लगा।

राजपूतानेमें जो सांभर झील है उसमें प्रतिवर्ष ४०००००० मन नमक पैदा होता है। इस समय इस झीलको वृटिश-सरकारने अपने अधिकारमें कर लिया है और जोधपुर तथा जयपुर राज्योंको उसके बदले नियत रकम सालाना दी जाती है।

राजपूतानेका जलवायु सामान्य रूपसे आरोग्यप्रद माना जाता है। रेगिस्तानी प्रदेश अर्थात् जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर और शेखावाटी आरोग्यके विचारसे विशेष उत्तम है। राजपूतानेके अन्य विभागोंकी अपेक्षा रेतीले प्रदेशोंमें शीतकालमें अधिक सर्दी और उष्णकाल में अधिक गर्मी रहती तथा लू और आंधियां भी बहुत चलती हैं।

राजपूतानेके पश्चिमी रेगिस्तानी विभागमें पूर्वी विभागकी अपेक्षा वर्षा कम होती है; आबू पर अधिक ऊंचाईके कारण वहांकी औसत ५७ और ५८ इञ्चके बीच है। रेगिस्तानवाले प्रदेशमें रेता अधिक होनेसे विशेष कर एक ही फसल खरीफकी होती है और रबीकी बहुत कम। पहाड़ोंके बीचकी भूमिमें जहां पानी भर जाता है, धानकी खेती भी होती है। राजपूतानेकी मुख्य उपज गेहूं, जौ, जुनहरी, बाजरा, मौठ, मूंग, उड़द, चना, धान, तिल, सरसों, अलसी, सुआ, जीरा, रुई, तमाकू और अफीम है। उक्त पैदावारीको चीजोंमेंसे रुई, अफीम, तिल, सरसों, अलसी आर सुआ बाहर जाते हैं तथा शक्कर, गुड़, कपड़ा, तंबाकू, सोना, चांदी, लोहा, तांबा, पीतल आदि बहुत-सी जरूरी चीजें बाहरसे आती हैं। राजपूतानेमें लोहा, तांबा, जस्ता, चांदी, सीसा, स्फटिक, तामड़ा और कोयलेकी खानें हैं। लोहेकी खान उदयपुर, अलवार और जयपुर राज्योंमें, चांदी और जस्तेकी खान उदयपुर राज्यके जावर स्थानमें, सीसेकी खान अजमेरके पास और तांबेकी जयपुर राज्यमें खेतड़ीके पास सिंघाणेमें है। ये सब खानें पहले जारी थीं, परन्तु बाहरसे आनेवाली इन इन धातुओंके सस्तेपनके कारण अब वे सब बंद हैं, केवल उदयपुर राज्यके बीगोद गांवमें कुछ लोहा अब तक निकाला जाता है। मेवाड़में चित्तोड़गढ़, कुंभलगढ़ और मांडलगढ़; मारवाड़में जोधपुर और नागोर; जयपुरमें रणथम्भोर, बीकानेरमें भाटनेर और अजमेरमें तारागढ़के प्रसिद्ध किले हैं। इनके सिवा छोटे बड़े गढ़ बहुतसे हैं। राजपूतानेमें रैलकी सड़कें छोटे और बड़े दोनों नाप की हैं, परन्तु अधिक प्रमाणमें छोटे नापकी ही है जिनमें मुख्य 'बम्बई बड़ौदा एण्ड सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे' है। यह अहमदाबादसे आबूरोड, अजमेर, फुलेरा, बांदी कुई होती हुई दिल्ली तक चली गई है। इसमें १२८ शहर और २९९०१ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या प्रायः १०३३९६५५ है।

राजपूतानेके साथ अंगरेजोंका सम्बन्ध होनेके पूर्व यहां पर विद्याका प्रचार बहुत ही कम रह गया था। गांवोंमें पढ़ाईका प्रबंध कुछ भी न था। अब तो अंगरेजी राज्यके प्रभावसे नये ढंगकी एवं अंग्रेजीकी पढ़ाई सारे देशमें होने लगी है। अजमेर, जयपुर और जोधपुरमें कालेज बने कई वर्ष हो चुके। हाई स्कूलें तथा मिडिल और प्रारम्भिक शिक्षाकी पाठशालाएं तो कई चल रही हैं। कई राज्यों तथा अजमेरके इलाकेमें लड़कियोंकी प्रारम्भिक शिक्षा भी होती है। उच्च कोटिकी विद्याके लिये जयपुरराज्य सर्वोपरि है। वहांके स्वर्गवासी महाराज रामसिंहने विद्याप्रेमी होनेके कारण अपने राजमें अंगरेजी, हिन्दी, उर्दू और संस्कृतकी पढ़ाईका उत्तम प्रबंध किया। संस्कृतकी आचार्यक परीक्षा तकका अध्ययन केवल जयपुर हीमें होता है। उक्त महाराजने विद्याके साथ कला कौशलका भी प्रचार अपनी प्रजामें करनेके लिये जयपुरमें एक अच्छा आर्टस्कूल (कलाभवन) खोला। प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षाके लिये राजपूतानेमें झालावाड़राज्य सर्वोपरि है।

राजपौरुष्य (सं० क्लो०) राजपुरुषस्येदं ष्यण् (अनुशतिकादीनाञ्च। पा ७।३।२०) इति आद्यचो वृद्धिः। राजपुरुषसम्बन्धी।

राजप्रकृति (सं० स्त्री०) राज्ञः प्रकृतिः। १ राजपुरुष। २ राजाकी प्रकृति या स्वभाव।

राजप्रिय (सं० पु०) १ राजपलाण्डु। २ करुणीका फूल जो कोंकणमें उत्पन्न होता है। (त्रि०) राज्ञः प्रियः। ३ राजाका प्रियपात्र।

राजप्रिया (सं० स्त्री०) १ राजप्रिय देखो। २ तिलवासिनी शालि, एक प्रकारका धान जो लाल रंगका होता है और जिसका चावल सफेद तथा स्वादिष्ट होता है। ३ राजपत्नी, राजाकी स्त्री, रानी।

राजप्रेष्य (सं० पु०) राजप्रेषित व्यक्ति। १ राजा या राज्यका नौकर, राजकर्मचारी। (क्ली०) राजा द्वारा नियोग।

राजफणिज्झक (सं० पु०) राजते इति राज-अच् राजः दीप्तिशाली फनिज्झकः। नागरङ्ग वृक्ष, नारंगीका पेड़।

राजफल (सं० क्ली०) राजाभिधेयं फलं। १ पटोल, परवल। २ राजाम्र, बड़ा आम। ३ राजादनी, खिरनी।

राजफला (सं० स्त्री०) राजप्रियं फलमस्याः। जम्बू, जामुन।

राजफल्गु (सं० पु०) कृष्णोदुम्बरवृक्ष, कठूमरका पेड़।

राजबदर (सं० क्ली०) राज्ञो बदरमिव प्रियत्वात्। १ रक्तामलक, लाल आँवला। २ लवण, नमक। (पु०) बदराणां राजा राजदन्तादित्वात् परनिपातः। ३ उत्तमकोलि, पैवंदी या पेउँदी बैर। पर्याय—नृपश्रेष्ठ, नृपबदर, राजबल्लभ, पृथुकोल, तनुबीज, मधुरफल, राजकोल। इसका गुण—मधुर, शीतल, दाह, पिपासा और वातनाशक, वृष्य, वीर्यवृद्धिकर, श्लेष्म और श्रमनाशक। (राजनि०)

राजबला (सं० स्त्री०) प्रसारिणी लता।

राजबलेन्द्रकेतु (सं० पु०) बौद्धभेद।

राजबाड़ी (हिं० स्त्री०) १ राजाकी वाटिका। २ राजभवन, राजमहल।

राजबान्धव (सं० पु०) राज्ञः बान्धवः। राजाका बन्धु।

राजबाहा (हिं० पु०) प्रधान या बड़ी नहर जिससे अनेक छोटी छोटी नहरें खेतोंको सींचनेके लिये निकाली जाती हैं।

राजबीजिन् (सं० त्रि०) राजा बीजी कारणं यस्य। राजवंश्य, राजवंशोद्भव। (अमर)

राजब्राह्मण (सं० पु०) राजा ब्राह्मणं (राजा च। पा ६।२।५९) इति कर्मधारये प्रकृतिवद्भावः। राजा अथच ब्राह्मण।

राजभक्त (सं० क्ली०) १ नृपभोज्य अन्नपानादि, राजाका अन्न। राजा जो अन्नपानादि भोजन करें, उसे वैद्य अच्छी तरहसे देख लें। चरक और सुश्रुत आदिमें इसका विषय विशेषरूपसे वर्णित है। (त्रि०) २ राजाका भक्त, जिसमें राजा या राज्यके प्रति भक्ति हो।

राजभक्ति (सं० स्त्री०) राज्ञः भक्तिः। राजा या राज्यके प्रति भक्ति या प्रेम।

राजभट (सं० पु०) राज्ञः भटः योद्धा। राजसैनिक।

राजभट्टिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका जल-पक्षी, गोभंडीर।

राजभद्रक (सं० पु०) १ पारिभद्रक वृक्ष, फरहदका पेड़। २ निम्बवृक्ष; नीमका पेड़। ३ कुष्ठ, कुड़ा। ४ कुन्दुरुक, कुँदरू। ५ राजार्क, सफेद आक।

राजभय (सं० पु०) राज्ञः भयं। राजभीति, राजाका भय या डर।

राजभवन (सं० क्ली०) राज्ञः भवनं। राजप्रासाद, राजाका महल।

राजभाण्डार (सं० पु०) राजकोश, राज्य या राजाका खजाना।

राजभूय (सं० क्ली) राज्ञो भावः राजन्-भू-क्यप्। राजत्व, राज्य।

राजभृत (सं० पु०) राज्ञा भृतः वेतनादिभिः नियुक्तः। राजाका वेतनभोगी भृत्य।

राजभृत्य (सं० पु०) राज्ञः भृत्यः। राजाका नौकर।

राजभोग (सं० पु०) १ शालिधान्यविशेष, एक प्रकारका महीन धान जो अगहनमें होता है। २ राजाका भोग। राजा जिन सब उत्तम वस्तुओंका उपभोग करते हैं वही राजभोग कहलाता है।

राजभोगीन् (सं० त्रि०) १ राजभोगके योग्य, राजाके भोजनके उपयुक्त। २ उत्तम भोजन करनेवाला।

राजभोग्य (सं० त्रि०) भुज-ण्यत् कुत्व, राज्ञा भोग्यं। १ राजाके भोजनयोग्य। (क्ली०) २ जातीकोष, जावित्री। (पु०) ३ प्रियाल, चिरौंजी। ४ एक प्रकारका धान।

राजभोजन (सं० क्लो०) राज्ञः भोजनं । राजाका भोजन ।

राजभ्रातृ (सं० पु०) राज्ञः भ्राता । राजाका भाई ।

राजमणि (सं० पु० मणीनां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः । मणिश्रेष्ठ, मूल्यवान् मणि ।

राजमण्डल (सं० पु०) ऐसे राजाओंका राज्य जो किसी राज्यके आस-पास हो, किसी राज्यके आस-पास या चारों ओरके राज्य । नीतिशास्त्रमें बारह प्रकारके राज-मण्डल माने गये हैं—अरि, मित्र, उदासीन, विजिगीषु, पार्ष्णिग्रह, आक्रन्द, विजिगीषुका पुरःसर और पश्चाद्वर्त्ती, पार्ष्णिग्रहसार, आक्रन्दसार, अरिसम, मित्रसम और मध्यम ।

राजमण्डूक (सं० पु०) मण्डूकानां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः । वृहद्भेक, एक प्रकारका मेढ़क जो बहुत बड़ा होता है । पर्याय—महामण्डूक, पीताङ्ग, पीतमण्डूक, वर्षाघोष, महारव । (राजनि०)

राजमन्दिर (सं० क्लो०) राज्ञः मन्दिरं । राजगृह, राज-भवन ।

राजमराल (सं० पु०) राजहंस ।

राजमल्ल (सं० पु०) राज्ञां मल्लः । राजाओंका मल्ल या माल । पर्याय—उत्सिक्त, उद्धत ।

राजमल्ल—मेदपाटके एक हिन्दू-राजा तथा कुम्भके पुत्र । ये ज्वरतिमिरभास्करके प्रणेता चामुण्डकायस्थके प्रति-पालक थे ।

राजमहल (हिं० पु०) राजाका महल, राजप्रासाद ।

राजमहल—विहार और उड़ीसाके सन्थाल परगनेका एक उपविभाग । यह अक्षा० २४° ४३′ से २४° १८′ उ० तथा देशा० ८७° २७′ से ८७° ५७′ पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण ७४१ वर्गमील और जनसंख्या तीन लाखके करीब है । इसमें शाहबगञ्ज और राजमहल नामक दो शहर तथा १२६२ ग्राम लगते हैं ।

२ उक्त विभागका एक नगर । यह अक्षा० २५° ३′ उ० तथा देशा० ८७° ५०′ पू०के मध्य अवस्थित है । वर्त्तमान नगरके पश्चिम प्राचीन मुसलमान नगरका ध्वंसावशेष है । वह प्रायः ४ मील तक जंगलसे ढंका हुआ है । मुगल बादशाह अकबरशाहके सेनापति महाराज मानसिंह १५९२ ई०में उड़ीसा जीत कर जब लौट रहे थे, तब उन्होंने राजमहलको ही बङ्गालकी राजधानी पसन्द किया था । मानसिंहकृत जमा मसजिद, सुलतान सुजा-का प्रासाद, बङ्गेश्वर मीर कासिम अलीका वासभवन, फुलवाड़ी और कीर्त्तिस्तम्भ यहांकी अतीत स्मृतिकी घोषणा करते हैं । गङ्गानदीको स्रोत गतिका बार बार परिवर्त्तन होते रहनेसे यहांका वाणिज्यकेन्द्र साहबगञ्ज उठ कर चला गया है ।

राजमहल—सन्थाल परगना जिलेके अन्तर्गत एक पहाड़ी भूभाग । मुसलमान इतिहासमें यह दामन-इ-कोह नामसे प्रसिद्ध है । यह प्रायः १३६६ वर्गमील स्थान अधिकार किये हुए हैं । किन्तु कहीं भी इसको ऊँचाई समतलक्षेत्र-से २ हजार फुट न होगी । पहले यह पर्वतमाला मध्य-भारतके विन्ध्यगिरिकी एक शाखा समझी जाती थी । भारत गवर्मेण्टके भूतत्त्व-परिदर्शक M. V. Balle-ने इसका प्रस्तरपञ्जर देख कर स्थिर किया है, कि यह विन्ध्यसे बिलकुल स्वतन्त्र उपादानोंसे संगठित है ।

राजमहिल (सं० क्लो०) एक नगरका नाम ।

राजमहेन्द्रतीर्थ (सं० क्लो०) एक तीर्थका नाम ।

राजमहेन्द्री—राजामहेन्द्री देखो ।

राजमातृ (सं० स्त्री०) राज्ञः माता । राजाकी माता ।

राजमात्र (सं० क्लो०) जो नाममात्रका राजा हो ।

राजमानत्व (सं० क्लो०) राज् शानच् तस्य भावः । दीप्य-मानत्व, दीप्ति ।

राजमानुष (सं० पु०) राज्ञः मानुषः । राजपुरुष, वह मनुष्य जो राजाके अधीन हो । (याज्ञवल्क्यस० २।२४२)

राजमार्ग (सं० पु०) राज्ञो मार्गः । राजपथ, चौड़ी सड़क । राजपथ पर सौध निर्माण करनेवाले व्यक्ति हजार वर्ष तक इन्द्रलोकमें वास करते हैं ।

"राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिव्रते ।
वर्षायामयुतं सोऽपि शक्रलोके महीयते ॥"

(ब्रह्मवैवर्त्त प्रकृतिख० २४ अ०)

जो व्यक्ति अनापद्‌कालमें राजपथ पर मलमूत्रादि त्याग करते हैं, राजाको चाहिये, कि वे उन्हें दो कार्षा-पण दण्ड दें और वह विष्ठा उन्हींसे साफ करा लें । यदि कोई विपद्‌में पड़ कर तथा वृद्ध, गर्भिणी या

बालक ऐसा करे, तो उन्हें केवल डांट डपट दें और वह विष्ठा साफ करा लें।

राजमाष (सं० पु०) माषाणां राजा श्रेष्ठत्वात् राजदन्तादित्वात् परनिपातः। वर्व्वट, बड़ा उरद जो नीले या काले रंगका होता है। पर्याय—नीलमाष, नृपोचित, नृपमाष। वैद्यकमें इसे रुचिकर, वातकारक, बलदायक, सारक, शुक्र और अम्लपित्तनाशक, स्वादु, रुक्ष, कषाय और लघु लिखा है।

वैष्णव-शास्त्रके मतसे विष्णुकी शयनावस्थामें राजमाष नहीं खाना चाहिए। खानेसे चंडाल होता है। इनमेंसे कार्त्तिक मास तो और भी निषिद्ध है। यदि कोई कार्त्तिकके महीनेमें राजमाष भक्षण करे, तो प्रलयकाल तक वह नरकमें रहता है।

राजमाष्य (सं० त्रि०) राजमाषस्य योग्यम्। वह खेत जिसमें माष बोया जाता है, मसार।

राजमुकुट—लघुस्तवटीकाके रचयिता।

राजमुद्ग (सं० पु०) मुद्गानां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। मुकुष्टक, एक प्रकारका मूंग। यह सुनहले रंगका होता है और खानेमें अधिक स्वादिष्ट होता है।

राजमुनि (सं० पु०) राजा चासौ मुनिश्चेति। राजर्षि।

राजमृगाङ्करस (सं० पु०) यक्ष्मरोगाधिकारका औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—रससिन्दूर ३ भाग, सोना एक भाग, चांदी एक भाग, मैनसिल, गंधक, हरिताल प्रत्येक २ भाग इन्हें एकत्र कर कौड़ीमें भर दे। पीछे इसमें बकरीके दूधसे सोहागा जला कर मट्टीके बरतनमें भर मुंह बंद कर देना होगा इसके बाद गजपुट देना होगा। ठंढा होने पर वह औषध ग्रहण करना होता है। इसका परिमाण ४ रत्ती और अनुपान पीपल तथा मधु वा घृत और मिर्च है। इसका सेवन करनेसे राजयक्ष्मरोग निवृत्त होता है।

(रसेन्द्रसारसं० यक्ष्मरोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीमें इसकी प्रस्तुतप्रणाली और प्रकारसे लिखी है। पारा ४ तोला, सोना १ तोला, तांबा १ तोला, मैनसिल २ तोला, हरिताल २ तोला, इन्हें एक साथ पीस कर बड़ी बड़ी कौड़ीमें भर दे। पीछे बकरीके दूधमें सोहागाका मुंह बंद कर मट्टीके बरतनमें रखे और ऊपरसे लेप चढ़ावे। पश्चात् लेप सूख जाने पर गजपुटमें पाक करे। ठंढा होने पर उस औषधको चूर्ण कर ले। मात्रा ४ रत्ती और अनुपान घृत और मधु वा १० पीपल वा १६ मिर्च है। इसके सेवनसे सब प्रकारके क्षयरोग प्रशमित होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० यक्ष्मरोगाधि०)

राजयक्ष्मन् (सं० पु०) राज्ञश्चन्द्रस्य क्षयकारको यक्ष्मा, राजा चासौ यक्ष्मा चेति वा। क्षयरोग, यक्ष्मकास। यह रोग सभी रोगोंकी खान और राज है।

चरकमें इस रोगके निदानादिका विषय इस प्रकार लिखा है। क्रोध, ज्वर, रोग और दुःख इसका पर्याय शब्द है। नक्षत्रराज चन्द्रमाको सबसे पहले यह रोग हुआ था, इसीसे इसका नाम राजयक्ष्मा हुआ है।

नक्षत्रराज चन्द्रमाकी यक्ष्मा अश्विनीकुमार द्वारा मनुष्य-लोकमें लाई गई और वक्ष्यमाण चार प्रकारका हेतु लाभ कर वह मनुष्यके शरीरमें घुस गई। चार प्रकारके हेतु ये हैं, अयथाबलारम्भ (बलके अतिरिक्त व्यायामादि शारीरकर्म), मलमूत्रादिका वेगधारण, धातुक्षय और विषमाशन। ये चारों ही इस रोगके कारण हैं।

अयथा-बलारम्भहेतु—बलसे ज्यादा युद्ध, अध्ययन, भारवहन, लङ्घन, सन्तरण, उच्चस्थानसे पतन, अभिघात और दूसरा दूसरा साहसका कार्य। अयथा बलारम्भ द्वारा वक्षके विक्षत होनेसे वायु बिगड़ जाती है। वह बिगड़ी हुई वायु शिरमें घुस कर शिरःशूल, कण्ठमें घुस कर कण्ठोद्ध्वंस, कास, स्वरभेद और अरुचि, पार्श्वमें घुस कर पार्श्वशूल, गुदानाड़ीमें घुस कर मलभेद, सन्धिमें घुस कर जृम्भा और ज्वर तथा उदरमें घुस कर उरःशूल उत्पन्न करती है। कासवेगमें छातीमें बहुत दर्द होता और लोहू मिला हुआ कफ थूकमें निकलता है। ऊपर लहे गये साहसका कार्य करनेसे जब राजयक्ष्मा होता है तब यह शिरःशूलादि ग्यारह प्रकारके लक्षणयुक्त हो जाते हैं। अतएव आत्मवान् व्यक्तिको कभी भी उक्त प्रकारका साहसका कार्य नहीं करना चाहिये।

वेगधारणहेतु—लज्जा वा घृणावशतः अथवा भयके

कारण यदि मनुष्य वात, मूत्र और विष्ठाका आया हुआ वेग रोक रखे, तो उससे प्रकुपित वायु कफ और पित्तको उदीरित कर डालती है। ऊद्ध्वं, अधः और तिर्यक् देश में निम्नोक्त सभी लक्षणके साथ राजयक्ष्मारोग उत्पन्न होता है। प्रतिश्याय, कास, स्वरभङ्ग, अरुचि, पार्श्वशूल, शिरःशूल, ज्वर, अङ्गमर्द, बार बार वमन और मलभेद ये सब त्रिदोष लक्षण उपस्थित होते हैं।

क्षयहेतु राजयक्ष्मोत्पत्ति—ईर्षा, उत्कण्ठा, भय, त्रास, शोक और क्रोध द्वारा अतिकर्षण तथा अति मैथुन और अनशन इन सब कारणोंसे शुक्र और ओजको हानि होती है। इस स्नेहपदार्थके क्षयके कारण वायु कुपित हो कर पित्त और कफको उदीरित करती है जिससे प्रतिश्याय, ज्वर, कास, अङ्गमर्द, शिरःशूल, श्वास, मलभेद, अरुचि, पार्श्वशूल, स्वरभङ्ग और अत्यन्त सन्ताप इन ग्यारह लक्षणोंके साथ राजयक्ष्मा उत्पन्न होता है। शुक्र और ओज पदार्थके क्षयसे उत्पन्न यक्ष्मा प्राण-संहारक माना गया है।

विरुद्ध भोजन करनेसे रोगकी उत्पत्ति—विविध प्रकारके विरुद्ध भोजन वा पान करनेसे वातादि तीनों दोष कुपित हो कर निम्नोक्त लक्षणयुक्त राजयक्ष्मरोग उत्पन्न करते हैं। प्रतिश्याय, कफनिष्ठीवन, कास, वमि, अरुचि, ज्वर, अंसवेदना, रक्तवमन, पार्श्वशूल, शिरःशूल और स्वरभेद ये सब रूप यथाक्रम कफ, पित्त और वायु द्वारा होते हैं। विषमभावमें विविध अन्नपान करनेसे वातादि तीनों दोष वैषम्यको प्राप्त हो कर रक्तादि धातुओंके सभी मार्गोंको रोक देता है जिससे धातु पुष्ट होने नहीं पाता। अतएव यह भयङ्कर रोग उत्पन्न होता है।

राजयक्ष्माका पूर्वरूप—प्रतिश्याय, दौर्बल्य, अदोष विषयमें दोषदर्शन, स्वशरीरमें निन्दित रूपदर्शन, घृणाशीलत्व, भोजनमें पटुत्व अथच बलमांसक्षय, स्त्रीसंभोग, मद्यपान और मांसभोजनमें प्रबल इच्छा, अन्न और पानीमें प्रायः मक्षिका, घुण, केश और तृणपतन, नखका अतिवर्द्धन तथा स्वप्नमें ये सब देखना—पक्षी, पतङ्ग और श्वापदगण द्वारा आक्रमण, केश, अस्थिराशि और भस्मके ऊपर आरोहण तथा जलाशय, पर्वत, वन और ज्योतिष्कमण्डलकी शुष्कता, क्षीणता और पतनदर्शन, ये सब राजयक्ष्माके पूर्वरूप हैं।

रसरक्तादि शरीर धातु अपनी अपनी उष्मासे परिपाक हो कर अपने अपने धमनी-पथसे जाना और पीछे धातुओंको पुष्ट करता है। स्रोत रुक जानेके कारण रस रक्तमें नहीं जा सकता जिससे यह पुष्ट होने नहीं पाता। अतएव मांसका भी क्षय होता है। इस प्रकार रक्तादि सभी धातुओंका क्षय हुआ करता है। आधारका क्षय होनेसे आधेय क्षीण होता है। अतएव आधार रक्तादि धातुके क्षयसे आधेय धातूष्माका भी क्षय होता है। अतएव स्रोतके निरोध, रक्तादिके क्षय और धातूष्माके अपचयके कारण राजयक्ष्मा उत्पन्न होता है। राजयक्ष्माके उत्पत्तिकालमें जठराग्नि कोष्ठगत जिस भुक्त द्रव्यको परिपाक करती है, वह प्रायः मल होता है, ओज अर्थात् सारपदार्थ बहुत थोड़ा पाया जाता है। अतएव ओजबल न रहनेके कारण उस समय सर्वधातुक्षयार्थ यक्ष्मरोगीका मल ही प्रधान है, इसलिये यक्ष्मरोगीका मल सर्वथा रक्षणीय है।

सभी स्रोतोंके बंद हो जानेसे रसका सञ्चालन नहीं होता, वह अपने स्थानमें ही जमा रहता है। आखिर वह रस बहुरूप हो कर कास वेगसे मुंह और नाक हो कर बाहर निकलता है। वातादि दोषका बल यदि समान रहे, तो छः प्रकारके रूप और यदि अधिक रहे, तो ग्यारह प्रकारके रूप उन्नत होते हैं। इन छः वा ग्यारहके मेल ही को राजयक्ष्मा कहते हैं।

ग्यारह रूप ये सब हैं—कास, अंससन्ताप, स्वरभेद, ज्वर, पार्श्ववेदना और शिरोवेदना, रक्तवमन, कफवमन, श्वास, मलभेद और अरुचि। छः प्रकारके रूप—स्वर, पार्श्वशूल, स्वरभङ्ग, मलभेद और अरुचि।

राजयक्ष्मरोगीके यदि मांस और बलका क्षय हो, तो सभी लक्षणके अथवा सिर्फ तीन लक्षणके दिखाई देनेसे रोगीको छोड़ देना चाहिये। किन्तु यदि बल और मांस रहे, तो सभी लक्षण दिखाई देने पर भी रोगको असाध्य नहीं जानना चाहिये।

इस रोगमें विषमाशनके कारण यदि शरीर खिन्न हो जाय, तो कण्ठसे रक्त निकलता है तथा सञ्चित और

उत्क्लिष्ट श्लेष्मा थूकके साथ आता है। मांसके विरुद्धत्व के कारण रक्त-मांसादिमें नहीं जा सकता, वह आमाशयमें ही जमा रहता है। पीछे बहु परिमित और उत्क्लिष्ट हो कर गलेमें आ जाता है, इसीसे थूकके साथ रक्त निकलता है।

जिह्वा और हृदयस्थित वातादि दोष पृथक् पृथक् भावमें वा मिलितभावमें राजयक्ष्मारोगीको अरुचि उत्पन्न करता है। वातज अरुचिमें मुखमें कषाय रस, पित्तज अरुचिमें तिक्तरस और श्लेष्मज अरुचिमें मधुर रस आता है।

अंस और दोनों पार्श्वमें वेदना, हाथ पैरमें जलन, तथा रसरक्तादि सर्वाङ्गगत ज्वर ये तीनों ही राजयक्ष्माके प्रधान लक्षण हैं।

अभ्यङ्ग, उत्सादन, स्नान, अवगाहन, वहिर्मार्जन, दुग्ध और घृत द्वारा वस्ति, मांस, मांसरसके साथ अन्न, हितकर मद्य, मनोहर गंधसेवन, ऋतुके अनुरूप स्नान, अनुपहत प्रियवसन, सुहृद्‌गण तथा सुन्दर स्त्रीके दर्शन, श्रुतिसुखकर गीत और वाद्यध्वनि, सर्वदा हर्ष और सर्वदा आश्वास वचन, गुरु लोगोंकी उपासना, ब्रह्मचर्य (मैथुनत्याग), दान, तपस्या, देवतार्च्चन, सत्य आचरण, मंगल कर्म, अहिंसा और ब्राह्मणवैद्यकी अर्चना इन सब कर्मों द्वारा राजयक्ष्मारोग आरोग्य होता है। (चरक राजयक्ष्मरोगाधि०) इस रोगको चिकित्सा और अन्यान्य विशेष विवरण यक्ष्मरोग शब्दमें लिखा जा चुका है।

यक्ष्मरोग देखो।

राजयक्ष्मिन् (सं० त्रि०) राजयक्ष्मा अस्ति अस्य इनि। राजयक्ष्मरोगी, जिसे राजयक्ष्मा हुआ हो।

राजयक्ष (सं० पु०) राजकृत यक्ष, वह उपहार जो राजा द्वारा देवताके उद्देश्यसे दिया गया हो।

राजयान (सं० क्ली०) १ पालकी। २ वह सवारी जो राजाके लिये हो। ३ राजाकी सवारीका निकलना, राजाका जलूस।

राजयुध्वन् (सं० पु०) सेनादल, वह जो अनुचर या रक्षीके रूपमें राजाके साथ रणक्षेत्रमें गमन करे।

राजयोग (सं० पु०) योगानां राजा श्रेष्ठत्वात् राजदन्तादित्वात् पूर्वनिपातः। ज्योतिषोक्त योगभेद। यह योग रहनेसे मनुष्य राजाके समान धनशाली होता है, इसीसे इसको राजयोग कहते हैं। इसका विषय बहुत संक्षेपमें लिखा जाता है।

ग्रहोंके अवस्थान द्वारा राशि देख कर राजयोगादिका शुभाशुभ निश्चय किया जाता है। संयोगसे विष भी अमृत और अमृत भी विष होता है, उसी प्रकार ग्रहोंके परस्पर संयोगसे राजयोग भी दारिद्र्ययोगादि हुआ करता है।

ज्योतिर्विद् यवनेश्वरके मतसे पापग्रह अपने सुतुङ्ग स्थानमें रहनेसे जातबालक पापिष्ठ राजा होता है। जीवशर्माके मतसे पापग्रह यदि उच्चस्थानमें हो, तो राजा नहीं होता, पर राजाके समान धनशाली अवश्य होता है। मङ्गल, शनि, रवि और वृहस्पति ये चार ग्रहके उच्चांश रहनेसे जिसका जन्म होता, वह राजा होता है।

प्रथमतः राजयोग सोलह प्रकारका है, जैसे—चन्द्र स्वक्षेत्रगत अर्थात् कर्कट राशिमें रहनेसे यदि उस समय पूर्वोक्त चार ग्रहोंमेंसे कोई दो वा एक सुतुङ्गस्थ हो तथा तुङ्गलग्नमें किसी बालकका जन्म हो, तो वह बालक राजा होगा।

मेषके दशमांशमें रवि, कर्कटके पञ्चमांशमें वृहस्पति, तुलाके विंशांशमें शनि और मकरके २८ अंशमें मङ्गल रहे और उस समय मेष, कर्कट, तुला और मकर इनमेंसे किसी एक लग्नमें जन्म हो, तो जात बालक राजा होता है।

जन्मके समय चन्द्रमा लग्न वा वर्गोत्तममें रहे और उस पर यदि चन्द्र भिन्न रवि, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनि इन छः ग्रहोंकी अथवा किसी चार या पांच ग्रहोंकी दृष्टि पड़ती हो, तो जात बालक राजा होता है। कुम्भराशिमें शनि, मेषमें रवि, वृषमें चन्द्र, मिथुनमें बुध, सिंहमें वृहस्पति और वृश्चिकमें मङ्गल रहनेसे जो बालक जन्म लेगा वह राजा होता है। अथवा तुला राशिमें शनि, वृषमें चन्द्र, कन्यामें रवि और बुध या तुलामें शुक्र, मेषमें मङ्गल और कर्कटमें वृहस्पतिके रहते समय यदि तुला या वृष लग्न हो, तो राजयोग होता है।

मकरमें मङ्गल, धनुमें रवि और चन्द्र तथा जन्मलग्नमें शनि रहे अथवा मकरमें मङ्गल और चन्द्र तथा

धनुराशिमें रवि और मकर यदि लग्न हो, तो राजयोग होता है। वृषमें चन्द्र, सिंहमें रवि, वृश्चिकमें वृहस्पति और कुम्भमें शनि रहनेसे यदि वृष जन्मलग्न हो तो श्रेष्ठ राजयोग होता है। मकरमें शनि, मीनमें चन्द्र, मिथुनमें मङ्गल, कन्यामें बुध और धनुमें वृहस्पति रहें तथा मकरादि लग्न हो, तो राजयोग होगा। धनुराशिमें चन्द्र और वृहस्पति, मकरमें मङ्गल, मीनमें शुक्र और कन्यामें बुध रहे तथा कन्या वा मीन जन्मलग्न हो, तो राजयोग हुआ करता है।

मीन जन्मलग्न हो तथा इसमें चन्द्र, कुम्भमें शनि, मकरमें मङ्गल, सिंहमें रवि रहे तथा कर्कट जन्मलग्न हो और इस कर्कटमें वृहस्पति और ग्यारहवें स्थानमें चन्द्र, शुक्र और बुध तथा मेषमें रवि रहें, तो राजयोग होगा। यदि मकरमें शनि, मेषमें मङ्गल, कर्कटमें चन्द्र, सिंहमें रवि, मिथुनमें बुध और तुलामें शुक्र रहे तथा मकर जन्मलग्न हो; बुध यदि अपने उच्च स्थानमें अर्थात् कन्यालग्नमें रहें तथा मिथुनमें शुक्र, मीनमें वृहस्पति और चन्द्र, मकरमें शनि मङ्गल रहते हों तथा कन्या जन्मलग्न हो, तो प्रबल राजयोग होता है।

उक्त राजयोग जिसका रहेगा, वह राजकुलोद्भव नहीं होने पर भी राजा होगा। राजयोगके मध्य उक्त योग ही श्रेष्ठ राजयोग है। जिसका उक्त प्रकारका ग्रहसंस्थान देखनेमें आयेगा उसीका प्रकृत राजयोग समझना चाहिये।

सामान्य राजयोग—जो कोई तीन वा चार ग्रह बलवान् हो कर अपने अपने उच्च स्थानमें वा मूलत्रिकोणमें रहे, तो राजवंशोद्भव पुरुष राजा होता है। दूसरे ५, ६ वा ७ ग्रह बलवान् हो कर अपने उच्चभवन वा मूल त्रिकोणमें रहनेसे अन्यकुलोत्पन्न व्यक्ति राजा होता है। ग्रहगण बलवान् न हो, तो मानव राजा नहीं होता, पर राजाके समान बलवान् होता है।

सिंहमें रवि, मेषमें चन्द्रमा, मकरमें मङ्गल, कुम्भमें शनि और धनुमें वृहस्पति रहनेसे तथा मेष वा सिंह जन्मलग्न होनेसे राजपुत्र, राजा तथा अन्यवंशोद्भव व्यक्ति धनवान् होता है।

जन्मलग्न कुम्भ, वृषमें, शुक्र, तुलामें चन्द्र तथा अवशिष्ट ग्रह यथासम्भव कुम्भ, मेष वा धनुमें रहनेसे अथवा जन्मलग्न कर्कट, तुलामें शुक्र, मीनमें चन्द्र तथा अन्यान्य ग्रहगण यथासम्भव कन्या, कर्कट और वृषगत होनेसे राजपुत्र, राजा तथा दूसरे व्यक्ति धनवान् होते हैं।

यदि जन्मकालमें बुधग्रह बलवान् हो कर लग्नमें रहे तथा दूसरा एक शुभग्रह अर्थात् वृहस्पति वा शुक्र बलवान् हो कर नवम स्थानगत हो तथा अपर सभी ग्रह द्वितीय, तृतीय, षष्ठ, नवम, दशम और एकादश स्थानमें रहें, तो राज्यकुलोद्भव राजा और दूसरे व्यक्ति धनी होते हैं। वृषमें चन्द्र, मिथुनमें वृहस्पति, तुलामें शनि, मीनमें रवि, मङ्गल, बुध और शुक्र रहे तथा वृष यदि जन्मलग्न हो, तो जातबालक राजा होता है। लग्नमें शनि, चतुर्थमें वृहस्पति, दशममें सूर्य और चन्द्र, एकादशमें मङ्गल, बुध और शुक्र रहनेसे राजकुलोत्पन्न राजा तथा अन्य धनवान् होंगे।

दशममें चन्द्र, एकादशमें शनि, लग्नमें वृहस्पति, द्वितीय स्थानमें बुध और मङ्गल, चतुर्थ स्थानमें शुक्र और रवि अथवा लग्नमें शनि और मङ्गल, चतुर्थमें चन्द्र, सप्तममें वृहस्पति, नवममें शुक्र, दशममें रवि और एकादशमें बुध रहनेसे राजकुलोद्भव राजा तथा दूसरेमें धनवान् होता है।

कर्मस्थ अथवा लग्नस्थ ग्रहके अथवा उक्त ग्रहके मध्य जो ग्रह बलवान् है उसके अन्तर्दशाकालमें राजयोगजात व्यक्तिके राज्य लाभ होता है। लग्न और दशम स्थानमें कोई ग्रह नहीं रहनेसे जन्मकालमें जो कोई बलवान् रहेगा, उसके अन्तर्दशाकालमें राज्यप्राप्ति होती है। शत्रु और नीच ग्रहगत ग्रहकी अन्तर्दशाके समय राज्यप्राप्त व्यक्ति राज्यभ्रष्ट होता है।

जिसके जन्मकालमें लग्नमें बुध, वृहस्पति और शुक्र ये तीन ग्रह हों तथा सप्तममें शनि, दशममें रवि रहें, तो वह व्यक्ति भोगवान् होता है अर्थात् धन नहीं रहने पर भी जिस किसी उपायसे सुखपूर्वक कालयापन करेगा ही। जिसके जन्मलग्नमें लग्न, चतुर्थस्थान, सप्तमस्थान और दशमस्थान शुभग्रहका क्षेत्र हो तथा पापग्रहके क्षेत्रमें बलवान् पापग्रह रहे, तो वह व्यक्ति व्याध और डकैतोंका अधिपति होता है। (वृहज्जातक)

राजयोगभङ्ग—ग्रहगण वर्गोत्तमगत हो कर भी यदि शत्रुगृहमें वा अपने नीचभवनमें रहें, तो राजयोग फलप्रद नहीं होता। पराशरने कहा है, कि यदि लग्नमें वा चन्द्रमें किसी भी ग्रहकी दृष्टि रहे, तो राजयोगभङ्ग होता है। रविके अपने नवांशमें रहते समय यदि उस पर चंद्र और पापग्रहकी दृष्टि रहे, शुभग्रहकी नहीं, तो मनुष्य राज्य पा कर भी पीछे दुःख भोगता है। उल्का और वज्रपातके दिन व्यतीपातयोगमें वा धूमकेतुके उदयकालमें जिसका जन्म हो, उस व्यक्तिका राजयोग रहने पर भी फलप्रद नहीं होता। यदि रवि परम नीच हों अर्थात् तुलाके दशमांशमें और जन्मकालमें बृहस्पति जिसके परम पञ्चमांशमें रहते हों उसका भी राजयोग फलप्रद नहीं होता।

किसी व्यक्तिके कुम्भलग्नमें जन्म होनेसे यदि बृहस्पति अस्तगत हों, तीन ग्रह अपने अपने नीच गृहमें रहते हों, एक ग्रह भी उच्च स्थानमें न हो तथा दशम स्थानमें पापग्रह रहे और जिसके जन्मकालमें शुक्र कन्याके २७ अंशमें हों, यदि पञ्चमस्थानमें राहु हो और उसके प्रति चन्द्रमाकी दृष्टि पड़ती हो तथा तृतीय स्थानमें शनि, तथा एकादश स्थानमें मङ्गल और केन्द्रभवनमें कोई शुभग्रह न रह कर अस्तगत हो, यदि केन्द्रस्थानमें कोई ग्रह न रहता हो और शुभग्रहगण अस्तगत अथवा नीचगृहस्थित रहे अथवा चार ग्रह शत्रुगृहस्थित हों, यदि सभी पापग्रह केंद्रस्थानमें, नीच गृहमें अथवा शत्रुभवनमें रहें, उस पर यदि किसी शुभग्रहका योग वा दृष्टि न पड़ती हो तथा अष्टम, षष्ठ और द्वादश स्थानमें शुभग्रह रहे, तो राजयोग फलप्रद नहीं होता। जो इन सब योगोंमें जन्म लेते हैं, साधारण दृष्टिसे उनकी कोष्ठीमें राजयोग रहने पर भी वे दरिद्र होते हैं।

इस कारण राजयोग-विचारस्थलमें शत्रु, मित्र, उच्च, नीच आदि पूर्वोक्त सभी योगोंको मिला कर योग स्थिर करना उचित है। प्रकृत राजयोग होनेसे वह कभी भी निष्फल नहीं होता है। (जातकाभरण)

साधारण राजयोग—जन्मकालमें ग्रहोंके निम्नलिखित स्थानमें रहनेसे साधारण राजयोग होता है।

१, यदि केन्द्र और त्रिकोणमें पञ्चग्रह तुङ्गी अथवा शुभ गृहाधिपति हो अवस्थित करे तथा उसके मध्य स्वाभाविक राज्य-कारक ग्रह अर्थात् शनि और मङ्गल रहे, दूसरा कोई भी ग्रह नीचस्थ न हो। २, यदि सभी ग्रह चार केन्द्रस्थानमें रहें। ३, यदि लग्नके सप्तम, द्वितीय और द्वादशमें सभी ग्रह रहते हों। ४, यदि सभी ग्रह क्रमशः पञ्चराशिमें रहें और उनके मध्य जन्मराशि लग्न हो। ५, यदि बृहस्पति नवमाधिपति हो पञ्चमाधिपतिके साथ एक राशिमें अथवा एक दूसरेके सप्तममें अवस्थित करे। ६, यदि चतुर्थ और दशम अधिपतिके मध्य विनिमय योग रहे तथा वे लग्नाधिप और नवमाधिप द्वारा देखे जांय। ७, यदि लग्नमें बृहस्पति, चतुर्थ वा सप्तममें चन्द्र, दशममें रवि और एकादशमें शनि रहे। ८, यदि बृहस्पतिके प्रति मङ्गल, बुध, शुक्र, शनि और राहुकी दृष्टि पड़ती हो अथवा यदि सभी ग्रहोंकी दृष्टि बृहस्पतिके प्रति और बृहस्पतिकी दृष्टि सभी ग्रहोंके प्रति पड़ती हो। ९, यदि केन्द्र वा त्रिकोणाधिपति कोई भी ग्रह नीच राशिस्थ हो, और उस नीच राशिका अधिपति तथा उस ग्रहकी उच्च राशिका अधिपति केन्द्रमें वा उच्च स्थानमें रहे। १०, यदि रवि चन्द्र और बृहस्पति एकत्र वृश्चिकराशिमें हों और चन्द्रमाका नीचाधिप मङ्गल तथा उच्चाधिप शुक्र किसी केन्द्रस्थानमें अवस्थित करे। ११, यदि तृतीय, षष्ठ, नवम वा द्वादशमें मङ्गल रहे और उसके प्रति रवि, बुध और शुक्रकी दृष्टि पड़ती हो तथा किसी केन्द्रस्थानमें बृहस्पति हो। १२, यदि लग्न, चतुर्थ और दशमाधिप बलवान् हो तथा मङ्गल और बृहस्पति एकत्र युक्त वा एक दूसरेके सप्तममें हों। १३, यदि लग्न और अष्टममें शुभग्रह रहे तथा दूसरे ग्रह अपने अपने अधिष्ठित भावमें हो अथवा जिन सब स्थानोंमें रहनेसे उनकी कार्यकारी शक्ति बढ़ सके, उन सब स्थानोंमें रहनेसे। १४, यदि चन्द्र और बृहस्पति युक्त हो कर द्वितीय, तृतीय, पञ्चम वा नवममें रहे तथा राज्यकारक ग्रह शनि वा मङ्गल तुङ्गी हो। १५, यदि मङ्गल, बृहस्पति और शुक्र एकत्र रहे तथा तुलामें शनि, वृषमें चन्द्र, धनुमें रवि और बुध रहते हों। १६, कुम्भलग्नजात व्यक्तिके मकरमें मङ्गल तथा धनुमें रवि और चन्द्र रहे। १७, यदि

बुध और शुक्र, द्वितीयमें रवि और चन्द्र, चतुर्थमें शनि, सप्तममें बृहस्पति, दशममें राहु और एकादशमें मङ्गल हों। १८, यदि मेषमें रवि, धनुमें बृहस्पति, सप्तममें चन्द्र और शनि एकत्र रहें। १९, यदि कुम्भमें शनि,मिथुनमें बुध, वृश्चिकमें मंगल, सिंहमें बृहस्पति तथा वृषमें चन्द्र रहे तथा वह वृष राशि लग्न हो। २०, यदि चतुर्थ और दशम अधिपति, पञ्चम वा नवम अधिपतिके साथ किसी शुभग्रहमें वास करे। २१, यदि लग्नाधिपति, चतुर्थाधिपति और नवमाधिपति अस्तमित न हो कर दशममें तथा दशमाधिपति लग्नमें रहे और उनके प्रति शुभग्रहकी दृष्टि पड़ती हो। २२, यदि तुला लग्न, कुम्भमें बृहस्पति, सिंहमें शनि और राहु तथा दशमाधिप नवममें रहे। २३, यदि मकर लग्न तथा उस लग्नमें शनि और चन्द्र, मङ्गल, बुध और बृहस्पतिके तृतीय, षष्ठ, नवम वा द्वादशमें रहते हों। २४, यदि लग्नमें रवि, चन्द्र और मङ्गल, मिथुनमें बुध, तुलामें शुक्र तथा मकरमें शनि रहे। २५, यदि वृश्चिकमें रवि और चन्द्र, तुलामें बुध, द्वितीय-में मङ्गल और शुक्र एवं दशममें बृहस्पति हों। २६, यदि मङ्गल और बृहस्पति तुङ्गी हों, शनि एकादशमें तथा लग्नाधिपति दशममें रहे। २७, यदि लग्नमें बुध और शुक्र, धनुमें चन्द्र और बृहस्पति तथा मकरमें मङ्गल रहे। २८, यदि कन्यालग्न हो तथा उस लग्नमें बुध, चतुर्थमें चन्द्र, बृहस्पति और शुक्र तथा पञ्चममें मङ्गल और शनि रहे। २९, यदि मीन लग्न हो और उस लग्न-में चन्द्र, कर्कटमें बृहस्पति तथा मकरमें शनि हों। ३०, यदि लग्नमें चन्द्र और शनि त्रिकोणमें रवि और बृह-स्पति तथा दशममें मङ्गल रहे। ३१, यदि सिंह लग्न हो और उस लग्नमें बृहस्पति और शुक्र, वृश्चिकमें मङ्गल तथा मिथुनमें शनि रहे। ३२, यदि कर्कटलग्न हो और उसमें बुध तथा शुक्र रहते हों। ३३, कन्यालग्न हो और उसमें बुध, पञ्चममें मङ्गल और शनि, सप्तममें चन्द्र और बृहस्पति तथा दशममें शुक्र रहे। ३४, यदि सिंहमें रवि, मकरमें मङ्गल, धनुमें बृहस्पति, कुम्भमें शनि और लग्नमें चन्द्र रहे। ३५, यदि वृष वा तुलालग्न हो और उस लग्नमें शुक्र, नवममें चन्द्र तथा लग्न वा तृतीयमें दूसरे दूसरे ग्रह हों। ३६, यदि बलवान् बुध लग्नमें तथा अन्यशुभग्रह बलवान् हो कर द्वितीय, नवम, दशम वा एकादश स्थान-में रहे। ३७, यदि वृषलग्न हो और द्वितीयमें चन्द्र, षष्ठमें बृहस्पति तथा एकादशमें शनि रहें। ३८, यदि मेषमें मङ्गल और बृहस्पति तथा कर्कटमें चन्द्र रहे। ३९, यदि कर्कटलग्न हो और उस लग्नमें बृहस्पति, सप्तममें शनि, दशममें रवि तथा एकादशमें कोई शुभग्रह रहे। ४०, यदि मकरमें शनि तथा राश्यधिप मेष, कर्कट वा तुलामें रहे।

उक्त ४० प्रकारकी अवस्थामें राजयोग होता है। इस योगका फल निष्फल नहीं होता। जिसकी कोष्ठीमें ये सब राजयोग देखनेमें आये, वे राजा, राजतुल्य वा धन-शाली होते हैं।

साधारण राजयोगभङ्ग—ग्रहोंके निम्नलिखित स्थान-में रहनेसे राजयोगभङ्ग होता है। १, यदि लग्न, चन्द्र और दशम स्थान पर किसी ग्रहकी दृष्टि न पड़ती हो। २, यदि दशमाधिपति नीचस्थ तथा दशममें शुभग्रहकी दृष्टि न पड़ी हो, शनि, केतु अथवा मङ्गल और केतु रहे। ३, यदि तीन ग्रह विशेषतः रवि, मङ्गल और शनि नीचस्थ हो तथा स्वरूप योग प्राप्त न हो। ४, यदि रवि, मङ्गल, चतुर्थस्थान अथवा चतुर्थाधिप शनि और केतुयुक्त हो। ५, यदि चतुर्थ स्थानमें षष्ठ, अष्टम और द्वादशाधिपति रहे तथा चतुर्थाधिपति शत्रुयुक्त हो कर अशुभ गृहमें रहे। ६, यदि शनि चतुर्थाधिप हो कर नीचस्थ हो एवं उसके द्वितीय और द्वादशमें पापग्रह रहे। ७, यदि चतुर्थाधि-पति शनि हो एवं वह केतुयुक्त हो कर द्वितीयमें तथा चतुर्थ स्थानमें अन्य पापग्रह रहे। ८, यदि पांच ग्रह अस्तमित और शत्रुगृहगत हो तथा किसी शुभग्रह केन्द्र-में न रहे। ये सब योग राजयोगके भङ्गकारक हैं। ये सब योग रहनेसे उसका राजयोग फलप्रद नहीं होता। इसी कारण इन सब भङ्गयोगोंके प्रति विशेष लक्ष्य रख कर राजयोग स्थिर करना उचित है।

(बृहज्जातक, पराशर०)

भृगु प्रभृति संहितामें तथा अन्यान्य ज्योतिग्रन्थोंमें राजयोगका विशेष विवरण लिखा है। जो सब राज-योग और भङ्गयोग लिखे गये उनका फल प्रत्यक्ष देखनेमें आता है।

२ प्राणायामादि रूप योगभेद, अष्टाङ्गयोग, हठयोग, नेतियोग, धौतियोग आदि नाना प्रकारके योग हैं। इन सब योगोंमें अष्टाङ्गयोग श्रेष्ठ है, इसीसे इसको राजयोग कहते हैं। विशेष विवरण योग शब्दमें देखो।

राजयोग्य (सं० त्रि०) राज्ञो योग्यः। १ राजार्ह, राजाके योग्य। (क्लो०) २ चन्दन।

राजयोषित् (सं० स्त्री०) राज्ञो योषित्। राजस्त्री, राजाकी पत्नी।

राजरङ्ग (सं० क्ली०) राजयोग्यं रङ्गं। रजत, चांदी।

राजरथ (सं० पु०) राजयान, राजाका रथ।

राजराज् (सं० पु०) १ राजाओंका राजा, अधिराज। २ चन्द्रमा।

राजराज (सं० पु०) राज्ञामपि राजा धनाधिकत्वात्। (राजाहः सखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) इति टच्। १ कुवेर। २ सार्व्वभौम राजा, सम्राट्। ३ सुधाकर, चन्द्रमा। (मेदिनी)

राजराजेश्वररस (सं० पु०) १ राजाओंका राजा, अधिराज। २ एक रसौषधका नाम। इसके बनानेका तरीका—पारे, गंधक और हरतालके साथ तांबेको मिला कर भंगरैयाके रसमें एक दिन खरल करके उसमें त्रिफला, गुडुच, वकुची समभाग मिला कर दो दो रत्तीकी गोली बनावे और दो तोला मधु या घीके साथ खावे। इसका प्रयोग दाद, कुष्ठ आदि रोगोंमें होता है। (रसेन्द्रसारसं० कुष्ठचि०)

राजराजेश्वरी (सं० स्त्री०) १ दश महाविद्याओंमेंसे एकका नाम, भुवनेश्वरी। २ राजराजेश्वरकी पत्नी, महाराज्ञी।

राजराजता (सं० स्त्री०) १ साम्राज्य। २ सम्राट्का पद।

राजराज्य (सं० क्ली०) राजराजता देखो।

राजरानी (हिं० स्त्री०) राज्ञी, राजमहिषी।

राजरीति (सं० स्त्री०) पित्तलविशेष, कांसा। पर्याय—काकतुण्डी, राजपुत्री, महेश्वरी, ब्रह्माणी, ब्रह्मारीति, कपिला, पिङ्गला। इसका गुण—तिक्त, शीतल, लवण, शोधन, पाण्डु, वात, कृमि, प्लीहा और पित्तनाशक।

राजरोग (हिं० पु०) १ रोग जो असाध्य हो। जैसे—यक्ष्मा, श्वास इत्यादि। २ राजयक्ष्मा, क्षयरोग।

राजर्षि (सं० पु०) राजा ऋषिरिव श्रेष्ठत्वात्। ऋतपर्णादि राजा, वह ऋषि जो राजवंश या क्षत्रिय कुलका हो। जैसे—राजर्षि विश्वामित्र ऋषि सात प्रकारके कहे गये हैं—देवर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि, परमर्षि, राजर्षि, कांडर्षि और श्रुतर्षि। इनमेंसे अन्तिम दो वेदके द्रष्टा हैं।

राजल (हिं० पु०) एक प्रकारका धान जो अगहनमें पक कर काटने योग्य होता है।

राजलक्षण (सं० क्लो०) राज्ञः लक्षणं। सामुद्रिकके अनुसार वे चिह्न या लक्षण जिनके होनेसे मनुष्य राजा होता है।

राजलक्ष्मन् (सं० पु०) राज्ञो लक्ष्म चिह्नं यत्र। १ राजचिह्न, राजाओंके चिह्न। २ युधिष्ठिर। (त्रि०) ३ जिसमें सामुद्रिकके अनुसार राजाओंके लक्षण हों, राजलक्षणसे युक्त।

राजलक्ष्मी (सं० स्त्री०) राज्ञो लक्ष्मी। १ राजश्री, राजवैभव। २ राजाकी शोभा।

राजलिङ्ग (सं० क्ली०) राज्ञो लिङ्गं। राजचिह्न।

राजवंश (सं० पु०) राज्ञो वंश। राजाका कुल, राजकुल।

राजवंश्य (सं० त्रि०) राजवंशे भवः यत्। राजवंशोद्भव, राजाके वंशमें उत्पन्न।

राजवत् (सं० अव्य०) राजन् इवार्थे वति। १ राजतुल्य, राजाके समान। (त्रि०) २ राजमात्रयुक्त देश। ३ नृपविशिष्ट। (भारत ५।१।१७)

राजवन्त (सं० त्रि०) राजकर्मसे संयुक्त।

राजवन्दिन् (सं० पु०) राजभार।

राजवर्चस् (सं० क्ली०) १ राजशक्ति। २ राजपद।

राजवर्त्मन् (सं० क्ली०) राज्ञो वर्त्म पन्थाः। राजपथ, बड़ी और चौड़ी सड़क। पर्याय—घण्टापथ, संसरण, श्रीपथ, उपनिष्क्रमण, उपनिष्कर, महारथ।

राजवला (सं० स्त्री०) राजते शोभते इति राज्-अच्, राजा वला इति कर्मधारयः। भद्रवला, गन्धप्रसारिणी।

राजवल्लभ (सं० पु०) राज्ञां वल्लभः। १ राजादनी, खिरनी। २ राजाम्र, बड़ा आम ३ राजबदर, बड़ा बेर। ४ नारायणदास कविराज कृत द्रव्यगुणग्रन्थविशेष। (त्रि०) ५ राजप्रिय।

राजवल्लभ—१ अलवक्तचपेटिकाके प्रणेता। २ भोजप्रबंध या भोजचरित्रके रचयिता।

राजवल्लभरस (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—जायफल, लौंग, दारचीनी, इलायची, सोहागा, हींग, जीरा, तेजपत्ता, अजवायन, सोंठ, सेंधा नमक, लोहा, अभ्र, पारा, गंधक, मिर्च और रूपा प्रत्येकका १६ तोला, आंवलेके रसमें बांट कर तीन रत्तीको गोली बनावे। अनुपान दोषके बलाबलके अनुसार स्थिर करना होता है। इस औषधका सेवन करनेसे शूल, गुल्म, आमवात, हृदशूल, पार्श्वशूल, नेत्रशूल, शिरःशूल, कटीशूल, हलीमक, ग्रहणी और अतीसार आदि रोग अति शीघ्र निराकृत होते हैं। (रसेन्द्रसारसं० ग्रहणीरोगाधि०)

राजवल्ली (सं० स्त्री०) राजप्रिया वल्ली, करैलेका पेड़।

राजवसति (सं० स्त्री०) राजभवन, राजाका महल।

राजवार (सं० पु०) राजद्वार।

राजवारुणी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका मद्य। अर्कप्रकाशके अनुसार यह सोंठ, पीपल, पिपलामूल, अजवायन और काली मिर्चको उनकी तौलसे तिगुने अम्लवर्ग और चौगुने मधुजातीय और इक्षुजातीय रसोंमें मिला कर खींचा जाता है।

राजवाह (सं० पु०) राजानं वहतीति वह अण्। घोटक, घोड़ा।

राजवाहन (सं० पु०) राजहंसराजका एक पुत्र।

राजवाह्य (सं० पु०) राज्ञां वाह्यं। १ राजवाहक हस्ती, राजाका वाहक हाथी। पर्याय—उपवाह्य, विजयकुञ्जर। (त्रि०) २ राजवहनीय, राजाके वहनके योग्य।

राजवि (सं० पु०) राजपक्षी, नीलकण्ठ।

राजविजय (सं० पु०) सम्पूर्णजातिका एक राग।

राजविद्या (सं० स्त्री०) राज्यशासनोपयोगी विद्या, राजनीति।

राजविद्रोह (सं० पु०) राजविप्लव, बगावत। राजद्रोह देखो।

राजविद्रोहिन् (सं० पु०) वह जो राजा या राज्यके प्रति विद्रोह करे, बागी।

राजविनोद (सं० पु०) संगीतशास्त्रके अनुसार एक तालका नाम।

राजविहार (सं० पु०) राजाके वास करने योग्य बौद्धाश्रम।

राजवीजी (सं० त्रि०) राजवंशीय।

राजवीथी (सं० स्त्री०) राजपथ, चौड़ी सड़क।

राजवृक्ष (सं० पु०) वृक्षानां राजा राजदन्तादित्वात् परनिपातः। १ आरग्वध वृक्ष, उरगाका पेड़। २ पियालवृक्ष, पयारका पेड़। ३ लङ्कास्थायिवृक्ष, लंकाका भद्रचूड़ नामक पेड़। ४ श्योनाकवृक्ष, सोनापाढ़ी।

राजवृत्त (सं० क्ली०) राज्ञः वृत्तः। १ राजाका चरित्र। २ न्यायपूर्वक अर्थार्जन। ३ उसकी रक्षा करना और सत्पात्रको दान देना।

राजवेश्मन् (सं० क्ली०) राज्ञः वेश्म। राजगृह, राजाका भवन।

राजवेष (सं० पु०) राजपरिच्छद, राजाकी पोशाक।

राजशण (सं० पु०) राज्ञः शोभमानः शणः। पट्ट, पटसन।

राजशफर (सं० पु०) इल्लिशमत्स्य, हिलसा मछली।

राजशस्त्रोपजीवी गण (सं० पु०) प्राचीनकालका एक प्रकारका गण या प्रजातन्त्र। कौटिल्यने लिखा है, कि लिच्छवि, वज्जिक, मद्रक, कुरुपांचाल आदि गण राजशस्त्रोपजीवी हैं।

राजशय्या (सं० स्त्री०) राज्ञः शय्या राजाकी शय्या।

राजशाक (सं० पु०) राजप्रियः शाकः, शाकानां राजा इति वा। वास्तूकशाक, बथुआ। (राजनि०)

राजशाकनिका (सं० स्त्री०) शाकभेद, बथुआ।

राजशालि (सं० स्त्री०) राजभोग्य शालिधान्यविशेष, एक प्रकारका जड़हन धान जिसे राजभोग्य या रायभोग भी कहते हैं। इसका चावल बहुत महीन और सुगंधित होता है।

राजशाही—राजसाही देखो।

राजशिम्बी (सं० स्त्री०) श्वेतशिम्बी, एक प्रकारकी सेम जो चौड़ी और गूदेदार होती है। यह खानेमें स्वादिष्ट होती है। इसे घोयासेम भी कहते हैं। इसकी दो जातियां होती हैं—एक काली और दूसरी सफेद। इसमें और सामान्य सेममें यह भेद है, कि यह उससे अधिक चौड़ी होती है और लम्बाईमें बहुत नहीं बढ़ती।

राजशासन (सं० क्ली०) राज्ञः शासनं। राजाका शासन।

राजशास्त्र (सं० क्ली०) राजविद्या, राज्योशासनोपयोगी नीतिशास्त्र।

राजशुक (सं० पु०) शुकानां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। पक्षिविशेष, एक प्रकारका तोता जो लाल रंगका होता है। इसे नूरी कहते हैं। पर्याय—प्राज्ञ, शतपत्र, नृपप्रिय।

राजशुकज (सं० क्ली०) शालिधान्यभेद, एक प्रकारका धान।

राजशृङ्ग (सं० पु०) १ मद्गुरमत्स्य, मंगुरी मछली। (क्ली०) २ राजाका छत्र।

राजशेखर—कई एक प्रसिद्ध जैन ग्रन्थकार। १ कान्यकुब्जपति महेन्द्रपालके शिक्षक एक प्रसिद्धकवि। इनके पिताका नाम दुर्दुक और माताका शीलवती था। ईस्वीसन् ६०६ से ६०७ के बीच उन्होंने बालरामायण, प्रचण्डपाण्डव या बालभारत, विद्धशालभञ्जिका और कर्पूरमञ्जरी नामकी संस्कृत नाटिका लिखी। रामायणके प्रारम्भसे उनके बनाये छः संस्कृत ग्रन्थके नाम मिलते हैं। क्षेमेन्द्र, मङ्खु और अभिनन्द अपने अपने ग्रन्थोंमें राजशेखरका उल्लेख कर गये हैं। २ एक विख्यात अलङ्कारशास्त्रके रचयिता।

राजशेखर मलधारिगच्छमण्डन—एक प्रसिद्ध जैन-आचार्य और जैन-ऐतिहासिक। ये १४वीं सदीके प्रारम्भमें विद्यमान थे। उनका 'प्रबन्धकोष' ऐतिहासिकके आदरणीय है। सङ्गीतोपनिषद् और सङ्गीतोपनिषद्सारके प्रणेता प्रसिद्ध जैनाचार्य सुधाकलस राजशेखरके शिष्य थे।

राजशेखर सूरि—एक जैन-पंडित तथा श्रीतिलकके शिष्य। इन्होंने श्रीधरकृत न्यायकन्दलीकी पञ्जिका लिखी।

राजशैल (सं० पु०) राजगिरि।

राजश्यामलोपासक (सं० पु०) धर्मसम्प्रदायभेद।

राजश्री (सं० स्त्री०) राज्ञः श्रीः। १ राजलक्ष्मी, राजाका ऐश्वर्य। २ राजाकी शोभा।

राजसंसद् (सं० पु०) १ राजसभा। २ वह धर्माधिकरण, जिसमें राजा स्वयं उपस्थित हो, स्वयं राजाका दरबार।

राजस (सं० त्रि०) रजसो भवः रजस्-अण्। रजोगुणोद्भव, रजोगुणसे जो कुछ होता है, सभी राजस है।

"आरम्भरुचिता धैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः।
विषयसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम्॥"

(वामनपु० १२ अ०)

कर्मानुष्ठानशीलता, अधैर्य, असत्कार्य, परिग्रह और सर्वदा विषयसेवा ये सब राजस लक्षण हैं।

जगत्में रजोगुण प्रधान जो कोई कार्य किया जाता है वही राजस है। राजस आहार—

"कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥"

(गीता १३ अ०)

कटु, अम्ल, लवण, अति उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष और विदाही आहार राजस आहार है।

राजस यज्ञ—फलाभिसन्धानपूर्वक दम्भ दिखानेके लिये जो यज्ञ किया जाता है, वह राजस यज्ञ है।

(गीता १७ अ०)

राजस तपस्या—मनुष्य जिससे साधु कहे, देखनेसे अभिवादन करे अथवा अर्थद्वारा सम्मानरक्षा करे, इस कारण वा दम्भप्रकाशके कारण की जानेवाली अनियत और क्षणिक तपस्याको राजस तपस्या कहते हैं।

(गीता १७ अ०)

राजस दान—प्रत्युपकारकी आशासे अथवा स्वर्गादि फलोद्देशसे कष्टपूर्वक जो दान किया जाता है उसे राजस दान कहते हैं। (गीता १७ अ०)

राजस त्याग—दुःखजनक होनेसे कायक्लेश और भय प्रयुक्त कर्मपरित्यक्त होनेसे उसे राजस त्याग कहते हैं।

राजस ज्ञान—जिस ज्ञान द्वारा सर्वभूतस्थित आत्माको पृथक् पृथक् रूपमें नाना भावापन्न जाना जाता है उसे राजस ज्ञान कहते हैं।

राजस कर्म—अहङ्कार वशतः कामाभिलाषी हो कर बड़ी आसानीसे जो काम किया जाता है उसका नाम राजस कर्म है।

राजस कर्त्ता—अनुरागी, कर्मफलाभिलाषी, लुब्धस्वभाव, हिंसाप्रकृति, अशुचि, हर्ष और शोकयुक्त काम करनेवाला हो राजसकर्त्ता है।

राजस बुद्धि—जिससे धर्म, अधर्म, कार्य, अकार्य यथार्थरूपसे जाना जाता है वही राजस बुद्धि है।

राजस धैर्य—जिसके द्वारा मनुष्य धर्म, अर्थ और कामको धारण करते हैं तथा तत्प्रसङ्गाधीन फलत्यागाकाङ्क्षी होते हैं, इसीको राजस धैर्य कहते हैं।

राजस सुख—जो सुख विषय और इन्द्रियसंयोगसे उत्पन्न होता था तथा जिससे पहले अमृततुल्य और पीछे विषवत् मालूम होता है, वही राजस सुख है।

राजसपुराण—पद्मपुराणके मतसे ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म राजसपुराण है।

"ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कण्डेय तथैव च।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोधत॥"

राजस स्मृतिशास्त्र—च्यवन, याज्ञवल्क्य, आत्रेय, दक्ष, कात्यायन, विष्णु ये सब राजस स्मृति हैं।

"च्यवनं याज्ञवल्क्यञ्च आत्रेयं दाक्षमेव च।
कात्यायनं वैष्णवञ्च राजसाः स्वर्गदा मताः॥"
(पाद्मोत्तरख० ४३ अ०)

(पु०) २ आवेश, क्रोध।

राजसत्ता (सं० स्त्री) १ राजशक्ति। २ वह सत्ता जो किसी देश या जातिके भरण-पोषण, वर्द्धन और रक्षणके लिये स्थापित की जाती है।

राजसत्र (सं० क्ली०) राजाका अनुष्ठेय यज्ञ।

राजसत्त्व (सं० क्ली०) राजशक्ति।

राजसदन (सं० क्ली०) राज्ञः सदनं। राजगृह। पर्याय—सौध, भूपालभवन, सुधामय। (शब्दरत्ना०)

राजसद्मन् (सं० क्ली०) राज्ञः सद्म। राजगृह, राजाका घर।

राजसफर (सं० पु०) इल्लिषमत्स्य, हिलसा मछली।

राजसभा (सं० स्त्री०) राज्ञः सभा, (सभाराजा मनुष्यपूर्वा। पा २।४।२३) इत्यत्र राजपर्यायस्यैव ग्रहणात् न क्लीवत्वं। १ राजाकी सभा, दरबार। २ वह सभा जिसमें अनेक राजे बैठे हों, राजाओंकी सभा।

राजसमाज (सं० पु०) १ राजाओंका दरबार या समाज, राजमण्डली। २ राजा लोग।

राजसर्प (सं० पु०) सर्पाणां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। सर्पविशेष, एक प्रकारका बड़ा सांप। पर्याय—भुजङ्गभोगी।

राजसर्षप (सं० पु०) सर्षपाणां राजा श्रेष्ठत्वात्, परनिपातः। १ सर्षपविशेष, राई। पर्याय—कृष्णिका, राजिका, क्षुद्री, मुष्टक, क्षव, क्षुताभिजनन, कृष्णा, तीक्ष्णफला, राजी, कृष्णसर्षपाख्या। गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, वातशूल, गुल्म, कण्डु, कुष्ठ और व्रणनाशक, पित्त और दाहवर्द्धक। (राजनि०) २ चौबीस त्रसरेणुका एक परिमाण।

"त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः।
ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः।" (मनु ८।१३३)

राजसात् (सं० अव्य०) राजाके अधिकारमें।

राजसायुज्य (सं० क्ली०) राज्ञः सायुज्यं। राजत्व।

'स्यादृब्रह्मभूयं ब्रह्मत्वं ब्रह्मसायुज्यमित्यपि।' (अमर)

राजसारस (सं० पु०) राज्ञः सारसइव, राज्ञः शोभाशाली सारसइव इति वा। मयूर, मोर।

राजसाही (राजशाही)—बङ्गालका एक विस्तृत विभाग। यह अक्षा० २३° ४६′ से २७° ०′ उ० तथा देशा० ८७° ४′ से ८९° ५३′ पू०के मध्य अवस्थित है। दिनाजपुर, राजशाही, बगुड़ा, पावना, मालदा, जलपाईगुड़ी और रङ्गपुर ये सात जिला ले कर राजशाही विभाग बना है। इस विभागके उत्तर सिक्किम और भूटानराज्य; पूरबमें ग्वालपाड़ा जिला, कोचविहारराज्य, गारो पहाड़, मैमनसिंह और ढाका जिला; दक्षिण और दक्षिण पश्चिममें गङ्गा और पद्मानदी तथा पश्चिममें मालदह और पूर्णिया जिला तथा नेपालराज्य है। भूपरिमाण १८०६१ वर्गमील और जनसंख्या ६१३००७२ है। मुसलमानोंकी संख्या सैकड़े पीछे ६३, हिन्दूकी ३६ और बाकी १में जंगली, बौद्ध तथा ईसाई लोग हैं। इस विभागमें १८ शहर और ३१३०३ ग्राम लगते हैं। शहरोंमें सिराजगंज सबसे बड़ा है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये यह विभाग एक कमिश्नरके अधीन है। उक्त सात जिले फिर १५ महकमों और ७४ थानोंमें विभक्त हैं। बङ्गालके मुसलमान-शासकोंकी गौड़ और पाण्डुआमें राजधानी थी। वहां जो खण्डहर पड़े हैं, वे आज भी देखने लायक हैं। रामपुर बोआलियामें इस विभागका कालेज और मदरसा तथा प्रत्येक जिलेमें अंगरेजी-स्कूल हैं।

राजसाही—पूर्वोक्त राजशाही विभागके दक्षिण पश्चिममें अवस्थित एक जिला। यह अक्षा० २४° ७′ से २५° ३′ उ० तथा देशा० ८८° १८′ से ८९° २१′ पू०के मध्य

विस्तृत है। भूपरिमाण २५९३ वर्गमील है। इसके उत्तरमें दिनाजपुर और बगुड़ा जिला, पूरबमें बगुड़ा और पाबना जिला, दक्षिणमें गङ्गा और नदिया जिला तथा पश्चिममें मालदह और मुर्शिदाबाद जिला है।

भूतत्त्व।—वर्त्तमान राजशाही जिलेका प्राकृतिक संस्थान देखनेसे ही डेल्टा सरीखा मालूम होता है। भूभागका अधिकांश नदी-गर्भ और जलसे आच्छादित है। साधारणतः जमीन उर्वरा है, किन्तु सभी स्थानोंको जमीन और आबहवा एक-सी नहीं है। वर्षाकालमें तमाम जलसे डूब जाता है। नदी तीरवर्त्ती स्थान प्रधानतः स्वास्थ्यकर और वृक्षोंसे सुशोभित है। पद्मा नदीमें जब बाढ़ आती तब गांवका गांव बह जाता है। १८३८ और १८६५ ई०की भीषण बाढ़ सर्वत्र विख्यात है।

इस जिलेके दक्षिण और दक्षिण-पश्चिममें पद्मा, पश्चिममें महानन्दा, मध्यमें आत्रयी, बड़ल, उसकी शाखा मूशा खाँ, मूशाकी शाखा नारद, पूरबमें करतोयाकी शाखा नागर, उत्तरमें बाराही और बाग्नई बहती हैं। इन सब नदियोंमें नावें बारहों मास आती जाती हैं। यहां छोटे बड़े बहुतसे बिल हैं जिनमें चलन-बिल सबसे बड़ा है। इसका विस्तार २१ मील है। सभी समय इसमें नावें चलती हैं। रक्तदह, मांदा और सतीका बिल भी उतना छोटा नहीं है। जिसमें सर्वत्र नदीके रहनेसे जलपथसे ही वाणिज्यकी सुविधा है।

सुलतानगञ्ज, गोदागाड़ी, गोविन्दपुर, लालोर, हतियानदह, सापेल, भाञ्जनकोट, गाङ्गेल, वरबाड़ी, धराइल, तेमुख, नौगांव, सिड़ा, सेरकोल आदि स्थानोंसे नाव द्वारा धान, चावल, तमाकू और पटसनका कारबार चलता है। यहां योरोधान, आमनधान, हल्दी, ईख, नील, शहतूत और गांजेकी खेती होती है। खेतीबारीसे ही लोग अपना गुजारा चलाते हैं। यहांका आम, कटहल बहुत उमदा होता है और बहुतायतसे पाया जाता है। इस जिलेमें मछली बहुत मिलती है। बहुतोंका विश्वास है, कि अधिक मछली मिलनेके कारण ही यहांका "मत्स्य देश" नाम पड़ा है।

वाणिज्य।—एक समय यह जिला वस्त्र-व्यवसायके लिये बहुत मशहूर था। इष्ट इण्डिया कम्पनीके समयके विवरणसे जाना जाता है, कि उस समय यहांकी आढ़तसे वर्षमें १४८१०० खंड वस्त्र यूरोप भेजे जाते थे। अलावा इसके लाखों मनुष्यका पहनावा भी यहींसे चलता था। किन्तु अभी वह दिन गया। मैनचेष्टरकी प्रतियोगितासे यहांके जुलाहे बेकाम बैठे हुए हैं। अभी इसी जिलेमें अन्यान्य स्थानोंसे कपड़े, कपास, चीनी, घी, शाल लकड़ी, लवण और मसाले आते हैं, परन्तु धान, चावल, हल्दी, रेशम, नील, पटसन और गांजा भी यहांसे दूसरे दूसरे देश भेजे जाते हैं।

नाम और जिलेकी पैदाइशका इतिहास।

बहुत लोगोंका यह ख्याल है, बहुत दिनों तक बौद्ध और हिन्दुओंके राजत्व करते रहनेके कारण मुसलमानोंके शासनकालमें इसका राजसाही नाम पड़ा। उससे बहुत समय पहले यह स्थान मत्स्यदेशके अन्तर्गत था। उत्तर-बङ्गके पांच बीबी रेल-स्टेशनसे कोई १७ मील पूर्व-दक्षिण कोने पर अवस्थित विराट नगर मत्स्यप्रदेशकी राजधानी थी। वहांके लोग इसी विराट नगरकी २ मीलकी दूरी पर विराटके सेनापति कीचकके मकानका परिचय देते हैं। फिर इसके निकट ही वह स्थान है, जहां शमी वृक्ष पर पांचों पाण्डवोंने अपने अस्त्रशस्त्र रखे थे इत्यादि प्रमाणोंके बल पर इस स्थानको ही महाभारतमें लिखे मत्स्यदेश मानते हैं, किन्तु महाभारतकी आलोचना करने पर इस स्थानको कभी वह मत्स्यदेश स्वीकार नहीं किया जा सकता। वह पुराने मत्स्यदेश राजपूतानेमें है। आज भी विराटराजकी राजधानी वैराट नगर वहां अवस्थित है। मत्स्य और विराट देखो। राजसाहीका मत्स्यदेश बहुत इधरका है। इस समयके भूतत्त्वविदोंने भूतत्त्वकी आलोचना कर स्थिर किया है, कि राजसाही जिलेका बहुत अंश आधुनिक समयके नदीगर्भसे निकला हुआ है। बरीन्द अंशको छोड़ अन्य किसी स्थानको वैसा पुराना नहीं कहा जाता। इस स्थानको आत्रेयी और बाराही नदियां प्रवाहित करती है। इससे यह तीर्थक्षेत्र कहा जाता है। फिर भी, प्राचीन पुराण आदि ग्रन्थोंमें इसका [illegible] नहीं है। मुसलमानोंके अभ्युदयकालमें जिन स्थानोंमें लोगोंका समागम हुआ था, उनमें मांदा,

कुजाहल, नौगांव, कालीतला, भवानीपुर और देवपाड़े-का नाम लिया जा सकता है। माह्दमें बौद्धकीर्त्तियों का निदर्शन और भवानीपुरमें देवीका पीठस्थान है। मुसलमान-अभ्युदयमें बागा और ताहिरपुर तथा चैतन्य-भक्त परम वैष्णव नरोत्तमके अभ्युदयमें प्रेमतलीको प्रसिद्धि हुई थी। किन्तु इस समयमें भी राजसाहीका नामकरण नहीं हुआ।

नवाब मुर्शिदकुली खांके समयमें उदितनारायण नामक एक जमीन्दार अपनी जमीन्दारीका शासन करते थे। उनकी जमीन्दारीका नाम 'चकला राजसाही' था। इस समयके मुर्शिदाबाद, वीरभूम, वर्द्धमान, नदिया और सन्थाल परगनेके कुछ अंश आदि स्थान उस समयके 'राजसाही चकला' के अन्तर्गत थे। इस समय भी मुर्शिदाबाद, वीरभूम जिलेमें राजसाहीके परगने दिखाई देते हैं। उस समय बगुड़ा, पावना और मालदह आदि जिलोंके अधिवासी भी उदितनारायणको ही कर देते थे। किन्तु ये स्थान राजसाहीके नामसे प्रसिद्ध थे या नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। और तो क्या, पद्मा नदीके उत्तर किनारे वर्त्तमान राजसाहीमें जो लस्करपुर और ताहिरपुर परगने दिखाई देते हैं, वे अकबरके समयमें सरकार बार्बकाबाद तथा मुर्शिदकुली और ईष्ट इण्डिया कम्पनीके पहले अमलमें मुर्शिदाबाद जिलेके अन्तर्गत थे। सन् १७६५ ई०में राजसाहीके स्थानोंमें बड़े परिवर्त्तन हुए। उदितनारायणकी जमीन्दारी नाटोरके राजाके अधीन हुई थी। रानी भवानीके अधिकृत बहुत बड़ी जमीन्दारी राजसाहीके नामसे प्रसिद्ध हुई। उनके समयसे सन् १७९० ई०के दशसाला बन्दोबस्त तक राजसाही जिलेकी पश्चिमी सीमा भागलपुर और पूर्वी सीमा ढाका निर्दिष्ट था। गत १७९३ ई०में चिरस्थायी बन्दोबस्तके समय राजसाही जिलेसे बहुत स्थान निकल गये। अब भी इसकी पूर्वी सीमा ब्रह्मपुत्र और पश्चिमी सीमा गङ्गा है। इतना बड़ा जिला एक मजिष्ट्रेटके शासनमें रखना उचित नहीं। ऐसा समझ कर १९ वर्षोंमें इसका आयतन बहुत कम कर दिया गया है। अन्तमें निम्नलिखित १४ थानों और तीन महकमोंको ले कर वर्त्तमान राजसाही जिलेका संगठन हुआ—

सदर महकमेमें—१ बोआलिया, २ चारघाट, ३ पुंठिया, ४ गोदागाड़ी, ५ तानोर और ६ बाघमारा ये छः थाने हैं।

नाटोर महकमा—१ नाटोर, २ लालपुर, (बिलमारिया), ३ बड़ाई ग्राम, और ४ सिंड़ा—ये चार थाने हैं।

नौगांव महकमा - १ पांचपुर, २ नौगांव, ३ महादेवपुर और ४ मांदा—ये चार थाने हैं।

इतिहास।

पहले ही कह चुके हैं, कि वर्त्तमान राजसाही जिलेमें मुसलमानी जमानेसे पहले कोई बड़ा नगर था राजधानी नहीं थी। आत्रेयी, वाराही और करतोयाके पुण्य तीर्थ होनेकी वजह यहां यात्री बहुत आया करते थे। इस तीर्थके कारण ही नदीके किनारेके स्थानोंमें हिन्दू और बौद्ध राजोंके उद्योगसे देवालय और विहार बने थे। इनमें अधिकांश ही नष्ट हो गये हैं। इनमें गोदागाड़ी थानेके अधीन देवपाड़ा ग्राममें विजयसेनका शिलालेख मिला है। इससे वहांके बहुत पुराने प्रद्युम्नेश्वर शिव तथा उनके मन्दिरका उल्लेख पाया जाता है।

नाटोरसे उत्तर पूर्व कोनेमें ३६ मीलकी दूरी पर भवानीपुर ग्राम मौजूद है। बहुत दिन पहले यहां करतोया, आत्रेयी और यमुनाका संगम था। इससे यह स्थान महातीर्थके नामसे प्रसिद्ध था। भवानीदेवीके पीठस्थानके नामसे यह स्थान प्रसिद्ध था। यहांके पुजारी कहा करते थे, कि तन्त्रचूड़ामणि-वर्णित भगवतीका तल्प तथा बायां कान यहीं गिरा था। (१) मुसलमानोंके राज्यमें इस तीर्थका लोप हो गया। इसके बाद हुसेन शाहके जमानेमें मोहनमिश्र नामक एक साधुने मथुरेश और मनोहर चक्रवर्त्तीके साहाय्यसे यहांके पीठका उद्धार किया। इस समय रहमत खां नामक एक मुसलमान सेनापतिने देवीकी कृपासे विपद्से मुक्त होने पर यहां एक इमारत तय्यार कराई थी। गत १२९२ फसलीके भूडोलमें यह इमारत नष्ट हो गई। कहते हैं, कि मोहन मिश्र नामक ब्रह्मचारीने देवीकी आज्ञासे कुमुदानन्द चक्रवर्त्तीकी कन्यासे विवाह किया था।

अज्ञातकुलशील मोहन मिश्रके साथ कन्याका विवाह

(१) "करतोया तटे तल्पं वामे वामनभैरवः।
अपर्णा देवता तत्र ब्रह्मरूपा करोद्भवा॥" (पीठमाला)
मतान्तरे— "करतोया तटे पड़े वाम कर्ण तौंर।
वामेश भैरवी देवी अपर्णा तौंहार॥" (भरतचन्द्रकी अन्नदाम०)

करनेसे कुमुदानन्द समाजसे गिर गये। इसके बाद साधु मोहन मिश्रके असाधारण देवशक्तिका परिचय पा कर वारेन्द्र-समाजपति राजा कंसनारायणने उनको और उनके ससुरको जातिमें उठा लिया। उसीसे ही वारेन्द्र ब्राह्मणसमाजमें भवानीपुरी पठीकी सृष्टि हुई। साँतैल-की रानी शर्वाणो और रानी भवानीके यत्नसे इस पीठके संस्कार और यहांकी देवसेवाका उचित प्रबंध किया गया था। साँतैल और उसके बाद नाटोरके राजवंश सदा इस पीठको देखने आया करते थे। उससे थोड़े ही दिनोंमें इस पीठकी ख्याति राजसाहीमें हो गई। दूर दूरके यात्री साधु संन्यासी आया करते थे। यहांके शूर-वंशीय कायस्थ जमींदार आदिशूरवंशीय और भुलुयाके लक्ष्मण माणिक्यकी ज्ञातिके नामसे पुकारे जाने लगे।

ताहिरपुरराज।

इस समयके राजसाही जिलेमें "राजा" उपाधि-वाले बहुतेरे जमींदार दिखाई देते हैं। किसी किसी ऐतिहासिकने लिखा है—ईसाकी १४वीं शताब्दीके प्रारम्भमें मुसलमान बादशाहको दमन कर जिन्होंने गौड़-में कुछ दिनोंके लिये हिन्दू राजत्व स्थापित किया, वे राजा गणेश ही ताहिरपुर राजवंशके पूर्व पुरुष हैं, किन्तु कितने ही मुसलमान ऐतिहासिकोंने गणेशको दिनाज-पुरके राजा लिखा है। दिनाजपुरके राजा गणेशका राजत्व करना बहुतोंने स्वीकार किया है। ऐसी दशामें राजा गणेश द्वारा ताहिरपुरके राजवंशकी उत्पत्ति स्वीकार करनेमें सन्देह उत्पन्न होता है। विजयलङ्करसे ताहिर-पुरके राजवंशका उत्पन्न होना बहुतोंने स्वीकार किया है। पहले जमीन्दारीकी रक्षा करनेके लिये नवाबसे हुक्म ले कर जमीन्दारोंको फौजें रखनी पड़ती थीं। इस तरह फौजोंकी मददसे विशेष वीरता प्रदर्शित करने पर सम्राट्ने विजयलस्करको पश्चिम दरवाजेका और सुसङ्ग-के बुद्धिमन्त खाँको पूर्वके दरवाजेका जमादार नियुक्त किया। कुलग्रन्थमें भी सुसङ्गके राजा उदयाचल और ताहिरपुरके राजा अस्ताचल कहे गये हैं। सम्राट्ने विजय-लस्करको 'सिंह'का खिताब और २२ परगने दिये। उन-के अधीनमें बहुतेरे सैनिक रहते थे। रामरामामें चारों ओरसे खाई खुदवा कर और चहारदीवारी उठवा कर राजधानी कायम हुई। विजयके पुत्र उदयनारायण वारेन्द्र कुलीनोंमें निरावलि पठीके प्रथम स्रष्टा हैं। गौड़ेश्वर उनसे सब परगनोंको छीन लिया केवल ताहिरपुर परगना उनके पास रह गया। इन्हीं उदयनारायणके पोता प्रसिद्ध वारेन्द्र-समाजपति राजा कंसनारायण हैं। यही वारेन्द्रकुलीनके मूलाधार थे। (कुलीन और वारेन्द्र देखो) इनके परपोते लक्ष्मीनारायणकी पुत्रीके साथ नाटोरके राजा रामजीवनके औरसपुत्र कालिकाप्रसादका विवाह हुआ। इतिहासमें ये "काल कोङ्कर" के नामसे विख्यात हैं। इस वंशके अन्तिम राजा अपुत्रक हो मर गये। साथ ही इनकी विपुल सम्पत्ति इनके नाती विनोदराम रायने ले ली। ये विनोदराम ही ताहिरपुरके राजवंश-के आदिपुरुष हैं। ये ताहिरपुरकी जमीन्दारीके ॥ॐ) के मालिक हैं। (कुलीन शब्दमें वंशावली देखो) विनोद-राम रायके परपोते ताहिरपुरके वर्त्तमान प्रसिद्ध राजा शशिशेखरेश्वर राय हैं।

साँतैल राजवंश।

आत्रेयी और करतोया नदीके संगमस्थान पर साँतैल या साँतुल राजाकी प्राचीन राजधानीका ध्वंसा-विशेष दिखाई देता है। इसके समीप ही साँतुलका बिल मौजूद है। यह बिल चलनबिलके साथ सम्मिलित है। जिस समय राजा गणेशका अभ्युदय हुआ, उस समय साँतैलमें एक वारेन्द्र ब्राह्मण प्रबल प्रतापी हुए थे। तप्पे भातुड़िया और इसके अन्तर्गत १३ परगने इनके अधिकारमें आये। मुसलमान-नवाब भी उनकी खातिरदारी किया करते थे। किस तरह यह संभ्रांतराज्य विलुप्त हुआ, इसके सम्बन्धमें हमने एक कहानी सुनी है, वह इस तरह है—

जिस समय औरङ्गजेबका पोता आजिम उस्सान बङ्गाल, विहार और उड़ीसाका शासक था, उस समय सीतानाथ साँतैलके राजा थे। इस समय इनकी उम्र बहुत हो चुकी थी। वे अपने छोटे भाई रामेश्वर पर सब कार्य्य भार छोड़ कर स्वयं पारमार्थिक तत्त्वालोचनामें समय बिताते थे। किन्तु रामेश्वरने कई अविश्वास-जनक काम किये। इससे इनके हृदयमें मार्मिक पीड़ा उत्पन्न हुई थी। इसी शोकसमयमें सीतानाथ परलोकगामी

हुए। रामेश्वरका अधर्म ही राज्यवंशका कारण हुआ। इनको बहुतेरे पक्षपातकी भी कहा करते थे। इस रामेश्वरका पुत्र राजा रामकृष्ण हुए। प्रातःस्मरणीया रानी शर्वाणी रामकृष्णकी पत्नी हैं। राजसाही जिलेमें रानी शर्वाणीकी कीर्तियां कई स्थानोंमें विद्यमान हैं। कहते हैं, कि इन्हीं रानी शर्वाणीने करतोयाके किनारे महापीठका आविष्कार किया था। ये देवीका सुन्दर मन्दिर बनवा कर देवसेवामें प्रचुर धन खर्च किया करती थीं। इनकी कीर्तियां देखनेके लिये दूर दूरके यात्री आया करते थे। कोई १७१० ई०में रानी शर्वाणीकी मृत्यु हुई। इसके बाद इस जमींदारीका वारिस रामकृष्णके भतीजे बलराम थे; किन्तु नाटोरके सुचतुर राजा रघुनन्दनने नवाबको यह समझा दिया, कि "बलराम जन्मान्ध है और जमीन्दारीके काम संभालनेमें असमर्थ है।" आप मुझे दे दीजिये। इस तरह उन्होंने नवाबसे बन्दोबस्त करके उनकी सारी जमीन्दारी अपने नामसे करा ली। इसीके साथ साथ सांतैलका राजवंशका भी लोप हो गया।

रानी शर्वाणीकी सब कीर्त्तियां उनकी मृत्युके बाद कुप्रबन्ध तथा जीर्णशीर्ण हो कर नष्टभ्रष्ट हो गईं थीं। पीछे नाटोरकी प्रातःस्मरणीया रानी भवानीने उन कीर्त्तियोंका जीर्ण संस्कार करा अपने महत्त्वका परिचय दिया था।

पुंठियाका राजवंश।

वारेन्द्रकुलीन ब्राह्मण साधु बागचीको पन्द्रह पीढ़ी नीचे शशधर पाठक उत्पन्न हुए। उनके पुत्र वत्साचार्य या वत्सराचार्यसे ही इस राज्यवंशका अभ्युदय हुआ। १६वीं सदीके मध्यभागमें बङ्गके सूबेदार दिल्लीके बादशाहका सम्बन्ध विच्छिन्न कर स्वतन्त्र बन गये। इसके बाद इनको दमन करनेके लिये दिल्लीके बादशाहने बहुतेरी फौजोंके साथ अपने सेनापतिको भेजा। यहां आने पर वत्साचार्यकी असाधारण दैवशक्तिकी बात मुगल सेनापतिको* मालूम हुई। मुगलसेनापतिने उनको अपने खेमेमें बुलाया। वत्साचार्यने मुगलसेनापतिको दैवशक्तिबलसे युद्धमें विजय प्राप्त करनेके उपाय और पथ बताया था। विजय प्राप्त हुई। सेनापतिने युद्धके बाद वत्साचार्य्यको जागीर दिलानेकी बात कही, किन्तु वत्साचार्यने लेनेसे इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, कि मुझे विषयवासनाकी इच्छा नहीं। इस पर मुगलसेनापतिने बादशाहसे इनके पुत्र पीताम्बरको 'शहर मण्डल' का खिताब और लस्करपुर परगना जागीरमें दिलवाया। किन्तु पीताम्बर भी इस सम्पत्तिका अधिक दिनों तक भोग न कर सके। उनके छोटे भाई नीलाम्बर इस सम्पत्तिके अधिकारी हुए। नीलाम्बरके दो पुत्र हुए—रतिकान्त और आनन्दराम। पिताके अप्रियपात्र होनेकी वजह रतिकान्त जेठे होने पर भी पैत्रिक सम्पत्तिके उत्तराधिकारी न हो सके। ठाकुरकी उपाधिसे विभूषित हुए। दूसरे पुत्र आनन्दरामने पिताकी जीवितावस्थामें ही दिल्लीश्वरसे राजाकी उपाधि प्राप्त कर ली।

रतिकान्तके पुत्र रामचन्द्रसे पुंठियामें "राधागोविन्द" प्रतिष्ठा और उनकी नित्यसेवाका सुप्रबन्ध हुआ। इन रामचन्द्रके तीन पुत्र हुए—नरनारायण, दर्पनारायण और जयनारायण। नरनारायण ठाकुरके जमानेमें नाटोरराज्यके स्थापक रघुनन्दनके बाप कामदेव 'लस्करपुरके अन्तर्गत बारुइहाटी ग्राममें तहसीलदार थे। दर्पनारायणके समयमें रघुनन्दन पहले उनकी पूजाके लिये फूल तोड़ कर रखते थे। इसी सामान्यकार्यसे आरम्भ कर वे नवाबके दरबारमें पुंठिया राजाकी ओरसे वकीली मुखतारी करने लगे। इसके बाद वे और भी सौभाग्यशाली हुए थे।

लार्ड कर्नवालिसके समयमें आनन्दनारायण लस्करपुर परगनेके राजा हुए तथा उनके साथ जमींदारीका चिरस्थायी बन्दोबस्त हुआ। उनके उत्तराधिकारी राजेन्द्र नारायणको बृटिश सरकारसे 'राजा बहादुर'-की उपाधि मिली थी।

इससे पहले पुंठियाके राजा भुवनेन्द्रनारायणने भी अपने पैतृक अंश छोड़ कर कितनी ही जमींदारियां खरीद कीं। उनके पुत्र जगन्नारायणने भी सन् १२१४ सालमें मैमनसिंह जिलेके पुखरिया परगना, राजसाही जिलेके कालीगांव, कालीसपा और काजीहाटा परगना और नदिया जिलेके भवानन्ददियर खरीद कर अपनी पूरी

* इस मुगलसेनापतिको कुछ लोगोंने मानसिंह और कुछ लोगोंने राजा टोडरमल्लका होना लिखा है।

आमदनी कर ली थी। उन्होंने काशीमें देवालय, धर्मशाला और घाट तथा गयाधाममें फल्गु नदीके किनारे एक धर्मशाला स्थापित की थी। इनकी भी बृटिश सरकारसे राजा बहादुरकी उपाधि मिली थी। इनकी मृत्युके बाद इनकी विधवा पत्नी रानी भुवनमयी देवीने शिवस्थापन और बहु दान-पुण्य कर विशेष कीर्त्ति अर्जित की थी।

इसके उपरान्त ।~)॥ के मालिक कृष्णेन्द्रनारायण और उनके पुत्र भैरवेन्द्रनारायण रायके नाम उल्लेख किये जा सकते हैं। कृष्णेन्द्रनारायण अत्यन्त दयालु थे। वे लालगोलेकी रानी तारिणी देवीकी ओरसे जमानतदार हुए थे। पीछे रानीके दत्तक पुत्र शाबित न होनेके कारण राजा कृष्णेन्द्रनारायण पर डेढ़ लाखसे अधिककी डिग्री हो गई। इसके लिये उनके पुत्र भैरवेन्द्रकी भी बहुत सम्पत्ति नीलाम हो गई, फिर भी वे जरा भी विचलित नहीं हुए। इनके समयमें नाटोरके महाराज आनंदनाथ और दीघापतियाके राजा प्रमथनाथ रायका मनमुटाव हो गया। भैरवेन्द्रने उन दोनोंको रामपुर बोयालियाकी कोठीमें बुला कर समझौता करा दिया। भैरवेन्द्रकी नाबालगी अवस्थामें ही उनकी बहुतेरी सम्पत्ति मालगुजारी बाकी पड़ जाने पर उसके चुकानेमें बिक गई। इसी समय उनके दत्तकपुत्रका मुकद्दमा दायर हुआ। इसमें बहुत रुपया खर्च हुआ। जब वे बालिग हुए, तब पुखरिया परगना उनको मिल गया। फिर भी वे बहुत कर्जदार हो गये थे। इससे उनको बाध्य हो कर सारी सम्पत्ति गँवा देनी पड़ी।

राजा राजेन्द्रनारायणके वंशमें परेशनारायण रायका जन्म हुआ। वे अधिक दिनों तक जीवित न रहे, तो भी राज्यप्राप्तिके कुछ ही दिनोंके बाद पुंठिया, बेआलिया, कापासिया, जामीरा, बाणेश्वर, आड़ानी प्रभृति स्थानोंमें स्कूल कायम कर अपनी प्रजामें शिक्षाका विस्तार किया। राजा जगन्नारायण रायके पोता राजा योगेन्द्रनारायण रायका जन्म सं० १२४७ सालमें हुआ और ये सं० १२६६ सालके २६ वैशाखको मरे। उनकी तरह प्रजावत्सल राजा इस प्रान्तमें दूसरा दिखाई नहीं देता। उन्होंने नीलकरोंके अत्याचारसे प्रजाको मुक्त करनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा की थी। उन्हींकी पत्नीका नाम प्रातःस्मरणीया रानी शरत्सुन्दरी है। इस आदर्शचरित्रा रमणीकी दानशीलता, परदुःखकातरता और अनन्त सद्गुणोंसे राजसाहीके अधिवासी मुग्ध हो उठे थे। उन्होंने भोगविलासको कुचल कर परोपकारमें ही अपनी जिन्दगीको लगा दिया था। फलतः दिल्लीके दरबारमें उनको 'महारानी'की उपाधि मिली थी; किन्तु उन्होंने उस उपाधि या खिताबको नहीं लिया। अंग्रेज सरकारको लिख भेजा—यह हिन्दू-विधवा इस उपाधिके योग्य नहीं है। सन् १२८० सालमें उन्होंने अपने दत्तकपुत्र यतीन्द्रनारायणके हाथ राज्यभार सौंप दिया। किन्तु ये बहुत दिनों तक राज्यभोग कर नहीं सके। वे एक बार काशीक्षेत्रमें माताके दर्शन करनेके लिये गये। वहां ही वे बीमार हुए और कुछ ही दिनोंमें वहीं अपनी पत्नीको गर्भवती छोड़ कर मर गये। यह सन् १२८० सालके फाल्गुनकी घटना है। पुत्रशोकातुरा माता अपने शोकको मिटानेके लिये नाना तीर्थोंका भ्रमण करती फिरीं। अनन्तर १२६३ सालके २५ फागुनमें काशीधाममें वे शिवलोक प्राप्त हुईं।

नाटोरराज।

कामदेव मैत्र पुंड्रियाराज्यान्तर्गत बारुईहाटाके तहसीलदार थे। इनके तीन पुत्र हुए:—रामजीवन, रघुनन्दन और विष्णुराम। इन तीनों भाइयोंमेंसे रघुनन्दन ही बड़े बुद्धिमान् तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। कहा गया है, कि रघुनंदन पुंठियाके राजा दर्पनारायण ठाकुरकी पूजाके लिये फूल तोड़ लाते थे। एक दिन वे फूल तोड़ते तोड़ते सो गये। इस समय एक फणदार सर्पने आ कर छाया कर दी थी। दर्पनारायणने इस घटनाको देख लिया। उन्होंने रघुनन्दनको पुकार कर कहा:—"रघुनन्दन! तुम चक्रवर्त्ती राजा होगे, प्रतिज्ञा करो, कि हमारे वंशको कभी राज्यच्युत न करोगे।" रघुनन्दनने उस समय स्वप्नमें भी सोचा था, कि वे राजा होंगे। अतएव अनायास ही प्रतिज्ञावद्ध हुए। रघुनन्दनकी विद्याबुद्धिको देख कर दर्पनारायणने उनको नवाब दरबारमें मुख्तार या वकील नियुक्त कर दिया। रघुनन्दनकी भी उन्नतिका पथ प्रशस्त हुआ। उन्होंने थोड़े ही

दिनोंमें शाही कानून सीख लिया और कुछ ही दिनोंमें शाही अमलोंसे जान पहचान हो गई। कुछ ही दिनके बाद वे नायब कानून-गो हो गये। उस समय नायब कानून गोका दस्तखत न रहनेसे दरबारमें कोई कागज-पत्र नहीं आता था। आजिम उस्सानके साथ मुर्शिद कुलीका मनमुटाव हो गया। बादशाहके पोतेने सब कानूनगोओंको बुला कर चालानी कागजों पर सही करनेकी मनाही कर दी। अतएव बादशाहकी ओरसे ऐसा प्रबन्ध होने पर मुर्शिदकुली खांका भार कुछ हलका हुआ। उस समय रघुनन्दनने चालानका हिसाब समझा कर उस पर दस्तखत कर दिया। उस कागजको भेज कर मुर्शिद कुली खांने बादशाहके यहां अपना मानसंभ्रम बचाया। इसी समयसे रघुनन्दन नवाबके प्रियपात्र बन गये। दर्पनारायणके मर जाने पर रघुनन्दनको दीवान तथा 'रायरायां' (इस समयके राजा बहादुर)-का पद मिला। और तो क्या, मुर्शिद कुली खांके राजस्व प्रबन्धके समय दीवान रघुनन्दन ही उनके दाहिने हाथ थे। मुर्शिदाबादमें नवाबकी राजधानी कायम करने तथा उनके बङ्गाल विहार उड़ीसाके शासनकर्त्ता नियुक्त होनेके साथ साथ दीवान रघुनन्दनके ऐश्वर्यशाली होनेका द्वार उन्मुक्त हुआ। मुर्शिदकुली खांके नतीनदामाद सैयद रेजा खां पर राजकर वसूलीका भार था। इसके अत्याचारसे वहांके जमींदार पीड़ित हो गये। कितने ही जमींदारोंने प्राण त्याग कर दिया, कितने ही कैदमें सड़ रहे थे, कितने ही जमींदार राज्य छोड़ कर भाग गये। रेजा खां एककी जमींदारी दूसरेको लिखने लगे। इसी तरह उन्होंने सन् १३१३ सालमें परगना बाणगाछी, १११७ सालमें सांतैलकी रानी नामका परगना भातुड़िया, ११२१ सालमें अपने भाई रामजीवन और भतीजे कालू कोङ्करके नामसे उदितनारायणके अधिकृत समूचा राजसाही चकला, ११२२ सालमें रामजीवनके नामका नलदी परगना, राजा सीतारामकी मृत्युके बाद परगना भूषणा और इब्राहिमपुर आदि भी रामजीवनके नामसे बंदोबस्त कर दिया।

इसके बाद हवेली महम्मदपुर, शाह उजियाल, तुझो, स्वरूपपुर और जलालपुर परगने भी रामजीवनके हाथ आये। रामजीवनने लस्करपुर परगनेके अधीन कानाई-खालके अन्तर्गत नाटोरमें चारों ओर चहारदीवारी घेर कर एक राज महल बनवाया। सन् १७०६ ई०में उन्होंने दिल्लीसे २२ तरहके खिलअत और राजबहादुरका खिताब पाया। लस्करपुर, ताहिरपुर और बार्वकपुर परगनेको छोड़ वर्त्तमान समूचा राजसाही, पाबना, बोगड़ा जिला, इसको छोड़ कर ढाका, फरीदपुर, यशोर, सन्थाल परगना, वीरभूम, मुर्शिदाबाद, रङ्गपुर, दीनाजपुर और भागलपुर-के बीचकी भी जमींदारी रामजीवन रायको मिली थी। उस समयके नाटोर राज्यका क्षेत्रफल १२००० वर्ग-मीलसे अधिक था। कुल १३९ परगनेका १७४१९८७) रुपया नवाब सरकारके यहां राजकर मुकर्रर था।

राजा रामजीवन धन ऐश्वर्यमें इतने बड़े होने पर सामाजिकतामें हीन थे। उनके पूर्वज जीवर मैत्रके कुल नष्ट होने पर उन्होंने कापदलमें प्रवेश किया। अन्तमें राजा कंसनारायणके व्यवस्थानुसार जीवर मैत्रके वंश-धर काप होने पर पीछे श्रोत्रिय वरको कन्यादान कर श्रोत्रिय बन गये। पदोन्नतिके साथ साथ रामजीवन और रघुनन्दन दोनोंको ही सिद्ध श्रोत्रिय होनेकी अभि-लाषा पैदा हुई। उस समय ताहिरपुरके राजा ही वारेन्द्र ब्राह्मणसमाजके समाजपति थे। इस समय नाना कौशलोंसे ताहिरपुरके राजा लक्ष्मीनारायणको वशी-भूत कर उनकी कन्याके साथ रामजीवनने अपने लड़के कालिकाप्रसादका विवाह किया। इस विवाहमें महा-समारोहसे सारा वारेन्द्रसमाज एकत्र हुआ था। इसी विवाहसे ही नाटोर राजवंशके सामाजिक और पद-गौरवकी वृद्धि हुई।

रामजीवन और उनके प्रियमित्र दयाराम नाटोर राज्यकी श्रीवृद्धि करने लगे। रघुनन्दन गङ्गाके किनारे बड़े नगरमें या वीरनगरमें बैठ कर चाणक्यकी तरह बुद्धि व्यय करने लगे। सन् १७२५ ई०में रघुनंदनकी तथा उसके कुछ ही दिनके बाद रामजीवनके पुत्र कालिका-की मृत्यु हुई। थोड़े दिनोंके बाद ही रघुनन्दनके (शिशु) पुत्र मृत्युमुखमें पतित हुआ। लोग कहने लगे, कि अन्याय मार्गसे रघुनन्दनने इतना धन कमाया था इसीसे उस सम्पत्तिका उन्होंने भोग नहीं किया। अन्तमें राजा

रामजीवनने रसिकरायके पुत्र रमाकान्तको गोद लिया। इसके बदलेमें रसिक रायको राजसाही जिलेके चौगां और रङ्गपुरके इसलामाबाद परगना मिले थे। रसिकके वंशधर चौगांके राजा कहे जाते हैं।

पदाङ्कदूतके रचयिता प्रसिद्ध कवि और नैयायिक श्रीकृष्ण शर्म्मा राजा रामजीवनकी सभाके उज्ज्वल रत्न थे। सन् १७३० ई०में रामजीवनकी मृत्यु हुई। बालक रमाकान्त राजा हुए। उनकी नाबालिगी अवस्थामें दीघापतियाके दयाराम राय नाटोरके राजकार्य परिचालन करते थे।

सन् १७३४ ई०में राजा रमाकान्तने १८ वर्षकी उम्रमें स्वयं राज्यभार ग्रहण किया। इसके लिये उनको १८५३२५) रुपया कर देना पड़ता था। उनके समयमें १६४ परगना नाटोरराज्यके अधिकारमें आ गये। देखा गया है, कि रामजीवनके समय अपेक्षा रमाकान्तके समयमें २२ परगना अधिक हो गये थे। इससे राजा रमाकान्तकी विषय-बुद्धिका भी परिचय मिलता है। रामजीवनकी जीवितावस्थामें छतानी ग्रामनिवासी आत्माराम चौधरीकी कन्या भवानीके साथ रामकृष्णका विवाह हुआ। यह कन्या ही इतिहासप्रसिद्धा प्रातःस्मरणीया रानी भवानी हैं। राज्यप्राप्तिके बाद पहले पहल रमाकान्त अच्छी तरह राजकार्य चलाने लगे। इस समय भी दयारामके परामर्शसे राजाके सब काम होते थे। दयारामको वे दादा या भाई कहते थे। इधर कुछ बुरे आदमियोंका संग साथ हो गया। इस समय दयाराम और रमाकान्तमें परस्पर मनोमालिन्य हुआ। राजाके यहां नवाबका कर बाकी पड़ने लगा। इस समय अलीवर्दी खां बङ्गालके नवाब थे। दयारामने जा कर सब बातें नवाबसे कहीं और उन्हींके परामर्शानुसार नवाबने रमाकान्तको राज्यच्युत कर रामजीवन रायके कनिष्ठ विष्णुरामके पुत्र देवी प्रसादको राजा बनाया। इस समय रमाकान्त रानी भवानीके साथ भाग कर मुर्शिदाबादके जगत्सेठके यहां आ कर रहने लगे। जगत्सेठकी चेष्टासे रमाकान्त फिर राजा हुए और दयाराम फिर उनके प्रधान मंत्री हुए।

सन १७८४ ई०में राजा रमाकान्त रानी भवानी और एकमात्र कन्या ताराको छोड़ परलोकगामी हुए। ऐसे बड़े राज्य नाटोरका समूचा भार रानी भवानी पर आ पड़ा। रघुनाथ लाहिड़ीके साथ ताराका विवाह हुआ। रानी भवानीने दामादको राज्यका कार्यभार सौंप देनेके लिये नवाबके दरबारमें आवेदनपत्र भेजा था। किन्तु १७८८ ई०में उस प्रिय दामादकी मृत्यु हो गई। इससे फिर राज्यका सारा भार रानी भवानी पर आ पड़ा। इस समय नाटोरराज्यकी उन्नतिको देख कर ग्राण्ट साहबने लिखा था :—

"Rajshahi, the most unwieldy. extensive Zamindari in Bengal, perhaps in all India intersected in its whole length by the great Ganges or its lesser branches, with many other navigable rivers and fertilizing waters, producing within the limits of its jurisdiction at least four-fifth of all the silk, raw or manufactured used in or exported from the Empire of Hindustan, with a superabundance of all the other richest productions of nature and art to be found in the warmer climates of Asia, fit for commercial purposes; enclosing in its circuit, and benefited by the industry and population of the over-grown capital of Murshidabad, the principal factories of Kasim Bazar, Beauleah, Kumarkhali etc; and bordering on almost all the other great provincial cities, manufacturing towns, and public markets of the subah or Governorship."

(Grant's Analysis of the Finances of Bengal. 1786)

ग्राण्टकी समालोचनासे मालूम होता है, कि रानी भवानीके समयमें राजसाही केवल बंगालके लिये ही नहीं वरं समस्त भारतवर्षमें एक बहुत बड़ी जमींदारी कही जाती थी। गङ्गा तथा अन्यान्य नदीके प्रवाहित होते रहनेसे यहांकी जमीन बहुत उपजाऊ थी। समग्र भारत साम्राज्यसे उत्तम रेशम जो देशमें बनता था या विदेश भेजा जाता था, उसका (सोलह आनेमें १२ आना) भाग राजसाहीसे ही पैदा होता था। बङ्गके उस समयके समृद्धशाली नगरोंमें जो कुछ वणिज पदार्थ था

व्यवसाय सामग्री उत्पन्न होती थी उसका अधिकांश रानी भवानीकी जमीन्दारीसे उत्पन्न होता था।

हालवेल साहबने भी लिखा है :—

"At Nattore about ten days' travels North East of Calcutta resides the family of the most ancient and opulent of the Hindu princes of Bengal. Raja Ramkanto,...who deceased in the year 1748, was succeeded by his wife, named Bhabani Rani, whose dewan or minister was Dayaram, they possess a tract of country aboui 35 day's travels and under a settled Government; their stipulated annual rent to the Crown was seventy Laks of sicca Rupees, the real revenues about one Krore and a half."

हलवेलकी विवरणीसे भी मालूम होता है, कि रानी भवानीका राज्य इतना भारी था, कि ३५ दिनमें चक्कर पूरा होता है। इसका राजस्व ७० लाख रुपया तथा आय डेढ़ करोड़ रुपया थी।

इस तरह अतुल ऐश्वर्यशालिनी हो कर रानी भवानी ब्रह्मचारिणी विषयसुखनिर्लिप्ता हुईं। वे जितने असाधारण बुद्धिमती, वैसी ही धर्मनिष्ठा, परदुःखकातरा तथा आडम्बरशून्या थीं। सैकड़ों देव-प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा, ब्राह्मण सम्मान, सैकड़ों पोखरे तालाबका खुदवाना तथा लाखों गरीब दुःखियोंको अन्नवस्त्र दान उनकी कीर्त्तियोंके परिचायक हैं। इस तरहका असाधारण अनुष्ठान बङ्गालमें कहीं नहीं दिखाई देता। क्रियावान् ब्राह्मणोंकी कमी देख कर उन्होंने काशीधामसे ३६० ब्राह्मणोंको बुलवा कर बसाया थो। इनकी वस्तीके लिये प्रत्येक पर ५० या ६० हजार रुपया खर्च किया गया था। काशीधामका दुर्गामन्दिर इन्हीं रानी भवानीकी कीर्त्ति है। उनकी समूची सत्कीर्त्तियोंका यहां परिचय देना कठिन है।

रानी भवानीकी तरह उनकी पुत्री तारा भी एक विदुषी, बुद्धिमती और असामान्य रूपलावण्यवती थीं। पतिकी मृत्युके बादसे उन्होंने भी ब्रह्मचर्य्यका पालन करना आरम्भ किया। उनके रूपलावण्यकी बात सुन कर उस समयके नवाब सिराजुद्दौलाने उनके पानेकी कोशिश की थी। रानी भवानीने सिराजुद्दौलासे अपनी पुत्रीकी रक्षा करनेके लिये ताराको महम्मदपुरमें रखा था। चारों ओरसे घिरी राजा सीतारामकी राजधानी अतीव दुर्गम थी। महम्मदपुरके रामसीताके महलमें ताराठाकुरानी रहती थीं। जिस महलमें वे रहती थीं वह महल इस समय नाटोरके नायबकी कचहरीके नामसे पुकारा जाता है।

रानी भवानीके समयमें ही सातोत्तरमें दुर्भिक्ष दिखाई दिया था। इस समय रानी भवानीने अपनी प्रजाको अन्नकष्टसे बचानेके लिये अपना भरा हुआ राजकोष खाली कर दिया। उसी दुर्भिक्षकी प्रचण्ड अग्निसे प्रजाको हाहाकार करते देख दयामयी देवतुल्या भवानीका चित्त विचलित हो उठा था। इधर वारेन हेष्टिङ्गसका दुर्व्यवहार, देशमें शिल्पवाणिज्यकी अवनति, अपने प्रभुत्वकी खर्व्वता आदिको देख कर उन्होंने अपने दत्तकपुत्र रामकृष्णके हाथ राज्यका भार दे कर गङ्गावास किया। जिस दिन रानी भवानीने अपना राज्य छोड़ दिया उसी दिनसे राजसाहीकी अवनति होने लगी।

महाराज रामकृष्ण अपने पिताकी तरह परम धार्मिक और निष्ठावान् थे। बहुत समय देवार्च्चनामें ही बिताते थे। नित्य जप-तप करते रहनेसे उनके हृदयमें विषय वैराग्यका अंकुर उत्पन्न हुआ। उनके सामने भोगविलासकी सम्पत्ति अति तुच्छ थी। अर्थपिपासु राजकर्म्मचारियोंने राज-धनको लूटना आरम्भ किया। इधर कम्पनी सरकारका कर बाकी पड़ने लगा। प्रवञ्चकोंके कहनेसे राजा साहबको कादोहाटी परगनेको नड़ाइलके कालीशङ्कर रायके हाथ बेच देना पड़ा। सन् १७९९ ई०में यशोहर कलेक्ट्रीभुक्त हवेली, मकिमपुर, नसिबशाही, सांतोर और नलदी परगनोंको कम्पनीने नीलाम करा लिया। चिरस्थायी या पक्का बन्दोबस्त होनेके समय नाटोरराजा पर अपेक्षाकृत अधिक राजकर रखा गया। इधर राजा तो राज कार्य्यमें मन नहीं लगाते थे उधर राजकर भी बढ़ गया। फलतः धड़ाधड़ परगने नीलाम पर चढ़ने लगे। इस तरह उनकी बहुत सम्पत्ति नष्ट हो गई। उनके दीवान तथा पीछेके इजारेदार नड़ाइलके कालीशङ्कर रायने बहुत

सम्पत्ति खरीद ली। मैमनसिंहके चौधरी, गोबरडांगेके मुखोपाध्याय, कालीशङ्कर और गोपीमोहन ठाकुरने भी उनके कई परगने खरीद लिये थे। इस तरह योगी रामकृष्णके समयमें सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई। अब हाथ में कुछ ही सम्पत्ति रह गई थी।

महाराज रामकृष्ण इतनी सम्पत्ति खो देने पर भी दुःखित न हुए। वरं इससे उनका विषयबन्धन और भी ह्रास होने लगा यह देख कर वे आनन्द प्रकट करने लगे। महायोगी रामकृष्ण आधी रातको श्मशानमें जा कर तान्त्रिक साधना करते थे। भवानीपुरमें उनका यज्ञ-कुण्ड, तपोवन और पञ्चमुण्डी आज भी विद्यमान है। नाटोरराज-महलमें और बक्सरमें भी उनका तपस्या-स्थान दिखाई देता है।

वे शिवनाथ और विश्वनाथ नामके दो पुत्रोंको छोड़ कर परलोकगामी हुए। महाराज रामकृष्णके समय-में बहुत-सी सम्पत्ति नष्ट हो चुकी थी, किन्तु देवोत्तर सम्पत्ति ज्योंकी त्यों थी। ज्येष्ठपुत्र विश्वनाथ पिता-का बचा खुचा राज्य और शिवनाथ देवोत्तर सम्पत्ति पा कर सेवाइत राजा हुए। इस तरह जेठ पुत्रकी ओरसे बड़तरफ और छोटे पुत्रकी ओर छोटतरफकी सृष्टि हुई।

नाटोर-राजवंश इतने दिनों तक शाक्त था; राजा विश्वनाथने अपनी दोनों पत्नियोंके साथ वैष्णवधर्मका आश्रय लिया। किंतु उनकी तीसरी रानी जयमणि शाक्त मत त्याग करनेमें असम्मत हो, वह मुर्शिदाबादमें जा करके बस गईं। विश्वनाथको पुत्र पैदा न हुआ। इससे उनके आज्ञानुसार बड़ी रानी कृष्णमणिने सन् १८१४-६ ई०में गोविन्दचन्द्रको गोद लिया। इसके बाद छोटी रानी जयमणिने भी एक गोदका पुत्र ग्रहण किया।

सन् १८३६ ई०में कुछ दिनों तक राजभोग कर गोविन्दचन्द्रने इहलीला संवरण कर ली। उनकी मृत्यु-के बाद रानी कृष्णमणिने राजकार्यमें मन लगाया। इनके राज्यमें कई तरहकी सुविधायें थीं।

गोविन्दचंद्रके इच्छानुसार उनकी पत्नीने गोविन्दनाथ को गोद लिया। राजा गोविन्दनाथ बड़े विनयी और भद्रस्वभावके थे। फिर उनकी राज्यप्राप्तिके साथ साथ उन माता पुत्रमें मनमुटाव हो गया। इस पर रानी शिवे-श्वरीने गोदको खारिज करा देनेके लिये सरकारमें एक दरखास्त दी थी। इसमें भी दोनों ओरसे विशेष क्षति हुई थी आखिर प्रिवी कौन्सिलका फैसला अभी सुननेको ही था ऐसे समय गोविन्दनाथकी मृत्यु हो गई। रानी शिवेश्वरीके आज्ञानुसार गोविन्दनाथकी विधवा पत्नीके जगदिन्द्रनाथको गोद लिया। महाराज जगदिन्द्रनाथ एक उच्च शिक्षित व्यक्ति थे। ये बङ्गालके छोटे लाटको सभाके सदस्य हुए थे। ये ही नाटोरके वर्त्तमान महा-राज हैं।

राजा शिवनाथको भी पुत्र नहीं हुआ। उन्होंने आनन्दनाथको गोद लिया। आनन्दनाथके यत्न करनेसे देवोत्तर सम्पत्तिकी उन्नति हुई। उन्होंने रामपुर बोया-लियाके साधारण पुस्तकालयको दश हजार रुपया एक मुश्तसे प्रदान किया था। उस पुस्तकालयका नाम भी उन्हींके नाम पर हुआ—"आनन्दनाथ लायब्रेरी।" इस तरहके कामोंसे प्रसन्न हो कर ब्रिटिश सरकारने "राय बहादुर" तथा पीछे सी० आई० ई०की उपाधिसे उन्हें विभूषित किया। उन्होंने सन् १८६६ ई०में चार पुत्र और दो कन्यायें छोड़ कर परलोक गमन किया। इनमें ज्येष्ठ चन्द्रनाथ सुपण्डित और बुद्धिमान् थे। उनको भी वृटिश-सरकार द्वारा "राजा बहादुर" तथा फारेन आफिसके "आटची" पद मिले। वे दूसरे और तीसरे सहोदर भ्राता कुमुदनाथ और नगेन्द्रनाथकी अकालमृत्युसे शोक-सन्तप्त हो कर कालकवलित हुए। उनके कनिष्ठ भ्राता योगेन्द्रनाथ कुछ दिनों तक छोटतरफका काम करते थे। थोड़े दिनके बाद वे भी एक मात्र पुत्रकी अकाल-मृत्युके शोकसे जर्जरित हो कर मर गये। उनके एक-मात्र पौत्र अब जीवित हैं।

दीघापतियाराज।

दयाराम रायसे दीघापतिया-राजवंशकी उत्पत्ति हुई। वे नाटोरराज्यके राजा रामजीवन और रघु-नन्दनके दाहने हाथ थे। दयाराम उतना पढ़े लिखे न थे; फिर भी उनको लोकचरित्र जाननेकी अपूर्व क्षमता थी। मनुष्यका चेहरा देख कर ही वे कह देते थे, कि यह कैसा आदमी है और इसका स्वभाव

कैसा है। इसी शक्तिके बल पर एक सामान्य आदमी हो कर भी राजा रामजीवन रायके प्रधान मन्त्री हो गये थे। मुर्शिदाबादमें रहते समय नवाबने जमींदार सैन्य-का सेनापति बना कर उनको सीतारामके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये भेजा था। उन्हींके कौशलसे राजा सीता-राम पराजित और कैद हुए। इस पर सन्तुष्ट हो कर नवाबने उनको "रायरायां" उपाधि और राजा राम-जीवनके प्रति प्रीतिनिदर्शन-स्वरूप कई जमींदारियां प्रदान की थीं। कहे तो कह सकते हैं, कि उन्हीं दया-रामके सदुयुक्ति और सदुपरामर्शसे राजा रामजीवन तथा रघुनन्दन अतुल सम्पत्तिके अधीश्वर हुए थे।

दयारामने पहले परगना भातुड़ियाके अन्तर्गत तरफ नन्दकुजा, जिले बोगड़ा और मैमनसिंहके अन्तर्गत तरफ हुमराई, जिला यशोहरके अन्तर्गत तरफ मौलकालना, पावना जिलेके अन्तर्गत तरफ सलीमपुर और राजा सीताराम रायके अधिकारभुक्त एक तरफ प्राप्त किया। इससे इनकी लाखों रुपयेकी आय हो गई। क्रमसे अन्यान्य जमींदारीको खरीद कर वे भी एक प्रधान जमींदार और विपुल अर्थशाली होने पर भी वे नाटोरराज-सरकारका मंत्रित्व नहीं छोड़ सके थे। बीचमें रमाकान्तसे मनमुटाव हो जाने तथा उनके राज्यच्युत होने पर उन्होंने मन्त्रीका काम छोड़ दिया था सही; किन्तु रमाकान्तके फिर राजा होते ही फिर वे मन्त्री हो गये। इसके बाद रानी भवानीके समयमें भी दयाराम रानीके प्रधान परामर्शदाता थे। रानी भवानी भी दयारामके बिना परामर्श लिये कोई काम करती न थी। नाटोरराज्य पर दयारामका इतना प्रभुत्व था, कि यहांसे हजारों ब्राह्मणोंको ब्रह्मोत्तर सम्पत्ति दी गई थी, उनके दानपत्रमें दयारामका ही हस्ताक्षर है और तो क्या, रानी भवानीके विवाहके लग्नपत्रमें भी दयारामका हस्ताक्षर दिखाई देता है। सुना जाता है, कि दयारामके हस्ताक्षरके बिना नाटोरका कोई दान ही प्रामाणिक नहीं माना जाता है।

दयाराम अपनी उन्नतिके साथ साथ बहुतेरी सत्कीर्त्तियोंका स्थापन कर गये हैं। महम्मदपुरसे राजा सीताराम प्रतिष्ठित कृष्णचन्द्रकी मूर्त्ति ला कर अपनी राजधानीमें उन्होंने प्रतिष्ठित करायी थी। सिवा इसके उन्होंने विनोदगोपाल और कृष्णजीकी मूर्त्ति स्थापित कर उनके नित्य सेवा-पूजाके लिये यथेष्ट सम्पत्ति दान किया था। उन्होंने बहुतेरे पाठशालायें स्थापित की थी और उनके लिये वे खर्च दिया करते थे। सिवा इसके लोगोंके जलकष्ट निवारणके लिये कई जगहोंमें पोखरे और तालाब खुदवाये थे और उस स्थानके ब्राह्मणोंको ब्रह्मोत्तर सम्पत्ति भी दी थी।

वृद्ध दयारामकी मृत्यु होनेके बाद उनके पुत्र जगन्नाथ रायने थोड़े दिनोंके लिये राजभोग किया। उनके १६ सन्तानोंमें एकमात्र पुत्र प्राणनाथ ही बच गये थे। पिताकी मृत्युके बाद वे ही राजसिंहासन पर बैठे। उन्होंने बड़ी धूमधामसे पिताका श्राद्ध-कार्य्य सम्पन्न किया था। प्राणनाथको कोई सन्तान न थी। इससे उन्होंने प्रसन्ननाथको नाबालिगी अवस्थामें ही प्राणनाथकी मृत्यु हो गई। इसके बाद उनकी संपति कोर्ट आफ वार्डसके अधीन चली गई। कितने ही असच्चरित्र और दगाबाज धूर्त्त अंग्रेज उनके साथी बन गये। इनके कुसङ्गसे उनके चरित्रभ्रष्ट होनेका उपक्रम हो चुका था। किन्तु कुछ ही दिनोंमें ईश्वरकी कृपासे उनको चैतन्य हुआ। उन्होंने बुरी संगतिको छोड़ सन्मार्गका अवलम्ब लिया। दीघापतियासे रामपुर, बोयालिया और बगुड़ा जानेवाले एक राजपथका उन्होंने संस्कार कराया था। इसमें उनका हजार रुपया व्यय हुआ था। दीघापतियाके उच्चश्रेणी अंग्रेजी स्कूल तथा रामपुरबोयालिया चिकित्सालयके लिये उन्होंने एक मूठसे १ लाख रुपया दान किया था। दीघापतियाकी प्रसन्नकाली उनके द्वारा ही प्रतिष्ठित हुई हैं। वे देवीकी सेवाके लिये नित्य एक मन चावल तथा तदुपयोगी अन्यान्य उपकरण और रातको १०।१५ ब्राह्मणोंके भोजनका व्यवस्था कर गये हैं। सन् १८५५ ई०की ३०वीं अप्रेलको "राजा बहादुर"-की उपाधि उनको मिली। वे बड़े शिकारी थे। उनके साथ बड़े बड़े अङ्गरेज तथा जमींदार शिकार खेलने आया करते थे। उनको पुत्र सन्तान न था। उन्होंने सुधी प्रमथनाथको गोद लिया।

सन् १८६१ ई०में राजा प्रसन्ननाथकी मृत्यु हुई।

इस समय प्रमथनाथ नाबालिग थे। इससे इनकी धनसम्पत्ति कोर्ट आफ वार्ड्स के अधीनमें रह कर कलकत्तेमें प्रमथनाथने अच्छी शिक्षा प्राप्त को और वे सच्चरित्र निकले। कोर्ट आव वार्ड्समें वे प्रसिद्ध प्रत्नतत्त्वविद् डाक्टर (पीछे राजा) राजेन्द्रलाल मित्रके तत्त्वावधानमें रहते थे। सन् १८६७ ई०में बालिग हो कर राजकार्यका भार अपने हाथमें लिया। इस समय उनकी सम्पत्तिको आमदनी तथा नगद रुपया बहुत बढ़ गया था। सन् १८७१ ई०में वे "राजा बहादुर" को उपाधिसे विभूषित हुए। उनके समयमें प्राचीन जमींदारियोंकी आमदनी उतनी नहीं बढ़ी थी, वरं उन्होंने राजसाही, हुगली, यशोहर, और नदिया जिलेमें अनेक जमींदारियां खरीदी थी। इस तरह यह आय इतनी बढ़ गई थी। वे अपने मितव्ययिता गुणसे राजसाही जिले भरमें एक प्रधान व्यक्ति गिने जाने लगे। राजसाही जिलेका शिल्पनैपुण्य मशहूर था, उस समय यहांका शिल्पवाणिज्य बहुत कम हो चला था। किन्तु राजा प्रमथनाथने अनेक स्थानोंसे तरह तरहके शिल्पियोंको बुला कर देशी शिल्पका उद्धार किया था। यदि वे अकाल-कालके मुखमें पतित न होते, तो उनके द्वारा देशका बड़ा उपकार होता। सिवा इसके वे बहुतेरे अनुष्ठानोंमें बहुत धन खर्च किया करते थे। वे मितव्ययी, मिताहारी, परिश्रमी थे और सब कार्योंमें उनके नियमको शृङ्खला रहती थी।

प्रमदानाथ, वसन्तकुमार, शरत्कुमार और हेमन्त कुमार इन चार लड़कों और एक कन्याको छोड़ कर वे सन् १८८३ ई०के दिसम्बरमें परलोकगामी हुए।

उन्होंने यह सोचा, कि राज्य विच्छिन्न हो जाने पर पूर्व-पुरुषके आचरित क्रिया कर्म सम्पादनमें और पूर्व वत् राजसम्मान-रक्षामें असुविधा हो सकती है, इससे उन्होंने दीघापतियाराज्यकी सारी सम्पत्ति जेठ प्रमदानाथको दे दी और नई खरीदी हुई जमींदारीको तथा नकद रुपयेको तीन भागोंमें विभक्त कर तीनों भाइयोंमें बांट दिया।

सन् १८९४ ई०की २९वीं जनवरीको प्रमदानाथको "राजा बहादुर" की उपाधि मिलो। राजा प्रमदानाथ और उनके भाई सभी सुशिक्षित विद्योत्साही और नाना कार्योंमें उत्साह देनेवाला थे। तीनों कुमार इस समय पितृ-आज्ञाके अनुसार दयारामपुरमें स्वतन्त्र राजमहल निर्म्माण कर वहां ही रहते हैं।

दुबलहाटीराज।

दुबलहाटीराजवंशकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें उनके राजवंशजोंके जबानी सुना गया है, कि वर्त्तमान राजाके कई पीढ़ी पहले मुर्शिदाबाद जिलाके अन्तर्गत यज्ञेश्वरपुर ग्राममें "जगत्राम राय" नामक एक साहु जातिके धनी व्यापारीका वास था। वे श्रीमान् सौदागरकी तरह जलपथ नाव लाद कर इस समयके दुबलहाटी ग्रामके निकट आये। यहां देवी राजराजेश्वरीके आज्ञासे निकटवर्त्ती ग्रामों पर अधिकार कर और यहांके जङ्गलोंको कटवा कर देवी राजराजेश्वरीका उद्धार कर उनके पुजारी बन कर वहां रहने लगे। धन जन बलसे थोड़े ही दिनोंमें दुबलहाटीके निकटके २।३ कोसकी जमीन अधिकृत हुई। इसके बाद बहुत पीढ़ियोंके नाम मालूम नहीं होते। मुसलमान नवाबके जमानेमें इस वंशके तुलसीरामने 'राय-चौधरी' की उपाधि प्राप्त की। इनके बाद इस उपाधिवाले भुकाराम और कृष्णराम दोनों भ्राता, इसके बाद सन्तान आदिक्रमसे रघुनाथ, परमेश्वर, शिवनाथ, कृष्णनाथ, आनन्दनाथ और हरनाथका नाम पाया जाता है। यद्यपि इस वंशके लोग 'राजा' के नामसे पुकारे जाते थे; तथापि अंगरेज-सरकारने पहले पहल हरनाथको ही "राजा" की उपाधिसे विभूषित किया।

नवाबी जमानेमें दुबलहाटीके जमींदार एक तरहसे मुफ्त ही जमींदारीका उपभोग करते थे। इसके सम्बन्धमें कहा गया है, कि नवाबके दुबलहाटीके जमींदारोंसे राजस्व मांगने पर उन्होंने कहा, "हमारा राज्य बहुत छोटा है। पहाड़ जङ्गल है, प्रजासे बहुत थोड़ी मालगुजारी ली जाती है। राजाको कर यदि देना पड़ा तो मुझे कुछ बचेगा ही नहीं। नवाब इनकी बात पर विश्वास कर सालमें २२ भार कवई मछली देना निश्चित कर दिया और वंशके चिह्नस्वरूप तुरी और डङ्का व्यवहार करनेकी आज्ञा दी। उसी समयसे दुबलहाटीके जमींदार तुरी और डङ्का व्यवहार करते आ रहे हैं। कुछ लोगोंका

कहना है, कि आइन-इ-अकबरीके बाद तकसीम जमामें सरकार जिन्नताबादके अन्तर्गत बार्बकपुर आदि ११ महलों के राजस्वकी वसूली दिखाई नहीं दी। इसके बाद ११३५ और ११५८ सालमें ६०० और ७२२ रुपया जमा दिखाई देता है। यही उस समयकी दुबलहाटी जमींदारीका बंधा कर है। सन् १७६३ ई०में पक्का बन्दोबस्तके समय वहांके जमींदार कृष्णनाथ राय-चौधरीके साथ बन्दोबस्त हुआ और लार्ड कार्नवालिसने कृष्णनाथसे सालाना १४४६५॥~) वसूल करनेका इकरारनामा लिखाया। इसके बाद कृष्णनाथको पुत्र ही न हुआ। मरते समय रानी रूपमञ्जरीको गोद लेनेकी इजाजत दे गये। उन्होंने राजा हरनाथ रायको गोद लिया। १८५३ ई०में राज्य-भार हरनाथने ग्रहण किया। राजा हरनाथकी चेष्टासे जमींदारी बहुत बढ़ गई। उन्होंने राजसाहीके सिवा बगुड़ा, दीनाजपुर, श्रीहट्ट आदि जिलोंमें जमींदारी खरीद की। पहले दुबलहाटीका जो क्षेत्रफल था, उसका हरनाथके जमानेमें चौगुना बढ़ गया था। उन्हींके खर्चसे राजसाहीमें दूसरा श्रेणीका एक कालेज स्थापित हुआ। इसके लिये ५००० सालाना आयकी जमींदारी दे दी थी। सिवा इसके वे धर्मशाला, सड़क, बोयालिया धर्म-सभा और साधारणके हितकर कार्यों में लाखों रुपया दान कर गये थे। सन् १८६१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। उनके दो पुत्र कुमार धनदानाथ राय चौधरी और कुमार ओङ्कारनाथ राय चौधरी वर्त्तमान उत्तराधिकारी हैं। दोनों ही विद्योत्साही और शिक्षित हैं।

बलिहारराज।

वात्स्य धराधरके पुत्र वेदान्ताचार्य हैं। वेदान्तके दो पुत्र हुए—हरिहर और लक्ष्मीधर। इन्हीं लक्ष्मीधरके वंशमें अनन्त और रामनाथका जन्म हुआ। अनन्तसे बलिहारराजवंश और रामनाथसे दिनहाटाके राय चौधरी-वंशकी उत्पत्ति है।

कुलग्रन्थमें बलिहारका नाम कुडमहल लिखा हुआ है। अनन्त कुडमहलके एक आदमी कुलीन कहलाते थे। अनन्तके परपोते गोपाल हैं। गोपालके तीन पुत्र हुए—कृष्णदेव, प्राणकृष्ण और रामराम। रङ्गपुरके बाहिरबंद और भीतरबन्द परगनेकी रानी सत्यवतीकी बहनके साथ कृष्णदेवका विवाह हुआ। इसी संसर्गसे रानी सत्य-वतीके राज्यमें ढुक कर प्राणकृष्ण और रामराम उनके प्रधान राजकर्मचारी बन गये। क्रमशः ये दोनों भाइयोंने इस परगने पर अधिकार जमा लिया। रामरामके वंश ॥)॥। आना और प्राणकृष्णके वंश ।✓)। के मालिक हुए। इन प्राणकृष्णका वंश बलिहार-राजवंशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। ये निरावित पठीके कुलीन हैं। इसी वंशके राजेन्द्रके साथ महाराज रामकृष्णकी कन्याका विवाह हुआ। इस विवाहमें राजेन्द्रको बहुत भूसम्पत्ति प्राप्त हुई। इन्हीं राजेन्द्र रायके पौत्र बलिहारके प्रसिद्ध कृष्णेन्द्र बहादुर हैं। ये लक्ष्मी और सरस्वतीके पूर्ण कृपापात्र थे। ये जैसे कुलमें, धनमें और मानमें सम्मानित थे, वैसे ही कवि और सुलेखक भी थे। कुछ ही दिन हुआ इनकी मृत्यु हुई है। उपर्युक्त विभिन्न राजवंशके सिवा और भी कई छोटे छोटे राजाओंका वास राजसाहीमें दिखाई देता है।

राजसिंह (राणा)—मेवाड़के राजपूत राणा तथा शिशोदिया वंशसम्भूत राणा जगत्सिंहके पुत्र। सं० १७१० वि०में पिताकी मृत्युके बाद राजसिंहने चित्तौर-सिंहासन पर आरोहण किया। इसी समय बादशाह शाहजहान्‌के पुत्र औरङ्गजेब चालाकीसे अपने बूढ़े बापको कैद कर दिल्ली-के तख्त पर बैठनेमें यत्नवान् हुए। इस पर दारा आदि औरङ्गजेबके तीनों भाई उनके विरुद्ध खड़े हुए। मेवाड़-पति राणा राजसिंहने इस समय दाराका साथ दिया। ऐसा करते देख औरङ्गजेबने राणाके साथ युद्ध ठान दिया। राजपूत फतेहाबादके युद्धक्षेत्रमें औरङ्गजेबके हाथ-से पराजित हुए। इसी हारके साथ-साथ अभागे दारा और राणाके भाग्यचक्रका घुमाव दूसरी ओरको हो गया।

इसके कुछ दिन पहले यानी राज्यारोहणके कुछ दिन बाद राणा राजसिंह अजमेरके अन्तर्गत मालपुर नगर पर आक्रमण कर मुगलोंको हरा तथा उनके नगरको लूट कर अपने राज्यमें लौट आये। इसी घटनासे शिशोदियावीर पुनर्जीवित हो उठे। किन्तु ये दाराके साथ देने पर औरङ्ग-जेबके क्रोधके भाजन हुए। इसी संसर्गमें राजपूत और

मुगल-संघर्ष पैदा हुआ। इस संघर्षने इन दोनोंको क्रमशः बलहीन बना दिया।

भारत-सम्राट् औरङ्गजेबने रूपनगरराजकी लावण्यमयी कन्याके रूपसौन्दर्यकी बात सुनी। इस पर उस कन्याके साथ विवाह करनेका प्रस्ताव कर दो हजार सैनिकोंको भेजा। राजपूत-कुलललनाने इस विषमविपद्को सामने देख अपने विपदोद्धारका दूसरा मार्ग न देख राणा राजसिंहका आश्रय लिया। इसके अनुसार रूपनगर-राज्यके पुरोहितने रानीका लिखा एक पत्र ला कर राणाके हाथमें दिया। राणाने पत्र पढ़ कर बड़ा क्रोध प्रकट किया। उन्होंने उस अत्याचारी औरङ्गजेबके हाथसे रानीके उद्धार करनेकी प्रतिज्ञा की।

औरङ्गजेबके व्यवहारसे राणा पहलेसे ही उससे नाराज थे। इधर औरङ्गजेब भी अपनी उस पुरानी शत्रुताका बदला चुकानेका अवसर ढूंढ़ रहा था। राणा राजसिंह राजपूतकुलकलङ्क दूर करनेके लिये समरोत्साही राजपूत वीरोंको साथ ले कर आरावली पर्वतके पाददेशमें उपस्थित हुए। उन्होंने वहांसे सेनाओंको रूपनगरकी ओर आगे बढ़ाया और सम्राट्की फौजोंको मार कर भगा दिया। इसके बाद रानीको चित्तोर ले आये। औरङ्गजेबकी क्रोधाग्नि भभक उठी; किन्तु राजपूत सेनापति मारवाड़पति यशवन्तसिंह और जयपुर-नरेश जयसिंहके डरसे औरङ्गजेब उस अग्निमें लकड़ी डाल न सका। इन लोगोंको स्थानान्तरित करनेके ख्यालसे यशवन्तसिंहको काबुल राज्यमें और जयसिंहको दाक्षिणात्यको भेज दिया।

यशवन्तसिंह और जयसिंह देखो।

मारवाड़पतिका निधनसाधन करके ही वह शान्त न हुआ; किन्तु वह यशवन्तसिंहके छोटे छोटे कुमारोंको कैद कर लेनेकी चेष्टा करने लगा। राजमाता अपने पुत्रोंकी रक्षाका दूसरा उपाय न देख राणा राजसिंहके शरणापन्न हुई। राणाके आज्ञानुसार युवराज अजितसिंहने मेवाड़की ओर यात्रा की। राहमें मुगल-फौजोंने उनको घेर लिया। राजपूत बालकोंके शरीररक्षक सैनिकोंने विशेष विस्तारके साथ राजपूतोंकी प्राणरक्षा की।

राणा राजसिंहने औरङ्गजेबके इस कुव्यवहारकी बात सुन उसको एक पत्र लिख भेजा। पहले रूपनगरकी राजकुमारीका आश्रयदान और मुगल-विरुद्ध युद्ध करनेके अपराधसे सम्राट् राजसिंह पर विशेष क्रुद्ध हुआ था। इस बार मुगलोंके शत्रु मारवाड़-राजकुमारको आश्रयदान और उसी कारणसे इस तरहके पत्र भेजनेसे सम्राट्का धैर्य छूट गया। उसने युद्धके लिये तैयार रहनेके लिये अपनी फौजोंको हुक्म दिया।

इधर राणा राजसिंहने युद्ध अवश्यम्भावी जान कर आरावली पहाड़ी पर अपने राजपूत सैनिकोंको एकत्र कर रखा और वे राज्य और जातीय सम्मान रक्षाके निमित्त राजपूत वीरोंको उत्तेजित करने लगे। स्वयं राणा तथा उनके जयसिंह और भीमसिंह नामक दोनों पुत्र आरावली शिखर पर सेना रख कर विपक्षियोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। यह जान कर, कि मुगलोंके साथ भयङ्कर युद्ध होगा राणा राजसिंहने राजधानीको खाली कर पर्वतोंमें आश्रय लिया था।

सौभाग्यक्रमसे मुगल सैन्यने संकटमय गिरिपथ परित्याग कर दोआबी नामक स्थानमें आ कर उदयसागर तीर पर पड़ाव डाला। तैबार खांके आज्ञानुसार शाहजादा अकबरने उदयपुर राजधानी पर आक्रमण किया। वहां था ही कौन, उन्होंने बेरोक-टोक नगर पर अधिकार स्थापित कर लिया। मुगलोंके हृदयमें आनन्दका स्रोत प्रवाहित होने लगा। मुगलोंने शत्रुओंका आना असंभव समझ निडर भावसे मौजसे दिन बिताना आरम्भ किया। ऐसे समय अचानक युवराज जयसिंह शत्रुदल पर टूट पड़े। इससे मुगलोंमें घबराहट उपस्थित हुई। भागी हुई मुगल-सेनाके गोलकुंडा पहुंचते न पहुंचते उसका रास्ता रोक दिया गया। मुगल-सेना इस प्रकार भील-सैन्य द्वारा अवरुद्ध हो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुई। पीछेसे जयसिंहने भी मुगलोंके सैन्यका द्वार बन्द कर रखा था। इस तरह राजपूतोंसे घिर कर मुगल सैन्य भूखों मरने लगा। ऐसी अवस्थामें युवराज अकबरने आत्मसमर्पण करना निश्चय किया। ऐसे समय मुगलोंकी दुर्दशा

देख कर उदार हृदय जयसिंहने भिल्ववार पहाड़ी राहसे युवराजको भाग जानेका मौका दिया।

सम्राट्ने युवराजका ऐसा शोचनीय समाचार पा कर उसके उद्धारकी कामनासे दिलावर खाँको सैन्यके साथ देसुरी नामक पहाड़ीराहसे आनेका हुक्म दिया। पहले कोई भी उसकी गति रोक न सका। किन्तु जब मुगल-सेना दुर्गम गिरिपथमें पहुंच गई तब रूपनगरके राजा विक्रम शोलाङ्कि और गोपीनाथ राठौर नामके राजपूतोंने भीमवेगसे आक्रमण कर मुगलोंका नाश कर दिया। इस आक्रमणके फ़लसे राजपूतोंको बहुतेरे आवश्यकीय सामान हाथ लगे।

सम्राट् औरङ्गजेब आजिमके साथ देआबो नामक स्थानमें दिलावर खाँकी रणजयके समाचारकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसे समय विजयी राजपूतोंने सम्राट् पर आक्रमण कर दिया। विख्यात वीर दुर्गादासने अपने राठोर-सैन्यके साथ इस तरह भीमवेगसे सम्राट् पर आक्रमण किया; कि सम्राट् स्वयं उस वेगको न सह सकनेके कारण अपनी हार मान कर भाग गये। सन् १६८२ ई०के मार्च महीनेमें यह युद्ध हुआ था।

पराजित मुगल-सम्राट् अपनी बची खुची सेनाको ले चित्तौरकी चहारदीवारीके निकट पहुंचे तथा अपने पुत्र मुआजिमको दाक्षिणात्यसे लौट आनेका हुक्म भेजा। इस समय मुआजिम महाराष्ट्र-कुलपति शिवाजीके साथ युद्धमें फंसा था। किंकर्त्तव्यविमूढ़ सम्राट्को उस समय शिवाजीका युद्ध बन्द कर राजपूतोंसे हुई मान-हानिका उद्धार करना उत्तम मालूम हुआ। अतएव पिताके हुक्म पाते ही मुआजिम राजस्थान लौटने पर बाध्य हुए।

इधर जयमलके वंशधर सुबलदासने सैन्यको ले कर अजमेरके मुगल-सैन्यके साथ सम्राट्का मिलना बन्द कर देनेके उद्देश्यसे राह रोक दी। निरूपाय सम्राट् अपने पुत्र आजिम और अकबर पर युद्धका भार सौंप कर प्राण ले अपने शरीर-रक्षक सैनिकोंके साथ अजमेर गये और सुबल-दासके विरुद्ध बारह हजार सैनिकोंको ले कर रुहेला खाँको आनेका हुक्म दिया। मारवाड़ और राठोर फौजोंने पुरमण्डल नामक स्थानमें मुगलोंको पराजित किया। क्षतिग्रस्त और उत्साहमग्न मुगल-सेना लौट गई।

जिस समय राणा राजसिंह सहयोगी राजपूत सरदारोंके साहाय्यसे मुगलोंको हरा कर जयार्जन कर रहे थे, उस समय उनके दूसरे पुत्र भीमसिंह व्यर्थ समय नष्ट न कर गुजरात, इन्दौर, वीरनगर, सिद्धपुर, मयूराश्व आदि नगरोंको जीत और लूट कर पिताके हुक्मसे लौट आये।

इधर दयाल शाह भी मुगलोंके विरुद्ध बागी हो उठे। ये सम्राट्के राजस्व विभागके एक कर्मचारी थे। इन्होंने नर्मदा और बेतवा तकके समूचे भूभाग पर आक्रमण किया। उन्होंने शाङ्गपुर, दीवास, माण्डु, उज्जयिनी और चन्देरी आदि प्रदेशोंको जीत और लूट कर किले पर ध्वजा फहराई। विजयोल्लाससे उद्दाम दयालशाह मेवाड़-के युवराजके साथ मिल कर चित्तौरके निकट सम्राट् पुत्र आजिम पर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुए। खिचीराज्य और राठोरसैन्यने मेवाड़के सामन्तरूपसे नियुक्त हो कर राजपूतोंके वीरत्वको पराकाष्ठा दिखा दी। युद्धमें आजिम हारा और भागा। सम्राट्के परा-जित सैन्यके भागते ही मेवारके जातीय समरका अव-सान हुआ।

इसके बाद राणा राजसिंहने मारवाड़के नाबालिग राजा अजित्सिंहके स्वार्थकी रक्षाके लिये मारवाड़-राजसेनाके साथ अपनी सेना मिला कर गनोरा पर आक्रमण कर दिया। यह स्थान गडवार प्रदेशमें है। मेवाड़-कुलललना अजित्की माता भी इस युद्धमें सम्मि-लित हो कर समराङ्गणमें उतर पड़ी।

राणा राजसिंहने युद्धमें जयलाभ करनेके बाद मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबको सिंहासनच्युत करनेके लिये कुमार अकबरके साथ गुप्तरूपसे साजिश की। विजयनी राजपूत वाहिनियां शुभ क्षणमें आ कर अकबरके साथ आ मिलीं। सम्राट्को इसका पता लग गया। उसने इस साजिशको असफल करनेके लिये तुरन्त ही अपने पुत्र अकबरके पास एक पत्र लिखा। गुप्तचरने सम्राट्के आदेशानुसार यह पत्र राजपूत-सैन्यके अधिनायक दुर्गा-दासके खेमेमें छिप कर फेंक दिया। दुर्गादास पत्रको पढ़ कर उसके मर्मको समझ गये। इस पत्रमें घोर युद्ध-

के समय अकबरके राजपूत-सैन्यको पीछेसे आक्रमण करनेकी बात लिखी थी। यह समाचार पा कर राजपूतोंने अकबरका पक्ष छोड़ दिया। इधर उसके सहयोगी तैवार खांने सम्राट्‌को हत्या करने जा कर अपने ही प्राण गवां दिया। इस समय मुअाजम और आजमने सैन्यके साथ आ कर औरङ्गजेबको विपद्‌से उद्धार किया था। राजपूतोंने औरङ्गजेबको कुटिलताका लक्ष्य कर लिया। इस समय अकबरको निर्दोषिताको समझ कर उसको मदद देनेके लिये वे तय्यार हुए। किन्तु पिताके भयसे अकबर फारस भाग गया। वीर दुर्गादास उसको पालवगढ़ तक पहुंचा आये।

इस तरह राजपूतों द्वारा पराजित और महाराष्ट्र शत्रु शम्भाजीके निकट अकबरके जानेकी आशङ्कासे सम्राट् औरङ्गजेब राजसिंहके साथ सन्धि करने पर बाध्य हुए। सम्राट्‌के हुक्मसे दिलदार खांके अधीनके एक राजपूत-कर्मचारीने राजसिंहके यहां जा कर सन्धिका प्रस्ताव किया। उन्होंने कहा—यदि दूसरा कोई सन्धिका प्रस्ताव करें, तो सम्राट् उस पर राजी होंगे। इसके अनुसार शूरसिंहने उपयुक्त राजकर्मचारी पद्मसिंहके द्वारा सन्धिका पैगाम भेजा। सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर सम्राट्‌ने चित्तोर और मारवाड़के अधिकृत प्रदेशोंको छोड़ दिया। आहत राणा राजसिंहने यह संवाद सुननेके पहले ही सन् १६६१ ई०में यह लोक परित्याग किया। उनके द्वारा खुदवाया राजसमुन्दर नामक जलाशय आज भी उनकी कीर्त्तिका गुण गान करता है।

राजसिंह—चोरवाड़ीको छब्बीसवीं पीढ़ीका एक सरदार (१४४५ सं०) राजा लक्ष्मणसिंहके पुत्र।

राजसिंह—गड़ादेशके एक राजा।

राजसिंह—गाङ्गवंशीयके कलिङ्गराज इन्द्रवर्माका दूसरा नाम।

राजसिंह (दूसरा राणा)—मेवाड़के एक राजा। इनके पिताका नाम था राणा प्रताप (दूसरे)। ये सन् १७५२ ई०में मेवाड़की गद्दी पर बैठे। कुमार राजसिंह अम्बरराज जयसिंहके नाती थे। ये पिताकी मृत्युके बाद राजछत्रके नीचे आये। नाममात्र राजा रह कर इन्होंने सात वर्ष तक राजत्व किया। इस समय सं० १८१२ में राजा बहादुर, सं० १८१३ में मलहारराव होलकर और बिट्ठल राव तथा सं० १८१४में राणाजी बुर्सिराने मेवाड़को लूटा। सिवा इसके सं० १८१३में सदाशिव राव, गोबिन्द राव, कन्होजी यादव नामक महाराष्ट्रनेताओंने तीन बार मेवाड़को लूट कर धनापहरण किया और इसी धनसे युद्धका व्यय-निर्वाह किया। इस तरह नाना अत्याचारसे मेवाड़ जर्जर और धनहीन हो गया। राणाने राठोरजातीयकी अधिनायक-कन्याके साथ विवाह कर अपनी हीनावस्थाको बदलना चाहा। वे इस समय ब्राह्मण करसंग्राहकोंसे अर्थसाहाय्य करनेको प्रार्थना करने पर बाध्य हुए थे। वे अकालकाल कवलित हुए। इसके बाद सं० १७६२ ई०में अरिसिंहने मेवाड़की गद्दी पर आरोहण किया।

राजसिंह—विक्रमपट्टन (उज्जयिनी)के एक राजा। उज्जयिनीके राजा गजसिंहके पुत्र। इनके दरबारी पण्डित कृष्णधूर्ज्जटिने सन् १७१४ ई०में सिद्धान्तचन्द्रोदय नामक एक ग्रन्थकी रचना की थी।

राजसिंह—एक हिन्दू राजा। इनकी आज्ञासे महादेव पण्डितने राजसिंह सुधासिंधु नामक ग्रन्थकी रचना की थी।

राजसिंह—(कच्छवाह) राजा उपाधिधारी एक राजपूत-सरदार, राजा बिहारीमल्लके भतीजे और आसकरणके पुत्र। ये सम्राट् अकबर और जहांगीरके अधीन सेनानायकका काम करते थे। सन् १६१५ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

राजसिंहासन (सं० पु०) राजाके बैठनेका सिंहासन, राजगद्दी।

राजसिक (सं० त्रि०) रजोगुणसे उत्पन्न, राजस।

राजसी (सं० स्त्री०) रजस इयमिते, रजस्-अण्-ङीप्। १ दुर्गा। (त्रि० स्त्री०) २ रजोगुणसम्बन्धिनी, जिसमें रजोगुणकी प्रधानता हो।

राजसी (हिं० वि०) राजाके योग्य बहुमूल्य या भड़कीला, राजाओंकी-सी शानवाला।

राजसुत (सं० स्त्री०) राजाका सुता।

राजसुत (सं० पु०) राज्ञः सुतः। राजपुत्र, राजाका लड़का।

राजसुता (सं० स्त्री०) राजकन्या, राजाकी लड़की।

राजसुन्दरगणि (सं० पु०) एक जैन धर्माचार्य।

राजसुन्दरी—गाङ्गवंशीय सुप्रसिद्ध नरपति प्रथम राजराज-की महिषी। ये राजा राजेन्द्रचन्द्रकी कन्या और अनन्त वर्मा चोडगङ्गदेवकी माता थीं।

राजसू (सं० त्रि०) राजकर्त्ता, राजकारक।

राजसूनु (सं० पु०) राजपुत्र, राजाका लड़का।

राजसूय (सं० पु०) राजा लतात्मकः सोमः सूयते ति, सू अधिकरणे क्यप् राजा सोतव्यः राजा वा इह सूयते इति काशिका (राजसूयसूर्य्येति। पा ३।१।११४) इति निपातनात दीर्घः। राजकर्त्तव्य यज्ञविशेष। पर्य्याय—नृपाध्वर, क्रतुराज, क्रतूत्तम। (शब्दरत्नावली)

अमरसिंहने इस शब्दको क्लीवलिङ्ग लिखा है। पुं और क्लीव इन दोनों लिङ्गोंमें इस शब्दका बहुत प्रयोग देखा जाता है।

केवल राजा ही इस यज्ञको कर सकते हैं, दूसरेका अधिकार नहीं। राजा इस यज्ञको पूरा कर सम्राट् उपाधिधारण करते हैं। शतपथब्राह्मणमें इस यज्ञका विवरण दिखाई देता है। आपस्तम्बश्रौतसूत्रमें लिखा है, कि राजा स्वर्गकी कामनासे इस यज्ञका अनुष्ठान करते हैं।

"राजा स्वर्गकामो राजसूयेन यजेत" (आपस्तम्बश्रौतसू०)

शतपथब्राह्मणके मतसे इस यज्ञका प्रधान अङ्ग इष्टि है, पशु, सोम और दर्वीहोम; आगे पवित्र नामक सोमयाग, पीछे अभिषेचनीय याग, इसके बाद दशपथ याग और केशवपनीय, इसके बाद व्युष्टि, फिर द्विरात्र और अन्तमें क्षत्रधृति नामक याग। इस अङ्ग समष्टिका नाम राजसूय यज्ञ है।

राजसूय और वाजपेय इन दो यज्ञोंको एक आदमी नहीं कर सकता। अथर्ववेदके वैतानसूत्रमें सप्तम अध्यायमें इस यज्ञके संक्षिप्तरूपसे ऐसा लिखा है "पौषी-पूर्णिमाके पहले पवित्र नामक सोमयाग, मासान्तरमें दश संसृप नामक कार्य, माघीपूर्णिमामें अभिषेचनीय याग, मरुत्वतीय नामक कार्यके बाद बृहस्पति सव नामक याग, हविर्धान नामक मण्डपके सम्मुख व्याघ्र चर्म्म (बाघाम्बर) स्थापन आदि।"

इस राजसूययज्ञमें वेदविहित होम और बलिदानादि द्वारा देवताओंकी पूजा, द्यूतक्रीड़ा, दिग्विजय और शुनःशेफीय उपाख्यान सुनना चाहिये। यह उपाख्यान ऋग्वेदमें है। इस यागमें पञ्चविध सोमयाग आदि कई अनुष्ठान करने पड़ते हैं। अतः इस यज्ञके अनुष्ठानमें समय बहुत लगता है। पवित्र नामक सोमयाग इसका प्रथम अङ्ग है। इस सोमयागके यथाविहित सम्पन्न होने पर चातुर्मास्य याग करना पड़ता है। इसके बाद देविका नामक इष्टिका अनुष्ठान और अरत्नि नामक होम करना विधिसंगत है। ये सब छोटे छोटे एक एक यज्ञ हैं। इसके बाद अभिषेचनीय नामक सोमयागानुष्ठान करना होता है। इस दिन समुद्र, नद, नदी, पुण्य सरोवर, पुण्य ह्रद (झील) आदि पवित्र जलोंको ला कर उससे चार तरहके काष्ठमय पात्रोंको मन्त्रपाठपूर्वक प्रपूरित करना पड़ता है। पलाश, औदुम्बर, पीपल और वट चार तरहकी लकड़ियोंका पात्र होना चाहिये। जलपूर्ण कलसोंका चातुर्वर्ण्य-सभाके चारों ओर स्थापन करना चाहिये।

सभाके मध्यमें खैर या औदुम्बर लकड़ीका मञ्च होना चाहिये। इस मञ्चको व्याघ्रचर्मसे मढ़ देना चाहिये। इस पर सोनेका पीढ़ा या चौकी रख कर उस पर सहस्र छिद्रवाला सोनेका एक घड़ा स्थापन करना चाहिये।

इसके बाद ब्रह्मा-पुरोहित (व्रतीविशेष) यजमानको अग्नीध्र मण्डपके बाहर ला कर कई मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये। यथाविधान मन्त्रपाठ समाप्त होने पर ब्रह्मा सभास्थ क्षत्रिय आदि व्यक्तिसमूहको सम्बोधन कर कहते हैं—"भोः भारताः अयं वः सर्वेषां राजा सोम अस्माकं ब्राह्मणानां राजा" हे भारतवासियो! ये आप लोगोंके राजा हैं। किन्तु सोम हम सभी ब्राह्मणोंके राजा है।

पीछे दिग्विजयकी इच्छा राजा प्रकट करते हैं। उस समय सारे ऋत्विक एकत्र हो कर यजमानके सर्वत्र रक्षा और जयाशीर्वादसूचक वैदिक कार्योंका अनुष्ठान करते हैं। पहले अग्नि आदि देवताओंके उद्देश्यसे होम, इसके बाद उनकी प्रार्थना एवं आशीर्वाद और देवताओंके प्रसन्नताबोधक कई वेदमन्त्र जप करना पड़ता है।

इसके बाद यजमान पत्नीके साथ पूर्वोल्लिखित स्नान करनेवाले पीढ़े पर बैठता है। पीछे अध्वर्य्यु आदि सभी

एकत्र हो कर पूर्वोक्त जलपूर्ण पात्र ले कर सहस्र छिद्र अभिषेकपात्र द्वारा उनको अभिषेक करते रहते हैं। यथाविधान अभिषेक समाप्त होने पर राजा अपने विभवके अनुसार वस्त्र, माल्य और आभरणसे भूषित हो यदि शत्रु हो, तो उसको पराजय कर अति समारोहके साथ फिर सभागृहमें प्रवेश करते हैं। शत्रु न रहने पर युद्धयात्राकी आवश्यकता नहीं।

इसके बाद सभाके चारों ओर पंक्तिक्रमसे मञ्च बनाये जाते हैं। बीचमें एक ऊँचा पीढ़ा रखा जाता है। राजा इस सुवर्णमञ्च पर बैठते हैं। उस समय सभी राजाको स्तुति और गुणगान करते हैं। इस समय जुआ खेलनेका काम होता है।

यह राजसूययज्ञ पवित्र नामक सोमयाग द्वारा आरंभ कर सौत्रामणि नामक और एक याग द्वारा समाप्त किया जाता है। साधारण सोमयागकी अपेक्षा इसमें विशेष यह है, कि अश्विनीकुमार, सरस्वती और इन्द्र इसके प्रधान देवता हैं। काष्ठनिर्मित तीन सोमपात्र और मृत्तिका निर्मित तीन सुरापात्र रखे जाते हैं।

प्राचीनकालमें राजा इस यज्ञका अनुष्ठान कर अपने कृतकार्य तथा सम्राट् समझते थे। इस यज्ञमें अर्घ्याहरण, समागत व्यक्तियोंका सत्कार, राजार्हणा आदि छोटे छोटे प्रत्यङ्ग भी हैं। इन सब अनुष्ठानोंकी भी विधि है। महाराज युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था। उसका विशेष विवरण महाभारतके सभापर्वमें लिखा है।

राजसूय यज्ञका मन्त्रादि वाजसनेय-संहिताके ६ अध्यायकी ३५ कण्डिकासे आरम्भ कर १० अध्यायमें संपूर्ण हुआ है।

राजसूयिक (सं० त्रि०) राजसूययज्ञसम्बन्धी।

राजसूयिन् (सं० पु०) राजसूय यज्ञ करनेवाला पुरोहित।

राजसूयेष्टि (सं० स्त्री०) राजसूययज्ञ।

राजसेन—रससारामृतके प्रणेता।

राजसेवक (सं० पु०) राज्ञः सेवकः। राजकासेवक, राजाकी सेवा करनेवाला भृत्य।

राजसेवा (सं० स्त्री०) राज्ञः सेवा। राजाकी सेवा।

राजसेविन् (सं० पु०) राजभृत्य, राजाका अनुचर।

राजस्कन्ध (सं० पु०) राज्ञः शोभाशाली स्कन्धो यस्य। घोटक, घोड़ा।

राजस्तम्ब (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

राजस्तम्बायन (सं० पु०) राजस्तम्बके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

राजस्तम्बि (सं० पु०) राजस्तम्बके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

राजस्त्री (सं० स्त्री०) रानी, राजमहिषी।

राजस्थलक (सं० त्रि०) एक प्राचीन स्थानका नाम। (पा० ४।२।१२७)

राजस्थली (सं० स्त्री०) एक प्राचीन जनपदका नाम।

राजस्थान (सं० पु०) राजपूताना।

विशेष विवरण राजपूताना शब्दमें देखो।

राजस्थानिक (सं० पु०) एक उच्च राजकीय पद, हाकिम। गुप्तोंके समय इस शब्दका विशेष प्रचार था।

राजस्थानीय (सं० पु०) राजस्थानिक देखो।

राजस्व (सं० पु० क्ली०) राज्ञे देयं स्वं धनं। १ राजधन, भूमि आदिका कर जो राजाको दिया जाय। २ किसी राजा या राज्यकी वार्षिक आय जो मालगुजारी, आबकारी, इन्कम टैक्स, कस्टम्स, ड्यूटी आदि करोंसे होती हो; मालगुजारी।

राजस्वर्ण (सं० पु०) स्वर्णानां धुस्तूराणां राजा राजदन्तादित्वात् परनिपातः। राजधुस्तूरक, राजधतूरा।

राजस्वामिन् (सं० पु०) विष्णु।

राजहंस (सं० पु०) हंसानां राजा श्रेष्ठत्वात् राजदन्तादित्वात् परनिपातः। १ हंसविशेष, एक प्रकारका हंस जिसे सोना पक्षी भी कहते हैं। यह प्रायः झुण्ड बांध कर उड़ता है और झीलोंके किनारे रहता है। इसके अनेक भेद हैं। इसके पैर और चोंच लाल रंगकी होती है। यह अगहन पूसमें उत्तरीय भारतमें उत्तरके ठंढे प्रदेशोंसे आता है। 'हंस' शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। २ कलहंस। ३ नृपोत्तम। ४ मगधराजभेद।

राजहंस उपाध्याय—वाग्भटालङ्कारवृत्तिके प्रणेता। ये जिनतिलक सूरिके शिष्य तथा जिनप्रभा सूरिके शिष्य थे।

राजहत्या (सं० स्त्री०) राजाका निधन।

राजहर्म्य (सं० क्ली०) राजप्रासाद।

राजहर्षण (सं० क्ली०) राजानमपि हर्षयतीति हृष-णिच्-ल्यु । तगरपुष्प ।

राजहस्तिन् (सं० पु०) राज्ञो हस्ती । राजगज, राजाका हाथी । पर्याय—मारीच याजक गज, मदोत्कट । (हारावली)

राजहार (सं० पु०) सोमरस-आहरणकारी, वह पुरुष जो यज्ञोंमें सोमरस लाता है ।

राजहासाङ्क (सं० पु०) राजानमपि हासयतीति हस्-णिच् ण्वुल् । मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली जिसे कतला कहते हैं । पर्याय—कातर, कातल, राजीव ।

राजक्षव (सं० पु०) राजसर्षप, राई ।

राजा (सं० पु०) राज कनिन् । १ नरपति । विशेष विवरण राजन् शब्दमें देखो । २ छिक्किनीवृक्ष, नकछिकनी नामक घास । ३ प्रेमपात्र, प्रिय व्यक्ति ।

राजा कुलरामन्—मद्रास-प्रदेशके तिन्नेवल्ली जिलेके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० ९° ३३´ ३०´´ उ० तथा देशा० ७७° ४०´ ३०´´ पू०के मध्य विस्तृत है । यहां स्थानीय शस्यका विस्तृत कारोबार है ।

राजाक्रोशक (सं० त्रि०) राजाको गाली देने या कोसनेवाला, राजाकी अनुचित शब्दोंमें आलोचना करनेवाला । कौटिल्यने इसके लिये जीभ उखाड़नेका दंड लिखा है ।

राजाग्नि (सं० पु०) राजाका कोप ।

राजाङ्गन (सं० क्ली०) १ राजप्रासादका आंगन । २ राजगृह ।

राजाजंग—पंजाबप्रदेशके लाहोर जिलान्तर्गत एक नगर । निम्न बारिदोआब-खाल नगरके पास हो कर बहती है, इसीसे स्थानीय वाणिज्यकी बड़ी सुविधा होती है ।

राजाज्ञा (सं० स्त्री०) राज्ञः आज्ञा । राजाकी आज्ञा, राजादेश ।

राजातन (सं० पु०) राजानं अततीति अत सातत्यगमने (बाहुल्यमन्यत्रापि । उण् २।७८) इति युच् । पियालवृक्ष, चिरौंजीका पेड़ ।

राजात्मकस्तव (सं० पु०) राजा श्रीरामचन्द्रकी वंशगीति ।

राजात्यावर्त्तक (सं० पु०) राजावर्त्त, लाजवर्द पत्थर ।

राजादन (सं० क्ली०) राजभिरद्यते इति अद् भक्षणे कर्मणि ल्युट् । १ क्षीरिका, खिरनी । २ पियाल, चिरौंजी । ३ किंशुक, टेसू ।

राजादनफल (सं० पु०) क्षीरिणी वृक्ष, खिरनीका पेड़ ।

राजादनी (सं० स्त्री०) क्षीरिणी, खिरनी । महाराष्ट्रमें—रायणी, बम्बईमें—केर्णी, तामिलमें—पलु । इसका गुण—मधुर, पित्तघ्न, गुरु, तर्पण, वृष्य, स्थौल्यकर, स्निग्ध और मेहनाशक ।

राजाद्रि (सं० पु०) १ राजगिरि । २ उद्भिद्भेद, एक प्रकारका अदरक ।

राजाधिकारिन् (सं० पु०) विचारपति, वह जो न्यायालयमें बैठ कर न्याय करता हो ।

राजाधिकृत (सं० पु०) १ विचारपति । (त्रि०) २ जो राजाके अधिकारमें आया हो ।

राजाधिदेव (सं० पु०) सूर जातिका एक क्षत्रिय वीर ।

राजाधिदेवी (सं० स्त्री०) शूरसेनकी एक कन्याका नाम ।

राजाधिराज (सं० पु०) राजाओंका राजा, शाहंशाह ।

राजाधिष्ठान (सं० क्ली०) १ राजधानी । २ वह नगर जहां राजाका प्रासाद हो ।

राजाध्वन् (सं० पु०) राज्ञः अध्वा । राजपथ, चौड़ी सड़क ।

राजानक (सं० पु०) क्षुद्रराज, छोटा राजा ।

राजानुजीविन् (सं० त्रि०) राज्ञः अनुजीवी । राजोपजीवी, जो राजकार्य करके अपनी जीविका चलाते हैं ।

"यथानुवर्त्तितव्यं स्यान्मनो राजोपजीविभिः ।
तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदतो मम ॥"

(मत्स्यपु० २१६ अ०)

राजान्न (सं० क्ली०) राजयोग्यं अन्नम्, अन्नानां राजा इति वा । १ अन्ध्रदेशोद्भव शालिविशेष, एक प्रकारका शालिधान जो अन्ध्रदेशमें उत्पन्न होता है । पर्याय—नृपान्न, राजार्ह, दीर्घशूकक, धान्यश्रेष्ठ, राजधान्य, राजेष्ट, दीर्घशूरक । इसका गुण—त्रिदोषघ्न, सुस्निग्ध, मधुर, लघु, दीपन, बलकारक, पथ्य, कान्ति और वीर्यवर्द्धक । (राजनि०) राज्ञः अन्नं । २ राजस्वामिक अन्न, राजाका अन्न । राजान्न भोजन नहीं करना चाहिए । मनुमें लिखा है, कि राजान्न भोजन करनेसे तेजकी हानी होती है ।

"राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ।
आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्म्मावकर्त्तिनः ॥"

(मनु ४।२१८)

राजापलैयम्—मद्रासप्रदेशके तिन्नेवल्ली जिलेके श्रीविल्लिपत्तुर तालुकके अन्तर्गत एक नगर।

राजापुर—१ बम्बईप्रदेशके रत्नागिरि जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १६°३०´ से १६°५५´ उ० तथा देशा० ७३°१८´ से ७३° ५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६१६ वर्गमील है। इसमें राजापुर नामक एक शहर और १८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसके उत्तरमें रत्नागिरि और सङ्गमेश्वर, पूरबमें कोल्हापुर, दक्षिणमें विजय दुर्गकी खाड़ी और पश्चिममें अरब उपसागर है। सह्याद्रिशैलका अनसकुड़ा और काजिदा नामक गिरिसङ्कट इस उपविभागमें अवस्थित है। जैतापुर बन्दर यहांका प्रधान वाणिज्यस्थान है।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० १६° ३४´उ० तथा देशा० ७३° ३१´पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ५ हजारसे ऊपर है। कोङ्कण राज्यके मध्य ऐसा प्राचीन समृद्धिसम्पन्न नगर दूसरा देखनेमें नहीं आता। अंगरेज-वणिक्-सम्प्रदायका प्रस्तरनिर्मित प्राचीन भवन अभी गवर्मेण्टके दीवानखानेमें परिणत हो गया है। नगरसे डेढ़ मील दूर कोदावली नदीके बांधसे एक बड़ा बांध तैयार किया गया है। १३१२ ई०में जब मुसलमानी सेनाने इस नगरको जीता उस समय यह नगर जिलेका प्रधान नगर समझा जाता था। १६६०-६१ और १६७० ई०में महाराष्ट्रपति शिवाजीने इस नगर और अङ्गरेजकी कोठीको लूटा था। १७१३ ई०में अंग्रियाके हाथ यहांका शासनभार सौंपा गया। १७५६ ई०में पेशवाने फिरसे यह अंग्रियासे छीन लिया। १८१८ ई०से यह अंगरेजोंके दखलमें आया है। शहरमें दो सब जजकी अदालत, दो अस्पताल और ८ स्कूल हैं।

राजापुर—युक्तप्रदेशके बांदा जिलान्तर्गत मौ तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २५° २३´उ० तथा देशा० ८१° ६´पू० यमुनाके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या छह हजारके करीब है। रामायण प्रणेता धर्मात्मा तुलसीदासजीने अकबरशाहके समय इस नगरको बसाया। उन्होंने यहां एक मन्दिरकी भी प्रतिष्ठा की थी। उनका साधु चरित्र देख उस समय कितने लोग यहां आ कर बस गये थे। उनका आदेश था, कि देवताका प्रस्तरनिर्मित गर्भपीठ वा मन्दिर छोड़ कर यहां पक्काका मकान और कोई भी नहीं बनवा सकता। यहांके अधिवासी आज भी उस आदेशका पालन करते आ रहे हैं। यहां तक, कि धनी व्यक्ति भी पक्काका मकान नहीं बनवा सकते।

यहां रुईका अच्छा कारबार होता है। वह माल नाव द्वारा इलाहाबाद और कभी कभी कानपुर तक भी लाया जाता है। यहांके बहुतसे महाजनोंके करवी चले जानेसे वाणिज्यमें भारी धक्का पहुंचा है।

राजाभियोग (सं० पु०) राजाका अपनी प्रजा पर दबाव डाल कर उसकी इच्छा न रहने पर भी उसे कोई काम करनेके लिये बाध्य करना, राजाका प्रजासे जबरदस्ती कोई कार्य्य कराना।

राजाभिषेक (सं० पु०) राज्ञः अभिषेकः ६ तत्। राजाओंका अभिषेक। राजगण यथाविधान अभिषिक्त हो कर राजदण्ड ग्रहण करते थे। यह अभिषेक बड़ी धूमधामसे होता था। संक्षेपमें इसका विषय नीचे लिखा जाता है। रामायण, महाभारत आदिमें लिखा है, कि राजा राजदण्डग्रहण करनेसे पहले यथाशास्त्र अभिषिक्त होते थे। विष्णुधर्मोत्तर, अग्निपुराण और देवीपुराण आदिमें भी यह अभिषेक-प्रणाली देखी जाती है।

मनुमें लिखा है, कि ब्राह्मण लोग क्षत्रियोंको यथाविधान अभिषिक्त कर देते थे। यह अभिषिक्त क्षत्रिय न्यायानुसार सभी प्रजाको देखभाल करता था। प्रजापालन करना ही अभिषिक्त क्षत्रियका प्रधान धर्म है।

"ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम्॥" (मनु)
'ब्राह्मं संस्कारं ब्राह्मणैः कृतमभिषेकं।" (कुल्लूक)

अभिषेकका समय—यह अभिषेक उत्तम दिन देख कर करना होता था। कुदिन वा कुक्षणमें यह अभिषेक विशेष निषिद्ध है। विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है, कि यदि हठात् राजाकी मृत्यु हो जाय और उसके बाद ही अभिषेकका उपयुक्त समय न रहे, तो जो राजसिंहासन पर बैठेंगे, उन्हें सामान्य तौरसे अभिषेक करना होगा।

'मृते राज्ञि न कालनियमोऽत्र विधीयते।" (विष्णुधर्मोत्तर)

चैत्रमास, पौषमास, भाद्रमास, मलमास तथा वर्षा ऋतुमें अभिषेक निषिद्ध है। शनि, रवि और मङ्गलकी

छोड़ कर भिन्न वारमें, चतुर्थी और नवमी भिन्न तिथिमें तथा श्रवणा, अश्विनी, पुष्या और ज्येष्ठा नक्षत्रमें राज्याभिषेक उत्तम है।

अभिषेककी सामग्री—मन्त्री, पुरोहित, दैवज्ञ और कई प्रजा, यज्ञीय वेदी, सुवर्ण कलस, चतुर्वेदाभिज्ञ पुरोहित ब्राह्मण, पहाड़ी मिट्टी, वल्मीक मिट्टी, गजदन्त मिट्टी, सरोवर, झील, देवालय, इन्द्रालय, राजप्राङ्गण, समुद्रसङ्गम, नदीसंगम, नदीका किनारा, वेश्याद्वार, गजवन्धनस्थान, अश्ववन्धनस्थान, गोष्ठ और रथचक्र इन स्थानोंकी मिट्टी, पञ्चगव्य, भद्रासन, सुवर्ण, रजत, ताम्र और मिट्टीका बना घड़ा, इनमें यथाक्रम घी, दूध, दही, और जल भरा रहना चाहिये; मधु, कुशा, एक हजार छिद्रवाला घट सब प्रकारके सुगन्ध द्रव्य, सब तरहके वीज, पुष्प, माल्य, फल, नवरत्न, नदीजल, सरोवरजल, कूपजल, चारों ओरके चार समुद्रका जल, इसी तरहका गङ्गाजल, निर्झरजल, छत्रधारी, चामरधारी, वेत्रधारी, नाना प्रकारके बाजे, सर्वौषधि महौषधि, क्षीरीवृक्षकी शाखा, दर्पण, घृतकुम्भ, उष्णीष, शुभ्रवस्त्र, तरह तरहके अलङ्कार और अस्त्र, विष्णु और ब्रह्मपूजाका द्रव्य, अष्टपट्ट, वृषादि, सात तरहके पशु, अश्व, हस्ती, रथ, दानार्थ, गाय, तिल, स्वर्ण, रौप्य, दुग्ध, दधि, घृत, मोदक, महादानका द्रव्य, माङ्गलिक द्रव्य, वाण, धनु, खड्ग और होमकी सामग्री आदि अभिषेकके पहले ये सब चीजें मंगा लेनी चाहिये।

अथर्व्ववेदके "गोपथब्राह्मण"-में राजाभिषेक-पद्धति लिखी गई है—"अथ राज्ञोऽभिषेकविधिंव्याख्यास्यामो विल्व प्रभृतीन् सम्भारसम्भारान् सम्भृत्य षोड़श कलसान् षोड़श विल्वानि वल्मीकस्य च मृत्तिकामित्यादि।" (गोपथब्रा०) पौराणिक पद्धति ही वर्णित हुई।

पूर्वोक्त सब चीजोंका आयोजन कर राजा शुभ दिन और शुभक्षणमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों प्रकारकी प्रजा द्वारा अभिषिक्त हों। अभिषेकका दिन निश्चित हो जाने पर उससे पहले किसी एक शुभ दिनको राजा पुरोहितसे ऐन्द्री नामक शान्तिका अनुष्ठान करें। निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार ऐन्द्री शान्ति करनी चाहिये।

पुरोहित अभिषेकसे पहले किसी एक शुभ दिनको यथाविधानसे मास, पक्ष और तिथ्यादिका निश्चय करें। राजाको पहले पहल 'राजाभिषेकाङ्गभूतामैन्द्रीं शान्तिमहं करिष्यामि' ऐसा संकल्प करना चाहिये। पीछे गणपतिकी पूजा कर, होता, आचार्य्य, ब्रह्मा और सदस्य इन चार प्रकारके ऋत्विक्को वरण करना चाहिये। इसके बाद कई कुशाओंको ले 'औषधात् दातु पर्णं' मन्त्रसे इस कुशाका मूलदेश त्याग कर किञ्चित ऊपरी भागको काटना चाहिये। इसके बाद 'ग्रीष्मान्ते भूमे वर्षाणि' इत्यादि मन्त्र पढ़ यथाविधान पृथ्वीको प्रणाम कर वेदीका निर्म्माण करना चाहिये। वेदीमें कुण्ड या स्थण्डिल तय्यार कर इस वेदीके ऊपर और एक महावेदी तय्यार करनी चाहिये। इस महा वेदीमें 'ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि' इत्यादि मन्त्र पढ़ कर गड्ढा करना चाहिये। यह गड्ढा फिर यथाविधान मन्त्र पाठ कर दूसरी मिट्टीसे भर देना चाहिये।

इस महावेदी पर वालू फैला कर स्थण्डिल तय्यार करना होता है। यथाविधान रेखादि खींच कर उसका संस्कार करना चाहिये। यह सब कार्य्य वैदिक मन्त्र पाठ कर ही करना चाहिये। विस्तृतिभयसे सब मन्त्रोंका उल्लेख नहीं किया गया। किसी किसी मन्त्रका प्रथमांश उद्धृत कर दिया जाता है। पीछे इस स्थण्डिल पर अग्नि संस्कार करे। इसके बाद प्रज्वलित अग्निके ईशानकोनमें एक सोनेका या चांदीका तथा तांबेका बना जलपूर्ण कलस रखना चाहिये। इस कलसेमें गन्ध, पुष्प, सर्वौषधि, दूर्वा, पञ्चपल्लव, पञ्चत्वक् (पञ्चकषाय), पञ्चगव्य, पञ्चामृत, सात तरहकी मृत्तिका, फल, पञ्चरत्न, सुवर्ण और युग्मवस्त्र—इन सब वस्तुओंको डालना चाहिये। यह कलसा यव जौ) या अरवा चावल पर रखना चाहिये। इसके सामने अग्निके पूर्व ओर गोचर्मपरिमित स्थान गोबरसे लिप कर उस पर एक श्वेत वस्त्र बिछा देना चाहिये। इस पर पञ्चवर्ण गुण्डीसे अष्टदल पद्म अङ्कित करना होता है। इस पद्ममें सुवर्णनिर्मित इन्द्रप्रतिमा प्रतिष्ठा कर यथोपयुक्त उपचार द्वारा यथाविधान पूजा करनी पड़ती है।

पूजा समाप्त होने पर यजमानको समिध ग्रहण कर

पञ्चाहुति दे कर ब्रह्मस्थापन करना चाहिये। ब्रह्मस्थापनके बाद 'होताओं' को यथाविधान होम करना चाहिये। इस तरह शान्ति कार्य्य समाप्त होने पर राजा अपनी पत्नीके साथ और कुटुम्ब लोग उनको घेर कर बैठें। उस समय बैठे हुए राजाको पुरोहित शान्तिकलसस्थित जलसे अभिषेक और पीछे आशीर्वाद करेंगे। राजाभिषेकपद्धतिमें इस अभिषेक और आशीर्वादके बहुतेरे मन्त्र हैं, विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा जाता। संक्षिप्तरूपसे लिखा गया।

राजाको अभिषेकके बाद सर्वाङ्गमें सर्वौषधि लेप कर पवित्र जलसे स्नान करना चाहिये। पीछे शुभ्रवस्त्र और शुभ्रमाल्य आदि पहन कर सपत्नीक हो कर आचार्य और पुरोहितोंको नमस्कार और उनको विविध दानादि द्वारा पूजा करना होती है। इस समय नाना महादानका विधान लिखा है।

इस तरह ऐन्द्री शान्तिका अनुष्ठान कर यथार्थ दिनमें राजाभिषेकका अनुष्ठान करना चाहिये। राजाको अभिषेकके दिनके पहले दिनको उपवास करना होगा। पीछे अभिषेकके दिन राजाको प्रातःस्नान और सन्ध्या वन्दनादि कर अभिषेकमण्डपमें उपस्थित होना आवश्यक है।

राजा शुभ्रवस्त्र और माल्यादि द्वारा सुसज्जित हो पूर्वकी ओर मुंह कर बैठें। इसके बाद देवता और ब्राह्मणको प्रणाम कर मास, पक्ष और तिथ्यादिका उल्लेख कर "सकलराष्ट्रवश्यताकामः अहं साम्वत्सरपुरोहिताभ्यामात्मानमभिषेचयिष्ये" इसी तरह सङ्कल्प करना चाहिये। सङ्कल्पके बाद गणेशादि देवताओंकी पूजा कर साम्वत्सर (दैवज्ञ) और पुरोहित प्रभृतिको वरण करेंगे। इसी समय चतुर्वेदी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि प्रधान प्रधान व्यक्तियोंको मान और दानादि द्वारा सत्कार कर समीप बैठाना चाहिये।

पुरोहित वेदी पर बैठ कर जौ पर कलसे रख कर उसे तीर्थ जलसे भर देना चाहिये। इसके बाद उन कलसोंमें सर्वौषधि, सर्वगन्ध, सर्वरत्न, सर्व प्रकारके बीज, फल, क्षीरिवृक्षकी शाखा और क्षीरवर्णा लताका पल्लव देना चाहिये।

इन सब कलसोंके समीप एक पञ्चगव्य तथा जलसे परिपूर्ण मिट्टीका कलसा रखना होता है। एक दुग्धपूर्ण चांदीका कलसा दूसरा दहीसे भरा तांबेका कलसा और मधुपूर्ण मिट्टीका कलसा, नदीजल, सरोवरका जल, कूपजल और चतुःसमुद्र-जल ये सब कलसे भी रखने पड़ेंगे। इन कलसोंकी ऊंचाई १६ उंगल होना चाहिये।

इन सब वस्तुओंके संग्रह करनेका आयोजन हो चुकने पर पुरोहित आथर्वण गृह्योक्त प्रणाली अवलम्बन कर विधिपूर्वक होम करें। होमका शेष भाग इन कलसोंमें छोड़ दें। राजा पुरोहितके दाहनी ओर दैवज्ञ, सदस्य और मन्त्रीके साथ बैठें। होमके समय यदि कोई दुर्लक्षण दिखाई दे, तो उसकी शान्ति कर देनी चाहिये।

इसी तरह प्रधान होम समाप्त होने पर ऐन्द्री शान्तिमें जो सब होमकी विधियां हैं, उन्हीं सब होमोंका अनुष्ठान विधेय है। होम समाप्त होने पर राजा स्नानादि कर शुद्ध हो कर पूर्वकल्पित स्नानशालामें जांय। पुरोहित और दैवज्ञ उस समय उनको निम्नाङ्कित प्रकारसे अभिषेक करें। पुरोहितोंको पहले राजाके मस्तकमें सहस्रशीर्षा इत्यादि मंत्रसे पर्वतमृत्तिका प्रदान करना चाहिये। पीछे कर्णमें वल्मीकमृत्तिका, क्रमसे गरदन, हृदय, दोनों हाथ, वाहु, पीठ, उदर, पार्श्व, कटि, उरुद्वय, जानुद्वय, जङ्घाद्वय, पदद्वय और अन्तमें सबसे पहले पूर्वाहृत मृत्तिका मन्त्रपूत कर लेपन करायेंगे।

इस तरह मृत्तिकास्नान समाप्त होने पर पूर्वस्थापित कलसेके पञ्चगव्यमिश्रित जल द्वारा स्नान कराना चाहिये। इसके बाद राजा उस आसनको छोड़ कर पूर्वनिर्मित भद्रासन पर बैठें।

यह भद्रासन सोने, चांदी, तांबे या क्षीरिकाकाष्ठ द्वारा बना होना चाहिये। माण्डलिक होने पर भद्रासनकी ऊंचाई और चौड़ाई १ हाथ, राजा होने पर सपादहस्त और महाराज होने पर सार्द्धहस्त परिमाण करना होगा।

अभिषेच्य राजा भद्रासन पर बैठने पर पुरोहित पूर्व ओर खड़ा हो कर पूर्व ओर रखे घीके कलसेसे अभिषेक करेंगे। पीछे क्षत्रिय जातीय अमात्य पूर्व ओर रखे दुग्ध-

के कलससे वैश्यजातीय मन्त्री पश्चिम ओर खड़े हो कर दधिपूर्ण तांबेके कलससे सामवेदी अमात्य उत्तर ओर खड़े हो कर मधुपूर्ण मृत्तिका कलससे अभिषेक करें और उन्हें कुशोदकपूर्ण मृत्तिकाकलससे स्नान कराना चाहिये। सबोंको यथायथ मंत्रपाठ कर इस अभिषेक क्रियाका सम्पादन करना चाहिये। इस तरह अभिषेकके बाद पुरोहित सदस्योंके अग्निरक्षार्थ "यूयमग्नि परिरक्षध्वम्" इस तरह अग्निरक्षाका भार अर्पण कर होम करनेके समय जिसमें आहुतिका बचा खुचा उच्छिष्ट फेंका गया है, उस सोनेका कलसा ले कर राजसूययज्ञोक्त अभिषेक मन्त्र उच्चारण कर अभिषेक करना चाहिये।

इसके बाद पुरोहित अग्निकुण्डके समीप जांय। इस समय दैवज्ञ ब्राह्मण भद्रासन पर बैठे राजाको शतछिद्र कुम्भके जलसे स्नान करना चाहिये। पीछे मन्त्रपूत सर्वौषधि, गन्धोदक, बीज, पुष्प, फल, रत्न और कुश संसृष्ट जलसे अभिषेक करना होता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि इस समय कुश, दूर्वा और पल्लवोंसे अभिषिक्त राजदेह मार्जित करनी होती है।

इसके बाद ऋग्वेदी ब्राह्मण गोरोचनयुक्त गन्धसे राजाके मस्तक और कण्ठको लिप दे। इस समय निमन्त्रित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सङ्करजातीय प्रजा गङ्गा, यमुना आदि नदियोंके जलसे राजाका अभिषेक करे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मन्त्रोंका उच्चारण करें, शूद्रादि वर्णके लोग मंत्र पाठ न करें।

इस समय प्रधान प्रधान मन्त्री हाथमें छत्र चामर तथा बेत ले कर खड़े होंगे। बाजेवाले बाजाये, वैदिक ब्राह्मण वेदध्वनि करे और वैतालिक स्तव पाठ करें।

इसके बाद दैवज्ञ सब कुम्भोंके अवशिष्ट जलको एक घड़ेमें रख हाथमें कुश ले इस जलसे—"सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।" इत्यादि शान्तिमन्त्र द्वारा शान्ति दान करनेके बाद राजाको गन्धादि लेपन द्वारा शुद्ध जलसे स्नान करना चाहिये। पीछे मस्तकमें श्वेत उष्णीष, शरीरमें शुभ्र परिच्छद और हाथमें धनु या कोई उत्तमास्त्र ले कर राजा दर्पण और घृतकुण्डमें अपने प्रतिबिम्बको देखें। इस समय राजा घृतकुण्ड तथा सुवर्ण दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको दान कर माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श करें। इसी तरह माङ्गलिक चीजोंको छू कर ब्राह्मणोंकी पूजा करें।

इस समय दैवज्ञ राजाके ललाटमें पट्ट और मस्तकमें मकुट पहनावे। इसके बाद राजा मञ्च या राजासन पर बैठें। यह मञ्च या आसन ऊपरसे चर्म या वस्त्र द्वारा आवृत रहना चाहिये। चर्ममें भी पहले वृषचर्म (बैलका चमड़ा), उस पर बिल्लीका चमड़ा, उसके बाद तरक्षु, उस पर सिंहचर्म, उस पर व्याघ्रचर्म, उस पर बहुमूल्य वस्त्र बिछा देना चाहिये। राजा इस सिंहासन पर बैठ कर सभी राजाओंके दर्शनके योग्य होंगे। प्रजा इस समय राजाको नजर न्यामत पेश करे। कोई भी खाली हाथ राजाका दर्शन न करे।

पीछे राजा अभिमन्त्रित व्यक्तियोंको यथायोग्य सम्मानित कर माङ्गलिक द्रव्योंका स्पर्श कर दानादिका काम करना चाहिये। पीछे राजाको धनुषबाण हाथमें ले कर यज्ञादिकी प्रदक्षिणा तथा नमस्य व्यक्तियोंको नमस्कार करना चाहिये। इसके बाद राजा एक महा वृष और सवत्सा गोको खड़ा कर उसकी पीठ पर हाथ फेरें।

इस समय पुरोहितको एक सुलक्षणयुक्त उत्तम अश्व और एक महाहस्ती ला कर उनको मन्त्रोच्चारण पूर्वक सर्वौषधिवाले कलससे अभिषेक करना चाहिये। इसके बाद राजा उनकी पीठको स्पर्श करें। बाद उन पर राजा चढ़ें। प्रधान मन्त्री, पुरोहित और दैवज्ञ आदि भी दूसरे हाथी पर चढ़ें। पीछे सभी एकत्र हो कर नाना प्रकारके बाजे और समारोहके साथ नगर परिभ्रमण कर फिर नगरमें प्रवेश करें। इसी समय नाना प्रकारके आनन्दोत्सव करना चाहिये।

नवाभिषिक्त राजा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्यान्य आमन्त्रित अभ्यागतोंको भोजन करा कर दान आदिसे समुचित सत्कार करें। दीन, दरिद्र, अनाथ और अन्धे, लंगड़े, खञ्ज आदिको यथाशक्ति दान देना चाहिये।

राजा इसी प्रकार अभिषिक्त हो कर यथाशास्त्र छः उपायोंसे प्रजापालन करें। (राजाभिषेकपद्धति)

राजामहेन्द्री—१ मान्द्राज-प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १६° ५१' से १७° २९' उ०

तथा देशा० ८१° ३६' से ८२° ५' पू०के मध्य गोदावरीके बाएं किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ३५० वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसमें २ शहर और ८५ ग्राम लगते हैं। यहांकी प्रधान उपज धान, रब्बी, तमाकू और तेलहन है।

२ उक्त तालुकके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध नगर। हिन्दू-राजाओंके समय यह राजमहेन्द्र नामसे प्रसिद्ध था। यह अक्षा० १७° १' उ० तथा देशा० ८१° ४६' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ३५ हजारके करीब है। हिन्दू-की संख्या ज्यादा है।

यह नगर बहुत प्राचीन है। किसने इस नगरको बसाया और कब, यह ले कर बहुत मतभेद है। कोई तो उत्कलराजको और कोई चालुक्यराजको इसके स्थापयिता बतलाते हैं। ७वीं सदीमें यहां कलिङ्गदेशकी राजधानी थी। १४७१ ई०में मुसलमानोंने इसे दखल किया। १५१२ ई०में कृष्णरायने इस नगरको पुनरुद्धार कर उत्कलपतिको लौटा दिया। इसके बाद ६० वर्ष तक यह हिन्दूके अधिकारमें रहा। १५७१ और ७२ ई०में यह नगर लगातार दो बार आक्रान्त हुआ। आखिर मुसलमान सेनापति रफत् खांने इस पर दखल जमाया। डेढ़ सौ वर्ष तक यहां युद्ध चलता रहा था। अन्तिम युद्धमें यह गोलकुण्डाके हाथ आया। १७५३ ई०में यह स्थान फरासियोंको दे देना पड़ा। १७५४से १७५७ ई० तक इसी शहरमें फरासी सेनानायक बूसीकी सदर कचहरी रही। १७५८ ई०में अङ्गरेज द्वारा जीते जाने पर भी यह फिरसे फरासीके अधिकारमें चला आया। किन्तु यहां रहना सुविधाजनक न देख कर फरासी लोग यहांसे उठ कर चले गये। शहरमें जज और कलक्टरकी कचहरी, डाकघर, तारघर, जादूघर, बहुतसे गिरजे और सुन्दर उद्यान हैं। इनके अलावा उच्चश्रेणीका कालेज, जिला स्कूल शिक्षकका ट्रेनिङ्ग कालेज और एक म्युनिसपल अस्पताल है।

राजाम्र (सं० पु०) आम्राणां राजा श्रेष्ठत्वात्, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। आम्रविशेष, एक प्रकारका आम। यह सामान्य आमोंसे बड़ा होता है और इसमें गुठली छोटी होती है। इसके पेड़ोंसे कलम उतारी जाती है जो छोटी होने पर भी अच्छे और बड़े फल देता है। इसके फलपकने पर मीठे होते हैं और सामान्य आमोंकी अपेक्षा उनमें रेशा कम होता है। बंबई, लंगड़ा, मालदह, सफेदा आदि इसी जातिके आम हैं। पर्याय—राजफल, स्मराम्र, कोकिलोत्सव, मधुर, कोकिलानन्द, कालेष्ठ, नृपवल्लभ। वैद्यकमें इसे पित्तवर्द्धक और पकने पर बल-वीर्यप्रद माना है।

राजाम्ल (सं० पु०) अम्लानां राजा श्रेष्ठत्वात्। अम्लवेतस, अमलबेत।

राजा रणधीरसिंह—ये शिरमौर जातिके क्षत्रिय थे तथा सिंगरामऊके रहनेवाले थ। इनके यहां कवियोंका बड़ा सम्मान था। 'भूषणकौमुदी' और 'काव्यरत्नाकर' दो ग्रन्थ भी इन्होंने बनाये हैं। ये सिंगरामऊवालेके नामसे काव-समाजमें बड़े आदरकी दृष्टिसे देखे जाते हैं।

राजा राजवल्लभसेन—ढाकाके विख्यात वैद्यराजा। वैद्यवंशमें राजा श्रीहर्ष बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति थे। वीरभूममें सेनभूम जो परगना है, उसीके वे अधिपति थे। उनके दो पुत्र थे—कमल और विमल। विमलसेनके पुत्र विनायकसेन हुए। विनायकके पुत्र धन्वन्तरिसेन, धन्वन्तरिके पुत्र गाण्डेयो सेन और गाण्डेयोके पुत्रका नाम हिंगुसेन था। विनायकसेनके और भी अनेक पुत्रसन्तान थे। यह राढ़ीय शाखाके अन्तर्गत थे।

हिंगुसेन राढ़ परित्याग कर यशोरके अन्तर्गत सेनहाटी नामक ग्राममें आ कर रहने लगे। पहले इसका नाम था—छूंचहाटी। सेन महाशयने आ कर इस गांवका नाम सेनहाटी रख दिया। हिंगुसेन आदिके छः भ्राताओंमें केवल उन्होंने ही पैतृक कौलीन्य-मर्य्यादा प्राप्त की थी।

"षण्णां मध्ये हिंगुसेनः कौलीन्ये ख्यातिमीयिवान्।
राढ़ं त्यक्त्वा सेनहट्टनगरी मध्यवासकः॥"

(कविकण्ठहारकृत कुलपञ्जिका)

हिंगुसेनका पुत्र उज्वली, डमन, विकर्त्तन, बलभद्र, हल और कमलसेन। इन सब वंशोंमें कोई कुलीन और कोई मौलिक निर्णीत हुआ। बलभद्रवंशके लोग पीछे मौलिक ही कहलाये।

बलभद्रसे षष्ठस्थानीय यशचन्द्रसेन हुए। राजाने

इनको खांकी उपाधि दी थी। पीछे यह इटना नामक ग्राममें जा बसे। यशचन्द्रके पुत्र गोविन्द सेन और गोविन्दसेनके पुत्र रामभद्र और वेदगर्भ हुए।

विद्याभ्यास करनेके लिये वेदगर्भ विक्रमपुर गये। पीछे वे वहां ही विवाह कर दायनीया ग्राममें रहने लगे। पीछे धनोपार्ज्जन कर उन्होंने दायनीया, जपसा, भोजेश्वर आदि कई ग्राम खरीदे। वेदगर्भके पहले पुत्रका नाम नीलकण्ठसेन था। ये जपसामें जा कर रहने लगे। इन्हींके वंशमें जपसाके लाला बाबू और 'कौड़ी' उपाधिधारी व्यक्ति आविर्भूत हुए। वेदगर्भके दूसरे पुत्र श्रीकृष्ण सेन दायनीया ग्राममें रहने लगे।

श्रीकृष्णके चतुर्थ स्थानीय कृष्णजीवन मजुमदार, देवीदास बसुके अधीन ढाकाके कानून-गो सिरिस्तेमें मुहरिर हुए। उनके चार पुत्र हुए—१ राजाराम, २ धनीराम, ३ राजवल्लभ, ४ रामराम। सन् १६६८ ई०में राजवल्लभ सेनका जन्म हुआ।

राजवल्लभ शैशवावस्थामें हो पितृहीन हुए। उनके कई जप्सावासी ज्ञाति भाइयोंने दीवान कृष्णराम रायके घर रह कर विद्याभ्यास किया। पीछे राजाराम विक्रमपुर परगनाके तहसीलदार हुए और राजवल्लभ कानूनगोके सिरिस्ताके मुहर्रिर हुए। यह सन १७१७ ई०की बात है। सन् १७३४ ई०में मुर्शिदकुली खां ढाकेके नायब नाजिम हुए और यशवन्त राय उनके दीवान हुए। इन्हीं यशवन्तके अनुग्रहसे राजवल्लभसेन नौराके मुहर्रिर मुकर्रर हुए। इसके बाद सैयद रजी खांके पुत्र मुराद ढाकेके नायब सुबेदार हुए। उनके व्यवहारसे असन्तुष्ट हो कर यशवन्त रायने काम छोड़ दिया।

सरफराज खांके शासनान्तमें जब अलीवर्दी खां नवाब हुए, तब निवाइस महम्मद ढाकेके नायब नवाब हुए। किन्तु वे मुर्शिदाबादमें रह कर ही अपने प्रतिनिधि हुसेन कुलीसे शासनकार्य सम्पन्न कराते थे। इस मुराद अलीके अनुग्रहसे ही राजवल्लभ पेस्कारके पद पर पहुंच गये।

इस समय ढाकेमें हुसेनकुली खांका प्रभाव फैल गया। उनके प्रिय पात्र गोकुलचांद पेस्कार (Collector general and Commissary of the province of Dacca) हुए। किन्तु गोकुलचांद अपने प्रभु हुसेनकुली खांसे नाराज हो कर अलीवर्दी खांसे शिकायत करने पर हुसेनकुली पदच्युत कर दिये गये। अन्तमें अलीवर्दीकी ज्येष्ठपुत्री निवाइस महम्मदकी स्त्री घसेटी बेगमकी सहायतासे और प्रेमसे हुसेनकुली फिर अपने पद पर पहुंच गये। इसके बाद उसने हिसाबमें गड़बड़ी कर गोकुलचांदका सर्वनाश कर दिया। गोकुलचांदके पद पर राजवल्लभ नियुक्त किये गये।

हुसेन कुलीने राजवल्लभकी प्रतिभाका परिचय पा कर उनको अपने सहकारी पद पर नियुक्त कर मुर्शिदाबादसे राजोपाधि प्राप्त करा दी।

इसके कुछ दिन बाद नवाब अलीवर्दी खां अपनी मृत्यु निकट समझ अपने प्रिय नाती और पोष्यपुत्र सिराजुद्दौलाको राज्यका उत्तराधिकारी स्थिर किया। इधर घसेटी बेगमने अपने पोष्यपुत्र अकरम उद्दौलाको राज्यका उत्तराधिकारी स्थिर किया। सिराजुद्दौलाकी चेष्टासे घसेटी बेगमके प्रिय हुसेनकुलीकी हत्या की गई। इसके बाद हुसेनकुलीकी जगह निवाइस महम्मद दीवान हुए। निवाइस अपने जीवनके अधिकांश समय मुर्शिदाबादमें ही बिताते थे। अतएव इस समय उनके सहकारी राजवल्लभ ही ढाकेमें एक तरहसे सर्वेसर्वा थे।

प्रयोजन समझ कर हम यहां पर एक बातका उल्लेख करते हैं—अर्मीका कहना कभी नहीं सत्य है, कि राजवल्लभ घसेटी बेगमके साथ अवैध प्रणयमें फंस गये थे। सायर मुताक्षरीणकारने हुसेनकुलीसे संबंध पेसा दोषारोप किया था।

अंग्रेज इतिहास लेखकोंने लिखा है, कि राजवल्लभ निवाइसके प्रतिनिधि या नायबरूपसे ढाकेमें यथेष्ठ प्रजापीड़न तथा विदेशी सौदागरों पर घोर अत्याचार करते थे। यह सन् १७५४की घटना है। उन्होंने अंगरेज और फ्रांसीसी वणिकोंसे जुलम कर ४३००) रुपया वसूल किया।* थोड़े ही दिनोंमें उनका इतना प्रभुत्व बढ़ गया,

* Selection from the Records of Govt. of India.

कि उनके पुत्र कृष्णदासको लोग 'नवाब' कहने लगे थे। इस समय मीर अबुतलबने कृष्णदासका नायब रह कर विदेशीय वणिकों पर यथेष्ट अत्याचार किया था। उनकी आज्ञासे एक हालेण्डवासी कैद कर लिया गया था।

निवाइसकी मृत्युके बाद राजवल्लभ घसेटी बेगमके सब विषयोंके परामर्शदाता हो गये। इसलिये उनको मुर्शिदाबादमें रहना पड़ा। बेगमकी ओरसे युद्धका आयोजन चल रहा था। जब बेगमने देखा, कि अलीवर्दीके जीवनकी कुछ भी आशा नहीं, तो वह मुर्शिदाबादको छोड़ कर मोतीझीलके निकट एक कोस दक्षिण हट छावनी डाल कर दश हजार सैनिकोंके साथ रहने लगी।

यह उद्योग देख कर नगरके लोग कहने लगे, कि बेगम साहिब की ही विजय होगी। राजवल्लभ युद्धविद्या जानते थे। यह वे अच्छी तरह जानते थे, कि जयपराजय अनिश्चित है। उन्होंने लोगोंकी बात पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने यह सोचा, कि यदि हार हुई तो दुर्गकी सारी सम्पत्ति सिराजुद्दौला जब्त कर लेगा। इस तरह उन्होंने यह सोच कर अपने मध्यम पुत्र कृष्णदासको हुक्म दिया, कि तुम सारी सम्पत्तिके साथ कलकत्तेमें ड्रेक साहबके अधीन रहो। कृष्णदास जगन्नाथजीके दर्शनका बहाना कर कलकत्ते चले आये। उस समय अंगरेज सामान्य व्यवसायी थे। किला बनवाने तथा सैन्य रखनेका अधिकार उनको न था। दाक्षिणात्यमें फ्रान्सीसी गवर्नर डुप्ले प्रादेशिक राजा और सूबेदारोंके परस्पर गृह-विवादका अवलम्बन कर उनके राज्याधिकारका जो प्रयास कर रहे थे, उस समय अंगरेज-वणिक् भी इसी ताकमें थे। बङ्गालके सूबेदारका गृह-विच्छेद देख कर अंगरेज किसी एक पक्षका साथ देना चाहते थे। ऐसे समय राजवल्लभने काशिमबाजारकी कोठीके अध्यक्ष वाट्स् साहबसे प्रार्थना की, कि आप मेरे पुत्रको आश्रय देनेके लिये कलकत्तेके ड्रेक साहबको लिख दें। वाट्स साहब जानते थे, कि घसेटी बेगमका पक्ष ही प्रबल है। इससे उन्होंने ड्रेक साहबको राजवल्लभके अनुरोधकी रक्षा करनेके लिये एक पत्र लिखा। इस समय ड्रेक साहब वायुसेवनके लिये बालेश्वर गये थे। किन्तु कौन्सिलके अन्यान्य सदस्योंने कृष्णदासको आश्रय देना निर्द्धारित किया था। इसके कई दिनके बाद ही कृष्णदास कलकत्ते पहुंचे। अमीचांदने बड़े आदरके साथ उन्हें अपने घरमें स्थान दिया। कलकत्तेमें कृष्णदासको अङ्गरेजोंके आश्रय देनेकी बात सिराजुद्दौलाको मालूम हुई। इस समय भी अलीवर्दी खांकी मृत्यु हुई न थी। काशिमबाजारकी कोठीके डाक्टर फर्थ साहब उनकी चिकित्सा कर रहे थे। फर्थ साहबके सामने ही अलीवर्दी खांसे सिराजने कहा, "पितः! अङ्गरेजोंने बेगमका पक्ष लिया है। फर्थ साहबने इस बातको बिलकुल नामञ्जूर किया। सिराजने फिर कहा, कि जो मैंने कहा है, उसका मैं प्रमाण दे सकता हूं। जो हो, अलीवर्दी खांने अंगरेजोंके उस समयकी सैन्यसंख्या, कोठी, या दुर्ग, युद्ध-जहाज, फ्रान्सीसियोंके साथ युद्धकी सम्भावना आदि कई विषयोंमें कई प्रश्न फर्थ साहबसे पूछ कर तथा उनके जवाबको सुन कर सिराजुद्दौलासे कहा, कि तुम्हारी बात पर मैं विश्वास नहीं करता। फर्थ साहब वहांसे चले गये। अलीवर्दी खांने सिराजसे कहा, कि तुम विदेशी वणिकोंका दमन न कर सको तो तुम्हारा यह राज्य स्थायी नहीं हो सकता। सबसे पहले अंगरेज वणिकोंका दमन करना तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है। इस घटनाके कुछ दिनोंके बाद अलीवर्दीकी मृत्यु हो गई। इसके बाद सिराजुद्दौलाने बङ्गालकी राजगद्दी इख्तियार की। सिराजुद्दौलाने गद्दी पर बैठते ही मेदिनीपुरके राजा और दौत्यविभागके अध्यक्ष रामरामसिंहके भाईको पत्र दे कर कलकत्तेके ड्रेक साहबके पास भेजा। पत्रमें लिखा था, कि कृष्णदासको पत्रवाहकोंके हाथ सौंप दो।

सन् १७५६ ई०की १६वीं अप्रेलको वे कलकत्ते पहुंचे। कृष्णदासको इन सबोंके हाथ सौंपा जायगा या नहीं—इसके लिये कौन्सिलकी एक बैठक हुई। अमीचांद भी इसमें उपस्थित थे। अमीचांदने कौन्सिलमें यह बात युक्तिप्रमाणके साथ कही, कि नवाबकी बातोंकी अवहेला करने पर बहुत बड़ी विपद्में फंसना

होगा। सिराजुद्दौलाके साथ बेगमके झगड़ेका उस समय तक भी निबटारा नहीं हुआ था। इसलिये अंगरेज़ोंने बेगमका पक्ष लिया था। अंगरेज़ोंने देखा, कि इससे हो उनका हितसाधन हो रहा है बेगमके बलाबल तथा युद्धमें जय-पराजयकी बात न समझ कर कृष्णदासको सहसा सौंप देना उन्होंने उचित नहीं समझा। नवाबके भेजे आदमियोंको साहबोंने विश्वास नहीं किया, कि ये नवाबके भेजे हुए हैं। यद्यपि वे बड़े सम्भ्रान्त पुरुष थे। उन्होंने इनका अपमान कर वहांसे भगा दिया। साहब जानते थे, कि इस कार्य्यसे सिराज क्रोधित होगा। यह जान कर उन्होंने वाट्स साहबको पत्र लिखा, कि नवाब रंज हो कर हम लोगोंका कुछ नुकसान न पहुंचा सकें,—इसके लिये आप यत्नवान् रहें। सिराजको सब बातें मालूम हो गईं। इस समय भी उनका बेगमके साथ कुछ समझौता नहीं हुआ था। सुतरां सामान्य वणिकसम्प्रदाय द्वारा अपदस्थ और अपमानित होने पर भी उन्होंने चूं तक न किया।

कुछ दिनोंके बाद अलीवर्दी खाँकी विधवा बेगमके यत्नसे घसेटी बेगमके साथ सिराजुद्दौलाका समझौता हो गया। इधर फ्रांसीसियोंके साथ अंगरेज़ोंका युद्ध होना अनिवार्य्य हो गया। अंगरेजी कोठीके साथ किलेकी मरम्मत करनेकी आवश्यकता पड़ी। सिराजुद्दौलाने सकतजङ्गको दमन करनेके लिये पूर्णियाकी यात्रा की। रास्तेमें ही अङ्गरेजोंके किलेकी मरम्मतकी बात उनको मालूम हुई। इस पर सिराजुद्दौलाने ड्रेक साहबको लिख भेजा, कि किलेकी मरम्मत नहीं की जा सकती। किलेमें जो अंश अधिक बनवाया गया है। वह गिरा दिया जाय और साथ ही कृष्णदासको मेरे हाथ सौंप दिया जाये। ड्रेक साहबने शीघ्र ही किलेकी मरम्मतकी आवश्यकता बतला कर नवाबके पत्रका उत्तर भेजा। १७वीं मईको नवाबको ड्रेक साहबका पत्र मिला। उन्होंने अङ्गरेजोंको दमन करनेके लिये कलकत्तेको यात्रा की। अङ्गरेज शान्त हुए। कृष्णदास और अमीचांद नवाबके सामने लाये गये। किन्तु भद्रताके साथ उनसे नवाब पेश आये।

सिराजके दुर्भाग्यसे तथा उनके प्रधान राजकर्मचारीकी बदनियतीसे नवाब थोड़े ही दिनोंमें अपने राज्यसे हाथ धो बैठे।

अफीमची मीरजाफर बङ्गालके सिंहासन पर बैठे। वे राजवल्लभको चतुर और कार्यदक्ष जानते थे। इसीलिये उनको उन्होंने मन्त्री तथा उनके पुत्र कृष्णदासको ढाकेका शासक नियुक्त किया।

इसी समय सम्राट् (शाहआलम)-ने राजवल्लभको मुंगेरका सूबेदार बनाया और उनको "महाराज राजवल्लभ रायराइया सलारजङ्ग बहादुर" उपाधिसे सन्मानित किया। साथ ही एक तलवार पुरस्कारमें भेजी।

इस तरह कृष्णदास ढाकेके शासनकार्यमें और राजवल्लभ मुंगेरकी सुबेदारी पद पर नियुक्त हो कर सुचारुरूपसे काम करने लगे। पीछे मीरजाफरने कृष्णदासको "राजा बहादुर" उपाधि प्रदान कर मन्त्री पद पर नियुक्त किया। कुछ दिनोंके बाद राजा रामनारायण कर्मच्युत हुए। मीरजाफरने इस पदको राजवल्लभके तीसरे पुत्र गङ्गादासको दिया।

मीरजाफरके शासनकालमें वैद्यराज राजवल्लभकी बहुत कुछ प्रतिपत्ति हुई थी। राजवल्लभ गुप्त मन्त्रणाके एक भागीदार थे। उस समयके एक कागजमें यह बात दिखाई देती है, कि राजा राजवल्लभ और मीरनने अङ्गरेजोंको भारतसे भगा देनेके लिये साजिस की थी। जो हो, नवाब मीरकासिमकी अन्तिम अवस्थामें राजवल्लभ एक तरहसे मुंगेरमें नजरबन्द थे।

मीरकासिमने भगेड़ू सैन्यके साथ मिल जानेका विचार किया और सम्मिलित होनेसे पहले ही वे राजा राजवल्लभ और उनके पुत्र कृष्णदास और अन्यान्य कैदियोंको बांध कर किसी पात्रमें गले तक बालू भर कर उन्हें गङ्गाजीमें छोड़वा दिया। इस तरह इनको प्राणदण्डकी क्रिया समाप्त हुई।

इस तरह राजा राजवल्लभने ६५ वर्षकी अवस्थामें पुत्रके साथ सन् ११७० सालमें श्रावण महीना सोमवारकी सन्ध्याको मुंगेरके निकट भागीरथीमें प्राणत्याग किया।

राजवल्लभकी मृत्युके बाद उनके पांच पुत्रोंमें जमींदारी बंट गई। जमींदारीकी आय १४ लाख रुपये सालानेकी थी।

राजवल्लभके प्रथम पुत्र रामदास और चतुर्थ पुत्र रतन कृष्ण उनकी जीवितावस्थामें ही मर गये। इस लिये उनके गोदके पुत्रोंको हिस्सा नहीं मिला। केवल उनके भरणपोषणके लिये प्रत्येकको ५००) महीनेकी वृत्ति मिलने लगी।

राजा कृष्णदास बहादुरके तीन पुत्र (राजकृष्ण, हृदय-कृष्ण और रमणकृष्ण) को जमीन्दारीका एक अंश मिला। प्राणकृष्ण निःसन्तान अवस्थामें परलोकगामी हुए। उनकी विधवा पत्नीने जिन काशीचन्द्रको गोद लिया था, उनको भी हिस्सा नहीं मिला। रानियों और पोष्यपुत्रोंके पेन्सन देने तथा मामला मुकद्दमेमें जो खर्च हुआ, उसमें जमीन्दारीका अधिकांश भाग नीलाम हो गया।

दीवान रामदासके चरित्रके सम्बन्धमें आज भी ढाकेमें कई बातें सुनी जाती हैं; किन्तु राजकार्य तथा लोक-हितकर कार्योंमें उनकी बड़ी प्रशंसा होती है। उन्होंने तालतलाके निकटवर्त्ती मेघनासे विक्रमपुरके बीच हो कर प्राचीन कालीगङ्गा तक एक नहर खुदवा कर सर्वसाधारणका यथेष्ट उपकार किया। तालतलेकी काली भी उन्हींके द्वारा प्रतिष्ठित हुई जान पड़ती हैं।

राजवल्लभकी मृत्युके बाद उनके तीसरे पुत्र गङ्गा-दास कुछ दिनों तक राजत्व कर मृत्युमुखमें पतित हुए। राजाके पांचवें पुत्र गोपालकृष्णने राजकार्य्यका भार लिया। इसी समय कार्त्तिकपुरकी जमींदारीको दखल करते समय वहांके मुंशी-खान्दानके मुसलमानोंसे एक युद्ध हो गया। एक हजारसे अधिक आदमी युद्धमें मारे गये थे। राजपक्षने जयी हो कर जमींदारीको दखल कर लिया। कहते हैं, कि इसी अपराधमें अंगरेजोंके राजत्वमें राय गोपालकृष्णको ढाई घण्टे कैदकी सजा हुई थी।

राजवल्लभके वंशका अधःपतन होने पर नौदारके दीवान राय मृत्युञ्जयवंश राजनगरमें प्रबल हो उठे। प्रकृत इसी वंशने राजनगरके मानसम्भ्रमकी रक्षा की थी। राय मृत्युञ्जय कुराशी ग्राममें बहुतेरे शिवलिङ्ग, मठ प्रतिष्ठा और तालाब खुदवाये थे। कीर्त्तिनाशानदीके किनारे पड़ जानेके कारण राजनगर छिन्न विच्छिन्न हो गया। राजवल्लभके वंशज पाल थानेमें और राय मृत्युञ्जयके सन्तान कुराशी ग्राममें आ कर रहने लगे।

इसी समय दायनीया ग्राममें कई सौ अट्टालिकायें निर्मित कर और सरोवर खुदवा कर इस ग्रामका नाम राजनगर रखा गया। नवरत्न राजवल्लभके पिताके समय शतरत्न राजवल्लभके समय और एकुशरत्न राय गोपाल-कृष्णके समयमें निर्मित हुआ।

सिवा इसके राजसागर, महासागर, रानीसागर आदि झील राजवल्लभ द्वारा, कृष्णसागर तत्पुत्र कृष्ण-दास और शुकसागर उनके भतीजे राय मृत्युञ्जय द्वारा खुदवाया गया था। राजा राजवल्लभने अग्निष्टोम, वाजपेय आदि यज्ञानुष्ठान किये थे। यह निर्णय करना कठिन है, कि इन कार्य्योंमें कई लाख रुपये खर्च हो गये।

राजवल्लभ वैद्यवंशमें एक श्रेष्ठ भाग्यवान् व्यक्ति थे। अठारवीं शताब्दी या इसके बाद इस वंशमें वैसे मनुष्य-जन्म नहीं हुए। राजवल्लभ समग्र बङ्गालके वैद्य-समाज-पति थे। श्रीखण्डके भूतनाथदेवका मन्दिर उनके द्वारा निर्मित हुआ था। बनारसके बङ्गाली टोलेमें उनकी कोठी आज भी विद्यमान है। उनके द्वारा ब्रह्मोत्तर, देवोत्तर तथा वृत्तियां दी गई थीं। राजवल्लभकी प्रायः अधिकांश जमींदारी लक्ष्मीनारायणके नामसे थी। वासुदेवके नामसे भी कितने तालुक थे।

वाखरगञ्ज जिले बोजेरगो परगने उमेदपुर और सलेमाबादके ॥≠) हिस्सा आगावाखरके जमींदारी थी। विद्रोहके अपराधमें उनकी और उनके भाईकी जमीन्दारी जब्त हो गई। इसके बाद बाजेरगो, उमेदपुर और सलेमा-बाद राजवल्लभके हाथ आया। सिवा इसके कार्त्तिकपुर, सुजाबाद, विक्रमपुर और ढाके जलालपुरमें भी कई स्थान उनके अधिकारमें आये। इसी तरह सदर राजस-

को छोड़ कर नौ लाख रुपयेकी सम्पत्ति उनके हाथ आई। राजवल्लभ पण्डितपोषक भी थे। कृष्णदेव विद्यावागीश, कृष्णदास सिद्धान्त और कवि राजचन्द्र मजुमदार आदि उनके सभासद हुए। उनके द्वारा बहुदेवताकी प्रतिमायें प्रतिष्ठित हुई थीं। राजनगरकी देवसेवाके लिये कुछ देवत्र सम्पत्ति रख गये थे। उसके द्वारा आज भी सेवापूजा हो रही है।

राजा राजवल्लभ एक कर्मठ, बुद्धिमान् और विचक्षण व्यक्ति थे। सहज ही दूसरेके मनको आकर्षित करनेकी उनमें क्षमता थी, इसी गुणसे वे एक सामान्य मुहर्रिर हो कर भी एक तरहसे ढाकेके अधीश्वर हो गये थे। उनकी राजधानी राजनगरमें थी। इसमें सन्देह नहीं, कि उनके द्वारा निर्मित प्रासाद और देवालय आदि कीर्त्तियां एक दर्शनीय वस्तु होतीं, यदि गङ्गा उन्हें अपने गर्भमें न ले जातीं। बहुतोंका कहना है, कि राजा राजवल्लभकी कीर्त्तियोंका नाश कर पद्माने अपना कीर्त्तिनाशा नाम बदल लिया है।*

राजा राजवल्लभकी असाधारण उन्नतिके साथ उनकी समाजसंस्कारमें भी रुचि अधिक थी। उस समयके ऐतिहासिक वार्ड साहबने लिखा है, कि राजा राजवल्लभने कई स्थानोंके ब्राह्मणोंकी व्यवस्थासे अपने समाजमें यज्ञोपवीत-संस्कारका प्रवर्त्तन किया था।† इसके लिये मुर्शिदाबादके मकानमें एक वृहत् पण्डित-सभा एकत्र हुई थी। समाजकी उन्नतिका विधान कर वे पूर्ववङ्गके समाजके समाजपति हुए थे। सुना जाता है, अपनी एक बालविधवा कन्याकी दुरवस्था देख कर उन्होंने समाजमें अक्षतयोनि बालविधवाके पुनर्विवाहकी रीति प्रवर्त्तित की थी। इस प्रवर्त्तनमें उन्होंने पण्डितोंकी सम्मति और व्यवस्था ली। नवद्वीपके राजा कृष्णचन्द्र उनके विरोधी हो गये, इसीसे वे इस काममें सफल नहीं हो सके।¶

राजा राजवल्लभ सोम—दक्षिणराढ़ीय कायस्थवंशीय एक महामान्य और प्रसिद्ध व्यक्ति। ये बङ्गालके नायब सूबेदार महाराज जानकीरामके पौत्र और उड़ीसाके अन्यतम सूबेदार दुर्लभरामके पुत्र थे। सिराजके राज-सिंहासन लाभके पूर्व उन्होंने प्रथम सूबेदारका 'बख्शी' (Paymaster-General of the forces) पद प्राप्त किया। इसके बाद सिराजुद्दौलाके समय वे "रायरायाँ" (Fenancial minister) और खालसाके मुद्राधिकारी (Comptroller-general) पद पर नियुक्त हुए। इसके लिये सिराजुद्दौला द्वारा मुर्शिदाबाद जिलेमें उनको जागीर मिली थी। ईष्ट-इण्डिया कम्पनीके सर्वप्रथम लगानके बन्दोवस्त करनेमें राजवल्लभने लार्ड क्लाइवका यथेष्ट साहाय्य किया। पलासीयुद्धके बाद राजवल्लभ कलकत्तेके बागबाजारमें आ कर रहने लगे। बागबाजारमें जहां वे रहते थे, वहां उनका बहुत बड़ा मकान था। उस जगहको इस समय 'राजवल्लभ पाड़ा' कहा करते हैं। उनके नामसे राजा राजवल्लभ घाट और राजवल्लभ ष्ट्रीट आज भी विद्यमान हैं।

ईष्ट-इण्डिया कम्पनीके नाना कार्योंमें सहायता देनेके लिये लार्ड क्लाइवने उनको उपयुक्त पारितोषिक देनेकी इच्छा प्रकट की थी। किन्तु उन्होंने अपनी पदमर्यादाका ध्यान कर अस्वीकार कर दिया। उनके समयमें राढ़ीय कायस्थ-समाजमें वे ही गणमान्य थे। राजा नवकृष्ण बहादुरके मातृश्राद्धमें बङ्गालके सब प्रधान प्रधान राजाओं और जमींदारोंके उपस्थित रहने पर भी श्राद्ध-सभामें महाराज राजवल्लभको ही श्रेष्ठ आसन मिला था।

सन् १२०५ सालमें राजवल्लभकी मृत्यु हुई। उसके तीन वर्ष पहले उनके एकमात्र पुत्र राजा मुकुन्दवल्लभकी विधवा पत्नी रानी जयमणिने राजा गौरवल्लभको गोद लिया। इन्हीं गौरवल्लभके पुत्र रुक्मिणीवल्लभ थे। राजा राजवल्लभ राय २० लाखकी सम्पत्ति छोड़ गये थे। उनकी मृत्युके बाद अंगरेजोंने उनकी जागीर जब्त कर ली और उनके उत्तराधिकारी राजा गौरवल्लभको केवल एक लाख रुपया सालानाकी वृत्ति दी। इसके बाद मामला मुकद्दमाके कारण इनका सब धन स्वाहा हो

* चांदराय, केदारराय और नौपाड़ेके चौधरियोंकी कीर्त्तियोंका नाश कर पद्माका कीर्त्तिनाशा नाम हुआ है।

† Ward's on Hindoos.

¶ नदियाके पण्डितोंकी व्यवस्था न देनेसे वे सफल न हुए।

गया। अब इस समय उनके सन्तानकी अवस्था सोचनीय है।

राजाराम—महाराष्ट्रपति शिवाजीके पुत्र और शम्भाजीके वैमात्र भाई। महाराष्ट्र और सातारा शब्द देखो।

राजाराम—१ श्रौतसिद्धान्तके प्रणेता। २ आचारकौमुदीके रचयिता। ३ सप्तशतीदंशोद्धारके प्रणेता। इनकी उपाधि भट्ट थी।

राजा रामपुर—दिनाजपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यहां बहुतसे देवालय हैं।

राजार्क (सं० पु०) अर्काणां राजा श्रेष्ठत्वात्। श्वेतार्क, वृक्ष, सफेद फूलका आक। पर्याय—वसुक, अर्क, मन्दार, गणरूपक, काष्ठील, सदापुष्प, अलर्क, प्रतापस।

राजार्ह (सं० क्ली०) राजानमर्हतीति अर्ह अण्। १ अगरु, अगर। २ कर्पूर, कपूर। ३ जम्बूवृक्ष, जामुनका पेड़। ४ शालिधान्यविशेष, शालिधान। (त्रि०) ५ राजाके योग्य।

राजार्हण (सं० क्ली०) १ सम्भ्रमसूचक उपहार, भारी उपहार। २ राजाका दान।

राजालाबू (सं० स्त्री०) अलाबूनां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। स्वादुतुम्बी, एक प्रकारका लौआ या कद्दू जो आकारमें बड़ा और खानेमें मीठा होता है। पर्याय—महातुम्बी, मधुरालाबुनी, शाकालाबू, तुम्बक, भक्ष्यालाबु, अलाबुनी, मिष्टतुम्बी। इसका गुण—हृद्य, कफपित्तहर और गुरु। (मदनविनोद)

राजाली खाँ फरुखी—खानदेशके एक मुसलमान शासनकर्त्ता। सन् १५७६ ई०में अपने भ्राता दूसरे मीरन महम्मद खाँकी मृत्युके बाद ये सिंहासन पर बैठे। इसी समय मुगलसम्राट् अकबर शाहने समग्र आर्यावर्त्त देश पर शासनदण्ड परिचालित किया था। राजा अली खाँने सम्राट् अकबर शाहके दोर्दण्ड प्रतापको लक्ष्य कर वंशकी सम्मान वर्द्धक राजोपाधि परित्याग कर दी और सम्राट्का आनुगत्य स्वीकार कर उनके अधीन हुए। इस समय उन्होंने मुगल-सम्राट्को बहुत धनरत्न उपढौकनस्वरूप दिया। अहमदनगरराज २रे बुर्हान निजाम शाहकी मृत्युके बाद सन् १५९६ ई०में युवराज मीर्जा मुराद और बैरम खाँके पुत्र मीर्जा खानखाना दाक्षिणात्य विजयमें यात्रा करने पर राजाली खाँने उनके अधीन रह कर युद्ध किया था। अहमदनगर-सेनापति सुहिल खाँके साथ खान खाँके युद्धके समय बारूदके बरतनमें आग लग जानेके कारण सन् १५९७ ई०में २९वीं जनवरीको उनकी मृत्यु हुई।

राजालुक (सं० पु०) आलूनां राजा ततः स्वार्थे कन्। महाकन्द, मूली।

राजावर्त्त (सं० पु०) राजानं आवर्त्तयति आनन्दयतीति आ-वृत-णिच्-अण्, यद्वा राजः शोभमानः आवर्त्तो यत्र। १ उपरत्नभेद, लाजवर्द नामक रत्न। पर्याय—नृपावर्त्त, राजात्यावर्त्तक, आवर्त्तमणि, आवर्त्त। इसका गुण—मृदु, स्निग्ध, शिशिर, पित्तनाशक। यह मणि धारण करनेसे बहुत कल्याण होता है। २ विराट देशजात हीरक या हीरा। पर्याय—विराटज, राजपट्ट। गुण—कटु, तिक्त, शिशिर, पित्तनाशक, प्रमेह, छर्दि और हिक्कानिवारक। (भावप्र०)

राजावलि (सं० स्त्री०) १ राजवंशावली। २ राजेतिहास, राजाकी कहानी।

राजावासा—सिंहभूम जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव।

राजाबोराड़ी—मध्यप्रदेशके होसङ्गाबाद जिलेके दक्षिण एक वनप्रदेश। यह पूरबमें सौलीगढ़से पश्चिममें कालीभीत और मकराई तक विस्तृत है।

राजाशांसी—पञ्जाब प्रदेशके अमृतसर जिलान्तर्गत अजनाल तहसीलका एक नगर। १५५७ ई०में राजा संशीजाटने इस नगरको बसाया। तभीसे यह उन्हींके नाम पर चला आता है। उनके भाई कीर्त्ति और रणजित्सिंह सिंधियानवालिया मिशलके पूर्वपुरुष थे। आज भी यहां उस सिंधियानवालिया-वंशका वास है तथा उन्हींके यत्नसे नगरकी श्रीवृद्धि हुई है। सिखशासन कालमें इस वंशका प्रताप बहुत बढ़ा चढ़ा था। तभीसे यहांके सरदारवंश ३६ ग्रामोंको जागीर भोग करते आ रहे हैं। सरदारको अपनी जागीरमें डिपटी कमिश्नरके जैसा अधिकार है।

राजाश्व (सं० पु०) वैदिकयुगका प्रसिद्ध तेजस्वी अश्वविशेष।

राजासन (सं० क्ली०) सिंहासन, राजाओंके बैठनेका आसन।

राजासन्दी (सं० स्त्री०) काठकी चौकी या पीढ़ा जिस पर यज्ञोंमें सोम रखा जाता था।

राजाहि (सं० पु०) अहीनां राजा राजदन्तादित्वात् पर-निपातः। द्विमुखसर्प, दो मुंहा सांप। पर्याय—द्विमुखाहि विलावासी, विषायुध, अहीरणि।

राजाह्व (सं० क्ली०) १ कर्णिकार फल। स्त्रियां टाप्। २ राजादनी वृक्ष, खिरनीका पेड़। ३ श्वेतार्कवृक्ष, सफेद आकका पेड़।

राजि (सं० स्त्री०) राजते इति राज (वसिवपियजिराजीति। उण् ४।१२४) इति इञ्। १ श्रेणी, पंक्ति। २ रेखा, लकीर। ३ सर्षप, राई। (पु०) ४ ऐलके पौत्र और आयुके एक पुत्रका नाम। (भारत १।३५।२५)

राजिका (सं० स्त्री०) राजते या राज-ण्वुल्, टाप् अत इत्वं। १ केदार, क्यारी। २ राजसर्षप, राई। ३ रेखा, लकीर। ४ पंक्ति, राजि। ५ रक्तसर्षप, लाल सरसों। इसका पर्याय—क्षव, क्षुधाभिजनन, आसुरी, क्षुताभिजनन, असुरी। इसका गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, वात, प्लीहा, शूल, कफ, गुल्म, कृमि और प्राणनाशक। इसके तेलका गुण—तीक्ष्ण, वातादिदोषनाशक, शीतल, यूक और कण्डुघ्न, केशवर्द्धक और त्वग्दोषनाशक। इसके पत्तेका गुण—कटु, उष्ण, कृमि, वात, कफ और कण्ठा-मयनाशक, स्वादु और अग्निवर्द्धक। (राजनि०) ६ परि-माणविशेष, एक परिमाण। ७ कृष्णोदुम्बर, कठगूलर। ८ महुआ। ९ एक प्रकारका क्षुद्ररोग। इसमें सरसोंके बराबर छोटी छोटी फुंसियां निकलती हैं। यह रोग अधिक धूप लगने और गर्मीके कारण हो जाता है।

राजिकाफल (सं० पु०) राजिकायाः फलमिव फलमस्य। गौरसर्षप, लाल सरसों।

राजिकाह्वा (सं० स्त्री०) राजिका नामक क्षुद्ररोगभेद। घर्म और स्वेद आदिसे शरीरमें जो छोटी छोटी फुंसियां निकलती है। वह बहुत घनी और वेदनायुक्त होती है। इन फुंसियोंका रंग और आकृति राजिका अर्थात् सरसोंकी तरह होती है, इससे इसका नाम राजिकाह्वा है।

राजिचित्र (सं० पु०) राजिमच्छपविशेष, एक प्रकारका सांप जिसके ऊपर सरसोंकी तरह छोटी छोटी बुंदकियां होती हैं।

राजित (सं० त्रि०) १ जो शोभा दे रहा हो, फबता हुआ। २ विराजा हुआ, मौजूद।

राजिफला (सं० स्त्री०) राजीभूतानि श्रेणिबद्धानि फलानि यस्याः। चीना ककंटी, चीना ककड़ी।

राजिमत् (सं० पु०) १ भौमसर्पभेद, एक प्रकारका सांप। (वाभट उत्तर १६ अ०) (त्रि०) २ राजिविशिष्ट।

राजिल (सं० पु०) राजो रेखास्त्यस्येति राजिसिध्मा-दित्वात् लच्, यद्वा राजि लाति ला-क। डुण्डूभसर्प, एक प्रकारका सांप जिसके ऊपर सीधी रेखाएं होती हैं।

राजिलफला (सं० स्त्री०) एर्व्वारुकभेद, एक प्रकारका खरबूजा या ककड़ी।

राजी (सं० स्त्री०) राजि-कृदिकारादिति ङीष्। १ निच्छिद्र-पंक्ति। २ राजिका, राई। ३ रक्तवर्णसर्षप, लाल सरसों।

राजी (अ० वि०) १ कोई कही हुई बात माननेको तैयार, अनुकूल। २ नीरोग, चंगा। ३ खुश, प्रसन्न। ४ सुखी। (स्त्री०) ५ रजामंदी, अनुकूलता।

राजीक (सं० पु०) जातिविशेष।

राजीनामा (फा० पु०) १ वह लेख जिसके द्वारा अभियोगी और अभियुक्त या वादी और प्रतिवादी परस्पर एकमत या अनुकूल हो कर अभियोग या वादको न्यायालयसे उठा लें अथवा एकमत हो जांय और तदनुसार ही न्यायालयको व्यवस्था देनेके लिये उससे प्रार्थना करें। २ स्वीकारपत्र।

राजीफल (सं० पु०) राजीभूतानि श्रेणिबद्धानि फलानि यस्य। १ पटोल, परवल। २ तिक्त पटोल, तीता पर-वल।

राजीमती (सं० स्त्री०) लिङ्गनाशरोगका उपद्रवविशेष।

राजील (सं० पु०) राजसर्षप, राई।

राजीव (सं० क्ली०) राजीदल श्रेणिरस्यास्तीति राजी (अन्येभ्योऽपि दृश्यते। पा ५।२।१०९) इत्यस्य वार्त्ति-कोक्त्या व। १ पद्म, कमल।

"उत्तानपाणिद्वयसन्निवेशात् प्रफुल्लराजीवमिवाङ्कमध्ये।"

(कुमार ३।४५)

२ नील पद्म, नील कमल। (पु०) ३ हरिणभेद। जिस हरिणकी पीठ पर धारियाँ होती हैं उसे राजीव कहते हैं। ४ वृहत् मीनभेद, एक प्रकारकी बड़ी मछली। मनुमें लिखा है, कि यह मछली हव्यकव्यमें खानेका विधान है।

"पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः।
राजीवान् सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्व्वशः॥"
(मनु ५।१६)

५ हस्ती, हाथी। ६ सारसपक्षीकी एक जाति। (त्रि०) ७ राजीपजीवी। ८ जिस पर धारियां हों, धारीदार।

राजीवगण (सं० पु०) एक प्रकारका मात्रिक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें अठारह मात्राएं होती हैं और नौ मात्राओं पर विराम पड़ता है। इसमें तुकान्तमें गुरु लघुका कोई विशेष नियम नहीं है। इसे माली भी कहते हैं।

राजीवलोचन (सं० त्रि०) राजीवे इव लोचने यस्य। पद्मचक्षु, कमलकी तरह आंखोंवाला।

राजीवलोचन मुखोपाध्याय—महाराज कृष्णचन्द्रचरितके लेखक। १८११ ई०में यह ग्रन्थ लंडनमें छपा था। इसमें बिलकुल बंगला है अंगरेजी लेशमात्र भी नहीं है।

राजीविनी (सं० स्त्री०) कमलिनी, एक प्रकारका कमल।

राजुक (सं० पु०) मौर्य्यकालका एक राजकर्मचारी जो एक प्रान्तका प्रबंध करता था, कायस्थ।

राजुदल (सं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष।

राजू (हिं० स्त्री०) रज्जु देखो।

राजेन्द्र (सं० पु०) राजसु इन्द्र इव श्रेष्ठत्वात्। १ राजश्रेष्ठ, राजाओंका राजा। २ मण्डलेश्वरसे दश गुना अधिक राजा।

"चतुर्योजनपर्यन्तमधिकारो नृपस्य च।
यो राजा तच्छतगुणः स एव मण्डलेश्वरः।
तस्माद्दशगुणो राजा राजेन्द्रः परिकीर्त्तितः॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० ८ अ०)

३ राजगिरा नामक साग। ४ राजगिरि नामक पर्वत। भोजप्रबन्धमें इनका उल्लेख पाया जाता है।

राजेन्द्र—एक कवि।

राजेन्द्र गोसाईं—ब्रह्मचर्यावलम्बी संन्यासि-सम्प्रदायके एक प्रधान आचार्य। वे सदा दिगम्बर वेशमें सब जगह घूमा करते थे। उनके शिष्य भी उनका अनुकरण कर त्यागी हुए थे और सभी अपने आचार्य्यको देवता जानते थे। ये नागा संन्यासिदल सुविधा पाने पर देश लूटने तथा लड़ाई करनेसे कुण्ठित नहीं होते थे। मुगल-सम्राट् अहमद शाहने नवाब सफदरजङ्गको वजीर पदसे च्युत कर दिया। मन्त्रिवरने इस काममें संन्यासि-दलका साहाय्य ग्रहण किया था। सन् १७५३ ई०में २०वीं जूनको सम्राट्-सैन्यके साथ युद्ध करते समय राजेन्द्रकी मृत्यु हुई।

राजेन्द्रचोल—(उपाधि मधुरान्तक परकेशरीवर्मन्) सूर्य्यवंशीय एक विख्यात दिग्विजयी राजा तथा सूर्यवंशीय प्रथम राजराजका पुत्र। सन् १००२ ई०में इन्होंने सिंहासन पर आरोहण किया था। तिरुमल आदि नाना स्थानोंसे आविष्कृत प्राचीन द्राविड़ भाषामें खुदी शिलालिपिसे मालूम होता है, कि इन्होंने १२वें राज्याङ्कके पहले इड़ैतुर, वनवासी, कोल्लिपाक, मन्नैकड़क्कम, ईड़मण्डल (चेड़ वा पाण्ड्यराज्य), चालुक्यपति जयसिंहको पराजित कर इड़टुपाड़ि, नवनेदिकुलके शैल, विक्रमवीरके अधिकारभुक्त शक्करकोटम्, मदुरामण्डल वेङ्गिलैवीरेमें पञ्चपल्ली, चन्द्रवंशीय श्रीरतको पराजय कर माशुनिदेश, ओड्रविषय, ब्राह्मणसमवेत कोशलदेश, धर्मपालको पराजय कर दण्डभुक्ति रणशूरको पराजय कर सर्वदिक्प्रसिद्ध दक्षिणराढ़, गोविन्दचन्द्रको पराजय कर बङ्गाल, सङ्कोट्ट (कोटिवर्ष या देवकोटके) महीपालको पराजय कर रणदुर्मद हस्तियों (हाथियों) और उत्तरराढ़ तथा नाना तीर्थ परिशोभित गङ्गा तक जय किया था। पूर्वचालुक्यराज प्रथम राजराजे इसके दामाद थे। इनकी कन्याके गर्भसे महावीर राजेन्द्र-कुलोत्तुङ्ग चोलदेवने जन्मग्रहण किया। इनके पितृष्वसाके साथ चालुक्यराज विमलादित्यका और इनकी बहनके साथ पल्लवराज वन्द्यदेवका विवाह हुआ। कई शिलालिपियोंसे इनके जैन होनेका अनुमान किया जाता है।

राजेन्द्र तर्कवागीश भट्टाचार्य—ललितारहस्य नामक तन्त्रग्रन्थके प्रणेता।

राजेन्द्रदशावधान भट्टाचार्य—पिङ्गलतत्त्वप्रकाशिकाके रचयिता।

राजेन्द्रदास—महाभारतके आदिपर्व्वके पद्यानुवादक। इन्होंने प्रायः तीन सौ वर्ष पहले यह ग्रन्थ बनाया था। अनुवाद भावपूर्ण और प्राञ्जल है।

राजेन्द्र पाण्ड्य—दाक्षिणात्यके पाण्ड्यवंशीय दो राजे।

पाण्ड्यवंश देखो।

राजेन्द्रलाल मित्र (राजा)—बङ्गालके एक प्रसिद्ध पण्डित। २४ परगनेके अन्तर्गत सुंड़ा ग्रामके विख्यात मित्रवंशमें इनका जन्म हुआ था।

गौड़राजकी सभामें आये हुए कालिदास मित्रसे १४ पीढ़ी नीचे सत्यभाम मित्र उड़िसामें आ कर बस गये। इसके बाद इस वंशकी एक शाखा हुगली जिलेके अन्तर्गत कोन्नगर ग्राममें चली गई। राजेन्द्रलालके पूर्वपुरुष वहांसे पहले कलकत्तेके गोविन्दपुरमें और पीछे मछुआबाजारसे सुंड़ामें चले गये।

उपरोक्त सत्यभामके पौत्र रामराम मित्र मुर्शिदाबादके नवाबके यहां दीवान थे। उनके मरने पर उनके लड़के अयोध्यारामने उस पद पर रह कर रायबहादुरकी उपाधि पाई। अयोध्यारामके पौत्र पीताम्बर मित्र दिल्ली दरबारमें अयोध्याके नवाब वजीरकी ओरसे वकील थे। पीछे बादशाहके अधीन काम करके इन्होंने रायबहादुरकी उपाधि तथा तीनहजारी मनसबदारका पद पाया। केवल यही नहीं—दोआबके अन्तर्गत कड़ा प्रदेश भी इन्हें जागीरमें मिला। १७८४ ई०में काशीके राजा चैतसिंह जब बागी हुए तब उनका दमन करनेके लिये पीताम्बर मित्र अंगरेज-सेनापति पामर की सहायतामें वहां भेजे गये। रामनगर दुर्गके अधिकारकालमें वे रणक्षेत्रमें उपस्थित थे। १७८७-८८ ई०के मध्य कलकत्ता लौट कर उन्होंने वैष्णवधर्म ग्रहण किया। १८०६ ई०में उनके परलोक सिधारने पर उनके पुत्र वृन्दावनचन्द्रने पिताके धनरत्न और उपाधिको पाया।

दिल्लीदरबारसे नौकरी छोड़ते समय इनका पावना ६ लाख रुपया था, सुजा-उद्दौलाने कुल चुका दिया। महाराष्ट्र-युद्धके समय उनकी दो लाख बीस हजार रुपये की कड़ा जागीर हाथसे जाती रही। वृन्दावनचन्द्र धीरे धीरे पितृसम्पत्ति खो कर कटक कलकुरीके दीवान हो गये।

रामनगर लूटनेके समय राजा पीताम्बर कुछ संस्कृत और पारसी ग्रन्थ ले कर कलकत्ते आये। वे वैष्णवधर्म ग्रहणके बाद कलकत्ता मछुआबाजारका वासभवन परित्याग कर सूंड़ाकी उद्यानवाटिकामें रहने लगे। वृन्दावनचन्द्रके यथेच्छ व्ययसे पैतृकसम्पत्ति यहां तक कि मछुआबाजारका मकान भी नष्ट हो गया। उनके बड़े लड़के जनमेजय मित्रने पैतृकसम्पत्तिमेंसे कुछ हस्तलिखित संस्कृत और उर्दूके ग्रन्थ पाये जिन्हें पढ़ कर उन्हें बहुत कुछ ज्ञान हो गया था। उन्होंने अपने अध्यवसायसे कई ग्रन्थ लिखे और प्रकाशित किये। Dr. Shoulbred नामक एक पण्डितसे इन्होंने सबसे पहले किमिय-विद्या पढ़ी। इसके पहले और किसी भी बंगालीने किमिय विद्या नहीं पढ़ी थी।

जनमेजयके तृतीय पुत्र राजेन्द्रलालका १८२४ ई०की १५वीं फरवरीको जन्म हुआ। पांच वर्षकी उमरमें इन्हें पहले पहल उर्दू वर्णमाला सिखाई गई। इसके बाद इन्होंने राजा वैद्यनाथ रायके पारिवारिक गुरुसे बङ्गला भाषा सीखी। तीन वर्ष बङ्गला और उर्दू भाषा सीख कर ये पथुरियाघाटके खेमबसुके स्कूलमें अंगरेजी पढ़ने लगे। इस समय इनका अधिकांश समय पितृष्वसाके ही घरमें व्यतीत हुआ था। जब इनकी उमर ग्यारह वर्षकी हुई, तब ये गौरीशङ्कर मित्रके पुराने मकानके समीप गोविन्द बसाकके विद्यालयमें भर्त्ती हुए। १८३८ ई०के अक्टूबरसे लगायत १८३९ ई०के अक्टूबर तक प्लोहा और काससंयुक्तज्वरसे प्रपीड़ित हो इन्होंने पढ़ना लिखना बंद रखा। उसी सालके नवम्बर महीनेमें जब इनकी उमर पन्द्रह थी, तभी चिकित्साशास्त्र पढ़नेके लिये कलकत्ता मेडिकल कालेजमें प्रवेश किया। इस समय भी इन्हें घर पर मि० कामेरेनसे पढ़नेमें सहायता मिलती थी। कालेजमें इन्हें प्रति वर्ष पारितोषिक मिलता था। प्रखर बुद्धि देख कर १८४१ ई०में द्वारकानाथ टाकुरने इन्हें चिकित्साशास्त्रमें सुपण्डित करनेके लिये इङ्गलैण्ड भेजना चाहा। किन्तु राजेन्द्रलालके पिताने यह खबर पाते ही विलायत यात्रा रोक दी। केवल रोक ही नहीं दी, वरन् इसके दण्डस्वरूप विद्यालयसे नाम भी कटवा दिया।

अनन्तर राजेन्द्रलाल बड़े दुःखित हो कर वकालत

पढ़ने लगे। वकालत पास करने पर इन्हें कलकत्तेकी सदर अदालतमें वकालती अथवा मुनसफका काम करनेका हुकुम मिला। किन्तु किसी पदकी चाह न करते हुए इन्होंने जजीकी परीक्षा दी। दुर्भाग्यवशतः इनकी लिखी परीक्षा कापी खो गई तथा दूसरे तर्फसे वह परीक्षा भी बंद हो गई जिससे इनका उद्देश सिद्ध न हो सका। पीछे इसके लिये इन्होंने फिर कभी कोशिश भी नहीं की। अब इन्होंने साहित्यचर्चाकी ओर ध्यान दिया।

इसके बाद घरमें रह कर इन्होंने संस्कृत, पारसी, हिन्दी और उर्दू भाषामें अच्छी व्युत्पत्ति प्राप्त की। पीछे १८४६ ई०के नवम्बर मासमें ये कलकत्तेकी एशियाटिक सोसाइटीके सहायक सम्पादक तथा ग्रन्थरक्षकके पद पर नियुक्त हुए। इस समय इनकी उमर सिर्फ २३ वर्षकी थी। इस पद पर ये १० वर्ष तक रहे। १८५६ ई०के मार्च मासमें आप गवर्मेण्ट वार्डके डिरेकृर हुए।

मेडिकल कालेजमें पढ़ते समय सत्तरह वर्षकी उमरमें इनका विवाह हुआ। किन्तु पांच वर्ष बीतते न बीतते स्त्रीका देहान्त हो गया। पीछे ३६ वर्षकी उमरमें इन्होंने फिरसे दूसरा विवाह किया।

डा० राजेन्द्रलालने किसी भी सरकारी स्कूलमें नहीं पढ़ा था। घरमें रह कर इन्होंने अङ्गरेजी, वङ्गला, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और पारसी भाषा पढ़ी थी। मेडिकल कालेजमें रहते समय इन्हें फारसी, लाटिन, ग्रीक और एशियाटिक सोसाइटीमें जर्मनभाषाका भी अच्छा ज्ञान हो गया था। Journal of the Asiatic society of Bengal नामक पत्रिकामें १८४७ ई०को इन्होंने सबसे पहले अंगरेजी प्रबंध लिखना आरम्भ कर दिया। १८४६ ई०में इन्होंने संस्कृत 'कामन्दकीय नीतिसार' और १८५१ ई०में 'विविधार्थसंग्रह' नामक एक सचित्र मासिकपत्र तथा 'रहस्यसन्दर्भ' नामक एक दूसरा मासिकपत्र निकाला था। १८७५ ई०में इनका उड़ीसाका पुरातत्त्व (Antiquities of Orissa) प्रकाशित हुआ। उस ग्रन्थके सम्बन्धमें स्वयं ग्रन्थकर्त्ताने ही लिखा है, "Some relics of the past weeping over a lost civilization and extinguished grandeur" इसमें स्थापत्यविद्या, धर्म और भारतके प्राचीन इतिहासका यथेष्ट प्रमाण लिपिबद्ध है। इसके तीन वर्ष बाद इन्होंने 'बुद्धगया' नामक ग्रन्थका प्रचार किया। इसमें भी इन्होंने गवेषणापूर्ण युक्तिबलसे धारावाहिक इतिहासका काल निर्णय करनेमें विशेष चेष्टा की थी। भग्नमन्दिरादिका निदर्शन, शिलालिपि और प्रस्तरनिर्मित प्रतिमूर्त्ति आदिके भी ये अनेक परिचय दे गये हैं। उनके अध्यवसाय और अनुसन्धित्साके प्रबल अनुरागके सम्बन्धमें ब्रिटानिकाके जीवनी-लेखकने जो लिखा है उसका आशय इस प्रकार है,—"भारतीय प्रत्नतत्त्वके सम्बन्धमें उनका गवेषणापूर्ण प्रबन्ध पढ़ कर यूरोप और अमेरिकाके पण्डित उनका यथेष्ट सम्मान करते थे। डा० माक्समूलर, गार्सिन डि टासी, अध्यापक फूसे, अध्यापक कुहन, मेयरडेरे, वेबर, बोथलिङ्क, होम्बो, राफू, गुवानैथी, गोल्डस्मिथ, एगलिं, जन मुइर, आमरी, हर्मनब्रूखस, कौवल, एडवर्ड टामस, ह्विटने, डोशन, औफ्रेकृ, डा० स्पेञ्जर, डा० रोष्ट, ब्रायन. हजसन, डा० बूलर, डा० किलहार्ण और डा० बुर्णल आदि प्राच्यप्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सुओंके साथ इनके भारतीय पुरातत्त्वके सम्बन्धमें बहुत लिखा पढ़ी हुई थी।"

पहले लिखा जा चुका है, कि इन्होंने सरकारी विश्वविद्यालयमें शिक्षा नहीं पाई थी और न इन्हें कलकत्ता युनिवर्सीटीसे विद्याविशेषकी पारदर्शिताके लिये कोई पारितोषिक ही मिला था। उनकी यह असामान्य ज्ञानज्योति देख कर कलकत्ता युनिवर्सीटीने स्वतः प्रवृत्त हो कर इन्हें L. L. D को उपाधि दी थी। १८७८ ई०के दिल्ली-दरबारमें लार्ड लीटनने राजकीय उपाधि घोषणाके समय डा० राजेन्द्रलालको 'राय बहादुर'की उपाधिसे विभूषित किया था। १८६१ ई०से वे कलकत्तेकी एशियाटिक सोसाइटीके सहकारी-सभापति पद पर नियुक्त थे। १८६५ ई०के दिसम्बर मासमें वे हंगेरीकी वैज्ञानिक सभा (Academy of Sciences) के वैदेशिक सभ्य बनाये गये। बुडा-पेष्ठ नगरीकी सएडे न्युज' नामक पत्रिकामें इन्हें Honorary member of the Royal Asiatic Society of Great Britain; Corresponding member of the German and American Oriental Society; Honorary member of the

Imperial Academy of Vienna ; Fellow of the Society of Northern Antiquities of Copenhagen और Corresponding member of the Berlin Anthropological Society आदि सभाओंके सदस्य भी थे। और भी गौरवका विषय यह कि इन्होंने फरासी प्रजातन्त्रकी सलाहसे फ्रान्सराज्यके राजकीय शिक्षा विभागसे Palmleaf और Diploma पाया था।

इसके बाद १८८५ ई०में इन्होंने एशियाटिक सोसाइटोके सभापतिका पद पाया। डा० राजेन्द्रलाल सभी उपाधियों और सम्मानकी अपेक्षा विद्वत्सभाके इस सम्मानको गुरुतर और अधिक मूल्यवान् समझते थे। उनकी इस ज्ञानचर्चासे प्रसन्न हो तथा उनका आभिजात्य देख कर गवर्मेण्टने इन्हें C. I. E. और पीछे राजाकी उपाधि दी थी। यूरोपीयगण मुक्तकण्ठसे इन्हें प्राचीन भारतीय इतिवृत्त उद्धारका मुख्यपात्र स्वीकार कर गये हैं।

इनका स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं था। इस रुग्न शरीरको ले कर वे जिस अदम्य उत्साहसे महाकार्यमें लगे हुए थे उसका ख्याल करनेसे बङ्गीय जीवनके ज्ञान और बुद्धिशक्तिकी तीक्ष्णताका पूरा पूरा पता लगता है। इस प्रकार साहित्यसेवामें अपना क्षुद्र जीवन बिता कर राजेन्द्रलाल १८६१ ई०की २६वीं जुलाईको इस लोकसे चल बसे।

इनकी सम्पादित ग्रन्थावली।

अङ्गरेजी—

१ उड़ीसाका पुरातत्त्व—दो भाग।
२ सामवेदके अन्तर्गत छान्दोग्य उपनिषद्का अनुवाद।
३ १८७१-१८७४ ई०में प्राप्त संस्कृत ग्रन्थकी विवरणी।
४ एशियाटिक सोसाइटीके जादूघरमें संगृहीत भारतीय विस्मयद्योतक पदार्थों की विवरण-सहित तालिका (Catalogue)
५ एशियाटिक सोसाइटीके पुस्तकालयकी तालिका।
६ संस्कृत व्याकरणोंकी समालोचनापूर्ण तालिका।
७ एशियाटिक सोसाइटीकी पत्रिकाके १से २४ भागोंका सूचीपत्र।
८ बुद्धगया।
९ यूरोपीय वैज्ञानिक शब्दकी परिभाषा।
१० आर्यहिन्दू (Indo Aryan) दो भाग।

संस्कृत—

१ यजुर्वेदान्तर्गत तैत्तिरीय ब्राह्मण १८५४—१८६१,
२ " " आरण्यक १८७२।
३ " " प्रातिशाख्य १८७२।
४ अथर्ववेदान्तर्गत गोपथब्राह्मण १८७२।
५ कामन्दकीय नीति १८४६।
६ चैतन्यचन्द्रोदयनाटक १८८४।
७ ललितविस्तर १८५४-१८७७।
८ अग्निपुराण १८७३-७८।
९ ऐतरेय आरण्यक १८७६।

बङ्गला—

१ विविधार्थसंग्रह (१८५०—५६ ई०), २ रहस्यसन्दर्भ (१८५८-६०), ३ प्राकृतिक भूगोल (१८५४), ४ पत्रकौमुदी (१८६३), ५ व्याकरणप्रवेश (१८७३), ६ शिवाजीकी जीवनी (१८६२), मेवाड़का राज-इतिहास (१८६१), इसके सिवा इनके यंत्रसे भारतवर्षका बङ्गला, नागरी तथा पारसी मानचित्र; एशियाका पारसी मानचित्र; स्कूलमें काम आने लायक बहुतसे छोटे बड़े मानचित्र, भौतिक मानचित्र (Physical chart) आदि सम्पादित हुए थे।

नौकरीसे अलग होने पर इन्हें ५ सौ रुपयेकी मासिक वृत्ति मिलती थी।

राजेय (सं० पु०) पटोल, परवल।

राजेश्वर (सं० पु०) राजश्रेष्ठ, राजाओंका राजा, महाराज।

राजेश्वर—पाण्ड्यवंशीय एक राजा। पाण्ड्यवंश देखो।

राजेष्ट (सं० क्ली०) १ नृपान्न नामक धान। २ राजभोग्य। (पु०) ३ राजपलाण्डु, लाल प्याज।

राजेष्टा (सं० स्त्री०) १ कालीवृक्ष, केलेका पेड़। २पिण्ड खर्जूर, पिंडखजूर। (वैद्यकनि०)

राजोद्वेजनसंज्ञक (सं० पु०) राजोद्वेजन इति संज्ञा यस्य, इति कन्। भूतांकुशवृक्ष, आवजवानका पेड़।

राजोपकरण (सं० क्ली०) राजचिह्न, राजाओंके लक्षण या उनके साथ रहनेवाला सामान।

राजोपजीविन् (सं० पु०) १ राजकर्मचारी, राजाका नौकर। २ वह पुरुष जिसकी जीविका राजाकी सेवा करनेसे चलती हो।

राजोपसेवा (सं० स्त्री०) राजाकी सेवा।

राजोपसेविन् (सं० पु०) राजोपसेवाकारी, राजाका सेवक।

राज्जुकण्ठिन् (सं० पु०) वह जो रज्जुकण्ठके सम्प्रदायका हो।

राज्जुदाल (सं० त्रि०) रज्जुदल वृक्षजात या उसका सम्बन्धी।

राज्जुभारिन् (सं० पु०) वह जो रज्जुभारके सम्प्रदायका हो।

राज्ञी (सं० स्त्री०) राज्ञः पत्नी, राजन्-ङीष्, यद्वा राजते इति राज-कनिन् ततः स्त्रियां ङीष्। १ राजपत्नी, रानी। २ मत्स्यपुराणके अनुसार सूर्यकी पत्नी, संज्ञा। (मत्स्यपु० ११ अ०) ३ कांस्य, काँसा। ४ नीली, नीलका वृक्ष। ५ प्रतीची दिक्, पश्चिम दिशा। "तस्य प्राच्योदिक् जुहूर्नाम सहमाना नाम दक्षिणा राज्ञी नाम प्रतीची"

(छान्दोग्य उपनि० ५।१५।२)

राज्य (सं० क्ली०) राज्ञो भावः कर्म वा राजन (पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्। पा ५।१।१२८) इति यक्। १ राजत्व, राजाका काम। २ राजसम्बंधीय। पर्याय—नृवृत्, मंडल, जनपद, देश, प्रदेश, विषय, राष्ट्र, उपवर्त्तन।

(शब्दरत्ना०)

सप्ताङ्गको राज्य कहते हैं। सप्ताङ्ग ये हैं—अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र और राजा अथवा स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल। कहीं कहीं लाख गांवोंके समूहको भी राज्य कहा है।

"लक्षाधिपत्यं राज्यं स्यात् साम्राज्यं दशलक्षके।
शतलक्षे महेशानि महासाम्राज्यमुच्यते॥" (वरदातन्त्र)

राज्यकर (सं० पु०) १ राज्यशासन। २ राजस्व।

राज्यकर्तृ (सं० पु०) १ राजा। २ राज्यके शासनविभागके कर्मचारी।

राज्यकृत् (सं० पु०) १ राज्य करना, राजकार्यका परिचालन। २ वह जो राज्यका शासन करता हो।

राज्यका (सं० स्त्री०) राज्या सर्वपेण भक्ता भक्षिता। खाद्यद्रव्यविशेष, रायता। इसका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है,—जीरा और हींग भून कर मठेमें डालना होगा। पीछे उरदकी बरी बना कर इसी मठेमें रखनी होगी। अन्तमें दही और नमक मिले हुए पतले कद्दूके टुकड़ोंके साथ खानी होगी। यह खाद्य शुक्रवर्द्धक, बलकारक, रुचिकारक, गुरु, विबन्धनाशक, विदाही, कफकारक और वायुनाशक है। (भावप्र०)

राज्यच्युत (सं० त्रि०) राज्यभ्रष्ट, जो राजसिंहासनसे उतार या हटा दिया गया हो।

राज्यच्युति (सं० स्त्री०) राजाका सिंहासनसे उतार दिया जाना।

राज्यतन्त्र (सं० क्ली०) राज्यस्य तन्त्रं। राज्यकी शासनप्रणाली।

राज्यदेवी (सं० स्त्री०) १ राजकुललक्ष्मी। २ बाण राजकी माता।

राज्यद्रव्य (सं० क्ली०) वह उपकरण जिसकी आवश्यकता राज्याभिषेकमें पड़ती है, राजतिलककी सामग्री।

राज्यधर (सं० पु०) १ राज्यपालन या शासन। २ राजा।

राज्यधुरा (सं० स्त्री०) राज्यशासन।

"वृद्धौरसा राज्यधुरां प्रवोढुं।" (भट्टि ३।५४)

राज्यपरिभ्रष्ट (सं० त्रि०) राज्यच्युत।

राज्यपाल (सं० पु०) १ राजा। २ राजभेद।

पालराजवंश देखो।

राज्यप्रद (सं० त्रि०) राज्यदानाई, राज्य देनेवाला।

राज्यभङ्ग (सं० पु०) राज्यका ध्वंस या विपर्यय।

राज्यभाज् (सं० पु०) राजा।

राज्यभार (सं० पु०) राज्यशासनकी तरह भार अर्थात् क्लेश।

राज्यभेदकर (सं० त्रि०) शासनशैथिल्यकारी, राज्यका नाश करनेवाला।

राज्यभोग (सं० पु०) राज्यरूप सम्पत्तिका उपभोग, राज्यशासन।

राज्यभ्रंश (सं० पु०) राज्यका नाश।

राज्यभ्रष्ट (सं० पु०) १ राज्यच्युत। २ राज्यसे विताड़ित राजा।

राज्यरक्षा (सं० स्त्री०) राज्यका परिरक्षण कार्य। यह दो प्रकारका है—(१) उपयुक्त शासन द्वारा राज्यकार्यको सुचारुरूपसे चलाना। (२) शत्रुओंकी चढ़ाईसे प्रजावर्गकी रक्षा करना।

राज्यलक्ष्मी (सं० स्त्री०) १ राजलक्ष्मी, राज्यश्री। २ विजय गौरव, विजयकीर्त्ति।

राज्यलीला (सं० स्त्री०) १ राजाका खेल। २ बनावटी राजा बन कर उसके समान् भाव प्रकाश करना। ३ जो सब राजवंशधर थोड़े दिनोंके लिये राजसिंहासन पर बैठने पाता है उसका भोग्यकाल।

राज्यलोभ (सं० पु०) राज्य पानेके लिये आग्रह, उच्चाकांक्षा।

राज्यवर्द्धन (सं० पु०) १ वह जो राज्य बढ़ाते हों। २ दमराजके एक पुत्रका नाम। ३ प्रभाकरवर्द्धनके पुत्र एक राजा। हर्षवर्द्धन देखो।

राज्यव्यवस्था (सं० स्त्री०) वह नियम या व्यवस्था जिसके अनुसार प्रजाके शासनका विधान किया जाता हो, राज्यनियम।

राज्यव्यवहार (सं० पु०) राजकार्य।

राज्यश्री (सं० स्त्री०) १ राजलक्ष्मी। २ राजा हर्षवर्द्धनकी बहन।

राज्यसभा (सं० स्त्री०) भारतीय व्यवस्थापक मंडलका वह भाग जिसमें प्रायः बड़े आदमियोंके प्रतिनिधि होते हैं, स्टेट कौन्सिल। जिस प्रकार ब्रिटिश पार्लमेंटके किंग (महाराज), लार्ड्स् और कामन्स ये तीन भाग हैं, उसी प्रकार भारतीय व्यवस्थापक मंडलके गवर्नर जनरल, व्यवस्थापिका परिषद् (लेजिस्लेटिभ एसेंबली) और राज्यसभा (स्टेट कौंसिल) ये तीन अंग हैं। राज्यसभा और व्यवस्थापिका परिषद् दोनों इंगलैण्डकी लार्ड सभा और कामन्स सभाके ढंग पर बनाई गई हैं। राज्यसभाका अपर चेंबर या अपर हाउस और परिषद्‌को लोअर चेंबर या लोअर हाउस भी कहते हैं। यद्यपि सभासदोंकी संख्याकी दृष्टिसे परिषद् बड़ी सभा और राज्यसभा छोटी सभा है, पर सदस्यों और उनके निर्वाचकोंकी योग्यता, पद और मर्य्यादाकी दृष्टिसे राज्यसभा बड़ी सभा और परिषद् छोटी सभा कहलाती है, क्योंकि उसके निर्वाचकों और सदस्योंकी योग्यता इससे अधिक रखी गई हैं। कोई विषय या बिल दोनों सभाओंसे स्वीकृत होना चाहिये। एक सभासे स्वीकृत होने पर कोई विषय या बिल स्वीकारार्थ दूसरी सभामें जाता है। वहांसे स्वीकृत होने पर वह गवर्नर जनरलके पास स्वीकारार्थ जाता है। गवर्नर जनरलको उसे स्वीकार करने या न करनेका पूरा पूरा अधिकार है। यदि गवर्नर जनरलने दोनों सभाओंसे स्वीकृत बिल पर स्वीकृति दे दी तो वह कानून बन जाता है। राज्यसभामें ३३ निर्वाचित और प्रेसिडेंट समेत २७ मनोनीत सदस्य होते हैं, जिनमेंसे प्रेसिडेंटको छोड़ कर १९ से अधिक सरकारी अफसर नहीं होते।

राज्यसुख (सं० क्ली०) वह सुख जो राजत्वके लिये हो।

राज्यसेन (सं० पु०) नन्दीपुरका एक राजा।

राज्यस्थ (सं० त्रि०) राज्ये तिष्ठति स्था-क। राज्यमें स्थित।

राज्यस्थायिन् (सं० त्रि०) १ शासनकारी। २ राजा।

राज्यस्थिति (सं० स्त्री०) राजपद पर अवस्थान शासनकी बागडोर हाथमें लेना।

राज्यहार (सं० त्रि०) राज्यका नाश करनेवाला।

राज्याङ्ग (सं० क्ली०) राज्यस्य अङ्गं। राज्यके साधक अंग जिन्हें प्रकृति भी कहते हैं। ये राज्याङ्ग आठ हैं,—स्वामी अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, बल और पौर-श्रेणि। (अमर) किसीके मतसे सात हैं—स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, बल और सुहृत्। (कामन्दकी) इस सप्ताङ्गकी रक्षा करनेसे राज्यकी रक्षा करनी होती है।

राज्याधिकार (सं० पु०) राज्यस्य अधिकारः। सप्ताङ्ग राज्यका अधिकार।

राज्याधिपति (सं० पु०) राज्यस्य अधिपति। राज्यका अधिपति राजा।

राज्यापहरण (सं० क्ली०) छल, बल या कौशलपूर्वक किसी राजाको राज्यच्युत करके उसका राज्य अपने अधीन करना।

राज्याभिषिक्त (सं० त्रि०) राज्ये अभिषिक्तः ७-तत्। राजकार्यमें अभिषिक्त, जिसके राज्याभिषेक हुआ हो।

राज्याभिषेक (सं० पु०) राज्ये अभिषेकः। १ राजसिंहासन

पर बैठनेके समय या राजसूय यज्ञमें राजाका अभिषेक जो वेदके जल और ओषधियोंसे कराया जाता है। ४ किसी नये राजाका राजसिंहासन पर बैठना या बैठाया जाना, राजगद्दी पर बैठनेकी रीति।

राज्याश्रममुनि (सं० पुं०) राजा, नरपति।

राज्येश्वर (सं० पु०) राज्यस्य ईश्वरः। राज्यका ईश्वर, राज्याधिपति।

राज्यैकदेशेन (सं० अव्य०) राज्यके एक देशके सिवा।

राज्यैश्वर्य (सं० क्लो०) राज्यमेव ऐश्वर्य्यं। राज्यरूप ऐश्वर्य।

राज्योपकरण (सं० क्ली०) राज्यशासनोपादानसमूह, राजचिह्न।

राट (सं० पु०) १ राज, बादशाह। २ श्रेष्ठ व्यक्ति, सरदार। ३ किसी बातमें सबसे बड़ा पुरुष। इस शब्दका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दोंके अन्तमें होता है।

राटि (सं० पु०) राटयति परस्परमाह्वयत्यत्रेति रट णिच् इन्। १ युद्ध, लड़ाई। राटयतीति रट भक्षणे स्वार्थे णिच्-इन्। २ शरारिपक्षी, टिटिहरी नामकी छोटी चिड़िया।

राटिका (सं० स्त्री०) हरिणका चीत्कार या शब्द।

राठु (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

राठुल (हिं० पु०) वह बड़ा तराजू जो लट्ठा गाड़ कर लटकाया जाता है और जिसमें लोहा, लकड़ी आदि चीजें मनोंकी तौलसे तौली जाती हैं।

राठ (सं० पु०) मदनवृक्ष, मयनाका पेड़।

राठ (हिं० पु) १ राज्य। २ राजा।

राठ—१ युक्तप्रदेशके हमीरपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५° २८′ से २५°५६′ उ० तथा देशा० ७९°२१′ से ७९° ५५′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५७४ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है। इसमें राठ नामक एक शहर और १७९ ग्राम लगते हैं। इसके पश्चिममें धसान, उत्तरमें बेतवा और पूरबमें बिरमा है।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २५°३६′ उ० तथा देशा० ७९° ३४′ पू०के मध्य हमीरपुरशहरसे ५० मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर हैं। राठोरराजपूतोंके रहनेके कारण इस स्थानका राठ नाम हुआ है। १२१० ई०में सरफउद्दीनने इस नगरको बसा कर अपने नाम पर इसका सरफाबाद नाम रखा। अभी वाणिज्यपथके बदल जानेसे वाणिज्यमें बहुत धक्का पहुँचा है। यहां बहुतसी मसजिद, मन्दिर और प्राचीन कीर्त्तिकी निदर्शनस्वरूप पुष्करिणी देखी जाती हैं। नगरके दक्षिणभागमें प्राचीन चन्देलराजवंशके महलोंका खंडहर पड़ा है। जैतपुर और चरखारी राजों द्वारा प्रतिष्ठित दो दुर्ग अभी भग्नावस्थामें खड़े हैं। मसजिदोंके शिलाफलकमें औरङ्गजेबके शासनकालकी तारीख लिखी है। बोगदादके अबदुल कादर जिलानीके विख्यात मकबरेसे एक ईंट ला कर उसीके ऊपर यहांके 'बड़े पीर का मकबरा' खड़ा किया गया है। १८५७ ई०के गदरमें यहांके तहसीलदार और कानूनगो विद्रोहीके हाथ मारे गये थे। स्थानीय प्रजा विद्रोहीदलमें शामिल न थी। १८६७ ई०में यहां म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। शहरमें अनाज, रुई और चीनीका कारबार होता है। यहां अमेरिकन मिशनकी एक शाखा, अस्पताल और एक स्कूल है।

राठवर (हिं० पु०) राठोर देखो।

राठोर—मारवाड़वासी राजपूत जातिकी एक शाखा। शाहबुद्दीन घोरीके भारतविजयकालमें ११९३ ई०को कनौजराज जयचांदके समय इन लोगोंने जातीय गौरवसे ऊँचा स्थान दखल किया था।

मारवाड़, राजपूत और राष्ट्रकूट शब्द देखो।

राढ़ि (सं० स्त्री०) शरारिपक्षी, टिटिहरी।

राढ़—वर्त्तमान बङ्गदेशका पश्चिमांश। किसीके मतसे यह शब्द संस्कृत 'राष्ट्र' शब्दका अपभ्रंश है। फिर कोई 'लाट' से 'राढ़' देशकी उत्पत्तिकी कल्पना करते हैं। हम लोगोंके विचारसे 'राढ़' शब्द संस्कृतमूलक नहीं है, यह शुद्ध देशी शब्द है। संथाली भाषामें 'राढ़ो' शब्द देखा जाता है जिसका अर्थ है नदीगर्भस्थ शैलमाला वा पथरीली जमीन। इसी संथाली शब्दसे शायद इस 'राढ़' शब्दकी उत्पत्ति हुई हो।

ईसाजन्मसे पहले ३री सदीमें मागधी भाषामें रचित जैन अङ्गमें 'राढ़' देशका उल्लेख है। ५वीं सदीमें रचित सिंहलके पालिमहावंशमें इस स्थानका 'लाट' नामसे,

९वीं सदीमें उत्कीर्ण धर्मपालके संस्कृत ताम्रशासनमें 'लाट' नामसे, ११वीं सदीमें तामिलग्रन्थभाषामें उत्कीर्ण राजेन्द्रचोलकी शिलालिपिमें 'लाड' नामसे तथा उस समयके संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटकमें 'राढ़ा' नामसे उल्लेख देखा जाता है।

मुर्शिदाबाद जिलेके उत्तर जहां भागीरथी दक्षिणमुखी हुई है, वहांसे ले कर हावड़ा जिले तक भागीरथीका सभी पश्चिमांश एक समय 'राढ़' कहलाता था।

१२वीं सदीमें प्रसिद्ध मुसलमान ऐतिहासिक मिनहाज-इ-सिराजने लक्ष्मणावती राज्यका परिचय देते समय जो वर्णन किया है वह इस प्रकार है,—"गङ्गाके दोनों किनारे लक्ष्मणावती राज्यके दो पंख हैं। (गङ्गाके) पश्चिम ओर 'राल' (राढ़) है, इसी ओर लखनोर नगरी है। पश्चिम (वा उत्तर धार) बरिन्द (वरेन्द्र) कहलाता है। यहां देवकोट नगर स्थापित है।" * मिनहाजके वर्णनसे मालूम होता है, कि उस समय लक्ष्मणावती और उसके चारों ओर अवस्थित याजनगर (याजपुर वा उत्कलका उत्तरांश), वङ्ग, कामरूप और तिरहुत (मिथिला) ये सब देश मिला कर 'गौड़' कहलाते थे। †

मिनहाजके वर्णनसे यह भी जाना जाता है, कि राजा लक्ष्मणसेनके समय वर्त्तमान वीरभूम, वर्द्धमान, बांकुड़ा, संथाल परगना और हुगली जिला 'राढ़' नामसे ही प्रसिद्ध था तथा 'लखनोर' वा लक्ष्मणनगरमें राढ़देशकी राजधानी थी। वह लक्ष्मणनगर अभी वीरभूमके मध्य केवल 'नगर' नामसे प्रसिद्ध है।

राढ़देशकी विशेषता यह है कि यहांकी मिट्टी बहुत कड़ी और देखनेमें पिङ्गल वा रक्ताभ होती है। उसमें चूना और लौह अक्साइड मिला है, बीच बीचमें कंकर है, भागीरथी गर्भ तक कीचड़का टीला खड़ा है, बहुत-सी पहाड़ी नदियोंके बहते हुए भी जमीन उतनी उपजाऊ नहीं है और अधिकांश जमीन ऊंची नीची है। बाढ़का जल यहां बहुत देर नहीं ठहरता। राढ़भूमकी यह विशेषता वीरभूमसे छोटानागपुरकी शैलमाला तक विस्तृत है। इस कारण भूतत्त्वविदोंके निकट भी यह विस्तीर्ण भूभाग 'राढ़' कहलाता है। आश्चर्यका विषय है, कि भागीरथीके पश्चिमपार अर्थात् राढ़ भूभागकी जैसी विशेषता है, भागीरथीके पूर्वपार अर्थात् बगड़ी भूभागको वैसी नहीं है। वहांकी जमीन उपजाऊ है और बाढ़के जलसे सहजमें डूब जाती है। पूर्ववङ्गके उपजाऊ भूभागके साथ बगड़ीभूभागका सम्पूर्ण सादृश्य देखा जाता है।

जमीनकी ऐसी विशेषता देख कर ही पूर्वकालमें वरेन्द्र, राढ़ और वङ्ग विभाग कल्पित हुआ था। इस प्रकार जमीनकी विशेषताके अनुसार भागीरथीके पश्चिम तीरसे राढ़ और पूर्वतीरसे असल वङ्ग आरम्भ हुआ।

शक्तिसंगमतन्त्रमें यह राढ़ भूभाग ही 'अङ्ग' नामसे वर्णित है। जैसे—

"वैद्यनाथं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे।
तावदङ्गाभिधो देशो यात्रायां नहि दुष्यते॥"

इस कठिन मृत्तिकामय गिरिनदीसमाकुल स्वास्थ्यकर स्थानमें ही शायद अति प्राचीन कालसे आर्य-उपनिवेश रहा होगा। सिंहलके महावंशमें लिखा है, कि बुद्धजन्मसे पहले इस राढ़में सिंहबाहु राजा करते थे। सिंहपुरमें उनकी राजधानी थी। उनके पुत्र विजयसिंहसे सिंहलमें राढ़ीय सभ्यता विस्तृत हुई। महावंशके मतसे विजयसिंहसे 'सिंहल' द्वीपका नामकरण हुआ। जैन आचाराङ्गसूत्रमें लिखा है, कि अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी यहां बारह वर्ष रह कर जङ्गली जातिमें भी धर्मतत्त्वका प्रचार किया था। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें (१६ अ०) लिखा है, कि "राढ़ी और वारेन्द्र वीरोंने शङ्खचूड़की ओरसे युद्ध किया था।"

राढ़क (सं० पु०) स्वनामख्यात देश।

"प्राच्यां मागधशोणौ च वारेन्द्रीगौड़राढ़काः।"

(ज्योतिस्तत्त्व)

राढ़ा (सं० स्त्री०) १ शोभा, छवि। २ कान्ति, दीप्ति। ३ एक पुरीका नाम।

"गौड़ं राष्ट्रमनुत्तमं निरुपमा तत्रापि राढ़ापुरी।
भूरिश्रेष्ठिकनामधामपरमं तत्रोत्तमो नः पिता।"

(प्रबोधचन्द्रोदय)

* मिनहाज तबकात्-इ-नासिरी द्रष्टव्य।

† तबकात-इ-नासिरी २०८।

राढ़ा (हिं० पु०) १ वंग देशके उत्तरभागका पुराना नाम। (स्त्री०) २ एक प्रकारकी कपास।

राढ़ि (सं० पु०) बंगदेशके उत्तरी भागका नाम।

राढ़ीय (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको मोटी घास।

राढ़ीय (सं० त्रि०) राढ़ो निवासोऽस्य राढ (वृद्धाच्छ। पा ४।२।११४) १ राढ़देशोद्भव, जिसका जन्म राढ़ देशमें हुआ हो। (पु०) २ ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी। ये राढ़ देशमें रहते हैं इसीसे राढ़ीय कहलाते हैं। २ राढ़देशवासो जनसाधारण। ब्राह्मण, कायस्थ, वैद्य, नवशाख आदि वंगवासी प्रायः सब जातिमें हो राढ़ीय देखे जाते हैं। कुलीन, मौलिक, श्रोत्रिय, ब्राह्मण, कायस्थ, वैद्य आदि शब्द देखो।

राण (सं० पु०) १ पत्र। २ मयूरपुच्छ, मोरकी पूंछ।

राणक—१ एक प्राचीन कवि। २ कुमारिलके तन्त्रवार्त्तिककी सोमेश्वर भट्टकृत प्रसिद्ध टीका।

राणाड्य (सं० पु०) दामोदरका नामान्तर।

राणदेर—बम्बईप्रदेशके सूरत जिलान्तर्गत चौरासी उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० २१° १३' उ० तथा देशा० ७२° ४८' पू०के मध्य तासी नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण दश हजारसे ऊपर है। ईसा जन्मके प्रारम्भमें यह नगर दक्षिण गुजरातका एक वाणिज्यकेन्द्र और महासमृद्धिशाली समझा जाता था। उस समय यहांसे वाणिज्य द्रव्य भरौंच नगर भेजे जाते थे। १३वीं सदीमें अरबदेशीय वणिक् और नाविकोंने यहांके जैन राजाओंको भगा कर नगर पर अधिकार जमाया तथा जैनमन्दिरोंको ढाह कर उन्हें मसजिदमें परिवर्त्तन किया। ये अरब लोग भारतवर्षके नाना स्थानोंमें वाणिज्य करते थे तथा नयाता (नवागत, कह कर अपना परिचय देते थे)। १५१४ ई०में भ्रमणकारी बारबोसाने इस नगरको समृद्धिकी बातें लिखी हैं। उस समय नयात लोग मलक्का, बङ्गाल, तेनासरिम, पेगू, मर्त्तबान् और सुमात्रा आदि स्थानोंमें नाव द्वारा आते तथा मसाला, भेषज, रेशम, कस्तूरी, पोर्सिलेन, चेञायिन आदि दुष्प्राप्य द्रव्य ले कर स्वदेश लौटते थे। १५३० ई०में पुर्त्तगीजोंने सूरत लूट कर इस नगरको अधिकार किया। पीछे सूरतकी समृद्धिके साथ साथ राणदेरकी भी अवनति हुई। १६वीं सदीके अन्तमें यह परगना सूरतके अधीन हो गया। आज भी यहांके सुन्नी सम्प्रदायी बोदागण मोरिसस, मौलमिन, रङ्गून, श्याम और सिङ्गापुर आदि देशोंमें वाणिज्य व्यवसाय करते हैं।

शहरमें १ अस्पताल, १ अंगरेजी स्कूल, ६ वर्नाक्युलर स्कूल और १ बालिका स्कूल है।

राणा (हिं० पु०) राजा। इस शब्दका प्रयोग राजपूताने-उदयपुर आदि कुछ विशेष रियासतोंके राजाओंके लिये होता है। नेपालके सरदार भी राणा कहलाते हैं।

राणाघाट—१ बङ्गालके नदिया जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २२° ५३' से २३° २०' उ० तथा देशा० ७८° २०' से ८८° ४५' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४२७ वर्गमील है। इसके दक्षिण-पश्चिममें भागीरथी बहती है। समूचे उपविभागमें मलेरियाका प्रकोप देखा जाता है, इसलिये आबहवा अच्छी नहीं है। इसमें राणाघाट, शान्तिपुर, चाकदह और बीरनगर नामक ४ शहर और ५६८ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त जिलेका एक नगर और उपविभागका विचार सदर। यहां अक्षा० २३° ११' उ० तथा देशा० ८८° ३४' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारके करीब है। यह इष्ट बङ्गालके स्टेट रेलवेका एक प्रधान स्टेशन है। १८५४ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक सब-जेल, बहुतसे अस्पताल और स्कूल हैं।

राणादेवी—कांगड़ा जिलेके ज्वालामुखी तीर्थके निकटवर्त्ती एक देवीमूर्त्ति। यह राज्ञी भी कहलाती है। राणादेवी-माहात्म्यमें इस तीर्थका विषय वर्णित है।

राणायन (सं० पु०) रणका गोत्रापत्य।

राणायनीपुत्र—आचार्यभेद। (कात्यायन० ६।६।१६)

राणायनीय (सं० पु०) आचार्यभेद।

राणायनीय (सं० पु०) सामवेद-विशारद आचार्यभेद। (वायुपुराण)

राणासम—बम्बईप्रदेशके महीकान्ताकी वृटिश पोलिटिकल एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह बेहवाड़ उपविभागमें अवस्थित है। यहांके सरदारराजपूतानेके आबूपर्वतके समीपस्थ चन्द्रावती राज्यके राववंशीय राजाओंके वंशधर हैं। लगभग १२२७ ई०में इस

वंशके आदिपुरुष राजा जयपाल चन्द्रावतीसे महीकान्ता के अन्तर्गत हरोल नामक स्थानमें आ कर बस गये। पीछे १३वीं पीढ़ीमें ठाकुर पृथ्वीराज वहांसे घोराबाड़ा जागीरमें चले आये। वह जागीर अभी उनके वंशधरोंकी शाखा प्रशाखामें विभक्त हो गई है। १८०६ ई०में यहांके परमार वंशीय रेहवाड़ राजपूत ठाकुर राजसिंहके मरने पर उनके पुत्र हमीरसिंह राजा हुए। इस वंशमें बड़े लड़के ही राज्याधिकारी होते हैं। सरदार बड़ौदाके गायकवाड़को ३७० रु०, इदरपतिको ७'१० रु० और वृटिशसरकारको ३ रु० करमें देते हैं।

राणाहु—सिन्धके थर और पार्कर जिलेके अन्तर्गत खिपरो तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २०° ५५´ उ० तथा देशा० ६६° ५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ५१८७ है।

राणि (सं० पु०) रणके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।
(पा० २।४।५६)

राणिका (सं० स्त्री०) अश्वरज्जु, घोड़ेकी लगाम।
(शिशुपालवध ५।५६ टीकामें मल्लिनाथ)

राणिग (सं० पु०) एक विख्यात पण्डित तथा जयादित्य-के पिता और केशवार्कके चचा।

रातंग (हिं० पु०) गिद्ध, गोध।

रात (सं० पु०) १ आचार्यभेद। (त्रि०) २ दत्त, दिया हुआ।

रात (हिं० स्त्री०) समयका वह भाग जिसमें सूर्यका प्रकाश हम तक नहीं पहुंचता, सन्ध्यासे प्रातःकाल तकका समय। रात्रि देखो।

रातभिखारी—एक वैष्णवसम्प्रदाय। बंगालके कितने वैष्णव रातमें अर्थात् शामसे एक पहर रात तक भिक्षा करते फिरते हैं उन्हींका नाम रातभिखारी है। शुक्ल पक्षकी पंचमी तिथिसे पूर्णिमा पर्यन्त इस भिक्षाका उत्तम समय है। वे किसीके दरवाजे पर नहीं गाते; रास्ते रास्ते ही घूमा करते हैं तथा गृहस्थ लोग उन्हें बुला कर भिक्षा देते हैं। उनका कहना है, कि दिनमें भिक्षा करना निषिद्ध है।

रातमनस् (सं० स्त्री०) १ जो इच्छुक हो। २ जिसकी देनेकी इच्छा हो।

रातहविन् (सं० त्रि०) दत्तहविष्क यजमान, जिन्होंने हविर्दान किया है।

रातहव्य (सं० त्रि०) रातं हव्यं येन। दत्तहविष्क यजमान।

"यो रातहव्योऽवृकाय" (ऋक् १।३१।१३)

'रातहव्यः दत्तहविष्कः यजमानः' (सायण)

राति (सं० स्त्री०) रा कर्म्मणि क्ति। दातव्य। "वर्हि-ष्मती रातिर्विश्रिता" (ऋक् १।११७।१) 'रातिर्दातव्य'।
(सायण)

राति (सं० स्त्री) रात देखो।

रातिचर (हिं० पु०) निशचर, राक्षस।

रातिब (अ० पु०) १ पशुओंका दैनिक भोजन। २ हाथियों आदिका खाना।

रातिषाच् (सं० त्रि०) यज्ञमें दत्त हविः आदिके लिये समवेत देवगण। "त्वां रातिषाचा अध्वरेषु सश्चिरे" (ऋक् २।१।१३) 'रातिषाचः रातिर्दानं दत्तं हविरादि धनं वा तेन समवेताः देवाः'। (सायण)

रातुल (सं० पु०) १ शुद्धोदनके एक पुत्रका नाम। २ राङ्कु, रांग।

रातुल (हिं० वि०) सुर्ख रंगका, लाल।

रातैल (हिं० पु०) लाल रंगका एक छोटी कीड़ा जो जुवारको हानि पहुंचाता है।

रात्र (सं० क्ली०) १ ज्ञान।

"रात्रञ्च ज्ञानवचनं ज्ञानं पञ्चविधं स्मृतम्।
तेनेदं पञ्चरात्रञ्च प्रवदन्ति मनीषिणः॥"
(नारदपञ्चरात्र १।१ अ०)

२ रात्रि, रात। ३ समय। जैसे—दीर्घरात्र, अति-रात्र इत्यादि।

रात्रक (सं० क्ली०) रात्रं ज्ञानं तेन कायतीति कै-क। १ पञ्चरात्रक। (पु०) २ वह जो एक वर्ष तक वेश्याके यहां रहा हो।

रात्रि (सं० पु०) राति ददाति कर्म्मभ्योऽवसरं निद्रादि-सुखं वा (राशदिभ्यां त्रिप्। उण् ४।६७) इति त्रिप्। १ हरिद्रा, हलदी। २ रजनी, रात। संस्कृत पर्याय—शर्वरी, निशा, निशीथिनी, त्रियामा, क्षणदा, क्षपा, विभावरी, तमस्विनी, रजनी, यामिनी, तमी, श्यामा, घोरा, याम्या,

तुङ्गी, नक्त, दोषा, वासतेयी, तमा, क्षमा, शताक्षी, क्षणिनी, निशिथ्या, चक्रभेदिनी, शर्वरी, शय्या, वासुरा, निषद्वरी, वसति, वायुरोषा, निशीथ, निट्, यामवती, तारा, भूषा, ज्योतिष्मती, तारकिणी, काला, कलापिनी।

वैदिक पर्याय—श्यावी, क्षपा, शर्वरी, अक्तु, ऊर्म्या, राम्या, यम्या, नम्या, दोषा, नक्ता, तमस, रजस, असिक्नी, पयस्वती, तमस्वती, घृताची, शिरिणा, मोकी, शोकी, उधस, पयस, हिमा, वस्वी। (वेदनि० १।७)

"यदा दिक्षु च अष्टासु मेरोर्भूगोलकोद्भवा।
छाया भवेत्तदा रात्रिः स्याच्च तद्विरहाद्दिनम्॥"

(अग्निपु० गणभेदनामाध्याय)

जब अष्टदिक् भावमें सुमेरुकी भूगोलकोद्भव छाया पड़ती है, तब उसे रात्रि कहते हैं। ज्योतिषशास्त्रके मतसे पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है। घूमते समय उसका जो भाग सूर्यकी ओर रहता है वहां दिन और जो भाग अंधकारसे ढका रहता है वहां रात होती है। भूकक्षा (Eclipic) विषुवरेखा (Equator)-के ऊपर वक्रभावमें रहनेके कारण पृथ्वीके स्थानविशेषमें रात्रिकी वृद्धि और क्षय होते देखा जाता है। सूर्यके उत्तरायण रहनेसे दक्षिण गोलार्द्धमें कहीं कहीं केवल रात्रि ही रहती है, दिनकी अपेक्षा रात्रिका भाग ही अधिक होता है। पृथिवी देखो।

पितृ और देवताओंकी रात्रि—मनुष्योंका एक महीना पितरोंका एक दिन तथा कृष्णपक्ष उनका दिन और शुक्लपक्ष रात्रि होती है। देवताओंका एक दिन बराबर है मनुष्योंके एक वर्षके। उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रि होती है।

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० ५१ अ०)

स्मृतिमें लिखा है, कि पूर्वोक्त दिवाभागमें जो सब नित्य और नैमित्तिकादि कर्म करने कहे गये हैं, वे यदि प्रमादवशतः न किये जांय, तो रात्रिके प्रथम प्रहर तक उन्हें कर सकते हैं, इसमें कोई दोष नहीं होता।

"पूर्वाह्णविहितं कर्म न कृतं तत् प्रमादतः।
रात्रेस्तु प्रहरं यावत् तत्कर्त्तव्यं यथोक्तवत्॥
दिवोदितानि कर्माणि प्रमादात् पतितानि च।
शर्वर्याः प्रथमे यामे तानि कुर्यादतन्द्रितः॥" (रत्नाकर)

तीन प्रहर रात्रि, रात्रिका प्रथम और शेष चार दण्ड दिनमें गिना जाता है, इसीसे रात्रिका एक नाम त्रियामा भी है।

"त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाद्यन्तचतुष्टयम्॥"

रात्रिकालमें कुलपूजा करनी होती है।

"रात्रावेव महापूजा कर्त्तव्या वीरवन्दिते।
न दिने सर्वथा कार्या शासनान्मम सुव्रते॥" (तन्त्रसार)

रोहिणीव्रत अर्थात् जन्माष्टमी व्रतको छोड़ कर और चाहे जो व्रत हो उसमें पारण नहीं करना चाहिये। किन्तु रोहिणी व्रतमें रातको पारणका विधान रहने पर भी महानिशामें कदापि पारण न करे।

"न रात्रौ पारणं कुर्यात् ऋते वै रोहिणीव्रतात्।
तत्र निश्यपि वै कुर्याद्वर्जयित्वा महानिशाम्॥"

(तिथितत्त्व)

रात्रिकालमें श्राद्धकर्म कभी भी न करे। रात्रिमें गङ्गास्नान किया जा सकता है।

रात्रिकालमें एक पहरके भीतर निर्दिष्ट परिमाणसे कुछ कम भोजन करना उचित है। उस समय दुष्प्राप्य वस्तु भी खाना उचित नहीं।

"रात्रौ च भोजनं कुर्यात् प्रथमप्रहरागमे।
किञ्चिदूनं समश्नायात् दुर्जरन्तत्र वर्जयेत्॥" (भावप्र०)

फलितज्योतिषके मतसे,—चन्द्रमा, मङ्गल और शनिग्रह रात्रिकालमें ही बलवान् होते हैं। रात्रिके तृतीय याममें रवि, बुध, शनि और चन्द्रमा बलवान् हुआ करते हैं। ज्योतिर्विदाभरणमें रात्रिलग्न निरूपणका विषय लिखा है। आकाशस्थ नक्षत्रोंके अवस्थानसे मेषादि लग्नका भुक्त और भोग्यदण्ड स्थिर किया जा सकता है।

विस्तृत विवरण लग्न शब्दमें देखो।

२ क्रौञ्च द्वीपकी एक नदीका नाम।

(मत्स्यपु० १२२।८७)

रात्रिक (सं० पु०) वृश्चिकभेद, एक प्रकारका बिच्छू।

रात्रिकर (सं० पु०) रात्रिं करोतीति कृ-ट। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

रात्रिकाल (सं० पु०) रजनी, रात।

रात्रिकृत्य (सं० क्ली०) रात्रिमें आचरणीय विषय, वह काम जो रातमें किया जाय।

रात्रिचर (सं० पु०) रात्रौ चरतीति (चरेष्टः । पा ३।२।१६) इति ट, (रात्रः कृति विभाषा । पा ६।२।७२) इति पक्षे मुमभावः । १ राक्षस । (त्रि०) २ रातके समय विचरनेवाला । स्त्रियां ङीष् ।

"तं प्रियदर्शं कृतघातयत्नां यान्तं वने रात्रिचरी डुढौके ।"

(भट्टि २।२३)

रात्रिचर्या (सं० स्त्री०) रात्रेश्चर्या । रातके समय कर्त्तव्य कर्म । आह्निकतत्त्वमें और वैद्यकमें रात्रिचर्याका विधान निर्दिष्ट हुआ है ।

रात्रिचारी (सं० पु०) रात्रिचर देखो ।

रात्रिज (सं० क्ली०) नक्षत्र, तारे आदि ।

रात्रिजल (सं० क्ली०) रात्रेर्जलं । कुज्झटिका, कुहरा ।

रात्रिजागर (सं० पु०) रात्रौ जागर्तीति जागृ-अच् । १ कुक्कुर, कुत्ता । (त्रि०) २ रातमें जागनेवाला ।

रात्रिजागरण (सं० क्ली०) रात्रौ जागरणं । रातमें जागना । रातमें नींद नहीं आने तथा जागे रहनेसे वायु कुपित हो जाती है इसलिये रात्रिजागरण वैद्यकमें निषिद्ध कहा है । निद्रा देखो ।

रात्रिजागरद (सं० पु०) रात्रौ जागरं जागरणं ददाति दा-क । मशक, मच्छड़ ।

रात्रिञ्चर (सं० पु०) रात्रौ चरतीति चर-ट (रात्रेः कृते विभाषा । पा ६।२।७२) इति मुम् । राक्षस ।

रात्रिञ्चरी (सं० स्त्री०) राक्षसी ।

रात्रितरा (सं० स्त्री०) गभीरा रजनी, गहरी रात ।

रात्रितिथि (सं० स्त्री०) शुक्लपक्षकी रात ।

रात्रिदिवम् (सं० अव्य०) दिन और रातके बीचमें ।

रात्रिदोष (सं० पु०) रातमें होनेवाले अपराध । जैसे—चोरी ।

रात्रिनाशन (सं० पु०) सूर्य ।

रात्रिन्दिव (सं० क्ली०) रात्रिश्च दिवा च । दिन और रात ।

रात्रिपरिशिष्ट (सं० क्ली०) रात्रिसूक्त । रात्रिसूक्त देखो ।

रात्रिपर्याय (सं० पु०) वह वाक्य जो अतिरात्रके योगसे कहा गया हो । यह यथाक्रमसे तीन बार उच्चारण करना होता है ।

रात्रिपुष्प (सं० क्ली०) रात्रौ पुष्पति विकाशते इति पुष्प-अच् । उत्पल, कमल ।

रात्रिपूजा (सं० स्त्री०) रातकी पूजा । जैसे—श्यामा पूजा ।

रात्रिबल (सं० त्रि०) रात्रौ बलं यस्य । १ राक्षस । (त्रि०) २ रातमें बलवान् ।

रात्रिभुक्ति (सं० स्त्री०) जैनोंके अनुसार छठी प्रतिमा जो रात्रिके समय किसी प्रकारका भोजन आदि ग्रहण नहीं करती ।

रात्रिभोजन (सं० पु०) रातमें खाना ।

रात्रिमट (सं० पु०) रात्रौ अटतीति अट्-अच् (रात्रेः कृति विभाषा । पा ६।३।७२) इति मुम् । १ राक्षस । (त्रि०) २ रातमें गमन करनेवाला ।

रात्रिमणि (सं० पु०) रात्रेर्मणिरिव । चन्द्रमा ।

रात्रिमारण (सं० क्ली०) रात्रिके योगमें मरना ।

रात्रिम्मन्य (सं० त्रि०) रात्रिकालविवेचना, रात्रिज्ञान ।

रात्रियोग (सं० पु०) रात्रिका आगमन ।

रात्रिरक्षक (सं० पु०) रात्रिकालको प्रहरी, रातका पहरा ।

रात्रिराग (सं० पु०) अन्धकार, अँधेरा ।

रात्रिवासस् (सं० क्ली०) रात्रेर्वासः वस्त्रमिव । १ अन्धकार, अँधेरा । २ रातके समय पहननेका वस्त्र । सवेरे उठ कर रात्रिवास छोड़ देना होता है । दिनमें रात्रिवास पहननेसे अलक्ष्मीकी कृपा होती है ।

"शयनञ्चान्धकारे च रात्रिवासो दिने तथा ।
स्नानाम्बरं कुवेशञ्च वर्ज्जयेत् शुष्कभोजनम् ॥"

(लक्ष्मीचरित्र)

रात्रिविगम (सं० पु०) रात्रेर्विगमो यत्र । प्रभात, सबेरा ।

रात्रिविश्लेषगामिन् (सं० पु०) रात्रौ विश्लेषं विच्छेदं गच्छतीति गम-णिनि । १ चक्रवाक, चकवा । (त्रि०) २ रात्रिकालमें विच्छेदप्राप्त ।

रात्रिवेद (सं० पु०) रात्रिं रात्रिशेषं वेदयति रवेणेति विद-णिच्-अण् । कुक्कुट, मुर्गा ।

रात्रिवेदिन् (सं० पु०) रात्रिं रात्रिशेषं वेदयति स्वरेण विद-णिच्-णिनि । कुक्कुट, मुर्गा ।

रात्रिसामन् (सं० क्ली०) सामभेद । (शत०ब्रा० ११।५।४।६)

रात्रिसूक्त (सं० क्ली०) ऋग्वेदके एक सूक्तका नाम ।

ऋग्वेदका १०।१२७।१-८ तक रात्रिसूक्त है। प्रथम सूक्त यथा—

"रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः।
विश्वा अधिश्रियो अधित॥" (ऋक् १०।१२७।१)

रात्रिहास (सं॰ पु॰) रात्रेर्हास इव शुभ्रत्वात्, रात्रौ हासो विकासो यस्य इति वा। कुमुद, कूईं।

रात्रिहिण्डक (सं॰ पु॰) रात्रौ हिण्डति अन्तःपुरमध्ये भ्रमतीति हिण्ड-गतौ ण्वुल्। राजाओंके अन्तःपुरका पहरेदार।

रात्री (सं॰ स्त्री॰) रात्रि कृदिकारादिति ङीष्। १ निशा, रात। २ हरिद्रा, हलदी। रात्रि देखो।

रात्र्यट (सं॰ पु॰) रात्रौ अटतीति अट्-अच्। १ राक्षस। (त्रि॰) रातमें घूमनेवाला।

रात्र्यन्ध (सं॰ त्रि॰) रात्रौ अन्धः। १ जिसे रातको न दिखाई देता हो, जिसे रतौंधीका रोग हो।

देवदारुके चूर्णको बकरीके दूधमें इक्कीस बार भावना दे। पीछे उसे नेत्रमें लगानेसे रात्र्यन्धरोग दूर होता है।

"देवदारोश्च वै चूर्णमजामूत्रेण भावयेत्।
एकविंशति वै वारमक्षिणी तेन चाञ्जयेत्।
रात्र्यन्धता पटलता नश्येदिति विनिश्चयः॥"

(गरुड़पु॰ १८६ अ॰)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि दूषित कफ जब नेत्रके तृतीय पटलमें आश्रय लेता है, तब रात्र्यन्धता होती है। दिनके समय कफ प्रायः नहीं रहता, इसी कारण रोगीको दिनमें दिखाई देता है। (भावप्र॰ नेत्ररो॰)

चक्षुरोग और नेत्ररोग देखो।

२ वे पक्षी और पशु जिन्हें रातको न दिखाई देता हो। जैसे,—कौआ, बन्दर।

"दिवान्धाः प्राणिनः केचित् रात्रावन्धास्तथापरे।
केचिद्दिवा तथारात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः॥"

(चण्डी १ अ॰)

रात्र्यन्धता (सं॰ स्त्री॰) रात्र्यन्धरोग, रतौंधी।

रात्र्याकूपार (सं॰ क्ली॰) सामभेद।

राथकारिक (सं॰ त्रि॰) रथकार-ठक् कुमुदादिभ्यष्ठक्। पा ४।२।८०) १ रथकारयुक्त देश। २ रथकारका अदूरभव। ३ रथकार द्वारा निर्वृत्त।

राथकार्य (सं॰ पु॰) रथकारस्य अपत्यं पुमान् रथकार (कुर्व्वादिभ्यो ण्यः। पा ४।१।१५१) इति ण्य। वह जो रथकार ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न हो।

राथगणक (सं॰ क्ली॰) रथगणकस्य भावः कर्म वा, (प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्। पा ५।१।१२९) इति रथगणक अञ्। रथगणकका भाव या कार्य।

राथजितेय (सं॰ त्रि॰) रथजित् नामक अप्सरागणभेद, विश्वजयीबुद्धिके विरागविशेषका उत्पादन करनेवाला।

"रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः।"

(अथर्व॰ ६।१३०।१)

राथन्तर (सं॰ त्रि॰) १ राथन्तर साम-सम्बन्धीय। २ रथन्तरका गोत्रापत्य। स्त्रियां ङीप्। ३ स्त्री आचार्य भेद। (बृहद्धर्म्मपुराण ५।२८)

राथन्तरायण (सं॰ पु॰) रथन्तरका गोत्रसम्भव।

राथप्रोष्ठ (सं॰ पु॰) असमातिका गोत्रापत्य।

राथीतर (सं॰ पु॰) रथीतरस्य गोत्रापत्यं रथीतर (अनृष्यानन्तर्य्ये विदादिभ्योऽञ्। पा ४।१।१०४) इति अण्। रथीतरके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

राथीतरायण (सं॰ पु॰) रथीतर (हरितादिभ्योऽञः। पा ४।१।१००) इति फक्। रथीतरके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

राथ्य (सं॰ त्रि॰) रथ्य या रथ सम्पर्कीय।

(ऋक् १।१५७।६)

राद्ध (सं॰ त्रि॰) राध सिद्धौ क्त। १ पक्व, रांधा हुआ। २ सिद्ध, ठीक किया हुआ।

राद्धान्त (सं॰ पु॰) राद्धः सिद्धः अन्तः निर्णयो यस्मात्। सिद्धान्त, उसूल।

राद्धान्तित (सं॰ त्रि॰) सिद्धान्तीकृत, न्यायसूत्र परम्परा द्वारा प्रतिष्ठित।

राद्धि (सं॰ स्त्री॰) सिद्ध होनेका भाव, सफलता।

राध (सं॰ पु॰) राधा विशाखा तद्युती पौर्णमासी राधी सास्मिन्नस्तीति राध (सास्मिन् पौर्णमासीति। पा ४।२।२१) इति अण्। १ वैशाख मास। २ धन, सम्पत्ति।

राध (हिं॰ स्त्री॰) पीब, मवाद।

राधगुप्त (सं॰ पु॰) बौद्धसम्राट् अशोकके मन्त्री।

राधन (सं॰ क्ली॰) राध-ल्युट्। १ साधना, साधनेकी क्रिया। २ प्राप्ति, मिलना। ३ तोष, तुष्टि। ४ वह वस्तु जिससे कोई कार्य्य किया जाय, साधना।

राधनपुर—बम्बईप्रदेशकी पालनपुर एजेन्सीका एक राज्य यह अक्षा० २३° २६´ से २३° ५८´ उ० तथा देशा० ७१° २८´ से ७२° ३ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११५० वर्गमील है। इसके उत्तरमें मोरवाद और तेरवाद राज्य, पूरबमें बड़ोदा, दक्षिणमें अहमदाबाद जिला और झिनझुवाद तथा पश्चिममें पालनपुरके अधीन बाराही राज्य है।

राधनपुरराज्य अभी बाबीवंशकी एक शाखाके अधिकारभुक्त है। बाबीवंशके आदिपुरुष हुमायूंके साथ भारतवर्ष आये थे। शाहजहान्‌के समय बहादुर खाँ बाबी थराड़के फौजदार बनाये गये। उस समय शाहजादा मुराद गुजरातमें शासन करते थे। उनकी सहायतामें बहादुर खाँका लड़का शेर खाँ बाबी भेजा गया। १६६३ ई०में शेर खाँका लड़का जाफर खाँ अपनी बुद्धिमत्तासे राधनपुर, समी, मञ्जपुर और तरवाड़का फौजदार हुआ। उस समय उसने अपना नाम सफदर खाँ रखा। १७०४ ई०में वह बीजापुरका और १७०६ ई०में पाटनका गवर्नर बनाया गया। उसके मरने पर उसका लड़का खाँ जहान् या खांजो खाँने जवान मुराद खाँकी उपाधि पाई। वह राधनपुर, पाटन, बड़नगर, विशालनगर, बीजापुर और खेरालूका गवर्नर था। पीछे उसका लड़का कमालउद्दीन खाँ औरङ्गजेबके मरने पर अहमदाबादका गवर्नर हुआ। इसके समय बाबीवंशकी एक शाखाने जूनागढ़ और बालासिनर पर दखल जमाया। १७५३ ई०में रघुनाथ राव पेशवा और दामाजी गायकवाड़ने अहमदाबाद पर चढ़ाई कर दी। कमालउद्दीन खां शहर छोड़ देनेको बाध्य हुए। १८१६ ई०में सिन्धकी खोसस जातिने राधनपुर पर आक्रमण किया। नवाबने वृटिश-सरकारसे सहायता पा कर उन्हें गुजरातसे मार भगाया। १८२० ई०में मेजर माइलसके साथ राधनपुरके नवाबको एक सन्धि हुई। शर्त यह ठहरी, की नवाब अपने राज्यमें वृटिश-सरकारके शत्रुको आश्रय नहीं दे सकते और जरूरत पड़ने पर उन्हें वृटिश-सरकारसे मदद मिल सकती है। वर्त्तमान नवाबका नाम है एच, एच, श्री जलालुद्दीन खांजी बाबी नवाब साहब। इन्हें ११ तोपोंकी सलामी मिलती है और गोद लेनेका भी अधिकार है।

इस राज्यमें राधनपुर नामक एक शहर और १५६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ६० हजारसे ऊपर है। रुई और गेहूं यहांकी प्रधान उपज है। राज्यकी आय चार लाख रुपयेसे ज्यादा है।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २३° ४६´ उ० तथा देशा० ७१° ३६´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ग्यारह हजारसे ऊपर है। शहरके चारों ओर १५ फुट ऊंची और ८ फुट चौड़ी दीवार खड़ी है। चारों कोनमें चार बुर्ज और आठ फाटक हैं। नगरके मध्यस्थलमें नवाबका दुर्ग और प्रासाद अवस्थित है। गुजरात, कच्छ और भावनगरके साथ यहांका वाणिज्य व्यवसाय चलता है। फते खां बलोचके वंशधर राधनखांसे नगरका नामकरण हुआ है।

राधना (सं० स्त्री०) १ वाक्य। २ कथन।

राधना (हिं० क्रि०) १ आराधना करना, पूजा करना। २ काम निकालना, साधना। ३ सिद्ध करना, पूरा करना।

राधरङ्क (सं० पु०) १ लाङ्गल, हल। २ थोड़ी वृष्टि या पाला गिरना।

राधरङ्क (सं० पु०) शीकर, ओस।

राधस् (सं० क्ली०) अनुग्रह, कृपा, सहानुभूति।

राधस्पति (सं० पु०) धनाधिपति, धनाढ्य व्यक्ति।

राधा (सं० स्त्री०) राध्नोति साधयति कार्य्याणीति राध-अच-टाप्। १ धन्वियोंका चित्रभेद। (बालभारत १ अङ्क) २ विशाखा नक्षत्र। ३ आमलकी, आंवला। ४ विष्णुकान्ता। ५ विद्युत, बिजली। (मेदिनी) ६ सूत अधिरथकी पत्नी। अधीरथकी पत्नी राधाने कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न कर्णको पाला पोसा था, इसी कारण कर्ण राधासुत भी कहलाते थे। (भारत १।६७।१३८-१६)

७ गोपिविशेष, श्रीराधिका, श्रीकृष्णकी वामभागांशा शक्ति।

श्रीमद्भागवतमें राधिकाका कोई उल्लेख नहीं है। उन्हें केवल कृष्ण-भक्त एक प्रधान सखी बताया है। ब्रह्मवैवर्त्त, देवीभागवत और पद्मपुराण आदिमें राधिकाका

विवरण पाया जाता है । उसे यहां पर संक्षेपमें लिखते हैं ।

ब्रह्मवैवर्त्त (ब्रह्मखण्डमें ५ अ०)-में लिखा है—गोलोकके रासमण्डलमें भगवान् श्रीकृष्ण देवताओंके साथ रहते थे । इसी समय उनके वाम पार्श्वसे एक कन्या उत्पन्न हो उनकी पूजा करने लगी । रासमण्डलमें यह कन्या उत्पन्न होते ही श्रीकृष्णके पास दौड़ी थीं, इसीसे देवताओंने उनका नाम राधा रखा । यह श्रीमती राधा श्रीकृष्णके प्राणकी अधिष्ठात्री देवी तथा प्राणसे उत्पन्न होनेके कारण उनके प्राणसे भी बढ़ कर प्रियतमा थीं ।

देवी राधा उत्पन्न होते ही सोलह वर्षकी, रूप यौवनसे सम्पन्न, अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्रधारिणी, हंसमुखी और मनोहारिणी हुईं । यह देवी अत्यन्त कोमलाङ्गी तथा जगत्‌की सभी सुन्दरीसे सौन्दर्य्यवती थी ।

श्रीराधा इस प्रकार आविर्भूत हो श्रीकृष्णसे प्रेमालाप करने लगीं और उनका कोमल शरीर देखते देखते प्रफुल्ल चित्तसे रत्नसिंहासन पर बैठ गई । इस समय श्रीराधिकाके सभी लोमकूपोंसे रूप और वेशरचनामें ठीक उसी तरहकी गोपाङ्गनाएं आविर्भूत हुईं । इन सब गोपियोंकी संख्या लाख करोड़ थी । उधर श्रीकृष्णके लोमकूपोंसे भी उसी तरहके गोपगण तथा रंगविरंगकी गायें उत्पन्न हुईं ।

गोलोकमें इसी प्रकार श्रीमती राधिकाकी उत्पत्ति हुई थी ।

यही गोलोकोद्भवा राधा वृन्दावनधाममें अवतीर्ण हुई थीं । वृन्दावनधाममें अवतीर्ण होनेका कारण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—

एक दिन भगवतीने महादेवसे श्रीराधिकाकी उत्पत्ति, नामनिरुक्ति और ध्यानादिका विषय पूछा था । देवदेव महादेवने अति गोपनीय श्रीमतीके जन्मादिका वृत्तान्त इस प्रकार कहा था,—

एक दिन इच्छामय श्रीकृष्णने गोलोकमें वृन्दावनके रम्यवनमें टहलनेकी इच्छा प्रकट की । इच्छामयकी इच्छा होते ही देवदेवी राधा उत्पन्न हुईं । इस समय श्रीकृष्णके दो रूप हो गये । दक्षिणाङ्गमें उन्होंने श्रीकृष्णमूर्त्ति और वामाङ्गमें राधाका रूप धारण किया था । परम रमणीया राधिका देवीको रासमण्डलमें रासविहारीके साथ रमण करनेकी इच्छा हुई । श्रीकृष्णको भी रमणोत्सुक जान कर वे उनके पास दौड़ी थी, इसीसे वे राधा कहलाईं । भक्तगण 'रा' शब्दके कहनेसे मुक्तिपद और 'धा' कहनेसे हरिपद पाते हैं, इसलिये भी उनका राधा नाम हुआ । श्रीमती राधा सुदामाके शापसे वृन्दावनमें अवतीर्ण हुई थीं ।

किसी एक समय राधानाथ गोलोकमें वृन्दावन-स्थित शतशृङ्गपर्वत पर विरजा नाम्नी एक गोपिकाके साथ विहार करते थे । राधिकाको चार दूतोंको यह हाल मालूम हो गया सो उन्होंने राधाके पास जा कर कुल वृत्तान्त कह सुनाया । यह सुनते ही राधाके क्रोधका पारावार न रहा और जहां श्रीकृष्ण विहार करते थे वहींके लिये वे रवाना हो गईं । श्रीकृष्णके साथी सुदामाने श्रीराधाका आगमन-कोलाहल सुन कर श्रीकृष्णको सावधान कर दिया और आप गोपगणोंके साथ भाग चले । भगवान् कृष्ण भी प्रेममयी राधाके प्रेमभङ्गभयसे विरजाको छोड़ भागे । विरजादेवी श्रीराधाके भयसे प्राण विसर्जन कर वहीं नदीरूपमें रहने लगी । राधिका जब वहां पहुंची, तब किसीको न पा कर वापस आईं ।

पीछे श्रीकृष्ण अष्ट शखाके साथ राधाके पास गये । राधाने उन्हें खूब फटकारा । किन्तु सुदामाको कृष्ण-निन्दा सुन कर रहा न गया सो उन्होंने भी दो चार बातें सुनाईं । इस पर राधाने अत्यन्त क्रुद्ध हो सुदामाको शाप दिया, कि 'तुम क्रूर असुरयोनि लाभ करो ।' सुदामा भी कब चुप रहनेवाले थे, उन्होंने भी शाप दिया कि, 'तुम भी गोलोकसे भूलोक जा कर गोप-गृहमें गोपकन्यारूपमें जन्म लोगी, सौ वर्ष तक असह्य कृष्णविरहदुःख भोग करोगी और भगवान् भूभारहरणके लिये अवतीर्ण हो तुम्हारे साथ मिलेंगे ।' सुदामाके शापसे राधाने गोकुलमें जन्म लिया और राधाके शापसे सुदामा शङ्खचूड़ नामसे असुरयोनिको प्राप्त हुए ।

राधा वराहकल्पमें राधिका गोकुल नगरमें वैश्यवर वृषभानुकी कन्यारूपमें अवतीर्ण हुईं । वृषभानुकान्ता कलावतीने वायुगर्भ धारण किया था और यथा समय

उसके वायुप्रसव करने पर अयोनिसम्भूत श्रीराधा उत्पन्न हुई। बारह वर्षकी उमरमें वृषभानुने रायाण-वैश्यके साथ श्रीराधाका ब्याह करा दिया। श्रीराधा वृषभानुसुतामें अपनी छाया रख कर अन्तर्हित हो गई थी। उसी छायाके साथ रायाणका विवाह हुआ था। चौदह वर्ष बीत जाने पर भगवान् कृष्ण कंसभयके बहाने बालकरूपमें गोकुल आये। रायाण कृष्णजननी यशोदा-के भाई और गोलोकमें श्रीकृष्णके अंशस्वरूप थे। अतएव रायाण सम्बन्धमें श्रीकृष्णके मामा हुए। जगत्श्रेष्ठ पुण्यतम श्रीवृन्दावनके वनमें श्रीकृष्णराधाका लीला विहार होता था।

गोपोंको स्वप्नमें भी श्रीराधाका रूप दर्शन नहीं हुआ था। श्रीराधा स्वयं श्रीकृष्णकी गोदमें तथा रायाणके घर छायारूपमें रहती थीं। ब्रह्माने श्रीराधाके चरणदर्शन-की कामनासे ६० हजार वर्ष पुष्करतीर्थमें कठोर तपस्या की थी। पीछे भगवान्‌ने जब पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये भारतवर्षमें नन्दगोपके घर जन्म लिया, तब ब्रह्मा को श्रीराधाके चरणकमलका दर्शन हुआ था। श्रीकृष्णने पुण्य वृन्दावनधाममें श्रीराधाके साथ क्षणकाल विलास किया था। पीछे सुदामाके शापसे राधाकृष्ण-का विच्छेद हुआ। इसके बाद वृषभानु, नन्द और गोपगोपी सबके सब श्रीराधाकृष्णके साथ गोलोकधाममें गये। श्रीराधाका यह उपाख्यान पापनाशक और पुत्र-पौत्रादिक्रमसे अशेष मङ्गलदायक है।

श्रीकृष्ण द्विभुज और चतुर्भुज दोनों रूपमें विभक्त हैं। द्विभुज श्रीकृष्णकी सर्वोत्तमा श्रीराधा ही पत्नी हैं तथा चतुर्भुज कृष्णके चार प्रियतमा हैं,—महालक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और तुलसी।

पण्डितोंको चाहिये, कि वे पहले श्रीराधाका नाम ले कर पीछे कृष्णका नाम लें। कृष्णनामके बाद राधा-का नाम लेनेसे ब्रह्महत्याका पाप होता है। हरि कार्त्तिकी पूर्णिमाके रासोत्सव उपलक्षमें गोलोक-रासमण्डलमें रासेश्वरीकी पूजा करके राधाकवच गले और बाहुमें पहनते हैं। इस समय श्रीराधा जगत्पति कृष्णकी और कृष्णा भी श्रीराधिकाकी पूजा करते हैं।

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० ४८५० अ०)

राधिकाके सोलह नाम ये हैं,—राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामांशसम्भूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावली, चन्द्रकान्ता और शतचन्द्रनिभानना। श्रीमती राधिका-के ये सोलह नाम सबसे श्रेष्ठ तथा पापनाशक हैं।

इन सब नाम-निरुक्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—'रा' का अर्थ दान और 'धा' का अर्थ निर्वाणमुक्ति है। जो भक्तोंको निर्वाणमुक्ति प्रदान करती हैं वही राधा हैं। वे रासेश्वर श्रीकृष्णकी पत्नी हैं, इसलिये रासेश्वरी तथा रासमण्डलमें वास करती हैं, इस कारण रास-वासिनी कहलाई। सभी रसिकादेवियोंकी ईश्वरी होनेके कारण पण्डितोंने इनका रसिकेश्वरी नाम रखा। वे परमात्मा श्रीकृष्णके प्राणसे भी बढ़ कर प्यारी हैं, इससे कृष्णप्राणाधिका और श्रीकृष्णकी अतिशय प्रिया-कान्ता होनेसे कृष्णप्रिया हुई। वे अवलीलाक्रमसे कृष्णरूप विधान करनेमें समर्थ तथा सर्वांशमें श्रीकृष्ण-सदृशी हैं इस कारण कृष्णस्वरूपिणी कहलाईं। कृष्ण-के वाम अंशसे उत्पन्न होनेके कारण कृष्णवामांशसम्भूता और स्वयं मूर्त्तिमती परमानन्दराशि होनेके कारण वे परमानन्दरूपिणी नामसे प्रसिद्ध हुईं। 'कृष' का अर्थ मोक्ष, णकारका अर्थ उत्कृष्ट और आकारका अर्थ दान-बोधक है। वे उत्कृष्ट मोक्षदायिनी हैं, इससे कृष्णा हुईं। वृन्दका अर्थ सखी और आकारका अर्थ अस्ति-बोधक है, उनकी सखियां विद्यमान हैं, इस कारण वृन्दा कहलाईं। विनोदका अर्थ आनन्द है जो उनके वृन्दावनमें सम्पूर्णरूपसे विराजित हैं इससे उन्हें वृन्दावनविनोदिनी कहते हैं। राधिकाका मुखचन्द्र और नखचन्द्रावली निरन्तर विद्यमान होनेके कारण चन्द्रावली नाम पड़ा। उनकी मुखकान्ति चन्द्रमाके समान है इससे चन्द्रकान्ता और मुखमण्डल सौ चन्द्रमाके समान शोभता है इससे वे शतचन्द्रनिभानना कहलाती है।

जो त्रिसन्ध्या राधिकाके ये सोलह नाम जपते हैं वे इस लोकमें राधामाधवके चरणकमलमें भक्ति लाभ कर परलोकमें अणिमादि सिद्धि पाते हैं तथा उनके दास्य-कार्यमें नियुक्त हो सर्वदा उनके साथ कालयापन करते हैं। (ब्रह्मवै० श्रीकृष्णजन्मख० १७ अ०)

देवीभागवतमें राधिकाकी पूजा और मन्त्रादिका विषय इस प्रकार लिखा है,—मूलप्रकृतिरूपिणी चिन्मयी भुवनेश्वरी जब जगत्‌की सृष्टि कर रही थी, उस समय प्राण और बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी दो शक्ति आविर्भूत हुई। उनमेंसे प्राणको अधिष्ठात्री देवी राधा और बुद्धिको अधिष्ठात्री देवी दुर्गा थीं। यह निखिल विराड़ादि चराचर-जगत् उसी शक्तियुगलके अधीन है। बिना इनके अनुग्रहके जीव मुक्तिलाभ नहीं कर सकता। इस कारण जीवमात्रको ही इस शक्तिकी आराधना करना उचित है। इन दो शक्तिमेंसे पहले राधिका शक्तिका मन्त्र है 'श्रीराधायै स्वाहा' जिसे ब्रह्मा/विष्णु आदि देवगण नित्य जपते हैं। इस षड़क्षर महामन्त्रसे धर्मादि लाभ होता है। इस मन्त्रके साथ ह्रीं जोड़ देनेसे यह मन्त्र वाञ्छा-चिन्तामणि हो जाता है। उक्त मन्त्रकी महिमा सहस्रकोटि मुखसे तथा शतकोटि जिह्वासे भी वर्णन नहीं की जा सकती। पहले पहल गोलोकधाममें श्रीकृष्णने मूलप्रकृतिदेवीके उपदेशसे रासमण्डलमें यह मन्त्र ग्रहण किया था। पीछे श्रीकृष्णके उपदेशसे विष्णुने और विष्णुके उपदेशसे ब्रह्मा आदि देवताओंने यह मन्त्र ग्रहण किया था। बिना राधिकापूजा किये कृष्णपूजामें अधिकार नहीं होता। अतएव सभी वैष्णवोंको राधाकी पूजा करना अवश्य कर्त्तव्य है। राधा श्रीकृष्णकी अधिष्ठात्री देवी हैं, इस कारण कृष्ण राधाके अधीन हैं। राधा सर्वदा कृष्णकी रासेश्वरी हो कर विराजित हैं। कृष्ण क्षण भरके लिये भी राधाके बिना नहीं रह सकते।

पूजाके विधानानुसार ध्यानादि करके उक्त मन्त्रसे राधिकाकी पूजा करनी होती है। जो यथाविधान रासेश्वरी राधाकी पूजा करते हैं वे विष्णुके समान हैं। जो ज्ञानवान् व्यक्ति कार्त्तिक मासकी पौर्णमासी तिथिमें राधाजन्मोत्सव मनाते हैं राधा उन्हें सान्निध्य प्रदान करती हैं। सर्वदा गोलोकवासिनी राधाने एक समय किसी कारणवश वृन्दावनकाननमें वृषभानुकी कन्या हो कर जन्म लिया था। यह देवी भक्तोंकी कामना धारण अर्थात् पूरी करतीं इससे उनका राधा नाम हुआ है।

शालग्रामशिला वा घटमें देवी राधिकाकी पूजा करके पीछे उसके अङ्गदेवतादिकी पूजा करनी होती है। देवीकी पूजा करके दक्षिणवर्त्तक्रमसे अष्टदलपद्मके पुरोभागमें पूर्वदल पर मालावती, अग्निकोणमें माधवी, दक्षिणदल पर रत्नमाला, नैऋतदल पर सुशीला, पश्चिमदल पर शशिकला, वायुदल पर पारिजाता, उत्तरदल पर सुन्दरी, पीछे परावती और ईशानदल पर अष्टदलके बहिर्भागमें ब्राह्मी आदि मातृगणकी, भूपुरमें दिक्‌पालोंकी तथा वज्र आदि अस्त्रोंकी पूजा करनी होती है। इसके बाद यथाशक्ति उपचार द्वारा देवीके आवरणदेवताकी पूजा करना कर्त्तव्य है। पूजाका क्रम संक्षेपमें लिखा गया। विशेष विवरण पूजापद्धतिमें लिखा है।

(देवीभागवत ९।५० अ०)

वृन्दावनधाममें भगवान्‌ने राधिकाके साथ जो रासलीला की थी उसका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें विस्तार तौरसे लिखा है। रास शब्द देखो।

राधातन्त्रमें लिखा है,—

भगवान् वासुदेव काशीपुर जा कर कायमनोवाक्यसे महामायाकी कठोर तपस्या करने लगे। सहस्रादित्य गत होने पर भी उनकी सिद्धि न हुई। अनन्तर महामायाने दर्शन दे कर कहा, 'वत्स! उठो बिना कुलाचारके सिद्धि नहीं होती। मेरी अंशसम्भवा लक्ष्मीको छोड़ कर क्या तप करने बैठे हो? तुम्हें एक गोपनीय बात कहती हूं, सुनो। मेरे वक्षःस्थल पर आम्नायरूपा चित्रविचित्र माला है। ये सब माला मेरी दूती हैं, हस्तिनी, पद्मिनी, चित्रिणी और शङ्खिनी उनके नाम हैं। इनमेंसे पद्मिनी नामकी माला ही व्रजमें जा कर राधा नामसे प्रसिद्ध होंगी। वासुदेव! तुम मथुरा जा कर यदि उस पद्मिनीका साथ करो, तो तुम्हारी सिद्धि होगी। मेरी अन्यान्य मातृका देवीगण भी उनकी अनुचरी होंगी।' भगवान् वासुदेवने महामायाके समीप पद्मिनीको देखना चाहा। इस पर रक्तविद्युल्लताकृति पद्मगन्धसमन्विता मोहिनीरूपधारिणी सखियोंसे वेष्टित सहस्रदलपद्मके ऊपर बैठी हुई मोहिनीरूप देवी पद्मिनी आविर्भूत हुईं। वासुदेव वह मूर्त्ति देख कर बड़े विस्मित हो रहे। पद्मिनीने कहा, 'भगवन्! शीघ्र व्रजधाम आइये, वहां मैं आपके साथ कुलाचार करूंगी। वहां वृषभानुके घर आपके आग्रहसे ही जन्म लूंगी।' इतना कह कर पद्मिनी महामायाकी मालामें अन्तर्हित हो गई।

चैत्रमास शुक्लपक्ष पुष्यानक्षत्रयुक्त नवमी तिथिको आधी रातमें पद्मिनी देवी विविध कमलदलोंसे परिशोभित कालिन्दीजलमें मायामय डिम्बरूपमें आविर्भूत हुईं। महामाया कात्यायनी वह असीम तेजोमय डिम्ब ले कर कालिन्दीके किनारे जपपरायण वृकभानुके समीप उपस्थित हो बोलीं, 'वत्स! तुम्हारी पत्नीकी भक्तिसे मैं बहुत प्रसन्न हूं, उसे कन्यारत्न प्राप्त होगा।' यह कह कर वे अन्तर्हित हो गईं। वृकभानुने वह डिम्ब अपनी स्त्रीको दिया। वे बड़े आनन्दसे देखती थीं, कि उसी समय डिम्ब दो भागोंमें बंट गया। उसके बीचमें भुवनमोहिनी विद्युल्लताकार सौभाग्यवर्द्धिनी कन्या देख कर वह बहुत विस्मित हो गई। अनन्तर वृकभानुने अपनी पत्नी कीर्त्तिदाके साथ मिल कर कन्याका राधिका नाम रखा।

"रक्तविद्युत्प्रभा देवी धत्ते यस्मात् शुचिस्मिते।
तस्मात्तु राधिका नाम सर्वलोकेषु गीयते॥"

(राधातन्त्र ७ पटल)

वह देवी रक्तविद्युत्प्रभा धारण करती थीं इस कारण सभी लोकोंमें वह राधिका नामसे प्रसिद्ध हुईं। वह पद्मिनी दूसरे वर्ण कृष्णको पानेके लिये षोड़शोपचारसे ब्रह्माण्डरूपिणी महाकालीकी पूजा करने लगी। राधातन्त्रमें कुछ और तरहसे लिखा है—

विष्णुवल्लभा मृगनयना राधा ही महामाया जगद्धात्री, त्रिपुरा और परमेश्वरी हैं; पद्मगन्धिनी ही उनकी दूती हैं, वे भी कृष्णभक्ता और कृष्णवल्लभा हैं। वृकभानुकी दृढ़भक्तिसे आकृष्ट हो उन्होंने उसकी कन्यारूपमें जन्म लिया। वे ही निर्जन वनवेष्टित यमुनाके जलमें पद्मखण्डका आश्रय कर महाकालीका महामन्त्र जप रही हैं। उन्होंने ही फिर दूसरी राधाकी सृष्टि की थी। वही दूसरी राधा वृकभानुगृहस्थिता चन्द्रावली है। पूर्वोक्त राधिकामें जो जो गुण हैं, पद्मिनीसृष्ट राधामें भी वही सब गुण देखे जाते हैं। इस प्रकार तीन राधिका निर्दिष्ट हुई है।

"राधिका त्रिविधा प्रोक्ता चन्द्रा तु पद्मिनी तथा।
न पश्येत् परमेशानि चन्द्रसूर्यं शुचिस्मिते॥
मानवानां महेशानि वराकाणां हि का कथा।
आत्मनोपदवं कृत्वा पद्मिनी पद्ममाश्रिता।
त्रिपुरायां महेशानि पद्मिनी अनुचारिणी॥"

(८म पटल)

इन तीन राधाओंमें वृकभानुगृहस्थिता राधा ही कृत्रिमा और अयोनिसम्भवा पद्मिनी ही पराक्षरा हैं।

(७म पटल)

८ वैष्णवकी पूर्णिमा ९ प्रीति, अनुराग। १० एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें रगण, तगण, मगण, यगण और एक गुरु मिल कर १३ अक्षर होते हैं।

राधाकवच—धारणीय मन्त्रौषध भेद।

राधाकान्त (सं० पु०) राधायाः कान्तः। श्रीकृष्ण।

राधाकान्त तर्कवागीश—पुराणार्थप्रकाशके प्रणेता।

राधाकान्तदेव—प्रायश्चित्तचन्द्रिकाके रचयिता।

राधाकान्त देव—जगद्विख्यात शब्दकल्पद्रुम नामक संस्कृत अभिधानके प्रणेता। इन्होंने प्राचीन संस्कृतके श्लोकाकारमें निबद्ध शब्दोंको वर्णानुक्रमसे सजा कर अङ्गरेजी शब्दकोषके आधार पर सबसे पहले यह कोष सङ्कलन किया। इसमें प्राचीन हिन्दू जगत्के अनुष्ठेय धर्मकर्मसम्बन्धीय पद्धति, पौराणिक उपाख्यान, व्रतकर्म तथा गणित, विज्ञान, सङ्गीतशास्त्र, दर्शन, वेदान्त आदि सभी विषय उद्धृत हैं। इस संस्कृत अभिधानसे केवल उन्होंका नहीं, पण्डितप्रधान समस्त वङ्गभूमिका ही मुख उज्ज्वल हुआ है।

कलकत्तेके विख्यात शोभाबाजार-राजवंशमें १७०५ शककी १ली चैतको (१२वीं मार्च १७८४ ई०) राधाकान्तका सिमलामें मामाके घर जन्म हुआ। ये महाराज नवकृष्णके पौत्र तथा उनके पोष्यपुत्र गोपीमोहनदेवके पुत्र थे। १७९७ ई०में महाराज नवकृष्णके मरने पर उनके पुत्र राजा राजकृष्णके साथ गोपीमोहनका विषयविभाग ले कर तकरार खड़ा हुआ। कलकत्ता सुप्रीमकोर्टके विचारसे दोनोंको समान सम्पत्ति मिली इस समयसे गोपीमोहन पुराने महलमें रहने लगे।

बचपनसे ही राधाकान्तका विद्याशिक्षामें विशेष अनुराग था। उन्होंने थोड़े ही समयमें संस्कृत, अरबी, फारसी और अङ्गरेजीभाषा सीख ली थी। उनका गभीर ज्ञान और शिक्षाकी प्रखरता देख कर विशोप हेबरने लिखा है;—"He (Radhakanta Dava) is an young

man of pleasing countenance and manners, speaks English well and has read many of our popular authors, particularly historical and geographical". रिकार्डर्सकी भारतीय विवरणीमें उनकी मानसिक उन्नतिका यथेष्ट परिचय पाया जाता है।

महाराज नवकृष्णने बड़ी धूमधामसे प्रसिद्ध गोष्ठीपतिवंशीय गोपीकान्त सिंह चौधरीकी कन्याके साथ राधाकान्तका विवाह किया। इस विवाहके प्रभावसे राधाकान्तने दक्षिणराढ़ीय कायस्थ कुलीन समाजका १३वाँ गोष्ठीपतित्व लाभ किया।

अपने पितामह और पिताके जैसे वे राजभक्त थे। वृटिश सरकार जब कोई काम करनेकी इच्छा प्रकट करती थी तब राधाकान्त उसे कर डालनेके लिये कोई कसर उठा न रखते थे। विद्योन्नतिके विषयमें सभी समय उनका आग्रह दिखाई देता था। १८१६ ई०में वे सर एडवर्ड हाइड इष्टके साथ मिल कर हिन्दू-कालेजकी प्रतिष्ठाके लिये तैयार हो गये। ह, ह, विलसनकी सहायतासे उक्त विद्यालयकी उन्नतिके लिये इन्होंने बहुत चेष्टा की। ३४ वर्ष गवर्मेंटनिर्वाचित कलकत्ता-संस्कृत कालेजके परिदर्शक रह कर इन्होंने संस्कृत भाषामें अच्छी उन्नति कर ली थी।

कलकत्तेकी स्कूलबुक सोसाइटी स्थापित होने पर देशी हिन्दुओंने यहां अनुमोदित और मुद्रित ग्रन्थावलीका पाठ्यरूपमें व्यवहार करना चाहा। उन्होंने अकारण संदेह किया था, कि इस सभाके सम्पादित ग्रन्थोंमें हिन्दूधर्मविरुद्ध कोई न कोई विषय लिपिबद्ध रहेगा ही। जनसाधारणका यह अमूलक संदेह दूर करनेके लिये राजा राधाकान्त उस सभाके सहकारी सम्पादक हुए। इस सभामें पड़ कर वे देशीय विद्यालय और सभाओंकी शिक्षाविषयिणी उन्नतिमें उत्साह दिखाने लगे। पीछे उस सभाके पण्डित गौरमोहन विद्यालङ्कारको उत्साह दिला कर इन्होंने 'स्त्रीशिक्षाविषयक' नामक स्त्रीशिक्षाकी परिपोषक एक पुस्तकका प्रचार कराया। १८२० ई०में बङ्गला भाषामें सर्वप्रथम नीतिकथा और अङ्गरेजी ढंग पर Spelling Book निकाली गई। इस प्रकार पुस्तक-प्रचार करनेके कारण ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैण्डकी रायल एशियाटिक सोसाइटीने इनकी बड़ी तारीफ की। स्त्रीशिक्षाके पृष्ठपोषक हो इन्होंने स्वयं प्रबन्ध लिख कर जनसाधारणका चित्त आकर्षण किया था। इस विषयमें इनका विशेष अध्यवसाय देख कर बेथुन साहबने इन्हें स्त्रीशिक्षाका प्रधान बताया है।

Agricultural and Horticultural Society-के सहयोगी सम्पादक हो इन्होंने उक्त सभाकी उन्नतिके लिये बड़ा प्रयत्न किया। इस समय वे Roy, As-Soc. of Great Britain and Ireland सभाके सदस्य, लिपजिककी German Oriental Society और बार्लिनके Roy, Academy of Sciences, कोपेनहेगनकी Roy. Soc. of Northern Antiquaries, सेण्टपिटर्सबर्गके Imp. Academy of Sciences, बोष्टनके American Oriental Society और भियेनाके Kaiserlichen Academy-के सभ्य हुए। वे समय समय पर उन सब सभाओंकी पत्रिकादिमें भी प्रबंध लिखा करते थे।

जिस कार्यके लिये राधाकान्त समस्त जगद्वासीके निकट परिचित हुए हैं, वह जगद्विख्यात 'शब्दकल्पद्रुम' नामक वृहत् संस्कृत अभिधान है। उन्होंने १८२२ ई०में उसका प्रथम भाग मुद्रण कर प्रचार किया। प्रायः ४० वर्ष परिश्रमके बाद १८५८ ई०में उसका अष्टम वा अन्तिम भाग प्रकाशित हुआ। यह महाग्रन्थ उन्होंने भारतीय पंडितमण्डली तथा यूरोप और अमेरिकाके संस्कृतभाषाभिज्ञ सभी सुधियोंको उपहार दिया था। संस्कृत साहित्यानुरागी किसी भी व्यक्तिके प्रार्थना करने पर वह उन्हें खाली हाथ लौटने नहीं देते थे। इसके सिवा प्रत्येक साहित्यसभाको भी उन्होंने निज संकलित एक एक शब्द कल्पद्रुम प्रदान किया था। उनका दिया हुआ ग्रन्थ पा कर यूरोप और अमेरिकाके प्रत्येक शिक्षित सभाने ही उसे Honorary और Corresponding member रूपमें ग्रहण किया। यहां तक कि, रूसपति जार और डेन्मार्कके राजा ७म फ्रेडरिकने उन्हें सम्मानार्थ एक पदकसम्वलित स्वर्णहार भेजा। उस चेनके प्रत्येक दानेमें FVII अङ्कित था। विलायतके कोर्ट आव डिरेक्टरके हाथसे वह हार उनके पास आया था।

संस्कृत और बङ्गला साहित्यकी आलोचना और उन्नतिमें रातदिन लगे रहने पर भी उन्होंने समाजनीति और राजनीतिका परित्याग नहीं किया था। वे देशी लोगोंको भलाईके लिये बहुतसे काम कर गये हैं। १८३५ ई०में वे गवर्मेण्ट द्वारा जष्टिस आव दि पीस और राजधानीके अनरेरी मजिष्ट्रेट नियुक्त हुए। कई वर्ष तक इन्होंने इस कार्यमें भी विशेष कुशलता दिखलाई थी।

१८५१ ई०में वृटिश-इण्डियन सभाकी प्रतिष्ठा हुई। सभ्योंने आदरपूर्वक इन्हें सभापति निर्वाचित किया। इस पद पर ये जीवनके अन्तिम दिन तक रहे।

१८३७ ई०में इनके पिताकी मृत्यु हुई। इस समय भारत-गवर्मेण्टने इन्हें राजा बहादुरकी उपाधि और खिलअत दी। १८५८ ई०में शब्दकल्पद्रुम अभिधान समाप्त होने पर इन्होंने भारतेश्वरी विक्टोरियाको यह ग्रन्थ उपहारमें भेजा। महारानीने उस उपहारसे प्रसन्न हो कर इन्हें विशेष राजानुग्रहके निदर्शनस्वरूप एक पदक भेजा। उस पदककी एक पीठ पर महारानीका उत्तमाङ्ग और दूसरी पर From Her Majesty Queen Victoria to Raja Radha Kanta Bahadur खुदा हुआ था। उस पदकके साथ भारतसचिव सर चार्ल्स ऊडने इन्हें महाराणीके आदेशानुसार एक पत्र इस प्रकार दिया था,—"I have laid before the Queen your letter with copy of the Sabdakalpadrum forwarded by you for presentation to Her majesty and I am commanded to acquaint you that Her Majesty has received the work very graciously and fully appreciating the spirit of loyalty in which yon have transmitted it, has directed me to forward me to you the accompanying medal."

शब्दकल्पद्रुम द्वारा इन्हें विद्वत्समाजमें ऊंचा आसन मिलने पर भी उसमें उनके आश्रित पण्डितोंका भी परिश्रम देखा जाता है। वे एक सुकवि भी थे। उनका रचित पद 'राधाकान्त-पदावली' में मुद्रित हुआ है। अभी वह ग्रन्थ नहीं मिलता। उन पदोंमें इनके हृदयनिहित धर्मभावकी प्रतिच्छाया देखी जाती है। वे जीवनके शेष समयमें संसाराश्रमका त्याग कर वृन्दावन गये और वहीं उन सब पदोंकी रचना करते थे।

उन्होंने जिस हरफमें अपनी पुस्तक छपवाई थी, वह कुछ समय तक 'राजाका हरफ' नामसे प्रचलित था। क्योंकि उस समय और कोई पुस्तक इस अक्षरमें नहीं छपी थी।

१८५८ ई०में विख्यात सिपाहीविद्रोहमें विजयी अंगरेजी सेनाने जब दिल्लीका पुनरुद्धार और लखनऊका उद्धार किया, तब इन्होंने राजभक्तिके निदर्शनस्वरूप अपने शोभाबाजार प्रासादमें अंगरेज गवर्मेण्टके प्रधान व्यक्तियोंको एक Ball और भोज दिया था। इस समयके समारोहकी बातका उल्लेख करते हुए Overland Englishman नामक पत्रिकाने लिखा है, कि एक सदी पहले पलाशी-रणजयी क्लाइव और उनके साथियोंको ले कर महाराज नवकृष्णने शोभाबाजार-प्रासादमें जो विजयोल्लास मनाया था, उन्हींके राजभक्त-पौत्रने 'प्राचीन इङ्गलैण्ड' के प्रति वैसी ही श्रद्धा रखते हुए अपने वंशकी भक्तिपराकाष्ठा दिखलाई है।

१८६० ई०को भारतवर्षमें जब शान्ति स्थापित हुई, तब पायरोटेकनिक प्रदर्शनीके अध्यक्षोंको इन्होंने एक भोज दिया। उस समय शोभाबाजारका राजप्रासाद जिस भावमें सजाया गया था उस सम्बन्धमें इङ्गलिश मैनपत्रने लिखा है,—"The *tout ensemble* of the Raja's mansions was almost like a dream of the Arabian Nights and the large sheet of water with its stone terraces and the lights gleaming on its surface, was as like the feast of Beltshazzar as anything that Martin has ever drawn." उसी साल माननीय Ashley Eden (पीछे बङ्गालके छोटे लाट) आदि महोदयोंके उद्योगसे राजाका एक बड़ा तैलचित्र प्रस्तुत हुआ। वह चित्रपट एशियाटिक सोसाइटीमें रखा हुआ है।

१८६४ ई०को ८४ वर्षकी उमरमें ये संसारका मायाजाल तोड़ हिन्दूके पवित्र तीर्थ वृन्दावनधाममें आ कर रहने लगे। यहां रहते समय १६वीं नवम्बर १८६६ ई०को भारत-प्रतिनिधि द्वारा आगरा नगरमें एक बड़ा दरबार बैठाया गया। राधाकान्त निस्पृह हो निर्जन स्थानमें ईश्वरकी चिन्तामें मग्न थे। राजाके आदेशसे इन्हें उस सभामें

आमन्त्रण कर भारत-प्रतिनिधिने K. C. S. I. की उपाधि, २१ पार्चासकी खिलअत तथा सम्मानार्थं हाथी घोड़े दिये थे। कहते हैं, कि जब राजाने दरबार-मण्डपमें प्रवेश किया, तब भारत प्रतिनिधिने उनका स्वागत करने के लिये अपना आसन छोड़ दिया था। उसके साथ साथ अन्यान्य राजोंने खड़े हो कर उनका गौरव बढ़ाया था। स्वयं भारत प्रतिनिधिने राजाके कण्ठस्थित महारानी विक्टोरिया और ७म फ्रेडरिकका दिया हुआ मूल्यवान् कण्ठहार बड़े चावसे देखा था।



राधाकान्त देव।

१८६७ ई०को १९वी अप्रिलको वे होश हवाश रहत वृन्दावनधाममे पञ्चत्वको प्राप्त हुए सुना जाता है, कि वे अपने आत्मीय और भृत्योंको कर्त्तव्य विषयमें उपदेश दे कर मृत्युके दो घंटे पहले दो तले मकान परसे नीचे उतरे और अपनी कुञ्जवाटिकाके मध्यस्थित तुलसी कुञ्ज की धूली पर लेट माला जपते जपते स्वर्गधामको सिधारे।

उनका मृत्युसंवाद तार द्वारा कलकत्ता पहुंचाया गया। यहां उनके देशीय बन्धु बांधवोंने १८६७ ई०की १४वीं मईको वृटिश इण्डियन एसोसियन हालमें एक सभा की। उस समय चंदेमें जितना रुपया उठा था उससे उनकी एक आवक्ष प्रतिमूर्त्ति और तैलचित्र प्रस्तुत हुआ। प्रतिमूर्त्ति इण्डियन हालमें और तैलचित्र वृटिश इण्डियन सभागृहमें रखा हुआ है। इसके सिवा और कुछ रुपयेसे गवर्मेण्ट संस्कृतकालेजकी बी, ए, परीक्षाके पहले संस्कृत परीक्षामें उत्तीर्ण प्रथम छात्रको एक स्वर्ण-पदक देनेकी व्यवस्था की गई।

आपके सुपुत्र कुमार राजेन्द्रनारायण देवने १८६६ ई०की ३०वीं अप्रिलको 'राजाबहादुर' की उपाधि पाई। राजेन्द्रनारायणके पुत्र कुमार गिरिन्द्रनारायण देव ज्वाइण्ट मजिष्ट्रेटके पद पर सुशोभित थे।

राधाकान्त शर्म्मन्—वस्तुतत्त्वके रचयिता।

राधाकृष्ण (सं० पु०) १ राधा और कृष्ण। २ धातुरत्नावलीके प्रणेता।

राधाकृष्ण—एक ग्रन्थकार। १ अध्यात्मरामायणरहस्यके प्रणेता। २ ओषधिनामावली, कोषसंग्रह और निघण्टुके रचयिता। ३ चौरपञ्चाशिकाकी टीकाके प्रणेता। ४ जगन्नाथवल्लभ और जगन्नाथस्तोत्रके रचयिता। ५ प्रतिष्ठापद्धति और शिवालयप्रतिष्ठा नामक दो ग्रन्थके प्रणयनकर्त्ता। ६ रामायणसारसंग्रहके रचयिता। ७ वर्ष तन्त्रके प्रणेता। ८ राधाकृष्णकोषके रचयिता।

राधाकृष्ण गोस्वामी—अव्ययार्थ नामक व्याकरण और वैयाकरणसर्वस्वसूचिके रचयिता।

राधाकृष्णदास—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके फुफेरे भाई। बाबू राधाकृष्णदास भारतेन्दुकी फुआ गंगाबीबीके दूसरे पुत्र थे। इनके पिताका नाम कल्याणदास था और बड़े भाईका नाम जीवनदास।

इनका जन्म श्रावण सुदि पूर्णिमा सं० १९२२ में हुआ था। इनकी जब केवल दश महीनेकी अवस्था थी, तब ही इनके पिताका स्वर्गवास हो गया। तदनन्तर थोड़े दिनोंके बाद इनके बड़े भाई भी चल बसे। अतः बाबू हरिश्चन्द्रने इन्हें अपने घर बुला लिया, और वे ही इनका लालन पालन करने लगे। इनकी शिक्षाका भी प्रबन्ध स्वयं भारतेन्दुने ही किया था। हिन्दी और उर्दू-की साधारण शिक्षा हो जाने पर ये स्कूलमें पढ़नेके लिये बैठाये गये। सर्वदा रोगाक्रान्त रहनेके कारण इनकी अच्छी शिक्षा तो नहीं हो सकी, तथापि सत्रह वर्षकी अवस्थामें इन्होंने एनट्रेंश क्लास तकका अभ्यास कर लिया। बंगला और गुजराती भाषाओंका भी ज्ञान इन्होंने सम्पादन कर लिया था। दुःखिनी बाला, निःसहाय हिंदू, महारानी पद्मावती, प्रताप नाटक आदि कोई पचीस पुस्तकें इन्होंने हिन्दीमें लिखी हैं। बाबू राधाकृष्णदास काशी नागरीप्रचारिणी सभाके मुख्य सञ्चालकोंमेंसे थे। ये अपने एक मित्रके साथ ठेकेदारीके काम करते थे। चौखम्भा बनारसमें इनकी एक दूकान भी है। ४२ वर्षकी अवस्थामें इनका देहान्त हुआ।

राधाकृष्ण वेदान्तवागीश—एक प्रसिद्ध पण्डित। ये सिद्धान्तचन्द्रिकाके प्रणेता शिवचन्द्रके गुरु थे।

राधाकृष्णशर्म्मा—संक्षिप्तसार व्याकरणकी धातुरत्नावलीके रचयिता। १७६४ ई०में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

राधाचरण कवीन्द्रचक्रवर्त्ती—अलङ्कारकौस्तुभ टीकाके प्रणेता तथा वृन्दावनचन्द्रके पिता। ये भी एक प्रसिद्ध पण्डित थे।

राधाजन्माष्टमी (सं० स्त्री०) १ राधाकी जन्माष्टमी। राधाने जिस अष्टमीमें जन्मग्रहण किया था उसे राधाजन्माष्टमी कहते हैं। २ व्रतविशेष, राधाष्टमीव्रत। राधाष्टमी देखो।

राधातन्त्र (सं० क्ली०) एक तन्त्रका नाम जिसमें मन्त्रों आदिके अतिरिक्त राधाकी उत्पत्तिका भी रहस्यपूर्ण वर्णन है।

राधातनय (सं० पु०) राधायाः सूर्यपत्न्यास्तनयः, तया पालितत्वात् तथात्वं। कर्ण।

राधादामोदर—बहुतेरे प्रसिद्ध पण्डित। १ कृष्णलक्षण वर्णनके प्रणेता। २ छन्दःकौस्तुभके रचयिता। ३ वेदान्त-स्यमन्तक नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता। ये उड़ीसामें रहते थे और चैतन्यसम्प्रदायभुक्त थे।

राधानगर—१ त्रिपुरा राजधानी आगरतलाके उपकण्ठस्थित एक प्राचीन नगर। २ ब्राह्मणभूमिके अन्तर्गत

विशालाक्षीसे दो कोस पश्चिममें अवस्थित एक नगर। यहां एक समय बहुत जुलाहोंका वास था।

राधानगरी (सं० स्त्री०) उज्जयिनी राजधानीके पार्श्व-स्थित एक प्राचीन नगर।

राधानाथ शर्म्मन् —अशौचव्यवस्थाके रचयिता।

राधानाथ शिकदर—एक विख्यात गणितज्ञ बङ्गाली। इनका १८१३ ई०के आश्विनमासमें कलकत्ते के अन्तर्गत जोड़ासांकोके शिकदरपाड़ामें जन्म हुआ। तितुराम शिकदार इनके पिता थे। शिकदार ब्राह्मण कलकत्तेके पूर्वतन अधिवासी हैं। मुसलमानी अमलमें वे सब कलकत्तेकी शान्तिरक्षाके लिये नियुक्त हुए थे। अङ्गरेजी जमानेमें भी उनकी पूर्वक्षमता लुप्त नहीं हुई। आखिर उस वंशके किसी व्यक्तिने अर्थलोलुप हो एक आदमीको बहुत सताया और इसीसे उनकी पूर्वक्षमता समूल विनष्ट हुई।

तितुरामके दो पुत्र थे, राधानाथ और श्रीनाथ। श्रीनाथ हिन्दूकालेजमें गणितविद्याके जितने सहपाठी थे, सबोंमें प्रथम रहते थे। इन्होंने सभयर जेनरल आफिसमें Chief Native Computerका पद पाया था। १८४५ ई०में पेनशन मिलने तक इन्होंने राधानाथके ही अधीन काम किया था।

इनके पिताकी अवस्था अच्छी न थी। पासमें जो कुछ रुपया था, अच्छे घर कन्यादान देनेमें सब खर्च हो गया। इस कारण स्कूलमें पढ़ते समय राधानाथ और उनके भाईको बहुत कष्ट झेलना पड़ा था।

राधानाथ पहले पाठशालामें भर्त्ती हुए। पीछे उन्हों ने फिरिङ्गी कमल बसुके स्कूलमें कुछ दिन पढ़ा। १८२४ ई०में जब इनकी उमर १० वर्षकी थी, तब ये हिन्दूकालेजमें सबसे निम्नश्रेणीमें प्रविष्ट हुए थे। धीरे धीरे ये प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होते गये। १८३० ई०में इन्होंने टाइलर साहबसे और पीछे एभरेष्टसे उच्च गणित का अन्यान्य विषय सीखा तथा वह गणित किस काममें और कब आवेगा वह भी उक्त साहबसे अच्छी तरह जान लिया था।

७ वर्ष १० मास कालेजमें पढ़ कर इन्होंने अङ्गरेजी ग्रन्थों का संस्कृत भाषामें अनुवाद करनेके लिये संस्कृत पढ़ना शुरू कर दिया। १८३१ ई०की २०वीं दिसम्बरको ये ग्रेट ट्रिगोनोमेट्रिकल सर्भे 'आव इण्डिया' आफिसके कम्पिउटर नियुक्त हुए। इस कार्यमें इन्हें फिरसे गणित सम्बन्धीय और भी कितने ग्रन्थों की आलोचना करनी पड़ी थी। उसी सालकी ७वीं अक्टूबरको ये सर्भेयर नियुक्त हो कर Serunge base line का कार्य करनेके लिये कलकत्तासे रवाना हुए। विज्ञान और गणितशास्त्रकी खोजमें ये संसार-सुख पर लात मार कर और पितामाता भाई बंधु सभीको छोड़ कर यौवनके प्रारम्भमें कर्नल एभारेष्टके साथ हिमालयके शिखर पर्य्यटन करते रहे थे। इस समय भी वे ग्रीक, लाटिन, फारसी, जर्मन, संस्कृत और अङ्गरेजी आदि भाषाओं के अनुशीलनसे बाज नहीं आये। १८७० ई०में मृत्युकाल पर्य्यन्त राधानाथ शिकदारने सभ्य जगत्में गणित और विज्ञानशास्त्रके ग्रन्थों के प्रणयन, बङ्गभाषा और स्त्रियोंकी शिक्षोन्नतिकी कामनासे पत्रिका आदि निकाली तथा और भी कितने शुभ काम किये थे।

कलकत्तेके फोर्टविलियम दुर्गमें जो घटिकागोलक (Hour ball)-स्तम्भ विद्यमान है वह इन्हींकी असाधारण धीशक्तिका परिचायक है।

राधानुराधीय (सं० त्रि०) राधा और अनुराधा नक्षत्र संबंधीय।

राधाभेदिन् (सं० पु०) राधां धन्विचिह्नभेदं भिनत्तीति भिद्-णिनि। अर्जुन। (भूरिप्र०)

राधामाधव (सं० पु०) राधाकृष्ण।

राधामाधव—रत्नावली नामक वैद्यकग्रंथके प्रणेता।

राधामोहन (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

राधामोहन गोस्वामी—बहुत-से ग्रंथोंके प्रणेता। इन्होंने एकादशी-तत्त्वटीका, दायतत्त्वटीका, प्रायश्चित्ततत्त्वटीका, मलमासतत्त्वटीका, शुद्धितत्त्वटीका, कृत्यराज, कृष्णतत्त्वामृत, कृष्णभजनक्रमसंग्रह, तत्त्वसंग्रह, पदाङ्कदूतटीका, भागवततत्त्वसार, सिद्धान्तसंग्रह-नामक विज्ञानेश्वर कृत व्यवहारकाण्डकी टीका तथा शारीरकसूत्रसंग्रह, कृष्णभक्तिरसोदय, भजनक्रमसंग्रह, अद्वैतवंशोत्पत्ति आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

राधामोहन ठाकुर—श्रीनिवास आचार्यके पौत्र। इन्होंने पदामृतसमुद्र संकलन किया।

राधामोहन शर्म्मा—मिताक्षरासिद्धान्तसंग्रहके प्रणेता।

राधापुरम्—मद्रास प्रेसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलेके नानगुणेरी तालुकके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ८° १६´ ६०´´ उ० तथा देशा० ७७° ५४´ ३०´´ पू० तक विस्तृत है।

राधारमण (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

राधारमणदास गोस्वामी—गोवर्द्धनलाल गोस्वामीके पुत्र। इन्होंने वेदस्तुतिटीका और शारीरसूत्रार्थसंग्रह नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं।

राधावत् (सं० त्रि०) धनयुक्त, ऐश्वर्य्यशाली।

राधावल्लभ (सं० पु०) राधायाः वल्लभः। श्रीकृष्ण।

राधवल्लभ दास—श्रीनिवास आचार्यके शिष्य तथा काञ्चनगड़िया गांवके रहनेवाले सुधाकर मण्डल और श्यामाप्रियाके पुत्र। इन्होंने रघुनाथ गोस्वामिकृत विलापकुसुमाञ्जलिका बंगला पद्यानुवाद किया।

राधावल्लभतर्कपञ्चानन—मुग्धबोधसुबोधिनी नामक मुग्धबोधटीकाके प्रणेता।

राधावल्लभपुर—वरेन्द्रभूमिके अन्तर्गत एक प्राचीन बड़ा ग्राम।

राधावल्लभी (सं० पु०) १वैष्णवोंका एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय। वैष्णव देखो।

२ द्रव्यविशेष। उदर दाल और मसाले आदि दे कर यह पूरीकी तरह घीमें भुनी जाती है।

राधावल्लभोपनिषद्—एक उपनिषद्का नाम।

राधाविनोद (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

राधावेधिन् (सं० पु०) राधां धन्विचित्रविशेष विध्यतीति विध णिनि। अर्जुन।

"राधावेधी किरीटेन्द्रिर्जिष्णुः श्वेतहयो नरः।
बृहन्नलो गुडाकेशः सुभद्रेशः कपिध्वजः॥" (हेम)

राधाष्टमीव्रत (सं० क्ली०) हिन्दू महिलाका अनुष्ठेय व्रतविशेष। भाद्रमासकी शुक्लाष्टमीमें यह व्रत करना होता है। राधाका इसी दिन जन्म हुआ था, इस कारण इसे राधा जन्माष्टमी भी कहते हैं। इस व्रतका विधान इस प्रकार लिखा है,—जन्माष्टमीके पूर्व दिन हविष्य खा कर रहे। दूसरे दिन सवेरे प्रातःकृत्यादि करके स्वस्तिवाचन और पीछे सङ्कल्प करना होगा। 'विष्णुर्नमोऽद्य भाद्रे मासि शुक्ले पक्षे अष्टम्यान्तिथौ अमुकगोत्रा श्रीअमुकीदेवी श्रीराधा प्रीतिकामा गणेशादि नानादेवतापूजा राधिकापूजा-तत्कथाश्रवण-भोज्योत्सर्गरूप-राधाष्टमीव्रतमहं करिष्ये' इस प्रकार सङ्कल्प करके पीछे सङ्कल्प सूक्तका पाठ करना होगा। इसके बाद पूजापद्धतिके अनुसार सामान्य अर्घ्य स्थापन और आसनशुद्धि आदि करके गणेशादि देवपूजा करनी होगी। अनन्तर राधिका, श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णके आवरणदेवताकी पूजा करनी होती है।

राधिकाका ध्यान—

"ॐ नवोनहेमगौराङ्गीमङ्गीकृतलसच्छविम्।
वृषभानुसुतां ध्यायेद्राधामानन्दरूपिणीम्॥"

इस ध्यानसे पूजा करके आवरणदेवताकी पूजा करनी होगी। आवरण-देवता ये सब हैं—श्रीकृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नारायण, यदुश्रेष्ठ, धर्मसंस्थापक, वार्ष्णेय, असुराक्रान्त और भूभारहारी।

इसके बाद भोज्योत्सर्ग और व्रतकी कथा सुननी होती है। व्रतकथाका स्थूल तात्पर्य इस प्रकार है—

एक दिन नारदके श्रीकृष्णसे राधाका जन्मवृत्तान्त पूछने पर भगवान्ने कहा था, "किसी समय सूर्यदेव मन्दार पर्वत पर कठोर तपस्या करते थे। तपस्यासे प्रसन्न हो जब मैंने उनसे वर मांगने कहा, तब उन्होंने एक कन्यारत्नके लिये प्रार्थना की।' 'तथास्तु' कह कर मैंने वही वर दिया था।

पीछे सूर्यदेव गोकुलमें वृषभानु हुए और मैंने कंसादिका बध करनेके लिये देवकीके गर्भमें जन्म लिया। मेरी प्रियतमा राधादेवी भी वृषभानुकी स्त्री कीर्त्तिदाके गर्भसे भाद्र मासकी शुक्ला अष्टमी तिथिको उत्पन्न हुई। श्रीराधाके जन्मदिनमें वृषभानुके घर बहुत उत्सव मनाया गया। पीछे मैंने मथुरा जा कर कंसादिका बध कर श्रीराधासे ब्याह किया। श्रीराधाकी जन्मतिथिमें जो विविध उपचारोंसे हम दोनोंपूजा करते हैं, मैं उन पर बहुत प्रसन्न रहता हूं। राधाके सुप्रसन्न होनेसे ही मैं प्रसन्न हूंगा। जब तक राधा प्रसन्न

होती तब तक मैं भी किसी हालतसे प्रसन्न नहीं हो सकता मेरा लाख बार नाम जपनेसे जो फल होता है, सिर्फ एक बार राधाकृष्णका नाम लेनेसे उससे कहीं अधिक फल होगा। जो स्त्री यह व्रत करती हैं वह इस लोकमें अनेक प्रकारका सुख भोग कर परलोकमें राधा कृष्णके चरणोंमें स्थान पाती हैं।"

राधासुत (सं० पु०) राधायाः सुतपस्याः सुतः। कर्ण।

राधि (सं० स्त्री०) धनी।

राधिक (सं० पु०) राजा जयसेनका पुत्र।

राधिका (सं० स्त्री०) राधा, प्रज्ञामण्डलेश्वरी और श्रीकृष्णकी प्रेमभिखारिणी। पौराणिक राधाका तथा रूपसनातन गोस्वामी और जयदेव आदि कविवर्णित राधाका रूप इच्छामयकी इच्छासे उत्पन्न है। व्रजकी राधा वृषभानुदुहिता और रायानवनिता हैं। राधिकाने कृष्णकी प्रेमाकांक्षिणी हो कर वृन्दावनके प्रति कुञ्जको नयनजलसे प्लावित कर दिया था।

ब्रह्मवैवर्त्त-प्रकृतिखण्डके २य अध्यायमें राधिकाका रूप इस प्रकार लिखा है,—ये श्रीकृष्णकी वामाङ्गअमूल्यरत्नाभरणा, कोटिपूर्णशशिप्रभा, तप्तकाञ्चनवर्णा, तेजोमयी, सस्मितानना, शरत्पद्मनिभानना, मालतीमाल्यमण्डिता, गङ्गाधारानिभशुभ्र-मुक्ताहारशोभिनी, सुमेरुगिरिसन्निभा, कस्तूरीपत्रचित्रिता, मङ्गलार्ह स्तनयुगशालिनी, नितम्बश्रोणिभारार्त्ता और नवनौवनसंयुक्ता है। उधर जयदेवकी राधा सव्रीड़-ईक्षितसखीवदना, दन्तरुचिकौमुदीयुक्ता, स्फुरदधरसीधुशालिनी, कमलमुखी, खरनयनशरघातवर्षिणी, तन्वी, नीलनलिनाभलोचना, कुचकुम्भोपरिहित मणिमयहारा, अलक्तरस-रञ्जित स्थलकमलगञ्जिपदयुगला हैं। इन दोनों वर्णनमें श्रीकृष्णका रमणोत्सुकत्व रहते हुए भी स्वर्गीय और मर्त्यभावकी पृथक्ता स्पष्ट देखी जाती है।

श्रीराधा-प्रकरण ६ष्ठ और ७म श्लोक।

उक्त पुराणके श्रीकृष्ण जन्मखण्डके १३वें अध्यायमें राधा शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार लिखी है:—

"रेफो हि कोटि जन्मार्थ कर्मभोगं शुभाशुभम्।
आकारो गर्भवासञ्च मृत्युञ्च रोगमुत्सृजेत॥
धकारमायुषो हानि माकारो भवबन्धनम्।
* * *
रेफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजे।
सर्व्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्धौघमीश्वरम्॥
धकारः सहवासञ्च तत्तुल्यकालमेव च।
ददाति पार्ष्णिया सारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेः स्वयम्॥
आकारस्तेजसो राशिं दानशक्तिं हरौ यथा।
योगशक्तिं योगमतिं सर्वकालहरिस्मृतिम्॥"

गोपाङ्गना राधा वृन्दावनके निधुनिकुञ्जादि वनमें आ कर श्रीकृष्णके साथ लुकछिप कर लीला करती थीं। पुलिनटापूमें रास विहार होता था। रायान घोषको जब यह मालूम हुआ, तब वह बहुत बिगड़े। जटिला कुटिलाकी गञ्जना, राधाकी मानरक्षार्थ कृष्णका कालीमूर्त्तिका धारण और राधा द्वारा उनकी पूजा, राधाके सतीत्वकी परीक्षार्थ जटिला द्वारा सहस्र छिद्रपूर्ण कलसीमें जल लानेके लिये आदेश, राधाका जल लाना और उस जलसे कृष्णकी रोगमुक्ति, चन्द्रावलीके कुञ्जमें श्रीकृष्णके जानेसे कृष्ण-प्रेमोन्मादिनी राधाका दुर्जय अभिमान, नयनजलसे मानसरोवरकी उत्पत्ति, कंस निधनार्थ कृष्णके मथुरा जानेसे राधाका विरह, राधाका मथुरागमन और कृष्णसम्मेलन आदि वृन्दावनात्मक रसाश्रित घटना वैष्णवकवियोंकी भक्तिप्रेमोद्दीपक अपूर्व रचना है। वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाका कृष्णप्रेमसम्वलित व्यापारविशेष वैष्णवोंके सख्यभावका चूड़ान्त दृष्टान्त है।

भक्तमालग्रन्थमें भी राधाकी माताका नाम कीर्त्तिदा लिखा है। पितामह महाभानु और मातामह विन्दु थे। पितामहीका नाम सुखदा और मातामहीका मुखरा था। रत्नभानु और सुभानु उनके ताऊ थे। रुद्रकीर्त्ति, महाकीर्त्ति और कीर्त्तिचन्द्र मामा, मेनका मामी, भानुमुद्रा पीसी और कीर्त्तिमती मौसी थी। उनके मौसेका नाम काश और पीसेका कुश था। लवङ्गमञ्जरी, रूपमञ्जरी, गुणमञ्जरी, रतिमञ्जरी, रसमञ्जरी, विलासमञ्जरी, रागमञ्जरी आदि दासियाँ और ललितादि आठ श्रेष्ठ सखियां थीं।

उज्ज्वलनीलमणिके श्रीराधाप्रकरणमें राधाके बारह आभरणोंका उल्लेख है। उस नवीन युवतीने किस प्रकार

हरिका मन चुरा लिया था उसका परिचय वैष्णवग्रन्थमें विशदरूपसे लिखा है।

पद्मपुराण उत्तरखण्डके राधाष्टमीव्रतमाहात्म्यमें लिखा है, कि महर्षि नारदने जब देवादिदेव महादेवसे राधाजन्ममाहात्म्य सुननेकी इच्छा प्रकट की, तब सदा शिव इस प्रकार कहने लगे,—"राजा वृषभानुकी महिषी महालक्ष्मीस्वरूपा श्रीमती श्रीकीर्त्तिदासे हो वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका भाद्रमासकी शुक्लाष्टमी तिथिको शुभ दायक मध्याह्न समयमें उत्पन्न हुई। राधा जन्मोत्सवका पूजन, भजन, ध्यान और कर्त्तव्यानुष्ठानादि कहता हूं, सुनो।

"सर्वदा पश्चिमद्वारे श्रीराधा कृष्णमन्दिरे।
ध्वजस्रग्वस्त्रकलसपताकातोरणादिभिः ॥
नानासुमङ्गलद्रव्यैर्यथाविधि प्रवर्त्तते।
सुवासितगन्धपुष्पैर्धूपैश्च धूपितैर्गृहान ॥
मध्ये पञ्चवर्णचूर्णैर्मण्डपं ससरोरुहम्।
सुषोड़शदलाकारं तत्र निर्माय यत्नतः ॥
दिव्यासने पद्ममध्ये पश्चिमाभिमुखीं स्थिताम्।
श्रीयुग्ममूर्त्तिं सुपास्था ध्यानपाद्यादिभिः क्रमात् ॥
भक्तैः सह सजातीयैः शक्त्यानुसारवस्तुभिः।
तद्भक्तः पूजयेद्भक्त्या तां सदा संयतेन्द्रियः ॥"

इस प्रकार भक्तको चाहिये, कि वे सामर्थ्यानुसार पूजाका आयोजन कर संयतेन्द्रिय हो पूजा करें। पूजा कालका ध्यान इस प्रकार है—

"हेमेन्दीवरकान्तिमञ्जुलतां श्रीमज्जगन्मोहनं।
नित्याभिर्ललितादिभिः परिवृतं सन्नीलपीताम्बरम् ॥
नानाभूषणभूषणाङ्गमधुरं कैशोररूपं युगं।
गान्धर्वाजनमव्ययं सुललितं नित्यं शरण्यं भजे ॥"

शालग्राममें अथवा साक्षात् शिलादिमूर्त्तिमें युगलमूर्त्तिका ध्यान कर उनकी अर्चना करे। पीछे उस युगलमूर्त्तिको सम्मुखक्रमसे पाद्यादि द्वारा मण्डलपूजा करना कर्त्तव्य है। क्रम इस प्रकार है,—पश्चिमके पीतवर्णदल पर ललिता, बाईं ओर शुक्लदल पर चन्द्रावती, वायुकोणके कृष्णदल पर श्यामलादेवी, उसके वाम भागमें, शुक्लवर्णदल पर चित्ररेखा, उत्तरमें रक्तवर्णदल पर श्रीमती, उसके वामपार्श्वमें नीलवर्णदल पर चन्द्रा, ईशानमें रक्तवर्णदल पर श्रीहरिप्रिया, उसके वामस्थ शुक्लदल पर मदनसुन्दरी, पूरबमें पीतवर्णदल पर विशाखा, उसके वामभागमें शुक्लवर्णदल पर प्रिया, अग्निकोणमें श्यामवर्णदल पर सव्या, उसके वाम पार्श्वमें शुक्लवर्णदल पर मधुमती, दक्षिणमें रक्तवर्णदल पर पद्मा, उसके भी वाममें नीलवर्णदल पर शशिरेखा, नैऋतमें रक्तवर्णदल पर भद्रा, उसके वामपार्श्वमें शुक्लवर्णदल पर रसप्रियाकी पूजा करनी होगी।

इन कृष्णप्रिया श्रीराधाकी प्रिय सङ्गिनियोंमेंसे प्रत्येकका ध्यान पृथक् पृथक् है पर विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया। (पाद्म-उ०राधाष्टमीव्रतमाहात्म्यमें १६२-६३ अ०)

स्वयं महादेवने कहा है, कि जो पुरुष अथवा श्रीराधाकृष्णपरायण हो वृन्दावनवासी होंगी वे ही व्रजवासी हैं तथा उन्हींको राधाकृष्णके दर्शन होंगे। वैसे व्यक्तिके साथ आलाप करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं। जो व्यक्ति मुखसे राधा राधा कहते, राधानाम स्मरण करते, राधा राधा ही जिनकी पूजा, निष्ठा और जल्पना है वे बड़े भाग्यवान् हैं तथा भक्त श्रीवृन्दारण्यमें राधाकी सहचरी होती हैं।

पृथिवी धन्य है, जहां पर वृन्दावनपुरी विद्यमान है और जिस मनोरम पुरीमें मुनियोंकी आराध्य सती राधा विहार करती हैं। जो ब्रह्मादिकी भी महाराध्या हैं, सुरगण जिनकी दूरसे सेवा करते हैं, हे देवर्षे! मैं भी उनको भजन करता हूं। जो मनुष्य कृष्ण सहित राधा नाम कीर्त्तन करते हैं, उनके माहात्म्यका शेष नहीं, मैं भी उसे नहीं बतला सकता।

"न गङ्गा न गया न नित्यं न हिता न सरस्वती।
कदाचिन्नैव विमुखा सर्वतीर्थफलप्रदा ॥
सर्वतीर्थमयी राधा सर्वैश्वर्यमयी पुनः।
कदाचिद्विमुखा लक्ष्मीर्न भवेत्तु तदालये ॥
तस्यालये वसेत् कृष्णो राधया सह नारद।
राधाकृष्णेति यस्येष्टं तदेतत् व्रतमुत्तमम्।
तद्गेहे देहमनसोः कदाचिन्न चलेद्धरिम् ॥"

यह सुन कर नारद मुनिने राधाका मन ही मन प्रणाम किया और गोष्ठाष्टमीमें उनकी पूजा आरम्भ कर

दी जो व्यक्ति राधाजन्माष्टमीकी व्रतकथा सुनते हैं, वे धनी, मानी, सुखी और सर्वगुणान्वित होते हैं। धर्मार्थी, अर्थार्थी, कामार्थी और मोक्षार्थी यदि भक्तिपूर्वक राधाका जप, पाठ वा स्मरण करे, तो उन्हें अभीष्ट वस्तु प्राप्त होती है। राधा और राधाष्टमी देखो।

राधिकाविनोद (सं० पु०) राधाविनोद।

राधेय (सं० स्त्री०) राधाया अपत्यमिति राधा (स्त्रीभ्यो-ढक्। पा ४।१।१२०) इति ढक्। कर्ण।

राधेश (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

राधेश्वर (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

राधोगूर्त्त (सं० त्रि०) धनद, धन देनेवाला।

राधोदेय (सं० क्ली०) धनके साथ दान योग्य उपहार।
(ऋक् ४।५।१।३)

राध्य (सं० त्रि०) राध-यत् आराधनीय, स्तुति करनेके योग्य।

राभ्रेवकि (सं० पु०) इस नामके ऋषिका गोत्रापत्य।
(संस्कारकौमुदी)

राम (फा० स्त्री०) जंघा, जाँघ।

रानडे—इनका पूरा नाम था महादेव गोविन्द रानडे एम० ए०, एल, एल, बी, सी, आई, ई,। ये बम्बई हाईकोर्टमें जज थे। इनका जन्म सन् १८४२ ई०की २०वीं जनवरीको महाराष्ट्र ब्राह्मणकुलमें हुआ था। इनके पिताका मृत्यु सन् १८७७ ई०में बम्बईमें हुई थी। महादेव गोविन्दने बम्बईके एलफिनस्टन कालेजमें शिक्षा पाई थी। इसी कालेजसे इन्होंने सन् १८६२ ई०में बी, ए, परीक्षामें विश्वविद्यालय भरमें सर्वोच्च स्थान पाया था और सन् १८६५ ई०में एम, ए, परीक्षा पास की तथा उसी उपलक्षमें इन्हें स्वर्णपदक भी मिला। सन् १८६६ ई०में ये एल, एल, बी, परीक्षामें प्रथम वर्गमें उत्तीर्ण हुए। विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त करनेके कारण ये उपाधिधारियोंके राजा (Prince of Graduates) कहे जाते थे। सन् १८६६ ई०में ये शिक्षाविभागमें मराठी भाषाके अनुवादक बनाये गये। तदनन्तर ये सोलापुरके अस्थायी जज नियत हुए। पुनः सन् १८६८ ई०में ये एलफिनस्टन कालेजमें अंग्रेजी साहित्यके अध्यापक नियुक्त हुए। इस पद पर रानडेने सन् १८७१ ई० तक काम किया। इसी वर्षमें ये हाईकोर्टकी "एडवोकेट" परीक्षाके प्रथम वर्गमें उत्तीर्ण हुए। यह परीक्षा विलायतकी बारिस्टरी परीक्षाके समान समझी जाती है। इस परीक्षाके पास करनेके अनन्तर रानडे १० वर्ष तक अनेक स्थानोंमें सब जजका काम करते रहे। सन् १८८४ ई०में इनका एक हजार रु० मासिक वेतन हो गया, और ये छोटी अदालतमें जजका काम करने लगे। सन् १८८६ ई०में ये 'भारतीय आय-व्यय-समिति' के मेम्बर हुए। कई बार ये बम्बई व्यवस्थापक सभाके सभ्य हुए थे। सन् १८९३ ई०में ये हाईकोर्टमें जज नियत हुए थे। ये मरने तक इसी पद पर काम करते रहे। सन् १९०१ ई०में इनकी देहांत हुआ। इन्होंने अंगरेजीमें कई एक ग्रंथ लिखे हैं जो ये है,(१) विधवाविवाहकी शास्त्रीयता? (२) महाराष्ट्रीय जातिका इतिहास। (३) खजाना कानून सम्बन्धी पुस्तिका। (४) राजा राममोहन रायकी वक्तुता।

ये ब्राह्मधर्मके उत्साही मेम्बर थे और बम्बई विश्वविद्यालयकी 'सिण्डिकेट' सभाके भी सदस्य थे।

रानतुरई (हिं० स्त्री०) कडुई तरोई।

राना (हिं० पु०) राणा देखो।

रानापति (हिं० पु०) सूर्य।

रानी (हिं० स्त्री०) १ राजाकी स्त्री, राजाकी पत्नी। २ स्वामिनी, मालकिन। ३ स्त्रियोंके लिये आदरसूचक शब्द।

रानीकाजर (हिं० पु०) एक प्रकारका धान।

रानीखेत (रानीक्षेत्र) युक्तप्रदेशके कुमायून जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २०° ३४′ उ० तथा देशा० ७९°२६′ पू० के मध्य अवस्थित है। यहां वृटिशसरकारके यूरोपीय सेनादलका एक स्वास्थ्यनिवास है, इस कारण इसकी दिनो-दिन उन्नति होती जा रही है। हिमालय पहाड़ पर जितने स्वास्थ्यनिवास हैं उनमेंसे यही सबसे उत्तम है। समतलक्षेत्रसे ऊपर चढ़नेमें लोगोंको जरा-भी दिक्कत नहीं होती। अङ्गरेज लोग ग्रीष्मकालमें यहां आते है। एक समय सिमला शैलसे सामरिकसदर (Military head-quarter) यहां पर उठा लानेका प्रस्ताव हुआ था, पर कई कारणोंसे मंजूर नहीं हुआ।

रानीगञ्ज—जलपाईगुड़ीके अन्तर्गत एक पर्वतशिखर।

रानीगञ्ज—विहार और उड़ीसाके पूर्णिया जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° ५७' उ० तथा देशा० ८७° ५७' पू०के मध्य कमला नदीके किनारे अवस्थित है। यहां चावल, तिल, पाट और तंबाकूका जोरों कारबार चलता है। म्युनिसपलिटी होनेके कारण नगर खूब साफ सुथरा है।

रानीगञ्ज—१ बङ्गालके वर्द्धमान जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २३° २३' से २३° २२' उ० तथा देशा० ८६° ५०' से ८७° ३७' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६७१ वर्गमील है। रानीगञ्ज, आसनसोल और ककसा थाना इस उपविभागके अन्तर्गत हैं।

२ उक्त जिलेके वर्द्धमान वर्द्धमान जिलान्तर्गत आसनसोल उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २३° ३६' उ० तथा देशा० ८७° ६' पू० दामोदर नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या १५ हजारसे ऊपर है। कोयलेकी खान आविष्कार होनेके बादसे ही यह समृद्धिशाली हुआ है। इष्ट-इण्डिया रेलवे कम्पनीने कोयलेके वाणिज्यके लिये यहां एक स्टेशन खोला। रेल कम्पनीके कर्मचारियोंके रहनेसे यह नगर क्रमशः अङ्गरेजोंका एक प्रधान अड्डा हो गया है। कलकत्तेकी माकिण्टस् बार्न कम्पनीने यहां मिट्टीके बरतन (Pottery works) का कारखाना खोला है। यहांकी टाली बहुत मशहूर है। शहरमें एक कुष्ठाश्रम, अनाथालय और एक स्कूल है।

रानीगञ्ज—वर्द्धमान जिलेके अन्तर्गत एक बहुत लंबा चौड़ा मैदान, भूपरिमाण ५ सौ वर्गमील है। यहांकी जमीनमें कोयला पाया गया है। बहुतोंने तो वाणिज्य की आशासे इस स्थानको खोद कर कोयला निकालनेकी व्यवस्था की है। अभी ७०।८० कम्पनी जमीन इजारा ले कर खानसे कोयला निकाल रही है। बाउरी और संथाल लोग अकसर खानमें काम करते हैं।

रानीगञ्ज नगरसे पूरबसे ले कर बराकर नदीके पश्चिम तक इस कोयलेका क्षेत्र विस्तृत है। पूरब पश्चिममें इसकी लम्बाई ३१ मील और उत्तरदक्षिणमें चौड़ाई प्रायः १८ मील है। दामोदर और अजय नदीके मध्य भागका कोयलेका स्तर ही सबसे चौड़ा है।

रानीग्राम - बम्बईप्रदेशके गोहेलवाड़ प्रान्तस्थ एक छोटा राज्य।

रानीघाट—पञ्जाबप्रदेशके पेशावर जिलेका एक प्राचीन गिरिदुर्ग। यह स्वाधीन खुदुखेल शैलमाला पर अवस्थित है। पहले यहां एक नगर था। अभी उसका निदर्शन तक भी न रह गया है। १८४८ ई०में डा० कनिंहमने नौग्रामसे ८ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित सैयदपल्ली-के निम्नस्थ रानीघाटका विस्तृत दुर्ग देख कर उसे ग्रीक भौगोलिक आरियन ष्ट्राबो, दियोदोरस आदि वर्णित Aornos कहा है। किन्तु रानीघाट दुर्गकी ऊंचाई १००० फुट और आरियनकी ऊंचाई ६६७४ फुट होनेके कारण उनका ख्याल गलत निकला। १७५६ ई०में ऐतिहासिकों द्वारा वर्णित Aornos कह कर स्वीकार किया है। किन्तु यह सब देख कर आखिर कनिंहमने प्रमाण द्वारा फिर रानीघाटको ही एकमात्र निदर्शन कह कर साबित किया है। इस दुर्गके उत्तरकोणमें जो उच्च पर्वतचूड़ा देखी जाती है उस पर राजा वरकी महिषी प्रति दिन बैठा करती थी। आज भी वह स्थान देखनेमें आता है। पेशावर देखो।

रानीतला—उड़ीसाके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर।

रानीधर—तैरभुक्तके अन्तर्गत एक स्थान।

(भवि० ब्रह्मखण्ड)

रानीनूर—उड़ीसा-प्रदेशके पुरी जिलान्तर्गत खण्डगिरि शैलस्थित एक गुहामन्दिर। खण्डगिरि और उसके पार्श्ववर्त्ती उदयगिरिमें जितनी गुहाएं देखी जाती हैं उनमेंसे रानीनूरकी गुहा सबसे पीछेकी बनी है। जो सब गुहामंदिर विराजित हैं, प्रत्नतत्त्वविदोंका अनुमान है, कि वे सब बौद्धधर्मके सर्वप्राचीन निदर्शन हैं। अथवा उन्हें भारतवासी मानवजातिका प्रथम वासभवन भी मान सकते हैं। रानीनूरका गठन और शिल्पचातुर्य देख कर उन्होंने कहा है, कि २०० खृष्टाब्दसे १०० खृष्टाब्द तकके भीतर ये सब गुहाएं खोदी गई हैं।

यह दो तले गुहागृहश्रेणीसे सुशोभित है। गुहाश्रेणीके सामने बरामदा और उसके सम्मुख भागमें प्राङ्गण है। दोनों बगल दीवार पर वृहदाकार वर्मधारी

प्रस्तर-प्रतिमूर्त्ति पहरू रूपमें खड़ी हैं। उस प्राङ्गणभूमिके दक्षिण खुला मैदान है तथा वामपार्श्वमें रन्धनगृह और जनसाधारणका भोजनालय है। इन सब गृहोंके सम्मुखस्थ विस्तृत बरामदोंकी छत स्तम्भसे पत्थरके ब्राकेट द्वारा सुरक्षित हैं। उन सब ब्राकेटका शिल्पनैपुण्य देखने लायक है। ऊपर तलेमें सिर्फ ४ कोठरी हैं। प्रत्येककी लम्बाई १४ फुट ६ इञ्च है। बाहरवाला बरामदा ६० फुट लम्बा, ७ फुट ऊँचा और १० फुट चौड़ा है। हर एक कोठरीमें दो दो दरवाजे हैं। दोनों दरवाजों पर पत्थरकी सिंहमूर्त्ति है।

ऊपरवाले बरामदेके चारों ओर जो शिल्पचित्र हैं वह स्थापयिताकी जीवनी ले कर ही बनाया गया था। पहले चित्रमें भारतीय किसी प्राचीन राजवंशके विवाहसंबंध स्थापनके पहले उपढौकन भेजा रहा है। दूसरे चित्रमें प्रणयीका शुभागमन, तीसरेमें राजपुत्र और राजकन्याका प्रेमालाप, चौथेमें युद्ध, पांचवेंमें राजकन्याको ले कर राजपुत्रका भागना, छठेमें मृगया, सातवेंमें सिंहासनोपविष्ट राजा और रानी तथा नर्त्तकीदलका नाच होता है। ऊपरमें राज्यसुख भोगसम्बन्धमें और भी कितने चित्र विराजित हैं। उनमें राजा, रानी और राजपरिवारवर्गके सभी लोग संसाराश्रमका त्याग कर वानप्रस्थका अवलम्बन करते हुए मठाश्रममें आ जोवन बिताते हैं। क्षयकारी काल और जलवायुका उत्पीड़न सह्य न कर सकनेके कारण इस खोदित रानीप्रासादकी रानीका उपाख्यान धीरे धीरे मिट गया है।

रानीपुर—युक्तप्रदेशके झाँसी जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २५° १४' उ० तथा देशा० ७९° १०' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां खेरुआ और कसबी नामक मोटे कपड़े का विस्तृत कारबार होता है। स्थानीय व्यवसायी महाजन जैनधर्मावलम्बी हैं। यहांका जैनमन्दिर देखने लायक है। ऊर्च्छाराज पहाड़ीसिंहजीकी रानी हीरादेवीने १६७८ ई०में यह नगर बसाया था।

रानीपुर—बम्बई-प्रदेशके खैरपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २७° १७' उ० तथा देशा० ६८° ३१' पू०के मध्य हैदराबादसे रोहरी जानेके रास्ते पर अवस्थित है। निम्नसिन्धुके अन्तर्गत ठट्ठाराज्यके जामदरिया खाँ नामक एक राजा जब युद्धमें मारे गये तब उनकी स्त्री शत्रुके भयसे राज्यत्याग कर यहां भाग आई थी। तभीसे यह नगर रानीपुर कहलाता है। यहां सूती कपड़े का कारबार होता है।

रानीपेट—१ मन्द्राजके उत्तर आर्कट जिलेका उपविभाग।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० १२° ५६' उ० तथा देशा० ७९° २०' पू० पालर नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ७ हजारसे ऊपर है। १७७१ ई०में नवाब सैयद-उद्दौला खाँने गिञ्जिराज देसिंहकी विधवा पत्नीके सम्मानार्थ आर्काटनगरके दूसरे किनारे यह ग्राम बसाया। सरकारी सेनानिवास होनेके कारण दिन पर दिन इसकी उन्नति देखी जाती है। यहांका 'नवलाख' नामक आम्रकानन बहुत प्रसिद्ध है।

रानीबेन्नूर—बम्बईके धारवाड़ जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १४° २४' से १४° ४८' उ० तथा देशा० ७५° २७' से ७५° ४९' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०५ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें ३ शहर और ११६ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १४° ३७' उ० तथा देशा० ७५° ३८' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १४ हजारसे ऊपर है। १८५८ ई०में म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। रूई, सूती और रेशमी कपड़े के लिये यह स्थान बहुत मशहूर है। १८०० ई०में कर्नल वेल्सिली (पीछे ड्यूक आव वेलिंटन) ने मराठा लुटेरे धुंदिया वाघका पीछा करके इस नगरको अधिकार किया। १८१८ ई०में जनरल मनरोके अधीनस्थ सेनादलने फिरसे इस नगर पर चढ़ाई की थी। शहरमें १ अस्पताल और ७ स्कूल हैं।

रानीसराय—मेदिनीपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह नारायणगढ़के दक्षिणमें अवस्थित है।

रान्धम (सं० पु०) इसी नामके ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रान्धिया—बम्बई प्रेसिडेन्सीके गोहेलवाड़ प्रांतका एक छोटा सामन्तराज्य।

रापरक्काल (सं० पु०) एक प्रकारका नृत्य।

रापी (हिं० स्त्री०) चमारोंका रांपी नामका औजार जिससे वे चमड़ा साफ करते और काटते हैं।

रापुर—१ मन्द्राज प्रदेशके नेल्लूर जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १४° ७' से १४° ३१' उ० तथा देशा० ७९° २१' से ७९° ५१' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५९९ वर्गमील और जनसंख्या ७० हजारसे ऊपर है। यहां कन्दलेरु और केल्लरु नामक दो छोटी नदियां बहती हैं। इस तालुकके पश्चिमभाग अर्थात् पूर्वघाट पर्वतमालाके ढालू देशसे ले कर पूर्वकी ओर समतल क्षेत्र तक प्रायः ६ मील स्थान घने जंगलसे ढका है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और रापुर तालुकका विचार-सदर। यह अक्षा० १४° ११' उ० तथा देशा० ७९° ३६' पू०के मध्य विस्तृत है। यहांकी जमीन काली और पथरीली है, इस कारण उपज अच्छी नहीं लगती। चोलम, रागी, कम्बू, धान, तमाकू और लालमिर्चा यहांकी प्रधान उपज है।

राप्ति—युक्तप्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह अक्षा० २७° ४६' उ० तथा देशा० ८२° ४४' पू०के मध्य विस्तृत है। एक पर्वतशिखरको वेष्टन कर पहले दक्षिणकी ओर ४० मील और पीछे उत्तर-पश्चिमकी ओर ४५ मील तक चला गई है। बादमें यह अयोध्या प्रदेशके बहराइच जिलेमें आ गिरी है। यहांसे गोण्डा जिला, बस्ती जिला और गोरखपुर जिला होती हुई घघरामें मिली है। गोरखपुर नगरसे ले कर घघरा-सङ्गम तक इसमें बड़ी बड़ी नावें आती जाती हैं। बस्ती जिलेमें आ कर इसके दो सोते हो गये हैं। दोनों सोते वर्षाऋतुको छोड़ और सभी ऋतुओंमें सूख जाते हैं। इस नदीकी लम्बाई ४ सौ मील है।

राप्री—युक्तप्रदेशके मैनपुरी जिलान्तर्गत सिकोहाबाद तहसीलका एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २६° ५४' उ० तथा देशा० ७८° ३६' पू०के मध्य विस्तृत है। मैनपुरी शहरसे इसकी दूरी ४४ मील है। जनसंख्या हजारके करीब होगी। यहां हिन्दू और मुसलमानके अनेक निदर्शन भग्नावस्थामें पड़े हैं। स्थानीय प्रवाद है, कि राव जोरावर सेन उर्फ रापर सेनने इस नगरको बसाया। उनके वंशधर ११९४ ई०में महम्मद घोरीके विरुद्ध युद्ध करके मारे गये। मुसलमानी अधिकारके बाद यहां अनेक मसजिद और मकबरे बनाये गये थे तथा कितने जलाशय और कूप भी खोदे गये थे। यहांकी किसी मसजिदमें सुलतान अलाउद्दीन खिलजीके जमानेमें उत्कीर्ण शिलालिपि पाई गई है। शेरशाह और जहांगीरके बनाये हुए बहुतसे महलों और प्राचीन महलोंके फाटकोंका भग्नावशेष आज भी देखने में आता है। यहांसे रेलवेस्टेशन सिकोहाबाद और सरिसागञ्जमें वाणिज्य द्रव्य ले जानेके लिये पक्की सड़क दौड़ गई है। यमुनाके दूसरे किनारे बटेश्वर जानेके लिये नावका एक पुल बना है।

राप्य (सं० त्रि०) राप्यते इति रप् (आसुयुवपिरपीति पा ३।१।१२६) इति ण्यत्। कथनीय, कहने योग्य।

राब (हिं० स्त्री०) १ आंच पर औटा कर खूब गाढ़ा किया हुआ गन्नेका रस जो गुड़से पतला और शीरेसे गाढ़ा होता है। इसीको साफ करके खांड बनाई जाती है। २ नावमें वह बड़ी लकड़ी जो उसकी पेंदीमें लम्बाईके बल एक सिरेसे दूसरे सिरे तक होती है। पहले यही लकड़ी लगा कर तब उस परसे अहार चढ़ाते हैं।

राबड़ी (हिं० स्त्री०) औटा कर गाढ़ा किया हुआ दूध, बसौंधी।

राबना (सं० क्रि०) खेतमें खाद देनेकी एक विशेष प्रणाली। इसमें पहले खेतमें खाद, सूखी पत्तियां और टहनियां आदि रख कर जला देते हैं; फिर उनकी राख समेत जमीनको एक बार जोत देते हैं। वही राख खेतमें खादका काम देती है।

राभस्य (सं० क्ली०) १ द्रुत गति, तेज चाल। आग्रह, हठ। २ आनन्द, मजा।

राम (सं० त्रि०) रमते इति रम्-णः, रम्यतेऽनेनेति रम् घञ् वा। १ मनोज्ञ, सुन्दर। २ सित, सफेद। ३ असित, काला। (पु०) रम क्रीड़ायां (ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः। पा ३।१।१४०) इति ण। ४ परशुराम। ये भगवान् विष्णुके अंशावतार माने जाते हैं। इन्होंने त्रेतायुगके आरम्भमें जमदग्नि मुनिके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण किया था। परशुराम देखो। ५ सूर्यवंशीय महा-

राज दशरथके पुत्र जो दश अवतारोंमें एक माने जाते हैं। रामचन्द्र देखो। ६ कृष्णके बड़े भाई बलराम या बलदेव। इन्होंने अनन्तदेव, विष्णुके अंश, यदुवंशी, द्वापरयुगके शेष भागमें यदुवंशी वसुदेवके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण किया था। बलराम देखो।

राम शब्दसे श्रीराम, बलराम और परशुराम इन तीनोंका बोध होने पर भी साधारणतः दशरथपुत्र राम समझे जाते हैं।

"अघोरश्चाथ वायाश्च महाकालौ प्रकीर्त्तितौ।
भार्गवो राघवो गोपस्त्रयो रामाः प्रकीर्त्तिताः॥"
(अग्निपुराण)

रामशब्दकी व्युत्पत्ति—

"राशब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः।
विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्त्तितः॥
रमते रमया सार्द्धं तेन रामं विदुर्बुधाः।
रमायां रमणस्थानं रामं रामविदो विदुः॥
रा चेति लक्ष्मीवचनो मश्चापीश्वरवाचकः।
लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजन्मख० ११ अ०)

रा शब्दका अर्थ है विश्व ब्रह्माण्ड और म-शब्दका अर्थ ईश्वर है। जो इस विश्वके ईश्वर हैं वही राम हैं अथवा वे रमा लक्ष्मीके साथ रमण करते हैं इसीलिये उन्हें राम कहा जाता है। फिर रा-शब्दका अर्थ लक्ष्मी और म-शब्दका अर्थ ईश्वर है अतएव जो लक्ष्मीपति है वही राम हैं। ७ वरुण। ८ घोटक। घोड़ा। ९ पशुभेद। १० अशोकका पेड़। रम-भावे घञ्। ११ रति।

(क्ली०) १२ वास्तूक, बथुआ। १३ कुष्ठ। १४ तमालपत्र, तेजपत्र। १५ नैश अन्धकार। (ऋक् १०।३।३)

राम—१ शृङ्गवेरके एक राजा। ये नागेशके प्रतिपालक थे। २ देवगिरिके एक राजा। ३ कीड़ग्रामके एक सामन्तराज।

राम—इस नामके कई प्रसिद्ध अध्यापकों और ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं। १ शाङ्खायनमहाव्रत-टीकाके प्रणेता गोविन्दके एक आचार्य। २ कुसुमाञ्जलिव्याख्याके रचयिता त्रिलोचनदेवके गुरु। ये नवद्वीपके रहनेवाले थे। ३ मधुसूदन सरस्वतीके गुरु। ४ कंसनिधनकाव्यके प्रणेता। ५ कुण्डमण्डप-सिद्धि व्याख्याके रचयिता। ६ प्रायश्चित्तदीपिकाके प्रणेता। ७ भामिनीविलासके टीकाकार। ८ मञ्जीर नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ९ वैद्यकसार और शङ्कराख्य नामक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता। १० श्यामाकल्पलताके प्रणेता। सोमकर्मप्रदीपिका (सोमकर्मपद्धति) नामक ग्रन्थकार। ये विद्याधरके शिष्य थे। १२ एक विख्यात ज्योतिर्विद्। इन्होंने १६०१ ई०में काशीधाममें रह कर मुहूर्त्तचिन्तामणि और उसकी प्रमिताक्षरा नामकी टीका तथा१६१४ ई०में रामविनोदकरण या पञ्चाङ्गसाधनोदाहरण नामक ग्रन्थोंकी रचना की। इनके पिताका नाम अनन्त और पितामहका नाम चिन्तामणि था। बहुतोंकी धारणा है, कि करणकेशोरीन्, यवनीय रमलशास्त्र, रमलपद्धति, रमलशास्त्र लघुपद्धति, समरसारस्वरोदय आदि ग्रन्थ इन्होंके बनाये हैं। १३ चन्द्रचिन्तामणिटीकाके प्रणेता मधुसूदनके पुत्र। १४ पुत्रस्वीकारनिर्णयके रचयिता। ये वत्सगोत्रीय और विश्वनाथके पुत्र थे। १५ गीतिगिरिशके प्रणेता श्रीनाथके पुत्र। १६ एक राजकवि, बलभद्रके पुत्र। इन्होंने १००२ ई०में चन्देलराज धङ्गदेवकी प्रशस्ति लिखी। १७ एक दूसरे राजकवि भृङ्गवके पुत्र। इन्होंने त्रिगर्त्ताधिप जयचन्द्रके राज्यकालमें कीरग्रामके राजानक लक्ष्मणचन्द्रके समय दो प्रशस्तियोंकी रचना की। १८ रामदेवसंहिताटीकाके रचयिता। ये श्रीराम नामसे प्रसिद्ध थे। १९ अनुवेदान्तके रचयिता। इनकी उपाधि शास्त्री थी। २० एक छन्दःशास्त्रकार। २१ एक नैयायिक। न्यायसारविचारमें राघवने इनका उल्लेख किया है। ये रामभट्ट नामसे परिचित थे। २२ अमरकोष टीका, उणादिकोष और उसकी टीका, मुग्धबोधटीका और मुग्धबोधपरिशिष्टके प्रणेता। इनकी उपाधि तर्कवागीश थी। २३ अशौचादि निर्णयके रचयिता। दैवज्ञ इनकी उपाधि थी। २४ कविदर्पणनिघण्टुके प्रणेता। इनकी उपाधि शोकरोपाध्याय थी। २५ उज्जीवित-मदालस नामक नाटकके प्रणेता। ये भट्टराम नामसे प्रसिद्ध थे। २६ चौरपञ्चाशिका-टीकाके रचयिता। इनकी उपाधि तर्कवागीश थी। २७ ज्योतिषप्रदीपके प्रणेता। २८ तर्कवादावली, धातुरत्नावली और

शतकोटीके प्रणेता। ये शास्त्रीकी उपाधिसे विख्यात थे। २६ कौतुकलीलावती, त्रिंशच्छ्लोकार्थ, दक्षिण कालिकानित्यपूजालघुपद्धति और मातङ्गिनीपद्धति; प्रक्रियाकौमुदीटीका, ब्रह्मामृत, रामकल्पद्रुम, रामश्रीक्रमचन्द्रिका, संक्षिप्तहोमप्रकार, सापिण्डनिर्णय, धनभागविवेक (श्रीनाथके पुत्र), दानरत्नाकर (विश्वनाथके पुत्र और मुद्गल भट्ट होमिङ्गके पौत्र। राजा भूपसिंहकी प्रार्थना करने पर इन्होंने ये सब ग्रंथ संकलन किये), विद्वत्प्रबोधिनी नामक सारस्वत प्रक्रियाटीकाके प्रणेता (अन्ध्रदेशीय नरसिंहके पुत्र और लक्ष्मीधरके पिता, इन्होंने तीरभुक्तिपति राजा रूपनारायणका उल्लेख किया है) आदि बारह पण्डित। इन लोगोंकी उपाधि भट्ट थी। ३० पुरुषार्थसूत्रवृत्तिके प्रणेता, उपाधि ज्यौतिषिक। ३१ वीरसिंहमित्रोदयके रचयिता। ये ज्योतिर्विद् उपाधिधारी थे। ३२ निर्णयसारके रचयिता; ये भट्टाचार्य उपाधिसे जनसाधारणमें परिचित थे। ३३ दत्तकचन्द्रिकाके रचयिता। ये राम पण्डित कह कर ख्यात थे। ३४ रहस्यत्रयटीका और हनुमदष्टकके प्रणेता। ३५ वृन्दावन यमक टीकाके प्रणेता। ३६ वेदान्तसिद्धान्त तथा शारदातिलककी टीकाके प्रणेता, दीक्षित उपाधिधारी दो ग्रन्थकार। ३७ मध्यमनोरमा नामक मध्यसिद्धान्तकौमुदी-टीकाके रचयिता। इन्होंने शिवानन्द भट्टके कहनेसे इस ग्रन्थकी रचना की। ३८ वारुण्युपनिषद्दीपिकाके रचयिता। ३९ वेदान्तार्थसंग्रहके सङ्कलयिता। ये राजा रामचन्द्रके आश्रित थे। ४० सिद्धान्तचन्द्रिका नामक वेदान्त ग्रन्थके प्रणेता। इनकी उपाधि संयमी थी। ये रामभद्र सूरिके शिष्य थे। ४१ लिङ्गनिर्णयभूषण नामक व्याकरणके प्रणेता, विष्णुसूरिके पुत्र। इनकी भी उपाधि सूरि थी। ४२ रामदेवसंहिताकी टीकाके प्रणेता। ४३ मदालसानाटकके रचयिता। ये भट्टोपाधिक थे।

रामअंजीर (फा० स्त्री०) वाकरवृक्ष, पकरिया।

राम आचार्य—१ व्यासतीर्थकृत न्यायामृत ग्रन्थकी न्यायामृततरङ्गिणी नामकी टीकाके रचयिता। २ सर्वतन्त्रशिरोमणिके रचयिता और आनन्दतीर्थकृत सदाचारस्मृतिकी टीकाके प्रणेता। ३ सत्यभामा-परिणय काव्यके रचयिता। ४ राममहिम्नस्तोत्र नामक ग्रन्थकर्त्ता। ५ तर्कतरङ्गिणीके रचयिता। ६ अन्त्येष्टिपद्धतिके प्रणेता। ७ सत्यबोधतीर्थका (१७८४ ई०में मृत) तथा सत्यसंधतीर्थका (१७९५ ई०में मृत) पारिवारिक नाम। ये दोनों ही प्रसिद्ध पण्डित थे।

राम उपाध्याय—मेघदूतटीकाके प्रणेता।

रामऋषि—नलोदयटीकाके रचयिता।

रामक (सं० पु०) १ जलापामार्ग। २ राम देखो।

रामकजरा (हिं० पु०) एक प्रकारका धान जो अगहनमें तैयार होता है।

रामकण्ठभट्ट (राजानक)—आत्मार्थपूजापद्धति, नादकारिका, नरेश्वरपरीक्षाप्रकाश, भगवद्गीताभाष्य, मतङ्गवृत्ति, स्पन्दवृत्ति, स्पन्दकारिकाविवरण, स्पन्दसर्वस्वविवरण, परमोक्षनिरासकारिकावृत्ति और मोक्षकारिकावृत्ति नामक कई ग्रन्थोंके प्रणेता। सर्वदर्शनसंग्रहके शैवदर्शनमें इनका उल्लेख है। ये नारायणकंठके पुत्र और उत्पल देवके शिष्य थे।

रामकपास (हिं० स्त्री०) देवकपास, नरमा। नरमा देखो।

रामकर्पूर (सं० पु०) रामः रमणीय कर्पूरः। स्वनामख्यात तृण।

रामकली (सं० स्त्री०) एक रागिणी। यह भैरव रागकी स्त्री मानी जाती है। इसके गानेका समय सबेरे एक दण्डसे पांच दण्ड तक है। यह सम्पूर्ण जातिकी रागिणी है और इसमें ऋषभ तथा निषाद कोमल लगते हैं।

रामकवच (सं० क्ली०) तन्त्रोक्त कवचविशेष। यह कवच पहननेसे अशेष प्रकारका मंगल होता है। यह कवच भोजपत्र पर कुंकुम और गोरोचन आदि द्वारा लिख कर शिखा, दाहिनी भुजा और गलेमें पहनना होता है।

रामकवि—१ मदनगोपाल विलचक नामक भाणके रचयिता। २ दत्तकमीमांसाके प्रणेता।

रामकवि—इनका नाम रामबक्स था। ये राना सिरमौरके दरबारमें थे। इनका बनाया "रससागर" नामक एक ग्रंथ भाषा-साहित्यमें उत्तम है। इन्होंने सतसईकी टीका भी लिखी है।

रामकांटा (हिं० पु०) एक प्रकारका बबूल।

रामकाइल (रामकेलि)—मालदह जिलास्थ प्राचीन गौड़

राजधानीके आसपासका एक बड़ा गांव। यह सागर-दिग्गी नामक बड़ी दिग्गीके किनारे अवस्थित है। यहां हर साल ज्येष्ठ संक्रान्तिमें एक मेला लगता है। इस समय महासमारोहसे श्रीकृष्णकी पूजा होती और भोग लगता है। पांच दिन तक यह मेला रहता है। मेलेके लिये यहां बहुतसे घर बनाये गये हैं। गौड़ेश्वर हुसेन शाह (१५१५ ई०) के मंत्री रूप और सनातन गोस्वामी संसाराश्रम छोड़ कर वैरागी हो गये थे और इसी निर्जनमें रहते थे। इसी उपलक्षमें मेला लगता है। बहुतेरे वैष्णव यहां आ कर विवाह करते हैं।

रामकाण्ड (सं० पु०) रामशर तृण, एक प्रकारका नरसल या सरकंडा। रामशर देखो।

रामकान्त—१ धातुरहस्य और धातुसाधन नामक व्याकरणके प्रणेता। रामलीलोदयके रचयिता। ये वाणेश्वरके पुत्र थे।

रामकान्ततनय—आगमसंग्रहमें एक जटाकल्पके रचयिता।

रामकान्त मुंशी—यशोहर समाजभुक्त गुहवंशीय एक प्रसिद्ध बङ्गज कुलीन कायस्थ। १८०१ ई०में इनका देहांत हुआ।

रामकान्त वाचस्पति—शान्तिशतकव्याख्यातरङ्गिणीके प्रणेता। ये चट्टवंशीय और न्यायवागीशके पुत्र थे।

रामकान्त विद्यावागीश—शब्दरहस्यके रचयिता तथा श्यामसुन्दर चक्रवर्त्तीके पुत्र।

रामकान्तराय (राजा)—नाटोरके एक प्रसिद्ध राजा रामजीवनके पुत्र। इनकी पत्नी जगत्-विख्याता रानी भवानी थी। राजसाही शब्दमें नाटोर राजवंश देखो।

रामकिङ्कर—महाभारटीकाके रचयिता।

रामकिङ्कर सरस्वती—आशुबोध नामक व्याकरणके प्रणेता।

रामकिरि (सं० स्त्री०) रागिणीविशेष, रामकली।

रामकिशोर शर्म्मन् न्यायालङ्कार—दीक्षातत्त्वप्रकाश और *मुद्राप्रकाश नामक दो ग्रन्थके प्रणेता रुद्रनारायणके पुत्र।*

रामकीर्त्ति—एक राजकवि तथा जयकीर्त्तिके शिष्य। इन्होंने चालुक्यराज कुमारपाल देवकी १२०७ संवत्में शिलाप्रशस्ति लिखी।

रामकुण्ड—एक तीर्थका नाम। (सह्याद्रि० ३।१।२१)

रामकुमार (सं० पु०) लव और कुश।

रामकुमार मिश्र—शङ्करविजयडिण्डिम (१७६६ ई०) के प्रणेता धनपतिके पिता तथा वेदान्तपरिभाषार्थदीपिकाके रचयिता शिवदत्त मिश्रके पितामह। एक अद्वितीय वैदांतिक थे।

रामकृष्ण (सं० पु०) बलराम और श्रीकृष्ण।

रामकृष्ण—एक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थकार। १ अद्वैतविवेकके रचयिता। २ अधिकरणकौमुदी और पञ्चदशीटीकाके प्रणेता। ये विद्यारण्यके शिष्य थे। ३ आख्यातवादटिप्पणीके रचयिता। ४ आगमकौमुदी और आगमचन्द्रिका नामक तन्त्रकार। इन्होंने १७२६ ई०में शेषोक्त ग्रंथ बनाया। ५ काव्यप्रकाश-भावार्थके प्रणेता। ६ कुण्डमण्डपसंग्रहके सङ्कलयिता। ७ तर्कचन्द्रिकाके रचयिता। ८ देवीमाहात्म्यटीकासंग्रहके प्रणेता। ९ नामलिङ्गाख्या कौमुदीके रचयिता। १० न्यायदर्पणकार। ११ पीठचिन्तामणि नामक तन्त्रग्रंथके प्रणेता। १२ पुष्पाञ्जलिस्तोत्रके रचयिता। १३ मीमांसासूत्रकी प्रकाशिका नामकी वृत्तिके प्रणेता। ये अहोबल्ल शास्त्री (बोधानन्द घन)के शिष्य थे। १४ प्रायश्चित्त प्रकरण और श्राद्धप्रभाके रचयिता। १५ भगवद्गीताटीकाके प्रणेता। १६ भागवतकौमुदी और मन्त्रकौमुदी नामक दो ग्रन्थके रचयिता। १७ भार्गवचम्पूके प्रणेता। १८ मुद्रार्णव नामक तन्त्रके रचयिता। १९ लीलावती तत्त्वचिन्तामणिदीधिति-टीकाकर्त्ता। यह ग्रंथ अधिदीधितिभावार्थ नामसे भी प्रसिद्ध है। २० विजयविलासके प्रणेता। २१ विवेककौमुदी और व्रतोद्यापनकौमुदी नामक दो ग्रंथके रचयिता। २२ वैद्यरत्नाकर भाष्यके प्रणेता। २३ शङ्कराभ्युदय-काव्यके रचयिता। २४ शारभाष्यनपद्धतिके प्रणेता। २५ सपिण्डनिर्णयके रचयिता। २६ सिद्धान्तशिरोमणिके त्रिप्रश्नाधिकारके टीकाकार। २६ संस्कारगणपति नामक पारस्करगृह्य-*सूत्र-विवरणके प्रणेता, कोणके पुत्र।* २७ श्राद्धगणपति नामक श्राद्धसंग्रहके सङ्कलयिता। ये कोण्डभट्टके पुत्र और प्रयागभट्टके पौत्र थे। २९ दुर्गाविलास महाकाव्यके प्रणेता। ये गोपाल आचार्यके पुत्र और शिवनाथके पौत्र थे। ३० एक टीकाकार।

इन्होंने १८४८ ई०में जानकीचरणचामर नामक काव्यकी टीका लिखी। इनका दूसरा नाम था काकाराम। ये विलारामके पुत्र थे। ३१ रुद्रदत्तकृत तत्त्वचिंतामणि प्रकाशकी न्यायशिखामणि नामक टीका, अपने पिता धर्मराज अध्वरीन्द्रकी बनाई वेदान्तपरिभाषाकी वेदान्तशिखामणि नामक टीका और वेदांतसार टीका नामक तीन टीकाके प्रणेता। ३२ रसराजशङ्कर नामक वैद्यकग्रंथके प्रणेता, मुद्गलके पुत्र। ३३ वीजगणित-प्रबोधके रचयिता। ये लक्ष्मणके पुत्र और नृसिंहके पौत्र थे। ३४ भगवतीपद्यपुष्पाञ्जलिके प्रणेता तथा श्रीपतिके पुत्र।

रामकृष्ण आचार्य—१ कर्मविपाकके रचयिता। २ न्याय-सिद्धांतके प्रणेता।

रामकृष्ण गोंसाई—जगन्मोहिनी नामक वैष्णवसम्प्रदायके प्रवर्त्तक। प्रवाद है, कि उत्कलके किसी रामानन्दी वैष्णवसे उपदेश ग्रहण कर जगन्मोहनने भेकधारण किया। साम्प्रदायिकोंका कहना है, कि जगन्मोहन गोसांईने इस धर्मका सूत्रपात किया; किंतु रामकृष्णके समय यह मत बहुत कुछ प्रचलित हुआ। जगन्मोहनके शिष्य गोविन्द गोसांई, गोविन्दके शिष्य शान्तगोसांई तथा शान्तके शिष्य रामकृष्ण गोंसाई थे। रामकृष्ण बंगालमें मुसलमानाधिकारके समय विद्यमान थे।

ये सम्प्रदायिक निर्गुणके उपासक है। गुरुको ही साक्षात् परमेश्वर मानते हैं। गुरु ही मूर्त्तिमान् ईश्वर और शिष्योंके त्राणकर्त्ता हैं। दीक्षाकालमें 'गुरु सत्य' कह कर गुरुको परमदेवता समझ उनसे ब्रह्मनाम लेते और उनको उपासना करते हैं। धर्मसंगीत ही इनका एकमात्र अवलम्बन है जो निर्वाणसंगीत नामसे परिचित हैं।

रामकृष्ण दीक्षित नाहाभाई—अग्निष्टोमपद्धति, अग्निहोम-प्रयोग, ऐकाहिक सत्रप्रायश्चित्तपद्धति, गृह्यसंग्रहभाष्य, चयनपद्धति, छन्दोगाह्निकपद्धति, ज्योतिष्टोमोद्गातृपद्धति, पुष्पसूत्रदीप, ब्रह्मत्वपद्धति, लाट्यायन सूत्रभाष्य, वाजपेयपद्धति, पौण्डरीकपद्धति और सामतन्त्रभाष्य नामक कई ग्रन्थोंके प्रणेता। इनके पिताका नाम था दामोदर। इन्होंने १६१६ ई०में वाराणसीधाममें अपने व्यवहारार्थ लिखलीसेतु ग्रंथकी नकल की थी।

रामकृष्णदेव—भास्कराचार्यकृत लीलावती ग्रन्थके मनोरञ्जन नामक टीकाकार।

रामकृष्णदेव (परमहंस)—कलकत्तेके उत्तर उपकण्ठवासी एक प्रसिद्ध हिन्दू साधु। वेदान्त मतानुयायी अद्वैत वा अध्यात्मधर्मकी उपासना ही उनकी अनुमोदित और अभिप्रेत थी। गङ्गातीरवासी इन महात्माने ज्ञानी लोगोंका मन आकर्षण कर अपने ज्ञानगर्भ उपदेश द्वारा किस प्रकार इस धर्मविप्लवके समय नवधर्मतत्त्वका परिवर्त्तन किया था उसकी आलोचना करनेसे आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। उनके सुप्रसिद्ध शिष्य स्वामी विवेकानन्दने अदम्य उत्साहसे अमेरिकामें भी रामकृष्णका मत चलाया तथा वहांके अधिवासियोंको मन्त्रमुग्ध कर हिन्दू धर्ममें अनुरक्त किया। आज भी 'रामकृष्णमिशन' अमेरिकामें रह कर बद्धपरिकर हो कार्य चलाते हैं।

पूज्यपाद रामकृष्णदेवने १७५६ शककी १०वीं फाल्गुन शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिमें जन्मग्रहण किया। उनके पिताका नाम खुदिराम चट्टोपाध्याय था। हुगली जिलेके कुमारपुकुर ग्राममें उनका घर था। रामकृष्णदेव खुदीरामके तृतीय पुत्र थे।

रामकृष्णके जन्मसम्बन्धमें एक अलौकिक किंवदन्ती प्रचलित है;—रामकृष्णदेवने जब मातृगर्भमें प्रवेश किया, उस समय खुदिराम गयाधाममें थे। वे सर्वदा ईश्वरसे यही प्रार्थना किया करते थे, कि उनके एक परम धार्मिक देव तुल्य साधुपुत्र उत्पन्न हो।

इधर देशमें रामकृष्णकी माता एक पड़ोसिनके साथ पासवाले एक शिवालयमें पूजा करने गईं। इसी समय एक बवंडर शिव मन्दिरकी ओरसे आया और उनके उदरमें घुस गया। बवंडर घुसनेकी बात तमाम फैल गई। कोई उसे भूत, कोई प्रेत और वायुरूप रोग बताने लगा। किन्तु यथार्थमें उसी दिन उनके गर्भसञ्चार हुआ। इस समय रामकृष्णकी माताकी उमर चालीससे ऊपर थी। अभी तक उनके रामेश्वर और रामकुमार नामक दो उपयुक्त पुत्र और कन्यादि हो चुकी थीं। प्रौढ़ावस्थामें पूर्णगर्भ देख कर पड़ोस स्त्रियां तरह तरहकी बातें उड़ाने लगीं। आखिर सबोंने यही स्थिर किया कि ब्रह्मदैत्य ही इस बार गर्भमें घुसा है।

खुदिराम जब घर लौटे, तब सभी बात उन्हें मालूम हुई। स्त्रीकी अवस्था देख कर उनके रोंगटे खड़े हो गये। आखिर उन्हें पूरा विश्वास हो गया, कि इस गर्भसे कोई महापुरुष उत्पन्न होंगे। उचित समय पर एक पुत्र भूमिष्ठ हुआ। पुत्रको देख सबोंने उनके अवतारत्वकी कल्पना की।

जिसका जैसा संस्कार होता है, वह बचपनसे ही दिखाई देता है। लिखना पढ़ना देवपूजामें अनुरक्ति अथवा खेलना, दूसरेकी चीज चुराना आदि किसी किसी बालकमें मानो जन्मार्जित फलके जैसा अनुमान होता है। रामकृष्णदेव कोई भी खेल नहीं जानते थे। वे अपने ठाकुरको सजाना पसन्द करते तथा पड़ोसके बालकोंको साथ ले कर मैदानमें, निर्जन उद्यानमें बैठ कृष्णलीला, रामलीला वा गौराङ्गलीला किया करते थे। इस प्रकार लीलामें कभी कभी वे वेहोश हो जाते थे। ईश्वरविषयक मधुरसङ्गीतसे ये सभीका मन चुरा सकते थे। तत्त्वदर्शी मनुष्य उन्हें ठाकुर समझते थे।

कुमारपूकुरमें लाहा उपाधिधारी एक सम्भ्रान्तवंशका वास था। उनकी अतिथिशालामें प्रतिदिन अनेक साधु-संन्यासी आया करते थे। वे लोग रामकृष्णको तिलक-चन्दनादि लगा कर अपने अपने भोजनमेंसे पहले उन्हीं-को थोड़ा थोड़ा करके खिलाते, बादमें आप खाते थे। साधु महात्मा जिस बालकको भोजन करा कर तृप्त होते थे, क्या उसे सामान्य बालक कह सकते?

रामकृष्णदेवको जब खुदिरामने पाठशाला भेजा। तब इन्होंने हंस कर कहा था, 'अर्थकरी विद्याकी मुझे जरूरत नहीं। इससे तो चावल केला मिलता है, मैं यह विद्या नहीं पढ़ूंगा।' फिर वे लोगोंको मूर्ख होनेका भी उपदेश नहीं देते थे उनका कहना था, कि बुद्धि ही शुद्धि-हेतुकी शिक्षा है। जिस विद्यासे बुद्धिका उत्कर्ष साधित होता है, जिस विद्यासे बुद्धि भगवान्‌के पास दौड़ती है उस विद्याका—उस ब्रह्मविद्याका आजीवन अभ्यास करना ही सभी नरनारियोंका कर्त्तव्य है।

गैरिकवस्त्र धारण कर संन्यासी वा भिक्षुकाश्रमावलम्बी होना उनकी इच्छा न थी। वे कहते थे, कि कमण्डलु ले कर, गैरिकवस्त्र पहन कर, लोगोंको ठग कर आत्मसुखभोग करना संन्यासिधर्म नहीं है। भगवान्‌के प्रति जिनका मन दौड़ता है उसकी सभी विषयोंमें उदासी देखी जाती है। यह भाव उनके हृदय पर अच्छी तरह पड़ गया था। रासमणिके देवालयमें पूजारी रह कर इन्होंने कुछ दिन तक रुपया कमाया। जब इनकी अवस्था कुछ अच्छी हुई, तब इन्होंने पूजादि करना छोड़ दिया। इस अवस्थामें उनका सभी खर्च मन्दिरसे चलता था। शम्भुचन्द्र मल्लिक और रासमणिके जमाई मथुर बाबूने उनकी नित्यसेवाके लिये एक नया प्रबंध करना चाहा। लेकिन इन्होंने कहा था कि, 'चला जाता है, नये प्रबंधकी जरूरत क्या?' मथुर बाबू इन्हें जो वाराणसीकी चेली पहनने देते थे उसे ये मन्दिरके कीर्त्तनियों वा यात्रावालों-को दे दिया करते थे। इन्होंने जो स्त्रीकाञ्चनकी माया छोड़ दी थी उसके कितने दृष्टान्त मिलते हैं।

बचपनमें ही इनके पिता परलोकको सिधारे। माता-के प्रति इनकी यथेष्ट भक्ति थी। रामकृष्णदेव जब रास-मणिके कालीभवनमें काम करते थे उस समय तथा उसके बाद भी माता उनके पास ही रहती थी। भाई भतीजे, बहन बहनोई सबोंके साथ इन्होंने सम्बन्ध रखा था। हुगली जिलेके रहनेवाले रामचन्द्र मुखोपाध्याय की कन्या शारदा सुन्दरीसे इनका विवाह हुआ।

विवाहके बाद फिर इन्हें कभी स्त्रीसे भेंट नहीं हुई। यद्यपि बीच बीचमें ससुराल जानेकी इच्छा होती थी, पर कार्यवशतः नहीं जा सकते थे। जब इन्होंने जवानीमें कदम बढ़ाया, उस समय बाह्यजगत्‌की ओर इनकी बिलकुल दृष्टि न थी। वे हमेशा ईश्वर-चिन्तामें निमग्न रहते थे, किसीके साथ बातचीत भी नहीं कर सकते थे। यहां तक कि अपने शरीरकी ओर भी इनकी दृष्टि न थी। वे स्वयं खा पी नहीं सकते थे तथा मलमूत्रादि त्याग करनेका समयज्ञान भी उन्हें नहीं रहता था। फलतः सबोंसे इनका दैहिक सम्बन्ध छूट गया। इस समय इन्होंने अपनी स्त्री-की तन्त्रमतसे पूजा की थी। साधारण भावमें हम लोग स्त्रीको जैसा समझते हैं, वे वैसा न समझते थे। वे केवल अपनी स्त्रीको ही नहीं, वरन् स्त्री-जातिको माता कहा करते थे। वे कहते थे, कि एक दिन गणेशने भग-वतीके ललाट पर क्षत चिह्न देख कर पूछा, 'मा! तुम्हारा

कपाल कटा क्यों है ?' भगवतीने उत्तर दिया, 'वत्स ! एक दुष्ट लड़केने ईंट फेंक कर बिड़ालका शिर फोड़ दिया था। मैं सभी जगह प्रकृतिरूपमें विराज करती हूं, इस कारण बिड़ालको आघात करना मानो मुझे ही आघात पहुंचाया।' यह सुन कर गणेशने समझा, कि जब ऐसा है, तब सभी मेरी माता हैं, इसलिये मैं विवाह नहीं कर सकता।' माता पिताके कहने पर भी गणेशने विवाह नहीं किया था। रामकृष्णदेव भी गणेशकी तरह सभीको माता समझते थे।

रामकृष्णदेव इसी कारण विवाह करके स्त्रीको साथ रख कर भी उनके साथ स्त्रीका-सा व्यवहार नहीं करते थे। सर्वसाधारणको वे उपदेश दे गये हैं, कि स्त्रीके निकट रहनेसे पशुभावका उद्रेक होता है, उसीको फिर दूसरे भावमें रख कर दिन यापन करना कोई कठिन बात नहीं है।

अभी यह प्रश्न हो सकता है, कि रामकृष्णदेव क्या सचमुच जितेंद्रिय पुरुष थे। उनका कहना था,—

"काजल के घरमें केत्तो सयान होवे,
कुछ बुंद लागे पर लागे।
युवतीकी साथ केत्तो सयान होवे,
थोड़ा काम जागे पर जागे।"

यहां पर वे जो स्वयं जितेंद्रिय हुए थे, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या ?

रामकृष्णदेवने कभी भी यौवनावस्थामें स्त्रियोंका संसर्ग नहीं किया। और तो क्या, स्त्रीका मुंह तक भी उन्होंने नहीं देखा था। जिस समय वे पहली बार स्त्रीके पास गये थे, उस समय षोड़शीरूपसे उनकी पूजा की थी। उनके प्रकृत मनका भाव जाननेके लिये अनेक बार बहुतोंने उनकी परीक्षा भी ली थी। एक बार ठाकुरबाड़ीमें कोई वेश्या उनके पास भेजी गई थी। उसने लगातार कई दिनों तक अपनी मोहिनी जाल फैलाया, पर जितेन्द्रिय रामकृष्णने आसानीसे उस जालको तोड़ दिया था। कृताञ्जलिपुट हो उन्होंने वेश्यासे कहा था, 'देवी ! तुम मेरी आनंदमयी माता हो, मैं तुम्हारा संतान हूं।' परंतु वह कामातुरा कब माननेवाली थी। लाख मना करने पर भी जब उसने अपना जाल नहीं समेटा, तब रामकृष्णने सिंहनाद करते हुए उसकी ओर कटाक्ष फेरा और तब वह प्राण ले कर भागी।

उस समय मछुआ-बाजारमें लक्ष्मीबाई नामक एक वेश्या रहती थी। उसके साथ सलाह करके एक भद्रपुरुष रामकृष्णको वहां ले गये थे। रामकृष्णदेवकी उस समय चढ़ती जवानी थी। वेश्याके घर उन्हें छोड़ कर वह भद्रपुरुष चम्पत हो गये। लक्ष्मीबाईने प्रायः १५।१६ युवतियोंको कुछ नंगी हालतमें बैठा कर तथा घरको भी सुगंधित द्रव्योंसे सुवासित कर रखा था। उसने सोचा था, कि जिस मोहिनीके फंदेमें महायोगी, महाऋषि तक भी फंस गये हैं, जिस मोहिनीका रूप देख कर बृद्ध पराशर तक भी ठहर न सके थे, आज उसी मोहिनीमूर्त्तिका बाजार मैंने लगाया है। यह समझ कर लक्ष्मी रामकृष्णका चित्त चुरानेके लिये बहुत कोशिश करने लगी। घरमें घुसते ही रामकृष्णने कृताञ्जलिपुट हो 'मा आनंदमयि' कह कर सबोंको प्रणाम किया और उनके बीच अपना आसन जमाया। बीचमें उन्हें बैठा देख कर वेश्याओंने सोचा, 'अब देखें, तो ये किस प्रकार भागते ? हम लोगोंने बहुतों साधुको देखा है, बहुतों भद्रको देखा है, बहुतों सभ्य महात्माको देखा है, पर ये तो उन लोगोंसे कहीं हीन हैं। बाबू बड़े मूर्ख हैं। इनके साथ संग्राम करनेमें विशेष आयोजनका दरकार न था। सचमुच यह काम हम लोगोंका वैसा ही हुआ है जैसा 'मच्छड़ पर तोप चलाना।' रामकृष्ण देवने आँखें फाड़ कर एक एक बार सबोंकी ओर देखा। प्रत्येकको 'मा आनन्दमयि' कहते उनकी जीभ तालुमें सटने लगी। लक्ष्मीने तिरछी नजर फेर कहा, 'वाह साधु महाराज ; आप शराब भी पीते। रामकृष्णदेव कौन शराब सेवन करते थे, वह क्षुद्र वेश्या-को क्या मालूम। लक्ष्मीने नंगी हो कर ज्यों ही बाँह बढ़ाई, रामकृष्ण देव त्यों ही हाथ जोड़ कर उसके प्रति एक दृष्टिसे 'काली काली' कहते हुए समाधिस्थ हो गये। उनके शरीरसे ज्योति निकलने लगी। वह ज्योति देख कर वेश्यायें डर गईं और अपना अपना कपड़ा पहन कर उन्हें हवा करने लगीं। कोई जल लाने दौड़ी, कोई हाथ जोड़ गलेमें अंचल डाल चरणोंमें शिर रखकर

लगी और कोई अज्ञानकृत अपराधके लिये बार बार क्षमा मांगने लगी।

शक्तिके उपासक हो रामकृष्णने कालीकी साधना की थी। पीछे तंत्रादिमत साधनके अलावा उन्होंने स्वयं सभी साधनाओंको सम्पन्न किया था। ऊर्ध्वमुखसे तंत्रकी साधना बहुत भयानक है, साधारण मनुष्य उसे कर सकते, संदेह है। किन्तु ये ब्राह्मणोकी सहायतासे उसमें भी कृतकार्य हुए थे।

वैदान्तिक मतसे वे गुप्तसंन्यासी हो शङ्करकी शाखा-विशेष पुरी श्रेणीके अंतर्गत तोतापुरी नामक एक नंगे साधुसे दीक्षित हुए और पीछे निर्विकल्प समाधिलाभके लिये प्रवृत्त हो गये। उस साधनाके बल वे तीन दिनमें कृतकार्य हुए थे। इस साधनाके पहले ही वे कुम्भकादि योग प्रक्रियामें नियुक्त थे। तोतापुरी रामकृष्णकी समाधि देख कर अवाक् हो गये। उन्होंने रामकृष्णके विशेष अनुरोध करने पर तीन दिन वहां ठहरना स्वीकार किया था। किंतु उसके बाद लगातार ग्यारह मास तक दूसरी जगह जानेकी उनकी बिलकुल इच्छा न हुई। इतने दिन रहनेका कारण यह था, कि जिसे कभी कोई नहीं कर सकते, जिसके लिये उन्होंने चौआलिस वर्ष बिताया था उस दुःसाध्य निर्विकल्प-समाधिको रामकृष्णने तीन दिनके अंदर किस प्रकार कर डाला। इसका कारण जाननेकी उनकी उत्कट इच्छा थी। रामकृष्णको न समझ कर वे आखिर गंगामें डूब मरने गये थे, किन्तु दुर्भाग्यवश वहां उतना जल नहीं था जिससे वे पुनः लौट कर रामकृष्णके पास आये और अपनी आत्मदुर्बलता स्वीकार कर चल दिये।

रामकृष्णने वैदिक मतसे पञ्चवटी तय्यार करके ध्यानादि किये थे। आज भी कलकत्तेके उत्तर दक्षिणेश्वरके कालीमन्दिरमें उस पञ्चवटी और तान्त्रिक साधनके पञ्चमुण्डी और बेलतलाका निदर्शन पाया जाता है।

उन्होंने राममन्त्र साधन करनेके लिये हनुमान्‌का अवलम्बन किया था क्योंकि हनुमान् जैसे विशुद्ध भक्त बहुत थोड़े थे।

कृष्णोपासनाके समय वे कभी गोपिका और कभी श्रीमती राधिकाके भावमें रहते थे। इस प्रकार सभी धर्मभावसाधनके प्रक्रियानुसार ये जा कर रामात्, निमात्, बौद्ध, नानकपंथी आदि सम्प्रदायविशेषके साथ मिले और पहलेकी तरह तीन तीन दिन करके हर एककी साधना की। आश्चर्यका विषय यह कि तीसरा दिन बीतते ही एक दूसरे सम्प्रदायके सिद्धपुरुष आ कर खड़े हो जाते थे। जब प्रकाश्य मतके कार्यादि शेष होने पर आये, तब वे गुप्त मतकी साधनामें प्रवृत्त हुए। इस समय भी पहलेकी तरह सिद्धपुरुष आने लगे। रामकृष्णने उन लोगोंसे उपदेश पा कर तीन दिनके हिसाबसे सभी पंथाओंका चरमभाव आयत्त कर लिया।

हिन्दूमतके प्रकाश्य और अप्रकाश्य मतोंका निदान निरूपण करनेके बाद इन्होंने महम्मदीयधर्ममें दीक्षित होना चाहा। भावमयका यह अभिनव मानसक्षेत्रमें अङ्कित होते ही गोविन्ददास नामक एक व्यक्ति वहां सहसा पहुंच गये और मुसलमानीधर्ममें उन्हें दीक्षा दी। इस साधनामें भी उन्हें तीन दिनसे अधिक समय न लगा था।

मुसलमानीधर्मसाधनाके समय वे ठीक मुसलमानोंकी तरह लुंगी पहनते और शिर पर टोपी रखते थे। इस समय भूल कर भी वे काली अथवा राधाकृष्ण अथवा और किसी देवदेवीका नाम नहीं लेते थे।

पीछे ईसाधर्मग्रहण करनेकी इनकी इच्छा हुई। इस समय कोई सिद्ध ईसाई न थे। इसलिये एक दिन वे यदुलाल मल्लिकके उद्यानमें टहलनेके लिये गये और वहां मेरीकी गोदमें एक सोते हुए ईसाईके चित्रको देख कर भावमें विभोर हो गये। पीछे यीशुकी विमल ज्योति पा कर पुलकित हृदयसे वही भावप्रकाश करने लगे। इस समय इन्हें ऐसा मालूम होता था, कि वे मानो गिरजामें खड़े हैं। इसी भावमें इन्होंने तीन दिन बिताया सब प्रकारके वैधधर्मसाधनके बाद वे ब्राह्मोंके साथ मिले। इन्होंने पहले आदि ब्राह्मसमाजके आचार्यप्रवर देवेंद्रनाथ ठाकुर महाशय, पीछे भारतवर्षीय ब्राह्मसमाजके प्रवर्त्तक केशव चंद्रसेन और अन्तमें साधारण ब्राह्मसमाजके गोस्वामी और शास्त्री महाशयके साथ आनन्द लूटा था।

रामकृष्णदेवकी विशेष शिक्षा यह थी, कि अपनेमें सीमाविशिष्ट ज्ञान रख कर सर्वत्र एकाकार मालूम कर सकनेसे विवाद मिट जाता है। अर्थात् अपना भाव कायम रहेगा और वह भाव एक अद्वितीय भावमयका समझ लेना होगा। जिस प्रकार सभीको एक प्रभुका भृत्यज्ञान, एक राजाका प्रजाज्ञान रहनेसे मुनीब वा राजाका भ्रम नहीं होता, मुनीब वा राजा ले कर परस्पर विवाद नहीं चलता, उसी प्रकार एक अद्वितीय परमेश्वर सबोंके उपास्य हैं, यह ज्ञान हो जानेसे कोई विवाद रहने नहीं पाता। रामकृष्णदेव इस आध्यात्मिक तत्त्वको प्रकट करनेके लिये अवतीर्ण हुए थे, ऐसा ही उनके शिष्यों और भक्तोंका विश्वास था।

सबसे पहले एक ब्राह्मणीने रामकृष्णको अवतार बतलाया था। रामकृष्णदेवकी साधनावस्थामें वह स्त्री वहां पहुंची थी। उसे देख कर रामकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए थे। ब्राह्मणी बंगाली स्त्रीकी जैसी थी। वह किसकी स्त्री थी, किसकी कन्या थी, कहां रहती थी किसीको भी मालूम न था। पुराणतन्त्र और सभी साधनादि उसके आयत्त थे। वह रामकृष्णके साधनकार्य्यमें सहायता पहुंचाती थी। ब्राह्मणीके साथ रामकृष्णका गोपाल भाव था। वह कभी कभी यशोदाकी तरह वेशभूषा पहन कर अन्यान्य स्त्रियोंके साथ चांदीकी थालीमें क्षीर मक्खन ले कर गोपाल विषयक गीत गाती हुई रामकृष्णके घर आती थी। घरके पास पहुंचते ही उसे मूर्च्छा आ जाती थी। इस समय उसके कानोंमें जब तक गोपालका नाम नहीं उच्चारण किया जाता तब तक उसे होश नहीं होता था। कालीके सामने जब कभी बलिदान पड़ता तब वह उस रुधिरसे रम्भादिको तराबोर कर खा लेती थी। बहुतेरे उस ब्राह्मणीको कालीका स्वरूप मानते थे। रामकृष्णके साथ यह ग्यारह वर्ष थी। इस ब्राह्मणीने जब रामकृष्णदेवको अवतार कह कर घोषित किया, तब मथुर बाबू यह जाननेके लिये कलकत्तेसे एक पण्डित वैष्णवचरणको साथ ले दक्षिणेश्वर गये। इस समय बंगालके एक अद्वितीय दिग्विजयी गौरी नामक पण्डित भी वहां मौजूद थे। वैष्णवचरणको देखते ही रामकृष्णदेव भावके आवेशमें दौड़े और उनके कंधे पर चढ़ गये। वैष्णवचरण रामकृष्णदेवके अपूर्व महाभावके लक्षण देख कर उनका स्तव करने लगे। अब ब्राह्मणोकी बात पर उन्हें पूरा विश्वास हो गया तथा उन्हें और गौरीको रामकृष्णको अवतार माननेमें जरा भी सन्देह न रहा।

रामकृष्णदेव इस समय पण्डित और साधुभक्तोंके साथ रहा करते थे। वे एक आदर्शपुरुष थे, यह बात अब भी जनसाधारणको मालूम न थी। परन्तु भारतवर्षके साधु और भक्त उन्हें अच्छी तरह जानते थे। बहुतोंने गुप्तभावमें उन्हें अवतार मान लिया था। जनसाधारणके सामने अपना प्रच्छन्न भाव दिखलानेके लिये ब्राह्मणीने उन्हें तंग किया। इस पर रामकृष्णने विरक्त हो उसे वहांसे चले जानेको कहा।

केशवचन्द्रसेनने रामकृष्णदेवके आदेशसे प्रचारकार्य आरम्भ कर दिया, उनका भावपूर्ण उपदेश केशव बाबू कभी कभी समाचारपत्रमें भी निकाल देते थे। इससे लोगोंका ध्यान इनकी ओर थोड़े ही समयमें आकृष्ट हो गया। नवविधान देखो।

केशव बाबू और उनके मतावलम्बी जब रामकृष्णके पास आया करते थे, उस समय वे अपना भाव अच्छी तरह प्रकट नहीं करते। इसी कारण कोई उनके निर्दिष्ट उपासक भी नहीं हुए। उन्होंने उस समय भी अपना भाव छिपा रखा था, मालूम नहीं। पीछे १८७६ ई०से उनके निर्दिष्ट उपासक धीरे धीरे दलपुष्ट हो अभी भारतवर्षमें तमाम फैल गये हैं और इनका कार्य्य करते हैं।

इसके बाद इन्होंने दक्षिणेश्वरमें कुछ दिन बिताया। यहां उनके गलेमें एक रोग हो गया। उसकी चिकित्साके लिये उपासकवृन्द उन्हें कलकत्ता ले आये। सुविख्यात होमियोपैथिक डा० महेन्द्रलाल सरकारने बड़े यत्नसे चिकित्सा की, पर रोग नहीं छूटा। इसी समय कालीपूजाका दिन आ पहुंचा। उस दिन सबेरे उन्होंने एक भक्तको बुला कर कहा, 'आज महामायाकी पूजाका दिन है, तुम लोग पूजाका आयोजन करो।' भक्तोंने वैसा ही किया। संध्याकालके बाद पूजा देखनेके बहुतसे आदमी आये। पूजा समाप्त करके आपने महामायाका प्रसाद खाया। जिस कण्ठसे दूध तक भी

नहीं पी सकते थे आज बड़ी आसानीसे वे कठिन वस्तु भी खा गये।

इस घटनाके कुछ दिन बाद ही उन्हें कलकत्तेसे काशीपुरके उद्यानमें लाया गया। यहां वे आठ मास थे। काशीपुरमें रहते समय इन्होंने बहुत-सी तत्त्व कथाओंका उपदेश दिया था।

इतने दिन बीत गये पर रोग जरा भी न हटा। यह देख एक दिन कुछ भक्तोंने हाथ जोड़ कर उनसे निवेदन किया, 'प्रभु! आपने क्यों ऐसे रोगका बहाना किया है? हम लोगोंने यह रोग दूर करनेके लिये कोई कसर उठा न रखी, पर जरा भी फायदा नहीं देखते हैं। इससे अब हम लोगोंको अच्छी तरह मालूम हो गया, कि जब तक आप स्वयं इसकी व्यवस्था न करेंगे, तब तक यह रोग दूर भी नहीं हो सकता है।' उत्तरमें रामकृष्णने कहा, व्याधिका पता तुम लोगोंको अब तक भी न लगा, प्रत्येक कार्यका फल है। सत्कार्यका सुफल और असत्कार्यका कुफल है कार्यानुसार ऐसे फलाफलका भोग करना होता है। तुम लोगोंने जो असत् कार्य किया है, जैसा पाप किया है, यदि तुम्हें उसका फल भोगना पड़े, तो तुम्हारा भविष्य बहुत भयानक हो जायगा। किन्तु कार्यका फल भोग करना भगवान्‌का नियम है। अतएव तुम्हारे उन पापोंको मैंने हाथ पसार कर ले लिया है। जिस दिन तुम लोगोंने वकलमा दिया है उसी दिनसे तुम्हारा पूर्वसञ्चित पाप नष्ट हो गया है। पापके दूर हुए बिना शरीर शुद्ध नहीं होता और न भगवान्‌के साथ सम्बन्ध ही हो सकता है। मानवदेहमें पापका भोग भुगतना होता है, इसीलिये मेरे शरीरमें रोग हुआ है। मेरे इस रोग द्वारा तुम लोगोंके पाप दूर हुए हैं तथा जो कोई मुझमें आत्म-समपर्ण करेगा, वह भी मुक्त होगा और उसका भी पाप मुझे भुगतना होगा। इस समय नाना प्रकारके चिकित्सक, साधु और जनसाधारण रामकृष्ण देवको देखने आते थे। कभी तो वे नीरोग हो उद्यानमें टहलने जाते थे और कभी गलेमें जो घाव हो गया था, उससे कलसी कलसी शोणित वमन करते थे। आश्चर्यका विषय तो यह था, कि चिकित्सक जिस दिन जिस उपसर्गके प्रतिकारके लिये जो औषध देते थे, उस दिन वही उपसर्ग बढ़ जाता था उनके शरीरमें होमियोपैथी औषध तक सह्य नहीं होता था। एक दाना सेवन करनेसे समूचा शरीर विकृत हो जाता था। इस कारण कोई भी चिकित्सक औषध प्रयोग करनेका साहस नहीं करते थे।

भक्तोंके निकट इस प्रकार नाना भावोंकी लीला कर १८०८ शकको ३१वीं श्रावण कृष्णपक्षकी प्रतिपद तिथिका सञ्चार होते ही इन्होंने लीला रङ्गभूमिकी यवनिका गिरा दी।

प्रभुकी लीला शेष होने पर उनकी हड्डियां एक सप्ताह तक काशीपुरके बगीचेमें रखी गईं। पीछे जन्माष्टमीके दिन कांकुड़गाछीके उद्यानमें गाड़ी गई थीं। वहां आज भी नित्य पूजादि होती है तथा प्रतिवर्ष हर प्रतिपद तिथिसे ले कर जन्माष्टमी तक वहां विशेष पूजन तथा अन्तिम दिन प्रभुके नित्याविर्भाव निमित्तक रामकृष्णोत्सव होता है। रामकृष्णदेवने यद्यपि मानवलीला सम्बरण की है, पर वे जो कुछ कह गये हैं वह कार्यमें परिणत होता है। उन्होंने कहा था, कि 'मुझसे मेरा नाम बड़ा है—नामसे ही सभी काम पूरे होंगे। उस समय 'रामकृष्ण' नामकी जो महिमा है उसे उनके शिष्य-सम्प्रदायने अच्छी तरह समझ लिया था तथा जो यथार्थमें धर्म-पिपासु थे वे भी नामका माहात्म्य समझ कर आत्महारा हो गये हैं।

वर्त्तमान समयमें उनके शिष्य-सम्प्रदायके यत्नसे कलकत्तेसे उत्तर काशीपुरके दूसरे किनारे गङ्गातीरवर्ती बेलुड़ग्राममें श्री श्री रामकृष्णदेवका मठ प्रतिष्ठित हुआ है। यहां और दक्षिणेश्वरके मन्दिरमें प्रतिवर्ष उनके उद्देशसे एक बड़ा मेला लगता है।

रामकृष्ण दैवज्ञ—१ तत्त्वप्रकाशिकाकी भास्वती नामकी टीका और भास्वतीचक्ररश्म्युदाहरण नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ नृसिंह दैवज्ञके पुत्र। इन्होंने १३३१ ई०में गणितामृतलहरी नामक एक लीलावृत्ति लिखी। अलावा इसके बनाये ताजिककौस्तुभ और मलिकार्जुनपद्धति नामक दो और ज्योतिर्ग्रन्थ मिलते हैं।

रामकृष्ण पण्डित—धर्मनिबन्धके रचयिता। २ एक दूसरे पण्डित। ये शिवदत्तबोधके प्रणेता यादव पण्डित-

के गुरु थे। ३ अधिदीधितिभावार्थ नामक न्यायग्रन्थके रचयिता।

रामकृष्णपुर—कलकत्तेका गंगातट पर अवस्थित एक नगर। यह ईष्ट-इण्डिया रेलवेके प्रसिद्ध हावड़ा ष्टेशनके दक्षिण अवस्थित है। यहां चावलका विस्तृत कारबार है।

रामकृष्ण भट्ट—इस नामके बहुतेरे पण्डित मिलते। १ अव्ययार्थ नामक व्याकरणके प्रणेता। २ कोटिहोम शतमुखादिप्रयोगपद्धतिके रचयिता। ३ गणपाठ और शब्दबोधप्रक्रियाके प्रणेता। ४ प्रयोगदीपिकाके रचयिता। ५ मध्यतन्त्रचपेटाप्रदीप नामक ग्रन्थके प्रणेता। ६ रामकौतूहल नामक सङ्गीतसारोद्धारके रचयिता। ७ आश्वलायन गृह्योक्त वास्तुशान्तिके रचयिता। ८ विभागतत्त्वविचार नामक दीधितिकार। ९ व्यवहारदर्पणके प्रणेता। १० वैयाकरणसिद्धान्तरत्नाकर नामक सिद्धान्तकौमुदीटीकाके प्रणेता। ये तिरुमल भट्टके पुत्र और वङ्कटके पौत्र थे। ११ अनन्तव्रतोद्यापनप्रयोग, जीवत्पितृक कर्त्तव्यनिर्णय, मासिक श्राद्धनिर्णय और शिवलिङ्गप्रतिष्ठाविधि आदि ग्रन्थके रचयिता। ये नारायण सूरिके पुत्र तथा कमलाकरके पिता थे। १२ रसेन्द्रकल्पद्रुम नामक वैद्यकग्रन्थके रचयिता। ये नीलकण्ठ भट्ट (मार्त्तण्ड) के पुत्र थे। १३ तीर्थरत्नाकर या रामप्रसाद, प्रतापमण्डित तथा सिद्धान्तचन्द्रिका या युक्तिस्नेहप्रपूरणी नामक शास्त्रदीपकी एक टीकाके प्रणेता। इन्होंने १५४३ ई०में वाराणसी धाममें शेषोक्त ग्रन्थ समापन किया था।

रामकृष्ण भट्टाचार्य—१ शूलपाणिकृत प्रायश्चित्ततत्त्वविवेककी प्रायश्चित्तकौमुदी नामकी टीकाके प्रणेता। २ संकल्पकौमुदी (मीमांसा), सांख्यकौमुदी, सांख्यसार और स्मृतिकौमुदी नामक कई ग्रन्थोंके रचयिता।

रामकृष्ण भट्टाचार्य चक्रवर्त्ती—सुविख्यात नैयायिक शिरोमणि भट्टाचार्य (रघुनाथ) के पुत्र। इन्होंने रघुनाथ कृत किरणावलीगुणप्रकाशदीधितिकी टीका, न्यायदीपिका और न्यायलीलावतीप्रकाश नामक ग्रन्थ लिखे।

रामकृष्ण मिश्र—एक प्रसिद्ध पण्डित। ये सिद्धान्तचन्द्रिकाकार शिवचन्द्र सिद्धान्तके गुरु थे।

रामकृष्ण राय—नाटोर राजवंशके एक राजा। विख्यात रानी भवानीने इन्हें गोद लिया था। सम्राट् शाह आलमने इन्हें 'महाराजाधिराज पृथ्वीपति बहादुर' की उपाधि दी थी। लार्ड कार्नवालिसके दशसाला बन्दोबस्तके समय ईष्ट-इण्डिया-कम्पनीके व्यवस्थानुसार जब नाटोरके अधीनस्थ तालुकदारोंको नजराना देने कहा गया, तब इन्होंने अपनी क्षमता ह्रास होती देख बहुत छेड़छाड़ की। इस गोलमालमें तथा धर्मकर्ममें अधिक निष्ठाके कारण राजा रामकृष्ण अच्छी तरह राजकार्य न चला सके। उनके अधिकृत कितने परगने बिक गये। इस समय रानी भवानीने नाटोर-सम्पत्तिकी रक्षाके लिये फिर एक बार शासनकी बागडोर अपने हाथ ली। रामकृष्णकी श्यामापूजामें ऐकान्तिकी भक्ति रहनेके कारण इन्होंने विषयकामनासे अलग होना चाहा। इसका फल यह हुआ, कि अनेक सम्पत्ति दीघापतियाके दयाराम तथा नड़ाइलके कालीशङ्कर रायके हाथ लगी। कुछ सम्पत्ति गोबरडंगाके खेलाराम मुखोपाध्याय और कलकत्तेके गोपीमोहन ठाकुरने खरीदी। रामकृष्ण साधक और सिद्धपुरुष थे। इस सम्बन्धमें अनेक किंवदन्ती भी सुनी जाती है। १७९५ ई०में वे परलोकको सिधारे।

रामकृष्ण वर्मा—एक ग्रन्थकार। इनके पिता हीरालाल खत्री सन १८४० ई०में पंजाबसे पैदल काशी आये। यहां आ उन्होंने परचूनकी दूकान खोली और ५० वर्षकी अवस्थामें आजमगढ़में उन्होंने अपना ब्याह किया जिससे राधाकृष्ण, जयकृष्ण और रामकृष्ण नामके तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

बाबू रामकृष्ण वर्माका जन्म सन् १८५९ में हुआ था। ६० वर्षकी अवस्थामें इनके पिताका देहांत हुआ। उस समय इनके बड़े भाईकी अवस्था केवल १६ वर्षकी थी और इनकी अवस्था केवल एक वर्ष एक महीनेकी। अतएव इनकी माता पर इन तीनों पुत्रोंके पालनपोषणका भार पड़ा।

कुछ बड़े होने पर ये गुरुके यहां हिंदी पढ़ने लगे। जब इन्होंने हिंदी लिखना पढ़ना सीख लिया, तब ये जयनारायण कालेजमें अंग्रेजी पढ़नेके लिये बैठाये गये। पढ़नेमें

इनका मन खूब लगता था। बाइबिलकी परीक्षामें ये सदा प्रथम रहा करते थे। उक्त कालेजसे एण्ट्रेंस पास कर लेने पर इन्होंने क्विंस कालेजमें नाम लिखवाया और वहां इन्होंने बी० ए० क्लास तक पढ़ा। ये घर पर एक पंडित से संस्कृत पढ़ा करते थे। बाइबिल पर इनकी अधिक श्रद्धा देख कर इनके अध्यापकने अपने धर्म पर इनका अनुराग दृढ़ किया।

छात्रावस्थामें ट्यूशन करके अपना निर्वाह करते थे। पढ़ना छोड़नेके बाद हरिश्चंद्र स्कूलमें अध्यापक हुए, परंतु वहां थोड़े दिनों काम करनेके पश्चात् उन्होंने उक्त पदको त्याग दिया। तदनंतर आपने पुस्तकोंकी एक छोटी-सी दूकान कर ली। बाबू हरिश्चंद्र तथा गोपालमंदिरके महाराजकी इन पर विशेष कृपा थी, क्योंकि ये कुशाग्रबुद्धि और हिंदी भाषाके स्वाभाविक कवि थे। इनकी किताबोंको दूकान अच्छी चली, उससे इन्हें लाभ भी हुआ। सन् १८८४ ई०में इन्होंने एक प्रेस खरीदा। इस प्रेससे पहले पहल "ईसाई मतखण्डन" नामकी एक पुस्तक छपी। उस पुस्तककी बड़ी बिक्री हुई, शीघ्र ही इनका छापाखाना प्रसिद्ध हो गया। इसी सालके मार्च महीनेसे "भारतजीवन" नामक पत्र निकालना इन्होंने प्रारम्भ कर दिया।

ये शतरञ्ज खेलनेमें बड़े प्रवीण थे। अतएव इन्होंने पंडित अम्बिकादत्त व्यासकी सहायतासे कचौरी गलीमें "चेसक्लब" स्थापित किया था। ताश खेलनेका इन्हें अभ्यास था। सन् १८८१ ई०में इन्होंने ताशकौतुक पचीसी नामको एक पुस्तक लिखी और छपवायी थी। लोगोंने उसे बहुत पसंद किया और उसकी बिक्री भी खूब हुई।

यों तो इन्होंने हिन्दी गद्यमें अनेक पुस्तकें लिखी परंतु इनका सबसे बड़ा काम "कथासरित्सागर" का अनुवाद है। इसके दस भाग आपने अनुवाद किये थे, परंतु पुनः अधिक अस्वस्थ होनेके कारण ये उस कार्यको आगे नहीं कर सके। सन् १९०५ ई०में जलोदररोगसे इनका शरीरांत हुआ।

मनुष्यमें कितनी शक्ति होती है, उसके उपयोग करनेसे क्या क्या कर सकता है बाबू रामकृष्ण इसके आदर्श थे।

रामकृष्ण वैद्यराज—कनकसिंहप्रकाश नामक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता। इन्होंने बिहार प्रदेशके अन्तर्गत बागेश्वरके अधिपति कनकसिंहके आश्रयमें रह कर यह ग्रन्थ बनाया था।

रामकृष्णशेष—रसिकसञ्जीवनी नामक अमरुशतकके टीकाकार।

रामकृष्णानन्त—प्रत्यक्तत्त्वप्रकाशिकाके प्रणेता।

रामकृष्णानन्द—महाभाष्यटीकाके रचयिता।

रामकृष्णानन्द तीर्थ—रामाद्वैतप्रकाशिकाके प्रणेता सत्यज्ञानानन्दतीर्थ यतिके गुरु।

रामकेला (हिं० पु०) १ एक प्रकारका बढ़िया केला। इसके पेड़का तना, फूल आदि गहरे लाल रंगके होते हैं। इसका फल कुछ पतला और प्रायः एक बालिश्त लम्बा होता है। यह बम्बई प्रान्तकी ओर अधिकतासे होता है और बंगालके केलोंसे आकारमें बिलकुल भिन्न होता है। २ एक प्रकारका बढ़िया आम जो बंगाल और मिथिलामें होता है।

रामकेशवतीर्थ (सं० क्ली०) पुराणानुसार एक तीर्थका नाम।

रामकोट—अयोध्याप्रदेशके सीतापुर जिलान्तर्गत एक परगना और उसके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। प्रवाद है कि रामचन्द्र वन जाते समय यह नगर बसा गये थे। यहां तालुकदारगण जानवरवंशीय राजपूत हैं। १७०७ ई०में इस वंशके आदिपुरुष किसी सरदारने कच्छोंको हरा कर यह स्थान दखल किया था।

रामक्षेत्र (सं० क्ली०) पुराणानुसार दक्षिण देशका एक प्राचीन तीर्थ। (तापील० ७१ अ०)

रामखण्ड—सह्याद्रि शैलके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ और देवक्षेत्र। यह स्थान अति पवित्र है।

(सह्याद्रि० २।४।३७)

रामकुआ—बम्बई प्रेसिडेन्सीके गोहेलवाड़ प्रदेशस्थ एक छोटा सामन्त राज्य। यह भाऊ नगर-गोण्डाल रेलपथके ढोला जंकसनसे साढ़े तीन कोस उत्तरमें अवस्थित है। यहांके ठाकुर लोग बड़ोदाके गायकवाड़ और जूनागढ़के नवावको कर देते हैं।

रामगङ्गा (पूर्व)—युक्तप्रदेशके कुमायून् जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह हिमालय-पृष्ठसे ६००० फुट ऊंचे स्थानसे निकल कर दक्षिणकी ओर ५५ मील बहती हुई रामेश्वर-सङ्गममें सरयू नदीके साथ मिली है। पीछे दोनों नदियां रामगङ्गा नामसे बहती हुई काली नदीमें गिरती हैं।

रामगङ्गा (पश्चिम)—कुमायून् और रोहिलखण्डविभागमें तथा युक्तप्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह हिमालय पर्वतके अक्षा० ३०° ६′ उ० तथा देशा० ७९° २०′ पू०से निकल कर गढ़वाल और कुमायून्की शैलमाला होती हुई १०० मील रास्ता तै कर बिजनौर जिलेके कालगढ़ समतल क्षेत्रमें गिरी है। यहांसे १५ मील दक्षिण जा कर कोह नामक स्रोतस्विनीके साथ मिलती और अविराम गतिसे मुरादाबाद जिलेके मध्य होती हुई मुरादाबाद नगरसे दक्षिण बरेली जिलेमें आई है; पीछे बदाउन, शाहजहानपुर, जलालाबाद, कानपुर आदि स्थानोंको अतिक्रम कर अयोध्या प्रदेशके हरदोई जिलेमें आई है और कन्नौजके दूसरे किनारे गङ्गानदीमें मिली है। कोशो, शङ्खा, देवहा वा गार्हा नामक तीन शाखा नदियां इसके कलेवरको बढ़ाती हैं। पहाड़ी अधित्यकाभूमिमें प्रवाहित होनेके कारण इसकी स्रोतगति कहीं कहीं बहुत भयानक हो गई है। इसका गतिपरिवर्त्तन जो कभी कभी देखा जाता है उसका यही कारण है।

रामगढ़—१ मध्यप्रदेशके मण्डला जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण २६७७ वर्गमील है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २२° ४७′ उ० तथा देशा० ८१° पू०के मध्य एक पर्वतके शिखर पर अवस्थित है। इस पर्वतके नीचे बुरहन नदी बहती है। रामगढ़के दूसरे किनारे अमरपुर ग्राम है जहां अंगरेजीसेना रहती है।

१६८० ई०में राजा नरेन्द्र शा मुसलमानोंकी सहायतासे अपने भाई द्वारा राज्यच्युत हुए। पीछे एक सामन्तसे सहायता पा कर इन्होंने मुसलमानोंको हराया और मण्डराज्यका उद्धार किया। उस सामन्तको इन्होंने राजाकी उपाधि दे कर रामगढ़राज्य दान किया था। राजा नरेंद्र शाने उक्त सरदार पर जो वार्षिक राजकर स्थिर किया था, १८१८ ई०में अङ्गरेजी अधिकारमें आनेके बाद अंगरेजराज भी वही कर लेते आ रहे थे। १८५७ ई०में गढ़ा-मण्डलाके गोंड़राजवंशधर राजा शङ्कर शाह विद्रोही हुए। अंगरेजके विचारसे उन्हें फांसीकी सजा हुई। पीछे उनकी रानी अपने उन्माद-युक्त अमानसिंहके लिये रामगढ़ पर अधिकार कर बैठीं। यह ले कर अंगरेजोंके साथ उनको कई छोटी छोटी लड़ाइयां हुईं। रानी अपना दलबल ले कर स्वयं रणक्षेत्रमें कूद पड़ी थीं।

युद्धमें हार खा कर रानी भाग चली। अंगरेजी सेना उनकी पीछा करती आ रही है, जान कर उन्होंने अपनी छातीमें तलवार घुसेड़ दी। उसी अवस्थामें वे अङ्गरेज-शिविरमें लाई गई थी। वहां कुछ समय बाद ही उनके प्राण पखेरू उड़ गये। अमानसिंह और उनके दो पुत्रोंने अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया। पीछे अङ्गरेजराजने उनका राज्य और राजोपाधि छीन कर मासिक वेतन स्थिर कर दिया।

रामगढ़—मध्यभारतके भोपाल एजेन्सीके अधीनस्थ एक ठाकुरात सम्पत्ति। यहांके ठाकुर जिन सब जमीनको रक्षा करते हैं उसके लिये इन्हें विभिन्न सामन्तसे रुपये मिलते हैं। वह तनखाह वे पोलिटिकल एजेण्टकी मारफत पाते हैं।

रामगढ़—राजपूतानेके जयपुर राज्यान्तर्गत शेखावाटी जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २८° १०′ उ० तथा देशा० ७४° ५६′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। नगर बहुत समृद्धिशाली है। यहां डाकघर, टेलिग्राफ आफिस और १० स्कूल हैं।

रामगढ़—बिहार और उड़ीसाके छोटानागपुरके सरगुजा राज्यान्तर्गत एक गण्डशैल। यह अक्षा० २२° ५३′ उ० तथा देशा० ८२° ५५′ पू०के मध्य विस्तृत है। पर्वतके उपर नीचे उतरनेका रास्ता है। नीचे उतर कर एक दूसरे पर्वतशिखर पर आरोहण किया जाता है। यहां प्रायः २६०० फुट ऊंचा एक पत्थरका दरवाजा है। उस दरवाजेके ऊपर एक गणेशमूर्त्ति देखनेमें आती है। उस पर एक दूसरा दरवाजा भी है जो हिन्दूजातिके भास्करशिल्पकी पराकाष्ठा सूचित करता है। पर्वत पर

बहुत सी गुहायें, भग्नमन्दिर और उनमें अनपढ़ शिलाफलक देखे जाते हैं। मन्दिरमें दशभुजा दुर्गा और हनुमान् आदिकी मूर्त्ति टूटी फूटी अवस्थामें पड़ी है। इसके उत्तर हातपोड़ नामक सुरङ्ग (Tunnel) देखने लायक है।

रामगढ़—हजारीबाग जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन गण्डग्राम और वहांकी कोयलेकी खान। दामोदरकी उपत्यका भूमि पर प्रायः ४० वर्गमील स्थान तक यह खान फैली हुई है। इस स्थानको भूगर्भ पर्वतमाला-समाकीर्ण होनेके कारण कोयलेकी तहका पता लगाना कठिन है। कहीं कहीं Iron-stone प्रस्तरकी तहमें कार्बन मिला हुआ लोहा पाया जाता है। यहांके कोयलेमें कार्बन अधिक होनेके कारण वह लोगोंके कामलायक नहीं है।

रामगढ़—राजपूतानेके अलवार राज्यके अन्तर्गत रामगढ़ तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८° ३५´ उ० तथा देशा० ७६° ४१´ पू०के मध्य अवस्थित है और अलवार शहरसे १३ मील पूरबमें पड़ता है। जनसंख्या ५ हजारसे ऊपर है। शहरमें एक डाकघर, वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल है। १७४६ ई०में नराकू राजपूत पर्वतसिंहने जयपुरसे यह जागीरमें पाया था। उन्होंने यहां एक किला भी बनवाया। पीछे उनके लड़के सरूपसिंह अलवारके प्रधान सरदार प्रतापसिंहके विरुद्ध खड़े हुए और बड़ी बेरहमीसे मारे गये। १७७७ ई०में शहर अलवारके अधीन हुआ।

रामगति न्यायरत्न—'बङ्गलाभाषा और बंगलासाहित्य विषयक प्रस्ताव' नामक बंगलाभाषाके एक इतिहासलेखक। ये हुगली जिलान्तर्गत त्रिवेणीवासी हलधर चूड़ामणिके लड़के थे। बहरमपुर कालेजमें पढ़ाने समय उन्होंने अपने प्रिय छात्र रामदाससेनके पुस्तकागारमें बैठ असीम अध्यवसायसे उक्त ग्रन्थ सङ्कलन किया था। इसके बाद वे हुगलीके नार्मलविद्यालयमें अध्यापक नियुक्त हुए थे। १२३८ सालमें इनका जन्म और १३०१ सालको २४वीं आश्विनमें देहान्त हुआ था।

रामगतिसेन—एक बंगाली कवि। इन्होंने 'बङ्गलाभाषामें मायातिमिरचन्द्रिका और संस्कृतमें योगकल्पलतिका लिखी। विक्रमपुरनिवासी सुप्रसिद्ध लाला रामप्रसाद इनके पिता थे। माताका नाम सुमतीदेवी था। लाला रामगति पिताके ज्येष्ठ पुत्र थे। लाला रामप्रसाद देखो।

५० वर्षकी उमरमें रामगति धर्मभावमें विभोर हो गये। योगानुशीलनके लिये वे पहले कलकत्ते कालीघाटमें और पीछे काशीधाममें गये थे। ६० वर्षकी उमरमें काशीधाममें इनका देहान्त हुआ। सहधर्मिणी भी उन्हींके साथ सती हो गई। उनकी विदुषी कन्या आनन्दमयीने अपने चचा जयनारायणसे कुछ सहायता ले कर हरिलीला-काव्य लिखा था।

रामगायत्री (सं० स्त्री०) रामस्य गायत्री। रामचन्द्रकी गायत्री। जो रामोपासक अर्थात् रामचन्द्रका मन्त्रग्रहण करते हैं वे रामगायत्री जप करते हैं। तन्त्रमें इसका मन्त्र और गायत्री आदि विशदरूपसे वर्णित है।

रामगिरि (सं० पु०) रामाश्रितो गिरिः रामो रमणीयो गिरिर्वा। पर्वतविशेष, नागपुर जिलेका एक पहाड़। इसका वर्णन कालिदास जीने अपने मेघदूतमें किया है। आज कल इसे रामटेक कहते हैं। कुछ लोग चित्रकूटको रामगिरि मानते हैं, पर मेघदूतमें जो स्थिति दी हुई है, उससे वह नागपुर होके पास होना चाहिये।

रामगिरि—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यके बङ्गलूर जिलान्तर्गत एक बड़ा शैल। यह अक्षा० १२° ४५´ उ० तथा देशा० ७७° २२´ पू०के मध्य अर्कावती नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। इसके ऊपर दुर्ग आदिका भग्नावशिष्ट निदर्शन है। १७९१ ई०में अंगरेजराजने यह दुर्ग दखल किया था। १८०० ई०में क्लोजपेठ नगर स्थापित होनेसे स्थानीय मनुष्य वहां जा कर रहते हैं। रामगिरि इस समय जनशून्य है।

रामगिरि (सं० स्त्री०) रामकली देखो।

रामगीती (सं० पु०) एक मात्रिक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें ३६ मात्राएं होती हैं।

रामगीतोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम।

रामगोपाल—रसकल्पवल्लीके प्रणेता एक वैष्णव कवि। ये रघुनन्दनके शिष्य चक्रपाणि चौधरीके प्रपौत्र और गङ्गारामके पुत्र थे। १६४३ ई०में इन्होंने उक्त पुस्तक लिखी। इसी रामगोपालके पुत्र पीताम्बर दासने रसमञ्जरी प्रणयन की थी।

रामगोपाल घोष—एक बंगाली वणिक् और सुविज्ञ राजनैतिक। हुगली जिलेके बागाट ग्राममें इनका पैतिक-वासस्थान था। इनके पिता गोविन्दचन्द्र घोष व्यवसाय-वाणिज्यमें लिप्त रह कर कलकत्तेमें आ कर बस गये। वे कोचविहार-महाराजके कलकत्तेके एजेण्ट थे। इसी कलकत्ता-राजधानीमें १८१५ ई०के अक्टूबर मासमें रामगोपालका जन्म हुआ।

बाल्यकालमें प्राथमिक अंगरेजी शिक्षाके लिये रामगोपाल मि० सेरबोर्णके स्कूलमें भर्त्ती हुए। १३ वर्षकी उमरमें वे कलकत्ता-हिन्दूकालेजमें पढ़ने आये। यहां अध्यापकप्रवर ह, ल, व, डिरोजियोके शिक्षाधीन रह कर वे असाधारण प्रतिभाबलसे थोड़े ही समयके अन्दर अङ्गरेजीशिक्षामें सम्यक् पारदर्शी हो गये। किन्तु पिताकी अवस्था अच्छी न थी, इस कारण कालेजमें और अधिक न पढ़ सके। अनन्तर डेभिड हेयरके आग्रह करने पर मि० जोसेफ नामक एक यहूदी वणिक्‌ने इन्हें अपने वाणिज्य-कार्य्यमें सहकारीरूपमें नियुक्त कर लिया।

रामगोपालने थोड़े ही समयमें परिश्रम और अध्यवसायसे अपने मालिकको संतुष्ट कर दिया। कर्त्तव्य-कर्मके प्रति इनका अनुराग और स्थिर लक्ष्य देख कर जोसेफको इन पर दृढ़ विश्वास हो गया। इस समय रामगोपालने बङ्गालके कृषिजात और शिल्पजात द्रव्योंकी तालिकाके साथ एक विवरणी तय्यार कर मालिकको दी। अंगरेजीभाषामें रामगोपालका शिल्पनैपुण्य देख कर जोसेफ साहब बड़े प्रसन्न हुए। इनके नम्र व्यवहार और कार्य्यकुशलतासे परितुष्ट हो जोसेफ साहब इङ्गलैण्ड जाते समय अपने आफिसका कुल भार इन्हीं पर छोड़ गये थे। रामगोपालने बड़ी सावधानी और विलक्षणताके साथ अपने मालिकका काम करके वाणिज्य व्यापारमें दक्षता दिखलाई थी।

इसके कुछ समय बाद मिः केलसल जोसेफके हिस्सेदार हुए और रामगोपाल उनके Assistant हो कर रहे। जोसेफके कामकाज छोड़ कर बिलायत जाने पर मिः केलसलने रामगोपालको हिस्सादार बना लिया। उसी समयसे उस आफिसका नाम पड़ा 'Messrs Kelsall and Ghose'। १८४६ ई०में दोनोंके बीच मनमुटाव हो गया जिससे रामगोपाल २ लाख रुपया ले कर अपना हिस्सा छोड़ते हुए चले आये।

इस समय कलकत्तेमें छोटी अदालतके २य जजका पद खाली था। गवर्मेण्टने रामगोपालको वह कार्य्य ग्रहण करनेका अनुरोध किया, लेकिन रामगोपालने 'कम्पनीका नमक नहीं खाऊंगा' कह कर उसे अस्वीकार कर दिया।

उसके बाद इन्होंने आराकन देशका चावल खरीद कर एक आढ़त खोली। आकायब और रङ्गूनमें उसकी शाखा कायम हुई। इस व्यवसायमें इन्होंने बहुत धन कमाया था। इस समय यूरोपीय वणिक् समाजमें इनकी ऐसी प्रतिष्ठा थी, कि १८५० ई०की २६वीं नवम्बरको उन्होंने रामगोपालको बङ्गाल चेम्बर आव कामर्सके सभ्य-पद पर नियुक्त किया। १८५४ ई०में मि० फिलड उनके हिस्सेदार हुए।

१८४७ ई०में किसी अभावनीय क्षतिसे कलकत्तेका वणिक् सम्प्रदाय नष्ट हो गया। यहां तक, कि इस समय बहुतोंने मानसम्भ्रमकी रक्षा न कर सकते हुए काम बंद कर दिया। रामगोपालके किसी किसी मित्रने इन्हें बेनामी करके वाणिज्यव्यवसाय करनेकी सलाह दी। उत्तरमें इन्होंने कहा, धूर्त्तपनीसे लोगोंको ठगनेके बदले अपना कपड़ा बेच कर खाना अच्छा है। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि रामगोपाल न्यायवान्, दृढ़प्रतिज्ञ, सरलहृदय और कर्मी व्यक्ति थे। उनके जैसे ऊंचे खयालवाले व्यक्तिके लिये प्रतारणा वा प्रवञ्चना नितान्त घृणाका विषय था।

रामगोपालकी यह दृढ़चित्तता इन्हें उन्नतिके पथसे ले चली। इङ्गलैण्डके बैंकरोंने कभी इनसे ठगे जानेकी आशा न की थी। इनका भेजा हुआ Bill वे लोग बड़े सम्मानके साथ ग्रहण करते थे। इस कारण इन्हें उस विपदमें विशेष कष्ट उठाना नहीं पड़ता था। इनकी न्यायपरता, नैतिक बल और सरलताने इन्हें धन-सम्मानसे पूर्ण कर दिया था। इस समय ये कामारहाटीकी उद्यानवाटिकामें वास करते थे तथा बंधुबांधव ले कर नित्य आमोद-प्रमोदमें समय बिताते थे।

इस प्रकार वाणिज्यव्यवसायमें लिप्त रहते हुए भी इन्होंने ज्ञानचर्चाका परित्याग नहीं किया। इन्होंने

'Civis' उपनाम ग्रहण कर 'भारतीय पण्यके शुल्क'के सम्बन्धमें ज्ञानान्वेषण पत्रिकामें कई प्रबन्ध लिखे। 'दर्शक' (Spectator) नामसे इन्होंने एक अङ्गरेजी समाचारपत्र भी निकाला तथा जार्ज टम्पसनके साथ मिल कर British Indian Society स्थापन की। शिक्षोन्नतिके विषयमें इनका विशेष ध्यान था। डेभिड हेयरके साथ मिल कर यह कभी कभी हिन्दू कालेजके छात्रोंको उत्साहित करनेके लिये अर्थदान वा पारितोषिक दिया करते थे। मेडिकल कालेज स्थापनके समय इन्होंने बड़ा उत्साह दिखाया था। चार बालकोंको चार विभिन्न विज्ञान विषयमें सुशिक्षित करनेके अभिप्रायसे द्वारकानाथ ठाकुरने इङ्गलैण्ड भेजनेकी व्यवस्था की। रामगोपालने भी उनका समर्थन करके यथासाध्य साहाय्य प्रदान किया था।

१८४५ ई०के सितम्बर मासमें महात्मा बेथुनकी प्रार्थनासे इन्होंने शिक्षासभा (Council of Education) का आसन ग्रहण किया। इन्हींकी वक्तृताके फलसे बङ्गालकी 'प्राइट-इन-एड' प्रथा प्रवर्त्तित हुई। इसके सिवा ये उस समयके सभी आन्दोलनोंमें शामिल थे। बेथुनको बालिका-विद्यालय खोलने, डा० मोयटको युनिभरसीटियांकी प्रतिष्ठा करने, रेलपथ खोलने, विधवाविवाह तथा राजनैतिक अपरापर विषयोंमें वे अपना मत व्यक्त कर बहुत आनन्द लाभ करते थे। जिससे ये सब विषय-कार्यमें परिणत हो इसके लिये इन्होंने कोई कसर उठा न रखी थी।

लार्ड हार्डिञ्जकी प्रतिमूर्त्ति प्रतिष्ठाके लिये कलकत्तावासीकी जो सभा हुई उसमें रामगोपालने कलकत्तेके तात्कालिक वाग्मी बैरिष्टर टार्टन, डिकेन्स और ह्यूमकी वक्तृताका प्रतिवाद करते हुए अपनी ओजस्विनी भाषासे जनसाधारणको मुग्ध किया और प्रतिष्ठाप्रस्तावको सम्मतिसे पास करा लिया था।

इसके बाद १८५३ ई०के जुलाई मासमें टाउनहालमें Charter meeting में वक्तृताके समय इन्होंने जिस ओजस्विनी भाषाका व्यवहार किया था उसका लक्ष्य कर टाइम्स पत्रिकाने Masterpiece of oratory कह कर इनकी तारीफ की है। विक्टोरियाके भारतेश्वरीत्व-घोषणाकालमें (Queen's Proclamation) इनकी वाग्मिता देख कर इण्डियन फिल्डके सम्पादक M. Humeने लिखा है, कि रामगोपाल बाबू अङ्गरेज होते तो, उन्हें महाराणीसे सम्मानसूचक 'नाइट' की उपाधि अवश्य मिलती। आपकी Black act की वक्तृताने इन्हें अङ्गरेज-समाजमें चिरस्मरणीय बना रखा है।

केवल राजनैतिक ही नहीं, हिन्दूके सामाजिक आचारादिकी ओर भी लक्ष्य रख कर रामगोपाल नाना विषयोंमें उन्नति कर गये हैं। इस समय वर्त्तमान प्रथाके बदले भारत-गवर्मेण्टने कलकत्तेमें कलसे शवदाह करनेका प्रस्ताव किया। इसके लिये कलकत्तेके शान्ति-विधायक विचारकोंकी (Calcutta Justices' meeting) एक सभा हुई। हिन्दूसमाजमें इस आन्दोलन पर बड़ी बड़ी सनसनी फैली और सबोंने मिल कर सभा समिति द्वारा रामगोपालको उक्त सभाका प्रतिनिधि निर्वाचन किया। सुनते हैं, कि इस संवादसे विचलित हो रामगोपालकी वृद्धा माताने पुत्रको बुला कर कहा, "राम! क्यों तुम्हारे रहते मैं मुर्दोंकी ढेरमें जलाई जाऊंगी" रामगोपालने माताका दुःख दूर करनेके लिये हिन्दू-समाजको नींव मजबूत करनेके लिये उस सभामें वक्तृता दी। उनकी वक्तृताके बलसे बृटिश सरकारको वह प्रस्ताव वापस करना पड़ा। सभामें रामगोपालने चांदेके लिये प्रस्ताव किया। लोग खुशीसे चन्दा देने लगे। बहुत रुपया जमा हुआ। कलकत्ता म्युनिस्पलिटीको देखरेखमें निमतल्लेका वर्त्तमान श्मशानघाट बनाया गया था। कहते हैं, उसका आधा खर्च रामगोपालने दिया था। इस महान् कार्यके लिये हिन्दूमात्र ही इनको प्रेतात्माकी मङ्गलकामनाके लिये आशीर्वाद देते हैं। निमतल्लेमें ही सबसे पहले श्मशानघाट बनाया गया है।

रामगोपाल बङ्गाल लेजिस्लेटिभ कौन्सिलके सभ्य, कलकत्तेके आनररि मजिष्ट्रेट और जष्टिस आव दि पीस, कलकत्ता युनिवर्सिटीके फेलो, बृटिश इण्डियन एसोसियनके सभ्य और डिष्ट्रीक् चेरिटेबल सोसाइटीके सभ्य थे। एतद्भिन्न वे १८४५ ई०में पुलिस-कमिटी, १८५० ई०में स्मालपोक्स कमिटी, १८५१ ई०में लण्डन-

प्रदर्शनीमें प्रेरणार्थी शिल्पद्रव्यसंग्रहकमिटी, १८५५ और १८६७ ई०में पेरी प्रदर्शनी तथा १८६४ ई०में बङ्गाल एग्रिकलचरल प्रदर्शनीके उद्योक्ता हो कर अपनी कार्यतत्परताका यथेष्ट परिचय दे गये हैं। अङ्गरेजोंको इनके गुणका गुरुत्व अच्छी तरह मालूम था। माननीय प्रसन्नकुमार ठाकुरने जब महामति थियोडर डिकेन्सको विदाय भोज दे रहे थे, तब रामगोपालको निमन्त्रण देनेके लिये प्रसन्नकुमार ठाकुरने डिकेन्स साहबसे अनुमति मांगी थी। रामगोपालके साथ राजनैतिक विषयमें डिकेन्सकी घोर शत्रुता रहते हुए भी उन्होंने भोजके समय बड़े आह्लादसे सबसे पहले रामगोपालका स्वास्थ्यपान करके एक ज्ञानगर्भ वक्तृता दी। उन्होंने रामगोपालके संबंधमें कहा था कि, He was the only man fit to take the position of the leader of the Hindu Community.

रामगोपाल स्वभावतः ही दयालु थे। मृत्युकालमें इन्होंने दरिद्र मनुष्योंके लिये राजतुल्य दान किया था। देशी लोगोंकी विद्याशिक्षाकी सुविधाके लिये आप अपने विलमें कलकत्ता युनिवर्सीटीमें ४० हजार, डि० चेरिटेब्ल सोसाइटीमें २० हजार, ऋणग्रस्त बंधुओंको ऋणसे मुक्त करनेके लिये ४० हजार तथा अन्यान्य विषयोंमें भी अनेक रुपया लिख गये हैं। १८६८ ई०की २५वीं जनवरीको इनका स्वर्गवास हुआ।

रामगोपाल शर्म्मन्—वर्णभैरवतन्त्रके प्रणेता। ये रामनाथके पुत्र और लक्ष्मीनारायणके पौत्र थे।

रामगोविन्द—शब्दाब्धितरिके रचयिता। इनके पिताका नाम रूपनारायण चक्रवर्त्ती था।

रामगोविन्द चक्रवर्त्ती—व्यवस्थासारसंग्रहके रचयिता।

रामगोविन्द तीर्थ—एक प्रसिद्ध पण्डित। ये सांख्यचन्द्रिका आदि पुस्तकके प्रणेता नारायण तीर्थके गुरु तथा गोविन्द तीर्थके शिष्य थे।

रामगोविन्दतीर्थ (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

रामग्राम (सं० पु०) जनपदभेद।

रामचक्र (सं० क्ली०) १ मन्त्रात्मक चक्रविशेष। (शब्दरत्ना०) २ बरा नामक पकवान जो उड़दकी पीठीका बनता है। ३ बड़ी और मोटी रोटी जो किसान लोग खाते हैं, लिट्टी।

रामचन्द्र—१ एक हिन्दू-राजा। राजपुरमें इनकी राजधानी थी। इनकी सभामें रह कर १४५० ई०में रामचन्द्रने नैमिषस्थ कुण्डाकृति लिखी।

२ लक्ष्मणभट्टसुत स्वनामख्यात एक कवि। इस कविने अयोध्यानगरमें रसिकरञ्जन नामक एक काव्य बनाया जिसका प्रत्येक श्लोक दो अर्थ है। इसके एक अर्थमें श्रृङ्गार और दूसरेमें वैराग्य वर्णित है। इन्होंने इस काव्यकी टीका भी लिखी। इस काव्यका आदि श्लोक—

"शुभारम्भेऽदम्भे महितमतिदिम्भेङ्गितशतं
मणिस्तम्भे रम्भे लपासकुचकुम्भे परिणतम्।
अनालम्बे लम्बे पथिपदविलम्बेऽमितसुखं
तमालम्बे स्तम्बे वदनमम्बेक्षितमुखम्॥"

(रसिकरञ्जन ११)

कवि रामचन्द्रने रोमावलीशतक आदि भी प्रणयन किया है।

रामचन्द्र (सं० पु०) रामचन्द्र इव आह्लादकत्वात्। अयोध्याके राजा इक्ष्वाकुवंशीय महाराज दशरथके बड़े पुत्र जो ईश्वर या विष्णुभगवान्के मुख्य अवतारोंमें माने जाते हैं। इन्होंका साधुचरित ले कर आदिकवि वाल्मीकिने भारतके आदि महाकाव्य रामायणकी रचना की है। यों तो परवर्त्तीकालमें नाना अलङ्कार द्वारा बहुतोंने इन असाधारण महापुरुषकी जीवनी ले कर रामायण रचे हैं, पर वाल्मीकिने जिस भावमें इन पुरुषसिंहको अङ्कित किया है पहले हम लोगोंको वही देखना चाहिये। महर्षि वाल्मीकिने रामचरित इस प्रकार वर्णन किया है—

सूर्यवंशमें धर्मज्ञ राजा दशरथने जन्मग्रहण किया। उस समय उनके जैसे वीर और प्रभावशाली कोई भी नहीं थे। पुत्र न रहनेके कारण वे हमेशा चिन्तित रहा करते थे। पुत्रेष्टि यज्ञ करनेके लिये मन्त्रीने उन्हें सलाह दी। ऋष्यश्रृङ्ग यज्ञ करानेके लिये अङ्गदेशसे बुलाये गये। सरयूके उत्तरी किनारे यज्ञभूमि बनाई गई। तेजस्वी ऋष्यश्रृङ्गने पुत्रेष्टि यज्ञ आरम्भ कर दिया। उनका यज्ञावशेष चरु खा कर दशरथकी तीन प्रधान महिषी गर्भवती हुईं। यज्ञसमाप्तिके बाद छः ऋतु बीतने पर बड़ी रानी कौशल्याके गर्भसे चैत्रमासकी शुक्लानवमी पुनर्वसु नक्षत्र कर्कटलग्नमें दिव्यलक्षणसम्पन्न रामचन्द्र उत्पन्न हुए। उनके जन्मकालमें रवि मेष राशिमें, मङ्गल मकर राशिमें,

शनि तुलाराशिमें, बृहस्पति और चन्द्रमा कर्कटराशिमें, तथा शुक्र मीनराशिमें थे। इसके बाद कैकेयीके गर्भसे मीन लग्न पुष्यानक्षत्रमें भरतने तथा सुमित्राके गर्भसे कर्कट लग्न और अश्लेषा नक्षत्रमें लक्ष्मण और शत्रुघ्नने जन्मग्रहण किया।

दशरथके चारों पुत्र वेदज्ञ, शौर्यसम्पन्न, सभी लोगोंके हिताकाङ्क्षी, विज्ञ और क्षत्रियोचित सभी गुणोंसे विभूषित थे। इनमेंसे राम अधिक तेजस्वी, सत्यनिष्ठ, पराक्रमी, सर्वजनप्रिय, धनुर्वेदरत, पितृसेवापरायण तथा हाथी, घोड़े और रथ पर चढ़नेमें दक्ष थे। राम लक्ष्मणको और भरत शत्रुघ्नको बहुत प्यार करते थे।

रामचन्द्रका वक्ष विशाल और दोनों स्कन्धका संधिस्थल मांसल था, इस कारण कविने उन्हें 'गूढ़जत्रु'की उपाधि दी है। वे बड़ी बड़ी भुजावाले, सुन्दर, महागुणशाली, आश्रितके प्रतिपालक, स्वजन और स्वधर्मके रक्षक नित्य-संयमी थे। पृथ्वीके समान क्षमाशील, फिर क्रुद्ध होने पर देवताओंके भी भीतिदायक, वाग्मी और मिष्टभाषी थे। शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्धके प्रति वे विशेष भक्तिश्रद्धा दिखलाते थे। जब कभी वे नगरसे बाहर जाते और फिर वहांसे लौटते थे, तब प्रायः सभी पुरवासी उनके पास दौड़ते और कुशल समाचार पूछते थे। सभी पुरवासी उनके भक्त और अनुरक्त थे।

धीरे धीरे चारों भाईने युवावस्थामें कदम बढ़ाया। इस समय एक दिन महर्षि विश्वामित्र दशरथकी सभामें पधारे। उन्होंने दशरथसे प्रार्थना की, कि यज्ञमें राक्षसगण बहुत बाधा डालते हैं, इसलिये दश दिनके लिये रामचन्द्रजीको दें। राजा दशरथ रामको अपने प्राणसे भी अधिक चाहते थे, इस कारण पहले राजी नहीं हुए। इसके बदले उन्होंने दश अक्षौहिणी सैन्य देना चाहा; किन्तु महर्षिकी सक्रोध मूर्त्ति और अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग होनेके डरसे आखिर रामचन्द्रको विश्वामित्रके साथ जानेकी अनुमति दे दी। विश्वामित्र रामको ले कर चले, लक्ष्मण भी साथ हो लिये। चलते चलते वे सरयूके किनारे आये। परं अयोध्यासे छः कोस दूरी पड़ती है। यहां विश्वामित्रने रामसे कहा, "बचा! बहुत थक गये होगे, अब यहां थोड़ा विश्राम करो। पीछे आचमन कर मुझसे बला और अतिबला नामकी दो दीक्षा तथा अन्यान्य मन्त्र लो। इस विद्याबलसे तुम कभी थकावट नहीं मालूम करोगे, बाहुबलमें पृथिवीके मध्य कोई भी तुम्हारे समान नहीं होगा तथा राक्षस तुम्हें पराजय नहीं कर सकेगा।" उस समय रामने विश्वामित्रको आचार्यरूप वरण कर उनसे बला और अतिबला विद्या सीख ली। वह रात तीनोंने सरयूके किनारे तृणशय्या पर बिताई। राजकुमार रामकी यह प्रथम तृणशय्या थी। सबेरे तीनों गङ्गा और सरयूसङ्गम पर गये। वहां मुनियोंने उनका बहुत आदर सत्कार किया। उस रातको वे लोग अनङ्ग-आश्रममें रहे।

दूसरे दिन गङ्गाके दक्षिण हो कर ताड़कावन आये। विश्वामित्रने घोररूपिणी ताड़काको मारनेका हुकुम दिया। राम स्त्री-हत्याके विरोधी थे; किन्तु उनके पिताने कह दिया था, 'विश्वामित्रका आदेश अवश्य पालन करना चाहे वह कैसा हो क्यों न हो।' विश्वामित्रका आदेश पालन करनेके लिये उन्होंने घोररूपा ताड़काका वध किया। ताड़कावधसे संतुष्ट हो महर्षिने रामचंद्रको नाना प्रकारके अमोघ और अव्यर्थ अस्त्र प्रदान किये। अनन्तर सिद्धाश्रममें आ कर विश्वामित्रने यज्ञानुष्ठान किया। यहां रामचंद्रने मारीचको पराजय और सुबाहु राक्षसको मार कर विश्वामित्रके यज्ञस्थलकी रक्षा की। यहां महर्षि विश्वामित्रसे राजा जनकके यज्ञ और सुनाभ नामक अपूर्व शिवधनुका हाल मालूम हुआ। विश्वामित्र दूसरे दूसरे मुनियोंके साथ रामलक्ष्मणको ले कर राजर्षि जनकका यज्ञ देखने चले। राहमें विशालाधिपतिने आ कर उनका सत्कार किया। विशालामें एक दिन रह कर वे मिथिला आये।

मिथिलाके उपवनमें सभी गौतमके परित्यक्त आश्रममें उपस्थित हुए। यहीं पर वर्षोंसे भूली तपःप्रभवसम्पन्ना महाभागा पाषाणमयी गौतमपत्नी अहल्या पड़ी हुई थी। रामचंद्रके चरणकमलस्पर्शसे उनका अभिशाप जाता रहा और वे सशरीर धारण कर खड़ी हो गईं। इसके बाद रामलक्ष्मणने विश्वामित्रके साथ मिथिलापुरीमें प्रवेश किया। राजर्षि जनकने विश्वामित्र आदिका यथोचित सत्कार किया। विश्वामित्रने रामचंद्रका

परिचय देते हुए राजर्षि जनकसे कहा, "आपके घरमें जो श्रेष्ठ धनुष हैं उसे देखनेके लिये ये दोनों भाई आये हैं।" जनकने भी उनसे कहा, 'मैंने प्रतिज्ञा की है, कि जो व्यक्ति इस शैवधनुमें ज्या चढ़ावेंगे और उसे तोड़ डालेंगे, उसीको अपनी अयोनिजा कन्या सीता समर्पण करूंगा।' पीछे रामचंद्रको जनकसे यह भी मालूम हुआ, कि देश देशके राजे महाराजे उस धनुषमें ज्या चढ़ाने आये थे, किंतु कोई भी चढ़ा न सके। इसके बाद विश्वामित्र और जनककी अनुमति ले कर रामने उस धनुषमें ज्या चढ़ाई। मड़ मड़ शब्द करता हुआ धनुष तीन भागोंमें टूट गया। उस शब्दसे विश्वामित्र, जनक और रामलक्ष्मणको छोड़ कर और सभी मोहाभिभूत हो गये थे।

यह शुभ संवाद उसी समय अयोध्या पहुंचाया गया। राजा दशरथ पुत्र अमात्य और ऋषियोंके साथ मिथिला आये। रामका विवाह स्थिर हुआ। विवाहसभामें महर्षि वशिष्ठ द्वारा रघुवंशका और राजर्षि जनक द्वारा अपनी पूर्ववंशावलीका कीर्त्तन होनेके बाद रामके साथ सीताका, लक्ष्मणके साथ उर्मिलाका और कुशध्वजको दो कन्या माण्डवी और श्रुतकीर्त्तिके साथ भरत और शत्रुघ्नका विवाह हुआ। विवाहके बाद राजा दशरथने पुत्र और पुत्रवधुओंके साथ बड़ी धूमधामसे राजधानीकी यात्रा की। इस यात्राकालमें रामचंद्रने परशुरामका दर्प चूर्ण किया था।

इसके बाद महाराज दशरथने रामचंद्रको युवराज बनाना चाहा। अभिषेकसंवाद सुन कर रामचंद्र बड़े प्रसन्न हुए थे। इस समयसे रामका अद्वितीय चरित्रविकाश आरम्भ हुआ। महाकवि वाल्मीकिने उज्ज्वल वर्णोंमें जो महाचरित्र चित्रित किया है वह इस प्रकार है।

प्रातःकालमें सुमन्त्रने रामचन्द्रसे आ कहा, कि राजा दशरथ आपको कैकेयीके घरमें बुलाते हैं। रामचंद्र और सीता दोनों अभिषेक-संकल्पमें रातको उपवासी थे। रामचंद्रने सीतासे कहा, 'आज मेरा अभिषेक होगा, पिता कैकेयी माताके साथ मिल कर मेरे मङ्गलार्थ अनुष्ठान करेंगे, इसलिये उन्होंने मुझे बुलाया है। तब तक तुम सखियोंके साथ यहीं पर रहो', इतना कह कर वे कैकेयीके घर गये।

रामचंद्र जब चार तेज घोड़ेके व्याघ्रचर्मसे आच्छादित सुन्दर रथ पर जा रहे थे, तब रास्तेमें उन्होंने देखा, अभिषेकका विपुल आयोजन हो रहा है। रेशमी वस्त्र पहने अभिषेकव्रतोत्सुक राजकुमार बड़े आनंदसे कैकेयीके घर घुसे और पिताको प्रणाम कर पुतलीकी तरह खड़े हो रहे। राजा म्लानमुखसे कैकेयीकी बगलमें बैठे थे। वे 'राम' उच्चारण कर मस्तकको नीचा किये रोने लगे। रुद्धकण्ठसे बोली नहीं निकलने लगी। डबडबी आंखोंसे उन्हें रामको देखनेका साहस नहीं हुआ।

इस प्रकार राजा गहरी सांस लेते थे, नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहती थी। रामचंद्रने कृताञ्जलि हो कैकेयीसे कहा, "मां! पिताजी क्यों रोते हैं, क्या उन्हें किसी बातका दुःख है? भरत और शत्रुघ्न दूर हैं, क्या उन्हें तथा मेरी माताओंमेंसे किसीको कुछ हुआ तो नहीं है? क्या आपने तो कुछ नहीं कहा है, जिससे वे ऐसे दुःखित हुए हैं?"

कैकेयीने निष्ठुर हो कर उत्तर दिया—"राजाको कोई रोग नहीं हुआ है और न उन्हें किसी बातका दुःख हो है। उन्होंने एक बातकी प्रतिज्ञा की है, पर तुम्हारे डरसे वे प्रकाश नहीं करते; तुम उनके अधिकतर प्रिय हो, तुम्हें अप्रिय वचन कहनेमें उनके मुखसे बोली नहीं निकलती। शुभ हो, चाहे अशुभ हो, तुम यदि राजाका आदेश पालन करो, तो कहूं नहीं तो कहनेकी क्या जरूरत।"

राम दुःखित हो बोले, "देवि! आपको ऐसा वचन मुझे कहना उचित नहीं। मैं राजाका आदेश अभी पालन करनेको तैयार हूं। यदि वे अग्निमें कूदने कहें, तो कूदूंगा, विष खाने कहें, तो खाऊंगा और समुद्रमें डूबने कहें, तो भी डूबूंगा। आप दिल खोल कर कह दें, कि वह कौनसा आदेश है।"

उन अभिषेकसङ्कल्पमें उपवासी, पवित्र पट्टवस्त्र पहने तरुण युवकको कैकेयीने अकुण्ठितचित्तसे वनवासकी आज्ञा सुनाई, 'भरत इस धनधान्यशालिनी अयोध्याका राजा होगा। तुम्हारे लिये लाये गये अभिषेकके

उपकरणोंसे उनका अभिषेक होगा और तुम्हें आज ही चीरवास और जटा पहन कर चौदह वर्षके लिये वन जाना होगा। राजाने यही दो वर मुझे दिये हैं, इसी कारण वे इतने दुःखित हैं।"

यह मर्मच्छेदी मृत्युतुल्य वचन सुन कर रामचन्द्र कुछ समय निश्चल हो रहे और पीछे अविकृतचित्तसे बोले, "देवि! वैसा ही होगा। मैं जटाचीर धारण कर अभी वन जाता हूं। इस समय मेरा पूछना केवल इतना ही है, कि महाराज पूर्ववत् मेरा आदर करते हैं या नहीं? देवि! मैं आपके प्रति भी अप्रसन्न नहीं। इस छोटी सी बातके लिये पिताजी इतने दुःखित क्यों हैं। उन्होंने भरतको युवराज बनानेकी बात मुझे पहले क्यों नहीं कही? भरतके लिये मैं राज्य, धन, प्राण सभी दे सकता हूं। देवि! आप पिताको आश्वासन दीजिये, पिता व्यर्थ मस्तक नीचा किये अश्रुत्याग कर रहे हैं। तेज घुड़सवार दूतोंको अभी भरतको लानेके लिये ननिहाल भेजिये।" इस वचनसे कैकेयी संतुष्ट तो हुई, पर पीछे राम अपना मत न पलट ले अथवा दशरथके मुंहसे बोला सुने बिना वन जाय इस आशङ्कासे उसने फिर रामको कहा,—

"राम! लज्जाके मारे राजा कुछ बोलते नहीं, इसके लिये दुःख मत करो। अब वन जानेके लिये तैयार हो जाओ, जब तक तुम इनसे विदा ले कर वन न जाओगे, तब तक मैं स्नान भोजन कुछ भी नहीं करूंगी।" कैकेयीका यह निदारुण वचन सुन कर महाराज दशरथ वज्राहतकी तरह अज्ञान हो पृथिवी पर गिर पड़े। सौम्य मूर्त्ति और धनस्पृहाहीन रामचन्द्रने उन्हें पकड़ कर उठाया और कैकेयीकी शङ्का देख दुःखित और दृढ़ स्वरसे कहा,—

"देवि! स्वार्थी हो कर पृथिवी पर रहनेकी मेरी इच्छा नहीं। मुझे ऋषियोंके समान विमल धर्माश्रित जानो। पिता चाहे न भी कहें पर आपकी तो आज्ञा है, मैं उसे शिरोधार्य कर चौदह वर्षके लिये अवश्य वन जाऊंगा। माता कौशल्या और सीताको बुला कर कहने में जितना समय लगेगा उतनी देर और आप ठहरिये।" इतना कह कर संज्ञाहीन पिता और कैकेयीकी वंदना कर रामचंद्र धीरे धीरे जाने लगे। चार घोड़ोंका रथ उसे वन पहुंचा आनेके लिये तैयार था, लेकिन राम उस राहसे नहीं गये। उत्कण्ठित नगरवासी जिस पथसे उनकी बाट जो रहे थे, उस पथको भी उन्होंने छोड़ दिया। अभिषेकशालाके पास जब गये, तब उन्होंने आंखें मूंद ली। सिद्धपुरुषकी तरह उनके चेहरे पर जरा भी उदासी न थी। वे मनका भाव मन हीमें रख कर धीरे धीरे मातृमंदिरकी ओर बढ़े।

जननीके पास जानेसे उन्हें दम भर आया। वे कम्पितकण्ठसे कहने लगे, 'देवि! क्या आपको मालूम नहीं, रंगमें भंग हो गया। मुझे मुनियोंकी तरह कषाय कन्दफलमूल खा कर जीवन धारण करना होगा। आपके दिये हुए भोजनकी अब मुझे जरूरत नहीं। मैं कुशासनके योग्य हूं, इस बहुमूल्य आसन पर अब बैठनेका मुझे अधिकार नहीं।" कैकेयीकी आज्ञा सुनाते हुए रामचंद्रने वन जानेके लिये मातासे विदा मांगा। शोकाकुला माता फूट फूट कर रोने लगी और बोली, 'राम! स्त्रियोंका प्रधान सुख पतिकी स्नेहसम्पद् है, वह मेरे भाग्यमें बदा नहीं। कैकेयीने मुझ पर वज्राघात किया है। मेरी सेवामें नियुक्त परिचारिकागण कैकेयीके परिजनको देखनेसे डरती हैं। बच्चा! मैं केवल तुम्हें देख कर सब सहती आई हूं। तुम्हारे वन जाने पर मुझे कहां ठौर मिलेगा। देखो, गायें वनमें अपने बच्चोंका पीछा करती हैं, इसलिये मुझे भी अपने साथ ले चलो।" यह सब मर्मच्छेदी कातरोक्ति सुन कर राम माताको सान्त्वना देने लगे और अश्रुमुखी शोकोन्मादिनी माताके निकट अपने अश्रुको रोक कर बार बार वन जानेकी अनुमति मांगने लगे। जब लक्ष्मणको यह घटना मालूम हुई, तब वे क्रोधसे अधीर हो गये और लाल आंखें कर धनुष हाथमें लिये पागलकी तरह गरज उठे, 'अभी मैं कैकेयीके प्रेममें आसक्त पिताकी हत्या करता हूं।' रामचन्द्र लक्ष्मणका हाथ पकड़ कर उनका क्रोध शान्त करने लगे। उन्होंने बड़े मीठे स्वरमें लक्ष्मणसे कहा, 'सौमित्रे! मेरे अभिषेकके लिये जो आयोजन हुआ है वह मेरे अभिषेकको निवृत्तिके लिये होवे।' पितृभक्त विषय निस्पृह कुमारके स्निग्ध किन्तु अटल संकल्पसे इस महाशोक और क्रोधके

अभिनयक्षेत्रमें एक असामान्य और वीरत्वकी श्री जगमगा उठी। कौशल्याने कहा, 'राजा तुम्हारे जैसे गुरु हैं, मैं भी वैसे ही गुरु हूं। मैं तुम्हें वन नहीं जाने दूंगी। मातृ-आज्ञाका उल्लङ्घन कर तुम किस प्रकार वन जाओगे। लक्ष्मण बोले, 'कामासक्त पिताका आदेश पालन करना अधर्म है।' रामचंद्रने अविचलित भावमें विनीत स्नेहपूरितकण्ठसे माताको कहा, "कण्डु ऋषिने पिताके आदेशसे गोहत्या की थी। मेरे कुलमें सगरके पुत्रगण पिताके आदेश पालन करनेमें मारे गये थे। परशुरामने पिताके आदेशसे अपनी माता रेणुकाका शिर काट डाला था। पिता प्रत्यक्ष देवता हैं,—वे क्रोध, काम या किसी भी प्रवृत्तिमें आ कर चाहे जो दान कर चुके हों, उसका विचार मुझे नहीं करना चाहिये, उसका विचार करने योग्य मैं नहीं हूं। पिताका यह आदेश मैं अवश्य पालन करूंगा।' इतना कह कर वे रोती हुई मातासे वन जानेके लिये बार बार अनुमति मांगने लगे। रामका आश्चर्य साधुसङ्कल्प देख कर कौशल्याने धीरज बांधा और सैकड़ों आशीर्वाद दे कर अश्रुसिक्तकण्ठसे प्राणप्रिय पुत्रको वन जानेकी अनुमति दे दी।

अब रामको सीतासे मिलना जरूरी था, पर वे किस मुंहसे यह निदारुण संवाद उन्हें सुनाने जाते। उनके हृदयमें आशाकी लता लहलहा रही थी। रामकी अभ्यस्त दृढ़ता शिथिल हो आई। अब वह अविकृत सौम्यभाव नहीं! उनकी मुखश्री विवर्ण हो चली। उनके सुन्दर श्याम-ललाट पर दुश्चिन्ताकी रेखा दिखाई देने लगी। सीता रामचन्द्रको देखते ही समझ गईं, कि कोई घोर अनर्थ हुआ है। व्याकुल हो उन्होंने पूछा, 'आज अभिषेकके मुहूर्त्तमें चेहरे पर ऐसी उदासी क्यों?' बार बार पूछने पर रामचन्द्रने सीताको महापरीक्षाकी उपयोगिनी बनानेके लिये अपनी महत् वंशकीर्त्तिका स्मरण करा दिया।

वनवासकी बात सुनते ही सीताने भी उनके साथ जानेकी इच्छा प्रकट की। रामचन्द्रने बहुत कुछ समझाया, पर पतिव्रता सीता कब माननेवाली थीं। रामचन्द्रका निषेध करना वा भय दिखाना कुल व्यर्थ गया। सीताने साथ जानेके लिये यहां तक दृढ़ संकल्प कर लिया कि उसे साथ नहीं ले जानेसे वह आत्महत्या कर लेगी। सीताके कोमल कपोल हो कर अश्रुबिन्दु धीरे धीरे बहने लगा।

अनन्तर रामचन्द्रने अश्रुपूर्णनयना सुन्दरी साध्वीस्त्रीके गलेमें हाथ डाल स्निग्ध और करुणकण्ठसे कहा, "देवि! तुम्हारा दुःख देख कर मैं स्वर्गको भी इच्छा नहीं करता, मैं तुम्हारी रक्षामें किसीसे भी नहीं डरता, साक्षात् रुद्रका भी मुझे डर नहीं। तुम कहती हो, कि विवाहके पहले ब्राह्मणोंने कहा था, 'तुम स्वामीके साथ वन जाओगी'—अगर वन जानेके लिये ही तुम्हारी सृष्टि हुई हो, तो तुम्हें छोड़ जानेकी मेरी सामर्थ्य नहीं।" जिस लक्ष्मणने 'वध्यतां वध्यतामपि' कह कर राजाको बांधनेके लिये यहां तक कि विनाश करनेकी व्यवस्था दी थी, जो धनुषवाण हाथमें लिये अकेले श्रीरामचन्द्रके शत्रुकुलका निर्मूल करनेके लिये उतारु हो गये थे वे अभी रामकी अटल प्रतिज्ञा और वन जानेका उद्योग देख कर बालककी तरह रोते रोते भाईके चरणोंमें गिर पड़े और बोले, 'तुम्हारे नहीं रहते यदि मुझे त्रैलोक्यका भी ऐश्वर्य क्यों न मिले, तो भी मैं उस पर लात मारूं।" अश्रुपूर्णचक्षु पदतलपतित परमस्नेहास्पद लक्ष्मणको रामने आदरपूर्वक उठा कर गले लगाया और अपने साथ वन चलनेको कहा। लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए और आंसू पोंछ कर वनवासोपयोगी अस्त्रशस्त्र ले वन जानेको तैयार हो गये। रामचन्द्रने भरत अथवा कैकेयीके प्रति किसी विद्वेषसूचक वाक्यका प्रयोग नहीं किया। उन्होंने सीतासे कहा—

'भरत और शत्रुघ्न मेरे प्राणसे भी बढ़ कर प्यारे हैं। स्नेह और शुश्रूषामें मेरे प्रति सभी माता समदर्शिनी हैं।' जाते समय रामचन्द्र दशरथके पास गये। महिषियोंसे घिरे हुए दशरथ रामका मुख देख कर चित्तका वेग रोक न सके। शोकरुद्ध कण्ठसे उन्होंने रामचन्द्रको एक दिन और ठहरनेका अनुरोध किया तथा बहुत अनुनय विनय कर कहा, 'आज मैं तुम्हें आंखों पर रख कर एक साथ भोजन करूंगा।' रामचन्द्र बोले, 'आज ही वन जाऊंगा, ऐसा वचन दे चुका हूं। अतएव इसे टाल नहीं सकता।' सम्भ्रम और विनयके साथ उन्होंने फिरसे कहा, 'ब्रह्माने जिस प्रकार अपने पुत्रोंको तपस्या

करनेकी अनुमति दी थी, आप भी उसी प्रकार शोकका परित्याग कर हम लोगोंको वन जानेका आदेश दीजिये।' यह सुनते ही दशरथका शोक बढ़ने लगा, वे विह्वल हो उठे। सुमन्त्र, महामात्र सिद्धार्थ तथा गुरुदेव वशिष्ठ कैकेयीके साथ विवाद करने लगे। आत्मीय सुहृद् और स्वजनोंकी उत्तेजित कण्ठध्वनिसे राजभवन गूंज उठा। उस कोलाहलको पराजित कर त्यागशील राजकुमारकी अपूर्व वैराग्य और धर्मभावपूर्ण कण्ठध्वनि स्वर्गीय शुभवाणीकी तरह सुनाई देने लगी। कृताञ्जलिबद्ध हो रामचन्द्र पितासे बार बार कहने लगे—

"आप बिना किसी बातका दुःख किये यह राज्य भरतको दे दें। मैं अपने जीवनमें सुख, सम्पद्, राज्यैश्वर्य यहां तक कि स्वर्गकी भी कामना नहीं करता। मैं सत्यबद्ध हूं और आपका सत्य पालन करूंगा। पिता देवताओंसे भी बढ़ कर पूज्य हैं। उस पितृदेवताकी आज्ञा पालन करनेमें मैं जरा भी कष्टका अनुभव नहीं करता। चौदह वर्ष बाद लौट कर मैं फिर आपके श्रीचरणकी वन्दना करूंगा।' माताओंकी ओर देख कर राजकुमारने कृताञ्जलिपुट हो कहा—"मुझसे भ्रमवशतः अथवा अज्ञानवशतः यदि कोई अपराध हुआ हो, तो आज मुझे क्षमा करें।' दशरथका जो अन्तःपुर वीणाकी मधुर झनकारसे परिपूर्ण रहता था, आज वह शोकार्त्त रमणियोंके आर्त्तनादसे गूंज उठा।

राम, लक्ष्मण और सीता ये तीनों भिखारीके वेशमें कौपीन और चीर पहन कर घरसे निकले। उस समय अन्तःपुरमें बहुत जोरसे आर्त्तनाद उठा, तमाम सन्नाटा छा गया। राजमहिषियां बेसुध हालतमें जहां तहां पड़ रहीं। प्रजामण्डलीमें गंभीर परितापसूचक हाहाकार ध्वनि होने लगी। उस मर्मविदारक शब्दसे उन्मत्त हो वृद्ध राजा दशरथ और कौशल्यादेवी दोनों नंगे पांवसे धूलमें लेटाते हुए अपने अपने कपड़ेको बिना संभाले हाथको बढ़ाये हुए रामचन्द्रको आलिङ्गन करनेके लिये दौड़ पड़े। राजाधिराज दशरथकी प्रधान महिषीकी यह अवस्था देख कर प्रजा व्याकुल हो उठी। रामचन्द्रने कहा, "सुमन्त्र! जोरसे रथ चलाओ, मैं अब यह शोकावह दृश्य देखना नहीं चाहता।" प्रजा सुमन्त्रसे विनय

"हे सारथि! घोड़ोंकी लगाम मजबूतीसे पकड़ कर धीरे धीरे रथ हांको, जिससे हम लोगोंको रामचन्द्रका मुख अच्छी तरह दिखाई दे। फिर अब इनके दर्शन करनेका हमें सौभाग्य प्राप्त न होगा।" रामने स्नेहार्द्रकंठसे प्रजाओंसे कहा—

"अयोध्यावासियो! तुम लोगोंका मेरे प्रति जो सम्मान और प्रीति है उसे मेरी प्रीतिके लिये भरतमें अर्पण करना।" अयोध्याके बाहर सर्वशास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंने रथके समीप जा कर कहा, "हम लोग यह हंसशुभ्र केशयुक्त मस्तक भूलुण्ठित कर प्रार्थना करते हैं, कि हम लोगोंको भी साथ ले चलो।" रामचन्द्रने रथ परसे उतर कर उन्हें प्रणाम किया।

गोमती पार कर रामचन्द्र सरयूका नदी उत्तीर्ण हुए। अयोध्याके वृक्ष आदि श्यामाभ आकाशप्रान्तमें नीलमेघकी तरह अस्पष्ट दिखाई देते थे। रामचन्द्रने एक बार पिपासित नेत्रोंसे उस चिरस्नेहजड़ित जन्मभूमिके प्रति दृष्टि डाल कर गद्गद कण्ठसे सुमन्त्रको कहा, "सुमन्त्र! न मालूम फिर कब इस सरयूमें लौटूंगा?"

रामचन्द्र गङ्गाके किनारे आ कर विशेष प्रफुल्लित हुए। सहसा यह विशाल तरङ्गिणी देख कर दोनों राजकुमार और सीताके मनमें प्रीतिका सञ्चार हुआ। वे इंगुदीवृक्षकी छायामें विश्राम करनेका उद्योग करने लगे। निषादराज गुहक विविध प्रकारकी खाद्य सामग्री ले कर रामका स्वागत करने आये। उन्होंने कहा, "इस संसारमें रामसे बढ़ कर मेरा प्रियतम और कुछ भी नहीं है।" रामचन्द्रने गुहकका आतिथ्य यह कह कर ग्रहण नहीं किया, कि क्षत्रियको धर्मशास्त्रानुसार दान लेना उचित नहीं है। वह रात तीनोंने इंगुदीवृक्षके नीचे तृणशय्या पर ही बिताई।

दूसरे दिन सुमन्त्र वहांसे बिदा हुए। वृद्ध सचिवने रोते हुए कहा, 'खाली रथ ले कर मैं किस मुंहसे अयोध्या लौटूंगा? जब उन्मत्त जनता सैकड़ों कण्ठसे मुझे पूछेगी, तो मैं क्या उत्तर दूंगा? हे सेवकवत्सल! मुझे भी साथ ले चलिये। बारह वर्षके बाद मैं इसी रथ पर आप लोगोंको चढ़ा कर बड़े गौरवसे अयोध्या लौटूंगा।" रामचन्द्रने वृद्ध मन्त्रीको नाना प्रकारके प्रबोधवाक्य

द्वारा लौट आनेको बाध्य किया और बड़े दुःखित हो कर कहा, 'जब तक तुम लौट नहीं जाओगे, तब तक माता कैकेयीको विश्वास नहीं होगा, कि मैं वन गया हूं।'

सुमन्त्रके जाते समय रामने कहा था, 'तुम्हारे समान और कोई सुहृद मुझे नजर नहीं आता। तुम हम लोगोंके हितचिन्तक हो, इसलिये देखना, राजा दशरथ मेरे लिये कोई चिन्ता न करें।' लक्ष्मण क्रुद्धस्वरसे दशरथके कार्यकी निन्दा करने लगे। रामने सुमन्त्रको समझा कर कह दिया, "राजा वृद्ध और करुण स्वभावके हैं तथा हम लोगोंके वनवासके कारण बड़े ही दुःखित हैं, इसलिये ये सब लक्ष्मणकी रूखी बातें उन्हें न सुनाना, नहीं तो वे शोकसे प्राणत्याग कर सकते हैं।"

सुमन्त्रने रोते रोते वहांसे खाली रथ हांका। इधर घने जंगलमें दोनों राजकुमार और आदरकी राजवधू धीरे धीरे आगे बढ़ी। अब तक भी पतिव्रता सीताके सुकोमल चरणोंमें जो महावर लगा था, वह मलिन नहीं हुआ था। हिंस्र जन्तुओंकी डरावनी ध्वनि सुन कर वे रामचन्द्रकी बांह पकड़ कर चलती थीं। महेन्द्रध्वज सदृश रामचन्द्रकी बाहु ही आज इन्दुनिभाननाका एकमात्र अवलम्बन था। रात बितानेके लिये वे एक वृक्षके नीचे पड़ रहे। इस घोर अरण्यमें प्रथम रात्रिवासका कष्ट सचमुच उनके लिये दुःसह था। रामचन्द्र लक्ष्मणके निकट बहुत अनुताप करने लगे। उनका प्रशान्तचित्त असह्य कष्टसे अशान्त हो उठा। उन्होंने कहा, "भरत राज्य पा कर अवश्य सुखी होगा, इसमें संदेह नहीं। राजाको अवश्य मनोकष्ट होता होगा। किंतु जो धर्म त्याग कर कामसेवा करते हैं उन्हें राजा दशरथकी तरह दुःख होता है। मेरी अल्पभाग्य माता आज शोकसागरमें डूबी होंगी। लक्ष्मण! क्या कभी सुना है, कि बिना अपराधके स्त्रीकी बातमें पड़ कर मेरे जैसे छन्दानुवर्त्तीको भी किसीने परित्याग किया है, जो कुछ हो, इस कठोर वन्यजीवनमें तुम्हारा प्रयोजन नहीं। मैं सीताके साथ वनवासका दण्ड भोग करूंगा। तुम लौट जाओ। निष्ठुर नीच प्रकृतिकी कैकेयी शायद मेरी माताको विष खिला कर मार न दे। तुम घर जा कर माताकी रक्षा करना। ऐसा न समझना, कि मैं अयोध्या अथवा सारी पृथिवीको अधिकार नहीं कर सकता। केवल अधर्म और परलोकके भयसे मैंने अपना अभिषेक नहीं किया।" इस प्रकार बहुतविलाप करके उस दुर्भेद्य गभीर अरण्य प्रदेशमें सीताकी दुरवस्था और अपने जीवनकी भावी दुर्गतिकी कल्पना कर सुकुमार राजकुमार रामचंद्रने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे तथा क्षुब्ध चित्तसे मौनभावमें सारी रात बैठ कर बिताई।

इस प्रथम रात्रिके महाक्लेशके बाद वनवास धीरे धीरे अभ्यस्त होने लगा। चित्रकूट पर्वतके नीचे पुष्पके बोझसे लदे हुए पेड़ देख कर वे चमत्कृत हो गये। सीता लहलहाती वनतरुराजि देख कर वनोन्मादिनी हो गईं। वह घुंघराले और घने लम्बे केशोंको पीठ पर लटका कर रामचन्द्रका हाथ पकड़ लाल अशोकका पुष्प चुनने लगीं। सामने चित्रकूट पर्वत है। उसका शिखर आकाश चुम्बन कर रहा है। कहीं गुहापूर्ण निबिड़ वनराज्यकी मनोहर शोभा है। कहीं बहुकन्दर-पार्श्ववर्त्ती शैलमाला दिखाई देती है। इस चित्रकूटके कण्ठ पर निर्मल मुक्ताकी कण्ठीकी तरह मन्दाकिनी बह रही है। सहसा इस उदार अदृष्टपूर्व प्राकृतिक समृद्धिके निकट जा कर रामचन्द्रने गहरी सांस भर कर कहा –

"राज्यनाश और सुहृद्विरह आज मेरी बुद्धिमें बाधा नहीं डालता। यह महासौन्दर्य मैं अच्छी तरह उपभोग करनेमें समर्थ हूं। वनवास आज मेरे लिये शुभकर प्रतीत होता है। इससे मेरे दोनों फल सिद्ध होते हैं। एक तो मैंने पिताकी असत्यसे रक्षा की और दूसरा भरतका भारी उपकार हुआ।" सीताके साथ मन्दाकिनी जलमें स्नान कर रामचन्द्र कमल तोड़ते और सीतासे कहते हैं, 'इस नदीका स्निग्ध सम्भाषण तुम्हारी सखियोंके समान है। मन्दाकिनीको सरयू कह कर समझना।'

यहां दम्पतीका हृदय मधुरसे क्रमशः मधुरतर हो उठा है। कुसुमित लताने आश्रय वृक्षको मजबूतीसे पकड़ा है,—रामचन्द्रने कहा, 'क्या ही सुन्दर! तुम परिश्रान्त हो कर जिस प्रकार मेरा आश्रय लेती हो, उसी प्रकार यह दिखाई देता है।' हाथीके दांतसे उखाड़े हुए अकालशुष्क वृक्षको देख कर दम्पती बहुत दुःखित हुए। शैल-

शाखा पर जंगली कोयल कुहुकती थी और भौंरे गुनगुन शब्द करते थे। उसे सुन कर राम आदिकी थकावट दूर होती थी और वे धीरे धीरे आगे बढ़ते जाते थे। नील, पीत, लोहित वा किसी वर्णका जो फूल अच्छा लगता था, उसे रामचन्द्र पल्लव सहित तोड़ कर सीताके हाथमें देते थे। मनःशिलाके ऊपर जलसिक्त उंगली घिस कर सीताकी मांगमें सिन्दूरका तिलक लगाते थे। केशरपुष्पको सीताके बालोंमें खोंस कर रामचन्द्रने बड़े आदरसे कहा, 'तुम्हारे साथ रहनेसे मुझे अयोध्याके राजपदकी स्पृहा नहीं होती।'

चित्रकूटके मनोहर शैलमाला-परिवृतप्रदेशमें शाल, ताल और अश्वकर्ण वृक्षके पत्तों और काण्डोंसे लक्ष्मणने मनोरम पर्णशाला बनाई। रामचन्द्र उस झोपड़ामें भाई और स्त्रीके साथ आनन्दसे रहने लगे।

इसी समय बड़ी भारी सेना और आत्मीय सुहृदोंसे परिवृत्त हो भरत रामचन्द्रको अयोध्या लौटा लानेके लिये आ रहे थे। शालवृक्ष परसे भरतका चिरपरिचित-कोविदार ध्वजाङ्कित-पताका-परिवेष्टित अयोध्याकी विशाल सेना देख कर लक्ष्मणने समझा, कि भरत हम लोगोंका वध करनेके लिये आ रहे हैं। इस धारणासे उत्तेजित हो उन्होंने भरतका निधन करनेका सङ्कल्प किया और रामचन्द्रको युद्धके लिये उभाड़ा। किन्तु रामचन्द्रने स्नेहार्द्र कण्ठसे कहा, 'भरत यदि सशस्त्र सेना ले कर आ रहा है, तो आने दो, हम लोगोंको युद्ध करनेका प्रयोजन ही क्या? पितृसत्यका पालन करने हम लोग वन आये हैं। ऐसी हालतमें यदि हम लोग भरतको युद्धमें मार डालें, तो क्या अक्षय कीर्त्ति प्राप्त हो सकती? भ्रातृरक्तकलङ्कित ऐश्वर्यसे हम लोगोंको प्रयोजन नहीं। भाई और आत्मीयवर्गके सुखके सामनेमें अपना सुख बहुत थोड़ा समझता हूं।' इसके बाद भरत जिस उद्देश्यसे आ रहे हैं वह अनुमान कर उन्होंने कहा, भरत मेरे प्राणसे भी बढ़ कर प्यारा है। मेरे वनवाससे वह शोकसंतप्त हो मुझे अयोध्या ले जानेके लिये आ रहा है न कि हम लोगोंसे युद्ध करने।'

इधर नंगे पांवसे जटाचीर पहने अनुगत भृत्यकी तरह वाष्पगद्गदकण्ठसे चिरवत्सल भरत आ कर रामचन्द्रके चरणों पर गिर पड़े। भरतका मुख सूखा, लज्जा और मनस्तापसे शरीर दुबला और कुरूप हो गया था। रामचन्द्रने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे स्नेहकी पुतली भरतको गोदमें ले लिया और स्नेह सम्भाषणमें उनका मस्तक सूंघा। भरतने देखा कि सत्यव्रत रामचन्द्रके शरीरसे दिव्यज्योति निकल रही है, फिर भी उनका शरीर मानो पवित्र यज्ञाग्निकी तरह देदीप्यमान है।

इन देव सदृश बड़े भाईके चरणोंमें पड़ कर आर्त्ता रमणीकी तरह भरत फूट फूट कर रोने लगे। रामचन्द्र भरतके मुखसे पितृवियोगका संवाद सुन कर कुछ समय अधीर हो रहे। पीछे मन्दाकिनीके किनारे इंगुदीफलसे पितृ-पिण्ड बना ज्यों ही वे पिण्ड देने तैयार हुए त्यों ही लंबी सांस भरी और पृथिवी पर लोट कर रोने लगे। किन्तु थोड़े ही समय बाद वे चित्तसंयम कर संसारकी अनित्यता और धर्मकी सारवत्ताके सम्बन्धमें भरतको उपदेश देने लगे, "मनुष्यका सुन्दर शरीर जरावशीभूत हो शक्तिहीन और विरूप हो जाता है। जिस प्रकार पके अनाजके गिरनेका भय नहीं, उसी प्रकार मनुष्यको भी मृत्युके लिये निर्भय हो प्रतीक्षा करना उचित है। क्योंकि मृत्यु ध्रुव है। जो प्रमोदमयी रजनी बीत गई है, वह फिर लौट कर नहीं आती। यमुनाका जो प्रवाह समुद्रमें मिल गया है, वह फिर लौटेगा नहीं। उसी प्रकार आयुका जो अंश बीत गया है वह फिर लौट नहीं सकता। जब जीवित व्यक्तिका मृत्युकाल ही आसन्न और अनिश्चित है, तब मृतके लिये पश्चात्ताप न करके अपने लिये पश्चात्ताप करना ही उचित है। जब देह ढीली पड़ जायगी और बाल सफेद हो जायंगे, तब जराग्रस्त जीवमें क्या कोई प्रभाव रह जायगा? जिस प्रकार समुद्रमें गिरे हुए दो काठ जब दैववशसे एक साथ मिलते और फिर स्रोतवेगसे अलग अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार स्त्रीपुत्र और ज्ञातिवर्गके साथ मिलना दैवाधीन है, उनका वियोग कब होगा, निश्चय नहीं है। हम लोगोंके पिता नश्वर मनुष्यदेहका त्याग कर ब्रह्मलोक गये हैं उनके लिये शोक करना वृथा है। धर्मपालन करते हुए पितृ-आज्ञाको शिरोधार्य कर उसका पालन करना ही अभी हम लोगोंका कर्त्तव्य है।" मुहूर्त्त भरमें गभीर शोक-

को जीत कर श्रीरामचन्द्र प्रकृतिस्थ हो गये। भरतने विस्मित हो कर कहा, "आप जैसे इस संसारमें कोई व्यक्ति देखनेमें नहीं आते जो सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी न हों।"

भरत रामको साथ ले जानेके लिये प्राणपणसे चेष्टा करने लगे। वशिष्ठ, जावाली आदि कुलपुरोहितोंने रामको अयोध्या लौटनेके लिये बहुत अनुरोध किया पर रामने एक भी न सुना। आखिर जावालीने एक अद्भुत तर्ककी अवतारणा की,—"जीव पृथिवी पर अकेला आता और अकेला ही जाता है। अतएव कौन किसका पिता और कौन माता है? यह माता है यह पिता है, ऐसी बुद्धि उन्मत्त और मूर्ख मनुष्यको ही होती है। यथार्थमें शुक्र शोणित और वीज ही हम लोगोंके पिता हैं। दशरथ तुम्हारे कोई नहीं थे, तुम भी उनके कोई नहीं हो। पिता के लिये श्राद्ध आदि किया जाता है, वह केवल अन्नादि नष्ट करना है। क्योंकि मृत व्यक्ति आहार नहीं कर सकता। यदि एक आदमी भोजन करे और दूसरेके शरीरमें उसका संचार होता हो, तो किसी परदेशी व्यक्तिके उद्देशसे किसीको भोजन करा कर देखो, क्या वह परदेशी तृप्त होता है? शास्त्रादि केवल लोगोंको वशीभूत करनेके लिये बनाये गये हैं। अतएव हे राम! परलोकसाधनधर्म नामक कोई पदार्थ नहीं है, ऐसा तुम जानो। तुम प्रत्यक्षके अनुष्ठान और परोक्षके अनुसन्धानमें लग जाओ तथा अयोध्याके सिंहासन पर अधिष्ठित होओ। अयोध्या नगरी एकवेणीधरा हो कर तुम्हारे आगमनकी प्रतिक्षा करती है।"

रामचन्द्र पिताको प्रत्यक्ष देवता और देवताके देवता समझते थे। जावालीकी इस उक्ति पर वे आगबबूले हो गये और बोले,—"आपकी बुद्धि वेद-विरोधिनी है, आपसे अच्छे अच्छे ब्राह्मणोंने निष्काम हो शुभकार्य किये हैं तथा आज भी बहुतेरे अहिंसा, तप और यज्ञ आदिका अनुष्ठान किया करते हैं। वे ही सचमुच पूजनीय हैं। आप जैसे धर्मभ्रष्ट और नास्तिक व्यक्तिके साथ वे बात चीत तक भी नहीं करते। मेरे पिताने जो आपको याजकत्वमें ग्रहण किया था मैं उनके इस कार्यकी घोर निन्दा करता हूं।" इस वादानुवादमें वशिष्ठने बीचमें पड़ कर रामचन्द्रके क्रोधको शान्त किया।

रामचंद्रने जब जाना, कि भरत किसी भी हालतसे उनकी पदच्छाया परित्याग कर न जायंगे, वे भी वनवासी होंगे, तब उन्होंने भरतको लौट जानेके लिये बहुत अनुरोध किया। इस पर शोकार्त भरतने हठ पकड़ा, कि यदि राम न लौटेंगे, तो मैं निराहार रह कर प्राणत्याग करूंगा। इतना कह कर उन्होंने कुटीके द्वार पर धरना दिया। भरतका क्लेश रामचन्द्रजी सह न सके। उन्होंने अपने खड़ाऊं दे कर भरतको लौट जानेके लिये बाध्य किया। भरत भी वह पवित्र खड़ाऊं ले कर अयोध्याको चल दिये।

इधर रामचन्द्रजीने सोचा, कि चित्रकूट अयोध्याके बहुत करीब है। अयोध्यासे हमेशा लोग आते जाते रहेंगे, इसलिये वे लक्ष्मण और सीताके साथ चित्रकूटका परित्याग कर धीरे धीरे दक्षिणकी ओर बढ़ने लगे। ऋषियोंके अनुरोधसे रामचंद्रने राक्षसोंका उपद्रव रोकनेका भार अपने हाथ लिया। इस उपलक्षमें रामचंद्रजीसे सीताने कहा, "तीन कार्य पुरुषके वर्जनीय हैं, झूठ बोलना, पराई स्त्रीके साथ गमन करना और अकारण किसीसे शत्रुता ठानना। आपमें पहले दो दोष तो नहीं हैं, पर बिना कारणके राक्षसोंके साथ जो शत्रुता करते हैं, उससे मुझे डर होता है।" रामचन्द्रने कहा, 'क्षतसे जो त्राण करता है वही क्षत्रिय है। ऋषि लोगोंने राक्षसोंके अत्याचारसे तंग आ कर मेरी शरण ली है। उनमेंसे बहुतेरे निरीह और धार्मिक ऋषियोंको राक्षसोंने मार डाला है। उन्होंने विपद्‌में पड़ कर मुझसे आश्रय मांगा है। मैं भी उनकी रक्षा करनेका वचन दे चुका हूं। अभी राक्षसोंके साथ मेरा युद्ध अवश्यम्भावी है। मुझ पर चाहे कैसी ही विपद् क्यों न आ पड़े, राज्य यहां तक, कि तुमसे भी मेरा वियोग क्यों न हो जाय, पर मैं सत्यभ्रष्ट नहीं हो सकता।'

शीतऋतुके आरम्भमें ही रामचन्द्र उग्र पिप्पलीगंधसे परिव्याप्त वनप्रदेश अतिक्रम कर पञ्चवटी पहुंचे। यहां वे कुटी बना कर रहने लगे।

पञ्चवटीमें शूर्पणखाके नाक कान काटे जानेके बाद

रामचन्द्रसे राक्षसोंका घोर युद्ध हुआ। खरदूषणादि चौदह हजार राक्षस रामचन्द्रसे मारे गये। रावणको जब यह मालूम हुआ, तब वह परिव्राजकके वेशमें सीताको हर ले गया।

मारीच राक्षसने मृत्युकालमें जो 'हा लक्ष्मण हा लक्ष्मण' कह कर पुकारा था उसीसे रामचन्द्रको राक्षसों की एक दुरभिसन्धिकी आशा हो गई थी। लक्ष्मणको अकेला आते देख राम भयसे विह्वल हो पड़े। उनका प्रशान्तचित्त क्षुब्ध समुद्रकी तरह चञ्चल हो उठा। उनके शोकके और भी दूसरे दूसरे कारण थे। रामचंद्रने जब वन जानेका सङ्कल्प किया और यह बात सीताको मालूम हुई, तब उन्होंने 'कुशकण्टकमें कदम बढ़ा कर आपके आगे आगे जाऊंगी' यह कह कर प्रफुल्लचित्तसे राजमहलका त्याग किया और भिखारिणीवेश सजाया था। अयोध्या की सुरम्य अट्टालिकाओंका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा था कि, 'इन सब अट्टालिकाओंकी छायासे आपकी पद-च्छाया मेरे लिये कहीं अच्छी है। मृगीवत् प्रफुल्लनयना भीरु सीताको वनमें जब किसी बातका डर होता, तब वह अपनी भुजलतासे रामचंद्रकी बाहु पकड़ती थी। तेरह वर्ष चित्रकूट और पञ्चवटी तरुकी छायामें गद्गद-नादी गोदावरीके किनारे मन्दाकिनीकी सैकतभूमियों,—जंगली कंदमूल और कषायफल खा कर बड़े आदरसे लालिता सोहागिनी राजवधू स्वामीकी पार्श्ववर्त्तिनी हो कर रहना ही जीवनका श्रेष्ठ सुख समझती थी। राम-चंद्र भी जब उन्हें लिये आते थे, तब उन्होंने कहा था, "तुम्हें साथ ले जानेमें मुझे किसी बातका डर नहीं। साक्षात् रुद्रसे भी मैं नहीं डरता।" यह अभय दे कर वे पद्मपलाशाक्षी सीताको साथ लाये थे। अभी वह उनकी रक्षा न कर सके। यह सब सोच कर राम बहुत व्याकुल हो उठे। लक्ष्मणको अकेला आते देख वे कातर-करुण स्वरसे बोल उठे, 'दण्डकारण्यमें जो मेरे साथ साथ आई थी मेरी उस वन-संगिनी दुःखसहाया-को कहां कहां रख आया; जिसके बिना मैं क्षण भर भी नहीं रह सकता उसे तुम कहां छोड़ आया?'

अनन्तर वे बड़ी तेजीसे लक्ष्मणके साथ कुटीकी ओर चले। राहमें उन्हें तमाम अंधकार सा दिखाई देता था। चारों ओर अशुभ लक्षण देख कर उनका मुख सूख गया। कुटीके समीप आ कर उन्होंने देखा, कि हेमंतमें शुष्क पद्मदलकी तरह सीताविहीन श्रीहीन मलीन कुटी खड़ी है। उसका सौंदर्य बिलकुल चला गया। वन-देवता मानों पञ्चवटीसे विदा हो गये; समूचा वन सीताके बिना मानो सूना दिखाई देता है; पञ्चवटीके वृक्ष डालियोंको झुका कर रो रहे हैं; पञ्चवटीके पक्षी अपनी मधुर बोली भूल गये हैं; डालियों पर फूल मुरझा गये हैं। मृगचर्म और वल्कलादि कुटाकी रस्सीमें बंधे हैं। यह अवस्था देख कर रामचंद्र पागल हो गये। आंखोंसे अजस्र आंसू बहने लगे और आंखें लाल लाल हो गईं।

इस समय उन्हें तरह तरहकी भावना होने लगीं,—क्या सीता कहीं पद्म तोड़ने तो नहीं चली गई हैं? क्या मेरी परीक्षा करनेके लिये कहीं छिप तो नहीं रही है? इसके बाद वे गिरि, नदी और दुर्गम स्थानमें उन्हें खोजने लगे। जब कहीं न मिली, तब वे व्याकुल हो कदम्बवृक्षसे पूछने लगे। बिल्ववृक्षके निकट हाथ जोड़ कर; लतापल्लवपुष्पसे लदी हुई वनस्पतिके पास जा कर कातरकण्ठसे सीताका हाल पूछा। पत्र-पुष्प-समाच्छन्न अशोकके पास जा कर उन्होंने कहा, 'हे अशोक! मेरा शोक दूर करो, सीता कहां चली गई, मुझे बता दो!' पीछे कनियार पुष्प देख पागल हो उन्होंने सीताके श्रीमुखकी कर्णशोभाका स्मरण किया। वन वनमें उन्मत्तकी तरह भ्रमण कर रामचन्द्र-ने मृगयूथके निकट मृगशावाक्षीका हाल पूछा। सहसा क्षिप्तवत् छायासीताको देख वे व्याकुल कण्ठसे कहने लगे,—

"हे प्रिये! वृक्षके कोटरमें क्यों छिपी हो? मैंने तुम्हें देख लिया। मुझसे बोलती क्यों नहीं? ऐसी हंसी तो तुम कभी भी मेरे साथ नहीं करती थी,—ठहरो, कहीं भाग न जाना, क्या मेरे प्रति तुम्हें जरा भी दया नहीं?"

इतना कह कर राम सीताके ध्यानमें निमग्न हो कठपुतलीकी तरह खड़े रह गये।

कुछ समय बाद जब वे होश हवाशमें आये, तब फिर सीताकी खोजमें निकले। सीताको कोई हर कर ले गया है, वह रामचन्द्र जी स्वप्नमें भी नहीं सोचते थे। उनका ख्याल था, कि सीताको राक्षसगण मिल कर खा गये हैं। उनके घुंघराले बाल, सुन्दर पूर्णचन्द्रमाकी तरह मुखमण्डल, सुचारु नासिका और शुभ्र ओष्ठ राक्षसके भयसे मलिन और सूख गये थे। उनकी पल्लवके समान बाहु, सुन्दर अलङ्कार सभी राक्षसोंके पेटमें चले गये होंगे, यह सोच कर रामचन्द्र पलकहीन उन्माद-दृष्टिसे आकाशकी ओर ताकते जाते थे। कभी तो बड़ी तेजोसे कभी धीरे धीरे पागलकी तरह नद नदी और निर्झरिणीसे परिपूर्ण गिरिप्रदेशमें भ्रमण करते थे। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा, 'लक्ष्मण! पद्मवनाकीर्ण, गोदावरीकी सैकत भूमि, कन्दर और निर्झरपूर्ण गिरिप्रदेश आदि सभी स्थानोंमें प्राणाधिका सीताको खोजा, पर वे कहीं न मिलीं।" इतना कह शोकसे अधीर हो रामचन्द्र पृथ्वी पर धड़ामसे गिर पड़े और गहरी सांस भरने लगे।

कुछ समय बाद रामने लक्ष्मणको अयोध्या लौट जानेके लिये अनुरोध किया और कहा, 'मैं कौन-सा मुंह ले कर अयोध्या लौटूंगा, विदेहराजदुहिता सीता कहां गई, लोग जब पूछेंगे तब मैं क्या जवाब दूंगा। भरतको आलिङ्गन कर मेरी ओरसे कहना, 'कि चिर दिन वही अच्छी तरह राज्य करे। माता कैकेयी, सुमित्रा और कौशल्या आदि माताओंकी मेरी हालत कह कर बड़े यत्नसे उनका पालन करना।'

लक्ष्मणने अनेक उपदेश-वाक्य द्वारा रामको सान्त्वना दी। किन्तु वे फिरसे कहने लगे, "मुझे ध्रुव-तुल्य विमल धर्माश्रित जानना।" ऐसा जिसने कहा था, जिसे राज्यनाश और मित्र-विरह अभिभूत न कर सका, जिसके पिता 'राम-राम' कहते इस लोकसे चल बसे और वह पितृशोकसे जरा भी विह्वल न हुआ, आज वह शोकसे उन्मत्त हो रहा है। रामचन्द्रने फिर लक्ष्मणसे कहा, 'लक्ष्मण! थोड़ी देर ठहरो, तब अयोध्या जाना, एक बार गोदावरीके किनारे सीताको खोज आओ, वह वहां कमल लानेके लिये न गई हों। लक्ष्मण गोदावरीके किनारे सीताकी तलाशमें निकले, चारों ओर चिल्ला चिल्ला कर पुकारने लगे। बेंतवनकी प्रतिध्वनिके सिवा और किसीने कुछ उत्तर न दिया। वे दुःखित हो लौटे और रामचन्द्रसे बोले, 'क्लेशनाशिनी वैदेही मालूम नहीं कहां चली गई, तमाम ढूंढ़ा, पर पता न लगा।'

लक्ष्मणकी बात सुन कर शोकाकुल रामचन्द्र स्वयं गोदावरीके किनारे गये।

राम और लक्ष्मणने दक्षिण दिशामें पर्यटन करते करते एक जगह सीताका अङ्गभूषण कुसुमदाम पड़ा देखा। तब अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे रामचन्द्रने कहा, 'पृथिवी, सूर्य और वायुने इन पुष्पोंकी रक्षा कर आज मेरा कुछ दुःख दूर किया।'

कुछ दूर और आगे बढ़ कर उन्होंने देखा, कि जमीनके ऊपर राक्षसका बड़ा पद-चिह्न अङ्कित है, पासकी जमीन लहूसे तराबोर है। वहां सीताका उत्तरीयस्खलित कनकबिन्दु गिरा है, पास हीमें एक पुरुषकी लाश और विशीर्ण कवच तथा युद्धरथ चक्रहीन हो पड़ा है और इसमें जो पताका लगी है, वह लहू और कीचड़से भींग गई है। यह दृश्य देख कर रामचन्द्रकी पूर्व आशङ्का बद्धमूल हो गई अर्थात् उन्होंने कहा था, कि सीताको राक्षस खा गया है, यह बात ठीक निकली। राक्षस लोगोंने ही वह लाश लेनेके लिये आपसमें युद्ध किया है—यह उसीका निदर्शन है। रामकी आंखें क्रोधसे लाल हो गईं। उनके ओठ फड़फड़ाने लगे। पीठ पर लटकती हुई जटाको उन्होंने संभाला और वल्कल मृगचर्म आदि अच्छी तरह बांध लिये। अनन्तर लक्ष्मणके हाथसे तीर धनुष ले कर बोले, "जिस प्रकार जरा, मृत्यु और विधाताका क्रोध अनिवार्य है, उसी प्रकार आज मुझे भी कोई रोक नहीं सकता। सामने जो कुछ मिलेगा उसे यमपुर भेज कर सीता-विनाशका बदला चुकाऊंगा।" बड़े भाईका इस प्रकार उन्मत्त भाव देख कर लक्ष्मणने उन्हें बहुत उपदेश दिया। उनके उपदेशका राम पर अच्छा असर पड़ा। कुछ दूर जब वे लोग और आगे बढ़े, तब उन्होंने शोणितार्द्र वृहद्देह मुमूर्षु जटायुको देखा। उसे देखते ही रामने "यही राक्षस सीताको खा कर निश्चलभावमें पड़ा है।" कह कर उसे मारनेके लिये तीर धनुष उठाया।

जटायुके प्राण कंठगत थे। ज्यों ही वह कुछ बोलने पर था त्यों ही फेनयुक्त रक्त मुंहसे गिर पड़ा। पीछे बहुत दीन और मृदुवाक्यसे उसने रामचन्द्रसे कहा, 'हे भगवन्! तुम जिसे वन वनमें महौषधिको तरह खोज रहे हो वह सीतादेवी और मेरे प्राण दोनों ही रावणसे चुराये गये हैं। सीताको ले जाते देख उसे बचानेके लिये मैंने रावणके साथ युद्ध किया था। यह जो भग्न रथ-च्छत्र और भग्नदण्ड देखते हैं, वह रावण होका है। उसका सारथी भी मुझसे मारा गया है। रावणको मैंने रथ परसे नीचे गिरा दिया था। पीछे थक जानेसे मैं गिर पड़ा और उसने खड्गसे मेरे पंख काट लिये। रावण एक बार मुझे मार चुका है, इसलिये फिरसे मारना तुम्हें उचित नहीं।'

यह बात सुन कर रामचंद्रने धनुषको फेंक दिया और वे जटायुको आलिङ्गन कर रोने लगे। पीछे उन्होंने लक्ष्मणसे कहा, 'लक्ष्मण! देखो, इनके प्राण कंठगत हैं, जटायु मर रहे हैं। मेरे भाग्यके दोषसे पितृसखा जटायुको आज ऐसी दशा हुई है।' रामने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे हाथ जोड़के जटायुसे कहा, 'यदि आपमें शक्ति हो, तो हमें अपनी बध-कहानी और सीताहरणकी कथा एक बार कहिये। रावण मेरी सीताको क्यों हर ले गया? मेरे साथ उसको तो कोई शत्रुता थी नहीं। फिर उसका रूप और शक्ति-सामर्थ्य कैसा था? मेरा क्या अपराध देख कर उसने यह कार्य्य किया? सीताकी मनोहर मुखश्री उस समय कैसी हो गई थी? विधुमुखीने क्या कुछ कहा भी था? रावणका घर कहां है?' इन सब प्रश्नोंके उत्तरमें जटायुने केवल इतना ही कहा था, "मेरी शक्ति बिलकुल जाती रही, अधिक बोल नहीं सकता—दुरात्मा रावण सीताको हरण कर ले गया है। रावण विश्वश्रवा मुनिका पुत्र और कुबेरका भाई है।" यह अन्तिम बात कहते कहते उसकी आंखके सितारे स्थिर हो गये—जटायुने प्राण त्याग किया। राम कृताञ्जलि हो 'बोलो बोलो' कह रहे थे, पर अब जटायु कहां जो बोले। रामचन्द्रने सजल नेत्रोंसे कहा, यह जटायु वर्षों दण्डकारण्यमें रह कर विशीर्ण हो गये थे। परन्तु आज मेरे लिये इन्होंने प्राण दिये। इस पृथ्वीमें सभी जगह साधु और महाजन रहते हैं, नीच कुलमें जटायुका जन्म हुआ था पर उनका चरित्र देव-सदृश्य पूजनीय था। मेरी भलाईके लिये इन्होंने प्राण दिये हैं। आज सीता-हरणका मुझे कष्ट नहीं, कष्ट है मुझे जटायुकी मृत्युका।

मेरे लिये यशस्वी राजा दशरथ जैसे पूजनीय और मान्य थे, आज जटायु भी उसी प्रकार हैं। लक्ष्मण! लकड़ी लाओ, मैं इस पवित्र देहका संस्कार करूंगा।

जटायुका अग्नि-संस्कार करके वे दोनों भाई पश्चिमकी ओरसे होते हुए दक्षिण उपकूलके समीप आये। सामने बहुत लंबा-चौड़ा और दुर्गम क्रौञ्चारण्य मिला। वनमें एक भीषण राक्षसी रहती थी और बहुत ऊधम मचाती थी। रामने उसका दमन किया। पीछे विकराल मूर्त्ति कबन्धसे उनकी भेंट हुई। कबन्ध रामके हाथसे मारा गया। मरते समय उसने कहा था, "पम्पातीर पर ऋष्यमूक नामक एक पर्वत है। उस पर सुग्रीव रहते हैं। यदि आप सुग्रीवसे मित्रता करें, तो वे सीताके खोजनेमें आपकी मदद करेंगे।" इसके बाद शबरीके साथ साक्षात् कर दोनों भाई दक्षिणपथके विस्तृत भूखण्डको अतिक्रम कर सारस-क्रौञ्च-नादित पम्पाह्रदके किनारे पहुंचे।

पम्पातीरवर्त्ती स्थान बड़ा रमणीय था। वहांकी वृक्षशोभा देखनेसे मालूम होता था, कि वसन्तऋतु हमेशा इस तीर पर विराज करती है। पास ही ऋष्यमूककी कृष्णच्छाया मेघके साथ मिल गई है। हरे हरे फूलोंसे लदे हुए कनियारवृक्ष पीताम्बर पहने हुए मनुष्यकी तरह दिखाई देते थे। रामचन्द्र यहां पर प्रकृतिके सौन्दर्यसे बेसुध हो सीताके लिये विलाप करने लगे। सीताके विरहसे कातर रामने लक्ष्मणसे कहा, 'भाई लक्ष्मण! वसन्त ऋतुके आनेसे मैं निश्चय ही प्राण-त्याग करूंगा। देखो, कारण्डव पक्षी शुभ सम्मिलनमें गोता मार कर अपनी कान्तासे मिलने जा रहा है। आज यदि सीताके साथ शुभ सम्मिलन होता, तो अयोध्याके ऐश्वर्य्य अथवा स्वर्गको भी मैं तुच्छ समझता। यहां जिस प्रकार वसन्तके आगमन पर वनश्री देवी तुष्ट हुई हैं, जहां सीता होगी, क्या वहां भी इसी प्रकार वसंतका

लीलाभिनय होता होगा ? सीताके विरहसे आज वह बर्फके समान ठंढी वायु आगकी लपट-सी मालूम होती है। यह विशाल पुष्पसम्भार आज मेरे निकट वृथा है। अयोध्या लौट कर मैं विदेहराजसे क्या कहूंगा ? लक्ष्मण, तुम लौट जाओ, मैं सीताके विरहसे प्राणधारण नहीं कर सकता।"

लक्ष्मण रामचन्द्रकी यह उन्मत्तता देख कर डर गये और उन्हें अनेक प्रकारसे समझाने बुझाने लगे। किन्तु रामचन्द्रकी व्याकुलताका ज़रा भी ह्रास न हुआ। कभी तो वह अवसन्न हो जाते और कभी अजस्र आंसू बहाते हुए उन्मत्तकी तरह प्रलाप करते थे। इसी समय सुग्रीवने हनुमानको वहां भेजा। हनुमानके स्निग्ध अभिनन्दनसे लक्ष्मण हृदयका आवेग न रोक सके। सुग्रीवने हनुमानके हाथ दोनों भाइयोंको कहला भेजा था, "आपके आयत तथा सुवृत्त महाभुज परिघके समान है। आप जगत्‌का शासन कर सकते हैं, तो फिर आप दोनों भाई वनचारी क्यों हुए ? आप लोगोंकी अपूर्व देहकान्ति सब प्रकारके आभूषणकी योग्य है, पर एक भी भूषण नहीं दिखाई देता सो क्यों ?" लक्ष्मणने रामचन्द्र तथा अपनी हालत संक्षेपमें कह सुनाई और सुग्रीवसे आश्रय देने कहा,—"जो पृथ्वी-पति हैं, सभी लोगोंको शरण देनेवाले मेरे गुरु और अग्रज—वे रामचन्द्र आज सुग्रीवकी शरण चाहते हैं। इसलिये दुःखसागरमें पतित रामचन्द्रको आज वानराधिपति आश्रय दे कर उनकी रक्षा करें।" इतना कहते न कहते लक्ष्मणकी आंखें डबडबा आईं। जिन्होंने सर्वदा चित्तवेगका दमन किया है। रामचन्द्रका कष्ट देख कर जिनका चित्त कातर हो गया है, वह लक्ष्मण आज रोते रोते मौनी हो गये।

रामचन्द्र शोकातुर हो आज तक केवल स्वयं कष्ट पाते थे, किन्तु अभी वे जिस काममें लगे हुए हैं, वह कहां तक युक्तियुक्त और नीतिमूलक है कह नहीं सकते। बालिवध बड़ी ही जटिल समस्या थी। कबंधने मृत्युकालमें सुग्रीवके साथ मित्रता करने कहा था। अभी रामचन्द्रने सुग्रीवके पास आने और उनसे विपद्‌कालमें सहायता मांगनेकी इच्छा प्रकट की। अग्निको साक्षी कर उन्होंने आपसमें सौहार्द्य स्थापन किया। सुग्रीवने कहा,—

'यदि मेरे जैसे वानरके साथ आप मित्रता करना चाहते हैं, तो हाथ बढ़ाता हूं, अपने हाथसे मेरा हाथ पकड़ें।' रामचन्द्रने वैसा ही किया। किंतु सुग्रीव केवल मित्र ही नहीं थे, वे भी उन्हींके जैसे दुःखित थे। उनकी भी स्त्री बड़े भाई द्वारा हरण की गई थी। वे बालीके भयसे ऋष्यमूक पर्वत पर रहते थे, स्त्रीविरहसे बड़े कष्टसे जीवन बिताते थे। जब रामचन्द्रको यह हाल मालूम हुआ, तब रामचंद्रने उन पर बड़ी कृपा बरसाई। जिसकी स्त्री दूसरेसे चुरा ली गई उसके समान हतभागा संसारमें और कौन है। हतभागेके साथ हतभागेको मित्रता केवल हाथ पकड़नेसे ही नहीं हुई, हृदयकी गभीर सहानुभूति द्वारा वह बद्धमूल हो गई। सुग्रीव जब अपनी स्त्रीका हरण वृत्तान्त रामचंद्रसे कह रहे थे, उस समय उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहती थी। किंतु रामचंद्रके सामने सुग्रीवने धैर्य धारण कर अश्रुवेगको रोक लिया। ऐसे समदुःखी बंधुवरको पा कर रामचंद्र अपना अश्रुमलिन मुख कपड़ेके अंचलसे पोछेंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या ? सीताने ऋष्यमूक पर्वत पर अपने भूषणादि गिरा दिये थे। सुग्रीव उन्हें बड़े यत्नसे रखा था। रामने उसे देखना चाहा, सुग्रीवने उसी समय उनके सामने ला कर रख दिया। वे उस उत्तरीय और भूषणको छाती पर रख कर रोने लगे और रावणका कार्य स्मरण कर बिलमेंके सांपकी तरह क्रुद्ध हो निश्वास छोड़ने लगे।

सुग्रीव और रामचंद्रके साथ मित्रता हो गई। बालीका बध करनेके लिये उन्होंने सङ्कल्प किया। किंतु एक प्रतापशाली देशाधिपतिको वृक्षकी आड़से तीर फेंक कर मारना क्षत्रियोचित कार्य है या नहीं यह सोचनेके लिये मालूम होता है उस समय उनकी बुद्धि ठिकाने न थी। बालीको रामचंद्रने कहा था, 'छोटे भाईकी स्त्री कन्याके समान है, जो व्यक्ति उसे हरण करेगा मनुके विधानानुसार वह मृत्युदण्डसे दण्डित होगा।" बालीने कहा, 'मनुक्त मृत्युदण्ड देनेके लिये क्या तुम ही आये हो ? बालीके इस प्रकार बार बार ललकारने

पर रामचंद्रने कहा, 'यह सशैलवनशालिनी धरित्री इक्ष्वाकुवंशीयके अधिकारमें है। भरत उस वंशके राजा हैं। हम लोग उनकी आज्ञाके अनुसार पापीको पापका दण्ड देनेमें नियुक्त हैं। जिसको दण्ड देना होगा, उसके साथ क्षत्रियोचित सम्मुखयुद्धका प्रयोजन नहीं।' मालूम होता है, उन्हें आर्यजातिका युद्धनियम पालन करनेका यथेष्ट कारण न मिला।

रामचन्द्रने अपने पराक्रमका परिचय देनेके लिये सुग्रीवके सामने एक शर फेंका जो सात ताड़के पेड़को छेदता हुआ निकल गया। किन्तु जब देखते हैं, कि वृक्षकी आड़से भाईके साथ मल्लयुद्धमें नियुक्त बालीके प्रति गुप्तभावसे शर फेंक कर रामचन्द्रने उसका वध किया, तब वे सब पराक्रम दिखानेकी कोई आवश्यकता ही न थी।

ऋष्यमुख पर्वतकी गुहाको काट कर दुर्गम शैलसंकुल प्रदेशमें बालीका राज्य था। अब बालीके मारे जाने पर सुग्रीव विजयमाला पहन कर सिंहासन पर बैठे। माल्यवान् पर्वतके पास ही चित्रकानना किष्किन्धाका गीतिवादित्रनिर्घोष सुनाई देता था। रामचन्द्र माल्यवान् पर्वत पर भाईके साथ रह कर उसे सुन सकते थे। किष्किन्धा नगरी बड़े आदरसे आमन्त्रित होने पर भी उन्होंने नगरमें प्रवेश नहीं किया। वनवासकी प्रतिज्ञा पालन कर वे पर्वत पर रहते थे। रामचन्द्रको रातदिन नींद नहीं आती थी। उदित शशिलेखाको देख कर विधुमुखीका स्मरण हो आता था। चन्द्रोदय देख कर भी वे निद्रा-सुखका अनुभव नहीं करते थे। वर्षाका समय था। अविरल जलधारा देख कर राम समझते थे, कि उनके विरहसे सीता अश्रुत्याग कर रही है। नील मेघमें प्रस्फुरित विद्युत् देख कर रावण द्वारा सीताहरणका चित्र उनके सामने आता था। वर्षाकालमें रामचन्द्रका सीताशोक दूना बढ़ गया। वर्षाका चार मास उनके लिये सौ वर्षके समान था। सीताके शोकमें इस समय वे बड़े कष्टसे दिन बिताते थे। धीरे धीरे शरदृऋतुने पदार्पण किया। मेघका नामनिशान न रहा। सप्तच्छद तरुकी शाखा शाखामें पुष्प खिल गये। पुष्करिणीके किनारे जंगल और नदीतटमें रामचंद्र घूम घूम कर मृगशावाक्षीका स्मरण करने लगे। सीताके बिना उन्हें कहीं चैन नहीं पड़ता था।

रामचंद्रने कहा, 'सुग्रीवने प्रतिज्ञा की थी, कि वर्षाऋतु बीतने पर वे सीताकी खोज करेंगे। अब शरदृऋतु भी आ गई पर उनका कहीं पता नहीं। मैं प्रियाविहीन दुःखार्त्त और हृतराज्य हूं, सुग्रीव राज्य-श्री पा कर बिलकुल भूल गये। मुझे अनाथ, राज्यभ्रष्ट, प्रवासी और दीनप्रार्थी समझ कर शायद सुग्रीव हम लोगोंकी उपेक्षा करते हों। लक्ष्मण! तुम उनके पास जाओ और कहो, कि क्या वह मेरी बाणाग्निकी प्रभा फिर देखना चाहता है? जिस पथसे बाली गया है वह पथ संकुचित नहीं हुआ है। उसे समझा कर कहना, कि अपनी प्रतिज्ञाका पालन करे जिससे उसे बालीके पथसे न जाना पड़े। फिर उन्होंने लक्ष्मणसे यह भी कहा, कि सुग्रीवको मीठी मीठी बातें कहना, रूखी बातका कदापि व्यवहार न करना।

सुग्रीव सचमुच तारा, रुमा और दूसरी दूसरी ललनाओंसे परिवृत्त हो आनन्दसागरमें मग्न था, मदविह्वलिताक्ष और पानारुणनेत्रसे दिनके समान रात और रातके समान दिन बिता रहा था। यहां तक, कि लक्ष्मण और बानरोंने जब दरवाजे पर जा कर शोरगुल मचाया, तब भी उसकी नींद नहीं टूटी, आखिर अङ्गदके समझाने पर सुग्रीवने कहा, 'मैंने तो कोई कुव्यवहार नहीं किया, तब फिर लक्ष्मण क्यों क्रोध करते हैं? मैं लक्ष्मण अथवा रामसे जरा भी नहीं डरता, पर हां बन्धुविच्छेदसे अवश्य डरता हूं। मित्रता सर्वत्र ही सुलभ है, मित्रताकी रक्षा करना कठिन है।' किंतु हनुमान्‌ने जब उसकी भूल सुझा दी, तब उसने अपना अपराध स्वीकार किया और कृताञ्जलि हो लक्ष्मणसे क्षमा मांगी।

सुग्रीवने उसी समय बानरोंको भिन्न भिन्न दिशामें सीताकी खोजमें भेजा। कुछ समय बाद वे सभी लौट आये, पर सीताका कहीं पता न चला। आखिर हनुमान् विशाल समुद्र पार कर लङ्कामें सीताको खोजने आये।

हनुमान्‌ने अशोक-वाटिकामें सीताको देख पाया। कुल समाचार कह कर वह वहांसे लौटा। आते समय

सीताने उसे चिह्न-स्वरूप अपनी अंगूठी दे दी। हनुमान् उस अंगूठीको ले कर समुद्रके किनारे जहां बंदर उसकी बाट जोहते थे वहां पहुंच गया। अब बंदरोंके आनन्दका पारावार न रहा। वे सबके सब आनन्दसे उछलते कूदते पहले रामचन्द्रके पास न आ कर सुग्रीवके विशाल मधुवनमें घुसे। उस वनमें दधिमुख नामक एक पहरु नियुक्त था। उसने बन्दरोंको वनमें घुसनेसे मना किया, पर आनन्दसे उन्मत्त बन्दर कब उसे सुननेवाले थे। आखिर दधिमुखने बलपूर्वक उन्हें मार भगानेकी कोशिश की, पर वह अकेला कब तक ठहर सकता था। बंदरोंने मिल कर उसे खूब पीटा और अधमरा कर छोड़ दिया। दधिमुख रोता हुआ सुग्रीवके पास गया। इधर मधुवनसे आमोदित और यौवनके मदसे उन्मत्त बन्दर आपसमें मधुर गान गाते, एक दूसरेको प्रणाम करते, इस प्रकार आनन्दोत्सव मनाते थे।

सुग्रीव राम लक्ष्मणके पास बैठे हुए थे। दधिमुख वहीं गया और वानराधिपतिका पांव पकड़ कर रोने लगा। सुग्रीवने अभय दे कर रोनेका कारण पूछा। दधिमुखसे सारी घटना सुन कर सुग्रीव बोले, "वानरसम्प्रदाय तो सीताका पता न लगा सकनेके कारण बड़ा ही दुःखित है, तब फिर अकस्मात् यह क्या हो गया? मालूम होता है, उन्होंने कोई शुभसंवाद जरूर लाया है शायद सीताका पता लगा लिया है।" इसी समय वानरगण वहां पहुंच गये। सीताका संवाद पा कर रामचंद्रके आनंदका पारावार न रहा।

अनन्तर हनुमान्‌ने सीताकी दी हुई अंगूठी रामचंद्रको दे कर कहा, 'जमीन पर सोते सोते सीताका रूप कुरूप हो गया है, वे शीत-क्लिष्टा नलिनीकी तरह मलिन हो गई हैं।' राम उस अंगूठीको छातीमें लगा कर बालककी तरह रोने लगे। पीछे वे बोले, बछड़ा देखनेसे जिस प्रकार गायके स्तनसे दूध आपे आप गिरने लगता है उसी प्रकार इस मणिके दर्शनसे मेरा हृदय स्नेहातुर हो गया है। छातीमें जब इसे लगाता हूं, तब ऐसा ही मालूम होता, कि सीता मेरे अङ्गमें लिपट गई हैं।' वे बड़े ही आतुर हो हनुमान्‌से बार बार पूछने लगे। "मेरी भामिनीने मधुर कण्ठसे क्या कहा है, मुझे कहो। औषध मिलनेसे रोगी जिस प्रकार जीवन लाभ करता है, सीताका वचन भी अभी मेरे लिये वैसा ही है। कठिनसे कठिन दुःखमें पड़ कर सीता किस प्रकार जीवन धारण करती है।"

हनुमान्‌से कुल समाचार मालूम कर रामचंद्र बोले, 'यह शुभ संवाद तुमने जो सुनाया, इसके लिये मैं तुम्हें क्या पुरस्कार दूं? पुरस्कार योग्य तो मेरे पास कुछ है नहीं। मेरा एकमात्र आयत्त पुरस्कार है—तुम्हें आलिङ्गन देना। यह कह कर अश्रुपूर्णनेत्रोंसे रामचंद्रने हनुमान्‌का आलिङ्गन किया।

किंतु हनुमान्‌ने लङ्कापुरीका जो वर्णन किया, वह बड़ा ही भीतजनक है। 'विशाल लङ्कापुरी चारों ओर ऊंची दीवारसे घिरी है। उसमें चार फाटक हैं। हर एक फाटक पर अस्त्र रखे हुए हैं। प्राचीर पार करनेसे भयङ्कर खाई मिलती है। उस खाईमें कुम्भीर आदि रहते हैं। उस पर चार यंत्रनिर्मित सेतु हैं। शत्रुसेना जब उस सेतु पर चढ़ती तब यंत्रबलसे वे खाईमें फेंक दी जाती हैं। यंत्रकौशलसे वे सब सेतु इच्छानुसार उठाये जा सकते हैं। उनमेंसे एक सेतु सबसे बड़ा है। उसके कुछ अंश सोनेसे मढ़े हुए हैं। चित्रकूट पर्वतके ऊपर वह लङ्कापुरी अवस्थित है। वहां देवता लोग भी नहीं जा सकते। सैकड़ों विकराल, शैल और शूलधारी राक्षससेना उस विराट प्राचीर और परिखाके दरवाजे पर पहरा देती है। इसके बाद लङ्कापुरी पड़ती है। वहां जो वीर राक्षस पहरा देते हैं उनके पराक्रमके विषयमें तो कुछ कहना ही नहीं। उनमेंसे किसीने तो ऐरावतके दांत उखाड़े हैं, किसीने यमपुरीमें घेरा डाल कर यमराजका दमन किया है। इस दुरधिगम्य लङ्कापुरीसे सीताका उद्धार करना होगा। शत्रुगण हम लोगोंसे लड़नेके लिये पहले होसे तय्यारी कर रहे हैं।" हनुमान्‌से लङ्कापुरीकी अवस्था सुन कर रामचंद्र जरा भी विचलित न हुए। वे सुग्रीवकी सेनाके साथ पहाड़ी रास्तेसे समुद्रके किनारे जाने लगे। राहमें बड़े बड़े वृक्ष फलके बोझसे शिर झुकाये हैं। रामचंद्रने सबोंको सावधान कर दिया था, कि बिना अच्छी तरह जांचे कोई फल न

आना। कहीं रावणके गुप्तचरोंने उनमें विष न मिला दिया हो। इसी समय बड़े भाईसे अपमानित विभीषणने आ कर रामचंद्रकी शरण ली। इस पर सबोंने प्रतिवाद किया, कि शत्रुपक्षीय किसीको भी अपने शिविरमें आश्रय न देना चाहिये। किंतु रामचंद्रने शरणागतको लौटा देना अच्छा न समझा।

समुद्रके किनारे पहुंच कर विशाल सेना असीम जलराशिकी अनन्त प्रसारित क्रीड़ा देखने लगी। समुद्र आकाशमें और आकाश समुद्रमें मिला हुआ था। अब सभी सोचने लगे, कि किस प्रकार यह भीषण महासमुद्र पार किया जाय?

समुद्रके किनारे रामचंद्र कुश पर शयन कर महाबाहुको तकिया बना कर तीन रात और तीन दिन अनसनव्रत अवलम्बन कर मौनभावमें पड़े रहे। चौथे दिन 'आज मैं समुद्र पार करूंगा, नहीं तो प्राण दे दूंगा' इस प्रकार संकल्प कर सेतु बांधनेके उद्देशसे वे समुद्रकी उपासना करने लगे। रक्तमाल्याम्बरधर, किरीटच्छटादीप्त शुभकुण्डल समुद्र कृताञ्जलि हो रामचंद्रके निकट उपस्थित हुए और उन्होंने सेतुबंधका उपाय बतला दिया।

तदनुसार अपार समुद्रव्यापी विशाल सेतु बनाया गया। सेतु जिससे टेढ़ा न होने पावे, इसलिये कोई सूता और कोई मानदण्ड पकड़ कर खड़ा रहता था। शिला और वृक्ष आदि उपादानोंसे नीलने थोड़े ही समय में पुल बना लिया। रामचंद्र सभी सेनाओंके साथ उसी पुलसे समुद्र पार कर गये। अब लङ्कापुरी पहुंच कर वे सीताके लिये बहुत व्याकुल हुए और विलाप करने लगे, "जो वायु सीताको स्पर्श करती है, वह मुझे भी स्पर्श कर पवित्र करे। जो चंद्रमा मुझे देखता है, उस चंद्रमाको सीता भी देख कर उन्मादिनी होती होगी। दिन रात मैं सीताकी विरह-अग्निसे दग्ध होता हूं। ऐसा कब सौभाग्य प्राप्त होगा, कि उनके सुचारु दन्त और अधरयुग्म, पद्मतुल्य सुन्दर मुख उठा कर देखूं।"

इसके बाद युद्ध आरम्भ हुआ। रावणके मंत्रियोंने उन्हें नाना प्रकारकी सलाह दी। किसीने कहा, "एक दल राक्षस-सेना मनुष्यसैन्यका वेश धारण कर रामचंद्रके पास जा कर कहे, 'भरतने आपकी सहायतामें हम लोगोंको भेजा है' इस प्रकार रामकी सेनामें घुसनेसे शीघ्र ही उनका विनाश किया जा सकता है।" रावणने सुग्रीवको ससैन्य अपने दलमें लानेके लिये उन्हें तरह तरहका प्रलोभन दिया था। लेकिन उसका यह भी उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। रावणके गुप्तचर नाना प्रकारका छद्मवेश धारण कर रामचंद्रकी सैन्यसंख्या और व्यूहप्रणाली देखने आते थे। जब कभी वे पकड़े जाते, तब बंदर उन्हें अच्छी तरह पीटते और पकड़ रखते थे। पीछे रामचंद्र उन्हें छोड़ देते थे। सुग्रीव और विभीषण उन्हें जानसे मार डालनेकी सलाह देते थे। उनका कहना था, कि ये सब दूत नहीं, गुप्तचर हैं इसलिये इनका वध करनेमें कोई दोष नहीं। किंतु रामचंद्रको दया आती और उन्हें मुक्त कर देते थे। एक दिन एक गुप्तचरको दण्ड देनेके लिये रामचंद्रजीके पास लाया गया। उसने रामचंद्रको शरण ली। रामने उसे कहा था, 'तुम हमारी सैन्यसंख्याको अच्छी तरह देख जाओ। तुम्हारे मालिकने जिस उद्देशसे तुम्हें भेजा है उस उद्देशको पूरा करनेमें मैं स्वयं उसकी मदद करता हूं। तुम मेरा व्यूहसंस्थान, छिद्रादि जो कुछ है, देख जाओ। यदि स्वयं न समझ सकते या देख सकते हो, तो मेरे कहनेसे विभीषण तुम्हें सब कुछ समझा बुझा देगा।' इस प्रकार रामचंद्रने नीतिका अवलम्बन कर धर्मयुद्धमें राक्षसोंको मारा था। एक दिनके भीषण युद्धमें रावण बिलकुल हतश्री हो गया था। लक्ष्मणको विध्वस्त और रामकी सेनाको नष्ट कर आखिर रामचन्द्रसे परास्त हुआ उसका किरीट कट कर जमीन पर गिर पड़ा। हेमच्छत्र जो मस्तक पर पहनता था छिन्न-विच्छिन्न हो गया। रामके शरोंसे घायल हो वह भागनेका कोशिश करने लगा, पर भागनेका कोई रास्ता न मिला। इस समय रामचंद्रने कहा था, 'राक्षस! तुम मेरी सेनाको नष्ट कर युद्ध करते करते थक गये हो। मैं थके शत्रुको कष्ट देना नहीं चाहता, इसलिये आजकी रात घर लौट जाओ और विश्राम करो। कल सबल हो कर फिर युद्ध करने आना।'

लक्ष्मण रावणके शेलसे मूर्च्छित हो पड़े। रामकी किसी भी सेनाको वह हृदयभेदी शेल उठानेका साहस न हुआ। आखिर रामचन्द्रने उसे उठा कर चूर चूर कर दिया और लक्ष्मणको बचाया। इसी समय रावणके हजारों तीर उनको पीठमें चुभने लगे, पर भ्रातृवत्सल रामने उसको जरा भी परवाह न की।

इन्द्रजित्से सीताका बधसंवाद सुन कर रामचन्द्र बे-होश हो गये। सेना उन्हें चारों ओरसे घेर कर पद्म-गन्धयुक्त स्निग्ध जलधारा द्वारा उन्हें होशमें लानेका प्रयत्न करने लगी। इसी समय विभीषणने आ कर उनके कानोंमें कहा, "वह सीता मायासीता थी,—प्रकृत सीता नहीं। सीता अशोकके वनमें अच्छी तरहसे हैं।" यह सुन कर राम बोले, 'मैंने कुछ भी नहीं समझा, क्या कहते हो, जोरसे कहो' इतना कह कर राम मौनके साथ साथ करुण दृष्टिसे विभीषणकी ओर ताकने लगे।

भीषणयुद्धमें राक्षस एक एक कर यमपुर सिधारा। अतिकाय, त्रिशिरा, नरान्तक, देवान्तक, महापार्श्व, महोदर अकम्पन, कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् आदि महारथिगण समराङ्गणमें खेत रहे। दो बार रामचन्द्रने इन्द्रजित्को युद्धमें परास्त किया था। किंतु दैवबलसे दोनों बार बच गया था। इस युद्धमें राक्षसोंने रामचंद्रकी कभी भी खुशामद नहीं की। खुशामदकी बात कृत्तिवास, तुलसीदास आदि कवियोंने अपने अपने रामायणमें लिखी है, पर वाल्मीकिके मूलकाव्यमें वह नहीं है।

रावणके साथ जो अन्तिम युद्ध हुआ, वह बड़ा ही भयङ्कर था। दोनोंकी कमानसे जो तीर निकलते थे उनसे दिग्मण्डल आलोकित होता था तथा अद्भुत रथ-युद्धसे पृथिवी कांप उठती थी। रामचंद्र जब रावणको बध न कर सके, तब कुछ समय तक वे चित्रपटकी तरह निष्पन्द हो रहे। इस समय अगस्त्य ऋषिके उपदेशानुसार रामचंद्रने सूर्यदेवके स्तवसूचक मन्त्रका ध्यान करने लगे, "हे तमोघ्न, हे हिमघ्न, हे शत्रुघ्न, हे ज्योतिःपति, हे लोकसाक्षि, हे व्योमनाथ," इस प्रकार मंत्र जप करते करते उनके शरीरमें नई शक्तिका सञ्चार हो आया।

रावण मारा गया। जो रामचन्द्र सीताके लिये इतने दिनों तक उन्मत्तप्राय थे आज रावणविनाशके बाद उनकी वह व्याकुलता हठात् दूर हो गई। उन्होंने रावणका सत्कार करनेके लिये विभीषणसे कहा। चंदन और अगरकी लकड़ीसे राक्षसाधिपतिकी देह जलाई गई। इसके बाद रामने विभीषणको लङ्का राज-सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

इसके बाद रामचंद्रने अपने प्रिय अनुचर हनुमान्को अशोकवनमें भेजा। दूत सीताको लाने नहीं गया, केवल उन्हें यह संवाद देनेके लिये कि वे रावणको मार कर ससैन्य कुशलसे हैं। जाते समय उन्होंने हनुमान्से कह दिया था, 'अशोकवनमें प्रवेश करनेसे पहले विभीषणकी अनुमति ले लेना।'

हनुमान्से शुभसंवाद सुन कर सीता इतनी गद्गद् हो गईं, कि कुछ समय उनके मुंहसे एक बात भी न निकल सकी। उनके दोनों नेत्रोंमें आंसू भर आये। जाते समय हनुमान्ने कहा, कि क्या आपको कुछ कहना भी है? दीनहीना जनकसुता बोलीं, 'तुमने जो यह शुभ संवाद सुनाया, संसारमें ऐसा कोई धनरत्न ही नहीं जिसे तुम्हें पुरस्कारमें दे कर आनंद लाभ करूंगी।' जिन सब राक्षसियोंने सीताको तरह तरहकी यंत्रणा दी थी, हनुमान् उन्हें मार डालनेके लिये तैयार हुए, लेकिन सीताने रोक दिया और कहा, "इन लोगोंने मालिकके बाध्य करनेसे हमें जो कष्ट दिया है, इसके लिये ये दण्डार्ह नहीं हैं।" जाते समय सीताने हनुमान्से कहला भेजा, कि वे स्वामीको पूर्णचंद्रानन देखनेकी अभिलाषिणी हैं। रामके पास पहुंच कर हनुमान्ने कहा, 'सीतादेवी विजयवार्त्ता सुन कर बहुत प्रसन्न हुईं और आपको देखना चाहती हैं।" यह सुन कर रामचंद्रके नेत्रसे एक बुंद आंसू टपक पड़ा। वे नीचे दृष्टि किये खड़े रहे। अनंतर उन्होंने एक गहरी सांस भर कर विभीषणसे कहा, 'सीताको अच्छे अच्छे वस्त्र आदि पहना कर मेरे पास लानेकी अनुमति दीजिये। मैं उन्हें देखनेकी इच्छा करता हूं।'

विभीषण स्वयं सीताके पास गये और रामका अभिप्राय उन्हें कह सुनाया। अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे सीता बोली, "मैं अभी जिस अवस्थामें हूं उसी अवस्थामें स्वामीसे

मिलूंगी।" लेकिन विभीषनने कहा, 'रामचन्द्रजीने जैसी अनुमति दी है, उसीके अनुसार कार्य करना आपको उचित है।'

अनन्तर बहुत दिनोंके बाद बालोंको सम्हाल कर, दिव्य अम्बर पहन कर सुन्दर भूषणादिसे भूषित हो अलोकसामान्या श्रीशालिनी सीतादेवी पालकी पर चढ़ कर स्वामीसे मिलने आई। सीताको देखनेके लिये सैकड़ों बानर और राक्षसोंकी भीड़ लग गई। विभीषण उन्हें बेंतसे मार कर अलग करने लगे। परन्तु रामचन्द्रने क्रुद्ध हो कर विभीषणसे कहा, "विपत कालमें, युद्धमें तथा स्वयम्वरके स्थानमें पुराङ्गनाका दर्शन दूषणीय नहीं है। सीता जैसी विपदापन्ना संसारमें और कौन है? उन्हें देखनेमें कोई रोक टोक नहीं। सीताको पालकी परसे उतर पैदल मेरे पास आने कहिये।" उस विशाल सैन्यमण्डलीके मध्य होती हुई सीता देवी कम्पित कलेवरसे रामचन्द्रके सामने उपस्थित हुईं।

सीताको देख कर रामचन्द्रने कहा, "आज मेरा श्रम सफल हुआ। जो व्यक्ति अपमानित हो कर प्रतिशोध नहीं लेता उसे धिक्कार है वह पौरुषशून्य है। आज हनुमान्‌का समुद्रलङ्घन, सुग्रीव, विभीषण और सैन्यवृन्दका परिश्रम सार्थक हुआ।" यह सुन कर सीतादेवीके नेत्रोंमें आंसू भर आये। कपोल लाल हो गया, हृदय कांपने लगा। किंतु लोकनिंदाका भय रामचंद्रके हृदयमें आघात पहुंचाने लगा। वे बड़े कष्टसे हृदयका आवेग रोक कर बोले, "मैं मानसम्भ्रमका आकांक्षी हूं। रावणने मेरा अपमान किया। इसीसे मैंने उसका बदला चुकाया। पवित्र इक्ष्वाकुवंशके गौरवकी रक्षाके लिये मैंने युद्धमें राक्षसको मारा है। किंतु तुम राक्षसके घर थी, इसलिये तुम्हारे चरित्र पर मुझे संदेह होता है। तुम मेरी आंखोंकी प्रीतिकर सामग्री हो। किंतु नेत्र रोगी जिस प्रकार दीपकी ज्योति सह नहीं सकता, तुम्हें देख कर मैं भी उसी प्रकार कष्ट पाता हूं। ऐसा कौन पौरुषहीन व्यक्ति है जो शत्रुके घर लाई गई स्त्रीको फिर पा कर सुखी होवे। रावणने तुम्हें अपने अंगमें लिपटा लिया था, अपनी दोनों आंखोंसे देखा था। तुम्हें यदि घर ले जाऊं तो मेरे पवित्र घरमें कलङ्कका धब्बा लगेगा। मैंने जो मित्रोंके बाहुबलसे इस युद्धमें विजय प्राप्त की, वह तुम्हारे लिये नहीं, अपने वंशकी गौरव रक्षाके लिये। तुम अब जहां चाहो जा सकती हो। अथवा लक्ष्मन, भरत, सुग्रीव या विभीषण इनमेंसे जो पसन्द हो उसीको आत्मसमर्पण कर सकती हो।"

रामके ऐसे वचन सुन कर सीताको बहुत दुःख हुआ। लज्जासे उन्होंने शिर झुका लिया। इतनी लज्जा हुई कि वे मानो अपने ही शरीरमें घुसनेकी कोशिश करने लगीं। किंतु वे क्षत्रिय रमणी थीं, अप्रितम तेजस्विनी थीं। आंसुओंको एक हाथसे पोंछती हुई वह गद्‌गद् कण्ठसे बोली, "आप मुझे ऐसी अतिकठोर बातें क्यों कहते हैं? ऐसी कठोरोक्ति तो नीच घरकी स्त्रियोंके प्रति कही जा सकती है। दैववशतः मुझे गात्रसंस्पर्श दोष हुआ है, पर इसके लिये मैं अपराधिनी नहीं हूं। मेरे हृदयमें सर्वदा आप विराजित हैं। यदि आपने यह निश्चय कर लिया था कि मुझे ग्रहण न करेंगे, तब पहले जो आपने हनुमान्‌को लंका भेजा उस समय यह बात क्यों नहीं कहला भेजी थी? उस समय यदि भेज दी होती तो उसी समय आपसे परित्यक्त इस जीवनका मैं परित्याग कर देती। तब फिर आपको और आपके मित्रोंको इतना कष्ट उठाना न पड़ता।"

इतना कह कर सजलनयना शोकविह्वला सीतादेवी लक्ष्मणकी ओर दृष्टि उठा कर बोली, "लक्ष्मण! चिता अभी सजा दो, देर न करो। मैं अब क्षण भर भी इस अपवाद-कलङ्कित जीवनको वहन न कर सकती।" लक्ष्मणने रामकी ओर देखा, पर असम्मतिके कोई लक्षण न पाया। चिता बनाई गई। सीता रामचन्द्रकी प्रदक्षिण कर जलती हुई आगमें कूद पड़ी। अग्निप्रवेशके समय सीताने कहा था, "मैंने रामके सिवा और किसी हृदयको अपने हृदयमें स्थान नहीं दिया। हे पवित्र सर्वसाक्षी हुताशन! मुझे आश्रय दो। मैं शुद्ध चरित्रकी हूं, लेकिन रामचंद्र मुझे भ्रष्टा बतलाते हैं। अतएव हे वह्नि! मुझे स्थान दो।"

अग्निमें स्वर्णप्रतिमा विलीन हो गई। रामचन्द्रको कुछ समय भारी दुःख हुआ। उसी समय अग्निने सीताको फिर रामके पास पहुंचा दिया। देवगण स्वर्गसे नीचे उतरे। उन्होंने सीताको निष्कलङ्क बतलाते हुए रामसे ग्रहण करने कहा। पीछे वे रामचन्द्रको 'चक्रधारी नारायण' रूपमें स्तुति कर स्वर्ग चले गये। रामचन्द्र भी सीताको पुनः प्राप्त कर बड़े प्रसन्न हुए और बोले, "सीता शुद्धचरित्रा हैं। उन्होंने सतीत्वको प्रभावसे आत्मरक्षा की है। अग्नि-परीक्षा ही इसका साक्षात् प्रमाण है।"

इसके बाद लक्ष्मण और सीताके साथ पुष्पकविमान पर चढ़ कर रामचन्द्रने अयोध्याकी यात्रा कर दी। उनके साथ विभीषणप्रमुख राक्षसवृन्द और सुग्रीवप्रमुख बानरवृन्द भी आते थे। राहमें सीताके कहनेसे किष्किन्धाकी पुरस्त्रियोंको भी रथ पर बिठा लिया गया। विजयी रामचंद्रको ले कर पुष्पकरथ आकाशमार्गसे चला। रामचंद्र सीताको रथ परसे चिरपरिचित दण्डकारण्यका भिन्न भिन्न स्थान दिखाये और पहलेकी याद दिलाये जाते थे।

वन-गमनके ठीक चौदह वर्ष बाद रामचंद्र भरद्वाजके आश्रममें पहुंचे। वहां उन्होंने सुना, कि भरत उनके खड़ाऊँके ऊपर राजच्छत्र लगा कर प्रतिनिधि स्वरूप नन्दीग्राममें राज्यशासन करते हैं। भरद्वाजके आश्रमसे रामचन्द्रने हनुमान्को छद्मवेशमें भरतके निकट भेजा। राहमें शृङ्गवेरपुरके अधिपति गुहसे मिले। रामचंद्रने उन्हें आगमन-संवाद ले कर भरतके पास जाने कहा। हनुमान्को रामने कहा था, "जब भरतके पास पहुंचोगे, तब उन्हें हम लोगोंका युद्धवृत्तान्त, सीता-उद्धार तथा विभीषण और सुग्रीवके विराट् मैत्रसैन्यके साथ अयोध्या आना आदि वृत्तांत कह सुनाना। सुनानेके बाद उनका मुखमण्डल गौर कर देखना, कि वे हम लोगोंके आगमनसे दुःखित तो नहीं हुए हैं। यदि उनमें किसी भी तरह अप्रीतिव्यञ्जक भाव दिखाई दे, तो तुरत मुझसे आ कर कहना। मैं तब अयोध्या न जा कर भरतको ही राज्यप्रदान करूंगा।

हनुमान् वहांसे चल कर नंदीग्राम आये जो अयोध्यासे कोस भर दूर पड़ता था। वहां जा कर देखा, कि भरत हीन, कृश और आश्रमवासी हैं। उनका शरीर अमार्जित और मलिन है। भ्रातृदुःखसे वे बड़े विषण्ण हैं। उनके शिर पर बड़ी बड़ी जटा है और पहननेमें बलकल और मृगचर्म है। वे सर्वदा आत्मविषयक ध्यानमग्न तथा ब्रह्मर्षिकी तरह तेजयुक्त हैं। पादुकाको प्रणाम कर वसुन्धराका शासन करते हैं। हनुमान्ने उनके पास जा कर कहा, "दण्डकारण्यवासी चीरजटाधर! आप जिस भाईके लिये चिंता कर रहे हैं वे कुशलसे आ रहे हैं और आपका कुशल चाहते हैं।" रामका आगमन-संवाद सुनते ही भरतके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। भोग-विलासका परित्याग कर उन्होंने जिनके लिये इतने दिन कठोर परिव्राज्यका पालन किया है, जिन रामके वियोग-विरहसे उनका हृदय विदीर्ण हो गया है, इस चतुर्दश वर्षव्यापी कठोर व्रतपालनके फलस्वरूप वे रामचंद्र आज लौट रहे हैं, यह संवाद सुन कर उन्होंने हनुमान्को गले लगाया और अश्रुजलसे अभिषिक्त किया। पीछे बहुमूल्य वस्तु पुरस्कारमें पा कर हनुमान् वहांसे बिदा हुए।

समस्त सचिववृन्दसे परिवृत हो भरत रामचंद्रके मिलने चले। उनकी जटा पर रामचंद्रकी पादुका और पादुकाके ऊपर छत्रधर विशाल,पीतछत्र शोभा देता था। भरत बड़ी धूमधामसे रामको अयोध्या लौटा लाये। यहां अपने हाथसे उन्हें पादुका पहना कर कुल राज्यभार सौंप कर कृतार्थ हुए।

रामचन्द्रका शुभ दिनमें राज्याभिषेक हुआ। सुग्रीवको वैदुर्य्य और चन्द्रकान्त मणिखचित महार्घ कण्ठी उपढौकनमें दी। अङ्गदको मुक्ताहार मिला। सीतासे नाना प्रकारके भूषण और वस्त्रादि पाये। उन्होंने अपने गलेसे महामूल्य कण्ठहार निकाल कर बानरसेनाकी ओर एक बार दृष्टिपात किया। रामचन्द्रने कहा, "तुम जिसको चाहे यह उपहार दे सकती हो। सीताने वह हार हनुमानको दिया।

रामचरित्रका उपसंहार भाग वा उत्तरकाण्डका अन्तिम दृश्य हृदयविदारक है। रामचन्द्रको जब मालूम हुआ कि पुरवासी सीताकी बड़ी निन्दा करते हैं, तब

उन्होंने सीतापरित्यागका संकल्प किया। वे अपने भाइयोंके पास गये और सीताके चरित्रके बारेमें बातचीत करने लगे। आखिर उन्होंने सीताको बाल्मीकिके आश्रममें छोड़ आनेका हुकुम दिया। लक्ष्मण सीताको वनवास देनेके लिये चले। वे वृक्षमालासे शोभित सुन्दर गङ्गाके टापूमें आ कर लक्ष्मण बच्चोंकी तरह रोने लगे। लक्ष्मणका रोना सुन कर सीता विस्मित हो गईं। इस सुन्दर गङ्गाके किनारे आ कर लक्ष्मणको किस बातका दुःख हुआ। सीता समझ न सकी। उन्होंने दुःखित हृदयसे लक्ष्मणसे कहा, "तुम्हें दो रातसे रामचन्द्रके मुखारविन्दका दर्शन नहीं हुआ, क्या इसी लिये तो नहीं रोते हो?" यह सुन कर लक्ष्मण उनके चरणों पर गिर पड़े और बोले 'आज यदि मेरी मृत्यु हो जाती, तो अच्छा होता।' सीताके इसका कारण बार बार पूछने पर लक्ष्मणने रामचन्द्रका कठोर आदेश कह सुनाया। सीतादेवी ठक-सी रह गईं।

गङ्गाके किनारे खड़ी रह कर पाषाणप्रतिमाकी तरह सीताने दुःसह संवाद सह लिया। कुछ समय बाद उन्होंने लक्ष्मणसे कहा, 'लक्ष्मण! रामचन्द्रके साथ जो वनवास आनन्दपूर्वक सहन किया था, आज बिना रामके उसे किस प्रकार सहन कर सकूंगी?' उनके कपोल हो कर अजस्र अश्रुधारा बहने लगी। वे आंसूको बिना पोछे बोलीं, 'ऋषिगण जब मुझे पूछेंगे, कि क्यों वनवास हुआ तब मैं क्या उत्तर दूंगी।' मुझे निर्दोष जानते हुए भी इस विपद्-समुद्रमें धकेल दिया। आज यह गङ्गागर्भ ही मेरी शान्तिका एकमात्र स्थान रहेगा। किन्तु आज मैं गर्भवती हूं। मेरी इस हालतमें आत्महत्या करना उचित नहीं।

गङ्गाके किनारे खड़ी रह कर वह मौन हो आंसू पोंछने लगीं और अंतमें बोलीं, 'पति ही नारियोंके देवता, बन्धु और गुरु हैं। उनका कार्य मेरे प्राणसे भी बढ़ कर प्रिय है।' इसके बाद उन्होंने लक्ष्मणको बुला कर अश्रुरुद्ध गद्गद् स्वरसे कहा, "लक्ष्मण! इस दुःखिनीको छोड़ जाओ, राजाका आदेश पालन करो।"

सीताको तपोवनमें छोड़ कर लक्ष्मणके चले आने पर महर्षि बाल्मीकि उन्हें अपने आश्रममें ले गये। वहां वे ब्रह्मचारिणी हो कर पर्णशालामें रहने लगीं। जिस रातको शत्रुघ्नने बाल्मीकिके आश्रममें आ कर सीतादेवीके चरण दर्शन किये, उसी रातको सीताने यमज पुत्र प्रसव किया था, मुनिबालकोंने आधी रातको शुभ प्रसव संवाद बाल्मीकिसे जा कहा। मुनिवरने वहां जा कर दोनों कुमारको देखा। उन्होंने 'कुशच्छेदन द्वारा' उनका भूतनाशिनी रक्षाविधान किया था, इस कारण बड़ेका नाम कुश और छोटेका नाम लव रखा। शत्रुघ्न यह शुभ समाचार सुन कर फूले न समाये थे।

इसी समय अयोध्या नगरमें एक ब्राह्मण-कुमारकी अकाल मृत्यु हुई। बेचारा ब्राह्मण पुत्रशोकसे अधीर हो उस मृतपुत्रको छातीसे लगाये श्रीरामचन्द्रके पास आये और कहने लगे कि रामराज्यमें पाप घुस गया, नहीं तो कभी भी ऐसी घटना न होती। रघुनन्दन राम ब्राह्मणकी शोकगाथा सुन कर बड़े दुःखित हुए और वशिष्ठादि ऋषि, भ्रातृगण, नैगमगण तथा मन्त्रिगणको ले कर इस विषयका विचार करने बैठे। नारदने कहा, कि इस त्रेतायुगमें कोई मूर्ख शूद्र आपके राज्यमें तपस्या करता है, इसी कारण इस बालककी अकाल मृत्यु हुई है। अतएव आप इसका पता लगावें और उसे उपयुक्त दण्ड दें।

रामने अपने भाई लक्ष्मण और भरतके हाथ राज्यशासनका भार सौंप दिया और आप पुष्पकविमान पर चढ़ इसका पता लगाने चले। विन्ध्यपर्वतके दक्षिण एक सरोवरके किनारे पहुंच कर देखा कि शम्बूक नामक एक शूद्र उग्र तपस्या कर रहा है। रामने उसके मुंहसे आत्मपरिचय पा कर अपना खड्ग निकाला और शूद्र तपस्वीका शिर धड़से अलग कर दिया। अनन्तर राजधानी लौट कर उन्होंने राजसूय यज्ञ करनेके लक्ष्मण और भरतके साथ परामर्श किया। अश्वमेध यज्ञ आरम्भ हुआ। रामने लक्ष्मणके ऊपर यज्ञीय अश्वका रक्षा-भार अर्पण किया। भगवान् बाल्मीकि शिष्योंके साथ यज्ञ देखने आये। लवकुश भी उनके साथ थे। उन्होंने यज्ञस्थलमें रामायणका गान किया। रामचन्द्रजी गान सुन कर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें सुवर्णादि पारितोषिक देना चाहा। बालकोंने अपनेको ब्रह्मचारी बतला कर

वह उपहार ग्रहण नहीं किया। इसके बाद जब रामचन्द्रको मालूम हुआ, कि ये दोनों कुमार सीताके गर्भजात सन्तान हैं तब उन्होंने सभाके मध्य दूतोंको बुला कर कहा, 'महर्षि वाल्मीकिके पास जाओ और उनसे कहो, कि यदि सीता शुद्धचरित्रा हो, किसी प्रकारके पापने उनके हृदयमें आश्रय न लिया हो, तो उनका स्वागत है। इस विषयमें महर्षिसे भी पूछना, कि उनकी क्या सम्मति है। साथ साथ सीताका भी मनोगत अभिलाष जान लेना।" राजाका आदेश पाते ही दूत वहांसे चला और महामुनिके पास पहुंच कर उन्हें राजाका आदेश कह सुनाया। महर्षि वाल्मीकिने उत्तर दिया, 'महाराजसे कहना, कि सीता भरी सभामें शपथ करेगी', रामचन्द्रने भी सभामें जितने महर्षि और राजे महाराजे थे सबोंको यह बात सुन कर उस दिनके लिये विदा किया।

दूसरे दिन सबेरे रामचन्द्र मुनियों, अन्यान्य राजे और सभासदोंके साथ यज्ञस्थलमें उपस्थित हुए। इसी समय सीतादेवी वाल्मीकिकी अनुवर्त्तिनी हो कर सभास्थलमें आईं। महर्षिके सीताचरित्रका साधुवाद कीर्त्तन करने पर महाराज रामचंद्रने परीक्षाके लिये सीताको बुलाया। क्लिन्न कौषेयवसना करुणामयी दुःखिनी सीताने हाथ जोड़ कर कहा, "मां वसुन्धरे! यदि मैं कायमनोवाक्यसे पतिकी अर्चना करती रही हूं, तो मुझे अपने गर्भमें स्थान दो।" सीताके पातालप्रवेशके बाद एक दिन महाकालके साथ रामका कथोपकथन हुआ। इसी समय दुर्वासा ऋषि वहां आये और रामचंद्रसे मिलनेके लिये मन्त्रणागृहमें प्रवेश करने लगे। द्वार पर लक्ष्मण पहरा देते थे। उन्होंने मुनिवरको भीतर प्रवेश करनेसे मना किया। इस पर मुनिवर बड़े बिगड़े और उन्हें श्राप देनेके लिये तैयार हो गये। अनंतर मंत्रणागृहमें प्रवेश कर लक्ष्मणने ऋषिवरके आनेकी खबर रामचंद्रसे सुनाई। रामने इसलिये पूर्वप्रतिश्रुतिके अनुसार लक्ष्मणका परित्याग किया। तदनुसार लक्ष्मणके सरयूजलमें आत्मविसर्जन करने पर राम बड़े दुःखित हुए। अनंतर ब्रह्माके वचनसे उन्होंने भी सरयूजलमें कूद कर महाप्रस्थान किया।

महामुनि वाल्मीकिने वृत्तानमवध नामधेय रामायण महाकाव्यमें रामचरित जैसा वर्णन किया, वही ऊपरमें लिखा गया। उत्तरकाण्डोक्त रामचंद्रकी जीवनीका उपसंहार-भाग पौराणिक-जटिलतासे विजड़ित है। रामजीवनकी ऐतिहासिकता युद्धकाण्डमें ही समाप्त हुई है। वे उदार, स्वार्थत्यागी, पितृभक्त, साहसी और अद्वितीय वीर थे। भारतवासी उन्हें पूर्ण ब्रह्मनारायणका अवतार समझते हैं। रामायणके उत्तरकाण्डमें और उसके संयोजित अंशमें, पद्मपुराणके पातालखण्डमें, ब्रह्मपुराणमें, देवीभागवत, श्रीमद्भागवत और महाभागवतमें तथा दूसरे दूसरे पुराणोंमें भी रामचन्द्रकी अवतारकथा लिखी है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुछ नहीं लिखा गया। सीता, रामायण, दुर्गा, वाल्मीकि आदि शब्द देखो।

जैनोंके निकट रामचन्द्र पद्म नामसे परिचित हैं। वे जैन तीर्थङ्कर पद्मप्रभसे अवश्य भिन्न हैं। ६७८ ई०में रविषेण-रचित पद्मपुराणमें दूसरे प्रकारसे रामचरितका वर्णन किया है। जैन लोग रामचन्द्रको किस दृष्टिसे देखते हैं, वह उक्त पद्मपुराणसे अच्छी तरह जाना जाता है। जैनोंके पद्म दशरथके पुत्र, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके भाई, सीताके स्वामी और रावणके निहन्ता कहे जाने पर भी जैन रामका कीर्त्तिकलाप वाल्मीकि अथवा हिंदू पौराणिक-वर्णित रामचन्द्रके साथ नहीं मिलता। पुराण और जैन पद्मपुराण देखो।

बौद्धपुराणमें तो रामचरित कुछ और प्रकारसे लिखा है। उसमें सीताको रामकी बहन और स्त्री दोनों ही बतलाया है। दशरथ और सीता देखो।

रामचन्द्र—देवगिरिके एक राजा तथा महादेवके भतीजा। हेमाद्रि इनके प्रधान मन्त्री थे। इन्होंने १२७१ से ले कर १३०१ ई० तक राज्य किया था। यादवराजवंश देखो।

रामचन्द्र—१ गड़ादेशाधिपति। २ रायपुरके कलचुड़ीवंशीय एक राजा। ये सिंहदेवके पुत्र और महाराजाधिराज हरिब्रह्मदेवके पिता थे। खल्वावती (खलेरी) नगरमें इनकी राजधानी थी।

रामचन्द्र—कई एक ग्रन्थकारोंके नाम। १ पद्यामृततरङ्गिणोधृत एक कवि। ये अयोध्यक रामचन्द्र नामसे परिचित थे। २ एक आलङ्कारिक। वामनकृत काव्यालङ्कारकी टीकामें महेश्वरने इनका नामोल्लेख किया है।

३ अमविवेचनके रचयिता। ४ अज्जुं नाध्व नकल्पलता, अर्जुं नार्च्चापारिजात, तन्त्रचूड़ामणि, तन्त्रामृत, पुरश्चरणदीपिका और सुभगार्च्चारत्न आदि पुस्तकोंके प्रणेता। ५ मितभाषिणी नामकी अविरोधप्रकाशटीकाके रचयिता। ६ आनन्दलहरीकी टीकाके प्रणेता। ७ आर्याविज्ञप्ति नामक काव्यके रचयिता। ८ ईशावास्योपनिषद्रहस्यविवृतिके रचयिता। ६ कार्त्तवीर्यदीपदानविधिके प्रणेता। १० काव्यप्रकाशसारके रचयिता। ११ कुण्डोद्‌धिके प्रणेता। १२ कृष्णविजय नामक अलङ्कारग्रन्थके प्रणेता। १३ ग्रहणप्रकाशिका नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। १४ चक्रदत्त नामक ग्रन्थ रसप्रदीप, रसेन्द्रचिंतामणि आदि ग्रंथके प्रणेता। ये गुहवंशीय थे। १५ छन्दोनामविचारणाके प्रणेता तथा लक्ष्मीपतिके शिष्य। १६ तिथिचूड़ामणिकामधेनु नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। १७ धर्माध्ववोधके प्रणेता। १८ निर्भयभीम नामक व्यायोगके प्रणेता तथा हेमचन्द्रके शिष्य। १६ परमपुरुषप्रार्थनामञ्जरीके रचयिता। ये आनंदतीर्थके शिष्य थे। २० प्रणयामृतपञ्चाशकके प्रणेता। २१ प्रतिष्ठासारके रचयिता। २२ व्याख्यानंद नामक भट्टिकाव्यके टीकाकर्त्ता। २३ भर्त्तृहरिशतकटीकाके रचयिता। २४ भोजचम्पूव्याख्याके प्रणेता। २५ मन्त्रमुक्तावलीके रचयिता। २६ मार्त्तण्डशतकके प्रणेता। २७ रघुविलाप नामक नाटककार। ये जैनधर्मावलम्बी थे। २८ रामचंद्र चातुःसूत्रीके रचयिता। २६ रामार्याके प्रणेता। ३० रुक्मिणीपरिणय नाटक और रसकविकुलानंद नामक भाणके रचयिता। ३१ वसन्तिका नामकी नाटिकाके प्रणेता। ३२ पाणिनिके अष्टाध्यायीके वृत्तिसंग्रह नामक टीकाके प्रणेता तथा नागोजीके शिष्य। ३३ वेङ्कटेश्वरचातुर्भद्रिकाके रचयिता। ३४ वैद्यचिंतामणिके प्रणेता। ३५ शब्दार्णव नामक व्याकरणके रचयिता। ३६ शारीरकभाष्यकी टीकाके प्रणेता। ३७ शृङ्गारतिलक नामक भाणके टीकाकार। ३८ सांख्यसूत्रवृत्तिके रचयिता। ३६ सिंहासनद्वात्रिंशत्‌के प्रणेता। ४० वाग्भाषण काव्य और उसकी टीका तथा हनुमदष्टकके रचयिता। ४१ तिथिनिर्णयसंग्रह या अनन्तभट्टदीपिका नामक अनंतोपाध्यायकृत तिथिनिर्णयका एक संक्षिप्त विवरण, प्रक्रियाकौमुदी और वैष्णवसिद्धांतदीपिका आदि ग्रंथोंके प्रणयनकर्त्ता। ये गोपाल आचार्यके छात्र थे। इनके पिताका नाम था कृष्ण और पितामहका नृहरि। ४२ राधाविनोदकाव्य और उसकी टीकाके रचयिता एक कवि। ये जनार्दनके पुत्र और पुरुषोत्तमके पौत्र थे। ४३ स्मृतिसारसंग्रहरत्नव्याख्याके प्रणेता तथा नारायणके पौत्र। ४४ प्रत्याहारमण्डन नामक व्याकरणके प्रणेता तथा मुरारी पाठकके पुत्र। ४५ संख्यामुख्याधिकरणाक्षेपके प्रणेता। ग्रंथकारने अपनी अधिकरणकालाके अंशस्वरूपमें यह पुस्तक लिखी। बम्बई प्रेसिडेन्सीके कोलहापुरमें ये रहते थे। इनके पिताका नाम था वेङ्कट। ४६ एक प्रसिद्ध टीकाकार तथा सिद्धेश्वर योगिवरके पुत्र। इन्होंने १८१७ ई०में प्रतिज्ञासूत्र टीका तथा १८१८ ई०में वाजसनेयिप्रातिशाख्यकी ज्योत्स्ना नामकी टीका लिखी। इनकी उपाधि पण्डित थी। ४७ खेटभूषण, पाटोलीलावतीभूषण, यंत्राध्यायविवृति और स्त्रीजातक नामक चार ज्योतिर्ग्रंथके प्रणेता। ये हंसराजके पुत्र थे।

रामचन्द्र—श्रीधर्ममंगलके प्रणेता एक बंगाली कवि।

रामचन्द्र आचार्य—१ एक संन्यासी। संसाराश्रम त्याग करनेके बाद ये सत्यप्रियतीर्थ नामसे प्रसिद्ध हुए। १७४५ ई०में इनकी मृत्यु हुई। २ शारीरकभाष्यटीकाके प्रणेता।

रामचन्द्र अलडीवार—राजनीतिप्रकाश और सावधानसाहित्य नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता।

रामचन्द्र कवि—१ पेन्द्रवानन्द नाटक और कलानन्द-नाटकके प्रणेता। १७६५—१७८८ ई०में तंजोरराज तुलाजीके आदेशसे इन्होंने उक्त दो नाटक लिखा।

रामचन्द्र कविभारती—बुद्धशतकके रचयिता सिंहलवासी एक प्रसिद्ध कवि। पराक्रमबाहुके राज्यकालमें ये राढ़देशसे सिंहल चले गये।

रामचन्द्र कविराज—एक विख्यात वैष्णव पदकर्त्ता। ये परम भागवत श्री चैतन्यसहचर चिरञ्जीव सेनके पुत्र, पदकर्त्ता गोविन्ददास कविराजके जेठे भाई और चिरञ्जीव श्रीखण्डवासी नरहरि सरकारके शिष्य थे। उनका घर कुमारनगरमें था। वे कवि दामोदरकी कन्या

सुनन्दासे व्याह कर श्रीखण्डवासी हुए थे। पहले उनके दो पुत्र पैतृक वासभूमि कुमारनगर चले गये; किन्तु शाक्तोंके सताने पर वह देश छोड़ कर उन्होंने तेलिया-बुधरिमें जा कर घर बनाया।

रामचन्द्र कविराज नरोत्तम ठाकुरके सुहृद् और स्वयं सुप्रसिद्ध संस्कृतके कवि थे। पदकल्पलतिकामें उनका बनाया बंगला पद मिलता है। इसके अलावा स्मरण-दर्पण और वंगत्रय नामक उनके दो पद्यग्रन्थ हैं। उन्होंने सुललित संस्कृत कविताओंकी रचना तो की सही, पर भाईके समान प्रतिष्ठित न हो सके। १५३७ ई०में श्री-खण्डमें गोविन्दका जन्म हुआ। अतएव इस समय उनकी विद्यमानताकी कल्पना की जा सकती है।

रामचन्द्र क्षितिपति—दुर्गोत्सवचन्द्रिकाके रचयिता।

रामचन्द्र गणेश—गणेशब्रह्मविवेकके रचयिता।

रामचन्द्र चक्रवर्त्ती—१ कलापपरिशिष्टप्रबोधके प्रणेता। २ कृत्यचन्द्रिकाके प्रणेता। ३ वृन्दावनयमककी टीका-के रचयिता।

रामचन्द्र चट्टोपाध्याय—एक प्रसिद्ध पदकर्त्ता। ये दीपा-न्वितकाव्यके प्रणेता वंशीवदनके पौत्र और चैतन्यदास-के पुत्र थे। १६३४ ई०में इन्होंने जन्मग्रहण किया तथा १६८३ ई०के माघ मासकी कृष्णातृतीया तिथिमें अप्रकट हुए। रामचन्द्र जाह्नवादेवीके शिष्य थे और बुधुरीके निकटस्थ राधानगरमें तथा बाघनापाड़ामें वे रहते थे।

रामचन्द्रतीर्थ—१ ऋग्वेदभाष्यटिप्पणीके रचयिता। २ वासुदेवेन्द्रके शिष्य। इन्होंने तुगहृदयप्रकरणटीका, महावाक्यरत्नावली और वाक्यसुधाकी टीका लिखी। ३ मध्वसम्प्रदायके एक आचार्य। इनका पूर्वनाम माधव शास्त्री था। वागीशतीर्थके बाद इन्होंने आचार्यका पद ग्रहण किया था। १३६७ ई०में इनकी जीवन लीला शेष हुई। सागरग्रंथमें इनके शिष्यपरम्पराका विवरण लिखा है।

रामचन्द्रदण्डिन्—जैमिनिसूत्रटीका नामक ज्योतिःशास्त्रके रचयिता।

रामचन्द्रदास—पद्यावलीधृत कविविशेष।

रामचन्द्र (द्विज)—१ दुर्गामङ्गल, धर्ममङ्गल और गौरी-विलासके प्रणेता। २ जैमिनिभारतके बंगानुवादक, तीन सौ वर्षके प्राचीन कवि।

रामचन्द्रदीक्षित—१ उणादिमणिदीपिका और शब्दभेद-निरूपण नामक अलङ्कारशास्त्रके रचयिता। २ केरला-भरण नामक भाणके प्रणेता।

रामचन्द्रदेव—उड़ीसाके एक हिंदू-नरपति। उत्कल देखो।

रामचन्द्र न्यायवागीश—अभिधावादविचार, आसत्ति-रहस्य, योग्यताविचार, विरोधिविचार और शब्दनित्यता-विचारके प्रणेता।

रामचन्द्रपन्त—एक महाराष्ट्र सेना-नायक तथा शिवजीके प्रधान मंत्रीके पुत्र। इन्होंने पहले मुजिमदार और पीछे मंत्रीका पद पाया था। दुर्ग पर चढ़ाई करनेमें, सेनासन्निवेशमें और युद्धविग्रहमें इन्होंने अद्भुत कौशल दिखाया था। १६७६ ई०में शिवाजी द्वारा ये मंत्रीपद-से च्युत कर दिये गये। तदनन्तर जनार्दन पन्तकी मृत्युके बाद १६६८ ई०में पुनः उक्त पद पर प्रतिष्ठित हुए थे तथा उन्होंने विशालगढ़ आदि दुर्ग दखल कर लिया था।

रामचन्द्र परमहंस—तत्त्वबिन्दु और राजयोगग्रंथके प्रणेता।

रामचन्द्र पाठक—प्रत्याहारखण्डन नामक व्याकरणके प्रणेता।

रामचन्द्रपुरम्—१ मान्द्राजप्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण ४०० वर्गमील है। यह गोदावरी डेल्टा भूभाग ले कर गठित है। २ उक्त तालुकका प्रधान नगर और विचारसदर। इसके दक्षिण मण्डपेटा खाल बहती है।

रामचन्द्र वाचस्पति—१ भट्टिकाव्यकी सुबोधिनी नामकी टीकाके प्रणेता। २ देवीमाहात्म्यकी विद्वन्मनोरमा नाम-की टीकाके शेषार्द्ध रचयिता। गौरीवर शर्म्माने उक्त टीकाका पूर्वार्द्ध सम्पादन किया।

रामचन्द्र वाजपेयी—रत्नपुरराज रामचन्द्रकी सभामें स्थित एक पण्डित, सूर्यदासके पुत्र और शिवदासके पौत्र। इन्होंने कर्मदीपिका नामकी पद्धति, शाङ्खायन-गृह्यपद्धति, कात्यायनकृत शुल्वपरिशिष्टकी टीका, शुल्व-वार्त्तिक, समरसार तथा उसकी टीका, समरसारसंग्रह,

कुण्डाकृति और उसकी टीकाकी रचना की। १४८६ ई०में शेषोक्त पुस्तक लिखी गई थी। आधानपद्धति, अयनपद्धति, ज्योतिष्टोमपद्धति, राजपेयपद्धति और सुपर्णचितिपद्धति नामक खण्डग्रंथ कर्मदीपिकाके अन्तर्गत हैं।

रामचन्द्र भट्ट—बहुतेरे संस्कृत-ग्रंथकार। १ आचारार्क, कालनिर्णयदीपिका, कृत्यरत्नावली, प्रायश्चित्तमुक्तावली, और श्राद्धचन्द्रिकाके प्रणेता। ये तत्सत्वंशीय विट्ठलके पुत्र और बालकृष्णके पौत्र थे। २ बम्बई-वासी एक प्रसिद्ध कवि। इन्होंने तैलङ्गराजके काङ्कड़वाड़ गांवमें १४८७ ई०में जन्म लिया था। ये लक्ष्मण भट्टके पुत्र और वल्लभाचार्यके छोटे भाई थे। इन्होंने गोपाललीलाकाव्य, रामलीलाशतक, कृष्णकुतूहलकाव्य (१५२० ई०में) तथा रसिकरञ्जनकाव्य और उसकी टीका (१५२४ ई०में) अयोध्या नगरमें लिखी। ३ रामविनोदवारण या पञ्चाङ्गसाधनोदाहरणके प्रणेता। ये नीलकण्ठके छोटे भाई और अनन्त भट्टके पुत्र थे। १६१४ ई०में इन्होंने सुलतान अकबरके मन्त्री रामदासके आदेशसे उक्त ग्रन्थ लिखा। ४ स्मृतिसंस्काररहस्यके प्रणेता। ५ विधिवाद नामक मीमांसाशास्त्रके रचयिता। ६ वात्स्यायनकृत न्यायसूत्रभाष्यकी टीकाके रचयिता। ७ तत्त्वाभरण नामक वेदान्त ग्रंथके प्रणेता। ८ निम्बार्कसम्प्रदायके एक आचार्य। उपेन्द्रभट्टके बाद तथा वामन भट्टके पहले ये आचार्य पद पर अधिष्ठित हुए।

रामचन्द्र भट्टाचार्य—१ दशश्लोकीटीकाके रचयिता। २ समासवादके प्रणेता।

रामचन्द्रभट्टाचार्य सार्व्वभौम—प्रमाणतत्त्व, मोक्षवाद और विधिवादके रचयिता।

रामचन्द्रभार्गव—वाग्भावणकाव्य और उसकी टीका, सभ्याभरणकाव्य तथा मन्त्रमाला नामकी सभ्याभरणपञ्जिकाकी टीकाके प्रणेता।

रामचन्द्र मिश्र—विदग्धबोधव्याकरणके प्रणेता।

रामचन्द्र मुन्सी—हुगली शहरके निकटस्थ देवानन्दपुर निवासी विख्यात मुंसीवंशके एक धनाढ्य कायस्थ। अनुमान होता है, कि १७२६ ई०में कवि भारतचन्द्र राय घर छोड़ कर उनके शरणापन्न हुए थे। उन्होंने विशेष यत्नके साथ भारतचन्द्रको पारसी भाषाकी शिक्षा दी थी। उन्हींके घरमें सत्यनारायण पूजा-उपलक्षमें पंद्रह वर्षके बालक कवि भारतचन्द्रने 'सत्यपीरकी कथा' रचना कर पाठ किया था।

रामचन्द्रयज्वन—शास्त्रसिद्धांतलेशगूढार्थ-प्रकाश और समयप्रकाशिका नामक ग्रंथके प्रणेता।

रामचन्द्रयतीश्वर—बौद्धमतदूषण-ग्रंथके प्रणेता।

रामचन्द्र राय—चन्द्रद्वीपके एक राजा। ये बंगेश्वर प्रतापादित्यके जामाता थे। प्रतापादित्य और बारभूंया देखो।

रामचन्द्रशर्म्मन्—तत्त्वचिंतामणिदीधितिके टीकाकार।

रामचन्द्रशेष—भावद्योतनिका नामकी नैषधीय टीकाके रचयिता शेषनारायणके शिष्य।

रामचन्द्र सरस्वती—१ अष्टोत्तरशतमहाकर्णि और गीतातात्पर्यपरिशुद्धिके प्रणेता। २ कुरुक्षेत्रतीर्थनिर्णयके रचयिता। ३ पदयोजन नामक वेदान्तशास्त्रके प्रणेता। ४ शङ्कराचार्यकृत बालबोधिनीकी भावप्रकाशिका नामकी टीकाके प्रणेता। ये नारायण पण्डितके छात्र तथा रघुनाथके शिष्य थे। ५ गंगाधरकृत स्वाराज्यसिद्धिकी टीकाके प्रणेता और कैवल्यकल्पद्रुम (१८२७ ई०में) के प्रणेता गंगाधर सरस्वतीके गुरु।

रामचन्द्र सरस्वती—आसामदेशीय एक कवि। इन्होंने आसामी भाषामें महाभारत बनाया था।

रामचन्द्र सरस्वती यतीन्द्र—एक संन्यासी। इनका आदि नाम सत्यानंद था। ये महाभाष्य-विवरणके प्रणेता ईश्वरानंदके गुरु थे।

रामचन्द्र सिद्ध—सिद्धखण्ड नामक योगशास्त्रके प्रणेता।

रामचन्द्र सूरि—वीरविक्रमादित्यचरितके प्रणेता।

रामचन्द्र सोमयाजी—समरसार और स्वरशास्त्रसारके रचयिता।

रामचन्द्राश्रम (सं० पु०) १ सिद्धान्तचन्द्रिका नामक सरस्वतीसूत्रकी टीकाके रचयिता। (क्ली०) २ एक तीर्थका नाम।

रामचन्द्रेन्द्र सरस्वती—एक प्रसिद्ध पण्डित। ये गंगाधरेन्द्र सरस्वती और आनन्दबोधेन्द्र सरस्वतीके गुरु थे।

रामधर (सं० पु०) बलराम।

रामचरण—कई एक ग्रन्थकार। १ कर्तृसिद्धान्तमञ्जरी नामक व्याकरणके प्रणेता। २ कुण्डश्लोकप्रकाशिकाके रचयिता। ३ तर्पणचन्द्रिका और यज्ञमञ्जुषाके प्रणेता। ४ वृत्तकौमुदीके रचयिता। ५ सारसंग्रहके प्रणेता।

रामचरण—एक कवि। ये गणेशपुर जिला बाराबङ्कीके रहनेवाले ब्राह्मण थे। संस्कृत और भाषाके ये निपुण कवि थे। संस्कृतमें इनका बनाया "कायस्थकुलभास्कर" नामक ग्रंथ है, भाषामें भी 'कायस्थधर्मदर्पण' नामक ग्रंथ इन्होंने लिखा है। इनकी रचना-शैली और विषय-प्रतिपादनके ढंग अनोखे होते थे। आपकी कवितामें अनुप्रास खूब पाये जाते हैं।

रामचरण तर्कवागीश—रामविलासकाव्य तथा साहित्य-दर्पणवृत्तिके रचयिता। १७०१ ई०में इन्होंने शेषोक्त ग्रंथ बनाया।

रामचरण महन्त—रामसनेही धर्मसम्प्रदायके प्रतिष्ठाता एक वैष्णव। ये वैरागी-सम्प्रदायभुक्त थे। १७१६ ई०में जयपुरराज्यके अन्तर्गत एक बड़े गांवमें इनका जन्म हुआ। कब और क्यों इन्होंने पिताका आचरित धर्मकर्म छोड़ा, इसका कोई विवरण नहीं मिलता।

एक समय इन्होंने पौत्तलिक उपासनाको निन्दनीय कह कर घोषित किया। इस पर देवमूर्त्तिपूजक ब्राह्मण-सम्प्रदाय बड़े बिगड़े और इन पर तरह तरहका अत्याचार करने लगे। इस प्रकार मूर्त्तिपूजकोंसे तंग आ कर वे आखिर १७५० ई०में अपनी जन्मभूमिका परित्याग कर उदयपुर-राज्यके भीलवाड़ा नगरमें चले आये और दो वर्ष वहीं ठहरे। इसके बाद देवपूजक पुरोहित सम्प्रदायने इन्हें तंग करनेके लिये राणा भीमसिंहको उभाड़ा।

राणाके राज्यमें रहना असम्भव देख कर वे बहुत जल्द वहांसे भागे। नाना स्थानोंमें भटक कर आखिर १७६७ ई०में इन्होंने शाहपुराके सरदारके राजप्रासादमें आश्रय लिया। किंतु यहां भी वे कई कारणोंसे दो वर्षसे ज्यादा न ठहर सके। यथार्थमें उसी समयसे इनके धर्ममतप्रचारकार्यका आरम्भ हुआ। १७६८ ई०को ७६ वर्षकी अवस्थामें ये इस लोकसे चल बसे। इनकी लाश जलाई गई और राख शाहपुराके प्रसिद्ध मन्दिरमें रखी गई है।

रामचरण एक भक्त गायक थे। इनके बनाये हुए प्रायः ३६२५० भजन आज भी मिलते हैं। प्रत्येक भजन ५से ११ पंक्तिका है। इनके तिरोधानके बाद इनके बारह शिष्योंमेंसे प्रधान शिष्य रामजान सम्प्रदायके आचार्य हुए। १२ वर्ष गद्दी पर बैठ कर वे इस लोकसे चल बसे। उनके भी बनाये हुए प्रायः १८००० स्तोत्र वा पद पाये जाते हैं। दुलहराम १८२४ ई०में मृत्युकाल पर्यंत शाहपुरा मठके महंत थे। उनके बनाये १० हजार पद वा ब्रह्मगीति हैं तथा ४ हजार कविताओंमें विभिन्न संप्रदायभुक्त साधुओंकी जीवनी लिखी है। उनके बाद छतदास गद्दी पर बैठे। १८३१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। उन्होंने १००० पद लिखे थे। दुःखका विषय है, कि वे सब पुस्तकाकारमें लिपिवद्ध नहीं हुए। अनंतर नारायण दास १८५३ ई०में गद्दी पर बैठ कर आचार्यका कार्य करते थे।

रामचरित (सं० क्ली०) दशरथात्मज रामचन्द्रकी जीवनी।

रामचिड़िया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका जल-पक्षी। यह मछलियां पकड़ कर खाता है। इसे मछरंगा भी कहते हैं।

रामच्छद्‌नक (सं० पु०) रामं मनोज्ञत्वं छर्दयति छर्दि-ल्यु, स्वार्थे कन्। मदनवृक्ष, मैनफलका पेड़।

रामज (सं० पु०) रामपुत्र।

रामजननी (सं० स्त्री०) रामस्य जननी। १ बलदेवकी माता। २ रामचन्द्रकी माता, कौशल्या। ३ रेणुका।

रामजना (हिं० पु०) १ एक संकर जाति। इसकी कन्याएं वेश्या-वृत्ति करती हैं। कई बातोंमें यह जाति गन्धर्व जातिसे मिलती जुलती है। लेकिन साधारणतः उससे नोची समझी जाती। इस जातिके लोग प्रायः राजपूताने, संयुक्तप्रान्त तथा बिहारमें पाये जाते हैं। २ वह जिसके माता पिता न हो, वर्णसंकर।

रामजनी (हिं० स्त्री०) १ रामजना जातिकी स्त्री। २ जिसके पिताका पता न हो। ३ वेश्या, रंडी।

रामजमानी (सं० पु०) एक प्रकारका बहुत बारीक चावल।

रामजयन्ती—देवीकी एक मूर्त्तिका नाम। इनकी पूजाका विवरण रामजयन्तीपूजाग्रन्थमें लिखा है।

रामजामुन (हिं० पु०) मझोले आकारका एक प्रकारका जामुनका पेड़। यह प्रायः सारे उत्तरी और पूर्वी भारत तथा बरमा और सिंहलमें होता है। इसके फल बहुत बड़े बड़े और स्वादिष्ट होते हैं। इसकी लकड़ी यद्यपि साधारण जामुनकी लकड़ीके समान उत्तम नहीं होती, तो भी इमारत तथा खेतके काममें आती है यह छोटी नदियोंके किनारे अधिकतर होता है।

रामजित्—नवनीतनिबन्धके प्रणेता।

रामजीवन (सं० पु०) राजा रुद्ररायके पुत्र।

रामजीवन—सूर्यव्रतपाँचालीके रचयिता।

रामजीवन तर्कवागीश—महिम्नःस्तवटीकाके रचयिता।

रामजीवनपुर—बङ्गालके मेदिनीपुर जिलान्तर्गत घाटाल उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २२° ५० उ० तथा देशा० ८७° ३७´ पू० के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर होगी। १८७६ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।

रामजीवनराय—नाटोर राजवंशके प्रतिष्ठाता और रघुनन्दनके बड़े भाई। १७०४ ई०में इन्होंने राजाकी उपाधि पाई थी। १७०६ ई०में दिल्लीश्वर बहादुरशाहने इन्हें राजा बहादुरकी उपाधि दे कर खिलअत दी। दोनों भाई अपने अपने उपार्जित राज्यका शासन करते थे। दोनोंके कोई सन्तान न रहनेके कारण रामजीवन की स्त्रीने गोद लिया था। राजसाही देखो।

पदाङ्कदूतके प्रणेता कृष्ण सार्व्वभौम १७२४ ई० में इनकी सभामें मौजूद थे।

रामजोसेन—ज्योतिःश्लोकसञ्चयके प्रणेता।

रामजौ (हिं० पु०) एक प्रकारकी जई। इसके दाने साधारण जौसे कुछ बड़े होते हैं।

रामझोल (हिं० स्त्री०) पाजेब, पायल।

रामटेक—१ मध्यप्रदेशके नागपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २१° ५´से २१° ४४´ उ० तथा देशा० ७८° ५५´ से ७९° ३५´ पू०के मध्य विस्तृत है। भू-परिमाण ११२६ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसमें रामटेक और खाप नामक २ शहर और ४५१ ग्राम लगते हैं। सतपुरा पहाड़के उत्तर इस तहसीलका कुछ अंश पर्वत और जंगलसे ढका है। दक्षिणभागकी जमीन उपजाऊ है। गेहूं और रुई बहुतायतसे उपजती है।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २१° २४´ उ० तथा देशा० १९° २०´ पू०के मध्य विस्तृत है। नागपुरसे इसकी दूरी १२ कोस है। जनसंख्या प्रायः ८७३२ है। म्युनिसपालिटीके अधीन रहनेके कारण नगर बहुत साफ सुथरा है तथा दिनों दिन उन्नति कर रहा है। यह पर्वतके दक्षिणपादमूलमें अवस्थित है इससे यहांका दृश्य देखने लायक है।

यह स्थान दाक्षिणात्यका एक पवित्र तीर्थस्थान समझा जाता है। यहां पर्वतके दोनों बगलमें हेमाड़पन्थके प्राचीन मन्दिर हैं। पर्वतके पश्चिम विख्यात रामचन्द्र जीका मन्दिर है। नगरके फाटकसे इस मन्दिरका शिखर बहुत ऊंचा है। मनसरसे जो रास्ता रामटेक होता हुआ अम्बाला गया है, उसके किनारे सूर्यवंशीय किसी राजाका दुर्गप्रासाद दिखाई देता है। यह रास्ता पर्वतके दक्षिण ओर घूम कर एक विस्तृत बांध तक चला गया है। रघुजी १मने उस बांधको बुर्ज आदिसे मजबूत कर दिया था। उस बांधके मध्य अम्बाला नगर और ह्रद है। ह्रदके किनारे प्रत्येक सम्भ्रान्त महाराष्ट्रवंशका निर्मित एक एक मन्दिर और घाट है। ह्रदके पश्चिमी किनारेसे आध मील तक सीढ़ी चली गई है। इसी सीढ़ीसे आ कर यात्री लोग मन्दिरमें पूजा करते हैं। सीढ़ीके ऊपर दक्षिण पार्श्वमें एक विस्तृत बावली और धर्मशाला है उसके बाईं ओर नारायणकी नरसिंह मूर्त्तिसे प्रतिष्ठित दो प्राचीन मन्दिर हैं। इसके विपरीत दिशामें मुगल सम्राट् औरङ्गजेबके सभासद द्वारा निर्मित एक मसजिद है। यहांसे कुछ सीढ़ी नीचे आने पर नगरके बहिर्द्वार पर पहुंचते हैं। इसके भीतरी भागमें नारायणमूर्त्ति प्रतिष्ठित कुछ मन्दिर हैं। वामभागमें प्रस्तरोंके कई देवमन्दिर देखनेमें आते हैं। कार्त्तिक मासमें ह्रदके किनारे एक बड़ा मेला लगता है जिसमें लाखसे ऊपर आदमी इकट्ठे होते हैं।

द्वितीय प्राचीरकी सीमामें जहां सिंहपुरद्वार अवस्थित है, वहां पहले मराठोंका शस्त्रागार था। यह अभी भग्नावस्थामें पड़ा है और किसी सूर्यवंशीय राजाकी कीर्त्ति समझा जाता है। भैरवद्वारके बीच हो कर तृतीय प्राङ्गणमें आते हैं। इस स्थानका बुर्ज और प्राकारादि मराठोंके यत्नसे रक्षित है। अन्तिम प्राङ्गणमें मन्दिरके सेवक रहते हैं। इसी प्राङ्गणमें गोकुल द्वार है। इस द्वारसे गणपति और हनुमानके बड़े मन्दिरमें जाना होता है। उसके पीछेमें एक शैलस्तूपके ऊपर रामचन्द्र-मन्दिर है। इस अंतिम प्राङ्गणसे एक सीढ़ी हो कर रामटेक नगरमें आते हैं। महाराष्ट्रजातिकी पहली चलतीमें यहां दो बावली थीं। शहरमें एक मिडिल स्कूल, बालिका स्कूल और एक अस्पताल है।

रामटोड़ी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी रागिणी। इसमें गांधार कोमल और शेष सब स्वर शुद्ध लगते हैं।

रामठ (सं० क्ली०) रम्यतेऽनेनेति रम (रमेर्वृद्धिश्च। उण् १।१०३) इति अठ वृद्धिश्च धातोः। १ हिंगु, हींग। (पु०) २ अङ्कोठ वृक्ष, अखरोटका पेड़। ३ वृहत्संहिताके अनुसार एक देश जो पश्चिममें है। (वृहत्स० १०।५) ४ उस देशका निवासी। ४ मदनफल, मैनफल। ५ अपामार्ग, चिचड़ा।

रामठी (सं० स्त्री०) हिंगु, हींग।

रामण (सं० पु०) १ गिरिनिम्ब, बकायन। २ तिन्दुक, तेंदूका पेड़।

रामणि (सं० पु०) रमणके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रामणीयक (सं० क्ली०) रमणीय यस्य भावः धर्मो वा रमणीय (योपधद्गुरूपोत्तमाद्वुञ्। पा ५।१।१३२) इति वुञ्। १ रमणीयत्व, मनोहरता। (त्रि०) २ रमणीय, सुन्दर।

रामतरुणी (सं० स्त्री०) रामा मनोहरा तरुणीव। १ तरुणी पुष्प, सेवती। २ सीता जी।

रामतरोई (हि० स्त्री०) भिंडी नामक फली जिसकी तरकारी बनती है।

रामतर्कवागीश—एक प्रसिद्ध वैयाकरण तथा मुग्धबोधके टीकाकार।

रामता (सं० स्त्री०) रामका गुण, राम-पन।

रामतापनीय (सं० क्ली०) एक उपनिषद्का नाम। यह प्राचीन उपनिषदोंमें नहीं है बलिक एक साम्प्रदायिक पुस्तक है।

रामतारक (सं० पु०) रामजीका मन्त्र जो रामोपासक लोग जपते हैं। प्रवाद है, कि जो लोग काशीमें मरते हैं उन्हें शिवजी इसी मन्त्रका उपदेश करते हैं जिसके प्रभावसे उनकी मुक्ति हो जाती है। यह मन्त्र इस प्रकार है,—रां रामाय नमः।

रामतारण चूड़ामणि—माधुरी नामक गीतगोविन्द टीकाके प्रणेता।

रामतिल (सं० पु०) एक प्रकारका तिल।

रामतीर्थ—मैत्र्युपनिषद्दीपिकाके रचयिता।

रामतीर्थ—हिन्दूका एक तीर्थ। रामतीर्थमाहात्म्यमें इसका विशेष विवरण लिखा है। रामटेक देखो।

रामतीर्थ यति—पदयोजनिका नामकी उपदेशसाहस्रीकी टीका, सुरेश्वरकृत मानसोल्लासकी मानसोल्लासवृतांत विलास नामक टीका, वस्तुतत्त्वप्रकाशिका, वाक्यार्थ-दर्पण और विद्वन्मनोरञ्जिनी नामकी वेदान्तसारटीका, संक्षेपशारीरकव्याख्या और स्तुतितरङ्ग टीका-आदि ग्रंथोंके रचयिता। ये कृष्णतीर्थके पुत्र और शिष्य तथा पुरुषोत्तम मिश्रके गुरु थे।

रामतुलसी (सं० स्त्री०) रामातुलसी देखो।

रामतेजपात (हि० पु०) तेजपात जातिका एक प्रकारका वृक्ष। यह पूर्वी बंगाल, बरमा और अंडमन टापूमें अधिकतासे होता है। इसके पत्तोंका व्यवहार तेजपत्तेके समान होता है और लकड़ी संदूक तथा तख्ते आदि बनानेके काममें आती है।

रामतोषण शर्मा—प्राणतोषिणीतन्त्रके सङ्कलयिता। इन्होंने १८२१ ई० में जोड़ादहवासी विख्यात धनी प्राणकृष्ण विश्वासके उद्योगसे यह पुस्तक संकलन की।

रामत्व (सं० क्ली०) रामका भाव या धर्म, रामता।

रामदत्त—मिथिलाराज नृसिंहके मन्त्री। ये षोड़श महादानपद्धतिके प्रणेता भावशर्म्माके प्रतिपालक थे।

रामदत्त—अयनवाद, गणकभूषणटीका, मकरन्दसारिणी, मुहूर्त्तभूषणटीका, लग्नवाद, लघुजातकटीका, लीलावतीदिव्पण, श्रीपतिपद्धतिटीका, षोड़शयोगटीका, समरसार-

टीका और सहस्रचन्द्रिका आदि ज्योतिर्ग्रन्थोंके प्रणेता। २ गीतगोविन्दटीकाके रचयिता। ३ पाषण्डमुखमर्द्दन के प्रणेता। ४ विवाहपद्धतिके प्रणेता। ये मिथिलाराजमंत्रीके पौत्र थे।

रामदत्त (मंत्री) —मिथिलाराजमंत्री। यजुर्वेदीय उपनयनपद्धतिके प्रणेता। ये विश्वेश्वरके भतीजा और गणेश्वरके पुत्र थे।

रामदयालु—१ लौकिकन्यायसंग्रहके प्रणेता, रघुनाथ वर्म्माके गुरु। २ ज्योतिषोक्त 'करणग्रंथ'के प्रणेता। ३ वृत्तिचन्द्रिकाके रचयिता।

रामदल (सं० पु०) १ रामचन्द्रजीकी बंदरोंवाली सेना, जिसके नीचे लिखे १८ मुख्य यूथप थे,—१ लक्ष्मण, सुग्रीव, नील, नल, सुखेन, जाम्बवन्त, हनुमान, अंगद, केशरी, गवय, गवाक्ष, गज, विभीषण, द्विविद, तार, कुमुद, शरभ और दधिमुख। २ कोई बड़ी और प्रबल सेना जिसका मुकाबला करना कठिन हो।

रामदाना (हिं० पु०) १ मरसे या चौलाईकी जातिका एक पौधा। इसमें सफेद रंगके एक प्रकारके बहुत छोटे छोटे दाने लगते हैं। ये दाने कई प्रकारसे खाये जाते हैं और इनकी गिनती फलहारमें होती है। पहाड़ोंमें यह वैशाख जेठमें बोया और कुआरमें तैयार हो जाता है लेकिन उत्तरी, पश्चमी तथा मध्यभारतमें यह जाड़ेके दिनोंमें भी होता है। कहीं कहीं बागोंमें भी शोभाके लिये इसके पौधे लगाये जाते हैं। २ एक प्रकारका धान।

रामदीन त्रिपाठी—एक भाषा कवि। ये टिकमापुर जिला कानपुरके रहनेवाले थे। ये अच्छे कवि थे। महाकवि मतिरामके वंशज थे। चरखारीके राजा रतनसिंहके यहां ये प्रायः रहते थे। एक बार राजा रतनसिंहकी सभा में ये बैठे थे, उस समय और भी जागीरदार सरदार, कवि आदि दरबारमें उपस्थित थे। राजा रतनसिंहकी स्वयं उपस्थितिमें इन्होंने अपनी ओर राजाकी विरक्ति देख कर कहा,—

"जो बांधी छत्रसाल जू हृदयसाहि जगतेश।
परिपाटी छूटे नहीं महराजा रतनेश॥"

रामदास (सं० पु०) १ हनुमान। २ एक प्रकारका धान।

रामदास—१ सुलतान अकबरके मंत्री। इनके आश्रयमें रह कर पण्डितवर रामचन्द्रने १६२४ ई०में 'रामविनोद करण' लिखा था। २ एक कवि। ३ अर्घ्यदीपकके प्रणेता। ४ कातंत्रव्याख्यासारके रचयिता। उज्ज्वलदत्त और रायमुकुटने इनका उल्लेख किया है। ५ भीमरूपिस्तोत्रके प्रणेता। ६ रासमञ्जरीके रचयिता। ७ रामसेतुप्रदीपके रचयिता। ये उदयराजके पुत्र और चण्डीरायके पौत्र थे और अकबरकी सभामें रहते थे। ७ मुहूर्त्त गणपतिके प्रणेता।

रामदास—पञ्जाबप्रदेशके अमृतसर जिलान्तर्गत अजनला तहसीलका एक नगर। यह अक्षा ३१° ५८' उ० तथा देशा० ७४° ५८' पू०के मध्य अवस्थित है। सिखगुरु बाबा नानकके प्रिय शिष्य बाधाने इस नगरको बसाया। पीछे गुरु रामदासके नामानुसार यह प्रसिद्ध हुआ। यहां एक सुन्दर सिखमन्दिर है।

रामदास—सिख सम्प्रदायके चतुर्थ गुरु। १५७४ ई०में तृतीय गुरु अमरदासके मरने पर उनके जमाई रामदास गुरुपद पर बैठे। लाहोरमें इनका जन्म हुआ था। दारिद्र्यवशतः उनके मातापिता स्वदेशका परित्याग कर गोविन्दवालमें आ कर बस गये थे। वे लोग सोधिशाखाभुक्त क्षत्रि थे।

यहां रामदास अनाजकी खरीद बिक्री करके पितामाताका पालनपोषण करते थे। उनकी कार्यतत्परता और बुद्धि देख कर उनके मालिक चमत्कृत हो गये थे। वे शान्त, निर्विरोध, दयावान्, धार्मिक, उचितवक्ता, वाग्मी और उद्यमशील थे।

जब अमरदासने अपने नाम पर बड़ी वावलीकी प्रतिष्ठा की उस समय बहुतसे लोग वह स्थान देखने आये थे। बालक रामदास भी उनमेंसे एक थे। अमरदासकी कन्या मोहिनी युवकके रूप पर मोहित हो गई और आखिर दोनोंमें विवाह हो गया।

खरीदबिक्रीमें लगे रहने पर भी इन्होंने पढ़ना लिखना छोड़ा नहीं था। कविता बनानेकी इनमें अद्भुत शक्ति थी। सिखोंके ग्रन्थमें यह अपना धर्ममत कवितामें प्रकट कर गये हैं।

इनके समय सिख-सम्प्रदायने अच्छी उन्नति की थी। शिष्योंके दिये हुए उपहारसे वे राजाकी ठाटबाटमें

रहते थे। लाहोर नगरमें एक समय इनके साथ मुगल-सम्राट् अकबरशाहकी मुलाकात हुई। सम्राट्ने इनकी उच्चशिक्षा और विद्यावत्तासे प्रसन्न हो इन्हें कुछ जमीन प्रदान की थी। वह जमीन गोलाकार थी, इस कारण आगे चल कर 'चक्र रामदास' नामसे प्रसिद्ध हुई। उस भूमिके मध्यमें एक प्राचीन पुष्करिणी थी जिसका सम्यक्रूपसे संस्कार कर इन्होंने 'अमृतसरः' नाम रखा। उसके ठीक बीचमें इन्होंने हरमन्दर (हरिमन्दिर) भी बनवा दिया था।

पुष्करिणीके तट पर फकीरोंके रहने लिये छोटी छोटी कुटी और मंदिर भी थे। उनके शिष्य और अनुचर वहां आ कर रहते थे। उस समय इस नगरका नाम था 'गुरुका चक' पीछे उन्होंने इसका नाम बदल कर 'अमृतसर' रखा।

एक बार लाहोर नगरमें सम्राट् अकबर दलबलके साथ बहुत दिनों तक ठहरे थे। उससे खाद्यपदार्थका मोल दूना बढ़ गया। रामदासने सम्राट्से मिल कर कहा था कि यदि आप यहांसे खेमा उठा ले जांय तो अनाजका मोल कम हो सकता है, नहीं तो बेचारी प्रजाकी जान पर बीतेगी। आपको यह भी उचित है, कि गरीब प्रजाका खजाना एक वर्षका माफ कर दें। सम्राट्ने सिख-गुरुकी दया और सहानुभूतिकी बात सुन कर उसी समय एक वर्षका खजाना माफ कर दिया।

जब उनकी इस उदारता और दयालुताकी बात चारों ओर फैली, तब सभी सिख-गुरुके प्रति आकृष्ट हो गये थे। यहां तक, कि जाट और अन्यान्य सरदारोंने उनके दलमें शामिल हो कर उनका यश और शक्ति बढ़ानेकी यथासाध्य चेष्टा की। अमृतसर नगर स्थापन करके वे भावी सिख-जातिका उन्नति-केन्द्र स्थिर कर गये हैं। यहां सिखसम्प्रदायने धर्मार्थ इकट्ठे हो कर जातीय एकता को दृढ़ करनेका प्रयत्न किया था।

अमरदासकी कन्याके गर्भसे इनके तीन पुत्र हुए।' बड़े महादेव फकीर हुए थे, मंझले पृथ्वीदासने संसाराश्रमका अवलम्बन किया और छोटे अर्जुनमल्ल गद्दी पर बैठे। इस समयसे सिखोंका गुरुपद वंशगत हो गया। वे लोग इन गुरुको एकमात्र पारत्रिक मङ्गल-के उपदेष्टा समझ कर उनकी पूजा करते थे सो नहीं। उन्हें मर्त्यजगत्के प्रभु और दुष्टोंके शासनकारी राजा भी समझते थे। आगे चल कर गुरुको अधिनायकतामें परिचालित सिखशक्तिकी जो इतनी उन्नति हुई थी उसका कारण यही था।

१५८६ ई०के मार्च मासमें रामदास परलोक सिधारे। विपाशा नदीके किनारे उनको स्मृतिरक्षाके लिये समाधि मन्दिर बनाया गया उनके जीतेजी १५८१ ई०में अर्जुन गद्दी पर बैठे थे। बालक अर्जुन पिताकी तरह फकीरी पोशाक नहीं पहनते, पितामाताके सामने राजपुत्रके जैसा परिच्छद पहनते थे। घोड़े, हाथी आदि राजकीय बलकी रक्षा करके इन्होंने यथार्थमें सिखसम्प्रदायकी प्रतिष्ठाका आयोजन किया था।

रामदास कैवर्त्त—"अनादिमङ्गल"नामक धर्मकाव्यके रचयिता एक बंगाली कवि। ये १६६२ ई०में विद्यमान थे। इनके पिताका नाम रघुनन्दन आढ्क था। वे दक्षिणराढ़ीय कैवर्त्तवंशोद्भव थे। उनका पूर्वनिवास हुगली जिलेके आरामबाग थानेके अधीन हायत्पुर ग्राममें था। पीछे उसी थानेके अन्तर्गत पाड़ाग्राममें आ कर बस गये।

रामदास दीक्षित—प्रबोधचन्द्रोदयप्रकाशके प्रणेता थे। विनायक भट्टके पुत्र थे।

रामदास मिश्र—रासविलासके रचयिता।

रामदाससाधु—गुजरातके द्वारकावासी एक साधु। यह एक निष्ठावान् वैष्णव थे। एकादशीव्रतपरायण हो ये वहांके रणछोड़जीके मन्दिरमें प्रति एकादशीकी रातको जग कर हरिगुणकीर्त्तन करते थे। वृद्धावस्थामें विविध रोगोंने इन पर आक्रमण किया जिससे हरिगुणगान करनेकी बिलकुल शक्ति न रही। इस कारण बड़े मानसिक कष्टसे समय बिताने लगे। यह देख भगवान्‌को दया आई। उन्होंने रामदाससे कहा, कि तुम्हारे यहां आनेकी कोई जरूरत नहीं। मुझे अपने घर ले चलो, वहीं मैं सुखसे रहूंगा।

प्रभुका आदेश पा कर रामदास मन्दिरके पिछले दरवाजे पर गाड़ी लाये और उसी पर देवोमूर्त्तिको बिठा बड़ी तेजीसे ले चले। पुजारी मन्दिरमें आ कर देवमूर्त्तिको न देख विस्मित हो गया। यह बात बिजलीके समान तमाम फैल गई। इसी समय एक आदमीने आ कर

कहा, कि कोई वैरागी गाड़ी पर चढ़ा कर मूर्त्तिको ले जा रहा है। सबोंने गाड़ीका पीछा किया और रामदासको दूरमें देख पाया। किन्तु रामदासने प्रभुके कथनानुसार उस प्रस्तरकी मूर्त्तिको तुरत निकटस्थ पुष्करिणीमें गाड़ दिया। पुजारी लोगोंने दूरसे देख लिया और रामदासके पास आ कर उन्हें खूब पीटा जिससे शरीरसे रक्त बहने लगा। अनन्तर जलमेंसे मूर्त्ति निकालने पर उन्होंने देखा, कि देवशरीरसे भी रुधिरधारा बह रही है। यह देख वे सबके सब अवाक् हो रहे और रामदासके चरणोंमें गिर कर क्षमा मांगने लगे। देवमूर्त्ति भी उन्होंने रामदासको लौटा दी थी। (भक्तमाल)

रामदास सेन—बहरमपुरवासी एक कायस्थ जमींदार। इनके पितामह दीवान कृष्णकान्त सेन मुर्शिदाबाद जिलेके एक गण्यमान्य व्यक्ति थे। पिता लालमोहन सेन विशेष विद्योत्साही और दयालु व्यक्ति थे। बङ्गलाभाषा और बङ्गला-साहित्यविषयक प्रबन्ध लेखक पण्डित रामगति न्यायरत्न इनके पारिवारिक पुस्तकालयसे बहुत सहायता पाते थे। रामदास बाबूने पिताके यत्नसे उक्त पण्डितप्रवरके निकट उपयुक्त शिक्षा पाई थी। पढ़ना समाप्त कर वे पैतृक पुस्तकालयसे पौराणिक ग्रन्थ और पाश्चात्य जगत्में आविष्कृत भारतीय प्रत्नतत्त्वविषयक ग्रन्थ पढ़ने लगे। इस प्रकार थोड़े ही समयमें वे बहुदर्शी हो गये। इस समय पण्डित रामगति न्यायरत्नको अपने पुस्तक संकलन-कार्यमें रामदास बाबूसे बहुत सहायता मिली थी।

रामदास बहुत विनयी, निरहङ्कार, प्रियभाषी और धार्मिक थे। विद्यानुशीलन ही उनका एकमात्र लक्ष्य था। उन्होंने विलापतरङ्ग, कवितालहरी और कविता कलाप नामक तीन पद्यपुस्तकोंकी रचना की। वे सर्वदा प्रधान सामयिक पत्रोंमें स्वरचित प्रबन्ध लिखा करते थे। वे अपने पुस्तकालयकी बहुत उन्नति कर गये हैं। उस समयके संस्कृत और बङ्गलाके जितने ग्रंथ मिलते थे वही उस पुस्तकालयमें रखे जाते थे।

रामदास बाबू अपनी गवेषणाका फल प्रबंधकी तौर पर दर्शनपत्रिकामें निकाला करते थे। कुल प्रबंध लिखे जाने पर वह 'ऐतिहासिक रहस्य' नामसे प्रकाशित हुआ। इसके सिवा उन्होंने 'रत्नरहस्य' और 'भारतीय रहस्य' नामक प्राचीन भारतके कुछ ज्ञातव्य विषय विभिन्न प्रबंधमें रच कर उन्हें पुस्तकाकारमें प्रचार किया।

रामदास बाबूको अंगरेजीका भी अच्छा ज्ञान था। लण्डन नगरकी Oriental Congress सभामें डा० मोक्षमूलरने रामदास बाबूके ऐतिहासिक रहस्य तथा Antiquary पत्रिकामें उनके लिखे प्रबंधादिकी बड़ी प्रशंसा की है।

इनका बौद्धधर्मप्रत्नतत्त्वान्वेषण नामक प्रबन्ध पढ़ कर नेशनल मैगजिन पत्रिकाके सम्पादकने उनकी गभीर अनुसन्धित्साका उल्लेख किया है। वे एशियाटिक सोसाइटी, एग्रि हर्टिकलचरल सोसाइटी आव इण्डिया, संस्कृत टेक्स्ट सोसाइटी आव लण्डन, ओरियेण्टल कांग्रेस और फ्लोरेन्सके एकाडेमिया ओरियेण्टल आदिके सभासभ्य हुए थे।

इनका जन्म १२५२ सालकी २६वीं अगहन और देहान्त १२९५ सालकी ३री भाद्रको हुआ था। उनके अन्तिम ग्रन्थ 'बुद्धदेव' का छपना आरम्भ ही हुआ था, कि वे इस लोकसे चल बसे।

रामदास स्वामी (समर्थ रामदास)—दाक्षिणात्यके एक विख्यात स्वदेशहितैषी, धर्मप्रचारक और ग्रंथकार।

१५३० शक (१६०८ ई०) में रामनवमीके दिन गोदावरी तीरस्थ जम्बूक्षेत्रमें जमदग्निगोत्रीय ब्राह्मणवंशमें रामदास स्वामीने जन्मग्रहण किया। इनके पिताका नाम सूर्यजि पन्त और माताको राणुबाई था। नारायण इनका आदि नाम था। जब इनकी उमर बहुत ही थोड़ी थी, तभी इनके पिताका देहांत हुआ। अतएव संसारका भार राणुबाईको लेना पड़ा। नारायण परम रामभक्त हुए। लोग कहते हैं, कि जब ये आठ वर्षके थे, उस समय भगवान् श्रीरामचंद्रने मनोहर वेशमें उन्हें दर्शन दे कर कहा था, 'धर्मकी दुर्दशा हो गई है तथा शास्त्र लोप होता जा रहा है, अतएव तुम कृष्णानदीके किनारे जा कर धर्मका पुनः स्थापन करो और म्लेच्छको दमन करनेके लिये शिवाजीको मदद दो।' उसी समयसे वे 'रामदास' नामसे प्रसिद्ध हुए। धीरे धीरे उनके वैराग्योदय हुआ। राणुबाई यह देख कर उनके विवाह-

का उद्योग करने लगीं ; किंतु रामदास विवाह करनेको राजी न हुए। आखिर बहुत समझाने बुझाने पर उनका मन पलटा गया। विवाहका दिन स्थिर हुआ। विवाह-में मङ्गलाष्टक पढ़ते समय पुरोहितने रामदासको यह बड़ी सावधानीसे उच्चारण करने कहा। रामदासने पूछा, 'इसका अर्थ क्या'। 'शिव तुम्हारा मङ्गल करें,' पुरोहित बोले। 'तुम सावधान हो जाओ। आज तक अकेला था, अभी तक बड़ा भारी बोझ तुम पर रखा जाता है।' यह यह सुनते ही रामदास सभामण्डपसे भागे। कहां गये उस दिन कोई भी पता न लगा सका।

रामदास भाग कर नासिक जिलेके अन्तर्गत ताकड़ी नामक स्थानमें गये। वहां एक पर्वतकी गुहामें उपासना करने लगे। वे दो पहर तक पुरश्चरण करते और बाद पञ्चवटी जा भीख मांग कर चावल आदि लाते थे। रसोई तय्यार होने पर पहले श्रीरामचन्द्रजीको निवेदन करते, पीछे आप खाते थे। उनका अवशिष्ट समय व्याख्या, भजन और कीर्त्तन करनेमें व्यतीत होता था। यहां उद्धव नामक एक बालक उनका शिष्य हो गया। यहां उन्होंने द्वादशवर्षव्यापी पुरश्चरण ठान दिया। समाप्तिके कुछ पहले श्रीरामचन्द्रने उन्हें दर्शन दिये और वे बोले, पहलेकी बात याद करो, कृष्णा नदीके किनारे शिवाजीकी सहायतामें तुम्हें जाना होगा, जब पुरश्चरण समाप्त हुआ, तब रामदास तीर्थपर्य्यटनको निकले। सारे भारतवर्ष और सिंहलद्वीप होते हुए पञ्चवटी लौटे। जहां जहां वे गये वहां उन्होंने धर्मव्याख्या दी और कहीं श्रीरामचन्द्र तथा हनुमान्‌की मूर्त्ति स्थापित कर हिन्दूधर्म-का प्रचार किया इसके बाद वे जम्बूखेल गये और अपनी माता तथा बड़े भाईसे मिले। उनका भ्रमणवृत्तान्त सुन कर वे सब बड़े प्रसन्न हुए। पीछे रामदास उद्धवको ले कर कृष्णानदीकी ओर बढ़े। १५५६ शक (१६६४ ई०)-में रामदास स्वामी पञ्चवटीसे चले। राहमें कुछ प्रसिद्ध तीर्थस्थानोंको दर्शन करते हुए वे माहुली पहुंचे और वहां कुछ समय तक ठहरे। वहां दिनमें वे स्नान और पूजा करते तथा रातको जरण्डा नामक पर्वत पर जा कर भगवान्‌के ध्यानमें निमग्न रहते थे।

इस प्रकार नाना वनोंमें, गिरिगुहामें और नदीके किनारे ध्यानधारणमें वे जीवन बिताने लगे। इस समय शिवाजी रायगढ़में रहते थे। रामदास स्वामीकी सुख्याति उनके कानोंमें पहुंची। इन साधु पुरुषको देखनेकी इनकी बड़ी इच्छा हुई। अतः उनके दर्शनके लिये वे चापड़ा नामक स्थानमें आये। इस समय चापड़-के देवमन्दिरमें ध्रुवचरित्रकी कथा होती थी। शिवाजीने समझा था, कि स्वामीजी यहां पर होंगे, पर उन्हें दर्शन नहीं हुए, वे वहां थे नहीं। जो कुछ हो, राजा ध्रुव चरित्रकी कथा सुनने लगे। शिवाजीको विश्वास हुआ, कि सद्-गुरुसे जब तक मंत्र न लिया जाय, तब तक धर्मसाधन हो ही नहीं सकता। तभीसे वे बहुत व्याकुल हो गये, मनमें जरा भी शांति नहीं। कथा समाप्त होने पर वे चापड़से प्रतापगढ़ आये। यहां महिषमर्दिनी देवीका एक मंदिर है। मंदिरमें देवीके सामने वे लोट रहे और किसी साधुपुरुषके शरणागत होनेके लिये प्रार्थना करने लगे। इसी अवस्थामें उन्हें नींद आ गई। स्वप्नमें उन्होंने देखा, कि देवी उनसे कह रही है, कि रामदास स्वामीके निकट जानेसे उनका मनोरथ सिद्ध होगा। देवीने यह कहा, कि उन्हींका उपकार करनेके लिये वे महापुरुष धराधाममें अवतीर्ण हुए हैं। शिवाजी सवेरे उठ कर फिरसे चापड़ा गये। इसबार भी स्वामीजीका पता न लगा। वे पुनः प्रतापगढ़ लौटे, पर उनके मनमें जरा भी चैन नहीं। भिन्न भिन्न स्थानमें उन्होंने आदमी भेजा, पर कोई भी स्वामीजीका पता न लगा सका। शिवाजीने फिरसे देवीके सामने धरना दिया। कुछ समय बाद उन्हें निद्रा आई। पीछे स्वप्नमें देखा, कि एक महा-पुरुष उनके मस्तक पर हाथ रख कर आशीर्वाद देते हुए कह रहे हैं, "वत्स! मेरा निवास गोदावरीके किनारे है, किंतु तुम्हारे कल्याणके लिये मैं देवताके आदेशसे कृष्णा नदीके किनारे ठहरा हूं। मुझे आये यहां बहुत दिन हुए, पर तुमने कोई खबर न ली। जो कुछ हो, मैंने सुना है, कि देवताके प्रति तुम्हें अचला भक्ति है। अभी तुम्हारा कर्त्तव्य यह कि जिस प्रकार राजकार्य्य करते हो उसी प्रकार करो; किंतु धर्मके प्रति दृष्टि रखो। अभी आर्य्यधर्मकी अति हीनावस्था है। जिससे उसकी उन्नति हो उस ओर विशेष ध्यान रखना होगा।" इतना कह कर

महापुरुष अन्तर्हित हो गये। निद्रा टूटने पर शिवाजी स्वप्नका हाल मन ही मन सोचने लगे। उन्होंने समझा कि यही महापुरुष रामदास स्वामी हैं। इसके बाद वे स्वामीकी खोजमें निकले। आखिर चापड़के देवमंदिरमें ही उनके दर्शन हुए। बहुत सोच विचारके बाद शिवाजीने स्वामीजीसे मंत्रग्रहण किया। इस उपलक्षमें स्वामीजीने आध्यात्मिक धर्मके सम्बन्धमें राजाको अनेक उपदेश दिये। इसके बाद शिवाजी रामदास स्वामीसे आशीर्वाद ले कर प्रतापगढ़ लौटे।

रामदासस्वामीके साथ शिवाजीके प्रथम साक्षात्के सम्बन्धमें एक और प्रवाद इस प्रकार है—एक दिन राजा शिवाजी आखेटको बाहर निकले। आखेट करते करते जहां स्वामीजी रहते थे वहीं आ पहुंचे। शरका शब्द सुन कर सभी पशुपक्षीने स्वामीजीका आश्रय लिया था। उन्हीं पशु पक्षीका पीछा करते हुए शिवाजी स्वामीके पास आये थे। यहां वे क्या देखते हैं, कि महापुरुष ध्यानमें मग्न हैं और पशुपक्षी पास ही खड़े हैं। यह दृश्य देख कर उनके मनमें वैराग्यका उदय हो आया। वे अपनेको धिक्कारते हुए कहने लगे, 'हाय मैं कैसा अधम हूं! मैं इन निर्दोष पशुपक्षियोंका वध करनेके लिये उतारू हूं। मेरे जैसा पाखंडको देख कर इन सबोंने इनके मारे स्वामीजीकी शरण ली है। राजा स्वामीजीके सामने कुछ समय खड़े रहे। किन्तु जब उनका ध्यान नहीं टूटा, तब वे वहांसे चल दिये। नदीके किनारे आ कर उन्होंने देखा, कि किताबके कुछ पन्ने जलमें बह रहे हैं। वे कुछ पन्नोंको ले कर पढ़ने लगे। जितना ही वे पढ़ते गये उतना ही उनका आनन्द बढ़ता गया। वे सब पन्ने श्लोक, अष्टम और अभङ्गसे परिपूर्ण थे। वह श्लोक और सङ्गीत पढ़ कर उच्चभावने उनके मनको ऐसा मोहित कर डाला कि उनकी दोनों आंखोंसे प्रेमधारा बहने लगी। राजा इन सब पन्नोंको ले कर अपनी राजधानी सातारा चले गये। वहां उन्होंने एक लेखकसे उन सब पन्नोंमें लिखित श्लोक और सङ्गीत अच्छी तरह लिखवा लिये। तबसे वे रोज कृष्णा नदीके किनारे जाते और जो कुछ पन्न मिलते उन्हें ले कर घर लौटते थे। वहां उनके श्लोक और सङ्गीत वे स्वयं दूसरे कागज पर लिख लेते थे। संध्याकालमें उसे पढ़ कर वे बड़ा ही आनन्द अनुभव करते थे। इसके रचयिता रामदास हैं, यह शिवाजीको अच्छी तरह मालूम हो गया। अब महापुरुषके दर्शन करनेके लिये राजाका मन विचलित हो उठा। अनन्तर प्रधान अमात्य पर राज्यभार सौंप आप साधुदर्शनको चल दिये। बहुत दिन भटकनेके बाद वे स्वामीजीके आश्रममें पहुंचे। स्वामीजीने राजाको देख कर अपने पास बुलाया। राजाने उन्हें साष्टाङ्ग-प्रणाम किया और मनकी बात कह सुनाई। इसके बाद राजाने स्वामीजीसे मंत्रग्रहण किया। इस उपलक्षमें स्वामीजीने राजाको उपदेश दिये थे, वे इस प्रकार हैं:—"जीव-हिंसा मत करो। सभी भूतों पर दया करो। साधु-सेवा करो। प्रतिदिन विष्णुपूजा करो। सर्वदा हरिनाम लो। एकादशीव्रत पालन और नित्य मारुती देवदर्शन करो।" राजाने सभी उपदेश शिरोधार्य कर लिये और स्वामीजीके आदेशानुसार राजधानी लौटे। १५७१ शक (१६४९ ई०) के ज्येष्ठमासमें राजा शिवाजीने मंत्रग्रहण किया था।

राजप्रासादमें रहना शिवाजीको अच्छा नहीं लगता। वे बीच बीचमें राजधानीका परित्याग कर स्वामीजीके पास जाया करते थे। रामदास स्वामीको यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने एक दिन राजाको बुला कर कहा, "राजकार्यकी अपेक्षा करना आपको उचित नहीं। मैंने सुना है, कि पन्नोंमें लिखे अभङ्ग आपके हाथ लगे हैं। अतएव मैं सलाह देता हूं कि आप उसीको रोज पढ़िये। इसीसे आपको मेरे दर्शन होंगे। बीच बीचमें मैं भी आपकी राजधानी जा कर आपको धर्मकथा सुनाता रहूंगा।" राजा स्वामीजीके आदेशानुसार कार्य करने लगे।

माहुलीमें रहते समय रामदास स्वामी बालकोंके साथ खेलते थे। कभी पेड़ पर चढ़ते और कभी उनके साथ दौड़ते थे। बालक भी उनके निकट आना पसन्द करते थे। एक दिन एक ब्राह्मणने उनसे पूछा, कि आपका बड़ा ही विचित्र स्वभाव देखता हूं। बालकोंके साथ क्या बूढ़ोंका खेलना अच्छा लगता? उत्तरमें रामदास स्वामीने कहा था, "जो बड़े हैं वे भारी

वृद्ध होते हैं, अहङ्कारसे उनका हृदय भरा रहता है। बालक हो कर रहनेसे स्वभाव नम्र होता है, छल कपट नहीं रहता, इसी कारण मैं बालकोंको बहुत चाहता हूं।"

यहांके विष्णुमन्दिरमें रामदास स्वामी प्रति रातको कथा और कीर्त्तन करते थे। दूसरे समय कितने लोग उनके पास तत्त्वकथा सुनने आते थे।

कुछ दिन बाद रामदास स्वामी राजासे मिलनेके लिये सातारा गये। स्वामीजीकी आगमनवार्त्ता सुन कर राजा नगरके बाहर गये और बड़े सम्मानके साथ उन्हें राजप्रासाद लाये। वहां तीन दिन रह कर स्वामीजीने कीर्त्तन किया। उनका कार्त्तन सुन कर सभी मोहित हो गये थे। श्रोताओंका अन्तःकरण भगवान्‌के भक्ति रसमें गोता खाने लगा। इन तीन दिनोंमें स्वामीजीको बहुत ही अच्छी अच्छी चीजें मिली थीं, पर उन्होंने एक भी न ली और चुपके रातको भिक्षाकी झोली ले कर वहांसे चम्पत हुए। राजा स्वामीजीको न देख व्याकुल हो गये। वे अपने आनंद-महलमें जरा भी न ठहर सके, तुरत उनको खोजमें निकले। एक कोस जाने पर स्वामीजीके साथ भेंट हुई। स्वामीजीके साथ राजा का कथोपकथन होने लगा। पीछे स्वामीजीने त्र्यम्बकेश्वर तीर्थ जानेकी इच्छा प्रकट की। राजा तीर्थका खर्च देने लगे, पर स्वामीजीने कहा, कि जो संन्यासी हैं उन्हें रुपयेकी जरूरत ही क्या? शिवाजीने समझा कर कहा, कि जो राजगुरु कह कर तमाम प्रसिद्ध हैं, तीर्थमें खर्च नहीं करनेसे उन्हें अपयश होगा। बहुत अनुरोध करने पर स्वामीजीने कुछ रुपये ले लिये, वह भी अपने हाथ नहीं। राजाने एक कार्कूनको स्वामीजीके साथ लगा दिया और तीर्थमें खर्चवर्चके लिये उसीके हाथ लाख रुपया दे दिया। इसके सिवा कुछ आदमियोंके साथ नाना प्रकारके मूल्यवान् द्रव्य भी भेजे। राजा स्वामीजीके साथ बहुत दूर तक गये थे। पीछे रामदासस्वामीके अनुरोध करने पर वे राजधानी लौटे।

स्वामीजीने जहां जहां विश्राम किया था वहां वहां राजाके दिये धनको खिलाया तथा दीन व्यक्तियोंको धन और अन्न बांटा था। आप उसमेंसे कणमात्र भी अपने काममें नहीं लाते। आप भिक्षा मांगते और उसीसे अपना खर्च चलाते थे। रातिको रामगुण गान करके लोगोंको मंत्रमुग्ध कर देते थे। जाते जाते वे त्र्यम्बक पहुंचे। नासिकसे त्र्यम्बक प्रायः दश कोस दूर है। इस स्थानके एक पर्वतसे गोदावरी नदी निकली है। त्र्यम्बकेश्वर महादेव यहीं पर स्थापित हैं। रामदास स्वामीने देवदर्शनादि किये तथा राजप्रदत्त सभी धन दीन-दुःखियोंको बांट दिये। त्र्यम्बकसे स्वामीजीने पञ्चवटीवनकी यात्रा की। वहां कीर्त्तनादि करके वे लोगोंको परितृप्त करने लगे। पञ्चवटीके दर्शनसे उनके मनमें श्रीरामचंद्रका भाव उदय हो आया। रामप्रेममें विह्वल हो वे नाच करने लगे। पञ्चवटीके पवित्र भावने उन्हें ऐसा मोहित कर दिया, कि वहांसे जानेकी उनकी जरा भी इच्छा नहीं होती थी। इसलिये कुछ दिन वहां ठहरना पड़ा। जब तक वहां रहे तब तक रामगुण गा कर और अच्छा अच्छा उपदेश दे कर लोगोंको परितृप्त करते रहे थे। यहां पर इन्होंने जो उपदेश दिया है उसका मर्म इस प्रकार है:—

"व्रत आदि करनेकी जरूरत नहीं। भक्तिभावसे राम नाम लेनेसे ही मुक्ति होती है। रामनामका कैसा प्रभाव है, उसे वाक्य द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। देखो! महादेवने विषपान करके स्निग्ध होनेके लिये क्या नहीं किया। मस्तक पर गङ्गादेवीको धारण किया पर गङ्गाका जल भी उन्हें शीतल न कर सका; कपाल पर चन्द्रमाको रखा, शशीका शीतल कर भी उन्हें स्निग्ध न कर सका। पीछे जब उन्होंने हरिनाम लिया, तब वे एकदम स्निग्ध हो गये—ज्वाला यन्त्रणा सभी दूर हो गई।"

पञ्चवटीसे स्वामीजी चाकड़ी नामक स्थानमें गये। वहां तीन दिन रह कर जम्भू आये। जम्भूमें अपनी माता और भाईको देख कर बड़े प्रसन्न हुए। यहां कुछ दिन रहनेके बाद सातारा लौटे। माता और भाई भी उनके साथ सातारा आये थे। यह संवाद जब राजाके कानोंमें पहुंचा, तब उनके आनन्दका पारावार न रहा। वे सबोंको बड़े आदरसे अपने महलमें ले आये। रामदास स्वामी एक मास वहां रहे थे। प्रतिदिन धर्मव्याख्या और कीर्त्तनादि करके लोगोंको तृप्त करते थे।

एक मासके बाद स्वामीजीकी माता और भाई अपने घरको लौटे। राजाने यथोचित सम्भाषण कर और उपहार दे कर उन्हें विदा किया था। रामदास स्वामी माहुली आ कर रहने लगे।

इसके बाद रामदास स्वामीने पण्ढरपुरकी यात्रा की। वहां इन्होंने कुछ अभङ्गकी रचना की थी। उनमेंसे एक बिठोबा देवमूर्त्तिके सम्बन्धमें रचा गया था। कुछ दिन यहां रह कर स्वामीजी इनके निकटवर्ती गरुड़पार नामक स्थानमें चल दिये। यहां कई दिनों तक कीर्त्तनादि होता रहा। अधिवासी हरिगुण गान सुन कर मोहित हो गये। तुकाराम बाबा, जयराम गोस्वामी आदि साधुगण भी कीर्त्तन सुनने लगे। गरुड़पार स्वर्गरूपमें गिना जाने लगा। कीर्त्तन आरम्भ करनेसे पहले रामदासने दो अभङ्ग गाये थे।

इसके बाद स्वामीजीने वाल्मीकि मुनि तथा अजामीलका वृत्तान्त वर्णन कर श्रोताओंको हरिनामका माहात्म्य समझाया। इस प्रकार कीर्त्तन कर और उपदेश दे कर रामदास स्वामी पण्ढरपुर होते हुए माहुली गये। वहां कुछ दिन ठहर कर नाना स्थानोंमें जा कर वे लोगोंको धर्मोपदेश देने लगे। बहुतेरे उनके शिष्य हो गये। स्वामीजी बिना परीक्षा किये किसीको भी शिष्य नहीं बनाते थे। शेयापुरमें आकाबाई नामक एक विधवाने स्वामीजीके साथ धर्मकी आलोचनामें दिन बितानेकी इच्छा प्रकट की। उसके धर्मभावकी परीक्षा करनेके लिये स्वामी जी उसके घर घुसे और द्रव्यादि नष्ट करने लगे। यह देख कर आकाबाई सिर्फ हंसने लगी। अनंतर स्वामीजीने आकाबाईसे कहा, 'यदि तुम धर्मपथका अवलम्बन करना चाहती हो, तो तुम्हारे पास जो कुछ है उन्हें उपयुक्त पात्रको दान कर दो।' आकाबाईने वैसा ही किया। पीछे स्वामीजीने उसे भीख मांगनेको कहा। आकाबाई बड़े आनन्दसे स्वामीजीकी आज्ञाका पालन करने लगी। इसके बाद काबाड़ नामक स्थानमें वेनूबाईने स्वामीजीसे प्रार्थना की, कि आप मुझे भी अपने साथ रहनेकी अनुमति दीजिये। उस समय उसकी उमर थोड़ी थी। इस कारण स्वामीजीने उसे घरमें रह कर धर्मसाधना करने कहा; किन्तु घरके लोगोंके अत्याचारसे उसे स्वामीजीके निकट आना ही पड़ा। स्वामीजीके साथ धर्मालाप करके वेनूबाईका अन्तःकरण धीरे धीरे उन्नत होने लगा। वह भजन और कीर्त्तन करने लगी। उसका कीर्त्तन सुन कर लोग मोहित हो जाते थे।

इस समय रामदास स्वामीने 'दासबोध' नामक एक ग्रन्थ लिखना आरम्भ कर दिया। कहते हैं, कि स्वामीजी जो मुखसे कहते थे, उनके शिष्य कल्याणस्वामी उसे लिखते जाते थे। शिवाजीका ध्यान जब राजकार्यकी ओरसे हट गया, तब उन्हें उलझनेके लिये ही यह ग्रंथ रचा गया था। इसके सिवा उन्होंने 'मनाचे श्लोक' अर्थात् मनके प्रति उपदेश, 'श्लोकबद्ध रामायण' अर्थात् श्लोकवर्णित रामायण, गुरुगीता, आत्माराम और पञ्चीकरण भी लिखे थे। राजा शिवाजी प्रतिदिन बड़े गौरवसे 'दासबोध' पढ़ा करते थे। मराठीभाषामें ग्रंथ प्रकाशित करना उस समयके पण्डितोंकी इच्छाके विरुद्ध था। गङ्गा पण्डित राजवाड़ामें पुराण पढ़ते थे। उन्होंने राजाको 'दासबोध' पढ़नेसे मना किया। किंतु राजाके नहीं सुनने पर उन्होंने पुराण पढ़ना बंद कर दिया। वामन नामक एक दूसरे विख्यात पण्डित भी मराठीभाषाके प्रति वीतराग थे। किंतु रामदास स्वामीने उन्हें समझाया, कि संस्कृत जाननेवाले व्यक्ति बहुत ही थोड़े हैं, इस कारण भाषामें लिखित पुस्तक प्रकाशित करके जनसाधारणका उपकार करना उचित है। इस पर वामन पण्डितका मत पलटा। उन्होंने निगमसार आदि ग्रंथ भाषामें प्रकाशित किया।

अनन्तर रामदास स्वामी आलम्बा आदि स्थानोंमें भ्रमण करते हुए चापड़ पहुंचे। कहते हैं, कि यहांका श्रीरामचन्द्रका मन्दिर उन्होंने अपने हाथसे बनाया था। इनके शिष्य पत्थर लाते और आप जोड़ते जाते थे। क्रमशः रामनवमी पहुंची। इस उपलक्षमें यहां भारी उत्सव हुआ था। उत्सवके बाद स्वामीजी नाना स्थानोंमें पर्यटन करते हुए माहुली पहुंचे। अनंतर वे फिर चापड़ चले गये।

इस समय भारतवर्षके नाना स्थानोंमें धर्म प्रचार करनेकी इनको इच्छा हुई। इस कारण उन्होंने अपने

शिष्योंसे कहा, कि तुम लोग भिन्न भिन्न स्थानमें जा कर भजन और कीर्त्तन द्वारा लोगोंके मनमें धर्मभाव उद्दीपन करो। उन्होंने शिष्योंसे यह भी कहा था, "तुम लोग दिनको भीख मांगना और उसीसे जीवनधारण करना। कभी भी कुछ सञ्चय न करना। जिस दिन जो मिले उस दिन उसीसे काम चलाना। रात्रिमें रामगुण गान और भजन करना। इस प्रकार सारा वर्ष बिता कर रामनवमीसे पहले लौट आना।" रामदासस्वामीके आज्ञानुसार उनके शिष्य धर्मप्रचार करने चल दिये।

इधर रामदास स्वामी पण्ढरपुर आये। रातमें जहां ठहरे थे वहां इन्होंने भजन और कीर्त्तन द्वारा लोगोंके मनमें धर्मभावका उद्दीपन कर दिया था। आखिर पण्ढरपुर आ कर वे पवित्र स्थानोंका दर्शन करने लगे। राजा भी उनका अनुसन्धान करते करते वहां तक पहुंचे। जहां जहां उनके शिष्य गये थे वहां वहां स्वामीजी उनसे मिलने लगे। एक जगह उन्होंने देखा कि तुकाराम बाबाने कीर्त्तन आरम्भ कर दिया है। स्वामीजी बड़े आनन्दसे सुनने लगे। कीर्त्तन समाप्त होने पर उन्होंने श्रोताओंको सम्बोधन कर कहा, 'भाइयो ! अत्यन्त भोजनका फल अत्यन्त खराब है। अतिरिक्त जो कुछ भोजन किया जायगा उसे पेटमें रहनेका स्थान नहीं मिलेगा। उल्टी हो कर वह बाहर निकल आयेगा। किन्तु हरि नामामृत पान करनेसे किसी भी क्लेशकी आशङ्का नहीं। जितना ही पान करोगे, उतना ही और पान करनेकी इच्छा होगी। मन उतना ही आनन्दसागरमें गोता खाता आयेगा। इस अमृतमें किसीकी भी अरुचि नहीं होती। यह अमृत अधिक परिमाणमें पान करनेसे अनिष्ट होनेकी बात तो दूर रहे और भी कितने मङ्गल होते हैं। अतएव भाइयो ! मनको साध कर हरिनामामृत पान करो। दूसरे दिन रामदास स्वामीने कीर्त्तन किया।

इसके बाद स्वामीजी पण्ढरपुरका परित्याग कर चापड लौटे। यहां पर उनके शिष्य जो धर्मप्रचार करनेके लिये भिन्न भिन्न स्थानमें गये थे, उनसे आ मिले। उन सबोंको ले कर स्वामीजीने बड़े आनन्दसे रामनवमीका उत्सव मनाया। अनन्तर वे नाना स्थानोंमें भ्रमण कर संकीर्त्तनादि द्वारा धर्मप्रचार करने लगे।

रामदास स्वामीके जो हमेशा दर्शन नहीं होते थे इस कारण शिवाजी बड़े दुःखित रहते थे। उनकी इच्छा हुई कि राजधानीके पास ही किसी स्थानमें स्वामीजी रहें। परेला पर्वतस्थित देवमन्दिरमें उनका वासस्थान स्थिर हुआ। १५७२ शक (१६५० ई०) से स्वामीजी वहीं रहने लगे। तभीसे यह स्थान सज्जनगढ़ नामसे मशहूर हुआ।

कुछ समय बाद रामदासकी माताका अन्तिम समय पहुंचा। यह सुन कर स्वामीजी जम्बूक्षेत्र जा कर उनसे मिले। माताकी मृत्युके बाद वे परेलीमें लौट कर ध्यान धारण और रामगुणकीर्त्तनमें दिन व्यतीत करने लगे। एक दिन वे भीखकी झोली कंधे पर रख भीख मांगते मांगते राजभवन पहुंचे। राजाको एक सिपाहीने खबर दी कि स्वामीजी भिक्षाके लिये आये हैं। यह सुनते ही राजाने एक कागजके टुकड़े पर "समूचा राज्य रामदास स्वामीको अर्पण किया", लिख कर सिपाहीसे कहा, कि इसे स्वामीजीकी झोलीमें डाल देना। सिपाहीने वैसा ही किया। स्वामीजीने वह कागज पढ़ कर राजाको बुलाया और कहा कि, 'तपस्या करना ब्राह्मणका तथा राज्यभारग्रहण और प्रजापालन करना क्षत्रियका कार्य्य है। अतएव भिक्षावृत्ति अवलम्बन करना उन्हें उचित नहीं। फिर जब आपने मुझे राज्य दान कर दिया तब मेरे प्रतिनिधिस्वरूप हो कर आप राज्यशासन करें।' राजा स्वामीकी आज्ञा टाल न सके और उनकी खड़ाऊं ले कर उन्हींके नाम पर राज्यशासन करने लगे। संन्यासीको राज्य देनेके कारण राजपताकादि गैरिकवर्णमें रंगाई गई। उसी समयसे मराठोंके मध्य गैरिक पताका प्रचलित हुई।

कुछ समय बाद राजाने मन ही मन विचारा कि रामदास स्वामी तो राजधानीमें रहे नहीं, इसलिये तुकाराम बाबाको लाना चाहिये। यह स्थिर करके उन्होंने एक कार्कूनके हाथ उनके पास निमंत्रणपत्र भेजा। उन्हें लानेके लिये अश्वादि भी भेजी गयी। तुकारामने निमंत्रण स्वीकार नहीं किया और राजाके पत्रका उत्तर दिया। पत्रमें निमंत्रण ग्रहण नहीं करनेका कारण दिखलाया था और राजाको कुछ सदुप-

देश भी दिये थे। राजाने उपदेश वाक्य पढ़ कर अत्यंत आनन्दलाभ किया था। उनका मन तुकारामके प्रति ऐसा आकृष्ट हुआ, कि वे लोहागाता नामक ग्राममें उनसे जा कर मिले।

१६०२ शक (१६८० ई०) में शिवाजी ज्वराक्रांत हुए। रोग धीरे धीरे बढ़ने लगा। उनके जीवनकी कुछ भी आशा न रही। इसी समय रामदास स्वामी वहां गये और धर्मकथा सुनाने लगे। इसी शकाब्दके चैत्रमासमें शिवाजीने भवलीला संवरण की। पीछे उनके लड़के शम्भाजी पितृसिंहासन पर बैठे। रामदास स्वामीने सुना, कि शम्भाजीका स्वभाव उद्धत और उनका चरित्र अच्छा नहीं है। इसलिये अविवेकी राजाको कुछ उपदेश देना उचित समझ कर स्वामीजीने एक सदुपदेशपूर्ण पत्र उनके पास लिख भेजा। पत्रके उत्तरमें उन्होंने कहा था, कि यह अमूल्य उपदेश पा कर वे कृतार्थ हुए हैं तथा उन्हींके अनुसार वे कार्य करनेकी चेष्टा करेंगे।

कुछ समय बाद रामदास पीड़ित हुए। धीरे धीरे अन्न जलका त्याग कर देवताके सामने पड़ रहे। शिष्यगण उनकी अवस्था देख कर रोने लगे। स्वामीजीने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, 'व्यर्थ रोते हो, किसने कहा, मेरी मृत्यु होगी, मैं जीवित रहूंगा, केवल स्थूल शरीर बदल जायगा।' यह सुन शिष्यगण बोले, 'अभी जिस प्रकार आपके दर्शन और उपदेशग्रहण कर हम लोग तृप्त होते हैं, उस प्रकार शरीर परिवर्त्तन पर तो नहीं हो सकते।' इस पर रामदासने कहा 'मेरे लिखे दासबोध और आत्माराम ग्रन्थ पढ़नेसे तुम लोग मानो मेरे ही दर्शन लाभ करोगे।' इस समय रामदास स्वामीके पादुका स्थापन करनेकी बात उठी। स्वामीजीको आशङ्का हुई, कि कहीं वे लोग श्रीरामचन्द्रको भूल कर मेरी ही पूजा करने न लग जांय। इस डरसे उन्होंने शिष्योंसे कहा, कि एक गह्वरमें उनकी खड़ाऊं रख कर उसके ऊपर श्रीरामचन्द्रका मन्दिर बनवा देना। शिष्योंने इसे स्वीकार कर लिया। पीछे भजन और कीर्त्तन होने लगा। स्वामीजी बड़े आनन्दसे सुनने लगे और आपने भी कुछ अभङ्ग गाये।

कहते हैं, कि कुछ अभङ्ग गाये जानेके बाद श्रीरामचन्द्रने घनश्याम मूर्त्तिमें रामदास स्वामीके सामने आ कर उन्हें आशीर्वाद किया तथा स्वामीजी उनका सारूप्य लाभ कर 'जय जय रघुवीर समर्थ' कहते हुए स्वर्गधामको सिधारे। १६०३ (१६८२ ई०) के माघमासमें स्वामीजीका देहान्त हुआ था।

राजा शम्भाजी यह संवाद पा कर बड़े दुःखित हुए थे। उन्होंने स्वामीके आदेशानुसार परेलीमें एक श्री-रामचन्द्रका मन्दिर बनवाया और उसके नीचे रामदासकी खड़ाऊं रखीं। प्रतिवर्ष यहां रामदास स्वामीके स्मरणार्थ मेला लगता है।

संन्यासियोंके मध्य रामदास स्वामीमें एक विशेष भाव देखा जाता है। यों तो कितने महापुरुष ऐसे हैं जो ईश्वरके ध्यानमें जीवन विताते हैं और लोगोंकी ओर नजर नहीं उठाते। वैसे महापुरुषका पवित्र भाव हृदयङ्गम कर मनुष्य उन्नत तो हो सकते हैं पर वे (संन्यासी) जो मनुष्यका संसर्ग नहीं करते उनके घर पर क्षणकाल भी नहीं ठहरते, इससे सभी उन्हें देख नहीं पाते। अतएव उनसे जनसाधारणका उपकार नहीं हो सकता। रामदास वैसे नहीं थे। वे अपनी आध्यात्मिक उन्नतिके लिये जैसे मन ही मन निर्जन वनमें अथवा पर्वत के ऊपर रह कर ईश्वरके ध्यानमें जीवन विताते थे, जनसाधारणके लिये उनका वैसा ही यत्न भी था। वे एकदेशदर्शी नहीं थे। वे जिस प्रकार सामान्य व्यक्तिको उपदेश देते थे उसी प्रकार राजा शिवाजीको भी उद्बोधित किया करते थे। प्राचीन कालके ऋषियों की तरह उनका आचरण था। वे लोग जिस प्रकार कभी कभी नगरमें आ कर राजाओंको नाना प्रकारका उपदेश दे जाते थे, रामदास स्वामी भी उसी प्रकार सातारा आ कर शिवाजीको, क्या राजनैतिक क्या धर्मसम्बंधीय सभी प्रकारका उपदेश प्रदान करते थे। क्योंकि वे जानते थे, कि राजाके कर्त्तव्यपरायण होनेसे प्रजाका मङ्गल होता है। राजाकी उन्नतिके लिये वे यहां तक यत्नवान् थे, कि उनके लिये उन्होंने 'दासबोध' नामक एक सदुपदेश पूर्ण ग्रंथ भी लिख डाला था।

हम लोग देखते हैं, कि पार्थिव पदार्थोंको तुच्छ जान

कर बहुतेरे महापुरुष उद्यमहीन हो जाते। परन्तु रामदास स्वामीका भाव वैसा नहीं था। परोपकारसाधन उनके जीवनका व्रत था। इसके लिये वे स्वयं शारीरिक परिश्रम किया करते थे। उनके यत्नसे कितने स्थानोंमें श्रीरामचन्द्रके मन्दिर प्रतिष्ठित हुए थे।

रामदीन त्रिपाठी—एक भाषा-कवि। ये टिकमापुर जिला कानपुरके रहनेवाले थे और कवि मतिरामके वंशज थे। चरखारीके राजा रतनसिंहके यहां ये प्रायः रहते थे। एक बार राजा रतनसिंहकी सभामें ये बैठे थे, उस समय और भी जागीरदार सरदार कवि आदि दरबारमें उपस्थित थे। स्वयं राजा रतनसिंह भी दरबारमें इन्होंने अपनी ओर राजाकी विरक्ति देख कर कहा,—

"जो बांधी छत्रशाल जू हृदयसाहि जगतेश।
परिपाटी छूटै नहीं महराजा रतनेश॥"

रामदुर्ग—१ बम्बईप्रदेशके दक्षिण महाराष्ट्र भूभागकी पोलिटिकल एजेन्सी द्वारा परिचालित एक देशी सामन्त राज्य। इसके उत्तरमें कोल्हापुर राज्यका टोरगल उपविभाग, दक्षिणमें धारवाड़ जिलेका नरगुण्ड, पूरबमें बीजापुर जिलेका बदामी तालुक और पश्चिममें धारवाड़ जिलेका नवलगुण्ड तालुक है। इसमें दो शहर और ३७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ४० हजारके करीब है। यहांकी मिट्टी काली और उर्वरा है। रुई, गेहूं, जौ, चना, जुआर यहांकी प्रधान उपज है। मालप्रभा नदी इस राज्यके मध्य हो कर बहती है जिससे खेतीबारीमें बड़ी सुविधा हो गई है। यहां एक प्रकारका मोटा सूती कपड़ा तैयार होता है।

कर्णाटक दुर्गकी तरह यह भी एक दुर्भेद्य दुर्ग समझा जाता है। महाराष्ट्र-अभ्युत्थानके आरम्भमें ही यह दुर्ग मराठोंके हाथ लगा। पीछे पेशवाओंने इसे वर्त्तमान दुर्गाधिकारीके किसी पूर्वपुरुषके हाथ सौंप दिया। १७५३ ई०में राजस्वके परिमाणानुसार यहांके सरदार महाराष्ट्र-सरकारको ३५० घुड़सवार सेनासे मदद करनेके लिये बाध्य थे। १७७८ ई० तक वे इसी प्रकार मदद देते आये। पीछे हैदर अलीने दुर्गको अधिकार किया। १७८५ ई०में टीपू सुलतानने पूर्व नियमको भङ्ग कर साहाय्यकारी सैन्यसंख्या बढ़ा देने कहा। किन्तु दुर्गाधिकारीने नहीं माना। इस पर गोलावर्षण द्वारा उसने दुर्गको फतह किया और ७ मास अवरोधके बाद नवगण्ड दुर्गके अधिपति वेङ्कटरावको कैद कर लाया। १७९० ई०में श्रीरङ्गपत्तनके अधःपतनके बाद वेङ्कटरावने मुक्तिलाभ किया और पेशवा द्वारा दुर्गका अधिकार पाया। अनन्तर रामराव ९६००० रु० आयकी जमींदारी दे कर रामगढ़ दुर्गके अधिकारी हुए।

१८१० ई०में पेशवाने वेङ्कटराव और नारायण राव नामक रामरावके दो पुत्रोंके बीच उक्त सम्पत्तिका नया बंदोबस्त कर दिया। १८१८-१९ ई०में पेशवा शक्तिका जब बिलकुल ह्रास हुआ तब एक दूसरे उपायसे उनका अधिकार अक्षुण्ण रखा गया था। १८८१-८२ ई०में यहांके ब्राह्मण जातीय सरदार-पुत्र नाबालिग थे, इस कारण शासनकार्य अङ्गरेजोंके हाथ रहा। वर्त्तमान सरदारका नाम है मेहरबान रामराव वेङ्कटराव या रावसाहब भावे। ये दाक्षिणात्यविभागमें एक प्रथम श्रेणीके सरदार समझे जाते हैं। इनका राजस्व दो लाख रुपया है। सैन्यसंख्या ५० है। सरदारको गोद लेनेका अधिकार है। राज्यमें २ म्युनिसपलिटी, १७ स्कूल और दो अस्पताल हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० १५° ५′ उ० तथा देशा० ७२° २′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारके करीब है। कहते हैं, कि यहांका रामदुर्ग और नरगुण्ड दुर्ग शिवाजी द्वारा बनाया गया है। शहरमें एक प्रकारका मोटा कपड़ा तय्यार होता है। यहां एक अस्पताल भी है।

रामदुलाल राय (दीवान) एक साधकभक्त। त्रिपुराके अन्तर्गत कालीकच्छ ग्राममें १७८५ ई०को इनका जन्म हुआ था। इनकी कुलोपाधि नन्दी थी। कुछ दिन तक ये नोआखालीके कलकृर हेलिडे साहबके सिरेस्तेदार थे। पीछे त्रिपुरा महाराजके दीवान हुए। इनके रचे साधना सङ्गीतोंमें विषाद, विराग और भक्तिका पूर्ण आभास है।

रामदुलाल सरकार—कलकत्तावासी एक धनी व्यक्ति। कलकत्तेके उत्तर पूर्व दमदमाके निकटवर्त्ती रेकजानी ग्राम-

में इनका जन्म हुआ था। ये दे वंशीय कायस्थ थे। इनके पिता बलराम सरकार वहांकी ग्राम्य पाठशालाके शिक्षक थे।

१७५१-५२ ई०में वर्गी उपद्रवसे उन्यक्त हो कर बलराम वासभूमिका परित्याग कर स्त्री समेत भागे। उस समय स्त्री गर्भवती थी। राहकी थकावटसे उसे प्रसव वेदना उपस्थित हुई। कालवशतः निर्जन मैदानमें वृक्षके नीचे रामदुलालका जन्म हुआ।

रामदुलाल बचपनमें ही पितृमातृहीन हुए। उनकी मातामही बालकका लालन पालन करने लगी। एक समय उनकी मातामहीको कभी भीख मांग कर, कभी उपवास कर और कभी दासीका काम कर जीवन धारण करना पड़ा था। अन्तमें वह कलकत्ता निमतलावासी विख्यात वणिक् मदनमोहन दत्तके घर पाचिकाका काम करने लगी। धनीके अतुल ऐश्वर्यके मध्य पाचिकाके साथ उसके दौहित्र रामदुलालको भी आश्रय मिला। इतने दिनोंके बाद भगवान्की कृपासे उनका अन्नकष्ट दूर हुआ।

मदनबाबूने अपने पुत्रोंके साथ बालक रामदुलालकी भी शिक्षाका बन्दोबस्त कर दिया। पढ़ने लिखनेमें रामदुलालका अध्यवसाय देख पिताके निकट लाञ्छित होनेके भयसे मदनबाबूके लड़के उनके साथ बुरा व्यवहार करने लगे। मदनबाबूको यह बात मालूम हो गई। वे तभीसे अनाथ बालकको अपने साथ आफिस ले जाते और वहीं शाम तक रखते थे। इस समय इन्हें अङ्गरेजीका थोड़ा थोड़ा ज्ञान हो गया था। आफिस जानेसे इनका भाग्य खुल गया।

आफिस आनेसे इनका सबोंसे परिचय हो गया। लोग इनके व्यवहार पर मुग्ध हो गये। मदनबाबूने बेकाम बैठे रहनेके बदले मासिक ५ रु० वेतनके बिलसरकारके पद पर उन्हें नियुक्त किया। पीछे उनके कामसे प्रसन्न हो कर १०) रु० कर दिया गया। इस समय इन्हें एक बार किसी विशेषकार्यके लिये अपने मुनीबकी ओरसे Messrs Tulloh & Co के नीलाम घरमें उपस्थित रहना पड़ा था। इस समय एक जलमग्न जहाज नीलाम होता था। रामदुलालने बिना समझे बूझे उसे १४ हजार रुपयेमें खरीद लिया। उन्हें कुछ भी मालूम नहीं, कि इस कार्यमें लाभ होगा या हानि। लड़कपनीके जोशसे इन्होंने जो यह काम कर डाला उसीसे इनकी भाग्यलक्ष्मी चमक उठी।

जिस समय रामदुलाल नीलाम घरसे निकल रहे थे उसी समय एक अंगरेज आया और उसने जहाज खरीदनेवालेका नाम जानना चाहा। उसे जहाजका मूल्य तथा उसके भीतरके माल असबाबका हाल अच्छी तरह मालूम था। रामदुलालको खरीदार जान कर वह अंगरेज उसके पास गया और उन्हें सामान्य व्यक्ति देख कर सामान्य लाभका लोभ दिखाया। आखिर लाख रुपयेमें साहबने जहाजको खरीद लिया। रामदुलाल कुल रुपया ले कर मदनबाबूको देने चले। क्योंकि वे जानते थे, कि पूंजी मुनीबने दी थी, इस कारण इसमें जो कुछ लाभ हुआ वह उन्हींका होगा, मेरा नहीं। मालिकके सामने पहुंच कर रामदुलालने थैली आगे रख दी और अपने किये हुए कामके लिये क्षमा मांगने लगे।

मदनबाबू रामदुलालकी सरलता, सत्यता और ज्ञानवत्ता देख कर बड़े आनन्दित हुए और वह लाख रुपयेकी थैली उन्हें ही पुरस्कारमें दे दी। वह रुपया ले कर अमेरिकावासी वणिकोंके एजेण्ट स्वरूप काम चलाने लगे। इसी रुपयेसे इनकी भावी-समृद्धिका सूत्रपात हुआ। धीरे धीरे इन्होंने एक कर्मगृह (Firm) स्थापन किया वह कर्म पीछे "Messrs Ashutosh Dey Nephew" नामसे प्रसिद्ध हुआ।

अनंतर रामदुलाल News fairlie Fergusson & Co. के बेनियन हुए। इस समय इनका भाग्य खूब चमक उठा था। लोग इनका यथेष्ट सम्मान करने लगे। इनकी उदारता और दया अतुलनीय थी। अतुल सम्पत्तिके अधिकारी होते हुए भी इन्होंने कभी अपने प्रभुवंशका अपमान नहीं किया। दुर्गोत्सवके समय जब प्रतिमा विसर्जन करने जाते थे तब निमतल्लेकी दत्तबाड़ी हो कर ही जाते थे। उतनी दूर तक वे नंगे पांव चलते थे। केवल एक बार नहीं, जीवन भर इन्होंने कृतज्ञता और प्रभुभक्ति दिखलाई थी।

मंद्राजके दुर्भिक्ष पीड़ित लोगोंकी सहायताके लिये

कलकत्तेके टाउनहालमें जो सभा हुई उसमें इन्होंने नगद एक लाख रुपये और हिंदू-कालेजकी प्रतिष्ठाके समय ३० हजार रुपये दिये थे। ये स्वयं दरिद्र थे, दरिद्र अन्नके लिये कैसा कष्ट पाते हैं, उन्हें अच्छी तरह मालूम था। इस कारण खुले हाथसे ये दरिद्रोंको अन्नदान कर गये हैं। इन्होंने अपने वासभवनमें और बेलगछियाके उद्यानमें अतिथिशाला प्रतिष्ठा की थी। इसके सिवाय उनके घर पर दरिद्र, अभावयुक्त, कन्याविवाहव्ययक्लिष्ट वा कन्याभारग्रस्त व्यक्तिमात्र ही आर्थिक सहायता पाते थे। आफिसमें दरिद्रोंको देनेके लिये इन्होंने प्रतिदिन ७० रुपये दान करनेकी व्यवस्था कर दी थी। २ लाख २२ हजार रुपया खर्च कर इन्होंने काशीधाममें तेरह शिवमंदिर बनवाये हैं। वे सब मंदिर आज भी दुलालेश्वर-मंदिर नामसे प्रसिद्ध हैं। इतना बड़ा वाणलिङ्ग काशीधाममें और कहीं भी नहीं है।

६६ वर्षकी उमरमें ये पक्षाघात रोगसे आक्रान्त हुए। कुछ दिन बाद ही आरोग्य हो गये पर स्नायविक शक्तिका ह्रास हो जानेसे स्वास्थ्य बिलकुल खराब हो गया। आखिर १८२५ ई०की १ली अप्रिलको ये ७३ वर्षकी उमरमें इस लोकसे चल बसे। उनके दो लड़के आशु बाबू और प्रमथनाथने पांच लाख रुपया खर्च कर पितृश्राद्ध किया। पिताके जैसे दोनों भाई दानशील थे, इस कारण उन्हें 'बाबू'-की उपाधि मिली थी। रामदुलालके दो पत्नी थीं, बड़ीके कोई सन्तान न थी, छोटीके गर्भसे उपरोक्त दो पुत्र और पांच कन्याने जन्मग्रहण किया था। आशुतोष सङ्गीतज्ञ और सितार बजानेमें बड़े निपुण थे। मृत्युकालमें रामदुलाल १ करोड़ २३ लाख रुपये छोड़ गये थे।

रामदूत (सं० पु०) रामस्य दूतः। हनुमानजी।

रामदूती (सं० स्त्री०) रामस्य दूतीव विष्णुप्रियत्वात्। १ तुलसीविशेष, एक प्रकारकी तुलसी। पर्याय—पञ्चपुष्पी, विशल्या, नागदन्तिका, काण्डली, सूक्ष्मपर्णी, भवान्याह्वा, फणिज्झका। २ नागदन्ती, नागदौना। ३ नागपुष्पी।

रामदेव (सं० पु०) १ रामचन्द्र। २ एक सम्प्रदाय जो राजपूतानेमें प्रचलित है और जिसके अधिकांश अनुयायी चमार आदि अस्पृश्य जातियोंके लोग हैं।

रामदेव—१ धाराधिपति भोजदेवके सभापण्डित। भोजप्रबन्धमें इनका परिचय है। २ गुजरातके शङ्कर-सम्प्रदायके १८वें आचार्य। ३ तत्त्वदीपिकाके प्रणेता। ये शम्भूके पुत्र और दामोदर तीर्थके शिष्य थे। ४ योगवाशिष्ठके टीकाकार।

रामदेव चिरञ्जीव—काव्यविलास, माधवचम्पू, विद्वन्मोदतरङ्गिणी, वृत्तरत्नावली और शृङ्गारतटिनी आदि ग्रन्थोंके प्रणेता। ये राघवेन्द्रके पुत्र और काशीनाथके पौत्र थे।

रामदेव न्यायालङ्कार—रामगुणाकरके रचयिता।

रामदेव मिश्र—१ तत्त्वकौमुदी नामको वासवदत्ताकी टीकाके रचयिता। २ एक वैयाकरण। माधवीयधातुवृत्तिमें इनका उल्लेख है।

रामदेव राय—विजयनगरके एक राजा। इन्होंने अपने भाई वेंकटपति तथा वेंकटाद्रि और तिरुमल नामक दो सामंतोंके साहाय्यसे नाना स्थानोंको जीता और गोलकुण्डापतिको पराजित किया था।

रामदेव वीर—विजयनगरके एक राजा। इन्होंने १३७२ से १३७६ ई० तक राज्य किया था।

रामद्वादशी (सं० स्त्री०) ज्येष्ठ मासकी शुक्ला द्वादशी तिथि।

रामधनुष् (सं० पु०) इन्द्रधनुष।

रामधर (सं० पु०) वासवदत्ता-वर्णित एक नायक।

रामधाम (सं० पु०) साकेत लोक जहां भगवान् नित्य रामरूपमें विराजमान माने जाते हैं।

रामनगर—१ अयोध्याप्रदेशके बाराबांकी जिलेका एक परगना। भूपरिमाण ११२ वर्गमील है। यहांके प्रधान जमींदार रैकवाड़वंशीय राजपूत हैं। उक्त वंशमें राजा सर्वजित् सिंह (१८८४-८६) एक गुणशाली व्यक्ति हो गये हैं। यहांसे बहरमघाट तक जो पक्की सड़क चली गई है उससे वाणिज्य व्यवसायमें बहुत सुभीता है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २७° ५′ उ० तथा देशा० ८१° २६′ पू०के मध्य अवस्थित है। पहले यहां तहसीली कचहरी थी, पीछे फतेपुर उठ कर चली गई है।

रामनगर—१ मध्यप्रदेशके रेवाराज्यकी एक तहसील। यह अक्षा० २३° १२´ से २४° २३´ उ० तथा देशा० ८०° ३६´ से ८२° १६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २७७५ वर्गमील और जनसंख्या २ लाखसे ऊपर है।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २४° १२´ उ० तथा देशा० ८१° १२´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ढाई हजारसे ऊपर है।

रामनगर—मध्यप्रदेशके मण्डला जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २२° ३६´ उ० तथा देशा० ८०° ३३´ पू०के मध्य मण्डलासे ५ कोस पूरब नर्मदा नदीके किनारे अवस्थित है। चौरागढ़ बुन्देलाओंके अधिकृत तथा देवगढ़की गोंड राजशक्ति तथा मुगल-साम्राज्यका प्रभाव देख कर गढ़ा-मण्डलाके राजोंने गढ़ा वा चौरागढ़की अपेक्षा अधिकतर दुर्गम स्थानमें जा कर राजधानी बसानेकी इच्छा की। तदनुसार १६६० ई०में राजा हृदय शा रामनगरमें राजपाट उठा ले गये। यहां ८ पीढ़ी तक राज्य करनेके बाद राजा नरेन्द्र शाने फिरसे मण्डलामें राजधानी स्थापन की।

गोंड़राजाओंके समय यह स्थान खूब बढ़ा चढ़ा था। राजा हृदय शाके मन्त्री भगवत् रावके वासभवन और राजप्रासाद तथा अन्यान्य अट्टालिकाओंका ध्वंसावशेष बहुत दूर तक फैला हुआ है। यहांके एक छोटे मन्दिरमें संस्कृत भाषामें लिखी हुई शिलालिपि है। उसमें ४१५ सम्वत्‌से लगायत राजा हृदय शाके राज्यकाल तक प्रायः १३वीं सदीके गोंड़राजवंशके राजाओंके नाम अङ्कित हैं।

रामनगर—युक्तप्रदेशके वाराणसी जिलान्तर्गत चन्दौली तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २५° १६´ उ० तथा देशा० ८३° २´ पू० गङ्गाके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर है। यहां वाराणसी राजाका प्रासाद और प्राचीन दुर्ग है। राजा चैत्‌सिंह द्वारा निर्मित एक सुन्दर मन्दिर, पुष्करिणी और तत्संलग्न उद्यान भग्नावस्थामें पड़ा था। १८८४-८५ ई०में उसका अच्छी तरह संस्कार किया गया। यहां अनाजका अच्छा कारबार चलता है।

रामनगर—पञ्जाबके गुजरानवाला जिलान्तर्गत वजीराबाद तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३२° २०´ उ० तथा देशा० ७३° ४८´ पू०, चनावके बायें किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ७ हजारसे ऊपर है। १८वीं सदीके आरम्भमें नूरमहम्मद नामक एक छट्टावंशीय सरदारने इस नगरको बसाया। उस समय इसका नाम रसुलनगर था। मुसलमानी अमलमें इसका धीरे धीरे उन्नति होती गई। आखिर महाराज रणजित् सिंहने यहांके छट्टा सरदार गुलाम महम्मदको युद्धमें परास्त कर नगर जीत लिया। सिखोंने मुसलमानी नाम उठा कर इसका रामनगर नाम रखा। छट्टावंशकी चलतीके समय यहां बहुतसे सुन्दर सुन्दर महल बनाये गये थे। उनका खंडहर आज भी देखनेमें आता है। द्वितीय सिख-युद्धके समय अंगरेज-सेनापति लार्ड गफने यहां (१८४८ ई०) शेरसिंहके अधीनस्थ सिख-सेनाओं पर आक्रमण किया। प्रतिवर्ष अप्रिल मासमें यहां एक मेला लगता है। १८६७ ई०में म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक सरकारी असपताल है।

रामनगर—बङ्गालके २४ परगना जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव।

रामनगर—चम्पारन जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २७° ६´ उ० तथा देशा० ८४° २२´ पू०के मध्य अवस्थित है। रामनगरके राजाका प्रासाद होनेके कारण नगरकी दिनों दिन उन्नति देखी जाती है। इस राजवंशके प्रति प्रसन्न हो कर १६७६ ई०में मुगल बादशाह औरङ्गजेबने राजाको उपाधि दी थी। १८६० ई०में वृटिश-सरकारने भी उसे मंजूर किया था। जङ्गलभाग ही राजाकी सम्पत्ति है।

रामनगर—युक्तप्रदेशके बरेली जिलान्तर्गत औनला तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा० २८° २२´ उ० तथा देशा० ७९° ८´ पू० औनलासे ८ मील उत्तरमें अवस्थित है। इसके आस पासमें बहुतसे प्राचीन निदर्शन पड़े हुए हैं।

रामदुर्ग—मान्द्राजप्रदेशके बेलारी जिलान्तर्गत सन्दूरराज्यका एक शैलावास। यह अक्षा० १५° ६´ उ० तथा ७६° ३०´ पू०के मध्य विस्तृत है। १८४६ ई०में मान्द्राज

गवर्मेण्टने सम्धूरके सरदारसे यह स्थान पा कर यहां रोगग्रस्त सेनादलके रहनेका स्वास्थ्यावास बनाया। रामदुर्ग पर्वतकी अधित्यकाभूमि पर यह अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई प्रायः ३१५० फुट है।

रामनतुआ (हिं० पु०) १ घोया। २ कद्दू, लौकी।

रामनवमी (सं० स्त्री०) रामस्य जन्मतिथिरूपा नवमी, मध्यपदलोपी कर्मधारयः। चैत्रमासकी शुक्ला नवमी तिथि। चैत्र पदसे चान्द्र-चैत्र समझना होगा। चान्द्रचैत्रकी शुक्ला नवमी तिथिमें रामचन्द्रका जन्म हुआ था, इसी कारण इस तिथिको रामनवमी कहते हैं। इस नवमी तिथिमें यदि पुनर्वसु नक्षत्रका योग हो, तो वह तिथि अत्यन्त पुण्यजनक होती है। यह तिथि अभीष्टदायिनी है। अतएव इस तिथिमें भक्तिपूर्वक रामकी पूजा करनी चाहिये। नवमी अष्टमीविद्धा होनेसे वर्जनीया है। नवमी तिथिमें उपवास करके दशमीमें पारण करना होता है। (तिथितत्त्व)

यह नवमी अष्टमीविद्धा होनेसे निन्दनीया है। इस अष्टमीविद्धा नवमीमें यदि पुनर्वसु नक्षत्रका योग हो, तो भी वह दिन वर्जनीय है, नक्षत्रका अति आदर होने पर वह निन्दनीय है। यह विधान वैष्णवोंके लिये जानना होगा।

अवैष्णवोंके लिये अष्टमीविद्धा होनेसे उसमें उपवासादि होगा। नक्षत्रयोग वा अयोगमें कोई हानि नहीं होगी।

"सर्वत्र नक्षत्रादरः शुद्धायां न विद्धायां, अतएव अष्टमीविद्धा नवमी सनक्षत्रापि नोपोष्या। यदा तु परदिने एकादश्यां दशमी पारणयोग्या तदा दशमीयुक्ता नवम्युपोष्या। अवैष्णवैस्तु अष्टमीविद्धैव ग्राह्या, यदा तु पूर्व्वदिने अष्टमीविद्धा नवमी परतो दशमीयुता नवमी एकादशीदिने च न पारणयोग्या दशमी तदा नक्षत्रयोगायोगेऽप्यष्टमीविद्धैव ग्राह्या, परदिने दशम्यामेव पारणम्।" (तिथितत्त्व)

यदि पूर्व्वदिन अष्टमीविद्धा नवमी तथा दूसरे दिन दशमीयुक्ता नवमी और एकादशीके दिन पारणयोग्य दशमी न रहे, तो अष्टमीयुक्त नवमीमें व्रत उपवास आदि होंगे। पुराणके मतसे जो व्यक्ति श्रीरामनवमीके दिन उपवास और व्रतादि नहीं करते हैं उन्हें कुम्भीपाक नरकमें जाना होता है। इस कारण बाल, वृद्ध और आतुरको छोड़ कर इस व्रत सबोंको करना चाहिये।

"प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढ़धीः।
उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते॥
यस्तु रामनवम्यान्तु भुङ्क्ते मोहाद्विमूढ़धीः।
कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः॥" (तिथितत्त्व)

श्रीरामनवमीके दिन शालग्राम शिलापर तुलसीपत्र द्वारा रामचन्द्रकी पूजा करनेसे कोटिगुण फल लाभ होता है।

"शालग्रामशिलायाञ्च तुलसीदलकल्पिता।
पूजा श्रीरामचन्द्रस्य कोटिकोटिगुणाधिका॥" (तिथितत्त्व)

रामनवमीव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष। चान्द्रचैत्रकी शुक्लानवमीमें यह व्रत करना होता है। रामनवमीके दिन सबेरे प्रातःकृत्यादि करके पहले स्वस्तिवाचनपूर्वक सङ्कल्प करना होगा। इसके बाद घट वा शालग्राम शिलादि पर श्रीरामचन्द्रकी पूजा की जाती है। पूजाविधानानुसार सामान्य अर्घ्य, आसनशुद्धि और गणेशादि देवपूजा करके रामचन्द्रकी पूजा करनी होती है।

इस व्रतके प्रभावसे इस लोकमें [illegible] सुखसौभाग्य और परलोकमें परमपद प्राप्त होता है।

रामनाथ (सं० पु०) रामचन्द्र।

रामनाथ—कई एक सुपण्डितोंके नाम। १ [illegible]सर्व्वस्व आदि ग्रन्थके प्रणेता मुकुन्द मुनिके गुरु। २ कारिकावलीटिप्पण, तर्कसंग्रहटिप्पण, न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीटिप्पण और मङ्गलवादटिप्पण नामक ग्रन्थ रचयिता। ३ नरपतिजयचर्याका टीकाकार। [illegible]वली नामक मेघदूतके टीकाकर्त्ता। ५ वैद्यमहोत्सव और वैद्यविनोदटीकाके रचयिता। ६ रामचम्पूके [illegible] ये रघुनाथ देवके पुत्र थे।

रामनाथ चक्रवर्त्ती—कातन्त्रवृत्तिप्रबोध नामक व्याकरणकी टीकाके प्रणेता।

रामनाथ चौबे—बृहज्ज्योतिषशेखरकी टीका, वृद्धवैद्य-सिद्धान्तभूषणकी टीका और वृद्ध[illegible] मञ्जुषाकी टीका आदिके रचयिता। इन्होंने [illegible] के प्रसिद्ध चौबेवंशमें जन्म लिया था।

रामनाथ तर्कसिद्धान्त—बंगालके नवद्वीपवासी एक प्रसिद्ध नैयायिक। 'बुनो रामनाथ' नामसे इनकी प्रसिद्धि थी। रामनाथके असाधारण पाण्डित्यका परिचय पा कर दूर दूर देशके छात्र उनके निकट पढ़ने आते थे।

रामनाथ नितान्त दरिद्र और निरावलम्ब थे। उनमें ऐसी शक्ति नहीं, कि वे छात्रोंको खर्च दे कर पढ़ावे। यह बात उन्होंने छात्रोंसे खोल कर कह भी दी थी। परन्तु छात्रगण उनके शिक्षाकौशलसे इस प्रकार मुग्ध हो गये थे, कि वे अपने खर्चसे उनके टोलमें पढ़ने लगे। उस समय नवद्वीपके प्रधान प्रधान अध्यापकमात्र ही राजा कृष्णचन्द्रसे वार्षिक वृत्ति पाते थे। उन्होंने रामनाथसे भी राजाके निकट जाने और वार्षिक वृत्ति लेनेके लिये प्रार्थना करने कहा। भिक्षालब्ध अर्थसे जीविका निर्वाह करना अत्यन्त अपमानजनक समझ इन्होंने कभी किसीसे कोई वस्तु जाँचना न की। नगरके भोगविलासमें कहीं उनका खर्चा न बढ़ जाय, इस आशङ्कासे वे नवद्वीपसे बाहर एक झोंपड़ी बना कर रहने लगे थे। उनकी सरला पतिप्राणा सहधर्मिणीको जब तरकारी दाल आदि नहीं मिलती, तब इमलीके पत्तोंको हो सिझा कर भातके साथ स्वामीको खाने देती और आप भी खाती थी। महाराज कृष्णचन्द्र रामनाथका असाधारण पाण्डित्य और सांसारिक असच्छलता मालूम कर एक दिन स्वयं उनकी कुटी पर पधारे। राजाने नैयायिक जीसे प्रार्थना की, कि मैं आपको वार्षिक वृत्ति स्थिर कर देता हूं आप उसे स्वीकार करेंगे। किन्तु रामनाथ वृत्ति लेनेसे इनकार चले गये। आखिर नवद्वीपपतिने रामनाथकी पत्नीसे प्रार्थना की। ब्राह्मणीने उस समय राजासे कहा था, 'बच्चा! मुझे तो किसी वस्तुका अभाव नहीं। मेरे पहननेका कपड़ा है, घरमें इमलीका पेड़ है। जब मेरे स्वामी हैं तब अभाव किस चीजका?' जब ब्राह्मणीको भी प्रलुब्ध न कर सके तब वे राजाके पास आये और उन्हें बहुत अनुनय विनय करके दान लेनेके लिये बाध्य किया। राजा कृष्णचन्द्रको छोड़ कर रामनाथने और भी कितने राजाओं और महाराजाओंका दान अग्राह्य किया था। वे सरल, विनयी और विद्यानुरागी थे। अहङ्कार तो उन्हें छू तक भी न गया था।

रामनाथ विद्यावाचस्पति—एक विख्यात टीकाकार। इन्होंने अभिज्ञान शाकुन्तलटीका, काव्यप्रकाशरहस्यप्रकाश, स्मृतिरत्नावली, दायभागविवेक या दायरहस्य तथा १६२३ ई०में संस्कारपद्धतिरहस्य नामक भवदेवकृतसंस्कारपद्धतिकी टीका और १६२३ ई०में त्रिकाण्डविवेक नामक अमरकोषकी टीका लिखी। इस शेषोक्त ग्रन्थमें उन्होंने कातन्त्ररहस्य, काव्यरहस्य, लीलावतीरहस्य, शब्दार्थरहस्य, समयरहस्य आदि ग्रन्थ उद्धृत किया था।

रामनाथ सिद्धान्त—षट्चक्रक्रमदीपिका नामक पूर्णानन्द कृत षट्चक्रक्रमकी टीकाके रचयिता।

रामनाथ होयसलाधीश्वर—देवगिरिके एक राजा। १२१३ से १३१० ई० तक इन्होंने राज्य किया था। ये सामवेदभाष्यके प्रणेता भरतस्वामीके प्रतिपालक थे। इनका दूसरा नाम रामचन्द्र था। यादवराजवंश देखो।

रामनाद—मान्द्राजके मदुरा जिलेका एक उपविभाग। इसमें रामनाद और शिवगङ्गा राज्य पड़ते हैं।

रामनाद—१ मान्द्राजप्रदेशके मदुरा जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। यह अक्षा० ९°६´ से १०° ६´ उ० तथा देशा० ७७° ५६´ से ७९° १९´ पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण २१०४ वर्गमील और जनसंख्या ७ लाखसे ऊपर है। इसके उत्तरमें शिवगङ्गा और तिरुमङ्गलम्, पूर्वमें तञ्जोर और पाकप्रणाली, दक्षिणमें मन्नार उपसागर और पश्चिममें तिन्नेवल्ली जिला है।

यहांके सरदार मरावर जातिके पूज्य और प्रधान हैं। वर्त्तमान पोकलूर ग्राममें उनकी राजधानी थी। १८वीं सदीमें रामनादमें राजधानीके चले आनेसे पोकलूर नगर श्रीहीन हो गया। १८वीं सदीमें सरदारोंने रामनादमें आ कर परिखा, प्राचीर और दुर्गादि द्वारा नगरको सुरक्षित किया। वह प्राचीर मिट्टीका बना है तथा २७ फुट ऊंचा और ५ फुट चौड़ा है। अभी वह प्राचीर टूट फूट गया है तथा खाई भी भर दी गई है। दुर्गके भीतर राजप्रासाद था।

१६५९ ई०में राजा तिरुमलके मरने पर दाक्षिणात्यमें विशृङ्खलता उपस्थित हुई। रामनादके सेतुपति राजगण इस समय बे रोकटोक राज्य करते थे। १८वीं सदीके आरम्भमें यहां कई बार दुर्भिक्ष पड़ा जिससे

राज्य चौपट लग गया। इसके बाद घरविवादसे रामनादराज्य छार खार होने पर आ गया। पीछे १७२६ ई०में यह राज्य दो भागोंमें बट गया। प्रकृत उत्तराधिकारिको $\frac{3}{5}$ अंश और एक विद्रोही सन्तानको $\frac{2}{5}$ अंश मिला। सामन्तराजका नाम शिवगङ्गराज था। १७६२ ई०की संधिके अनुसार आर्कटके अधीनस्थ पलिगारोंको अङ्गरेजी अधिकारमें लानेके लिये अङ्गरेज-सेनापति कर्नल मार्टिन रामनाद जीतने और राजस्व निर्द्धारण करने गये। १७६५ ई०में विद्रोही राजाको तख्त परसे उतार उन्हें बन्दीभावमें मान्द्राज भेज दिया गया। १८०३ ई०में अंगरेजोंने उक्त राजाकी बड़ी बहनके हाथ राज्यभार सौंपा। कारागारमें ही सेतुपतिकी मृत्यु हुई थी। १८७३ ई०में रामनादके अन्तिम राजा सिंहासन पर बैठे। उनकी नाबालगी तक राज्य कोर्ट आव वार्ड्सको देखरेखमें रहा। इस समय कृषिकी उन्नति करनेमें सवा आठ लाख और ऋण चुकानेमें १४ लाख रुपया खर्चा हुआ। १८८६ ई०में उन्होंने बालीग हो कर शासनकार्य्य अपने हाथ लिया। उस समय राज्यकी आय ५ लाखसे ६ लाख रुपये तक हो गई थी। करीब चार लाख रुपया जमा भी था। पांच वर्ष बाद नगद रुपया तो बिलकुल खर्चा हो गया, साथ साथ राज्य पर ऋण भी हो गया। वर्त्तमान राजा नाबालिग हैं। ट्रष्टी द्वारा शासनकार्य्य परिचालित होता है।

२ उक्त जमींदारीकी एक तहसील। जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें रामनाद, कीलकराय और रामेश्वरम नामक तीन शहर लगते हैं। यहांकी जमीन उपजाऊ न होनेके कारण कम फसल लगती है।

३ उक्त राज्यका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० ६° २२´ उ० तथा देशा० ७८° ५१´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १५ हजारके करीब है। रामेश्वर जानेके यात्रियोंके लिये यहां चट्टी है। यहांके राजाओंकी उपाधि सेतुपति है अर्थात् वे लोग ही रामेश्वर-सेतुबन्धके एकमात्र अधिकारी हैं। १७७२ ई०में जनरल स्मिथने इस नगरको अधिकार किया था। यहांका दुर्गप्राचीर अभी भग्नावस्थामें पड़ा है। दुर्गके भीतर राजभवन था।

रामनामव्रत (सं० क्ली०) रामनाम एव व्रतं। रामनामरूप व्रत, सिर्फ रामनाम जप करना।

रामनामी (हिं० पु०) १ वह चादर, दुपट्टा या धोती आदि जिस पर 'राम राम' छपा रहता है और जिसका व्यवहार रामके भक्त लोग इसलिये करते हैं जिसमें रामका नाम हरदम आंखोंके सामने रहे। इसी प्रकार कुछ कपड़ों पर कृष्ण या शिवका नाम भी छपा रहता है। २ गलेमें पहननेका एक प्रकारका हार। यह प्रायः सोनेका होता है। इसमें छोटे छोटे कई टिकड़े या पान आदि होते हैं जो आपसमें एक दूसरेके साथ जंजीरके कई छोटे छोटे टुकड़ों या लड़ोंसे जड़े होते हैं। इसके बीचमें प्रायः एक पान होता है जिसमें राम शब्द, किसी देवताकी मूर्त्ति अथवा चरणचिह्न अंकित होता है और जो पहनने पर छाती पर लटकता रहता है। इसीसे इसे रामनामी कहते हैं।

रामनारायण (सं० पु०) वैयाकरणभेद।

रामनारायण—१ अनुमितिनिरूपण, तत्त्वबोध, तत्त्वानुसन्धानटीका, पञ्चदशीटीका, भगवद्गीताप्रकाशिनी, वनमालिकीर्त्तिछन्दोमाला, विज्ञाननौकाटीका, सफलवृत्ति, सर्ववेदार्थनिर्णयटीका आदि ग्रन्थके प्रणेता। २ गुरु चन्द्रोदयकौमुदीके रचयिता। ३ प्रमिताक्षरा नामक मुहूर्त्तचिन्तामणिके टीकाकार।

रामनारायण (राजा)—पटनाके एक हिन्दू शासनकर्त्ता। नवाब अलीवर्दी खाँके जमानेमें १७५३ ई०को राजा जानकीरामकी मृत्यु होने पर नवाबने उनके चार पुत्रोंको खिलअत दे कर समवेदना प्रकट की। उन्होंने इस समय राजा दुर्लभरामको सेनापरिसंख्याकी दीवानीमें स्थायिभावसे नियुक्त किया तथा राजा रामनारायणको नायिब-नाजिम बनाया।

विहारके नायब-नाजिम राजा रामनारायण सिराजुद्दौलाके विरुद्ध कभी खड़े नहीं हुए। प्रतिपालक अलीवर्दी खाँका नाम स्मरण कर वे हमेशा नवाबके नातीकी भलाई चाहते थे। पलासी युद्धके कुछ पहले सिराज द्वारा भेजे गये फरासी सेनापति ला जब उनसे मिले, तब पटनामें राष्ट्रविप्लवकी आशङ्कासे मीरजाफरने क्लाइवके

साथ सलाह कर मेजर कूटको वहां भेजना चाहा। रामनारायणने विवाद मिटानेके लिये अंगरेजी सेनाके पहुंचनेसे पहले ही फरासी सेनादलको अयोध्या-नवाबके राज्यमें भेज दिया। रामनारायणके साथ बखेड़ा खड़ा कर उन्हें छल बलसे राज्यच्युत करना हो स्थिर हुआ था। कूटको भी वैसा ही करने कहा गया था। किन्तु रामनारायणने अधीनता स्वीकार कर ली जिससे सब गोलमाल मिट गया।

सिराजके शासनसे तंग आ कर मीरजाफर और राजा दुर्लभरामने आपसमें मेल कर लिया था, परन्तु दोनों ही अपने अपने स्वार्थसाधनमें लगे हुए थे। इस कारण मीरजाफरको जो सिंहासन मिला उससे कोई लाभ न देख कर दुर्लभराम मन्त्रणाजाल फैलाने लगे। एक तो रुपयेका अभाव, दूसरे दुर्लभरामका षड़यन्त्र, इससे कोई आशाप्रद फल न देख मीरजाफर बचावका रास्ता ढूढ़ने लगे। इसी समय अंगरेजी गुप्तचरके हाथ अलीवर्दी बेगमने जो पत्र रामनारायणके पास भेजा गया था वह संयोगवश मीरजाफरके हाथ लगा। उस पत्रमें अयोध्याके नवाबके साथ रामनारायणका एक योग हो कर मीरजाफरको निकाल भगानेका प्रस्ताव था।

वाट्सके कहनेसे मीरजाफर राजा दुर्लभरामके साथ फिरसे मेल कर बिहार जानेकी तैयारी करने लगे। राजमहलमें आनेसे आपसका मनमुटाव दूर हो गया और मीरजाफरने पटना जानेका प्रस्ताव किया। क्लाइव भी मौका देख कर पूर्वप्रतिश्रुत रुपयेका दावा कर बैठे। क्लाइवके विशेष आग्रह करने पर मीरजाफर दुर्लभरामको बुलानेके लिये वाध्य हुए। क्लाइवका अनुराध पत्र पा कर दुर्लभराम दलबलके साथ पहुंचे। अंगरेजोंके प्राप्य २३ लाख और परवर्त्ती किस्तके १६ लाख रुपयेके लिये उन्हें कहा गया। इस समय कलकत्तेके दक्षिण कम्पनीकी जमींदारीके लिये भी फरमान निकाला गया।

रामनारायणको पदच्युत कर अपने भाई मीरकाजम खाँको बिहारका नायब-नाजिम बनाना ही मीरजाफरका उद्देश था। किन्तु दुर्लभरामके परामर्शानुसार क्लाइवने नवाबको समझाया, कि रामनारायणके पास भी थोड़ी सेना नहीं है, फिर वे अयोध्याके नवाबसे भी सहायता पानेके लिये प्राणपणसे चेष्टा कर रहे हैं और यदि मराठोंसे भी सहायता मिल गई, तो आप भारी मुश्किलमें पड़ जायंगे और यदि फरासीदल आ पहुंचा, तो अंगरेजी सेनाको आत्मरक्षाके लिये कलकत्ता लौटना पड़ेगा। अतएव इस समय मेरे ख्यालसे आपसमें मेल कर लेना ही अच्छा है। मीरजाफर भी उनकी बात मान ली।

इसके बाद मीरजाफर ससैन्य पटनाको चल दिये। आगेमें दलबलके साथ क्लाइव, बीचमें दश हजार सेनाके साथ राजा दुर्लभराम और सबसे पीछे ४० हजार सेना, इस प्रकार सजधज कर मीरजाफर पटना पहुंचे। रामनारायण पहले हो से आत्मरक्षाके लिये तय्यार था। क्लाइवका मिलनात्मक पत्र पाते ही वे पहले क्लाइव और पीछे वाट्सके साथ आ कर नवाबसे मिले। इस समय मराठा द्वारा भेजे गये लोगोंने पटनेमें आ कर २० लाख रुपये बंगालके चौथके लिये दावा किया। नवाबका हाथ खाली था, इस कारण वे रामनारायणसे मेल करनेको वाध्य हुए। रामनारायणने नवाबके खेमेमें पहुंच कर उचित सम्मान दिखाया था। पटनेमें मीरजाफर खाँका दरबार बैठा। मीरन नाम मात्रका नवाब हुए। रामनारायणने डिपटी नवाब-पद पर स्थायी रह कर नवाबसे बहुमूल्य खिलअत पाई। इस उपलक्षमें बाकी रुपये आदिके लिये उन्हें ७ लाख रुपये देने पड़े थे।

१७५९ ई०में शाहजादा बङ्गाल पर चढ़ाई करनेकी इच्छासे बिहारकी सीमा पर आ धमके। उन्होंने फरासी सेनापति ला-को छात्रपुरसे सहायतार्थ बुलाया। बिहारके डिपटी नवाब रामनारायण अभी भारी ऊहापोहमें पड़ गये। नवाबी सेना या अंगरेजी सेना उस समय भी मुर्शिदाबादसे आई नहीं थी। नवाबकी जीत होनेसे उनके हकमें अच्छा न होगा, इस आशङ्कासे रामनारायणको शाहजादाके साथ मिलनेका साहस न हुआ। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो वे पटना-कोठीके अध्यक्ष आमियटसे सलाह लेने गये। वहां यही स्थिर हुआ, कि अङ्गरेजी सेना जब तक लौट न आवे, तब तक शाहजादासे मेल कर रहें, पीछे सेना आने पर जैसा अच्छा समझें वैसा करें। तदनुसार वे शाहजादाके खेमेमें

आ कर उनकी अधीनता स्वीकार करना ही चाहते थे, कि शाहजादाकी सेनाने पटनाको घेर लिया। रामनारायण कोई उपाय न देख दरवाजा बंद कर नगरकी रक्षा करने लगे।

इधर सन्धिका प्रस्ताव चलने लगा। बंगालसे सहायतार्थ सेना पहुंच गई। बस अब क्या था, रामनारायणने बड़े उत्साहित हो शाहजादा शाह आलमके साथ युद्ध ठान दिया। शाही सेना युद्धमें वीरता न दिखा सकी। शाहजादा अभी अर्थभावसे विपन्न थे। सेना भी उन्हें छोड़ भागी जा रही थी। उन्होंने क्लाइवको एक पत्र लिखा, कि यदि रामनारायण अभी कुछ रुपये दें, तो मैं यह प्रदेश छोड़ कर चला जा सकता हूं। तदनुसार मीरनको बुला कर पटना भेजा गया और क्लाइव तथा रामनारायणने जमींदारोंके साथ कुल इन्तजाम ठीक कर लिया। शाहजादाके पास १० हजार रुपये भेजे गये। अनन्तर सब सलतनत करके १६५९ ई०के जून मासमें क्लाइव कलकत्ता लौटे।

१७६० ई०में शाहआलम् दूसरी बार बङ्गाल पर आक्रमण करनेकी तैयारी करने लगे। डिपटी नवाब रामनारायणको मालूम हुआ, कि अङ्गरेजी सेनाके साथ बङ्गीय सेना आ रही है, तब उन्हें कुछ ढाढ़स हुआ और आत्मरक्षाके लिये अपनी सेनाकी भी पुष्टि करने लगे। १६वीं जनवरीको बङ्गीयसेनाके शकड़ीगलीमें पहुंचने पर नवीन बादशाह पटनाके करीब करीब आ गये। राजा रामनारायण भी बड़ी दक्षतासे कार्य कर रहे थे। वे जमींदारोंको ससैन्य बुला कर और नया सेनादल संग्रह कर पटनाके बाहर युद्धके लिये डट गये। केवल नवाबके आदेशानुसार बङ्गीय सेनाके आगमन तक ठहरे हुए थे। किन्तु छोटी छोटी लड़ाई प्रति दिन चल रही थी। रहीम खाँ रोहिलाके अधीनस्थ अग्रगामी बङ्गीय घुड़सवार दल राजाके साथ मिल गया। राजा रामनारायणने ६वीं फरवरीको मसिमपुरके विस्तीर्ण मैदानमें अपनी सेनाको आगे बढ़ानेका हुकुम दिया। घमसान युद्धके बाद रामनारायण परास्त हुए। शाह आलमके पक्षमें दोलार खाँ और आसालत खां मारे गये। जमींदार पलवान सिंह तथा दो एक और पहले ही बादशाहके दलमें मिल गये थे। रहीम खाँ और राजा मुरलीधर कामगार खाँके विरुद्ध युद्ध करके बन्दी हुए। कामगारने बर्छेसे रामनारायणको घायल कर दिया था। युद्धकी शेषावस्थामें कप्तान कक्रेन आदि कई अङ्गरेज-सेनापति जो राजाकी सहायतामें आगे बढ़े थे, युद्धक्षेत्रमें खेत रहे।

युद्ध-जयके बाद बादशाहने जितने आदमी मरे थे उन्हें कब्र देनेका हुकुम दिया। रामनारायण यद्यपि बुरी तरह घायल हुए थे, तो भी वे नगरकी अच्छी तरह रक्षा करते थे। उन्होंने संधिका प्रस्ताव करके राजाके पास दूत भेजा। उन्होंने यह भी कहा, कि घायल होनेके कारण वे बादशाहके निकट जानेमें बिलकुल असमर्थ हैं। बादशाही सेना पहले नगरके चारों ओर लूट पाट कर पीछे नगरको लूटने लगी। इस बार पहलेसे नगररक्षाका पूरा प्रबंध था जिसमें शाही-सेना कुछ न कर सकी। पीछे बङ्गीय-सेनादलके साथ युद्धमें शाही सेना परास्त हुई।

नवाब मीरकासिमने बङ्गालकी मसनद पर बैठ कर राजकर्मचारियोंसे अर्थ संग्रह करना शुरू कर दिया था। रामनारायणके अतुल ऐश्वर्यकी बात सुन कर नवाबकी अर्थपिपासा बढ़ गई। वे उनका खजाना अपनानेका उपाय सोचने लगे। बादशाहके चले जाने पर मीरकासिमने रामनारायणसे विहारप्रदेशका कुल हिसाब मांग भेजा। राजवल्लभने सोचा, कि यदि रामनारायण तख्त परसे उतारे जायं, तो नवाबी-पद उन्हींको मिल सकता है। इस आशासे उन्होंने नवाबकी खुशामद करके कागजपत्र जांचनेका भार अपने हाथ लिया। कूटनीतिज्ञ राजा रामनारायण हिसाब देनेमें टालमटोल करने लगे। उधर दो अंगरेज-सेनापतिको अपने दलमें लानेकी भी उनकी कोशिश थी। क्लाइवके साथ बन्धुत्व स्मरण करके भान्सिटार्टने कर्नल कूटको पटना जाते समय हिसाब किताबके प्रति लक्ष्य रखनेको कह दिया था। दोनों सेनापतिने रामनारायणको नवाबके उत्पीड़नसे बचानेकी सहायता की थी।

इधर मीरकासिमने अंगरेज-गवर्नरके पास राम-

नारायणकी चुगली खाई कि "रामनारायण सरकारी रुपया बहुत हड़प कर गया है और सरकारी खजाना मनमाना खर्च करता है। अतएव मेरा विचार होता है, कि उससे कुल रुपया चुकाया जाय।" भान्सिटार्टने रुपयेके लोभमें पड़ कर नवाबकी बात पर विश्वास कर लिया। भान्सिटार्ट और उनके मतावलम्बी तीन सदस्य नये नवाबका पक्षसमर्थन करनेमें जैसे अभिलाषी थे उनके प्रतिपक्षदल भी वैसे ही नये नवाबके दोष निकालनेमें लगे थे। दोनों पक्षमें मतभेद हो जानेसे रामनारायण हिसाब न दे सके। अंगरेज सेनापति और नवाबके बीच ईर्षाग्नि दिन पर दिन धधकती ही गई।

शाहआलमके लौटने पर नवाब पटनादुर्गमें बादशाहके नाम खुतवापाठ और मुद्राका प्रचार करेंगे, इस प्रकार सलाह कर उन्होंने अंगरेजसेनापतिसे कहा, कि दुर्गद्वार परसे सिपाही और अंगरेज पहरुओंको अलग कर रहे हैं। कूटने तदनुसार कार्य्य न कर कहला भेजा, 'ये लोग नवाबकी सेना हैं, नवाबकी आज्ञा पालन करनेको हमेशा तय्यार हैं।' नवाबने इस अपमानजनक अवस्थामें दुर्गमें प्रवेश कर खुत्वा पढ़ना वा मुद्राप्रचार करना अच्छा न समझा। रामनारायणकी ओरसे सेनापतिको समझाया गया है, कि नवाबने पटना पर बलपूर्वक अधिकार करनेका सङ्कल्प किया है। नवाबके गहरी रातको कुछ सिपाही ले कर दूसरी जगह चले जानेसे सेनापतिका संदेह और भी मजबूत हो गया। वे बड़ी सावधानीसे नवाबकी गतिविधिका पर्य्यवेक्षण करने लगे। कूटके व्यवहारसे मीरकासिमने अपनेको अपमानित समझा। उन्होंने सेनापतिके दुर्व्यवहार और रामनारायणकी बातको रञ्जित कर भांसिटार्टको विचलित कर दिया और यह लिख भेजा, कि रामनारायण बिना नवाबकी अनुमतिके सिक्का ढालता और उसका प्रचार करता है। अतएव सूबेदारी पद यदि मुझे मिले, तो मैं रामनारायणको पदच्युत कर उससे हिसाब किताब जल्द ले सकता हूं।

गवर्नर भांसिटार्टके आदेशसे पटनाकोठीके अध्यक्ष मगेयरकी देखरेखमें तथा कप्तान कार्ष्टेयरकी अधिनायकतामें एक दल अंगरेजी-सेना और रख कर कूट और कर्नाक कलकत्ते आये। अंगरेजी-सेनाके पटनासे जाते ही मीरकासिम कागजपत्रका हिसाब देनेके लिये रामनारायणको तंग करने लगे। हिसाब साफ साफ न दे सकनेके कारण रामनारायण कैद किये गये। पीछे तरह तरहका कष्ट दे उनके घरसे ७ लाख रुपयेकी सम्पत्ति ले ली। आखिर राजाके बंधुबांधवोंको भी उन्होंने परेशान किया और फिर भी उनसे ७ लाख रुपये वसूल किये। जिन्होंने कुछ भी रामनारायणको मदद पहुंचाई थी उन पर जुल्म किया गया। रामनारायणके मित्र जागीरदार राजा सुन्दरसिंह और दीवान गङ्गाविष्णु, रामनारायणके भाई धीराजनारायण तथा चराध्यक्ष राजा मुरलीधर अशेष यंत्रणा पा कर वन्दिवेशमें मुर्शिदाबाद भेजे गये। पटनेके कोतवाल ईशा खाँ और प्रधान कोठीवाल मनसाराम शाहु तथा सभी धनी नागरिकोंका धनरत्न नवाबके हाथ लगा। हतभाग्य रामनारायण पटनेमें बन्दी हुए और उनका सर्वस्व नवाबने छीन लिया।

उधुआनालाके किनारे जब अंगरेजोंके हाथ मीरकासिम परास्त हुए उसके कुछ दिन पहले १७६३ ई०के अगस्त मासमें नवाबने रामनारायणके गलेमें बालूसे भरा घड़ा बांध कर गङ्गामें डुबा देनेका हुकुम दिया। उसके साथ साथ और भी कितने व्यक्ति नवाबकी कठोर दण्डाज्ञासे यमपुर सिधारे थे।

राजा रामनारायण एक विशेष शिक्षित मनुष्य थे। पारसी भाषामें उनका अच्छा दखल था। उनकी बनाई पारसी और उर्दू कविता आज भी पाई जाती है। कवित्वशक्तिके परिचयस्वरूप उन्होंने 'मौजून' की उपाधि पाई थी।

रामनारायणजीव—एक राजाका नाम।

रामनारायण तर्कपञ्चानन—नवद्वीपके रहनेवाले एक प्रसिद्ध नैयायिक।

रामनारायण तर्करत्न—एक वैदिक ब्राह्मण। कलकत्ताके दक्षिण २४ परगनेके हरिनाभि ग्राममें १७४५ शकको इनका जन्म हुआ था। रामधन शिरोमणि इनके पिता थे। कुछ समय इन्होंने ग्रामस्थ चतुष्पाठीमें संस्कृत पढ़ा। पीछे वे कलकत्तेके संस्कृत कालेजमें भर्त्ती हुए। वहां

पढ़ना समाप्त कर दो वर्षके भीतर ही उसी विद्यालयमें शिक्षकका काम करने लगे। १८८५ ई०में इनका देहान्त हुआ।

तर्करत्न महाशयने कालेजमें पढ़ते समय १८५२ ई०में पतिव्रतोपाख्यान तथा विद्यालय छोड़नेके एक वर्ष बाद अर्थात् १८५४ ई०में कुलीनकुलसर्वस्वकी रचना की। इसके बाद इन्होंने क्रमशः रत्नावली, वेणीसंहार, शकुन्तला' नवनाटक, मालतीमाधव और रुक्मणीहरण नामक छह नाटक बनाए हैं जो आज तक प्रकाशित नहीं हुए हैं।

प्रतिव्रतोपाख्यान, कुलीनकुलसर्वस्वनाटक और नवनाटक किसी प्राचीन पुस्तकके आधार नहीं लिखे गये है, ये सब उनके स्वकपोलकल्पित हैं। प्रथमोक्त प्रबंध और द्वितीय नाटककी रचना कर इन्होंने रङ्गपुरके जमींदारसे पारितोषिक पाया था।

रामनारायण भट्टाचार्य—कारिकावली नामक व्याकरणके प्रणेता तथा कृष्णरामके पुत्र।

रामनारायण शर्मा—सारस्वतप्रक्रियाटीकाके रचयिता।

रामनिधि राय—एक विख्यात कवि। १७४१ ई०में पाण्डुआके पास चंपाता गांवमें इनका जन्म हुआ। पीछे ये कलकत्तेमें रहने लगे। १८३४ ई०में उनकी मृत्यु हुई। इनके बनाये संगीत निधुका टप्प नामसे प्रसिद्ध है।

निधिराम गुप्त देखो।

रामनिधि शर्मा—प्रार्थनाशतकके प्रणेता तथा बलराम शर्माके पुत्र।

रामनृपति (सं० पु०) राजभेद।

राममौमी (हिं० स्त्री०) रामनवमी देखो।

रामपति—सदाचारक्रमके रचयिता।

रामपर्दा—बम्बई प्रेसिडेन्सीके झालावार प्रांतके अन्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य।

रामपा—मन्द्राज-प्रदेशके गोदावरी जिलेके अन्तर्गत एक पहाड़ी भूभाग। यह अक्षा० १७° १६' से १७ ४१' उ० तथा देशा० ८१° ३२' से ८१° ५८' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ८०० वर्गमोल है।

यह पहाड़ी प्रदेश गोदावरी नदीके उत्तरी किनारे राजमहेन्द्रोसे १० कोस उत्तरसे ले कर शिलेरु नदी तक फैला हुआ है। इस वन्य प्रदेशसे वृटिशसरकारको अभी (१२३८) रु० राजस्व मिलता है। पहले यह स्थान किसी मनसबदारको जागीरमें दिया गया था। उसे शासनकार्य चलानेमें असमर्थ देख प्रजा बागी हो गई। १८५८ ई०से लगायत १८६२ ई० तक विद्रोहीदलने घोर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। अंगरेज-राजने मनसबदारकी सहायतामें एक दल सेना भेजी। १८७९ ई०में यहां विद्रोहको पुनः सूचना हुई। १८८० ई०के दिसम्बर मास तक विद्रोहिदल नाना स्थानोंमें अत्याचार करता रहा। आखिर दलपति चेन्द्रियाके मारे जाने पर विद्रोहिदल तितर-बितर हो गया। मनसबदार बन्दी हो कर गोपालपुर भेजा गया। उसकी जागीर अंगरेजोंने जब्त करली।

स्थानीय शैलमालाकी ऊंचाई प्रायः ४ हजार फुट है। सबसे ऊंची चोटी दमकोण्डा समुद्रके तटसे ४४७८ फुट ऊंची है। यहां कोया और रेड्डी जातिका वास है। तेलगू और कोइ उनकी भाषा है।

रामपाइली—मध्यप्रदेशके भाण्डारा जिलान्तर्गत एक नगर।

रामपात (हिं० पु०) नीलकी जातिकी एक प्रकारकी झाड़ी। यह आसाम देशमें होती है और इसकी पत्तियों तथा छालसे वहांके लोग रंग बनाते हैं।

रामपाल—पूर्ववङ्गकी प्राचीन राजधानी। वङ्गके सेनवंशीय राजा बल्लालसेन यहां राज्य करते थे। प्राचीन विक्रमपुर सरकार वा वर्त्तमान ढाका जिलेके अन्तर्गत मुन्सीगञ्ज महकमेसे २ कोस पश्चिम अवस्थित है औ अक्षा० २३° ३८' उ० तथा देशा० ९०° ३२' १०" पू०के मध्य पड़ता है। अभी यह नगर एक छोटे गांवमें परिणत हो गया है, प्राचीन समृद्धि अब न रही। केवल रामपाल दिग्गी और कुछ विध्वस्त ईटोंकी मीनार उस प्राचीन कीर्त्तिकी घोषणा कर रही हैं। उन सब प्राचीन मीनारोंसे लोग ईंटे ला कर घर बनाते हैं।

वङ्गाधिप बल्लालसेनने रामपालमें राज्य किया था। किन्तु गौड़पति बल्लालसेन और उनके पुत्र लक्ष्मणसेन गौड़नगरमें तथा परवर्त्ती राजगण नदिया राजधानीमें आ कर राज्य करते थे। विस्तृत विवरण बल्लालसेन और सेनराजवंश शब्दमें देखो।

अभी रामपाल और उसके उपकण्ठस्थित अबदुल्ला-

पुरमें जो सब ध्वंसावशेष पड़े हुए हैं उनमें स्थानीय हिन्दू-राजाओंके कीर्त्तिविषयक कितने प्रमाण मिलते हैं। स्थानीय एक बड़ी मीनार बल्लालसेनका प्रासाद कहलाती है। रामपालनगर और उसके सीमांतवर्त्ती अपरापर ध्वंसराशि खोद कर यदि वहांकी ईंट और दीवार आदि देखो जाय, तो मालूम पड़ेगा कि, एक समय यहां बहुत बड़े बड़े महल थे।

अभी जो सब ध्वस्तप्राय कीर्त्तिराशि स्थानके पूर्व-गौरवकी घोषणा करती है उनमें मुसलमान फकीर बाबा आदमकी मसजिद उल्लेखनीय है। वह बादशाह फतेशाह बिन् सुलतान महमूदके जमाने (१४७५ ई०)-में बनाई गई थी। मसजिदमें दो बड़े बड़े पत्थरके खंभे हैं जिन्हें लोग बल्लालसेनकी गदा कहते हैं। उसकी गठन-प्रणाली देखनेसे अनुमान होता है, कि वह हिन्दूमन्दिरको तोड़ फोड़ कर बनाई गई है। मसजिद अभी टूटी फूटी अवस्थामें पड़ी है।

बाबा आदमके सम्बन्धमें एक प्रवाद इस प्रकार प्रचलित है। अबदुल्लापुरके निकट कमाई-चक्रग्राममें एक मुसलमान रहता था। उसे कोई संतान न होनेके कारण वह हमेशा दुःखित रहा करता था। एक दिन एक फकीर उसके यहां भीख मांगने आया। उसने यह कह कर लौटा दिया, कि अल्लाहने मुझे एक भी सन्तान नहीं दिया है, इसलिये मैं किसीको भिक्षा नहीं देता। अल्लाहकी निन्दा सुन कर फकीरने उसे आशीर्वाद दिया, कि तुम्हें एक पुत्र होगा। जाते समय वह यह भी कह गया था, कि पुत्र होने पर अल्लाहके उद्देशसे एक बैलको बलि देनी होगी।

कुछ समय बाद उसके एक पुत्र हुआ। जब वह बैलकी बलि देनेको तैयार हुआ, तब गांवके लोगोंने उसे रोका। आखिर गांवके बाहर एक जंगलमें जा कर उसने बलिदान दिया। खानेयोग्य मांस ले कर वह घर लौटा। राहमें आते समय एक चीलने झपट्टा मारा और वह मांस ले कर बल्लालसेनके महलके सामने गिरा दिया। राजा बल्लालको जब कुल हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने गोहत्याकारीके पुत्रका बध करनेका हुकुम दिया। मुसलमान पुत्रको ले कर रातोरात भागा और मक्कामें हजरत आदमके सामने आ कर अपना दुखड़ा रोआ।

विधर्मीके अत्याचारसे प्रपीड़ित इस्लामधर्मावलम्बियोंकी रक्षाके लिये हजरत आदम ६।७ हजार शिष्य ले कर रामपाल आये। बल्लालसेनके साथ फकीरका घोर युद्ध हुआ। युद्धमें फकीरकी हार हुई। युद्ध आरम्भ होनेके पहले बल्लालने अपने घरके सामने एक अग्निकुण्ड खुदवा कर राजकुलाङ्गनाओंसे कहा था, "मेरे निकटसे यह कबूतर यदि तुम लोगोंके पास आवे, तो जानना कि मैं युद्धमें मारा गया। उस समय तुम सभी अग्निकुण्डमें कूद कर अपने सतीत्वकी रक्षा करना।" बल्लाल फकीरको मार कर ज्यों ही स्नान करनेको पुष्करिणीमें पैठे, त्यों ही उनके कपड़ेमें लपेटा हुआ कबूतर उड़ गया। कबूतरके राजमहलके सामने पहुंचते ही राजपुरकी कुलाङ्गनाओंने अग्निकुण्डमें कूद कर प्राणत्याग किया। घर लौट कर जब बल्लालसेनने देखा, सभी गृहस्थकुलनारियोंने प्राण विसर्जन कर दिये हैं, तब आप भी उसी अग्निकुण्डमें कूद कर भवसागरसे पार उतरे। वही हजरत आदम पीछे बाबा आदम नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके मकबरेके ऊपर वर्त्तमान मसजिद खड़ी है। लोग आज भी उस गड्ढेको बल्लालका अग्निकुण्ड बतलाते हैं। इस उपाख्यानके बल्लाल सेनवंशीय गौड़ाधिप बल्लालसे भिन्न हैं।

रामपालदिग्गीकी लम्बाई १ मील और चौड़ाई करीब ५०० गज है। सुना जाता है, कि बल्लालसेनके माताके निकट प्रतिश्रुत हो कर यह पुष्करिणी खुदवाई थी। फिर किसीका कहना है, कि उनके मामाके नाम पर इस पुष्करिणीका नामकरण हुआ था। बहुतेरे पालवंशीय किसी राजाके नामानुसार ही इस पुष्करिणीका नामकरण स्वीकार करते हैं। कोदालधोआदिग्गीकी लंबाई सात सौ हाथ और चौड़ाई पांच सौ हाथ है। राजा हरिश्चन्द्रकी दिग्गी प्रायः सूखी रहती है। माघीपूर्णिमाके दिन उस पुष्करिणीमें जल रहता है। रामपालदिग्गीके किनारे अक्षय गजरियावृक्ष है। बहुत दिनोंसे वह वृक्ष एक ही भावमें खड़ा है। हिन्दूलोग उस वृक्षको पुण्यमय अक्षय बटके समान समझते हैं। प्रवाद है, कि एक

फकीरने वृक्षके गुरुत्वकी अवज्ञा कर उसकी एक जड़ काट डाली थी, इससे रक्तवमन हो कर उसकी मृत्यु हुई। प्रतिवर्ष चैत्र शुक्लाष्टमीको यहां एक मेला लगता है और लोग वृक्षके नीचे पूजा करते हैं।

बाबा आदमकी मसजिदके पास ही काजीको मसजिद है। उस मसजिदके बरामदे पर बहुत-सी हिन्दूदेवदेवियोंकी मूर्त्ति खड़ी हैं।

रामपुर (सं० पु०) १ स्वर्ग, वैकुण्ठ। २ अयोध्या।

रामपुर—युक्तप्रदेशके रोहिलखण्ड विभागके अन्तर्गत एक देशी सामन्तराज्य। यह अक्षा० २८° २५´ से २६° १०´ उ० तथा देशा० ७८° ५२´ से ७६° २६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८६३ वर्गमील है। इसके उत्तरमें नैनीताल जिला, पूरबमें बरेली, दक्षिणमें बदाउन और पश्चिममें मुरादाबाद है।

यह स्थान समतल और उर्बरा है। कोशिला और नाहल नदीसे जलका काम चलता है। दक्षिण रामगङ्गा नदी बहती है।

शाहआलम और हुसेन खाँ नामक दो भाई पहले इस प्रदेशमें आ कर बस गये। १७वीं सदीके आखिरमें मुगलराजसरकारमें नौकरी करके इनका भाग्य चमक उठा। शाह आलमके पुत्र दाऊद खाँने महाराष्ट्रयुद्धमें बड़ी वीरता दिखाई थी। पुरस्कारमें उसे बदाउनके निकट एक जागीर मिली। उसके दत्तकपुत्र अलीमहम्मदने १७१६ ई०में नवाबकी उपाधिके साथ साथ रोहिलखण्डका अधिकांश स्थान जागीरस्वरूप पाया था।

अलीमहम्मदकी बढ़ती पर अयोध्याका सूबादार नवाब सफदरजङ्ग जलने लगा। किसी कारणवश नवाब भी उससे अप्रसन्न रहते थे। इस कारण १७४६ ई०में उसको कुल जागीर छीन ली गई और उसे छह मास दिल्लीमें कैद रखा गया। इसके बाद वह सरहिन्दका शासनकर्त्ता हो कर वहां गया। अहमद अबदालीने इसी समय रोहिलखण्ड पर चढ़ाई कर दी। राज्यशासन विशृङ्खल हो गया। अच्छा मौका देख कर वह रोहिलखण्ड आया और अपनी धाक जमा कर वहांका शासन करने लगा। सम्राट् महम्मद शाहके पुत्रने उसे शक्तिशाली जान मेल कर लिया और उसे उस प्रदेशका राजा स्वीकार किया।

अली महम्मदकी मृत्युके बाद उसके लड़कोंने रोहिलखण्डराज्य आपसमें बांट लिया। छोटे लड़के फैजउल्लाको रामपुर कोटेराको जागीर मिली। महाराष्ट्र-सेनादलके आक्रमणसे तंग आ कर रोहिला-सरदारोंने अयोध्याके नवाब-वजीरसे सहायता मांगी। पीछे ४० लाख रुपये ले कर नवाबवजीरने सहायता की। रोहिला सरदार एक बारमें कुल रुपये न दे सके, इस कारण दोनोंमें अनबन हो गया। आखिर वजीरने रोहिलोंके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। शाहजहानपुर जिलेके अन्तर्गत मीरन-कटरा नामक स्थानमें दोनोंके बीच मुठभेड़ हुई। रणक्षेत्रमें रोहिला सरदार हाफिज रहमत खाँके मारे जाने पर अफगान हार कबूल कर नौ दो ग्यारह हुए। अन्तमें १७७४ ई०में अङ्गरेजोंने बीचमें पड़ कर मेल करा दिया। शर्त्त यह ठहरी, कि नवाब फैजउल्ला खाँको रामपुर राज्य वापस मिले और वह वजीरको जरूरत पड़ने पर सेनासे सहायता करे। अयोध्याधिपतिने पीछे सैन्यसाहाय्य लेनेके बदलेमें नगद १५ लाख रुपये ले लिये। फैजउल्लाके मरने पर १७६३ ई०में उसके दोनों पुत्र राज्याधिकार ले कर झगड़ने लगे। पीछे छोटा भाई बड़ेका चुपके काम तमाम कर जागीरी-मसनद पर बैठा। इसके बाद अङ्गरेजराजने अयोध्याके नवाबका सैन्यसाहाय्यमें राजा लेनेवालेको उपयुक्त दण्ड दे कर मृतके पुत्र अहमद अली खाँको रामपुर राज्यमें प्रतिष्ठित किया।

१८०१ ई०में रोहिलखण्ड अङ्गरेजोंको सुपुर्द किया गया। १८५७के गदरमें यहांके नवाब महम्मद यूसुफ अली खाँने अङ्गरेजोंके प्रति विशेष राजभक्ति दिखलाई थी। इस पुरस्कारमें उन्हें १२८५२०) रु० आयकी एक जागीर, सम्मानसूचक उपाधि और सलामी तोपें मिलीं। १८६४ ई०में यूसुफ अलीके पुत्र नवाब महम्मद कलब अली खाँ जी, सी, एस, आई, सी, आई, ई उपाधिके साथ राजा हुए। दिल्ली-दरबारमें उन्हें ध्वज छत्र और सलामी तोपें मिली थीं। उनकी मृत्युके बाद मुस्तक अली १८८७ ई०में तख्त पर बैठे। उन्होंने केवल दो वर्ष राज्य किया था। वर्त्तमान नवाब हमीद अली खाँ बहादुर हैं। १६०८ ई०में इन्हें जी, सी, आई, ई, की उपाधि मिली थी।

इस राज्यमें ६ शहर और ११२० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या पांच लाखसे ऊपर है। मक्का, गेहूं, धान और ईख यहांकी प्रधान उपज है।

विद्याशिक्षामें यह राज्य बहुत पिछड़ा हुआ है। पर आज कल लोगोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। यहां एक अरबी कालेज (Arabic college) भी है जो राज्यके खर्चसे परिचालित होता है। इस कालेजमें भारतवर्षके दूर दूर देशोंसे यहां तक, कि मध्य एशियासे भी छात्र पढ़ने आते हैं। रामपुर शहरमें अङ्गरेजी स्कूल और शिल्प स्कूल है। स्कूलके अलावा १५ अस्पताल भी हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २८° ४६′ उ० तथा देशा० ७६° २′ पू० कोशी या कोशिलाके बाएं किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ८० हजारके करीब है। मुसलमानकी संख्या सबसे ज्यादा है। यहांके महलोंमें नवाबका महल, जुमा-मसजिद, सफदरगञ्ज उद्यान, दीवान ई-आम, खुर्शिद मञ्जिल, मच्छी-भवन और जनाना उल्लेखनीय है। जुमा मसजिद नवाब कलब अली खांने बनवाई थी। कहते हैं उसके बनानेमें तीन लाख रुपये खर्च हुए थे। शहरमें जेल, पुलिस स्टेशन, हाई स्कूल, तहसीली मदर्से और जनाना अस्पताल है।

यह नगर विशेष समृद्धिशाली और वाणिज्यप्रधान है। यहांका खेश नामक रेशमी वस्त्र भारतवर्षके भिन्न भिन्न स्थानोंमें जाता और अधिक मोलमें बिकता है।

रामपुर—युक्तप्रदेशके शहारानपुर जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २९° ४८′ उ० तथा देशा० ७७° २८′ पू० शहारनपुरसे दिल्ली जानेके रास्ते पर अवस्थित है। जनसंख्या ८ हजार है। हिन्दू और मुसलमानकी संख्या करीब करीब समान है। राजा रामने इस नगरको बसाया। उन्हींके नामानुसार नगरका रामपुर नाम हुआ है। पीछे सैयद सलार मसाउदने इस नगरको जीता। यहां नाना शिल्पपरिपूर्ण एक जैनमन्दिर है। मुसलमान साधु शेख इब्राहिमके मकबरेके नजदीक हर एक साल जेठके महीनेमें एक मेला लगता है। यहांके जैन-महाजन सरोगी कहलाते है।

रामपुर—युक्तप्रदेशके एटा जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। अलीगञ्जसे ४॥० मील उत्तरमें होनेके कारण और मक्कामें हजरत एक वाणिज्यकेन्द्ररूपमें गिना गया है। राठोरवंशीय कन्नौज-राजवंशधर राजा रामचन्द्रने १४५६ ई०में यह नगर बसाया। ये राजा रामसहायसे १० पीढ़ी नीचे थे।

रामपुर—पञ्जाबप्रदेशके बुसहर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ३१° २७′ उ० तथा देशा० ७७° ४०′ पू० के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या हजारसे ऊपर है। नगरके चारों ओर पर्वत है, इस कारण यहां बहुत गर्मी पड़ती है। रामपुरके राजा शीतकालमें 'यहीं' आ कर रहते हैं। प्रसिद्ध 'रामपुरी चादर' नामक एक प्रकारका रेशमी कपड़ा इसी शहरमें बनता है। गुरखाओंके आधिपत्यकालमें इस नगरकी बड़ी क्षति हुई थी। अंगरेजोंके दखलमें आनेके बाद इसकी उन्नति हुई है। नगरके उत्तरपूर्व कोणमें राजप्रासाद अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई ३३०० फुट है।

रामपुर—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण १६० वर्गमील है। सम्बलपुरके राजा छत्र शाने १६३० ई०में प्राणनाथ नामक एक राजपूतको यह जमींदारी प्रदान की। १८३५ ई०में सुरेन्द्र शा और उद्वन्त शा नामक दो भाईयोंने राजा नारायण सिंहके कुछ आदमियोंको मरवा डाला था। इस कारण वे यावज्जीवन कारादण्डसे दण्डित हो हजारीबागमें भेजे गये। १८५७ ई०में विद्रोहीदलने उत्तेजित हो कर इन्हें मुक्त कर दिया। इस समय समस्त सम्बलपुरमें विद्रोहकी सूचना हुई थी। दरियास सिंह अपनी सेना ले कर सुरेन्द्र शाके साथ विद्रोहमें मिल गये। इस कारण अङ्गरेजोंने उनकी अधिकृत सम्पत्ति जब्त कर ली। पीछे अङ्गरेजोंकी अधीनता स्वीकार करने पर उन्हें सम्पत्ति लौटा दी गई। १८७० ई०में उनका देहान्त हुआ। पीछे उनके पौत्र भक्तावर सिंह तख्त पर बैठे। रामपुरग्राममें सरदारका वासभवन और विद्यालय आदि प्रतिष्ठित हैं।

रामपुर—अयोध्याप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक परगना और बड़ा गांव। बिसेन क्षत्रियवंशीय रामपुरके राजा और कान्हपुरिया क्षत्रियवंशीय काइथलराज यहांके अधिकारी हैं।

रामपुर—१ बम्बईके महीकांथके अंतर्गत एक छोटा राज्य। २ बम्बईके रेवाकाण्ठके अन्तर्गत एक छोटा सामन्त-राज्य।

रामपुर-भानपुर—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत दो ग्राम।

रामपुर-बोआलिया—१ राजसाही जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २४°७´ से २४° ४३´ उ० तथा देशा० ८८° १८´ से ८८° ५८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६१० वर्गमील और जनसंख्या ६ लाखके करीब है। इसमें रामपुर-बोयालिया नामका एक शहर और २२७१ ग्राम लगते हैं। प्रति वर्ष खेतरीमें एक बड़ा मेला लगता है।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २४° २२´ उ० तथा देशा० ८८° ३६´ पू० पद्माके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या बीस हजारसे ऊपर है। हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ५१, मुसलमानको ४८ और ईसाईकी १ है। १८वीं सदीके आरम्भमें ओलन्दाजोंने यहां आ कर कोठी खोली। पीछे अंगरेजोंने यहां अपनी गोटी जमाई। राजसाही देखो।

रामपुर-भानपुर—१मध्यभारतके इन्दोर राज्यका एक जिला। प्राचीन जिला रामपुर और भानपुर ले कर यह जिला बना है। यह अक्षा० २३° ५४´ से २५°७´ उ० तथा देशा० ७४° ५७´ से ७६°३६´ पू०के मध्य विस्तृत है। १७वींसे १६वीं सदी तक यहां बौद्ध-प्रभाव जोरों फैला था। धमनार, पोलादोनगर और खोलवीमें बौद्धगुहा आज भी देखनेमें आती है। ६वीं से १४वीं शताब्दी तक यह स्थान परमार राजपूतोंके अधिकारमें रहा। उस समय यहां बहुतसे जैनमन्दिर बनवाये गये थे। १५वीं सदीमें यह मालवाके मुसलमानोंके हाथ लगा। अकबरके समय इस जिलेका कुछ अंश मालवाके सूबा और कुछ अजमेरके अधीन था। पीछे चन्द्रावत ठाकुरोंने इस पर कब्जा किया। वे उदयपुरके राणा राहुपके दूसरे लड़के चन्द्रके वंशधर थे। १७२६ ई०में जयपुरके सवाई जयसिंहके द्वितीय पुत्र माधो सिंहको सपुर्द किया गया। १७५२ ई०में यह होलकरके हाथ लगा। यशोवन्तराव होलकरने महेश्वरसे अपनी राजधानी उठा कर कर यहीं पर लाये।

इस जिलेमें ४ शहर और ८६८ ग्राम हैं। इनमेंसे रामपुर शहर सबसे बड़ा है। जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है।

२ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २४° २८´ उ० तथा देशा० ७५° २७´ पू०के मध्य अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई १३०० फुट है। जनसंख्या ८ हजारसे ऊपर है। भील सरदार रामसे रामपुर नाम पड़ा है। १५वीं सदीमें राम चन्द्रावतवंशके ठाकुर शिव सिंह द्वारा मारा गया था। रामके वंशधर आज भी अपने पूर्व आधिपत्यके चिह्नस्वरूप चन्द्रावत वंशके सरदारके कपालमें टीका लगाते हैं। कुछ दिनों तक यह शहर उदयपुरके राणाके अधिकारमें रहा। पीछे १५६७ ई०में अकबरके सेनापति आसफ खांने इस पर दखल जमाया। महाराष्ट्र-अभ्युदयके समय यह यशोवन्तराव होलकरके हाथ आया। यहां चांदीकी अच्छी अच्छी चीजें तथा तलवार बनाई जाती है। शहरमें स्टेट-डाकघर, जेल, पुलिस-स्टेशन, स्कूल और एक अस्पताल है।

रामपुर-मथुरा—अयोध्या-प्रदेशके सीतापुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह चौका और गोग्रा नदीके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। नगर बहुत समृद्धिशाली है।

रामपुरहाट—१ वीरभूम जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २३° ५२´ से २४° ३५´ उ० तथा देशा० ८७° ३५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६४५ वर्गमील और जनसंख्या साढ़े तीन लाखसे ऊपर है। इसमें रामपुरहाट नामक एक शहर और १३३६ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त जिलेका एक नगर और उपविभागका विचार-सदर। यह अक्षा० १८° ४३´ से १६° ३८´ उ० तथा देशा० ६३° ३०´ से ६३° ५६´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ४ हजारके करीब है। हावड़ा-स्टेशनसे यह १३६ मील दूर है। यहां सरकारी अदालत और छोटा कारागार है जिसमें सिर्फ १८ कैदी रखे जाते हैं। इष्ट-इण्डिया रेलवेका स्टेशन हो जानेसे वाणिज्यकी बड़ी सुविधा हो गई है।

रामपुरा—राजपूतानेके टोङ्क राज्यान्तर्गत एक प्राचीरवेष्टित नगर। यह अक्षा० २५° ५७´ उ० तथा देशा० ७६° ७´ पू०के मध्य अवस्थित है। अभी यह अलीगढ़-रामपुरा

कहलाता है। १८०४ ई०में अंगरेजराजने इस नगरको अधिकार किया। १८०५ ई०में यह होलकरराजको दे दिया गया। पीछे १८१८ ई०में टोङ्कराजवंशके प्रतिष्ठाता अमीर खाँको दान किया गया।

रामपुरा—बम्बईप्रदेशके रेवाकान्थके अन्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य।

रामपुरा—राजपूतानेके उदयपुरराज्यके पश्चिम-सीमान्तवर्त्ती एक प्राचीन नगर। यह रुद्रांगिरिसङ्कटके ऊपर अवस्थित है। यहां दो प्राचीन और प्रसिद्ध जैनमंदिर विद्यमान हैं। लगभग १४४० ई०में राणा कुम्भके समय धर्मशेठ नामक एक वणिक्‌ने पारशनाथ मूर्त्तिकी प्रतिष्ठाके लिये ७५ लाख रुपया खर्च करके ये दोनों मन्दिर बनवाये थे। उनमेंसे एक मन्दिर बड़ा और एक छोटा है। बड़े मन्दिरकी लम्बाई २६० फुट और चौड़ाई २४४ फुट है। उसके चारों ओर जो दीवार खड़ी है उस पर ४६ देवमूर्त्ति सन्निवेशित हैं। पारशनाथ मूर्त्तिके सामने अच्छी तरह चित्रित एक बड़ा गुम्बज है। उसमें इन्द्रादि बारह देवमूर्त्ति इस प्रकार संलग्न हैं, कि देखनेसे मालूम होता है, कि वे छत परसे झूल रही हों। नीचे एक गणेशकी मूर्त्ति है। बीचमें भास्करशिल्पनैपुण्य ४२० स्तम्भके गोल चबूतरे हैं। उसके एक एक कोणमें एक एक पार्श्वनाथ-प्रतिमूर्त्ति खोदित है। इसके सिवा यहां जगह जगह अनेक पार्श्वनाथमूर्त्ति पड़ी देखी जाती हैं।

प्रतिवर्ष चैत्र और आश्विनमासमें मंदिरके सामने मेला लगता है। उसमें १० हजारसे ऊपर मनुष्य इकट्ठे होते हैं।

रामपूग (सं० पु०) रामः रमणीयः पूगः। गुवाकविशेष, चिकनी सुपारी। पर्याय—कामीन, मुनिपूग, सुरेवट। (त्रिका०)

रामपूर्व्वतापनीय (सं० क्ली०) रामतापनीय उपनिषद्‌का पूर्वांश।

रामप्रसाद—तिथिनिर्णय, यज्ञसिद्धान्तसंग्रह और रत्नाकर-दीधितिके रचयिता।

रामप्रसाद तर्कालङ्कार—वैषम्यकामुदी नामक अमरकोषकी टीकाके प्रणेता।

रामप्रसाद तर्कवागीश (सं० पु०) एक विख्यात पण्डित।

रामप्रसादराय (लाला)—बङ्गालके एक प्रतिष्ठापन्न वैद्य-सन्तान। इनके पिताका नाम कृष्णराय था। रामप्रसाद मुर्शिदाबादके नवाबके यहां पेशकार थे। इस समय इन्होंने 'लाला' की उपाधि पाई थी। पीछे ढाकाके नवाबके दीवान और मन्त्रिसभाके सदस्य राजवल्लभने इन्हें अपना पारिषद् बनानेकी इच्छासे नवाब-सरकारके यहांसे अलग कर अपना मन्त्री बनाया था।

बाखरगञ्जके अन्तर्गत मेहेन्दिगञ्ज और मधिपुर-बन्दर लाला रामप्रसादके अधिकारमें था। रेनलके प्रधान मानचित्रमें ये दो स्थान बड़े बन्दररूपमें दिखाये गये हैं। इसके सिवाय मादारीपुरके निकट परगनेमें सेलापट्टी और झालकाटीके समीप मधिपुरका बड़ा बंदर और विक्रमपुर आदि तालुक इन्हींके अधिकारमें था। बङ्गालके बोजेरगो-उमेदपुरके अन्तर्गत होसनाबाद वा औलसा ग्राममें तथा मेहन्दिगञ्जके अन्तर्गत बहादुर ग्राममें ये दो देवमूर्त्ति स्थापन कर गये हैं। ये बड़े दानी और प्रतिष्ठित थे।

रामप्रसाद विद्यालङ्कार—एक पण्डित। इन्होंने अपने पिता रामनारायणकी बनाई कारिकावलीटीका लिखी। इनके पितामहका नाम था कृष्णराम।

रामप्रसादसेन—वैद्यवंशोद्भव एक बंगाली कवि। ये पहले एक शक्तिमंत्रका साधक कह कर विख्यात थे। १७१८ ई०में हाली-शहरके अन्तर्गत कुमारहट्ट गांवमें इन्होंने जन्म लिया था। इनके पिताका नाम था रामराम सेन। इन्होंने कालीकोर्त्तन, विद्यासुन्दर आदि बंगला कविता बनाई। १७७५ ई०में उनकी मृत्यु हुई। कविरञ्जन रामप्रसाद देखो।

रामफल (हिं० पु०) सीताफल, शरीफा।

रामबंटाई (हिं० स्त्री०) वह विभाग जिसमें आधा एक व्यक्ति और आधा दूसरे व्यक्तिको मिले, आधे आधकी बंटाई। यह न्याययुक्त होती है इसीसे इसे रामबंटाई कहते हैं।

रामबबूल (हिं० पु०) गुजरात, झंग और झेलममें अधिकतासे होनेवाला एक प्रकारका बबूल या कीकर। इसकी डालियां सरोकी डालियोंकी तरह तनेसे सटी रहती हैं।

इसकी लकड़ी कम मजबूत होती है। इसे काबुली कीकर भी कहते हैं।

रामबाँस (हिं० पु०) १ एक प्रकारका मोटा बाँस जो प्रायः पालकीके डंडे बनानेके काममें आता है। २ केतकी या केवड़ेकी जातिका एक पौधा। इसके पत्ते नीले और खांड़ेकी तरह दो ढाई हाथ लम्बे होते हैं। यह सारे भारतमें या तो आपसे आप होता है या कहीं कहीं बोया भी जाता है। इसकी पत्तियां कूट कर एक प्रकारका रेशा निकला जाता है जो रस्से और रस्सियां आदि बनानेके काममें आता है। इन पत्तियोंमें एक प्रकारका तेजाबी रस होता है जिसके हाथमें लगनेसे छाले पड़ जाते हैं। इसलिये पत्तियां कूटनेके समय कहीं कहीं हाथोंमें एक प्रकारके दस्ताने पहन लेते हैं। इसकी जड़ और पत्तियाँ औषधिके रूपमें भी व्यवहार होती हैं। यह अकसर रेलकी सड़कोंके किनारे लगाया जाता है।

रामवान (हिं० पु०) १ एक प्रकारका नरसल, रामशर। रामशर देखो। २ रामवाण देखो।

रामबिलास (सं० पु०) एक प्रकारका धान।

रामब्रह्मानन्द स्वामी—तत्त्वसंग्रहरामायणके प्रणेता।

रामभक्त (सं० लि०) १ रामचंद्रका उपासक। (पु०) २ हनुमान्।

रामभद्र (सं० पु०) राम एव भद्रः मङ्गलजनकत्वात्। श्रीरामचन्द्र।

रामभद्र—१ मिथिलाके एक राजा तथा राजा रूपनारायणके पुत्र और हरिनारायणके पौत्र। ये श्राद्धकल्पके प्रणेता वाचस्पति मिश्रके प्रतिपालक थे।

२ दूसरे एक हिन्दू-राजा। ये बृहज्जातकप्रकाशके प्रणेता महादेवके प्रतिपालक थे।

रामभद्र—बहुतेरे प्रसिद्ध पण्डित और ग्रन्थकार। १ दायभागसिद्धान्तकुमुदचन्द्रिकाके प्रणेता। २ पुत्रक्रमदीपिकाके रचयिता। ३ ब्रह्मसूत्रवृत्तिकार। ४ शृङ्गारतरङ्गिणी नामक भाणके रचयिता। ५ शृङ्गारतिलक नामक भाणके प्रणेता। ये कौण्डिन्यवंशीय थे। ६ षड्दर्शनसिद्धान्तसंग्रहके प्रणेता। इन्होंने तञ्जोरपति शाहराज (शाहजी)-के आदेशसे उक्त ग्रन्थ संकलन किया। ७ सिद्धान्तसार नामक न्यायशास्त्रके रचयिता।

रामभद्र गोस्वामी—सत्यनारायण पंचालीके लेखक एक प्राचीन कवि। लगभग तीन सौ वर्ष पहले ये जीवित थे। रामचन्द्रके पिताका नाम था विरूपाक्ष गोस्वामी। ये तन्त्रमतसे महासाधक थे। उन्होंने तपस्यासे नायिकाका दर्शन किया था। "आद्यायन्त्र" नामसे प्रसिद्ध उनका जो आसन है उसकी पूजा आज भी उनके वंशधर करते हैं। उनका पूर्वनिवास कांटोवाके समीप वामनकन्दा गांवमें था। बादमें वे सिउढ़ीसे दो मील दक्षिण सिंगुर गांवमें आ कर रहने लगे। यहीं कवि रामदासका जन्म हुआ। रामचन्द्रके वंशज आज भी सिंगुर गांवमें रहते हैं। भट्टाचार्य उनकी उपाधि है।

रामभद्र दीक्षित—१ दाक्षिणात्यवासी एक प्रसिद्ध पण्डित। ये १७वीं सदीके शेषभागमें और १८वीं सदीके पहले तंजोर नगरमें विद्यमान थे। इन्होंने सीरदेवकृत परिभाषावृत्तिकी टीका लिखी। २ रामकर्णामृतके रचयिता। ३ जानकीपरिणयनाटक और पतञ्जलिचरित नामक काव्यके प्रणेता। इनका दूसरा नाम चौक्कनाथ और पिताका नाम यज्ञराम था। नीलकण्ठाध्वरिन्, कौण्ड जौतिषिक, बालकृष्ण आदि इनके समसामयिक थे।

रामभद्र न्यायालङ्कार—१ शब्दावली नामक व्याकरणके प्रणेता। २ उद्वाहव्यवस्था, मुग्धबोधटीका और विद्वोन्मादिनी नामक रघुवंशकी टीकाके रचयिता तथा रघुनाथके पुत्र। ३ श्रीनाथाचार्यके पुत्र। ये जीमूतवाहनकृत दायभागके टीकाकार थे।

रामभद्र वाजपेयी—कवीन्द्रचन्द्रोदयधृत एक कवि।

रामभद्र भट्ट—न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीप्रकाशकी टीका और नीलकण्ठधृत तर्कसंग्रहदीपिकाप्रकाशकी टीकाके रचयिता।

रामभद्र भट्टाचार्य—एक प्रसिद्ध नैयायिक और पण्डित। ये तत्त्वचिन्तामणिदीधितिव्याख्याके प्रणेता जयरामके गुरु थे।

रामभद्र मिश्र—१ आनन्दलहरीटीका और तंत्रसारके रचयिता। २ षट्पदीस्तोत्रटीकाके प्रणेता।

रामभद्र महामहोपाध्याय—अभिज्ञानकुन्तलविवृतिके प्रणेता।

रामभद्र यति—संन्यासाश्रमावलम्बी एक प्रसिद्ध पण्डित। ये सिद्धान्तचन्द्रिकाके प्रणेता रामसंयमीके गुरु थे।

रामभद्र यज्वन्—एक प्रसिद्ध पंडित। ये सिद्धांतचन्द्रिकाके प्रणेता श्रीनिवास दीक्षितके गुरु थे।

रामभद्र सरस्वती—राघवानन्द सरस्वतीके शिष्य और रामानन्द सरस्वतीके गुरु।

रामभद्र सिद्धान्तवागीश—नवद्वीपवासी एक प्रसिद्ध नैयायिक। इन्होंने जगदीशकृत शब्दशक्तिप्रकाशिकाकी शब्दशक्तिप्रकाशिकाबोधिनी नामकी टीका लिखी।

रामभद्र सार्व्वभौम—नवद्वीपवासी एक नैयायिक। इन्होंने कुसुमाञ्जलीकारिकाव्याख्या, गुणरहस्य नामक किरणावलीके द्वितीय परिच्छेदकी टीका, न्यायरहस्य नामक न्यायसूत्रकी टीका, पदार्थखण्डनटिप्पणी आदि ग्रंथ लिखे।

रामभद्र सार्व्वभौम भट्टाचार्य—नानात्ववादतत्त्व और समासवादतत्त्वके रचयिता।

रामभद्राम्बा—रघुनाथाभ्युदयकाव्यके प्रणेता।

रामभद्राश्रम—१ भानुजी दीक्षित। योग मार्गावलम्बनके बाद ये इस नामसे परिचित हुए। २ अद्वैतचन्द्रिकाके प्रणेता नरसिंह भट्टके गुरु।

रामभोग (सं० पु०) १ एक प्रकारका चावल। २ एक प्रकारका आम।

राममणि (रामी)—एक बंगालिन कवि। यह जातिकी धोबिन थी। किन्तु कवित्वकी असाधारण शक्तिसे भारतीय स्त्री-कविसम्प्रदायभुक्त हो अक्षयकीर्त्ति अर्जन कर गई है। यह बंगालके नान्नूर ग्राममें कविवर चण्डीदासकी विशालाक्षी देवीके मन्दिरमें सेविका नियुक्त थी। किसीका कहना है, कि तारा धोबिन इनका असल नाम था। इन्होंने कवि चण्डीदासके हृदयमें अभिनव प्रेमका सञ्चार किया था। इनके कवित्वगुण और प्रेमसे वशीभूत हो कर चण्डीदासने अनेक पदावलीकी रचना की थी। रामी चण्डीदासको दिलसे चाहती थी।

राममन्त्र (सं० पु०) रामस्य मन्त्रः। रामचंद्रका मंत्र। रामतारक देखो।

राममोहन राय (राजा)—बंगालके एक अद्वितीय महापुरुष। जिस अध्यवसायसे इस महात्माने अपनी उन्नतिका मार्ग साफ करके संसारमें सर्वत्र अपनी महत्त्व फैलाई थी, यह बात उनके जीवनकी पहली प्रतिज्ञासे ही ज्ञात हो जाती है। आप एक ब्रह्मकी उपासनाका प्रवर्त्तन करके जो अद्वैत धर्ममतका प्रचार कर गये हैं, वह अब भी भारतमें "ब्राह्मसमाज"-के नामसे और इङ्गलैंडमें उसीके अनुकरण पर "Unitarian Church" नामसे स्थापित है। धर्मनीतिके सिवा राजनीति और समाजनीतिके संस्कारके विषयमें भी आपने साधारणके अग्रणी बन कर अशेष यश प्राप्त किया है।

हुगली जिलेके अन्तर्गत खानाकुल-कृष्णनगरके निकटवर्त्ती राधानगरमें १७७८ ई०में राममोहन रायका जन्म हुआ था। इनके अतिवृद्ध पितामह औरङ्गजेब बादशाहके राज्यकालमें धर्मकर्म त्याग कर जमींदारीके काममें लिप्त हुए थे। प्रपितामह कृष्णचन्द्र बन्दोपाध्याय नवाबसरकारमें नौकरी करते थे और उन्हें "राय" उपाधि मिली थी। मुर्शिदाबाद जिलेके अन्तर्गत शांकासा ग्राममें उनका आदिवास था, बादमें वहांसे राधानगर चले आये। कृष्णचन्द्र परम वैष्णव थे। नवाबके आदेशसे जब ये खानाकुल-कृष्णनगरके चौधरियोंकी जमींदारीका बन्दोवस्त करने आये थे, तब इन्होंने अभिराम गोस्वामी द्वारा प्रतिष्ठित गोपीनाथका विग्रहके निकटस्थ राधानगर ग्राममें अपने रहनेका निश्चय किया था।

उनके तीन पुत्र थे,—अमरचन्द्र, हरिप्रसाद और ब्रजविनोद। ये ब्रजविनोद राय मृत्युके समय जब गङ्गातीरस्थ हुए, तो श्रीरामपुरके चातरा ग्रामनिवासी श्यामाचरण भट्टाचार्य भिक्षार्थी हो कर इनके सामने आये। ब्रजविनोद रायने उनकी प्रार्थना पूरी करनेके लिये वचन दिया, इस पर भट्टाचार्यने इनके एक पुत्रको कन्यादान करनेके लिए कहा। श्याम भट्टाचार्य शाक्त और भङ्ग कुलीन थे, इसलिए परम वैष्णव और कुलीन रायवंश इस प्रस्ताव पर सहजमें राजी न हो सकता था, किन्तु ब्रजविनोदने गङ्गाके किनारे वचन दिया था, इसलिए उनके पञ्चम पुत्र रामकान्त रायने श्याम भट्टाचार्यकी कन्या तारिणी देवीका पाणिग्रहण किया। तारिणी

देवी अपने गुणोंसे परिवारमें सबके साथ 'फूल-ठाकुरानी' नामसे परिचित हुईं। उनके गर्भसे जगमोहन और राममोहन दो पुत्र उत्पन्न हुए। जिस वर्ष राममोहन रायने जन्मग्रहण किया, उसी वर्ष भारतमें पहले पहल सकौन्सिल गवर्नर जनरलको नियुक्ति और सुप्रीम कोर्टकी व्यवस्था हुई थी। मुसलमान शासनका अवसान और अंग्रेजी शासनके आरम्भका यह प्रथम वर्ष था।

रामकान्त राय पहले तो पिताके समान मुर्शिदाबादकी नवाब-सरकारमें काम करते रहे। पीछे गड़बड़ उपस्थित होने पर वे काम छोड़ कर अपने देशको लौट आये। यहां आ कर उन्होंने वर्द्धमानके राजासे खानाकुल-कृष्णनगर आदि कुछ ग्रामोंका इजारा ले लिया। इसी मामलेमें वर्द्धमानके राजाके साथ इनका विवाद हो गया। राजाके असहनीय अत्याचारसे विरक्त हो कर ये जमींदारीके कामसे उदासीन हो गये और सपरिवार लांगुलपाड़ा ग्राममें जा कर रहने लगे।

खूब बचपनसे हो राममोहनका धर्ममें दृढ़ अनुराग था। गृहदेवता राधागोविन्दकी भक्तिके साथ पूजा करके तथा भागवतका एक अध्याय पढ़ कर तब कहीं आप जलग्रहण करते थे। सुनते हैं, आपने बहुत अर्थ व्यय करके बाइस बार पुरश्चरण कराया था।

बाल्यावस्थामें पण्डितजीकी पाठशालासे ही इनकी मेधा और बुद्धिशक्तिका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। बचपन हीमें आपने फारसी पढ़ ली। इनकी स्मृतिशक्ति इतनी तीक्ष्ण थी कि फारसी भाषामें उन्नति और अरबी भाषाको शिक्षाके लिए पिताने इन्हें नौ ही वर्षकी उमरमें पटना भेज दिया। वहां दो तीन वर्षके अन्दर ही इन्होंने अरबी भाषामें यूक्लिड् और आरिष्टलके ग्रन्थ पढ़ लिये। इन दो ग्रन्थोंके पढ़ लेनेसे उनकी सुतीक्ष्ण बुद्धिशक्ति सम्मार्जित और तर्कशक्ति विकसित हो गई थी। कुरान पढ़ते समय मुसलमान मौलवियोंके संस्पर्शमें आ कर उनके हृदय पर एकेश्वरवादकी छाया पड़ी। उसके बाद हाफिज, मौलाना रूमी, सामिज ताब्रीजी आदि सूफी कवियोंके ग्रन्थ पढ़ कर उनके मन पर एकब्रह्मका प्रभाव दृढ़ होता रहा। सूफियोंके मतने, प्लेटो और वेदान्तके मतने उनके मत-परिवर्त्तनमें सहायता दी थी।

पटनामें फारसी और अरबीकी शिक्षा समाप्त होने पर, हिन्दूधर्मका मर्म-ज्ञान करानेके उद्देशसे बारह वर्षके राममोहनको उनके पिताने संस्कृतशास्त्र अध्ययन करानेके लिए काशी भेजा। वहां थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने वेदादि शास्त्रोंका आश्चर्यरूपसे ज्ञान लाभ किया था। घर लौट कर उन्होंने निरन्तर धर्मसम्बन्धी आलोचना करना प्रारम्भ कर दिया। शास्त्रोंमें लिखे हुए धर्मके साथ प्रचलित धर्मका पार्थक्य देख कर उनके मनमें स्वतः घोरतर सन्देह उपस्थित हुआ करता था। मुसलमानधर्मका एकेश्वरवाद और प्राचीन हिन्दूशास्त्रोंका ब्रह्मज्ञान उनके मत-परिवर्त्तनका एकमात्र कारण है। इस विषयमें पिताके साथ उनका तर्क हुआ करता था। पिता पुत्रके इस परिवर्त्तित विचारसे बड़े दुःखित थे।

इसी समय सोलह वर्षकी अवस्थामें राममोहनने हिन्दुओंकी "मूर्त्तिपूजा-प्रणाली" के नामसे मूर्त्तिपूजाके विरुद्ध एक पुस्तक लिखी। उनके पिता इस पर बहुत नाराज हुए और अंतमें उन्हें घरसे निकाल दिया। सोलह वर्षकी अवस्थामें घरसे निकाले जा कर राममोहनने भारतके नाना स्थानोंमें भ्रमण किया। इस समय उन्हें अंगरेजीका बिलकुल भी ज्ञान न था।

विभिन्न प्रदेशोंमें भ्रमण करते समय उन्होंने वहांके धर्मग्रन्थोंका अध्ययन करनेके लिये वहांकी विभिन्न भाषाएं सीखीं। भारतवर्षके नाना स्थानोंमें भ्रमण करते हुए अन्तमें आप तिब्बत पहुंचे। यहां कुछ दिन रह कर उन्होंने बौद्धधर्मका मर्मानुसन्धान किया। तिब्बतवासियोंके साथ मूर्त्तिवाद पर इनका शास्त्रार्थ हो गया। वहांके लोगोंने इस कुतर्कके लिये उन्हें दण्ड देना चाहा, किन्तु वहांकी सरलप्रकृति रमणियोंने इन्हें बचा लिया।

उन्होंने हिमालयके उत्तरवर्त्ती और भी एक देशमें भ्रमण किया था, परन्तु उसका कोई विशेष विवरण नहीं पाया जाता। ब्राह्मसमाजकी प्रतिष्ठाके बाद उन्होंने "संवाद-कौमुदी" नामकी एक पत्रिका निकाली थी, जिसमें उन्होंने अपने बाल्य-भ्रमणके विषयमें कई एक लेख लिखे थे।

बीस वर्षकी उमरमें पिताके भेजे हुए आदमीके साथ आप घर वापस आये। इसके बाद विवाह हुआ।

पहली स्त्रीकी मृत्युके बाद उन्होंने एक स्त्रीके रहते हुए दूसरा विवाह किया था। इनकी दूसरी सुसराल वर्द्धमान जिलेके कुड़मन-पलासी ग्राममें थी। छोटी स्त्री उमादेवीका मायका भवानीपुरमें था।

विदेशसे आनेके बाद आप फिरसे संस्कृत-शास्त्रके अध्ययनमें प्रवृत्त हुए। हिन्दूशास्त्र-सिन्धु मन्थन करके आपने अमूल्य ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। अबकी बार फिर पितासे उनका शास्त्रार्थ हो गया। पिता रामकान्त पुत्रकी दशा देख कर हताश हो गये। उन्होंने प्रचलित धर्मके विरुद्ध खड़े होनेवाले पुत्रको फिर घरसे निकाल दिया, किन्तु कुछ कुछ आर्थिक सहायता देते रहे।

पहले लिखा जा चुका है कि रामकान्त रायने अपने पुत्र राममोहनको नवाब-सरकारमें काम करने योग्य हो जाय, इस ढंगको शिक्षा दी थी। कारण अंगरेजी-शिक्षाका प्रभाव उस समय अधिक विस्तृत न हुआ था। सुप्रीमकोर्ट स्थापनके साथ ही अंगरेजीकी चर्चा शुरू हुई। राममोहनने २२ वर्ष तक अंगरेजी जरा भी न जानते थे। उस समय शिक्षा आरम्भ होने पर भी उस तरफ उनका ध्यान न गया था। संस्कृत, फारसी और अरबीके अध्ययनमें ही वे विशेष मग्न थे। सत्ताईस-अट्ठाईस वर्षकी उमरमें वे सिर्फ बातचीत करना मात्र सीख गये थे। परन्तु अंगरेजीमें लेख न लिख सकते थे।

इस समय आपने रंगपुरके कलक्टर जन डिग्बी साहबके नीचे क्लर्कीके लिए दरख्वास्त पेश की। साहब जब उन्हें अपने नीचे नियुक्त करना स्वीकार कर लिया, तो आपने उनके सामने यह प्रस्ताव किया कि निम्नोक्त आशयके एक पत्र पर हस्ताक्षर कर देने पर वे कार्यग्रहण करेंगे--"जब वे काम करने उनके सामने आयें, तब उन्हें आसन दिया जाय और साधारण अमलोंके समान उन पर हुकम जारी न किया जाय।" डिग्बी साहबने उनकी बात स्वीकार कर ली और उक्त आशयके पत्र पर हस्ताक्षर कर देने पर राममोहन रायने भी काम करना शुरू कर दिया। धर्मानुगत आत्म-सम्मानका उन्हें ज्ञान था और उन्हें स्वाधीनता-प्रियता काफी थी। उनके जीवनमें ऐसी अनेकों घटनाएँ हुई हैं, जिनसे यह भाव साफ साफ टपकता है।

राममोहन राय ऐसे उत्साह और तत्परताके साथ कार्य सम्पादन करने लगे कि साहब उन पर दिनों-दिन अत्यन्त सन्तुष्ट होने लगे। कुछ दिन बाद ही राममोहन रायको दीवानका पद मिल गया। डिग्बी साहबको ज्यों ज्यों राममोहन रायको विद्याबुद्धि, कार्यदक्षता और कर्मठताका परिचय मिलने लगा, त्यों त्यों वे इनके प्रति आकृष्ट होने लगे। राममोहन राय भी डिग्बी साहबकी भद्रता और अन्यान्य सद्गुणोंके कारण उन्हें यथेष्ट श्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगे। क्रमशः परस्परमें गाढ़ी मित्रता हो गई। मृत्यु पर्यन्त यह मित्रता कायम रही। ये दोनों अंगरेजी और देशी साहित्यके अनुशीलनमें परस्पर एक दूसरेको सहायता पहुंचाया करते थे।

रंगपुरमें जमींदारीके कामसे रहते हुए भी वे अपने जीवनके प्रधान कार्यको भूले न थे। शामके बाद अपने मकान पर धर्मालोचनाके लिए सभा किया करते थे, जिसमें मूर्त्तिपूजाकी असारता और ब्रह्मज्ञानकी आवश्यकता पर लोगोंको समझाया करते थे। वहांके मारवाड़ी बणिकोंमेंसे बहुतसे इस सभाके सभासद थे। इन मारवाड़ियोंने उन्हें कल्पसूत्र आदि जैनधर्म-सम्बन्धी ग्रन्थोंका अध्ययन कराया था। शीघ्र ही उनके प्रतिद्वन्द्वी आ जुटे। उनका नाम था गौरीकान्त भट्टाचार्य। ये स्थानीय जज अदालतके दीवान थे और फारसी तथा संस्कृत-भाषाके अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने राममोहन रायके विरुद्ध "ज्ञानाञ्जन" नामकी एक पुस्तक लिखी, जो संशोधित हो कर १८३८ ई०में कलकत्तेसे प्रकाशित हुई। इस पुस्तकसे मालूम होता है, कि राममोहन रायने रंगपुरमें फारसी भाषामें छोटी छोटी पुस्तकें लिखी थीं और वेदान्तके कुछ अंशका भी अनुवाद किया था। बहुतसे लोग गौरीकान्त भट्टाचार्यके अनुयायी थे। वे उन सबको राममोहन रायके विरुद्धाचरण करनेके लिये परामर्श देते थे। परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली।

राममोहन रायने अपने रचे हुए वेदान्तसूत्रके भाष्य और केनोपनिषद्के चूर्णकका अंगरेजीमें अनुवाद प्रकाशित किया था। डिग्बी साहबने उसका सम्पादन

किया था। साहबने उक्त पुस्तककी भूमिकामें राममोहन रायके विषयमें लिखा था—बाईस वर्षकी उमरमें आपने पहले पहल अंग्रेजी सीखी है। परन्तु मनोयोग-पूर्वक शिक्षा न करनेके कारण, पांच वर्ष बाद, जब मेरे साथ उनका परिचय हुआ, तब साधारण विषयोंमें अंगरेजी भाषामें बात कहने पर वे समझ लिया करते थे। परन्तु अङ्गरेजी भाषा वे शुद्ध न लिख सकते थे। जिस जिलेमें मैं ईष्ट इण्डिया कम्पनीकी सिविल सरविसमें पांच वर्ष तक कलेक्टर था, वहां वे अन्तमें दीवान अर्थात् कर-संग्रह सम्बन्धी कार्यमें प्रधान देशी कर्मचारी नियुक्त हुए थे। मेरे पत्रादि पढ़ कर तथा यूरोपीय सज्जनोंके साथ पत्र-व्यवहार और वार्तालाप करके उन्होंने अंगरेजी भाषामें अच्छा ज्ञान बढ़ा लिया था और वे अच्छी तरह शुद्ध अंगरेजी लिख बोल सकते थे। उक्त भूमिकामें डिगबी साहबने यह भी लिखा है, कि यूरोपीय समाचारपत्र पढ़ने का उन्हें अभ्यास था। वे फ्रान्स आदि देशोंकी राज-नैतिक घटनाएं खूब दिलचस्पीके साथ पढ़ते थे। नेपो-लियन बोनापार्टकी शक्ति और वीरताकी अत्यन्त प्रशंसा करते थे और उनका पतन होने पर वे अत्यन्त दुःखित हुए थे। परन्तु खेद है, कि पहले वेगके निकल जाने पर उनके मनका भाव परिवर्त्तित हो गया। अन्तमें उन्होंने कहा था कि नेपोलियनकी पहले जितनी प्रशंसा करता था, अब उनमें वैसी श्रद्धा नहीं रही।

राममोहन रायने १८०० ई०से १८१३ ई०तक गवर्मेण्ट-की नौकरी की थी। जिसमें १० वर्ष रंगपुर, भागलपुर, रामगढ़ इन कई जिलोंमें कलेक्टरके अधीन दीवान रहे। रामगढ़ जिलेमें वे शहरकी घाटीमें रहते थे। छोटा नागपुर जिलेके अन्तर्गत चातरासे गया जानेके रास्तेमें यह घाटी थी। अन्तमें इस कार्यसे उन्होंने अवसर ग्रहण किया।

कार्य्य छोड़नेके बाद वे मुर्शिदाबाद जा कर रहने लगे। वहां आपने फारसी भाषामें तोहफतुल मोहद्दीन (अर्थात् समस्त जातीय मूर्त्तिपूजाका प्रतिवाद) नामक एक ग्रंथ लिखा। उसकी भूमिका अरबी भाषामें लिखी थी। उस पुस्तकका खण्डन किसीने प्रकाशित नहीं कराया परन्तु बहुतसे लोग उनके शत्रु हो गये थे।

राममोहन राय १८१४ ई०में चालीस वर्षकी उमर-में कलकत्ते आ कर रहने लगे। अबसे ही यथार्थ रूपसे उनके जीवनका कार्य्य प्रारम्भ हुआ समझना चाहिए। यहां उन्होंने अपना सारा समय और अर्थ, शरीर और मन, जन्मभूमिके हितके लिए समर्पित कर दिया। जितने दिन जीवित रहे, उन्हें दूसरा कार्य्य और दूसरी चिन्ता न थी।

धर्मसंस्कार, समाजसंस्कार, राजनैतिक संस्कार और बंगला-साहित्यकी उन्नति आदि सर्व प्रकारके शुभ कार्योंमें उनका पूरा पूरा हाथ था। इसके लिए वे दिन-रात परिश्रम किया करते थे।

राममोहन रायने कलकत्ते आ कर मानिकतल्लामें लोअर सरकूलर रोड पर एक मकान खरीदा और उसे अंगरेजी ढंगसे सजा कर उसीमें रहने लगे*। उन्हें आशा थी, कि जमींदारीके कामसे छुट्टी पा कर जातिके उद्धारके लिए जीवन अर्पण करेंगे। यहां उनकी वह चिरपोषित आशा पूर्ण हुई। मूर्त्तिपूजा और सर्व्व प्रकार-के उपधर्मोंके विरुद्ध राममोहन रायका अभिव्यक्ति तर्क और विचारका आन्दोलन चलने लगा। कलकत्तेमें धूम मच गई। सिर्फ कलकत्ते हीमें क्यों, समस्त बंगालमें आन्दोलनकी तरङ्ग बहने लगी। बाबुओंके बैठकखानेमें, भट्टाचार्योंकी चतुष्पाठीमें, गांवोंके चण्डीमण्डपोंमें, जहां देखो वहां राममोहन राय अन्तःपुरोंमें भी आन्दोलनका स्रोत बहने लगा।

उनमें आश्चर्य्यजनक शक्ति थी, उनकी गभीर विद्या और मधुर व्यवहारसे कुछ सम्भ्रांत व्यक्ति उनके प्रति आकृष्ट हो गये। जैसे—गोपीमोहन ठाकुर, वैद्यनाथ मुखोपाध्याय (ये जस्टिस् अनुकूल मुखोपाध्यायके पिता हिन्दूकालेजके एक संस्थापक और उक्त कालेजके प्रथम मंत्री थे), जयकृष्ण सिंह, काशीनाथ मल्लिक, वृन्दावन मित्र (ये राजा पीताम्बर मित्रके पुत्र और डाक्टर राजेन्द्र-लाल मित्रके पितामह थे), गोपीनाथ मुन्शी, राजा बदन-चन्द्र राय (ये राजा नरसिंहके रिश्तेदार थे), रघुनाथ

* मकानका नं० ११३ है। फिलहाल उस मकानमें सुकिया स्ट्रीटका स्थान है।

शिरोमणि, हरनाथ तर्कभूषण, द्वारकानाथ मुन्शी आदि। वे अकसर इनके पास आया करते थे।

चन्द्रशेखर देव (वर्द्धमानके राजाकी राजकार्य-निर्वाहक सभाके सदस्य), ताराचांद चक्रवर्त्ती (वर्द्ध-मान राजकार्य निर्वाहक सभाके सभासद) आदि अनेक लोगोंका एक राजनैतिक दल था। वह दल ताराचांद बाबूके संस्रवके कारण तत्कालीन शिक्षित समाजमें 'Chakrawarti Faction' के नामसे परिचित था। नन्दकिशोर बसु (राजनारायणबसुके पिता), भैरव-चन्द्र दत्त, निमाई चरण मित्र, व्रजमोहन मजूमदार, राज नारायण सेन, रामनृसिंह मुखोपाध्याय, हलधरचन्द्रबसु,-मदनमोहन मजूमदार, अन्नदाप्रसाद बन्दोपाध्याय, टाकी-के जमींदार राय कालीनाथ चौधरी आदि कितने ही सज्जनोंने उनका उपदेश ग्रहण किया था।

इसके सिवा साल्ट बोर्डके दीवान और ज्ञानरत्ना-कर ग्रन्थके संग्रहकर्त्ता नीलरतन हालदार, खिदिरपुर भूकैलासके राजवंशीय राजा कालीशङ्कर घोषाल, द्वारका-नाथ ठाकुर, प्रसन्नकुमार ठाकुर आदि सुप्रसिद्ध व्यक्तियों-का भी इस तरफ यथेष्ट अनुराग हो गया था।

वे दो तीन पण्डितोंके साथ सर्वदा समय व्यतीत करते थे। उनके एक अनुगत शिष्यका कहना है कि—"राममोहन राय जब शक सं० १७३४ में रंगपुरकी जमीं-दारीका काम छोड़ कर एक ईश्वरकी उपासनाप्रचारके लिये कलकत्ते आये, तब हरिहरानन्द तीर्थस्वामीको अपने साथ लाये थे। तीर्थस्वामीने देश-भ्रमण करते हुए रंग-पुरमें आ कर राममोहन रायके साथ भेंट की थी। राममोहन रायने उनको शास्त्रचर्चा और उदारभावसे सन्तुष्ट हो कर उन्हें सम्मानपूर्वक अपने यहां रखा और तीर्थस्वामी भी उनके प्रेमपाशमें बद्ध हो कर छायावत् उनके साथ रहे। वे तन्त्रोक्त साधक, वामाचारमें रत और महानिर्वाणतन्त्रके अनुसार ब्रह्मोपासक थे। अव-धूताश्रम ग्रहण करनेके पूर्व उनका नाम नन्दकुमार था। ब्राह्म-समाजके सुपरिचित प्रथम आचार्य रामचन्द्र विद्या-वागीश इन्हींके कनिष्ठ भ्राता थे। हरिहरानन्द तीर्थ-स्वामीने विद्यावागीश महाशयको राममोहन रायके हाथ सौंप दिया था। धीरे धीरे विद्यावागीश उनके एक प्रधान सहयोगी हो उठे।* राममोहन रायके पास शिवप्रसाद मिश्र एक उत्तर-भारतीय ब्राह्म रहते थे। उन-के साथ वे उपनिषद्की आलोचना करते थे।"

जिन व्यक्तियोंका नामोल्लेख किया गया है, वे सब धर्मानुसन्धानके लिए ही उनके पास आया करते थे; सो बात नहीं। जमींदारीके विषयमें परामर्श लेनेके लिये भी कोई कोई आते थे। मूर्त्तिपूजाके विरुद्ध राममोहन राय प्रवल प्रतिवाद करते थे, इसलिए उनमेंसे किसी किसीने आना बंद भी कर दिया था। द्वारका-नाथ ठाकुर, राजा कालीशंकर घोषाल और गोपीनाथ मुन्शीने उनका साथ कभी नहीं छोड़ा।

बंगाल भरके लोग उनके विरोधी हो गये। बहुतसे लोग तो नाना प्रकारसे उनका अनिष्ट करनेको उतारू हो गये थे और इस बातकी कोशिश भी करने लगे। बहुतसे ऐसे थे, जो राममोहन रायके सामने तो मित्रता प्रकट करते थे और पीछे छिपी तौरसे उनके अनिष्ट करने पर तुले हुए थे।

धर्मप्रचारके लिए राममोहन राय चार उपाय अव-लम्बन किये थे। प्रथम—कथोपकथन और तर्कवितर्क; द्वितीय—विद्यालय स्थापित करके तथा अन्य प्रकारसे शिक्षादान; तृतीय—पुस्तक-प्रचार और चतुर्थ—सभाएं स्थापित करना।

राममोहन रायने जब देखा कि पुस्तकप्रकाश सत्य-धर्म प्रचारका एक प्रकृष्ट उपाय है, तब उन्होंने धीरे धीरे ब्रह्मज्ञानप्रतिपादक ग्रंथ अपने व्ययसे मुद्रित कराके बिनामूल्य वितरण कराना शुरू कर दिया। शक सं० १७३७में उन्होंने पहले पहल बंगला भाषामें वेदान्त-सूत्रका भाष्य प्रकट किया था।

राममोहनरायका सुप्रशस्त हृदय केवल बङ्गभूमिमें आबद्ध न था। वह सारे भारतके लिये क्रन्दन कर रहा था। इसलिए वेदान्तसूत्रका बंगला अनुवाद समस्त भारतवासियोंके समझमें न आयेगा, ऐसा समझ कर उसका हिन्दीअनुवाद भी प्रकाशित कराया। पीछे

* ये मालपाड़ा गांवमें रहते थे। पीछे संस्कृत कालेजमें स्मृतिशास्त्रके अध्यापक हुए।

१८१६ ई०में आपने अङ्गरेजी अनुवाद प्रकाशित किया।

आपने पहले जो वेदान्तसूत्र और उसका अनुवाद प्रकाशित किया था, वह ग्रन्थ विस्तृत और कठिन होनेके कारण साधारणकी समझमें न आता था, इसलिए अब उसे अत्यन्त सरल भाषामें लिखा। पीछे, सब कोई इतने बड़े ग्रन्थको पढ़ना चाहें या नहीं, इस कारण आपने उसका सार संग्रह करके "वेदान्तसार" नामका एक ग्रन्थ प्रकाशित किया। यह किस संवत्‌में पहले प्रकाशित हुआ था, ठीक पता नहीं। १८१६ ई०में इसका अंग्रेजी-अनुवाद प्रकाशित हुआ था। ईसाई धर्मके प्रचारक साहब लोग इसे पढ़ कर आश्चर्यमें आ गये थे और रचयिताका परिचय यूरोपमें प्रचार किया था।

'वेदान्तसूत्र' और 'वेदान्तसार' प्रकाशित करनेके बाद आपने पाँच उपनिषद्, बङ्गला अनुवाद सहित मुद्रित और प्रचारित किये। जिनमें सामवेदके अन्तर्गत तलवकार उपनिषद् प्रथम प्रकाशित हुआ था। तलवकारका दूसरा नाम केनोपनिषद् है। यह पुस्तक शक सं० १७३८ के आषाढ़ मासमें पहले पहल प्रकाशित हुई थी। इसी समय इन्होंने यजुर्वेदीय ईशोपनिषद् वा वाजसनेय संहितोपनिषद् प्रकाशित की थी। आपने वेदान्तसूत्रकी तरह इसकी एक भूमिका और अनुष्ठान लिखा था। भूमिकामें आपने शास्त्रीय प्रमाण और युक्ति द्वारा प्रमाणित किया था, कि ब्रह्मोपासना ही श्रेष्ठ साधन और मुक्तिका एकमात्र कारण है।

बंगला सन् १२२४ के भाद्र मासमें यजुर्वेदीय कठोपनिषद् बंगला अनुवाद सहित प्रकाशित हुई थी। इसमें भी एक छोटी-सी भूमिका है। इसके बाद मुण्डक उपनिषद् प्रकाशित हुई। इसका मूल अलग और बंगला अनुवाद अलग प्रकाशित हुआ था। 'गायत्री अर्थ' नामक और एक पुस्तक १८१८ ई०में प्रकाशित हुई। इसकी भूमिका और ग्रन्थ पृथक् पृथक् दो भागोंमें विभक्त हैं।

गृहस्थ व्यक्ति यदि ब्रह्मोपासक हो, तो शास्त्रानुसार उनका किस प्रकार आचरण होना उचित है, 'ब्रह्मनिष्ठ गृहस्थका लक्षण' नामक पुस्तकमें यही बात लिखी गई है। १८२६ ई०में यह पहले पहल छपी थी।

'गायत्र्यापरमोपासनाविधानम्' नामक पुस्तक १८२७ ई०में प्रकाशित हुई। इस पुस्तकका मर्म यह है, कि वेदपाठके सिवा केवल गायत्री जप द्वारा भी ब्रह्मोपासना होती है। इसमें अनेक शास्त्रीय प्रमाण दिये गये हैं। यह संस्कृत और बंगला दोनों भाषामें लिखी गई है। इसी साल इसका एक अंग्रेजी-अनुवाद भी प्रकाशित हुआ था।

इनकी 'अनुष्ठान' नामक पुस्तकमें अवतरणिकाके नामसे एक भूमिका है, जिसमें १२ प्रश्न और उनके उत्तर दिये गये हैं। इसमें ब्रह्मोपासनाविधान और शास्त्रानुसार आहारव्यवहार-प्रणाली आदि लिखी है। यह पुस्तक १८२६ ई०में छपी थी।

'ब्रह्मोपासना' नामकी पुस्तक शक सं० १७५० (१७२८ ई०)में प्रकाशित हुई थी। इसमें ब्रह्मोपासनाकी एक पद्धति बताई गई है, जिसे देख कर कोई कोई समझ सकते हैं, कि राममोहन रायके समयमें वह ब्राह्मसमाजमें व्यवहृत होती थी, किन्तु वास्तवमें यह बात न थी। उस समय समाजमें केवल उपनिषद्‌का पाठ, व्याख्या और सङ्गीत होता था।

उनकी 'प्रार्थनापत्र' नामक पुस्तक शक सं० १७४५ (ई०-सन् १८२३) में पहले पहल प्रचारित हुई। इसमें स्वजातीय और विजातीय समस्त धर्म-सम्प्रदायोंके प्रति उदार भ्रातृभाव प्रकट किया गया है।

राममोहन रायने श्रीमत् शङ्कराचार्य-प्रणीत 'आत्मानात्मविवेक'-को बंगानुवाद सहित प्रकाशित किया था। वे आधुनिक ईसाई-सम्प्रदायकी तरह ब्रह्म विषय प्रतिपादनार्थ एक एक दीर्घायत कागज पर मुद्रित करके बंटवाया करते थे, जो बादमें 'क्षुद्रपत्री'-के नामसे मुद्रित हुआ था।

ब्रह्मसंगीत राजा राममोहन रायकी एक अतुलनीय कीर्त्ति है। अन्यान्य अनेक विषयोंके समान बंगलाभाषामें ब्रह्मसंगीतके सृष्टिकर्त्ता हैं। उन्होंने अपने तथा मित्रोंके रचे संगीत पुस्तकाकारमें प्रकाशित किये थे। उनके समयमें ही इसके दो तीन संस्करण हो चुके थे।

शास्त्रीय विचार और अन्यान्य विषयमें बहुत-सी पुस्तकें उन्होंने बंगलामें लिखी थीं। 'कायस्थोंके साथ मद्यपान-विषयक विचार' नामक पुस्तकमें उन्होंने शूद्रके

लिए सुरापानकी शास्त्रविरुद्धता और ब्राह्मण आदि जातिके लिए मद्यपानका अधिकार सिद्ध किया है। इसके सिवा 'पथ्यप्रदान' नामक पुस्तकके सातवें परिच्छेद में आपने इस मतका समर्थन किया है।

उनके एक शिष्य ब्रजमोहन मजूमदारने १८३२ ई०में धर्मतल्लाके यूनिटेरियन प्रेससे 'मूर्त्तिपूजा-मुखचपेटिका' नामक एक पुस्तक निकाली थी। लोगोंका विश्वास है, कि यह पुस्तक राजा राममोहन रायकी ही लिखी हुई है।

श्रीरामपुरके एक ईसाई पादरीने वेदान्त, न्याय, मीमांसा, पातञ्जल, सांख्य, पुराण, तन्त्र आदि शास्त्र तथा योनिभ्रमण, जन्मान्तरीण फलभोग आदि मतके विरुद्ध ईसाईयोंकी 'समाचारचन्द्रिका' नामक पत्रिकामें १८२१ ई०की १४वीं जुलाईको एक पत्र प्रकाशित किया था। राममोहन रायने इसका उत्तर लिख कर उक्त पत्रके सम्पादकके पास भेजा; किन्तु उसने उसे छापा नहीं। इसलिए राममोहन रायने 'ब्राह्मणावधि' नामक पत्रिका प्रकाशित करके उसका उत्तर दिया। उसमें उनके जातीय भाव और जातीय शास्त्रोंके प्रति अनुरागको विशेष झलक थी। इस उत्तरमें ईसाई-धर्मके विरुद्ध कुछ अखण्डनीय युक्तियां थीं।

पिता परमेश्वर पुत्र ईसा और होली गोष्टको ले कर प्रसिद्ध बिशप बटलरके साथ तर्क करनेके बाद उन्होंने विशेष भावसे ईसाई-धर्मकी आलोचना प्रारम्भ की और विशेष यत्नके साथ बाइबिल ग्रन्थका आद्योपान्त पाठ किया। परंतु अंगरेजी अनुवाद पढ़ कर उन्हें तृप्ति न हुई। ग्रीक-भाषा सीख कर नवीन बाइबिलका मूलग्रन्थ और हिब्रू भाषा सीख कर बाइबिलका मूलग्रन्थ पढ़ा। उन्होंने एक यहूदी शिक्षक रख कर छह मासके अन्दर हिब्रू भाषा सीखी थी। इससे भाषा-शिक्षाके विषयमें उनकी असाधारण शक्तिका परिचय मिलता है। अरबी भाषामें भी वे काफी व्युत्पन्न थे। इसलिए मुसलमान लोग उन्हें 'मौलवी राममोहन राय' और 'जबरदस्त मौलवी' कहा करते थे। अरबीके साथ हिब्रूका अति निकट सम्बन्ध है। इसलिये हिब्रू सीखना उनके लिए सहज था। राममोहन रायने इस समय पादरी येडम और येट साहबके साथ मिल कर 'ईसाई सुसमाचार' नामकी चार पुस्तकोंका अनुवाद किया। येट साहबने नाराज हो कर यह कार्य छोड़ दिया। शायद, ईसाई धर्मके विषयसे राममोहन रायसे उनका मतभेद हो गया होगा।

इस समय राममोहन रायने बाइबिलसे ईसाका उपदेश संकलन करके Precepts of Jesus, Guide to peace and happiness अर्थात् ईसाका उपदेशसुख और शान्तिपथका परिचालक है, नाम दे कर एक पुस्तक निकाली (१८२० ई०)।

ईसाके उपदेशोंका संग्रह प्रकाशित करने पर भी किसीने उनके उदारभावको न समझा। स्वदेशवासियोंकी बात जाने दीजिए। बहुतसे ईसाई भी उनसे नाराज हो गये थे। श्रीरामपुरके सुप्रसिद्ध मार्समैन साहबने 'फ्रेण्ड-आव-इण्डिया' नामक समाचार पत्रमें उक्त ग्रन्थकी निन्दा की थी। उनके प्रतिवाद करनेका कारण यह था, कि ईसाका ईश्वरत्व उनकी अलौकिक क्रिया और उनके रक्तसे पापोंकी मुक्ति इत्यादि मत-पोषक बाइबिल-के वाक्य उसमें नहीं दिये गये थे।

उपदेश संग्रह पुस्तकमें संग्रहकर्त्ताका नाम न था। परन्तु सर्वसाधारणसे लेखकका नाम छिपा न रहा। मार्समैन साहबकी समालोचनाके उत्तरमें राममोहन रायने सत्यका मित्र (A Friend to truth)के नामसे 'An appeal to the Christian Public' शीर्षक एक पुस्तक लिखी (१८२० ई०)। उसमें आपने सिद्ध किया कि ईश्वरका त्रित्व, ईसाके रक्तसे पापका प्रायश्चित्त इत्यादि बातें बाइबिलमें नहीं मिलतीं मिशनारियोंने बाइबिलका यथार्थ नहीं समझा इसलिए उनका ऐसा विश्वास है।

मार्समैन साहबने पुनः आक्रमण किया। राममोहन रायने दूसरी बार अपने नामसे 'Second Appeal to the Christian Public' प्रकाशित की। मार्समैन साहबने इस बार भी उसका उत्तर दिया। राममोहन राय भी तीसरी बार उत्तर देनेको तैयार हुए, किन्तु अबकी एक बाधा पड़ गई। अब तक उनकी पुस्तकें बैपटिष्ट मिशन प्रेसमें छपा करती थीं। अब प्रेसवालोंने इस पुस्तक-

को ईसाई धर्मकी विरोधक समझ कर छापनेसे इनकार कर दिया। परन्तु राममोहन राय सहजमें छोड़नेवाले न थे। उन्होंने टाइप आदि बनवा कर स्वयं धरमतला में एक प्रेस खोला, जिसका नाम रखा 'यूनिटेरियन प्रेस'। इसका काम अकसर देशी आदमियों द्वारा होता था। १८२७ ई०में इस प्रेससे उनके नामसे 'Final Appeal' नामक तीसरी पुस्तक निकली। इस पुस्तकमें उनके पाण्डित्य और तर्कशक्तिका यहां तक परिचय मिला कि लोग दंग रह गये। मार्समैन साहबने अपने मतके समर्थनके लिए अङ्गरेजी बाइबिलसे अनेक प्रमाण उद्धृत किये। राममोहन राय अङ्गरेजी अनुवादसे सन्तुष्ट न थे, अतएव उन्होंने ग्रीक और हिब्रू भाषामें लिखित मूल बाइबिलसे प्रमाण उद्धृत करके उसका स्वयं अङ्गरेजी अनुवाद करके सिद्ध किया, कि मार्समैन साहबकी बात उनके धर्मशास्त्रके अनुकूल नहीं है। आखिर मार्समैन साहबको पराजित होना पड़ा।

१८२७ ई०में एक और आमोद-जनक तर्कयुद्ध हुआ। एक और डा० टाइटलर साहबके भाई। (हिन्दूकालेजके अन्यतम अध्यापक) और श्रीरामपुरके मिशनरी लोग थे और दूसरी ओर राममोहनराय। सुप्रसिद्ध 'हरकरा' और 'फ्रेण्ड आव इण्डिया' नामक दो पत्र दोनोंके अवलम्बन थे।

'हरकरा' पत्रमें टाइटलर साहबने पहले राममोहन राय पर आक्रमण किया। इस पर कल्पित नाम 'रामदास' रख कर हिंदूभाव धारण करके राममोहन रायने उन्हें ऐसा उत्तर दिया कि "राममोहन राय मूर्त्तिपूजक हिंदू और त्रित्ववादी ईसाई दोनोंके परम शत्रु हैं; वे ईश्वर-बहुत्व और अवतारवाद दोनों ही प्रतिवादी हैं और ये दोनों ही मत हिंदू तथा त्रित्ववादी ईसाई दोनोंके मूल मत हैं। इसलिए आओ, हम लोग (हिन्दू और ईसाई) मिल कर अपने साधारण शत्रु राममोहन राय पर आक्रमण करें।" यह उत्तरपत्र कहांसे आया किसीको मालूम न हुआ। एक घृणित मूर्त्तिपूजक ईसाइयोंके साथ साधारणभूमि पर खड़ा होना चाहता है, यह बात टाइटलर या अन्य ईसाइयोंको सह्य न हुई। उन्होंने बड़ी नाराजगीके साथ 'रामदास' के पत्रका उत्तर दिया, "ईसाई धर्म और हिन्दूधर्ममें तुलना करना बहुत ही अन्यायकार्य्य है, दोनोंकी साधारण भूमि एक नहीं हो सकती।"

'रामदास' ने लिखा कि त्रित्ववादी ईसाईधर्म और मूर्त्तिपूजक हिन्दूधर्मकी मूलभित्ति एक ही है—अवतारवाद और ईश्वरका बहुत्व। ईसाईधर्मकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेके लिए टाइटलर साहब और उनके पक्ष-समर्थक ईसाई लोगोंने ईसाकी अलौकिक क्रिया, ईसाई धर्मकी भविष्यवाणीका पूर्ण होना इत्यादि बातोंको सिद्ध करना चाहा। 'रामदास' ने भी हिन्दूशास्त्रोंसे ऐसे अनेक प्रमाण उद्धृत किये। अनेक प्रत्युत्तरके बाद 'रामदास'हीकी जीत रही। दोनों पक्षके पत्र बादमें पुस्तकाकारमें मुद्रित हुए थे।

इसी समय विलियम आडम नामक एक त्रित्ववादी बैपटिष्ट ईसाई मिशनरी भारतमें आया। राममोहन रायके साथ उनका परिचय हुआ। वे राममोहन रायको ईसाई धर्ममें दीक्षित करनेकी कोशिश करने लगे। परन्तु फल उलटा हुआ। राममोहन राय तो ईसाई हुए नहीं, उलटे वे आडम साहबको अपने धर्ममें खींच लाये। उन्होंने उन्हें समझा दिया कि परमेश्वरका त्रित्व, ईसाका ईश्वरत्व और उनके रक्तसे पापीका उद्धार इत्यादि मत बाइबिलके विरुद्ध है। १८२१ ई०में आडम साहब राममोहन रायके उपदेशसे 'यूनिटेरियन' हो गये। चारों तरफ शोर मच गया। कट्टर ईसाई लोग आडम साहबकी "Second fallen Adam" कह कर हंसी उड़ाने लगे अर्थात् शैतानके चक्करमें आ कर प्रथम मनुष्य आडमका जैसा पतन हुआ था, उसी तरह राममोहन रायके पंजेमें पड़ कर आडम साहबका दूसरी बार पतन हुआ।

१८१५ ई०में वे कलकत्ता-निवासी हुए और एक वर्ष बाद ही अपने मानिकतल्ला-वाले मकान पर उन्होंने आत्मीय सभा कायम की। दूसरे वर्ष यह उनके सिमला-वाले मकानमें स्थानान्तरित हो गई थी, किन्तु उसके बाद फिर जहांकी तहां वापस आ गई। सप्ताहमें एक बार सभा होती थी। शिवप्रसाद मिश्र उस सभामें वेदपाठ करते थे और गोविन्द माल ब्रह्मसङ्गीत गाते थे। द्वारकानाथ ठाकुर, ब्रजमोहन मजूमदार आदि

नियमित रूपसे उक्त सभामें शामिल होते थे, किन्तु जयकृष्ण सिंह आदि बहुतसे लोगोंने निन्दाके डरसे उनका साथ छोड़ दिया।

इसी समय उनके भतीजोंने उन्हें पैत्रिक सम्पत्तिसे वञ्चित करनेकी आशासे उनके विरुद्ध मुकद्दमा दायर कर दिया। नाना साम्पत्तिक झगड़ोंमें पड़ जानेके कारण वे नियमितरूपसे सभाका कार्य्य न चला सकते थे ; इसलिए कभी वृन्दावन मिश्रके मकान पर, कभी भूकैलासके राजा कालीशङ्कर घोषालके मकान पर, कभी रूईके बाजारमें बिहारीलाल चौबेके मकान पर सभा होने लगी। कुछ दिन इस तरह आत्मीय सभाके चलनेके बाद १८१६ ई०में बिहारीलालके मकान पर एक महासभा हुई। उस सभामें राममोहन रायके साथ विचार करनेके लिये तत्कालीन प्रधान प्रधान पण्डितोंके साथ राजा राधाकान्त देव उपस्थित हुए। अनेक तर्क-युक्तियोंके बाद सुब्रह्मण्य शास्त्रीको राममोहन रायके मतप्राधान्यको माननेके लिए बाध्य होना पड़ा था।

नाना सम्पत्तिक झगड़ोंमें उलझे रहनेके कारण अब तक राममोहन रामब्रह्मोपासनाके प्रचारके लिए एक समाज स्थापित न कर सके थे। धर्मविचारमें मूर्त्तिपूजा मतका खण्डन करनेके बाद तथा उक्त मुकद्दमेमें जय प्राप्त करनेके बाद वे आनन्दित हृदयसे अभीष्ट सिद्धिका उद्योग करने लगे। वे सरलहृदय आडम साहबके सहयोगसे विशेष उत्साहके साथ एकेश्वरवादके प्रचारमें प्रवृत्त हुए। ब्राह्मसमाज देखो।

इस समय राज-पुरुषों अन्दर सतीप्रथाको रोकनेके लिए घोर आन्दोलन चल रहा था। लार्ड वेलिसली, लार्ड कर्नवालिस, सर जार्ज बार्लो, मर्कुइस आव हेष्टिंग्स् आदि गवर्नर-जनरलोंने सतीदाह निवारणके लिए अनेक उपाय किये थे, किंतु धार्मिक भावों पर आघात पहुंचेगा इस भयसे वे ज्यादा कुछ न कर सके थे। यहां तक कि ईसाई पादरी भी इसके विरुद्ध कुछ बोलनेमें असमर्थ थे।

१८१० ई०में राममोहनरायके रंगपुरमें रहते हुए उनकी बड़ी भौजाई (जगन्मोहनकी द्वितीय स्त्री) पतिके साथ सहमृता हुईं। इस घटनासे राममोहन रायके हृदयमें सती-दाहको बंद करनेकी आकांक्षा बलवती हो उठी।

सतीदाहके आनुषङ्गिक अत्याचारोंको दूर करनेके लिये निजामत अदालतने जो कठोर नियम बनाये थे, उसको तोड़ देनेके लिए कट्टर हिन्दुओंने गवर्नर-जनरल हेस्टिंग्सके पास आवेदनपत्र भेजा। १८१८ ई०में राममोहन रायने उसके विरुद्ध एक आवेदन भेजा। यह पत्र Asiatic Journal नामक पत्रिकामें प्रकाशित हुआ था। उसी साल ३० नवम्बरको आपने सतीदाहके सम्बन्धमें पहली पुस्तकका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। सतीदाहप्रथाके विरुद्ध आपने 'प्रवर्त्तक और निवर्त्तकका प्रथम संवाद', 'प्रवर्त्तक और निवर्त्तकका द्वितीय संवाद' तथा 'विप्रनाम' और 'मुग्धबोध छात्र' नामक दो व्यक्तियोंके उत्तरमें तीसरा ग्रन्थ प्रकाशित किया। दूसरी पुस्तकका १८२० ई०में अंग्रेजी अनुवाद हुआ। यह अनुवाद हेस्टिंग्सकी सहधर्मिणीको समर्पण किया गया था। उसके सिवा सतीदाहके सम्बन्धमें आपने संवादकौमुदीमें एक लेख लिखा था। १८३० ई०में उनका 'सहमरण विषयक तृतीय प्रस्ताव' और उसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ।

इसी समय लार्ड विलियम बेन्टिक भारतके बड़े लाट हुए। राममोहन रायको सतीप्रथाके विरोधी जान कर तथा वह न्याय और शास्त्रके विरुद्ध है, यह बात पुस्तकमें पढ़ कर बेन्टिकको राममोहन रायसे मिलनेकी अभिलाषा हुई। दोनोंको मुलाकात हुई और सतीदाहनिवारणसम्बन्धी बहुत परामर्श हुआ। १८२६ ई०में ४थी दिसम्बरको बेन्टिकने यह कुप्रथा भारतसे दूर कर दी। १८३० ई०में १६वीं जनवरीको बड़े लाटके प्रति कृतज्ञता जाहिर करनेके लिये राममोहन रायने टाउन-हालमें एक सभा की। टाकीके सुप्रसिद्ध जमींदार कालीनाथ रायचौधरीने उस सभामें बंगला भाषामें लिखित अभिनन्दनपत्र और हरिहर दत्तने उसका अंग्रेजी अनुवाद पढ़ कर सुनाया था। उक्त अभिनन्दनपत्रमें द्वारकानाथ ठाकुर, कालीनाथ राय और तेलिनीपाड़ाके प्रसिद्ध जमींदार अन्नदाप्रसाद बन्द्योपाध्यायके सिवा और किसी सम्भ्रान्त व्यक्तिने हस्ताक्षर न किये थे। इस कारण राममोहन

रायने उक्त अभिनन्दनपत्रके अन्तमें साधारण जनतासे क्षमा प्रार्थना करते हुए लिखा था :—

"That your Lordship will condescendingly accept our most grateful acknowledgement for this act of benevolence towards us and will pardon the silence of those who, though equally partaking the blessing bestowed by your Lordship, have through ignorance or prejudice omitted to join us in this common cause"

देशवासी जिससे संस्कृत और फारसीके सिवा अङ्गरेजी भी पढ़ सकें, इसके लिए आपने विशेष आग्रह प्रकट किया था। १८२३ ई०में आपने सकौन्सिल बड़े लाट आमहर्स्टको कालेज स्थापन करनेके लिये एक प्रार्थनापत्र लिखा। इसमें आपने लिखा था कि अंग्रेजी बिना सिखाये इस देशके लोगोंके कुसंस्कार दूर न होंगे। फारसी या संस्कृत शिक्षासे विशेष लाभ न होगा। इसलिये संस्कृत-कालेजके बदले एक अंग्रेजी विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। आपने वैदिक शिक्षाके लिये एक वेद-विद्यालय खोला था। ७४ नं० माणिकतल्ला ष्ट्रीटमें यह विद्यालय था।

१८५० ई०में ईसाई धर्मके प्रचारक महात्मा डफ कलकत्ते आये। राममोहन रायके साथ मुलाकात करके उन्होंने इस देशके बालकोंको शिक्षाके लिये एक अंग्रेजी विद्यालय स्थापित करनेकी वासना प्रकट की। अंग्रेजी शिक्षाके पक्षपाती राममोहन इस पर बड़े ही प्रसन्न हुए और डफ साहबको विद्यालय स्थापनार्थ ब्राह्म-समाजका मकान छोड़ दिया। पीछे अपने बनाये हुए नये मकानमें समाज स्थापित होने पर आपने कमल वसुका मकान ४०) किराये पर स्कूलके लिए ले लिया। स्कूलमें छात्रसंख्या बढ़ानेके लिये आपने काफी परिश्रम किया था। इसके सिवा स्वयं उन्होंने भी एक अंग्रेजी-स्कूल खोला था। देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने उस स्कूलमें पहले पहल अंग्रेजी अध्ययन किया था। और भी अनेक भद्र और सम्भ्रान्तवंशीय बालक उस स्कूलमें भर्ती हुए थे।

सर्वसाधारणके लिये पाठ्योपयोगी बंगला पुस्तकों का सबसे पहले आपने ही प्रचार किया था। १७६० ई०में ही आपका प्रथम गद्य रचनाका समय है, किन्तु उसके मुद्रित और प्रकाशित न होनेसे जनता उससे अपरिचित रही। १८१५ ई०में उन्होंने साधारण पाठ्य-पुस्तक (गद्यकी) प्रकाशित की।

आपने पहले पहल अपने ग्रंथमें कामा, सेमिकोलन आदिका व्यवहार किया था। उस जमानेमें गद्य पढ़नेमें लोग अनभ्यस्त थे। कैसे पुस्तक पढ़नी चाहिए, इसकी प्रणाली आप स्वयं लिख गये हैं।

१८२६ ई०में अंग्रेजोंको बंगाला भाषा सीखनेमें सहायता पहुंचानेके उद्देशसे आपने अंग्रेजी भाषामें एक बंगला व्याकरण लिखा। बादमें आपने उस व्याकरण-के आधार पर अथवा उसका अनुवाद करके एक 'गौड़ीय व्याकरण' रचा। इसे अच्छा समझ कर सर्वसाधारण-ने खूब अपनाया। इसके सिवा आपने बंगलामें ज्याग्राही (अंगरेजी Geography शब्दका अपभ्रंश) नामसे भूगोल, खगोल (Astronomy) और ज्यामिति (Geometry) भी लिखी थी। परंतु खेद है, कि अब ये ग्रंथ मिलते नहीं।

पहले लिख आये हैं, कि एक समय राममोहनकी माताने उन्हें सपुत्र घरसे निकाल दिया था। उन्होंने पहले राधानगरके समीप रघुनाथपुर जा कर एक घर बनवाया। पीछे वे कलकत्ता आ कर रहने लगे थे। रघुनाथपुरमें रहते समय उनके छोटे पुत्र रमाप्रसादका जन्म हुआ। उस समय बड़े लड़के राधाप्रसादकी उमर २० वर्षकी थी। माताके साथ इनका बहुत दिन तक असद्भाव न रहा। कुछ समय बाद उनकी माताने सारी जमींदारी राममोहन, जगन्मोहन और रामलोचनके पुत्र-पौत्रादिमें बांट दी और आप जगन्नाथ जा कर रहने लगीं। वहां एक वर्ष रहनेके बाद उनकी मृत्यु हुई। इसके कुछ समय बाद ही राममोहनकी मध्यमा स्त्री श्रीमती देवीका स्वर्गवास हुआ। स्त्रीकी बीमारीका हाल सुन कर उन्होंने बड़े लड़के राधाप्रसादको कृष्णनगर भेजा और कह दिया था, कि यदि मृत्यु हो जाय, तो मुझे खबर देना, अग्निसंस्कार कभी न करना। मृत्यु-संवाद पा कर वे कृष्णनगर गये और वहां परलोकगता

पत्नीकी चिता पर दाम्पत्यप्रणयके निदर्शनस्वरूप एक स्तम्भ बनवा दिया।

बहुत दिनोंसे राममोहन रायकी विलायत जानेकी इच्छा थी। इस समय सांसारिक विपर्य्ययसे इनका चित्त बहुत अशान्त हो उठा। वे विलायत जानेके लिये तैयार हो गये। राममोहनका विलायत जाना सुन कर देशमें बड़ा भारी आन्दोलन उठा। इसके पहले कोई भी हिन्दू जहाज पर चढ़ कर विलायत नहीं गये थे।

केवल यूरोपका प्राकृतिक सौन्दर्य वा वहांका आचार व्यवहार, धर्म और राजनैतिक अवस्था आंखोंसे देखनेके लिये ही यूरोप जाना चाहते थे, सो नहीं। उनको इस समुद्रयात्राके और भी कई कारण थे। इष्ट इण्डिया कम्पनीकी नई सनदसे भारतवर्षके भावी राज्यशासन और भारतवासियोंके ऊपर गवर्मेण्टका व्यवहार बहुत दिनों तक कायम रहेगा, सोच कर वे इस विषयमें आन्दोलन करने तथा सतीदाह निवारणके विरुद्ध प्रिभिकौन्सिलमें अपील सुनानेके लिये विलायत जाना चाहते थे। इसी समय उक्त इष्ट-इण्डिया कम्पनीने दिल्ली सम्राट्के कुछ अधिकार छीन लिये थे। इस कारण सम्राट्ने अङ्गरेज कम्पनीके अन्यान्य अत्याचारकी बात इङ्गलैण्डके राजकर्मचारियोंके निकट सुनानेके लिये राममोहन रायको ही दूतरूपमें विलायत भेजना चाहा। दिल्लीके सम्राट्से सहायता पा कर वे प्रफुल्ल चित्तसे १८३० ई०के नवम्बर मासमें विलायतके लिये रवाना हुए। बादशाहने उन्हें सनद द्वारा राजाकी उपाधि दी और अपनी ओरसे आवेदन करनेकी उपयुक्त क्षमता दे कर आने जानेका कुछ खर्च दिया था। बादशाहसे यदि सहायता न मिलती तो सम्भव नहीं, वे विलायत जा सकते थे।

उसी साल १५ नवम्बर सोमवारको वे अपने पालित पुत्र राजाराम, रामरत्न मुखोपाध्याय और रामहरिदासको साथ ले आलबियन नामक जहाज पर चढ़े। अपने हाथसे रसोई आदि करनेकी कुल सामग्री तथा एक दुधारिन गाय भी साथ ले गये थे। जब जहाज नेटाल बन्दरमें लंगर डाले हुए था, उस समय एक फरासी जहाज स्वाधीनताकी पताका फहराये जा रहा था। राममोहन राय उसे देखनेके लिये बड़ी तेजीसे ज्यों ही आगे बढ़ रहे थे, कि जमीन पर गिर पड़े जिससे एक पांव टूट गया। पीछे बहुत उपाय करने पर भी बिलकुल अच्छा न हुआ। विलायतमें ये लंगड़ा कर चलते थे।

१८३१ ई० ८वीं अप्रिलको जहाज लीवरपुलके बन्दरमें पहुंचा। राममोहनकी ख्याति पहले हीसे इङ्गलैण्डमें फैली हुई थी। लण्डननगरमें मुद्रित इनके लिखे अङ्गरेजी भाषाके ग्रन्थ कर पढ़ बहुतोंको इन्हें देखनेकी उत्कट इच्छा थी। जब ये विलायत पहुंचे, तब विलियम राथबोनने अपने ग्रीनबैङ्क नामक भवनमें ठहरनेके लिये इनसे बहुत अनुरोध किया। किन्तु किसीके यहां रहनेकी अपेक्षा वे स्वाधीन भावसे रहना पसन्द करते थे। इसलिये वे राडलिस होटलमें जा कर रहने लगे। यहां सुप्रसिद्ध पण्डित विलियम रस्को और प्रत्नतत्त्वविद् पण्डित स्परजिमके साथ इनकी मित्रता हुई।

पार्लियामेण्ट महासभामें रिफरम बिल और भारतीय सनदके सम्बन्धमें तर्कवितर्क सुननेके लिये इन्होंने शीघ्र ही लण्डनकी यात्रा कर दी। यहां आते समय रस्कोने लार्ड ब्राउहमको राममोहन रायका पूर्ववृत्तान्त और इङ्गलैण्ड आनेका उद्देश्य संक्षेपमें सुना कर उन्हें पार्लियामेण्ट महासभामें गैलरीके नीचे एक स्थान देनेका अनुरोधपत्र दिया।

लीवरपुलसे चल कर वे मैञ्चेष्टर शहरमें कल आदि देखने आये। वहांके स्त्री और पुरुष कुली भारतवर्षके राजा आये हैं, सुन कर राममोहनरायको देखने दौड़े। रैलपथसे लण्डन नगर आ कर आडेलफी होटलमें पहुंचे। यहां जेरमी बेन्थमके साथ इनका परिचय हुआ।

दिल्लीके बादशाहने जो इन्हें राजाकी उपाधि दी थी उसे इङ्गलैण्डकी गवर्मेण्टने स्वीकार कर लिया। इङ्गलैण्डपतिके राज्याभिषेककालमें विदेशीय दूतोंके साथ इन्हें भी एक आसन मिला था। लण्डन नगरके सेतुनिर्माणके उपलक्षमें जो जलसा हुआ था उसमें इङ्गलैण्डके राजाने इन्हें भी निमन्त्रण किया था। बोर्ड आव कण्ट्रोलके सभापति सर जे, सी, हबहाउस उन्हें इङ्गलैण्डेश्वरके

पास ले गये। उन्होंने राममोहनके सम्मानार्थ London Tavern नामक मकानमें एक भोज दिया था।

लण्डन नगरके यूनिटेरियन ईसाइयोंने उनके प्रति सम्मान दिखानेके लिये एक प्रकाश्य सभा की। उस सभामें वेष्टमिनिष्टर रिभ्यु नामक पत्रिकाके सुप्रसिद्ध सम्पादक सर जान बाउरिंगने अपनी वक्तृतामें कहा था—"प्लेतो वा सक्रेटिस, मिलटन वा न्युटन यदि हठात् आ जावें, तो मनमें जैसा भाव उत्पन्न हो सकता है, उसी भावसे अभिभूत हो कर आज मैंने राजा राममोहन रायकी अभ्यर्थना करनेके लिये हाथ बढ़ाया है।" उनके बाद अमेरिकाके युक्तराज्यके हार्भार्ड विश्वविद्यालयके सभापति डा० कार्कलण्डने कहा था, "अमेरिकावासी राजा राममोहन रायके विषयकी चिन्ता करते हैं। वे लोग अमेरिका आनेके लिये उनका स्वागत करते हैं।" वैदेशिकके ऐसे आग्रह और महानुभवतासे राममोहन रायको उच्च आसन मिला।

१८३१ और ३२ ई०में इष्ट-इण्डिया कम्पनीके नई सनद पानेके उपलक्षमें भारतवर्षको शासनप्रणाली निरूपण करनेके लिये पार्लियामेण्ट महासभासे एक कमिटी नियुक्त हुई। इस देशके यूरोपीय वणिकों और राजकर्मचारियोंने कमिटीके सामने गवाही दी थी। राजा राममोहन रायने भी अनुरुद्ध हो कर उस कमिटीके निकट गवर्मेण्टके राजस्व विभाग, विचारविभाग और प्रजासाधारणकी अवस्थाके सम्बन्धमें साक्ष्य प्रदान किया था। कमिटीके सामने इन्होंने भारतवासियोंकी पदोन्नतिके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें कही थीं।

राजा राममोहन रायने स्वदेशकी भलाईके लिये इङ्गलैण्डमें रहते समय राजनीति और धर्मके सम्बन्धमें बहुतसे ग्रन्थ लिखे थे। पार्लियामेण्ट कमिटीके सामने उनका साक्ष्य १८३२ ई०के फरवरी मासमें निम्नलिखित नामसे प्रकाशित हुआ।

"An essay on the Rights of Hindoos over Ancestral Properties, according to the Law of Bengala with an Appendix containg Letters on the Hindoo Law of Inheritance, and Remarks on East India Affair; comprising the Evidence to the Committee of the House of Commons on the Judicial and Revenue systems of India, with a dissertation on its ancient Boundaries, also Suggestion for the Future Governments of the Country illustrated by a Map and further enriched with Notes."

उसी सालके सितम्बर मासमें Monthly Repository नामक पत्रिकामें उनके लिखे और भी दो ग्रन्थोंका उल्लेख देखा जाता है जो इस प्रकार हैं,--

1. Exposition of the Practical operation of the Judicial and Revenue Systems of India.

2. Translations of several principal books, passages and texts of Veds and of some Controversial works on Brahminical Theology.'

उक्त वर्णक शरत्कालमें राममोहन राय प्रातःस्मरणीय हैयर साहबके भाईको साथ ले कर फ्रान्स देश देखने गये। फ्रान्स राज्यमें भी उनका यथेष्ट आदर हुआ था। स्वयं सम्राट् लुई फिलिपने इनका सम्मानके साथ स्वागत किया था। यहां तक कि, उन्होंने राममोहन रायको निमन्त्रण कर एक साथ भोजन किया था। यहांकी सोसाइटी एशियाटिक नामक सभाने इन्हें सभासद बनाया। एक दिन उन्होंने पेरिस नगरके किसी होटलमें सुप्रसिद्ध कवि सर टामस मूरके साथ आहार किया था। टामस मूर उनके मधुर व्यवहार पर मुग्ध हो गये थे। यहां फरासी भाषा सीखनेके लिये इन्होंने कठिन परिश्रम किया था।

१८३३ ई०के आरम्भमें वे इङ्गलैण्ड लौट कर हैयर साहबके भाईके घर ठहरे। इङ्गलैण्डका सम्भ्रान्त भद्र-समाज इन्हें श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता था। कुमारी लूसी एकिनने सुप्रसिद्ध डा० चैनिको जो सब पत्र* लिखे, उन्हें पढ़नेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि राममोहन रायके प्रति उसकी कैसी श्रद्धा और भक्ति थी। जैसे—

"Just now my feelings are more cosmopolite than usual; I take no personal concern in

* Memoirs, Miscellanies and Letters of late Lucy Ackin.

a *third* quarter of the Globe, since I have seen the excellent Ram mohon Roy."

फिर दूसरी जगह उन्होंने राममोहन रायके सम्बंध-में कहा है—

"He is indeed a glorious being—a true sage, as it appears, with the genuine humility of the character, and with a more fervour, more sensibility, a more engaging tenderness of heart than any class of character can justly claim."

उन्होंने जो रेभेरेण्ड डि डेभिसन एम ए साहब पर अपने पालित पुत्र राजारामका शिक्षा-भार सौंपा था उनकी सहधर्मिणीने राममोहनके सम्बन्धमें लिखा है, "ऐसे विनयी मनुष्य शायद ही कहीं मिलेंगे। जैसे सम्मानके साथ वे मेरे प्रति व्यवहार करते थे, उससे मैं लज्जा जाती थी। यदि मैं अपने देशकी महारानी होती, तो भी मेरे पास आने और विदा होनेके समय कोई भी इससे बढ़ कर सम्मान न दिखलाता।"

इसके बाद राममोहनने बृष्टल जानेकी इच्छा प्रकट की। सुपरिचित मिस कार्पेण्टरके पिता डाक्टर कार्पेण्टरने कुमारी कासेल तथा उनकी मामी और अभिभाविका कुमारी किडेलके साथ लण्डन नगरमें राममोहनका परिचय करा दिया। बृष्टलमें इन्होंने ष्टेपलटन ग्रोभ नामक उद्यानवाटिकामें किडेल और कुमारी कासेलके यहां अतिथिरूपमें रहना चाहा।

१८३३ ई०के सितम्बर मासमें वे बृष्टल आये और उक्त कुमारीके यहां ठहरे। उनके साथ उनके नौकर और कर्मचारी रामहरिदास और रामरतन मुखोपाध्याय तथा पालित पुत्र राजाराम भी आये थे। लण्डनसे उन्हें वहां कहीं आनन्द मिलता था। अधिकांश समय वे डा० कार्पेण्टर और सुप्रसिद्ध प्रबन्धलेखक रेभेरेण्ड जान फष्टरके साथ बिताते थे। कुमारी कार्पेण्टरके साथ इनकी बातचीत हुई। उसी बातचीतसे कुमारीके हृदयमें भारतकी हितसाधनेच्छा जग उठी थी।

११वीं सितम्बरको ष्टेपलटन ग्रोभ भवनमें राजा राममोहन राय सेकथोपकथन करनेके लिये बहुसंख्यक सुशिक्षित व्यक्ति इकट्ठे हुए। उनका स्वागत करनेके लिये जो सभा हुई उसमें भारतवर्षकी धर्मनैतिक और राजनैतिक अवस्था तथा भविष्य उन्नतिके विषयमें विचार किया गया था। सुप्रसिद्ध डा० फष्टर और अनन्यान्य प्रधान पण्डितवर्ग राममोहनकी असाधारण तर्कशक्ति देख कर चमत्कृत हो गये थे। राममोहन रायने करीब ३ घंटे खड़े रह कर उपस्थित पण्डित-मण्डलीके कठिन प्रश्नोंका यथायथ उत्तर दिया था। जिस असाधारण प्रतिभाका उन्मेष देख कर एक दिन इनके पिता माता तथा गांवके लोग विस्मित हो गये। जिस प्रतिभासे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि धर्म-सम्प्रदायके प्रधान प्रधान पण्डित उनसे परास्त हुए थे, जिस प्रतिभाबलसे उन्होंने विभिन्न भाषा और विविध शास्त्रमें व्युत्पत्ति लाभ कर असामान्य ज्ञानज्योति प्राप्त की थी, उस असाधारण प्रतिभाका परिचय पा कर बृष्टलनगरमें आये हुए पंडितवर्ग स्तम्भित हो गये। किन्तु दुःख है, कि यह कार्य उनके जीवनका शेष कार्य था। इसके बाद वे मनुष्यके एक भी हित कर कार्यमें शामिल न हो सके। उस दिनकी सभाके कार्यमें अत्यन्त परिश्रमके बाद उन्हें फिर कभी विश्रामका अवसर न मिला। डा०. कार्पेण्टरके उन्हें विश्रामके लिये अनुरोध करने पर भी वे बन्धुवर्गका आतिथ्य उपेक्षा नहीं कर सकते थे। जो सब मनुष्य उनसे मिलने आते थे, उन्हें वे विमुख नहीं लौटाते, उपयुक्त उत्तर दे कर संतुष्ट कर ही देते थे। इसके सिवाय वे उपासना-घर जाने और अन्यान्य स्थान देखनेसे भी बाज नहीं आये थे।

१९वीं सितम्बरको इन्हें थोड़ा-सा ज्वर आ गया। चिकित्सक-प्रवर एसलिन, पिचार्ड और कैरिकने इनकी चिकित्सा की। दो दिन तक चिकित्सा होती रही, पर कोई फल नहीं दिखाई दिया। आखिर १८३३ ई०की २७वीं सितम्बरको रातको ढाई बजे चांदनी रातमें राजा राममोहन राय इस लोकसे चल बसे। उनकी मृत्यु पर इङ्गलैण्डवासियों और भारतवासियोंने आंसू बहाया था। उनकी शुश्रूषा करनेवाले इङ्गलैण्डवासी पुरुष और कुमारियोंके आग्रहसे उसी समय राजाके मस्तक और मुखकी एक प्रतिमूर्त्ति बनाई गई थी।

पीछे उनके लड़कोंको कहीं सम्पत्तिका हिस्सा न मिले, इसके लिये उन्होंने पहले ही से अपने यूरोपीय बंधुओंको कह रखा था, कि ईसाइयोंके मकबरेमें, अथवा ईसाइयों की अन्त्येष्टिक्रियाकी पद्धतिके अनुसार उन्हें न दफना कर किसी स्वतंत्र स्थानमें गाड़ दिया जाय। क्योंकि, हिंदूप्रथा और आइनके अनुसार इससे उनकी जाति नष्ट न होगी। उनके मृत शरीर पर भी यज्ञोपवीत देखा गया था। उनके कथनानुसार उनकी मृतदेह ष्टेपलटन ग्रोभकके एक निर्जन उद्यानमें चुपचाप १८वीं अक्टूबर को गाड़ दी गई थी। उनके मित्र द्वारकानाथ ठाकुरने इङ्गलैण्ड जा कर Arno's Vale नामक स्थानमें उनकी लाश ला कर उसके ऊपर एक सुन्दर मकबरा बनवा दिया था।

राममोहन बन्द्योपाध्याय—नदिया जिलान्तर्गत भागीरथी पूर्ववर्त्ती मेटेरी ग्रामनिवासी एक बंगाली कवि। इनके पिताका नाम बलराम बंद्योपाध्याय था। अपने पिताके कहनेसे इन्होंने अपने घरमें बड़ी धूमधामसे भक्तिपूर्वक सीतारामकी मूर्त्ति स्थापित की थी। यह अपने कवित्वके निदर्शनस्वरूप रामायण वंगला पद्यमें अनुवाद कर गये हैं। इनका पद्य कृत्तिवासकी तरह प्राञ्जल नहीं होने पर भी कविको प्रतिभाका परिचायक था।

रामयन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रोक्त यन्त्रविशेष।

रामयशस्—क्षेमेन्द्रके समसामयिक एक कवि। भारतमञ्जरीमें इनका उल्लेख है।

रामरक्षा (सं० पु०) रामजीका एक स्तोत्र। इसके कर्त्ता विश्वामित्र माने जाते हैं। कहते हैं, कि इस स्तोत्रके मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किया हुआ व्यक्ति विशेष रूपसे सुरक्षित रहता है।

रामरङ्गपत्तन—आरी राज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। (भविष्य ब्रह्मखण्ड १५।५)

रामरज (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी पीली मिट्टी जिसका वैष्णव लोग तिलक लगाते हैं। यह मध्यप्रदेशमें नदियोंके किनारे बहुत मिलती है।

रामरतन (हिं० पु०) चन्द्रमा।

रामरस (हिं० पु०) १ नमक। २ पोसी या बनी हुई भंग।

रामरसशली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी ऊख जो कनारामें पैदा होती है।

रामरहस्योपनिषद्—एक उपनिषद्का नाम।

रामराज—दाक्षिणात्यके विजयनगरके एक राजा। ये दाक्षिणात्यके चार मुसलमानराज राजाओंके विरुद्ध युद्ध कर निहत हुए थे। १५६५ ई०के जनवरी महीनेमें कृष्णानदीके किनारे घोर युद्ध हुआ था। इस युद्धमें रामराजके साथ लाख हिन्दू-सेना खेत रही थी। लड़ाई खतम होनेके बाद रामराज निजाम हुसनेके सामने लाये गये। उसी समय उन्होंने उनका शिर काट डालनेका हुक्म दिया। हुक्म पाते ही तिशूलसे उसका शिर काट कर जयस्तम्भस्वरूप बीजापुर भेजा गया।

विजयनगर देखो।

रामराज—साताराके एक महाराष्ट्र-नरपति। २य शाहजीके बाद १७४८ ई०में ये राजसिंहासन पर बैठे। ये ताराबाईके पौत्र और शाहजीके दत्तक थे। महाराष्ट्र देखो।

रामराज—स्थापत्यविद्याविषयक ग्रंथके प्रणेता।

रामराज्य (सं० पु०) १ रामचन्द्रजीका शासन जो प्रजाके लिये अत्यन्त सुखदायक था। २ वह शासन जिसमें रामचन्द्रके शासनकालके जैसा सुख हो, अत्यन्त सुखदायक शासन। ३ महिसुर देश।

रामराम (हिं० पु०) १ प्रणाम, नमस्कार। इस पदका प्रयोग हिन्दुओंमें परस्पर अभिवादनके लिये होता है। (स्त्री०) २ भेंट, मुलाकात।

रामराम—नाड़ीप्रकाश, रसदीपिका और रसरत्नप्रदीपके रचयिता।

रामराम—एक आम्नायका नाम।

रामराम न्यायालङ्कार—वोपदेवकृत कविकल्पद्रुमकी टीका बनानेवाले।

राम राय (गुरु)—एक सिख-गुरु। युक्तप्रदेशके देहरादून जिलेका देहरानगर इन्होंने ही बसाया था। ये १७वीं सदीके शेषभागमें दुन नामक स्थानमें जा कर बस गये। इन्होंने जो एक मन्दिर बनवाया था उसकी बनावट बहुत कुछ जहांगीरके मकबरे सी थी। ऐसा मंदिर नगर भरमें और कहीं नहीं है।

रामराय जब किसी कारणवशतः सिखसम्प्रदायसे अलग और पंजाबसे निकाल दिये गये, तब सम्राट् औरङ्गजेबने गढ़वालके राजासे इनका परिचय करा

दिया। राजाने इन्हें रहनेके लिये जो स्थान दिया था, वह आज भी गुरुद्वार वा देहरा कहलाता है। यहां रामरायकी अलौकिक शक्ति देख कर सैकड़ों आदमी इनके शिष्य हो गये। राजा फते शा इनके प्रतिष्ठित पूर्वोक्त मंदिरके खर्चावर्चाके लिये जागीर दे गये हैं।

रामराय योगाभ्यास द्वारा असामान्य कार्य्य कर सकते थे। यहां तक, कि अपनी आत्माको दूसरे शरीरमें चालित करना जानते थे। एक दिन इसी प्रकार अपनी आत्माको दूसरेके शरीरमें परिचालित करनेके बाद वे निरूपित समयमें लौट कर न आ सके और इनकी मृत्यु हुई। जहां पर इनकी देह मृतावस्थामें पड़ी थी वहां इनके शिष्योंने एक समाधिमंदिर बनवा दिया है।

रामराय—एक हिन्दी-कवि। इनकी कविता बड़ी मधुर होती थी। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं।

"सांवरेसे कहियो मोरी।
सीस नवाय चरण गहे लीजो कर विनती कर जोरी॥
कहा ऐसी चूक परी हरि मोसे प्रीत पाछली तोरी,
सुरत न लीनी मोरी॥
भूषण वसन सभी हम त्यागे खान पान बिसरोरी।
भभूत रमाय योगन होय बैठी तेरो ही ध्यान धरारी वेग,
क्यों न आवो किशोरी॥
रोम रोम मद छाय रहो मत मेरी बैर परोरी।
वारे करेज राम राय दयो है अब मैं कैसी करारी,
धीर नहिं जात धरोरी।

रामरायका—चम्पारण जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह रामनगरसे तीन कोस उत्तर हो कर दक्षिण-पूर्व बहती है। मशान और बलौरा नामकी दो शाखा इसमें आ मिली हैं।

रामराव चिंचोलकर—छत्तीसगढ़-निवासी एक महाराष्ट्र-ब्राह्मण। इनका जन्म संवत् १९२० और देहांत १९६० में हुआ था। इन्होंने ३६ ग्रंथ लिखे हैं। कुछके नाम नीचे दिये गये हैं,—शतक, शिक्षावली, नीतिशतक, नीतिचंद्रिका, आर्य्यधर्मचंद्रिका, वसंतचंद्रिका, भारतविलाप, ऋतुविनोद, पुरानी लकीरके फकीर, शिवसम्पत्तिविजय इत्यादि।

रामरी—१ दक्षिणब्रह्मके समुद्रोपकूलस्थित एक छोटा द्वीप। यह अक्षा० १८° ४३′ से १९° ३८′ उ० तथा देशा० ९३° ३०′ से ९३° ५६′ पू०के मध्य अवस्थित है और आराकानविभागके क्यौकप्यु जिलेमें पड़ता है। रामरी और क्यौकप्यु नामक शहर (Township) ले कर यह बना है। यह द्वीप ५०० मील लम्बा और २० मील चौड़ा है। इस द्वीपके चारों ओर पर्व्वतमाला नजर आती है जिसकी ऊंचाई समुद्रकी तहसे ५०० से १५०० फुट है। सबसे बड़ी चोटी ३००० फुट ऊंची है। यहां धान, नील, लवण, चीनी और बहादुरी लकड़ी बहुतायतसे पाई जाती है। कहीं कहीं लोहे और चून-पत्थरकी खान भी है। पहले रामरी और चेदुवा ले कर रामरी नामक एक स्वतंत्र जिला संगठित था। अभी वह पूर्वोक्त क्यौकप्यु जिलेमें मिला दिया गया है।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण ४२६ वर्गमील है। रामरी नगर इसका विचारसदर है।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १८° ४३′ से १९° २२′ उ० तथा देशा० ९३° ४०′ से ९४° २′ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४४९ वर्गमील और जनसंख्या १९६०० है। इसमें २४७ ग्राम लगते हैं।

१८०५ ई०में यह नगर वाणिज्यसमृद्धिसे परिपूर्ण था। उस समय यहांके लोग बंगाल, बसाई और ताभय आदि स्थानोंमें वाणिज्यव्यवसाय करते थे। क्याइनब्राणके विद्रोह और ब्रह्मवासीके अत्याचारसे आगे चल कर यह नगर श्रीहीन हो गया। क्याइनब्राण और उसके साथीके परास्त होने पर राजाने बहुतोंको मरवा डाला और जो बच गये उन्हें राज्यसे निकाल दिया गया।

प्रथम अंगरेज-ब्रह्मके युद्धकालमें यह स्थान बड़ी आसानीसे अंगरेज सेनापति माक् बीनके हाथ लगा। अंगरेज-सेनापतिसे आराकान अधिकृत होनेके बादसे ले कर १८५२ ई० तक रामरी नगर उसी नामके जिलेका विचारसदर था। पीछे आन् और रामरी नगर अब मिला दिया गया, तबसे यह क्यौकप्यु जिलेका प्रधान नगर गिना जाता है।

रामचन्द्र न्यायवागीश—अमरशतकटिप्पणीके रचयिता।

रामरुद्र भट्ट (सं० पु०) एक ग्रन्थकार। इनकी बनाई हुई रामरुद्रभट्टि नामकी टीका मिलती है।

रामरुद्र भट्ट—तरङ्गिणी नामक न्यायग्रन्थ, तर्कसंग्रह-दीपिका व्याख्या, प्रभा, दिनकरकृत मङ्गलवादकी टीका, व्युत्पत्तिवादटीका और रामरुद्रीय नामक न्यायशास्त्रके प्रणेता।

रामरूप ठाकुर—एक भाट। इनका जन्म पूर्व बंगालमें हुआ था। संगीतके एक अच्छे लेखक होनेके कारण ये प्रशंसाभाजन हो उठे थे। इनका बनाया हुआ गान सुमधुर होता था, इसलिये बहुतेरे आग्रहसे अपने अपने दलमें गानेके लिये लेते थे।

रामर्षि—भर्त्तृहरिशतकटीका, वृन्दावनकाव्यटीका और १६०८ ई०में रविदेवकृत नलोदयटीकाके रचयिता। ये वृद्धव्यासके पुत्र तथा निम्बादित्य और हरिवंशके भाई थे। कोई कोई इन्हें रामऋषि भी कहा करते हैं।

रामल (सं० पु०) १ राजतरङ्गिणीवर्णित एक व्यक्ति। (राजतर० ८।२१७) (त्रि०) २ रमलसंबंधी, रमलका। रमल देखो।

रामलवण (सं० क्ली०) रामं रमणीयं लवणम्। शाम्भरिलवण, सांभर नमक। पर्याय—रोमक, पाश्चात्याकरसम्भव। (रत्नमाला)

रामलाल—बिजावरके रहनेवाले एक हिंदू-कवि। इनके बनाये हुए ग्रंथ ये सब हैं,—अमरकण्टकचरित्र, भवानीजीकी स्तुति, महावीर जू को तोसा, रामसागर, श्रीब्रह्मसागर, श्रीकृष्णप्रकाश। रसपक्षकी इनकी कविता सराहनीय होती थी। उदाहरणार्थ एक नीचे दी गई है,—

"अब ता माने न हठीली मोरी बतियाँ।
चार दिवसकी चटक चांदनी फिर आवेंगी अंधेरी रतियाँ॥
छोड़ गुमान कान दे सजनी बीत जगाय रही है घतियाँ।
रामलला मिल मान हितापन हरि हिय लाय जुड़ावो छतियाँ॥"

रामलिङ्ग (सं० पु०) रामचन्द्र।

रामलिङ्ग—१ त्रिपुरार्णवचंद्रिका नामक तन्त्रके रचयिता। २ न्यायसंग्रहकी तर्कभाषाटीकाके प्रणेता।

रामलिङ्गकृत (सं० पु०) ग्रन्थकारभेद।

रामलीला (सं० स्त्री०) १ रामजीके जीवनकालके किसी कृत्यका नाट्य, रामके चरित्रोंका अभिनय। २ एक मात्रिक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें २४ मात्राएं होती हैं और अन्तमें 'जगण'-का होना आवश्यक होता है।

रामलेखा (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद। (राजतर० ७।२५६)

रामलोचन घोष (दीवान)—कलकत्तावासी एक कायस्थ-सन्तान। ये वार्न हेष्टिंग्सकी पत्नी लेडी हेष्टिंग्सके मुन्सी थे। अपने स्वामी और स्वामिनीके प्रियपात्र रामलोचन थोड़े ही दिनोंमें दीवान कह कर परिचित हुए। दशसाला बन्दोबस्तके समय उन्होंने अपना कृतित्व दिखा कर उस समयके बड़े लाटको बड़ा सन्तुष्ट किया तथा बहुत से गांव और सम्पत्ति हाथमें कर ली थी।

रामल्लकोट—१ मन्द्राज-प्रदेशके कर्नूल जिलेका एक तालुक। भू-परिमाण ७३४ वर्गमील है। २ उक्त तालुकका एक नगर और विचार-सदर।

रामवज्रपञ्जरकवच—मन्त्रात्मक धारणीय कवचविशेष। हिरण्यगर्भसंहितामें इसका विषय वर्णित है।

रामवर्द्धन (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा। (राजतर० ६।१२६)

रामवर्मन्—अध्यात्मरामायणसेतु, रामगीताटीका और रामायणतिलकके रचयिता। ये हिम्मतिवर्माके पुत्र और नागेशके शिष्य थे।

रामवल्लभ (सं० क्ली०) रामं रमणीयं वल्लभं। १ त्वच्, दारचीनी। (त्रि०) रामस्य वल्लभं। २ रामप्रिय।

रामवल्लभ शर्मा—पूर्णानन्दकृत षट्चक्रकी सज्जनरञ्जिनी नामकी टीका और पूर्णानन्दषट्चक्रनिरूपणटीकाके प्रणेता। ये चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत वत्सपुरमें रहते थे।

रामवल्लभी—वैष्णवसम्प्रदायविशेष, कर्त्ताभजाकी एक शाखा। रामशरणपाल आदिको गुरु वा कर्त्ता न मान कर वंशवाटी (हुगलीके अन्तर्गत बांसबेड़िया ग्राम) के कुछ लोगोंने रामवल्लभी नामसे एक शाखा स्थापन की। कृष्णकिङ्कर गुणसागर और श्रीनाथ मुखोपाध्याय इसके प्रधान थे। इस सम्प्रदायके लोगोंने रामवल्लभ नामक एक व्यक्तिको प्रवर्त्तक और शिवस्वरूप माना। तदनुसार वे लोग प्रति वर्ष शिवचतुर्दशीके दिन पांचघरा ग्राममें प्रवर्त्तकके उद्देशसे एक उत्सव मनाते हैं।

ये लोग सभी शास्त्रोंको तथा सभी शास्त्रोक्त देवताको एक समान मानते हैं। इस कारण उत्सवके समय भगवद्गीता, कुरान और बाइबिल ग्रन्थ पढ़े जाते हैं। वहां 'परमसत्य' नामक एक वेदी है। सभी जातिके लोग वहां एकत्र भोजन करते हैं। वे ईसा, महम्मद और नानकके उद्देशसे भोग चढ़ाते हैं। सुनते हैं, कि गोमांसादि भी भोगमें दिया जाता है।

सभीको समान जानना और विनयी होना उचित है, परद्रव्य और परस्त्रीहरणकी बात तो दूर रहे, उसके स्पर्शन वा दर्शनसे भी पाप है, यही उनका साम्प्रदायिक मत है। किन्तु उन्हें अपरापर नियम, खास कर व्यभिचारवर्जनविषयक प्रतिज्ञाका पालन करते नहीं देखा जाता।

रामवसु—एक बंगाली कवि। बचपनसे ही इन्हें कविता बनानेका शौक था। उस समय टूटी फूटी जो कुछ कविता बनाते थे, उसे वे केलेके पत्तेमें लिख लिया करते थे। धीरे धीरे ये एक अच्छी कवि हो गये। इनकी कविता बड़ी ओजस्विनी होती थी। ४२ वर्षकी अवस्थामें इनका देहांत हुआ।

रामवाजपेयी (सं० पु०) एक पद्धतिकार। कुण्डमण्डपसिद्धिके रचयिता विट्ठल दीक्षित और शूद्रधर्मतत्त्वके प्रणेता कमलाकर भट्टने इनका नामोल्लेख किया है।

रामवाण (सं० पु०) रामस्य वाण इव सफलत्वात्। १ औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पारा, विष, लौंग, गंधक प्रत्येक १ तोला, मिर्च २ तोला, जायफल आधा तोला एक साथ इमलीके रसमें मिला कर उड़द भरकी गोली बनावे। रोगीके दोषका बलाबलके अनुसार अनुपान स्थिर करना होता है। इसका सेवन करनेसे शीघ्र ही जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा संग्रहणी आदि नाना रोग प्रशमित होता है।

(भैषज्यरत्ना० अग्निमान्द्याधि०)

२ एक प्रकारकी ऊख। (त्रि०) ३ जो तुरंत उपयोगी सिद्ध हो, तुरंत प्रभाव दिखानेवाला।

रामवीणा (सं० स्त्री०) रामा रमणीया वीणा। वीणाविशेष, एक तरहकी वीणा।

"कुब्जी च कच्छपी वीणा वीणा तुम्बुरु नारदी।
सारस्वती केशिकला रामवीणा कलाश्रिता॥"

(शब्दरत्ना०)

रामव्रतिन् (सं० पु०) १ रामव्रतधारी, वह जो रामव्रत करता हो। २ धर्मसम्प्रदायभेद।

रामशङ्कर—१ शूद्रविवेकके प्रणेता। २ यन्त्रचिन्तामणि-टीका और समरसारविवरणके रचयिता।

रामशङ्कर राय—दीक्षासेतु और सारात्संग्रहक नामक दो तन्त्रके प्रणेता।

रामशङ्कर व्यास—हिन्दी गद्यके एक अच्छे लेखक। आपका जन्म संवत् १९१७में हुआ था। आपने कई वर्ष कविवचनसुधा और आर्यमित्रका सम्पादन किया। आप भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्रके अंतरंग मित्रोंमेंसे थे और उन्हें वह उपाधि पहले इन्होंने ही दी थी। आपने खगोलदर्पण, वाक्यपंचाशिका, नैपोलियनकी जीवनी, बातकी करामात, मधुमती, वेनिसका बांका, चंद्रास्तनूतन पाठ और राय दुर्गाप्रसादका जीवन चरित्र नामक ग्रंथ रचे हैं।

रामशर (सं० पु०) रामस्य शर इव। १ शरवृक्षभेद, एक प्रकारका नरसल या सरकंडा। यह ऊखके खेतोंमें आप ही आप उगता है और ऊख हीके आकार-प्रकार और रूप-रंगका होता है। अंतर सिर्फ इतना ही होता है, कि इसमें कुछ भी रस नहीं होता। पर्याय—रामकान्त, रामवाण, रामेषु, अपर्व्वदन्त, दीर्घ, नृपप्रिय। वैद्यकमें इसके मूलका गुण कुछ उष्ण, रुचिप्रद, अम्लरस, कषाय, पित्तकारक और कफनाशक माना गया है। २ रामचन्द्रका वाण।

रामशर्म्मन् (सं० पु०) उणादिकोषके रचयिता।

रामशरणपाल—कर्त्ताभजामतप्रवर्त्तक। आउलेचांदके बाद ये तख्त पर बैठे। कर्त्ताभजा देखो।

रामशास्त्रिन्—नरहरितीर्थके संन्यासाश्रम ग्रहण करनेके पहलेका नाम। १२१४ ई०में इस पण्डितवरकी मृत्यु हुई।

रामशास्त्री—एक महाराष्ट्रीय पण्डित। इनकी उपाधि पूर्वणी थी। साताराके निकटवर्त्ती महौली ग्राममें इनका जन्म हुआ था। संस्कृत शास्त्रमें पारदर्शी होनेके लिये

वे काशी आये। यहां शास्त्रालोचनामें हो इनके जीवनका अधिकांश समय बीत गया। अन्तमें १७५६ ई०को पूना-नगरमें पण्डित बालकृष्ण शास्त्रोके मरने पर ये काशीसे पूना आये। यहां पेशवा माधवरावके कहनेसे राजकार्य देखने लगे। राजदरबारमें जितने शास्त्री थे सबोंमें ये श्रेष्ठ थे। पेशवा राजकार्यमें अनेक समय इनसे सलाह लिया करते थे।

माधवराव किसी सुचिज्ञ ब्राह्मणसे योग सोखते थे। एक दिन वे योगमग्न हो कर बैठे हुए थे, इसी समय रामशास्त्री वहां पहुंचे। उन्हें चित्तवृत्तिनिरोधपूर्वक योगासन पर बैठे देख रामशास्त्री वहांसे चले आये। दूसरे दिन सबेरे वे पेशवाके पास गये और बोले, 'मैं काशो जाना चाहता हूं, इसलिये कुछ दिनके लिये अवकाश दोजिये।' माधवरावने अपना अपराध स्वीकार करते हुए उनसे प्रार्थना की और कहा, 'मैंने ऐसा कौन अनुचित कार्य किया है जिससे आप अप्रसन्न हुए हैं।' शास्त्रीजीने जवाब दिया, 'जो ब्राह्मण शास्त्रानुमोदित क्रियाकाण्डसे अपसृत हो कौशलसे राजसिंहासन पर बैठे हैं, उन्हें उचित है, कि वे पुत्रके समान प्रजापालन करें। यही उनका उपयुक्त प्रायश्चित्त है। यदि आप वैसा करना नहीं चाहते हैं, तो अभी मसनद परसे उतर जाइये और धर्मकर्ममें जीवन उत्सर्ग कीजिये। शास्त्री जो कुछ शिक्षा देते हैं मैं भी उसका अनुमोदन करता हूं।' उसके बाद माधवरावने परामर्शदाता अमात्यवर रामशास्त्रोके कहनेका तात्पर्य समझ कर योगाभ्यास छोड़ देनेका सङ्कल्प किया।

रामशास्त्री अपने देशवासीकी उन्नतिके लिये जो सब काम कर गये हैं उसका एक बार स्मरण करनेसे मनमें आपे आप भय और भक्तिका उदय होता है। सम्भ्रान्त और धनी व्यक्ति भी खराब काम करने पर उनसे डरते थे। उनके वाक्यकी गुरुता और सारवत्ता सबोंने अच्छी तरह समझ ली थी। बहुतोंने उन्हें धनके लोभमें लुभानेकी कोशिश भी की थी, पर वे ऐसे उदार प्रकृतिके आदमी थे, कि कभी भी किसीसे उन्होंने एक कौड़ी तक भी नहीं ली थी। उनके खाने पीने और पहननेका कोई भी प्रबन्ध नहीं था। उसके लिये उन्होंने कभी दुःख नहीं भोगा। जो कुछ मिल जाता था, वही वे खुशीसे खाते थे। खानेके लिये एक दिन पहले भी कुछ सञ्चय कर नहीं रखते थे। शास्त्रमें प्रकृत ब्राह्मणके जो सब नियम बतलाये गये हैं उन्हींके पालनमें वे अपना अधिकांश समय बिताते थे। महाराष्ट्र देखो।

रामशिला (सं० स्त्री०) गयाकी एक पहाड़ी जिसे लोग तीर्थ मानते हैं। स्कन्दपुराणके मानसखण्डके रामशिलामाहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण है।

रामशिष्य—तैत्तिरीयोपनिषल्लघुदीपिकाके रचयिता।

रामशेष—सत्याभरणदीपिकाके प्रणेता।

रामशीतला (सं० स्त्री०) आरामशीतला, पत्रशाकविशेष।

रामश्री (सं० पु०) एक प्रकारका राग। इसे कुछ लोग हिन्दोल रागका पुत्र मानते हैं।

रामश्रीपाद (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

रामषड्क्षरमन्त्रराज (सं० पु०) मंत्रभेद।

रामसंडा (हि० पु०) एक प्रकारकी घास जिससे रस्सी या बाध बनाते हैं, काँस।

रामसंयमिन् (सं० पु०) एक वेदांतग्रंथके रचयिता।

रामसखा (सं० पु०) रामस्य सखा (राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) इति टच्। सुग्रीव।

रामसखि—एक हिन्दी कवि। इन्हें कविता करनेकी शक्ति थी। इनके छन्द भी मनोहर होते थे। जैसे—

"नवल लाल लाड़ले दोऊ रङ्गमहल जागे।
घुमत रतनारे नैन भैनके रस पागे॥
तनकी जोत जगमगात मुखमयंक मानों।
चिरियनके चुचुहात भोर भयो जानों॥
आसपास रूपरास सहचरी चहुँ ओरे।
उमग आयो आनन्द उर जुगल बाँह जोरे॥
अति उदार छबि अपार कौन पै कहि आवै।
शम्भु शेष शारदा नहीं निगम पार पावै॥
बोलता अति मधुरे बैन अति सुहावन लागे।
रामसखि रामसीया आलस सब त्यागे॥"

रामसखे—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने दानलीला, बानी, दोहावली, मंगलशतक, पदावली, रागमाला और पद नामक ग्रंथ लिखे हैं। ये साधारण श्रेणीके कवि थे। इनकी एक कविता नीचे दी जाती है,—

"संझा आवनि पियकी आवनि देखो
भावनि अवध गली चलि ।
मृगया भेष हरित चरना तन
अरु बन कुसुम सजें गुंजें अलि ।
लिये कर छुड़ी तुरंग कुदावत
जुलफें छूटी पैंज हिए बलि ।
रामसखे यह छबि पीजे अब
नेह गेह कुल लाज आज दलि ।"

रामसनेही—अयोध्याप्रदेशके बाराबंकी जिलांतर्गत एक तहसील । भूपरिमाण ५८८ वर्गमील है ।

रामसनेही—एक वैष्णव धर्मसम्प्रदाय । इस सम्प्रदायकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार एक विवरण मिला है ।

१७७६ सम्वत्‌में जयपुरके अन्तर्गत सुरसेनग्राममें रामचरण नामक एक रामात् वैष्णवने जन्मग्रहण किया । वे प्रतिमापूजाके विरुद्ध मत प्रचार करते थे, इस कारण ब्राह्मणोंने उन्हें बहुत सताया । आखिर वह देशत्याग कर उदयपुरके अन्तर्गत भीलवाड़ा ग्राम चले गये और वहां दो वर्ष ठहरे । यहां भी ब्राह्मणोंके परामर्शसे राजा भीमसेन उसका अनिष्ट करने तुल गये । अब वह यहांसे भी भागे । इस समय शाहपुरमें भीमसिंह नामक एक दूसरे राजा राज्य करते थे । उन्हें रामचरणके दुःख पर दया आई, सो उन्होंने अपनी राजधानीमें उन्हें आश्रय दिया । राजाकी छायामें रह कर रामचरण अपना धर्म प्रचार करने लगे । प्रायः १८२६ सम्वत्‌में यह धर्मसम्प्रदाय प्रवर्त्तन कर १८५५ सम्वत्‌में रामचरण परलोक सिधारे । उनका मतानुवर्त्ती शिष्यसम्प्रदाय रामसनेही कहलाने लगा । वह जो पद या शब्द (३२ अक्षरात्मक श्लोक) रच गये हैं उसे रामसनेही वेदमन्त्रवत् समझा है ।

रामचरण महन्त देखो ।

रामचरण अपने सम्प्रदायके मध्य कुछ नियम बना गये हैं । उसी नियमके अनुसार रामसनेही चलते हैं ।

इस सम्प्रदायके महन्त हो सर्वप्रधान हैं । महन्तको गद्दी मिलती है । प्रथम महन्त रामचरण थे । रामचरणके शिष्य रामजन २य महन्त हुए । शीर्षान ग्राममें उनका जन्म, १८२५ संवत्‌में दीक्षा, १८५५ सम्वत्‌में महन्त पद पर अभिषेक और १८६६ सम्वत्‌में शाहपुरमें देहान्त हुआ । उनके भी रचित पद प्रचलित हैं । ३य महन्तका नाम दुलहराम था । वे हिन्दू और मुसलमान साधुओंकी माहात्म्यसूचक प्रायः ४००० शाखो लिख गये हैं । १८८१ ई०में उनकी मृत्यु हुई । ४र्थ महन्त छत्रदास थे । १८८८ सम्वत्‌में वे इस लोकसे चल बसे । उनके भी १००० पद प्रचलित हैं । ५वें महन्तका नाम नारायण दास था ।

महन्तका पद खाली होने पर इस सम्प्रदायके उदासीन और विषयियोंकी एक बैठक होती है । वे गुणवान् और ज्ञानवान् किसी व्यक्तिको महन्त पद पर अभिषिक्त करते हैं । इस उपलक्षमें वैरागी नगरके राममेरी नामक मन्दिरमें नगरवासियोंको एक भोज देते हैं । पदशून्य होनेके १३ दिन बाद अभिषेकक्रिया सम्पन्न होती है । महन्त प्रायः शाहपुरमें ही रहते हैं । कभी कभी शारीरिक कष्टका अभ्यास करनेके लिये देशभ्रमणमें निकलते हैं ।

इस सम्प्रदायके धर्मयाजक वैरागी वा साधु कहलाते हैं । उन्हें बहुतसे कठोर नियमोंका पालन करना होता है । वे लोग कभी विवाह नहीं करते । परदारगमनमें पराङ्मुख रहना, जो कुछ खानेको मिले उसीसे संतुष्ट रहना; अल्पनिद्रा, वाक्यसंयम और शारीरिक सहिष्णुता तथा सर्वकामना परित्याग कर दया, आर्जव और क्षमा-धर्मका अनुष्ठान करना और निरन्तर शास्त्रानुशीलनमें लगा रहना ; काम, क्रोध, लोभ और कलह करना, स्वार्थपरता होना, कपटव्यवहार करना, झूठ बोलना, चोरी करना, कठोर बनना, शराब पीना, जूआ खेलना, खड़ाऊं पहनना, दर्पणमें मुंह देखना, नस लेना, अलङ्कार पहनना तथा भोगविलासको सामग्रीका व्यवहार करना दाम लेना, जीवहिंसा करना और निर्जन स्थानमें रहना ये सब कार्य इन लोगोंके लिये निषिद्ध हैं । किन्तु विषयी शिष्य गुरुके लिये दूसरेके दिये हुए रुपये लेते हैं । नृत्यगीतादि नाना आमोद, धूमपान, अफीम सेवन वा दूसरे दूसरे मादक द्रव्यका व्यवहार निषिद्ध है । ज्वरकी हालतमें अथवा चिकित्सकके कहने पर यदि मादकवस्तुका व्यवहार किया जाय, तो कोई दोष नहीं होता ।

रामसनेही गलेमें माला पहनते और ललाटमें एक सफेद लम्बा पुण्ड्र धारण करते हैं । साधु लोग गेरू वस्त्र पह-

नते और कमरमें भी बांधते हैं। वे काठके बरतनमें जल पीते और मिट्टी या पत्थरके बरतनमें खाते हैं। जीवहिंसा महापाप समझ कर वे दीपशिखामें कपड़ा लपेट देते है। इससे पतङ्गादि नीचे नहीं गिरते। राहमें पैरसे कहीं कीड़े न मर जाँय इसलिये वे बड़ी सावधानीसे चलते हैं। आषाढ़मासके शेषाङ्कसे ले कर कार्त्तिकके प्रथमाङ्क तक (चातुर्मास्यके समय) बिना विशेष प्रयोजनके बाहर नहीं निकलते।

सम्प्रदायप्रवर्त्तक रामचरणके १२ शिष्य थे। उनके मध्य किसीका भी पद खाली होने पर वे साधविशेषको उस पद पर अभिषिक्त करते थे। आज भी वही नियम चला आता है। इन्हीं बारह शिष्यों पर मठका कुल भार सुपुर्द है। जो कोतवाल हैं, वे मठस्थित शस्य और ओषधादिको रक्षा करते हैं और महन्तकी अनुमति ले कर मठवासियोंको दैनिक भोजन देते हैं। इस सम्प्रदायके विषयी तथा अन्यान्य मनुष्योंसे साधुओंको जो कपड़ा मिलता है, 'कपड़ादार' उसकी देखरेख करते हैं। तृतीय शिष्यका काम है, साधुओंके आचार-व्यवहार और रीतिनीतिकी ओर लक्ष्य रखना। चौथे शिष्य साधुओंको पाठशिक्षा और पांचवें शिष्य लिपिशिक्षा देते हैं। छठे शिष्य समतावलम्बी विद्यार्थियोंको लिखना पढ़ना सिखाते हैं। इन बारह शिष्योंमें जो प्रवीण और जितेन्द्रिय हैं वे ही स्त्रियोंको उपयुक्त उपदेश दे सकते हैं।

साधुओंमेंसे जो निषिद्ध कर्म करते, उल्लिखित मठ-कर्मचारी सात शिष्योंमें कोई तीन और बाकी पांच महंत मिल कर उसका विचार करते हैं।

जो इस संप्रदायमें आना चाहता है वह अपना पहला नाम बदल लेता और शिखा छोड़ कर समूचा मस्तक मुड़वाता है। इस उपलक्षमें मठसंक्रान्त नाईको बहुत आमदनी होती है।

जो सब साधु नंगे रहते वे विदेही कहलाते हैं। जिनको वागिन्द्रिय वशीभूत नहीं होती वे कई वर्ष तक 'मोहिनी' श्रेणीभुक्त हो मौनव्रताचारी रहते हैं। पीछे अन्तःकरणके वशीभूत होने पर वे फिरसे वाक्यालाप करनेमें प्रवृत्त होते हैं।

गृहस्थ साधुओंको भी महन्त पद पानेका अधिकार है, किन्तु उपरोक्त विदेही या मौनी श्रेणीभुक्त होनेका नियम नहीं है। स्त्रियां भी धर्मयाजिका उसी हालतमें हो सकती हैं, जब कन्यापुत्र और स्वामिका साथ छोड़ दे।

सभी हिन्दू इस सम्प्रदायमें प्रविष्ट होनेके अधिकारी हैं। शाहपुरस्थ मन्दिरके प्रधान अध्यक्ष ही सबोंको सम्प्रदाय भुक्त करते हैं। वैरागी भिन्न भिन्न स्थानसे दीक्षार्थीको लाते हैं। मठके प्रधान अध्यक्ष उन लोगोंकी श्रद्धा और भक्ति जाँचने तथा रामसनेही मतका सम्यक् उपदेश देनेके लिये उन्हें पूर्वोक्त बारह साधोंके पास भेजते हैं। परीक्षामें उत्तीर्ण होने पर वे संप्रदायमें लिये जाते हैं।

रामसनेही अपने उपास्य-देवताको राम कहते हैं। उनके मतानुसार राम सर्वशक्तिमान् तथा सृष्टि-स्थिति और लयके एकमात्र कारण हैं। जीवात्मा रामरूपी परमेश्वरका एक अंश है।

प्रतिमानिर्माण और प्रतिमापूजा इन लोगोंमें निषिद्ध है। ये लोग प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें परमेश्वरकी उपासना करते हैं। जो विषयी हैं, वे विषयकर्ममें लगनेके कारण समयानुसार मन्दिरमें नहीं आ सकते। किन्तु भजनाके समय पहुंच जानेसे वे जब तक उपासना शेष नहीं होती तब तक रहनेके लिये बाध्य हैं। ये लोग दो पहर रातको बिछावनसे उठ कर देवालय जाते हैं और प्रातःकालमें यामाङ्क पर्यन्त उपासनामें नियुक्त रहते हैं। इसके बाद विषयी लोग वहां जा कर ४।५ दण्ड तक ठहरते हैं। अन्तमें स्त्रियोंके दो स्तोत्र गाने पर प्रातःकालकी उपासना समाप्त होती है। ढाई पहरके समय माध्याह्निक उपासना आरम्भ होती है। सायंकालीन उपासना केवल पुरुष ही करते हैं। यह उपासना १ घंटा तक होती है। स्त्रीपुरुषके एक साथ बैठने या एक साथ गानेका नियम नहीं है। जब मन्दिरमें कोई नहीं रहता है, तब ही साधुगण उपास्य देवताका ध्यान करते हैं। कभी मालाजप और कभी मुखसे रामनाम उच्चारण करते हैं। रातको वे केवल जल पी कर रहते हैं।

उनको उपासनास्थानका नाम रामद्वार है। राजोवाड़ाके मध्य शाहपुरका मन्दिर ही सर्वश्रेष्ठ और शिल्प-

नैपुण्यसे युक्त है। इसके सिवा जयपुर, जोधपुर, मर्था, उदयपुर, चित्तोर, जागोर, भीलवाड़ा, टोंक, बूंदी, कोटा आदि स्थानोंमें भी बहुतसे रामद्वार विद्यमान हैं।

हिन्दूके दशहरा, दीवाली, होली आदि किसी भी उत्सवमें रामसेनही शामिल नहीं होते। फाल्गुनमासके अन्तिम ५।६ दिन इन लोगोंका फूलदोलपर्व होता है। इस समय भारतके विभिन्न स्थानोंसे लोग आते हैं। वैरागी यदि किसी कारणवशतः एक वर्ष मेलेमें न आ सकें, तो दूसरे वर्ष उन्हें अवश्य आना पड़ेगा। वैरागी स्वसम्प्रदायभुक्त गुरुतर अपराधियोंको अपने साथ ला कर महन्तके सामने हाजिर करते हैं। महन्त दुल्हाराम यह नियम कर दिये गये हैं, कि जो वैरागी विषयी लोगोंके चरित्र विषय पर दृष्टि रखनेके लिये ग्राम वा नगरमें रहते हैं उनमेंसे कोई भी एक जगह लगातार दो वर्षसे अधिक नहीं रह सकता। क्योंकि ग्रामवासीके साथ बहुत दिन रहनेसे उसका भी चरित्र दूषित हो सकता है। फूलदोलके समय वे स्थान परिवर्त्तन करते हैं।

इस फूलदोल उपलक्षमें उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, बूंदी, कोटा आदि स्थानोंके राजे भिन्नधर्मावलम्बी होते हुए भी इस उत्सवमें १०।१२ हजार रुपया भेज देते हैं। इन लोगोंको वहां मिष्टान्न भोजन कराया जाता है।

सम्प्रदायभुक्त कोई व्यक्ति जब भारी अपराध करता है, तब वहांका शुभाशुभकर्मका तत्त्वावधारक वैरागी फूलदोलके समय उसे शाहपुर लाता है। वह अपराधी मन्दिरमें घुसने या एक पंक्तिमें बैठ कर भोजन करने नहीं पाता। आठ साधोंके विचारसे उसका दोष प्रमाणित होने पर उसकी माला छीन ली जाती और उसे सम्प्रदायसे बाहर निकाल दिया जाता है। छोटा छोटा विचार स्थानीय वैरागी और दण्डविधान महन्त करते हैं।

गुजरात और राजवाड़ाको छोड़ कर बम्बई, सूरत, हैदराबाद, पूना, अहमदाबाद आदि पश्चिमभारतके नाना नगरों और उसके आसपासके स्थानोंमें रामसनेहियोंका वास है। काशीधाममें भी इस सम्प्रदायके लोग देखनेमें आते हैं।

रामसरस् (सं० क्ली०) एक प्राचीन तीर्थका नाम। इसके पवित्र जलमें स्नान करनेसे पाप क्षय होता है।

(तापीख० ३६।२।१२)

रामसहाय दास—एक हिन्दी कवि। इनके पिताका नाम भवानी दास था। इनका नाम सूदन कविकी नामावलीमें नहीं है। इससे अनुमान होता है, कि ये सूदनके पीछेके हैं। इन्होंने वृत्ततरंगिणी, सतसई, ककहरा, रामसप्तशतिका और वाणीभूषण नामक चार ग्रंथ लिखे हैं।

इन्होंने अपनी कविताको प्रणाली बिलकुल बिहारीलालसे मिला दी है, इनकी बनाई 'रामसतसई' से 'शृङ्गारसतसई' इतनी मिल गई है, कि यदि बिहारीके दोहे सब लोगोंको इतना याद न होते और ये चौदहों सौ दोहे मिला कर रख दिये होते तो बिहारीके सात सौ दोहे छांटनेमें दो सौ दोहे तक इस कविके भी छंट आते, बिहारीकी समता करनेमें और कोई भी कवि इतना कृतकार्य्य नहीं हुए हैं। बिहारीके केवल उत्तमोत्तम दोहे इस कविके आगे निकल जाते हैं, परन्तु उनके शेष दोहे इसके दोहोंसे बढ़ कर नहीं हैं। रामसहायके दोहोंकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। आपने अपनी सूक्ष्मदर्शिताका अच्छा परिचय दिया है। सुकुमारताका भी आपने अच्छा वर्णन किया है।

सब प्रकार से बिहारीके पैरों पर पैर रख कर आपने बिहारी की चोरी नहीं की है, केवल बिहारीकी छाया कुछ छन्दोंमें आ गई है।

रामसिंह—कोटेके एक राजा। इनके पिताका नाम था किशोरसिंह। रामसिंहने अपने पिताके साथ दक्षिणके युद्धमें बड़ी ख्याति पाई थी। पिताके मरने पर रामसिंह सिंहासन पर बैठे। इनके बड़े भाईका नाम किशनसिंह था। न्यायसे कोटे राज्यका अधिकार उन्हींको मिलना चाहिये था। परन्तु पिताकी आज्ञा पालन न करनेके कारण पिता उनसे असंतुष्ट रहा करते थे। इसी कारण उन्होंने बड़े लड़केको राज्यसे वञ्चित कर दिया था। सम्राट् औरङ्गजेबके मरनेके बाद उत्तराधिकारियोंमें गद्दीके लिये झगड़ा हुआ। उस समय रामसिंहने दाक्षिणात्यके प्रतिनिधि कुमार आजिमका पक्ष ले कर बड़े शाहजादे मोअजिमके विरुद्ध यात्रा की। संवत् १७६४ में आजव नामक स्थानके युद्धमें ये मारे गये।

रामसिंह—बूंदीके राजा। इनके पिताका नाम विशनसिंह था। १८२१ ई०में ये ११ वर्षकी उमरमें बूंदीके सिंहासन पर बैठे। बचपनसे ही इन्हें शिकार खेलनेका बड़ा शौक था। इन्होंने छोटी अवस्थामें पहले ही पहल सूअरका शिकार खेला था। इनकी माता कृष्णगढ़की राजकुमारी थीं। महाराव राजा विशनसिंह अपने पुत्रका अभिभावक कर्नल टाड साहबको बना गये थे।

महाराव विशनसिंहके मरने पर कृष्णराम नामक एक बुद्धिमान् मनुष्य बूंदी राज्यके मंत्री बनाये गये। जब तक कर्नल टाड रजवाड़ेके वृटिश एजेण्ट रहे, तबतक कृष्णराम राजकीय मामलोंमें उनसे सलाह लिया करते थे। टाड साहबके अपने देशमें चले जाने पर भी कृष्णरामने अपनी स्वामिभक्ति ही का परिचय दिया। इनके सुप्रबंधसे बूंदी राज्यकी प्रजा अत्यंत सुखी हुई। कर्नल म्यालिसनने लिखा है, कि कृष्णरामके शासनसे बूंदी राज्यका समस्त ऋण चुक गया। हिसाब किताब नियमपूर्वक रखा गया। उन्होंने राजकार्यके प्रत्येक विभागकी अवस्था सुधार दी थी। सेनाको समय पर वेतन मिल जाया करता था। लेकिन एक घटनासे उन्हें अपने प्राणसे हाथ धोना पड़ा था। वह घटना इस प्रकार हुई थी,—महाराव रामसिंहका विवाह जोधपुरकी राजकन्याके साथ हुआ। महारावने जोधपुरकी राजकुमारीके साथ बड़ी बुरी तरह पेश आते थे। दोनोंके मनमुटावको दूर करनेके लिये जोधपुरसे कुछ सामंत बूंदी आये। आनेके तीसरे ही दिन उनमेंसे एकने मंत्री कृष्णरामको मार डाला। इससे वहांके महाराव बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने बदला चुकानेका संकल्प किया। जिन लोगोंने यह कुकर्म किया था वे भागते समय पकड़े गये और उन्हें प्राणदण्डकी आज्ञा मिली। इसके सिवा और भी कितने सामंत यमपुर भेजे गये थे।

इन सब कारणोंसे दोनों राज्यमें परस्पर युद्ध होनेकी सम्भावना थी। परंतु गवर्मेण्टने अपने एजेंटको वहां भेज कर दोनोंमें मेल करा दिया।

रामसिंह योग्य और स्वाधीन शासक थे। इनके समयमें बूंदी राज्यकी सुख-सम्पतिमें कोई हेरफेर नहीं हुआ।

रामसिंह—जयपुरके एक महाराज। इन्होंने १८३३ ई०में जन्मग्रहण किया था। महाराज जयसिंह इनके पिता थे। पिताके मरने पर रामसिंहकी उमर सिर्फ दो वर्ष की थी उस समय ये राजसिंहासन पर बैठाये गये। उस समय जयपुर राज्यकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी।

महाराज रामसिंहकी नावालगीमें जयपुर राज्यका शासनकार्य पांच प्रधान सामन्त द्वारा परिचालित होता था और वे वृटिश पोलिटिकल एजेण्टके अधीन रखे गये। इस समय राज्यकी अराजकता दूर हो गई थी। महाराजकी शिक्षाके लिये भी उचित प्रबंध था। पण्डित शिवनारायण महाराजके शिक्षक नियुक्त हुए।

१८५७ ई०में महाराज बालीग हुए और उन्हें राज्यशासनका कुल भार मिल गया। परन्तु महाराजको अनुभव न होनेके कारण उन्हें पोलिटिकल एजेण्टकी सम्मति लेकर काम करना पड़ता था। महाराजने सर्वालू अपने पूर्व मन्त्रीको हटा कर उस पद पर अपने भाई लक्ष्मणसिंहको रखा। राजस्वविभागके मन्त्री पण्डित शिवधन नियुक्त हुए। परन्तु महाराजने उसी मन्त्रिमण्डलकी सहायतासे राज्यका शासन किया।

इसी समय गवर्मेण्टको एक बड़ी भारी विपद्का मुकाबला करना पड़ा था। जिस समय महाराज रामसिंहको शासनका भार मिला, उसी वर्ष भारतमें सिपाही गदर हुआ था। गदरमें महाराज रामसिंहने गवर्मेण्टको खासी सहायता पहुंचाई थी। पुरस्कारमें इन्हें गवर्मेण्टसे कोटा कासिम परगना मिला था।

महाराज रामसिंहके समय राजधानीकी बड़ी उन्नति हुई थी। ये गवर्मेण्टके बड़े खैरख्वाह थे। इनकी योग्यतासे जयपुर राज्य एक बार पुनः सुखी हो गया। १८८० ई०में आपका स्वर्गवास हुआ।

रामसिंह—जयपुरके महाराज। इनके पिताका नाम महाराज जयसिंह था। जयसिंह मिर्जाराजाके नामसे प्रसिद्ध थे। अकबरके समय जिस प्रकार मानसिंहने प्रतिष्ठा पाई थी, उसी प्रकार औरङ्गजेबके समय महाराज जयसिंहको प्रतिष्ठा थी। जयसिंह छःहजारी मनसबदार थे। परन्तु रामसिंहको वह न मिला। ये बादशाहकी आज्ञासे आसाम निवासियोंके साथ युद्ध करने

गये थे और वहीं मारे गये। यह घटना १७४६ ई०में हुई थी। महाराज मानसिंहके विशनसिंह नामक एक पुत्र था।

रामसिंह—जोधपुरके एक राजा। इनके पिताका नाम था अभयसिंह। रामसिंह बड़े क्रोधी और उग्रस्वभावके मनुष्य थे। पिताके मरने पर रामसिंह जोधपुरके सिंहासन पर बैठे। इनके अभिषेकोत्सवमें इनके चचा बख्तसिंहको छोड़ कर और सभी सामन्त उपस्थित हुए थे। बख्तसिंहने अपनी धायको भेज दिया था। धायको देख कर रामसिंह आगबबूले हो गये। उन्होंने कहा, 'क्या चचा साहबने हमें बन्दर समझा है जो उन्होंने हमारे अभिषेकमें इस डाकिनको भेजा है।' क्रोधके आवेशमें उन्होंने एक बड़ी कड़ी चिट्ठी बख्तसिंहको लिख भेजी तथा सेनाको भी तैयार हो जानेकी आज्ञा दी।

प्रधान प्रधान सामन्त तथा मंत्रीके समझाने पर भी इन्होंने नहीं माना, युद्ध ठना ही दिया। बख्तसिंहने उनके प्रधान सामन्तको अपने पक्षमें मिला लिया। युद्धमें रामसिंहकी हार हुई। इस समय सभीने रामसिंहका पक्ष छोड़ दिया था। परंतु राजपुरोहितने रामसिंहको उग्रस्वभावके जानते हुए भी न छोड़ा। राजपुरोहितने मराठीसेनासे मिल कर उसे अपने पक्षमें कर लिया। पर उस समय राजनीतिज्ञ बख्तसिंहने ऐसा प्रबंध कर लिया था जिससे मराठी सेनाका उत्साह जाता रहा। लेकिन आमेरकी महारानीकी चतुरतासे बख्तसिंहका काम तमाम किया गया। रामसिंहका पक्ष अपेक्षाकृत कुछ निष्कण्टक हो गया सही, पर उनके सभी कण्टक दूर नहीं हुए। बख्तसिंहके पुत्र विजयसिंह और रामसिंहके युद्धसे मारवाड़ राज्य तहस नहस हो गया।

बख्तसिंहके मारे जाने पर रामसिंहने राज्यप्राप्तिका पुनः उद्योग किया। मराठी सेनाकी सहायतासे रामसिंहको जोधपुरका सिंहासन कुछ दिनोंके लिये मिल गया। परंतु उनके सहायक महाराष्ट्र सेनापति जय अप्पा वहीं खेत रहे, इससे मराठोंका संदेह राजपूतों पर बढ़ गया। उन लोगोंने रामसिंहका पक्ष छोड़ दिया।

इसके बाद विजयसिंहने रामसिंहको मारवाड़ राज्यके अधीन साँभर प्रदेशका राज्य दे दिया और वे भी उसीसे संतुष्ट हुए।

रामसिंहदेव—मिथिलाके एक राजा। मृच्छकटिकाके प्रणेता पृथ्वीधर इनकी सभामें मौजूद थे।

रामसिंहदेव—एक हिंदू राजा। इन्होंने सरस्वतीकण्ठाभरणकी रत्नदर्पण नामकी टीका लिखी। रत्नेश्वर इन्हींके आश्रयमें प्रतिपालित हुए थे।

रामसिंह मुन्सी—गुलसनआजायब नामक ग्रंथके प्रणेता। इन्होंने १७१६ ई०में उक्त ग्रंथ लिखा।

रामसिंह वर्मन्—जयपुरके एक राजा। धातुरत्नमञ्जरी नामक ग्रन्थ इन्हींका लिखा हुआ है।

रामसिंह सवाई (२य)—जयपुरके राजा। राजा ३य जयसिंहकी मृत्युके बाद १८३४ ई०में ये राजगद्दी पर बैठे। जयपुर देखो।

रामसीता (हिं० पु०) सीताफल, शरीफा।

रामसुंदर (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी नाव।

रामसुन्दर विद्यावागीश—वस्तुतत्त्वके रचयिता।

रामसुब्रह्मण्य शास्त्री—मतचतुष्टयपरीक्षा तथा विष्णुतत्त्वरहस्य और उसकी टीकाके प्रणेता।

रामसूक्त (सं० क्ली०) रामस्तोत्र।

रामसेतु (सं० पु०) दक्षिण भारतकी अन्तिम सीमा पर रामेश्वरतीर्थके पास समुद्रमें पड़ी हुई चट्टानोंका समूह। इसके विषयमें विख्यात है, कि यह वही पुल है जिसे रामने लङ्काकी चढ़ाईके समय बंधवाया था। अङ्गरेजीमें इसे Adam's bridge कहते हैं।

रामसेन—रससारामृतके रचयिता। इन्होंने अपने ग्रंथमें शालिनाथ, नित्यनाथ और गहनानन्दनाथका मत उद्धृत किया है।

रामसेनक (सं० पु०) १ भूनिम्ब, चिरायता। २ कट्फल, कटहल।

रामसेवक (सं० पु०) रामचन्द्रका उपासक।

रामसेवक—तिथिप्रदीपिकामञ्जरीटीका, यज्ञसिद्धान्तविग्रह और युद्धचिन्तामणिके रचयिता।

रामस्तुति (सं० स्त्री०) रामस्य स्तुतिः। रामस्तोत्र श्रीरामचन्द्रका स्तव।

रामस्वामिन् (सं० पु०) काश्मीरमें प्रतिष्ठित श्रीरामचन्द्र-की मूर्त्तिभेद। (राजतर० ४।२७५)

रामस्वामी—१ अमरकोषटीकाके प्रणेता। २ एक वैयाकरण। माधवीयधातुवृत्तिमें इनका उल्लेख देखा जाता है।

रामहरि—१ पारिजात-व्याकरणके प्रणेता। इन्होंने १८१८ ई०में उक्त ग्रन्थ बनाया। २ वृहज्जातकके रचयिता।

रामहृदय (सं० पु०) रामस्य हृदयः। अध्यात्मरामायणका एक परिच्छेद। यहां रामका आध्यात्मिक तत्त्व विवृत हुआ है।

रामह्रद (सं० पु०) पुराणानुसार एक पुण्यप्रद तीर्थका नाम। (भागवत १०।८२।१०)

रामा (सं० स्त्री०) रमते रमयतीति वा रम ज्वलादित्वात् ण, टाप्, रमतेऽनयेति करणे घञ् वा। १ उत्कृष्ट स्त्रीविशेष, सुन्दर स्त्री। २ गानकलामें प्रवीण स्त्री। ३ हिंगु, हींग। ४ नदी। ५ हिंगुल, ईंगुर। ६ श्वेतकण्टकारी, सफेद भटकटैया। ७ शीतला। ८ अशोक। ९ घीकुआर। १० गोरोचन। ११ सुगन्धवाला। १२ गैरिक, गेरू। १३ तमालपत्र, तमाकू। १४ त्रायमाणा लता। १५ लक्ष्मी। १६ सीता। १७ रुक्मिणी। १८ राधा। १९ आठ अक्षरोंका एक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें तगण, यगण और दो लघु वर्ण होते हैं। २० इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्राके मेलसे बना हुआ एक उपजाति वृत्त। इसके प्रथम दो चरण इन्द्रवज्राके और अन्तिम दो चरण उपेन्द्रवज्राके होते हैं। २१ आर्या छन्दका १७वां भेद जिसमें ११ गुरु और ३५ लघु वर्ण होते हैं। २२ कार्त्तिकी बदी ११ की तिथि।

रामाग्निज—आपस्तम्ब-श्रौतसूत्रव्याख्याके प्रणेता।

रामाचक्र (सं० पु०) धर्मोपदेशका आचार्यभेद।

रामाचार्य (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

रामाण्डार—आपस्तम्ब श्रौतसूत्रकी एक टीकाके रचयिता। ये रामाग्निचित् नामसे परिचित थे। निर्णयसिंधुमें कमलाकर और भास्कर मिश्रने इनका मत उद्धृत किया है।

रामात्—उत्तरभारतप्रसिद्ध वैष्णवधर्मसम्प्रदायभेद। रामानंद इसके प्रवर्त्तक थे, इस कारण लोग इसे रामानंदी भी कहते हैं। इस सम्प्रदायके लोग रामचंद्र, सीता, लक्ष्मण और हनुमान्‌की उपासना करते हैं। सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक रामानंद रामानुजके शिष्य थे, ऐसा बहुतोंका कहना है, परंतु यह युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि उनकी शिष्यपरम्पराके मध्य रामानंदका स्थान चौथा पड़ता है, जैसे—रामानुजके शिष्य देवानंद, देवानंदके शिष्य हरिनंद, हरिनंदके शिष्य राघवानन्द और राघवानन्दके शिष्य रामानन्द*।

११वीं सदीके प्रथम भागमें रामानुज स्वामी विद्यमान थे। इस हिसाबसे १३वीं सदीके प्रारम्भमें रामानंदका अस्तित्व प्रमाणित होता है। किन्तु उनके शिष्य महात्मा कबीर जब सिकेन्दरशाह लोदीके समसामयिक थे, तब किसी प्रकार १३वीं सदीमें इनका होना स्वीकार कर सकते हैं? कबीर-पन्थियोंके मतसे कबीर १२०५ से १५०५ सम्वत् तक जीवित थे। फिर मुसलमान ऐतिहासिक इन्हें १५४४ ई०का आदमी बतलाते हैं। अतः रामानंद कब विद्यमान थे, इसका ठीक ठीक पता लगाना कठिन है और इसमें भी संदेह है, कि वे रामानुजके शिष्यपरम्पराभुक्त थे। पर हां, इतना कहा जा सकता है, कि रामानंद रामानुज स्वामीके मतावलम्बी थे और महात्मा कबीर भी पूज्यपाद रामानंदके मतानुसारी हुए। कबीर देखो।

प्रवाद है, कि रामानन्द देशभ्रमणके बाद जब मठ लौटे, तब उनके सतीर्थोंने कहा था, 'भोज्य और भोजनक्रिया गुप्तभावसे करना रामानुज-मतावलम्बीका एकान्त कर्त्तव्य है। किन्तु भ्रमणकालमें शायद तुमने इस नियमका पालन नहीं किया होगा, इसलिये तुम्हें अलग भोजन करना उचित है।' गुरु राघवानन्दने भी इसका समर्थन किया। इस पर रामानन्दने अपनेको अपमानित समझ कर उनका साथ छोड़ दिया और अपने नाम पर वैष्णवसम्प्रदाय प्रवर्त्तित करनेका संकल्प किया।

इसके बाद रामानन्द वाराणसीके पञ्चगङ्गाघाट आये। यहां उनके शिष्यसम्प्रदायका एक मठ प्रतिष्ठित

* भक्तमालाके मतसे—१ रामानुज, २ देवाचार्य, ३ राघवानन्द, ४ रामानन्द।

हुआ। आगे चल कर मुसलमानोंने उसे नष्ट कर दिया। उसके पास ही पत्थरकी जो वेदी है उस पर रामानन्द-का पदचिह्न अङ्कित है। इसके सिवा काशीमें इस सम्प्रदायके और भी कितने प्रसिद्ध मठ स्थापित हैं। इस सम्प्रदायको शृङ्खलित रखनेके लिये रामानन्दियोंकी एक पञ्चायत है। उसी पञ्चायतके ठहरावके अनुसार रामानन्दीसम्प्रदायके काम होते हैं।

अन्यान्य सम्प्रदायकी तरह रामानन्दी सम्प्रदायमें भी विषयी और धर्मव्रतीके भेदसे दो विभाग देखे जाते हैं। धर्मव्रती उपासकके भी फिर दो भेद हैं—उदासी और गृही। इनमें उदासो हो प्रधान हैं।

उदासी तीर्थपर्यटन कर भिक्षा अथवा वाणिज्य द्वारा गुजारा चकाते हैं। स्थान स्थानमें प्रत्येक सम्प्रदायका मठ, अस्थल वा अखाड़ा है। भ्रमणकालमें जब कोई मठ पड़ता है, तब वे वहां कुछ दिनके लिये ठहर जाते हैं। वृद्ध उदासी मृत्यु पर्यन्त मठमें आश्रय लेते हैं तथा स्वयं एक मठ स्थापन कर वहां आयुःशेष करते हैं।

मठ वा अखाड़ा वैष्णवसम्प्रदायी गुरुओंका आवास-स्थान है। यहां एक विग्रहमन्दिर, मठ, प्रतिष्ठाता वा प्रधान गुरुकी समाधि तथा महन्त और उनके साथ रहनेवाले शिष्योंके कुछ मकान रहते हैं। इसके अलावा तीर्थयात्री वा उदासीनोंके रहनेके वास्ते उसमें एक धर्मशाला भी है। वहाँ किसीका भी जाना निषेध नहीं है।

एक प्रदेशमें एक सम्प्रदायसंक्रान्त भिन्न भिन्न अनेक मठ हैं। वहांके अध्यक्ष मठमें किसी उदासीको प्रधान मानते हैं। फिर जो मठ सम्प्रदायस्वामीके नामसे प्रतिष्ठित है, सभी प्रादेशिक मठके अध्यक्ष उसको सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। शेषोक्त मठके महन्त, उनके अभावसे किसो प्रसिद्ध मठके महन्त उस समाजके सरदार समझे जाते हैं। परलोकवासो महन्त शिष्योंमें जो परीक्षोत्तीर्ण हो सकते हैं उन्हींको आचार्यके पद पर अभिषिक्त किया जाता है। इन सब मठोंके खर्चावर्चाके लिये कुछ कुछ देवोत्तर है।

श्रीरामचन्द्र रामानन्दोंके अभीष्ट देवता हैं। रामोपासनाकी प्रधानता स्वीकार करनेके कारण ये लोग रामात् कहलाते हैं। ये लोग विष्णुकी अन्यान्य मूर्त्तिकी कल्पना करते हैं। रामानुजोंकी तरह ये लोग रामसीताकी मूर्त्तिकी आराधना करते हैं। इसके सिवाय ये लोग दूसरे दूसरे वैष्णवसम्प्रदायकी तरह तुलसी और शालग्राम-शिलाकी भी भक्ति करते हैं। काशीमें इस सम्प्रदायके दो मन्दिरोंमें राधाकृष्ण मूर्त्तिकी उपासना होती है।

इस सम्प्रदाममें किसी कठोर नियमका पालन नहीं करना पड़ता। रामानुजसम्प्रदायके अनेक बंधनोंको इन्होंने शिथिल कर दिया था। खाने पीनेके सम्बन्धमें इन्होंने कोई कठिन नियम न रखा। सभी अपनी रुचिके अनुसार वा लौकिक व्यवहारके अनुसार खा पी सकते हैं। खाने पोनेके विषयमें इस सम्प्रदायभुक्त वैरागियोंके वर्ण और जातिविचार नहीं है। इसी कारण वे लोग कुलातीत और वर्णातीत कहलाते हैं।

श्रीराम उनके बीजमन्त्र हैं। 'जयराम जय श्रीराम वा सीताराम' उनके अभिवादनवाक्य हैं। तिलकसेवा श्रीसम्प्रदायोंकी जैसी है। किन्तु कोई कोई अपनी रुचिके अनुसार ऊर्द्ध्वपुण्ड्रकी मध्यवर्त्ती रेखा कुछ छोटी कर अङ्कित करते हैं।

रामानन्दस्वामी बहुतसे शिष्य बना गये हैं। उनमें आशानन्द, कवीर, रुइदास, पीपा, सुरसुरानन्द, सुखानन्द, भवानन्द, धन्ना, सेन, महानन्द, परमानन्द और प्रियानन्द प्रधान हैं*। कवीर जुलाहा (तांती), रुइदास चमार, पोपा राजपूत, धन्ना जाट और सेन नाई थे। ये सभी उपासकसम्प्रदायविशेषके प्रवर्त्तयिता हैं।

इस सम्प्रदायके तथा रामानन्द स्वामोके प्रसिद्ध शिष्य गाङ्गरौणके राजा राजपूत जातिके पोपा, सुरसुरानन्द, धन्ना, नरहरि वा हर्य्यानन्द, भक्तमालके प्रणेता नाभाजी, सुरदास, तुलसीदास, सुललित गीतगोविन्दपदके रचयिता जयदेव आदि रामात् श्रेणोके वैष्णव थे। भक्तमाल ग्रंथमें इनके सम्बन्धमें अनेक अलौकिक उपाख्यान लिखे हैं।

रामानन्द स्वामीके धर्ममतका संस्कार कर परवर्त्तिकालमें और भी कितनी रामात् सम्प्रदायकी शाखा

* भक्तमालमें अन्य प्रकारसे हैं।

निकाली गईं। कबीरसे कबीरपन्थी दादुसे दादुपन्थी, कोलसे खाकी (शरीरमें मिट्टी वा भस्म लेपनेवाले), मुलुकदाससे मुलुकदासी, रुइदाससे रुइदासी वा रय-दासी, सेनसे सेनपन्थी, रामचरणसे रामसनेही आदि विभिन्न रामात्मत प्रचारित हुए थे।

रामानन्दके बाद रघुनाथ गद्दी पर बैठे। ये आशानन्द नामसे परिचित हुए थे। यद्यपि रामानन्द स्वामीका बनाया हुआ कोई भी ग्रन्थ अभी नहीं मिलता, तो भी उनके मतानुवर्त्ती वैष्णवोंने आगे चल कर बहुतसे ग्रन्थ सङ्कलन किये। ये सब ग्रन्थ देशी भाषामें लिखे हैं, इस कारण सभी उन्हें आसानीसे समझ सकते हैं। उन सब ग्रन्थोंमें रामानंद स्वामीके मतोंका संग्रह है।

रामातुलसी (सं० स्त्री०) वह तुलसी जिसके डंठलका रंग सफेदी लिये हरा होता है काला नहीं होता।

रामादेवी (सं० स्त्री०) जयदेवकी माता।

(गीतगोविन्द १२।३०)

रामाद्वय—वेदान्तकौमुदीके प्रणेता तथा अद्वयाश्रमके पुत्र।

रामाधार—एक व्याख्याकार। रामायणका अयोध्याकाण्ड इन्होंने अन्वय द्वारा गद्यमें व्याख्या की।

रामानन्द—एक वैष्णव धर्मप्रचारक साधु। ईसाके १३०० सन्‌के प्रारम्भमें प्रयागमें कान्यकुब्ज ब्राह्मणके घर इनका जन्म हुआ। भक्तमालके मतसे रामानुजके शिष्य देवाचार्य, देवाचार्यके शिष्य राघवानन्द और राघवानन्दके शिष्य रामानंद हैं। रामानंदके भी असंख्य शिष्य थे। जिनमें अनन्तानंद और कबीर प्रधान थे। (भक्तमाल १०।६५) रामानुज स्वामी ११वीं सदीमें तथा कबीर १४वीं सदीके मध्यभागमें जीवित थे। रामानुज और कबीर देखो। इस हिसाबसे भक्तमालके अनुवर्त्ती हो कर रामानुजकी शिष्य-परम्परामें रामानंदका स्थान चौथा माना स्वीकार नहीं किया जा सकता। शायद भक्तमालके रचयिताने रामानुज और रामानंदके मध्यवर्त्ती कुछ गुरुओंके नाम छोड़ दिये हों।

रामानंद बचपनसे ही स्वाधीन प्रकृतिके आदमी थे। एक समय वे तीर्थयात्रा करने बाहर गये हुए थे। भारतके नाना स्थानोंमें घूम कर जब वे अपने मठमें आये, तब उनके सतीर्थोंने कहा कि, "दूसरेके सामने भोजन करना रामानुजसम्प्रदायकी रीतिके विरुद्ध है। तुमने देशविदेशमें इस नियमका पालन न किया होगा, इसलिये तुम्हारे साथ हम लोग एक पंक्तिमें बैठ कर भोजन नहीं कर सकते।" गुरु राघवानंदने भी इस बातको पुष्ट किया। रामानंद अपनेको अपमानित समझ कर काशीधाम चले आये। यहां पञ्चगङ्गाघाट पर रह कर इन्होंने अपने नामानुसार वैष्णव-संप्रदाय प्रवर्त्तित किया। वे रामचंद्रको अपना इष्टदेवता समझते थे। उनके मतानुवर्त्ती रामात् या रामानंदी-संप्रदाय इसी कारण रामचंद्रको इष्टदेवता समझ कर उनकी पूजा करते हैं।

रामानंद वाराणसीके पञ्चगङ्गाघाटमें जहां रहते थे उनके शिष्योंने वहां एक मठ बनवा दिया था। पीछे किसी मुसलमान राजाने उसे तहस नहस कर डाला। अभी वहां एक पत्थरकी वेदी मौजूद है। उस वेदी पर रामानंदका पदचिह्न अङ्कित देखा जाता है।

रामानंदके अनेक शिष्य थे, जिनमेंसे भक्तमालमें कुछ प्रधान शिष्योंके नाम ये सब लिखे हैं,--अनंतानंद, कबीर, सुखा, सुर, पद्मावती, महिमा, विजय, नरहरि, पीपा, भवानंद, रयदास, धना, योगानंद, गयेस, करमचांद, अल्हा पयहारी, सारी, रामदास, श्रीरङ्ग और गुणाकर। रामानंद जातिभेद नहीं मानते थे। युक्तप्रदेशमें आज भी हजारों मनुष्य रामानंदके मतानुवर्त्ती हैं।

इन शिष्योंमेंसे कई ब्राह्मणेतर जातिके भी थे। वे सभी वर्णके मनुष्योंको भगवद्भक्तिका अधिकारी समझते थे। परंतु वर्णव्यवस्था वैसा ही मानते थे जैसा कि वैदिक लोग मानते हैं। उन्होंने ब्राह्मणोंके अधिकारको अत्यंत सुरक्षित रखा है। ब्राह्मणों को ही त्रिदण्ड-संन्यास देते थे, दूसरेको नहीं। इतना होने पर भी वे बड़े उदार थे। हिंदू और मुसलमान सबके लिये उन्होंने धर्मद्वार खोल रखा था। वह बड़े पराक्रमी और शास्त्रमर्मज्ञ थे। उन्होंने जैनियों और मुसलमानोंसे कई शास्त्रार्थ किये हैं। अद्वैतवादियोंके साथ भी उनके शास्त्रार्थ हुए हैं। उनका सम्प्रदाय श्रीसम्प्रदाय अथवा रामानंद-सम्प्रदाय कहा जाता है। रामात् देखो।

रामानन्द—कई एक प्रसिद्ध पण्डित। १ वाक्यसुधाकी टीकाके प्रणेता ब्रह्मानन्दभारतीके गुरु। २ वृत्तदर्पणके प्रणेता जानकीमण्डलके पिता और गोपालके पुत्र। ३ न्यायामृतव्याख्या वा न्यायामृततरङ्गिणीके रचयिता। ये रामाचार्य नामसे भी परिचित थे। ४ बृहत्‌रुद्रोपपुराणकी टीका और बृहत्‌ रुद्रयामलकी टीकाके प्रणेता। ५ रामार्चनपद्धतिके प्रणेता। ६ वैष्णवमताब्जभास्करके रचयिता। ७ शिवरामस्तोत्रके प्रणेता। ८ शूद्रकुलदीपिकाके रचयिता। ६ हरिवंशटीकाकार। १० काशीखण्डटीकाके प्रणेता। इन्होंने वासुदेवके अनुरोधसे यह ग्रन्थ संकलन किया। पीछे इस ग्रन्थकी पुनः "गङ्गासहस्रनामटीका" लिखी। इनकी बनाई बालबोधिनी नामकी एक और पुस्तक मिलती है। ये मुकुन्दप्रियके पुत्र और रामेन्द्रचन्द्रके पौत्र थे। पहले अपने पितामह और पीछे चतुर्भुज नामक एक पण्डितसे ये पढ़ते थे।

रामानन्द आचार्य—मुग्धबोधटीकाके रचयिता। दुर्गादास और भट्टिकाव्यमें भरतसेनने इनका मत उल्लेख किया है।

रामानन्द तीर्थ—एक अद्वितीय पण्डित और साधु। ये तीर्थस्वामी या रामानन्दयति नामसे भी परिचित थे। ये प्रसिद्ध पण्डित अद्वैतानन्दके गुरु थे। इनके बनाये निम्नोक्त ग्रन्थ मिलते हैं,—

अङ्कसंज्ञा, अद्वैतनिर्णयसंग्रह, अद्वैतप्रकाश, अद्वैतरहस्य, अध्यात्मबिन्दु, अध्यात्मरामायणटिप्पणी, अध्यात्मसारटिप्पणी, अन्तर्यजनाङ्कटिप्पणी, आत्मतत्त्वटिप्पणी, आत्मबोधटिप्पण, आनन्दकुसुम, कातन्त्रसंग्रह, कादिसहस्रनामकला, कुण्डतत्त्वप्रकाशिका, कोमलकोषसंग्रह, गीताटीका, गीतादिसारटीका, गीताशय, चक्रटीका, चण्डीविवरण, ज्ञानवैभवतन्त्र, ज्ञानार्णवतन्त्र, तत्त्वसूत्र और तत्त्वसूत्रक नामकी टीका, तत्त्वार्णवटीका, तत्त्वावबोधटीका, तंत्रसार, दर्शनकलिका, देवीसूक्तटीका, नाममालासंग्रह, नृपभूषणी, परमामृत, प्रबोधचन्द्रोदयसंग्रह, प्राणुद्वासंग्रह, प्रेमभक्तिस्तोत्र और उसकी टीका, भगवद्‌गीताभाष्यव्याख्या, भागवततत्त्वसंग्रह, भागवतवृत्तसंग्रह, भागवतमञ्जरी, भागवताशय, भावार्थदीपिकाक्रमसंग्रह (भागवतपुराण), भावार्थदीपिकासंग्रह (श्रीधर), मन्वर्थसार, महिम्नःस्तवटीका, मोहमुद्गरटीका, यतिभागवत, यतिभूषणी, यथार्थमञ्जरी, योगचन्द्रटीका, योगविवेकटिप्पण, योगसूत्रटीका, योगावली, राजभूषणी, रामकाव्य, रामतत्त्वप्रकाश, रामायणकूटटीका, रुद्राध्यायटीका, लोकाभिधान, वासिष्ठसार और वासिष्ठसारगूढ़ार्थ, विचारार्कसंग्रह, विष्णुसहस्रनामव्याख्या, विष्णुसूक्तटीका, वेदमातृटीका, वेदस्तुतिलघूपाय, वेदान्तसारटीका, वेदान्तसूत्रटीका, शक्तिवादकलिका, शाक्तसर्वस्व, शान्तिशतककी दो टीका, शास्त्रसार, संक्षेपाध्यात्मसार, संगीतसिद्धांत, सत्तत्त्वबिन्दु, संध्याविधिमंत्रसमूहटीका, सहस्रनाममालाकला, सांख्यपदार्थगाथा, सातत्यचतुष्कटीका, स्वल्पाद्वैतप्रकाश, हठप्रदीपिकाटीका और हठयोगाधिराजटीका।

रामानन्द राय—एक वैष्णव और परम भक्त। ये उड़ीसाके विख्यात राजा प्रतापरुद्रके प्रधान कर्मचारी थे। भक्तिपरायणतामें ये वैष्णव-समाजमें परम वैष्णव कह कर मशहूर थे। स्वयं चैतन्यदेव इनके असामान्य गुण पर आकृष्ट हो कर इनको देखनेको इच्छासे विद्यानगर पधारे थे। ये अपने प्रभुकी आज्ञासे प्रतिभापूर्ण 'जगन्नाथवल्लभ' नाटक लिख कर अपनी असाधारण कविताका परिचय दे गये हैं। इनकी बनाई एक और शान्तिशतककी टीका मिलती है। १५३४ ई०में इनका जीवनाभिनय शेष हुआ। पद्यावलीमें इनकी बनाई कविता उद्धृत हुई है।

रामानन्द वसु—कुलीनग्रामवासी मालाधर वसुके पौत्र। इन्होंने श्रीचैतन्यदेवके साथ द्वारका नगरीसे नीलाचल तक परिभ्रमण किया था। रामानन्द चैतन्यदेवके परम प्रियपात्र थे। चैतन्यदेव इन्हें मित्र कहा करते थे।

रामानन्द वाचस्पति—नवद्वीपके रहनेवाले एक विख्यात पण्डित। इन्होंने नवद्वीपाधिपति राजा कृष्णचन्द्रके अनुरोधसे आह्निकाचारराजकी रचना की थी।

रामानन्द सरस्वती—बहुत-से प्रसिद्ध पण्डित। १ शुकाष्टकटीकाके रचयिता गंगाधरेंद्र सरस्वतीके गुरु। २ ब्रह्मसूत्रभाष्यरत्नप्रभा नामक ब्रह्मसूत्रभाष्यकी तथा योगमणिप्रभा नामक सूत्रकी टीकाके प्रणेता। ये गोविन्दानन्द, गोपाल और शिवराम सरस्वतीके शिष्य थे। ३ ब्रह्मामृतवर्षिणी नामकी ब्रह्मसूत्रकी टीकाके रच-

यिता। ये मुकुन्द गोविन्दके शिष्य थे और रामकिङ्कर नामसे परिचित थे।

रामानन्द सरस्वती यति—एक संन्यासी और प्रसिद्ध पण्डित तथा रामभद्र सरस्वतीके शिष्य। इन्होंने पञ्ची-करणतात्पर्यचंद्रिका, लघुवाक्यवृत्तिप्रकाशिका, वाक्य सुधाटीका, विवरणोपन्यास (शङ्कराचार्यकृत शारीरक सूत्रभाष्यकी टीका) और वेदांतसिद्धांतचंद्रिका आदि ग्रंथ प्रणयन किये।

रामानन्द स्वामी—१ तत्त्वसंग्रह रामायण और मुक्तितत्त्वके रचयिता। २ विद्याभूषणके प्रणेता।

रामानन्दी—रामोपासक सम्प्रदाय। इस सम्प्रदायमें राम ही विष्णुस्वरूप माने जाते हैं। इस संप्रदायके प्रवर्त्तक रामानंद हैं, इस कारण यह रामानंदी सम्प्रदाय नामसे परिचित होता है। इस सम्प्रदायमें किसी कठोर नियम-का पालन नहीं करना पड़ता। भक्तमाल नामक ग्रन्थमें रामानंदी सम्प्रदायके विषयमें यह बात लिखी हुई है, "रामानन्द सभी जातिके मनुष्योंको शिष्य करते थे। जातिभेद नष्ट करनेके लिये उनका विशेष प्रयत्न था। उन-के मतसे भक्त और भगवान्में कोई भेद नहीं है। जब भगवान् होने मत्स्य, कूर्म, वराह आदि नीच योनियोंमें जन्म लिया, तब भक्त भी नीच योनियोंमें जन्म लें इस-में संदेह ही क्या है। इसी कारण वे सभी जातिके मनुष्योंको शिष्य करते तथा मन्त्रोपदेश दिया करते थे। विशेष विवरण रामात् शब्दमें देखो।

रामानन्दीय—रामानंद प्रणीत वेदांत विषयक एक प्रसिद्ध ग्रंथ।

रामानुज (सं० पु०) १ रामचंद्रके छोटे भाई लक्ष्मण। २ वैष्णव मतके एक प्रसिद्ध आचार्य और श्रीवैष्णव सम्प्रदायके प्रवर्त्तक। रामानुजस्वामी देखो।

रामानुज आचार्य—सेतुपाद-रामायणके रचयिता।

रामानुजदर्शन—रामानुजमत प्रतिपाद्य दर्शनशास्त्र। माध-वाचार्यने सर्वदर्शनसंग्रहमें इस दर्शनका संक्षिप्त विवरण दिया है। रामानुजने इस दर्शनमें पहले आर्हतमतका खण्डन किया है। वे कहते हैं, कि आर्हतमत अति अप्रा-माणिक और अश्रद्धेय है, इसी कारण बुद्धिमान् मनुष्य यह मत ग्रहण नहीं करते। क्योंकि उसमें पञ्चतत्त्व, सप्ततत्त्व और नवतत्त्वादि नाना विषय उल्लिखित हुए हैं, कोई एक स्थिर सिद्धान्त नहीं है। इसलिये लोगोंको यह संदेह होता है, कि सप्ततत्त्व, पञ्चतत्त्व वा नवतत्त्व इनमेंसे किस मतके ऊपर वे निर्भर करेंगे? तथा ऐसा अव्यवस्थित मत अवलम्बन करनेकी आवश्यकता ही क्या? विचार कर लोग इस मतको ग्रहण नहीं करते। क्योंकि संदिग्ध विषयमें किसी भी बुद्धिमान्‌की प्रवृत्ति नहीं होती। फलतः आर्हतमतसे प्रवर्त्तकने इसे अव्य-वस्थित विषय बतलाते हुए अपने भी अव्यवस्थित चित्त-त्वका परिचय दिया है। आर्हतके मतसे देहके परि-माणानुरूप जीवका परिमाण है, किन्तु यह शास्त्र वा युक्ति किसी भी प्रमाणके अनुसार नहीं हो सकता। कारण देहके परिमाणानुरूप जीवका परिमाण होनेसे घटादि जड़ वस्तुकी तरह जीव भी परिमित हो सकता था। परिमित वस्तु कभी भी एक समय नाना स्थानोंमें नहीं रहती। अतएव जीवका भी एक समय नाना देशों-में रहना असम्भव है; किंतु योगी लोग योगके बलसे कायव्यूहकी रचना कर एक समय नाना शरीरमें अव-स्थित करते हैं। किंतु जैन लोग इसे स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि योगी भी तो जीव है, तब फिर किस प्रकार वे एक समयमें नाना शरीरमें अवस्थान कर सकते। शास्त्रमें कहा है, कि अपने कर्मवशतः मनुष्यजीवको भी जन्मांतरमें गजपिपीलिकादि शरीर धारण करना पड़ता है। यह भी किस प्रकार सङ्गत हो सकता? क्योंकि मनुष्य देहपरिमित मनुष्यजीव कभी भी बड़े शरीरमें अर्थात् हाथीमें नहीं रह सकता। जिस प्रकार छोटे बरतनमें जलाशयका सभी जल तथा छोटी झोपड़ीमें हाथी नहीं समा सकता उसी प्रकार छोटी पिपीलिकाके शरीरमें किसी हालतसे मनुष्यजीवका समावेश नहीं हो सकता।

यहां पर ऐसी भी सम्भावना नहीं, कि जिस प्रकार दीपके आलोकसे छोटा और बड़ा घर समान तौर उजाला होता है, उसी प्रकार जीवके सङ्कोच और विकाशभावमें छोटे और बड़े सभी शरीरमें उसका समावेश हो सके। किन्तु इससे जीव अनित्य हो जाता है। क्योंकि जिसके सङ्कोच और विकाशभाव हैं उसके विकार भी है।

विकारी होने हीसे अनित्य होता है। दीपालोक ही इसका दृष्टान्त है। जीवकी अनित्यता भी स्वीकार नहीं की जा सकती। क्योंकि जीवके अनित्य होनेसे 'कृतप्रणाश' और 'अकृताभ्यागमन' ये दोनों दोष होते हैं। जैसे, जिस व्यक्तिने जैसा कर्म किया है उसे उस कर्मका भोग अवश्य करना होता है। अभुक्त कर्मका कभी भी विनाश नहीं होता। जीवात्मा यदि अनित्य हो, तो उसका विनाश भी स्वीकार करना होगा। ऐसा होनेसे जीवात्माका स्वकृत कर्मका भोग हुए बिना ही विनाश हुआ। अतएव भोक्ताके अभावमें उसका वह कर्म अभुक्त हो कर भी विनष्ट हुआ। ऐसा होनेसे ही कृतप्रणाशका दोष हो उठा। क्योंकि अभुक्त कर्मके प्रणाशको कृतप्रणाश कहते हैं।

जो व्यक्ति पुण्य वा पापकर्म कुछ भी नहीं करता है, उसे उस कर्मके फलस्वरूप सुख वा दुःखका कभी भी भोग नहीं करना होता। किन्तु जीवात्माकी अनित्यता स्वीकार करनेमें अकृतकर्मके फलभोगस्वरूप 'अकृताभ्यागमन' स्वीकार करना होता है, नहीं तो इस मतसे अभिनवजात कुमारके सुख वा दुःख कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि उस समय उसके पुण्य वा पाप कर्म कुछ भी नहीं है। किन्तु जीवात्माकी नित्यता स्वीकार करनेमें ऐसा दोष नहीं होता। कारण, बाल्यावस्थामें पूर्वजन्मकृत् पुण्य वा पापके फलस्वरूप सुख वा दुःखका भोग होता है। यह जीवात्माकी नित्यताके मतसे अनायास ही स्वीकार किया जा सकता है। अतएव जीव कभी भी देहपरिमित नहीं है। इस प्रकार जब आर्हतमतके प्रधानभूत जीवपदार्थका निर्णय दोषपूर्ण और भ्रान्तिसंकुल प्रतिपन्न होता है, तब उस दर्शनमें अन्यत्र भ्रम वा दोष नहीं है, यह किस प्रकार संभव हो सकता है।

अद्वैतमतप्रवर्त्तक शङ्कराचार्यके मतावलम्बियोंका कहना है, कि एकमात्र ब्रह्म ही सत्य और श्रुतिप्रतिपाद्य है। जगत्प्रपञ्च कुछ भी सत्य नहीं है, सभी मिथ्या है। जिस प्रकार भ्रमवशतः रस्सीसे सांपका भ्रम होता है और जब यह मालूम हो जाता है, कि यह रस्सी है सांप नहीं, तब उस सांपका भ्रम भी जाता रहता है उसी प्रकार अविद्या द्वारा यह जगत्प्रपञ्च ब्रह्ममें कल्पित होता है। ब्रह्मज्ञान होनेसे ही उस अविद्याकी निवृत्ति हो कर जगत्प्रपञ्चकी भी निवृत्ति होती है।

अविद्या भाव पदार्थ है, किन्तु वह सत् वा असत् पदार्थ नहीं है। इसलिये विद्याको सदसदनिर्वचनीय कहते हैं। विद्या अर्थात् ब्रह्मज्ञान होनेसे उस अविद्याकी निवृत्ति होती है। किन्तु इस विषयमें जो उपनिषद्-वाक्य और अनुभव प्रमाणरूपमें अद्वैत मतावलम्बियोंने उद्धृत किया है उससे उल्लिखित भावस्वरूप अविद्या सिद्ध हो नहीं सकती। कारण श्रुतिमें जो अनृत शब्द है उसका अर्थ सांसारिक अल्पफलजनक कर्म है और जो माया शब्द देखा जाता उसका अर्थ विचित्र सृष्टिजनक त्रिगुणात्मिका प्रकृति है। अतएव जिन सब श्रुतियों द्वारा वे अविद्याको सिद्ध करके ऐसे सिद्धान्त पर पहुंचे हैं, निरपेक्षभावमें विचार कर देखनेसे वह अविद्या बिलकुल सिद्ध नहीं होती। कारण 'मैं नहीं जानता' ऐसे अनुभव द्वारा भी ज्ञानाभावका ही बोध होता है; भावरूप अविद्याका बोध नहीं होता। फिर उसे युक्तिसिद्ध कह कर भी अङ्गीकार नहीं कर सकते। क्योंकि ब्रह्मज्ञानस्वरूप है, अतएव किस प्रकार उनका आश्रय कर अविद्यारूप अज्ञान रहेगा? आलोकके आश्रयमें क्या कभी अन्धकार रह सकता? इसलिये यह मत नितान्त युक्तिविरुद्ध है, ऐसा प्रतीत होता है। अतएव भावरूप अविद्या पदार्थ जो अलीक और युक्तिविरुद्ध है इसमें और संदेह ही क्या रह गया? इस प्रकार शङ्कराचार्यने जब युक्तिविरुद्ध विषयकी अवतारणा की है, तब विद्वानोंकी उस ओर किसी हालतसे प्रवृत्ति हो नहीं सकती।

सभी दर्शनशास्त्रोंमें जिस प्रकार एकमात्र दुःखनिवृत्तिका उपाय निर्धारित हुआ है, रामानुजदर्शनमें वह विशेष रूपसे आलोचित हुआ है। रामानुज विशिष्टाद्वैतवादी थे। उन्होंने इस दर्शनमें तीन पदार्थ स्वीकार किये हैं—चित्, अचित् और ईश्वर। इनमेंसे चित् जीवपदवाच्य, भोक्ता, असंकुचित, अपरिच्छिन्न, निर्मलज्ञानस्वरूप और नित्य तथा अनादि कर्मरूप अविद्यावेष्टित है। अपृथक्सिद्धात्मा और तत्त्वमसि आदि

जीवका स्वभाव है। केशाग्रको सौ भागोंमें विभक्त कर पीछे उस एक भागको फिर सौ भागोंमें विभक्त करनेसे जितना सूक्ष्म होता है जीव भी उतना ही सूक्ष्म है।

अचित् पदार्थ भोग्य और दृश्यपदवाच्य है; अचेतन स्वरूप जड़ात्मक जगत् है तथा भोगत्वविकारास्पदत्वादि स्वभावशाली है। वह अचित् पदार्थ फिर तीन प्रकारका है,—भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन। जिसे भोग किया जाता है उसे भोग्य, जैसे, अन्नपानीयादि; जिससे भोग किया जाता है उसे भोगोपकरण; जैसे भोजनपात्रादि और जिसमें भोग किया जाता है उसे भोगायतन कहते हैं, जैसे शरीरादि।

ईश्वर परमात्मा हरि हैं। ये सबोंके नियामक हैं। सबोंके कर्त्ता, उपादान, और अन्तर्यामी तथा अपरिच्छिन्न ज्ञान, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज आदि गुणास्पदतारूप स्वभावशाली है। चित् अचित् सभी वस्तु उनके शरीरस्वरूप हैं तथा पुरुषोत्तम और वासुदेवादि उनकी संज्ञा है। वे परम कारुणिक हैं तथा भक्तवत्सल उपासकोंको यथोचित फल देनेके लिये पांच प्रकारकी मूर्त्ति धारण करते हैं।

उनकी पांच प्रकारकी मूर्त्ति ये सब हैं,—प्रथम अर्च्चा अर्थात् प्रतिमादि, द्वितीय रामादि अवतार स्वरूपविभव, तृतीय वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चारोंका व्यूह, चतुर्थ सूक्ष्म और सम्पूर्ण षड़्गुण वासुदेव नामक परब्रह्म और पञ्चम अन्तर्यामी सभी जीवोंके नियन्ता। भगवान्की इन पांच प्रकारकी मूर्त्तियोंमेंसे पूर्वकी उपासना द्वारा पापक्षय होनेसे उत्तरोत्तरकी उपासनामें अधिकार होता है। पहले प्रतिमादिकी पूजा करके चित्तशुद्धि और भगवद्भक्ति होनेसे पीछे रामादि अवताररूप विभवकी उपासना करनी होती है। इस प्रकार करते करते दुःखनिवृत्तिरूप मोक्ष होता है।

इस मतमें उपासना भी पांच प्रकारकी है,—अभिगमन, उपादान, कथा, अध्याय और योग। देवमन्दिरके मार्ज्जन और अनुलेपन आदिको अभिगमन, गंधपुष्पादि पूजोपकरणके आयोजनको उपादान, पूजाको इज्या, अर्थानुसंधानपूर्वक मन्त्र और स्तोत्रपाठ नामसंकीर्त्तन और तत्त्वप्रतिपादक शास्त्राभ्यासको स्वाध्याय तथा देवतानुसंधानको योग कहते हैं।

इस प्रकार उपासना द्वारा विज्ञान लाभ होनेसे करुणासिंधु भगवान् अपने भक्तोंको नित्यपद प्रदान करते हैं। वह पद मिलनेसे भगवान्‌को यथार्थरूपमें जाना जा सकता है तथा पुनर्जन्मादि कुछ भी नहीं होता। इसका तात्पर्य यह कि पांच प्रकारकी उपासनासे धीरे धीरे भक्ति नामक ज्ञान आविर्भूत होता है। चरमोत्कर्ष अवस्थामें जब अहङ्कारादि विलुप्त होते हैं, तब भक्तवत्सल भगवान् उसे आवृत्तिरहित अपना परमानन्दधाम प्रदान करते हैं। यही रामानुज मतसे मोक्ष है। ध्यानादिके साथ की गई भक्ति द्वारा ही भगवत्स्वके दर्शन होते हैं, दूसरे उपायसे नहीं। भगवत्स्वका साक्षात्कार तत्त्वमसि आदि वाक्य सुननेसे नहीं होता।

रामानुजने और भी कहा है, कि एकमात्र भक्ति ही भगवत्प्राप्तिका उपाय है। भक्तिज्ञान विशेषज्ञानका सार वा फल है। यह इतरवैतृष्ण्यरूपिणी है। भगवान्को छोड़ कर और सभी जब हेय मालूम होते हैं, तब जो अनन्यपरा वा अचलभक्ति विकाशमाना होती है, वही भक्ति भक्ति है। बिना वैराग्यके वैसी भक्ति ही नहीं होती तथा वैराग्य भी सत्त्वशुद्धिके बिना नहीं होता, सत्त्वशुद्धि आहारादिकी शुद्धिसे धीरे धीरे प्राप्त होती है।

पहले लिखा जा चुका है, कि रामानुज विशिष्टाद्वैतवादी थे। वे इस मतको युक्ति और प्रमाणादि दिखा कर समर्थन कर गये हैं, कि चित् और अचित्के साथ ईश्वरका भेद यही तीन है। जिस प्रकार विभिन्न स्वभावशाली पशु और मनुष्यादिमें प्रभेद है, उसी प्रकार पूर्वोक्त स्वभाव और स्वरूपके वैलक्षण्यवशतः चित् और अचित्के साथ ईश्वरका भी भेद स्वीकार करना होगा। फिर जिस प्रकार 'मैं सुन्दर हूं, मैं स्थूल हूं' इत्यादि व्यवहारसिद्ध भौतिक शरीरके साथ जीवात्माका अभेद देखा जाता है, उसी प्रकार चित् और अचित् सभी वस्तुओंके साथ अभेद भी है, कहना होगा। फिर जिस प्रकार एकमात्र मिट्टी ही विभिन्न घड़े ढकन आदि नाना रूपोंमें मौजूद है जिससे घड़ेके साथ मिट्टीका भेदाभेद प्रतीत होता है

उसी प्रकार एकमात्र परमेश्वर चित् और अचित् नाना रूपोंमें विराजमान हैं, इसी कारण चिदचितके साथ उनका भेदाभेद भी है, संदेह नहीं। क्योंकि ईश्वरके आकार स्वरूप चिदचित्का परस्पर भेद ले कर तथा दोनोंके साथ ईश्वरके शरीरात्मभावमें अभेदवशतः भेदाभेद हुआ है। जिसका जो अन्तर्यामी होता है, वही उसका शरीर समझा जाता है। जिस प्रकार भौतिकदेहका अन्तर्यामी जीव होनेके कारण भौतिकदेह जीवका शरीर है, उसी प्रकार जीवका अन्तर्यामी ईश्वर हैं, इसलिये जीव भी ईश्वरका शरीर है। अतएव जिस प्रकार 'मैं सुन्दर हूं, मैं स्थूल हूं' इत्यादि व्यवहार द्वारा भौतिक शरीरमें जीवात्माके शरीरात्मभावमें अभेद प्रतीत होता, उसी प्रकार 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' अर्थात् हे श्वेतकेतो! तुम ईश्वर हो, इत्यादि श्रुतियोंमें भी जीवात्मा और ईश्वरके शरीरात्मभावमें अभेद निर्दिष्ट हुआ है। फलतः उससे वास्तविक अभेदप्रकृति नहीं होती। अतएव इस श्रुति द्वारा जीवात्मा और परमात्मामें एकता स्वीकार करना तथा जगत्प्रपञ्चको मिथ्या कहना केवल मूर्खोंका काम है, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

श्रुतिने जहां निर्गुण कहा है, वहां उसका तात्पर्य है—प्रकृतजनकी तरह रागद्वेषादि गुण ईश्वरमें नहीं होता। फिर जहां पदार्थोंका नानात्वविषय निषेध किया है, वहां उसका तात्पर्य यह, कि ईश्वर चिदचित् सभी वस्तु ईश्वरात्मक हैं। ईश्वरसे पृथक् कोई भी वस्तु नहीं है।

(रामानुजद०)

रामानुज स्वामीने ये सब मत संस्थापन कर वेदान्तदर्शनके ब्रह्मसूत्रका एक भाष्य प्रणयन किया है। उस भाष्यमें इन सब मतोंका विशेष विवरण लिखा है।

रामानुज स्वामी देखो।

रामानुजदास—चण्डमारुत, तत्त्वनयरत्न और वेदान्तविजयके प्रणेता।

रामनुज दीक्षित—तत्त्वचिन्तामणिदर्पण और तत्त्वचिन्तामणिसारके प्रणेता।

रामानुज सम्प्रदाय—रामानुज मतावलम्बी वैष्णवधर्मसम्प्रदाय। श्रीसम्प्रदाय देखो।

रामानुज स्वामिन्—वरदर.जस्तवटीका और सारास्वादिनी नामक टीकाके रचयिता।

रामानुजस्वामी—एक अद्वितीय दार्शनिक और साधुपुरुष, विशिष्टाद्वैतवादमतके प्रवर्त्तक। यतिराज इनकी उपाधि थी। इनके पिताका नाम केशव त्रिपाठी था। भगवान् रामानुजाचार्य १०१७ ई०में जिस क्षेत्रमें भूमिष्ठ हुए, वह ग्राम बड़ा प्राचीन है और उस पवित्र स्थान पर अश्वमेधादि विविध यज्ञानुष्ठान हो चुके हैं। इस समय वही स्थान श्रीपेरेम्बधूरम नामसे प्रसिद्ध है। यह स्थान मान्द्राजहातेके चेङ्गलपत जिलेके अन्तर्गत है और वर्त्तमान मान्द्राज नगरीसे छब्बीस मीलके फासले पर अवस्थित है। मान्द्राज रेलवेके त्रिमेलौर स्टेशनसे दश मील दूर श्रीपेरेम्बधूरम ग्राम पूर्व दक्षिणके कोनेमें अवस्थित है। अब इस स्थान पर इसके नगर होनेका कोई भी चिह्न विद्यमान नहीं है। चारों ओर नयनप्रसन्नकारी शस्यश्यामला भूमि है। नारियल, ताल, खजूर, सुपारी, वट, पीपल, पुन्नाग, नागकेसर आदि अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित यह एक छोटा सा ग्राम है। दूरसे इस ग्रामको देखनेसे मन आनन्दसे परिपूर्ण हो जाता है। रेलवे स्टेशनसे उतर कर इस ग्राममें प्रवेश करनेके लिये एक चक्करदार सड़क पर चल कर वहां पहुंचना होता है। इसी सड़कसे कुछ दूर आगे बढ़ कर आचार्यका जन्मक्षेत्र है। पहले स्वामीजी महाराजका जन्मस्थान मिलता है, उसके बाद उनके उपास्य देव श्रीकेशवजी के मंदिरमें जाना होता है। उसके पास ही उनके भतीजे कूरेशस्वामीका मकान है। उसके सामने एक बड़ा लम्बा चौड़ा तालाब है। अनंतसरोवर उस तालाबका नाम है।

भगवान् रामानुजाचार्यका जन्म हारीत गोत्रीय ब्राह्मण वंशमें हुआ। किन्तु वैदिक श्रौतसूत्रमें ब्राह्मणोंके जो अष्टाविंशति गोत्र बतलाये गये हैं और जिनका उल्लेख धनञ्जयकृत धर्मप्रदीपमें पाया जाता है उनमें हारीत गोत्रका नाम नहीं मिलता। किन्तु स्वामीजी ब्राह्मणवंश हीमें उत्पन्न हुए थे, इसमें संदेह करनेका कारण नहीं।

रामानुजस्वामीके पिता केशव त्रिपाठी एक अद्वितीय पण्डित थे। पिताके निकट ही इन्होंने १५ वर्ष तक वेदाध्ययन किया था। पिताके मरने पर ये सपरिवार द्राविड़ देशकी राजधानी काञ्चीनगरी चले गये उस समय काञ्चीनगरी विद्या और धर्मचर्चाके लिये दक्षिण प्रांतमें बहुत प्रसिद्ध थी। यादवप्रकाश नामक एक वेदांती संन्यासी उन दिनों वहींकी पण्डित मण्डलीमें बड़े श्रेष्ठ थे। श्रीरामानुज स्वामी उन्हींके निकट अध्ययन करने लगे। अध्यापक इनके सौंदर्य, प्रतिभा और वाक्‌चातुरी देख सुन कर मुग्ध हो जाते थे।

जिन दिनों श्रीरामानुज स्वामी यादवप्रकाशके पास पढ़ने जाते थे, उन्हीं दिनों वहांके राजाकी कन्या पर एक ब्रह्मराक्षसने अधिकार जमाया था। राजाने राक्षसको हटानेके लिये यादवको बुलाया। यादव श्रीरामानुज प्रमुख अपने शिष्योंको ले कर वहां गये। उनके अनेक यत्न करने पर भी जब राक्षस नहीं हटा, तब श्रीरामानुज स्वामीने कन्याके मस्तक पर अपना चरण छुलाया और उसकी ब्रह्मराक्षसबाधा दूर कर दी। राजाने प्रसन्न हो कर स्वामीजीको बहुत धन दिया। इस पर यादवप्रकाश जलनेसे लगे। इतनेमें स्वामीजीके मौसेरे भाई गोविन्दाचार्य भी यादवप्रकाशकी पाठशालामें स्वामीजीके साथ पढ़नेके लिये आये।

एक दिन यादवप्रकाश वेदान्त पढ़ा रहे थे। उन्होंने "सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन"-की व्याख्या इस प्रकार की। यह जगत् ब्रह्म है, ब्रह्म भिन्न कुछ भी नहीं है। हम लोग जो भिन्न भिन्न पदार्थ देखते हैं वे मायामात्र हैं, यह विलक्षण अर्थ सुन कर रामानुज स्वामीका मन विरक्त-सा हो गया और उनसे न रहा गया। उन्होंने कहा, 'महानुभाव! आप श्रुतिकी व्याख्या न कर अपव्याख्या करते हैं। उसकी व्याख्या इस प्रकार होनी चाहिये,—यह सारा जगत् ईश्वर द्वारा अधिष्ठित है। प्रत्येक पदार्थमें ईश्वर विराजमान है। ईश्वर जगत्की आत्मा हैं, उससे पृथक् हो कर कोई भी वस्तु ठहर नहीं सकती।" यह अर्थ सुन कर यादवप्रकाश क्रोधसे कांपने लगे और उन्होंने दो चार बातें स्वामीजीको सुनाईं। स्वामीजीने इस अपमानको चुपचाप सह लिया; किन्तु उनके मनमें बड़ा खेद उत्पन्न हुआ और यादवप्रकाशसे पढ़ना बंद करके अपने घर ही पर वेदांत तत्वकी गम्भीर आलोचना स्वयं करने लगे।

यादवप्रकाश चुप बैठे न थे, वैरका बदला लेनेका उपाय सोचा करते थे। एक दिन उन्होंने अपने शिष्योंको बुला कर कहा, 'तुम लोगोंको अच्छी तरह मालूम है, कि काञ्चीके पण्डितोंमें मेरी कैसी प्रतिष्ठा है। रामानुज शिष्य होने पर भी मेरा शत्रु हो रहा है। उस दिन राजाके सामने उसने मेरा भारी अपमान किया है। उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है, यदि यह कुछ दिनों और जीता रहा, तो अद्वैत मतका मूलोच्छेद कर द्वैत मतको पुष्ट कर देगा। अतएव इस शत्रुको किसी उपायसे मार डालना चाहिये।' शिष्योंने कहा, "गुरुदेव! आप दुःखित न हों। अवसर मिलते ही हम लोग रामानुजका प्राणनाश करके आपको निष्कण्टक बना देंगे।" यह सुन यादवप्रकाश कहने लगे, 'मैंने उसके प्राणनाशका एक उपाय सोच रखा है। वह यह कि हम लोग उसे साथ ले कर स्नानार्थ प्रयागको चलें। वहां सब मिल कर भागीरथीके प्रबल प्रवाहमें उसे डुबो दें। ऐसा करनेसे उसकी सद्गति होगी और हम लोगोंको भी ब्रह्महत्याजनित पापमें लिप्त न होना पड़ेगा।' इस प्रकार षड्‌यन्त्र रच कर श्रीरामानुज स्वामीको बातोंमें भुला यादव उनको साथ ले शिष्यमंडली सहित प्रयागकी ओर चल दिये। शिष्यमंडलीमें श्रीरामानुज स्वामीके मौसेरे भाई गोविन्दाचार्य भी थे।

विन्ध्याचलकी तराईमें जब वे सब पहुंचे, तब अवसर देख कर गोविन्दाचार्यने सारा हाल श्रीरामानुजसे कह दिया। श्रीरामानुजने उसी समयसे उन दुष्टोंका साथ छोड़ा और रास्ता छोड़ उस विकट वनमें प्रवेश किया। इधर यादवप्रकाशने जब देखा, कि रामानुज साथमें नहीं है, तब उन्होंने बहुत ढुंढ़वाया पर कहीं पता न चला। अब यादवप्रकाशने समझ लिया, कि किसी बनैले जन्तुने उन्हें खा डाला। यह विचार कर वह मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए।

उधर श्रीरामानुज स्वामीको भगवान् वरदराज और

भगवज्जननी लक्ष्मीजीने बहेलिया और बहेलिनका रूप धारण कर काञ्ची पहुंचाया। काञ्चीमें पहुंच कर स्वामीजीने अपना सारा हाल अपनी मातासे कहा। माता कान्तिमतीके आदेशानुसार स्वामीजीने शालकूपसे जल ला कर भगवान् वरदराजकी सेवा करने लगे।

श्रीरङ्गनाथके कृपाभाजन श्रीयामुनाचार्य बड़े पंडित थे। उनके पास अनेक शिष्य वेद-वेदाङ्गकी शिक्षा प्राप्त किया करते थे। एक दिन उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा, 'शिष्यगण! तुम लोग घूम फिर कर एक ऐसे व्यक्तिका पता लगाओ जो सुलक्षण कान्तियुक्त नवयुवक हो, सर्वशास्त्र पारदर्शी, मधुरभाषी, सदाचारी और भगवद्भक्त हो। शिष्यगण वैसे व्यक्तिका अनुसन्धान करते करते काञ्चीमें पहुंचे। वहां श्रीरामानुज स्वामीको देख और उनके सम्बन्धकी सारी घटनावलीको सुन वे श्रीयामुनाचार्यके पास लौटे और उनसे सारा हाल कहा। वे श्रीयामुनाचार्यजीको देखनेके लिये उत्सुक हुए। परन्तु अचानक बीमार हो जानेके कारण वे स्वयं काञ्ची न जा सके।

उधर यादवप्रकाशने लौट कर जब स्वामीजीके सकुशल काञ्ची लौट आनेका समाचार सुना। तब वह कुछ मन ही मन लज्जित हुआ और लोगोंको धोखा देनेके लिये उसने फिर श्रीरामानुज स्वामीसे मेल कर लिया। स्वामीजी भगवान् वरदराजकी सेवा करते हुए फिर उसके पास विद्याध्ययन करने लगे। कुछ समय बाद गुरु शिष्यमें फिर झगड़ा हुआ। इस बार गुरुने कलिके प्रभावसे विवेकभ्रष्ट हो श्रीरामानुजस्वामीको वहांसे निकलवा दिया।

रामानुजस्वामी उसी समय श्रीयमुनाचार्यके दर्शन करनेके लिये श्रीरङ्गजीकी ओर पूर्णाचार्यके साथ चल दिये। जब वे पुण्यतोया कावेरीके तट पर पहुंचे, तब श्रीयमुनाचार्यके परम पद प्राप्त होनेका समाचार सुन बड़े दुःखित हुए।

कुछ दिनों बाद काञ्चीपूर्ण स्वामीके कथनानुसार दीक्षा ग्रहणार्थ श्रीरामानुज स्वामी पूर्णाचार्यके पास श्रीरङ्गक्षेत्रके महाक्षेत्रका शून्य आसन देख आग्रहपूर्वक पूर्णाचार्यके श्रीरामानुज स्वामीको साथ ले आनेके लिये काञ्ची भेजा। रास्तेमें मदुराके पास उन दोनोंकी भेंट हुई। दोनोंने एक दूसरेसे अपनी अपनी यात्राका कारण कहा। अन्तमें श्रीरामानुजचार्यने पूर्णाचार्य स्वामीसे संस्कार करनेके लिये प्रार्थना की। पूर्णाचार्यकी इच्छा नहीं रहते हुए भी श्रीरामानुजस्वामीके बार बार आग्रह करने पर पूर्णाचार्यने उनके संस्कार वहीं किये। महापूर्णस्वामीने महापण्डित श्रीरामानुजस्वामीको श्रीहरिके दास्यसाम्राज्यका नायक बनाया और कहा, "इस लोकमें श्रीयमुनाचार्य श्रीवैष्णव जगत्के गुरु थे। उनके तिरोभाव होने पर अब तुम उनके स्थानको सुशोभित करो तथा प्रच्छन्न बौद्धोंके सम्प्रदायको समूल उन्मूलित करके श्रीवैष्णवोंको बचाओ।" इसके बाद गुरु समेत वे काञ्ची लौटे।

एक दिन कौशलपूर्वक श्रीरामानुज स्वामीने अपनी स्त्रीको मायके भेजा और आप अपनी जन्मभूमि भूतपुरी को चल दिये। वहां घर द्वार वित्त आदि सब पार्थिव सम्पदको छोड़ कर श्रीरामानुजस्वामीने कमण्डलु और कषाय वस्त्र धारण कर अनन्त सरोवरमें स्नान किये और आदि केशवकी सन्निधिमें संन्यास ग्रहण किया। फिर वे काञ्ची लौटे। वहां उन्हें उस आश्रममें देख काञ्चीपूर्णको बड़ा आनन्द हुआ। उसी समयसे उनका नाम "यतिराज" पड़ा।

कुछ दिनोंके बाद श्रीरामानुज स्वामी देशाटनको निकले और वेङ्कटगिरि होते हुए उत्तरको चले। दिल्ली, बदरिकाश्रम आदि स्थानोंमें श्रीसम्प्रदायका प्रचार करते हुए वे अष्टसहस्र नामक ग्राममें पहुंचे। वहां उन्होंने वरदाचार्य और यज्ञेश नामक अपने ही शिष्योंको मठाधिपति नियुक्त किया। फिर हस्तिगिरिमें पूर्णाचार्यादिके मिलनेके अनन्तर वे कपिलतीर्थको गये। वहांके राजा विट्ठलदेवको उन्होंने अपना शिष्य बनाया। राजाने तोंडीरमण्डल आदि अनेक ग्राम उनको भेंट किये।

फिर बोधायनवृत्ति संग्रह करनेके लिये वे कूरेश सहित शारदापीठको गये और वहांके पण्डितोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया। यतिराजने भगवतीशोपापादिकी स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया। फिर बोधायन

वृत्तिको ले वे रङ्गजीको ओर चल दिये। किन्तु कश्मीरी पण्डितोंको उस पुस्तकका इस प्रदेशमें आना अच्छा न मालूम पड़ा। इसलिये रास्ते होमें वे यतिराजसे उस पुस्तकको छीन कर ले गये। इस घटनासे स्वामीजीको बड़ा दुःख हुआ। उन्हें दुःखी देख कूरेशने कहा, 'प्रभो! आप दुःखित न हों। मैंने उसे अच्छी तरह आद्योपान्त देख लिया है। आपकी कृपासे वह सम्पूर्ण ग्रन्थ मेरे मुखस्थ है।' यह सुन स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए।

इसके बाद यतिराजने बहुतसे शिष्योंको साथ ले चोलमण्डल, पाण्ड्यमण्डल, कुरङ्ग आदि देशोंमें जैनियों एवं मायावादियोंको परास्त कर उन्हें अपना शिष्य बनाया। कुरङ्ग देशके राजाको दीक्षित कर उन्होंने केरलदेशके कट्टर वैष्णवद्वेषी पण्डितोंको परास्त किया। वहांसे वे क्रमसे द्वारका, मथुरा, काशी, अयोध्या, बदरिकाश्रम, नैमिषारण्य आदि तीर्थोंमें हो कर काश्मीर पहुंचे। वहांके पण्डितोंको भी परास्त किया। काश्मीरके नरेश उनका नाम सुन उनके पास गये और उनके शिष्य हो गये। वहांके पण्डितोंको यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने स्वामीजी पर अभिचार प्रयोग किया। शिष्योंने इसका समाचार श्रीस्वामीजीको दिया। स्वामीजी जरा भी विचलित न हुए। पण्डितोंका सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया और वे पागल हो गये तथा सड़कों पर गालियां बकते हुए घूमने लगे। राजाको दया आई और उन्होंने स्वामीसे निवेदन कर उनका पागलपन दूर कराया। फिर वे सब पण्डित यतिराजके शिष्य हो गये। स्वयं विद्यादेवी सरस्वतीने उनके भाष्यकी प्रशंसा कर उन्हें 'भाष्यकार'-की उपाधि प्रदान की।

वहांसे स्वामीजी द्वारका गये। फिर काशी हो कर वे पुरुषोत्तमक्षेत्र पहुंचे। वहां बौद्ध-पण्डितोंको परास्त कर वे श्रीरामानुज मठमें रहने लगे। भाष्यकारने चाहा, कि वहां जगदीशके अर्चनविधानमें कुछ वैदिकरीत्या हेरफेर किया जाय, पर जगदीशकी इच्छा न देख वे वेङ्कटगिरि पर पहुंचे। फिर चोलदेशके कृमिकण्ठ राजाने उन्हें शास्त्रार्थके लिये बुलाया। यतिराज उसके पास जाते थे, कि मार्गमें चेला चलाम्बा और उसके पतिको दीक्षित किया। फिर अनेक बौद्धोंको उन्होंने परास्त किया। इस प्रकार कुछ दिन वे भक्तोंके नगरोंमें रहे। वहां स्वप्न देखनेसे इन्होंने यादवाचल पर जा कर वहांकी छिपी हुई भगवान्‌की मूर्त्तिको निकाला और शाके १०१२ में उस मूर्त्तिकी वहां प्रतिष्ठा की।

एक बार यतिराजने दिल्लीमें जा कर तत्कालीन मुसलमान बादशाहके महलमें एक विष्णु-मूर्त्तिको निकाला था।

श्रीरामानुजस्वामीके ७४ शिष्य बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं। इनमें अन्ध्रपूर्णकी बड़ी महिमा है।

इस प्रकार यतिराज भाष्यकार श्रीरामानुज स्वामीने जीवधारियोंके प्रति कृपा दिखानेके लिये इस धराधाम पर एक सौ बीस वर्ष तक वास किया। इस अवस्थाका आधा समय अर्थात् साठ वर्ष तक तो उन्होंने काञ्ची, वेङ्कटगिरि, यादवाचल आदि अनेक देशोंमें दिग्विजय करनेके लिये पर्यटन किया। अनन्तर उन्होंने अपनी आयुका शेष आधा भाग श्रीरङ्गनाथजीकी सेवामें व्यतीत किया। सेतुबन्धसे हिमालय तक और पश्चिम समुद्रसे पूर्व समुद्र तक ऐसा कोई स्थान न था जहां पर यतिराजके शिष्य न हों।

रामानुजका मत।

रामानुजने जो विशिष्टाद्वैतवाद प्रचार किया, उसका मूलतत्त्व बहुप्राचीन मतसे ही लिया गया है। उन्होंने जिस मतका प्रचार किया, वह उसके बहुत पहले बोधायन और द्रमिड़ाचार्य लिपिबद्ध कर गये थे। रामानुजको श्रीभाष्य और श्रुतप्रकाशिका नाम्नी उसकी टीका होसे इसका पता चलता है। श्रीसम्प्रदायके प्रसिद्ध आचार्य श्रीनिवासने अपनी यतीन्द्रमतदीपिकामें लिखा है, कि १म व्यास, २य बोधायन, ३य गुहदेव, ४र्थ भारुचि, ५म ब्रह्मनन्दी, ६ष्ठ द्रमिड़ाचार्य, ७म श्रीपराकुंशनाथ, ८म यामुनाचार्य और ९म यतीश्वर वा रामानुजने यथाक्रम इस मतका प्रचार किया। पूर्ववर्त्ती आचार्योंका संक्षिप्त मत एक प्रकार विलुप्त सा हो गया, रामानुजका सुविस्तृत आलोचनायुक्त मत अभी तमाम प्रचलित है।

बहुत पहले भारतवर्षमें जो पञ्चरात्र वा भागवत मत प्रचलित था, रामानुजने एक प्रकारसे उसी मतकी घोषणा की। पञ्चरात्र शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

अध्यापक रामकृष्णगोपाल भाण्डारकरके मतसे पंचरात्र वा सात्वतधर्म क्षत्रियमूलक है। रामानुजने उसी सात्वतमतके अवलम्बन पर वैदान्तिक विशिष्टाद्वैतवाद स्थापन किया है।

प्रधानतः १ जीव, २ ईश्वर, ३ उपाय (ईश्वरको पानेका पथ), ४ फल वा पुरुषार्थ, ५ विरोधी अर्थात् (ईश्वरप्राप्तिका प्रतिबंधक) यह अर्थपञ्चक ले कर रामानुजमत प्रतिष्ठित है। उनके मतसे जीव पांच प्रकारका है,—नित्य, मुक्त, केवल, मुमुक्षु और बद्ध। ईश्वरका स्वरूप भी पांच प्रकारका है,—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा। उपाय भी पांच प्रकारका है,—कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, प्रपत्तियोग और आचार्याभिमानयोग। पुरुषार्थके भी पांच भेद हैं,—धर्म, अर्थ, काम, कैवल्य और मोक्ष। मोक्षविरोधीके भी पांच भेद हैं, स्वरूपविरोधी, परस्वरूपविरोधी, उपायविरोधी, पुरुषार्थविरोधी। रामानुजदर्शन शब्द देखो।

द्राविड़, तैलङ्ग, मारवाड़ और गुजरातमें रामानुजमतावलम्बी बहुतसे लोग देखे जाते हैं। श्रीसम्प्रदाय देखो।

निम्नलिखित ग्रंथ पण्डितप्रवर रामानुज स्वामीके लिखे मिलते हैं,—

अष्टादशरहस्य, ईशावास्योपनिषद्भाष्य, कष्टकोद्धार, कूटसंदोह, गद्य और गद्यत्रय गुणरत्नकोष, चक्रोल्लास, दिव्यसूरिप्रभावदीपिका, देवतापारम्य, नायकरत्न नामक न्यायरत्नमालाटीका, नारायणमन्त्रार्थ, नित्यपद्धति, नित्याराधनविधि, न्यायपरिशुद्धि, न्यायसिद्धाञ्जन, पञ्चपटल, पञ्चरात्ररक्षा, प्रश्नोपनिषद्व्याख्या, भगवद्गीताभाष्य, मणिदर्पण, मतिमानुष, मुण्डकोपनिषद्व्याख्या, योगसूत्रभाष्य, रत्नप्रदीप, रामपटल, रामपद्धति, रामपूजापद्धति, राममंत्रपद्धति, रामरहस्य, रामायणव्याख्या, रामार्चापद्धति, वार्त्तामाला, विशिष्टाद्वैतभाष्य, विष्णुविग्रहशंसनस्तोत्र, विष्णुसहस्रनामभाष्य, वेदान्ततत्त्वसार, वेदान्तदीप, वेदान्तसार, वेदार्थसंग्रह, वैकुण्ठगद्य, शतदूषणी, शरणागतिगद्य, श्रीभाष्य, श्रीरङ्गराजस्तोत्रव्याख्या, श्वेताश्वतरोपनिषद्व्याख्या, संकल्पसूर्योदयटीका, सच्चरित्ररक्षा और सच्चरित्ररक्षासारदीपिका नामक उसकी टीका और सर्वार्थसिद्धि।

रामानुष्टुभ् (सं० क्ली०) रामस्तोत्रविशेष।

रामप्रिय (सं० पु०) दारचीनी।

रामाभ्युदय (सं० पु०) रामचन्द्रका अवताररूपमें प्रकटन।

रामायण (सं० क्ली०) रामस्य चरिताग्वितं अयनं शास्त्रं। वाल्मीकि-रचित भारतवर्षका आदि काव्य। इसका दूसरा नाम रघुवरचरित, दशशिरःवध वा पौलस्त्यवधकाव्य है।

रामायण आदिकाव्य समझा जाता है, पर पाश्चात्य पण्डितोंके निकट यह नाना भावोंमें गृहीत हुआ है। जर्मन-पण्डित वेवर (Weber)ने लिखा है। 'रामायणकाव्य दक्षिणापथमें आर्य्यसभ्यता विशेषतः कृषि-ज्ञान-विस्तारविषयक एक रूपकमात्र है। सीता किसीका नाम नहीं है, सीता ही हलपद्धति और रामायण हलधर बलराम है। महाभारत-वर्णित युद्धपर्वके बहुत पीछे रामायण सङ्कलित हुआ है।'* यहां तक, कि बौद्धोंके दशरथ जातकके कितने श्लोकोंके साथ रामायणके श्लोकोंका मेल देख कर उन जर्मन-पण्डितने प्रमाणित किया है, कि दशरथजातकके मूल उपाख्यानका अवलम्बन कर वाल्मीकीय रामायण रचा गया है।

इसके सिवा कोई कोई पाश्चात्य पण्डित यह भी कहते हैं, कि हिन्दू और सिंहलस्थ बौद्धोंके परस्पर विवाद विसम्वादविज्ञापक रूपक ले कर रामोपाख्यानकी सृष्टि हुई है। फिर किसीने लिखा है, कि रामायण होमरकृत ग्रीक-काव्यका ही अनुकरण है। इस प्रकार रामायणके सम्बन्धमें कितनी ही अश्रुत अभूतपूर्व कथाएं सुनी जाती हैं। परन्तु उन सब कथाओंके मूलमें कुछ भी सार है, हम लोग स्वीकार नहीं करते।

रामायण और महाभारतके वर्णनसे भारतवर्षकी विभिन्न समाजचित्र पाया जाता है। उस समाजचित्रसे रामायण और महाभारतमेंसे कौन प्राचीन काव्य है उसका सहजमें पता लगा सकते हैं। रामायणके समय दाक्षिणात्यमें आर्यसभ्यता प्रतिष्ठित नहीं हुई। उस समय दाक्षिणात्यका अधिकांश जंगली जानवरोंसे

* Weber's Sanskrit literature, p. 192.

भरा पड़ा था, केवल किष्किन्ध्यामें बानरोंका एक सुरम्य राज्य था। किन्तु महाभारतके समय दाक्षिणात्यमें नाना स्थानोंमें आर्य उपनिवेश स्थापित हुआ है। उस समय करमण्डल उपकूलमें अर्जुनके श्वसुर मणिपुरपतिका अप्रतिहत शासन था। गुजरातसे ले कर समस्त मलबार उपकूलमें राज्य करते थे। दाक्षिणात्यकी दक्षिणी सीमामें भी उस समय पाण्डवोंका अधिकार था। यहां तक कि महाभारतके समय दाक्षिणात्यमें किष्किन्ध्याका बानरराज्य—बानरप्रभावकी स्मृतिका लोप हो गया। इस प्रकार दोनों ग्रन्थोंकी आलोचना करनेसे हम लोग देखते हैं, कि दाक्षिणात्यका यह राजनैतिक और सामाजिक परिवर्त्तन थोड़े दिनोंका काम नहीं है। समस्त दाक्षिणात्यमें आर्याधिकार प्रतिष्ठित होनेमें सैकड़ों वर्ष लगे थे। इस हिसाबसे मूल रामायण मूल महाभारतसे सैकड़ों वर्ष पहलेका है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। महाभारतके आदिपर्वमें "नाना देशभाषाश्चात्र प्रथ्यन्ते" इत्यादि प्रमाण सूत्रानुसार उस समय जो आर्यसमाजमें नाना देश भाषा प्रचलित और म्लेच्छ भाषा परिज्ञात थी उसका प्रमाण मिलता है।* किन्तु रामायणके समय आर्यसमाजमें संस्कृत भाषाका ही कथित भाषारूपमें प्रचार था। रामायणके अरण्यकाण्डमें लिखा है,—

"धारयन् ब्राह्मणं रूपमिल्वलः संस्कृतं वदन्।
आमन्त्रयति विप्रान् स श्राद्धमुद्दिश्य निर्घृणः॥" (११।५६)

अर्थात् निष्ठुर स्वभावके इल्वलने ब्राह्मणका रूप धारण कर जब श्राद्ध करना चाहा, तब उसने संस्कृतमें पत्र लिख कर ब्राह्मणोंको निमन्त्रण किया था।

दूसरी जगह यह भी देखा जाता है, कि हनुमान् जब लङ्कापुरीमें घुसे, तब वे सीताके साथ मिलनेके अभिप्रायसे इस प्रकार सोच रहे हैं,—

"अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचञ्चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥
यदि वाचं वदिष्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुष्यं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता॥"

(सुन्दरकाण्ड ३०।१७-१९)

अर्थात् मैं तो छोटा हूं, उस पर भी बानर हूं। जो कुछ हो मनुष्यके जैसा ही संस्कृतमें बोलूंगा। द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य (विशुद्ध) की तरह संस्कृत बोलनेसे सती मुझे रावण समझ कर डर जायंगी। इसलिये साधारण आदमीकी तरह अभी मुझे बोलना उचित है, नहीं तो उन्हें किसी प्रकार सान्त्वना नहीं दे सकता।

हनुमानकी उक्तिसे स्पष्ट जाना जाता है, कि रामायणके रचनाकालमें जनसाधारण संस्कृत भाषाका ही व्यवहार करते थे। इसके सिवा महाभारतके वनपर्वमें रामके जन्मसे ले कर उनके राज्याभिषेक तक सभी रामचरित वर्णित हुए हैं।

रामचरित वर्णनके समय भारतकारने कहा है—

"शृणु राजन्! यथावृत्तमितिहासं पुरातनम्।" (७।२७३।६)

इस उक्तिसे भी महाभारतके रामचरित-अंशकी रचनाके समय उनका प्राचीन इतिहास प्रचलित था, साबित होता है। और तो क्या, उस वनपर्वमें "रामायण" और द्रोणपर्वमें वाल्मीकि-रचित गीतोंका भी उल्लेख आया है,—

"अपि चायं पुरागीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।"

अतएव बाल्मीकिका रामायण जो महाभारतके सैकड़ों वर्ष पहले रचा गया है, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

अब यह प्रश्न उठा है, कि रामायण कितने वर्ष पहलेका है?

*रामायणके भाषातत्त्व*की आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि इसके बीच बीचमें आर्षप्रयोगकी जैसी भरमार है, लौकिक किसी भी ग्रन्थमें वैसी नहीं देखी जाती। उदाहरणस्वरूप आदि और अयोध्याकाण्डसे उद्धृत कर दिखाया जाता है,—

* आदिपर्व १४९ अध्यायसे मालूम होता है, कि विदुरने म्लेच्छभाषाका व्यवहार किया था जिसे पाण्डव समझ गये थे।

आर्षप्रयोग		स्थान	लौकिकमें सिद्धरूप
प्रमुमोद	आदि	११८५	प्रमुमुदे
अनपायिनम्	,,	१२।६	अनपायि
करुणवेदित्वात्	,,	२।१४	करुणा वेदित्वात्
हन्यात्	,,	२।२६	हतवान्
प्रशस्तवगौ	,,	४।१७	प्रशंस्तध्यौ
सोच्यतां	,,	६।२१	स उच्यतां
आश्रमपदः	,,	१०।१५	आश्रमपदं
पुत्रियां	,,	१६।६	पुत्रोयां
अर्द्दयन्	,,	१७।३४	आर्द्दयन्
ततोत्थाय	,,	१६।२१	तत उत्थाय
अषोद्त	,,	,,	व्यषीद्त
करिष्येति	,,	२१।८	करिष्य इति
प्रशासति	,,	२१।१३	प्रशास्ति
दुराक्रामान्	,,	२१।१८	दुराक्रमान्
तप्यतां	,,	१३।६	तपतां
वसते	,,	२३।८	वसति
अभिरञ्जयन्	,,	२३।२०	अभ्यरञ्जयन्
अभिपूजयन्	,,	२६।२७	अभ्यपूजयन्
अभिजायत	,,	२७।१८	अभ्यजायत
समभिजायत	,,	३८।२३	समभ्यजायत
अनुगच्छथ	,,	३६।१४	अनुगच्छत
करिष्यामि	,,	४०।६	करिष्यामः
निवर्त्तत	,,	४०।११	निवर्त्तध्वं
समुपासत	,,	४४।१	समुपास्ते
अनुव्रजत्	,,	४३।१५	अनुव्रजत्
उष्य	,,	४८।६	उषित्वा
दृश्य	,,	४८।११	दृष्ट्वा
स्मरतां	अयोध्या	१।३	अस्मरतां
सपत्नि	,,	८।२६	सपत्नी
अभिदध्युषी	,,	१६।२१	अभिध्यायंती
गच्छती	,,	३२।८	गच्छन्ती
मेखलीनां	,,	३२।२१	मेखलिनां
जिज्ञासितुं	,,	३२।४२	ज्ञातुं
नपाययन्	,,	४१।६	नापाययन्
ततोवाच	,,	५१।८	तत उवाच

आर्षप्रयोग	आदि	स्थान	लौकिकमें सिद्धरूप
वत्स्यामहेति	,,	५२।२८	वत्स्यामह इति
प्रणमत्	,,	५२।७६	प्राणमत
आनयामास	,,	५५।३६	आनिन्ये
अभिवादयन्	,,	५६।१६	अभ्यवादयन्
उद्धरं	,,	६३।५२	उद्धरं
संवदन्तोप-तिष्ठन्ते	,,	६७।२६	संवदन्त-उपतिष्ठन्ते

केवल दो काण्डोंसे कुछ आर्षप्रयोग उद्धृत हुए। इस प्रकार दूसरे दूसरे काण्डोंसे भी कितने आर्षप्रयोग उद्धृत किये जा सकते हैं। जो आर्षप्रयोग हुए हैं, उसका कारण क्या ?

मनुकी टीकामें कुल्लूकभट्टने लिखा है, 'ऋषिर्वेदस्तत्र भव आर्षो धर्मोपदेशो यो वैदिकः।' (१२।१०६) ऋषिका अर्थ वेद है अर्थात् वेदसे जो उत्पन्न है वही आर्ष है अर्थात् जो वैदिक है वही आर्ष है। अतएव वाल्मीकि रामायणमें आर्षप्रयोग नामसे जो भूर भूरि प्रयोग देखा जाता है, वही वैदिक प्रयोग अर्थात् लौकिक व्याकरणके अनुसार वे सब प्रयोग सङ्गत नहीं होने पर भी वैदिक व्याकरणके अनुसार वे सिद्ध हैं। रामायणके रामानन्द आदि टीकाकारगण 'प्रमुमोदेति छान्दसं परस्मैपदं' इत्यादि व्याख्या द्वारा आर्षप्रयोगोंको वैदिक व्याकरणके अनुसार साध्य स्वीकार कर गये हैं। रामायण लौकिक काव्य है, एक महाकविका रचा हुआ है, तब फिर ऐसे आर्ष वा वैदिकप्रयोगका कारण क्या ? कालिदास, भवभूति आदि महाकविगण कितने काव्य लिख गये हैं, पर उन्होंने तो अपने ग्रन्थमें कहीं आर्षप्रयोग नहीं किया। पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है, कि वे सब आर्षप्रयोग व्याकरणदुष्ट अशिष्ट प्रयोग हैं। तब क्या वाल्मीकि मुनिने जान बूझ व्याकरणमें ऐसी भूल की है ? जो भारतवर्षमें आदि कवि कह कर पूजित हैं, जिनका बनाया हुआ काव्यग्रन्थ आज तक जगत्में प्रकाशित हुआ है, जिनके अपूर्व सौन्दर्यसे सुललित वाक्यविन्याससे और अद्वितीय चरित्र चित्रणसे देशी और विदेशी कोविदमात्र ही विमुग्ध हैं उन्होंने क्या जान बूझ कर ऐसा अशिष्ट प्रयोग किया है ?

पहले कह आये हैं, कि वाल्मीकि आदि कवि कह कर प्रसिद्ध हैं। लौकिक भाषामें उन्होंने सबसे पहले रामायण काव्यकी रचना की। जिस समय वैदिक रीतिका परित्याग कर लौकिक रीतिसे साहित्यरचनाका सूत्रपात होता था, वाल्मीकिका मूल रामायण उसी समयका ग्रंथ है। एक ओर सुप्राचीन वैदिक रचनाका प्रभाव और दूसरी ओर नवोदित लौकिक रचनाकौशलने रामायणको प्राचीन सम्भ्रमके साथ अभिनव सौन्दर्यसे अलंकृत किया था। सामने प्राचीन रीतिके रहते कोई भी सहजमें उसके प्रभावमें बाधा नहीं डाल सकता। वाल्मीकि अभिनव लौकिक रीतिसे काव्यरचना करनेके लिये तैयार था तथा उनके असाधारण धीशक्तिप्रभावसे उनका उद्देश बहुत कुछ सुप्रसिद्ध भी हो गया था, फिर भी वे पुराने प्रभावको रोक न सके। उनके आदि लौकिक काव्यमें आर्ष वा वैदिक प्रयोगका जो बाहुल्य देखा जाता है उसका यही कारण है। इस आर्षप्रयोगबहुल सरल और सुललित रचनासे हो उनके ग्रन्थको प्राचीनता प्रतिपन्न हो सकती है। यद्यपि परवर्त्ती किसी किसी काव्य और नाटकमें प्राचीन रीतिके आधार पर दो एक आर्षप्रयोग देखे जाते हैं, किन्तु तेल जिस प्रकार जलमें मिलना नहीं चाहता, उसी प्रकार परवर्त्ती काव्यनाटकका आर्षप्रयोग अपने गाम्भीर्यकी रक्षा करके उसी प्रकार सरल भावमें नहीं मिल सकता, दोनों रचनाकी पृथकता आसानीसे पहचानमें आ जाती है। किन्तु रामायणके आर्षप्रयोगसे स्वभावसुलभ गाम्भीर्यकी रक्षा हुई है। उन सब आर्षप्रयोगके साथ मूल श्लोकका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है, कि वे सब प्रयोग उठा लेनेसे मूल रचनाकी अङ्गहानि होगी। लालित्य और सौन्दर्य नष्ट होगा, इसमें संदेह नहीं। हजारों वर्ष बीतने पर चले, पर कोई भी आज तक आर्षप्रयोगका परिवर्त्तन न कर सके हैं।

पहले लिखा जा चुका है, कि रामायण-रचनाकालमें संस्कृतका ही कथित भाषारूपमें प्रचार था। इसी समय लौकिक काव्यरचनाका सूत्रपात हुआ। अतएव रामायण अति प्राचीन कालका ग्रन्थ हैं, यह सबको स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु यह किस समय रचा गया है उसका ठीक ठीक आज तक पता नहीं चला है। जैन तीर्थङ्कर और बुद्धदेवके आविर्भावकालमें 'मागधी' भाषाका प्रचार हुआ था। इसी कारण प्राचीन जैन और बौद्धधर्मग्रन्थ मागधी वा अर्द्ध मागधी भाषामें रचे गये हैं। ई०सन्‌के ७७७ वर्ष पहले जैन तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ स्वामीने निर्वाणलाभ किया। उन्होंने जो चातुर्याम धर्म प्रचार किया वह भी मागधी भाषामें ग्रथित देखा जाता है। इस हिसाबसे उनके पहलेसे मागधी भाषा जनसाधारणकी बोलचालकी भाषामें गिनी जाती थी, इसमें और संदेह ही क्या रह गया? अतः उससे भी सैकड़ों वर्ष पहले अर्थात् मागधी भाषाका जब बिलकुल प्रचार न था, उस समय संस्कृत भाषा ही भारतीय आर्यसमाजमें प्रचलित थी तथा उसी समय मूल रामायण रचा गया।

रामायण प्रायः अनुष्टुप् नामक प्राचीन सरल छन्दमें रचा गया है। इसके सिवा इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थविल और तीन छन्दोंका मिश्रण देखा जाता है। उसकी भाषा सरल; रीति और भावशुद्ध तथा समुचित विभक्तिविशिष्ट है। नैषधादि आधुनिक काव्यकी तरह दीर्घ छन्द, कृत्रिम भाव, उत्कट वर्णना तथा शब्द और अनुप्रासका आडम्बर नहीं है,—ये सब आभ्यन्तरीण प्रमाण भी रामायणकी प्राचीनता साबित करते हैं।

अभी जो सप्तकाण्डात्मक रामायण मिलता है, वह क्या उन्हीं आदि कविका रचा हुआ है? प्रचलित सप्तकाण्डात्मक रामायणकी आलोचना करनेसे क्या ऐसा मालूम नहीं होता? जिन सब प्राचीन छन्दोंकी बात लिखी गई, उन सब छन्दोंको छोड़ कर प्रचलित रामायणमें दो एक जगह असंबाधा, प्रहर्षिणी, भुजङ्गप्रयात, मालिनी, मृगेन्द्रमुख, रुचिरा, वसन्ततिलका, वैश्वदेवी इत्यादि अप्राचीन छन्द भी दिये गये हैं। इसके सिवा प्रचलित रामायणके आदिकाण्डके कुछ अंश तथा समस्त उत्तरकाण्डकी आलोचना करनेसे उसे मूल रामायणके अन्तर्भुक्त नहीं कर सकते। यहां तक, कि जिन्होंने अयोध्यासे लङ्काकाण्डका प्रथमांश और समस्त उत्तरकाण्ड उनका रचा हुआ है, ऐसा कभी भी स्वीकार

नहीं कर सकते। रामायणकी उपक्रमणिका जिस भाषामें रची गई है, उसे पढ़नेसे मालूम होगा, कि एक दूसरे कवि आदिकवि वाल्मीकि और उनके काव्यका परिचय देते हैं। इसी जगह उत्तरकाण्डप्रसङ्गमें लिखा है—

"तच्चकारोत्तरे काव्ये भगवान् वाल्मीकिमृषिः।"

वाल्मीकि अपनेको 'भगवान्' कहेंगे, ऐसा कभी विश्वास नहीं कर सकते। यह प्रयोग वाल्मीकिभक्त किसी दूसरे कविसे किया गया होगा। इस प्रकार एक विषयका वर्णन एक काण्डमें जैसा है, उत्तरकाण्डमें वह भिन्न रूपसे दिखाया गया है। इससे सहजमें अनुमान होगा, कि अति प्राचीन रामायणके मध्य परवर्ती नाना कवियोंके हाथसे अनेक नये विषय और नई रचना सन्निविष्ट हुई है। बीच बीचमें जो अनेक प्रक्षिप्त श्लोक घुस गये हैं उन्हें भी रामायणके टीकाकार स्वीकार कर गये हैं*।

रामचन्द्रका आदर्शचरित-वर्णन ही मूल रामायणका उद्देश्य है। उनके देवत्व वा अवतार-वादकी घोषणा करना मूल रामायणका मूल उद्देश्य नहीं है। इसी कारण रामायणके जिस जिस स्थानमें रामचन्द्रको विष्णुका अवतार बताया है उस उस अंशको बहुतेरे प्रक्षिप्त कह कर विश्वास करते है।

महाभारतके वनपर्वमें रामचन्द्रके जन्मसे ले कर उनके राज्याभिषेक तक का हाल लिखा है। उत्तरकाण्डके राम सम्बन्धीय विवरण महाभारतमें नहीं दिये गये हैं। आश्चर्यका विषय है, कि यवद्वीपसे कविभाषामें रचित जो रामायण आविष्कृत हुआ है उसमें भी उसी प्रकार रामचन्द्रके राज्याभिषेक तकका हाल लिखा है। यवद्वीपका रामायण बहुत बड़ा ग्रंथ होने पर भी उसमें काण्ड-विभाग नहीं है, आद्योपन्त अध्याय विभाग है। कवि-भाषामें उत्तरकाण्ड पाया गया है सही, पर वह मूल रामायणमें नहीं गिना जाता, स्वतन्त्र ग्रंथ समझा जाता है। उक्त प्रमाणसे भी जाना जाता है, कि वाल्मीकिने जिस आदि रामायणकी रचना की, उसमें काण्डविभाग नहीं था तथा उत्तरकाण्ड मूल रामायणसे बहुत पीछे दूसरे कविसे रचा गया था और वह स्वतन्त्र ग्रंथ समझा जाता था। प्रायः ५वीं सदीमें मूल रामायण यवद्वीपमें लाया गया। अतएव उस समयके बाद भारतवर्षमें ब्राह्मण्य-धर्मका प्रभाव फैला तथा संस्कृत साहित्यके बहुत प्रचारके साथ साथ मूल रामायण उत्तरकाण्ड सहित सात काण्डोंमें विभक्त हो प्रचारित हुआ। रामचन्द्रका अवतार-वाद उस समयसे प्राचीन होने पर भी उस समय मूल रामायणमें प्रविष्ट और आधुनिक छन्दात्मक श्लोक प्रक्षिप्त हुए।

वर्त्तमानकालमें भारतवर्षमें तीन प्रकारके वाल्मीकीय रामायण पाये गये हैं। वे उदीच्य, दाक्षिणात्य और गौड़ीय रामायणमें गिने जाने योग्य हैं। जैसे—

उदीच्य या उत्तरपश्चिम-अञ्चलमें प्रचलित मूल रामायणमें,—

बालकाण्डमें	७७ सर्ग
अयोध्याकाण्डमें	११९ „
आरण्यकाण्डमें	७९ „
किष्किन्ध्याकाण्डमें	६७ „
सुन्दरकाण्डमें	६८ „
युद्धकाण्डमें	१३० „
उत्तरकाण्डमें	१२४ „

दाक्षिणात्य रामायणमें

बालकाण्डमें	७७ सर्ग
अयोध्याकाण्डमें	११३ „
आरण्यकाण्डमें	८० „
किष्किन्ध्याकाण्डमें	६४ „
सुन्दरकाण्डमें	६८ „
युद्धकाण्डमें	१३० „
उत्तरकाण्डमें	१११ „

गौड़ीय रामायणमें—

आदिकाण्डमें	८० सर्ग
अयोध्याकाण्डमें	१२७ „
अरण्यकाण्डमें	७९ „
किष्किन्ध्याकाण्डमें	६७ „
सुन्दरकाण्डमें	६५ „
युद्धकाण्डमें	११३ „
उत्तरकाण्डमें	११५ „

* अयोध्याकाण्डके १०८ और १०९ सर्ग (रामजावालिसंवाद)को बहुतोंने प्रक्षिप्त और आधुनिक बताया है। १०९वें सर्गमें 'बुद्धतथागत' शब्द तक लिपिबद्ध हुआ है।

थोड़ा गौर कर देखनेसे मालूम होगा, कि उदीच्य और दाक्षिणात्य रामायणमें विषय वा सर्ग संख्यामें उतना प्रभेद नहीं है। किन्तु गौड़ीय रामायणके साथ दोनों श्रेणीका बहुत प्रभेद देखा जाता है।

गौड़ीय रामायणकी केवल लोकनाथकी 'मनोरमा' नामकी टीका मिलती है, किन्तु शेष दो श्रेणीकी अनेक टीकायें प्रचलित हैं। जैसे—

१ ईश्वरदीक्षित कृतटीका, २ उमामहेश्वरकृतटीका, ३ कतकटीका, ४ गोविन्दराजकृत शृङ्गारतिलकाख्यटीका, ५ चतुरर्थदीपिका, ६ त्र्यम्बकयज्वाकृत धर्मकूट, ७ देवरामभट्टकृतटीका, ८ नागेशरचितटीका, ६ नृसिंहरचितटीका, १० महेश्वरतीर्थकृत रामायणतत्त्वदीप, ११ रामायणतिलक वा रामायणकूटटीका, १२ रामानुजकृत रामायणव्याख्या, १३ रामाश्रमाचार्यकृतटीका, १४ रामायणविरोधपरिहार, १५ रामायणतात्पर्यविरोधभञ्जिनी, १६ रामायणसेतु, १७ वरदराजकृत विवेकतिलक, १८ वाल्मीकिहृदयटीका, १६ विद्यानाथकृतटीका, २० विद्वन्मनोरमा, २१ विमलबोधकृतटीका, २२ विश्वनाथकृत वाल्मीकितात्पर्यतरणि, २३ शिवरामसंन्यासिकृत टीका, २४ शृङ्गारसुधाकर, २५ सर्वज्ञकी टीका, २६ सुबोधिनी, २७ हयग्रीवशास्त्रिरचित रामायणसप्तबिम्ब, २८ हरि पण्डितकृत रामायणटीका।

पद्मपुराणके पातालखण्डमें अयोध्यामाहात्म्यवर्णित तीर्थाश्रम वर्णन प्रस्तावसे रामायणकी श्लोक-संख्या जाननेके लिये रामायणके सुविख्यात टीकाकार नागेश्वरभट्टने निम्नोक्त श्लोक उद्धृत किये हैं,—

"शापोक्त्या हृदि सन्तप्तं प्राचेसमकल्मषम्।
प्रोवाच वचनं ब्रह्मा तत्रागत्य सुसत्कृतः॥
न निषादः स वै रामो मृगयाञ्चर्तुमागतः।
तस्य संवर्णनेनैव सुश्लोक्यस्त्वं भविष्यसि॥
इत्युक्त्वा तं जगामाशु ब्रह्मलोकं सनातनः।
ततः संवर्णयामास राघवं ग्रन्थकोटिभिः॥"

इसकी टीकामें वे कहते हैं,—'कोटिभिः शतकोटिभिः चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तर मित्यन्यश्लोकः। तत्र सम्पूर्णं ब्रह्मलोके इत्यैतिह्यम्। इह तु कुशलवोपदिष्टा चतुर्विंशतिसाहस्रीत्यलम्।"

इसका प्रमाण रामायणके बालकाण्डसे ही मिलता है। बालकाण्डके द्वितीय सर्गमें लिखा है—

"रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम्॥"

चतुर्थ सर्गमें—

"प्राप्त राज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवान् ऋषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्॥ १
चतुर्विंशसहस्राणि श्लोकानामुक्तवान् ऋषिः।
तथा सर्गशतान् पञ्चषट्काण्डानि तथोत्तरम्॥" २

तीनों वचनकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि महर्षि वाल्मीकि-प्रणीत दशाननवधात्मक रामचरित महाकाव्यमें २४ हजार श्लोक और ५०० सौ सर्गसंख्या है।

रामायणकी २८।२६ टीका निकली हैं तथा भारतके सभी प्रसिद्ध स्थानोंसे मूल रामायणके दो एक ग्रन्थ पाये भी गये हैं, पर आश्चर्यका विषय है, कि किसी स्थानके दो प्राचीन ग्रन्थोंमें बिलकुल समानता नहीं देखी जाती। यहां तक, कि कोई कोई सर्ग मिला कर देखनेसे भावमें एक होने पर भी भाषामें एक नहीं है। भाषा भिन्न भिन्न कविके हाथकी मालूम होती है। प्रायः सभी श्लोक एक ढर्रेके हैं। शब्दका पाठान्तर इतना ज्यादा है, कि दो ग्रन्थोंके पांच श्लोक कभी एकसे नहीं मिलेंगे। शब्दमें इस प्रकार पाठान्तरबाहुल्य रहने पर भी मूल विषयमें उतना प्रभेद नहीं है। रामायणकी इतनी टीका रची जाने पर भी दो एक प्राचीन टीकाको छोड़ कर अधिकांश टीकाकारोंने ही बहुतसे ग्रन्थ संग्रह कर प्रकृत पाठोद्धारकी चेष्टा की थी, ऐसा मालूम नहीं होता। उन लोगोंकी टीकाओं पर अच्छी तरह आलोचना करनेसे मालूम होगा, कि कितने स्थान सामञ्जस्यरहित और असंलग्न हैं तथा कितने स्थानोंमें पूर्वापर सङ्गतिका अभाव है।

इस देशमें मुद्रित सटीक रामायणकी अपेक्षा इटलीमें मुद्रित गौड़ीय रामायणमें सामञ्जस्य और विषयसङ्गति है तथा पुनरुक्तिदोष निवारित है यह दोनोंकी आलोचना करनेसे ही मालूम होगा।

अनेक पुराण और रामायणके टीकाकारोंकी उक्तिसे जाना जाता है, कि वाल्मीकि-रचित रामायणके पहले

भी रामचरित प्रचलित था। रामानन्दने 'अग्निवेश्य-रामायण' और विमलबोधने 'बौधायनका रामायण' उल्लेख किया है। अग्निवेश्य और बौधायनका रामायण वाल्मीकिके पहलेका है वा नहीं, कह नहीं सकते। पर हां, वाल्मीकि-रामायणके पीछे महाभारतीय रामचरित, पद्मपुराणीय पातालखण्डवर्णित रामोपाख्यान, अध्यात्मरामायण, योगवाशिष्ठरामायण, अद्भुतरामायण, आनन्दरामायण आदि रामायण रचे गये हैं, इसमें संदेह नहीं।

सैकड़ों वर्ष बीत चले वाल्मीकिरामायणका अवलम्बन कर भारतकी सभी देशी भाषाओंमें रामायण रचे गये हैं। भारतवर्षमें अंगरेजोंके आनेके पहले जो सब देशी रामायण मिलते थे, उनकी संख्या थोड़ी नहीं है। मराठीभाषामें ८, तैलङ्गभाषामें, ५ तामिलभाषामें १२, उत्कलभाषामें ६, हिन्दीभाषामें ११ और बङ्गभाषामें २५ व्यक्तियोंके रचित रामायण पाये गये हैं। इनमेंसे कम्बनका रचित तामिल-रामायण ६वीं शताब्दीमें, कृत्तिवासका बंगला-रामायण १५वीं सदीमें और तुलसीदासका भारतप्रसिद्ध हिन्दीरामायण १७वीं सदीमें रचा गया है।

रामायणके आलोचित विषय सहजमें हृदयङ्गम होंगे, समझ कर वाल्मीकि रामायणकी विषयसूची यहां उद्धृत की गई है :—

आदिकाण्ड—१म सर्गमें नारद कर्तृक रामचरितवर्णन, २ तमसानदीके किनारे व्याधकर्तृक क्रौञ्चका विनाश देख व्याधके प्रति वाल्मीकिका अभिशाप, ३ महामुनि वाल्मीकिकी रामायण-रचना, ३ कुशीलवका रामायणगान, ५ अयोध्यापुरी वर्णन, ६।७ राजा दशरथकी राज्यशासनप्रणाली, ८ पुत्रके लिये राजा दशरथके अश्वमेधयज्ञकी कल्पना, ९ ऋष्यशृङ्ग विवरणकीर्त्तन, १० ऋष्यशृङ्गको लानेके लिये दशरथके प्रति सुमन्त्रका उपदेश, ११ दशरथका ऋष्यशृङ्ग मुनिको लाना, १२ सरयू नदीके किनारे अश्वमेध यज्ञभूमि बनानेके लिये दशरथका आयोजन, १३ निमन्त्रित राजाओंका अयोध्यामें आगमन और यज्ञारम्भ, १४ अश्वमेध यज्ञ और दशरथके दानादिकी कथा, १५ रावणका वध करनेके लिये देवताओंका परामर्श और दशरथकी यज्ञभूमिमें विष्णुका परामर्श, १६ नारायणका दशरथके पुत्रत्वग्रहणमें स्वीकार और दशरथका यज्ञ और महिलाओंका गर्भाधान, १७ बाली, सुग्रीव और हनुमान् आदि बानरोंकी उत्पत्ति, १८ राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका जन्म और यज्ञविध्वंसकारी राक्षसोंका दमन करनेके विश्वामित्रका अयोध्या आना, १९ दशरथका विमर्ष, २० विश्वामित्रको राम देनेमें दशरथकी असम्मति, २१ विश्वामित्रके साथ रामको भेजनेमें दशरथका स्वीकार, २२ विश्वामित्रके साथ राम और लक्ष्मणका जाना तथा उनका बला और अतिबला नामक मन्त्रलाभ, २३ राम और लक्ष्मणके साथ विश्वामित्रका रात बिताना, २४ ताड़काका बध करनेके लिये रामके प्रति विश्वामित्रका आदेश, २५ ताड़का और मारीचका जन्मविवरण, २६ रामकर्तृक ताड़कावध, २७ रामको विश्वामित्र द्वारा संहार अस्त्रदान, २८ गृहीत अस्त्रादिका आमन्त्रण प्रकारादि, २९ सिद्धाश्रम और वामनावतारका वर्णन, ३० सुबाहुवधके बाद विश्वामित्रका यज्ञशेष, ३१ विश्वामित्रसे रामलक्ष्मणका कर्त्तव्य पूछना, ३२ कुशवंशविवरण, ३३ कुशनाभकर्तृक ब्रह्मदत्तको कन्यासम्प्रदान, ३४ कुशनाभका पुत्रलाभविवरण, ३५ विश्वामित्रकर्तृक गङ्गाका उत्पत्तिविवरण, ३६ गङ्गाके त्रिपथगामिनी होनेका कारण, ३७ कार्त्तिकेय जन्मादि विवरण, ३८ राजा सगरके ६१ हजार पुत्रलाभ, ३९ सगरके पुत्रोंका पृथिवी खोदना, ४० कपिलमुनिके हुङ्कारसे सगरवंश ध्वंस, ४१ यज्ञसमाप्तिके बाद सगरका स्वर्ग जाना, ४२ भगीरथके ब्रह्मवरलाभ, ४३ गङ्गाका पाताल आना और सगरके पुत्रोंका उद्धार, ४४ भगीरथकर्तृक पितामहोंका तर्पण, ४५ समुद्रमन्थनका हाल कहना, ४६ इन्द्रकर्तृक दितिका गर्भच्छेद, ४७ विश्वामित्रका सुमतिपुर-प्रवेश, ४८ अहल्या और इन्द्रका शापविवरण, ४९ अहल्याका शापविमोचन, ५० रामलक्ष्मणका राजर्षि जनककी यज्ञभूमिमें जाना, ५१ विश्वामित्रका पृथिवी परिभ्रमण और वशिष्ठाश्रममें आगमनविवरण, ५२ वशिष्ठके आश्रममें विश्वामित्रका निमन्त्रण स्वीकार, ५३ विश्वामित्र और वशिष्ठका कथोपकथन, ५४ विश्वामित्रकर्तृक शबलाहरण, ५५ विश्वामित्रके सौ पुत्रोंका दाह, ५६ वशिष्ठके

साथ युद्धमें विश्वामित्रकी पराजय, ५७ विश्वामित्रकी तपस्या, ५८ त्रिशंकुकी चण्डालत्वप्राप्ति, ५९ विश्वामित्रके पास त्रिशंकुका आना, ६० विश्वामित्रका दूसरी सृष्टि करनेमें सङ्कल्प, ६१ अम्बरीष राजाका यज्ञीय पशुहरण, ६२ अम्बरीषके यज्ञकी फलप्राप्ति, ६३ विश्वामित्रके ऋषित्वलाभ, ६४ रम्भाकी शैलीभाव प्राप्ति, ६५ विश्वामित्रके ब्राह्मणत्वलाभ, ६६ जनकका हरधनुप्राप्तिविवरण, ६७ रामकर्तृक हरधनुर्भङ्ग, ६८ दशरथके पास दूतका आना, ६९ दशरथकी मिथिलायात्रा, ७० जनकके पास कुशध्वजका आगमन, ७१ जनकका आत्मवंशावली कथन, ७२ भरत और शत्रुघ्नको कुशध्वजका कन्यादान स्वीकार, ७३ रामचन्द्रादिका विवाह, ७४ दशरथकी अयोध्यायात्रा और राहमें परशुरामका दर्शन, ७५ राम और परशुराम-संवाद, ७६ परशुरामका दर्प चूर्ण, ७७ पुत्रवधूके साथ दशरथका अयोध्याप्रवेश और भरतका ननिहाल जाना।

अयोध्याकाण्ड—१ रामको युवराज बनानेके लिये दशरथका सङ्कल्प, २ दशरथ और निमन्त्रित राजाओंका कथोपकथन, ३ दशरथके निकट रामचन्द्रका आना, ४ रामका अन्तःपुर जाना, ५ राम और दशरथके निकट वशिष्ठका जाना, ६ रामकी विष्णु उपासना, ७ धात्रीके मुखसे मन्थराका अयोध्यामें धूमधाम करनेका कारण सुनना, ८ कैकेयी और मन्थराका कथोपकथन, ९ कैकेयीका कोपभवनमें प्रवेश, १० कोपभवनमें दशरथका प्रवेश, ११ कैकेयीका रामके वनवास और भरतके राज्याभिषेकके लिये वर मांगना, १२ दशरथका विलाप, १३ दशरथ और कैकेयीका कथोपकथन, १४ रामको बुलानेके लिये कैकेयीका आदेश, १५ सुमन्त्रका रामके समीप आना, १६ सुमन्त्रके प्रति दशरथका आदेश, १७ रामका पिताके समीप आना, १८ रामसे कैकेयीके वरका हाल कहना, १९ लक्ष्मणके साथ रामका माताके समीप जाना, २० रामके वन जानेका हाल सुन कर कौशल्याका विलाप, लक्ष्मणका क्रोध और रामके प्रति कौशल्याका वनगमननिषेध, २२ कौशल्या और लक्ष्मणको रामका धर्मोपदेश, २३ भरतके प्रति लक्ष्मणका क्रोध, २४ राम और कौशल्याकी उक्ति प्रत्युक्ति, २५ कौशल्याका मङ्गलाचरण और रामका निजपुरीमें जाना, २६-३० रामचन्द्रके साथ वन जानेके लिये सीताके आदेशलाभ, ३१ लक्ष्मणका भी वन जानेके लिये आदेशलाभ, ३२ ब्राह्मणोंको धनवितरण, ३३ पितृदर्शनके लिये रामका जाना, ३४ रामको देख दशरथका विलाप, ३५ कैकेयीके प्रति सुमन्त्रकी भर्त्सना, ३६ कैकेयी और दशरथकी उक्ति प्रत्युक्ति, ३७ रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीताका वल्कल-परिधान, ३८ दशरथका विलापवाक्य, ३९ रामको मुनिके वेशमें देख कर दशरथका विलाप, ४० वनयात्राके समय पुरवासियोंका विलाप, ४१ अन्तःपुरनिवासिनी स्त्रियोंका विलाप, ४२ कैकेयीकी निन्दा करते हुए दशरथका विलाप, ४३ कौशल्याविलाप, ४४ कौशल्याके प्रति सुमित्राका आश्वासवाक्य, ४५ पुरवासियोंसे अपने अपने घर लौट जानेके लिये रामचन्द्रका अनुरोध, ४६ तमसाके किनारे रामका रात बिताना, ४७ पुरवासियोंका लौटना, ४८ पुरवासियोंका विलाप, ४९ रामका कोशलप्रदेशप्रान्तमें जाना, ५० रामका गुहकके साथ साक्षात्, ५१ गुहक और लक्ष्मणका कथोपकथन, ५२ रामके दूसरे किनारे जाना, ५३ रामका खेद और लक्ष्मणका आश्वास दान, ५४ रामका भरद्वाजके समीप जाना, ५५-५६ रामका चित्रकूट और बाल्मीकिके समीप जाना, ५७ सुमन्त्रके मुखसे रामका वृत्तान्त सुन कर दशरथका विलाप, ५८-५९ दशरथका पुनर्विलाप, ६० कौशल्याविलाप, ६१ दशरथके प्रति कौशल्याकी कठोरोक्ति, ६२ दशरथ कर्तृक कौशल्याका प्रासादसाधन, ६३-६४ दशरथका ऋषिकुमारवधवृत्तान्त वर्णन, ६५ दशरथकी मृत्यु और उसके लिये रानियोंका विलाप, ६६ तैलद्रोणीमें दशरथकी मृतदेह रखना, ६७ ब्राह्मणोंको राज्याभिषेककी चिन्ता, ६८ भरतको लानेके लिये दूतोंका जाना, ६९ भरतका स्वप्नदर्शन और उसका वृत्तान्त कथन, ७० भरतकी अयोध्या-यात्रा, ७१ भरतका निज-पुरीमें प्रवेश, ७२ पिताकी मृत्यु सुन कर भरतका विलाप, ७३-७४ कैकेयीको भरतका फटकारना, ७५ कौशल्याके साथ भरत शत्रुघ्नका कथोपकथन, ७६-७७ भरतका पितृप्रेतकार्य, ७८ कुब्जाको मारना और कैकेयीकी निन्दा करना, ७९ राज्यग्रहणमें भरतका अस्वीकार, ८०-८१ रामको लौटा लानेके लिये भरतका आदेश, ८२-

८३ रामके दर्शनके लिये भरतकी सेनाके साथ वनयात्रा, ८४-८८ भरत और गुहक चण्डालका कथोपकथन, ८९ भरतका ससैन्य नदी पार करना, ९०-९१ भरद्वाजके समीप भरतका जाना, ९४-९५ चित्रकूट पर सीता और रामका कथोपकथन, ९६ ९७ भरतकी सेनाका शब्द सुन कर राम लक्ष्मणमें तर्क वितर्क, रामके दर्शनके लिये भरतका प्रवेश, ९९ रामको देख कर भरतका खेद, १०० भरतसे रामका कुशल पूछना, १०१-१०२ रामचन्द्र और भरतका कथोपकथन, १०३ पिताके मृत्युसंवाद पर रामचन्द्रका बिलाप, १०४ रामके साथ कौशल्यादिका साक्षात्, १०५-१०७ राम और भरतका राज्यविषयक कथोपकथन, १०८ रामके प्रति जाबालिकी धर्मकथा, १०९ जाबालिके प्रति रामकी उक्ति, ११०-१११ वशिष्ठ कर्त्तृक लोकोत्पत्ति कथा, ११२ भरतको रामका पादुका देना, ११३ भरतका लौटना, ११४ गुरुको राज्यभार प्रदान, ११५ भरतका नन्दीग्राममें जाना, ११६ चित्रकूट पर राम और कुलपतिकी कथा, ११७-११९ अत्रिमुनिके आश्रममें जाना।

आरण्यकाण्ड—१म सर्गमें रामका दण्डकारण्यमें प्रवेश, २ विराध राक्षसकी गोद पर सीताको देख कर लक्ष्मणका क्रोध करना, ३ राम लक्ष्मणके साथ विराधका घोर युद्ध, ४ विराधवध, ५ शरभङ्गका अग्निमें प्रवेश, ६ ऋषियोंकी राक्षसवधके लिये प्रार्थना, ७ राम लक्ष्मणका सुतीक्ष्णाश्रममें जाना, ८ सुतीक्ष्णसे रामचन्द्रका दण्डकवन जानेका आदेश लेना, ९ राम लक्ष्मण और सीताका दण्डकवनमें प्रवेश, १० रामका राक्षसवध करनेके लिये कहना, ११ रामके समीप सुतीक्ष्णमुनिका सरोवर विवरण कहना, इल्वलवातापिकथा और अगस्त्यका माहात्म्यकीर्त्तन, १२ अगस्त्यके साथ रामचन्द्रका साक्षात् और उनसे अस्त्रलाभ, १३ रामचन्द्रके साथ अगस्त्यकी कथा, १४ रामचन्द्रके साथ जटायुका साक्षात्, १५ पञ्चवटी वनमें रामका वास, १६ लक्ष्मणका हेमान्तवर्णन, १७ रामके साथ राक्षसी शूर्पणखाकी बातचीत, १८ लक्ष्मण कर्त्तृक शूर्पणखाका नाक कान काटना, १९ रामलक्ष्मणका वध करनेके लिये खरका चौदह राक्षसोंको भेजना, २० चौदहों राक्षसका मारा जाना, २१ खरके प्रति शूर्पणखाका तिरस्कार, २२ खरका युद्धयात्राका उद्योग, २३ रामके निकट खरका संहार, ३१ खर-दूषणके मारे जाने पर रावणका जाना, २४ युद्धके लिये रामका जाना, २५ २६ दूषण और राक्षससेनाका वध, २७ त्रिशिरावध, २८-३० खरका महाक्रोध, ३२ रावणका मारीचाश्रममें जाना, सीताहरणकी कल्पना और मारीच द्वारा मना किये जाने पर भी रावणका फिरसे जाना, ३३ रावणको शूर्पणखाका ललकारना, ३४ रावणका क्रोध, ३५ मारीचके आश्रममें रावणका फिरसे जाना, ३६-३९ मारीच कर्त्तृक रामचन्द्रका विक्रमप्रकाश, ४० सीताहरणके सम्बन्धमें रावणका उभाड़ना, ४१ रावणके प्रति राक्षस मारीचकी निन्दा, ४२ रावणके कहनेसे मृगका रूप धारण कर मारीचका दण्डक-वनमें घूमना, ४३ ४४ मृगरूपी मारीचका वध करनेके लिये रामचन्द्रकी यात्रा, ४५ सीताकी कटूक्ति पर रामके उद्देशसे लक्ष्मणकी यात्रा, ४६ सीताके समीप छद्मवेशी रावणका अतिथिरूपमें आना, ४७ ४८ सीतादेवीको रामका प्रलोभन दिखाना, ४९ रावणकर्त्तृक सीताहरण, ५०-५१ रावण और जटायुका युद्ध, ५२ रावणके रथ परसे सीताका अलङ्कार गिराना, ५३ रावणके प्रति सीताकी क्रोधोक्ति, ५४ अशोकवनमें सीताको रख रावणका अन्तःपुर जाना, ५५-५६ रावणके प्रति सीताकी फटकार, ५७ मारीचका वध कर रामका कुटीर लौटना, ५८-५९ कुटीरमें सीतादेवीको न देखना, ६०-६४ राहमें सीताका फेंका हुआ चिह्न देख कर रामका विलाप, ६५-६६ रामके प्रति लक्ष्मणको सान्त्वना, ६७ ६८ मरणासन्न जटायुके मुखसे रामका सीतावृत्तान्त सुनना, ६९-७३ रामलक्ष्मण कर्त्तृक कबन्धका बाहुद्वय कर्त्तन, ७४ राम लक्ष्मणका पम्पा सरोवरमें जाना और शबरीसे मुलाकात, ७५ ऋष्यमूक पर्वत पर जानेके लिये लक्ष्मणके साथ रामकी मन्त्रणा।

किष्किन्ध्याकाण्ड—१म सर्गमें रामका वसन्तवर्णन और प्रियाविच्छेद पर विलाप, २ राम लक्ष्मणसे मिलनेके लिये मन्त्रियोंके साथ सुग्रीवका परामर्श, ३ भिक्षुके वेशमें रामके साथ हनुमान्‌का मिलना, ४ रामलक्ष्मणको पीठ पर बैठा कर हनुमान्‌का सुग्रीवके पास आना, ५ सुग्रीवके निकट हनुमान कर्त्तृक रामका परिचय-दान, ६-१० सीता-

का उद्धार करनेके लिये सुग्रीवकी और बालिवध करनेके लिये रामकी प्रतिज्ञा, ११ रामका दुन्दुभि राक्षसका हड्डी फेंकना और सप्ततालको भेदना, १२ बालीके साथ सुग्रीवका युद्धयात्रा, युद्धमें हार खा कर भागना, १३-१४ सुग्रीवकी फिरसे युद्धयात्रा, १५ ताराका बालीको युद्ध करनेसे रोकना, १६ बाली और सुग्रीवका तुमुल युद्ध, १७ रामके बाणसे विद्ध हो बालीका पतन, १८ बालीके प्रति रामका उपदेश, १९-२२ बालीका प्राणत्याग, २३ ताराका खेद, २४ राम, लक्ष्मण और सुग्रीवका खेद, २५ बालीका ऊर्द्ध्वदैहिक क्रिया समापन, २६ सुग्रीवका राज्याभिषेक, २७ रामका विलाप सुन कर लक्ष्मणकी उनके प्रति सान्त्वना, २८ सीताके विरह पर रामका विलाप, २९ सुग्रीव कर्त्तृक नीलके प्रति सैन्यसंहारका आदेश, ३० शारदीया रात्रि देख कर सीताविच्छेद पर रामका विलाप और शरद्वर्णन, ३१ सुग्रीवके निकट लक्ष्मणके आनेका संवाद भेजना, ३२ लक्ष्मणको क्रुद्ध देख कर सुग्रीवकी चिन्ता, ३३ लक्ष्मणके पास ताराको भेजना, ३४ सुग्रीवको लक्ष्मणकी भर्त्सना, ३५ लक्ष्मणके प्रति ताराकी सान्त्वना, लक्ष्मणके शान्त होने पर उनके साथ सुग्रीवका कथोपकथन, ३७ सेनासंग्रहके लिये सुग्रीवका दूत भेजना, ३८ लक्ष्मणके साथ सुग्रीवका रामदर्शनके लिये जाना, ३९ रामके निकट बानरसेनाका समागम, ४० ४३ चारों ओर सीताकी खोजमें दूतको भेजना, ४४ हनुमान्‌को रामका अभिज्ञानांगुरीयक दान, ४५ सभी बानरोंके प्रति सुग्रीवका आदेश, ४६ रामके पास सुग्रीवका पृथिवीवृत्तान्त वर्णन, ४७-४८ सीताका सन्धान न पा कर बानरोंका लौटना, ४९-५१ हनुमत् आदिका मयदानवकी मायामें विमोहित हो बिलके मध्य तपस्विनीके साथ साक्षात्, ५२ हनुमानादिका बिलसे निकलना, ५३-५५ सीताका संधान न पा कर अङ्गदादिका प्रायोपवेशन, ५६ बानरोंके साथ सम्पाति पक्षीका साक्षात्, ५७-६३ सम्पातिके निकट सीताका संधानलाभ, ६४ समुद्रके किनारे बानरोंका जाना, ६५ बानरोंका अपना विक्रमवर्णन, ६६ जाम्बवान् कर्त्तृक हनुमान्‌का जन्मवृत्तान्तकथन, ६७ हनुमान्‌की कलेवरवृद्धि।

सुन्दरकाण्ड—१म सर्गमें महेन्द्रगिरि परसे हनुमान्‌का कूदना, सिंहिकाका उदर फाड़ना और चित्रकूट तरु पर गिरना, २ ५ हनुमान्‌का राक्षसी रूपधारिणी लङ्कापुरीके साथ युद्ध, ३ ११ रावणके अन्तःपुरमें हनुमान्‌का प्रवेशादि, १२-१३ अशोकवनमें हनुमान्‌का सीतादेवीका अन्वेषण, १४ १५ रामकथित चिह्नानुसार हनुमान्‌का सीतादेवीके निकट जाना, १६-१७ सीताकी दुरवस्था देख कर हनुमान्‌का पीछे सीताका रावणदर्शन, २० सीताके प्रति रावणकी उक्ति, २१ रावणकी बात पर सीताका प्रत्युत्तर, २२ रावण और सीताकी उक्ति और प्रत्युक्ति, २३-२४ सीताको राक्षसियोंका उपदेश देना और कटुवचन कहना, २५-२६ राक्षसियोंकी भर्त्सनासे सीताका परिदेवन, २७ त्रिजटा राक्षसीका स्वप्नवृत्तान्तकथन, २८-३९ सीताका वेणीकी सहायतासे उद्बन्धनका उद्योग, ३० सीताकी वैसी अवस्था देख कर हनुमानकी चिन्ता, ३१-३२ सीताके साथ हनुमान्‌का साक्षात्, ३४-३८ सीतासे अभिज्ञान मणि ले कर हनुमान्‌के जानेकी तैयारी, ३९ ४० उस समय हनुमान्‌से सीताका फिर कहना, ४१ हनुमान्‌का प्रमोदवनभञ्जन, ४२ हनुमान्‌के साथ राक्षसोंका घोरतर संग्राम, हनुमान्‌कर्त्तृक चैत्यप्रासादध्वंस, ४४ जाम्बवानका युद्ध और मृत्यु, ४५ मन्त्रिसुतोंके साथ युद्ध और उनकी मृत्यु, ४६ विरूपाक्षादि पांच सेनापतिका युद्ध और मृत्यु, ४७ अक्षयकुमारका युद्ध और मृत्यु, ४८ इन्द्रजित्‌के साथ युद्ध और उससे बांधे जाने पर हनुमान्‌का रावणकी सभामें जाना, ४९-५१ हनुमान्‌का बध करनेके लिये रावणकी आज्ञा, ५२ रावणके प्रति विभीषणकी उक्ति, ५३ हनुमान्‌की पूंछ जलानेके लिये रावणका आदेश, ५४ हनुमत्कर्त्तृक लङ्कादग्ध, ५५ ५६ लङ्कादाह कर सीताके साथ हनुमान्‌का फिरसे मिलना, ५७ हनुमान्‌का महेन्द्रपर्वत पर जाना, ५८-६० बानरोंके निकट हनुमान्‌का समरवृत्तान्त कहना, ६१-६३ बानरोंसे मधुवन ध्वंस, ६४-६८ रामचन्द्रके निकट हनुमत्कर्त्तृक जानकीप्रदत्त अभिज्ञानादि दान।

लङ्काकाण्ड—१म सर्गमें हनुमानसे सीताका वृत्तान्त सुन कर रामचन्द्रका विलाप, २ सेतुबन्धनके लिये रामके प्रति सुग्रीवका उपदेश, ३ हनुमानकर्त्तृक लङ्काका दुर्गादि वर्णन, ४ राम, लक्ष्मण और बानरोंका समुद्र-

दर्शन, ५ रामका विलाप, ६ रावणकी उक्ति, ७-१० दुर्मन्त्रियोंकी नाना रूप दुर्मन्त्रणा, विभीषणकी मन्त्रणा, रावणकी गर्वोक्ति, ११ १२ रावण और प्रहस्तादिकी उक्ति-प्रत्युक्ति, १३ विभीषणकी उक्ति, १५ इन्द्रजित् और विभीषणकी कथा, १६ विभीषणका रावण त्याग, १७ विभीषणका रामके पास आना, १८ विभीषणके सम्बन्धमें सुग्रीव और रामका कथोपकथन, १९ राम और विभीषणका मिलन, २० रावण कर्त्तृक वानरसैन्यके मध्य शुक नामक दूतको भेजना, २१-२२ रामका सेतुबंधनादि, २३ रामका दुर्निमित्त दर्शन, २४ शुककी मुक्ति और रावणकी सभामें यात्रा, २५ शुक और सारणका लुक छिप कर वानरकी सैन्य संख्याका पता लगाना, २६-३० रामकी सैन्यसंख्या जानने के लिये रावणका फिरसे दूसरा दूत भेजना, ३१ रावण-कर्त्तृक सीताको माया द्वारा रामका मुण्ड और धनुरादि दिखाना, ३२ रामके मायामुंडादि देख कर सीताका विलाप, ३३-३४ सरमा और सीताकी बातचीत, ३५ रावण माल्यवान्का हितोपदेश, ३६ लङ्कापुरीके रक्षाके लिये प्रहस्तादिके प्रति रावणकी उक्ति, ३७ रामचंद्र कर्त्तृक सेनासमावेश, ३८ रामका सुवेल पर्वत पर चढ़ना, ३९ रामचंद्रका सुवेल पर्वत परसे लङ्का देखना, ४० सुग्रीवका रावणके साथ युद्ध, ४१ ससैन्य राम कर्त्तृक लङ्कावेष्टन, ४२ युद्धारम्भ, ४३ वानर और राक्षससेनाके साथ युद्ध, ४४ अङ्गद कर्त्तृक इन्द्रजित्विजय, ४५ इन्द्रजित् कर्त्तृक रामलक्ष्मणका बंधन, ४६ वानर-सैन्यका विषाद, ४७-४८ त्रिजटाके साथ विमान पर चढ़ कर सीताको रामकी अवस्था देखना, ४९ लक्ष्मणकी अवस्था देख कर रामका विलाप, ५० गरुड़के स्पर्शसे रामलक्ष्मणका नागपाशबन्धनसे मुक्तिलाभ, ५१ धूम्राक्षकी युद्धयात्रा, ५२ धूम्राक्षवध, ५३-५४ वज्रदंष्ट्रकी युद्धयात्रा और उसका वध, ५५-५६ अकम्पनकी युद्धयात्रा और उसका वध, ५७ प्रहस्तकी युद्धयात्रा, ५८ प्रहस्तवध, ५९ रावणकी युद्धयात्रा और पराजय, पीछे अन्तःपुरमें प्रवेश, ६० कुम्भकर्णका निद्राभङ्ग, ६१ रामके निकट विभीषण-कर्त्तृक कुम्भकर्णका परिचय देना, ६२ रावण और कुंभकर्णका कथोपकथन, ६३ रावणके प्रति कुम्भकर्णकी निन्दा, ६४ महोदरकी संरम्भोक्ति, ६५ कुम्भकर्णका युद्धमें जाना, ६६ कुम्भकर्णका सुग्रीवको ले कर लङ्काप्रवेशकालमें सुग्रीवकर्त्तृक उसका नासिका छेदन, ६७ कुम्भकर्णका फिरसे युद्धमें प्रवेश और रामकर्त्तृक कुम्भकर्णका वध, ६८ कुम्भकर्णके मारे जानेसे रामका विलाप, ६९ नरान्तक वध, ७० देवान्तक, महोदर और त्रिशिरादिका वध, ७१ अतिकाय वध, ७२ लङ्कापुरीकी रक्षाके लिये रावणकी विशेष सज्जा, ७३ इन्द्रजित्का युद्धमें जाना और जयलाभ, ७४ हनुमान्का औषधका पहाड़ लाना, ७५ वानरोंसे लङ्कादाह, ७६ अकम्पनादिका विनाश, ७७ निकुम्भका विनाश, ७८ मकराक्षकी युद्धयात्रा ७९ मकराक्षका वध, ८० इन्द्रजित्कर्त्तृक मायासीता-वध, ८१-८२ निकुम्भिला यज्ञके लिये इन्द्रजित्का लङ्कापुरी प्रवेश, ८३ हनुमान्के मुखसे सीतावधका हाल सुन कर रामका विलाप, ८४-९१ लक्ष्मणकर्त्तृक इन्द्रजित् वध, ९२ रामके निकट लक्ष्मणादिका जाना, ९३ इन्द्रजित् वध सुन कर रावणका विलाप, ९४-९५ लङ्कापुरमें स्त्रियोंका विलाप, ९६-१०१ लक्ष्मणका शक्तिशेल, १०२ हनुमान्का औषधि पर्वत लाना तथा लक्ष्मणका शेलमोचन और मोहनाश, १०३-१०६ रावणका फिरसे युद्धमें जाना तथा राम और रावणका महायुद्ध, १०७ राम-जयसूचक निमित्तका प्रादुर्भाव, १०८ राम और रावणमें रथ-युद्ध, १०९-१११ ब्रह्मास्त्र द्वारा रामकर्त्तृक रावणवध, ११२ विभीषणका विलाप, ११३ मन्दोदरीका विलाप, ११४ विभीषणका राज्याभिषेक, ११५ हनुमानके मुखसे सीताका युद्धजयका संवाद सुनना, ११६ रामचंद्रके निकट शुभसंवाद लाभ, ११७ सीताके प्रति रामकी कठोर उक्ति, ११८ सीताको अग्निपरीक्षा, ११९ ब्रह्मादिकर्त्तृक सीताकी विशुद्धिताका कथन, १२० रामका सीतादेवीको फिर ग्रहण, १२१ महादेवकर्त्तृक दर्शित दशरथके साथ रामका कथोपकथन, १२२ इन्द्रकर्त्तृक अमृतसिञ्चनसे वानरसैन्यका पुनर्जीवन, १२३-१३० पुष्पकविमान पर चढ़ कर रामकी अयोध्यायात्रा, भरद्वाज और गुह आदिके साथ फिरसे भेंट।

उत्तरकाण्ड—१म सर्गमें रामका राज्याभिषेक और पीछे ऋषियोंके साथ कथोपकथन, २-३ कुबेरका जन्म,

तपस्या, ब्रह्मगौरवलाभ और लङ्कामें वास, ४-५ अगस्त्य कर्त्तृक राक्षसोंका उत्पत्ति-विषय कथन, ६-८ देवताओंका महादेवके निकट जाना, महादेवके आदेशसे देवताओंका विष्णुके समीप जाना, राक्षसोंकी सुरलोकमें युद्धयात्रा, सुमालीसे हार खा कर माल्यवान्‌का पाताल भागना, ९ सुमालीकी कन्याका विश्रवाके पास जाना और उसके गर्भसे रावणादिका जन्म, १० रावणादिकी तपस्या, ११ वर पा कर रावणका लङ्काग्रहण, १२ रावणका राज्याभिषेक और इन्द्रजित्‌का जन्म, १३ कुवेरके साथ युद्ध करनेके लिये रावणका जाना, १४-१६ कुवेरकी पराजय, १७ रावणके प्रति वेदवतीका अभिशाप, १८ रावणका संवर्त्तके पास जाना, १९ रावणको अनरण्यका अभिशाप प्रदान, २०-२२ नारदके उपदेशसे यमके साथ रावणका युद्ध, २३ रसातलमें प्रवेश कर रावणका युद्ध, २४ रावणका बलिके निकट जाना, २५ रावणका सूर्य्यलोकमें जयलाभ, २६ रावणका मान्धाताके साथ युद्धमें मित्रतास्थापन, २७ रावणको पितामहकी उक्ति और वरदान, २८ रावणका पातालमें कपिलदर्शन, २९ रावणका लङ्काप्रवेश और पतिके शोकसे संतप्त शूर्पणखाके प्रति दण्डकारण्यमें जानेका आदेश, ३० इन्द्रजित्‌को रावणका दर्शन, रावणका मधुवन जाना और मधुके साथ मित्रता करना, ३१ रावण कर्त्तृक रम्भाधर्षण, ३२-३४ इन्द्रको ले कर इन्द्रजित्‌का लङ्काप्रवेश, ३५ इन्द्रको मुक्ति और अहल्याका वृत्तान्तकथन, ३६-३८ रावण और अर्जुनका युद्धादि कथन, ३९ बालीके साथ रावणका मैत्रीकरण, ४०-४१ हनुमान्‌का जन्मवृत्तान्त कथन, ४२ बाली और सुग्रीवका जन्मवृत्तान्त कथन, ४३-४५ रामके प्रति रावण-सनत्कुमारका संवाद कथन, ४६ रावणका श्वेतद्वीप-गमनकथा, ४७ रामका राजचर्य्या कथन, ४८-४९ राजाओंका अपने अपने राज्यमें जाना, ५० वानर और राक्षसोंका अपने स्थान जाना, ५१ पुष्पकरथका आना, ५२ सीता और रामका अशोकवनविहारवर्णन, ५३-५५ सीताका अपवाद सुन कर लक्ष्मणके प्रति सीताको वनमें छोड़ आनेके लिये रामका आदेश, ५६-५८ वाल्मीकिके तपोवनमें लक्ष्मणका सीताको छोड़ आना, ५९ वाल्मीकिके आश्रममें सीताका आना, ६०-६१ सुमन्त्र और लक्ष्मणका कथोपकथन, ६२ रामके समीप लक्ष्मणका आना, ६३-६४ कार्यार्थी प्रकृति आदिको बुलानेके लिये लक्ष्मणके प्रति रामका आदेश, ६५-६७ लक्ष्मणसे रामका निमि-वशिष्ठ वृत्तान्त कहना, ६८-६९ ययाति उपाख्यान कहना, ७०-७१ रामके समीप सारमेयका जाना, ७२ गृध्र-उलूकका व्यवहार, ७३-७५ शत्रुघ्नके प्रति रामका लवण वधार्थ आदेश, ७६-७७ शत्रुघ्नका अभिषेक, ७८-७९ वाल्मीकिके आश्रममें सीताका प्रसव, वाल्मीकि कर्त्तृक कुश और लवका नामकरण, ८० मान्धाताका उपाख्यान, ८१-८२ शत्रुघ्न कर्त्तृक लवणवध, ८३ मथुराराज्य स्थापन और शासन, ८४-८५ वाल्मीकिके आश्रममें शत्रुघ्नका रामचरित श्रवण, ८६-८७ मृतपुत्रके साथ किसी ब्राह्मणका रामके समीप जाना, ८८-९१ रामकर्त्तृक तपोरत शूद्रसम्बूकका शिरश्छेदन, ९२-९५ दण्डोपाख्यान कथन, ९६-९७ अश्वमेध यज्ञका प्रस्ताव, ९८-९९ वृत्रवध, इन्द्राश्वमेधवर्णन, १००-१०३ इलोपाख्यान, १०४-१०५ रामका नैमिषारण्यमें जाना, १०६ रामयज्ञमें सशिष्य वाल्मीकिका आना तथा कुशीलवका रामायण गान, १०७-१०८ कुशीलवको सीताका पुत्र जान कर सीताको लानेके लिये दूत भेजना, १०९-११० रामको सभामें सीताका आना और सीताका पातालप्रवेश, १११ महीके प्रति रामकी सक्रोधोक्ति, ११२ कौशल्यादिका देहत्याग, ११३-११४ रामके समीप युधाजित्‌पुरोहित गर्गका आना, ११५ अङ्गद और चन्द्रकेतुका राज्याभिषेक, ११६-११७ रामके निकट तापसरूप कालका आना, ११८ दुर्वासाका आना, ११९ रामका लक्ष्मणवर्जन, १२० कुशीलवका अभिषेक, १२१-१२३ वानर, राक्षस और पौरादिके साथ रामका सरयूप्रवेश, १२४ रामायण-माहात्म्य।

रामायणीय (सं० त्रि०) १ रामायण सम्बन्धी, रामायणका। २ जो रामायणका विशेषरूपसे जानकार और पण्डित हो। ३ रामायणकी कथा कहनेवाला।

रामायन (सं० पु०) रामायण देखो।

रामायुध (सं० पु०) धनुष।

रामार्य्य (सं० पु०) धर्मोपदेशक एक आचार्य्यका नाम।

रामालिङ्गनकाम (सं० पु०) रामाणामालिङ्गनस्य कामो-

ऽभिलाषो यस्मात्। रक्ताम्लान, एक प्रकारका फूलका पौधा।

रामावक्षोजोपम (सं० पु०) रामावक्षोजयोः स्त्रीस्तनयोरुपमा यत्र। चक्रवाक, चकवा।

रामावत (सं० पु०) वैष्णव-आचार्य रामानन्दका चलाया हुआ एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय। इसके अनुसार मनुष्य ईश्वरकी भक्ति करके सांसारिक संकटों तथा आवागमनसे बच सकता है। यह भक्ति रामकी उपासनासे प्राप्त हो सकती है और इस उपासनाके अधिकारी मनुष्य-मात्र हैं। जाति-पांतिका भेद इसमें किसी प्रकारका अवरोध उपस्थित नहीं कर सकता।

रामावामाङ्घ्रिघातक (सं० पु०) अशोकका पेड़।

रामाश्रम—१ अमरकोषटीकाके प्रणेता। २ तत्त्वचन्द्रिका और ब्रह्मसूत्रवृत्तिके रचयिता। ये नृसिंहाश्रमके शिष्य थे। ३ दुर्गामाहात्म्यटीकाके प्रणेता। ४ दुर्जनमुखचपेटिकाके रचयिता। ५ प्रभाकरपरिच्छेद नामक व्याकरणके प्रणेता।

रामाश्रम आचार्य—रामायणटीकाके रचयिता।

रामास—बम्बई प्रदेशके महीकांथा विभागके अन्तर्गत एक सामान्तराज्य। यहांके सरदारगण मुसलमान हैं जो बड़ोदाराजको कर दिया करते हैं।

रामाश्वमेध (सं० पु०) १ रामकृत अश्वमेध। २ पद्मपुराणका एक अंश।

रामि (सं० पु०) रामका गोत्रापत्य।

रामिन् (सं० पु०) वह जिसे रमणकरनेमें प्रमोद हो।

रामिया-विहार—अयोध्याप्रदेशके खेरी जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह कौरीयाला नदीके एक प्राचीन गड्ढेके किनारे अवस्थित है। अभी यह गड्ढा तालावके रूपमें परिणत हो गया है। गांवके पूर्व और पश्चिम सुन्दर दृश्य उपवनराजि रहनेके कारण स्थानीय दृश्य बड़ा ही मनोरम हो गया है।

रामिल (सं० पु०) १ रमण। २ कामदेव। ३ स्वामी, पति। ४ प्रणयपात्र, वह जिससे प्रेम किया जाय।

रामिल सौमिल—दो प्राचीन कवि। इन दोनोंने एक साथ 'शूद्रककथा' नामक काव्य रचा। कालिदासने मालविकाग्निमित्रमें इनका उल्लेख किया है।

रामी (सं० स्त्री०) रात्रि, अंधकार।

रामी (हिं० स्त्री०) कांस नामक घास।

रामुष (सं० क्ली०) एक देशका नाम।

रामुसी—भारतके पश्चिम उपकूलमें रहनेवाली एक जाति। इस जातिके लोग अरब सागरको पार कर पश्चिम देशसे भारतउपकूलमें आ कर बस गये हैं। ये तुराणीय वंशोद्भव हैं और इनका आचार-व्यवहार नीच जातिके हिन्दू और मुसलमानोंसे मिलता जुलता है। प्रधानतः ये लोग चोरी डकैती कर अपनी जीविका चलाते हैं। आज कल बहुतेरे चौकीदारमें भर्ती हो गये हैं। ये हट्टे कट्टे, मजबूत और युद्धकुशल होते हैं। इनकी भाषा तेलगु और मराठी है।

रामेन्द्र यति—विवेकसारके रचयिता।

रामेन्द्र योगिन्—जगन्मिथ्यात्वदीपिकाके प्रणेता।

रामेन्द्रवन—एक विख्यात पण्डित और संन्यासी। ये काशीखण्डकी टीकाके प्रणेता रामानन्दके गुरु थे।

रामेन्द्र सरस्वती—बालबोधिनी भावप्रकाशके रचयिता। ये रघुनाथ और गोविन्द सरस्वतीके शिष्य थे।

रामेश भारती—ब्रह्मसूत्रोपन्यासवृत्तिके प्रणेता।

रामेश्वर—कई एक प्रसिद्ध संस्कृत-ग्रन्थकार। १ अद्वैततरङ्गिणीके प्रणेता। २ अशौचशतक और उसकी टीकाके रचयिता। ३ गृह्यपद्धति और षोड़शसंस्कारसेतुके प्रणेता ४ जातकसारके रचयिता। ५ पञ्चपक्षीकी टीका, सिद्धान्तमुद्रा, स्त्रीजातकटीका और हिल्लाजव्याख्या नामक बहुत-से ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ६ पिष्टपशुतिरस्कारिणीके रचयिता। ७ वेदान्तशास्त्राम्बुधिरत्नके प्रणेता। ८ शुद्धाशुबोध नामक व्याकरणके रचयिता। ९ सूत्रार्थ नामक व्याकरणके प्रणेता। १० सौभाग्योदय नामक परशुरामसूत्रवृत्तिके रचयिता। ११ रामकुतूहलकाव्यके प्रणेता। ये गोविन्दके पुत्र और अङ्गदेवके पौत्र थे। इनके पुत्र नारायणने वृत्तरत्नाकर लिखा। १२ आयुर्वेदसिद्धान्तसम्बोधिनीके प्रणेता तथा नरेन्द्रके पुत्र।

रामेश्वर—मन्द्राज प्रसिडेन्सीके मदुरा जिलेके रामनाद तहसीलके अन्तर्गत एक द्वीप और नगर। यह अक्षा० ९° १७´ उ० और देशा० ७९° १९´ पू०में अवस्थित है। यह द्वीप बालुकामय और मनारके उपसागरके पास है।

इसकी लम्बाई ११ मील और चौड़ाई ६ मील है। यह किसी समय भारतके दक्षिणप्रान्तकी सीमा थी, पीछे समुद्रके स्रोतके कारण विच्छिन्न हो गया है।

यह स्थान हिन्दुओंका एक प्रधान और पवित्र तीर्थ समझा जाता है। सेतुबन्ध-रामेश्वर तीर्थमें दर्शन करके भारतवासी हिन्दूमात्र अपनेको धन्य समझते हैं। प्रवाद है, कि रघुवीर रामचन्द्र सीताकी खोजमें सेतु बन कर लंका गये थे। पीछे रावणको जीत कर सीताके साथ लौटते समय वे उस सेतुको तोड़ते गये। अब उस टूटे हुए सेतुका एक एक अंश एक-एक द्वीप बन गया है। यहां जो रामेश्वरकी मूर्त्ति स्थापित है, लोगोंका विश्वास है कि उस मूर्त्तिकी स्वयं रामचन्द्रने प्रतिष्ठा की थी।

रामचन्द्रकी त्रेतायुगकी कीर्त्ति समझ कर शताब्दियोंसे सैकड़ों हिन्दू नर-नारी आज तक इस देवतीर्थमें समागत होते हैं। प्रत्येक तीर्थयात्रीको रामनादमें आ कर पहले समुद्र उत्तरण करना पड़ता है। यह सेतुबन्द-तीर्थ बहुत दिनोंसे रामनादके सरदारोंके हाथमें है, इसलिये वे ही तीर्थयात्रियोंको गमनक्लेशसे बचनेके लिये समुद्रपथके परिदर्शक बनते हैं और इस कारण वे 'सेतुपति' कहलाते हैं।

इस द्वीपमें बबूल और नारियलके पेड़ बेशुमार पैदा होते हैं। किसी उद्यानमें बड़ी कोशिशसे दूसरे पेड़ भी पैदा होते देखे गये हैं। यहांके अधिवासीगण प्रधानतः ब्राह्मण हैं। वे मन्दिरके पण्डे अथवा पुरोहित हैं। उनके अधीन और भी अनेक चेले हैं। मन्दिरके दक्षिणमें ३ मील विस्तृत एक ह्रद है। उसका मीठा पानी सब कोई पीते हैं।

दाक्षिणात्यका यह सर्वश्रेष्ठ पुण्यतीर्थ बहुत प्राचीनकालसे प्रसिद्ध है। उस समयसे ही उत्तर भारतके तीर्थयात्री पैदल इस तीर्थकी यात्रा किया करते थे। अब भी साधु संन्यासी लोग पैदल नाना तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए यहां आते हैं। फिलहाल रेल हो जानेसे यात्राकी कठिनाइयां दूर हो गई हैं। बहुतसे तो प्रत्येक वर्ष काशीमें विश्वेश्वरकी पूजा करके वहांसे गंगाजल ले कर रामेश्वर पहुंचते हैं और वहां रामेश्वरनाथका एकादशरुद्री गङ्गोदकाभिषेकादि करते हैं।

रामेश्वर जानेमें पहले मथुरा जाना पड़ता है। वहां वेगैनदीके किनारे अनेक छत्र हैं। वहां पण्डोंके आदमी हैं, जो बड़े यत्नसे यात्रियोंकी सेवा-शुश्रूषा करते हैं और मथुराके सुन्दरस्वामीके दर्शन करा कर वे उनके पथप्रदर्शक बन कर रामेश्वर ले जाते हैं।

मथुरासे रामनाद जानेके लिए घोड़ागाड़ी या बैलगाड़ी मिलती हैं। घोड़ागाड़ीसे जानेमें १७-१८ घंटे लगते हैं और बैलगाड़ीसे जानेमें ३-४ दिन लग जाते हैं, क्योंकि बैलगाड़ी रातके सिवा चलती नहीं। मार्गमें मानमधुरा पराणगुटी और पडुलर ये तीन धर्मशालाएं हैं। मडुलर तक पक्की सड़क है, उसके बाद कच्ची और कठिन रास्ता है।

रामनाद सेतुपति-राजाओंकी राजधानी है। वे किसी समय मत्वप्रदेशके शासनकर्त्ता थे। अब अवस्थाके फेरसे जमींदारमात्र रह गये हैं। मत्तू विजय रघुनाथ सेतुपतिके समयमें दर्भशयन और रामेश्वरके मन्दिरकी बहुत कुछ श्रीवृद्धि हुई थी और राजवर्त्मके किनारे किनारे कई एक छत्र निर्मित हुए थे। रामनादमें इस राजवंश द्वारा प्रतिष्ठित कोदण्ड रामस्वामी, विश्वनाथस्वामी, वाणशङ्करी, नीलकण्ठी और राजराजेश्वरी देवीका मन्दिर तथा लक्ष्मीपुरमें बालसुब्रह्मण्य मुत्तुरामलिङ्गस्वामी और मरि-अम्मा देवीका मन्दिर ही प्रधान है। रामनादके पास ही लक्ष्मीपुर है। यहां लक्ष्मी-सरोवरके किनारे एक छत्र है। इस स्थानसे १० मील पूर्वमें दक्षिण-समुद्रके किनारे देवीपुरका नवपाषाणतीर्थ है और ७ मीलके अन्तरमें कुछ पश्चिममें समुद्रके किनारे दर्भशयन तथा दक्षिणमें २२ मीलकी दूरी पर विट्ठल-मण्डप है।

देवीपुरका नाम देवीपत्तन है। सेतुमाहात्म्यमें इसकी उत्पत्तिके विषयमें लिखा है, कि देवीकी ताड़नासे महिषासुर अनन्योपाय हो कर दक्षिणसागरके तट पर अवस्थित दशयोजनव्यापी धर्मपुष्करिणीमें घुस गया था। मृगेन्द्रके उक्त पुष्करिणीका जल बिलकुल पी लेने पर देवीने महिषको मार डाला और उक्त पुष्करिणीके उत्तर-भागमें दक्षिणसागरके किनारे "देवीपत्तन" स्थापित किया।

(स्कन्दपुराणोक्त सेतुमाहात्म्य ७ अ०)

सेतुमाहात्म्यके मतानुसार धर्मपुष्करिणीका दूसरा नाम चक्रतीर्थ है। प्राचीनकालमें धर्म यहां महादेवकी तपस्यामें निरत हुए थे। उन्होंने स्नानके लिए उक्त सरोवरको खोदा था। पीछे महामुनि गालव इस पुष्करिणीके किनारे विष्णुकी आराधना करते रहे। एक दिन वशिष्ठके शापसे भ्रष्ट राक्षसरूपी 'दुर्दम' ने आहारके लिए स्नान-निरत गालवको ग्रहण किया। विष्णुके वरके प्रभावसे विष्णुके चक्रने आ कर राक्षसको मार डाला और गालवका उद्धार किया, तबसे इस स्थानका नाम चक्रतीर्थ पड़ा है। इन्द्र द्वारा छिन्नपक्ष कोई कोई पर्वत इस चक्रतीर्थमें गिर पड़ा था, जिससे इसका गर्भ भर गया है। इसलिए दर्भशयन और देवीपत्तन इन दोनों स्थानोंमें दो चक्रतीर्थ बन गये हैं। यह चतुर्विंशति सेतुतीर्थोंमें प्रधान है।

रामचन्द्रने सेतु निर्माण करते समय देवीपुरमें जो नवपाषाणकी प्रतिष्ठा की थी, वह भी पुण्यतीर्थ है। रामेश्वरके यात्रिगण रामनादसे देवीपत्तन जा कर नवपाषाणकी पूजा, चक्रतीर्थमें स्नान और सेतुनाथको पूजा किया करते हैं। सेतुमाहात्म्यके ७वें अध्यायमें लिखा है:—

नवपाषाणतीर्थ सेतुके मूलमें स्थापित हैं। इसलिए तीर्थयात्रियोंको चाहिये कि यहां सप्तखण्ड पाषाण दान करके सागरके जलसे स्नान करें। उसके बाद विशुद्धात्मा हो कर देव, ऋषि, मनुष्य और पितृपुरुषोंके लिए तर्पण करनेसे वे तृप्त होते हैं। सेतु-मूल, धनुष्कोटि और गन्धमादनपर्वत ये तीन स्थान राम द्वारा निर्मित और पितरोंको तृप्तिप्रद है। श्रीरामचन्द्रने लङ्का जानेके लिए दर्भशयनसे नवपाषाण तक परिसरयुक्त जो सेतु निर्माण किया था, उसकी विस्तृति २६ मीलसे अधिक नहीं है। रामायणोक्त वर्णनसे इसमें बहुत भेद पाया है।

नवपाषाणके दर्शन, पूजा और सागरस्नान रामेश्वर तीर्थयात्रियोंके लिए प्रधान कर्त्तव्य हैं। वैशाखसे कार्त्तिक मास तक, जब कि दक्षिणपूर्व मौसुम वायु चलती है, अनेक तीर्थयात्री जहाज पर बैठ कर नव पत्तनसे नवपाषाण हो कर पम्बाम जाते हैं।

भगवान् रामचन्द्रने वानरकटकके साथ समुद्रके किनारे पहुंचते ही सामने नक्रव्यालश्कुल उत्ताल तरङ्गपूर्ण योजनव्यापी सागर देखा। उन्होंने सागर पार होनेकी इच्छासे वरुणकी सहायता पानेकी आशासे जिस स्थानमें दर्भके ऊपर शयनपूर्वक प्रायोपवेशन किया था, प्रवाद है कि वह स्थान दर्भशयनतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

विट्ठलमण्डप एक प्राचीन स्थान है। यहां कुछ प्राचीन मन्दिर और मण्डपका भग्नावशेष मौजूद है। मण्डपोंके कारण यह स्थान विट्ठलमण्डपके नामसे प्रसिद्ध है। दक्षिण भारतका यह एक छोटा-सा बन्दर है। यहांसे पम्बामके लिए जहाज जाते हैं। भारतोपकूलसे पम्बाम बन्दर ४ मील दूर है।

पम्बाम एक छोटा-सा द्वीप है, इसकी लम्बाई ११ मील और चौड़ाई ६ मील है। रामेश्वर इस द्वीपके उत्तर दिशामें तथा पम्बाम बन्दरसे ८ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। बन्दरसे मन्दिर तक रास्ता है। रामेश्वरके प्रधान मन्दिरके सिवा यहां सेतुमाहात्म्यमें वर्णित और भी २४ तीर्थ हैं, जिनके दर्शन किये जाते हैं उन तीर्थोंके नाम इस प्रकार हैं—१ चक्रतीर्थ। २ वेतालवरदतीर्थ। ३ पापविनाशनतीर्थ। ४ सीतासरतीर्थ। ५ मङ्गलतीर्थ। ६ अमृतवापिका। ७ ब्रह्मकुण्ड। ८ हनुमत्कुण्ड ९ अगस्त्यतीर्थ। १० श्रीरामतीर्थ। ११ श्रीलक्ष्मणतीर्थ १२ जटातीर्थ। १३ श्रीलक्ष्मीतीर्थ। १४ अग्नितीर्थ १५ चक्रतीर्थ (२य)। १६ श्रीशिवतीर्थ। १७ शङ्खतीर्थ १८ यमुनातीर्थ। १९ गङ्गातीर्थ। २० गयातीर्थ २१ कोटितीर्थ। २२ साध्यामृततीर्थ। २३ मानसाख्य सर्वतीर्थ। २४ धनुष्कोटितीर्थ।

इन तीर्थोंकी उत्पत्तिके विषयमें उक्त ग्रन्थमें बहुतसी बातें लिखी हैं, जो नीचे लिखी जाती हैं।

वेतालवरदतीर्थ—समुद्रके तट पर चक्रतीर्थके दक्षिणमें और गन्धमादनके उत्तरमें अवस्थित है। इस तीर्थमें संकल्पपूर्वक स्नान करके वेदविद् ब्राह्मणको वित्तदान देनेसे लोग जीवन्मुक्त होते हैं।

गन्धमादन पर्वत—वर्त्तमान पम्बाम और रामेश्वरके बीच सेतुमाहात्म्यका गन्धमादन है। पापविनाशनसे लगा कर मानसाख्य सर्वतीर्थ तक २४ तीर्थ इस पर्वत

पर अवस्थित हैं। रामेश्वरमें आ कर सागरमें संकल्पपूर्वक स्नान करके गन्धमादनमें पिण्डदान करनेसे पितृगण तुष्ट होते हैं। यहांकी वायु अङ्गमें लगनेसे कोटिब्रह्महत्या और अगम्यागमनादि जनित पातक नष्ट हो जाते हैं। (सेतुमा० १०।६-१६)

पापविनाशनतीर्थ—गन्धमादन पर्वत पर अवस्थित है। इसके स्मरणमात्रसे गर्भवास नष्ट हो जाता है और इसमें स्नान करनेसे वैकुण्ठमें वास होता है।

(१०।२० २२)

सीतासरतीर्थ—गन्धमादन पर्वत पर अवस्थित है। यह पञ्चपापविनाशक है। यहां स्नान करनेसे ब्रह्महत्याके पातकसे मुक्त हो कर मनुष्य देवलोक जानेमें समर्थ होता है। (११ अ० ६४-७६)

मङ्गलतीर्थ—गन्धमादनके एक तरफ अवस्थित। इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य लक्ष्मीवन्त होता है।

(१२ अ०।७६ ६)

अमृतवापिका—गन्धवादन पर्वतस्थ रामनाथक्षेत्रमें अवस्थित है। यहां स्नान करनेसे नरलोक शङ्करके प्रसादसे मुक्तिलाभ करता है। पुराकालमें रामचन्द्रने लक्ष्मण, विभीषण और हनुमान्‌के साथ समुद्रके किनारे अमृतवापिकाके समीप बैठ कर रावणवधकी मन्त्रणा की थी।

ब्रह्मकुण्ड—प्राचीनकालमें ब्रह्माने इस स्थानमें यज्ञ किया था। वर्षाकालमें जलपूर्ण हो कर यह एक वृहत् ह्रदका आकार धारण करता है। ग्रीष्मऋतुमें यह सूख जाता है। सूख जाने पर इसके जो मट्टी निकलती है, वह ब्रह्मकुण्डभस्म कहलाती है। यहां स्नान करनेसे वैकुण्ठ प्राप्त होता और भस्मलेपन वा त्रिपुण्ड्रक धारण करनेसे कैवल्य प्राप्त होता है। (१४।१२-२२)

हनुमत्कुण्ड—ब्रह्मबीजसे उत्पन्न रावणको मार कर रामचन्द्र व्यथितचित्त हुए और उन्होंने पाप-विमोचनार्थ मुनियोंके उपदेशसे मारुतिको लिङ्गमूर्त्ति लानेके लिए कैलास भेजा। मारुतिके पूंछमें लपेट कर लिङ्ग लाने पर वह इस कुण्डके किनारे प्रतिष्ठित किया गया। अब भी एक शिला पर इस बातका उल्लेख पाया जाता है और मारुतिमूर्त्ति तथा पूंछमें लिपटे हुए लिङ्गकी चित्र अङ्कित है। इस कुण्डमें स्नान करनेसे महापातक नष्ट होता है। स्नानके बाद उसके तीर पर पुत्रेष्टि-याग करनेसे सत्पुत्रकी प्राप्ति होती है। पितरोंके लिए श्राद्ध-तर्पण करनेसे भवयन्त्रणासे मुक्त हो कर शिवलोकमें गमन हो सकता है। (४६।६५-७८)

अगस्त्यतीर्थ—अगस्त्यऋषिने विन्ध्याद्रिको निग्रह करके दक्षिण-अम्बुधिके किनारे आ कर गन्धमादन पर यह पुण्यतीर्थ खोदा था। यह सुखमोक्षफलदायक और सर्वाभीष्टफलप्रद है।

रामतीर्थ—रामकुण्ड, रामसर वा रघुनाथसरके नामसे कहा गया है। इस मृत्युविनाशक, महासिद्धिकर, पातकनाशक, भुक्तिमुक्तिफलप्रद, नरकयन्त्रणानाशक और संसार-उच्छेदकारक तीर्थ और महालिङ्गकी रामचन्द्रने स्वयं प्रतिष्ठा की थी। यहां स्नान करके लिङ्गमूर्त्तिके दर्शन करनेसे मनुष्यको मुक्ति प्राप्त होती है।

लक्ष्मणतीर्थ—यहां लक्ष्मणेश्वर नामक शिवलिङ्ग विद्यमान हैं। सेतुमाहात्म्यके मतसे इस तीर्थमें स्नान करनेके बाद उक्त महालिङ्गकी अर्चना करनेसे मनुष्य दारिद्र्य दुःख, रोग और ब्रह्महत्याके पापसे विमुक्त होता है। अपुत्रक व्यक्तिको आयुष्मान, गुणवान् और विद्वान् पुत्रकी प्राप्ति होती है।

जटातीर्थ—प्रवाद है, कि रावणको मारनेके बाद रामचन्द्रने यहां जटाशोधन किया था। (१०।२४)

यह तीर्थ जन्ममृत्युजरान्तक और अज्ञाननाशक है। छः सहस्र वर्ष गङ्गास्नानका जो फल है, वृहस्पति सिंहस्थ होने पर, सहस्र बार गोमतीमें स्नान करनेसे जो फल होता है, एकमात्र जटातीर्थके दर्शनसे उतना फल प्राप्त होता है। स्नानसे अन्तःकरणकी शुद्धि और ज्ञानलाभके कारण मुक्ति प्राप्त होती है। इसके किनारे क्षेत्रपिण्ड-दान करनेसे गयाश्राद्धके समान फल प्राप्त होता है।

लक्ष्मीतीर्थ—सेतुमाहात्म्यके २१वें अध्यायमें इसका विवरण लिखा है। संकल्पपूर्वक इसमें स्नान करनेसे मनस्कामना सिद्ध होती है। इस समय यह समुद्रके अन्दर है।

अग्नितीर्थ—सेतुमाहात्म्यके अनुसार रावणके

मारनेके बाद अशोकवनसे सीताको ला कर अग्निपरीक्षाके समय जिस स्थान पर अग्नि आविर्भूत हुई थी, वही अग्नितीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। यह पूर्वोक्त लक्ष्मीतीर्थसे लगभग ५ सौ फुटकी दूरी पर है। अब यह समुद्रके अन्दर है। (२ अ०)

चक्रतीर्थ—इसका दूसरा नाम मुनितीर्थ है। महर्षि अहिर्बुध्न गन्धमादनके मुनिकुण्डमें सुदर्शनकी उपासना करते थे। राक्षसों द्वारा मुनिके तपमें विघ्न डाले जाने पर भक्तकी रक्षार्थ सुदर्शनने आ कर राक्षसोंको मार डाला। अहिर्बुध्नकी प्रार्थना पर विष्णुचक्रके मुनितीर्थमें अवस्थितिके बादसे यह स्थान चक्रतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस तीर्थमें एक बार स्नान करनेसे राक्षस पिशाचादिकी पीड़ाका नाश होता है। अन्ध, मूर्ख, बधिर, कुब्ज, खञ्ज, पंगु, अङ्गहीन, छिन्नहस्त, छिन्नपद आदि विकृताङ्ग मनुष्य सङ्कल्पपूर्वक इसमें स्नान करे तो अङ्गपूर्णता प्राप्त होती है। (२३ अ०)

शिवतीर्थ—महादेव द्वारा यह तीर्थ निर्मित हुआ था। इसमें एक बार स्नान करनेसे ब्रह्महत्यादि जनित पातक नष्ट होते हैं। (सेतुमा० २४ अ०)

शङ्खतीर्थ—शङ्ख मुनिने नित्य स्नानार्थ कल्पना द्वारा इस तीर्थका निर्माण किया था। इसमें स्नान करनेसे कृतघ्न भी मुक्तिको प्राप्त करता है और माता पिता और गुरुके अपमानादि-जनित पाप भी दूर हो जाते हैं।

गङ्गा, यमुना और गया तीर्थके प्रसङ्गमें सेतुमाहात्म्यमें २५वें अध्यायमें लिखा है, कि रैक्व नामक महर्षि गन्धमादन पर्वत पर तपस्या करके दीर्घायुको प्राप्त हुए थे। वार्द्धक्यके कारण गाड़ी पर चढ़ कर तीर्थोंमें स्नान करनेमें असमर्थ होनेसे उन्होंने गङ्गादि तीर्थमें स्नान करनेकी इच्छासे योगबलसे उन्हें आह्वान किया था। वे भूमि भेद कर जहां जहां मुनिके समीप उपस्थित हुई थीं, वे स्थान एक एक तीर्थरूपमें परिगणित हुए।

कोटितीर्थ—रामचन्द्रने रावणका वध करनेके कारण ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होनेकी आशासे रामेश्वरलिङ्गकी प्रतिष्ठा की। उस लिङ्गके अभिषेकके लिए विशुद्ध जल न मिलनेसे उन्होंने अपने धनुष्कोटिके अग्रभागसे धरणीको छेद कर गङ्गाका स्तव किया, जिससे पृथ्वीमेंसे पुण्यतोया जाह्नवी निकल आई और उसके जलसे स्वप्रतिष्ठित लिङ्गका अभिषेकादि किया। अनन्तर रामने अयोध्या लौटते समय अन्तिम बार इसमें स्नान किया था। तभीसे सब तीर्थयात्री कोटितीर्थमें स्नान करके अवशिष्ट पापसे मुक्त हो कर गन्धमादनको छोड़ते हैं। (१७ अ०)

श्रीसाध्यामृततीर्थ—शक्तिमुक्तिप्रद और सर्व पापोंसे मुक्त करनेवाला है।

सर्वतीर्थ—इसका दूसरा नाम मानस है। भृगुवंशोद्भव सुचरित ऋषिने सर्वतीर्थ-स्नानके लिए अभिलाषी हो कर देवाधिदेव महादेवकी स्तुति की थी। महादेवने उनके स्तवसे सन्तुष्ट हो कर कहा—

"अस्य तीर्थस्य तीरे त्वं वसन् सुचरित द्विज।
स्नानं कुरुष्व सततं स्मरन् मां मुक्तिदायकम्॥
देशान्तरीयतीर्थेषु मा व्रज ब्राह्मणोत्तम।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं मामन्ते प्राप्स्यसि ध्रुवम्।
अन्येपि येऽत्र स्नास्यन्ति तेऽपि मां प्राप्नुयुर्द्विज॥"

धनुष्कोटितीर्थ—रामेश्वरसे २४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लङ्का-विजयके बाद अयोध्या लौटते समय रामचन्द्रने विभीषणकी प्रार्थना पर अपने धनुष्कोटि द्वारा सेतु तोड़ा था, इस कारण इस स्थानका नाम धनुष्कोटि पड़ा। जो व्यक्ति रामकृत धनुष्कोटिकी रेखा देखता है, उसे फिर कभी गर्भवासकी यन्त्रणा नहीं सहनी पड़ती। यहां संकल्प-पूर्वक स्नान करनेसे दक्षिणाबहुल अग्निष्टोमादि यज्ञकी अपेक्षा भी अधिक फल होता है। (३०।७४-६३)

सूर्य पूर्ण मकरस्थ होने पर अर्थात् माघ मासकी संक्रान्तिमें शिवरात्रिकी रात्रिको उपवास करके रामनाथकी पूजा करके उसके बाद महोदय और अर्द्धोदय योगमें तथा चन्द्रसूर्योपरागमें इस तीर्थमें स्नान करना सर्वतोभावसे प्रशस्त है।

उपरोक्त तीर्थके सिवा रामेश्वरमें और भी कई उपतीर्थ हैं, जिनके विषयमें सेतुमाहात्म्यमेंसे संक्षेपमें कुछ लिखा जाता है।

क्षीरसर वा क्षीरकुण्ड—देवीपुरके पश्चिममें जिस

स्थानसे रामचन्द्रने सेतुबन्धन प्रारम्भ किया था, वह पुण्यशील फुल्लग्रामके निकटस्थ महापातकनाशन क्षीरसर तीर्थ है।

कपितीर्थ—लङ्का जय करनेके बाद लौटते समय श्रीरामके कपिसेनाने इस तीर्थको खोदा था। पीछे कपियोंकी प्रार्थना पर और श्रीरामके वरसे यह तीर्थ महापातक, दरिद्रता और यमपीड़ानाशक हो गया।

(३० अ०)

गायत्री और सरस्वतीतीर्थ—भर्त्तृहीन सरस्वती और गायत्रीने गन्धमादनमें आ कर रामनाथकी तपस्या की थी। उनके स्नानके लिये जो कूप खोदा गया था, वही महादेवके वरसे तीर्थरूपसे घोषित हुआ।

(सेतुमा० ४०।४१ अ०)

इसके सिवा ४२वें अध्यायमें ऋणमोचनतीर्थ, पाण्डवतीर्थ, देवतीर्थ, सुग्रीवतीर्थ, नलतीर्थ, नीलतीर्थ, गवाक्षतीर्थ, अङ्गदतीर्थ, गज-गवय-शरभ-कुमुदतीर्थ, विभीषणतीर्थ, ब्रह्महत्या-विमोचनतीर्थ, नागवलितीर्थ आदिकी उत्पत्ति और उनकी पापनाशकताका वर्णन लिखा हुआ है। उपाख्यानके प्रसङ्गमें उन उन स्थानोंमें एक एक देवमूर्त्ति भी स्थापित है।

उक्त ग्रन्थके ५०वें अध्यायमें सेतुमाधवतीर्थका उपाख्यान लिखा है। मथुरापुरीके राजा सोमवंशोद्भव पुण्यनिधिने रामसेतु जा कर संवत्सरमें रामनाथकी पूजा और महाक्रतु सम्पादन किया था। उनके इस कार्यसे सन्तुष्ट हो कर भगवान्‌ने भक्तिपाशमें बद्ध हो कर उन्हें दर्शन दिये और छलसे स्त्रीके साथ उनके निकट निगड़ाबद्ध हुए थे। राजाने निशीथ स्वप्नमें नारायणके इस प्रकार कार्यको देख कर दूसरे दिन प्रातःकाल क्षमा प्रार्थना की थी। भगवान्‌ने उनसे कहा कि तुमने मेरे बनाये हुए सेतु पर मुझे निगड़ाबद्ध किया था, इसलिए मैं तुम्हारी भक्तिके वश आबद्ध हो कर यहीं अवस्थान करूंगा। तदनन्तर राजाने निगड़बद्ध सेतु माधव मूर्त्तिकी शास्त्रोक्त विधानानुसार प्रतिष्ठा करके पूजाका प्रबन्ध कर दिया। सेतु पर नारायणकी मूर्त्ति स्थापित होनेके कारण वह सेतुमाधव कहलाता है। ४४वें अध्यायमें रावण-वधके बाद सीताकी अग्निशुद्धि और ब्रह्महत्याजनित पाप-क्षालनार्थ लिङ्गार्चनके लिए रामचन्द्र द्वारा हनुमान्‌को कैलास भेजनेका वर्णन लिखा हुआ है।

उपरोक्त तीर्थ और उपतीर्थोंमें लगभग सर्वत्र लिङ्ग-मूर्त्ति विद्यमान हैं, जिनमें रामेश्वर, मारुतेश्वर, जानकीश्वर, लक्ष्मणेश्वर, सुग्रीवेश्वर, नलेश्वर, अङ्गदेश्वर, जाम्ब-लिङ्ग, विभीषणेश्वर और इन्द्रादि देवों-कृत लिङ्ग ही प्रधान हैं। कुछ नाम नीचे दिये जाते हैं। १ सुग्रीवतीर्थमें—सुग्रीवेश्वर। २ अङ्गदतीर्थमें—अङ्गदेश्वर। ३ इसके पास ही एक छोटेसे मन्दिरमें मारुतेश्वर हैं। यह हनुमत्कृत मारुतीश्वरसे भिन्न हैं। ४ जाम्बतीर्थमें—जाम्बवलिङ्ग (सेतुमाहात्म्य अ० ४५) ५ जलतीर्थमें—नलेश्वर। ६ नीलतीर्थमें—नीलेश्वर। ७ उत्तरदेशीय श्रीवैष्णव अमरदास कृत सुमिष्ट जलपूर्ण सुबृहत् कूप पर्वतगङ्गा है और रामनादके राजमहलके पास पर्वतगङ्गाकी मूर्त्ति है। ८ उच्च भूमिपर पार्वती-परमेश्वरकी मूर्त्ति है। यही वर्त्तमानमें गन्धमादन है। सेतुमाहात्म्योक्त गन्धमादन नहीं। ९ अमरदास कृत हनुमान्‌जीका मन्दिर और उसके सामने बाल-अङ्गदेश्वरका मन्दिर है। १० सौ फुटकी ऊँचाई पर गण्डशैलके ऊपर रामझरोखा है, उसके ऊपर दुमंजिला मन्दिर है और नीचेके मञ्च पर रामपादुका है। ११ पाण्डवतीर्थमें—पञ्चपाण्डवोंके नामसे ५ छोटे छोटे जलाशय हैं। धर्मतीर्थके किनारे धर्मराज द्वारा प्रतिष्ठित पाण्डवेश्वरलिङ्ग है। १२ ब्रह्मकुण्डके पश्चिमतीरके पुराने मण्डपमें नवरात्रिमें रामेश्वरदेव आ कर रहते हैं। हृदके बीचमें भी एक क्षुद्र मण्डप है। उसके पास विभूति-मृत्तिका पाई जाती है, जो ब्रह्मकुण्डकी विभूतिके नामसे प्रसिद्ध है। १३ ब्रह्मकुण्डके दक्षिणमें द्रौपदी नामका जलाशय है। १४ भद्रकालीका मन्दिर प्राचीन है और चूना पत्थरसे बना हुआ है। इसमें ७ प्रकोष्ठ हैं। मन्दिरके सामने दो द्वारपालकी आर १०८ वाहनोंकी मूर्त्तियां हैं। गर्भगृहकी देवीमूर्त्ति अष्टभुजा और महिषमर्दिनी है। पुजारी नरबजातीय है। वामाचार मतसे पूजा करते हैं। नित्यपूजाके बलि नहीं होती। मङ्गल और शुक्रवारको छागबलि और उत्सवादिमें महिष बलि होती है। षाण्मासिक

ध्वजारोहण उत्सवमें पार्वती-परमेश्वरकी मूर्त्ति यहां लाई जाती है। तब ब्राह्मण आ कर अभिषेकादि करते हैं। १५ प्रस्तरसे वेष्टित चतुष्कोणाकृति हनुमत्-कुण्ड है। इसके किनारे एक छोटी-सी हनुमानजीकी मूर्त्ति है और उनको पूंछमें लिङ्गमूर्त्ति वेष्टित हैं। यह मूर्त्ति एकादश श्रेष्ठ लिङ्गोंमें एकतम है। १६ अगस्त्यतीर्थ प्रस्तर वेष्टित पुष्करिणी है। यहां अगस्त्येश्वर लिङ्ग विद्यमान है। १७ लक्ष्मीतीर्थ समुद्रका एक घाटमात्र है। १८ अग्नितीर्थ वैदेहीको अग्निपरीक्षा और अग्नि देवके आविर्भावका स्थान है। यह भी समुद्रतीरवर्त्ती एक स्नानका घाट है, घाटके ऊपर महाकाली और हनुमानजीका मन्दिर है। इन दोनों मूर्त्तियोंका विवरण सेतुमाहात्म्यमें नहीं है। मन्दिरके प्राङ्गणमें बहुतसे कूप हैं और वे सभी महातीर्थ समझे जाते हैं। १६ महालक्ष्मीतीर्थ है और उसके पूर्वमें लक्ष्मी मन्दिर है। इसके बगलसे पार्वती परमेश्वरका मन्दिर है। २० गायत्री, सावित्री और सेतुमाधवतीर्थमें स्नान किया जाता है। सेतुमाधवतीर्थके किनारे पूर्वकथित सेतुमाधवकी मूर्त्ति है। १२ एक प्राङ्गणमें नल, नील, गय, गवाक्ष और गवय इस प्रकार पांच तीर्थकूप हैं। प्रत्येक कूपके पास एक छोटेसे मन्दिरमें लिङ्गमूर्त्ति हैं। ये नल-नीलतीर्थ पूर्वोक्त नल-नीलसे पृथक् हैं। २२ गङ्गा, यमुना और गयातीर्थ तथा ब्रह्महत्याविमोचनतीर्थ, एक एक पक्का कूप मात्र है। २३ दूसरे एक भागमें शङ्खतीर्थ, चन्द्रतीर्थ और सूर्यतीर्थ है। शेषोक्त दो तीर्थोंका उल्लेख सेतुमाहात्म्यमें नहीं है। २४ शङ्करभूपकृत शङ्करतीर्थ, २५ चक्रतीर्थ, शिवतीर्थ और साध्यामृततीर्थ एक एक कूपमात्र हैं। इन सब तीर्थोंकी पूजा और तर्पण दानादि करके अन्तमें रामेश्वरका अभिषेक और पूजा की जाती है।

द्वीपके उत्तरांशमें १००० फुट लम्बे और ३५७ फुट चौड़े सुविस्तृत स्थानमें रामेश्वरका मन्दिर बना है। इसकी ऊँचाई १२० फुट है और प्रवेशद्वार वा गोपुरकी ऊंचाई १०० फुट। इसकी सुवृहत् गुम्बज, स्तम्भश्रेणी, दीवालोंके शिल्प और प्रतिमूर्त्तियोंको देख कर आश्चर्य होता है। यह द्राविड़ी शिल्पका चरम निदर्शन है। स्थानीय प्रवाद है, कि काञ्चीपतिने सिंहलसे प्रस्तर मंगाकर उस पर पालिस कराके यह मन्दिर बनवाया था। परन्तु मन्दिरके देखनेसे मालूम होता है, कि उसका श्रेष्ठतम शिल्पनैपुण्ययुक्त चूनापत्थर (Limestone) का बना हुआ अंश उससे भी प्राचीन है। मदुराके एक नायकने धर्मप्रवृत्तिके लिए इसका अभ्यन्तर-प्राकार निर्माण कराया था। उसके बाद दो सेतुपति राजाओंने बहुत अर्थ व्यय करके बाहरका विचित्र चित्रपूर्ण शिल्पमय मण्डप बनवाया था। उन्होंने जिस धूसरवर्ण पत्थरसे यह मण्डप बनवाया था, समुद्रका नमक लग कर घसक जानेके भयसे उन्होंने उस पर मोटा पलस्तर लगवा दिया था। इसका खर्च समुद्र-तीरके बन्दरोंसे लिये हुए शुल्कमें-से हुआ था। इस मन्दिरके गठनकार्यमें और भी एक आश्चर्यकी बात यह है, कि इसका द्वारपथ और चंदोआ ४० फुट लम्बे एक पत्थरसे बना हुआ है और गर्भगृहके चारों ओरकी स्तम्भ श्रेणीयुक्त विस्तीर्ण आंगन उससे भी बढ़ कर आश्चर्यजनक है।

इस देवालयकी गठन-प्रणाली सम्पूर्ण द्राविड़ी ढंगकी है। अन्यान्य देवालयकी भांति क्रमशः अङ्गपुष्टि न हो कर समस्त नक्शोंको प्रानो एकत्र स्थिर करके किसी समय इसका निर्माण हुआ था। इसका बहिःप्राकार २० फुट ऊँचा और ४ गोपुरयुक्त है। पश्चिमका गोपुर सम्पूर्ण बना हुआ है और अन्य तीन असम्पूर्ण अवस्थामें पड़े हुए हैं। प्राकार और बरामदे इस देवालयके प्रधान गौरवके विषय हैं। इसकी लम्बाई लगभग ७०० फुट और चौड़ाई ४०० फुट है। लम्बाईका सारा अंश खुला हुआ है, चौड़ाई वा परिसरकी ओर स्तम्भों पर छत है। छत जमीनसे ३० फुट ऊंची है। यहांके स्तम्भोंका कारुकार्य चिदम्बरके पार्वती-परमेश्वरकी कनकसभाकी स्तम्भावलीके शिल्पसे किसी भी तरह कम नहीं है। प्रत्येक स्तम्भ पर नाना प्रकारकी देव-देवी और प्राचीन राजाओंकी मूर्त्तियां खुदी हुई है। ऐसा उत्कृष्ट कार्य दक्षिणदेशमें और कहीं भी नहीं है। गर्भगृहके सामने जो बरामदा है, उसके एक तरफ रामनादके राजाओंकी मूर्त्तियां खुदी हुई हैं। पुरातत्त्वविदोंका अनुमान है, कि ईसाकी १६वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें वा १७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें मदुराके पेदमल नायकने जब

सुन्दरेश्वरके मन्दिरका पुनः संस्कार और उसके आयतन को वृद्धिकी थी, सम्भवतः सेतुपतियोंने उसे देख कर ही रामेश्वरके मन्दिरका यह बड़ा बरमदा, मण्डप और प्राकार बनाया था। इसके बनानेमें कमसे कम पचास वर्ष लगे होंगे।

देवालयकी आमदनीसे रामेश्वरके बहुतसे वार्षिक उत्सव हुआ करते हैं, जिनमें १० प्रधान ये हैं:—

१ वैशाखमासकी शुक्ला षष्ठीसे लगा कर दश दिन वसन्तोत्सव।

२ ज्यैष्ठमासकी शुक्ला दशमीको प्रतिष्ठोत्सव।

३ आषाढ़मासके भरणी नक्षत्रमें देवीका प्रथम ध्वजोत्सव।

४ श्रावणमासमें उत्तर-फाल्गुनी नक्षत्रमें पांच दिन तक कल्याण (विवाह) उत्सव।

५ आश्विनमासकी प्रतिपदासे ले कर दशमी तक नवरात्रोत्सव।

६ कार्त्तिकमासकी कार्त्तिकी पौर्णमासीको ब्रह्मोत्सव।

७ अग्रहायण मासके भरणी नक्षत्रमें देवीका द्वितीय ध्वजोत्सव और शुक्ला त्रयोदशीको लक्षदीपोत्सव।

८ पौष-पूर्णिमाका उत्सव।

९ माघमासमें पञ्चदिवस व्यापी माघोत्सव और शिवरात्रोत्सव।

१० फाल्गुनमासमें महाभिषेकोत्सव।

रामेश्वर अध्वरसुधामणि—हरिहरतारतम्यकाव्यके प्रणेता।

रामेश्वरदत्त—वेदान्तचन्द्रिका नामकी वेदान्तसूत्रवृत्तिके प्रणेता।

रामेश्वरनन्दी—एक कवि। ये काशीदासकी तरह महाभारतका पद्यानुवाद करके कवि-जगत्‌में कीर्त्तिलाभ कर गये हैं। कवि भारतचन्द्रको तरह इनकी पल्लवित रचना देख ये काशीदासके परवर्त्ती कवि-सा बोध होते हैं।

रामेश्वर न्यायवागीश—प्रदीपमञ्जरी नामक अमरकोषकी टीकाके रचयिता।

रामेश्वर भट्ट—१ रसराजलक्ष्मी नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता तथा विष्णुके पुत्र। २ विवेकमार्त्तण्ड नामक योगशास्त्रके रचयिता। इन्होंने सुलतान गयासुद्दीनके आग्रहसे उक्त ग्रन्थ लिखा। ३ पदार्थादर्शके प्रणेता। ४ धर्मरत्नाकरके रचयिता। ५ भोजप्रबन्ध वर्णित एक कवि।

रामेश्वर भट्टाचार्य—एक साधक बङ्गाली ब्राह्मण। इन्होंने शिवायन, कपिलामङ्गल, सत्यनारायण आदि बनाये। ये वाक्‌सिद्ध पुरुष कह कर जनसाधारणमें परिचित थे। इनके प्रपितामहका नाम नारायण, पितामहका गोवर्द्धन तथा पिताका लक्ष्मण और माताका नाम रूपवती था। घांटालके निकटवर्त्ती वरदा परगनेके अन्तर्गत यदुपुरमें इनका जन्म हुआ।

यदुपुरमें रहते समय इन्होंने 'सत्यपीरको कथा' लिखी। इसके बाद मेदिनीपुरके अन्तर्गत कर्णगढ़के राजा रामसिंह और उनके लड़के यशोवन्तसिंहके सभासद हो वहां जा कर रहने लगे।

फिर किसी किसीका कहना है कि यह यशोवन्त सरफराज खांके प्रतिनिधि घालिब अलीके साथ १७३४ ई०में ढाकाके दीवान हो कर आये। दीवान होनेके पहले इन्होंने मुर्शिदकुलीके अधीनमें भी बड़ी प्रतिपत्ति पाई थी।

राजाके आदेशसे ये कांसाई तीरवर्त्ती अपने ननिहाल कपाशटिकरी गांवमें रहने लगे। इसी कंसावती तटको इन्होंने कौशिकी-तट नामसे वर्णन किया है। यहां और कर्णगढ़के अन्तर्गत महामाया देवीमन्दिरमें इनका पञ्चमुण्डी योगासन था। देहत्यागके बाद मन्दिरके पास इनकी समाधि हुई और उसकी बगलमें यशोवन्त सिंहकी भी समाधि हुई थी।

रामेश्वरभारती—त्रिंशच्छ्लोकी नामकी दीधितिके रचयिता।

रामेश्वर मैथिल—मिथिलावासी एक प्राचीन कवि।

रामेश्वर योगीन्द्र—नवार्णवपद्धति नामक तन्त्रग्रन्थके प्रणेता।

रामेश्वर शर्मन्—१ तन्त्रप्रभेदके रचयिता रामभद्रके पुत्र। २ शब्दमाला नामक अभिधानके प्रणेता।

रामेश्वर शास्त्री—१ सुदर्शनकालप्रभाके प्रणेता। २ विहारवापी नामक मीमांसा ग्रन्थके रचयिता। ये सुब्रह्मण्यके

गुरु थे। उक्त ग्रन्थमें माधव सर्वज्ञका उल्लेख है। २ अद्वैततरङ्गिणीके प्रणेता।

रामेश्वरशिवयोगिभिक्षु—मीमांसार्थसंग्रहकौमुदी और शिवाष्टमूर्त्ति-तत्त्वप्रकाशके प्रणेता। ये सदाशिव सरस्वतीके शिष्य थे।

रामेश्वर शुक्ल—दत्तकचन्द्रिका टीका, दीक्षाविनोद और दीक्षाविवेकके रचयिता।

रामेषु (सं० पु०) १ रामशर, सरकंडा। २ रामचन्द्रका वाण। ३ इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईख।

रामोत्तरतापनीय—रामतापनीयोपनिषद्‌का द्वितीय खण्ड।

रामोद (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।
(पा० ४।१।११०)

रामोदायन (सं० पु०) रामोद्रके गोत्रमें उत्पन्न एक पुरुष।

रामोपनिषद् (सं० स्त्री०) अथर्ववेदके अन्तर्गत एक उपनिषद्‌का नाम।

रामोपाध्याय (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

रामोपासक—राममन्त्रोपासक सम्प्रदायभेद। रामात् देखो।

राम्भ (सं० पु०) रम्भस्य विकारः रम्भ (पलाशादिभ्यो वा। पा ४।३।१४१) इति अण्। व्रतमें बाँसका बनाया हुआ दण्ड।

राम्या (सं० स्त्री०) १ रमणके लिये लाई गई। "स इधान उषसो राम्या" (ऋक् २।२।८) 'राम्या रमणहेतु-भूता।' (सायण) रात्रि, रात।

राय (सं० पु०) १ राज। २ छोटा राजा या सरदार, सामन्त। ३ सम्मानसूचक उपाधि। ४ रायबेल देखो। ५ भाट, बंदीजन। गन्धर्वोंकी उपाधि।

राय (फा० स्त्री०) सम्मति, सलाह।

राय—बम्बई प्रेसिडेन्सीके ठाना जिलेके शालसेट उप-विभागान्तर्गत एक बन्दर। यह घोर बन्दर परमिटके अन्तर्भुक्त है।

राय—१ पञ्जाब प्रदेशके शियालकोट जिलेकी एक तह-सील। यह इरावती नदीके दोनों किनारों तक विस्तृत है। भूपरिमाण ४७६ वर्गमील है।

२ उक्त तहसीलके अन्तर्गत एक गण्डग्राम और विचारसदर।

रायक—आसामप्रदेशके गारो पहाड़ जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह सोमेश्वरी नदीके तट पर अवस्थित है। यहां पुलिशकी फांड़ी है। इस गांवमें मछुओंकी ही संख्या अधिक है।

रायका—बम्बई प्रदेशके रेवाकान्था विभागान्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। यह वर्त्तमान दो सरदारोंके अधिकारमें है। ये बड़ोदाके गायकवाड़को बारह हजार रुपये कर देते हैं।

रायकोट—पञ्जाबप्रदेशके लुधियाना जिलेकी जगरावन तहसीलके अंदर एक नगर। यह अक्षा० ३०° ३६´ उ० तथा देशा० ७५° ३६´ पू०के मध्य अवस्थित है। जन-संख्या १०१३१ है। पहले यहां एक सामन्तराज्यकी राज-धानी थी। इस नगरमें इतिहास प्रसिद्ध रायकोटके रायवंश राज्य करते थे। ये जातिके राजपूत थे। पीछे इन्होंने इसलामधर्म ग्रहण किया। १४वीं सदीमें इनकी शौर्यवीर्यकी ख्याति चारों ओर फैल गई।

१२२३ ई०में इस वंशके प्रतिष्ठाता तुलसीदास नामक एक राजपूत जयशालमीरसे फरिदकोट आ कर रहने लगे। पीछे इसलामधर्ममें दीक्षित हो कर इन्होंने अपना नाम शेख चाच्छु रखा। इन्होंके वंशधर शाहजहानपुर और तालवन्दी नगर बसा कर अपना प्रभुत्व विस्तार कर गये। सम्राट् अलाउद्दीनने (सैयद-राज १४४५से १४७४ ई०) उन्हें रायकी उपाधि दी। १६२० ई०में उन्होंने लुधियाना अपने कब्जेमें कर राज्यशासन फैलाया। १८वीं सदीमें उनकी राज्य-सीमा शतद्रुके दोनों पार तक फैल गई।

सिख-शक्ति ह्रास हो जाने पर भी यहांके रायराजे १९वीं सदीके प्रारम्भकाल तक अपना राज्याधिकार अक्षुण्ण रखनेमें समर्थ हुए थे। इसी समय इन्होंने हरियानाके विख्यात वीर और सौभाग्यन्वेषी अंगरेज-युवक जार्ज टामसकी सहायता ली थी। १८०२ ई०में यहांके शेष स्वाधीन राजा राय एलायस इस लोकसे चल बसे। इसके बाद इनकी माता नूर-उल्-निसार-के हाथ राज्यशासनका भार पड़ा।

१८०६ ई०में महाराज रणजित् सिंह नाभा और झिन्द-पतिको पतियालाराज्यके विरुद्ध सहायता करनेके लिये

शतद्रु पार कर रायकोट आ पहुंचे। उन्होंने रानी नूर-उल्निसाको हरा कर उनका राज्य अपने और सहचरोंके बीच बांट दिया। नूरउल्निसाको रायकोट तथा अपरापर राजवंशधरोंको बहुत थोड़ी जागीर मिली। १८३१ ई०में नूरउल्निसाके मरने पर राय पलायसकी विधवा पत्नी बची खुची सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी हुईं। १८५४ ई०में जब उनकी मृत्यु हुई, तब अंगरेज-राजकी आज्ञानुसार दत्तक पुत्र इमामबख्श खाँको रायकी उपाधि और उक्त सम्पत्ति मिली। रायकोट और माला राजस्वके अतिरिक्त वे अंगरेज-गवर्मेण्टसे सालाना दो हजार रुपये पाते थे।

यहां एक वर्नाक्युलर हाइ-मिडिल स्कूल है जिसका खर्च म्युनिसपलिटीसे चलता है। अलावा इसके यहां एक गवर्मेण्ट अस्पताल भी है।

रायकोट्टई—मान्द्राजप्रेसिडेन्सके सालेम जिलेके कृष्णगिरि तालुकके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० १२° ३१´ उ० तथा देशा० ७८° ५´ पू०के बीच पड़ता है। १८७६-७८ ई०के दुर्भिक्ष तक पेनसन पानेवाले सेनाविभागके बड़े बड़े कर्मचारी यहां सुखमय स्वास्थ्यवास बना कर रहते थे। पीछे महामारीके भयसे आधेसे अधिक अधिवासी घर आदि छोड़ कर भाग गये।

इस नगरके उत्तर रायकोट्टई गिरिदुर्ग है जो बारमहल दुर्गका एक है। आज कल उसमें अंगरेज सैन्य रखे गये हैं। इसी दुर्गके समीप स्वनामख्यात गिरिसङ्कट है। १७९१ ई०में लार्ड कर्णवालिसको विख्यात दाक्षिणात्ययात्राके समय मेजर गावडीने इस पर दखल जमाया। १७९२ ई०की सन्धिके अनुसार यह अंगरेजोंके अधिकारमें आया। १७९९ ई०में श्रीरङ्गपत्तन अभियानकालमें जेनरल हारिसके अधीनस्थ अंगरेज सेनादलने दुर्गके पास छावनी डाली थी। समुद्रकी तहसे २४४१ फुट ऊंचा इस दुर्गका ध्वंसावशेष आज भी मौजूद है।

रायकरौंदा (हिं० पु०) बड़ा करौंदा, इसके फल छोटे बेरके बराबर, सफेद और गुलाबी रंग मिले बहुत सुन्दर होते हैं।

रायकवाल (हिं० पु०) वैश्योंकी एक जाति।

रायगञ्ज—दिनाजपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° ३७´ उ० तथा देशा० ४४° ६´ पू०के बीच कुलिक नदीके तट पर अवस्थित है। जनसंख्या ६०१ है। यहां चावल, पाट और भिन्न भिन्न अन्न आदिका विस्तृत कारबार है। अधिकतर यहांकी उपजको रपतनी नदी द्वारा ही होती है।

रायगढ़—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत देशी सामन्तराज्य। यह अक्षा० २१° ४३´ से २२° ३३´ उ० तथा देशा० ८२° ५७´ से ८३° ४८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १४८६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें छोटानागपुरके अन्तर्गत सरगुजा और गाङ्गपुर राज्य, दक्षिणमें महानदी, सम्बलपुर जिला, कोद्रावागा जमींदारी और गाङ्गपुरका कुछ अंश और पश्चिममें चन्द्रपुर और शकटी पड़ता है।

दक्षिणमें महानदी तक विस्तृत स्थानमें उत्तमरूपसे खेतीबारी होती है। उत्तर और पूर्व पहाड़ों और वनोंसे घिरा हुआ है। इन वनोंमें अधिक शालके पेड़ पाये जाते है। कहीं कहीं रेशमके कीड़े, लाख और धूना उपजता है। महानदी तथा उसकी तेड़ी, खान और खेलु नामकी तीन शाखा स्थानीय जलसरबराहका एकमात्र उपाय है। चावल, ईख, कपास, सरसों, गेहूं और चना यहांकी प्रधान उपज है। कपास और तसरसे यहां एक तरहका कपड़ा तैयार होता है। यहां लोहे और कांसेके बरतनोंका सामान्य कारबार भी है। बंगाल-नागपुर रेलवेकी सड़क इस सामन्तराज्यके बीचो बीच हो कर दौड़ गई है।

यहांका सरदार-वंश गोंड़ जातीय है। कहते हैं, कि इस वंशके ठाकुर दरियावसिंह नामक एक व्यक्तिने मराठोंको खासी मदद पहुंचाई थी जिससे उन्हें राजाकी उपाधि मिली। यहांके वर्त्तमान सरदार भूपदेव सिंह हैं। इनका जन्म १८६९ ई०में हुआ था तथा १८९४ ई०को गद्दी पर बैठे।

रायगढ़के सामन्तराजके अधीन और भी चार सरदार हैं उनमेंसे मनजार सिंह १२, अमर सिंह ५, ठाकुर रघुनाथ सिंह ३० तथा ठाकुर परमेश्वरसिंह ३० गांवका शासन करते हैं। वे सबके सब राजाके आत्मीय हैं। जनसंख्या १७४९२९ है। इस सामन्तराज्यमें राज-

गढ़ नामका एक शहर और ७२१ गांव लगते हैं । यहां कुल मिला कर २४ स्कूल हैं जिनमें इंगलिश और वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और दो कन्या पाठशाला है। यहां एक अस्पताल है जिसका खर्चा वर्चा रायगढ़ शहरसे चलता है । प्रतिवर्ष यहां ३७०००से अधिक रोगियोंकी चिकित्सा हुई थी ।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° ५४´ उ० तथा देशा० ८३° २४´ पू० केलो नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ६७६४ है। यह कलकत्तेसे ३६३ मील दूर बंगाल-नागपुर रेलवे लाइन पर पड़ता है। इस नगरमें तसरका कारबार जोरों चलता है। यहां एक अंगरेजी स्कूल, एक प्रायमरी स्कूल, एक कन्या पाठशाला और एक अस्पताल है ।

रायगढ़—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके कोलावा जिलान्तर्गत एक एक नगर और गिरिदुर्ग। यह अक्षा० १८° १४´ उ० तथा देशा० ७३° २७´ पू०के मध्य पूनासे तीस मील दक्षिण-पश्चिम पड़ता है। इसकी चोटी समुद्रपीठसे २४५१ फुट ऊंची है। लोग इसे रायरी कहते थे। अंगरेजोंने इसका नाम Gibralter of the East रखा । महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीने अपने राज्यकालका शेष सोलह वर्ष (१६६४-८०) इसी दुर्गमें रह कर बिताया था। उस समय रायगढ़ राजधानी नाना श्रीसमृद्धिमें भूषित थी।

सह्याद्रिके उत्तरघाटशैलके एक टूटे फूटे खंड पर दुर्ग स्थापित है। इसकी अधित्यकाभूमि और मूल पर्वतकी चोटी दो मीलके फासले पर है। जहां यह दुर्ग अधिष्ठित है उसकी अधित्यकाभूमि पूर्व पश्चिम डेढ़ मील लम्बी और उत्तर-दक्षिण एक मील चौड़ी है। भीतर जानेके लिये पश्चिम और दक्षिणमें सिर्फ दो दरवाजे हैं। इसके सिवा दुर्गमें घुसनेका और कोई रास्ता नहीं है। दुर्गका दक्षिण और पूर्व पर्वतगात्र इतना सीधा और ऊंचा है, कि उसे पार कर ऊपर उठना मुश्किल है। इन तीन दिशाओंके रक्षणार्थ किसी प्राचीर और परिखेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। दाक्षिणात्य और समुद्र उपकूलमें आने जानेकी सुविधा रहनेसे यह दुर्ग पहले हीसे प्रसिद्ध था।

१२वीं सदीमें रायरीमें एक महाराष्ट्र सामन्तवंशका राज्य प्रतिष्ठित था। १६वीं सदीमें यहांके सरदारोंने विजय-नगराधिपकी वशता स्वीकार कर ली। १५वीं सदीके मध्यभागमें द्वितीय ब्राह्मणीराज अल्लाउद्दीन शाहने रायरी सरदारोंसे कर वसूल किया था। १४७६ ई०में यह नगर अहमदनगरके निजामशाही राजाओंके दखलमें आया। १६३६ ई०में मुगल-सेनापतिने अहमदनगरसे राजाको पराजित कर रायरी राज्य बीजापुरके आदिलशाही राजाओंके हाथ सौंप दिया। जब बीजापुरराजवंशके अधिकारमें यह स्थान आया, तब इसका नाम इसलामगढ़ हो गया। उन्होंने इस सामंतराज्यका शासनभार जंजिरावासी सिद्दियोंके ऊपर दिया। उस समय यहां एक दल मराठी-सेना रखी गई।

१६४८ ई०में रायरी शिवाजीके हाथ आया। उन्हें जब कोई उपयुक्त स्थान न मिला तब उन्होंने यहीं राजधानी कायम की और इसका नाम बदल कर रायगढ़ रखा। उन्होंके यत्नसे यहां राजप्रासाद, खजाना, राजकीय कार्यालय, टकसाल, शस्यभाण्डार, अस्त्रागार, बारूदखाना, सेनावास आदि तीन सौ पत्थरकी अट्टालिका बनी थी। इन्होंने अपनी पहाड़ी प्रजाओं और कर्मचारियोंके खान-पानकी सुविधाके लिये एक बड़ा बाजार और जलकी सुविधाके लिये बहुतसे तालाब बनाये थे। जब यह स्थान धन और जनसे पूर्ण हो गया, तब उन्होंने इसकी सुरक्षाका बन्दोबस्त कर दिया।

१६६४ ई०में शिवाजीने सूरत लूटा और उसी लूटके धनसे अपना खजाना भरा तथा बहुतसे कामोंमें रुपये खर्च कर रायगढ़ नगर राजधानीको उपयुक्त समृद्धिशाली बना दिया था। उक्त वर्षमें जब इनके पिताकी मृत्यु हुई तब ये रायगढ़ आये और राजाकी उपाधि ले कर इन्होंने अपने नामका सिक्का बनवा कर प्रचार किया। १६७४ ई०में इस रायगढ़में इन्होंने बड़े समारोहके साथ स्वाधीन भावसे राज्याभिषेक सम्पन्न किया था।

१६६० ई०में औरंगजेबने रायगढ़ जीता, पर मुसलमानोंकी शक्ति ह्रास हो जाने पर यह फिर मराठोंके हाथ आया। अप्रिल महीनेमें अंगरेजसैन्यने रायगढ़ पर

हमला किया। कालाकाई गिरिश्रृङ्गसे १८ दिन तक अनवरत गोला बरसानेके बाद यह दुर्ग अंगरेजोंके हाथ आया था। इस दुर्गके ध्वंसावशेषमें पांच लाख रुपये मिले थे।

रायगढ़—अयोध्याप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर। यह विहारसे छः मील दूर पड़ता है। यहां तीन हिन्दूमन्दिर और एक मसजिद है।

रायगुडु—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विशाखपत्तन जिलेके जयपुर जमींदारीके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० १९° ६' ४०" उ० तथा देशा० ८३° २७' ३०" पू० तक विस्तृत है। जयपुरके राजाका एक प्रासाद यहां था। अभी राजा यहां नहीं रहते। यहां आज कल उत्कल ब्राह्मणोंकी ही वास अधिक है।

रायचटी—१ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कड़ापा जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १३° ५०' से १४° २०' उ० तथा देशा० ७८° २५' से ७९° १०' पू०के बीच पड़ता है। भूपरिमाण ६६८ वर्गमील है। इस उपविभागका अधिकांश स्थान ही पर्व्वतमय है। तालुकमें रामचटी नामका एक शहर और ८७ गांव लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका सदर और जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १४° ४' उ० तथा देशा० ७८° ४६' पू०में माण्डवी नदीके उत्तर किनारे अवस्थित है। यहां हर साल रथयात्रा उत्सवमें मेला लगता है जिसमें लगभग छः हजार मनुष्य जुटते हैं।

रायच्चूड़—हैदराबादके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १५° ५०' से १६° ५४' उ० तथा देशा० ७६° ५०' से ७८° १५' पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण ३६०४ वर्गमील है। इस जिलेमें ये सब मुख्य शहर हैं,—रायच्चूड़, गद्वाल, कोपाल, मुद्गल, देवदुर्ग, कल्लूर और मानभी। जनसंख्या ५०६२४६ है, जिसमें हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ६० है। यहांकी भाषा तेलगू, कणाडी और उर्दू है। रायच्चूड़ तिजारतका केन्द्र है। यहां सूती कपड़े और आलमपुर तालुकमें सतरंजी और तरह तरहके रंगीन कपड़े तैयार होते हैं। यह जिला तीन सब डिमीजनोंमें विभक्त है।

रायच्चूड़—दाक्षिणात्यके निजामअधिकृत हैदराबादका एक नगर और दुर्ग। यह अक्षा० १६° १२' उ० तथा देशा० ७७° २१' पू०में कृष्णा और तुंगभद्रा नदीके ठीक बीचमें अवस्थित है। जनसंख्या २२१६५ है, जिनमें हिन्दूकी ही संख्या सबसे अधिक है, नगरके बीच दुर्गकी शोभा बड़ी ही सुन्दर है और वही उल्लेखके योग्य है। दुर्गके पश्चिम द्वार थोड़ी दूर पर प्राचीन राजप्रासादका टूटा फूटा खंडहर पड़ा है जो अभी कारागारमें परिणत हो गया है। दुर्गके पूरब नगर और बाजार है। नगरका पथ घाट और अट्टालिका आदिकी गठन बड़ी ही सुन्दर है। काठके तख्ते और मसृण मृत्पात्रके लिये यह स्थान बड़ा मशहूर है। ग्रेटइंडियन पेनिसुलार और मन्द्राज रैलवे-स्टेशन नगरसे आध कोस पड़ता है।

रायज (अ० वि०) जिसका रवाज हो, जो व्यावारमें आ रहा हो, चलनसार।

रायडाक—उत्तर बंगमें प्रवाहित एक नदी। यह भूटानपर्वतसे निकलती है और पश्चिम-द्वारके बीच होती हुई जलपाईगोड़ी और भुञ्जकुटीके समीप हो कर कुचविहारमें घुसती है।

रायण (सं० क्ली०) १ पीड़ा। २ क्रन्दन, रोना। ३ चीत्कार।

रायणेन्द्र सरस्वती—प्रश्नोपनिषद्भाष्यकी भाष्यविवरण नामक टीकाके प्रणेता। ये कैवल्येन्द्रके शिष्य थे।

रायता (हिं० पु०) दही या मट्ठेमें डुबा हुआ साग, कुम्हड़ा, लौआ या बुंदिया आदि जिसमें नमक, मिर्च, जीरा आदि मसाले पड़े रहते हैं।

रायदुर्ग—१ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके बेलुरी जिलान्तर्गत एक तालुक और उपविभाग। यह अक्षा० १४° २४' से १५° ४' उ० तथा ७६° ४७' से ७७° २१' पू० तक विस्तृत है। जनसंख्या ८२७८१ है। इस तालुकमें सिर्फ एक शहर रायदुर्ग और ७१ गांव लगते हैं। यहांकी जनसंख्या और सब तालुकोंसे जो इस जिलेमें है, कम है। आधेसे अधिक मनुष्य तेलगू और बांकी कणाडी भाषा बोलते हैं। यहांके लोग बिलकुल अनपढ़ हैं। इस तालुकमें बहुत कुएं और झरने हैं जो साल सालमें खोद कर निकाले जाते हैं। बहुत जमीन रहनेसे सींची जाती है इससे धान बहुतायतसे उपजता है। कुछ जमीन ऊसर भी है।

२ बेलरी जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १४° ४२´ उ० तथा देशा० ७६° ५१´ पू०में अवस्थित है। जनसंख्या १०४८८ है। यह नगर साफ सुथरा सुन्दर तौरसे सजा हुआ और दुर्ग द्वारा सुरक्षित है। पास ही एक गिरि-दुर्ग है जिसकी ऊंचाई १२०० फुट है। इस पर्वतकी दक्षिण दिशा सरल और दुरारोह है। नीचे केल्ला परिखा प्राचीर और वप्रादिसे सुरक्षित हैं। यहांसे पहाड़ काट कर एक संकीर्ण पथ निकाला गया है जो केल्ला तक चला गया है। पथके बीच बीचमें एक एक भीतर घुसनेका द्वार है और प्रत्येक द्वारके बाद ही दुर्गकी सुरक्षाका स्वतन्त्र बन्दोबस्त है। इस पथका आधा आने पर पलेगार-सरदारोंका प्राचीन प्रासाद दिखाई पड़ता है। साधारणका विश्वास है, कि १६वीं सदीके प्रारम्भमें यह प्रासाद बनाया गया था। राजप्रासादके समीप ही राम और कृष्णके दो सुन्दर मन्दिर हैं। इसके अलावा पर्वतके ऊपर अनेक अट्टालिका और उद्यान आदिका ध्वंसावशेष पड़ा हुआ है। अभी वहां कोई नहीं रहता।

रायदुर्गके प्राचीन पलेगारगण 'रोया' कहलाते हैं। इस वंशके जंग नामक एक सरदारने उपरोक्त दुर्ग और राज प्रासाद बनवाया था। १६वीं सदीके अन्तमें विजयनगरराजके पदच्युत किसी प्रधान सेनापतिके वंशधरने यहांके पलेगार-सरदारको गद्दीसे उतार दिया और निकटवर्त्ती कोण्डेरपि दुर्ग जीत कर दोनों जगह अपना आधिपत्य फैलाया। १७६६ ई०में शीरा अवरोधके समय पलेगारोंको हैदरअलीने सहायता पहुंचाई और आप राजा हो कर पलेगार सरदारको यह स्थान उपहारमें दिया था, तथा उक्त सम्पत्तिका राजस्व पचास हजार रुपये धार दिये। इसके बाद पलेगार-वेङ्कटपति नायकोने टीपू सुलतानको अदोनीकी चढ़ाईमें सहायता देना नामंजूर कर दिया, जिससे टीपूकी क्रोधाग्नि धधक उठी और राय दुर्ग पर हमला कर पलेगार सरदारोंको श्रीरङ्गपत्तनमें बन्दी कर ले आये। यहां वेङ्कटपति उनकी आज्ञासे यमपुर भेज दिये गये। इसके कुछ काल बाद ही लार्ड कर्णवालिसने राय-दुर्ग पर चढ़ाई कर दी और दुर्ग अपने कब्जेमें कर लिया।

१७९९ ई०में वेङ्कटपतिके भांजे गोपाल नायक श्री-रङ्गपत्तनसे कारामुक्त हो कर राय दुर्ग भाग आये और शीघ्र ही एक दल सेना इकट्ठी कर रायदुर्ग अधिकार करनेमें लगे। इसी समय निजामने रायदुर्गका सुशासन और बन्दोबस्त करनेके लिये महम्मद अमीन खांको भेजा। निजामकी सेना और गोपालमें मुठभेड़ हुई। गोपाल हार खा कर बन्दीरूपमें हैदराबाद भेजे गये। अंगरेजोंके हाथमें आनेके बाद गोपाल गुट्टीमें नजरबन्द रहे। उनके जीते तथा मरने तक भी अंगरेज-राजने उनके परिवारको मासिक दरमाहा दिया था।

रायदुर्लभ—बंगालके इतिहासमें प्रसिद्ध एक कायस्थ राज-पुरुष। इनका असली नाम महाराज दुर्लभराम सोम था। ये दक्षिण-राढ़ीय कायस्थ थे।

मिरजा महम्मदके दो पुत्र थे—हाजी अहमद और मिरजा महम्मद अली। मिरजा अहमद अली छोटे थे। इन्होंने पीछे सूबा-बंगालकी गद्दी पर अधिकार कर लिया था और 'अलीवर्दी-मुहब्बत-जंग' उपाधि धारण की थी।

सुजा उद्दीन् खांके अनुग्रहसे अलीवर्दी असुरेश्वर नामक उड़िष्याके एक परगनेके तहसीलदारीके काम पर नियुक्त हो कर जानकीराम सोम नामक एक उच्चवंशके कायस्थको अपने नीचे पेशकार नियुक्त किया। जानकी-राम थोड़े ही दिनोंमें अपनी कार्य्य-कुशलता, बुद्धि-मत्ता और विश्वस्तताके कारण अलीवर्दीके विशेष प्रिय-पात्र हो गये। अलीवर्दीकी पदोन्नतिके साथ-साथ जानकीरामकी भी पदोन्नति होने लगी; क्योंकि अलीवर्दी जानकीरामको सर्वदा अपने पास रखना पसन्द करते थे।

मुर्शिदाबादके निकटवर्त्ती गड़िया नामक स्थानमें सरफराज खांके पराजित और मारे जाने पर अलीवर्दी बंगाल, बिहार और उड़िष्याके सूबेदार हुए। अलीवर्दी जानकीरामको कभी अपनेसे दूर न रखते थे। जानकीराम मुर्शिदाबादकी निजामतके सब कामोंके मुख्तार नियुक्त हुए। थोड़े ही दिनोंमें अलीवर्दीने उन्हें कर विभागका दीवान बना दिया।

१७४० ई०में दिल्लीके बादशाह महम्मदशाह दाक्षि-णात्यको 'चौथ' देनेका हुक्म दे कर प्रबल पराक्रान्त महाराष्ट्रों

के साथ सन्धि करनेको बाध्य हुए थे। चौथ देना स्वीकार करने पर भी बादशाह मराठोंको पूरे रुपये न दे सके। इधर अलीवर्दीने भी बादशाहकी अनुमतिके बिना सूबा-बंगाल पर अधिकार कर लिया था, इस लिये बादशाहने बंगालसे चौथ वसूल करने और अलीवर्दीको दमन करनेके लिए मराठोंको अनुमति दे दी। इस चौथ वसूलीके बहाने इन्होंने बंगालकी प्रजा पर अत्याचार करना और लूटना शुरू कर दिया। अलीवर्दी खाँ उचित उपायसे इसका प्रतीकार न कर सके और इसलिए उन्होंने असत् उपाय अवलम्बन करनेकी ठान ली। उन्होंने सन्धिका प्रस्ताव करके जानकीरामको महाराष्ट्र-सेनापति भास्कर पण्डितके शिविरमें भेजा। जानकी-रामके वाक्य-कौशलसे मुग्ध हो कर भास्कर पण्डित अलीवर्दी खाँसे संधिकी बातचीत तय करनेके लिए उनसे साक्षात् करनेको तैयार हो गये। दोनों पक्षोंकी सम्मति-से वर्द्धमान जिलेके मानकर नामक स्थान साक्षात्के लिए तय हुआ। मराठोंको अपने तम्बूमें पा कर किस तरह उन्हें मार डालना होगा, इस बातका इन्तजाम अलीवर्दीने पहलेसे ही ठीक कर रखा था। उन्होंने जानकीराम, मुस्तफा खाँ और मिरजा हकीम-बेग खाँ-के सिवा यह बात किसीको जाहिर नहीं की थी। तम्बूमें प्रवेश करते ही मुस्तफा खाँ और नवाबके अन्यान्य सेनापतियोंने चारों तरफसे मराठों पर आक्रमण किया। भास्कर पण्डितका मस्तक अलीवर्दी खाँके सामने पेश किया गया। सेनापतिकी मृत्युसे मराठा सेना कांटोआ छोड़ कर भाग गई। जानकीरामकी मन्त्रणापटुतासे कुछ समयके लिये अलीवर्दी खाँने मराठोंके उपद्रवसे निस्तार पाया। इस कारण जानकी-रामको "दीवान-ए तन" की उपाधि प्रदान की गई और कुछ ही समय बाद उन्हें समरविभागका प्रधान दीवान बना दिया गया।

उस समय सिराज-उद्दौलाकी उमर ज्यादा न थी। अलीवर्दी खाँ उस तरुणवयस्क युवकको इतना बड़ा राज्य सौंप कर निश्चिन्त न थे। उन्होंने अपने प्रधान विश्वस्त कर्मचारी और प्रिय मन्त्री जानकीरामको बिहारका नायब-सूबेदार नियुक्त किया। जानकीरामको इस उपलक्षमें सम्मानसूचक झालरदार पालकी और नौबत प्राप्त हुई। यद्यपि जानकीराम सिराज-उद्दौलाके अधीन थे, तथापि राज्यशासनका भार असलमें उन्हीं पर था।

जानकीरामने इस उच्च पद पर नियुक्त हो कर विशेष प्रशंसाके साथ कार्य चलाया था। उन्होंने अबाध्य जमींदारोंको वशमें किया था और तहसीलका अच्छा इन्तजाम करके कर अच्छी तरह वसूल करने लगे। बिहारमें बादशाहके दरबारके उमरावोंकी जो जायदाद थी, उसका लगान उन्हें न मिलता था। जानकीराम सब तहसील वसूल करके नियमितरूपसे दिल्ली भेजने लगे। इससे उमराव उन पर बहुत खुश थे और मौका पाते ही बादशाहसे उनकी कार्यदक्षताकी प्रशंसा करते रहते थे। बादशाहने जानकीराम पर प्रसन्न हो कर उन्हें महाराज बहादुरका खिताब और "छःहजारी" मनसबदारी तथा झालरदार पालकी, नौबत, कलम, शमशेर, ढाल और चामर इत्यादि व्यवहार करनेका आदेश दिया। दुर्लभराम इन्हीं महाराज जानकीरामके ही ज्येष्ठपुत्र थे।

दुर्लभरामने योग्य पिताकी देखरेखमें थोड़ी ही उमर में तत्कालीन राजनैतिक विषयोंमें अभिज्ञता प्राप्त कर ली थी। नवाब अलीवर्दी महाराज जानकीरामके पुत्रों-को हमेशा स्नेहकी दृष्टिसे देखते थे। इस बात पर भी नवाबका लक्ष्य था, कि उन सबको यथोचित कार्य मिले। जानकीरामके कौशलसे मराठोंके उपद्रवसे देशकी रक्षा होने पर नवाबने दुर्लभरामको उड़िष्याका सूबेदार बनाने-का अभिप्राय प्रकट किया, किन्तु उस समय दुर्लभराम उक्त पद ग्रहण करना अंगीकार नहीं किया। वे अली-वर्दीके प्रिय उड़िष्याके सूबेदार अबदुस सुभानके दीवान हो गये। थोड़े दिन बाद अबदुस सुभानकी मृत्यु होने पर दुर्लभरामको "राजा"की उपाधि दे कर उड़िष्याका सूबेदार बना दिया गया (१७४९ ई०)। इसके कई मास बाद ही नागपुरसे मराठा सेनाने आ कर अकस्मात् उड़िष्या पर आक्रमण कर दिया। दुर्लभराम तैयार न थे। तथापि वे जल्दी जल्दीमें कुछ सेना संग्रह करके आत्मरक्षाके लिए प्रस्तुत हो गये। परन्तु अतर्कित आक्रमणको रोकनेमें वे सफल न हुए। मराठा सर-

दार उन्हें कैद करके नागपुर ले गये। वहां वे कुछ समय तक कारागारमें बंद रहे। दुर्लभराम एक अच्छे गायक भी थे—कारागारमें कैदी हालतमें भी वे जी खोल कर गाया करते थे। एक दिन सरदारकी स्त्री उनका गाना सुन कर मुग्ध हो गईं और सरदारसे बोली—'जो आदमी जेलखानेमें रह कर भी मौजसे गाना गाता है, उसे कैद रखनेसे क्या लाभ?' सरदारने उसी दिन दुर्लभरामको छोड़ दिया और साथ ही इस बातका भी इन्तजाम कर दिया, कि जिससे उन्हें कोई तकलीफ न हो। इसके बाद बीच बीचमें दुर्लभराम सरदारको गाना सुनाया करते थे। खैर जो हो, नवाब अलीवर्दीने मराठा-सरदारको तीन लाख रुपया भेज कर तथा बंगालकी चौथके बदले उड़िष्याकी आमदनी छोड़ देनेकी स्वीकारता दे कर दुर्लभ रामको अपने यहां बुला लिया। दुर्लभरामके मुर्शिदाबाद आने पर उन्हें दीवानकी निजामत पर मुकर्रर किया गया।

१७५३ ई०में अलीवर्दीके विश्वस्त मित्र महाराज जानकीरामकी मृत्यु हुई। नवाबने चारों पुत्रोंको शोककी खिलअत दे कर समवेदना प्रकट की। जानकीराम कई लाख रुपया खर्च करके दक्षिणराढ़ीय कायस्थसमाजके गोष्ठीपति हुए थे। पिताकी मृत्यु होने पर राजा दुर्लभ-रायने पदोचित सम्मानकी रक्षार्थ समस्त दक्षिणराढ़ीय समाजको निमन्त्रण दे कर बड़े समारोहके साथ पिता-का आद्यश्राद्ध किया। कहते हैं, कि ऐसे समारोहके साथ श्राद्ध कायस्थसमाजमें पहले कभी नहीं हुआ था। स्वयं नवाब और समस्त बंगालके राजा लोग श्राद्धसभा-में उपस्थित हुए थे।

राजा दुर्लभराम पिताके नाम पर खालसा और दीवान ए-तनका कार्य्य चलाते थे, अब वे ही स्थायिरूप-से उक्त श्रेष्ठ पद पर नियुक्त किये गये। रामनारायण महाराज जानकीरामके अधीन दीवान थे, अब दुर्लभ-रामकी कृपासे वे भी बिहारके नायब सूबेदार हो गये।

नवाब अलीवर्दी खांने मृत्युसे कुछ समय पहले अपने प्रिय दौहित्र सिराजउद्दौलाको बंगाल, बिहार और उड़िष्याका नायब सूबेदार बनाया था, परन्तु उस समय उक्त तीनों प्रदेशोंका राजकीय कार्य्यभार सब राजा दुर्लभरामके ही हाथमें था। सिराज नाममात्रके लिए सूबेदार होने पर भी कुचक्रियोंके परामर्शमें आ कर उन्होंने खर्च करनेकी चेष्टा की थी। यहां तक कि दुर्लभ-रामको मारनेके लिये अलीवर्दीके विरुद्ध विद्रोहाचरण करनेमें भी कोई कसर न छोड़ी थी। परन्तु इस समय-की नवाबी सेना दुर्लभरामके अधीन थी और स्वयं नवाब उनके अनुकूल थे, इसलिये सिराज उनका कुछ कर न सके।

१७५६ ई०की ६वीं अप्रेलको अलीवर्दीका देहान्त हुआ और सिराज बंगाल, बिहार और उड़ीष्याके नवाब हुए। सिराजने एकाधिपत्य प्राप्त करके सबसे पहले दुर्लभरामकी क्षमता घटानेकी तरफ ध्यान दिया। परंतु सहसा उद्देश्य सिद्ध न हो सका। इसी समय अङ्गरेज़ कंपनीने भी अपना सिर ऊंचा करना शुरू किया। दाक्षिणात्यमें अङ्गरेज और फरासीसियोंमें युद्ध होनेकी सम्भावना थी। अङ्गरेजोंने फोर्ट विलियमके किलेको मजबूत करनेकी तैयारियां कर दीं। यह समाचार शीघ्र ही सिराजके कर्णगोचर हुआ। उन्होंने इस समय दुर्लभरामको नाराज करना उचित न समझा और उन्हें अङ्गरेजोंको कलकत्तेका दुर्ग बनानेसे रोकनेका आदेश दिया। अंग्रेजोंके इतस्ततः करने पर उन्होंने दुर्लभ-रामको ३००० सेनाके साथ कासिमबाजारकी कोठी पर अधिकार करनेके लिए भेजा और खुद भी १ली जूनको सेना सहित कासिमबाजारकी तरफ रवाना हुए। वाट्स साहब आ कर दुर्लभरामके शरणापन्न हो गये। ४थी जूनको दुर्लभरामके हाथ कासिमबाजारका दुर्ग सौंप दिया गया। इस बात पर दुर्लभरामने लक्ष्य रखा कि अङ्गरेजों पर किसी तरहका अत्याचार न होने पावे।

सिराज जिस समय नायब सूबेदार थे, उस समय मोहनलाल नामका एक साधारण कायस्थ उनका मुन्शी था। पीछे वह दुर्लभरामके नीचे नायब नियुक्त हुआ था। सिराजने सूबेदार होनेके थोड़े दिन बाद ही अपने प्रियपात्र मोहनलालको नायब सूबेदार बना कर उन्हें महाराजा बहादुरका खिताब दिया और सातहजारी मनसबदार बना दिया। मोहनलाल दीवान-ए-खालसा

उल्-मोहन अर्थात् सर्वप्रधान मन्त्री नियुक्त हुए। मीर जाफरको पदच्युत करके उनके स्थान पर मीरमदन नामक एक मामूली आदमीको प्रधान सेनापतिका पद दिया गया। इस प्रकारके ऊटपटांग कार्य देख कर अलीवर्दीके जमानेके राजपुरुषगण बड़े नाराज हुए। खास कर दुर्लभराम और मीरजाफरको बहुत बुरा मालूम हुआ। जो व्यक्ति उनके अधीन थे, वे अब उनसे ऊपर बैठेंगे और उन पर हुकूमत करेंगे, इस बातको अभिमानी दुर्लभराम और मीरजाफर उपेक्षा न कर सके।

सौकतजंगके मनोगत अभिप्राय समझनेके लिए राजा दुर्लभरामके कनिष्ठ भ्राता रासबिहारीको पहले हीसे बीरनगर और गोन्दोआका फौजदार बना कर भेज दिया गया था। अब (१७५६ ई० नवम्बर) सिराज स्वयं मोहनलाल, मीरजाफर, दुर्लभराम आदिके साथ सेना सहित सौकतजंगके विरुद्ध अग्रसर हुए। दोनों पक्षमें घमसान युद्ध हुआ। इस समय श्यामसुन्दर नामक एक बंगाली कायस्थने गोलन्दाज सेनाके सेनापतिके रूपमें सौकतजंगको तरफसे ऐसी वीरता थी कि प्रधान प्रधान मुसलमान सेनापतियोंके सिर झुक गये थे। कुछ भी हो, इस युद्धमें विजय सिराजको ही तरफ रहा, और मोहनलालके पुत्रको सौकतजंगके पद पर पूर्णियाका नायब-सूबेदार नियुक्त हुआ। पहले रायदुर्लभके छोटे भाई रासबिहारीको यह पद देनेकी बात थी, अब उसका खाक परवाह न की गई। जिससे दोनों भाई मनही मन बड़े नाराज हुए। इस समय भी दुर्लभराम मुसलमान दरबारमें बंगालके हिन्दुओंके नेता समझे जाते थे। अब उस अत्युच्च सम्मान पर आघात पहुंचनेकी आशङ्कासे दुर्लभराम कुछ सावधान हुए और ऐसे उपाय करने लगे कि जिससे युवक नवाब उनका कुछ बिगाड़ न सकें। इस समय बंगालके समस्त राजस्वविभाग और सम्पूर्ण राजकोष उन्हींके अधीन था, सेनाकी तनखा तय करनेका भार भी उन्हीं पर था।

सौकतजंगका झमेला पूरी तरहसे मिट भी न पाया था, कि सिराजको खबर लगी कि अङ्गरेजोंने (जनवरी, १७५७ ई०) माणिकचंदको भगा कर कलकत्तेके दुर्ग पर अधिकार कर लिया है और उसकी हिफाजतसे रक्षा करनेकी तैयारी भी कर रहे हैं। शीघ्र ही उन्होंने दुर्लभराम और सेना-सामन्तोंके साथ कलकत्तेको तरफ कूच कर दिया। २री फरवरीको वे कलकत्ता आ पहुंचे। सिराजकी विपुल सेना देख कर क्लाइव सन्धि करनेको व्यग्र हो उठा और इसके लिए दुर्लभरामकी शरण आया। वाल्स और स्क्राफटन प्रतिनिधिके तौर पर नवाबके शिविरमें आये। मंत्री दुर्लभराम उनकी तलाशी ले कर कि उनके पास पिस्तौल या और कोई अस्त्र है या नहीं, उन्हें नवाबके सामने ले गये। उन लोगोंने दुर्लभरामके हाथ सन्धिकी अरजी दाखिल की। नवाबने उन लोगोंको राजा दुर्लभरामके शिविरमें आ कर सन्धिपत्रके विषयमें कर्त्तव्य स्थिर करनेके लिये आदेश दिया। बादमें दोनों अंग्रेजदूत जब बाहर आये, तो अमीचंदके मुंह सुना, कि अभी तक नवाबकी तोपें न आ पाई हैं। शीघ्र ही क्लाइवको इस बातका पता लग गया। तुरंत ही अंग्रेजोंने उस अंधेरी रातमें अकस्मात् नवाबके शिविर पर हमला कर दिया। अकस्मात् रात्रिके आक्रमणसे सिराज कुछ विचलित हो गये। कुछ भी हो, दोनों पक्षोंमें तुमुल युद्ध हुआ। अंग्रेज लोग ही आखिर हारे, लेकिन डरपोक नवाबने सन्धि करना ही ठीक समझा। ९वीं फरवरीको दोनों पक्षोंमें सन्धि हो गई। इस सन्धिपत्रमें अंगरेजोंकी तरफसे कर्नल क्लाइवने और नवाबकी तरफसे प्रधान सेनापति मीरजाफर और मंत्री दुर्लभरामने हस्ताक्षर किये।

इसके बाद अंग्रेज और फरासीसियोंमें युद्ध शुरू होने पर अंग्रेजोंके चन्दननगर पर आक्रमणके लिए अग्रसर होनेका समाचार पा कर सिराजने फरासीसियोंकी मददके लिए राजा दुर्लभरामको सेना-सहित भेजा। हुगलीसे १० कोस उत्तरमें दुर्लभरामके साथ हुगलीके फौजदार नन्दकुमारकी भेंट हुई। नन्दकुमारने उनसे यह कह कर कि—"सहायता पहुंचनेसे पहले ही फरासीसी लोग आत्म-समर्पण कर देंगे, अब जानेकी जरूरत नहीं"—उन्हें जाने न दिया। बहुतोंका ऐसा कहना है, कि अंग्रेजोंसे रिश्वत ले कर नन्दकुमारने ऐसा अनुचित कार्य किया था और इसके लिए वे शीघ्र ही पदच्युत भी कर दिये गये थे।

फरासडांगा पर अंग्रेजोंका कब्जा होनेके बाद सिराज दलबल-सहित मुर्शिदाबाद लौटे। राजा दुर्लभरामने मुर्शिदाबाद आ कर देखा, कि मोहनलाल सिराजकी अत्यधिक कृपासे उनकी क्षमताका परिचालन कर रहे हैं और उनके कार्य पर भी हुक्म चलाते हैं। मोहनलालकी इस ज्यादतीको वे किसी भी तरह सह न सके और इसलिए वे नगरमें न रह कर सेना-सहित कुछ दूरमें रहने लगे। अब जगत्सेठके मकान पर इस बातकी मंत्रणा होने लगी, कि किस तरह सिराज और मोहनलालका अधःपतन किया जाय। इस षड्यंत्रमें राजा कृष्णचंद्र, मीरजाफर और सिराजकी मातृस्वसा घसिटी बेगम भी शामिल थीं। नवाबके अश्व-सेनानायक यार लतिफ खाँको जगत्सेठकी तरफसे उनके स्वार्थकी रक्षाके लिए कुछ कुछ वृत्ति मिलती थी। इन्होंने अमीचंद्रके द्वारा वाट् साहबको कहला भेजा कि "सिराज शीघ्र ही पटना जानेवाले हैं। वहांसे लौट कर वे इस देशसे अंग्रेजोंको दूर कर देंगे, ऐसी उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली है। नवाबकी अनुपस्थितिमें मुर्शिदाबाद पर अधिकार करनेका अच्छा मौका है। मुझे नवाब बनानेसे राजा दुर्लभराम, जगत्सेठ आदि हमारे साथ रहेंगे।" इस शुभ प्रस्तावको अंग्रेजोंने बड़े आदरके साथ ग्रहण किया। कलकत्तेमें अंग्रेजोंकी एक गुप्त सभा बैठी। इधर नवाबने अंग्रेजोंके व्यवहारसे संदिग्ध हो कर राजा दुर्लभरामको उनके अधीनस्थ समस्त सेनासहित पलासीमें तैयार रहनेकी आज्ञा दी। इससे भी नवाबको सन्तोष न हुआ। उन्होंने पचास हजार सेनाके साथ मीरजाफरको भी वहां जा कर सहायता करनेकी सलाह दी।

इसी समय पेशवा बाजीरावका एक दूत गोविंदराम ड्रेक साहबके नाम पत्र ले कर हाजिर हुआ। पत्रमें लिखा था, कि अंग्रेजोंकी सम्मति हो तो पेशवा एक लाख बीस हजार अश्वारोही भेज कर बंगालको लुटवा सकते हैं। सुचतुर क्लाइवने इस पत्रको नवाबके पास भेज दिया। इस पत्रको पा कर अंग्रेजों पर नवाबका जो सन्देह था, वह दूर हो गया। वास्तवमें नवाब यह न समझ सके कि उन्होंने कितना बड़ा धोखा खाया। कुछ भी हो, नवाबने मराठोंकी गति रोकनेके लिए दुर्लभरामको सेना-सहित पलासी रख कर मीरजाफरको सेना सहित पलासीसे वापस चले आनेका आदेश दिया।

इधर पलासीसे मीरजाफरका आदमी कलकत्तेमें अंगरेजोंकी गुप्त सभामें पहुंचा। प्रभूत वित्त प्राप्तिकी आशासे अंगरेजोंने १८ मईको गुप्त सभामें मीरजाफरको ही नवाब बनानेका निश्चय किया। ३०वीं मईको मीरजाफर और उसके बाद ३री जूनको राजा दुर्लभराम सेना सहित मुर्शिदाबाद लौट आये। जगत्सेठके मकान पर गहरी रातको (३री ही तारीखको) षड्यन्त्रकारियोंकी एक गुप्त बैठक हुई। दुर्लभरामने अंगरेजोंकी असंगत मांगों पर कहा कि जितने रुपये वे मांगते हैं, उतने तो नवाबके कोषागारमें भी नहीं हैं, इसलिए मैं ऐसी असंगत बात पर सम्मति नहीं दे सकता। हां, यह हो सकता है कि राजकोषमें जितना हो, उसे मीरजाफर और अंगरेज मिल कर आधा आधा बाँट ले सकते हैं। वाट् साहब इस पर राजी न हुए। अन्तमें निर्णय हुआ कि दोनों तरफसे दुर्लभरामको निर्दिष्ट रुपयोंमेंसे ५) पांच रुपया सैकड़ा दिया जायगा, उनकी देखरेखमें राजकोष रहेगा और वे ही रुपयोंका भाग कर देंगे। ४थी जूनको मीरजाफरने उस गुप्त सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। आश्चर्य है कि सिराजको इस बातका जरा भी पता न लग पाया, फिर भी उन्होंने मीरजाफरको पदच्युत कर दिया और उनके स्थान पर खोजा हादीको प्रधान सेनापति नियुक्त किया।

इधर १३वीं जूनको अंग्रेजोंकी सेना दो सौ नावों पर सवार हो कर चन्दननगरकी ओर चल दी। यह संवाद सिराजके पास भी भेजा गया। नवाब सेना-सहित पलासीके मैदानमें दिखाई दिये। दुर्लभराम अपनी १० हजार शिक्षित सेनाके साथ रणक्षेत्रमें उपस्थित हुए। नवाबने दुर्लभरामके द्वारा पहलेसे निर्दिष्ट किये हुए प्रान्तमें ही शिविर कायम किया। शिविरके सामने आमका बाग था और परिखाके भीतर मीरमदन और मोहनलालकी सेना, उसके दक्षिणकी ओर फरासीसी सेनानायक सिनफ्रेके गोलन्दाजोंका दल, बाईं तरफ परिखाके उस पारसे ले कर करीब करीब पलासी ग्राम तक दुर्लभराम, यार लतीफ और मीरजाफरकी सेना—इस प्रकार

नवाबकी तरफ लगभग ३५ हजार पियादे, १६ हजार घुड़सवार और ४० तोपें थीं; और अंग्रेजोंकी तरफ कुल ३१ सौ मात्र सेना थी। २३ जूनको युद्ध आरम्भ हुआ। दुर्लभराम और यार लतीफ मीरजाफरकी तरह सेना सहित 'रणपयोधिकी लहरें' गिन रहे थे। प्रभुभक्त मीरमदन अचानक घायल हो गये और मर गये। सेनापतिकी इस तरह अकस्मात् मृत्युसे नवाब विचलित हो गये, मीरजाफरको बुला कर बड़ी अरजू बिनतीके साथ यहां तक कि पैरों पर अपना मुकुट रख कर कहा था—"आपके सामने मैं आत्मसमर्पण करता हूं, आप किसी तरह मेरे सम्मान और जीवनकी रक्षा कीजिये।" उस समय मोहनलाल वीर-विक्रमके साथ अंग्रेजों पर आक्रमण कर रहे थे, और कुछ देर तक युद्ध जा रहता तो अवश्य ही नवाबकी विजय हो जाती। परन्तु मीरजाफरके परामर्शसे सिराजने मोहनलालको युद्ध बन्द करनेका आदेश भेज दिया। पहले मोहनलालने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया था; अन्तमें बारबार आदेश पाने पर वे क्रमशः पीछे हट आये।

मीरजाफर नवाबको सर्वनाशकारी परामर्श दे कर अपने शिविरको लौट आये। नवाबने राजा दुर्लभरामको बुला कर परामर्श लिया। उन्होंने लौटा ले और आप राजधानी चले जायं। अब यहां रहना उचित नहीं। सिराजने दुर्लभरामका परामर्श मान लिया। इधर मोहनलालको लौटते देख सेनाका साहस टूट गया और वह भागनेकी युक्ति सोचने लगी। अङ्गरेजोंने भी इसी समय मीरजाफरको पत्रसे गुप्त समाचार पा कर ज़ोरोंसे नवाबकी सेना पर धावा बोल दिया। इस प्रकार कौशलसे मुट्ठी भर सेना ले कर क्लाइव पलासी-विजेता बन बैठा। दुर्लभराम और मीरजाफरके प्रयत्नोंसे बंगालकी भाग्यलिपि परिवर्तित हो गई। २५ जूनको राजा दुर्लभराम और मीरजाफर राजधानीको लौटे। साथ साथ वाट्स् और क्लाइवका सेक्रेटरी वाल्स् भी आया और इन लोगोंने अंगरेजोंकी तरफसे रुपयोंकी मांग पेश की। दुर्लभरामने कहा कि स्वीकृत २२००००००) रुपये खजानेमें नहीं हैं। अंगरेजोंने प्रस्ताव किया कि तो जगत्सेठसे कर्ज लिया जाय। राजाने कहा कि करोड़ रुपया देनेकी उनमें सामर्थ्य नहीं। इस बात पर दुर्लभराम पर उनका सन्देह हुआ। इसके बाद ही अफवाह फैलीकी कि दुर्लभराम, मीरन और खादिम हुसेन क्लाइवको मारनेका षड्यन्त्र कर रहे हैं। इसलिए क्लाइवने दो दिन तक कासिमबाजारमें रह कर अपने व्यर्थ सन्देहको दूर कर मुर्शिदाबादमें प्रवेश किया।

२६ जूनको दरबार हुआ। क्लाइवने मीरजाफरका हाथ पकड़ कर उन्हें सिंहासन पर बिठाया। राजा दुर्लभराम 'महाराज बहादुर' की उपाधि-सहित नवाब मीरजाफरके 'दीवान-ए-आला' (प्रधान मंत्री) हुए।

दूसरे दिन क्लाइव, मीरजाफर, दुर्लभराम और वाट्सन् जगत्सेठके मकान पर गये। यहां दोनों तरफसे अंगरेजी और फारसी सन्धिपत्र पठित और स्वीकृत हुए। यह भी तय हुआ कि स्वीकृत १ करोड़ ११ लाख रुपयेका आधा उसी समय देना होगा, और आधा तीन वर्षमें अदा कर देना होगा। परन्तु महाराज दुर्लभराम उक्त कुल रकममेंसे ५) सैकड़ा कमीशन काट लेंगे, यह भी तय हुआ। सब तय हो गया, पर उस दिन रुपये नहीं दिये गये। क्लाइव मुर्शिदाबादमें हो बैठा रहा। सचतुर दुर्लभरामने एक साथ आधा रुपया भी हाथसे निकाल देना ठीक न समझा। नवाब दरबारमें उनका प्रभुत्वका जितना अभाव था, उसे पूरा करके तथा अंगरेज और मुसलमान दोनोंकी ओरसे बंगालके हिन्दू-समाजके सर्वप्रधान नेता बननेके बाद उन्होंने ६ जुलाई-को ७२७१६६६) रुपया अंगरेजोंको दिया। पीछे अनेक आपत्ति करनेके बाद ६ तारीखको फिर १६५५७५८) रुपया दिया। फिर भी स्वीकृत आधा अंश न चुकने पर अंग्रेज लोग कुछ क्रुद्ध हो उठे। इस समय (१५ जुलाई) अंग्रेजोंके वाणिज्याधिकार सम्बन्धमें साधारण परवानेकी घोषणा करके दुर्लभरामने उन्हें सन्तुष्ट कर दिया। अन्तमें ३० जुलाईको सेना, जवाहरात और सिक्का, सब मिल कर १५११०३७) रुपये दे कर अंग्रेजोंको विदा किया। इस तरह अंग्रेज कम्पनीको दुर्लभरामसे ११३५००००) रुपये (अर्थात् निर्दिष्ट आधे रुपयोंमेंसे १०७६५७३७ रुपये) मिले; फिर भी ५८४१०५) रुपये बाकी रहे।

मीरजाफर अपने प्रियपुत्र मीरनके परामर्श पर चलने लगे। राजा दुर्लभरामके अपरिसीम प्रभुत्वके मीरण विद्वेषी हो गये। साथ ही मीरजाफरका भी मन फिर गया। अब वे स्वयं सर्वेश्वर हो गये। एक एक करके सभी शत्रुओंको उन्होंने हटा दिया। यद्यपि दुर्लभराम उनके मित्र समझे जाते थे, किन्तु वे भिन्न धर्मावलम्बी थे और विशेषतः समस्त बंगालकी हिन्दू प्रजा उनके प्रभावसे प्रभावान्वित थी। जिस कौशलसे उन्होंने सिराजको पदच्युत करके मीरजाफरको गद्दी पर बिठाया है, इसी तरह किसी दिन वे अपनी कूटनीतिसे मीरजाफरको उतार सकते हैं। इस अमूलक विश्वास पर पिता-पुत्र मिल कर दुर्लभरामका प्रभाव घटानेकी कोशिश करने लगे। कुछ दिन बीत गये, लगभग सभीने मीरजाफरकी अधीनता स्वीकार कर ली, किन्तु उस समय भी विहारके नायब नवाब राजा रामनारायण और मेदिनीपुरके राजा रामसिंहने मीरजाफरकी अधीनता स्वीकार न की। वे दोनों ही दुर्लभरामके परम मित्र समझे जाते थे। दुर्लभरामने नये नवाबके साथ प्रकाश्यरूपमें सद्भाव रखनेके लिए राजा रामसिंहको आनेके लिए अनुरोध किया। परन्तु स्वयं न आ कर उन्होंने दो आत्मीयोंको भेज दिया। नवाबने दोनोंको कैद कर लिया। इधर पूर्णियाके पूर्वतन कर्मचारी अचलसिंहने मोहनलालके पुत्रको कैद कर स्वाधीन भावसे सारे देश पर अधिकार जमा रखा था। राजा रामनारायण भी एक प्रकारसे स्वाधीन हो गये थे और अपना बल बढ़ा रहे थे। चारों तरफसे हिन्दू अभ्युत्थानको लक्ष्य करके मीरजाफरने दुर्लभरामको ही इसका मूल कारण मान लिया। दुर्लभराम उस समय भी अलीवर्दी-बेगमके प्रति सम्मान प्रदर्शन करनेके लिए कभी कभी प्रासादमें जाया करते थे।

राजा रामनारायण अयोध्याके नवाबकी सहायतासे मीरजाफरको भगा देनेकी कोशिश कर रहे थे, अलीवर्दी-बेगमकी ऐसी एक षड्यन्त्र लिपि भी पकड़ी गई। इसलिए मीरजाफरकी धारणा भी पक्की हो गई, कि दुर्लभरामकी ही ये कार्रवाइयां हैं। कुछ भी हो, वाट्सकी कोशिशसे दोनोंका मौखिक मिलन तो हुआ, परन्तु उसके बाद ही मीरजाफरके बिहार जाते समय दुर्लभरामने अस्वस्थताका बहाना करके सेना-सहित उनके साथ शामिल न हुए। मीरजाफरके चले जाते ही मीरनने यह अफवाह फैलाई, कि राजा दुर्लभराम अंगरेजोंकी सहायतासे सिराजके भतीजे मिर्जा मेहदीको नवाब बनानेकी कोशिशमें हैं। राजा रामनारायण अयोध्याके नवाब और फरासीसी नायक 'ला' को साथ ले कर दुर्लभरामकी सहायताके लिए आ रहे हैं। शीघ्र ही मीरनके घातकोंके हाथ मेहदी मार डाला गया। मीरनके अन्यान्य आचरणोंसे दुर्लभराम भी उनसे बहुत नाराज हो गये। उन्होंने कासिमबाजारका कोठीके अध्यक्षको सब बातें कहीं। स्क्राफ्टनकी मध्यस्थतामें मीरन और दुर्लभराममें फिर सुलह हो गई। अब मन्त्री दुर्लभरामने कुछ सेनाको नवाबके शिविरमें जानेकी आज्ञा दी। इधर मीरजाफरसे मिलनेके लिए क्लाइव भी दलबल-सहित मुर्शिदाबाद आ पहुंचा। यहां आते ही सुना कि राजा दुर्लभराम मराठा-सरदार जानोजीके साथ षड्यन्त्र कर रहे हैं। परन्तु दुर्लभरामके भेंट होने पर उनका संदेह दूर हो गया। पीछे दुर्लभरामको तसल्ली दे कर क्लाइव राजमहल जा कर मीरजाफरसे मिला। यहां आते ही उन्होंने मीरजाफरसे कहा—"राजा दुर्लभरामके बिना राजकोषसे रुपये या आज्ञापत्र मिलना असम्भव है, इसी लिए राजाको बुलवाना निहायत जरूरी है।" क्लाइवने भी दुर्लभरामको हिम्मत दे कर आनेके लिए लिखा। कारण दुर्लभराम केवल प्रधान मंत्री ही न थे, अर्थसचिव भी थे। वे क्लाइवके पत्रानुसार आ गये। उस समय अंगरेजोंके २३ लाख रुपये बाकी थे। दुर्लभरामने आधा रुपया राजकोषसे तथा बाकी आधा रुपया वसूल कर लेनेके लिए वर्द्धमान और कृष्णनगरके राजा तथा हुगलीके फौजदारके नाम आज्ञापत्र दिया। इस समय कम्पनीकी जमींदारीके लिए फरमान मिला। इस फरमानमें नवाब मीरजाफर तथा प्रधान मंत्रीकी हैसियतसे महाराज दुर्लभराम और हुजूरनवीस (Chief Secretary) की हैसियतसे उनके पुत्र राजा राजवल्लभके हस्ताक्षर थे।

पहले ही कहा जा चुका है, कि राजा रामनारायण

दुर्लभरामकी अनुकूलतासे बिहारके सूबेदार हुए थे। वे हमेशासे दुर्लभरामका सम्मान करते थे। मीरजाफरके सेना-सहित उनके विरुद्ध अस्त्र धारण करने पर दुर्लभरामके परामर्शसे उन्होंने नवाबके शिविरमें आ कर अधीनता स्वीकार कर ली।

मीरजाफर और दुर्लभरामके मनोमालिन्यके समय नन्दकुमार आ कर दुर्लभरामके सहकारी वा खालसाके पेशकार नियुक्त हुए थे। मीरजाफरके विहार जाते समय वे भी दुर्लभरामके विरुद्ध नवाबके कान भर कर अपने स्वभावका परिचय देते रहे। विहारसे लौट आनेके बाद नवाबके राजकोषमें अर्थाभाव हो गया। नंदकुमारनवाबको समझाया कि उन्हें पूरी क्षमता मिलने पर वे सब रुपये वसूल कर सकते हैं, दुर्लभरामके द्वारा यह काम कभी न होगा। मीरनने कहा, कि अंगरेज लोग रुपयोंके वश हैं, काफी रुपये न मिलने पर वे हमारे शत्रु बन जायेंगे। इसी तरह नन्दकुमारने सेठोंको भी समझाया, कि आप लोग दुर्लभरामके साथ जैसा मेल-जोल रख रहे हैं, यह आप लोगोंके लिए अच्छा नहीं है। आप लोग रुपयोंके लिए जमानतदार हैं। दुर्लभराम यदि राजस्वमेंसे रुपया न दे सके, तो अंगरेज लोग आपको ही पकड़ेंगे। इसलिए आप लोगोंको सावधान हो जाना चाहिए। इस समय मीरनने वैद्यराज राजवल्लभको दीवान नियुक्त किया और ढाका-विभागके कागजात उन्हें सौंप देनेके लिए दुर्लभराम पर आज्ञा जारी की। जगत्सेठ उस समय तक दुर्लभरामके मित्र थे। उन्होंने दुर्लभरामको बुला कर उन्हें समझाया कि आपके विरुद्ध षड्यंत्र चल रहा है और आप यहां रहेंगे तो जिन्दगी भी खो बैठेंगे, ऐसी आशंका है। जो नन्दकुमार उनकी कृपासे खालसाके पेशकार नियुक्त हुए थे, जिन्हें उन्होंने विश्वास करके राजस्वविभागका सारा रहस्य समझा दिया था, अब वही ब्राह्मण उनके विरुद्ध षड्यंत्र कर रहे हैं, सुन कर वे शीघ्र ही कलकत्ते जानेको प्रस्तुत हो गये। परन्तु मीरनने उनका कलकत्ता जाना रोक दिया। राजाने पहले ही ये सब बातें क्लाइव को लिख दी थीं। उनका पत्र पा कर क्लाइवने नवाबको कलकत्ते आनेके लिए निमन्त्रण दिया। इसलिए इच्छा न होते हुए भी नवाबको कलकत्ता आना पड़ा। इस समय मीरनने अनेक रक्षकसेना भेज कर दुर्लभरामका प्रासाद घेर लिया था, परन्तु क्लाइवके अनुरोधसे (सितम्बर १७५८ ई०) दुर्लभराम भी परिवार सहित कलकत्ते चल दिये। मीरनके क्षोभकी सीमा न रही।

इस समयके कम्पनीके कागजातमें पाया जाता है कि मीरजाफरके स्वागतके लिये इष्टइण्डियन कम्पनीका काफी खर्च हुआ था, जगत्‌सेठसे और दुर्लभरामके स्वागतमें भी काफी खर्चा हुआ था।

कलकत्ते आ कर महाराज दुर्लभराम कुछ दिन निरापद हुए। यहां वे ब्राह्मण पण्डितोंसे शास्त्रालाप सुन कर और दान ध्यान करके समय बिताते थे। सिर्फ कभी कभी राजकीय कागजातमें हस्ताक्षरकी जरूरत पड़ने पर हस्ताक्षर कर दिया करते थे। क्लाइव और कौन्सिलके सदस्य अकसर उनके प्रासादमें आ कर आमोद-प्रमोद किया करते थे।

दुर्लभराम सरीखे शक्तिशाली राजनीतिज्ञके राजधानीसे दूर रहनेसे सम्भवतः राज्यका कार्य्य सुचारुरूपसे न चलता था। कुछ दिन बाद सम्राट् शाहआलम बंगालविजयके लिए आये। राजा रामनारायणने पहले दुर्लभरामके परामर्शसे नवाबकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। अब मुर्शिदाबादकी राजनैतिक अवस्थाको समझ कर वे मीरजाफरके विरुद्ध बादशाहसे मिल गये। मीरजाफरने भारी संकट आया जान कर क्लाइवकी शरण ली। आखिर अङ्गरेजोंकी सहायतासे इस मरतबा मीरजाफर बच गये। रामनारायण देखो।

६ जुलाई १७६० ई०को वज्राघातसे नवाबके पुत्र मीरनकी मृत्यु हो गई। इस मौके पर मीरजाफरके दामाद मीरकासिम ससुरके सर्वनाशके लिए आगे आये। इधर दुर्लभराम मीरजाफरकी अकर्मण्यताका परिचय दे कर अङ्गरेजोंको हस्तगत कर रहे थे। पूर्वतन नायब सूबेदार और प्रधानमन्त्री दुर्लभरामकी विरक्तिसे और मीरकासिमसे अधिक धन पानेके लोभसे अङ्गरेजोंने मीरजाफरको गद्दीसे उतार देनेका निश्चय किया।

दुर्लभरामके परामर्शसे ही होलवेलने शाहआलमसे बंगालकी दीवानी प्राप्त करनेकी कल्पना की

थी। इस समय दुर्लभरामने अङ्गरेजोंको जो पत्र दिया था, उसमें लिखा था—"कम्पनीको सूबेदारी, दीवानी बक्सीगीरी अपने नाम पर ले कर मीरजाफरको नायब-नाजिम और मीरकासिमको नायब दीवान बनाना चाहिए। मैं अब राजस्व-सचिवका पद नहीं चाहता; कम्पनीके अधीन नायब-बक्सी (Commander of the Bengal forces)का पद पा कर ही मैं सन्तुष्ट होऊंगा। शाहजादेके मन्त्रियोंको लिख कर मैं इन सब बातोंकी व्यवस्था कर देनेको तैयार हूं।" अंग्रेजोंने इस समय मीरकासिमसे बहुत धन पानेके लोभसे इस कल्पनाको त्याग दिया। १४ अक्टोबर १७६० ई०को गवर्नर वन्सीटार्टने मुर्शिदाबाद जा कर मीरजाफरको राज्यच्युत किया और मीरकासिमको नवाबीका पद ऊंचे मूल्य पर बेच दिया। इस समय नन्दकुमार और वैद्यराज राजवल्लभ ही मुर्शिदाबादमें सर्वेसर्वा हो गये। तब भी महाराज दुर्लभरामको अङ्गरेजों द्वारा बंगाल, बिहार और उड़ीष्याके नायब-सूबेदारका सम्मान प्राप्त था। नन्दकुमार इस प्रयत्नमें थे, कि किसी तरह उनका यह सम्मान नष्ट हो जाय, उनका सर्वनाश हो जाय। थोड़े ही दिनों बाद मीरकासिम और अङ्गरेजोंके साथ बादशाह शाहआलमका युद्ध छिड़ गया। दुर्लभरामको किसी तरह कौशलजालमें फंसा लेनेसे मीरकासिमको भी धन मिल सकता है और उनका भी उद्देश्य सिद्ध हो सकता है, इस विचारसे नन्दकुमारने हरकराके हाथ एक जाल चिट्ठी भिजवाई। उस पत्रसे यह भाव प्रकट होता था, कि महाराज दुर्लभराम और जगत्सेठके घरानेके रामचरण शाहआलमके शिविरस्थ एक सेनापतिके साथ मीरकासिम और अङ्गरेजोंका सर्वनाश करनेके लिए षड़यन्त्र कर रहे हैं। दुर्लभराम पर अंग्रेजोंका अटल विश्वास था, इसलिए उन लोगोंने सहसा उस पत्र पर विश्वास न किया। शाहआलमके साथ झगड़ा तै हो जानेके बाद मालूम हुआ कि यह नन्दकुमारका असीम प्रभुत्व था, इसलिए ऐसे भीषण अपराध पर भी अङ्गरेजोंको नन्दकुमारके विरुद्ध आचरण करनेका साहस न हुआ।

मीरकासिम भी मीरजाफरकी तरह हिंदू-विद्वेषी थे। नये नवाबका इधर काफी ध्यान था कि पूर्वतन हिन्दू कर्मचारी अब फिरसे सिर न उठा पावें और सब तरहसे उनकी क्षमता घट जाय। खास कर हिन्दुओंको समस्त उच्चाधिकारोंसे वञ्चित करनेसे किसी समय राजस्व वसूली तथा अन्यान्य कार्योंमें गड़बड़ होनेकी सम्भावनासे ही वे अपनी अभिरुचिके अनुसार हिंदू-जमींदारोंके अर्थ-शोषणपटु नये नये आदमियोंको उच्च पद देने लगे थे।

वैद्यराज राजवल्लभको बिहारका नायब सूबेदार बना कर भी उन पर वे विश्वास न कर सके। कुछ दिन बाद जब उन्होंने देखा कि राजा राजवल्लभसे जितनी उन्हें आवश्यकता थी उतनी पूर्ति हो गई। अंगरेजोंको ध्वंस करनेके लिए उन्होंने जो जाल फैलाया है, उसमें वैद्यराज राजवल्लभ उनके अन्तराय हो सकते हैं,—तब राजवल्लभसे उन्होंने नायब-सूबेदारी छीन कर उन्हें मुंगेरके किलेमें कैद कर रखा। अन्यान्य हिन्दू-जमींदारोंको भी बादमें उन्होंने उसी जगह कैदमें रखा था। नन्दकुमार भी जाली पत्र बनानेके अपराधमें मुर्शिदाबादके कैदमें डाल दिये गये।

इसके बाद ६ जुलाई १७६७ ई०को अंग्रेजोंकी सभामें मीरजाफरको फिरसे नवाब बनानेका निश्चय हुआ। नन्दकुमार कैदसे छूट कर मीरजाफरके दीवान हुए। अंगरेजोंके अनुरोधसे महाराज दुर्लभरामको पान और खिलअत दे कर निजामतमें फिरसे बहाल किया गया; परन्तु निजामतके अधीन हुजूरनवीसी (सनद आदि देने और उसकी नकल रखनेका कार्यालय), जागीरों और नवाबके निज कोषागारकी दरोगा, मुस्तफीपद (पदच्युत कर्मचारियोंके हिसाबनिकासका कार्य), तथा पटना, भागलपुर और जागीरोंसे तहसील वसूलीका काम, मुन्शीखाना (Secretariat) और दीवानखानेकी मुसरफी, ये सब उच्च कार्यालय जो पहले दुर्लभरामके अधीन थे, निजामतसे अलग करके नन्दकुमारको सौंप दिये गये। निजामत भी एक प्रकारसे खालसाके अधीन हो गई। (१७६४ ई०)

१७६५ ई०के जनवरी महीनेमें मीरजाफरका देहान्त हुआ। फिर ऊंचे मूल्य पर नवाबीका पद बेचनेके अभि-

द्वारा से अंगरेजों की कौन्सिलके चार सदस्य मुर्शिदा-बाद पहुंचे। शून्य राजकोषसे २० लाख रुपया ले कर मीरजाफरके बालिग़ पुत्र नजमउद्दौलाको नवाब बना दिया गया। नायब नवाबोके पदकी आशासे इस समय राजा नन्दकुमार और महम्मद रेजा खाँ अङ्गरेजोंको उपयुक्त पूजा करनेके लिये तैयार हुए। अन्तमें अधिक धन पा कर महम्मद रेजा खांको ही नायब नवाबीका पद दिया गया। तमाम राजकार्य चलानेके लिये महम्मद रेजा खाँके साथ महाराज दुर्लभराम और जगत्सेठ खुशालचन्द्की एक मन्त्रिसभा गठित हुई। जून महीनेमें क्लाइव बादशाह और सुजाउद्दौलाके साथ सन्धि दृढ़ करनेके लिए उत्तर-पश्चिममें गया। वहां भी वह अपने पूर्व मित्र दुर्लभरामको न भूला था। उसने दिल्ली-दरबारसे दुर्लभरामको उनकी कार्यदक्षताकी प्रशंसा करके 'महाराज महीन्द्रका खिताब' दिलाया और विहारके अन्तर्गत नोतपुर परगना (वार्षिक १८७५०० आमदनीकी) जागीर दिलाई। उसके बाद कम्पनीके लिए 'दीवानी' प्राप्त होनेके बाद उन्हींके यत्नसे महाराज दुर्लभरामने ६ लाख रुपयेकी आमदनीकी रंगपुरकी पैराबन्द दीगर जागीर पाई थी।

१७६५ ई०में २८ जुलाईको नवाब नजमउद्दौलाने ५३६८१३१)सिक्कों (रुपयों) की वार्षिक वृत्ति पर कम्पनीके प्रस्तावानुसार महम्मद रेजा खाँ महाराज दुर्लभराम और जगत्सेठ पर सम्पूर्ण राज्य-भार छोड़ दिया। उनके शासनसे अङ्गरेज लोग विशेष सन्तुष्ट हुए। १७६८ ई०में कोर्ट-आव डिरेक्टरने उनके कार्यकी प्रशंसा करके रेजा खाँको ६ लाख, राजा दुर्लभरामको २ लाख और सिताब रायको १ लाख वार्षिक वेतन देना निश्चित किया था। १७७० ई० तक महाराज दुर्लभरामको उक्त पद पर अधिष्ठित पाते हैं। इस वर्ष २१ मार्चके संधिपत्र पर नवाब मुबारकउद्दौलाने नाज़िम, ईष्ट-इण्डिया कम्पनीने दीवान और नवाब मीनाउद्दौलाके साथ महाराज दुर्लभराम और जगत्सेठने नायब-नाजिमकी हैसियतसे हस्ताक्षर किये थे। इसी वर्ष महाराज दुर्लभराम महीन्द्रका देहान्त हुआ। उनकी मृत्युके बाद स्वयं बड़े लाट साहब हेष्टिंगसने मुर्शिदाबाद आ कर उनके पुत्र महाराज राजवल्लभ बहादुरको ३ सूबेका कुल्लेका दीवान बनाया। बादमें सूबा बंगाल जब ४ जिलोंमें विभक्त हुआ, तो प्रत्येक जिलेमें एक एक कलक्टर और महाराज राजवल्लभकी तरफसे एक एक दीवान नियुक्त हुए। बंगला सन् १२०४ में राजवल्लभकी मृत्यु हुई।

महाराज दुर्लभराम बंगवासियोंमें अतुल ऐश्वर्यशाली हो गये थे। उस समय उनके विषयमें "स्वर्गमें इन्द्र, मर्त्त्यमें महीन्द्र" ऐसा प्रवाद प्रचलित हो गया था। पिताके समान उनके पुत्र राजवल्लभ भी बंगालियोंमें श्रेष्ठ व्यक्ति समझे जाते थे और उनका अत्यंत सम्मान था। राजा राजवल्लभ सोम देखो।

रायन—राजपूतानेके जोधपुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ३२´ उ० तथा देशा० ७४° १४´ पू०के बीच अवस्थित है। जनसंख्या ४५७४ है। यहां एक गण्ड शैलके ऊपर समतलक्षेत्रसे प्रायः २०० फुट ऊंचा रायनका गिरिदुर्ग विराजित है।

रायनगढ़—पञ्जाबप्रदेशके केवन्थल राज्यके अन्तर्गत एक दुर्गशोभित नगर। अक्षा० ३१° ७´ उ० तथा देशा० ७७° ४८´ पू०के बीच पावर नदीके बायें किनारे एक निर्ज्जन शैलप्रान्तमें बसा हुआ है। नदीको पार कर दुर्गमें आनेके लिये एक काठका पुल है। गोरखा-आक्रमणके पहले यह बसहर सामन्तराज्यके अधीन था। पीछे १८१५ ई०में अंगरेजोंके हाथ आया। अन्तमें वर्त्तमान 'सिमलाशैल' जिलेकी कुछ भूमि ले कर उसके बदलेमें अंगरेज-सरकारने यह स्थान केवन्थलराजको दे दिया। यहां दो मन्दिर हैं जिसकी गठनप्रणाली बहुत ही सुन्दर है। उस मन्दिरके अधिकारी कई एक ब्राह्मण हैं। समुद्रपृष्ठसे यह दुर्ग ५४०८ फुट ऊंचा है।

रायनरसिंह पण्डित—तर्कसंग्रहदीपिकाप्रकाशके प्रणेता।

रायना—वर्द्धमान जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० २३° ४´ २०´´ उ० तथा देशा० ८७° ५६´ ४०´´ पू०के बीच अवस्थित है। जनसंख्या पांच हजारसे अधिक है।

रायपाटी—विशालके अन्तर्गत एक स्थान।

(भविष्यब्र० ख० ४०।४१)

रायपुर—मध्यप्रदेशके अंगरेजाधिकृत एक जिला। चीफ कमिश्नरके शासनके अधीन है। यह अक्षा० १९° ५०´ से

२०° ५३´ उ० तथा देशा० ८१° २५´ से ८३° ३८´ पू० तक विस्तृत है। इसके उत्तरमें बिलासपुर, दक्षिणमें बस्तार, पूर्वमें सम्बलपुर जिलेका सामन्तराज्य और पश्चिममें बांदा और बालाघाट है। छुईखादन, कनकेर, खैरागढ़ और नन्दगांव सामन्तराज्य इसीके अंदर है। कुल मिला कर भूपरिमाण ११७२४ वर्गमील है।

पूर्वतन छत्तीसगढ़ राज्यका दक्षिण भाग ले कर यह जिला गठित है। इसका अधिकांश स्थान महानदीके उत्तर स्रोत और उसकी शाखामें परिप्लावित है। स्थान-स्थान पर पर्वत-गात्रवाहिनी शाखा नदीसमूहके उत्पत्ति-स्थानसे गण्डशैलमाला दिखाई पड़ती है। समूचा जिला विन्ध्यपर्वतसे निकली हुई शैलशाखाकी फैली हुई अधित्यका है। उत्तर, पूर्व और दक्षिण भूभाग वनोंसे समाकीर्ण है। उत्तरकी अधित्यकाभूमि क्रमशः बिलासपुरकी ओर समतलक्षेत्रमें मिल गई है। जंगल काट कर रहनेके लिये और खेती बारीके लिये बहुतसे स्थान निकाले गये हैं।

रायपुर जिला दो खरस्रोता नदीविधौत है। यह दो पार्वत्यस्रोत पीछे मिल कर महानदीरूपमें बह चला है। पूर्वोक्त दो पार्वत्य स्रोताओंमें शिवनाथ प्रधान है। वह बांदापर्वतसे निकला है। प्रायः १२० मील उत्तर पूर्व बह कर हाम्प नामक शाखा नदीने उसका कलेवर पुष्ट कर दिया है। इस प्रकार कर्करा, तेम्दूला, कारुण और खोसीं नदी इसके दाहिने किनारे तथा गुमारिया, आम, सूरी, गाराघाट, घोगवा और हाम्पशाखा इसके बायें किनारे आ मिली है, जिससे इसको जलधारा बड़ी ही तीव्र हो गई है। महानदी इस जिलेके दक्षिण-पूरबसे निकल कर पश्चिमकी ओर और पीछे उत्तर-पूरब बहती हुई शिवनाथमें आ मिली है। पाइरी, सुन्दर, केशो, कोदार और नाइनी आदि शाखाने महानदीका अङ्ग पुष्ट किया है। किन्तु बरसा बीतने पर नदीका जल एकदम सूख जाता है। नदीके अलावा इस जिलेमें स्थान स्थान पर बड़े बड़े तालाब है, जो किसीसे बनाये नहीं गये हैं। पहाड़से जो पानी निकलता है उसको रोकनेके लिये बांध बांधा गया है। बंजारोंने गाय चरानेके लिये जंगलके बीचमें तालाब या गड्ढा खोदा था।

यहांकी शैलमाला साधारणतः पन्द्रह सौ फुट ऊंची है सिर्फ गौरगढ़ अधित्यका तथा दक्षिणमें शेहरासे बस्तार और कनक पर्यन्त विस्तृत शैलश्रेणी उससे ऊंची है। गण्डाई गांवके पश्चिमदिक्स्थ शैलगह्वरमें और लोहारा राज्यके दिल्ली नगरके समीप लोहेकी खान है। गण्डाई और ठाकुरतोला नामक स्थानमें प्रचुर गेरू मिट्टी मिलती है। जंगलमें शाल, तेन्दु और महुआ पेड़ ही मुख्य है।

यहांका प्रकृत प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। गोंड़ जातिकी कहावतसे पता चलता है, कि पहले यहां अलौकिक बलशाली और प्रभावान्वित राक्षसजातिका वास था। गोंड़-वीरोंके साथ युद्धमें हार खा कर वे यहांसे भाग गये। काव्यकल्पित इस पौराणिक प्रत्नतत्त्वविद्गण गोंड़ जातिके साथ भूंजिया और कोलेरिय जातिका युद्ध-विग्रह मानते हैं। महानदीके पूर्वांशमें भूंजिया और बिंजवारोंने बहुत दिनों तक शासन किया था। कोलेरियगण सोनाखान पर्वतसे दल बांध कर समतलक्षेत्रमें उतरते और उपद्रव किया करते थे। महानदीतीरवर्ती भग्नदुर्ग आज भी इसकी गवाही देता है।

इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह जिला रत्नपुरके हैहयवंशीय राजाओंके अधिकारमें था। इस वंशके २०वें राजा सुरदेव जब सम्भवतः ७५० ई०में गद्दी पर बैठे उस समय छत्तीसगढ़-प्रदेश दो भागोंमें बंट गया। शूरदेव पैतृकराज्यका उत्तरांश शासन करते थे तथा उनके छोटे भाई ब्रह्मदेवने रायपुरमें राजपाट स्थापन कर दक्षिण-विभागका शासनदण्ड परिचालित किया। इस समयसे छत्तीसगढ़में दो राजवंश राजत्व करते थे। अन्तमें नवीं पीढ़ीमें ब्रह्मदेवका वंश निर्वंश होने पर रत्नपुर-राजवंशकी दूसरी शाखा राजा जगन्नाथसिंह देवके पुत्र देवनाथ सिंहने शायद १३६० ई०में रायपुरमें आ कर राजछत्र धारण किया। इस समयसे महाराष्ट्र-अभ्युदय पर्यन्त उनके वंशधर बिना किसी विघ्न-बाधाके रायपुर राज्यशासन करते रहे।

रायपुरके राजवंश स्वतन्त्ररूपसे राज्यशासन करने पर भी रत्नपुरके हैहयवंशीय राजे छोटी शाखाको सामन्तराज्यमें गिनते थे। हाजिमके देवमन्दिरस्थ ७२६ संवत्

(७५० ई०)-के शिलालेखमें सामन्तराज जगत्पालकी विजयवार्त्ताके प्रसंगमें लिखा है, कि रत्नपुरके राजा सुरदेवके पुत्र पृथ्वीदेवने उक्त सामन्तराजको वैवाहिक-सम्बन्धसे आबद्ध किया था। सम्भवतः इसके कुछ समय बाद ही रायपुरके राजवंशकी दृढ़रूपसे प्रतिष्ठा हुई थी।

ये हैहयवंशी लोग किसी भी प्रकार सामाजिक उन्नति न कर सके, इसलिए पीछे उनकी राजशक्तिकी अवनति हो गई थी। गोंड़ जातिमें जातीयताका चिह्न-मात्र भी न था। ऐसी अवस्थामें महाराष्ट्रीय दलने बिना किसी झगड़े के उनका राज्य अधिकार कर लिया।

१७४१ ई०में महाराष्ट्रीय दलने सबसे पहले छत्तीसगढ़ पर आक्रमण किया था। उस समय नागपुरराज्यके सेनापति भास्कर पण्डितने बंगाल-विजयके लिए अग्रसर हो कर रास्तेमें रत्नपुरके राजा रघुनाथसिंहको पराजित कर उनका राज्य ले लिया। नागपुरके राजा रघुजी (१म) ने इस नये जीते हुए छत्तीसगढ़ राज्यका शासनभार भास्कर पण्डित और मोहनसिंह पर सौंप दिया था। उन दोनोंने पहले रायपुरके राजा अमरसिंहके शासनाधिकारके विषयमें कोई विवाद नहीं किया, परंतु पांच वर्ष बाद उन्हें पदच्युत करके उनके खर्चके लिए ७ हजारका कर लगा कर राजिम, पाटन और रायपुरप्रदेश उन्हें जागीरके बतौर दे दिया। महाराष्ट्र-विप्लवके कारण नाना प्रकारके परिवर्त्तन होनेके बाद १८२२ ई०के नये बन्दोबस्तके अनुसार अमरसिंहके पौत्र रघुनाथसिंहके लिए बड़गांव, गोविन्द, मुरधेना, नन्दगांव और बालेश्वर ग्राम निष्कर छोड़ दिये गये। महाराष्ट्रीय अधिकारमें आनेसे पहलेसे ही रायपुर नगर अवनतिकी चरम सीमा तक पहुंच चुका था। बिम्बाजी और उनकी मृत्युके बाद उनकी विधवा स्त्री आनन्दीबाईने १७८७ ई०में इस नगरके किसी किसी अंशकी उन्नति की थी।

आनन्दीबाईके बादके शासनकर्त्ताओंके समयमें यहांका राज्यभार सुबादारके विट्ठल दिवाकरके हाथमें था, इसलिए रायपुरप्रदेशमें अराजकता पैदा हो गई। तब अत्याचार और बलपूर्वक अनुचित कर वसूल करनेके सिवा राज्यशासनकी और कोई नीति ही प्रचलित न थी। इस आमूल अधःपतनके समय भी सोनाखानके बिंजवारोंने आ कर इस जिलेका पूर्वांश नष्ट कर देनेमें कोई कसर न रखी।

१८१८ ई०में अप्पा साहबके राज्यच्युत होने पर राजा रघुजी (३य)के नाबालिग अवस्थामें अंगरेजोंने नागपुरराज्यका शासनकार्य अपने जिम्मे ले लिया। १८३० ई०में ३य रघुजीके सिंहासन पर बैठने तक नागपुर राज्य कर्नेल एग्न्यूके शासनाधीन रहा। उस समय रायपुरकी समृद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती गई। १८५४ ई०में नागपुर राज्य अङ्गरेजोंके अधिकारमें चले जानेके बाद भी छत्तीसगढ़ राज्य कर्नेल एग्न्यू द्वारा चलाई हुई सूबेदारी प्रथाके अनुसार शासित हुआ था। उक्त प्रथाके अनुसार ऐसा सुश्रृंखल राजकार्य चला था कि १८१८ ई०में सारे छत्तीसगढ़का जो कर था, १८५५ ई०में केवल रायपुर विभागका कर उससे ज्यादा वसूल होता था। इस समय कप्तान इलियट छत्तीसगढ़ और बस्तारके शासन कार्यमें नियुक्त थे। १८५६ ई०में यह धमतारी और रायपुर तथा १८५७ ई०में दुर्ग इन तीन तहसीलोंमें विभक्त हो गया। १८६१ ई०में बिलासपुर-विभाग इससे अलग करके उसे एक स्वतंत्र जिला बना दिया गया और सिमगा तहसील रायपुरके अन्तर्गत कर दी गई। १८५७ ई०के गदरमें यहां विशेष कोई गड़बड़ी नहीं हुई, केवल सोनाखानके बिंझारा सरदार नारायण सिंहकी उत्तेजनासे कुछ आदमियोंने उपद्रवकी सूचना दे कर कुछ अङ्गरेज कर्मचारियों पर अत्याचार शुरू किया था। १८५८ ई०में अङ्गरेजोंके विचारानुसार नारायण सिंहको फांसी हुई थी और उनकी जायदाद जब्त कर ली गई थी। उस समयसे पूर्वविभागमें पार्वत्य जातियोंकी तरफसे लूट वगैरह हट गई और वह जनशून्यभूभाग क्रमशः जनबहुल हो गया।

गोंड़ लोग ही यहांके आदिम अधिवासी हैं। बहुतसे तो हिंदू राजाओंके आधिपत्यमें हिन्दुओंके सम्बन्धसे हिन्दूभावापन्न हो गये हैं। बाकीके जङ्गलमें रहनेसे लोग अब भी जंगली अवस्थामें पाये जाते हैं। परन्तु वे क्रमशः पुराने धर्मको छोड़ते हुए सभ्यश्रेणीका अनुकरण कर रहे हैं। ये लोग बूढ़ादेव और दूल्हादेवकी

पूजा करते हैं। रायपुरके गोंड़ और छत्तीसगढ़के धर-गोंड़ दोनों स्वतन्त्र जातिके हैं।

कनवारोंने भूइयां लोगोंको भगा कर इस स्थान पर कब्जा किया था। ये इस स्थानके आदिम अधिवासी कहे जाने पर भी हैहयवंशी राजाओंका परामर्शदाता और विश्वस्त अनुचरके रूपमें इन लोगोंने काफी सामाजिक उन्नति की है। इस कारण बहुतोंका अनुमान है, कि ये लोग मिश्रराजपूत हैं और बहुत पहलेसे ही विन्ध्य-पर्वतके अधिवासी हैं। पहाड़ियोंके सहवाससे ये पूरी तरहसे हिन्दुत्वकी रक्षा नहीं कर सके हैं, कुछ कुछ आदिम जातिकी वर्बरता भी इनमें आ गई है। रायपुरको नाड़ा तहसीलके कनवार सरदारने खारियाके राजपूत सरदारकी कन्याके साथ विवाह किया था, जिसमें यह भू-सम्पत्ति उन्हें दहेजके रूपमें मिली थी। पहले कन-वारजातिका युद्ध-गौरव दाक्षिणात्यमें सर्वत्र विदित था; अब भी ये भागराखण्ड नामक तलवारको पूजा किया करते हैं। अंग्रेजी शासनमें कनवारोंने शान्तमूर्त्ति धारण की है। निरीह कनवारगण अब परिश्रमद्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। पड़ोसी गोंड़ोंके साथ मिल-कर मध्यवित्त गृहस्थ लोग प्राचीन संस्कारवश बूढ़ादेव और दूल्हादेवकी पूजा करते हैं, परन्तु धनी लोग अपनेको उच्च श्रेणीके हिन्दू समझते और तदनुसार कार्य करते हैं। हैहयवंशी राजाओं द्वारा पूर्व-प्रदत्त भूसम्पत्ति अब भी उनके पास है। इसके सिवा यहां बिंजार, भूंइयां, भूमिया, शवर, सौनार, खन्ध, खरवार और कोलजातिका भी वास है।

यहां कुछ घर प्राचीन ब्राह्मणोंके भी हैं। ये अपनेको कनौजिया ब्राह्मण बताते हैं। ईसाकी १६वीं शताब्दीमें हैहयवंशके प्रसिद्ध राजा कल्याण शाहीने उन्हें यहां बुला कर भूमि आदि दे कर यहां बसाया था। उसके बाद मराठी ब्राह्मण यहां आये। मराठी ब्राह्मण पूर्वोक्त ब्राह्मणोंको अपनेसे हीन समझते हैं।

रायपुर, बलोदा, सिमगा, रानीतलाव, धमतरी, राजिम, खैरगढ़, नन्दगांव आदि नगरोंमें अनेक प्रकारकी चीजोंका व्यापार है। यहां पैदा होनेवाली तमाम चीजें कटक, सम्बलपुर, बिलासपुर, नागपुर, कामथा, फिंगेश्वर, बिन्द्रा बैरागढ़ और बम्बई आदि स्थानोंमें बिकनेके लिये जाती हैं। इस जिलेमें १२ अस्पताल हैं। अब यहां रेल चलनेके कारण स्थानीय वाणिज्य और जाने आनेकी विशेष सुविधा हो गई हो।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग या तहसील। यह अक्षा० २०° ५६′ से २१° ३०′ उ० तथा देशा० ८१° २४′ से ८२° १२′ पू० तक विस्तृत है। इसका भूपरिमाण ५८०२ वर्गमील है। जनसंख्या ५६४१०२ है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और मध्य प्रदेशके छत्तीसगढ़ विभागका विचारसदर। यह अक्षा० २१° १४′ उ० और देशा० ८१° ३६′ पूर्वमें समुद्रपृष्ठसे ६५० फुटकी ऊंचाई पर, नागपुरसे सम्बलपुर और मेदिनीपुर हो कर जो रास्ता कलकत्ता आया है, उसके किनारे पर अवस्थित है।

७५० ई०में ब्रह्मदेव द्वारा रायपुरमें पहले पहल राज-पाट प्रतिष्ठित हुआ था। अब भी वर्त्तमान नगरके दक्षिण पश्चिममें नदी-तीरवर्ती महादेवघाट तक विस्तृत प्राचीन नगरका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। १८३० ई०में कर्नल एग्न्यूके प्रयत्नसे वर्त्तमानमें बड़े बड़े मकानात बने थे।

नगरके चारों तरफ पुष्करिणियां और उपवन हैं। किलेके पूर्वकी ओर ४०० वर्षका पुराना बूढ़ा पोखर है। उसकी परिधि लगभग एक मील थी, इस समय उसका संस्कार होनेसे परिधि घट गई है। दुर्गके दक्षिणमें महाराष्ट्र राजस्व-संग्राहक महाराज दालाकी प्रतिष्ठित महाराजकी पुष्करिणी है। इसका विस्तार लगभग आधा वर्गमील है। दुर्गके आध मील दक्षिणमें अवस्थित एक जघन्य जलाशयमें बांध लगा कर वे सर्वसाधारण-के उपकारार्थ एक झील खुदवा गये थे। उसके पास ही १७७५ ई०में रायपुरके राजा बिम्बाजी भोंसले द्वारा प्रतिष्ठित रामचन्द्र-मन्दिर है। उसकी सेवाके लिए राजाने भूमिदान की थी। रायपुरके कामाविसदार कोदण्डसिहने 'कोका' नामका तालाब खुदवाया था। इसमें 'गणेशचौथके' दिन गणपतिकी मूर्त्तियां विसर्जित होती हैं। एक तेली वणिक्ने दो सौ वर्ष पहले अम्बा नामका ताल खुदवाया था। १८५१ ई०में शोभाराम

महाजनने अनेक अर्थ व्यय करके उसके तीनों तरफ पत्थरकी सीढ़ियां लगवाई थीं। शोभाराम महाराजके पिता दीननाथ तेलीने बांध बनवाया था। दो शताब्दी पहले राजा रविशारसिंह द्वारा प्रतिष्ठित राजपुष्करिणी और बांध तथा लगभग उसी समय ही नगरके बीचमें कृपालगिर महन्त द्वारा स्थापित कङ्काली झील और इसके ठीक बीचमें अब भी यहां एक महा देवमन्दिर मौजूद है। शेषोक्त झीलको छोड़ सबका पानी पीने लायक है।

१४६० ई०में राजा भुवनेश्वर सिंह द्वारा रायपुरका दुर्ग निर्मित हुआ था। उन्होंने दुर्गकी रक्षाके लिए बाहर परिखा प्राकार और बुर्ज आदि बनवाये थे। इस बाहरके प्राचीरकी परिधि लगभग १ मील होगी। पूर्वमें बूढ़ा-पोखर और दक्षिण पश्चिममें महाराजजी ताल दुर्गम दुर्गकी खाईके रूपमें विद्यमान हैं। १८१८ ई०में अङ्गरेजोंने जब रायपुरमें प्रवेश किया, तब इसके उत्तरकी ओरका प्रवेशद्वार टूटा नहीं था। फिलहाल उसका एक बुर्ज तोड़नेके लिए मजदूर लोग जिस समय भीत खोद रहे थे, तब करीब २० फुट जमीनके नीचे कुछ प्राचीन समाधिस्तम्भ निकल पड़े। उनके चारों तरफ पत्थरकी दीवालें खड़ी थीं। परन्तु उनमें कोई शिलालेख नहीं मिला।

यहां पैदा होनेवाली चीजोंका—जैसे अनाज, लाख, रूई आदिका यहां बड़ा भारी कारबार होता है। विभागीय कमिश्नर लोग यहां रहते हैं और राजकार्य चलानेके लिए दीवानी और फौजदारी अदालत भी यहां मौजूद है। कामठीसेनाके नायक ब्रिग्रेडियर जनरल यहां रह कर देशी सिपाहियोंके कार्यकी देखभाल करते हैं। जनसंख्या ३२११४ है जिनमें हिन्दू २५४९२, ५३०२ मुसलमान और ५६२ क्रिसचन जिनमें ८८ यूरोपीय हैं। यहां ४ जन-अस्पताल और एक मवेशी-अस्पताल है।

रायपुर (अमेठी) अयोध्याप्रदेशके सुलतानपुर जिलेकी एक तहसील। इसका भूपरिमाण ३६६ वर्गमील है। अमेठी और तप्पा असल इन स्थानोंको ले कर यह उपविभाग कायम हुआ है।

२ एक गण्डग्राम। उक्त विभागका विचार-सदर। यह अक्षा० २३° २' उ० तथा देशा० ८०° ४७' पू०के बीच डकतियाके तट पर अवस्थित है। जनसंख्या ३७३८ है। यहां फौजदारी अदालत है।

राय बहादुर (फा० पु०) एक प्रकारकी उपाधि जो भारतकी अंगरेजी सरकारकी ओरसे रईसों, जमींदारों तथा सरकारी कर्मचारियों आदिको दी जाती है।

रायबेल (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी लता जिसमें बहुत ही सुन्दर और सुगन्धित दोहरे फूल लगते हैं।

रायभाटी (सं० स्त्री०) नदीस्रोत विशेष।

रायभोग (सं० पु०) एक प्रकारका धन, राजभोग।

रायमङ्गल—सुन्दरवन-विभागमें अवस्थित स्वनामख्यात नदीका मुहाना। यह गुआसूबा नदीके ६ कोस पूर्वमें अवस्थित है। इस मुहानेमें हड़ियाभांगा, रायमङ्गल और यमुना आ कर मिली हैं। रायमङ्गल और यमुना पूर्व दिशासे आई है। इससे यहांकी नदी काफी गहरी है। पश्चिममें हड़ियाभांगाकी तरफ पानीकी गहराई अपेक्षा कम है। मुहानेके बीचमें बालूका टापू-सा है जिससे नदीका स्रोत दो भागोंमें विभक्त हो गया है।

दक्षिणराय देखो।

रायमल—मेवाड़के एक राणा। प्रसिद्ध राणा कुम्भके वंशधर। १५२५ संवत्‌में राणाके पुत्र उदय पिताकी हत्या करके सिंहासन पर बैठे थे। उस समय युवराज रायमल पहलेसे ही पिता द्वारा निर्वासित हो कर ईदर प्रदेशमें अवस्थान करते थे।

पिताकी मृत्युका संवाद और पापिष्ठ उदयके अत्याचारकी कहानी सुन कर रायमल्ल (१५३० संवत्‌में) मेवाड़की प्रजाकी कुशलके लिए सेना सहित पिताके राज्यमें पहुंचे और युद्धमें राज्यापहारी भाईको पराजित करके पिताके सिंहासन पर बैठे। राज्यभ्रष्ट उदयने प्रतिहिंसाके वश हो कर दिल्लीके बादशाहका प्रसाद पानेके लिये उनके पास प्रस्ताव भेजा, और अपनी कन्या देनेके लिए उनके पास पहुंचे। परन्तु दुर्भाग्यवश वज्राघातसे उनकी मृत्यु हो गई।

दिल्लीके बादशाहने अपनी प्रतिज्ञा पालनके लिए शेषमल्ल और सूरजमल्ल नामक उदयके दो पुत्रोंके साथ मेवाड़की तरफ सेना-सहित यात्रा की और

प्राचीन सियार (नाथद्वार) नामक स्थानमें शिविर बना कर राणाको युद्धके लिये तैयार होनेको समाचार भेजा। राणाको मुसलमानके आनेकी बात पहलेसे ही मालूम हो गई थी। वे भी युद्धके लिए आगे बढ़े। उनके अधीन मेवारके अधीनस्थ सरदार और सेनापतिगण तथा गिरनारके दो सामन्त आ कर शामिल हो गये। रायमल्ल अपने परम मित्रोंको सहायतासे बलवान् हो कर ५८ हजार घुड़सवार और ११ हजार पियादे ले कर रणक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए। शेषमल्ल और सूरजमल्ल विषम विक्रमके साथ युद्ध करके भी पिताके सिंहासनका उद्धार न कर सके। दिल्लीके बादशाह इस भीषण युद्धमें पराजित होनेके बाद ऐसे शक्तिहीन हो गये थे, कि वे मेवाड़ पर फिरसे आक्रमण करनेका उद्यम न कर सके।

युद्धमें दोनों भतीजोंकी विशेष वीरताका परिचय पा कर राणा रायमल्ल उन पर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए थे। कई बार उद्यम करने पर भी जब दोनों बालक नष्ट सम्पत्तिका उद्धार न कर सके, तब उन्होंने उपायान्तर न देख बचासे क्षमा प्रार्थना की। वीरचेता रायमल्लने भी उनका सब दोष क्षमा कर दिया और उन्हें अपने परिवारमें मिला लिया। शेषमल्ल और सूरजमल्लने राणा जयमल्लकी तरफसे मालवराज गयासुद्दीनके विरुद्ध युद्ध करके विजयलक्ष्मी प्राप्त की थी। पराजित मालवपतिने भी सन्धिसूत्रमें आवद्ध हो कर विरुद्धाचरण न किया था।

रायमल्लके तीन पुत्र थे। जिनमें बाबरशाहके प्रतिद्वन्द्वी संग (संग्राम) और पृथ्वीराज ही प्रसिद्ध हैं। छोटे जयमल्ल अमिताचारके दोषसे अकालमें कालके ग्रास बन गये और बड़े तथा मध्यम पितृ-सिंहासनके उत्तराधिकारके विषयमें परस्पर विरोधी हो गये जिससे पिताके स्नेहसे वंचित हुए। संगने अपने जीवन-नाशकी आशंकासे छिप कर रहनेके लिए विवासन व्रत धारण किया और मध्यम पृथ्वीराजके अन्याय आचरणसे उत्तेजित हो कर उन्हें उत्तराधिकार-च्युत करके निर्वासित कर दिया।

पितृ-परित्यक्त पुत्र पृथ्वीराजके सिर्फ पांच घुड़सवारके साथ पितृ-भवन छोड़ कर चले आने पर पिता रायमल्लने उन्हें सम्बोधन कर कहा, "बेटा! तुम वीर हो, अपने भुजबलसे और साहससे अपने जीवनका पोषण और रक्षण कर सकोगे।" पृथ्वीराज देखो।

सङ्ग छिपे हैं, पृथ्वीराज निर्वासित हैं और जयमल्ल मर गये, यह देख कर सूरजमल्ल अपनेको चचाके सिंहासनका प्रकृत उत्तराधिकारी समझ कर तथा नाहरा मुगराकी चारणीदेवीके मन्दिरकी सेवाधिकारिणीको सत्य समझ कर आश्वस्तचित्त हो कर राणाके विरुद्ध षड्यन्त्रमें शामिल हुए। इस समय लाक्षाराणाके अन्यतम वंशधर शाङ्गदेव भी उनके साथ शामिल हो गये। ये दोनों ही सहायता पानेकी आशासे मालवाके सुलतान मुजफ्फर खांके शरणापन्न हुए और मुसलमान-सेनाकी सहायतासे इन्होंने दक्षिण-सीमान्तस्थित साद्री, बतूर और नाईसे लगा कर नीमच तक अपने कब्जेमें कर लिये। इस तरह क्रमशः विजय प्राप्त करते हुए वे चितोरके पास पहुंचे। विद्रोहियोंके दमनार्थ राणा रायमल्लने गाम्भीरी नदीके किनारे शत्रुकी सेना पर आक्रमण किया। एक सामान्य सेनापतिकी तरह राणा रणक्षेत्रमें उपस्थित रह कर बाईस अस्त्राघातोंके बाद पृथ्वीराज अश्वारोहियोंको ले कर वहां आ पहुंचे। फिर घोरतर युद्ध शुरू हो गया। सूरजमल्ल पृथ्वीराजके अस्त्राघातसे विशेषरूपसे आहत हुए। किसी पक्षोंको भी विजय न प्राप्त हुई। अन्तमें दोनों सेना सहित शिविरको लौट गये। इसके बाद दोनोंमें और भी कई बार खण्डयुद्ध हुए। अन्तमें पृथ्वीराजने शठतापूर्वक सूरजमल्लको मारनेका निश्चय किया, परन्तु वे अपनी कल्पनाको कार्यरूपमें परिणत न कर सके। सूरजमल्ल मेवाड़से काण्थालके जंगलमें भाग गये और वहांके अरण्यवासी आदिम जातियोंको वशमें कर देवला नगर स्थापन करके वहांका शासन करने लगे।

जयमल्लकी हत्या और संग्रामसिंहके भाग जानेके कारण चितोर राजसिंहासनके उत्तराधिकारीका अभाव हो गया, इससे राणा रायमल्लने वीरहृदय और प्रजावत्सल पुत्र पृथ्वीराजके पहलेके अपराध क्षमा कर उन्हें फिरसे वापस आनेको आज्ञा दी। पृथ्वीराजने उस

आदेश पर ही चित्तोरमें प्रवेश किया था। मार्गमें पितृशत्रु सूरजमल्लको राजसिंहासनके लिए प्रयासी देख कर वे पुनः युद्धमें लिप्त हुए ; परन्तु बहुत कोशिश करने पर भी वे सिंहासन प्राप्त न कर सके। विधाताने उनके भाग्यमें राज्यलाभ न लिखा था। उन्होंने किसी समय भगिनीको निर्यातन करनेके अपराधमें अपने साले आबूपतिको दण्ड दिया था। पिताकी कृपा प्राप्त करनेके बाद, चित्तोरमें रहते हुए वे साले उनके विश्वास-भाजन हो गये थे और अन्तमें विष-प्रयोगसे उन्होंने अपने भगिनीपतिको मार डाला था।

पृथ्वीराजकी अकाल मृत्यु पर भग्नहृदय हो कर रायमल्ल भी शीघ्र ही मर गये। इन्होंने पूर्वपुरुषोंकी भांति जिस वीरताके साथ शिशोदीय वंशकी गौरवरक्षा की थी, उनके योग्य वंशधर संगने भी उसी वीरताके साथ बादशाहकी विपुल मुग़ल-सेनाको आक्रमण किया था।

संग्रामसिंह देखो।

रायमातला—२४ परगनेके अन्तर्गत एक नदी।

मातला देखो।

रायमुकुट—एक प्रसिद्ध टीकाकार। इन्होंने पदचन्द्रिकाके नामसे अमरकोषकी प्रसिद्ध टीका लिखी थी। १४३१ ई०में ये विद्यमान थे। इनकी बुद्धिकी तीक्ष्णता देख कर पिताने इनका नाम 'बृहस्पति' रखा था। रायमुकुट-पद्धति नामक इनका एक स्वतंत्र स्मृतिग्रन्थ भी मिलता है। रघुनन्दनने श्राद्धतत्त्वमें इसका उल्लेख किया है। गौणकुलीन होने पर भी अमरकोषटीकामें इन्होंने अपनेको 'कुलीनाग्रणी' लिखा है।

रायमुनी (हिं० स्त्री०) लाल नामक पक्षीकी मादा, सदिया।

रायराखोल (रेहड़ाकोल)—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलेके अन्तर्गत एक छोटासा सामन्तराज्य। यह अक्षा० २०° ५६´ से २१° २४´ उ० तथा देशा० ८३° ५६´ से ८४° ५३´ पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें बामड़ा, पूर्वमें आठमल्लिक और अंगूल, दक्षिणमें सोनपुर और पश्चिममें सम्बलपुर जिला है। इसका भूपरिमाण ८३३ वर्गमील है। जनसंख्या २६४४४ है। ब्राम्हणी और टिकिरा नामकी दो नदियां यहां प्रवाहित होती हैं। जंगलोंमें शाल, धूना, मोम और लाख पैदा होती है। जगह जगह उत्कृष्ट लोहेकी खानें हैं। सम्बलपुरसे जो रास्ता अंगूल हो कर कटकको गया है, वह इस राज्यके भीतरसे जानेके कारण यहांका देशी व्यापार उसी मार्गसे कटकमें ही चलता है।

पहले रायराखोल बामड़ाके राजाके अधीन था। करीब सौ वर्षसे भी अधिक पहले पटनाके राजाओं द्वारा यह स्वाधीन हो कर गड़जात महलके अन्तर्गत हो गया है। इस राज्यमें ३११ ग्राम लगते हैं।

रायराघव—हस्तरत्नावलीके प्रणेता।

रायरायान (फा० पु०) १ राजाओंके राजा, राजाधिराज। २ मुगलोंके समयकी एक उपाधि जो प्रायः रईसों, जमींदारों और राजकर्मचारियों आदिको दी जाती थी।

रायरी (बेड़ी)—बम्बई प्रेसिडेन्सीके रत्नगिरि जिलेके अन्तर्गत एक दुर्ग। यह वाणिज्य-द्रव्य ले जानेवाली नावोंके जाने आने योग्य एक छोटी नदीके मुहानेके पास पहाड़के ऊपर अक्षा० १५° ४५´ उ० तथा देशा० ७३° ४५´ पू०में अवस्थित है। इस दुर्गका यथार्थ नाम यशवन्तगढ़ है। महाराष्ट्रकेशरी शिवाजी महाराजने १६६२ ई०में इसे बनवाया था। बादमें इस पर सावन्तवाड़ीके राजाओंका कब्जा हो गया। क्रमशः उन दस्यु-प्रकृतिके सरदारोंके अत्याचारोंसे यह स्थान दस्युताका दुर्भेद्य केन्द्र हो गया था। १७०५ ई०में अंग्रेजी सेनाने जा कर इस पर दखल जमाया, परन्तु दूसरे ही वर्ष अंगरेजोंको उसे वापस दे देना पड़ा। १८१२ ई०की सन्धिके अनुसार १८१९ ई०में रायरी दुर्ग अंगरेजोंके हाथमें फिर चला गया और १८२० ई०में अंगरेजोंका प्रभुत्व विस्तृत हुआ।

इस दुर्गका कुछ अंश पर्वतके ऊपर और कुछ अंश चारों तरफकी समतल भूमिपर अवस्थित है। इसकी चतुःसीमामें असमान प्राचीर है। प्राचीर पर जगह जगह २० फुट ऊँचे बुर्ज हैं जिन पर तोपें लगी हुई हैं। एक बुर्जसे दूसरे बुर्ज तक छेदोंवाली दीवाल है। उन छेदोंमेंसे बन्दूकें छोड़ कर आक्रमणकारी शत्रुओंके ऊपर गोली चलाई जा सकती हैं। पहले प्राचीरके प्रवेशद्वारसे एक सीधी सड़क पर्वत परके दूसरे दुर्गद्वार होती हुई मूलदुर्गके चारों तरफके आंगनमें आ कर मिल गई है।

यहांसे कुछ सीढ़ी तै करके ऊपर चढ़ कर तीसरे द्वारसे प्रवेश कर मूलदुर्गमें जाया जाता है। इस दुर्गकी दीवाल बाहरकी चहारदीवारीसे १५ फुट ऊंची है। इसीके नीचे पर्वतको विदीर्ण करती हुई २४ फुट चौड़ी और १३ फुट गहरी एक खाई है। दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व कोणमें खाई न होनेसे दुर्गके भीतरकी सेनाकी रक्षार्थ यह स्थान शत्रुसेनाके गोलोंसे बचनेके लिए अत्यन्त दुर्भेद्य बनाया गया था। दुर्गके सबसे ऊंचेकी मंजिलकी दीवालका परिसर १२ फुट है। ऊपरके प्राचीर पर हर ६० फुटके अन्तरमें तोपें लगी हुई हैं और एक एक अर्द्ध गोलाकार बुर्ज हैं।

इस दुर्गके पास ही हस्तदोलगढ़ पहाड़ है। उसके सामने पत्थर काट कर गुफाएं बनाई गई हैं। ये गुफाएं हजार वर्ष पहलेकी काटी हुई हैं। स्थानीय लोग इन्हें पवित्र मानते हैं।

रायल (अं० वि०) १ राजकीय, शाही। २ छापनेकी कलों तथा कागजकी एक नाप जो २० इञ्च चौड़ी और २६ इञ्च लम्बी होती है।

रायलचेरुवू—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलेके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० १३° ३०´ ५´´ उ० और देशा० ७९° २७´ ३०´´ पू०में अवस्थित है। विजयनगरके राजा कृष्णदेव रायलू द्वारा निर्मित प्रसिद्ध बांधके कारण ही इस स्थानकी प्रसिद्धि है। आधी मीलके फासलेमें दो पहाड़ोंमें बाँध दे कर यह दिग्घी बनाई गई है। इसकी विस्तृति १२० फुट और ऊंचाई ७० फुट है। तिरुपतिसे काञ्चीपुर जानेवाले यात्रिगण यहां ठहरा करते हैं।

रायबलसा—मन्द्राजप्रेसिडेन्सीके विशाखपत्तन जिलेके अन्तर्गत एक पर्वत और घाटी। यह अक्षा० १८° १५´ उ० और देशा० ८३° ७´ पू०में अवस्थित है। इस रास्तेसे कासिमकोटसे गल्लिकोण्डका परित्यक्त स्वास्थ्य-निवास पार कर जयपुर पहुंचा जा सकता है। विजयनगरम्‌के महाराजकी यहां काफीकी खेतीका स्टेट है। यह स्थान समुद्रसे २८५० फुट ऊंचा है।

रायबरेली—१ युक्तप्रदेशके अयोध्या-विभागके अन्तर्गत एक विभाग। इसका शासन गवर्नरके अधीन कमिश्नर द्वारा होता है। यह अक्षा० २५° ३४´ से २६° ३९´ ५´´ उ० तथा देशा० ८०° ४४´ से ८२° ४४´ पू०में अवस्थित है। रायबरेली, सुलतानपुर और प्रतापगढ़ जिले इसके अन्तर्भुक्त हैं। इसके उत्तरमें बाराबंकी और फैजाबाद, पूर्वमें आजमगढ़ और जौनपुर, दक्षिणमें इलाहाबाद और फतेपुर तथा पश्चिममें उन्नाव और लखनऊ जिले हैं। इसका भू-परिमाण ४८८१०७ वर्गमील है।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह युक्तप्रदेशके गवर्नरके अधीन है। यह अक्षा० २५° ४९´ से २६° ३५´ उ० तथा देशा० ८०° ४४´ से ८१° ४०´ पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें लखनऊ और बाराबंकी, पूर्वमें सुलतानपुर और दक्षिणमें प्रतापगढ़ है। दक्षिण-पश्चिममें गङ्गा नदी और पश्चिममें उनाव जिला है। इसका भू-परिमाण १७३८ वर्गमील है। बरेली शहर इसका विचार सदर है।

इस जिलेका पृथक् कोई इतिहास नहीं है। अङ्गरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद १८६९ और १८८१ ई०में इसके आयतनमें परिवर्त्तन हुआ था। सारा जिला क्रमोच्चनिम्न समतलक्षेत्र है। जगह जगह महुआ और आमके बाग हैं। गङ्गाके किनारे बबूल, पीपर आदिके पेड़ हैं। गङ्गा और साई यहांकी मुख्य नदियां है। इनके सिवा लूना, बसाहा और नाइया नामकी तीन शाखानदियां हैं। १८६४ ई०में इस नगरमें साई नदीके ऊपर पुल बना था।

३ उक्त जिलेकी तहसील। भू परिमाण ३७११० वर्गमील है। प्रसिद्ध वाईं क्षत्रियवंशके महानुभव तिलकचंद यहां राज्य करते थे।

४ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार-सदर। यह अक्षा० २६° १०´ ५०´´ उ० और देशा० ८१° २६´ २४´´ पू०में साई नदीके किनारे पर अवस्थित है। दुर्द्धर्ष भर-जाति द्वारा इस नगरकी प्रतिष्ठा हुई थी और प्रतिष्ठाताकी जातिके नामानुसार इसका नाम भरौली और पीछे अपभ्रंश हो कर बरेली पड़ा। किम्बदन्ती है कि, इसके पास राहि (राई) नामका एक ग्राम है, इसलिये इसका नाम रायबरेली पड़ गया है। एक दूसरा प्रवाद प्रचलित है जिससे मालूम होता है, कि यहां पहले राय उपाधिधारी किसी कायस्थका आधिपत्य था। रायोंकी वासभूमि भरौली (भर-कृत) नगरमें परिणत होने पर दोनोंके योगसे रायबरेली पड़ गया।

ईसाकी १५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जौनपुरके राजा इब्राहिम सर्कीने भरजातिको भगा कर इस स्थान पर अधिकार किया था। तभीसे यहां मुसलमानोंका प्रभाव फैला है। मुसलमान राजा इब्राहिम सर्कीने यहां एक छोटा सा दुर्ग बनवाया था। इस दुर्गकी ईंटोंकी लम्बाई २´× चौड़ाई १॥´× और ऊंचाई १ फुट है। प्रत्नतत्त्व-विदोंका अनुमान है, कि मुसलमानोंने सम्भवतः किसी प्राचीन दुर्गकी ईंटोंसे यह दुर्ग बनवाया होगा। दुर्गके बीचमें एक २१६ हाथ परिधिकी बावली है। अब तो इसका अधिकांश टूट फूट गया है।

प्रवाद है, कि मुसलमान राजा दुर्ग बनवाते समय दिन भर जितना चुनवाते थे, रातको किसी अभावनीय कारणसे उतना सब ढह जाता था। उत्तरोत्तर ऐसी दुर्घटना होने पर राजाने जौनपुर-निवासी मखदुम सैयद ज़ाफरी नामक मुसलमान साधुसे प्रतिकारके लिये प्रार्थना की। तदनुसार राजाकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये उक्त साधु उसके चारों तरफ घूम फिर गये। फिर कोई उपद्रव नहीं हुआ। दुर्गद्वारके पास उक्त साधुकी समाधि विद्यमान है। अन्यान्य अट्टालिकाओंमें राज-प्रासाद, मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबके अधीनस्थ शासनकर्त्ता नवाब जहान खाँका समाधिभवन और ४ मसजिदें हैं, जिनमें एक गुम्बज-रहित और मक्केकी काबा मसजिदके अनुकरण पर बनाई गई है, ऐसी प्रसिद्धि है। साई नदीका पुल स्थानीय ज़मींदारोंके व्ययसे बना है।

रायवाघिनी (सं० स्त्री०) १ उग्र प्रकृति, चंचल स्वभाव। २ प्रचण्डा और कलहप्रिया रमणी।

रायशांकली—बम्बईप्रदेशके झालावार-प्रान्तस्थ एक क्षुद्र सामन्तराज्य। यहांके अधिपति अंगरेज राजको और जूनागढ़के नवाबको कर दिया करते हैं।

रायशेखर—एक वैष्णव पदावलीकार। इनका प्रकृत नाम था शशिशेखर। बर्द्धमान जिलेके पड़ानगांवमें इनका जन्म हुआ था। ये श्रीखण्डवासी रघुनन्दन गोस्वामी-के शिष्य और नित्यानन्दके वंशज थे। गोविन्दरायके पीछे इन्होंने बंगला पद बनाया। कोई कोई इन्हें चंद्रशेखर कहा करते हैं।

रायसा (हिं० पु०) वह काव्य जिसमें किसी राजाका जीवनचरित वर्णित हो, रासो।

राय साहब (फा० पु०) एक प्रकारकी पदवी जो भारत-की अंगरेजी सरकारकी ओरसे रईसों और राजकर्म-चारियों आदिको दी जाती है।

रायसिंह—वैद्यकसारसंग्रह या राजसिंहोत्सव नामक वैष्णवग्रन्थके प्रणेता।

रायसेन (रायसिंह)—मध्यभारतके भोपाल राज्यके अन्तर्गत एक गिरि-दुर्ग। यह अक्षा० २३° २०´ उ० और देशा० ७७° ४७´ पू०में समुद्रसे १६५० फुटकी ऊंचाई पर एक छोटी पहाड़ी पर अवस्थित है। यहांसे भारतप्रसिद्ध साँचीकी बौद्धकीर्त्ति १० मीलकी दूरी पर है। होशङ्गा-बादसे सागर जानेका रास्ता इस स्थानके पाससे गया है। यह दुर्ग दुर्भेद्यता और गठननैपुण्यमें इतिहासप्रसिद्ध था। १५४३ ई०में शेरशाहने इस दुर्गको घेरा और जीता था। ईसाकी १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें मराठा-सेनाने इस पर कब्जा किया था, किन्तु इसके कुछ ही समय बाद १७४८ ई०में भोपालके नवाबने इसे मराठोंसे छीन लिया था। १८१८ ई०में उक्त दोनों राजा अंग्रेजोंके साथ सन्धिसूत्रमें जकड़ गये थे।

रायस्काम (सं० त्रि०) धनकाम, धनकी इच्छा करने-वाला।

रायस्पोष (सं० पु०) १ धनपुष्टि, काफी धन। (त्रि०) २ धनपुष्ट, धनवान्।

रायस्पोषक (सं० त्रि०) धनपुष्टियुक्त, काफी धनवाला।

रायस्पोषदा (सं० स्त्री०) धनपुष्टिदायिनी, काफी धन देनेवाली।

रायस्पोषदावन् (सं० त्रि०) धन या सौभाग्यदाता।

रायस्पोषवनि (सं० त्रि०) सोने चांदी देनेवाला, काफी धन देनेवाला।

रायाण—वृन्दावन-वासी एक गोप। कृष्ण-माता यशोदाके भाई। कृष्णप्रिया श्रीराधिकाके साथ इनका विवाह हुआ था। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि गोलकमें विरजा-विहारमें प्रवृत्त कृष्णको देख कर राधाने उन्हें फटकारा था। उस समय उन्होंने कृष्णके पास बैठे हुए सुदामाका भी तिरस्कार किया था। सुदामाके शापसे राधा गोप-कन्याके रूपमें वृषभानु वैश्यकी पत्नी कलावतीके वायु-गर्भमें आविर्भूता हुई थीं।

नवयौवना राधाको बारहवीं साल बीत जाने पर वृषभानुने रायान वैश्यके साथ अपनी कन्याका विवाह करना स्थिर किया। तब राधा उस देहमें छायामात्र रख कर अन्तर्धान हो गई और छायाके साथ रायानका विवाह हो गया। रायान कृष्णांश-सम्भूत और गोलकके गोप थे। मर्त्यधाममें आ कर वे नातेमें कृष्णके मामा हुए। राधाकी अवस्था जब चौदह वर्षकी हुई, तब कृष्ण कंसके भयके बहाने गोकुलमें लाये गये।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रकृतिख० ४९ अ०)

मतान्तरसे ऐसा है, कि रायानने पूर्वजन्ममें लक्ष्मीको प्राप्त करनेकी आशासे तपस्या की थी। नारायणके वरसे उन्हें लक्ष्मी प्राप्त होने पर भी लक्ष्मीके आदेशसे वे नपुंसत्वको प्राप्त हुए थे। लक्ष्मीके अनुरोधसे भगवान्‌ने कृष्णावतारमें उन्हें पुनः ग्रहण किया था।

रायाणीय (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

रायेकवाड़ (रायकवाड़)—राजपूत जातिकी एक शाखा। ये सूर्यवंशी कहलाते हैं। १४१४ ई०में तुगलकवंशके अधःपतनसे हिन्दुस्तानमें घोर अराजकता उपस्थित होने पर प्रताप शा और दुरडी शा नामक दो सूर्यवंशी राजपूत भाइयोंने काश्मीर राज्यमें रायका ग्रामसे भड़ौंचमें, फिर बाराबंकी जिलेके रामनगरमें आ कर बसे थे। इनके वंशधरोंने १४५० ई०में किसी भरराजको पराजित कर उनकी विस्तृत सम्पत्ति प्राप्त की थी। प्रताप शाके अधःस्तन पञ्चम पुरुष राजा हरिहरदेव मुगल-सम्राट् अकबरके समसामयिक थे। उनके राज्यमेंसे कोई मुगल-राजकन्या सैयद सालरकी समाधि देखने गई थी। राजाने इसके लिये कर लिया था, जिससे अकबर शाह द्वारा वे तिरस्कृत हुए थे। पीछे राजा हरिहरदेवने सम्राट्‌की तरफसे काश्मीरके राजद्रोही शासनकर्त्ताको दमन किया और इसके लिये उन्हें पुरस्कार-स्वरूप नौ परगने प्राप्त हुए। इस राजवंशके साथ उनाव-राजवंशकी कुटुम्बिता है।

रामनगर और बौन्डी-राजवंशके प्रतिष्ठाताके भैरवानन्द नामक एक भाई थे। उनके भतीजेने भविष्यवाणी कह कर अपने चचासे निवेदन किया कि आपके आत्मोत्सर्गसे हमारे वंशका माहात्म्य चिर-दिन अक्षुण्ण रहेगा। तदनुसार भैरवानन्दने अन्दाशिहली ग्राममें एक कूपके पास चबूतरा बनवा कर उसके ऊपरसे कूपमें गिर कर प्राण विसर्जन कर दिये। तबसे वह स्थान पवित्र तीर्थ समझा जाता है। रायकवाड़ लोग प्रतिवर्ष यहां आया करते हैं।

स्थानभेदसे ये विभिन्न श्रेणियोंके राजपूतोंके साथ आदान-प्रदान करते हैं। रायबरेली जिलेमें ये बिषेण और घर्घरावासी बाईयोंकी लड़की लेते और अमेठिया, पनवार तथा बाईयोंको लड़की देते हैं। बरेलीमें बाचाल और गौतमके घर लड़केका विवाह करते हैं। फरुखाबादी लोग वाशिष्ठगोत्री और सोमवंशी, राठोर और चौहानके घर कन्या देते हैं। ये लोग पुत्रका विवाह और सबोंके घर कर सकते हैं।

रायेन (रायन)—उत्तर-पश्चिम भारतमें रहनेवाली एक जाति। किसानी और मालीका काम करना इनका जातीय रोजगार है। रोहिलखण्ड और मेरठ-विभागमें हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकारके रायेन रहते हैं। पञ्जाब-प्रदेशमें ये 'अरायेन' कहलाते हैं। सिरसा, रानिया और दिल्लीवाल रायेन हिन्दू और राजपूत तथा लाहोर-प्रतिष्ठाता राजा लवके पौत्र राय जाजके वंशधर हैं, ऐसी प्रसिद्धि है। ईसाकी १२वीं शताब्दीमें साहबउद्दीन गोरीके राज्यकालमें ये इस्लामधर्ममें दीक्षित हुए थे। जालन्धरवासी रायनोंका कहना है, कि वे राजा करणके ५म पुरुष अधस्तन राजा भूतके वंशधर हैं। उच्छप्रदेशमें इनका वास था। गजनी-पति महमूदने उन्हें मुसलमान बनाया था। उच्छ-पतिने बसन्ती नामके किसी रायनकी कन्यासे पाणिग्रहणके लिये कहा, तो उन्होंने स्वीकार नहीं किया, जिससे नाराज हो कर राजाने उन्हें राज्यसे निकाल दिया। तब वे सिरसा और पञ्जाबके नाना स्थानोंमें जा कर रहने लगे। इस विषयमें उनमें एक किम्वदन्ती है—

"उच्छ, मा दिते भूतिआं, चाता बसन्ती नार।
दाना-पानी चूक गया, चावन मोती हार॥"

हिसारके रायनोंका कहना है, कि पहले वे राजपूत थे, मुसलमान होनेके बाद उनका जातीय सम्मान जाता रहा और समाज-भ्रष्ट हो कर खेतीका काम करना पड़ा।

इनमें अब भी विरोहा, चौहान और भाटी आदि राजपूतोंके गोत्र प्रचलित पाये जाते हैं। जिनमें कटमा गोत्र ही रायन जातिका आदि गोत्र है।

सिरसाके रायन कहते हैं, कि शत्रुओं द्वारा उच्छले भगाये जा कर वे मुलतान आ कर रहे और सैनिक-वृत्ति छोड़ कर कृषिवृत्ति करनेको बाध्य हुए। १७६५ ई०के दुर्भिक्षमें ये घाघर नदीके किनारे आ कर भाटनसे फतेहाबादके तोहाना तक घाघर-उपत्यका पर अधिकार करके वहीं खेती-बारी करते रहे। इस समय लुटेरे भट्टियोंके उपद्रवसे शक्तिहीन हो कर ये बरेली, पीलीभीत और रामपुर आदि स्थानोंमें जा कर रहने लगे।

रायोबाज (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

रायोबाजीय (सं० त्रि०) सामभेद।

रार (हिं० पु०) १ झगड़ा, टंटा, हुज्जत। (स्त्री०) २ राल देखो।

रारा (सं० पु०) १ सौन्दर्य। २ आलोक, रोशनी। ३ ज्योति।

राल (सं० पु०) १ सज्जतरु। (Mimosa Ruteicaulis) धूनाका पेड़। २ सर्जरस, सालवृक्षका निर्यास, धूना। पर्याय—साल, कनकलोद्भव, ललन, सालनिर्यास, सुरधूप, यक्षधूप, अग्निवल्लभ, कल, कललज। गुण—शीतल, स्निग्ध, कषाय, तिक्त, संग्राहक तथा वातपित्त, स्फोटक, कण्डु और व्रणनाशक। (राजनि०)

राल (सं० पु०) वृक्षका एक प्रकारका सख्त निर्यास या गोंद। जो तरल गोंद जलमें गल जाता है उसे Gum *R*esin कहते हैं। इसमें राल और तेल बहुतायतसे होता है। एकमात्र तेल और राल मिले हुए गोंदका नाम Oleo Resin है। जो सब कठिन और कोमल गोंद लाख आदिके साथ व्यवहृत होता है वही True Resin या राल कहलाता है।

राल वृक्षका आटा देखनेमें गोंदकी तरह होता है। आगमें पकानेसे यह गल जाता और चोट देने पर चूर्ण होता है। यह जलमें नहीं गलता। इथर यानी एलकोहलमें मिलानेसे द्रव होता है। इसमें अधिक मात्रामें कार्बन और कम मात्रामें आक्सिजन रहता है। नाइट्रोजन नाममात्रका भी नहीं रहता। सिनामिक् और बेनजोयिक् एसिड, भलेटाइल आयेलके अतिरिक्त इसमें Cell ulose, tannin आदि वृक्ष रहते हैं।

लाखमें राल मिलानेसे पात और बटन (Shellac और Button Lac) तैयार होता है। जो सब लाखके खिलौने बाजारमें बिकते हैं उनमें अधिक भाग राल ही है। बट आदि पेड़के कच्चे आटेमें राल गला कर चिड़िया मारनेवाला चिड़िया पकड़नेके लिये एक प्रकारका आटा बनाता है। पर्याय—साल, कनकलोद्भव, ललन, सालनिर्यास, देवेष्ट, शीतल, बहुरूप, सालरस, सर्ज्जनिर्यासक, सुरभि, सुरधूप, यक्षधूप, अग्निवल्लभ, कल, कललज। रसका गुण—शीतल, स्निग्ध, कषाय, तिक्त, संग्राहक, वातपित्त, स्फोटक, कण्डू और व्रणनाशक माना गया है। (राजनि०)

राल (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कंबल। (स्त्री०) २ वह पतला लसदार थूक जो प्रायः बच्चों और कभी कभी बुड्ढोंके मुंहसे आपसे आप बहा करता है। दाँतोंकी पीड़ा आदिमें कोई कोई दवा लगाने पर भी यह मुंहसे निकल कर गिरने लगता है, सार। ३ चौपायोंका एक रोग जिसमें उन्हें खाँसी आती हैं और उनके मुँहसे पतला लसदार पानी गिरता है।

रालकार्य (सं० पु०) रालस्य सालरसस्य कार्यं यत्र सालका पेड़।

राली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका बाजरा। इसके दाने बहुत छोटे होते हैं। यह प्रायः संयुक्तप्रान्त और बुन्देलखण्डमें होता है। यह फागुन चैतमें बोया जाता है और वैशाखमें तैय्यार होता है।

राव (सं० पु०) रवणमिति रु-ध्वनौ घञ्। शब्द, ध्वनि।

राव (हिं० पु०) १ राजा। २ सरदार, दरबारी। ३ श्रीमन्त, धनाढ्य। ४ भाट, बंदीजन। ५ कच्छ और राजपूतानेके कुछ राजाओंकी एक पदवी। ६ छोटे आकारका एक पेड़। इसकी लकड़ी कुछ ललाई लिये चिकनी और मजबूत होती है। यह हिमालयकी तराईमें हजारे और सिमलेसे भूटान तथा शिकिम तक होता है। इसकी लकड़ीकी प्रायः छड़ियां बनाई जाती हैं।

रावचाव (हिं० पु०) १ नृत्य गीत आदिका उत्सव, राग रंग। २ प्यार, लाड़, दुलार।

रावजो मोडक—नीतिमुकुलके प्रणेता।

रावट (हिं० पु०) राजभवन, महल।

रावटी (हिं० स्त्री०) १ कपड़े का बना हुआ एक प्रकारका छोटा घर या डेरा। इसके बीचमें एक बंडेर होती है और इसके दोनों ओर दो ढालुए परदे होते हैं। यह बड़े खेमों के साथ प्रायः नौकरों आदिके ठहरनेके लिये रखी जाती है, छौलदारी। २ बारहदरी। ३ किसी चीजका बना हुआ छोटा घर।

रावण (सं० पु०) रवणस्यापत्यमिति रवण (शिवादिभ्यो-ऽण्। ४।१।११२) इति अण्, यद्वा रावयति भीषयति सर्व्वानिति रु-णिच्-ल्यु। १ मुहूर्त्त। २ लङ्काधिपति। पर्याय—पौलस्त्य, रक्षस्, लंकेश, दशकन्धर, दशकण्ठ, निकषात्मज, राक्षसेन्द्र, पङ्क्तिग्रीव, दशानन, लङ्कापति, दशास्य। (जटाधर)

इसकी नामनिरुक्ति—

"यस्माल्लोकभयं चैतद्द्रावितं भयमागतम्।
तस्मात्त्वं रावणो नाम नाम्ना वीरो भविष्यसि॥"

(रामायण)

इससे तीनों लोक द्रावित और भयभीत होता था। इस कारण इसका रावण नाम पड़ा। राक्षसाधिपति रावणकी उत्पत्ति और निधनादिका विषय रामायणमें इस प्रकार लिखा है—

ब्रह्माके पौत्र पुलस्त्य, पुलस्त्यके पुत्र विश्रवा और विश्रवा हीका पुत्र रावण था।

लङ्कामें राक्षसगण रहते थे। इन राक्षसोंके साथ भगवान् विष्णुका घोर संग्राम हुआ। युद्धमें हार खा कर राक्षसगण पाताल भागे। इनमेंसे सुमाली नामक एक राक्षस था। सुमालीके कैकसी नामक एक सुन्दर कन्या थी। सुमाली रसातलमें कुछ दिन रह कर कन्याके विवाहके लिये उसे साथ ले रसातलसे निकला। रास्तेमें वह मन ही मन सोचता जाता था, कि इस कन्याके गर्भसे जो सन्तान उत्पन्न होगी वह यदि विष्णुको दमन कर सके तो हम लोगोंका दुःख दूर होवे।

सुमालीने कन्याका वर मन ही मन स्थिर कर कन्यासे कहा, 'बेटी! तुम प्रजापतिकुलसे उत्पन्न पुलस्त्यके पुत्र विश्रवाके पास जाओ और उसे अपना पति बना कर अत्यन्त तेजस्वी शत्रुका दमन करनेमें समर्थ ऐसे एक पुत्रके लिये प्रार्थना करो। कैकसी पिताके आदेश पा कर जहां विश्रवा तपस्या करते थे, वहीं गई और उन्हें प्रणाम कर रहने लगी।

एक दिन विश्रवाने इस अनवद्या कुमारीको देख कर कहा, 'भद्रे! तुम किसकी कन्या हो? कहांसे और क्यों यहां पर आई हो? कैकसी लज्जासे शिर झुकाये बोली, 'मुनिवर! मैं पिताके कहनेसे यहां आई हूं, कैकसी मेरा नाम है। किस लिये मैं यहां आई हूं सो आप स्वयं तपके प्रभावसे जान सकते हैं।'

विश्रवाने तपके प्रभावसे कुल विषय मालूम कर कैकसीसे कहा, 'भद्रे! तुम एक पुत्रकी कामनासे यहां आई हो। मुझसे तुम्हारे जो एक पुत्र होगा वह क्रूर ब्राह्मणोंका प्रिय, क्रूरस्वभाव, भयङ्कर और क्रूरकर्मा होगा।' कैकसी मुनिका वचन सुन प्रणाम कर बोली 'भगवान्! आप ब्रह्मवादी हैं, मुझे दुराचारी पुत्रकी जरूरत नहीं, मैं एक उत्तम पुत्रके लिये प्रार्थना करती हूं।'

विश्रवाने कैकसीका वचन सुन कर कहा, 'तुम्हारा छोटा लड़का मेरे वंशानुरूप धर्मशील होगा।' कुछ समय बाद कैकसीने विश्रवासे एक सुदारुण वीभत्स राक्षस प्रसव किया। उस राक्षसके दश मस्तक, केशकलाप-प्रदीप्त, ओष्ठ लोहित, दन्त विशाल, बाहुवीर और वर्ण घोर काला था। पुत्रके उत्पन्न होते ही नाना प्रकारका भयावह उत्पात होने लगा। दशग्रीव होनेके कारण पिताने उसका दशग्रीव नाम रखा।

पीछे कैकसीके गर्भसे कुम्भकर्ण और विभीषण नामक दो पुत्र और सूर्पनखा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। धनेश्वर कुबेर भी विश्रवा-नन्दन थे। उस समय वे लङ्कामें रहते थे। एक दिन वैश्रवण धनेश्वर पितासे मिलने आये। कैकसीने दशाननसे कहा, 'बेटा! अपने भाईको देखो, यह विपुल धनका सम्पत्ति और तेजसम्पन्न है। तुम्हें भी अपने भाईके समान ऐश्वर्य और तेजस्वी होनेकी कोशिश करनी चाहिये।'

दशाननने माताकी बात सुन कर कहा, 'मैं आपके निकट प्रतिज्ञा करता हूं, कि अपने तपके प्रभावसे भाई-के समान अथवा उनसे बढ़ कर तेजस्वी होऊंगा। आप इस छोटी सी बातके लिये चिन्ता न करें।' इसके बाद दशानन अपने भाइयोंके साथ घोर तपस्या करने लगा। इस प्रकार हजार वर्ष बीत गया। रावणने अपना एक मस्तक काट कर अग्निमें आहुति दी। इस प्रकार वह ९ हजार वर्ष तक कठोर तपस्या करता रहा, पर कोई फल नहीं निकला। पीछे एक एक कर उसने ९ मस्तकों-की आहुति दे डाली तो भी कोई फल नहीं। दश हजार वर्ष बीतने पर दशग्रीवने दशवां मस्तक काटना चाहा। लोकपितामह उसकी तपस्यासे प्रसन्न हो वहां आये और बोले, 'दशानन! अब तुम्हें दशवां मस्तक काटना नहीं पड़ेगा, तुम्हारी तपस्यासे मैं संतुष्ट हुआ, जो इच्छा हो वर मांगो।'

दशाननने ब्रह्माको प्रणाम कर कहा, 'ब्रह्मन्! यदि आप प्रसन्न हैं, तो यही वर दीजिये, जिससे मैं अमर होऊं। क्योंकि प्राणीको मृत्युका भय ही हमेशा हुआ करता है, दूसरा भय नहीं। विशेषतः मृत्युके समान और कोई शत्रु नहीं है।'

ब्रह्माने कहा, 'पृथिवी पर कोई भी अमर नहीं हो सकता। इसलिये तुम अमरको छोड़ कर दूसरे वरके लिये प्रार्थना करो।' रावण बोला, 'भगवन्! यदि सच मुच अमर वर देना न चाहते हों, तो यही वर दीजिये जिससे मैं देव, दानव, दैत्य, यक्ष, रक्ष, नाग और सुपर्ण-से मारा न जाऊं। मनुष्य आदि प्राणियोंको तो मैं तृण-के समान जानता हूं, उनका डर मुझे जरा भी नहीं है। ब्रह्मा 'तथास्तु' कह कर चल दिये। जाते समय उन्होंने कहा था, 'तुमने जिन सब मस्तकोंकी अग्निमें आहुति दी है, वे सब मस्तक फिर उसी प्रकार हो जायंगे और तुम जो चाहोगे, वही तुमको मिल जायगा।' पिता-महके इस प्रकार कहते ही अग्निमेंसे सभी मस्तक फिर निकल आये।

सुमाली राक्षसको जब रावणादिके वरलाभका हाल मालूम हुआ, तब उसका कुल भय जाता रहा। उसने अनुचरोंके साथ रसातलसे बाहर निकल कर रावणसे कहा, 'वत्स! तुमने ब्रह्मासे उत्तम वर पाया है। हम लोगोंके हृदयमें यह आशा बहुत दिनोंसे लगी हुई थी, अभी भाग्यवश वह पूर्ण हुई। हम लोग जिस लिये लङ्काका परित्याग कर पातालमें आ कर रहते थे, वह भय आज हम लोगोंका दूर हुआ। विष्णुके भयसे हम लोगोंने इस स्थानको छोड़ा था। पहले लङ्का नगरी राक्षसोंके अधिकारमें थी। अभी तुम्हारा भाई कुबेर वहां रहता है। तुम चाहे जिस किसी उपायसे हो, लङ्का नगरी पर अधिकार करो इससे राक्षसोंका बड़ा भारी उपकार होगा। पीछे हम लोग तुम हीको लङ्काका राजा बनायेंगे।'

रावण मातामह सुमालीका वचन सुन कर राक्षसों-के साथ लङ्का गया और कुबेरको लङ्कापुरी छोड़ देनेके लिये कहला भेजा। कुबेरने रावणके दूतसे कहा, 'यह राक्षस-शून्या लङ्कापुरी पिताजीने मुझे दी थी। मैंने उसी लिये यहां पुरी बसाई है। मेरा यह राज्य और पुरी तुम्हारी ही है। अतएव तुम अकण्टक राज्य भोग करो। मुझे इस राज्य और धनकी कुछ भी जरूरत नहीं है।'

कुबेर इस प्रकार दूतको विदा कर पिताके पास गये और उन्हें कुल वृत्तान्त कह सुनाया। विश्रवाने कुबेर-से कहा, 'पुत्र! दशाननने भी मुझसे यही कहा, लेकिन मैंने उसको बहुत फटकारा। पीछे मैंने क्रुद्ध हो कर 'तुम ध्वंस होगे' इस प्रकार। अभिशाप भी दिया। दुर्मति रावण वरके प्रभावसे हिताहितज्ञानशून्य हो गया है। इसलिये तुम अभी लङ्काका परित्याग कर अनुचरों-के साथ कैलास-पर्वत पर चले जाओ और वहीं रहनेके लिये पुरी निर्माण करो।'

कुबेरने लङ्कापुरीका त्याग कर दिया है, सुन कर रावण अनुचरोंके साथ लङ्का गया और वहीं रहने लगा।

लङ्काराज्यमें अभिषिक्त हो रावणने मयदानवकी कन्या मन्दोदरीसे ब्याह किया। कुछ दिन बाद मन्दोदरी-के गर्भसे मेघनाद उत्पन्न हुआ। रावणने ब्रह्माके वरसे बलवान् हो स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों लोकको जीता। इन्द्र, यम आदि दिक्पाल भी हार खा कर रावणके

आज्ञानुसार कार्य करनेको बाध्य हुए। उस दुर्दान्तने पहले कुबेरको पराजय कर उनका पुष्पक विमान छीन लिया। अब पुष्पक विमानकी सहायतासे वह क्षण भरमें स्वर्ग, मर्त्य और पाताल आने जाने लगा।

दुष्ट रावण राहमें देवकन्या, दानवकन्या, राजकन्या और ऋषिकन्याकी हरण करने लगा। वह जिसको रूपवती देखता उसके आत्मीयको विनाश कर उसे हरण कर लेता था। कोई भी उसे लड़ाईमें जीत नहीं सकता था। इस प्रकार रावण वर पा कर गर्वित और दुर्दान्त हो गया।

एक दिन रम्भा नामक एक अप्सरा नलकुबेरको अपना पति वर कर उनके पास जा रही थी। राहमें संयोगवश रावणके साथ उसकी भेंट हो गई। रावण उसे देख बलपूर्वक हर ले गया। रम्भा निरुपाय हो बड़ी बिनतीसे उसे कहने लगी, "आप मेरे गुरुजन हैं, आप मेरे श्वशुर हैं। अतएव मैं आपकी कन्या सदृश हूं। मुझ पर इस प्रकार बलात्कार न करें।" रावण कामके मदसे उन्मत्त था, उसकी बात पर कुछ भी कान न दिया, बलपूर्वक शिला पर पटक कर सम्भोग किया।

रम्भा नितान्त अपमानित और धर्मभ्रष्टा हो रोती हुई नलकुबेरके पास गई। नलकुबेर उसकी अवस्था देख कर और कुल वृत्तान्त सुन कर आगबबूला हो गये। उन्होंने रावणको शाप दिया, 'यदि रावण फिर कभी अकामा स्त्रीके साथ संभोग करेगा, तो उसका मस्तक उसी समय सात टुकड़ोंमें बट जायगा।'"

रावण नलकुबेरके शापसे फिर कभी भी अकामा स्त्रीके साथ संभोग नहीं कर सकता था। स्त्रीको हरण कर छल, बल, कौशल वा प्रलोभन आदिसे उसे सकामा बना कर तब संभोग करता था। इस पर भी जो नहीं लुभाती थी उसे वह तरह तरहका कष्ट देता था।

रावण सहस्रबाहु अर्जुनके पराक्रमकी बात सुन कर उसके साथ लड़ने गया और परास्त हुआ। अर्जुनने उसे कारागारमें बंद रखा। पुलस्त्यको जब यह मालूम हुआ, तब वह अर्जुनके पास आया और उसे छोड़ देनेके लिये प्रार्थना की। अर्जुनने रावणको छोड़ दिया और उससे मित्रता कर ली।

इसके बाद जब रावणको वानरराज वालीके पराक्रमका हाल मालूम हुआ, तब उससे युद्ध करने गया। उस समय वाली समुद्रके किनारे संध्यावन्दनादि कर रहा था युद्धके लिये रावणको आया देख उसे अपनी पूंछसे बांधा और चार समुद्रमें घुमाया। पीछे संध्यावन्दनादि कर अपने घर लौटा। रावणने नितान्त क्लिष्ट और व्यथित हो हार स्वीकार की और पीछे वालीसे मित्रता कर ली। इस प्रकार बहुत दिन बीत गया। रावणके भयसे देवगण भी नितान्त भयभीत हो रहने लगे।

स्वर्ग, मर्त्य और पाताल यह त्रिभुवन अत्यन्त उत्पीड़ित हो उठा। रावण देवदानव आदिका अवध्य था, इसलिये कोई भी उसके विरुद्ध खड़ा नहीं हो सकता था।

भगवान् विष्णुने त्रिभुवनको नितान्त उत्पीड़ित देख भूभारहरणके लिये दशरथके घर नररूपमें अवतार लिया। नर भक्ष्य है, अतएव उससे मृत्युकी सम्भावना नहीं है, इस कारण नरका अवध्यत्व वर रावणने ग्रहण नहीं किया। भगवान्का नररूप धारण करनेका यही एक कारण था।

भगवान्के अवतार रामचन्द्र पितृसत्यका पालन करनेके लिये निर्वासित हुए और सीता और लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें रहने लगे। इस दण्डकारण्यमें शूर्पनखा रहती थी। उसके साथ खरदूषण भी था। शूर्पनखा राम और लक्ष्मणको देख कर कामपीड़ित हुई। उसने अति कमनीय रमणीवेशमें रामलक्ष्मणको मोहित करनेकी चेष्टा की। राम लक्ष्मणने उसकी ओर दृष्टि तक भी नहीं उठाई। शूर्पनखाने भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। इस प्रकार तंग आ कर लक्ष्मणने उसके नाककान काट डाले और उसे मार भगाया।

शूर्पनखा नितान्त अपमानित हो रावणके पास गई और उसने सीताके अलोक-सामान्य सौन्दर्यका विषय उससे कहा। रावण सीताके रूपलावण्यकी बात सुन कर उन्हें हर लानेके लिये मारीचके पास गया। मारीचने रावणका अभिप्राय जान कर रामके बलवीर्यका परिचय दिया और ताड़कावधका वृत्तान्त कहा। रावणने उसकी बात पर कान नहीं दिया और मारीचको साथ ले दण्डकारण्य गया। मारीच सुवर्णमय मृगका रूप धारण

कर सीताके समीप घूमने लगा। सीताके अनुरोध करने पर रामचन्द्र उसे पकड़ने गये। मायामृग कौशलसे रामचन्द्रको बहुत दूर ले गया। पीछे रामके शरसे विद्ध हो जमीन पर गिर पड़ा और 'लक्ष्मण लक्ष्मण' कह कर प्राण त्याग किया।

यह वाक्य सुन कर सीताने समझा कि रामचन्द्र विपद्में पड़े हैं, सो उन्होंने लक्ष्मणको उनकी मददमें जाने कहा। सीताको अरक्षिता अवस्थामें छोड़ जाना लक्ष्मणने अच्छा नहीं समझा। परन्तु सीताके कटु-वाक्य कहने पर लक्ष्मण जानेके लिये वाध्य हुए।

रावण सीताको पर्णकुटीरमें अकेली देख अतिथिके वेशमें वहां आया और सीताको हर ले गया। रावण सीताको हर कर ले जा रहा है, जान कर जटायु रावण पर टूट पड़ा। दोनोंमें घनघोर युद्ध हुआ। युद्धमें रावणने जटायुका पंख काट डाला जिससे वह जमीन पर गिर पड़ा। रावण सीताको ले कर निरापदसे लङ्का ले गया।
राम और सीता देखो।

रामचन्द्रको जब मालूम हुआ कि रावण सीताको हर ले गया है, तब उन्होंने सुग्रीवसे मेल कर लिया और वालीका बध किया। सुग्रीवकी सहायतासे रामचन्द्र समुद्रको बांध कर पार गये और लङ्कापुरी पहुंचे। विभीषणने रावणसे सीता लौटा देने कहा, किन्तु रावणने उसकी बात पर कान नहीं दिया और उल्टे उसका अपमान किया। विभीषणने रामचन्द्रका पक्ष लिया। राम विभीषणसे सहायता पा कर प्रबल विक्रमसे रावणके साथ युद्ध करने लगे। रावण रामचन्द्रका मुकाबला न कर सका और उसने अकालमें कुम्भकर्णकी नींद तोड़ी। कुम्भकर्ण भी रामचन्द्रके साथ युद्ध कर मारा गया। पीछे मेघनाद आदि रावणके पुत्र और पौत्रादि सबके सब यमपुर सिधारे। पुत्र पौत्रादि और सेनाके मारे जाने पर रावण बलहीन हो गया।

रावण इस युद्धमें मृत्यु निश्चय कर प्रबल विक्रमसे रामचन्द्रके साथ युद्ध करने लगा। दोनों वीरमें तुमुल-संग्राम चलने लगा। यह युद्ध देख देवता, दानव, यक्ष, पिशाच आदि वहां उपस्थित हुए। सात रात युद्ध चलता रहा, पर कोई भी किसीको पराजय न कर सका।

इसके बाद देवराजने रामचन्द्रकी मददमें मातलीको भेजा। मातलीने रामचन्द्रसे आ कर कहा, 'देव! आज इसका विनाशकाल आ पहुंचा, किसी अस्त्रसे इसका निधन नहीं होगा। आप इसके बधके लिये ब्रह्मास्त्र फेंकिये।' रामचन्द्रने महर्षि अगस्त्यका दिया हुआ अमोघ ब्रह्मदत्त अस्त्र उठाया। उस अस्त्रके वेगमें पवन, फलकमें हुताशन और तपन, सर्वाङ्गमें ब्रह्मा, गुरुत्वमें मेरु और मन्दरके अधिष्ठात्री देवता रहते थे। रामचंद्रके यह अस्त्र फेंकने पर रावण वज्राहत वृक्षकी तरह रथ परसे जमीन पर गिर पड़ा और पञ्चत्वको प्राप्त हुआ।

रावणके मारे जाने पर अन्तरीक्षमें शुभसूचक देव-दुन्दुभि बजने लगी। नभोमण्डलसे देवगण पुष्पवृष्टि करने लगे। इस प्रकार पृथिवीका भार दूर हुआ और सभी प्राणी सुखसे रहने लगे। (रामायण)

रावण—१ अर्कप्रकाश नामक वैद्यकग्रन्थके प्रणेता। २ ऋग्वेदभाष्य और श्रीसूक्तभाष्यके रचयिता। ३ सामवेदभाष्यकार।

रावणगङ्गा (सं० स्त्री०) रावणेन कृता गङ्गा। पुराणानुसार सिंहलद्वीपकी एक नदीका नाम।
(गरुड़पु० ७० अ०)

रावणवंशी—पश्चिम-बंगालमें रहनेवाली एक जाति।

रावणशर्म्मा—वर्षकृत्यके रचयिता।

रावणहस्त—एक प्रकारका बाजा जिसमें तार लगा रहता है।

रावणह्रद (सं० पु०) हिमालयके उत्तरका एक ह्रद। यह पुण्यतीर्थ मानसरोवरके पास ही है। इसीसे शतद्रु-नद निकला है।

रावणारि (सं० पु०) रावणस्य अरिः शत्रुः। रावणको मारनेवाले, रामचन्द्र।

रावणि (सं० पु०) रावणस्यापत्यमिति रावण (अत इञ्। पा४।१।९५) इति इञ्। १ रावणका पुत्र। २ मेघनाद।

रावत (हिं० पु०) १ छोटा राजा। २ सामन्त, सरदार। ३ शूर, वीर। ४ सेनापति, बड़ा योद्धा।

रावन् (सं० त्रि०) रातीति रा दाने वनिप्। आहुति और दक्षिणा देनेवाला। "आददे रावसि" (शुक्लयजु० ६।३०) 'वारासि रा दाने रातीति रा वा वनिप्, आहुतीनां

दक्षिणानाञ्च दाता भवसि।' (वेददीप)

रावन (सं० पु०) रावण देखो।

रावनगढ़ (हिं० पु०) लंका।

राव बहादुर (फा० पु०) एक प्रकारकी उपाधि जो भारतका अङ्गरेजी सरकार प्रायः दक्षिण भारतके रईसों आदिको देती है।

रावर (हिं० वि०) १ भवदीय, आपका। (पु०) २ रनिवास, अन्तःपुर।

रावरखा (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत बड़ा और ऊंचा पेड़। यह हिमालयमें तेरह हजार फुटकी ऊंचाई तक होता है। इसकी छाल बहुत सफेद और चमकीली होती है और इसकी लकड़ियोंसे पहाड़ी मकानोंकी छतें तथा छालसे झोपड़ियाँ छाई जाती हैं। इसकी पत्तियां प्रायः चारेके काममें आती हैं। इसे बुरूल भी कहते हैं।

रावरा (हिं० सर्व०) रावर देखो।

रावराना कवि—चरखारीके रहनेवाले एक बन्दीजन। संवत् १८९१ ई०में इन्होंने जन्मग्रहण किया था। राजा रतनसिंहके दरबारमें इनका खूब मान था। इनका वंश बुन्देलोंका प्राचीन कवि है।

रावल (हिं० पु०) १ अन्तःपुर, राजमहल। २ राजा। ३ प्रधान, सरदार। ४ एक प्रकारका आदरसूचक संबोधन। ५ मथुराके पासके एक गांवका नाम। प्रवाद है, कि यहीं राधिकाका जन्म हुआ था। ६ श्रीबदरीनारायणके प्रधान पंडेकी उपाधि। ये सभी मलबारवासी नम्बूरी ब्राह्मण हैं। ७ राजपूत सामन्तोंकी एक उपाधि। राजपूत-प्रसिद्ध मेवाड़के राजे भी पहले यह सम्मानसूचक उपाधि ग्रहण करते थे। पीछे वे राणा शब्द व्यवहार करने लगे। मारवाड़के राजे आज भी महारावल उपाधिसे सम्मानित होते हैं। डङ्गरपुरके अहेरियावंश, भावनगरके राजवंश तथा जयशालमीरके यदुवंश सभी गौरवज्ञापक रावल उपाधिसे भूषित हैं। यह उपाधि सम्भवतः शक जातिकी थी। पहले शक-सरदार लोग ही यह उपाधि धारण करते थे। (Tod. I. p. 213)

रावल गणपति—मुहूर्त्तगणपति और सम्बन्धगणपतिके प्रणेता। ये रावल हरिशङ्कर सूरिके पुत्र थे।

रावलपिण्डी—पंजाबप्रदेशके अन्तर्गत एक विभाग। यहांका कार्य छोटा लाटके शासनाधीन और विभागीय कमिश्नर द्वारा परिचालित होता है। यह अक्षा० ३१° ३५' से ३४° १' उ० तथा देशा० ७१° ३७' से ७४° २९' पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण १५७३६ वर्गमील और जनसंख्या २७९९३६० है। जिनमें मुसलमान सैकड़े पीछे ८७ हैं। यह विभाग पांच जिलों—रावलपिण्डी, झेलम, गुजरात, शाहपुर और अटक ले कर गठित है। इसके उत्तरमें हजारा और पेशावर जिला; पूर्वमें काश्मीरराज्य; दक्षिणमें झंग, गुजरानवाला और सियालकोट जिला तथा पश्चिममें कोहट, बन्नु और डेरा इस्माइल खाँ जिले पड़ते हैं।

इस विभागके रावलपिण्डी, झेलम, गुजरात, पिण्डदादन खां, भेरा और जलालपुर नगर ही प्रधान हैं। इसके अलावा यहां और भी १८ नगर लगते हैं।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह अक्षा० ३३° ४' से ३४° १' उ० तथा देशा० ७२° ३४' से ७३° ३९' पू०के बीच पड़ता है। भूपरिमाण २०१० वर्गमील है। हिमालय पर्वतका बहिःप्रदेश, लवणशैल और सिन्धुनदीका मध्यभाग स्थान ले कर यह जिला गठित हुआ है। इसके उत्तरमें हजारा जिला, पूर्वमें झेलम नदी, दक्षिणमें झेलम जिला तथा पश्चिममें सिन्धुनद अवस्थित है। सिन्धुनदने पेशावर और कोहटसे रावलपिण्डीको अलग कर रखा है। यह जिला सात उपविभागोंमें विभक्त है,—पिण्डिदेव, अटक-फतेजंग, गुजरखां, रावलपिण्डी, मरि और कतूहा। रावलपिण्डी जिलेका विचारसदर है।

यह जिला हिमालयके उच्च और निम्न सानुदेशकी शिखरमालासे पूर्ण है। यह क्रमशः सिन्धु-सागर अन्तर्वेदीके सामने है। चारों ओर इस तरहकी पर्वतश्रेणी घिरी रहनेके कारण जिलेका सर्वांश ही तराईरूपमें परिणत है। इस पर्वतका मध्यवर्त्ती समतलक्षेत्र नाना प्रकारके सौन्दर्यसे पूर्ण है। कहीं श्यामल शस्यक्षेत्र, कहीं निबिड़ वनमाला और कहीं तराईसे झरने निकल कर कलकल नाद करते हुए बह जाते हैं जिसका दृश्य ऐसा मनोहर है, कि देखनेसे चित्त भड़क उठता है। कहीं

पर्वतके तुङ्गशृङ्गमें सुन्दर मसजिद उच्च शिरे पर दण्डायमान है जो निर्जन प्रान्तवासी लोगोंको धर्मका प्रभाव ज्ञापन रही। स्वभाव-सौन्दर्यका ये सब गाम्भीर्य भेद कर सिख और घक्करजातीय सरदारोंका भीषणाकार गिरिदुर्ग समुन्नत शैलशिखरमें अवस्थित है। उसे देखनेसे बोध होता है मानो वहांके राजाओंका प्रचण्ड राजदण्ड उस सुदूर पार्वत्यप्रदेशमें भी अक्षुण्णभावसे प्रतिष्ठित था। सीमान्त शत्रुओंका उपद्रव दमन करनेके लिये ही उन्होंने पर्वतप्रान्तमें दुर्ग बनवाया था। केवल दक्षिणी सोमा समतल क्षेत्रमें परिणत है।

स्थानविशेषसे प्राकृतिक सौन्दर्य जैसा पृथक् है। उसके पूर्व और पश्चिम अंशमें भी वैसा ही ऋतुपार्थक्य भी लक्षित होता है, मानो स्वभावसुन्दरी वनदेवीने अपने हाथसे रेखा खोंचा कर प्राकृतिक सौन्दर्यके साथ साथ ऋतुका विपर्याय भी निरूपण कर दिया है। विपाशा नदीके समतट पर विस्तृत मरिगिरिश्रेणीमें आठ हजार फुट ऊंचा स्वास्थ्यावास है। यहां अनेक किस्मके पेड़ हैं। यह शृंग क्रमशः हजारा जिलेमें प्रधावित होता है और काश्मीरके तुषारमण्डित पर्वत पर आ कर मिल गया है। अतएव स्वास्थ्यावासकी ओर नजर दौड़ानेसे विचित्र पार्वत्य-चित्र सामने पड़ता है।

सिन्धुनदके उस पारमें पश्चिम-पार्वत्य भूभाग है जो सिन्धुनदकी शाखा प्रशाखा द्वारा परस्पर विच्छिन्न हो कर मानो विस्तीर्ण प्रान्तरके स्थान स्थानमें एक एक छोटी पहाड़ी इधर उधर फेंको हुई हैं। यह स्थान सूखा और उर्वर है। यहां बहुत ही कम उद्भिद आदि लगते हैं।

इस जिलेकी जनसंख्या ५५८६११ है। पहाड़ी अधिवासी एक जगह दलबद्ध हो कर वास करते हैं। अधिक संख्यामें वास करनेसे गांव भी सुवृहत् उपनिवेशके समान मालूम पड़ता है। कारण इस प्रकार ऊसर पहाड़ी भूमिमें विभिन्न गांवमें निवद्ध हो कर वास करना एकदम अनुपयोगी है। पश्चिम विभागकी पर्वतराजिके बीच पहाड़का नाम उल्लेख करनेके योग्य है। यहां भूतत्त्वके बहुत-से प्राचीन निदर्शन मिलते हैं। पर्वतके शिखर पर दुर्ग आदिसे परिशोभित अटक नगर सिन्धुके किनारे हैं।

यहांके सब नद और नदियोंसे सिन्धुनद प्रधान है। सामान्य पहाड़ी सोतोंके रूपमें हजारा जिलेके बीच बहता हुआ यह चाच और यूसुफजैके उर्व्वरप्रान्तमें करीब डेढ़ मील तक फैल गया है। अटकसे तीन मील दक्षिण इस नदीको पार करनेके लिये रेलवे पुल है, झेलम या वितस्ता नदी इस जिलेकी पूर्वी सीमामें बहती है। सोहन नामक नदी मरिशैलसे निकल कर गभीर उपत्यकाके बीचोबीच बह चली है। अन्तमें फर्बलके समीप ध्वस्तप्राय गक्करदुर्गके आस-पास देशके समतलक्षेत्रमें गिर कर नदीकी धारा दक्षिण-पश्चिम हो गई है। रावलपिण्डी नगरसे तीन मील दक्षिण इस नदी पर एक दूसरा पुल है। वन्याके अलावा सभी समय यह नदी नाव पर पार हो सकते हैं। हजाराशैलका जलप्रवाह ही हारो नदी कहलाता है। वह पश्चिमकी ओर आ कर अटकसे छः कोस दक्षिण सिन्धुनदमें मिल गया है। इसका स्रोतोवेग स्थानीय कई मैदाके कलमें संचालन-शक्ति बढ़ाता है। पहाड़ी वनभागमें नाना प्रकारके पेड़ और अनेक जातिके जीवजन्तु देखे जाते हैं।

विस्तृत विवरण हिमालय शब्दमें देखो।

यहां खनिजपदार्थका अभाव नहीं है। कावागढ़ शैलमें आवरी नामका मरमर पत्थर मिलता है जो लोटे कटोरे आदिके बनानेमें काम आता है। रावलपिण्डी नगरके उत्तर-पूर्व जोहरा गांवमें गंधक तथा रट्टहोतर और सादकल गांवमें मिट्टी तेल मिलता है। कई एक कोयलेकी भी खान हैं। सिन्धुस्रोतमें बालुके कणके साथ बहुत थोड़े सोनेके भी कणे मिलते हैं। जिपसम, लिगनाइट और एन्थासाइट नामक किमती पत्थर पार्वत्य-भूभागमें कुछ कुछ दिखाई पड़ता है।

भारतके अन्यान्य जिलेकी अपेक्षा इस जिलेका प्रकृत प्राचीन इतिहास कुछ अधिक मिलता है। महाभारतीय युगमें यद्यपि गान्धारराज्यके उल्लेखमें इस स्थानका कोई विशेष विवरण लिखा नहीं है, तो भी माकिदनवीर अलेकसन्दरके अभियानकालमें बहुत-सी ऐतिहासिक घटना यहांके भिन्न भिन्न नगरमें विशेषभावसे मिली हुई है। प्लिनि और आरियनकी विवरणीमें यह सब स्थान ऐतिहासिक तत्त्वका पीठस्वरूप है।

अलेकसन्द्रके परवर्त्ती इतिहास-लेखकोंके विवरणसे पता चलता है, कि सिन्धुसागर दोआबमें बहुत प्राचीन कालसे तक्ष नामक जातिका वास था। कहते हैं, कि उन्होंने ही तक्षशिला नगरी बसाई थी। अलेकसन्द्रको सिन्धु और वितस्ताके मध्यवर्त्ती स्थानमें ऐसा विस्तृत बहुजनपूर्ण और विशेष समृद्धशाली नगर उस समय पञ्जाब प्रदेशमें और न मिला था। उस समय यह तक्षशिलाराज्य* मगधराज्यके अधीन था। यहांके अधिवासियोंके राजद्रोही होने पर युवराज अशोक उन्हें दमन करनेके लिये पञ्चनद जा पहुंचे। पीछे सम्राट् अशोकने बौद्धधर्म ग्रहण कर यहां बौद्धसंघाराम निर्माण किया। विख्यात चीनपरिव्राजक फाहियान और यूएनचुवंगने ईस्वी सन् ४थी और ७वीं शताब्दीमें यह स्थान परिदर्शन कर जिन सब बौद्धविहार और मठ आदिका उल्लेख किया है, उससे अनुमान होता है, कि मुसलमान द्वारा भारतविजयके पूर्वाब्द पर्यन्त यही स्थान बौद्ध और हिन्दूधर्मका पवित्र केन्द्र समझा जाता था। आज भी इस जिलेके बहुत स्थानोंमें प्राचीन हिन्दूमन्दिरका टूटा फूटा खंडहर और गौमबुद्धका जीवन-इतिहास मिलता है।

अलेकसन्द्रके समयसे ले कर ११वीं शताब्दी तक पश्चिम-भारतसीमान्तका इतिहास जो अंधकारसे ढका था, मुसलमान आक्रमणसे ही सबसे पहले उनका उन्मोचन हुआ। मुसलमानी-इतिहास पढ़नेसे हम जान सकते हैं, कि उक्त सदीमें तक्षशिलाके चतुष्पार्श्ववर्त्ती भूभागमें गक्कर जातिके लोग रहते थे। फिरिस्ताने लिखा है, कि ये वर्वर और असभ्य हैं तथा भ्रूणहत्या और बहुस्वामिक वृत्ति आदि नाना प्रकारके जघन्य कार्य करते हैं।

१००८ ई०में गजनीपति महमूद जब ससैन्य भारतमें घुसे और चाच् तराईकी समतलभूमि पर पहुंचे, तब राजपूत-नेता पृथ्वीराजके अधीन कई एक राजपूतसामन्त महमूदके विरुद्ध खड़े हुए। उस समय प्रायः तीस हजार गक्करसैन्यने भीमवेगसे हमला कर मुसलमान सेनादलको तहस नहस कर डाला था। किन्तु आखिरकार राजपूतगण मुसलमानोंके हाथसे पराजित हुए और क्रमशः सभी उत्तरवासी विजेताने मुसलमानोंकी वश्यता स्वीकार की। इसके बाद महमूद गक्करोंको पार्वत्य निभृत निकुञ्जमें स्वाधीनभावसे वास करनेको अनुमति देते हुए आप अपेक्षाकृत बर्बर और शस्यसमृद्धिपूर्ण जनपद पर कब्जा करनेके लिये आगे बढ़े।

१२०५ ई०में मशहूर ख्वारिजम-युद्धमें साहब-उद्दीन् घोरीकी पराजयवार्त्ता सुन कर जयोन्मत्त गक्करजाति मुसलमानोंके विरुद्ध खड़ी हुई तथा लाहोर राजधानीके प्रवेशद्वार तक समूचे पंजाबप्रदेशमें उपद्रव मचा दिया। यह खबर जब मुसलमान-सुलतान साहब-उद्दीन् घोरीको लगी, तो अचानक वे भारत पहुंचे और बागी गक्करोंको दल-दलमें निहत कर वैरनिर्यातनकी पराकाष्ठा दिखा दी। इससे भी तृप्त न हो कर उन्होंने जीवननाशका भय दिखाते हुए गक्करजातिको इस्लामधर्ममें दीक्षित किया।

साहब-उद्दीन् गक्करजातिको इस्लामधर्ममें दीक्षित कर कुछ विशेष लाभ उठा न सके। कारण सिन्धुनद पार कर अपने पाश्चात्यराज्यमें लौटते न लौटते रात्रिके घोर अन्धकारमें छिपके एक दल गक्करने उनका पीछा किया और उसी घोर रात्रिमें सिन्धुनद तैर कर सोये हुए साहब-उद्दीन्को जानसे मार डाला। परवर्त्ती मुसलमान राजाओंकी अमलदारीमें जब गक्करोंने शासन-विशृङ्खला या शैथिल्य देखा था तब सुयोग जान कर राजद्रोहिताचरणसे वे बाज नहीं आये।

मुगल-सम्राट् बाबर शाहने गक्करकी राजधानी कर्वाला पर चढ़ाई कर दी। वे अपने हाथकी लिखी आत्मजीवनीमें इस युद्धका विवरण इस प्रकार लिख गये हैं,—यह नगर पर्वत पर बसा हुआ है। गक्कर-सरदार हाती खाँने विशेष वीरत्वके साथ नगरकी रक्षा कर जब जाना, कि मुगल-युद्धमें और कोई उपाय नहीं है तथा मुगलवाहिनी एक तरफका द्वार तोड़ कर नगरमें घुस रही है, तब उन्होंने दूसरा कोई उपाय न देख

* इस जिलेके मर्गाला गिरिशङ्कटके उत्तर शाहदरि या डेरिशाहान् नामक स्थानमें जो विस्तृत टूटा फूटा खंडहर पड़ा है, वह प्राचीन तक्षशिला राज्य प्रतीत होता है।

दूसरे दरवाजे हो कर शहरसे बाहर निकल गये। १५२५ ई०में हाती खांको उनके सम्पर्कीय भाई सुलतान सारंगने जहर दे कर मार डाला। उक्त सुलतान सारंग बाबरशाहकी अधीनता स्वीकार करने पर सम्राट्से उन्हें पुत्वार राज्य उपहारमें मिला। उसी दिनसे गक्कर-सरदारगण मुगलराजवंशके साथ चिरबन्धुत्वसूत्रमें बंध गये। शेरशाह और हुमायूंमें जब घमसान युद्ध चल रहा था, उस समय गक्करपतिने हुमायूंको खासी सहायता पहुंचाई थी।

दिल्ली-साम्राज्यमें मुगलराजकेतन जब सगर्व वात्या न्दोलित हुए थे, उस समय सारङ्गके वंशधर पंजाबप्रदेशमें अपने पूर्वपुरुषोंका आहृत राज्य सम्मानके सहित भोग करते थे। किन्तु उस मुगलसाम्राज्यकी केन्द्रशक्तिका अवसान होने पर वे वंशधर पार्श्ववर्त्ती सामन्तराजाओंके हाथके खिलौने बन गये। सर्वग्रासी सिखोंने अन्तमें पञ्चनदवासी अन्यान्य राजाओंकी तरह इस सुप्राचीन गक्करराजको भी अपने कब्जेमें कर लिया था।

१७६५ ई०में मुगल साम्राज्यरश्मि शिथिल हो गई और सिख सरदार गुजरसिंह भङ्गीने लाहोरसे दलबलके साथ बाहर हो कर शेष स्वाधीन गक्करपति मकराव खां पर आक्रमण कर दिया। मकराव सिखसैन्यके हाथ गुजरात-नगर प्राचीरके बहिर्भागमें परास्त हुए और वितस्ता नदीके दूसरे किनारे जान ले कर भागे। यहां उसके स्वजातीय शत्रुदलने बड़ी निष्ठुरतासे मार डाला और उसकी सम्पत्ति लूट कर आपसमें बांट ली। किन्तु उस समय आपसमें मनमुटाव हो जानेसे वे तितर बितर हो गये। सरदार गुजरसिंहने अवसर पा कर एक एकको परास्त किया।

सिखोंने अपनी चिरप्रसिद्ध अर्थगृध्नुताके साथ रावलपिण्डीका शासन किया था। वे मालगुजारी बड़ी सख्तीसे उगाहते थे। प्रजा तंग तंग आ गई थी। सरदार गुजरसिंहके बाद उनके लड़के साहबसिंहने १८१० ई० तक इस प्रदेशका शासन किया। पीछे वह पञ्जाबकेशरी महाराज रणजित्सिंहके हाथ लगा।

मालकासिंह नामक एक दूसरे सिख-सरदारने रावलपिण्डी नगरके चारों ओरका स्थान जीत कर वहां अपना वासभवन बनाया। उस समय यह स्थान एक सामान्य ग्रामरूपमें गिना जाता था। अफगान जातिके बार बार आक्रमण और गक्कर जातिके विघ्नबाधा रहते हुए भी उसने थोड़े ही समयके अन्दर प्रायः ३ लाख रुपये आयका एक छोटा राज्य अधिकार किया। १८०४ ई०में मालकासिंहकी मृत्यु हुई। उनके लड़के जीवनसिंह पितृसम्पत्तिके अधिकारी हुए। १८१४ ई०में महाराज रणजित्सिंहने सरदार जीवनसिंहका अधिकार कायम कर एक सनद दी। किन्तु जीवनसिंहकी मृत्युके बाद यह सम्पति लाहोर राजसरकारने जब्त कर ली। मरि और अन्यान्य पहाड़ी प्रदेशमें गक्करजाति बहुत दिनोंसे अपनी स्वाधीनताकी रक्षा करती आ रही थी। किन्तु १८३३ ई०के भीषण युद्धमें सिखोंने गक्कर जातिको परास्त कर वह पहाड़ी प्रदेश अधिकार किया। इस युद्धमें सिखके हाथसे गक्कर जाति प्रायः निर्मूल हो गई तथा सारा पहाड़ी प्रदेश जनशून्य मरुभूमिकी तरह दिखाई देने लगा।

१८४९ ई०में अन्यान्य सिखराज्यके साथ रावलपिण्डी भी अङ्गरेजी-शासनके अधिकारभुक्त हुई। १८५३ ई०में यहां विद्रोह दिखाई दिया, फिर भी गदरके समय यह स्थान बिलकुल शान्त था, किन्तु सिख और गक्कर जातिका आन्तर्जातिक कलह तब भी दूर नहीं हुआ था। जनशून्य पहाड़ी कन्दरामें वृटिश-शासन विस्तृत होने पर भी अंगरेजराज वहां राजकीय प्रभाव अप्रतिहत रखनेमें समर्थ नहीं हुए। १८५७ ई०के गदरमें अंगरेजराजकी शक्तिका परिचय पा कर मरिशैलवासी पहाड़ी गक्कर जाति पहलेके कलहसूत्रसे उत्तेजित हो कर राजविद्रोही हो उठी तथा उसने वहांके अङ्गरेजके महलों पर आक्रमण करनेका सङ्कल्प किया। अङ्गरेजोंको किसी देशीय विश्वस्त अनुचरके मुखसे पहले ही यह हाल मालूम हो गया था। इसलिये वे यूरोपीय स्त्रियोंको दूसरी जगह रख कर शत्रुदलके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। विद्रोहीदलने समझा था, कि अङ्गरेजोंको उन लोगोंके आगमनका संवाद मालूम न होनेके कारण शत्रुपक्षके आक्रमणसे वे तितर बितर हो जायंगे, लेकिन फल उल्टा ही निकला। विद्रोहिदलके सामने आते न आते ससज्जित

अंगरेजी-सेना गोला बरसाने लगी। अकस्मात् गोलापातसे आततायी छत्रभङ्ग हो गये। कुछ समय युद्ध करके वे सबके सब धराशायी हुए। तभीसे वे फिर कभी दलबद्ध न हो सके। किन्तु जब कभी छोटा दल बांधनेका मौका मिलता, तभी वे अंगरेजों पर टूट पड़ते थे।

रावलपिण्डी, पिण्डिघेब, हाजरो, फतेजङ्ग, आटक, मोखाद्, मरि और काम्बेलपुर आदि नगर अपेक्षाकृत समृद्धशाली है। उनमेंसे रावलपिण्डी, अटक, मरि और काम्बेलपुरमें अंगरेजोंका सेनानिवाश है। लाहोर, पिण्डदादन खां, मूलतान, पेशावर, स्वात, लक्ष्मणझूला और मरि आदि स्थानोंके उत्पन्न द्रव्योंकी आमदनी ले कर ही यहांका कारबार चलता है। रावलपिण्डी और हाजरो नगरको छोड़ कर और कहीं भी वैसा वाणिज्य नहीं चलता। १८६० ई०में मरि शहरमें यूरोपीय वणिक् पुङ्गवोंके यत्नसे एक शराबका भट्ठा खोला गया है। इसके अलावा प्रायः प्रत्येक नगर और ग्राममें देशी सूती कपड़े तथा फतेजङ्ग और पिण्डिघेब नगरमें पशमीने कम्बल बनानेका कारबार है। यहांकी प्रधान उपज गेहूं, यव, जुआर और बाजरा है। यहांके सैकड़े पीछे ६८ अधिवासी खेतीबारी कर अपनी जीविका चलाते हैं।

३ उक्त जिलेकी उत्तर-पूर्व तहसील। यह अक्षा० ३३° ११′ से ३३° ५०′ उ० तथा देशा० ७२° ३४′ से ७३° २३′ पू०के बीच पड़ती है। भूपरिमाण ७६४ वर्गमील और जनसंख्या २६११०४ है। इस तहसीलमें रावलपिण्डी नामका एक शहर और ४४८ गांव लगते हैं।

४ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचारसदर। यह अक्षा० ३३° ३६′ उ० तथा देशा० ७३° ७′ पू०के मध्य लेह नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। दक्षिणी किनारे गोराबाजार (Cantonment) है।

नगरके चारों ओर जो ध्वस्त निदर्शन पड़े हैं, उसे देखनेसे मालूम होता है, कि यहां नया नया नगर बसता गया और कालचक्रसे विलय होता गया था। प्रत्नतत्त्वविद् डा० कनिंहमने वर्त्तमान गोरा बाजारके निकटवर्त्ती प्राचीन निदर्शन और अट्टालिकादिका भग्नावशेष देख कर स्थिर किया है, कि वह भट्टिजातिकी प्राचीनतम राजधानी गजिपुर वा गजनीपुर है। ईसा जन्मके पहले यह नगर विशेष समृद्धिसम्पन्न था। यवन और शक आदि दूसरी दूसरी प्राचीन जातियां यहां पूर्ण प्रतापसे राज्य कर गई हैं। आज भी उसके निदर्शनस्वरूप यहांके एक निर्दिष्ट स्थानमें उक्त राजोंकी प्रचलित मुद्रा इधर उधर मिट्टीमें गाड़ी देखी जाती हैं।

ऐतिहासिक युगमें यह स्थान फतेपुर बावरी नामसे प्रसिद्ध था। १४वीं सदीमें मुगल आक्रमणके समयसे यह स्थान तहस नहस हो गया। गक्कर-सरदार झण्डाखांने जीर्ण संस्कार द्वारा इस नगरकी श्रीवृद्धि की। उन्होंने इसका नाम बदल कर रावलपिण्डी रखा। सिखवीर सरदार मालकासिंहने १७६५ ई०में यह नगर अधिकार किया। उन्होंने शाहपुर और झेलमसे वणिकोंको ला कर अपने राज्यमें बसाया था। उसीसे धीरे धीरे इस नगरकी उन्नति होती गई।

१६वीं सदीके प्रारम्भमें काबुलके पदच्युत अमीर शाहसुजा और उनके भाई जमान शाहने इस नगरमें आ कर आश्रय लिया। १८वीं सदीके मध्यभागमें जहां गक्करसरदार सुलतान मकराब खांने युद्ध किया था, वहां देशी सेनादलका वासभवन बनाया गया है। यहां १८४६ ई०की १४वीं मार्चको गुजरात युद्धमें पराजित हो सिखसरदार छत्रसिंह और शेरसिंहने अस्त्रत्याग किया था। अंगरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद नगरकी अच्छी उन्नति हुई। पहाड़ी शत्रुदलसे देशकी रक्षा करनेके लिये गोरा बाजार और पीछे विभागीय विचारसदर प्रतिष्ठित हुआ था। इसके बाद पञ्जाब-नदर्न ष्टेट रेलवे खुल जानेसे स्थानीय वाणिज्यमें बड़ी सहायता मिली है।

लेह नामक छोटी नदीके दूसरे किनारे एक प्राचीन हिन्दूराजधानीके ऊपर वर्त्तमान गोराबाजार प्रतिष्ठित है। १८६८ ई०में यहां ६३५८ देशी और अङ्गरेजीसेना रखी गई थी, अन्तिम अफगान-चढ़ाईके समयसे अंगरेजराजने यहांके सेनानिवासकी प्रयोजनीयता समझ कर उसकी उन्नतिके लिये विशेष ध्यान दिया। १८८१ ई०में यहां प्रायः २७ हजार सेना रखनेका बन्दोबस्त हुआ। १८८३ ई०में अस्त्रागार स्थापित हुआ था। यह सेनानिवास लम्बाईमें तीन मील और चौड़ाईमें प्रायः दो मील है। यहां एक दल देशी घुड़सवार और पदातिक तथा दो

कमानवाही सेनादल रहता है। शीतऋतुमें यहां और भी तीन कमानवाही पहाड़ी सेनादल ला कर रखा जाता है। ग्रीष्मके समय वे मरिशैलके उत्तरी पहाड़ पर चले जाते हैं।

राव साहब (फा० पु०) एक प्रकारकी उपाधि जो भारत तथा अंगरेजी सरकारकी ओरसे दक्षिण-भारतके रईसों आदिको दी जाती थी।

राविन् (सं० त्रि०) १ मेघनिर्घोष, मेघदुन्दुभि। २ गभीर निनादकारी, घोर शब्द करनेवाला।

रावी—पंजाबप्रदेशमें प्रवाहित पञ्चनदके अन्तर्गत एक नदी। पुराणादि संस्कृत शास्त्रमें इसे इरावती कहा है। आरियनने इसका Hydraotes नाम रखा है। यह कांगड़ा जिलेके कुलू उपविभागसे निकल कर चम्बा राज्यके बीच हो कर बह गई है। पीछे दक्षिण पश्चिमकी ओर गुरुदासपुर जिलेके सीमा तक बहती हुई शाहपुरके निकट मूलपर्वतको छोड़ दिया है। वहांसे जम्मू पर्यन्त इसका तट क्रमशः नीचा हो कर आया है। मधुपुरके पास 'बड़ी दोआब केनल' इसका जलराशि द्वारा परिपूर्ण होता है। इसके बाद इस नदीके दोनों किनारे पलिमय समतल उपत्यकाभूमि दिखाई पड़ती है। इससे समय समय पर वन्याका जल उठ कर बेलाभूमि विधौत करता है। १८१० ई०में इस नदीकी प्रखर धारामें देरा-नानकके निकटवर्त्ती तालिसाहिब नामक सिखोंका पवित्र तीर्थ जलगर्भमें निमज्जित हो गया था। अनन्तर इरावती सियालकोट और अमृतसर जिलेके बीचो बीच हो कर दक्षिण पश्चिम बहती है। पीछे क्रमशः तीव्र वेगमें लाहोर नगर अतिक्रम कर नाना शाखामें बंट गई है। मुलतान और मण्टगोमरी जिला जलसिक्त कर अन्तमें यह नदी (शाखाओंके साथ अक्षा० ३०° ३१' उ० तथा देशा० ७१°५१'२०" पू०) चन्द्रभागा नदीमें आ मिली है।

बड़ी दोआब और हासलीवालमें जल जमा रहनेके कारण इसकी जलधारा धीमी होने पर भी इस नदीवक्षमें नाव द्वारा वाणिज्यमें उतनी सुविधा नहीं है। कारण मुलतान जिलेके कुछलम्बासे सरायसिन्धु तकके स्थानोंको छोड़ इसकी गति और कहीं भी सीधी नहीं है।

रावेड़—बम्बई प्रेसिडेन्सीके खानदेश जिलेके शवदा उपविभागान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २१° १५' उ० तथा देशा० ७६° ४' ३०" पू० तक विस्तृत है। जी, आई, पी, रेलपथ नगरसे एक कोस दूर हो कर गया है। यहांसे नगर पर्यन्त पक्की सड़क है। सोनेका बारीक तार तथा जड़ीके फूलदार या बुटीदार कपड़ेके लिये यह स्थान बहुत कुछ मशहूर है। बाजारसे दुर्ग तक जो चौड़ा रास्ता है उसके दोनों तरफ अट्टालिकाएं त्रितल और सम्मुखभाग काठकी शिल्पगठन आदि द्वारा सुशोभित हैं। १७६३ ई०में निजामने यह नगर पेशवाको अर्पण कर दिया। पीछे पेशवाने भी उसे होलकरके हाथ सौंप दिया था।

रावेड़—मध्यप्रदेशके निमार जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह नर्मदा नदीके किनारे अवस्थित है। दूसरी दफे उत्तर-भारत पर चढ़ाई करनेके लिये जब पेशवा बाजीराव आये, उसी समय यहीं उन्होंने जीवलीला संवरण की। यहां नाना विचित्र वर्णके पत्थरोंसे उनका समाधिस्तम्भ निर्मित हुआ जो एक सुन्दर धर्मशालाके बीच स्थापित है। नदीवक्षके जिस स्थानमें उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया हुई, वहां पक्केका एक चौरस्ता बनाया गया था। दुर्भाग्यका विषय है कि, वन्यामें वह भग्नावस्थामें पड़ा है।

रावौट (सं० क्ली०) भारतीय प्राचीन राजवंश भेद।
(रत्नकोष)

राशि (सं० पु०) राशते इति राश-शब्दे इन्, यद्वा अश्नुते व्याप्नोतीति अशू व्याप्तौ। (अशिपण्याय्यो रुडायलुकौ च। उण् ४।१३२) इति इन रुडागमश्च। १ धान्यादिका समूह। पर्याय—पुञ्ज, उत्कर, कूट, समुच्चय, समाहार। (जटाधर)

अश्नुते व्याप्नोति इति राशि अशूञ् व्याप्तिसंहत्योरित्यस्मात् नाश्नोति इञ्, निपातनाद्रेफागमः। (भरत)

"न खलु न खलु वाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्।
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः॥" (शकुन्तला)

२ ज्योतिश्चक्रका द्वादशांश। राशिचक्र बारह भागोंमें विभक्त है, इन बारह भागोंका एक एक भाग राशि कहलाता है। ग्रहगण इस राशिचक्रमें परिभ्रमण करते रहते हैं। राशि बारह हैं, यथा—मेष, वृष, मिथुन, कर्कट,

सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन।

राशि स्वरूप।

मेष—पुरुष, चर, अग्निराशि, दृढ़ाङ्ग, चतुष्पद, रक्तवर्ण, उष्णस्वभाव, पित्तप्रकृति, अत्यन्त शब्दकारी, पर्वतचारी, उग्र, पीतवर्ण, दिवाभागमें बलवान्, पूर्व दिशाका अधिपति, विषमलग्न, अल्प-स्त्री-प्रिय, अल्प सन्तान, रुक्षवपु, क्षत्रियवर्ण और समान अङ्ग।

वृषराशि—स्थिर, स्त्रीप्रकृति, पृथ्वीराशि, शीतलस्वभाव, रुक्षवपु, दक्षिणदिगाधिपति, शोभन, भूमिचारी, वायुप्रकृति, रात्रिकालमें बलवान्, चतुष्पद, श्वेतवर्ण, अत्यन्त शब्दकारी, विषमराशि, मध्यम-स्त्रीसङ्गप्रिय, मध्यमरूपसन्तान, शुभराशि, वैश्यवर्ण और शिथिलाङ्ग।

मिथुन—पश्चिमदिगधिपति, वायुप्रकृति, हरित्वर्ण, द्विपद, पुरुष, द्व्यात्मक, द्विमूर्त्ति, उष्णस्वभाव, मध्यरूप-स्त्रीसङ्गप्रिय, मध्यरूप सन्तान, वनचारी, शूद्रवर्ण, रात्रिकालमें बलवान्, उत्तर दिगधिपति और शिथिलाङ्ग।

कर्कट—बहु-स्त्री-प्रसङ्ग-प्रिय, बहु-सन्तानयुक्त, बहुपद, चर, स्त्री-स्वभाव, श्वेतरक्तमिश्रवर्ण, शब्दहीन, शुभराशि, कफप्रकृति, चिक्कण, जलराशि, जलचर, विप्रवर्ण, रात्रिकालमें बलवान्, उत्तरदिगधिपति और शिथिलाङ्ग।

सिंह—पुरुष, स्थिर, अग्निराशि, दिनमें बलवान्, रुक्षशरीर, पित्तप्रकृति, उष्णस्वभाव, पूर्वदिशाका स्वामी, दृढ़ाङ्ग, चतुष्पद, समराशि, अत्यन्त शब्दकारी, अल्प-स्त्रीसङ्गप्रिय, अल्पसन्तति, पर्वतचारी, क्षत्रियवर्ण, उग्रस्वभाव और धूम्रवर्ण।

कन्या—पिङ्गलवर्ण, द्विपद, स्त्रीराशि, द्व्यात्मक, दक्षिणदिगधिपति, रात्रिबली, वायुप्रकृति, शीतलस्वभाव, समराशि, भूचर, असम्पूर्ण भाषी, पृथ्वीराशि, वैश्यवर्ण, रुक्ष, अल्प-स्त्री-सङ्गप्रिय और अल्पसन्तान और सौम्यराशि।

तुला—पुरुष, चर, नानावर्ण, सम, उष्णस्वभाव, पश्चिम दिगधिपति, वायुप्रकृति, चिक्कण, वनचारी, अल्पस्त्रीसङ्गप्रिय, अल्पसन्तान, शूद्रवर्ण, उग्रस्वभाव, दिवाबली, द्विपद, समान और शिथिलाङ्ग।

वृश्चिक—स्थिर, श्वेतवर्ण, स्त्रीस्वभाव, जलराशि, उत्तरदिगधिपति, निशाबली, रवशून्य, कफप्रकृति, सम, जलचर, बहुस्त्रीप्रसंगप्रिय, और बहुसन्तानयुक्त, सौम्य, मनोहर शरीर और विप्रवर्ण।

धनुः—पुरुषराशि, सुवर्ण-सदृशवर्ण, पर्वतचारी, समराशि, अत्यन्त शब्दकारी, दिनबली, पूर्व-दिक् स्वामी, दृढ़ाङ्ग, रुक्षशरीर, पीतवर्ण, क्षत्रिय, पित्तप्रकृति, अल्पसन्तान और अल्प-स्त्रीप्रसंगप्रिय, द्व्यात्मक, द्विपद, अग्निराशि और उग्रस्वभाव।

मकर—चरराशि, भूचर, अर्द्धरवयुक, दक्षिण-दिक्-स्वामी, स्त्रीराशि, पिङ्गलवर्ण, रुक्षशरीर, सौम्य, पृथिवीराशि, जलचारी, शीतलस्वभाव, अल्पअपत्य, अल्पस्त्रीसंगप्रिय, वायुप्रकृति, रात्रिबली, विषमराशि और वैश्यवर्ण।

कुम्भ—पदहीन, पुंराशि, दिनबली, मध्यमरूप-स्त्रीसंगप्रिय, मध्यमरूप-सन्तति, स्थिरराशि, मिश्रवर्ण, वनचारी, वायुराशि, चिक्कण, उग्रस्वभाव, खण्डस्वर, वात-पित्त-कफप्रकृति, शूद्रवर्ण, पश्चिमदिक् स्वामी, विषमराशि, उग्रस्वभाव और शिथिलाङ्ग।

मीन—पदशून्य, स्त्रीराशि, कफप्रकृति, जलराशि, रात्रिबली, अल्पशब्दयुक्त, पिङ्गलवर्ण, द्व्यात्मक, जलचर, चिक्कण, बहु-स्त्री-प्रसंगप्रिय, बहुसन्ततियुक्त, विप्रवर्ण, शुभ, उत्तरदिगधिपति, विषमराशि और शिथिलांग।

राशिओंका स्वरूपज्ञान और संज्ञा।

मेष—द्वादश राशिचक्रोंमें मेष प्रथम राशि और समान शरीर है। कालपुरुषका मस्तक, छाग और मेषकी सञ्चारभूमि है। इससे गुहा, पर्वत और चोरोंकी वासभूमि, अग्नि, धातु, आकर और रत्नभूमिका बोध होता है।

वृष—वृषके समान आकार, वक्त्र, कण्ठ, ग्रीवादेश, वन, पर्वत, गोशाला और कृषकोंकी आवासभूमिका ज्ञान होता है।

मिथुनसे—वीणा और गदाधारी, स्कन्ध, भुज, स्त्री, नृत्य और गीतस्थान, शिल्पकार्य, क्रीड़ा, रति, गुह्यदेश, पाशकादि क्रीड़ास्थान और विहारस्थान समझा जाता है।

कर्कटसे—कर्कटके समान आकृति, जलचर, वक्षः-

स्थान, सरोवर, पुलिन, क्षेत्र, देवता, स्त्रीजाति और रमणीय विहारस्थान समझा जाता है।

सिंहसे—पर्वतचारी, हृदय, वन, दुर्ग, गुहा पर्वत और दुर्गम प्रदेश समझा जाता है।

कन्यासे—प्रदीपहस्ता, नौकावस्थिता, जल, चतुःषष्टिकला, ज्ञानी, उदर, बहुतर तृणयुक्त भूमि, रति और शिलामय भूमिका बोध होता है।

तुलासे—पणधर पुरुष, अष्टाङ्ग, नाभि, कटि, वस्तिदेश, वीथी, देशभाषा, विक्रयस्थान, नगर, पथ, शुक्लवर्ण, धनागार, पर्वतपार्श्व वा पर्वतचूड़ा, मृगयास्थान और उत्तमवायुका ज्ञान होता है।

वृश्चिकसे—वृश्चिकको भांति आकृतिविशिष्ट लिङ्ग और गुह्यप्रदेश, गुह्य, अपरिष्कृतस्थान, गर्त्त, प्रस्तर, विष, कारागार, वल्मीक, कीट, अजगर और सर्पो'की वासभूमिका बोध होता है।

धनुसे—धनुर्विशिष्ट, पुरुषकार, पश्चाद्भागमें घोटकाकर, ऊरुदेश, उच्चनीचभूमि, घोटक, बलवान् अस्त्रधारी पुरुष, यज्ञ, रथादि और अश्वस्थान समझा जाता है।

मकरसे—मकरके समान आकारयुक्त, जानुदेश, नदी, निविड़वन, सरोवर, जलप्लावित देश और गर्त समझा जाता है।

कुम्भसे—स्कन्धासक्तहस्त, पुरुषाकार, जङ्घा, उष्णवस्तु, जलाधार, पक्षी, स्त्री, शौण्डिक, पदातिक और चोरका निवासस्थान समझा जाता है।

मीनसे—मत्स्यद्वययुक्त आकार, पुण्य, देवता, द्विज, तीर्थ और आवासस्थान, नदी, समुद्र और जलाधारका बोध होता है।

मेष—ओज, विषम, चर, क्रूर, पुरुष, पुण्य, निशाबली, अरुणवर्ण, कुजक्षेत्र, मङ्गलका मूलत्रिकोण, रविका उच्चतुङ्गस्थान, शनिका नीचस्थान, पूर्वदिक्स्वामी, मेषप्रचारभूमि, गुहा, पर्वत, चोरका स्थान, धातु, रत्न, भूमि, आकर।

वृष—युग्म, सम, स्थिर, सौम्य, स्त्री, पृष्ठोदर, पुष्कर, निशाबली, शुक्लवर्ण, शुक्रक्षेत्र, चन्द्रका मूलत्रिकोण और उच्चस्थान, दक्षिणदिक्स्वामी, भूमिचर, वन, पर्वत, गोष्ठादि तथा कर्षणोपयुक्त भूमि।

मिथुन—ओज, विषम, द्व्यात्मक, क्रूर, पुरुष, वायु, शीर्षोदर पुण्य, दिनबली, हरित्‌वर्ण, बुधक्षेत्र, राहुका उच्चस्थान, केतुका नीचस्थान, पश्चिमदिक्स्वामी, वनचर, नृत्य, गीत, शिल्प, क्रीड़ादि भूमि।

कर्कट—युग्म, सम, चर, सौम्य, स्त्री, जल, पृष्ठोदर, निशाबली, पाटलवर्ण, चन्द्रका क्षेत्र बृहस्पतिका उच्चस्थान, मङ्गलका नीचस्थान, उत्तरदिक्स्वामी, जलचर, क्षेत्र, सरोवर, पुलिन, देवताका स्थान और विहारभूमि।

सिंह—ओज, विषम, स्थिर, क्रूर, पुरुष, अग्नि, शीर्षोदर, दिनबली, धूम्रवर्ण, रविका क्षेत्र, केतुका मूल त्रिकोण, पूर्वदिशाका स्वामी, पर्वतचर, वन, दुर्ग, गुहा, व्याध, अवनी और दुर्गमस्थान।

कन्या—युग्म, सम, द्व्यात्मक, सौम्य, स्त्री, पृथ्वी, शीर्षोदर, पुष्कर, दिनबली, पाण्डुवर्ण, बुधका क्षेत्र, मूलत्रिकोण और उच्चतुङ्गस्थान, शुक्रका नीचस्थान, दक्षिणदिक्स्वामी, पूर्वदिक्स्वामी, भूमिचर, रति और शिल्प।

तुला—ओज, विषम, चर, क्रूर, पुं, वायु, शीर्षोदर, पुण्य, दिनबली, विचित्रवर्ण, शुक्रका क्षेत्र और मूलत्रिकोण, शनिका उच्चतुङ्गस्थान, रविका नीचस्थान, पश्चिमदिक्स्वामी, वनचर, तीर्थस्थानाधिप, वाग्मी, निजगृह और उन्नत भूमि।

वृश्चिक—युग्म, सम, स्थिर, सौम्य, स्त्री, जल, शीर्षोदर, पुष्कर, दिनबली, सुवर्ण, बृहस्पतिका क्षेत्र और मूलत्रिकोण, केतुका उच्चतुङ्ग, राहुका नीच, पर्वतचर, घोटक, शूर, अस्त्रभृत, यज्ञ और अश्व।

मकर—युग्म, सम, चर, सौम्य, स्त्री, पृथ्वी, पृष्ठोदर, निशाबली, कर्पूरवर्ण, शनिका क्षेत्र मंगलका उच्चतुङ्गस्थान, बृहस्पतिका नीचस्थान, दक्षिणदिक्स्वामी, भूमिचर, नदी, वन, सरोवर, जलप्लावित देश और गर्त।

कुम्भ—ओज, विषम, स्थिर, क्रूर, पुं, वायु, शीर्षोदर, पुण्य, दिनबली, शनिका क्षेत्र और मूलत्रिकोण, राहुका मूलत्रिकोण, पश्चिम दिशाका स्वामी, वनचर, उष्ण, जलाधार, पक्षी, शौण्डिकालय और द्यूत।

मीन—युग्म, सम, द्व्यात्मक, सौम्य, स्त्री, जल, शीर्षोदर, पुण्य, दिनबली, स्वच्छवर्ण, बृहस्पतिका पुण्य-

क्षेत्र, शुक्रका तुङ्गस्थान, बुधका नीचस्थान, उत्तर दिशाका पति, जल, पुण्यभूमि, ब्राह्मण, तीर्थ, नदी और समुद्र।

राशियोंकी इन संज्ञाओंसे नाना प्रकार गणना हो सकती है। नष्टवस्तुकी प्रश्नगणनासे उक्त वस्तुएं किस स्थानमें हैं, इस बातका ज्ञान तथा उक्त राशिओंका जैसा स्वरूप-विभाग है, उन उन स्थानोंमें ग्रहोंकी अवस्थितिके कारण व्रणादिके चिह्न तथा ग्रहोंके बलाबलमें उन उन अंग प्रत्यङ्गोंकी हानि वा दुर्बलता आदिका बोध होता है।

राशिओंके अधिपतिदेवता।

मेषके देवता मेषाकार, वृषके देवता वृषाकार, मिथुनके देवता स्त्रीपुरुषाकार, मत्स्य, घटी, वीणा और गदाधारी; सिंहके देवता सिंहाकृति; कन्या कन्याकृति और जलकलसधारिणी; तुला तुलादण्डधारी पुरुष; वृश्चिक वृश्चिकाकृति; धनु जङ्घा तक अश्वके समान और अवशिष्ट धनुषधारी नरके समान; मकरके देवताका आकार मृगमुखके समान; कुम्भके देवता कुम्भधारी पुरुष और मीनके देवता मीनके सदृश है। द्वादश राशियोंके द्वादश अधिपति उक्त रूप आकृतिविशिष्ट हैं इसीलिए राशिचक्रमें उक्त राशियोंके आकार उक्त प्रकार लिखे गये हैं।

राशि ओज, युग्म, विषम और समके भेदसे चार प्रकारकी है। इनमें मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ ओजोराशि हैं। वृष, कर्कक, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन युग्मराशि हैं। मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ विषम राशि हैं। इसके सिवा राशिके चर, स्थिर, द्व्यात्मक, क्रूर और सौम्य आदि विभाग देखनेमें आते हैं। मेष, कर्कट, तुला और मकर चर राशि हैं। वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ स्थिर राशि हैं। मिथुन, कन्या, धनु और मीन द्व्यात्मक राशि हैं।

मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ ये क्रूरराशि है तथा वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन सौम्य राशि हैं।

राशियोंकी द्विपदादि संज्ञा।

कन्या, तुला, मिथुन, कुम्भ और धनुके प्रथम अर्द्धभागकी द्विपद संज्ञा है। धनुके शेष अर्द्धभागकी तथा मकरके पूर्वार्द्ध और वृष, मेष और सिंहकी चतुष्पाद संज्ञा है।

मकरके शेष अर्द्धांश तथा कर्कट, मीन और वृश्चिक इनको कीटसंज्ञा है। किसी किसीके मतसे वृश्चिकको सरीसृप संज्ञा है।

मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनुके पूर्वभागकी वश्यसंज्ञा है। मकर और धनुके शेषार्द्ध तथा वृष और मेषकी अवश्य संज्ञा है।

मिथुन, तुला, कन्या, धनु, वृश्चिक तथा रात्रिमें वृष और मेषकी ग्राम्यसंज्ञा है। मकरके पूर्वार्द्ध भाग और सिंहकी तथा दिवसमें मेष और वृषकी अरण्यसंज्ञा है। कर्कट, मीन और मकरके शेषार्द्ध भागकी जलज-संज्ञा है। किसी किसीके मतसे कुम्भराशिकी भी जलजसंज्ञा है।

मेष, वृष, कुम्भ और मीन, ये ह्रस्व हैं। मिथुन, कर्कट, धनु और मकर, ये सम हैं तथा सिंह, कन्या, तुला और वृश्चिक दीर्घ हैं।

मेष, सिंह और धनु, पूर्वदिशाके अधिपति हैं। तुला और कुम्भ पश्चिम दिशाके अधिपति हैं। कर्कट, वृश्चिक और मीन उत्तर दिशाके अधिपति हैं।

जिस ग्रहकी जो राशि उच्चस्थान होती है, उससे सातवीं राशिको उसका नीचस्थान समझना चाहिये।

राशिचक्र द्वारा मानव-शरीरका विभाग।

मेषराशि मानवका मस्तक है, इसी प्रकार वृष गलदेश और पश्चाद्भाग है; मिथुन हस्त है, कर्कट हृदय, स्तन और पेड़ू है; सिंह पृष्ठभाग और अन्तःकरण है, कन्या पेट और नाड़ी है; तुला कटि है; वृश्चिक गुह्यस्थान है; धनु ऊरुदेश और जङ्घा है; मकर जानु है; कुम्भ गुल्फ और मीन पद है।

राशिचक्र द्वारा मानवशरीरकी इस प्रकार कल्पना की गई है। ये सब स्थान ग्रहोंके शुभाशुभके कारण शुभाशुभ होते हैं।

मानवके किस किस अंशमें किस किस राशिका अधिकार है।

कर्कट कपालका उपरिभाग है, धनु दक्षिण चक्षुका भ्रू है। धनु दक्षिण चक्षु है। तुला दक्षिण कर्ण है। कुम्भ वामचक्षुका भ्रू है, मिथुन और मेष वामकर्ण है।

वृष कपालका मध्यस्थल है, मकर ठोढ़ी है, वृश्चिक नासिका है, कन्या दाहना गाल है और मीन बायाँ गाल इन सब स्थानोंसे राशिज्ञान होता है। राशिज्ञान होनेसे आकृति और स्वभावज्ञान होता है।

जातककी लग्नसे द्वादश राशिगृहोंमें यथाक्रमसे मस्तकादि द्वादश अंग कल्पित होते हैं। जन्म लग्नमें मस्तक, लग्नसे दूसरी राशिमें मुख, तृतीय राशिमें बाहुद्वय, चतुर्थ राशिमें वक्षःस्थल, पञ्चमराशिमें उदर, छठी राशिमें कटि, सातवीं राशिमें वस्ति, आठवीं राशिमें लिङ्गगुह्य, नौवीं राशिमें ऊरुद्वय, दशवीं में जानुद्वय, ग्यारहवीं में जङ्घाद्वय और बारहवीं में पादद्वयकी कल्पना की जाती है।

जन्मकालमें जिस जिस राशिमें रहनेवाले जिस जिस अंगमें पापग्रह रहेगा, उन पापग्रहोंके दशाभोगके समय उस उस अंगमें उपघातादि होगा तथा शुभग्रह होने पर पुष्टि और शुभकल्पना करनी चाहिए। राशियोंकी दीर्घता और ह्रस्वताके अनुसार तथा ह्रस्व और दीर्घसंज्ञक ग्रहोंको योग वा दृष्टिके वश अंगोंकी दीर्घता और ह्रस्वता हुआ करती है।

राशियोंका बलाबल।

मेषादि द्वादश राशियाँ अपने पति, उनके मित्र, शुभग्रह अथवा उच्चस्थ शुभाशुभग्रह, इसके अन्यतम द्वारा युक्त वा दृष्ट होने पर बलवान् हुआ करती हैं। उक्त पति आदि ग्रहोंके सिवा अन्य ग्रहों द्वारा युक्त वा दृष्ट होने पर स्वल्पबली होती हैं। पति आदि ग्रह और शत्रुग्रह द्वारा युक्त वा दृष्ट होने पर मध्यबली होती हैं और किसी भी ग्रह द्वारा युक्त वा दृष्ट होने पर हीनबल होती हैं।

जातकपारिजातमें कहा गया है कि द्विपद-राशियां केन्द्रस्थ हो कर दिनमें बलवान्, चतुष्पद राशियां केन्द्रस्थ हो कर रात्रिको तथा कीटराशियां केन्द्रस्थ हो कर सन्ध्याकालमें बलवान् हुआ करती हैं।

गर्गका मत है, कि केन्द्राश्रित राशियां पूर्णबल, पणफराश्रित राशियां मध्यबल और आपोक्लिमस्थित राशियां हीनबल होती हैं।

राशियोंका अन्ध-समय।

मेष, वृष और सिंह महानिशामें; कर्कट, मिथुन और कन्या मध्य दिनमें; तुला और वृश्चिक पूर्वाह्नमें; धनु और मकर अपराह्नमें तथा कुम्भ और मीन दोनों सन्ध्यामें अन्धेरी हो जाया करती हैं।

राशियोंकी विशेष संज्ञा।

मेष, अज, वस्त, प्रथम और क्रीय—इनसे मेषराशिका बोध होता है। इसी प्रकार वृष, ओक्ष, गो, ताबुरि और शुकभसे वृषका; बौध, नृयुग्म और जितुमसे मिथुनका; चान्द्र और कुलीरसे कर्कटका; कर्णाव और लेयसे सिंहका; पाथोन, षष्ठो, अबका और तन्वीसे कन्याका; जूक, वणिक्, सप्तम और तौलिसे तुलाका; कौर्प्य, अष्टम, कौर्ज और अलिसे वृश्चिकका; जैव धनु, सौक्षिक और चापसे धनुका; आकोकेर, दशम और चन्द्रसे मकरका; हृद्रोग, कुम्भ और घटसे कुम्भका तथा मीन, झष, अन्तिम, रिःफ और अन्त्यभसे मीनराशिका ज्ञान होता है।

राशियोंका वश्यावश्य।

सिंहराशिके अतिरिक्त अन्य समस्त चतुष्पद राशियां द्विपदराशियोंके वशीभूत होती हैं, जलजराशियां द्विपद राशियोंकी भक्ष्य हैं। और सरीसृप राशि और जलजराशिके सिवा सब द्विपद और चतुष्पद राशियां सिंहराशिके वशीभूत हुआ करती हैं।

विवाहके समय इस राशि-वश्यताकी आवश्यकता होती है। विवाहमें वरकी राशिके साथ कन्याकी वश्यता देखी जाती है। वरकी राशि कन्याकी राशिके वश्य होने पर, वह पुरुष स्त्रैण होता है और कन्याकी राशि वरकी राशिके वश्य होने पर वह कन्या पतिपरायणा होती है।

ज्योतिषमें इन बारह राशियोंको ६ भागोंमें बांटा गया है, इन ६ भागोंको षड्वर्ग कहते हैं। यथा—क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश।

यद्यपि ग्रहगण द्वादश राशियोंमें परिभ्रमण करते हैं, फिर भी किसी किसी राशिमें स्थितिकालमें उनकी वे वे राशियां तथा तदन्तर्गत नक्षत्रयोग और अन्यान्य कारणोंसे विशेष विशेष रूपसे बलवान् होती हैं। उनकी

आकर्षादि शक्तिकी वृद्धि होनेसे उन उन राशियोंमें उन उन ग्रहोंके क्षेत्रनामसे उल्लेख किया गया है।

मेष और वृश्चिकराशि मंगलका क्षेत्र है, वृष और तुला शुक्रका क्षेत्र है, मिथुन और कन्या बुधका क्षेत्र है, सिंह रविका क्षेत्र है, धनु और मीन वृहस्पतिका क्षेत्र है, मकर और कुम्भ शनिका क्षेत्र है।

राशिके अर्द्धांशका नाम होरा है, जिसमें विषमराशिका प्रथम अंश सूर्यका होरा, द्वितीय अंश चन्द्रका और समराशिका प्रथमांश चन्द्रका और द्वितीयांश सूर्यका होरा है।

राशियोंके तीन भागोंमेंसे एक भागका नाम द्रेक्काण है। जो ग्रह जिस राशिका अधिपति है, वह उस राशिके प्रथम द्रेक्काणका अधिपति है, तथा उस राशिसे पञ्चमराशिका अधिपतिग्रह द्वितीय द्रेक्काणका अधिपति और उसकी नवम राशिका अधिपति तृतीय द्रेक्काणका अधिपति होता है।

नवांश—राशिको ९ भागोंमें विभक्त करनेसे उसके एक एक भागको नवांश कहते हैं। मेष, सिंह और धनु इन तीन राशियोंकी मेषावधि करके नवांश निरूपण किया जाता है। इन तीन राशियोंके प्रथममें मेषका अधिपति मङ्गल है, अतएव प्रथम नवांशका पति मंगल है। द्वितीय वृष है, उसका अधिपति शुक्र है इसलिए द्वितीय नवांशका पति शुक्र हुआ। तृतीयांश मिथुन है, उसका अधिपति बुध है, इस कारण तृतीय नवांशका पति बुध है। इस प्रकार मेषादि ९ राशियोंके अंश क्रमसे जिन जिन राशियोंके जो जो ग्रह अधिपति हैं, वे उन उन अंशोंके अधिपति हैं। इसी प्रकार मकर, वृष और कन्या इन तीन राशियोंका मकरादि करके तथा तुला, कुम्भ और मिथुन इन तीन राशियोंका तुलावधि करके, कर्कट, वृश्चिक और मीन इन तीन राशियोंका कर्कटावधि करके नवांशका निरूपण किया जाता है।

द्वादशांश—राशिका द्वादश भाग करनेसे एक एक भागको द्वादशांश कहते हैं। जिस राशिका द्वादशांश कारन है, उसका अधिपतिग्रह प्रथम द्वादशांशका अधिपति है। पीछे क्रमः राशिका अधिपतिग्रह अंशका अधिपति होता है।

त्रिंशांश—राशिको ३० भाग करनेसे उसके एक एक भागका नाम त्रिशांश है। विषमराशि अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भका प्रथम पञ्चभाग मंगलका त्रिंशांश है। उसके बादका पञ्चभाग शनिका, उसके बादका अष्टभाग वृहस्पतिका, उसके बादका सप्तभाग बुधका और उसके बादका पञ्चभाग शुक्रका त्रिंशांश है। समराशि अर्थात् वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन इन राशियोंका प्रथम पञ्चभाग शुक्रका त्रिंशांश है, उसके बादका पञ्चभाग बुधका, तब अष्टभाग वृहस्पतिका, उसके बादका सप्तभाग शनिका और उसके बादका पञ्चभाग मंगलका त्रिंशांश है।

इस प्रकार राशिका षड्वर्ग किया जाता है।

विशेष विवरण उन्हीं शब्दोंमें देखो।

द्वादशराशि और सत्ताइस नक्षत्र।

पृथिवी सूर्यके चारों ओर परिभ्रमण करती है, परन्तु हम उस गतिके स्वाभाविक नियमानुसार अर्थात् जैसे किसी चालित वस्तुमें आरोहण करके हम अचल वस्तुको चालित देखते हैं, उसी प्रकार हम सचल पृथ्वी पर आरूढ़ हो कर सूर्यको भ्रमण करते हुए देखते हैं। इस नियमसे प्रातःकाल हम सूर्यको पूर्व दिशामें उदित होते और सायंकालमें पश्चिमदिशामें अस्त होते देखते हैं। जिस मार्गसे हम सूर्यको आकाशमण्डलसे जाते-आते देखते हैं, वह वास्तवमें भूकक्ष अथवा अयनमण्डल है। वह चक्राकार है, किन्तु सम्पूर्ण गोल नहीं है। बीच बीचमें कुछ टेढ़ा-मेढ़ा है। उसके उत्तर-दक्षिणमें कुछ दूर तक एक और कल्पित चक्र जो उसे घेरे रहता है, उसे राशिचक्र कहते हैं।

राशिचक्र और अयनमण्डल दोनों द्वादश भागों और ३६० अंशोंमें विभक्त हैं। उक्त द्वादशराशियोंका नामकरण द्वादश नक्षत्रोंके अनुसार हुआ है।

६६ ताराओंसे युक्त जो एक मेषाकार नक्षत्रपुञ्ज नभोमण्डलमें देखा जाता है उसको नाम मेषनक्षत्रपुञ्ज है। यह नक्षत्रपुञ्ज जिस भागमें अवस्थित है, खगोलवेत्तागण उसे मेषराशि कहते हैं।

इसी प्रकार आकाशमें १४१ ताराओंयुक्त वृषाकार नक्षत्रपुञ्जका नाम वृषनक्षत्रपुञ्ज है, यह जिस भागमें अवस्थित है, उसे वृषराशि कहते हैं।

नभोमण्डल-स्थित ८५ तारकायुक्त स्त्रीपुरुषाकार नक्षत्रपुञ्जका नाम मिथुननक्षत्रपुञ्ज है, यह नक्षत्रपुञ्ज राशिचक्रके दोनों ओर अवस्थित है, इसे मिथुनराशि कहते हैं।

८३ तारायुक्त कर्कटके आकारका जो नक्षत्रपुंज है उसका नाम है कर्कट नक्षत्रपुञ्ज, यह राशिचक्रके जिस भागमें अवस्थित है, उनका नाम कर्कटराशि है।

९५ तारकायुक्त सिंहाकार नक्षत्रपुञ्जका नाम सिंह-पुञ्ज है इसलिए सिंहराशि; ११० तारकायुक्त शस्य और अनलधारिणी कन्याकार नक्षत्रपुञ्जका नाम कन्यानक्षत्र-पुञ्ज, इसलिए कन्याराशि; ५१ तारकायुक्त तुलादण्डाकार नक्षत्रपुञ्जका नाम तुलानक्षत्रपुंज, इसलिए तुलाराशि; ४४ तारकायुक्त वृश्चिकाकार नक्षत्रपुञ्जका नाम वृश्चिकनक्षत्र पुंज, इसलिए वृश्चिकराशि; ९९ तारकायुक्त ऊद्र्ध्वार्द्ध नराकार, निम्नार्द्ध घोटकाकार, धनुर्द्धारीके समान नक्षत्र-पुञ्जका नाम धनुनक्षत्रपुंज ; ५१ तारकायुक्त मकराकार, छागवदनके समान नक्षत्रका मकरनक्षत्रपुंज, इसलिये मकरराशि; १०८ तारकायुक्त घटधारी मानवाकार नक्षत्र-पुञ्जका नाम कुम्भनक्षत्रपुंज, इसलिए कुम्भराशि, ११३ तारकायुक्त परस्पर पुच्छाभिमुख मीनाकार विशिष्ट नक्षत्र-पुंजका नाम मीननक्षत्रपुंज, इसलिए उसके स्थानको मीनराशि कहते हैं।

राशिचक्रमें ये सब राशियां मेषसे वामावर्त्तमें अव-स्थित हैं। उक्त द्वादश नक्षत्रपुंज अचल कहलाते हैं। किन्तु उनकी लगभग तीन विकलाके हिसाबसे एक वार्षिक गति है।

आकाशमण्डलके मध्यखण्डमें राशिचक्र अवस्थित है। उस चक्रके उत्तरदक्षिणमें और भी असंख्य तारे हैं। किंतु ज्योतिष-ग्रंथमें सप्तर्षि और ध्रुव आदि कई नक्षत्रोंके सिवा अन्य किसी नक्षत्रका उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण शायद यह होगा कि उन सब नक्षत्रोंकी अननुभवनीय दूरीके कारण मानवशरीरमें उनकी क्रिया स्पष्ट बोधगम्य नहीं होती।

इसके अतिरिक्त आर्य ज्योतिर्विदोंने असामान्य बुद्धिकौशलके साथ २७ नक्षत्रपुञ्जों द्वारा राशिचक्रका और भी सूक्ष्मरूपसे विभाग किया है। नक्षत्रोंका परि-माण १३ अंश और कला २० अंश है। इसलिए सपाद (सवा) नक्षत्रद्वयसे एक एक राशि होती है।

उक्त राशिचक्रके २७ नक्षत्रपुञ्जोंमें विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, श्रवणा, पूर्वभाद्रपद, अश्विनी, कृत्तिका, मृग-शिरा, पुष्या, उत्तरफाल्गुनी और चित्रा—इनसे द्वादश नक्षत्र वैशाखादि द्वादश मासोंके नाम निर्दिष्ट हुए हैं। राशिचक्र बारह भागोंमें विभक्त हैं, इसलिये बारह मास हुए हैं। ३० अंशोंमें एक एक राशि है, इसलिए ३० दिनका एक एक मास हुआ है।

राशिचक्रका सायण और निरयण मत।

चक्रका आदि और अन्त नहीं है, हाँ, किसी किसी विशेष निर्दिष्ट स्थानसे उसका आद्यन्त निरूपित होता है। राशिचक्र अथवा अयनमण्डलका भी उसी प्रकार आदि अन्त नहीं है तथा उसका भी किसी निर्दिष्ट स्थानसे आदि अन्तका निरूपण किया जाता है। यूरोप और अमेरिकामें वासन्तिक क्रान्तिपातसे तथा इस देशमें अश्विनी नक्षत्रके प्रथमांशसे राशिचक्रका आरम्भ निरू-पित होता है। पृथ्वीके निरक्षवृत्तकी भांति राशिचक्र-के मध्यभागमें पूर्व-पश्चिममें व्याप्त एक सीधी रेखा कल्पित होती है, उसका नाम है विषुवरेखा। प्रति-वर्ष अयनमण्डलके जिन दो स्थलोंमें विषुवरेखा मिलित होती है, उसे क्रान्तिपात कहते हैं। वहां सूर्यके आग-मनसे दिन और रात्रि समान होती है। आजकल चैत्र-मासमें एक बार और आश्विन मासमें दो बार क्रान्तिपात होता है, इसलिए उन दोनों दिन दिन रात समान होती है।

१३८१ वर्ष पहले चैत्र और आश्विन मासमें ३० वा ३१ दिनमें अश्विना नक्षत्र प्रथमांशमें और चित्रा नक्षत्र-के षष्ठांश ४० कलामें उक्त दो क्रान्तिपात होता था, अर्थात् उक्त दो नक्षत्रोंके उल्लिखित अंशोंमें विषुवरेखा अवस्थिति करता था तथा उक्त दोनों स्थलोंमें उसके साथ अयनमण्डलका संयोग होता था।

आर्य-ज्योतिर्विद्गण अश्विनीनक्षत्रके प्रथमांशमें जो क्रान्तिपात होता था, सूर्य वहां आने पर उसे महाविषुव-संक्रान्ति और चित्रा नक्षत्रके उक्तांशादिमें जो क्रान्ति पात होता था, सूर्य वहां उपस्थित होने पर उसे जल

विषुवसंक्रान्तिके नामसे निर्देश करते थे। अब भी वही नियम चला आ रहा है। परन्तु इस समय राशिचक्रके उक्त दो स्थलों में विषुवरेखाके साथ अयनमण्डलका सम्मेलन नहीं होता।

यूरोपीयों के मतसे प्रतिवर्ष ५० विकला, १५ अनुकला, और आर्य-ज्योतिर्विदों के मतसे ५४ विकला अयनमण्डलके पश्चिमभागमें हट जाती है, अर्थात् इस परिमाणमें प्रतिवर्ष विषुवरेखाका संचालन कल्पित हुआ है।

अब बंगला तारीख ९ या १० चैत्रको राशिचक्रके अश्विनीनक्षत्रके प्रथमांशसे लगभग २१ अंशके अन्तरमें जो स्थान इस देशमें मीनराशिका ९ अंशभुक्त माना जाता है उस स्थानमें वासन्तिक क्रान्तिपात होता है, तथा सूर्य उस दिन उक्त क्रान्तिपातमें उपस्थित होने पर दिन और रात्रि समान हुआ करती है।

इस देशमें चैत्रमासके ३० वा ३१ दिनमें सूर्य अश्विनी नक्षत्रके प्रथमांशमें उपस्थित होने पर उक्त अंशसे मेषराशिका प्रारम्भ समझा जाता है।

आर्योंमें शेषोक्त मत प्रचलित रहनेका कारण यह है, कि सायणके मतसे किसी एक अपरिवर्त्तनीय स्थानसे मेषराशिका प्रारम्भ नहीं होता, प्रतिवर्ष उसका प्रारम्भ स्थानान्तरसे होता है। इस विषयमें निरयणका मत उत्तम है, कारण अचल अश्विनीनक्षत्र मेष संक्रान्तिको गणना होनेसे एक ही स्थानसे मेषका प्रारम्भ गिना जाता है। फलतः उक्त दोनों गणनाओंमें प्रभेद यह है, कि जिस सायण मतसे अभी जिस दिन मेष संक्रान्ति होती है, उसके लगभग २१ दिन बाद निरयणमतसे उक्त संक्रान्ति होती है। सायण-मतसे अब जिस स्थानमें मेषराशिका प्रारम्भ होता है, निरयण-मतसे वहांसे लगभग २१ अंश बाद होता है। सायण मतसे वासन्तिक क्रान्तिपात अयनमण्डलसे कितनी ही दूर पश्चिममें हट कर क्यों न हो, वहांसे मेषराशिका प्रारम्भ निर्दिष्ट होगा। अतएव उक्त मतसे मेषादि द्वादश राशिओंकी सीमा कालक्रमसे परिवर्त्तित होती रहती है। यहां तक, कि अब जिस स्थानको सायण-मतावलम्बी मेषराशि कहते हैं, १३००० वर्ष बाद उन्हींकी गणनासे वह स्थान तुलाराशिके अन्तर्गत हो जायगा।

निरयण मतसे द्वादश राशिओंमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता। पुराकालमें मेषादि द्वादश नक्षत्रपुञ्जोंके अधीनस्थ जो मेष आदि द्वादश राशियां निर्द्धारित हुई थीं, अब भी वे राशियां उन्हीं स्थानोंमें मौजूद हैं।

अतएव पक्षपातशून्य हो कर विशेष विवेचनापूर्वक देखने पर यह अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा, कि सायण और निरयण इन दोनों मतोंमें राशिकी स्थिरताके विषयमें निरयणका मत ही उत्कृष्ट है, किन्तु राशिओंसे जो फल उत्पन्न होता है, उसका यथार्थरूपमें निर्णय करना हो, तो सायणका मत ग्रहण करना ही श्रेय है। निरयणके मतसे नक्षत्र घटित फलका व्यत्यय नहीं होता, किन्तु राशिघटित फलोंमें विभिन्नता पाई जाती है।

वस्तुतः आर्यों के राशिचक्रको वास्तवमें नक्षत्रचक्र कहा जा सकता है और यूरोपीय ज्योतिर्विद् भी उसे इसी नामसे कहा करते हैं। अतएव, यद्यपि सायणचक्र परिवर्त्तनशील है, तथापि वही वास्तवमें राशिचक्र है, इसमें सन्देह नहीं। प्राचीन ज्योतिर्विदोंने ऋतुके अनुसार राशिचक्रका विभाग किया था, वे वसन्तऋतुके आविर्भावसे मेषराशिका प्रारम्भ निर्द्धारण करते थे, तथा उस नियमके अनुसार ही सायणमतसे वासन्तिक क्रान्तिपातसे राशिचक्रका आरम्भ होता है। इस देशमें भी किसी समय उक्त मत प्रचलित था। प्राचीन कालमें जब कृत्तिका नक्षत्रमें वासन्तिक क्रान्तिपात होता था, तब उस नक्षत्रसे ज्योतिर्विद्गण राशिचक्र वा मेषराशिका प्रारम्भ मानते थे। पीछे जब उक्त क्रान्तिपात अश्विनी नक्षत्रमें हटने लगा, उसी समयसे मेषारम्भ अश्विनीनक्षत्रसे गिना जाने लगा। परन्तु अब उक्त क्रान्तिपात उत्तर भाद्रपदनक्षत्रके ९ अंशमें हट जानेके कारण राशिचक्रके पुनः संस्कारको आवश्यकता आ पड़ी है।

वर्त्तमानमें इस देशमें केवल दिनमान और रात्रिमान तथा मेषादि द्वादश राशिओंका लग्नमान निरूपण करनेके लिए सायण-मतसे गणनाकी आवश्यकता होती है।

निरयण गणनामें एक और सुविधा है, वैशाखादि द्वादश मासोंमें रविका मेषादि द्वादश राशिओंमें पर्यायक्रमसे अवस्थितिमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता। यथा—

वैशाख मासमें रवि मेषराशिमें रहेगा, ज्येष्ठ मासमें वृष राशिमें, इसी प्रकार पर्यायक्रमसे चैत्रमासमें मीन राशिमें अवस्थान करेगा। इस प्रकार बारह मासोंमें मेषसे ले कर मीन तक बारह राशियोंका भोग करता है।

इस प्रकार सौरमास स्थिरीकृत होनेसे वैशाखादि द्वादश मासमेंसे कोई एक मास उल्लिखित होने पर उस मासमें रवि जिस राशिका भोग कर रहा हो, उसीका बोध होगा, तथा किसी राशिका उल्लेख करने पर तत्सम्बन्धी सौर मासका भी संकेतमें उल्लेख हो जाता है। जैसे वैशाखमास कहने पर उस मासके अधिपति मेषराशिका बोध होगा, इसी प्रकार मेषराशि कहनेसे उसके अधीनस्थ वैशाखमासका ज्ञान होगा।

पहले ही कहा जा चुका है, कि पृथ्वीके निरक्षवृत्तके समान राशिचक्रका भी एक निरक्षवृत्त माना गया है और उसका नाम है विषुवरेखा। उस रेखाके उत्तर-दक्षिणमें २३ अंश २८ कलाके अन्तरमें दो बिन्दुओंकी कल्पना की गई है। उनमेंसे एक उत्तरायणान्त बिन्दु अर्थात् सूर्यके उत्तरमें जानेकी शेष सीमा है, और दूसरा दक्षिणायणान्त बिन्दु अर्थात् सूर्यके दक्षिण दिशामें जानेकी शेष सीमा है। राशिचक्रके इन दोनों बिन्दुओंके मध्य जो एक रेखा कल्पित हुई है, उसका नाम अयनान्तवृत्त है। सूर्य जिस मार्गसे उत्तर दिशाको जाता है, उसे उत्तरायण और जिस मार्गसे दक्षिण दिशाको जाता है, उसे दक्षिणायन कहते हैं।

१३८१ वर्ष पहले माघ और श्रावणमासके प्रथम दिनमें अयन परिवर्तित होता था अर्थात् माघके पहले दिनमें सूर्यका मकरराशिमें प्रवेशसे ले कर आषाढ़के अन्तमें सूर्य मिथुनराशिके शेषांश गत होने तक उत्तरायण कहलाता था। श्रावणके पहले दिनमें सूर्यका कर्कटराशिमें प्रवेशसे ले कर पौषके अन्तमें सूर्यके धनुराशिमें चले जाने तक दक्षिणायन कहलाता था। परन्तु आजकल उक्त निर्दिष्ट समयसे लगभग २१ दिन पहले अयन परिवर्तित हो जाता है। अतएव धनुराशिके लगभग ६ अंशमें आरम्भ हो कर मिथुनराशिके लगभग ६ अंशमें उत्तरायण समाप्त होता है और दक्षिणायन मिथुनराशिके उक्त अंशमें आरम्भ हो कर धनुराशिके ६ अंशमें शेष होता है। अतएव इस देशकी पञ्जिकामें उत्तर और दक्षिणायनका आरम्भ और शेष जिस समय बतलाया जाता है, वह ठीक नहीं है। इस समय राशिचक्रमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि ग्रहगण राशिचक्रमें परिभ्रमण कर रहे हैं। जिनमें रवि और चन्द्रग्रहकी शीघ्रगति है, राहु और केतुकी वक्रगति है, और अन्य पांच ग्रहोंकी सीधी, शीघ्र, मन्द, वक्र, अतिवक्र, अतिचार और महातिचार सात प्रकारकी गति निर्दिष्ट हुई है।

समस्त ग्रह राशिचक्रमें वामावर्त्त अर्थात् मेषसे वृष और वृषसे मिथुन इस प्रकार पर्यायक्रमसे भ्रमण करते हैं, किन्तु राहु और केतु उसके विपर्यायक्रमसे अर्थात् मेषसे मीन, मीनसे कुम्भ इस प्रकार गतिक्रिया सम्पादन करते हैं।

राशिचक्र ३६० अंशोंमें विभक्त है। रविचक्रको ३६५ दिन १५ दण्ड ३१ पल ३१ विपलमें यह राशिचक्र अतिक्रम करता है। यही रविकी वार्षिक गति है, और ५९ कला, ८ विकला, १० अनुकला इसकी दैनिक गति है। परन्तु राशिचक्रकी वक्रिमाके कारण सूर्यकी गति कभी अधिक शीघ्र और कभी मन्द हुआ करती है, इसलिए उक्त गतिको मध्यगति कहते हैं। रविकी दैनिक शीघ्रगति १ अंश १ कला ५ विकला है और वह एक मास तक प्रत्येक राशिका भोग करता रहता है।

चन्द्र—चन्द्र २७ दिन १९ दण्ड १७ पल ४२ विपलमें रविचक्र परिभ्रमण करता है और १३ अंश १० कला १४ विकला उसकी दैनिक गति है। राशिचक्रकी वक्रताके कारण सूर्यकी भांति इसकी गतिमें भी कभी कभी न्यूनाधिकता होती रहती है। चन्द्रके प्रत्येक राशिका भोगकाल सपाद (सवा) दो दिन मात्र है। इसलिये सवा दो नक्षत्रमें एक राशि होती है।

मंगल —दो उपग्रहसमन्वित मंगल ६८६ दिन ५८ दण्ड ६ पल २० विपलमें राशिचक्र परिभ्रमण करता है। उसकी दैनिक शीघ्रगति ४६ कला १८ विकला, मन्दगति ४ कला और मध्यगति ३१ कला २७ विकला है। मंगल ८० दिन वक्र और ४ दिन स्थिर भावसे रहता है। मंगल वक्रभावको प्राप्त न हो, तो १ मास १५ दिनके हिसाबसे प्रत्येक राशिका भोग करता है।

बुध—८७ दिन ५८ दण्ड ६ पल १७ विपलमें राशिचक्र परिभ्रमण करता है, किन्तु यह अतीव क्षुद्र और सूर्यके अति निकट होनेके कारण पृथ्वीके सम्बन्धमें रविके २८ अंश २० कलामें उसकी स्थिति पाई जाती है। अतएव सूर्य जिस समय राशिमें जाता है, उसके उस अंशमें बुधको अवस्थिति रहती है। इसकी दैनिक शीघ्रगति ४ अंश ५ कला ३२ विकला २१ अनुकला, मध्यगति ५६ कला ६ विकला, वक्रगति २४ दिन और स्थिरस्थिति २ दिन है। जिस समय यह शीघ्रगतिको प्राप्त होता है, उस अवस्थामें १८ दिनके हिसाबसे एक एक राशिका भोग करता है।

बृहस्पति—बृहस्पति चार उपग्रहोंसे परिवृत हो कर ११ वर्ष १० मास १५ दिन ३६ दण्ड ८ पलमें राशिचक्र परिभ्रमण करता है। इसकी दैनिक शीघ्रगति १४ कला ४३ विकला, मन्दगति ४३ विकला, मध्यगति ४ कला ६९ विकला ६ अनुकला, वक्रगति १२० दिन और स्थिरस्थिति ६ दिन है। इसका प्रत्येक राशिभोगका समय न्यूनाधिक एक वर्ष है।

शुक्र—शुक्र २२४ दिन ४२ दण्ड ३ पलमें राशिचक्र परिभ्रमण करता है। इसकी दैनिक शीघ्रगति १ अंश १६ कला ७ विकला ४४ अनुकला, वक्रगति ४२ दिन और स्थिरस्थिति ४ दिन है।

शनि—शनि सात उपग्रहोंसे परिवृत हो कर २६ वर्ष ५ मास १७ दिन १२ दण्ड ३० पलमें राशिचक्र परिभ्रमण करता है। इसकी दैनिक शीघ्रगति ८ कला ५ विकला, मन्दगति १२ विकला और मध्यगति २ कला २३ विकला है। १४० दिन वक्रगति और १० दिन स्थिर स्थिति रहती है। प्रत्येक राशिभोगका काल न्यूनाधिक २ वर्ष ६ मास है।

राहु और केतु—राहु और केतु वक्रगतिके द्वारा दक्षिणावर्तमें १८ वर्ष ७ मास १८ दिन १५ दण्डमें राशिचक्र परिभ्रमण करते हैं। इनकी दैनिक गति ३ कला ११ विकला है। ये प्रतिवर्ष १६ अंश १६ कला ४४ विकला राशिचक्रसे हट जाते हैं और १ वर्ष ६ मास २० दिनमें एक एक राशिको अतिक्रम करते हैं।

ये नवग्रह सर्वदा इसी प्रकार राशिचक्र परिभ्रमण करते रहते हैं। इसके सिवा यूरोपीय ज्योतिर्विदोंने अनेक गवेषणाके बाद हर्शेल नामक एक ग्रहका आविष्कार किया है। यह ग्रह अन्यून ८३ वर्षमें राशिचक्र भ्रमण और ७ वर्षमें प्रत्येक राशिका भोग करता है, यह ग्रह शनिके समान पापग्रह समझा जाता है।

ग्रहोंका जो राशिसंक्रमण-काल लिखा गया है, वह स्थूलमात्र है। उस कालमें वे राशिसंक्रमण करते तो हैं, परन्तु ठीक उसी यथार्थ अक्षांशमें उपस्थित नहीं होते। उस अक्षांशमें लौटनेमें जितना समय लगता है, उसे सूक्ष्मराशिसंक्रमणकाल कहते हैं। यह सूक्ष्म-संक्रमणकाल इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है।

सूर्य जिस दिन जिस वारको जिस अंशसे भ्रमण करना प्रारम्भ करता है, २८ वर्ष बाद उसी दिन उसी वारको उसी पूर्व-निर्दिष्ट स्थानमें उपस्थित होता है। तबसे माससंख्या, संक्रान्ति, तारीख और वार फिरसे उसी प्रकार होते रहते हैं।

इस प्रकार चन्द्र १९ वर्ष बाद उसी प्रकृत स्थानमें वापस आ जाता है। उस समयसे फिर पहलेकी भांति पूर्णिमा और अमावस्या आदि तिथि तथा नक्षत्रोंका भोग होता रहता है। मंगल ७९ वर्ष बाद, बुध ४६ वर्ष बाद, बृहस्पति ८३ वर्ष बाद, शुक्र ८ वर्ष बाद, शनि ५९ वर्ष बाद तथा राहु और केतु ९३ वर्ष बाद राशिचक्रके अभिन्न अंशमें उपस्थित होते हैं।

ग्रहोंके राशिभोगका जो समय लिखा गया है, उसके अनुसार भोगावसान न हो और उसी बीचमें यदि दूसरी राशिमें गमन करे, तो उन्हें अतिचारी और उस गमनकालको अतिचार कहते हैं। अतिचारी हो कर ग्रहगण दूसरी राशिमें विशेष काल तक वास करके पूर्व राशिमें वापस आ जाते हैं। परन्तु जो ग्रह बिना लौटे ही उसके बादकी राशिमें चला जाता है, उसे महातिचारी कहते हैं।

मेष आदि द्वादश राशियां अपने अपने गुणानुसार जिन विशेष नामोंसे निर्दिष्ट होतीं और तदनुसार जो मानव-जीवनमें विशेष फलोंकी कल्पना की जाती है, उसकी यहां संक्षेपमें आलोचना की जाती है। मेषसे मीन तक सब राशियां विषम और सम, दिवा और रात्रि,

पुरुष और स्त्री इस प्रकार पर्यायक्रमसे विभक्त हैं, अर्थात् मेषराशि विषम, दिवा और पुरुष है ; वृषराशि सम, रात्रि और स्त्री है , शेष राशियां भी क्रमवार इसी प्रकार-की समझ लेनी चाहिये ।

ग्रहगण मेषराशिमें उत्पादन-शक्ति और वृषराशिमें धारण या ग्रहणशक्ति रखते हैं । उसके बादकी राशियों-के गुण भी क्रमशः इसी प्रकार समझ लेने चाहिये । छः पुरुषराशि कही गई हैं, इनमें सन्तान उत्पन्न होने पर वह वीर्यवान् होती है और छः स्त्री राशियोंमें कन्या उत्पन्न होने पर कोमलस्वभाव होती है, इसके विपरीत होने पर विपरीत फल होता है, अर्थात् स्त्रीराशिमें पुत्र होने पर वह भीरु और पुरुषराशिमें कन्या होने पर वह अत्यन्त प्रबला होती है ।

बारह राशियोंके चर, स्थिर, द्व्यात्मक, अग्नि, पृथ्वी, वायु, जल, पूर्वादि दिक्, द्विपद् और चतुष्पद् आदि विभाग हैं, जो कि राशियोंकी विशेष संज्ञाके प्रकरणमें लिखे गये हैं । फलाफल और गुण राशियोंके नामानुसार उन्हीं सब शब्दोंमें देखो ।

सत्ताईस नक्षत्रोंमें जो सवा दो पाद नक्षत्रमें एक राशि होती है, नीचे उसकी तालिका दी जाती है,—

मेषराशि—१ अश्विनी, २ भरणी और ३ कृत्तिका-नक्षत्र-का प्रथम एक पाद ।

वृषराशि—३ कृत्तिकाके शेष तीन पाद, ४ रोहिणी, ५ मृगशिराके प्रथम दो पाद ।

मिथुनराशि—५ मृगशिराके शेष दो पाद, ६ आर्द्रा, ७ पुनर्वसुके शेष तीन पाद ।

कर्कटराशि—७ पुनर्वसुका शेष पाद, ८ पुष्या, ९ अश्लेषा ।

सिंहराशि—१० मघा, ११ पूर्वफल्गुनी, १२ उत्तर-फल्गुनी ।

कन्याराशि—१२ उत्तर-फल्गुनीके शेष तीन पाद, १३ हस्ता, १४ चित्राका प्रथम पाद ।

तुलाराशि—१४ चित्राके शेष दो पाद, १५ स्वाती, १६ विशाखाके प्रथम तीन पाद ।

वृश्चिकराशि—१६ विशाखाका शेष पाद, १७ अनुराधा, १८ ज्येष्ठा ।

धनुराशि—१९ मूला, २० पूर्वाषाढ़ा, २१ उत्तराषाढ़ाका प्रथम पाद ।

मकरराशि—२१ उत्तराषाढ़ाके शेष तीन पाद, २२ श्रवणा, २३ धनिष्ठाके प्रथम दो पाद ।

कुम्भराशि—२३ धनिष्ठाके शेष दो पाद, २४ शतभिषा, २५ पूर्वभाद्रपदका प्रथम पाद ।

मीनराशि—२५ पूर्वभाद्रपदका शेष पाद, २६ उत्तर-भाद्रपद, २७ रेवती ।

इन सत्ताईस नक्षत्रोंमें पूर्वोक्त विभागक्रमसे राशि-चक्र बनता है । राशिचक्र देखो ।

राशिक (सं० त्रि०) राशिविशिष्ट । जैसे,—त्रैराशिक ।

राशिचक्र (सं० क्ली०) राशीनां चक्रं । मेष, वृष, मिथुन आदि राशियोंका चक्र या मंडल, ग्रहोंके चलनेका मार्ग या वृत्त । इसे भचक्र या ज्योतिषचक्र भी कहते हैं ।

"सप्तविंशतिभैर्ज्योतिश्चक्रं स्तिमितवायुगम् ।
तदर्कांशो भवेद्राशिर्नवर्क्षचरणाङ्कितः ॥" (दीपिका)

विशेष विवरण राशि शब्दमें देखो ।

तन्त्रसारमें लिखा है, कि गुरु शिष्यको मन्त्र देते समय राशिचक्र बना कर मन्त्र स्थिर करें, मेषादि राशि-चक्र अकारादि अक्षरविन्यास कर स्थिर करें । उसका विधान इस प्रकार लिखा है,—अ, आ, इ, ई, मेष । उ, ऊ, ऋ वृष । ॠ, ऌ, ॡ मिथुन । ए, ऐ कर्कट । ओ, औ सिंह । अं, अः, श, ष, स, ल, क्ष कन्या । कवर्ग तुला । चवर्ग वृश्चिक । टवर्ग धनु । तवर्ग मकर । पवर्ग कुम्भ । यवर्ग मीन ।

इस प्रकार अक्षरविन्याससे बारह राशि कल्पित होती है । मन्त्रवर्ण और राशिवर्ण अनुकूल होनेसे वही मंत्र ग्रहणीय है । राशि और मन्त्रवर्ण प्रतिकूल होनेसे पद पद पर विघ्न हुआ करता है ।

शिष्यका यदि जन्मसमय स्थिर न हो, इससे अगर उसकी राशि जानी न जाय, तो उसका निद्राभङ्गनाख्य नामग्रहण करते हुए उस नामका आदि अक्षर ले कर राशि स्थिर करनी होगी ।

षष्ठ, अष्टम और द्वादश दुःस्थान है । अतः इस राशिमें मंत्रग्रहण करना युक्तिसंगत नहीं । इसी द्वादश राशिका लग्न, धन, भ्राता, बन्धु, शत्रु, कलत्र, मरण, कर्म, आय और व्यय नाम पड़ा है ।

इसी द्वादश राशिके बीच लग्नराशिस्थ मन्त्र लेनेसे सिद्धि, धनराशिमें नाना प्रकार सुखभोग, भ्रातृराशिमें भ्रातृवृद्धि, पुत्रमें पुत्रवृद्धि, बन्धुमें बन्धुवृद्धि तथा शत्रु-राशिमें शत्रुवृद्धि, कलत्रमें मध्यम, अष्टममें मृत्यु, नवम-में धर्मवृद्धि, कर्ममें सब तरहकी सिद्धि, आयमें धनादि वृद्धि तथा व्ययराशिमें सञ्चित धनका क्षय हुआ करता है। अतएव इस प्रकार द्वादश राशिकी विशेषरूपसे विवेचना कर गुरु शिष्यको मन्त्र देवें। राशियोंके शत्रु-मित्र भी देखने होंगे। शत्रुराशिमें मन्त्रग्रहण करनेसे शत्रुकी वृद्धि और मित्र होनेसे मित्रता होती है।

*A*ies, Taurus, Gemini, Cancer, Leo, Virgo, Libra, Scorpio, Sagittarius, Capricornus, *A*quarius, *P*isces.

लेट्रोन, आइडेलर, लासेन आदि पाश्चात्य प्रत्नतत्त्व-विद्गण एकमतसे स्वीकार करते हैं, कि भचक्रके निर्दिष्ट मृगशिरा आदि २७ नक्षत्र ले कर सबसे पहले काल्दीय या वाविलोनीय ज्योतिर्विदोंने आकाशमण्डलके बारह बराबर भाग कर १२ राशि और राशिचक्रकी कल्पना की थी। उनके मतसे ग्रीक-ज्योतिर्विदोंने सम्भवतः ईस्वीसन् ७००के पहले वाविलोनियोंसे बारह राशिविभाग सीखा था। किन्तु दुःखका विषय है, कि इन द्वादश राशिके नाम और आकृतिचित्र वाविलोनीयगण संग्रह करनेमें समर्थ हुए थे तथा ग्रीकगण ही या वे सबके सब उनसे प्राप्त हुए थे या नहीं, उसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। ग्रीक-इतिहास पढ़नेसे पता चलता है, कि ई०सन् ४६६के पहले तेनेदोसवासी क्लिओष्ट्राटस् द्वारा नक्षत्रमण्डलका बारह विभाग प्रवर्त्तित होने पर भी यथार्थरूपसे ३८० ई०सन् पहले यूदोक्ससके समय तक ग्यारह राशि निरूपित हुई थी। कारण उस समय तुला-राशिके कुछ अंशोंमें वृश्चिकका डंक आ पड़ने पर उसकी गणना एक राशिमें होती थी। यहां तक, कि Aratus, Hipparchusके समय तक (१५० ई०सन्) वे भूलोकमें पृथक् राशि कह कर स्वीकार नहीं करते। ईस्वीसन् पहली शताब्दीके प्रारम्भमें Geminus और Varro सबसे पहले इन दोनोंको पृथक् पृथक् राशिमें निर्देश कर गये हैं।

इस घोर समस्यामें पड़ कर पण्डितवर लेट्रोनने मिस-रीय राशिचक्रचित्रका (Zodiacal representations)-किंवदन्ती मूलक प्राचीनत्व विलोप करना चाहा। इनके मतसे जिस किसी स्तम्भमें या प्राचीन पुस्तकमें पृथक् तुलाचिह्न (Balance) देखे जाते हैं, वे सब किसी हालतसे भी ईस्वीसन् १ली शताब्दीके पूर्ववर्ती नहीं हो सकते। अध्यापक मोक्षमूलरका कहना है, कि मिस्र हो या भारत उस देशका ज्योतिःशास्त्र प्रत्यक्षरूपसे या परोक्षरूपसे ग्रीक ज्योतिःशास्त्रके ऋणी हैं।

यदि प्राचीन वाविलोनियोंके लिखे ग्रंथ अथवा अट्टालिका आदिका ध्वंस न होता, तो निःसन्देह ही वह समुन्नत प्राच्य जातिका ज्योतिर्विज्ञान-विषयक कीर्त्तिस्तम्भ वर्त्तमान जगत्में अभिनव आलोक दे सकता था। स्ट्राबोकी लेखनीसे जाना जाता है, कि उस देशके धर्मयाजकगण ज्योतिःशास्त्रानुशीलनमें जीवन अतिवाहित कर गये हैं। दियूदोरस् सिकुलस्ने अपने इतिहासमें (Biblioth Histor, 11, 3,) लिखा है, "वावलोनियोंने बारह देवताओंके नाम पर बारह मासों-के नाम तथा बारह पशुओंके नाम पर एक और क्या संकलन किया था।" यह शेषोक्त सम्भवतः राशिका बारहवां विभाग या राशिचक्रके बारह चिह्नोंको अङ्कित जीवाकृति समझी जाती है।

वाविलोनियोंके अट्टालिका-गात्रस्थ शिलाफलकमें जो सब ज्योतिषिक चिह्न (*A*stronomical monuments) खोदे गये थे, उसके कितने टुकड़ोंमें नक्षत्रपुंजके विशेष विशेष अंश प्रतिफलित देखे जाते हैं। बागदादके आस-पास किसी स्थानके भीतरकी मिट्टीसे उपरोक्त चित्र सम्वलित जो सब पत्थरके टुकड़े मिले हैं उनमेंसे एकमें ससर्प-सूर्यमण्डल खोदित है। यह चित्र शायद उत्तर-गोलार्द्धके Ophiuchus नक्षत्रपुञ्जका तथा काल्दीय राशिचक्रके चित्रफलक (*P*lanisphere)का एक अंश-मात्र है।

एक एक मासमें सूर्यदेव जितना पथ तै करते हैं, पहले वही अंश निरूपणार्थ राशिचक्रका बारह भाग कल्पित होता है। पीछे Geminus इस एक एक विभागको २८ अंशमें विभक्त कर चन्द्रमाकी स्वाभाविक

दैनिक गति धारण करता है। प्रथमोक्त विभाग मिस्र-वासी, ग्रीक और एशियाको अपरापर सभ्य जातिमात्रने ही ग्रहण किया है तथा शेषोक्त विधान पारस्य, अरब, हिन्दू और चीनवासी अनुसरण करते हैं। ये २८ अंश चन्द्रमाके गेह (Station या abode) कहलाते हैं। चन्द्रमा एक एक गेहमें सिर्फ एक दिन रहते हैं।

१७९८ ई०में फरासीसियोंने जब मिस्र पर चढ़ाई कर दी, उस समय सेनापति देसे (General Desaix) ने डेण्डेरा (प्राचीन Tentyra)के बड़े मन्दिरके कक्षकी छत पर बहुतसे भास्कर-शिल्पचित्र खोदे हुए देखे। M. Jollois और M. Devillierने यह चित्र पुंखानुपुंख रूपसे पर्यालोचना करते करते पांच फुट व्यासयुक्त एक वृत्तके बीच समूचे 'नक्षत्र जगत्' (Celestial globe)-का एक पूर्ण चित्र देखा। वर्त्तमान समय हम लोग राशिचक्रमें तथा ग्रहनक्षत्रादिमें जैसी आकृति देखते हैं, वैसी ही उस शिलाफलकमें जीवजन्तुकी आकृति प्रतिफलित है। दुःखका विषय है, कि इस नक्षत्रचक्रका चित्र देख कर खगोलमें उस उस नक्षत्र आदिका समावेश निर्णय करना कठिन है। फरासी वैज्ञानिक M. Biot इसी फलकगोलस्थ चार नक्षत्र यथास्थानमें सन्निवेशित है अनुमान कर इसी चक्रका मौलिकत्व अवधारण करनेको अग्रसर होते हैं। वे इसी चौंसठ नक्षत्रके समीप कितनी मनुष्यमूर्त्ति और मिसरीय अज्ञात लिपिका समावेश देख कर बड़े चमत्कृत हो गये और उसका विशेषत्व उद्घाटनके लिये बहुत अनुशीलन कर सिद्धान्त किया, कि राशिचक्रकी जिस राशिके पास ये नक्षत्र हैं उनके नाम Fomalhaut, Antares, Arcturus और Pegasi हैं। उन्होंने गणितके सहारे फलकके उक्त चौंसठ तारोंमें अवस्थान और खगोलके उस उस तारोंकी स्थिति सामञ्जस्य कर दिखाया है, कि ईस्वीसन ६ठी या ७वींमें यह फलक खोदा गया था।

उपरोक्त डेण्डेरामन्दिरकी छतमें, एसने-नगरके दो मन्दिरके शिलालेखमें, द्यूदोरस सिकुलसके ग्रन्थमें उल्लिखित ओसिमाण्डियसके स्वर्णचक्रमें तथा Scaliger-कृत Notes on Manilius नामक ग्रन्थ वर्णित मिसरीय फलकमें और M. Bianchini कर्त्तृक Memoires de 1 Academic des Science (1708), नामक पत्रिकामें प्रकाशित स्वतन्त्र स्वतन्त्र फलकविवरणोंमें नक्षत्रमण्डलके तथा राशिचक्रके निर्दिष्ट ग्रहतारोंका जो प्रतिकृति खोदित है वह सब समान नहीं है। इसका कारण यही है, कि मिस्रवासी प्राचीन ज्योतिर्विदोंने इस परिदृश्यमान आकाशवक्षके नक्षत्रपुञ्जमें जब जैसी आकृति देखी थी, सम्भवतः उस समयमें वैसी प्रतिकृति ही अंकित कर रखा था; दो एक जगह ग्रीक-राशिचक्रकी किसी किसी राशिका अविकल चित्र दिया गया था। मुसों वियाचिनी-कथित फलकमें राशिचक्रके बाहर ३६ भागोंमें त्रिभक्त और एक बंधनी है। इस बन्धनीके बीच ३६ घरोंमें ३६ देवताओंकी मूर्त्ति अंकित देखी जाती है और प्रत्येक घर भगोलकी १०´ डिग्रीका माना जा सकता है।

इन सब भिन्न भिन्न फलकोंका पर्यवेक्षण कर पाश्चात्य पण्डितोंने सिद्धान्त किया है, कि प्राचीन मिस्र-वासी और कालदीयगण खगोलमें दृश्यमान प्रसिद्ध नक्षत्रपुञ्जकी प्रतिकृति अपने अपने उपास्यदेवताकी प्रतिमूर्त्ति अथवा लिङ्गमूर्त्ति या उनमेंसे जो महापुरुष अपने कर्मों-द्वारा समाजमें प्रतिष्ठित हो उठे थे, सम्भवतः उनके समान आकृति होनेहीसे संगठित करते रहेंगे। किन्तु उनके राशिचक्रमें नक्षत्रपुञ्जकी जो प्रतिकृति अंकित या नाम दिये गये हैं वे सूर्यकी प्रत्यक्ष गति, कृषिविषयक श्रम, अथवा विभिन्न ऋतुमें उत्पन्न द्रव्यके प्रति लक्ष्य करके ही बारह राशियोंके नाम संकलित हुए थे, ऐसा अनुमान किया जाता है। माक्रोवियस्ने लिखा है, कि जिस समय सूर्यदेव दक्षिणायनसे विषुवरेखाकी ओर बढ़ते हैं उस समय जिस नक्षत्रपुञ्जके पास वे रहते हैं उसकी मकराकृतिसे मकर नाम पड़ा है।

मेषगण भूमिके या पर्वतके ऊंचे शृंग पर चढ़ सकते हैं। सूर्यदेव बैशाखसे आषाढ़ तक प्रखर किरणजाल विस्तार करते करते क्रमशः उत्तरमुख उठते हैं। इस ऊर्द्ध्वमें उठने-की शक्ति और प्रचण्ड तेजको लक्ष्य कर मेष और वृष नाम तथा वर्षाकी कोमल स्निग्ध जलधारा मिथुनके साथ तुलनामें लिखी रहेगी। इस प्रकार कर्कटगण पश्चात्-गमनकुशल, सूर्यदेव जब और उत्तरायणमें उठ नहीं सकते तो पुनः दक्षिणायनमें नीचे गिरते हैं उसी जगह उनकी

अवस्था कर्कटकी तरह होती है इसलिये उक्त नक्षत्रोंके स्थानका नाम कर्कटराशि तथा आयनगतिका वह अंश कर्कटक्रान्ति नामसे विख्यात है। भाद्रके निदारुण ग्रीष्मके साथ सिंहके प्रभावको तुलना की जा सकती है। कन्याके यौवनोद्गमकी तरह शस्यपूर्णा वसुन्धरा साधारणका लक्ष्य होती है इसलिये आश्विनकी सूर्यगतिको कन्या; कार्त्तिकको क्षेत्रजात शस्यादि नाप करनेको सूचना होनेसे उसे तुला; अग्रहायणमें सूचोविद्धवत् शीतका प्रादुर्भाव उद्बोधन करनेसे उसे वृश्चिक; पौषमें शीतका प्राखर्य तीरका अग्र-सूचीविद्धकी तरह यन्त्रणादायक होनेसे उसे धनु; माघमें शीत उद्गमनशील है इसलिये प्रवाहवाही मकर; फाल्गुनमें वसन्तागम-जल सुखशीतल होता है इससे कुम्भ हो उसका निदर्शन, चैत्र ग्रीष्मकी सूचना-वासन्तिक वायु सेवनके लिये विहारशील प्रणयीयुगलका चिह्नस्वरूप एक सूत्रबद्ध मत्स्ययुग्म होता है। प्रकृतिका मास और ऋतुका ज्ञापक इन सब पार्थिव निदर्शनके अनुकरण पर ही द्वादश राशिचित्र प्रतिपादित हो सकता है, ऐसा विश्वास है।

फरासीपण्डित M. Dupuis मिस्रवासीको राशिचक्रस्थ नक्षत्रपुञ्जका सर्वप्रथम उद्भावक अनुमान कर गणना द्वारा स्थिर करते हैं, कि ईसाजन्मसे पन्द्रह हजार वर्ष पहले राशिचक्र आविष्कृत हुआ था। पीछे वे अपना वह भ्रम निराकरण कर कहते हैं, कि ईस्वीसन् चार हजार पहले वह अन्ततः पक्षमें निष्पादित हुआ था।

पाश्चात्य मनीषिमण्डलीके अपनी अपनी गवेषणा द्वारा राशिचक्रका उद्भावन-काल विभिन्न समयमें निरूपित करने पर भी वह समीचीन और सर्ववादि-सम्मत नहीं समझा जाता। ऐतिहासिक तत्त्वसमुद्भूत ग्रीक-जातिका राशिचक्र साधारणतः ईसाजन्मसे ६७०से ७०० तकके बीच संकलित हुआ है। किन्तु प्रत्येक राशिगत नक्षत्रोंका नामकरण तथा उसका चित्रसम्पादन यथार्थरूपसे कब और किस जातिके द्वारा निष्पादित हुआ था उसका कोई ठीक विवरण नहीं मिलता।

अभी देखा जाय, भारतीय आर्य ऋषि सूर्यको गति, मास, वर्ष आदि निर्णय करनेके लिये राशि और उसके अन्तर्गत नक्षत्र आदिके सम्बन्धमें आलोचना कर किस प्रकार सिद्धान्तमें उपनीत हुए थे। वे नक्षत्रतत्त्व पहलेसे जानते थे क्या नहीं? अथवा उन्होंने वैदेशिकसे ग्रहण किया है, इस विषयमें मीमांसा करनेके लिये हमने ऋग्वेद-संहितासे कुछ मन्त्र उद्धृत किया।

ऋक्संहिताके (१०।८५।१३) मन्त्रमें अर्जुनी (दो फल्गुनीनक्षत्र) और अघा (मघा) नक्षत्रका तथा उसके प्रसंगमें चन्द्र और सूर्यको ऋत्वात्मकगतिका उल्लेख है। अन्यत्र बारह परिधि, एक चक्र और तीन नाभि तथा वह चक्र तीन सौ साठ संख्यक चलाचल अरविशिष्ट (ऋक् १।१६४।४८) देख कर वह मास, वर्ष, ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त नामक प्रधान तीन ऋतु तथा ३६० दिन समझा जाता है। यास्कने उसे अयन कह कर प्रतिपन्न किया है। (निरुक्त ७।२४) ऋग्वेदमें देवयान (ऋक् १।७२।७) और पितृयाण (ऋक् १०।२।७) शब्दका प्रयोग देखा जाता है। इस देवयान और पितृयाणसे देवलोक या पितृलोकगमनके पथकमें ही समझा जाता है। वृहदारण्यकमें (६।२।१५) और छान्दोग्यउपनिषत्‌में (४।१५।५) देवलोक शब्दका अर्थ इस प्रकार लिखा है,—जो छः मास सूर्य उत्तरमें प्रकाश देते हैं वही दिन, मर्त्यलोकके देवलोकमें जानेका वही प्रशस्त समय है, सूर्य जो छः मास दक्षिणमें रहते हैं वह धूममय रात्रि है। सुतरां वह देवताके विपरीत है। वाजसनेय संहितामें (१९।४७) अग्निने मर्त्यलोकके दो पथ निर्देश किए हैं। ऋक् १०।१८।१ मंत्रमें पितृयाण अर्थात् यमराजका पथ देवयानके विपरीत तथा ऋक् १०।९८।११ मंत्रमें अग्निने ऋतु द्वारा देवयान समझा था। ऋक् (१।१२३।७) और (१।१६४।४७ ४८) कृष्णवर्ण या गाढ़ अन्धकारमय और शुक्ल या ज्योतिर्मय दिनका तथा ऋक् ६।९।१ मन्त्रमें सूर्यका दक्षिणापथावर्त्तनमें कृष्णवर्ण दिन या रात्रिका विशेषत्व उल्लिखित होनेसे वह स्पष्टतः साधारण दिवा और रात्रिसे पृथक् समझा जाता है। वह छः महीने देवताओंकी रात्रि है। जिस प्रकार रातमें कोई यज्ञ अनुष्ठित नहीं होता, उसी प्रकार देवताओंका रातमें भी उनके उद्देश्यसे कोई यज्ञ उत्सृष्ट करना उचित नहीं। (ऋक् ३।५८।१) अतएव यह छः मासव्यापी देवयान या पितृयाण जो उत्तरायण और दक्षिणायनके

समान वर्षका षण्मास-विभाग मात्र है, इसमें कोई सन्देह नहीं। उत्तरायण जो देवलोकमें गमनका प्रशस्त समय है, वह महाभारतमें महातेजा भीष्मदेवके मृत्यु-प्रसङ्गमें उक्त हुआ है। ऋग्वेदके १।२५।८ मन्त्रमें बारह मासविभाग और १।२४।८ मन्त्रमें वरुण द्वारा सूर्यका गतिपथ निर्माणका उल्लेख तथा १।८६।४, ११ १२ मन्त्रमें सत्यात्मक आदित्यका द्वादश अरविशिष्ट चक्र सूर्यके चारों ओर बार बार भ्रमण करता है और कदाचित् जराग्रस्त नहीं होता। हे अग्नि! इस चक्रमें पुत्ररूप सात सौ बीस मिथुन वास करते हैं। पञ्चपाद और द्वादश आकृतिविशिष्ट आदित्य जब द्युलोकके उत्कृष्ट अर्द्धमें रहते हैं, तब कोई कोई उन्हें पुरीषी कहते हैं और जब वे दूसरे अर्द्धमें अवस्थित रहते हैं, तब कोई कोई छः अरविशिष्ट सप्तचक्रयुक्त (रथमें) द्योतमान् या आदित्यको अर्पित बतलाते हैं।

उपरोक्त विषय तथा ऋग्वेदके १।४१।४, १।११०।२, ५।४५।७ ८, १०।८५।१ राशिचक्र, अयनवृत्त, विषुववृत्त, क्रान्तिपात तथा विषुपदी या विषुव वो संक्रान्तिकी आलोचना करनेसे कौन नहीं कहेगा, कि ऋग्वेदीययुगके आर्यऋषि द्वादश राशिसे जानकार थे; किन्तु वे मेषादि नाम कल्पना न कर शायद नक्षत्रादिका सूक्ष्मतम विभाग ले कर सूर्यके राशिसंक्रमणकी गणना करते थे।

ब्राह्मण और उपनिषद्युगमें इस प्रकार नक्षत्र देख कर राशिसंक्रमणकी व्यवस्था चली थी। इसलिये मुक्त-कण्ठसे कहा जा सकता है, कि ऋग्वेदके पहले होसे ऋषि लोग राशिसंक्रमण तथा उत्तरायण और दक्षिणायनके बारेमें सम्यक् रूपसे जानकार थे।

वर्तमान समयमें गणन द्वारा स्थिर हुआ है, कि ऋग्वेदीय युगके मृगशिरा नक्षत्रका आविष्कारकाल ४०००-२५०० ख्०पू० तथा ६०००-४००० ख्०पू० है। अतः बोध होता है, कि आर्यऋषि लोग इसी समय कभी राशिचक्रतत्त्व जनसाधारणमें प्रगट कर गये हैं।

ऋग्वेद देखो।

संहिता और ब्राह्मण-युग अतिक्रमण कर हम लोग काव्य और सूत्रयुगमें आ कर उपस्थित हों। महर्षि वाल्मीकिके रचे रामायणके बालकाण्डके अठारह अध्यायमें श्रीरामचन्द्रके जन्मतिथि-प्रसङ्गमें लिखा है, 'उनके जन्म-कालमें रवि मेषराशिमें, मङ्गल मकरराशिमें, शनि तुला राशिमें तथा शुक्र मीनराशिमें थे।' इससे जाना जाता है, कि रामायण-प्रणयकालमें ज्योतिर्विद्या और मेषादि राशि तबके ऋषि लोग अच्छी तरह जानते थे।

रामायण देखो।

बौधायनकल्पसूत्रमें मीन, मेष, वृष आदि राशिका उल्लेख है। सायणाचार्यने अपने भाष्यमें लिखा है,—"अथात ऋतूनामेव मीमांसा। वसन्ते ब्राह्मणोऽग्निनादधीत ग्रीष्मे राजन्यः शरदि वैश्यो वर्षासु रथकार इति। आपस्तम्बस्तु हेमन्ते वा शरदि वैश्यस्य शिशिरः सार्ववर्णिक इत्याह।" (५।३।१८-२०) अथो खलु यदैवैनं श्रद्धोपनमेदथादधीत सैवास्यर्द्धिरिति। अत्र वसन्तादयः सौराश्चान्द्राश्चेति द्विधा भवन्ति। मेषवृषभौ सौरो वसन्तः। मीनमेषौ वा। मेषादि राशिद्वयभानुभोगात् षट् चर्तवः स्युः शिशिरो वसन्त इति वचनात्। अत्र यावत् आदित्ये मीनमेषयोस्तिष्ठति तावत्कालो वसन्तः। एवं वृषभादिद्वन्द्वेषु क्रमाद्ग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्तशिशिरः।"

भारतीय ज्योतिर्विदोंमेंसे हम पहले आर्यभटको ही द्वादश राशिका उल्लेख करते देखते हैं। वराहमिहिरने बौद्धज्योतिषी सत्य भदन्त और बादरायणका उल्लेख किया है। इसलिये वे दोनों ही उनके पूर्ववर्त्ती थे। ज्योतिर्विदाभरणमें इस सत्य और बादरायणको राजा विक्रमादित्यका समसामयिक बताया है। वराहमिहिर-रचित बृहज्जातकटीकामें उत्पलने सत्यका वचन उद्धृत किया है। उसमें राशिका चित्र इस प्रकार दिया है—

"मेषोवृषभो वीणागदाधरं मिथुनमम्भसि कुलीरः।
सिंहः शैले कन्या नौकास्था दीपशस्यकरा॥ १
पुरुषस्तुलाधरो वृश्चिकोऽथ धन्वी नरो हयान्त्यार्द्धः।
मकरार्द्धं मृग पूर्वं कुम्भी पुरुषश्च मीनमत्स्यौ।" २

बादरायणने ब्रह्मके शरीरके साथ द्वादश राशिका इस प्रकार मिलान किया है—

"मेषः शिरोऽथ वदनं वृषभो विधातुः
वक्षो भवेन्मिथुनं हृदयं कुलीरः।
सिंहस्तथोदरमथो युवतिः कटिश्च
बस्तिस्तुलाभृदथ मेहनमष्टमः स्यात्॥

धन्वी चाश्योरयुगं मकरो जानुद्वयं भवति ।

जङ्घाद्वितयं कुम्भः पादौ मत्स्यद्वयं चेति ॥" २

बादरायणके श्लोकमें मेष ब्रह्मका मुखस्वरूप वर्णित देख तथा मेषराशिमें वर्षारम्भ जान कर अध्यापक मोक्षमूलरने लेसनका पदानुसरण करते हुए बाबिलन या ग्रीक्-सकाशमें भारतीय राशिचक्रशिक्षाके सम्बन्धमें जो सिद्धान्त किया, स्वर्गीय पं० बालगङ्गाधर तिलक उसे उल्लेख कर लिख गये हैं, कि तब चित्राको बरन् प्रजापतिका शिर मान सकते हैं। कारण तैत्तिरीयसंहितामें चित्रा-पूर्णिमामें वर्ष आरम्भ होनेका प्रमाण है। * उनका कहना है, कि प्राचीनकालमें इस तरह विभिन्न उपायसे पञ्जिकाकी गणना चलती थी। अध्यापक मोक्षमूलर जो मेष दिखा कर ग्रीकज्योतिर्विद्याका अनुकरण साव्यस्त करेंगे, वह किसी प्रकार समीचीन-सा प्रतीत नहीं होता।

उसके बाद यवनेश्वर और गर्गको राशि तथा सपाद दो नक्षत्रमें उसका विभाग करते देखा जाता है।

(रघुनन्दन ज्योतिस्तत्त्व)

वराहमिहिरने स्वयं इस प्रकार राशिविभागका निर्देश किया।

"मत्स्यौ घटी नृमिथुनं सगदं सवीणं

चापी नरोऽश्वजघनो मकरो मृगास्यः ।

तौली सशस्यदहना प्लवगा च कन्या

शेषाः स्वनामसदृशाः स्वचराश्च सर्वे ॥" ५

किन्तु उन्होंने बृहज्जातकका अन्य एक जगह राशिचक्रके सम्बन्धमें निम्नोक्त श्लोक लिखा है,—

"क्रियताबुरिजितुमकुलीरलेयपार्थेजुककौर्पाख्याः ।

तौक्षिक आकोकेरो हृद्रोगश्चान्त्यभं चेत्थम् ॥" ८

इस वचनमें द्वादश राशिका उल्लेख करने तथा इन सब शब्दोंके साथ ग्रीकराशियोंका शब्दसम्बन्ध रहनेसे पाश्चात्य पण्डित लोग कहा करते हैं, कि भारतीय ज्योतिर्विदोंने राशिचक्रका विषय यवन अथवा बाबिलोनियोंसे लिया है। किन्तु अब हम लोग जगत्का आदि ग्रन्थ ऋग्वेदसंहितामें द्वादश राशिका विभाग तथा रामायणमें और बौधायनकल्पसूत्रमें उसके मेषादि नाम पाते हैं, तब हमलोग किस तरह मान सकते हैं, कि वह हमारी मौलिक वस्तु नहीं है? तब एकमात्र स्वीकार किया जा सकता है, कि जब भारतके उत्तर-पश्चिम प्रान्तमें यवन-प्रभाव विस्तृत था, तब यवनपददलित आर्यगण यावनिकभाषामें अभ्यस्त हुए थे, उस समय ज्योतिर्विद्याके उन्नतिपरायण राजाओंके उत्साहसे तथा जनसाधारणके बोधगम्य करनेके उद्देशसे ज्योतिर्विद् पण्डितगण उस समयके प्रचलित प्राञ्जल यावनिक शब्द ज्योतिषिक परिभाषारूपमें संस्कृतशास्त्रमें ग्रन्थन कर राजभक्तिका परिचय दिया करेंगे।

१७७२ ई०की Philosophical Transactions नामक पत्रिकामें चातुष्कोणाकृति राशिचक्राङ्कित एक शिला लेखका उल्लेख है। वह दाक्षिणात्यके मदुरा राज्यान्तर्गत वेदापट्टी नगरकी एक पगोड़ा छतके नीचे गड़ा हुआ था। उसके मिथुनके घरमें दोनों हाथमें ढालधारी पुंमूर्त्ति, कन्याके घर बैठी हुई नंगी रमणीमूर्त्ति, मकरस्थानमें एक मेष और मत्स्यमूर्त्ति; ये दोनों एक साथ अवस्थित हैं, सही पर वर्त्तमान राशिचक्रकी निर्दिष्टमूर्त्ति की तरह एकदेही नहीं हैं। वृश्चिक स्थानमें जो मूर्त्ति दी गई है उसे निर्णय करना कठिन और दुर्लभ है। कुम्भमें सिर्फ एक कलसी तथा मीनमें केवल एक मत्स्य चित्रित है। प्रत्नतत्त्वविदोंने इस प्रसिद्ध फलकको मकर राशिकी मेष और मत्स्यमूर्त्ति परस्पर स्वतन्त्र देख कर उसकी प्राचीनताका सिद्धान्त किया है।

सर विलियम जोन्सने Asiatic Researches नामक पत्रिकाके दूसरे भागमें ज्योतिर्विद् श्रीपतिवर्णित प्राचीन राशिचक्रका विवरण लिपिबद्ध किया है। उनके चित्रफलकमें मेष, वृष, कर्कट, सिंह और वृश्चिक राशि उसी जीवमूर्त्तिमें अंकित है। मिथुन गदाधारी पुंमूर्त्ति और वीणावादिनी स्त्रीमूर्त्ति; कन्या नौकारोही रमणीमूर्त्ति, उसके एक हाथमें प्रदीप और दूसरे हाथमें धान्यशीर्ष है। तुलामें तुलादण्डधारी एक मनुष्य है। वह उसके एक पालमें भार दे कर तौल ठीक करता है। धनु एक तीरन्दाजकी मूर्त्ति है। उसके दोनों पैर घोड़ेके खुरके समान है। मकरमें मृगमूर्त्ति है। कुम्भमें एक

* The Orion, p. 204—5

व्यक्ति कंधे पर जलका घड़ा रख कर उसका जल गिराता हुआ जाता है। मीनराशिमें एक मत्स्यकी पूंछमें एक दूसरा मत्स्य है। श्रीपतिने राशिचक्रको बारह भागोंमें और प्रत्येक भागको ३०° अंशमें बांटा है। पीछे उस चक्रका फिर २७ भाग कर चन्द्रका गेह स्थिर कर लिया है।

मिस्र, ग्रीक,-बाबिलोनीय अथवा भारतीय आर्य-ऋषियोंके ये विभिन्न प्रकारके राशिचक्रचित्रकी पर्यालोचना करनेसे स्पष्ट प्रतीयमान होता है, कि प्राचीन ज्योतिर्विद्गण अपने अपने अध्यवसायसे तथा परस्परमें स्वतन्त्रभावसे जिस जिस राशिगत नक्षत्रकी जैसी आकृति आविष्कृत करनेमें समर्थ हुए थे, वही वे अपने अपने ग्रंथोंमें पृथक् पृथक् रूपसे लिपिबद्ध कर गये हैं। ग्रीक राशिचक्रके पहलेसे मेषराशि तथा भारतीय वत्सर-गणना पहले मेषराशिसे आरब्ध देख उसे कभी भी ग्रीकका अनुकरण मान नहीं सकते। कारण प्राचीन वैदिक युगमें देशभेद और ऋतुभेदसे वत्सरगणनाका स्वतन्त्र नियम था, उसी पर उक्त हुआ।

सौर जगत् शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

राशित्रय (सं० क्ली०) तीन राशिकी गुणात्मक अंकसंज्ञा-विशेष। त्रैराशिक देखो।

राशिनामन् (सं० क्ली०) नामकरणके समय राशिके अनुसार जो नाम होता है उसे राशिनाम कहते हैं। यह राशिनाम शतपदचक्रानुसार होता है। राशिनाम द्वारा नक्षत्र तथा उसके किसी पादमें जन्म और किसी ग्रहको दशा जानी जाती है। कहते हैं, कि राशिनाम सबोंके आगे करना उचित नहीं, सबोंके राशिनाम और उपनाम रहते हैं। धर्म कर्मादि कार्यमें सिर्फ राशिनाम व्यवहृत होता है, साधारणतः उपनाम होसे दूसरा कार्य आदि होता है। शायद राशिनाम समझनेसे यदि मारणादि करे, इसलिये उसे छिपानेका नियम प्रचलित है। ज्योतिःशास्त्रके मतसे इस नामकरणकी प्रणाली इस प्रकार निर्दिष्ट हुई है।

सवा दो पाद नक्षत्रसे एक एक राशि होती है, एक एक नक्षत्र चार पदोंमें विभक्त है, नक्षत्रमान न्यूनाधिक ६० दण्डमें होता है। इसका चार भाग करनेसे १५ दण्डमें एक एक पाद होता है। नक्षत्रके इस पादके अनुसार राशिनामका आदि अक्षर होता है।

अ इ उ ए कृत्तिका, अर्थात् कृत्तिकानक्षत्रयुक्त मेषराशिमें तथा कृत्तिकानक्षत्रके किस पादमें जन्म हुआ है वह पहले ही स्थिर करना होता है। प्रथम पादमें जन्म होने पर अकारादि, द्वितीयपादमें इकारादि, तृतीयपादमें उकारादि तथा चतुर्थपादमें एकारादि नाम होगा। इस तरह अन्यान्य नक्षत्रके सम्बन्धमें जानना होगा।

ओ व वी रोहिणी। वे वो क की मृगशिरा। कु घ ङ छ आर्द्रा। के को ह हि पुनर्वसु। हु हे हो ड पुष्या। डि डु डे डो अश्लेषा। म मि मु मे मघा। मो ट टि टु पूर्वफल्गुनी। टे टो प पि उत्तरफल्गुनी। पु ष ण ठ हस्ता। पे पो र रि चित्रा। रु रे रो त स्वाती। ति तु ते तो विशाखा। न नि नु ने अनुराधा। नो य यि यु ज्येष्ठा। ये यो भ भि मूला। भू ध फ ढ पूर्वाषाढ़ा। भे भो ज जि उत्तराषाढ़ा। जु जे जो ख अभिजित्। खि खु खे खो श्रवणा। ग गि गु गे धनिष्ठा। गो श शि शु शतभिषा। शे शो द दि पूर्वभाद्रपद। दु थ झ ञ उत्तरभाद्रपद। दे दो च चि रेवती। चु चे चो ल अश्विनी। लि लु ले लो भरणी।

इस प्रकार नक्षत्रके पदानुसार नाम होता है।

इसके अलावा निम्नोक्त प्रकारसे भी राशिनाम स्थिर किया जाता है। यथा—

अ ल मेष। उ व वृष। क छ मिथुन। ड ह कर्कट। म ट सिंह। प थ कन्या। र त तुला। न य विछा। ध भ धनु। ख ज मकर। ग श कुम्भ। द च मीन।

यह स्थूल होता, इस नामसे सिर्फ राशि जानी जाती है, नक्षत्रका बोध नहीं होता। किन्तु शतपद-चक्रानुसार राशिनाम रखनेसे राशि, नक्षत्र तथा नक्षत्रका किस पादमें जन्म हुआ यह जाना जाता है।

राशिप (सं० पु०) किसी राशिका स्वामी या अधिपति देवता।

राशिव्यवहार (सं० पु०) राशेर्व्यवहारः। शस्यराशिपरिमाण-ज्ञापक अंक। जिस अंकसे शस्यराशिका परिमाण जाना जाता है उसीको राशिव्यवहार कहते हैं।

राशिभाग (सं० पु०) किसी राशिका भाग या अंश, भग्नांश।

राशिभागानुबन्ध (सं० पु०) भग्नांशका संकलन या जोड़।

राशिभागापवाह (सं० पु०) भग्नांशका व्यकलन या बाकी निकालना।

राशिभोग (सं० पु०) १ किसी ग्रहका किसी राशिमें कुछ समय तक रहना। २ उतना समय जितना किसी ग्रहको किसी राशिमें रहनेमें लगता है।

विशेष विवरण राशि शब्दमें देखो।

राशिस्थ (सं० त्रि०) राशौ तिष्ठतीति स्था-क। राशिमें अवस्थित।

राशी (सं० स्त्री०) राशि देखो।

राशी (अ० वि०) रिशवत खानेवाला, घूसखोर।

राशीकरण (सं० क्लो०) स्तूपीकरण, जमा करना।

राशीकृत (सं० त्रि०) पुञ्जीकृत, इकट्ठा किया हुआ।

राष्ट (फा० पु०) फारसी संगीतमें १२ मुकामोंमेंसे एक।

राष्ट्र (सं० पु० क्लो०) राजते इति राज् (सर्व्वधातुभ्यः ष्ट्रन्। उण् ४।१५८) इति ष्ट्रन् व्रश्चेति षः। १ राज्य। २ देश, मुल्क। ३ प्रजा। ४ वह बाधा जो सम्पूर्ण देशमें उपस्थित हो, ईति। ५ पुराणानुसार पुरुरवाके वंशज काशीके पुत्रका नाम। (भागवत ६।१७।४) ६ वह लोक समुदाय जो एक ही देशमें बसता हो या जो एक ही राज्य या शासनमें रहता हुआ एकताबद्ध हो, एक या सम भाषा-भाषी जनसमूह।

राष्ट्रक (सं० त्रि०) १ राष्ट्र-सम्बन्धी, राष्ट्रका। (पु०) २ राज्य। ३ देश।

राष्ट्रकर्षण (सं० क्लो०) राजा या शासकका प्रजा पर अत्याचार करना।

राष्ट्रकाम (सं० त्रि०) राज्य पानेकी इच्छा करनेवाला, राज्याभिलाषी।

राष्ट्रकूट—स्वनामप्रसिद्ध दाक्षिणात्यका क्षत्रियराजवंश। वर्त्तमान समयमें इस वंशके राजपूत-राजगण राठोर नामसे परिचित हैं। प्राचीन गुफाके लेख और शिलालेखसे मालूम होता है, कि भोज और रट्ठी या राष्ट्रक-राजवंश दाक्षिणात्यमें राज्य करता था। इन रट्ठी राजाओंमें किसी समय विशेष प्राधान्य प्राप्त कर दाक्षिणात्यके उत्तर विभागमें महाप्रभावशाली सुविस्तृत महाराष्ट्र-राज्य स्थापित किया था। वे अपनेको बड़े गौरवके साथ महारट्ठी कहते थे। उन्हींके वंशधर पीछे मराठा नामसे प्रसिद्ध हुए।

बादमें दक्षिण-मराठ राज्यमें रट्ठी या रट्ठ नामके और भी दो एक सामन्तराजका उल्लेख मिलता है। इस रट्ठी जातिके कुछ वंश एकश्रेणीबद्ध हो कर सम्भवतः तदर्थपरिचायक 'कूट' शब्दके अपभ्रंशमें रट्ठकूड नामसे प्रसिद्ध हुए। बादमें यह देशी भाषामें 'राठोर' और संस्कृतमें राष्ट्रकूट नामसे अभिहित हुआ। अथवा प्राचीन रट्ठजातिकी किसी एक शाखाने दाक्षिणात्य भू-भागमें फैल कर कालान्तरमें राष्ट्रकूट नामसे प्रसिद्धि पाई होगी; कारण अन्ध्रभृत्य और शक-क्षत्रपोंका प्रभाव ह्रास होने पर ये रट्ठवंशीय सरदारगण आभीरजातिके स्वाधीनता-स्थापनमें समर्थ हुए थे। जेबुर और मिरजके शिलालेखसे मालूम होता है, कि चालुक्यवंशके प्रतिष्ठाता जयसिंहने राष्ट्रकूटवंशी राजा नरसिंहके पुत्र इन्द्रको पराजित करके दाक्षिणात्यमें आधिपत्य विस्तार किया था। इस चालुक्यवंशने ईसाकी ६ठी शताब्दीके प्रारम्भमें प्राधान्य प्राप्त किया था, इसलिए ईसाकी तीसरी शताब्दीके अन्तसे ले कर ६ठी शताब्दीके प्रारम्भ तक राष्ट्रकूटवंशका प्रभावकाल ऐसा अनुमान किया जाता है।

वर्त्तमानमें आविष्कृत शिलालेखों और ताम्रलेखोंकी आलोचना द्वारा इस राष्ट्रकूटवंशका जो इतिहास संकलित हुआ है, उसे देखनेसे साफ मालूम होता है, कि बहुत प्राचीन समयसे इस राजवंशने दक्षिण-भारतमें प्रतिष्ठा पाई थी। खरे-पाटन, सांगली, नवसारी और वर्धाके शिलालेखसे मालूम होता है, कि राष्ट्रकूटगण यदुवंशी और यदुकुलोत्तम सात्यकीके मूलवंशज हैं। इस वंशमें रट्ठ नामके एक राजा हुए थे। उनके पुत्र राष्ट्रकूटसे ही इस वंशका नाम राष्ट्रकूट पड़ा है। शिलालेखके कहे हुए पौराणिक नाम बिलकुल काल्पनिक मालूम होते हैं। इससे तो इतिहासप्रसिद्ध महाराष्ट्र-राज्यकी प्रतिष्ठा करनेवाली रट्ठ नामक विराट क्षत्रिय जातिके लिए राष्ट्रकूट नाम ग्रहण ही अधिक सम्भवपर मालूम

होता है। कारण मौर्यराज अशोकके समयमें भी महाराष्ट्रराज्यमें इस वंशकी प्रतिपत्ति थी। राष्ट्रकूटगण यथार्थमें इस देशके राजा थे। वे कभी कभी सातवाहन और चालुक्यवंशीय नरपतियों द्वारा विपर्यस्त हो कर उनकी वश्यता स्वीकार करनेको वाध्य हुए थे, किन्तु बिलकुल शक्तिहीन नहीं हुए थे।

शिलालेखमें ऐतिहासिक घटनासे सम्बन्ध रखनेवाले जो राष्ट्रकूट राजाओंके नाम मिलते हैं, उनमें १म गोविन्द ही सर्वश्रेष्ठ थे। इलोराके दशावतार गुहामन्दिरके शिलालेखसे मालूम होता है, कि उनके पिताका नाम इन्द्रराज और पितामहका नाम दन्तिवर्मा था। रविकीर्त्ति ऐहोलके शिलालेखमें लिखा है, कि राजा १म गोविन्दने चालुक्यराज २य पुलकेशीके राज्य पर चढ़ाई की थी और पीछे उनके साथ मित्रता हो गई थी। उनके पुत्र कर्कने ब्राह्मणोंके द्वारा अनेक वैदिक यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्र २य इन्द्रराज सिंहासन पर बैठे।

इन्द्रराजने चालुक्यराजकी कन्यासे विवाह किया था और इस तरह दोनोंमें सद्भाव स्थापन हुआ था। उनके पुत्र विजयी दन्तिदुर्गने मुट्ठी भर सेना ले कर काञ्ची, केरल, चोल, पाण्ड्य तथा वज्रट और आर्यावर्त्तके अधिपति श्रीहर्ष आदिको पराजित करनेवाले कर्णाटक सेनादलको पराजित किया था। कर्णाटक सेनाके पराभवसे चालुक्यवंशके शेष स्वाधीन राजा २य कीर्त्तिवर्मा (वल्लभ)-का गर्व खर्व करके राजा दन्तिदुर्गने समग्र दक्षिण-भारतमें एकाधिपत्य स्थापन किया था। उन्होंने उज्जयिनी नगरमें बहुत-सा सुवर्ण और जवाहरात दान किया था। कोल्हापुर जिलेके शमनगढ़ नगरमें प्राप्त उनके एक शिलालेखमें उनका राज्यकाल ६७५ शकाब्द लिखा हुआ है।

राजा दन्तिदुर्गके अपुत्रक अवस्थामें मृत्यु होने पर उनके चचा कृष्णराज राजा हुए। बड़ोदामें प्राप्त एक ताम्रलेखमें उल्लेख है, कि कृष्णराजने अपने वंशके किसी राजाका उच्छेद किया था, इससे बहुतोंका अनुमान है कि सम्भवतः अपने भतीजे दन्तिदुर्गको मार कर ही वे सिंहासन पर बैठे थे। परन्तु कावी और नवसारीके लेखमें दन्तिदुर्गकी मृत्युके बाद सिर्फ कृष्णराजके सिंहासन प्राप्तिकी बात लिखी है। वंशगौरववर्द्धक महाप्रभावशाली महाराज दन्तिदुर्गका राज्यभ्रष्ट किया जाना या मारा जाना ठीक नहीं मालूम होता। जहां तक सम्भव है, यह हो सकता है कि दन्तिदुर्गके पुत्र अथवा उस वंशके दूसरे किसी उत्तराधिकारीको हटा कर कृष्णराजने सिंहासन अधिकार किया होगा। खरडाके लेखमें दन्तिदुर्गको जो अपुत्रक लिखा गया है, वह विश्वासयोग्य नहीं। कारण वह लेख दो सौ वर्ष पीछेका खुदा हुआ है।

कृष्णराजने शुभतुङ्ग और अकालवर्ष उपाधिसे विभूषित हो कर दन्तिदुर्गके पदानुसरण पर राज्य शासन किया था। उन्होंने चालुक्योंको सम्पूर्णरूपसे वशीभूत करके तथा राहप्प नामक एक प्रबल पराक्रान्त नरपतिको पराजित कर राष्ट्रकूटोंके गौरवको बढ़ाया था। ये राहप्प किस देशके राजा थे, कुछ मालूम नहीं हो सकता। राजा कृष्णराजने अनेक अर्थव्यय करके इलापुर (इलोरा)-में पर्वत कटा कर कैलास पर्वत और उस पर शिव-मन्दिर निर्माण कराया था। इन्होंने ६७५से ७०५ शकाब्द तक राज्य किया था।

तदनन्तर उनके पुत्र २य गोविन्दराज सिंहासन पर बैठे थे। राजा गोविन्द ऐश्वर्यमदमें मत्त हो कर विशेष रूपसे इन्द्रिय सुखमें मग्न हो गये और उस समय उनके छोटे भाई ध्रुव निरुपम राजकार्यकी देखभाल करते रहे। इन्होंने बादमें कौशलसे भाईसे राज्य छीन लिया। राजा गोविन्दने बादमें पार्श्ववर्ती सामन्त राजाओंकी सहायतासे ध्रुवके विरुद्ध अस्त्रधारण किया, परन्तु युद्धमें वे पराजित हो गये। उसके बाद ध्रुव निरुपमने ही राष्ट्रकूट सिंहासन पर बैठ कर राज्य किया था।

जिनसेन-द्वारा ७०५ शकमें विरचित 'जैन-हरिवंश'-के अन्तमें लिखा है, दाक्षिणात्य भूभागमें कृष्णपुत्र श्रीवल्लभ नामके एक राजा राज्य करते थे। कवीर और पैठानमें प्राप्त प्रशस्तिसे मालूम होता है कि राजा कृष्णके पुत्र २य गोविन्दका अपर नाम वल्लभ और ध्रुवका अपर नाम कलिवल्लभ था। इसलिए उक्त शक-संवत्में]

२य गोविन्दको सिंहासन पर बैठा मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं।

राजा ध्रुव एक विख्यात योद्धा थे। निरुपम, कलिवल्लभ और धारावर्ष ये उनके विरुद थे। इन्होंने काञ्चीके पल्लवराजको पराजित करके करस्वरूप उनसे अनेक हाथ लिये थे। उसके बाद उन्होंने चेरराज्यके गंगवंशीय राजाको युद्धमें पराजित करके शृंखलाबद्ध किया था। फिर वे अपनी सेनाके साथ उत्तरकी ओर जा कर गौड़विजयी वत्सराजोंकी राजधानी कौशाम्बी पुरी पर अधिकार करके कोशलराज्यके अधीश्वर हुए। राजा ध्रुव निरुपमने अमितविक्रमसे राज्य शासन और वर्द्धन किया था, किन्तु वे अधिक समय तक राज्य न कर सके थे; कारण शिलालेखोंसे पता लगता है कि शक सं० ७०५ में उनके भाई वल्लभ सिंहासन पर अधिष्ठित थे और उनके पुत्र ३य गोविन्द ७१६ शकमें पितृसिंहासन पर अधिष्ठित हो कर पैठान-प्रशस्ति दे रहे हैं।

युवराज ३य गोविन्दके बलवीय और साहसका परिचय पा कर राजा ध्रुव निरुपम पुत्रको शासन-भार अर्पण कर स्वयं वानप्रस्थ अवलम्बन करना चाहते थे; किन्तु पिताके रहते हुए राजसिंहासन पर बैठना धृष्टता समझ कर उन्होंने पितासे निवेदन किया कि 'युवराजके पदसे ही मैं यथेष्ट सम्मानित हूं।'

पिताको मृत्युके बाद गोविन्द जगत्तुंग (१म) नाम ग्रहण करके वे सिंहासन पर बैठे। उनकी अधीनतामें राष्ट्रकूटकी सेना अद्वितीय रणशिक्षा पा कर रणदुर्मद हो गई थी। सिंहासनाधिकारके बाद बारह सामन्तराज विद्रोही हो कर एक साथ उनके विरुद्ध उठ खड़े हुए। उन्होंने अकेले ही उन विरुद्धाचारियोंको युद्धमें परास्त करके अशेष वीरताका परिचय दिया था। उन्होंने बन्दीभूत गंगवंशीय चेरराजको मुक्त किया था, परन्तु उक्त राजाने अपने देशमें पहुंचते ही उनके विरुद्ध अस्त्र धारण किया था। राजा ३य गोविन्दने पुनः उन्हें युद्धमें परास्त और बन्दी करके अपने राज्यमें ला कर उन्हें कैद रखा।

इसके बाद गुर्जर और मालवके राजाको पदानत करके वे विन्ध्यपर्वतकी तरफ सेना-सहित बढ़े। वहांके राजा माराशर्वको परास्त करके उनसे यथेष्ठ उपढौकन लिया। इस समय वर्षाऋतु आ जानेसे कुछ समय तक वे श्रीभवन नामक स्थानमें ठहरे रहे। उसके बाद तुङ्गभद्रा नदीके किनारे पहुंच कर पल्लववंशीय काञ्चीपति दन्तिदुर्ग तथा पूर्व चालुक्यवंशी वेङ्गीराजको युद्धमें परास्त करके उन्हें अधीनता शृंखलमें आबद्ध किया था। तुङ्गभद्राके तट पर शिविर लगाते समय उन्होंने पवित्र रामेश्वरतीर्थवासी शिवधारी नामक एक व्यक्तिको कुछ भूमि दान की थी।

राजा गोविन्द ३यने अपने भुजबलसे उत्तरमें मालवसे ले कर दक्षिणमें काञ्चीपुर तक विस्तृत भूखण्ड एकच्छत्राधीन कर लिया था। उन्होंने मही और ताप्तीका मध्यवर्ती लाट प्रदेश अपने भाई इन्द्रको दे दिया था। तबसे उस प्रदेशमें राष्ट्रकूटवंशकी दूसरी एक शाखा राज्य कर रही है। राजा गोविन्द प्रभूतवर्ष, पृथ्वीवल्लभ, श्रीवल्लभ और जगत्तुङ्ग उपाधिसे विभूषित थे। उन्होंने मयूरखण्डी (वर्त्तमान मोरखण्ड) नगरमें राजधानी स्थापन की थी या नहीं, नहीं कह सकते। परन्तु शक सं० ७३० के वनिदिण्डोरी और राधनपुरके शिलालेखमें लिखा है कि वे उस समय मयूरखण्डीमें विद्यमान थे।

राजा गोविन्दकी मृत्युके बाद उनके पुत्र अमोघवर्ष राजा हुए। उनका यथार्थ नाम शर्व था। वीरनारायण, राजराज, नृपतुङ्ग और वल्लभ आदि उनकी कई उपाधियां थीं। मान्यखेट नगरमें उनकी राजधानी थी। उन्होंने वेङ्गीके चालुक्यराजोंको युद्धमें परास्त करके उन्हें यमपुरी भेज दिया। कोङ्कणके शिलाहारवंशी सामन्तराज पुलशक्ति और उनके पुत्र कपर्दिके ७७५ और ७९६ शक संवत्के शिलालेखसे मालूम होता है कि वे राष्ट्रकूटपति अमोघवर्षके अधीन सामन्तरूपसे उक्त प्रदेशका शासन करते थे।

धारवाड़ जिलेसे मिले हुए शिलालेखमें ७८८ शक उनके राजत्वका ५२वां वर्ष लिखा गया है, अतएव हम शिलाहार-लेखके ७९९ शकको उनके राजत्वका ६३वां वर्ष समझ सकते हैं, इस हिसाबसे उनका राज्यारम्भकाल ७३७ शक होगा।

राजा अमोघवर्ष दिगम्बर जैनधर्मके पृष्ठपोषक थे।

वे प्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेनके भक्त थे। महात्मा जिनसेनने अपने 'पार्श्वाभ्युदय' नामक काव्य ग्रन्थमें राजाके लिए सुदीर्घ राज्यशासनका आशीर्वाद दिया है। जिनसेनके शिष्य गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराणमें तथा वीराचार्यकृत सारसंग्रह नामक जैनगणित-ग्रन्थमें अमोघवर्षकी शक्ति और धर्मप्राणताका उल्लेख है। 'जयधवल' नामक जैन-ग्रन्थमें लिखा है,—७५६ शक-संवत् बीत जाने पर राजा अमोघवर्षके राज्यमें उक्त ग्रन्थ समाप्त हुआ। इन सब आनुषङ्गिक प्रमाणों द्वारा सिद्ध होता है, कि अमोघवर्ष नृपतुङ्ग जैन-धर्मावलम्बी थे। वे स्याद्वाद सिद्धान्तका पोषण कर गये हैं।

उन्होंने प्रश्नोत्तर रत्नमाला नामक एक संस्कृत काव्य रचा था। दिगम्बर सम्प्रदायके रत्नमालिका ग्रन्थमें उसका कर्त्ता अमोघवर्ष बतलाया गया है। राजाके मनमें वैराग्योदय होनेसे वे राजसिंहासन अपने पुत्रको अर्पण कर स्वयं संसारासक्तिसे निवृत्त हो गये थे।

अमोघवर्षके बाद उनके पुत्र अकालवर्ष पितृसिंहासन पर अधिष्ठित हुए। उनका यथार्थ नाम कृष्ण (२य) और उपाधि वल्लभ थी। उन्होंने हैहयवंशी चेदिराज कोक्कलकी राजकन्यासे विवाह किया था। उक्त कन्याके गर्भसे जगत्तुंग नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पृथ्वीराज नामक एक सामन्तराज द्वारा ७९७ शकमें जैन-मन्दिरकी प्रतिष्ठाके उपलक्षमें उत्कीर्ण शिलालेखके पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि उस समय कृष्णराज सिंहासन पर अधिष्ठित थे, इसलिए ७९९ शकमें अमोघवर्षके जीवित रहने पर भी उनके द्वारा वैराग्य वश राज-सिंहासनका त्याग देना असम्भव नहीं मालूम होता, क्योंकि जैनधर्मावलम्बी राजाओंमें प्रायः यह बात पाई जाती है कि वे वृद्धावस्थामें राज-पाट त्याग कर धार्मिक जीवन बिताते थे। उनकी अनुपस्थितिमें सम्भवतः कृष्णराजने उक्त दो वर्ष तक पिताके प्रतिनिधि रूपमें राज्य चलाया था। ८२४ शकमें चिकार्य वैश्यने जैनमन्दिर प्रतिष्ठा की थी, उस मन्दिरके मूलगुण्डके शिलालेखसे मालूम होता है, कि राजा कृष्णवल्लभ अमितविक्रमशाली थे, उनके भयसे गुर्जरगण सशंक थे, लाट प्रदेशके रहनेवाले पदानत थे, गौड़गण वशीभूत थे, समुद्रोपकूलवासी शान्तिभ्रष्ट थे, और अंग, कलिङ्ग, गङ्ग एवं मगधदेशाधिपतिगण उनकी अधीनता स्वीकार करनेको वाध्य हुए थे। उनके राज्यकालमें (पिङ्गल संवत्सरके ८२० शकमें) गुणभद्राचार्यके शिष्य लोकसेन द्वारा जैनआदिपुराण वा महापुराणकी शेषार्द्ध रचना समाप्त हुई थी।

अकालवर्षके पुत्र जगत्तुंगने अपने मामाकी कन्या लक्ष्मीदेवीके साथ विवाह किया था। उनकी राज्याधिकारसे पहले ही मृत्यु होनेके कारण उनके पुत्र इन्द्र (३य) पितामहके सिंहासन पर बैठे। राज्याधिकारके बाद इन्होंने नित्यवर्ष उपाधि धारण की थी। मान्यखेट नगरमें इनकी राजधानी थी। अपने राजाभिषेकके उपलक्षमें इन्होंने तासीके किनारे कुरुन्दक नगरमें (वर्त्तमान कुड़ोदमें) आ कर "पट्टबन्धोत्सव" सम्पन्न किया था। इस समय उन्होंने तुलापुरुषदान, २० लाख द्रम्ममुद्रा वितरण और बहुत ग्राम दान किये थे। अभिषेकके समय ग्रामदानके प्रसङ्गमें उन्होंने जो शासन-लिपियां प्रचारित की थीं, वे ८३६ शकमें खुदवाई गई थीं। इसलिए यही उनके अभिषेकका समय है, ऐसा अनुमान किया जाता है। नवसारी जिलेके तेम्न और गुमरा ग्रामादिके दानसे अनुमान होता है, कि राजा अकालवर्षके समयमें संभवतः लाटराज अर्थात् राष्ट्रकूटवंशकी अन्यतम शाखा मान्यखेट-राजवंशके अधीन हो गई थी।

इन्द्रराज (३य)ने हैहयवंशी चेदिराज अर्जुनपुत्र अनङ्गदेवकी कन्या अम्बा (विजम्बा)के साथ विवाह किया था। अम्बाके गर्भसे गोविन्द (४र्थ) नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। खरेपाटनकी प्रशस्तिसे मालूम होता है कि राजकुमार गोविन्द अमोघवर्षके कनिष्ठ सहोदर थे। अधिकतर यही सम्भव है, कि युवराज २य अमोघवर्ष ही पहले पितृसिंहासन पर बैठे थे। गोविन्दने किसी उपायसे ज्येष्ठभ्राता अमोघवर्षको मार कर स्वयं पितृसिंहासन हस्तगत किया था। २य अमोघवर्षने केवल एक मासमात्र राज्य किया था।

राजा ४र्थ गोविन्द प्रभूतवर्ष नाम ग्रहण करके ८४१ शकमें सिंहासन पर बैठे। उनकी सुवर्णवर्ष और साहसाङ्क उपाधि थी। उन्होंने वेङ्गीके चालुक्य राजाओं-

को बार बार युद्धमें पराजित किया था। ८५५ शकमें उन्हों ने मान्यखेटके राजसिंहासन पर बैठ कर राजकाय चलाया था।

राजा ४र्थ गोविन्दके बाद उनके चाचा वद्दिग (राजा जगत्तुङ्गके द्वितीय पुत्र) अमोघवर्ष ३य नाम धारण करके राजसिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे। ये वयोवृद्ध, ज्ञानी और साधुतुल्य थे। सामन्तोंकी प्रार्थनासे उन्हों ने राजभार ग्रहण किया था, किन्तु वे स्वयं परमार्थसेवा छोड़ कर विषयवृत्ति और भोगसुखमें लिप्त नहीं हुए थे। उनके पुत्र युवराज कृष्णने अपनी महती शक्ति द्वारा दन्तिग, वप्पुग और विद्रोही गङ्गराजों को पदानत किया था। उत्तरमें हिमाचलसे ले कर दक्षिणमें सिंहल तक तथा पूर्व और पश्चिम समुद्र-बीचका समस्त भारतवर्ष उनके प्रभावसे कांप उठा था। गुर्जरराज उनके भयसे कालञ्जर और चित्रकूट दुर्गकी विजयवासनाको विसर्जित कर भाग गये थे। युवराज कृष्णने अपने राज्यमें एक आर्य उपनिवेश स्थापन किया था।

वृद्ध अमोघवर्ष (३य)ने अत्यल्पकाल मात्र राज्य-शासन किया था। उनके मरनेके बाद अमितविक्रम वीराग्रगण्य ३य कृष्णराजने अकालवर्ष नाम धारण करके राष्ट्रकूट-सिंहासन अलंकृत किया था। ८६२ शकमें उत्कीर्ण शिलालेखमें उनके लिए श्रीवल्लभ उपाधिका प्रयोग पाया जाता है। उनके राज्यकालमें उत्कीर्ण ८६७ शकाब्दके एक शिलालेखके देखनेसे अनुमान होता है, कि राजा ४ र्थ गोविन्दके राज्यकालमें ८५५ शकके शिलालेखसे बारह वर्ष बाद सम्भवतः कृष्णराजदेव मान्यखेटके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे। अतएव उक्त दो वर्षके भीतर ३य अमोघवर्षका राज्यकाल और कृष्णराजका सिंहासनाधिकार संघटित हुआ था। शिलालेखके प्रमाणसे ८७८ शक तक उनका राज्यकाल पाया जाता है, परन्तु जैनाचार्य सोमदेवकृत 'यशस्तिलकचम्पू' नामक जैन-काव्यग्रन्थके समाप्ति-वाक्यमें ८८१ शकमें ग्रन्थ समाप्तिके प्रसंगमें राजा कृष्णराजदेवके शासनकालका उल्लेख है। इस ग्रन्थमें लिखा है कि राजा कृष्णने अप्रतिहत प्रभावसे राज्यशासन करके पाण्ड्य, सिंहल, चोल, चेर और अन्यान्य नरपतियोंको अधीनतापाशमें बांध लिया था।

कृष्णराजदेवकी मृत्युके बाद उनके कनिष्ठ भ्राता खोट्टिगदेव (खटिक) सिंहासन पर बैठे। ये युवराज देवकी कन्या कन्दकदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे।

खोटिकके बाद उनके भ्राता निरुपमके पुत्र कक्कल राजा हुए। ये कर्क २य वा ४र्थ अमोघवर्षके नामसे परिचित थे। राजा कर्क अद्वितीय योद्धा होने पर भी चालुक्यराज तैलपसे युद्धमें पराजित हुए थे और इन्हींके समयसे दाक्षिणात्यका राष्ट्रकूट-साम्राज्य चालुक्यराजके हाथ चला गया। ८९६ शकके शिलालेखसे मालूम होता है कि उक्त शकसंवत्‌में महाराज कक्कल राष्ट्रकूट-सिंहासन पर अधिष्ठित थे। उस वर्ष अथवा उसके एक वर्ष पहले चालुक्यराज तैलपने राजदण्ड धारण किया था। इसलिये इसके कुछ समय बाद सम्भवतः चालुक्य-राष्ट्रकूट-युद्धमें राष्ट्रकूट-राजलक्ष्मी चालुक्यराजवंशकी गोदमें चली गई थी।

उत्तर-चालुक्यवंशी राजा तैलप वा आहवमल्लने अपने भुजबलसे हूण, गुर्जर और पाण्ड्य-राजविजेता २य कर्कको युद्धमें पराजित करके गुजरातके अतिरिक्त समग्र राष्ट्रकूट साम्राज्य पर अधिकार कर लिया था। उन्होंने मान्यखेट-राजकुमारी जाकलदेवीका पाणिग्रहण करके धीरे धीरे अधिवासियोंके अन्तःकरणमें चालुक्य प्रभाव फैलानेकी कोशिश की थी। उस समय युवराज इन्द्र रट्टकन्दर्प वा ४र्थ इन्द्रराज (३य कृष्णके पौत्र)ने पश्चिमगङ्गवंशीय सामन्तराज पेर्मानडि मारसिंहकी सहायतासे अपने पैतृक राष्ट्रकूट सिंहासनको पुनः प्राप्त करने की कोशिश की थी, किन्तु लगातार कई बार युद्धमें परास्त हो कर अन्तमें वे व्यर्थमनोरथ हो गये। इस राष्ट्रकूट-राजवंशने ७४८ ई०में राजा दन्तिदुर्गके राज्यकालसे ले कर राजा २य कर्कके राज्यकाल ९७३ ई० तक दोर्दण्ड प्रतापसे दाक्षिणात्य भूमि पर राज्यशासन किया था। शेषोक्त राजाको राज्यलक्ष्मी भ्रष्ट हो जाने पर राष्ट्रकूटोंकी स्वाधीनता सदाके लिए लुप्त हो गई। गुजरातकी अन्यतम शाखा इससे पहले ही विच्छिन्न हो चुकी थी।

इस राजवंशके राजकालमें जैन और बौद्धधर्मने

जैसी स्वाधीनता पाई थी, वैसे हिन्दूधर्म भी परिपुष्ट हुआ था। इलोराके पर्वतमें गुफा काट कर मठविहारादि निर्माण करा कर जैसे वे बौद्धधर्मका माहात्म्य कीर्त्तन कर गये हैं, उसी प्रकार पौराणिक देवदेवीकी मूर्त्ति और मन्दिर प्रतिष्ठा करा कर हिन्दुधर्मका गौरव बढ़ा गये हैं। वास्तवमें यदि देखा जाय, तो दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी थे।

राष्ट्रकूटगण विद्योत्साही थे। वे प्रसिद्ध कवियोंको आश्रय दे कर ग्रन्थादि रचनाके लिए उन्हें उत्साहित करते थे। उनके शिलालेख तत्कालीन कवित्वोत्कर्षके परिचायक हैं। राजा अमोघवर्षकृत प्रश्नोत्तररत्नमालिका और गुणभद्र आदि जैनाचार्योंकी जैनपुराण और दर्शनादिकी रचना राष्ट्रकूट राजाओंकी पृष्ठपोषकताका चरम निदर्शन है। इन ग्रंथोंमें सामयिक राष्ट्रकूट राजाओंकी महिमा गाई गई है। इसके सिवा कविश्रेष्ठ हलायुधने अपने 'कविरहस्य'में सोमवंश-भूषण राष्ट्रकूटकुलोद्भव दक्षिणापथाधिपति कृष्णराजका उल्लेख किया है। विद्योत्साही न होनेसे कवि कभी भी उनकी गुणावलीकी प्रशंसा न करते। ईसाकी १०वीं शताब्दीके अरब भ्रमणकारियोंने "वल्लभ" उपाधिधारी इन भारतीय राष्ट्रकूटवंशी राजाओंका 'बल्हरा' शब्दसे उल्लेख किया है।

राष्ट्रकूट-राजवंश।

दन्तिवर्मा
|
इन्द्र १म
|
गोविन्द १म
|
कर्क १म
|
इन्द्र २य — दन्तिदुर्ग
कृष्ण १म, अकालवर्ष वा शुभतुङ्ग
|
गोविन्द २य
ध्रुव, निरुपम
|
गोविन्द ३य, प्रभूतवर्ष — सर्वनृपतुङ्ग, अमोघवर्ष १म — कृष्ण २य अकालवर्ष
इन्द्र — कर्क, गोविन्द (गुजरात-शाखा)

अकालवर्ष
|
जगत्तुङ्ग
|
इन्द्र ३य, नित्यवर्ष
वद्दिग वा अमोघवर्ष ३य
|
अमोघवर्ष २य
गोविन्द ४र्थ
|
कृष्ण ३य (अकालवर्ष) — ० — इन्द्र ४र्थ, रट्टकन्दर्प
खोटिक
निरुपम — ० — कक्कल, कर्क २य (शेष स्वाधीन राजा)

शिलालेखोंका अनुसरण करनेसे हम गुजरात प्रदेशमें राष्ट्रकूटवंशकी दो विभिन्न शाखायें पाते हैं। प्रथम शाखाके प्रतिष्ठाता कक्कराज १म, उनके पुत्र ध्रुवराज और पौत्र गोविन्दराज हैं। गोविन्दने नागवर्माकी कन्याके साथ विवाह किया था। उनके औरसजात पुत्र २य कक्कराज ६५७ शकमें विद्यमान थे।

द्वितीय शाखाकी बात हम पहले ही कह चुके हैं। महाराज ध्रुव निरुपमके पुत्र गोविन्द ३य ने ८०० ई०के लगभग भड़ौंचराज्य जीत कर मध्यगुजरात वा लाट प्रदेश अपने भाई इन्द्रको अर्पित किया था। इन्द्रके वंशने लगभग एक सौ वर्ष तक यहां राज्य किया था।

इन्द्रराजके पुत्र कर्कराज (सुवर्णवर्ष) बादमें राजा हुए। परन्तु उनके कनिष्ठ भ्राता गोविन्दराज प्रभूतवर्षने उन्हें राज्यच्युत करके सिंहासन अधिकार कर लिया। इसके बाद कर्कराजने मान्यखेटके राजा अपने ज्ञातिभ्राता अमोघवर्षकी सहायतासे नष्ट राज्यका पुनरुद्धार किया था। शालुकिकवंशी सामन्तराज बुद्धवर्ष गोविन्दराजके अधीन थे।

गोविन्दराजका राज्यकाल समाप्त होने पर कर्कराजके पुत्र ध्रुव निरुपम धारावर्ष (प्रथम) राजा हुए। इन्होंने वल्लभ नामक एक राजाको रणमें परास्त किया था, किन्तु रणक्षेत्रमें आघात-प्राप्त हो कर वहीं उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्र अकालवर्ष शुभतुङ्ग ८५० ई०में सिंहासन पर बैठे।

अकालवर्षके पुत्र ध्रुवराज निरुपम धारावर्ष (२य)ने

पिताके सिंहासन पर बैठ कर अणहिलवाड़के चावड़ जातिके अधिपति वल्लभ और मिहिर नामक राजाको परास्त किया। उसी वर्ष संभवतः उनकी मृत्यु हो गई। कारण उक्त वर्षमें ही उनके नामसे उत्कीर्ण शिलालेख मिलता है। दन्तिवर्माके बाद उनके पुत्र कृष्णराज अकालवर्ष राजा हुए।

गुजरातका राष्ट्रकूट-राजवंश।

प्रथम शाखा

कक्कराज
|
ध्रुवराजदेव
|
गोविन्दराज
|
कक्कराज २य (७५७ ई०)

द्वितीय शाखा

इन्द्रराज (८०७)
├ कर्कराज (सुवर्णवर्ष)
│ |
│ ध्रुवराज, धारावर्ष १म
│ |
│ अकालवर्ष (शुभतुङ्ग)
│ ├ ध्रुवराज (धारावर्ष २य)
│ └ दन्तिवर्मा २य
│ |
│ कृष्णराज (अकालवर्ष २य)
└ गोविन्दराज (प्रभूतवर्ष)

कालान्तरमें यह राष्ट्रकूटवंश सहाय-सम्पत्ति और बलवीर्य-हीन हो कर भारतके नाना स्थानोंमें विच्छिन्न हो गया। ये कहीं कहीं सामन्तराजके रूपमें रह रहे थे। दाक्षिणात्यके चालुक्यराजके हाथसे राष्ट्रकूट-राजाओंका प्रभाव नष्ट होने और साम्राज्य चले जानेके बाद यह राजवंश पुनरुत्थान करनेमें समर्थ नहीं हुआ।

कई शताब्दी बाद हम कन्नौज-राजसिंहासन पर गहरवाड़वंशी राठोर राजाओंको उपविष्ट देखते हैं। ११५४ संवत्‌में मदनपालदेवकी ताम्रलिपिमें लिखा है, कि कन्नौजके राठोरवंशके प्रतिष्ठाता गहरवाड़-कुलतिलक राजा चन्द्रदेव उनके पिता थे; पितामह महीचन्द्र और प्रपितामह यशोविग्रह थे। राजा चन्द्रदेवने (प्राचीन कुलपञ्जीमें चन्द्रकेतु कहे गये हैं) मालवराज भोज और चेदिपति कर्णकी मृत्यु-जनित राज्यविशृङ्खला दूर करनेके लिए सुशासनकी व्यवस्था की थी। इस वंशके शेष राजा जयचन्द्र मुसलमान आक्रमणकारी मुहम्मद गोरीके साथ समरमें परास्त और निहत हुए थे। आश्चर्यका विषय है, कि १२५३ संवत्‌में खुदे हुए कन्नौज-पति राजा लक्ष्मणदेवके शिलालेखका प्रचार मुसलमान-विजयके तीन वर्ष बाद होने पर भी उसमें राठोर-वंशके पराभवका उल्लेख तक नहीं है।

कन्नौजका गहरवाड़ वा राठोरवंश।

यशोविग्रह
|
महीचन्द्र वा महीताल
|
चन्द्रदेव (१०९७ ई०)
|
मदनपाल (११०६ ई०)
|
गोविन्दचन्द्र (१११५ ई०)
├ राज्यपालदेव (११३४ ई०)
└ विजयचन्द्र (११६८ ई०)
  |
  जयचन्द्र (११७० ई०)

(ये ११९४ ई०में मुसलमान-सेनाके हाथ मारे गये थे।)

राजपूतानेमें अब भी यह राठोरराजवंश राज्य कर रहा है। मारवाड़के प्रसिद्ध योद्धा और अधिवासिवृन्द तथा जोधपुर-राजवंश इसी राठोरवंशके हैं। किस समय, किस घटनास्रोतमें इन राठोरोंने राजपूतानेमें प्रतिष्ठा प्राप्त की, इस बातको जाननेका कोई उपाय नहीं है।

राठोरजातिका इतिहास घोर कुज्झटिकाजालमें आच्छन्न है। 'राठोरकुलतिलक'-के मतसे रामचन्द्रके पुत्र कुशके वंशधरगण ही इस वंशके आदिपुरुष हैं। गाथाकारोंके मतसे सूर्यवंशी काश्यपके किसी वंशधरके औरस और दैत्यकुमारीके गर्भसे राठोर जातिकी उत्पत्ति हुई है।

गाधीपुर (कन्नौज) इनकी आदि वासभूमि है। भट्ट-ग्रन्थमें है कि ईसाकी ५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें कन्नौजके सिंहासन पर बैठ कर राठोर-राजगण राज्य करते थे। खेद है कि भाटकी यह बात इतिहास-संगत नहीं है।

जब सबक्तगीन प्रमुख तातारजातिने भारतके सीमान्तमें आ कर पेशावर प्रदेश हड़प लिया था, तब दिल्ली, अजमेर, कालंजर और कन्नौजके राठोर-वीर तातार-सेनाके विरुद्ध लमूघन् रणक्षेत्रमें घोरतर युद्धमें लगे हुए थे हिन्दू-सेना लाहोरपति जयपाल इस युद्धके प्रधान अधिनेता थे।

इस समय भारतीय विभिन्न राजाओंमें जैसा सद्भाव और प्रेम था, दो शताब्दी बाद उस कुशल अवस्थामें बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया था। तब समग्र पश्चिम-भारत सर्वनाशकारी गृह-कलहसे जड़ीभूत हो गया था। भारतमें एकाधिपत्य और स्वाधीनता प्राप्त करनेके इच्छुक कन्नौजराज सहायतासे दिल्लीके तोमर और चौहान तथा अणहलवाड़के राजाओंके साथ घोर युद्धविग्रहमें लगे हुए थे। दिल्लीश्वर पृथ्वीराजके सर्वनाशके लिए समुद्यत हो कर उन्होंने महम्मद गोरी-को आदरके साथ भारतमें बुलाया था, ११९३ ई०में तिरौरीके रणक्षेत्रमें पृथ्वीराजके अधःपतनके दूसरे ही वर्ष महम्मद गोरी द्वारा उनका अधःपतन हुआ। बनारसके युद्धमें मुसलमानों द्वारा पराजित हो कर जयचन्द गंगामें डूब कर मर गये। तबसे गंगा-यमुनाके बीचमें स्थित राठोरराज्य विलुप्त हो गया।

राठोरराज जयचंदके अधःपतनके बाद उनके पुत्र राज्यभ्रष्ट शिवाजीने (मतान्तरसे पौत्र वा भ्रातुष्पुत्र) द्वारकामें तीर्थस्नानकी अभिलाषासे मारवाड़के अन्तगत पाली नगरमें आ कर विश्राम किया, उस समय एक दल डाकू आ कर वहां उपद्रव कर रहे थे। राजकुमार शिवाजीने वहांके अधिवासियों और साथियोंकी प्राण-रक्षाके लिए अपनी राठोर सेनाको सहायतासे उन्हें वहांसे भगा दिया। इससे वहांके ब्राह्मणोंने इनसे उनके प्रतिपालकरूपमें रहनेके लिए अनुरोध किया। ब्राह्मणोंकी प्रार्थनानुसार वे वहां रहने लगे। तभीसे मारवाड़में राठोर राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

राठोरोंने कन्नौजसे मारवाड़ आनेके बाद ३ शताब्दी-के भीतर ही लगभग ८० हजार वर्गमील स्थान अधिकार कर लिया था। अनेक युद्धविग्रह, दुर्भिक्ष और महामारी आदिसे राठोरवंश क्षयप्राप्त होने पर भी कर्नल टाडके समयमें राठोरजातिकी आनुमानिक संख्या लगभग ५ लाख थी। १८९१ ई०के प्रारम्भकी मनुष्यगणना-में समग्र राजपूतानेमें राठोरकी संख्या १७३९०९ निश्चित हुई है। मुगल-बादशाहोंने प्रभूत शक्तिसम्पन्न राठोर वीरोंकी लाखों तलवारोंकी सहायतासे उनका आधा साम्राज्य जय किया था। इस विषयमें एक किम्वदन्ती है—"लाख तलवार राठोरान।" इसलिए, इसमें सन्देह नहीं रहता कि उस समय राठोरोंकी संख्या बहुत अधिक थी। यह राठोरकुल सब समेत २४ शाखाओंमें विभक्त है, जिनमें धण्डल, भण्डल, चाकित आदि कई प्रसिद्ध हैं।

राजस्थानसे प्राप्त प्राचीन राज विवरणसे कान्य-कुब्जके राठोर राजाओंकी जो वंश-तालिका मिलती है, वह संक्षेपमें यहां दी जाती है—

राजा नयनपालने सं० ५२६में कन्नौज जय करके कामध्वज उपाधि धारण कर राजपाट स्थापन किया था। उनके दो पुत्र हुए—पदरत और पुञ्ज, पुञ्जके धर्म-बिम्ब, भानुद वीरभद्र, अमरविजय, सुजनविनोद, पद्म अहिहर, वरदेव, उग्रप्रभु, मुक्तामान, भारत, अलंकुल और चाँद नामक तेरह पुत्रोंसे कामध्वज उपाधिधारी १३ महाशाखाओंकी उत्पत्ति हुई। क्रमशः यह वंश शाखा-प्रशाखाओंमें विभक्त हो कर चारों तरफ फैल गया। कन्नौज-पति धर्मबिम्बके वंशमें जयचंदकी और उनके वंशधर शिवाजी द्वारा मारवाड़राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

मारवाड़ और कान्यकुब्ज देखो।

मारवाड़वासी राठोरमें किंवदन्ती है—कि कृतयुगमें मनसादेवी ही इस वंशकी कुलदेवी थीं। त्रेतामें वे राष्ट्रसेना नामसे पूजी जाती थीं। द्वापरमें पक्षाणी और कलियुगमें नागनेशी नामसे उनकी प्रसिद्धि है। इस प्रवादके प्रारम्भमें वे ब्रह्मा और मायाके प्रसंगमें जगत्की सृष्टि कल्पना करके मनसादेवीको सृष्टिशक्तिकी आधारभूता बतलाते हैं। राठोरजातिको वरदान दिया था, इसलिए उनका राष्ट्रसेना नाम पड़ा। राठोरगण बड़े उत्साहके साथ इनकी पूजा किया करते हैं।

राठोरपति शिवाजीके पौत्र धूहरने मारवाड़के सिंहा-सन पर बैठते ही अपने पूर्वपुरुषों द्वारा शासित कर्णाटक राज्यमें आ कर वहांसे राष्ट्रकूट-राजलक्ष्मी कुलदेवी राष्ट्र-सेनाकी प्रतिमूर्त्ति ला कर अपने राज्यमें प्रतिष्ठित करने-का विचार किया। प्रतिमूर्त्तिके साथ गाड़ीमें बैठ कर जब वे मारवाड़के नागग्राममें पहुंचे, तब गाड़ीका पहिया जमीनमें ऐसा घुस गया कि उसका निकलना मुश्किल हो गया। राजाने तब देवीको 'भर' समझ कर उसी ग्राममें

उनकी प्रतिष्ठा कर मन्दिर बनवा दिया। नागनग्राम-की अधिष्ठात्री देवी होनेके कारण उनका नागानेशी नाम पड़ गया।

डा० होर्नलीका कहना है, कि युक्तप्रदेशके भारतवासी वर्त्तमान राठोरोंको गहरवाड़जातिकी एक शाखामात्र हैं। सम्भवतः राजा महीपालदेवके राज्यकालमें धर्मसम्बन्धी अनैक्यके कारण वे परस्पर दो स्वतंत्र शाखाओंमें विभक्त हो गये हैं। कारण इस वंशके पाल उपाधि राजा बौद्ध थे और चन्द्र उपाधिधारी ब्राह्मण-भक्त धर्मभेदके कारण विरोध होना सम्भव है जान कर चन्द्र उपाधिधारियोंने कन्नोज आ कर राठोर नाम ग्रहण किया और पाल उपाधिवाले बौद्धधर्मावलम्बी गहरवाड़ नामसे ही परिचित हुए। पालगण पूर्वपुरुषाश्रित बौद्धधर्मको मानते थे, इसलिए उनके आचारमें कुछ कुछ परिवर्तन हो गये थे, इसीलिए कर्नल टाड साहबने गहरवाड़ोंके आचार-व्यवहारको दूषित बताया है।

राजपूतानेमें जोधपुर और बीकानेरका राजवंश जिस प्रकार राठोरजातिमें प्रधान है, उसी प्रकार युक्तप्रदेशमें एटा जिलेके अन्तर्गत रामपुरका राजवंश राठोरसमाजमें सम्मानित है। वर्त्तमान रामपुरके राजा इतिहास-प्रसिद्ध राठोरपति जयचंदसे २६ पीढ़ी नीचे हैं। इसके सिवा यहांके मध्यअन्तर्वेदीमें और भी दो प्रसिद्ध राठोरवंश विद्यमान हैं। धीर-सा की शाखाके राठोरगण करौलीके राजाको अपना गोष्ठीपति मानते हैं, दूसरी तरफ वे ही फिर रामपुरके सामन्तराजके चरणाश्रित हैं। मथुराके राठोरगण कृष्णगढ़के राजाको अपना नेता मानते हैं। फरुखाबादी शाखाके राठोरगण अपनेको जयचंद वंशीय पजन्यपालके वंशधर कहते हैं। उस शाखासे बदाऊंके उसाइतवंशकी उत्पत्ति है। आजमगढ़को राठोरोंका कहना है, कि उनकी बीसवीं पीढ़ीमें एक व्यक्तिने राजभरोंको भगा कर यहां वास किया था। ये लोग पूर्वकी तरफके राठोरोंसे अपेक्षाकृत हेय समझे जाते हैं।

राठोर जातिमें गौतम, काश्यप आदि गोत्र प्रचलित पाये जाते हैं। ये चौहान, गहलोत, शकरवार, जञ्जार, बघेल, बुन्देला, धाकरे, तोमर, पुण्डीर और सोलेङ्किवोंके साथ आदान प्रदान करते हैं।

राष्ट्रगुप्ति (सं० पु०) राज्यकी रक्षा।

राष्ट्रगोप (सं० पु०) १ राजा। २ राजाका प्रतिनिधि, कोई बड़ा शासक। (त्रि०) ३ राज्यकी रक्षा करनेवाला।

राष्ट्रतन्त्र (सं० क्ली०) शासनपद्धति, राज्यका शासन करनेकी प्रणाली।

राष्ट्रदा (सं० स्त्री०) राज्यदानकारिणी।

राष्ट्रदिप्सु (सं० त्रि०) राज्यनाशकारी, राज्यको नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला।

राष्ट्रदेवी (सं० स्त्री०) राजा चित्रभानुकी महिषी।

राष्ट्रनिवासिन् (सं० पु०) राष्ट्रे निवसतीति नि-वस-णिनि। जनपद, देश।

राष्ट्रपति (सं० पु०) १ किसी राष्ट्रका स्वामी। २ आधुनिक प्रजातन्त्र-शासनप्रणालीमें वह सर्वप्रधान शासक जो बहुमतसे राजाके समान शासनका सब काम करनेके लिये चुना जाता है। ३ किसी मण्डलका शासक, हाकिम। गुप्तोंके समयमें एक प्रदेशके शासक राष्ट्रपति कहलाते थे।

राष्ट्रपाल (सं० पु०) राष्ट्रं पालयति पाल-अण्। १ राष्ट्रपति, राजा। २ कंसके आठ भाइयोंमेंसे एक भाईका नाम।

राष्ट्रपालिका (सं० स्त्री०) उग्रसेनकी एक कन्याका नाम।

राष्ट्रपाली (सं० स्त्री०) एक कन्याका नाम।

राष्ट्रभङ्ग (सं० पु०) राज्यका नाश या उच्छेद।

राष्ट्रभय (सं० क्ली०) शत्रुके आक्रमणरूप राज्यकी विपद्।

राष्ट्रभृत् (सं० पु०) १ राजा। २ राज्यपालनकारी, शासक। ३ राजा भरतके एक पुत्रका नाम। ४ प्रजा, रिआया। ५ अक्ष। (अथर्व० ७।१०९।६) स्त्रियां टाप्। ६ अप्सराभेद।

राष्ट्रभृति (सं० स्त्री०) १ राज्यपालिका, शासन करनेवाली स्त्री। २ राज्यका पालन करनेका उपाय।

राष्ट्रभृत्य (सं० पु०) १ राज्यका पोषक, वह जो राज्यकी रक्षा या शासन करता हो। २ राज्यानुचर। ३ प्रजा।

राष्ट्रभेद (सं० पु०) १ राज्यविभाग। २ राष्ट्रविप्लव उत्थापन द्वारा राज्यविच्छेद साधन, प्राचीन राजनीतिके अनुसार

वह उपाय जिसके द्वारा किसी शत्रु राजाके राज्यमें उपद्रव या विद्रोह खड़ा किया जाता है।

राष्ट्रवर्द्धन (सं० पु०) १ राज्यकी वृद्धि। २ राजा दशरथ और रामचन्द्रके एक मन्त्रीका नाम।

राष्ट्रवासी (सं० पु०) राष्ट्रे वसतीति वस-णिनि। १ राष्ट्रनिवासी, राष्ट्रमें रहनेवाला। २ परदेशी, विदेशी।

राष्ट्रविप्लव (सं० पु०) राष्ट्रस्य विप्लवः। राज्यमें होनेवाला विप्लव, विद्रोह, बलवा।

राष्ट्रान्तपाल (सं० पु०) १ सीमान्तराज्य। २ घटवाल।

राष्ट्रान्तपालक (सं० त्रि०) राज्यकी सीमाकी रखवाली करनेवाला।

राष्ट्रि (सं० स्त्री०) रानी, राज्येश्वरी।

राष्ट्रिक (सं० त्रि०) १ राष्ट्रसम्बन्धी, राष्ट्रका। (पु०) २ राजा। ३ प्रजा। राष्ट्रकूट देखो।

राष्ट्रिका (सं० स्त्री०) राष्ट्रं उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्यस्या, इति राष्ट्र-ठन्-टाप्। १ कण्टकारी, भटकटैया। राष्ट्रवासी। ३ राष्ट्रपति। (हरिवं० १८३।२७)

राष्ट्रिन् (सं० त्रि०) राज्याधिकारी, राज्यका शासन करनेवाला।

राष्ट्रिय (सं० पु०) राष्ट्रऽधिकृतः राष्ट्र (राष्ट्रावारपाराद् घखौ। पा ४।२।९३) इति घ, यद्वा राष्ट्रे जातः (तत्र जातः। ४।३।१५) इति घ। १ नाट्योक्तिमें राजश्याल, प्राचीन संस्कृत नाटकोंकी भाषामें राजाका साला। २ राष्ट्राध्यक्ष, राज्यका अधिकारी।

राष्ट्री (सं० स्त्री०) १ राज्ञी, रानी। २ राजनशीला। (सायण) (पु०) ३ राज्यवत्। (ऋक् ६।४।५ सायण)

राष्ट्रीय (सं० पु०) राष्ट्रे भव इति राष्ट्र-छक्। १ प्राचीन नाटकोंकी भाषामें राजाका साला। (त्रि०) २ राष्ट्रसम्बन्धी, राष्ट्रका।

रास (सं० पु०) रासनमिति रासतेऽनेति वा रास शब्दे भावे अधिकरणे वा घञ्। १ कोलाहल, शोरगुल, हल्ला। २ ध्वनि, गूंज। ३ भाषाशृङ्खलक। ४ गोपियोंकी एक क्रीड़ा। (मेदनी) ५ विलास।

"अस्मद्विधस्य मन उन्नयनौषिभर्त्ति।
मद्रङ्ग तं सरसरासुधादिव॥" (भाग० ५।२।१२)

'रत्के मधुरालापः रासविलासः।' (स्वामी)

६ क्रिया। (भाग० ५।१३।१७)

भगवान् कृष्णने जो गोपियोंके साथ क्रीड़ा की थी, उसे ही रास कहते हैं।

कोई कोई इस रासको कल्पतरु-यात्रा कहा करते हैं। कार्त्तिककी पूर्णिमाके दिन विभवानुसार रासयात्रा-विधान होता है। इस दिन नृत्य, गीत और वाद्यादि नानारूप उत्सव होता है। जो इसका अनुष्ठान करते हैं, वे इहलोकमें विविध सुखभोग कर अन्तकालमें विष्णुलोकमें गमन करते हैं। कार्त्तिककी पौर्णमासीके दिन भगवान्‌ने रासक्रीड़ा की थी, इसलिए उसी दिन रासक्रीड़ा करना उचित है। उस दिन रासयात्राकी पद्धतिके अनुसार आधी रातको पूजादि करके उत्सव किया जाता है। (उत्कलखण्डिका०)

भागवतमें लिखा है कि कार्त्तिकमासमें पूर्णिमाके दिन निर्म्मल गगनमें पूर्ण शशधरके उदय होने पर भगवान् विष्णुने योगमाया अवलम्बन कर विहार करने की इच्छा की। शरत्‌काल, आकाश अति निर्मल और उस पर पूर्णचन्द्रका उदय, ऐसे समयमें भगवान् कृष्णने वामलोचनादिओंके लिए विमोहनकारी मधुर गीत गाना प्रारम्भ कर दिया। व्रजकी कामिनियां इस कामवर्द्धक संगीतको सुन कर अत्यन्त आकृष्ट हुईं। तब वे किंकर्तव्यविमूढ़ा हो कर, जो जहां जिस अवस्थामें थीं, सब उसी हालतमें काम छोड़ छोड़ कर श्रीकृष्णके निकट पहुंची। कोई दूध दुहते दुहते उठ खड़ी हुईं, तो कोई सन्तानको दूध पिलाते पिलाते चल दीं, तो कोई पतिकी सेवा छोड़ कर दौड़ीं। उनके पतियोंने अपनी अपनी अङ्गनाओंको वहां जानेकी मनाई की, किन्तु वे लौटीं नहीं। वे ऐसी विमुग्धा हो कर जाने लगीं कि उनके वसनादि तक इधर उधर खसिक गये और उन्हें इस बातका ज्ञान न हुआ।

कोई कोई गोपी पति और पुत्रों द्वारा रोक ली गईं जिससे वे कृष्णके पास न जा सकीं, इस कारण उन्होंने निमीलित लोचनसे श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए शरीर त्याग दिया। परन्तु बाहरसे श्रीकृष्णको न पाया तो क्या, मनमें उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको पाया और उन्हीं-

के चरणोंमें अपनेको समर्पित कर दिया—उनकी मुक्ति हो गई।

दर्शनादि शास्त्रोंमें मीमांसा की गई है, कि पाप-पुण्यका ध्वंस बिना हुए मुक्ति नहीं हो सकती, फिर इन सब गोपियोंकी मुक्ति किस प्रकार हो सकती है? जिनको ऐसा संशय है, वे जरा ध्यानसे विचार कर देखें, तो उन्हें मालूम हो जायगा कि गोपाङ्गनाओंकी मुक्ति उनके पाप-पुण्य ध्वंस होने पर ही हुई है।

इन गोपियोंका चित्त पहले हीसे एकमात्र श्रीकृष्णके प्रति अनुरक्त था। अब वे वहां न जा सकनेके कारण वहीं से केवल उनका ध्यान करने लगीं। उस समय उन्हें अपने प्रियतमके विरहानलसे जो सन्ताप हुआ, उसीसे उनका अशुभ क्षय हो गया, अतएव पापका भोग हो गया, और बादमें उन्होंने चिन्तायोगसे भगवान् अच्युतको प्राप्त कर आलिङ्गन किया, जिससे उन्हें शुभसम्भोग हुआ, इस शुभ सम्भोगसे उनके पुण्यका नाश हुआ। यद्यपि श्रीकृष्णको वे उपपति समझती थीं, तथापि उस परमात्माको प्राप्त करनेसे तत्कालीन सुखदुःख द्वारा अशेष कर्मक्षय हो कर देहत्याग करते ही उनकी मुक्ति हो गई।

गोपीगण कृष्णको परमकान्त समझती थीं। उन्हें ब्रह्म समझती हों, सो बात नहीं। फिर किस प्रकार उनको संसारविरति हुई इस प्रकारके संशयका भी निराकरण किया गया है। भगवान् कृष्णमें, शत्रु मित्र जो जिस रूपमें तन्मय हो सके, उनकी उसीमें कार्य सिद्धि होती है। जब कि शिशुपाल आदि भगवान्से शत्रुता करके भी मुक्त हुए थे, तो जब उनके प्रिय हैं, उनका क्या कहना?

व्रजाङ्गनाओंके झुण्डके झुण्ड श्रीकृष्णके पास उपस्थित होने पर भगवान् कृष्णने उन्हें वाक्चातुरीसे विमोहित करके कहा,—'हे महाभागागण! तुम लोग सुखसे आई हो तो? मैं तुम्हारा क्या इष्ट साधन करूं? व्रजमें सब कुशल है न? यह रजनी अत्यन्त घोर है, भयङ्कर हिंस्र पशुगण इतस्ततः विचरण कर रहे हैं, इसलिये तुम लोग शीघ्र ही व्रजको लौट जाओ, यहां रहना उचित नहीं। तुम्हारी माताएं, पिता, पुत्र और पतिगण तुम्हें न पा कर खोजते होंगे, शीघ्र ही तुम लोग घरको लौट जाओ।' तब गोपिकाएं कुछ प्रणयकोपसे दूसरी तरफ दृष्टि फेरने लगीं।

भगवान् कृष्ण उनके इस प्रकारके भावको देख कर उनसे कहने लगे,—कुसुमित कानन पूर्ण शशधरकी रजत किरणोंसे रञ्जित हो गया है। यमुनानिलकी लीला गति द्वारा कम्पमान तरुपल्लव इसकी शोभा है, तुम लोग यदि इन सबको देखने आई हो, तो अब सब देख चुकीं, अब तुम घरको लौट जाओ, देर मत करो। तुम लोग सती हो, घर जा कर अपने अपने पतियोंकी सेवा करो। बालकगण रो रहे हैं, उन्हें दूध पिलाओ। और यदि लोग मेरे प्रति स्नेहसे चित्त वशीभूत होनेके कारण ही यहां आई हो, तो उसमें भी कोई दोष नहीं क्योंकि मेरे प्रति समस्त प्राणी प्रीति करते हैं। अब घर जाओ। हे कल्याणीगण! तुम लोगोंको चाहिए, कि अकपट भावसे स्वामी और उनके, बन्धुओंकी सेवा तथा सन्तानोंका पोषण करो। यही रमणियोंका परमधर्म है। पति दुःशील हों, दुर्भाग हों, वृद्ध हों, जड़ वा निर्धन हों, सद्गतिकामनाकारिणी नारियोंके लिए उनका त्याग करना विधेय नहीं है। कुलकामिनियोंके लिए जारका सेवन उनकी स्वर्गच्युतिका प्रधान कारण है। यह कार्य निन्दनीय, भयावह और सर्वत्र यशका नाशक है।

मेरा नाम सुननेसे, मेरा ध्यान करनेसे और गुण गानेसे जैसी प्रीति होती है, मेरे पास आनेसे वैसी प्रीति नहीं होती। इसलिए तुम सब घरको लौट जाओ।

गोपाङ्गनाएं श्रीकृष्णकी इस अप्रिय बातको सुन कर भग्नमनोरथ और विषण्ण मनसे दुर्वार चिन्तामें मग्न हो गईं। शोकके कारण उनकी घनी घनी साँसें चलने लगीं, तो किसीके बिम्बाधर सूख गये। जो रमणियां स्वामी पुत्रादि सर्वस्व परित्याग कर श्रीकृष्णके सङ्ग लाभके लिए यहां आई थीं, उन्होंने जब कृष्णके ऐसे निष्ठुर वाक्य सुने, तो वे कुछ कुपित हो उठीं,—कोपके कारण उनका कण्ठरोध हो गया। तब वे अश्रुसिक्तलोचनोंको पोंछती गद्गदवाक्यसे कहने लगीं—विभो! ऐसे निष्ठुर वाक्य कहना तुम्हें उचित नहीं। हम सब अपना समस्त विषय विभव छोड़ कर तुम्हारे चरणोंमें

आई हैं। जैसे आदिपुरुष मुमुक्षुओंको ग्रहण करते हैं, वैसे ही तुम भी हम लोगोंको ग्रहण करो।

पति, पुत्र और बन्धुओंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका स्वधर्म है, तुमने जो यह उपदेश दिया है, हम उसीका पालन करेंगी; कारण हम यदि तुम्हारी सेवा करें, तो वह हमारे पतिपुत्रादिकी ही सेवा होगी। कारण तुम्हीं शरीरियोंके प्रियतम बन्धु, आत्मा और नित्यप्रिय हो। शास्त्रकुशल व्यक्तिगण तुम्हींमें प्रेम किया करते हैं।

पतिपुत्रादि दुःखदायक हैं। हम लोग उन्हें ले कर क्या करेंगी? हे परमेश्वर! हम पर प्रसन्न होओ। बहुत दिनोंसे आशा लगी है, इसे नष्ट न करो। हम लोगोंके जो चित्त, जो हाथ अब तक स्वच्छन्द हो कर गृहकार्यमें रत थे, अब तुमने उन्हें हरण कर लिया है। तुम्हारे पादमूलसे हमारे चरणयुगल एक डेग भी नहीं हटते। अतएव व्रजको लौट कर क्या करेंगी? यदि तुम हमारे प्रति प्रसन्न न हुए, तो ध्यानयोगसे हम तुम्हारे पादमूलक प्राप्त करेंगी। हे अम्बुजाक्ष! तुम्हारा पदतल कमलाको आनन्द उत्पन्न करता है, तुम्हारे उस पदतलको जब तक हम स्पर्श किये हुए हैं, और अरण्यमें तुम जब तक हम लोगोंको आनन्दित करते रहोगे, तब तक हम दूसरेके पास नहीं रह सकतीं। हम लोग तुम्हारी उपवासनाके लिए आई हैं। तुम्हारे सुन्दर रहस्यका निरीक्षण करके हमारी कामाग्नि उद्दीपित हो गई है, हम लोग उससे सताई हुई हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! हम लोगोंको दासी होने दो। त्रिलोकमें ऐसी कामिनी है जो तुम्हारे मधुर पदरूप अमृतमय वेणुगीतपर मोहित हो कर विचलित न हो जांय? तुम्हारे इस त्रिलोकय मोहनरूपको देख कर गो, पक्षी, वृक्ष और मृगगण भी रोमाञ्चित हो जाया करते हैं। जिस प्रकार आदिपुरुषदेवलोकको रक्षक हो कर अवतीर्ण हुए थे, उसी प्रकार तुमने व्रजकी पीड़ा हरनेके लिए जन्म लिया है हम तुम्हारे विरहमें क्षण भर भी नहीं जी सकतीं।

भगवान् कृष्ण व्रजकी कामिनियोंके मुंह यह बात सुन कर उन्हें ले कर क्रीड़ा करने लगे। उस समय भगवान् कृष्ण इन व्रजाङ्गनाओंके बीच तारकामण्डलीसे घिरे हुए शशधरके समान शोभा पाने लगे। श्रीकृष्ण शत वनिताओंमें यूथपति हो कर कभी स्वयं गाने लगे, कभी गान सुनने लगे और कभी वैजयन्तीमाला धारण करके वनको शोभित करते हुए विचरण करने लगे। कालिन्दीका वह ज्योत्स्नान्वित पुलिन, शीतल बालुकासे परिपूर्ण था, कुमुदकी सुगन्ध सुशीतल पवनके साथ बह रही थी। श्रीकृष्ण उस मनोहर पुलिनमें प्रवेश कर गोपाङ्गनाओंके साथ बाहुप्रसारण पूर्वक आलिङ्गन करने लगे। उनके कर, अलक, ऊरु, नीवि और स्तन स्पर्श करने लगे। उनके साथ परिहास, अंगों पर नखाग्रपात, क्रीड़ा, कटाक्षपात और हास्य करके मदनको उद्बोधित कर उन्हें विहार कराने लगे।

उस समय अनासक्तचित्त भगवान्के द्वारा ऐसा मान प्राप्त करके गोपिकाएं अत्यन्त मानिनी हो उठीं और अपनेको संसारकी समस्त स्त्रियोंसे श्रेष्ठ समझने लगीं। दर्पहारी भगवान् उनके सौभाग्यगर्व और अभिमानको देख कर उसको खर्व और शान्त करनेके लिये उस स्थानसे तिरोहित हो गये।

गोपिकाओंने सहसा श्रीकृष्णको अन्तर्हित होते देख कर, यूथपतिके अदर्शनसे करिणीगण जैसे व्याकुल हो जाती है, वे भी वैसी ही व्याकुल हो कर उन्हें ढूंढ़ने लगीं। गति, अनुराग, हास्य, विभ्रमदृष्टि, मनोरम आलाप, विलास और विभ्रमद्वारा प्रमदाओंके चित्त आकृष्ट हो गये थे, इसलिए वे तादात्म्य प्राप्त हो गई थीं। अब वे श्रीकृष्णको न पा कर भगवान् कृष्णकी विविध चेष्टाओंका अनुकरण करने लगीं।

प्रियकी गति, हास्य, विलोकन और आलापादिसे प्रियोंकी मूर्त्ति आविष्ट हो गई थी, अतएव उनका विहार और विभ्रम श्रीकृष्णकी भाँति ही हुआ। इसलिए सभी कोई कृष्णात्मिका हो कर परस्परमें 'मैं ही 'कृष्ण' हूं, ऐसा कहने लगीं। इसके बाद वे मिल कर ऊंचे स्वरसे गान गाती हुईं। अन्वेषणमें उन्मत्तकी भाँति वनोंमें भ्रमण करने लगीं। और जो आकाशके समान प्राणियोंके बाह्य और अभ्यन्तरमें अवस्थित हैं, उन परमपुरुषको बात वनस्पतियोंसे पूछने लगीं—"हे अश्वत्थ! हे प्लक्ष! हे न्यग्रोध! श्रीनन्दके नन्दन, प्रेम और हास्यविलसित कटाक्ष द्वारा हम लोगोंके चित्तको हरण करके

भाग गये हैं, तुमने उन्हें देखा है? हे कुरवक! हे नाग! जिनका हास्य मानिनियोंके मनको हरण करता है, वे रामानुज क्या इधरसे गये?" इत्यादि प्रकारसे वे प्रत्येक वृक्ष और लतासे अति करुणभावसे कृष्णकी टोह लगाने लगीं। परन्तु कहीं भी श्रीकृष्णका सन्धान न मिला।

तब वे श्रीकृष्णकी खोजमें अत्यन्त विह्वल हो कर उनकी विविधक्रीड़ाओंका अनुकरण करने लगीं। एक गोपी कृष्ण बनी और दूसरी गोपी पूतना बन कर उसे स्तन्य पान कराने लगी। एक शकट बनी, दूसरी कृष्ण बन कर उसे पदप्रहार करने लगी। इस प्रकार गोपिकागण वृन्दावनमें भगवान्‌की समस्त प्रकारकी लीलाओंका अनुकरण करने लगीं।

गोपिकाएं कृष्णके विरहसे उन्मत्तप्राय हो कर कभी हंसने, कभी रोने और कभी स्तव करने लगीं। इसी समय हास्यमुख पीताम्बर वनमाली कृष्ण उनके सामने आविर्भूत हुए।

गोपिकाएं प्रियतमको सामने देख कर आनन्दित हुईं। उनके नयनकमल प्रफुल्ल हो उठे। तब उन्हें मानो पुनर्जीवन मिल गया। वे सब श्रीकृष्णसे नाना प्रकारकी मनोव्यथाएं प्रकट करने लगीं। जैसे मुमुक्षुओंको ईश्वरकी प्राप्ति होनेसे उनके संसारका ताप दूर हो जाता है, उसी प्रकार केशवके दर्शनसे गोपिओंका विरह-सन्ताप दूर हो गया।

भगवान् कृष्ण विधूतपापा उन गोपिओंसे परिवृत हो कर सत्वादि गुणोंसेवेष्टित परमात्माकी भाँति अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए। तब मदनमोहन उन गोपिकाओंके साथ कालिन्दीके सुखकर पुलिनमें जा कर क्रीड़ा करने लगे। श्रीकृष्णके दर्शन पा कर गोपियोंकी मनोव्यथा दूर हो गई। श्रुति-समूह जैसे कर्मकाण्डमें परमेश्वरको न देख सकने पर कर्मके अनुगमनपूर्वक मानो अपूर्णकामकी भांति हो जाता है, पीछे ज्ञानकाण्डमें परमेश्वरको देख कर आह्लादसे पूर्णकाम हो कर कामानुबन्ध त्याग देता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णके दर्शनसे गोपियोंका काम पूर्ण हो गया। उन लोगोंने कुच-कुंकुम-रंजित अपने अपने उत्तरीय वसन द्वारा अन्तर्यामी भगवान्‌के आसनकी रचना कर दी। योगीश्वरके हृदयमें जिसका आसन बिछा हुआ है, आज वे ही भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंकी सभामें आ कर उनके साथ उस आसन पर बैठ गये। त्रैलोक्यमें जितनी शोभा है, वे उतनी शोभाके एकमात्र आधार बन कर गोपिकाओंमें सम्मानित हो कर शोभा पाने लगा। तब गोपिकाओंने कृष्णको वेष्टन करके कहा—सखे कृष्ण! कौन व्यक्ति दोनोंमेंसे किसीकी भी भजना नहीं करते? कृपा कर एकके भजना करने पर उसकी भजना करते हैं? कौन व्यक्ति इसके विपरीत करते हैं और कौन व्यक्ति इस विषयको समझाइये।

गोपिओं द्वारा ऐसा प्रश्न किये जाने पर श्रीकृष्णने कहा, सखीगण! जो स्वार्थसाधन करनेमें लगे हुए हैं, वे ही परस्पर एक दूसरेको भजना किया करते हैं। उसमें धर्म वा सौहार्द नहीं है। स्वार्थ उसका उद्देश्य है, इसके सिवा और कुछ नहीं। परन्तु जो भजना नहीं करते, उनकी जो भजना करते हैं, माता-पिताके समान वे दो प्रकारके हैं,—एक दयालु और दूसरे स्नेहमय। उक्त भजना द्वारा दयालु व्यक्तियोंको निष्कृतिधर्म और स्नेहमय व्यक्तियोंको सौहार्द प्राप्त होता है। यहां अनिन्दित धर्म और सौहार्द, ये दो ही हैं। सखीगण! जो मेरी भजना करते हैं, मैं उनको भजना नहीं करता, क्योंकि, ऐसा होनेसे वे निरन्तर मेरी ही चिन्ता करते रहेंगे। जैसे निधन व्यक्ति धन प्राप्त करके फिर यदि धन खो दे, तो वह उसी धनकी चिन्तामें लगा रहेगा—दूसरी चिन्ता भूल जायगा, उसी प्रकार तुम लोग भी मेरे निमित्त धर्माधर्मका विचार न करके लोक और ज्ञातिकुटुम्बको परित्याग कर निरन्तर मेरी ही चिन्ता कर रही थीं, इसीलिए मैं अन्तर्हित हुआ था। और तुम लोग देख न सके, इस तरहसे तुमलोगोंकी भजना की थी। अतएव हे प्रियागण! प्रियके प्रति दोषारोप करना तुम्हें उचित नहीं। तुम दुश्छेद्य गृहशृंखलको तोड़ कर हमसे आ मिली हो, मैं तुम्हारे इस ऋणको नहीं चुका सकता।

गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार सान्त्वनावाक्य सुन कर पूर्णकामा हो कर विरहके सन्तापको दूर किया। परमानन्दसे परस्परको परस्परने बाहु द्वारा बाहुबन्धन किया। श्रीगोविन्दने इन सब स्त्रियोंसे वेष्टित हो कर रासलीला प्रारम्भ की।

भगवान्‌का इस प्रकार रासोत्सव प्रारम्भ होने पर गोपीमण्डलसे मण्डित हो कर योगेश्वर श्रीकृष्ण दो दो गोपिकाओंमें प्रवेश कर उनका कण्ठ धारण किया। इससे प्रत्येक गोपिकाको मालूम होने लगा, कि श्रीकृष्ण मेरे ही पास हैं। रास आरम्भ होते ही नभोमण्डल देवताओंके विमानोंसे व्याप्त हो गया। आकाशमें दुन्दुभि बजने और पुष्पवृष्टि होने लगी। तब सस्त्रीक गन्धर्वगण श्रीकृष्णके निर्मल यशोगानमें प्रवृत्त हुए। रासमण्डलमें प्रियसङ्गता कामिनियोंके वलय, नूपुर और किङ्किणीकी झनकारसे गंभीर शब्द होने लगा।

भगवान् श्रीकृष्ण उन गोपिकाओंके बीच स्वर्णवर्ण मणिओंसे मण्डित मरकतमणिके समान अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए। पदन्यास, भुजकम्पन, सहास्य भ्रूविलास, वङ्किम कटितट, कम्पित कुचमण्डल, विस्रस्त वसन और गण्डस्थलोंमें दोदुल्यमान कुण्डलों द्वारा कृष्णकामिनिओंके वदनकमल पसीनेसे लदबद हो गये। उनकी कवरी और काञ्ची शिथिल हो गई। वे कृष्णका गुणगान करते करते मेघचक्रमें तड़ित् मालाकी भांति शोभित मालूम देने लगी। नाना रागोंसे रंजितकण्ठ गोपिकाएं नृत्य करते करते श्रीकृष्णके अङ्गस्पर्शसे आनन्दित हो कर उच्चैःस्वरसे गान गाने लगीं, और उस गानसे ब्रह्माण्ड परिपूर्ण हो गया। कृष्णने जिस प्रकार राग और स्वरसे गान गाया था, गोपिकाएं भी वैसा ही गाने लगीं। श्रीकृष्ण उनका इस प्रकार गान सुन कर स्वयं विमोहित हो गये।

इस प्रकार गोपिकाएं रासक्रीड़ा करते करते जब परिश्रान्त हो गईं, तब उनकी मल्लिकाएं शिथिल हो गईं। किसीने बाहु द्वारा माधवका स्कन्ध धारण किया, किसीने गलेसे लिपट कर उत्पलकी भांति सुगन्धिचन्दन चर्चित श्रीकृष्णका करकमल सूंघ कर रोमाञ्चित हो कर चुम्बन किया। नृत्य करते करते कामिनियोंके कुण्डल झूलने लगे। उन कुण्डलोंकी आभसे भगवान्‌का गण्डस्थल शोभित होने लगा। इस प्रकार अनेक भावसे विशुद्ध तान-लय-युक्त स्वर-लहरीसे देव, गन्धर्व और मानवोंको विस्मयोत्पादक नृत्य और गीत होने लगा।

बालक जिस प्रकार अपने प्रतिविम्बसे आप क्रीड़ा करने लगता है, उसी प्रकार भगवान् रमापति नाना प्रकारसे आलिङ्गन, करमर्द्दन, स्निग्धकटाक्षपात तथा उद्दामविलास और हास्य द्वारा व्रजसुन्दरियोंके साथ क्रीड़ा करने लगे। उनके अङ्गसङ्गसे जो अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ, उससे व्रजसुन्दरियोंकी इन्द्रियां आकुलित हो उठीं।

व्रजाङ्गनागण आनन्दमें उन्मत्त हो गईं, उनके गलेसे मालाएं खिसक गईं। आभरण उतर पड़ने लगे, केश बिखर गये, दुकूल और कुचपट्टिकाको पूर्ववत् धारण न कर सकीं। श्रीकृष्णके विहारको देख कर खेचरकामिनियां कामवाणसे पीड़ित हो उठीं। चन्द्रमा भी तारकाओंके साथ विस्मित हो कर अपनी अपनी गति भूल गये। इसलिए रजनी अत्यन्त दीर्घ हो उठी और विहार भी बहुत देर तक चला।

भगवान् आत्माराम हो कर भी जितनी गोपियां थीं, लीलाक्रमसे उतने ही स्वयं बन कर उनके साथ क्रीड़ा करने लगे। बहुत देर तक क्रीड़ा करते करते जब वे श्रान्त हो गईं, तब भगवान्‌ने उनके मुखकमल पोंछ दिये। उसके बाद वे इन कामिनियोंके साथ यमुनाके जलमें नाना प्रकार जलकेलि करने लगे। इस प्रकार भगवान् कृष्णने सुरतक्रीड़ाको रोक कर रासलीला की थी।

शुकदेवने परीक्षितको रासलीलाकी बात सुनाई, तो उन्हें महान् संशय उपस्थित हुआ, इसलिए उन्होंने शुकदेवसे इस प्रकार प्रश्न किया—ब्रह्मन्! धर्मकी संस्थापन और अधर्मका दण्डविधान करनेके लिए जगदीश्वर भगवान् पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए हैं। उन्होंने धर्मसेतुके वक्ता, कर्त्ता और रक्षक हो कर किस प्रकार परस्त्रीके साथ सम्भोगरूप अधर्मका अनुष्ठान किया था? भगवान् कृष्ण आत्माराम हैं, उनका इस प्रकार करनेका अभिप्राय क्या है? मेरे इस संशयको दूर कीजिये।

तब शुकदेवने कहा,—ईश्वरोंमें धर्मातिक्रम और साहस नहीं देखा जाता, तेजस्वियोंको इसमें दोष नहीं होता। अग्नि जिस प्रकार सब कुछ भोजन करती है उसी प्रकार ईश्वरको किसी विषयमें दोष नहीं लगता।

जो ईश्वर नहीं हैं, वे कभी भी ऐसा आचरण नहीं करते। रुद्रके सिवा अन्य कोई व्यक्ति यदि मूढ़तावश विष पान करे, तो मृत्युका ग्रास बन जायगा। ईश्वरका वाक्य सत्य है और उनका आचरण भी कभी कभी सत्य होता है। अतएव वे जो कहते हैं जिनके बुद्धि है, वे वही करेंगे। वे जो करते हैं, उसका अनुकरण करना विधेय नहीं।

जो गोपियोंके, उनके स्वामियोंके तथा समस्त शरीरधारियोंके अंतरमें विराजमान रहते हैं और जो विद्यादिकी साक्षी हैं, वे क्रीड़ाके छलसे इस प्रकार देह धारण करके विविध क्रीड़ाएं करते हैं। जोव इन सब बातोंको सुन कर उनके प्रति भक्तिमान् हो सकते हैं।

भगवान्की यह रासलीला परम अद्भुत और सकल पापोंकी नाशक है। जो भक्तिपूर्वक इस रासलोलाके विषयको सुनते हैं, वे इहलोकमें सुख सम्पत् प्राप्त करके अन्तमें विष्णुलोकमें जा कर भगवान्में परमाभक्ति प्राप्त कर शीघ्र ही कामरूप मानसिक पीड़ासे मुक्त होते हैं।
(भागवत १०म स्कन्ध, रासपञ्चाध्याय)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें भगवान् कृष्णने श्रीमती राधिकासे जिस प्रकार रासलीला की थी, उसका वर्णन लिखा है, जो संक्षेपमें यहां दिया जाता है:—

ब्रह्मकल्पमें भगवान्ने समस्त सृष्टिकार्यको समाप्त करके गोलोकमें रासमण्डप निर्माण किया। यह रासमण्डप अति कमनीय कल्पवृक्षोंके बीच मण्डलाकृति, सुस्निग्ध, समतल और सुविस्तीर्ण तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम आदि नाना सुगन्धित द्रव्योंसे सुसंस्कृत है। इसके किसी स्थानमें दधि, किसी स्थानमें लाज, शुक्लधान्य आदि माङ्गलिक द्रव्य विन्यस्त हैं। यह पट्टसूत्रकी ग्रंथि-विशिष्ट तथा उपरिभागमें दोदुल्यमान नूतन नूतन चन्दन पल्लवोंसे परिशोभित, चारों तरफ रम्भा तरुओंसे परिवेष्टित है।

रासमण्डप उत्कृष्ट रत्नोंसे निर्मित तीन कोटि मण्डप द्वारा अत्यन्त शोभित था, इसमें सर्वत्र रत्नदीप प्रज्वलित रहते थे। उन रत्नदीपोंकी स्निग्धोज्वल किरणोंसे अंधकार नष्ट हो गया था। पुष्प और धूपादिकी सुगंध इतस्ततः विकीर्ण होनेसे सबकी घ्राणेन्द्रिय अत्यंत परितृप्त हो गई थी। इस स्थानमें नाना प्रकारकी भोगसामग्रियां और मनोहर शय्याएं निरन्तर प्रस्तुत रहनेसे अलौकिक शोभा हुई थी। भगवान् इस प्रकार रासमण्डपका निर्माण कर देवोंके साथ वहां गये। तब भगवान्के पार्श्वदेशसे एक कन्या आविर्भूता हुईं, जिनका नाम राधिका था। राधिका देखो।

राधिकाके आविर्भूत होने पर भगवान् विष्णुने उनके साथ रासक्रीड़ा की। पीछे भगवान्के विरजाके साथ क्रीड़ामें रत होने पर राधिकाको यह बात मालूम पड़ी और वे वहां उपस्थित हुईं, भगवान्ने पहलेसे ही जान कर विरजाको वहांसे स्थानान्तरित कर दिया। राधिकाने इस पर क्रुद्ध हो कर विरजाको शाप दिया, विरजाने भी उन्हें मानवी हो कर जन्मग्रहण करनेका अभिशाप दिया। राधिकाने उनके शापसे वृन्दावनमें जन्मग्रहण किया। पीछे श्रीकृष्णने अवतीर्ण हो कर राधिकाके साथ रासक्रीड़ा की थी। (ब्रह्मवै० ब्रह्मखं० ७।१०)

वृन्दावनमें भगवान्ने जो रासलीला की, उसका वर्णन उक्त पुराणमें इस प्रकार किया गया है। एक दिन मधुमासमें शुक्ला त्रयोदशीकी रात्रिको पूर्ण शशधरका उदय होने पर श्रीकृष्णने वृन्दावनमें जा कर देखा, कि वृन्दावन यूथिका, माधवी, मालती और कुन्दादि पुष्पोंकी परिमलवाही सुगन्धितवायु द्वारा सुवासित और भ्रमरोंके मधुर गुन गुन शब्दसे अति मनोहर शोभा-सम्पन्न हो रहा है। वनप्रदेशमें नवपल्लवयुक्त पुंस्कोकिलगण मनोहर कुहुध्वनि कर रहे हैं। यह स्थान रासक्रीड़ाके लिए उपयोगी नूतन क्षौम वसनसे परिव्याप्त हो कर मनोहर शोभा सम्पादन कर रहा है, और नाना प्रकार भोज्य सामग्री, मनोरम शय्या, नाना प्रकार सुगन्धि द्रव्यादिसे परिशोभित हो रहा है।

भगवान् कृष्णने इस रासमण्डपको देख कर कौतुकवश गोपियोंके कामवर्द्धनके कारण भूतविनोद मुरलीध्वनि की। राधिका उस मोहन मुरली ध्वनि सुन कर कामाधीन-चित्त हो कर उसी क्षण मोहित हो गईं। उनका मन उस तानलयमें लीन हो गया। वे तब निश्चलभावसे वृक्षके समान खड़े रहीं, क्षण भर बाद

चैतन्य होने पर पुनः मुरलीकी ध्वनि उनके कानोंमें पहुंची। तब वे लोकलज्जा और भयको त्याग कर वंशी-ध्वनिके अनुसार गमन करने लगीं। परंतु उस समय उनके मनमें श्रीकृष्णपादपद्म ही सर्वदा जागरित थे, तथा उनके शरीरकी आभा और समुद्रके सारभूत भूषणोंकी दीप्तिसे चारों ओर आलोकित हो गया।

उसके बाद राधिकाकी ३३ सखियां भी बांसुरीकी ध्वनिसे आकृष्ट हो कर कामवश मोहित हो कर निःशंक चित्तसे कुलधर्म त्याग कर शीघ्र ही घरसे निकल कर चल दीं। राधिकाकी सभी सखियां रूप, वेश, उमर और गुणमें राधिकाके समान थीं।

इन सखियोंमें सुशीलाके साथ १६ हजार, शशिकलाके साथ १४ हजार, चंद्रमुखीके साथ १३ हजार, माधवीके साथ ११ हजार, कदम्बमालके साथ १३ हजार, कुन्तीके साथ १० हजार, यमनाके साथ १४ हजार, जाह्नवीके साथ १४ हजार, शुभाके साथ १४ हजार, पद्माके साथ १३ हजार, दुर्गाके साथ १४ हजार, मङ्गलाके साथ १३ हजार और सरस्वतीके साथ १३ हजार गोपियां भी चल दीं।

इन गोपियोंने एकत्र हो कर श्रीमती राधिकाका मनोहर वेश बना दिया। श्रीमती राधिकाने समस्त सखियोंके साथ शुभक्षणमें श्रीकृष्णके पादपद्मोंका ध्यान करते करते उस रासमण्डलमें प्रवेश किया। तब श्रीकृष्णने देखा, कि सखियोंसे परिवेष्टित हो कर राधिका उनके पास आ रही हैं। देवी रत्नालङ्कारसे विभूषित और मनोहर वस्त्र पहने हुए हैं, नयनयुगल ईषत् बङ्किम हैं, गजेन्द्रगामिनी हैं तथा मुनियोंके भी मन हरण करनेमें समर्थ हैं। श्रीमती नवीन अवस्था और नवीन रूपसे अत्यन्त मनोहारिणी हैं, उनके नितम्ब और श्रोणियुगल अत्यन्त स्थूल होनेसे दुर्बल हो उठे हैं, वे चारुचम्पक वर्णा हैं, उनका वदनमण्डल शारदीय पूर्णचंद्रके समान है। उन्होंने मालतीमालायुक्त कवरीभार धारण किया है।

तब श्रीमती राधिकाने भी देखा कि रत्नाभरणसे विभूषित, कोटि कंदर्पकी लावण्यलीलाके आधारस्वरूप नवयौवन सम्पन्न, किशोर श्यामसुंदर उन्हें प्राणाधिका समझ कर उनके प्रति कटाक्ष दृष्टिसे देख रहे हैं। श्रीमतीने उन परमाद्भुत अनुपम रूपवान् विचित्र वेशधारी श्रीकृष्णको बङ्किम नयनोंसे पुनः पुनः देख कर लज्जासे अंचल द्वारा मुख आच्छादन किया और उसी क्षण कामवाणसे पीड़ित हो कर पुलकित शरीरसे मूर्च्छितकी भांति चैतन्यशून्य हो गईं। इस प्रकार क्रीड़ा-रसोन्मुख हरि भी कटाक्षरूप कामवाणसे पीड़ित हो कर मूर्च्छितभावसे स्थाणुके समान निश्चलभावसे खड़े रहे। उनके हाथसे मुरली और उज्ज्वल क्रीड़ाकमल स्खलित हो गया, शरीरसे पीतधड़ा और शिखिपुच्छ विच्छिन्न हो कर जमीन पर गिर पड़ा। क्षण भर बाद चैतन्य प्राप्त होने पर श्रीकृष्ण राधिकाके पास पहुंचे और उन्हें छातीसे लगा कर उनका मुख चुम्बन तथा आलिङ्गन किया। श्रीमती भी श्रीकृष्णके संस्पर्शसे चैतन्य प्राप्त हो उन्हें गाढ़रूपसे आलिङ्गन और पुनः पुनः चुम्बन करने लगीं।

भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार राधाके साथ नाना प्रकार क्रीड़ादि करने बाद शयन किया। उस सुरतके समय कामातुर कृष्णने अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गों द्वारा कामुकियोंके अङ्ग प्रत्यङ्गोंसे सुखावह आलिङ्गन किया। दोनों ही कामशास्त्रमें पारदर्शी थे, सुरतक्रीड़ामें दक्ष थे।

इस प्रकार राधिका-रमण नाना मूर्त्ति धारण कर प्रत्येक गृहमें गोपाङ्गनाओंके साथ सुरम्य रासमण्डलमें रमण करने लगे। कृष्ण गृहके भीतर सुरत-क्रीड़ा करके बाहर गोपिकाओंके साथ अन्यान्य क्रीड़ा करने लगे। राधिकाकी नौ लाख गोपिका-सखियां थीं, तब कृष्णने नौ लाख रूप धारण किये। सब मिल कर अठारह लाख गोप और गोपिकाओंका समावेश हुआ। ये सभी मुक्तकेश, विच्छिन्नभूषण, छिन्न भिन्न वेश और कामवश मत्त और मूर्च्छित थे। इस स्थानमें केवल कङ्कण, किङ्किणी, वलय और विशुद्ध रत्ननूपुर आदिकी मनोहर शब्द होने लगे। भगवान् कृष्णने उनके साथ इस प्रकार विविध क्रीड़ाएं करके यमुनामें जा कर वहां जलक्रीड़ा की।

रासमण्डलमें इस प्रकार पूर्ण रासक्रीड़ा आरब्ध होने पर सुरगण अपने कलत्र और अनुचरवर्गके साथ सुवर्ण रथमें आरोहण कर गगनमार्गमें समागत हुए। इस क्रीड़ाको देख कर उनके सर्वाङ्ग पुलकित हो गये।

वे भी कामवाणसे पीड़ित हुए। इस प्रकार वहां ऋषि, मुनि, सिद्ध और पितृगण तथा विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नरगण सभी कोई आनन्दमें आ कर अपनी अपनी पत्नियोंके साथ उपस्थित हुए और उस क्रीड़ाको देखने लगे। ब्रह्मा, महादेव और इन्द्रादि देवता भी आ पहुंचे और वे रासलीलाको देख कर विमोहित हो चन्दन और पुष्पोंकी वर्षा करने लगे।

पूर्णब्रह्म सनातन कृष्ण इस प्रकार गोपिनियोंके साथ जल और स्थलमें नाना रूप रासक्रीड़ा करने लगे। गोपिकाएं लीलामें हरिके साथ रासमण्डलमें क्रीड़ा कर समस्त मनोहर निर्जन प्रदेशोंमें तथा किसी समय पुष्पोद्यानोंमें, कभी रमणीय नदीतट पर, कन्दरोंमें, नदीके पास, कुञ्जवनमें तथा चम्पकादि तैंतीस काननोंमें नाना प्रकारसे उनके साथ क्रीड़ा करने लगीं।

इस प्रकार तीस दिन तक दिन-रात रास होता रहा, फिर भी कामिनियोंको तृप्ति न हुई। देवगण तब इस आश्चर्यजनक क्रीड़ाको देख कर अपने अपने स्थानको चले गये। भगवान्‌की इस लीलाको जो श्रवण करते हैं, वे इहलोकमें सुखसम्पद और अन्तकालमें श्रीकृष्णके पादपद्मोंमें शरण पाते हैं। (ब्रह्मवै० श्रीकृष्णज० १८ अ०)

हरिवंशमें विस्तृतभावसे कृष्णचरित्र वर्णित हुआ है, किन्तु उसमें रासक्रीड़ाका कोई उल्लेख नहीं है। भागवतके मतसे कार्त्तिककी पूर्णिमाके दिन रास होती है और ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मतसे मधुमासकी शुक्ला त्रयोदशीको।

पूर्ववर्णित रासलीलाके रहस्यके सम्बन्धमें—गौड़ीय वैष्णव पण्डितगण जो अभिमत प्रकट किया करते हैं, वह नीचे लिखा जाता है:—

लीलारसमय श्रीकृष्ण भक्तोंके प्रति अनुग्रह दिखलानेके लिए-भक्तोंके चित्त-विनोदके लिए आत्माराम और आत्मकाम हो कर भी विविध लीला करते हैं। उनके मुखकी उक्ति यह है।

"मद्भक्तानां विनोदार्थं करोमि विविधाः क्रियाः।"

(पद्मपुराण)

श्रीरूप गोस्वामीने श्रीकृष्णामृतमें लिखा है—

"प्रकटाप्रकटा चेति लीला सेयं द्विधोच्यते॥"

अर्थात् प्रकट और अप्रकट, इस प्रकार लीलाके दो भेद हैं। श्रीकृष्ण लीलामय रूपसे सर्वत्र क्रीड़ा कर रहे हैं। वे भक्तोंके प्रति अनुग्रहपूर्वक प्रपञ्चों द्वारा प्रकटित हो कर जो लीला विस्तार करते हैं, उसीका नाम प्रकटलीला है। अप्रकट लीला प्रपञ्चके प्रत्यक्ष-बहिर्भूत है। श्रीकृष्णकी लीला नित्य और अनन्त है। इन अनन्त लीलाओंमें ऋषिगण और प्रेमिक भक्तगण सर्वरसमाधुर्यमयी रासलीलाको ही सार समझते हैं। यहां तक, कि रसिकेन्द्रमौलि स्वयं श्रीकृष्णने भी रासका माहात्म्य कीर्त्तन किया है—

"सन्ति यद्यपि मे प्राज्या लीलास्तास्ता मनोहराः।
नहि जाने स्मृते रासे मनो मे कीदृशं भवेत्॥"

यद्यपि मेरी सैकड़ों मनोहर लीलाएं हैं, किन्तु रासकी बात याद आते ही मुझे भाव आ घेरता है, कि मैं उसे स्वयं नहीं समझ सकता। तोषिणीके टीकाकार श्रीपाद सनातन गोस्वामीने भी श्रीमद्भागवतका रासपञ्चाध्यायके एक श्लोककी व्याख्यामें इस उक्तिका अनुसरण किया है। वह श्लोक यह है:—

"अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रितः।
भजते तादृशी क्रीड़ा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥"

इस श्लोकके "तत्परो भवेत्" वाक्यको टीका इस प्रकार की गई है:—

"तस्मात्तादृशीः क्रीड़ा असौ भजते या श्रुत्वापि स्वयमपि तत्परो भवेत् यदा यदा शृणोति तदा तदासक्तो भवति।"

अर्थात् वे ऐसी लीलाएं प्रकट करते हैं, कि जिनकी बात सुनते ही और की तो बात ही क्या, वे स्वयं भी तत्पर हो जाते हैं। इसलिए रासलीला सर्वलीलाओंकी चूड़ामणि है, यह बात इन वाक्योंसे स्पष्ट हो जाती है।

विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण और श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें रासलीलाका वर्णन है। श्रीमद्भागवतकी रासलीला ही सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। इस महापुराणमें रासलीलाका वर्णन पांच अध्यायोंमें किया गया है। समग्र भारतमें इस रासपञ्चाध्यायका समादर देखनेमें आता है। महाभारतसे जैसे उसका सार श्रीमद्भगवत्गीतामें विभिन्न भाष्यकारों द्वारा खींचा गया है और यही

ब्रज-समाजमें प्रचलित और पठित हो रहा है, उसी प्रकार रासपञ्चाध्याय भी प्रचलित है। श्रीपाद सनातन गोस्वामीका कहना है कि मनुष्यके शरीरमें जैसे इन्द्रियां अधिकतर आदरकी वस्तु हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत ग्रन्थ-देहमें यह रास-पञ्चाध्याय ही पांच इन्द्रियोंके समान है। हम पञ्चेन्द्रियों द्वारा जैसे जागतिक पदार्थोंका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, उसी प्रकार रास-पञ्चाध्याय-रूप अद्भुत पंचेन्द्रियों द्वारा श्रीभगवान्‌की परम माधुर्यमयी सर्व्व चमत्कारिणी रासलीलाका प्रत्यक्ष होता है। श्रीमद्भागवतोक्त रासलीलामें क्या क्या वर्णित हुआ है, इस विषयको श्रीपाद सनातनने एक श्लोक द्वारा कहा है:—

"वंशीसंजल्पितमनुरतं राधयान्तर्द्धिकेलिः।
प्रादुर्भूयासनमधिपटं प्रश्नकूटोत्तरञ्च ।
नृत्योल्लासः पुनरपि रहःक्रीड़नं वारिखेला
कृष्णारण्ये विहरणमिति श्रीमती रासलीला ॥"

(तोषिणी)

अर्थात्—वंशीध्वनि, श्रीकृष्ण और गोपाङ्गनाओंका कथोपकथन, रमण, श्रीराधाके साथ अन्तर्धानकेलि, श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव, गोपिओं द्वारा दिए हुए वसन पर उपवेशन, गोपिओंके पृष्ट कूट प्रश्नका उत्तर दान, नृत्योल्लास, रहःक्रीड़ा, जलकेलि, यमुनाके तपोवनमें वनविहार इन सब विषयोंका वर्णन रासलीलामें किया गया है।

रास किसे कहते हैं। साधारणतः बहु नर्त्तकियोंका नृत्य विशेष ही रास कहलाता है। श्रीधरस्वामीने श्रीमद्भागवतकी टीकामें यही बात कही है—"रासो नाम बहुनर्त्तकीयुक्ते नृत्यविशेषः।" रासका शास्त्रीय लक्षण यह है—

"नटेर्गृहीतकण्ठीनां अन्योन्यात्तकरश्रियाम्।
नर्त्तकीनां भवेद्रासो मण्डलीभूयो नर्त्तनम्।

अर्थात्—नटोंने जिनका कण्ठ ग्रहण किया है और जो एक दूसरेका हाथ पकड़ कर कर शोभा विस्तारपूर्व्वक नृत्य करती हैं, ऐसी नर्त्तकियोंका मण्डलाकार नृत्यका नाम ही रास है।

श्रीपाद बिल्वमङ्गलने रासका जो वर्णन किया है, श्रीपाद गोस्वामीने अपनी तोषिणी-टीकामें उसे उद्धृत करके उसकी परिस्फुट व्याख्या की है, वह पद्य य हैः—

"अङ्गनामङ्गनामन्तरा माधवो
माधवं माधवं चान्तरेणाङ्गना।
इत्यमाकल्पितमण्डले मध्यगः
संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः ॥"

अर्थात्—एक एक ब्रजाङ्गनाके अन्तरमें एक एक माधव और एक एक माधवके अन्तरमें एक एक ब्रजाङ्गना, इस प्रकार मण्डलबद्ध हो कर देवकीनन्दन वेणु बजाने लगे।

कृष्णको प्रियतमागण कबरी और काञ्चीको ग्रन्थी दृढ़तासे बांध कर पद-विन्यास, करचालन, सस्मित भ्रू विलास, देहके मध्यभागको चञ्चल करती हुई नृत्य करने लगीं इससे कुचपट चञ्चल और गण्डस्थलके कुण्डल दोदुल्यमान होने लगे, छोटे छोटे मोतियोंकी भांति पसेवकी बूंदें मुखकमलको शोभित करने लगीं। मेघके शरीर पर बिजलीकी रेखाकी भांति गोपीगण शोभाको प्राप्त हुईं। यही रासनृत्य है।

श्रीमद्भागवतके अन्यतम टीकाकार श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्तीने लिखा हैः—

"नृत्यगीतचुम्बनालिङ्गनादीनां रसानां समूहो रासस्तन्मयी या क्रीड़ा सा रासक्रीड़ा।"

इससे मालूम होता है, कि नृत्यगीत, चुम्बन, आलिङ्गन आदि रससमूह ही रास है। केन्दुबिल्वके अमरकवि श्रीजयदेवने रासका जो चित्र दिया है, वह भी इसी प्रकारका है। यथा—

"करतलतालतरलवलयावलिकलित कलस्वनवंशे।
रासरसे सहनृत्यपरा हरिणा युवती प्रशंसे ॥
श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम्।
पश्यति सस्मित चारुपरामपरामनुगच्छति रामाम् ॥"

यद्यपि इन समस्त वाक्य और पद्यों द्वारा रास शब्दकी व्याख्या की गई है, किन्तु जो रासका उत्कर्ष और माहात्म्य सात्त्विक पुराणोंमें एकतानसे उद्घोषित हुआ है, जो रासलीला आत्माराम मुनिगणों एवं सहस्र सहस्र अमलात्मा परमहंसोंकी नियत पाठ्य और नित्य ध्येय है, उसका अर्थ केवल नृत्य-विशेषमें ही पर्यवसित होनेसे साधारणके चित्तमें स्वतः ही एक प्रकार सन्देहका उद्रेक

होता है। इस प्रकार नृत्यकी इतनी महिमा क्यों गाई गई? और उस महिमामें आकृष्ट हो कर गृहत्यागी उदासी संन्यासी तक रासलीला सुननेके लिए इतने व्यग्र क्यों होते हैं तथा उसे परम साध्य क्यों समझते हैं? इससे तो यही मालूम होता है कि यह नृत्य ऐसा वैसा नृत्य नहीं है। जिस नृत्यके मधुर स्पन्दनसे यह विशाल विश्वब्रह्माण्ड माधुर्य-तरंगोंसे संकीर्तित हो रहा है; नील आकाशमें चन्द्रमा हंस रहा है, वसन्तके कुसुमकाननमें सुषमाकी केलिनिकेतन कुसुमकलिकाएं प्रस्फुटित हो रही हैं, वायु मधुर वहन कर रही है, सिन्धुसमूह मधु क्षरण कर रहा है, औषधिवर्ग मधु प्रदान कर रहा है, दिवस और रजनी मधुमय अनुमित हो रही हैं, आकाश मधुमय मालूम हो रहा है,—रास-नृत्य ऐसा नृत्य है—उस प्रेमरसमयका नृत्य है—आनन्द-चिन्मय रससे प्रतिभावित अपनी आनन्द-शक्ति-स्वरूपिणियोंके साथ प्रेमरसानन्दघन श्रीकृष्णका नृत्य है। इसीसे श्रीपाद सनातन गोस्वामीने "रासोत्सव" शब्द-की व्याख्यामें रास शब्दकी जो व्याख्या की है, इस प्रकार है—

'रासः—परमरसकदम्बमयो व्यापारविशेषः।'

दूसरे स्थान पर लिखा है:—

"रासः—प्रेमरसपरिपाकविलासविशेषात्मकः क्रीड़ाविशेषः।'

शास्त्रोंमें अनेक स्थलों पर अनेक प्रकारसे रस शब्दकी व्याख्या देखनेमें आती है। पदार्थविज्ञान, वैद्यकशास्त्र, साहित्य और धर्मशास्त्रमें सर्वत्र ही इस शब्दका बहुल प्रयोग पाया जाता है। धर्मशास्त्रमें निहित रस शब्दके वाच्यपदार्थकी व्याख्या होनेसे अतएव सभी शास्त्रोंके रस शब्दकी व्याख्या व्यक्त हो जाती है। व्याकरण कहता है—"रस्यते आस्वाद्यते इति रसः।" इस प्रकार व्युत्पादन आस्वादन अर्थका द्योतक है। कटु, अम्ल, मधुर आदि षट्रस इसके वाच्य हैं। व्याकरण और भी एक प्रकारसे रस शब्दकी व्युत्पादन करता है—"रसतीति रसः।" अर्थात् जो रसयुक्त करते हैं, इस अर्थमें रस।

भक्तिरसामृतसिंधुमें रतिरसादिका विचार किया गया है। उसमें शृङ्गार या उज्ज्वल रसकी श्रेष्ठतमता कीर्तित हुई है। इस उज्ज्वल रसको ही श्रीपाद सना-तनने परमरस कहा है। यह उज्ज्वल रसमय व्यापार-विशेष ही रास है। शृंगाररस या उज्ज्वलरस अप्राकृत है, यह जड़जगत्में, ज्ञानमय जगत्में या विज्ञानमय जगत्में असम्भव है। साक्षात् चिन्मयतत्त्वमें भी उज्ज्वलरसका लेशाभास देखनेमें नहीं आता। मधुर भजनमें जो भक्त सिद्ध हो गये हैं, उन्हींके चित्तमें इस परमरसकी स्फूर्त्ति होती है। इसलिए भगवान्की रासलीलामें उन्हें ही माधुर्यका स्वाद मिलता है। अत-एव प्रेमरस परिपाकमें प्रेमरसमय श्रीभगवान् अपनी ह्लादिनी-शक्ति-स्वरूपिणी आनन्द चिन्मयरस-प्रतिभावित अपनी प्रतिबिम्ब-स्थानीया गोपियोंके साथ विलास-विशेषात्मक जो क्रीड़ाविशेष प्रकट करते हैं, उसीका नाम रास है। श्रीमद्भागवतीय रासपञ्चाध्यायके एक पद्यकी टीकामें श्रीपाद सनातनने उक्त प्रकारकी व्याख्या की है। वह पद्य यहां दिया जाता है—

"रेमे रमेशो व्रजसुन्दरिभि-
र्यथार्भकः स्व प्रतिबिम्बविभ्रमः॥"

शिशुगण जिस प्रकार अपने प्रतिबिम्बके साथ खेला करते हैं, रमेश और व्रजसुन्दरियोंने भी उसी प्रकार रमण किया था। उक्त पद्यकी टीकामें सनातन-गोस्वामी-ने लिखा है:—

"असौ प्रेमवशतास्वभावेनतन्मयक्रीड़ासक्तः सन् स्वरूपशक्तित्वेन स्वप्रतिमूर्त्तित्वात् प्रतिबिम्बस्थानीयाभि-स्ताभिः सह रेमेः।"

अर्थात्—लीलारसमय श्रीकृष्ण स्वभावतः ही प्रेमवश है, इसलिए वे सर्वदा ही प्रेमक्रीड़ामें अनुरक्त रहते हैं। वे प्रेमभावसे अपना स्वरूपशक्ति द्वारा अपनी प्रतिमूर्त्ति-से उद्गत प्रतिबिम्बस्थानीया व्रजसुन्दरियोंके साथ रमण करते हैं।

इसीसे समझा जाता है, कि रास शब्दका गूढ़मर्म प्राकृत जगत्-में व्याख्यात होनेका नहीं—यह इस जगत्-की क्रीड़ा नहीं—इस जगत्का भाव्य भी नहीं, वह तो आनन्दमय जगत्की ही प्रेमानन्दमय अतिचमत्कार क्रीड़ा-विशेष है। यदि ऐसा न होता, तो क्या आत्मा-

राम मुनिगण रामलीला श्रवण करनेके लिए उत्कण्ठित होते ।

रास शब्दका और भी एक निगूढ़ मर्म है। शास्त्रों-से छिपा नहीं है, कि रसश्रुति नामक कई एक श्रुतियां हैं। रस ही परब्रह्म है, यही उन श्रुतियोंका अभिप्राय है।*

पूर्णब्रह्म सनातन रसस्वरूप हैं, ये पूर्णब्रह्म सनातन स्वयं श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण ही अखिल रसामृतमूर्त्ति हैं। इस रसराज रसिकशेखर रसपरमब्रह्मकी प्राप्ति-के लिए चिदानन्दरसमयी जो क्रीड़ाविशेष है, वही रास है। इसीलिए रास नारायणके नाभिसे उत्पन्न ब्रह्माके लिए भी दुर्लभ है, यहां तक, कि रास-रस-रसिकेन्द्र-मौलिकके हृदयमें नियत विहार करनेवाली साक्षात् लक्ष्मी भी रासकी अधिकारिणी नहीं हैं। इसीसे इस बातका आभास पाया जाता है, कि रासलीला किस उच्चतम तत्त्वमें प्रतिष्ठित है। इसीलिए सूक्ष्मदर्शी भक्तप्रवर श्रीभागवत-व्याख्याता श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीने लिखा है—

"शास्त्रबुद्धिविवेकादैरपिदुर्गममीक्षते ।
गोपीनां रसावर्त्तोऽयं तेषामनुगतीर्विना ।"

अर्थात्—रास, आनन्दचिन्मयरस प्रतिभाविता गोपियोंके लिए रसावर्त्त है, उनकी समस्त प्रकार अनु-मतियोंके सिवा शास्त्रबुद्धि और विवेकादि द्वारा रासका मर्म अन्य कुछ भी नहीं समझा जा सकता ।

रासयात्राप्रयोग ।

कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन इसका अनुष्ठान किया जाता है। पूर्णिमाके एक दिन पहले हविष्यान्न भोजन करना चाहिए, बादमें पूर्णिमाके दिन रात्रिको कल्पवृक्षका निर्माण कर उत्तर मुख हो बैठ कर दो बार आचमन करना चाहिए। पश्चात् स्वस्तिवाचन करके "सूर्य सोमो" इत्यादि मंत्र पढ़नेके बाद संकल्प करना चाहिए। यथा—"विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुके मासे शुक्ले पक्षे पौर्णमास्यां तिथौ विष्णुलोकाधिकरणककुल सहितामोदमानत्वकामः श्रीराधाकृष्णपूजारसोत्सवकर्माहं करिष्ये।" पश्चात् संकल्पसूक्त पढ़ कर सामान्यार्घ्य, आसन-शुद्धि और भूत-शुद्धि तथा न्यासादिन्यास करना चाहिए।

अनन्तर गणेशादि देवताओंकी पूजा करके मूल-पूजा आरम्भ करनी चाहिए। कूर्ममुद्रा द्वारा पुष्प ग्रहण करके श्रीकृष्णका ध्यान करना चाहिए। ध्यान करनेके बाद मानसोपचारसे पूजा, उसके बाद शङ्खसे विशेषार्घ्य संस्थापन करके पीठपूजा करनी चाहिए।

पीठ-देवता इस प्रकार हैं:—आधारशक्ति, प्रकृति, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, क्षीरसमुद्र, श्वेतद्वीप, मणिमण्डल, कल्पवृक्ष, मणिवेदिका, रत्नासहासन, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य, अनन्त, पंपद्म, अं सूर्यमण्डल द्वादशकलात्मन्, उं सोममण्डल षोडशकलात्मन्, मं वह्निमण्डल दशकलात्मन्, सं सत्त्व, रं रजस्, तं तमस, आं आत्मन्, पं परमात्मन्, ह्रीं ज्ञानात्मन्, विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, सत्या, ईशाना, अनुग्रहा। इन शब्दोंके आदिमें 'उं' और अन्तमें 'नमः' शब्द तथा शब्दोंमें चतुर्थी विभक्ति जोड़ कर पूजा करनी चाहिए; जैसे—"ॐ आधारशक्तये नमः" इत्यादि। पश्चात् "ॐ भगवते विष्णवे सर्व्व-भूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मने संयोगयोगपीठात्मने नमः' कह कर पूजा की जाती है। पुनः ध्यान करके आवाहन मन्त्र पढ़ कर आवाहनी इत्यादि ६ मुद्राएं दिखानी चाहिए।

अनन्तर कृताञ्जलि हो कर कहना चाहिए कि "आव-रणं ते पूजयामि" इस प्रकार अनुज्ञा ग्रहण करके आव-रण देवताओंकी पूजा करनी चाहिए। यथा—वेणु, कौस्तुभ, वनमाला, मकरकुण्डल, श्रीकृष्ण, वासुदेव, नारायण, देवकीनन्दन, यदुश्रेष्ठ, वामन, राघव, असु-रान्तक, भारवाही और धर्मसंस्थापक। इन सब आवरण-देवताओंकी "प्रणवादि नमोऽन्त" मन्त्र द्वारा पूजा की

* योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं:—
"वृक्षोषधितृणाद्या रसरूपेण तिष्ठति ।'
श्रीभगवान् गीतामें कहते हैं:—
"रसोऽहमप्सु कौन्तेय ।"
इसके सिवा श्रुति और भी कहती है:—
"रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ।"

आती है। उसके बाद श्रीमती राधिकाका ध्यान करके उनकी पूजा करनी चाहिए।

पश्चात् मानसोपचारसे पूजा और शङ्खसे अर्घ्य स्थापनादि करके पुनः ध्यान करो। फिर यथाविधान आवाहनादि करके षोड़शोपचारसे पूजा करो। पूजाका मन्त्र:—"ॐ ह्रीं राधिकायै नमः।" राधिका-पूजाके षोड़शोपचारके अलग अलग सोलह मंत्र है।

इसके बाद प्रणव द्वारा पुष्पाञ्जलि दे कर अष्टसखियों-की पूजा करनी चाहिए। आठ सखियां ये हैं— १ माला-वती, २ रूपमाधवी, ३ रत्नमाला, ४ सुशीला, ५ शशि-कला, ६ पारिजाता, ७ पद्मावती और ८ सुन्दरी। इन अष्ट सखियोंकी पूजा करनेके बाद स्तवपाठ और होम करना चाहिए।

अनन्तर उस कल्पवृक्षके स्थान पर कृष्णकी प्रतिमा और राधाकी प्रतिमा स्थापन करके श्रीमद्भागवतोक्त रासपञ्चाध्यायका पाठ करना चाहिए।

पश्चात् दक्षिणाके बाद अच्छिद्रावधारण करके नाना प्रकारका उत्सवोंमें रात्रि व्यतीत करनी चाहिए। इन सब उत्सवोंमें भगवान श्रीकृष्णने जो लीलाएं की थीं, उन्हींका अनुष्ठान होना चाहिये।

रास (अ० स्त्री०) घोड़ेको लगाम, बागडोर।

रास (हिं० स्त्री०) १ ढेर, समूह। २ ज्योतिषकी राशि। राशि देखो। ३ जोड़। ४ गोद, दत्तक। ५ चौपायोंका झुंड। ६ एक छन्दका नाम जिसके प्रत्येक चरणमें ८+८+६ के विरामसे २२ मात्राएं और अन्तमें सगण होता है। ७ एक प्रकारका धान जो अगहनमें तैयार होता है। इसका चावल सैकड़ों वर्षों तक रखा जा सकता है। ८ सूद, ब्याज। ९ अनुकूल, मुआफिक।

रासक (सं० पु०) हास्यरसोद्दीपक एक प्रकारका नाटक। यह नाटक एक अंकमें सम्पूर्ण होगा। इसके अभिनेता पांच व्यक्ति होंगे। यह नाना प्रकारकी भाषा तथा भारती और कैशिको रीतिसे वर्णित होगा। इसमें सूत्रधारको आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यह नाटक वीथि, अङ्ग और कलायुक्त होगा। नान्दी शिष्टार्थ युक्त, नायिका विख्यात तथा नायक मूर्ख होंगे। किसी किसीका कहना है, कि इसके प्रति मुखपे सन्धि रहेगी। 'मेनकाहित' नामसे एक संस्कृत रासकका नाम साहित्यदर्पणमें आया है। (साहित्यद० ६।५४८) नाटक शब्द देखो।

रासचक्र (सं० पु०) राशिचक्र देखो।

रासताल (सं० पु०) १३ मात्राओंका एक ताल जिसमें ८ आघात और ५ खाली होती हैं।

रासधारी (सं० पु०) वह व्यक्ति या समाज जो श्री-कृष्णकी रासक्रीड़ा अथवा अन्य लीलाओंका अभिनय करता है। ये लोग एक प्रकारके व्यवसायी होते हैं जो घूम घूम कर इस प्रकारके अभिनय करते हैं। इनके नाटकमें गीत, वाद्य, नृत्य और अभिनय आदि सभी होते हैं।

रासन—युक्त प्रदेशके बान्दा जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह एक गण्डशैलके पादमूलमें अवस्थित है। पर्वतकी तराईमें एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष दिखाई पड़ता है। इस दुर्गके बीच एक पुराना मन्दिर पड़ा हुआ है। अभी इसमें लिङ्गमूर्त्ति नहीं है इसलिये कोई यहां पूजा करने नहीं आते। इसको गठन और प्राचीन शिल्पादि प्रशंसाके योग्य है। गांवके चारों तरफ बड़े बड़े स्तूप इधर उधर पड़े हैं। स्थानीय लोग कहते हैं, कि यहां प्राचीन राजवंशी नगर विद्यमान था।

१५वीं सदीमें वल्लभदेव जीव नामक एक राजवंशी-राजने दिल्लीश्वरके सेनादलके साथ लड़ाई की थी। युद्धमें जब राजा हार गये, तब पठानोंने नगर लूटा और घरों में आग फूंक दी जिससे समूचा गांव छार-खार हो गया। इसके बाद रामकृष्ण नामक एक व्यक्तिने प्राचीन राजवंशी दुर्ग और नगरके पास रासन गांव बसाया। सम्राट् अकबर शाहके समय यह स्थान एक परगनेका सदर गिना जाता था।

रासन (सं० त्रि०) १ स्वादिष्ट, जायकेदार। (पु०) २ आस्वा-दन, स्वाद लेना।

रासनशीन (फा० वि०) गोद बैठाया हुआ, दत्तक।

रासना (सं० पु०) रास्ना नामको लता जिसका व्यवहार औषधिके रूपमें होता है। रास्ना देखो।

रासनृत्य (सं० पु०) गतिके अनुसार नृत्यका एक भेद।

रासपूर्णिमा (सं० स्त्री०) मार्गशीर्षकी पूर्णिमा। इस दिन श्रीकृष्णने रासक्रीड़ा आरम्भ की थी।

रासभ (सं० पु०) रासते शब्दायते इति रास-(रासिवल्लिभ्याञ्च। उण् ३।१२५) इति अभच् । १ गर्दभ, गधा। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि ब्रह्माके दोनों पादोंसे इसकी उत्पत्ति हुई है।

"पद्भ्यामश्वान् समातङ्गान् रासभान् शशकान् मृगान्।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव नानारूपाश्च जातयः॥"
(मार्क०पु० ४८।२६)

२ अश्वतर, खच्चर। (भारत १।१४५।७) ३ एक दैत्य जिसे ब्रजके तालवनमें बलदेवजीने मारा था। यह गर्दभके रूपमें ही रहा करता था।

रासभधूसर (सं० त्रि०) गधेके समान रंगवाला।

रासभवन्दिनी (सं० स्त्री०) अरबदेशका जूही फूल।

रासभसेन (सं० पु०) एक राजाका नाम।

रासभारुण (सं० त्रि०) गधेके समान अरुणवर्ण या लाल।

रासभी (सं० स्त्री०) रासभ स्त्रियां ङीप्। गर्दभी, गधी।

रासभूमि (सं० स्त्री०) वह स्थान जहां रासक्रीड़ा होती है, रास करनेका स्थान।

रासमण्डल (सं० क्ली०) रासस्य मण्डलं। १ श्रीकृष्णके रासक्रीड़ा करनेका स्थान। २ रासक्रीड़ा करनेवालोंका समूह या मंडली, रास-करनेवालोंका वृत्ताकार समूह। ३ रासधारियोंका समाज। ४ रासधारियोंका अभिनय।

रासमण्डली (सं० स्त्री०) रासधारियोंका समाज या टोली।

रासयात्रा (सं० स्त्री०) रासस्य यात्रा उत्सवः। १ पुराणानुसार एक प्रकारका उत्सव जो कार्त्तिकी पूर्णिमाको होता है। कार्त्तिकी पूर्णिमामें श्रीकृष्णने रासक्रीड़ा की थी इसलिये इस तिथिमें उनके उद्देश्यसे उत्सव करना होता है। रास देखो।

शक्ति-विषयमें रासयात्राका विधान देखनेमें आता है। चैत्र-पौणमासीमें परमाराध्याशक्ति-देवीका रासयात्रोत्सव करनेकी विधि है।

रासमण्डल तैयार कर भैरवी-भैरवकी एक साथ पूजा तथा उन्हें एकत्र कर कुम्हारके चाककी तरह घुमाना होगा। इस समय नाना प्रकारके बाजे बजा कर उत्सव करना होता है। (रामेश्वरतन्त्र ४४ पटल)

२ शाक्तोंका एक उत्सव जो शक्तिके उद्देश्यसे चैत्रकी पूर्णिमाको होता है।

रासलीला (सं० स्त्री०) १ वह क्रीड़ा या नृत्य जो कृष्णने गोपियोंके साथ ले कर शरत् पूर्णिमाको आधी रातके समय किया था। २ रासधारियोंका कृष्णलीला-सम्बन्धी अभिनय।

रासविलास (सं० पु०) रासक्रीड़ा।

रासविहारी (सं० पु०) श्रीकृष्णचन्द्र।

रासायन (सं० त्रि०) रसायनसम्बन्धी, रसायनका।
रसायन देखो।

रासायनिक (सं० त्रि०) १ रसायन शास्त्रसम्बन्धी। २ रसायनशास्त्रका ज्ञाता।

रासायनिकशाला (सं० स्त्री०) वह स्थान जहां रसायन-शास्त्र-सम्बन्धी परीक्षाएं या प्रयोग होते हों।

रासि (सं० स्त्री०) राशि देखो।

रासी (हिं० स्त्री०) १ तीसरी बार खींची हुई शराब जो सबसे निकृष्ट समझी जाती है। २ सज्जी। (वि०) ३ नकली या खराब।

रासु नृसिंह — दो बंगाली बंदीजन। ये दोनों भाई एक साथ मिल कर कविका गान गा कर एक नामसे प्रसिद्ध हुए थे। फरासडांगाके अन्तर्गत गोन्दलपाड़ामें ये रहते थे।

रासेरस (सं० पु०) रासे क्रीड़ाविशेषे यो रसः अलुक्-समासः। १गोष्ठी। २ रासक्रीड़ा। ३ शृंगार। ४ रस-सिद्धि। ५ षष्ठीजागरका। ६ रसावास। ७ उत्सव। ८ परिहास, हंसी मजाक।

रासेश्वरी (सं० स्त्री०) रासस्य ईश्वरी। राधा।
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्ण-जन्मख० १७ अ०)

रासो (हिं० पु०) किसी राजाका पद्यमय जीवन-चरित, विशेषतः वह जीवन-चरित जिसमें उसके युद्धों और वीरता आदिका वर्णन हो।

रास्त (फा० वि०) १ सीधा, सरल। २ अनुकूल, मुताबिक। ३ सही, दुरुस्त। ४ उचित, वाजिब।

रास्तगो (फा० वि०) सच बोलनेवाला, सत्यवक्ता।

रास्तबाज (फा० वि०) सच्चा, निष्कपट।

रास्तबाजी (फा० स्त्री०) सचाई, सत्यता।

रास्ता (फा० पु०) १ मार्ग, राह। २ उपाय, तरकीब। ३ प्रथा, रीति।

रास्ना (सं० स्त्री०) रस्यते इति रस आस्वादने (रास्ना-सास्ना स्थूणा-वीणाः। उण् ३।१५) इति नप्रत्ययेन साधुः। १ स्वनामाख्यात लताविशेष। पर्याय—नाकुली, सुरसा, सुगन्धा, गन्धनाकुली, नकुलेष्टा, भुजङ्गाक्षी, छत्राकी, सुवहा, रस्या, श्रेयसी, रसना, रसा, सुगन्धी, मूला, रसाढ्या, अतिरसा, द्रोणगन्धिका, सर्पगन्धा, सर्पाक्षी, पलङ्कषा। (जटाधर)

इसके देशी नाम हिन्दी—सरहाती, बंगला—गन्धनाकुली, रास्ना, तामिल—किरि-पुरन्दर, तेलगू—चेट्ट, यवद्वीप—वाजो उलार, सिंगापुर—दाल काटिया, येरिया, मेरिड। यह लता आसामप्रदेशके दो हजार फुट ऊंचे स्थानमें, खसियाशैल, सिंहल, यवद्वीप, सुमात्रा तथा अंडामान और निकोबर द्वीपमें बहुतायतसे उगती है।

इसका गुण गुरु, तिक्त, उष्ण, विष, वात, अस्रदोष, कास, शोफ, कम्प, श्लेष्मनाशक तथा पाचन माना गया है। राजनिघंण्टके अनुसार रास्ना तीन प्रकारकी है, मूल, पत्र और तृण। उनमेंसे मूल और पत्र श्रेष्ठ और तृण रास्ना मध्यम समझी गई है। (राजनि०)

राजवल्लभके मतसे रास्ना शोथ, आम और वातनाशक तथा भावप्रकाशके मतसे सर्प, लूता, वृश्चिक और विष, ज्वर, कृमि और व्रणनाशक समझी गई है।

औषधविशेष, एलापर्णी नामकी ओषधि। पर्याय—एलापर्णी, सुवहा, युक्तरसा। इसका गुण तिक्त, गुरु, उष्ण, कफ और वातनाशक, शोथ, श्वास, वायु, अस्रदोष, वात, शूल, ज्वर, कास और ज्वरादिनाशक माना गया है। (भावप्र०) ३ रशना, जीभ। ४ कद्रुपत्नियोंमेंसे एक। (अथर्ववेद १।१६ ११)

रास्नाका (सं० स्त्री०) छोटी बच्चनी।

रास्नागुग्गुलु (सं० स्त्री०) वातव्याधि रोगकी एक औषध। इसके बनानेका तरीका—रास्ना ८ तोला तथा गुगुल १० तोला, इनको एक साथ पीस कर घीसे गोली बनानी होती है। इसका सेवन करनेसे वातव्याधि रोगाधिकारमें गृध्रसी नामक रोग बहुत जल्द प्रशमित होता है। (भावप्र० वातव्याधिरोगाधिकार)

रास्नातैल (सं० क्ली०) तैलौषधभेद। (चरकचि० २८ अ०)

रास्नादशमूल (सं० क्ली०) वातव्याधि रोगाधिकारमें कषाय औषधविशेष। इसके बनानेका तरीका—रास्ना, सोंठ, वायविडंग, रेंड़ीकी जड़, त्रिफला, दशमूल तथा काला अनंतमूल, इन सबोंको एकत्र कर काढ़ा बनावे। इसका सेवन करनेसे वातरोग, शिरोरोग तथा ऊरुस्तम्भ आदि वातव्याधि दूर होती है। (भावप्र० वातव्याधिरोगाधि०)

रास्नादिक्काथ (सं० पु०) क्वाथौषधविशेष। यह दो प्रकारका होता है—मध्यम रास्नादिक्काथ तथा महारास्नादिक्काथ।

मध्यमरास्नादिक्वाथ।

इसकी प्रस्तुत प्रणाली—रास्ना, रेंड़ीकी जड़, शतमूली, झिंटी, दुरालभा, अडूस, गुलंच, देवदारु, अतिविषा, हरीतकी, शठी, नागरमोथा, सोंठ, इन सबोंको मिला कर २ तोला, आध सेर पानीमें सिद्ध कर जब आध पाव पानी बच जाय, तो उतार ले और रेंड़ीके तेलके साथ पीवे। इससे आमवात, वातवेदना, कमर तथा पीठ और जांघकी वेदना जाती रहती है।

महारास्नादिक्वाथ।

इसके बनानेका तरीका—रास्ना, रेंड़ीकी जड़, अडूस, दुरालभा, शठी, देवदारु, नागरमोथा, सोंठ, अतिविषा, हरीतकी, गोखरू, मौरी, धनिया, पुनर्णवा, अश्वगन्धा, गुलंच, पिप्पली, वृद्धदारक, शतमूली, वच, झिंटी, चव्य, वृहती, कंटकारी, इन सबोंका प्रत्येक सम भाग, रास्ना दो गुनी, यह काढ़ा आठ भाग कर दोष और रोगके अनुसार सोंठचूर्ण, बावलादिचूर्ण मिला कर पान करे। इससे सब तरहका वातरोग, आनाह, शरीरका कांपना, पक्षाघात आदि समस्त वातरोग अतिशीघ्र छूटते हैं। इसके अतिरिक्त योनिव्यापत, शुक्रदोष, पुरुषोंका मेढ़गतदोष और स्त्रियोंका वन्ध्यादोष दूर होता है। इसके सेवनसे स्त्रियोंका रजोदोष शान्त होता और वे गर्भ धारण करती हैं। राजर्षि प्रजापति इस औषधके आविष्कर्ता हैं। (भावप्र० वातव्याधिरोगाधि०)

रास्नादिलौह (सं० क्ली०) राजयक्ष्मरोगाधिकारमें औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—रास्ना, अश्वगन्धा, कपूर, भेकपर्णी, शिलाजतु, सोंठ, पीपल, मिर्च, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, चिता, मुता, विड़ंग, इन सबोंका बराबर

बराबर भाग ले कर थोड़ा लोहा मिला कर यह औषध बनाना पड़ता है। इसका सेवन करनेसे उपद्रवी यक्ष्मा, कास, स्वरभङ्ग, क्षत, क्षय आदि बहुत जल्द विदूरित होते हैं। (रसेन्द्रसारस० राजयक्ष्मारोगाधि०)

रास्नापञ्चक (सं० पु०) क्वाथौषधभेद। बनानेका तरीका—रास्ना, गुलंच, रेड़ीका मूल, देवदारु और सोंठ, सबोंको मिला कर २ तोला, आध सेर पानीमें सिद्ध करके जब आध पाव पानी बच रहे तो उतार लेना होता है। इस काढ़ेका सेवन करनेसे समूचे शरीरका आमवात छूटता है। (भावप्र० वातव्याधिरोगाधि०)

रास्नाव (सं० त्रि०) १ वेष्टित, घेरा हुआ। २ बन्धनयुक्त। (क्लो०) ३ बन्धन।

रास्नासप्तक (सं० पु०) क्वाथौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—रास्ना, गुलंच, देवदारु, गोखरू, रेड़ीकी जड़ और पुनर्णवा, इसके काढ़ेमें सोंठकी बुकनी डाल कर पीनेसे जङ्घा, ऊरु, पार्श्व, त्रिक और पृष्ठशूल नष्ट होते हैं।

(भावप्र० वातव्याधिरोगाधि०)

रास्निका (सं० स्त्री०) रास्ना।

रास्य (सं० क्लो०) १ प्राचीनकालका एक पात्र जिसमें यज्ञके समय घी रख कर दान किया जाता था। २ जुहू, पलाशकी लकड़ीका बना हुआ एक अर्द्ध चन्द्राकार यज्ञपात्र।

रास्पिन (सं० त्रि०) तारस्वरमें प्रशंसावाक्य प्रयोग करनेवाला।

रास्पिर (सं० त्रि०) होमाग्निमें हविर्दानार्थ जुहूधारी।

रास्य (सं० त्रि०) १ रासके योग्य। (पु०) २ श्रीकृष्ण।

राह (सं० पु०) राहु देखो।

राह (फा० स्त्री) १ मार्ग, पथ। २ नियम, कायदा। ३ प्रथा, रीति। ४ कोल्हूकी नाली। ५ रोहू देखो।

राहक्षति (सं० पु०) रहक्षतका गोत्रापत्य।

राहखर्च (फा० पु०) कहीं जानेके समय रास्तेमें होनेवाला खर्च, मार्गव्यय।

राहगीर (फा० पु०) मार्ग चलनेवाला, मुसाफिर।

राहचलता (हिं० पु०) १ रास्ता चलनेवाला, पथिक। २ कोई साधारण या तीसरा मनुष्य जिसका प्रस्तुत विषयसे कोई सम्बन्ध न हो, अजनबी।

राहचौरंगी (हिं० पु०) चौमुहानी।

राहज़न (फा० पु०) डाकू, लुटेरा।

राहज़नी (फा० स्त्री०) डकैती, लूट।

राहड़ी (हिं० पु०) एक प्रकारका घटिया कंबल।

राहत (अ० स्त्री०) आराम, सुख।

राहदारी (फा० स्त्री०) १ राह पर चलानेका महसूल, सड़कका कर। २ चुंगी, महसुल।

राहरीति (सं० स्त्री०) १ राह-रसम, लेन-देन। २ जान-पहचान, परिचय।

राहा (हिं० पु०) मिट्टीका वह चबूतरा जिस पर चक्कीके नीचेका पाट जमाया रहता है।

राहित्य (सं० क्लो०) मुक्त, विमुक्त।

राहिन (अ० पु०) रेहन रखनेवाला, बंधक रखनेवाला।

राही (फा० पु०) राहगीर, मुसाफ़िर।

राहु (सं० पु०) रह-त्यागे बहुलवचनात् उण्। १ त्याग। रहति गृहीत्वा त्यजति चन्द्रमिति रह-उण् (उण् १।१) २ ग्रहविशेष, राहुग्रह। पर्याय—तम, स्वर्भानु, सैंहिकेय, विधुन्तुद, अभ्रपिशाच, ग्रहकल्लोल, सैंहिक, उपप्लव, शीर्षक, उपराग, सिंहिकासूनु, कृष्णवर्ण, कबन्ध, असु, असुर।

विप्रचित्तिके औरस और सिंहके गर्भसे राहुका जन्म हुआ है। सिंहिकाके चौदह पुत्रोंमेंसे राहु सबसे बड़ा, बलिष्ठ और चन्द्र सूर्यको प्रमर्द्दन करनेवाला है।

"सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेश्चतुर्द्दश।
शम्बः शम्बलगात्रश्च व्यङ्गशाल्वस्तथैव च॥
राहुर्ज्येष्ठश्च तेषां वै चन्द्रसूर्यप्रमर्द्दनः।
इत्येते सिंहिकापुत्रा देवैरपि दुरासदाः॥"

(अग्निपु० प्रजापतिनामक सर्गाध्याय)

श्रीमद्भागवतमें लिखा है,—

राहु देवसभासे छिप कर अमृत पान करता था। चन्द्र और सूर्यने यह देख लिया और विष्णुको खबर दी। भगवान् विष्णुने सुदर्शनचक्र द्वारा उसका मस्तक काट डाला। पीछे अमृत शरीरसे प्लावित हो कर गिरनेसे यह मस्तक अमर हुआ था। चन्द्र और सूर्यने विष्णुसे कह दिया था, इस कारण राहु उन्हें ग्रास करता है।

(भागवत ८।९ अ०)

पुराणमें लिखा है,—राहु आ कर चन्द्रमाको ग्रास करता इससे ग्रहण लगता है। यह राहु स्कन्धच्युत दैत्यके शिररूपमें कल्पित है। इस पौराणिक उपाख्यान-के साथ वर्त्तमान वैज्ञानिकतत्त्वका समावेश करनेसे स्पष्ट ही जाना जाता है, कि पुराणज्ञ ऋषियों और आर्य ज्योतिर्विदोंने राहुके सम्बन्धमें जो अभिव्यक्ति प्रकाश की है, उसे किसी मतसे ही विज्ञानभित्तिने उलङ्घन नहीं किया है। हम लोग जिसको राहु और केतु कहते हैं, पञ्जिका-में वह राक्षसमुख और फणधर सर्परूपमें चित्रित है। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने उसीको Nodes कह कर उल्लेख किया है। Nodes शब्दका अर्थ ग्रन्थि है।

जिस विन्दुमें ग्रहों या धूमकेतुओंकी कक्षा (Orbit) सूर्यकक्षा (Ecliptic)-को अतिक्रम करती हुई जाती है, अर्थात् और भी गूढ़ अर्थ लगानेसे जहां किसी प्रधान ग्रहकक्षाके ऊपर उसको उपग्रह कक्षा काटती है, उसे Node कहते हैं।

जब कोई ग्रह उत्तराभिमुख गति हो कर इस प्रकार ग्रन्थिपात करता है, उसे Ascending node या Dragon's head कहते हैं तथा पाश्चात्य ज्योतिर्विद्गण ☊ इस प्रकारके सांकेतिक चिह्नसे वह प्रकाश किया करते हैं। सुतरां हम लोगोंके राहु और पाश्चात्य वैज्ञानिकके Ascending node जो एक है, वह चित्र और विवृतिसे प्रमाणित होता है। फिर जब कोई ग्रह दक्षिणकी ओर मुंह करके चलता है, तो वह Descending node, Dragon's tail कहलाता है। वह ☋ इस प्रकार सांकेतिक चिह्न द्वारा प्रकाश किया जाता है। इसलिये वह सर्पाकृति केतुचिह्नके साथ उतना असामञ्जस्य बोधक नहीं है।

प्रत्येक ग्रह ही एक समय सूर्यकक्षाको द्वादश राशिके बीच आवर्त्तनकालमें राहु और केतुका पातसम्बन्धीय संयोग बतलाता है तथा समूचे वृत्तके चारों तरफ एक बार आवर्त्तन करता है। सौरजगत्‌का ग्रह-उपग्रह आदि विभिन्न स्थानोंमें रहता है इसलिये राहु और केतुके विशेष वैपरीत्यका एकमात्र कारण है।

सूर्यकक्षा या दूसरी ग्रहकक्षाके साथ दूसरे किसी ग्रह या उपग्रह कक्षाका पतन होनेसे निर्दिष्ट ग्रन्थिस्थान-में जब उद्दिष्ट ग्रह उसी संयोगविन्दु पर आ कर उपस्थित होता है, तब उसके समसूत्रसे दूर देशमें अवस्थित दूसरे ग्रहमें छाया पड़नेसे ग्रहण लगता है।

ग्रहण शब्दमें सूर्य, चन्द्र तथा उपग्रहविशिष्ट वृहस्पति आदि ग्रहों और ग्रहणका विवरण लिखा है। यह सूर्य और चन्द्रमाका ग्रहण यन्त्रवेध द्वारा जान लिया जाता है। ग्रहण देखो।

ग्रहयोगतत्त्वमें लिखा है, कि—राहु मलयपर्वतजात, शूद्रवर्ण, बारह अंगुल परिमाण, काला वस्त्र पहना हुआ, सिंहवाहन, चतुर्भुज, खड्ग,शूल और चर्मधारी, सूर्यास्य है। इसके अधिदेवता काल, प्रत्यधिदेवता सर्प हैं। राहु चण्डालजाति, सर्पाकृति, अस्थिस्वामी और नैर्ऋत-दिगधिपति हैं।

नवग्रहस्तोत्रमें इसका रूप इस प्रकार देखनेमें आता है—

"अर्द्धकायं महाघोरं चन्द्रादित्यविमर्द्दकं।
सिंहिकायाः सुतं रौद्रं तं राहुं प्रणमाम्यहम्॥"
(नवग्रहस्तोत्र)

अर्द्धकाय, भयंकर आकृति, चन्द्र और सूर्यको पीड़ा देनेवाला तथा सिंहिकानन्दन है।

राहु पापग्रह है। कोई कोई राहुको ग्रहोंमें नहीं गिनते। राहु जिस ग्रहसे मिलता, उसीके अधीन हो कर उसी फलको अधिकता करता रहता है। फिर साधारणतः राहुका फल अशुभ है।

किसी किसीका कहना है, कि राहु और केतु कोई ग्रह नहीं हैं। पृथ्वी और चन्द्रकक्षाके उत्तर और दक्षिण संलग्न स्थानको राहु और केतु कहते हैं। चन्द्र-के यथासमयमें उक्त दो स्थानमें उपस्थित होनेसे पृथ्वी पर बड़ी शक्ति प्रकाश करते हैं, इसलिये वे ग्रहोंमें गिने गये हैं। राहु पापग्रह और अमङ्गलकारक है, लेकिन सिंहराशिमें तथा दशवें या ग्यारहवें घरमें शनि-युक्त होनेसे ऐश्वर्य और राज्यकारक समझा जाता है। दूब और चन्दन राहुके प्रिय है। राहुग्रह विरुद्ध होने पर उसकी शांतिके लिये गोमेदमणि धारण या दान प्रशस्त है। इसके अलावा गोमेदरत्न, अश्व, नीलवस्त्र, कम्बल, काले तिलका तेल, लोहेके बरतनमें काला तिल, यह सब वस्तु वस्त्र और दक्षिणाके साथ दान करनेसे राहुका दोष जाता रहता है।

राहुग्रहकी दृष्टिके संबंधमें भिन्न भिन्न मत देखा जाता है। किंतु राहुकी सिर्फ इतनी विशेषता है, कि मेषसे ले कर कन्या तक जिस किसी राशिमें वह रहता है वह शुभफल होता है। राहु जिस राशिके जिस अंशमें रहता है, उससे अधिक अंशमें उसकी पश्चाद्दृष्टि पड़नेसे वह शुभ तथा थोड़े अंशमें सम्मुख दृष्टि पड़नेसे वह अशुभ होता है।

लग्नादि द्वादशभावमें राहु रहनेसे निम्नलिखित फल होता है। मेषसे ले कर कन्या पर्यंत इन छः राशियोंके बीच किसी राशिका लग्न होने तथा वहां राहुके रहनेसे जातक अन्य ग्रहरिष्टिसे मुक्तिलाभ करता है। इसके विपरीत होनेसे राहु अशुभफलप्रद होता है।

धनस्थानमें जब राहु रहता है तथा उसके प्रति उसके अधिपतिकी दृष्टि पड़ती है, तो जन्म लेनेवाला प्रचुर धन उपार्जन करता है। या नहीं तो फजूल खर्चसे उसका धन नष्ट हो जाता है।

तृतीय स्थानमें राहु रहनेसे जातकका भाई मरता है। किन्तु यही राहु यदि तुंगी हो, तो मनुष्य पराक्रमशाली, पूज्य, ज्ञातिविरोधी और धनवान् होता है।

जन्मकालमें राहु तुङ्गस्थान गत हो कर चतुर्थस्थान-रहनेसे मनुष्य उत्तम घरमें वास करता और अच्छी सवारी पाता है। यदि यही राहु उक्त घरका मालिक देखे, तो वह व्यक्ति मित्रकी सहायतासे स्थावर सम्पत्ति हासिल करता है। पञ्चम स्थानमें जब राहु रहे, तो जातकका सन्तान विनष्ट होता है। परन्तु यही राहु तुङ्गस्थ और अधिपतिग्रह द्वारा देखे जाने पर सन्तान जीवित रहता तथा मानव बुद्धिमान् और सौभाग्यशाली होता है। षष्ठ स्थानमें राहु रहनेसे जातक शत्रु-जयी और सुखभोगी होता है। किन्तु प्रायः उसकी पहिली स्त्री मर जाती है। सप्तम स्थानमें अगर राहु रहे, तो प्रायः उसकी स्त्री मरती या वह हमेशा रोगसे पीड़ित रहती है। अष्टम स्थानमें राहुके रहनेसे मनुष्य रोगार्त्त, क्रूर-कर्मरत तथा विपदापन्न होता है।

मेषसे ले कर कन्या तक इन छः राशियोंमेंसे कोई राशि नवमस्थान होने तथा उसमें राहु रहनेसे मानव परम सौभाग्यशाली, भोगी और अनियत कर्मानुरक्त होता है। नवमस्थ राहु शुभक्षेत्रमें रहनेसे उसके अधिपति द्वारा देखने पर भी अच्छा फल होता है।

दशम स्थानमें राहु रहनेसे जातक कामुक, कर्त्तृ-स्वाभिमानी तथा उस राशिके अधिपति द्वारा दृष्ट होने पर मान्य और उच्चपदप्राप्त होता है, या नहीं तो पद पद पर कर्महानि और कलङ्क होनेकी सम्भावना रहती है।

एकादश स्थानमें अगर राहु रहे तथा उस राशिका अधिपति उस स्थानको देखे, तो जातक बहुमित्रयुक्त और नाना उपाय द्वारा धनसञ्चयी होता है। द्वादश स्थानमें राहु रहनेसे जातक दाम्पत्यसुखविहीन, अपव्ययी, शत्रुयुक्त और विनिन्दित होता है।

राहुका गोचरफल—राहु प्रायः डेढ़ वर्ष तक एक एक राशिका भोग कर दूसरी राशिमें जाता है। रवि आदि ग्रह वामावर्त्तमें भ्रमण करता रहता है, किन्तु राहु इसके विपरीत अर्थात् दक्षिणावर्त्तमें भ्रमण करता। केतु इसके ठीक सातवेंमें रहता है। राहु और केतु वक्रगति द्वारा दक्षिणावर्त्तमें १८ वर्ष, ७ मास, १८ दिन, १५ दण्डमें राशिचक्र परिभ्रमण करते हैं। इनकी दैनिक गति ३ कला ११ विकला है। ये प्रतिवर्ष १९ अंश, १९ कला, ४४ विकला राशिचक्रमें हट जाता और १ वर्ष ६ महीने, २० दिनमें एक एक राशि तै करते हैं।

राहु जन्मराशिमें उपस्थित होनेसे रोग और दुर्भावना, द्वितीयमें अर्थनाश, तृतीयमें सम्मान, चतुर्थमें बलहानि और दुर्भावनायुक्त, पञ्चममें मनःक्लेश और कार्यहानि, षष्ठमें शत्रुनाश और सुखवृद्धि, सप्तममें अशुभ, शत्रुभय, क्लेश, पीड़ा, अष्टममें रोगाक्रान्त और विपद्ग्रस्त, नवममें प्रवास, दशममें सम्मान और पदवृद्धि तथा एकादशमें मित्र और अर्थलाभ और द्वादशमें रोग, शोक, बन्धबन्धन और भय होता है।

राहुका शयनादि द्वादशभावफल।

जन्मकालमें राहुके शयनभावमें रहनेसे नाना प्रकारका अशुभ तथा जन्म समयमें मिथुन, सिंह, कन्या अथवा वृष राशिमें रहनेसे उक्त फल न हो कर शुभ होता है।

राहुके उपविष्ट भावमें रहनेसे कुष्ठादि रोग और धनक्षय, नेत्रपाणिभावमें रहनेसे चक्षुरोग, अधार्मिक, क्रूर, बहुभावो तथा शैशवकालमें रोगाक्रान्त होता लेकिन

नेत्रपाणिभावस्थ राहु लग्नमें या सप्तममें रहनेसे सब प्रकारका दुःख होता रहता है।

राहु जब प्रकाशनभावमें रहे, तो धनवान्, धार्मिक, नियत विदेशवासी, उत्साहान्वित, सात्त्विक तथा राजकर्मचारी होता; किन्तु प्रकाशनभावस्थ राहु कर्कट किंवा सिंह राशिमें रहनेसे शिरश्छेदकर योग होता है।

राहुके गमनेच्छाभावमें जिसका जन्म होता है, वह आदमी बहु पुत्रविशिष्ट, अतिशय धनवान्, पण्डित, गुणवान्, दाता तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ गिना जाता है।

राहुके गमनभावमें जन्म होनेसे जातक किसी जीवका दण्डाघात चिह्नविशिष्ट, अतिशय क्रोधी, खलस्वभाव, परनिन्दुक, सर्पभीत तथा दुर्द्धर्ष होता तथा नाना प्रकारके रोगोंके लिये उसका धन नष्ट होता है और उसकी स्त्री, बन्धु और धनक्षय होता है।

राहुके सभावसतिभावके समय अगर किसीका जन्म हो, तो वह कृपण, धनवान्, गुणी, धार्मिक, पण्डित तथा विशुद्धाचार होतो है और उक्त भावापन्न राहु लग्नमें अर्थात् पञ्चम या दशमें रहनेसे उसकी भार्या, पुत्र और धननाश तथा उसकी प्रकृति बड़ी ही चंचल होती है।

राहुके अगमनभावके समय जन्म लेने पर जातक सबोंका दुःखदाता होता तथा उसके मित्रनाश, ज्ञातिनाश और तरह तरहका क्लेश हुआ करता है।

राहुके भोजनभाव समय जन्म होनेसे जातक अतिशय लोभी, मन्दाग्नियुक्त, दुःखित, कृपण, क्रूर तथा कलहप्रिय होता है। यदि लग्नमें या दशमें राहु उक्तभावमें रहे, तो उत्तम कुलमें जन्म होने पर भी पतित हो कर मशहूर होना पड़ता है। लग्नसे ले कर सप्तम या दशम गृहमें यदि राहु इस अवस्थामें रहे तो उसका अवश्य ही पत्नीनाश तथा धर्मकर्ममें पद पद पर बाधा पड़ती है।

जन्मके समय राहु नृत्यलिप्साभावमें रहनेसे जातक खञ्ज तथा कुष्ठव्याधि आदि रोगाक्रान्त, चक्षुहीन और दुर्द्धर्ष हो कर रहता है। जन्म समय नृत्यलिप्साभावान्वित राहु लग्नमें न रह कर अगर अन्यगृहमें रहे, तो मानव धनवान्, बहुसम्पद्युक्त, नानाविध गुणान्वित, दो स्त्री तथा बहु सन्तानविशिष्ट होता है।

राहुके कौतुकभावमें रहनेसे जातक समस्त गुणोंका आधार, धनवान् तथा पित्तशूलरोगसे आक्रान्त होता है। लग्नसे पञ्चम, सप्तम अथवा दशम स्थानके अलावा दूसरे स्थानमें राहु कौतुकभावमें रहनेसे मानव स्त्रीपुत्रादिसे रहित हो कर नाना प्रकारका दुःखभोग करता है। किन्तु यही राहु तुङ्गी या अपने गृहमें होनेसे अनेक प्रकारका शुभफल होता है।

राहु जब निद्राभावमें रहे और उस समय यदि किसीका जन्म हो, तो जातक शोकदुःखसे अभिभूत, नाना स्थानवासी, धनहीन और पुत्रसे वंचित होता है। पञ्चम या सप्तममें यदि राहु निद्राभावमें रहे, तो सर्वगुणान्वित पुत्र और स्त्रीविशिष्ट होता है। नवम या दशम स्थानमें ऐसी अवस्थामें रहनेसे तीर्थमृत्यु तथा द्वितीय, एकादश या द्वादश स्थानमें रहनेसे मानव दारिद्र दोषमें अभिभूत हो कर समस्त भूमण्डल परिभ्रमण करता है।

राहुरिष्ट।

जातबालकका लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थानस्थ राहु पापग्रह द्वारा दुष्ट होनेसे जातबालकका रिष्ट या मंगल होता और १० या १६ वर्षके अन्दर प्राणत्याग करता है। १६ वर्ष तक इसका रिष्टकाल जानना होगा।

राहुका शुभफल।

जन्म समय सिंह, वृष, कन्या या कर्कट राशिमें राहु रहनेसे मानव अतिशय लक्ष्मीवान्, राजराजाधिपति, घोटक, हस्ती, मनुष्य, नौका तथा मेदिनीमाण्डलका अधिपति होता है। राहु स्वीय उच्चगृहमें रहने पर भी उक्त समस्त फलभोग तथा दीर्घायु होता है।

राहुका दशानिर्णय।

अष्टोत्तरी मतसे राहुकी दशा १२ वर्ष और स्थूलदशा भोगका समय १२ वर्ष है, जिनमेंसे निजान्तर्दशा २।४ मास है। राहुकी दशा अशुभ दशा है, इस समय नाना प्रकारकी विपद होती रहती है। फिर जन्मके समयका राहु उत्तमभावस्थ होनेसे कुछ शुभ होता है। इस दशाके बीच फिर ग्रहकी अन्तर्दशा है जिसका विभाग इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है।

रा, रा १।४ मास। रा, शु २।४ मास। रा, र ०।८ मास। रा, च १।८ मास। रा, म ०।१० मास। रा, बु १।१०।२० दिन। रा, श १।१।१० दिन। रा, वृ २।१ १।१० दिन।

ये सब कुल १२ वर्ष हैं। २३ धनिष्ठा, २४ शतभिषा तथा २५ पूर्वभाद्रपदनक्षत्रमें जन्म होनेसे राहुकी दशा होती है। इसके प्रति नक्षत्रमें ४ वर्ष, प्रति नक्षत्रके पादमें १ वर्षमें प्रति दण्डमें २४ दिन तथा प्रति पलमें २४ दण्ड भोग होता है। यह जो भोगकाल लिखा गया, वह ६० दण्ड नक्षत्रका परिमाण होनेसे होगा, नक्षत्रकी कमी बेशी होनेसे इस कालको भाग कर नियत समय ठीक करना होता है।

विंशोत्तरीके मतानुसार राहुकी दशा १८ वर्ष है। आर्द्रा, स्वाति या शतभिषा नक्षत्रमें जन्म होनेसे राहुकी दशा होती है। इस मतसे प्रत्येक नक्षत्रमें ही राहुकी दशा हो कर १८ वर्ष भोग होता है। फिर नक्षत्रके भोगानुसार इसका भी भोग जानना होगा।

अन्तर्दशाविभाग।

रा, रा २।८।१२ दिन। रा, वृ २।४।२४ दिन। रा श २।१०।६ दिन। रा, बु २।६।१८ दिन। रा, के १।०।१८ दिन। रा, शु ३।०।० दिन। रा, र ०।१०।२४ दिन। रा, च १।६।० दिन। रा, म, १।०।१८ दिन।

विंशोत्तरीके मतसे इस प्रकार प्रत्यन्तर्दशा होगी। विंशोत्तरीदशा शुभाशुभका फलाफल विचार कर स्थिर करनी होती है।

राहु (हिं० पु०) रोहू मछली।

राहुग्रसन (सं० क्ली०) सूर्य या चन्द्रमाको राहुका ग्रसना, ग्रहण।

राहुग्रस्त (सं० त्रि०) राहु द्वारा धृत या भक्षित।

राहुग्रहण (सं० क्ली०) राहु द्वारा ग्रास।

राहुग्रास (सं० पु०) ग्रहण, उपराग।

राहुग्राह (सं० पु०) राहो ग्राहो ग्रहण यत्र। ग्रहण।

राहुचक्र (सं० क्ली०) राहोश्चक्रं। रवि आदि सात वारोंमें अभ्रगति द्वारा यामावर्त्तमें यामार्द्ध प्राप्त हो कर सातों दिशामें राहुका गमन या जाना। दिनमानके अष्टभागका नाम यामार्द्ध है। यामावर्त्तमें अभ्रगतिक्रमसे राहु प्रतिवारमें भ्रमण करता है। रविवारके आद्ययाममें पश्चिममें, सोमवारके आद्ययाममें अग्निकोणमें, मंगलवारको वायुकोणमें, बुधवारको उत्तरमें, बृहस्पतिवारमें दक्षिणमें, शुक्रवारको नैऋतमें और शनिवारको ईशानकोणमें रहता है। द्यूतक्रीड़ामें, युद्धमें, विवादमें या यात्रामें शुभफलकी इच्छा करने पर सम्मुखस्थित राहुका परित्याग करना चाहिए। इसको राहुका भ्रमणचक्र कहते हैं। (सत्कृत्यमुक्तावली)

स्वरोदयमें राहुकालानलचक्रका उल्लेख है। यात्राकालमें इस चक्र द्वारा यात्राका शुभाशुभ निर्णीत होता है।

राहुका शरीर खींच कर मुख, हृदय, उदर, गुह्य, पूंछ और मस्तक, इन सब स्थानोंमें नक्षत्र विन्यास करना होगा। यह नक्षत्र अश्विनी आदि क्रमसे स्थापित करना होता है। मुखमें एक, हृदयमें सात, उदरमें छः, गुह्यमें एक, पुच्छमें छः, मस्तकमें सात यह सब नक्षत्र इन सब स्थानोंमें कल्पना करनी होती है। राहुका अङ्गस्थित नक्षत्र तथा ग्रहण किस नक्षत्रमें है, यह स्थिर करके फलनिर्देश करना होता है। (नरपतिस्वरोदय)

राहुच्छत्र (सं० क्ली०) अदरक, आदा।

राहुड़ी—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके अहमदनगर जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण ४६७ वर्गमील है। इस उपविभागका अधिकांश ही समतल है। मूला और प्रवरा नामकी गोदावरीकी दो शाखा इसी हो कर बह चली हैं। यहां पहलेको कोई वनमाला नहीं है। सिर्फ नदीके किनारे गाँवोंके आस पास आमका बगीचा इधर उधर देखा जाता है। स्थानीय गोरक्षनाथशैल समुद्रकी तहसे २६८२ फुट तथा राहुड़ीके समतलक्षेत्रसे १२०० फुट ऊंचा है। यहांकी खेती बारीमें कोई विशेष सुविधा नहीं होती। ओझरखालसे ४ मील तथा लालखालसे १७ मील इस महकुमाके बीच रहनेसे स्थानीय अधिवासियोंको जलकी सुविधा हुई है।

२ उक्त उपविभागका विचार-सदर और एक नगर। यह अक्षा० १९° २३´ उ० तथा देशा० ७४° ४२´ पू०के बीच मूला नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। इस नगरसे डेढ़ कोस पूरब धोन्द-मनमाड़-ष्टेट रेलवेका एक स्टेशन है।

राहुदर्शन (सं० क्ली०) राहोर्दर्शनं यत्र। राहुका चाक्षुष ज्ञान, ग्रहण। ग्रहणके समय राहुको सम्यक् ज्ञान होता है इसीसे उसे राहुदर्शन कहते हैं। (तिथितत्त्व)

राहुप—मेवाड़के एक राणा। ये राजपूतकुलतिलक भरतके पुत्र थे। राणा समरसिंहके पुत्र कर्ण पिताकी गद्दी पर जब बैठे, तो उनके चचेरे भाई भरतने शत्रुके कुहकमें पड़ कर चित्तोर छोड़ दिया और सिन्धुप्रदेशमें आ कर वहांके मुसलमान-शासनकर्त्तासे अरोर नगरका शासनभार पाया। उन्होंने युगलके भट्टिवंशीय राजकुमारीसे विवाह किया था। उसी कन्याके गर्भसे राहुपका जन्म हुआ।

भरतपुत्र राहुपके राज्यकालमें मेवाड़ राज्यमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई। कर्णके जमाई शनिगुरु सरदारने नीच विश्वासघातकसे चित्तोरके प्रधान प्रधान गहलोतों-को निधन कर अपने पुत्र रणधवलको सिंहासन पर बिठाया। चित्तोर-सिंहासन चौहानकुलके हस्तगत तथा निकम्मे राहुपको राज्योद्धारमें एकदम अक्षम देख एक कुलपाठकाचार्यने यह खबर भरतको दी। तदनुसार भरत पैतृकराज्यका उद्धार करनेकी इच्छासे अपने सिंधु-देशीय सेनादलको ले कर मेवाड़ पहुंचे। चित्तोरके अनुगत सरदारोंने भी उनका साथ दिया। उन्होंने पली नामक स्थानमें बागी शनिगुरु वंशियोंको परास्त किया और आप चित्तोरके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए।

इसके कुछ दिन बाद राहुप पिताकी गद्दी पर बैठे। पीछे थोड़े ही समयके बाद इन्होंने नागोर नामक स्थानमें मुसलमान-सेनापति सामसुद्दीनको हराया। उनके शासनकालमें मेवाड़के गहलोतवंशीय राजपुरुष-गण शिशोदीय कहलाने लगे तथा बाप्पा-प्रवर्त्तित वंशो-पाधि रावलके बदले वक्ष्यमाण 'राणा' शब्द प्रचलित हुआ।

राहुपने परिहारराज मोकलराणाको परास्त कर अपने नगरमें कैद कर लाया। राणा मोकलने मुक्ति-लाभकी प्रत्याशासे राहुपको अपने अधिकृत गदवार प्रदेश और जयके पुरस्कार-स्वरूप राणाकी उपाधि दी। राहुपने बड़ी दक्षताके साथ ३८ वर्ष तक राज्य किया था।

राहुभेदिन् (सं० पु०) राहुं भिनत्तीति भिद्-णिनि। विष्णु।

राहुमाता (सं० स्त्री०) राहुकी माता, सिंहिका।

राहुमूर्द्धभित् (सं० पु०) राहोर्मूर्द्धानं भिनत्तीति भिद्-क्विप्। विष्णु।

राहुमूर्द्धहर (सं० पु०) विष्णु।

राहुरत्न (सं० क्ली०) राहुप्रियं रत्नं राहो रत्नमिति वा। गोमेद-मणि जो राहुके दोषका शमन करनेवाली मानी जाती है।

राहुल—बुद्धदेवका पुत्र। गोपाके गर्भसे इसका जन्म हुआ था। इसके जन्मके सातवें दिन बुद्धदेवने संसार-त्याग किया। सात वर्षकी अवस्थामें राहुल बुद्धदेवके समीप जा कर बुद्धसङ्घमें सम्मिलित हुआ और बीस वर्षकी अवस्थामें बौद्धभिक्षु बन गया।

राहुलक (सं० पु०) एक प्राचीन कवि।

राहुलसू (सं० पु०) सूते सूक्विप्। बुद्धदेव।

राहुबृहस्पतियोग (सं० पु०) राहुणा बृहस्पतेर्योगः मेलनं एक राशिमें स्थित गुरुराहु। जब राहु बृहस्पतिके साथ एक राशिमें अवस्थान करता है, तब उसे राहुबृहस्पति-योग या गुरुचाण्डालियोग कहते हैं। बृहस्पति जब राहुके साथ एकराशिस्थित होते हैं, तब अकाल पड़ता है। इसलिये गुरुराहुके कारण अकालमें विवाह और व्रतयज्ञादि शुभकर्म करना निषिद्ध है। कोई कोई इसका प्रतिप्रसव इस प्रकार मानते हैं। कर्णाट, लाट, अङ्ग तथा कलिङ्गदेशमें यह गुरुराहुयोग विरुद्ध है, इसके अलावा और किसी देशमें यह निषिद्ध नहीं है। बृहस्पति राहुके साथ रहनेसे बड़ा लज्जित होते हैं; कारण बृहस्पति ब्राह्मण हैं और राहु चण्डाल। ब्राह्मणके साथ चण्डाल-का रहना जैसा है, राहुके साथ बृहस्पतिका योग भी वैसा ही है।

जातकके जन्मके समय राहु और बृहस्पति जब साथ रहते हैं, तो जिस अवस्थामें वे रहते हैं, उसी अवस्थाका अनिष्ट होता है। बृहस्पतिके साथ राहुका योग अनिष्ट-कारक है।

राहुसंस्पर्श (सं० पु०) राहुसंग्राम, चन्द्र वा सूर्यग्रहण।

राहुसूतक (सं० क्ली०) उपराग, ग्रहण।

राहुस्पर्श (सं० पु०) राहोः स्पर्शो यत्र। उपराग, ग्रहण।

राहुहन् (सं० पु०) राहुं हन्ति हन्-क्विप्। विष्णु।

राहूगण (सं० पु०) १ रहुगणोंका अपत्य। २ गोतमका गोत्रापत्य।

राहूगण्य (सं० पु०) रहुगणोंका गोत्रापत्य।

राहूच्छिष्ट (सं० पु०) राहोरुच्छिष्टः। लशुन, लहसुन।

राहेल (यहू० पु०) यहूदियोंकी एक उपजातिका नाम।

रिंग (अं० स्त्री०) १ अंगूठी, छल्ला। २ किसी प्रकारकी गोल बड़ी चूड़ी। ३ घेरा, मंडल।

रिंगनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी ज्वर जो मध्यप्रदेशमें होती है।

रिंगना (हिं० क्रि०) १ रेंगनेकी क्रिया करना, रेंगाना। २ घुमाना फिराना, दौड़ाना। ३ धीरे धीरे चलाना।

रिंगल (हिं० पु०) एक प्रकारका पहाड़ी बाँस जो दारजिलिङ्गमें होता है।

रिंगिन (अं० स्त्री०) वह रस्सी जिससे जहाजके मस्तूल आदि बांधे जाते हैं।

रिंद (फा० पु०) १ वह व्यक्ति जो धर्मविषयमें बहुत ही स्वच्छन्द और उदार विचार रखता हो, धार्मिक बंधनोंको न माननेवाला पुरुष। २ मनमौजी आदमी, स्वच्छन्द पुरुष। (वि०) ३ मतवाला, मस्त।

रिंदा (फा० वि०) निरंकुश, उद्दंड।

रिःफ (सं० क्ली०) ज्योतिषके अनुसार एक संज्ञाका नाम। ज्योतिषमें जातकके लग्नसे ले कर बारह स्थान तकको रिःफ कहते हैं।

रिअना (हिं० पु०) एक प्रकारका कीकर, रीआँ।

रिआयत (अं० स्त्री०) १ वह अनुग्रहपूर्ण व्यवहार जो साधारण नियमोंका ध्यान छोड़ कर किया जाय, कोमल और दयापूर्ण व्यवहार। २ न्यूनता, कमी। ३ ख्याल, ध्यान।

रिआया (अ० स्त्री०) प्रजा।

रिकवँछ (हिं० स्त्री०) एक भोज्यपदार्थ जो उर्दकी पीठी और अरुईके पत्तोंसे बनता है। अरुईके पत्तोंको बारीक काट कर उर्दकी पीठीके साथ मिला देते हैं और फिर उसीके गुलगुलेसे घी या तेलमें छान लेते हैं।

रिकशा (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी गाड़ी जिसे आदमी खींचते हैं और जिसमें एक या दो आदमी बैठते हैं।

रिकाब (फा० स्त्री०) रकाब देखो।

रिकाबी (फा० स्त्री०) रकाबी देखो।

रिक्त (सं० क्ली०) रिच-क्त। १ वन, जंगल। (त्रि०) २ शून्य, खाली। ३ निर्धन, गरीब।

रिक्तक (सं० त्रि०) रिक्त-कन्। शून्य, खाली।

रिक्तकुम्भ (सं० क्ली०) ऐसी भाषा जो समझमें न आवे, गड़बड़ बोली।

रिक्तकृत (सं० त्रि०) खाली किया हुआ।

रिक्तता (सं० स्त्री०) रिक्तस्य भावः रिक्त-तल-टाप्। शून्यता, रिक्त या खाली होनेका भाव।

रिक्तपाणि (सं० त्रि०) रिक्तः पाणिर्यस्य। रिक्तहस्त, जिसका हाथ खाली हो। ब्राह्मण, राजा और स्त्री इन लोगोंको खाली हाथसे देखना नहीं चाहिये।

(भारत १।७८४६ श्लोक)

रिक्तभाण्ड (सं० क्ली०) १ शून्यपात्र, खाली बरतन। (त्रि०) २ भाण्डविहीन। ३ बुद्धिशून्य, जिसे अक्ल न हो।

रिक्तमति (सं० त्रि०) शून्यमन, चिन्तान्वित।

रिक्तहस्त (सं० त्रि०) खाली हाथ, जिसके हाथमें एक भी पैसा न हो।

रिक्ता (सं० स्त्री०) रिच्-क्त-टाप्। १ तिथिभेद, चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी तिथिको रिक्ता तिथि कहते हैं।

"चतुर्थी नवमी चैव रिक्ता प्रोक्ता चतुर्दशी"

(ज्योतिःसारस०)

रिक्तातिथि सभी कार्योंमें निन्दनीय है, विवाहादि संस्कार और विद्यारम्भादि शुभकार्यमात्र ही रिक्ता तिथिमें नहीं करना चाहिये।

"न रिक्ता सर्वकर्मसु" (ज्योतिःसारस०)

शास्त्रमें लिखा है, कि रिक्ता तिथिमें विवाह होनेसे कन्या विधवा होती है। किन्तु इसमें एक विशेषता है, वह यह कि शनिवार दिन यदि रिक्ता तिथि पड़े, तो उस दिन विवाह होनेसे शुभ होता है। (दीपिका)

इसके सिवा शुक्रवारको यदि रिक्ता तिथि हो, तो अमृतयोग और यदि शनिवारको हो, तो सिद्धियोग होता है। यह अमृत और सिद्धियोग यात्रामें बहुत उत्तम है। (शुद्धिदी०)

रिक्तार्क (सं० पु०) वह रिक्ता तिथि जो रविवारको पड़े,

रविवारको होनेवाली चतुर्थी, नवमी या चतुर्दशी।

रिक्थ (सं० क्ली०) रिङ्क्ते बहिर्गच्छति नश्यतीति रिच् (पातृ तु दिव वचि रिचिसिचिभ्यस्थक्। उण् २।७) इति थक्। उत्तराधिकार या वरासतमें मिला हुआ धन या सम्पत्ति। (मनु ८।२७)

रिक्थग्राह (सं० त्रि०) धनग्रहणकारी, धन लेनेवाला।

रिक्थजात (सं० क्ली०) मृत व्यक्तिकी सभी सम्पत्ति।

रिक्थभागिन् (सं० त्रि०) रिक्थं भजते भज-णिनि। धनभागी।

रिक्थभाज् (सं० त्रि०) रिक्थं भजते भज-ण्वि। धनभागी।

रिक्थहर (सं० पु०) हरतीति हृ-अच्। रिक्थस्य हरः। धनहारक, धनभागी। (मनु ८।१८५)

रिक्थहार (सं० पु०) धनाधिकारी, वह जो धनका अधिकारी हो।

रिक्थहारिन् (सं० त्रि०) रिक्थं हरतीति हृ-णिनि। १ धनहारी, जिसे उत्तराधिकारमें धन या सम्पत्ति मिले। (पु०) २ मातुल, मामा। ३ कुम्बरका बोज।

रिक्थाद (सं० पु०) पुत्र, उत्तराधिकारी।

रिक्थिन् (सं० त्रि०) रिक्थमस्यास्तीति रिक्थ-इनि। धनहारी, जिसे उत्तराधिकारमें धन या सम्पत्ति मिले।

रिक्थीय (सं० त्रि०) उत्तराधिकारी-सम्बन्धीय।

रिक्न (सं० पु०) स्तेन, चोर। (नैघण्टु ३२४)

रिक्ष (हिं० पु०) ऋक्ष देखो।

रिक्षपति (हिं० पु०) ऋक्षपति देखो।

रिक्षा (सं० स्त्री०) १ लिक्षा, लीख। २ त्रिसरेणु।

रिङ्खण (सं० क्ली०) रिख-ल्युट्। १ फिसलना, लड़खड़ना। २ विचलित होना, डिगना।

रिङ्गण (सं० क्ली०) रिङ्ग-ल्युट्, १ रेंगना। २ फिसलना, सरकना। ३ विचलित होना, डिगना।

रिङ्गि (सं० स्त्री०) गति, चाल।

रिचा (हिं० स्त्री०) ऋचक देखो।

रिचीक (हिं० पु०) ऋचीक देखो।

रिच्छ (हिं० पु०) भालू।

रिज़क (अ० पु०) रोजी, जीविका।

रिजर्व (अं० वि०) किसी विशेष कार्यके लिये निश्चित या रक्षित किया हुआ।

रिजर्विस्ट (अं० पु०) वे सैनिक जो आपत्कालके लिये रक्षित रखे जाते हैं, रक्षित सैनिक। रिजर्विस्ट सैनिक कमसे कम तीन वर्ष तक लड़ाई पर रह चुकने पर छुट्टी पा जाते हैं। जिस पल्टनमें ये भर्ती होते हैं, रिजर्विस्टों। या रक्षित सैनिकमें नाम रहने पर भी ये उस पल्टनके ही बने रहते हैं। केवल दो दो वर्ष पर इन्हें दो दो महीनेके लिये सैनिक-शिक्षा प्राप्त करनेके वास्ते अपनी पल्टनमें जाना पड़ता है। २५ वर्षकी सैनिक सेवाके बाद इन्हें पेंशन मिल जाती है।

रिजल्ट (अं० पु०) परीक्षा फल, इम्तहानका नतीजा।

रिज़ाली (फा० स्त्री०) रज़ीलपन, निर्लज्जता।

रिजिया (सुलतान रजिया)—दासवंशी दिल्लीश्वर सुलतान अलतमासकी कन्या। ये अपने भाई सुलतान रुकनउद्दीन् फिरोज शाहकी मृत्युके बाद दिल्लीके सिंहासन पर बैठी थीं। ये ज्ञान, बुद्धि, विनय, न्यायपरायणता, महोदयता आदि सद्गुणोंसे भूषित थीं। प्रजाकी रक्षाके लिए इन्होंने स्वयं युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हो कर जैसी वीरताका परिचय दिया था, वैसे ही अदम्य उत्साहके साथ भारतमें राजदण्ड धारण कर आपने पक्षपातशून्य विचार और दया-दाक्षिण्य द्वारा आर्यावर्त्तवासी प्रजाका हृदय आकर्षित किया था। उनकी वीरता और राज्यपरिचालनशक्तिने उन्हें भारत-इतिहासमें सम्राज्ञी ही कहा गया है। आप रमणीकुलभूषण होने पर भी "सुलतान रजिया" के नामसे प्रसिद्ध हुई थीं। पिताकी गुणावली इन्हींमें अधिक विकसित हुई थीं।

सुलतान सामसउद्दीन् अलतमास रजियाकी माताको ही अधिकतर प्रेम करते थे। खुश्कफिरोजी नामके प्रधान प्रासादमें उनका वासभवन था। सुलतान प्रधान महिषीके पास इसी प्रासादमें आ कर ही निरन्तर उनसे साक्षात् किया करते थे। इस कारण पिताके प्रति कन्याका स्नेहातिशयतावश रजियाके लाड़की मात्रा अधिक बढ़ गई थी। वे पिताके जीवितकालमें ही अत्यन्त दाम्भिकताके साथ अपनी प्रभुत्व-शक्ति संचालन करनेमें काफी आगे बढ़ी हुई थीं।

अन्तःपुरमें रहनेवाली इस बाल-विहङ्गिनीमें अत्यन्त शैशवावस्थासे ही राजोचित उच्चाकांक्षा परिस्फुट होने

लगी थी। उसके ललाट-पत्र पर वीरता और राजशक्ति की पूर्ण रेखा उद्भासित देख कर सुलतानने मन-ही-मन इस राजकुमारीको सिंहासनकी उत्तराधिकारिणी बनानेका निश्चय किया।

उमरके साथ साथ रिजियाके रूपका लावण्य जैसे जैसे बढ़ता गया, वैसे वैसे उसका राज्यशासनयोग और बुद्धिवृत्ति भी परिस्फुटित होने लगी। सुलतान ग्वालियरके युद्धमें विजय प्राप्त कर प्रफुल्लचित्तसे दिल्ली लौटे, तो उन्होंने अपनी स्नेहमयी कन्यामें एक अपूर्व राजभावका समावेश देख कर राजसचिव ताज-उल मालिक महमूदको बुलवा कर आदेश दिया कि राजदफ्तरमें लिख रखो कि यह लड़की ही मेरी एकमात्र उत्तराधिकारिणी है और मेरी मृत्युके बाद यही सिंहासन पर बैठेगी। इस विषयमें राजाका फरमान प्रचारित होनेसे पहले सुलतानके प्रिय अमात्यवर्गने उनसे बहुत अनुनय-विनयके साथ पूछा, कि दो दो उपयुक्त राजपुत्रोंके होते हुए राजकन्याको गद्दी पर बैठानेका विचार उनका कैसे हुआ? इस पर सुलतानने कहा कि मेरे दोनों पुत्र अकर्मण्य हैं, सुखसेवी और इन्द्रियासक्त हैं, इसलिए वे राज्य नहीं चला सकते। मेरी इस लड़कीके सिवा दिल्ली-साम्राज्यकी कोई भी रक्षा न कर सकेगा। तब साधारणके परामर्शसे रिजिया ही राज्यकी उत्तराधिकारिणी हुई। परन्तु अन्यान्य मुसलमान-ऐतिहासिकोंका कहना है कि रिजियाने अपने भाई रुकन् उद्दीन्की मृत्युके बाद सिंहासन अधिकार किया था। इबनबतुताका कहना है, कि रुकनउद्दीनके मारे जाने पर सेनाने रिजियाको ही राज्येश्वरी घोषित किया था।

सुलतान रिजियाके सिंहासन पर बैठनेके बाद दिल्ली-राज्यमें पुनः शान्ति और पूर्ववत् सुशासनकी व्यवस्था हो गई। परन्तु प्रधान वजीर निज़ाम-उल-मुल्क जुनाइदीने राजकन्याका पक्ष ग्रहण नहीं किया। उन्होंने मालिक जानी मालिक कोटी और मालिक इज्जुद्दीन महम्मद सालारके सहयोगसे सुलतान रिजियाके विरुद्ध अभ्युत्थित हो कर दिल्ली नगरके प्राचीरद्वार पर आक्रमण कर दिया। इस स्थानमें बहुत दिनों तक दोनों ओरसे घोर युद्ध हुआ। इस समय अयोध्याके शासनकर्ता मालिक नसीरउद्दीन ताबासी मुइज्जी अपनी सेनाके साथ दिल्लीश्वरीकी सहायताके लिए दिल्लीकी तरफ अग्रसर हुए। लाहोरमें सुशासन स्थापन कर सुलताना रिजिया शीघ्रगतिसे अयोध्यापतिके साथ मिलनेके लिए आगे बढ़ीं, परंतु वे यमुना पार भी न कर पाईं कि वजीरके पक्षके विरोधी सेनापतियोंने नसीरउद्दीनको युद्धमें परास्त और बन्दी कर लिया।

सहायकको पराजित और शत्रुके हाथमें पहुंच जानेसे उपायन्तर न देख सुलताना रिजिया तकदीर पर भरोसा करके नगर छोड़ कर बाहर निकल पड़ीं। यमुनाके किनारे शिविर लगाया गया। इस समय दोनों पक्षोंमें घोरतर युद्ध चल रहा था। अन्तमें विद्रोही दलपति मालिक महम्मद सालार और मालिक कबीर खां फिर सुलतानाकी तरफ आ मिले और अन्यान्य विपक्षी लोग भाग गये। उस समय सुलतानाकी अश्वारोही सेनाने उनका पीछा किया। सेनानायक मालिक कोटी और उनके भाई फखरउद्दीन तथा मालिक जानी मारे गये और वजीर निज़ाम उल-मुल्क जुनाइदी सिरमूर प्रदेशको भाग गये।

राज्यसे शत्रुओंके इस प्रकार भाग जाने पर रिजियाने उक्त वजीरप्रवरके सहकारीको निज़ाम उल-मुल्क उपाधि दे कर मन्त्री पद दिया। मालिक सैफउद्दीनको आइबक बहतूकतलघ खाँकी उपाधि और सेनापतिका पद मिला। कबीर खां लाहोर प्रदेशके शासनकर्ता नियुक्त हुए। समग्र पठान-साम्राज्यमें शान्ति विराजने लगी। लक्ष्मणावती ले कर देबल तक सुदूर राज्यवासी राजन्यवर्ग और सामन्त तथा अमात्यगण रिजियाके बसमें हो गये। *

* 'ताजियत उल-असमार' नामक इतिहासमें लिखा है, कि सम्सउद्दीन अलतामसकी मृत्युके बाद उलुघ् खां, कत्लुघ खाँ, संकेज खाँ, अइबक खिताई, नूरबेग और मुरादबेग आजामी नामक कई एक क्रीतदासोंने अपने मालिकोंके प्रति कृतघ्नता प्रकट कर विद्रोह किया था। १२५३ ई०में उन लोगोंने सुलतानके ज्येष्ठपुत्र जलालउद्दीनको दूर कर सुलताना रजियाको सिंहासन प्रदान किया था। उलुघ खां राज्यके प्रधान सचिव और शासन-दण्डविधाता थे। इन्हीं उलुघकी कन्याके साथ रिजियाके दूसरे भाई नसीरउद्दीनका विवाह हुआ था।

सेनापति अइबक बहतूकी मृत्युके बाद मालिक कुतबउद्दीन हसनगोरी प्रधान सेनापति हुए। इस समय हिन्दुओंने मुसलमानोंके अधिकृत रणतम्बर दुर्ग घेर लिया। रिजियाके आदेशसे हसनगोरीने उक्त दुर्गमें घिरे हुए मुसलमानोंको रक्षा करके दुर्गको नष्ट कर डाला।

इसी समय रिजियाके अनुग्रहसे मालिक इफ-तियारउद्दीन् इतिगीन राजप्रासादके परिदर्शक और अमीर जमालउद्दीन् याकुत अश्व और हस्तिशालाके परि-रक्षक तथा उनके पार्श्वचर नियुक्त हुए। तुर्क-सेनापति और अमात्यगण राजेश्वरीके इस अनुग्रहको देख कर उनसे विशेष ईर्ष्या करने लगे। उनके द्वारा राज्यमें विश्रृङ्खला होते देख सुलताना रिजियाने रमणीको वेश-भूषा और अवगुण्ठन दूर किया और पुरुषके वेशमें राज-दरबारमें बैठने लगीं। उन्होंने सिर पर राजमुकुट धारण किया और अंगरखा काबा पहनना शुरू किया। साधा-रणको अपनी गाम्भीर्यमयी मोहन मूर्त्तिसे मुग्ध और भयविह्वल करनेके लिए वे प्रतिदिन एक बार हाथी पर सवार हो कर राजधानीमें घूम आया करती थीं।

राज-दरबारमें बैठ कर उन्होंने ग्वालियर आक्रमण लिए सेना भेजी। ग्वालियरके राजा दिल्लीश्वरके विरुद्ध बाधा पहुंचानेमें समर्थ न हुए, बल्कि वे सन्धि करनेको बाध्य हुए और मिनहाज सिराज और मजहुल उमरा जियाउद्दीन जुनाइदीको १२३८ ई०में दिल्ली भेजा। सुल-तानाने उनके इस आचरणसे खुश हो कर मिनहाजको नासिरीय विद्यालयको अध्यक्ष और ग्वालियरका काजी बना दिया।

१२३९ ई०में लाहोरके शासनकर्त्ता मालिक इज्जु-द्दीन कबीर खां विद्रोही हो कर दिल्लीकी अधीनता हटानेके लिए आगे बढ़े। रिजिया इस संवादके पाते ही सेना-सहित लाहोरके लिए रवाना हो गईं। स्वयं विद्रोही शासनकर्त्ता सुलतानी सेनाके समान पराजय स्वीकार कर भाग गये। रिजियाने सेना-सहित उनका पीछा करके उन्हें कैद कर लिया। कबीर खांने रिजियाके चरणोंमें प्राण-भिक्षा मांगी और उनकी वश्यता स्वीकार की। उन्होंने भी उन्हें मुलतानका शासन-भार सौंप दिया।

इस प्रकार विद्रोह-दमन और शासनकी व्यवस्था करके रानी रिजिया १२४० ई०के अप्रेल महीनेमें दिल्ली राजधानीको लौटीं। यहां आते ही उन्हें संवाद मिला कि तबरहिन्दके* शासनकर्त्ता मालिक अलतुनिया कुछ सीमान्तवासी राजपुत्रोंकी उत्तेजनामें आ कर राज-द्रोहिताका सूत्रपात कर रहे हैं। तदनुसार रिजियाने एक विस्तृत सेनाके साथ तबरहिन्दकी तरफ प्रस्थान किया। वहां पहुंचते ही प्रसिद्ध हबसी-योद्धा अमीर जमालउद्दीन याकूतको मारनेवाले राजद्वेषी तुर्क-सेना-पतियोंने उन पर आक्रमण किया। कई दिन घोरतर युद्ध होनेके बाद सुलताना बन्दिनी हो कर तबरहिन्द-दुर्गमें कैद कर ली गईं।

तबरहिन्द-दुर्गमें कैद सुलतानाकी दुर्दशाका अनुभव कर मालिक अलतुनियाके हृदयमें उसके प्रति दयाका उद्रेक हुआ। दिल्लीश्वरीके इस प्रकार अपमानको वे सह न सके। उनकी दुर्दशाके अंशभागी हो कर वे पुनः दिल्लीको छत्रभंग सेनाको इकट्ठा करके दिल्ली राजधानीके उद्धारके लिए अग्रसर हुए, कारण रिजियाके कैद होनेके बाद ही सबने मुइजउद्दीनको सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया था।

रिजियाके राज्योद्धारकी बात सुन कर सुलतानने अपनी सेना-सहित विपक्षियोंका सामना किया। युद्धमें सुलताना रिजिया और मालिक अलतूनिया पराजित हो कर कैथलकी तरफ भाग गये। अनुगामी सेनाने आधी दूर तक उनका पीछा किया, फिर उनका साथ छोड़ दिया। वे इस प्रकार गुप्तरूपसे चलते चलते हिन्दूके हाथमें पड़ गये। १२४० ई०के अक्टूबर मासमें सुलताना रिजियाने तीन वर्ष छः दिन राज्य करनेके बाद हिन्दूके हाथसे भवयन्त्रणा समाप्त की।

तब्जिअत उल-अमसके मतसे उलूघ खांने सुलताना रिजियाको मार कर अपने जमाई नसीरउद्दीनको सिंहा-सन पर बिठाया था। पीछे उलूघ खांने अपने जमाईको

---

* हबीब उस सियारके मतसे सरहिन्द और फिरिश्ताके मतसे भातिण्डा।

मार स्वयं गयासउद्दीन् बुलबन् नाम रख कर सिंहासन पर बैठे थे।

इबन बतूताके भारतभ्रमण-वृत्तान्तमें लिखा है, कि सुलतान शम्सउद्दीन अलतामासकी मृत्युके बाद रुकन-उद्दीन् सिंहासन पर बैठे। उन्हों अपने सौतेले भाई मुइजउद्दीनको मरवा डाला, जिससे उनकी सहोदरा भगिनी रिजियाने उन्हें तिरस्कृत और लाञ्छित किया। इस पर उन्होंने रिजिया पर अत्याचार करना शुरू कर दिया। इस अत्याचारकी मात्रा क्रमशः यहां तक बढ़ती गई कि रिजियाका जीवन तक खतरेमें पड़ गया। रिजिया ज्येष्ठ भ्राताका षड्यन्त्र समझ गई। एक दिन शुक्रवारको जब सुलतान रुकनउद्दीन प्रार्थना करने मसजिद जा रहे थे, तब उन्होंने प्रासादके शिखर पर चढ़ कर करुणमर्मभेदी कण्ठसे उपस्थित राजपुरुषोंसे आत्मवेदना कही। तब इकट्ठे हुए श्रोतामण्डलीने राज-कन्याकी विनीत प्रार्थनासे उत्तेजित हो कर रुकनउद्दीन-को मसजिदमेंसे निकाल कर साधारणके सामने उन्हें निष्ठुरभावसे मार डाला। नसीरउद्दीन तब नाबालिग थे, इसलिए सर्वसाधारणकी प्रार्थनानुसार रिजिया ही साम्राज्यकी अधीश्वरी बनाई गईं।

राजसिंहासन पर बैठ कर उन्होंने पूर्ण प्रभावसे लगभग ४ वर्ष तक राज्यशासन किया। रमणी होने पर भी पुरुषके समान धनुष-वाण, तुणीर, तलवार, बरछा आदि धारण करती थीं और घोड़े पर सवार हो कर तथा अनेक पारिषदोंसे वेष्टित हो कर राजधानी वा रणक्षेत्रमें परिभ्रमण किया करती थीं। उन्होंने कभी भी अपना मुंह परदेसे ढका नहीं रखा। हबसी जातिके अपने एक क्रीतदासके साथ अवैध प्रणयमें आसक्त होनेके कारण अमात्योंने सन्देहपूर्वक इन्हें सिंहासनसे उतार दिया और एक आत्मीयके साथ इनका विवाह कर दिया। इनके बाद इनके छोटे भाई नसीरउद्दीन सिंहासनके अधिकारी हुए।

रिजु (हिं॰ वि॰) ऋजु देखो।

रिझाना (हिं॰ क्रि॰) १ किसीको अपने ऊपर प्रसन्न कर लेना, किसीको अपने ऊपर खुश करना। २ अपना बनाना, लुभाना।

रिझाव (हिं॰ पु॰) किसीके ऊपर प्रसन्न होने या रीझने-का भाव।

रिटर्निंग अफसर (अं॰ पु॰) वह अफसर जो निर्वाचन-के समय वोटों या मतों गिनता है और कौन अधिक वोट मिलनेसे नियमानुसार निर्वाचन हुआ इसकी घोषणा करता है।

रिटायर (अं॰ वि॰) जिसने कामसे अवसर ग्रहण कर लिया हो, जिसने पेन्शन ले ली हो।

रिटि (सं॰ स्त्री॰) १ जलती हुई अग्निका एक शब्द। २ वाद्ययन्त्रभेद, एक प्रकारका बाजा। ३ कृष्णलवण, काला नीमक।

रिणीनगर (सं॰ क्ली॰) एक प्राचीन नगरका नाम।

रिन् (सं॰ त्रि॰) गन्त्री, गानेवाला।

रितु (हिं॰ स्त्री॰) ऋतु देखो।

रितुवंती (हिं॰ स्त्री॰) रजस्वला स्त्री।

रिद्ध (सं॰ त्रि॰) पक्व, रींधा हुआ।

रिद्धि (हिं॰ स्त्री॰) ऋद्धि देखो।

रिद्धिसिद्धि (हिं॰ स्त्री॰) ऋद्धिसिद्धि देखो।

रिधम (सं॰ पु॰) १ कामदेव। २ वसन्त।

रिन (हिं॰ पु॰) ऋण देखो।

रिनबंधी (हिं॰ पु॰) कर्जदार, ऋणी।

रिनिआँ (हिं॰ वि॰) जिसने ऋण लिया हो, कर्जदार।

रिनियाँ (हिं॰ वि॰) रिनिआं देखो।

रिनी (हिं॰ वि॰) जिसने ऋण लिया हो, कर्जदार।

रिप (सं॰ पु॰) १ पृथ्वी। २ रिपु, शत्रु। ३ हिंसा।

रिपन (George Frederick Samuel Robinson)—रिपन का १म मार्कुइस, बकिंहमसायरके ४थ अर्लकी कन्या श्रीमती साराके गर्भ और रिपन १म अर्लके औरससे लन्दन नगरमें २४ अक्टोबरको जन्म हुआ था। १८४६ ई॰से आपके राजनैतिक संस्रवका सूत्रपात है। उस वर्ष आप ब्रसेलसमें विशिष्ट दौत्यकार्यमें (Attache) नियुक्त हुए। १८५३ ई॰में ये हडर्सफिल्डके और उसके बाद यर्कसायरके वेष्ट राइडिंगसे पार्लामेण्टके सदस्य चुने गये। १८५९ ई॰के जनवरी मासमें इन्हें पिताकी उपाधि मिली और उसी वर्ष नवम्बरमें पितृव्यकी उपाधि-का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ।

पार्लामेण्टमें प्रवेश होनेके कुछ ही दिन बाद आप युद्ध-विभागमें अण्डर-सेक्रेटरी हुए। उसके बाद १८६१ ई०के फरवरी महीनेमें भारतवर्षके लिए अण्डर-सेक्रेटरी (Under secretary for India) हुए। उसके बाद १८६३ ई०में युद्ध-विभागके प्रधान सेक्रेटरी और १८६६ ई०में सेक्रेटरी आव ष्टी स्टेट (Secretary of the State for India) नियुक्त हुए। १८६८ ई०के दिसम्बर मासमें महामति ग्लैस्टोनके शासनारम्भमें लार्ड रिपन मन्त्रिसभाके सभापति (Lord President of the Council) नियुक्त हुए थे। उसके बाद १८७३ ई०में उदारनैतिक दलका शासनाधिकार दूर होने पर आपने भी स्वेच्छासे उक्त पद छोड़ दिया।

१८६९ ई०में इङ्गलैण्डकी महाराणीने आपको Knight of the garterकी उपाधिसे सम्मानित किया। इसीके दो वर्ष बाद अलाबामासत्वके सम्बन्धमें वासिंगटनमें जो सन्धि हुई, उसके गुरुतर कार्य-निर्वाहके लिए लार्ड रिपन दोनों राज्योंकी तरफसे सन्धि-समितिके प्रधान सभापति (Chairman of the High Commission) चुने गये थे। दक्षताके साथ उक्त कार्यको समाप्त करनेके बाद आप मार्कुइस जैसे उच्च पदसे सम्मानित किये गये थे। १८७८ ई०में आपने रोमन काथलिक मत ग्रहण किया। इस कारण आपको फ्रीमसनके श्रेष्ठ उपदेष्टा (Grand-master of the English Free-mason)-का पद त्याग देना पड़ा। १८८० ई०में महामति ग्लैडस्टोनको पुनः प्रधान मन्त्रीका पद मिला।

उस साल पार्लामेण्टमें उदारनैतिक मन्त्रियोंका प्राधान्य हो गया, जिससे बड़े लाट लिटनको इस्तीफा दे देना पड़ा और मार्कुइस आफ रिपन बड़े लाट हो कर भारत आये। उनके शुभागमनसे भारतवासियोंके हृदयमें शान्तिरूपी जलका सिंचन हुआ। सीमान्तके झगड़ा मिटानेका सुयोग आया। लार्ड लिटनकी राज्य-विस्तार नीतिका कारण भारतके उत्तर-पश्चिम प्रान्तमें दारुण समरानलकी सूचना हो चुकी थी। शान्तिप्रिय और प्रजारञ्जक लार्ड रिपन भारतमें आते ही भारत-सीमाके बाहर स्थायिरूपसे सेना रखनेके घोर विरोधी हो गये। उन्होंने प्रथम ही दोस्त मुहम्मदके पौत्र अमीर अबदर रहमनको काबुलके सिंहासन पर बिठाया। अमीर शेर अलीके पुत्र निर्वासित आयुब खाँको हीरातमें लानेकी अनुमति दी गई। परन्तु आयुब खांके यहां आते ही बहुतसे गाजी उनके अनुयायी हो गये। युद्धकी सम्भावना देख कर अङ्गरेज-सेनापति जनरल बारो शत्रुसेनाके विरुद्ध मैवन्द रणक्षेत्रमें उपस्थित हुए। परन्तु संख्यामें कम होनेके कारण अङ्गरेजीसेना बहुसंख्यक गाजी और पठान-सेनाके आक्रमणको न सह सकी। अधिकांश अङ्गरेज-सेनापति और सेनानीने असाधारण वीरता दिखा कर भीषण युद्धमें प्राण विसर्जन किये। कुछ थोड़ीसी सेनाने कन्दहारमें भाग कर प्राण बचाये। अन्तमें प्रधान सेनापति लार्ड रावर्टने बहुसंख्यक सेना-सहित जा कर आयुब खांको परास्त करके ब्रिटिश गवर्नमेण्टके सम्मानकी रक्षा की। इसके कुछ ही समय बाद रूस-सेनापति स्कोबेलेफ जिओक-टेपेने आक्रमण किया और इसके साथ ही रूसकी लोलुप-दृष्टि कन्दाहार पर पड़ी। भारतीय अङ्गरेजगण भी इससे विचलित हुए। परंतु दूरदर्शी लार्ड रिपनको इसमें किसी तरहकी आशंका नहीं दिखाई दी। उनका विश्वास था कि भारतीय प्रजाको सुखी रखनेसे अभावके समय उनके उपयुक्त सहायता देनेसे, भारतमें अकाल न पड़नेसे तथा प्रजाके गवर्नमेण्टके पक्षमें रहनेसे वैदेशिक आक्रमणको कोई भी आशङ्का नहीं। पहले लार्ड मेओ निश्चय करने पर भी जिसे कार्यरूपमें परिणत न कर सके थे तथा रक्षणशील बड़े लाटोंकी लापरवाहीसे जो अब तक साध्य न हो सका था, अब लार्ड रिपनने प्रजाकी सुविधाके लिए १८८२ ई०की अप्रीलको राजस्व और कृषि विभाग पुनः प्रतिष्ठित किया। दुर्भिक्ष-समिति (Famine com mission)-के प्रस्तावके अनुसार दुर्भिक्ष-पीड़ित प्रजाके अभाव दूर किये और जमीन सम्बन्धी कर निर्धारणके लिए ही उक्त विभागकी सृष्टि की। उन्होंने निश्चय किया था कि गवर्मेण्टकी इच्छानुसार किसी जमीनका कर बढ़ाया नहीं जा सकता। जमीनकी कीमत बढ़ने, खेती बढ़ने और गवर्मेण्टके व्ययसे जमीनकी उन्नति होनेसे ही

मालगुजारी बढ़ाई जा सकती है। देशकी नाना विषयों-को उन्नति और प्रजाके हितको तरफ भारतीय कृषि-विभाग (The Agricultural Department of India) दृष्टि रखेगा। इसके लिए जरीप, प्रजा-पत्तन, जलवायु-की गति निर्द्धारण, पशुआदिकी चिकित्सा-विद्याका प्रसार और अन्तर्वाणिज्यकी बदस्तूर सूची तैयार करेगो। दुर्भिक्ष वा दुर्मूल्यके समय जिससे गरीब प्रजाको विशेष कष्ट न पहुंचे, इसके लिए दुर्भिक्ष-भण्डार Famine Fund स्थापित हुआ और प्रति वर्ष १५ लाख रुपये उस भण्डारमें जमा रखने की व्यवस्था की गई। तीन आदमियों पर उक्त भण्डारका भार दिया जायगा, जिनमें एक सरकारी और दो गैर-सरकारी आदमी होंगे, गैर-सरकारीमें एक भारतीय होना चाहिए। इसके बाद लार्ड रिपनकी दृष्टि महिसुर राज्य पर पड़ी। उन्होंने देखा कि उक्त राज्य ५० वर्षसे ब्रिटिश गवर्मेण्टके हाथमें है। परन्तु धर्मतः और न्यायतः विचार किया जाय तो उस देशका शासन वहांके राजाके अधीन होना चाहिए। इस कारण आपने महिसुरके राजाको उनके पूर्वपुरुषका राज्याधिकार सौंप दिया। १८८१ ई०से ही अफगानिस्तानसे ब्रिटिशसेना हटा लेनेकी व्यवस्था हुई थी। कोयटा और कुरम उपत्यकासे अंगरेजी सेना हटा कर थोड़ी-सी देशी सेना वहां रखी गई। लुण्डी कोटालसे आइबार गिरिसंकट तककी रक्षाका भार वहांके पहाड़ी सरदारों पर सौंपा गया। इस तरह थोड़े ही दिनोंमें सीमान्त प्रदेशमें शान्ति हो गई थी।

सुवृहत् भारत-साम्राज्यके राजस्व और शासन विभागको क्रमशः एक केन्द्रीभूत करने और उसके लिए स्थानीय गवर्मेण्टके सुशासनकी वृद्धि करनेके लिए स्वायत्त-शासनका विस्तार करना लार्ड रिपनका प्रधान उद्देश्य था। भारतवासियोंमें पर्याप्तरूपसे शिक्षा-विस्तारके लिए कोर्ट-आव्-डिरेक्टरोंने १८५४ ई०में जो सुदीर्घ मन्तव्य प्रकट किया था, अब तक उसके अनुसार उपयुक्त कार्य चलानेकी कोई सन्तोषजनक व्यवस्था न हुई थी। शिक्षा-विभागकी असम्पूर्ण वार्षिक कार्य-विवरणीसे ही उसका कुछ कुछ परिचय मिलता था। अब लार्ड रिपनने स्वायत्त-शासनके ही प्रसारकी सुविधाके लिए शिक्षाविभाग संस्कार और भारतीय शिक्षा-पद्धति की उपयुक्त व्यवस्था करनेके लिए सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक डाक्टर हण्टर (Dr. W. W. Hunter) साहबकी अध्यक्षतामें एक Educational Commission बिठाया। शिक्षकोंका शिक्षाविधान, विद्यालयों-का परिदर्शन, पारदर्शितानुसार वेतननिर्द्धारण और स्त्री-शिक्षाका विस्तार करना, कमीशनका प्रधान लक्ष्य था। इस शिक्षा कमीशनका फल १८८४ ई०में प्रकाशित हुआ था।

लार्ड रिपनका एक और प्रधान कार्य देशी मुद्रा-यन्त्रको स्वाधीनता देना था। लार्ड लिटन देशी समा-चारपत्रोंको राजद्रोही जान उनकी स्वाधीनता बंद कर गये, जिससे देशी प्रायः सभी संवादपत्र उठ गये। १८८२ ई०में लार्ड रिपनने देशी प्रेस-सम्बन्धीय सब आईन उठा दिया कि देशी क्या यूरोपीय सभी समा-चार-पत्र धन्यवादभाजन हों, इसके ही बाद २५वीं जुलाईको कलकत्ता गवर्मेण्ट हाउसका सुप्रशस्त मर्मर-हालमें उन्हींके यत्नसे जो दरबार लगा था वह भी उल्लेख-नीय है। इसी दिन दरबारमें काबुलका राजदूत और भारतके सम्भ्रान्त करीब डेढ़ हजार मनुष्य जुटे थे। इसी दरबारमें बहवलपुरके नवाब 'नाइट ग्राण्ट कमा-ण्डर' के रूपमें महोच्च राजसम्मानसे सम्मानित हुए थे और उपयुक्त खिलअत मिली थी। इस दिनके वेश-भूषा, अदब कायदा और समृद्धि देख कर वैदेशिक दूत चमत्कृत हो गया था।

लार्ड रिपन भारतवासी और अङ्गरेज प्रजाओंको एक नजरसे देखते थे। उनके पास गोरे कालेका कोई भेद न था। इन्होंने शासनविभागमें और सभी विषयमें सुविचार-की आशासे फौजदारी दण्डविधिका संस्कार कराया। वही १८८३ ई०का एलवर्ट-बिल नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस आईनके उपलक्षमें लार्ड रिपनने प्रकाश किया था, कि ये देशी लोग यूरोपियोंकी तरह विचार-विभागका सब उच्च कार्य करते हैं। जब ये यूरोपियोंकी भांति सिभिलियन होते आये हैं, तब यूरोपीय विचारपतिकी तरह देशी विचारपति समान अधिकारके योग्य हैं। अङ्गरेज विचारपति जिस प्रकार देशी और अङ्गरेज दोनोंका

विचार करनेके अधिकारी हैं, देशी विचारपति भी उसी प्रकार अङ्गरेजोंका विचार कर सकेंगे।

न्यायपर समदर्शी रिपनका अभिप्राय व्यक्त और अलबर्ट-बिल पास होनेसे अङ्गरेजोंके बीच दारुण मर्मभेदी विद्वेषभाव जाग उठा। काला आदमी गोरोंका विचार करेगा, समान क्षमता पायगा, यह ले कर आधेसे अधिक गोरे राजपुरुषोंको कष्टकर हुआ। दूसरी तरफ सभी भारतवासी और देशी संवादपत्र प्राण खोल कर लार्ड रिपनका सुख्याति-गान गाने लगे। जो हो, लार्ड रिपनके उच्च राजनीति और महदुद्देश्य स्वीकार करने पर भी स्थानीय गवर्मेण्ट और अङ्गरेज राजपुरुषगण यूरोपियोंकी सम्भ्रमरक्षाके लिये उक्त दण्डविधि परिवर्त्तन और परिवर्द्धनके लिये सबके सब एकमत हुए। दोनों पक्षोंमें बहुत वाद-विवाद चलनेके बाद इस प्रकार मेटमाट हो गया कि सिर्फ उपयुक्त और विशिष्ट देशी मजिष्ट्रेटके हाथ सम्पूर्ण अधिकार रहेगा, यूरोपीय अपराधी यूरोपीय मजिष्ट्रेटके यहां अपील या पुनर्विचारके लिये उपस्थित हो सकेगा। इस प्रकार १८८४ ई०में संशोधित दण्डविधि कायम रही।

देशी प्रजा और जमींदारोंके बीच स्वत्व सम्बन्धमें बहुत दिनोंसे मनमुटाव चल रहा था। प्रजारञ्जक लार्ड रिपनने प्रजाओंकी स्वार्थरक्षाके लिए प्रजास्वत्वविषयक आईनका मसौदा बनवाया था। वही मसौदा परिवर्त्तित और परिवर्द्धित हो कर लार्ड डफरिनके समय Bengal Tenancy Act of 1885 नामसे विधिबद्ध हुआ।

लार्ड रिपनके सुशासनकालमें ही १८८३ ई०में कलकत्तेमें आन्तर्जातिक प्रदर्शनी हुई और राजकुमार ड्यूक आव कनाट स्त्री-सहित भारतवर्ष पधारे। उसके पहले भारतवर्षमें वैसी प्रदर्शनी और नहीं हुई थी। लार्ड रिपनकी कोशिशसे भारतके प्रत्येक जिलेसे भारतीय शिल्प और देशसे उत्पन्न सब तरहको उत्तम वस्तु प्रदर्शनार्थ भेजनेका बन्दोबस्त हुआ था। उन्होंने खुद राजकुमार कनाट और प्रधान प्रधान राजपुरुषोंको ले कर प्रदर्शनी खोली थी।

भारतीय रमणियोंके पक्षमें परपुरुष द्वारा चिकित्सा या अस्पतालमें रहना रीतिके विरुद्ध है। इस कारण उन्होंने देशी रमणियोंमें चिकित्सा विधि-प्रचलनकी व्यवस्था कर दी तथा देशी रमणीके चिकित्साधीन अस्पताल करनेका आयोजन किया। इसलिये कितनी देशी रमणियां चिकित्साशास्त्र सीखनेके लिये इङ्गलैण्ड और अमेरिका भेजी गईं।

१८८४ ई०में रूस मार्भने आक्रमण किया। उसी समय अफगानसीमा-निर्द्धारणके लिये रूस और अङ्गरेज गवर्मेण्टकी तरफसे पराराष्ट्रवित्, सामरिक और वैज्ञानिक बहुतेरे मनुष्य नियुक्त हुए। इसी वर्ष ३री दिसम्बरको मार्किस आव रिपनने नये बड़े लाट डफरिनके हाथ शासनभार सौंप बिलायतको यात्रा की। उनके बिलायत जानेके पहले सिमला-शैलसे जब वे कलकत्तेको लौटे आ रहे थे, उसी समय इस देशकी जनताने उनकी जैसी आन्तरिक भक्ति और कृतज्ञताके अभ्यर्थना की थी वैसी और किसी बड़े लाटकी देशी-जनतासे सम्मान और आदर पानेका सौभाग्य न हुआ। जब वे बिलायतके लिये रवाने हुए, उस समय बहुतोंने सड़कके किनारे खड़े हो कर उनके लिये आनन्दका आंसू बहाया था। भारतवासीके हृदयमें जमा हुआ है, कि रिपन भारतवासीके अतिप्रिय थे। रिपनके समान भारत-हितैषी कोई नहीं आये और कोई आयंगे या नहीं सन्देह है।

लार्ड रिपनके बिलायत जाने पर बहुतेरे अङ्गरेज राजपुरुष उनकी शासननीतिकी कठोर समालोचनामें प्रवृत्त हुए। कर्मवीर रिपनने भी अपनी शासननीतिका बड़ा समर्थन कर इङ्गलैण्डके नाना स्थानोंमें हृदयोन्मादकर वक्तृता दी थी। १८८६ ई०में ग्लाडष्टोनके तीसरी बार प्रधान मन्त्रित्वकालमें लार्ड रिपन नौसेनाविभागके सर्वप्रधान कर्त्ता हुए थे। १८९२ ई०में उदारनैतिकदलके प्राधान्यकालमें वे औपनिवेशिक मन्त्री (Colonial Secretary) हुए। रक्षणशील दलके अभ्युदयसे उन्होंने १८९५ ई०में उक्त पद परित्याग किया। वे लिड्सकी "यार्कसायर कालेज आव साइन्स" नामक सभाके सभापति तथा ओयेष्टराइडि प्रादेशिक मन्त्रिसभाके बहुत दिन तक सभापति रहे।

रिपु (सं० पु०) अनिष्टं रपतीति रप वाचि, (रपे रिच्चोपधायाः। उण् १।२७) इति कुः इकारश्चोपधायाः रिफ कत्थनयुद्धनिन्दाहिंसादनेषु (इषेः किच्च। उण् १।१४) इति बाहुलकादुप्रत्ययः। १ शत्रु, दुश्मन। शरीरके छः रिपु ये हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। २ चोरक नाम गन्धद्रव्य। (राजनि०) ३ जन्मकुण्डलीमें लग्नसे छठा स्थान। पर्याय—षट्कोण, रिपुमन्दिर। ४ ध्रुवके पोते और श्लिष्टिके पुत्रका नाम। (हरिवंश २।१४ १५) ५ यदुके पुत्रका नाम। (भागवत ६।२३।२०)

रिपुघातिन् (सं० त्रि०) रिपुं हन्तीति हन् णिनि। शत्रुघाती, शत्रुओंका नाश करनेवाला।

रिपुघातिनी (सं० स्त्री०) लताविशेष।

रिपुघ्न (सं० त्रि०) शत्रुहन्ता, जो शत्रुओंका नाश करनेवाला।

रिपुञ्जय (सं० पु०) १ राजपुत्रभेद, दिवोदास। (स्कन्दपुराण) २ सुवीरका पुत्र। (भाग० ६।२१।२६) ३ श्लिष्टिके पुत्रका नाम। (हरिवंश ६८) बृहद्रथवंशीय राजा विश्वजित्‌के पुत्रका नाम। (भाग० ६।२२।४७)

रिपुता (सं० स्त्री०) रिपोर्भावः तल-टाप्। शत्रुता, दुश्मनी।

रिपुमल्ल (सं० पु०) राजभेद। (शत्रुञ्जय० १।२२२)

रिपुराक्षस (सं० पु०) १ रिपुरूप राक्षस। २ हस्तिभेद, एक हाथीका नाम। (कथासरित्सागर १२१।२२७)

रिपोर्ट (अं० स्त्री०) १ किसी घटना या वह सविस्तर वर्णन जो किसीको सूचना देनेके लिये किया जाय। २ किसी वस्तु या व्यक्तिके सम्बन्धकी जानने योग्य बातोंका ब्योरा। ३ किसी संस्था आदिके कार्योंका विस्तृत विवरण।

रिपोर्टर (अं० पु०) १ किसी समाचारपत्रके सम्पादकीय विभागका वह कार्यकर्त्ता जिसका काम सब प्रकारके स्थानीय समाचारों और घटनाओंका संग्रह कर उन्हें लिख कर सम्पादकको देना और अपने पत्रके लिये सार्वजनिक सभा, समिति, उत्सव आदिका विवरण लिख कर लाना, स्थानान्तरमें होनेवाली सभा, सम्मेलन, उत्सव, मेले आदिके अवसर पर जा कर वहांका ब्योरा लिख कर भेजना और प्रसिद्ध व्यक्तियोंसे मिल कर महत्त्वके सार्वजनिक प्रश्नों पर उनका मत जानना होता है। २ वह जो किसी सभा या समितिका विवरण और व्याख्यान लिखता है। ३ वह जो सरकारकी ओरसे अदालत या किसी सभा, समिति या कौंसिलकी कार्रवाई और व्याख्यान लिखता हो।

रिप्फ (सं० क्ली०) जातकके लग्नसे ले कर बारह स्थान।

रिप्र (सं० त्रि०) रीङ् श्रवणे (लोड्रीङो ह्रस्वश्च पुट् च तरौ श्लेषयाकुत् मितयोः। उण् ५।५५) इति र, धातोर्ह्रस्वः प्रत्ययस्ता पुट्च। अधम पाप। "गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा" (ऋक् ६।७८।१) 'रिप्रमनुपादेयत्वेन पापरूप' (सायण)

रिप्रवाह (सं० त्रि०) पापवाहक, जिससे पाप या पातकका नाश होता हो।

रिप्सु (सं० त्रि०) रब्धुमिच्छुः रभ-सन्, सनन्तादुः। आरम्भ करनेमें इच्छुक, जिसे शुरु करनेमें अभिलाषा हो।

रिफार्म (अं० पु०) दोषों या त्रुटियोंका दूर किया जाना, किसी संस्था या विभागमें परिवर्त्तन किया जाना।

रिफार्मर (अं० पु०) वह जो धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक सुधार या उन्नतिके लिये प्रयत्न या आन्दोलन करता हो; सुधारक।

रिफार्मेटरी (अं० स्त्री०) वह संस्था या स्थान जहां बालक कैदी रखे जाते हैं और उन्हें औद्योगिक शिक्षा दी जाती है जिसमें वे वहांसे बाहर निकल कर जीविका निर्वाह कर सकें और भले मानस बन कर रहें, चरित्र-संशोधनालय।

रिफार्मेटरी स्कूल (अं० पु०) रिफार्मेटिरी देखो।

रिबारी—पञ्जाबके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध स्थान। यहां तांबेके बरतनका विस्तृत कारबार है।

रिभु (हिं० पु०) ऋभु देखो।

रिम (हिं० पु०) १ शत्रु। (स्त्री०) २ रीम देखो।

रिमझिम (हिं० स्त्री०) १ छोटी छोटी बूंदोंका लगातार गिरना, हलकी फुहार पड़ना। (क्रि० वि०) २ वर्षाकी छोटी छोटी बूंदोंसे।

रिमहर (हिं० पु०) शत्रु।

रिम्रिका (हिं० स्त्री०) काली मिर्चकी लता।

रिमेद (सं० पु०) अरिमेद, विटखदिर।

रियासत (अ० स्त्री०) १ राज्य, अमलदारी। २ रईस होनेका भाव, अमीरी।

रियासी—काश्मीरराज्यके जम्बू विभागान्तर्गत एक दुर्गाधिष्ठित नगर। यह अक्षा० ३३° ५' उ० तथा देशा० ७४° ५२' पू०के मध्य चन्द्रभागा नदीके बायें तट पर हिमालय पहाड़के दक्षिण ढालूदेशमें अवस्थित है। एक शैलको चोटी पर दुर्ग स्थापित है।

रिरंसा (सं० स्त्री०) रन्तुमिच्छा रम-सन्-रिरंस-अ, टाप्। रमण करनेकी इच्छा।

रिरंसु (सं० त्रि०) रन्तुमिच्छुः रम्-सन्-सन्नन्तादुः। रमण करनेमें इच्छुक, रमणाभिलाषी।

रिरक्षा (सं० स्त्री०) रक्षा करनेकी इच्छा।

रिरक्षिषा (सं० स्त्री०) रक्षितुमिच्छा, रक्ष-सन् रिरक्षिष अ-टाप्। रक्षा करनेकी इच्छा।

रिरक्षिषु (सं० त्रि०) रक्षितुमिच्छुः रक्ष-सन् उ। रक्षा करनेका अभिलाषी, रक्षा करनेकी इच्छा रखनेवाला।

रिरक्षु (सं० त्रि०) रक्षा करनेकी इच्छा रखनेवाला।

रिरमयिषु (सं० त्रि०) रम-णिच्-सन्-उ। रमण करनेमें इच्छुक।

रिरिक्षु (सं० त्रि०) रेष्टुमिच्छु रिश-सन्-उ। हनन करनेमें इच्छुक, जिसे मारनेकी इच्छा हो।

रिरी (सं० स्त्री०) पित्तल, पीतल।

रिल्हण (सं० पु०) काश्मीरका एक राजपुरुष। रिह्लण देखो।

रिलीफ (अं० पु०) वह सहायता जो आर्त्त, पीड़ित या दीन दुःखी जनोंको दी जाय, सहायता।

रिवाज (अ० पु०) प्रथा, रस्म।

रिवाल्वर (अं० पु०) एक प्रकारका तमंचा जिसमें एक साथ कई गोलियाँ भरनेकी जगह होती है और गोलियां लगातार एकके बाद दूसरी छोड़ी जा सकती हैं।

रिव्यू (अं० स्त्री०) १ किसी नवीन प्रकाशित पुस्तककी परीक्षा कर उसके गुण-दोषोंको प्रकट करना, आलोचना। २ वह लेख या निबंध जिसमें इस प्रकार किसी पुस्तककी आलोचनकी गई हो, समालोचना। ३ किसी निर्णय या फैसलेका पुनर्विचार, नजरसानी। ४ वे सामयिक पत्र पत्रिकाएं जिनमें राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक आदि विषयों पर आलोचनात्मक लेखोंका संग्रह रहनेके साथ ही नवीन प्रकाशित पुस्तकोंकी भी आलोचना रहती हो। जैसे—"माडर्न रिव्यू" "सैटरडे रिव्यू"।

रिश (सं० पु०) हिंसाकारी, मारनेवाला।

रिशादस् (सं० त्रि०) हिंसाकारी, मारनेवाला।

रिश्ता (फा० पु०) नाता, सम्बन्ध।

रिश्तेदार (फा० पु०) सम्बन्धी, नातेदार।

रिश्तेदारी (फा० स्त्री०) रिश्ता होनेका भाव, सम्बन्ध।

रिश्तेमंद (फा० पु०) सम्बन्धी, नातेदार।

रिश्य (सं० पु०) रिश्यते हिंस्यते इति रिश्- क्यप्। मृग।

रिश्वत (अ० स्त्री०) वह धन जो किसीको उसके कर्त्तव्यसे विमुख करके अपना लाभ करनेके लिये अनुचित रूपसे दिया जाय, घूस।

रिश्वतखोर (फा० पु०) वह जो रिश्वत लेता हो, घूस खानेवाले।

रिश्वतखोरी (फा० स्त्री०) रिश्वत खानेका काम, घूस लेनेका काम।

रिष (सं० त्रि०) क्षतिकरण, हानि पहुंचाना।

रिषाण्यु (सं० त्रि०) हिंसक, मारनेवाला। (ऋक् १।१४८।५ सायण)

रिषभ (हिं० पु०) ऋषभ देखो।

रिषि (सं० पु०) ऋषन्ति ज्ञानसंसारयोः पारं गच्छतीति ऋषयः, ऋषी गतौ नाम्नोति कि रिषिहसादिश्च, विद्याधिदग्धमतयो रिषयः प्रसिद्धाः। (अमरटीका-भरत) ऋषि।

रिषीक (सं० त्रि०) १ हानि पहुंचानेवाला। (पु०) २ शिव।

रिषोकार (सं० क्ली०) रिष-क। १ क्षेम, कल्याण। २ अशुभ, अमङ्गल। ३ अभाव, न होना। ४ नाश। ५ पाप। (पु०) ६ खड्ग, तलवार। ७ फेनिल, लाल सहिंजनका पेड़। ८ पापयुक्त। ९ नष्ट, बरबाद।

रिष्ट (हिं० वि०) १ प्रसन्न। २ मोटा ताजा।

रिष्टक (सं० पु०) रिष्ट एव स्वार्थे कन्। रक्तशिग्रु, लाल सहिंजन।

रिष्टताति (सं० त्रि०) क्षेमकर, सौभाग्यशाली।

रिष्टभङ्ग (सं० क्लि०) अमङ्गलखण्डन। रिष्टि देखो।

रिष्टि (सं० पु०) रेषति हिनस्तीति रिष-क्तिच्। १ खड्ग, तलवार। (मेदिनी (

(स्त्री०) रिष-क्तिन्। २ अशुभ, अमङ्गल। रिष्ट वा रिष्टि, जातबालकी पहले रिष्टि ठीक करके फिर आयुर्दाय गणना की जाती है। जब तक २४ वर्ष न बीत जाय, तब तक रिष्टिकाल होता है। इस समयके भीतर रिष्टका विचार कर उसके शुभाशुभका निर्णय करना चाहिए।

ज्योतिषमें, जातकके नक्षत्रविशेषके किसी किसी निर्दिष्ट समयमें जन्म होनेसे अथवा पाप वा शुभग्रहके दण्डमें जन्म हो कर लग्नमें उसी ग्रहका वेध रहनेसे उनके अशुभदायक होने पर जातकका रिष्ट होता है। रिष्ट तीन प्रकारका है—योगज, नियत और अनियत और वैसे यह बहुत प्रकारका है—गण्डयोगरिष्ट, पताकिरिष्ट, द्वादशलग्नरिष्ट, ग्रहोंका योगजरिष्ट इत्यादि। ज्योतिषमें जिन रिष्टोंका विशेषरूपसे लिखा हुआ है, उसे हम यहां संक्षेपमें देते हैं।

रिष्ट निर्णय करनेसे पहले गण्डरिष्टका निश्चय करना चाहिए। बालकका जन्ममात्र ही पहले देखना चाहिए कि उसमें किसी प्रकारकी रिष्टि है या नहीं। जब देखें कि किसी प्रकारकी रिष्टि नहीं है, तो उसके अन्यान्य विषयोंकी गणना करना चाहिए, अन्यथा अन्य फल-गणना व्यर्थ है।

गण्डरिष्ट—अश्विनी, मघा और मूल नक्षत्रके प्रथम तीन दण्ड और ज्येष्ठा, रेवती और अश्लेषा नक्षत्रके शेष ५ दण्ड गण्डरिष्ट कहलाता है। परन्तु यवनाचार्य प्रथमोक्त दो नक्षत्रोंके तीन दण्डकी जगह ५ दण्ड लेते हैं। इस समयके मध्य किसीका भी जन्म हो, तो उसका गण्डरिष्टमें जन्म समझना चाहिए।

दिवस, सन्ध्या और रात्रिदण्ड—ज्येष्ठाके शेष पांच दण्ड और मूलाके आदि तीन दण्ड, दिवसमें होनेसे दिवागण्ड समझना चाहिए और इसी प्रकार अश्लेषाके शेष पांच दण्ड और माघके प्रथम तीन दण्ड रात्रिभागमें होनेसे रात्रिगण्ड, तथा रेवतीके शेष पांच दण्ड और अश्विनीके प्रथम तीन दण्ड सन्ध्याकालमें होनेसे सन्ध्यागण्ड होता है।

गण्डरिष्टका फल—सन्ध्यागण्डमें जन्म होनेसे बालकको मृत्यु, रात्रिगण्डमें होनेसे माताकी मृत्यु और दिवागण्डमें होनेसे पिताकी मृत्यु होती है। परन्तु इसमें इतना विशेष है कि दिवागण्ड नक्षत्र रात्रिमें तथा रात्रिगण्ड नक्षत्र दिवसमें और सन्ध्यागण्ड नक्षत्र दिवस वा रात्रिमें होनेसे उक्त गण्डरिष्ट नहीं होता।

गण्डरिष्टका भोग-काल रेवती नक्षत्रमें जन्म हो कर दण्डदोष होनेसे उसका रिष्टकाल अढ़ाई वर्ष, अश्विनी नक्षत्रमें दश मास, ज्येष्ठामें डेढ़ वर्ष, मूलामें छः वर्ष, मघामें चार वर्ष और अश्लेषामें एक वर्ष रिष्टिकाल होता है। इस समयके अन्दर ही अशुभ हुआ करता है।

गण्डयोगमें जात शिशुका विधान—उक्त गण्डरिष्टिमें जिसका जन्म होता है, उसे परित्याग करना ही उचित है, अथवा ६ मास उत्तीर्ण बिना हुए पिताको उसे देखना न चाहिए।

गण्डरिष्टिभङ्ग—यदि दिवागण्डमें किसी कन्या और रात्रिगण्डमें पुत्रका जन्म हो, तो उन दोनोंमेंसे किसीको भी गण्डदोष नहीं होता। अर्थात् ज्येष्ठाके शेष पांच दण्ड और मूलाके आदि तीन दण्ड; ये आठ दण्ड दिवागण्ड है, इनमें किसी कन्याका तथा अश्लेषाके शेष पांच दण्ड और मघाके आदि तीन दण्ड रात्रिगण्ड है, इनमें पुत्रका जन्म होनेसे उनके गण्डरिष्टि नहीं होती। दिवागण्ड नक्षत्र रात्रिमें और दिवसमें होनेसे भी गण्डदोष नहीं होता।

गण्डतिथि-रिष्टि—प्रतिपद, अमावस्या, षष्ठी, नवमी और द्वादशी, ये गण्ड-तिथियां हैं, इसलिए इन्हें तिथिरिष्टि कहा गया है। इन तिथियोंमेंसे जिस किसी तिथिमें जन्म होने पर जातक इन्द्रके समान होने पर भी जीवित नहीं रह सकता।

गण्डरिष्टिमें जन्म होनेसे विधानके अनुसार उसकी शान्ति कराना आवश्यक है। शान्तिका विधान इस प्रकार है—कुंकुम, चन्दन, कुड़ अथवा गोरोचनाको घीके साथ मिला कर चार कलसोंमें रखो तथा सहस्राक्ष मन्त्र पढ़ कर उन द्रव्योंसे बालकको स्नान कराओ। दिनमें जन्म होने पर पिताके साथ तथा रात्रिको माताके साथ और सन्ध्याको जन्म होने पर पिता और माता

दोनोंके साथ स्नान करना चाहिए। उसके बाद घृतपूर्ण कांस्य-पात्र, धेनु और हिरण्यदान तथा नवग्रहकी पूजा करना उचित है।

गण्डरिष्टि ठीक करके उसके बाद पताकिरिष्टिका निर्णय करना चाहिए। पताकिरिष्टि बालककी विशेष रिष्टि है। पताकिरिष्ट होनेसे बालक किसी भी तरह नहीं बच सकता। पताकी देखो।

गण्ड जात बालक यदि कहीं दैवात् बच जाय, तो वह अशेष ऐश्वर्यशाली होता है।

पताकिरिष्टिके बाद नवग्रह-रिष्टि स्थिर करनी चाहिए।

रविरिष्टि—यदि पापग्रहगणकेन्द्र वा त्रिकोणमें हों और शुभग्रह लग्नसे षष्ठ, अष्टम और द्वादश राशिमें हों तथा सूर्योदयके समय जन्म हो, तो जातक उसी समय मर जाता है। इसको रविरिष्टि कहते हैं।

चन्द्ररिष्टि—पापग्रह दृष्ट चन्द्र लग्नको छठो, आठवीं वा बारहवीं राशिमें बालकका जन्म होनेसे वह उसी समय मर जाता है और उसमें शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे ८वर्षमें तथा शुभाशुभकी दृष्टिमें चार वर्षमें मृत्यु होती है।

पापयुक्त चन्द्ररिष्टि—लग्न, पंचम, सप्तम, अष्टम और द्वादश स्थानके किसी एक स्थानमें चन्द्रके पाप-युक्त हो कर अवस्थान करनेसे तथा बुध, वृहस्पति और शुक्र इनमेंसे किसी एक ग्रहकी दृष्टि वा संयोग न होनेसे बालककी अकाल मृत्यु होती है। परन्तु इनकी दृष्टि नहीं हो, तो नहीं होती।

दो पापोंके मध्यगत चन्द्ररिष्टि—यदि चन्द्र दो पाप ग्रहोंके मध्यमें रह कर लग्नके चतुर्थ, सप्तम वा अष्टम स्थानमेंसे किसी एक स्थानमें रहें, तो देवता द्वारा रक्षित होने पर भी बालकका जीवन नाश होता है।

लग्नक्षीण चन्द्ररिष्टि—यवनाचार्यके मतसे क्षीण चन्द्र लग्नमें वा परमग्रहके साथ किसी केन्द्रमें अथवा अष्टम स्थानमें पापग्रहके साथ मिलित होने पर अवश्य ही जातककी अकाल मृत्यु होती है।

मङ्गलरिष्टि—यदि लग्नमें मङ्गल रह कर शुभग्रह द्वारा दृष्ट न हो, अथवा छठे या आठवें स्थानमें शनिके साथ युक्त हो, अथवा सप्तम स्थानमें शनि मङ्गल एकत्र हों, तथा शुभग्रह द्वारा दृष्ट न हो, तो जातककी उसी वक्त मृत्यु हो जाती है।

बुधरिष्टि—यदि कर्कटराशिमें बुध हों, तथा वह यदि लग्नके छठे वा आठवें स्थानमें हों, तथा चन्द्र द्वारा वह बुध यदि दृष्ट हो, तो जातकको चार वर्षमें मृत्यु हो जाती है।

वृहस्पतिरिष्टि—वृहस्पति यदि मेष वा वृश्चिक राशिमें रह कर किसी लग्नके आठवें स्थानमें हों तथा वह वृहस्पति यदि रवि, चन्द्र, मंगल और शनि द्वारा दृष्ट हो और शुक्रकी दृष्टि न रहे, तो जातककी तीन वर्ष बाद मृत्यु होती है।

शुक्ररिष्टि—शुक्र यदि सूर्यके वा चन्द्रके ग्रहमें हो और वह स्थान लग्नसे षष्ठ, अष्टम वा द्वादश हो, तथा शुक्र यदि पापग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो जातककी ६ वर्षके भीतर मृत्यु हो जाती है।

शनिरिष्टि—शनि लग्नमें रह कर पापग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे १६ दिनके भीतर, लग्नमें केवल शनि रहनेसे एक वर्षके भीतर और पापग्रहयुक्त हो कर लग्नमें रहनेसे एक मासके भीतर जातकको मृत्यु हो जाती है।

राहुरिष्टि—राहु यदि केन्द्रस्थानमें रहे और पापग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो किसीके मतसे दश और किसीके मतसे सोलह वर्षमें जातककी मृत्यु होती है।

केतुरिष्टि—जिस नक्षत्रमें केतुका उदय होगा, उस नक्षत्रमें किसी बालकका जन्म होनेसे यदि जन्ममुहूर्त्त रौद्र या सर्पमुहूर्त्त हो, तो जातककी अकाल मृत्यु होती है।

इस प्रकार नवग्रह रिष्टि स्थिर करनी होती है। उसके बाद यह देखना आवश्यक है, कि द्वादश लग्न रिष्टि है वा नहीं। द्वादश लग्न रिष्टि निम्नोक्त प्रकारसे जानी जाती है।

मेषलग्नरिष्टि—मेष लग्नमें जन्म हो कर लग्नमें चन्द्र और मङ्गल तथा मकरको छोड़ दूसरी किसी राशिमें शनि और रवि रहे, तो जातक तीन दिनके अंदर मर जाता है।

वृषलग्नरिष्टि—यदि वृष लग्नमें जन्म हो अथा वह

लग्न वृहस्पति या शनिसे षष्ठ स्थानमें स्थित हो अर्थात् शनि वृहस्पति धनु राशिमें और मङ्गल अष्टम स्थानमें रहे, तो चौदहवें दिनमें जन्म लेनेवाला परलोकवासी होता है।

मिथुनलग्नरिष्टि—मिथुन लग्न हो कर कर्कटमें शनि तथा धनुमें रवि रहे, तो चौदह दिनके अंदर जातक की मृत्यु होती है।

कर्कटलग्नरिष्टि—जन्म लग्न कर्कट होने तथा तुलामें या कुम्भ राशिमें वृहस्पति रह कर मङ्गल और राहु कर्त्तृक दृष्ट होनेसे जातक चौदह दिनमें मृत्युमुखमें पतित होता है।

सिंहलग्नरिष्टि—यदि सिंह लग्नमें जन्म हो और चन्द्र लग्नमें अवस्थिति करे तथा मकर भिन्न अन्य राशिमें शनि और रवि रहे, तो पिताके साथ जातककी मृत्यु होती है।

कन्यालग्नरिष्टि—कन्यालग्नमें जन्म होने तथा इस लग्नमें चन्द्र वृहस्पतिके केन्द्रमें शनिके रहनेसे माताके साथ जातककी मृत्यु होती है।

तुलालग्नरिष्टि—यदि तुला लग्नमें जन्म हो और षष्ठमें शुक्र तथा लग्नमें चन्द्र रहे, तो बीस दिनके भीतर जातक करालकालके मुखमें पतित होता है।

वृश्चिकलग्नरिष्टि—वृश्चिक लग्नमें यदि जन्म हो तथा कर्कटमें यदि चन्द्र रहे, तो दिनमें जन्म लेनेवाला रातमें और रातमें जन्म लेनेवाला दिनमें मरता है।

धनुलग्नरिष्टि—यदि धनु लग्नमें जन्म हो तथा वृहस्पति इस लग्नमें रहे, मङ्गलके गृहमें अर्थात् मेष या वृश्चिक राशिमें शनि रहे, तो बीस दिनके भीतर जातककी मृत्यु होती है।

मकरलग्नरिष्टि—मकर लग्नमें जन्म होते समय यदि मेषमें चन्द्र और सिंहमें रवि रिष्टि हो तो जातक सोलह दिनमें मर जाता है।

कुम्भलग्नरिष्टि—कुम्भ लग्नमें जन्म हो कर चतुर्थमें चन्द्र तथा कन्या तुलामें शुक्रके रहनेसे जातककी मातुलके साथ मृत्यु होती है।

मीनलग्नरिष्टि—यदि मीन लग्नमें जन्म हो और इस स्थानमें चंद्र तथा वृश्चिकमें शनि रहे, तो बारह दिनके अंदर जातक इहलोकको छोड़ परलोक सिधारता है।

पञ्चस्वरमें रिष्टिका विषय इस प्रकार वर्णित हुआ है,—

यदि राहु चन्द्रके घरमें रह कर चंद्रके साथ किंवा सूर्यके साथ रहे और शनि तथा मङ्गल लग्नको देखे, तो रिष्ट होता है और इस रिष्टके होनेसे जातक एक पक्षमें प्राणत्याग करता है। षष्ठमें चंद्र, सप्तममें मङ्गल और नवममें शनि रहनेसे जातकका माताके साथ मृत्यु होती है। लग्नमें शनि, तृतीयमें वृहस्पति और अष्टममें चन्द्र रहे, तो जातकका अमङ्गल होता है। सप्तममें शनि, नवममें सूर्य, एकादशमें गुरु और शुक्र रहनेसे रिष्ट होता है और इस रिष्टिके फलसे जातक एक मासमें मर जाता है। लग्नमें शनि और मङ्गल, पञ्चममें चन्द्र तथा द्वादशस्थानमें बुध रहनेसे रिष्ट होता है। लग्नमें शनि और मङ्गल, अष्टममें चन्द्र या वृहस्पति रहे, तो जातकका जोवन व्यर्थ होता है। रवि और चन्द्र षष्ठमें रहनेसे रिष्टि होती है। अष्टम स्थानमें पापग्रह तथा द्वादश स्थानमें बुध, षष्ठमें या अष्टममें चन्द्र तथा सप्तममें शनि रहनेसे जातक पिता और माताका मृत्युकारी तथा आप भी एक मासमें मृत्युमुखमें पतित होता है।

यदि शुभ अर्थात् सौम्यराशि लग्न हो तथा इस लग्नसे अष्टमस्थानमें चन्द्र तथा चतुर्थमें शनि रहे, यदि जातकके लग्नमें रवि, शुक्र और शनि तथा द्वादशमें वृहस्पति, लग्नमें रवि, सप्तममें मङ्गल तथा केन्द्रमें शनि, लग्नमें चन्द्र और शनि तथा द्वादशमें रवि और मङ्गल तथा कोई शुभग्रह लग्नको न देखे, लग्नमें मङ्गल, चतुर्थमें राहु और द्वादशमें शनि तथा लग्नमें शनि; अष्टममें चन्द्र और द्वादशमें शुक्र, लग्नमें समस्त पापग्रह, द्वादशमें समस्त शुभग्रह, सप्तममें या अष्टमें राहु रहे, यह दो स्थान चन्द्र या सूर्यका गृह हो तथा शनि और मङ्गल लग्नको देखे, तो इन सब योगोंके कारण रिष्टि दोषसे जातककी अचिरात् मृत्यु होती है।

मातृरिष्टि—दिनमें जन्म होनेसे शुक्र तथा रातमें जन्म होनेसे चन्द्र बालककी माता होते हैं अर्थात् इन

हो ग्रहोंकी अवस्थानुसार माताके शुभाशुभका विचार करना होता है। यदि दिनमें जन्म हो और शुक्रग्रह पापग्रहके साथ रहे अथवा उससे दृष्ट हो, तो जातककी मातृरिष्टि होती है। यदि शुक्र पापग्रहके घरमें रहे तथा शुभग्रह द्वारा दृष्ट न हो, तो जातकका मातृरिष्टि होती है। यदि रातमें जन्म हो तथा पापग्रहके घरमें चन्द्र रह कर बहुत पापग्रहोंके साथ मिले, हो तो उसका मातृरिष्ट होता है। यदि क्षीणचंद्रको समस्त पापग्रह देखे तथा यदि किसी शुभग्रह द्वारा दृष्ट न हो, यदि अष्टम या षष्ठस्थानमें चन्द्र और सप्तममें मङ्गल पापग्रहयुक्त हो, यदि मङ्गल चन्द्रके अष्टममें तथा यह स्थान यदि लग्नका षष्ठ हो, तो मातृरिष्ट होता है। और भी यदि शुक्रग्रहको मंगल देखे, लग्न या लग्नसे चतुर्थ स्थानमें बलवान् पापग्रह रहे, लग्न और चतुर्थ स्थानस्थितग्रह द्वारा तथा चतुर्थाधिपति ग्रहके अवस्थान द्वारा मातृरिष्ट स्थिर करना होता है।

यदि चन्द्र शनि और मङ्गलका मध्यवर्त्ती हो अथवा रवि और मङ्गलके साथ मिला रहे, तो मातृरिष्ट होता है। यदि केन्द्रस्थानमें पापग्रहके साथ चन्द्र पापग्रह केन्द्र और त्रिकोणमें रहे तथा पापग्रहयुक्त शुक्रके चतुर्थ पापग्रह रहे, यदि चन्द्र पापग्रह द्वारा अवलोकित हो तथा षष्ठमें पापग्रह रहे, यदि लग्नके सप्तम स्थानमें सूर्य्य उच्च या नीच राशिमें अवस्थान करे, तो जातकका मातृरिष्ट होता है। इन सब मातृरिष्टोंसे जातकका मातृविनाश होता है।

पितृरिष्ट—दिनमें सूर्य और रातमें शनि जातकका पिता होता तथा रातमें रवि पिताका भाई और दिनमें शनि पिताका भाई होता है। लग्नसे षष्ठ और अष्टम स्थानमें रवि अवस्थान कर शनि और मङ्गल द्वारा अवलोकित हो तथा वृहस्पति और शुक्र यदि न देखे, तो जातकका पितृरिष्ट होता है। द्वितीय स्थानमें राहु और शुक्र, अष्टम स्थानमें चन्द्र और शनि, मङ्गल मित्रगृहमें लग्नसे चतुर्थ स्थानमें अवस्थान करे, यदि लग्नसे अष्टम स्थानमें मङ्गल द्वादशस्थानमें दो या तीन पापग्रह रहे तथा उस पर शुभग्रहकी दृष्टि न पड़े, यदि रवि अष्टम स्थानमें किंवा राहुके साथ मिल कर जन्मलग्नमें रहे, तो पितृरिष्ट होता है।

लग्नसे षष्ठमें चन्द्र, सप्तममें मङ्गल तथा दशममें शनि रहे, यदि चंद्र शुभग्रह द्वारा दृष्ट या युक्त न हो कर तीन पापग्रहोंसे दृष्ट हो जानेसे चतुर्थस्थानमें मङ्गल रहे, चन्द्र या मङ्गल पापग्रहयुक्त हो कर अष्टम स्थानमें रहे, सप्तममें मङ्गल तथा अष्टममें शनि और रवि रह कर यदि शुभग्रहसे दृष्टि न हो, सूर्य्य जिस राशिमें रहे, उसी राशिसे सप्तम राशिमें शनि और मङ्गल रहे अथवा अन्य किसी राशिमें शनि और मङ्गलके बीच रवि रहे, तो यह सब योग जातकका पितृरिष्टकारक होता है तथा इसके होनेसे शीघ्र जातकका पितृवियोग होता है।

भ्रातृरिष्ट—धनस्थानमें शनि और मङ्गल तथा तृतीयस्थानमें राहुके रहनेसे जातकका भ्रातृरिष्ट होता है।

लग्न और राश्याधिपरिष्ट—लग्नाधिपति और राश्यधिपतिग्रह अस्तमित हो कर लग्नके षष्ठ, अष्टम और द्वादश राशिमें रहनेसे यथाक्रम षष्ठ, अष्टम और द्वादश वर्षके मध्य जातककी मृत्यु होती है।

शुभग्रहरिष्ट—शुभग्रहगण अशुभ और वक्रग्रह द्वारा दृष्ट हो कर लग्नके षष्ठ या अष्टम अथवा दोनों स्थानोंमें रह कर कोई शुभग्रह द्वारा दृष्ट न होनेसे एक मासमें जातकका मरण होता है।

पापग्रहरिष्ट—कोई एक बलवान् पापग्रह शत्रुदृष्ट और शत्रुग्रहस्थित हो कर लग्नके अष्टम स्थानमें रहनेसे जातक मृत्युमुखमें पतित होता है।

पहले इन सब रिष्टोंका विचार कर उसका शुभाशुभ निर्णय करना होता है। रिष्ट होनेसे ही जो उसकी मृत्यु ठीक करनी होगी, वह नहीं। रिष्टभङ्ग है क्या नहीं, वह भी देखना होगा।

रिष्टभङ्गयोग—यदि केन्द्र स्थानमें तथा त्रिकोणमें अर्थात् नवपञ्चममें एक भी शुभग्रह रहे और वह ग्रह अस्तमित न हो कर उदितावस्थामें रहे, तो जातकका सब दोष नष्ट होता और उसे दीर्घायु और पीड़ारहित करता है। शुभग्रहगण सम्पूर्ण बलवान्, पापग्रहगण दुर्बल तथा शुभग्रहके क्षेत्रमें लग्न हो कर शुभग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे जातक समस्त आपदोंसे छुटकारा पाता है।

पूर्णचन्द्र शुभग्रहके क्षेत्रमें रह कर शुभग्रहके नवांशमें रहनेसे रिष्ट भङ्ग होता है। विशेषतः चन्द्र यदि शुक्र द्वारा दृष्ट हो, तो सब प्रकारका दोष एकबारगी नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार गरुड़ समस्त सर्पकुलको नाश करता है, उसी प्रकार शुभग्रहका मध्यवर्ती चन्द्र बालकका समस्त रिपुदोष नष्ट करता है।

यदि पूर्णचन्द्र अपनेसे उच्च या अपने घरमें अथवा मित्र शुभग्रह या अपने षड्वर्गमें रह कर शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो तथा पापग्रहयुक्त किंवा पापग्रह अथवा तात्कालिक शत्रुग्रह द्वारा दृष्ट न हो, तो दिनपति यानी सूर्य जिस तरह हिमराशि नष्ट करता है, उक्त चन्द्र भी उसी तरह सभी रिपुदोष विनष्ट करता है। चन्द्रसे षष्ठ, सप्तम और अष्टम राशिमें पापग्रह न रह कर शुभग्रहमें रहनेसे सफल रिष्ट भङ्ग होता है।

यदि शुक्लपक्षकी रातमें तथा कृष्णपक्षकी दिनमें जन्म हो तथा शुभाशुभ ग्रह द्वारा अवलोकित चन्द्र षष्ठ या अष्टम स्थानमें रहे, तो उक्त चन्द्र शिशुको विनाश न कर उसकी सब दोषोंसे रक्षा करता है।

तुला, धनु और मीन राशिमेंसे कोई एक राशि जन्मलग्न होनेसे यदि उसमें शनि रहे, तो समस्त रिष्टदोष नष्ट होता है, किन्तु अन्य राशि लग्न हो कर उसमें शनि रहे, तो मृत्यु होती है। लग्नके तृतीय, षष्ठ या एकादश स्थानमें यदि राहु रहे तथा यह राहु यदि शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो रिष्टभङ्ग होता है।

मेष, वृष, अथवा कर्कटराशिमें राहु अवस्थान करनेसे रिष्टभङ्ग होता है। शनि और राहु एक साथ मिल कर यदि सिंह राशिमें अवस्थान करे, तो जातकका समस्त रिष्टभङ्ग होता और वह भूपति या राजा होता है। यदि लग्नमें बुध, सप्तममें शुक्र तथा कर्कट राशिमें वृहस्पति रहे, शुक्र अपने घरमें तथा पापग्रहगण पापक्षेत्रमें रह कर शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो, चन्द्र, बुध, शुक्र या वृहस्पतिके त्रिकोणमें द्वादशांशमें रहनेसे किंवा लग्नाधिपतिको तृतीय, चतुर्थ, षष्ठ, दशम या एकादशमें हो कर शुभदृष्ट होनेसे सकल रिष्टदोष विनष्ट होता है।

(जातकच० ज्योतिस्तत्त्वप्र०)

जातकका इस प्रकार रिष्ट और रिष्टभङ्ग स्थिर करना होता है। जिस जातकके रिष्ट रहता है उसका शुभाशुभ निर्णय करना होता है।

रिष्फ (सं० क्ली०) लग्नसे बारह स्थान।

रिष्य (सं० पु०) रिष्यते इति रिष-क्यप्। मृगविशेष।

रिष्यमूक (सं० पु०) दक्षिणका एक पर्वत जहां रामजीसे सुग्रीवकी मित्रता हुई थी। ऋष्यमूक देखो।

रिष्व (सं० त्रि०) रिष वधे (सर्वनिघृष्वरिष्वेति। उण् १।१५३) इति वन् प्रत्ययेन साधुः। वधक, घातक।

रिस (हिं० स्त्री०) क्रोध, गुस्सा।

रिसान (हिं० पु०) तानेके सूतोंको फैला कर उनको साफ करनेका काम।

रिसाना (हिं० क्रि०) किसी पर क्रुद्ध होना, बिगड़ना।

रिसाल (फा० पु०) राजकर जो मुफस्सलसे राजधानी भेजा जाता है।

रिसालदार (फा० पु०) १ घुड़सवार, सेनाका अफसर। २ रिसाल या राजकर ले जाने वालोंका प्रधान संचालक, चढ़नदार।

रिसाला (फा० पु०) घुड़सवारोंकी सेना, अश्वारोही सेना।

रिसिआना (हिं० क्रि०) क्रुद्ध होना, कुपित होना।

रिसिक (हिं० स्त्री०) रिसिआना देखो।

रिसोद—बेरारराज्यके बासीम जिलान्तर्गत एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १९° ५८′ ३०″ उ० तथा देशा० ७६° ५१′ पू० तक विस्तृत है। इसका प्राचीन नाम 'ऋषिवत्सेत्र' था। १८५८-५९ ई०में हैदराबाद सेनादलके एक विभागने इस नगरके उपकण्ठस्थित चिन्नम्बा गांवमें एक दल रोहिला दस्युको घोरतर युद्धके बाद अपने कब्जेमें किया।

रिस्क (अं० स्त्री०) झोंका, जवाबदेही।

रिस्टवाच (अं० स्त्री०) कलाई पर बांधनेकी घड़ी।

रियत् (सं० अव्य०) लेहनकरण, चाटना।

रिहननामा (फा० पु०) वह लेख जिसमें किसी पदार्थके रेहन रखे जाने और उसके सम्बन्धकी शर्तोंका उल्लेख हो।

रिहर्सल (अं० पु०) १ नाटकके अभिनयका अभ्यास। जो किसी कार्यको ठीक समय पर करनेसे पहले किया जाय।

रिहल (अ० स्त्री०) कामकी बनी हुई कैंचीनुमा चौकी जिस पर रख कर लोग पुस्तक पढ़ते हैं और जिसका आकार इस प्रकारका × होता है।

रिहा (फा० वि०) १ बंधन आदिसे मुक्त, छूटा हुआ। २ किसी बाधा या संकटसे छूटा हुआ।

रिहाई (फा० स्त्री०) छुटकारा, मुक्ति।

रिहाण (सं० पु०) १ सेवा करना। २ पदलेहन, पैर चाटना। ३ आनुगत्यस्वीकार करना।

रिहायस् (सं० पु०) १ दस्यु। २ स्तेन, चोर। (नैघण्टु० ३।२४)

रिह्लन—काश्मीरका एक राजपुरुष। (राजतर० ७।६३८)

रिह्वन् (सं० पु०) चोर।

रींधना (हिं० क्रि०) तैयार करनेके लिये खाद्य पदार्थको तलना, उबालना या पकाना, राँधना।

री (सं० स्त्री०) री-क्विप्। १ गति। २ रव, शब्द। ३ वध, हत्या।

री (हिं० अव्य०) सखियोंके लिये सम्बोधन, अरी।

रीगन (हिं० पु०) एक प्रकारका धान जो भादों या कुआँरमें तैयार होता है।

रीछ (हिं० पु०) भालू।

रीछराज (हिं० पु०) जामवंत।

रीजेंट (अं० पु०) वह जो किसी राजाकी नाबालगी, अनुपस्थिति या अयोग्यताकी अवस्थामें राज्यका प्रबन्ध या शासन करता हो, राज-प्रतिनिधि।

रीजेंसी (अं० स्त्री०) रीजेंटका शासन या अधिकार।

रीज्या (सं० स्त्री०) १ घृणा, नफरत। २ भला बुरा कहना, लानत, मलामत, निन्दा।

रीझ (हिं० स्त्री०) १ किसीके ऊपर रीझनेकी क्रिया या भाव, किसीकी किसी बात पर प्रसन्नता। २ किसीके रूप, गुण आदि पर मोहित होनेका भाव।

रीझना (हिं० क्रि०) १ किसी बात पर प्रसन्न होना। २ मोहित होना, मुग्ध होना।

रीठ (हिं० स्त्री०) १ तलवार। २ युद्ध। (वि०) ३ अशुभ, खराब।

रीठा (हिं० पु०) १ एक बड़ा जंगली वृक्ष। यह प्रायः बंगाल, मध्यप्रदेश, राजपूताने तथा दक्षिण भारतमें पाया जाता है और देखनेमें बहुत सुन्दर होता है। २ इस वृक्षका फल जो बेरके बराबर होता है। इसको लोग सुखा कर रखते हैं। इसे पानीमें भिगो कर मलनेसे फेन निकलता है जिससे कपड़े धोये जाते हैं। काश्मीरमें शाल आदि प्रायः इसीसे साफ किये जाते हैं। यह रेशम तथा जवाहिरात धोनेके काममें भी आता है। इसे फेनिल भी कहते हैं। ३ वह भट्ठा जिसमें चूना बनानेके लिये कंकर फूंके जाते हैं।

रीठाकरञ्ज (सं० पु०) स्वनामख्यात वृक्ष, रीठा। बम्बईमें—रिथा, तामिलमें—पिञ्चान कोट्टई, तैलङ्गमें—रीठाकरञ्ज, मनेचट्टु। संस्कृत पर्याय—गुच्छक, गुच्छपुष्पक, गुच्छफल, अरिष्ट, मङ्गल्य, कुम्भबीजक, प्रकीर्य, सोमवल्क, फेनिल। इसके फलका गुण—तिक्त, उष्ण, कटु, स्निग्ध, वात, कफ, कुष्ठ, कण्डूति, विष और विस्फोटनाशक। (राजनि०)

रीठो (हिं० स्त्री०) रीठा देखो।

रीडर (अं० पु०) १ वह जो पढ़े, पढ़नेवाला। २ वह जो लेख या पुस्तकोंके प्रूफ पढ़ता या संशोधन करता है, संशोधक। ३ कालेज या विश्वविद्यालयका अध्यापक या व्याख्याता। (स्त्री०) ४ पाठ्य, पुस्तक।

रीडिंगरूम (अं० पु०) वाचनालय देखो।

रीढ़ (हिं० स्त्री०) पीठके बीचोबीचकी वह खड़ी हड्डी जो गर्दनसे कमर तक जाती है और जिससे पसलियाँ मिली हुई रहती हैं, मेरुदण्ड। यह वास्तवमें एक ही हड्डी नहीं होती, बल्कि बहुत-सी हड्डियोंकी गुरियोंकी एक शृंखला होती। इसे शरीरका आधार समझना चाहिये। इसका सीधा लगाव मस्तिष्कसे होता है और बहुतसे संवेदन-सूत्र इसमेंसे दोनों ओर निकल कर फैले रहते हैं।

रीढ़क (सं० पु०) पृष्ठवंश, मेरुदण्ड। रीढ़ा देखो।

रीढ़ा (सं० स्त्री०) रिह-बन्धे औणादिकः क्तः। अवज्ञा, अपमान।

रीण (सं० त्रि०) री-क्त, ओदितश्चेति न। १ क्षुत-जलादि। २ क्षरित।

रीत (हिं० स्त्री०) रीति देखो।

रीतना (हिं० क्रि०) १ खाली होना, रिक्त होना। २ खाली करना, रिक्त करना।

रीता हिं० वि०) जिसके अन्दर कुछ न हो, खाली।

रीति (सं० स्त्री०) री-क्तिच्-क्तिन् वा। १ कोई कार्य करनेका ढंग, प्रकार। २ परिपाटी, रिवाज। ३ नियम, कायदा। ४ लौहकिट्ट, लोहेकी मैल, मण्डूर। ५ दग्ध स्वर्णादि मल, जले हुए सोनेकी मैल। ६ आरकूल, पीतल। ७ सीसा। ८ गति। ९ स्वभाव। इसका पर्याय—रूप, लक्षण, भाव, आत्मा, प्रकृति, सहज रूप-तत्त्व, धर्म, सर्ग, निसर्ग, शील, सतत्त्व, संसिद्धि। १० स्तुति, प्रशंसा। "महीव रीतिः शवसासरत् पृथक्" (ऋक् २।२४।१४) 'महीव रीतिः महती स्तुतिरिव' (सायण) ११ काव्यकी आत्मा। एक एक रीतिके अनुसार काव्य वर्णित होता है, इसलिये वामन रीतिको काव्यकी आत्मा कहा है। यह रीति ओजः, प्रसाद और माधुर्य्यगुणके भेदसे गौड़, वैदर्भ और पाञ्चाल तीन तरहकी है।

(काव्यचन्द्रिका)

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि पदसंघटनाका नाम रीति है। यह रसकी उपकारिणी है। यह रीति चार प्रकारकी है,—वैदर्भी, गौड़ी, पञ्चाली और लाटी। जहां माधुर्य्यव्यञ्जक वर्ण द्वारा सुललित पदरचना करने पर भी वह अवृत्ति या अल्पवृत्तियुक्त रहती है, उसे वैदर्भी; जहां ओजःप्रकाशक वर्ण द्वारा पद रचना होता है तथा यह पद समासबहुल होता है, उसे गौड़ी और जहां वैदर्भी तथा गौड़ी इन दो रीतिके अलावा अन्य वर्णद्वारा समास-युक्त पांच या छः पद द्वारा सुललित रचना होती है, उसे पाञ्चाली रीति कहते हैं।

वैदर्भी और पाञ्चाली रीतिको मध्यस्था जो रीति है, उसे लाटी कहते हैं अर्थात् जहां वैदर्भी भी नहीं तथा पाञ्चाली भी नहीं है और यही दोनोंको मध्यवर्त्तिनी है, वहां लाटी रीति होती है। (साहित्यदर्पण ९ परि)

रीतिक (सं० क्ली०) पुष्पाञ्जन, एक प्रकारका अंजन।

रीतिका (सं० स्त्री०) १ कुसुमाञ्जन, जस्तेका भस्म। २ पित्तल, पीतल।

रीतिपुष्प (सं० क्ली०) रीतेः पित्तलस्य पुष्पमिव तदा कृतित्वात्। कुसुमाञ्जन, जस्तेका भस्म।

रीम (अं० स्त्री०) १ कागजकी वह गड्डी जिसमें बीस दस्ते होते हैं। २ मवाद, पीब।

रीर (सं० पु०) शिव, महादेव।

रीर (हिं० स्त्री०) रीढ़ देखो।

रीरी (सं० स्त्री०) पित्तल, पीतल।

रीस (हिं० स्त्री०) १ रिसि देखो। २ डाह। ३ स्पर्द्धा, बराबरी।

रीसना (हिं० क्रि०) क्रुध करना, खफा होना।

रीसा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी झाड़ी जिसकी छालके रेशोंसे रस्सियां बनती हैं। यह झाड़ी हिमालय और खासिया पहाड़ी पर होती है। इसे बन कटकोरा या बनरीहा भी कहते हैं।

रीहा (हिं० स्त्री०) रीसा देखो।

रुंज (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजा।

रुंदवाना (हिं० क्रि०) पैरोंसे कुचलना, रौंदवाना।

रुंधना (हिं० क्रि०) १ मार्ग न मिलनेके कारण अटकना, रुकना। २ उलझना, फंस जाना। ३ रोक या रक्षाके लिये कांटेदार झाड़ोंसे घिरना या छाना, घेरा जाना। ४ किसी काममें लगना।

रु (सं० पु०) शब्द।

रुऑंली (हिं० स्त्री०) रूईकी बनी हुई एक प्रकारकी पोली बत्ती या पूनी जो स्त्रियां चरखे पर सूत कातनेके लिये एक सिरकी पर लपेट कर बनाती हैं, पूना, पौनी।

रुआघास (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बहुत सुगन्धित घास जो तेल आदि बासनेके काममें आती है। २ इस घाससे बासा हुआ तेल।

रुआब (अ० पु०) १ धाक, रोब। २ भय, डर, खौफ।

रुईं (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका छोटा पेड़। यह हिमालय-की तराईमें काश्मीरसे पूर्व दिशामें होता है। इसकी छाल और पत्तियां रंगाईके काममें आती हैं।

रुई (हिं० स्त्री०) रूई देखो।

रुईदस्त (फा० पु०) कुश्तीमें छाती या बगलके पाससे हाथ अड़ा कर निकालना।

रुईदार (हिं० वि०) रूईदार देखो।

रुईदास—रयदासी या रुईदासी नामक वैष्णव-धर्मसम्प्र-दायके प्रवर्त्तक। ये प्रसिद्ध वैष्णव साधक रामानन्द-

स्वामीके शिष्य थे। कहते हैं, कि चमारोंके बीच इन्होंने अपना धर्ममत प्रचार किया। दूसरे दूसरे साम्प्रदायिक इनके मतानुवर्त्ती नहीं हुए। किन्तु सिखोंके आदि ग्रन्थमें इनका रविदास नाम था। इनके बनाये किसी किसी ग्रन्थसे अनुमान होता है, कि एक समय ये बड़े प्रसिद्ध हो उठे थे। आज भी काशीके रहनेवाले सिख जो स्तव-संगीत गाते हैं वह अधिकांश ही रुईदासका बनाया हुआ है।

भक्तमालग्रन्थको छोड़ उक्त महापुरुषकी जीवनीके सम्बन्धमें और कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। उक्त ग्रन्थमें लिखा है,—रामानन्दस्वामीकी शिष्य मण्डलीमें एक ब्रह्मचारी था जो भगवान्‌की भोजसामग्री इकट्ठी करनेके लिये प्रति दिन भीख मांगा करता था। एक दिन महलमें आ कर वह एक बनियेके यहां पहुंचा और उससे जो कुछ मिला, वह अपने गुरुके हाथ दे दिया। अभाग्यवश वह बनिया सैनिकोंकी खाद्य-सामग्री बेचता था।

रामानन्दस्वामी भोग लगाते समय भगवान्‌को मौजूद न देख मनमें सोचने लगे,—शायद भोगकी सामग्रीमें कुछ खलल पहुंचा है। तदनुसार उन्होंने ब्रह्मचारीको बुलाया और पूछा, कि तुमने आज भोगकी सामग्री कहांसे लाई है। ब्रह्मचारीने साफ साफ बतला दिया। इस पर वे दुःखित हुए और कहा, 'हा चमार'। गुरुवाक्य लंघन होनेको नहीं। ब्रह्मचारीने देह त्याग कर चमारके घर आश्रय लिया। जातकर्मके बाद उनका रुईदास नाम पड़ा।

शिशु रुईदास पूर्वजन्मके सद्गुरुके आश्रय और साधुसंगमके फलसे पूर्वजन्मकी बात न भूलते हुए जातिस्मर हुए। गुरुदेवसे अपना बिछुड़ना जान वे व्याकुलतासे रोने लगे। एक बूंद भी दूध नहीं पीते। शिशुका ऐसा भाव देख जनकजननी उत्कण्ठित हुईं और अपने पुत्रके जीवनकी आशंका जान शुभ कामनासे रामानन्दस्वामीके निकट पहुंचीं और सारी कहानी कह सुनाईं। स्वामीजी उनके साथ हो लिये और रुईदासको देखने आये। गुरुका दर्शन पाते ही शिष्य फूला न समाया।

रामानन्दस्वामीने उनके कानमें महामन्त्र दिया। मन्त्र पानेसे शिशुने स्तन्यपान किया तथा क्रमशः बढ़ता हुआ विष्णुपदमें ही लीन रहा। जब उमर अधिक हो गई, तब रुईदास अपना जातिकार्य अवलम्बन करने लगे और जो मिलता उससे वैष्णवोंकी सेवा किया करते थे। एक दिन भगवान् वैष्णवरूपमें उनके घर पधारे और स्पर्शमणि दी। विष्णुभक्त रुईदासने उसे ग्रहण नहीं किया।

इसके करीब तेरह महीने बाद विष्णु भगवान् फिर अपने भक्तको देखने आये। स्पर्शमणिको ग्रहण न किया देख फिर उन्होंने भक्तकी परीक्षा लेनेके लिये किसी एक एकान्त स्थानमें कुछ स्वर्णमुद्रा फेंक दी। रुईदास इतने पर भी अपनी अटल भक्ति और विश्वाससे विचलित न हुए और कांचनके प्रलोभनसे बड़े विरक्त हो उसी समय वह स्थान छोड़ अन्यत्र चले गये। तब भगवान् विष्णुने भक्तके मनोभावसे एकदम जानकार हो स्वप्नमें रुईदासको दर्शन दिया और कहा, 'वह धन तुम अपने काममें अथवा देवसेवामें खर्च करो।' रुईदास अपने इष्टदेव द्वारा इस प्रकार अनुज्ञात हो वह धन या कांचन ले आये और उससे एक मन्दिर बनवा कर उसमें एक शालग्रामशिला स्थापित की और खुद उस मन्दिरके अध्यक्ष हुए।

ब्राह्मणोंने विद्वेषवशवर्त्ती हो कर राजाको कहा, 'महाराज आपके राज्यमें एक चमार शालग्रामकी पूजा करता है तथा सभी नर-नारियोंको प्रसाद बांटता है। इससे जातिच्युतिका उपक्रम हो गया है।' राजाने ब्राह्मणोंकी बात सुन कर उसी क्षण उस चमारको बुलवाया और उससे शालग्राम छोड़ देनेको कहा। राजाका हुक्म प्रतिपालित करते हुए रुईदासने एक निर्दिष्ट आसन पर शालग्रामको स्थापित कर उनकी रक्षा की। ब्राह्मणोंने वहांसे भी शिलारूपी नारायणको उठानेकी कोशिश की, पर न उठा सके।

इसी समय चित्तोर-राजमहिषी झालीने रुईदाससे दीक्षा ग्रहण किया। राज्यके रहनेवाले ब्राह्मण लोग राजपत्नीके इस आचरण पर क्रुद्ध हो विद्रोही हो उठे और वे सबके सब गुरुके शरणमें पहुंचे। अपनी

शिष्याकी मनोवाञ्छा पूरी करनेके लिये रुईदास थोड़े ही समयमें चित्तोर आ कर उपस्थित हुए। बाद उसके उनके परामर्शसे एक दिन राजपत्नीने ब्राह्मणोंको निमन्त्रण भेजा। ब्राह्मण लोग राजप्रासाद आये और भोजनकी पंक्तिमें बिठाए गये। भोजनके समय वे सब क्या देखते हैं, कि दो दो ब्राह्मणोंके बीच एक एक रुईदास बैठा है। तब वे बड़े भौंचकमें पड़ गये और सबोंने भक्तिविह्वलचित्तसे उनका शरणागत हो शिष्यत्व ग्रहण किया।

रुक (सं० त्रि०) बहुप्रद, बहुत देनेवाला।

रुकनुद्दीन वजीर—सामापल आतकिया नामक ग्रन्थके रचयिता। इस ग्रन्थमें भगवान्‌का और मुसलमान फकीरोंका माहात्म्य तथा अलौकिक कार्यका विवरण लिखा है।

रुकन् उद्दीन (शेख)—एक मुसलमान फकीर जो अबुलफते नामसे परिचित थे। ये मूलतानवासी मशहूर मुसलमान फकीर शेख बहाउद्दीन जकारियाके पौत्र और शेख सदरउद्दीन अरिघोके पुत्र थे। १३१० ई०में सुलतान अलाउद्दीन सिकेन्दर सानीके राज्यकाल तक ये जीवित थे।

रुकनुद्दीन फिरोज (सुलतान)—दिल्लीके दासवंशी राजा सुलतान सामसउद्दीन अलतमासके पुत्र। पिताकी मृत्युके बाद १२३६ ई०को १ली मईको वे राजगद्दी पर बैठे; किन्तु अपनी नालायकीसे छः ही महीनेके अंदर मन्त्रियों द्वारा गद्दीसे उतार दिये गये और कैद किये गये। इसी वर्षकी १९वीं नवम्बरको जनताकी रायसे सुलताना रजिया राजतख्त पर बैठी थीं। रुकनुद्दीनने कैदखानेमें ही अपना शेष जीवन बिताया।

रुकनुद्दीन मसाउद मसीहि—जाबितात् उल् इलाज नामक अरबी भाषामें एक हकीमी ग्रन्थके प्रणेता। ये एक अच्छे कवि थे और १५८५ ई० तक मौजूद थे।

रुकनउद्दौला यात्‌काद खां—काश्मीरके रहनेवाले एक मुसलमान। इनका प्रकृत नाम था महम्मद मुराद। मुगलसम्राट् फरुखसियरकी माता साहिबा निसवानने जहां जन्म लिया था, वहीं रुकनउद्दौलाकी जन्मभूमि थी। इसलिये लड़कपन हीसे दोनोंमें जान-पहचान थी।

जब दो सैयद भाइयोंके जुलमसे फरुखसियर बड़े विरक्त हो गये थे, तभी उनकी माताने अपने लड़कपनकी दोस्ती मुरादके साथ पुत्रको बतला दी थी। मैं इन दो सैयद भाइयोंके हाथसे सम्राट्‌को मुक्त कर दूंगा तथा बिना युद्ध किये ही दोनों भाइयोंको यमपुर भेज सकूंगा, इस प्रकार आश्वासवाक्यसे और तोषामोदसे सम्राट् फरुखसियरको वशीभूत कर ये राज्यके एक उच्च कर्मचारीके पद पर नियुक्त हुए। धीरे धीरे इन्हें सम्राट्‌की कृपासे रुकनउद्दौला उपाधिके साथ साथ सात हजार मनसबदारका पद और उसके अनुसार जागीर मिली। सम्राट्‌के प्रलोभनसे मुग्ध हो कर ये पहले अपनी सत्ता बढ़ाने लगे। सम्राट्‌ने निजाम उलमुलकसे मुरादाबाद छीन कर अन्यान्य भूसम्पत्तिके साथ एक बड़ी सूबेदारी इकट्ठी की और इसका रक्षणभार रुकनके हाथ सपुर्द किया। इसी पर बहुतेरे फरुखसियर पर चिढ़ गये। दोनों सैयद भाइयोंने १७१९ ई०में सम्राट् फरुखसियरको गद्दीसे उतार दिया और रुकन् उद्दौलाको लांछनाके साथ कैद कर रखा। अन्तमें तरह तरहका दुःख दे कर उनका गुप्तधन जान लिया था। सम्राट् महम्मद शाहके राज्यकालमें रुकन् उद्दौलाकी मृत्यु हुई।

रुकनकाशी (हकीम)—एक विख्यात मुसलमान कवि और राजहकीम। ये प्रसिद्ध पारस्यपति महात्मा शाह अब्बासके विश्वस्त अनुचर थे। किसी कारणसे पारस्यपति इन पर बिगड़ गये। पीछे इन्होंने अपनी जन्मभूमि परित्याग कर भारतमें आगमन किया। यहां आ कर ये मुगलसम्राट् अकबरशाहके अधीन रहे और यथाक्रमसे जहांगीर और शाहजहान बादशाहके राज्यकाल तक बड़ी प्रसिद्धिके साथ राजकार्यकी देखभाल करते रहे। शाह जहान्‌के समय बुढ़ापेमें ये मक्का गये। वहांसे लौटने पर कुछ दिनके बाद ही १६४६ ई०में ये मृत्युमुखमें पतित हुए। इनका बनाया प्रायः लाख बयात् मिलता है।

रुकना (हिं० क्रि०) १ माग आदि न मिलनेके कारण ठहर जाना, आगे न बढ़ सकना। २ अपनी इच्छासे ठहर जाना, आगे न बढ़ना। ३ किसी कार्यका बीचमें ही बंद होना, काम आगे न होना। ४ वीर्यपात न होना, स्खलित न होना। ५ किसी कार्यमें आगे न चलना, किसी काममें सोच विचार या आगा पीछा करना। ६ किसी चलते क्रमका बंद होना, सिलसिला आगे न चलना।

रुकमंजनी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका पौधा जो बागोंमें सजावटके लिये लगाया जाता है। २ इस पौधेका फूल।

रुकमङ्गद (हिं० पु०) रुक्माङ्गद देखो।

रुकमिनी (हिं० स्त्री०) रुक्मिणी देखो।

रुकवाना (हिं० क्रि०) दूसरोंको रोकनेमें प्रवृत्त करना, रोकनेका काम दूसरेसे कराना।

रुकाव (हिं० पु०) १ रुकनेका भाव, रुकावट। २ मलावरोध, कब्जा।

रुकिया बेगम (सुलतान)—मुगलसम्राट् बाबरशाहकी पोती और मीर्जा हिन्दलकी लड़की। ये मुगल-सम्राट् अकबर शाहकी प्रधाना महिषी थीं। दुर्भाग्यवश इनके कोई सन्तान न हुआ। जहांगीरका लड़का शाहजहान् जब पैदा हुआ, तो अकबरने उसका लालन-पालन इन्हीं पर सौंप दिया। ये नूरजहान बेगमकी आश्रयदात्री थीं। १६२६ ई०में ८४ वर्षकी अवस्थामें ये आगरेमें मरीं।

रुक्का (अ० पु०) १ छोटा पत्र या चिट्ठी, पुरजा। २ वह लेख जो हुंडी या कर्ज लेनेवाले रुपया लेते समय लिख कर महाजनको देते हैं।

रुक्काम (सं० त्रि०) आलोक या ज्योति।

(तैत्तिरीयस० १।२।३।३)

रुक्प्रतिक्रिया (सं० स्त्री०) रुजः प्रतिक्रिया निरसनं। चिकित्सा, रोगका प्रतिकार।

रुक्म (सं० क्ली०) रोचते शोभते इति रुच् (युजिरुचितिजां-कुश्च। उण् १।१४५) इति मक्, कवर्गश्चान्तादेशः। १ काञ्चन, सोना। २ धुस्तूर, धतूरा। ३ लौह, लोहा। ४ नागकेशर। (पु०) ५ वर्ण। ६ रुक्मिणीके एक भाईका नाम। (त्रि०) ७ दीप्तिशील।

रुक्मकवच (सं० पु०) १ यदुवंशीय राजभेद। २ कम्बलबर्हिके पुत्र। (हरिवंश ३६ अ०)। ३ भागवतके मतसे उशनाका आत्मज या पुत्र। (भागवत ९।२३।३३) ४ विष्णुपुराणके मतसे उशना राजाका पौत्र और शितेयुका पुत्र। इसका दूसरा नाम रुचक था।

रुक्मकारक (सं० पु०) रुक्मं स्वर्णालङ्कारं करोतीति कृ (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) इत्यण्, ततः स्वार्थे कन्। स्वर्णकार, सुनार। (अमर)

रुक्मकेश (सं० पु०) विदर्भके राजा भीष्मकके छोटे पुत्रका नाम। (भागवत १०।५२ अ०)

रुक्मपाश (सं० पु०) सूतका बना हुआ वह फंदा या लड़ जिसकी सहायतासे गहने आदि पहने जाते हों।

रुक्मपुर (सं० क्ली०) पुराणानुसार एक नगरका नाम जहां गरुड़ वास करते हैं।

रुक्मपृष्ठ (सं० त्रि०) सोनेका पत्तर मोड़ा हुआ या कलाई किया हुआ।

रुक्मप्रस्तरण (सं० त्रि०) स्वर्णपुष्पादि चित्रित बहिर्वासभेद, बनारसी कपड़ा।

रुक्ममय (सं० त्रि०) स्वर्णनिर्मित, सोनेका बना हुआ।

रुक्ममालिन् (सं० पु०) भीष्मकके एक पुत्रका नाम।

(भागवत १०।५२।२२)

रुक्मबाहु (सं० पु०) भीष्मक राजाके एक पुत्रका नाम।

(भाग० १०।५।२२)

रुक्मरथ (सं० पु०) १ स्वर्णनिर्मित रथ, वह रथ जो सोनेका बना हो। २ रुक्मरथ या द्रोणाचार्यका रथ। ३ द्रोणाचार्य। ४ शल्यके एक पुत्रका नाम। ५ महत्के एक पुत्रका नाम। ६ भीष्मकके एक पुत्रका नाम। ७ सह्याद्रिवर्णित एक राजाका नाम। (सह्याद्रि ३८।१८)

रुक्मवक्षस् (सं० त्रि०) स्वर्ण निर्मित वक्षाभरणयुक्त। जिसके पास सोनेका बना वक्षाभरण हो।

रुक्मवत् (सं० त्रि०) १ स्वर्णाभरणयुक्त। २ स्वर्णयुक्त। (पु०) ३ रुक्मिका नामान्तर।

रुक्मवती (सं० स्त्री०) १ एक वृत्तका नाम जिसके प्रत्येक चरणमें 'भ म स ग' होते हैं। इसके और नाम 'रूपवती' तथा 'चंपकमाला' भी हैं। २ रुक्मिकी पौत्री और अनिरुद्धकी पत्नीका नाम। (हरिवंश)

रुक्मवाहन (सं० त्रि०) १ स्वर्णरथयुक्त (पु०) २ द्रोणाचार्य।

रुक्मसेन (सं० पु०) रुक्मिणीका छोटा भाई।

रुक्मस्तेय (सं० क्ली०) स्वर्णचोर, सोना चुरानेवाला चोर।

रुक्माङ्गद (सं० पु०) राजविशेष, एक राजाका नाम।

(हितोपदेश १ परि०)

रुक्मि (सं० पु०) जैनोंके अनुसार पांचवें वर्षका नाम जो रम्यक और हैरण्यवत वर्षके मध्यमें स्थित है।

रुक्मिण (सं० स्त्री०) रुक्मिणी देखो।

रुक्मिणी (सं० स्त्री०) रुक्मिन् स्त्रियां ङीष् । श्रीकृष्ण-की पत्नी । पर्याय—ई, रमा, सिन्धुजा, समा, चला, हीरा, चञ्चला, वृषाकपायी, चपला, इन्दिरा, लक्ष्मी, पद्मालया, पद्मा, कमला, श्री, हरिप्रिया । (जटाधर)

रुक्मिणीके विषयमें हरिवंशमें इस प्रकार लिखा है—विदर्भदेशमें भीष्मक नामक एक राजा थे । उनके रुक्मि नामक एक पुत्र और रुक्मिणी नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई । क्रमशः रुक्मिणीकी संसारमें अद्वितीय रूपवतीके नामसे प्रसिद्धि हो गई । श्रीकृष्ण रुक्मिणीके रूपके विषयमें इतनी प्रशंसा सुन कर उन पर अनुरक्त हो गये । इधर रुक्मिणी भी श्रीकृष्णके गुणानुवाद सुननेसे उन पर मुग्ध हो कर 'असाधारण बलवीर्य सम्पन्न तेजस्वी जनार्दन ही मेरे पति होंगे' ऐसी अभिलाषा करने लगीं । परन्तु रुक्मीको परशुरामके पाससे ब्रह्मास्त्र मिल जानेसे वे कृष्णसे अत्यन्त द्वेष करने लगे । कृष्ण कंस-घाती हैं, इसलिए वह द्वेष और भी बढ़ गया । रुक्मीको रुक्मिणीका अभिप्राय मालूम पड़ने पर वे किसी भी प्रकार इस विवाहसे सहमत न हुए ।

इधर जरासन्धने भीष्मकसे प्रार्थना की, कि चेदिराज शिशुपालके साथ रुक्मिणीका विवाह कर दें । इसका कारण यह, कि पहले चेदिराज वसुके एक बृहद्रथ नामक पुत्र हुआ । उन्होंने मगध राज्यमें गिरिव्रज नामका एक नगर स्थापन किया । उन्हींके वंशमें जरासन्ध उत्पन्न हुए । चेदिराज दमघोष भी इसी वंशमें पैदा हुए थे । दमघोषके शिशुपाल आदि पांच पुत्र हुए । ये पुत्र वसुदेवकी बहन श्रुतश्रवाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । दमघोष और जरासन्ध दोनों ही एक वंशके होनेसे दमघोषने जरासन्धको सहायताके लिए उन्हें अपने ज्येष्ठ पुत्र शिशुपालको दिया । तबसे जरासन्ध शिशुपालको पुत्रके समान रखने लगे । महीपति कंस जरासन्धके जामाता थे । कृष्णके द्वारा युद्धमें कंसके मारे जानेसे जरासन्धका वृष्णिवंशसे वैर भाव दृढ़तर हो गया ।

इधर जरासन्धने शिशुपालके लिए भीष्मकसे रुक्मिणी चाही और भीष्मक इस पर राजी हो गये । पीछे जब जरासन्ध शिशुपालको ले कर रुक्मिणीको व्याहने गये, तब राम और कृष्ण पितृष्वसाकी प्रीतिके लिए वृष्णिगणोंके साथ वहां उपस्थित हुए । क्रथ-कौशिकने उनको यथाविधानसे अपने भवनमें ले गये । विवाहके एक दिन पहले रुक्मिणी इन्द्राणीकी पूजाके लिए रथमें बैठ कर देवमन्दिरके लिए रवाना हुईं ।

असामान्य रूपलावण्यवती रुक्मिणीके देवालयके निकट पहुंचने पर सहसा उन पर कृष्णकी दृष्टि पड़ गई । कृष्ण उस शुक्ल-दुकूलवासा रुक्मिणीको देख कर अत्यन्त अधीर हो उठे । तब अनंगने उनकी अन्तरात्माको हुताशनकी तरह दग्ध करना शुरू किया । उन्होंने भी उसी समय बलदेवके साथ मंत्रणा करके रुक्मिणीको हरण करनेका निश्चय कर लिया । इसके बाद रुक्मिणी जब देवार्चना करके मन्दिरसे निकलीं, तब कृष्ण वहां पहुंचे और उन्हें रथमें बिठा कर ले आये । श्रीकृष्णने रुक्मिणीको हरण किया है, जान कर जरासन्ध शिशुपाल आदि राजा उनके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए । क्रमशः तुमुल युद्ध होने लगा । युद्धमें श्रीकृष्ण सबको परास्त करके अन्तमें रुक्मिणीको ले कर चले आये ।

कृष्ण रुक्मिणीको हरण कर ले गये, इस संवादको सुनते ही रुक्मी अत्यन्त क्रुद्ध हुए और पिताके समक्ष आ कर कड़ी प्रतिज्ञा कर बैठे कि "मैं कृष्णको मारे बिना और रुक्मिणीको साथ लाये बिना घरमें प्रवेश न करूंगा ।" रुक्मी उसी समय सेना-सहित युद्धके लिए चल दिये । नर्मदाके तट पर श्रीकृष्णसे भेंट हुई । उसी समय क्रोधमें आ कर रुक्मीने कृष्ण पर वाण बरसाने शुरू किये । तुमुल युद्ध हुआ । श्रीकृष्णने सबको पराजित करके शर-प्रहारसे रुक्मीका वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया । तब रुक्मी विकट आर्त्तनाद करके वज्राहत पर्वतकी भांति भूमि पर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया ।

इधर रुक्मिणीने भाईको मूर्च्छित और भूमि पर पड़ा देख स्वामीके चरणोंमें भाईकी प्राण भिक्षा मांगी । तब कृष्ण रुक्मीको अभय दे कर अपने नगरकी तरफ चल दिये ।

रुक्मी प्रतिज्ञाका पालन न कर सके, इस कारण वे कुण्डिननगर न लौटे । वे विदर्भदेशके एक प्रान्तमें एक

बृहत्पुरी निर्माण कर उसीमें रहने लगे। उक्त पुरी भोजकट नामसे प्रसिद्ध हुई।

इधर प्रभु कृष्णने बलदेव और वृष्णिगणोंके साथ द्वारकामें पहुंच कर रुक्मिणीका पाणिग्रहण किया। रुक्मिणी श्रीकृष्णकी प्रधाना महिषी थीं। रुक्मिणीके गर्भसे श्रीकृष्णके चारुदेष्ण, सुदेष्ण, महाबल, प्रद्युम्न, सुषेण, चारुगुप्त, चारुबाहु, चारुविन्द, सुचारु, भद्रचारु और चारु ये दश पुत्र और चारुमती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। बहुत समय व्यतीत होनेके बाद रुक्मिणीने अपनी दुहिताके विवाहके लिए स्वयंवर-सभा आह्वान की थी। इस स्वयंवर-सभामें श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको रुक्मीकी दुहिता सुभाङ्गीने वरमाला पहनाई थी। (हरिवंश)

रुक्मिणी स्वयं लक्ष्मीकी अवतार थीं। पहले हेमकूट पर्वत पर जब देवोंने एकत्र हो कर अंशावतारकी कल्पना की थी उस समय उन्होंने पहले ही लक्ष्मीसे कहा था—"लक्ष्मी! तुम पहले मर्त्यलोकमें पतिके साथ अवतीर्ण होओ। वहां कुण्डिन नगरमें भीष्मक-पत्नीके उदरमें जन्मग्रहण कर केशवके लिए प्रतीक्षा करो।" (हरिवंश १०८)

रुक्मिणी स्वर्ग विहारिणी स्वयं लक्ष्मी और श्रीकृष्ण पूर्ण-ब्रह्म हैं।

श्रीमद्भागवतमें भी रुक्मिणीका विवरण लिखा है; बाहुल्यके भयसे यहां नहीं दिया जाता। २ स्वर्णक्षीरी। (राजनि०)

रुक्मिणीव्रत (सं० क्ली०) एक प्रकारका योषिद्व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीको इसका अनुष्ठान किया जाता है। चार वर्ष तक इस व्रतका अनुष्ठान करके प्रतिष्ठा करनी चाहिए। हेमाद्रिके व्रतखण्डमें इस व्रतका विधान इस प्रकार लिखा है—व्रतके पूर्व दिन हविष्याशि करके रहना चाहिए। व्रतके दिन प्रातःकृत्यादि करके स्वस्तिवाचन-पूर्वक संकल्प करना चाहिए। संकल्प इस प्रकार है—"विष्णुरोम् तत्सदद्य वैशाखे मासि शुक्ले पक्षे द्वादश्यान्तिथौ अमुकगोत्रा श्री अमुकी देवी श्रीविष्णु प्रीतिकामा पुत्रपौत्राद्यवच्छिन्नसन्ततिधनधान्य सौभाग्यादिप्राप्त्युत्तरविष्णुलोकप्राप्तिकामा अद्यारभ्य वर्षचतुष्टयं यावत् रुक्मिणीव्रतमहं करिष्ये" इस प्रकार संकल्प करके सूक्त पाठ करना चाहिए। पश्चात् पञ्चगव्य और पञ्चामृत द्वारा विष्णुको स्नान करा कर पुरुष सूक्त द्वारा स्नान करना चाहिए। उसके बाद सामान्यार्घ्य, आसनशुद्धि, भूतशुद्धि और मातृकान्यासादि, पश्चात् गणेशादि पञ्चदेवता, नवग्रह और दश दिक्पालोंकी पूजा करके श्रीकृष्णका ध्यान करनेके बाद यथाशक्ति पाद्यादि उपचार द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए।

इस प्रकार विष्णुकी पूजा करनेके बाद यथाशक्ति जप और जप समापन, स्तवपाठ और प्रणाम आदि करना चाहिए। पश्चात् लक्ष्मीके आवरणादि देवताओंकी पूजा करके भोज्योत्सर्ग करना और कथा सुनना चाहिए।

व्रतप्रतिष्ठाके विधानानुसार चार वर्ष तक इस व्रतकी प्रतिष्ठा की जाती है। इस व्रतका विधान पूछने पर सूतने शौनकको इस व्रतका उपाख्यान सुनाया था। व्रतकथाका सारांश इस प्रकार है—आमूल देवयानी शर्मिष्ठा-संवाद, शर्मिष्ठा द्वारा देवयानीका कूपमें निक्षेप, शुक्रका अभिशाप और वृषपर्वानन्दिनी, शर्मिष्ठा देवयानीका दासीके रूपमें ययाति राजाके निकट रहना तथा रुक्मिणीव्रतके प्रभावसे राजाकी प्रणयपात्री हो कर अंतमें उनकी प्रधाना महिषी होना। अशोकवनमें सीताने सरमाके साथ इस व्रतका अनुष्ठान करके रावणको सवंश नाश करके पुनः रामचन्द्रको प्राप्त किया था। द्रौपदीने इस व्रतको करके पाण्डवोंको प्राप्त किया था। रमादेवीने जामदग्न्यसे पहले पहल इस व्रतको ग्रहण किया था। पश्चात् उन्होंने इस व्रतके प्रतापसे पति और पुत्रके साथ ससागरा पृथ्वीकी अधीश्वरी हो कर अन्तकालमें परम पद प्राप्त किया था। इस व्रतके प्रभावसे इहकालमें सौभाग्य और परलोकमें स्वर्ग प्राप्त होता है। (कल्किपु० ३१ अ०)

रुक्मिदर्प (सं० पु०) रुक्मिणि भीष्मकपुत्रे दर्पो यस्य, सः तस्य रुक्मिनाशकत्वात्। बलदेव।

रुक्मिदारिन् (सं० पु०) रुक्मिणं दारयतीति दृ-णिच्-णिनि। बलदेव।

रुक्मिन् (सं० पु०) रुक्मो वर्णविशेषोऽस्त्यस्य इनि। विदर्भ देशके राजा भीष्मकका बड़ा पुत्र और रुक्मिणीका भाई। जिस समय श्रीकृष्ण इसकी बहन रुक्मिणीको हर ले चले थे, उस समय इसके साथ उनका घोर युद्ध हुआ था। इन्होंने प्रतिज्ञा की थी, कि जब तक मैं श्रीकृष्णको मार न डालूंगा, तब तक घर न लौटूंगा। किन्तु युद्धमें ये श्रीकृष्णसे परास्त हो गये थे। अतः लौट कर कुंडिननगर नहीं गये और विदर्भमें ही भोजकट नामक एक दूसरा नगर बसा कर रहने लगे थे।

रुक्मिभित् (सं० पु०) रुक्मिणं भिनत्ति भिद्-क्विप्। बलदेव।

रुक्मेषु (सं० पु०) राजभेद।

(भागवत ६।२३।३३ और हरिवंश)

रुक्सद्मन् (सं० क्ली०) मल।

रुक्ष (सं० त्रि०) रुह औणादिक स। १ अप्रेम, बिना प्रेमका। २ अचिक्कण, जिसमें चिकनाहट न हो, रूखा। ३ जिसका तल चिकना न हो, ऊबड़ खाबड़। ४ नीरस, बिना रसका। ५ शुष्क, सूखा। (पु०) ६ वृक्ष, पेड़। ७ नरकट नामकी घास।

रुक्षता (सं० स्त्री०) रुखाई, रूखापन।

रुख़ (फा० पु०) १ कपोल, गाल। २ मुख, मुंह। ३ चेहरेका भाव, आकृति। ४ कृपादृष्टि, मेहरबानीकी नजर। ५ सामने या आगेका भाग। ६ मनकी इच्छा जो मुखकी आकृतिसे प्रकट हो, चेष्टासे प्रकट इच्छा या मरजी। ७ शतरंजका एक मोहरा जो ठीक सामने, पीछे, दाहिने या बायें चलता है तिरछा नहीं चलता। इसे रथ, किश्ती और हाथी भी कहते हैं। (वि०) ८ तरफ, ओर। ९ सामने।

रुख (हिं० पु०) १ रूख देखो। २ एक प्रकारकी घास जिसे बरक तृण कहते हैं। रूखा देखो।

रुखड़—दशनामी संन्यासि-सम्प्रदायभेद। औघड़मतके प्रतिष्ठाता ब्रह्मगिरिने अपने योगिगुरु गोरक्षनाथसे मंत्रके अलावा कर्णकुण्डलादि कई एक चिह्न पाया और वह उन्होंने गुदड़, रुखड़, सुखड़ आदिके बीच बांट दिया था।

किसी शिष्यके मरने पर रुखड़ लोग अन्त्येष्टिक्रिया-सम्बन्धी आवश्यक कर्म ही करते हैं। ये शवदेहको स्नान करा कर, विभूति लगा कर और वस्त्र पहना कर समाधि रहते हैं और पीछे उसकी सम्पत्ति अपने कब्जेमें कर लेते हैं।

ये लोग गेरुआ वस्त्र और दोनों कानोंमें तांबे और पीतलका कुण्डल पहनते हैं। इस कुण्डलको ये खेचरी मुद्रा कहते हैं। ये खप्परमें धूप जला कर भीख मांगते फिरते हैं और जो मिलता उसे इसी खप्परमें रखते हैं। इस सम्प्रदायके जो संन्यासी शराब पीते और मांस खाते हैं, वे उखड़ कहलाते हैं।

रुखदार (फा० पु०) जो घट रहा हो।

रुखसत (अ० स्त्री०) १ आज्ञा, परवानगी। २ रवानगी, कूच, विदाई। ३ कामसे छुट्टी, अवकाश। (वि०) ४ जो कहींसे चल पड़ा हो, जिसने प्रस्थान किया हो।

रुखसताना (फा० पु०) वह इनाम जो किसीको रुखसत होनेके समय राजा या रईस आदिके यहांसे सत्कारार्थ दिया जाता है, विदा होनेके समय दिया जानेवाला धन, विदाई।

रुखसती (अ० वि०) १ जिसे छुट्टी मिली हो। (स्त्री०) २ विदाई, विशेषतः दुलहिनकी विदाई। ३ विदाईके समय दिया जानेवाला धन, विदाई।

रुखसार (फा० पु०) कपोल, गाल।

रुखाई (हिं० स्त्री०) १ रूखे होनेकी क्रिया या भाव, रूखापन। २ शुष्कता, खुश्की। ३ व्यवहारकी कठोरता, शीलका त्याग।

रुखानी (हिं० स्त्री०) १ बढ़इयोंका लोहेका एक औजार जो प्रायः एक बालिश्त लंबा होता है। इसका अगला सिरा धारदार होता है और पीछेकी ओर लकड़ीका दस्ता लगा होता है जिस पर हथौड़ी या बसूले आदिसे चोट लगा कर लकड़ी छीली या काटी जाती है अथवा उसमें बड़ा छेद किया जाता है। २ लोहेका प्रायः एक बालिश्त लम्बा एक औजार जिसमें काठका दस्ता लगा होता है और जिसकी सहायतासे तेली अपनी घानी चलाते हैं। ३ संगत राशोंकी वह टाँकी जिसका व्यवहार प्रायः मोटे कामोंमें होता है।

रुखावट हिं० स्त्री०) रुखाई देखो।

रुखाहट (हिं० स्त्री०) रूखापन, रुखाई।

रुखिता (हिं० स्त्री०) वह नायिका जो रोष या क्रोध कर रही हो, मानवती नायिका।

रुखुरी (हिं० स्त्री०) बहुत छोटा पौधा।

रुगन्वित (सं० त्रि०) रुजा अन्वित ३ तत्। पीड़ा-युक्त।

रुग्दाह सन्निपातज्वर (सं० पु०) एक प्रकारका ज्वर जो बीस दिनों तक रहता है। इसमें रोगी व्याकुल होता और बकता है। उसके शरीरमें जलन होती है, पेटमें दर्द होता है और उसे बड़ी प्यास लगती है। यह बहुत कष्टसाध्य माना जाता है।

रुग्भेषज (सं० क्ली०) रुजः भेषजं। रोगकी ओषधि।

रुग्न (सं० त्रि०) रुज क्त, ओदितश्चेति नः। १ रोगग्रस्त, जिसे कोई रोग हुआ हो। २ टूटा हुआ। ३ झुका हुआ, नमित। ४ बिगड़ा हुआ।

रुग्नता (सं० स्त्री०) रोगी होनेका भाव, बीमारी।

रुग्मी (सं० पु०) जैन हरिवंशके अनुसार जम्बूद्वीपके एक पर्वतका नाम। (जैनहरि० ५।१५)

रुग्विनिश्चय (सं० पु०) रुजः विनिश्चयः। रोगका निर्णय।

रुच् (सं० स्त्री०) आलोक, ज्योतिः।

रुच (सं० त्रि०) उज्ज्वल, दीप्तिमान्।

(शुक्लयजुः ३१।२०

रुचक (सं० क्ली०) रोचतेऽनेनेति रुच (बहुलमन्यत्रापि। उण् २।३७) इति क्कन्। १ सज्जिकाक्षार, सज्जीखार। २ अश्वाभरण, घोड़ोंका गहना या साज। ३ माल्य, माला। ४ सौवर्च्चल, सोंचर नामक। ५ माङ्गल्यद्रव्य। ६ उत्कट। ७ रोचना। ८ वायविडंग। ९ लवण, नमक। १० दक्षिणदिक्, दक्षिण दिशा। ११ वास्तुविद्याके अनुसार ऐसा घर जिसके चारों ओरके अलिंद (चबूतरा या परिक्रमा)में से पूर्व और पश्चिमका सर्वथा नष्ट हो गया हो और उत्तर-दक्षिणका समूचा ज्योंका त्यों हो। इसका उत्तर द्वारा अशुभ और शेष द्वारा शुभ माने गये हैं। (पु०) १२ बीजपूरक, बिजौरा नीबू। १३ प्राचीन कालका सोनेका निष्क नामक सिक्का। १४ दन्त, दाँत। १५ कपोत, कबूतर। १६ पुराणानुसार सुमेरु पर्वतके पासके एक पर्वतका नाम । (विष्णुपु० २।२।२६) १७ समचतुरस्र स्तम्भ, वह खंभा जो गोल न हो बल्कि चौकोर हो। (बृहत्सं० ५३।२८) १८ यदुवंशीय एक राजाका नाम। रुक्मकवच देखो। १९ हरिवर्णके एक पर्वतका नाम। (जैनहरि० ५।१९) २० मङ्गलग्रहमें उत्पन्न होनेसे रुचक होता है। (त्रि०) २१ स्वादिष्ट, जायकेदार।

रुचना (हिं० क्रि०) रुचिके अनुकूल होना, अच्छा जान पड़ना।

रुचा (सं० स्त्री०) रुच-क्विप् पक्षे टाप्। १ दीप्ति, प्रकाश। २ शोभा। ३ इच्छा, खाहिश। ४ शारिका शुकवाक्य, मैना, बुलबुल, तोते आदि पक्षियोंका बोलना।

रुचि (सं० स्त्री०) रुच्यते इति रुच (इगुपधात् कित्। उण् ४।११९) इति इन् सच कित्। १ प्रवृत्ति, तबीयत। २ अनुराग, प्रेम। ३ आसक्ति। ४ स्पृहा। ५ गभस्ति, किरण। ६ शोभा, छवि। ७ बुभुक्षा, खानेकी इच्छा। ८ स्वाद, जायका। ९ गोरोचन। (राजनि०) १० काम-शास्त्रके अनुसार एक प्रकारका आलिङ्गन जिसमें नायिका नायकके सामने उसके घुटने पर बैठ कर उसे गलेसे लगाती है। ११ एक अप्सराका नाम। (त्रि०) १२ शोभा-के अनुकूल, फबता हुआ।

रुचि (सं० पु०) रोचते शोभते इति रुच-इन् सच कित्। प्रजापतिविशेष। ये युधक या यक्ष रौच्यमनुके पिता थे। इनकी पत्नीका नाम आकूति था। (मार्कण्डेयपु० ९५ अ०) रौच्य देखो।

रुचिकर (सं० त्रि०) करोतीति कृ-अप्, रुचेः करः। १ प्रीतिकर, अच्छा लगनेवाला। (पु०) २ केशवके एक पुत्रका नाम। ३ नारंगी नीबू।

रुचिकारक (सं० त्रि०) १ रुचि उत्पन्न करनेवाला, रुचिकर। २ स्वादिष्ट, बढ़िया स्वादवाला।

रुचिकारिन् (सं० त्रि०) १ रुचिकारक, रुचि उत्पन्न करनेवाला। २ स्वादिष्ट, अच्छे स्वादवाला। ३ मनोहर, अच्छा लगनेवाला।

रुचित (सं० त्रि०) रोचते इति रुच (रुचिवचि-कुचि-कुटिभ्यः कितच्। उण् ४।१८५) इति कितच्। १ मिष्ट वस्तु, मीठी वस्तु। रुच-क्त। २ अभिलषित, जिसे की

चाहता हो। (क्ली०) ३ रुच भावे-क्त। ४ इच्छा, चाह।

रुचितवत् (सं० त्रि०) इच्छाके अनुकूल।

रुचिता (सं० स्त्री०) रुचेर्भावः तल-टाप्। १ रुचिका भाव या धर्म, रोचकता। २ अनुराग, प्रेम। ३ सुन्दरता, खूबसूरती। ४ अतिजगती वृत्तका एक भेद।

रुचिदत्त—१ अघविवेचनके प्रणेता। इनकी उपाधि महामहोपाध्याय थी। २ मनुस्मृतिटीकाके रचयिता। ३ देवदत्तके पुत्र तथा शक्तिदत्त और मोतिदत्तके भाई। ये जयदेव पण्डितके शिष्य थे। कुसुमाञ्जलिप्रकाशमकरन्द, तत्त्वचिन्तामणिप्रकाश, तर्कपाद, तर्कसार और रघुदेवकृत पदार्थखण्डन व्याख्याकी मकरन्द नामकी टीका आदि इन्होंने लिखी। अलावा इसके इन्होंने और भी उपनयलक्षण, उपाधिपूर्वपक्षग्रन्थकी टीका, तर्कग्रन्थकी टीका, तृतीय चक्रवर्त्तिलक्षणकी टीका, द्वितीय चक्रवर्त्तिलक्षणकी टीका, द्वितीय स्वलक्षणटीका, पक्षतापूर्वपक्ष ग्रन्थकी टीका, पक्षता-सिद्धान्तग्रन्थकी टीका, प्रत्यक्षवाद, प्रत्यक्षाद्वितृतीय, प्रथमप्रगल्भलक्षणकी टीका, बाधान्त, विरुद्धपूर्वपक्षग्रन्थकी टीका, विरुद्धसिद्धान्तकी टीका, व्याप्तानुगमकी टीका, सव्यभिचार पूर्वपक्ष ग्रन्थकी टीका, सामान्यनिरुक्तिकी टीका तथा रुचिदत्तीय नामक ग्रन्थोंकी रचना की थी।

रुचिदेव (सं० पु०) कथासरित्सागर-वर्णित एक नायक। (११०।१२३)

रुचिधामन् (सं० क्ली०) सूर्य्य। (शिशुपालवध ६।१३)

रुचिनाथ मिश्र—एक विख्यात आलङ्कारिक। इनका बनाया अलङ्कारशास्त्रका वचन रसप्रदीपमें प्रभाकर तथा आर्यासप्तशतीमें अनन्त उद्धृत कर गये हैं।

रुचिपति—बैजेन्द्रिय ग्रामनिवासी एक विख्यात पण्डित। इन्होंने अपने प्रतिपालक नरसिंहके पुत्र राजा भैरवसिंहके आदेशसे अनर्घराघवकी टीका लिखी।

रुचिपर्व्वन् (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक योद्धा। (भारत द्रोणपर्व)

रुचिप्रदा (सं० स्त्री०) मधुरबिम्बी, कुंदरुकी।

रुचिप्रभ (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक दैत्यका नाम।

रुचिफल (सं० क्ली०) रुचिजनकं फलं। अमृताह्न, नासपाती। (राजनि०)

रुचिभर्त्तृ (सं० पु०) १ सूर्य। २ स्वामी, मालिक। (त्रि०) आनन्दवर्द्धनकर्त्ता, जिसके द्वारा आनन्दकी वृद्धि होती हो।

रुचिमती (सं० स्त्री०) उग्रसेनकी रानी और देवकीकी माता जो श्रीकृष्णकी रानी थीं।

रुचिर (सं० क्ली०) रोचते इति रुच (इति मदिमुदीति। उण् १।५२) इति किरच्। १ मूलक, मूली। २ कुंकुम, केसर। ३ लवङ्ग, लौंग। (राजनि०) ४ रौप्य, चांदी। (पु०) ५ सेनजित्के एक पुत्रका नाम। (हरिवंश २०।२१) ६ सह्याद्रिवर्णित एक राजाका नाम। (सह्या० २७।४०) ७ शिग्रुवृक्ष, सहिंजनका पेड़। (स्त्री०) ८ गोरोचना। (त्रि०) ९ सुन्दर, अच्छा। १० मिष्ट, मीठा।

रुचिकेतु (सं० पु०) एक बोधिसत्वका नाम।

रुचिदन्त (सं० त्रि०) सुन्दर दांतोंवाला।

रुचिरदेव (सं० पु०) एक राजाका नाम। (कथासरित्सागर ६७।६)

रुचिरधी (सं० पु०) पुराणानुसार एक राजाका नाम। (विष्णुपुराण)

रुचिरप्रभावसम्भाव (सं० पु०) एक नगरका नाम।

रुचिरफला (सं० स्त्री०) कुन्दरू।

रुचिरवदन (सं० त्रि०) मुखश्रीसम्पन्न, सुन्दर मुंहवाला।

रुचिरवाक (सं० त्रि०) वाग्मी, अच्छा बोलनेवाला।

रुचिरवृत्ति (सं० पु०) अस्त्रका एक प्रकारका संहार।

रुचिर श्रीगर्भ (सं० पु०) एक बोधिसत्वका नाम।

रुचिरा (सं० स्त्री०) रोचते इति रुच् किरच् ततष्टाप्। १ एक प्रकारका छन्द। इसके पहले और तीसरे पदोंमें १६ तथा दूसरे और चौथे पदोंमें १४ मात्राएं तथा अन्तमें दो गुरु होते हैं। २ एक वृत्तका नाम जिसके प्रत्येक चरणमें ज, भ, स, ज, ग होते हैं। ३ रामायणके अनुसार एक नदीका नाम। (रामा० ४।४०।२०) ४ गोरोचन। ५ कुङ्कुम, केसर। ६ मूलक, मूली। ७ लवङ्ग, लौंग।

रुचिराञ्जन (सं० पु०) रुचिरः सुन्दरोऽञ्जनः। शोभाञ्जन, सहिंजन। (राजनि०)

रुचिरापाङ्गी (सं० स्त्री०) सुन्दरनयनविशिष्टा स्त्री, वह स्त्री जिसकी आँखें सुन्दर हों।

रुचिराश्व (सं० पु०) रुचिरः सुन्दरोऽश्वो यस्य। १ एक राजाका नाम। ये देवापिके ससुर थे। (कल्किपु० १८ अ०) २ सेनाजित्‌के एक पुत्रका नाम। ३ सुन्दर घोटक, बढ़िया घोड़ा।

रुचिरासुत (सं० पु०) पालकाप्यका गर्भजात तनय।

रुचिरुचि (सं० क्ली०) एक प्रकारका साम।

रुचिवर्द्धक (सं० त्रि०) १ रुचि उत्पन्न करनेवाला। २ भूख बढ़ानेवाला।

रुचिवह (सं० त्रि०) आलोक आनयनकारी, प्रकाश लानेवाला। (पा० ६।२।१२१ वार्तिक)

रुचिष्य (सं० त्रि०) रुच्यते इति (रुचिभुजिभ्यां किष्यन्। उण् ४।१७८) इति किष्यन्। १ मिष्ट वस्तु, खानेका मीठा पदार्थ। २ अभिप्रेत, चाहा हुआ।

रुची (सं० स्त्री०) रुचि कृदिकारादिति ङीष्। रुचि, चाह।

रुच्य (सं० क्ली०) रोचते इति रुच् (राजसूयसूर्यमृषोद्येति। पा ३।१।११४) इति क्यप् प्रत्ययेन निपातितः। १ सौवर्चल, सेंधा नमक। (पु०) २ कतकवृक्ष, रीठाका पेड़। ३ शालिधान्य, अगहन। ४ पति, स्वामी, (त्रि०) ५ सुन्दर, खूबसूरत। ६ रुचिकर।

रुच्यकन्द (सं० पु०) रुच्यः कन्दो यस्य। शूरण, ओल। (राजनि०)

रुच्यवाहन (सं० पु०) हव्यवाहन, अग्नि।

रुज (सं० क्ली०) १ भङ्ग, भांग। २ क्षत, घाव। ३ वेदना, कष्ट। (अथर्व्व १६।३।२) ४ प्राचीनकालका एक प्रकारका बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

रुजग्रस्त (सं० त्रि०) जिसे कोई रोग हो, रोगग्रस्त।

रुजस्कर (सं० त्रि०) १ पीड़ादायक, दुःख देनेवाला। २ रोगकारक, बीमारी पैदा करनेवाला।

रुजा (सं० स्त्री०) रुज-क्विप् पक्षे टाप्। १ रोग, बीमारी। २ भङ्ग, भांग। ३ पीड़ा। ४ कुष्ठ, कोढ़। ५ मेषी, भेड़ी।

रुजाकर (सं० क्ली०) रुजां रोगं करोतीति कृ ट। १ कर्म्मरङ्गफल, कमरख नामक फल। (पु०) व्याधि, बीमारी। (त्रि०) ३ व्याधिकारक, बीमारी पैदा करनेवाला।

रुजापह (सं० त्रि०) रुजां अपहन्ति अप-हन-ड। पीड़ानाशक, दुःख दूर करनेवाला।

रुजाली (सं० स्त्री०) रोगों या कष्टोंका समूह।

रुजावत् (सं० त्रि०) रुजा विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। पीड़ायुक्त, पीड़ित।

रुजाविन् (सं० त्रि०) रुजा विद्यतेऽस्य (बहुलं छन्दसि। पा ५।२।१२२) इति विनि। पीड़ित, पीड़ायुक्त।

रुजासह (सं० पु०) रुजां सहते इति सह-अच्। धन्वन वृक्ष, धामिनका पेड़।

रुजिन् (सं० त्रि०) जिसे कोई रोग हुआ हो, अस्वस्थ।

रुजू (अ० वि०) १ जिसकी तबीयत किसी ओर झुकी या लगी हो, प्रवृत्त। २ जो ध्यान दिये हो।

रुझनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी चिड़िया जिसकी पीठ काली, छाती सफेद और चोंच लम्बी होती है।

रुठ (हिं० पु०) क्रोध, अमर्ष, गुस्सा।

रुठना (हिं० क्रि०) रूठना देखो।

रुठाना (हिं० क्रि०) किसीको रुठनेमें प्रवृत्त करना; नाराज करना।

रुणा (सं० स्त्री०) सरस्वती नदीकी एक शाखा जिसका उल्लेख महाभारतमें है।

रुणित (सं० त्रि०) शब्द करता हुआ, झनकारता हुआ।

रुण्ड (सं० पु०) कबन्ध, जिसका हाथ पैर छिन्न हो।

रुण्डक (सं० क्ली०) अगुरुकाष्ठ, अगर नामक लकड़ी।

रुण्डिका (सं० स्त्री०) रुण्डः कबन्धोऽस्त्यत्रेति रुण्ड-ठन्। १ युद्धभूमि, लड़ाईका मैदान। २ द्वारपिण्डिका, ड्योढ़ी। ३ विभूति, बहुतायत।

रुण्डी (सं० स्त्री०) कुन्दुरु।

रुत (सं० क्ली०) १ पक्षियोंका शब्द, कलरव। पर्याय—वाशित, वासित। २ शब्द, ध्वनि।

रुत (हिं० स्त्री०) ऋतु देखो।

रुतबा (अ० पु०) १ दरजा, मर्तबा। २ इज्जत, प्रतिष्ठा।

रुदु (सं० क्ली०) क्रन्दन, रोना।

रुरुथ (सं० पु०) रोदितीति रुद रोदने (रुदिविदिभ्यां ङित्। उण् ।३।११६) इति अथ सच ङित्। १ कुक्कुर, कुत्ता। २ शिशु, छोटा बच्चा।

रुदन (सं० क्ली०) रोनेकी क्रिया, क्रन्दन।

रुदन्तिका (सं० स्त्री०) रुदन्ती देखो।

रुदन्ती (सं० स्त्री०) रोदनं रुत् अति वन्धने अच्च ङीप्। १ क्षुद्र क्षुपविशेष, एक प्रकारका छोटा क्षुप। पर्याय—स्रवत्तोया, सञ्जीवनी, अमृतस्रवा, रोमाञ्चिका, महामांसी, चणपत्री, सुधास्रवी। इसका गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, कषाय, कृमि, रक्त, पित्त, कफ, श्वास और मोहनाशक। (राजनि०) (त्रि०) रोदनशील, जो रोता हो।

रुदाकी—एक पारसी-कवि और प्रसिद्ध गवैया। ये जन्म से ही अंधा थे, तो भी इन्होंने संगीतविद्या और कवित्वकलामें सम्यक् पारदर्शिता पाई थी। राजा महद समानीके पुत्र अमीर नशरके राज्यकालमें इनको प्रतिभा राष्ट्र हो उठी। इनकी इस अद्भुत पेशीशक्तिके लिये राजा और राजदरबारके प्रत्येक अमीर उमराव इनका बड़ा सम्मान करते थे। राजा नशर इनको ऐसा प्यार करते थे, कि बिना रुदाकोके वे कहीं अकेला नहीं जाते थे। राजाकी कृपासे ये अतुल सम्पत्तिके अधिकारी हुए और इनकी गिनती श्रेष्ठ उमरावोंमें होने लगी थी। इनकी सेवाके लिये दो सौ नौकर नियुक्त थे तथा जब ये अपने प्रभुके साथ रणक्षेत्रमें जाते, तब इनका जरूरी असबाब करीब चार सौ ऊंटों पर लाद कर जाता था। इन्होंने ९२५ ई०में अरबी-भाषामें अनूदित पिलपकी उपकथामाला फारसी कवितामें लिखी थी। राजा नशरने इस कविताके उपहारमें इन्हें चालीस हजार दरहममुद्रा दी थी। इसके अलावा इनका बनाया एक दीवान भी मिलता है।

इनका प्रकृत नाम था फरिद आबू अबदुल्ला। इनका जन्म समरकन्द या बोखारा प्रदेशके रुदक नामक स्थानमें हुआ था, इसलिये ये रुदाकी नामसे विख्यात हुए। ९५४ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

रुदित (सं० क्ली०) रुद क्त। १ क्रन्दन, रोना। (त्रि०) २ रोदनविशिष्ट, रोता हुआ।

रुदौली—अयोध्याप्रदेशके बाराबंकी जिलान्तर्गत एक नगर और रुदौली परगनेका विचार-सदर। यह अक्षा० २६° ४४' ५५" उ० तथा देशा० ८१° ४७' २०" पू० तक विस्तृत है। कहते हैं, कि रुद्रमल्ल नामक एक भर-जातीय सरदारने यह नगर बसाया। यहां स्थानीय द्रव्यका विस्तृत कारबार है।

रुद्ध (सं० त्रि०) रुध-क्त। १ जो किसी चीजसे घेर कर रोका गया हो, घेरा हुआ। पर्याय—वेष्टित, वलयित, संवीत, आवृत। २ जिसमें कोई चीज अड़ या फंस गई हो, मुंदा हुआ। ३ जिसकी गति रोक ली गई हो।

रुद्धक (सं० क्ली०) लवण, नमक। रुचक देखो।

रुद्धगुद (सं० पु०) निरुद्धगुद नामक एक प्रकारका रोग।

रुद्धमूत्र (सं० पु०) मूत्रकृच्छ्र नामक रोग।

रुद्र (सं० पु०) रोदयतीति रुद णिच्। (रोदेर्णि लुक् च। उण् २।२२) इति रक् णेश्च लुक्। १ गणदेवताविशेष। ये गणदेवता अग्निमूर्त्ति हैं। (तिथितत्त्व)

जगत्की सृष्टि करते समय ब्रह्माके भ्रू युगलके मध्य-भागसे क्रोधरूपमें रुद्रदेवकी उत्पत्ति हुई थी। भूत, प्रेत और पिशाच आदि रुद्रकी सृष्टि है। संहारके समय ये ही सब कुछ संहार करते हैं। रुद्रोंकी संख्या ११ हैं, यथा—१ अज, २ एकपात्, ३ अहिब्रध्न, ४ पिनाकी, ५ अपराजित, ६ त्र्यम्बक, ७ महेश्वर, ८ वृषाकपि, ९ शम्भु, १० हरण, और ११ ईश्वर। (भागवत)

गरुड़पुराणके ६ठे अध्यायमें लिखा है—

अजैकपाद, अहिब्रध्न, त्वष्टा, विश्वरूपहर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी और रैवत ये ११ रुद्र हैं। अग्निपुराणमें केवल त्वष्टाके स्थानमें कृत्तिवासका नाम पाया जाता है।

कूर्मपुराणके मतसे ब्रह्माने सृष्टिके लिए दुष्कर तपोऽनुष्ठान किया था, परन्तु किसी भी प्रकार वे सृष्टि करनेमें समर्थ न हुए। इसलिए बहुत दिन बाद उन्हें अत्यन्त क्रोध हुआ। उनके क्रुद्ध होने पर उनके नेत्रसे अश्रु-बिन्दु गिरा और उस अश्रुबिन्दुसे भूतप्रेतादिकी उत्पत्ति हुई। उसके बाद ब्रह्माके मुखसे प्राणमय रुद्र आविर्भूत हुए, जो सहस्र सूर्य और युगान्तकालीन अग्निके समान तेजोमय थे। ये रुद्र आविर्भूत होते ही अत्यन्त रोदन करने लगे। इनको रोते देख ब्रह्माने "मारोदी" अर्थात् 'रोओ मत' कहा, और यह भी कहा कि, तुम उत्पन्न होते

ही रोने लगे, इसलिए तुम जगत्‌में रुद्रके नामसे प्रसिद्ध होओगे।

'रुरोद सत्वरं घोरं देवदेवः स्वयं शिवः।
रोदमानं तदा ब्रह्मा मारदीत्यभ्यभाषत ॥
रोदनात् रुद्र इत्येवं लोके ख्याति भविष्यति ॥"

(कूर्मपु० १०)

ब्रह्माने यह कह कर इसके अन्य सप्तनाम, अष्ट स्थान और स्त्री-पुत्रादिका विषय इस प्रकार निर्देश किया था--भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव ये सा . नाम; सूर्य, जल, मही, अग्नि, वायु, आकाश, ब्राह्मण और चन्द्र ये आठ मूर्त्तियां तथा सुवर्चला, उमा, विकेशा, शिवा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा और रोहिणी नामकी स्त्रियां तथा शनैश्चर, शुक्र, लोहिताक्ष, मनोजा, सुन्द और बुध ये सब इनके पुत्र हैं। जो रुद्रदेव की पूर्वोक्त अष्टमूर्त्तियोंमें रुद्रदेव आराधना करते है, सन्तुष्ट हो कर उन्हें परमपदप्रदान करते हैं। (कूर्मपु० १० अ०)

पद्मपुराणमें रुद्रदेवकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

ब्रह्माके अत्यन्त क्रुद्ध होने पर उनके भ्रू-मध्यभागसे रुद्र आविर्भूत हुए। ये आविर्भूत होते ही रोने लगे। तब ब्रह्माने उनसे कहा—'हे पुत्र! तुम किस लिये रोते हो, बताओ, मैं अभी उसकी पूर्त्ति करूंगा।' तब रुद्रने कहा—'मेरा नाम, स्थान और भार्या पुत्रादि निर्देश कर दीजिए तो मैं नहीं रोऊंगा।' ब्रह्माने उनकी बात सुन कर कहा—'तुम उत्पन्न होते ही रोने लगे, इसलिए तुम्हारा नाम रुद्र; इसके सिवा ऋतध्वज, मनु, मन्यु, ऊर्ध्वरेता, शिव, भव, काल, महिनस, वामदेव और धृतव्रत ये सब तुम्हारे नाम होंगे। तुम्हारे वासस्थान ये हैं—इन्द्रियसमूह, असुहृद्, व्योम, वायु, अ[illegible], जल, मही, तपस्या, चन्द्र और सूर्य तथा धृति, धो, असिलोमा, नियुत्, सर्पि, बिलम्बिका, इरावली, स्वधा और दीक्षा ये सब तुम्हारी पत्नी होंगी। पुत्र! तुम इन सब पत्नियोंके साथ प्रजाकी सृष्टि करके जगत्‌को पूर्ण करो। ब्रह्माके ऐसा कहने पर रुद्र भूत-प्रेतादि और विकृताकार भैरवादिकी सृष्टि करने लगे। ब्रह्माने जगत्‌विद्रावकारी इस प्रकार सृष्टि देख कर रुद्रसे कहा—'जगत्‌ध्वंसकारक ऐसी सृष्टिसे विरत होओ और अब तुम विष्णुकी आराधना करके यथेच्छा विचरण करो।' यह कह कर ब्रह्मा तिरोहित हो गये। जो रुद्रदेवकी उक्त नामों या उक्त स्थानोंमें पूजा करते हैं, वे भूतादिके भयसे रहित हो जाते हैं। (पद्मपु० स्वर्गखं० ८ अ०)

विष्णुपुराणके प्रथम अंशमें ८वें अध्यायमें रुद्रसर्गका विषय वर्णित हुआ है, जो बाहुल्यभयसे यहां नहीं दिया जाता।

विष्णु और रुद्रको यदि कोई भेदबुद्धिसे देखे, तो उसे नरक प्राप्त होता है। अभेदबुद्धिसे देखनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। (कूर्मपु० १३ अ०)

पुराणादिमें रुद्रकी उत्पत्ति और मूर्त्तिके सम्बन्धमें जो वर्णन मिलता है, उसकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि वे जगत्‌के आदिदेव महादेवकी प्रकृतिभेद मात्र हैं। कभी वे शान्तिमूर्त्तिधर सदाशिव, तो कभी विश्वनाशकारी रुद्रमूर्त्ति धारण कर मनुष्योंके समक्ष प्रकट होते हैं। जगत्‌के आदिमतम वे ही महापुरुष पीछे स्रष्टा, पाता और लयकर्त्तारूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव मूर्त्तिभूत त्रितत्त्वमें रूपान्तरित होते हैं। पुराणान्तरमें भी महेश्वरके आदित्व और सर्वकर्तृत्व स्वीकृत हुआ है।

पौराणिक रूपक-पट उन्मोचन करनेसे मालूम होता है, कि जगत्-सृष्टिके आदिभूत रूपतन्मात्र तेजोरूपी महाभूतमें रूपान्तरित हो कर सृष्टिकर्त्ता रुद्रतेजके परिचायक हुआ है तथा उसी पेशी ओजधातुकी अग्निमय मूर्त्तिकी कल्पना करके मनुष्य उनकी पूजा करते हैं।

शिवपूजापद्धतिमें कहे हुए "रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः" वाक्यमेंसे मूर्त्तितत्त्वकी प्रकृत अवस्था हृदयङ्गम हो सकती है। जगत्‌के आदिपिताकी रुद्रमूर्त्ति अग्निमय थी, सुतरां इसके द्वारा सिद्धान्त हो सकता है, कि सृष्टिप्रकरणोक्त रूपतन्मात्रका तेजोभाव ही विश्वस्रष्टाकी रुद्रमूर्त्तिकी अवान्तर कल्पनामात्र है।

अब देखना चाहिए, कि प्राचीन संहिता-युगमें आर्य्यगण प्रकृतिमेंसे किसी वस्तुकी रुद्रके नामसे उपासना करते थे। ऋक्संहिताके १म मण्डलके २७वें सूक्तमें १०वें मन्त्रके "जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकं।" मन्त्रसे स्पष्ट मालूम

होता है कि रुद्र ही अग्नि और यज्ञानुष्ठानार्थ यज्ञमें प्रवेशकारी हैं।*

यास्कने उक्त ऋक्‌के सम्बन्धमें 'अग्निरपि रुद्र उच्यते' और सायणने 'रुद्राय क्रूराय अग्नये' लिखा है। १।३६।४ मन्त्रमें मरुद्गणको "रुद्रासः" कहा गया है। सायणाचार्यने 'रुद्रासः अर्थे रुद्रपुत्राः मरुतः' लिखा है। ऐसी दशामें वे मरुत्‌गणके पिता हुए। १।४३।१-५ मन्त्रमें रुद्रको अभीष्टवर्षणकारी, महत्, यज्ञपालक, उदकरूप औषधियुक्त, सूर्यके समान दीप्तिमान्, हिरण्यके समान उज्ज्वल, देवोंमें श्रेष्ठ कहा गया है। इसके सिवा रुद् धातुका प्रकृत अर्थ शब्द या गर्जन करना है, उससे रुद्रको अग्निरूपी, तूफानके उद्भावयिता शब्दायमान देव तथा ज्योतिर्मय और वर्षणकारी देवता (ऋक् २।३३ और ७।४६ सूक्त तथा ६।४६।१०) माना जाय, तो भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि आदिम अर्थसे रुद्रशब्दका अग्नि या वज्रके लिए प्रयोग हुआ था। ऋक् ६।२८।७ और १०।१२५।६ मन्त्रमें भी उनकी सर्वसंहारित्व-शक्तिका परिचय है।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेदके १।४५।१, १।६४।२, १।८५।१, ११।११४।१, १।११२।१, १२६।३,२।१।६, २।३३।१, २।३४।२, ३।२।५, ४।३।१, ५।३।३, ५।४२।१, ५।५११।३, ५.५२।१६, ५।५६।८, ५।६०।५, ६।२८।७, ६।४६।१०, ६।५०।४, ६।६६।४ आदि मन्त्रोंके पढ़नेसे यही मालूम होता है, कि रुद्र मरुद्गणके पिता और अग्नि ही थे। ऋक्‌के ७।१०।४, ७।३५।६, ७।३६।५ ७।४०।५, ७।४१।१, १०।६३।६ आदि मन्त्रोंमें रुद्रको अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विन्, भग, पूषन् बृहस्पति और सोम नामक विभिन्न देवताओंके रूपमें ग्रहण किया है। ऋक् १०।१२५।६ और अथर्व ४।३०।५ मन्त्रमें रुद्रको संहारक मूर्त्तिकी उपासना पाई जाती है। ऋक्‌संहिताके १।१३६ सूक्तके १म और ७म मन्त्रमें है—

* महादेव यज्ञके अधिकारी हैं। दक्षयज्ञमें सतीके देहत्यागके बाद महादेवने जटा उखाड़ कर रुद्रमूर्त्ति धारण की थी। वीरभद्र स्वरूपका विकार है। ऐसी पौराणिक कल्पना होती है।

केशिन् शब्दमें जैसे रश्मियुक्त सूर्य, वायु या अग्निका बोध होता है, उसी प्रकार दूसरे पक्षमें सुदीर्घ केश या जटाविशिष्ट पुरुषका भी ज्ञान होता है। वे अग्नि, जल तथा द्युलोक और भूलोक धारण किये हुए हैं। और वे ज्योति द्वारा सर्वजगत्‌को प्रकाशमान् किये हुए हैं। इसलिए सायणके मतसे ये महानुभाव केशी दृश्यमान मण्डलस्थ ज्योतिके सिवा और कोई नहीं हैं। तैत्तिरीय संहितामें ५।४।३।१ मन्त्रमें रुद्र शब्दका प्रयोग वैद्युताग्निके अर्थमें किया गया है।

केशी वायु मन्थित जल (विष)को रुद्रके साथ पान करते हैं। इस प्रसंगसे समुद्रमन्थन और रुद्रका विषपान तथा नीलकण्ठनाम रूप पौराणिक उपाख्यान संगठन किसी प्रकारसे असामंजस्य नहीं मालूम होता।

वाजसनेयसंहिताके ३।५७ ५१ सूक्तमें रुद्रका विवरण है, वहां वे अम्बिकाके भ्राता और एक अंशभागी हैं। स्त्रियोंके साथ अंशभागी होनेसे वे भी त्र्यम्बक नामसे (शतपथ २।६।२।६) कहे जाते हैं, परन्तु वेददीपकारने लिखा है कि 'त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि यस्य तादृश देवमेव त्रिनेत्रोऽयं देव इति।' इसलिए रुद्रको त्रिनेत्र और अम्बिकाके अंशभागी या पति बनानेमें पुराणकारोंको विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा। ऋक्‌संहिताके ७।५९।१२ मन्त्रके भाष्यमें सायणने त्र्यम्बक शब्दके मूल शब्दार्थके साथ ऐसी पौराणिक व्याख्या भी लिखी है—"अत्र शौनकः। त्रिरात्रं निरसोऽपोष्य श्रपयेत् पायसं चरुं। तेनाहुतिशतं पूर्णं जुहुयाच्छंसितव्रतः समुद्दिश्य महादेवं त्र्यम्बकं त्र्यम्बके त्वृच्या। एतत्पर्वशतं कृत्वा जीवेत् वर्षशतं सुखी।" (ऋग्वे० २।२७) "मैत्रयाणं ब्रह्मविष्णुरुद्राणामम्बक पितरं यजामह इति शिष्यसमाहितो वशिष्ठो ब्रवीति।" इत्यादि।

ऋग्वेदमें जो त्र्यम्बक शतवर्ण परमायुर्दाता यज्ञेश्वर और मृत्युबन्धन-मोचनकारी हैं, शुक्लयजुर्वेदमें वे ही रुद्र, सर्वलोकके नियन्ता, यातुधानी और सर्पध्वंसकारी (१६।१।६५) तथा अथर्ववेदमें भेषजाधिप, नीलशिखण्ड, कर्मकृत् और भव, शर्व, अग्नि, पशुपति, अर्यमा, महा-

देव, वरुण आदि नामसे पूजित हुए हैं।* पुराण और महाभारतमें पाशुपत अस्त्रका उल्लेख है, वह अथर्ववेदके १४।५।१ मन्त्रमें पूर्णरूपसे परिस्फुटित है।

इसके अलावा शतपथब्राह्मण १।७।३।८, ६।१।३।७ १६, ६।१।२।१, ६।१।१।६ और शाङ्खायनब्राह्मण ६।१ ६ तथा श्वेताश्वतर उपनिषद् ३।१-३ आदिकी आलोचना करनेसे ज्ञात होता है, कि रुद्र अग्नि और कार्त्तिकेयके पिता समझे जाते थे। वे शतशीर्षयुक्त, शतचक्षु विशिष्ट और शतबाणधारी थे। वे इस प्रकार वीभत्समूर्त्ति धारण करके जीवोंके भयके कारण बन गये थे। श्वेताश्वतर उपनिषद्में वे ईशान, महेश्वर, महादेव, अनन्त, प्रणव, सर्वव्यापी आदि उपाधियोंसे भूषित हुए हैं।

अथर्वशिरसोपनिषद्में रुद्रको ईशान, महेश्वर, इन्द्र, वरुण, यम, मृत्यु, विष्णु और ब्रह्माके नामसे कहा गया है। उक्त ग्रन्थमें 'देवा ह वै स्वर्गं लोकं आगमन्। ते देवा रुद्रं अपृच्छन् को भवान् इति। सोऽब्रवीद् अहं एकः प्रथमं आसन् वर्त्तामि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिद् मत्तो व्यतिरिक्त इति। सोऽन्तराद् अन्तरं प्राविशद् दिशश्चान्तरं सम्प्राविशत्। सोऽहं नित्यानित्ये व्यक्ताव्यक्तोऽहं ब्रह्माब्रह्माहं प्राञ्चः प्रत्यञ्चोऽहं दक्षिणाञ्च उदञ्चोऽहं अधश्चोर्द्धञ्च दिशश्च प्रतिदिशश्चाहं पुमान् अपुमान् स्त्री चाहं सावित्र्य अहं गायत्र्य अहम् त्रिष्टुब् जगत्य अनुष्टुप् चाहं छन्दोऽहं गार्हपत्यो दक्षिणाग्निराहवानीयोऽहं सत्योऽहं गौर अहं गौर्य अहं ज्येष्ठोऽहं वरिष्ठोऽहं आपोऽहं, तेजोऽहं ऋगयुजःसामाथर्वाङ्गिरसोऽहं" इत्यादि वाक्योंसे रुद्र निखिलपति जगन्नियन्ता ही प्रतीत होते हैं। देवगण उनके अक्षय वीरत्वको देख कर उनके ध्यानमें निमग्न हुए थे। इस ग्रन्थमें उनका ईशान, महेश्वर और महादेवके नामसे वर्णन किया गया है।

कैवल्योपनिषद्में आश्वलायनने ब्रह्मासे ब्रह्मविद्या पूछी, इस पर उन्होंने शिवका ही माहात्म्य कीर्त्तन करते हुए कहा था—"जगत्पाता परमेश्वर उमासहाय (उमापति), आदिमध्य अन्तविहीन, सर्वजीवप्रभु, त्रिलोचन, नीलकण्ठ, प्रशान्त, समस्त साक्षी इत्यादि—" अपिच—"स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्, स एव विष्णुः स प्राणः स आत्मा परमेश्वरः। स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्। ज्ञात्वा तं मृत्यु अत्येति नान्यं पन्थाः विमुक्तये। + + यः शतरुद्रीयं अधीतेसोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति" इत्यादि।

नीलरुद्रोपनिषद् ग्रन्थके प्रारम्भमें लिखा है—"अपश्यन् त्वावरोहन्तं दिवितः पृथ्वीमयः। अपश्यं अपश्यन् तं रुद्रं नीलग्रीवं शिखण्डिनम्।"

रामायण और महाभारतमें तथा अन्यान्य पुराणादिमें रुद्रके यथेष्ट उपाख्यान पाये जाते हैं।* कामदेवभस्म, दक्षयज्ञनाश, उमाका विवाह, गङ्गाका विवाह आदि यथास्थानमें वर्णित हुए हैं। शिव देखो।

२ विश्वकर्माके एक पुत्र। (विष्णुपु० १ १५ १२)
३ स्वनामख्यात एक कवि। ये विद्याविलासके पुत्र तथा भावविलासके प्रणेता थे। ये कवि मानसिंहके पुत्र भावसिंह राजाके समयमें विद्यमान थे। ४ ग्यारहकी संख्या। ५ मदारका पेड़, आक। ६ रौद्र रस। ७ प्राचीनकालका एक प्रकारका बाजा। (त्रि०) भयंकर, डरावना।

रुद्र—कई एक प्राचीन ग्रन्थकार और सुपण्डित। १ कवि। ये धर्माधिकरणिक रुद्रके नामसे परिचित थे। २ ज्योतिश्चन्द्रार्क, प्रश्नरत्न-टीका, मेघमाला और स्फुटविवरणके प्रणेता। ३ त्रैलोक्यसुन्दरीके रचयिता। ४ गूढ़कौशलके प्रणेता। ५ रुद्रकोष नामक कोशके रचयिता। मेदिनीकर और मल्लिनाथने इनके वचन उद्धृत किये हैं। ६ स्मरदीपिकाके रचयिता।

---

* अथर्ववेद २।२७।६, ५।२१।११, ६।९३।१, ७।८७।१, ८।२।७, ८।५।१०, १०।१।२३, ११।२।१-३१, १२।४।१७, १३।४।४ और १५।५।१७ देखो।

* रामायण—१।१४।१, १।२५।१०, १।३६।२०, १।७५।१४, ५।४४।७, ५।४४।४६ और ६।११६।१ तथा महाभारत शान्तिपर्व देखो। इसके सिवा हयशीर्षपञ्चरात्र १२८ अ०, लिङ्गपुराण ५।२१, ६।१३; २४।२३, वराहपु० १३।८, शिव वायवीय १२।१ आदि ग्रन्थोंमें रुद्रका विस्तृत वर्णन है।

रुद्र—१ नेपालके एक राजा। ये नेपालके अन्य विभागके राजा भोजदेव और लक्ष्मीकामके समसामयिक थे। २ ओरङ्गलके काकतीयवंशी एक राजा, प्रोल-राजके पुत्र। ये प्रतापरुद्र १म नामसे भी परिचित थे। ३ एक हिन्दू राजा ये तैलङ्गाधिपति थे तथा देवगिरिके राजा जैत्रपालसे परास्त हुए थे।

रुद्र आचार्य—शक्तिरत्नाकरके अनुसार एक तान्त्रिक आचार्यका नाम।

रुद्रक (सं० पु०) १ एक बौद्धका नाम। (ललितविस्तर) २ महावकुलवृक्ष, बड़ा अगस्तका पेड़।

रुद्रकमल (सं० पु०) रुद्राक्ष।

रुद्रक रामपुत्र (सं० पु०) एक बौद्धका नाम।

रुद्रकलस (सं० पु०) एक प्रकारका कलस जिसका उपयोग ग्रहों आदिकी शान्तिके समय होता है।

रुद्रकवच (सं० क्ली०) रुद्रस्य कवचम्। रुद्रका कवच। केसर गोरोचन आदि द्वारा भोजपत्र पर यह कवच लिख कर पञ्चगव्य पञ्चामृत आदिसे स्नान तथा कवचशोधनकी प्रणालीके अनुसार शोधन और पूजा करनी होती। पीछे हाथ, हृदय या गलेमें यह कवच पहनना होता है। इस कवचके पहननेसे पुत्रार्थीके पुत्र, धनार्थीके धन, विद्यार्थीके विद्या तथामोक्षकामीके मोक्षलाभ होता है। (तन्त्रसार)

रुद्रकवि—यावज्ञानचरित्रके रचयिता।

रुद्रकवीन्द्र (सं० पु०) एक कवि। रुद्रभट्ट देखो।

रुद्रकाली (सं० स्त्री०) शक्ति या दुर्गाकी एक मूर्त्तिका नाम।

रुद्रकाली—उमाका नामान्तर। वीरभद्रके साथ मिल कर जब उमाने दक्षका यज्ञ नष्ट किया उसी समय इनका नाम रुद्रकाली पड़ा।

रुद्रकुण्ड (सं० पु०) व्रजके एक तीर्थका नाम।

रुद्रकोटि (सं० स्त्री०) एक प्राचीन तीर्थका नाम। यह महावलिपुरके निकट एक गण्डशैलके ऊपर स्थापित है। (स्कान्दमें नागरख० १०२।३)

रुद्रगण (सं० पु०) रुद्रस्य गणः। पुराणानुसार शिवके पारिषद। इनकी संख्या एक करोड़ और किसी किसीके मतसे ३६ करोड़ है। कहते हैं, कि ये सब जटा धारण किये रहते हैं। इनके मस्तक पर अर्द्धचन्द्र रहता है। ये बहुत बलवान् होते हैं और योगियोंके योग साधनमें पड़नेवाले विघ्न दूर करते हैं।

रुद्रगर्भ (सं० पु०) अग्नि।

रुद्रगीत (सं० क्ली०) अगस्त्य-कर्त्तृक रुद्रस्तव।

रुद्रगीता (सं० स्त्री०) अगस्त्यरुद्रसंवाद।

रुद्रचण्डी (सं० स्त्री०) रुद्राचण्डी। रुद्रयामलोक्त देवीमाहात्म्य। जिस प्रकार मार्कण्डेयपुराणमें देवीमाहात्म्य चण्डी नामसे ख्यात है, उसी प्रकार रुद्रयामलमें देवी चण्डिकाका जो माहात्म्य वर्णित है उसे रुद्रचण्डी कहते हैं। यह रुद्रचण्डी पढ़ने या सुननेसे सभी विघ्न विदूरित होते हैं। रविवारमें इस रुद्रचण्डीका पाठ करनेसे नवावृत्ति फल लाभ होता है। इसी प्रकार सोमवारको पाठ करनेसे सहस्रावृत्तिफल, मंगलवारमें शतावृत्तिफल, बुध, वृहस्पति और शुक्रवारमें लाख आवृत्तिफल तथा शनिवारमें करोड़ आवृत्तिफल लाभ होता है। इस चण्डीपाठके फलसे धन, धान्य और आरोग्यादि लाभ होता है।

रुद्रचन्द्र (सं० पु०) एक प्राचीन हिन्दू राजा।

रुद्रचन्द्रदेव—उड़ीसा राज प्रतापरुद्रका नामान्तर। प्रतापरुद्र देखो।

रुद्रचन्द्रदेव—ऊषारागोदयनाटिका और ययातिचरित नाटकके प्रणेता।

रुद्रचांद—कुमायूंके चांदवंशीय एक राजा। १५६६ ई०में ये विद्यमान थे।

रुद्रच्छत्र (सं० पु०) काश्मीरका एक राजपुत्र।

रुद्रज (सं० पु०) रुद्रात् जातः इति जन-ड। पारद, पारा।

रुद्रजटा (सं० स्त्री०) रुद्रस्य जटा। १ तीन चार हाथ ऊंचा एक प्रकारका क्षुप। इसके पत्ते मयूरशिखाके पत्तोंके समान होते हैं। इसके पत्ते पहले तो बड़े होते हैं पर ज्यों ज्यों क्षुप बढ़ता जाता है त्यों त्यों वे छोटे होते जाते हैं। इसमें लाल रंगके बहुत सुन्दर फल लगते हैं जिनका आकार प्रायः जटाके समान हुआ करता है। इसके बीज मरसाके बीजोंके समान काले और चमकीले होते है। वैद्यकमें रुद्रजटा कटु और श्वास, कास, हृदय रोग तथा भूत प्रेतकी बाधा दूर करने-

वाली मानी गई है। पर्याय—रौद्री, जटा, रुद्रा, सौम्या, सुगंधा, सुवहा, घना, ईश्वरी, रुद्रलता, सुपत्ना, सुगंधपत्ना, सुरभि, शिवाह्वा, पत्रवल्ली, जटावल्ली, रुद्राणी, नेत्रपुष्करा, महाजटा, जटरुद्रा। २ मधुरिका, सौंफ। ३ ईसरमूल, इसरौल।

रुद्रजप (सं० पु०) रुद्रका उद्देशक स्तवविशेष।

रुद्रजपन (सं० क्ली०) धीमे स्वरमें रुद्रस्तव पाठ करना।

रुद्रजापक (सं० त्रि०) रुद्रस्तवपाठकारी, रुद्रस्तव पढ़नेवाला।

रुद्रजापिन् (सं० त्रि०) जो रुद्रस्तव पाठ करे, रुद्रस्तवपढ़नेवाला।

रुद्रजाप्य (सं० क्ली०) वह स्तव जो रुद्रके उद्देशसे वाजसनेयसंहितामें कहा गया है।

रुद्रट—साहित्यके एक प्रसिद्ध आचार्य। इनका बनाया हुआ काव्यालंकार ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। ये रुद्रभट्ट और शतानन्द भी कहलाते थे। इनके पिताका नाम भट्ट वामुक था।

रुद्रतनय (सं० पु०) जैन-हरिवंशके अनुसार तीसरे श्रीकृष्णका एक नाम।

रुद्रताल (सं० पु०) मृदंगका एक ताल। यह सोलह मात्राओंका होता है। इसमें ११ आघात और ५ खाली होते हैं।

रुद्रतेज (सं० पु०) स्वामि कार्त्तिक, कार्त्तिकेय।

रुद्रतैल—वात और श्लेष्मानाशक तैलौषध।

रुद्रत्व (सं० क्ली०) रुद्रस्य भावः त्व। रुद्रका भाव या धर्म।

रुद्रदत्त (सं० पु०) एक वैद्यकग्रन्थके प्रणेता।

रुद्रदत्त—१ आपस्तम्बश्रौतसूत्रभाष्य और आपस्तम्बीयश्रौत प्रायश्चित्तभाष्यके रचयिता। २ रुद्रदत्तीय नामक न्यायग्रन्थके प्रणेता।

रुद्रदत्त पन्त—अलमोरा-वासी एक पण्डित। इन्होंने कुमायूंके चाँदवंशीय राजाओंकी आख्यायिका लिखी।

रुद्रदामन्—शकजातीय एक प्रसिद्ध राजा। ये विख्यात खहरात (क्षगारात) कुलतिलक महाराज चष्टनके पौत्र थे। यह नमालवके अधीश्वर होने पर भी केवल क्षत्रप उपाधिसेपरिचित थे। उन्होंने सातवाहनोंके अधिकृत नगरोंको जीत कर महाक्षत्रप उपाधि पाई थी। उनके पुत्र जयदामके राज्यशेषमें सातवाहनकुलतिलक गोमतीपुत्र शातकर्णिने (सम्भवतः १३३ खृ० पू०) खहरातवंश ध्वंस कर दाक्षिणात्यमें फिर सातवाहनवंशगौरवकी प्रतिष्ठा की।* उनके प्रभावसे राजपूतानेसे समस्त दाक्षिणात्य भूमि तथा पश्चिम भारत आंध्रवंशका शकक्षत्रप राज्य एकच्छत्रतलमें समानीत हुआ था। अधिक सम्भव है, कि उसी समय दक्षिणापथसे शातकर्णिके हाथसे परास्त खहरातवंशी शकसैन्यदलने मालवपतिकी शरण ली। उसी सेनादलके साहाय्यसे बलवान् हो कर जयदामके पुत्र रुद्रदाम पुनः पश्चिम-भारतमें शकोंका अधिकार विस्तार करनेमें समर्थ हुए थे।

गिर्नरसे आविष्कृत रुद्रदामके बड़े शिलाफलकमें लिखा है, कि उन्होंने पूर्व और पश्चिम आकारावन्ती (मालव प्रदेश), अनूप, नीवृद्, आनर्त्त, सुराष्ट्र, स्वभ्र, भरुकच्छ, सिन्धु, सौवीर, कुकुर, अपरान्त, निषाद आदि जनपद अपने बाहुबलसे जीता था। उन्होंने दक्षिणापथाधिपति शातकर्णिको बार बार जीतने पर भी उनके नजदीकके नातेदारोंको राज्यच्युत नहीं किया। यौधेयगण उनसे अच्छी तरह विपर्यस्त हुए थे। उन्होंने एक एक कर पराजित राजाओंको पुनः अपने अपने राज्यमें अधिष्ठित कर बड़ा यश लूटा था। धर्म और कीर्त्ति फैलाने तथा बहु वर्ण गो ब्राह्मणके लिये उन्होंने अत्यन्त सुन्दर एक सेतु निर्माण कराया।

उक्त प्रमाणसे स्पष्ट जाना जाता है, कि उन्होंने पञ्जाबसे कोङ्कण तकके भूभागोंको अपने अधिकारमें कर लिया था। दक्षिणापथपति शातकर्णिके साथ उनकी नजदीकी रिश्तेदारी थी।

गौतमीपुत्र शातकर्णिने जो सब जनपद अधिकार किया, सम्भवतः उनके वंशधर उस विस्तीर्ण राज्यकी रक्षा नहीं कर सके। महाक्षत्रप रुद्रदामने दक्षिणापथस्थित जनपदके सिवाय सुराष्ट्र आदि जनपदोंको अपने

* गौतमीपुत्र शातकर्णिने असिक, अश्मक, मुरक कुकुर, अपरान्त, अनूप, विदर्भ, आकर अवन्ती, विन्ध्यावत्, पारियात्र, सह्य, कृष्णागिरि, मच श्रीस्तन, मलय, महेन्द्र, श्रेष्ठगिरि और चकोर पर्वत जीता था।

कब्जेमें किया था। कारण यह सब जनपद उनके कुटुम्ब शातकर्णिराजके अधिकारमें था। महाराष्ट्र वाशिष्ठीपुत्र पुलोमायीने १३० से १५४ ई० तक और गोतमीपुत्र यज्ञश्री शातकर्णिने १५४से १७२ ई० तक राजत्व किया था तथा शिलालिपि और मुद्राओंकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि १३० से १७० ई० तक वे नम्रत पर बैठे थे। इस प्रकार उक्त दो शातकर्णिके साथ उनका सम्बन्ध था, ऐसा बोध होता है। किन्तु शिलालिपिके पढ़नेसे पता चलता है, कि महाक्षत्रप-कन्यासे शातकर्णि राजाके प्रियपुत्र वाशिष्ठपुत्र शातकर्णि (चतुरपन) का विवाह हुआ था।* इससे जाना जाता है, कि रुद्रामके शिलाफलकोक्त शातकर्णि यज्ञश्री शातकर्णि होंगे। अधिक सम्भव है, कि उन्होंने महाक्षत्रप रुद्रामके साथ युद्धमें हार खा कर रुद्रदामकी दुहिता मढ़वीके साथ अपने पुत्र वाशिष्ठीपुत्र चतुरपनका विवाह दिया था तथा इसी सम्बन्धसूत्रसे सम्भवतः रुद्रदामने दक्षिणापथ पर हस्तक्षेप नहीं किया। उक्त शकराज-कन्याका पुत्र (मढ़रीपुत्र) शकसेन नामसे विख्यात हुआ।

रुद्रदेव (सं० पु०) ययातिचरितके रचयिता।

रुद्रदेव—१ आर्यावर्त्तके एक राजा। राजा समुद्रगुप्तने ईस्वीसन् ३५० में इन्हें निहत किया। २ नेपालके एक राजा।

रुद्रदेव—१ कौतुकचिन्तामणिके प्रणेता। २ ज्योतिश्चन्द्रार्करुचिकाशिका और ज्योतिषचन्द्रिकाके रचयिता। ३ वैयाकरणसिद्धान्तभूषणटीकाके प्रणेता। ४ प्रतापमार्त्तण्ड नामक दीधितिके रचयिता। ये प्रतिष्ठानपुरनिवासी तोरोनारायणके पुत्र और अनन्तके शिष्य थे। उक्त ग्रन्थमें इन्होंने अग्निहोत्रहोम, अन्त्येष्टिप्रयोग, आपस्तम्बाह्निक, पाकयज्ञप्रकाश, पूर्त्तप्रकाश, यतिसंस्कार, सन्न्यासपद्धति और बौधायनीय सोमप्रयोग आदिकी मीमांसा की। ५ गुणवती नामकी प्रबोधचन्द्रोदयकी टीकाके रचयिता।

रुद्रधर—१ कृत्यचन्द्रिका, विवादचन्द्रिका और श्राद्धचन्द्रिकाके रचयिता चण्डेश्वरके शिष्य। २ पुष्पमालाके रचयिता। ३ व्रतपद्धतिके प्रणेता। ४ श्राद्धविवेक, शुद्धिविवेक और लघुरुद्रधर नामक दीधितिके रचयिता। रघुनन्दन, कमलाकर और नीलकण्ठने इनका मत ग्रहण किया है। ये लक्ष्मीधरके पुत्र तथा हलधरके छोटे भाई थे।

रुद्रधरभट्ट—शार्ङ्गधरसंहिताकी टीकाके प्रणेता।

रुद्रनन्दिन्—एक प्राचीन कवि।

रुद्रनाथ—वैयाकरणसिद्धान्तभूषणटीकाके रचयिता।

रुद्रदेव देखो।

रुद्रनाथ—हिमालयके एक शैवतीर्थका नाम। आज कल यह स्थान रुद्रगढ़ नामसे प्रसिद्ध है।

रुद्रनिधि हिमालयके एक देवस्थानका नाम।

(हिमवत् ६।५७)

रुद्रन्यायवाचस्पति—वृन्दावनविनोदकाव्य और भावविलासकाव्यके प्रणेता। ये अपने प्रतिपालक मानसिंहपुत्र और भगवद्दासपौत्र राजा भावसिंहकी गुणावलीका कीर्त्तन कर भावविलास प्रणयन किया।

रुद्र न्यायवाचस्पति भट्टाचार्य—बंगालवासी एक विख्यात पण्डित। ये विद्यानिवास भट्टाचार्यके पुत्र और भवानन्द पण्डितके पौत्र थे। ये जनसाधारणमें न्यायवाचस्पति नामसे परिचित थे। अधिकरणचन्द्रिका, कारकपरिच्छेद, कारकवाद, कारकव्यूह, तत्त्वचिन्तामणिदीधितिटीका, कुसुमाञ्जलिकारिकाव्याख्या, न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीटीका, वादपरिच्छेद, विधिरूपनिरूपण, शब्दपरिच्छेद तथा अनुमितिटीका, आख्यावादव्याख्या, उदाहरणलक्षणटीका, उपनयलक्षणटीका, उपाधिपूर्वपक्ष ग्रन्थटीका, केवलान्वयी ग्रन्थटीका, चित्ररूपवादार्थ, तर्कग्रन्थटीका, तृतीय चक्रवर्त्तिलक्षणटीका, तृतीय प्रगल्भलक्षणटीका, द्वितीय चक्रवर्त्तिलक्षणटीका, द्वितीय खलक्षणटीका, पक्षतापूर्वपक्षग्रन्थटीका, पक्षतासिद्धान्तग्रन्थटीका, प्रतिज्ञालक्षणटीका, प्रथम चक्रवर्त्तिलक्षणटीका, विरुद्ध पूर्वपक्षग्रन्थटीका, विरुद्धसिद्धान्तग्रंथटीका, विशेषवादटीका, व्याप्त्यनुगमटीका, सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्षग्रंथटीका, सव्यभिचार पूर्वपक्षग्रंथटीका, सव्यभिचारसिद्धान्तग्रन्थटीका और सामान्यनिरुक्तिटीका आदि कई एक न्याय ग्रन्थ और चम्पू इनके बनाये हैं। इनके अलावा इन्होंने

* Bhandarka'rs Dekkan, p, 29-36.

पितामह भवानन्द-विरचित कारकार्थनिर्णय नामक एक टोका तथा द्रव्यकिरणावलीपरीक्षा और गुणप्रकाश विवृतिभावप्रकाशिका नामकी रघुनाथकृत किरणावलीकी टिप्पणी लिखी थी।

रुद्रपण्डित (सं० पु०) रुद्रसूरि देखो।

रुद्रपति (सं० पु०) शिव, महादेव।

रुद्रपत्नी (सं० स्त्री०) रुद्रस्य पत्नी। १ दुर्गा। (भारत ३।८३।१५८) २ अनसो, आलसी स्त्री।

रुद्रपल्लीय खरतरशाखा—एक जैन-सम्प्रदायका नाम। पद्मचंद्रके गुरु जिनशेखर सूरिने रुद्रपल्लीमें इस शाखाकी प्रतिष्ठा की। किसी किसीके मतसे पद्मचंद्र ही इस शाखाके प्रवर्त्तक थे।

रुद्रपाल (सं० पु०) राजभेद।

रुद्रपीठ (सं० पु०) तांत्रिकोंके अनुसार एक पीठ या तीर्थका नाम। (योगिनीतन्त्र १७)

रुद्रपुत्र (सं० पु०) बारहवें मनु रुद्रसावर्णिका एक नाम।

रुद्रपुर (सं० क्ली०) एक जनपदका नाम।

(दिग्विजयप्रकाश)

रुद्रपुर—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° २६' ४०" उ० तथा देशा० ८३° ३६' २५" पू०के बीच बथुआनालाके किनारे अवस्थित है। यहां भारजातिके एक विस्तृत दुर्गका ध्वंसावशेष पड़ा है। गुड़ और स्थानीय शस्यका यहां कारबार चलता है इसलिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

रुद्रपुर—युक्तप्रदेशके तराई जिलेके अंदर एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २८° ५८' उ० तथा देशा० ७९° २६' ६६" पू० तक विस्तृत है। यहां बहुत-सा ध्वस्त मन्दिर और प्राचीन मसजिद है जो यहांके प्राचीन हिन्दू और मुसलमान राजाओंकी शासनसमृद्धिका परिचय देती है। इस ग्रामके पासही एक बड़ा आम्रकानन है।

रुद्रपूजन (सं० क्ली०) रुद्रस्य पूजनं। रुद्रदेवकी पूजा।

रुद्रप्रताप (सं० पु०) राजा प्रतापरुद्र देखो।

रुद्रप्रमोक्ष (सं० पु०) पुराणानुसार वह स्थान जहांसे शिवजीने त्रिपुरासुर पर बाण चलाया था।

रुद्रप्रयाग—हिमालयके एक तीर्थका नाम। यहां मन्दाकिनीके साथ गंगा आ मिली है। (हिमवत्० ८।१०४)

उत्तर-पश्चिम प्रदेशके गढ़वाल जिलेमें आज भी रुद्रप्रयाग तीर्थमें देवमन्दिर आदि विद्यमान हैं। इस समय भी केदारनाथ और बदरीनाथ-शैलशिखरविधौतकारिणी मन्दाकिनी नदी कलकल नादसे पहाड़ी अधित्यका भूमिमें उतर कर यहां अलकानन्दाके साथ मिल रही है। यह पञ्चप्रयागमेंसे एक है। हिमालयतीर्थयात्रिगण यहां आ कर कुछ दिन विश्राम करते हैं। मन्दाकिनी अलकानन्दा संगमसे छः मील दूर पर्वतवक्षमें एक गुफा है जो भीमका चूल्हा कहता है।

रुद्रप्रिया (सं० स्त्री०) रुद्रस्य प्रिया। १ हरीतकी, हर्रे। २ पार्वती।

रुद्रभद्र (सं० पु०) पुराणानुसार एक नदका नाम।

(हिमवत् १८।१७)

रुद्रभट्ट—१ जगन्नाथविजयकाव्यके रचयिता। २ रुद्रभाष्यके प्रणेता। ३ श्रृंगारतिलक अलंकार शास्त्रके रचयिता। पद्यावलीमें इनका उल्लेख है।

रुद्रभट्ट अयाचित—एक संस्कृतशास्त्रज्ञ पण्डित। ये अच्छावकप्रयोगके प्रणेता याज्ञिक रघुनाथके पिता थे।

रुद्रभट्ट कवीन्द्र—एक प्राचीन कवि। ये पदार्थमाला आदि ग्रन्थके रचयिता लौगाक्षि भास्करके पितामह थे और लौगाक्षि रुद्रभट्ट नामसे भी परिचित थे।

रुद्रभट्ट वैद्य—सन्निपातकलिका और वैद्यजीवनटीकाके रचयिता। इनकी बनाई और भी चार ग्रंथोंकी टीका मिलती है। ये कोणेर भट्टके पुत्र और विष्णुभट्टके पौत्र थे।

रुद्रभाष्य (सं० क्ली०) अहोवल-रचित एक प्रसिद्ध भाष्य।

रुद्रभू (सं० स्त्री०) रुद्रस्य भूः स्थानं। श्मशान, मरघट।

रुद्रभूति (सं० स्त्री०) १ रुद्राह्मायणीका गोत्रापत्य। २ उनके वंशके एक आचार्य।

रुद्रभूमि (सं० स्त्री०) १ ज्योतिषमें एक प्रकारकी भूमि। २ श्मशान, मरघट।

रुद्रभैरवी (सं० स्त्री०) दुर्गाकी एक मूर्त्तिका नाम।

रुद्रमणि—चण्डीपर्यायकम और लक्ष्मीपूजाविवेकके प्रणेता।

रुद्रमणि त्रिपाठी—प्रश्नशिरोमणि नामक ज्योतिर्ग्रन्थके

रचयिता। ये कमलेन्दुप्रकाशके प्रणेता वाल्मीकि कविके पिता थे।

रुद्रम देवकुमार—अमरुशतकटीकाके प्रणेता।

रुद्रमय (सं' त्रि०) रुद्रस्वरूपे मयट्। रुद्रस्वरूप, रुद्रके समान।

रुद्रमहादेवी (सं० स्त्री०) राजा गोविन्दचन्द्रकी महिषी।

रुद्रमादेवी—ओरङ्गलके काकतीय वंशीय एक रानी। वह अपने स्वामी (किसीके मतसे पिता) गणपतिकी मृत्यु होनेके पीछे सिंहासन पर बैठीं। मार्को पोलो जब यह प्रदेश परिभ्रमणमें आये, तब १२५७ ई०में वही राजगद्दी पर बैठ कर राज्यकी देखभाल करते थे। वे प्रायः ३८ वर्ष राज्य कर २य प्रतापरुद्रको सिंहासन छोड़ गये।

रुद्रमाल्य (सं० पु०) विल्ववृक्ष, बेलका पेड़।

रुद्रमूर्त्ति (सं० पु०) १ रुद्रका रूप या आकृति। (हयशीर्ष ४६।५।१) २ क्रोधको पूर्ण प्रतिकृति। ३ प्रचण्ड मुखाकृति।

रुद्रयज्ञ (सं० पु०) एक प्रकारका यज्ञ जो रुद्रके उद्देश्यसे किया जाता है।

रुद्रयामल (सं० क्ली०) तान्त्रिकोंका एक प्रसिद्ध ग्रंथ जिसमें भैरव और भैरवीका संवाद है।

रुद्रराय (सं० पु०) नवद्वीपके एक हिन्दू-राजा।

नवद्वीप देखो।

रुद्रराशि (सं० पु०) शिलालिपिवर्णित एक वेदज्ञ ब्राह्मण।

रुद्ररेता (सं० पु०) पारद, पारा।

रुद्ररोदन (सं० क्ली०) स्वर्ण, सोना।

रुद्ररोमा (सं० स्त्री०) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम।

रुद्रलता (सं० स्त्री०) रुद्रलताविशेष। रुद्रजटा नामका क्षुप।

रुद्रलोक (सं० पु०) १ रुद्रोंकी वासभूमि। २ शिवलोक। (शिवसनत्० १०।१)

रुद्रवट (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम। इसका उल्लेख महाभारतमें है। (भारत ३।४०६२ श्लोक)

रुद्रवद्गण (सं० त्रि०) रुद्रोंसे परिवेष्टित (तैत्तिरीयस०)

रुद्रवत् (सं० त्रि०) १ रुद्रगणोंसे युक्त। (पु०) २ इन्द्र। (ऐतरेयब्रा० २।२०) ३ अग्नि। (विशब्रा० २१।१४।१३) ४ साम।

रुद्रवदन (सं० पु०) १ महादेवके पांच मुख। (त्रि०) २ पांचकी संख्या।

रुद्रवन्ती (सं० स्त्री०) एक प्रसिद्ध वनौषधि। इसकी गणना दिव्यौषधि वर्गमें होती है। यह प्रायः सारे भारतमें और विशेषतः उष्ण प्रदेशोंको बलुई जमीनमें जलाशयोंके पास और समुद्र तट पर अधिकतासे होती है। इसके क्षुप प्रायः हाथ भर ऊंचे होते हैं और देखनेमें चनेके पौधोंके-से जान पड़ते हैं। इसके पत्ते भी चनेके पत्तोंके समान ही होते हैं, शरद् ऋतुमें जिनमेंसे पानीकी बूंदें टपका करती हैं। काले, पीले, लाल और सफेद फूलोंके भेदसे यह चार प्रकारकी होती है। वैद्यकके अनुसार यह चरपरी, कड़वी, गरम, रसायन, अग्निजनक, वीर्यवर्द्धक और श्वास, कृमि, रक्तपित्त, कफ तथा प्रमेहको दूर करनेवाली होती है। इसका पर्याय—स्रवतोया, संजीवनी, अमृतस्रवा, रोमाञ्चिका, महामांसी, चणकपत्री, सुधास्रवा, मधुस्रवा।

रुद्रवरम्—मन्द्रास प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहां बहुत-से देवमन्दिर विद्यमान हैं।

रुद्रवर्त्तनि (सं० पु०) १ कठिन पथ। २ स्तुतिमार्ग।

रुद्रवान् (हिं० वि०) रुद्रवत् देखो।

रुद्रविंशति (सं० स्त्री०) रुद्रदेवताका विंशतिः। प्रभव आदि साठ संवत्सरों या वर्षोंमेंसे अन्तिम बीस वर्षोंका समूह। इसे रुद्रबीसी भी कहते हैं।

रुद्रवीणा (सं० स्त्री०) रुद्रस्य वीणा। प्राचीनकालकी एक प्रकारकी वीणा।

रुद्रव्रत (सं० क्ली०) एक व्रतका नाम।

रुद्रशर्म्मन् (सं० पु०) चण्डीविलास-नाटक और उसकी टीकाके प्रणेता। इनकी उपाधि त्रिपाठी थी।

रुद्रसम्प्रदायिन्—वैष्णव धर्मसम्प्रदायभेद।

वल्लभाचार्य देखो।

रुद्रसरस (सं० क्ली०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।

रुद्रसर्ग (सं० पु०) रुद्रकृतः सर्गः। रुद्र द्वारा सृष्टि। रुद्रसे जिनकी उत्पत्ति हुई है वे रुद्रसृष्टि कहलाते हैं।

रुद्र देखो।

रुद्रसामन् (सं० क्ली०) सामभेद।

रुद्रसावर्णि (सं० पु०) पुराणानुसार बारहवें मनुका

नाम। भागवतमें लिखा है, कि इस मन्वन्तरमें सुधामाख्य अवतार, ऋतधामा इन्द्र तथा हविरादि देवता, तपोमूर्त्ति आदि सप्तर्षि, देववत् और उपदेवादि मनुके पुत्र हुए थे। (भागवत ८।१३ अ०)

रुद्रसावर्णिक (सं० लि०) रुद्रसावर्णिके कालसम्भूत या सम्बन्धीय।

रुद्रसिंह—मिथिलाके खण्डवाल वंशीय एक राजा तथा छत्रसिंहके पुत्र और महेश्वरसिंहके पौत्र। ये सुबोधिनी और व्रताचारके प्रणेता रत्नपाणिके प्रतिपालक थे।

रुद्रसिंह—आसामके अहोमवंशी एक राजा। ये रङ्गपुर और जोरहाट नगर स्थापन कर गये हैं। इनकी प्रचलित मुद्रा सबसे पहले बंगला अक्षरमें खोदी गई थी। कामरूप देखो।

रुद्रसिंह—एक हिन्दू नरपति। ये राघवपाण्डवीयटीकाके प्रणेता कुमार वंशधरके पितामह थे।

रुद्रसुन्दरी (सं० स्त्री०) देवीकी एक मूर्त्तिका नाम।

रुद्रसू (सं० स्त्री०) रुद्रो तत्परमिति पुत्रं सूते सू-क्विप्। वह स्त्री जिसने ग्यारह पुत्र उत्पन्न किये हों, ग्यारह पुत्रकी जननी।

रुद्रसूरि—शब्दचिन्तामणि नामक व्याकरणके प्रणेता तथा पुण्यनाथके पुत्र।

रुद्रसृष्टि (सं० स्त्री०) रुद्रकृता सृष्टिः। रुद्रसर्ग, रुद्रकी सृष्टि।

रुद्रसेन (सं० पु०) महाभारत युद्धका एक योद्धा। (भारत ७ पर्व)

रुद्रसेन १म—पश्चिमक्षत्रपराजवंशके एक शकराज, रुद्रसिंहके पिता। २०० ई०सन्में ये विद्यमान थे।

रुद्रसेन २य—एक शकक्षत्रप। २य दामजड़श्रीके बाद ये मालवकी राजगद्दी पर बैठे। ये राजा वीरदामाके पुत्र थे और २५० ई०सन्में विद्यमान थे।

रुद्रसेन १म, २य और ३य—दाक्षिणात्यके वकाटकवंशीय महाराज। वाकाटकवंश देखो।

रुद्रसोम (सं० पु०) ब्राह्मणभेद। (कथासरित्सा० ६४।११०)

रुद्रस्कन्दस्वामिन्—औद्गात्रसारसंग्रह नामक द्राह्यायण श्रौतसूत्रभाष्य और द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तिके रचयिता। वीरराघवने इनका वचन उद्धृत किया है।

रुद्रस्वर्ग (सं० पु०) रुद्रलोक।

रुद्रस्वामिन् (सं० पु०) शिलालिपि-वर्णित एक राजा।

रुद्रहिमालय—हिमालयपर्वतकी एक चोटी। यह अक्षा० ३०° ५८' उ० तथा देशा० ७६° ५' पू०के मध्य चीनकी ओर पूर्वी सीमा पर है और सदा वरफसे ढकी रहती है। यह समुद्रपीठसे २२३१० फुट ऊंची है।

रुद्रहूति (सं० लि०) १ स्तोतृगण द्वारा स्तुत या स्तुति किया हुआ। २ रुद्र।

रुद्रहृदय (सं० पु०) एक उपनिषद्का नाम जो प्राचीन दश उपनिषदोंमें नहीं है।

रुद्रा (सं० स्त्री०) १ रुद्रजटा नामक क्षुप। २ नलिका नामका गन्धद्रव्य कवितलता। ३ अदितिमंजरी, मुकवर्चा। ४ हिमालयकी एक नदीका नाम। (हिमवत् ८।१६)

रुद्राक्रीड़ा (सं० पु०) रुद्रस्य आक्रीड़ा देवनं यत्र। श्मशान, मरघट।

रुद्राक्ष (सं० क्ली०) रुद्रस्य अक्षि कारणत्वेनास्त्यस्येति, अर्श आदित्वादच्। १ स्वनामख्यात वृक्ष बीज। (पु०) २ स्वनामख्यात वृक्ष (Elacocarpus Ganitrus) पर्याय—तृणमेरु, अमर, पुष्पचामर। इसके फलके पर्याय—शिवाक्ष, सर्पाक्ष, भूतनाशन, पावन, नीलकण्ठाक्ष, हराक्ष, शिवप्रिय। गुण—अम्ल, उष्ण, वात, कृमि, शिरोरोग तथा रुचिकर। (राजनि०)

रुद्राक्ष स्थूल प्रशस्त स्थूल रुद्राक्ष और नार्मद शिवलिङ्ग क्षुद्र प्रशस्त है। (मेरुतन्त्र ६ अ०)

रुद्राक्षमाला धारण करके शिवपूजा करनी चाहिए। यदि कोई रुद्राक्षमाला धारण बिना किये ही शिवपूजा करे, तो वह पूजा निष्फल होती है। (लिङ्गपु०)

रुद्राक्षमाला, भस्म और त्रिपुण्ड्रादि धारण बिना किये शिवपूजा न करना चाहिए, ऐसा विधान है। परंतु यदि कोई बिना धारण किये पूजादि करे, तो पूजाका किञ्चिन्मात्र भी फल न होगा, यह बात नहीं, वैलक्षण्य फलका अभाव होगा, इतना समझ लेना चाहिए।

तन्त्रसारमें रुद्राक्षके माहात्म्यादिके विषयमें लिखा है—मस्तक पर, चोटीमें, कण्ठमें और कर्णोंमें जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह व्यक्ति शिवलोक प्राप्ति कर सकता है। साधकको चाहिए कि नवबकल बद्राक्ष

वाम बाहुमें और चतुर्दशमुख रुद्राक्ष शिखामें धारण करे। एक वक्त्र रुद्राक्ष साक्षात् शिवस्वरूप है, इसके धारण करनेसे ब्रह्महत्या-जनित पाप नष्ट होते हैं। द्विवक्त्र रुद्राक्ष हरगौरीस्वरूप है, इसके धारण करनेसे गोहत्या-जनित पाप नष्ट होते हैं। त्रिवक्त्र रुद्राक्ष अग्निस्वरूप है, इसके धारण करनेसे त्रिजन्मार्जित पापराशि विनष्ट हो जाती है। चतुर्वक्त्र रुद्राक्ष ब्रह्म स्वरूप, इसके धारण करनेसे नरहत्याजनित पाप दूर हो जाते हैं। पञ्चवक्त्र रुद्राक्ष कालाग्निस्वरूप है और उसके धारण करनेसे अगम्यागमन तथा अभक्ष्यभक्षणजनित पाप क्षय होते हैं। षड्वक्त्र रुद्राक्ष कार्त्तिकेय-स्वरूप है और उसके धारण करनेसे गर्भहत्याजनित पाप विनष्ट होते हैं। सप्तमुख रुद्राक्ष स्वयं अनन्त है, उसके धारण करनेसे सुवर्णस्तेयजनित पापा नष्ट होते हैं। अष्टमुख रुद्राक्ष साक्षात् गणपति है, उसके धारण करनेसे मिथ्यावाक्यकथन-जन्य पाप विदूरित होते हैं। नवमुख रुद्राक्ष साक्षात् भैरवस्वरूप है उसके धारण करनेसे शिव-सायुज्य, दशवक्त्र रुद्राक्ष विष्णु-स्वरूप है, उसके धारण करनेसे भूत प्रेत-पिशाचादिका भय-विनाश, एकादशमुख रुद्राक्षके धारण करनेसे नाना प्रकार यज्ञफलकी प्राप्ति, द्वादशमुख-रुद्राक्ष धारण करनेसे समस्त प्रकारकी कामना पूर्ण चतुर्दश-मुख रुद्राक्षके धारण करनेसे पुरुषोंका उद्धार होता है।

एक वक्त्रसे ले कर चतुर्दशवक्त्र पर्यन्त रुद्राक्ष अशेष प्रकार पाप-नाशक है। ऊपर जिन रुद्राक्षोंका उल्लेख किया जाता है वे निश्छिद्र और सुपक्क होना चाहिए। अन्यथा मङ्गलजनक नहीं होंगे। रुद्राक्षको पञ्चगव्य और पञ्चामृत द्वारा अभिषिक्त कर लेना चाहिए। रुद्राक्षकी प्रतिष्ठा करते समय पञ्चाक्षरमन्त्र और त्र्यम्बकादि मन्त्र उच्चारण करने चाहिए। (तन्त्रसार)

त्र्यम्बकादि मन्त्र, यथा—ॐ ह्रीं अघोरे ह्रीं घोरे, हुं घोर घोरतरे ॐ ह्रूं ह्रीं श्रीं ऐं सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमोऽस्तु रुद्ररूपिणे हुं हुं॥"

इस मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठा करके धारण किया जाता है। एक मुख रुद्राक्षसे ले कर चतुर्दशमुख पर्यन्त रुद्राक्ष धारण करनेके लिए सबके अलग अलग मन्त्र हैं। उन मन्त्रोंको पढ़ कर धारण करना उचित है।

मन्त्र इस प्रकार है—१ ॐ ॐ भूशं नमः। २ ॐ ॐ नमः। ३ ॐ ॐ नमः। ४ ॐ ह्रीं नमः। ५ ॐ ह्रुं नमः। ६ ॐ ॐ ह्रुं ह्रुं नमः। ७ ॐ ॐ ॐ नमः। ८ ॐ नमः। ९ ह्रुं नमः। १० ॐ ह्रुं नमः। ११ ॐ ह्रीं नमः। १२ ॐ ह्रीं नमः १३ ॐ आं क्ष्रौं नमः। १४ ॐ नमो नमः।

इन चौदह मन्त्रोंसे क्रमशः चतुर्दशमुख रुद्राक्ष धारण किये जाते हैं।

यदि कुक्कुरके शरीरमें मृत्युकालमें भी रुद्राक्ष मौजूद रहे, तो वह कुक्कुर भी रुद्रलोकको प्राप्त होता है। श्रेष्ठ मनुष्योंके लिए तो कहना ही क्या। मृत्युके समय मनुष्यकी देहमें यदि रुद्राक्ष हो, तो उसे रुद्रलोककी प्राप्ति तो अवश्य ही होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

२७ रुद्राक्षोंकी माला बना कर उसे जो कोई कण्ठमें धारण करते हैं, वे कोटिगुण फल पाते हैं। जो मनुष्य ब्राह्मणको षण्मुखरुद्राक्ष दान करता है, उस पर रुद्रदेव सन्तुष्ट होते हैं और उसे अपना पद प्रदान करते हैं। यदि कोई व्यक्ति बिना मन्त्रके रुद्राक्ष धारण करे, तो वह व्यक्ति चतुर्दश इन्द्र पर्यन्त नरकको गमन करता है।

तन्त्रसारमें और भी १४ प्रकारके मन्त्र कहे गये हैं। प्रथमसे ले कर चौदह पर्यन्त रुद्राक्ष उक्त मन्त्रसे धारण करना चाहिए।

मन्त्र, यथा—१ ॐ ऐं। २ ॐ श्रीं। ३ ॐ ध्रुं ध्रूं। ४ ॐ ह्रीं ह्रुं। ५ ॐ ह्रीं। ६ ॐ ऐं ह्रीं। ७ ॐ ह्रीं। ८ ॐ रुं रं। ९ ॐ ह्रां। १० ॐ ह्रीं। ११ ॐ श्रीं। १२ ॐ ह्रां ह्रीं। १३ ॐ क्ष्रौं नमः। १४ ॐ नमां। इन १४ मन्त्रोंको पढ़ कर रुद्राक्ष धारण करना चाहिए।

जो व्यक्ति गलेमें बत्तीस, चोटीमें बाईस, दोनों कानोंमें छह छह बारह, दाहिने हाथमें बारह, बायें हाथमें सोलह और वक्षस्थलमें एक सौ आठ रुद्राक्ष धारण करता है, वह समस्त पापोंको ध्वंस करके नीलकण्ठ हो जाता है। (तन्त्रसार)

तिथितत्त्वमें इसकी उत्पत्ति और धारण आदिका विषय निम्न प्रकार निर्दिष्ट हुआ है।

रुद्राक्षकी नाम निरुक्ति ।

"त्रिपुरस्य वधे काले रुद्रस्याक्ष्णोऽपतंस्तु ये ।
अश्रु णो विन्दवस्ते तु रुद्राक्षा अभवन् भुवि ॥"

(संवत्सरप्रदीपधृत तिथितत्त्व)

महादेवने जब त्रिपुरासुरको वध किया था, तब उनके नेत्रसे अश्रु विन्दु गिरा था, उसीसे रुद्राक्षकी उत्पत्ति हुई थी। रुद्रकी अक्षि अर्थात् नेत्रसे उत्पत्ति होनेके कारण इसका नाम रुद्राक्ष पड़ा।

तन्त्रादि शास्त्रोंमें एकसे चतुर्दश-मुख रुद्राक्षका माहात्म्य कीर्त्तित हुआ है। इन सब रुद्राक्षोंमें पञ्चवक्त्र रुद्राक्ष सुलभ है, इसलिए प्रत्येकके लिए यथाविधानसे इस पञ्चमुख रुद्राक्षको धारण करना विधेय है। पञ्चमुख रुद्राक्ष स्वयं रुद्र-स्वरूप है, इसका कालाग्नि है। इसके धारण करनेसे अगम्यागमन और अभक्ष्य भक्षण-जनित पाप दूर होते हैं। इसे धारण करते समय "ह्रु' नमः" इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करके शिव निर्माल्योदकसे उसका प्रक्षालन करनेके बाद धारण करना चाहिए। (तिथितत्त्व)

एकादशीतत्त्वमें लिखा है कि वैदिक जप होमादि कोई भी कार्य्य क्यों न किया जाय, रुद्राक्ष धारण करके करना चाहिए, अन्यथा वह निष्फल होगा। ध्यानधारणा हीन हो कर भी यदि रुद्राक्ष धारण किया जाय, तो केवल इसके माहात्म्यसे परमगति प्राप्त होती है। (एकादशीतत्त्व)

देवीभागवतमें रुद्राक्षकी उत्पत्ति और गुणादिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—एक दिन षड़ाननने कैलास पर्वत पर भगवान् रुद्रदेवसे रुद्राक्षके माहात्म्य आदिके विषयमें प्रश्न किया। इस पर उन्होंने इस प्रकार कहा था—"प्राचीन कालमें जब ब्रह्मादि देवगण त्रिपुरासुरसे पराजित और निपीड़ित हुए थे, तब मैंने देवोंके अनुरोधसे त्रिपुरका वध करनेके लिए अघोर नामक दिव्यास्त्रका स्मरण करके सहस्र वर्ष उन्मीलित नयनोंसे अवस्थान किया था, क्षण भरके लिए भी चक्षु के निमेष बंद नहीं किये थे। इससे मेरे नेत्रोंमें आघात पहुंचा और अश्रु टपके थे, उसी अश्रुसे रुद्राक्षकी उत्पत्ति हुई थी।" यह रुद्राक्ष ३८ प्रकारका है। जिनमें सूर्यरूप नेत्रसे बारह प्रकार, पिङ्गलवर्ण चन्द्ररूप नेत्रसे सोलह प्रकार और श्वेतवर्ण अग्निरूप नेत्रसे दश प्रकारके कृष्णवर्ण रुद्राक्ष उत्पन्न हुए थे। रुद्राक्षके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके भेदसे चार प्रकारका भी है। जिनमें श्वेतवर्ण रुद्राक्षकी जाति ब्राह्मण, रक्तवर्णकी रुद्राक्ष क्षत्रिय, मिश्र-वर्णकी रुद्राक्ष वैश्य और कृष्णवर्णकी जाति रुद्राक्ष शूद्र है।

ब्राह्मणादि चार वर्णोंके मनुष्योंके अपने अपने वर्ण-वाले रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। इसके विपरीत कभी न धारण करना चाहिए।

रुद्राक्ष अत्यन्त पूजनीय है। देवगण सर्वदा अत्यन्त यत्नसे इसकी पूजा करते हैं। रुद्राक्ष धारण करनेसे जीव को परमागति प्राप्त होती है। मस्तक पर २४, हृदयमें ५०, बाहुद्वयमें १६ और दो मणिबन्धमें १२ रुद्राक्षोंकी माला धारण करनी चाहिए। १०८, ५० और २७ रुद्राक्षोंकी माला बना कर जप करना चाहिए। इससे अश्वमेध यज्ञ-का फल और इक्कीस पुरुषका उद्धार होता है। अन्तकाल-में शिवलोककी प्राप्ति होती है।

रुद्राक्षकी माला बना कर जप करना चाहिए, ब्रह्मा रुद्राक्षके मुख हैं, रुद्र बिन्दु हैं और विष्णु पुच्छ हैं। यह रुद्राक्ष भोग और मोक्षफलका दाता है। रक्त, शुक्ल और मिश्रवर्ण पञ्चमुख पचीस रुद्राक्षों द्वारा गोपुच्छकी भांति क्रमशः सूक्ष्माकार मुखसे मुख और पुच्छसे पुच्छ मिला कर माला बनाई जाती है। माला गूंथते समय ऊद्दुर्ध्वमुख मेरु रख कर उसके ऊपर गांठ देनी चाहिए। इस प्रकार माला गूंथनेके बाद उसका शोधन करना चाहिए। मालाको पहले गन्धोदक और पंचगव्यमें स्थापन कर निर्मल जलसे धो कर मन्त्रपूत करना चाहिए। अनन्तर शिवके षड़ङ्ग मन्त्रके अन्तर्गत अस्त्रमन्त्र द्वारा स्पर्श करके "ह्रु" इस मन्त्रसे मालाओंको एकत्र करना होगा। पश्चात् उसके ऊपर मूलमन्त्रको जप कर 'सद्योजात' इत्यादि मन्त्र द्वारा सौ बार प्रोक्षण करना होगा। अनन्तर मूल-मन्त्र उच्चारण तथा विशुद्ध भूमि पर रख कर उसके ऊपर शिवभगवतीका न्यास करना होगा। इस प्रकार मालाकी प्रतिष्ठा वा संस्कार करनेसे अभीष्ट सिद्धि होती है। जिस देवताका जो मन्त्र है, उसीसे उसकी पूजा करनी चाहिए।

रुद्राक्षमाला मस्तक पर, गलेमें, कानोंमें अथवा बाहुयुगलमें धारण करना उचित है। स्नान, दान, जप, होम, वैश्वदेव, बलि, देवपूजा, प्रायश्चित्त, श्राद्ध और दीक्षा समय रुद्राक्ष धारण करना अत्यन्त आवश्यक है। बिना रुद्राक्ष धारण किये इन सब अनुष्ठानोंको करनेसे वे निष्फल जाते हैं।

रुद्राक्ष धारणका फल त्रिलोक-प्रसिद्ध है। रुद्राक्षके दर्शनसे पुण्य, स्पर्शसे कोटिगुण पुण्य, धारण करनेसे शतकोटिगुण पुण्य और प्रतिदिन जप करनेसे लक्षकोटि सहस्र गुण फल प्राप्त होता है। जो आदमी हाथोंमें, वक्षःस्थल पर, गलेमें, कानों या चोटीमें रुद्राक्ष धारण करता है, वह साक्षात् रुद्र-स्वरूप है। रुद्राक्ष धारण करनेसे मनुष्य समस्त प्राणियोंका अवध्य, महादेवके समान देवासुरके वन्दनीय और समस्त प्रकार पातकसे रहित हो जाता है। एकमात्र रुद्राक्ष धारण करनेसे जीवको जप और ध्यानादि विहीन होने पर भी इसके प्रभावसे परमागति प्राप्त होती है।

रुद्राक्षकी महिमाके विषयमें निम्न प्रकार एक पौराणिक उपाख्यान पाया जाता है—

कोशल देशमें गिरिनाथ नामक एक वेदवेदाङ्गपारंगत ब्राह्मण थे। उनके गुणनिधि नामक एक पुत्र हुआ। यह पुत्र कन्दर्पके समान रूपवान् था। गुणनिधि अत्यन्त दुर्वृत्त हो उठा। गुरुके गृहमें अध्ययन करते समय वह गुरुपत्नी चन्द्रावली पर आसक्त हो गया। पीछे उसने गुरुको विष देकर मार डाला और गुरुपत्नीको ले कर स्वच्छन्द विहार करने लगा। अन्तमें घोर दुर्वृत्त हो कर उसने माता पिताको भी मार डाला।

उसका आचारण यहाँ तक बिगड़ गया, कि वह पापको पाप नहीं समझता था। उससे सब डरते थे। उसने सब पाप किये थे—स्त्रीहत्या, ब्रह्महत्या, गोहत्या और सुरापान आदि कोई भी पाप उससे बचा न था।

इस प्रकार पाप करता हुआ अन्तमें मृत्युका ग्रास बना। तब उसे लेनेके लिए यमालयसे सहस्र यमदूत और शिवालयसे कई एक दूत आया। तब दोनोंमें विवाद हुआ। यमदूतोंने कहा गुणनिधि महापापी है, तुम क्यों इसे लेने आये।" तब शिवदूतने कहा "अत्यन्त पापी है माना, परन्तु गुणनिधिकी जहां मृत्यु हुई है, उस भूमिके दश हाथ नीचे रुद्राक्ष है। इसलिए रुद्राक्षके प्रभावसे इसके पाप क्षय हो गये हैं। अतएव इस पर तुम लोगोंका अधिकार नहीं है। मैं इसे शिवलोक ले जाऊंगा।" तब गुणनिधिको शिवदूत विमानमें बिठा कर शिवलोक ले गया। (देवीभागवत ११।४ ६ अ०) स्कन्दपुराण, पद्मपुराण आदिमें भी रुद्राक्षका माहात्म्य विशेषरूपसे वर्णित है।

२ एक उपनिषद्।

रुद्राक्षमाला (सं० स्त्री०) वह माला जो रुद्राक्षके बीजसे बनाई गई हो।

रुद्राचार्य (सं० पु०) एक प्रसिद्ध पण्डित।

रुद्राणी (सं० स्त्री०) रुद्रस्य पत्नी। (इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रेति। पा ४।१।४९) इति ङीष्। १ रुद्रकी पत्नी, पार्वती। २ रुद्रजटा नामकी लता। इसकी पत्तियों आदिका व्यवहार औषधके रूपमें होता है। ३ एक प्रकार की रागिणी। कुछ लोग इसे मेघ रागकी पुत्रवधू मानते हैं। पर कुछ लोग इसे जयंती, ललित, पंचम और लीलावतीके मेलसे बनी हुई संकर रागिणी भी स्वीकार करते हैं।

रुद्राध्याय (सं० पु०) १ रुद्रके उद्देशसे किया हुआ यजुर्वेदीय सूक्त। २ श्राद्ध कार्यमें पठनीय ग्रन्थांशभेद। यह यजुर्वेदियोंके वृषोत्सर्गमें पढ़ा जाता है।

रुद्राध्यायिन् (सं० त्रि०) रुद्रस्तवपाठकारी, रुद्रस्तव पढ़नेवाला।

रुद्रायण (सं० पु०) रोरुकदेशाधिपति एक राजा।

रुद्रारि (सं० पु०) रुद्र अरिर्यस्य। कामदेव।

रुद्रावर्त्त (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम।

रुद्रावसृष्ट (सं० त्रि०) रुद्रकर्तृक विनष्ट, जिसे रुद्रने नष्ट भ्रष्ट कर दिया हो। (तैत्तिरीयस० ३।५।६।२)

रुद्रावास (सं० पु०) रुद्रस्य आवासः। काशी क्षेत्र। महादेव यहां सर्वदा अवस्थान करते हैं इसीसे इसे रुद्रावास कहते हैं।

रुद्रिय (सं० त्रि०) १ रुद्रसम्बन्धी, रुद्रका। २ प्रशंसावादक, बड़ाई करनेवाला। ३ आनन्ददायक, प्रसन्नता

उत्पन्न करनेवाला। (क्ली०) ४ रुद्रशक्ति। ५ सुख। (सायण २।११।३२)

रुद्री (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी वीणा, रुद्रवीणा। २ वेदके रुद्रानुवाक या अघमर्षण सूक्तकी ग्यारह आवृत्तियाँ।

रुद्रैकादशिनी (सं० स्त्री०) रुद्रानुवाकोंकी या अघमर्षण सूक्तकी ग्यारह आवृत्तियाँ, रुद्री।

रुद्रोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम।

रुद्रोपस्थ (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम।

रुधिका (सं० स्त्री०) इन्द्र द्वारा पराजित एक असुरका नाम। (ऋक् २।१४।५)

रुधिर (सं० क्ली०) रुणाद्धि रुध्यते इति वा रुध (इषि-मदिमुदीति। उण् १।५२) इति किरच्। १ शरीरमेंका रक्त, लहू। पर्याय—रक्त, अस्र, त्वगज, कीलाल, क्षतज, शोणित, लोहित, असृक्, शोण, लोह, चर्मज। (राजनि०) रक्त देखो। २ कुङ्कुम, केसर। ३ गैरिक, गेरू। (पु०) ४ मङ्गल ग्रह। ५ मणिभेद, एक प्रकारका रत्न। ६ एक नगरका नाम। शोणितपुर देखो।

रुधिरगुल्म (सं० पु०) स्त्रियोंका एक प्रकारका रोग। इससे पेटमें शूल और दाह होता है और एक गोला सा घूमता है। इसमें पित्तगुल्मके सब चिह्न मिलते हैं और कभी कभी इससे गर्भ रहनेका भी धोखा होता है। कहते हैं, कि गर्भपात होने पर अनुचित आहार विहार करनेके कारण ऋतुकालमें वायु कुपित होती है जिससे रक्त इकट्ठा हो कर गोला सा बन जाता है।

रुधिरताम्राक्ष (सं० त्रि०) रक्तवर्ण चक्षुविशिष्ट, लाल रंगका चक्षुवाला।

रुधिरपायिन् (सं० पु०) १ रक्तपानकारी, लहू पीनेवाला। २ राक्षस।

रुधिरपित्त (सं० क्ली०) रक्तपित्त, नकसीर।

रुधिरप्रदिग्ध (सं० त्रि०) रक्ताक्त, लहू लगा हुआ।

रुधिरप्लावित (सं० त्रि०) रक्ताप्लुत, लहू लगा हुआ।

रुधिरप्लीहा (सं० स्त्री०) प्लीहा रोगका एक भेद। वैद्यकके अनुसार इसमें इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं, शरीरका रंग बदल जाता है, अंग भारी और पेट लाल हो जाता है और भ्रम, दाह तथा मोह होता है।

रुधिररूषित (सं० त्रि०) रक्ताच्छादित, लहूसे भरा हुआ।

रुधिरलेश (सं० पु०) रक्तचिह्न, लहूका दाग।

रुधिरबिन्दु (सं० पु०) लहूकी बूंद।

रुधिरवृद्धिदाह (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका रोग। इसमें रक्तकी अधिकतासे सारे शरीरमें धूआं सा निकलता है और शरीर तथा आंखोंका रंग तांबेका सा हो जाता है और मुंहसे लहूकी गंध आती है।

रुधिराक्त (सं० त्रि०) १ लहूसे तर या भीगा हुआ, खूनसे भरा हुआ। २ लहूका सा लाल।

रुधिराख्य (रुधिराक्ष)—मूल्यवान् पत्थर या एक प्रकार-की मणि। इस मणिको कोई उपरत्न और कोई स्वल्प-मणि कहते हैं। वृहत्संहिता, अग्निपुराण और गरुड़-पुराण आदि ग्रन्थोंमें इस मणिका उल्लेख देखनेमें आता है। वृहत्संहिता और अग्निपुराणमें इसके गुणागुणका विषय नहीं लिखा है, गरुड़पुराणमें सामान्य मात्र है।

इस मणिकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है-- अग्निदेवने यथाभिलषित दानवका रूप धारण कर नर्मदा नदीमें कुछ फेंका। फेंकते ही इन्द्रगोपकीटके चिह्न-विशिष्ट शुकचञ्चुतुल्य एक प्रकारकी मणि उत्पन्न हुई। इसका आकार पीलु फलके समान था। पण्डितोंने इसका नाम रुधिराख्य रखा। शिल्पिगण इस मणिमें तरह तरहकी कारीगरी दिखलाते हैं। इस मणिका मध्यस्थल विशुद्ध शुभ्रवर्णका और पार्श्वदेश इन्द्रके समान है। यह रत्न पक्व होने पर वज्रवर्ण (हीरक) हो जाता है। जो इस मणिको धारण करते, उनके सुख, ऐश्वर्यादि नाना प्रकारके शुभ होते हैं। *

रुधिरानन (सं० क्ली०) मंगल ग्रहकी एक वक्र गति। जब मङ्गल किसी नक्षत्र पर अस्त हो कर उससे पन्द्रहवें या सोलहवें नक्षत्र पर वक्री होता है तब वह रुधिरानन कहलाता है। (वृहत्संहिता ६।४)

रुधिरान्ध (सं० पु०) पुराणानुसार एक नरकका नाम।

---

* "हुतभुग्रूपमादाय दानवस्य यथेप्सितम्।
नर्मदायां निचिक्षेप किञ्चिद्दीनादि भूतले॥"

रुधिरामय (सं० पु०) रुधिरनिर्गमरूप व्याधि, रक्तपित्त नामक रोग।

रुधिराविल (सं० लि०) रक्तमय, लहूसे तर या भरा हुआ।

रुधिराशन (सं० त्रि०) रुधिरं अशनं यस्य। १ रक्त ही जिसका आधार हो, रक्तपान करके जीनेवाला। (पु०) २ खर राक्षसका सेनापति जिसे श्रीरामचन्द्रने मारा था। ३ राक्षस।

रुधिराशिन् (सं० लि०) रक्तपान करनेवाला, लहू पीने वाला।

रुधिरोद्गारिन् (सं० लि०) १ रक्तवमनकारी, जिसे लहू कै होती हो। (पु०) २ वृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमें से सत्तावनवां संवत्सर।

रुनझुन (हिं०स्त्री०) नूपुर। मंजीर।

रुनी हिं० पु०) घोड़ेकी एक जाति।

रुनुकझुनुक (हिं० स्त्री०) नूपुर आदिका रुनकझुनक शब्द।

रुनुकझुनुक (हिं० पु०) नूपुर या किंकिणी आदिका शब्द।

रुपुल (हिं० पु०) शिकम और हिमालयमें होनेवाला एक प्रकारका बेत जो झाड़के रूपमें होता है।

रुपना (हिं क्रि०) १ रोपा जाना, जमीनमें गाड़ा या लगाया जाना। २ डटना, अड़ना।

रुपया (हिं० पु०) १ भारतमें प्रचलित चांदीका सबसे बड़ा सिक्का जो सोलह आनेका होता है। यह तौलमें दश मासेका होता है। २ धन, सम्पत्ति।

रुपहला (हिं० वि०) चांदीके रंगका; चांदीका सा।

रुपहला रंग (हिं० पु०) भड़भांड़के कांटोंसे बचनेका संकेत।

रुपिका (सं० स्त्री०) आक, मदार।

रुबाई (अ० स्त्री०) १ उर्दू या फारसीकी एक प्रकारको कविता जिसमें चार मिसरे होते हैं। २ एक प्रकार-रंगोन या चलता गाना।

रुबाई यमन (अ० पु०) एक शालक राग जिसके साथ कौवालीका ठेका बजाया जाता है।

रुमेढि (सं० स्त्री०) १ कुज्झटिक, कुहेसा। २ धूम, धूआं।

रुम (सं० पु०) ऋग्वेदके अनुसार एक व्यक्ति। (ऋक् ८।४।२)

रुमण (सं० पु०) रामायणके अनुसार वानर जो सौ करोड़ वानरोंका यूथपति था।

रुमा (सं० स्त्री०) १ वाल्मीकिके अनुसार सुग्रीवकी पत्नीका नाम। २ विशिष्ट लवणाकर, नमककी खान।

रुमाभव (सं० लि०) रुमा नामक नमककी खानसे उत्पन्न।

रुमाल (फा० पु०) रूमाल देखो।

रुमाली (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारका लंगोट। इसमें कपड़ेके एक छोटे तिकोने टुकड़ेके दोनों ओर दो लम्बे बंद और तीसरे कोने पर जो नीचेकी ओर होता है एक लम्बी पतली पट्टी टंकी होती है। दोनों बंद कमरसे लपेट कर बांध लिये जाते हैं और नीचेकी पट्टीसे आगेकी ओर इन्द्रिय ढक कर उसे फिर पीछेकी ओर उलट कर खोंस लेते हैं। प्रायः कुश्तीबाज लोग कसरत करने या कुश्ती लड़नेके समय इसे पहनते हैं। २ मुगदर हिलानेका एक हाथ या प्रकार। इसका हाथ सिरके ऊपरसे मुगदरका ताने हुए और फेर पीठके ऊपरके आधे हीं भाग तक होता है। इसमें अधिक बलकी आवश्यकता होती है।

रुमन्वत् (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक ऋषिका नाम। २ सुप्रतीकके पुत्रका नाम। (कथासरित्सा० ६।४४) ३ पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। (पा ८।२।१२)

रुमन्वान् (सं० पु०) रुमन्वत देखो।

रुय्र (सं० पु०) रम् (चकिरम्यो रुचोपधायाः। उण् २।१४) इति रक् उपधायाश्च उत्वं। अरुण।

रुय्यक—श्रीकण्ठचरितके प्रणेता मङ्खके गुरु और राजानक तिलकके पुत्र। ये ११३५ ई०के पहले जीवित थे। इनके बनाये अलङ्कारसर्वस्व, आह्लनकृत सोमपालविलासकी अलङ्कारानुसारिणी नामकी टीका, काव्यप्रकाशसङ्केत, श्रीकण्ठस्तव, सहृदयलीला, साहित्यमीमांसा और हर्षचरितवार्त्तिक मिलते हैं। इनका दूसरा नाम था राजानक रुचक।

रुरु (सं० पु०) रौतीति रु (रुशातिभ्यां क्रुन्। उण् ४।१०३) इति क्रुन्। १ काला हिरन, कस्तूरी मृग। इसके मांसका गुण स्निग्ध, गुरु, मन्दाग्निकारक और बलप्रद माना गया है।

(राजनि०) २ दैत्यभेद। भगवती दुर्गाने इस दैत्यको मारा था।(कथासरित्सा० ५३।१७१) ३ पुराणानुसार एक प्रकारका बहुत ही क्रूर जन्तु। यह सांपसे भी अत्यन्त क्रूर होता है। इसे भारुण्डक भी कहते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है, कि इस लोकमें जो लोग हिंसा करते हैं उन्हें हिंसित प्राणी रुरु हो कर रौरव नरकमें काटते हैं। (देवीभाग० ८।२२।१०-११ और भागवत ५।२६।११)

४ स्वनामख्यात मुनिविशेष। यह च्यवनके पौत्र और प्रमतिके पुत्र थे। कहते हैं, कि जब इनकी स्त्री प्रमद्वराका देहान्त हुआ, तब इन्होंने उसे अपनी आधी आयु दे कर जिलाया था। विस्तृत विवरण देवीभागवतके २।८ तथा महाभारतके १।५ अध्यायमें लिखा है।

५ ऋषि प्रमतिके औरससे घृताची नाम्नी अप्सराके गर्भजात पुत्रभेद। (भारत आदिपर्व) ६ विश्वदेवाके अन्तर्गत देवताओंका एक गण। ७ सावर्णि मनुके सप्तर्षियोंमेंसे एकका नाम। ८ एक भैरवका नाम। ९ एक फलदार वृक्षका नाम।

रुरुआ (हिं० पु०) बड़ी जातिका उल्लू। इसकी बोली बड़ी भयावनी होती है। कहते हैं, कि यह कभी कभी किसीका नाम सुन कर रटने लगता है और वह आदमी मर जाता है। इसका बोलना लोग बहुत अशुभ मानते हैं।

रुरुक (सं० पु०) सूर्यवंशीय एक राजाका नाम।

रुरुक—एक राजकुमारका नाम। इनके पिताका नाम विजय था। ये राजा सगरके वंशज थे।

रुरुक्षणि (सं० त्रि०) जिसकी ध्वंस करनेकी इच्छा हो।

रुरुक्षु (सं० त्रि०) चिकनाका उलटा, रूखा।

रुरुत्सु (सं० त्रि०) १ बन्धनेच्छु, जिसकी इच्छा केश आदि बांधनेकी हो। २ बाधादानेच्छु, जो विघ्न बाधा डालनेकी इच्छा करता हो।

रुरुदिषु (सं० त्रि०) रोदितुमिच्छुः, रुद-सन्, नञन्तात् उ। रोनेमें इच्छुक।

रुरुभैरव (सं० पु०) तान्त्रिकोंके अनुसार एक प्रकारके भैरव। इनका पूजन दुर्गाके पूजनके समय किया जाता है।

रुरुमुण्ड (सं० पु०) एक पर्वतका नाम। इसे उरुमुण्ड भी कहते हैं।

रुरुशीर्षन् (सं० त्रि०) मृगशीर्षयुक्त, मृगके जैसा शिर-वाला।

रुलाई (हिं० स्त्री) रोनेकी क्रिया या भाव। २ रोनेकी प्रवृत्ति।

रुलाना (हिं० क्रि०) १ दूसरेको रोनेमें प्रवृत्त करना। २ इधर उधर फिराना, नष्ट करना, मिट्टी खराब करना।

रुला (हिं० स्त्री०) वह भूमि जिसकी उपजाऊ शक्ति कम हो गई हो और जिसे परती छोड़नेकी आवश्यकता हो।

रुली (हिं० स्त्री०) रोहिणीकी तरहकी एक प्रकारकी वन-स्पति जो उससे कुछ छोटी होती है।

रुवण्यु (सं० त्रि०) रवणीय, शब्द करनेके योग्य।

रुवथ (सं० पु०) रौति रु (रुविदिभ्यां कित्। उण् ३।११६) इति अथ, सच कित्। कुक्कुर, कुत्ता।

रुवाई (हिं० स्त्री०) रुलाई देखो।

रुवु (सं० पु०) रु कु। १ एरण्डवृक्षभेद, एक प्रकारकी रेंड़ोका पेड़। २ रक्तएरण्ड, लाल रेंड़ी।

रुवुक (सं० पु०) रुवुरेव स्वार्थे कन्। १ एरण्डवृक्ष, रेंड़ोका पेड़। २ रक्तएरण्ड, लाल रेंड़ी।

रुशङ्गु (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम जो नृषङ्गु और रुषद्गु भी कहे जाते हैं।

रुशत्पशु (सं० त्रि०) १ दीप्त पशुयुक्त। २ प्रकाशित हवि। ३ प्रकाशित किरण।

रुशदूर्मि (सं० त्रि०) दीप्त ज्वाल, जलती हुई अग्निशिखा।

रुशद्गु (सं० त्रि०) १ रोचमान रश्मि, सुन्दर किरण। (पु०) २ रुशङ्गु देखो।

रुशद्रथ—पुराणानुसार एक राजा तथा तितिक्षुके पुत्र। इनका दूसरा नाम रुषद्रथ भी था। (भागवत ९।२३।२)

रुशद्वत्सा (सं० स्त्री०) दीप्तसूर्या जिसके वत्स या पुत्र छुपे हैं।

रुशत् (सं० त्रि०) रुश-शतृ। दीप्यमान, चमकीला।

रुशना (सं० स्त्री०) भागवतके अनुसार रुद्रकी एक पत्नी का नाम। (भागवत ३।१२।१३)

रुशम (सं० पु०) १ ऋग्वेदोक्त एक जनपदका नाम। २ उस देशका आदमी।

रुशमा (सं० स्त्री०) वेदके अनुसार एक व्यक्तिका नाम। इन्होंने 'हम दोनोंमेंसे कौन शीघ्र पृथ्वीका परिभ्रमण

कर सकता है' कह कर इन्द्रसे विरोध किया था तथा कौशलपूर्वक पुण्यक्षेत्र कुरुक्षेत्रके चारों ओर भ्रमण करके ही जयलाभ किया था। (पञ्चविंशब्रा० १५।१३।३)

रुशेकु (सं० पु०) भागवतके अनुसार राजपुत्रभेद। (भाग० ६।२३।३०)

रुष (सं० पु०) रुष्यति रुष क्विप्। क्रोध, गुस्सा।

रुषङ्गु (सं० पु०) महाभारत-वर्णित एक ब्राह्मण। (भारत ६ पर्व्व)

रुषद्गु (सं० पु०) यदुवंशीय राजभेद। (विष्णुपुराण)

रुषद्र—स्वाहीके पुत्र और शशबिन्दुका पितामह।

रुषा (सं० स्त्री०) रुष्-क्विप्, भागुरिमते टाप्। अमर्ष, गुस्सा। पर्याय—क्रोध, मन्यु, क्रुधा, कोप, प्रतिघ, रुट्, कुध्।

रुषित (सं० त्रि०) रुष्यति हमेति रुष क्त (रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम्। पा ७।२।२८) इति पक्षे इट्। १ क्रुद्ध, नाराज। २ दुःखी, रंजीदा।

रुष्कर (सं० क्ली०) १ भिलावाँ। २ कस्तूरी बूटी, नेवरी।

रुष्ट (सं० त्रि०) रुष क्त। रोषयुक्त, कुपित।

रुष्टता (सं० स्त्री०) रुष्ट होनेका भाव, नाराज़गी।

रुष्टपुष्ट (सं० त्रि०) हृष्टपुष्ट देखो।

रुष्टि (सं० स्त्री०) रुष-क्तिन्। क्रोध, गुस्सा।

रुष्य (सं० त्रि०) रोषयुक्त, कुपित।

रुसवा (फा० वि०) जिसकी बहुत बदनामी हो, निन्दित, जलील।

रुसवाई (फा० स्त्री०) रुसवा होनेका भाव, अपमान और दुर्गति।

रुसा (हिं० स्त्री०) १ रूसा देखो। (पु०) २ अड़ूसा देखो।

रुसूम (अ० पु०) रसम देखो।

रुस्तम (अ० पु०) १ फारसके एक प्रसिद्ध योद्धा। इतिहासमें वे रुस्तम दास्तान तथा जाबुलीके अधिवासी हो कर वहांके शासनकर्त्ता हुए थे। इसलिये वे रुस्तम जाबुल कहलाते थे। ये नरीमानके लड़के शामके पौत्र और जाल जारके पुत्र थे। ऐसा अद्वितीय वीर और प्रसिद्ध रणकुशल पुरुष फारसमें और न हुआ। कयानीयवंशीय छठे राजा बाहमनके विरुद्ध लड़ाई कर इन्होंने प्राण विसर्जन किये। इनका समय ईसासे लगभग नौ सौ वर्ष पहले माना जाता है। २ वह जो बहुत बड़ा वीर हो।

रुस्तम अली (मौलाना) तफ्सीर-सघीर नामक कुरानकी टीकाके प्रणेता। ये कन्नोजके रहनेवाले अली असगरके पुत्र थे। १७६४ ई०में ये परलोकवासी हुए।

रुस्तमकाबु खोजियानी (ख्वाजा)—एक विख्यात फारसी कवि। ये खुरासनपति सुलतान ओमरकी राज-सभामें १४०८ ई०में मौजूद थे।

रुस्तम जमान खाँ—गुजरातके एक सेनापति। इनका असल नाम था इलीयर खां। ये शेख अबदुल शुभानके पुत्र थे। पहले यह गुजरातके शासनकर्त्ता नवाब मुबारिज उलमुल्क सरवलन्द खांके अधीन काम करते थे। सम्राट् फ़रूखसियरने इन्हें छःहजारी मनसबदार बना कर रुस्तम जमानकी उपाधि दी थी। सम्राट् महम्मद शाहने नवाब सरवलन्द खाँको राज्यच्युत करके राजा अजितसिंह मारवाड़ीको गुजरातका शासनकर्त्ता नियुक्त किया इसलिये दोनों दलमें घोर युद्ध हुआ। १७३० ई०में विजयादशमीके दिन रणभूमिमें इलीयर खांने अपनी जीवनलीला संवरण की।

रुह (सं० त्रि०) रोहतीति रुह (इगुपधेति। पा ३।१।१३५) इति क। १ जात, उत्पन्न। २ आरूढ़, चढ़ा हुआ।

रुहक (सं० क्ली०) छिद्र, सूराख।

रुहा (सं० स्त्री०) रोहति छिन्नापि पुनरुत्पद्यते इति रुह क, टाप्। १ दूर्वा, दूब। २ अतिबला, ककही। ३ मांसरोहिणी नामकी लता। ४ लज्जावन्ती, लजालू।

रुहिरुहिका (सं० स्त्री०) रुह-इन् रुहिरुत्पत्तिः रुहिरुहिणा पुनः पुनरुद्भवेन कायतीति कै क टाप्। उत्कण्ठा।

रुहेलखण्ड—रोहिलखण्ड देखो।

रुहेला (हिं० पु०) पठानोंकी एक जाति जो प्रायः रोहिलखण्डमें बसी हुई है।

रूहन् (सं० पु०) रोहतीति रुह (शीङ्क्रुशि रुहीति। उण् ४।११३) क्वनिप्। वृक्ष, पेड़।

रूँख (हिं० पु०) रूख देखो।

रूँखड़ (हिं० पु०) १ एक प्रकारके भिक्षुक। ये दरियाई नारियलका खप्पर ले कर 'अलख' कह कर भीख मांगते

है और कमरमें एक बड़ा-सा घुंघरू बांधे रहते हैं। इनका एक और भेद होता है जो गूदड़ कहलाता है। ये कहीं अड़ कर भिक्षा नहीं मांगते, केवल तीन बार 'अलख कह कर ही आगे बढ़ जाते हैं। ८ रूख देखो।

रूँगटा (हिं० पु०) रोंगटा देखो।

रूँदना (हिं० क्रि०) रौंदना देखो।

रूंध (हिं० वि०) रुका हुआ, अवरुद्ध।

रूंधना (हिं० पु०) १ किसी स्थान या वस्तुको बाहरवालोंके आक्रमणसे बचानेके लिये उसके चारों ओर कंटीले झाड़ आदि लगाना, कंटीले झाड़ आदिसे घेरना। २ किसी पदार्थको चारों ओरसे इस प्रकार घेरना कि वह बाहर न जा सके, रोकना। ३ गमनागमनका मार्ग बंद करना।

रू (फा० पु०) १ मूंह, चेहरा। २ द्वार, कारण। ३ ऊपरी भाग, सिरा। ४ आगा, सामना। ५ आशा, उम्मेद।

रूई (हिं० स्त्री०) १ कपासके डोडे या कोशके अन्दरका घूआ। जब यह डोडा पक कर चिटक जाता है तब यह ऊनके लच्छेकी तरह बाहर निकलता है। इसके रेशे कोमल और घुंघराले होते हैं जो बीजके ऊपर चारों ओर लगे होते हैं और जिनके अंदर बीज लिपटे रहते हैं। रूई बहुत प्रकारकी होती है, कोई मोटी और कोई बारीक। बहुत-सी ऐसी रूइयां हैं जो जो रेशमकी तरह कोमल और चिकनी होती हैं। जब रूई ढेंढ़ या डोडेसे फूट कर बाहर निकलती है तब इकट्ठी की जाती है। पीछे सूख जाने पर लोग इसे ओटनीमें ओट कर बीजोंसे अलग करते हैं। ओटी हुई रूई धुनी जाती है जिससे उसमें जो बचे खुचे बीज रहते हैं वे अलग हो जाते हैं और उसके रेशे फूट कर खुल जाते हैं। इस रूईसे पेंडरी या पूनी बनाई जाती है जिससे सूत काता जाता है। धुनी हुई रूई गद्दे आदिमें भरी जाती है और उससे सूत कात कर कपड़े बुनते हैं। यह रासायनिक रीतिसे बारूद बनानेके काममें भी आती है। रूईको शोरेके तेजाबमें गलाते हैं जिससे यह अत्यन्त विस्फोटक हो जाता है। इसे 'गनकाटन' कहते हैं और उत्तम बारूदमें इसका प्रयोग होता है। इस 'गनकाटन' को ईथर या ईथर मिले हुए अलकोहलमें मिलानेसे एक प्रकारका लेस बनता है। इस लेसको 'कलोडीन' कहते हैं। अगर यह घाव पर तुरंत लगाया जाय तो झिल्लीकी तरह सूख कर जोड़ देता है। कलोडीनमें थोड़ी-सी मात्रा ब्रोमाइड और आयोडाइडको मिला कर शीशे पर लगा कर फोटोके लिये गीला 'प्लेट' बनाया जाता है। हिन्दुस्तानमें रूईके कपड़ेका प्रचार वैदिक कालसे चला आता है। ब्राह्मण और गृह्यसूत्रोंमें तो इसके यज्ञोपवीत और वस्त्रका विधान वर्णभेदसे स्पष्ट देखा जाता है, किन्तु यूरोपमें इसके कपड़ेका प्रचार कुछ ही शताब्दियोंसे हुआ है। सूतके लिये उत्तम रूई वही समझी जाती है जिसके रेशे लंबे और दृढ़ होने पर पतले और चमकीले होते हैं। २ इसी प्रकारका कोई रोआं विशेषतः बीजोंके ऊपरका रोआं।

रूईदार (हिं० वि०) जिसमें रूई भरी गई हो।

रूक (हिं० स्त्री०) १ तलवार। (पु०) २ भूंगा, घलुआ। ३ एक प्रकारका पेड़ जिसकी पत्तियां औषधिके रूपमें काम आती हैं और पचपानड़ीके साथ मिल कर बिकती हैं।

रूक्ष (सं० त्रि०) रूक्षयतीति रूक्ष पारुष्ये पचाद्यच्। १ अप्रेम, जिसमें प्रेम न हो। २ अचिक्कण, जो चिकना या कोमल न हो। (पु०) ३ वृक्ष, पेड़। ४ वरकतृण, एक प्रकारकी घास।

रूक्षगन्धक (सं० पु०) रूक्षो गन्धो यस्य कन्। गुग्गुलु, गुग्गुल।

रूक्षण (सं० त्रि०) शुष्ककरण, सूखा करना।

रूक्षणात्मिका (सं० स्त्री०) १ कृष्णचणक वृक्ष, काले चनेका पौधा। २ लङ्का नामक शिम्बीधान्य।

रूक्षता (सं० स्त्री०) रूक्षस्य भावः तल्-टाप्। रूक्षत्व, रूखापन।

रूक्षदर्भ (सं० पु०) रूक्षः कर्कशो दर्भः। हरिदर्भ, सब्जा घोड़ा।

रूक्षपत्र (सं० पु०) रूक्षाणि पत्राणि यस्य। शाखोटवृक्ष, सिहोरका पेड़।

रूक्षपेषम (सं० अव्य०) रूक्षं पिनष्टि पिष्-णमुल्। भिन्नयतासे पीसना।

रूक्षप्रिय (सं० पु०) रूक्षस्य प्रियः। ब्रह्मौषध।

रुक्षस्वादुफल (सं० पु०) रुक्षं स्वादु च फलं यस्य। धम्मन-वृक्ष, धामिनका पेड़।

रुक्षा (सं० स्त्री०) रुक्षयतीति रुक्ष अच् टाप्। दन्तिवृक्ष, अंडीकी जातिका एक पेड़।

रुक्षिका (सं० स्त्री०) रुक्ष, कर्कश, रूखा।

रूख (हिं० पु०) १ वृक्ष, पेड़। २ रूखा देखो।

रूखरा (हिं० पु०) १ रूखड़ा देखो। २ रूखड़ देखो।

रूखा (हिं० पु०) १ जो चिकना न हो, अस्निग्ध। २ जिसमें घी तेल आदि चिकने पदार्थ न पड़े हों। ३ जिसमें रस न हो, सूखा। ४ जो चटपटा न हो, जो खानेमें रुचिकर और स्वादिष्ट न हो। ५ जिसका तल सम न हो, खुरखुरा। ६ स्नेहरहित, जिसमें प्रेम न हो। ७ उदासीन, विरक्त। ८ परुष, कठोर। (पु०) ९ एक प्रकारकी छेनी।

रूखापन (हिं० पु०) १ रूखे होनेका भाव, रुखाई। २ कठोरता। ३ उदासीनता। ४ खुश्की, नीरसता। ५ स्वादहीनता।

रूज (अ० पु०) एक प्रकारकी बुकनी जिसे मल कर सोना चांदी आदि धातुओंकी चीजों पर जिला दिया जाता है। यह तूतिये या हीराकसीससे बनाया जाता है। पहले तूतिये या कसीसको आग पर तपाते हैं और जब यह जल जाता हैं तब उसे बारीक पीस डालते हैं। कभी कभी तूतियेको पानीमें गला कर और निथार तथा धो कर फूंकनेसे भी रूज तनता है। यह जौहरियोंके काम आता है। रूजमें खड़िया भी मिलाई जाती है। खड़िया और पारा मिलाकर रूजसे बरतन पर जिला या कलई की जाती है।

रूठन (हिं० स्त्री०) रूठनेकी क्रिया या भाव, नाराजगी।

रूठना (हिं० क्रि०) किसीसे अप्रसन्न हो कर कुछ समय के लिये सम्बन्ध छोड़ना, नाराज होना।

रूठनि (हिं० स्त्री०) रूठन देखो।

रूड (अं० पु०) लम्बाई या विस्तार नापनेका एक मान जो ५ गजका होता है।

रूड़ (हिं० वि०) श्रेष्ठ, उत्तम।

रूड़ो (हिं० वि०) रूड़ देखो।

रूढ़ (सं० त्रि०) रुह क्त। १ जात, उत्पन्न। २ प्रसिद्ध, प्रचलित। ३ आरूढ़, चढ़ा हुआ। ४ गंवार, उजड्ड। ५ कठोर, कठिन। ६ अविभाज्य, अकेला।

(पु०) ७ प्रसिद्ध शब्द, प्रकृति और प्रत्ययकी अपेक्षा न करके शब्दबोधजनक शब्द। जो शब्द प्रकृति और प्रत्ययकी किसी प्रकार अपेक्षा न करके अर्थका बोध कराते हैं उसे रूढ़ शब्द कहते हैं। शब्द तीन प्रकारका है, यौगिक, योगरूढ़ और रूढ़। इनमेंसे सङ्केतयुक्त जो नाम हैं उसे रूढ़ कहते हैं। इसका दूसरा नाम संज्ञा भी है। इस रूढ़ शब्दके फिर तीन भेद हैं—नैमित्तिक, पारिभाषिक और औपाधिक। (शब्दशक्तिप्र०)

किसी किसी पण्डितके मतसे जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया इन चार प्रकारके धर्म द्वारा यह रूढ़ शब्द फिर चार प्रकारका है। गो गवयादि शब्द गोत्व गवयत्व जाति द्वारा सङ्केतित होता है, इसी कारण यह रूढ़ हुआ है। अतएव यह 'जात्या रूढ़ः' जाति द्वारा रूढ़ है। पशु और आढ्यादि शब्द, लांगूल और धनादि द्रव्य द्वारा सङ्केतित होनेके कारण 'द्रव्येण रूढ़ः' यह शब्द द्रव्य द्वारा रूढ़ हुआ है। धन्य और पिशुनादि द्रव्य पुण्य और द्वेषादि गुण द्वारा सङ्केतित होनेसे 'गुणेन रूढ़' गुण द्वारा रूढ़ हुआ है। चल और चपलादि शब्द क्रिया द्वारा सङ्केतित होनेके कारण यह रूढ़ हुआ है। यही चार प्रकारका रूढ़ शब्द है।

पारिभाषिक, नैमित्तिक और औपाधिकका लक्षण इस प्रकार है—

"जात्यवच्छिन्नसंकेतवती नैमित्तिकी मता।
जातिमात्रे हि संकेतद्व्यक्तेर्भाणं सुदुष्करम्॥
यन्नामजात्यवच्छिन्नसंकेतवत् सा।
नैमित्तिकी संज्ञा यथा गौचैत्रादिः॥" (शब्दशक्तिप्र०)

जो नाम जात्यवच्छिन्न संकेतयुक्त है अर्थात् 'गो' यह शब्द उच्चारण करनेसे गोत्व जातित्व इसी शब्दमें पूर्वापर संकेतित हुआ है, अतएव गोत्व जात्यवच्छिन्न गो शब्दको ही प्रतिपन्न करता है तथा शब्दबोधको भी कोई हानि नहीं होती, इसीलिये इसकी नैमित्तिक संज्ञा हुई है।

जो संज्ञा उभयावृत्ति धर्मायच्छिन्न संकेतयुक्त है

उसे नैमित्तिक कहते हैं। जैसे—आकाश और डित्थादि फिर जो शब्द अनुगत उपाध्यवच्छिन्न संकेतयुक्त है उसका नाम औपाधिकरूढ़ है। जैसे—भूत दूत आदि शब्द। योगरूढ़ शब्द देखो।

रुड़की (रुरकी)—युक्तप्रदेशके शाहरानपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २९° ३८´ से ३०° ८´ उ० तथा देशा० ७७°४३´ से ७८° १२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७९६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें शिवालिक, पूरबमें गङ्गा और दक्षिणमें मुजफ्फरनगर जिला है। यह तहसील रुरकी, ज्वालापुर, मङ्गलौर और भगवानपुर परगने ले कर बनी है। जनसंख्या तीन लाखके क़रीब है। इसमें ४२६ ग्राम और ६ शहर लगते है।

२ उक्त तहसीलका एक समृद्धिशाली नगर। यह अक्षा० २९° ५१´ उ० तथा देशा० ७७° ५३´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या वीस हजारके करीब है। म्युनिसपलिटी होनेके कारण नगर परिष्कार परिच्छन्न और वाणिज्य-समृद्धिसे परिपूर्ण है।

गङ्गाकी नहर काटी जानेसे पहले यह नगर एक छोटा सा गांव था। १८४५-४६ ई०में पर्वतको काट कर जब गङ्गाकी नहर लाई गई तब यहां नहर काटनेका कारखाना और लोहेका कारखाना तथा पीछे १८४७ ई०में देशी छात्रोंको स्थापत्यविद्या और इञ्जिनियरिङ्ग शिक्षा देनेके लिये The Thomson Civil Engineering College स्थापित हुआ था। इस श्रेणीका ऐसा बड़ा विद्यालय भारतवर्षमें और कहीं भी नहीं है। १८५३ ई०में यहां पहले पहल सेनादलकी एक छावनी डाली गई। पीछे १८६० ई०में एक गोराबाजार स्थापित हुआ था। इसके सिवा जलवायुका परिमाण-निर्देशक यहां एक सुन्दर Meteorological observatory है।

रूढ़प्रणय (सं० त्रि०) रूढ़ः प्रणयः। प्रगाढ़ प्रणय, अतिशय प्रेम।

रूढ़यौवन (सं० स्त्री०) आरूढ़यौवना देखो।

रूढ़वंश (सं० त्रि०) रूढ़ः वंशः। प्रसिद्ध वंश, मशहूर कुल।

रूढ़ा (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी लक्षणा, वह लक्षणा जो मूलकीसे चली आती हो और जिसका व्यवहार प्रसिद्धसे भिन्न अभिप्राय व्यंजनाके लिये न हो।

रूढ़ि (सं० स्त्री०) रुह-क्तिन्। १ जन्म, उत्पत्ति। २ प्रादुर्भाव। ३ प्रसिद्धि, ख्याति। ४ चढ़ाई, चढ़ाव। ५ वृद्धि, बढ़ती। ६ उभार, उठान। ७ प्रथा, चाल। ८ विचार, निश्चय। ९ रूढ़ शब्दकी शक्ति जिससे वह यौगिक न होने पर भी अपने अर्थका बोध कराता है।

रूदाद (फा० स्त्री०) १ समाचार, वृत्तान्त। २ विवरण, कैफियत। ३ दशा, अवस्था। ४ व्यवस्था। ५ मुकदमेका रंग ढंग। ६ अदालतकी कारवाई।

रूप (सं० क्ली०) रूप्यते कोऽर्थैते रौतीति वा रु (खष्प शिल्पशष्पेति। उण् ३।२८) इति दीर्घश्च, रूपयतीति रूप-अच् वा। १ स्वभाव, प्रकृति। २ सौन्दर्य, सुन्दरता। ३ दशा, अवस्था। ४ वेष, भेस। ५ शरीर, देह। ६ तुल्य, समान, सदृश। ७ शब्द या वर्णका स्वरूप या उसका वह रूपान्तर जो उसमें विभक्ति, प्रत्यय इत्यादि विकारोंके लगनेसे बन जाता है। ८ भेद, विकार। ९ चिह्न, लक्षण। १० रूपक। १२ चाँदी, रूपा। १३ किसी पदार्थका वह गुण जिसका बोध द्रष्टाको चक्षुरिन्द्रिय द्वारा होता है, पदार्थके वर्णों और आकृतिका योग जिसका ज्ञान आंखोंको होता है।

पदार्थोंमें एक शक्ति रहती है, जिससे उनका तेज इस प्रकार विकृत होता है कि जब वह आंखों पर लगता है, तब देखनेवालोंको उस पदार्थकी आकृति, वर्णादिका ज्ञान होता है। इस शक्तिको भी रूप ही कहते हैं। दर्शनशास्त्रोंमें रूपको चक्षुरिन्द्रियका विषय माना है। सांख्यने इसे पंचतन्मात्राओंमें एक माना है। बौद्ध दर्शनमें इसे पांच स्कन्धोंमें पहला स्कन्ध कहा है। महाभारतमें सोलह प्रकारके रूप माने गये हैं जैसे—ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुरस्र, वृत्त, शुक्ल, कृष्ण, नीलारुण, रक्त, पीत, कठिन, चिक्कण, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, मृदु और दारुण। (महाभारत मोक्षधर्मप०)

रूपका लक्षण—

"अङ्गान्यभूषितान्येव केनचिद्भूषणादिना।
येन भूषितवद्भाति तद्रूपमिति कथ्यते॥"

(उज्ज्वलनीलमणि)

अभूषित अङ्ग किसी भूषणादि द्वारा भूषित हो जब

शोभायमान होता है तब उसे रूप कहते हैं।

रूप शुक्लादि भेदसे अनेक प्रकारका है। नित्य और अनित्यके भेदसे इसके दो भेद हैं। जलादि परमाणुरूप नित्य हैं और सभी अनित्य हैं।

शास्त्रमें अत्यन्त रूपकी निन्दा की गई है। जो अत्यन्त रूपवान् हैं वे प्रायः दुःखी होते हैं। देवीपुराणमें लिखा है, कि एक दिन उमाने महेश्वरसे पूछा, 'अत्यन्त रूप-सम्पन्ना नारी नाना गुणोंसे विभूषित हो कर भी क्यों वे दुःखित और कान्तसौख्यविवर्जित होती हैं?' इस पर महादेवने उत्तर दिया था, 'अत्यन्त रूप ही दुःखका कारण है। इसीलिये लक्षणज्ञ व्यक्ति रूपकी इच्छा नहीं करते। पुरुष वा स्त्री चाहे जो हो, अति रूप द्वारा अल्पायु वा दुःखित होता है। दमयन्ती और सीता बहुत रूपवती थीं, इस कारण उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। इसी रूपके लिये अहल्या वन्ध्या और तिलोत्तमा दासी हुई थीं। अतएव अतिरूप ही दुःखका कारण है।

(देवीपु० नन्दाकुण्डप्रवेशाध्याय)

रूप शब्दका वैदिक पर्याय—निर्णिक, वव्रि, वर्प, वपु अमति, अप्स, प्सु, अप्न, पिष्ट, पेश, कृशन, श्मर, अर्जुन, ताम्र, अरुष, शिल्प। (वेदनि० ३ अ०)

(त्रि०) १४ रूपवान्, खूबसूरत।

रूप—त्रिगर्त्त वा कोटकाङ्गड़ाके एक राजा।

रूप—एक नदीका नाम। यह शक्तिमत पर्वतसे निकली है

रूपक (सं० क्ली०) रूपयतीति रूपि ण्वुल्। १ वह काव्य जो पात्रों द्वारा खेला जाता है या जिसका अभिनय किया जाता है, दृश्य काव्य। रूपक नाटकादि भेदसे दश प्रकारका है। इसके सिवा उपरूपकके १८ भेद हैं। कुल मिला कर रूपक २८ प्रकारका है।

नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग अङ्कवीथ्य और प्रहसन यही दश प्रकारके रूपक हैं तथा नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्यक, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भाण ये अठारह प्रकारके उपरूपक हैं। विशेष विवरण नाटक शब्दमें देखो। २ मूर्त्ति, प्रतिकृति।

३ काव्यालङ्कारभेद, रूपक अलङ्कार। निरपह्नव विषयमें जहां रूपितका आरोप होता है वहां यह अलङ्कार हुआ करता है। प्रकृत विषय छिपानेका नाम निरपह्नव है। जहां प्रकृत विषयको न छिपा कर उपमेयमें उपमानका आरोप होता है वहीं पर यह अलंकार होता है। अर्थात् प्रतिषेधका अभाव हो कर जहां उपमानमें उपमेयका आरोप होता है वही यह अलङ्कार होगा।

यह रूपक अलङ्कार तीन प्रकारका है, परम्परित, साङ्ग और निरङ्ग।

जहां किसी वस्तुका आरोप दूसरी वस्तुके आरोपका कारण होता है वहां परम्परित रूपक होता है। यह परम्परित रूपक श्लिष्ट और अश्लिष्ट निबन्धन चार प्रकारका है। (साहित्यद० १०।६७१)

परम्परित रूपक केवल अश्लिष्ट तथा श्लेष द्वारा मालारूप और अश्लेष द्वारा मालारूप यह चार प्रकारका है।

जहां केवल श्लिष्ट पद द्वारा यह रूपक होता है वहां केवल श्लिष्ट, अश्लिष्ट पद द्वारा होनेसे केवल अश्लिष्ट तथा श्लेष द्वारा मालारूपमें वर्णित होनेसे श्लिष्ट मालारूपक तथा श्लिष्ट नहीं होनेसे अश्लिष्ट मालारूपक होगा।

उदाहरण—हे श्रीनृसिंह महीपाल! युद्धके समय जगत्में उद्धत राजमण्डलमें (चन्द्रमण्डलमें) राहुरूप बाहुका अर्थात् तुम्हारा मङ्गल होवे।

यहां श्लेषमें राजाओंके बीच चन्द्रबिम्बका आरोप है तथा राजबाहु राहुत्वमें आरोपका कारण होनेसे यह अलङ्कार हुआ। श्लेष द्वारा आरोप होनेसे श्लिष्ट परम्परित रूपक हुआ। यह रूप जहां श्लेष द्वारा न होगा वहां अश्लिष्ट परम्परित रूपक होगा।

मालारूपकका उदाहरण—

"मनोजराजस्य सितातपत्रं श्रीखण्डचित्रं हरिदङ्गनायाः।
विराजति व्योमसरःसरोजः कर्पूरपुरप्रभमिन्दुबिम्बं॥"

(साहित्यद० १० परि०)

कर्पूरपुञ्जसदृश चन्द्रमण्डल विराजित है। यह चन्द्रमण्डल कामनरपतिका सितातपत्र है, दिगङ्गनाका चन्द्रतिलक है वा आकाशगङ्गाका पद्म है।

यहां मालारूपमें मनोजादिके राजत्वादिमें आरोप तथा चन्द्रबिम्बके सितातपत्रत्वादिमें आरोपका निमित्त होनेसे यह अलङ्कार हुआ।

साङ्ग रूपक—अङ्गके साथ अङ्गीका यदि रूपण अर्थात् आरोप हो, तो साङ्गरूपक होता है। इसके फिर दो भेद हैं, समस्त।वस्तुविषय और एकदेशविवर्त्ति॥ अशेष आरोप अर्थात् उपमानका यदि शाब्दत्वमें आरोप हो, तो समस्तवस्तुविषयक रूपक और जहां किसी आरोप्यमाण-का अर्थरूपमें आरोप हो वहां एकदेशवर्त्ति रूपक होता है।

निरङ्ग रूपक फिर दो प्रकारका है—केवल और माला-रूपक। जहां केवल एकमात्र अङ्गका रूपण अर्थात् आरोप हो वहां निरङ्ग रूपक होगा। (साहित्यद० १०।६७६)

कहीं कहीं स।ङ्गरू।कमें भी आरोप्य विषय श्लिष्ट देखा जाता है।

जिस रूपकालङ्कारमें वर्णन माधुर्यमें अत्यन्त विचित्रता देखी जाती है वहां अधिकारूढ़ वैशिष्ट्यरूपक होता है।

उदाहरण—तुम्हारा यह मुख कलङ्करहित चन्द्र है। चन्द्रमामें कलङ्क है, किन्तु इस मुखमें कुछ भी कलङ्क नहीं है। अधर सुधाधाराका आधार तथा चिरपरिणत बिम्ब है। दोनों नेत्र शोभायुक्त नीलोत्पल हैं। शरीर लावण्यका समुद्र अर्थात् अत्यन्त सुखकर है।

यहां मुखमें चन्द्रमाका, अधरमें बिम्बका, नेत्रमें कुवलयका और शरीरमें लावण्यसमुद्रका आरोप हुआ है। ये सब आरोप होनेसे रूपक तथा इस रूपकमें वर्णनाकी अत्यन्त विचित्रता रहनेसे अधिकारूढ़ वैशिष्ट्यरूपक हुआ।

रूपक और परिणामालङ्कारमें जो भेद है, वह इस प्रकार है—प्रकृत विषयमें किसी एक वस्तुका आरोप होनेसे रूपक और आरोप्यमाण वस्तु आरोप विषयके अभिन्नरूपमें अर्थ प्रस्तुत कार्यका उपयोगी होनेसे परिणाम अलङ्कार होता है। किन्तु परिणाम अलङ्कारमें जो आरोप होगा, वह वर्णनीय विषयका बिलकुल उपयोगी होना चाहिये। किन्तु रूपकमें वह नहीं होगा। आरोपमात्र ही रूपकालङ्कारका विषय है तथा जहां आरोप अभिन्नरूपमें प्रकृत अर्थका उपयोगी होगा, वहां परिणाम अलङ्कार होता है। (साहित्य० १० परि०)

४ संख्याविशेष, एक परिमाणका नाम। ५ उपमान, वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय। ६ रौप्य, चांदी। ७ मुद्रा, रुपया। ८ सङ्गीतमें सात मात्राओंका एक दोताला ताल। इसमें दो आघात और एक खाली होता है। खाली ताल पर ही सम होता है। जब यह दूनमें बजाया जाता है, तब इसे तेवरा कहते हैं।

रूपकताल (सं० पु०) एक प्रकारका ताल।

रूपकरण (सं० पु०) एक प्रकारका घोड़ा।

रूपकर्त्तृ (सं० पु०) रूपस्य कर्त्ता। विश्वकर्मा। (रामा० ५।२२।१३)

रूपकातिशयोक्ति (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी अतिशयोक्ति जिसमें केवल उपमानका उल्लेख करके उपमेयोंका अर्थ समझाया जाता है।

रूपकार (सं० पु०) भास्कर, वह जो मूर्त्ति बनाता हो। (कथासरित्सा० ३७।९)

रूपकृत् (सं० त्रि०) रूपं करोति कृ-क्विप् तुक् च। १ त्वष्टा, विश्वकर्मा। (पु०) २ मूर्त्तिकर, वह जो मूर्त्ति बनाता हो।

रूपकान्ता (सं० स्त्री०) सत्रह अक्षरोंकी एक वर्णवृत्तिका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें जगण, रगण, जगण, रगण, जगण और अन्तमें एक गुरु और एक लघु मात्रा होती है।

रूपगढ़—बम्बई प्रसिडेन्सीके बड़ोदाराज्यके नवसरी विभागान्तर्गत एक दुर्ग। यह शोणागढ़नगरसे साढ़े सात कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यहां झरनेके जलसे परिपूर्ण एक बड़ी पुष्करिणी है। यह दुर्ग भीलोंका विद्रोहदमन करनेके लिये बड़े काममें आया था।

रूपगर्विता (सं० स्त्री०) गर्विता नायिकाका एक भेद, वह नायिका जिसे अपने रूप या सुन्दरताका अभिमान हो।

रूपगोस्वामी—सुप्रसिद्ध वैष्णव आचार्य और एक कवि। श्रीचैतन्य महाप्रभुका शिष्यत्व ग्रहण कर ये वैष्णवधर्मके माहात्म्यकीर्त्तनमें बद्धपरिकर हुए। संस्कृत भाषामें इनकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। इनके बनाये ग्रन्थ प्रेम और माधुर्यभावसे भरे हैं। ये महाप्रभुके परमभक्त और पार्श्वचर थे।

आप कर्णाटराज सर्वज्ञके वंशधर थे। सनातन रचित लघुतोषिणीसे इनकी एक वंशतालिका सङ्कलित हुई है

जो इस प्रकार है। सर्वज्ञके पुत्र अनिरुद्धदेव, अनिरुद्धके पुत्र रूपेश्वर और हरिहर थे। रूपेश्वर राज्यताड़ित हो कर पौरस्त्यराज्यके अन्तर्गत शेखरराज्यमें बस गये। उनके पुत्र पद्मनाभ नैहाटी आये। यहां पुरुषोत्तम, जगन्नाथ, नारायण, मुरारि और मुकुन्द नामक उनके पांच पुत्र हुए। मुकुन्दके लड़के कुमार बाकला-चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत फतेयाबाद चले गये। उनके तीन लड़के थे, सनातन, रूप और वल्लभ।

वंशतालिकाके मतसे,—सनातन सबसे बड़े, रूप मंझले और श्रीजीवगोस्वामीके पिता वल्लभ सबसे छोटे थे। कोई कोई रूपको सबसे बड़े तथा सनातन और अनुपमको उनके भाई बतलाते हैं।

रामकेलिग्राममें इनका निवास था। श्रीरूपगोस्वामी बचपनसे ही कृष्णभक्त थे। विविध विद्यामें पारदर्शी हो कर ये गौड़ेश्वर सुलतान अलाउद्दीन् हुसेनशाह (१४६४-१५२१ ई०) के वजीर हुए। हुसेनशाह हिन्दूकर्मचारियोंकी बड़ी भक्ति और श्रद्धा करते थे। वजीर श्रीरूपने राजाका विश्वासभाजन हो कर प्रधान अमात्य और साकर-मल्लिककी उपाधि पाई। मुसलमानके यहां नौकरी करते हुए भी ये कृष्णसेवासे पराङ्मुख नहीं हुए थे। इन्होंने अपने मकानके समीप श्यामकुण्ड और राधाकुण्ड नामक दो जलाशय खुदवा कर उसके चारों ओर कदम्बकानन लगाया था। ये अपने बड़े भाईके साथ किसी निर्दिष्ट समयमें वहां जा कर श्री श्रीराधाकृष्णकी युगल मूर्त्तिकी उपासना करते थे।

प्रवाद है, कि एक दिन सवेरे मूषलधारसे वर्षा होती थी। उस दुर्दिनमें दोनों भाई राजाका आदेश पालन कर राजदरबारमें जा रहे थे। इसी समय उन्हें रास्तेकी बगलमें एक कुटीसे कुछ अस्फुट वाक्य सुनाई दिये। एक भिक्षुककी स्त्री अपने स्वामीसे कह रही थी, "नाथ! सवेरा हुआ, उठिये, भिक्षाको निकलिये, आज घरमें कुछ चावल नहीं है।" पत्नीका वचन सुन कर वृद्ध भिक्षुकने कहा, अभी सवेरा नहीं हुआ है। ऐसी घोर अन्धड़में मनुष्यका बाहर निकलना असम्भव है। शृगालादि लोलुप पशु भी इस समय अपने बिलसे बाहर नहीं निकलते। एकमात्र क्रीतदास वा नौकर ही अपने मालिकके आदेशसे ऐसे समयमें आहारनिद्राका परित्याग कर घरसे बाहर निकलते हैं।'

दरिद्र भिक्षुकका वचन सुन कर श्रीरूपके चैतन्योदय हो आया। राजाका दासत्व शृगालादिसे भी नीच है, समझ कर उन्होंने नौकरी पर लात मारी। साथ साथ विवेकने आ कर उनमें आश्रय लिया। संसार और ऐश्वर्या उन्हें विषके समान मालूम होने लगा। उसी दिन सुलतानके समीप जा कर उन्होंने तीर्थयात्रा करनेके लिये अवकाश मांगी। बहुत आपत्तिके बाद राजाने उन्हें तीर्थयात्राकी अनुमति दे दी। वे भी प्रेमोल्लाससे विभोर हो बड़े आनन्दसे नृत्य करने लगे।

राजकार्यमें व्यापृत रहते समय एक दिन श्री रूपको मालूम हुआ, कि श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने नवद्वीपधाममें अवतार लिया है। अब उनके दर्शनके लिये रूप छटपटाने लगे। भक्तवाञ्छाकल्पतरु भक्तकी वासना पूरी करनेके लिये श्रीवृन्दावन धाम जाते समय रामकेलि ग्राम देखने आये। यहां विषयविरागी रूपसनातनने प्रभुके चरणकमलका दर्शन किया। उसी समय रूप राजकार्यका परित्याग कर दीनवेशमें नीलाचल गये और प्रभुकी सेवा करने लगे। पीछे उन्हींके आदेशसे वृन्दावन जा कर रूपने लुप्त तीर्थोंका उद्धार, वैष्णवधर्मका प्रचार और अमूल्य वैष्णव ग्रन्थोंका प्रणयन किया। उनके बनाये ग्रन्थ ये सब हैं,—

उज्ज्वलनीलमणि, उत्कलिकावल्लरी, उद्धवदूत, उपदेशामृत, कार्पण्यपञ्जिका, कृष्णजन्मतिथिविधि, गङ्गाष्टक, गोविन्दविरुदावली, गौराङ्गसुरकल्पतरु, चैतन्याष्टक, छन्दोऽष्टादशक, दानकेलिकौमुदी, नाटकचन्द्रिका, पद्यावली, परमार्थसन्दर्भ, प्रतिसन्दर्भ, प्रेमेन्दु-सागर, भक्तिरसामृतसिन्धु, मथुरामहिमा, मुकुन्दमुक्तारत्नावलीस्तोत्रटीका, यमुनाष्टकरसामृत, ललितमाधवनाटक, विदग्धमाधव नाटक, विलापकुसुमाञ्जलि, व्रजविलासस्तव, शिक्षादशक, संक्षेपामृत वा संक्षेपभागवतामृत, साधनपद्धति, स्तवमाला, हंसदूतकाव्य, हरिनामामृतव्याकरण, हरेकृष्णमहामन्त्रार्थनिरूपण, लघुगणोद्देशदीपिका, वृहद्गणोद्देशदीपिका, श्रीरूपचिन्तामणि, हरिभक्तिरसामृतसिन्धुका बिन्दु, प्रयुक्ताख्यचन्द्रिका,

दानमयीकणा, तुलसी-अष्टक, वृन्दावनेश्वरी-अष्टक, श्रीनन्दनन्दनाष्टक, वृन्दावनध्यान, चाटुपुष्पाञ्जलि और प्रेमेन्दुकारिका। १५४१ ई०में इन्होंने विदग्धमाधव और १५५० ई०में उत्कलिकावल्लरीकी रचना समाप्त की थी। वैष्णवतोषिणीमें इनके बनाये दो रसामृतका उल्लेख पाया जाता है।

१४११ शकमें इनका जन्म और १४८० शकमें अन्तर्धान हुआ। इन्होंने अपने जीवनका २७ वर्ष गृहस्थाश्रममें और शेष ४३ वर्ष वृन्दावनधाममें वैराग्यावस्थामें बिताया। वृन्दावनमें आप १८४ वनतीर्थोंका उद्धार कर वैष्णवजगत्‌में भगवान् श्रीकृष्णको एक विस्तृत लीलाक्षेत्र स्थापन कर गये हैं। सनातन गोस्वामी देखो।

रूपग्रह (सं० त्रि०) रूपं ग्राहयति ग्रह-अच्। रूपग्रहण वाली चक्षुः, जिसका रंग-रूप सुन्दर हो।

रूपघनाक्षरी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका दण्डक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें बत्तीस वर्ण होते हैं। इसके अन्तमें लघु तथा आठ आठ वर्णो पर विश्राम होना आवश्यक है।

रूपघात (सं० पु०) सूरत बिगाड़ना, कुरूप करनेका अपराध।

रूपचतुर्दशी (सं० स्त्री०) कार्त्तिक कृष्णचतुर्दशी। यह दीपमालिकाके एक दिन पहले होती है। इसे नरकचतुर्दशी भी कहते हैं। इस दिन लोग शरीरमें उबटन आदि लगाते हैं।

रूपचन्द्र—रुद्रमञ्जरीनाममालाके रचयिता। थे गोपालके पुत्र थे। १५८८ ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ लिखा।

रूपचन्द्रमणि—एक प्रसिद्ध जैन-पण्डित।

रूपज (सं० त्रि०) रूपेण जायते जन-ड। रूपजात, रूपसे उत्पन्न।

रूपजीवनी (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

रूपण (सं० क्ली०) रूप ल्युट्। १ आरोपण, आरोप करना। २ प्रमाण। ३ परीक्षा।

रूपतत्त्व (सं० क्ली०) रूपस्य तत्त्वं। शील, स्वभाव।

रूपतम (सं० त्रि०) अतिशय रूपशाली, बड़ा खूबसूरत। (शत०ब्रा० ३।३।४।२३)

रूपता (सं० स्त्री०) रूपस्य भावः तल्-टाप्। रूपका भाव या धर्म। २ सौन्दर्य, खूबसूरती।

रूपदर्शक (सं० पु०) १ प्राचीनकालका सिक्कोंका निरीक्षण करनेवाला राज-कर्मचारी। २ सराफ।

रूपदीया—यशोहर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यहां मध्यवंग रेलपथका एक स्टेशन है।

रूपदेव—पद्यावली-धृत एक कवि।

रूपदेव कवि (पण्डित)—सानन्दगोविन्द नामक गीतगोविन्दविवरणके प्रणेता।

रूपधर (सं० त्रि०) रूपस्य धरः। रूपविशिष्ट, खूबसूरत।

रूपधारिन (सं० त्रि०) रूपं धरतीति धृ-णिनि। सौन्दर्यविशिष्ट, खूबसूरत।

रूपधृत् (सं० त्रि०) रूपं धरति धृ-क्विप् तुक् च। रूपवान्, खूबसूरत।

रूपधेय (सं० क्ली०) वाह्यरूप, बाहरी सौन्दर्य।

रूपनगर—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह आरावली शिखर पर देसुरी और सोमेश्वर गिरिसंकटके बीच अवस्थित है। पूरब और उत्तर ओरका पहाड़ बड़ा ऊंचा है इससे इस पथसे शत्रु नहीं आ सकता।

देसुरीके सोलाङ्की राजपूत द्वारा १७७२ ई०में यह नगर स्थापित हुआ। योधपुरराजने रूपनगरकी राजकन्यासे ब्याह करनेकी इच्छासे यह नगर अपने अधिकारमें कर लिया।

रूपनगर—राजपूतानेके किशनगढ़ राज्यान्तर्गत एक नगर।

रूपनन्द—एक बौद्धका नाम।

रूपनयन (सं० पु०) योगशतककी टीकाके प्रणेता।

रूपनाथ—मध्यप्रदेशमें जब्बलपुर ज़िलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहां अशोककी अनुशासनलिपि खोदी हुई थी। इस अनुशासनसे बोध होता है, कि एक समय यहां बहुतसे मनुष्य वास करते थे।

रूपनाथ—आसाम प्रदेशके जयन्तीपहाड़ी विभागमें अवस्थित एक बड़ा गाँव। यहां हिन्दूका एक तीर्थ है। प्रतिवर्ष सैकड़ों आदमी श्रोहट्टसे इस देवमन्दिरका दर्शन करने आते हैं। इसके पास ही बहुत-सी बड़ी बड़ी गुहाएं

हैं। एक गुफा जमीनके अन्दर बहुत दूर तक चली गई है। उस गुफामें किसीको जानेका साहस नहीं होता। वहांके लोगोंका कहना है, कि उस सुरंगसे एक समय चीनसेन भारतवर्ष पर आक्रमण करनेके लिये आई थी। दूसरी गुफामें हिन्दू-देवसमाजका चित्र अङ्कित देखा जाता है।

रूपनारायण (सं० पु०) १ महादानप्रयोगपद्धतिके रचयिता। वाचस्पतिमिश्रने इसका उल्लेख किया है। २ व्यवहार-चमत्कारदीधितिके प्रणेता। ये नाथमल्लके पौत्र और भवानीदासके पुत्र थे। १५८० ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ समाप्त किया।

रूपनारायण—बङ्गालके हुगली जिलेमें प्रवाहित एक नदी। मेदिनीपुर जिलेमें जो शिलाई नदी बहती है, वही द्वारिकेश्वर नदमें मिलनेके बाद हुगली जिलेमें इसी नामसे बहती हुई भागीरथीमें गिरी है। यह नदी अक्षा० २२° १३´ उ० तथा देशा० ८८° ३´ पू०के मध्य विस्तृत है। कोलाघाट नामक घाटसे २ मील दक्षिण मेदिनीपुर हाइलेभेल केनाल इसके ऊपर हो कर गई है। इस नदीका स्रोत बहुत तेज है। कभी कभी बाढ़के समय किनारा डूब जाता है। इसके किनारे २१ मील २३७३ फुट लंबा एक बांध तैयार किया जाता है सभी समय इस नदीमें ज्वार भांटा आता है।

रूपनारायण—मिथिलाके एक राजा। १४६५ ई०में ये विद्यमान थे।

रूपनारायण-रसूलपुर खाल—रूपनारायणसे रसूलपुर नदी तक विस्तृत एक खाल। मेदिनीपुर जिलेके हिजली विभागमें यह बहती है। रूपनारायण नदीके समीप खाल कट कर हल्दी तक चली गई है। वहां इसे 'बांका खाल' कहते हैं। फिर हल्दी नदीसे तिरोपकिया खाल आ कर रसूलपुर नदीमें मिली है। उक्त खालमें ज्वार-भांटा आया करता है।

रूपनारायणघोष—एक प्रतिभाशाली बंगाली कवि। इन्होंने अम्बकवि भवानीप्रसादके समयमें ही मार्कण्डेय चण्डीका बंगला अनुवाद किया। इनके पूर्वपुरुष मकरन्दघोषके सन्तान थे। यशोहर नगरमें इस वंशका वास था। यशोहरमें जब राष्ट्रविप्लव उपस्थित हुआ, तब इस वंशके जगन्नाथ और वाणीनाथ नामक दो भाई अपना देश छोड़ कर माणिकगञ्ज आमडाल ग्राममें रहने लगे। वहांके करवंशीय मौलिक कायस्थ जमींदारने कुलीनाग्रणी दोनों भाइयोंका अच्छा सत्कार किया और अपनी कन्यासे विवाह करने कहा। आभिजात्य नाशके भयसे वे राजी न हुए और वहांसे भाग चले। किन्तु बड़े वाणीनाथ पकड़े गये और पद्मा नदीमें डुबो दिये गये। मरनेके पहले भी उन्हें विवाह करनेके लिये कहा गया था।

छोटे भाई जगन्नाथने काफी दहेज पानेके लोभसे मैमनसिंह बाफला ग्रामके जमींदार यादवेन्द्र रायकी कन्यासे विवाह किया। इन्हीं जगन्नाथके वंशधर रूपनारायण थे। १६वीं सदीके शेषमें उनका जन्म हुआ था।

रूपनारायण सेन—सुपद्मषट्कारक और सुपद्म समाससंग्रहके रचयिता। पयोगांवमें ये रहते थे। इन्होंने १४८० ई० में उक्त दोनों ग्रन्थोंकी रचना की।

रूपनाशन (सं० पु०) रूपस्य नाशनम् अदर्शनं यत। पेचक, उल्लू।

रूपप (सं० पु० १ पुराणानुसार एक जाति। (मार्कण्डेय पु० ५७।५०) २ सह्याद्रिवर्णित एक राजाका नाम।

(सह्याद्रि ३१।४६)

रूपपति (सं० पु०) त्वष्टा, विश्वकर्मा।

(शत० ब्रा० ११।४।३।१७)

रूपपुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

रूपभागानुबन्ध (सं० पु०) मूल राशिके साथ भग्नांशका जोड़ना।

रूपभागापवाह (सं० पु०) किसी मूल राशिसे भग्नांशका घटाना।

रूपभेद (सं० पु०) रूपस्य भेदः। १ विभिन्न रूप। (क्ली०) २ तंत्रभेद।

रूपमञ्जरी—श्रीराधिकाकी एक सखी। यह राधिकाके चचा विभानु[illegible] थी। यावटमें इनका घर था। यह प्रियनम्र[illegible] रूपमञ्जरी परमासुन्दरी और गोरोचनाकी तरह व[illegible]विशिष्टा थीं। यह सर्वदा श्रीराधिकाके निकट रहती थीं। ललिताके कुञ्जके उत्तर इनका रूपोल्लासा नामक कुञ्ज था। इनके और भी दो नाम थे—

रङ्गणमालिका और लवङ्गमालिका। इनकी उमर साढ़े तेरह वर्षसे तेरह दिन कम थी अर्थात् ये आध्यात्मिक जगत्की चिरयौवना थीं। इनके नित्यरूपका कभी भी विपर्यय नहीं हुआ। वैष्णवोंका कहना है, कि यही रूपमञ्जरी गौराङ्गलीलामें श्रीरूप गोस्वामी रूपमें अवतीर्ण हुई थीं।

२ वैद्यक ग्रंथभेद।

रूपमती—एक गणिकानर्त्तकी। ये पीछे महाराज बाजबहादुरकी महिषी हुईं। बाजबहादुर देखो।

रूपमय (हिं० वि०) अति सुन्दर, बहुत खूबसूरत।

रूपमाला (हिं० स्त्री०) एक मात्रिक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १४ और १० के विश्रामसे २४ मात्राएं होती हैं। इसको मदन भी कहते हैं।

रूपमालिन् (सं० पु०) सह्याद्रिवर्णित एक राजा। (सह्या० ३४।३३)

रूपमाली (सं० स्त्री०) एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें तीन मगण या नौ दीर्घ वर्ण होते हैं।

रूपया (हिं० पु०) रुपया देखो।

रूपयौवन (सं० क्ली०) १ रूप और यौवन। (त्रि०) २ रूप और यौवनविशिष्ट।

रूपराम—एक बंगाली कवि। इन्होंने श्रीधर्ममङ्गल प्रणयन किया। ये दूसरे श्रीधर्ममङ्गलके प्रणेता घनराम चक्रवर्त्तीके सहपाठी थे।

रूपरूपक (सं० पु०) केशवके अनुसार रूपकालंकारके 'सावयवरूपक' भेदका एक नाम।

रूपवत् (सं० त्रि०) रूपमस्यास्तीति (रूपरसादिभ्यश्च। पा ५।२।९५) इति मतुप्, मस्य वः। १ आकारविशिष्ट, उत्तम रूप। २ सौन्दर्ययुक्त, खूबसूरत।

रूपवती (सं० स्त्री०) १ केशवके अनुसार एक छन्दका नाम। इसे छन्दःप्रभाकरमें गौरी लिखा है। २ चंपकमाला वृत्तिका एक नाम, रुक्मवती। ४ एक नदीका नाम। (वि०) ५ सुन्दरी, खूबसूरत स्त्री।

रूपवती—मालवराज बाजबहादुरकी महिषी। ये नर्त्तकीकी लड़की थीं। इनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो कर बाजबहादुरने इनसे विवाह कर लिया। ये रूपमणि और रूपमती नामसे भी मुसलमान इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। इनके बनाये बहुत-से गान हैं। बाजबहादुर देखो।

रूपवन्त (सं० त्रि०) रूपवत् देखो।

रूपवान् (सं० त्रि०) सुन्दर, खूबसूरत।

रूपवास—राजपूतानेके भरतपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ५६´ उ० तथा देशा० ७७° ३१´ पू०के मध्य भरतपुर शहरसे ११ मील दक्षिण पूरबमें अवस्थित है। जनसंख्या २१८१ है। चित्तोरगढ़ राजवंशधर रूपसिंहने इस नगरको बसाया। इसी नगरमें वे रहते थे, इस कारण शहरका रूपवास नाम हुआ है। उन्होंने मुगलोंके ढंग पर जो प्रासाद बनवाया और जिसकी खुदवाई थी, वह आज भी मौजूद है। नगरकी बगलमें बहुत-सी बड़ी बड़ी पत्थरकी मूर्त्ति स्थापित है। उनमेंसे एक मूर्त्ति बलदेवजीकी, दूसरी उनकी स्त्रीकी, तीसरी हस्तिनापुराधिपति महाराज युधिष्ठिरकी और चौथी किसी बुद्ध वा जैनतीर्थङ्करकी है। इसके सिवा यहां दो स्तम्भ हैं। दोनोंमें खोदित लिपि है। शहरमें एक डाकघर, वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल है।

रूपवासिक (सं० पु०) एक जातिका नाम। इसका दूसरा नाम रूपवाहिक भी है।

रूपवाहिक (सं० पु०) जातिभेद।

रूपविपर्यय (सं० पु०) रूपस्य विपर्य्ययः। रूपके विपरीत।

रूपशल् (सं० त्रि०) रूपेण शालते शोभते शाल् क्विप्। सौन्दर्यविशिष्ट, खूबसूरत।

रूपशाही—बुन्देलखण्डवासी एक कायस्थ कवि। पन्ना या पन्ना नगरके निकटवर्ती बाघमहल स्थानमें ये रहते थे। इन्होंने पन्नाके बुन्देलाजातीय महाराज हिन्दू-पतिको सभामें रह कर वहांकी शोभा बढ़ाई थी। १७५६ ई०में इन्होंने रूपविलास काव्य रचा।

रूपशिखा (सं० स्त्री०) अग्निशिखा नामक राक्षसकी एक कन्याका नाम।

रूपश्री (सं० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिकी एक संकर रागिणी। इसमें ऋषभ कोमल और शेष सब स्वर शुद्ध लगते हैं।

रूपर्षि—लुम्पाक जैनोंकी नागपुरिया शाखाके प्रवर्त्तक। ये मालसावड़ गोत्रमें उत्पन्न हुए थे। इस शाखाके मतविरोधी दूसरे एक सम्प्रदायके प्रवर्त्तक भी इसी नामसे परिचित थे किन्तु वे डगुगोत्रीय थे।

रूपसंपद् (सं० स्त्री०) रूपमेव सम्पद्। उत्तमरूप, सुन्दरता।

रूपसमृद्ध (सं० त्रि०) रूपशाली, रूपवान्।

रूपसमृद्धि (सं० स्त्री०) सुन्दर रूपसम्पन्न, वह जो देखनेमें खूब सुन्दर हो।

रूपसम्पत्ति (सं० स्त्री०) रूपसंपद देखो।

रूपसा—खुलना जिलेमें प्रवाहित एक नदी।

रूपसिंह—एक हिन्दू राजा। इन्होंने १६६१ ई०में सम्राट् आलमगीरके पुत्र महम्मद मुआजिमके साथ अपनी कन्याका व्याह कर दिया।

रूपसिद्धि (सं० पु०) एक आदमीका नाम।

(कथासरित्सा० ५४।१७)

रूपसी (सं० त्रि०) सुंदरी, खूबसूरत।

रूपसेन (सं० पु०) १ एक विद्याधरका नाम। २ राजगृहके एक राजा।

रूपस्थ (सं० त्रि०) रूपयुक्त, रूपवान्।

रूपस्विन् (सं० त्रि०) रूपवान्, खूबसूरत।

रूपहानि (सं० स्त्री०) १ रूपका नाश। २ न्यायमतसे विरोधवाक्यविन्यासका एक प्रकार।

रूपा (हिं० पु०) १ चांदी। २ घटिया चांदी जिसमें कुछ मिलावट हो। ३ सच्छ सफेद रंगका घोड़ा, नुकरा। ४ वह बैल जो बिलकुल सफेद रंगका हो। इस रंगके बैल मजबूत और सहिष्णु माने जाते हैं।

रूपा—सह्याद्रिपादसे निःसृत एक नदीका नाम।

(देशा० १६५।१।२)

रूपाजीवा (सं० स्त्री०) रूपेण सौन्दर्येण आजीवतीति आ-जीव-अच्-टाप्। वेश्या, रंडी।

रूपाधिबोध (सं० पु०) दृश्य वस्तुका वह ज्ञान जो इन्द्रियां द्वारा होता है।

रूपार—१ पञ्जावके अम्बाला जिलेका एक उपविभाग। यह रूपार और खरार तहसील ले कर बना है।

२ उक्त विभागकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०°४५´ से ३१°१३´ उ० तथा देशा० ७६°११ से ७६°४४´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २६० वर्गमील है। इसके बगलमें सतलज नदी बहती है। जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है। इसमें १ शहर और ३५८ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३०°५८´ उ० तथा देशा० ७६°३२´ पू०के मध्य शतद्रु नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। यह नगर बहुत पुराना है। रूपनगर इसका पुराना नाम है। जनसंख्या ६ हजारके करीब है।

१७६३ ई०में हरिसिंह नामक एक सिख-सरदारने इस नगरको जीत कर हिमालयपादमूल तकके विस्तृत स्थानोंमें अपनी शासनशक्ति फैलाई। १७९२ ई०में मृत्युके पहले उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति भरतसिंह और देवसिंह नामक दो पुत्रोंमें बांट दी। भरतसिंहको रूपार नगर मिला। १८४५ ई०में सिख युद्धके समय इस राजवंशने सिखजातिका पक्ष लिया। इस कारण अङ्गरेजराजने १८४६ ई०में उक्त सम्पत्ति जब्त कर ली।

यहां प्रति वर्ष दो मेले लगते हैं। प्रति ज्येष्ठ मासमें शाहखलीदके मकबेरके सामने बड़ी धूमधामसे साधुवरकी स्मृतिरक्षार्थ उत्सव होता है। इस उपलक्षमें यहां प्रायः ५० हजार हिन्दू-मुसलमान इकट्ठे होते हैं। दूसरा मेला चैत्रमासमें शतद्रु नदीमें स्नान करनेके उपलक्षमें लगता है। इस समय लाखों आदमी स्नान करने आते हैं। हिमालय पर्वतवासी विभिन्न जातिके साथ वाणिज्य करनेके लिये यहां एक बड़ी हाट है। यहांका वाणिज्य द्रव्य शस्यादि, नील, चीनी, सूती वस्त्र और लोहेका बरतन है।

रूपल—बम्बई प्रदेशके महीकान्त विभागके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य और उसका प्रधान नगर। यहांके सरदार बड़ौदाके गायकवाड़ और इदरके राजाको कर देते हैं।

रूपावचर (सं० पु०) १ बौद्धमतके अनुसार एक प्रकारके देवता। २ ध्यानकी एक भूमिका नाम। इसके प्रथमा आदि चार भेद हैं। ३ चित्तका एक भेद जिससे रूपलोकका ज्ञान प्राप्त होता है। चित्तकी इस वृत्तिके कुशल, विपाक क्रियादि भेदसे अनेक प्रकार माने जाते हैं।

रूपावली (सं० स्त्री०) शब्दकी विभक्तिकी वर्णना।

रूपाश्रय (सं० पु०) सुन्दर पुरुष, खूबसूरत आदमी।

रूपाष्ट (सं० त्रि०) आठ प्रकारके स्वभाववाला।

रूपास्त्र (सं० पु०) रूपमेव अस्त्रं यस्य। कामदेव।

रूपिका (सं० स्त्री०) रूपमस्य अस्तीति रूप-ठन्। श्वेतार्क वृक्ष, सफेद फूलका आकका पेड़।

रूपित (सं० पु०) एक प्रकारका उपन्यास जिसमें ज्ञान, वैराग्यादि पात्र बनाये जाते हैं।

रूपिन् (सं० त्रि०) रूपमस्यास्तीति रूप-इन। १ रूपयुक्त, रूपवाला। २ तुल्य, सदृश। ३ सुन्दर, खूबसूरत।

रूपी (सं० त्रि०) रूपिन् देखो।

रूपेन्द्रिय (सं० पु०) रूपग्रहणोपयुक्तं इन्द्रियं। रूपग्रहणोपयोगी इन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, आँख। इस इन्द्रिय द्वारा रूप ग्रहण होता है इसलिये इसे रूपेन्द्रिय कहते हैं। (सुश्रुत)

रूपेश्वर (सं० पु०) एक शिवलिङ्गका नाम।

रूपेश्वरी (सं० स्त्री०) रूपाणामीश्वरी। एक देवीका नाम। प्रभवादि साठ वर्षोंमेंसे इक्कीस वर्षमें इस देवीकी पूजा करनी होती है। इस देवीकी पूजा करनेसे सब अभीष्टलाभ होता है।

"रूपेश्वरी प्रकर्त्तव्या वृषायुग्मव्यवस्थिता।
जटामुकुटभारेन्दु त्रिशूलोरगभूषणा॥
मणिमौक्तिकशोभाढ्या सितचन्दनचर्चिता।
पूजिता कुसुमैर्हृद्यैः सर्वकामफलप्रदा॥"

(देवीपु० संवत्सरदेवतापू०)

रूपोपजीवन (सं० क्ली०) वह जो सुंदर मूर्त्ति दिखा कर अपनी जीविका चलाता हो, बहुरूपिया।

रूपोपजीविन् (सं० त्रि०) रूपेण उपजीवयति जीव-णिनि। रूप द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला, बहुरूपिया।

रूपोपजीविनी (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

रूपोश (फा० वि०) १ छिपा हुआ, गुप्त। २ जो दंड आदिसे बचनेके लिये भाग गया हो, फरार।

रूपोशी (फा० स्त्री०) मुंह छिपानेकी क्रिया, गुप्ति, छिपना।

रूप्य (सं० क्ली०) आहतं रूपं अस्यास्तीति रूप (रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्। पा ५।२।१२०) इति यप्। १ आहत स्वर्ण, रजत। २ धातुविशेष, चाँदी।

रूप्य सुवर्णका मल है। पर्याय—शुभ्र, वसुश्रेष्ठ, रुधिर, चन्द्रलोहक, श्वेतक, महाशुभ्र, रजत, तसरूपक, चन्द्रभूति, सित, तार, कलधूत, इन्द्रलोहक, खर्जूर, दुर्वर्ण, श्वेत, रङ्गबीज, राजरङ्ग, लोहराजक, कलधौत। गुण—स्निग्ध, कषाय, अम्ल, विपाकमें मधुर, वातपित्तहर, रुचिकर, वलिपलितनाशक। (राजनि०)

इसके नामकी उत्पत्ति और मारणादिका विषय वैद्यकमें इस प्रकार लिखा है,—

महादेवने त्रिपुरासुरका वध करनेके समय क्रोधभरी आंखोंसे उसे देखा था। उस समय उनकी दाहिनी आंखसे आगकी जो चिनगारियां निकलीं, उससे तेजोमय रुद्रकी और बाईं आंखसे जो अश्रुपात हुआ उससे रूप्यकी उत्पत्ति हुई। औषधके काममें यह जारण कर प्रयोगमें लाया जाता है। जो रौप्य भारी, चिकना, कोमल तपाने या काटनेसे सफेद दिखाई देता है, जो आघातसह है अर्थात् पत्तर बनानेसे जो फटता नहीं, चन्द्रमाके समान जो विपुल प्रभासम्पन्न और स्वच्छ है वही उत्तम रूप्य है। जो रौप्य कठिन, कृत्रिम, रुक्ष, रक्तवर्ण, पीतदलयुक्त, लघु है तथा तपाने, काटने और चोट करनेसे जिसका रंग बदल जाता है वही खराब समझा जाता है।

गुण—शीतवीर्य, कषाय, अम्लमधुररस, मधुर, सारक, वयःस्थापक स्निग्ध, लेखनगुणयुक्त तथा वायु, पित्त और प्रमेह आदि रोगनाशक है।

अशोधित रौप्य—सेवन करनेसे शारीरिकताप, विबन्ध, बलवीर्यक्षय और देहपुष्टिका व्याघात तथा विविध रोग उत्पन्न होता है। अतएव रौप्यको शोधन कर काममें लाना चाहिये।

शोधनविधि—रौप्यको पीट कर अच्छी तरह पत्तर बनाना होगा। पीछे आगमें गरम कर उष्ण अवस्थामें यथाक्रम तेल, मट्ठा, कांजी, गोमूत्र और कुलथी कलायका काढ़ा, प्रत्येक द्रव्यमें तीन तीन बार डालना होगा। ऐसा करनेसे रौप्य शोधित होता है।

मारणविधि—पहले चांदीको पीट कर जितना पत्तर होगा उसके तिहाई भाग हरतालको अम्ल द्वारा एक पहर तक मर्दन करे। पीछे उस मर्दित हरतालको रौप्यके पत्तरमें लेप कर उन पत्तरोंको एक मूषामें रखे और मुंह बंद कर दे। अनन्तर ३० वनगोइठेसे पुटमें पाक करना होगा। इस प्रकार क्रमशः चौदह बार हरताल लेप और पुटपाक करनेसे रौप्य भस्म होता है।

मतान्तर—थूहरके दूधमें सोनामक्खी पीस कर उससे पहलेकी तरह पत्तरमें लेप करें, पीछे पूर्वोक्त विधानानुसार चौदह बार पुटमें पाक करनेसे रौप्य भस्म होता है। (भावप्र०)

(त्रि०) प्रशस्त रूपं अस्यास्तीति रूप-यत्। २ सुन्दर, खूबसूरत। ४ उपमेय।

रूप्यक (सं० पु०) रुपया।

रूप्यकला (सं० स्त्री०) जैनोंके अनुसार हैरण्यवत वर्षकी एक नदीका नाम।

रूप्याध्यक्ष (सं० पु०) रूप्यस्य रूप्ये वा अध्यक्षः। नैष्किक, टकसालका प्रधान अधिकारी।

रूबकार (फा० पु०) १ सामने उपस्थित करनेका भाव, पेशी। २ आज्ञापत्र, हुकुमनामा। ३ वह तजवीज या फैसला जो किसी काररवाईमें हाकिम अदालतके सामने लिखा जाय, अदालतका हुक्म। ४ कुछ विशिष्ट अवस्थाओंमें किसीको अदालत आदिमें उपस्थित होनेके लिये लिखा हुआ आज्ञापत्र।

रूबकारी (फा० स्त्री०) १ मुकदमेकी पेशी। २ मुकदमेकी काररवाई।

रूबरू (फा० क्रि० वि०) सम्मुख, सामने।

रूबल (रूसी० पु०) रूसका चांदीका सिक्का यह प्रायः दो शिलिंग डेढ़ पेनीके बराबर मूल्यका होता है।

रूबुक (सं० पु०) एरण्डवृक्ष, रेंडका पेड़।

रूम (फा० पु०) टर्की या तर्की देशका एक नाम। रोमसाम्राज्य देखो।

रूमाल (फा० पु०) १ कपड़ेका वह चौकोर टुकड़ा जो हाथ, मुंह पोछनेके काममें आता है। २ चौकोना शाल या चिकनका टुकड़ा। इसके चारों ओर बेल और बीचमें काम बना रहता है और यह तिकोना दोहर कर ओढ़नेके काममें लाया जाता है। मुसलमानी समयमें इसे कमरमें भी बांधते थे। ३ ठगोंका रूमाल जिसके एक कोनेमें चांदीका एक टुकड़ा बंधा रहता था। ठग आदि इसे आदमियोंके गलेमें लपेट कर चांदीके टुकड़ेको उसके गले पर घांटीके पास अंगूठेसे इस प्रकार दबाते थे, कि वह मर जाता था। ४ पायजामेकी काटमें वह चौकोर कपड़ा जो दोनों मोहरियोंकी संधिमें लगाया जाता है, मियानी।

रूमाली (फा० स्त्री०) रूमाली देखो।

रूमी (फा० वि०) १ रूम देशसम्बन्धी, रूमका। २ रूमदेशमें उत्पन्न होनेवाला। ३ रूमदेशमें रहनेवाला, रूमदेशका निवासी।

रूर (सं० त्रि०) १ उत्तप्त, जो गरम हो गया हो। २ अग्निदग्ध, जला हुआ।

रूरा (हिं० वि) १ प्रशस्त, श्रेष्ठ। २ बहुत बड़ा। ३ सुन्दर, मनोहर।

रूल (अं० पु०) १ नियम, कायदा। २ लकीर खींचनेका डंडा, रूलर। ३ लकीर जो लिखावट सीधी रखनेके लिये कागज पर खींची जाती है।

रूलर (अं० पु०) १ लकीर खींचनेका डंडा, शलाका। २ लकीर खींचनेकी पटरी, पैमाना। ३ शासक।

रूषक (सं० पु०) रूषयतीति रूष-ण्वुल्। वासक, अड़ूसा।

रूषण (सं० क्ली०) १ भूषित करना, सजाना। २ अनुलेपन। ३ आच्छादन

रूषित (सं० त्रि०) रूष क्त। खंडित, टूटा हुआ।

रूस—यूरोपके पूरब और एशियाके उत्तरका एक विस्तीर्ण राज्य। भूपरिमाण ८६६०००० वर्गमील अर्थात् सारे भूमण्डलका छठा भाग है। इतना बड़ा रकबा होने पर भी जनसंख्याकी तुलना करनेसे वह बहुत कम होता है। १९०१ ई०की मर्दुमशुमारीमें यहां की जनसंख्या १३॥० करोड़ थी अर्थात् पृथ्वीकी जनसंख्याका चौदहवां भाग। १८९८ ई०में इस साम्राज्यका भूपरिमाण और भी बढ़ गया था। उसी साल रूस-सम्राट्ने चीनसम्राट्से पेचिली उपसागरस्थ लायरां उपद्वीप, अर्थर बन्दर, तलिएनवन, निकटस्थ समुद्र और उसके उत्तर भागका भूभाग इजारा लिया था। १८९९ ई०में कुल भूभाग ले कर कोयङ्ग तुङ्ग नामक एक स्वतन्त्र प्रदेश संगठित हुआ। उसका परिमाण १२२४ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखके करीब थी। १९०१ ई०को चीनमें बक्सर-युद्धके बाद सारा मंचुरिया एक तरहसे रूस-सम्राट्के अधीन हो गया। इसके साथ साथ मंगोलियामें भी रूसप्रभाव विस्तृत हुआ। रूस-जापानके युद्धमें मंचुरिया रूस-सम्राट्के हाथसे जाता रहा।

थोड़े ही दिनोंके मध्य जनसंख्या तथा नाना विषयोंमें रूस साम्राज्यने उन्नति की है। १८५६-१८५९ ई०में जिस साम्राज्यकी जनसंख्या ७ करोड़ ४० लाख थी। युद्धके पहले उसकी संख्या १८ करोड़ हो गई थी। परन्तु १९२१की मनुष्यशुमारीमें कुल मिला कर १३ करोड़ हुई।

इतिहास।

रूस देशका प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। जो कुछ मिलता भी है वह ६वीं सदीसे आरम्भ हुआ है। उसके पहले रूस साम्राज्यकी कैसी अवस्था थी, मालूम नहीं। हिन्दूके प्राचीन पुराणकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि यूरोपीय रूसिया और एशियाटिक रूसियाके मध्य स्थान तथा वर्त्तमान कास्पीयनसागरके दोनों पार्श्वसे ले कर उत्तर समुद्र तक शाकद्वीप विस्तृत था। हिमप्रलयमें शाकद्वीपके उत्तरांशका भूसंस्थान बिलकुल बदल गया। हिमप्रलयके बाद पहले पहल आर्यजातिने शाकद्वीपमें आश्रय लिया था। पीछे वे लोग नाना स्थानोंमें फैल गये। इस कारण कास्पीयनसागरके किनारे बहुत दिनों तक आर्यप्रभाव अक्षुण्ण रहा। ईसाजन्मके पहले ५वीं सदी तक यहांकी आर्यशाखासे उत्पन्न शाकोंके प्रभावसे एक समय सारा एशिया और यूरोप कांप उठा था। आखिर चीन और पारसिकोंके आक्रमणसे शाकगण तितर बितर हो गये। बहुत पहलेसे ही इन शाकोंके साथ भारतका संस्रव था। शाकद्वीप और भोजक ब्राह्मण देखो। जरथुस्त्र मतावलम्बी पारसिकोंके अत्याचारसे सौर शाकद्वीपोंकी बड़ी दुरवस्था हुई थी। इस समय वे लोग राजहीन, समाजहीन और धर्महीन जाति समझे जाने लगे।

पारसिक और चीन जातिके अभ्युदयमें भी रूसदेशकी गठन वा 'रूस' नामकरण नहीं हुआ। उस समय भी यह देश छोटे छोटे गांवोंमें विभक्त था तथा एक एक आदमी छोटे छोटे सामन्तके अधीन रहता था। पारसिक प्रधानताके समय जिस प्रकार अग्निपूजाका प्रचार हुआ था, चीनो प्रधानताके समय भी उसी प्रकार पहले कनफुची और पीछे बौद्धमतका प्रचार हुआ। किन्तु यहांसे लोग पहले हीसे उचित उपदेश और योग्य आचार्य न मिलनेके कारण कुसंस्कारसे आच्छन्न थे। यहां तक कि ये लोग जो पूर्वतन शाकजातिके वंशधर थे उसे भी बिलकुल भूल गये थे। यूरोपीय रूसके पश्चिम श्लभ (lav) नामक एक विस्तृत आर्यशाखाका वास था। वर्त्तमान रूसगण अपनेको उन्हींके वंशधर बतलाते हैं।

रूस नाम कब और क्यों हुआ, इसका ठीक विवरण नहीं मिलता। कोई कोई कहते हैं, कि रौस, रोसिया और रोसियन (Rous, Rossia, Rossiane) शब्दसे 'रूस' शब्दकी उत्पत्ति है। फिर कोई रूक्षलनी (Rhoxolani) नामक मेद (Medish) जातिकी एक शाखासे रूस नामकी उत्पत्ति बतलाते हैं। आज कलके इतिहासकारोंका कहना है, कि फिनिस भाषामें 'रौच' (Ruotsi) कहनेसे सुइदिसोंका बोध होता है। फिर कोई कोई पाश्चात्य पण्डित अनुमान करते हैं, कि यह शब्द 'सुइदिस रोथमेन' शब्दका (Rothmenn) शब्दका ही अपभ्रंश है। 'रोथमेन' शब्दका अर्थ नाविक वा सामुद्रिक है। वे लोग स्कन्दनाभदेशीय सामन्त थे। उन्होंने हो साम्राज्य की प्रतिष्ठा की, किन्तु उनका पूर्व इतिहास विलुप्त हो गया है। अरब और यहूदियोंके प्राचीन ग्रंथोंसे उसका अस्पष्ट परिचय पाया जाता है।

९वीं सदीमें रूसवासियोंने यूरिक, सिनेउस और त्रुवर नामक तीन भाइयोंको उत्तरसे बुला मंगाया था। ८६२ ई०में वे तीनों भाई नवगोरोदमें आ कर रहने लगे। वे 'वरङ्गी" (Varangians) नामसे प्रसिद्ध थे। गोष्टमिसल नामक एक समाजपतिने ही तीनों भाईको देशशासन करानेके लिये बुलाया था। प्रवाद है, कि रुरिक लुवरात नामक एक सुईदिसराजके पुत्र था। गोष्टमिसलकी कन्या उर्मिलाके साथ उसका विवाह हुआ। पहले रूस और स्कन्दनाभगण पृथक् जातिके समझे जाते थे। राजकुमार रुरिकके यत्नसे दोनों जाति एक हो गई। तीन भाइयोंमेंसे रुरिक लाडोगा, सिनेयुस बिलो ओजेरोते तथा त्रुवर इजवरस्क नगरमें प्रतिष्ठित हुए थे। दो भाईके कोई सन्तान न रहनेके कारण उनकी मृत्युके बाद रुरिक उनके विशाल राज्यके भी अधिकारी हुए। उन्होंने 'वेलिकि-नियाज' अर्थात् महाराजकी उपाधि पाई थी।

रूरिक जब रूसदेश आया, उस समय आस्कोलद और दिर नामक दो वीर भी उनके साथी हुए थे। रूरिकके साथ दोनोंका विरोध हो गया जिससे वे अपनी भाग्य-परीक्षा करनेके लिये कुस्तुनतुनिया आये। राहमें उन्हें खाजरजातिका निवास शस्यपूर्ण किफ् जनपद मिला। किफ नामक स्थानमें ही सेण्ट आनड्रने रूसोंके मध्य ईसाधर्मका प्रचार किया। आस्कलड और दिर दो सौ युद्धजहाज ले कर दो वर्ष बाद बासफोरस उपसागर पहुंचे और उन्होंने वैजन्ती (Byzantine) साम्राज्यकी राजधानी को लूटा। उस समय वैजन्ती राज्यमें ३य माइकल अधिष्ठित थे।

पार्श्ववर्त्ती शलभोंको परास्त कर थोड़े ही दिनोंके अन्दर रूरिकने विस्तीर्ण साम्राज्य स्थापन किया। ८७९ ई०में मरते समय रूरिक ओलेग नामक एक प्रसिद्ध व्यक्तिकी देखरेखमें अपने प्रियपुत्र इगोरको राज्य सौंप गये। ८८२ ई०में ओलेगेने कृविचिराज्यकी राजधानी स्मोलेनस्कको जीता। जयके उत्साहसे उद्दीप्त हो उन्होंने आस्कलद और दिरके अधिकारभुक्त किफ राज्य जीतनेका सङ्कल्प किया। वे बालक इगोर और दलबलको साथ ले शलभ-वणिकके वेशमें किफ नगर आये। असन्दिग्ध आस्कलद और दिर उनके शिविरमें आमन्त्रित हुए और वहीं मार डाले गये। बड़ी आसानीसे किफराज्य इगोरके हाथ लगा। ९०३ ई०में इगोरने एस्कोवासिनी ओलोगो नामक एक सम्भ्रान्त महिलासे व्याह किया। प्रवाद है, कि ओलगाके पितृवंश रूरिकके अभ्युदयके पहले पस्कोफका शासन करते थे।

किफमें शासनशृङ्खला स्थापन करके ओलगाने वैजन्ती जीतनेके लिये विपुल आयोजन किया। जल और स्थल दोनों ओरसे कुस्तुनतुनियाके द्वारदेश पर आ धमके। उस समय दार्शनिक लिओ वैजन्तीके सम्राट् थे। वे ओलेगका मुकाबला न कर सके। वैजन्तीवासी ग्रीकोंने कर दे कर सन्धि करना चाहा। ओलेगका दूत सम्राट्के समीप पहुंचा। वैजन्ती सम्राट्ने बाइबिल छू कर और रूसवासियोंने वरुण (Perum) और बल (Valos) देवके नाम पर शपथ खा कर आपसमें मेल कर लिया। जब तक ओलेग जीवित रहे, तब तक वे ही सर्वमय कर्त्ता थे। जनसाधारण उन्हें डाकडाकिनीसिद्ध समझते थे। सांपके काटनेसे ओलेगकी मृत्यु हुई। अब इगोरने पूर्ण आधिपत्य प्राप्त किया। इस समय रूसके इतिहासमें पेचेनेग (Petcheneg) जातिका हाल मिलता है।

९४१ ई०में इगोरने वैजन्ती जीतनेकी तैयारी की। वे पोन्तस, पफलागोनिया और बिथानिया प्रदेश होते बसफोरस आये। इस समय रूसोंके अत्याचारसे वे सब प्रदेश जनशून्य हो गये थे तथा घर घरमें हाहाकार मच रहा था। जो कुछ हो वैजन्ती जंगीजहाज असीम साहससे देशरक्षा करनेके लिये अग्रसर हुआ था। इस युद्धमें इगोर विशेष क्षतिग्रस्त हो स्वराज लौटे। दूसरे ही वर्ष उन्होंने क्षतिपूरण और नष्टगौरवका उद्धार करनेके लिये बहुतसे सैन्यसामन्त ले कर वैजन्ती पर फिरसे आक्रमण कर दिया। इस बार ग्रीकोंने युद्ध नहीं किया। वे सहजमें कर देनेके लिये राजी हुए। इसी समयसे दोनों जातिमें मेल हो गया।

शलभजातिकी द्रेवलीय (Drevlian) नामक एक शाखा बहुत दिनोंसे इगोरके शासनसे तंग आ गई थी। उन्होंने मले नामक एक राजकुमारको नायक बना कर इगोरके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। दलबलके साथ इगोर उनसे पराजित और निहत हुए।

इगोरके बालकपुत्र स्विआटोस्लाफने पितृराज्य पाया। उनकी माता वीरमहिला ओलगा पुत्रकी अभिभाविकाके रूपमें राजकार्य चलाने लगी। पतिहत्याका बदला लेना ही उसका पहला काम था। जहां जितने द्रेवलीय थे, उनका काम तमाम करनेका हुकुम दिया गया। ऐसी जिघांसा कभी भी किसीने नहीं देखी थी। बड़े बड़े गड्ढेमें सैकड़ों द्रेवलीय जीते जी गाड़ दिये गये। उन लोगोंकी राजधानी इसकोरोष्ठ शहर जला दिया गया। ओलगाने अन्तिम अवस्थामें ईसाधर्म ग्रहण किया। वे ९५५ ई०में दीक्षित हुए थे। सम्राट् कनष्टाइन पर्फिरोजेनिटस उनके धर्मपिता हुए थे। किन्तु उनके पुत्र स्विआटोस्लाफने पितृधर्मका परित्याग नहीं किया था और न उनकी प्रजा ही ईसाधर्मके अनुवर्त्ती हुई थी। वे महातेजस्वी और वीरपुरुष

थे। उस समय पेचेनेग नामक मुगलजातिकी हो एक शाखा डन नदीके किनारे रहती थी। स्वियाटोस्लाफने उन्हें परास्त किया। उन्हींके समय रूसराज्य कई टुकड़ोंमें विभक्त हो गया। उन्होंने यरोपोल्क नामक एक पुत्रको किफ, ओलेग नामक पुत्रको नवजित द्रेवलियोंका राज्य और ब्लादिमोरको नवगोरोद राज्य बांट दिया, पेचेनेगोंके साथ कई युद्धोंमें जयलाभ कर उन्होंने वलगा-नदीतीरवासी बुलगेरिया पर आक्रमण किया। उस युद्धमें जयलाभ करने पर भी जब वे लौट रहे थे, तब निपारनदीके जलप्रपातमें दलबलके साथ निहत हुए। बुलगेरिया-राजकुमारने उस रूसराजके कपाल पर पानपात्र किया था।

रूसराजकुमारोंमें भी अनबनी थी जिससे राज्य चौपट लग गया था। इस समय उन्हें नाना धर्मविषयोंमें संदेह हुआ इस कारण उन्होंने यहूदी, मुसलमान और उस समयके विभिन्न सम्प्रदायके ईसाइयोंके पास दूत भेजा। दूतोंके मतसे विभिन्न सम्प्रदायका धर्ममत सुन कर उन्होंने ग्रीक ईसामतको ही श्रेष्ठ समझ ग्रहण किया। इसके बाद उन्होंने वैजन्ती सम्राट्के अधिकारभुक्त क्रिमियादेशस्थ चारसोनेसस नगरीको जीत कर वहांकी राज्यकन्यासे ब्याह करना चाहा। उन्हें कहा गया कि ईसाई होने पर वे राजकन्या पा सकते हैं। इसलिये वे कुस्तुनतुनिया जा कर ईसाधर्ममें दीक्षित हुए और पीछे उन्होंने वैजन्ती राजकुमारीका पाणिग्रहण किया। इसके बाद वे किफे लौटे और अपने पितृपुरुषोंके उपास्य वज्रधर पेरुणदेवकी प्रतिमाको नदीके जलमें फेंक दिया। पीछे उन्होंने प्रजाको नदीके किनारे उपस्थित हो ईसाधर्ममें दीक्षित होनेका हुकुम दिया। राजाके आदेशसे सभी रूस ईसाधर्ममें दीक्षित हुए। मृत्युके समय रूसराजने अपने पांच पुत्रोंके बीच विस्तृत राज्य बांट दिया। उनमें-से यरोस्लाफको नवगोरोद, इजिआस्लाफको पोलोत्स्क, बोरिसको रोस्तोफ, ग्लेवको मुरोम, और स्वियाटोस्लाफ को द्रेवलीय तथा शेष पुत्रोंको दूसरा दूसरा प्रदेश मिला थोड़े ही दिनोंके बाद उनके भतीजे स्वियाटोपोलकने बोरिस और ग्लेवको मार कर उनकी राजधानी किफ पर अधिकार किया। यरोस्लाफ पोलोंकी सहायतासे स्वियाटोपोलकको भगा कर फिर कुछ दिनके लिये पितृ-सिंहासन पर बैठे। किन्तु कुछ समय बाद ही राज्यसे विताड़ित हो उन्होंने निर्वासनमें जीवन बिताया। यरो-स्लाफ पेचेनेगोंके युद्धमें भी जयी हुए थे। उन्हींके यत्नसे सबसे पहले "रूसकीय प्रवदा" अर्थात् रूसप्रबंध नामक रूसजातिका आदि धर्मशास्त्रनिबंध प्रकाशित हुआ। यरोस्लाफके बाद रूसराज्यमें नाना प्रकारके अत्याचार और अराजकताका सूत्रपात हुआ। रूसराज्य विभिन्न राजाके शासनमें रह कर नाना खण्डोंमें विभक्त हो गया। यरोस्लाफके पुत्र इजियास्लाफने बड़े कष्टसे अंतर्विद्रोहके मध्य २४ वर्ष तक राज्यशासन किया। १०७८ ई०को मृत्युकालमें दो पुत्र रहते हुए भी उन्होंने अपने भाई सेवोलोद्को किफराज्य प्रदान किया। किंतु १०९३ ई०में सेवोलोद्की मृत्यु होने पर इजियास्लाफ-के पुत्र स्विआटोपोल राजा हुए थे। फिर जब उनका भी देहान्त हुआ, तब सेवोलोद्के पुत्र (वैजन्तीसम्राट् कन-स्तान्तिन् मनमेकशका दौहित्र) ब्लादिमीर मनमथने १११३ से ११२५ ई० तक राज्य किया। वे 'पुकेनी' नामक एक उपदेश ग्रंथ लिख गये हैं। उस ग्रंथमें प्राचीन रूस-समाजका सरल आलेख्य देखनेमें आता है। उनकी मृत्यु-के बाद उनके पुत्रोंमें राज्य ले कर बहुत दिनों तक विवाद चलता रहा। आखिर ११६७ ई०में जार्जदोलगोरुकी किफ-राज्य पर अधिकार कर बैठे। थोड़े ही दिनोंमें उन्हें राज्यच्युत करनेके लिये एक षड्यंत्र रचा गया। उन्हें भगा कर उनके दलपतिको राज्यसिंहासन पर बिठाया। ११६९ ई०में उक्त दोलगोरुकीके पुत्र बोगोलियो-उवस्किने उस दलपतिको भगा कर नगर पर अधिकार किया। इस समय किफराजधानीसे सभी पवित्र देवचित्र, अलङ्कार और गिर्जासे घंटे सब ले लिये गये थे। दोल-गोरुकीकी किफ शहरमें राजपाटस्थापन करनेकी बड़ी इच्छा थी, पर पूरी न हुई। सुजदलमें उन्होंने राजधानी बसाई थी। किंतु उनके पुत्र आण्ड्र दूसरी ओर राज्य फैलाना चाहते थे। उन्होंने बड़ नवगोरोद्में अपने भतीजेको प्रतिनिधि नियुक्त किया। ११७० ई०में नवगोरोद शहर अधिकार करते समय इन्हें बड़ी मुशीबत उठानी पड़ी थी। उनके बहुतों सैन्य सामन्त नवगोरोदियोंके हाथ

बन्दी हुए और क्रीतदासरूपमें बेच दिये गये। ११७४ ई०में अपने सभासदोंके हाथसे उनकी मृत्यु हुई। आण्ड एक धर्मवेत्ता और महावीर थे । उनके मारे जानेके बाद घातकोंको उपयुक्त दण्ड न मिलनेसे राज्यके चारों ओर समरानल धधक उठा। नवगोरोद्, पस्कोफ और स्मोलेनस्कवासी एकत्र हो आण्डके भाई आर्जको १२२५ ई०में आक्रमण और युद्धमें परास्त किया। १२२० ई०में निजमी नवगोरोद् नगरी प्रतिष्ठित हुई और उसका शासनभार बोलहिनियाके एक रोमकके हाथ सौंपा गया। किन्तु ब्लादिमीर नामक एक दूसरा व्यक्ति इससे संतुष्ट न हो सिंहासन पर अधिकार कर बैठा। कई एक भीषण युद्धके बाद उस रोकवीरने सिंहासन लाभ किया था । उनके अत्याचार और कठोरतासे सभी प्रजा असन्तुष्ट थी। १२०५ ई०में वे मारे गये।

१२२४ ई०में मुगलोंने रूसराज्य पर आक्रमण किया। इस समय पोलोवतेजोंने उनकी सहायता की थी। किन्तु इस बार मुगलोंको निराश हो लौटना पड़ा। १२३८ ई०में वे फिरसे रूसराज्यमें जा धमके। वलगानदीके किनारे फिनिस-बुलगेरियोंकी राजधानी बुलगरीको ध्वंस कर वे रयजान आये। यह नगर भी लूटा गया और विध्वस्त हुआ। सुजदलराजकी विपुल वाहिनीने आ कर उन्हें रोकाओका नदीके किनारे कोलम्मा नामक स्थानमें वे लोग भी पराजित हुए। पीछे मुगल लोग मोस्को, सुजदल यरोस्लवन तथा और भी कितने शहरोंमें आग लगा कर पैशाचिक काण्ड करने लगे।

सुजदलके महासामन्त यूरीने नवगोरोद्-राज्यकी सीमा रक्षा करनेके लिये सीतनदीके किनारे छावनी डाली थी। वे भी मुगलोंके साथ सम्मुख युद्धमें मारे गये । इस समय गालिसियाके रूसराजकुमार दानियलने आ कर मुगलपति बहुका आनुगत्य स्वीकार किया। दूसरे वर्ष मुगल लोग त्वेरको जीत कर रूसके दक्षिणांशमें लूट पाट मचाने लगे। इसके बाद चेङ्गीस खाँका पौत्र भङ्गू किफ जीतनेके लिये अग्रसर हुआ। किफकी आवालवृद्धवनिता प्राणके भयसे शहर छोड़ भाग चली । समृद्धिशाली प्राचीन नगर मुगलोंसे लूटा गया और हतश्री हुआ। नवगोरोदको छोड़ कर एक एक कर सभी रूसराज्य मुगलोंके हाथ लगा। कुछ दिन बाद मुगल नायक बटु दलबलके साथ पूर्वकी ओर लौटा। वलगानदीके किनारे 'सराई' नामसे उसकी राजधानी बसाई गई। पेचेनेग, पोलोवजेस आदि वर्वरगण भी यहां आ कर मिले । इसके बाद रूस बहुत दिनों तक उन सब वर्वरोंका करद रहा। १२७२ ई०में मुगलोंने इसलाम धर्म ग्रहण किया।

यूरीकी मृत्युके बाद उसके भाई यरोस्लफने सुजदल-राज्यमें प्रवेश कर देखा, कि राज्य छार खार हो गया, पूर्व-समृद्धि जाती रही। उन्होंने पुनःसंस्कार कराया। इस समय मुगल अधिनायकने उसे अपनी राजधानीमें हाजिर होनेके लिये कहला भेजा। यरोस्लफ मानरक्षाके लिये बाध्य हो मुगलसभामें उपस्थित हुए । मुगलनायकने उन्हें उपयुक्त खिलअत और पूर्व उपाधिमञ्जूर कर सम्मानित किया। किन्तु लंबे सफरसे यरोस्लफका स्वास्थ्य खराब हो गया। राहमें उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के आण्ड्रु ने १२४६से १२५२ ई० तक सुजदलका शासन किया। उनके दूसरे लड़के अलेकसन्दर बड़े नवगोरोदमें राज्य करते थे। उन्होंने १२४० ई०में सुइदिसोंको परास्त कर रूससमाजका मुख उज्ज्वल किया था । यहां तक कि रूसोंके उस दुर्दिनमें अलेकसन्दर नेवस्किओ दमित्रि दोनस्कोई रूसोंके मध्य महापुरुष समझे गये थे। आज भी रूसियामें अलेकसन्दर नेवस्कि ऋषि (Saint)-के समान पूजित होते हैं। नवगोरोदके लिये उनके जीवन उत्सर्ग करने पर भी सामाजिकोंके साथ विरोध होनेसे वे पेरिआस्लावल जलिसस्किमें चले आये।

१२०१ ई०में जर्मनीके असिधारी वीरगण (German Sword-bearing knight) लिवोनियामें आधिपत्य फैला कर रूस पर दाँत गड़ाये थे। इस समय नगरवासीके बुलानेसे उनके त्राणकर्त्ताके रूपमें अलेकसन्दर उपस्थित हुए। उन्होंने १२४२ ई०में पिपासहृदके किनारे शत्रुओंको परास्त कर चिरस्थायी कीर्त्ति स्थापन की। यह युद्ध तुषारयुद्ध (Battle of the ice) नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध है। अलेकसन्दरके इस प्रकार जयदृप्त हो राजधानी लौटने पर भी वे मुगलोंका प्रभाव खर्व न कर सके, वरं उन्हें मुगलराजधानी सराईनगरमें आ कर मुगलनायककी वश्यता स्वीकार करनी पड़ी थी। नव-

गोरोदवासी बहुत दिन तक स्वाधीनताकी रक्षा करते हुए भी १२६० ई०में मुगलाधिप खानकी अधीनता स्वीकार कर देनेको सहमत हुए थे। सराईसे लौटते समय अलेकसन्दरकी राहमें मृत्यु हुई। पश्चिम रूस कई टुकड़ोंमें विभक्त था। अभी लिथुयानीय राजकुमारोंके छत्राधीन हुआ। बिलनामें उनकी राजधानी बसाई गई तथा श्वेतरूसभाषा सभी जगह फैल गई। कुछ दिन बाद पलिष-राजकुमारीके साथ लिथुयानीय राजकुमार जगीलत्योका विवाह हुआ। इससे विस्तीर्ण भूभाग पोलएडके अन्तर्गत हो गया।

पूर्वरूसियामें अलेकसन्दरके पुत्र दानियलने १३०३ ई० तक राज्य किया था। देवदूत सेण्ट माइकलके गिरजामें उन्हें दफनाया गया था। पीटर दी ग्रेटके समय तक उसी स्थानमें रूसराजगण दफनाये गये थे।

दानियलके बाद उनके दो लड़के यूरी और इवान क्रमशः पितृसिंहासन पर बैठे। यूरोने दलिलोविच मोस्को राज्य जीता। १३२६ ई०में उनकी मृत्युके बाद इवान कालिताके राजा हुए। उनके यत्नसे मोस्को राजधानी बहुत समृद्धशाली हो गई थी। उनके मरने पर उनके लड़के अहङ्कारी सिमियस समस्त रूसोंके अधीश्वर हुए थे। मोस्कोकी प्रधानतारक्षामें उनका हाथ रहने पर भी उनकी मृत्युके बाद सुजदल ही फिर प्रधान हो उठा। उनके छोटे लड़के २य इवानने १३५३ से १३५६ ई० तक राज्यशासन किया। उनके लड़के दोनस्कोई दमित्रीने १३८० ई०में मुगलाधिपति ममईके साथ युद्ध कर कुलिकवोरणक्षेत्रमें विजय पताका फहराई। मुगलोंने उनके हाथसे पराजित हो तोक्तमिसरके सेनापतित्वमें कुछ दिन बाद रूसराज्य पर आक्रमण कर दिया। उन लोगोंने मोस्को नगरीको जला कर छारखार कर डाला। बहुसंख्यक अधिवासी मारे गये। दमित्रीके बाद उनके लड़के वासिलने १३८६से १४२५ ई० तक मोस्को और व्लादिमी राज्यका शासन किया था। पीछे १४६२ ई० तक अन्धवासिलने राज्य किया। उनके पुत्र ३य इवानने प्रबल-प्रतापसे ४३ वर्ष रूससाम्राज्यका शासन किया था। उन्हींके यत्न और वीरत्वसे रूसके सामन्त राज्य विलुप्त हुए तथा वे समस्त रूसके एकछत्र अधिपति समझे जाने लगे। सिंहासन पर बैठते ही उन्होंने देखा कि उनके विस्तृत राज्यके पूरब पराक्रान्त लिथुआनिया राज्य, एक ओर रयजान और त्वेर नामक स्वाधीन राज्य, दक्षिणमें मुगलाधिकार तथा नवोगोरद और पस्कोफमें उस समय भी साधारणतन्त्रका शासन चल रहा है। सबसे पहले रूसपति समृद्धिशाली नवगोरद नगर जीतनेके लिये आगे बढ़े थे। साधारण तन्त्रके मध्य दलबंदी हो जानेसे १४७० ई०में वे नगरको अधिकार कर बैठे। १४७८ ई०में वहां साधारण तन्त्रका चिह्नमात्र भी न रह गया। रूसराज्यके विद्वेषी मोस्कोभूभागमें निर्वासित हुए तथा उनकी धनसम्पत्ति जब्त कर ली गई। १४६५ ई०में रूसपतिने नवगोरोदमें आये हुए जर्मन वणिकोंका पण्यद्रव्य छीन कर निर्बुद्धिताका परिचय दिया। इस कारण प्रायः सभी विदेशी नगर छोड़ कर चले गये। इससे नगरकी शोभासमृद्धि जाती रही। १४८६ ई०में पस्कोफका प्रधान शहर व्यत्का रूसराजके अधिकारभुक्त हुआ। उसके साथ साथ साधारण तन्त्र भी विलुप्त हो गया। १४६४ ई०में रयजानके सामन्तको अपनी बहन सौंप कर उन्होंने बड़े कौशलसे उनका सामन्तराज्य अपने अधीन कर लिया। इसी प्रकार त्वेर नामक सामन्तराज्यको अपने शासनाधीन कर उन्होंने रूसदेशसे सामन्तशासनप्रथाको एक तरहसे विलुप्त कर दिया। किंतु रूसपति इवान बैजन्तीसम्राट्की कन्याका पाणिग्रहण कर छिन्नशीर्ण जयपताका फहराते थे, इस कारण रूसके चिरशत्रु मुगलोंके साथ उनका संघर्ष उपस्थित हुआ। मुगलपतिकी महाशक्ति चूर चूर कर डाली गई। उसीके ध्वंसावशेषके ऊपर काजान तथा सराई वा अस्त्राखान साम्राज्यकी प्रतिष्ठा हुई। १४७८ ई०में मुगलपति अहमद खांने दूतके हाथ अपनी प्रतिकृति भेज दी। रूसपतिने पूर्व प्रथानुसार उस चित्रके निकट अपना मस्तक न झुका कर मुगलदूतके सामने उसे पददलित किया। यह संवाद बहुत जल्द मुगलपतिके कानमें पहुंचा। उसी समय युद्धकी घोषणा कर दी गई। दोनों पक्षकी सेना युद्धक्षेत्रमें उतरी। इवान अपने सामने बड़ी भारी मुगलसेनाको देख घबड़ा गये। सम्मुख युद्धमें प्रवृत्त हो उन्होंने भाग जाना ही

अच्छा समझा। इधर मुगलसेना भी किसी दैवदुर्घटनासे डर कर पीछे हटी। इस प्रकार दोनों पक्ष बिना युद्ध किये अपने अपने घर लौटे।

राजधानी लौट कर इवान पुनः पर राष्ट्र जीतनेकी तैयारी करने लगे। १४७२ ई०में उन्होंने प्रेर्मियाको फतह किया, १४८९ ई०में व्यत्का और उसके दश वर्ष बाद उत्तरमें पेचोरा तक अपना अधिकार फैलाया। इसके बाद पोलण्डराज अलेकसन्दरके साथ उनका युद्ध हुआ। इस युद्धमें जयलाभ कर इवानने बेसना नदी तक विभिन्न भूभाग दखल कर लिया। पीछे दोनों राजामें सन्धि हुई। इवानने पोलण्डपतिके साथ अपनी कन्या हेलेनको व्याहा। शर्त यह रही, कि रूसराज-कन्याके धर्मकर्ममें पोलण्डपति किसी तरह हस्तक्षेप न कर सकेंगे। आखिर इसी सूत्रसे रूसपतिके साथ पोलण्डराजका युद्ध हुआ। कामके समय पोलण्डके सामन्तोंने पोलण्डपतिकी सहायता न की। बेद्रोसा-युद्धमें पोलण्डराज अच्छी तरह परास्त हुए। जो हो, १५०१ ई०में इसस्कके समीप सिरजा रणक्षेत्रमें ट्यूटनिक महासामन्त हर्मनसे परास्त हो रूसगण भाग गये थे।

पहले कहा जा चुका है, कि (१४७२ ई०में) बैजन्तो-राजकन्या सोफियाके साथ इवानका विवाह हुआ। सोफियाके पिता टामस कनस्तास्तिन पालिओलोगरुके भाई थे। कुस्तुनतुनियाके पतनके बाद १४५३ ई०में टामस रोम भाग आये। रूसराजके साथ सम्बन्ध स्थापित हो जानेसे बहुसंख्यक ग्रीक बैजन्तीय आचार व्यवहार ले रूसराज्यमें उपस्थित हुए थे। वे अपने साथ बहुतसे ईसा धर्मग्रन्थ रूस राजधानी लाये थे। साथ साथ इटलीके कितने स्थपति भी आये थे। उनमेंसे बोलनके आरिष्टटल फिओरावेन्ती नाम: तमाम प्रसिद्ध है। मास्को नगरके अनेक प्राचीर और महल उन्हींके बनाये हुए हैं।

इवानने केवल वैदेशिकोंको आदर कर बसाया था सो नहीं, उन्होंने जर्मन, भिनिशीय, पोप आदि यूरोपीय राजशक्तिके साथ भी सम्बन्ध स्थापित किया था। १४९७ ई०में उन्होंने सुदेबणिक अर्थात् आईन-पुस्तकका प्रचार कर रूसराज्यमें शासन-शृङ्खला स्थापन की थी। उनके जीते जी उनके बड़े लड़केका देहान्त हुआ। वे मृत्युकालमें अपने ज्येष्ठ पौत्रको राज्यभार न दे कर द्वितीय पुत्र वासिलको उत्तराधिकारी बना गये। वासिल इवानोविचने १५०५ से १५३३ ई०तक पितृप्रदर्शित पथानुसरण कर प्रबल प्रतापसे राज्य किया था। १५१० ई०में उन्होंने पस्कोफकी स्वाधीनता विलुप्त कर दी थी। साथ साथ सलभ जातिका साधारणतन्त्र सदाके लिये विलुप्त हुआ। इसके बाद रयजान और नवगोरोद्सेभेरस्कि उनके शासनाधीन हुआ। इसके कुछ दिन बाद ही उन्होंने सिजिसमन्दको परास्त कर स्मोलेनस्क पर फिरसे अधिकार किया। किन्तु उनके दुर्भाग्यवशतः मुगलोंने रूसराज्य पर चढ़ाई कर दी। वे अपनी राजधानीकी रक्षा करनेके लिये मुगलका आनुगत्य स्वीकार करने और कर देनेको सम्मत हुए। जो कुछ हो मुगलोंके आनेके बाद वे बड़ी निष्ठुरतासे राज्यशासन करने लगे। वैदेशिक राजाओंके साथ उन्होंने सन्धि कर ली। जर्मन-राजदूत हरबयष्टाइन इस समयकी रूस-राजसभाकी समृद्धि उज्ज्वल भाषामें वर्णन कर गये हैं। इसके बाद रूस-सिंहासन पर प्रबल प्रतापी इवान अभिषिक्त हुए। उस समयका रूस इतिहास नरशोणितमें लिखा है। ३य इवान वासिल और ४र्थ इवानने यथाक्रमसे १५३३ से १५८४ ई० तक शासन किया था। वासिल मृत्युकालमें अपनी दूसरी स्त्री हेलेन ग्लिनस्काकी देखरेखमें इवान और रिउरी नामक अपने दो पुत्रको छोड़ गये। वह स्त्री राज्यशासनमें अपनी बुद्धिमत्ताका अच्छा परिचय दे गई है। कोई कोई कहते हैं, कि षड्यन्त्रकारीके विषप्रयोगसे १५३८ ई०में उस बुद्धिमती महिलाकी मृत्यु हुई। दोनों बालक राजकुमार शुइस्क और बेलस्कि आदिके प्रधान राजपुरुषोंके पंजे पड़े। १५४३ ई०में तेरह वर्षकी उमरमें ही इवानने इन षड्यन्त्रियोंका प्रभाव खर्व करनेके लिये कुत्तेसे शुइस्किकी देहको टुकड़े टुकड़े करवा दिया। इस प्रकार स्वाधीनताका परिचय दे कर उन्होंने शत्रुओंको विचलित किया था। १५४७ ई०में जारकी उपाधि पा कर उन्होंने राजमुकुट शिर पर धारण किया। इसके पहले और किसीने भी जारकी उपाधि नहीं पाई थी। लाटिन सीजर (Caesar) अर्थात् केशरी शब्द

अपभ्रंशसे शलभ-भाषामें ज़ार या तसार हुआ है। इसके बाद उन्होंने वीरमहिला अनास्कासिया रोमनोवरका पाणिग्रहण किया। उसी साल मोस्को शहरमें भीषण अग्निकाण्ड हुआ था। जनसाधारणका विश्वास है, कि इवानके मातुलवंश गिलनास्कियों द्वारा ऐसा अनर्थ हुआ था। इसी विश्वास पर उन्होंने गिलनास्कि-परिवारके एक प्रधान व्यक्तिको मार डाला था। इसके बाद रूसपति इवानने सिलभेष्टा और आलेस्किस आदासेफ नामक दो पुरोहितोंके परामर्श तथा अपनी मनोरमा पत्नीके मन्त्रणा-गुणसे राज्यकी सुखसमृद्धिकी ओर ध्यान दिया। इस समय उनके यत्नसे अपने पितामह द्वारा प्रचारित सुदेवणिक नामक आईन पुस्तकका नूतन संस्करण और स्तोगलाफ अर्थात् शतअध्याय सम्वलित आईन पुस्तक प्रकाशित हुई। १५५२में वे काजान तथा दो वर्ष बाद अस्त्राखानके अधिपति हुए। मुगलराजशक्ति उस समय प्रायः चूर चूर हो गई थी। दक्षिण और पूर्वमें इस प्रकार विजयलाभसे उद्दीप्त हो उन्होंने पश्चिममें अपना अधिकार फैलाना चाहा। सुइडिस और ट्यूटनिक सामन्तोंके साथ उनका युद्ध छिड़ गया। वैदेशिक सूत्रधरको लानेके लिये जर्मनीमें आदमी भेजे गये। किन्तु जर्मनोंके रोकने पर उन्होंने युद्धकी घोषणा कर दी। १५५८ ई०में रूसवाहिनीने लिवोनिया पर आक्रमण किया। बहुतसे नगर जीते गये। जर्मनशासनकर्त्ता पोलण्डराज सिजिसमन्द अगष्टसके साथ मिल गये। जब रूससेनादल विदेशमें इस प्रकार युद्धमें लिप्त थे, उसी समय रूसपति इवान सिलवेष्टर और आदासेफके कामोंसे विरक्त हो उन्हें निर्वासित किया। इस समय कुमार आनद्रु कुरवस्किने पोलोंके साथ युद्धमें परास्त हो राजाके भयसे पोलण्डमें आ कर आश्रय लिया। पोलण्डपतिने इस कारण रूसपतिको फटकार कर एक पत्र लिखा।

१५६४ ई०के दिसम्बर मासमें इवान मोस्को नगरके निकटवर्त्ती अलेकसन्द्रोवस्क ग्राममें कुछ अन्तरङ्ग मित्रके साथ जा रहने लगे। उनके खुशामदी टट्टुओंने सोचा, कि शायद राजा हम लोगोंको छोड़ कहीं चले गये। वे लोग जा कर बहुत अनुनय विनयसे राजाको राजधानी लौटा लाये। रूसपति लौटे सही, परउन्होंने अपरिचनिक नामक कुछ शरीररक्षक नियुक्त किये। उनके द्वारा रूसपति प्रजाके ऊपर अत्यन्त अन्याय व्यवहार और अत्याचार करने लगे। इस समय मोस्कोके आर्चविशफ फिलिपकी हत्या, उसकी भ्रातृवधू अलेकसन्द्राके प्राणदण्ड और नवीगोरदेनागरिकोंके ऊपर नृशंस आचरणसे रूस विचलित हो गया था। इसी समय उन्होंने मोस्को नगरमें मुद्रायंत्र खोला।

इवानके शासनकालमें अंगरेजोंके साथ रूसका संस्रव हुआ। १३५३ ई०में इङ्गलैण्डपति चतुर्थ एडवर्डके शासनकालमें चीन और भारतवर्ष जानेका रास्ता निकालनेके लिये वीलोवीके तत्त्वावधानमें तीन जहाज भेजे गये। वीलोवी और उसके नाविकदलने तुषारके मध्य मानवलीला सम्वरण की। एकमात्र चानसेलर श्वेतसागर हो कर निरापदसे रूसराजसभामें उपस्थित हुए। इवानने उसका बड़ा सत्कार किया और रूसराज्यमें कोठी खोलने तथा वाणिज्य करनेका अधिकार दिया।

इसके बाद इवान ट्युटानिक सामन्तोंके साथ बाल्टिक प्रदेशमें अनवरत युद्ध करने लगे। उनके अत्याचारसे प्रदेश मनुष्यशून्य और नरपिशाचकी रङ्गभूमि हो गया था।

१५७१ ई०में क्रिमियासे मुगलोंने आ कर फिरसे रूसराज्य पर आक्रमण किया तथा मोस्को नगरमें आग लगा कर उसे छारखार कर डाला। १५७२ ई०में पोलण्डपति सिजिसमन्द अगष्टसकी मृत्यु हुई। उसके कोई वंशधर न रहनेके कारण उत्तराधिकार ले कर भारी गोलमाल खड़ा हुआ। इस समय इवान पोलण्डका अधिकारी होनेकी कोशिश करने लगे। आखिर ष्टेफेन बटोरी पोलण्डके राजपद पर निर्वाचित हुए। इवान उनके विरुद्ध खड़ा न हो सके। वे लिवोनियाकी जयाशा छोड़ चले आये। इसके बाद येरमाक नामक एक कसाकदस्युने साइबिरिया पर आक्रमण किया। रूसपति जब उसे दण्ड देने आगे बढ़े तब दस्युपतिने उसके पैरों पर गिर कर अपनी जयलब्ध सम्पत्ति छोड़ दी।

इवानने बहुतसे विवाह किये थे। सातवीं स्त्रीके मरने पर उनके मिलने इङ्गलैण्डकी रानी इलिजाबेथको समासे

पुनः किसी सुन्दरी महिलाके पाणिग्रहणकी इच्छा प्रकट-की। तदनुसार रूसराजदूतके साथ आरल आव हाण्टि-ङ्गनकी कन्या रूसराजधानीमें लाई गई। रूसराज उस कन्याके सौन्दर्यसे विमुग्ध हो गये थे। उसके साथ रूस-राजके विवाहका भी कुल ठीक ठाक हो गया था। किन्तु अंगरेज-कन्याको जब रूसराजके पारिवारिक आचरणका संवाद मिला, तब वह विवाह करनेसे इनकार चली गई। १५६७ ई०में रूसपतिने आण्टनो जेंकिनसनके हाथ रानी इलिजावेथके निकट एक प्रीतिलिपि भेजी। उस लिपिमें लिखा था, कि इङ्गलैण्ड और रूस आपसमें मिल कर शत्रुदमनमें नियुक्त रहेंगे। उक्त प्रतिलिपिसे अंग-रेजोंके पक्षमें ही बहुत कुछ सुविधा हो गई थी। उन्हें रूसराजमें वाणिज्य करनेका अच्छा अवसर मिला था। किन्तु रूसके पक्षमें कोई विशेष सुविधा न हुई। वृद्धाव-स्थामें इवानने एक दिन हठात् क्रुद्ध हो लोहेके डंडेसे बड़े लड़के पर आघात किया। उसी आघातसे उसकी मृत्यु हुई। क्रोध जब शान्त हुआ, तब वे पुत्रशोकसे विह्वल हो गये। कुसंस्कार और षड्यन्त्रकारियोंके भयसे भय-भीत हो १५८४ ई०में वे इस लोकसे चल बसे।

इवानकी मृत्युके बाद उनके लड़के थिओडर २७ वर्षकी अवस्थामें सिंहासन पर बैठे। वे बड़े दुर्बल और कुसं-स्कारापन्न थे। उनका चित्त भी इतना कमजोर था, कि वे गिरजा घरकी घंटाध्वनिकी गणनाको छोड़ और कोई आमोद प्रमोद नहीं कर सकते थे। अतएव राज्यकी शासनक्षमता वोरिस गडुनफ नामक उनके एक उच्चा-भिलाषी सालेको हो गई। वे धर्मका बहाना कर बलवती राज्यशासनस्पृहाको प्रच्छन्न रखते थे। किन्तु शासनदक्षताके गुणसे वे सभीको वशीभूत कर सकते थे। बोरिसके सिंहासन-लाभके पथमें दुर्बलचित्त थिओ-डर और उनका छोटा भाई दमित्रीको छोड़ और कोई कण्टक न था। दमित्री पहले कौशलक्रमसे यारोस्लव प्रदेशके उगलिच नगरमें भेजे गये थे। बोरिसने यह घोषणा कर दी थी, कि दमित्री सिंहासनका बिलकुल अनधिकारी है। क्योंकि वह इवानकी सातवीं स्त्रीका लड़का है। कुछ दिन बाद १५९१ ई०की १५वीं मईको दमित्री उगलिच नगरमें गुप्त घातकके हाथ मारा गया। उसके जाने पर उगलिचमें बड़ी सनसनी फैली। किन्तु वोरिसने निष्ठुर व्यवहारसे सबोंका शासन तथा बहुतों-को निर्वासित किया। १५९१ ई०में क्रिमियर खाँने मोस्को नगर पर आक्रमण किया तथा लूट और नरहत्यासे देश-वासियोंको तंग तंग कर डाला। अकर्मण्य सम्राट् थिओडर केवल घंटाध्वनिकी गणना कर समय बिताते थे। उन्होंने 'रूसकी रक्षाके लिये युद्ध करेंगे।' वोरिस अपना पराक्रम दिखाने लगे। नगरके चारों ओर खाई खुदवा कर शत्रुओंके आक्रमणसे नगर रक्षाकी व्यवस्था की गई। मुगल लोग पराजित हुए और बहुतोंकी खूनखराबी हुई। वोरिसने नगर की रक्षाकी सही, पर सर्वसाधारणके अनुरागभाजन न हो सके। लोग कहने लगे, कि उन्होंने दमित्रीकी गुप्तहत्यारूप दुरपनेय कलङ्ककालिमाको ढकनेके लिये मुगलोंको बुलाया था तथा उन्हें भगा कर फिरसे वे यशोलाभकी चेष्टा करते थे। वोरिसकी बहन थिओ-डरकी पत्नी रानी आइरिनने इस समय एक कन्या प्रसव-की। कुछ दिन बाद ही उस कन्याकी मृत्यु हुई। कहते हैं, कि वोरिसने अपनी भाँजीको विष खिला कर मार-डाला था। रानी इलिजावेथने उक्त कुमारीकी चिकित्साके लिये इङ्गलैण्डसे एक विज्ञ चिकित्सकको भेज दिया था।

वोरिस धीरे धीरे राज्यशासनकी जड़ मजबूत करने लगे। स्मोलेनस्क नगर सुरक्षित हुआ, आर्केञ्जल बनाया गया तथा मुगलोंका आक्रमण रोकनेके लिये राज्यसीमा सुदृढ़रूपसे रक्षित हुई। सुइडिसगण नार्भासे भगाये गये तथा यूरोपीय शक्तिपुञ्जके साथ राजनीतिकी आलो-चना चलने लगी।

इस समय अकर्मण्य सम्राट् थिओडरकी मृत्यु हुई। उनकी मृत्युसे स्कन्दनाभीय रूरिकवंशका विलोप

१५९८ ई०में सर्वसाधारणके निर्वाचनसे गडुनफ वोरिस सिंहासन पर बैठे। वे अच्छी तरह जानते थे, कि उनके सिवा और कोई भी राज्य पानेके लायक नहीं है। इस कारण पहले उन्होंने सिंहासनग्रहणमें अनिच्छा दिखला कर एक मठमें वैराग्यका अवलम्बन किया। इस प्रकार ६ सप्ताह बीत गये। पीछे सर्व-साधारणकी प्रार्थनासे वोरिसने शासनभार ग्रहण किया।

सिंहासन पर बैठनेके बाद ही बोरिसकी शासनदक्षता-का तजरबा सभी जगह होने लगा। पहले ही उन्होंने अभिजातोंकी क्षमता खर्व कर डाली। यह कार्य ३य इवानके समय आरब्ध हो कर ४र्थ इवानके समय तक चला था। रूसके हकमें यह बहुत अच्छा था। किन्तु उच्चाभिलाषी बोरिस हमेशा यूरिकवंशके ऊपर निष्ठुर व्यवहार करते थे। १६०१ ई०में रूसमें भारी अकाल पड़ा। किन्तु इस समय बोरिसने अकाल रोकनेका कोई प्रबंध न किया। इस समय लोगोंने अफवाह उड़ाई, कि इवानकी सातवीं स्त्रीके गर्भजात पुत्र दमित्री जीवित है—उनकी मृत्यु नहीं हुई है।

१६०३ ई०में लिथुयानियाके अन्तर्गत ब्रेजिलके राजकुमार आदम विश्निओकीने अत्यन्त क्रुद्ध हो एक नौकरको प्रहार किया और अपमानजनक गाली दी थी। नौकरने उसी समय अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे कहा, "महाशय! यदि आप मेरा यथार्थ परिचय जानते होते, तो आज मेरे प्रति ऐसा व्यवहार न कर सकते थे।" राजकुमारने विस्मित हो पूछा, "तुम कौन हो?" नौकरने उत्तर दिया, "मैं इवानके पुत्र दमित्री हूं।" इसके बाद उन्होंने गुप्त घातकके हाथसे किस प्रकार परित्राण पाया था, कुल आश्चर्य कहानी कह सुनाई। इसके बाद उन्होंने सम्राट्के नामका मुद्राङ्कित एक सुवर्णमय 'सील' और 'बैप्तिजम' वा दीक्षाका जो सुवर्णमय 'क्रोस' व्यवहृत हुआ था वह भी दिखलाया। यह सब देख कर ब्रेजिलके राजकुमारने कृत्रिम दमित्रीकी गल्पका विश्वास किया। पोलण्डवासी सम्भ्रान्त व्यक्ति झूठे दमित्रीको ले कर दलबद्ध हुए। वह झूठा दमित्री बड़े आनन्दसे अभिजात सम्प्रदायके मध्य रहने लगा।

इस समय बोरिसने ब्रेजिलके राजकुमारसे कहा, "यदि आप जाली दमित्रीको पकड़वा दें, तो आपको भूमिसम्पत्ति और अर्थपुरस्कार दूंगा।" किन्तु ब्रेजिलके राजकुमार इसका कोई उत्तर न दे कर जाली दमित्रीको पोलण्डके अभिजात सम्प्रदायके मध्य छिपा रखनेकी कोशिश करने लगे। सन्दोमिरमें पैलाटाइन मनिसजेक राजोचित सम्मान दिखलाने लगे। इस स्थानके जेसुट सम्प्रदायने उनके साथ ऐसा षड्यन्त्र किया, कि यदि वे रूसके सम्राट् हो कर रोमक गिरजाका प्रवर्त्तित धर्ममत रूसमें प्रचलित करें, तो जेसुट सम्प्रदाय उन्हें सिंहासन पानेमें मदद पहुंचायेंगे। जाली दमित्रीने इसे स्वीकार कर लिया। पीछे उसने मनिसजेककी छोटी लड़की मेरिनासे ब्याह कर नवगोरोद् और पस्कोफ नगर नवपरिणीता पत्नीको प्रदान किया तथा कबूल किया कि सिंहासन पर बैठते ही वे श्वशुरको दश लाख हजार फ्लोरिन पुरस्कार देंगे।

इसके सिवा उन्होंने मनिसजेक और पोलण्डके राजाको स्मोलेनस्क और उसके आसपासके प्रदेश प्रदान किये। इस घटनाके कुछ समय बाद पोलण्डके सिजिकमन्दने वार्षिक ४०००० फ्लोरिन राजस्व देना स्वीकार कर दमित्रीको मोस्को नगरका जार घोषित किया।

इस समय बोरिसने एक घोषणापत्र निकाल कर प्रचार किया कि—"दमित्री नाम जाली है। उस दुष्टका असल नाम है ग्रिगोरा ओत्रेपिफ। वह विधर्मी 'महन्त' (Monk) है—रूसका ग्रीकमतानुवर्त्ती साधारण धर्ममतका परित्याग कर लाटिन वा रोमकमत स्थापन करनेकी चेष्टा करता है।"

१६०४ ई०की ३१वीं अक्तूबरको दमित्रीने दलबलके साथ राज्यमें प्रवेश किया। बहुतेरे उनके साथ मिल गये। वे जिस जिस प्रधान शहरमें पहुंचे, वहांके राजपुरुषोंने उनका सम्मान किया। २३वीं नवम्बरको वे नवगोरोद् सेवेरस्की पहुंचे। बासमनोफ नामक एक वीर योद्धा वहांके दुर्गकी रक्षा करता था। उसने दुर्गकी दीवार पर खड़ा हो कर जलदगम्भीर स्वरसे सबोंसे कहा, "हम लोगोंके महाराज जार मोस्को शहरमें रहते हैं। तुम लोग जिस दमित्रीके साथ आये हो वह दुर्वृत्त दस्यु है। इसके साथ तुम लोगोंको उपयुक्त दण्ड भुगतना होगा।" उस दुर्गाध्यक्षके साहससे आक्रमणकारी कुछ भी न कर सके। तीन मास अवरोधके बाद व्यर्थ मनोरथ हो वे लोग लौट आये। राहमें उन्होंने बोरिस प्रेरित धन-रत्न लूट लिया। उसी लूटके मालसे बलीयान् हो दमित्री पुतिबल, सिवस्क और बेरोनेज नामक तीनों दुर्ग पर अधिकार कर बैठे। बोरिस उस समय पीड़ित थे। फिर भी उन्होंने पचास हजार सेनाको संग्रह कर उसके विरुद्ध

भेजा। दोनोंमें घमसान लड़ाई छिड़ी। जार सेनाकी हो पराजयकी सम्भावना थी। केवल बासमानोफकी वीरता और रणकुशलतासे इस बार रूसपतिकी जीत हुई। इस कारण रूसराजने उन्हें राजधानी ला कर उच्च सम्मानसे भूषित किया।

१६०५ ई०की २री जनवरीको दोबरी नीची रणक्षेत्रमें फिरसे युद्धमें दमित्री पराजित हुए। उनकी कुछ सेना तो बन्दी हुई और कुछ राजसेनाके हाथसे मारी गई। केवल कसाक पदातिकोंके कौशलसे दमित्रीने पोलण्ड भाग कर आत्मरक्षा की थी। वहां जा कर भी वे निश्चिन्त न थे। नाना कौशल और नाना प्रलोभन दिखा कर उन्होंने बोरिसके कुछ प्रधान सेनानायकको अपनी मुट्ठीमें कर लिया। विषप्रयोग द्वारा रूसपतिकी चेष्टा की गई, किन्तु षड़यन्त्रकारियोंका कौशल व्यर्थ गया। इसके बाद दमित्रीने बोरिसको कहला भेजा, 'तुम मेरे राज्य पर जबरदस्ती अधिकार कर बैठे हो, यदि अपनी भलाई चाहते हो, तो सिंहासन छोड़ दो।' इस समय बोरिसका समय भी शेष हो चला था। १६०५ ई०की १३वीं अप्रिलको मन्त्रिसभाके रूसपति अन्तिम बार सिंहासन पर बैठे। इस दिन उन्होंने बहुतसे सम्भ्रान्त वैदेशिकोंका सादर स्वागत किया तथा उन्हें यथेष्ट भोजन कराया था। किन्तु अकस्मात् उनके नाकोंसे खून गिरने लगा। थोड़े ही समयमें वे इस लोकसे चल बसे। बहुतोंका विश्वास है, कि शत्रुके कौशलसे रूसपति कालकवलमें पतित हुए थे।

बोरिस असाधारण कार्यकारिताके लिये विख्यात थे। पितर (Peter) ने रूसमें जो संस्कार चलाया था, बोरिस ही उसकी नींव डाल गये थे। उन्होंने स्वदेशीय अनेक युवकोंको इङ्गलैण्डमें शिल्पविज्ञान शिक्षाके लिये भेजा था। वे रूसकी भूमि पर प्रजास्वत्व संस्थापन कर श्रमजीवियोंको क्रीतदासकी सीमासे बहुत कुछ उन्नतिके पथ पर लाये थे।

बोरिसको मृत्युके बाद मोस्कोनगरके उनके दलस्थ व्यक्तियोंने उनके १६ वर्षके लड़के २य थिओडरको सम्राट् कह कर स्वीकार किया। सुइस्कि और मष्टिस्लाविस्की तरुण जारको मदद पहुंचानेके लिये मोस्को गये। बासमानफ सैन्याध्यक्षता ग्रहण करनेके लिये मोस्को भेजा गया, किन्तु थिओडरके पक्षमें सिंहासनलाभकी आशा थोड़ी जान कर उन्होंने ७वीं मईमें दमित्रीको सम्राट् बतला कर घोषित कर दिया। दमित्रीके कहनेसे उसने राजधानीकी ओर कदम बढ़ाया। इधर थिओडरके लोग सैन्य ले कर क्रेमालन दुर्गकी रक्षा करने लगे तथा उन्होंने उसी समय मोस्कोके निकटवर्त्ती धनशाली वणिकोंसे पूर्ण क्रेमनोसोलो नामक एक नगर पर आक्रमण करनेका सङ्कल्प किया। यह कार्य सहजमें किया गया। नगरवासी वणिकोंने मोस्को नगर जा कर सबोंको बुलाया और कहा, कि हम लोग दमित्रीको ही सम्राट् मानें।

थिओडर और उनकी माता मार डाली गईं। उनका मृतशरीर नगर-प्राचीरसे बाहर ला कर दफनाया गया। बोरिसकी लाश भी वहीं पर लाई गई। पेत्रियस नामक एक सुइडिस दूतने इन सब घटनाओंका सुन्दर विवरण लिपिबद्ध किया है। वे कहते हैं, इस प्रकार अफवाह फैली, कि थिओडर और उसकी माताने आत्महत्या की थी। किंतु फांसीका चिह्न साफ साफ दिखाई देता था। किसी किसी लेखक तथा रूसके प्राचीन ऐतिहासिक कुवासफका कहना है, कि बोरिसकी लावण्यवती कन्या जेनिया ईसामठमें संन्यासिनी होनेके लिये बाध्य हुई थी। स्वेडिस दूत पेत्रियसने कहा है, कि वह बलपूर्वक विजेताकी अङ्कलक्ष्मी हुई थी। जाली दमित्रीने जब देखा, कि सभी विघ्न बाधा दूर हो गईं, तब १६०५ ई०की २०वीं जूनको राजधानीकी यात्रा कर दी। उनकी यात्रा जैसी आड़म्बरपूर्णसमारोहसे हुई थी वह वर्णनातीत है। दमित्रीने पहले विज्ञताके साथ प्रजाओंके प्रति सद्व्यवहार किया था तथा उनके पिता इवानके पूर्वकृत ऋणादि भी परिशोध करनेकी प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने आनन्दपूर्वक अपनी माताको ग्रहण किया। माताने भी उन्हें यथार्थ दमित्री कह कर स्वीकार किया। किन्तु पीछे वे इन सबने इनकार चले गये थे। मालूम होता है, कि उन्होंने मठमध्यवर्त्ती संन्यासिदलसे उद्धार पानेके आनन्दसे पहले स्वीकार किया था।

दमित्री अपने प्रच्छन्न रोमकधर्ममतके प्रति अनुराग दिखलाते थे, इस कारण प्रजा उनसे असंतुष्ट रहा करती थी। दूसरे वर्ष मनिसजेकको कन्या मेरिना (दमित्रीकी पूर्वपरिणीता) मोस्को नगर पहुंची। १८वीं मईको उनकी उद्वाहक्रिया सम्पन्न हुई। प्रचुर फलाहारका आयोजन हुआ।

किन्तु २६वीं मईको एक विद्रोह खड़ा हुआ। वासिलाई सुइस्कि—दमित्रीने जिसे प्राणदण्डसे बचाया था—इस विद्रोहके अधिनायक थे।

एक दिन रातको सैन्यका कोलाहल सुन कर जारकी नींद टूटी और उन्होंने उठ कर देखा, कि राजप्रासाद को विद्रोहीसेनाने घेर लिया है। यह देख कर वे ३० फुट ऊंचे स्थानसे जमीन पर कूद पड़े जिससे उनके दोनों पांव टूट गये। वासमानफ उनकी रक्षा करने आया और वह भी मारा गया। जाली दमित्रीकी लाश जलाई गई। बहुतेरे पोलण्डवासी निहत हुए। किन्तु मेरिना और उसकी सपत्नी बन्दिनी हुईं। इस प्रकार रूसके इतिहासमें इस अद्भुत शासनविभ्राट्‌की यवनिका पतित हुई। जातीय ऐतिहासिक इस शासनकालको विपज्जनक काल वर्णन कर गये हैं।

दमित्रीके मारे जानेके बाद बोइआरों (Boiars)-ने वासिलाई इवानोविच सुइस्किको सम्राट् बनाया। किन्तु अर्थ और बलके अभावसे बड़े कष्ट पाने लगा। आखिर एक घोषणापत्र इस प्रकार प्रचारित हुआ, कि दमित्री जीवित हैं। इन सब जनरवका मूलोच्छेद करनेके लिये उनका मत परिवर्त्तन कर उगलिच नगरमें हतभाग्य राजपुत्रकी लाशके लिये आदमी भेजा गया। इसके बाद दूसरे दो व्यक्ति जो अपनेको दमित्री बतलाते थे, प्राणदण्डसे दण्डित हुए थे। रूस के इस दुर्दिनमें १६०६ ई०को पोलण्डवासियोंने रूस पर आक्रमण कर स्मोलेनेस्क नगरको घेर लिया।

सुइस्कि क्लुशिनो नामक स्थानमें परास्त और बन्दी हुए। विद्रोही सेनाने उन्हें मठमें संन्यासी होनेसे बाध्य किया। आखिर वे सिजिसमन्दके हाथ सौंप दिये गये तथा वहीं आजीवन कारारुद्ध रह कर पञ्चत्व को प्राप्त हुए। रूसका राजमुकुट सिजिसमन्दके पुत्र लेडिस्लसको पहनाया गया। इन्होंने दो वर्ष रूसका शासन कर मोस्को नगरमें अपने नाम पर सिक्का चलाया। साम्राज्यकी दुरवस्थासे सभीको भविष्य अन्धकार दिखाई देने लगा। आखिर जितनी नवगोरोद्वासी मिनिम नामक एक कसाईने रूसका उद्धार किया। यह व्यक्ति स्वदेशवात्सल्यके साधुमन्त्रसे देशवासियोंको उत्तेजित कर राजकुमार पाभरस्किके साथ मिल गया और राजकुमारने सैन्याध्यक्ष पद ग्रहण की। मिनिमके हाथ राज्यशासनका भार सौंपा गया। पराक्रमशाली राजकुमारकी वीरता देख पोलण्डवासी रूसका परित्याग कर स्वदेश लौट जानेको बाध्य हुए।

१६१२ ई०में बैआरोंने एक दूसरा नया सम्राट् चुननेकी चेष्टा की। देशकी दुर्दशा दिनों दिन बढ़ती जाती थी। अग्निदाहसे मोस्को नगर खाक हो गया। केवल क्रेमलिन और दो एक पत्थरके मकान बच गये। पोलोंने खजानेको लूटा।

इस समय अलिरियस नामक १७वीं सदीके एक पर्यटकने रूसका हाल लिखा था। उन्होंने कहा है, कि अन्यान्य बहुमूल्य द्रव्योंके साथ साथ युनिकर्ण नामक एक बहुमूल्य हरिणका सींग जो मणिमुक्तासे जड़ा था, पोलगण चुरा ले गये थे। इसके लिये मोस्कोवासी सदा विलाप करते रहे थे। मष्टिस्लाविस्कि और पभारस्कि दोनोंने रूसका शासन करना छोड़ दिया। आखिर माइकल रोमानफ नामक एक १६ वर्षका युवक सिंहासनप्रार्थी हुआ। उसके पिता फिलारेट अत्यन्त सद्‌गुणशाली धार्मिक व्यक्ति थे। रोमानफ मातृपक्षमें यूरकवंशके साथ सम्बद्ध था। आनष्टिसिया रोमानवा भीमकर्मा इवान (The Terrible)की पहली स्त्री थी।

युवक रोमानफने सिंहासन पर बैठनेसे पहले जन साधारणकी तुच्छ मांग पूरी करनेकी प्रतिज्ञा की थी। देशकी अवस्था इस समय बड़ी ही सङ्कटापन्न हो रही थी। सुइडिस और पोलोंने राज्यका अधिकांश अधिकार कर लिया था। कसाकगण ग्रामादिको लूट कर अधिवासियोंको तंग कर रहे थे। उधर सिजिसमन्दके पुत्र लेडिस्लसने जारकी उपाधि भी नहीं छोड़ी थी।

१६१७ ई०में वे एक दल सेना ले कर मोस्को नगरके द्वार पर आ कर डट गये। किन्तु पराजित हो १६१८ ई०की १ली दिसम्बरको सिंहासनका दावा छोड़ दिया और १४ वर्षके लिये संधि कर ली।

१६१७ ई०को लाडोगाह्रदके निकटवर्त्ती ष्टलरोडो नामक स्थानमें एक दूसरी संधि हुई थी। इससे रूस-गण राज्यका कुछ अंश सुइडिसोंको देनेके लिये बाध्य हुए। रोमानफके पिता फिलारेट पहलेसे ही वार्स नगरमें कैद थे। अभी वे मुक्ति पा कर घर लौटे। वे १६१६ ई०में मोस्को आ कर 'पेटरियार्क' वा प्रधान धर्माध्यक्ष नियुक्त हुए। पितापुत्र आपसमें बलपुष्टि करने लगे। समस्त कागजपत्र युक्तनामसे प्रचारित होने लगा। धर्माध्यक्ष वा पेटरियार्कके स्वतन्त्र धर्माधिकरण थे और वे सर्वदा सम्राट्के दाहिनी ओर बैठा करते थे। 'पीटर दी ग्रेट' वा महानुभव पीटरके समय १७२१ ई०में यह पेटरियार्क पद तोड़ दिया गया। वे इङ्गलैण्डकी तरह अपनेको धर्मक्रिया और राज्यशासनका प्रधान नायक कहने लगे। माइकलका शासनकाल उतना घटनासंकुल नहीं था। फिर भी देशकी उन्नति और सैन्यके संस्कारमें उनका पूरा ध्यान था। विदेशवासी रूसमें आने जाने लगे। इस प्रकार रूसमें पाश्चात्य सभ्यताका द्वार खुल गया। सुइडेनके गाष्टाभस आडलफसने आपसमें मदद पहुंचाने के लिये जारके एक साथ एक नई सन्धि कर ली। तद्नुसार रूस राजसभामें एक सुइडिस दूतका आविर्भाव हुआ। कमान आदि बनानेके लिये लोहेके कारखानोंमें ओलन्दाज और जर्मनशिल्पी नियुक्त हुए। इङ्गलैण्डके वणिक् दल बांध कर रूस आये और वाणिज्य करने लगे। स्काचसेना सैन्यदलकी पुष्टि करने लगी।

१६४५ ई०में आलेक्सिस सिंहासन पर बैठे। उन्होंने सबसे पहले रूसके व्यवहारशास्त्रका सङ्कलन और संस्कार किया। उक्त आईन ३य और ४र्थ इवानके संगृहीत आईनके आधार पर निर्द्धारित हुआ। अनन्तर सम्राट्के आदेशानुसार शिक्षित धर्माध्यक्षों और विद्वानोंने आईनके परिवर्त्तन और परिवर्द्धनकी ओर ध्यान दिया। राजकुमार ओडोयेविस्की और बल्कोनिस्की इस कार्यके सम्पादक नियुक्त हुए। ढाई मासके कठिन परिश्रमसे उक्त पुस्तक समाप्त हुई। वह पुस्तक आज भी मोस्को नगरमें 'अरुझेनिया पालड्डो' के मध्य रखी हुई है। उष्ट्रा आलिफने बड़े अभिमानसे कहा है, कि इस आईनसे यूरोपमें सबसे पहले प्रत्येक व्यक्तिके स्वत्व और स्वाधीनताका साम्यवाद प्रचारित हुआ। इस उदारनीतिका अवलम्बन करके ही १८वीं सदीमें यूरोपके व्यवहारशास्त्र संस्कृत हुए थे। कहते हैं, कि आलेक्सिसने समस्त आवेदनकारियोंको स्वयं राजाके समीप आनेकी अनुमति दी थी।

आलेक्सिसके प्रिय वासस्थान कोलोमेनस्की नामक ग्राममें जहां वे सोते थे उसके बाहरके झरोखेमें टीनका एक बकस लटका रहता था। नींद टूटने पर सम्राट् जब झरोखेके पास पहुंचे, उसी समय सभी प्रार्थी अपने आवेदनके साथ उपस्थित होते और उनका सम्मानपूर्वक अभिवादन कर बकसमें आवेदनपत्र डाल देते थे। पीछे सम्राट् उसका विचार करते थे। आफ्रेन और कसाकोंका देश जीतना उनके शासनकालके मध्य एक सर्वप्रधान घटना है। एण्ड्रसजोवो नामक स्थानकी सन्धिसे रूसको नीपरनदीके सीमान्तवर्त्ती देश अर्थात् स्मोलेनस्क, चार्णिकफ, किफ आदि स्थान मिले थे। १५६९ ई०में पोलण्डके साथ लुवलिनकी जो सन्धि हुई उसमें रूसके उक्त स्थान पोलोंको मिले। अभी रूसका उस पर कब्जा है। सिक्केका मान घटानेके लिये १६४८ ई०को मोस्को नगरमें एक विद्रोह खड़ा हुआ। फिर ष्टेङ्का रेजीन नामक एक कसाकने दूसरा विद्रोह खड़ा कर दिया। आक्सफोर्ड ग्रन्थालयके आसमोलियनसंग्रहमें इसका सुन्दर विवरण लिखा है। रेजिनने ३ वर्ष तक वल्गानदीके चारों ओरके प्रदेशोंका छारखार कर डाला। आलेक्सिसने इसे पकड़ कर भी छोड़ दिया किन्तु उन्होंने कारामुक्त होते ही फिरसे विद्रोह खड़ा कर दिया। "जनसाधारणके साम्य और स्वाधीनताकी संस्थापना करेंगे" इस प्रकार प्रलोभन दे कर उन्होंने दो लाख व्यक्तियोंको अपने दलमें मिला लिया। अष्ट्राकन सहजमें उनके हाथ लगा तथा वे निजनिनवगोरोदसे ले कर काजान तक अप्रतिहत भावमें शासन करने लगे। उनके अत्याचारसे रूसगण पीड़ित हो उठे। आखिर वे १६७१ ई०में

पकड़े और मारे गये। सम्राट् आलेक्सिस १६७६ ई०को ४८ वर्षकी अवस्थामें इसलोकसे चल बसे। आर्डिन नासचोकिन उनके राज्यके सर्व-प्रधान मन्त्री थे। उनके यत्नसे एण्ड्रसोवकी सन्धि मीमांसित हुई। आलेक्सिस उदार प्रकृतिके और सदाशय सम्राट् थे। उनके शासनकालमें रूस उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। इसी समयसे रूसका कई शताब्दियोंका सञ्चित अन्धकार दूर हुआ और यूरोपीय शक्तियोंमेंसे एक समझा जाने लगा। बोरिस गदुनफकी तरह आलेक्सिस रूसमें सब प्रकारकी उन्नतिका सूत्रपात कर गये हैं।

आलेक्सिसकी मृत्युके बाद उनकी प्रथमा स्त्री मेरिया मिलोस्लाविस्कियाके गर्भजात ज्येष्ठ पुत्र ३य थिओडर सिंहासन पर बैठे। उन्होंने १६७६से ८२ ई० तक राज्य किया। उनका स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं था और उनके शासनकालमें कोई विशेष घटना नहीं घटी। इन्हींके शासनकालमें न 'रोजरियाडनिगि' वा कौलीन्य-संक्रान्त सभी ग्रंथ जला दिये गये। इस पुस्तकसे कुल मर्यादा और वंशगौरव ले कर राजसरकारमें अनेक गोलमाल खड़ा हुआ। कोई स्वभावकुलीन, कोई गौण वा भङ्गकुलीनके अधीन काम नहीं कर सकते थे। इस कारण राजकार्यमें बहुत अनिष्ट होता था। इसे दूर करनेके लिये थियोडरने घोषणा कर दी, कि राजसभामें सबोंके कुलग्रंथका विचार होगा। यह सुन कर सभी कुलज असली और नकली कुलग्रंथ राजसरकारमें समर्पण किये। थिओडरने मंत्रिश्रेष्ठ वासिली गलिटजिन और धर्माध्यक्षोंकी सहायतासे कुलीनमण्डलीके सामने उस पर्वतके समान ऊंची ग्रंथराशिमें आग लगा दी। इस प्रकार कुल ग्रंथ जल कर खाक हो गये।

थिओडरकी मृत्युके बाद राज्यमें अराजकताका सूत्रपात हुआ। आलेक्सिसकी दो पत्नियोंमें बड़ी पत्नी मेरियाके थिओडर और इवान नामक दो पुत्र तथा कई एक कन्याएं तथा छोटी पत्नी नेटालियाके नारिस्किना, पीटर और नेटालिया नामक तीन संतान थे। सपत्नियोंके पृष्ठपोषकोंके हाथसे सारा राज्य तंग तंग आ गया। थियोडरका छोटा भाई इवान बड़ा दुर्बल था, इस कारण सबोंने पीटरको सिंहासन पर बैठाना चाहा। किंतु मेरियाकी कन्या सोफिया बहुत बुद्धिमती, कार्यकुशला और प्रगल्भा थी। उस समय रूसकी राजकुलललनाओंकी दुर्गतिकी सीमा न थी। क्योंकि राजपुत्रको छोड़ प्रजाके पुत्रके साथ उनका विवाह होना निषिद्ध था। इस कारण कितनी राजकुमारी आजीवन कुमारी रह जाती थी। सोफिया आलेक्सिसकी प्रियतमा कन्या थी। राज्यशासन करनेका उसे बड़ा शौक था। इस कारण दो एक सरदारोंकी सहायतासे उसने विद्रोह खड़ा कर दिया तथा विमाताके पक्षके कुछ लोगोंका काम तमाम किया। आखिर उसने विमाताके दो भाइयोंको पकड़ कर काट डाला। पीछे जनसाधारणकी चेष्टासे इवान और पीटर दो वैमात्रेय भाई एकत्र सम्राट् हुए तथा राजकुमारी सोफिया उनकी नावालिगी तक राज-प्रतिनिधि और अभिभाविका हुई। सोफियाने वासिली गलिटजिनको प्रधान सेनाध्यक्ष बनाया। उसने फौरन क्रिमिया मुगलोंके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। १६८६ ई०में पीटरने यूदुकिया लोपुखिना नामक कन्याका पाणिग्रहण किया। किंतु विवाहमें दाम्पत्यसुख जैसा होना चाहिये था वैसा न हुआ। इस स्त्रीसे पीटरके अलेक्सिस नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। पहला पुत्र सिर्फ छः मास जीता रहा। दूसरा भी दुर्भाग्यके लिये आगे चल कर रूसके इतिहासमें प्रसिद्ध हुआ था। सोफिया और गलिटजिनके उभाड़नेसे पुनः विद्रोह खड़ा हुआ। कोई कहते हैं, कि पीटरका प्राण लेना ही इस विद्रोहका उद्देश्य था। अंतमें पीटरके पक्षके लोग प्रबल हो उठे। विद्रोहिगण निष्ठुरभावसे मारे गये और सोफिया सुसवा नामक मठके भीतर सदाके लिये संन्यासिनी हो कर रही। वहां १५ वर्ष जीवित रह कर वह ४६ वर्षकी अवस्थामें परलोकको सिधारी। इस प्रकार १६८६ ई०से पीटर (The great)-का शासनकाल आरम्भ हुआ। उनका छोटा भाई इवान दुर्बलचित्त और रोगी था, इस कारण शासनकार्यमें शामिल न हो सका। इवानने पीछे विवाह किया। आगे चल कर उनके तीन कन्या हुई। उनमेंसे एक कन्याका विषय परवर्ती कालके इतिहासमें स्मर-

णीय है। इवान निभृतमें जीवन यापन करके १६६६ ई०को २० वर्षकी अवस्थामें इस लोकसे चल बसे।

स्थानाभावसे महानुभव पीटरका इतिहास संक्षेपमें लिखा जाता है। उन्होंने १६८७-१७२५ ई० तक अर्थात् ३६ वर्ष राज्य किया। पीटरने पहले ही देखा, कि रूसमें वाणिज्य-व्यवसाय करने लायक सुन्दर बन्दर और जहाज नहीं है। श्वेतसागरका बन्दर बरफसे हमेशा ढका रहता है। इस अभावको दूर करनेके लिये वे दूसरी जगह बन्दर बनानेका आयोजन करने लगे। उन्होंने वेतन दे कर एक वैदेशिक फौज रखी और तुरुष्क पर आक्रमण कर डान नदीके मुहाना आजफसागरमें बन्दर खोलनेका संकल्प किया। किन्तु ओलन्दाज इञ्जिनियर जानसेनकी विश्वासघातकतामें पीटरका प्रथम आक्रमण व्यर्थ गया। अन्तमें १६९६ ई०को उनकी जीत हुई तथा उन्होंने विजयोल्लाससे मोस्को नगरमें प्रवेश किया। दूसरे वर्ष पीटर लेफट तथा सेनापति गलोभिन और बसनिमजिनके साथ विदेशको निकले। उन्होंने कुछ समय हालण्डके डक या पोताश्रय साउममें कार्य सीखा। पीछे वे इङ्गलैण्ड जा कर ३ मास रहे। इङ्गलैण्डसे लौटते समय वे प्रसिद्ध शिल्पी और इञ्जिनियरोंको अपने साथ लाये थे। उन्हीं शिल्पीके द्वारा वे रूसियोंको शिक्षित करने लगे। भिनिस जानेकी उनकी तैयारी हो रही थी, इसी समय उन्हें मालूम हुआ, कि राजधानीमें विद्रोह खड़ा हो गया है। किन्तु उनके आनेसे पहले ही गर्डन तथा अन्यान्य सेनापतियों द्वारा विद्रोह शान्त हो चुका था। पीटरके मोस्को पहुंचने पर वे बड़ी निष्ठुरतासे विद्रोहियोंको यमपुर भेजने लगे। १७०६ ई०में डान नदीके निकटवर्त्ती कसाकोंने तथा १७०९ ई०में मोजप्पा नामक स्थानके कसाकोंने १२वें चार्लसकी शरण ली तथा उनकी सहायतासे वे सबके सब बागी हो गये। पीटर १७०० ई०की नरभाकी लड़ाईमें १२वें चार्लससे अच्छी तरह परास्त हुए। इस कारण पीछे पीटरने युद्धकी बड़ी तय्यारी की। रूससेनापति सियरमेटे फ सुइडिससेनापति सिकलदिनवाचको लिवोनिया तथा एक और युद्धमें हराया। नेवा जीतना ही पीटरका उद्देश्य था। उनका वह उद्देश्य सिद्ध हुआ था। इस युद्धमें सेनाको बड़ी मुसीबत उठानी पड़ी थी।

१२वें चार्लसने अभी पोलण्ड जीतनेका संकल्प छोड़ कर रूस पर हमला बोल दिया। चार्लसने बड़े अभिमानसे कहा था, "रूसके सम्राट् मतौतमें मेरे साथ संधि करेंगे अर्थात् पराजित होंगे।"

पीटरने उत्तरमें कहा "प्रिय भ्राता दिग्विजयी सिकन्दरकी तरह आचरण कर रहे हैं, किन्तु वे देखेंगे, कि मैं दरायुस नहीं हूं।"

लेसना नामक स्थानमें सुइडिस सेनाध्यक्ष लोवेलहतने रूससेनाके साथ भयङ्कर युद्ध किया। उस दिन उनकी विजय तो हुई, पर बहुतसी सेना युद्धक्षेत्रमें खेत रही। अनन्तर १५वीं जूनको पलटेवाकी लड़ाईमें भीषण युद्धका अभिनय हुआ। युद्धके बाद सुइडिसगण बुरी तरह परास्त हुए। चार्लस अपनी रणनिपुणताके अभावसे ही परास्त हुए थे।

इस युद्धजयके साथ साथ कसाकविद्रोहियोंकी स्वाधीनता सदाके लिये विलुप्त हो गई। उनकी साधारण शासनप्रणाली अन्तर्हित हुई। वे लोग अभी मेस्को सम्राट्के अधीन हुए।

१७१२ ई०में पीटरने मार्था स्काभ्रनस्का नामक एक कृषक कन्याका कथराइन नाम रख कर उससे विवाह किया। यह कृषक-कन्या १७०२ ई०में मेरियनवर्गके अवरोधकालमें बन्दिनी हुई थी। इसका पूर्व वृत्तान्त बिलकुल अज्ञात था। कथराइन ग्रीक धर्ममतमें दीक्षित हुई। पीटरने पहले ही अपनी स्त्री युदोकियाको रोमकधर्ममत और रक्षणशीलकी पृष्ठपोषकताके लिये छोड़ दिया था।

अभी पीटरका रूसकी श्रीवृद्धिकी ओर ध्यान दौड़ा। वे अन्यान्य यूरोपीय राज्योंके आदर्श पर रूसमें सभ्यतालोक फैलाने लगे। उन्होंने पेट्रियार्कशिप वा धर्माध्यक्षताका पद उठा दिया तथा वे सम्भ्रान्त और कुलीनवंशीय भद्रपुरुषोंको शासन और सैन्यसंक्रान्तकार्योंमें नियुक्त करने लगे। पीछे उन्होंने व्यवसायजीवी वणिकोंको नाना विभागोंमें विभक्त किया। किन्तु कृषकोंका दासत्वभाव उस समय भी मौजूद था।

पीटरके समयमें ही रूसका कुलक्रमागत प्राच्यभाव दूर हो कर पाश्चात्य सभ्यताका प्रचार हुआ। इतने दिनों

तक रूसकी स्त्रियोंमें परदा-प्रथा जारी था। पीटरके संस्कारसे स्त्रियां जो इतने दिनोंसे अंधकारमें पड़ी रही थीं, आज स्वाधीनताके आलोकमें पक्षीकी तरह आनन्दसे विचरण करने लगी। पुरुष दाढ़ी मूंछ कटवा कर पाश्चात्य भावमें चलने लगे। यूरोपीय प्रथानुसार सैन्य-दलका संस्कार होने लगा। १२वें चार्लस जब तक बेन्दरमें निर्वासित रहे तब तक पीटरने ष्टानिसलस लेसजिनस्किको पोलण्डसे निर्वासित किया तथा २य अगष्टस फिरसे वार्सॅमें चले आये। पीछे पीटरने लिवोनिया और एस्थोनियाको अधिकार किया। पोलण्डके अन्तर्गत कोरलैण्ड नामक स्थानको राज्यभुक्त करनेके लिये उन्होंने बड़े कौशलसे वहांके ड्यूकके साथ अपनी भतीजी अर्थात् इवानकी कन्या अन्नाका विवाह कर दिया था। यही पीछे रूसकी सम्राज्ञी हुई थी।

इसके बाद पीटरने तुरुष्कके विरुद्ध अभियान किया, किन्तु इस अभियानमें अकृतकार्य हो वे आजफ तुरुष्कोंको लौटा देनेसे बाध्य हुए। यह संधि १७११ ई०को प्रुथ नामक स्थानमें हुई थी। कहते हैं, कि कथराइनकी बुद्धिमत्ता और कौशलसे पीटरकी इस यात्रामें जान बची थी। इसके बाद उन्होंने कथराइनको धर्मपत्नी तथा सम्राज्ञीरूपमें ग्रहण किया। १७१३ ई०में पीटरने सुइ-डिसोंको युद्धमें परास्त कर कुछ स्थान जीत लिये। १७१७ ई०में वे फिरसे देशभ्रमणको निकले और आखिर पेरिसनगर पहुंचे। इस बार कथराइन उनके साथ थी। राजा रानीका यह भ्रमणवृत्तान्त आश्चर्यजनक घटनासे पूर्ण था। १७२१ ई०में फिरसे सुइडेनके साथ पीटरकी संधि हुई। इस सन्धिमें उन्हें लिवोनिया, एस्थोनिया, फिनल और इंग्रिया आदि स्थान मिले। पीटरने १७०३ ई०से सेण्टपिटर्सवर्ग नामक राजधानी बनाना शुरू किया।

१७२२ ई०में वे नाव पर चढ़ वल्गा नदीसे दक्षिण-की ओर गये और कई प्रदेश अधिकार कर बैठे। इसके पहले उनके प्रिय पुत्र अलेकसिसकी मृत्यु हो गई थी। १७२५ ई०की २८वीं जनवरीको महानुभव पीटरका देहांत हुआ। आप जैसे अद्भुतकर्मा सर्वगुणसम्पन्न संस्कारक सम्राट् रूसके सिंहासन पर और कोई नहीं बैठे थे।

पीटरकी मृत्युके बाद रूसमें दो दलका आविर्भाव हुआ। एक दल विधवाने रानी कथराइनको सिंहासन देना चाहा। दूसरे दलने अलेक्सिसके पुत्रको सम्राट् बनानेका सङ्कल्प किया। पीटरके प्रियपुत्र मेनसिकफ इस समय अत्यन्त क्षमताशाली हो उठे। वे पहले मोस्को नगरकी गली गलीमें रोटी बेचते थे। जो हो, उनके मन्त्रणाजालसे रूसमें पूर्ववर्त्ती संस्कृत प्रथापद्धति अक्षुण्ण रही। कथराइन राज्यशासनमें क्षमताशालिनी न थीं। अतएव उन्हें दूसरेकी सलाहसे चलना पड़ता था। १७२७ ई०में उनकी मृत्यु हुई। वे अलेक्सिसके पुत्र द्वितीय पीटर तथा उसके अभावमें हल ष्टिन-के ड्यूककी पहली स्त्री अन्नाको और एलिजा-वेथ तथा उनकी कन्याओंको सिंहासनकी उत्तरा-धिकारिणी बना गई। राजप्रतिनिधित्व एक मंत्रणा सभा द्वारा परिचालित होने लगा। इस सभामें सम्भ्रान्त श्रेणीको दो कन्या, हलष्टिनके ड्यूक मेनसिकफ तथा अन्य ८ सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। यथार्थमें मेनसिकफ ही सर्वेसर्वा थे। उन्होंने अपनी कन्याको द्वितीय पीटरके साथ ब्याहनेमें कथराइनसे सम्मति ली थी। किन्तु डल-गरुकिसकी प्रधानतासे उनकी पूर्व क्षमता विलुप्त होने लगी। वे पहले अपनी जन्मभूमि भेजे गये, पीछे साइ-बिरियाके अन्तर्गत बेरेजफ नामक स्थानमें निर्वासित हुए। वहां १७२९ ई०में उनका देहान्त हुआ।

इस समय डलगरुकिसदलकी प्रधानता हुई। सम्राट् इस वंशकी नेटालियाके प्रेममें फंस गये तथा उसे यह कह आश्वासन दिया कि वे उससे अवश्य विवाह करेंगे। नये सम्राट् २य पीटरके कार्यसे स्पष्ट मालूम होने लगा, कि वे शीघ्र ही पीटर दी ग्रेटकी संस्कारावलीका मूलोच्छेद करेंगे। तदनुसार सेण्टपिट-र्सवर्गसे मोस्को नगरमें राजधानी उठा कर लाई गई। किन्तु १७३० ई०के जनवरी मासमें तरुण सम्राट्ने अकस्मात् बसन्तरोगसे प्राणत्याग किया। मृत्युके कुछ पहले वे अचिरमृता अपनी बहन नेटालियाका नाम ले कर कहने लगे, "गाड़ी तैयार करो, मैं बहनके पास जाऊंगा।" इनके शासनकालमें कोई उल्लेखयोग्य घटना न घटी। केवल सक्सेनी प्रदेशके मारिसने कोरलैण्ड

प्रदेश हस्तगत करनेकी इच्छासे हलष्टिनकी विधवा डाचेस अन्नासे विवाह करनेका संकल्प किया था।

२य पीटरकी मृत्युके बाद सिंहासनके लिये कई प्रार्थी खड़े हो गये। किन्तु मन्त्री-सभाने अन्नाको ही सम्राज्ञी चुना। उन्होंने समझा, कि अन्ना सभी विषयोंमें उनकी सलाह ले कर चलेंगी। इस कारण गुप्त मंत्री सभाके सभ्योंने अन्नाको निम्नलिखित मर्म पर स्वाक्षर करा लिया—

१ यह मंत्रणा-सभा उच्च पदस्थ सम्भ्रांत व्यक्ति द्वारा संगठित होगी। (२) बिना इस सभाको अनुमति लिये रानी युद्धघोषणा वा सन्धि नहीं कर सकती अथवा न कोई कर ही निर्द्धारण कर सकती। (३) कुलीन वा सम्भ्रांत सम्प्रदायके किसी व्यक्तिको वे बिना उपयुक्त विचारके हठात् प्राणदण्डसे दण्डित अथवा उनकी सम्पत्ति जब्त नहीं कर सकतीं। (४) वे सभाको सम्पत्तिको छोड़ पतिनिर्वाचन अथवा उत्तराधिकारीका निर्णय नहीं कर सकेंगी। इन सब नियमोंका उल्लंघन करनेसे वे सिंहासन परसे उतार दी जायंगी। इन सब शर्तोंको मंजुर कर अन्ना मोस्को आईं। उन्हें यह जाननेमें देर न लगी, कि उक्त मंत्रणा-सभाके हाथमें कठपुतली रह कर वे जनसाधारणकी अप्रियभाजन हो गई हैं। यथार्थमें वे कई सम्भ्रांत लोगोंके अधीन हो गई थीं। इसके बाद उन्होंने अपने पृष्ठपोषकोंको बुलाया और सबके सामने पूर्वोक्त प्रतिज्ञापत्रको फाड़ डाला। इस प्रकार मंत्रणासभाकी नींव उखाड़ी गई। अन्नाने अभी जर्मन-देशीय एक मंत्रदाताकी सलाहसे परिचालित हो पूर्व शत्रुओंके प्रति बदला लेनेका संकल्प किया। रूसमें फिर दुःखका समय उपस्थित हुआ। जर्मनों द्वारा देश लूटा जाने लगा। बहुतेरे रूस-भद्रपुरुष मारे गये और साइबिरियामें निर्वासित हुए। प्रधान मंत्री भलगस्कीको १७४० ई०में प्राणदण्डकी सजा दी गई। बाइरेनके कोपसे ही उनका अधःपतन हुआ।

इस समय पोलण्डका सिंहासन खाली होनेसे ष्टानिस्लसको वहां प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा हो रही थी। किंतु रूसगण उनके विरुद्ध खड़े हो गये जिससे उनकी चेष्टा फलवती होने न पाई। वे बड़े कष्टसे डानजिकसे भाग चले। यह ले कर तुरुष्कके साथ रूसका एक युद्ध हुआ। यह युद्ध (१७३५-३९ ई०) चार वर्ष तक चलता रहा था। इस युद्धमें अष्ट्रियावासी रूसके विरुद्ध खड़े थे। रूससेनापतिने इस युद्धमें कई नगरोंको जीता। अन्तमें अष्ट्रियोंके साथ तुरुष्कोंकी बेलग्रेड नगरमें संधि स्थापित हुई। उसी संधिके अनुसार १७३९ ई०में इस युद्धका अवसान हुआ। १७४० ई०में रानी अन्नाकी मृत्यु हुई। उन्होंने अपनी बहनके पौत्र अर्थात् मेकलेनवर्गके डाचेस कथराइनके पुत्र इवानको उत्तराधिकारी बनाया। नाबालिगी तक बाइरेनने शासनकार्य चलाया। थोड़े ही दिनोंके मध्य बाइरेनका अधिकार छीन लिया गया और वे साइबिरियामें निर्वासित हुए। किंतु इस पर शांति स्थापित न हुई। जर्मनोंका कर्तृत्व अप्रियकर समझ एक दलने पीटर दी ग्रेटकी कन्या एलिजावेथको सिंहासन पर बिठाना चाहा। एलिजावेथने सेनाको खुश करनेके लिये उन्हें तरह तरहकी सुविधा दी। इन सेनाओंकी सहायतासे एलिजावेथके दलने रात भरमें दूसरे दलके सभी व्यक्तियोंको कैद कर लिया। अन्ना, उनका स्वामी तथा भावी बालक सम्राट् सबके सब कारारुद्ध हुए। एलिजावेथ सिंहासन पर बैठी। ६ठे इवान स्कलुसवर्गके कारागारमें बंदी हुए। अन्ना पतिपुत्रके साथ निर्वासित हुई। वहीं पर १७४६ ई०को उनका देहांत हुआ।

बाइरेनको निर्वासनसे पुनः रूस आनेका हुकुम हुआ। एलिजावेथने पेट्रोभना (१७४१-१७६२ ई०) जर्मन प्रभुत्वका परित्याग कर सभी रूस मंत्रियोंको नियोग किया। सिंहासन पर बैठते ही एलिजावेथने अपने भांजे हलष्टिनके ड्यूकको बुलाया। उन्होंने पीटर थियोडोरोभिच नामसे कोरलैण्डका शासन किया था। वे ग्रीक धर्ममतमें दीक्षित हुए थे। १७७४ ई०में उन्होंने राजकुमारी सोफियासे ब्याह किया। सोफियाने दीक्षाकालमें अपना नाम कथराइन रखा। १७४३ ई०में रूसीने सुइडेनको युद्धमें परास्त किया। इसमें उन्हें फिनलैण्ड देशकी किमुमेन-नदीके तटवर्ती सभी भूभाग हाथ लगे थे। इसके बाद रूसके साथ फ्रेडरिक दी ग्रेटका युद्ध छिड़ा। (१७५६-६२ ई०)। १७५७

ई०में आप्राकसिनने ८५००० रूससेना ले कर रूसके सीमान्तको पार कर प्रूसियाके पूर्वभाग पर अधिकार जमाया तथा ग्रासजागेसडर्फ नामक स्थानमें लेवाल्डको परास्त किया। रूस-सेनापति जयलाभ सुलभ देख अत्याचारादि न कर वहांसे लौटे। किन्तु १७५८ ई०में रूस-सेनापति फामर जर्नडर्फ नामक स्थानमें फ्रेडरिक द्वारा अच्छी तरह परास्त हुए थे। किन्तु दूसरे वर्ष १७५६ ई०को रूस सेनापति सालिटकफने पाल्टजिन नामक स्थानमें प्रूसियोंको हराया। इस युद्धमें उनका ८०६० सेना और १७२ कमान नष्ट हुई थी। फ्रेडरिकने युद्धमें परास्त हो आत्महत्या करनेका संकल्प किया। १७६० ई०में रूस गण बार्लिन नगरमें घुसे तथा बहुसंख्यक नरहत्या और लूटमारका अभिनय करने लगे। फ्रेडरिकने यह देख दुःखके साथ कहा था, "वर्वर रूस हम लोगों पर कैसा भीषण अत्याचार कर रहे हैं। दया तो उन्हें छू तक भी न गई है।" दूसरे वर्ष रूसोंने पमारेनिया पर अधिकार किया। फ्रडरिक विनष्टप्राय हो गये, किन्तु १७६१ ई०में एलिजाबेथकी मृत्यु होनेसे फ्रेडरिकका बोझ कुछ हलका हुआ। एलिजाबेथ कुसंस्काराच्छन्न और आलसी थी। उसका नैतिक चरित्र अच्छा न था। वे प्रिय पात्रों द्वारा हमेशा चालित होती थी। पीटरको मृत्युके बादसे एक भी उपयुक्त सम्राट् रूसके सिंहासन पर न बैठा। किन्तु एलिजाबेथके शासनकालमें रूस धीरे धीरे उन्नति कर रहा था। १७५५ ई०में इवान सुवालफके यत्नसे रूसका प्राचीनतम विश्वविद्यालय मोस्कोमें प्रतिष्ठित हुआ। इस समय भाषा और साहित्यकी अच्छी उन्नति हुई थी।

एलिजाबेथकी मृत्युके बाद उनके भतीजे हलष्टिन-गट्टार्प ३य पीटर उत्तराधिकारी ठहराये गये। जनताको पहले संदेह हुआ था, कि वे कहीं जर्मनोंके प्रति सहानुभूति न दिखलावें। किन्तु उनको कार्यावलीने जनसाधारणको खुश कर दिया था। पीछे जर्मनोंके प्रति वे अनुराग दिखाने लगे। आखिर १७६२ ई०में उन्होंने एक घोषणा-पत्र निकाला कि कुलोनोंको राजकार्यमें प्रवेश करनेसे बाध्य न किये जायंगे तथा अभीसे गुप्त मन्त्रणा-सभा होने न पायेगी। ये प्रचलित धर्ममतका परित्याग कर लूथरके संस्कारमें पक्षपातिता दिखाने लगे। ३य पीटरका आचार-व्यवहार बड़ा ही खराब था। वे सर्वदा शराबके नशेमें चूर रहते थे। और क्या, उन्होंने अनेक प्रतिभाशाली फरासीसियोंको देशसे मार भगाया था। इन्हीं फरासीसियोंसे रूसकी उन्नति होती जा रही थी। २य फ्रेडरिक जो रूससे हार खा कर म्रियमाण हो रहे थे, अभी रूसकी राजनीतिके प्रवर्त्तनसे बड़े आनन्द हुए। पीटर प्रूसीय सम्राट्के एक स्तावक थे। फ्रेडरिक पूर्व-प्रूसिया दे कर भी रूसके साथ सन्धि करनेको प्रस्तुत थे। किन्तु पीटरने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। प्रूसियाने हतराज्यको लौटा कर फ्रेडरिकके साथ सन्धि कर ली। वे अपनी स्त्री कथराइनके साथ आनन्दपूर्वक नहीं रहते थे। अन्तमें उन्होंने कथराइनको छोड़ दिया और संकल्प किया, कि जीवन भर उसे संन्यासिनी कर गिरजामें रखेंगे। किन्तु रानी काथराइनने स्थिर चित्तसे भविष्यकी अपेक्षा की थी। आखिर वह एक षड़यन्त्रमें शामिल हुई और पेटरहफ नामका स्थानका आवास-भवन परित्याग कर २०००० आदमियोंकी अधिनायिका हुई। हतभाग्य राजाने रानीका युद्धोद्योग देख कर बिना सोचे विचारे राज्य और सिंहासन छोड़ दिया। किन्तु वे शीघ्र ही सेण्टपिटर्सवर्गके निकटवर्त्ती स्थानमें गुप्तभावसे मारे गये। राजकुमारी दोमकाफने इस घटनाका हृदयग्राही विवरण लिखा था। उनके मुखसे सुन कर मिसेस डब्ल्यु ब्राडफोर्ड नामका एक अंगरेज महिलाने १८४० ई०में वह कहानी प्रकाशित की है।

पूर्वोक्त प्रकारसे एक जर्मन-महिला बड़े कौशलसे रूसोंके कुसंस्कारके प्रति पक्षपातिता दिखा कर विस्तीर्ण रूस-साम्राज्यकी अद्वितीय अधीश्वरी हुई। दो वर्ष बाद कारारुद्ध ६ठे इवान रक्षिवर्गके द्वारा मारे गये।

इस समय सप्तवर्षव्यापी युद्धका अवसान हुआ तथा यूरोपीय शक्तियां पोलण्डविभागमें बड़ा गोलमाल करने लगीं। १७६७ ई० फरासीसियोंके उस्काइनेसे तुरुष्कोंने रूसके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। पोलण्डके साथ रूसका सम्बन्ध अलग करना ही इस युद्धका उद्देश था।

रूस सेनाध्यक्ष गलिटजिमने प्रधान वज़ीर पर धावा बोल दिया तथा १७६६ ई०में खोटिन नगर पर कब्जा किया। दूसरे वर्ष रूमाण्टजफने क्रिमिया खाँ और तुरु-

उनके सहयोगियोंको परास्त किया। १७७० ई०को कागुल नामक स्थानमें जो युद्ध हुआ उसमें भी उनकी जीत हुई। १७७१ ई०में डालगरुकीने क्रिमिया दखल किया तथा आलेक्सिम अर्लफने जलयुद्धमें एशियामोइनर-के निकट तुरुष्कोंको हराया। इस जलयुद्धमें रूसी सेना-को अंगरेज कर्मचारियोंसे खासी मदद मिली थी।

१७७४ ई०में कुचुक-कैनाऊ नामक स्थानमें सन्धि-पत्र मंजूर किया गया। तुर्कीके सुलतानने क्रिमियाके मुगलोंकी स्वाधीनता स्वीकार की। सुलतानने रूसको क्रिमिया प्रदेश प्रदान किया। क्रिमिया कुछ दिन बाद रूस-साम्राज्यमें मिला लिया गया। इसके सिवा सुल-तानने डाननदीके मुहाने पर आजफ और नीपर नदीके मुहाने पर किमवर्ग नामक बन्दर और पोताश्रय तथा क्रिमियाके अन्तर्गत समस्त सुरक्षित दुर्ग रूसोंको प्रदान किया। १७७१ ई०में मोस्को नगरमें प्लेगका प्रादुर्भाव हुआ जिससे हजारों मनुष्य करालकालके गालमें पतित हुए।

आर्चविशप अम्ब्रोस जनसाधारणके स्वास्थ्यकी उन्नतिके लिये भरी सभामें दो बात कहनेके लिये खड़े हुए। इसी समय उत्तेजित जनताने उनका काम तमाम किया। पुगाचेफ नामक एक कसाकने फौरन एक विद्रोह खड़ा कर दिया तथा अपनेको तृतीय पीटर घोषित किया। बहुतसे लोग उसके दलमें मिल गये। क्रिमियाके मुगल भी इस विद्रोहमें शामिल थे।

२य कथराइनने विद्रोहदमनके लिये जो सब सेना पति भेजे थे, वे सबके सब परास्त हुए। विद्रोहियोंने रक्तपात और लूटमारसे महाविभीषिका आरम्भ कर दी। पुगाचेफने काजान आदि नगर भी अधिकार किये। यद्यपि वह बड़ी बुद्धिमत्तासे कार्य किये होते, तो कथराइनको सिंहासन मिलना दुश्वार होता। किन्तु उसके निष्ठुर आचारणने दलके सहयोगियोंको विरक्त कर दिया। आखिर वह बिबिकफ द्वारा पराजित हुआ और सुवारफ नामक स्थानमें पकड़ा गया। वह लौह-पिञ्जरमें बद्ध हो कर मोस्को लाया और मार डाला गया। इसके विद्रोही भी प्राणदण्डसे दण्डित हुए। इस प्रकार कथराइनके यत्नसे कसाकोंका साधारणतन्त्र लोप हो गया। उनके समय व्यवहारशोका सङ्कलित और विधिवद्ध हुआ। इसे सभी लोग रूसके आईन-संग्रहका छठा समय कहते हैं। किन्तु इस आईन संस्कारसे भी क्रीतदास और कृषकोंका कोई विशेष उपकार नहीं हुआ। १७६७ ई०में एक घोषणापत्रमें प्रचारित हुआ कि वे अपने मालिकके विरुद्ध किसी अन्याय और अविचारकी नालिश नहीं कर सकेंगे। मालिक अपने इच्छानुसार उन्हें साइबिरियामें निर्वा-सित अथवा यथेच्छा व्यवहार कर सकते हैं। बाजारमें गुलामोंका खरीदना बेचना जोरों जारी था।

विचार-कार्यकी सुविधाके लिये प्रत्येक प्रदेशमें नाना उपविभाग वा जिलेकी सृष्टि हुई। कथराइनने पाद-रियोंको निष्कर भूमि दी तथा दासदासियोंका वेतन उनके कार्यानुसार स्थिर कर दिया। १७८३ ई०में क्रिमिया रूसके दखलमें आया। १७८७ ई०में तुरुष्क-के युद्धका फिरसे सूत्रपात हुआ। ओटोमन सुलतानके युद्धोद्योगका यथेष्ठ कारण था। रानी कथराइन जब दक्षिण रूसमें भ्रमणको निकली तथा सम्राट् २य जोसेफसे मिली, उस समय सुलतानको बहुत संदेह हो गया था। स्वीडेनने भी सुयोग पा कर अपना हृतराज्य पुनः पानेकी आशासे उसी साल रूसके विरुद्ध युद्ध की घोषण की। किन्तु ३य गाष्टाभसने युद्ध छेड़नेमें असमर्थ हो कर भेरेला नामक स्थानमें पहलेकी तरह संधि कर ली। तुर्कोंके साथ युद्धमें भी कथराइन-ने जयलाभ किया। सेनापतिने पोटेमकिल और याकफ तथा सुवारफने खोटिन अधिकार किया। १७८६ ई०में सेनापतिने फक्रमानी और रिमनिक नामक स्थानके युद्धमें जयलाभ किया तथा १७६० ई०के एक भीषण युद्ध-में इसमाइलको बन्दी किया। १७६२ ई०को जेसकी सन्धिसे कथराइन और आकफको वाग और निष्टर नदीके मध्यवर्त्ती उपकूल भाग मिला।

कुछ समय बाद कथराइनने फिरसे पोलण्डके व्यापार-में अपना हाथ बढ़ाया। टारजोभिका नामक सह-योगियोंके षड्यन्त्रको व्यर्थ करनेके लिये कथराइनने ८०००० रूस सेना और २०००० कसाक सेना पोलण्ड भेजी। १७६४ ई०में सुवारफने वार्स दुर्गको अधिकार

कर अधिवासियोंको मार डाला। दूसरे वर्ष ष्टानिस्लस-ने अपना राजमुकुट उतार दिया तथा पोलण्डमें तृतीय विभाग उपस्थित हुआ। पोलण्डका स्वाधीनता बिलकुल डूब गया। पोलगण भल्टेयर, डाइडारो आदि फरासी विप्लवकारियोंकी सहानुभूति पा कर भी स्वाधीनताकी रक्षा न कर सके। कथराइन फरासी विप्लवकी घोर विरोधिनी थी। १७९६ ई०की १७वीं नवम्बरको हठात् उनकी मृत्यु हुई। वैदेशिक लेखकोंने उनके चरित्रकी यथेच्छ समालोचना की है। उनका नैतिक चरित्र चाहे जो महानुभव पीटरके बाद उनके समान प्रतिमाशालिनी उपयुक्त सम्राज्ञी रूसके सिंहासन पर और कोई नहीं बैठा। आज भी कथराइनकी स्मृति रूसमें गाई जाती है।

पाल माताके जीते जी प्रायः निर्जनमें वास करते थे, इस कारण माता उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखती थी। कहते हैं, कि कथराइनने एक विल द्वारा पालको उत्तराधिकारी होनेसे वञ्चित किया था। उक्त विल पर हस्ताक्षर भी हो चुका था। किन्तु पालके मित्र कुरफिनने कथराइनकी मृत्यु होते ही बिलको ले कर फाड़ डाला था। पालकी शासन कहानी बहुत संक्षेपमें लिखो जाती है। पालने तुरुष्कके साथ मित्रतास्थापन करके फरासी-विप्लवके विरुद्ध चलनेका संकल्प किया।

मेरोनाके युद्धक्षेत्रमें सुवारफ रूस और अष्ट्रीय-सैन्यके सेनाध्यक्ष हुए। १७९९ ई०में उन्होंने फरासी-सेनानायक मोरोको अड्डा नदीके किनारे हराया और अयोल्लाससे मिलानमें प्रवेश किया। इसके बाद उन्होंने मैकडोनाल्डके साथ ट्रेबियाके युद्धमें तथा उसी साल नोभि नामक स्थानमें जुबार्टके साथ जो युद्ध हुआ उसमें विजयपताका फहराई। पीछे वे फरासियोंको स्वीजरलैण्डसे मार भगानेके अभिप्रायसे आल्पस पर्वत पार कर गये। किन्तु अस्ट्रिया सेनाने उन्हें रोका जिससे उनकी महती क्षति हुई। आखिर वे विफल मनोरथ हो स्वदेश लौटे।

अभी पालकी राजनीति बिलकुल बदल गई इङ्गलैण्ड और अस्ट्रियाकी प्रतारणा समझ कर उन्होंने बोनापार्टकी शरण ली तदनुसार बोनापार्टने भी पालको अपने दलमें मिला लिया तथा समस्त रूस-बन्दियोंको कारामुक्त कर उन्हें नई पोशाक तथा अस्त्रशस्त्रसे सज्जित कर पालके निकट भेजा। इसके बाद भारतवर्ष पर आक्रमण करनेके लिये कोशिश करने लगे। किन्तु १८०१ ई०की २३वीं मार्चको पाल गुप्तभावसे मार डाले गये। प्लेटाजुरफ, बेनिंसेन और पहलेन ये तीनों ही इस शोचनीय घटनाके मूल थे। पालने धीरे धीरे राजकोषको खाली कर दिया था।

पालकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के १म अलेकसन्दर १८०१ ई०में सिंहासन पर बैठे। ये १८२५ ई० तक रूसके सम्राट् थे। सिंहासन पर बैठते ही उन्होंने इङ्गलैण्ड और फ्रान्ससे सन्धि कर ली। किन्तु राजनीतिका शीघ्र ही परिवर्त्तन कर लिया। १८०५ ई०में वे फ्रान्सके विरुद्ध अष्ट्रिया और इङ्गलैण्डसे जा मिले। पहले २री दिसम्बरको अष्टरलिटज नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। इस युद्धमें रूसकी २१००० सेना, १३३ कमान और ३० पताका नष्ट हुई। रूसोंका कहना है, कि अष्ट्रियसहयोगियोंको विश्वासघातकतासे उनका ऐसा अनिष्ट हुआ था। जो कुछ हो, प्रेसवर्गकी सन्धिसे दोनों युद्धका अवसान हुआ। पीछे १८०७ ई०में फ्रान्सके साथ चौथी बार मुठभेड़ हुई। १८०७ ई०में नेपोलियनने रूससेनापति बेनिंसेनको आइलो नामक स्थानमें युद्धमें नियुक्त किया। घमसान लड़ाई छिड़ी, किन्तु किसी पक्षकी जीत हार नहीं हुई। आखिर टिलसिटकी सन्धिसे फ्रिनलैण्ड युद्धका अवसान हुआ। इस सन्धिमें प्रूसियाके सम्राट् फ्रेडरिक ३य विलियम अपना आधा राज्य खो बैठे। पोलैण्डमें उनके अधिकृत जो सब स्थान थे, वे सकसेनी राजाके हाथ लगे। यूरोपीय शक्तियां सोचने लगी, कि नेपोलियन और अलेकसन्दरने यूरोपको आपसमें बांट लेनेका विचार किया है। अलेकसन्दरके शासनकालमें फिनलैण्ड-विजय एक प्रसिद्ध घटना हुई। १८०९ ई०की १७वीं सितम्बरको फ्रेडरिकने स्याम नामक स्थानकी सन्धिमें स्वीडेन पूर्व बोथनियाके साथ फिनलैण्ड रूसको प्रदान किया। किन्तु फिनोंने एक तरहसे स्वायत्तशासन पा लिया। अर्थात् पहले ही

रूस-साम्राज्यभुक्त हो चुका था। यह ले कर पारस्यके साथ रूसका युद्ध छिड़ गया। किन्तु इस युद्धमें रूसको शिरवाण प्रदेश हाथ लगा।

१८०६ ई०में नेपोलियनके विरुद्ध ५म संघर्ष हुआ। सन्धिशर्तके अनुसार अलेकसन्दर नेपोलियनको सहायता करनेके लिये बाध्य थे। अलेकसन्दरने पहले युद्ध रोकनेकी बड़ी कोशिश की थी, किन्तु तुरुस्कके साथ विवाद हो जानेसे मिशलो नामक सेनापतिके अधीन एक दल रूससेनाने तुरुष्क पर आक्रमण कर दिया। १८१२ ई०में बुखारेष्ट नगरकी कांग्रेस द्वारा इस युद्धका अवसान हुआ। रूसने पूर्वाधिकृत मलडेभिया और वालासियाको छोड़ दिया। केवल खोटिन और बेन्दार उनके अधिकारमें रहा। आखिर रूस और फ्रान्समें मनमुटाव हो गया। रूसको फ्रान्ससे मेल करनेमें बड़ी मुसीबत उठानी पड़ी थी, इस कारण उसने फ्रान्सका पक्ष छोड़ दिया। नेपोलियन भी रूस पर चढ़ाई करनेका आयोजन करने लगे। (१८१२ ई०)

१८१२ ई०की ९वीं मईको नेपोलियनने पेरिस नगरीसे ड्रेसडेनकी यात्रा की। वहां उन्होंने ६०००० सेनाका संग्रह किया। उनमेंसे ३५६००० फ्रान्सवासी सेना थी। इनका मुकाबला करनेके लिये रूसगण ३७२००० सेना ले कर तैयार हो गये। नेपोलियन बड़ी तेजीसे नीपर नदी पार कर स्मोलेनस्क पहुंचे। युद्धमें रूससेना पराजित हुई। इसके बाद बोरोदिनो नामक स्थानके भयङ्कर युद्धमें रूससेना फिरसे परास्त हुई। यहांसे नेोलियन मोस्को चल दिये। नगरवासियोंने पहले ही मोस्को छोड़ दिया था। मोस्कोके नगरमें घुसते ही नगराध्यक्ष रोस्टपटिनने नगरमें आग लगा दी। पांच दिन तक आग जलती रही। मोस्कोका अधिकांश जल कर खाक हो गया। नेपोलियन किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो सन्धिकी अपेक्षा करने लगे। उन्होंने समझा था, कि अलेकसन्दर सहजमें सन्धि-प्रस्ताव पर सहमत होंगे तथा वे भी अपने मानसम्भ्रमकी रक्षा करते हुए स्वदेश लौटेंगे। किन्तु फरासीवीर नेपोलियन रूसोंकी कूटबुद्धि पर अप्रतुभ हो गये। आखिर १८वीं अक्तूबरको नेपोलियन अनिच्छा रहते हुए भी स्वदेश लौटे। इस समय जाड़ा जोरों पड़ता था। फरासीसेनाने पहले ही राहमेंके ग्राम और बाजार आदिको विध्वस्त कर डाला था। अतएव नेपोलियनको क्रमागत तुषाराच्छन्न और जनशून्य ग्राम नगर हो कर लौटना पड़ा। कहीं भी खाने पीनेकी चीज न मिली। आरण्यप्रदेशमें छिपी हुई कसाकसेना फरासी सेना पर टूट पड़ी। इस प्रकार भूख और शीतके प्रकोपसे नेपोलियनकी हजारों सेना रोज मरने लगी। आखिर फरासीगण २६वीं नवम्बरको बेरीसिना नदीके किनारे पहुंची। नदी पार करनेमें भी बहुतसी सेना यमपुरको सिधारी। इस नदीके किनारेका युद्धके समान भयङ्कर चित्र इतिहासमें प्रायः देखा नहीं जाता। स्मर्गिनो नामक स्थानमें नेपोलियन अपनी सेनाका परित्याग कर पेरिस जानेको बाध्य हुए। आखिर उस ६ लाख विशालसेनामेंसे केवल ८०००० सेना नीमेन नदी पार हुई थी। नेपोलियनका भीषण सेनादल वृथा आडम्बरसे विनष्ट हुई।

इस समय प्रूसियाके सम्राट् फ्रेडरिक ३य विलियमने प्रूसियाकी उन्नतिके लिये रूससे मेल कर लिया। १८१३ ई०में ड्रेसडेनका युद्ध तथा उसी सालकी १६वीं अक्तूबरको लिपजिगमें जातीय युद्ध हुआ। १८१४ ई०में रूसने सहयोगियोंके साथ फ्रान्स पर चढ़ाई कर दी। किन्तु पेरिस आक्रमण-कालमें बहुतसी रूसीसेना मारी गई। वाटरलूके युद्ध तथा सेण्टहेलेनामें नेपोलियनके निर्वासनके बाद रूसियोंने स्याम्पेन और लोरेन पर अधिकार जमाया। उसी वर्ष पोलण्डकी शासनप्रणालीमें बहुत हेरफेर हुआ तथा वहां रूसशासनकी जड़ मजबूत हुई। १८२५ ई०में रूस-सम्राट् अलेकसन्दरका डाननदीके मुहानेके समीप टागनगर नामक स्थानमें अकस्मात् देहान्त हुआ।

उनके समय रूससाम्राज्य चारों ओर फैल गया था; फिनलैण्ड, पोलैण्ड, बेसारबिया, काकेशसके अन्तर्गत देघास्थान, शिरवान, मिङ्ग्रेलिया और इमारेशिया आदि स्थान रूससाम्राज्यभुक्त हुए थे। इनके शासनकालमें दास और श्रमजीवियोंकी अवस्था बहुत कुछ सुधर गई थी। रास्कलनिकोंके साथ सद्व्यवहार किया गया था विद्याशिक्षाकी उन्नतिके लिये नाना प्रकारके उपाय

अवलम्बित हुए थे। इस समय काज़ान, खारकफ और सेण्टपिटर्सवर्गमें विश्वविद्यालय खोले गये। इन सब कार्योंमें राजमन्त्री स्पेरानिस्किने बादशाहकी बड़ी मदद की थी। पीछे वे कई कारणोंसे बादशाहके विरागभाजन हुए थे। इसके बाद नेज़ निनवगोरोद और साइबिरियाके शासनकर्त्ता हुए। स्पेरानिस्किके बाद मिस्कफ, नवोसिल्टजेफ और अरक चीफ् इन तीन मन्त्रियोंने रूसका शासन किया था। किन्तु शेषोक्त दो लोकरञ्जक न हो सके इस समय मुद्रायन्त्रकी स्वाधीनता बहुत कुछ जाती रही। अनेक उदारनैतिक अध्यापक विश्वविद्यालयसे निकाल दिये गये। इस समय सम्राट्को सभी विषयोंमें संदेह होने लगा और उन्होंने गुप्त समितिकी सृष्टि की। ऐसे सङ्कटजनक समयमें सम्राट् इस लोकसे चल बसे। अनेक समालोचकोंने उनकी अच्छी समालोचना नहीं की है। नेपोलियनने उन्हें वैजन्ती ग्रीकोंकी तरह कपटाचारी कहा था। किन्तु सच पूछिये, तो वे वैसे नहीं थे। पर हां, उनके हृदयमें उतनी ताकत न थी।

रूससाम्राज्यके नियमानुसार सम्राट् पालके २य पुत्र कनस्तान्ताइन प्रकृत उत्तराधिकारी थे। क्योंकि अलेकसन्दरके कोई सन्तान न थी। फिर उन्होंने अपने इच्छानुसार जूलिया नामक रोमन कैथलिक मतावलम्बिनी एक पोलीस राजकुमारीसे ब्याह कर सिंहासनका स्वत्व छोड़ दिया था।

इस समय रूसकी प्रजा अपने देशमें साधारण तन्त्रपरिचालित राजतन्त्र प्रथाको प्रचलित करनेकी विशेष चेष्टा कर रही थी। यह ले कर एक विद्रोह तुरत खड़ा हो गया, किन्तु विद्रोही दलकी हार हुई। बहुत खून खराबीके बाद विद्रोहका अवसान हुआ। पांच विद्रोही दूत तथा अधिकांश सेना साइबिरियामें निर्वासित हुई।

इसके बाद कानस्तान्ताइनके भाई निकोलस सिंहासन पर बैठे। उनके शासनकालमें उदारनैतिक शासन संकुचित हुआ। १८३० ई०में रूससाम्राज्यका सम्पूर्ण व्यवहारशास्त्र सङ्कलित हो विधिबद्ध और प्रकाशित हुआ। इस समय बड़े लड़केके राज्यप्राप्तिसंक्रान्त नियम प्रचलित हुए। मुद्रायन्त्रका कठोर विधान रहते हुए भी इस समय रूसकी उन्नति हो रही थी। निकोलस १८२६-२८ ई० तक पारस्यके साथ युद्धमें व्यापृत थे। इस युद्धमें उनकी सम्पूर्णरूपसे जीत हुई।

एलिज़ावेथपोल तथा आभानबुलक नामक एक स्थानमें पारसिकगण रसियन अच्छी तरह परास्त हुए। तुर्कामाञ्चई नामक स्थानकी सन्धिसे १८२८ ई०की २२वीं फरवरीको उक्त युद्धका अवसान हुआ। इस युद्धमें रूस-सम्राट् ने युद्धके व्यय स्वरूप २ करोड़ रुबल तथा एरिवन और नाखिचेवान नामक स्थान पाये थे।

निकोलसने ग्रीकोंकी स्वाधीनताके लिये यथेष्ट सहानुभूति दिखलाई थी। वे चाहते थे, कि प्राचीन मतावलम्बी ईसाइयोंके ऊपर उनकी धाक जमे। इस कारण तुरुष्क ग्रीकके साथ युद्धमें लिप्त हुए। इसमें इङ्गलैण्ड, फ्रान्स और रूसने बीचमें पड़ कर १८२७ ई०को लण्डनमें एक संधि कर ली। इसी संधिसे १८२७ ई०की २०वीं अक्तूबरको नाभारिनोका युद्ध छिड़ा। इसमें उक्त सहयोगियोंके गोलावर्षणसे तुरुष्क जंगी जहाज सबके सब डूब गये। पीछे निकोलस अकेले तुरुष्कके साथ युद्ध चलाने लगे। एशियामें पास्केविचने तुर्कसेनाको परास्त कर आर्जरम अधिकार किया तथा यूरोपमें दिएविश्च प्राएडवअीरको हराया। रूससेना बल्कानको पार कर आद्रियानेपालमें घुसी। यहां १८२९ ई०को एक संधि स्थापित हुई। इसमें तुरुष्ककी बड़ी असुविधा हुई थी।

१८३१ ई०में पोलगण फिरसे विद्रोही हुए। तदनुसार पास्केविचने वारस पर अधिकार जमाया। इस समय वहां महामारीका भारी प्रकोप था, इसीसे ग्राण्ड ड्यूक कनस्तान्ताइनकी मृत्यु हुई। अभी पोलोंका भाग्य एकमात्र निकोलसके अनुग्रह पर निर्भर करता था। तदनुसार प्राचीनकालके पालाटिनेटके आदर्श पर वहां शासनप्रणाली प्रचलित हुई। वारस, लुबलिन, प्लक, रैडम, मडलिन इन सब स्थानोंमें पूर्वोक्त शासनका प्रचार हुआ। बिलनाका विश्वविद्यालय जो मिकिविक्ज और लीलीवेल द्वारा सुप्रसिद्ध हो गया था, उठा दिया गया। १८३३ ई०को आङ्कियर स्केलेसी नामक स्थानमें तुरुष्ककी एक दूसरी संधि स्थापित हुई। इससे रूसको तुरुष्कमें शासनका कुछ अधिकार मिला। १८४८ ई०के

विप्लवके बाद निकोलस हङ्गारियनने विद्रोह दमनके लिये सम्राट् फ्रान्सिस जोसेफको पास्केविच सेनापतिके अधीन एक दल सेनाको साथ भेजा। १८५३ ई०को क्रिमियाका युद्ध आरम्भ हुआ। रूससम्राट्ने तुरुष्कको आपसमें बांट लेनेका सङ्कल्प किया। किन्तु इससे फ्रान्स और इङ्गलैण्डने उनका पक्ष छोड़ दिया। इस स्मरणीय युद्धकी घटनाके मध्य अल्मा, बालाक्लाभा, इङ्कार मन आदि स्थानोंका युद्ध तथा सिवाष्टपोलका अवरोध सबसे प्रसिद्ध है। टाडलिबेनने सिवाष्टपोलको अच्छी तरह सुरक्षित कर दिया था। उनके जैसे प्रतिभाशाली वीर सेनापति क्रिमियाके युद्धमें कोई भी न थे। १८५५ ई०में रूसगण उक्त नगरके दक्षिण कुछ हिस्सोंको तोड़ फोड़ कर फिरसे उत्तरकी ओर इकट्ठे हुए। इसी साल सम्राट् निकोलसका अकस्मात् देहान्त हुआ।

निकोलसको मृत्युके बाद उनके पुत्र २य अलेकसन्दर १७ वर्षकी अवस्थामें सिंहासन पर बैठे। (१८५५-८१ ई०) सिंहासन पर बैठते ही वे युद्ध रोकनेकी कोशिश करने लगे। तदनुसार १८५६ ई०को पेरिस नगरमें संधि हुई। शर्त्त यह ठहरी, कि रूस कृष्णसागरमें कोई जंगीजहाज नहीं रख सकते और प्राच्य ईसाईके ऊपर उनका आधिपत्य रह सकता। रूसी वेसरबियाके कुछ अंश तथा डेनिविच सन्निहित प्रदेश ले कर रोमानियाकी सृष्टि हुई। पीछे वार्लिनकी सन्धि द्वारा रोमानिया रूसको दे दिया गया था। सिवाष्टपोल फिरसे बनाया गया।

अलेकसन्दरने बाद ही १८६१ ई०में सभी दासोंको छोड़ दिया। उनका यह काम सराहनीय था। निकोलस इसका सूत्रपात कर गये थे। अभी उनके पुत्र द्वारा यह कार्यमें परिणत हुआ। १८६३ ई०में फिरसे पोलिस विद्रोह खड़ा होनेसे पोलण्डकी स्वाधीनता बिलकुल जाती रही।

इनके समय तुर्किस्तान धीरे धीरे रूसके शासनाधीन हुआ। १८६५ ई०में तासकन्द जीता गया तथा १८६७ ई०में २य अलेकसन्दरने तुर्किस्तानकी शासनव्यवस्था सम्पन्न की। १८५८ ई०में सेनापति मुराभिफने चीनोंके साथ एक संधि की। इससे आमुर नदीके बाएं किनारे जितने भूभाग थे, सभी रूस साम्राज्यभुक्त हुए। पूर्व-एशियामें व्लादिभष्टक नामक एक नया बन्दर और पेताश्रय इस समय खोला गया। १८७७ ई०में रूस श्लाभेनिक ईसाईका पक्ष ले कर तुरुष्कके विरुद्ध खड़ा हुआ। प्लेभना नामक स्थानके भयङ्कर अवरोधके बाद रूसोंने कुस्तुनतुनिया तक अपना अधिकार फैलाया। अनन्तर १८७८ ई०को मानष्टिफानोमें सन्धि हुई। इस संधिसे रोमानिया स्वाधीन हो गया, सर्भियाका आयतन बढ़ा तथा तुरुष्कके अधीनस्थ प्रदेशोंमें स्वाधीन बुलगेरिया राज्यकी सृष्टि हुई। पीछे बार्लिनकी संधि द्वारा उक्त शर्त्तमें बहुत हेरफेर हुआ। तदनुसार रूस बेसराबिया स्थानमें जो सब प्रदेश खो बैठे थे, अभी उन्हें मिल गये। ककेशस पर्वतकी ओर राज्यसीमा बढ़ाई गई। बुलगेरिया दो भागोंमें विभक्त हुआ। दक्षिण भागका नाम रूमेलिया पड़ा। वहां एक ईसाईशासनकर्त्ता नियुक्त हुए। इस समय रूसमें निहिलिष्ट दल फैला हुआ था जिससे वहां अशान्ति फैल गई तथा अन्तर्विद्रोहके लक्षण दिखाई देने लगे। निहिलिष्ट वा शून्यवादियोंने सम्राट्का काम तमाम करनेका षड्यन्त्र रचा। सम्राट्का जीवन संकटापन्न हो गया। १८६६ ई०की १६वीं अप्रिलको काराकोजफने सेण्टपीटर्सबर्गमें सम्राट्को देख कर उन पर गोली चलाई। पीछे अलेकसन्दर जब पेरिसमें ३य नेपोलियनसे मिलने गये, उस समय भी बेरेओस्कि नामक एक पोलने सम्राट् पर गोली चलाई थी। अनन्तर १८७९ ई०की १४वीं अप्रिलको मनोभिअफने फिरसे सम्राट् पर वार किया। इस समय भी वे बड़े कौशलसे बच गये। बादमें उनका मकान उड़ा देने तथा उनकी गाड़ी नष्ट करनेकी कोशिश की गई थी। अन्तमें १८८१ ई०की १३वीं मार्चको जो षड्यन्त्र रचा गया उससे सम्राट्ने निस्तार नहीं पाया। पांच षड्यन्त्रकारी प्राणदण्डसे दण्डित हुए। उनमें सोफिया नामक एक स्त्री थी। इस प्रकार २६ वर्ष राज्य कर २य अलेकसन्दर शत्रुके शिकार बने। उनकी स्त्री और बड़े लड़के पहले ही चल बसे थे। इस कारण द्वितीय पुत्र ३य अलेकसन्दर नामसे सिंहासन पर बैठे। इनका जन्म १८४५ ई०में हुआ था।

१८५५-१८८१ ई० तक २य अलेकसन्दरके समय रूस-साम्राज्यमें ऐतिहासिक घटनापूर्ण जो सब परिवर्त्तन हुआ था, उसके बाद १८८२-१६०२ ई० अर्थात् दश वर्षके भीतर भी उसका सौ भागमेंसे एक भाग भी संस्कार नहीं हुआ। २य अलेकसन्दर शासनविधि, शिल्प और कृषि, समाजनीति और शिक्षाविषयक संस्कार कर रूसके जातीय जीवनमें एक आमूल परिवर्त्तन कर गये थे।

प्रजावर्गका दासत्वमोचन, उन्हें भूमिका मध्यस्वत्वाधिकार दान, म्युनिसिपल और प्रादेशिक (प्रजासम्बन्धीय) स्वायत्तशासनविधि, उच्च और निम्न धर्माधिकरण, मुद्रायंत्रकी स्वाधीनता और साधारण शिक्षाका संस्कार कर वे इस बातकी कोशिश करते थे जिससे यूरोपवासी पाश्चात्य जातियोंके साथ रूसनैतिक उन्नतिमें मुकाबला कर सके। किंतु मानसिक और नैतिक तथा शिल्प और वाणिज्य विषयमें कोई विशेष उन्नति न हुई। अधिकांश प्रजा मूर्ख, अत्याचारी और दरिद्र थी। स्थानीय स्वायत्तशासन-सभा इन दुर्वृत्तोंका दमन करते थक गई थी। धर्माधिकरण न्याय और पक्षपातशून्य विचार दिखा कर तथा दुर्वृत्तोंको राजदण्डसे दण्डित कर जनताको प्रसन्न नहीं कर सकते थे। शिक्षाविभाग और शिल्पविभागमें किसी प्रकारकी उन्नति होने न पाई।

इनके समय कुछ ही दिन सुशासन चला था। धीरे धीरे वह सुखस्वप्न टूट गया। पूर्वतन अराजकता अच्छी तरह जग उठी। उदारनैतिकदल पहले राजतन्त्रके आमूल संस्कारके पक्षपाती थे, किन्तु वे भी बातकी बातमें राजविरोधी हो उठे। जातीय और सामाजिक स्वप्नोल्लाससे तथा राष्ट्रविप्लवकारी षड़यन्त्रसे वे लोग आकाशको प्रतिध्वनित करने लगे। इस कारण रूसजातिकी उन्नतिकी आशा निराशामें पलट गई। उनकी लहलहाती लता पर पाला पड़ गया।

शिक्षाविभागकी निम्न प्राइमरी शिक्षामें कोई विशेष फल न हुआ। विद्यालयके छात्र और छात्रोंने शिक्षाविभागकी राजविधिका परिवर्त्तन करनेके लिये दल संगठन किया। किन्तु वे राजशक्तिके सामने कब तक ठहर सकते थे। उन्होंने जनताका आश्रय लिया। इस मिलित दलका उद्देश्य राजाके अनुग्रहसे बहुत कुछ सिद्ध हुआ था। किन्तु राजाने जब देखा, कि दुर्बोध प्रजा उनकी आज्ञाका उचित रीतिसे पालन न कर रही है, तब वे सार्वजनिक राजद्रोहकी आशङ्का कर सबोंको दण्ड देने अग्रसर हुए। पुलिसने सबोंको पकड़ा और कैद किया, कुछ तो राज्य और जन्मभूमिसे निर्वासित हुए। जिन्होंने भाग कर जान बचाई थी, वे राजाके अन्याय विचार और पुलिसके अत्याचारकी बात स्मरण कर कट्टर राजशत्रु हो उठे। दिनदहाड़े सेण्टपिटर्सबर्गके प्रकाश्य राजपथ पर शस्त्रधारी पुलिसदलपति जेनरल मेजेण्टसोफ उन लोगोंसे मारे गये। इसके बाद ही उन्होंने सम्राट्के प्राण लेनेका संकल्प किया। १८७६ ई०के अप्रिल मासमें सोलोभिफ नामक एक व्यक्तिने सम्राट्को देख कर उन पर छः गोली चलाई। सौभाग्यवश सम्राट् बच गये। अनन्तर उसी सालके दिसम्बर मासमें मोस्को नगरके समीप राजकीय रेलगाड़ी (Imperial train) को ध्वंस करनेकी चेष्टा की गई। १८८० ई०में षड़यन्त्रकारियोंने उनके शीतप्रासाद (Winter Palace) के भोजनागारके नीचे डिनामाइट रख कर सम्राट्के परिवारका संहार करनेकी कोशिश की। किन्तु इस बार भी सम्राट् सपरिवार बाले बाल बच गये। केवल १० अनुचर निहत और ३४ बुरी तरह घायल हुए थे। आखिर १८८१ ई०की १३वीं मार्चको विद्रोहियोंने दूसरा षड़यन्त्र रचा। सम्राट् अपने शीतप्रासादके समीप सामरिक क्रीड़ाकौशल देख कर घर लौट रहे थे, इसी समय षड़यन्त्रकारियोंने उन पर बम फेंका। राजाके प्राण तो नहीं निकले, पर घोड़े सहित घायल हुए। इसी घायलसे वे कुछ दिन बाद ही परलोकको सिधारे।

२य सम्राट् अलेकसन्दरको मरनेसे पहले राजद्रोही प्रजाकी मनोवेदना अच्छी तरह मालूम हो गई थी। अब उन्होंने देखा कि पुलिसके कठोर शासनसे भी मर्मपीड़ित प्रजा प्राणपणसे अपने पक्षका समर्थन कर रही है, तब वे दयाके वशवर्त्ती हो अपनी राजशक्तिका प्रभाव भूल गये। प्रजाकी कुछ मांग पूरी करनेके लिये उन्होंने जेनरल लोरी मेलिकफको मन्त्रविभागका अधिप

(Minister of the interior) बनाया। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई उसी दिन सबेरे उन्होंने प्रधान प्रधान राजकर्मचारी और राज्यके गण्यमान्य व्यक्तियोंको ले कर एक कमीशन संगठित करनेका आज्ञापत्र (Ukase) लिखा। उनके कथनानुसार उस कमीशन वा सभाको राज्यके सभी विभागोंके शासनविधि संस्कारका अधिकार मिला था।

पिताकी मृत्युके बाद उनके लड़के ३य अलेकसन्दर रूससिंहासन पर अधिरूढ़ हुए (१८८१-१८६४ ई०)। ये उदारनैतिक-मत (Liberalism)के विशेष पक्षपाती न थे। ये उन्नत प्रजाको दण्ड देनेके लिये स्वयं इस उन्नतप्रथाके विरुद्ध कार्य करने खड़े हो गये। उन्होंने अपने पितृदेव प्रवर्त्तित संस्कृत शासनप्रणालीको बिलकुल न बदला, कहीं कहीं उसका प्रभाव घटा दिया था।

पूर्वोक्त राजाके शासनकालमें ग्राम नगरादिका स्वायत्तशासन जैसा विधिसिद्ध हुआ था अभी उसका कर्त्तृत्वभार केवल राजकर्मचारियोंके ऊपर सौंपा गया। जमींदारोंके अधीनतापाशसे मुक्त कर प्रजाको जो स्वाधीनतादान दिया गया था उसे यहांके कनजरभेटिभ दलने मंजूर नहीं किया। उन लोगोंका ख्याल था, कि शायद मूर्ख प्रजा अपनी स्वाधीनताकी रक्षा न कर सकेगी। जमींदार लोग उन्हींमेंसे एक एकको प्रधान चुन लेंगे और वे ही प्रजाके ऊपर कर्त्तृत्व कर सकेंगे। यूरोपके अन्यान्य राज्योंमें पार्लियामेण्ट-सभाके आदर्श पर सम्राट् २य अलेकसन्दर द्वारा यहां जेमष्टभो समिति स्थापित हुई थी। जिससे वह सभा पूर्णप्राप्त क्षमतानुसार कोई कार्य न कर सके, उसकी भी व्यवस्था की गई। यहां तक कि म्युनिसिपल-समितिकी क्षमता भी घटा दी गई थी। रूस साम्राज्यमें पुनः पूर्णतम राजतन्त्रका उदय हुआ तथा उसके साथ साथ फिरसे विद्रोहिदलका प्रादुर्भाव होने लगा।

प्रजासाधारणकी शिक्षा और शासन विषयक उन्नति करनेमें राजविरोधी दल क्रमशः जातीयताकी जलाञ्जलि देने लगा तथा वही निहिलजम और एनार्किजम सम्प्रदायका खड़ा हो गया। मर्यादासम्पन्न शिक्षित सम्प्रदायको जब यह मालूम हुआ, तब वे राजद्रोहियोंको दण्ड देने अग्रसर हुए। पीछे जब उन्होंने देखा, कि जातीयता, धर्मविश्वास और राजतन्त्र एक साथ प्रवाहित न रहनेसे रूस साम्राज्यका कल्याण नहीं तब वे सूक्ष्मदर्शी श्लाभोफिल प्रतिपादित इस राजतन्त्रका अनुसरण करने बाध्य हुए। सम्राट् ३य अलेकसन्दरके शिक्षागुरु और परामर्शदाता मि० पोबिडोनेष्टसेफने राजाके भीतर यह जातीयता अभाव प्रवेश करा दिया। सम्राट् राजतन्त्रके पक्षपाती होने पर भी जातीयता और धर्मप्रधानता भूले नहीं थे। उन्होंने तभीसे रूसकी विभिन्न जाति और धर्मसम्प्रदायभुक्त व्यक्तियोंका कष्ट दूर करनेकी चेष्टा की थी। क्योंकि, रूसके विभिन्न स्थानमें भाषा और धर्मकी पृथकता है,—फिनलैण्डवासी वा फिनिस भी स्वीडिस भाषा बोलते हैं। यह स्वीडिस और फिनगण प्रोटेष्टाण्ट मतावलम्बी हैं। बालटिकप्रदेश-वासियोंमें जर्मन, लेट्ट और एस्थ-भाषा प्रचलित है। ये लोग लूथरमतानुसारी हैं। दक्षिण-पश्चिम रूस प्रदेशवासी पोलोंकी भाषा पोलिश है। ये लोग रोमन कैथलिक हैं। यहूदियोंकी भाषा यिद्दिस है। मध्य बलगा और क्रिमियाविभागवासी इसलाम धर्मावलम्बी मुसलमान तातार भाषाका व्यवहार करते हैं। काकेशस प्रदेशके विभिन्न स्थानमें विभिन्न जातिका वास है तथा उनकी भाषा भी भिन्न भिन्न है। जिससे इन सब जातियोंकी भाषा, धर्म और पुरुषपरम्परागत जातीय और स्थानीय शासनपद्धतिमें धक्का न पहुंचे, उस ओर बादशाहोंका विशेष लक्ष्य था। किन्तु जब जिस जनसमाजमें इस नई प्रथाका प्रभाव फैला, तब वहांके अधिवासियोंमें प्रधान जाति रूसोंकी भाषा, धर्म और शासनपद्धति-विस्तारकी चेष्टा देखी गई थी। सम्राट् १म निकोलस और २य अलेकसन्दरके शासनकालमें ऐसी चेष्टा न हुई थी। किन्तु सम्राट् ३य अलेकसन्दरने प्रजाका अभिप्राय, इच्छानिष्ट और मनोभाव बिना जाने ही धारावाहिकरूपमें यह कार्य सम्पादन किया था।

उनके आदेशसे उन सब स्थानोंकी शासनपद्धतियां रूसके अनुकरण पर था। मिश्रभावापन्न हो गई थी। राजकीय शासनविधिमें, धर्माधिकरणमें, यहां

तक कि विद्यालयोंमें भी राजभाषाका प्रचार हुआ। रूसभाषाके विस्तारके लिये भी उन्होंने शिक्षाविभागमें नई विधि चलाई थी। राजशासनके अनुसार प्राच्य धर्मस्रोत अर्थात् इसलामधर्म रूसमें फैला। किन्तु इसके सिवा अन्य धर्मग्रहण करना राजनियमसे बिलकुल निषिद्ध था। वैदेशिक अधिवासियोंको भूम्यधिकार होनेका अधिकार नहीं दिया गया। कहीं कहीं वैदेशिकसे बलपूर्वक जमीन छीन कर कट्टर रूसको देनेका नियम जारी था। यह कार्य सम्पादन करनेमें स्थानीय राजकर्मचारियोंने राजाका आदेश नहीं रहते हुए भी बहुत अत्याचार किया था। यहां तक, कि जब कभी विरोधिदल राजकर्मचारीके विरुद्ध खड़ा होता, तब वह राजद्वारमें दण्डनीय होता था। सभी जातिके मध्य यहूदियोंका कष्ट गुरुतर हो गया था। रूसके पश्चिम और दक्षिण नजरबन्दोंकी तरह वे लोग रहते थे। यहूदी धनी थे और गरीबोंको सताना उनका व्यवसाय था। वे लोग अभावग्रस्त राजकर्मचारियोंको धनसे वशीभूत कर लेते थे। इस कारण शासनकर्त्ता उन पर नियमपूर्वक शासनविधिका प्रयोग नहीं कर सकते थे। इस राज्यशासनकी शिथिलताके कारण सुदेखाके यहूदी प्रजाके प्रति मनमाना अत्याचार करते थे। सम्राट् ३य अलेकसन्दरने यह संवाद पा कर राजविधिको काममें लानेका कठोर आदेश निकाला। यहां तक कि उस आदेशसे यहूदियोंकी शिक्षा और वाणिज्यका पथ रुक गया था।

उनके शासनकालमें वैदेशिकके साथ राजनैतिक संस्रवका बहुत परिवर्त्तन हुआ था। उनके पिताके राज्यकालमें रूससाम्राज्यका मुख्य उद्देश्य था जर्मनीके साथ मित्रतासूत्रमें आवद्ध रह कर आत्मसम्मान रक्षाका उपाय निर्द्धारण, गत क्रिमीयाके युद्धमें दक्षिण-पूर्व रूसके जो सब प्रदेश शत्रुके हाथ लगे थे, उनका पुनरुद्धार, सुलतानकी शक्तिको चूर करना और नीच शलभ जातिके मध्य रूस-प्रभाव फैलाना तथा मध्यएशियामें धीरे-धीरे रूस साम्राज्यका विस्तार।

वर्लिन काङ्ग्रेसमें विसमार्क कर्त्तृक सेण्टपिटर्सबर्गकी मन्त्रिसभाको यत्किञ्चित् राजनैतिक साहाय्यदानका प्रस्ताव तथा १८७६ ई०के अक्तूबर मासमें रूसकी राज्यश्रयी शक्तिको खर्व करनेका उद्देश अष्ट्रे जर्मन पलायन्स निष्पादित होते देख सम्राट् ३य अलेकसन्दर सिंहासन पर बैठे। वे जर्मनोंका बंधुत्व और संस्रव छोड़ देनेके लिये वाध्य हुए। किन्तु फिरसे १८८१ ई०की गोपनीय सन्धिसे संतुष्ट हो दोनों सम्राट्ने मेल कर लिया। दूसरे वर्ष डानजिक नगरमें नवीन जार और वृद्ध जर्मन सम्राट् आपसमें मिले जिससे उनका सौहार्द और भी बढ़ गया। १८८४ ई०को स्क्रियानेभिल नगरमें तीन सम्राट्ने मिल कर तीन वर्षके लिये Three Emperors' League संगठन किया। इस प्रकार दोनोंमें एक बड़ी सन्धि तो हो गई, पर रूस-सम्राट्के मनमें जर्मन-सम्राट्के मैत्रतासम्बन्धमें घोर असद्भाव रह गया। मन्त्रिवर विसमार्ककी बातसे उन्हें अच्छी तरह मालूम हो गया था कि रूस साम्राज्यकी शत्रुता कल्पना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। इससे उनका संदेह और भी बढ़ गया। उन्होंने रूस-साम्राज्यकी राजनैतिक स्वार्थरक्षाके लिये फरासियोंका पराक्रम खर्व करना न चाहा। आपसमें मेल रखना ही उन्होंने अच्छा समझा। तभीसे वे जर्मनसापेक्ष सामञ्जस्यसाधक शक्तिपुञ्जको (The Balance Power) प्रतिकार्यावलीके विरुद्ध चलने लगे। १८८७ ई०में स्क्रियार्णीभिकका सन्धिकाल बीत जाने पर सम्राट् उसे भी फिर 'रिन्यू' करनेको राजी न हुए।

इसी समयसे वे धीरे धीरे फरासी-राजाके साथ मित्रता करने लगे। उन्होंने जर्मनी, अष्ट्रिया और इटलीकी मिलित शक्तिके (The Triple Alliance) विरुद्ध तुल्यशक्ति संगठन करनेकी चेष्टा की। किन्तु वे फ्रान्सके साथ कार्य्यतः किसी सन्धिसूत्रमें आवद्ध न हुए। क्योंकि फ्रांस-गवर्मेण्टने अपने बन्धुत्वकी कृतज्ञता स्वीकार तथा जिससे यह बन्धुत्व स्थायी रहे, इसके लिये कोई उपयुक्त दायित्व स्वीकार (Requisite guarantee) न किया। पीछे जब रूस सम्राट्को मालूम हुआ, कि तीनों शक्ति मिल कर युद्धकी तैयारी कर रही है, तब उन्हें अपनी अवस्था अच्छी तरह सूझ पड़ी। उनका ख्याल था, कि इस सन्धिवद्ध शत्रुदलके साथ यूरोपमें यदि एक महासमर खड़ा हो जाय तो फ्रान्सके साथ मिल कर

युद्ध करनेके सिवा ऐसे प्रबल शत्रुके हाथसे बचनेका कोई उपाय नहीं। तदनुसार वे इस अभावको दूर करनेके लिये अग्रसर हुए। १८६४ ई०में एक सामरिक सभा (military convention) संगठित हुई। रूस और फरासीपक्षके सामरिक उच्चतम कर्मचारियोंने एकत्र हो कर दोनों पक्षकी भलाईके लिये युद्ध सम्पर्कीय नाना विषयोंकी मीमांसा कर ली। इस समय रूस और फरासी-राज्यमें विशेष सद्भाव स्थापित हुआ था।

१८६१ ई०में पहले फरासी नौसेनापति जारभिसके अधीन एक नौवाहिनी क्रनष्टम नगरमें आ पहुंची। राजाके आदेशसे उनका अच्छा स्वागत किया गया था। दो वर्ष बाद १८६३ ई०के अक्तूबर मासमें रूस-सेनापति आवेलन पेरिस और टूलों नगर देखने गये। वहां उनकी अच्छी खातिर हुई थी। किन्तु फिर भी दोनों जातिके मध्य प्रकृत "Alliance" वा मिलन शब्द सार्थकताके साथ प्रयुक्त न हुआ। १८६५ ई०में रूस-सम्राट् ३य अलेकसन्दरकी मृत्युके बाद फरासी मन्त्रिसभाके प्रेसिडेण्ट म० रिबो (M. Ribot) ने दोनों राज्यकी मित्रताके सम्बन्धमें जो अभिप्राय प्रकट किया, उससे पूर्वकृत सन्धिका मुख्य संदेह बिलकुल दूर न हुआ इसके बाद १८६७ ई०के अगस्त मासमें राजकीय कार्यके उद्देशसे M. Filix Faure सेण्टपिटर्सबर्ग नगर आये और दोनों जातिमें मेल करा गये। इस समय फरासी प्रजातन्त्रके सभापति और रूससम्राट्ने आपसमें हृदयानन्दज्ञापक अभिनन्दन वक्तृता पढ़ी थी। तभीसे दोनों राज्य 'nations alliees' नामसे घोषित हुआ।

सम्राट् ३य अलेकसन्दरने दक्षिण पूर्व यूरोपमें अपना प्रभुत्व अक्षुण्ण रखनेके लिये कृष्णसागरके किनारे अवस्थित रूस-नौवाहिनीकी बलवृद्धि की। १८८६ ई०में बार्लिनकी सन्धिका मर्म घोषित होनेके बाद सम्राट्ने भविष्य युद्धकी आशङ्कासे बाटुमनगरको दुर्गादि द्वारा सुरक्षित कर रखा। यहां एक बंदर खोला गया और नौसेना रहने लगी। बलकान प्रायोद्वीपके अधिवासियोंके कुव्यवहारसे वे पहलेसे ही क्रोधित थे। किन्तु राज्यविप्लवमें मध्यस्थ होनेकी इच्छा रखते हुए भी उन्होंने उस कार्यसे अपना हाथ खींच लिया। क्योंकि ऐसा करनेसे सारे यूरोपमें एक भयङ्कर युद्ध होनेकी सम्भावना थी। राजकुमार अलेकसन्दर और पीछे म० ष्टाम्बोलफ साहबके अधीन बुलगेरिया गवर्मेण्ट रूस राजनीतिके विरुद्ध कई बार खड़ी हो गई थी। फिर भी सेण्टपिटर्सबर्गकी मन्त्रिसभाने नाना उपाय दिखलाते हुए उनका यह असद्भाव दूर करनेकी कोशिश की। आखिर बुलगेरिया गवर्मेण्ट विद्रोहभाव छोड़ देनेके लिये बाध्य हुई थी।

उनके शासनकालमें रूससाम्राज्यकी सीमा एशियामें बहुत दूर तक फैल गई थी। उनके सिंहासन पर बैठते ही जेनरल स्कोबेलेफ टेकेने तुर्कोमानियोंकी वासभूमि पर अधिकार किया। इसके बाद सम्राट्ने यह प्रदेश अपने साम्राज्यमें मिला लेनेका हुकुम दिया। १८८४ ई०में मेर्व (वेशिस)-को हस्तगत कर रूसीसेना अफगानिस्तानकी ओर बढ़ी। रूससाम्राज्य और अफगानिस्तानकी सीमाका निर्देश करना ही इस अभियानका उद्देश्य था। १८८५ ई०के मार्च मासमें पाञ्जदे नामक स्थानमें इसी सूत्रसे रूस और अफगान-सैन्यमें घमसान लड़ाई छिड़ी। रूससेनाके अफगान-सीमान्तमें भविष्य भारतअभियानकी सूचना समझ कर अंगरेजराज बीचमें पड़ गये और रूससीमाका निर्देश करनेके लिये सेण्टपिटर्सबर्ग-मन्त्रिसभाके साथ संधि करने राजी हुए। किन्तु उपरोक्त पाञ्जदे-युद्धमें रूससेनाकी हठकारिता देख कर अंगरेजराज निश्चिन्त न रह सके। वे मित्रराज अमीरके सम्मान और आत्मराज्यकी रक्षाके लिये युद्धार्थ तैयार हुए। किन्तु दो वर्ष बाद १८८७ ई०में रूससाम्राज्यकी सीमानिर्देशक सन्धि हो गई।

इसके बाद अग्रगामी रूससेना हीरटका परित्याग कर असीम साहससे पूर्व-एशियाकी पामीर अधित्यकाकी ओर दौड़ी। १८६८ ई०को अंगरेज-रूसके बीच जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार रूसने पामीरको छोड़ दिया। सम्राट् ३य अलेकसन्दरके शासनकालमें मध्य-एशियाखण्डमें रूसराज्यसीमा ४२६८६५ वर्ग किलोमिटर बढ़ गई थी।

१८६४ ई०की १ली नवम्बरको सम्राट् ३य अलेकसन्दर परलोकको सिधारे, पीछे उनके लड़के २य निकोलस

सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। वे आभ्यन्तरीण और वैदेशिक-कार्यकी राजनीतिको अक्षुण्ण करनेकी कोशिश करते थे। उनके शासनकालमें उदारनैतिक दलके प्रभावसे राजकीय शासनविधिमें बहुत हेर फेर होगा, जान कर उदारनैतिक दलपतियोंको जो आशा दी गई थी, त्वेर-प्रदेशीय लिबरलदलके आवेदन पर राजाके असम्मति-ज्ञापक प्रत्युत्तरसे उनकी वह आशा निर्मूल हो गई।

२य निकोलस अपने जीवनके मुख्य विषयमें पिता जैसे चरित्रवान् होने पर भी वैसे कूटनीतिविशारद नहीं थे। पिताकी तरह सारे रूससाम्राज्यको एकमात्र रूसजातिकी वासभूमि (Policy of Russiani ation) बनानेकी इच्छा रहने पर भी इन्होंने यहूदी, धर्मान्तरविश्वासी और भिन्न धर्मों पर अत्याचार नहीं करनेका हुकुम निकाला। शिक्षित राजकर्मचारियोंने बड़े सम्मानके साथ अत्याचार निवारक राजाज्ञाका पालन किया था। अतः विधर्मियों पर जो अत्याचार होता था वह बातकी बातमें रुक गया। पिताकी कूटनीतिको निकोलसने बिलकुल छोड़ दिया था सो नहीं। उन्होंने फिनलैण्डवासी मात्रको ही पितृ-प्रवर्त्तित प्रथासे रूस बना लिया था। इसके विरुद्ध फिन-लैण्डवासीय फिन और अन्यान्य जातिका आवेदन अग्राह्य कर दिया गया था।

वैदेशिक संस्रवसे भी उन्होंने अपने पिताका पदानुसरण किया था। पीछे उन्होंने फ्रान्सके साथ बन्धुत्ववृद्धि, जर्मनीके साथ सद्भाव स्थापन और बालकन प्रायद्वीप-की राजनीतिक अवस्थाका परिवर्त्तन करना तथा शलभ-जातिके ऊपर आधिपत्य फैलाना चाहा। दक्षिण पूर्व यूरोपके सर्विया, मोण्टिनिग्रो और बुलगेरिया प्रदेशके अधिपतिके साथ इन्होंने फिरसे मेल कर लिया। क्योंकि बुलगेरियापति राजा फार्दिनन्द ष्टाम्बोलोफको पदच्युत कर स्वयं रूससम्राट्के पास गये और बन्धुत्वसूत्रमें आबद्ध हुए। रूसके पश्चिम देशवासी शत्रुसे दक्षिण-पूर्व यूरोपकी रक्षा करनेके लिये रूस-सचिव-प्रिन्स लोवानफ (Minister of foreign affairs)-ने तुर्क सम्राट् (Ottoman emperor)-के साथ मेल करना और उनका बल बढ़ाना चाहा।

इस समय अंगरेज गवर्मेण्टने आर्मेनियोंकी स्वार्थरक्षा करनेके लिये बलप्रयोगकी व्यवस्था की, इससे रूसके साथ उनका विवाद खड़ा हो गया।

प्रिन्स लोवनफकी मृत्युके बाद १८९७ ई०के जनवरी मासमें काउण्ट मुराभिफ उक्त वैदेशिक-सचिव पद पर नियुक्त हुए। परन्तु वे लोवनोफ प्रदर्शित पूर्व रूसनीतिके अनुसार कार्य नहीं कर सकते थे। उसी सालके अप्रिल मासमें ग्रीकोंके साथ तुरुष्कका युद्ध हुआ। सेण्टपिटर्सवर्गकी राजसरकारने दो दलोंमेंसे किसीकी सहायता नहीं की। युद्ध शेष हो जानेने पर जार दोनों दलका स्वागत किया और बन्धुभाव दिखलाया। इसके बाद क्रीटके उपयुक्त शासनकर्त्ता ले कर जब फिरसे विवाद खड़ा हुआ, तब जारने अपने भ्रातृसम्पर्कीय ग्रीक राज-कुमार जार्जको ही उस पद पर नियुक्त करना चाहा। इस कार्यमें राजनैतिक सम्बन्धरक्षाके सिवा राजपुत्र जार्जकी योग्यताका विचार नहीं किया गया।

सम्राट् २य निकोलसके राज्याधिकारके बाद साइ-बिरिया हो कर रूसजातिके उद्योगसे एक बड़ी रेल लाइन खोली गई। इसमें जो कुछ खर्च हुआ उसका अधिकांश चीनराजको देना पड़ा था। १८९५ ई०के चीन जापानी युद्धमें चीनराज पराजित हो सन्धि करनेके लिये बाध्य हुए। सिमोनोसकी सन्धिपत्रमें चीनराजने जापानके राजा मिकाडोको जो सब प्रदेश छोड़ देनेका वचन दिया था, रूसराजने मञ्चुरियामें अपना अधिकार बता कर उस पर आपत्ति की जिससे उस सन्धिकी शर्तें फिरसे संशो-धित हुई। रेलपथ विस्तार, दुर्गनिर्माण आदि आर्थिक व्ययसाधन कर रूस साम्राट्ने चीनसाम्राज्यके अन्तर्भुक्त अर्थरबन्दर और लियाओतङ्ग प्रायद्वीपमें अपनी राजशक्ति की जड़ मजबूत कर ली। साइबिरिया देखो।

रूससाम्राज्यकी सीमा बढ़ानेके लिये रूससम्राट्को दिनों दिन सेनादलकी वृद्धि करनी पड़ी थी। इस सामरिक प्रणालीके संस्कारमें जारके बहुत रुपये खर्च हुए थे। जातीय बल और अस्त्रशस्त्रकी वृद्धिके विषयमें शक्तिशाली राजाओं (The Great Powers)के साथ मेल करनेके सिवा बलरक्षाका कोई दूसरा उपाय नहीं है तथा राजाओंमेंसे एककी बलवृद्धि होनेसे बाकी सभी राजे मिल कर विरुद्ध खड़े हो सकते हैं, यह सोच कर

रूस-सम्राट्‌ने अपनी वैदेशिकसचिव काउण्ट मुराभिफ के द्वारा अपनी सेनाबलवृद्धि और वैदेशिक राज्यरक्षा-विषयक प्रस्ताव यूरोपीय 'शक्तिपुञ्ज' के पास भेजा। इस विषय पर विचार करनेके लिये हेगनगरमें एक आन्तर्जातिक बैठक हुई। किन्तु इस बैठकमें कोई फैसला नहीं हुआ। इतिहासमें यह बैठक The Hague conference या Peace conference नामसे प्रसिद्ध है।

वर्त्तमान रूसकी शिल्पोन्नति और वाणिज्य तथा राजनैतिक और सामरिक विप्लवका हाल लिखनेमें एक बड़ा पोथा बन सकता है। जनसाधारणके मालूमके लिये यहां पर केवल थोड़ी सी घटनाका उल्लेख किया गया।

पूरब ब्लाडिभष्टक बन्दरमें तथा चीनसाम्राज्यके अन्तर्गत अर्थरबन्दर आदि स्थानोंमें रसियनोंका ट्राम्हलाइबिरीय रेलपथ खुल जानेसे वाणिज्यकी वृद्धिके साथ साथ सामरिक आयोजनकी भी यथेष्ट उन्नति हुई थी। इस प्रकार वाणिज्यके उद्देशसे हो या युद्धके उद्देशसे रूसजाति उजुनादामेरव रेलपथ खोल कर अफगानसीमान्तवर्त्ती हीरट नगरके सामने खुस्क तक चली आई। भारतवर्षके साथ वाणिज्य करना ही रेलपथ खोलनेका गूढ़ उद्देश्य था।

गत चीनयुद्धके बाद जापानने देखा, कि रूसराजने बड़ी आसानीसे तथा चीनसम्राट्‌को मित्रतासूत्रमें भुला कर मंचुरिया अधिकार कर लिया है। अर्थरबन्दरमें दृढ़ रूसदुर्ग स्थापित हुआ। रसियन अपनी नींवको मजबूत कर धीरे धीरे वाणिज्यविस्तारके बहानेसे जापानके अधिकृत कोरियाराज्यमें रेलपथ खोलने लगे रूसराज्यके इस अनधिकार प्रवेशसे (Aggressive measure) अपना नुकसान देख जापानपतिने रूससम्राट्‌के पास प्रतिनिधि भेजा। रूसकी मन्त्रिसभाने जापानको नगण्य शत्रु जान कर उनकी बात न सुनी। युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। मंचुरियाके रूसराजप्रतिनिधि वृद्ध आलेकसिफ उन्नत जापानकी युद्धकी तैयारी देख डर गये। रूससम्राट्‌के आदेशसे सेनापति कुरोपाटकिन रूसवाहिनीके नायक हो एशियाके पूर्वसीमान्त (Far East) पर बढ़ आये।

१९०३ ई०में शीतकालके आरम्भमें जापानका जङ्गीजहाज अर्थरबन्दरमें अकस्मात्‌ जा पहुंचा। आमोदप्रमोदमें मस्त रसियन अतर्कित आक्रमणसे भयभीत हो गये। जापानी गोलावर्षणसे उनके कितने जहाज जलमें डूब गये। अपमानित रूससेनापति राजाके आदेशसे दुर्द्धर्ष जापानियोंको उचित दण्ड देनेके लिये अग्रसर हुए। क्रमशः युद्धके ऊपर युद्ध हुआ। लियावङ्ग, शो-हो और मुकदनके युद्धमें रसियन सेना तंग तंग आ गई। आखिर अर्थरबंदर जापानके हाथ लगा। अर्थर दुर्गाध्यक्ष रूससेनापति ष्टोशेल रूससेनाकी बाट जोह रहे थे, अभी वे निराश हो गये। दुर्गकी रसद भी घट चली। शत्रुके गोलावर्षणसे अपना बलक्षय देख उन्होंने जापान सेनापति नोगीके हाथ आत्मसमर्पण किया। इधर जापान नौसेनापति टोगो प्रशान्त महासागरकी तरफ रूससेनाकी राह रोकनेमें डट गये। अब रूसराजकी बाल्टिकवाहिनीने बड़ी तेजीसे भारत महासागरको पार कर भारतीय द्वीपपुञ्जमें प्रवेश किया, तब आदमिरल टोगो यवद्वीपके समीपवर्त्ती समुद्रसे उनकी गति देख आगे बढ़े। देखते देखते रोजडेसभानटस्कि-परिचालित रूसनौवाहिनी जापान समुद्रके किनारे आ पहुंची। नौसेनापति टोगोने उपयुक्त समय देख कर सुसिमा उपसागरमें रूस-वाहिनी पर आक्रमण कर दिया। गोलावर्षणसे रसियन सेना तितर बितर हो गई। वे लोग आकस्मिक विपद देख भयभीत हो गये। आततायी जापानियों पर उस गहरी अंधेरी रातको आक्रमण करनेका उन्हें साहस न हुआ। रूससेनापतिने अपने अधीनस्थ सेनावृन्दको बहुत ललकारा, पर वे निश्चल और अवाक्‌ खड़े रहे। इसी समय टोगोकी सेनाने उन्हें घेर लिया। रूस अडमिरल रोजडेस भाण्टरिक आहत और बन्दी हुए। उसके साथ साथ रसियनके कुछ जंगीजहाज भी टोगोके हाथ लगे।

इस प्रकार किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जारने कुरोपाटकिनको लौट आनेका हुकुम दिया। उनकी जगह सेनापति लिनेभिच नियुक्त किये गये। लिनेभिच भी जापानके साथ युद्धमें कोई विशेष फल न दिखा सके। प्रत्येक आक्रमणसे उन्हें पीछे हटना पड़ा था।

पोर्टअर्थर दखलके बाद युद्ध कुछ दिन स्थगित रहा।

अनन्तर जापानियोंने फिरसे अपहृत साघेलियन द्वीप पर चढ़ाई कर दी। इस समय अमेरिकाके युक्तराज्यके प्रेसिडेण्ट महामति रुजभेल्टके आग्रह और उद्योगसे तथा जापानपति मिकाडोकी बदान्यतासे सन्धिका प्रस्ताव हुआ। रूस और जापानके पक्षमें अनर्थक राक्षसोचित जनक्षय और अर्थनाश नहीं करना ही इस सन्धिस्थापनका उद्देश्य था। सभ्यजगत् स्वजातिके वृथा रक्तपातसे बड़ा ही दुःखित था, इस कारण दया और धर्मके आधारभूत महात्मा रूजभेल्टने दोनों पक्षको बहुत समझाया और १६०५ ई०के अगस्तके महीनेमें युक्तराज्य एक सभा की। जारकी ओरसे रूसराजसचिव म० विट (M. Witte) और मिकाडोकी ओरसे वैरन कमुरा आदि आये थे। संधिकी शर्त्त ले कर दोनोंमें खूब वादानुवाद चला। आखिर विजेता जापान-पति अपना स्वार्थ त्याग करके भी सम्मानकी रक्षा की थी। ऐसा महानुभवताका परिचय बौद्धजीवनका उच्चतम निर्दशन है। उसी सालकी ६ठी सितम्बरको दोनों पक्षने मेल कर संधिपत्र पर हस्ताक्षर किया।

सन् १६१४ से १६१८ ई० तक जो जगद्व्यापी युद्ध हुआ था। उस समय और उसके पहले कई वर्षोंसे शासनतन्त्रकी परिवर्त्तनकी सूचना हुई थी। शिक्षित सम्प्रदाय और साधारण प्रजाके बीच असन्तोषका बीज अंकुरित होने लगा। बाहरसे नई नई राजनीतिकी सलाह आने लगी। अब पुराने ढंगसे जारके इच्छानुसार शासन चलेगा या प्रजाके इच्छानुसार, सब कोई यही सोचने लगे। रूसकी अधिकांश प्रजा अशिक्षित थी, जो शिक्षित थी वह शासनका परिवर्त्तन चाहती थी जारने बलपूर्वक पुरानी नीतिके अनुसार ही शासन चलानेका हुकुम दिया। इस विषयमें शिक्षित सम्प्रदायको बुला कर उनसे सलाह लेना जारने कोई प्रयोजन न समझा। यदि सलाह ले कर शासनतन्त्रका कुछ परिवर्त्तन किया जाता, तो रूस-साम्राज्य अर्थात् जार पर इस प्रकार विपदका पहाड़ टूट न पड़ता। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। गवर्मेण्टने प्रजाकी मांगकी ओर बिलकुल ध्यान न दिया। फलतः विद्रोह खड़ा होनेमें जरा भी देर न लगी।

इङ्गलैण्डमें जिस प्रकार निर्वाचनसे पार्लियामेण्ट-मन्त्रि-सभा संगठित है, उसी प्रकार रूसमें 'डूमा' नामक एक मन्त्रिसभा स्थापित की गई। उस सभाके प्रधान मन्त्री, जेनरल ट्रेपो (Trepot)-ने शिक्षित सम्प्रदायसे मेल करना चाहा। किन्तु जेनरल रेपो एक सैनिक पुरुष थे। वे चाहते थे, कि सभी सैनिक पुरुषोंकी बात मानें। इसलिये पहली डूमा बहुत दिन चली। पीछे (१६०६-१६१०) दूसरी डूमा संगठित हुई। पी, ए, ष्टोलिपिन (*P.* A. Stolypin) नामक एक व्यक्ति उसके मन्त्री हुए। वे कभी राजपुरुषोंके मतानुसार चलते थे और कभी डूमाके मोडरेट (Moderate) सम्प्रदायसे भी सलाह लेते थे। इस कारण सभी लोग असंतुष्ट हो गये। कहीं कहीं कृषकोंने विद्रोह खड़ा कर दिया। दमननीतिकी जारी हुई। प्रजाके बीच असन्तोष दिनों दिन बढ़ने लगा। आखिर वह डूमा भी टूट गई और १६०७ ई०की ३री जूनको एक परवाना निकाला गया जिससे निर्वाचनप्रथा बिलकुल उठ गई।

इसके बाद ३री और ४थी डूमा गवर्मेण्टके चुने हुए मेम्बरोंसे संगठित हुई। इसलिये गवर्मेण्टके विरुद्ध एक भी प्रस्ताव उस सभामें नहीं उठता था। इस प्रकार जब सभामें कोई विरोध खड़ा नहीं होता था, तब बाहरवाले जानते थे, कि रूसमें शान्ति स्थापित हो गई। लेकिन देशमें असन्तोषका बीज जोरों पकड़े हुए था। कारागारमें जो राजबंदी थे उनपर भीषण अत्याचार होने लगा। यह देख स्कूल-छात्र जगह जगह प्रतिवाद-सभा करने लगे। शिक्षाविभागके कर्मचारियोंने विद्यार्थियोंका दमन करनेके लिये नये नये कानून निकाले। स्कूल और कालेजमें लेकचरके समय मिलिटरी पुलिस मौजूद रहती थी। फलतः कितने प्रोफेसरों और लेकचरोंने नौकरी छोड़ दी। इस प्रकार मास्कोा युनिवर्सीटीकी महती क्षति हुई। बुद्धिमान् विद्रोहि-नायकोंके कानमें जब समाचार पहुंचा, तब विद्रोहाग्नि और भी धधक उठी।

असन्तोषका प्रधान कारण था कृषकोंकी दरिद्रता। रूस कृषिप्रधान देश था, पर कृषकोंका अपनी जमीनके ऊपर कोई हक न था। ज्यादा हिस्सा जमीन गवर्मेण्टकी

खास थी। जमींदारके दखलमें बहुत थोड़ी थी। इसके अलावा १८६१ और १८६३ ई०में जो नये नये कानून निकाले गये थे, उससे कृषकोंकी अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई थी, साल भर मेहनत करके भी वे गृहस्थीसे अपना पेट नहीं पाल सकते थे। यह देख १९०६ ई०को प्रजा-आईनमें थोड़ा बहुत परिवर्त्तन किया गया। १९११ ई०के कानूनसे रैयतोंको जमीनमें कुछ कुछ हक मिला। किंतु इससे उनका कष्ट दूर नहीं हुआ। पहले पहल प्रजा मूर्ख थी, अब शिक्षित सम्प्रदाय इस विषयमें उन्हें ज्ञान देने लगे। कानूनके मुताबिक काम होनेसे उन लोगोंकी अवस्था कुछ सुधर सकती थी, परन्तु कृषिविद्या सिखानेके लिये विद्यालय या तगावी रुपयेके लिये व्यवस्था नहीं की गई। इसलिये कुछ भी तरक्की न हो सकी।

इसी समय ष्टोलिपिन साहबका देहान्त हुआ। पुराने सचिव एम कोकोसो (Kokovtsov) प्रधान मन्त्री हुए। उन्होंने राजस्व बढ़ा कर और व्यय घटा कर तीन वर्षके अन्दर राजकोषको भर दिया। खास (Monopoly) आबकारी महालसे बहुत आमदनी होती थी। रसियन बड़े शराबी होते हैं। डूमाके चेलीसिभ नामक एक मेम्बर इस मोनोपोलीको उठा देनेके लिये कोशिश करने लगे। बहुतसे लोगोंने उनका साथ दिया। परन्तु आबकारी महालसे सरकारको बहुत आमदनी थी, अतः अर्थसचिव उनके विरुद्ध खड़े हुए और मोनोपोलीको नहीं छोड़ा। अनन्तर १९११ ई०को रूसमें घोर दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ। गरीबोंको मदद देनेके लिये कोई भी खड़ा न था। रूस-सरकारसे मदद मिलना राजपुरुषोंके ऊपर निर्भर करता था। इसलिये केवल धनी लोगोंको कुछ सहायता मिली, गरीबको कौन पूछे। भूखसे बहुत आदमी मर गये। असन्तोष भयङ्कर रूप धारण करने लगा। सैनिकविभागके प्रधान आर्क ड्यूक सर्ज मिखाइलोविच (Serge Mikhailovich) और आर्यपत्नीके प्यारे रासपुटिन (Rasputin)के ऊपर सभी आदमी अप्रसन्न थे। इन सब कारणोंसे ३री डूमाका भी अन्त हुआ।

अनन्तर ४थी डूमा संगठित हुई। इस समय सभी प्रकारके दल गवर्मेण्टके विरुद्ध खड़े हो गये। इस प्रकार डूमाके मेम्बर नेशनलीष्ट हो गये।

१९११ से १९१४ ई० तक बाहरी देशोंसे नई नई बातें उठने लगीं। पश्चिम यूरोपका सारा देश जर्मनीके विरुद्ध खड़ा हुआ। अष्ट्रियाके सम्राट्‌ने जर्मनोंकी सहायतासे बोसनिया और हर्जगोभिना पर अधिकार जमाया। १९१२ ई०में बुलगेरिया, सरभिया और ग्रीसने मिल कर तुर्कोंके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी और रसियनसे सहायता मांगी। जार निकोलस उन्हें सहायता देनेको राजी थे, क्योंकि बलकानके छोटे छोटे राज्यों पर रूसका प्रभुत्व बहुत दिनोंसे चला आ रहा था और पश्चिम-यूरोपसे उन्हें मदद मिलती थी। लेकिन प्रधान मन्त्री साजोनभ (M Sazonov)ने कहा था, कि हम लोगोंको इस युद्धमें भाग लेना उचित नहीं। जारने भी इसे समर्थन किया। रूससे मदद नहीं मिलने पर भी बलकानराजोंने मिल कर तुर्कोंको परास्त किया। मध्य यूरोपकी राजशक्ति अर्थात् जर्मनी और अष्ट्रियाने सोचा कि बलकानकी एकत्रित शक्तिके प्रबल होनेसे वे लोग पूरबमें अपनी गोटी न जमा सकते। अष्ट्रियाने सरबियाको अड्रियाटिक समुद्रकी तरफ बढ़ने न दिया। सरबिया और मोण्टिनिगरोने जो अलबेनियामें अधिकार पाया था वह छीन लिया गया। जब पश्चिम दिशासे पीछे हटना पड़ा, तब सर्बलोगों (Serbs)ने पूरब मसिडोनियाका पश्चिम भाग दखल करना चाहा। वह भाग पहले सरबियाके दखलमें था, पीछे एक सन्धिके अनुसार बुलगेरियाके दखलमें आ गया। रूसके मन्त्री एम सजोनभने सोचा कि बलकान शक्तियोंमें फूट होना अच्छा नहीं। स्वयं जार निकोलसने इसका निबटेरा करनेकी कोशिश की। लेकिन बुलगेरियाके राजा फर्डिनन्द बड़े चतुर थे। वे मेल करनेको राजी न हुए। जब सरबियाके साथ रुमानिया और ग्रीसने मिल कर बुलगेरिया पर हमला किया, तब बुलगेरियराज संधि करने बाध्य हुए। बुकारेष्ट सन्धिके अनुसार रुमानियाको दबरुजा (Dobrudja), सरबियाको पश्चिम मेसिडोनिया और ग्रीसको येस तथा बाकी मेसिडोनियाको मिला। बुलगेरिया अब इस प्रकार कई भागोंमें बट गया

और रसियनसे उन्हें कुछ भी सहायता न मिली, तब राजा फर्दिनन्दने जर्मनी और अष्ट्रियासे मेल करना चाहा।

अष्ट्रियाने सरविया पर घोर अत्याचार किया था। सर्वलोगोंने गुस्सेमें आ कर अष्ट्रियाके राजकुमार आर्च ड्यूक फ्रांज फारदिनन्द (Archduke Franz Ferdinand)को मार डाला। अष्ट्रिया और जर्मनी मिल कर सरबिया पर चढ़ाई करनेकी बड़ी तैयारी करने लगे। पूर्व दक्षिण यूरोपकी श्लभजाति पर मध्य यूरोपकी ह्यून और ट्युटोनिक जातिका जो आधिपत्य था अर्थात् उनके प्रति जो अत्याचार किया जाता था, वह श्लभ जातिकी प्रधान शक्ति रसियनके लिये बड़ी ही लज्जाकी बात थी। डूमामें यह बात पेश की गई। काउण्ट वीटोने (Count Witte) जो एक बुद्धिमान् आदमी थे, कहा, "रसियनको किसीका भी पक्ष नहीं लेना चाहिये। कुछ नुकसानी भी क्यों न हो उसे बर्दाश्त कर लेना उचित है।" परन्तु डूमाके कुल मेम्बर, लेटजाति (Letts), एस्थोनियन जाति (Esthonians) यहूदी (Jeus) सबोंने एक स्वरसे कहा, कि स्वदेशके लिये हम लोगोंको मर मिटना चाहिये। पोलण्ड ओर लिथुआनियाने कहला भेजा कि वे लोग भी उन्हें युद्धमें मदद पहुंचायेंगे। सभी जाति गवर्मेण्टकी ओरसे युद्धके लिये तैयार हो गई। ऐसी सहायता प्रजा लोगोंसे रूस-गवर्मेण्टको कभी नहीं मिली थी। उस समय जर्मनी पर रूस-जनता ऐसी चिढ़ गई थी, कि उन्होंने St. Peter's burgh नामक ट्युटनिक भाषाका परिवर्त्तन कर स्लाभोनिक भाषामें राजधानीका पेट्रोग्राड नाम रखा। परन्तु कुछ सोसियालिष्ट इस युद्धके विरुद्ध थे। देशके अधिकांश मनुष्य लड़ाईके लिये खड़े थे। इसलिये उन लोगोंकी बात पर कान नहीं दिया गया। इस प्रकार रसियन लोग जगत्व्यापी युद्धक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए।

इस समय रूस-योद्धाओंकी संख्या सब मुल्कोंसे बड़ी चढ़ी थी। यदि रसियन गवर्मेंट यथेच्छाका परित्याग कर विचारके साथ सैन्यपरिपालन करती तो युद्धमें शान्ति स्थापित हो सकती थी। परन्तु राजपुरुषोंमें बुद्धिके अभावसे शांतिके बदले अशान्ति आरम्भ हो गई।

युद्धके समय आबकारीका खास बंदोबस्त उठा देना उचित था। क्योंकि ऐसा रहनेसे लोग मनमाना शराब पीते और नशेमें आ कर असीम साहससे युद्ध कर सकते थे। लेकिन ऐसा हुआ नहीं, जिससे वे हमेशा असंतुष्ट रहा करते थे।

प्रधान सेनापति ग्रैण्ड ड्यूक निकोलसने पोलण्डवासियोंसे सहायता मांगते हुए कहा, कि यदि वे लोग जर्मनके विरुद्ध युद्धमें रूसको मदद देंगे, तो उन्हें स्वायत्त शासन मिलेगा। लेकिन जारकी तरफसे ऐसा हुकुम जारी न हुआ। गवर्मेण्टकी कमिटीमें इसकी बात उठी, पर पोलोंको कुछ नहीं मिला। राजपुरुष पहलेकी तरह पोलैण्डमें राज्यकार्य चलाने लगे। इसलिये पोलैण्डवासियोंकी आशा पर पानी फेर गया और वे लोग रसियन पर अविश्वास करने लगे। कोई कोई यहूदी शत्रुके गुप्तचरका काम करने लगा। युद्धमें भी बदनीति शुरू हुई। सैन्यदलमें एक भी उपयुक्त परिचालक न था। दक्षिण रूसके प्रधान सेनापति एलेक्सिव (Alexeiv) तथा रुजकी (Ruzsky), ब्रूसीलव (Brusilov) और रडकोमित्रीभ (Radko Dmitriev) ये सब प्रथम श्रेणीके सेनापति थे। छोटे छोटे कर्मचारियों और योद्धाओंमें बदनीति घुस गई। वे लोग मनसे लड़ाई नहीं करते थे। एक दल सेनाको नष्ट होते देख दूसरा दल उसको मदद नहीं पहुंचाता था। क्योंकि सेनापतिसे उसे आज्ञा नहीं मिलती थी। एक सेनापतिने रिशवत ले कर अपनी तरफका नकशा शत्रुके पास भेज दिया। इसका परिणाम यह हुआ, कि सेनापति सीवर (Siver)-की फौज शत्रुके जालमें फंस कर नष्ट हो गई। १९१५ ई०में मालूम हुआ, कि युद्धका सामान सभी जगह यथेष्ट परिमाणमें नहीं पहुंचता है। नाना प्रकारकी असुविधाओंसे लड़ कर एलेक्सिव पीछे हटते गये। आखिर भीना और निष्टर नदीके किनारे उन्होंने शत्रुको रोका। एलेक्सिवके बुद्धिकौशलसे जो सब सेना बच गई उन्हें इस बातका दुःख हुआ, कि जिनके लिये हम लोग जान दे रहे हैं, वे हमारी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। गार्लिस (Gorlice) और क्रास्नोष्टभ (Krasnostav) के युद्धमें जो परिणाम हुआ था, वह १९१७ ई०का विद्रोह है। जब गवर्मेंटको उदास देखा, तब लोगोंने एक कमिटी बनाई। उस कमिटीसे अस्पताल आदि खोले गये जिसमें घायल सिपाहियोंका इलाज होने

लगा। इसलिये छोटे छोटे आफिसर कमिटीके मालिकोंसे मिलने लगे। जब तमाम रूसमें ऐसा बंदोबस्त हुआ तब युद्ध-मन्त्री सुखोलिनोव (Sukhomlinov) बर्खास्त किये गये और उनका विचार होने लगा। प्रधानमन्त्री गोरेमिकिन (Goremykin) को इस्तीफा देना पड़ा। उनकी जगह ष्टुर्मर (Sturmer) मन्त्री हुए। ये सब मिलके जार-परिवारकी खुशामद किया करते थे। जार-पत्नी आलेक्ज़ण्ड्रा फोओडोरोनाकी उन पर बड़ी कृपा रहती थी। जार-पत्नी साम्राज्यके सभी कामोंमें अपना मत चलाने लगी। उनके इच्छानुसार बहुतसे मनुष्य दरबारमें नियुक्त हुए। ग्रेगरी रासपुटिन नामक एक कृषक उनका बहुत प्यारा था। इसलिये तमाम दुनियामें पेट्रोग्राडका दुर्नाम फैल गया। जब दरबारमें हुआ या प्रजासाधारणकी बात न सुनी गई, तब एक मेम्बरने मन्त्रियोंसे कहा कि आप लोगोंका बुरा दिन आ चला, अब जातीय मन्त्रि-सभा गठित की जाय। ष्टूर्मरने प्रधान मन्त्री पद पानेसे पहले एक बार पोलैण्डको स्वायत्त-शासन देनेकेलिये सुफारिश की थी। इसलिये जार-पत्नीने गुस्सेमें आ कर उन्हें बर्खास्त कर दिया था। इसके बाद जार-पत्नी अपने इच्छानुसार एक एक कर सभी मन्त्रियोंको नियुक्त और कुछ दिन बाद अलग करती गई। देशके प्रधान प्रधान व्यक्तियोंने भयभीत हो कर एक ऐसा कैबिनेट (Cabinet) या कर्मकारिणी लिये मन्त्रिसभा कायम करनेका प्रस्ताव किया कि जिस पर सब कोई विश्वास कर सकें।

इस समय बहुतसे देशनायक खड़े हुए। देश और शासनतन्त्रकी उन्नति किस प्रकार हो सकती है यही उन लोगोंका उद्देश्य था। पहले पहल देशमें ओक्टोब्रिष्ट (Octobrist) और केडेट (Cadets) नामक दो सम्प्रदाय अग्रनायक थे। लड़ाईके समय देशकी उन्नतिका उपाय नये नये ढंगसे चलने लगा। विद्वान् और बुद्धिमान् लोगोंने पुरानी गवर्मेंण्टको बिलकुल बदल कर प्रजासाधारणके मतसे नई गवर्मेंण्ट खड़ी करनेके लिये विद्रोह उपस्थित करनेकी आवश्यकता देखी। तीन प्रकारके अग्रनायक खड़े हुए। पहला दल चाहता था, कि यूरोपके पश्चिम देशोंमें लड़ाईके सामान और योद्धाओंके लिये जैसा प्रबन्ध था, रूसमें भी वैसा ही होना चाहिये। दूसरा दल प्रजासाधारणका शिक्षा और उत्तेजना चाहता था। थार्कहेन तथा और दूसरे दूसरे सुधारकोंने देशकी आर्थिक उन्नतिके लिये जो उपाय सोचा था तीसरा दल उसी राह पर चलना चाहता था। समाचार-पत्रमें इन सब बातोंका आन्दोलन शुरू हुआ। १९०५-६ ई०के विद्रोहके बादसे The messenger of revolutionary Russia नामक एक समाचार पत्र विद्वानों तथा बुद्धिमानोंको लड़ाईमें साथ देनेके लिये हमेशा उभाड़ता आ रहा था। अब कृषकोंको भी उन्हें मदद पहुंचानेके लिये कहा गया। करवृद्धि, जापानके साथ युद्धमें रूसको दुर्दशा और गवर्मेण्टकी निर्बुद्धिता इत्यादि बातोंका प्रचार करना सोसियल डिमोक्रेटिक (Social Democratic) दलका प्रधान कार्य था। १९०० ई०से लेलिन और मार्टम "इस्क्रा" (Iskra) नामक समाचार-पत्र और ज़ोरिया (Zoria) नामक मासिकपत्रमें बहुत लम्बा चौड़ा प्रबन्ध लिखते आ रहे थे। व्लाडिमिर लेनिन (V, Lenin) साहबका मत था, कि विद्वान् और बुद्धिमान् लोग इकट्ठे हो कर सलाह करेंगे और प्रत्येक जनसाधारण विना किसी आपत्तिके उस सलाहको काममें लावेंगा। डिमोक्रेटिक या प्रजासाधारण मूर्ख और विद्वान् सब किसीकी सलाहसे काम नहीं चलेगा। इसी कारण उन लोगोंमें फूट हो गई जिससे दो दल हो गये। पहला दल बालसेविक (Bolsheviks) था। इसकी संख्या अधिक (Majority) थी। दूसरे दलमें कम लोग (minority) थे। मैनसेविक (Mensheviks) उसका नाम रखा गया। प्लेकानो (Plekhanov) बोलसेविक दलके और लेनिन मैनसेविक दलके प्रधान हुए। दोनों दलमें केवल नामका ही प्रभेद था, मूल उद्देश्य दोनोंका एक था। मार्था दवेन चाहते थे, कि हर एक शहरके महाजनोंको एकत्र करनेसे रुपयेका अभाव नहीं रहेगा। लेनिन संवादपत्रमें लिखते थे कि रूसदेशमें शहरोंकी संख्या थोड़ी है, अधिकांश कृषक हैं, वे भी देहातमें रहते हैं। रूसमें विद्रोह खड़ा करनेके लिये कृषकोंको जगाना उचित है। १९१७ ई०में सोसियल डिमोक्रेटिक दल लेनिन और बोलसेविक दोनों दलमें

मिल गया। इस अवस्थामें रूसके जारने राजधानी, दरबार और डूमासे अलग हो कर पेट्रोग्राड छोड़ दिया और अपनी रक्षाके लिये वे सेनाओंके बीचमें रहने लगी। जारपत्नी शहरमें रह कर सब काम देखती थी। वह पादरियोंसे सभी लोगोंको वशीभूत करनेकी सलाह किया करती थी। इस प्रकार जारने शासनकार्य्यका कुल भार अपनी स्त्री पर छोड़ दिया। स्त्रीबुद्धिप्रलयंकरी। उसके शासनसे सबके सब अप्रसन्न हो गये। जर्मनीसे लड़ाई बहुत जोरों चल रही थी। सेनाका विशेष प्रयोजन था। युवकोंको बलपूर्वक ला कर कुछ कवायद सिखलाई जाती थी। पहले जो सब आदमी लड़ाईमें गये थे उन पर गवर्मेण्टकी कुछ भी निगाह न थी, इस कारण लोग नई फौजमें भर्त्ती होना नहीं चाहते थे। बलपूर्वक नियुक्त किये गये योद्धाओंसे क्या काम हो सकता था? बड़े बड़े कारखानों या कोठियोंमें जो लोग काम करते थे उन्हें नेशनलिष्ट और सोसियालिष्ट दोनों दल तरह तरहकी सलाह देते थे। वह सलाह गवर्मेण्टके विरुद्ध थी। कृषकों पर लड़ाईके खर्चके लिये जो नया कर लगाया गया था, उससे वह तंग तंग आ गये थे। विद्वान् और बुद्धिमान् लोग गवर्मेण्टका परिवर्त्तन चाहते थे। राजदरबारमें उच्च कर्म्मचारीसे ले कर निम्न तक यही चाहते थे कि किस प्रकार जार, उनकी पत्नी तथा उनके यारोंको यमपुर भेज कर देशमें शान्ति स्थापन की जाय। परन्तु बाहरमें शत्रुओंसे युद्ध चल रहा था, इस हालतमें अन्तर्विप्लव खड़ा करना उचित न समझा गया। जब देशके आदमी भूख और बीमारीसे मरने लगे, तब विद्रोह एकाएक उठ खड़ा हुआ। १९१७ ई०को १५वीं मार्चको जार २य निकोलसने अपने भाई माइकेलके लिये सिंहासन छोड़ दिया। माइकेल बुद्धिमान् थे। उन्होंने देखा, कि जब तक देशके सभी आदमी मिल कर उन्हें गद्दी पर न बैठा दें, तब उनका बैठना उचित नहीं। बैठनेसे जान पर बीतेगी, इसीलिये उन्होंने सिंहासन पर बैठना नहीं चाहा। इस प्रकार एक सप्ताहके अन्दर रोमानव‌वंशकी राजशक्ति लोप हो गई जिससे लोगोंके आनन्दका पारावार न रहा। प्रोभिजनल (Provisional) गवर्मेण्ट या जब तक कोई पक्की गवर्मेण्ट न बने तब तकके लिये एक नई गवर्मेण्ट बनाई गई। उस गवर्मेण्टकी जो कौंसिल या मन्त्रिसभा बनी थी, उसमें स्थिर हुआ, कि जर्मनीसे लड़ाई करनेका प्रयोजन नहीं क्योंकि उनकी धारणा थी, कि जर्मनीमें जो सब सोसियलिष्ट हैं, वे सब विद्रोही हो कर राजशक्तिसे लड़ेंगे। डूमा भी उठा दी गई। लेकिन अधिवासी किसीको नहीं मानते थे। एकके बाद एक मन्त्री बदलता गया। पीछे सोभियेट आव वोर्कमेन तथा सोलजर्स (Soviet of workmen & soldiers) नामक एक दल खड़ा हुआ। उन्होंने भी कोई तरक्की न की। कुछ दिन बाद बोलसेविक दलपति लोग जो बाहरमें थे, पहुंच गये। लेनिन जर्मन कैशरकी मददसे स्वीजर्लैण्डसे जर्मनी होते हुए और ट्रोस्क (Trotsky) अमेरिकासे रूसमें आ धमके। युद्ध-मन्त्री ए, एफ, केरेन्स्की (A. F. Kerensky) विद्रोहिदलमें मिल गये। विद्रोहियोंने उन्हींको प्रधान बनाया। १९१७ ई०को १४वीं जुलाईको पेट्रोग्राडकी एक फौज बागी हो गई। गवर्मेण्टने उसका दमन किया। लेकिन गवर्मेण्टको भयका कारण था, इस कारण ट्रोस्की आदि बोलसेविक दलपतिगण जो सब पकड़े गये थे बिना दण्डके छोड़ दिये गये। लेनिन बाहर ही बाहर भाग गये थे। केरेन्स्की पहले युद्धमन्त्री थे, अब प्रधान मन्त्रीके पद पर प्रतिष्ठित हुए। वे रिभोल्युशनरी गवर्मेण्ट बनाने लगे। मोस्कोमें एक कांग्रेस बैठी। उसमें रूसके प्रत्येक राज्यसे प्रधान प्रधान व्यक्ति बुलाये गये थे। लेकिन बोलसेविक लोग उसमें शामिल न हुए। केरेन्स्कीने उस सभामें केवल विद्रोहीके विषयमें जोर दिया, देशमें शान्ति लानेके प्रथम उपाय नीतिवश्यता (Discipline) के विषयमें कुछ भी न कहा। इस कारण वे कृतकार्य न हो सके। प्रधान सेनापति कर्निलव (Kernilov) उनके विरुद्ध खड़े हुए और प्रधान होनेके लिये कोशिश करने लगे। लेकिन केरेन्स्कीने उन्हें हराया और स्वयं सेनापतिका पद भी ग्रहण किया। १९१७ ई०के नवम्बर मासमें ट्रोस्की (Trotsky)-ने एक सोभियेट मिलिटरी रिभोल्युशनरी कमिटी स्थापित की। बाल्टिककी नौसेना भी उसमें मिल गई। केरेन्स्कीने मन्त्रिसभामें कहा, कि उन लोगोंको दबानेका बंदोबस्त किया जा रहा

है, किन्तु यथार्थमें उनके पास बहुत थोड़ी सेना थी, दो फौज पुरुषकी और एक स्त्रीकी थी। ७वीं नवम्बरको नौसेनापतिने शीतवास (Winter palace) पर चढ़ाई कर दी। कुछ देर स्त्रीसैन्यसे लड़ कर उन्होंने मन्त्रियोंको पकड़ा। केरेन्स्की जो प्रधान मन्त्री और प्रधान सेनापति थे, पहले ही जान ले कर भाग गये थे। मोस्कोकी गवर्मेण्टकी भी ऐसी ही दुर्दशा हुई। वहांकी पलटनने अपने कितने अफसरों और सेनापतियोंको मार डाला था। सोभियट रसियाने जर्मनी और अष्ट्रियाके साथ सन्धि करना चाहा। इसके लिये सबको खबर दी गई। सोसियलिष्ट लोगोंने एक संगठित सभा (Constituent Assembly)के लिये निर्वाचनका प्रबन्ध किया। बीस वर्ष वालोंको चाहे वे पुरुष हो वा स्त्री भोट देना अधिकार दिया गया। प्रत्येक जिलेमें इस प्रकार निर्वाचन हुआ। संगठित सभाके लिये कुल ६०० मेम्बर निर्वाचित हुए। लेकिन बोलसेविक लोग इसे नहीं चाहते थे। उक्त सभाके सदस्योंने जब पेट्रोग्राडके टोरीडा भवनमें सभा करनेके लिये आना चाहा, तब बोलसेविकोंने हथियारबंद हो उन्हें मार भगाया। पीछे १९१८ ई०की १८वीं जनवरीको उक्त सभाकी फिरसे बैठक हुई। इस बार भी सिर्फ एक दिन सभा कर वे पुनः भगा दिये गये। इसके बाद दोनों सम्प्रदायने मिल कर जर्मनीके पास संधिका प्रस्ताव इस आशय पर भेजा कि कोई भी पक्ष एक दूसरेका राज्य नहीं ले सकता और न किसीको युद्धका खर्च ही मिल सकता है। ब्रेष्टलिटोस्क (Brest Litovsk) नामक शहरमें सन्धिकी बैठक हुई। जेनरल होफमानने (Hoffmann) और वैरन कुलमान (Kuhlmann)ने अष्ट्रिया और जर्मनीकी तरफसे दावा किया, कि पोलैण्ड और कुरलैण्ड (Courland) उन्हें छोड़ देना होगा तथा फिनलैण्ड, स्थोनिया और लटेभियाको स्वाधीन राज्य मानना होगा। साथ साथ नीपर नदीके दोनों किनारेका उक्रेन (Ukraine) पर रूसका अधिकार न रहेगा तथा ३०० करोड़ रुबल उन्हें क्षतिस्वरूप देने होंगे। इस नये सन्धिपत्र पर ट्रौस्कने हस्ताक्षर नहीं किया और वे उठ कर चले गये। अनन्तर जेनरल होफमान फौज ले कर आगे बढ़े। सोभियटको मजबूर हो कर सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ा। लेलिनने कहा जब जर्मन रूसकी छाती पर चढ़ बैठा है, तब दम लेनेका उपाय जरूर करना चाहिये। यदि उक्त सन्धिकी शर्तें काममें लाई जातीं, तो रूस जर्मनके बिलकुल अधीन हो जाता। लेकिन फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन और युनाइटेडष्टेटने मेल कर जब जर्मनी, अष्ट्रिया और बुलगेरियाको परास्त किया, तब रूसको दम घोटनेका अवसर मिला। बाहरके शत्रुओंसे रूसका पिण्ड तो छुटा, पर अन्तर्विप्लव जोरों चलने लगा। तमाम खून खराबी होने लगी। अराजकता फैल गई। जार, जार पत्नी और राजपरिवार साइबेरियामें निर्वासित हुए और वहीं सबोंकी हत्या की गई। (१९१८ ई० जुलाई)। १९१८ ई०के ग्रीष्मकालमें वैदेशिक राजदूत एक एक कर चले गये। बोलसेविके विरुद्ध एक दल फौज खड़ी हुई। सम्मिलित राजशक्ति उस फौजको मदद देती थी। फ्रान्स रूसके विरुद्ध पोलैण्ड और रुमानियाको तथा ग्रेटब्रिटेन लैटभिया, स्थोनिया और लिथुनिया, इन तीन बालटिक राज्यको एवं जार्जिया अर्मेनिया और अजरबैजन इन तीन ककेसियन राज्यको स्वाधीन होनेके लिये मदद देते थे। साइबिरिया, मंचुरिया आदि नाना स्थानोंमें सेनापतियोंने प्रधान हो कर पृथक् पृथक् गवर्मेण्ट स्थापन करना आरम्भ कर दिया। यदि सभी एक साथ मिल कर शासनकार्य चलाते, तो रूस पृथ्वीके मध्य अद्वितीय शक्तिमें परिणत हो सकता था। किन्तु बार बार अन्तर्विप्लवसे ऐसा होने नहीं पाया। बोलसेविक गवर्मेण्टके अत्याचार तथा रूसकी अपमानजनक सन्धिके कारण बुद्धिमान् लोगोंने उनके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। १९१८ ई०के जुलाई मासमें जर्मनीके राजदूतकी हत्या की गई। लेलिन भी सोसियलिष्टों द्वारा बुरी तरह घायल हुए थे। उन्होंने मोस्को नगरकी बोलसिक गवर्मेण्टको ध्वंस करनेका संकल्प किया था, किन्तु कृतकार्य न हो सके। दक्षिण ओरसे कोलचक, डेनिकिन आदि सेनानायकगण दलबलके साथ मध्यएशियाकी तरफ अग्रसर होने लगा। ब्रिटिशसेनापति जेनरल आयरनसाइड (Ironside) कोलचकसे मिले। पुराने रेड (Red) अर्थात् रक्तवर्णवस्त्रधारी सेनादल फिरसे संगठित किया गया। आदेशपालनका कठोर नियम जारी हुआ। आदेशका पालन न करनेसे मृत्युदण्डकी व्यवस्था हुई। इस सैन्यदलकी

संख्या क्रमशः बढ़ने लगी। अपने विरोधी ह्वाइट (Whites) वा श्वेतवस्त्रधारी सैन्यदलकी अपेक्षा इन लोगोंकी सैन्यवृद्धिका प्रधान कारण यह था, कि बोलसेविकोंने जमींदारोंसे जमीन छीन कर कृषकोंको दे दी थी। इस कारण कृषकोंको पूरी धारणा हो गई, कि हम लोग अपनी जमीनकी रक्षाके लिये युद्ध करने जा रहे हैं और श्वेतवस्त्रधारी जमींदारोंको जमीन वापस दिलानेके लिये लड़ रहे हैं। गवर्मेण्टके असन्तुष्ट कर्मचारियों तथा जमींदारोंने जो श्वेतदलका साथ दिया उससे कृषकोंकी धारणा और भी पक्की हो गई। कोलचक और डेनिकिन एक।एक बहुतसे देशों पर अधिकार कर बैठे। किन्तु वहांके अधिवासियोंको वे अपना मूल उद्देश्य समझा न सके, आखिर कोलचक पकड़े गये और बोलसेविकके कर्तृपक्षसे उन्हें प्राणदण्ड मिला। तभीसे रेडगण प्रबल हो उठे। पश्चिम यूरोपकी मिलित शक्ति अर्थ और युद्धोपकरणसे श्वेतदलको मदद दे रही थी।

कुछ समय बाद श्वेतदल परास्त हुआ और रेडदलका मूलमन्त्र साम्यवाद—धनी और निर्धनको समान करना चारों ओर फैलने लगा। साम्यवादका प्रधान उद्देश्य इस प्रकार है—सभी प्रजाका समान अधिकार रहेगा, कोई भी किसीसे बड़ा छोटा नहीं। जिसके पास जो भूमिसम्पत्ति, धनरत्न वा अन्य द्रव्य है, वह सभी राजाका है। उस पर सबोंका समान अधिकार रहेगा। कोई अधिक धनी हो कर विलासितामें समय बितायेगा, कार्य कुछ भी न रहेगा और कोई अपने पेटके लिये रात दिन परिश्रम कर शरीरको सुखा देगा। बोलसेविकदल यह बिलकुल नहीं चाहता है। इस कारण उन्होंने स्थिर किया, कि सभीको परिश्रम कर जीविकानिर्वाह करना होगा। जमींदार और महाजन इसके विरुद्ध लड़े हुए सही, पर कुछ कर न सके। कारण, जनसाधारणके हकमें यह बहुत अच्छा था, इससे बोलसेविक दलकी संख्या दिनों दिन बढ़ने लगी। मिलित शक्तिके सैन्यदलमें भी रेडदलका प्रचारकार्य चलने लगा। सिवास्तोपोल और ओडेसा बन्दरके फरासी जहाजों पर रेड लोगोंकी पताका उड़ने लगी। इस कारण फरासीसी लोग क्रिमिया और दक्षिण-पश्चिम रूससे अपनी सेना उठा ले गये। फ्रान्सके श्रमिकदल और रडिकेल (Radicals) गण रूसके बोलसेविक सम्प्रदायके साथ सहानुभूति दिखाने लगे। १९१९ ई०के जनवरी मासमें ब्रिटेन, फ्रान्स, इटली और युनाइटेड ष्टेट प्रिंकीपो नामक स्थानमें मिले और अभी उन लोगोंको वश करना चाहिये, इस पर विचार करने लगे। किन्तु बहुमत हो जानेसे वह बैठक कार्यकरी न हुई। रूसके उत्तर-पश्चिम एस्थोनिया प्रदेशमें एक स्वाधीन राज्य स्थापन करनेके लिये इङ्गलैण्ड तब तक सहायता दे रहा था। किन्तु प्रधान मंत्री लायेड जार्जने रूसको मदद न पहुंचा कर अपनी सेना उठा ले जाना स्थिर किया। वाणिज्य द्रव्यके लोभसे तथा भारतवर्षकी ओर अग्रसर न होगा, इस प्रलोभनसे इङ्गलैण्ड और इटलीने रूससे सम्बन्ध छोड़ना न चाहा। किन्तु फ्रान्स और युनाइटेड ष्टेटने इस नृशंस गवर्मेण्टके साथ सम्बन्ध रखना अपना कर्त्तव्य न समझा।

इस समय १९१८ ई०के जुलाई मासमें मोस्को नगरमें सभी सम्प्रदायने मिल कर सोभियट कांग्रेसका प्रथम अधिवेशन किया। इस अधिवेशनका नाम कोम्युनिष्ट (Communist) रखा गया। इसके ११३२ मेम्बरोंमेंसे ७४५ बोलसेविक, ३५२ सोसियलिष्ट और बाकी अन्यान्य सम्प्रदायके लोग थे। इस कांग्रेसकी बैठक कमसे कम छः मासमें होना उचित था, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इस कारण २०० सदस्योंको ले कर एक कार्यनिर्वाहक समिति संगठित हुई। वही समिति अभी वृहत् रूस साम्राज्यका शासन करती है।

अभी रूसका नाम यूनियन आव सोसियलिष्ट रिपबलिक हुआ है। मोस्को शहरमें राजधानी उठा कर लाई गई और पूर्व-राजधानी पेट्रोग्राडका नाम बदल कर 'लेनिनग्राड' रखा गया है। युद्धके पहले रूसका आयतन ८२०००००० वर्गमील था। इसमेंसे तीन हिस्सा एशियामें और एक हिस्सा यूरोपमें था। युद्धके बाद यूरोपमें रूसका आयतन घट गया। पहलेके रूस साम्राज्यसे कई एक छोटे छोटे राज्य निकल गये। फिनलैण्ड, एस्थोनिया, लैटेभिया, लिथुआनिया और पोलैण्ड स्वतन्त्र राज्य बन गया। कार्सप्रदेश तुरुष्कके और बेसअरेबिया रुमानियाके अधिकारभुक्त हुआ। इस प्रकार रूससे ८ लाख ४ हजार वर्ग मिलो-

मिश्र आयतन निकल गया। फिलहाल यूनियन आव सोभियट सोसियलिष्ट रिपबलिकके अधीन २ करोड़ १२ लाख वर्ग कि. मीटर अर्थात् ८१०८३८७ वर्गमील आयतन है। यहांकी जनसंख्या १३ करोड़ ६७ लाख है। वर्त्तमान कालमें छः स्वाधीन रिपबलिक मिल कर यूनियन आव सोभियट सोसियलिष्ट रिपबलिक बना है। उनके नाम और आयतन इस प्रकार हैं,—

नाम	आयतन
रसियनसोभियेट फिडरल सोसियलिष्ट रिपबलिक	१६७०००००० वर्ग. कि.मी
युक्रेनियन सो. सो. रिपबलिक	४०००००० "
ह्वाइट रसियन सो. सो. रिपबलिक	१००००० "
ट्रान्स ककेसियन सो. फि. सो. रिपबलिक	२००००० "
टर्कोमिन सो. सो. रिपबलिक	२००००० "
उसबेग सो. सो. रिपबलिक	३२१६०० " "

एशियाटिक रसिया साइबेरिया शब्दमें देखो।

धर्म।

इस विस्तीर्ण रूसराज्यमें आबादी अधिक होनेके कारण साम्प्रदायिकता भी विशेषरूपसे प्रबल थी। मनुष्यगणनाकी तालिकाके अनुसार वह विभिन्न सम्प्रदायभुक्त जनसंख्या इस प्रकार लिखा है।

प्रकृत ग्रीकसमाज और उस मतके निरपेक्ष सम्प्रदायभुक्त व्यक्तियोंकी संख्या प्रायः ६ करोड़ ६० लाख; युनाइटेड चर्च और आर्मेनीय १३ लाख ५० हजार; रोमन कैथलिक १ करोड़ २२ लाख; प्रोटेष्टण्ट ६७ लाख ५० हजार; यहूदी ४० लाख ५० हजार; मुसलमान १ करोड़ २१ लाख ५० हजार तथा विभिन्न धर्मावलम्बी कुल मिला कर २७ लाख हैं।

सारा रूससाम्राज्य ६४ धर्माचार्योंके धर्मशासन (Bishopric)की सीमाभुक्त है। धर्माचार्योंके अधिकारभुक्त ऐसे विभागोंमें ३ प्रधान धर्माचार्य (Metropolitans) और ६२ धर्मयाजक (Arch-bishops and bishops) नियुक्त हैं। फिलहाल रूसके विस्तीर्ण धर्मसमाजमें मठकी संख्यामें बहुत हेर फेर हुआ है।

रूसका 'पवित्र महाधर्मसङ्घ' (The Holy synod) उल्लेखनीय है। इस धर्मसभाका धनभंडार और आयविवरण सुननेसे चमत्कृत होना पड़ेगा।

अधिवासी।

रूसमें विभिन्न जातिका वास है। उनकी भाषा, वर्णमाला, सभ्यता और रीतिनीति स्वतन्त्र है। यहांके अधिवासी अधिकांश ककेसीय वंशभूत हैं तथा अवशिष्ट अर्थात् सौ भागमेंसे एक भाग अपनेको मुगल जातिका वंशोद्भव बतलाते हैं।

रूसकी ककेशीय जातिके जो सब वंशधर विद्यमान हैं वे श्लभणीर, तसुरे वा फिन, तुर्क या तातार, जर्मन, यहूदी और ग्रीक आदि विभिन्न नामोंसे पुकारे जाते हैं। अधिवासियोंके दश भागमेंसे एक भाग श्लभनीय शाखासे उत्पन्न है। वे लोग फिर रूस, पोल, लिथुयानीय, लिट्टे, बालाटोय और सर्बिय आदि नामोंमें विभक्त हैं। इनमेंसे रूसकी संख्या प्रायः ५ करोड़ है। ये लोग साम्राज्यके ठीक मध्यस्थलमें निपर और बलगा नदीके बीच वास करते हैं। इसके सिवा उत्तरमें यूरल पर्वत और श्वेतसागरके मध्यस्थलमें तथा दक्षिण डान और निष्टर नदीके मध्यवर्त्ती भूभागमें रसियन लोग रहते हैं। यह सुदृढ़ विस्तृत रूसजाति बड़े और छोटे नामक दो विभागमें विभक्त है। उक्रेन प्रदेशमें ही छोटे वा लिट्‌ल-रूसका वास है। इन्हींके वंशधर इतिहास-प्रसिद्ध "कसाक" जाति हैं। इन लोगोंके बलवीर्य, साहस और औद्धत्यका परिचय किसीसे भी छिपा नहीं है। धीरे धीरे पोल, तातार और कालमाक जाति आ कर इन लोगोंसे मिल गई है। कसाक बिलकुल स्वाधीन है। किसीके निकट उन्होंने स्वाधीनता नहीं बेची है। उधर किसी सम्भ्रान्त व्यक्तिके निकट अथवा नाइट उपाधिधारी सम्भ्रान्त जुर्गनोंके निकट बड़े या श्वेतरूससाम्प्रदायमेंसे बहुतोंने

अपनेको बेच लिया है। ये लोग अपने इच्छानुसार कार्य नहीं कर सकते। सभी अपने अपने मालिकके आदेशानुसार कार्य करनेको बाध्य हैं। ये लोग Bondsmen कहलाते हैं।

पोल और रूसजाति एकत्र पोलण्डप्रदेशके शासनाधीन वास करती है। पोलोंका आचार-व्यवहार रूसोंसे कहीं अच्छा है। वे लोग बहुत साफ सुथरे रहते हैं, किन्तु सभ्यजातिकी गौरवस्वरूप शिल्पविद्योत्पन्न द्रव्यका वाणिज्य है। यहां तक कि श्रमफललब्ध सभी श्रेणियोंके पण्यद्रव्यके वाणिज्यमें वे अपेक्षाकृत पराङ्मुख हैं।

विलना और मिन्सक प्रदेशमें लिथुयानीय जाति रहती है। इनकी प्रचलित भाषा साधारण श्लभनिक भाषासे बहुत फर्क पड़ती है। इसमें रूस भाषागत अनेक शब्दोंका मेल देखा जाता है। ये लोग सभी कृषिजीवी हैं।

लिथुयानियोंकी वासभूमिके उत्तर कुर्लाण्ड और लिवोनिया नामक स्थानमें लिट्ट जातिका वास है। इन लोगोंकी भाषा रूस अथवा लिथुयानियोंकी भाषासे एकदम विपरीत है। खेतीबारी करके ही ये लोग जीविका निर्वाह करते हैं। कुर्लाण्डवासी लिट्टगण क्रूर नामसे प्रसिद्ध हैं।

व्लाख वा वालखीयगण प्रुथ और निष्टर नदीके मध्यवर्त्ती बेसाराबिया नामक प्रदेशमें रहती हैं। लाटिन, ग्रीक, इटाली और तुर्की भाषाके मेलसे इनकी भाषा बनी है। ये लोग बड़े परिश्रमसे कृषिकार्य करते हैं। इनके मध्य कुछ सर्विय वा रेजवंश आ कर मिल गया है। एकाटारिनोश्लक विभागमें भी इस जातिका उपनिवेश देखा जाता है।

फिनलैण्ड उपसागरके दोनों किनारे फिन वा तसुदे जातिका वास है। इनकी चिपटी नाक और मुखकी आकृति देख कर जातितत्त्वविद्गण इन्हें मुगलवंशसम्भूत बतला गये हैं। किन्तु छोटे छोटे बाल और नीली आंखें देख कर कोई कोई जातितत्त्वविद् उन्हें ककेशीय जातिके मध्य स्थान देते हैं। फिनलैण्ड उपकूलवासी फिनजाति कृषिजीवी और गो मेषादिके पालक हैं। इन्हीं लोगोंकी एक शाखा लापलण्डर कहलाती है। ये लोग केवल हरिणका पालन करके ही अपना गुजारा चलाते हैं।

फिनलैण्ड उपसागरके दक्षिण भूभागमें एस्थिस वा एस्थोनीय जातिका वास है। एकमात्र कृषि ही इनका प्रधान अवलम्बन है। इनकी प्रचलित भाषा बहुत कुछ फिनोंसे मिलती है। १८१८ ई० तक ये लोग स्थानीय सामन्त वा जमींदारोंके निकट दासत्वशृङ्खलमें आबद्ध थे। पीछे सम्राट् अलेकसन्दरने इन्हें मुक्ति दी।

एस्थोनियोंकी वासभूमिके दक्षिण पश्चिम नदीके दोनों किनारे लिवि वा लिवोनीय नामक एक छोटी जातिका वास है। ये लोग कृषिजीवी हैं और फिनभाषा बोलते हैं।

उपरोक्त तसुदे जातिकी पूर्वविभागीय शाखा पश्चिम विभागसे बिलकुल स्वतन्त्र है। कब और किस प्रकार ये लोग फिन जातिकी वासभूमि फिनलैण्डका परित्याग कर ५सौ मील दूर रूस जातिकी इस सुविस्तृत वासभूमि पार कर यूरल पर्वतमालाके पश्चिम ढाले और मध्य वलगा नदीके किनारे आ बस गये हैं, उसे जाननेका कोई उपाय नहीं। इन लोगोंके मध्य सिरियानि, शीमर, भोगुले, वोतियाके, चुवास, चेरिमिज, मोर्द्भाइन और टेपासियारे आदि कई देखे जाते हैं।

डुइना नदीकी शाखा वाचेगदा नदी और काशनदीके मध्यस्थलमें विशेषतः वैचेगदाके दोनों किनारे और साइसोला नदीके मुहाने तकके विस्तृत स्थानमें सिरियाने शाखाका वास है। ये लोग रूसके प्रर्वोत्तर सीमांतमें वनमालाच्छादित पहाड़ी भूभागमें विचरण कर इच्छानुसार जंगली पशुका शिकार करते हैं तथा उसीसे जीविका चलाते हैं। इन दोनोंकी भाषा बहुत कुछ पारमियोंसे मिलती जुलती है।

वोतियाक जाति पारमियोंकी वासभूमिके पश्चिम विअत्का और कामा नदीके उत्पत्ति-स्थान-सन्निहित प्रदेशमें रहती है। भाषा और शारीरिक गठनमें ये लोग फिनजाति समान हैं। ये लोग खेतीबारी तथा गोमेषादि और मधुमक्षिकाका पालन कर अपना गुजारा चलाते हैं। स्वजातिके मध्य द्वेष और अत्याचारका

विचार करनेके लिये ये लोग अपनेमेंसे ही एक मण्डल चुन लेते हैं। ये लोग ईसाधर्मावलम्बी हैं।

चुवास और चेरिमिजगण बलगा नदीके दोनों किनारे कासान नामक प्रदेशके निकट रहते हैं। ये सभी ग्रीक समाजभुक्त ईसाई हैं। चुवासोंकी वासभूमिके पश्चिम मोर्डि वा मोर्ड्वाइन जातिका वास है। निजनी नवगोरोद और कासान-प्रदेशके मध्य प्रवाहित सुरनदीके किनारे ये खेतीबारी कर जीविका निर्वाह करते हैं। ये लोग ईसाई हैं, इस कारण इनका शारीरिक गठन रुसियनोंके जैसा है।

कृषि और वाणिज्य।

यहांके अधिवासी कृषिकार्य वा वाणिज्य व्यवसाय करके अपनी अपनी जीविका चलाते हैं। आठ भागमेंसे ७ भाग अधिवासी हल चलाते हैं। स्थानविशेषमें जमीनकी अवस्था अच्छी न होने अथवा अत्यन्त जाड़ा पड़नेके कारण खेतीबारीमें उतनी सुविधा नहीं है। जितोमीसे किव, तुला, रयजान, सिमविर्स्क और उफा तक दक्षिण-पश्चिमसे पूर्वोत्तरमें एक रेखा खींचनेसे दक्षिण और उत्तर रूसकी जमीनकी अवस्था अच्छी तरह जानी जा सकती है। इस रेखाके दक्षिण अष्ट्राखानके मोस्क और उत्तर ककेशियाके प्रेरि-प्रान्तर तक प्रायः २७ करोड़ एकड़ जमीन काली और मिट्टीसे भरी है। यहां शस्यक्षेत्र तृणाच्छादित प्रान्तर और वनमाला विराजित है। बीच बीचमें अनावृष्टिके कारण फसल नहीं होती।

उत्तरविभागमें तुषारजल प्लावित वा तुषारसिक्त मिट्टीकी उत्पादनशक्तिके अभावके कारण वहां अनाज बहुत कम उपजता है। यहांकी मिट्टी बलुई है, इस कारण शस्योत्पादनोपयोगी बनानेमें अधिक खाद देनी पड़ती है। पोदलिया, मध्य रूस, रयजान और उत्तर बलगा प्रदेशकी मिट्टीमें फोस्फेटस पाया जाता है।

रूसके दक्षिण प्रेरि-विभागमें धान्यक्षेत्र और गोचारणभूमि है। इसके उत्तरपूर्वोक्त मध्यरेखाके दोनों किनारे '*Ante-Steppe zone*' है। यहां केवल वन है, कहीं कहीं शस्यक्षेत्र नजर आता है। इसके भी उत्तर तृण पूर्ण मैदान और वन तथा उससे भी उत्तर निविड़ वनमाला है। यह वनमाला Forest zone कहलाती है।

शस्यादिके अलावा यहां चीनीके लिये बिट-पालङ्क नामक सागकी खेती बहुतायतसे होती है। यह चीनी और क्षेत्रजात पटसनसे रस्सी, तीसी आदि तैलकर बीजसे तेल तथा दाखसे शराब बना कर रूसवासी बेचते हैं। प्रतिवर्ष रूसमें १६६६००० गैलन, ककेशियामें १७०००००० गैलन और मध्यएसियामें ११६००० गैलन शराब चुआई जाती है। यहांके लोग मधुचक्रसे मोम और मधु तथा रेशमकी गोटीसे कपड़े बुनने लायक रेशम तैयार करते हैं। रूसमें मछली पकड़नेका व्यवसाय है।

नाना विषयोंके कल कारखानेकी उन्नतिके साथ साथ वाणिज्य व्यवसायके प्रकृष्ट उपाय स्वरूप रूसके नाना स्थानोंमें रेलवे लाइन खुल गई है। १८६५ ई०में यहांका विख्यात ट्रान्ससाइबिरियाका रेलपथ खोला गया। उस समय वैकाल ह्रदके ऊपर रेलपथ नहीं था। पीछे उसकी बगल लाइन दौड़ानेका संकल्प किया गया। रूस-जापान युद्धके समय वैकाल ह्रदका बरफके ऊपर लाइन बैठाई गई थी। पीछे उस पर पक्की सड़क बनाई गई है। १६००१ ई०में चीन-विद्रोहवह्नि जब बुझ गई, रूसने जब अर्थरबन्दर पर अधिकार किया तब राज्यरक्षा और वाणिज्यके उपाय-स्वरूप मंचूरियाके हार्बिन और ब्लादिभष्टकमें रेलपथ खोला गया था।

भूतत्त्व।

रूसके भूगर्भके मध्य प्राचीन जगत्‌के निदर्शन गड़े रहने पर भी इसे दूसरे देशनिहित पदार्थोंकी तरह उसमें कोई स्वाभाविक परिवर्त्तन नहीं हुआ। भूतत्त्वविदोंने यहांके प्राचीन स्तरोंका कीचड़, मार्ल (फूलखड़ी मिली हुई एक प्रकारकी मिट्टी) और बालुकास्तर सञ्चित भूगर्भनिहित पदार्थोंकी आलोचना कर स्थिर किया है, कि उत्तर वेलसके श्लेट प्रस्तरमय हर पर्वत भूयुगके जिस समय उत्पन्न हुए थे, रूसका उपरोक्त प्राचीन युगीय बालुकादिस्तर भी उसी समय संगठित हुआ। रूसमें और किसी भी स्थानके प्राचीन स्तरमें आग्नेयगिरिप्लावित धातवस्तरका समावेश नहीं देखा जाता।

केवल यूरल पर्वतमाला पर उस श्रेणीका प्रस्तर नजर आता है।

रूससाम्राज्यमें सिलिउरीय स्तरकी प्रधानता रहनेसे कोयला कहीं भी होने नहीं पाता। ओनेगा उपसागर तथा यूरल पर्वतके पश्चिम ढालवें देशमें सेना पाया जाता है। किन्तु उक्त पर्वतकी साइबिरिया सीमामें सोनेकी बहुत-सी खानें हैं। रूसमें चांदीकी खान कहीं भी नहीं है, किन्तु पार्श्व वोरेनवर्ग और वियता विभागमें तांबे और लोहेकी अनेक खान पाई जाती है, कहीं कहीं पारा, सेकोंविष, निकेल, कोवाल्ट, सौबीराञ्जन और विषमय भी देखनेमें आता है।

ओनेगा और लादोगा उपसागरकी उत्तरी सीमा पर उत्कृष्ट मर्मर और दानेदार पत्थरकी खान है। सेण्टपिटर्सवर्गकी अट्टालिका सेर्देविलके विख्यात मर्मर पत्थरकी बनी है। उसका वर्ण ललाई लिये सफेद है।

ऊपरमें जो सैन्धव लवणका उल्लेख किया गया है, वह यहांका एक प्रधान वाणिज्य उपकरण है। यूरलपर्वतकी उवली नामक स्थानमें प्रचुर लवण निकाला जाता है।

रूस-साहित्य।

रूस-साहित्य प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हैं—कथित और लिखित। प्रथम भागमें 'विलिनि' अर्थात् प्राचीन रूसकी ग्रन्थावली है। भ्रमणकारी भट्टकविगण वह प्राचीन गाथा तमाम गाते फिरते हैं। गत ६० वर्षके अन्दर रूस-साहित्यकोंने उक्त प्राचीन गाथाको कालानुयायी भागमें विभक्त किया है।

(१) प्राचीन वीरोंकी कीर्त्ति, (२) किफके राजकुमार ब्लादिमिरका युग, (३) नवगोरोद युग, (४) मोस्को युग, (५) कसाक गाथा, (६) पीटरका युग और (७) आधुनिक काल। वर्त्तमान १९वीं सदीके प्रथम भागसे वे सब साहित्य सङ्कलित और मुद्रित होते हैं। १८०० ई०में माइरिल वा कुषदानिलफ नामक एक कसाकने सबसे पहले उस प्राचीन गाथाका संग्रह कर प्रकाश किया। १८१८ ई०को लिकजिक नगरमें उन सब गाथाओंका जर्मन भाषामें अनुवाद हुआ। प्रथम युगमें जिन सब वीरोंकी गाथा गाई है, वे सब प्रकृतिपूजाके नामान्तरमात्र हैं। जैसे, भल्गा (हिन्दूकी गङ्गाकी तरह), भलेस्लाविल, मिकुल और खिशाटोगर अर्थात् देशी नदी और पर्वत आदिके अधिष्ठात्री देवता इस युगमें पूजित हुए थे। गोरिनिक सर्प, वासुकि वा अनन्तकी तरह इनके शिर पर मणि है और ये निधिरक्षक है। फिर नृसिंह अवतारकी तरह यहां आधा सांप और आधा मनुष्य पूजित होते थे। एक भीमकाय औदरिक देवताका वर्णन अत्यन्त भयङ्कर है।

द्वितीय युगका साहित्य किफके राजकुमार ब्लादिमिरकी अत्याश्चर्य कहानीसे पूर्ण है। इनके समय रूसमें ईसा-धर्मका प्रचार हुआ। उपरोक्त साहित्यको छोड़ कर रूसमें तमाम धर्मसंक्रान्त नाना प्रकारकी प्राचीन गाथा प्रचलित है। उससे रूसके पौराणिक युग और देवतत्त्वका सुन्दर आभास पाया जाता है। रूसके देवतत्त्वकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, मानो वह किसी वैदेशिक देवतत्त्वके ढंग पर ही कल्पित हुआ हो। विशेष गवेषणाके साथ इसके प्रकृततत्त्वका निर्णय तथा प्राचीन भारतीय देवतत्त्वके साथ उसका मिलान करनेसे मालूम होगा, कि भारतीय पौराणिक युगका सार्वजनीन देवसमाज सुदूर यूरोप प्रान्तमें विस्तृत हुआ था, रूसका यह सधर्मी (Comparative) देवसमाज इस अभिनव द्वारके उद्घाटनमें अच्छे उपयोगी हैं।

द्वितीय विभाग—लिखित साहित्य है। नवगोरोदके शासनकर्त्ता अस्ट्रोमिरके आदेशसे ग्रिगोरोने सबसे पहले इन सबको लिपिबद्ध किया। १०७६ ई०में ग्रीक साहित्यसे सङ्कलन कर प्रथम रूसी भाषाका एनसाइक्लोपिडिया वा विश्वकोष सङ्कलित हुआ। आखिर नये और प्राचीन टेष्टामेण्ट ले कर रसियन साहित्यका २य युग आरम्भ होता है। थिओडिसियसके लेखसे रसियन मध्य युगमें भी प्राचीन पौत्तलिक भावका परिचय पाया जाता है।

भिडियाग नामक ग्रन्थकारने वैजन्ती लेखकोंके वागाडम्बरपूर्ण समासयुक्त वाक्यका व्यवहार किया। नेष्टरके इतिहासके साथ साथ रूसमें ऐतिहासिक

साहित्यका सूत्रपात हुआ। पीछे किफ, नवगोरोद, भलहिनिया आदि स्थानोंमें ऐतिहासिक साहित्य फैला। इन सब प्राचीन इतिहासोंमें अनेक कौतुकोद्दीपक उपन्यासका मूलसूत्र विद्यमान हैं।

११वीं और १२वीं सदीसे भ्रमणवृत्तान्तविषयक साहित्यकी पुष्टि होती है। दानियाल नामक एक व्यक्ति सबसे पहले तीर्थपर्यटन कर स्वदेश लौटे। उनका लिखा हुआ वृत्तान्त ही इस साहित्यकी नींव है। पीछे आथानेसियस निकिटिन नामक टावर नगरका एक वणिक् १४७० ई०में भारतवर्ष आया। उसके भ्रमणवृत्तान्तसे अनेक भारतीयतत्त्व जाना जाता है। उस सब वृत्तान्तोंका अंगरेजीमें अनुवाद हुआ है तथा हाकलुइट सोसाइटीने उसे प्रकाशित किया। ब्लादिमिर मोनोमाघ नामक एक आदमीने अपने पुत्रोंको जो उपदेश दिया था उससे अनेक ज्ञातव्य तत्त्व जाना जाता है। उसमें शालभोनिक सम्राटोंकी दैनन्दिन जीवनी स्पष्टरूपसे लिखी है।

१२वीं सदीमें तुरफके बिशप माइरिलके धर्मोपदेशसे धर्मसाहित्यकी उन्नति हुई। किन्तु यह साहित्य बैजन्तीकी तरह अलङ्कारयुक्त वाक्योंसे भरा है। अधिकांश उत्प्रेक्षा और रूपकसे पूर्ण है। इस साहित्यमें अनेक साधु-संन्यासियोंका जीवनचरित्र भी वर्णित है।

गल्प साहित्यमें इनने ही पहला स्थान पाया है। नवगोरोदके निकटवर्ती इगरके राजकुमार पालाभटजेस नामक स्थानमें युद्ध करने गये थे। वह सब अलौकिक कहानी उपन्यासके ढंग पर उस पुस्तकमें लिखी है। वह पुस्तक कथराइनकी पुस्तकावलीके मध्य पाई गई थी। इगरकी पुस्तकसे अनेक प्रत्नतत्त्व और शब्द-रहस्य जाने जा सकते हैं। प्राचीन बुलगेरियाकी बहुतसी गल्पोंको रसियन साहित्यमें स्थान दिया गया है। उक्त किफकी युद्ध कहानी उपन्यास साहित्यके एक स्मृतिस्तम्भ स्वरूप है। इसके सिवा द्राकुलका उपन्यास अतीव विस्तृत और हृदयग्राही वर्णनसे भरा हुआ है।

आईन-साहित्यके मध्य (१०१८-१०५४ ई०) नवगोरोदके इतिहासमें रक्षित प्राचीन आइन संग्रह ही सर्वप्रथम ग्रन्थ है। यह संग्रह स्कन्दनामीय आईनके जैसा है। इससे मालूम होता है, कि रूसकी सभ्यता अन्यान्य यूरोपीय प्रदेशके साथ मुकाबला करती थी। अनन्तर १४९७ और १५५० ई०में आईनका संस्कार और परिवर्द्धन हुआ। आलेक्सिसका आईन संग्रह भी एक अपूर्व वस्तु है। इनके दण्डविधि-आईनमें लिखा है, कि स्त्रीको हत्या करनेवालोंको जीते जी जमीनमें गाड़ देना होगा। साक्षियोंसे सच्ची बात जाननेके लिये उन्हें तरह तरहकी मन्त्रणा दी जाती थी। अदालतके साक्षी बिना घायल हुए लौटने नहीं पाते थे। असामीकी अपेक्षा साक्षीकी लाञ्छना सौ गुना अधिक थी। जो तमाकू पीते थे उनकी नाक काट ली जाती थी। अन्तमें पीटर दी ग्रेटके समय यह कठोर आईन उठा दिया गया।

१५५३ ई०को सबसे पहले मोस्कोमें मुद्रायन्त्र स्थापित हुआ तथा १५५४ ई०में अपएल नामक पुस्तक सबसे पहले छापी गई। इवान थिओडोरफ तथा पीटर मष्टिस्लाभेटज नामक दो सर्वप्रथम मुद्राकरकी स्मृतिके लिये कुछ दिन पहले दो बड़े स्मृतिस्तम्भ बनाये गये हैं। १५८१ ई०में सबसे पहले शालभोनिक बाइबिल मुद्रित हुई।

इवान दि टेरिबलके समय "गार्हस्थ्य-आचार" नामक एक बड़ा पोथा छापा गया। पहले सिलभष्टर नामक एक नीतिज्ञने अपनी पुत्रवधू पेलाजियाको जो उपदेश दिया था वही धीरे धीरे जनसाधारणमें प्रचलित हो कर छप गया। इस पुस्तकमें रसियन जीवनका उज्ज्वल चित्र विद्यमान है। यह पुस्तक पढ़नेसे स्पष्ट देखा जाता है कि पत्नी पर पतिका पूरा दबाव था। इच्छा करने पर वह पत्नीको सब तरहकी सजा दे सकता था। स्वामीका आज्ञा पालन करना ही स्त्रीका एकमात्र कर्त्तव्य था। मुगलोंके समयसे रूसमें स्त्रियोंमें परदासिसटम जारी हुआ। १६वीं सदीकी कौलीन्यमर्यादाके सम्बन्धमें एक बड़ा ग्रन्थ मुद्रित हुआ। १७वीं सदीमें बहुतसे ग्रन्थ मुद्रित हुए। उनमेंसे तोबलस्क नगरवासी साजियसका 'क्रोनोग्राफ' अपूर्व ग्रन्थ है। इसमें पृथिवीकी सृष्टिसे ले कर १७वीं सदी तक सभी घटनाओंका उल्लेख है।

'आजफका अवरोध' एक गद्यकाव्य है। यह

कादम्बरीकी तरह समासबहुल अलङ्कार वाक्योंमें लिखा है। पीछे ग्रिगोरी कोटो सिखिनका रूस इतिहास नामक बड़ा ग्रन्थ लिखा गया। इसके पहले ऐसा एक भी बड़ा ग्रन्थ नहीं लिखा गया था। १८४० ई०में वह मुद्रित हुआ। उस ग्रंथमें रसियन जीवनका समस्त सामाजिक चित्र अङ्कित देखा जाता है। पीछे क्रिश्चानिक नामक एक पण्डितने रूस भाषाओंका भाषा-तत्त्व और व्याकरणका संकलन तथा १८६० ई०में रूस साम्राज्यका इतिहास प्रणयन किया। उस ग्रन्थमें ग्रन्थकारने अपना असाधारण पाण्डित्य दिखलाया है। इस समय धर्माधिकरण ले कर सम्राट्के साथ पादरियोंका जो विरोध हुआ था वह डियानक्षेनसीको ओजस्विनी वक्तृतासे स्पष्ट जाना जाता है। मोस्को नगरमें उनका मकबरा और स्मृतिस्तम्भ विद्यमान था। ये विशालकाय व्यक्ति थे। इसकी ऊंचाई साढ़े चार हाथ थी।

१६२८ से १६४० ई०के मध्य सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार पोलोटिजष्टोका आविर्भाव हुआ। उनके समयमें प्राचीन युग समाप्त हो कर रूस-साहित्यमें नवयुगका आरम्भ हुआ। वे सम्राट् थिओडरके शिक्षक थे। उन्हींके समय रूसमें पाश्चात्य शिक्षासभ्यताका उज्ज्वल आलोक साहित्यक्षेत्रमें विकीर्ण हुआ था। Garland of Faith वा भक्तिमालिका नामक एक बड़ा धर्मग्रन्थ लिख गये हैं। उनकी ऐन्द्रजालिक लेखनीसे रूसमें युगान्तर उपस्थित हुआ। ग्रीक और इटली साहित्यका रूसभाषामें अनुवाद होने लगा। अनन्तर माइकल रोमानोसफ नामक लेखककी अविश्रान्त लेखनीसे अनेक उपादेय ग्रन्थ लिखे जाने लगे। वे महाकाव्य, नाटक, उपन्यास, इतिहास आदि नाना विषयोंमें पुस्तक लिखने लगे। विज्ञान और दर्शनशास्त्रमें भी उनकी लेखनी समान चलने लगी। टाटिसटीफ नामक राजमन्त्रीने रूसका इतिहास लिखा। इसके बाद ट्रेडिया कोविस्कीने नाना काव्योंकी रचना की। पीछे एलिजाबेथके शासनकालमें रूस-साहित्यमें फरासी-प्रभाव संक्रामित हुआ तथा अलेकसन्दर सुमारोकफने काव्य, नाटक, आख्यान, इतिहास आदि फरासी आदर्श पर लिखे। उनके उद्योगसे १७५६ ई०को सेण्टपिटर्सबर्गमें सबसे पहले रङ्गालय प्रतिष्ठित हुआ तथा साइमन पोलोटिजकीके धर्मविषयक नाटक खेले जाने लगे। अनन्तर माइकेल खेरासकफ नामक कविने दो प्रकार महाकाव्योंकी रचना की, बारह सर्गमें विभक्त 'रोसियाडा' और १८ सर्गमें विभक्त ब्लादिमिर। इसके बाद बोन्द्रोनोभिचने क्युपिड और साइकीका वृत्तान्त ले कर एक महाकाव्य रचा। इनकी रचना बहुत मधुर और सुललित होती थी।

इवान खेमनिजरसे वर्त्तमान औपन्यासिक लेखकका आविर्भाव होने लगा। इन सब उपन्यासोंमें प्राच्यप्रभावको सम्पूर्ण छाया विद्यमान है। इन्हें प्राच्यग्रन्थका अनुवाद करनेमें भी अत्युक्ति न होगी।

खेमनिजर पहले जैलाटीका अनुवाद कर पीछे मौलिक ग्रन्थ लिखने लगे। उन्होंने पहले भिसिन नामक नाटक ग्रन्थ लिखना शुरू किया था। रूससाम्राज्यका अनेक कुसंस्कार और कुप्रथाको दूर करनेमें समर्थ हुए थे। उनका बनाया सुन्दर भ्रमणवृत्तान्त रूस साहित्यका एक अलङ्कारस्वरूप है। इसके बाद सुकवि डारजाविनका आविर्भाव हुआ। ये कथराइनकी राजसभामें सभाकवि थे। इन्हें रूसका मिल्टन कहा जा सकता है। इनका बनाया 'ईश्वरस्तोत्र' समस्त यूरोपमें विख्यात है। इस समय राडिमचेफ और नोविकफ उद्दीपनापूर्ण काव्य लिख कर निर्वासित हुए थे।

अनन्तर अलेकसन्दरके शासनकालमें निकोलस कारामजिन नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थकारका अभ्युदय हुआ। उनका रूससाम्राज्यका इतिहास रूस साहित्यका विराट् स्मृतिस्तम्भ है। इसके सिवा वे कितने उपन्यास और काव्य भी लिख गये हैं।

इसके बाद प्लेटन दमित्रिएफके समयसे रूस-साहित्यमें अंगरेज कवियोंका प्रभाव संक्रामित होने लगा। इस समय इवान क्रिलफ नामक सुप्रसिद्ध औपन्यासिकने देशी साहित्यको तरह तरहके अलङ्कारसे सुशोभित किया। इनके उपन्यासमें रूसका जातीय जीवन अत्यन्त सुन्दर भावमें लिखा है। पीछे सुकवि झुकोभिस्की काव्य-क्षेत्रमें विशेष निपुणता दिखाने लगे। इनके समयसे 'रोमाण्टिक स्कूल, वा अलौकिक कहानीका सूत्रपात हुआ। वे अनुवादमें बड़े सिद्धहस्त थे। १८०२ ई०में

इन्होंने अंगरेज-कवि ब्रकी पलिजीका रूस भाषामें अनुवाद किया। पीछे उन्होंने जर्मन-कवि गेटे, शिलार, ऊहलैण्ड तथा अंगरेज कवि बाइरन, मूर और साद्सि पद्यानुवाद प्रचारित किया। उन्होंने बहुतसे वैदेशिक काव्योंकी सुललित कविताका रूस भाषामें पद्यानुवाद किया था। इसके सिवा नाटक, काव्य, उपन्यास, प्रबन्धादि सभी विषयोंमें उनकी सर्वतत्त्वभेदिनी प्रतिभा थी। इसके बाद रहस्यप्रिय कवि ग्रिवयुफने प्रहसन रचनामें अपूर्व प्रतिभाका परिचय दिया था। उनका "पोर अट उमा" नामक प्रहसन यूरोपीय साहित्यकी अपूर्व रचना है। इस समय कज़लफ नामक कविने स्काच कवि वार्नसका 'सटर्ड नाइट' रूस-भाषामें अनुवाद किया। ये रूसके अन्धकवि कहलाते थे।

पुषकिनकी मृत्युके बाद सर्वप्रधान कवि (१८१४-१८३८ ई०) लारमण्टफका आविर्भाव हुआ। इनकी लेखनी वियोगान्त काव्यरचनामें शक्तिशालिनी थी। वे पहले स्काटलैण्डवासी थे। उनका बनाया 'डेमन' वा दानवकाव्य अति उपादेय है। प्राकृतिक दृश्यका वर्णन करनेमें वे अद्वितीय थे।

अनन्तर कलटजफ और निकिटिन नामक दो कवियोंने गीति भाषामें विशेष प्रतिभाका परिचय दिया। इनके बाद जेगास्किन नामक औपन्यासिकने जन्म ग्रहण किया। अनन्तर निकोलस गोगल नामक सुप्रसिद्ध औपन्यासिकने लेखनी धारण की। ये व्यङ्ग काव्यमें विशेष क्षमताशाली थे। अपने बनाये 'उन्मादकी स्मृति' नामक ग्रन्थमें इन्होंने अपूर्व कल्पना और रचनाशक्तिका जो परिचय दिया है वह अतुलनीय है। उनका बनाया 'प्रेतात्मा' अपूर्व काव्य है। गोगलने आखिर पागलकी तरह अपनी रचनावलीमें अग्नि प्रदान की। वे १८५२ ई० को परलोक सिधारे। उन्हींके समयसे मौलिक रूस-उपन्यास बंद हो गया है।

आखिर इवान टार्जेनिफ नामक आधुनिक औपन्यासिकने थाकारे और डिकेन्सके आदर्श पर बहुतसे उपन्यास लिखे हैं। पीछे अलेकसन्दर हाजेन नामक एक स्वाधीन लेखकने "के दोषी' नामक अपूर्व उपन्यासकी रचना की थी। स्वाधीनचित्तताके लिये वे निर्वासित हुए।

इसके बाद दस्तोभिपस्की (१८८१ ई०)-ने 'दरिद्रलोक' और 'प्रेतपुरीका पत्र' नामक दो अपूर्व उपन्यास लिखे। अनन्तर काउण्ट टलष्टई नामक विख्यात नाटककार हुए। उनके लिखे 'युद्ध और शान्ति' ग्रंथ बड़े ही अपूर्व हैं।

१८८३ ई०में इवान टार्जेनियोकी मृत्यु हुई। वे ही सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक थे। उनका 'भद्रलोकका आवास-भवन' नामक ग्रन्थ पृथ्वीकी समस्त भाषाओंके अलङ्कार-स्वरूप होने योग्य है। उनका बनाया 'भार्जिन सैल' वा 'अहल्याभूमि' अपूर्व ग्रन्थ है। इस समय बेलिनिस्की नामक एक प्रसिद्ध समालोचकने जन्मग्रहण किया। कारामजिनके समयसे रूस-साहित्यने बड़ी उन्नति की है। पलेभ ही रूस-साम्राज्यका विस्तीर्ण इतिहास ग्रन्थ लिख गये हैं। वे ढेलिग्राफ नामक प्रधान रूस समाचारपत्रके सम्पादक और आमलोटके अनुवादक थे। इसके बाद सलोभिपफने २१ भागोंमें विभक्त रूसका एक बड़ा इतिहास लिखा है। इस समय कष्टामरफ नामक विख्यात लेखकने 'यूरोपवृत' ग्रन्थ और अनेक समालोचनापूर्ण प्रबन्धकी रचना की। उष्ट्रियालोकने पीटर दी ग्रेटके समयका एक बड़ा इतिहास लिखा है। पीछे अनेक लेखकोंने वैदेशिक इतिहास भी रचे हैं। अध्यापक वेण्डुजेक ट्युमिननें रूस इतिहासकी उपादान नामक पुस्तकका १म भाग तक प्रकाश किया।

मेसर्स पिपिनका शलभोनिक साहित्यका इतिहास उत्कृष्ट ग्रन्थ है। रूसके कवियोंमें मैकफ जाजिकफ और पोलोनिस्की आदि प्रधान हैं।

रूसके पण्डितोंने शब्दविज्ञानमें बड़ी निपुणता दिखाई है। भष्टोकफ नामक अध्यापकने शलभोनिक भाषारहस्य नामक विराट ग्रन्थकी रचना की। इसके सिवा अनेक अभिधान और शब्दकोष भी लिखे गये। हिलफरडिंने जातितत्त्वके सम्बन्धमें एक बड़ा ग्रंथ सङ्कलन किया है। मिनायेफ नामक अध्यापकने 'भारत-तत्त्व'के सम्बन्धमें बहुत सी बातें लिखी हैं। वर्त्तमान रूससाहित्यका कुल इतिहास यहां पर लिखना असम्भव है। इसी लिये संक्षिप्त परिचय दिया गया।

पुष्किन और लार्मण्टोफके परवर्त्ती युगके सर्वप्रधान कवि मेकासफका १८७७ ई०में देहान्त हुआ।

१९वीं सदीके शेष भागमें उनके जैसे प्रतिभावाली और किसी भी कविने जन्म नहीं लिया। १८३५ ई०में आपुखटिन नामक गीतकविकी मृत्यु हुई। पीछे १८९७ ई०के मध्य आलोचन मैकक तथा पोलोनिस्को नामक दो प्रसिद्ध कवियोंका देहान्त हुआ। ये दोनों रूसके सर्वजनविदित कवि थे। वर्त्तमानकालके कवियोंमें एकरिमुफिलिक, इवान बुनिम और कनस्तान्ताइन वैमोण्टरके नाम उल्लेखनीय हैं। शेषोक्त कवि अनुवाद-में बड़े सिद्धहस्त थे। उन्होंने अङ्गरेज-कवि सेलीके काव्य रूस-कविताका अनुवाद किया।

ऐतिहासिक साहित्यमें रूस अभी बड़ी उन्नति कर रहा है। यहां पर उसका कुल हाल एक तरहसे असम्भव है। 'रसियन एनटिकोआरी' वा रूस प्रत्नतत्त्व-समितिका प्रकाशित ऐतिहासिकतत्त्व अनेक ज्ञातव्य तत्त्वोंसे परिपूर्ण है। एतद्भिन्न केवल इतिहासक्षेत्रकी आलोचनामें बहुतसे समाचार-पत्रोंका आविर्भाव हुआ है। १८९१ ई०में सेण्टपिटर्सबर्ग विश्वविद्यालयके इतिहास-अध्यापक बेस्टुझेफ-रुमिन परलोकको सिधारे। वे ३२ वर्ष इस कार्य्यमें नियुक्त थे। उनके रूस-इतिहासका केवल प्रथम भाग और द्वितीय भागका प्रथमार्द्ध प्रचारित हुआ है। सलोभिएफ और कष्टोमारफ नामक दो ऐतिहासिकके मरने पर भी रूसको इतिहासचर्चामें धक्का नहीं पहुंचा है।

इस समयके इतिहासकारोंके मध्य अध्यापक मिलिउकफ रूस शिक्षा और सभ्यताका इतिहास लिख कर यशस्वी हो गये हैं।

विख्यात रूस-पण्डित मैकसिस कोभालेभस्की 'यूरोपमें अर्थनीति शास्त्रका इतिहास' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ लिख कर जगद्विख्यात हो गये हैं। पीछे मोस्को विश्वविद्यालयके क्लिचिभस्किने रूस इतिहासके सम्बन्धमें वक्तृताविषयक अनेक प्रबन्ध प्रकाशित किये हैं। इसके अतिरिक्त अध्यापक भिनोग्राभफ "मध्ययुगमें इङ्गलैण्डका सामाजिक इतिहास" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिख कर यशस्वी हो गये हैं। किन्तु गोगल और टलष्टय आदिके जैसे विख्यात औपन्यासिकने आज तक रूसमें जन्मग्रहण नहीं किया है। टलष्टयने वृद्धावस्थामें Resurrection वा पुनरुत्थान नामक प्रसिद्ध उपन्यास लिख कर अद्भुत प्रतिभाका परिचय दिया है। नये लेखकोंमें एन्द्रेभका नाम उल्लेखनीय है। तरुणावस्थामें ही उन्होंने लिपिकुशलताका अच्छा परिचय दिया है। इसके सिवा गोर्की, आर्टल, यासिनस्कि आदि लेखकगण गल्परचनामें प्रसिद्धि लाभ कर गये हैं।

रूस (फा० स्त्री०) गाल।

रूसना (हिं० क्रि०) रोषित करना, नाराज होना।

रूसा (हिं० पु०) अडूसा, अरूसा। अडूसा देखो। २ एक सुगन्धित घासका नाम। यह नेपाल, शिमला, अलमोड़ा, काश्मीर, पंजाब, राजमहल, मध्यप्रदेशके पहाड़ी प्रदेशों, बम्बई और मन्द्राजके पर्वतोंमें होती है। इस घास-से गुलाबकी-सी सुगन्ध आती है और इसका तेल निकाला जाता है। इसकी प्रधान दो जातियां होती हैं। इसका फूल सफेद और दूसरीका फूल नीले रंग-का होता है। जब यह घास नरम रहती है तब इसकी पत्तियोंका रंग नीलापन लिये होता है, पकने पर उनका रंग लाल हो जाता है। जब इसकी पत्तियां नरम होती हैं। तब इसे मोतिया कहते हैं और जब पक कर लाल हो जाती हैं तब ये सौंफिया कहलाती हैं। सावन भादोंमें यह फूलने लगती है और कातिक अगहन तक फूलती है। इसी समय इसकी पत्तियां तेल निकालने-योग्य हो जाती हैं। जब घास फूलने लगती है तब काट ली जाती है और इसकी छोटी छोटी पूलियां बांध ली जाती हैं। तेल निकालते समय देगमें पानी भर कर ढाई तीन सौ पूलियां उसमें छोड़ दी जाती हैं। फिर देग आग पर रख दिया जाता है और नालियोंका सिरा तांबेके दो छड़ोंके मुंहसे लगा दिया जाता है जो पानी-में डूबे रहते हैं। इस प्रकार घासका आसव खींचा जाता है। जब आसव निकल आता है तब उसे एक चौड़े मुंहके बरतनमें उंडेल लेते हैं। इस बरतनमें रूसेका अर्क थोड़ी देर तक रहता और तेल छोटे चमच-से धीरे धीरे ऊपरसे काछ लिया जाता है। यह तेल गुलाबके अतरमें मिलाया जाता है और इसमें ताड़पीन या मिट्टीका तेल मिला कर सुगंधित द्रव्य तैयार किया जाता है। मध्यप्रदेशके जंगलोंसे रूसका तेल

बहुत अधिक मात्रामें बाहर आता है। यूरोप और अमेरिकामें इस तेलका बहुत व्यवहार तथा व्यापार होता है। इसका पर्याय—रोहिष, गन्धवेना, भूतृण, कत्तृण, गन्धतृण।

रूसी (हिं० वि०) १ रूस देशका रहनेवाला, रूस देशका निवासी। २ रूस देशमें उत्पन्न। ३ रूस देशका। (स्त्री०) ४ रूसदेशकी भाषा। ५ सिरके चमड़े पर जमा हुआ भूसीके समान छिलका जो सिर न मलनेसे जम जाता है।

रूह (अ० स्त्री०) १ आत्मा, जीवात्मा। २ सत्त, सार।

रूहड़ (हिं० स्त्री०) पुरानी रूई जो पहले किसी ओढ़ने या बिछाने आदिके कपड़ोंमें भरी रही हो।

रूहना (हिं० क्रि०) आवेष्टित करना, घेरना।

रूही (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका वृक्ष जो हिमालय पर्वतके नीचे रावीनदीके पूर्वमें तथा मध्य भारत और मन्द्राज प्रान्तमें पाया जाता है। इसे चौरी और मामरी कहते हैं। इसकी छाल देशी औषधियोंके काममें आती है और जड़ सांपके काटनेकी औषधि मानी जाती है। इसकी लकड़ी तौलमें प्रति घन फुट २ सेर होती है। यह बहुत मजबूत और चिकनी होती है। रंग देने और वार्निश करनेसे इस पर बहुत अच्छी चमक आती है। इससे मेज, कुरसी, अलमारी और तसवीरके चौखटे बनाये जाते हैं। यह वृक्ष बीजसे बरसातमें उगता है। इसको संस्कृतमें अहिगन्धा कहते हैं। इसकी पत्तियां उत्तेजक और कटु होती हैं। इसकी छाल पेटकी पीड़ा और अंतरिया ज्वरमें दी जाती है। इसकी मात्रा ३ माशेसे ६ माशे तक है। यह मधुके साथ कुष्ठ रोगमें काली मिर्चके साथ पीस कर विशूचिका तथा अतीसारमे भी दी जाती है। इसे वैद्य लोग ईसारमूल, अर्कमूल और रूहीमूल कहते हैं।

रूहीमूल (हिं० पु०) रूही नामक वृक्षकी छाल और जड़, ईसारमूल। विशेष विवरण रूही शब्दमें देखो।

रेंकना (हिं० क्रि०) १ गदहेका बोलना। २ बुरे ढ़ंगसे गाना।

रेंगटा (हिं० पु०) गदहेका बच्चा।

रेंगना (हिं० क्रि०) १ कीड़ों और सरीसृपोंका गमन, च्यूंटी आदि कीड़ोंका चलना। २ धीरे धीरे चलना।

रेंगनी (हिं० स्त्री०) भटकटैया।

रेंट (हिं० पु०) श्लेष्मा मिश्रित मल जो नाकसे विशेषतः जुकाम होने पर निकलता है, नाकका मल।

रेंटा (हिं० पु०) लिसोड़ेका फल।

रेंड़ (हिं० पु०) १ एक पौधा जो ६-७ हाथ ऊंचा होता है और जिसकी पेड़ी और टहनी पोली तथा मुलायम होती है। इसमें चारों ओर बड़ी बड़ी शाखाएं नहीं निकलतीं। सिरे पर छोटी छोटी टहनियां होती हैं जिनमें पत्तोंकी पोली डांड़िया लगी रहती हैं। इन डांड़ियोंके छोर पर बालिश्त डेढ़ बालिश्तके बड़े गोल कटावदार पत्ते लगे रहते हैं। कटाव बहुत लम्बे हैं और पत्तों तथा टहनियोंके रंगमें कुछ नीली झाईं सी रहती है। फूल सफेद होते हैं और फल गोल गोल तथा कंटीले होते हैं। फलोंके अंदर कई बड़े बड़े बीज होते हैं जिनमेंसे बहुत तेल निकलता है। यह तेल जलाने और औषधके काममें आता है। यह दस्तावर होता है। यद्यपि इसके बीज बहुत काममें होते हैं पर खाने योग्य फल या छाया न होनेके कारण लोग इसे निकृष्ट पेड़ोंमें गिनते हैं। २ एक प्रकारकी ईख जिसे रेंड़ा भी कहते हैं।

रेंड़खरबूजा (हिं० पु०) पपीता।

रेंड़मेवा (हिं० पु०) अंडकाकुनी, रेंड खरबूजा, पपीता।

रेंड़ा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका धान जिसकी फसल कुआर कातिकमें तैयार हो जाती है। (स्त्री०) २ एक प्रकारकी ईख।

रेंड़ी (हिं० स्त्री०) अरंडी या रेंड़के बीज जिनसे तेल निकलता है और जो रेचक होनेके कारण दवाके काममें आते हैं।

रेंधी (हिं० स्त्री०) खरबूजेका छोटा फल, ककड़ी या खरबूजेकी बतिया।

रेंरें (अ० पु०) अनमने लड़कोंके रोनेका शब्द।

रे (सं० अव्य०) १ सम्बोधन शब्द। इस सम्बोधनसे आदरका अभाव सूचित होता है और इसका प्रयोग उसीके प्रति होता है जिसके प्रति 'तू' सर्वनामका

व्यवहार होता है। (पु०) २ ऋषभ स्वर। जैसे,—स, रे, ग, म, प, ध, नी।

रेउँछा (हिं० पु०) रेवँछा देखो।

रेउड़ा (हिं० पु०) रेवड़ा देखो।

रेउता—व्यञ्जनभेद, हवा करनेका एक पंखा।

रेउती (रेवती)—युक्तप्रदेशके बलिया जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५°५१′ उ० तथा देशा० ८४° २५′१३″ पू०के बीच पड़ता है। यह नगर बड़ा गंदा है। यहां निकुम्भ राजपूत लोग रहते हैं।

रेउतीपुर (रेवतीपुर)—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलेके अंदर एक नगर। यह अक्षा० २५° ३२′ १६″ उ० तथा देशा० ८३° ४५′ १६″ पू० तक विस्तृत है। सकड़वाड़ भूमिहार यहांके प्रधान अधिकारी हैं।

रेक (सं० पु०) रेक शङ्कायां वा रिच्-घञ्। १ शंका। २ नीच। ३ विरेचन, दस्त लाना। ४ भेक, मेंढ़क।

रेकपल्ली—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके गोदावरी जिलेके अंदर एक तालुक और उस नामका उपविभागका एक नगर। १८५८ ई०में यह तालुक और भद्राचलम् विभाग मध्यप्रदेशकी सीमाके अंदर कर लिया गया है। यह वर्त्तमान गोदावरी जिलेके एजेंसी भूभागमें परिगणित है।

रेक्णस् (सं० क्ली०) रिणक्तीति रिच् (रिचेर्धनैघित् किच्च। उण् ४।१९८) असुन्, चात् प्रत्ययस्य नुट् घित्वात् कुत्वं। स्वर्ण, सोना।

रेका (सं० स्त्री०) रेक शङ्कायां अच्, स्त्रियां टाप्। सन्देह।

रेकान (हिं० पु०) वह जमीन जो नदीके पानीकी पहुंचके बराबर हो।

रेकार्ड (अं० पु०) १ किसी सरकारी या सार्वजनिक संस्थाके कागजपत्र। २ कुछ विशिष्ट मसालोंसे बना तवेके आकारका गोल टुकड़ा, चूड़ी। इसमें वैज्ञानिक क्रियासे किसीका गाना बजाना या कही हुई बातें भरी रहती हैं। फोनोग्राफके संदूकके बीचमें निकली हुई कील पर इसे लगा कर कुंजी देने पर यह घूमने लगता है और इसमेंसे शब्द निकलने लगते हैं। विशेष विवरण फोनोग्राफ शब्दमें देखो। ३ अदालतकी मिसिल।

रेकु (सं० त्रि०) १ शून्य। २ स्वजनपरित्यक्त, कुटुम्ब परिवारसे छोड़ा हुआ। ३ निर्जन। ४ गुप्त, छिपा हुआ।

रेक्टर (अं० पु०) किसी संस्थाका विशेष कर शिक्षा संस्था का प्रधान।

रेख (हिं० स्त्री०) रेखा, लकीर। २ गिनती, हिसाब। ३ चिह्न, निशान। ४ हीरेके पांच दोषोंमेंसे एक जिसमें हीरेमें महीन महीन लकीरें सी पड़ी दिखाई पड़ती हैं। ५ नई नई निकलती हुई मूछें, मूछोंका आभास।

रेखता (फा० पु०) एक प्रकारका गाना या गज़ल। इसका प्रचार पहले पहल मुसलमानों द्वारा अरबी फारसी मिली हिन्दीमें हुआ था। इसीसे उर्दूको बहुत दिनों तक लोग रेखता ही कहते थे।

रेखना (हिं० क्रि०) १ रेखा खींचना, चिह्न करना। खरोंचना, छेदना।

रेखांश (सं० पु०) द्राघिमांश, याम्योत्तर वृत्तकी एक एक डिग्री या अंश।

रेखा (सं० स्त्री०) लिख्यते इति लिख बिलेखने (भिद्-भिदादिभ्योऽङ्। पा ३।३।१०४) इति भिदादित्वात् अङ् टाप्, रलयोरैक्यात् लस्य रत्वं। १ अल्पक, थोड़ा कम। २ छद्म, कपट। ३ आभोग, सुख आदिका पूरा अनुभव। ४ उल्लेख। यहां पर उल्लेख शब्दका अर्थ दण्डाकारलिपि अर्थात् लकीर है।

मनुष्यके शरीरमें हाथ, पैर और कपाल आदिकी रेखा देख कर उनके शुभाशुभका निर्णय किया जाता है। गरुड़पुराण और सामुद्रिकमें इसका विशेष विवरण लिखा है। यहां संक्षेपमें लिखा जाता।

"रेखाभिर्बहुभिर्दुःखं स्वल्पाभिर्धनहीनता।
रक्ताभिः श्रियमाप्नोति कृष्णाभिः प्रेष्यतां व्रजेत्॥"
(सामुद्रिक)

करतल पर अनेक रेखा रहनेसे दुःखी और कम रेखा रहनेसे धनहीन होता है। वह रेखा यदि लाल होवे, तो लक्ष्मीलाभ तथा काली होनेसे भृत्य होता है।

यदि हाथकी वृद्धांगुलिकी मध्यरेखाके अन्तर्गत जौका चिह्न दिखाई दे, तो शुभ होता है। जिसके हाथमें अंकुश, वज्र और छत्रका चिह्न रहे तो उसे नाना प्रकारका ऐश्वर्यलाभ होता है तथा सौ वर्षकी परमायु होती है। यदि किसी स्त्री वा पुरुषके करतल पर धनुष, पद्म वा तोरणके

जैसा चिह्न रहे, तो वह राज्य, अनेक प्रकारका ऐश्वर्य तथा दीर्घायुलाभ करता है। जो रेखा कनिष्ठाङ्गुलिके मूलसे ले कर तर्जनीके मूल तक चली गई है तथा वह रेखा यदि छिन्न भिन्न न हो, तो उसकी परमायु सौ वर्षकी होती है। यदि आयुरेखा कनिष्ठाङ्गुलिके मूलके नीचेसे जा कर मध्यमाङ्गुलिके मूलमें मिलती हो, तो उस मनुष्यकी भी आयु सौ वर्षकी होती है।

यदि किसीकी आयुरेखा कनिष्ठाङ्गुलिके मूलसे जा कर अनामिकाके मूलसे अन्तमें मिलती हो, तो ५० वा ६० वर्षकी परमायु और यदि छोटी रेखा उस आयुरेखाको काटती हो, तो उसकी अल्पायु होती है।

जिस पुरुषकी कनिष्ठांगुलिके नीचे जितनी रेखाएं होंगी उसे उतनी ही स्त्री होगी। हाथके मणिबन्धसे जो रेखा निकल कर मध्यमांगुलिके मूल तक चली गई है उसका नाम ऊर्द्ध्वरेखा है। वह रेखा रहनेसे अनेक प्रकारका सुख ऐश्वर्यलाभ होता है।

जिसके ललाटमें चार वक्राकार रेखा रहे, उसकी अस्सी वर्षकी परमायु तथा उसी तरहकी पांच रेखा रहनेसे सौ वर्षकी परमायु होती है। स्त्रियोंके करतलमें अनेक रेखा रहनेसे विधवा और निर्दिष्ट रेखा नहीं रहनेसे दरिद्रा होती हैं।

करतलमें दो पितृ और मातृरेखा पृथक् पृथक् है। मातृरेखा तर्जनीके मूलसे ले कर अंगुष्ठके मूल तक आयुरेखाके निम्न देश हो कर सीधी चली गई है तथा पितृरेखा तर्जनी और अंगुष्ठके मूलके मध्यभागसे निकल कर निम्न भाग तक विस्तृत रहती है। करतलमें जिसकी पितृरेखा पूर्णरूपसे अङ्कित रहती है उसने पिताके औरससे जन्मग्रहण किया है और वह रेखा यदि अर्द्धरूपमें अङ्कित रहे, तो दूसरेके औरससे जन्मग्रहण किया है, ऐसा जानना होगा।

करतलमें कनिष्ठांगुलिके मूलसे रेखा निकल कर अनामिका और मध्यमाके मध्य भागमें संयुक्त होनेसे सौ वर्षकी परमायु होती है। अंगुष्ठके मूलभाग तक जो कई रेखाएं चली गई हैं, वे रेखा यदि छोटी हों, तो परमायु अल्प तथा बड़ी होनेसे अनेक पुत्र प्राप्त होते हैं। (सामुद्रिक)

गरुडपुराणमें लिखा है, कि जिसके ललाटमें तीन समान रेखा रहे उसकी परमायु ६० वर्षकी होती और वह पुत्रपौत्रादि नाना प्रकारका सौभाग्य लाभ करता है। दो रेखा रहनेसे ४० वर्षकी और एक रेखा रहनेसे २० वर्षकी परमायु होती है।

"ललाटे यस्य दृश्यन्ते तिस्रो रेखाः समाहिता।
सुखी पुत्रसमायुक्तः स षष्टिं जीवते नरः॥
चत्वारिंशच्च वर्षाणि द्विरेखादर्शनान्नरः।
विंशत्यब्दमेकरेखा आकर्णान्ताः शतायुषः॥

(गरुड़पु० ६२ अ०)

ज्योतिःशास्त्रमें लङ्कासे मेरु पर्यन्त अर्थात् याम्योत्तरमें अथवा ग्रहादिका स्थान निर्णय करनेके लिये गणितसापेक्ष जो सब दण्डाकार लिपि कल्पनामें भू वा खपृष्ठ पर खड़ी की गई है उसीका नाम रेखा है।

५ गणना, गिनती। ६ आकृति, आकार। ७ हीरेके बीचमें दिखाई पड़नेवाली लकीर जो एक दोष मानी जाती है। रत्नपरीक्षामें रेखाएं चार प्रकारकी कही गई हैं, सव्य रेखा, अपसव्य रेखा, ऊर्द्ध्वरेखा और दीक्षाविधि रेखा। इनमेंसे सव्यरेखाको छोड़ कर और सबका फल अशुभ माना गया है।

रेखाकार (सं० त्रि०) डंडीकी तरह आकारवाला।

रेखागणित (सं० पु०) रेखाय गणितं प्रमाणस्वरूपादि यत्र। गणितका वह विभाग जिसमें रेखाओं द्वारा कुछ सिद्धान्त निर्द्धारित किये जाते हैं, देशसंबंधीसिद्धान्त स्थिर करनेवाला गणित।

इस शब्दका प्रयोग पहले पहल पण्डितराज जगन्नाथने किया। ये महाराज श्रीजयसिंहके सभा-पण्डित थे। उन्हींकी आज्ञासे जगन्नाथने 'इउक्लिड'के अरबी अनुवादका संस्कृतमें अनुवाद किया। इसी कारण प्राचीन अभिधानादिमें उक्त शब्दका व्यवहार नहीं है। शुल्वसूत्र ही ज्यामिति वा ज्यूमेटरी शब्दका यथार्थ प्रतिशब्द है। क्योंकि Geo का अर्थ पृथ्वी और Metry का अर्थ मिति है, अतएव ज्यामितिके बदले भूमिति शब्दको ही रेखागणितका यथार्थवाचक कह सकते हैं। किन्तु शुल्वसूत्र और ज्यौमेटरी इन दोनोंके अर्थमें कोई

फर्क नहीं है। शुल्वयति (वेधाः) पृथिवीं परिमाति इति शुल्वः (दुर्गादास)।

पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है, कि आर्यऋषिगण रेखागणितके रहस्यसे अवगत नहीं थे। किन्तु उनका यह विश्वास एकदम भ्रमात्मक है। क्योंकि यूरोपीय विख्यात पण्डित बुर्नलने साफ अक्षरोंमें लिखा है, कि ब्राह्मणोंने इस जगत्में रेखागणितका रहस्य उद्भावन किया था।

यज्ञीय वेदी बनानेके लिये ऋषियोंने शुल्वसूत्र निकाला था तथा उसी रेखागणितसे पीछे परिमिति और क्षेत्रतत्त्वकी उत्पत्ति हुई थी।

जगत्के प्राचीनतम साहित्य वेदके मध्य भारतीय रेखागणितका मूलसूत्र दिया गया है। शुल्वसूत्रमें सम्बन्धीय अनेक पुस्तक हैं। उनमेंसे बौधायन, आपस्तम्ब, मानव, मैत्रायणीय और कात्यायन शुल्वसूत्र ही प्रधान है। यजुर्वेदान्तर्गत तैत्तिरीयसंहिता (५।४।११।१)में शुल्वसूत्रका मूलतत्त्व लिखा है। ये सब वेदके कल्पसूत्रके अन्तर्गत हैं। इस शुल्वसूत्रका मूलतत्त्व मालूम होनेसे भूमि, क्षेत्र, कोटी, भुज, व्यास, व्यासार्द्ध निकाले जाते हैं।

भारतवर्षमें यदि रेखागणितका मूलतत्त्व अविदित रहता तो ब्रह्मगुप्त, ब्रह्मसिद्धान्त और भास्कराचार्य लीलावतीमें क्षेत्रतत्त्वका रहस्य प्रकट न कर सकते थे।

हम लोगोंका विश्वास है, कि जब आर्यसभ्यताका आलोक मिस्रदेशमें फैला था। उस समय आर्य औपनिवेशिकोंने रेखागणिततत्त्वकी मिस्रदेशमें पहले पहल शिक्षा दी थी। उसी कारण मिस्रके राजा सिसस्त्रिसके शासनकालमें जमीन नापके लिये रेखागणितका प्रचार हुआ था। पीछे वह ग्रीकदेशमें भी फैल गया।

ज्यामिति शब्द देखो।

जो कहते हैं, कि भारतवर्षमें परिमिति (Mensuration) थी, रेखागणित नहीं था, वे भूल करते हैं, शायद अङ्कशास्त्र वे नहीं जानते हैं। लीलावतीके टीकाकार मुनीश्वरका ग्रन्थ पढ़नेसे उनका संदेह दूर हो जायगा।

जगन्नाथ सम्राट्का रेखागणित किस ढंगका है, अभी वही देखना चाहिये। बनारस-संस्कृत कालेजके गणित और ज्योतिषाध्यापक महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदीने गणकतरङ्गिणी ग्रन्थमें लिखा है—"अरबीभाषातः संस्कृते जगन्नाथकृतो युक्लिदाख्य ग्रन्थस्याप्यनुवादो रेखागणित नाम्ना प्रसिद्धोऽस्ति यत्र पञ्चदशाध्यायाः सन्ति। अस्य गणितस्य रेखागणितमिति नामकरणं प्रथमं जगन्नाथ-सम्राजैवाकारि * * *।" अर्थात् अरबीभाषामें युकलिड का जो अनुवाद था उसी ग्रन्थसे जगन्नाथ पण्डितने उक्त ग्रन्थ संस्कृतमें अनुवाद किया। जगन्नाथ सम्राट्ने ही सबसे पहले इस गणितका रेखागणित नाम रखा।

जगन्नाथ तैलङ्गदेशीय ब्राह्मण थे। सम्राट् औरङ्गजेब उनकी बुद्धिमत्ता और पाण्डित्य देख कर बड़े मुग्ध हुए थे और उन्होंने पण्डितवरको दिल्लीमें बुला कर अपना सभा-पण्डित बनाया तथा अरबी और पारसी भाषाकी शिक्षा दी। पीछे जयपुरके राजा गणितज्ञ जयसिंह औरङ्गजेबके निकटसे जगन्नाथको प्रार्थना कर अपनी सभामें लाये। जयसिंहकी सभामें जगन्नाथने ज्योतिष और गणितके सम्बन्धमें अनेक ग्रन्थ लिखे। उन सब ग्रन्थोंमें रेखागणित और सिद्धान्त-सम्राट् ही प्रधान हैं। रेखागणित और सिद्धान्तसम्राट्के आरम्भमें जगन्नाथने लिखा है—

"अरबीभाषया ग्रन्थो मिजास्तीनामकः स्थितः।
गणकानां सुबोधाय गीर्वाणया प्रकटीकृतः॥"

जो हो, जगन्नाथने 'युकलिड'के अनुवादका महाराज जयसिंहकी आज्ञासे संस्कृतमें अनुवाद किया, इसमें संदेह नहीं। फिर भी उन्होंने अपने रेखागणितमें उसको भारतीय उत्पत्तिकी बात लिखी है। दुर्भाग्यक्रमसे वे वैदिक पण्डित नहीं थे, यदि होते, तो समस्त तत्त्वोंको प्रकट कर सकते थे।

जगन्नाथने रेखागणितके प्रारम्भमें जो लिखा है, उनका अर्थ यों है,—जिन्होंने वाजपेययज्ञ और षोड़श महायज्ञ किये हैं, ब्राह्मणोंको गो, ग्राम, हस्ती और अश्वादि दान दिये हैं, उन जयसिंहको प्रसन्न करनेके लिये पण्डित सम्राट् जगन्नाथ रेखागणितकी रचना करते हैं। यह अपूर्व शास्त्र पढ़नेसे कोणज्ञानसे क्षेत्रतत्त्वमें गणितशास्त्रमें अच्छी व्युत्पत्ति हो सकती है। यह अपूर्व शिल्पशास्त्र ब्रह्माने विश्वकर्माको सिखलाया था। पीछे परम्परावशतः

यह शास्त्र मृत्युलोकमें आया। किन्तु अनेक कारणोंसे वह शास्त्र भारतवर्षसे उच्छिन्न वा विलुप्त हो गया। इसके बाद महाराज जयसिंहकी आज्ञासे गणकोंके आनन्दके लिये मैं उस लुप्त शास्त्रको पुनः प्रकाशित करता हूं।

यह रेखागणित ग्रन्थ १५ अध्यायमें विभक्त है तथा इससे ४७८ शकल (Proposition) अर्थात् प्रतिज्ञा हैं।

उनमेंसे पहले अध्यायमें ४८, दूसरेमें १४, तीसरेमें ३७, चौथेमें १६, पांचवेंमें २५, छठेमें ३३, सातवेंमें ३६, आठवेंमें २५, नवेंमें ३८, दशवें १०६, ग्यारहवें ४१, बारहवें १५, तेरहवेंमें २१, चौदहवेंमें १० और पन्द्रहवें अध्यायमें ६ प्रतिज्ञा हैं।

किन्तु जयपुर-प्रदेशमें जगन्नाथका जो रेखागणित ग्रंथ छपा है उसमें १३ वें अध्यायमें १४१ नूतन अतिरिक्त प्रतिज्ञा तथा १६६ नूतन अनुशीलनी हैं। यदि ऐसा हो, तो प्रतिज्ञाकी संख्या और भी बढ़ जाती है।

मूल इउक्लिड, मिर्जास्ती और जगन्नाथके रेखागणितकी आलोचना करनेसे उत्तरोत्तर उत्कर्ष मालूम होता है। युक्लिडके ग्रन्थसे मिर्जा उलुगवेगके ग्रन्थमें बहुतसी नयी प्रतिज्ञा देखी जाती हैं। फिर जगन्नाथके ग्रन्थमें उससे भी अधिक उत्कर्ष देखनेमें आता है। इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि जगन्नाथने केवल आक्षरिक अनुवाद ही नहीं बल्कि उक्त शास्त्रका बहुत कुछ उत्कर्ष साधन भी किया था। उन्होंने प्रथम अध्यायकी ४७वीं प्रतिज्ञा १६ प्रकारसे उपपन्न की है।

उक्त रेखागणित लोकमणि नामक लेखकने १७८४ संवत् (१६४९ शकमें) रविवार शुक्ला चतुर्थीको रातको अनुलिपि की।

"युगवसुनगभूवर्षे शुचिशुक्ले युगतिथौ रवेर्वारे।
श्रीनिखिललोकमणिः किल सम्राजामाज्ञया पुस्तम्।"

जगन्नाथ पण्डितका रेखागणित गद्यमें लिखा है, किन्तु श्लोकके आकारमें रचित 'सिद्धान्तचूड़ामणि" नामक दूसरा रेखागणित भी देखा जाता है। जगन्नाथके रेखागणितकी तुलनामें यह सिद्धान्तचूड़ामणि कहीं अच्छा है।

सुललित छन्दोंमें ग्रथित सिद्धांतचूड़ामणिकापाठ देखनेसे कभी भी यह अनुवादके जैसा प्रतीत नहीं होता है। जगन्नाथने सच कहा है, कि रेखागणित भारतवर्षसे विलुप्त हो गया था—बार बार वैदेशिक आक्रमणसे भारतवर्षकी लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंका भण्डार लूटा गया था।

ग्रीसदेशका रेखागणित पढ़नेसे मालूम होता है, कि पिथागोरसके समयमें ही ग्रीसमें रेखागणित शास्त्रकी यथेष्ट उन्नति हुई थी। उन्होंने प्रथम अध्यायकी ३२वीं और ४७वीं प्रतिज्ञाका उद्भावन किया। पिथागोरसके जीवनचरितमें स्पष्ट लिखा है, कि वे भारतवर्षमें घूमने आये थे। मालूम होता है, उस समय अर्थात् ईसाजन्मके पहले छठी सदीमें यहां रेखागणित शास्त्रका विशेष प्रचार था। क्योंकि उस समय बौद्धयुगके संघर्षसे ब्राह्मण्य शिक्षासभ्यतामें धक्का नहीं पहुंचा था। उस समय भी ब्राह्मण्यके लीलानिकेतन भारतवर्षमें सभी शास्त्रोंका सम्यक् अनुशीलन होता था। पीछे बौद्धविप्लवसे भारतीय ब्रह्मण्य-सभ्यताकी बड़ी अवनति हुई थी।

जो हो, पिथागोरस जब भारतवर्ष आये थे उस समय भारतीय शास्त्रप्रचार उच्छिन्न वा विच्छेद नहीं हुआ था। पिथागोरसने भारतवर्षसे लौट कर प्रचार किया कि "त्रिभुजके तीनों कोण मिल कर दो समकोणके तथा समकोणी त्रिभुजमें भुजकोटीके वर्गक्षेत्र, कर्णाङ्कित वर्गक्षेत्रके समान होता है।" यह नया तत्त्व ग्रीसमें अज्ञात था। इससे ग्रीसमें क्षेत्रतत्त्व और परिमितिकी उन्नति होने लगी।

इधर भारतवर्षमें बौद्धविप्लवसे वैदिक क्रियाकाण्ड लुप्त-सा हो रहा था। बौद्धयुगके बाद भारतवर्षमें मुसलमान आक्रमणसे भी सैकड़ों वर्ष तक वैदिकशास्त्रका कोई अनुशीलन नहीं हुआ। इसीलिये सभी समझ सकते हैं, कि भारतमें रेखागणित उन्नतिके सोपान पर क्यों न चढ़ सका।

रेखागणिततत्त्वकी सूक्ष्मभावमें पर्यालोचना करनेसे मालूम होगा, कि इसका जन्म भारतीय ऋषियोंके मस्तिष्कसे हुआ है। कारण, त्रिभुजाभुज, कोटी और कर्णरहस्य पहले ऋषियोंने ही उद्भावन किया था। फिर ग्रीसका इतिहास पढ़नेसे स्पष्ट मालूम होता

है, कि पिथागोरसके पहले ग्रीसमें रेखागणितकी उतनी उन्नति न थी। पिथागोरसने उपरोक्त तत्त्वके अलावा सरलपृष्ठ घनक्षेत्रविषयक अभिनव-तत्त्व ग्रीसमें सिखलाया था। उन्होंने ५४७ ई० सन्के पहले इटलीके टरेण्टम नगरमें अपने नाम पर एक विद्यालय खोला। वहां उन्होंने गणित और ज्योतिषके अनेक तत्त्वों की शिक्षा दी थी। आखिर "पृथ्वी अपनी धूरी पर घूमती है और तारे निश्चल हैं" यह उपदेश जब इन्होंने दिया, तब साधारण विद्वत्वर्गने इन्हें भूखों रख कर मार डाला था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है, कि वैदेशिकतत्त्वकी शिक्षा देनेके कारण ही उनकी यह दशा हुई थी।

पीथागोरसके बाद ग्रीकदेशमें रेखातत्त्वकी यथेष्ट समालोचना होने लगी। पीछे प्लेटोके शिष्यने ज्यामिति-का सूत्रपात किया। उन्होंने तथा मिनीकमस नामक रैखिकज्ञने शङ्कुच्छिन्नक्षेत्र (Geometry वा Conics)के अनेक तत्त्व आविष्कार किये। इस समय सूचीक्षेत्र पृष्ठफलनिर्णयका उपाय उद्भावित हुआ। शङ्कुच्छेद और सूचीक्षेत्र देखो।

किन्तु उस समय भी युक्लिडका जन्म नहीं हुआ था। मिनोकमसके बाद आर्कमिदिसने ज्यामिति वा रेखागणितकी बड़ी उन्नति की। २८७ ई०सन्के पहले उन्होंने रेखागणित सम्बन्धीय पुस्तक रची। इसके पहले गोलघनफलका नियम ग्रीसमें अज्ञात था। आर्कमिदिसने उसका आविष्कार किया। आर्कमिदिसने अपने शिष्योंसे कहा था, "जो क्षेत्र अङ्कित कर मैंने गोलघनका आविष्कार किया है, मेरी मृत्युके बाद समाधिस्तम्भमें वह क्षेत्र अङ्कित कर देना।" आज भी उनकी समाधिमें वह अङ्कित क्षेत्र उस अतीत कीर्त्तिकी घोषणा करता है।

आर्कमिदिसके बाद युक्लिडका आविर्भाव हुआ। वे आथेन्स नगरमें और अलेकजन्द्रियाके विश्वविद्यालयमें रेखागणित शास्त्रके अध्यापक थे। उन्होंने उक्त शास्त्रका परिवर्द्धन कर एक संशोधित पुस्तकका प्रचार किया।

इस समय सारे संसारमें जिस रेखागणितकी आलोचना होती है, युक्लिडको उसका मूल कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी। रेखागणित शब्द युक्लिडके साथ एकार्थवाचक हुआ है। युक्लिड रेखागणित शास्त्रके जन्मदाता नहीं होने पर भी इसके पिता अवश्य हैं। क्योंकि, रक्षण, पोषण, पालन आदि कार्यों द्वारा वे ही रेखागणितके यथार्थ पितृपदवाच्य हैं।

युक्लिडके बाद रेखागणितकी और किसीने उन्नति नहीं की। उसी समय ग्रीसमें रोमकशासन प्रवर्त्तित हुआ था। रोमकशासनमें उक्त शास्त्र बिलकुल निश्चल था। केवल विथियस नामक रोमक-गणितज्ञने ग्रोक ज्यामिति-का अनुवाद किया था।

इसके बाद सैकड़ों वर्ष पृथ्वी पर रेखागणितकी आलोचना नहीं हुई। क्योंकि रोम-साम्राज्य ध्वंस होनेके बाद यूरोपखण्ड अज्ञान-अन्धकारसे समाच्छन्न हो गया था। पीछे जब ९वीं सदीमें मुसलमानी शिक्षा-सभ्यताका उन्नत युग प्रवर्त्तित हुआ, तब बोगदादके समरकन्द नगरमें मिर्जा उलुगवेगने रेखागणितकी पुनः आलोचना की। इसके बाद १६वीं सदीको जब यूरोप-में शिक्षासभ्यताका नवयुग आरम्भ हुआ, तब यह शास्त्र फिरसे आलोचित होने लगा।

१५७० ई०को इङ्गलैण्डमें सबसे पहले युक्लिडका रेखागणित मुद्रित हुआ था। युक्लिडके बाद जिन्होंने रेखागणितका प्रसार किया। उनमेंसे रोमेर भल, पासकल, केपलर और देकार्टके नाम उल्लेखनीय हैं। देकार्टकी व्यवच्छेदक वा बैजिक ज्यामिति द्वारा संख्यागणित और रेखागणितके मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ है।

युक्लिडके समय रेखागणितकी सीमा जितनी दूर थी, अभी उससे कहीं बढ़ गई है।

भारतवर्षमें जगन्नाथका रेखागणित मुद्रित और हिन्दी भाषामें अनुवादित हुआ है। शुल्वसूत्र देखो।

रेखान्तर (सं० क्लो०) द्राघिमान्तर, किसी वेधशालाकी निर्दिष्ट याम्योत्तर रेखाके पूर्व या पश्चिमका व्यवधान-स्थान।

रेखाभूमि (सं० स्त्री०) रेखास्थिता भूमि। लंका और सुमेरुके बीचका देश। लङ्का और सुमेरुके बीच रेखा-की कल्पना कर अक्षांश स्थिर करना होता है। इस रेखाकी सीधमें जो सब देश पड़ते हैं वे रेखाभूमि (Equator) कहलाते हैं।

"यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशन्
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदितो सा मध्यरेखाभुवः।
आदौ प्रागुदयोऽपरत्रविषयो पश्चाद्धि रेखोदयान्
स्यात्तस्मात् क्रियते तदन्तरभुवं खेटेष्वृणं स्वं फलम्॥"
(सिद्धान्तशिरोमणि)

रोहितक देश, अवन्ती देश तथा उनके पासके सरोवर और कुरुक्षेत्र इन सब स्थानोंको रेखाभूमि कहते हैं।

रेखायनि (सं० पु०) रेखायनके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रेखित (सं० त्रि०) १ खिंचा हुआ, अंकित। मसका हुआ, फटा हुआ। ३ जिस पर रेखा या लकीर पड़ी हो।

रेखिन् (सं० त्रि०) रेखास्यास्तीति रेखा-इनि। रेखा-युक्त। जिस पर रेखा या लकीर पड़ी हो।

रेग (फा० स्त्री०) बालू।

रेगिस्तान (फा० पु०) बालूका मैदान, मरुदेश।

रेगुलेशन (अं० पु०) १ वे नियम या कायदे जो राज-पुरुष अपने अधीन देशके सुशासनके लिये बनाते हैं, विधान, कानून। २ वे नियम या कायदे जो किसी विभाग या संस्थाके सुसंचालन और यन्त्रणाके लिये बनाये जाते हैं, नियम।

रेग्यूलेटर (अं० पु०) किसी मशीन या कलका वह हिस्सा या पुर्जा जो उसकी गतिका नियन्त्रण करता है, यंत्रनियामक।

रेङ्गटीपहाड़—आसामप्रदेशके कछाड़विभागके अन्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह लुसाई शैलमालासे उत्तरकी ओर फैल गई है। सोनाई और धलेश्वरी नदी इसके दोनों ओर बहती है।

रेङ्गमा—आसाम प्रदेशके नागा शैलमालाके अन्तर्गत एक गिरिभाग। यह अक्षा० २६° १५' से २६° ३०' उ० तथा देशा० ९३° २४' से ९३° ४०' पू०के मध्य विस्तृत है। इस पर्वत पर रेङ्गमा जातिके लोग रहते हैं। ये लोग नागा वा मिकिर जातिकी तरह असभ्य नहीं हैं, किन्तु आकृतिगत सादृश्यमें कोई पृथकता दिखाई नहीं देती। नागा जातिकी यह शाखा धनेश्वरी (धानश्री) नदीके पूर्वदेशसे यहां आई है।

रेङ्गून—(रङ्गून) निम्नब्रह्मके पेगू विभागके अन्तर्गत अंगरेजाधिकृत एक जिला, बरमी लोग इसे रणकुन वा हाम्थावाड़ी कहते हैं। यह अक्षा० १६° से १७° उ० तथा देशा० ९५° से ९५° पू०के मध्य विस्तृत है। इसके पश्चिममें तुसित् तौङ्ग और पूरबमें इरावती नदीके टो वा चीनबकिरमुहाना तक विस्तृत समुद्रतट ले कर यह जिला संगठित है। भूपरिमाण ४२३६ वर्गमील है। इसका प्राचीन नाम बोखार देश है।

इसके उत्तर थारावती, श्वेगिन जिला, पूरबमें श्वेगिन तथा पश्चिममें थोनंग्वा और दक्षिणमें समुद्र है। रंगून जब जिला बनाया गया उस समय भावरुगेल नदीसे ले कर तौंग्नू पर्यन्त विस्तीर्ण पेगूयोमा शैलप्रान्तवर्त्ती भावरू नामक भूभाग इसके अन्तर्भुक्त था। १८६४ ई०में वह तौंग्नूके विभागमें तथा १८६६ ई०में श्वेगिनके शासनाधीन लाया गया था। इसके बाद कबलिया थाना श्वेगिनमें, योङ्गमें थाना हेआदर तथा पश्चिमका कुछ अंश थानेग्व सदरमें मिला दिया गया है। पीछे १८८३ ई०में पेगूहलायगु सिरियसनगर विभागको रंगूनसे अलग कर नये पेगू जिलेमें शामिल किया गया था।

इस जिलेका प्राकृतिक सौन्दर्य बिलकुल नहीं है। समुद्रोपकूलसे विस्तृत समतलक्षेत्र क्रमशः उन्नत होता हुआ उत्तरकी ओर चला गया है। पेगूयोमा शैलका ऊंचा नीचा ढालूप्रदेश उसकी समताको भेद कर मध्य-स्थलमें खड़ा है। पेगू नदीके दक्षिण हेङ्ग उपत्यका तथा रङ्गूनके उत्तर किसी किसी स्थानमें समुद्रकी खाड़ी भूगर्भको भेद कर देशकी ओर चली गई है। उसमें ज्वार भांटा समान भावमें रहता है। नावें तथा स्टीमरें इस खाड़ीमें हमेशा आती जाती रहती हैं। उन सब खाड़ियोंमें बबले, पक्खुन, पानहैङ्ग और थ-क्वापिन (बेसिनकी खाड़ी) उल्लेखनीय हैं।

पेगुयोमा पर्वत इस जिलेके उत्तरसे क्रमशः दक्षिणकी ओर चला आया है। वह दक्षिणवाहिनी शाखा दो भागों-में विभक्त हो गई है। पश्चिम शाखा दक्षिण पश्चिमकी ओर विस्तृत हो कर हैङ्ग और पगनमून नदी प्रवाहित उपत्यकादेशको विभक्त करती है तथा क्रमशः दक्षिण-पूर्व आ कर पेगू नदीके किनारे समतलक्षेत्रमें मिल गई

है। उपरोक्त पश्चिमी शाखाके दक्षिण सुविख्यात शिउ-दागोन पगोडा विद्यमान है।

यहांकी नदियोंमें हैंङ्गु वा ज़य प्रधान है। यही नदी रङ्गून नामसे समुद्रमें गिरती है। ओकन, मगोयी, क्षब्वी, लियनगुन इसकी शाखानदी है। बवले, पानहैंङ्ग आदि खाड़ियां इसके साथ इरावतीमें मिलती हैं। पेगुनतुन नदी पेगुयोमा शैलसे निकल कर पेगू नदीमें मिली है। इस पेगू नदीसे स्टीमर पेगूनगर तक जाता है।

वहांका प्राचीन इतिहास कुछ भी मालूम नहीं। तामिल और तेलगू उपाख्यानमालासे जाना जाता है, कि ईसाजन्मके कई सदी पहले तैलङ्गके अधिवासियोंने वाणिज्यके उद्देशसे समुद्रकी राह जा कर ब्रह्मोपकूलमें उपनिवेश बसाया। उन्होंने यहां आ कर मून जातिको अधिवासिरूपमें देखा था। आज भी पेगुयानगण अपनेको मून जातिके बतलाते हैं। तैलङ्गके अधिवासी यहां कुछ समय रहनेके बाद तलैङ्ग कहलाये।

तालपत्रमें लिखित स्थानीय राजविवरणमें इस प्रकार लिखा है,—भारतमें गौतम बुद्धके साथ साक्षात् और कथोपकथनके बाद दोनों भाईने यहां आ कर शिउ-दागोन पगोडा स्थापन किया। वे दोनों भाई कौन थे, उसका कोई ऐतिहासिक विवरण आज तक नहीं मिला है। ऐतिहासिकतत्त्वकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि तृतीय महाबोधिसङ्घके आदेशानुसार स्वर्ण और उत्तर बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिये सुवर्णभूमिमें गये। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि उस समयके डेल्टामें बौद्ध और ब्रह्मण्यधर्मावलम्बी मतविरोधियोंके मतका जोरों प्रचार था। प्रायः कई सदी तक ब्रह्मण्य-धर्मसेवी प्रचारकोंके साथ बौद्धप्रचारकोंका भारत-वहिर्भूत प्रदेशमें विवाद चलता रहा था। आखिर ८वीं सदीके शेष भागमें जब ब्रह्मण्यधर्मको भारतवर्षमें गोटी जमी, तब बौद्धोंने बेरोकटोक हो कर ब्रह्मराज्यमें अपना धर्ममत फैलाया था।

इस ब्रह्मण्य और बौद्धविरोधसे आगे चल कर राजाओंके मध्य धर्ममतस्वातन्त्र्यके कारण घर फूट हो गई। पीछे उसीसे पेगूनगरमें धर्मस्रोतप्रवाहके साथ साथ नई राजधानीकी भी प्रतिष्ठा हुई थी। था-तुन-राजके नाग (नागा) वंशीय महिषीके गर्भसे थ म ल और म ल नामक दो पुत्र थे। पिताने दोमेंसे किसीको [illegible]न नहीं दिया। इस कारण उन्होंने दूसरा धर्म [illegible] किया और पेगूनगर बसा कर दोनों भाई वहीं रहने लगे। थ-म-ल-ने वहांके राजपद पर अभिषिक्त हो पूर्वकी ओर अपनी राज्यसीमा फैलाई। किंवदन्ती है, कि उन्होंने ही पीछे मर्त्तवान नगर बसाया था।

उनकी मृत्युके बाद वि-म-ल राजसिंहासन पर बैठे। वे सिओङ्ग नगर बसा कर वहीं रहने लगे। इन्हींके शासनकालमें ५६० ई०को विज्ञ-न-ग रन (विद्यानगर) राज्यके अधीश्वरने पेगू पर आक्रमण किया। इस युद्धमें वे पराजित हो कर स्वदेश लौटे। इस समयसे ले कर ७४६ ई०के मध्य इस वंशमें तेरह राजे हुए। शेषोक्त वर्षमें जिन राजाने राज्य किया था, उन्होंने पश्चिममें आराकान पर्वतमालासे लगायत पूरबमें सालविन नदी तक विस्तृत समस्त रामण्ण देश तथा श्रीभ्रष्ट था-तुन राज्यको अपने अधिकारमें कर लिया था। इस समय भी निम्न ब्रह्ममें बौद्धधर्म सर्ववादिसम्मतरूपमें ग्रहण नहीं किया था। १०वें पेगूके राजा पुन-न-वीक (ब्राह्मण हृदय) तथा उनके पुत्र ठेक-था पौराणिक हिन्दूधर्मके प्रति ही विशेष आस्थावान् थे। ठेक-थाको मृत्युके बाद पेगूके ३य राजवंशका अवसान हुआ। प्रथम तीन राजवंशने कब तक राज्य किया था तथा ठेक-थाई किस समय परलोक सिधारे थे, वह मालूम नहीं। इसी कारण परवर्त्ती अराजकताका इतिहास अन्धकारसे ढका है।

६वीं और १०वीं सदीमें यहां जो धर्मविप्लव हुआ, तैलङ्ग इतिहासिकोंने उस विवरणको छिपा रखा। इसीसे इस प्रदेशकी किसी ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख नहीं पाते हैं। १०५० ई०में पगानराज अ-नव-र-हतने इस स्थानको जीता। पीछे प्रायः दो सदी तक यह बरमी लोगोंके अधिकारमें रहा। इसके बाद ब्रह्मराज्यमें गृहविवादके कारण बलक्षय होने पर भी मुंगल सम्राट् कुबलाई खां (१२८३-८४ ई०)ने जब चीनसैन्यकी सहायतासे ब्रह्म-राजधानी पर अधिकार किया, तब ब्रह्मराज्य

आत्मरक्षाके लिये बेसिन प्रदेश भाग गये। तैलङ्गोंने इसी अवसरमें स्वाधीनता होनेकी चेष्टा की तथा वे सबके सब खुल्लमखुल्ला बागी हो गये। व रि-यू नामक एक व्यक्तिने मर्त्तवानूके ब्रह्मजातीय शासनकर्त्ताको मार कर वहां अपना अधिकार जमाया। इस समय पेगूके विद्रोह-दलपतिने आ-थाम-बोम दलबलके साथ आ कर व रि यू-का साथ दिया। मिलित विद्रोही सेनादलने ब्रह्मराज-सैन्यको पराजित कर प्रोमनगरके दक्षिण प-दौङ्ग नगर तक उन्हें खदेरा। इसके बाद तैलङ्ग सेनादल पेगूनगर लौटा; किन्तु कुछ समय बाद ही दोनों दलपतिके बीच विवाद खड़ा हो गया। युद्धमें आ ग्राम-बोन (त व ब्य) मारे गये। पीछे जनसाधारणकी सलाहसे व रि यू समस्त जीते हुए प्रदेशके राजा हुए। कुछ समय बाद ही आ खाम सोनके दो पुत्रोंने व-रि-यूको गुप्तभावसे मार डाला। १३०६ ई०में उनके भाई राजपद पर बैठे। इन्होंने केवल चार वर्ष तक राज्य किया था।

१३८५से १४२१ ई० तक रज द्दी-रित सिंहासन पर अधिष्ठित थे। उनके अधिकारकालमें बरमियोंने निम्न ब्रह्म पर चढ़ाई कर दी थी। उन्होंने बाहुबलसे बरमी-सेनाको परास्त कर १३८८ ई०में मर्त्तवान् और तत् पूर्ववर्त्ती प्रदेशों पर दखल जमाया। इस समय ब्रह्म राजके साथ युद्धके सिवा रङ्गूनके इतिहासमें और कोई उल्लेखयोग्य घटना न घटी।

राजा रज-द्दी-रितके शासनकालमें पुर्त्तगीज-वणिक् पहले पहल यहां आये। निकोलस कोण्टि १४३० ई०में पेगूनगरमें रह कर वहांकी समृद्धिका उल्लेख कर गये हैं। रज-द्दी-रितसे नीचे १०वीं पीढ़ीमें राजा बै गुण-रणके समय आण्टोनियो कोररियाने १५१९ ई०में मर्त्तवान्की सन्धि की। तभीसे सौभाग्यान्वेषी पुर्त्त-गीज सेनादलके साथ पेगूराजका विशेष सद्भाव स्थापित हुआ था।

करीब १५०८ ई०में तौङ्गुराज त-बिन श्वे ति-ने पेगूको दखल किया। पीछे मर्त्तवान् जीत कर वे पेगू लौटे और राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। राजछत्र धारणके उपलक्षमें उन्होंने श्वे-मन्द और शिउ दागोन पगोड़ाके ऊपर नया छत्र दान किया था। कुछ समय बाद उन्होंने अपना अधिकार फैलाया। १५४६ ई०में श्याम जातिको पददलित कर उन्होंने राजकर देनेके लिये बाध्य किया था। १८५० ई०में तत्रित् तौङ्गूके शासन-कर्त्ताने बड़े कौशलसे राजा त बिन-श्वे तिका काम तमाम कर राजमुकुट धारण किया।

इस घटनासे राज्यमें घोर विप्लव उठ खड़ा हुआ। आखिर जनसाधारणकी रायसे सिंहासनके प्रकृत उत्तराधिकारी भूरिन-नौङ्ग राजपद पर अभिषिक्त हुए। राजपद पर बैठते ही उन्होंने पहले तौङ्गुको अधिकार किया और १५५४ ई०में आवा राजधानीमें राज-पताका फहराई। थोड़े ही समयके अन्दर उन्होंने तेनासेरिमसे आराकान तथा समुद्रतटसे उत्तर शानराज्य तक अपना आधिपत्य फैला लिया था। १५८१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। राजा भूरिन-नौङ्ग विख्यात योद्धा थे। उन्होंने राजधानीको प्राचीर और दुर्गसे सुरक्षित कर दिया। उनके बसाये हुए एक दूसरे नगरका ध्वस्त निदर्शन आज भी दृष्टिगोचर होता है। वे कट्टर धार्मिक थे। इन्होंने सिंहलराजसे गौतमबुद्ध-का स्मृतिचिह्न मंगा कर उस पर पगोडा खड़ा करवाया था। नट वा अपदेवताकी प्रीतिके लिये जो वार्षिक उत्सव होता था, इन्होंने उठा दिया।

राजा भूरिन् नौङ्गकी मृत्युके बाद उनके लड़के नन्दभूरिन् राजा हुए। ब्रह्म-राजके सिवा और सभी राजोंने उनकी अधीनता स्वीकार की थी।

राजा नन्दभूरिन् ब्रह्मपतिके ऐसे उद्धत आचरणसे क्रुद्ध हो दलबलके साथ १५८४-८५ ई०में उनके राज्यकी ओर अग्रसर हुए। ब्रह्मपति भयभीत हो तथा उन्हें रोकने में अपनेको असमर्थ देख चीनराज्यमें भाग गये। राजा नन्दभूरिन्को उत्तर ब्रह्ममें युद्धकार्यमें व्यापृत देख श्याम-पति बागी हो गये। राजाने यह संवाद पाते ही उनके विरुद्ध चार बार सेना भेजी। चारों बार उनकी हार हुई। आखिर वे अपमानसे उत्तेजित, क्रुद्ध और विरक्त हो गये। क्रोधसे वे इतने अधैर्य हो गये थे, कि जो कोई उन्हें अच्छी सलाह देता उसी पर वे टूट पड़ते थे। धीरे धीरे वे घोर अत्याचारी हो गये। इस समय तैलङ्ग बौद्ध यतिओंके साथ उनका मनमुटाव हुआ।

फलतः वे सबके सब निर्वासित हुए। राजकोपमें पड़ कर कुछ यति प्राण तक भी विसर्जन करनेके लिये बाध्य हुए थे। इस भीषण हत्याकाण्डके बाद डेल्टाविभाग बिलकुल जनशून्य हो गया तथा वहां अराजकता विराज करने लगी। इसी सुअवसरमें आराकन वासियोंने सिरियामको दखल किया। १५९९ ई०में पेगू दूसरेके हाथ चला गया तथा राजा नन्दभूरिन् बन्दीकी तौर पर तैङ्गू भेजे गये। इस समय कुछ दिन तक अराजकता फैली रही थी।

आराकनपतिने अपने पुर्त्तगीज सेनापति फिलिप डि ब्रिटो पर १६०० ई०में सिरियमका शासन भार सौंपा। राजाका अनुग्रह रहने पर भी सेनापतिने दस्युजातिका स्वधर्म परित्याग किया। विश्वासघातकता करके उनसे गोआके पुर्त्तगीज राजप्रतिनिधिके साथ षड़यन्त्र रचा। पीछे स्थानीय तैलङ्ग अधिवासियोंको अपनी मुट्ठीमें करके शासनकर्त्ता ब्रिटोने पुर्त्तगालपतिके नामसे पेगूराज्यको जीता और स्वयं वहांका राजा हुआ।

सिंहासन पर बैठ कर ब्रिटोने सिरियम नगरकी श्रीवृद्धि की। उन्होंने गिरजा और दुर्ग बनवाया। तौङ्गू और अराकानपति उसके विरुद्ध खड़े हुए थे, पर कुछ कर न सके। दोनों राजाके सेनापति रणक्षेत्रमें पीठ दिखा कर भाग चले। कुछ बन्दी भी हुए थे। इसके बाद फिलिप डि ब्रिटोने अपने परम शत्रु तौङ्गुराज और मार्त्तवानपतिके साथ मेल कर लिया। किन्तु कुछ समय बाद ही इसने संधि तोड़ कर तौङ्-गु-पतिके विरुद्ध फिरसे अस्त्रधारण किया। इस समय १६१२ ई०में ब्रह्मराजने उसे पकड़ा और कैद कर लिया। राजविचारसे शूलीकी सजा हुई थी। इसके बाद पुर्त्तगीज लोग फिर पेगू राज्यमें अपनी गोटी न जमा सके।

इस समयसे ले कर १७४० ई० तक पेगू ब्रह्मराजके अधीन रहा। इन्हींके समय अङ्गरेज वणिक् वाणिज्य करनेके लिये रङ्गून आया था। १६९५ ई०में सिरियामें कोठी खोलनेके लिये उन लोगोंने राजाके पास आवेदन-पत्र भेजा। १७०९ से १७४३ ई० तक अंगरेज वणिक् वहां जा कर रहे थे। इधर उत्तर प्रदेशसे बार बार आक्रमण तथा गृहविच्छेदसे जर्जरित हो ब्रह्मराज्य धीरे धीरे कमजोर होता गया। १७४० ई०में पेगूवासी विद्रोही हो गये और उन्होंने दो बार सिरियम पर हमला कर दिया। १७४३ ई०में विद्रोहियोंको जब अंगरेज वणिकोंसे सहायता न मिली तब उन्होंने गुस्सेमें आ कर अंग्रेजी कोठीको जला कर खाक कर दिया। पिछे उन लोगोंने आवा दखल किया। किन्तु १७५३ ई०में मुत-षो बोवासी मौङ्-अङ्-जय राजधानीको फिरसे हस्तगत कर स्वयं आलौङ्-पय (आलोम्प्रा) नामसे सिंहासन पर बैठे। इस वंशने १८८५ ई० तक राज्य किया था। आलौङ्-पय राज्याधिकार वर्षके अन्दर हो वे पेगू, तावय और मार्गुईको जीत कर श्यामराज्यकी ओर बढ़े।

१८२४ ई०में प्रथम अंगरेज ब्रह्मयुद्ध खड़ा हुआ। अंरेजसेनाने नदीमुखमें प्रवेश कर रङ्गून पर अधिकार किया। युद्धके बाद ब्रह्मराजसे संधि करके अङ्गरेजोंने ब्रह्मराजको पेगूराज्य छोड़ दिया। फिरसे वाणिज्यसंक्रान्त वाद विवाद ले कर अंगरेज ब्रह्मका युद्ध छिड़ गया (१८५२ ई०)। इस युद्धमें अङ्गरेजोंकी जीत हुई। यन्दवूसन्धिके अनुसार समस्त रङ्गून जिला, पेगू, इरावती और तेनासेरिम विभाग अङ्गरेजोंको मिले।

इस जिलेमें प्रत्नतत्त्वके कितने अच्छे अच्छे निदर्शन देखनेमें आते हैं जिनमेंसे निम्नोक्त निदर्शन उल्लेखनीय हैं। इन सब निदर्शनोंके मनोहारी शिल्पचातुर्य और गठनप्रणालीको आलोचना करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। स्वान-ते नगरका श्वे दागोन पगोडा बहुत प्रसिद्ध और आदरकी वस्तु है। इसके मध्यस्थलमें गौतम बुद्धका केशगुच्छ बड़े यत्नसे रखा हुआ है। श्वे मन्द पगोड़ा तलैङ्ग जातिकी गौरवकीर्त्ति है। उपरोक्त स्वान-ते नगरके पास ही और भी कितने पगोडा विद्यमान हैं। उन्हें यहांके लोग प्राचीन काप्पाङ्गनगर और मिनग्लाडोन क्षय-थि नगरकी अतीत कीर्त्ति बतलाते हैं। डङ्ग और तामवू नगर अपेक्षाकृत आधुनिककालमें नूतन स्थान गठित होने पर भी प्राचीन ग्रंथादिमें उसे पुराना नगर कहा है।

यहां रेशमी और सूती कपड़े, मट्टीके बरतन, लवण,

चटाई, आदिका जोरों कारबार चलता है। नावकी राह-से स्थानीय वाणिज्य विशेषरूपसे परिचालित होता है। इरावती-मेली ष्टेट रेलवे खुल आनेसे केमेन्दिन, शौक-तव, ह्ला व गा, क्षव-वि, वनेटचुङ्ग तैक-गी, पालोन और ओकन नगरके वाणिज्यमें विशेष सुविधा हुई है। सित्तुङ्ग रेलवे लाइन पेगूसे तौङ्ग-गू तक चली गई है।

२ निम्नब्रह्मकी राजधानी। यह अक्षा० १६° ४६´ उ० तथा देशा० ९६° ११´ पू०के मध्य हैङ्ग नदीके बायें किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ढाई लाखके करीब है।

तलैङ्ग जातिकी किंवदन्ती और उपाख्यानमालासे मालूम होता है, कि पू और त-तव नामक दो भाइयोंने ८८५ ई० सन्के पहले रंगून नगरमें पहले एक ग्राम बसाया। भगवत्की कृपासे उन्हें गौतम बुद्धके दर्शन हुए जिससे उनके सब पाप जाते रहे। पीछे बुद्धदेव-प्रदत्त केशराजिको ले कर दोनों भाइयोंने उन्हींके आदेशानुसार श्वे-दागोन पगोडा बनाया और उसके नीचे केशगुच्छको रखा। ७४६ से ७६१ ई० तक राजा पुन-न-टी-क ने पेगू सिंहासनको अलंकृत किया था। उन्होंने इस नगरका जीर्ण संस्कार करके अरमन नाम रखा और पीछे वह फिरसे दगोन कहलाने लगा।

तलैङ्ग विवरणीमें १४१३ ई०को ब्रह्मगण द्वारा नगराधिकार, रज-दी-रित्के लड़के ब्या श्या किन् द्वारा शासन कर्तृत्व लाभ तथा १४६० ई०में उनकी बहन सिन्तसबु-द्वारा प्रासाद-निर्माण आदि विषयोंका खुलासा हाल दिया है। राजभगिनी सिन्तसबुके उद्देशसे यहां एक जातीय उत्सव मनाया जाता है। इस समयके बाद ही दगोन नगरकी समृद्धिका उल्लेख नहीं मिलता। हैङ्ग तीरवर्त्ती दा-ला नगर और पेगू तीरवर्त्ती सिरियम नगर उस समय खूब तरक्की कर रहा था।

गासपार बलबी १५७९-८० ई०में जब पेगू नगर देखने आये। तब उन्होंने दगोनके सम्बन्धमें लिखा है, कि यहांके घर काठके बने हैं और उनमें सुनहली दी गई है। चारों ओर अच्छे अच्छे उद्यान शोभते हैं। इन सब घरोंमें तलैङ्गगण रहते हैं। वे लोग दगोनके पगोडाके परिदर्शकरूपमें नियुक्त हैं। दगोनके शासन कर्त्ता ही कोठीवाल अङ्गरेज, पुर्त्तगीज और फरासियोंके ऊपर कर्तृत्व करते थे। पेगूराज उस समय यहांके सर्वेश्वर थे।

ब्रह्म और पेगूराजके बार बार युद्धसे दगोनका शासनभार विभिन्न व्यक्तिके हाथ सौंपा गया। १७६३ ई०में अलौङ्गपयने ब्रह्मकी राजधानी आवा नगरसे तलैङ्ग सेनादलको भगा कर तलैङ्गराज्य अधिकार किया। उन्होंने दगोनमें आ कर स्थानीय वृहत् पगोडाका फिरसे संस्कार किया। इसके बाद नगरकी शोभाको सब तरहसे बढ़ा कर उन्होंने इसका रणकुन (रणशेष) नाम रखा। तभीसे रङ्गून नगरमें उनके प्रतिनिधि रहने लगे।

१७६० ई०में यहां फिरसे ब्रह्म और पेगूवासियोंमें युद्ध खड़ा हुआ। रङ्गून पेगूराजके दखलमें रहने पर भी ब्रह्मराज वो-द-पयने उन्हें परास्त कर नष्टराज्यका उद्धार किया।

इसी समय अङ्गरेज-वणिकोंको रङ्गूनमें वाणिज्य-व्यवसाय चलानेके लिये कोठी खोलनेकी आज्ञा मिली। १७६४ ई०में अराकान और चट्टग्राममें इष्टइण्डिया-कम्पनीके साथ ब्रह्मराज सरकारका विवाद खड़ा हुआ। तदनुसार दोनोंमें मेल करानेके लिये कर्नल साइमस कम्पनीके दूतरूपमें फिरसे राजदरबार पहुंचे। इस समय अंगरेज-राजको १७६८ ई०को रङ्गून नगरमें एक अङ्गरेज रेसिडेण्ट रखनेका अधिकार मिला था।

१८२५ ई०में प्रथम अङ्गरेज-ब्रह्मका युद्ध शेष हुआ। पीछे १८२७ ई० तक अङ्गरेजराज यहांका शासन करते रहे। उसी साल यन्दबूकी सन्धिके अनुसार अंगरेजराजने इस स्थानका स्वत्व छोड़ दिया। १८४१ ई०में राजा कून-सैङ्ग-मिन (थरावती राजकुमार नामसे प्रसिद्ध) ओक-क-ला-प नामक स्थानमें नगर उठा लाये। १८५२ ई०में द्वितीय ब्रह्मयुद्धके बाद रंगून अङ्गरेजोंके दखलमें आया। तभीसे वह अङ्गरेजोंके ही दखलमें चला आता है।

रंगून शहरमें निम्नलिखित विद्यालय प्रधान हैं—१८७४ ई०में स्थापित रङ्गून कालेज और कालेजियट स्कूल, डाइसेसन बालक-स्कूल। यह १८६४ ई०में स्थापित हुआ और इसमें केवल अङ्गरेजके लड़के पढ़ते हैं,

१८७२ ई०में स्थापित बैंपटिष्ट कालेज ; १८९४ ई०में स्थापित सेण्ट जोन कालेज ; बालिकाके लिये सेण्ट जोन्स कोनभेण्ट स्कूल। यह १८६१ ई०में खोला गया है; तामिल लड़कोंके लिये १८७८ ई०में स्थापित लुथेरन मिशन स्कूल तथा १८६१ ई०में स्थापित सेण्टपाल्स स्कूल। इसके सिवा ३० सेकेण्ड्री स्कूल, १२० प्राइमरी स्कूल २१० एलिमेण्ट्री स्कूल तथा १६ ट्रेनिङ्ग और स्पेशल स्कूल हैं। अस्पतालोंमें रङ्गून जेनरल अस्पताल और डफरिन अस्पताल प्रधान हैं। सेण्ट्रल जेलके पास ही पागलखाना (Lunatic asylum) है।

रेच (सं० पु०) फुस्फुस वायुनिर्मुक्त करणरूप योग-प्रक्रियाभेद, सांस छोड़ना।

रेचक (सं० पु०) रेचयतीति रिच्-णिच् ण्वुल्। १ यवक्षार, जवाखार। २ जयमालवृक्ष, जमालगोटा। ३ तिलकवृक्ष, तिलकका गाछ। ४ पिचकारी। ५ प्राणायामभेद। पूरक, कुम्भक और रेचकभेदसे प्राणायाम तीन प्रकारका है। खींचे हुए सांसको पुनः विधिपूर्वक बहार निकालनेका नाम रेचक है।

"प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः।" (भागवत ३।२८।६)

विशेष विवरण प्राणायाम शब्दमें देखो।

(क्ली०) ६ कङ्कुष्ठमृत्तिका। (त्रि०) ७ भेदक, जिसके खानेसे दस्त आवे, कोष्ठशुद्धि करनेवाला।

रेचन (सं० क्ली०) रिच-ल्युट्। मलभेदन। पर्याय—प्रस्कन्दन, विरेक, विरेचन, रेक, रेचना। (शब्दरत्ना०)

सुश्रुतमें रेचन द्रव्यका विषय इस प्रकार लिखा है—मूला, छाल, तेल, स्वरस और क्षीर इन छः प्रकारका रेचनका व्यवहार होता है। इनमेंसे मूल-विरेचनके मध्य लाल निसोथका मूल, त्वक् विरेचनके मध्य लोध्रकी छाल, फलविरेचनके मध्य हरीतकी, तेलके मध्य रेंड़ीका तेल, स्वरसके मध्य करेलेका रस और क्षीरके मध्य थूहरका क्षीर श्रेष्ठ है।

त्रिवृता, श्यामा, दन्ती, मूसाकानी, सप्तला, यवतिक्ता मेढ़ाशृङ्गी, ग्वाल ककड़ी, विडङ्क, थूहरका बीज, स्वर्ण क्षीरिलता, चिता, अपाङ्ग, कुश, काश, लोध, काम्पिल्लक, रम्यक, पढार, सुपारी, नीलिनी, रेंड़ी, पूतिका, महावृक्ष, सप्तच्छदा, अकवन और ज्योतिष्मती ये सब रेचकवर्ग हैं। अर्थात् इन सब द्रव्योंका सेवन करनेसे विरेचन हो कर शरीरका मल दूर होता है। इन सब द्रव्योंमेंसे प्रथम पन्द्रह अर्थात् त्रिवृतासे ले कर काश तकका मूल लेना होता है। लोधसे पढ़ार तकके द्रव्योंकी छाल तथा सुपारीसे रेंड़ी तकका फल किन्तु अमलतास और करञ्जका पत्र ग्रहण किया जाता है। इसके सिवा अवशिष्ट द्रव्योंका क्षीर ग्रहणीय है।

(सुश्रुत सूत्रस्थान ४४ अ०) विरेचन शब्द देखो।

रेचनक (सं० पु०) रेचयतीति रिच्-णिच्-ल्यु, ततः स्वार्थे कन्। कम्पिल्लक, कमीला। (राजनि०)

रेचना (सं० स्त्री०) काम्पिल्ल, कमीला।

रेचनी (सं० स्त्री०) रिच्यतेऽनेनेति रिच्-ल्युट् ङीप्। १ काम्पिल्ल, कमीला। २ कालाञ्जली। ३ दंती। ४ श्वेतत्रिवृता, सफेद निसोथ। ५ वरपत्ती।

रेचनीय (सं० त्रि०) विरेचक, दस्त लानेवाला।

रेचित (सं० क्ली०) १ भेदित, परित्यक्त। २ घोड़ोंकी एक चाल। ३ नापनेमें हाथ हिलानेका एक ढंग।

रेची (सं० स्त्री०) रेचयतीति रिच-णिच्-अच्, गौरादित्वात् ङीप्। १ कम्पिल्लक, कमीला। २ अङ्कोट, अंकोल (राजनि०)

रेच्य (सं० पु०) १ प्राणायाममें बाहर छोड़ी हुई वायु। २ भेदक, जुलाब।

रेजस (फा० पु०) घोड़ोंका जुकाम।

रेजसछोमा (फा० पु०) रेजस देखो।

रेज़ा (फा० पु०) १ किसी वस्तुका बहुत छोटा टुकड़ा, सूक्ष्मखंड। २ सुनारोंका एक औजार जिसमें गला हुआ सोना या चांदी डाल कर पांसेके आकारका बना लेते हैं। यह लोहेकी बनी नालीके आकारका होता है। इसे 'परघनी' भी कहते हैं। ३ नग, थान। ४ अंगिया, सीनाबंद। ५ मजदूर लड़का जो बड़े राजगीरोंके साथ काम करता है।

रेजा खां—बंगालके नवाब जाफर अली खांको मृत्यु होने पर जब नाबालिग नवाब नजम उद्दौला बंगालकी राजगद्दी पर बैठा तब ये अंगरेज कम्पनीके आदेशसे १७६४ ई०में बंगालके प्रधान मंत्री हुए। महम्मद रेजा खां देखो।

रेजिश (फा० स्त्री०) जुकाम।

रेजीडेंट (अं० पु०) वह अंगरेजी राजकर्मचारी जो किसी देशी राज्यमें अंगरेजी राज्यके प्रतिनिधिके रूपमें रहता है।

रेजीमेंट (अं० स्त्री०) सेनाका एक भाग, रिजमिंट।

रेजू (फा० पु०) एक प्रकारका रेशा। यह ब्रश (कपड़ा आदि साफ करनेकी कूंची) बनानेके लिये कलकत्तेमें विलायतसे आता है।

रेजोल्यूशन (अं० पु०) १ वह नियमित बाकायदा प्रस्ताव जो किसी व्यवस्थापिका सभा या अन्य किसी सभा संस्थाके अधिवेशनमें विचार और स्वीकृतिके लिये उपस्थित किया जाय, प्रस्ताव। २ किसी व्यवस्थापिका सभा या अन्य किसी विषय पर निश्चय जो एकमत या बहुमतसे हुआ हो, निर्णय।

रेट (अं० पु०) १ भाव, निर्ख। २ चाल, गति।

रेट-पेयर्स (अं० पु०) वह जो किसी म्युनिसिपैलिटीको टैक्स या कर देता हो, करदाता।

रेडियम (अं० पु०) एक मूल्य द्रव्य धातु। इसका पता वैज्ञानिकोंको हालमें ही लगा है। उनका कहना है, कि यह धातु अत्यन्त विलक्षण है। इसे शक्तिका रूप ही समझना चाहिये यह उज्ज्वल प्रकाशमय होती है। इसके मिलनेसे परमाणु-संबंधी सिद्धान्तमें बहुत परिवर्त्तन हुआ है। पहले वैज्ञानिक परमाणुको अयौगिक मूल द्रव्य मानते थे पर अब यह पता चला है, कि परमाणु भी अत्यन्त सूक्ष्म विद्युत्कणोंकी समष्टि हैं।

रेड्डीवंश—दाक्षिणात्यके कोण्डवीडु प्रदेशका एक सामन्त-राजवंश। दोन्ती अल्ला रेड्डीके पोलिय वेमरेड्डी नामक एक पुत्रने १३२८ ई०में अपने भुजबलसे इस राजवंशकी प्रतिष्ठा की। ये जनसाधारणमें प्रोल या प्रोलय नामसे परिचित थे। उनके पीछे तथाक्रमसे १३३१ ई०में अनवेम रेड्डी, १३६१ ई०में अलियवेमरेड्डी, १३८१ ई०में कोमार गिरि वेमरेड्डी, १३९५ ई०में कोमति वेङ्कारेड्डी और १४२३ ई०में राच वेङ्कारेड्डी सिंहासनके अधिकारी हुए। इन शेषोक्त राजा राच वेङ्कारेड्डीके राज्यकालमें (१४२७ ई०में) मुसलमानोंने कोण्डवीडु पर चढ़ाई कर दी जिससे इस राजवंशका पूरा अधःपतन हुआ।

रेड्डीवरु—प्राचीन तैलङ्गवासी कृषिजीवी एक जाति। ये उच्च श्रेणीके शूद्र और क्षत्रियाचारी हैं। एक समय इन्होंने अपनी सत्तासे राजत्व किया था।

रेड्डीवंश देखो।

आजकल इनमेंसे बहुतेरे सैनिक विभागमें भर्ती हो गये हैं। निजाम राज्यके अंदर वनपर्त्ति और यहुवाल नामक स्थानके भूम्यधिकारी इसी वंशके हैं।

रेणी—बीकानेर राज्यके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध बड़ा गांव। यहां खसखसके पंखेका विस्तृत कारबार है। यहां तक कि एक पंखेका दाम २०) रु० तक है।

रेणु (सं० पु० स्त्री०) रिणातीति री गति-रेषणयोः (अजिवृरीभ्यो णिच्च। उण् ३।३८) १ धूल। २ पर्पट। ३ रेणुका, बालू। ४ विडंग। ५ पृथ्वी। ६ संभालूके बीज। ७ कणिका, अत्यन्त लघु परिमाण। ८ ऋक्-मन्त्रद्रष्टा एक ऋषिका नाम। (ऋक् ९।७० और १०।८९ सूक्त) ९ विकुक्षीके एक पुत्रका नाम। (स्त्री०) १० विश्वामित्रकी एक पत्नीका नाम।

रेणुक (सं० क्ली०) १ तन्नामक फलविषभेद। (सुश्रुत कल्पस्था० २ अ०) २ रेणुकबीज।

रेणुक आचार्य—पारस्करगृह्यकारिका और यज्ञपद्धतिके रचयिता। ये महेशके पुत्र और सोमेश्वर दीक्षितके पौत्र थे। इन्होंने १२६६ ई०में उक्त ग्रन्थ लिखा था।

रेणुककार (सं० लि०) धूलि आलोड़न या खननकारी, धूल मथने या खोदनेवाला।

रेणुकदम्ब (सं० पु०) धूलिकदम्ब, एक प्रकारका कदंब।

रेणुका (सं० स्त्री०) रेणुना कायतीति कै-क-टाप्। १ मरिच-की आकृतिका गन्धद्रव्यविशेष। पर्याय—द्विजा, हरेणु, कौन्ती, कपिला, भस्मगन्धिनी, कान्ता, नंदिनी, महिला, राजपुत्री, हिमा, रेणु, हरेणुका, सुपर्णी, शिशिरा, शान्ता, वृन्ता, धर्मिणी, पाण्डुपुत्री, कपिलोमा, हैमवती, पाण्डु पत्नी। गुण—कटु, शीतल, कण्डूति, तृष्णा, दाह और विषनाशक तथा मुखवैरस्यकारक। (राजनि०) २ बालू रेत। ३ रज, धूल। ४ पृथ्वी। ५ परशुरामकी माताका नाम। इनका विषय कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है—रेणुका विदर्भराजकी कन्या और जमदग्निकी स्त्री थी। इनके गर्भसे रुमण्वान्, सुषेन, वसु, विश्वावसु और परशुराम ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए।

एक दिन रेणुका स्नान करने गङ्गाजी गई। वहां उन्होंने देखा, कि उत्तम माला पहने, परम सुन्दर, तरुण राजा चित्ररथ सुन्दर स्त्रियोंके साथ जलक्रीड़ा कर रहे हैं। रेणुका वैसे राजाको देख कर कामातुरा हो गई। इसी समय उसके शरीरसे पसीना छूटने लगा। अब वह क्षण भर भी वहां न ठहर सकी अपनी मानसिक गति समझ कर घर लौटी। जमदग्निने रेणुकाका मनोविकार जान लिया और उसे बहुत फटकारा। पीछे उन्होंने रुषण्वत् आदि अपने पुत्रोंको रेणुका विनाश करनेके लिये हुकुम दिया। किन्तु कोई भी पुत्र मातृहत्या करनेमें राजी न हुए। आखिर परशुरामने पिताके आज्ञानुसार रेणुकाका मस्तक काट डाला। जमदग्निने परशुरामके प्रति सन्तुष्ट हो कर उन्हें वर मांगने कहा। परशुरामने माताके पुनर्जीवनके लिये प्रार्थना की। जमदग्निके वरसे रेणुकाने पुनर्जीवन पाया। (कालिकापु० ८२ अ०) परशुराम देखो।

६ सह्याद्रिका एक तीर्थ। स्कन्दपुराणीय सह्याद्रिखण्डके रेणुकामाहात्म्यमें इसका सविस्तर विवरण लिखा है।

रेणुका—सह्याद्रिके अन्तर्गत एक तीर्थका नाम। स्कन्दपुराणीय सह्याद्रिखण्डके रेणुकामाहात्म्यमें इसका विवरण विशद रूपसे लिखा है।

रेणुकाकवच (सं० पु०) रुद्रयामलके अनुसार एक प्रकारका औषध।

रेणुकासुत (सं० पु०) रेणुकायाः सुतः। परशुराम।

"भार्चीकनन्दनो रामो भार्गवो रेणुकासुतः।"

(भारत ३।९९।४२)

रेणुगर्भ (सं० पु०) १ ज्योतिषोक्त होरानिर्णायक यन्त्रविशेष। (Hour-glass) २ बालुकापूर्ण पात्रादि। ३ पुष्पादि।

रेणुत्व (सं० क्ली०) रेणोर्भावः त्व। रेणुका भाव या धर्म

रेणुदीक्षित—एक पण्डित और ग्रन्थकार।

रेणुप (सं० पु०) जातिविशेष।

रेणुपदवी (सं० स्त्री०) धूलिमय पथ, वह राह जो धूलसे भरी हो।

रेणुपालक (सं० पु०) प्रवराध्यायोक्त एक ऋषिका नाम।

रेणुमत् (सं० पु०) रेणुके गर्भसे उत्पन्न विश्वामित्रका पुत्र।

रेणुरूषित (सं० पु०) रेणुना रूषितः। १ गर्दभ, गदहा। (त्रि०) २ धूलि प्रक्षित, धूलमें मसला हुआ।

रेणुवास (सं० पु०) रेणौ परागे वासो यस्य। भ्रमर, भौंरा।

रेणुशस् (सं० अव्य०) धूलियुक्त।

रेणुसार (सं० पु०) रेणुरेवसारो यस्य। कर्पूर, कपूर।

रेणुसारक (सं० पु०) रेणुसार एव स्वार्थे कन्। कर्पूर, कपूर।

रेतःकुल्या (सं० स्त्री०) एक नरकका नाम।

रेतःसिच् (सं० पु०) इष्टकाभेद, एक प्रकारकी ईंट।

(शतब्रा० १०।४।३।१४)

रेतःसिक्य (सं० क्ली०) शुक्रनिर्गमन, वीर्यका निकलना।

रेत (हिं० पु०) शुक्र, वीर्य। २ पारा। ३ जल। ४ लोहारका वह औजार जिससे वह लोहेको रेतता है, रेती। (स्त्री०) ५ बालू। ६ बलुआ मैदान, मरुभूमि।

रेतकुण्ड (सं० पु०) १ रेतःकुल्या नामका नरक। २ कुमाऊंमें हिमालय परका एक तीर्थस्थान।

रेतज (सं० त्रि०) रेतोजात, पुत्र।

रेतजा (सं० स्त्री०) रेतमिव जायते इति जन-ड, टाप्, सर्वसान्तो अदन्ताश्च इति न्यायात् अत्राकारान्तरेतशब्दः। बालुक, बलुआ।

रेतन (सं० क्ली०) शुक्र, वीर्य।

रेतना (हिं० क्रि०) १ रेतीके द्वारा किसी वस्तुको रगड़ कर उसमेंसे छोटे छोटे कण गिराना जिससे वह चिकनी या आकारमें कम हो जाय। २ औजारसे रगड़ कर काटना, धीरे धीरे काटना। ३ किसी वस्तुको काटनेके लिये औजारकी धार रगड़ना।

रेतल (हिं० पु०) एक पक्षी। जिसका रंग भूरा और लम्बाई छः इञ्च होती है। यह युक्तप्रान्त और नेपालमें नदियोंके किनारे रहता है। किसी झाड़ी या पत्थरके नीचे घाससे प्यालेके आकारका घोंसला बनाता है और भूरे रंगके २ ३ अंडे देता है।

रेतला (हिं० वि०) रेतीला देखो।

रेतस् (सं० क्ली०) रीयते क्षरतीति री-क्षरणे (सुरीभ्यां

तुट् च्। उण् ४।२०१) इति असुन् तस्य तुट् च। १ शुक्र, वीर्य।

"स्त्रीयां रजोमयं रेतो बीजाढ्यमिन्द्रियं नरे।
तस्मात् संयोगतः पुत्रो जायते गर्भसम्भवः।
प्रथमेऽह्नि रेतश्च संयोगात् कललञ्च यत्॥"।
(हारीत शारीरस्था० १ अ०)

स्त्रियोंके रजको भी रेत कहते हैं। शुक्र देखो।

२ पारद, पारा। ३ जल। 'वृष्टिलणानां अपां देवानां रेतस्त्वाद्रेत उच्यते। तथा चोपनिषद्, देवानां रेतो वर्षमिति' (निघण्टु १।१२)

रेतस (सं० पु०) शुक्र, वीर्य।

रेतस्य (सं० त्रि०) १ बीज-बहनकारी, रज होनेवाला। (पु०) २ बहिष्पवमान स्तोत्रका पहला श्लोक।

रेतस्वत् (सं० त्रि०) बीजयुक्त, गर्भित।

रेतस्विन् (सं० त्रि०) उत्पादक-शक्तिपूर्ण, जिसमें उत्पन्न करनेकी शक्ति हो, बोजाप्लुत।

रेतिन् (सं० त्रि०) १ गर्भित, गर्भवती। २ रेतोधारिणी, वीर्य धारण करनेवाली।

रेतिया (हिं० पु०) रेतनेवाला।

रेती (हिं० स्त्री०) १ रेतनेका औजार, लोहेका मोटा फल जिस पर खुरदरे दानेसे उभरे रहते हैं और जिसे किसी वालू पर रगड़नेसे उसके महीन कण छूट कर गिरते हैं। इससे सतह चिकनी और बराबर करते हैं। नदीकी धाराके बीचोबीच टापूकी तरहकी बलुई जमीन जो पानी घटने पर निकल आती है, नदीका द्वीप। २ नदी या समुद्रके किनारे पड़ी हुई बलुई जमीन, बालूका मैदान जो नदी समुद्रके किनारे हो।

रेतीला (हिं० वि०) बालुकामय, बलुआ।

रेतोक—एक प्राचीन कवि।

रेतोधा (सं० त्रि०) गर्भिणी, गर्भवती।

रेतोधेय (सं० क्ली०) गर्भधारण।

रेतोभक्षण (सं० क्ली०) शुक्ररूप अपेय द्रव्यभक्षण। प्रायश्चित्ततत्त्वमें इस प्रकार अलेह्य अपेय भक्षणकी चांद्रायणविधि निबद्ध हुई है।

रेतोमार्ग (सं० पु०) शुक्रनिर्गमन पथ, वह छेद या रास्ता जिससे वीर्य निकलता है।

रेत्य (सं० क्ली०) पित्तल, पीतल।

रेत्र (सं० क्ली०) रीयते क्षरतीति री-बाहुलकात् त्र। १ रेतः, शुक्र। २ पीयूष, अमृत। ३ पटवास। ४ सूतक, पारा।

रेजी (हिं० स्त्री०) १ वह वस्तु जिससे रंग निकलता हो। २ वह अलगनी जिस पर रंगरेज लोग कपड़ा रंग कर सूखनेको डालते हैं।

रेनेल (मेजर जेम्स)—भारतवर्षका सर्वप्रथम अङ्गरेजी इतिहास लेखक। इन्होंने अङ्गरेजाधिकृत भारतका समस्त विवरण सङ्कलन कर एक भारतका इतिहास लिखा। भारतका भूवृत्तान्त विवरण यूरोप-समाजमें इन्होंने ही पहले पहल प्रचार किया, इस कारण वे वहांके लोगोंसे भारतीय भौगोलिकतत्त्वके पितास्वरूप पूजित हुए हैं। १७८० ई०में इन्होंने लण्डननगरमें 'बङ्गालका मानचित्र' प्रकाश किया। उसमें पूर्व-हिन्दुस्तानके वाणिज्य-भण्डार और रणक्षेत्रका संक्षिप्त विवरण दिया गया है। पीछे १७८०-८१ ई०में बंगाल और बिहारमें मानचित्र, १७७८-८६ ई०में बङ्गाल और बिहारका गमनागमन-पथविवरण, १७८८ ई०में गङ्गा और ब्रह्मपुत्र-नदके विवरणके साथ हिन्दुस्तानका मानचित्र तथा उसका संक्षिप्त इतिहास मुद्रित और प्रचारित किया। उनकी बनाई पुस्तक पश्चिम एशिया और भारतीय प्राचीन इतिहासके सम्बन्धमें बहुत उपकारी है।

रेप (सं० त्रि०) रेप्यते निन्द्यते इति रेप-घञ्। १ निन्दित। २ क्रूर। ३ कृपण।

रेपल्ली—१ मन्द्राजप्रदेशके कृष्णाजिलान्तर्गत एक तालुक। यह कृष्णा नदीके दक्षिण किनारे समुद्र-तटसे मंगलगिरि शैलमाला तक विस्तृत है। भू-परिमाण ६४४ वर्गमील है।

२ उक्त जिलेका एक नगर तथा रेपल्ली तहसीलका विचार-सदर। यहां एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष पड़ा है जिसे स्थानीय भूम्यधिकारियोंके किसी पूर्वपुरुषने १७०५ ई०में बनवाया था।

रेपस् (सं० क्ली०) रप् (रपेरत एच। उण् ४।१८६) इति असुन् अतः एत। १ अवद्य, अनिन्दनीय। (त्रि०) २ अधम, नीच। ३ क्रूर। ४ कृपण, कंजूस।

रेफ (सं० पु०) रिफ्यते इति रिफ्-घञ्, यद्वा 'दावि

फन्' इत्यनेन वर्णस्वरूपार्थे रशब्दादि फन् प्रत्ययः। १ रकार, रवर्ग। २ रकारका वह रूप जो अन्य अक्षरके पहले आने पर उसके मस्तक पर रहता है। ३ राग। ४ शब्द। (त्रि०) रिफ (अवद्यावमाधमार्व रेफाः कुत्सिते। उण् ५।५४) इति अप्रत्ययेन निपातितः। ५ कुत्सित, अधम।

रेफरी (अं० पु०) वह जिससे कोई झगड़ा निपटानेको कहा जाय, पंच।

रेफवत् (सं० त्रि०) रेफयुक्त, जिसमें रेफ हो।

रेफविपुला (सं० स्त्री०) छन्दोभेद। रविपुला देखो।

रेफस् (सं० त्रि०) रिफतीति रिफ्-असुन्। १ क्रूर। २ अधम। ३ दुष्ट।

रेफिन् (सं० त्रि०) रेफ-अस्त्यर्थे इनि। रेफयुक्त।

रेफ्यूज (अं० पु०) वह संस्था जिसमें अनाथों और निराश्रयोंको अस्थायी रूपसे आश्रय मिलता है।

रेभ (सं० त्रि०) १ कर्कश शब्दकारी, कठोर वचन बोलनेवाला। २ स्तुतिवादक, स्तुति करनेवाला। ३ वृथा वाक्यव्यय, फजूल बात बोलनेवाला।

रेभ—१ वैदिक ऋषि। असुरोंने इन्हें एक कूपमें डाल दिया था। दश रातें और नौ दिन बीतने पर अश्विनी-कुमारोंने इन्हें निकाला था। (ऋक् १।११२।५, १।११६।२४) २ कश्यपवंशीय एक दूसरे ऋषि। ये ऋक् ५।६७ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे।

रेभण (सं० क्ली०) रेभ शब्दे भावे ल्युट्। गोध्वनि, गायका बोलना।

रेभसूनु (सं० पु०) रेभ ऋषिके दो पुत्र। ये दोनों ऋक् ६।९९-१०० सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे।

रेभिल (सं० पु०) एक नायकका नाम।

(मृच्छकटिक ४४।६)

रेमदा—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव।

रेमि (सं० त्रि०) रमणकारी, गमन करनेवाला।

(पा० ३।२।१७१ वार्त्तिक २)

रेमुना—बङ्गालके बालेश्वर जिलान्तर्गत एक प्राचीन बड़ा गांव। यह अक्षा० २१° ३२´ उ० तथा देशा० ८६° ५८´ पू० बालेश्वर नगरसे ५ मील पश्चिममें अवस्थित है। माघ मासमें यहां क्षीरचोरा गोपीनाथ मूर्तिके उद्देशसे एक बड़ा मेला लगता है। वह मेला १३ दिन रहता है।

वैशाख और कार्त्तिक मासमें यहां बहुतसे यात्री इकट्ठे होते हैं। देवमन्दिर पत्थरका बना है और उसमें बहुतसे कामशास्त्रीय चित्र खुदे हैं।

एक समय यह नगर बहुत समृद्धिशाली था। गङ्ग-वंशीय राजाओंने यहां राजधानी बसा कर शासन विस्तार किया था।

रेरिवन् (सं० त्रि०) प्रेरयिता, भेजनेवाला।

रेरिह (सं० त्रि०) जीभसे बार बार चाटना।

रेरिहाण (सं० पु०) १ शिव। २ असुर। ३ चौर, चोर। (शब्दरत्ना०)

रेवआ (हिं० पु०) बड़ा उल्लू पक्षी, रुहआ।

रेवदा (हिं० पु०) रेवआ देखो।

रेल (अं० स्त्री०) १ सड़ककी वह लोहेकी पटरी जिस पर रेलगाड़ीके पहिये चलते हैं। २ भापके जोरसे चलनेवाली गाड़ी, रेलगाड़ी।

विशेष विवरण रेलवे शब्दमें देखो।

रेल (हिं० स्त्री०) १ बहाव, धारा। २ आधिक्य, भरमार।

रेलङ्गी—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके गोदावरी जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० १६° ४१´ १०´´ उ० तथा देशा० ८१° ४१´ ४०´´ पू०के बीच पड़ता है। यहां लगभग ५ हजार मनुष्य रहते हैं। यह स्थान समृद्धिशाली और वाणिज्यसम्भारपूर्ण है।

रेलठेल (हिं० स्त्री०) रेलपेल देखो।

रेलना (हिं० क्रि०) १ आगेकी ओर झोंकना, ढकेलना। २ ठसाठस भरा होना, अधिक होना। ३ अधिक भोजन करना, ठूस ठूस कर खाना।

रेलपेल (हिं० स्त्री०) १ भीड़ जिसमें लोग एक दूसरेको धक्का देते हों। २ भरमार, ज्यादती।

रेलवे (Railway = रेलपथ)—लौहवर्त्म। परस्पर बरा-बर दूरी पर रखी लोहेकी कड़ियां या रेलपथ। यह एञ्जिनके जानेके लिये बहुत उपयोगी है। रोज रोज गाड़ियोंके चक्केके घिसनेसे बचानेके लिये ही यह उपाय रचा गया था। ट्रामपथसे ही रेलपथका आविष्कार

हुआ है। आज कल पञ्जिन जिस रेलपथसे आता जाता है, उसकी पैदाइश और मजबूती इङ्गलैण्डमें हुई थी।

उधर इटलीके उत्तरप्रान्तमें पुराने जमानेकी इमारतोंके खण्डहरोंको खुदवानेसे वहांके प्रत्नतत्त्वके जानकारोंको एक दूसरी तरहके रेलपथोंका नमूना मिला है। यह रेलपथ पत्थरोंसे जुड़ा कुछ चौड़ा और बराबर दूरी पर रखे पत्थरोंसे ही बंधा है। इस पथका नमूना आज भी मौजूद है। किन्तु इसका प्रमाण नहीं मिलता, कि इस पथ पर पञ्जिनमें जुती गाड़ियां दौड़ाई गई थीं या नहीं। किन्तु इस पथ पर गाड़ियोंके आने जानेकी रगड़ आज भी दिखाई देती है। इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि अबसे सैकड़ों वर्ष पहले धरतीके पुराने वासिन्दे पत्थरके बने रेलपथसे गाड़ियां दौड़ाते थे।

जो हो रेलपथके सम्बन्धमें और कोई पुराना हाल नहीं मालूम होता। इस समय जिस रेलपथसे पृथ्वी भरती जा रही है, जिसके द्वारा लोग दो दण्डमें दो महीनेकी राह तय करते हैं, जिसके कारण दूरी नजदिकीमें बदल गई है, उस रेलपथकी उत्पत्ति ट्रामसे ही हुई है। सन् १६१६ ई०से पहले इसका कुछ भी नामोनिशान कहीं न था। किन्तु कुछ लोगोंका कहना है, कि सन् १६०२ ई०से १६४६ ई०के बीच किसी समयमें ट्रामका आविष्कार हुआ था। उस समय अधिक बोझसे लदी गाड़ियोंको एक जगहसे दूसरी जगह ले जानेमें बड़ी असुविधा होती थी। बोझा ढोनेवाले पशु नियमित बोझ ढोनेके सिवा अधिक बोझ ढो नहीं सकते थे, इससे कारोबारमें बड़ी कठिनाई झेलनी पड़ती थी। इसी कठिनाईको दूर करनेके लिये उस समयके विख्यात कारीगरोंने न्यूकैसल नगरकी कोयलेकी खानसे टाइन नदीके किनारे तक एक ट्रामपथ तैयार किया। उसी समय नरदाम्बरलैण्ड और डरहमकी खानिसे नदीके किनारे तक दूसरा पथ भी तैयार हुआ था। यह पथ लकड़ीका बना था। अर्थात् समानान्तर पर रखी आज कल जैसी लोहेकी कड़ीकी जगह लकड़ीकी पकड़ियां रखी गई थी। ट्रामके चक्कोंको गिरनेसे बचानेके लिये लकड़ीकी पटरियों पर कुछ गहरा खोदा गया था, जिसमें चक्कोंका निकला हुआ अंश उसमें घुस सके। पहले पहल इस पथके बनानेमें ओकवृक्षकी लकड़ीका इस्तेमाल हुआ था। इसके बाद लकड़ीकी कड़ियां बिछाई गईं जो लकड़ीकी पटरियोंमें स्क्रू या कांटेसे जोड़ दी जाने लगीं।

चक्केकी रगड़से रेल जब घिस जाती थी, तब उसे बदल दिया जाता था। धीरे धीरे गाड़ी चलानेवालोंने घोड़ोंके शीघ्र शीघ्र चलनेके लिये समनान्तर कड़ियों पर कुछ ऊंची रेल तैयार कर ली और रेलपथ पर मट्टी डाल कर बड़ी बड़ी कड़ियां तोप दी जाती थीं। साधारण गाड़ियोंसे अधिक भारी बोझ इसके द्वारा ढोये जाने लगा। दूसरे पथमें एक घोड़ा १७ कार्टर मनसे भारी बोझ ढो नहीं सकता था। किन्तु नये पथसे एक घोड़ा ४२ कार्टरका बोझ अनायास ढोने लगा। बहुत दिन तक ट्रामपथमें किसी तरहकी उन्नति नहीं हो सकी। पीछे सन् १७६७ ई०में कोलब्रुकवेल लौह कम्पनीके इञ्जिनियर मिष्टर रेनाल्डकी सलाहसे लकड़ीकी रेलकी जगह ढलाई लोहेकी रेल परीक्षास्वरूप व्यवहृत होने लगी। किन्तु उस समय भी किसीने स्वप्नमें भी सोचा न था, कि इस गाड़ी पर मनुष्य भी आयेंगे जायेंगे। कोयलेकी खानसे कोयला ढोनेके लिये सब नदियों और समुद्रके किनारे तक ट्रामें चलने लगीं।

पहले लोहेकी बनी रेल ५ फुट लम्बी ४ इञ्च चौड़ी और १। इञ्च मोटी होती थी। प्रत्येक रेलमें ३ छेद होते थे। इन छेदोंमें स्क्रू या कांटे डाल कर नीचेके लकड़ीकी पटरीमें रेल जोड़ दी जाती थी। ट्रामका पथ अङ्गरेजीके H पेचके आकारका होता था। अर्थात् दोनों ओरसे बिचला भाग कुछ गहरा होता था। इसलिये गाड़ीके चक्के उससे गिरते न थे। किन्तु नीची रेलपथमें कुछ विशेष असुविधा थी। सदा धूलि या कीचड़से भर जाती थी। इससे गाड़ियोंके आगे जानेमें बड़ी अड़चन होती थी।

इस अड़चनको दूर करनेके लिये सन् १७८६ ई०में जेसफ नामक एक इञ्जीनियरने सबसे पहले लफबरो नामक स्थानमें ऊंची रेलकी प्रतिष्ठा की। गाड़ीके चक्के एक ओर बिचले भागसे कुछ ऊंचे किये गये।

इससे चक्के ऊंची रेलसे गिर नहीं सकते थे। ऊंची रेलें पहले ६ फीटकी होती थीं।

धीरे धीरे चिन्ताशील मनुष्योंने रेलोंकी उन्नतिमें चित्त लगाया। लिवरपुल और मानचेष्टरके बोझ कारोबारके लिये जलका पथ मौजूद रहने पर भी जल्दी माल असबाब भेजनेमें बड़ी असुविधा थी। इस असुविधासे इन दोनों नगरोंसे केवल १२०० टन मन ही द्रव्य रोज आता जाता था। प्रत्येक टनमें १८ शिलिंग खर्च पड़ता था। जो हो, सन् १८१० ई० तक सभी ट्रामें और रेलें घोड़ेसे चलाई जाती थीं और केवल एक गाड़ी ही चलती थी। अर्थात् बहुतेरी गाड़ियां एकमें जोड़ कर चलानेकी प्रथा उस समय तक जारी नहीं हुई थी।

लोकोमोटिवकी सृष्टि।

सन् १८१० ई०में जेम्स वाटने भाप या वाष्पकी शक्तिसे परिचालित एञ्जिनका आविष्कार किया। उससे गाड़ियां खिंची जायंगी, यह बात उस समय तक किसीने सोचा न था। ऊंचे विभागके इञ्जीनियरोंने ४० वर्षों तक क्रमसे दिमागसे काम ले कर "लोकोमोटिव" या गतिशील एञ्जिनका आविष्कार किया। वाट, सिमिंटन, ट्रेविथिक्, ब्लेङ्किनसप, चापमेन, ब्राण्टन आदि मनुष्योंने धीरे धीरे रेलपथसे एञ्जिन द्वारा गाड़ियां खिंची जानेके लिये एञ्जिनका आविष्कार किया। ये सभी जार्ज ष्टीफनके पहलेके या उनके समयके हैं। स्वयं चलनेवाली एञ्जिन सन् १८०२ ई०में ट्रेविथिक द्वारा पहले पहल उद्भावित हुए। उन्होंने लण्डन नगरके निकट अपने उद्भावित एंजिनको एक विराट् जनसमूहके सामने दिखलाया। वह विराट् जनसमूह उनके इस अद्भुत आविष्कारको देख विस्मित हो उठा। यही लोकोमोटिवकी भित्ति है। अन्तमें सन् १८०४ ई०में उन्होंने टिडविल रेलपथ पर एञ्जिन द्वारा रेलगाड़ी चलाई। पृथ्वीके इस सर्वप्रथम एञ्जिनमें १० टनका बोझ घण्टेमें ५ मीलके हिसाबसे खींचा जाने लगा। किन्तु उस समयके इञ्जीनियरोंने एञ्जिनकी कमीको पूरा करनेमें मन नहीं लगाया और सभी इसकी अधिक उन्नतिमें सन्देह करने लगे। सन् १८११ ई०में बाईलम रेलपथसे ट्रेविथिकका एञ्जिन व्यवहृत हुआ था।

सन् १८२१ ई०में ष्टकटन और डार्लिंटन रेलपथ तय्यार करनेके लिये वहांकी सरकारने हुक्म जारी किया। उससे पहले रेलपथसे केवल लदे हुए मालके सिवा कोई मनुष्य उससे आता जाता न था। हेटन रेलपथ पर ६० टनकी बोझाई गाड़ी घण्टेमें ४॥ मीलके हिसाबसे आती जाती थी। किलिंगवार्थ रेलपथ पर केवल ४० टन बोझाई गाड़ी घण्टेमें ६ मीलके हिसाबसे जाने लगी थी।

जार्ज ष्टीफेनसन पहले ष्टकटन और डार्लिंटन रेलवेपथके इञ्जीनियर नियुक्त हुए। इस समय सरकारने वाष्पीय शक्तिसे परिचालित गतिशील एञ्जिन द्वारा रेलपथसे गाड़ी चलानेका हुक्म दिया। इसके मुताबिक ३८ मील लम्बा एक रेलपथ तय्यार हुआ। Fish belly या मत्स्योदर अर्थात् मछलीके पेटके आकार नया रेलपथ तय्यार हुआ।

इसी समय नटिंहमके रहनेवाले टामस ग्रे नामक एक प्रतिभावान् मनुष्यने यात्रियोंकी सुविधाके लिये देशके सभी जगह रेलपथका प्रचार करना चाहिये—इस विषयमें अपने उद्भावित संकल्पको सरकारसे कहा। उन्होंने सन् १८२० ई०में "Observations on a general Iron Railway" अर्थात् 'साधारण लोहेके रेलपथके सम्बन्धमें मन्तव्य' नामकी एक पुस्तक प्रकाशित की। किन्तु उस समय भी वहांकी जनता ग्रेकी दूरदर्शिताको हृदयङ्गम कर न सकी।

इसके बाद सन् १८१२ ई०में लण्डनके रहनेवाले विलियम जेम्स नामक एक मनुष्य लिवरपुल और माञ्चेष्टरके बीच रेलपथ फैलानेके लिये चेष्टा करने लगे; किन्तु वे उसमें सफल न हो सके। अन्तमें सन् १८२४ ई०की २६वीं अक्तूबरको लिवरपुलके रहनेवाले जोसेफ सण्डार्स नामके एक मनुष्यने लिवरपुल और मञ्चेष्टरके बीच रेलपथके सम्बन्धमें एक आदर्श प्रकाशित किया। जार्ज ष्टीफेन्सन इस पथकी पैमाईशके काममें नियुक्त हुए। अनेक वाद-विवाद कर सरकारने अन्तमें इस प्रस्तावका अनुमोदन किया। किन्तु सन् १८३० ई०की १५वीं सितम्बरके पहले इस पथसे गाड़ी आती जाती न थी।

सबसे पहले छकटन और डार्लिंटन रेलपथसे मनुष्य आने जाने लगे। सन् १८२५ ई०के सितम्बर महीनेमें यह पथ खोला गया। इस दिन ३४ डब्बोंके साथ एक एञ्जिन ६० टन माल ले कर इस पथसे चला था। पहले पहल इसकी गति घण्टेमें १० मीलसे १२ मीलकी थी। लोगोंको सावधान करनेके लिये एक आदमी एञ्जिनके आगे आगे दौड़ता था। किसी किसी स्थानमें इसकी गति १५ मीलकी थी। किन्तु मालसे लदी गाड़ी इतनी तेजीसे चलती न थी। गाड़ीके भीतर ६ और बाहर १५ यात्री ले कर दो घण्टेमें छकटनसे डार्लिंटन तक गाड़ी आने जाने लगी। इतनी दूरीका किराया पहले १ शिलिङ्ग निश्चित हुआ। प्रत्येक यात्री १४ पाउण्डसे अधिक अपने पासमें ले कर चलने नहीं पाता था। पहले मालका किराया प्रति टन प्रति मीलका ५ पेन्स लगता था, किन्तु पीछे यह किराया आधा पेनी कर दिया गया। इस नये रेलपथके खुलनेके कुछ बाद ही कोयलेकी दर घट गई। पहले एक टन कोयलेका दाम था १८ शिलिङ्ग। घट कर एक टन कोयलेका केवल ८ शिलिङ्ग हुई।

छकटन रेलपथके आदर्श पर सन् १८२६ ई०में मस्कलण्ड रेलपथ खुला और केण्टरबरी और ह्वीरण्टेबल आदि स्थानोंमें भी रेल लाइनें खुलने लगीं। किन्तु जब सन् १८३० ई०की १५वीं सितम्बरसे लिवरपुल और मञ्चेष्टरके रेलपथसे यात्री आने जाने लगे तब सभीने यह सोचा, कि जगत्में मनुष्योंके लिये चाल या गतिका युगान्तर उपस्थित हुआ है। सन् १८३८ ई०में लण्डन और वर्मिंघमके बीच रेल खुल गई। इस पथकी लम्बाई ११२।० मील थी। यात्रीगाड़ी घण्टेमें २० मीलकी गतिसे चलने लगी। ४५ वर्षके भीतर ग्रेटब्रिटेनमें चारों ओर बड़े बड़े रेलपथोंका आदर्श प्रस्तुत हुआ। शीघ्र ही १८०० मील लम्बी एक रेल लाइनकी पैमाइश खतम हुई और १० करोड़ पाउण्ड धन इस कार्यमें लगाया गया। किन्तु यह रेलपथ शीघ्र न बन सका। मत्स्योदराकृतिके रेलपथ बनानेमें अब बहुत विलम्ब होने लगा। इसलिये "फ्रारवरमड" रेलकी सृष्टि हुई। यह रेल पीछे 'भिगनेलेस' नामसे प्रसिद्ध हुई। इसके बाद 'ब्रिजरेल' नामक दूसरी तरहकी रेल व्यवहृत हुई थी। ग्रेटवेष्टर्न नामक रेलपथ पर इसका व्यवहार आरम्भ हुआ। यह सारी रेलें चौड़ाईमें रखी लकड़ीकी कड़ियों पर स्क्रूसे जोड़ दी जाती थीं। इस तरह आठ तरहोंकी रेल तैयार कर चुकनेके बाद रेल कम्पनीने "डबल हेडेड" या "दो सीरे एक समान"-की रेलोंका प्रचलन किया। पीछे इसी तरहकी रेल ही सब जगह व्यवहृत होने लगी। इस तरहकी एक गज रेलका वजन ६२ पाउण्ड है। यह पीछे "बुलहेडेड" रेलके नामसे पुकारी जाने लगी। सन् १८४७ ई०में मिष्टर डबलिउ ब्रिजेस आडामसने दो रेलोंकी प्रथा प्रचलित की।

इस तरह चारों ओर रेल फैलने लगी, तब अधिकारी रेल-गार्डकी रफतारको बढ़ानेकी चेष्टा करने लगी। एञ्जिन बनानेकी प्रतियोगितामें जार्ज ष्टीफेनका 'रकेट' नामका एञ्जिन प्रस्तुत हुआ। इससे उक्त जार्ज-ष्टीफेनको कम्पनीके डिरेक्टरोंने पुरस्कार दिया था। रकेटके दो वाष्पनलोंका व्यास ८ इञ्च तथा चक्केका व्यास ४ फुट ८॥ इञ्च था। कुल एञ्जिनका वजन ४ टन ५ क्वार्टर था। साधारणतः यह एञ्जिन बयलार प्रति घण्टेमें ११४ गेलन जलको १८।४ घनफुट वाष्पमें परिणत करता था।

बहुत दिन तक इन दो तरहके एञ्जिनोंसे रेलगाड़ी चलती रही। एक चार चक्केका, दूसरा छः चक्केका एञ्जिन। इसके बाद कई प्रकारके एञ्जिन तैयार किये जा चुके हैं। इनमें १२ चक्केका एञ्जिन विख्यात है। सन् १८८५ ई० तक एञ्जिनकी चाल प्रति घण्टे ५० मीलकी थी।

सन् १८३० ई०के लिवरपुल और मञ्चेष्टरके रेलवे-पथ खुलनेके २५ वर्षके भीतर सन् १८५४ ई० तक ८०५३ मीलोंमें रेलपथ फैल चुका था। इसका पौने भाग डबल लाइन और बाकी सिङ्गल लाइन थी। इन सारे रेलपथोंके निर्माण करनेमें प्रति मील ३५००० पाउण्ड व्यय हुआ था। सन् १८७४ ई०में रेलपथकी लम्बाई १६४४२ मील तक पहुंच चुकी थी। इसके प्रत्येक मीलमें ३७००० पाउण्ड खर्च हुआ था। सन् १८८३ ई०के अन्त तक १८६८१ मील तक रेल फैल

गई । किसी किसी जगह तीन तीन, चार-चार रेल लाइनें बैठाई गई हैं। लण्डनसे रागबी तक ५० मीलके पथमें चार लाइनें हैं । दो लाइनोंमें अनवरत मालकी ढोआई जारी रहती है। लण्डन और उत्तर-पश्चिम रेल कम्पनीके अधीनमें २८ मीलोंमें तीन लाइनें और ११४ मीलोंमें चार लाइनें है ।

सर्वसाधारणके यत्नसे जो सब रेलें तय्यार हुई हैं, उनमें इङ्गलैण्डके "ग्रेट वेष्टर्न रेलवे" सबसे बड़ी है। सन् १८८३ ई० तक यह २२६८ मीलोंमें फैल चुकी थी। इसके बाद लण्डन और नार्थवेष्टर्न, न्यूलैण्ड, नार्थब्रिटिश और कालिडोनिया रेलवेपथ क्रमसे १७६३, १५३४, १३८१, १००६ और ८७७ मील लम्बे हैं।

सन् १८८३ ई० तक इङ्गलैण्डमें रेलपथ फैलानेके लिये ७८५००००००० रुपया एकत्र हुआ था । इससे प्रति मील ४२०००० रुपया खर्च हुआ था। स्टेशन बनानेमें प्रति मील पहलेकी अपेक्षा बहुत ज्यादा रुपया खर्च हुआ था। जिस समय जोसेफ लकग्राण्डने रेलवे निर्माण किया था, उसी समय यथार्थमें रेलपथकी सम्पूर्णता प्राप्त हुई थी । इसी पथके निर्माण समयमें बहुतेरे चौड़ी नदियों पर पुल और ऊंचे पर्वतोंमें सुरङ्ग खोदनी पड़ी थी । इसलिये प्रति मील ५३०००० रुपया खर्चा हुआ था । यह पथ सब जगह समतल नहीं बना था। इस पथमें कई जगह गाड़ियोंको ऊंचे चढ़ना तथा नीचे उतरना पड़ता था। स्काटलैण्डके पहाड़ी प्रदेशोंको पार करते हुए इस पथके तय्यार करनेमें प्रति मील किसी किसी जगह ५०००००० रुपया खर्चा करना पड़ा था। क्योंकि इन स्थानोंमें बड़े बड़े पहाड़ोंको काटना पड़ा था।

पथ तय्यार करनेके सिवा दूसरे कामोंमें धन खर्च करनेकी जरूरत पड़ती थी प्रत्येक मील रेलपथमें—

व्यवस्था करनेवाली पार्लियामेण्टका खर्च :--	२०० पाउण्ड
भूमि खरीदना और क्षतिपूरण करनेमें	७००० पाउण्ड
पथ स्टेशन आदिमें	१८००० ,,
लोकोमोटिव परिचालनमें	३०००० ,,
एकत्र रुपयाके व्याजमें	६००० ,,
	कुल ३६००० पाउण्ड

सिवा इनके ट्रेनके डब्बोंके बनाने तथा कारखाने खोलनेमें भी बहुत ज्यादा रुपया खर्चा करना पड़ता है। एक एञ्जिनमें कमसे कम १५४०० रुपया और एक डब्बेमें २७८० रुपया खर्चा पड़ता है।

रेलकम्पनीके कार्योपयोगी सारी चीजोंको "रोलिङ्गष्टक" या कार्यभण्डार कहते हैं । इन सब कारखानोंमें नई गाड़ियां तय्यार होती और पुरानी गाड़ियोंकी मरम्मत होती हैं। यात्री-गाड़ी, मालगाड़ी, गाय आदि पशु चढ़ानेवाली गाड़ी भी तय्यार होती हैं। सन् १८८३ ई०में इङ्गलैण्डके रेलकम्पनीके कारखानेमें १२१४४ एञ्जिन, ३७४७४ यात्री-डब्बे और ३२६६२२ मालके डब्बे मौजूद थे ।

रेलपथ न होनेसे पहले मञ्चेष्टर और लिवरपुलके बीच नित्य २० से ३० तक घोड़ेकी सवारी आती जाती थी। १८३६ ई० पोर्टरने अपनी जातीय उन्नति नामक पुस्तकमें लिखा है—ग्रेटब्रिटेनमें घोड़ेकी सवारी नित्य ४२००० यात्री और वर्षमें ३०००००० यात्री आते जाते थे। इसमें प्रत्येक मनुष्यको ५ शिलिङ्ग खर्च होता था। किन्तु रेलसे ६०००००० यात्री प्रत्येक १॥ पेनीके खर्चसे आते जाते हैं।

रेलपथ बनानेकी प्रणाली।

पहले मानचित्र या नकशा देख कर ठीक किया जाता है। पीछे पैमाइश कर नकशा और पथका विवरण तैयार होता है। पथके भीतर जो सब नदियां और पर्वत या जलाशय पड़ते हैं उन सबों पर पुल बांधने तथा सुरङ्ग खोदनेके लिये पहले आदर्श तय्यार होता है। साधारणतः सभी जगह समतल भूमि तय्यार करनेमें किसी जगह नीची जमीनको भरना पड़ता है तथा किसी ऊंची जमीनको तराशना पड़ता है। किसी स्थानमें पहाड़ोंमें सुरङ्ग खोदना तथा नदियों पर पुल तय्यार करना पड़ता है। भूमि समतल हो जाने पर ईंट तथा पत्थरके टुकड़े फेंका जाता है। इसके बाद स्लीपर या लकड़ीकी पटरियां रखी जाती हैं। इस पर लोहे या लकड़ीकी कड़ियां मजबूतीसे जोड़ी जाती हैं।

रेलपथ बनानेमें जो सब बांध या Embankment बांधे गये हैं, उनमें लिवरपुल और मञ्चेष्टर रेलपथ ४॥ मील लम्बा बांध ही सर्वश्रेष्ठ है। इसका नाम 'चाटमस' है। यह जल कहीं कहीं १०से ३० फीट तक गहरा और पङ्कमय है। इस पथमें ६७००००० घन गज बांध बांधे गये हैं। ग्रेटब्रिटेनके रेलपथमें जो सारी सुरङ्गें तैयार हुई हैं, उनमें एडिनवर्ग और ग्लासगोरेलके कालेण्डर ब्रिजकी सुरङ्ग सबसे बड़ी है। सारी सुरङ्ग अर्द्धवृत्ताकार है और इसका व्यासार्द्ध एक मील है।

सिवा इसके लण्डन और वर्मिंघमके बीचकी किलसबी नामक सुरङ्ग २३६८ गज लम्बी ३० फीट चौड़ी और ३० फीट ऊंची है। इसमें दो वायुकी नलें लगाई गई हैं। इनका व्यास ६० फुट है। इसी सुरङ्गमें ३८०००००) रुपया खर्च हुआ था। अर्थात् प्रत्येक गजमें १२५०) रुपया खर्च हुआ था। वाथ और टिपेनहामके बीच सुरङ्ग समतलसे ७० फीट नीचे है। इसकी लम्बाई ३१२० गज या प्रायः एक कोस है। इसका फैलाव ३१ वायुनलें हैं। डोवरके निकट सेक्सपियर सुरङ्ग १४३० गज लम्बी है—यह सुरङ्ग स्तम्भों द्वारा सुरक्षित है। इङ्गलैण्ड देशके रेलपथोंमें सुरङ्गोंका आधिक्य हैं। सन् १८५७ ई०में सारे रेलपथोंमें प्रायः ७० मील सुरङ्गका पथ था। सन् १८८५ ई० तक यह १०० मीलोंमें परिणत हुआ। उक्त सुरङ्गके सिवा मञ्चेष्टर और लिङ्कनशायर रेलपथमें एक सबसे बड़ी सुरङ्ग है। इसकी लम्बाई तीन मील है।

रेलपथ निर्माण करनेसे कई बड़ी बड़ी नदियों पर पुलें बांधना और दो पर्वतोंके बीच खाद पर भयडाक् या बड़ी सीढ़ियां बनानी पड़ती हैं। कई बार जलसे परिपूरित शहरोंसे पथ तैयार करते समय साधारणके आने जानेका पथ नीचे रख जोड़ों पर रेलपथ बनाना पड़ता है। ईंट या पत्थरकी जोड़ाईसे पुल तैयार होता है। मञ्चेष्टर और वरमिंघम रेलपथमें कलिटन नामक एक बड़ा भयडक् है। यह आधा मील लम्बा और पत्थरोंसे बना है। इसकी ऊंचाई १०६ फुट है। इसके प्रति गज पथमें ११३०) रुपया खर्च हुआ है। इस पथका ईंटोंसे बना डेन नामक भयडक् ५२७ गज लम्बा और ८८ फुट ऊंचा है। इसमें ६३ फुट ऊंचा है। इसमें ६३ फुट व्यासके २३ जोड़ हैं। मिनाई प्रणाली पर जो पुल बना है, वह ६१६ फुट लम्बा है और पानीकी सतहसे १०४ फुट ऊंचा है। इसके प्रति गजमें ६७४०) रुपया खर्च हुआ था। किन्तु इङ्गलैण्डकी फोर्थ नामक सीढ़ियां सबसे बड़ी और अद्भुत कारुकार्यसम्पन्न है। कींसफेरीके निकट एक बड़ी प्रणाली पर यह पुल बंधा है। मि० जान फावलर और मि० वेञ्जामिन वेकरके अद्भुत इञ्जिनियरिङ्ग कौशलसे यह सीढ़ी बनी है। पुलकी लम्बाई १॥ मील है। इसके दो प्रधान जोड़का व्यास १७०० फुट अर्थात् १७०० फुट पर स्तम्भ बने हैं। क्योंकि मध्यवर्त्ती जलकी गहराई २०० फुट है। इसीलिये दूर दूर पर स्तम्भ तैयार करना पड़ा है।

सिवा इसके ६७५ फुट व्यासयुक्त दो जोड़ और १६८ फुटके १५ जोड़ इसमें विद्यमान हैं। पुल ज्वारके समय जल परसे १५० फुट ऊंचा और किसी किसी जगह ३६१ फुट ऊंचा है। इसके चार प्रकाण्ड स्तम्भोंका व्यास ५० फुट है। जलके नीचे ७० फुट तक मिट्टी खोद कर स्तम्भकी भित्ति कायम की गई थी। जल पर पथ बनाने पर ४४५०० टन फौलाद खर्च करना पड़ा था। सीढ़ियोंके फैलाव १२० फुट है। इन सीढ़ियोंके बनानेमें १६००००००) रुपया खर्च हुआ था।

रेलपथ पर स्टेशन या विश्राम स्थान बनानेकी जरूरत पड़ती है। यह कुछ ही दूरी पर बनाया जाता है। इन सब स्थानोंमें वहांके यात्री और माल आदि रेलसे आते जाते हैं। पथके बीच बीचमें इस तरहके स्टेशन बनाये जाते हैं। इङ्गलैण्डमें जो सब टर्मिनस स्टेशन हैं, उनमें ग्रेटनर्दर्न, ग्रेटवेष्टर्न और साउथ वेष्टर्न स्टेशन विशेष प्रसिद्ध है और प्रथम श्रेणीकी गिनतीमें हैं। प्रत्येक स्टेशनमें यात्रियोंके उतरनेके स्थानमें प्लाटफार्म बनाया जाता है। प्लाटफार्म रेलपथसे कुछ ऊंचा होता है। इससे यात्री आसानीसे रेल पर चढ़ उतर सकते हैं। सीमान्तके स्टेशनोंमें रेलपथों पर बड़ी बड़ी छत तैयार होती हैं। सन् १८४६

ई०से इङ्गलैण्डके स्टेशनोंमें छत बनानेकी व्यवस्था हो रही है। इस समय लाइम ष्ट्रीट और लिवरपुल स्टेशनमें पहले पहल छत तैयार हुई। उक्त छत ३७४ फुट लम्बी और स्तम्भों पर जोड़के रूपमें अवस्थित है। वर्मिंघमके न्यू ष्ट्रीट स्टेशनकी छत ८४० फुट लम्बी है। इङ्गलैण्ड-में इतना बड़ा स्टेशन और नहीं है। चेयारिङ्क्रस् रेल-के केनेल ष्ट्रीट स्टेशनकी ऊंचाई ५० फुट है। उक्त स्टेशनमें १८६७ ई०में ८०००००० मनुष्य गाड़ीमें चढ़े उतरे थे। इस स्टेशनका प्लाटफार्म ७.१ फुट लम्बा है। इस स्टेशनसे ६ रेलपथ चारों ओरको गये हैं। उक्त स्टेशनका क्षेत्रफल १५२६३२ घनफुट है। सिवा इसके इङ्गलैण्डमें इस समयके बने स्टेशनोंमें सेण्टपंक्रस स्टेशन विशेष उल्लेखनीय है। मालके स्टेशनोंमें किस-क्रस स्टेशन बहुत प्रसिद्ध है। इसी स्टेशनसे १२ रेलें चारों ओर माल ढो रही हैं। ६० एकड़ भूमिमें यह स्टेशन बना है। आलू और कोयला उतरनेके स्थानका क्षेत्र-फल ८॥ एकड़ है। समूचा माल ढोनेके लिये सदा ८४ एञ्जिन तैयार और ११॥ मीलमें केवल कोयलेकी गाड़ियां तैयार रहती हैं।

उपर्युक्त स्टेशनके सिवा दो तीन लाइनोंके जङ्क्शन पर एक एक जङ्क्शन स्टेशन बनाया जाता है। सिवा इनके गाड़ी और एञ्जिन बनानेके लिये बड़े बड़े कार खाने तैयार किये जाते हैं।

नागरिक रेलपथ।

बड़े बड़े जनाकीर्ण नगरोंमें रेलोंके फैलानेमें सबसे पहले सन् १८३७ ई०में मिष्टर चार्लस पार्सनने विशेष चेष्टा की थी। इस तरहके रेलपथ बड़े बड़े स्तम्भों पर तथा भूमिमें सुरङ्ग खोद कर तैयार किये जाते हैं। पहले वहांकी पारलामेण्टने इस तरहके रेलपथ बनानेका हुक्म नहीं दिया, किन्तु खूब सोच समझ कर पीछे सन् १८५४ ई०में पारलामेण्टने हुक्म दे दिया। इस तरह सन् १८६० ई०में इसका कार्य आरम्भ हुआ। जान फाउलर नामक एक विशेषज्ञ इञ्जिनियरके तत्त्वावधानमें सन् १८६३ ई०में पाडिंडन रास्तेसे फारिंडन रास्ते तक रेलपथ तैयार हुआ। अन्तमें सन् १८८४ ई०में "इनर-सर्कल" नामक लण्डनके बीच रेलपथ बना। इस रेल-पथकी लम्बाई केवल १३ मील है। पीछे यह बढ़ कर ४० मील हो गई थी। प्रत्येक आधे मील पर स्टेशन बना है। यह रेलपथ बनानेमें प्रत्येक मील पर ५०००००० रुपया खर्च हुआ है। भूमिमें सुरङ्ग खोद कर रेलपथ बनानेमें हो अधिक धन खर्च करना पड़ा था। कई जगहोंमें नदीके नीचेसे रेलपथ ले जाना पड़ा है। किसी किसी जगह ६ फुट व्यासके ढले हुए लोहेके नल-में यह रेलपथ तैयार हुआ है। इसी पथको बनानेमें टेम्स नदीके नीचे विख्यात पुल बना था। यह पुल नदी तहसे १३ फुट नीचे, ७० फुट लम्बा और लोहेके खम्भों पर अवस्थित है। फिर कई जगह यह रेलपथ भूमिसे ६० फुट ऊंचे स्तम्भों पर बना है। किसी जगह ४२ गज नीचे ४२१ फुट लम्बी सुरङ्ग खोद कर यह पथ बनाया गया है। क्लार्कनवेल नामक स्थानमें ७२८ गज लम्बी एक सुरङ्ग है। ३० फुट गहरा पत्थर काट कर यह पथ तैयार हुआ है। किसी किसी जगह साधारण रास्ते पर ६० फुट ईंटकी ऊंचाईके जोड़ पर यह पथ तैयार किया गया है। मिष्टर फाउलरकी अपूर्व प्रतिभाके बल पर ऐसा विकट पथ बना है। डम्बार्टन स्टेशनके समीप रेलपथ २॥ मील तक जमीनके अन्दरसे गया है। उक्त सुरङ्ग २७ फुटमें फैली हुई है।

नागरिक रेलोंमें अमेरिकाके न्यूयार्क शहरका ऊंचा रेलपथ बड़ा ही विस्मयजनक है। सन् १८७२ ई०में यह कम्पनी कायम हुई। जनाकीर्ण नगरके आदमियों और मोटर आदि सवारियोंका रास्ता सुरक्षित रख इस कम्पनीने १६ हाथ ऊंचा यह रेलपथ बनाया है अर्थात् बड़े बड़े झिमझिले इमारतोंकी छतोंके किनारों-से यह रेलपथ निकला है। सन् १८८० ई०के प्रारम्भमें ३४३ रेलपथ तैयार हो चुके थे। इन पथोंसे नित्य २६५००० यात्री आते जाते थे। यहां दो मिनटके बाद यात्री-गाड़ी आती जाती है। जिनको चाहे जितनी ही दूर क्यों न जाना हो, उनको ढाई पेनी ही महसूल देना होता है। यह ऊंचा रेलपथ ४४ फुट पर गड़े लोहेके स्तम्भों पर विद्यमान है। इस रेलपथके नीचे ट्रामवे-का भी रास्ता है। इस रास्तेसे रोज रोज लाखों आदमी आते जाते हैं। इसके ऊपर प्रति दो मिनटमें

रेलगाड़ी आती जाती है। नियमानुसार प्रबन्ध होनेके कारण कोई गड़बड़ी नहीं होती। ऐसे ऊंचे पथ बनानेमें प्रति मीलमें ८१३७६०) रुपया खर्च पड़ता है।

इङ्गलैण्डमें दो रेलोंका फैलाव ४ फुट ८॥ इञ्च है। इसको नशनल गज या जातीय परिमाण कहते हैं। सिवा इसके अन्यान्य गजकी (Gauge) भी रेलें हैं। ग्रेटवेष्टर्न रेलवेमें पहले ७ फुटका गज व्यवहृत हुआ था। इसका नाम था "ब्रडगज" या विस्तृत परिमाण और ४ फुट ८॥ इञ्चके गजका नाम "न्यारो गज" या सङ्कीर्ण परिमाण।

जमीनके भीतर अन्यान्य देशोंमें निम्नलिखित फिहरिश्तके अनुसार रैलोंका परिमाण है :—

रेल और आदर्श गज।

	फुट इञ्च
इङ्गलैण्डका आदर्शगज	४′ ८॥″
आयरलैण्डमें ,,	५′ ३″
मध्ययुरोपमें ,,	४′ ८॥″
रूसका आदर्शगज	५′ ०′
नारवेदेशमें (२ तरह)	४′ ६″, ३′ ६″
स्पेन और पुर्त्तगाल	५′ ६″
भारतवर्षका साधारण गज	५′ ६″
मिटर गज	३′ ३।=′
काञ्चीपुरम् रेलवेमें	३′ ६″
जापानमें	३′ ६″
इजिप्त या मिस्रमें	४′ ८॥″
कनाडेमें (३ प्रकार)	५′ ६″; ५′ ८॥″; ३′६″
मेक्सिकोमें (२ प्रकार)	४′ ८॥″, ३′ २′
युनाइटेडस्टेटस्में (६ प्रकार)	४′ ६″; ४′ ४″, ६′ ०″ ५′ ०″, ३′ ०″, २′ ०′
अष्ट्रेलियामें (४ प्रकार)	५′ ३″, ३′ ६″, ४′८॥, ५′, ३′
न्यूजीलैण्ड (२ प्रकार)	५′ ३″, ३′ ६″

सन् १८७३ ई०में मिष्टर डबल्यू टीथर्मनने "भारतमें रेलपथका गज" नामक एक चिन्ताशील प्रबन्धमें कौन गज सबसे उत्तम है, यह दिखलाया है। उसमें यह स्थिर हुआ है, कि ५ फुटका गज द्रुतगामी एञ्जिनके पक्षमें अत्यन्त सुविधाजनक है।

गत ४० वर्षकी रेलवेरिपोर्ट पढ़नेसे मालूम होता है, कि "डबल हेडेड" या दो सिरोंकी अर्थात् इस आकारकी रेल सब जगह काममें लाई जा रही है। पहले एक रेल २५ वर्ष तक काम देती थी। किन्तु इस समय १० ही वर्षमें खराब हो जाती हैं। इङ्गलैण्डमें यात्री-गाड़ी तथा डाकगाड़ीकी एञ्जिन हर घण्टेमें ४०से ६० मील तक जाती है। इङ्गलैण्डमें नदर्न रेलपथमें तेज चलनेवाली गाड़ी किंसक्रससे ग्राहम तक १०५। मील पथ अविश्रान्त वेगसे जाती है। यह एञ्जिन घण्टेमें ५३॥ मील चल कर १ घण्टामें और ५८ मिनटमें यह रेलपथ गमन करता है। ग्रेटवेष्टर्न रेलपथमें चलनेवाली गाड़ी ५३। मीलकी चालसे जाती है। साधारण यात्री गाड़ी ४० मीलकी चालसे जाती हैं। जो गाड़ियां हरेक स्टेशनमें ठहरती हैं, वह १६से २८ मील घण्टेमें तथा मालगाड़ी घण्टेमें २५ मील जाती है।

इस समय विज्ञानकी उन्नतिके साथ साथ गाड़ियोंकी रफतारमें भी उन्नति हुई। इससे अमेरिका आदि देशोंमें एक्सप्रेस या तेज चलनेवाली डाकगाड़ी घण्टेमें ५०से ८० मील तक जाती है। इस विषयमें अमेरिकाने यूरोपको पीछे डाल दिया है। यूरोप प्रदेशमें डाकगाड़ियां कई हजार मीलकी दूरी पार करती हुई घण्टेमें (विश्रामका समय ले कर) ३० मील जाती हैं। किन्तु युनाइटेटस्टेटस (अमेरिका) में ४० मील प्रति घण्टे चलनेवाली गाड़ियां विश्राम स्थान ले कर ६-६०० मील पथ अविरत आ सकती हैं। फिलाडेलफिया और अटलाण्टिक नगरके बीच रेलगाड़ी ५० मिनटमें ५५॥ मील पथ तय करती है। टाइमटेबलमें गाड़ीकी लिखी चाल ६६॥ मील है। किसी किसी स्थानमें घण्टेमें ७१ मीलकी चाल है। इस समय ग्रेटब्रिटेनकी कोई कोई डाकगाड़ी ५१ मीलसे ६१ मीलकी चालसे चलती है। फ्रान्समें डाकगाड़ी पेरिससे आराम तक १२० मील १ घण्टे ५७ मिनटमें तय करती है। अमेरिका और जर्मनीके किसी किसी रेलपथमें घण्टेमें

८० मीलकी चालसे कोई कोई डाकगाड़ी चलती है।

रेलवे संक्रान्त कानून।

इङ्गलैण्डमें पारलिमेण्टकी आज्ञाके बिना कोई कम्पनी रेलपथ नहीं बना सकती है। सन् १८३२ ई०में पारलिमेण्टने एक कानून पास किया था। इसके अनुसार प्रति मीलमें प्रत्येक चार यात्रीसे आध पेनी महसूल लिया जाता था। सन् १८४२ ई०में इस कार्यका निरीक्षण करनेके लिये एक परिदर्शक नियुक्त हुआ। इसी समय रेलवे आइनका संस्कार हुआ और लिपिवद्ध हो गया। इसका नाम "बोर्ड आफ ट्रेड" है। यह बोर्ड इच्छानुसार रेलकम्पनीके सभी कामोंका निरीक्षण करता है और महसूल वसूल किया करता है। सन् १८७३ ई०में रेलवेका नया कानून हुआ। उसमें कमिशनरोंने नियुक्त हो कर रेलके विषयकी पर्यालोचना की। सन् १८८० ई०में "रैल-कर्मचारीका दायित्व" विषयक कानून विधिबद्ध हुआ। इसके अनुसार रेलवे मुशाफिर गार्ड या गाड़ी चलानेवालोंके दोषसे हत या क्षति होने पर क्षतिपूर्त्ति करानेके अधिकारी हुए।

रेलगाड़ीकी उन्नति।

इङ्गलैण्डमें साधारणतः निम्नलिखित गाड़ियां रेलपथसे आती जाती हैं:—

(१) पैसेञ्जर ट्रेन या यात्री-गाड़ीमें पहले, दूसरे और तीसरे दर्जेकी गाड़ी रहती है। सिवा इनके लगेज, ब्रेकभान, हर्सबक्स और केरेजट्रक आदि गाड़ियां भी हैं। (२) मालगाड़ी—इसमें सब तरहकी चीजोंके ढोनेकी गाड़ियां रहती हैं। छाई हुई या बिना छाई हुई—इन दो तरहकी गाड़ियां इसमें व्यवहृत की जाती हैं। हाथी, घोड़े, गो, भेड़ा, बकरा और भैंसे आदि जानवरोंको ढोनेवाली गाड़ियां, कोयलेकी गाड़ी विविध प्रकार और आकारकी गाड़ियां इसमें जोड़ी रहती हैं।

पहले जो सब पहले दर्जेकी गाड़ी तैयार हुई थी, उसका वजन ३। टन प्रत्येकका था। इसकी लम्बाई १५ फुट और चौड़ाई ६॥ फुट तथा ऊंचाई ४ फुट ६ इञ्च थी। यह गाड़ी तीन भागोंमें विभक्त थी। प्रत्येक कमरेमें ६ आदमियोंके बैठनेका स्थान रहता था। इस तरह पूरी गाड़ीमें १८ आदमियोंके बैठनेका स्थान था। पहले प्रत्येक गाड़ीके चार चक्के होते थे। इस समय इसका बहुत परिवर्त्तन हो गया है। इस समय यह गाड़ी ३० फुट लम्बा और चार कमरोंमें विभक्त हैं। दूसरे और तीसरे दर्जेकी गाड़ियां भी सभी एक समान लम्बी होती हैं। किन्तु यह पांच कमरोंमें विभक्त होती हैं। पहले दूसरे दर्जेकी गाड़ीमें गद्दी या बिछौना न था। कभी कभी तीसरे दर्जेकी दो तीन गाड़ियां एकत्र जुड़ी रहती हैं। सन् १८५८ ई०में इङ्गलैण्डमें दूसरे दर्जेकी गाड़ियोंमें गद्दियोंका प्रचलन हुआ। इस समय इङ्गलैण्डके अधिकांश तीसरे दर्जेकी गाड़ियां भारतवर्षके दूसरे दर्जेकी गाड़ियोंके समान हैं।

अमेरिकाके बाल्टिमोर और ओहियो रेलपथमें जो तीसरे दर्जेकी गाड़ियां हैं, उनके बनानेमें बड़े आश्चर्य जनक कौशलसे काम लिया गया है। ये सभी गाड़ियां एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्त तक आती जाती हैं। यह पथ ठीक "करिडोर"के अनुसार दो फीट चौड़ी है। अमेरिकाकी गाड़ियोंमें जो विलास और स्वच्छन्दताकी व्यवस्था है, वह अन्य किसी देशकी गाड़ियोंमें नहीं है। प्रत्येक चलनेवाली गाड़ीमें पीनेका जल, बर्फ और खाद्यादि सर्वदा मिलता है। पाखाना प्रत्येक डब्बेमें रहता है। जाड़ेके दिनोंमें गाड़ियां आग सुलगा कर गरम रखी जाती हैं। शीतातपमें मुसाफिरोंको जरा भी कष्ट नहीं होता। सिवा इसके प्रत्येक गाड़ीमें अधिक संख्यामें पुस्तक और समाचारपत्र रहते हैं। मुसाफिर चाहें तो शौकसे पढ़ सकते हैं। ये सब गाड़ियां कई तरहके प्रकाशसे प्रकाशित रहती हैं। दूरके मुसाफिरोंके सोनेके लिये एक स्वतन्त्र गाड़ी रहती हैं। इस समय सभी जगह विद्युत् प्रकाशका ही व्यवहार होता है। इन गाड़ियोंके मुसाफिर स्वेच्छापूर्वक करिडोरमें घूम फिर सकता है और गश्ती दुकानदार चलती हुई गाड़ियोंमें नाना प्रकारकी चीजें बेचा करते हैं। फलतः कई सहस्र मील तक यात्रा करने पर भी मुसाफिरोंको गाड़ीसे उतरनेकी जरूरत नहीं होती और न यात्रा करते मन ही ऊबता है।

अन्यान्य देशोंका रेलपथ।

यूरोप महादेश—सन् १८२६ ई०में फ्रान्समें पहले

पहल ट्रामका रास्ता बना। सन् १८३३ ई०में वहांकी सरकार रेलपथ बनानेमें बड़ी यत्नवान् हुई थी। सन् १८४२ ई०में फरासिसी सरकार रेलपथका आधा खर्च देने पर राजी हुई थी। इसके अनुसार आधा खर्च लगा कर रेल कम्पनियां कई वर्षके पट्टे पर अपने अपने काम करने लगी। सन् १८५७ ई०में बड़ी बड़ी ६ कम्पनियोंने चारों ओर रेलपथ तैयार कर दिया। सन् १८८४ ई०में २४००० मीलमें रेलपथ तैयार हो गया।

सन् १८३० ई०से १८३३ ई० तक बेलजियम सरकारने रेल निकालनेकी चेष्टा की। सरकारने ३०० मीलोंमें पथ तैयार कर कई कम्पनियोंको रेलपथ तैयार करनेका हुक्म दिया। इसके फलस्वरूप सन् १८७० ई० तक १४८० मीलोंमें रेलपथ तैयार हुआ।

सन् १८४० ई०में हालेण्डमें पहले पहल रेलपथ तैयार हुआ और जर्मनीमें पहले पहल सन् १८३५ ई०में रेल खुली। प्रूसियाकी सरकार द्वारा उद्योग करने पर जर्मनीमें भी सन् १८७८ ई०में ५०८० मीलोंमें और अन्यान्य कम्पनियों द्वारा ६००० मीलोंमें रेलपथ तैयार हुआ। इसके बाद सरकारने कितने ही रेलपथोंको खरीद लिया। सन् १८५८ ई०में वहां १३००० मील सरकारी और १००० मील अन्यान्य कम्पनियोंका रेलपथ तैयार हुआ।

अष्ट्रिया और हङ्गरी प्रदेशमें सन् १८२४ २८ ई०में पहले पहल ट्रामपथ प्रचलित हुआ। वहां १८३८ ई० तक सरकारने रेलपथ बनानेके विषयमें ध्यान दिया। सन् १८७६ ई० तक वहां २००० मीलोंमें ष्टेटस रेलवे और ६००० मीलोंमें अन्यान्य कम्पनियों द्वारा रेलपथ बना। हङ्गरीमें २००० मीलोंमें ष्टेट रेलवे और अन्यान्य कम्पनियों द्वारा ३००० मीलोंमें रेलपथ तैयार हुआ। इस प्रदेशमें सन् १८८०से १८८३ ई० तक ५० रेल-कम्पनियां पहाड़ी रेलपथोंके बनानेके लिये संगठित हुईं।

सन् १८८५ ई० तक स्वीजरलैण्डमें २००० मीलोंमें रेलपथ बन चुका था। इनमें एक रेलपथ सुरङ्ग खोद कर आसपास पहाड़को छेद कर अष्ट्रियाके साथ मिली है। पृथ्वीमें ऐसी बड़ी सुरङ्ग और कोई नहीं है। इसकी लम्बाई ९॥ मील है।

सन् १८६० ई०से इटलीमें रेल फैलने लगी और प्रायः १८८० ई० तक प्रायः ८००० मील रेलपथ तैयार हो गया। सन् १८४८ ई०में स्पेनमें पहले पहल रेल आरम्भ हुई और सन १८७० ई०में ५००० मीलोंमें रेलपथ तैयार हो गया।

सन् १८५३ ई०में पहले पहल पुर्त्तगालमें रेल खुली। वहांकी अधिकांश रेलें सरकारकी हैं।

स्कन्दनाभ या स्वीडेन और नारवेमें रेल बड़ी सुस्ती से फैली थी। स्वीडेनमें ५००० मीलोंमें रेलपथ तैयार हुआ।

सन् १८५७ ई०में रूसका रेलपथ तैयार हुआ। सन् १८८० ई० तक वहां १५००० मीलोंमें रेलपथ तैयार हुआ।

सन् १८६० ई०में यूरोपीय तुर्कीमें रेल बननी शुरू हुई और १८८० ई० तक वहां १२०० मीलोंमें रेलपथ तय्यार हो गया। इसके सिवा रुमानियामें १००० मीलोंसे अधिक स्थानोंमें रेलें हैं।

अमेरिकाके कनाडा प्रदेशमें सन् १८८३ तक ६११३ मीलोंमें रेलपथ और ६७०५ ट्रामपथ तय्यार हुआ।

सन् १८८२ ई०में वहां ग्रेण्डट्रङ्क रोड नामका रेलपथ तय्यार हुआ। इसकी लम्बाई २६०५ मील है। सन् १८८४ ई० तक मेक्सिको देशमें १२२० मीलोंमें रेलपथ तैयार हुआ था। ब्रेजिलमें प्रायः १४०० मीलोंमें रेलपथ हुआ। चीलेमें १३७८ मीलोंमें और पेरूमें २०३० मीलोंमें रेलपथ तैयार हुआ है। मिस्रदेशमें प्रायः १००० मीलोंमें रेलगाड़ी चल रही है।

सन् १८६८ ई० तक कई प्रदेशोंमें निम्नलिखित रूपसे रेलपथ फैला हुआ है—

देश	रेलपथकी लम्बाई
युनाइटेड किङ्गडम	२१६५६
„ ष्टेटस (आलास्काको छोड़ कर)	१८६३६६
जर्म्मनी	३०७३१
बेलजियम	३७८१
फ्रान्स	२५८६८
यूरोपीय रूसिया	२६४१४
अष्ट्रिया-हङ्गरी	२१८०५

देश	रेलपथकी लम्बाई
ब्रिटिश नार्थ अमेरिका	१६८७०
अंग्रेजाधिकृत भारतवर्ष	२१४७६
न्यू साउथवेलस	२६११

सन् १८८५ ई०के अन्तमें पृथ्वी कुल ३०२८८७ मीलोंमें रेलपथ था। सन् १८६८ ई०में यह बढ़ कर ४६६५२४ मीलोंमें परिणत हो गया। अर्थात् १३ वर्षमें सैकड़े ५४ मीलकी वृद्धि हुई है। इसमें अष्ट्रे-लियामें सैकड़े ८० मील और भारतवर्षमें ८३॥ मील बढ़ी है। केवल जापानमें आश्चर्यजनक रूपसे बढ़ी है। अर्थात् सैकड़े ६५ मील हैं।

प्रति वर्ष रूसके पबलिक वर्क्स या पुर्त्त-विभागसे मई-जून महीनेमें सारी पृथ्वीके रेलपथकी एक बहुत बड़ी फिहरिश्त तैयार हुई थी। जो सूक्ष्मतत्त्व जानना चाहते हैं, उनको पाठ करना चाहिये। सन् १८७६ ६३ ई० तक चार वर्षोंमें युनाइटेड रेलपथोंमें १००००००००) रुपया खर्च हुआ। सन् १८६८ ई०-में निम्नलिखित रेलपथोंमें जो मूल धन था उसकी फिहरिश्त इस तरह है—

जर्मनी	५८०२२५०००	पौण्ड
अष्ट्रिया	२३००५३०००	"
हङ्गरी	८४६७००००	"
युनाइटेड किङ्गडम	११३४४६८४६२	"
" ष्टेटस	२२२१४७००००	"
ब्रिटिश अमेरिका	१६३३४३०००	"
न्यू साउथवेलस	३४४२४०००	"

सन् १८६६ ई०में उत्तर अमेरिकाके बीच एक सुदीर्घ रेलवर्त्म निर्मित हुआ है। पहले इस पथकी लम्बाई १४०० मील थी।

सन् १८६८ ई० के अन्तमें निम्नलिखित कई रेल-कम्पनीके कारखानेमें जिस तरह गाड़ियां मौजूद थीं, उनके जाननेसे रेलवेके फैले हुए कारोबारका विषय मालूम होता है।

देश	एंजिन	यात्रीगाड़ी	मालगाड़ी
युनाइटेड रेल-कम्पनी	३६२३४	३५५३५	१२६२५७६
ग्रेटब्रिटेनमें	१६४७६	४४०५३	६६४८३२
फ्रान्समें	१०६११	२७१७६	२७६५३४
जर्मनीमें	१६८८४	३३६६४	३६१५०६
भारतवर्षमें	४५३८	१३२६३	८६१०८

निम्नलिखित फिहरिश्तमें १८६८ ई० तकके कई देशोंकी रेल कम्पनियोंका मूलधन लिखा गया—

देश	मूलधन—पौण्ड (१५ रुपया)
जर्मनी	५८०२२५०००
अष्ट्रिया	२३००५३०००
हङ्गरी ष्टेटरेल	८४६७००००
फ्रान्स	६४०१८६०००
ग्रेटब्रिटेन	११३४४६८४६२
युनाइटेड ष्टेटस	२२२१४७००००
ब्रिटिश अमेरिका	१६३३४३८००
अष्ट्रेलिया	३८४२४०००

संसारके जिन लम्बे लम्बे पथोंने बड़े, बड़े, महादेशों-को पार कर भूमण्डलको सिराओंकी तरह अच्छादित कर रखा है, उनका संक्षिप्त विवरण यहां दिया गया है। सन् १८६६ ई०में एक लम्बा रेलपथ पहले अटलाण्टिक महासमुद्रके किनारे तक फैला हुआ है। यह पथ १८४८ मील लम्बा है। किन्तु इस पथमें हजारों मील तक मैदान पड़ता है, जहां बस्तीका नाम तक नहीं। इसी पथके बनानेके बाद सन् १८८१ ई० सान फ्रान्सिसकोसे न्यू अलिन्स तक दूसरा एक लम्बा रेलपथ तैयार हुआ है। इसकी लम्बाई २४८६ मील है।

इसके बाद कानाडियान पैसिफिक रेलपथने अटला-ण्टिक और प्रशान्त-महासागरके मध्यवर्ती लम्बे व्यव-धानको पतला बना दिया है। यह रेलपथ अटलाण्टिकके किनारेके मण्ट्रिल नगरसे प्रशान्त महासागरके किनारे-के बङ्कुवर तक फैला है। इसकी लम्बाई २६०६ मील है। यही सब रेलपथ संसारमें बड़े कहे जाते हैं। किन्तु सन् १८६१ ई०में साइबिरिया रेलपथ बन जानेसे इन सबोंकी लम्बाईमें कमी आ गई है। अर्थात् साइ-

बिरियाका रेलपथ सबसे बड़ा बना है। रूस-सरकारने एक लम्बा रेलपथ बना कर एशियाके एक प्रान्तको दूसरे प्रान्तमें जोड़ दिया है। इस पथकी लम्बाई ४०७३ मील है। यह रूसकी पुरानी राजधानी सेएटपिटर्सबर्ग नगरसे १७६६ मील पूरब अवस्थित है और चेलियाबिनस्क नगरसे प्रशान्त-महासागर तीरवर्ती ब्लाडिवोष्टक तक फैला है। इसकी एक शाखा ५०० मील तक चीन सरकारके अन्तर्गत डालनी और आर्थार बन्दर तक फैली है। गत रूस-जापान युद्धके समय इस रेलपथकी उपयोगिता सभीने अनुभव की। सन् १६०३ ई०में इस पथसे माल और यात्री गाड़ियां चलने लगीं। किन्तु बैकालझीलके दक्षिणी किनारे पर १७० मीलका रास्ता अतीव दुर्गम होनेकी वजहसे आज भी वहांका निर्माण कार्य खतम नहीं हुआ। इस समय यात्री और मालसे लदी गाड़ियां स्टीमरोंसे बैकालझीलको पार करती हैं। बैकालझीलकी चौड़ाई ४० मील है और बीच बीचमें यह झील बर्फसे आच्छादित रहती है। इसलिये भी ट्रेनें स्टीमरोंसे पार होती हैं। इस साइबिरिया रेलपथ बनानेमें रूस-सरकारने सैकड़ों नदियों पर बड़े, बड़े, पुल तैयार किये हैं। इनमें अब, टम, इयार्तिस, इयेनसी और सुङ्गारी नदीके पुल अत्यन्त आश्चर्यजनक हैं और दो रेलपथ बनानेका संकल्प हुआ है। अफ्रिकाकी उत्तरी सीमा सुयेज नहरसे दक्षिणी सीमा उत्तमाशा अन्तरीप तक और दक्षिण अमेरिकाकी दक्षिणी सीमा विउनस एरिससे चिलीदेशके किनारे तक निम्नोक्त पथका निर्माण कार्य खतम हो चला है केवल सुरङ्ग द्वारा अन्दिज पर्वतको पार करना बाकी है।

इस समय बड़े, बड़े, जनाकीर्ण नगरके बीच दूरसे आनेवाले यात्रियोंकी सुविधाके लिये उक्त रेलपथ निर्माणकी प्रथा अनेक जगहोंमें जारी की गई है। सन् १८३१ ई०में न्यूयार्कके प्रसिद्ध इञ्जिनियरने वहां सबसे पहले इस रेलपथका आदर्श तैयार किया। किन्तु यथार्थमें सन् १८७० ई०से इस पथसे रेल चलने लगी है। सन् १८७८ ई०में न्यूयार्कमें इसी तरहके समान्तर पर चार रेलपथ तैयार हुए हैं। जर्मनीके बर्लिन नगरमें भी यह प्रथा अवलम्बित हुई है। सन् १६०० ई०में बोष्टन नगरमें यह प्रथा जारी हुई है।

यह सभी बड़े, बड़े, रेलपथ लोहेके स्तम्भों या पत्थरोंकी गथाई पर अवस्थित हैं। एक खम्भेसे दूसरे खम्भे तक एक बड़ा गाड़ी जाती है। पीछे उस पर साधारण पथकी तरह सारा पथ ही लोहेकी कड़ियोंसे तैयार होता है।

साउथ लण्डन रेलवे कम्पनीने टेम्स नदीके नीचे जो तलवर्त्म तैयार किया है, वह अत्यन्त विस्मयजनक है। न्यूयार्कके इञ्जिनियर बोच् और ग्रेटहेड द्वारा यह भी निर्मित हुआ है। इसका विवरण सुरङ्ग शब्दमें दिया गया है। ग्रेटहेडने १० फुट ६ इञ्च व्यासयुक्त एक ढले हुए लोहेका नल जलके ऊपरी भागमें ४० फुट नीचे स्थापित किया है। इस तरहकी दो सुरङ्गें तैयार हुई हैं। सन् १६०२ ई०में पारलीमेण्टने इसी तरहके सुरंगदार रेलपथ तैयार करनेका हुक्म दिया। इसके अनुसार १०००००००) रुपया मूलधन संगृहीत हुआ। इस धनसे ह्यामर्स्मिथसे लण्डनको चीरती हुई उत्तरी सीमा तक एक लम्बी सुरङ्गदार रेल बनी है। इस पथकी चौड़ाई १५ फुट है। ग्रेटहेडके आदर्शके अनुसार सन् १८६३ ई०में अष्ट्रियाके बुदापेस्त नगरमें इस तरहका सुरङ्गदार रेलपथ तैयार हुआ है। सन् १६०२ ई०में ८ मीलका सुरङ्ग पथ तैयार हुआ था। इस पथसे घण्टेमें १५ मीलकी तेजीसे गाड़ियां आती जाती हैं।

साधारणतः इन सब पथोंमें बिजलीकी रेल चलती है। फिर एक ट्रेन ही तलवर्त्मसे उपरिस्थित रेलपथसे आ जा सकती है। ५०० गज अन्तर पर एक एक स्टेशन बना है। ये सुरङ्गदार रेलपथ साधारणतः तीन प्रकारके हैं।

(१) गहरी जमीनके भीतर अवस्थित लोहेके नलसे बना रेलपथ। ये पथ इतने गहरे हैं, कि नीचेके दर्शनसे ऊपर उठानेके लिये यात्रियोंको लिफ्टैफ्ट या कलसे उठानेवाले यन्त्रोंका व्यवहार किया जाता है।

(२) भूतलमें कुछ ही गहराईमें बना रेलपथ। ये सब पथ १२ से १५ फुटसे अधिक गहरे नहीं हैं। इसलिये यात्रियोंको चढ़ाने और उतारनेकी जरूरत नहीं होती। ऐसे पथोंमें यात्री स्वयं सीढ़ियों द्वारा चढ़

उतर सकते हैं। किन्तु इस पथमें असुविधा इतनी हो है, कि नगरके भूगर्भस्थ जल, गैस, विष्ठा और विजली के नल जालकी तरह जमीनमें फैले हुए हैं। इससे ऐसे पथोंमें बड़ी असुविधा होती है।

(३) पहले साधारणके चलनेके लिये जमीनसे कुछ ऊंचा पुल बना कर नीचे रेलपथ तैयार करते हैं। ऊपर आदमी, घोड़ागाड़ी, मोटर आती जाती तथा नीचे रेलगाड़ी चलती है। कलकत्ता चितपुरका पुल और रेलपथ तथा बम्बई, फेलड़ी और फ्रेञ्च पुल इसके उदाहरण हैं।

ऐसे सुरङ्गदार रेलपथ बनानेमें जो असुविधा भोग करनी पड़ती है, वह अकथनीय है। क्योंकि, जमीनमें कार्वनिक एसिड 'गैस' या अङ्गाराम्ल वाष्प, गन्धक वाष्प, अलीय वाष्प और विशुद्ध वायुके अभावके कारण सभीको बड़ा कष्ट होता है। इन सब रेलपथों में बिजलीका रेलगाड़ी चलती है। इन सब बिजलीके एञ्जिनोंकी शक्ति ६५० घोड़ेकी शक्तिके बराबर है।

ऐसे ऊंचे और नीचे रेलपथ बनानेमें बड़ा धन खर्च होता है। अमेरिकाके प्रत्येक ऊंचे रेलपथ बनानेमें प्रति मील ३०००००० से ४०००००, लाउन नगरके १५ फुट व्यासयुक्त तलपथमें प्रति मील २००००० पाउण्ड खर्चा हुआ है। सिवा इसके जमीनका मूल्य, स्टेशन बनानेका खर्च और अन्य खर्चा अलग हैं। लण्डनके केनन ष्ट्रीटके रेलपथो बनानेमें प्रति मीलमें १०००००००० पाउण्ड खर्चा हुआ था। न्यूआर्कमें २१ मील नीचे रेलपथ बनानेमें ३५०००००००) रुपया खर्चा करना पड़ा है। न्यूआर्कमें ४० मील ऊंचा रेलपथ है। इस पथसे प्रतिवर्ष २२१००००००० मनुष्य आते जाते हैं। लण्डनके १०० मील ऊंचे और नीचे रेलपथसे प्रतिवर्ष १५००००००० यात्री आते जाते हैं। सेण्ट्रल लण्डन रेलपथसे १६०० ई०की २६वीं अक्तोबरको एक दिनमें २२४६६१ यात्री आये गये थे। इसी रेलसे दक्षिण अफ्रिका युद्धक्षेत्रसे वालण्टियर या स्वयंसेवक लौटे थे।

वर्त्तमान समयमें यूरोपमें साधारण रेलपथोंमें बिजलीकी रेलगाड़ी चलती है। सन् १६०५ ई०में भारतवर्षके उत्तरी-पश्चिमी प्रदेशमें छेट रेलके लिये सरकारने एक आदर्श बिजलीकी गाड़ी मगवाई है। इस समय इसके चलानेकी परीक्षा हो रही है। इस बिजलीकी रेलके प्रचलनसे घोड़ेसे चलनेवाली ट्रामें बन्द हो रही हैं। २०वीं शताब्दीके आरम्भसे ही अमेरिका और यूरोपमें बिजलकी रेलें चलने लगीं। सन् १८६६ ई०में न्यूआर्कमें ५०६५८ बिजलीके एञ्जिन व्यवहृत हुए थे और १७६६६ मील पथ भी बना था। सिवा इसके वहां १६२१३ मील ट्रामपथमें ५८७३६ गाड़ी चल रही है। इसका मूलधन १०२३४१६६८६ पौण्ड फिर यह मूलधन कम्पनीका कागज या जातीय ऋण ग्रहण कर एक वर्ष २०००००००० बढ़ गया। सन् १६१० ई०की ३०वीं जून तक न्यूयार्कमें रेल, ट्राम इत्यादि नाना तरहकी गाड़ियोंको कुल ४५३६०३१८ मील पथ तय करना पड़ा। इस वर्ष यूरोपमें ५०६२ मील पथमें बिजलीकी गाड़ी चली। सन् १८६६ ई० तक निम्नलिखित देशमें बिजलीके रेलपथ और मोटर गाड़ियोंकी फिहरिश्त इस तरह है :—

ग्रेटब्रिटेन	६००	२०००
जर्मनी	२३००	५४८०
अष्ट्रिया हङ्गरी	१८०	२६१
बेलजियम	१२०	२००
स्पेन	१६६	१४४
फ्रान्स	८००	१०००
इटली	२३५	३१८
स्वीजरलैण्ड	२५०	३३०

लाइट रेलवे।

सन् १८६६ ई०में पारलिमेण्टकी आज्ञासे ग्रेटब्रिटेनमें बिजलीकी छोटी रेलें चलने लगी हैं, तबसे नाना स्थानोंमें रेलपथ बन गया है। इस रेलका गेज ढाई फुट है। किन्तु फिर अनेक लाइट रेलपथ तैयार हुए हैं। यूरोपसे प्रायः सभी देशोंमें लाइट रेल फैल गई है। भारतवर्षके नाना स्थानोंमें भी ऐसी रेलें दिखाई देती हैं।

पहाड़ी रेलवे।

जो रेलपथ समतल भूमिसे पहाड़के उच्च प्रदेश तक बनता है, उसे पहाड़ी रेलपथ कहते हैं। एक हजार फुट

पथ तय कर यदि कोई रेलपथ ३० फुट ऊपर चढ़ती है, तो उसे पहाड़ी रेल कहते हैं अर्थात् ऐसी रेलें प्रति हजार फुट पर ३० फुट ऊंची चढ़ती हैं। यह रेलपथ भी तीन भागोंमें विभक्त है :—(१) क्रमसे उच्च या क्रमसे निम्नरूपसे ऊपरकी ओर या उच्च स्थानके नीचेकी ओर बना साधारण रेलपथ। इसको 'पेडहिसेन' रेल कहते हैं। (२) Rack रेलवे अर्थात् क्रमोच्च पथ बराबर दांतदार कटा रहता है। गाड़ीके चक्केमें भी दांत होते हैं। ऊपर चढनेके समय गाड़ीके चक्केका दांत पथके दांतमें मिल कर गुड़ जाता और झुक जाता है। इस तरह एकके बाद एक दांत लगता जाता और छूटता जाता है। इस तरह रेलके ऊपर चढ़नेमें नीचे गिरनेका डर नहीं रहता है। रेकरेलपथ समतल स्थानोंमें सीधी तरहसे रैलकी तरह भी बनती है। (३) Cable रेलपथ :—यह पथ कुछ दांतकी तरह कटा रहता है। एक छोटे टेढ़े लोहेके दण्डमें दांत कटा रहता है पीछे उसीकी तरह दांतयुक्त चक्का दांतोंमें मिल कर ऊपर चढ़ता है।

जहां प्रति ४० फुटमें १ फुट उच्च पथ है, वहां रेक रेल व्यवहृत होती है। रेकरेल १००० फुट पर २५० फुट ऊंचा चढ़ सकती है। इससे अधिक उठना इस रेलकी क्षमतासे बाहर है।

माउण्ट वाशिङ्गटन और रिजी लाइन नामक रेक-रेलपथ बन जानेके बाद नाना स्थानोंमें इसी आदर्श पर रेक रेल तैयार हो रही है। कुछ रैकके दांत वक्रभावसे बना है। किन्तु कर्नेल लकार नेपिलाडस नामक रेक रेलमें सीधे दांतका व्यवहार किया है। यह पथ पृथ्वीमें अपूर्व दर्शनीय है। इस पथ पर गाड़ी समकोण त्रिभुजके कर्णकी तरह खड़े भावसे चढ़ती है अर्थात् यह पथ प्रत्येक १००० फुट पर ४८० फुट ऊंचा चढ़ता है। किसी किसी रेलपथमें दोनों ओर साधारण रेल बैठाई गई है। फिर भी, मध्यस्थलमें एक नया रेक रहता है। इसके द्वारा गाड़ी मजबूतीसे ऊपर चढ़ती है।

अबूट (Abt) नामक रेलपथमें गाड़ियां थोड़ी ही रगड़में ऊपर चढ़ती हैं। इस रैकपथ पर ३ रेलें बिछाई रहती हैं। इनमें दो चिकनी और एक रेक या खुरदरी रेल। रेक रेलपथमें सुरङ्ग आदि रहनेसे बड़ी असुविधा रहती है।

इस समय पहाड़ी रेलपथ पर बिजलीकी मोटर चल रही है। सबसे पहले वार्मनके पार्वत्य रेलपथ पर बिजलीकी मोटर गाड़ी चलने लगी। इस पथकी ऊंचाई प्रति सहस्र १८५ है। इसके बाद माउण्ट नामक स्थानमें यह मोटर चलने लगी। इस समयकी ऊंचाई प्रति सहस्र २५० है। जांफ्रा नामकी पहाड़ी रेलकी ऊंचाई प्रति सहस्र २५० है। इस पथसे रेलगाड़ी उपरिस्थित बिजलीके तारके संयोगसे तेजीसे दौड़ती है। कलकत्तेकी बिजलीकी ट्राम जैसे लौहदण्ड द्वारा बिजलीसे स्पर्श करा कर चलाई जाती है, उसी तरह ये रेलें भी चलाई जाती हैं। पृथ्वीमें जितनी पहाड़ी रेलें हैं उनमें जांफ्रो रेलपथ अति अद्भुत तथा विस्मयजनक है। इसके अधिकांश पथ सुरङ्गदार हैं। प्रति हजार फुट पर २५० फुटकी ऊंचाईसे आरम्भ कर यह ५००० मिटर या ६ मील ऊंचाई तक गया है। यह पथ बीचमें १॥ मील चिरतुषारको पार कर ऊपर गया है। इस पथके चारों ओर विभीषिकामयी तुषारनदी भीमवेगसे प्रवाहित हो रही है। इस भयावह नैसर्गिक विप्लवके बीच मनुष्यकीर्त्ति मानो प्रकृतिके तुषारमय अट्टहासका परिहास करती हुई किसी अनिर्द्देश्य संकल्पसे अवनीको अमरावतीके साथ संयोग करनेके लिये दौड़ी है।

इन सब पहाड़ी रेलों पर ६० आदमीसे अधिक यात्री नहीं चढ़ सकते और इस पर माल ६ टनसे अधिक बोझाई नहीं किया जाता। गाड़ी घण्टेमें ६से ८ मील तककी रफतारसे जाती है। जहां रेलपथ बिलकुल खड़ा है, वहां एक पीछेसे एञ्जिन भी लगाया जाता है।

'रेक और केबल' रेलपथ बनानेमें बहुत खर्च पड़ता है। एक हजार गज पथ बनानेमें ३००० पाउण्डसे ३२००० पाउण्ड तक खर्च हो जाता है। सन् १८९७ ई०के अन्तमें सारी पृथ्वीमें ७१ मील तक ही रैक रेल थी।

केबल या रस्सीके सहारे चलनेवाली रेल दो तरहकी है—

(१) लम्बी रस्सी द्वारा बराबर ऊंचे स्थानमें गाड़ियां चढ़ती हैं। अर्थात् रस्सीके दूसरे छोरमें मोटर एञ्जिनकी शक्तिसे गाड़ियां नीचे ऊपर चढ़ती हैं।

(२) रस्सीके दोनों छोर पर गाड़ी संलग्न रहती है। एक उतरती रहती है और दूसरी ओर चढ़ती रहती है। इसी निम्नोक्त प्रणालीसे अधिकांश पहाड़ों पर केवल रेलगाड़ी चलती रहती है।

पहले इन सब उद्धर्वगामी गाड़ियोंके यात्री गाड़ी पर चढ़ने और उतरनेमें हिलते डोलते थे। अर्थात् कभी कभी गिर भी पड़ते थे। किन्तु इस समय गाड़ियां इस तरहके कौशलसे बनाई जाती हैं कि गाड़ीमें चढ़ने और उतरनेमें यात्री जरा भी विचलित नहीं होते। ठीक तौर पर बैठ सकते हैं।

केबल रेलपथकी ऊंचाई रेक रेलपथसे बहुत अधिक हुआ करती है। अर्थात् प्रति हजार फुट पर ६५० फुट ऊंचा होता है। इन गाड़ियोंमें ३२से ४८ यात्री बैठ सकते हैं। ऐसे एक हजार गज पथ बनानेमें १०००० पाउण्डसे ३०००० पाउण्ड खर्च हुआ करता है। किन्तु ये सब पथ बड़े ही विपज्जनक हैं। बीच बीचमें बेगवती तुषार नदीके चलाये बड़े बड़े पत्थरके ढोके गिर कर रेलपथ या रेलवे मुसाफिरको नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। चिरनीहारह-सीमान्तवर्त्ती रेलपथोंमें विपद्‌की आशङ्का सबसे अधिक है। कई बार इस तुषारस्रोतसे रक्षा पानेके लिए बड़े बड़े इञ्जीनियरोंने बड़ी बड़ी चहारदिवारियां उठाई थीं और जहां तुषारकी अधिक सम्भावना है, वहां पहाड़ोंमें सुरङ्ग खोद कर उसमें रेलपथ बनाया है। कोई कोई सुरङ्ग ३।४ कोस लंबी होती है। इस पर्वत-शिखरका सुरङ्गदार पथ विद्युत् प्रकाशसे प्रकाशित किया जाता है। इस समय शिक्षा और सभ्यताके विस्तारके साथ साथ पहाड़ी रेलपथका फैलाव भी बढ़ रहा है। इस समय पृथ्वीके जिस जिस स्थानमें पहाड़ी रेल है उसका संक्षिप्त विवरण इस तरह है:—

आड़हिसन लाइन या ऊपर चढ़नेवाली क्रमोच रेलपथ।

स्थानीय रेलका नाम	रेलपथकी लम्बाई	क्रमोच्चके अनुपात से		फुट हिसाब	प्रतिमील खर्च पाउण्ड
सिंहलकी कादुगानव रेल	१२	१	:	४५	अज्ञात
सेण्टगथार्ड पार्वत्य रेल	३६	१	:	३७	६८८७३
दार्जिलिङ्ग हिमालय रेल	४०	१	:	२८	४५७५
वेनेजुइलर काराकस	२३	१	:	२७	२५०००
मेक्सिको रेल	१४	१	:	२५	अज्ञात
पेरुकी रेल	१००	१	:	२५	३१६६०
स्वीजरलैण्डकी सूरस्त रेल	७	१	:	२५	१०४५३
लण्डनकोयार्ट	१३॥	१	:	२०	११५२०
भाउन कडकस	५	१	:	२२	अज्ञात
पेन्सिलवेनिया	१४	१	:	१६	अज्ञात
ब्रेजिलकी काण्टागेलो	६।	१	:	१२	२००००

रेकरेलपथकी फिहरिश्त।

स्थानीय रेलका नाम	रेलपथकी लम्बाई मील	क्रमोच्चके अनुपातका		फुट हिसाब	प्रतिमील पर खर्च पाउण्ड
ब्रानसुईकी हर्ज रेल	४॥	१	:	१६	१०४५८
वोसनियामोष्टर	१७	१	:	१६	अज्ञात
ष्टाइरियर इसेनार्ज	६	१	:	१४	४५१६०
सुमात्राकी पांडा रेल	१६	१	:	१२	११४००
स्वीजरलैण्डके जर्मट	४	१	:	८	७१५०
इङ्गलैण्डके स्नोडेन	४॥	१	:	५॥	११५५०
कलोरडोपाइकसपीक	८॥	१	:	४	११४०६
स्वीजरलैण्ड रथन	४॥	१	:	४	१७६८४
भिजूहानरिश्नि	४	१	:	४	२६२०८
अष्ट्रियाका सालजवर्ग	३॥	१	:	४	१६८४०
वेङ्गरनाल्प	१०	१	:	४	१००४०
अष्ट्रियाका स्काफवर्ग	३॥	१	:	४	अज्ञात

स्वीजरलैण्डदेशके आल्पस पर्वतमें सबसे अधिक थाक (Rack) और तार (Cable) रेलपथ निर्मित हुआ है।

केबलरेलका नाम	लम्बाई गज	प्रतिहजार फीटकी ऊंचाई	समुद्रसे ऊंचाई फीट	प्रतिमीलमें खर्च पाउण्ड
बीटनवर्ग	१७५०	४००	१६३८	१६४००
विपल्मागलिङ्गेन	१७७७	३२०	२८८४	१५३००
ववर्जेनष्टक्	६०४	५७५	२८८०	८६००
ग्यूसाडेल	४०२	३७०	१८०८	६७००
जिसव्यच	३५०	३२०	२१७५	५०००

लूसार्न	१५५	५३०	१७००	२८००
लूसानी	१६२०	११६	१५७५	१२१३००
लटारब्रुनेन	१३२०	६००	४८७२	२८४००
लुगानो	२६०	२३८	११०६	६४००
माग्निली	११०	३०२	१७७२	२०००
स्यालभट्टोर	१६४८	६००	२८६४	२२२००
रिहनेक	१३४०	२६०	२२०५	१६५००
टेरिटेटगिलेन	६०५	५७०	२२६१	१७४००
जुरिचवर्ग	१७८	२६०	१४८०	६४००
रैगज	८३३	६०४	२३१६	८८००
इँजाहर्न	३६६६	६२०	६०६३	४७६००
कसोनेभाएड	१३३४	५३०	२२२२	१५२००
सेण्टगालेनमुहलेक	३४०	२२८	२४३७	१००००
उलडारजुरिच	८८३	१७७	१७६४	११३००

उपर्युक्त रैलपथ मनुष्योंके शिल्पविज्ञानके अद्भुत कीर्त्तिस्तम्भ हैं। पहाड़ी रेलपथोंमें मुरेन नामक पथका ञायेडक् या उपत्यकाके उपरिस्थित प्रस्तरग्रथित प्रकाण्ड गथाई अद्भुत शिल्पकीर्त्तिका परिचय है। यह रेलगाड़ी प्रायः खड़े पहाड़ पर सीधी चढ़ जाती है। आफ्रोयरकी बात पहले कही जा चुकी है। सिवा इसके पिलाटस, ब्रुनिग और स्यालभेटरके पर्वतगात्रमें ऊद्र्ध्वगामी पथ बड़े ही विस्मयजनक हैं। पृथ्वीमें ये अतुलनीय पंथ हैं।

भारतीय रेलपथ।

सन् १८४५ ई०से पहले भारतीय रेलपथकी कल्पना किसी इञ्जिनियरके मस्तिष्कमें नहीं उत्पन्न हुई थी। आधी शताब्दिमें ही रेलके प्रचारमें युगान्तर उपस्थित हुआ है।

जो हो, वाल्मीकि और कालिदासका पुष्पकरथ कल्पना कक्षमें निवास करे। अब भारतवासी रेलगाड़ी पर चल कर तीर्थप्रसूत पुण्योपचय स्वर्गमें जाते हैं। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, पुरी, द्वारवती आदि मोक्षदायक महातीर्थोंमें भारतवासी अनायास ही आ जा रहे हैं। रेलयाकी ४४ घण्टेमें कलकत्तेसे कैलाश पर्वत पर जा कर काञ्चनजङ्घा शिखर पर काञ्चनभावोका अपूर्व दृश्य देख रहे हैं। वङ्गोपसागरके निकटके कलकत्तेसे चल कर ४३ घंटेमें अरबसागरके समीपके बम्बई नगरमें लोग पहुंच जाते हैं। ६० घंटेमें कालकासे कन्याकुमारी, ५० घण्टेमें नवद्वीप या नदियासे नैमिषारण्य तक आया जाता है।

सात घोड़े रथ पर चढ़ सूर्यके उदयाचलसे अस्ताचल जाते न जाते सात सौ घोड़ोंकी शक्ति रखनेवाली गाड़ी पर चढ़ कर पाटलीपुत्र (पटने) से पुरीधाम लोग पहुंच जाते हैं। रेलपथके लोहेका जाल नद, नदी, झील, पर्वत और मरुभूमि, वन, जंगल आदि सभीको पार कर भारत भरमें फैल रहा है। कृष्णा, गोदावरी, सिन्धु, कावेरी, सरयू, सरस्वती, यमुना, गंगा—लौहमयी मेखला पहन कर मानो मर्मवेदनाकी यातनाको कम करनेके लिये कल-कल ध्वनि तथा छल-छल नेत्रोंसे वारिनिधि पान करने चली है। मुग्धहृदय भारतवासी अंगरेजोंके विश्वकर्मविडम्बित शिल्पविज्ञानके कलाकौशलको देख मन्त्रौषधिरुद्धवीर्य सर्पकी तरह बैठे हैं। मालूम होता है, कि मयदानवके वंशधरोंका बिलकुल निर्मूल हो गया है। पुरोचनका भी सन्तान नष्ट हो गया है। भारतीय कवियोंने भूगर्भमें विश्वकर्माकी शिल्पशालाकी सृष्टि की है। किन्तु भारतमें कोई जुलीयवर्णा पैदा ही न हुआ, कि भारतियोंको पातालमें आनेका पथ बतला देता। इसीलिये भारतीय कर्त्तव्यपथसे विच्युत हुए हैं। इसीसे वे वैदेशिक विश्वकर्माकी शिल्पकलामें जा रहे हैं। इङ्गलैण्डमें जब स्याभय, न्यूकोमेन, ट्रेभिथिक, जेम्सवाट् और जाज ष्टीफेनशन आदि भुवन विख्यात इञ्जिनियर पृथ्वीमें युगान्तर उपस्थितकारी एञ्जिनके कलकौशलके अनुध्यानमें रत थे, तब वणिग्वृत्तिमें कुशलसे इष्ट इण्डिया कम्पनी काम दुग्धारूपिणी भारतभूमिको सहस्रधारोंमें दूहनेके लिये वर्षोंसे अनुसन्धान कर रही थी। सबसे पहले १८४१ ई०में सर मेकडोनाल्ड ष्टीफेनशन नामक एक व्यक्तिके मस्तिष्कमें भारतमें रेलपथ प्रचलनका सङ्कल्प उदय हुआ था। किन्तु १८४४ ई०की २री दिसम्बरके पहले उन्होंने अपने लिखे विवरणमें प्रकाशित नहीं किया है। सन् १८४४ ई०की ८वीं नवम्बरको 'मिसर्स ह्वाइट एण्ड बरेट' नामक एक वणिक्-सम्प्रदायने "ग्रेट इण्डियन रेलवे कम्पनी" नाम रख कर दक्षिण-

भारतमें बम्बईसे गोदावरीके किनारे करिङ्गा नामक स्थान तक रेलपथ विस्तारके लिये अंगरेज सरकारसे आवेदन किया। उनके संकल्पित रेलपथ बम्बईसे भारतके चारों ओर दौड़ेंगी, ऐसी भी उसकी प्रार्थना थी। किन्तु इस कम्पनीकी प्रार्थना सरकार द्वारा स्वीकृत न हुई। इसके बाद ही मिष्टर मेकडोनाल्ड ष्टीफेनशन और सर जी लपेण्टने अंगरेज-सरकारको समझाया बुझाया कि भारतमें रेलपथ न खोलनेसे भारतीय कामधेनुको दुहनेकी सुविधा नहीं हो सकती। वाणिज्यकी सुविधाके लिये बृटिश-सरकारकी कुछ सम्मत हुई।

सन् १८४४ ई०की २री दिसम्बरको मेकडोनाल्ड ष्टीफेनशन इष्ट-इण्डिया रेलवे कम्पनी नामक नये प्रतिष्ठित सम्प्रदायके कार्याध्यक्ष नियुक्त हुए और डिरेक्टरोंको इस मर्मका पत्र लिखा, कि यदि आप लोग अन्ततः सैकड़े ४) रुपया सूदकी गराण्टी या प्रतिभू हों तो रेलकम्पनी मूलधन संग्रह कर सकेंगी। सन् १८४४ ई०की १३वीं दिसम्बरको उन्होंने पत्र लिखा, कि डिरेक्टरोंकी गराण्टी पाने पर सौदागर रुपया देनेमें कुण्ठित न होंगे। अतः शीघ्र ही रेलवे कार्य आरम्भ होगा।

अन्तमें १८४५ ई०में २०वीं जनवरीको इष्ट इण्डिया रेल कम्पनीकी नई प्रतिष्ठित कमिटीमें डिरेक्टरोंने इस मर्मका पत्र भेजा, कि हम लोग दश लाख रुपयेका ३) रुपया सैकड़ाके हिसाबसे गारण्टी देंगे। किन्तु रेलपथ पहले मिर्जापुरसे इलाहाबाद तक १४० मील तैयार होगा, इसके खर्चके रूपमें ३०००० पाउण्ड निश्चित रहेगा। डिरेक्टरोंके पत्रकी दो चार पंक्तियां नीचे उद्धृत की जाती हैं*।

अन्तमें १८४५ ई०की ७वीं मईको इङ्गलैण्डके डिरेक्टरोंने भारतवर्षके गवर्नर जनरलको रेल कम्पनीके सम्बन्धमें एक पत्र लिखा—"Which is the first official recognition of the desirability of railways for India" यही भारतमें रेलसंक्रान्त सरकारी पहला पत्र है। रेल कम्पनीके उस समयके विवरणमें देखा जाता है, कि भारतमें चढ़नेवाले न मिलेंगे। मालसे ही जो कुछ लाभ हो सकता है, होगा। जो हो, पहले डिरेक्टरोंने इसका अनुसन्धान मिष्टर सिम्स सी, आई, ई० नामके एक सुदक्ष इञ्जिनियरसे कराया, कि भारतमें रेल चल सकती है या नहीं। वे सन् १८४५ ई०की सितम्बर महीनेमें भारत पधारे। उन्होंने अच्छी तरह जांच पड़ताल कर डिरेक्टरोंके पास एक पत्र भेजा। पत्रमें—लिखा गया—

"अङ्गरेज गवर्मेण्ट रेल कम्पनीको जमीन खरीद देगी। सरकार रेलवे आमदनी और रफ्तनी पर कर न लगायेगी। कलकत्तेसे दिल्ली तक रेलपथ तैयार करनेमें सात वर्ष लगेंगे। रेलकम्पनी कम किरायेमें सरकारी डाक और अन्यान्य चीजें पहुंचाया करेगी। रेलकम्पनी एक आदर्श रेलपथ तैयार करेगी।" इसी तरह विस्तृत मन्तव्योंके साथ यह पत्र भेजा गया। सन् १८४६ ई०की ६ठीं फरवरीको यह पत्र इङ्गलैण्डमें पहुंचा। १३वीं मार्चको इञ्जीनियरोंका विवरण सरकारके पास दिया गया।

इसके बाद मिष्टर सिम्स कप्तान बइलो एवं वेष्टन नामक इञ्जीनियरोंने एकवाक्यसे गवाही दी, कि इङ्गलैण्डमें जिस तरहसे रेलपथ तैयार हुआ है, भारतमें भी उसी तरहका रेलपथ तैयार हो सकता है। इन इञ्जीनियरोंने डिरेक्टरोंको युक्ति द्वारा उनकी आपत्तिका खण्डन किया और कलकत्तेसे मिर्जापुर तक रेलपथका एक आदर्श प्रस्तुत हुआ। इसी आदर्श पर रेलपथकी पूर्वी सीमाका स्टेशन कलकत्ता निर्दिष्ट हुआ था। इसके बाद यह निश्चय हुआ, कि रेलपथ गङ्गाके बायें किनारे होते हुए कुछ दूर जा कर वर्द्धमानके निकट गङ्गा पार कर दक्षिण किनारे हो कर सीधा काशी जायगा। वहांसे मिर्जापुर जायगा। इसकी एक शाखा वर्द्धमानसे राजमहल, दूसरी शाखा गया, पटना और दानापुर जायगी। इसके अलावे दिल्ली और मिर्जापुरसे अन्य चार शाखाओंके खुलनेकी भी बात ठहरी।

१ कानपुरसे फर्रुखाबाद, २ आगरेसे अलीगढ़, ३ दिल्लीसे मेरठ और ४ करनालसे सिमला तक।

पीछे यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि पहले पहल कानपुरसे इलाहाबाद या बारिकपुरसे कलकत्ता तक एक आदर्शपथ तैयार किया जाय। उस समय लार्ड हार्डिञ्ज भारतके गव-

* "To encourage the introduction of railways into India, and on the condition that the bonus should be withdrawn when the railway net profit exceed 3 per cent upon the outlay of one million"

नर जनरल और सर हर्बर्ट मेडक, अनरेबल एफ, मिलेट और सी, एच कोमारन राजस्वसचिव थे। उस समय भारतकी राजधानी कलकत्ता थी। इससे लार्ड हार्डिञ्ज कलकत्तेमें ही रहते थे; किन्तु ग्रीष्मका समय होनेसे वे उस समय कलकत्ते न थे, अतः सर मेडक रेलकम्पनी-के प्रस्तावकी आलोचना करने लगे। पहले मिष्टर सिम्सने अपने सब प्रस्तावोंको उक्त मन्त्रियोंके मनमें बैठनेके लिये डिरेक्टरोंके पास युक्ति प्रमाणके साथ पत्र भेजा। उन्होंने ओजस्वी भाषामें दूर दृष्टि द्वारा दिखा दिया था, कि पहले परीक्षाके लिये रेल-कम्पनी शीघ्र ही बड़े पथका सूत्रपात करे। कम्पनी कभी भी क्षतिग्रस्त न होगी। सन् १८४६ ई०की ६वीं मईको मेडकका यह प्रस्ताव डिरेक्टरोंके पास पहुंचा और इसकी एक अनु-लिपि सिमला प्रवासो गवर्नर-जनरलके निकट भेजी गई। लार्ड हार्डिञ्जने मेडकके प्रस्तावको हृदयसे समर्थन किया। उनके पत्रसे कई पंक्तियां उद्धृत को जाती हैं। उन्होंने डिरेक्टरोंको लिखा—भारतमें रेल हो जानेसे कम्पनीके लिये सब तरहकी सुविधा और अङ्गरेजराज-की नींव मजबूत होगी।

सन् १८४६ ई०में इस विषयको ले कर पार्लियामेण्ट-में घोर आन्दोलन उठ खड़ा हुआ और अक्टोबर महीनेमें डिरेक्टर-सभासे निम्नलिखित मन्तव्य प्रकट हुआ।

डिरेक्टरोंका मन्तव्य।

रेलपथका नाम और सङ्कल्प।	पथका विशेष विवरण।	शाखा।
(१) इष्ट-इण्डिया रेल-कम्पनी	कलकत्तेसे मिर्जापुर तक पीछे दिल्ली तक विस्तार।	राजमहल, पटना, दानापुर, काशी, कोयलेकी खान, मेरठ।
(२) ग्रेट इण्डिया पेनिनसुला	बम्बईसे कल्याण।	औरङ्गाबाद, नागपुर, हैदराबाद।
(३) ग्रेट वेष्टर्न आफ बङ्गाल	कलकत्तेसे राजमहल।	
(४) कलकत्ता डायमण्ड हारबर	कलकत्तेसे जर्जपैण्ट तक विस्तार।	
(५) कलकत्ता और ग्रेट वेष्टर्न बङ्गाल	कलकत्तेसे मुर्शिदाबाद और भगवानगोला।	मालदह, रङ्गपुर और दिनाजपुर तक विस्तार।
(६) कलकत्ता बारिकपुर	दमदमसे बारिकपुर।	
(७) डाइरेक्ट-नार्दर्न	कलकत्तेसे भगवानगोला।	राणाघाटसे कलारोया, कृष्ण-नगरसे कृष्णगञ्ज, काशीपुरसे बारासात।
(८) ग्रेट नार्थ इण्डिया	इलाहाबादसे दिल्ली।	मिरजापुर, काशी, मेरठ आदि।
(९) दिल्ली लुधियाना	दिल्ली, मेरठ, लुधियाना।	
(१०) मन्द्राज रेल-कम्पनी	मन्द्राजसे वाल्लाजानगर।	आर्काट, बेलूर, बङ्गलोर, महिसुर, कड़ापा, बिल्लारी, हैदराबाद, त्रिचिनापल्ली आदि।
(११) मन्द्राज, बेलूर और आर्काट	मन्द्राजसे बेलूर, कड़ापा।	हैदराबाद।
(१२) मन्द्राज, पण्डिचेरी		आर्काट।
(१३) बम्बई, आगरा, दिल्ली	बम्बईसे सूरत हो कर दिल्ली, बड़ोदा, ग्वालियर, इन्दौर।	मिर्जापुर, इलाहाबाद, नर्मदासे भूपाल, उज्जयिनीसे कानपुर, झांसी, फरुखाबाद।
(१४) बम्बई, सूरत, बड़ौदा		
(१५) दक्षिण-मन्द्राज	नागपट्टनसे वालघाट और कालीकट	

सन् १८४६ ई०के अक्टोबर महीनेमें डिरेक्टर-सभासे गवर्नर जेनरलके दफ्तरमें जो मन्तव्य आया था, उसीसे उपर्युक्त फिहरिश्त दी गई है।

इन सब पथोंमें उधर ५० वर्षोंमें इष्ट इण्डिया कम्पनीने केवल १, ३, ८, ६—ये चार पथ तैयार किये हैं। ७वां पथ सन् १६०५ ई०में खोला गया। इष्टर्न बंगाल ष्टेट रेलवे इतने दिनोंके बाद उस पुराने प्रस्तावको कार्यरूपमें परिणत कर सकी है।

उस समय बङ्गालके इञ्जीनियरोंमेंसे लेफटेण्ट कर्नल फर्बेस नामक एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उन्हींके प्रस्तावानुसार पहले कलकत्तेसे मिर्जापुरके बीच हो कर दिल्ली तक रेलपथ निर्माणकी व्यवस्था हुई। पहले डिरेक्टरोंने रेलकम्पनीको ८६ वर्षकी मीआद पर रेलपथ बनानेका हुक्म दिया। किन्तु उस हुक्मनामामें यह भी लिखा था, कि सरकार यदि सुविधा देखेगी, तो उसका अधिकार होगा, कि मीआदके भीतर भी क्षति पूर्त्तिकर किसी भी रेलपथको खरीद सकेगी और सेकडे ४ रुपया सूद पर ५००००००पाउण्ड ले सकेगी। यह भी स्थिर हुआ, कि प्रतिमील १५००० पाउण्डके हिसाबसे ३३३ मील पथ पहले बनेगा खर्च छोड़ कर जो लाभ होगा, उसे डिरेक्टर और रेलकम्पनी आपसमें बांट लेंगे।

पीछे १८४६ ई०की १६वीं दिसम्बरको डिरेक्टरोंने यह मन्तव्य प्रकाशित किया और इस बातकी रचना इष्ट इण्डिया कम्पनी और ग्रेटवेष्टर्न रेलवे आफ बङ्गाल कम्पनीको दे दी। सन् १८४७ ई०में दोनों कम्पनियोंने एकमें मिल कर ईष्ट इण्डिया कम्पनी नाम रख लिया। सन् १८४७ ई०की १८वीं अगस्तको इस कम्पनीने कलकत्तेसे दिल्ली तक रेलपथ बनानेका दृढ़ संकल्प किया।

इसी समय डिरेक्टरोंने मन्द्राजसे अर्काट और बम्बईसे कल्याण तक रेलपथ खोलनेका हुक्म दिया। ग्रेटइण्डिया पेनिनसुलार रेलकम्पनीके सभापतिने डिरेक्टरोंके आज्ञानुसार कार्य्य करना निश्चित किया और उन्होंने सन् १८४८ ई०की ६ठीं जूनको डिरेक्टरोंके प्रस्ताव पर अपनी सम्मति प्रकट की। कुछ दिनोंके बाद ईष्ट इण्डिया कम्पनीने ६०००० और ग्रेट इण्डिया पेनिनसुलार रेलकम्पनीने ३०००० पाउण्ड डिरेक्टरोंके पास भेजा।

डिरेक्टरोंने इस तरह अनेक वादानुवादके बाद सन् १८४६ ई०की २६वीं जनवरीको रेल-कम्पनियोंको विशेष सुविधा प्रदान की। अन्तमें १८४६ ई०की १७वीं अगस्तको ईष्ट इण्डिया कम्पनीने और ग्रेट इण्डिया पेनिनसुलार रेल कम्पनीने डिरेक्टरोंके प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर दिया। पूरे साढ़े चार वर्ष बाद विवाद चलनेके बाद भारतमें रेल प्रतिष्ठाका पक्का बन्दोबस्त हुआ। दोनों कम्पनियां रेलपथ बनानेमें बद्धपरिकर हुईं।

उस समय सरकारी इञ्जीनियर कर्नल केनेडीने अपने पहलेके इञ्जीनियरोंकी भूलोंका संशोधन कर एक बड़ी पुस्तक लिखी। भारतकी रेलोंके इतिहासमें कर्नल केनेडीका नाम अमर रहेगा। उन्होंने जो प्रस्ताव किया, वही कार्यमें परिणत हुआ।

कर्नल केनेडीने पहलेके इञ्जीनियरोंकी भूल दिखाते हुए कहा, कलकत्तेसे राजमहलके पहाड़ोंके बीचसे बनारस तक रेल ले जाना कठिन है। इसके लिये गङ्गा नदीके साथ समान्तराल रूपसे रेलपथ निर्माण करना होगा और गङ्गाके बायें किनारे रेलपथ बना कर चितपुर सीमान्त स्टेशन बनानेकी अपेक्षा गंगाके दक्षिण किनारे सीमान्त स्टेशन बनाना युक्तिसङ्गत होगा। इस तरह पश्चिमकी तरफ रेलपथका विस्तार करना अच्छा होगा। उन्होंने ग्रेटइण्डिया पेनिनसुलार रेलकम्पनियोंकी भूलें दिखलाईं।

इष्ट-इण्डिया रेलपथ।

इस कम्पनीने पहले कलकत्तेसे रानीगञ्जको कोयलेकी खानि तक रेलपथ बनानेका दृढ़ सङ्कल्प किया। यह स्थान कलकत्तेसे १२१ मील है। इस समयके गवर्नर जनरल लार्ड डलहौसी रेलकम्पनियोंको विशेषरूपसे उत्साह देने लगे। सन् १८४६ ई०के अगस्त महीनेमें कलकत्तेसे रानीगञ्ज तक रेलपथका ठीका होने लगा। इस कम्पनीके प्रधान इञ्जीनियर मिष्टर टार्नबुल १८५० ई०के मई महीनेमें कलकत्तेमें आ पहुंचे। सन् १८५१ ई०में कलकत्तेसे श्रीरामपुर तक जमीनका दाम और पथका स्थान निर्द्धारित हुआ।

मिष्टर सिम्सने डिरेक्टरोंसे प्रस्ताव किया था, कि चितपुर ही सीमान्त स्टेशन होगा और वहांसे गङ्गाके किनारे-किनारे फोर्ट विलियम तक एक रेलपथ बनेगा। किन्तु १८५० ई०के अप्रिल महीनेमें उन्होंने यह संकल्प त्याग कर हवड़ेमें सीमान्त स्टेशन बनानेका परामर्श दिया और कहा कि बारिवपुरके निकट पलताघाटके समीप हुगली नदी पर एक बहुत बड़ा पुल बनेगा। पीछे उन्होंने काशीपुरके निकट पुल बनानेकी राय जाहिर की थी। मिष्टर सिम्सने इङ्गलैण्डके 'ब्रड गेज' और 'न्यारो गेज'के मध्यवर्ती ५ फुट ६ इञ्चके एक नये गेजका व्यवहार किया था।

लार्ड डलहौसीने सन् १८५० ई०में कर्नल केनेडीको इंजीनियर नियुक्त किया। पीछे इस जगह पर डबल्यू आरहिवन बेकर नियुक्त हुए। सन् १७५१ ई०के जनवरी महीनेमें कलकत्तेसे पाण्डुआ तक ४० मीलकी पैमाइश खतम हुई। इस स्थानमें उस समय एक बहुत बड़ा जङ्गल था। जो हो, कलकत्तेसे हुगली तक इस पथके लिये ठीका होने लगा।

मेसर्स हण्ट, ग्रे एण्ड एलमस्ले नामकी कम्पनीने हवड़ेसे हुगली तक २६॥ मील पथ बनानेके लिये ठीका लिया। मेसर्स वर्न एण्ड कम्पनीने हुगलीसे पाण्डुआ—इस १० मीलों और मेमारीसे वर्द्धमान तक १२ मीलोंके रेलपथ बनानेका भार या ठीका लिया। इस तरह हवड़ेसे रानीगञ्ज तक १२१ मीलोंका ठीका हो गया। हवड़ेसे पहले ७० मीलका पथ ८००० पाउण्ड प्रति मीलके हिसाबसे चुका दिया गया। यह भी स्थिर हुआ, कि ठीकेदार तीन वर्षोंमें अपना अपना काम खतम कर देंगे।

सन् १८५३ ई०के अगस्त महीनेमें ई० आई० आर० कम्पनीके प्रधान इञ्जीनियरने किये गये कार्य्योंका विवरण प्रकाशित किया। उसमें देखा गया, कि उस समय २६०००००० ईंटोंसे कम रास्ता बनानेमें काम न चलेगा। पहले रास्तेमें जमीनसे मिट्टी काट कर फेंकी गई थी। इसमें ६४ एकड़ जमीनकी मिट्टी लगी थी। इस तरह २५७०००००० घनफुट जमीन व्यवहृत हुई थी। वर्द्धमान जिलेमें बाढ़का भी बड़ा प्रकोप रहता है। इससे वहां सैकड़ों पुल और गँधाईके काम हुए थे। बालीकी नहर, वेगवती सरस्वती, मगरा और बांका नदी पर पुल बनवाने पड़े थे। इन कामोंमें बहुत अधिक धन खर्च हुआ था। १०२१ गजोंमें पुल बनवाने पड़े थे। पहले सभी स्टेशन मामूली तौर पर बने थे। श्रीरामपुर, चन्दननगर, वर्द्धमान—इन प्रत्येक स्टेशनोंके बनवानेमें १८६८०) रुपया खर्च हुआ था।

रेलपथ बनवानेका काम तेजीसे चलने लगा। सन् १८५१ ई०के जनवरी महीनेमें कार्य्यारम्भ हुआ और सन् १८५४ ई०के सितम्बर महीनेमें पाण्डुआ तक ६७ मीलोंका पथ तैयार हो गया। सन् १८५५ ई०के फरवरी महीनेमें लार्ड डलहौसीने हवड़ेसे रानीगञ्ज तक १२१ मीलोंका रेलपथ खोला। इसके उपलक्षमें बड़ी धूमधामसे अङ्गरेजोंको गार्डेनपार्टी अथवा उद्यान भोज दिया गया। डलहौसी हवड़ेसे गाड़ी खुलनेके समय वहां उपस्थित थे। किन्तु वह वर्द्धमान नहीं जा सके। इससे यह कहना अत्युक्ति नहीं कि यह दिन बङ्गालके लिये चिरस्मरणोय दिन था। इस दिन हवड़ा, श्रीरामपुर, चन्दन नगर, हुगली और वर्द्धमानमें हजारोंकी तायदादमें स्त्री-पुरुष खड़े तमाशा देखने लगे थे। चारों ओर घण्टे और शङ्खकी ध्वनि तथा महा जनसमागमके कोलाहलसे धरती गूंज उठी थी। उस समय बङ्गालियोंने विस्मयके साथ इस कौतुकमें निमग्न हो अंग्रेजोंको इस कीर्त्तिको मुग्ध नेत्रोंसे देखा था। पहले बहुतेरे लोग गाड़ीमें चढ़नेका साहस नहीं करते थे। पीछे अधिकसे अधिक यात्री इस गाड़ी पर चढ़ने लगे। इष्ट इण्डिया कंपनी उत्साहसे कार्य्य करने लगी। शीघ्र ही दिल्ली तक रेलपथका रास्ता तैयार हुआ।

किन्तु बंगालके इस पथके तैयार होनेसे पहले ही मन्द्राज तथा बम्बईका रेलपथ तैयार हुआ था।

भारतमें सबसे पहले सन् १८५३ ई०के अप्रिल महीनेमें ग्रेटइण्डिया पेनिनसुलार रेलपथ पर बम्बईसे टोले तक रेलगाड़ी चली थी। भारतके रेलपथोंमें ग्रेटइण्डियन पेनिनसुलार रेलपथमें अत्यन्त आश्चर्य निर्माणकौशल प्रदर्शित किया गया है। इस पथके बनानेमें उक्त रेलकम्पनीने जिस तरह अध्यवसाय और

कष्टसहिष्णुताका परिचय दिया था, यह अकथनीय है। इस कम्पनीने सन् १८४५ ई०में कायम हो कर पश्चिमघाट पर्वतके ऊपर और भीतर रेलपथ बनानेका संकल्प किया था और उसके लिये सन् १८४५ ई०के मई महीने में उसने बम्बई सरकारके पास आवेदन किया। इस वर्ष उक्त कंपनीके कार्याध्यक्ष मि० जान चपमान और इञ्जीनियर मि० क्लार्क बम्बई आ गये और बम्बईसे नागपुर तक रेलपथका खाका तैयार कर सरकारके पास भेजा। बम्बईके अर्थात बन्दरके समीप चार्चपिट नामक स्थानमें उसका स्टेशन कायम हुआ। शीघ्र ही क्लार्क पश्चिमघाट पर्वतकी पैमाइश करने लगे। यह पर्वत २००० फुट ऊंचा और बीच बीचमें गहरे गड्ढों और खाद्से परिपूर्ण था। पर्वत पर पथ बनानेमें प्रति १८ फुट में १ फुट ऊंचा करनेके सिवा और कोई उपाय न था। सन् १८५० ई०में जेम्स बर्कल भी इस पथके इञ्जीनियर नियुक्त हुए और सन् १८५२ ई०में उन्होंने इस पथका आदर्श तैयार कर लार्ड डलहौसी और कर्नल केनेडीको दिखा दिया। सन् १८५३ ई०की १०वीं अगस्तको यह आदर्श गवर्नर जनरल द्वारा अनुमोदित हुआ।

इसके बाद कप्तान क्रूफोर्ड असामान्य कौशलताके साथ पथ बनानेमें लग गये। बम्बईके उस समयके गवर्नर लार्ड एलफिन्सटन कम्पनीको खूब उत्साहित करने लगे।

बम्बईके बूड़ी बन्दरमें सीमान्त स्टेशन बना। बम्बईके चारों ओर समुद्रकी शाखाएं हैं। इसलिये बम्बईसे कल्याण तक रेलपथमें १११ और १६३ गज लंबे दो बड़े भयडक्ट बनाये गये थे। ये भयडक्ट ज्वारके जलसे ३० फुट ऊंचे थे। सन् १८५४ ई०की १६वीं अप्रेलको बंबईसे टाना और महीम तक रेल चली और सन् १८५४ ई०की पहली मईको कल्याण तक चलने लगी। कल्याणसे कसारा एवं कसारासे इगाटपुरी स्टेशन तक पहाड़ी रेलपथमें अपूर्व निर्माणकौशल दिखाया गया है। इस पथकी दो उपत्यकाके पुल १२४ और १४३ गज लंबे हैं। नीचेकी खाद १२७ और १३० फुट गहरी है। इसके ऊपरमें अपूर्व पत्थरोंकी गँथाई बनी हुई है। इसके सिवा ११७ का उभर्ट तथा ३० फुट गँथाई ४४ पत्थरके पुल है। इसके बाद रेलपथ पर्वतोंको काट कर सुरङ्ग बना कर आगे बढ़ा है। पहली सुरङ्ग १३० गज लम्बी है। इसके बाद ही एक भयडक्ट १४३ लम्बा और ८४ फुट ऊंचा तथा दूसरा ९६ गज लम्बा और ८७ फुट ऊंचा है। यहां ४६० गज लम्बी एक प्रकाण्ड सुरङ्ग है—इसके बाद ३ सुरङ्ग २३५, ११३ और १२३ गज लम्बी और ६० फुट ऊंचा एक भयडक्ट है। इसके बाद एहिग्राम नामक अपूर्व भयडक्ट है। यह २२० गज लंबा और उपत्यकासे २०० फुट ऊंचा है। इस बड़े पुलके बाद ४६० और ४१२ गज लम्बी दो लंबी सुरङ्ग और ७० और ५० गज लंबी दो सुरङ्ग बनी हैं। इसके बाद और भी ३ सुरङ्ग यथाक्रम २६१,१४० और ५८ गज लंबी हैं। इसके सिवा इस पहाड़ीपथमें और भी १५ पुल बने हैं। इसी तरह इस दुरुह विपद्संकुल दुर्गम सह्याद्रिशिखर पर रेलपथ बना है। इन सारे सुरङ्गोंके बनानेमें १२४१०००० घनफुट पत्थरकी कटाई हुई है। इस पहाड़ीपथकी लम्बाई केवल ६ मील है। सन् १८६१ ई०को २२वीं जनवरीको इस सह्याद्रिशिखरके सुरङ्गदार रास्तेसे पहले पहले बैलगाड़ी चली थी।

इसके बाद यह पथ भोशावाल जङ्कशन तक जा कर एक शाखा नागपुर और अन्य शाखा तासो नदीको पार कर प्रकाण्ड खानदेशके बीचसे विन्ध्याचलके नीचे नीचे विशीर्णा नर्मदा नदीके किनारेके जबलपुर तक गई है। यहां यह लाइन इष्ट इण्डिया कम्पनीकी रेल-लाइनमें मिल गई है। सन् १८५५ ई०में इष्ट इण्डिया कंपनीने वर्द्धमानसे राजमहल तक रेलपथ बनाना आरम्भ किया। पहले वर्द्धमानसे मयूराक्षी नदीके किनारे तक ४५ मील की पैमाइश हुई। मिष्टर टार्नबुल इस पथके पहले इञ्जीनियर थे। उन्होंने शीघ्र ही राजमहलसे इलाहाबाद और इलाहाबादसे दिल्ली तक रेलपथकी पैमाइश की। यह पथ ६७॥ मील है। मयूराक्षी पर पुल बना। इसमें ५० फुट लंबे २४ स्तम्भ हैं। अजय नदके पुलमें २० फुट लंबे ३२ स्तम्भ हैं। सन् १८५९ ई०को २०वीं जुलाईको लिष्टर टार्नबुल एञ्जिन पर चढ़ कर अजय और मयूराक्षीको पार कर सैंथिया उपस्थित हुए और ३री सितम्बरसे पसिञ्जर (यात्री) ट्रेनें चलने लगीं। इसके बाद

द्वारका नदी पर ६० फुट लंबे ७ स्तम्भोंका एक पुल बना। इसके बाद ब्राह्मणी नदी पर भी एक प्रकाण्ड पुल बना। अन्तमें सन् १८६०ई०के अक्तूबर महीनेमें लार्ड केनिङ्ग-के समयमें वर्द्धमानसे राजमहल तक गाड़ी चली। कर्नल बेकर और मिष्टर टर्नबुलको सोनेका एक एक पदक पुरस्कार मिला और दूसरे कर्मचारियोंने रौप्य-पदक पाया।

राजमहलसे यह पथ भागलपुरकी ओर अग्रसर हुआ। लार्ड केनिङ्गके समयमें सन् १८६१ ई०के नवम्बर महीनेमें इस पथ पर रेलगाड़ी चली। इसके बाद यह पथ मुङ्गेर होते हुए पटना तक गया। इस स्थानमें मुङ्गेरके निकट ६०० फुट लम्बी एक सुरङ्ग खोदनी पड़ी है। इस सुरङ्गके खोदनेमें बहुत समय लगा था। हर महीनेमें केवल चार फुटकी खुदाई होती थी। यहांसे क्यूल तक रेलपथमें गङ्गाके स्रोतवेगके निवारणार्थ कुल २१७०० स्तम्भ बने हैं। इस तरह पथ पटनेकी ओर अग्रसर हुआ। इस समय १८५७ ई०की १५वीं जूनको दानापुरका सिपाही विद्रोही हुआ। इस काण्डको "सन् १८५७ का गदर कहते हैं।" भारत-में इस बलवेकी आग चारों ओर फैल चुकी थी। कुँवर सिंह नामक एक आदमीने रेल-कम्पनीको विशेष क्षति पहुँचाई थी। उन्होंने कर्मनाशा नदी पर बने पुलका अधिक भाग तोड़ डाला था। इस काण्डसे रेलकम्पनी-का ४२०००० रुपयेका नुकसान हुआ था। इसके बाद ही प्रसिद्ध सोन नदका विशाल पुल बना। यह उस समय पृथ्वीमें अद्वितीय पुल गिना गया था। यह १५७७ गज अर्थात् प्रायः १ मील लम्बा है। १५० फुट लम्बे इसमें २८ स्तम्भ हैं। पहले रेल-कम्पनीको सोन नद पर पुल बांधनेका साहस नहीं होता था। पीछे मिष्टर टार्नबुल और बेकरने इस दुःसाहसिक काममें हाथ लगाया। सन् १८५६ ई०को इस पुलका कार्य आरम्भ हुआ। इस पुल-की नींवसे रेलपथ ४२ फुट ऊंचा है। यह पुल ४७३१ फुट लम्बा है।

अन्तमें सन् १८६३ ई०के फरवरी महीनेमें लार्ड एल-गिनने कलकत्तेसे काशी तक ६१० मीलके रैलपथमें रेल दौड़ानेकी आज्ञा दी। सैकड़ों बङ्गाली हिन्दू काशी, गया आदि तीर्थक्षेत्रोंका दर्शन करने लगे। उधरके लोगोंके लिये कलकत्ता आना सहज हो गया। सन् १८६६ ई०में १५ गाड़ियां अनवरत चलने लगीं। प्रति सप्ताहमें प्रति मील पर ६००) रुपयेका लाभ होने लगा।

इस तरह रेलपथ क्रमशः चारों ओर फैलने लगा। इसके बाद इलाहाबादका यमुना-पुल बना। यह ६५७ गज लम्बे और २०५ फुट चौड़े १४ स्तम्भों पर अवस्थित है। यहां गङ्गा-यमुनाका पवित्र सङ्गम है। इस पुलके एक एक लोहेकी कड़ियां २१६ फुट लम्बी हैं। सन् १८६५ ई०की १ली अगस्तको कलकत्तेसे रेलगाड़ी इस पुलसे आगरा तक दौड़ाई गई।

इसके बाद दिल्लीमें पवित्र-सलिला यमुना पर ८२० गज लम्बा अर्थात् आधा मील चौड़ा एक पुल बना। इसमें २०६ गज चौड़े १५ स्तम्भ हैं।

सन् १८६५ ई०में वर्द्धमानसे लखीसराय तक कार्ड लाइन या सीधा रेलपथ बनानेका प्रस्ताव हुआ। पहले-का बना रैलपथ ३२७ मील लंबा है, किन्तु यह नया कार्ड लाइनका पथ २६० मील लंबा हुआ। यह लाइन कई कोयलेकी खानोंके बीचसे गई है।

इसके बाद इष्ट इण्डिया कम्पनी चारों ओर शाखा-प्रशाखाके रूपमें रेलपथका फैलाव करने लगी है। इस तरह भारतमें रेलका जाल बिछ गया है।

ईस्टर्न बंगाल रेलवे।

लार्ड डलहौसीके ब्रह्मदेश पर अधिकार करनेके बाद वहां कलकत्तेसे रेल चलाई जानेकी चर्चा होने लगी। सन् १८५२-५३ ई०में इस लाइनका सूत्रपात हुआ। सन् १८५४ ई०में लेफ्टनेण्ट ग्रे डहेड आर, ई, कलकत्तेसे ढाके तथा वहांसे चट्टग्राम और वहांसे अकायाब तक पैमाइश करने लगे। किन्तु बड़ी बड़ी नदियोंके रहनेसे रेलपथ बनानेमें बड़े विघ्न उपस्थित हुए। अन्तमें कलकत्तेसे ढाके तक सीधी नहर खोदनेका प्रस्ताव भी हो गया। किन्तु मिष्टर पावन नामक एक इञ्जीनियरने कलकत्तेसे कुष्टिया तक रेलपथ तथा पद्मा पर पुलका आदर्श सरकारके पास भेजा। उस समय सन् १८५६ ई०की ३०वां जुलाईको लण्डनमें इष्टर्न बङ्गाल रेल-कम्पनी संग-ठित हुई। सन् १८५८ ई०की ३१वीं दिसम्बरसे कलकत्तेसे

कुष्टिया तक रेलपथके लिये ठीके दिये जाने लगे।

बौबाजार ष्ट्रीट जहां सरकुलर रोडसे मिल गया है, वहां ही सीमान्त स्टेशन बनने लगा। इस स्टेशनका क्षेत्रफल १४१ एकड़ था। इस स्टेशनके प्लाटफार्मकी लंबाई १००० फीट तथा चौड़ाई २७ फीट थी। इस समयका रेल-स्टेशन २०० लंबा और ४० फुट चौड़ा और ऊंचा है। इस अट्टालिकाका आदर्श प्राचीन निनेभ नगरीके आदर्श पर तैयार हुआ। इस रेलपथमें कुमार और इच्छामती नदियों पर दो सुन्दर पुल बने हैं। इनमें ८० फुट चौड़े १२ स्तम्भ हैं।

यह रेलपथ पहले कुष्टिया तक फैलाया गया और पद्माका पुल अधिक व्यय पड़नेकी सम्भावनासे रोक दिया गया। सन् १८६५ ई०में कुष्टियासे ग्वालन्दो तक रेलपथ बनना स्वीकृत हुआ। सन् १८६२ ई०में पहले पहल स्यालदहसे कुष्टिया तक गाड़ी चली थी। इसके बाद उत्तर-दार्जिलिङ्ग तक और दक्षिण मातला तथा डायमण्ड हारबर तक फैल गई। सन् १६०५ ई०में इसकी एक शाखा राणाघाटसे मुर्शिदाबाद तक खुली। इसके बाद अन्यान्य कई शाखायें और भी खुली हैं।

सन् १८५५ ई०के अप्रिल महीनेमें सरकारने बम्बई बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया कम्पनीको रेलपथ निर्माण करनेका हुक्म दिया। पहले बंबईसे सूरत तक १८३ मील पथमें गाड़ी चली। इसके बाद सूरतसे अहमदाबाद तक १४२ मील पथ प्रस्तुत हुआ। इस पथमें नर्मदा-ताप्ती परके बने दोनों पुल आश्चर्यजनक हैं।

इस वर्षमें सिन्धु और पञ्जाब रेलपथका कार्यारम्भ हो कर कराची बन्दरसे सिन्धुदेश तक १०८ मील पथ तैयार हुआ। इसके बाद मुलतानसे लाहोर तक और लाहोरसे अमृतसर तथा वहांसे दिल्ली तक पथ तैयार हुआ।

सन् १८४५ ई०में मन्द्राज रेल-कंपनी संगठित हुई थी। सन् १८४६ ई०के फरवरी महीनेमें पैमाइश होने लगी। मिष्टर सिम्स पहले इञ्जीनियर नियुक्त हुए। सन् १८४६ ई०की १७वीं अगस्तको यथार्थ प्रस्तावके अनुसार कार्य आरम्भ हुआ। मन्द्राजमें सीमान्त स्टेशन रायपुरम् नामक समुद्र तीरवर्त्ती स्थानमें बना। पहले मन्द्राजसे वेपुर तक ४०६ मीलका पथ प्रस्तुत हुआ। पीछे चारों ओर फैला।

ग्रेट सदर्न रेलवे कम्पनी पहले नागपट्टमसे त्रिचिनापल्ली तक ७८॥ मीलका पथ तय्यार हुआ।

इस समय भारतवर्षमें जितनी रेलें बन चुकी हैं उनमें बङ्गाल नागपुर कम्पनी और आसाम बङ्गाल कम्पनी विशेष विख्यात है। नागपुर कम्पनीने रेलपथ तय्यार कर बङ्गालको उड़ीसाके साथ जोड़ दिया है। इसलिये जगन्नाथधामका पवित्र क्षेत्र पुरीधाममें बङ्गालियों तथा अन्यान्य देशवासियोंके आने जानेमें विशेष सुविधा हो गई है। इस पथमें रूपनारायण, महानदी और दामोदर इन तीन नदियों पर विख्यात पुल बने हैं। इसका विस्तृत विवरण यहां देना असम्भव है। खड्गपुरसे नागपुर तक पथ अत्यन्त पहाड़ जङ्गलमय है। इसलिये बहुतेरे जङ्गलों और पत्थरोंको काट कर फेंक देना पड़ा है। यह रेलपथ मन्द्राज रेल और ग्रेट इण्डियन पेनिनसुलार तथा इष्ट इण्डिया रेलपथसे मिला हुआ है। इसका सीमान्त स्टेशन हवड़ेमें ही है। इस समय इष्ट इण्डिया और बङ्गाल नागपुर रेलकम्पनीने हवड़ेमें एक सीमान्त स्टेशन बनाया है।

आसाम-बङ्गाल रेलकम्पनीने चटगांवसे गौहाटी तक बड़ी कठिनतासे पथ तय्यार कर सन १८६५ ई०में पहले पहल रेल खोली। पहाड़ी रेलपथोंमें यह रेलपथ विशेष उल्लेखनीय है। इस पथमें ८।६ सुरङ्ग तय्यार हुई हैं। इनमें माइबुर नामक सुरङ्ग बहुत प्रसिद्ध है। यह ४०० गजसे अधिक लम्बी है। यह पथ कितने ही सुकठिन दुर्गम पहाड़ोंसे हो कर निकला है। वर्षातमें यह पथ विपज्जनक हो उठता है। जलस्रोतोंसे रेलपथ बह जाता है।

सन् १६०४ ई०में कालका नामक सीमान्त स्टेशनसे गवर्नर जनरलके ग्रीष्म आवास भवन तथा राजधानी सिमला तक एक पहाड़ी रेलपथ तय्यार हुआ है। इस पथमें भी अति अद्भुत निर्माणकौशल दिखाया गया है। किन्तु यह पथ आज भी विपद्से मुक्त नहीं हुआ है। इस पथसे गाड़ी दार्जिलिङ्ग हिमालय रेलकी तरह सर्पकी चालसे पहाड़ पर चढ़ती है। पहाड़ पर चढ़नेके

समय दार्जिलिङ्ग पथकी तरह आगे पीछे दो इञ्जिन जोड़े जाते हैं। दार्जिलिङ्ग रेलपथकी अद्‌भुत घटना दर्शनीय है। इस पथके बनानेमें बहुत धन खर्च हुआ था। इस पथका निर्माण चातुर्य्य भी बड़ा ही विस्मयजनक है।

इस समयके बने पुलोंमें भागीरथीके किनारेके हुगली इष्ट इण्डिया रेलवे कम्पनीका बनाया जुबलीपुल सबसे अद्‌भुत है। यहां गङ्गाका पाट एक हजार गजसे कम नहीं है। किन्तु गङ्गाके बीचमें केवल दो स्तम्भों पर सारे पुलका भार है। इस पुलमें लोहेकी कड़ी जितनी बड़ी व्यवहृत हुई है, उतनी बड़ी भारतके किसी पुलमें व्यवहृत नहीं हुई है। इसमें स्पेन ४८० गज लम्बा है। इसी पुलसे इष्ट इण्डियन और इष्टर्न बङ्गाल रेलपथ नैहाटीमें आपसमें मिल गये हैं। इञ्जीनियर मिष्टर लेसली इस पुलके रचयिता हैं।

भारतीय रेलपथोंमें सरकारी रेल चलनेसे सन् १८९९ ई० तक ५७८११४७) रु० राजस्वकी क्षति हुई थी। सन् १९०१ ई०से रेलपथसे सरकारको लाभ होने लगा। सन् १९०० ई०में सरकारने ८७२३९) रु० लाभ किया। सन् १९०१ ई०में ११५४११९) रुपया लाभ हुआ। सन् १९०२ ई०में ३१वीं दिसम्बर तक भारतमें २५४२२९ मील रेलपथ था। इसके बाद दो वर्षोंमें प्रायः ४ हजार मील पथ बढ़ गया।

निम्नलिखित फिहरिश्तसे यह स्पष्ट मालूम हो जायेगा, कि रेलपथके खुलनेकी तारीख, पथकी लम्बाई और कम्पनीका मूलधन कितना था। (१९०४ ई०)

रेलपथका नाम	तारीख	पथकी लम्बाई	मूलधन-पाउण्ड
१ बम्बई बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया	१८६०	११०५	१४५७८५४२
२ मद्रासरेलवे	१८५६	१३९४	१९८०७३३२
३ आसाम बङ्गाल	१९०५	६३५	१०४१४९४६
४ बङ्गाल-नार्थ वेष्टर्न	१८७५	१२८०	९९७३१३०
५ बङ्गालसेण्ट्रल	१८८२	१२५	१२९५४०७
६ बङ्गाल नागपुर	१८८६	१८०९	२११९२३२६
७ ब्रह्म	१८७७	११७७	११९९२२४०
८ दिल्ली अम्बाला-कालका	१८९१	१६२	२९४५१४६
९ इष्ट इण्डिया	१८५४	२०३४	४९४४३४९२
१० ग्रेट इण्डियनपेनि०	१८५३	१६९६	४२९८७२०४
११ इण्डियन मिडलेण्ड	१८९६	१३३६	१३४२२८६०८
१२ राजपूताना-मालवा	१८७२	१६४३	१५४३५४६२
१३ रुहेलखण्ड कुमायूं	१८८४	३२४	१३२३३६९
१४ साउथ इण्डियन	१८६१	१११०	८३६२१९०
१५ सदर्न मरहट्टा	१८८४	१५९२	१२८२५८८७
वैदेशिक और नेटिभ ष्टेट रेलकम्पनी द्वारा चालित।			
१६ निजाम ष्टेट	१८७५	७४३	६७००४८७
१७ वेष्ट इण्डियापुर्तगीज	१८८७	७४	१६३४२०२
राजकीय रेलवे।			
१८ इष्टर्न बङ्गाल	१८६२	११८६	१४७५९६७२
१९ नार्थवेष्टर्न	१८६१	३७४३	५६५३२१७०
२० अवध रुहेलखण्ड	१८६२	११३४	१४२५२९७३
देशीय ष्टेट रेलवे।			
२१ भावनगर गण्डाल	१८८०	४५५	२२५६४७०
२२ योधपुर बीकानेर	१८८२	७३६	२०५००२८

सन् १९२२ ई० तक भारतवर्षमें ३९००० मीलसे अधिक रेलपथ फैला हुआ था। इसमें ५५० करोड़ रुपयेसे अधिक मूलधन खर्च हुआ था। नार्थ वेष्टर्न ष्टेट रेलवे लाइन भारतवर्षमें सबसे बड़ी है। इसकी लम्बाई ५००० मीलसे अधिक होगी। उसके बाद बम्बई, बड़ौदा और सेण्ट्रल इंडिया रेलवे प्रायः ४००० मील, ग्रेट इंडियन पेनिनसुलार रेलवे ३००० मीलसे अधिक, मन्द्राज और सदर्न मरहठा रेलवे ३००० मीलसे अधिक, इष्ट इंडियन रेलवे २७०० मील और बंगाल नागपुर रेलवे २७०० मील विस्तृत है। इसके अलावा रेलपथ दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है। भारतवर्षके रेलपथकी सम्भवतः फिहरिश्त नीचे दी जाती है—

इष्ट इंडियन रेलवे।

फिलहाल यह गवर्मेंटकी खास हो गई है। इसके अलावा अवध रोहिलखण्ड रेलवे भी ब्रिटिश गवर्मेंटके अधीन है।

मेन लाइन—हवड़ा-दिल्ली—हवड़ासे बेन्डेल, बर्द्धमान,

आसनसोल, मोकामा, पटना जंकशन, मुगलसराय, इलाहाबाद, कानपुर, टुंडला, गाजियाबाद होती हुई दिल्ली तक।

मुगलसराय-सहारनपुर (O & R section)—मुगलसरायसे बनारस, प्रतापगढ़, लखनऊ, शाहजहानपुर, मुरादाबाद, लश्कर होती हुई सहारनपुर तक।

अन्यान्य प्रधान लाइन—बैंडेल-बरहरवा लूप—बैंडेलसे कटवा, अजीमगंज हो कर बरहरवा।

ग्रैंड कार्ड—सीतारामपुरसे गया हो कर मुगलसराय तक।

हवड़ा बर्द्धमान न्यु कार्ड—बेलुड़से शक्तिगढ़ तक एक नया रैलपथ निकाला गया है। यह बैंडेल हो कर नहीं जाता।

फैजाबाद लूप—मुगलसरायसे फैजाबाद हो कर लखनऊ।

साहेबगंज लूप—खाना जंकशनसे बरहरवा, भागलपुर, जमालपुर होती हुई क्यूल जंकशन तक।

ब्रांच लाइन—तारकेश्वर-शाखा—सेवराफुलीसे तारकेश्वर तक।

अजीमगंज-शाखा—नलहाटीसे अजीमगंज तक।

नैहाटी-शाखा—नैहाटीसे बैंडेल।

साउथ विहार शाखा—क्यूलसे गया।

डालटनगंज-शाखा—सोन इष्ट बैंकसे डालटनगंज।

पटना गया शाखा—पटना जंकशनसे गया।

अंडाल सैंथिया शाखा—अंडालसे सैंथिया।

अंडाल लूप—अंडालसे गौराङ्गडी।

बड़बानी सीतारामपुर लूप—हवड़ा जङ्कशनसे बड़बानी हो कर सीतारामपुर।

कादरस-शाखा—धनबादसे कादरसगढ़।

धनबाद-भरिया शाखा—धनबादसे पाथरडिही।

बरकाकाना शाखा—गोमोसे बरकाकाना।

गिरिडीह शाखा—मधूपुरसे गिरिडीह।

देवघर शाखा—जशीडीहसे देवघर।

राजमहल शाखा—तिनपहाड़से राजमहल।

भागलपुर मन्दारहिल शाखा—भागलपुरसे मन्दारहिल।

मुंगेर शाखा—जमालपुरसे मुंगेर।

मोकामा घाट शाखा—मोकामा घाटसे मोकामा जङ्कशन।

दीघाघाट शाखा—पटना जङ्कशनसे कुरजीघाट।

तारीघाट शाखा—दिलदारनगरसे तारीघाट।

सिकोहाबाद-फर्रुखाबाद शाखा—सिकोहाबादसे फर्रुखाबाद।

देहरादुन शाखा—लश्कर जङ्कशनसे देहरादुन।

बरेली-अलीगढ़ शाखा—शाखा बरेलीसे अलीगढ़।

लखनऊ कानपुर शाखा—लखनऊसे कानपुर।

बहरामघाट-बाराबंकी शाखा—बहरामघाटसे बाराबंकी।

मुरादाबाद-चांदौसी शाखा—मुरादाबादसे चांदौसी।

मुरादाबाद चांदपुर सियाउ शाखा—मुरादाबादसे चांदपुर सियाउ।

मुरादाबाद दिल्ली शाखा—दिल्लीसे मुरादाबाद।

मुरादाबाद संबल हातिमसराय शाखा—मुरादाबादसे संबल हातिमसराय।

नजीबाबाद-कटघोआरा शाखा—नजीबाबादसे कटघोआरा।

बालामऊ-अवहदपुर शाखा—बालामऊसे माधवगंज हो कर अवहदपुर।

शाहजहानपुर-सीतापुर शाखा—शाहजहानपुरसे सीतापुर।

अकबरपुर-टंडा शाखा—अकबरपुरसे टंडा।

आगरा शाखा—टुंडलासे आगरा फैंट।

हाथरस शाखा—हाथरस किलासे हाथरस जङ्कशन।

खुरजा-हापुर-मेरठ शाखा—खुरजासे हापुर हो कर मेरठ।

इलाहाबाद जौनपुर शाखा—इलाहाबादसे जौनपुर।

इलाहाबाद-फैजाबाद शाखा—इलाहाबादसे प्रतापगढ़ हो कर फैजाबाद।

रायबरेली कानपुर शाखा—रायबरेलीसे डालमऊ हो कर कानपुर।

उनछहार डालमऊ शाखा—उनछहारसे डालमऊ।

रुहेलखंड-कुमायूं रेलवे।

काटगुदामसे बरेली, बरेलीसे काजगंज जंकशन, लखनऊसे काजगंज जङ्कशन।

लालकुआसे काशीपुर होती हुई रामनगर।

मुरादाबादसे काशीपुर।

पिलीभीतसे टनकपुर।

पिलीभीतसे शाहजहांपुर।

आरा-ससेराम-लाइट रेलवे—आरासे ससेराम।

बख्तियारपुर-बिहार-लाइट रेलवे—बख्तियारपुर जङ्कशन से बिहार-शरीफ़ होती हुई राजगीर-कुण्ड।

देहरी-रोटस रेलवे—देहरीसे रोटस।

दिल्ली-शाहदारा सहरानपुर लाइट रेलवे—दिल्लीसे सहरानपुर।

फतवा-इस्लामपुर रेलवे—फतवासे इस्लामपुर।

बङ्गाल नार्थ वेष्टर्न रेलवे।

१ बुरवालसे लखनऊ, कानपुर हो कर अनवारगंज। २ लखनऊसे गोरखपुर, छपरा हो कर कटिहार। ३ मोकामाघाटसे मुजफ्फरपुर हो कर सोनपुर। ४ भाटनी से बनारस हो कर इलाहाबाद। ५ छपरासे गाजीपुर हो कर बनारस। ६ बलियासे साहगंज। ७ माधोसिंह जंकशनसे मिरजापुर होती हुई चिल्ह। ८ भाटनीसे बरहज बाजार। ९ समस्तीपुरसे भवटियाहो होती हुई रघुपुर। १० नरकतियागंजसे रकसौल होती हुई दरभंगा। ११ मुजफ्फरपुरसे नरकतियागंज।

इष्टर्न बङ्गाल रेलवे।

कलकत्तेसे राणाघाट, पुड़ादह होती हुई ग्वालन्द, राजबाड़ीसे फरीदपुर, नारायणगञ्जसे ढाका, टांगी, मैमनसिंह, बहादुराबाद होती हुई तिस्तामुखघाट, सिंगआमीसे जगन्नाथगञ्ज, तिस्तामुखघाटसे कटिहार, कलकत्तासे सिलिगुड़ी, ईश्वरडोहसे सिराजगञ्ज, भेरामेरासे रायता, संताहाटसे बगुड़ा, बोनारपाड़ा, कौनिया, गिटालदह, गोलकगंज हो कर आमिनगंज (आमिनगांवमें जहाजसे ब्रह्मपुत्र पार करना होता है।) पाण्डुसे गौहाटी, गोलकगंजसे धुबड़ी, बोनारपाड़ासे तिस्तामुखघाट, कलकत्तेसे लालगोलाघाट होती हुई कटिहार, कटिहारसे जोगबानी, कटिहारसे मनिहारीघाट, कटिहारसे बरसोई, दिनाजपुर, पार्वतीपुर, कौनिया हो कर लालमनीर हाट, बरसैसे किशनगंज, रांगियासे टांगरा, लालमनीर हाटसे कोचबिहार हो कर दलसिंहपाड़ा, लालमनीर हाटसे जैन्ती, तिस्तासे कुड़ीग्राम, कलकत्तासे बनगां, यशोहर होती हुई खुलना, खुलनासे बागेरहाट, नवद्वीपसे शान्तिपुर, राणाघाटसे शान्तिपुर, बनगांसे राणाघाट, कलकत्तासे डायमण्ड हारबर, कलकत्तासे कैनिङ्ग, कलकत्तासे बजबज।

यशोर-झिनाईदह रेलवे—यशोरसे कोटचांदपुर होती हुई झिनाईदह तक।

कालीघाट फलता लाइट रेलवे—माजेरहाटसे फलता।

बंगाल डुआर्स रेलवे—लालमनीर हाटसे माल जंकशन होती हुई मदारीघाट, माल जङ्कशनसे बागराकोट और मेतेल्ली, लाटागुड़ीसे रामसाय।

बारासत बसीरहाट लाइट रेलवे—कलकत्ता (श्यामबाजार) से बसीरहाट हो कर हासनाबाद, बेलियाघाटा ब्रिजसे बारासत।

दार्जिलिंग हिमालयन रेलवे—सिलीगुड़ीसे दार्जिलिङ्ग, सिलीगुड़ीसे किशानगञ्ज, सिलीगुड़ीसे कालिङ्गपंग।

बङ्गाल प्रोभेन्सियल रेलवे—मगरासे तारकेश्वर।

वर्द्धमान काटोआ-अहमदपुर लाइट रेलवे—वर्द्धमानसे काटोआ हो कर अहमदपुर।

हवड़ा-अमता-लाइट-रेलवे—हवड़ासे अमता; हवड़ासे चाँपाडांगा।

हवड़ा-सियाखाला-लाइट रेलवे—हवड़ासे सियाखाला; चण्डीतलासे जनाय।

इसके अतिरिक्त इण्डिया जेनरल नेभिगेशन और रेलवे-कम्पनी और रीभर्सष्टीम नेभिगेशन कम्पनीके अधीन बहुत-सी छोटी छोटी लाइन हैं। उनमेंसे खुलनासे जो लाइन मदारीपुर तक गई है वही उल्लेखनीय है।

आसाम-बङ्गाल-रेलवे।

चट्टग्रामसे लकसाम, कोमिल्ला, बदरपुर, लामदीन हो कर तीनसुकिया, लामदीनसे गौहाटी, लकसामसे चांदपुर, लकसामसे नोआखाली, बदरपुरसे सिलचर,

लामडीमसे गौहाटी, छापारमुखसे सिलघाट शहर, मारियानीसे नागिनीमारा, बदरपुरसे लालगढ़, कलौरासे सिलेट, टांगीसे भैरवबाजार होती हुई मैमनसिंह, नेत्रकोनासे मैमनसिंह, जारिया भंभेलसे श्यामगञ्ज जङ्कशन, अखौरासे आसूगञ्ज, नहरकटियासे तिनसुकिया; सिमालूगुड़ी जङ्कशनसे सीपन।

दिब्रुसदिया रेलवे।

अमोलापतिसे लेडो। माकुम जङ्कशनसे साइखुआ घाट।

जोरहाट-प्रोविन्सियल रेलवे—मरियानीसे कोकिल मुख; तितावरसे जोरहाट।

तेजपुर-बालीपाड़ा रेलवे—तेजपुरसे बालीपाड़ा।

बङ्गाल-नागपुर-रेलवे।

हवड़ासे नागपुर होती हुई बम्बई। हवड़ासे वालटेयर होती हुई मन्द्राज। हवड़ासे पुरी। हवड़ासे बाराखाना होती हुई रांची। हवड़ासे आदरा और महुश होती हुई गोमो। चक्रधरपुरसे आसनसोल।

हवड़ासे खड़गपुर होती हुई मेदिनीपुर। शालीमारसे सातरागाछी। नागपुरसे कमटी होती हुई रामते आमदासे गुआ। भिजियानाग्रामसे पार्वतीपुरम्, झारसुगुदासे सम्बलपुर, बिलासपुरसे कटनी, महुदासे चन्द्रपुरा होती हुई दानिया, गण्डियासे जब्बलपुर, गण्डियासे बालाघाट होती हुई कटनी, गण्डियासे चन्दाफोर, नागपुरसे नागभीर, नैनपुरसे मण्डुलाफोर्ट, नैनपुरसे छिन्दवाड़ा, इटवारीसे छिन्दवाड़ा, इटवारीसे खप्पा, तातानगरसे बादामपहाड़, पुरुलियासे रांची होती हुई लोहरडंगा, रायपुरसे धमतारी और राजिम, वालटियरसे बिजागापट्टम, बब्बोलीसे सालूर, कटकसे तालचेर, अन्नुपुरसे बिजुरी।

परलाकीमेदी लाइट रेलवे—नौपादासे परलाकीमेदी।

मोरभञ्ज-स्टेट-लाइट-रेलवे—रूपसासे बारीपादा होती हुई तालबन।

बांकुड़ा-दामोदर-रीभर रेलवे—बांकुड़ासे रायनगर।

नार्थ वेष्टर्न रेलवे।

दिल्लीसे पेशावर; लाहोरसे करांची; दिल्लीसे भटिण्डा होती हुई लाहोर, दिल्लीसे अम्बाला होती हुई कालका; अम्बालासे सरहिन्दरूपर; कालकासे सिमला सेकशन; गाजियाबादसे दिल्ली; झिन्दसे पानीपत; पानीपतसे रोहतक; नरवानासे कुरुक्षेत्र; राजपूतानेसे भटिण्डा होती हुई समस्ता; बहवलनगरसे फकीरवाली; लुधियानासे धूरी, भाकाल होती हुई हिस्सार; मैकलियडगंज रोडसे फिरोजपुर हो कर लुधियाना; लुधियानासे लोहियानखास; फिरोजपुर कैनटोनमेण्टसे जलन्धर सीटी; जलन्धर सीटीसे होशियारपुर; जलन्धर सीटीसे नाकोदर; जलन्धर सीटीसे राहोन जयजन दोआब; जलन्धर सीटीसे मुकेरियन; अमृतसरसे कसूर, पाकपत्तन होती हुई समस्ता; लाहोरसे अमृतसर होती हुई पठानकोट; पठानकोटसे जोगिन्द्र नगर; बतालासे कुआदिन; अमृतसरसे डेरा बाबानानक; नरोवाल होती हुई श्यालकोट; लाहोरसे चिचोकी, मालियन होती हुई सोरकोट रोड; लाहोरसे नरोवाल; चक अमरूसे नरोवाल; लायलपुरसे जारनवाला; चिनिओटसे लायलपुर; लाहोरसे सहादरा होती हुई संगला हिल; मालकवालसे सोरकोट रोड; सरगोधासे छिनोखीनी; शाहपुर सीटीसे सरगोधा, वाजिराबादसे लायलपुर होती हुई थानेवाल; जम्बूसे श्यालकोट होती हुई वाजिराबाद; भाउनसे मान्द्रा; लालामूसासे कुन्दियान होती हुई मूलतान; तक्षशिला जङ्कशनसे हवेलियन; कैम्बेलपुरसे कुंदियन, बन्नूसे दाऊदखेल; देरा इस्माइल खाँसे टोङ्क सीटी, रावलपिण्डीसे कोहट होती हुई थल; नौसेरासे मरदान होती हुई दरगाई; खैबरसे लंडिकोटल; खानपुरसे चाचरान; कोतरीसे हैदराबाद होती हुई बादीन; रोहरीसे रूक होती हुई कोतरी; जाकोबाबादसे काश्मोर, होदापुरसे सिरलाशहदादकोट होती हुई लरकाना, रूकसे कोयेटा होती हुई चमन, कोयेटासे हरनाय होती हुई सोबी; कोयेटासे दलबन्दिन होती हुई डजदप; सामाईसे हिन्दूबाग होती हुई किला सैफुला।

बम्बई-बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे।

बम्बईसे दिल्ली; बम्बईसे बड़ौदा होती हुई विरामगम; सूरतसे अमलनेर; अनन्दसे काम्बे; अनन्दसे गोदरा; नगदासे उज्जयिनी, बोरियावीसे भादतल, विरामगामसे

बरागोधा ; पिपलोदसे देवगढ़बड़िया ; राजपिपलासे अङ्कलेश्वर (राजपिपला स्टेट रेलवे) ; ओचसे जम्बूसर ; चम्पानेरसे सिविया राजपुर होती हुई पानीमाइन ; नदीयादसे कपाद्भंज ; गोधरासे लूनाबादा ; अहमदाबादसे दिल्ली; पालनपुरसे देसा ; फुलेरासे कुचामनरोड ; गरहीहसारूसे फरुखनगर ; दिल्लीसे गुरगांव ; अहमदाबादसे खेड़ब्रह्मा; अहमदाबादसे ढोलका होती हुई धन्दुका; कलोलसे वीजापुर ; मेसानासे वाघवन ; वाघवनसे ध्राङ्गद्रा होती हुई हलवाद ; मेसानासे तंगाहिल ; मेसानासे पाटन होती हुई ककोसीमेत्ताना ; मनुन्द रोडसे चनसमा होती हुई हरिज ; कलोलसे मनुन्द ; अजमेरसे खन्दवा ; फतेहाबादसे चन्द्रावतीगंज होती हुई उज्जैन ; इन्दोरसे मऊ ; अजमेरसे नसीराबाद ; रेवाड़ीसे फुलेरा ; रेवाड़ीसे फजिलका ; सिवाईसे माधोपुर ; जयपुर होती हुई झुनझुनु (जयपुर स्टेट रेलवे) आगराफोर्टसे कानपुर ; आगराफोर्टसे बांदीकुइ ; मथुरासे वृन्दावन ; ब्रह्म तंसे मन्धाना ; कल्याणपुरसे ग्वालटोली ।

पोरबन्दर-स्टेट रेलवे—जमजोधपुरसे पोरबन्दर ।

उदयपुर चित्तोरगढ़ रेलवे—चित्तोरगढ़से नाथद्वार होती हुई उदयपुर ।

जामनगर और द्वारिका रेलवे—राजकोटसे जामनगर और द्वारिका होती हुई ओखा बन्दर ।

गोण्डाल रेलवे—धशासे जमजोधपुर ; खिजादियासे धारी ; जटलसरसे राजकोट ।

कच्छ-स्टेट रेलवे—कुन्दलासे अञ्जर, अञ्जरसे तूना ; अञ्जरसे भूज ।

ढोलपुर-बारी-लाइट रेलवे—ढोलपुरसे बारी होती हुई तांतपुर ।

जूनागढ़ स्टेट रेलवे—जेटलसरसे वेरावल होती हुई प्राचीरोड ; जूनागढ़से विश्वद्वार ; जूनागढ़से सरादिया ।

मोरभी रेलवे—वाधवानसे राजकोट ; बंकानेरसे मोरभी ।

अगधारी लाइट-रेलवे—अगधारी जङ्कशनसे अगधारी टाउन ।

बर्सी-लाइट रेलवे—कुर्दुवाड़ीसे कन्धारपुर ; कुर्दुवाड़ीसे लटूर, मिरजासे कन्धारपुर ।

भवनगर-स्टेट-रेलवे ।

भवनगरसे वादान ; सिहोरसे पलिताना ; ढोलासे धाशा ; धाशासे महुआ, बोतादसे धण्डुका, बोतादसे जसदान ; भवनगरसे तलेजा सीटी (ट्रामवे ट्रेन), निंगलासे गधारा (ट्रामवे ट्रेन) ; रजूलासे पोर्ट अलबर्ट विक्टर, सैलासे जोरावर नगर (ट्रामवे ट्रेन) ।

गायकवाड़-बड़ौदा स्टेट रेलवे ।

जम्बूसरसे दभोई, दभोईसे चांदोद, दभोईसे तिम्बा रोड, मियांगांवसे छोटा उदयपुर, तंखालासे छुछपुरा, मियांगांवसे मालसर, मियांगांवसे कोरल, बिलिमोरासे कालाम्बा, कोशम्भासे जॉकबब, पेटलेडसे भासो, पेटलेडसे भादरान ।

बीकानेर स्टेट-रेलवे ।

भातीण्डासे चिलो जङ्कशन, बीकानेरसे कोलायतजी, बीकानेरसे रतनगढ़, रतनगढ़से सरदारशहर, हिस्सारसे सुजानगढ़, सूरतगढ़से हनुमानगढ़, अनूपगढ़से सूरतगढ़, हनुमानगढ़से तहसीलभादरा ।

योधपुर-रेलवे ।

हैदराबादसे लूनी जङ्कशन, मीरपुरखाशसे खादरो, मीरपुरखाशसे झद्दो, मारवाड़ जङ्कशनसे मैरता रोड, चिलो जङ्कशन होती हुई कुचामनरोड, बोलोत्तरासे पांचपतरा, जोधपुरसे, फलोदी, मैरता रोडसे मैरता सीटी, पीपररोडसे बिलारा, देगानासे सुजानगढ होती हुई लडनून, मकरानासे पर्वतशर सीटी ।

ग्वालियर-लाइट रेलवे ।

ग्वालियरसे शिवपुरी, ग्वालियरसे भिण्ड, ग्वालियरसे सेवपुर-कलान, ग्वालियरसे जीवाजीगंज, मरार कण्टोन्मेण्टसे कम्पू कोठी ।

ग्रेट-इण्डियन पेनिनसुला रेलवे ।

बम्बईसे आगरा होती हुई दिल्ली, बम्बईसे पूना होती हुई रायचर, कल्याणसे करजत, तदालीसे घुगुस, मथेरनसे नेराल (मथेरन स्टीम ट्रामवे), धोंदसे बरामती, करजतसे खोपोली, धोंदसे मनमद, चालीसगांवसे धूलिया, भौजबलसे अमलनेर, भौजबलसे नागपुर, जलमबसे खम-

गांव, बदनेरासे अमरौती, इटारसीसे इलाहाबाद, गदरवाड़से गोतितोरिया, इटारसीसे नागपुर, आमलासे परसिया, वर्द्धासे बलहरशाह, मजरोसे राजपुर, मुरताजपुरसे यीतमल, मुरताजपुरसे इलिचपुर, पुलगांवसे अरवो सेकशन, पचोरासे जमनेर, भूपालसे उज्जैन, बिनासे कोटा, मानिकपुरसे झांसी, झांसीसे खिरगांव, झांसीसे लखनऊ, येतसे कूंच, कानपुरसे बांदा, आगरा कैनटोम्मेण्टसे आगरा सीटी, आगरासे बाह।

मान्द्राज एण्ड सदर्न-मराठा-रेलवे।

मान्द्राजसे वालतेर; समलकोटसे कोकोनद, गुन्टूरसे तेनाली होती हुई रिपटले, मान्द्राजसे रायचूर, मन्द्राजसे बङ्गलोर सीटी, बौरिङ्गपेटसे मरिकुप्पम, मन्द्राजसे बीच विल्लीवक्कमसे बीच, मन्द्राजसे अवाडी, तिमेलोर होती हुई आरकोनम, पूनासे बङ्गलोरसीटी, मीराजसे कोल्हापुर, मीराजसे संगली, बङ्गलोरसीटीसे गुनटाकल, लोण्डासे मोरमूगांव, बेल्लरीसे रयद्रुक, होसपेटसे कत्तूर, होसपेटसे समेहल्ली, गुन्टकलसे हबली, गुन्टाकलसे वेजवारा होती हुई मछलीपत्तन, गुडिवाडासे भीमावरम, नीदादाभलूसे नर्सपुरम, काठपदीसे गुडर, गादाकसे होतगी, पकालासे धर्मवरम, हबलीसे धारवार।

साउथ इण्डियन रेलवे।

मन्द्राजसे पोदानूर होती हुई मेत्तुपलाईयम्, मेत्तुपलाईयमसे उटकामण्ड (नीलगिरि रेलवे), मङ्गलोरसे पोदानूर, उलावाकोट्टसे पालघाट, सलेमसे सलेमटाउन, पोदानूरसे दिन्दीगूल, पोदानूरसे उलावाकोट्ट, पोदानूरसे कोयम्बतूर, सलेमसे मेतुरदम, तिरुपत्तूरसे आलारपेट, तिरुपत्तूरसे कृष्णगिरि, मुराप्पुरसे होसुर, सोरानूरसे परनाकुलम्, मन्द्राजसे रामेश्वर होती हुई धनुष्कोठि, बोचसे चिङ्गलपेट, चिङ्गलपेटसे अरकोनम्, मदुरासे वविन्याकनुर, भिलुपुरम्से काठपदी, भिलुपुरम्से पोण्डिचेरी, भिलुपुरम्से त्रिचिनापल्ली, पदुकोट्टासे त्रिचिनापल्ली, मायावरमसे आरनटंगी, मायावरमसे तैङ्कोश्वर, पेड़ालमसे कारिकल, तंजोरसे नागोर, निदामङ्गलम्से मन्नारगुदी, त्रिचिनापल्लीसे इरोद, मादुरासे त्युतीकोरिन, तिरुतिरियापुण्डीसे अगस्तोअम्पली, मनियाचीसे कोयलन होती हुई तिवम्दुम्, तिनीमेलोसे तिरुचेण्डूर, कुड्डालूरसे वृद्धाचलम्, विरुधूनगरसे सेनकोटा, सोरानूरसे निलाम्बर।

महिसुर रेलवे।

महिसुरसे बङ्गलोर सीटी, बिरूड़से सिमोगा, चिकजाजुरसे चितलद्रूग, महिसुरसे चमराजनगर, महिसुरसे आरसीकेरी, बङ्गलोरसे बौरिङ्गपेट, नरसिंहराजापुरासे तरिकेरि। (ट्रामवे ट्रेन)।

निजाम गवर्मेण्ट-स्टेट रेलवे।

वादीसे बेजवाड़ा, हैदराबादसे मनमद, दोरनाकलसे कोठागुदाम, दोरनाकलसे सिगारेनी (मिनरल ब्रांञ्च) काजीपेट जंकशनसे बलहरसा, पूर्णासे हिङ्गोली, सिकन्दराबादसे द्रोनाचेलम्।

कुलशेखरपतनम् लाइट रेलवे।

तिस्सिनविल्लायसे तिरुचेन्दूर।

सिंहल गवर्मेण्ट रेलवे।

कलम्बोसे मतारा, कलम्बोफोर्टसे बदुल्ला, कलम्बोफोर्टसे पुत्तालम्, कलम्बोसे तलैमन्नर होती हुई मेदावचियसे कङ्केसनतुराई, माहोसे केकिरावा, माहो जंकशनसे गलवा होती हुई वेट्टीकलवा, काण्डीसे मतेल, कलम्बोफोर्टसे ओपानेक, अविस्सावेल्लासे यतियनटोला, नानुवासे रंगला।

ब्रह्म रेलवे।

रङ्गूनसे मण्डालय होती हुई मैतकैना, पेगूसे मौलमेन, मौलमेनसे यी, पैनमनासे तोङ्गद्विङ्गी, तोङ्गद्विङ्गीसे नाथमौक, रंगूनसे प्रोम, वेसिनसे हेन्जादा होती हुई लेतपदन, हेन्जादासे कियाङ्गीन, थाजीसे मिङ्गयान, मण्डालयसे लासियो, ताजीसे अङ्गवान् होती हुई हेहो, पेगूसे कायान मण्डालयसे मदाया, सगाइङ्गसे ययू, नाबा जंकशनसे काथा, इनसिनसे वानेत् चाऊङ्ग, रंगूनसे थिनगंगयुन होती हुई कैण्टोम्मेण्ट, रंगूनसे इनसिन।

नेपाल गवर्मेण्ट रेलवे।

अमलेकगञ्जसे रक्सौल।

रेलपथकी उन्नतिके लिये आज कल विशेष प्रयत्न किया जा रहा है। नया नया आविष्कार हो रहा है। फिलहाल विद्युच्चालित रेलगाड़ीकी बड़ी ही उन्नति हुई

है। पृथ्वीके नाना स्थानोंमें अभी वैद्युतिक मोटर एञ्जिनसे रेलगाड़ी चलने लगी है। आज तक वैद्युतिक एञ्जिन चलानेमें जितने नियम निकाले गये हैं उनमें डिसेल साहबकी पद्धति ही। (Deisel's system of electric Locomotives) सर्वोत्कृष्ट है।

इसके सिवा लोकोमोटिभ इञ्जिनकी अश्वशक्ति, द्रुतगमनशक्ति, वजन वृद्धि आदिकी यथेष्ट उन्नति हुई है। नदर्न पैसिफिक रेलवेके लिये अमेरिकन लोकोमोटिभ कम्पनीने एक वाष्पीय रथ निकाला है। उस रथमें ३४ चक्के हैं। १२ चक्कोंके ऊपर कोयला रखनेका बड़ा डब्बा है। गाड़ीका वजन जल और कोयला लगा कर १७०० मनसे ज्यादा है। इसकी ऊंचाई १६´, ४´´ और लम्बाई १२५´ है। अग्निकुण्ड २८´, ६´´ लम्बा और ६´, ६´´ है। कोयलेके डब्बेमें २२००० गैलन जल और २७ टन कोयला रखनेकी जगह है। इससे समझ सकते होंगे, कि वर्त्तमान कालमें इञ्जिनकी कैसी उन्नति हो रही है।

केवल यही नहीं, रेलवे लाइन बनाने (Railway track) और रेलवे सवारी गाड़ी (Carriage), मालगाड़ी (Wagon) और ब्रेक (Brake) बनानेके लिये नई नई तरकीब निकाली गई है। सिगनलकी उन्नतिकी ओर ध्यान देनेसे तो चमत्कृत होना पड़ता है।

सन् १९१० से २६ ई०का हिसाब देखनेसे मालूम होता है, कि इस समय रेलवे लाइनकी विस्तृति कनाडा छोड़ कर दूसरी जगह बहुत कम हुई है। इस कनाडामें रेलवे-लाइनका विस्तार बहुत दूर तक हुआ है। अफ्रिका और एशियामें भी कहीं कहीं इसका विस्तार है। किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि युक्तराष्ट्रमें यद्यपि १९२२ ई०से रेलपथकी उन्नति और विस्तृतिके लिये बहुत रुपये खर्च हो रहे हैं, पर उससे कोई फल नहीं दिखाई देता। मोटर और बास गाड़ीकी अधिकताके कारण एक तरफा महसूल (Single Fare) बढ़ा और लौटती महसूल (Return Fare) घटा दिया गया है। उससे तथा आनुसङ्गिक नाना कारणोंसे ऐसा हुआ है।

ग्रेट ब्रिटेन और युक्त राष्ट्रमें युद्धके पहले रेलपथ व्यक्तिगत था, पर युद्धके समय गवर्मेण्टके अधीन हो गया। फिर युद्ध समाप्त होने पर दोनों देशोंमें पहलेकी ही व्यवस्था कायम रही। इससे ग्रेटब्रिटेनमें कुछ लाभ भी दिखाई दिया, पर युक्तराष्ट्रमें कुछ भी नहीं। कनाडाने कुछ समय नुकसान उठा कर आखिर जातीय-पद्धतिको ही अपना लिया है। युद्धके पहले जर्मन-रेलपथ गवर्मेण्टके हाथ था, किन्तु १९२० ई०में वह पार्लियामेण्टके हाथ लगा। पहले पहल उसमें लाभ तो दिखाई देता था, लेकिन १९२३ ई०में लाभकी अपेक्षा प्रायः ७ गुणा नुकसान हुआ। इस कारण १९२४ ई०में यह 'रीचसोसेनवन गेसेलसचैफ्ट नामक कंपनीके हाथ ४० वर्षके लिये लगा दिया गया है।

रेला (हिं० पु०) १ तबले पर महीन और सुन्दर बोलोंको बजानेकी गति। २ धक्कमधक्का। ३ पंक्ति, समूह। ४ अधिकता, बहुतायत। ५ जलका प्रवाह, बहाव। ६ समूहमें चढ़ाई, धावा।

रेला—सिंहभूम जिलेके अंदर एक गांव। यहां एक प्रसिद्ध पीरके रहनेका स्थान है।

रेवंछा (हिं० पु०) एक द्विदल अन्न। इसकी फलियां गोल, पतली और लगभग एक बालिश्त लंबी होती हैं। इसके दाने लंबोतरे, गोल उर्दसे कुछ बड़े और रंगमें बादामी होते हैं। इसकी लोग दाल खाते हैं।

रेवंद (फा० पु०) एक पहाड़ी पेड़। यह हिमालय पर ग्यारह बारह हजार फुटकी ऊंचाई पर होता है और काश्मीर, नेपाल, भूटान और सिक्किमके पहाड़ोंमें पाया जाता है। इसकी उत्तम जाति तिब्बतके दक्षिण-पूर्व भागों और चीनके उत्तर-पश्चिम भागोंमें होती है और रेवंद चीनी कहलाती है। हिन्दुस्तानी रेवंद वैसी अच्छी नहीं होती। उसमें महक भी वैसी नहीं होती जैसी चीनीकी होती है। बाजारोंमें इसकी सूखी जड़ और लकड़ी रेवंद चीनीके नामसे बिकती है और औषधके काममें आती है। इसमें क्राइसोफानिक एसिड होता है जिससे इसका रंग पीला होता है। क्राइसोफानिक एसिड दादकी बहुत अच्छी दवा है। रेवंद चीनी रेचक होती है और पेटके दर्दको दूर करती है। यह पौष्टिक भी मानी जाती है।

रेवर (सं० पु०) रेवते इति रेव बाहुलकात् अरच्।

१ शूकर, सूअर। २ वेणु, बांस। ३ वातुल, बावला। ४ विषवैद्य। (क्ली०) ५ दक्षिणावर्त्त शङ्ख।

रेवड़ (हिं० पु०) भेड़-बकरीका भुण्ड, लेंहड़ा।

रेवड़ा (हिं० पु०) पगी हुई चीनी या गुड़के लंबे लंबे टुकड़े जिन पर सफेद तिल चिपकाया रहता है।

रेवड़ी (हिं० स्त्री०) पगी हुई चीनी या गुड़की छोटी टिकिया जिस पर सफेद तिल चिपकाया रहता है।

रेवण (सं० पु०) एक प्रसिद्ध मीमांसक। चरित्रसिंह इनका उल्लेख कर गये हैं।

रेवणसिद्ध—रसरत्नाकरके प्रणेता।

रेवत (सं० पु०) १ जम्बीर, जंबीरी नीबू। २ आरग्वध-वृक्ष, अमलतास। ३ अन्धक या अनन्तराजके एक पुत्रका नाम। ४ वर्षभेद। ५ रोहिणीपुत्र बलरामके श्वशुरका नाम तथा एक राजा। देवीभागवतके अनुसार ये आनर्त्तके पुत्र और शर्यातीके पौत्र थे। कुशस्थली नाम-की नगरी इनकी राजधानी थी। इनकी कन्या रेवती बड़ी ही सुन्दरी थी। कन्याके युवती होने पर रेवत उसके योग्य वर ढूंढ़ने लगे। बहुत दिनों तक कोई उप-युक्त वर न मिलनेके कारण ये स्वर्गमें लोकपितामह ब्रह्माके निकट गये। ब्रह्माके आदेशसे पृथ्वीमें आ कर उन्होंने अपनी कन्या रेवती बलरामको ब्याही।

रेवत—सह्याद्रि-वर्णित एक राजाका नाम। (सह्या० २७।३०)

रेवत आयुष्मत्—एक बौद्धाचार्यका नाम।

रेवतक (सं० क्ली०) रेवत इव कायतीति कै-क। पारा-वत, परेवा। (राजनि०)

रेवति (सं० स्त्री०) कामदेवकी पत्नी। (त्रिका०)

रेवतिपुत्र (सं० पु०) रेवतीका तनय या लड़का।

रेवती (सं० स्त्री०) रेवतस्यापत्यं स्त्री, रेवत-अण् न वृद्धिः ङीष्। १ नक्षत्रभेद। यह नक्षत्र अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रोंमें अन्तिम नक्षत्र है। इन नक्षत्रोंकी संख्या २७ हैं। यह नक्षत्र मछलीके आकारका है और ३२ ताराओंके साथ है। इसकी अधिष्ठात्री देवता पुषा-बध सूर्य है। इस नक्षत्रमें मीनराशि वास करती है। शतपद चक्रानुसार इस नक्षत्रमें नामकरण करनेसे दे, दो, च, ची आदि अक्षरका नाम होता है। इसके चार पदोंके चार अक्षर हैं।

इस नक्षत्रमें पैदा होनेवाला पुरुष अत्यन्त तीक्ष्ण-बुद्धिसम्पन्न होता है। उसकी सुन्दर आकृति, वह शत्रु-नाशक, विद्वान्, नृपसेवक, विदेशवासी और शूरवीर होता है। (कोष्ठीप्र० अष्टोत्तरी मतसे इस नक्षत्रमें पैदा होनेसे शुक्रकी महादशा होती है। नक्षत्रका परिमाण ६० दण्ड धरनेसे एक एक नक्षत्रमें ५, ३ पांच वर्ष तीन मास काल भोग होता है। प्रति नक्षत्रके पादमें १ वर्ष ३ मास २२ दिन ३० दण्ड और एक दण्डमें १ मास १ दिन ३० दण्ड भोग होता है। नक्षत्रके परिमाणमें न्यूनाधिक हुआ करता है। ऐसी अवस्थामें दशाका भोग्य और भुक्त समयका निर्णय करते समत ५ वर्ष ३ मासका भाग कर स्थिर करना होता है। मीनराशि शब्द देखो।

२ मातृकाभेद। ३ स्त्री गवी। (अजयपाल) ४ दुर्गा। ५ बालग्रहविशेष। बालक इस ग्रहसे पीड़ित होने पर इसकी पूजा करनी होती है। इसकी चिकित्साकी बातें सुश्रुत और भावप्रकाशमें इस तरह हैं—

अश्वगन्धा, अजशृङ्गी, श्यामलता, पुनर्नवा, मुगानि, माषाणि और भूमि-कुष्माण्ड इनका क्वाथ; यव, अश्वकर्ण, अर्जुन, धातकी, तिन्दुक और कुष्ठ या सर्ज्जरसमें पाक किया तेल अभ्यङ्गमें; काकोल्यादिके संयोगसे पाक किया घृत पान, कुलत्थ, शङ्खचूर्ण और सब तरहके सुगन्ध प्रदेह तथा गृध्र और उल्लूका विष्ठा, यव, यवफल और घृत इनकी आहुति सायं-प्रातः देनेसे इस ग्रहकी शान्ति होती है।

लाल फूल, धानका लावा, दूध, चावल और दहीसे गोसाईं घरमें बलि निवेदन कर और नदीसङ्गममें धात्री और कुमारको स्नान करा कर निम्नोक्त मन्त्रसे स्तव करना होता है—

"नानाशस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना।
चलत्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु॥
उपासते यां सततं देव्यो विविधभूषणाः।
लम्बा कराला विनता तथैव बहुपुत्रिका॥
रेवती शुष्कनासा च तुभ्यं देवी प्रसीदतु॥"

(सुश्रुत उत्तर० ३१ अ० और भावप्र० मध्य० ४र्थ भाग)

६ बलदेवकी पत्नी, रैवतकी कन्या। राजा रैवतने

ब्रह्माकी आज्ञासे बलरामके साथ रेवतीका विवाह कर दिया। रेवत देखो।

७ रैवत मनुकी माता। रैवतमनु देखो।

रैवती—युक्तप्रदेशके बलिया जिलेमें एक नगर।

रेउती देखो।

रैवती—मैसुर राज्यके अन्दर एक बड़ा गांव।

रैवतीद्वीप—दाक्षिणात्यका एक प्रसिद्ध जनपद। पूर्व चालुक्यराज मंगलीशने ५६१ ई०में यह स्थान जीता था।

रैवतीपुर—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलान्तर्गत एक नगर।

रेउतीपुर देखो।

रैवतीभव (सं० पु०) १ रैवतीजात, रेवतीसे उत्पन्न। २ शनि।

रैवतीरमण (सं० पु०) रेवत्याः रमणः। १ बलराम। २ विष्णु।

रैवतीश (सं० पु०) रेवत्याः ईशः। बलराम।

रैवतीसुत (सं० पु०) स्कन्दभेद।

रैवत्य (सं० त्रि०) १ प्रसिद्ध, मशहूर। २ सुन्दर, खूबसूरत।

रेवन्त (सं० पु०) सूर्यके पुत्र। ये गुह्यकोंके अधिपति हैं। इनकी उत्पत्ति सूर्यकी बड़वा रूपधारिणी संज्ञा नामकी पत्नीसे हुई थी। कालिकापुराणमें लिखा है, कि राजे लोग तोरणप्रान्तमें प्रतिमा या घटमें सूर्यपूजाके विधानानुसार रेवन्तकी पूजा करेंगे। इसका ध्यान—

"सूर्यपुत्रं महाबाहुं द्विभुजं कवचोज्ज्वलम्।
ज्वलन्तं शुक्लवर्णाभ्यां केशान् वितत्य वाससा॥
कशां वामकरे बिभ्रद्दक्षिणे तु करे पुनः।
खड्गं न्यस्य महातीक्ष्णं शितसैन्धवसंस्थितम्॥"

(कालिकापु० ८५ अ०)

कोजागरी पूर्णिमाकी रातको जब लक्ष्मीपूजा होती है उससे पहले द्वारके समीप घोड़ेके साथ रेवन्तकी भी यथाविधान पूजा करनी होती है। (तिथितत्त्व)

रैवन्तमनुसू (सं० स्त्री०) रेवन्तं मनुञ्च सूते सू क्विप्। संज्ञा।

रैवदा (हिं० पु०) एक प्रकारकी ईख।

रेवरेंड (अं० पु०) पादरियोंकी सम्मानसूचक उपाधि।

रेवा (सं० स्त्री०) रेवते उत्प्लुत्य गच्छतीति रेव-अच्-टाप्। १ नर्मदा नदी। बराहपुराणमें लिखा है, कि रेवा नदीमें शिवलिङ्गकी उत्पत्ति होती है। (बराहपु०) नर्मदा देखो। २ कामकी पत्नी रति। ३ नीलीवृक्ष, नीलका पौधा। ४ दुर्गा। (देवीपु० ४५ अ०) ५ एक प्रकारका साम। ६ दीपक रागकी एक रागिणी। ७ एक प्रकारकी मछली जो नदियोंमें पाई जाती है।

रेवा—मध्यभारतके बघेलखण्ड एजेन्सीके अन्तर्गत एक देशी राज्य। यह अक्षा० २२°३६´ से २५°१२´ उ० और देशा० ८०°४६´ से ८२°५१´ पू०के बीच पड़ता है। भूपरिमाण १०००० वर्गमील है। इसकी उत्तरी सीमा पर बाँदा, इलाहाबाद और मिर्जापुर जिला, पूर्व मिर्जापुर जिलेका कुछ अंश और छोटानागपुरके अन्तर्गत देशी सामन्त राज्य, दक्षिण छत्तीशगढ़, मण्डला और जब्बलपुर जिला और पश्चिम बघेलखण्डके अन्तर्गत मैहर, नागोद, सोहावल और कोठी नामक देशी सामन्त राज्य अवस्थित है। इस राज्यके पश्चिम और पश्चिमोत्तर भागमें गङ्गाकी उपत्यकासे ले कर लगातार तीन अधित्यकाओंमें शोभित गिरिमाला, इसके उत्तर पूर्वांशमें विन्ध्याचल और पन्नाकी अधित्यका छोड़ उसीकी समरेखा पर कैमूर गिरिमाला ऊपर उठी है। इस राज्यका एक-तृतीयांश कैमूर गिरिमालाके दक्षिण पूर्वांशमें शोन नदको अववाहिका पर अवस्थित है। शोन नद इस राज्यकी दक्षिणी सीमासे प्रवेश कर राज्यके बीचो बीच उत्तर-पूर्व सीमा पार कर मिर्जापुर तक चला गया है। इसकी प्रधान शाखा महानदी है। राज्यके दूसरे अंशमें तमसा नदी बहेर, बिलन्द आदि शाखा प्रशाखाके रूपमें फैल कर इलाहाबाद जिले तक चली गई है।

यह राज्य खनिज और वनजात द्रव्यसमृद्धिसे परिपूर्ण है। यहां रामनगर प्रगनेमें उमरिया ग्राममें उत्कृष्ट कोयलेकी खानि मिली है। यहांसे कोयला इधर उधर ले आनेके लिये बिलासपुर इटावा रेलवे कटनी-उमरिया शाखा खोली गई है। यहांकी जोहिला नदीकी उपत्यकामें और सोहागपुरमें भी अत्युत्कृष्ट कोयला मिला है।

यहां कई तरहकी मिट्टी देखी जाती है,—मेड या काली मिट्टी, 'सेकुवन' या श्वेताभ, 'दोमाट' अर्थात् मेड

और सेङ्खवन मिली हुई, 'भाटा' या लाल सूखा हुई खराब मिट्टी है। रेवाके बनमें शाल, खैर, सर्ज, तिण्डु आदि बड़े बड़े वृक्ष, लाख, महुआ, बुड़ा, रजन और गोंद अधिक पाये जाते हैं।

इस राज्यके अधिवासी अधिकांश हिन्दू हैं, इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और कुर्मी ही अधिक हैं। इसके बाद गोंड, कोल आदि आदिम जातियां भी बसती हैं। मुसलमानोंकी संख्या यहां उतनी अधिक नहीं है। यहांकी उत्पन्न वस्तुओंसे अधिकांश राजस्व वसूल होता है। मोट आय प्रायः २२ लाख रुपये हैं। यहां ई० आई० रेलवेका सतना और ढभौरा स्टेशन प्रसिद्ध है और राज्य के बीच दक्षिण जानेका एक बड़ा रास्ता है।

इतिहास—रेवाका वर्त्तमान राजवंश व्याघ्रदेवके वंशज हैं। व्याघ्रदेवने गुजरातसे आ कर शोन नद और तमसाके किनारेके जनपद पर अधिकार कर लिया। इसके पहले यह प्रदेश चन्देल, चेदी या कलचुरी, चौहान, सेङ्गर और गोंड़ राजाओंके अधिकारमें था। रेवाके राजभाटोंके मतानुसार सं० ६८०में व्याघ्रदेव दलबलको ले कर कालञ्जरके १२ मील उत्तर-पूर्व मर्फा नामक दुर्गमें आ कर रहने लगे। मर्फाके १५ मील उत्तर बाघेलभवन और १२ मील दक्षिण-बाघोलन ग्राम व्याघ्रदेवकी पूर्व स्मृतिकी घोषणा आज भी कर रहा है। किन्तु भाटोंने जो संवत् निश्चित किया है, वह प्राचीन मालूम नहीं होता।

पियावन और अल्हाघाटसे जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उससे मालूम होता है, कि ईसाकी ११वीं शताब्दीमें यह समूचा प्रदेश वहांके चेदिपति गाङ्गेयदेवके अधिकारमें था। उनके वंशज डाहलीय राजा नरसिंहदेवने सं० १२१६में और उनके भाई विजयसिंहदेवने सं० १२३८ में राज्यका शासन किया था। और तो क्या त्रैलोक्यवर्मदेवके ताम्रशासनसे मालूम होता है, कि सं० १२९७ (१२४० ई०)में वे तमसा-तीरका उपत्यकाका शासन करते थे। ऐसी अवस्थामें इन स्थानोंमें व्याघ्रदेवका प्रभाव विस्तृत हुआ था, ऐसी बात मनमें नहीं आती। व्याघ्रदेव और उनके वंशधरोंके आधिपत्य विस्तारके साथ इस प्रदेशने बघेलखण्ड नामसे प्रसिद्धि लाभ की।

भाटोंकी पुस्तकोंमें व्याघ्रदेवका नाम सिद्धराज जयसिंह लिखा है। उनकी पुस्तकोंमें उनके वंशजोंके भी कितने ही नाम मिलते हैं। जैसे—कर्णदेव, सोहागदेव, शाङ्गदेव, विशालदेव, भानुदेव और विहलदेव आदि। अन्तिम राजा विहलदेवके पुत्र दलकेश्वरदेव सन् १२४० ई०में सिंहासन पर बैठे। वे और उनके कनिष्ठ भाई मलकेश्वर मिनहाजका "तबकातई नसीरी" नामक इतिहासमें "दलकि व मलकि" नामसे विख्यात हैं। ऐसी दशामें उनकी आठवीं पुश्तके व्याघ्रदेवको हम ईसाकी ११वीं शताब्दीके पुरुष कह सकते हैं। चेदिराजोंके प्रतापसूर्य अस्त होने पर उनके वंशके किसी राजाने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया था।

सन् १२०३ ई०में कुतुबुद्दीन बेगने कालञ्जरके किले पर आक्रमण किया था। उस समय यहां चन्देलपति अधिष्ठित थे। कुतुबुद्दीनकी मृत्युके बाद चन्देलराजको कालञ्जरके किले तथा अपनी पूर्व अधिकृत बस्तियों पर दखल जमा लिया।

मुसलमानी इतिहाससे हम यह भी जानते हैं, कि इसके बाद सन् १२३४ ई०में दिल्लीके राजा बयाना, कनौज, ग्वालियर आदि स्थानोंसे बहुसंख्यक सैन्यसंग्रह कर कालञ्जर और जंबू पर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुए। 'जंबू' कहां है, इसका कुछ भी उल्लेख मुसलमानी इतिहासोंमें नहीं मिलता। केवल यही मालूम होता है, कि यह स्थान 'जंबू' ग्वालियरसे ५० दिनका रास्ता है। इससे यह मालूम होता है, कि यह स्थान रेवा-राज्यका बन्धोगढ़ है। ऐसा होने पर देखा जाता है, कि उस समय चन्द्रात्रेयगण जैसे कालञ्जरमें, वैसे बघेलगण बन्धोगढ़में अधिष्ठित थे। इसके बाद सन् १२४७ ई०में दिल्लीपतिने उलूघ खां (पीछे जो सम्राट् बलबन नामसे विख्यात हुआ)के अधीनमें कालञ्जरपतिको जीतनेके लिये बहुत ही फौजें भेजीं। इस बार मुसलमानी फौजोंने कालञ्जर पर अधिकार कर राणाके हाथ सौंप दिया। मुसलमान-इतिहासमें वे दलकि मलकि नामसे प्रसिद्ध हैं। कालञ्जर या मालवपतिका उन पर कोई दबाव न था। उनकी सैन्यसंख्या भी जैसे असंख्य थी, वैसे धनरत्न भी अतुलनीय था। उनके सभी दुर्ग सुरक्षित

और सुदृढ़ थे। उनका राज्य नाना जङ्गलों तथा टेढ़ी मेढ़ी गिरिमालाओंसे घिरा है। इससे पहले कोई मुसलमान-सैन्य इस राज्यमें घुस न सकी थी। जब मुसलमानी फौज राजधानीमें पहुंची, तब राजा बड़ी सावधानीसे किलेको छोड़ रजनीके प्रगाढ़ अन्धकारमें अपने परिवारके साथ दुर्गम गिरिप्रदेशमें चले गये। पहले उस दुर्गम-गिरिशृङ्ग पर कोई मुसलमान-सैन्य चढ़नेको राजी न हुआ। उलूघ खांके उत्साहवाक्यसे रस्सी और मचानोंकी सहायतासे ऊपर चढ़ गये। राणा सपरिवार कैद कर लिये गये। इस समय मुसलमानोंने जो लूट पाट की थी, उससे असंख्य धनरत्न मिले थे।* मुसलमान इतिहासकारोंने जिस राजाको दलकि व मलकि नामक राजाका उल्लेख किया हैं, वे एक मनुष्य नहीं। बघेल-भट्टग्रन्थोक्त दलकेश्वर और मलकेश्वर नामके दो राजकुमार हैं।

दलकेश्वर और मलकेश्वरके बाद बरियारदेव, इसके बाद बल्लाल राजा हुए। भट्टोंके ग्रन्थके अनुसार यह बल्लालदेव दिल्लीश्वर तैमूर शाहको साहाय्य करनेके लिये बड़े सम्मानित हुए थे। इसी समय उन्होंने सम्राट्से कई खिलअतें तथा कालञ्जरकिला पाया था। भट्टोंकी पुस्तकमें जो समय निर्धारित हुआ है, वह बिलकुल ही मानने योग्य नहीं। अबुलफजलकी आइन-इ-अकबरीसे मालूम होता है, कि सन् १२४७ ई०में नासीरुद्दीन् १म महमूदके हुक्मसे उलूघ खाँ मारे जानेके ५० वर्ष बाद अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजीने बन्धोगढ़ पर आक्रमण किया था। उसका आक्रमण व्यर्थ हो गया था। इस समय बघेलराजके प्रभावसे दिल्लीके राजा भी विचलित हो उठे थे। मुसलमान इतिहासकार नियामत् उल्लाके विवरणसे मालूम होता है, कि सिकन्दर लोदीके समय भाटके राजा (भट्टोंकी पुस्तकोंके अनुसार) भीरने मिर्जापुरके समीप कान्ति तक राज्य विस्तार किया था। प्रायः सन् १४६२ ई०में उन्होंने जौनपुरके शासक मुबारक खां पर आक्रमण किया और उसको कैद कर लिया। थोड़े दिनके बाद उन्होंने मुबारकको छोड़ दिया। इसी समय सुलतान सैन्यके साथ कान्ति तक पहुंच गया। राय भीरने जा कर उससे मुलाकात की। सुलतानने भी अधीनता स्वीकार कर उनको खिलअत बख्सी। किन्तु बघेलराज अपने प्राणके भयसे सन् १४६५ ई०में भाग आये। सिकन्दरने उनको दण्ड देनेके अभिप्रायसे उनके राज्य पर आक्रमण किया। खानघाटी या गंगौती (कथौली) नामक स्थानमें राजकुमार वीरसिंहदेवने ससैन्य उपस्थित हो सुलतानकी गतिको रोका। हिन्दू मुसलमानोंमें घोरतर युद्ध आरम्भ हुआ। सुलतान शीघ्र ही बन्धोगढ़ पहुंचा। राजा भीर सरगुजाकी ओर भागे। राहमें ही उनकी मौत हो गई। सुलतान बन्धोगढ़से दश कोस उत्तर काफून्द नामक स्थान तक आगे बढ़ गया था, किन्तु रसदकी कमीके कारण उसको लौट आना पड़ा।

थोडे ही समयके बाद जौनपुरके हुसेनशाहने सिकन्दरके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। इस समय बघेल राजकुमारने सुलतानकी सहायता की थी। शायद इसी कारण दिल्लीश्वरने और कोई उत्पात न कर बघेलराज्य छोड़ दिया हो। इसके कुछ समय बाद सुलतान सिकन्दर लोदीने बघेल राजकुमारीसे ब्याह करना चाहा। बघेलपति शालिवाहन राजी न हुए। मुसलमान ऐतिहासिक फेरिस्ताने लिखा हैं, कि ६०४ हिजरी (१४६८-६६ ई०) में शालिवाहनने जब अपनी बहनको देना न चाहा, तब सिकन्दरने फिरसे भाट पर चढ़ाई कर दी। उसकी दुर्द्धर्ष सेनाने दुर्भेद्य बन्धोगढ़को जीत लिया। सिकन्दर समस्त राज्यको तहस नहस और जनशून्य कर जौनपुर लौटा।

शालिवाहनके बाद वीरसिंहदेव राजा हुए। वीरसिंहके बाद उनके पुत्र वीरभानुदेवने राजसिंहासनको सुशोभित किया। राजभाट अब्जेशने वीरभानुके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है,—

"दिल्लीके जितेक सरदार मनसबदार,
राजा राव उमराव सभीके निपात भयो।
बेगम बेचारी बड़ी कितहू न पाइ थाह,
बन्धोगढ़ गाढ़ो गूढ़ ताको पक्षपात भयो।

* Elliot's Muhammadan Historians, vol. II. 366

शेरशाह सलिल प्रलेयेको बढ़ो अब्जेश,
बूड़त् हुमायुनके महा ही उत्पात भयो।
बस-छिन बालक अकबर बचाइवे को,
वीरभाल भूपति भलेवटको पात भयो।"

अर्थात् दिल्लीके सरदार, मनसबदार, राजा, राव, उमराव सभीका निपात हुआ। अभागिनी बेगम (हुमायूं-की स्त्री)-को कहीं भी आश्रय न मिला। आखिर सुदृढ़ बन्धोगढ़में उसने आश्रय लिया। अब्जेश कहते हैं, कि पीछे शेरशाहकी तूती बोलने लगी। यद्यपि हुमायूंने जलमें डूबनेसे रक्षा पाई थी, तो भी उन्हें कितनी मुसीबतें उठानी पड़ीं। वीरभानुरूप अक्षयवटका आश्रय कर बालक अकबरने रक्षा पाई थी।

सचमुच शेरशाहके अत्याचारसे हुमायूं जब राज्यच्युत हुए तब अकबरकी माता बच्चेको ले कर बन्धोगढ़ भाग गई। यहां भी प्रवाद है, कि वीरभानुदेवने अपनी सेना दे कर बालक अकबरकी सहायता की थी। अकबरके सिंहासन पर बैठनेसे पहले ही वीरभानुके पुत्र रामचन्द्रदेवने पितृराज्य पाया था। अकबर जब दिल्लीको मसनद पर बैठे, तब वे बघेलराजका उपकार कभी भी न भूले। अकबरके शासन कालके इतिहासमें राजा रामचन्द्रका नाम भी मशहूर है।

१५५५ ई०में रामचन्द्र राजा हुए। उसी साल सिकन्दर सूरके पुत्र इब्राहिमने आ कर रामचन्द्रका आश्रय किया। गङ्गातीरस्थ कराग्रामसे रामचन्द्रका ताम्रशासन निकाला गया है। वह शासनपत्र 'अकबरशाह गाजी'के ३रे वर्ष अर्थात् १५५७-५८ ई०का लिखा हुआ है। भारत-प्रसिद्ध गायक तानसेन पहले इन्हीं रामचन्द्रकी सभामें गान करते थे। अकबरने अपने सातवें वर्ष (१५६२ ई०)-में रामचन्द्रके पास आदमी भेज कर तानसेनको मंगा लिया था। तानसेनके चले आने पर रामचन्द्र बड़े दुःखित हुए थे। जब आसफखां गड़ा जीतने गया, तब रामचन्द्रने उसे रोकनेके लिये अवधारण किया। आखिर पराजयकी संभावना देख कर वे अकबरकी अधीनता स्वीकार करनेको वाध्य हुए। अकबरके १४वें वर्षमें रामचन्द्रके हाथसे कालञ्जर दुर्ग जाता रहा। इस कारण अपमानके भयसे स्वयं न जा कर रामचन्द्रने अपने पुत्र वीरभद्रको दिल्ली-दरबारमें भेजा। इससे अकबर रामचन्द्र पर बड़े असंतुष्ट हुए थे। उनके २८ वर्ष शासन करनेके बाद जब वे शाहाबाद जा धमके, उस समय उन्होंने भाटकी ओर अपनी सेना बढ़ाई थी। इस समय वीरभद्रने अकबरको बहुत समझा बुझा कर ठंढा किया था। पीछे रामचन्द्र स्वयं अकबरके निकट हाजिर हुए। किन्तु अकबरने बड़े सम्मानके साथ उनका स्वागत किया था।

रामचन्द्रके बाद उनके पुत्र वीरभद्र राजा हुए। दिल्लीसे अपनी राजधानी लौटते समय वे पालकी परसे गिर पड़े थे जिससे उन्हें सख्त चोट लगी थी। इसी चोटसे उनकी मृत्यु हुई। बीकानेरके राठोर-राज कल्याण मलकी कन्यासे वीरभद्रका विवाह हुआ था। वह राजकन्या सती होना चाहती थी, किन्तु दिल्लीश्वर अकबरने उनके छोटे छोटे बच्चोंकी ओर देख कर रानीको सती होनेसे रोक दिया।

वीरसिंहकी अकस्मात् मृत्युसे बन्धोगढ़में विशृङ्खला उपस्थित हुई। इस समय विक्रमादित्य वा विक्रमजित् नामक राजसम्पर्कित एक युवक बघेल सिंहासन पर बैठे। ये ही वर्त्तमान रेवानगरीके प्रतिष्ठाता हैं। इधर अकबरने विक्रमजित्को पकड़ लानेके लिये इस्माइल कुली खां को दलबलके साथ बन्धोगढ़ भेजा। विक्रमजित्ने मुगलसेनापतिके पास आदमी भेज कर राजधानीमें घेरा डालनेसे मना किया। अकबरने उनकी बात पर कान नहीं दिया। आठ महीना घेरा डालनेके बाद अकबरके ४२वें वर्षमें बन्धोगढ़ मुगलोंके अधिकारभुक्त हुआ।

अकबरने अपने ४७वें वर्षमें रामचन्द्रके पौत्र दुर्योधनको भाटराज्य पर अभिषिक्त किया। उन्होंने उपयुक्त खिलअत भेज कर भी दुर्योधनका सम्मान किया था। पीछे जहांगीरके शासनकालमें रामचन्द्रके दूसरे पौत्र अमरसिंह दिल्ली-दरबारमें सामन्त गिने गये थे। किन्तु शाहजहान्ने अपने राज्यके ८वें वर्षमें रतनपुरपतिका दमन करनेके लिये अबदुल्ला खां बहादुरको ससैन्य भेजा। अमरसिंहने बिना युद्धके उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। अमरसिंहके बाद उनके पुत्र अनुपसिंह राजा हुए।

शाहजहान्के २४वें वर्षमें अनुपसिंहने चौरागढ़के जमींदार दयारामको आश्रय दिया था, इस कारण चौरागढ़के जागीरदार पहाड़सिंह बुन्देलाने अनुपसिंह पर चढ़ाई कर दी। अनुपसिंह युद्धमें हार खा कर सपरिवार रेवा-राजधानीको छोड़ शैलमाला पर चले गये। इसके ५ वर्ष बाद इलाहाबादके शासनकर्त्ता सैयद सलावत् खां अनुपसिंहको दिल्ली-दरबार ले गये। यहां उन्होंने मुसलमान-धर्म ग्रहण किया। दिल्लीश्वरने उन्हें पांचहजारी मनसबदारका पद दे कर बन्धु तथा आस पासके देशोंका शासनकर्त्ता बनाया। मुसलमान इतिहासकार दलकेश्वर से अनुप तक बघेलराजोंका जैसा परिचय दे गये हैं, वही संक्षेपमें लिखा जाता है। अनुपके परवर्त्ती बघेल-राजाओं के सम्बन्धमें मुसलमान इतिहासकारोंने कुछ भी नहीं लिखा है। अनन्तर भट्ट ग्रन्थमें भानुसिंहका नाम मिलता है। ये अनुपसिंहके पुत्र थे वा नहीं, उसका आज तक कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला है। पर हां, भट्ट-कवियोंने भानुसिंहको हिन्दू बतलाया है। भानुसिंहके बाद अनिरुद्ध राजा हुए। अनिरुद्धकी जब मृत्यु हुई, उस समय उनका लड़का अद्भुतसिंह छः महीनेका था। यह संवाद पा कर पन्नाराज छत्रशालके पुत्र हृदयशाहने १७३८ ई०में रेवा पर हमला कर दिया। अद्भुतसिंहको ले कर उसकी माता प्रतापगढ़ भाग गई। हृदयशाहकी मृत्युके बाद अद्भुतसिंह पितृसिंहासन पर बैठे। उन्होंने १७७५ ई० तक राज्य किया था। पीछे उनके लड़के अजितसिंह राजा हुए। १८०६ ई०में उनकी मृत्यु होने पर उनके लड़के जयसिंहदेवने राज्याधिकार प्राप्त किया। इन्हीं जयसिंहके शासनकालमें रेवाराज्य में बृटिश-प्रभाव फैला था। १८१२ ई०में जयसिंहने बृटिश गवर्मेण्टके साथ मेल कर लिया। १८४७ ई०में यहांसे सतीदाह-प्रथा उठ गई। पीछे जयसिंहके पुत्र विश्वनाथ पितृसिंहासन पर बैठे। कुछ महीने राज्य करके उन्होंने १८५४ ई०में पुत्र रघुराजसिंहके लिये सिंहासन छोड़ दिया। १८८० ई०में रघुराजसिंहकी मृत्यु हुई। १८५७-के गदरमें बृटिश गवर्मेण्टको मदद देने के कारण उन्हें जागीर, गोद लेनेका अधिकार तथा १६ सलामी तोप मिलीं। उनके मरने पर पुत्र वेङ्कटेशरमण सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इनका जन्म १८७६ ई०में हुआ था। १८६७ ई०में इन्हें जी, सी, एस, आईकी उपाधि मिली। इनके स्वर्गवासी होने पर पुत्र गुलाबसिंहजी बहादुर राजसिंहासन पर बैठे। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। १७ तोपोंकी इन्हें सलामी मिलती है।

नीचे रेवा-राजाओंकी तालिका दी गई है—

नाम	अभिषेककाल	मन्तव्य
१। व्याघ्रदेव	११०० ई०	
२। कर्णदेव		
३। सोहागदेव		सोहागपुरके स्थापयिता
४। शार्ङ्गदेव		
५। विशालदेव		
६। भानुदेव		
७। अनीकदेव		
८। विह्लणदेव		
६। दलकेश्वर	१२४० ई०	मुसलमान इतिहासमें ये दोनों दलकी और मलकी नामसे मशहूर हैं।
१०। मलकेश्वर		
११। बरियारदेव	१३०० ई०	
१२। बल्लालदेव	१३३० ,,	
१३। सिंहदेव	१३६० ,,	
१४। भैरवदेव	१३६० ,,	
१५। नरहरिदेव	१४२० ,,	
१६। भीरदेव	१४५० ,,	
१७। शालिवाहनदेव	१४६४ ,,	
१८। वीरसिंहदेव	१५२० ,,	वीरसिंहपुरके प्रतिष्ठाता
१६। वीरभानुदेव	१५४० ,,	
२०। रामचन्द्रदेव	१५५४ ,,	
२१। वीरभद्र	१५६१ ,,	
२२। विक्रमादित्य	१५६२ ,,	रेवा-नगरीके प्रतिष्ठाता
२३। दुर्योधन	१६०१ ,,	
२४। अमरसिंह	१६२० ,,	
२५। अनुपसिंह	१६४५ ,,	
२६। भानुसिंह	१६७० ,,	
२७। अनिरुद्धसिंह	१६६५ ,,	
२८। अद्भुतसिंह	१७२५ ,,	

२९। अजितसिंह १७७५ ई०
३०। जयसिंहदेव १८०९ „
३१। विश्वनाथसिंह १८२५ „
३२। रघुराजसिंह १८५४ „
३३। वेङ्कटेशरमण १८८० „
३४। गुलाबसिंहजी १९१० „ (वर्त्तमान राजा)

राज्यकी आमदनी कुल मिला कर करीब १४ लाखकी है। राजाके पास ११४० पदाति, ५७४ अश्वारोही और १३ कमान हैं। रेवाके राजा बहुत दिनोंसे हिन्दी और संस्कृत भाषाके प्रेमी हैं। १८६९ ई०में ग्वालियरके प्रधान मन्त्री दिनकररावने यहां अङ्गरेजी स्कूल खोलनेकी चेष्टा की थी, पर उन्हें सफलता प्राप्त न हुई। भूतपूर्व राजा वेङ्कटेशरमणके समय यहां बहुत-से स्कूल खोले गये। आज राज्य भरमें दो हाई स्कूल जो इलाहाबाद विश्वविद्यालयसे संयुक्त हैं, ५१ ग्राम्य स्कूल और २ बालिका स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १७ अस्पताल हैं।

रेवा—बघेलखण्डके अन्तर्गत रेवाराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° ३२´ ३० तथा देशा० ८१° १८´ पू०के मध्य इलाहाबादसे १३१ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या २५ हजारके करीब है। यह नगर तीन दुर्गप्राकारसे सुरक्षित है। अन्तिम प्राकारके मध्य रेवाराजका प्रासाद अवस्थित है।

रेवाउतन (हिं० पु०) हाथी। पुराने समयमें नर्मदाके किनारे हाथी बहुत पाये जाते थे।

रेवाकान्था (रेवा अर्थात् नर्मदाका कण्ठ वा किनारा)—बम्बई गवर्मेण्टके अधीन एक पोलिटिकल एजेन्सी। ६१ छोटे बड़े मित्र वा करद राज्य ले कर यह एजेन्सी बनी है। इन ६१ राज्योंमेंसे ३को कर नहीं देना पड़ता है, ५ वृटिश गवर्मेण्टके करद (इनमेंसे तीन बड़ौदा गायकवाड़को कर देते हैं), १ उदयपुरके अधीन और बाकी बड़ौदाके गायकवाड़के अधीन करद हैं। ये सब राज्य अक्षा० २१° २३´ से २३° ३३´ ३० तथा देशा० ७३° ३´ से ७४° २०´ पू०के मध्य विस्तृत हैं। भूपरिमाण ४९७२ वर्गमील है। इसके उत्तरमें डूंगरपुर और बांसवाड़ाका मेवाड़ राज्य, पूर्वमें झालोद उपविभाग, पांचमहलका दोहद, खान्देश जिला और भूपावर एजेन्सीका अली राजपुर और बहुतसे छोटे छोटे सामन्त राज्य, दक्षिणमें बड़ौदाराज्य और सूरत जिला तथा पश्चिममें भरौंच, बड़ौदाराज्य, पांचमहल, खेड़ और अहमदाबाद जिला है। उत्तर-दक्षिणमें इसकी लम्बाई १४० मील और पूर्व-पश्चिममें चौड़ाई १०से ५० मील है। इस भूभागके दक्षिण राजपिपला गिरिमाला और मध्यभागमें विन्ध्याद्रि प्रसारित है। यहां कई जगह खनिज पदार्थकी खान पाई जाती है। जंगलमें महुआ, महुगनी, शीशम, इमली, तरह तरहके आम, अर्जुन, बेल, खैर आदिके पेड़ पाये जाते हैं। जीव जन्तुओंमें बाघ, चीता, भालू, जंगली सूअर, शाम्भर हरिण, चित्रमृग, नील गाय और जंगली भैंस तथा पक्षिजातिमें नाना प्रकारका हंस, कारण्डव, तीतर और जलचर पक्षी देखा जाता है।

८वींसे १०वीं सदी तक रेवाकान्था कोल और भील-सरदारोंके शासनाधीन था। ११वीं, १२वीं और १३वीं सदीमें मुसलमान लोग जब राजपूत सरदारोंको बहुत तकलीफ देने लगे, तब वे यहां आये और कोल तथा भीलको परास्त कर उनके राज्य पर अधिकार कर बैठे। उनमेंसे राजपिपलाके राजा ही सर्वप्रधान थे। १६वीं सदीमें अहमदाबादके सुलतानोंने रेवाकान्था पर अधिकार जमाया। १९वीं सदीमें इस भूभागमें मरहट्ठोंका प्रभाव फैला था।

यहांके सरदारोंके कनिष्ठवंश कभी कभी नया राज्य अधिकार कर लेते थे। उन्हींके वंशधर अभी छोटे छोटे जमींदार कहलाते हैं। मराठोंके लूटपाटसे यह प्रदेश तंग तंग आ गया था। बड़ौदाके गायकवाड़ने जब इस ओर कुछ ध्यान न दिया, तब गवर्मेण्टने शान्तिस्थापनके लिये इस प्रदेशमें अपना हाथ बढ़ाया। १८२१ ई०में वृटिश गवर्मेण्टके साथ गायकवाड़की संधि हुई। इससे गायकवाड़के अधीनस्थ सभी करदराज्य वृटिश शासनाधीन हो गये। १८२५ ई०में पाण्डुमेवसके सरदार वृटिश गवर्मेण्टके अधीन हुए। इसी समय सिन्धियाके अधिकार भुक्त पांचमहलका राजनैतिक कर्तृत्व वृटिश गवर्मेण्टके हाथ सौंपा गया। १८२६ ई०में रेवाकान्थाकी पोलिटिकल एजेन्सी संगठित हुई। १८२९ ई०में यह एजेन्सी

उठा दी गई और सरदारोंके हाथ ही उसका शासनभार सौंपा गया। पीछे १८४२ ई०में फिरसे एजेन्सी स्थापित हुई तथा सरदारोंका अधिकार निर्दिष्ट कर दिया गया। ६१ राज्योंमें राजपिपला ही सर्वप्रधान है और प्रथम श्रेणीका सरदार समझा जाता है। छोटा उदयपुर, बारिया, सूंठ, लूनावाड़ा और बालासिनोर ये सब द्वितीय श्रेणीके हैं। इन्हें अपनी अपनी प्रजाको मृत्युदण्ड तक भी देनेका अधिकार है। बाकी ५५ राज्योंमें संखेड मेवासके अधीन २६, पाण्डुमेवासके अधीन २२, दोरका मेवासके अधीन ३ हैं तथा निष्कर कदाना और संजेली राज्य ३य श्रेणीके समझे जाते हैं।

इस एजेन्सीकी आय कुल मिला कर १२२४७०८ रु० है जिनमेंसे १४७८२६ रु० बड़ौदाके गायकवाड़को कर देना पड़ता है। इसमें ३४१२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ५ लाखके करीब है। सारी एजेन्सीमें ४ म्युनिसपलिटी, १७५ स्कूल, १५ बालिका स्कूल, छः पुस्तकालय और १ छापाखाना है।

रेवाचल—सौराष्ट्रके अंदर एक पहाड़का नाम।

रेवादण्ड—बम्बईप्रदेशके कोलाबा जिलाके अन्तर्गत एक नगर और वाणिज्य-बन्दर। यह अक्षा० १८°३३´ उ० तथा देशा० ७२° ५७´ पू०के मध्य अलीबाग सदरसे ३ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है।

यहां पुर्त्तगीज जातिकी अनेक कीर्त्ति हैं। क्योंकि, एक समय यह पुर्त्तगीजाधिकृत कोङ्कणराज्यके मध्य अन्तिम उपनिवेश था। यहांका कोलिदुर्ग और नगर प्राचीर देखने लायक है। कोण्डलिका नदी मुहानेके बन्दरमें नाव जहाज आदि रखे जा सकते हैं। यहांका जल प्रायः ३५ फुट गहरा है। शहरमें रेशमी कपड़ेका अच्छा कारबार चलता है।

रेवारी—पञ्जाबप्रदेशके गुड़गांव जिलान्तर्गत रेवारी नामक स्थानवासी बनिये जातिकी एक शाखा। ये लोग प्रधानतः सूती कपड़े बेचा करते हैं। गया नगरमें इन लोगोंका कुछ वास देखा जाता है। राजपूताना और हिन्दुस्तानके दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी इन लोगोंका वास है। वहां ये लोग ऊंट, बकरे, भेंड़े आदि पाल कर जीविकानिर्वाह करते हैं। अधिकांश मनुष्य हिन्दूधर्मावलम्बी है, कहीं कहीं इस्लाम धर्मावलम्बी रेवारी भी देखे जाते हैं। राजपूतानेके हिन्दू रेवारी बड़े चतुर तथा भट्टि अथवा दाऊदपुत्रोंकी तरह दुर्दान्त दस्यु हैं। ये लोग दूसरेके दल बांध कर विचरण करनेवाले ऊंट आदि पशुको इस प्रकार चुरा लेते हैं, कि उस ओर ख्याल करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। पहले उनमेंसे एक आदमी बड़ी तेजीसे पशुदलमें घुस कर उस पशुको बर्छा मारता है जिसकी नजर पहले उस पर पड़ जाती है। जब क्षतस्थानसे लहू निकलने लगता है तब वह बर्छेके मुंहमें कपड़ा बांध कर लहू पोंछ लेता है। पीछे वह लहूसे तराबोर कपड़ा ले कर घूमाता हुआ जाता है। लहूको गंधसे मोहित दूसरा पशु ज्यों ही उसका पीछा करता है त्यों ही सभी पशु उसके पीछे चलने लगते हैं। इस प्रकार वे उन सब पशुओंको किसी निभृत स्थानमें ले जा कर आपसमें बांट लेते हैं।

गुजरातके रेवारी अपने अपने ऊंट बकरे आदिको ले कर इधर उधर विचरण करते हैं तथा उनका दूध और पशम बेच कर गुजारा चलाते हैं।

रेवारी—पञ्जाबप्रदेशके गुड़गांव जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८° ५´ से २८° २६´ उ० तथा देशा० ७६° १८´ से ७६°५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४२६ वर्गमील है। उक्त जिलेके उत्तर-पश्चिम पहाड़ी प्रदेश ले कर यह उपविभाग बना है। यहांकी मिट्टी बलुई होने पर भी स्थानीय अहीर अधिवासियोंके यत्नसे जमीन बहुत उर्वरा हो गई है। जयपुर नामक पहाड़से बहुत-सी छोटी छोटी नदियां इस उपविभागमें बहती हैं। उन नदियोंमेंसे हंसवती और साहबी नदी ही प्रधान हैं। इसमें रेवारी नामक एक शहर और २६० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। यह तहसील १८२४ ई०में वृटिश शासनाधीन हुई।

२ उक्त जिलेका एक नगर और तहसीलका विचार-सदर। यह अक्षा० २८° १२´ उ० तथा देशा० ७६° ३८´ पू०के मध्य दिल्लीसे जयपुर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां रिवारी-फिरोजपुर और राजपूताना मालवा रेलपथका एक जंकशन है।

यह नगर बहुत पुराना है। आज भी पीतल बरतन-

का कारबार यहांकी प्राचीन समृद्धिका परिचय देता है। अंगरेजोंके दखलमें आनेके बाद यह स्थान पहलेसे और भी उन्नत हो गया है। म्युनिसपलिटीके अधीन रहनेके कारण यह स्थान बहुत साफ सुथरा दिखाई देता है। वर्त्तमान नगरके पूर्वप्राचीर पार्श्वमें बुधिरेवारी नामक स्थान ही प्राचीन रेवारी नगरके ध्वंसावशेषका निदर्शन है। यहांके लोगोंका कहना है, कि किसी समय राजा कर्मपालने इस नगरको बसाया था। राजा रेवनं अपनी रेवती नामक कन्याके नाम पर इस नगरका नाम रखा। यहांके देशीय सामन्त राजोंने मुगलोंके जमानेमें प्रायः अर्द्ध स्वाधीन भावसे राज्य किया था। उन्होंने इस नगरप्रान्तवर्त्ती गोकानगढ़ नामक स्थानमें एक दुर्ग बनवाया। वह दुर्ग अभी भग्नावस्थामें होने पर भी उनकी राजशक्तिका परिचय देता है। वे लोग जो स्वाधीनभावसे राज्य कर गये हैं वह उनके चलाये सिक्केसे अच्छी तरह जाना जाता है। उन सब राजाओंका चलाया हुआ सिक्का आज भी गोलकसिक्का कहलाता है।

मुगल-साम्राज्यके अधःपतनके बाद यह नगर पहले मराठोंके हाथ और पीछे भरतपुरके जाट राजाओंके हाथ लगा। १८०२ ई०में दिल्लीप्रदेश अंगरेजोंके हाथ आने तक यह भरतपुरराज्यके अधीन था। पीछे १८०५ ई०में रेवारी परगना जब अंगरेजोंके दखलमें आया उस समय इस नगरमें विचारसदर स्थापित हुआ था। १८१६ ई० तक सदरके निकटवर्त्ती भरावास नामक स्थानमें एक सेनानिवास और गोराबाजार खोला गया। उसके नसीरा बाद उठ कर चले जानेसे स्थानीय विचारसदर भी गुरुगांव नगरमें चला गया था। अंगरेजोंके कठोर शासनसे डकैतोंका जो लोगोंको भय था वह जाता रहा। आसपासके सामन्त राज्योंसे दलके दल वणिक्गण यहां आ कर बस गये। धीरे धीरे नगरकी श्रीवृद्धि भी हो गई।

अङ्गरेजराजने १८०६ ई०में यह नगर भरतपुरराजके हाथसे छीन कर तेजसिंह नामक एक सरदारको इजारा दे दिया। उनके वंशधर सिपाहीविद्रोह तक पूर्ण प्रतापसे यहांका शासन करते रहे। किन्तु गृहविवाद, यथेच्छचारिता और अमितव्ययिता दोषसे इस सामन्त-वंशकी महती क्षति हुई थी।

१८५७ ई०में विद्रोहवह्नि धधकते ही तेजसिंहके पौत्र राव तुलारामने स्वयं स्वाधीनतासे रेवारीका शासनभार ग्रहण किया। वे राजस्व संग्रह कर कमान ढालने लगे। थोड़े ही समयके मध्य उन्होंने सेनादल संग्रह कर दुर्द्धर्ष मेव जातिको वशीभूत कर लिया। सच पूछिये तो वे अङ्गरेजोंकी उपेक्षा करके ही ये सब काम किया करते थे। धीरे धीरे विद्रोहीदलमें शामिल हो कर उन्होंने अङ्गरेजोंका सर्वनाश करनेके लिये अपना आन्तरिक अभिलाष प्रकट किया। किन्तु वे अङ्गरेजोंसे डरते थे, इसमें संदेह नहीं। दिल्लीसे अङ्गरेजी सेना उनका दमन करनेके लिये जब आगे बढ़ी, तब वे और उनके भाई गोपालदेव अङ्गरेज-शिविरमें आ कर उनकी वश्यता स्वीकार न करके पलातक वेशमें इधर उधर आश्रय खोजने लगे। इसी अवस्थामें दोनों भाईकी मृत्यु हुई।

नगरभाग पार्श्ववर्त्ती समतल क्षेत्रकी अपेक्षा निम्न स्तरमें स्थापित है। इस कारण कभी कभी पहाड़ी नदियोंसे बाढ़का जल आ कर नगरको प्लावित कर देता है। १८७३ ई० साहबी नदीमें इतनी बाढ़ आई थी कि ७ मील दूर तकका स्थान डूब गया था। यहांका पथघाट परिष्कार परिच्छन्न है। नगरके दक्षिण पश्चिममें राव तेजसिंह द्वारा प्रतिष्ठित बड़ी दिग्गी है। उसमें पत्थरकी सीढ़ियां लगी हुई हैं। उसके चारों ओर देवमन्दिर हैं। नगरवासी उस दिग्गीमें स्नान कर प्रतिदिन देवमन्दिरादिके दर्शन करते हैं। दिग्गीके दो बगल बड़े बड़े उद्यान हैं। जनसाधारण प्रतिदिन यहां वायुसेवन करने आते हैं। रेल स्टेशनके पास ऐसी एक भी सुन्दर दिग्गी नहीं है। चारों ओर मसजिद भी शोभा देती है।

पीतल और रांगा धातुके पात्रादिके लिये यह स्थान मशहूर है। इसके सिवा यहां अच्छी अच्छी पगड़ी भी बनती है। राजपूतानेमें बहुत दूर तक रैलव लाइन खुल जानेसे वाणिज्य व्यवसायमें बड़ी सुविधा हुई है। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें विचार अदालत और राजकार्यालयके सिवा टाउनहाल, सराय, गवर्मेण्ट हाई स्कूल और अस्पताल है।

रेवास—बम्बईप्रदेशके कुलावा जिलेके अलीबाग उप-विभागके अन्तर्गत एक बन्दर। यह अक्षा० १८° ४७' उ० तथा देशा० ७२°५८' पू०के मध्य अलीबागसे ५ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां अधिकांश मत्स्य व्यवसायियोंका वास है। बम्बईसे यहां प्रति दिन ष्टीमर आता जाता है। स्थानीय शस्यादिके वाणिज्यके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

रेवेन्यू (अं० पु०) किसी राजा या राज्यकी वार्षिक आय जो मालगुजारी, आबकारी, इनकम टैक्स, कस्टम ड्युटी आदि करोंसे होती है।

रेवेन्यू बोर्ड (अं० पु०) कई बड़े बड़े अफसरोंका वह बोर्ड या समिति जिसके अधीन किसी प्रदेशके राजस्व का प्रबन्ध और नियन्त्रण हो।

रेवेलगञ्ज—सारन जिलेके अंदर एक नगर।

गोदना देखो।

रैवोत्तरम् (सं० पु०) एक वैदिक ऋषिका नाम।

(शत०ब्रा० १२।८।१।१७)

रैवोल्यूशन (अं० पु०) १ देश या राज्यकी शासन प्रणाली या सरकारमें आकस्मिक और भीषण परिवर्त्तन, राज्य-विप्लव। २ समाजमें ऐसा उलट फेर या परिवर्त्तन जिससे पुराने संस्कार, आचार विचार, राजनीति रूढ़ियों आदिका अस्तित्व न रहे, फेरफार।

रैवोल्यूशनरी (अं० वि०) १ राज्यक्रान्तिकारी, विप्लव-पंथी, रेवोल्यूशन-सम्बन्धी।

रेशम—शहतूतके पेड़में जो नाना प्रकारके पेड़के बल रेंगनेवाले कीड़े पैदा होते हैं, उन्हींके कोष या कोयों-मेंसे जो महीन सूतसे निकलते हैं, वही रेशम है। नाना प्रकारके रेशमके कीड़ोंसे रेशम पैदा किया जाता है। रेशमके कीड़े दो प्रकारके होते हैं—एक पालतू और दूसरे जंगली।

पालतू रेशमके कीड़े भी अनेक प्रकारके होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) विलायती कीड़े (Bombyx mori), (२) बड़े कीड़े (Bombyx textor), (३) निस्तारी, मद्राजी या कोनबी कीड़े (Bombyx croesi), (४) देशी या छोटे कीड़े (Bombyx fortunatus), (५) चीनाकीड़े (Bombyx sinensis) आदि। इनके अलावा आराकानी कीड़े (Bombyx arracanensis), आसामी कीड़े और मेदिनीपुरके कीड़े भी उल्लेखयोग्य हैं। आराकानी और आसामी कीड़े बड़े कीड़ोंमें शामिल हैं। मेदिनीपुरके कीड़े कुछ पीलेपनको लिये हुए होते हैं और उनके कोये सफेद होते हैं तथा आसामके कीड़े चीनी कीड़ेकी श्रेणीके होते हैं। इन सब कीड़ोंकी गिनती पालतू कीड़ोंमें की जा सकती है।

जङ्गली रेशमके कीड़े भी नाना प्रकारके हैं, जिनमें थिओथिला (Theophyla) जातिके कीड़े ही काम लायक अच्छे कोये पैदा करते हैं। ओसिनारा (Ocinara), त्रिलोचा (Trilocha) और रएडोसिया ये तीन जातिके कीड़े पैदा करते हैं।

उपर्युक्त नाना प्रकारके रेशमी कीड़ोंके सिवा और भी कई जातिके कीड़े कोये पैदा करते हैं। उनमेंसे जिन कोयोंमेंसे लम्बा सूत निकलता है, उन्हींकी ज्यादा कदर की जाती है। जिन कोयोंसे लम्बा सूत निकलता उनके नाम ये हैं—

(१) विलायती कोया (Bombyx Lacyocampa otus), (२) संहाई कोया, (३) आसामी मूंगा (Antheraea assama) और तसरकोया (Antheraea milytta) ये मुख्य हैं। इस प्रकार कताई करने लायक और भी अनेक प्रकारके कोये आविष्कृत हुए हैं। परन्तु वे इतने दुर्लभ हैं, कि जंगलोंमें खोज कर उससे रोजगार चलाना एक तरहसे असम्भव बात है।

जिन सब कोयोंकी कताई नहीं की जा सकती अर्थात् जिन कोयोंसे लम्बा सूत नहीं निकाला जा सकता, उनमेंसे अधिकांश बेकामके होते हैं। इस जातिके कोयोंमें रेंडी-के कोये (Attacus Risini और Attacus atlas) ही सर्वोत्कृष्ट है। ये कीड़े अंडीके पत्ते खा कर कोष तैयार करते हैं। इनमेंसे अटिकस अट्लस प्रकारके कीट अटिकस रिसिनीसे अर्थात् असल अंडीके कोयेसे लगभग दश गुना रेशम पैदा करते हैं, परन्तु यह रेशम तूंतके रेशम अथवा गरद या अंडीके रेशमके समान कोमल नहीं होते। Attacus cynthia नामक जो जंगली कीड़े पाये जाते हैं, वे गृहपालित रेड़ीके कीड़ोंकी ही एक जाति है।

क्रिकिउला (Cricula) जातीय निकृष्ट रेशमी कीड़े भारतके नाना स्थानोंमें पाये जाते हैं। रांचीकी तरफ इसका सूत व्यवहृत होता है। इसके अलावा और भी सैकड़ों प्रकारके कीड़े हैं, जिनका रेशम काममें नहीं आता। फ्रान्समें नासपाती फलके पेड़ोंमें एक प्रकारकी मकड़ी होती है, जो रेशम पैदा करती है। उसके कोयेमेंसे रेशम निकाल कर उससे छोटे छोटे कपड़े बनाये जा सकते हैं। परन्तु वह व्यवसाय उपयुक्त कदापि नहीं हो सकते।

पालतू रेशमी कीड़ोंमें पेटके बल रेंगनेवाले बड़े कीड़े ही अच्छे समझे जाते हैं। बहुतोंका ऐसा विश्वास है, कि पहले पहल ये कीड़े मणिपुरसे इस देशमें आये थे। जंगली कोषोंमें बिलायती कोये सबसे श्रेष्ठ होते हैं। जो कीड़े इन कोयोंको बनाते हैं, वे कोथारकस आइलेक्स नामक पेड़की पत्तियां खाते हैं। जितने प्रकारके भी बिलायती कोये हैं, वे सब कभी न कभी चीन देशसे ही बिलायतमें गये हैं।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है, कि बंगालमें जितने भी प्रकारके कीड़े होते हैं, उनमें बड़े कीड़े ही सबसे श्रेष्ठ हैं। मुर्शिदाबाद, बीरभूम, मालदह आदि जिलोंमें कीड़े पैदा करनेके लिये विस्तृत तूंतकी खेती होती है। बंगालमें किस प्रकार तूंतकी खेती होती है, यहां संक्षेपमें उसका विवरण लिखा जाता है।

तूँतकी खेती।

शीतकालमें फावड़ेसे एक एक हाथ गहरी जमीन खोद कर छोड़ देनी चाहिए। बैशाख तक यों ही छोड़ देनेके बाद वर्षा होते ही उसमें दो बार खेती करनी चाहिए। ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावण मासमें भी एक बार खेती करनी चाहिए। वर्षाका अन्त होने पर जमीनमें हल जोतना चाहिए और फिर पटेला चला कर जमीन बराबर कर देनी चाहिए। इस प्रकार जोतनेसे जमीन उमदा हो जाती है। इसके बाद रस्सी डाल कर लाइन ठीक करके एक हाथके फासलेसे ज़मीन खोदनी चाहिए। फिर उन खुदे हुए स्थानोंमें छोटी छोटी एक एक डाली गाड़ देनी चाहिए।

माघ फाल्गुनमें डाली लगाना हो, तो अगहनमें ज़मीन खोदना और पौष मासमें जोतना समाप्त कर देना चाहिए। पीछे डाली लगानी चाहिए। मुर्शिदाबादकी तरफ आश्विन कार्त्तिक मासमें और मेदिनीपुरकी तरफ माघ फाल्गुन मासमें डाली लगाई जाती है। ये डालियां पकी अथवा अंगुलिके समान पतली पतली होनी चाहिए। काटनेके बाद एक मास तक छायामें रख कर तीसरे चौथे दिन उनमें पानी देते रहना चाहिए। हर एक जमीनमें तूंतकी पैदावारी हो सकती है। परन्तु जमीन अच्छी तरह जोती जाय, तभी पौधे जल्दी और खूब बढ़ते हैं। डाली लगानेके बाद जब पौधे ठीक पंक्तिवार हो ५।६ अंगुल ऊंचे हो जायं, तब एक दफे खुरपेसे उन्हें हिला देना चाहिए। अढ़ाई महीने बाद ही ये पौधे १–१॥ हाथ उंचे हो जायंगे। इस समय उनकी पत्तियां बहुत ही नरम और पतली होती हैं। ये पत्तियाँ अगर रेशमी कीड़ेको शैशवावस्थामें दी जायें, तो कोड़ेको रसा नामक एक प्रकारका रोग उत्पन्न हो जाता है। इस कारण उस समय पौधोंको एक बार जड़से छांट कर बीचके स्थानमें हल चलाना चाहिए। उसके बाद नये पौधे निकलेंगे, जो कि प्रथम कीड़ोंके पालनेमें काम आते हैं।

तूंतके खेतके लिए ताल या नालोंकी मिट्टीका अच्छा सार समझा जाता है। नीलकी सिटी प्रत्येक बीघामें पांच गाड़ी, सड़े गोबरका सार प्रत्येक बीघामें १० गाड़ी, कीड़ोंकी सड़ी मेंगनी प्रत्येक बीघामें दो गाड़ी, सोरा प्रत्येक बीघामें आध मन—इस प्रकारका सार ही तूंतकी खेतीके लिये अच्छा होता है। सारके बिना तूंतकी आबादीमें तेज नहीं रहता। इसके सिवा और भी कई तरहकी व्यवस्थाएं हैं। तूंतकी जमीनमें अकसर पानी नहीं दिया जाता। जहां पानी देनेकी सुविधा प्राप्त है, वहां पानी सींचनेसे वर्षमें दो बारसे ज्यादे पत्ते नहीं काटे जा सकते। अर्थात् अगहन, चैत्र, भाद्र और आषाढ़—इन चार महीनोंमें चार बार पत्ते छांट कर कीड़े पाले जाते हैं। पश्चात् माघी और बैशाखी कीड़े पालनेकी प्रथा भी कहीं कहीं पाई जाती है। काफी तौरसे आबाद करनेसे दो वर्ष बाद प्रत्येक बीघामें १ सौ मन पत्ते हो सकते हैं। कीड़ोंको १०० मन पत्ते

खिलानेसे पाँच मनके लगभग कोये पैदा हो सकते हैं। बीजके उपयुक्त कोये होने पर दो रुपये सेर बिक जाते हैं। अर्थात् २५) रु० खर्च करके एक बीघा जमीनमें १ वर्षमें १००) से ४००) रुपये तकके कोये प्राप्त हो सकते हैं। इस देशमें साधारण जिस ढंगसे खेती करते हैं, उसमें खर्च कुछ ज्यादा पड़ता है। परन्तु यदि तूतके पेड़ोंको बड़ा होने दिया जाय, तो फिर आबादीमें खर्च नहीं होता। अन्यान्य देशोंमें बड़े पौधोंकी पत्तियां खिला कर रेशमके कीड़े पाले जाते हैं। इस कारण इस देशकी अपेक्षा अन्य देशोंके रेशमके कोये सस्ते पड़ते हैं। यहां पर भी अन्य देशोंके तरह बड़े तूतके पौधे पैदा करने चाहिए। पेड़को बड़ा करनेके लिए चार पाँच वर्ष तक उसके पत्ते खर्चा न करने चाहिए। फिर पाँच वर्ष बाद पेड़ व्यवहारोपयोगी हो जाता है। परन्तु किसानोंके लिये ऐसा करना कठिन ही है। जमींदारोंको इस विषयमें ध्यान देना चाहिए। इससे जमींदारोंको यथेष्ट लाभकी सम्भावना है।

सब तरहके तूतके पेड़ कीड़ोंके लिये उपयोगी नहीं होते। बड़े बड़े काले फल देनेवाले जो पेड़ होते हैं, उससे कीड़ोंको सुविधा नहीं होती। पेटके बल रेंगनेवाले छोटे कीड़े इस पेड़की पत्तियां खा कर अक्सर कलसिया रोगसे मर जाया करते हैं। हां दूसरी जातिके कीड़े इसकी पत्तियां खा कर बहुत थोड़ा रेशम बनाते हैं। छोटे कीड़े बङ्गालके देशी शहतूतके सिवा अन्य किसी तूतकी पत्तियां खा कर काफी तौर पर कोये नहीं बना सकते। विलायती तूँत, चीनी तूँत, फिलिपाईन तूँत आदि कुछ श्रेणीके तूँतके पेड़ बड़े होते हैं। इनकी पत्तियां खा कर कीड़े उत्तम कोये बनाते हैं। बोनेका समय उपस्थित होने पर एक बोतलमें कपूरके पानीमें दो घंटे तक तूँतका बीज भिगो देना चाहिये। दो घंटे बाद बोतलमेंसे बीज निकाल कर फिर उन्हें बोना चाहिए। इस प्रकार बीज बोनेसे शीघ्र ही अंकुर निकलता है। साधारणतः पौधेकी छोटी छोटी डाली काट कर वही लगाई जाती है।

रेशम-कीटका विवरण।

ऊपरमें छोटा पिल्लू या देशी पिल्लू, चका कनेरी या मन्द्राजो पिल्लू, चीना और बुलु बड़ा पिल्लू इन पांच प्रकारके रेशमके कीड़ोंका उल्लेख किया जा चुका है। इनमेंसे चीना, बुलु और बड़ा पिल्लू मेदिनीपुर जिलेमें ही बहुतायतसे देखा जाता है। मुर्शिदाबाद और वीरभूम जिलेमें भी थोड़ा बहुत पाया जाता है। यह कीड़ा साल भरमें सिर्फ एक बार पैदा होता है। इसका कोया सुन्दर, सफेद और बड़ा होता है। बड़े पिल्लूका रेशम सबसे उमदा होता है। दुःखका विषय है, कि बड़े पिल्लूका कोया बनाना प्रायः उठ-सा गया है। और इसके रेशमकी रफ्तनी भी बंद हो गई है। बड़े पिल्लूसे जो कुछ रेशम पाया जाता है उसे देशी तांती अधिक मोलका कपड़ा बनानेके लिये खरीद रखते हैं। मेदिनीपुर अञ्चलमें सफेद, लाल, सब्ज और पीले रंगके बड़े पिल्लू देखे जाते हैं। बड़े पिल्लूकी प्रजापति चैत्रमासमें अंडा देती है। एक महीनेमें उस अंडेमेंसे कीड़े बाहर निकलते हैं।

बङ्गाल देशमें लोग पिल्लूको पालनेके लिये उपयुक्त घर बना रखते हैं। वह घर मिट्टीके बने होते हैं, कोई कोई डबल घेरा दे कर भी घर तैयार करता है। वह घर इस प्रकार बनाना चाहिये, कि उसमें जाड़ा या गर्मी घुस न सके। घरमें एक बड़ा दरवाजा और ऊपरकी ओर एक या दो झरोखे रहना आवश्यक है। घरमें किसी ओरसे मक्खी न आ सके, इस पर विशेष ध्यान रहे। इसके लिये झरोखे और दरवाजेके ऊपर दो चीक लटका देना उचित है। जिस समय मक्खीका अधिक उपद्रव रहे उस समय विशेष सावधानीकी जरूरत है। जिस ऋतुमें अकसर जिस मुखसे हवा बहती है उसके विपरीत मुखवाले घरमें पिल्लू पालना उचित है। पिल्लू जब कोयेको काट कर प्रजापतिरूपमें बाहर निकलता है, तब बीजोत्पादनके लायक होता है। प्रजापति कोषसे बाहर निकल कर ही स्त्री-पुरुषमें संगत होता है। वो एक दिनके भीतर ही अंडा पारता है। एक एक प्रजापति ४-५ सौ छोटे छोटे अंडे देती हैं। अंडे देनेके बाद ही कोषजीविगण प्रजापतिको मार कर घरसे निकाल देते हैं। सभी अंडे काममें आते हैं सो नहीं। कुछ अंडे तो फूटते ही नहीं, कुछ अंडोंको मकड़े खा

जाते हैं, कुछ टिकटिकिया और चूहेका भोजन हो जाता है। इस प्रकार जो बच जाता है उनमें भी सभी प्रजापतिके अंडेमें समान कोया नहीं होता। बड़े पिलूके सिर्फ चार प्रजापतिके अंडोंसे, निस्तारी पिल्लूके छःसे तथा छोटे पिलूके दश प्रजापतिके अंडोंसे एक सेर कोया हो सकता है।

शहतूतका पत्ता ही पिल्लूका जीवन है। अंडेसे जब पिल्लू निकलेंगे, तब डेढ़ मन कोयेका पिल्लू बड़े टोकरेके आधेमें रहेगा। डेढ़ मन कोया बनानेमें ४० बड़े बड़े टोकरेकी जरूरत होती है। प्रत्येक टोकरा अन्दाज ४ हाथ लम्बा और ३ हाथ चौड़ा रहेगा। यदि वह टोकरा गोल हो, तो उसका घेरा ३॥ हाथ होना उचित है। टोकरा छोटा होने पर परिश्रम भी अधिक लगता है। टोकरेमें पिल्लूको अलग अलग रखना चाहिये। इस समय शहतूतके जितने पत्ते टोकरेमें डाले जायेंगे, उतने ही पिल्लू बढ़ेंगे। ३० दिन पत्तोंको खा कर वे प्रायः १०० गुने स्थान छेंक लेते हैं। उन ३० दिनोंके मध्य पिल्लू ४ बार खोल छोड़ता है। एक एक खोल छोड़नेके बाद पिल्लू प्रायः ३ गुना बढ़ जाता है। अर्थात् जो पिलू पहले आधे टोकरेमें रहते हैं, काया-कल्प छोड़नेके बाद उन्हें डेढ़ टोकरेमें रखना होगा। दो कल्पके बाद ४॥ टोकरेमें, तीन कल्पके बाद १३ टोकरेमें और अन्तिम काया कल्प छोड़नेके बाद ४० टोकरोंमें उन्हें रखना होगा।

जाड़ेके समय ३० टोकरोंमें भी १॥ मन कोया तैयार होने लायक पिल्लू रखे जा सकते हैं। डेढ़ मन कोया तैयार करनेके लिये ३० मन शहतूतके पत्तोंको जरूरत होती है। यदि पत्ता अधिक हो जाय, तो कोई क्षति नहीं किन्तु उसमें खिचाव पड़नेसे भारी नुकसान होता है। डेढ़ मन कोयेके लिये बड़े पिल्लूकी १५० चोकड़ीके अंडे, निस्तारीकी २५० चोकड़ोंके अंडे और छोटे पिलूकी ४०० चोकड़ीके अंडे रखने होते हैं। जिस देशमें पत्ते अधिक मिलते हैं वहां इससे दूने अंडे रखनेमें भी कोई नुकसान नहीं। मुर्शिदाबादके लोग समझते हैं, कि ५०० निस्तारीकी चोकड़ीके वा छोटे पिलूकी ८०० चोकड़ीके अंडोंसे १॥ मन कोया निकाल सकें, तो काफी है। अंडोंके बदले कोया ला कर यदि अंडे दिलवाने हो, तो जितनी चोकड़ी कही गई है, उससे दूने कोयेकी जरूरत होगी। जिस देशमें शहतूतके पत्तोंका अभाव है वहां डेढ़ मन कोया बनानेके लिये ५०० निस्तारी कोयेके अंडोंकी आवश्यकता होती है।

पहले जो ४० टोकरोंकी बात लिखी गई है उन्हें ढकनेके लिये ८० पोठिया मछली पकड़नेके जालके समान मापसई जालकी जरूरत होती है। पिल्लूके ऊपर जाल बिछा कर उस जाल पर ताजी पत्तियां बिछा देनेसे पिल्लू नीचेकी मैली पत्तियोंसे निकल ऊपरको ताजी पत्तियां खाने आता है। तीन बार पत्तियां देनेके बाद पिलू समेत जालको एक दूसरे टोकरेमें रखना होता है तथा जिस टोकरेमें पहले पिल्लू था, उसकी मैल घरके बाहर ला कर साफ करनी होती है। दूसरे टोकरेके ऊपर जो पिल्लू रखा गया, उस पर भी एक जाल बिछा कर ताजी पत्तियां देनी होंगी। तीन बार पत्ते देनेके बाद अर्थात् एक दिनके बाद फिर ऊपरके जालके साथ पिल्लूको दूसरे टोकरेमें रखे और नीचेके जाल तथा टोकरेको बाहर ला कर मैल साफ करे। इस प्रकार प्रत्येक टोकरेके लिये कमसे कम दो जालकी आवश्यकता होती है।

दूसरे टोकरेके ऊपर पिल्लूकी संख्या यदि अधिक रहे, तो उन्हें दूसरे टोकरेमें रखना होता है। यदि देखा जाय, कि बहुतसे पिलू मैली पत्तियों पर निश्चलभावमें पड़े हैं, ऊपर उठने नहीं पाते, तब जानना चाहिये, कि वे काया-कल्प छोड़ते हैं। यदि कीड़े ऊपर चढ़ आवें, तो जाल न दे कर केवल पत्तियां देनी होंगी। पिलूका घर अधिक ठंढा होने पर और भी दो एक बार पत्ता खा कर वे रह सकते हैं। जाल उठा लेनेके बाद यदि नीचे थोड़े पिल्लू पड़े देखे जायं, तो उन्हें खूंटी द्वारा ऊपर चढ़ा कर ऊपरवाले पिलूमें मिला दें। बाद उस पर जाल बिछा कर पत्तियां दे दें।

पिलू जब बहुत छोटे रहते हैं, तब पत्तियोंको बहुत बारीक करके उन पर बिछा देना चाहिये। कीड़ेका आकार ज्यों ज्यों बढ़ता जायगा, त्यों त्यों पत्तीका टुकड़ा बढ़ाते जाना चाहिये। दो काया-कल्पके बाद बहुत बारीक डालियां तथा कोमल पत्तियां दी जा सकती

हैं। पिल्लूको पहले मुलायम पीछे कड़ी पत्तियां देनी चाहिये।

पहले जो कीड़ा निकलता है, उसे रूखी और उसके बाद निकले हुए कीड़े को यदि मुलायम पत्ता खानेको दी जाय, तो रसा नामक एक प्रकारका रोग होता है।

विलायती कीड़के अंडे अलग ही पाये जाते हैं। बड़े कीड़के अंडे कपड़े के ऊपर लगे रहते है। देशी कीड़के अंडे टोकरे पर कागजके ऊपर पाये जाते हैं। तूतियाके जलमें अंडे धो लेने होते हैं। अंडा जिस घरमें रहता है वह घर न अधिक ठंढा रहे और न गरम। छोटा पिल्लू, निस्तारी, मीना और बूण इन सब पिल्लुओंका शीतलग्रीष्ममें उतना नुकसान नहीं होता। छोटे पिल्लू निस्तारी आदिके अंडे फूटने पर उसके ऊपर छोटी छोटी पत्तियां काट कर बिछा देनी चाहिये। क्योंकि सवेरेसे शाम तक पिल्लू अंडेसे निकल आते हैं, इसलिये उस पर पत्तोंका बिछा रहना जरूरी है। अच्छे अंडेको अच्छी तरह रखनेसे दो ही दिनमें वे निकल आते हैं। पहले दिनके कीड़ेको नीचे और दूसरे दिनके कीड़ेको ऊपर रखना होता है। प्रतिदिन सवेरे, दोपहर और रातको ६ बजे पत्ता देना होता है। एक दिनके अन्तर पर दोपहरके समय पत्ता देना चाहिये। पीछे जाल दे कर टोकरेके परिवर्त्तन और पिल्लूके घने होनेसे पत्तोंका परिमाण घटा देना चाहिये। पिल्लू जब अंडेसे निकलता है, तब २३ या २४ दिनमें पत्ता खाने लगता है और कोया तैयार करता है। उस समय मूल पिल्लूको प्रतिदिन चार पांच बार पत्ता देनेसे १८।१६ दिनके मध्य पत्ता खा कर कोया तैयार कर सकता है। जाड़ेके समय अकसर ३०।४० दिनमें, किन्तु घर गरम रखनेसे २४।२५ दिनमें भी कोया तय्यार हो सकता है। पिल्लूके घरमें बहुत सावधानीसे और धीरे धीरे झाड़ू देना होता है। धूल उड़नेसे पिल्लूके कालशिरा नामक रोग होता है।

पिल्लूका रोग।

पिल्लूके तरह तरहके रोग होते हैं। उनमेंसे कटारोग ही बहुत कुछ संक्रामक है। परीक्षा कर देखा गया है, कि एक घरमें एक जगह १२ जातिका पिल्लू पाला जाता है। उनमें ११ जातिका पिल्लू विशुद्ध बीजसे और केवल एक जातिका पिल्लू कटारोगयुक्त बीजसे उत्पन्न होता है। इन बारह जातिके पिल्लुओंमें थोड़े ही समयके अन्दर रेंडीके पिल्लू और शहतूत पेड़के पिल्लूको छोड़ कर दूसरे सभी पिल्लू एकमात्र संस्रवसे कटारोगाक्रान्त हुए थे। अतएव रोगी पिल्लूको अच्छे पिल्लूके साथ नहीं रखना चाहिये। कालशिरा और रसारोगकी बात पहले ही लिखी जा चुकी है। नाना जातिके पिल्लू एक ही छोटे घरमें रखे देखे गये हैं। जो छोटा पिल्लू जितना जल्द रोगाक्रान्त होता है, निस्तारी पिल्लू उतना जल्द नहीं होता। फिर निस्तारी पिल्लू जितनी आसानीसे बीमार पड़ता है, बड़ा पिल्लू उतनी आसानीसे नही पड़ता। गृहपालित पिल्लू विशुद्ध वायु सेवन द्वारा सहजमें वैसे रोगग्रस्त नहीं होते। पालतू पिल्लूकी अपेक्षा जङ्गली पिल्लू स्वभावतः चञ्चल और बलिष्ठ होते हैं। फिर कोई कोई पालतू पिल्लू जङ्गली पिल्लूकी तरह देखनेमें लगते हैं। फ्रान्स देशमें मरिको वा काफी नामक एक प्रकारका पिल्लू देखा जाता है। वह घोर काला और बहुत बलवान् होता है। एशिया-माइनरके स्मर्ना नगरके समीप पुर्नाबत् ग्राममें पिल्लूके बीजका एक बड़ा कारखाना है। उस कारखानेमें पिल्लूके शरीरमें जिब्राकी तरह काला काला दाग देखा जाता है। इस जातिका पिल्लू बड़ा बलवान् और सहजमें रोगाक्रान्त नहीं होता। घरके भीतर पिल्लूका पालन ही पिल्लूके रोगका कारण है। प्रत्येक घरमें १६।१७ टोकरे न रख कर केवल ८।१० टोकरे रखनेसे तथा प्रत्येक टोकरेमें २।३ कार्षापण न रख कर डेढ़ या दो कार्षापण रखनेसे पिल्लू नीरोग और सबल रह सकता है। उपरोक्त कटा (*Pebrine*) रसा (Grasserie) और कालशिरा (Flacherie) रोगको छोड़ कर चूना वा छींट (Muscardine), लाली वा राङ्गी, माछी, कोयाकाटा कीड़ा वा कान कुटुर और सारे कीड़ा, गाजला कोया, डबल कोया वा गेंठे कोया आदि रोग होता है तथा पिपीलिका, मकड़े, टिकटिकी आदिका उत्पात पिल्लूका अनिष्टकर हैं।

१८४६ ई०में मेनभिल साहबने सबसे पहले कटारोगका बीज आविष्कार किया। किन्तु उस समय उन्होंने

इसको चूनारोगका बीज समझा था। पीछे १८६५।६६ ई०में पास्तुर साहबने विशेष परीक्षा द्वारा उसे चूनारोगका बीज न बता कर कटारोगकी बीज साबित कर दिखाया। किन्तु बंगालके रेशमजीविगण बहुत पहलेसे कटा और चूनरोगको भिन्न भिन्न समझते थे। कटारोगका बाह्यलक्षण यूरोपमें और बङ्गालमें एक सा नहीं है। बंगालमें साधारणतः निम्न प्रकारका लक्षण देखा जाता है—

१। अंडे फूटनेके समय ३० दिनके बाद हठात् बहुसंख्यक पिल्लूका प्राणनाश।

२। मृत्युसे पहले कीड़ेका वर्ण कटा और स्वच्छ।

३। आकारमें छोटा होता है अथवा नियमित पालन करने पर भी छोटा बड़ा दिखाई देता है। बङ्गालमें कीड़ेका रंग बाह्यलक्षणमें जैसा कटा होता है, विलायतमें वैसा ही कीड़ेके बाह्यशरीरमें गोलमिर्चके चूरकी तरह छोटा छोटा काला दाग दिखाई देता है। किन्तु अणुवीक्षण द्वारा देखनेसे दोनों स्थानके रोगोंके बीजमें पृथक्ता नहीं मालूम होती।

विलायत और अन्यान्य देशोंमें जहां सालमें सिर्फ एक बार कीड़े होते हैं, वहां आसानीसे कटारोग दमन किया जा सकता है। क्योंकि, यहां अंडे १० महीनेके भीतर नहीं फूटते, जिससे परीक्षा करनेका काफी समय मिल जाता है। किन्तु बङ्गालमें ८से १५ दिनके मध्य ही फूट जाता है इस कारण परीक्षाका समय नहीं रहता। कटारोगमें भी फिर तारतम्य है। यदि चोकड़ी वा प्रजापतिके परीक्षाकालमें सैकड़े पीछे ८०।९० मेंसे हर एकमें यदि कटारोगके अनेक बीज देखे जायं, तो उस प्रजापतिके अंडेसे कभी भी कीड़े नहीं हो सकता। फिर यदि उनमें २।४ कटाके बीज दिखाई दें, तो चोकड़ीके अंडेसे कोया हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। यही कटारोग चूना, रसा, कालशिरा और लाली आदि रोगोंको सहायता पहुंचाता है। इस कारण अणुवीक्षणयन्त्रके द्वारा परीक्षा कर सबसे पहले कटाका प्रतीकार करना उचित है। किस प्रकार कहांसे निर्दोष कीड़ामें कटारोग आता है, उसे कोई भी नहीं कह सकता। इसलिये जहां जहां बीजका कारखाना है वह वहां अणुवीक्षणयन्त्र रखना आवश्यक है। बिना परीक्षा किये एक भी चोकड़ी कारखानेमें पालना उचित नहीं। प्रत्येक बार परीक्षा करके अंडे रखना आवश्यक है। कटाका बीज क्या है उसका भी आज तक पता नहीं चला है। फिर कटाके बीचमें जो बहुत बारीक बिन्दु दिखाई देता है वही कटाका बीजाणु है। यह बीजाणु दीर्घजीवी है। सात आठ महीने तक नष्ट नहीं होता। चोकड़ी और कोयामें ही बीजाणु बहुतायतसे रहता है। इस कारण कीड़ेके पक जाने पर उन्हें चन्द्रकीमें रख कुछ दूर दूसरे घरमें रखना उचित है। चोकड़ीकी कटाई, आणुवीक्षणिक परीक्षा और कोया मजबूत रखना, यह सब क्रिया घरसे कुछ दूर दूसरे घरमें करनी चाहिये। रेशम कटाई करनेमें कोयाको सिद्ध करना होता है, क्या कटा, क्या चूना, क्या कालशिरा इन सब रोगोंके बीजाणु ५।७ मिनटमें जलमें सिद्ध हो कर मर जाते हैं।

सावधान रहनेके लिये निर्वाचनके बाद कीड़ेका घर बीजसे भिन्न होना उचित है। बीज जिस घरमें रखा जाता है वहां चूहे तथा दूसरे जंतुका उपद्रव हो सकता है। टोकरेके कोयेको चूहे वा चिउंटी न खा सके इसके लिये कीड़ेके घरमें जैसा बन्दोबस्त रहता है बीजके घरमें भी वैसा ही बन्दोबस्त रखना उचित है। कटारोगकी परीक्षा करनेमें जिस दिन चोकड़ी ढक कर रखी जाती हैं उसके पांच दिन बाद परीक्षा शुरू करनी होती है। परीक्षाके समय जो बीजाणु पूर्ण अवयवको प्राप्त हुए हैं उन्हें चुन लेना होगा। कालशिराके बीज, रसाके दाने और चूनेके बीजकी ओर कुछ ध्यान नहीं देना होगा। कटा-बीजकी परीक्षा बहुत सहज है। अभ्यास हो जानेसे प्रतिदिन ३०० चोकड़ीकी परीक्षा हो सकती है। कटारोगका बीज पकने पर अनुवीक्षणयन्त्र द्वारा ६०० गुना बढ़ कर ठीक तिलके जैसा दिखाई देता है। उस बीजको पकनेमें १०से २० दिन लगता है। किंतु उसके साथ यदि कालशिरा रहे, तो १० दिनके भीतर ही कटा-बीज पक जाता है। अंडेके दोषसे कटा रोग होता है सो नहीं, टोकरेमें, घरमें, चंद्रकी-

में, लाट कोयेकी ढेरमें, यहां तक विशुद्ध अंडेमें भी कटारोग हो सकता है। इस कारण परीक्षित अंडे और घर तथा टोकरे आदिको तूतियाके जलमें धो कर कीड़ा पालना उचित है। कीड़के अंडेसे निकलनेके पहले चन्द्रकीको उत्तप्त कर उसमें भी तूतियेका जल देना चाहिये। कटारोग खास कर शीतकालमें ही दिखाई देता है। दूसरे समय कटारोगका वीज कीड़के मध्य प्रच्छन्नभावमें रह कर अन्यान्य रोग उत्पन्न करता है। जिस अंडेमें कटारोग नहीं है उस अंडेका कीड़ा पोसनेसे अन्यान्य रोग नहीं होता। कटायुक्त वीजसे कीड़ा यदि २५ दिनके अन्दर पक जाय, तो कुछ कोया पाया जा सकता है।

चूनारोग होने पर अनेक समय गन्धक जला कर उसे दूर करना होता है। रहा अवस्थामें ही चूनारोगका वीज कीड़के शरीरमें उत्पन्न होता है। यह रोग सबसे अधिक संक्रामक है। कटारोग जिस प्रकार कायाकल्प शेष होनेके बाद ही दिखाई देता है, चूनारोग उस प्रकार दिखाई नहीं देता। पहले पहल जिस दिन कसारके मध्य २१ कीड़ा दिखाई देगा उसी दिन सभी टोकरोंका मैल अच्छी तरह साफ कर देना उचित है। किसी टोकरेमें मरा हुआ कीड़ा रहने न पावे, इस पर विशेष ध्यान रहे। प्रथम दिन मैल साफ करनेके बाद ही कीड़के घरमें पत्ता न दे कर तूतियेका जल छिड़क देना उचित है। आध सेर गंधक जला कर दरवाजा झरोखा ४।५ घंटे तक बंद रखना चाहिये। पीछे शहतूतका पत्ता देनेसे चूनारोग नष्ट होता है।

चूनारोगके बाद ही रसारोग कीड़के पक्षमें अनिष्टकर है। यूरोपमें रसारोगसे कीड़का उतना नुकसान नहीं होता। इस कारण यूरोपीय रेशमतत्त्वविदोंने इस सम्बन्धमें कोई आलोचना न की। रसारोग क्यों होता है यह भी यूरोपमें किसीको मालूम नहीं। किन्तु इस देशमें कभी कभी रसारोगसे सभी कीड़े मर जाते हैं। इस कारण इस देशके रेशमकारियोंने रसारोगके लक्षण अच्छी तरह जान रखे हैं। यहां अगहनसे वैशाख तक प्रायः अनावृष्टिके कारण वायु खूब सूखी रहती है। २।३ मास वृष्टि न हो कर यदि हठात् एक दिन अत्यन्त वृष्टि हो जाय, तो सभी कीड़े रसासे मर जाते हैं। फिर चार काया-कल्प होनेके समय यदि एक भी कीड़े न मरे, तो पकनेके समय २४ कीड़में रसारोग होता है। पकनेके समय इस प्रकार यूरोपमें भी दो चारको रसारोग होते देखा जाता है। अधिक दिन वृष्टि न हो कर यदि एक दिन हठात् वृष्टि हो जाय, तो कीड़को बड़े शहतूतके पेड़की पत्तियां देनेसे रसारोग नहीं होता। रोजके पिलूको पत्ता देनेके समय कोमल पत्तोंको न दे कर कड़ा पत्ता देनेसे भी उस कीड़में रसा होनेकी सम्भावना नहीं रहती। इस कारण रेशमकी खेती करनेवालोंको बड़ा शहतूतका पेड़ रखना आवश्यक है। रोजके कीड़को छायास्थानका पत्ता खिलानेसे रसा, लाली और कालशिरा, ये तीनों ही प्रकारके रोग होते हैं। जिन सब कारणोंसे रसा होता है, उनसे कालशिरा रोग भी हो सकता है। इस कारण यूरोपके पण्डित जो दोनों रोगको एक बतलाते हैं सो उनकी भूल है। रसा संक्रामक नहीं है, कालशिरा ही संक्रामक है।

बङ्गालमें आठसे पन्द्रह दिनके मध्य अंडे फूटते हैं, इस कारण बड़ कीड़के सिवा दूसरे कीड़का अंडा सिझाया नहीं जा सकता। किन्तु बिलायतमें १० मास तक अंडेको संग्रह कर रखना होता है। इस समय अंडेका यत्न नहीं करनेसे वह सिझाया जा सकता है। कहीं धूप और वायुमें भी सुखाया जा सकता है। ऐसे दूषित अंडोंसे जो कीड़ा होता है उसमें अकसर कालशिरा रोगकी उत्पत्ति हुआ करती है। किन्तु उन्हें सावधानीसे रखने अर्थात् तूतियाके जलमें धो लेनेसे कालशिरा रोग नहीं हो सकता। परिपाकशक्तिके ह्रास, आंतमें रसाल वा दुष्पाच्य पत्रके रहने तथा चमड़ेसे वाष्प निकलनेमें बाधा होनेसे कीड़के अन्त्रमें कालशिराका वीजाणु उत्पन्न होता है। फिर शहतूतके पत्तोंको जलमें भिगो रखनेसे भी कालशिराका अणु उत्पन्न होता है। कीड़को कालशिरा हुआ है वा नहीं, इसका पता लगानेके लिये उसकी आँतके रसको अणुवीक्षणयन्त्र द्वारा परीक्षा करना उचित है। यदि आंतके रसमें कालसिराका अणु रहे, तो कालशिरा नहीं हुआ है और यदि अणु

रहे, तो कालशिरा निश्चय हुआ है ऐसा जानना होगा। किसीका कहना है, कि कालशिरा रोगके वीजाणु एक ही प्रकारके हैं। फिर कोई इस जातिके रोगके वीजाणु दो प्रकारके बतलाते हैं। एक प्रकारके अणुसे गैटीन रोग होता है। बङ्गालमें उसको सलफा, तातके वा हाँसा कहते हैं। कालशिरा रोगको भिन्न भिन्न अवस्था आलोचना कर वैज्ञानिकोंने स्थिर किया है, कि हाँसा कोड़ा और कालशिरा कोड़ा एक ही अणुसे उत्पन्न होता है। अर्थात् इन दो रोगोंके संस्रवसे जो अणु देखे जाते हैं वह एक ही अणुकी विभिन्न अवस्था है। कालशिराके कीड़ाके मध्य जैसा बिन्दुवत् अणु रहता है, हाँसा कीड़ाके मध्य भी वैसा ही सूत्रखण्डकी तरह अणु देखा जाता है। हाँसा कीड़ाके मर जानेसे वह कालशिरा कोड़ाकी तरह काला और पूतिगन्ध युक्त होता है। दोनों प्रकारके कोड़ोंके मरनेसे कुछ पहले दोनों ही रसमें छोटे छोटे सूत्रखण्डवत् अणु चलाचल करते हैं, अणुवीक्षणयन्त्र द्वारा वह दिखाई देता है। कभी कभी कालशिरा और कटारोग एकत्र हो कर पकनेके पहले ही दिन कोड़ा हठात् मर जाते हैं।

कीड़ाका पालन।

सभी कोड़ेकी पालनप्रथा एक सी नहीं है। विभिन्न जातिके कुछ कीड़ाओंकी पालन प्रथा नीचे लिखी जाती है।

बड़ा कोड़ा—इस देशमें जितने प्रकारके रेशमका कोया होता है उनमें बड़ा कीड़ा ही सर्वश्रेष्ठ है। वीरभूम और मुर्शिदाबाद जिलेके बड़े कोड़ेका कोया सफेद और देखनेमें बहुत सुन्दर होता है। मेदिनीपुर-प्रान्तमें श्वेत पीत, हरित, पाटल इन चार वर्णोंके कोये देखे जाते हैं। बड़े कीड़ेके अंडे दश महीनेमें फूटते हैं। उस अंडेको कपड़ेके ऊपर रखना उचित है। १५ दिनके बाद उसे जलमें धो कर कपड़े परसे अच्छे अंडोंको उतार लेना होता है। पीछे छायामें सुखा कर हंडोमें रख उसका मुंह अच्छी तरह बंद कर देना होता है। हंडीमें रखनेके पहले पेंदीमें रुई बिछा देना उचित है। मशहरीके कपड़ेकी दो थैलीकी आवश्यकता होती है। एक एक थैलीमें २ छटांकका अंडा रखे। थैलीमें अंडा एक दूसरेसे सटने न पावे। हंडीके मुखसे थैलीका फासला आठ अंगुल रहना चाहिये। उस घरमें अधिक वायुका संचालन करना और आग जलाना मना है। धूप भी उस घरमें न घुस सके। जो घर खूब ठंढा हो उसीमें थैली समेत हंडी लटका देनी चाहिये। १५ दिनसे लगायत दो मास तक ठंढ लगानेके बाद रातमें दश बार ७५ डिग्री उत्ताप रखनेसे अंडा अच्छी तरह फूट जाता है। इच्छा करने पर बहुत थोड़े समय कीड़ामें भी बड़े कोड़ेका अंडा फोड़ा जा सकता है। अत्यन्त ठंढा लगानेके बाद उत्तापमें रखनेसे असमयमें अंडा फूट सकता है। सद्यप्रस्तुत बड़े कोड़े वा बिलायती कोड़ेके अंडेको शुद्ध हाइड्रोक्लोरिक एसिडमें पांच मिनिट डुबो रखे। पीछे जलमें धो कर सुखा ले और गरम स्थानमें रखे। इससे छोटे कोड़ेके अंडेकी तरह वह दश बारह दिनके भीतर ही फूट जाता है। वैशाख और जेठके महीनेमें अधिक गरमी पड़ती है, इस कारण बड़ा कीड़ा पोसना उचित नहीं।

बिलायती कीड़ा—बिलायती कोड़ाका पालन बहुत कुछ बड़े कोड़ाके ही जैसा होता है। प्रभेद इतना ही है, कि बड़े कोड़ाके अंडेको ६० से ५० डिग्री तक फारेनहीट देना होता है। किन्तु बिलायती कीड़ोंके अंडेको ४० से ३० डिग्री तक ठंढमें रखना होता है। इस कारण ग्रीष्मप्रधान देशमें बिलायती कीड़ाका पालना सुविधाजनक नहीं है। अधिक ठंढ पड़नेसे बिलायती कीड़ा हिमको दार्जिलिङ्ग वा अन्य किसी उच्च शैल पर भेज देते और २।१ मासके बाद निम्नप्रदेशमें ला गरम जगह पर रख देते हैं। इससे १०।१२ दिनके भीतर ही अंडा फूटने लगता है। दूसरे समय बर्फका कलके साथ बन्दोबस्त कर सभी समय ३० या ४० डिग्री ठंढ देनी होती है। मन्द्राज शहरके बर्फके कारखानेमें बिलायती कोड़ा पाला जाता है। निम्नबङ्गमें वैशाख, जेठ और भादोंके महीनेमें बिलायती कीड़ा पालनेसे वे प्रायः कालशिरारोगसे मर जाते हैं। फिर इस देशके शहतूतका पत्ता खिला कर यदि बिलायती कीड़ा पालना हो, तो बड़े बड़े शहतूतका पेड़ लगाना उचित है। ऐसा कर सकनेसे छोटे कीड़ा या निस्तारी कीड़ाकी अपेक्षा बिला-

यती कीड़ा पालनेमें अधिक लाभ है। फिर छोटे कीड़ा-के पक्षमें बड़े शहतूतका पत्ता नितान्त अनिष्टकर है। इस कारण जो बड़े बड़े शहतूतका पेड़ लगा सकें उनके लिये विलायती कीड़ा पालना उचित है। सूक्ष्मता के सम्बन्धमें बङ्गालदेशका रेशम श्रेष्ठ है सही पर विलायती कीड़ामें लाभ अधिक है। इस देशके पांच छः रेशमके कोयोंसे व्यवहारोपयोगी जितना रेशमका सूता बनता है विलायती कीड़के तीन चार कोयोंको एक साथ काटनेसे उतना ही रेशम बन सकता है। विलायती कीड़ा ही या बड़ा कीड़ा, दोनोंके अंडे होनेके बाद कमसे कम डेढ़ मास तक गरम स्थानमें रख शीत लगानेके लिये बरफके बकसमें या शीतप्रधान पहाड़ पर रखना उचित है। विलायती कीड़ाके पालनेके विषयमें कोई विशेष नियम नहीं है। केवल बड़े पेड़का पत्ता अथवा कड़ा पत्ता खिला सकनेसे विलायती कीड़ासे अच्छा कोया मिलता है। ठंढ खिलानेके पहले बड़े कीड़े वा विलायती कीड़े अंडेको तूतिया के जलमें डुबो रखनेके बाद परिष्कार जलमें धो लेना उचित है।

छोटा कीड़ा और निस्तारी कीड़ा—विलायती और बड़े कीड़ेको जिस प्रकार शीत खिलाया जाता है। निस्तारी; छोटे कीड़ा और चीनाके कीड़ेको उस प्रकार नहीं खिलाया जाता। ये सब कीड़े क्या शीत, क्या ग्रीष्म सभी समय फूटते हैं। इन सब कीड़ोंका पालन करना बहुत सहज है; इस कारण विलायती और बड़े कीड़ेमें उत्कृष्ट रेशम होने पर भी इस देशके कृषक साधारणतः छोटे कीड़ेको ही पालते हैं। सभी प्रकारके कीड़ेको अंडेसे निकलनेके पहले तूतियाके जलमें धो लेना उचित है।

छोटा कीड़ा, निस्तारी कीड़ा और बड़ा कीड़ा पकने पर सहजमें पहचाना जाता है। पके कीड़ेको चुन कर कोया प्रस्तुत करनेके लिये चन्द्रकी ऊपर रखना होता है। फिर चन्द्रकीके ऊपर रखनेसे भी उतना उत्तम कोया तैयार नहीं होता। पके विलायती कीड़े प्रायः चन्द्रकीके ऊपर चलते हैं और सुविधा पानेसे दीवार पर चढ़ कर कोया बनाते हैं। इस कारण इस कीड़ेका कोया बनानेके समय बड़ी सावधानी रखनी होती है। पत्ता देनेके समय जो पिल्लू पत्तेके ऊपर न रह कर टोकरेके चारों तरफ आ जाते हैं उन्हें पक्का समझना चाहिये। उन्हें चन्द्रकीके नीचे रख देनेसे वह कोया तैयार करता है। अधिकांश बलवान् कीड़ा घरसे भागनेकी कोशिश करता है। किन्तु कालशिरा रोगग्रस्त होने पर वह नहीं भाग सकता।

टसर।

शाल, आसन, अर्जुन, हर्रे, बहेड़ा, बेर, देशी आवलूस, महुआ, कम्भि, ढाक, लोध, शीमर, जामुन, पीपल, फालसा, रेंडी, सेगुन और बादाम, इन सब वृक्षों पर स्वभावतः ही टसरके कीट उत्पन्न होते हैं। जहां स्वभावतः ही टसरके कीट होते हैं वहां नया पेड़ गाड़ देनेसे उस पेड़की पत्ती खा कर भी कभी कभी टसर-कीट कोष प्रस्तुत करते हैं। जिस पेड़की पत्ती कड़ी या तिक्त गंधवाली हो या छूनेसे कष्ट होता हो वे सब पत्तियां टसरके कीट नहीं खाते। अगर उन्हें एकदम छोटे पौधे पर छोड़ दिया जाय, तो भी वे उसकी पत्ती नहीं खाते। ये स्वभावतः बड़े पेड़की रूखी पत्ती खा कर कोष बनाते हैं। टसर-कीट भी जंगली और पालतू दोनों अवस्थामें पाये जाते हैं। संथाल लोग प्रधानतः ३ ऋतु वा बन्दमें टसरकीट पालन करते हैं। प्रथम वा धुरिया बन्दमें वैशाख मासके आरम्भमें टसर-कीट पालन करना होता है। क्योंकि, उस समय पहले सालके सञ्चित अधिकांश बीजके कोयेसे पतङ्ग काट कर बाहर निकलता है। जिस रातको पतङ्ग निकलता है उसके दूसरे ही दिन वह अंडा पारता है। अंडा फूटनेमें केवल आठ दिन लगता है। पीछे वे सब कीट फूट कर प्रायः दो मास पत्ते खाते और बादमें कोया तैयार करते हैं। इस कोयेमें जो कीट रहता है वह बहुत दुर्बल होता है। जिस कोयेके मध्य सबल कीट रहते हैं, वे प्रायः काले होते हैं। बर्सातो बन्दका जो छोटा छोटा और सफेद कोया बीजके लिये चुन लिया जाता है 'लारिया' कोया कहते हैं। लारिया कोयासे ६वीं या ७वीं जेठको कोयां काट कर प्रजापति बाहर निकलता है। दूसरे ही दिन वे अंडे देते हैं। आठ दिनके बाद ही अंडे फूटने लगते

हैं। अनन्तर वे सब कीट डेढ़ मास पेड़ पर रह कर पत्ते खाते और आषाढ़के शेष या श्रावणके आरम्भमें कोया तैयार करते हैं। बरसाती बन्दका लारिया कोया पीछे तृतीय बन्द अर्थात् 'जाडुई' बन्दके बीजके लिये रखा जाता है। जाडुई बन्दके उपयुक्त अंडेसे २०वीं या २१वीं श्रावणको प्रजापति बाहर निकलता है। उसके दूसरे दिन वे सब प्रजापति भी अंडे देते हैं। पहलेकी तरह ये अंडे भी आठ ही दिनमें फूट निकलते हैं। दो मास भोजन कर वे आश्विन मासके अन्तिम सप्ताहमें कोया तय्यार करते हैं। कीटावस्थामें टसर-कीटको दिनरात बाहरके पेड़ पर रखना होता है। दूसरे समय उन्हें घरके भीतर रख सकते हैं। अधिक बीज-का कोया यदि रखना हो, तो उसे घरके बीचमें न रख कर बाहर एक बांसके ऊपर रखना चाहिये। धूप और वर्षासे बचानेके लिये अंडोंके ऊपर एक खड़की छौनी कर देनी चाहिये। जिस दिन दो प्रजापति बाहर होते देखे जायं उसी दिन बांस झुका कर कोयेको धनुषके आकारमें बांध कर लटका देना होता है। रातके ९ या १० बजे अंडे फोड़ कर प्रजापति बाहर निकलते हैं। बाहर होते ही नर-प्रजापति उड़ जाते हैं और मादा धनुषके ऊपर बैठ जाती है। रातके १२ से ३ बजे तक नर प्रजापति भी उक्त धनुष पर बैठते हैं। जो सब उड़ गये थे, वही लौट कर बैठते हैं या नहीं, कह नहीं सकते। प्रातः काल होने पर धनुषको घरके भीतर रख देना चाहिये। दो पहरको मादा प्रजापतिको बड़े बड़े पत्तेके दोनेमें रख कर उसका मुंह बंद कर देना चाहिये। दोनेमें वह जितनी बार उड़नेकी चेष्टा करेगी, उतनी ही बार वे अंडे देंगी। जंगली अथवा स्वाभाविक अवस्थामें प्रजापति एक पेड़से दूसरे पेड़ पर जा कर २१४ अंडे पारती हैं। दोनेमें अंडे पारनेके पांच दिन बाद दोनाको खोल कर प्रजापतिको फेंक दे और अंडोंको सावधानीसे उठा रखे। पीछे उसके ऊपर जो धूल आदि बैठ गई है, उसे धीरे धीरे फूंक कर उड़ा देना चाहिये। बादमें उसे दोनेमें रख किसी पेड़ पर लटका दे। चिउंटी आदिसे बचनेके लिये पेड़के तनेमें मिलावेका तेल लेप देवे। आठवें दिनमें अंडे फोड़ कर कीड़े निकलने लगेंगे। इस समय कीटपालक-को सारा दिन पेड़के नीचे बैठ चौकसी देनी होती है। सन्थाल लोग तीर धनुष ले कर पेड़के नीचे बैठते हैं। दोनेको वृक्षको डालमें सटा कर बांध देना चाहिये जिससे कीड़े डालकी पत्ती आसानीसे खा सकें। उस डालकी कुल पत्ती खा लेनेके बाद कीड़े समेत डालको काट कर दूसरे पेड़की पत्तीमें लगा देना उचित है। पेड़की पत्ती नितान्त सरस होने अथवा सूर्यका उत्ताप अत्यन्त प्रखर होनेसे टसर-कीटमें रसारोग होता है। इस रोगसे अधिकांश कीड़े मर जाते हैं। बीच बीचमें वृष्टि होनेसे ही वे बच सकते हैं।

रेंड़ीकी पत्तियां खा कर जो सब कीड़े निकृष्ट जातिके कीड़े तैयार करते हैं उन्हें एण्डि कहते हैं। एण्डीके कोयेकी कताई नहीं होती। एक एक कोयेसे एक एक भी सूता नहीं निकलता। धुनिया और पिंजिया कपास-की तरह इसमेंसे सूता निकालना होता है। एण्डीका सूता पशम कपास यहां तक कि गरदके सूतेसे भी चिमड़ा होता है। एण्डीके अंडेमें घोर पाटकिला रंग-का कोया देखा जाता है। इस पाटकिला रंगके कोये-का परिमाण जितना कम हो उतना ही अच्छा। यूरोपमें एण्डीके कपड़ेकी अपेक्षा एण्डीके कोयेकी ही अधिक रफ्तनी होती है। पाटकिला कोयेमें मिलावट देनेसे उतना मोल नहीं होता। पाटकिला कोयेसे जो सूता बनता है उसे परिष्कार कर सफेद करना कठिन और व्ययसाध्य है।

पिल्लू कीटके जिस प्रकार कालशिरा और कटारोग होता है आसामके एण्डी कीड़ेके भी उसी प्रकार काल-शिरा और कटारोग होते देखा जाता है। उन दोनों रोगोंसे अधिकांश एण्डी कीड़े मर जाते हैं। बगुड़ा और कोचबिहारका एण्डी-कीट आसामके एण्डीकोटसे सबल होता है। वहां आज भी कटारोग घुसने नहीं पाया है। एण्डिकीटका पालन आसाम देशकी एक प्रधान उपजीविका है। पिल्लूका पालन करनेके समय जिस उपायसे मक्खीका उत्पात रोकना होता है, एण्डि कीटके पालन-कालमें भी उसी उपायका अवलम्बन करना चाहिये। पिल्लू और एण्डी-कीटका एक ही नियमसे पालन

करना होता है। शहतूतका कोड़ा जब कोया बनाने लायक होता है तब जिस प्रकार उसे सहजमें पहचान कर टोकरेसे अलग किया जाता है, एण्डी-कीटके कोया बनाने लायक होने पर वह इस प्रकार पहचाना नहीं जा सकता। इस समय पिल्लू कीटको चन्द्रकीके मध्य रख दिया जाता है, किन्तु एण्डिकोया बनानेके लिये वह उपयुक्त नहीं। विलायती पिल्लूका कोया बनानेके लिये जैसा प्रबन्ध करना होता है, एण्डीकोया बनानेमें भी वैसे ही प्रबन्धकी जरूरत है। जो कीड़ा टोकरेसे बाहर जा कर कोया बनाता है वह स्वभावतः ही अधिक सबल है। बीजके लिये उनमेसे बिलकुल सफेद कोया निकाल लेना उचित है। शहतूत पिल्लूके कोयेसे प्रजापतिको बाहर होनेमें ८ से २० दिन लगता है। किन्तु इस देशमें एण्डीके कोयेसे प्रजापतिके निकालनेमें ग्रीष्मकालमें १५ दिन और शीतकालमें ३० दिन लगता है। एण्डीकोयेकी कताई नहीं होती इस कारण सभी अंडोंसे प्रजापतिको बाहर निकाल देना उचित है। बहुतेरे एण्डीके कोयेको धूपमें सुखा कर भीतरमेंके जीवन्त कीट मार डालते हैं। इस प्रकार मरे हुए कीट समेत २००० से २५०० कोयोंसे एक सेर होता है, किन्तु जीवित कीड़े रहनेसे ७००।८०० कोयेसे ही सेर हो जाता है। लाट एण्डिकोयेकी दर १०० रु० मन होनेसे सूखे कीड़े समेत कोयेका दाम सिर्फ २० रु० होता है। एण्डिकोयेसे प्रजापतिको बाहर निकाल देनेसे वह बहुतसे काममें आता है। हंस-मुर्गे आदि उन्हें बड़े चावसे खाते हैं। खादकी ढेरमें गाड़ देनेसे खादकी तेजी बढ़ती है। कुकी आदि कोई कोई असभ्य जाति कोयेसे कीटको निकाल उन्हें पका कर खाती है। एण्डीका लाटकोया रेशमके लाटकोयेके जैसा सहजमें काता नहीं जाता। लेकिन क्षार-मिश्रित जलमें २।३ घण्टा सिद्ध कर पीछे उसे धो कर सुखा लेनेसे रेशमके लाटकी तरह सहजमें कताई हो सकती है। केलेका पत्ता अथवा किसी भी नये पेड़का क्षार व्यवहार करना उचित है। रेशमके लाट कोयेकी कताई कर जितना लाभ होता है, एण्डीकी कताई करके भी उतना ही लाभ हो सकता है। एण्डी-सूता मटके सूतसे कहीं सक्त होता है। वह ७।८ रु० सेर बिकता है। टसर कोयेका लाट एण्डी कोयेसे सहजमें काता जाता है। किन्तु उसे भी कुछ काल क्षार-जलमें सिद्ध किये बिना सहजमें सूता नहीं निकलता। इस देशमें जितने प्रकारका रेशमी सूता बनता है उनमें कटे सबसे सस्ता है। केवल सस्ता ही नहीं उसका कपड़ा भी टिकाऊ होता है। एक एक कपड़ा ६।७ वर्ष रहता है। १० गज लम्बा और एक गज चौड़ा कटका थान ५।६ रु०में मिलता है।

रेशम कताई करनेका उपाय।

कोयेको धूपमें सुखा कर अथवा कार्बन बाइसालफाइड दे कर मार देना होगा। वर्षा छोड़ कर अन्य समयमें भांप देनी होती है। जहां कोयेकी कताई अधिक होती है वहां भाप देनेके लिये तुम्बुलकी आवश्यकता होती है। तुम्बुलमें ५ मिनट १६° ०° डिग्री उत्तापमें रख देनेसे कोयेमेंका कीड़ा निश्चय ही मर जाता है। तुम्बुल करनेके बाद एक दिन धूपमें अच्छी तरह सुखा लेना होता है।

इस देशमें कोयेकी कताई कर सूता निकालनेके लिये तीन आयोजनकी आवश्यकता होती है। १ला, एक घाई या गरम जलका बरतन जहां कोया घूमता है और सूता निकलता है। २रा एक चस्मा अर्थात् दो लौहशलाके प्रान्तभागमें संलग्न दो छोटा और सच्छिद्र मिट्टीका बरतन। जिस काष्ठ-फलकके सामने वह दोनों शलाका संलग्न रहती हैं उसीके दूसरे भागमें और भी दो पीतल-की शलाका सीधी खड़ी रहती है। ३रा तविल या चरखी। इस चरखीमें रेशमकी खाई अटका कर हत्थेसे घुमाने पर घाईके कोयेसे सूता आप ही खुलने लगता है। एक कोया खतम होने पर दूसरा कोया फौरन उसी जगह रखना होता है तथा उसकी भी घाई पहलेकी तरह लगा देनी होगी। चरखीके ऊपर दो सुतली टीक एक ही जगह पीछे सट जाती है, इस कारण उसके उपरी भाग पर एक दण्ड जोतेके साथ घूमता रहता है। जो दण्ड इस प्रकार घूमता रहता है उसके ऊपर दो कांचकी छोटी शलाका खड़ी रहती है, इस कारण दण्ड बायें और दहिने घूमता है। इस प्रकार घूमनेसे दोनों सुतली चरखीके ऊपर एक ही जगह न पड़ कर दो तीन इंचके फासले पर पड़ती है।

विलायतमें रेशम कातनेकी तीन प्रणाली प्रचलित देखी जाती है,—१ इटाली प्रणाली, २ फरासी प्रणाली, ३ रोटेलिनो प्रणाली। इटली प्रणाली द्वारा कताई करनेसे एक सूतके साथ निकटस्थ सूतका सम्बन्ध नहीं रखना होता है। यहां तक, कि कताई करते करते सूत टूट जाने पर उसे फिर जोड़नेकी जरूरत नहीं होती। इस प्रणालीसे सूत निकालनेमें दो छोटे छोटे कांचके चक्केका प्रयोजन होता है। बीच बीचमें चक्केके फूट जानेका डर होता है। चक्केके फूट जानेसे सब गुड़ मिट्टी। फरासी प्रणाली प्रायः बङ्गदेशकी प्रणाली-सी है। इसमें आस पासके दो सूतेको बदल कर कताई करनी होती है। यह प्रणाली बहुत सहज है, इस कारण सभी इसे काममें लाते हैं। रोटेलिनो गायवियाटी प्रणाली इटलीसे भी जटिल है। इस प्रणालीमें एकही सूत दो भिन्न भिन्न स्थानमें बदल कर कताई करनी होती है। इसमें चार बहुत बारीक कांचके चक्केकी जरूरत होती हैं। अधिक संघर्षण द्वारा शेष सूतोंको दृढ़ और सुगोलभावमें सम्मिलित कर सूता प्रस्तुत किया जा सकता है, इस कारण यह जटिल प्रणाली काममें लाई जाती है। इससे उत्तम सूत तैयार होते हैं सही, पर इसके व्यवहारमें बहुत झंझट है। बङ्गदेशको प्रणाली बहुत सहज और अल्प व्ययसाध्य है। रेशमको कताईके लिये अभी यूरोपमें अनेक प्रकारकी कलें बन रही हैं। मालदह अञ्चलमें सालमें प्रायः २००० मन खमरू रेशम तैयार होता है। वीरभूम जिलेमें भी जहां जहां कीड़ा पाला जाता है, वहां थोड़ा बहुत खमरू तैयार होता है। मालदहके रेशमसे वीरभूमका खमरू खराब होता है। मुर्शिदाबाद जिलेमें काञ्चीके निकट बसोया, विष्णुपुर आदि ग्रामोंमें जो पट्टवस्त्र बनते हैं, वे वीरभूमके खमरू रेशमसे; किन्तु उस जिलेके मिर्जापुर आदि ग्रामोंमें जो सर्वोत्कृष्ट कपड़ा बुना जाता है उसमें मालदहके रेशमका ही व्यवहार होता है।

रेशमका इतिहास।

जनसाधारणका विश्वास है, कि चीनदेश ही रेशमका प्रथम जन्मस्थान है। इसी देशसे भारतवर्ष और यूरोपमें रेशमकी रफ्तनी हुई है। किन्तु जब इस देशके आदमी चीनका नाम तक भी नहीं जानते थे, उसके भी बहुत पहले भारतमें रेशमका व्यवहार प्रचलित था। हम लोगोंके देशमें धर्म कर्ममें देशजात द्रव्यके सिवा विदेशी द्रव्यको काममें नहीं लाते थे। यागयज्ञादि कर्मके समय सभी जगह इस वस्त्रका व्यवहार देख कर कोई कोई कहा करते हैं, कि रेशम यदि विदेशी होता तो इस देशके लोग कभी भी धर्म कर्ममें उसका व्यवहार नहीं करते। कोई कोई "क्षौमे वसने वसाना" इत्यादि वैदिक प्रमाण उद्धृत कर विवाहमें व्यवहृत उक्त क्षौम वस्त्रको ही रेशमी वस्त्र समझते हैं। किन्तु प्राचीन वैदिकसंहितादिमें क्षौम शब्दका उल्लेख नहीं देखा जाता। परवर्त्ती वैदिक और स्मृतिसाहित्यमें जहां क्षौमवस्त्रका उल्लेख है वहां प्राचीन टीकाकारोंने क्षौम शब्दका शण निर्मित वस्त्र अर्थ लगाया है। इस हिसाबसे धर्मशास्त्रमें पट्टवस्त्रके व्यवहारका प्रसङ्ग रहने पर भी वैदिककालमें रेशमका प्रकृत व्यवहार था वा नहीं, संदेह है।

अथर्ववेदीय कौशिकसूत्रमें "क्षौमिकीं वैश्याय" (५७।३) अर्थात् वैश्याको क्षुमानिर्मित मेखला दे। यह क्षौम शब्द देख कर भी कोई कोई "रेशम" की कल्पना करते हैं। किन्तु मनुसंहिताकारने स्वयं उस क्षौम शब्दकी इस प्रकार व्याख्या की है,—"क्षत्रियस्य तु मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी।" (२।४२) अर्थात् वैश्यका शणतन्तु हो मेखला होगा। क्षौम शब्दसे पट्टवस्त्र भी समझा जाता है, किन्तु उस पट्टवस्त्रका अर्थ पटसन है जो रेशमसे बिलकुल भिन्न है। मनुसंहितामें रेशम और टसरका स्पष्ट उल्लेख मिलता है, जैसे—

"कौषेयाविकयो रूषैः कुतपानामरिष्ठकैः।
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः॥"

(मनु० ५।१२०)

अर्थात् कौषेय और पशम लोना मिट्टीसे, अंशुपट्ट वा रेशम श्रीफलसे तथा क्षौमवस्त्र गौरसर्षपसे परिशुद्ध करे। उक्त प्रमाणसे दो प्रकारके रेशमका पता चलता है। इन दोनोंमें एक टसर और दूसरा रेशम है, टसरके कोयेसे जो निकृष्ट रेशम पाया जाता था, वही कौषेय है तथा पट्ट वा बड़े पाट नामक कीड़ाके कोयेसे

जो अंशु मिलता था, वही अंशुपट्ट कहलाता है। मनुसंहितामें चीन आदि जनपदवासीको भारतके अन्तर्गत जाति बताया है। फिर भी मनुसंहितामें चीनांशुक अर्थात् चीनोंके निर्मित सूक्ष्म वस्त्रका कोई उल्लेख नहीं है। इससे मालूम होता है, कि मनुसंहिताकी रचनाके समय भारतवर्षमें कौषेय और अंशुपट्ट नामक जो दो प्रकारके वस्त्र प्रचलित थे, वह चीनांशुकसे स्वतन्त्र हैं। महाभारतके राजसूय-पर्वाध्यायमें लिखा है कि, चीनोंने राजा युधिष्ठिरको चीनांशुक उपहार दिया था। जैसे—

"प्रमाणरागस्पर्शाढ्यान् वाह्लीचीनसमुद्भवम्।
ऊर्णाञ्च राङ्कवञ्चैव पट्टजं कीटजन्तया॥"
(सभा ५२।२६)

शायद इसी समय भारतवर्षमें पहले पहल चीनांशुकका प्रचार हुआ होगा। धर्मकर्ममें नहीं आने पर भी चीनांशुक भारतवासीकी विलास सामग्री समझा जाता था। जैसे—

"चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य।"
(कालिदास-शकुन्तला १म अङ्क)

शायद चीनांशुक जब भारतीय राजाओंकी विलास-सामग्री था, तब चीन देशीय कीड़े इस देशमें लाया और उसका प्रतिपालन किया गया होगा। संस्कृतसाहित्यमें रेशमकीटका नाम पुण्डरीक है। आज भी मालदह अञ्चलमें जो रेशमके कीट पालते हैं, वे पुण्डरीकाक्ष वा पुण्ड्र कहलाते हैं। पुण्डरीक शब्द ही अपभ्रंशसे पोढ़, पोल्, पूलू वा पिल्लू हुआ है। ईसाजन्मसे कई सदी पहले पोण्ड्रवर्द्धनके निकट पुण्डरीक नामक एक वणिक् शाखाका हाल जैनोंके कल्पसूत्रमें मिलता है। मालदहसे बगुड़ा पर्यन्त एक समय रेशम बहुतायतसे उत्पन्न होता था तथा पिलूका व्यवसाय भी जोरों चलता था। यहां जो पिलूका व्यवसाय करते थे उनमेंसे एक उच्च श्रेणी जैनशास्त्रमें पुण्डरीक नामसे प्रसिद्ध है। संस्कृत शास्त्रमें कौषेय, पट्ट, क्रिमिजसूत्र, कीटजन्तु, कीटसूत्र, कीटज, दुकुल और दुगुल ये सब रेशमके पर्याय कहे गये है। उक्त नामोंसे भी वैदेशिक संश्रवका कोई आभास नहीं मिलता। चीन भाषामें शी (Tsan)से कोया और शी (Tsi) कीट समझा जाता है। इसी शीसे मुगल सिर्के, कोरिया सिर, ग्रीक सेरिकोन, लाटिन सेरिकम (Sericum) जर्मन सिडेन (Seiden), फरासी सोयी (Soie), रूस सिवलक (Sheolk), आंगले-सकसन सिवलक (Seole), आइसलण्डीय सिल्के (Silke) और ब्रह्मदेशीय सा (Tsa) हुआ है। उक्त नाम देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि चीन और मोङ्गोलियासे रेशम यूरोपमें पहुंचा है। आसामी भाषामें पाटको कोया, कश्मीरी भाषामें रेशम कहते हैं। यहां तक, कि तामिल भाषामें भी पट्टु शब्दसे रेशम समझा जाता है। विभिन्न भाषाके ये सब शब्द संस्कृत पट्ट शब्दके अपभ्रंश हैं, इसमें संदेह नहीं। उद्धृत विभिन्न भाषाके शब्दोंसे क्या यह नहीं समझा जाता, कि भारतके पूर्वप्रान्तवासी ब्रह्मवासिगण चीनोंसे रेशमका नाम ग्रहण करने पर भी क्या दक्षिण भारतमें क्या, सुदूर उत्तर भारतमें कहीं भी वैदेशिक नाम नहीं लिया जाता था। इससे यही साबित होता है, कि अंशुपट्ट वा भारतीय रेशम भारतवासीका निजस्व है। महाभारतमें पिल्लुकीटको 'कृमि' कहा है।* आज भी काश्मीर अञ्चलमें कीड़ाका पालन करने वाले क्रिमिक' कहलाते हैं। और तो क्या, रामायणमें भी आसामके उत्तरांशको कोषकार कहा है।

"मागधांश्च महाग्रामान् पुण्ड्रशुङ्गांस्तथैव च।
भूमिञ्च कोशकाराणां भूमिञ्च रजताकराम्॥"
(किष्किन्धा ४०।२३)

रामायणके वर्णनसे ही मालूम होता है, कि हिमालयके क्रोड़स्थ कोषकार नामक जनपदसे बहुत पहले चीन और भारतवासीने रेशम वा टसरका सन्धान पाया होगा। बाइबेलके प्राचीन अंशमें सेरिकोथ (Sherikoth of Issiah 19. ix) नामक रेशमका उल्लेख है।

भाषाविद्गण उस शब्दसे चीनके साथ संश्रव स्वीकार करते हैं। इधर हिब्रु मेशी और दोमसेक, अरबी दिमस्के और कुश तथा पारसिक अब्रेशम वा रेशम एक पर्यायवाचक शब्द हैं। इन सब शब्दोंके साथ चीन वा भारतीय रेशम शब्दका कोई संश्रव नहीं हैं।

चीन-इतिहासमें लिखा है, कि फोहि नामक चीन-

* "कृमिर्हि कोषकारस्तु वध्यते स्व परिग्रहात्॥"
(भारत १२।३२६।२६)

सम्राट्‌की स्त्री सिलिङ्गीने २७०० ई०सन् पहले रेशमका सूत आविष्कार किया ; किन्तु वर्त्तमान ऐतिहासिकोंका कहना है, कि चीनके इतिहासमें जो सब प्राचीन गल्प लिखी हैं उन्हें ईसा-जन्मकी ३री सदीके पहलेकी नहीं मान सकते। उस समय चीनके अत्याश्चर्य प्राचीर-निर्माता चीन सम्राट् चिहोयङ्ग तिने समस्त प्राचीन चीनग्रन्थोंको जला दिया। उनके मरनेके बाद चीनका प्राचीन इतिहास स्मृतिसे पुनः लिखा गया। इस हिसाब-से चीन-इतिहासकी अति प्राचीन घटनावली बिलकुल सच है, हमें विश्वास नहीं होता। ३री सदीको चीनमें जो रेशम और टसरका वाणिज्य चलता था, उस समय-के ग्रन्थमें इसका प्रमाण पाया गया है। जनसाधारण का विश्वास है, कि रोमसम्राट् जष्टिनियनने ६ठी सदी-में कुछ संन्यासी यतियोंसे चीनके रेशमी वस्त्रका संधान पा कर उन लोगोंको पुनः चीनदेश जानेके लिये अनु-रोध किया। वे लोग ही चीनदेशसे चीना-कोड़ेका उत्कृष्ट अंडे ला कर रोम लौटे। उसी बीजकोषसे यूरोपमें रेशम बनानेका सूत्रपात हुआ तथा उसी समय-से रेशमका व्यवसाय भी धीरे धीरे सारे यूरोपमें फैल गया। इस प्रकार चीनका रेशम यूरोपमें प्रचारित होने पर भी उसके पहले रोमक-साम्राज्यमें रेशम अपरिज्ञात नहीं था। प्लिनिके वर्णनसे जाना जाता है, कि आसि-रिया देशमें पिल्लू कीड़ा पैदा होता था। दक्षिण यूरोपमें भी जङ्गली कीड़ा मिलता था और वहांके लोग रेशम निकालनेका हाल जानते थे। प्लिनिके मतसे प्लोतेशकी कन्या पाम्फिली (*P*amphile)-ने कोष नामक द्वीपसे रेशमकी कताई और रेशम बुननेकी पद्धतिका आविष्कार किया। इन सब प्रमाणोंसे देखा जाता है, कि चीनके रेशमका अभी तमाम यूरोपमें आदर और प्रचार होने पर भी बहुत पहलेसे दक्षिण-यूरोपके लोग जङ्गली रेशम-कीटका हाल जानते थे। ६ठी सदीके बाद समस्त यूरोपमें चीनी रेशमका आदर होनेसे एकमात्र चीनको ही लोग रेशमका आदि जन्मस्थान मानने लगे हैं।

फरासी-पण्डित बैताड़ (M. Boitard)-का कहना है, कि रेशम भारतकी चीज है। उनके मतसे सम्राट जष्टिनियन (Justinian)-ने संन्यासियों द्वारा जो रेशम-कीटका अण्डा मंगवाया था, वह चीनदेशसे नहीं, बल्कि पञ्जाब-प्रान्तके सरहिन्द नामक उत्तर-भारतसे। चीन लोग दुर्भेद्य प्राचीरसे निकल कर सुगन्धि द्रव्य और गरम मसालेके बदलेमें हिन्दूको रेशम दे जाते थे। अति उर्वर अनुगाङ्गप्रदेशमें पीछे उस रेशमकी खेती होने लगी थी।

प्रोकोपियस (*P*rocopius de Bello Gallico)-के वर्णनसे भी मालूम होता है, कि ५००से ५६५ ई०के भीतर कुछ संन्यासी भारतसे रोमक-सम्राट् जष्टिनियनकी सभामें गये थे। उन लोगोंको सुननेमें आया कि सम्राट्‌की अब इच्छा नहीं, कि वे पारस्यसे रेशम खरीदें। उन्होंने सम्राट्‌से कहा, कि यदि आज्ञा हो, तो वे लोग रोमराज्य-में ही रेशम पैदा कर सकें; दूसरेके मुंह ताकनेकी जरू-रत नहीं। उन्होंने यह भी कहा, कि नाना जातिसमा-कुल भारतके सेरिन्दा (सरहिन्द) नामक स्थानमें उन लोगोंका आदिवास है। वे लोग आसानीसे रेशमकीट यहां ला सकते हैं।

फिर बैजन्तीवासी थियोफनेश (Theophanes of Byzantium)-ने ६ठी सदीके शेष भागमें लिखा है, कि सम्राट् जष्टिनियनके शासनकालमें एक पारसिक लाठीमें कुछ रेशमकोटके अण्डे छिपा कर बैजन्ती-राजधानी लाया था। उसीसे रोमकोंने रेशमकीटकी पालनप्रथा और रेशमोत्पादनका तरीका सीखा था। इससे पहले रोमराज्यमें और कोई भी रेशमकीट पालनेका हाल नहीं जानता था।

उद्धृत प्रमाणोंसे मालूम होता है, कि यूरोपीय जन-साधारणका विश्वास रहने पर भी चीनसे रोम-राज-धानीमें रेशमकीट नहीं लाया गया। भारत-सामान्त सरहिन्द अथवा उसीके निकटवर्त्ती पारस्य-सीमासे शायद रेशमका बीज रोमराज्यमें लाया गया होगा। जो कुछ हो, भारतमें बहुत पहलेसे रेशमकी खेती होती आई है तथा भारतसे भी प्राचीन सुसभ्य देशोंमें रेशमका बीज गया होगा यह भी असम्भव नहीं।

भारतमें अभी जितने प्रकारके रेशमकीट देखे जाते हैं सबोंको हम लोग भारतीय कीट नहीं कह सकते। रेशमतत्त्वविदोंकी गवेषणाके फलसे इसी भारतमें

प्रधानतः १५ प्रकारके पिल्लूकीट और ३१ प्रकारके टसर-कीटका संधान पाया गया है। उन सब जातियोंमें भी फिर बहुत-सी उपजाति देखी जाती हैं। उनमेंसे विलायती (Bombyx mori) और चीना पिल्लू (Bombyx sinensis) तथा इन दो श्रेणियोंकी कुछ उपजातिको हम लोग भारतीय माननेके लिये तय्यार नहीं है। वे सब विभिन्न समयमें भारतवर्ष लाये और पाले गये हैं। इनमेंसे चीनापिल्लू कब इस देशमें लाया गया है उसे कोई नहीं कह सकता। विलायती कीड़ा चीनके सभी प्रदेशोंमें, काश्मीर, अफगानिस्तान, पारस्य, बोखारा, सिरिया, फ्रान्स, इटली, स्पेन, सुइडेन रूस, तुरुष्क, इजिप्ट, अलजिरिया, अष्ट्रेलिया, अमेरिका आदि देशोंमें ही अभी पाया जाता है, किन्तु इसका आदि जन्मस्थान चीनदेश है। इष्ट-इण्डिया कम्पनीके समय बङ्गालमें विलायती कीड़ा पालनेका इन्तजाम हुआ, किन्तु यह ग्रीष्मप्रधान बङ्गदेशकी अपेक्षा शीतप्रधान स्थानमें ही अधिकतासे होता है।

१८३६ ई०में डाक्टर लिपड साहबने लिखा है, कि लगभग १५०० वर्ष हुआ, बड़ा कीड़ा इटलीसे इस देशमें लाया गया है। हाटन साहबके यत्नसे यह रेशमकीट चीनसे बङ्गालमें आया है। लेकिन कब लाया गया ठीक ठीक मालूम नहीं, किन्तु इस कीड़ेको हम लोग विदेशी पिल्लू नहीं मान सकते। यह 'देशी' पिल्लू नामसे तमाम मशहूर है। इसी नामसे इस कीड़ेको गौड़ीय वा भारतीय कहनेमें कोई आपत्ति नहीं। १५० वर्ष पहले प्रकाशित फरासी वाणिज्य कोषसे जाना जाता है, कि उसके पहले कासिमबाजार, हरिपाल, जङ्गीपुर, राधानगर, सोनामुखी, नदिया, बगुड़ा, रङ्गपुर और निम्न आसाममें यह कीट अधिकतासे पाला जाता था।

काश्मीरमें भी रेशमकी खेती होती है। यहां चीन और बोखारासे अच्छे अच्छे रेशमके कीट लाये जाते हैं। वृटिश गवर्मेण्टके कृषिविभागके यत्न और यूरोपीय रेशम वणिकोंके यत्नसे केवल बंगालमें ही नहीं, भारतके नाना स्थानोंमें देशी और विदेशी नाना प्रकारके रेशमकी खेती होने लगी है। दुःखका विषय है, कि रेशम-व्यवसायमें देशी लोग एक समय जो इतने प्रख्यात हो गये थे अभी उनके रेशम व्यवसायका उतना आदर न रह गया है।

रेशमका वाणिज्य।

सभी सभ्य देशोंमें शौकीन चीज समझ कर रेशमका आदर और वाणिज्य होता है। हजारों वर्षसे चीनदेशमें रेशमका वाणिज्य एक-सा चला आ रहा है। दूसरे देशमें थोड़ी-बहुत रेशमकी आमदनी रफ्तनी होने पर भी चीनदेशमें आमदनी नहीं होती, सिर्फ रफ्तनी होती है। इसीसे मालूम होता है, कि चीन किसीका भी रेशमके लिये मुखापेक्षी नहीं है। चीनके सब जिलोंमें जिस तरह काफी रेशम उत्पन्न होता है, उसी तरह नाना देशोंमें चीनसे वही सब उत्पन्न रेशम भेजा जाता है। इसी रेशमसे रूमाल, चादर, पगड़ी, साटिन, फीता आदि बनता है।

चीनकी तरह जापानमें भी यथेष्ट रेशम उत्पन्न होता है। जापानमें एक प्रकारका कीड़ा पैदा होता है जो बहुत रेशमके कोयेको नष्ट करता है। फिर भी यहां रेशमीवस्त्र बहुतायतसे प्रस्तुत होता तथा विलायत और भारतके बाजारोंमें उसकी खूब आमदनी होती है।

पूर्व उपद्वीप, श्यामदेश, पारस्य आदि स्थानोंमें जो रेशम उत्पन्न होता है, उसका अधिकांश अन्तर्वाणिज्यमें ही खपत होता है। पारस्यके येजद प्रदेशमें हुसेन कुली खाँ नामक एक प्रकारका बढ़िया रेशमी वस्त्र तैयार होता है। मध्यएशियामें बुखारा रेशम-व्यवसायका एक प्रधान स्थान है। चीनके रेशमकी अपेक्षा यहांका रेशम निकृष्ट समझा जाता है। यहांसे खास कर तीन प्रकारका लबि-अबि (नदीके किरे उत्पन्न), वहंनजाइ और चिल्लाजायदार नामक रेशम भारतमें भेजा जाता है। इनमेंसे चिल्लाजायदार रेशम ही श्रेष्ठ है। यह हजरत इमाम और कुवाद प्रदेशमें पैदा होता है।

भारतवर्षमें काफी रेशम उत्पन्न होता है, तो भी यूरोपके बाजारोंमें भारतीय रेशमसे चीन, जापान, श्याम और पारस्यके रेशमका ही बड़ा आदर है। इष्ट इण्डिया कम्पनीने बंगालमें उत्कृष्ट रेशम प्रस्तुत करानेकी चेष्टा की। इसके लिये उन्होंने १८६१ ई०में बंगालके जमींदारोंसे अनुरोध किया। इसी समय इटलीसे कुछ रेशम व्यवसायी यहां आये। इटली प्रथानुसार रेशम

उत्पन्न होने लगा। पीछे यहांके लोगोंने इस प्रथाको उतनी सुविधाजनक न समझ ग्रहण नहीं किया। भारत के सब स्थानोंसे बंगालमें ही अधिक रेशम उत्पन्न होता है। यहांसे उत्तर पश्चिम प्रदेश, पञ्जाब, यहां तक कि, काश्मीर तक बंगीय रेशम भेजा जाता है। बनारसमें जो उत्कृष्ट रेशमी कपड़े बनते हैं उसमें अधिकांश बंगीय रेशम है। मुर्शिदाबाद और मालदह-प्रान्तमें उमदा रेशमी कपड़ा तैयार होता है। वे देखनेमें विलायती रेशमी कपड़ेसे साफ होते हैं। विलायती रेशम धोनेसे कुछ कामका नहीं रह जाता; किन्तु देशी रेशम उस तरह नष्ट नहीं होता, वरं धोनेसे और उजला हो जाता है। यहांके रेशममें रंग दिया जाता है। बाजारमें चौदह प्रकारके रंगमें रंगे रेशमी कपड़े देखे जाते हैं जैसे,—गाढ़ा नीला या काला, कुछ नीला, लाल और गुलाबी, वसन्ती या हल्दी रंग, अरद या कमला नीबूकी तरह रंग, हरा, बैंगनी, पीताम्बरी, सुनहरी, हीरामन-कण्ठी, मयूरकण्ठी, धूपछाया और आसमानी। वालुचरमें रेशमके ऊपर जड़ीका काम किया जाता है।

इस समय यूरोप और अमेरिकाके सभी देशोंमें रेशम उत्पन्न करनेका विशेष प्रयत्न होने पर भी फ्रान्सने सब देशोंको मात किया है। और सब देशोंकी अपेक्षा फ्रांससे अधिक रेशम दूसरे देशोंमें भेजा जाता है। इंगलैण्डमें सब देशोंकी अपेक्षा फ्रान्ससे ही अधिक रेशम जाता है।

रेशमके प्रसिद्ध कारखानोंके नाम।

बङ्गाल—बङ्गाल सिल्क मिल्स, कालीशङ्करपुर सिल्क फैक्टरी, मुर्शिदाबाद सिल्क स्टोर, निमतल्ला सिल्क फैक्टरी, पलासी सिल्क फैक्टरी, रोज फिल्टर्स कनसर्न।

बम्बई प्रेसिडेन्सी—अहमदाबाद सिल्क और काटन मैनुफैक्चरिंग, बलुभाई यगनलाल, दयाराम हरकिशुनदास चेवली, न्यु कोरोनेशन मिल्स, पालनपुर वीभिंग-कम्पनी।

मध्यभारत—विनसुम सिल्क मैनुफैक्चरिंग।

काश्मीर—काश्मीर सिल्क फैक्टरी।

महिसुर—बङ्गलोर उलन, काटन एण्ड सिल्क मिल्स, सालमेशन आर्मी ताता सिल्क फार्म।

पोण्डिच्चेरी—फिलचर्स पट टिसाजेज गैवेले, सावन सोसाइटी अनोनियम दे फिलचर्स पट तिसाज।

युक्तप्रदेश आगरा और अवध—बालमुकुन्द मुल सिल्क मिल्स, बनारस सिल्क वीभिंग, टाचलर वीभिंग स्कूल।

रेशमी (फा० वि०) रेशमका बना हुआ।

रेशयदारिन् (सं० त्रि०) हिंसितकी प्रतिहिंसा करनेवाला।

रेशा (फा० पु०) १ तन्तु या महीन सूत। यह पौधोंकी छालों आदिसे निकलता है या कुछ फलोंके भीतर पाया जाता है।

रेष (सं० पु०) १ क्षति, हानि। २ हिंसा।

रेषण (सं० क्ली०) रेष-ल्युट्। १ अश्वशब्द, घोड़ेका हिनहिनाना। २ व्याघ्रका चीत्कार, बाघका गरजना या गुर्राना। ३ क्षति, हानि। ४ हिंसा।

रेषा (सं० स्त्री०) १ बाघका गुर्राना। २ घोड़ेकी हिनहिनाहट।

रेषिन् (सं० त्रि०) हिंसाशील, हिंसा करनेवाला।

रेष्टृ (सं० त्रि०) क्षतिकारक, हानि पहुंचानेवाला।

रेष्मच्छिन्न (सं० त्रि०) प्रलयके झंझावातसे उच्छिन्न या विदीर्ण, जो प्रचंड वायुसे टूट फूट गया हो।

रेष्मन् (सं० पु०) प्रलयकाल।

रेष्ममथित (सं० त्रि०) जो प्रबल आंधीसे नष्ट-भ्रष्ट हो गया हो।

रेष्मय (सं० त्रि०) प्रलयकालमें भी जो मौजूद रहे।

रेस (अं० स्त्री०) १ बाजी बद कर दौड़ना, दौड़में प्रतियोगिता करना। २ घुड़दौड़।

रेसकोर्स (अं० पु०) दौड़ या घुड़दौड़का रास्ता या मैदान।

रेस ग्राउंड (अं० पु०) दौड़ या घुड़दौड़का मैदान।

रेसमान (फा० पु०) सुतरी, डोरी।

रेसलपुर—मध्यप्रदेशके हुसंगाबाद जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम।

रेह (हिं० स्त्री०) खार मिली हुई वह मिट्टी जो ऊसर मैदानोंमें पाई जाती है।

रेहन (फा० पु०) रुपया देनेवालेके पास कुछ माल या

जायदाद इस शर्त पर रखना कि जब वह रुपया पा जाय तब माल या जायदाद वापस कर दे, बंधक, गिरवो।

रेहनदार (फा० पु०) वह जिसके पास कोई जायदाद रेहन रखी हो।

रेहननामा (फा० पु०) वह कागज जिस पर रेहनकी शर्तें लिखी हों।

रेहल (अ० स्त्री०) पुस्तक रखनेकी पेंचदार तख्ती। रिहल देखो।

रेहली—१ मध्यप्रदेशके सागर जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २३°१´ से २३° ५४´ उ० तथा देशा० ७८° ३६´ से ७९° २२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२९९ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है। इसमें २ शहर और ६६० ग्राम लगते हैं। यहांकी जमीन बड़ी उपजाऊ है।

२ सागर जिलेके अन्तर्गत एक नगर और रेहली उपविभागका सदर। यह अक्षा० २३° ३८´ उ० तथा देशा० ७९° ५´ पू०के मध्य अवस्थित है। समुद्रकी तहसे यह १२५० फुट ऊँचा है। यह स्थान स्वास्थ्यप्रद है। गुड़, चीनी और गेहूंके व्यवसायके लिये यह नगर प्रसिद्ध है।

पहले गोंड़राजगण यहां राज्य करते थे। पीछे बलदेववंशीय ग्वालजातिकी एक शाखा निकटवर्त्ती खमारिया ग्राममें आ कर बस गई। उन लोगोंने खमारियासे राजपाट उठा कर रेहली नगरमें राजधानी बसाई तथा सुदृढ़ दुर्गादि द्वारा उसे सुरक्षित कर दिया। पश्चात् बुन्देल सरदार राजा छत्रशालने अहीर जातिसे यह स्थान जीत लिया। अनन्तर उन्होंने फरुखाबादके शासनकर्त्ता महम्मद खाँ बङ्गशके विरुद्ध युद्ध किया। इस युद्धमें पेशवा बाजीरावने उन्हें सहायता पहुंचाई थी। इस प्रत्युपकारमें उन्होंने अन्यान्य सम्पत्तिके साथ पेशवाको यह स्थान दे दिया। वर्त्तमान दुर्ग उक्त पेशवाके यत्नसे ही बनाया गया था। उस समय यहां अनेक सम्भ्रान्तवंशीय महाराष्ट्रकुल आ कर बस गये थे। आज भी उनका टूटा फूटा महल मौजूद है। १८१७ ई०में सागर जिलेके साथ रेहली वृटिश सरकारके अधिकारभुक्त हुआ

रेहुआ (हिं० वि०) जिसमें रेह बहुत हो।

रेहू (हिं० पु०) रोहू देखो।

रैंगलर (अं० पु०) इङ्गलैंडमें प्रचलित सर्वोच्च गणितपरीक्षामें उत्तीर्ण व्यक्ति।

रैक (अं० पु०) लकड़ीका खुला हुआ ढाँचा जिसमें पुस्तकें आदि रखनेके लिये दर या खाने बने रहते हैं। यह आलमारीके ढंगका होता है पर भेद इतना ही होता है, कि आलमारीके चारों ओर तख्ते जड़े होते हैं और यह कमसे कम आगेसे खुला रहता है।

रैकेट (अं० पु०) टेनिसके खेलमें गेंद मारनेका डंडा। इसका अग्रभाग प्रायः वर्तुलाकार और तांतसे बुना हुआ होता है।

रैक्क (सं० पु०) व्यक्तिविशेष। (छान्दोग्य उप० ४।१।३)

रैक्कपर्ण (सं० पु०) एक जनपदका नाम। (छान्दोग्य उप० ४।२।५)

रैख (सं० पु०) रेखके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष। (पा ४।१।११२)

रैग्राम—स्कन्दपुराण वर्णित एक पुण्यक्षेत्र। यह क्षीराब्धीके पश्चिम किनारे अवस्थित है। यहां ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लोग रहते थे। सह्याद्रिखण्डके अन्तर्गत कामाक्षीमाहात्म्यमें रैक्षेत्रका विशेष विवरण दिया गया है।

रैणव (सं० पु०) १ रेणुके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष। (आश्व० श्रौ० १२।१४)

२ एक प्रकारका साम।

रैणुकेय (सं० पु०) १ परशुराम। २ रेणुकाके गर्भसे उत्पन्न।

रैतस (सं० त्रि०) रेतः सम्बन्धीय। (शत०ब्रा० १४।५।५।२)

रैतिक (सं० त्रि०) पित्तल सम्पर्कीय, पीतलका।

रैत्तिक—ऋषिप्रवर्त्तित गोत्रभेद (स्कन्दपु० नागरख० १०८।१३)

रैतु (सं० पु०) रायता देखो।

रैत्य (सं० पु०) पित्तलनिर्मित पात्र, पीतलका बना बरतन।

रैदास (हिं० पु०) १ प्रसिद्ध भक्त जो जातिका चमार था। यह रामानन्दका शिष्य और कबीर, पीपा आदिका समकालीन था। रविदास देखो। २ चमार।

रैदासी (हिं० पु०) १ रैदास भक्तके सम्प्रदायका । २ एक प्रकारका मोटा जड़हन धान ।

रैन (हिं० स्त्री०) रात्रि, रात ।

रैनी (हिं० स्त्री०) चांदी या सोनेकी वह गुल्ली जो तार खींचनेके लिये बनाई जाती है ।

रैमुनिया (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी अरहर । २ लाल पक्षीकी मादा ।

रैभ (सं० पु०) रेभका गोत्रापत्य ।

रैभी (सं० स्त्री०) १ ऋक् मन्त्रभेद । (ऋक् १०.८५.६) २ अथर्व्ववेदोय दो मन्त्र । (अथर्व्व २०।१२७.४६)

रैभ्य (सं० पु०) १ सुमतिका पुत्र और दुष्मन्तका पिता । (भाग० ९।२०।७) २ एक मुनिका नाम । (लिङ्गपु० ६।३।५१) ३ एक ज्योतिर्विद् । केशवार्कने मुहूर्त्तचिन्ता-मणिमें इसका उल्लेख किया है ।

रैयत (अ० स्त्री०) प्रजा, रिआया ।

रैयाराव (हिं० पु०) १ छोटा राज्य । २ एक पदवी जो प्राचीन समयमें राजा लोग अपने सरदारोंको देते थे ।

रैवता (हिं० पु०) घोड़ा ।

रैवत (सं० पु०) १ स्वर्णालु वृक्ष, सोनालु नामक क्षुप । २ गुजरातका एक पर्वत । इसी पर्वत परसे अर्जुनने सुभद्राका हरण किया था । (भारत १।२२१।१६) उज्जयन्त और गिर्णार देखो । ३ शङ्कर, महादेव । ४ दैत्यविशेष । महाभारतमें लिखा है, कि यह बालग्रहमेंसे एक है । (भारत ३।२२।८-२८)

रैवत्यां भवः रैवती-अण् । ५ वर्त्तमान कल्पके पांचवें मनु । ये रैवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं । दुर्दम इनके पिता हैं । इस मन्वन्तरमें विकुण्ठ अवतार, विभुइन्द्र, भूतरयादि देवता, हिरण्यरोमादि सप्तर्षि हैं बलि और विन्ध्यादि उस मनुके पुत्र हैं । (भागवत मत्स्यपुराणके मतसे भी रैवत पञ्चम मनु हैं । इ मनुके समय देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि हिरण्यरोमा, सप्ताश्व, ये सात सप्तर्षि, अभूतरजस् आदि देवता; तत्त्वदर्शी अरुण, वितवान्, हव्यप, कापमुक्त निरुत्सुक, सत्त्व, निर्म्मोह, प्रकाशक, धर्मवीर्य और बलोपेत ये दश रैवत मनुके पुत्र हैं । (मत्स्यपु० ९ अ०) ६ छन्दभेद । ७ सामभेद । ८ महर्षिभेद । ९ बालरोग विशेषके अधिष्ठातृ-अपदेवताविशेष । १० मेघ, बादल ११ सोमलताविशेष । (सुश्रुत ४.२९) १२ ऋषिविशेष १३ राजभेद । (भारत उद्योग पर्व) १४ आनर्त्त (कुश स्थली)-के राजा ककुद्मिनके पितृपुरुष । १५ राजा अमृतोदनके औरससे रैवतीके गर्भजात पुत्रभेद । १६ आनर्त्त राजधानी कुशस्थलीके निकटस्थ पर्वतभेद । १८ शाकद्वीपके अन्तर्गत पर्वतभेद । (लिङ्गपु० ५६.१७) (त्रि०) १९ धनवान्, धनी ।

रैवतक (सं० पु०) स्वार्थे कन् । १ गुजरातका एक पर्वत जो आधुनिक जूनागढ़के पास है और गिरनार कहलाता है इसी पर्वत पर अर्जुनने सुभद्रा हरण किया था । २ शकुन्तला-वर्णित द्वारपालभेद । ३ रैवतक पहाड़ पर रहनेवाली एक जाति ।

रैवतिक (सं० त्रि०) रैवती (रेवत्यादिभ्यष्ठक् । पा ४।१।१४६) इति ठक् । रेवतीका अपत्य ।

रैवतिकीय (सं० त्रि०) १ रैवतीसम्बन्धीय । २ रेवती-सम्भव ।

रैवत्य (सं० क्ली०) १ धन, सम्पत्ति । २ एक प्रकारका साम ।

ऊनविंश भाग सम्पूर्ण